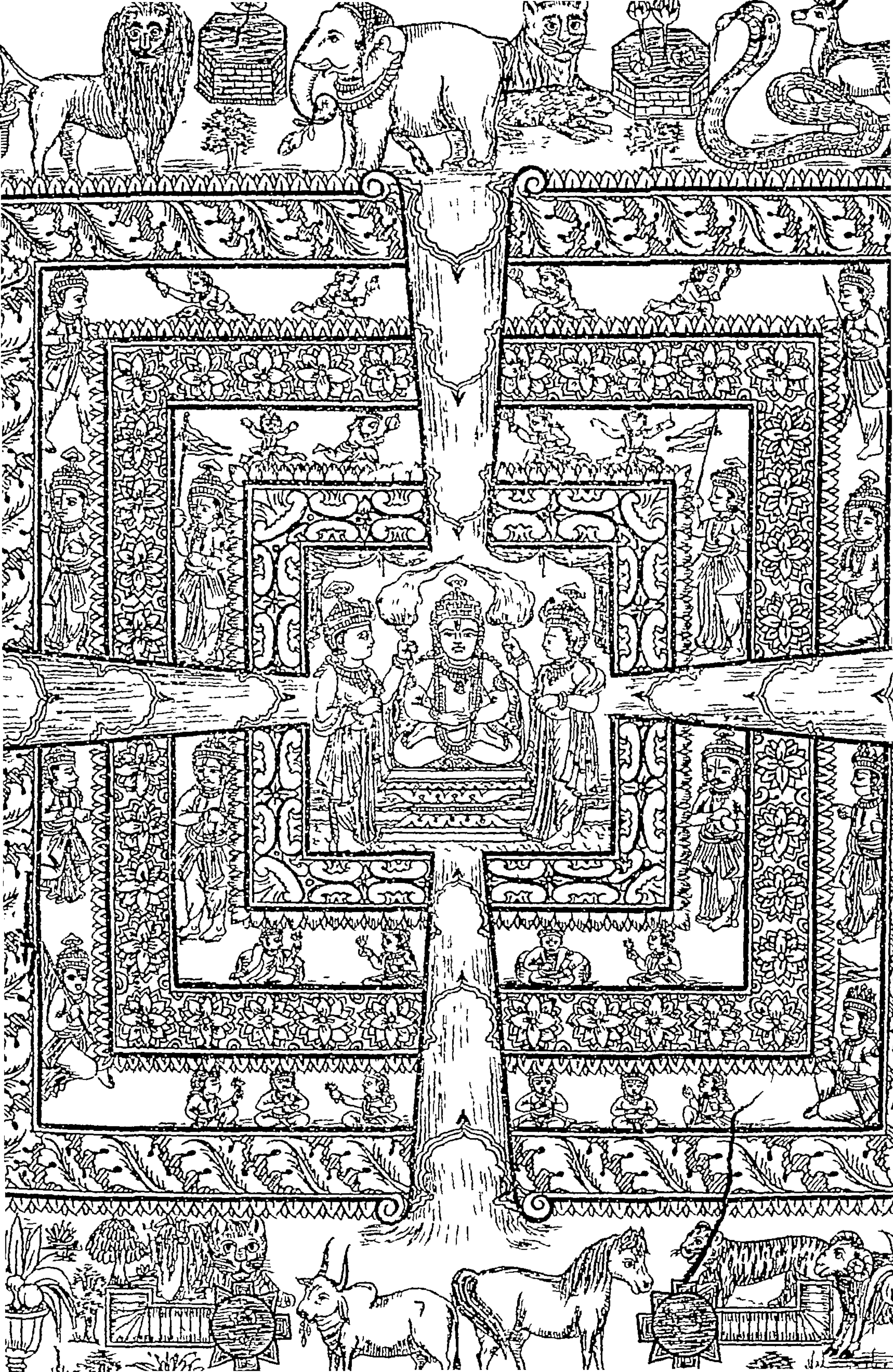


प्रस्तावना.

आ असार संसार समुद्रनेविषे संतत पर्यटन करनारा प्राणीउने जन्म मरणादिक अत्युग्र दुःखोमांथी मुक्त करे एवो तो मात्र एक धर्मज छे. अने एमज सर्व दर्शनीना शास्त्रमां पण कहेलुं छे, एवो जे धर्म तेनुं मूल तो सर्वांश युक्त दयाज छे. कहेलुं छे के " अहिंसा परमो धर्मः " दयावडे धर्मनी प्राप्ति थाय छे; अने परिपूर्ण धर्म प्राप्त थया पछी जीव मोक्षगामी थाय छे; माटें दया सर्वोत्कृष्ट पदार्थ छे. सर्व दर्शनीउ दयानो उपयोग करेछे खरा, परंतु सर्वांशें करता नथी. एटलाज माटें तेउने धर्म पदार्थनो जेवो जोइयें तेवो लान्न थतो नथी. दयानो सर्वांशें उपयोग तो मात्र जैन दर्शनमां स्वीकार्यो छे तेथीज जैनदर्शन धर्मधुरिसर कहेवाय छे, माटें दयानो सर्वांशें उपयोग करवानी अगत्य छे, जेम कांई न्नोजनार्थ पक्वान्न करवुं होय तो तेमां घृत, पिष्ट, शर्करादिक अगत्य वस्तुनुं एकत्रपणुं यथाविधि थाय त्यारेंज ते पक्वान्न स्वादिष्ट कहेवाय; पण जो उपर कहेली वस्तुउमांथी एक पण वस्तुनुं उंगा पणुं होय तो ते पक्वान्न स्वाद रहित बने. माटें दया पदार्थ सर्वांशें पलाय तोज तेथी धर्मोपलब्धि थाय, ते विना तो कदी पण थायज नहीं. सर्व दर्शनीउने दया मान्य छे खरी तथापि तेउनी समजमां फेर होवाथी तेउ श्रेष्ठता पूर्वक दयानो उपयोग सर्वांशें करी शकता नथी. ए वात आगलना व्याख्यान उपरथी सिद्ध थशे. जेमके कोइएक दर्शनी तो एम जाणे छे के पशुउनो प्राणघात करवो, एटले तेउ जन्मथी छूटे, एम कही दया मानी लिये छे; कोइएक कहेछे के प्राणीउ, ज्यां सुधी शरीरें सुखी होय त्यां सुधी तेमनी उपर दया करवी, पण ज्यारें तेउ व्याधिग्रस्त स्थितिमां पीडाता होय त्यारें तो ते प्राणीउनो वध करी तेमने थती पीडामांथी मुक्त करवा एज दयाछे; केटलाएक कहे छे के सूक्ष्म अथवा स्थूल प्राणीउ, जेउ मनुष्यने दुःख दीये छे, तेउने मारी नाखवा एज दया छे; केटलाएक तो यज्ञयागादिक करवामां प्राणीउनो नाश करी तेमांज धर्म धुरं धरता मानी बेठा छे, अने केटलाएक अति सूक्ष्मादि प्राणीउ जेनुं स्वरूप दृष्टिगोचर नथी तेनी चिंता लेश मात्र न राखतां मात्र स्थूल प्राणीउ उपरज दया करवामां दया माने छे. एम अनेक प्रकारें दयानो उपयोग अन्य दर्शनीउ करे छे तथापि तेउ स्वदया, परदया, द्रव्यदया, न्नावदया, निश्चयदया, व्यवहारदया, स्वरूपदया, अनुबंधदया, इत्यादि दयाना अनेक प्रकार, जैनग्रंथोमां सविस्तर वर्णन करेला छे ते प्रमाणें वर्त्ती दयानुं स्वरूप नयशैलीपूर्वक समजता नथी, एज तेउनी मतिमां विभ्रम छे

एवी भ्रमित मतिवाळा दर्शनीउनुं मत क्यारें पण शुद्ध कहेवाय नहीं परंतु जे
मां पोताना आत्मानुं आत्मत्वपणुं जाणीने पूर्णपणे दयाने अंगीकार करी हो
वुं तो एक श्री जैनदर्शन छे अने ते सर्व लोक प्रविदित्त छे. तेथी ए धर्म जग
सर्वोत्कृष्ट कहेवाय छे. ए धर्मना एक रीतें, आचारधर्म, दयाधर्म, क्रियाधर्म अने
धर्म, एवा चार भेद छे अने दान, शील, तप, तथा भाव, ए चार तेनां कारण छे.
धन वळें करी दान देवाय, मन बळवडे शील पळाय, शरीर बळवडे तप थाय
सम्यक्ज्ञानबळवडे भावधर्मनी वृद्धि थाय. ए भावधर्म, दान, शील अने तप,
ऐ करतां अधिक छे, केमके भावधर्मनुं कारण ज्ञान बळ छे; जेणे करी वस्तुनुं
.प जाणीयें, तेने ज्ञान कहीयें. ते ज्ञानथकी आत्मधर्मनी वृद्धि तथा संरक्षण जे
थायछे तेटलुं पेलां त्रण जे दान, शील ने तप, ते थकी थतुं नथी. एनुं कारण ए छे
य, निक्षेप, प्रमाण, चार अनुयोगनो विचार, सप्तभंगी, षट्द्रव्यादिकनो विचार,
. लइ ज्ञान बळवडे जीवने परिपूर्ण प्राप्त थायछे. वळी श्री दशवैकालिक सूत्र
ण प्रथम ज्ञानने पछी क्रिया कहीछे. ते उपरांत ज्ञान विनानी जे क्रिया क
ते पण क्लेशरूप कहीछे. अर्थात् क्रिया तो ज्ञाननी दासी जेवीजछे. ज्ञानी पुरुष
ल्प क्रिया पण अत्यंत श्रेष्ठ छे. वळी श्री उत्तराध्ययनमां पण कह्युं छे के ज्ञान
संयुक्त जे होय तेनेज मुनि कहेवो. एथी पण ज्ञाननुं महात्म्य अत्युत्कृष्ट जणा
श्री महानिशीथमां ज्ञानने अप्रतिपाति वर्णव्युं छे. श्री मरुदेवी माताने हस्ती
बेठां छतां केवळ ज्ञान उत्पन्न थयुं. वळी श्री भरतेश्वरने आरीसा भुवनमां रह्यां
कर्मोनी विमुक्तता थइ ते पण ज्ञाननुंज प्राबल्य हतुं; अने श्री उपदेश माळामां
के ज्ञान रूपी नेत्रें करी उजमाळ एवा मुनिने वंदन करवुं योग्य छे. देवाचार्य
ादि प्रमुखोएं बौध दर्शनीउने जीतीने जगत्मां यशोवाद लीधो ते पण ज्ञानना
साद जाणवो. ज्ञाननी जे तीक्ष्णता तेज अबंध चारित्र जाणवुं. जे निकाचित
ो क्रोडो वर्षपर्यंत दान, शील तथा तप कर्याथी विनाश थतो नथी ते ज्ञानथी
श्वासोश्वासमां थायछे. एटलाज माटें क्रिया गुरुने पींपळाना पत्र जेवा गण्या छे.
ज्ञानी गुरुने समुद्र समान गण्या छे. ज्ञान विना सम्यक्त्वपणुं रही शके नहीं, ज्ञा
ना अहिंसानो मार्ग समजाय नहीं, सिद्धांतोक्त समस्त क्रियानुं मूळ जे श्रद्धा छे
पण कारण ज्ञान छे केमके ज्ञान विना श्रद्धानी प्राप्ति थती नथी, एवुं जे ज्ञान
पांच प्रकार छे. मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव अने केवळ. ए पांचने विषे पण
न सर्वथी अधिकोपयोगी छे श्रुतज्ञान पदार्थमात्रनुं प्रकाशक छे. स्वमत तथा प
नुं परिपूर्ण प्रकाश करनारुं पण श्रुतज्ञानज छे. अज्ञानरूप तिमिर टाळवाने सूर्यस

दशछे तथा डुस्सम कालरूप रात्रीने विषे तो दीपक समानछे बीजां चार प्रकारनां जे ज्ञान छे तेनुं पण कारण नूत श्रुतज्ञानज छे. परमेश्वरें कह्युं छेके श्रुतज्ञान संव्यवहारक छे. उद्देश, समुद्देश, आज्ञा इत्यादि व्यवहारनो लान श्रुतज्ञानथी थाय छे. वली स्वस्वरूपने परस्वरूप समजाववाने श्रुत ज्ञानज समर्थ छे. बीजां केवल ज्ञानादिक चारे ज्ञानथकी जाणेला पदार्थनुं स्वरूप पण श्रुत ज्ञानवडेज कहेवाय छे. माटें मत्यादिक चार ज्ञान स्थापवा योग्यछे पण तेणे करीने परजीवने उपदेश आपी उपकार करी शकाय नहीं; अने श्रुतज्ञानथी उपदेश थाय माटें उपकारी छे. श्रुतज्ञानना श्रवण करवाथी शुद्धात्मिक परमपदनी प्राप्ति थाय छे. माटें श्रुतज्ञान ते महोटुं निमित्त कारण छे. श्रुतज्ञानने सांनलवे करी जीवने शुद्धस्वरूप विशुद्ध श्रद्धान (प्रतीत) उपजे ने तेथी शुद्धात्मानुं आचरण, आसेवन तथा अनुनव उपजे तेज परमपद प्राप्ति जाणवी. श्रुतज्ञान सांनलवाना प्रनावथकी जीव, धर्मनें विशेषें जाणे विवेकवंत थाय, डुर्मतिनो त्याग करे, ज्ञाननी प्राप्ति थाय अने अंतें मोक्ष पामे, माटें श्रुतज्ञाननो आदर अवश्य करवो. श्रुतज्ञाननो संयोग थवो जीवने अत्यंत डुर्लन छे. श्रुतज्ञानने संयोगें करीने पूर्वें श्रीगौतमस्वामी, सुधर्मस्वामी, जंबुस्वामी प्रमुख घणा जीवो संसार समुइने तरी गया; अने वर्त्तमान कालें महाविदेह क्षेत्रने विषे विहरमान सीमंधरादिक वीश तीर्थंकरनी वाणी सांनलीने घणा जीवो तरेछे, तथा आगमिक कालें पद्मनानादिक तीर्थंकरनी वाणी सांनलीने श्रीधर्मरुचि अणगार प्रमुख अनेक जीवो तरशे. तेमज आ नरतादिक क्षेत्रने विषे हमणा पण जे श्रुत ज्ञानने सांनलशे, नणशे, अंतरंग रुचिएं करीने जे श्रद्धा (प्रतीत) करशे, ते सुलन बोधी थशे, कर्मथी विमुक्त थशे अने तेथी परंपराएं मुक्ति पामशे. एवुं श्रुतज्ञाननुं मूल द्वादशांगी छे. ते श्रुतज्ञानी वांचना, पृछना, परावर्त्तना, अनुप्रेक्षा अने धर्मकथा थाय छे. ए धर्मकथा श्रीउववाइ सूत्रमां चार प्रकारनी कही छेः— आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, निर्वेदिनी अने संवेदिनी. हवे जे थकी एक तत्वमार्गमां प्रवृत्ति थाय तेने आक्षेपिणी कहीएं; जे थकी मिथ्यात्वनी निवृत्ति थाय तेने विक्षेपिणी कहीएं; जे थकी मोक्षनी अनिलाषा उत्पन्न थाय, तेने निर्वेदिनी कहीयें अने जे थकी वैराग नावनी उत्पत्ति थाय तेने संवेदिनी कहीयें.

एवी ए श्रुतज्ञानरूप कथा श्री अरिहंत देवाधिदेव तीर्थंकर परमेश्वर समवसरणमां बेशीने त्रिपदी उच्चारण पूर्वक द्वादश पर्षदाना मध्यने विषे करेछे. अने तद्रूप दानथी श्रीगणधरो द्वादशांगीनी रचना करेछे, ते सूत्र कहेवायछे. ते प्रत्येक तीर्थंकरना शासनने विषे थाय छे; तथा ते तीर्थंकरोना शासनमां थयेला प्रत्येक बुध, चौद पूर्वधर, तथा दश पूर्वधर प्रमुख महत्पुरुषो जे निबंधोनी रचना करे छे तेने पण सूत्र संज्ञा

अने एवी भ्रमित मतिवाला दर्शनीउनुं मत क्यारें पण शुद्ध कहेवाय नहीं परंतु जे दर्शनमां पोताना आत्मानुं आत्मत्वपणुं जाणीने पूर्णपणे दयाने अंगीकार करी हो य, एवुं तो एक श्री जैनदर्शन छे अने ते सर्व लोक प्रविदित छे. तेथी ए धर्म जग तमां सर्वोत्कृष्ट कहेवाय छे. ए धर्मना एक रीतें, आचारधर्म, दयाधर्म, क्रियाधर्म अने वस्तुधर्म, एवा चार भेद छे अने दान, शील, तप, तथा भाव, ए चार तेनां कारण छे. हवे धन बलें करी दान देवाय, मन बलवडे शील पलाय, शरीर बलवडे तप थाय अने सम्यक्ज्ञानबलवडे भावधर्मनी वृद्धि थाय. ए भावधर्म, दान, शील अने तप, ए त्रणे करतां अधिक छे, केमके भावधर्मनुं कारण ज्ञान बल छे; जेणे करी वस्तुनुं स्वरूप जाणीयें, तेने ज्ञान कहीयें. ते ज्ञानथकी आत्मधर्मनी वृद्धि तथा संरक्षण जे टलुं थायछे तेटलुं पेलां त्रण जे दान, शील ने तप, ते थकी थतुं नथी. एनुं कारण ए छे के नय, निक्षेप, प्रमाण, चार अनुयोगनो विचार, सप्तभंगी, षट्द्रव्यादिकनो विचार, आदि लइ ज्ञान बलवडे जीवने परिपूर्ण प्राप्त थायछे. वली श्री दशवैकालिक सूत्र मां पण प्रथम ज्ञानने पछी क्रिया कहीछे. ते उपरांत ज्ञान विनानी जे क्रिया क रवी ते पण क्लेशरूप कहीछे. अर्थात् क्रिया तो ज्ञाननी दासी जेवीजछे. ज्ञानी पुरुष नी अल्प क्रिया पण अत्यंत श्रेष्ठ छे. वली श्री उत्तराध्ययनमां पण कह्युं छे के ज्ञान गुण संयुक्त जे होय तेनेज मुनि कहेवो. एथी पण ज्ञाननुं महात्म्य अत्युत्कृष्ट जणा यछे. श्री महानिशीथमां ज्ञानने अप्रतिपाति वर्णव्युं छे. श्री मरुदेवी माताने हस्ती उपर बेठां छतां केवल ज्ञान उत्पन्न थयुं. वली श्री भरतेश्वरने आरीसा भुवनमां रह्यां छतां कर्मोनी विमुक्तता थइ ते पण ज्ञाननुंज प्राबल्य हतुं; अने श्री उपदेश मालामां कह्युंछे के ज्ञान रूपी नेत्रें करी उजमाल एवा मुनिने वंदन करवुं योग्य छे. देवाचार्य मल्लवादि प्रमुखोएं बौध दर्शनीउने जीतीने जगत्मां यशोवाद लीधो ते पण ज्ञाननो ज प्रसाद जाणवो. ज्ञाननी जे तीक्ष्णता तेज अबंध चारित्र जाणवुं. जे निकाचित कर्मनो क्रोडो वर्षपर्यंत दान, शील तथा तप कर्याथी विनाश थतो नथी ते ज्ञानथी एक श्वासोच्छ्वासमां थायछे. एटलाज माटें क्रिया गुरुने पींपलाना पत्र जेवा गण्या छे. अने ज्ञानी गुरुने समुद्र समान गण्या छे. ज्ञान विना सम्यक्त्वपणुं रही शके नहीं, ज्ञा न विना अहिंसानो मार्ग समजाय नहीं, सिद्धांतोक्त समस्त क्रियानुं मूल जे श्रद्धा छे तेनुं पण कारण ज्ञान छे केमके ज्ञान विना श्रद्धानी प्राप्ति थती नथी, एवुं जे ज्ञान तेना पांच प्रकार छे. मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव अने केवल. ए पांचने विषे पण श्रुतज्ञान सर्वथी अधिकोपयोगी छे श्रुतज्ञान पदार्थमात्रनुं प्रकाशक छे. स्वमत तथा प रमतनुं परिपूर्ण प्रकाश करनारुं पण श्रुतज्ञानज छे. अज्ञानरूप तिमिर टालवाने सूर्यस

दृशछे तथा दुस्सम कालरूप रात्रीने विषे तो दीपक समानछे बीजां चार प्रकारनां जे ज्ञान छे तेनुं पण कारण नूत श्रुतज्ञानज छे. परमेश्वरें कह्युं छेके श्रुतज्ञान संव्यवहारक छे. उद्देश, समुद्देश, आज्ञा इत्यादि व्यवहारनो लान श्रुतज्ञानथी थाय छे. वली स्वस्वरूपने परस्वरूप समजाववाने श्रुत ज्ञानज समर्थ छे. बीजां केवल ज्ञानादिक चारे ज्ञानथकी जाणेला पदार्थनुं स्वरूप पण श्रुत ज्ञानवडेज कहेवाय छे. मार्टे मत्यादिक चार ज्ञान स्थापवा योग्यछे पण तेणे करीने परजीवने उपदेश आपी उपकार करी शकाय नहीं ; अने श्रुतज्ञानथी उपदेश थाय मार्टे उपकारी छे. श्रुतज्ञानना श्रवण करवाथी शुद्धात्मिक परमपदनी प्राप्ति थाय छे. मार्टे श्रुतज्ञान ते महोटुं निमित्त कारण छे. श्रुतज्ञानने सांनलवे करी जीवने शुद्धस्वरूप विशुद्ध श्रद्धान (प्रतीत) उपजे ने तेथी शुद्धात्मानुं आचरण, आसेवन तथा अनुनव उपजे तेज परमपद प्राप्ति जाणवी. श्रुतज्ञान सांनलवाना प्रनावथकी जीव, धर्मने विशेषें जाणे विवेकवंत थाय, दुर्मतिनो त्याग करे, ज्ञाननी प्राप्ति थाय अने अंतें मोक्ष पामे, मार्टे श्रुतज्ञाननो आदर अवश्य करवो. श्रुतज्ञाननो संयोग थवो जीवने अत्यंत डुर्लन छे. श्रुतज्ञानने संयोगें करीने पूर्वें श्रीगौतमस्वामी, सुधर्मस्वामी, जंबुस्वामी प्रमुख घणा जीवो संसार समुद्रने तरी गया ; अने वर्त्तमान कालें महाविदेह क्षेत्रने विषे विहरमान सीमंधरादिक वीश तीर्थंकरनी वाणी सांनलीने घणा जीवो तरेछे, तथा आगमिक कालें पद्मनानादिक तीर्थंकरनी वाणी सांनलीने श्रीधर्मरुचि अणगार प्रमुख अनेक जीवो तरशे. तेमज आ नरतादिक क्षेत्रने विषे हमणा पण जे श्रुत ज्ञानने सांनलशे, नणशे, अंतरंग रुचिएं करीने जे श्रद्धा (प्रतीत) करशे, ते सुलन बोधी थशे, कर्मथी विमुक्त थशे अने तेथी परंपराएं मुक्ति पामशे. एवुं श्रुतज्ञाननुं मूल द्वादशांगी छे. ते श्रुतज्ञाननी वांचना, पृछना, परावर्त्तना, अनुप्रेक्षा अने धर्मकथा थाय छे. ए धर्मकथा श्रीउववाइ सूत्रमां चार प्रकारनी कही छेः— आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, निर्वेदिनी अने संवेदिनी. हवे जे थकी एक तत्वमार्गमां प्रवृत्ति थाय तेने आक्षेपिणी कहीएं ; जे थकी मिथ्यात्वनी निवृत्ति थाय तेने विक्षेपिणी कहीएं ; जे थकी मोक्षनी अनिलाषा उत्पन्न थाय, तेने निर्वेदिनी कहीयें अने जे थकी वैराग नावनी उत्पत्ति थाय तेने संवेदिनी कहीयें.

एवी ए श्रुतज्ञानरूप कथा श्री अरिहंत देवाधिदेव तीर्थंकर परमेश्वर समवसरणमां बेशीने त्रिपदी उच्चारण पूर्वक द्वादश पर्षदाना मध्यने विषे करेछे. अने तद्रूप दानथी श्रीगणधरो द्वादशांगीनी रचना करेछे, ते सूत्र कहेवायछे. ते प्रत्येक तीर्थंकरना शासनने विषे थाय छे ; तथा ते तीर्थंकरोना शासनमां थयेला प्रत्येक बुध, चौद पूर्वधर, तथा दश पूर्वधर प्रमुख महत्पुरुषो जे निबंधोनी रचना करे छे तेने पण सूत्र संज्ञा

होवाथी द्वादशांगना बारमा दृष्टिवादमां तेनो समावेश थायछे. वर्त्तमान श्रीमहावीर परमेश्वरना शासनमां हाल प्रवर्त्तमान पीस्तालीश सूत्रो छे ते सर्वे श्रुतज्ञाननाज भेद छे एम जाणवुं. बीजा पण अक्षर अनक्षरादिक चौद अने पर्याय पर्यायसमासादिक वीश भेद पण छे. हाल पंचम कालमां मात्र श्रुत ज्ञानज प्रगट पणे छे अने मतिज्ञान तो श्रुतज्ञान रूपज छे; केमके श्रुत ज्ञाननुं समवायिकारण, मतिज्ञान छे अने कार्यथी कारण भिन्न नथी, किंतु? अभिन्नज छे. बीजां अवधि, मनःपर्यव अने केवल, ए त्रण ज्ञान आ समयमां क्षेत्र कालादिक भेदने लीधे आ क्षेत्रमां श्रीवीर तीर्थंकरना शासनमां प्रवर्त्तमान नथी; मात्र मतिश्रुतरूप श्रुतज्ञाननोज प्रसार रह्यो छे. ए श्रुत ज्ञानना उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा अने अनुयोग, ए चार प्रकार थाय छे. सामान्य कथन करवुं, तेनुं नाम उद्देश; विशेषकथन करवुं, ते समुद्देश; आज्ञा अथवा अनुमोदन ते अनुज्ञा; अने प्रश्न, पृछा, प्रार्थना प्रमुख करवुं तेने अनुयोग कहीयें. अटला कारण माटें व्याख्यान करवामां श्रुत ज्ञानज उपयोगी छे, पण बीजां ज्ञान नथी; माटें चालता समयमां श्रुतज्ञाननी वृद्धि तथा संरक्षण करवुं, ते धर्मनी वृद्धि तथा संरक्षण कर्या प्रमाणे छे. आ ठेकाणे ज्ञान कारण छे अने धर्म कार्य छे. हवे जेम राजा तथा प्रधान ए बेउ प्रजानी वृद्धि तथा संरक्षणने माटें तत्पर होय छे, तेम द्वादशांगीरूप श्रुतज्ञाननां मूलसूत्र, राजा समान छे अने तेना अर्थ रूप टीका, भाष्य, चूर्णी प्रमुख, प्रधान तुल्य छे. तेथी सूत्र अने टीका प्रमुख धर्मनी वृद्धि तथा संरक्षणने माटे छे अने ते श्रुतज्ञानरूप छे तेथी श्रुत ज्ञाननी वृद्धि अने संरक्षण करवाना उपाय तथा तत्संबंधी उद्योगमां अस्मन्मतविजयाभिलाषी, सुज्ञजनोयें बद्धपरिकर थइ तन, मन अने धनवडे आग्रह राखीने आदरवा, एना जेवुं बीजुं कोइ पण धर्मवृद्धि करवानुं अत्युत्तम साधन नथी. श्रुतज्ञाननी सतत वृद्धि ने संरक्षण करवानुं साधन वर्त्तमान कालमां मुद्रायंत्र सर्वोत्तम छे. ते द्वाराएं ग्रंथो छपावीने तेना भंडारा करावववा, ए सर्वोत्तमोत्तम उपायछे. तेउमां प्रथम श्रुतज्ञानना आधारभूत एवा जे पिस्तालिश आगम छे, तेने शुद्ध करी छपावीने प्रसिद्ध करवा. एवा सर्वोत्कृष्ट उपायनो श्री मकशुदाबादेति नगरनिवासी "रायधनपतिसिंहजी प्रतापसिंहजी बहाडुर" तेउएं पोतानां परलोक प्राप्त मातुश्री "महताब बाई" तेमना निरंतर नामस्मरण निमित्तें तथा पूर्ण पुण्योपार्जन निमित्तें तथा अस्मदीय दर्शनगत सुजन पुरुषोने श्रुतज्ञान वृद्धि थवाने निमित्तें, प्रारंभ कर्यो छे. उपर कह्या जे पीस्तालीश आगम तेमांथी हाल आ "श्री सूयगडांगसूत्र" छापवाने मने आज्ञा कर्याथी; में यथामति शुद्ध करीने छाप्युंछे. आ ग्रंथ, अत्युत्तम अने अद्भुत रचना

युक्त छे. एनुं सहज व्याख्यान प्रगट करुं छुं, ते वांचवाथी एनुं अतिशय श्रेष्टपणुं ते मज आवश्यकता ध्यानमां आवशे.

सूयगडांग एटले संस्कृत नाषामां सूत्रकृतांग एवुं नाम छे. सूत्र एटले जेमां सूत्र नी सूचना होय तथा स्वपरमतनी सूचना कराय ते सूत्र कहीयें. ते सूत्र बे प्रकारनुं होय छे. पहेलुं इव्यसूत्र अने बीजुं नावसूत्र जे कार्पासादिकथी उत्पन्न थयुं होय, ते इव्यसूत्र कहीयें, अने श्रुत ज्ञानरूप सूत्र ते नावसूत्र छे, एम जाणवुं. वली जे प दार्थनुं सूचक होय ते श्रुतज्ञान सूत्र जाणवुं. ते श्रुतज्ञान सूत्रना चार नेद छे संज्ञा सूत्र, संग्रहसूत्र, वृत्तबंधसूत्र, तथा जातिबंधसूत्र हवे जे स्वसंकेत पूर्वक बांधे लुं होय ते संज्ञासूत्र केवाय; जेमां घणा अर्थोनो संग्रह तथा धर्माधर्मइव्यनुं ग्रह ण होय ते संग्रह सूत्र केवाय; जे अनेक प्रकारना वृत्त छंदनी जातिथी बांधेलुं होय ते वृत्तबंधसूत्र केवाय अने जे जातिथी बांधेलुं होय ते जातिबंध सूत्र कहेवाय. ए जाति सूत्रना चार नेद छे. तेनां नाम कहीयें छैयें. जेम के, कथ्य, गद्य, पद्य, अने गेय. हवे जे उत्तराध्ययन तथा ज्ञाताधर्मकथादिकनी पेरें प्रायें पूर्व ऋषिनां चरित्र प्रमुख कथा उनो विस्तार जेमां होय ते कथ्य; जे ब्रम्हचर्य अध्ययनादिकनी पेरें जेमां मुक्त नाषानुं विवेचन होय ते गद्य. जेमां छंदरचनावडे मनोहर वर्णन होय, ते पद्य अने कापिली अध्ययननी परें स्वप्रीतिथी गायन करी जेनी रचना थइ होय ते गेय.

अथवा तीर्थंकरोना मुख थकी नव्य जीवोना मोक्षार्थें उत्पन्न थयेलो जे अर्थ ते सूत्र; अने तेनी जे गणधरें रचना करी तेने कृत कहीयें. एम सूत्र अने कृत ए बे मलीने सूत्रकृत एवुं पद थयुं. अथवा सूत्रने अनुसारें जेमां तत्वनो प्रबोध होय, ते पण सूत्रकृत कहेवाय; अने तेना कर्त्ता पण गणधरो छे. हवे गणधर कोने कहेवा? जे सामान्याचार्य होय ते गणधर कहेवाय; ते गौतमादिक जाणवा. ते गौतमादिक एकाद श गणधरोमांहेला पांचमा गणधर श्रीसुधर्मा स्वामी तेमणे पोताना श्रीजंबुप्रनृति शिष्योने उपदेश करवाने अर्थें आ ग्रंथनी रचना कीधी छे; अने ए कारण माटें आ ग्रं थनुं नाम सूत्रकृत छे एम जाणवुं. वली बीजुं नाम द्वितीय सूत्रकृतांग एवुं पण छे, तेनुं कारणके पूर्वोक्त पिस्तालीश सूत्रांतर्गत एकादशांगमानुं ए द्वितीय अंगछे ते पूर्वो क्त गणधर विरचित एकादशांग मध्यें प्रथमांगनुं नाम आचारांग छे; तेमां जीवनी छ कायनुं स्वरूप जाणवुं, एनो सविस्तर उपदेश करेलो छे अने एमां ज्ञाननुं प्राधान्य छे. ज्ञाननी प्राप्ति थया पछी ज्ञान पूर्वक क्रिया करवी ते संबंधी आरंनमां (बुज्जिज्ज) एवी गाथा लखीने प्रथम आचारांग साथें आ द्वितीय सूत्रकृतांगनो संबंध मेलव्यो छे. एना बे श्रुत स्कंध छे. ते मध्यें प्रथम श्रुतस्कंधना शोल अने द्वितीय श्रुतस्कंधना सा

त, मली त्रेवीश अध्ययनो छे. अने तेमां तेत्रीश उद्देशाउ छे. एनी पद संख्या छत्रीश हजारनी छे. मूल सूत्रनी श्लोक संख्या (२१००) छे. एमां मुख्यत्वें द्रव्यानुयोग नी प्रधानता छे अने स्वमतानुसारी महान् साधु जनोनें उदासीनरूप क्रिया प्रवृत्ति आश्रयी उपदेश करतां थकां अन्य पाखंमी दर्शनीउंना मतोनुं खंमन यथायोग्य कीधुं छे. ए शीवाय बीजा पण जे जे विषयोछे ते सर्व अनुक्रमणिकामां सविस्तर दर्शावेला छे, ते जोवाथी स्पष्ट समजाशे.

ए ग्रंथनी टीका करनार पंमितोमां श्रेष्ठ एवा श्रीशीलंगाचार्य नामें पंमित हता, तेउ विक्रम संवत् छसोना सुमारमां थइ गया एवी दंतकथा छे. ए विषे कोइ ग्रंथ साक्षी आपे एवुं आज सुधी महारा जाणवामां आव्युं नथी. ए महान् टीकाकारनी जन्मभूमि वल्लनीपुर नगरी जे हाल वलानें नामें प्रख्यात छे त्यां हती, एवुं मने सांनलवामां आव्युं छे. सांप्रत कालना पंमितो एमनी टीका वांचीने तेनी वाक्यरचना तथा उत्तम सरलता साथें गांनिर्य्य अने शब्द चातुर्यथी मोह पामी स्तुति करवामां महोटो आनंद माने छे. ए टीकानी श्लोक संख्या बार हजार आवशो ने पचाश छे. ए महा पंमितें अन्यसूत्रो आचारांगादि उपर पण टीका करेली छे. ए स्तुतिपात्र टीकाकारनी टीका करवानी शैली एवी सरल अने सुगम छे के ते वांचतां वांचतां पंमितोने पदशःपरमानंदप्राडुर्नाव थातो रहेज नहिं तथा एनी मनोहर रचना अने अर्थ चमत्कृतिनी एवी सुंदर छटाथी वांचनार ते वाणी रसनेज अनुनवे. सूक्ष्म विषयनुं विवेचन एवी अलौकिक ढबथी कर्युं छे के वक्ता तेमज श्रोता उनयना मनने संपूर्ण संतोष उपजे अने क्यारें पण संशयतो लेश मात्र रहेज नहीं. प्रत्येक विषयनुं निरूपण साद्यंत नियम बंध कीधेलुं छे के जेथी आपोआप तेनी सर्व मतलब ध्यान मां आवे ; जेम एक वार लखेली वातनो संबंध बीजे ठेकाणे लगाडवो होय, तो त्यां पूर्ववत् ए संकेतथी वांचनारने तुरत आगली वातनुं ज्ञान थाय. वली आ टीका वांचवा·थकी जाणे टीकाकारें ग्रंथकर्तानो सर्वहृगत अनिप्राय सान्निध्यताथी निःशेष श्रवण कर्यो होय एम टीका वांचनारने उत्प्रेक्षा थाय छे. एम सूत्रनो अक्षरशः अर्थ न जाय एवी रीतें सनिर्युक्तिक टीका करी छे एवा अनेक प्रकार जेणे करीने टीकानी श्रेष्टता अने स्तुति पंमितो करे, ते आ महाविद्वान् पंमितनी टीकामां नजरें आवे छे. टुंकामां एटलुंज केवुं छे के जेटली खुबीउं ए टीकामां रही छे ते सर्व विस्तारनी बार छे. मात्र वांचवाथीज तेनो आनंद प्राप्त थाय एम छे.

एनी दीपिका श्री हेमविमलसूरिएं विक्रम संवत् १५७२ ना वर्षमां करेली छे. तेनी श्लोक संख्या मूल सुधां सात हजार छेः कारणके "सप्त सहस्राणि किंचिन्न्यूना

नि " एवुं एमणे पोतेंज लख्युं छे. ए दीपिका पण घणी सरल सुरस, अने पदना य थायोग्य अर्थयुक्त अतिशय मनोहर छे. एनी शैली एवी बांधीछे के जेने थोडुं घणुं संस्कृतनुं ज्ञान होय तेने पण सुगमताथी समज पडे अने एवी सरलरचनाने माटें ते वा जनो, ए पंमितनो अत्यंत आजार माने छे.

आ ग्रंथनो बालावबोध श्री पार्श्वचंद्र सूरियें करेलो छे. आ वात, बीजा श्रुतस्कंध ना अंतमां प्रगट करेली छे. ए बालावबोध टीका उपरथी कीधेलो छे. केमके दीपिका करनार करतां बालावबोध करनारनी उत्पत्ति पूर्वे छे, तो पण ज्यारें ते मारा वांचवामां आव्यो त्यारें ते एटलो तो अस्तव्यस्त देखायो के तेने सुधारवानी मारी हिम्मत चाली नहीं. तथापि ए कार्य अवश्य थवुंज जोइयें एवुं जाणी में मारी अल्पमत्यनुसार श्रम लइने सुधार्यो छे.

हवे ए सूत्ररूप कल्पवृक्षनो जे जन आश्रय ग्रहण करें छे, ते निज जावानुसार फल पामे छे. पण तेने अर्थें ए वृक्ष उपर आरोहण करवा माटें पूर्वाचार्योएं निश्रेणियो करेली छे; जेम के टीका, जाष्य, निर्युक्ति, दीपिका, चूर्णी तथा बालावबोध प्रमुख. एमांथी वली टीकाकर्त्तायें टीकामांहेज निर्युक्तिनी गाथाउ लखीने तेनी पण टीका करेली छे तेथी निर्युक्तिनो समावेश टीकामां करेलो छे तथा दीपिका अने बालावबोध रूप एवी चार नीश्रेणीउ जूदा जूदा चार आचार्योंनी करेली आ सूयगडांगसूत्ररूप कल्पवृक्षने लगाडी छे तेने उपयोगमां लइ उपर कह्युं एवुं जे आ सूयगडांग सूत्ररूपकल्पवृक्ष, तेनां फल ग्रहण करवा माटें जविक जनोएं अत्यानंद पूर्वक तत्पर थवुं, ए मारी सविनय प्रार्थना छे.

ए सूत्रमां सर्व जगत्‌ने प्रमोद उपजावनारी श्री वीतरागनी वाणी छे. ते केवी छे तोके जव रूप वेलनी कृपाणी, संसार रूप समुद्रथी तारवा वाली, महामोहरूप अंधकार नो नाश करवाने दिनकरना किरणो जेवी प्रकाश वाली, क्रोधरूप दावानलनो उपशम करनारी, मुक्तिना मार्गने दर्शावनारी, कलिमलनो प्रलय करनारी, मिथ्यात्वने छेदन करनारी, त्रिजुवननुं पालन करनारी, मन्मथनो रोध करनारी, अमृतरसनुं आस्वादन करावनारी अने हृदयने अत्याल्हाद करनारी एवां अनेक विशेषणोपयुक्त एवी जे श्री जिनवाणी ते सर्व सज्जनोनें मान्य थाउ.

कदापि निविड कर्मनी शृंखलायें प्रतिबद्ध थयेला एवा अजव्य दुर्जव्यने बोध करवा माटें ए वाणी समर्थ नथी थती तो पण ए वाणीनुं असामर्थ्य समजवुं नहीं. केमके सूर्यना किरणो जेम घुघड पक्षीना नेत्रने प्रकाश करी शकतां नथी तो पण ते जगत्‌मां निंदानां आधिष्ठान थतां नथी. वली जलनी वृष्टि करनारो मेघ जो प

ए उषर क्षेत्रने विषे तृणादिक उत्पन्न करवा माटें असमर्थ छे ते छतां ते लोकने विषे निंदानें पात्र थतो नथी. तेमज जे पुरुषने ए वाणी गमती नथी ते तेनुं पोतानुंज दौर्नाग्य समजवुं. माटें कुशल बुद्धिवाला सज्जनोने आ जिनवाणी रूप प्राधान्य ग्रंथ महोत्सवरूप आनंद आपनारो थाउ अने तेमना चित्त रूप सरोवरने विषे प्रेम रूप जल नराउ, तथा तेने योगें तेउनें मोक्ष रूप महा सुंदर कमलनी प्राप्ति थाउ. अस्तु.

शा० नी० मा०.

विज्ञापना.

परमेश्वरनी वाणी रूप अमृतरस जेमां रेलाइ रह्यो होय तेवा ग्रंथोने मुद्रित करी प्रसिद्ध करवा ए महा परमार्थ छे. एथी सुज्ञजनो आनंद पामेछे. विवेकी जनो पठन पाठन करीने जिनधर्म नावमां दृढता वधारे छे, सामान्य जीवो व्याख्यानादिक श्रवण करीने धर्मलाजने पामे छे. सज्ञान पुरुषो वांचीने पोताना चित्तनें निर्मल राखी धर्मने विषे आदर करेछे. एवी उत्कृष्ट जिनवाणी जेमां मुख्य छे एवा श्रुतज्ञाननी वृद्धि, संरक्षण तथा विनय करवा जेवुं कोइ पण उग्र, पुण्यप्रकृति बांधनारुं बीजुं शुन कर्म नथी. तेनुं साधन वर्त्तमान समयमां उपर कह्या प्रमाणे मुद्रायंत्र घणुं सुलन अने मनोहर छे. एनी सहायताथी सर्व सूत्रो तथा सर्व ग्रंथो छपावी प्रसिद्ध करवा, ए श्रुतज्ञाननी वृद्धि, संरक्षण तथा विनय, हाल सर्वोत्कृष्ट गणाय एम छे खरुं पण ए कार्य, द्रव्यवान् गृहस्थथी बनी शके. जेम द्रव्यवान् तेमज वली श्रीजिन धर्म प्रसार उपर प्रीतिमान् पण संपूर्ण होवो जोइयें, एवो असाधारण पुरुष चतुर्विध संघमां कोइ विरलोज मली आवे. जेम हाल बाबु साहेब "राय धनपतिसिंहजी प्रतापसिंहजी" छे. एवो श्रावक आधुनिक वर्त्तमान कालमां बीजो कोइ पण नथी. एमणे उक्त रीति प्रमाणे प्रीतिसहित सर्व आगमो छपावी प्रसिद्ध करवानो उद्योग चालु कर्योछे. ए स्वधर्माग्रही बाबु साहेबें मने हाल श्री सूयगडांग सूत्र छापवानी आज्ञा करी ते में यथा बुद्ध्यनुसार सुधारीने मूल सूत्र, दीपिका, टीका तथा बालावबोध सहित छाप्युं छे. एमां दृष्टिदोषथी वा बुद्धिदोषथी अज्ञानरूप अंधकारना पराधीन पणाथी कोइ अशुद्धपद, वा शब्दनी योजना थइ होय तो सज्ञान पुरुषोएं तेने माटे मने क्षमा करवी. यद्यपि आ मारो विवेक योग्य नथी केम के सज्ञानोनो तो एवो स्वनावज होय छे के कोइ पण सत्कर्ममां दोष तेउनी दृष्टिगोचर थतो नथी, ते छतां पूर्वें श्रेष्ठ ग्रंथकारोएं एवी

पद्धति राखी छे तेने अनुगत थईने में पण ए विवक कीधो छे. सज्जनो पासें क्षमा मागी, तेना करतां विशेषपणें दुर्जनो पासें क्षमा मागुं छुं, केम के तेउनो स्वनावज एवो होय छे के कोइना हाथथी शुन्न कृत्य थाय छे ते जोइ तेमने मनःसंताप उपजे छे अने बीजानी हानी थाय तेमां तेउ लान्न समजे छे. बीजाना दोष कहाडवामां महा पंम्ति होय छे. बीजाना कल्याणरूप घृतनी उपर माखी थइ बेसे छे इत्यादिक अगणित दीर्घदोषोयें करी युक्त दुष्टजनो होय छे, एवा दुष्टजनो उलूक समान छे तेथी तेउ आ जिनवाणी रूप सूर्यना प्रकाश थकी अंध थइने विपर्यासने पामशे, अने द्वेष बुद्धिथी ईर्ष्या करशे तेथी तेमना हृदयमां ताप उत्पन्न थशे तेने माटें हुं तेमनी पासें क्षमा मागुं छुं, कारणके, ते ताप उत्पन्न थवानुं कारण तेउ मने गणशे. अस्तु.

शा० न्नी० मा०.

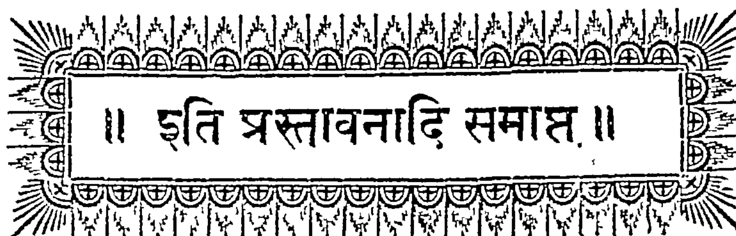
ज्ञान प्रसाररूप पुण्यकर्म उपार्जन करवामां प्रथम पंक्तिमां गणवा लायक महान्पुरुष जेणे लोकोपकारने अर्थें पिस्तालीश आगम मूल तथा तेउमांथी जेनी टीका प्रमुख जे अंग मले ते सहित मुद्रित करी प्रसिद्ध करवानो उद्योग आ समयमां प्रसार कीधो छे; तेवा सज्जन गृहस्थोनी उत्पत्ति विषे सहज लख्या विना मारी कलम अन्यकार्य करवामां चाली शकती नथी. तेथी यत्किंचित् लखुं छुं.

बंगाला इलाकामां बालोचर, मकशुदाबाद, अने मुरसिदाबाद एवा त्रण नामें उलखातुं सुंदर शहेर छे. ज्यां कृष्णगढथी आवी निवास करनारा उसवंशरूप नंदन वनमां कल्पवृक्ष समान डुगडगोत्रीय, धर्म, न्याय, विवक अने विनयादिक श्रेष्टगुणें युक्त, तेमज सर्व सत्यवादिउमां अग्रेसर, महाबुद्धिनिधि, दीन जीवने तन, मन, धनवडे सहाय करनार, रूडा स्वन्नाववाला, पुण्य प्रन्नावरूप चंद्रना प्रकाशवडे दिशाउने प्रकाश करनारा एवा "राय बुद्धसिंहजी" नामें श्रावक श्रीजिनधर्म उपर महोटा श्रद्धावान् हता. तेमनी कुशलादे नामें पत्नीनी कुक्षिथकी संवत् १७३७ ना माघवदि एकमने गुरुवारने दिवसें राय प्रतापसिंहनामें कुलदीपक सुपुत्र उत्पन्न थया. तेउ सर्व धनाढ्योमां शिरोमणि अने महाधर्मनिष्ठ तेमज क्षमावान् तथा धर्माऽधर्मना निर्णय करनाराउमां अग्रेसर थया. तेमनी चतुर्थ पत्नीनुं नाम महताबबाई हतुं. तेमणे उसवंशमां मुकुटमणि, न्यायमार्गें लक्ष्मीनुं उपार्जन करनार तथा धर्म, अर्थ, काम, ए त्रिवर्गना साधनारा अने प्राणिमात्रने विषे दयार्द्रपणाएं युक्त, एवा महातेजस्वी बे पुत्रोने जन्म आप्यो. तेमां वडा पुत्रनुं नाम "रायलक्ष्मीपति सिंह बाहादुर" तथा जेमणे आवा ग्रंथो छपावी प्रसिद्ध करवानो उद्योग आरंन्यो छे, ते कनिष्ट पुत्रनुं नाम "रायधनपति सिंह बाहादुर" छे. ए बेहु सद्गृहस्थो, सद्गुणनिधान अने मनुष्य मात्रना कल्याणमां उत्सुक छे, माटें आ जिनधर्म

प्रेरक उत्तम ग्रंथ छपावी एमणे पोताना जन्मनुं सार्थक कर्युं छे. एवा परमार्थ कार्यो, ए भाग्यशालीओने हाथे प्रतिदिवस थाओ. एवी मारी वारं वार विज्ञापना छे.

॥ काव्य छंद ॥

जिनवच पियूष पान, करन जो अति अभिलाषी;
एहि रातिदिन ध्यान, चित्तमें रहत विभाषी;
कथा सुनत युतप्रीति, रीति अद्भुत धरी हीमें;
ज्ञान वृद्धिके हेत, अधिक उत्सुक सबहीमें. १
जिहिं मातुश्री प्रान, त्यागि गय सुरभव मांही;
सुमरन तिनके नाम, कीय निश्चय इक आंहीं;
सबहीं आगम छापि, प्रसिद्ध करिय या जगमें;
बहुत प्रानि अवलोकि, बांचि सुनि वह ता मगमें. २
चलत सोइ उद्योग, करन मुदित सब आगम;
तिनमें इक मुहि दीन्ह, इतहिं जब भयो समागम;
सूत्र कृतांग पवित्र, द्वितिय जो अंग कहावै;
सब विधि अति उत्कृष्ट, सुनत बांचत मन भावै. ३
सो किय छापि प्रसिद्ध, होइ मनमें उल्लासा;
भयो एह उपकार, मोरि मति परम प्रकाशा;
बाबु साब परताप, जानि यह अर्पण करहुं;
सदा रहहुं जगमांहि, मनुष अस भावन धरहुं. ४
धर्म वृद्धि के हेत, बुद्धि अति उदार कीनी;
लीनी कीर्ति अखंड, स्हाय तन मन धन दीनी;
सफल कीन नर देह, धन्य धनपतिसिंह जगमें,
अमर आपका नाम, रहो जिनधर्म ग्रंथमें. ५


॥ इति प्रस्तावनादि समाप्त ॥

॥ श्रीसद्गुरुभ्योनमः ॥

॥ अथ ॥

॥ श्रीसूयगडांगसूत्र द्वितीयांगानुक्रमणिका प्रारंभः ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथम श्रुतस्कंधस्य षोडशाध्ययनानुक्रमणिका ॥

पहेलुं समयाख्य नामा अध्ययन छे, तेमां स्वसमय अने परसमयनी प्ररूपणा करी छे. ए अध्ययनना-चार उद्देशा छे. तेमध्यें पहेला उद्देशामां छ. अर्थाधिकार छे, बीजा उद्देशामां चार अर्थाधिकार छे, त्रीजा उद्देशामां बे अर्थाधि कार छे अने चोथा उद्देशामां एकज अर्थाधिकार छे. ते मध्यें अनुक्रमें प्रथमाध्ययनना चार उद्देशामांहेला प्रत्ये क अर्थाधिकारनी अनुक्रमणिका दर्शावियें छैयें.

॥ तत्र प्रथमोद्देशानुक्रमणिका ॥

१ पहेला उद्देशाना पहेला अर्थाधिकारनी प्रथम गाथामां आचारांग साथें आ सूयगडांगनो संबंध, एवी रीतें मेलव्यो छे के आचारांगमां छकायनुं स्वरूप जाणवुं, एटले ज्ञान कह्युं, ते ज्ञानप्राप्ति थया पछी ज्ञानपूर्वक क्रिया करवी. ते संबंधें आरंभमां (बुज्झिज्ज) ए गाथाथी संबंध छे. ते संबंध मेलवीने पछी पांचमी गाथा पर्यंत स्वसमयनुं स्थापन कर्युं छे. ते वार पछी आठमी गाथा पर्यंत परसमयी जे पंचमहाभूतवादी तेनुं मत कहेलु छे. ते आ प्रमाणे के पृथवी, अप्, तेज, वायु अने आकाश, ए पांचनुं सर्वत्र व्यापकपणुं छे माटें ए पांच महाभूतज सर्वत्र छे परंतु आ त्मा छेज नही. ए रीतें एमनुं मत कहीने पछी तेनुं खंडन कर्युं छे. १

२ पहेला उद्देशाना बीजा अर्थाधिकारमां चेतनाचेतन सर्वने विषे एक आ त्मा वर्त्ते छे माटें सर्व पदार्थ एक आत्मरूपज छे परंतु शरीर शरीरने विषे जूदो जूदो अत्मा नथी. एवो आत्माद्वैतवादीनुं मत नवमी गाथा पर्यंत दर्शावीने पछी दशमी गाथामां तेनुं खंडन कर्युं छे. २६

॥ द्वितीयोद्देशानुक्रमणिका ॥

॥ तृतीयोद्देशानुक्रमणिका ॥

॥ चतुर्थोद्देशानुक्रमणिका ॥

॥ अथ द्वितीयाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

बीजुं वैतालीयनामा अध्ययन छे. एमां त्रण उद्देशक छे. प्रत्येक उद्देशकमां एकेक अर्थाधिकार छे तेनी अनुक्रमणिका करीयें छैयें.

॥ अथ तृतीयाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

त्रीजुं उपसर्ग परिज्ञानामें अध्ययन छे. एमां चार उद्देशक छे ते मध्यें त्रीजा उद्देशामां बे अर्थाधिकार छे अने बाकीना त्रणे उद्देशामां प्रत्येकें एकेक अर्थाधिकार छे. तेनी अनुक्रमणिका करीयें छैयें.

॥ अथ चतुर्थाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

चोथुं स्त्रीपरिज्ञानामें अध्ययन छे. एमां बे उद्देशक छे, एकेक उद्देशकमां एकेको अर्थाधिकार छे. तेनी अनुक्रमणिका करीयें छैयें.

॥ अथ पंचमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

पांचमुं निरयविभक्ति नामें अध्ययन छे. एमां बे उद्देशा छे, प्रत्येक उद्देशामां एकेक अर्थाधिकार छे तेनी अनुक्रमणिका लखीयें छैयें.

॥ अथ षष्ठाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ सप्तमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ षोडशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ ॥

॥ द्वितीय श्रुतस्कंधस्य सप्ताध्ययनानुक्रमणिका ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

ज्ञानप्राप्ति थती नथी तेथी ते पौंमरिक कहेवाय नहिं. ते नुं सविस्तर वर्णन तथा जे सत्साधु ले ते सम्यक्दर्शनादिक एवा मोक्षमार्गमां प्रवर्त्तता कर्मना मोचक जाणवा, ते प्रतिपादन कर्युं ले. आ अध्ययनमां जूदा जूदा शाठ आलावा ले, तेनी अनुक्रमणिका लखीयें बैयें.

॥ अथ द्वितीयाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

बीजुं क्रिया स्थानक नामा अध्ययन छे. एमां एक उद्देशक अने एकज अर्थाधिकार छे. एमां बार क्रियास्थानकें करी कर्म बंधाय छे अने तेरमा क्रियास्थानकें करी कर्म मूकाय छे. एवा तेर क्रिया स्थानकनुं स्वरूप कह्युं छे एमां पच्चाशी आलावा छे. तेनी अनुक्रमणिका लखीयें छैयें.

॥ अथ तृतीयाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

त्रीजुं आहारपरिज्ञानामा अध्ययन छे. तेनो एक उद्देशक तथा अर्थाधिकार पण एकज छे, तेना जूदा जूदा आ उत्रीश आलावा छे तेनी अनुक्रमणिका लखियें डैयें.

॥ अथ चतुर्थाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

चोथुं प्रत्याख्यान क्रियानामा अध्ययन छे एमां एकज उद्देशक अने अर्थाधिकार पण एकज छे. एना जूदा जूदा आगीआर आलावा छे तेनी अनुक्रमणिका लखीयें डैयें.

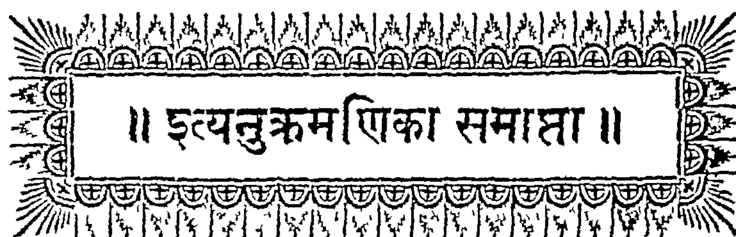
॥ अथ पंचमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ षष्ठाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

बहुं आर्डकीयनामा अध्ययन ने. एमां एक उद्देशक अने एकज अर्थाधिकार ने. ते मध्यें पञ्चावन गाथाउ ने. तेनी अनुक्रमणिका लखीयें बैयें.

॥ अथ सप्तमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

सातमुं नालंदीय नामा अध्ययन छे. तेमां एकज उद्देशक अने एकज अर्थाधिकार छे, एमां जूदा जूदा चालीश आलावा छे पूर्वाध्ययनमां साधुना आचार कह्या तेम आ अध्ययनमां श्रावकना आचार कह्या छे तेनी अनुक्रमणिका लखीयें छैयें.


॥ इत्यनुक्रमणिका समाप्ता ॥

॥ ॐनमो वीतरागाय ॥

अथ

॥ द्वितीयंसूत्रकृतांगं ॥

गुर्जरभाषासहितं श्रीहर्षकुलकृतदीपिकायुक्तं शीलंगाचार्यकृतटीकायुतंच प्रारभ्यते.

तत्रमूलं ॥ बुज्झिज्जत्तितिउट्टिज्जा, बंधणं परिजाणिया॥किमाह बंधणं वीरो किंवा जाणंति उट्टई ॥ १ ॥ चित्तमंतमचित्तंवा परिगिज्झ किसामवि ॥ अन्नंवा अणुजाणाइ एवं डुक्काणमुच्चइ ॥ २ ॥

प्रथम गुर्जर भाषामां अर्थकर्तानुं मंगलाचरण.

अर्थ–प्रणम्य सद्गुरून् भक्त्या बालानां बोधहेतवे ॥ किंचित् सूत्रकृतांगस्य लिख्यते वार्तिकं मया ॥ १ ॥ प्रथम श्रीआचारांग कहीने पढी सुयगडांग कह्युं तेनो संबंध मेलवेढे. जे कारण श्री आचारांग मांहे, (जीवो छक्काय परू, वणा य तेसिंव हेणबंधोत्ति) ॥ इत्यादि कह्युं छे. ते सर्वे परमार्थने (बुज्झिज्जके०) जाणवुं जोइए. एम आचाराङ्गसाथे आ सुयगडांगनो संबंध जाणवो. ए अधिकारे बीजुं अंग सुयगडांग प्रारंभीए छैए. अहींयां केटलाएक वादी ज्ञानेकरीनेज मुक्ति थायछे एम कहेछे, अने केटलाएक क्रियाए करी मुक्ति कहेछे. अने जैन तो एम कहेछे के ज्ञान अने क्रिया ए बन्ने थकी मुक्तिछे, ए अर्थ ए श्लोकमांहे देखाडेछे ते एमके.

(बुज्झिज्जत्ति) के० छ कायनुं स्वरूप जाणे एटले ज्ञान कह्युं, अने ज्ञानपूर्वक क्रिया करवी ते सफलछे. तेकारण माटे आगल (तिउट्टिज्जा) एवो सूत्रपाठ कह्यो, ते (तिउट्टिज्जाके०) त्रोडे ते शुं जाणीने! शुं त्रोडे! ते कहेछे. (बंधणं) के० बांधीए जे जीवने प्रदेशें करी ते बंधन ज्ञानावरणादि अष्ट प्रकार कर्मरूप इत्यर्थः ते कर्मना हेतु मिथ्यात्व, अविरत, कषाय अने योग अथवा परिग्रह आरंभ ए बंधनना कारणने (परिजाणिया) के० जाणे. पण एकला जाणपणाथकी वांछितार्थसिद्धिर्भनछे; ते माटे क्रिया देखाडेछे. ते बंधन ज्ञपरिज्ञाए करी जाणीने पढी प्रत्याख्यानपरिज्ञा जे संयमानुष्ठान तेणे करी बंधनने त्रोडे. एटले आत्माथकी कर्म दूर करे, एवुं वचन श्रीसुधर्मास्वामिभाषित सांभलीने जं

बूस्वामिप्रमुख शिष्य पूछेछे के, (किमाहबंधणंवीरो) के० श्रीमहावीर देवे बंधन केवुं कह्युं छे! अथवा (किंवा जाणंतिउट्टई) के० शुं जाणीने ते बंधन त्रोडे? इति प्रथम श्लोकार्थः॥१

हवे बंधननुं कारण कहेछे; ए जगतमांहे ज्ञानावरणीयादिक जे कर्म ते बंधन जाणवुं, ते कर्म बांधवानां कारण आरंभ अने परिग्रहछे. तेमां पहेलुं परिग्रह देखाडेछे, (चित्तमंतमचित्तंवा) के० सचित्तते द्विपद चतुष्पदादिक अने अचित्तते सुवर्णरूप्यादिक ए बे प्रकारे परिग्रहछे, ते (परिगिज्झ किसामवि) के० थोडा तृण तुषादिक पोतानीपासे परिग्रहीने (अन्नंवा) के० अनेरा बीजा पासे परिग्रहावे तथा (अणु जाणाइ)के०परिग्रह करतांने अनुमोदे. एवो जीव, (एवं) के०एरीते (दुक्का णमुच्चइ) के० दुःखथकी न मूकाए ॥२॥

श्रीः ॥ अथ श्री द्वितीयांगदीपिका प्रारभ्यते ॥

॥प्रणम्य श्रीजिनं वीरं, गौतमादिगुरूंस्तथा ॥ स्वाम्योपकृतये कुर्वे द्वितीयांगस्य दीपिकां ॥१॥ इह हि प्रवचने चत्वारोऽनुयोगाः ॥ तथाहि चरणकरणानुयोगः १ द्रव्यानुयोगः २ धर्मकथानुयोगः ३ गणितानुयोगश्च ४ तत्र प्रथमं श्रीमदाचारांगं चरणकरणानुयोगप्राधान्येन व्याख्यातं ॥ अथेदं श्रीसूत्रकृताख्यं द्वितीयांगं द्रव्यानुयोगप्राधान्येन व्याख्याय ते ॥ सूत्रकृतांगमिति कः शब्दार्थः ॥ उच्यते ॥ सूत्रं स्वपरसमयसूचनं कृतं येन तत्ट ... तदेवांगमिति ॥ तत्रश्रुतस्कंध द्वयं ॥ प्रथमश्रुतस्कंधे षोडशाध्ययनानि ॥ द्वितीये सप्त ... र प्रथमश्रुतस्कंधस्य प्रथमाध्ययने चत्वारउद्देशकाः ॥ तत्रापि पूर्वं प्रथमोद्देशक ... प्रमादिःश्लोकः ॥ (बुज्झिज्झत्ति०) ॥१॥ व्याख्या ॥ बुध्येत जानीयान ॥ ... बध्यते जीवोऽनेन बंधनं ज्ञानावरणाद्यष्टप्रकारं कर्म ॥ तद्धेतवो ... रंभादयो वा बंधनं जानीयादित्युक्तं ॥ नच ज्ञानमात्रेण सिद्धि ... रिजाणिआ) परिज्ञायत्रोटयेत् अपनयेत् आत्मनःपृथक्कुर्यादि ... पः श्रीसुधर्मस्वामिनमाह ॥ (किमाहेति) ॥ श्रीवीरः किंबंधनं ... बंधनं त्रोटयति ॥ उत्तरमाह ॥ १ ॥ (चित्तेति) ॥ चि ... अचित्तं कनकरजतादि तद्वयमपि परिगृह्य परिग्रहं कृत्वा ... ाहयित्वा ॥ गृह्णतोवाऽन्याननुज्ञाय एवंदुःखान्नमुच्यते॥ ... परिग्रहतश्चावश्यंभावारंभस्तस्मिंश्च प्राणातिपात इति

... ीलंगाचार्यकृत टीका ॥ आर्या वृत्तं ॥

... कलितम् ॥ सूत्रकृतमंगमतुलं, विवृणोमि जिना ... र्त्तम ॥ ॥ व्याख्यातमंगमिह यद्यपि सूरिमुख्यै,

थ ... लंघाए ... युक्तिछे,
या करवी ते
ह्रकाके०) त्रो
प्रदेशो करी ते बं
व, अविरत, कषा
गया) के० जाणे. प
(देखाडेछे. ते बंधन
तेणे करी बंधनने त्रो
तमिनाषित सांभळीने जं

न्नेत्तया तथापि विवरीतुमहं यतिष्ये ॥ किं पक्षिराजगतमप्यवगम्य सम्यक्, तेनैव वांछति पथा शलभो न गंतुम् ॥ २ ॥ ॥ इंद्रवज्रावृत्तम् ॥ ॥ ये मय्यवज्ञां व्यधुरिद्धबोधा, जानंति ते किंचन तानपास्य ॥ मत्तोपि यो मंदमतिस्तथास्ति, तस्योपकाराय ममैष यत्नः ॥ ३ ॥ इहापारसंसारांतर्गतेनाऽसुमताऽवाप्याऽतिदुर्लभं मनुजत्वं सुकुलोत्पत्तिसमग्रेंद्रियसामग्र्याद्युपेतेनाऽर्हद्दर्शनमशेषकर्मोच्छित्तये यतितव्यम् ॥कर्मोच्छेदश्च सम्यग्विवेकसव्यपेक्षोऽसावप्याप्तोपदेशमंतरेण न भवति ॥आप्तश्चात्यंतिकाद्दोषक्षयात्सचार्हन्नेवातस्तत्प्रणीतागमपरिज्ञाने यत्नो विधेयः ॥ आगमश्च द्वादशांगादिरूपः सोप्यार्यरक्षितमिश्रैरैदंयुगीनपुरुषानुग्रहबुद्ध्या चरणकरणद्रव्यधर्मकथागणितानुयोगभेदाच्चतुर्धा व्यवस्थापितः।तत्राचारांगं चरणकरणप्रधान्येन व्याख्यातमधुनाऽवसरायातं द्रव्यप्राधान्येन सूत्रकृताख्यं द्वितीयमंगं व्याख्यातुमारभ्यत इति । ननु चार्थस्य शासनाच्छास्त्रमिदं ।शास्त्रस्य चाशेषप्रत्यूहोपशांत्यर्थमादिमंगलं तथा स्थिरपरिचयार्थं मध्यमंगलं शिष्यप्रशिष्यविच्छेदार्थं चांत्यमंगलमुपादेयं तच्चेह नोपलभ्यते । सत्यमेतत् । मंगलं हीष्टदेवतानमस्काराद्विरूपं । अस्य च प्रणेतासर्वज्ञस्तस्य चापरनमस्कार्याभावान्मंगलकरणे प्रयोजनाभावाच्च न मंगलाभिधानं । गणधराणामपि तीर्थकृदुक्तानुवादित्वान्मंगलाकरणं । अस्मदाद्यपेक्षयातु सर्वमेव शास्त्रं मंगलं।अथवा निर्युक्तिकारएवात्रभावमंगलमभिधातुकामआह ॥ (तित्थयरे जिनवरे, सुत्तकरे गणहरे पणमि ऊणं । सूयगडस्स भगवउ, णिज्जुत्तिं कित्तइस्सामि) ॥ १ ॥ गाथापूर्वार्द्धेनेहभावमंगलमभिहितं पश्चार्द्धेन तु प्रेक्षापूर्वकारिप्रवृत्त्यर्थंप्रयोजनादित्रयमिति । तदुक्तं–"उक्तार्थं ज्ञातसंबंधं, श्रोतुं श्रोता प्रवर्त्तते ॥ शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः संबंधः सप्रयोजनः" । तत्र सूत्रकृतस्येत्यभिधेयपदं । निर्युक्तिं कीर्त्तयिष्ये इति प्रयोजनपदं । प्रयोजनं तु मोक्षावाप्तिः । संबंधस्तु प्रयोजनपदानुमेय इति पृथक् नोक्तः ॥ तदुक्तं–"शास्त्रं प्रयोजनं चेति संबंधस्याश्रयावुभौ ॥ तदुक्त्यंतर्गतस्तस्माद्भिन्नो नोक्तः प्रयोजनादिति समुदायार्थः ॥ अधुनाऽवयवार्थः कथ्यते ॥ तत्र तीर्थं द्रव्यभावभेदाद्द्विधा । तथापि द्रव्यतीर्थं नद्यादेः समः समुत्तरणमार्गः ॥भावतीर्थं तु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि॥संसारार्णवादुत्तारकत्वात् तदाधारोवा संघः प्रथमगणधरोवा तत्करणशीलास्तीर्थकरास्तान्नत्वेति क्रिया । तत्रान्येषामपितीर्थकरत्वसंभवेत व्यवच्छेदार्थमाह (जिनवरानिति) ॥ रागद्वेषमोहजितो जिनाः । एवंभूताश्च सामान्यकेवलिनोऽपिभवंति त व्यवच्छेदार्थमाह–(वराः) प्रधानाश्चतुस्त्रिंशदतिशयसमन्वितत्वेन तान्नत्वेति ॥ एतेषां च नमस्कारकरणमागमार्थोपदेष्टृत्वेनोपकारित्वात् । विशिष्टविशेषणोपादानं च शास्त्रस्य गौरवाधानार्थं शास्तुः प्राधान्येनेह शास्त्रस्यापि प्राधान्यं भवतीति भावः । अर्थस्य सूचनात्सूत्रं तत्करणशीलाः सूत्रकारास्ते च स्वयंबुद्धादयोपि भवंतीत्यतआह (गणधरास्तांश्च नत्वेति) ॥ सामान्याचार्याणां गणधरत्वेपि तीर्थक

रनमस्कारानंतरोपादानाद्गौतमादय एवेह विवक्षिताः ॥ प्रथमश्चकारः सिद्धाद्युप लक्षणार्थो द्वितीयः समुच्चितः । क्त्वाप्रत्ययस्य क्रियांतरसव्यपेक्षतामाह–स्वपर समयसूचनं कृतमनेनेति सूत्रकृतस्तस्य महार्थवत्वाद्भगवांस्तस्यानेन च सर्वज्ञप्रणी तत्वमावेदितं भवति ॥ (निर्युक्तिं कीर्तयिष्ये) इति ॥ योजनंयुक्तिः । अर्थघटना निश्चये नाधिक्येन वा युक्तिर्निर्युक्तिः । सम्यगर्थप्रकटनमिति यावत् । निर्युक्तानां वा सूत्रेष्वेव प रस्परसंबंधानामर्थानामाविर्भावनं । युक्तशब्दलोपान्निर्युक्तिरिति । तां कीर्तयिष्येऽभिधास्य इति । इह सूत्रकृतस्य निर्युक्तिं कीर्त्तयिष्ये इत्यनेनोपक्रमद्वारमुपक्षिप्तं तच्चेहोद्देशेनिर्देशे इत्यादिनेषदभिहितमिति । तदनंतरं निक्षेपः ॥ सचत्रिविधः । तद्यथा–ओघनिष्पन्नो नामनिष्पन्नः सूत्रालापकनिष्पन्नश्चेति । तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेंऽगं नामनिष्पन्ने तु निक्षे पे सूत्रकृतमिति॥१॥तत्र तत्त्वभेदपर्यायैर्व्याख्येत्यतः पर्यायप्रदर्शनार्थं निर्युक्तिकृदाह(सूय गडं अंगाणं, बितियं तस्स य इमाणि नामाणि ॥ सूयगडं सुत्तकडं,सूयगडं चेव गोणाइं॥) ॥ २ ॥ सूत्रकृतमित्येतदंगानां द्वितीयं तस्य चामून्येकार्थिकानि । तद्यथा–सूत्रमुत्पन्नमर्थ रूपतया तीर्थकृद्भ्यः । ततः कृतं ग्रंथरचनया गणधरैरिति । तथा (सूत्रकृतमिति) । सूत्रा नुसारेणतत्त्वावबोधः क्रियतेऽस्मिन्निति । तथा सूचाकृतमिति । स्वपरसमयार्थसूचनं सूचा साऽस्मिन्कृतेति।एतानि चास्य गुणनिष्पन्नानि नामानीति॥२॥सांप्रतं सूत्रकृतपदयोर्निक्षेपा र्थमाह (दव्वं तु पोंडयादी, भावे सुत्तमिह सूयगं नाणं । सण्णासंगहवित्ते, जातिणिबद्धेय कव्वादी) ॥ ३ ॥ (दव्वमित्यादि) । नामस्थापनेऽनादृत्य सूत्रं दर्शयति (पोंडया इति)। पों मगं च वनीफलादुत्पन्नं कार्प्पासिकं । आदिग्रहणादंडजवालजादेर्ग्रहणं । भावसूत्रंत्वि हास्मिन्नधिकारे सूचकं ज्ञानं श्रुतज्ञानमित्यर्थः ॥ तस्यैव स्वपरार्थसूचकत्वादिति । तच्च श्रुतज्ञानसूत्रं चतुर्द्धा भवति । तद्यथा–संज्ञासूत्रं संग्रहसूत्रं वृत्तबद्धं जातिनिबद्धं । तत्र संज्ञासूत्रं यत् स्वसंकेतपूर्वकं निबद्धं ॥ तद्यथा–जेछे एसागरियं नसेवे सवामगंधं परिण्ण यणिरामगंधो परिव्वए इत्यादि । तथा लोकेपि पुद्गलाः संस्कारक्षेत्रजाइत्यादि ॥ संग्रहसूत्रं तु यत्प्रभूतार्थसंग्राहकं ॥ तद्यथा द्रव्यमित्याकारिते समस्तधर्माऽधर्मादिद्रव्यग्रहइति । यदिवोत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति ॥ वृत्तनिबद्धं सूत्रं पुनर्यदनेकप्रकारया वृत्तजात्या निब द्धं ॥ तद्यथा(बुज्झिज्जत्तितिउट्टिज्जेत्यादि) ॥ जातिनिबद्धं तु चतुर्द्धा ॥ तद्यथा कथनीयंकथ्य मुत्तराध्ययनज्ञाताधर्मकथादि पूर्वर्षिचरितकथानकप्रायत्वात्तस्य । तथा गद्यं–ब्रह्मचर्या ध्ययनादि तथा पद्यं–छंदोनिबद्धं तथा गेयं यत्स्वरसंचारेण गीतिप्रायं निबद्धं । तद्यथा– कापिलीयमध्ययनं अधुवेअसासयंमि संसारंमि डुक्खपउराए इत्यादि ॥३॥ इदानीं कृतप दनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृद्गाथामाह (करणं चकारउय, कडं च तिण्हंपि छक्कनिक्खेवो; दव्वे खित्ते काले, भावेणउ कारउ जीवो) ॥ ४ ॥ (करणंचेत्यादि) । इहकृतमित्यनेन कर्मोपात्तं

न चाकर्तृकं कर्म भवतीत्यर्थात्कर्तुराक्षेपो धात्वर्थस्य च करणस्यामीषां त्रयाणामपि प्रत्येकं नामादिः । षोढानिक्षेपस्तत्रगाथापश्चार्द्धेनाल्पवक्तव्यत्वात्तावत्करणमतिक्रम्यकारकस्य निक्षेपमाह—तत्र नामस्थापने प्रसिद्धत्वादनादृत्य द्रव्यादिकं दर्शयति (दव्वेइ ति ॥ द्रव्यविषये कारकश्चिंत्यः । सच द्रव्यस्य द्रव्येण द्रव्यभूतो वा कारको द्रव्यकारकः । तथा क्षेत्रे भरतादौ यः कारको यस्मिन् वा क्षेत्रे कारको व्याख्यायते सक्षेत्रकारकः । एवं कालेपि योज्यं ॥ भावेन तु भाव द्वारेण चिंत्यमानोत्र कारकोयस्मात्सूत्रस्य गणधरः कारकः ॥ एतच्चसूत्रकृदेवोत्तरत्र वक्ष्यति (ठिइ अणुभावेत्यादौ)॥४॥सांप्रतं करणव्याचिख्यासया नामस्थापने मुक्त्वा द्रव्यादिकारणनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह ॥ (दव्वंपउगवीसस, पउगसामूल उत्तरे चेव ॥ उत्तरकरणं वंजण, अब्भो भउवस्करोसव्वो) ॥५॥ (दव्वइत्यादि) द्रव्ये द्रव्यविषये करणं चिंत्यते । तद्यथा द्रव्यस्य द्रव्येण द्रव्यनिमित्तंवा करणमनुष्ठानं द्रव्यकरणं । तत्पुनर्द्विधा । प्रयोगकरणं विस्रसाकरणं च । तत्र प्रयोगकरणं पुरुषादिव्यापारनिष्पाद्यं । तदपि द्विविधं । मूलकरणमुत्तरकरणं च । तत्रोत्तरकरणं गाथापश्चार्द्धेन दर्शयति—उत्तरत्र करणमुत्तरकरणं कर्णवेधादि । यदिवा तन्मूलकरणं घटादिकं येनोपस्करेण दंडचक्रादिना अभिव्यज्यते स्वरूपतः प्रकाश्यते तदुत्तरकरणं । कर्त्तुरुपकारकः सर्वोप्युपस्करार्थ इत्यर्थः॥५॥पुनरपि प्रपंचतो मूलोत्तरकरणे प्रतिपादयितुमाह॥(मूलकरणं सरीरा, णि पंचतिसुकसुखंदमादीयं । दव्विंदियाणि परिणा, मियाणि विसउजहादीहिं) ॥६॥ (मूलकरणमित्यादि) । मूलकरणमौदारिकादीनि शरीराणि पंच । तत्र चौदारिकवैक्रियाहारकेषु त्रिषूत्तरकरणं कर्णस्कंधादिकं विद्यते । तथाहि सीसमुरोयर पिट्ठी, दो बाहू ऊरुयाय अट्ठंगत्ति; त्रयाणामप्येतन्निष्पत्तिर्मूलकरणं । कर्णस्कंधाद्यंगोपांगनिष्पत्तिरुत्तरकरणं ॥ कार्मणतैजसयोस्तु स्वरूपनिष्पत्तिरेव मूलकरणमंगोपांगाभावान्नोत्तरकरणं ॥ यदिवौदारिकस्य कर्णवेधादिकमुत्तरकरणं । वैक्रियस्यतूत्तरकरणमुत्तरवैक्रियं दंतकेशादिनिष्पादनरूपं वा आहारकस्यतु गमनाद्युत्तरकरणं ॥ यदिवौदारिकस्य मूलोत्तरकरणे गाथापश्चार्द्धेन प्रकारांतरेण दर्शयति—द्रव्येंद्रियाणि कलंबुकापुष्पाद्याकृतीनि मूलकरणं तेषामेव परिणामिनां विषौषधादिभिः पाटवाद्यापादनमुत्तरकरणमिति ॥६॥ सांप्रतमजीवाश्रितं करणमभिधातुकाम आह (संघायणेयपरिसा, डणाय मीसे तहेव पडिसेहो ॥ पडिसं ससगडथूणा, उट्टतिरिच्छादिकरणंच)॥७॥(संघायणेयइत्यादि)॥ संघातकरणं आतानवितानीभूततंतुसंघातेन पटस्य॥ परिसाटकरणं करपत्रादिनाशंखस्य निष्पादनं ॥ संघातपरिसाटकरणंशकटादेस्तक्षनयनिषेधकरणं स्थूणादेरूर्ध्वतिरश्चीनाद्यापादनमिति ७प्रयोगकरणमभिधाय विस्रसाकरणाभिधित्सयाह (खंधेसुदुपएसा,दिएसु अब्भेसुविज्जुमाईसु । णिप्फसुगाणिदव्वा,णि जाणतंवीससाकरणं) ॥८॥ (खंधेसु इत्यादि) । विस्रसाकरणं साद्यनादिभेदाद्द्विधा ।

तत्रानादिकं धर्माऽधर्माऽकाशानामन्योन्यानुवेधेनावस्थानं । अन्योन्यसमाधानाश्रयणाच्च सत्यप्यनादित्वे करणत्वाविरोधः । रूपिद्रव्याणां च द्व्यणुकादिप्रक्रमेण नेदसंघाताभ्यां स्कंधत्वापत्तिः । सादिकं करणं पुद्गलद्रव्याणां च दशधा परिणामः । तद्यथा बंधन गति संस्थान नेद वर्ण गंध रस स्पर्श अगुरुलघु शब्दरूप इति । तत्र बंधः स्निग्धरुक्षत्वात् गतिपरिणामो देशांतरप्राप्तिलक्षणः । संस्थानपरिणामः परिमंमलादिकः पंचधा । नेदपरिणामः खंमप्रतरचूर्णिकाऽनुतटिकोत्करिकानेदेन पंचधैव । खंडादिस्वरूपप्रतिपादकं चेदं गाथाद्वयं । तद्यथा (खंडेहि खंडनेयं, पयरप्नेयं जलस्स पडलस्स ॥ चुस्सं चुसियन्नेयं, अणुतमियं वंसवक्कलियं) ॥१॥ (डुंडुंमि समारोहे, नेए उक्केरियाय उक्केरं ॥ वीसस पउगमीसग, संघाय विउगविविहगमो)॥ २ ॥ वर्णपरिणामः पंचानां श्वेतादीनां वर्णानां परिणतिर्द्रव्यादिसंयोगपरिणतिश्च । एतत्स्वरूपं च गाथान्योऽवसेयं । ताश्चेमाः (जइ कालगमेगगुणं, सुक्किलयंपि य हविज्ज बहुय गुणं । परिणामिज्जइ कालं सुक्केण गुणाहियगुणेणं ॥ १ ॥ जइ सुक्किलमेगगुणं कालगदव्वं तु बहुगुणं जइय । परिणामिज्जइ सुक्कं, कालेण गुणाहियगुणेणं ॥ २ ॥ जइ सुक्कं एक्कगुणं, कालगदव्वंपि एक्कगुणमेव । कावोयं परिणामं, तुल्लगुणत्तेण संभवइ ॥३ एवं पंचविवसा, संजोएणं तु वस्सपरिणामो, एकत्तीसं नंगा, सव्वेवि य ते मुणेयव्वा ॥४॥ एमेवय परिणामो, गंधाण रसाण तहय फासाणं, संगाणाणय नणिउ, संजोगेणं बहुविगप्पो) ॥ ५ ॥ एकत्रिंशद्भंगा एवं पूर्यंते । दशद्विकसंयोगा दशत्रिकसंयोगाः पंचचतुष्कसंयोगा एकः पंचकसंयोगः प्रत्येकं वर्णाश्च पंचेति । अगुरुलघुपरिणामस्तु परमाणोरारभ्य यावदनंतानंतप्रदेशिकाः स्कंधाः सूक्ष्माः । शब्दपरिणामस्तत विततघनसुषिरनेदाच्चतुर्धा । तथा ताल्वोष्टपुटव्यापाराद्यनिनिवर्त्त्यश्च । अन्येपि पुद्गलपरिणामाश्वायादयो नवंति ते चामी (गया य आयवो वा, उज्जोउ तहय अंधकारो य । एसो उ पुग्गलाणं, परिणामो फंदणा चेव ॥ १ ॥ सीयाणा य पगासा, गयाणाइच्चिया बहुविगप्पा । उल्हो पुणप्पगासो, णायव्वो आयवो नाम ॥ २ ॥ नविसीउ नविउल्हो, समोपगासोय होइ उज्जोउ । कालं मइलं तंपिय, वियाणतं अंधयारंति ॥ ३ ॥ दव्वस्स चलण पप्फं, दणाउ सापुण गईच निद्दिष्ठा । वीसस पउग मीसा, अत्तपरेणं तु उनउवी)॥ ४ ॥ तथाऽच्त्रेंद्रधनुर्विद्युदादिषु कार्येषु यानि पुद्गलद्रव्याणि परिणतानि तद्विस्रसाकरणमिति॥ ए॥गतंद्रव्यकरणं इदानीं क्षेत्रकरणानिधित्सयाऽह ॥ (णविणा आगासेणं,कीरइजं किंचि खेत्तमागासं। वंजण परियावस्सं,उच्छुकरणमादियं बहुहा) ॥ए॥ (णविणेत्यादि) ॥ क्षिनिवासगत्योरस्मादधिकरणे प्रूना क्षेत्रमिति । तच्चावगाहदानलक्षणमाकाशं । तेनचावगाहदानलक्षणयोग्येन विना न किंचिदपि कर्तुं शक्यत इत्यतः क्षेत्रकरणं । क्षेत्रकरणं नित्यत्वेपि चोपचारतः क्षेत्रस्यैव करणं क्षेत्रकरणं । यथा गृहादावपनीते कृतमाकाशं उत्पादिते विनष्टमि

ति। यदिवा व्यंजनपर्यायापन्नं शब्द द्वाराऽयातमिक्षुकरणादिकमितीक्षुक्षेत्रकरणं ॥ लांग लादिना संस्कारः क्षेत्रकरणं । तच्च बहुधा शालिक्षेत्रादि भेदादिति॥ए॥सांप्रतं कालकरणा भिधित्सयाऽह ॥ (कालो जो जावइउ, जं कीरइ जंमि जंमि कालंमि । उहेण णामउ पुण, करणा एक्कारस हवंति) ॥१०॥ (कालोजोइत्यादि) । कालस्यापि मुख्यं करणं न संभवतीत्यौपचारिकं दर्शयति ॥ कालोयोयावानिति । यःकश्चिद्घटिकादिको नलिकादिना व्यवच्छिद्य व्यवस्थाप्यते तद्यथा । षष्ट्युदकपलमाना घटिका । द्विघटिकोमुहूर्त्तस्त्रिंशन्मुहूर्तमहोरात्रमित्यादि तत्कालकरणमिति । य द्वा यत् यस्मिन् काले क्रियते यत्रवा काले करणं व्याख्यायते तत्कालकरणमेतदोघतः ॥१०॥ नामतस्त्वेकादशकरणानि तानि चामूनि (ववंच बालवं चैव, कोलवं तेत्तिलं तहा। गरादि वणियं चेव,विठी हवइ सत्तमा ॥११॥ सउणि चउप्पय नागं,किंसुग्घं च करणं भवे एयं । एते चत्तारि धुवा,अन्ने करणा चला सत्त ॥१२॥ चाउद्दसि रत्तीए, सउणी पडिवज्जए सदा करणं।तत्तो अहक्कमं खलु,चउप्पयं णागकिंसुग्घं) ॥१३॥ एतद्गाथात्रयं सुखोन्नेयमिति ॥११॥१२॥१३॥ इदानीं भावकरणप्रतिपादनायाह (भावे पउग वीसस, पउगसा मूल उत्तरे चेव। उत्तर कम सुय जोवण, वस्सादीभो अणादीसु) ॥१४॥ (भावे पउगेत्यादि) । भावकरणमपि द्विधा। प्रयोग विस्रसाभेदात् । तत्र जीवाश्रितं प्रायोगिकं मूलकरणं पंचानां शरीराणां पर्याप्तिस्तानि हि पर्याप्तिनामकर्मोदयादौदयिके भावे वर्तमानो जीवः स्ववीर्यजनितेन प्रयोगेण निष्पादयति । उत्तरकरणं तु गाथापश्चार्द्धेनाह—उत्तरकरणं क्रमश्रुतयौवनवर्णादिचतूरूपं। तत्र क्रमकरणं शरीरनिष्पत्त्युत्तरकालं बालयुवस्थविरादिक्रमेणोत्तरोत्तरोऽवस्थाविशेषः। श्रुतकरणं तु व्याकरणादिपरिज्ञानरूपोऽवस्थाविशेषोऽपरकलानां परिज्ञानरूपश्चेति । यौवनकरणंकालकृतो वयोवस्थाविशेषो रसायनाद्यापादितोवेति ॥ तथा वर्णगंधरसस्पर्शकरणं विशिष्टेषु भोजनादिषु सत्सु यद्विशिष्टवर्णाद्यापादनमित्येतच्च पुजलविपाकित्वाद्वर्णादीनामजीवाश्रितमपिद्रष्टव्य मिति १४ इदानीं विस्रसाकरणाभिधित्सयाऽह॥(वस्सादियायवस्सा,दिएसुजेके इवीससा मेला ॥ ते हुंति थिरा अथिरा, बाया तवडुद्मादीसु)॥१५॥ (वस्साइत्यादि) वर्णादिका इति रूपरसगंधस्पर्शास्ते यदा परेषामपरेषां वा स्वरूपादिनां मिलंति ते वर्णादिमेलकाविस्रसाकरणं ॥ तेच मेलकाः स्थिरा असंख्येयकालावस्थायिनोऽस्थिराश्च क्षणावस्थायिनः संध्यारागाभ्रेंद्रधनुरादयोभवंति ॥ तथा बायात्वेनातपत्वेनच पुजलानां विस्रसा परिणामत एव परिणामो भावकरणं ॥ स्तनप्रच्यवनानंतरं डुग्धादेश्च प्रतिक्षणं कठिणास्तादिभावेन गमनमिति१५सांप्रतं श्रुतज्ञानमधिकृत्य मूलकरणाऽभिधित्सयाऽह ॥ (मूलकरणं पुण सुते, तिविहे जोगे सुभासुभे झाणे ॥ समसयसुएण पगयं, अज्झवसाणेण य सुहेणं)॥ १६ ॥ (मूलेत्यादि) श्रुते पुनः श्रुतग्रंथे मूलकरणमिदं त्रिविधे योगे मनोवाक्का

थलक्षणे व्यापारे शुनाशुने च ध्याने वर्तमानैर्ग्रंथरचना क्रियते । तत्र लोकोत्तरैः शुना शुनध्यानावस्थितैर्ग्रंथरचना विधीयते ॥ लोकेत्वशुनध्यानाश्रितैर्ग्रंथग्रंथनं क्रियतइति ॥ लौकिकग्रंथस्य कर्मबंधहेतुत्वात् कर्तुरशुनध्यायित्वमवसेयं ॥ इहतु सूत्रकृतस्य तावत्स्व समयेन शुनाध्यवसायेनच प्रकृतं ॥ यस्माजणधरैःशुनध्यानावस्थितैरिदमंगं कृतमिति १६ तेषांच ग्रंथरचनांप्रति शुनध्यायिनां कर्मद्वारेण योऽवस्थाविशेषस्तद्दर्शयितुकामो निर्यु क्तिकृदाह ॥ (ठिइअणुनावे बंधण, निकायणनिहत्त दीहह्स्सेसु ॥ संकम उदीरणाए उदये वेदेउवसमेयं)॥१७॥(ठिइइत्यादि) । तत्र कर्मस्थितिं प्रति अजघन्योत्कृष्टकर्मस्थिति निर्गणधरैः सूत्रमिदं कृतमिति ॥ तथाऽनुनावो विपाकस्तदपेक्षया मंदानुनावैस्तथा बं धमंगीकृत्य ज्ञानावरणीयादिप्रकृतीर्मंदानुनावा बध्नद्भिस्तथाऽनिकाचयद्भिरेवं निधत्ता वस्थामकुर्वद्भिस्तथा दीर्घस्थितिकाः प्रकृतीर्ह्सीयसीर्जनयद्भिस्तथोत्तरप्रकृतीर्बध्यमाना सु संक्रामयद्भिस्तथोदयवतां कर्मणामुदीरणां विदधानैरप्रमत्तगुणस्थैस्तु शाताऽशाताऽ यूंष्यनुदीरद्भिस्तथा मनुष्यगति पंचेंद्रिय जात्यौदारिक शरीर तदंगोपांगादिकर्मणा मुदये वर्तमानैस्तथावेदमंगीकृत्य पुंवेदेसति तथोवसमेति सूचनात्सूत्रमिति क्षायोपश मिकानावे वर्तमानैर्गणधारिनिरिदं सूत्रकृतांगं ग्रंथितमिति १७सांप्रतं स्वमनीषिकापरिहार द्वारेण करणप्रकारमनिधातुकामआह ॥ (सोऊण जिणवरमतं, गणहारी काउं तरक उ वसमं ॥ अज्झवसाणेण कयं, सूत्तमिणं तेणसूयगडं) ॥१८॥ (सोऊणेत्यादि) श्रुत्वा निशम्य जिनवराणां तीर्थकराणां मतमनिप्रायं मातृकादिपदं गणधरैर्गौतमादिनिः कृत्वा तत्रग्रंथरचने क्षयोपशमं तत्प्रतिबंधकर्मक्षयोपशमाद्दत्तावधानैरितिनावः ॥ शुनाध्यवसा येन वसता कृतमिदं सूत्रं तेनसूत्रकृतमिति॥१८॥इदानीं कस्मिन् योगे वर्तमानैस्तीर्थकृद्भि र्नाषितं कुत्रवा गणधरैर्दृब्धमित्येतदाह ॥(वइजोगेणपनासिय, मणेगजोगंधराणसाहूणं॥ तो वय जोगेणकयं, जीवस्स सनावियगुणेण)॥ १९ ॥ (वइजोगेणेत्यादि) । तत्र तीर्थ कृद्भिः क्षायिकज्ञानवर्तिनिर्वाग्योगेनार्थः प्रकर्षेण नापितः प्रनापितो गणधराणां ॥ तेच नप्राकृतपुरुषकल्पाः किंत्वनेकयोगधराः ॥ तत्र योगः क्षीराश्रवादिलब्धिकलापसंबंधस्तं धारयंतीत्यनेकयोगधरास्तेषां प्रनापितमिति सूत्रकृतांगाऽपेक्षया नपुंसकता ॥ साधवश्चा त्र गणधरा एव गृह्यंते तदुद्देशेनैव नगवतामर्थप्रनाषणादिति ॥ ततोर्थं निशम्य गणधरै रपि वाग्योगेनैव कृतं तच्च जीवस्य स्वानाविकेन गुणेनेति ॥ स्वस्मिन्नावे नवः स्वानावि कः प्राकृतइत्यर्थः ॥ प्राकृतनाषयेत्युक्तं नवति ॥ नपुनः संस्कृतया लट्लिट्शप् प्रकृतिप्रत्य यादिविकारविकल्पनानिष्पन्नयेति ॥१९॥ पुनरन्यथा सूत्रकृतनिरुक्तमाह ॥ (अरकरगुण मतिसंघा; यणाएकम्मपरिसाडनाएय ॥ मडनयजोगेण कयं, सुत्तमिणं तेण सूत्तगमं) ॥ २० ॥ (अरकरेत्यादि) । अक्षराणि अकारादीनि तेषां गुणोऽनंतगमपर्यायत्वमुच्चारणं

वाऽन्यथाऽर्थस्य प्रतिपादयितुमशक्यत्वात् ॥ मतेर्मतिज्ञानस्य संघटना मतिसंघटना अक्षर गुणेन मतिसंघटना॥ भावश्रुतस्य इव्यश्रुतेन प्रकाशनमित्यर्थः ॥ अक्षरगुणस्य वा मत्या बुध्या संघटना रचनेति यावत्॥ तथा ऽक्षरगुणमतिसंघटनया ॥ तथा कर्मणां ज्ञानावरणा दीनां परिशाटना जीवप्रदेशेभ्यः पृथक्करणरूपा तयाच हेतुभूतया सूत्रकृतांगं कृतमिति संबन्धः । तथाहि । यथा यथा गणधराः सूत्रकरणायोद्यमं कुर्वन्ति तथा तथा कर्मपरिशा टना भवति । यथा यथाच कर्मपरिशाटना तथा तथा ग्रंथरचनायोद्यमः संपद्यत इति । ए तदेव गाथापश्चार्धेन दर्शयति ।तडुनययोगेनेति ॥ अक्षरगुणमतिसंघटनायोगेन कर्मपरि शाटनायोगेन च॥ यदि वा वाग्योगेन मनोयोगेन च कृतमिदं सूत्रं तेन सूत्रकृतमिति । इहा ऽनंतरं सूत्रकृतस्य निरुक्तमुक्तमधुना सूत्रपदस्य निरुक्तानिधित्सयाह । "सुत्तेण सुत्तियं चिय, अबा तह सूइयाय जुत्ताय ॥ तोबहुविहप्पउत्ता एया पसिद्धा अणादीया" ॥२१॥ सुत्तेणेत्यादि । अर्थस्य सूचनात्सूत्रं तेन सूत्रेण केचिदर्थाः साक्षात्सूत्रिता मुख्यतयो पात्तास्तथाऽपरे सूचिता अर्थापत्त्याक्षिप्ताः ॥ साक्षादनुपादानेपि दध्यानयनचोदनया तदा धारानयनचोदनावदिति । एवंच कृत्वा चतुर्दशपूर्वविदः परस्परं षट्स्थानपतिता भवंति । तथा चोक्तं । अरकरलंभेण समा, ऊणहिया हुंति मतिविसेसेहिं । तेविय मईविसेसा, सुयणाणप्भिंतरेजाण ॥१॥ तत्र ये साक्षाडुपात्तास्तान् प्रति सर्वेपि तुल्याः॥ ये पुनःसूचिता स्तदपेक्षया कश्चिदनंतभागाधिकमर्थं वेत्त्यपरोऽसंख्येयभागाधिकमन्यः संख्येयभागाधि कं तथान्यः संख्येयाऽसंख्येयाऽनंतगुणमिति तेच सर्वेपि युक्ता युक्त्युपपन्नाः सूत्रो पात्ताएव वेदितव्याः । तथा चाभिहितं "तेवियमईविसेसे" इत्यादि । ननु किं सूत्रो पात्तेभ्योऽन्येपि केचनार्थाः संति येन तदपेक्षया चतुर्दशपूर्वविदां षट्स्थानपतितत्वमुद् घुष्यते । बाढं विद्यते । यतोऽभिहितं । पन्नवणिज्जाभावा, अणंतभागोउ अणभिल प्पाणं । पन्नवणिज्जाणं पुण, अणंतभागो सुयनिबद्धो ॥ १ ॥ यतश्चैवं ततस्ते अर्था आगमे बहुविधं प्रयुक्ताः सूत्रैरुपात्ताः केचन साक्षात्केचिदर्थापत्त्या समुपलभ्यन्ते । य दि वा क्वचिद्देशग्रहणं क्वचित्सर्वार्थोपादानमित्यादि । यैश्च पदैस्ते अर्थाः प्रतिपाद्यन्ते तानि पदानि प्रकर्षेण सिद्धानि प्रसिद्धानि न साधनीयानि । तथाऽनादीनि च तानि नेदानीमुत्पाद्यानि ॥तथा चेयं द्वादशांगी शब्दार्थरचना द्वारेण विदेहेषु नित्या भरतैराव तेष्वपि शब्दरचनाद्वारेणैव प्रति तीर्थकरं क्रियते ऽन्यथा तु नित्यैव । एतेन चोच्चरित प्रध्वंसिनो वर्णा इत्येतन्निराकृतं वेदितव्यमिति॥२१॥सांप्रतं सूत्रकृतस्य श्रुतस्कंधाध्ययनादि निरूपणार्थमाह । "दोचेवसुयखंधा, अज्झयणाइं च हुंति तेवीसं॥ तेत्तिसुदेसणकाला, आ याराउ डुगुणमंगं" ॥२२॥ (दोचेवेत्यादि)। द्वावत्र श्रुतस्कन्धौ त्रयोविंशतिरध्ययनानि त्रय स्त्रिंशडुद्देशनकालास्ते चैवं भवंति । प्रथमाध्ययने चत्वारो द्वितीये त्रयस्तृतीये चत्वारः॥

एवं चतुर्थपंचमयो र्द्वौ द्वौ तथैकादशस्वेकसरकेष्वेकादशैवेति। प्रथमश्रुतस्कन्धे तथा द्वितीयश्रुतस्कन्धे सप्ताध्ययनानि तेषां सप्तैवोद्देशनकाला एवमेते सर्वेपि त्रयस्त्रिंशदिति। एतच्चाचारांगाद्विगुणमंगं षट्त्रिंशत्पदसहस्रपरिमाणमित्यर्थः ॥ २२॥ सांप्रतं सूत्रकृतांगनिक्षेपानंतरं प्रथमश्रुतस्कंधस्य नामनिष्पन्ननिक्षेपानिधित्सयाऽह। "निक्खेवोगाहाए,चउव्विहो छव्विहोय सोळसस्सु॥ निक्खेवोयसुयंमिय,खंधेय चउव्विहो होइ"॥ २३॥ (निक्खेवो इत्यादि) इहाद्यश्रुतस्कंधस्य गाथाषोडशक इति नाम। गाथाख्यं षोडशमध्ययनं यस्मिन् श्रुतस्कंधे सतथेति। तत्र गाथाया नामस्थापनाद्रव्यनावश्चतुर्विधो निक्षेपः ॥ नामस्थापनेप्रसिद्धे ॥ द्रव्यगाथा द्विधा ॥ आगमतो नो आगमतश्च ॥ तत्र आगमतो ज्ञाता तत्र चानुपयुक्तोऽनुपयोगो द्रव्यमिति कृत्वा। नोआगमतस्तु त्रिधा। ज्ञशरीरद्रव्यगाथा नव्यशरीरद्रव्यगाथा ताभ्यां विनिर्मुक्ता च ॥ 'सत्तछतरूविसामणसेहयाताए छछणह जळया॥ गाहाएपछेद्दे नेउछणो त्ति इक्ककळो' इत्यादिलक्षणलक्षिता पत्रपुस्तकादिन्यस्तेति ॥ नावगाथापि द्विविधा ॥ आगमत आगमनेदात्॥ तत्राऽऽगमतो गाथापदार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्तः। नोआगमतस्त्विदमेव गाथाख्यमध्ययनं ॥ आगमैकदेशत्वादस्य षोडशकस्यापि नामस्थापनाद् द्रव्यक्षेत्रकालनावनेदात् षोढा निक्षेपः ॥ तत्र नामस्थापने कुण्णे। द्रव्यषोडशकं ज्ञशरीरनव्यशरीरविनिर्मुक्तं। सचित्तादीनि षोडश द्रव्याणि। क्षेत्रषोडशकं षोडशाकाशप्रदेशाः॥ कालषोडशकं षोडश समया एतत्कालावस्थापि वा द्रव्यमिति ॥ नावषोडशकमिदमेवाध्ययनषोडशकं क्षायोपशमिकनावहृत्तित्वादिति ॥ श्रुतस्कंधयोः प्रत्येकं चतुर्विधो निक्षेपः॥ सचान्यत्र निक्षेपेण प्रतिपादित इति नेह प्रतन्यते॥ २३॥ सांप्रतमध्ययनानांप्रत्येकमर्थाधिकारदिदर्शयिषयाऽह ॥ "ससमय परसमयपरू, वणायणाऊण उज्झणा चेव ॥ संबुद्धस्सुवसग्गा थीदोसविवज्जणाचेव ॥ २४ ॥ उवसग्गनीरुणोथी वस्साणरएसु होज्ज उववाउ ॥ एवमहप्पावीरो जयमास तहा जएज्जाह ॥ २५ ॥ परिचत्तनिशीळकुशी,ळसुशीळ सविग्गशीळवंचेव ॥ णाऊण वीरियदुगं पंमिय वीरियपहुज्ज पवयइ ॥ २६ ॥ धम्मोसमाहिमग्गो समोसढा चउसुसव्ववादीसु॥ सीसगुण दोसकहणा गंथंमि सदा गुरुनिवासो ॥२७॥ आदाणिय संकलिया आदाणीयंमि आदयचरित्तं ॥ अप्पग्गंथे पंमिय वयणेणंहा गहाइ अहिगारो" ॥२८॥ (ससमय इत्यादि गाथाःपंच)। तत्र प्रथमाध्ययने स्वसमयपरसमयप्ररूपणा। द्वितीये स्वसमयगुणान् परसमयदोषांश्च ज्ञात्वा स्वसमय एव बोधो विधेय इति ॥ तृतीयाध्ययने तु संबुद्धः सन्यथोपसर्गसहिष्णुर्नवति तदनिधीयते ॥ चतुर्थे स्त्रीदोषविवर्जना ॥ पंचमेत्वयमर्थाधिकारः॥ तद्यथा ॥ उपसर्गाऽसहिष्णोः स्त्रीवशवर्तिनोऽवश्यं नरकेषु पात इति ॥ षष्ठे पुनरेवमित्यनुकूलप्रतिकूलोपसर्गसहनेन स्त्रीवर्जनेन च नगवान् महावीरो जेतव्यस्य कर्मणः संसारस्य वा परानवेन जयमाह ॥

ततस्तथैव यत्नं विधत्त यूयमिति शिष्याणामुपदेशो दीयते ॥ सप्तमे त्विदमनिहितं ॥ तद्यथा ॥ निःशीला गृहस्थाः कुशीलास्त्वन्यतीर्थिकाः पार्श्वस्थादयो वा ते परित्यक्ता येन साधुना स परित्यक्तनिःशीलकुशील इति ॥ तथा सुशीला उद्युक्तविहारिणः संविग्नाः संवेगमग्नास्तत्सेवाशीलः शीलवान् नवतीति । अष्टमे त्वेतत्प्रतिपाद्यते । तद्यथा । ज्ञात्वा वीर्यद्वयं पंमितवीर्ये प्रयत्नो विधीयत इति ॥ नवमे चार्थाधिकारस्त्वयं ॥ तद्यथा ॥ यथाऽवस्थितोधर्मः कथ्यते ॥ दशमेतु समाधिः प्रतिपाद्यते ॥ एकादशेतु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मको मोक्षमार्गः कथ्यते ॥ द्वादशे त्वयमर्थाधिकारः ॥ तद्यथा । समवसृता अवतीर्णा व्यवस्थिताश्चतुर्षु मतेषु क्रियाऽक्रियाऽज्ञानवैनयिकाख्येष्वनिप्रायेषु त्रिषष्ट्युत्तरशतत्रयसंख्याः पाषंडिनः स्वीयं स्वीयमर्थं प्रसाधयंतः समुत्थितास्तडुपन्यस्तसाधनदोषोद्भावनतो निराक्रियंते ॥ त्रयोदशे त्विदमनिहितं ॥ तद्यथा ॥ सर्ववादिषु कपिलकणादाक्षपादशौद्धोदनिजैमिनिप्रनृतिमतानुसारिषु कुमार्गप्रणेतृत्वं साध्यते ॥ चतुर्दशेतु ग्रंथाख्येऽध्ययनेऽयमर्थाधिकारः ॥ तद्यथा । शिष्याणां गुणदोषकथना तथा शिष्यगुणसंपडुपेतेन च विनेयेन नित्यं गुणानुरूपगुरुकुलवासो विधेय इति ॥ पंचदशे त्वादानीयाख्येऽध्ययनेऽर्थाधिकारोऽयं ॥ तद्यथा ॥ आदीयंते गृह्यंते उपादीयंते इत्यादानीयानि पदान्यर्था वा ते च प्रागुपन्यस्तपदैरर्थैश्च प्रायशोऽत्र संकलिताः॥तथा आयतं चरित्रं सम्यक्चरित्रं मोक्षमार्गप्रसाधकं तच्चात्र व्यावर्ण्यत इति ॥ षोमशेतु गाथाख्येऽल्पग्रंथेऽध्ययनार्थोयं व्यावर्ण्यते। तद्यथा ॥ पंचदशनिरध्ययनैर्योऽर्थोऽनिहितः सोत्र पंमितवचनेन संक्षिप्तानिधानेन प्रतिपाद्यत इति ॥ 'गाहा सोलसगाणं पिंडत्थोवन्निओ समासेण ॥ इत्तो इक्किक्कं पुण अज्झयणं कित्तयिस्सामि' ॥१॥ तत्राद्यमध्ययनं समयाख्यं तस्य चोपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराणि नवंति ॥ तत्रोपक्रमणमुपक्रम्यते वाऽनेन शास्त्रं न्यासदेशं निक्षेपावसरमानीयत इत्युपक्रमः। सच लौकिको नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालनावनेदेन षड्रूप आवश्यकादिष्वेवप्रपंचितः॥ शास्त्रीयोप्यानुपूर्वीनामप्रमाणवक्तव्यतार्थाधिकारसमवताररूपः षोढैव । तत्रानुपूर्व्यादीन्यनुयोगद्वारानुसारेण ज्ञेयानि तावद्यावत्समवतारस्तत्रैस्तदध्ययनमानुपूर्व्यादिषु यत्र यत्र समवतरति तत्र तत्र समवतारयितव्यं ॥ तत्र दशविधायामानुपूर्व्यांगणनानुपूर्व्यां समवतरति सापि त्रिधा। पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी चेति॥ तत्रेदमध्ययनं पूर्वानुपूर्व्यां प्रथमं पश्चानुपूर्व्यां षोडशम्। अनानुपूर्व्यां तु चिंत्यमानमस्यामेवैकादिकायामेकोत्तरिकायां षोडश गच्छतायां श्रेण्यामन्योन्याभ्यासद्विरूपोनसंख्यानेदं नवति ॥ अनानुपूर्व्यांतु षोडशनेदसंख्यापरिज्ञानोपायोयं । तद्यथा । 'एकाद्या गच्छपर्यंताः परस्परसमाहताः॥राशयस्तद्धि विज्ञेयं विकल्पगणिते फलं'॥१॥ प्रस्तारानयनोपायस्त्वयं॥ पुव्वाणुपुव्विहेट्ठा

१ २ ३ ४ ५ इत्यादि॥तत्र।'गणितेंत्यविन्नक्ते तु लब्धं शेषैर्विनाजयेत्॥ आदावंते च तत्
२ १ ३ ४ ५ स्थाप्यं विकल्पगणिते क्रमात्'॥१॥ अयं श्लोकः शिष्यहितार्थं विव्रियते। त
१ ३ २ ४ ५ त्र सुखावगमार्थं षट् पदानि समाश्रित्य तावत् श्लोकार्थो योज्यते। तत्रैवं
३ १ २ ४ ५ षट् पदानि स्थाप्यानि। १२३४५६। एतेषां परस्परताडनेन सप्तशतानि
२ ३ १ ४ ५ विंशत्युत्तराणि गणितमुच्यते। तस्मिन् गणितेंऽत्योत्र षट्कस्तेन नागे हते विं
३ २ १ ४ ५ शत्युत्तरं शतं लन्यते तच्च पस्रां पंक्तीनामंत्यपंक्तौ षट्कानां न्यस्यते। तदधः
१ २ ४ ३ ५ पंचकानां विंशत्युत्तरमेवशतम्॥एवमधोधश्चतुष्कत्रिकद्विकैकानां प्रत्येकं विंश त्युत्तरशतं न्यस्यमेवमंत्यपंक्तौ सप्त शतानि विंशत्युत्तराणि नवंत्येषा च गणितप्रक्रियाया आदिरुच्यतें। तथा यत्तद्विंशत्युत्तरं शतं लब्धं तस्य च पुनः शेषेण पंचकेन नागेनापहृते लब्धा चतुर्विंशतिस्तावंतस्तावन्तश्च पंचकचतुष्कत्रिकद्विकैकाः प्रत्येकं पंचमपंक्तौ न्यस्या याव द्विंशत्युत्तरं शतमिति॥ तदधोग्रतो न्यस्तमंकं मुक्त्वा येन्ये तेषां यो यो महत्संख्यः स सोध स्ताच्चतुर्विंशतिसंख्य एव तावत् न्यस्यो यावत्सप्तशतानि विंशत्युत्तराणि पंचमपङ्क्तावपि पूर्णानि नवंति॥ एषा च गणितप्रक्रियेत्यनिधीयते॥ एवमनया प्रक्रियया चतुर्विंशतेः शेषचतुष्ककेन नागे हृते षट् लन्यंते तावंतश्चतुःपंक्तौ चतुष्ककाः स्थाप्यास्तदधः षट्त्रिकाः पुनर्द्विका नूय एककाः पुनः पूर्वन्यायेन पंक्तिः पूरणीया॥ पुनः षट्कस्य शेषत्रिकेण नागे हृते द्वौ लन्येते तावन्मात्रौ त्रिकौ तृतीयपंक्तौ शेषं पूर्ववत्। शेषपंक्तिद्वये शेषमंकद्वयं क्रमोत्क्रमान्यां व्यवस्थाप्यमिति॥ तथा नाम्नि षड्विधनाम्न्यवतरति। यतस्तत्र षड् नावाः प्ररूप्यंते। श्रुतस्यच क्षायोपशमिकनाववर्तित्वात्। प्रमाणमधुना प्रमीयतेनेनेति प्रमाणं॥तत् द्रव्यक्षेत्रकालनावनेदाच्चतुर्धा। तत्रास्याध्ययनस्य क्षायोपशमिकनावव्यवस्थितत्वाद्भावप्रमाणेऽवतारः। नावप्रमाणं च गुण, नय, संख्या, नेदात्रिधा। तत्रापि गुणप्रमाणे समवतारः। तदपि जीवाजीवनेदाद् द्विधा। समयाध्ययनस्य च क्षायोपशमिक नावरूपत्वात्तस्य च जीवानन्यत्वाज्जीवगुणप्रमाणे समवतारः। जीवगुणप्रमाणमपि ज्ञान, दर्शन, चारित्र, नेदात्रिविधं। तत्रास्य बोधरूपत्वात् ज्ञानगुणप्रमाणे समवतारः॥ तदपि प्रत्यक्षानुमानोपमानागमनेदाच्चतुर्धा। तत्रास्यागमप्रमाणे समवतारः॥ सोपि लौकिक, लोकोत्तर, नेदाद् द्विधा। तदस्य लोकोत्तरे समवतारस्तस्य च सूत्रार्थतङुनयरूपत्वात्त्रैविध्यं। त्रिष्वपि समवतारः। यदि वाऽत्मानंतरपरंपरनेदादागमस्त्रिविधस्तत्र तीर्थकृतामर्थापेक्षयाऽत्मागमो गणधराणामनंतरागमस्तच्छिष्याणां परंपरागमः। सूत्रापेक्षया तु गणधराणामात्मागमस्तच्छिष्याणामनंतरागमस्तदन्येषां परंपरागमः। गुणप्रमाणानंतरं नयप्रमाणावसरस्तस्य चेदानीं पृथक्त्वानुयोगे नास्ति समवतारो नवेद्वा पुरुषापेक्षया॥ तथा चोक्तं॥ मूढनइयं सुयं का,लियंतुणणया समोरयंति इहं॥ अपु

हत्ते समुयारो एत्थि पुहुत्ते समोयारो ॥ १ ॥ तथा ॥ आसज्जउ सोयारं नएनय विसारउ बूया' ॥ संख्याप्रमाणं त्वष्टधा ॥ नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, परिमाण, पर्यव, नाव, नेदात् । तत्रापि परिमाणसंख्यायां समवतारः ॥ सापि कालिकदृष्टिवादनावात् द्विधा ॥ तत्रास्य कालिकपरिमाणसंख्यायां समवतारस्तत्राप्यंगानंगयोरंगप्रविष्टे समवतारः । पर्यवसंख्यायां त्वनंताः पर्यवाः ॥ तथा संख्येयान्यक्षराणि संख्येयाः संघाताः संख्येयानि पदानि संख्येयाः श्लोकाः संख्येया गाथाः संख्येया वेदाः संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि । सांप्रतं वक्तव्यतायाः समवतारश्चिंत्यते ॥ साच स्व, पर, समय,तडुनयनेदात्त्रिधा । तत्रेदमध्ययनं त्रिविधायामपि समवतरति । अर्थाधिकारो द्वेधा॥ अध्ययनार्थाधिकार उद्देशार्थाधिकारश्च । तत्राध्ययनार्थाधिकारोऽनिहितः । उद्देशार्थाधिकारं तु गाथांतरितं निर्युक्तिकृद्वक्ष्यति । सांप्रतं निक्षेपावसरः सच त्रिधा । उघनिष्पन्नो नामनिष्पन्नः सूत्रालापकनिष्पन्नश्च । तत्रौघनिष्पन्नेऽध्ययनं तस्यच निक्षेप आवश्यकादौ प्रबंधेनानिहित एव । नामनिष्पन्नेतु समय इति॥ २ ७॥नाम तन्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकार आह॥ "नामंठवणा दविए खेत्ते काले कुतित्थसंगारे ॥ कुलगणसंकरगंडी । बोधवा नावसमएय" ॥२७॥ (नामं ठवणाइत्यादि) । नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, कुतीर्थ, संगार, कुल, गण, संकर, गंडी, नाव, नेदात् द्वादशधा समयनिक्षेपः । तत्र नामस्थापने क्षुसे । द्रव्यसमयो द्रव्यस्य सम्यगयनं परिणतिविशेषः स्वनाव इत्यर्थः । तद्यथा । जीवद्रव्यस्योपयोगः पुजलद्रव्यस्य मूर्तत्वं धर्माधर्माकाशानां गतिस्थित्यवगाहदानलक्षणोऽथवा योयस्य द्रव्यस्यावसरो द्रव्यस्योपयोगकाल इति ॥ तद्यथा ॥ 'वर्षासु लवणममृतं शरदि जलं गोपयश्च हेमंते ॥ शिशिरे चामलकरसो घृतं वसंते गुडश्चांते' ॥ १ ॥ क्षेत्रसमयः क्षेत्रमाकाशं तस्य समयः स्वनावः । यथा ॥ ' एगेणविसेपुसे दोहिंविपुणे सयंपि माएज्जा ॥ लरकसएणविपुसे, कोडिसहस्सं पि माएज्जा' ॥१॥ यदि वा देवकुरुप्रनृतीनां क्षेत्राणामीदृशोऽनुनावो यडुत तत्र प्राणिनः सुरूपा नित्यसुखिनो निर्वैराश्च नवंतीति क्षेत्रस्य वा परिकर्मणावसरः क्षेत्रसमय इति ॥ कालसमयस्तु सुषमादेरनुनावविशेषः । उत्पलपत्रशतनेदानिव्यंग्यो वा कालविशेषः कालसमय इति ॥ अत्र च द्रव्यक्षेत्रकालप्राधान्यविवक्षया द्रव्यक्षेत्रकालसमयता डष्टव्येति । कुतीर्थसमयः पाखंडिकानामात्मीयानात्मीय आगमविशेषस्तडुक्तं वानुष्ठानमिति ॥ संगारः संकेतस्तद्रूपः समयः संगारसमयः ॥ यथा सिद्धार्थसारथिदेवेन पूर्वकृतसंगारानुसारेण गृहीतहरिशवो बलदेवः प्रतिबोधित इति ॥ कुलसमयः कुलाचारो यथा शकानां पितृशुद्धिः आनीरकाणां मंथनिका शुद्धिः । गणसमयो यथा॥ मल्लानामयमाचारो यथा यो ह्यनाथो मल्लो म्रियते स तैःसंस्क्रियते पतितश्चोध्रियत इति । संकरसमयस्तु संकरोनिन्नजातीयानां मीलकस्तत्र च समये एकवाक्यता ॥ यथा वाममा

गींदावनाचारप्रवृत्तावपि शुतिकरणमिति । गंडीसमयो यथा शाक्यानां नोजनावसरे गंडीताडनमिति । नावसमयस्तु नो आगमत इदमेवाध्ययनमनेनैवात्राधिकारः शेषाणां तु शिष्यमतिविकासार्थमुपन्यास इति ॥२ए॥सांप्रतं प्रागुपन्यस्तोद्देशार्थाधिकारान्निधित्सयाऽऽह ॥ "महपंचनूय एक्क, प्पएय तज्जीवतस्सरीरेय ॥ तहय अगार गवाती अत्तछ्ठो अफलवादी ॥३०॥ बीए नियवाईउं, अस्राणियतहय नाणवाईउं ॥ कम्मं च यन्नगछ्ठइ, चउविहं निरकुसमयंमि ॥ ३१॥ तइए आहाकम्मं, कडवाई जहयतेयवाईउं ॥ किञ्चुवमाय चउबे, परप्पवाई अविरएसु" ॥ ३२ ॥ महपंचनूय इत्यादिगाथात्रयं । अस्याध्ययनस्य चत्वार उद्देशकास्तत्राद्यस्यषडर्थाधिकारा आद्यगाथयाऽनिहिताः ॥ तद्यथा । पंचनूतानि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाख्यानि महांति च तानि सर्वलोकव्यापित्वात् नूतानि च महानूतानि इत्ययमेकोऽर्थाधिकारः । तथा चेतनाचेतनं सर्वं मेकात्मविवर्त्त इत्यात्माऽद्वैतवादः प्रतिपाद्यत इत्यर्थाधिकारो द्वितीयः । स चासौ जीवश्च तज्जीवः कायाकारो नूतपरिणामस्तदेव शरीरं जीवशरीरयोरैक्यमिति यावदिति तृतीयोर्थाधिकारः । तथाऽकारको जीवः सर्वस्याः पुण्यपापक्रियाया इत्येवंवादीति चतुर्थोधिकारः ॥ तथात्मा षष्ठ इति पंचानां नूतानामात्मा षष्ठः प्रतिपाद्यत इत्ययं पंचमोर्थाधिकारः । तथा फलवादीति । न विद्यते कस्याश्चित् क्रियायाः फलमित्येव वादी च प्रतिपाद्यत इति षष्ठोर्थाधिकार इति । द्वितीयोद्देशकेचत्वारोर्थाधिकाराः॥तद्यथा । नियतिवादस्तथाऽज्ञानिकमतं ज्ञानवादी च प्रतिपाद्यते । कर्म च चयमुपचयं चतुर्विधमपि न गछ्ठति निक्रुसमये शाक्यागमे चतुर्थोर्थाधिकारः । चातुर्विध्यंतु कर्मणो ऽविज्ञोपचितं ॥ अविज्ञानमविज्ञा तयोपचितमनानोगकृतमित्यर्थः । यथा मातुः स्तनाद्याक्रमणेन पुत्रव्यापत्तावप्यनानोगान्नकर्मोपचीयते । तथा परिज्ञानं परिज्ञा केवलेन मनसा पर्यालोचनं तेनापि कस्यचित्प्राणिनो व्यापादनानावात् कर्मोपचयानाव इति । तथा ईरणमीर्यागमनं तेन जनितमीर्याप्रत्ययं तदपि कर्मोपचयं न गछ्ठति प्राणिव्यापादनानिसंधेरनावादिति । तथा स्वप्नांतिकं स्वप्नप्रत्ययं कर्म नोपचीयते । यथा स्वप्ननोजने तृप्त्यनाव इति तृतीयोद्देशकेत्वयमर्थाधिकारः । तथा आधाकर्मगतविचारस्तन्नोजिनां च दोषोपदर्शनमिति । तथा कृतवादी च नएयते । तद्यथेश्वरेण कृतोयं लोकः प्रधानादिकृतो वा ॥ यथा च ते प्रतिवादिन आत्मीयं कृतवादं गृहीत्वोपस्थितास्तथा नएयंत इति द्वितीयोधिकारः । चतुर्थोद्देशकाधिकारस्त्वयं । तद्यथा॥ अविरतेषु गृहस्थेषु यानि कृत्यान्यनुष्ठानानि स्थितानि तैरसंयमप्रधानैः कर्त्तव्यैः परप्रवादी परतीर्थिक उपमीयत इति । इदानीमनुगमः सच द्वेधा । सूत्रानुगमो निर्युक्त्यनुगमश्च । तत्र निर्युक्त्यनुगमस्त्रिविधः । तद्यथा । निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम उपोद्धातनिर्युक्त्यनुगमः सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगमश्च । तत्र निक्षेपनिर्युक्त्यनुगमोऽनु

गत उंधनामनिष्पन्ननिक्षेपयोरंतर्गतत्वात् । तथाच वक्ष्यमाणस्य सूत्रस्य निक्षेपावसरत्वा त् । उपोद्घातनिर्युक्त्यानुगमस्तु षड्विंशति द्वारप्रतिपादकागाथा द्वयादवसेयस्तच्चेदं उद्देश निर्देशोय इत्यादि । सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगमस्तु सूत्रे सति संजवति ॥ सूत्रं च सूत्रानुगमे सचावसरप्राप्त एव। तत्राऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं। तच्चेदं ॥ बुज्झिज्जत्ति तिउट्टि ज्जत्यादिश्लोकः । अस्य संहितादिक्रमेण व्याख्या । (बुध्यतेत्यादि) । सूत्रमिदं सूत्रकृतां गादौ वर्तते । अस्यच ऽऽचारांगेन सहार्य संबंधः । तद्यथा आचारांगेजिहितं । ‘ जीवो ब कायपरू, वणायतेसिं वहेणबंधोत्ति ’ इत्यादि तत्सर्वं बुध्येतेत्यादि । यदि चेह केषांचि द्वादिनां ज्ञानादेवमुक्त्यवाप्तिरन्येषां क्रियामात्रात्। जैनानां तूजान्यां निश्रेयसाधिगम इत्ये तदनेन श्लोकेन प्रतिपाद्यते । तत्रापि ज्ञानपूर्विका क्रिया फलवती जवतीत्यादि बुध्येते त्यनेन ज्ञानमुक्तं॥त्रोटयेदित्येनेनच क्रियोक्ता॥तत्रायमर्थो बुध्येतावगच्छेत् बोधं विदध्यादित्यु पदेशः। किंपुनस्तद्बुध्येत तदाह । बंधनं बध्यते जीवप्रदेशैरन्योन्यानुवेधरूपतया व्यवस्था प्यत इति बंधनं ज्ञानावरणाद्यष्टप्रकारं कर्म तद्धेतवो वा मिथ्यात्वाऽविरत्यादयः परि ग्रहारंजादयो वा । नच बोधमात्रादजिलषितार्थावाप्तिर्नवतीत्यतः क्रियां दर्शयति । त च्च बंधनं परिज्ञाय विशिष्टया क्रियया संयमानुष्ठानरूपया त्रोटयेदपनयेदात्मनः पृथक्कुर्या त्परित्यजेद्वा। एवं चाजिहिते जंबूस्वाम्यादिको विनेयो बंधादिस्वरूपं विशिष्टं जिज्ञासुः प प्रच्छ॥ किमाह किमुक्तवान् बंधनं वीरस्तीर्थकृत् किंवा जानन्नवगच्छंस्तद्बंधनं त्रोटयति ततो वा त्रुट्यतीति श्लोकार्थः ॥ १ ॥ बंधनस्वरूपनिर्वचनायाह ॥ (चित्तमंतमचित्तं वे त्यादि)॥ इह बंधनं कर्म तद्धेतवो वाऽजिधीयते ॥ तत्र न निदानमंतरेण निदानिनो जन्मेति निदानमेव दर्शयति ॥ तत्रापि सर्वारंजाः कर्मोपादानरूपाः प्रायश आत्मात्मी यग्रहोत्थानामिति कृत्वाऽदौ परिग्रहमेव दर्शितवान् ॥ चित्तमुपयोगो ज्ञानं तद्विद्यते य स्य तच्चित्तवत् द्विपदचतुष्पदादि । ततोन्यदचित्तवत् कनकरजतादि तडुजयरूपमपि परि ग्रहं परिगृह्य कृशमपि स्तोकमपि तृणतुषादिकमपीत्यर्थः । यदि वा कसनं कसः परिग्रह ग्रहणबुध्या जीवस्य गमनपरिणाम इति यावत् । तदेवं स्वतः परिग्रहं परिगृह्यान्यान्वा ग्राहयित्वा गृण्हतो वान्याननुज्ञाय डुःखयतीति डुःखमष्टप्रकारं कर्म तत्फलं वा असा तोदयादिरूपं तस्मान्न मुच्यत इति। परिग्रहाग्रह एव परमार्थतोनर्थमूलं जवति । तथा चोक्तं । ‘ममाहमिति चैष यावदजिमानदाहज्वरः कृतांतमुखमेव तावदिति न प्रशांत्युन्न यः ॥ यशःसुखपिपासितैरयमसावनर्थोत्तरैः परैरपसदः कुतोपि कथमप्यपाकृष्यते’ ॥ १ ॥ तथाच ॥ द्वेषस्यायतनं धृतेरपचयः क्षांतेः प्रतीपो विधिर्व्याक्षेपस्य सुहृन्मदस्य जवनं ध्या नस्य कष्टो रिपुः ॥ डुःखस्य प्रजवः सुखस्य निधनं पापस्य वासो निजः प्राज्ञस्यापि परिग्र हो ग्रहइव क्लेशाय नाशायच’ ॥ १ ॥ २ ॥

सयं निवायए पाणे, अडुवाऽन्नेहिं घायए ॥ हणंतं वा णुजा
णाइ, वेरं वड्ढइ अप्पणो ॥३॥ जेस्सिं कुले समुप्पन्ने जेहिं वा सं
वसे नरे ॥ ममाइ लुप्पई बाले, अन्ने अन्नेहि मुछिए ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे ज्यां परिग्रह त्यां आरंभ होय, अने ज्यां आरंभ त्यां प्राणातिपात होय एवुं देखाडेछे. ते परिग्रहवंत पुरुष असंतोषी छतो ते परिग्रह उपार्जवाने अर्थे, अने उपार्जन करेलो परिग्रह राखवाने अर्थे सयंके० पोते, पाणेके० प्राणीउंनो, निवायएके० निपात एटले विनाश करे, अडुवाके० अथवा अन्नेहि घायएके० अनेरा पासे प्राणीउंनी घात करावे; वाके० अथवा हणंतं के० जे प्राणीउंने हणतो होय अर्थात् प्राणीउंनो विनाश करतो होय तेने अणुजाणाइके० अनुमोदवे करी. प्राणीउंनी घात करतो थको अथवा करावतो थको अप्पणोके० आत्माने वेरंवड्ढइके० वैरनी वृद्धी करेछे. तेथी जे दुःख परंपरारूप बंधन तेथकी छुटे नहीं ॥३॥ वली पण बंधन आश्रयी कहेछे. जेस्सिं कुले समुप्पन्नेके० रागोडादिक जे कुलमां उत्पन्न थयो, अथवा जेहिंवा संवसे के० जेनीसाथे वास वसे, एटले पांसुक्रीडादिक करे. एवा नरेके० मनुष्य जे माता, पिता, भाई, बेहेन, भार्या, अने मित्रादिक तेने विषे ममाइके० ममत्वनो करनार एटले मातापितादिकनी साथे स्नेह करतो एवो बालेके० अज्ञानी जीवते लुप्पइके० कर्मे संसारचक्रमांहे भमतो थको पीडायछे, ते मनुष्य केवोछे तोके अन्नेअन्नेहिके० अन्य अन्य एटले प्रथम माता पिता, तदनंतर भाईने विषे, तदनंतर पुत्रपौत्रादिक, एम अन्य अन्यने विषे मुछिएके० मूर्छित एटले मूर्छा पामतो थको स्नेहे करी पीडायछे. ॥ ४ ॥

दीपिका ॥ अथवा प्रकारांतरेण बंधनमेवाह । सयंतीति ॥ सपरिग्रहवान् स्वयमात्मना प्राणानतिपातयेत् जीवान् हिंस्यात् । अथवा अन्यैः परैरपि घातयति घ्नतश्चान्याननुजानीते तदेवं कृतकारितानुमतिभिः प्राणिघातं कुर्वन्नात्मनो वैरं वर्धयति ततश्च बंधनान्न मुच्यते इति भावः ॥ ३ ॥ पुनर्बंधनमेवाश्रित्याह । जेस्सिंमित्ति । यस्मिन् कुले जातो यैर्वा मित्रैर्भार्यादिभिर्वा सह संवसेन्नरः तेषु मित्रपितृमातृभार्यादिषु ममायमिति ममत्ववान् लुप्यते ममत्वजनितेन कर्मणा बाध्यते । बालो मूर्खः विवेकरहितत्वादन्येषु च मूर्छितो ममत्वबहुल इत्यर्थः ॥ ४ ॥

टीका ॥ तथाच परिग्रहेष्वप्राप्तनष्टेषु कांक्षाशोकौ प्राप्तेषु च रक्षणमुपभोगे वाऽतृप्तिरित्येवं परिग्रहे सति दुःखात्मकाद्बंधनान्न मुच्यत इति परिग्रहवतश्चावश्यंभाव्यारंभस्तस्मिंश्च प्राणातिपात इति दर्शयितुमाह । सयंनिवायएपाणे इत्यादि । यदि वा प्रकारांत

रेण बंधनमेवाह । सर्यतीत्यादि । स परिग्रहवानसंतुष्टो भूयस्तदर्जनपरः समार्जितोप द्रवकारिणि च द्वेषमुपगतस्ततः स्वयमात्मना त्रिभ्यो मनोवाक्कायेभ्य आयुर्बलशरीरेभ्यो वा पातयेत् च्यावयेत् प्राणान् प्राणिनः । अकारलोपा द्वा अतिपातयेत् प्राणानिति । प्रा णाश्चामी । पंचेंद्रियाणि त्रिविधं बलंच, उच्छ्वासनिश्वासमथान्यदायुः ॥ प्राणा दशैते भगव द्भिरुक्ता,स्तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा ॥ १ ॥ तथा स परिग्रहाग्रही न केवलं स्वतो व्या पादयति अपरैरपि घातयति घ्रतश्चान्यान् समनुजानीते तदेव कृतकारितानुमतिभिः प्राण्युपमर्दनेन जन्मांतरशतानुबंध्यात्मनो वैरं वर्धयति । ततश्च दुःखपरंपरारूपबंधनान्न मुच्यत इति । प्राणातिपातस्य चोपलक्षणार्थत्वात् मृषावादादयोपि बंधहेतवो द्रष्टव्या इति ॥ ३ ॥ पुनर्बंधनमेवाश्रित्याह । (जेस्सिमित्यादि) । यस्मिन् राष्ट्रकूटादौ कुले जातो यैर्वा सह पांसुक्रीडितैर्भार्यादिभिर्वा सह संवसेन्नरस्तेषु मातृपितृभ्रातृभगिनीभार्यावय स्यादिषु ममायमिति ममत्ववान् स्निह्यन् लुप्यते विलुप्यते ममत्वजनितेन कर्मणा नारकतिर्यङ्मनुष्यामरलक्षणे संसारे भ्रम्यमाणो बाध्यते पीड्यते। कोसौ बालोऽज्ञः स दसद्विवेकरहितत्वादन्येष्वन्येषु च मूर्छितो गृद्धोध्युपपन्नो ममत्वबहुल इत्यर्थः । पूर्वं तावन्मातापित्रोस्तदनुभार्यायां पुनः पुत्रादौ स्नेहवानिति ॥ ४ ॥

वित्तं सोयरिया चेव, सवमेयं नताणइ॥ संखाए जीवियं चेवं,
कम्मुणा उ तिउट्टइ ॥५॥ एए गंथे विउक्कम्म, एगे समणमाह
णा ॥ अयाणंता विउस्सित्ता सत्ता कामेहि माणवा ॥ ६ ॥

अर्थ—हवे जे प्रथम कह्युं हतुंके, कहेवुं जाणतो थको बंधन त्रोडे ते कहेछे. वित्तं के० धनधान्यादिक सचित्त तथा अचित्त वस्तु अने सोयरियाके० भाइ प्रमुख कौटुंबि क स्वजनादिक चेवके० वली सवमेयंके० ए सर्व जे कुटुंबादिक स्नेहवंतछे, ते शारीरी, मानसी वेदना भोगवता थका ए जीवने नताणइके० त्राण भणी न थाय. एवुं जाणी ने जीवियंचके० जे प्राणीउनुं जीवतव्य अल्पछे. एवंके० एवुं संखाएके० जाणीने, जी वितव्य प्राणीउने एटले परिग्रह प्राणिघात अने स्वजन स्नेहादिक बंधननां स्थानने ज्ञ परिज्ञाये जाणीने, प्रत्याख्यान परिज्ञाये छांमिने, कम्मुणाउ तिउट्टइके० कर्म थकी छूटे अ र्थात् कर्म थकी वेगलो थाय. ॥ ५ ॥ हवे स्वसमयनो अधिकार कही परसमयनो अधिकार कहेछे. एएगंथेके० ए अरिहंतना भाषित ग्रंथ जे करुणारसमय छे. ते ने छांमीने स्वेछायें रचित ग्रंथोने विषे विउक्कम्मके० आसक्त थका, एगेसमणाके० एक शाक्यादिकना श्रमण, बीजा बृहस्पतिमतानुसारी एवा माहणा के० ब्राह्मण ए अया णंताके० परमार्थना अजाण थका विउस्सित्ता के० विविध प्रकारे उत्प्रबलपणे पोताना

ग्रंथनेविषे सत्ता एटले बंधाणा, एतावतां आपणा मतना कदाग्रही एवा बतां माणवाके० पु रुष जे बे, ते पोतपोताना मतना अनुरागेकरी, कामेहि के० इच्छामदनादिक तेनेविषे सत्ता के० आसक्त थका प्रवर्त्तेबे एटले पोतानो मार्ग लोकोमांहे प्रसिद्धपणे सारो करी देखाडेबे.

॥ दीपिका–किं जानन् बंधनं त्रोटयतीत्यस्योत्तरमाह । (वित्तमिति) । वित्तं इव्यं तच्च सचित्तमचित्तं वा । सोदर्या भ्रातृनगिन्यादयः सर्वमेतद्वित्तादिकं संसारे पीड्यमानस्य जंतो र्न त्राणाय न रक्षणाय नवतीति । एतत् संख्याय ज्ञात्वा तथा जीवितं स्वल्पमिति सं ख्याय ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याख्याय कर्मणः सकाशात् त्रुटयति अ पगच्छत्यसौ । तुर्निश्चये त्रुटयेदेव । यदि वा कर्मणा क्रियया संयमानुष्ठानरूपया बंधनात् त्रुटयति कर्मणः पृथग्नवतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ स्वसमयं प्रतिपाद्य परसमयंप्रतिपादयितुका म आह । (एएइति) । एतान् पूर्वोक्तान् ग्रंथान् सूत्रार्थान् व्युत्क्रम्य परित्यज्य एके केचित् श्रमणब्राह्मणाः श्रमणाः शाक्यादयो ब्राह्मणाश्च (अयाणंता) परमार्थमजानानाः (विउस्सित्ता) विविधमुत्प्राबल्येन सिता बद्धाः स्वसमयेषु प्रतिबद्धाः संतः कामेषु च सक्ता वर्त्ततइति ॥ ६ ॥

॥टीका–सांप्रतं यडुक्तं प्राक् किंवा जानन् बंधनं त्रोटयतीत्यस्य निर्वचनमाह।(वित्तमित्या दि) । वित्तं इव्यं तच्च सचित्तमचित्तं वा । तथा सोदर्या भ्रातृनगिन्यादयः सर्वमपि चैत द्वित्तादिकं संसारांतर्गतस्यासुमतोऽतिकटुकाः शरीरमानसवेदनास्समनुनवतो न त्राणाय रक्षणाय नवंतीत्येतत्संख्याय ज्ञात्वा । तथा जीवितं च प्राणिनां स्वल्पमपि तत्संख्याय ज्ञप रिज्ञया । प्रत्याख्यानपरिज्ञया तु सचित्ताचित्तपरिग्रहप्राण्युपघातस्वजनस्नेहादीनि बं धनस्थानानि प्रत्याख्याय कर्मणः सकाशात्त्रुट्यति अपगच्छत्यसौ । तुरवधारणे । त्रुटयेदे वेति । यदि वा कर्मणा क्रियया संयमानुष्ठानरूपया बंधनात्त्रुटयति । कर्मणः पृथग्न वतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ अध्ययनार्थाधिकारानिहितत्वात्स्वसमयप्रतिपादनानंतरं परसमयप्र तिपादनानिधित्सयाऽह । (एएगंथेविउक्कम्मेत्यादि) । एतानंतरोक्तान् ग्रंथान् व्युत्क्रम्य प रित्यज्य स्वरुचिविरचितार्थेषु ग्रंथेषु सक्ताः सिताः बद्धा एके न सर्वे इति संबंधः। ग्रंथा तिक्रमश्चैतेषां तडुक्तार्थानन्युपगमात् । अनंतरग्रंथेषु चायमर्थोऽनिहितस्तद्यथा जीवा स्तित्वे सति ज्ञानावरणीयादि कर्मबंधनं तस्य हेतवो मिथ्यात्वाविरतिप्रमादादयः परिग्रहा रंनादयश्च । तत्त्रोटनं च सम्यक्दर्शनाद्युपायेन मोक्षसद्भावश्चेत्येवमादिकः । तदेवमेके श्रमणाः शाक्यादयो बार्हस्पत्यमतानुसारिणश्च ब्राह्मणा एतानर्हडुक्तान् ग्रंथानतिक्रम्य परमार्थमजानाना विविधमनेकप्रकारमुत्प्राबल्येन सिता बद्धाः स्वसमयेष्वनिनिविष्टाः । तथा च शाक्या एवं प्रतिपादयंति । यथा सुखडुःखेच्छाद्वेषज्ञानाधारनूतो नास्त्यात्मा

कश्चित् किंतु विज्ञानमेवैकं विवर्ततइति । क्षणिकाः सर्वसंस्काराइत्यादि । तथा सांख्या एवं व्यवस्थिताः । सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशकस्तस्मात्षोडशकादपि पंचभूतानि चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमित्यादि । वैशेषिकाः पुनराहुः । द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवायाः षट् पदार्थाइति । तथा नैयायिकाः प्रमाणप्रमेयादीनां पदार्थानामन्वयव्यतिरेकपरिज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमइति व्यवस्थिताः । तथा मीमांसकाश्चोदनालक्षणोधर्मो नच सर्वज्ञः कश्चिद्विद्यते मुक्त्यभावश्चेत्येवमाश्रिताः । चार्वाकास्त्वेवमभिहितवंतो यथा नास्तिकश्चित्परलोकयायी भूतपंचकाद्व्यतिरिक्तः पदार्थो नापि पुण्यपापे स्तइत्यादि । एवंचांगीकृत्यैते लोकायतिकाः । मानवाः पुरुषाः सक्ता गृद्धा अध्युपपन्नाः कामेष्विच्छामदनरूपेषु । तथाचोचुः । एतावानेव पुरुषो, यावानिंद्रियगोचरः ॥ भद्रेवृकपदं पश्य, यद्वदंत्यबहुश्रुताः ॥ १ ॥ पिब खाद च साधु शोभने, यदतीतं वरगात्रि तन्न ते ॥ नहि भीरु गतं निवर्तते, समुदयमात्रमिदं कलेवरं ॥ २ ॥ एवं ते तंत्रांतरीयाः स्वसमयार्थवासितांतःकरणाः संतो भगवदर्हदुक्तं ग्रंथार्थमज्ञातपरमार्थाः समतिक्रम्य स्वकीयेषु ग्रंथेषु सिताः संबद्धाः कामेषु च सक्ताइति ॥ ६ ॥

संति पंच महब्भुया, इहमेगेसि माहिया ॥ पुढवी आउ तेऊ वा,
वाउ आगासपंचमा ॥ ७ ॥ एए पंच महब्भूया, तेब्भो एगोत्ति
आहिया ॥ अहतेसिं विणासेणं, विणासो होइ देहिणो ॥ ८ ॥

अर्थ—हवे ग्रंथकार प्रथम चार्वाकनुं मत देखाडेछे. संतिपंचमहब्भूया के० ते चार्वाक एम कहेछे के जगत्मां सर्वलोकव्यापी पंचमहाभूत छे. इहके० आ लोकमांहे, एगेसिं के० कोइ एक भूतवादी तेना मतने विषे आहियाके० कह्याछे. ते कोण? तोके० पुढवी के० पृथ्वी कठिणरूप छे, आउके० अप्प ते द्रव्य लक्षणछे, तेऊके० तेज उष्णरूप, वाउके० वायु चलन लक्षण अने पंचमाके० पांचमुं आगासके० आकाश अवकाश लक्षण छे, ॥७॥ हवे एनुंज विशेष कहेछे. एएपंचमहब्भूयाके० ए पूर्वे कह्याते जे पंचमहाभूत तेब्भो के० ते थकीज एगोत्ति के० कोइ एक चिद्रूप ते भूत थकी अव्यतिरिक्त एवो आहिया के० आत्मा होय छे; परंतु जेम ए पांच भूत थकी पृथक् भूत एवो अन्य कोइ बीजो आत्मा छे, एवी रीते जे बीजा दर्शनी कल्पना करेछे तेम नथी. केमके ए परलोकनो जनार, सुखदुःखनो भोगवनार जीव एवो पदार्थ कोइ बीजो नथी, एम ते चार्वाक कहेछे तेमने कोइ परवादी एम पूछे के, अहो चार्वाको जो ! तमारे मते पंचमहाभूत थकी अन्य कोइ आत्मा एवो पदार्थ नथी, तो मरण पाम्यो एम कोण कहेवाय?

हवे एनो उत्तर चार्वाक दर्शनीओ कहेछे. अहएसिंके० अथ एटले हवे एसिं एटले ए पंच महाभूत जे छे तेना विणासेणं के० विनाश थकी, देहिणो के० जीवनो पण विणासो होइ के० विनाश होयछे. परंतु जे एवुं कहेछे के आत्मा चवीने अन्यत्र स्थाने जायछे. कर्मना वशथकी सुखी दुःखी थायछे, ते सर्व मुग्धरंजन जाणवुं ॥ ७ ॥

॥ दीपिका–सांप्रतं नास्तिकमतमाश्रित्याह । (संतीति) संति पंचमहाभूतानि इह अस्मिन् लोके एकेषां भूतवादिनामाख्यातानि तत्वार्थकृतानि । तैर्वा भूतवादिभिर्नास्तिकैराख्यातानि स्वयमंगीकृतानि । परेषां च प्रतिपादितानि तानि चामूनि । (पुढवीत्यादि)। पृथ्वी १ आपो जलं २ तेजो वन्हिः ३ वायुः ४ आकाशं पंचमं येषां तानि । ननु सांख्यादिभिरपि भूतानि मन्यंतएव । तत्कथं चार्वाकमतापेक्षयैव भूतोपन्यास इति चेदुच्यते । सांख्यादिभिर्हि प्रधानाहंकारादिकं तथा कालदिगात्मादिकं चान्यदपि वस्तुजातमंगीक्रियते । चार्वाकैस्तु भूतव्यतिरिक्तं नात्मादि किंचिन्मन्यतइति तन्मताश्रयेणैवायं सूत्रोपन्यास इति ॥७॥ चार्वाकमतांगीकारमेवाह । (एतइति) । एतानि पंचमहाभूतानि तेभ्यो भूतेभ्यः कायाकारपरिणतेभ्य एकः कश्चिच्चिद्रूपो भूताव्यतिरिक्त आत्मा भवति नतु कश्चिदपरः परलोकयायी जीवाख्यः पदार्थोस्तीत्येवमाख्यातवंतस्ते । ननु यदि भूतेभ्योन्यः कश्चिदात्मा नास्ति कथं तर्हि मृतइति व्यपदेशइत्याशंकायामाह । (अहतेसिंति) । अथ तेषां भूतानां विनाशेऽपगमे देहिनो देवदत्तादेर्विनाशो भवति ततश्च मृतइत्युच्यते न पुनर्जीवापगमइति । अत्रैतन्मतनिर्लोठनयुक्तयो वृत्तितोऽवसेयाः ॥७॥

॥ टीका–सांप्रतं विशेषेण सूत्रकार एव चार्वाकमतमाश्रित्याऽह । (संतिपंचमहब्भूयाइत्यादि)। संति विद्यंते महांति च तानि भूतानि च महाभूतानि । सर्वलोकव्यापित्वान्महत्वविशेषणं । अनेन च भूताभाववादिनिराकरणं द्रष्टव्यं । इहास्मिन् लोके एकेषां भूतवादिनामाख्यातानि प्रतिपादितानि तत्तीर्थकृता तैर्वा भूतवादिभिर्बार्हस्पत्यमतानुसारिभिराख्यातानि स्वयमंगीकृतान्यन्येषां च प्रतिपादितानि । तानि चामूनि । तद्यथा । पृथिवी कठिनरूपा । आपो द्रवलक्षणाः । तेज उष्णरूपं । वायुश्चलनलक्षणः । आकाशं सुषिरलक्षणमिति तच्च पंचमं येषां तानि । तथा । एतानि सांगोपांगानि प्रसिद्धत्वात् प्रत्यक्षप्रमाणावसेयत्वाच्च न कैश्चिदपह्नोतुं शक्यानि । ननु च सांख्यादिभिरपि भूतान्यभ्युपगतान्येव । तथाहि । सांख्यास्तावदेवमूचुः । तद्यथा । सत्वरजस्तमोरूपात्प्रधानान्महान् बुद्धिरित्यर्थः । महतोऽहंकारोऽहमितिप्रत्ययस्तस्मादप्यहंकारात्षोडशकोगण उत्पद्यते । सचायं । पंच स्पर्शादीनि बुद्धींद्रियाणि वाक्पाणिपादपायूपस्थरूपाणि पंच कर्मेंद्रियाणि । एकादशं मनः । पंचतन्मात्राणि । तद्यथा । गंधरसरूपस्पर्शशब्दत

न्मात्राख्यानि । तत्र गंधतन्मात्रात्पृथिवी गंधरसरूपस्पर्शवती । रसतन्मात्रादापो रस रूपस्पर्शवत्यः । रूपतन्मात्रात्तेजो रूपस्पर्शवत् । स्पर्शतन्मात्राद्वायुः स्पर्शवान् । शब्द तन्मात्रादाकाशं गंधरसरूपस्पर्शवर्जितमुत्पद्यतइति । तथा वैशेषिका अपि नूतान्यनि हितवंतः । तद्यथा । पृथिवीत्वयोगात्पृथिवी । साच परमाणुलक्षणा नित्या । द्व्यणुकादि प्रक्रमनिष्पन्नकार्यरूपतया त्वनित्या । चतुर्दशनिर्गुणैरूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परि माण, पृथक्त्व, संयोग, विनाग, परत्वा,परत्व, गुरुत्व, इवत्व, वेगाख्यैरुपेता । तथा प्त्वयोगादापस्ताश्च रूपरसस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविनागपरत्वापरत्वगुरुत्व स्वानाविकइवत्वस्नेहवेगवत्यस्तासु च रूपं शुक्लमेव रसो मधुरएव स्पर्शः शीतएवेति । तेजस्त्वानिसंबंधात्तेजः । तच्च रूपस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविनागपरत्वापरत्वनै मित्तिकइवत्ववेगाख्यैरेकादशनिर्गुणैर्गुणवत् । तत्र रूपं शुक्लं नास्वरं च । स्पर्श उष्णएवेति । वायुत्वयोगाद्वायुः । सचानुष्णशीतस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविनागपरत्वापरत्व वेगाख्यैर्नवनिर्गुणैर्गुणवान् । हृत्कंपशब्दानुष्णशीतस्पर्शलिंगं । आकाशमिति पारिनाषिकी संज्ञा एकत्वात्तस्य । तच्च संख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविनागशब्दाख्यैः षड्निर्गुणैर्गुण वत् । शब्दलिंगंचेत्येवमन्यैरपि वादिनिर्नूतसद्भावाश्रयणे किमिति लोकायतिकमतापेक्ष या नूतपंचकोपन्यासइत्युच्यते । सांख्यादिनिर्हि प्रधानात्साहंकारिकं तथा कालदिगात्मा दिकं चान्यदपि वस्तुजातमन्युपेयते । लोकायतिकैस्तु नूतपंचकव्यतिरिक्तं नात्मादिकं किं चिदन्युपगम्यते इत्यतस्तन्मताश्रयणेनैव सूत्रार्थो व्याख्यायतइति ॥ ७ ॥ यथा चैतत्त था दर्शयितुमाह । (एएपंचमहब्भूयाइत्यादि) । एतान्यनंतरोक्तानि पृथिव्यादीनि पंच महा नूतानि यानि तेन्यः कायाकारपरिणतेन्य एकः कश्चिच्चिद्रूपो नूताव्यतिरिक्त आत्मा नवति न नूतेन्यो व्यतिरिक्तोऽपरः कश्चित्परः परिकल्पितः परलोकानुयायी सुखदुःखनो क्ता जीवाख्यः पदार्थोस्तीत्येवमाख्यातवंतस्ते । तथाहि । एवं प्रमाणयंति । न पृथिव्यादि व्यतिरिक्त आत्माऽस्ति तद्ग्राहकप्रमाणानावात् ॥ प्रमाणं चात्र प्रत्यक्षमेव नानुमानादिकं । तत्रेंद्रियेण साक्षादर्थस्य संबंधानावाद्व्यनिचारसंनवः । सति च व्यनिचारसंनवे सदृशे च बाधासंनवे तल्लक्षणमेव दूषितं स्यादिति सर्वत्रानाश्वासः । तथाचोक्तं । हस्तस्पर्शादि वांधेन, विषमे पथि धावता ॥ अनुमानप्रधानेन, विनिपातो न दुर्लनः ॥ १ ॥ अनुमानं चात्रोपलक्षणमागमादीनामपि । साक्षादर्थसंबंधानावाद्धस्तस्पर्शेनेनैव प्रवृत्तिरिति । तस्मात्प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणं । तेन च नूतव्यतिरिक्तस्यात्मनो न ग्रहणं । यत्तु चैतन्यं ते षूपलन्यते तन्नूतेष्वेव कायाकारपरिणतेष्वनिव्यज्यते मद्यांगेषु समुदितेषु मदशक्तिवदि ति । तथा न नूतव्यतिरिक्तं चैतन्यं तत्कार्यत्वाद्घटादिवदिति । तदेवं नूतव्यतिरिक्तस्या त्मनोऽनावान्नूतानामेव चैतन्यानिव्यक्तिर्जलस्य बुद्बुदादिव्यक्तिवदिति । केषांचिल्लोकाय

तिकानामाकाशस्यापि नूतत्वेनाच्युपगमाद्भूतपंचकोपन्यासो न दोषायेति । ननुच यदि नूतव्यतिरिक्तोऽपरः कश्चिदात्माख्यः पदार्थो न विद्यते कथं तर्हि मृतइति व्यपदेश इत्याशंक्याह । अथै षां कायाकारपरिणतौ चैतन्याभिव्यक्तौ सत्यां तदूर्ध्वं तेषामन्यतमस्य विनाशेऽपगमे वायोस्तेजसश्चोनयोर्वा देहिनो देवदत्ताख्यस्य विनाशोऽपगमो नवति ततश्च मृतइति व्यपदेशः प्रवर्तते न पुनर्जीवापगमइति नूताव्यतिरिक्तचैतन्यवादिपूर्वपक्षइति । अत्र प्रतिसमाधानार्थं निर्युक्तिकृदाह । "पंचएहं संजोए,अस्सगुणाणंच चेयणाइगुणो । पंचिंदियगणाणं,णअस्समुणियं मुणइ अस्सो ॥३ ३॥(पंचएहंसंजोएइत्यादि)। पंचानां पृथिव्यादीनां नूतानां संयोगे कायाकारपरिणामे चैतन्यादिकः । आदिशब्दात् नाषाचंक्रमणादिकश्च गुणो न नवतीति प्रतिज्ञा । अन्यादयस्त्वत्र हेतुत्वेनोपात्ता. । दृष्टांतस्त्वन्यूह्यः । सुलनत्वात्तस्यनोपादानं । तत्रेदं चार्वाकः प्रष्टव्यः । यदेतद्भूतानां संयोगे चैतन्यमभिव्यज्यते तत्किं तेषां संयोगेपि स्वातंत्र्यएवाऽहोस्वित्परस्परापेक्षया पारतंत्र्ये इति । किंचाऽतः ॥ न तावत्स्वातंत्र्ये यत आह । (अस्सगुणाणंचेति) चैतन्यादन्ये गुणा येषां तान्यन्यगुणानि । तथा ह्याधारकाठिन्यगुणा पृथिवी इव्यगुणा आपः पक्तृगुणं तेजः । चलनगुणो वायुः अवगाहदानगुणमाकाशमिति । यदि वा प्रागनिहिता गंधादयः पृथिव्यादीनामेकैकपरिहान्याऽन्येगुणाश्चेतन्यादिति । तदेवं पृथिव्यादीन्यन्यगुणानि । च शब्दो द्वितीयविकल्पवक्तव्यतासूचनार्थः । चैतन्यगुणे साध्ये पृथिव्यादीनामन्यगुणानां सतां चैतन्यगुणस्य पृथिव्यादीनामेकैकस्याप्यनावान्नतत्समुदायाच्चैतन्याख्यो गुणः सिद्ध्यतीति । प्रयोगस्तत्र नूतसमुदायः स्वातंत्र्ये सति धर्मित्वेनोपादीयते न तस्य चैतन्याख्यो गुणोस्तीति । साध्यो धर्मः पृथिव्यादीनामन्यगुणत्वात् । योयोन्यगुणानांसमुदायस्तत्रतत्राऽपूर्वगुणोत्पत्तिर्न नवतीति । यथा सिकतासमुदाये स्निग्धगुणस्य तैलस्य नोत्पत्तिरिति घटपटसमुदाये वा न स्तंनाद्याविर्नावइति । दृश्यते च कार्ये चैतन्यं तदात्मगुणो नविष्यतीति न नूतानामिति । अस्मिन्नेवसाध्ये हेत्वंतरमाह । (पंचिंदियगणाणंति) । पंच च तानि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राख्यानींद्रियाणि तेषां स्थानान्यवकाशास्तेषां चैतन्यगुणानावान्न नूतसमुदाये चैतन्यं । इदमत्र हृदयं । लोकायतिकानां हि अपरस्य इष्टुरनच्युपगमादिंद्रियाण्येव इष्टृणि । एतेषां च यानि स्थानान्युपादानकारणानि तेषामचिद्रूपत्वान्न नूतसमुदाये चैतन्यमिति । इंद्रियाणां चामूनि स्थानानि । तद्यथा । श्रोत्रेंद्रियस्याकाशं सुषिरात्मकत्वात् । घ्राणेंद्रियस्य पृथिवी तदात्मकत्वात् । चक्षुरिंद्रियस्य तेजस्तद्रूपत्वात् । एवं रसनेंद्रियस्यापः । स्पर्शनेंद्रियस्य वायुरिति । प्रयोगश्चात्र नेंद्रियाण्युपलब्धिमंति तेषामचेतनगुणारब्धत्वात् । यद्यदचेतनगुणारब्धं तत्तदचेतनं । यथा घटपटादीनि । एवमपिच नूतसमुदाये चैतन्यानावएव साधितो नवति । पुनर्हेत्वंतरमाह । (ण असमुणियंमुण

इअस्सोत्ति)। इहेंडियाणि प्रत्येकं नूतात्मकानि तान्येवापरस्य डष्टुरन्नावाद्रष्टृणि तेषां च प्रत्येकं स्वविषयग्रहणादन्यविषये चाप्रऽवृत्तेर्नान्यदिंडियज्ञातमन्यदिंडियं जानातीत्यतो मया पंचापि विषया ज्ञाता इत्येवमात्मकः संकलनाप्रत्ययो न प्राप्नोत्यनुनूयते चायं तस्मादेकेनैव डष्ट्रा नवितव्यम्। तस्यैव च चैतन्यं न नूतसमुदायस्येति । प्रयोगः पुनरेवं नूतसमुदाये चैतन्यं तदारब्धेंडियाणां प्रत्येकविषयग्राहित्वे सति संकलनाप्रत्यया नावात्। यदि पुनरन्यगृहीतमप्यन्यो गृण्हीयाद्देवदत्तगृहीतं यज्ञदत्तेनापि गृह्येत न चैतद् दृष्टमिष्टं चेति। ननुच स्वातंत्र्यपक्षेऽयं दोषः। यदा पुनः परस्परसापेक्षाणां संयोगपारतंत्र्याज्युपगमेन नूतानामेव समुदितानां चैतन्याख्यो धर्मः संयोगवशादाविर्नवति । यथा किण्वोदकादिषु मद्यांगेषु सुमुदितेषु प्रत्येकमविद्यमानापि मदशक्तिरिति तदा कुतोऽस्य दोषस्यावकाशइति । अत्रोत्तरं । गाथायां चशब्दाक्षिप्तमनिधीयते । यत्तावडुक्तं । यथा नूतेन्यः परस्परसव्यपेक्षसंयोगनाग्न्यश्चैतन्यमुत्पद्यते । तत्र विकल्पयामः । किमसौ संयोगः संयोगिन्यो निन्नोऽनिन्नो वा । निन्नश्चेत्षष्ठनूतप्रसंगो न चान्यत्पंचनूतव्यतिरिक्तसंयोगाख्यनूतग्राहकं नवतां प्रमाणमस्ति। प्रत्यक्षस्यैवैकस्याज्युपगमात्तेन च तस्याग्रहणात् प्रमाणांतराज्युपगमे च तेनैव जीवस्यापि ग्रहणमस्तु । तथाऽनिन्नो नूतेन्यो नूतानामेव संयोगस्तत्राप्येतच्चिंतनीयं किंनूतानि प्रत्येकं चेतनावंत्यचेतनावंति वा । यदि चेतनावंति तदा एकेंडियसिद्धिस्तदा समुदायस्य पंचप्रकारचैतन्यापत्तिः । अथाचेतनानि तत्रोक्तो दोषो नहि। यद्यत्र प्रत्येकमविद्यमानं तत्समुदाये नवडुपलन्यते सिकतासु तैलवदित्यादिना। यदप्यत्र पूर्वोक्तं तथा मद्यांगेष्वविद्यमानाऽपि प्रत्येकं मदशक्तिः समुदाये प्राडुर्नवतीति । तदप्ययुक्तं । यतस्तत्र किण्वादिषु याच यावती शक्तिरुपलन्यते । तथाहि॥ किण्वे बुनुक्षापनयनसामर्थ्यं न्रमिजननसामर्थ्यं चोदकस्य तृडपनयनसामर्थ्यमित्यादिनेति नूतानां प्रत्येकं चैतन्याऽनज्युपगमे दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्यं । किंच नूते चैतन्याज्युपगमे मरणान्नावो मृतकायेपि पृथ्व्यादीनां नूतानां सन्नावात्। नैतदस्ति। तत्र मृतकाये वायोस्तेजसो वाऽन्नावान्मरणसन्नाव इत्यशिक्षितस्योल्लापः । तथाहि । मृतकाये शोफोपलब्धेर्न वायोरन्नावः कायस्य च पक्तिस्वन्नावस्य दर्शनान्नाग्नेरिति । अथसूक्ष्मःकश्चिद्वायुविशेषोग्निर्वा ततोपगतइति मतिरित्येवं च जीव एव नामांतरेणाज्युपगतो नवति । यत्किंचिदेतत् । तथा न नूतसमुदायमात्रेण चैतन्याविर्नावः । पृथिव्यादिष्वेकत्र व्यवस्थापिते चैतन्यानुपलब्धेः । अथकायाकारपरिणतौ सत्यां तदानिव्यक्तिरिष्यते।तदपि न। यतो लेप्यमयप्रतिमायां समस्तनूतसन्नावेऽपि जडत्वमेवोपलन्यते । तदेवमन्वयव्यतिरेकान्यामालोच्यमानो नायंचैतन्याख्यो गुणो नूतानां नवितुमर्हति । समुपलन्यते चायं शरीरेषु। तस्मात् पारिशेषात् जीवस्यैवायमिति स्वदर्शनपक्षपातं विहायांगीक्रियतामिति ।

यच्चोक्तं प्राक् न पृथिव्यादिव्यतिरिक्त आत्माऽस्ति तद्ग्राहकप्रमाणाभावात् । प्रमाणं चात्र प्रत्यक्षमेवैकमित्यादि तत्र प्रतिविधीयते । यत्तावदुक्तं प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणं नानुमानादिकमित्येतदनुपासितगुरोर्वचः । तथाहि । अर्थाविसंवादकं प्रमाणमित्युच्यते प्रत्यक्षस्य च प्रामाण्यमेव व्यवस्थाप्यते । कश्चित्प्रत्यक्षव्यक्तीर्धर्मित्वेनोपादाय प्रमाणयति । प्रमाणमेता अर्थाऽविसंवादकत्वादनुभूतप्रत्यक्षव्यक्तिवत् । नच ताभिरेव प्रत्यक्षव्यक्तिभिः स्वसंविदिताभिः परंव्यवहारयितुमयमीशस्तासां स्वसन्निविष्टत्वान्मूकत्वाच्च । प्रत्यक्षस्य नानुमानं प्रमाणमित्यनुमानेनैवानुमाननिरासं कुर्वंश्चार्वाकः कथं नोन्मत्तः स्यादेवं ह्यसौ तदप्रामाण्यं प्रतिपादयेत् । यथा नानुमानं प्रमाणं विसंवादकत्वादनुभूतानुमानव्यक्तिवदित्येतच्चानुमानमथपरप्रसिध्यैतदुच्यते । तदप्ययुक्तं । यतस्तत्परप्रसिद्धमनुमानं भवतः प्रमाणमप्रमाणं वा। प्रमाणं चेत्कथमनुमानमप्रमाणमित्युच्यते । अथाप्रमाणं कथमप्रमाणेन सता तेन परः प्रत्याज्यते । परेण तस्य प्रामाण्येनाभ्युपगतत्वादिति चेत्तदप्यसांप्रतं । यदिनाम परो मौढ्यादप्रमाणमेव प्रमाणमित्यवध्यस्यति । किं भवताऽतिनिपुणेनापि तेनैवाऽसौ प्रतिपाद्यते । यो ह्यन्यो गुडमेव विषमपि मन्यते किं तस्य मारयितुकामेनापि बुद्धिमता गुडएव दीयते । तदेवं प्रत्यक्षानुमानयोः प्रामाण्याप्रामाण्ये व्यवस्थापयतो भवतोऽनिच्छतोपि बलादायातमनुमानस्य प्रामाण्यं । तथा स्वर्गापवर्गदेवतादेः प्रतिषेधं कुर्वन् भवान् केन प्रमाणेन करोति न तावत्प्रत्यक्षेण प्रतिषेधं कर्तुं पार्यते । यतस्तत्प्रत्यक्षं प्रवर्तमानं वा तन्निषेधं विदध्यान्निवर्तमानं वा । न तावत्प्रवर्तमानं तस्याऽभावविषयत्वविरोधात् । नापि निवर्तमानं । यतस्तच्च नास्ति तेन च प्रतिपत्तिरित्यसंगतं । तथाहि । व्यापकविनिवृत्तौ व्याप्यस्यापि निवृत्तिरिष्यते ॥ न चार्वाकदर्शितप्रत्यक्षेण समस्तवस्तुव्याप्तिः संभाव्यते । तत्कथं प्रत्यक्षविनिवृत्तौ पदार्थव्यावृत्तिरिति । तदेवं स्वर्गादेः प्रतिषेधं कुर्वता चार्वाकेणाऽवश्यं प्रमाणांतरमभ्युपगतं । तथाऽन्याभिप्रायविज्ञानाभ्युपगमादत्र स्पष्टमेव प्रमाणांतरमभ्युपगतं । अन्यथा कथं परावबोधाय शास्त्रप्रणयनमकारि चार्वाकेणेत्यलमतिप्रसंगेन । तदेवं प्रत्यक्षादन्यमपि प्रमाणमस्ति तेनात्मा सेत्स्यति किंपुनस्तदिति चेदुच्यते । अस्त्यात्मा । असाधारणतगुणोपलब्धेश्चक्षुरिंद्रियवत् । चक्षुरिंद्रियं हि न साक्षादुपलभ्यते । स्पर्शनादींद्रियाऽसाधारणरूपविज्ञानोत्पादनशक्त्या त्वनुमीयते । तथात्मापि पृथिव्याद्यसाधारणगुणोपलब्धेरस्तीत्यनुमीयते । चैतन्यं च तस्यासाधारणगुणइत्येतत्पृथिव्यादिभूतसमुदाये चैतन्यस्य निराकृतत्वादवसेयं । तथास्त्यात्मा समस्तेंद्रियोपलब्धार्थसंकलनाप्रत्ययसद्भावात् । पंचगवाक्षान्यनन्योपलब्धार्थसंकलनाविधाय्येकदेवदत्तवत् । तथाऽत्माऽर्थद्रष्टा नेंद्रियाणि । तद्विगमे हि तदुपलब्धार्थस्मरणात् । गवाक्षोपरमेऽपि तद्द्वारोपलब्धार्थस्मर्तृदेवदत्तवत् । तथात्मा

प्त्यायप्यात्मास्तीत्यवसीयते । तथापि सत्यपि पृथिव्यादिभूतसमुदाये लेप्यकर्मादौ न सुखडुःखेछाद्वेषप्रयत्नादिक्रियाणां सद्भाव इत्यतः सामर्थ्यादवसीयते । अस्ति भूतातिरिक्तः कश्चित्सुखडुःखेछादीनां क्रियाणां समवायिकारणं पदार्थः सचात्मेति । तदेवं प्रत्यक्षानुमानादिपूर्विकाऽन्याप्यर्थापत्तिरभ्यूह्या । तस्यास्त्विदं लक्षणं । प्रमाणषट्कविज्ञातो, यत्रार्थो नान्यथा भवेत् ॥ अदृष्टं कल्पयेदन्यं, सार्थापत्तिरुदाहृता ॥ १ ॥ तथाऽगमादप्यस्तित्वमवसेयं । सचायमागमः । अत्थिमेआयाउववाइएइत्यादि । यदि वा किमत्राऽपरप्रमाणचिंतया सकलप्रमाणज्येष्ठेन प्रत्यक्षेणैवात्मास्तीत्यवसीयते । तद्गुणस्य ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वात् । ज्ञानगुणस्य च गुणिनोऽनन्यत्वात् । प्रत्यक्षएवात्मा रूपादिगुणाप्रत्यक्षत्वेन पटादिप्रत्यक्षवत् । तथा ह्यहं सुख्यहं डुःख्येवमाद्यहंप्रत्ययग्राह्यऽस्त्यात्माप्रत्यक्षः । अहंप्रत्ययस्य स्वसंविद्रूपत्वादिति । ममेदं शरीरं पुराणं कर्मेति च शरीराद्भेदेन निर्दिश्यमानत्वादित्यादीन्यन्यान्यपि प्रमाणानि जीवसिद्धावभ्यूह्यानीति ॥ तथा यडुक्तं । न भूतव्यतिरिक्तं चैतन्यं तत्कार्यत्वात् घटादिवदित्येतदप्यसमीचीनं । हेतोरसिद्धत्वात् । तथाहि न भूतानां कार्यं चैतन्यं तेषामतद्गुणत्वात् भूतकार्यचैतन्ये संकलनाप्रत्ययासंभवाच्चेत्यादिनोक्तप्रायमतोस्त्यात्मा भूतव्यतिरिक्तो ज्ञानाधारइत्युक्तं । ननुच किं ज्ञानाधारभूतेनात्मना ज्ञानाभिन्नेनाश्रितेन यावता ज्ञानादेव सर्वसंकलनाप्रत्ययादिकं सेत्स्यति किमात्मनांतर्गडुकल्पेनेति । तथाहि । ज्ञानस्यैव चिद्रूपत्वाद्भूतैरचेतनैः कायाकारपरिणतैः सह संबंधे सति सुखडुःखेछाद्वेषप्रयत्नक्रियाः प्राडुष्षंति तथा संकलनाप्रत्ययो भवान्तरगमनंचेति । तदेवं व्यवस्थिते किमात्मना कल्पितेनेत्यत्रोच्यते । नत्यात्मानमेकमाधारभूतमंतरेण संकलनात्र न्याय्या घटते । तथाहि । प्रत्येकमिंद्रियैः स्वविषयग्रहणे सति परविषये चाप्रवृत्तेरेकस्य च परिछेत्तुरभावात् । मया पंचापि विषयाः परिछिन्ना इत्यात्मकस्य संकलनाप्रत्ययस्याभावादिति । आलयविज्ञानमेकमस्तीति चेदेवं सत्यात्मनएव नामांतरं भवता कृतं स्यात् । नच ज्ञानाख्यो गुणो गुणिनमंतरेण भवतीत्यवश्यमात्मना गुणिना भाव्यमिति । सच न सर्वव्यापी तद्गुणस्य सर्वत्रानुपलभ्यमानत्वात् घटवत् । नापि श्यामाकतंडुलमात्रोंगुष्ठपर्वमात्रो वा । तावन्मात्रस्योपात्तशरीराव्यापित्वात् त्वक्पर्यंतशरीरव्यापित्वात् त्वचोपलभ्यमानगुणत्वात् । तस्मात्स्थितमिदमुपात्तशरीरत्वक्पर्यंतव्याप्यात्मेति । तस्य चानादिकर्मसंबद्धस्य कदाचिदपि सांसारिकस्यात्मनः स्वरूपेऽनवस्थानात् सत्यप्यमूर्तत्वे मूर्तेन कर्मणा संबंधो न विरुध्यते । कर्मसंबंधाच्च सूक्ष्मबादरैकेंद्रियद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियपर्याप्तापर्याप्तसाद्यवस्था बहुविधाः प्राडुर्भवंति । तस्य चैकांतेन क्षणिकत्वे ध्यानाध्ययनश्रमप्रत्यभिज्ञानाद्यभावः । एकांतनित्यत्वे च नारकतिर्यङ्मनुष्यामरगतिपरिणामाभावः स्यात्तस्मात्स्यादनित्यः स्यान्नित्यआत्मेत्यलमतिप्रसंगेन ॥ ८ ॥

जहा य पुढवीथूने, एगे नाणाहि दीसइ ॥ एवं नो कसिणे लोए विन्नू नाणाहि दीसइ ॥ ए ॥ एवमेगेत्ति जप्पंति, मंदा आरंनणिस्सिआ ॥ एगे किच्चा सयं पावं, तिव्वं डुक्खं नियछइ ॥ १० ॥

अर्थ—एम पंचनूतियागता एटले पंच नूतिक वादिनो मत कह्युं. हवे आत्माद्वैत वादिनो मत दृष्टांतेकरी कहिये ढैयें. जहाय के० जेम पुढवीथूनेएगे के० पृथ्वीरूप थून एक ढतां नाणाहिदीसइ के०नदी, समुइ, पर्वत, नगर अने ग्राम इत्यादि रूप नाना प्रकारे देखायढे. परंतु विचाले पृथ्वीनुं अंतर कांइ देखातुं नथी एटले पृथ्वी एकज ढे. एवंके० ए उक्त न्याये, नो ए वचन परने बोलाववाने अर्थेढे. एटले अहो ? दर्शनीउ तेम कसिणे लोएके० ए समस्त लोक चराचर स्वरूप एकज ढे एटले आत्मारूप ढे, परंतु विन्नू के० विद्वान् ते चराचररूप आत्मा. नाणाइ दीसइ के० नानाप्रकारे द्विपद चतुष्पद बहुप दादिरूप देखाय ढे. परंतु जे एम कहे के, शरीर शरीरने विषे आत्मा जुदो जुदो ढे ते मिथ्या ढे. यडुक्तं । एकएवहि नूतात्मा, नूते नूते व्यवस्थितः ॥ एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जलचंड्रवत् ॥ १ ॥ इत्यादि ॥ ए ॥ हवे जैन एने उत्तर आपेढे. एवं के० ए पूर्वोक्त न्याये एगेत्ति के० एक एटले कोइ एक परवादी, पोताना ढंदने बलात्कारे एम जप्पंति के०बोले ढे. ते केवाढे, तोके मंदा के०मंद ढे. एटले सम्यक् ज्ञान विकल ढे; केमके, जो सर्वत्र आत्मा एकज ढे, बीजो नथी तो जगत्मांहे एगेके० एकेक जीव करसणी प्रमुख आरंनणिस्सिआ के० जीवहिंसात्मक आरंननेविषे निस्सिया एटले आसक्त थका सयंके० पोते पावं के० पापने किच्चा के० करीने तिवंडुक्खं के० तीव्र डुःखने नियछइ के० पामेढे. पण अनेरा नथी पामता, तथा जे जीव जगत्मां कांइ असमंजस चौरादिक कर्म करे ढे, ते ढेदनन्नेदनादिक अनेक विटंबनाउ पामेढे. अने जे नलो समाचरेढे ते साता पामेढे. माटे जो सर्वजीवनो आत्मा एकज होय तो सर्व जीवने विटंबना अथवा साता केम न थवी जोइये ? माटे ए तमारुं वचन मिथ्या ढे ; केमके सर्व जीव पोतपोतानी करणीए सुख डुःखने पामेढे ॥ १० ॥ ए सव्वगतवादिगता एटले सर्वगत वादीनुं मत कह्युं.

॥ दीपिका— अथ एकात्माऽद्वैतवादमुद्दिश्याह । (जधायेति) यथा च शब्दोऽपिशब्दार्थे । सच निन्नः । पृथिव्याःस्तूपः पृथिव्येव वा स्तूपः पृथिवीसंघाताख्योऽवयवी । सच एकोपि यथा नानारूपः सरित्समुइपर्वतनगरग्रामाद्याधारतया विचित्रो दृश्यते । निम्नोन्नतमृडुकठिनरक्तपीतादिन्नेदेन वा दृश्यते । नच तावता पृथिवीत्वस्यैकस्य नेदो नवति । एवं नोऽइति परामंत्रणं । कृत्स्नोपि चेतनाचेतनरूपो लोक एको विद्वानेक एवात्मा विद्वान् ज्ञानपिंडः पृथिव्यादिनूताकारतया नाना दृश्यते ।नच तावता तस्यैकस्यात्मतत्त्वस्य नेदो

भवति ॥ए॥ अस्योत्तरमाह । (एवमिति) एवमात्माद्वैतवादमाश्रिता एके जल्पंति । मंदा जडाः। मंदत्वं चैतेषां युक्तिविकलजीवाऽद्वैतपक्षाश्रयणात् । तथाहि। यद्येकएवात्मा स्यात्तदा एके कृषीवलादय आरंभे जीवहिंसात्मके निःश्रिता आसक्ताः स्वयंपापं कृत्वा तीव्रं नारकादिदुःखं (निगछइत्ति) आर्षत्वाद्बहुवचनार्थे एकवचनं। निश्चयेन गछंति । तएवारंभसक्तानान्ये इत्येतन्न स्यात्। यद्येक एवात्मा स्यात्तदा एकेनाप्यशुभे कर्मणि कृते सर्वेषां दुःखं स्यान्नचैवं दृश्यते । तस्मादेकएवात्मेति न युक्तं ॥ १० ॥

॥ टीका ॥ सांप्रतमेकात्माऽद्वैतवादमुद्देशार्थाधिकारप्रदर्शितं पूर्वपक्षयितुमाह । (जहापुढवीत्यादि) दृष्टांतबलेनैवार्थस्वरूपावगतेः पूर्वंदृष्टांतोपन्यासः । यथेत्युपदर्शने । च शब्दोऽपिशब्दार्थे । संचभिन्नक्रमएकेइत्यस्यानंतरं इष्टव्यः। पृथिव्येव स्तूपा पृथिव्या वा स्तूपः पृथिवीसंघातावयवी । सचैकोपि यथा नानारूपः सरित्समुद्रपर्वतनगरसन्निवेशाद्याधारतया विचित्रो दृश्यते निम्नोन्नतमृदुकठिनरक्तपीतादिभेदेन वा दृश्यते । नच तस्य पृथिवीतत्त्वस्यैतावताभेदेन भेदो भवत्येवमुक्तरीत्या । भोइत्यादिपरामंत्रणं । कृत्स्नोपि लोकश्चेतनाचेतनरूप एकोविद्वान् वर्तते । इदमत्र हृदयं । एकएव ह्यात्मा विद्वान् ज्ञानपिंडः पृथिव्याद्याकारतया नाना दृश्यते नच तस्यात्मनएतावताऽत्मतत्त्व भेदो भवति । तथा चोक्तं । एकएव हि भूतात्मा, भूते भूते व्यवस्थितः॥ एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जलचंद्रवत् ॥ १ ॥ तथा पुरुषएवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं॥ उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति, यदेजति यन्नेजति यद्दूरे यदंतरस्य सर्वस्य यत्सर्वस्यास्य बाह्यत इत्यात्माद्वैतवादः ॥ए॥ अस्योत्तरदानायाह। (एवमेगे इत्यादि) एवमित्यनंतरोक्तात्माद्वैतवादोपदर्शनं। एके केचन पुरुषकारणवादिनो जल्पंति प्रतिपादयंति । किंभूतास्ते इत्याह। मंदा जडाः सम्यक्परिज्ञानविकलाः॥मंदत्वं चैषां युक्तिविकलात्माऽद्वैतपक्षसमाश्रयणात्। तथाहि।यद्येकएवात्मा स्यान्नात्मबहुत्वं ततो ये सत्वाःप्राणिनःकृषीवलादय एके केचन आरंभे प्राण्युपमर्दकारिणि व्यापारे निःश्रिता आसक्ताः संबद्धा अध्युपपन्नास्ते च संरंभसमारंभैः कृत्वोपादाय स्वयमात्मना पापमशुभप्रकृतिरूपमसातोदयफलं तीव्रं दुःखं तदनुभवस्थानं वा नरकादिकं नियछतीति। आर्षत्वाद्बहुवचनार्थे एकवचनमकारि। ततश्चायमर्थो निश्चयेन यछंत्यवश्यतया गछंति प्राप्नुवंति तएवारंभासक्ता नान्यइत्येतन्न स्यादपित्वेकेनापि अशुभे कर्मणि कृते सर्वेषां शुभानुष्ठायिनामपि तीव्रदुःखाभिसंबंधः स्यादेकत्वादात्मनइति । नचैतदेवं दृश्यते।तथाहि।यएव कश्चिदसमंजसकारी सएव लोके तदनुरूपाविडंबनाः समनुभवन्नुपलभ्यते नान्यइति । तथा सर्वगतत्वे आत्मनो बंधमोक्षाद्यभावस्तथा प्रतिपाद्यप्रतिपादकविवेकाभावाच्छास्त्रप्रणयनाभावश्च स्यादिति । एतदर्थसंवादित्वाद्गाथात्रयमेव निर्युक्तिकृताथात्र व्याख्यायते । तद्यथा । पंचानां पृथिव्यादीनां भूतानामेकत्र

कायाकारपरिणतानां चैतन्यमुपलभ्यते । यदि पुनरेकएवात्मा व्यापी स्यात्तदा घटादिष्वेव चैतन्योपलब्धिः स्यान्नचैवं । तस्मान्नैकआत्मा भूतानां चान्योन्यगुणत्वं न स्यादेकस्मा दात्मनोभिन्नत्वात् । तथा पंचेंद्रियस्थानानां पंचेंद्रियाश्रितानां ज्ञानानां प्रवृत्तौ सत्याम न्येन ज्ञात्वा विदितमन्यो न जानातीत्येतदपि न स्याद्यद्येकएवात्मा स्यादिति ॥ १० ॥

पत्तेअं कसिणे आया, जे बाला जे अ पंमिआ ॥ संति पिच्चा
न ते संति, नत्थि सत्तोववाइया ॥ ११ ॥ नत्थि पुस्सेच पावेवा,
नत्थि लोए इतो परे ॥ सरीरस्स विणासेणं, विणासो होइ देहिणो ॥ १२

अर्थ–हवे तज्जीवतच्छरीरवादिनो मत कहेछे.–ते तज्जीवतच्छरीरवादी एम कहेछे के, जेम पंचभूत मली कायाने आकारें परिणामी चेतना उपजावेछे. तो ते कारणे पत्तेअंकसिणेआया के० शरीर शरीर प्रत्ये आत्मा जुदो जुदो छे. जगत्मां जे बालाके० बाल अज्ञानी तथा जेअपंमिआके० जे पंमित एटले विवेकी छे, ते सर्व जुदा जुदा छे. परंतु एक आत्मा सर्वव्यापी न जाणवो. एटले जैनमत अने तेमनो मत एकज थयो. हवे गाथानां उत्तरार्द्धवडे तेमनो भेद देखाडेछे. ते परवादी एम कहेछे के, आत्मा घणा छे, परंतु ज्यांसुधी शरीर छे त्यांसुधी संति के० छे. पण जेवारे शरीर नहीं, तेवारे आत्मापण नहीं. एटले गत्यंतर गामी आत्माउ नथी. ए प्रकारे करी भेद देखाड्यो. वली तेहिज कहेछे. पिच्चानते संतिके० ते आत्माउ परलोकने विषे न जाय, एतावता शरीरथकी भिन्न आपणां कर्मनो भोगवनार एवो आत्मा नथी. तथापि नत्थिसत्तोववाइयाके० सत्व जे प्राणीउ ते उपपातिक नथी. एटले भवांतरमां जई उपजे नहीं अर्थात् गतागति पण नथी. अहीं शिष्य पूछेछे के, पूर्वे जे भूतवादि कह्या अने ए तज्जीव तच्छरीरवादी ए बेहुने मांहोमांहे शुं विशेषछे? तेवारें गुरु कहेछे के, भूतवादीने मतें जे पंचमहाभूत तेहिज कायाने आकारे परिणमीने धावनवलनादिक क्रिया करे. अने एमने मतें पंचभूत कायाने आकारे परिणमी चैतन्य स्वरूप आत्मा उपजावे. परंतु भूतथकी आत्मा जुदो नथी. एटलुं विशेष छे. ॥ ११ ॥ हवे तेनी वक्तव्यता कहेछे, नत्थिपुस्सेचपावेवा के० तज्जीवतच्छरीरवादी एम कहेछे के, पुण्य नथी, पाप पण नथी, अने नत्थिलोएइतोपरे के० अतः उपरांत लोक पण नथी. जेटलुं दृष्टिगोचर आवेछे तेटलोज लोक छे. वली ग्रंथकार एनुं कारण कहेछे के; सरीरस्सविणासेणंके० शरीरने विनाशेकरी विणासीहोइ देहिणो के० आत्मानो पण विनाश थाय. ए कारण माटे आत्माने अभावे पुण्य पाप तथा लोकनी संभावना क्यां थकी थाय? ॥ १२ ॥ "तज्जीवतच्छरीरवादिगता" एटले तज्जीवतच्छरीरवादिनुं ए प्रमाणे मत कह्युं.

॥दीपिका—सांप्रतं तज्जीवतच्छरीरवादिमतं पूर्वपक्षयन्नाह। (पत्तेअमिति)। प्रत्येकं प्रति शरीरमात्मानः कृत्स्नाः सर्वेपि ये बाला अज्ञा ये च पंडितास्ते सर्वेपि पृथग्व्यवस्थिताः नहि एकएवात्मा सर्वव्यापी स्वीकार्यो बालपंडितविनागानावप्रसंगात् । नन्वेवमात्मब हुत्वं जैनैरपि स्वीक्रियतएव तत्किमिति परमतमाश्रित्य सूत्रमिदमुच्यतइत्याशंकायामा ह। (संतित्ति)। संतिविद्यंते जीवाः शरीरं यावत्। शरीरानावे तु न संति । एतदे वाह। (पिच्चानतेसंति) प्रेत्य परलोके ते जीवा न संति। तेषां मते शरीराद्भिन्नः पर लोकयायी न कश्चिदात्माख्यः पदार्थोस्तीति जैनेन्यो नेदः किमित्येवं ते मन्यंत इत्या ह। (नत्थिसत्तोववाइया) उपपातिका नवाद्भवांतरगामिनः सत्त्वाः प्राणिनो नत्थि न संति। ननु नूतवादिनोस्य च तज्जीवतच्छरीरवादिनः को नेद इत्यत्रोच्यते। नूतवादिनो नूतान्येव कायाकारपरिणतानि धावनवल्गनादिक्रियां कुर्वंति। अस्य तु कायाकारपरि णतेन्योनूतेन्यश्चैतनाख्य आत्मोपपद्यते अनिव्यज्यते वा तेन्यश्चानिन्न इत्यनयो र्विशेषः ॥ ११ ॥ तन्मतमेवाह। (नत्थीति) । नास्ति पुण्यं पापं च नास्त्यतोऽस्मा ल्लोकात्परोऽन्यो लोकः परलोको यत्र पुण्यपापानुनवइति। अत्र हेतुमाह। शरीरस्य वि नाशेन देहिनो आत्मनोपि विनाशो ऽनावो नवति। तथाच दर्श्यते तन्मतलेशः। य था स्वनावादेव जगद्वैचित्र्यं । यडुक्तं । कंटकस्य च तीक्ष्णत्वं, मयूरस्य विचित्रता ॥ वर्णाश्च ताम्रचूडानां, स्वनावेन नवंति हीति ॥ १२ ॥

॥ टीका—सांप्रतं तज्जीवतच्छरीरवादिमतं पूर्वपक्षयितुमाह । (पत्तेअमित्यादि)। तज्जीव तच्छरीरवादिनामयमन्युपगमः। यथा पंचन्यो नूतेन्यः कायाकारपरिणतेन्यश्चैतन्यमुत्पद्यते अनिव्यज्यते चैकैकं शरीरंप्रति प्रत्येकमात्मनः कृत्स्नाः सर्वेप्यात्मान एवमवस्थिताः ॥ ये बालाअज्ञा ये च पंडिताः सदसद्विवेकज्ञास्ते सर्वे पृथग्व्यवस्थिताः । नह्येकएवात्मा सर्वव्यापित्वेनान्युपगंतव्यो बालपंडिताद्यविनागप्रसंगात्।ननु प्रत्येकशरीराश्रयत्वेनात्म बहुत्वमर्हतानामपीष्टमेवेत्याशंक्याह। संति विद्यंते यावच्छरीरं विद्यंते तदनावे तु न विद्यंते। तथाहि । कायाकारपरिणतेषु नूतेषु चैतन्याविर्नावोनवति नूतसमुदायविघट्टने च चैत न्यापगमो न पुनरन्यत्र गच्चैतन्यमुपलक्ष्यते।तदेव दर्शयति। (पिच्चानते संतीति) प्रे त्य परलोके न ते आत्मानः संति विद्यंते। परलोकानुयायी त्वात्मा शरीराद्भिन्नः स्वकर्मफ लनोक्ता न कश्चिदात्माख्यः पदार्थोस्तीति नावः। किमित्येवमतआह। (नत्थिसत्तोववाइया)। अस्तिशब्दस्तिङंतप्रतिरूपको निपातो बहुवचने द्रष्टव्यस्तदयमर्थः। न संति न विद्यंते॥ तद नावेतु न विद्यंते सत्वाः प्राणिन उपपातेन निवृत्ता उपपातिका नवाद्भवांतरगामिनो न नवंतीति तात्पर्यार्थः। तथाहि। तदागमाः विज्ञानघनएवैतेन्यो नूतेन्यः समुड्डाय तान्ये

वानुविनश्यतीति नप्रेत्य संज्ञा अस्तीति । ननु प्रागुपन्यस्तभूतवादिनोऽस्य च तज्जीवतच्छरीरवादिनः को विशेष इत्यत्रोच्यते । भूतवादिनो भूतान्येव कायाकारपरिणतानि धावनवल्गनादिकां क्रियां कुर्वंत्यस्य तु कायाकारपरिणतेभ्यो भूतेभ्यश्चैतन्याख्य आत्मोत्पद्यते ऽभिव्यज्यते वा तेभ्यश्चाभिन्नइत्ययं विशेषः ॥ ११॥ एवंच धर्मिणोऽभावाद्धर्मस्याप्यभावइति दर्शयितुमाह । (नत्थिपुस्सेच पावेवा इत्यादि) । पुण्यमभ्युदयप्राप्तिलक्षणं तद्विपरीतं पापमेतद्धयमपि न विद्यते । आत्मनो धर्मिणोऽभावात् । तदभावाच्च नास्त्यतोऽस्माल्लोकात्परोऽन्यो लोको यत्र पुण्यपापानुभवइति । अत्रार्थेसूत्रकारः कारणमाह । शरीरस्य कायस्य विनाशेन भूतविघटनेन विनाशेन देहिनआत्मनोप्यभावो भवति यतो न पुनःशरीरे विनष्टे तस्मादात्मा परलोकं गत्वा पुण्यं पापं वाऽनुभवतीत्यतोधर्मिणआत्मनोभावात्तद्धर्मयोः पुण्यपापयोरप्यभावइति । अस्मिंश्चार्थे बहवो दृष्टांताः संति । तद्यथा । यथा जलबुद्बुदो जलातिरेकेण नापरः कश्चिद्विद्यते तथा भूतव्यतिरेकेण नापरः कश्चिदात्मेति । तथाच यथा कदलीस्तंभस्य बहिस्त्वगपनयने क्रियमाणे त्वङ्मात्रमिव सर्वं नांतः कश्चित्सारोस्त्येवं भूतसमुदाये विघटति सति तावन्मात्रं विहाय नांतःसारभूतः कश्चिदात्माख्यः पदार्थ उपलभ्यते । यथावाऽलातं भ्राम्यमाणमतद्रूपमपि चक्रबुद्धिमुत्पादयत्येवं भूतसमुदायोपि विशिष्टक्रियोपेतो जीवभ्रांतिमुत्पादयतीति । यथा च स्वप्ने बहिर्मुखाकारतया विज्ञानमनुभूयते आंतरेणैव बाह्यमर्थमेवमात्मानमंतरेण तद्विज्ञानं भूतसमुदाये प्रादुर्भवतीति । तथा । यथाऽदर्शे स्वच्छत्वात्प्रतिबिंबितो बहिःस्थितोप्यर्थोंतर्गतो लक्ष्यते नचासौ तथा । यथाच ग्रीष्मे भौमेनोष्मणा परिस्पंदमाना मरीचयो जलाकारं विज्ञानमुत्पादयंत्येवमन्येपि गंधर्वनगरादयः स्वस्वरूपेणाऽतथाभूता अपि तथा प्रतिभासंते तथात्मापि भूतसमुदायाकारपरिणतौ सत्यां पृथगसन्नेव तथा भ्रांतिं समुत्पादयतीत्यमीषां च दृष्टांतानां प्रतिपादकानि केचित्सूत्राणि व्याचक्षते । अस्माभिस्तु सूत्राऽदर्शेषु चिरंतनटीकायां चादृष्टत्वान्नालिंगितानीति । ननु च यदि भूतव्यतिरिक्तः कश्चिदात्मा न विद्यते तत्कृते च पुण्यापुण्ये न तत्कथमेतद्वैचित्र्यं घटते । तद्यथा कश्चिदीश्वरोऽपरो दरिद्रोन्यः सुभगोपरोदुर्भगः सुखी दुःखी सुरूपो मंदरूपो व्याधितो नीरोगीत्येवं प्रकारा विचित्रता किन्निबंधनेत्यत्रोच्यते । स्वभावात् । तथाहि । कुत्रचिच्छिलाशकले प्रतिमारूपं विद्यते तच्च कुंकुमागरुचंदनादिविलेपनानुभोगमनुभवति धूपाद्यामोदं च । अन्यस्मिंस्तु पाषाणखंडे पादक्षालनादि क्रियते नच तयोः पाषाणखंडयोः शुभाशुभे स्तः । यदुदयात्स ताहगवस्था विशेष इत्येवं स्वभावाज्जगद्वैचित्र्यं । तथाचोक्तं । कंटकस्य च तीक्ष्णत्वं मयूरस्य विचित्रता ॥ वर्णाश्च ताम्रचूडानां,स्वभावेन भवंति हीति॥ १ ॥तद्यावत्तच्छरीरवादिमतं गतं ॥१२॥

कुवं च कारयं चेव, सवं कुवं न विज्जई ॥ एवं अकारउ अप्पा, एवं तेउ पगप्निआ ॥ १३ ॥ जे ते उवाइणो एवं, लोए तेसिं कउसिया ॥ तमाउ ते तमं जंति, मंदा आरंन्ननिस्सिया ॥१४॥ आत्मषष्ठवादीगतः ॥

अर्थ–हवे अक्रियावादिनो मत कहेछे. ते अकर्मवादी एम कहेछे के; आत्मा अमूर्त्तछे, नित्यछे, तथा सर्वव्यापी छे. ते कारणे कुवंचके० क्रियानो कर्त्ता नथी. तथा कारयंचेवके० अनेरा पासे करावनार पण नथी; एटले आत्मा पोते क्रियाने विषे न प्रवर्त्ते, तथा अनेराने पण प्रवर्त्तावे नही. पूर्वे चकार आव्योछे ते अतीत अनागतना कर्त्ताने निषेधवाने अर्थे छे. यद्यपि स्थितिक्रिया अने मुद्राप्रतिबिंबोदयन्याये नोजनक्रिया पण करे. तथापि समस्त क्रिया कारकपणुं नथी. एहिज नाव देखाडेछे. सवंकुवंन विज्जई के० सर्व क्रियानें एटले देशथकी देशांतर गमनरूप क्रियाने आत्मा करतो नथी. एवंअकारउ अप्पाके० ए रीते आत्मा अकारक छे. एवंतेउपगप्निआके० एप्रकारे ते सांख्यवादी धृष्टपणुं करता थका, प्रकृति करे, पुरुष नोगवे, इत्यादिक अयोग्य वचन बोले एटले अक्रियावादिनुं मत कह्युं. ॥१३॥ हवे जैन, एना मतनुं निराकरण करेछे. जेते उवाइणो एवंके० जे, आत्मा शरीरथकी जुदो नथी. तथा आत्मा अकर्त्ता छे एम कहेछे. तेसिंके० तेने लोएकउसियाके० चतुर्गतिक संसाररूप लोक क्यां थकी होय? निःकेवल ते लोकमांहे वाचालपणुं देखाडेछे. एवा छतां तमाउतें तमंजंतिके० ते अज्ञानरूप तम एटले अंधकार तेमांहेथकी निकलीने अनेरा तम एटले अंधकारमांहे जंति एटले जायछे, एटले ज्ञानवर्णादिक कर्म उपार्जन करेछे. अथवा तमनेविषे द्विअर्थे नरक पृथ्वी एवो अर्थ थायछे. माटे त्यांपण जायछे. ते नरक पृथ्वीयें केम जाय, तेनुं कारण कहेछे. ते लोक मंदाके० मंद एटले मूर्ख छे, वली आरंन्ननिस्सियाके० आरंन्ननिश्रित एटले आरंन्न जे प्राणघात तेनां व्यापारे निश्रितछे, एकांते तेमां आसक्तछे, जे कारण माटे तेमना मते आत्मानो अनावछे, ते कारणे पुण्य पाप पण नथी. एवुं जाणीने ते नास्तिकवादी आरंन्न करतां थका शंका पामता नथी. तथा जे एवुं कहेछे के आत्मा क्रिया करेनहीं, तेपण एमनी पेरेज आरंन्नी जाणवा ॥ १४ ॥ अकिरियावाइगता एटले सांख्यनुं मत ए प्रमाणे कह्युं.

॥दीपिका–अथाऽक्रियावादिमतमाह।(कुर्वन्निति) कुर्वन् कारयंश्चाऽऽत्मा न नवति। आत्मनो व्यापकत्वादमूर्तत्वाच्च कर्तृत्वानुपपत्तिः।ततएव कारयितृत्वमप्यात्मनो न युक्तं।एकश्च शब्दोऽतीतानागतकर्तृत्वनिषेधको द्वितीयः समुच्चयार्थः ॥ कर्तृत्वकारयितृत्वनिषेधादन्यापि क्रिया तस्य नास्तीत्याह । (सवंति)। सर्वां परिस्पंदादिकां देशादेशांतरप्राप्तिरूपां क्रियां

कुर्वन्नात्मा न विद्यते। सर्वव्यापित्वेनामूर्तत्वेन चाकाशस्येवात्मनो निष्क्रियत्वं सांख्यमते। (एवंतेउत्ति) एवमुक्तप्रकारेण ते सांख्याः प्रगल्भिताः प्रागल्भ्यवंतो धाष्टर्यवंतो विद्यंते॥१३॥ सांप्रतं तज्जीवतच्छरीराकारकवादिनोमतं निराकुर्वन्नाह। (जेतेइति)। ये तावच्छरीरा ऽव्यतिरिक्तात्मवादिन एवं पूर्वोक्तयुक्त्या नूताऽव्यतिरिक्तमात्मानमन्युपगतवंतस्ते निराक्रियंते। तेषां लोकश्चतुर्गतिनवरूपः सुनग, डुर्नग, सुरूप, कुरूपेश्वर, दारिद्र्या,दिगत्या जगद्वैचित्र्यरूपः कुतः स्यात्। आत्माऽनंगीकारे पुण्यपापानावे कथं विश्ववैचित्र्यमित्यर्थः। तेच नास्तिकास्तमसोऽज्ञानरूपात् तमो यांति। ज्ञानावरणावृताः पुनर्ज्ञानावरणरूपं तमः प्रविशंति। अथवा सद्विवेकप्रध्वंसित्वात्तमोडुःखं तस्मात्तमो महाडुःखं यांति। यतस्ते मंदा जडाः परलोकनिरपेक्षत्वाच्चाऽरंजनिश्रिताः। अयमेवश्लोकोऽकारकवादिम तमाश्रित्य किंचिद्विव्रियते। येवादिनोऽकारकाः सांख्याः संति तेषां लोको जरामरण शोकहर्षादिरूपो नारकतिर्यगादिरूपो निष्क्रिये सत्यात्मनि कुतः कस्माद्धेतोः स्या न्न स्यादित्यर्थः। ततश्चदृष्टेष्टबाधारूपात्तमसोऽज्ञानात्ते तमो वेदनास्थानं यांति। यतो मंदाश्चारंजनिश्रिताश्चेति सांख्यमतं निरस्तं॥ १४॥

॥टीका—इदानीमकर्मकवादिमताभिधित्सयाऽह। (कुवंचेत्यादि) कुर्वन्निति स्वतंत्रः कर्ताभिधीयते॥ आत्मनश्चामूर्तत्वात्सर्वव्यापित्वाच्च कर्तृत्वाऽनुपपत्तिः॥ अतएवहेतोः कारयितृत्वमप्यात्मनोनुपपन्नमिति। पूर्वश्चशब्दोऽतीतानागतकर्तृत्वनिषेधको द्वितीयः समुच्चयार्थः। ततश्चात्मा न स्वयं क्रियायां प्रवर्तते नाप्यन्यं प्रवर्तयति। यद्यपि च स्थितिक्रियां मुद्राप्रतिबिंबोदयन्यायेन च नुजिक्रियां करोति तथापि समस्तक्रियाकर्तृत्वं तस्य नास्तीत्येतद्दर्शयति। (सव्वंकुव्वंणविज्जइत्ति) सर्वां परिस्पंदादिकां देशाद्देशांतरप्राप्तिलक्षणां क्रियां कुर्वन्नात्मा न विद्यते। सर्वव्यापित्वेनामूर्तत्वेन चाकाशस्येवात्मनो निष्क्रियत्वमिति। तथा चोक्तं। अकर्ता निर्गुणो नोक्ता, आत्मा सांख्यनिदर्शन इति। एवमनेन प्रकारेणात्माऽकारक इति ते सांख्याः। तुशब्दः पूर्वेन्यो व्यतिरेकमाह। ते पुनः सांख्या एवं प्रगल्भिताः प्रगल्भवंतो धाष्टर्यवंतः संतो नूयोनूयस्तत्र तत्र प्रतिपादयंति। यथा प्रकृतिः करोति पुरुष उपभुंक्ते यथा बुध्यवसितमर्थं पुरुषश्चेतयते इत्याद्यकारकवादिमतमिति॥ १३॥ सांप्रतं तज्जीवतच्छरीराकारकवादिनो मतं निराचिकीर्षुराह। (जेतेउवाइणोइत्यादि) तत्र ये तावच्छरीराव्यतिरिक्तात्मवादिन एवमिति पूर्वोक्तया नीत्या नूतव्यतिरिक्तमात्मानमन्युपगतवंतस्ते निराक्रियंते। तत्र यत्तैस्तावदुक्तं। यथा न शरीराद्भिन्नोस्त्यात्मेति तदसंगतं। यतस्तत्प्रसाधकं प्रमाणमस्ति। तच्चेदं। विद्यमानकर्तृकमिदं शरीरमादिमत्प्रतिनियताकारकत्वात्। इह यद्यदादिमत्प्रतिनियताकारं तत्तद्विद्यमानकर्तृकं दृष्टं। यथा घटः। य

ङाऽविद्यमानकर्तृकं तदादिमत्प्रतिनियताकारमपि न भवति यथाकाशं । आदिमत्प्रतिनियताकारस्य च सकर्तृत्वेन व्याप्तेः। व्यापकनिवृत्तौ व्याप्यस्य विनिवृत्तिरिति सर्वत्र योजनीयं। तथाविद्यमानाधिष्ठातृकानींद्रियाणि । करणत्वात् । यद्यदिह करणं तत्तद्विद्यमानाधिष्ठातृकं दृष्टं । यथा दंडादिकमिति । अधिष्ठातारमंतरेण करणत्वाऽनुपपत्तिः । यथाकाशस्य। हृषीकाणां चाधिष्ठाताऽत्मा सच तेभ्योऽन्य इति । तथा विद्यमानाधिष्ठातृकमिदमिंद्रियविषयकदंबकं । आदानादेयसद्भावात् । इह यत्र यत्राऽदानादेयसद्भावस्तत्र तत्र विद्यमान आदाता ग्राहको दृष्टः । यथा संदंशकायःपिंडयोस्तद्भिन्नोऽयस्कार इति । यश्चात्रेंद्रियैः करणैर्विषयाणामादाता ग्राहकः स तद्भिन्नआत्मेति । तथा विद्यमानभोक्तृकमिदं शरीरं भोग्यत्वादोदनादिवत् । अत्रच कुलालादीनां मूर्तत्वाऽनित्यत्वसंहतत्वदर्शनादात्मापि तथैव स्यादिति धर्मविशेषविपरीतसाधनत्वेन विरुद्धा शंका न विधेया । संसारिण आत्मनः कर्मणा सहान्योन्यानुबंधतः कथंचिन्मूर्तत्वाद्यभ्युपगमादिति । तथा यडुक्तं। नास्ति सत्त्वाऔपपातिका इति तदप्ययुक्तं । यतस्तदहर्जातबालकस्य यःस्तनाभिलाषः सोन्याभिलाषपूर्वको ऽभिलाषत्वात् कुमाराभिलाषवत् । तथा बालविज्ञानमन्यविज्ञानपूर्वकं विज्ञानत्वात् कुमारविज्ञानवत् । तथाहि । यदहर्जातबालकोपि यावत्सएवायं स्तन इत्येवं नावधारयति तावन्नोपरत रुदितो मुखमर्पयति स्तने इत्यतोऽस्ति बालके विज्ञानलेशः सचाऽन्यविज्ञानपूर्वकः। तथान्यद्विज्ञानं भवांतरविज्ञानं तस्मादस्ति सत्त्व उपपातिक इति। तथा। यदभिहितं विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुङाय तान्येवानुविनश्यतीति । तत्राप्ययमर्थो विज्ञानघनो विज्ञानपिंड आत्मा भूतेभ्य उङायेति प्राक्तनकर्मवशात्तथाविधकायाकारपरिणते भूतसमुदाये तद्द्वारेण स्वकर्मफलमनुभूय पुनस्तद्विनाशे आत्मापि तदनु तेनाकारेण विनश्यापरपर्यायांतरेणोत्पद्यते नपुनस्तैरेव सह विनश्यतीति । तथा यडुक्तं। धर्मिणो ऽभावात्तद्धर्मयोः पुण्यपापयोरभावइति तदप्यसमीचीनं । यतो धर्मी तावदनंतरोक्तिकदंबकेन साधितस्तत्सिद्धौ च तद्धर्मयोः पुण्यपापयोरपि सिद्धिरवसेया जगद्वैचित्र्यदर्शनाच्च।यत्तु स्वभावमाश्रित्योपलशकलं दृष्टांतत्वेनोपन्यस्तं तदपि तद्भोक्तृकर्मवशादेव तथा तथासंवृत्तइति डुर्निवारः पुण्यापुण्यसद्भावइति । येपि बहवः कदलीस्तंभादयो दृष्टांता आत्मनो ऽभावसाधनायोपन्यस्तास्तेप्यभिहितनीत्याऽत्मनोभूतव्यतिरिक्तस्य परलोकयायिनः सारभूतस्य साधितत्वात्केवलं भवतो वाचालतां प्रख्यापयंति इत्यलमतिप्रसंगेन । शेषं सूत्रं विव्रियतेऽधुनेति । तदेवं तेषां भूतव्यतिरिक्तात्मनिन्हववादिनां योयं लोकश्चतुर्गतिकसंसारो भवाद्भवांतरगतिलक्षणः प्राक् प्रसाधितः सुभगडुर्भगसुरूपमंदरूपेश्वरदारिद्र्यादिगत्या जगद्वैचित्र्यलक्षणश्च स एवंभूतो लोकस्तेषां कुतो भवेत् । कयोपपत्त्या घटेत । आत्मनोऽनभ्युपगमान्न किंचिदित्यर्थः । तेच नास्तिकाः परलोकयायिजीवा

ऽनज्युपगमेन पुण्यपापयोश्चाजावमाश्रित्य यत्किंचनकारिणोऽज्ञानरूपात्तमसः सकाशाद न्यत्तमो यांति । जूयोपि ज्ञानावरणादिरूपं महत्तरं तमः संचिन्वंतीत्युक्तं जवति । यदि वा तमश्वतमो डुःखसमुद्घातेन सदसद्विवेकप्रध्वंसित्वाद्यातनास्थानं तस्मादेवंजूतात्त मसः परतरं तमो यांति । सप्तमनरकपृथिव्यां रौरव, महारौरव, काल, महाकालाप्र तिष्ठानाख्यं नरकावासं यांतीत्यर्थः । किमिति । यतस्ते मंदा जडा मूर्खाः सत्यपि यु क्त्युपपन्ने आत्मन्यसदननिनिवेशात्तदजावमाश्रित्य प्राण्युपमर्दकारिणि विवेकिजननिंदि ते आरंजे व्यापारे निश्चयेन नितरां चाश्रिताः संबद्धाः पुण्यपापयोरजाव इत्याश्रित्य परलो कनिरपेक्षयाऽरंजनिश्रिताइति । तथा तज्जीवतच्छरीरवादिमतं निर्युक्तिकारोपि निराचिकी र्पुराह । " पंचएहमित्यादिगाथा प्राग्वदत्रापि " ॥ ३३ ॥ सांप्रतमकारकवादिमतमाश्रि त्यायमनंतरश्लोको जूयोपि व्याख्यायते । ये एते अकारकवादिन आत्मनोऽमूर्तत्वनि त्यत्वसर्वव्यापित्वेज्यो हेतुज्यो निष्क्रियत्वमेवाज्युपपन्नास्तेषां यएषलोको जरामरणशोका क्रंदनहर्षादिलक्षणो नरकतिर्यङ्मनुष्यामरगतिरूपः सोयमेवंजूतो निष्क्रिये सत्यात्मन्य प्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वजावे कुतः कस्माद्धेतोः स्यान्न कथंचित्कुतश्चित्स्यादित्यर्थः । तत श्च दृष्टेष्टबाधारूपात्तमसोऽज्ञानरूपात्ते तमोंतरं निकृष्टं यातनास्थानं यांति । किमिति । यतो मंदाजडाः प्राण्यपकारकाऽरंजनिश्रिताश्च ते इति । अधुना निर्युक्तिकारोऽकारकवादि मतनिराकरणार्थमाह । " कोवेएई य कयं, कयनासो पंचहा गई न जि ॥ देवमणुस्सग यागइ, जाईसरणा इयाणं च " ॥ ३४ ॥ (कोवेएइत्यादि) । आत्मनोऽकर्तृत्वात्कृतं नास्ति ततश्चाकृतं को वेदयते । तथा निष्क्रियत्वे वेदनक्रियाऽपि न घटां प्रांचति । अथा ऽकृतमप्यनुजूयेत तथा सत्यकृतागमकृतनाशापत्तिः स्यात् । ततश्च एककृतपातकेन सर्व प्राणिगणो डुःखितः स्यात् पुण्येन च सुखी स्यादिति । नचैतद्दृष्टमिष्टं वा । तथाव्यापि त्वान्नित्यत्वाच्चात्मनः पंचधा पंचप्रकारा नारक, तिर्यङ्,मनुष्या,मर, मोक्ष, लक्षणागति र्न जवेत् । ततश्च जवतां सांख्यानां काषायचीवरधारण,शिरस्तुंडमुंडन,दंडधारण, निक्षान्नोजित्व,पंचरात्रोपदेशानुसारयमनियमाद्यनुष्ठानं । तथा । पंचविंशतितत्त्वज्ञो, यत्र तत्राश्रमे रतः ॥ जटी मुंडी शिखी वापि, मुच्यते नात्र संशयइत्यादि सर्वमपार्थकमा प्नोति । तथा देवमनुष्यादिषु गत्याऽगती न स्यातां सर्वव्यापित्वादात्मनः । तथानित्यत्वा च्च विस्मरणाजावाज्जातिस्मरणादिका च क्रिया नोपपद्यते । तथा । आदिग्रहणात्प्रकृ तिः करोति पुरुषउपजुंक्तइति जुजिक्रिया या समाश्रिता सापि न प्राप्नोति । तस्या अपि क्रियात्वादिति । अथ मुडाप्रतिबिंबोदयन्यायेन जोगइति चेदेतत्तु निरंतराः सुहृदः प्रत्ये ष्यंति । वाङ्मात्रत्वात् । प्रतिबिंबोदयस्यापि च क्रियाविशेषत्वादेव । तथा नित्ये चावि कारिण्यात्मनि प्रतिबिंबोदयस्याजावाद्यत्किंचिदेतदिति ॥३४॥ ननुच जुजिक्रियामात्रेण प्र

तिबिंबोदयमात्रेण च यद्यप्यात्मा सक्रियस्तथापि न तावन्मात्रेणास्माभिः सक्रियत्वमिष्यते किं तर्हि समस्तक्रियावत्वे सतीत्येतदाशंक्य निर्युक्तिकृदाह । "णहु अफलत्वोवणि बित, कालफलत्तणमिहं अडुमहेउ ॥ णाडुद्धवोवडुय,त्ताणणगा वित्तणेहेऊ" ॥ ॥ ३५ ॥ (णहुअफलेत्यादि) नहु नैवाऽफलत्वं द्रुमाभावे साध्ये हेतुर्भवति । नहि यदैव फलवांस्तदैव द्रुमोऽन्यदात्वद्रुम इति भावः । एवमात्मनोपि सुप्ताद्यवस्थायां यद्यपि कथंचिन्निष्क्रियत्वं तथापि नैतावता त्वसौ निष्क्रियइति व्यपदेशमर्हति । तथा स्तोकफलत्वमपि न वृक्षाभावसाधनायालं । स्वल्पफलोपि हि पनसादिर्वृक्षस्य व्यपदेशभाग्भवति । एवमात्मापि स्वल्पक्रियोपि क्रियावानेव ॥ कदाचिदेषा मतिर्भवतो भवेत् स्तोकक्रियो निष्क्रियएव । यथैककार्षापणधनो न धनित्वमास्कंदत्येवमात्मापि स्वल्पक्रियत्वादक्रियइत्येतदप्युपचारः । यतोयं दृष्टांतः प्रतिनियतपुरुषापेक्षया चोपगम्यते समस्तपुरुषापेक्षया वा । तत्र यद्याद्यः पक्षस्तदा सिद्धसाध्यता । यतः सहस्रादिधनवदपेक्षया निर्धनएवासौ । अथ समस्तपुरुषा पेक्षया तदसाधु । यतोन्यान्जरच्चीवरधारिणोपेक्ष्य कार्षापणधनोपि धनवानेव । तथात्मापि यदि विशिष्टसामर्थ्योपेतपुरुषक्रियापेक्षया निष्क्रियोऽभ्युपगम्यते । न काचित्क्षतिः। सामान्यापेक्षया तु क्रियावानेवेत्यलमतिप्रसंगेन । एवमनिश्चिताकालफलत्वाख्यहेतुद्वयमपि न वृक्षाभावसाधकमित्यादि योज्यं।एवमडुग्धत्वस्तोकडुग्धत्वरूपावपि हेतू न गोत्वाभावत्वं साधयतः । उक्तन्यायेनैव दार्ष्टांतिकयोजना कार्येति ॥ ३५ ॥ १४ ॥

संति पंच महप्भूया, इहमेगेसि आहिया ॥ आयछ्ठो पुणो आहु,
आया लोगेय सासए ॥ १५ ॥ डुहउ ण विणस्संति, नोय उप्पज्ज
ए असं ॥ सवे वि सवहा भावा, नियतीभावमागया ॥ १६ ॥

अर्थ–हवे आत्मषष्टवादिनो मत कहेछे. ते वादी एम कहेछे के, इहमेगेसिआहियाके० आसंसारनेविषे एक आत्मषष्ठवादिउना मते एम कह्युं के, संतिपंचमहप्भूयाके० पांच महाभूतछे. वली ते वादी एम कहेछे के, आयछ्ठोपुणोआहुके०जेम पंच महाभूत तेम आत्मा छछोछे. वली अनेराने मते आत्मा अने पंच महाभूत अशाश्वताछे. तेम एने मते नथी, ते कहेछे के, आयालोगेयसासएके० आत्मा अने पृथिव्यादिकरूपजे लोक ते एने मते शाश्वता सर्वव्यापिछे. माटे अविनाशि रूपछे. ॥ १५ ॥ वली तेनुं नित्यपणुं देखाडेछे. ते आत्मषष्ठ पृथिव्यादिक पदार्थ, निःकारण विनाश अथवा सकारण विनाश, ए डुहउके० बन्ने विनासे करी, णविणस्संतिके० विनास पामे नही. पृथ्वी, अप्प, तेज, वायु, अने आकाश. ए कदापि पोतानुं स्वरूप छांमे नही, ते कारणे शाश्वताछे. तथा कोइए जेनो आकार कस्यो नथी, ते कारणमाटे आत्मा शाश्वत छे. यडुक्तं। नैनं छिंदंति शस्त्राणि,

नैनं दहति पावकः ॥ नचैनं क्लेदयंत्यापो, नशोषयति मारुतः ॥१॥ अछेद्योयमनेद्योय, म विकारी सउच्यते, ॥ नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलो यं सनातनः ॥२॥ इत्यादिवचनात् ॥ तथा नोयउप्पज्जएअसंके० जे असत् एटले अविद्यमान होय ते उपजे नही. केमके अविद्यमान पदार्थने विषे करनारनो व्यापार स्फुरे नहीं. जो अछती वस्तु उपजे तो आकाशकुसुमगर्दनशृंगादिक पदार्थ पण उपजवानो संनवछे. ए कारणे सव्वविसव्वहानावा के० सर्वकालें पण पृथिव्यादिक सर्वे पदार्थो नियतिनावमागया के० नित्यनावे परिणाम पाम्याछे. ॥ १६ ॥ "आत्मषष्ठवादीगतः" एटले आत्म षष्ठवादीनुं मत ए प्रमाणे कह्युं.

॥ दीपिका— अथाऽत्मषष्ठवादिमतमाह । (संतित्ति) संति पंच महानूतानि । इहाऽस्मिन्संसारे एकेषामात्मषष्ठवादिनां सांख्यानां वैशेषिकाणां चैतदाख्यातं नूतान्याख्यातानि वा । ते पुनर्वादिन एवमाहुः । यन्नूतानि आत्मषष्ठानि आत्मा षष्ठोयेषांतानि अत्मषष्ठानि । केषांचिद्बौद्धादिनामनित्यानि नूतानि आत्मा च न तथा एषामित्याह (आया) आत्मा लोकश्च पृथिव्यादिरूपः शाश्वतोनित्यः ॥ १५ ॥ शाश्वतत्वमेवाह । (इहउत्ति) ते नूतपदार्था आत्मषष्ठा उनयतो निर्हेतुकसहेतुकविनाशान्यां न विनश्यंति । बौद्धादिमते घटादिवस्तु हेतुं विनापि क्षणे क्षणेविनश्यति । वैशेषिकाणां तु लकुटादिहेतुयोगेन घटादीनां विनाशः । तेन द्विविधेनापि विनाशेन लोकात्मनोर्नविनाशइति तात्पर्यार्थः । यदिवा द्विरूपाच्चेतनाचेतनस्वनावान्न विनश्यत्यात्मा पृथिव्याद्या लोकाश्च चेतनस्वनावान्नविनश्यंतीति न चोत्पद्यते ऽसदविद्यमानं । सर्वेपिनावाः सर्वथा नियतिनावं नित्यत्वमागताः प्राप्ताः ॥ १६ ॥

॥ टीका—सांप्रतमात्मषष्ठवादिमतं पूर्वपक्षयितुमाह (संतीत्यादि) संति विद्यंते पंचमहानूतानि पृथिव्यादीनि इहास्मिन्संसारे एकेषां वेदवादिनां सांख्यानां शैवाधिकारिणां च एतदाख्यातमाख्यातानि च नूतानि तेच वादिन एवमाहुरेवमाख्यातवंतः । यथा । आत्मषष्ठानि आत्मा षष्ठो येषां तानि आत्मषष्ठानि नूतानि विद्यंतइति । एतानि चात्मषष्ठानि नूतानि यथा न्येषां वादिनामनित्यानि तथा नामीषामितिदर्शयति । आत्मा लोकश्च पृथिव्यादिरूपः शाश्वतोऽविनाशी । तत्रात्मनः सर्वव्यापित्वादमूर्तत्वाच्चाकाशस्येव शाश्वतत्वं पृथिव्यादीनां च तद्रूपाप्रच्युतेरविनश्वरत्वमिति ॥ १५ ॥ शाश्वतत्वमेव नूयः प्रतिपादयितुमाह । (इहउणविणस्संतीत्यादि) ते आत्मषष्ठाः पृथिव्यादयः पदार्था उनयतइति निर्हेतुकसहेतुकविनाशद्वयेन न विनश्यंति । यथा बौद्धानां स्वतएव निर्हेतुको विनाशः । तथाच ते ऊचुः । जातिरेव हि नावानां, विनाशे हेतुरिष्यते ॥ यो जातश्च न च ध्वस्तो,

नश्येत्पश्चात्स केन च ॥ १ ॥ यथाच वैशेषिकाणां लकुटादिकारणसांनिध्ये विनाशः स हेतुकस्तेनोजयरूपेणापि विनाशेन लोकात्मनोर्न विनाशइति तात्पर्यार्थः। यदि वा (डुहउ ति)। द्विरूपादात्मनः स्वजावाच्चेतनाचेतनरूपान्न विनश्यतीति। तथाहि। पृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाशानि रूपापरित्यागतया नित्यानि। न कदाचिदनीदृशं जगदिति कृत्वा आत्मापि नित्यएव कृतकत्वादिन्यो हेतुन्यः। तथा चोक्तं। नैनं छिंदंति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः॥ न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः ॥ १ ॥ अच्छेद्योयमदाह्योयमविकार्योयमुच्यते॥ नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः॥२॥ एवं च कृत्वा नासडुत्पद्यते सर्वस्य सर्वत्र स ज्ञावादसति च कारकव्यापाराजावात् सत्कार्यवादः। यदि वा असडुत्पद्येत खरविषाणा देरप्युत्पत्तिःस्यादिति। तथा चोक्तं। असदकरणाडुपादानग्रहणात्सर्वसंजवाजावात् शक्तस्य शक्यकरणात्कारणजावाच्च सत्कार्यं। एवंच कृत्वा मृत्पिंडेपि घटोस्ति। तदर्थिनां मृत्पिं डोपादानात्। यदि वा ऽसडुत्पद्येत ततो यतःकुतश्चिदेव स्यान्नावश्यमेतदर्थिना मृत्पिंडो पादानमेव क्रियते इत्यतः सदेव कारणे कार्यमुत्पद्यतइति। एवं च कृत्वा सर्वेपि जावाः पृथिव्यादय आत्मषष्ठा नियतिजावं नित्यत्वमागता नाजावरूपतामजूत्वा च जावरूपतां प्रतिपद्यंते। आविर्जावतिरोजावमात्रत्वाडुत्पत्तिविनाशयोरिति। तथा चाजिहितं। नास तो जायते जावो नाजावो जायते सतइत्यादि। अस्योत्तरं निर्युक्तिकृदाह। "कोवेएइत्या दिप्राक्तन्येव गाथा,,। सर्वपदार्थनित्यत्वान्युपगमे कर्तृत्वपरिणामो न स्यात्ततश्चात्मनोऽक र्तृत्वे कर्मबंधाजावस्तदजावाच्च को वेदयति न कश्चि त्सुखडुःखादिकमनुजवतीत्यर्थः। एवं च सति कृतनाशः स्यात्। तथा असतश्चोत्पादाजावे येयं मया आत्मनःपूर्वजावपरित्यागेनापर जावोत्पत्तिलक्षणा पंचधा गतिरुच्यते सा न स्यात्। ततश्च मोक्षगतेरजावाद्दीक्षादिक्रियानु ष्ठानमनर्थकमापद्यते। तथाऽप्रच्युताऽनुत्पन्नस्थिरैकस्वजावत्वेन त्वात्मनो देवमनुष्यगत्या गती तथा विस्मृतेरजावात् जातिस्मरणादिकं वा न प्राप्नोति। यच्चोक्तं सदेवोत्पद्यते तदप्यसत्। यतो यदि सर्वथा सदेव कथमुत्पादः। उत्पादश्चेत्तर्हि सर्वदा सदिति। तथा चो क्तं। कर्मगुणव्यपदेशाः प्रागुत्पत्तेर्न संति यत्तस्मात्कार्यमसद्विज्ञेयं क्रियाप्रवृत्तेश्च कर्तॄणां। तस्मात्सर्वपदार्थानां कथंचिन्नित्यत्वं सदसत्कार्यवादश्चेत्यवधार्यं। तथाचाजिहितं। सर्वे व्यक्तिषु नियतं, क्षणे क्षणेऽन्यत्वमथ च न विशेषः। सत्यश्चित्यपचित्योराकृतिजाति व्यवस्थानात् इति। तथा। नान्वयः सहि जेदत्वा,न्न जेदोऽन्वयवृत्तितः॥ मृद्भेदद्वयसं सर्गं, वृत्तिजात्यंतरं घटः ॥ १ ॥ १६ ॥

पंच खंधे वयंतेगे, बालाउ खणजोइणो ॥ अन्नो अणन्नो णेवाहु, हेउयं च अहेउयं ॥ १७॥ पुढवी आउ तेऊ य, तहा वाऊय एग उ ॥ चत्तारि धाउणो रूवं, एवमाहं सु जाणया ॥ १८ ॥

अर्थ—हवे अफलवादिनुं मत कहेछे. एगे के० कोइएक वादी एटले बौद्ध ते पंचखंधेव यंते के० पंचस्कंध बोलेछे, तेना नाम कहेछे. प्रथम विज्ञान ते रसनुं, विज्ञान सुखदुखवेदे ते वेदना, संज्ञा ते धर्मसमुदायने. पृथिव्यादिकते संस्कार, अने धातुरूपादिकते रूप,ए पांच पदार्थ जगतमांछे, पण एथकी अन्य आत्मादिक पदार्थ जगतमांहे कोइ नथी. एम ते वालाउके० बाल एटले अज्ञानी कहेछे. वलीते स्कंध केवा छे, खणजोइणोके० क्षणयोगीछे. एटले एक क्षण मात्र रहे, उपरांत रहे नहीं. एवीरीतना बोलनारा ते क्षणिकवादी जाणवा. हवे अनेरा दर्शनीउथकी एमनो नेद जे छे, ते गाथाना उत्तरार्द्ध वडे देखाडेछे. अस्रोअणस्रो णेवाहुके० ते जेम आत्मपष्ठवादी सांख्यादिक नूत थकी आत्मा अन्य छे, एम कहेछे. तथा जेम चार्वाकमति नूतथकी आत्मा अनेरो नथी. एटले जे नूत तेहिज आत्मा एम कहेछे, तेम बौद्धमति कहेतां नथी. तथा हेउयंच के० हेतु एटले आत्मा कोणे नीपजाव्यो एम पण कहेता नथी. अने अहेउयं के० अहेतुक एटले अनादि अनंत शाश्वत आत्माछे. एम पण बौद्ध कहेता नथी. ॥ १७ ॥ अफलवादीगतः। तथा अनेरा बौद्धदर्शनी चतुर्धातुक जगत् कहेछे, ते देखाडेछे. पुढवीके० पृथिवी ते पाषाण पर्वत अने स्थलादिक ए प्रथमधातु, तथा आउके० अप्प ते पाणी ए बीजी धातु, तथा तेज के० अग्नि ए त्रीजी धातु, तथा वायु ए चोथी धातु, जे कारणे ए चारे पदार्थ जगत्रने धरे एटले पोषे ते कारणे एने धातु कहिये.ए केहवाछे? तोके एगउ के० ए चारे एकाकार पणे परिणमे, माटे एकाकारछे. तेथी ए चत्तारिधाउणोरूवं के० चारेधातुरूप जाणवां. एटले ए शरीर चतुर्धारूप छे. ते थकी अनेरो आत्मा एवो पदार्थ कोइ नथी, एवं के० एम ते बौद्ध कहेछे. ते केवा जाणवा? तोके आहंसु के०पोताने लोकमांहे जाणयाके० जाण कहेवराविये एवुं अनिमान धरेछे. परंतु ए सर्वे क्षणिकवादिपणा थकी क्रियाना फलने संबंध मले नहीं तें कारणे एने अफलवादि कहियें.

॥ दीपिका—अथ बौद्धमतमाह । (पंचेति) । एके बौद्धाः पंचस्कंधान् वदंति । रूपस्कंधः १ वेदनास्कंधः २ विज्ञानस्कंधः ३ संज्ञास्कंधः ४ संस्कारस्कंधः ५ । तत्र रूपस्कंधः पृथिवीत्वादयो रूपादयश्च । वेदनास्कंधः सुखा दुःखा अदुःखसुखा च वेदना । विज्ञानस्कंधो रूपविज्ञानं रसविज्ञानमित्यादि । संज्ञास्कंधः संज्ञानिमित्तोद्ग्रहणात्मिकः प्रत्ययः । सविकल्पसंज्ञानमित्यर्थः । संस्कारस्कंधः पुण्यापुण्यादिधर्मसमुदायः ५ नचैतेन्योन्यः कश्चिदात्माख्यः पदार्थोस्तीति । बाला मूर्खाः । ते स्कंधाः किंनूताः क्षणयोगिनः क्षणेक्षणेविनश्वराइत्यर्थः । पूर्ववादिन्यो बौद्धव्यतिरेकमाह । (अणोत्ति) । यथा सांख्यादयो नूतेन्योऽन्यमात्मानमंगीकृतवंतः । यथा चार्वाका नूतेन्योऽनन्यमनिन्नमा

त्मानमिष्टवंतस्तथा बौद्धा नैवाहुर्नोक्तवंतः । तथा हेतुन्योजातोहेतुकः कायाकारपरिणतजूतनिष्पादितः तथा ऽहेतुकोनित्य इत्येवं तमात्मानं बौद्धा नांगीकृतवंतइति ॥१७॥ तथान्ये चतुर्धातुकं जगद् बौद्धा वदंतीत्याह । (पुढवीति) पृथिवीधातुः । आपोजलं धातुः । तथातेजो वायुश्चेति धातवः । एते चत्वारोपि धातवो यदा (एकउत्ति) एकाकारपरिणतास्तदाकारतयाजीवाख्यां लनंते । एवमाहुर्जानकाः पंमितंमन्या बौद्धाः । (एवमाहंसुआवरेइति) क्वचित्पाठः । तत्र आवरेत्ति । अपरे बौद्धा इत्यर्थः ॥ १८ ॥

॥टीका—सांप्रतं बौद्धमतं पूर्वपक्षयन्निर्युक्तिकारोपन्यस्तमफलवादाधिकारमाविर्जावयन्नाह । (पंचखंधेवयंतेगेइत्यादि) । एके केचन वादिनो बौद्धाः पंच स्कंधान् वदंति । रूप,वेदना,विज्ञान, संज्ञा, संस्कारा,ख्याः पंचैव स्कंधाविद्यंते नापरः कश्चिदात्माख्यः स्कंधोस्तीत्येवं प्रतिपादयंति । तत्र रूपस्कंधः पृथिवीधात्वादयो रूपादयश्च ॥१॥ सुखा डुःखा अडुःखसुखाचेति वेदनावेदनास्कंधः ॥ २ ॥ रूपविज्ञानं रसविज्ञानमित्यादि विज्ञानं विज्ञानस्कंधः ॥३॥ संज्ञास्कंधः संज्ञानिमित्तोऽवग्रहणात्मकः प्रत्ययः ॥४॥ संस्कारस्कंधः पुण्यापुण्यादिधर्मसमुदाय इति ॥ ५ ॥ नचैतेन्यो व्यतिरिक्तः कश्चिदात्माख्यः पदार्थोऽध्यक्षेणाऽध्यवसीयते । तदव्यनिचारिलिंगग्रहणाऽनावान्नाप्यनुमानेन । नच प्रत्यक्षानुमानव्यतिरिक्तमर्थाऽविसंवादिप्रमाणांतरमस्तीत्येवं बालाइव बाला यथाऽवस्थितार्थापरिज्ञानात् बौद्धाः प्रतिपादयंति । तथा ते स्कंधाः क्षणयोगिनः । परमनिकृष्टः कालः क्षणः । क्षणेन योगः संबंधः क्षणयोगः स विद्यते येषां ते क्षणयोगिनः । क्षणमात्राऽवस्थायिनइत्यर्थः । तथाच तेऽनिदधति । स्वकारणेन्यः पदार्थउत्पद्यमानः किंविनश्वरस्वनावउत्पद्यतेऽविनश्वरस्वनावो वा । यद्यविनश्वरस्ततस्तद्व्यापिन्याः क्रमयौगपद्यान्यामर्थक्रियाया अनावात् पदार्थस्यापि व्याप्यस्यानावः प्रसज्जति । तथाहि । यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थतः सदिति । सच नित्योर्थः क्रियायां प्रवर्तमानः क्रमेण वा प्रवर्तते यौगपद्येन वा । न तावत्क्रमेण । यतो ह्येकस्याऽर्थक्रियायाः काले तस्यापरार्थक्रियाकरणस्वनावो विद्यते वा न वा । यदि विद्यते किमिति क्रमकरणं । सहकार्यपेक्षयेति चेत् । तेन सहकारिणा तस्य कश्चिदतिशयः क्रियते न वा । यदि क्रियते किं पूर्वस्वनावपरित्यागेनापरित्यागेन वा । यदि परित्यागेन ततोऽतादवस्थ्यापत्तेरनित्यत्वं । अथ पूर्वस्वनावापरित्यागेन ततोऽतिशयानावात्किं सहकार्यपेक्षया । अथाऽकिंचित्करोपि विशिष्टकार्यार्थमपेक्षते । तदयुक्तं । यतः । अपेक्षेत परं कश्चि,द्यदि कुर्वीत किंचन ॥ यदकिंचित्करं वस्तु, किं केनचिदपेक्ष्यते ॥ १ ॥ अथ तस्यैकार्थक्रियाकारणकाले ऽपरार्थक्रियाकरणस्वनावो न विद्यते। तथाच सति स्पष्टैव नित्यताहानिः । अथासौ नित्यो यौगपद्येनाऽर्थक्रि

यां कुर्यात्तथा सति प्रथमक्षणएवाऽशेषार्थक्रियाणां करणात् द्वितीयक्षणेऽकर्तृत्वमापा तं । तथाच सैवानित्यता । अथ तस्य तत्स्वभावत्वात्ताएवार्थक्रिया भूयो भूयो द्विती यादिक्षणेष्वपि कुर्यात्तदसांप्रतं । कुतस्य करणाभावादिति । किंच द्वितीयादिक्षणसा ध्या अप्यर्थाः प्रथमक्षणएव प्राप्नुवंति । तस्य तत्स्वभावत्वात् । अतस्तत्स्वभावत्वे च तस्यानित्यत्वापत्तिरिति । तदेवं नित्यस्य क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरहान्न सकारणे भ्यो नित्यस्योत्पादइति । अथाऽनित्यः स्वभावः समुत्पद्यते । तथाच सति विघ्नाभावा दायातमस्मदुक्तक्रमशेषपदार्थजातस्य क्षणिकत्वं । तथाचोक्तं । जातिरेव हि भावानां, विनाशे हेतुरिष्यते ॥ यो जातश्च नच ध्वस्तो नश्येत्पश्चात्स केन च ॥ १ ॥ ननु च स त्यप्यनित्यत्वे यस्य यदा विनाशहेतुसद्भावस्तस्य तदा विनाशः । तथा च । स्वविनाशका रणापेक्षाणामनित्यानामपि पदार्थानां न क्षणिकत्वमित्येतच्चानुपासितगुरोर्वचः।तथाहि। तेन मुद्गरादिकेन विनाशहेतुना घटादेः किं क्रियते । किमत्र प्रष्टव्यमभावः क्रियते । अत्र च प्रष्टव्यो देवानांप्रियः । अभाव इति किं पर्युदासप्रतिषेधोयमुत प्रसज्यप्रतिषेधइति । तत्र यदि पर्युदासस्ततोयमर्थो भावादन्यो भावो भावांतरं घटात्पटादिः सोऽभावइति । त त्र भावांतरे यदि मुद्गरादिव्यापारो न तर्हि तेन किंचिद्घटस्य कृतमिति । अथ प्रसज्यप्र तिषेधस्तदा यथार्थो विनाशहेतुरभावं करोति । किमुक्तं भवति भावं न करोतीति ततश्च क्रियाप्रतिषेधएव कृतः स्यात् । नच घटादेः पदार्थस्य मुद्गरादिना करणं । तस्य स्वकारणैरेव कृतत्वात् । अथ भावाभावोऽभावस्तं करोतीति तस्य तुच्छस्य नीरूपत्वात् कुतस्तत्र कारणानां व्यापारोऽथ तत्रापि कारणव्यापारो भवेत् खरशृंगादावपि ध्याप्रिये रन् कारणानीति । तदेवं विनाशहेतोरकिंचित्करत्वात् स्वहेतुतएवाऽनित्यताक्रोडीकृ तानां पदार्थानामुत्पत्तेर्विघ्नहेतोश्चाभावात् क्षणिकत्वमवस्थितमिति । तुशब्दः पूर्वादिभ्यो ऽस्य व्यतिरेकप्रदर्शकः । तमेव श्लोकपश्चार्धेन दर्शयति । (असोअणसोइति) । ते हि बौद्धा यथाऽत्मषष्ठवादिनः सांख्यादयो भूतव्यतिरिक्तमात्मानमभ्युपगतवंतो यथ चार्वाका भूताऽव्यतिरिक्तं चैतन्याख्यमात्मानमिष्टवंतस्तथा नैवाहुर्नैवोक्तवंतः । तथ हेतुभ्योजातो हेतुकः । कायाकारपरिणतभूतनिष्पादितइति यावत् । तथाऽहेतुकं ऽनाद्यपर्यवसितत्वान्नित्यइत्येवमात्मानं ते बौद्धा नाऽभ्युपगतवंत इति ॥ १७ । तथाऽपरे बौद्धाश्चतुर्धातुकमिदं जगदाहुरित्येतद्दर्शयितुमाह । (पुढवीत्यादि) पृथि वी धातुरापश्च धातुस्तथा तेजो वायुश्चेति धारकत्वात्पोषकत्वाच्च धातुत्वमेषां । (एगउत्ति) यदैते चत्वारोप्येकाकारपरिणतिं बिभ्रति कायाकारतया तदा जीवव्यपदेशमश्नुवंतः । तथाचोचुः । चतुर्धातुकमिदं शरीरं न तद्व्यतिरिक्तआत्मास्तीति । (एवमाहंसुअवरेत्ति) अपरे बौद्धविशेषा एवमाहुरभिहितवंतइति । क्वचिज्जाणगा इतिपाठस्तत्राप्ययमर्थो जा

नका ज्ञानिनो वयं किलेत्यनिमानाग्निदग्धाः संत एवमाहुरिति संबंधनीयं । अफलवादि त्वं चैतेषां क्रियाक्षणएव कर्तुः सर्वात्मना नष्टत्वात् क्रियाफलेन संबंधाजावादवसेयं । स र्वेएव वा पूर्ववादिनोऽफलवादिनो द्रष्टव्याः कैश्चिदात्मनोऽनित्यस्याऽविकारिणोऽन्युपगत त्वात् कैश्चित्त्वात्मनएवानन्युपगमादिति । अत्रोत्तरपदार्थानां प्राक्तन्येव निर्युक्तिगाथा। कोवेएइत्यादि व्याख्यायते । यदि पंचस्कंधव्यतिरिक्तः कश्चिदात्माख्यः पदार्थो न विद्यते त तस्तदजावात्सुखडुःखादिकं कोऽनुजवतीत्यादिगाथा प्राग्व ध्याख्येयेति । तदेवमात्मनो जावाद्योयं स्वसंविदितः सुखडुःखानुजवः स कस्य जवत्विति चिंत्यतां । ज्ञानस्कंधस्यायमनु जवइति चेन्न । तस्यापि क्षणिकत्वात् । ज्ञानक्षणस्य चातिसूक्ष्मत्वात् सुखडुःखानुजवाजावः । क्रियाफलजवतोश्च क्षणयोरत्यंतासंगतेः कृतनाशाकृताज्यागमापत्तिरिति ज्ञानसंतान ए कोस्तीति । तस्यापि संतानिव्यतिरिक्तस्याऽजावाद्यत्किंचिदेतत् । पूर्वक्षणएव उत्तरक्षणे वासनामाधाय विनंक्ष्यतीति चेत् । तथाचोक्तं । यस्मिन्नेव हि संताने, आहिता कर्मवासना॥ फलं तत्रैव संधत्ते, कार्पासे रक्तता यथा ॥ १ ॥ अत्रापीदं विकल्प्यते । सा वासना किं क्षणेन्यो व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्ता वा । यदि व्यतिरिक्ता वासकत्वानुपपत्तिरथाव्यतिरिक्ता क्ष णवत् क्षणक्षयित्वं तस्याः । तदेवमात्माजावे सुखडुःखानुजवाजावः स्यादस्ति च सुखडुः खानुजवोऽतोस्त्यात्मेति । अन्यथा पंचविषयानुजवोत्तरकालमिंद्रियज्ञानानां स्वविषया दन्यत्राप्रवृत्तेः संकलनाप्रत्ययो न स्यात् । आलयविज्ञानाद्भविष्यतीति चेदात्मैव तर्हि सं ज्ञांतरेणान्युपगतइति । तथा बौद्धागमोप्यात्मप्रतिपादकोस्ति । सचायं । इतः । एकनवति मे कल्पे, शक्त्या मे पुरुषो हतः ॥ तेन कर्मविपाकेन, पादे विद्धोस्मि जिक्षवः ॥ १ ॥ तथा । कृतानि कर्माण्यतिदारुणानि, तनूजवंत्यात्मनिगर्हणेन ॥ प्रकाशनात्संवरणाच्च तेषा,मत्यंतमूलोद्धरणं वदामीत्येवमादि । तथा यडुक्तं । क्षणिकत्वं साधयता यथा पदार्थः कारणेन्य उत्पद्यमानो नित्यः समुत्पद्यते ऽनित्यो वेत्यादि । तत्र नित्येऽप्र च्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वजावे कारकाणां व्यापाराजावादतिरिक्ता वाचोयुक्तिरिति नित्यत्वपक्षा नुत्पत्तिरेव । यच्च नित्यपक्षे जवतानिहितं नित्यस्य न क्रमेणार्थक्रियाकारित्वं नापि यौगप द्येनेति तत्क्षणिकत्वेपि समानं । यतः क्षणिकोप्यर्थक्रियायां प्रवर्तमानः क्रमेण यौ गपद्येन वाऽवश्यं सहकारिकारणसव्यपेक्षएव प्रवर्तते । यतः । सामग्री जनिका नह्येकं किंचिदिति । तेनच सहकारिणा न तस्य कश्चिदतिशयः कर्तुं पार्यते । क्षणस्यविवेकत्वेना ऽनाधेयातिशयत्वात् क्षणानां च परस्परोपकारकोपकार्यत्वानुपपत्तेः सहकारित्वाजावः । सहकार्यनपेक्षायां च प्रतिविशिष्टकार्यानुपपत्तिरिति । तदेवमनित्यएव कारणेज्यः पदा र्थः समुत्पद्यत इति द्वितीयपक्षसमाश्रयणमेव । तत्रापि चैतदालोचनीयं । किं क्षणक्षयि त्वेनानित्यत्वमाहोस्वित्परिणामाऽनित्यतयेति । तत्र क्षणक्षयित्वे कारणकार्यत्वाजावा

त् कारणानां व्यापारएवानुपपन्नः कुतः क्षणिकानित्यस्य कारणेभ्य उत्पादइति । अथ पूर्वक्षणाडुत्तरक्षणोत्पादे सति कार्यकारणभावो भवतीत्युच्यते तदयुक्तं । यतोसौ पूर्वक्षणो विनष्टो वोत्तरक्षणं जनयेदविनष्टो वा । न तावद्विनष्टस्तस्यासत्वाज्जनकत्वानुपपत्तेः । नाप्यविनष्ट उत्तरक्षणकाले पूर्वक्षणव्यापारसमावेशात्क्षणभंगभंगापत्तेः । पूर्वक्षणो विनश्यंस्तूत्तरक्षणमुत्पादयिष्यति तुलांतयोर्नामोन्नामवदितिचेत् । एवं तर्हि क्षणयोः स्पष्टैवैककालताश्रिता । तथाहि । यासौ विनश्यदवस्था साऽवस्था तु भिन्ना । उत्पादावस्थातोप्युत्पित्सोस्ततश्च तयोर्विनाशोत्पादयोर्यौगपद्याभ्युपगमे तद्धर्मिणोरपि पूर्वोत्तरक्षणयोरेककालावस्थायित्वमिति । तद्धर्मतानभ्युपगमे च विनाशोत्पादयोरवस्तुत्वापत्तिरिति । यथोक्तं जातिरेव हि भावानामित्यादि । तत्रेदमभिधीयते । यदि जातिरेवोत्पत्तिरेव भावानां पदार्थानामभावहेतुस्ततोऽभावकारणस्य सन्निहितत्वेन विरोधेनाघ्रातत्वाडुत्पत्त्यभावोऽथोत्पत्त्युत्तरकालं विनाशो भविष्यतीत्यभ्युपगम्यते । तथा सति उत्पत्तिक्रियाकाले तस्याऽभूतत्वात्पश्चाच्च भवन्नंतरायएव भवति न भूयसा कालेनेति । किमत्र नियामकं विनाशे हेत्वभाव इतिचेत् । यतउक्तं निर्हेतुकत्वाद्विनाशस्य स्वभावानुबंधितेत्येतदप्ययुक्तं । यतो घटादीनां मुद्गरादिव्यापारानंतरमेव विनाशो भवन् लक्ष्यते । ननु चोक्तमेवात्र तेन मुद्गरादिना घटादेः किं क्रियत इत्यादि । सत्यमुक्तं । इदमयुक्तंतूक्तं तथाह्यभावइति । प्रसज्यपर्युदासविकल्पद्वयेन योयं विकल्पः पक्षद्वयेपि च दोषः प्रदर्शितः सोऽदोष एव । यतः पर्युदासपक्षे कपालाख्यभावांतरकारणे घटस्य च परिणामानित्यतया तद्रूपतापत्तेः कथं मुद्गरादेर्घटादीन् प्रत्यकिंचित्करत्वं । प्रसज्यप्रतिषेधस्तु भावं न करोतीति प्रतिषेधात्मकोत्र नाश्रीयते । किंतर्हि प्रागभाव,प्रध्वंसाभावे,तरेतरा,त्यंताभावानां चतुर्णां मध्ये प्रध्वंसाभावएवेहाश्रीयते । तत्र च कारकांतरणां व्यापारोभवत्येव । यतोसौ वस्तुतः पर्यायोऽवस्थाविशेषो न भावमात्रं । तस्य चाऽवस्थाविशेषस्य भावरूपत्वात्पूर्वोपमर्दैन च प्रवृत्तत्वाद्यएव कपालादेरुत्पादः सएव घटादेर्विनाशइति विनाशस्य सहेतुकत्वमवस्थितं । अपिच कादाचित्कत्वेन विनाशस्य सहेतुकत्वमवसेयमिति । पदार्थव्यवस्थार्थं चाऽवश्यमभावचातुर्विध्यमाश्रयणीयं । तडुक्तं । कार्यद्रव्यमनादिः स्या,त्प्रागभावस्य निन्हवे ॥ प्रध्वंसस्य च भावस्य, प्रच्यवेऽनंततां व्रजेत् ॥ १ ॥ सर्वात्मकं तदेकं स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे इत्यादि । तदेवं क्षणिकस्य विचाराक्षमत्वात्परिणामानित्यपक्षएव ज्यायानिति । एवं च सत्यात्मा परिणामी ज्ञानाधारो भवांतरयायी भूतेभ्यः कथंचिदन्यएव शरीरेण सहाऽन्योन्यानुवेधादनन्योपि । तथा सहेतुकोपि नारकतिर्यङ्मनुष्यामरभवोपादानकर्मणा तथा तथा विक्रियमाणत्वात् पर्यायरूपतयेति । तथात्मस्वरूपाप्रच्युतेर्नित्यत्वादहेतुकोपीति ।

आत्मनश्च शरीरव्यतिरिक्तस्य साधितत्वाच्चतुर्भूतकमात्रं शरीरमेवेदमित्येतडुन्मत्तप्रलपितमपकर्णयितव्यमित्यलं प्रसंगेनेति ॥ १७ ॥

अगारमावसंतावि, अरण्णा वा वि पव्वया ॥ इमं दरिसणमावण्णा सव्वडुक्खा विमुच्चई ॥१ए॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविज जणा ॥ जे ते ज वाइणो एवं,न ते उहंतराहिया ॥२०॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविज जणा ॥ जे ते ज वाइणो एवं,न ते संसारपारगा ॥२१॥ ते णावि संधिं णच्चा णं,न ते धम्मविज जणा ॥ जे ते ज वाइणो एवं, न ते गप्नस्स पारगा ॥२२॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविज जणा ॥ जे ते ज वाइणो एवं, न ते जम्मस्स पारगा ॥ २३ ॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविज जणा ॥ जे ते ज वाइणो एवं, न ते डुःक्खस्स पारगा ॥ २४ ॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविज जणा ॥ जे ते ज वाइणो एवं, न ते मारस्स पारगा॥ २५ ॥

अर्थ–हवे ए पूर्वोक्त दर्शनी पोतपोतानां दर्शननेविषे मुक्तीनुं कारण जे कहेछे ते देखाडे छे. ते उपर कहेछेके ते सर्व दर्शनी अगारं के० घर तेनेविषे आवसंतावि के० निवास करनार एटले गृहस्थ, वा के० अथवा, अरण्णा के० अरण्यवासी तापसादिक अथवा पव्वयाके० प्रव्रजितशाक्यादिक ते एम नावना करेछे के, इमंदरिसणमावण्णा के० अमारा दर्शने आवण्णा एटले आव्या. एटले जे कोई अमे कहियें तेने माने तो, ते सव्वडुक्खाविमुच्चईके० सर्व डुःखथकी मुक्त थाय.एवी रीते पोतपोताना दर्शननेविषे सर्व कोई मुक्ति देखाडेछे ॥१ए॥ हवे ग्रंथकार कहेछे. तेणाविके० ते पंचनूतवादी प्रमुख दर्शनीउ तेने नैव के० नथी. संधिके० छिड़ एटले ज्ञानावरणादिक कर्म तेनो विपर्ययनाव ते संधि जाणवी. ते अहीं ज्ञानावरणादिक कर्मना विवरण तेने णच्चाणंके० अजाणताथका बापडा डुःखथ की मूकाववाने अर्थे सावधान थयाछे. ते कारणे ते जणाके० जन एटले लोक, नतेधम्मविउके० क्षांत्यादिक दशप्रकारनो जे यतिधर्म तेना जाण नथी. जेतेउवाइणो एवंके० ते वादी जे नास्तिकमति प्रमुख पूर्वे कह्या, ते असमंजस वचनना बोलनारछे. माटे नतेउहंतराहिया के० ते संसाररूप उघ एटले प्रवाह, अर्थात् संसारसमुड़ना तारनार ते नथी. एम श्रीतीर्थंकरे तथा गणधरे कह्युंछे. ॥ २० ॥ ते पंचनूतवादी प्रमुख कर्म आववानां स्थानक जाणता नथी; वली ते जनके० लोक क्षांत्यादिक दशविध यतिधर्मने जाणता नथी. एवा ते पूर्वे कह्या जे नास्तिकप्रमुख वादी ते संसारना पा

रगामी नहोय. ए गाथानां पहेलां त्रण पदनो अर्थ प्रथम कह्यो तेप्रमाणेज छे.॥२१॥ जे एम बोले ते गर्भना पारगामी नहीं, एटले अनंता गर्भनां दुःख सहन करे. ॥२२॥ वली जे एम बोले ते जन्मना पारगामी नथी अर्थात् अनंता जन्मनुं दुःख सहन करे. ॥ २३ ॥ तथा जे एम बोले ते दुःखना पारगामि न होय, अनंतो काल चतुर्गति रूप संसारना दुःख सहन करे. ॥ २४ ॥ तथा जे एम बोले ते मरणना पारगामी न समजवा, अर्थात् अनंतिवार मरण पामे. ॥२५॥

॥ दीपिका—अथ पूर्वोक्तसर्वेडुर्मतीनामफलत्वं स्वदर्शनांगीकारं च दर्शयन्नाह । (अगारेति) अगारं गृहमावसंतस्तिष्ठंतो गृहस्था आरण्या वा तापसादयः प्रव्रजिताश्च शाक्यादयः । अपि संभावने । इदं ते संभावयंति । यथा इदमस्मदीयं दर्शनं मतमापन्ना आश्रिताः सर्वेदुःखेभ्यो जीवाविमुच्यंतइति ते वदंति ॥ १९ ॥ अथ तेषां निष्फलत्वमाह । तेइति बहुभिः । ते पंच पंचभूतवाद्याद्याः संधिज्ञानावरणादिकर्मविवररूपं नापि नैव ज्ञात्वा अज्ञात्वेइत्यर्थः । णंवाक्यालंकारे । यथा जीवकर्मणोः संधिर्भिन्नत्वं भवति तथा ज्ञात्वा मोक्षार्थं प्रवृत्ता इत्यर्थः ॥ संधिर्द्विविधः । द्रव्यसंधिः कुड्यादेः । भावसंधिः कर्मविवररूपस्तमुत्तरोत्तरपदार्थपरिज्ञानं वा संधिस्त मज्ञात्वा प्रवृत्ताः । ते किंभूताइत्याह । (न तेत्ति)। ते जना लोका न सम्यक्धर्मविदः । येतु ते । एवंविधवादिनस्ते । उघो भवौघः संसारस्तत्तरणशीला न आख्याता जिनैः ॥२०॥ अग्रेतनाः पंचश्लोका एवमेव व्याख्येयाः।परं संसार १ गर्भ २ जन्म ३ दुःख ४ मारपारगा न भवंतीति ज्ञेयं ॥२१॥२२॥२३॥२४॥२५॥

॥ टीका—सांप्रतं पंचभूतात्माऽद्वैततज्जीवतच्छरीराकारकात्मपष्ठक्षणिकपंचस्कंधवादिनामफलवादित्वं वक्तुकामः सूत्रकारस्तेषां स्वदर्शनफलाभ्युपगमं दर्शयितुमाह । (अगारेत्यादि) अगारं गृहं तदावसंतस्तस्मिंस्तिष्ठंतो गृहस्थाइत्यर्थः । आरण्या वा तापसादयः प्रव्रजिताश्च शाक्यादयः । अपि संभावने । इदं ते संविभावयंति । यथेदमस्मदीयं दर्शनमापन्नाआश्रिताः सर्वेदुःखेभ्यो विमुच्यंते । आर्पत्वादेकवचनं सूत्रे कृतं । तथाहि । पंचभूततज्जीवतच्छरीरवादिनामयमाशयोयथेदमस्मदीयं दर्शनं ये समाश्रितास्ते गृहस्थाः संतः सर्वेभ्यः शिरस्तुंडमुंडन,दंडाऽजिनजटाकाषायचीवरधारण, केशोल्लुंचन, नाग्न्यस्तपश्चरण,कायक्लेशरूपेभ्यो दुःखेभ्यो मुच्यंते । तथा हुः। तपांसि यातनाश्चित्राः, संयमो भोगवंचनं ॥ अग्निहोत्रादिकं कर्म, बालक्रीडेव लक्ष्यत इति । सांख्यादयस्तु मोक्षवादिनएवं संभावयंति यथा । येऽस्मदीयं दर्शनमकर्तृत्वात्माऽद्वैतपंचस्कंधादिप्रतिपादकमापन्नाः प्रव्रजितास्ते सर्वेभ्यो जन्मजरामरणगर्भपरंपराऽनेकशारीरमानसातितीव्रतराऽसातोदयरूपे

रगामी न होय. ए गाथानां पहेलां त्रण पदनो अर्थ प्रथम कह्यो तेप्रमाणेज छे.॥२१॥ जे एम बोले ते गर्भना पारगामी नहीं, एटले अनंता गर्भनां दुःख सहन करे.॥२२॥ वली जे एम बोले ते जन्मना पारगामी नथी अर्थात् अनंता जन्मनुं दुःख सहन करे.॥ २३ ॥ तथा जे एम बोले ते दुःखना पारगामि न होय, अनंतो काल चतुर्गति रूप संसारना दुःख सहन करे.॥ २४ ॥ तथा जे एम बोले ते मरणना पारगामी न समजवा, अर्थात् अनंतिवार मरण पामे. ॥२५॥

॥ दीपिका–अथ पूर्वोक्तसर्वदुर्मतीनामफलत्वं स्वदर्शनांगीकारं च दर्शयन्नाह । (अगारेति) अगारं गृहमावसंतस्तिष्ठंतो गृहस्था आरण्या वा तापसादयः प्रव्रजिताश्च शाक्यादयः । अपि संभावने । इदं ते संभावयंति । यथा इदमस्मदीयं दर्शनं मतमापन्ना आश्रिताः सर्वदुःखेभ्यो जीवाविमुच्यंतइति ते वदंति ॥ १९ ॥ अथ तेषां निष्फलत्वमाह । तेइति षड्भिः । ते पंच पंचभूतवाद्याद्याः संधिज्ञानावरणादिकर्मविवररूपं नापि नैव ज्ञात्वा अज्ञात्वेत्यर्थः । णंवाक्यालंकारे । यथा जीवकर्मणोः संधिर्भिन्नत्वं भवति तथा ज्ञात्वा मोक्षार्थं प्रवृत्ता इत्यर्थः॥ संधिर्द्विविधः । द्रव्यसंधिः कुड्यादेः । भावसंधिः कर्मविवररूपस्तमुत्तरोत्तरपदार्थपरिज्ञानं वा संधिस्त मज्ञात्वा प्रवृत्ताः । ते किंभूताइत्याह । (नतेत्ति)। ते जना लोका न सम्यक्धर्मविदः । येतु ते । एवंविधवादिनस्ते । ओघो भवौघः संसारस्तत्तरणशीला न आख्याता जिनैः ॥२०॥ अग्रेतनाः पंचश्लोका एवमेव व्याख्येयाः।परं संसार १ गर्भ २ जन्म ३ दुःख ४ मारपारगा न भवंतीति ज्ञेयं ॥२१॥२२॥२३॥२४॥२५॥

॥ टीका–सांप्रतं पंचभूतात्माऽद्वैततज्जीवतच्छरीराकारकात्मषष्ठक्षणिकपंचस्कंधवादिनामफलवादित्वं वक्तुकामः सूत्रकारस्तेषां स्वदर्शनफलाभ्युपगमं दर्शयितुमाह । (अगारेत्यादि) अगारं गृहं तदावसंतस्तस्मिंस्तिष्ठंतो गृहस्थाइत्यर्थः । आरण्या वा तापसादयः प्रव्रजिताश्च शाक्यादयः । अपि संभावने । इदं ते संविभावयंति । यथेदमस्मदीयं दर्शनमापन्नाआश्रिताः सर्वदुःखेभ्यो विमुच्यंते । आर्षत्वादेकवचनं सूत्रे कृतं । तथाहि । पंचभूततज्जीवतच्छरीरवादिनामयमाशयोयथेदमस्मदीयं दर्शनं ये समाश्रितास्ते गृहस्थाः संतः सर्वेभ्यः शिरस्तुंडमुंडन,दंडाऽजिनजटाकाषायचीवरधारण, केशोल्लुंचन, नाग्न्यस्तपश्चरण,कायक्लेशरूपेभ्यो दुःखेभ्यो मुच्यंते । तथा चुः। तपांसि यातनाश्चित्राः, संयमो भोगवंचनं ॥ अग्निहोत्रादिकं कर्म, बालक्रीडेव लक्ष्यत इति । सांख्यादयस्तु मोक्षवादिनएवं संभावयंति यथा । येऽस्मदीयं दर्शनमकर्तृत्वात्माऽद्वैतपंचस्कंधादिप्रतिपादकमापन्नाः प्रव्रजितास्ते सर्वेभ्यो जन्मजरामरणगर्भपरंपराऽनेकशारीरमानसातितीव्रतराऽसातोदयरूपे

अनुनवंति । पुनःपुनः संसारचक्रवाले व्याधिमृत्युजरानिराकुले व्याप्ते ॥ २६ ॥ तेषां दुःखफलमुपसंहारं चाह । (उच्चेति) । उच्चावचान्यधमोत्तमानि स्थानानि गर्भतोग्र मंतोगर्भाज्जन्मेष्यंति यास्यंत्यनंतशः । (नायपुत्तेति) । ज्ञातः सिद्धार्थक्षत्रियस्तस्य पुत्रः श्रीमहावीरो जिन एवमुक्तवान् । इति ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं प्रत्याहेति ॥ २७ ॥ इति श्रीसूत्रकृते द्वितीयांगे प्रथमाध्ययनेप्रथमोद्देशकव्याख्या संपूर्णा ॥ ॥

॥ टीका—यत्पुनस्ते प्राप्नुवंति तद्दर्शयितुमाह (नाणाविहाइंइत्यादि) नानाविधानि बहुप्रकाराणि दुःखान्यासातोदयलक्षणान्यनुनवंति पुनः पुनः । तथाहि नरकेषु करपत्र दारण,कुंनीपाक,तप्तायःशाल्मलीसमालिंगनादीनि तिर्यक्षु च शीतोष्णादिदमनांकताडनाऽतिसारारोपणक्षुत्तृडादीनि । मनुष्येषु इष्टवियोगाऽनिष्टसंयोगशोकाक्रंदनादीनि देवेषु चाभियोगेर्ष्याकिल्बिषिकत्वच्यवनादीन्यनेकप्रकाराणि दुःखानि ये एवंनूता वादिनस्ते पौनःपुन्येन समनुनवंति।एतच्च श्लोकार्द्धं सर्वेषूत्तरश्लोकार्धेषु योज्यं।शेषं सुगमं यावदुद्देशक समाप्तिरिति ॥२६॥ नवरमुच्चावचानीति अधमोत्तमानि नानाप्रकाराणि वासस्थानानि गमंतीति गर्भतोग्रमंतोगर्भाज्जन्मेष्यंति यास्यंत्यनंतशो निर्विच्छेदमिति ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं प्रत्याह । ब्रवीम्यहं तीर्थंकराज्ञया न स्वमनीषिकया सचाहं ब्रवीमि येन मया तीर्थंकरसकाशाछ्रुतं । एतेनच क्षणिकवादिनिरासो दृष्टव्यः ॥२७॥ इति समयाख्यप्रथमाध्ययने प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

अथ प्रथमाध्ययनेद्वितीयउद्देशकः प्रारन्यते

आघायं पुण एगेसिं, उववन्ना पुढो जिया ॥ वेदयंति सुहं दुःखं, अज्ज वा लुप्पंति गणउ ॥ १ ॥ न तं सयं कडं डुक्खं, कउ अन्नकडं च णं॥सुहं वा जइ वा डुखं, सेहियं वा असेहियं ॥ २ ॥ सयं कडं न असेहिं, वेदयंति पुढो जिया ॥ संगइअं तं तहा तेसिं, इहमेगेसि आहिअं ॥३॥

अर्थ—पुणके० वली एगेसिंके० एक नियतवादिने मते, आघायंके० एम कहुंछे. टले तेनो जे अनिप्राय छे ते कहेछे. उववन्नापुढोजियाके० पृथक् पृथक् नारकादिनवे जे जीवछे, ते पोतपोताना देहस्थित थका सुहंडुक्खं के० सुखडुःखने वेदयंतिके० वेदेछे. अडुवाके० अथवा ते प्राणीउ सुख डुःख अनुनवता गणउके० ते स्थानकथ पोतानुं आयुष्य पूर्णकरीने लुप्पंतिके० स्थानांतरे संक्रमे. एम नियतवादी कहेछे ॥ १ ॥ वली पण बेगाथाए नियतवादीनां मतनो अनिप्राय कहेछे. जे ते ... सुख डुःख अनुनवेछे, एक स्थानक थकी बीजे स्थानके उपजेछे, नतंसयंकडंडुक्खंके० ते डुःखादिक ते जीवनुं पोतानुं कीधेलुं नथी. तेम कउअन्नकडंचणं के० अनेरा का

अनुनवंति । पुनःपुनः संसारचक्रवाले व्याधिमृत्युजराभिराकुले व्याप्ते ॥ २६ ॥ तेषां डुःखफलमुपसंहारं चाह । (उच्चेति) । उच्चावचान्यधमोत्तमानि स्थानानि गछंतोभ्रमंतोगर्भाज्जन्मेष्यंति यास्यंत्यनंतशः । (नायपुत्तेति) । ज्ञातः सिद्धार्थक्षत्रियस्तस्य पुत्रः श्रीमहावीरो जिन एवमुक्तवान् । इति ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं प्रत्याहेति ॥ २७ ॥ इति श्रीसूत्रकृते द्वितीयांगे प्रथमाध्ययनेप्रथमोद्देशकव्याख्या संपूर्णा ॥ ॥

॥ टीका–यत्पुनस्ते प्राप्नुवंति तद्दर्शयितुमाह (नाणाविहाइंइत्यादि) नानाविधानि बहुप्रकाराणि डुःखान्यासातोदयलक्षणान्यनुनवंति पुनः पुनः । तथाहि नरकेषु करपत्रदारण,कुंनीपाक,तप्तायःशाल्मलीसमालिंगनादीनि तिर्यक्षु च शीतोष्णादिदमनांकताडनाऽतिनारारोपणक्षुत्तृडादीनि । मनुष्येषु इष्टवियोगाऽनिष्ठसंयोगशोकाक्रंदनादीनि देवेषु चाभियोगेर्ष्याकिल्बिषिकत्वच्यवनादीन्यनेकप्रकाराणि डुःखानि ये एवंनूता वादिनस्ते पौनःपुन्येन समनुनवंति। एतच्च श्लोकार्द्धं सर्वेषूत्तरश्लोकार्धेषु योज्यं। शेषं सुगमं यावडुद्देशकसमाप्तिरिति ॥ २६॥ नवरमुच्चावचानीति अधमोत्तमानि नानाप्रकाराणि वासस्थानानि गछंतीति गछंतोभ्रमंतोगर्भाज्जन्मेष्यंति यास्यंत्यनंतशो निर्विछेदमिति ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं प्रत्याह । ब्रवीम्यहं तीर्थंकराज्ञया न स्वमनीषिकया सचाहं ब्रवीमि येन मया तीर्थंकरसकाशाच्छ्रुतं । एतेनच क्षणिकवादिनिरासो डष्टव्यः ॥२७॥ इति समयाख्यप्रथमाध्ययने प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

अथ प्रथमाध्ययनेद्वितीयउद्देशकः प्रारभ्यते

आघायं पुण एगेसिं, उववन्ना पुढो जिया ॥ वेदयंति सुहं डुःखं, अडु वा लुप्पंति ठाणउ ॥ १ ॥ न तं सयं कडं डुक्कं, कउ अन्नकडं च णं॥सुहं वा जइ वा डुखं, सेहियं वा असेहियं ॥ २ ॥ सयं कडं न अणेहिं, वेदयंति पुढो जिया ॥ संगइअं तं तहा तेसिं, इहमेगेसि आहिअं ॥३॥

अर्थ–पुणके० वली एगेसिंके० एक नियतवादिने मते, आघायंके० एम कहुंछे. एटले तेनो जे अनिप्राय छे ते कहेछे. उववन्नापुढोजियाके० पृथक् पृथक् नारकादिकनवे जे जीवछे, ते पोतपोताना देहस्थित थका सुहंडुक्कं के० सुखडुःखने वेदयंतिके० वेदेछे. अडुवाके० अथवा ते प्राणीउ सुख डुःख अनुनवता ठाणउके० ते स्थानकथी पोतानुं आयुष्य पूर्णकरीने लुप्पंतिके० स्थानांतरे संक्रमे. एम नियतवादी कहेछे. ॥ १ ॥ वली पण बेगाथाए नियतवादीनां मतनो अनिप्राय कहेछे. जे ते प्राणी सुख डुःख अनुनवेछे, एक स्थानक थकी बीजे स्थानके उपजेछे, नतंसयंकडंडुक्कंके० ते डुःखादिक ते जीवनुं पोतानुं कीधेलुं नथी. तेम कउअन्नकडंचणं के० अनेरा का

॥ टीका–न चासौ मानः क्रियमाणोगुणायेति दर्शयितुमाह । (नतस्सजाईत्यादि) नहि तस्य लघुप्रकृतेरभिमानोद्धुरस्य जातिमदः कुलमदोवा क्रियमाणः संसारं पर्यटत स्त्राणं भवति । नह्यभिमानोजात्यादिकऐहिकामुष्मिकगुणयोरुपकारीति । इहच मातृसमु ह्थाजातिः पितृसमुत्थं कुलं एतच्चोपलक्षणमन्यदपि मदस्थानं न संसारत्राणायेति । यत्पुनः संसारोत्तारकत्वेन त्राणसमर्थं तद्दर्शयति । ज्ञानं च चरणं च ज्ञानचरणं तस्मादन्यत्र संसारोत्तारणत्राणाशा न विद्यते । एतच्च सम्यक्त्वोपबृंहितं सत् सुष्टु चीर्णं सुचीर्णं संसा राडुत्तारयति । ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षइति वचनात् । एवंभूते सत्यपि मोक्षमार्गे निष्क्रम्या पि प्रव्रज्यां गृहीत्वापि कश्चिदपुष्टधर्मा संसारोन्मुखः सेवतेऽनुतिष्ठत्यभ्यस्यति पौनःपुन्ये न विधत्ते अगारिणां गृहस्थानामंगं कारणं जात्यादिकं मदस्थानं पाठांतरं वा (अगारि कम्मंति) अगारिणां कर्मानुष्ठानं सावद्यमारंभं जातिमदादिकं वा सेवते । नचासावगा रिकर्मणां सेवकोऽशेषकर्ममोचनाय पारगोभवति । निःशेषकर्मक्षयकारी न भवतीति भा वः । देशमोचनात्तु प्रायशः सर्वेषामेवासुमतां प्रतिक्षणमुपजायतइति ॥ ११ ॥ पुनरप्य भिमानदोषाविर्भावनायाह । (णिक्किंचणेइत्यादि) बाह्येनार्थेन निष्किंचनोपि भिक्षण शीलोभिक्षुः परदत्तभोजी तथा सुष्ठुरूक्षमंतप्रांतं वल्लचणकादि तेन जीवितुं प्राणधारणं कर्तुं शीलमस्य स सुरूक्षजीवी एवंभूतोपि यः कश्चिद्गारवक्रियोभवति । तथा श्लोक कामी आत्मश्लाघाभिलाषी भवति । सचैवंभूतः परमार्थमबुध्यमानएतदेवाकिंचनत्वं सुरूक्षजीवित्वं वात्मश्लाघा तत्परतया आजीवमाजीविकामात्मवर्तनोपायं कुर्वाणः पुनःपुनः संसारकांतारे विपर्यासं जन्मजरामरणरोगशोकोपद्रवमुपैति गच्छति तदुत्तरणा यान्युद्यतोवा तत्रैव निमज्जतीत्ययं विपर्यासइति ॥ १२ ॥

जे भासवं भिक्खु सुसाहुवादी, पडिहाणवं होइ विसारए य ॥
आगाढपन्ने सुविभावियप्पा, अन्नं जणं पन्नसा परिहवेज्जा॥१३॥
एवं ण से होइ समाहिपत्ते, जे पन्नवं भिक्खु विउक्कसेज्जा ॥ अ
हवा वि जे लाभमयावलित्ते, अन्नं जणं खिंसति बालपन्ने॥ १४ ॥

अर्थ–(जे भासवंभिक्खुसुसाहुवादी के०) जे साधु भाषाना गुण तथा दोषनो जाण तथा सुसाहुवादी एटले प्रिय वचननो बोलनार एटले क्षीराश्रव मध्वाश्रव लब्धीवा लो वली (पडिहाणवंहोइ के०) प्रतिभावंत एटले उत्पातिकादिक चार प्रकारनी बुद्धिनो पारंगामि होय तथा (विसारएय के०) विशारद एटले पंमित अर्थ ग्रहण करवाने समर्थ (आगाढपन्ने के०) आगाढप्रज्ञ एटले प्रस्ताववेता अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र,

काल अने नावनो जाण तथा (सुविनाविपण्पा के०) नानाप्रकारनी नावनायें करी ने नाव्योछे आत्मा जेमनो एवो ढतो (अन्नंजणंपन्नसापरिहवेज्जा के०) अन्य जन प्रत्ये पोतानी प्रज्ञाये करी एटले पोताना जाणपणे करी परानवे अर्थात् एम जाणे जे माहारा समान कोइ जाण पुरुष नथी एरीते बीजाने तृणवत गणे. ॥ १३ ॥ एवा साधुने दोष कहेछे. (एवंणसेहोइसमाहिपत्ते के०) एरीते अहंकारनो कर नार जे साधु होय ते समाधिने प्राप्त थयो न कहेवाय (जेपन्नवंनिरकुविउक्कसेज्जा के०) जे साधु प्रज्ञावंत थईने व्युत्कर्ष एटले गर्वने धारण करे (अहवाविजेलानमयावलित्ते के०) अथवा जे कोइ साधु अल्पांतराय थको लानवान् एटले बीजाने उपकरण आ पवाने समर्थ ढतो लानना मदे करी लिप्त थाय एटले मत्त थाय (अन्नंजणंखिंसति बालपन्ने के०) अन्य जनने खिंसे एटले बीजानी निंदा करे अने एम विचारे जे सर्व साधारण सय्या संस्तारक प्रमुख लाववाने हुंज समर्थछुं बीजा बापडा शुं ? पेट नरवाने पण समर्थ नथी एवो साधु बाल एटले मूर्ख बुद्धिवालो जाणवो. ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—नापावान् नापागुणदोषज्ञोयोनिक्षुः सुसाधुवादी हितमितवादी प्रतिना नमुत्पत्तिक्यादिबुद्धिस्तद्वान विशारदोऽर्थग्रहणसमर्थः । अगाढा तत्त्वनिष्ठा प्रज्ञा बु द्धिर्यस्य सोगाऽढप्रज्ञः सुविनावितोधर्मवासनावासितआत्मायस्य सतथा । एनिर्गुणैः साधुर्नवति यश्च मदवानन्यं जनं स्वकीयया प्रज्ञया परिनवेत् ॥ १३ ॥ तद्दोषानाह । ए वं परपरिनवकारी समाधिर्धर्मध्यानं तत्र प्राप्तोन नवति । यः प्रज्ञावान् निक्षुरुत्कर्षेत् ग र्वं कुर्यात् । अथवा योलानमदावलिप्तः स्यात् लानमदेन व्याप्तः स्यात्सोन्यं जनं निंदति बालप्रज्ञोमूर्खप्रायस्तन्निंदयाच समाधिं न प्राप्नोतीति ॥ १४ ॥

॥ टीका—यस्मादमी दोषाः समाधिमाख्यातमसेवमानानामाचार्यपरिनाषिणां वा त स्मादमीनिः शिष्यगुणैर्नाव्यमित्याह । (जेनासवमित्यादि) नापागुणदोषज्ञतया शो ननमापायुक्तोनापावान् निक्षुः साधुस्तथा सुष्ठु साधु शोननं हितं मितं प्रियं वदितुं शी लमस्येत्यसौ सुसाधुवादी क्षीरमध्वाश्रववादीत्यर्थः । तथा प्रतिना नामोत्पत्तिक्यादिबुद्धि गुणसमन्वितस्तेनोत्पन्नप्रतिनत्वं तत्प्रतिनानं विद्यते यस्यासौ प्रतिनानवान् अपरेणा क्षिप्तस्तदनंतरमुत्तरदानसमर्थः । यदिवा धर्मकथावसरे कोयं पुरुषः कंच देवताविशेषं प्रणतः कतरद्वा दर्शनमाश्रितइत्येवमासन्नप्रतिनतया यथायोगमाचष्टे तथा विशारदोऽर्थ ग्रहणसमर्थोबहुप्रकारार्थकथनसमर्थोवा चशब्दाच्च श्रोत्रनिप्रायज्ञस्तथा अगाढाऽवगाढा परमार्थपर्यवसिता तत्त्वनिष्ठा प्रज्ञा बुद्धिर्यस्यासावगाढप्रज्ञस्तथा सुष्ठु विविधं नावितोधर्मे

वासनया वासितआत्मा यस्यासौ सुविनावितात्मा । तदेवमेनिः सत्यनापादिनिर्गुणैः शोननः साधुर्नवति । यश्चैनिरेव निर्जराहेतुनूतैरपि मदं कुर्यात्तद्यथाऽहमेव नाषाविधिज्ञस्तथा साधुवाद्यहमेवच न मत्तुल्यः प्रतिनानवानस्ति नापि मत्समानोलौकिकोलोकोत्तरशास्त्रार्थविशारदोऽवगाढप्रज्ञः सुनावितात्मेति चैवमात्मोकर्षवानन्यं जनं स्वकीयया प्रज्ञया परिनवेत् एवं मन्यते । तथाहि । किमनेन वाऽकुंठेन डर्डुरूढेन कुंडिकाकार्पासकतुल्येन खसूचिना कार्यमस्ति क्वचित्सनायां धर्मकथावसरे वेत्येवमात्मोत्कर्षवान् नवति । तथाचोक्तं । अन्यैः स्वेन्नारचितानर्थविशेषान् श्रमेण विज्ञाय ॥ कृत्स्नं वाङ्मयमितइति खादत्यंगानि दर्पेणेत्यादि ॥ १३ ॥ सांप्रतमेतद्दोषानिधित्सयाह । (एवंणसेइत्यादि) एवमनंतरोक्तया प्रक्रियया परपरिनवपुरःसरमात्मोत्कर्षं कुर्वन्नशेषशास्त्रार्थविशारदोपि तत्त्वार्थगाढप्रज्ञोप्यसौ समाधिं मोक्षमार्गं ज्ञानदर्शनचारित्ररूपं धर्मध्यानाख्यं वा न प्राप्तोनवत्युपर्यैवासौ परमार्थोदन्वतः प्लवते । कथंनूतोनवतीति दर्शयति । योह्यविदितपरमार्थतयात्मानं सद्बेसुधीकं मन्यमानः स्वप्रज्ञया निकुरुत्कर्षैर्जवं कुर्यान्नासौ समाधिं प्राप्तोनवतीति प्राक्तनेन संबंधः । अन्यदपि मदस्थानदोषमुद्घट्टयति । अथवेति पक्षांतरे । योह्यल्पांतरायोलब्धिमानात्मकृते परस्मै चोपकरणादिकमुत्पादयितुमलं सलघुप्रकृतितया लानमदावलिप्तोनवति तदवलिप्तश्च समाधिमप्राप्तोनवति । सचैवंनूतोऽन्यं जनं कर्मोदयादलब्धिमंतं खिंसइत्ति निंदति परिनवति वक्ति च नमत्तुल्यः सर्वसाधारणः शय्यासंस्तारकाद्युपकरणोत्पादकोविद्यते किमन्यैः स्वोदरनरणव्यग्रतया काकप्रायैः कृत्यमस्तीत्येवं बालप्रज्ञोमूर्खप्रायोऽपरजनापवादं विदध्यादिति तदेवं प्रज्ञामदावलेपादन्यस्मिन् जने निंद्यमाने बालसदृशैर्नूयते यतोतः प्रज्ञामदोन विधेयोन केवलमयमेव विधेयोन्यदपि मदस्थानं संसारजिहीर्षुणा नविधेयमिति ॥ १४ ॥

पन्नामयं चेव तवोमयंच, णिन्नामए गोयमयं च निक्खू ॥ आ
जीवगं चेव चउत्थमाहु, से पंमिए उत्तम पोग्गलेसे ॥ १५ ॥ ए
याइं मयाइं विगिंच धीरा, ण ताणि सेवंति सुधीरधम्मा ॥ ते स
व्वगोत्तावगया महेसी, उच्चं अगोत्तं च गतिं वयंति ॥ १६ ॥

अर्थ–(पन्नामयंचेवतवोमयंच के०) प्रज्ञानो मद तेम वली तपनो मद एटले हुं बुद्धिवान हुं हुं तपस्यावान हुं एवो जे मद तेने (णिन्नामए के०) नमाडे एटले एवो मद नकरे तथा (गोयमयंचनिक्खू के०) गोत्रनो मद साधु नकरे एटले माहरो उंच गोत्रछे हुं उत्तम कुलमां जन्म पाम्योछुं एवो अहंकार साधु नकरे (आजीवगंचेवचउ

हमादु के०) आसमंतथी जीते आजीविकाअर्थः एटले चोथो आजीविक एटले अर्थ अर्थात् धन तेनो मद साधु नकरे एम बीजो पण कोइ प्रकारनो मद नकरे (सेपंमि एउत्तमपोग्गलेसे के०) ते पंमित उत्तम पुजलने विषे पोते निस्पृह एवा आत्मावालो ते साधु जाणवो ॥ १५ ॥ (एयाइंमयाइविगिंचधीरा के०) ए पूर्वोक्तजे प्रज्ञादिक मद ना स्थानक कह्या तेने धैर्यवान साहसीक पुरुष संसारना कारण जाणीने पोताना आत्मा थकी जूदा करे (णताणिसेवंतिसुधीरधम्मा के०) एटला मदना स्थानकने सुप्र तिष्ठित जेनो धर्मछे एवा पुरुष नसेवे एटले आदरे नही (तेसव्वगोत्तावगयामहेसी के०) ते समस्त गोत्रादिक मदरहित एवो महाऋषीश्वर जे होय एवाने फल कहेछे. (उच्चंअ गोत्तंचगतिंवयंति के०) उंच अने अगोत्र एटले जेने विषे नामगोत्रादिक कर्म नथी तेवी गति पामे एटले ते साधु मोक्षने विषे जाय ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–प्रज्ञा बुद्धिस्तया मदस्तं तपोमदं च निर्नामयेन्निश्चयेनापनयेत् गोत्रमदं च निष्कुर्नामयेत् । आजीवोर्थनिचयस्तं गछत्याजीवगोऽर्थमदस्तं च चतुर्थं नामयेत् ॥ तु शब्दाच्छेषानपि मदान् वर्जयेत् सपुजलआत्मा पंडितउत्तमश्च स्यात् ॥ १५ ॥ एतानि प्र ज्ञादीनि मदस्थानानि विगिंच पृथक्कुर्याद्वर्जयेत् । धीराज्ञाततत्त्वाः । सुधीरः सुप्रतिष्ठि तोधर्मोयेषां ते सुधीरधर्माणएवंभूतास्तानि मदस्थानानि नासेवंते ते सर्वस्माडच्चैर्गोत्रा देरपगतामहर्षयउच्चां मोक्षाख्यां गतिं व्रजंति । अगोत्रां गोत्रकर्मोपलक्षणादन्यदपि कर्म तत्र न विद्यतइति ॥ १६ ॥

॥ टीका–तदर्शयितुमाह । (पत्रामयंचेवेत्यादि) प्रज्ञया तीक्ष्णबुध्या मदः प्रज्ञाम दस्तंच तपोमदं निश्चयेन नामयेन्निर्नामयेदपनयेदहमेव यथाविधशास्त्रार्थस्य वेत्ता तथा हमेव विकृष्टतपोविधायी नापि तपसोग्लानिमुपगछामीत्येवं रूपं मदं न कुर्यात्तथोच्चै र्गोत्रे इक्ष्वाकुवंशहरिवंशादिके संभूतोहमित्येवमात्मकं गोत्रमदंच नामयेदिति । आसमं ताज्जीवंत्यनेनेत्याजीवोऽर्थनिचयस्तं गछत्याश्रयत्यसावाजीवगोऽर्थमदस्तं च चतुर्थं नाम येच्चशब्दाच्छेषानपि मदान्नामयेत्तन्नामनाच्चा सौ पंमितस्तत्त्ववेत्ता भवति । तथाऽसावेव स मस्तमदापनोदकउत्तमपुजलआत्मा भवति । प्रधानवाची वा पुजलशब्दस्ततश्चायमर्थः । उत्तमोत्तमोमहतोपि महीयान भवतीत्यर्थः ॥१५॥ सांप्रतं मदस्थानानामकरणीयत्वमुप दर्शयोपसंजिहीर्षुराह । (एयाइंइत्यादि) एतानि प्रज्ञादीनि मदस्थानानि संसारकारणत्वेन सम्यक्परिज्ञाय (विगंचत्ति) पृथक्कुर्यादात्मनोऽपनयेदिति यावत् । धीर्बुद्धिस्तया राजंतइति धीराविदितवेद्यास्तानि जात्यादीनि मदस्थानानि सेवंत्यनुतिष्ठंति । क एते । ये सुधीराः

सुप्रतिष्ठितोधर्मः श्रुतचारित्राख्योयेषां ते सुधीरधर्माणस्ते चैवंभूताः परित्यक्तसर्वमदस्थाना महर्षयस्तपोविशेषशोषितकल्मषाः सर्वस्माडुच्चैर्गोत्रादेरपगतागोत्रोपगताः संतउच्चां मोक्षाख्यां सर्वोत्तमां वा गतिं व्रजंति गछंति चशब्दात्पंचमहाविमानेषु कल्पेषु कल्पातीतेषु वा व्रजंति। अगोत्रोपलक्षणाच्चान्यदपि नामकर्मायुष्कादिकं तत्र नविद्यतइति द्रष्टव्यं ॥ १६ ॥

भिक्खू मुयच्चे कय दिठधम्मे, पाठांतरे (तहदिठधम्मे) गामं च णगरं च अणुप्पविस्सा ॥ से एसणं जाण मणेसणं च, अन्नस्स पाणस्स अणाणुगिद्धे ॥ १७ ॥ अरतिं रतिं च अभिभूय भिक्खू, बहूजणे वा तह एगचारी ॥ एगंतमोणेण वियागरेज्जा, एगस्स जंतो गति रागतीय ॥ १८ ॥

अर्थ—(भिक्खू के०) ते साधु (मुयच्चे के०) शरीर संस्काररहित (कयदिठधम्मे के०) तथा दृष्ट एटले दीठोछे यथावस्थित धर्म जेणे अथवा दृढधर्मि एटले धर्मने विषे दृढ एवो छतो कोइक अवसरे (गामंचणगरंचअणुप्पविस्सा के०) भिक्षादिकने अर्थे ग्राम नगर द्रोण मडादिकने विषे प्रवेश करे (सेएसणंजाणमणेसणंच के०) ते एषणा एटले आहारनी शुद्धि जाणतो तथा अनेषणीय एटले आहारना अशुद्धतापणाने पण जाणतो थको उद्गमादिक दोषने सम्यक् प्रकारे टालतो थको (अन्नस्स पाणस्सअणाणुगिद्धे के०) अन्नने विषे तथा पाणीने विषे अगृद्ध थको लोल्यता रहित एवो छतो साधु विचरे ॥ १७ ॥ (अरतिंरतिंचअभिभूयभिक्खू के०) कदाचित साधुने अंतप्रांत भोजने तथा अस्ताने करी कर्म योगें संयमने विषे अरति उपजे अने असंयमने विषे रति उपजे तेवारे संसारनुं स्वभाव अस्थिर जाणीने नरकादिकना दुःखने स्मरण करतो थको उत्पन्न थयली रति अरतिनुं निराकरण करे एम रति अरतिने जीतीने सूधो संयम पाले (बहूजणेवातहएगचारीके०) तथा घणा जन सहित छतो तथा एकचारी एटले एकलो छतो पूछ्यो अथवा नपूछ्यो थको पण (एगंतमोणेणवियागरेज्जा के०) एकांत निरवद्य भाषा बोले कारणके अन्यजनोनो दाक्षिणपणो ते जीवने त्राण भणी नथाय तेमाटे धर्मकथाने प्रस्तावें साधु एकांत निरवद्य भाषा बोले अने वीजे प्रस्तावे मौन रहे (एगस्सजंतोगतिरागतीय के०) जीवने गति आगति ते एकला नेज करवी पडेछे. त्यारे जीवने एकलो परलोक गमनागमन करता एक धर्म विना वीजो कोइ सहायकारी नथी एवीरीते साधु पोताना मनमां जाणे ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—सभिक्षुर्मृतेच स्नानादिसंस्काराभावादर्चा शरीरं यस्य समृतार्चः । तथा

कृतश्चाचरिनोदृष्टोऽव्यवस्थितोऽवगतश्च धर्मोयेन सतथा । एवंनूतोग्रामं नगरं वाऽनुप्रविश्य निक्षार्थमेषणां गवेषणग्रहणैषणां तथाऽनैषणामुजमदोषादिकां च जानन्नन्नस्य पानस्य वाऽननुगृध्दोऽनासक्तः सम्यग्विहरेत् ॥ १७ ॥ अरतिं रतिं वाऽनिनूय त्यक्त्वा निक्षुरेकांतमौनेन संयमेन व्यागृणीयात् धर्मसंबंधं ब्रूयात् । किंनूतः साधुः । बहवोजनाः संयमसहायायस्य सबहुजनोगच्छवासी। अथवा एकचारी एकल्लविहारी जिनकल्पादिर्वा । किंब्रूयादित्याह् । एकस्य जंतोः कर्मानुगतस्य परलोके गतिरागतिश्च स्यादिति ॥ यतः । एकः प्रकुरुते कर्म,ज्जुनक्त्येकश्च तत्फलं ॥ जायते म्रियते चैक,एकोयाति नवांतरमिति ॥ १ ७॥

॥ टीका–किंच । (निरकूमुयच्चेइत्यादि) सएवं मदस्थानरहितोनिक्षणशीलोनिक्षुः । तं विशिनष्टि । मृतेच स्नानविलेपनादिसंस्काराजावादर्चा तनुः शरीरं यस्य समृतार्चः । यदिवा मोदनं मुत् तन्नूता शोजनाऽर्चा पद्मादिका लेश्या यस्य सनवति मुदर्चः प्रशस्तदर्शी लेश्यः । तथा दृष्टोऽवगतोयथावस्थितोधर्मः श्रुतधर्मचारित्राख्योयेन सतथा चैवंनूतः क्वचिदवसरे ग्रामं नगरमन्यद्वा मगादिकमनुप्रविश्य निक्षार्थमसावुत्तमधृतिसंहननोपपन्नः सन्नेषणां गवेषणग्रहणैषणादिकां जानन् सम्यगवच्छन्ननैषणां चोजमदोषादिकां तत्परिहारं विपाकं च सम्यगवगच्छन्नन्नस्य पानस्य वा नतु गृध्दोऽनध्युपपन्नः सम्यग्विहरेत् । तथाहि । स्थविरकल्पिकाद्विचत्वारिंशद्दोपरहितां निक्षां गृण्हीयुर्जिनकल्पिकानां तु पंचसु निग्रहो द्वयोर्ग्रहस्ताश्चेमाः । संसठमसंसठा,उध्दड तह होंति अप्पलेवाय ॥ उग्गहिया पग्गहिया, उज्झियधम्माय सत्तमीया ॥ १ ॥ अथवा योयस्यानिग्रहः सतस्यैषणा अपरात्वनैषणेत्येवमेषणानैषणानिज्ञः क्वचित्प्रविष्टः सन्नाहारादावमूर्छितः सम्यक्शुध्दां निक्षां गृण्हीयादिति ॥ १७ ॥ तदेवं निक्षोरनुकूलविषयोपलब्धिमतोप्यरक्तद्विष्टतया तथा दृष्टमप्यदृष्टं श्रुतमप्यश्रुतमित्येवं नावयुक्ततया च मृतकल्पदेहस्य सुदृष्टधर्मेणएषणानेषणानिज्ञस्यान्नपानादावमूर्छितस्य सतः क्वचिद्ग्रामनगरादौ प्रविष्टस्याऽसंयमे रतिररतिश्च संयमे कदाचित्प्राडुष्यात्सा चापनेतव्येत्येतदाह । (अरइंरइंचेत्यादि) महामुनेरप्यस्नानतयामलाविलस्यांतप्रांतवल्लचणकादिनोजिनः कदाचित्कर्मोदयाऽरतिः संयमे समुत्पद्येत तां चोत्पन्नामसौ निक्षुः संसारस्वनावं परिगणय्य तिर्यङ्नारकादिडुःखं चोत्प्रेक्षमाणश्चलं संसारिणामायुरित्येवं विचिंत्यानिनवेदनिनूय वाऽसावेकांतमौनेन व्यागृणीयादित्युत्तरेण संबंधः । तथा रतिं वाऽसंयमे सावद्यानुष्ठाने अनादिनवान्यासाडुत्पन्नामनिनवेदनिनूय संयमोद्युक्तोनवेदिति । पुनः साधुमेव विशिनष्टि । बहवोजनाः साधवोगच्छवासितया संयमसहायायस्य सबहुजनस्तथैकएव चरति तच्छीलश्चैकचारी सच प्रतिमाप्रतिपन्नएकल्लविहारी जिनकल्पादिर्वा स्यात्सच बहुजनएकाकीवा केनचित्पृष्टोऽपृष्टोवैकांतमौनेन संय

मेन करणनूतेन व्यागृणीयात् धर्मकथावसरेऽन्यदा संयमाबाधया किंचिद्धर्मसंबद्धं ब्रूयात् । किंपरिगणय्यैतत्कुर्यादित्याह । यदिवा किमसौ ब्रूयादिति दर्शयति । एकस्याऽसहायस्य जंतोः शुनाशुनसहायस्य गतिर्गमनं परलोके नवति तथाऽऽगतिरागमनं नवांतराडुपजायते कर्मसहायस्यैवेति । उक्तंच । एकः प्रकुरुते कर्म नुनक्त्येकश्च तत्फलं ॥ जायते म्रियते चैक, एकोयाति नवांतरमित्यादि । तदेवं संसारे परमार्थतोन कश्चित्सहायोधर्ममेकं विहायैतद्विगणय्य मुनीनामयं मौनः संयमस्तेन तत्प्रधानं वा ब्रूयादिति ॥ १८॥

सयं समेच्चा अडुवा वि सोच्चा, नासेऊ धम्मं हिययं पयाणं ॥
जे गरहिया सणियाणप्पउगा, ण ताणि सेवंति सुधीरधम्मा १९
केसिंचि तक्काइ अबुज्ज नावं, खुद्दंपि गछेऊ असद्दहाणे॥आउस्स
कालाइचरं वघाए, लद्धाणु माणे य परेसु अछे ॥ २० ॥

अर्थ–(सयंसमेच्चा अडुवाविसोच्चा के०) चतुर्गतिक संसारनुं कारण मिथ्यात्वादिक बे तथा मोक्षस्वरूपनुं कारण सम्यक् ज्ञानादिकबे एवुं परोपदेशविना स्वयं पोतेज जाणीने अथवा गुर्वादिकनी पाशेथी श्रवण करीने (नासेऊधम्मंहिययंपयाणं के०) समस्त प्रजा एटले त्रस तथा स्थावर जीवोने हितकारक एवो श्रुतचारित्ररूप जे धर्म तेने नापे एटले कहे एवो साधु जाणवो ए उपादेयपणु कह्यो हवे हेयपणु एटले जे पदार्थ बांधवा योग्यबे ते कहेबे (जेगरहिया के०) जे मिथ्यात्व अविरति प्रमादादिक एवा पदार्थ जे जगतमांहे गरहा एटले निंदनीक बे तथा (सणियाण के०) नीयाणा सहित एवा जे (प्पउगा के०) प्रयोग होय तेने (णताणिसेवंति सुधीरधम्मा के०) जे धर्मने विषे धीर पुरुष होय ते नसवे न आचरे ॥ १९ ॥ (केसिंचि तक्काइ अबुज्ज नावं के०) कोईएक मिथ्यादर्शनीनो अनिप्राय जाण्याविना साधु तथा श्रावकनो धर्म स्थापन करवानी इच्छाये कदाचित् साधु तेपर तीर्थिक आगल तिरस्कारना वचन बोले (खुदंपिगछेऊअसद्दहाणे के०) तेवारे ते मिथ्यादर्शनी श्री वीतरागना वचनउपर अ सद्दहणा करतो थको क्रुद्धपणुं करे एवो बतो विरूप करे जेम पालक प्रोहितनो स्कंद सूरिउपर क्रुद्धनाव थयो तेनी पेरे जाणवुं (आउस्सकालाइचरंवघाए के०) आयुष्यना कालनुं प्रमाण घणो होय तेने घटाडे अर्थात् आयुष्यनुं विनाश करे (लद्धाणुमाणे यपरेसुअछे के०) ते माटे साधु जन आगलानुं अनिप्राय लईने पछी तेना आगल अर्थ प्रकाशे स्वपरोपकारने अर्थे बोले अन्यथा मौनमेव श्रेय ॥ २० ॥

॥ दीपिका–स्वयं नवस्वरूपं समेत्य ज्ञात्वाऽथवाऽन्यस्मात् श्रुत्वाऽन्यस्मै धर्मं नाषेत।

किंनूतं धर्मं प्रजानां जीवानां हितदं। ये च गर्हितानिंद्याः सह निदानेनाऽऽशंसारूपेण वर्तंते ते सनिदानाः प्रयोगाव्यापाराः कर्मबंधहेतवस्तान् सुधीरधर्माणोनिरुदोन सेवंते ॥ १९ ॥ केषांचिन्मिथ्यादृशां नावमनिप्रायमबुध्वाऽज्ञात्वा तीर्थिकतिरस्कारप्रायं वचोवदेत् कश्चित्साधुः श्रावकोवा सच तद्वचोश्रद्दधानः क्रुद्धत्वमपि गच्छेत् विरूपं कुर्यात् पालकपुरोहितइव स्कंदकाचार्यस्य सकुपितोवक्तुर्यदायुस्तस्य व्याघातरूपं क्षयस्वनावं कालातिचारं दीर्घस्थितिकमप्यायुः संवर्तयेत् ।कोर्थः। पुरुषविशेषं ज्ञात्वा हि देशना कार्या।अन्यथा श्रोता विरुद्धवचः श्रवणकुपितोमरणाद्युपसर्गमपि वक्तुः कुर्यादिति तस्माल्लब्धमनुमानं परानिप्रायज्ञानं येन सलब्धानुमानः परेषु प्रतिपाद्येषु यथायोगमर्थान जीवादिकान् वदेत् ॥ २० ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (सयंसमेच्चेत्यादि) स्वयमात्मना परोपदेशमंतरेण समेत्य ज्ञात्वा चतुर्गतिकं संसारं तत्कारणानि च मिथ्यात्वाविरत्यतिप्रमादकषाययोगरूपाणि तथाऽशेषकर्मक्षयलक्षणं मोक्षं तत्कारणानि च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राण्येतत्सर्वं स्वत एवाववुध्यान्यस्माद्वाचार्यादेः सकाशाच्छ्रुत्वाऽन्यस्मै मुमुक्षवे धर्मं श्रुतचारित्राख्यं नाषेत। किंनूतं। प्रजायंतइति प्रजाः स्थावरजंगमाजंतवस्तेन्योहितं सडुपदेशदानतः सदोपकारिणं धर्मं ब्रूयादिति। उपादेयं प्रदर्श्य हेयं प्रदर्शयति। ये गर्हिताजुगुप्सितामिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगाः कर्मबंधहेतवःसह निदानेन वर्ततइति सनिदानाः प्रयुज्यंतइतिप्रयोगाव्यापाराधर्मकथाप्रबंधावा ममास्मात्सकाशात्पूजालानसंस्कारादिकं नविष्यंतीत्येवंनूतनिदानाऽऽशंसारूपांस्तांश्चारित्रविघ्ननूतान् महर्षयः सुधीरधर्माणोन सेवंते नानुतिष्ठंति। यदिवा ये गर्हिताः सनिदानावाक्प्रयोगास्तद्यथा कुतीर्थिकाः सावद्यानुष्ठानविरतानिःशीलानिर्व्रताः कुटलवेंटलकारिणइत्येवंनूतान्परदोषोद्घट्टनया मर्मवेधिनः सुधीरधर्माणोवाक्कंटकान् नसेवंते नब्रुवनइति ॥ १९ ॥ किंचान्यत्। (केसिंतक्कायेत्यादि) केषांचिन्मिथ्यादृष्टीनां कुतीर्थिकनावितानां स्वदर्शनाग्राहिणां तर्कया वितर्केण स्वमतिपर्यालोचनेन नावमनिप्रायं डुःष्टांतःकरणवृत्तित्वमबुध्वा कश्चित्साधुः श्रावकोवा स्वधर्मस्थापनेच्छया तीर्थिकतिरस्कारप्रायं वचोब्रूयात् सच तीर्थिकस्तद्वचोऽश्रद्दधानोरोचयन्नप्रतिपाद्यमानोऽति कटुकं नावयेत् क्रुद्धत्वमपि गच्छेद्विरूपमपि कुर्यात्। पालकपुरोहितवत् स्कंदकाचार्यस्येति। क्रुद्धत्वगमनमेव दर्शयति। सनिंदावचनकुपितोपि वक्तुर्यदायुस्तस्यायुपोव्याघातरूपं परिक्षयस्वनावं कालातिचारं दीर्घस्थितिकमप्यायुः संवर्तेत्।एतडुक्तं नवति। धर्मदेशनाहि पुरुषविशेषं ज्ञात्वा विधेया।तद्यथा। कोयं पुरुषोराजादिः कंचन देवताविशेषं नतः कतरद्वा दर्शनमाश्रितोऽनिगृहीतोनभिगृहीतोवाऽयमित्येवं सम्यक् परिज्ञाय

यथार्हं धर्मदेशना विधेया । यश्चैतदबुध्वा किंचिद्धर्मदेशना द्वारेण परविरोधकृद्वचोब्रूयात् सपरस्मादैहिकामुष्मिकयोर्मरणादिकमपकारं प्राप्नुयादिति । यतएवं ततोलब्धमनुमानं येन पराभिप्रायपरिज्ञाने सलब्धानुमानः परेषु प्रतिपाद्येषु यथायोगं यथार्हप्रतिपत्त्याऽर्थान् सद्धर्मप्ररूपणादिकान् जीवादीन् स्वपरोपकाराय ब्रूयादिति ॥ २० ॥

कम्मं च छंदं च विगिंच धीरे, विणइज्जउ सवउ आयनावं ॥ रू
वेहिं लुप्पंति नयावहेहिं, विज्जं गहाय तसथावरेहिं ॥ २१ ॥
न पूयणं चेव सिलोयकामी, पियमप्पियं कस्सइ णो करेज्जा ॥
सवे अणठे परिवज्जयंते, अणाउले या अकसाइ भिरकू ॥२२॥
आहत्तहीयं समुपेहमाणे,सवेहिं पाणेहिं णिहाय दंभ ॥ णो जी
वियं णो मरणाहिकंखी, परिवएज्जा वलयाविप्पमुक्केत्तिबेमि ॥
॥ २३ ॥ इति श्रीआहत्तहियंनाम त्रयोदशमध्ययनं सम्मत्तं ॥

अर्थ–(कम्मंचछंदंचविगिंचधीरे के०) धैर्यवान बुद्धिमान साधु देशनाने अवसरे श्रोतानो कर्म एटले अनुष्ठान तथा छंद एटले चित्तनो नाव एने जुदा जुदा जाणीने एतावता सम्यक्रीते जाणीने यथायोग्य नाव धर्म कहे तथा (विणइज्जउसवउआय नावंके०) तथा श्रोता पुरुषनुं आयनाव एटले आत्मनाव ते विषयउपर गृद्धपणुं एटले मिथ्या परिणाम तेने सर्वथा प्रकारे विशेषे करी निर्घाटे एटले दूरकरे अने गुणनेविषे तेने स्थापे (रूवेहिंलुप्पंतिनयावहेहिं के०) वली रूप जे स्त्रियादिकना अंगोपांगना जोवावाला एवा अल्प बुद्धिवान् तुछ प्राणी ते धर्मथकी लोपाए इह लोके छेदनादिक पीडा पामे परलोके नरकादिकना डुःख पामे माटे ए नयना करनारछे ए धर्मथकी च्रष्ट करे एम कोई श्रोता कहे श्रोता स्त्रीनो गृद्ध होय तेवारे अपवाद धरे (विज्जंगहायतसथावरेहिं के०) तेवारे पंमित आगलानो नाव ग्रहण करीने त्रस तथा स्थावर जीवोने हितनो करनार एवो धर्मोपदेश करे ॥ २१ ॥ (नपूयणंचेवसिलोय कामी के०) साधु देशना आपतो थको पूजन तथा वस्त्रादिकना लाननी वांछा नकरे तथा श्लाघा एटले आतमानी प्रशंसा तेनी पण वांछा नकरे तथा (पियमप्पियंकस्सइ णोकरेज्जा के०) राग अने द्वेष कोइनी साथे सर्वथा नकरे अथवा कोइनी निंदा विकथा पण नकरे (सवेअणठेपरिवज्जयंते के०) एम सर्वथा प्रकारे अनिष्ट अनर्थकारी एवी पूजा सत्कारादिक वस्तु तेने समस्तपणे वर्जे (अणाउलेयाअकसाइभिरकू के०) तथा अनाकुल एटले क्रोधादिक रहित आलशरहित तथा कषायरहित एवो छतो

साधु, धर्मनी प्ररूपणा करे ॥ २१ ॥ (आहत्तहीयंसमुपेहमाणे के०) यथातथ्य सत्य मार्ग जे सूत्रगत ठे तेने आलोचतो सम्यक् प्रकारें अनुष्ठानने अन्यासतो थको (सव्वेहिं पाणेहिंणिहायदंमेके०) सर्व प्राणी मात्र जे त्रस अने स्थावर जीवोठे तेनो दंम एटले विनाशनुं त्याग करीने प्राणांते पण धर्मनुं उलंघन नकरे (णोजीवियंणोमरणाहिकंखीके०) जीवितव्य अने मरणनी वांठारहित समतानावसहित थको (परिव्वएज्जावलयाविप्पमुक्के के०) सुधो संयम पाले ते साधु वलय एटले मिथ्यात्व मोह गहनथकी विप्रमुक्त थाय तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥२३॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगना प्रथमश्रुतस्कंधनेविषे यथातथ्य नामे तेरमां अध्ययननो अर्थ संपूर्ण थयो. ॥

॥ दीपिका—धीरोबुद्धिमान् श्रोतुः कर्मानुष्ठानं गुरुलघुकर्मत्वं वा तथा ठंदमनिप्रायं (विगिंच) विवेचयेज्जानीयात् ज्ञात्वा च धर्मकथां कुर्वन् सर्वथा सर्वप्रकारेण पर्षद आत्मनावं मिथ्यात्वादिकं व्यपनयेत् विषयासक्तिं व्यपनयेत् । यतोरूपैर्नयनमनोहारिनिर्नयावहैः संसारनयकारिनिस्तुच्छसत्त्वाविलुप्यंते धर्मात् बाध्यंते एवं विद्वान् पंडितो गृहीत्वा परानिप्रायं त्रसस्थावरेन्योहितं धर्मं वदेत् ॥२१ ॥ साधुर्देशनां कुर्वन् पूजनं वस्त्रपात्रादिलानरूपं न वांठेत् नापिश्लोकं श्लाघां कामयेत् तथा श्रोतुः प्रियं राजकथादिकमप्रियं तदाश्रितदेवनिंदादिरूपं न कथयेत् । एवं सर्वान् दोपान् परिवर्जयेदनाकुलः साधुरकषायी नवेत् ॥ २२॥ योयाथातथ्यं सम्यक्चारित्रं प्रेक्षमाणः पर्यालोचयन् सर्वेषु प्राणिषु दंडं हिंसां निधाय त्यक्त्वा जीवितमसंयमजीवितं न कांक्षेन्नापि मरणानिकांक्षी स्यात् । तदेवं वलयेन मायामोहेन विप्रमुक्तः परिव्रजेत्संयमानुष्ठानं चरेत्साधुः । इति समाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २३ ॥ याथातथ्याख्यं त्रयोदशमध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका—अपिच । (कम्मंचठंदंचेत्यादि) धीरोऽक्षोन्यः सद्बुध्यलंकृतोवा देशनावसरे धर्मकथाश्रोतुः कर्मानुष्ठानं गुरुलघुकर्मनावं वा तथा ठंदमनिप्रायं सम्यग्विवेचयेज्जानीयात् ज्ञात्वा च पर्षदनुरूपामेव धर्मकथिकोधर्मदेशनां कुर्यात्सर्वथा यथा तस्य श्रोतुर्जीवादिपदार्थावगमोनवति । यथाच मनोन दूष्यतेऽपितु प्रसन्नतां व्रजत्येतदनिसंधिमानाह । विनेपेण नयेदपनयेत्पर्षदः पापनावमशुद्धमंतःकरणं तुशब्दाद्विशिष्टगुणारोपणं च कुर्यात् । आयनावं ति क्वचित्पाठः । तस्यायमर्थः । आत्मनावोऽनादिनवान्यस्तोमिथ्यात्वादिकस्तमपनयेद्यदिवात्मनावोविषयगृध्नुताऽतस्तमपनयेदिति । एतद्दर्शयति । रूपैर्नयनमनोहारिनिः स्त्रीणामंगप्रत्यंगार्द्धकटाक्षनिरीक्षणादिनिरल्पसत्त्वाविलुप्यंते सद्धर्माद्बाध्यंते । किंनूतैरूपैर्नयावहैः । नयमावहंति नयावहानि । इहैव तावद्रूपादिविषयासक्तस्य साधुजनजुगुप्सा नानाविधाश्च कर्णनासिकाविकर्तनाविमंबनाः प्रादुर्नवंति जन्मांतरे तिर्यङ्नरकादिके

यातनास्थाने प्राणिनोविषयासक्तावेदनामनुनवंतीत्येवं विद्वान् पंमितोधर्मदेशनानिज्ञो गृहीत्वा परानिप्रायं सम्यगवगम्य पर्षदं त्रसस्थावरेन्योहितं धर्ममाविर्नावयेत् ॥ २१ ॥ पूजासत्कारादिनिरपेक्केण च सर्वमेव तपश्चरणादिकं विधेयं विशेषतोऽधर्मदेशनेत्येतदनि प्रायवानाह । (नपूयणंचेत्यादि) साधुर्देशनां विदधानोन पूजनं वस्त्रपात्रादिलाजरूप मनिकांक्केन्नापि श्लोकं श्लाघां कीर्तिमात्मप्रशंसां कामयेदनिलषेत्तया श्रोतुर्यत्प्रियं राज कथाविकथादिकं बलितकथादिकं च तथाऽप्रियं च तत्समाश्रितदेवताविशेषनिंदादिकं न कथयेदरक्तद्विष्टतया श्रोतुरनिप्रायमनिसमीक्ष्य यथावस्थितं कथयेत् । उपसंहारमाह। सर्वानर्थान् पूजासत्कारलानानिप्रायेण स्वकृतान् परदूषणतया च परकृतान् वर्जयन् परिहरन् कथयेदनाकुलः सूत्रार्थादनुत्तरन्नकषायोनिकुर्नवेदिति ॥ २२ ॥ सर्वाध्ययनोप संहारार्थमाह । (आह्तहीयमित्यादि) यथातथानावोयाथातथ्यं धर्ममार्गसमवरणा ख्याध्ययनत्रयोक्तार्थं तत्त्वं सूत्रानुगतं सम्यक्त्वं चारित्रं वा तत्प्रेक्ष्यमाणः पर्यालोचय न सूत्रार्थं सदनुष्ठानतोन्यसन् सर्वेषु स्थावरजंगमेषु सूक्ष्मबादरनेदनिन्नेषु पृथिवीकाया दिषु दंड्यंते प्राणिनोयेन सदंमः प्राणव्यपरोपणविधिस्तन्निधाय परित्यज्य प्राणात्ययेपि याथातथ्यं धर्मं नोल्लंघयेदिति । एतदेव दर्शयति । जीवितमसंयमजीवितं दीर्घायुष्कं वा स्थावरजंगमजंतुदंडेन नानिकांक्षी स्यात् परीषहपराजितोवेदनासमुद्घातहतोवा त द्वेदनामसहमानोजलानलसंपातापादितजंतूपमर्देन नापि मरणानिकांक्षी स्यात् । तदेवं याथातथ्यमुत्प्रेक्ष्यमाणः सर्वेषु प्राणिषूपरतदंमोपजीवितमरणानपेक्षी संयमानुष्ठानं चरे दुद्युक्तविहारी नवेन्मेधावी मर्यादाव्यवस्थितोविदितवेद्योवा वलयेन मायारूपेण मोह नीयकर्मणा वा विविधं प्रकर्षेण मुक्तोविप्रमुक्तइति । इतिपरिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्व वत् ॥ २३ ॥ समाप्तं च याथातथ्यं त्रयोदशमध्ययनमिति ॥

हवे ग्रंथ परित्याग नामा चौदमो अध्ययन कहेछे. तेरमां अध्ययनमां यथा सत्य पणो कह्यो ते यथा सत्य पणो तो बाह्याभ्यंतररूप द्विविध परिग्रहना त्याग विना न थाय माटे आ चौदमां अध्ययनमां ग्रंथ परित्याग पणो कहेछे.

गंथं विहाय इह सिक्कमाणो, उठाय सुबंभचेरं वसेज्जा ॥ उवा
यकारी विणयं सुसिक्के, जे छेय विप्पमायं न कुज्जा ॥ १ ॥ ज
हा दियापोतमपत्तजातं, सावासगा पवितुं मन्नमाणं ॥ तमंचाइयं
तरुणमपत्तजातं, ढंकाइ अव्वत्तगमं हरेज्जा ॥ २ ॥

अर्थ—(गंथं के०) धनधान्य हिरण्यादिक बाह्य ग्रंथ अने क्रोधादिक अभ्यंतर ग्रंथ ए द्विविध ग्रंथने (विहाय के०) त्यागीने (इह के०) आ प्रवचनने विषे (सिक्क

माणो के०) सम्यक् प्रकारे संयममार्गे शुद्धक्रियारूप शील सीखतो थको (उद्घायसु के०) संयमने विषे उद्यम करीने सुशोजन एवा (बंजचेरंवसेज्जा के०) ब्रह्मचर्यव्रतनुं नव वाडसहित आश्रय करे (उवायकारीविणयंसुसिरके के०) तथा जावजीव शुधी उपायकारी एटले गुरुनी आज्ञा पालतो शोजन प्रकारे करीने विनयज शीखे (जेठेय विप्पमायंनकुज्जा के० जे माह्या पुरुष ठे ते ए कार्यने विषे प्रमाद नकरे ॥ १ ॥ हवे गुरु उपदेशविना पोताने ठंदे गह्वथकी निकलीने जे एकाकी पणे विचरे तेने घणा दोषनी प्राप्ति थाय ते उपर दृष्टांत कहेठे (जहादिया के०) यथा दृष्टांते जेम पक्षी ना (पोतअपत्तजातं के०) बालक ने ज्यां सुधी पांख आवी नथी त्यांसुधी ते पांख विनानो एवो ठतो (सावासगापविउंमन्नमाणं के०) पोताना माला थकी उडवानी वांठा करतो थको पांख फडफडावे परंतु (तमंचाइयं तरुणमपत्तजातं के०) आकरो उडीजवाने असमर्थ थाय अने तेने पांखो थकी हीन मांसपेसी समान एवो न्हानो तरुण देखीने (ढंकाइअवत्तगमंहरेज्जा के०) मांसाहारी एवा ढंकादिक पक्षीउ तेने अपहरीने तेनो विनाश करे ते बालक केवोठे तो के अव्यक्तगतासिवा असमर्थ एटले त्यांथी नाशी जवाने असमर्थ एवोठे ॥ २ ॥

॥ दीपिका–अथ चतुर्दशं ग्रंथाध्ययनमारन्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (गंथमिति) इह प्रवचने ग्रंथं धनादिकं त्यक्त्वा शिक्षमाणोग्रहणसेवनाशिक्षां सेवमानः सडुब्बानेनोब्बाय सुष्ठु शोजनं ब्रह्मचर्यमाश्रित्य वसेत्तिष्ठेदाचार्यवचनस्यावपातोनिर्देशस्तत्कारी आचार्यकथितकारी विनयं सुष्ठु शिक्षेत् कुर्यात् तथा यश्छेकोनिपुणः स विप्रमादं विविधं प्रमादं न कुर्यात् ॥ १ ॥ यथाद्विजपोतः पक्षिशिशुर्नविद्यते पत्रजातं पक्षोद्भवोयस्य सोऽपत्रजातः पक्षहीनस्तं स्वकीयादावासकात् प्लवितुमुत्पतितुं मन्यमानं तत्र पतंतमुपलन्य तं (अचाइयंति) पक्षानावाजंतुमसमर्थमपत्रजातमिति कृत्वा ढंकादयोमांसाहाराः सत्वा अव्यक्तगमं गमनानावे नष्टुमसमर्थं हरेयुर्व्यापादयेयुः ॥ २ ॥

॥ टीका–उक्तं त्रयोदशमध्ययनं सांप्रतं चतुर्दशमारन्यते । अस्य चायमनिसंबंधः । इहानंतराध्ययने याथातथ्यमिति सम्यक्चारित्रमनिहितं तच्च बाह्यान्यंतरग्रंथपरित्यागादवदातं नवति । तत्त्यागश्चानेनाध्ययनेन प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराण्युपक्रमादीनि नवंति । तत्रोपक्रमद्वारांतर्गतोऽर्थाधिकारोयं । तद्यथा । सबाह्यान्यंतरग्रंथपरित्यागोविधेयइति नामनिष्पन्ने तु निक्षेपे आदानपदाजुणनिष्पन्नत्वाच्च ग्रंथतइति नाम तं ग्रंथमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । “ गंथोपुव्वुद्दिठो, डुविहो सिस्सो य होंति णायव्वो ॥ पव्वावण सिरकावण, पगवं सिरकावणाए उ ” ॥ २ए ॥ (गं

योपुवुद्दिठोइत्यादि) ग्रंथोद्रव्यनावनेदनिन्नः क्षुल्लकनैर्ग्रंथ्यं नाम उत्तराध्ययनेष्वध्ययनं। तत्र पूर्वमेव सप्रपंचोऽनिहितः। इह तु ग्रंथं द्रव्यनावनेदनिन्नं यः परित्यजति शिष्यश्चाचारादिकं वा ग्रंथं योधीते सशिष्योद्विविधोद्विप्रकारोज्ञातव्योनवति। तद्यथा। प्रव्रज्यया शिक्षया च। यस्य प्रव्रज्या दीयते शिक्षां वा यो ग्राह्यते सद्विप्रकारोपि शिष्यइहपुनः शिक्षा शिष्येण प्रकृतमधिकारोयः शिक्षां गृह्णाति शिक्षकस्तच्छिक्षयेह प्रस्तावइत्यर्थः। यथाप्रतिज्ञातमधिकृत्याह। " सो सिरकगो य ड्डविहो, गहणे आसेवणा य णायव्वो ॥ गहणंमि होंति तिविहो सुत्ते अत्थे तड्डनएय, ॥ ३० ॥ (सोसिरकगोयड्डविहोइत्यादि) यः शिक्षां गृह्णाति सद्विविधोद्विप्रकारकोनवति। तद्यथा। ग्रहणे प्रथममेवाचार्यादेः सकाशाच्छिक्षां इच्छामिच्छातहक्कारादिरूपां गृह्णाति शिक्षति तथा शिक्षितां वान्यस्यति अर्हानिशमनुतिष्ठति सएवंविधोग्रहणासेवनानेदनिन्नः शिष्योज्ञातव्योनवति। तत्रापि ग्रहणपूर्वकमासेवनमिति कृत्वाऽऽदावेव ग्रहणशिक्षामाह। शिक्षया ग्रहणे उपादानेऽधिकृते त्रिविधोनवतीति शिक्षकः। तद्यथा। सूत्रेऽर्थे तड्डनयेच सूत्रादीन्यादावेव गृह्णन् सूत्रादिशिक्षकोनवतीति नाव.। सांप्रतं ग्रहणोत्तरनाविनीमासेवनामधिकृत्याह। (" आसेवणाए ड्डविहो, मूलगुणे चेव उत्तरगुणेय ॥ मूलगुणे पंचविहो, उत्तरगुणे बारसविहो उ" ॥ ३१ ॥ (आसेवनेइत्यादि) यथावस्थितसूत्रानुष्ठानमासेवना तया कारणनूतया द्विविधोनवति शिक्षकः। तद्यथा मूलगुणे मूलगुणविषये आसेवमानः सम्यक् मूलगुणानामनुष्ठानं कुर्वन् तथोत्तरगुणे चोत्तरगुणविषयं सम्यगनुष्ठानं कुर्वाणोद्विरूपोप्यासेवनाशिक्षकोनवति। तत्रापि मूलगुणे पंचप्रकारः। प्राणातिपातादिविरतिमासेवमानः पंचमहाव्रतधारणात्पंचविधोनवति मूलगुणेष्वासेवनाशिक्षकः। तथोत्तरगुणविषये सम्यक्पिंडविशुध्यादिकान् गुणानासेवमानउत्तरगुणानासेवनाशिक्षकोनवति। ते चामी उत्तरगुणाः। पिंडस्स जावि सोही, समिईहो नावणा तवो ड्डविहा ॥ पडिमा अनिग्गहाविय. उत्तरगुणमो वियाणाहि ॥ १ ॥ यदिवा सत्स्वप्येतेपूत्तरगुणेषु प्रधाननिर्जराहेतुतया तपएव द्वादशगुणमुत्तरगुणत्वेनाधिकृत्याह। उत्तरगुणे उत्तरगुणविषये तपोद्वादशनेदनिन्नं यः सम्यक् विधत्ते सआसेवनाशिक्षकोनवतीति। शिष्योह्याचार्यमंतरेण न नवत्यतआचार्यनिरूपणमाह। " आयरिउ विय ड्डविहो. पव्वावंतो य सिरिकवंतो य॥ सिरकावंतो ड्डविहो गहणे आसेवणे चेव ॥ ३२ ॥ गाहावितो तिविहो, सुत्ते अत्थेय तड्डनए चेव ॥ मूलगुणउत्तरगुणो, ड्डविहो आसेवणाए उ" ॥ ३३ ॥ (आयरिउ वियइत्यादिगाथाद्वयं शिष्यापेक्षया हि आचार्योद्विविधोद्विनेदः। एकोयः प्रव्रज्यां ग्राहयत्यपरस्तु यः शिक्षामिति। शिक्षयन्नपि द्विविधः। एकोयः शिक्षाशास्त्रं ग्राहयति पाठयत्यपरस्तु तदर्थं दशविधचक्रवालसमाचार्यनुष्ठानतः सेवयति सम्यगनुष्ठानं कारयति।

तत्र सूत्रार्थं तडुनयनेदादग्राहयन्नप्याचार्यस्त्रिधा नवति । आसेवनाचार्योपि मूलोत्तर नेदाद्विविधोनवति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपस्तदनंतरं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (गंथंविहेत्यादि) इह प्रवचने ज्ञातसंसारस्वनावः सन् सम्यगनुष्ठानेनोज्ञितोग्रथ्यते आत्मा येन सग्रंथोधनधान्यहिरण्यद्विपदचतुष्पदादिकस्तं विहाय त्यक्त्वा प्रव्रजितः सन् उज्ञानेनोज्ञाय च ग्रहणरूपामासेवनारूपां च शिक्षां च कुर्वाणः सम्यगासेवमानाः सुष्ठु शोननं नवनिर्ब्रह्मचर्यगुप्तिनिर्गुप्तमाश्रित्य ब्रह्मचर्यं वसे त्तिष्ठेत् यदिवा ब्रह्मचर्यमिति संयमस्तदावसेत्तं सम्यक् कुर्यात् । आचार्यांतिके याव ज्जीवं वसमानोयावदन्युद्यतविहारं न प्रतिपाद्यते तावदाचार्यवचनस्यावपातोनिर्देशस्त त्कार्यावपातकारी वचननिर्देशकारी सदाज्ञाविधायी विनीयतेऽपनीयते कर्म येन सवि नयस्तं सुष्ठु शिक्षेद्विदध्यात् ग्रहणासेवनान्यां विनयं सम्यक्परिपालयेदिति । तथा य श्छेकोनिपुणः संयमानुष्ठाने सदाचार्योपदेशे वा विविधं प्रमादं न कुर्यात् । यथाहि आतुरः सम्यग्वैद्योपदेशं कुर्वन् श्लाघां लनते रोगोपशमंचैवं साधुरपि सावद्यग्रंथपरि हारी पापकर्मनेषजस्थानजूतान्याचार्यवचनानि विदधदपरसाधुन्यः साधुकारमशेषकर्म क्षयं वा प्राप्नोतीति ॥ १ ॥ यः पुनराचार्योपदेशमंतरेण स्वछंदतया गछान्निर्गत्य एका किविहारितां प्रतिपद्यते सच बहुदोषनाग् नवतीत्यस्यार्थस्य दृष्टांतमाविर्नावयन्नाह । (जहादियाइत्यादि) यथेति दृष्टांतोपप्रदर्शनार्थः । यथा येन प्रकारेण द्विजपोतः प क्षिशिशुरव्यक्तस्तमेव विशिनष्टि । पतंति गछंति तेनेति पत्रं पक्षपुटं नविद्यते पत्रजातं प क्षोन्नवोयस्यासावपत्रजातस्तत्र स्वकीयादावासकात् स्वनीडात् प्लवितुमुत्पतितुं मन्यमानं तत्रतत्र पतंतमुपलन्य तं द्विजपोतं (अचाइयंति) पक्षान्नावाजंतुमसमर्थमपत्रजात मिति कृत्वा मांसपेशीकल्पं ढंकादयः क्षुद्रसत्त्वाः पिशिताशिनोऽव्यक्तगमं गमनान्नावे नष्टुमसमर्थं हरेयुश्चंच्वादिनोत्क्षिप्य नयेयुर्व्यापादयेयुरिति ॥ २ ॥

एवं तु सेहंपि अपुठधम्मं, निस्सारियं वुसिमं मन्नमाणा ॥ दि
यस्स गवं च अपत्तजायं, हरिसुणं पावधम्मा अणेगे ॥ ३ ॥
उसाणमिछे मणुए समाहिं, अणोसिए णंतकरिंति णच्चा ॥ उ
नासमाणे दवियस्स वित्तं, ण णिक्कसे बहिया आसुपन्नो ॥ ४ ॥

अर्थ—(एवंतु के०) एरीते जेम ते अव्यक्त एवोजे पक्षीनो बालक तेनो बीजा ढं कादिक क्षुद्र पक्षीउ विनाश करे तेम ते (सेहंपिअपुठधम्मं के०) अगीतार्थ नवदिक्षी त शिष्य पण (निस्सारियं वुसिमंमन्नमाणा के०) गछरूप माला थकी नीकल्यो तो

पछी तेने अनेक क्षुद्र पांखमीरूप जे ढंकपक्षीउ ते पोताने वसगामी जाणता थका तेने विप्रतारीने संयमरूप जीवितव्य थकी चुकावे (दियस्सछावंचअपत्तजायं के०) पां खरहित एवो जे पक्षीनो बालक तेनी पेरे ते अगीतार्थ शिष्यने (हरिसुणंपावधम्माअ णेगे के०) ते पापधर्मि एवा अनेक पाखंमी तेने संयम थकी हरण करे ॥ ३ ॥ ए माटे चारित्रवान साधुए सर्वकाल गुरुपाशे रहेवो ते कहेछे. (उसाणमिछेमणुएसमा हिं के०) जावजीव सुधी गुरुनी पाशे रहेवानी वांछा करे जे सुसाधु छे ते एवीज स न्मार्गरूप समाधिनी वांछा करे एटले परमार्थथकी मनुष्य तेनेज कहिए के जे गुरुकु लवासे वसतो थको पोताना नापेला अंगीकार करेलां सन्मार्गनो निर्वाह करे (अणो सिएणंतकरिंतिणच्चा के०) गुरुकुलवासे अणवसतो एटले स्वछंदाचारी छतो संसारनो अंत नकरे उलटो अनंत संसारी थाय संसारनी वृद्धि करे एवुं जाणीने (उनासमा णेदवियस्सवित्तं के०) सर्वकाल गुरुकुलवासे वशे गुरुनी सेवा करे एम मुक्तिगमन योग्य साधुना आचारने अत्यंत दीपावतो थको जिनन्नाषित धर्मने दीपावे एवुं जा णीने (णणिक्कसेवहिया आसुपन्ने के०) आसुप्रज्ञ एटले जे पंमित होय ते गछथकी बाहेर नीकले नही अर्थात् स्वछंदी नथाय ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–दृष्टांतयोजनामाह । एवमुक्तप्रकारेण शिक्षकं नवदीक्षितं सूत्रार्थविकल मगीतार्थमपुष्टधर्माणं पाखंडिकाः प्रतारयंति प्रतार्यच गछान्निःसारयंति निःसारितंच सं तमस्माकं वश्यमित्येवं मन्यमानाअजातपक्षं द्विजशावं पक्षिपोतमिव ढंकादयः पापक र्माणः कुतीर्थिकाः स्वजनाराजादयोवाऽनेके हृतवंतोहरंति हरिष्यंति चेति कालत्रयो पलक्षणार्थं नूतनिर्देशः ॥ ३ ॥ अवसानं गुरोरंतिके स्थानं समाधिसन्मार्गानुष्ठानरूपं यावज्जीवमिछेन्मनुजः साधुर्यावज्जीवं गुरुकुलवासी स्यादित्यर्थः । गुरोरंतिकेऽनुषितो ऽव्यवस्थितः कर्मणोऽनंतकरोंऽतकारी नस्यादिति ज्ञात्वा गुरुं सेवेत तद्हितस्य विज्ञानमु पहासोनवेत् । यतः । नहि नवति निर्विगोपकमनुपासितगुरुकुलस्य विज्ञानं ॥ प्रक टितपश्चाद्भागं, पश्यत नृत्यं मयूरस्य ॥ १ ॥ ऽव्यस्य मुक्तियोग्यस्य साधोर्वृत्तमनुष्ठानमु भासयन्ननुतिष्ठन् ननिष्कसेन्ननिर्गछेगछाद्बहिराशुप्रज्ञः पंडितः ॥ ४ ॥

॥ टीका–एवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकं प्रदर्शयितुमाह । (एवंतुसेहंपीत्यादि) एवमि त्युक्तप्रकारेण । तुशब्दः पूर्वस्माद्विशेषं दर्शयति । पूर्वं ह्यसंजातपक्षत्वादव्यक्तता प्रतिपा दिता इहत्वपुष्टधर्मतयेति । अयं विशेषोयथा द्विजपोतमसंजातपक्षं स्वनीडान्निर्गतं क्षुद्र सत्वाविनाशयंति एवं शिष्यकमन्निनवप्रव्रजितं सूत्रार्थानिष्पन्नमगीतार्थमपुष्टधर्माणं सम्यगपरिणतधर्मपरमार्थं संतमनेकपापधर्माणः पाषंडिकाः प्रकारयंति प्रतार्यच गछस

मुझान्निःसारयंति निःसारितंच संतं विषयोन्मुखतामापादितमपगतपरलोकभयमस्माकं वश्यमित्येवं मन्यमानाः । यदिवा (बुसिन्ति) चारित्रं तदसदनुष्ठानतोनिःसारं मन्यमानाअजातपक्षं द्विजशावकमिव पक्षिपोतमिव ढंकादयः पापधर्माणोमिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषायकलुषितांतरात्मानः कुतीर्थिकाः स्वजनाराजादयोवाऽनेके बहवोहृतवंतोहरंति हरिष्यंति चेति कालत्रयोपलक्षणार्थं भूतनिर्देशइति । तथाहि । पाषंडिकाएवमगीतार्थं प्रतारयंति । तद्यथा । युष्मद्दर्शनेनाग्निप्रज्वालनविषापहारशिखाछेदादिकाः प्रत्यया दृश्यंते तथाऽणिमाद्यष्टगुणमैश्वर्यंच नास्ति तथा न राजादिभिर्बहुभिराश्रितं । याप्यहिंसोच्यते भवदागमे सापि जीवाकुलत्वाल्लोकस्य दुःसाध्या नापि भवतां स्नानादिकं शौचमस्तीत्यादिकाभिः शठोक्तिभिरिंद्रजालकल्पाभिर्मुग्धजनं प्रतारयंति स्वजनादयश्चैवं विप्रलंभयंति । तद्यथा । न भवंतमंतरेणास्माकं कश्चिदस्ति पोषकः पोष्योवा त्वमेवास्माकं सर्वस्वं त्वया विना शून्यमाभाति तथा शब्दादिविषयोपभोगामंत्रणेन सद्धर्माच्च्यावयंति। एवं राजादयोपि दृष्टव्यास्तदेवमपुष्टधर्माणमेकाकिनं बहुभिः प्रकारैः प्रतार्यापहरेयुरिति। ॥ ३ ॥ तदेवमेकाकिनः साधोर्यतावहवोदोषाः प्रादुर्भवंत्यतः सदा गुरुपादमूले स्थातव्यमित्येतद्दर्शयितुमाह । (उसाणमिछेइत्यादि) अवसानं गुरोरंतिके स्थानं तद्यावज्जीवं समाधिं सन्मार्गानुष्ठानरूपमिछेदभिलषेन्मनुजोमनुष्यः साधुरित्यर्थः । सएव परमार्थतोमनुष्योयोयथाप्रतिज्ञातं निर्वाहयति । तच्च सदागुरोरंतिके व्यवस्थितेन सदनुष्ठानरूपं समाधिमनुपालयता निर्वाह्यते नान्यथेत्येतद्दर्शयति । गुरोरंतिकेऽनुषितोव्यवस्थितः स्वछंदविधायी समाधिः सदनुष्ठानरूपस्य कर्मणोयथाप्रतिज्ञातस्य वा नांतकरोभवतीति ज्ञात्वा सदा गुरुकुलवासोऽनुसर्तव्यस्तद्रहितस्य विज्ञानमुपहास्यप्रायं भवतीति । उक्तंच । नहि भवति निर्विगोपकमनुपासितगुरुकुलस्य विज्ञानं ॥ प्रकटितपश्चाद्भागं पश्यत नृत्यं मयूरस्य ॥ १ ॥ तथा जांगलविलग्नवालुकां पार्ष्णिप्रहारेण प्रगुणां दृष्ट्वाऽपरोऽनुपासितगुरुरज्ञोराज्ञीं संजातगलगंडां पार्ष्णिप्रहारेण व्यापादितवानित्यादयोऽनुपासितगुरोर्बहवोदोषाः संसारवर्धनाद्याभवंतीत्यवगम्यानया मर्यादया गुरोरंतिके स्थातव्यमिति दर्शयति । अवभासयन्नुद्भासयन् सम्यगनुतिष्ठन् द्रव्यस्य मुक्तिगमनयोग्यस्य सत्साधोरागद्वेषरहितस्य सर्वज्ञस्य व्यावृत्तमनुष्ठानं तत्सदनुष्ठानतोऽवभासयेद्धर्मकथिकः कथनतोवोभासयेदिति । तदेवं यतोगुरुकुलवासोबहूनां गुणानामाधारोभवत्यतोन निष्कसेन्ननिर्गछेत गछात्कुर्वतिकाद्वा बहिः स्वेछाचारी नभवेदाशुप्रज्ञइति क्षिप्रप्रज्ञस्तदंतिके निवसन् विषयकषायाभ्यामात्मानं ह्रियमाणं ज्ञात्वा क्षिप्रमेवाचार्योपदेशात्स्वतएव वा निवर्तयति सत्समाधौ व्यवस्थापयतीति ॥ ४ ॥

जे ठाणउ य सयणासणे य, परक्कमे यावि सुसाहुजुत्ते॥समितीसु गुत्तीसु य आयपन्ने, वियागरिंते य पुढो वएज्जा ॥ ५ ॥ सद्दाणि सोच्चा अड भेरवाणि, अणासवे तेसु परिवएज्जा॥ निद्दं च भिक्खू न पमाय कुज्जा, कहंकहं वा वितिगिच्छ तिन्ने ॥ ६ ॥

अर्थ–(जेके०) जे वैराग्य आदरी चारित्रवंत थको (ठाणउंय के०) स्थान आश्री कायोत्सर्गादिकने विषे (सयणासणेय के०) तथा शयन अने आशनने विषे च कार शब्दथकी गमनने विषे (परक्कमेयावि के०) पराक्रम एटले बल फोरवे ते केवो थको फोरवे तोके (सुसाहुजुत्ते के०) रुडा आचारसहित एवो थतो (समितीसुगुत्ती सुयआयपत्ते के०) पांच समिति अने त्रण गुप्तिने विषे आयपन्न एटले सम्यक् जाण (वियागरिंतेयपुढोवएज्जो के०) अथवा अन्यने उपदेश देतो ते उपदेशने गुरु प्रासाद थकी जाणीने तेने जुदो जुदो विचार कहे. ॥५॥ (सद्दाणिसोच्चाअडभेरवाणि के०)शब्द ते वंशना वीणादिक कर्णने सुखना करनार तथा भैरव एटले कर्णने दुःखना करनार एवा शब्द सांभलीने (अणासवे के०) ते शब्दादिकने विषे राग द्वेष रहित एवो थतो (सुप रिवएज्जा के०) सूधो संयम पाले (निद्दंचभिक्खूनपमायकुज्जा के०) तथा निद्रारूप जे प्रमाद ते पण भिक्षु नकरे ए प्रकारे प्रवर्त्ततो (कहंकहंवावितिगिच्छतिन्ने के०) कोई पण प्रकारे वितिगिछ एटले संदेह तेथकी निःक्रांत थाय एटलेसंदेह रहित थाय. ॥६॥

॥ दीपिका–प्रव्रज्यां प्रति उद्यतोनित्यं गुरुकुलवासतः स्थानतश्च स्थानमाश्रित्य तथा शयनतश्चासनतः। चकाराद्गमनमाश्रित्य तथा तपश्चरणादौ पराक्रमतश्च साधोरुद्यतविहारिणोये समाचारास्तैः समायुक्तः स्थानशयनासनादावुपयुक्तइत्यर्थः । समितिषु गुप्तिषु चागताउत्पन्ना प्रज्ञा यस्य सआगतप्रज्ञः संजातकृत्याकृत्यविवेकः स्वतः स्यात् । परस्यापि व्याकुर्वंत् कथयत् पृथक् समितिगुप्तीनां पालनं तत्फलंच वदेत् ॥५॥ शब्दान् मनोहरान् श्रुत्वाऽथवा भैरवान् कर्णकटून् श्रुत्वा तेषु शब्देष्वनाश्रवोमध्यस्थोभूत्वा परिव्रजेत्संयमानुष्ठायी स्यात् । तथा निद्रां प्रमादरूपां भिक्षुर्नकुर्यात् । तदेवं गुरूपदेशात् कथं कथमपि विचिकित्सां विप्लुतिरूपां वितीर्णोनिष्क्रांतः स्यात् ॥ ६ ॥

॥ टीका–तदेवं प्रव्रज्यामभ्युद्यतोनित्यं गुरुकुलमावसन् सर्वत्र स्थानशयनासनादावुपयुक्तोभवति तदुपयुक्तस्य च गुणमुद्भावयन्नाह । (जेठाणउ यइत्यादि) योहि निर्विण्णसंसारतया प्रव्रज्यायामभ्युद्यतोनित्यं गुरुकुलवासतः स्थानतश्च स्थानमाश्रित्य तथा

शयनतश्चासनतः । एकश्चकारः समुच्चये द्वितीयोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । चकाराङ्गमनमाश्रि त्यागमनंच तथा तपश्चरणादौ पराक्रमतश्च साधोरुद्युक्तविहारिणोये समाचारास्तैः समा युक्तः सुसाधुर्हि यत्र स्थानं कायोत्सर्गादिकं विधत्ते तत्र सम्यक्प्रत्युपेक्षणादिकां क्रियां करोति कायोत्सर्गे च मेरुरिव निष्प्रकंपशरीरोनिस्पृहोविधत्ते तथा शयनं च कुर्वन् प्रत्युपे क्ष्स्तं संस्तारकं तद्भुवं कायं वोचितकाले गुरुनिरनुज्ञातः स्वपेत्तत्रापि जाग्रदिव नात्यंतं निःसहइति । एवमासनादिष्वपि तिष्ठता पूर्ववत्संकुचितगात्रेण स्वाध्यायध्यानपरायणे न सुसाधुना नवितव्यमिति । तदेवमादिसुसाधुक्रियायुक्तोगुरुकुलनिवासी सुसाधुर्नव तीति स्थितं । अपिच गुरुकुलवासे निवसन् पंचसु समितिष्वीर्यासमित्यादिषु प्रविचा राऽप्रविचाररूपासु तथा तिसृषु च गुप्तिषु प्रविचाराप्रविचाररूपासु आगतोत्पन्ना प्रज्ञा य स्यासावागतप्रज्ञः संजातकर्तव्याकर्तव्यविवेकः स्वतोनवति परस्यापिच व्याकुर्वन् कथय न् पृथक्पृथग्गुरोः प्रसादात्परिज्ञातस्वरूपः समितिगुप्तीनां यथावस्थितस्वरूपप्रतिपालनं तत्फलंच वदेत्प्रतिपादयेदिति ॥ ५ ॥ ईर्यासमित्याद्युपेतेन यद्विधेयं तद्दर्शयितुमाह । (सद्दाणीत्यादि) शब्दान् वेणुवीणादिकान् मधुरान् श्रुतिपेशलान् श्रुत्वा समाकर्ण्याऽथ नैरवान् नयावहान् कर्णकटूनाकर्ण्य शब्दानाश्रवति तान् शोनानत्वेनाशोनानत्वेनवा गृह्णातीत्याश्रवोनाश्रवोऽनाश्रवस्तेष्वनुकूलेषु प्रतिकूलेषु श्रवणपथमुपगतेषु शब्देष्वना श्रवोमध्यस्थोरागद्वेषरहितोनूत्वा परिसमंताद् व्रजेत्परिव्रजेत् संयमानुष्ठायी नवेत्तथा निद्रांच निद्राप्रमादंच निक्षुः सत्साधुः प्रमादांगत्वान्न कुर्यात् । एतडुक्तंनवति । शब्दा श्रवनिरोधेन विषयविषयप्रमादोनिषिद्धोनिद्रानिरोधेन निद्राप्रमादश्चशब्दादन्यमपि प्रमा दं विकथाकषायादिकं न विदध्यात् । तदेवं गुरुकुलवासात् स्थानशयनासनसमितिगुप्ति ष्वागतप्रज्ञः प्रतिषिद्धसर्वप्रमादः सन्गुरोरुपदेशादेव कथंकथमपि विचिकित्सां चित्तविप्लुति रूपां वितीर्णोऽतिक्रांतोनवति। यदिवा मगृहीतोयं पंचमहाव्रतनारोऽतिडर्वहः कथंकथमप्यें तं गच्छेदित्येवंनूतां विचिकित्सां गुरुप्रसादाद्वितीर्णोनवति। अथवा यां कांचिच्चित्तविप्लुतिं देश सर्वगतां तां कृत्स्नां गुर्वंतिके वसन् वितीर्णोनवत्यन्येषामपि तदपनयनसमर्थः स्यादितिद्द

डहरेण वुड्ढेण णुसासिए उ, रातिणिएणावि समव्वएणं ॥ स
म्मं तयं थिरतो णाभिगच्छे, णिज्जंतए वा वि अपारएसे ॥ ७ ॥
विउट्ठितेणं समयाणुसिट्ठे, डहरेण वुड्ढेणउ चोइएय ॥ अच्चु
ट्ठियाए घडदासिए वा, अगारिणं वा समयाणुसिट्ठे ॥ ८ ॥

अर्थ—डहरेणवुड्ढेणणुसासिएउराके०) ते साधु गुरु सन्मुख वसतो कोइ कारणे प्र

मादे खलना पाम्यो ढतो तेने न्हाने अथवा वडेराये शीखामण दीधी ढतां (रायंणिए णाविसमव्वएणं के०) अथवा रत्नाधिक जे आचार्य अथवा सरखा पर्याय वालाये शीखामण आपीढतां (सम्मंतयंथिरतोणाभिगछे के०) तेमनी शीखामण सम्यक् प्रकारे नमाने (णिज्जंतएवाविअपारएसे के०) ते संसार प्रवाहे वाहाडीजतो संसारनो पारंगामी नथाय एटले मुक्तिगामी नथाय ॥ ७ ॥ (विउछिते के०) अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ तेणे साधुने (समयाणुसिठे के०) सिद्धांतने अनुसारे शीखव्यो ढतो एटले जेवीरीते तमे समाचरोछो तेम तमारा आगमने विषे कह्युं नथी (महरेणवुड्ढेण उचोइएवा के०) तथा न्हाने अथवा महोटे शीखामण चोयणा आपी ढता (अत्तुडियाएघडदासिएवा के०) एटले अत्यंत कार्यनी करनारी तथा पाणीनी जरनारी एवी दासी तेणे (आगारिणंवासमयाणुसिट्ठे के०) सिद्धांतने अनुसारे चोयणा कर्यो ढतो एटले जेम तमे चालोछो तेम गृहस्थ पण नचाले इत्यादिक वचने करी चोयणा कर्यो ढतो शुं करे ते कहेछे ॥ ७ ॥

॥ दीपिका–ससाधुर्गुरुसमीपे वसन् डहरेण लघुना वृद्धेन वाऽनुशाशितः प्रमादाचरणनिषिद्धः । अथवा वयोधिकेन पर्यायज्येष्ठेन समवयसा वाऽनुशासितः कुप्यति तदनुशासनं सम्यक्स्थितोऽपुनःकरणतया नाभिगछेन्नप्रतिपद्येत । अप्रतिपद्यमानश्च संसारप्रवाहे नीयमानोन संसारपारगः स्यात् ॥ ७ ॥ विरुद्धोछानेनोछितोव्युछितोऽन्यतीर्थिकोगृहस्थोवा मिथ्यादृष्टिस्तेन प्रमादस्खलितोचोदितः स्वसमयेन । तद्यथा । नैवंविधमनुष्ठानं जवतामागमेव्यवस्थितमिति । तथा डहरेण लघुना वृद्धेन वाऽनाचारे प्रवृत्तश्चोदितस्तथाऽतीवाऽकार्यकरणं प्रति उछिताऽथवा दासीत्वेनात्यंतमुछिता तया । तथा दास्या अपिदासीत्वेन घटदास्या जलवाहिन्यापि चोदितोन क्रोधं कुर्यात् तथाऽगारिणां गृहस्थानां यः समयोनुशासितोगृहस्थानामप्येतन्नयुज्यते कर्तुं किं पुनः साधूनामितिचोदितोपि न कुप्येत् ॥ ७ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (डहरेणेत्यादि) सगुर्वंतिके निवसन् क्वचित् प्रमादस्खलितः सन् वयःपर्यायाभ्यां क्षुल्लकेन लघुना चोदितः प्रमादाचरणं प्रतिषिद्धस्तथा वृद्धेन वा वयोधिकेन श्रुताधिकेनवाऽनुशासितोऽभिहितः । तद्यथा । जवद्विधानामीदृक्प्रमादाचरणमासेवितुमयुक्तं । तथा रत्नाधिकेनवा प्रव्रज्यापर्यायाधिकेन श्रुताधिकेनवा समवयसा वाऽनुशासितः प्रमादस्खलिताचरणंप्रति चोदितः कुप्यति । यथाहमप्यनेन द्रमकप्रायेणोत्तमकुलप्रसूतः सर्वजनसंमतइत्येवं चोदितइत्येवमनुशास्यमानोन मिथ्यादुष्कृतं ददाति न सम्यगुत्थानेनोत्तिष्ठति नापि तदनुशासनं सम्यक्स्थितोऽपुनःकरणतया नि

गच्छेत् प्रतिपद्यते चोदितश्च प्रतिचोदयेदसम्यक्प्रतिपाद्यमानश्चासौ संसारस्रोतसा नीय मानउह्यमानोऽनुशास्यमानः कुपितोसौ न संसारार्णवस्य पारगोभवति । यदिवाऽऽचा र्यादिना सडुपदेशदानतः प्रमादस्खलितनिवर्तनतोमोक्षं प्रति नीयमानोप्यसौ संसारस मुद्रस्य तदकरणतोऽपारगएव भवतीति ॥ ७ ॥ सांप्रतं स्वपक्षचोदनानंतरतः स्वपरचोद नामधिकृत्याह । (विउठिएणमित्यादि) विरुद्धोत्थानेनोत्थितोव्युत्थितः परतीर्थिकोगृह स्थोवा मिथ्यादृष्टिस्तेन प्रमादस्खलितोचोदितः स्वसमयेन तद्यथा नैवंविधमनुष्ठानं भव तामागमे व्यवस्थितं येनाभिप्रवृत्तोसि । यदिवा व्युत्थितः संयमाद्भ्रष्टस्तेनापरः साधुः स्खलितःसन् स्वसमयेनार्हत्प्रणीतागमानुसारेणानुशासितोमूलोत्तरगुणाचरणे स्खलितः संचोदितश्चागमं प्रदर्श्याभिहितः । तद्यथा । नैतत्त्वरितगमनादिकं भवतामनुज्ञातमि ति । तथान्येन वा मिथ्यादृष्ट्यादिना क्षुल्लकेन लघुतरेण वयसा वृद्धेन वा कुत्सिताचा रप्रवृत्तश्चोदितस्तुल्यात्समानवयसावा तथातीवाकार्यकरणं प्रति उत्थिता अत्युत्थिता । यदि वा दासीत्वेन अत्यंतमुत्थिता दास्याअपि दासीति । तामेव विशिनष्टि । घटदास्या जल वाहिन्यापि चोदितोन क्रोधं कुर्यात् । एतडुक्तंभवति । उत्थितयापि कुपितयापि चोदि तः स्वहितं मन्यमानः सुसाधुर्नकुप्येत् किंपुनरन्येनेति । तथा अगारिणां गृहस्थानां यः समयोनुष्ठानं तत्समयेनानुशासितोगृहस्थानामपि एतन्नयुज्यते कर्तुं यदारब्धं भवतेत्ये वमात्मावमेनापि चोदितोममैवतच्छ्रेयइत्येवंमन्यमानोमनागपि न मनोदूषयेदिति ॥ ८ ॥

ण तेसु कुज्झे ण य पवहेज्जा,ण यावि किंची फरुसं वदेज्जा ॥तहा
करिस्संति पडिस्सुणेज्जा, सेयं खु मेयं ण पमाय कुज्जा ॥ए॥ व
णंसि मूढस्स जहा अमूढा,मग्गाणुसासंति हितं पयाणं ॥ तेणे
व मज्झं इणमेव सेयं, जमे बुहा समणुसासयंति ॥ १० ॥

अर्थ—(णतेसुकुज्झेणयपवहेज्जा के०) ते शीखामण आपनारना उपर ते साधु क्रो ध नकरे तथा तेने व्यथे नही एटले दंडादिके प्रहार करीने तेने पीडा उत्पन्न करे न ही तथा (णयाविकिंचीफरुसंवदेज्जा के०) तथा किंचित् मात्र कठोर वचन बोले नही परंतु तेमना वचन सांभलीने आवीरीते कहे के(तहाकरिस्संतिपडिस्सुणेज्जाके०) जेम तमे कहोछो हुं तेमज करीश एम तेना वचन मान्य करे (सेयंखुमेयंणपमायकु ज्जा के०) मनमां एम विचारेजे मने एहिज शिक्षारूप श्रेयकारी दान आपेछे एवुं जा णीने प्रमाद नकरे ॥ ए ॥ (वणंसिमूढस्सजहाअमूढा के०) जेम वन एटले गहन अटवीने विषे कोइएक मूर्ख दिशिमूढ थइ भूले पड्यो तेने कोइक अमूढ पुरुष मार्गनुं देखाडनार (मग्गाणुसासंतिहितंपयाणं के०) प्रजालोकने हितकारी एवो मार्ग देखाडे

ए दृष्टांते शिष्य पण एम जाणे जे (तेणेवमज्झंइणमेवसेयं के०) मुजने एहिज शिक्षानो मार्ग श्रेयकारी कहेछे (जमेवुहासमणुंसासयंति के०) जे मुजने वुद्ध पंडित गुरु आचार्यादिक सम्यक् रीते पुत्रनीपरे शिखामण शिक्षा आपेछे ते शिखामणने श्रेयकारी मानीने आदरे ॥ १० ॥

॥दीपिका–तेषु स्खलितनोदकेषु न क्रुध्येत्। यतः। आक्रुष्टेनमतिमतातत्वार्थविचारणे मतिः कार्या। यदि सत्यं कः कोपः स्यादनृतं किंनु कोपेन ॥ १ ॥ तथा तं नोदकं न प्रव्यथेत न दंमादिप्रहारेण पीमयेत्। नचापि किंचित्परुषं पीडाकारि वदेत् नोदितश्च तथा करिष्यामीति प्रतिशृणुयादंगीकुर्यात् इदं नोदनं ममश्रेयोयतएतद्भयात्कचित्प्रमादं न कुर्यात् ॥ ए ॥ वनं मूढस्य दिग्भ्रांतस्य कस्यचिद्यथाऽमूढामार्गज्ञामार्गमनुशासंति कथयंति। किंभूतं मार्गं प्रजानां हितं। एवं तेनाप्यसदनुष्ठायिना नोदिते न कुपितव्यं किंतु ममैवं श्रेयइति मंतव्यं। यदेतद्बुधाः सम्यगनुशासयंति सन्मार्गे प्रापयंति ॥ १० ॥

॥ टीका–एतदेवाह। (एतेसुकुज्झेइत्यादि) तेषु स्वपरपक्षेषु स्खलितचोदकेष्वात्महितं मन्यमानोन क्रुध्येदन्यस्मिन् वा डुर्वचनेऽनिहिते न कुप्येदेवं चिंतयेत्। आक्रुष्टेन मतिमता तत्वार्थविचारणे मतिः कार्या ॥ यदि सत्यं कः कोपः स्यादनृतं किंनु कोपेन ॥ १ ॥ तथा नाप्यपरेण स्वतोऽधमेनापि चोदितोऽर्हन्मार्गानुसारेण लोकाचारगत्या वाऽनिहितः परमार्थं पर्यालोच्य तं चोदकं प्रकर्षेण व्यथेद्दंडादिप्रहारेण पीमयेन्नचापि किंचित्परुषं तत्पीडादिकारि वदेत् ब्रूयात्। ममैवायमसदनुष्ठायिनोदोषोयेनायमपि मामेवं चोदयति चोदितश्चैवंविधं जवता असदाचरणं न विधेयं। एवंविधे च पूर्वोपैनिरनुष्ठितमनुष्ठेयमित्येवंविधवाक्यं तथा करिष्यामीत्येवं मध्यस्थवृत्त्या प्रतिशृणुयादनुतिष्ठेच्च मिथ्याडुष्कृतादिना निवर्तेत। यदेतच्चोदनं नामैतन्ममैवश्रेयोयतएतद्भयात्कचित्पुनः प्रमादं न कुर्यान्नैवासदाचरणमनुतिष्ठेदिति ॥ ए ॥ अस्यार्थस्य दृष्टांतं दर्शयितुमाह। (वणंसीत्यादि) वने गहने महाटव्यां. दिग्भ्रमेण कस्यचिद्व्याकुलितमतेर्नष्टसत्पथस्य यथा केचिदपरे कृपाकृष्टमानसाअमूढाः सदसन्मार्गज्ञाः कुमार्गपरिहारेण प्रजानां हितमशेषापायरहितमीप्सितस्थानप्रापकं मार्गं पंथानमनुशासंति प्रतिपादयंति। सच तैः सदसद्विवेकिनिः सन्मार्गावतरणमनुशासितआत्मनः श्रेयोमन्यते। एवं तेनाप्यसदनुष्ठायिना चोदितेन नकुपितव्यमपितु ममायमनुग्रहइत्येवं मंतव्यं। यदेतद् बुद्धाः सम्यगनुशासयंति सन्मार्गेऽवतारयंति पुत्रमिव पितरस्तन्ममैवश्रेय इति मंतव्यं ॥ १० ॥

अह तेण मूढेण अमूढगस्स, कायव्व पूया सविसेसजुत्ता ॥ एउ
वमं तज उदाहु वीरे, अणुगम्म अत्थं उवणेति सम्मं ॥ ११ ॥

णेता जहा अंधकारंसि राउ, मग्गं ण जाणाति अपस्समाणे॥
से सूरिअस्स अप्नुग्गमेणं, मग्गं वियणाइ पागसियंसि॥१श॥

अर्थ–(अहतेणमूढेण अमूढगस्स के० हवे ते मूर्ख पुरुषे मार्गे पामे बते मार्गनो देखाडनार जे अमूढ पुरुष तेनो उपकार जाणीने (कायवपूयासविसेसजुत्ता के०) तेनी सविशेष विस्तार युक्त पूजा करवी (एउंवमंतबउदाहुवीरे के०) उपमां त्यां कही को णे कही तोके श्रीवीरपरमेश्वरे कही (अणुगम्मअबं उवणेतिसम्मं के०) ते पुरुष अ र्थ एटले परमार्थ जाणी सम्यक् प्रकारे पोताने तेनो करेलो उपकार जाणी एम वि चारे जे आ पुरुषे मने मिथ्यात्वरूप गहन वनना डुःख थकी रुमो उपदेश आपीने बोमाव्योछे तेमाटे एनी नक्ति करवी ॥ ११ ॥ (णेताजहाअंधकारंसिराउ के०) जेम णेता एटले मार्गनो जाण पुरुष चक्कु सहित बतां पण अत्यंत अंधकारमय रात्रीने विषे (मग्गंणजाणातिअपस्समाणे के०) मार्गने नजाणे केमके अंधकारमां दृष्टी पडे नही माटे अणदेखतो बतो मार्गनजाणे (सेसूरिअस्सअप्नुग्गमेणं के०) परंतु तेज पु रुष सूर्योदय थयाथी अंधकार विनाश पामे तेवारें (मग्गंवियाणातिपगासियंसि के०) सर्व जगतमां विशेष प्रकाश थयो बता वली सम्यक् प्रकारे तेमार्गने जाणे ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–यथा तेन मूढेन सन्मार्गे प्रापितेन तस्यामूढस्य सन्मार्गोपदेष्टुः पुलिंदा देरपि पूजा विशेषयुक्ता कर्तव्या । एतामुपमामुदाहृतवान् कथितवान् वीरस्तीर्थकृत् अ नुगम्य ज्ञात्वार्थं परमार्थं सम्यगात्मन्युपनयति परमोपकारं । कोर्थः । अहमनेन मिथ्या त्ववनाज्जन्ममरणाद्यनेकोपद्रवबहुलात्सदुपदेशदानेनोत्तारितस्ततोमयाऽस्य परमोपकारि णोविनयादिभिः पूजा कर्तव्येति । यथा । गेहम्मि अग्गिजाला, उलंमि जहाण मउक्क माणंमि ॥ जो बाहेइ सुयंतं, सो तस्स जणो परमबंधूइति ॥११॥ यथा महांधकारा यां रात्रौ नेता नायकोऽटव्यादौ स्वभ्यस्तप्रदेशोपि मार्गं न जानाति स्वहस्तादिकमप्यपश्य न् । सएव नेता सूर्यस्याभ्युद्गमेनोदयेन प्रकाशिते दिक्चक्रे मार्गं विशेषेण जानाति॥१२

॥टीका–पुनरप्यस्यार्थस्य पुष्ट्यर्थमाह । (अहत्तेणेत्यादि) अथेत्यानंतर्यार्थे वाक्योपन्या सार्थेवा । यथा तेन मूढेन सन्मार्गावतारितेन तदनंतरं तस्यामूढस्य सत्पथोपदेष्टुः पुलिं दादेरपि परमुपकारं मन्यमानेन पूजा विशेषयुक्ता कर्तव्या । एवमेतामुपमामुदाहृतवा नभिहितवान् वीरस्तीर्थकरोन्योवा गणधरादिकोऽनुगम्य बुध्वाऽर्थं परमार्थं चोदनाकृतं पर मोपकारं सम्यगात्मन्युपनयति । तद्यथाऽहमनेन मिथ्यात्ववनाज्जन्मजरामरणाद्यनेको पद्रवबहुलात्सदुपदेशदानेनोत्तारितस्ततोमयाऽस्य परमोपकारिणोऽभ्युत्थानविनयादिभिः

पूजा विधेयेति ॥ अस्मिन्नर्थे बह्वोदृष्टांताः संति । तथा । गेहंमि अग्गिजाला, उलंमि ज ह्णामउज्झमाणंमि । जो बोहेइ सुयंतं सो तस्स जणो परमबंधू ॥१॥ जह्वा विसजं जु त्तं, नत्तमिह्मिह्लोजुकामस्स ॥ जोवि सदोसं साहइ. सो तस्स जणो परमबंधू ॥ २ ॥ ॥ ११ ॥ अयमपरः सूत्रेणैव दृष्टांतोऽनिधीयते । (णेयाजहेत्यादि) यथाहि सजलज लधराच्छादितबहलांधकारायां रात्रौ नेता नायकोऽटव्यादौ स्वभ्यस्तप्रदेशोपि मार्गं पंथानमं धकारावृतत्वात्स्वहस्तादिकमपश्यन्न जानाति न सम्यक् परिछिनत्ति । सएव प्रणेता सूर्यस्या दित्यस्याभ्युद्गमेनापनीते तमसि प्रकाशिते दिक्चक्रे सम्यगाविर्भूते पाषाणदरीनिम्नोन्नता दिके मार्गं जानाति विवक्षितप्रदेशप्रापकं पंथानमभिव्यक्तचक्षुः परिछिनत्ति दोषगुणवि चारणतः सम्यगवगछतीति ॥ १२ ॥

एवं तु सेहेवि अपुठधम्मे, धम्मं न जाणाइ अबुज्झमाणे ॥ से
कोविए जिणवयणेण पछा, सूरोदए पासति चक्खुणे वा ॥१३॥
उढुं अहेयं तिरियं दिसासु, तसा य जे थावरा जे य पाणा ॥
सया जए तेसु परिव्वएज्जा, मणप्पउसं अविकंपमाणे ॥ १४ ॥

अर्थ—(एवंतुसेहेविअपुठधम्मं के०) एरीते नवदीक्षित शिष्य पण प्रथमतो धर्मने अण फरसवाने लीधे अपंडित (धम्मंनजाणातिअबुज्झमाणे के०) अगीतार्थ अबुझ थको धर्मने नजाणे सुध्द सिध्दांतना जे अर्थ ते थकी रहित होय पछी (सेके०) ते हिज शिष्य गुरुकुल वासे वसतो थको (जिणवयणेणपछा के०) जिनवचन थकी सम स्त सूत्रार्थ विचारने समजीने (कोविए के०) पंडित थाय (सूरोदएपासतिचक्खुणेवा के०) जेम सूर्योदय थकी निर्मल नेत्र वालो पुरुष सर्व मार्गने जाणे तेम सुशिष्य प ण हृदयरूप नेत्रे करी आगमरूप सूर्य प्रकाशित यथार्थी निर्मल धर्मरूप मार्गने जा णे ॥ १३ ॥ ते शिष्य जाण थयो थको शुं देखे ते कहेछे. (उढुंअहेयंतिरियंदिसासुके०) उंचो नीचो अने तिर्छो एतावता सर्व लोकमांहे (तसायजेथावराजेयपाणा के०) त्रस अने स्थावर जे जीवोछे तेने विषे (सयाजएतेसुपरिव्वएज्जा के०) ते सर्वकाल यत्नकरतो संयम पाले रूडी क्रिया करे तेने विषे (मणप्पउसंअविकंपमाणेके०) मने करी प्रद्वेष न करे अविकंप एटले) शुध्द संयमने विषे अमोल निश्चल एकाग्रनावसहित एवो रहे॥१४

॥ दीपिका—एवं पूर्वोक्तप्रकारेण शिष्यकोप्यपुष्टधर्मा अगीतार्थः सूत्रार्थमबुध्यमानोधर्मं न जानाति सएव पश्चाद्गुरुकुलवासाज्जिनवचनेन कोविदः स्यात् । यथा सूर्योदये गता

वतरणश्चक्षुषा घटादीन् पश्यति जनस्तथा जिनागमेनापि जीवादयः पदार्थाजन्वयंतइ त्यर्थः ॥ १३ ॥ ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च दिक्षु त्रसाश्च ये स्थावराः सूक्ष्मबादरादिनेदाश्च ये प्राणिनस्तेषु सदायत्तः परिव्रजेत् संयमानुष्ठायी जवेत् तथाऽविकंपमानः संयमादविचलन् तेषु प्राणिषु मनसापि प्रद्वेषं न गछेत् ॥ १४ ॥

॥ टीका—एवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकमधिकृत्याह । (एवंतुसेहेत्यादि) यथा ह्यसावंधकारावृतायां रजन्यामतिगहनायामटव्यां मार्गं न जानाति सूर्योजमेनापनीते तमसि पश्चाज्ञानात्येवं तु शिष्यकोऽनिनवप्रव्रजितोपि सूत्रार्थानिष्पन्नोऽपुष्टो ऽपुष्कलः सम्यगपरिज्ञातोधर्मः श्रुतचारित्राख्योडुर्गतिप्रसृतजंतुधरणस्वनावोयेनासावपुष्टधर्मा सचाऽगीतार्थसूत्रानजिज्ञत्वादबुध्यमानोधर्मं जानातीति नसम्यक् परिछिनत्ति । सएव तु पश्चाज्जुरुकुलवासाज्जिनवचनेन कोविदोऽन्यस्तसर्वज्ञप्रणीतागमत्वान्निपुणः सूर्योदयेऽपगतावरणश्चक्षुषेव यथावस्थितान् जीवादीन् पदार्थान् पश्यति । इदमुक्तंजवति । यथाहि इंद्रियार्थसंपर्कात्साक्षात्कारितया परिस्फुटाघटपटादयः पदार्थाः प्रतीयंते एवं सर्वज्ञप्रणीतागमेनापि सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टस्वर्गापवर्गदेवतादयः परिस्फुटानिःशंकं प्रतीयंतइति । अपिच कदाचिच्चक्षुपान्यथानूतोप्यर्थोऽन्यथा परिछिद्यते । तद्यथा । मरुमरीचिकानिचयोजलत्रांत्या किंछुकनिचयोग्न्याकारेणापीति । नच सर्वज्ञप्रणीतागमस्य क्वचिदपि व्यनिचारः । तद्व्यनिचारे हि सर्वज्ञत्वहानिप्रसंगात् तत्संनवस्य चासर्वज्ञत्वेन प्रतिषेद्धुमशक्यत्वादिति ॥ १३ ॥ शिक्षकोहि गुरुकुलवासितया जिनवचनाजिज्ञोनवति तत्कोविदश्च सम्यक् मूलोत्तरगुणान् जानाति । तत्र मूलगुणानधिकृत्याह । (उड्ढंअहेयमित्यादि) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् दिक्षु विदिक्षु चेत्यनेन क्षेत्रमंगीकृत्य प्राणातिपातविरतिरनिहिता । इव्यतस्तु दर्शयति । त्रस्यंतीति त्रसास्तेजोवायुहींद्रियादयश्च तथा ये च स्थावराः स्थावरनामकर्मोदयवर्तिनः पृथिव्यब्वनस्पतयस्तथाचैतन्नेदाः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकरूपादशविधप्राणधारणात्प्राणिनस्तेषु सदा सर्वकालमनेन तु कालमधिकृत्य विरतिरनिहिता । यत्तः परिव्रजेत्परिसमंता द्व्रजेत् संयमानुष्ठायी नवेत् । नावप्राणातिपातविरतिं दर्शयति । स्थावरजंगमेषु प्राणिषु तदपकारे उपकारेवा मनागपि मनसा प्रद्वेषं नगछेदास्तांतावद्दुर्वचनदंडप्रहारादिकं तेष्वपकारिष्वपि नामंगलं चिंतयेदविकंप्यमानः संयमादचलन सदाचारमनुपालयेदिति । तदेवं योगत्रिककरणत्रिकेण इव्यक्षेत्रकालनावरूपां प्राणातिपातविरतिं सम्यगरक्षितया ऽनुपालयेदेवं शेषाण्यपि महाव्रतान्युत्तरगुणांश्च ग्रहणासेवनाशिक्षासमन्वितः सम्यगनुपालयेदिति ॥ १४ ॥

कालेण पुछे समियं पयासु, आइक्कमाणो दवियस्स वित्तं ॥ तं सोय कारी पुढो पवेसे, संखा इमं केवलियं समाहिं ॥ १५ ॥ अस्सिं सुठिच्चा तिविहेण तायी, एएसु या संति निरोहमाहु ॥ ते एवमक्खंति तिलोगदंसी, ण भुज्जमेयंति पमायसंगं ॥ १६ ॥

अर्थ–(कालेण के०) ते साधु काल प्रस्तावे एटले अवसर लइने जे आचार्य (पयासु के०) प्रजा एटले जीवोने विषे (समियं के०) सम परिणामे वर्त्तता होय तेवा आचार्यनी पासे सूत्र अने अर्थ (पुछे के०) पूछे (आइक्कमाणोदवियस्सवित्तं के०) अने ते आचार्य पण मुक्तिगमनयोग्य जे पुरुष एवा पुरुषना शुद्ध व्रत आचारने नापतो थको वंदनीक पूजनीक होय पंचाचारनो पालनार होय (तंसोयकारीपुढोपवेसे के०) तेवा आचार्य गुरुना वचन श्रवण करतो थको जुदा जुदा अर्थ विचार हृदयने विषे धारण करी राखे (संखाइमंकेवलियंसमाहिं के०) सन्मार्ग रूप केवली जापित सम्यक् ज्ञानादि लक्षण धर्म तद्रूप समाधि ने पोताना हृदयने विषे स्थापन करे ॥ १५ ॥ (अस्सिंसुठिच्चातिविहेणतायी के०) एरीते गुरुकुल वासे वसतो एवो चारित्रिउ ते पूर्वोक्त श्रुतरूप धर्म मार्ग सांजलीने मोक्ष मार्ग ग्रहण करीने त्रिविध प्रकारे त्रायी थाय एटले मन वचन अने कायायें करी छकायनो रक्षपाल थाय (एएसुयासंतिनिरोहमाहु के०) ए समिति गुप्तिने विषे स्थित रहिने शांति तथा निरोध एटले समस्त कर्मनो क्षय करे एम कहेछे (तेएवमक्खंतितिलोगदंसी के०) ते कोण कहेछे तोके त्रैलोक दर्शि एटले सर्वज्ञ पुरुषो एम कहेछे (णभुज्जमेयंतिपमायसंगं के०) वली ते साधु कदापि क्षण मात्र पण प्रमादनो संग करेनही तथा ए प्रमाद करवो एवो उपदेश पण करे नही ते पंमित साधु जाणवो. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–सम्यगितं सदाचारानुष्ठायिनं कंचिदाचार्यादिकं प्रजासु जंतुविषये चतुर्दशभूतग्रामविषयं किंचित् कालेनावसरं ज्ञात्वा पृछेत् । सच तेन पृष्टआचार्यादिराचक्षाणः सेव्यः स्यात् । किमाचक्षाणइत्याह । द्रव्यस्य वीतरागस्य वृत्तमनुष्ठानं संयमं वाऽचक्षाणोमान्यः स्यात् । आचार्यवचनं श्रोत्रे कर्णे कर्तुं शीलमस्य श्रोत्रकारी आज्ञाविधायी सन् पृथगुपन्यस्तमादरेण हृदये प्रवेशयेत् । केवलिकं केवलिना कथितं समाधिं सन्मार्गमिमं वक्ष्यमाणं संख्याय सम्यक् ज्ञात्वा यथोपदेशं प्रवर्तकः सम्यक् चेतसि धारयेदिति ॥ १५ ॥ अस्मिन् गुरुकुलवासे सुष्ठु स्थित्वा त्रिविधेन मनोवाक्कायैः कृतकारितानुमतिभिर्वा जंतूनां त्रायी रक्षकः । एतासु समितिगुप्तिषु स्थितस्य शांतिः सर्वद्वंद्वविनाशः

स्यात् । तथा च निरोधं कर्मक्षयमाहुस्तद्विदः । एवं त्रिलोकदर्शिनस्तीर्थकरास्ते आख्यांति कथयंति न पुनर्नूय एतं प्रमादसंगं विषयादिकं विधेयत्वेन कथितवंतः ॥ १६ ॥

॥ टीका—गुरोरंतिके वसतो विनयमाह । (कालेणेत्यादि) सूत्रमर्थं तडुनयं वा विशिष्टे न प्रष्टव्यकालेनार्यादेरवसरं ज्ञात्वा प्रजायंतइति प्रजाजंतवस्तासु जंतुषु विषये चतुर्दश नूतग्रामसंबधं कंचिदाचार्यादिकं सम्यगितं सदाचारानुष्ठायिनं सम्यक् वा समंताद्वा जंतुगतं पृच्छेदिति । सच तेन पृष्टआचार्यादिराचक्षाणः शुश्रूषयितव्योनवति । यदाचक्षाणस्तद्दर्शयति । मुक्तिगमनयोग्योनव्योऽव्यरागद्वेषविरहाद्वा डव्यं तस्य डव्यस्य वीतरागस्य तीर्थकरस्य वा वृत्तमनुष्ठानं संयमं ज्ञानं वा तत्प्रणीतमागमं वा सम्यगाचक्षाणः सपर्यया ऽयं माननीयोनवति । कथमित्याह । तदाचार्यादिना कथितं श्रोत्रे कर्णे कर्तुं शीलमस्य श्रोत्रकारी यथोपदेशकारी सदाज्ञाविधायी सन् पृथक्पृथगुपन्यस्तमादरेण हृदये प्रवेशयेच्चेतसि व्यवस्थापयेत् । व्यवस्थापनीयं दर्शयति । संख्याय सम्यक् ज्ञात्वा इममिति वक्ष्यमाणं केवलिनइदं कैवलिकं केवलिना कथितं सन्मार्गं सम्यक् ज्ञानादिकं मोक्षमार्गमाचार्यादिना कथितं यथोपदेशं प्रवर्तकः पृथग्विविक्तं हृदये पृथग्व्यवस्थापयेदिति ॥ ॥ १५ ॥ किंचान्यत् । (अस्सिंइत्यादि) अस्मिन् गुरुकुलवासे निवसता यच्छ्रुतं श्रुत्वा च सम्यक् हृदयव्यवस्थापनद्वारेणावधारितं तस्मिन् समाधिनूते मोक्षमार्गे सुष्टुस्थित्वा त्रिविधेनेति मनोवाक्कायगुप्तिनिः कृतकारितानुमतिनिर्वाऽत्मानं त्रातुं शीलमस्येति त्रायी जंतूनां सडुपदेशदानतस्त्राणकरणशीलोवा तस्य स्वपरत्रायिणएतेषु च समितिगुप्त्यादिषु समाधिमार्गेषु स्थितस्य शांतिर्नवत्यशेषद्वंद्वोपरमोनवति । तथा निरोधमशेषकर्मक्षयरूपमाहुस्तद्विदः प्रतिपादितवंतः । कएवमाहुरित्यादि । त्रिलोकमूर्ध्वाधस्तिर्यग्लक्षणं डष्टुं शीलं येषांते त्रिलोकदर्शिनस्तीर्थकृतः सर्वज्ञास्ते एवमनंतरोक्तया नीत्या सर्वनावान् केवलालोकेन दृष्ट्वाचक्षते प्रतिपादयंतीति । एतदेवं समितिगुप्त्यादिकं संसारोत्तारणसमर्थं ते त्रिलोकदर्शिनः कथितवंतोन पुनर्नूयएवं प्रमादसंगं मद्यविषयादिकं संबंधविपयत्वेन प्रतिपादितवंतः ॥ १६ ॥

निसम्म से निरकु समीहियहं, पडिनाणवं होई विसारए य ॥
आयाणअही वोदाणमोणं, उवेच्च सुद्धेण उवेति मोरकं ॥ १७ ॥
संखाइ धम्मं च वियागरंति, बुद्धा हु ते अंतकरा नवंति ॥
ते पारगा दोएहवि मोयणाए, संसोधितं पएह मुदाहरंति ॥ १८ ॥

अर्थ—(सेनिरकु के०) ते गुरुकुलवासी साधु (निसम्मसमीहियहं के०) मुक्तिग

मन योग्यनो आचार जे मोक्ष मार्ग एटले समिहित अर्थ एवो सांजलीने तेने सम्य क् प्रकारे हृदयने विषे अवधारीने (पडिजाणवंहोइविसारएय के०) प्रतिजावंत एट ले बुद्धिवंत थाय तथा विशारद एटले सांजलनारने ते मोक्षमार्गनो अर्थ प्रकाशे ए वो (आयाणअठी के०) मोक्षार्थी तथा (वोदाए के०) बार प्रकारनो तप तथा (मोणं के०) संयम तेने (उवेच्च के०) प्राप्त करीने (सुद्धेणउवेतिमोरकं के०) शुधो निर्दोष एवा आहारे करी अवशाने मोक्षने पामे ॥१७॥ हवे गुरुकुलवासे वसतांजे करे ते देखाडेळे (संखाइधम्मंचवियागरंति के०) ते साधु गुरु पाशेथी सांजलीने पछी ते ने सम्यक् प्रकारे जाणीने अन्य जनोने धर्म प्रकाशे (बुद्धाहुतेअंतकराजवंति के०) एवा बुद्ध एटले तत्वना जाण ते जन्मांतरे संचितजे कर्म तेना अंतना करनार थाय (तेपारगादोएहविमोयणाए के०) ते यथावस्थित धर्मना प्रकाशक बन्नेने एटले पोता ने तथा परने कर्म थकी मुकाववे करीने संसारना पारंगामी थाय (संसोधितंपएहमु दाहरंति के०) जे सम्यक् सोधी पूर्वापर अविरोध द्रव्य क्षेत्र काल जाव जाणीने प्र श्न कहे एतावता ते गीतार्थ सत्य धर्म प्रकाशता थका पोताना जीवने अने परना जीवने तारनार थाय पुछनारने समाधिना करनार थाय. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–सद्गुरुकुलवासी जिक्षुः साध्वाचारं भिशम्य ज्ञात्वा स्वतः समाहितं वार्थं मोक्षं ज्ञात्वा प्रतिजानवानुत्पन्नबुद्धिर्विशारदश्च जवति। आदीयते मोक्षार्थिनिरित्यादा नं ज्ञानादि सएवार्थः सविद्यते यस्य स आदानार्थी ज्ञानादिप्रयोजनवान् व्यवदानं त पः । मौनं संयमः । तौ तपःसंयमौ उपेत्य प्राप्य शुद्धेन निर्दोषाहारेणात्मानं यापय न् मोक्षमुपैति । (नउवेश्मारंकचित्पाठः) मारं संसारं न उपैति न ज्रमतीति ॥ १७॥ संख्या सद्बुद्धिस्तया धर्मं ज्ञात्वा परेषां ये व्यागृणंति कथयंति ते बुद्धाज्ञाततत्वाः कर्म णामंतकराजवंति । ते शुद्धधर्मप्ररूपकाद्वयोरपि परात्मनोः कर्मपाशमोचनेनपार गाः स्युः । ते च सम्यक् शोधितं पूर्वापरविरुद्धं प्रश्नशब्दमुदाहरंति । कोर्थः परेण कंचिदर्थं पृष्टस्तं प्रश्नं सम्यक् परीक्ष्य कथयेत् ॥ १८ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (णिसम्मेत्यादि) सद्गुरुकुलवासी जिक्षुः द्रव्यस्य वृत्तं निश म्यावगम्य स्वतः समीहितं चार्थं मोक्षार्थं बुध्वा हेयोपादेयं सम्यक् परिज्ञाय नित्यं गुरुकु लवासतः प्रतिजानवानुत्पन्नप्रतिजोजवति । तथा सम्यक् स्वसिद्धांतपरिज्ञानाच्छ्रोतॄणां य थावस्थितार्थानां विशारदोजवति प्रतिपादकोजवति । मोक्षार्थिनाऽऽदीयत इत्यादानं सम्यक् ज्ञानादिकं तेनार्थः सएवार्थः आदानार्थः विद्यते यस्यासावादानार्थी सएवंजूतो

ज्ञानादिप्रयोजनवान् । इत्यादानं द्वादशप्रकारं तपोमौनं संयमआश्रवनिरोधरूपस्तदेवमे तौतपःसंयमावुपेत्य प्राप्य ग्रहणसेवनरूपया द्विविधयापि शिक्षया समन्वितः सर्वत्र प्रमाद रहितः प्रतिज्ञावान् विशारदश्च शुद्धेन निरुपाधिना उद्गमादिदोषशुद्धेन चाहारेणात्मानं यापयन्नशेषकर्मक्षयलक्षणं मोक्षमुपैति। नउवेइमारंतिकचित्पाठः । बहुशोम्रियंते स्वकर्मपर वशाः प्राणिनोयस्मिन् समारः संसारस्तं जातिजरामरणरोगशोकाकुलं शुद्धेन मार्गे णात्मानं वर्तयन् उपैति । यदिवा मरणं प्राणत्यागलक्षणं मारस्तं बहुशोनोपैति। तथा हि । अप्रतिपतितसम्यक्त्वउत्कृष्टतः सप्ताष्टौवा नवान् म्रियतेनोर्ध्वमिति ॥१७॥ तदेवं गुरुकुलनिवासितया धर्मे सुस्थिताबहुश्रुताः प्रतिज्ञानवंतोऽर्थविशारदाश्च यत्कुर्वंति त दर्शयितुमाह । (संखाइत्यादि) सम्यक् ख्यायते परिज्ञायते यया सा संख्या सद्बुद्धिस्त या स्वतोधर्मं परिज्ञायापरेषां यथावस्थितं धर्मं श्रुतचारित्राख्यं व्यागृणंति प्रतिपादयंति। यदिवा स्वपरशक्तिं परिज्ञाय पर्षदं वा प्रतिपाद्य चार्थं सम्यगवबुध्य धर्मं प्रतिपादयंति । ते चैवंविधाबुद्धाः कालत्रयवेदिनोजन्मांतरसंचितानां कर्मणामंतकराभवंति । अन्येषां कर्मापनयनसमर्थोभवतीति दर्शयति । ते यथावस्थितधर्मप्ररूपकात् द्वयोरपि परा त्मनोः कर्मपाशविमोचनया स्नेहादिनिगडविमोचनया वा करणभूतया संसारसमुद्रस्य पारगाभवंति। ते चैवंभूताः सम्यक्बोधितं पूर्वोत्तराविरुद्धं प्रश्नशब्दमुदाहरंति । तथाहि। पूर्वं बुध्वा पर्यालोच्य कोयं पुरुषः कस्य चार्थस्य ग्रहणसमर्थोऽहंवा किंभूतार्थप्रति पादनशक्तइत्येवं सम्यक् परीक्ष्य व्याकुर्यादित्यथवा परेण किंचिदर्थं पृष्टस्तं प्रश्नं सम्यक् परीक्ष्योदाहरेत्सम्यगुत्तरं दद्यादिति । तथाचोक्तं । आयरियसयाधारि एणं अन्नेण सरियमुणिएण ॥ तोसंघमज्झयारे, ववहरिउंजेसुहंहोंति ॥ १ ॥ गीतार्थायथावस्थितं धर्मं कथयंतः स्वपरतारकाभवंतीति. ॥ १८ ॥

णोछायए णो विय लूसएज्जा, माणं ण सेवज्ज पगासणं च ॥ ण
यावि पन्ने परिहास कुज्जा, ण या सियावाय वियागरेज्जा ॥ १९ ॥
नूताभिसंकाइ डुगुंछमाणे, ण णिव्वहे मंतपदेण गोयं ॥ ण किं
चिमिछे मणुए पयासु, असाहुधम्माणि ण संवएज्जा ॥ २० ॥

अर्थ– ते प्रश्न कहेता थकां कदापि अन्यथा पण केवाय ते माटे तेनु निषेध कहे छे. ते धर्मनु प्ररूपक पुरुष पूछता सूत्रना अर्थने (णोछायए के०) ढाके नही एटले अन्यथा नवखाणे (णोवियलूसएज्जा के०) तथा पारका गुण लूसे नही एटले पोता ने अभिमाने करी अन्यने विटंबना करे नही तथा (माणंणसेवज्जपगासणंच के०) मा

मन योग्यनो आचार जे मोक्ष मार्ग एटले समिहित अर्थ एवो सांजलीने तेने सम्यक् प्रकारे हृदयने विषे अवधारीने (पडिजाणवंहोईविसारएय के०) प्रतिज्ञावंत एटले बुद्धिवंत थाय तथा विशारद एटले सांजलनारने ते मोक्षमार्गनो अर्थ प्रकाशे एवो (आयाणअही के०) मोक्षार्थी तथा (वोदाण के०) बार प्रकारनो तप तथा (मोणं के०) संयम तेने (उवेच्च के०) प्राप्त करीने (सुद्धेणउवेतिमोरकं के०) शुद्ध निर्दोष एवा आहारे करी अवशाने मोक्षने पामे ॥१७॥ हवे गुरुकुलवासे वसतां जे करे ते देखाडेछे (संखाइधम्मंचवियागरंति के०) ते साधु गुरु पाशेथी सांजलीने पछी तेने सम्यक् प्रकारे जाणीने अन्य जनोने धर्म प्रकाशे (बुद्धाहुतेअंतकराज्नवंति के०) एवा बुद्ध एटले तत्वना जाण ते जन्मांतरे संचितजे कर्म तेना अंतना करनार थाय (तेपारगादोएहुविमोयणाए के०) ते यथावस्थित धर्मना प्रकाशक बन्नेने एटले पोताने तथा परने कर्म थकी मुकाववे करीने संसारना पारंगामी थाय (संसोधितंपएहमुदाहरंति के०) जे सम्यक् सोधी पूर्वापर अविरोध इव्य क्षेत्र काल जाव जाणी ने प्रश्न कहे एतावता ते गीतार्थ सत्य धर्म प्रकाशता थका पोताना जीवने अने परना जीवने तारनार थाय पुछनारने समाधिना करनार थाय. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–सगुरुकुलवासी जिक्षुः साध्वाचारं निशम्य ज्ञात्वा स्वतः समाहितं वार्थं मोक्षं ज्ञात्वा प्रतिज्ञानवानुत्पन्नबुद्धिर्विशारदश्च जवति । आदीयते मोक्षार्थिजिरित्यादानं ज्ञानादि सएवार्थः सविद्यते यस्य स आदानार्थी ज्ञानादिप्रयोजनवान् व्यवदानं तपः । मौनं संयमः । तौ तपःसंयमौ उपेत्य प्राप्य शुद्धेन निर्दोषाहारेणात्मानं यापयन् मोक्षमुपैति । (नउवेइमारंकचित्पाठः) मारं संसारं न उपैति न च्रमतीति ॥ १७ ॥ संख्या सद्बुद्धिस्तया धर्मं ज्ञात्वा परेषां ये व्यागृणंति कथयंति ते बुद्धाज्ञाततत्वाः कर्मणामंतकराज्नवंति । ते शुद्धधर्मप्ररूपका ह्योरपि परात्मनोः कर्मपाशमोचनेनपारगाः स्युः । ते च सम्यक् शोधितं पूर्वापरविरुद्धं प्रश्नशब्दमुदाहरंति । कोर्थः परेण कंचिदर्थं पृष्टस्तं प्रश्नं सम्यक् परीक्ष्य कथयेत् ॥ १८ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (णिसम्मेत्यादि) सगुरुकुलवासी जिक्षुः इव्यस्य वृत्तं निशम्यावगम्य स्वतः समीहितं चार्थं मोक्षार्थं बुध्वा हेयोपादेयं सम्यक् परिज्ञाय नित्यं गुरुकुलवासतः प्रतिज्ञानवानुत्पन्नप्रतिज्ञोजवति । तथा सम्यक् स्वसिद्धांतपरिज्ञानाच्छ्रोतॄणां यथावस्थितार्थानां विशारदोजवति प्रतिपादकोजवति । मोक्षार्थिनाऽऽदीयत इत्यादानं सम्यक् ज्ञानादिकं तेनार्थः सएवार्थः आदानार्थः विद्यते यस्यासावादानार्थी सएवंभूतो

ज्ञानादिप्रयोजनवान् । इत्यादानं द्वादशप्रकारं तपोमौनं संयमआश्रवनिरोधरूपस्तदेवमे तौतपःसंयमावुपेत्य प्राप्य ग्रहणसेवनरूपया द्विविधयापि शिक्षया समन्वितः सर्वत्र प्रमाद रहितः प्रतिज्ञावान् विशारदश्च शुद्धेन निरुपाधिना उद्गमादिदोषशुद्धेन चाहारेणात्मानं यापयन्नशेषकर्मक्षयलक्षणं मोक्षमुपैति। नउवेइमारंतिक्कचित्पाठः। बहुशोम्रियंते स्वकर्मपर वशाः प्राणिनोयस्मिन् समारः संसारस्तं जातिजरामरणरोगशोकाकुलं शुद्धेन मार्गे णात्मानं वर्तयन् उपैति । यदिवा मरणं प्राणत्यागलक्षणं मारस्तं बहुशोनोपैति। तथा हि । अप्रतिपतितसम्यक्त्वउत्कृष्टतः सप्ताष्टौवा नवान् म्रियतेनोर्ध्वमिति ॥१७॥ तदेवं गुरुकुलनिवासितया धर्मे सुस्थिताबहुश्रुताः प्रतिज्ञानवंतोऽर्थविशारदाश्च यत्कुर्वंति त द्दर्शयितुमाह । (संखाइइत्यादि) सम्यक् ख्यायते परिज्ञायते यया सा संख्या सद्बुद्धिस्त या स्वतोधर्मं परिज्ञायापरेषां यथावस्थितं धर्मं श्रुतचारित्राख्यं व्यागृणंति प्रतिपादयंति। यदिवा स्वपरशक्तिं परिज्ञाय पर्षदं वा प्रतिपाद्य चार्थं सम्यगवबुध्य धर्मं प्रतिपादयंति । ते चैवंविधाबुद्धाः कालत्रयवेदिनोजन्मांतरसंचितानां कर्मणामंतकराभवंति । अन्येषां कर्मापनयनसमर्थोभवतीति दर्शयति । ते यथावस्थितधर्मप्ररूपकात् द्वयोरपि परा त्मनोः कर्मपाशविमोचनया स्नेहादिनिगडविमोचनया वा करणभूतया संसारसमुद्रस्य पारगाभवंति। ते चैवंभूताः सम्यक्बोधितं पूर्वोत्तराविरुद्धं प्रश्नशब्दमुदाहरंति । तथाहि। पूर्वं बुध्वा पर्यालोच्य कोयं पुरुषः कस्य चार्थस्य ग्रहणसमर्थोऽहंवा किंभूतार्थप्रति पादनशक्तइत्येवं सम्यक् परीक्ष्य व्याकुर्यादित्यथवा परेण किंचिदर्थं पृष्टस्तं प्रश्नं सम्यक् परीक्ष्योदाहरेत्सम्यगुत्तरं दद्यादिति । तथाचोक्तं ।आयरियसयाधारि एणं अन्नेण सरियमुणिएण ॥ तोसंघमज्झयारे, ववहरिउंजेसुद्धंहोंति ॥ १ ॥ गीतार्थायथावस्थितं धर्मं कथयंतः स्वपरतारकाभवंतीति. ॥ १८ ॥

णोछायए णो विय लूसएज्जा, माणं ण सेवज्ज पगासणं च ॥ ण
यावि पन्ने परिहास कुज्जा, ण या सियावाय वियागरेज्जा ॥ १९ ॥
भूताभिसंकाइ डुगुंछमाणे, ण णिव्वहे मंतपदेण गोयं ॥ ण किं
चिमिछे मणुए पयासु, असाहुधम्माणि ण संवएज्जा ॥ २० ॥

अर्थ- ते प्रश्न कहेता थकां कदापि अन्यथा पण केवाय ते माटे तेनु निपेध कहे छे. ते धर्मनु प्ररूपक पुरुप पूछता सूत्रना अर्थने (णोछायए के०) ढाके नही एटले अन्यथा नवखाणे (णोवियलूसएज्जा के०) तथा पारका गुण लूसे नही एटले पोता ने अभिमाने करी अन्यने विटंबना करे नही तथा (माणंणसेवज्जपगासणंच के०) मा

मन योग्यनो आचार जे मोक्ष मार्ग एटले समिहित अर्थ एवो सांभलीने तेने सम्य क् प्रकारे हृदयने विषे अवधारीने (पडिन्नाणवंहोईविसारएय के०) प्रतिभावंत एट ले बुद्धिवंत थाय तथा विशारद एटले सांभलनारने ते मोक्षमार्गनो अर्थ प्रकाशे ए वो (आयाणअट्ठी के०) मोक्षार्थी तथा (वोदाण के०) बार प्रकारनो तप तथा (मोणं के०) संयम तेने (उवेच्च के०) प्राप्त करीने (सुद्धेणउवेतिमोरकं के०) शुद्ध निर्दोष एवा आहारे करी अवशाने मोक्षने पामे ॥१७॥ हवे गुरुकुलवासे वसतांजे करे ते देखाडेछे (संखाइधम्मंचवियागरंति के०) ते साधु गुरु पाशेथी सांभलीने पछी ते ने सम्यक् प्रकारे जाणीने अन्य जनोने धर्म प्रकाशे (बुद्धाहुतेअंतकराभवंति के०) एवा बुद्ध एटले तत्वना जाण ते जन्मांतरे संचितजे कर्म तेना अंतना करनार थाय (तेपारगादोण्हविमोयणाए के०) ते यथावस्थित धर्मना प्रकाशक बन्नेने एटले पोता ने तथा परने कर्म थकी मुकाववे करीने संसारना पारंगामी थाय (संसोधितंपण्हमु दाहरंति के०) जे सम्यक् सोधी पूर्वापर अविरोध द्रव्य क्षेत्र काल भाव जाणी ने प्र श्न कहे एतावता ते गीतार्थ सत्य धर्म प्रकाशता थका पोताना जीवने अने परना जीवने तारनार थाय पुछनारने समाधिना करनार थाय. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—सगुरुकुलवासी भिक्षुः साध्वाचारं निशम्य ज्ञात्वा स्वतः समाहितं वार्थं मोक्षं ज्ञात्वा प्रतिभानवानुत्पन्नबुद्धिर्विशारदश्च भवति। आदीयते मोक्षार्थिभिरित्यादा नं ज्ञानादि सएवार्थः सविद्यते यस्य स आदानार्थी ज्ञानादिप्रयोजनवान् व्यवदानं त पः। मौनं संयमः। तौ तपःसंयमौ उपेत्य प्राप्य शुद्धेन निर्दोषाहारेणात्मानं यापय न् मोक्षमुपैति। (भउवेइमारंकचित्पाठः) मारं संसारं न उपैति न भ्रमतीति ॥ १७॥ संख्या सद्बुद्धिस्तया धर्मं ज्ञात्वा परेषां ये व्यागृणंति कथयंति ते बुद्धाज्ञाततत्वाः कर्म णामंतकराभवंति । ते शुद्धधर्मप्ररूपकाद्वयोरपि परात्मनोः कर्मपाशमोचनेनपार गाः स्युः। ते च सम्यक् शोधितं पूर्वापरविरुद्धं प्रश्नशब्दमुदाहरंति। कोर्थः परेण कंचिदर्थं पृष्टस्तं प्रश्नं सम्यक् परीक्ष्य कथयेत् ॥ १८ ॥

॥ टीका—किंचान्यत्। (णिसम्मेत्यादि) सगुरुकुलवासी भिक्षुः इव्यस्य वृत्तं निश म्यावगम्य स्वतः समीहितं चार्थं मोक्षार्थं बुध्वा हेयोपादेयं सम्यक् परिज्ञाय नित्यं गुरुकु लवासतः प्रतिभानवानुत्पन्नप्रतिभोभवति। तथा सम्यक् स्वसिद्धांतपरिज्ञानाच्छ्रोतॄणां य थावस्थितार्थानां विशारदोभवति प्रतिपादकोभवति। मोक्षार्थिनाऽऽदीयत इत्यादानं सम्यक् ज्ञानादिकं तेनार्थः सएवार्थः आदानार्थः विद्यते यस्यासावादानार्थी सएवंभूतो

ज्ञानादिप्रयोजनवान्। इत्यादानं द्वादशप्रकारं तपोमौनं संयमआश्रवनिरोधरूपस्तदेवमे तौतपःसंयमावुपेत्य प्राप्य ग्रहणसेवनरूपया द्विविधयापि शिक्षया समन्वितः सर्वत्र प्रमाद रहितः प्रतिज्ञावान् विशारदश्च शुद्धेन निरुपाधिना उद्गमादिदोषशुद्धेन चाहारेणात्मानं यापयन्नशेषकर्मक्षयलक्षणं मोक्षमुपैति। नअवेइमारंतिक्कचित्पाठः। बहुशोम्रियंते स्वकर्मपर वशाः प्राणिनोयस्मिन् समारः संसारस्तं जातिजरामरणरोगशोकाकुलं शुद्धेन मार्गे णात्मानं वर्तयन् उपैति। यदिवा मरणं प्राणत्यागलक्षणं मारस्तं बहुशोनोपैति। तथा हि। अप्रतिपतितसम्यक्त्वउत्कृष्टतः सप्ताष्टौवा नवान् म्रियतेनोर्ध्वमिति ॥१७॥ तदेवं गुरुकुलनिवासितया धर्मे सुस्थिताबहुश्रुताः प्रतिनानवंतोऽर्थविशारदाश्च यत्कुर्वंति त दर्शयितुमाह। (संखाइत्यादि) सम्यक् ख्यायते परिज्ञायते यया सा संख्या सद्बुद्धिस्त या स्वतोधर्मं परिज्ञायापरेषां यथावस्थितं धर्मं श्रुतचारित्राख्यं व्यागृणंति प्रतिपादयंति। यदिवा स्वपरशक्तिं परिज्ञाय पर्षदं वा प्रतिपाद्य चार्थं सम्यगवबुध्य धर्मं प्रतिपादयंति। ते चैवंविधाबुद्धाः कालत्रयवेदिनोजन्मांतरसंचितानां कर्मणामंतकरानवंति। अन्येषां कर्मापनयनसमर्थोनवतीति दर्शयति। ते यथावस्थितधर्मप्ररूपकात् द्वयोरपि परा त्मनोः कर्मपाशविमोचनया स्नेहादिनिगडविमोचनया वा करणनूतया संसारसमुद्रस्य पारगानवंति। ते चैवंनूताः सम्यक्बोधितं पूर्वोत्तराविरुद्धं प्रश्नशब्दमुदाहरंति। तथाहि। पूर्वं बुध्वा पर्यालोच्य कोयं पुरुषः कस्य चार्थस्य ग्रहणसमर्थोऽहंवा किंनूतार्थप्रति पादनशक्तइत्येवं सम्यक् परीक्ष्य व्याकुर्यादित्यथवा परेण किंचिदर्थं पृष्टस्तं प्रश्नं सम्यक् परीक्ष्योदाहरेत्सम्यगुत्तरं दद्यादिति। तथाचोक्तं। आयरियसयाधारि एणं अब्बेण सरियमुणिएण॥ तोसंघमज्झयारे, ववहरिउंजेसुहंहोंति ॥ १ ॥ गीतार्थायथावस्थितं धर्मं कथयंतः स्वपरतारकानवंतीति. ॥ १८ ॥

णोछायए णो विय लूसएज्जा, माणं ण सेवज्ज पगासणं च ॥ ण
यावि पन्ने परिहास कुज्जा, ण या सियावाय वियागरेज्जा ॥ १९ ॥
नूताभिसंकाइ डुगुंबमाणे, ण णिव्वहे मंतपदेण गोयं ॥ ण किं
चिमिछे मणुए पयासु, असाहुधम्माणि ण संवएज्जा ॥ २० ॥

अर्थ- ते प्रश्न कहेता थकां कदापि अन्यथा पण केवाय ते माटे तेनु निषेध कहे छे. ते धर्मनु प्ररूपक पुरुष पूछता सूत्रना अर्थने (णोछायए के०) ढाके नही एटले अन्यथा नवखाणे (णोवियलूसएज्जा के०) तथा पारका गुण लूसे नही एटले पोता ने अभिमाने करी अन्यने विटंबना करे नही तथा (माणंणसेवज्जपगासणंच के०) मा

बीजी असत्यामृषा एटले एकतो सत्य नाषा अने बीजी व्यवहारारिक ए रीते बे नाषा बोले (वियागरेज्जा समयासुपन्ने के०) तथा राजायें अने रांके पुढयो थको प्रज्ञावंत महानुनाव एवो साधु बन्नेने समनावे धर्म कहे. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—हास्यं न संधयेन्नकुर्यान्नकारयेत् । तथा पापधर्मान् सावद्यरूपान्नकुर्यात्तथा उजानिष्किंचनः सन् तथ्यमपि परुषं वचः कठिनं वाक्यं ज्ञपरिज्ञया विजानीय प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहरेत् । तथा पूजासत्कारादिकमवाप्य न तुछोनवेनोन्मादं गछेत् । तथा नविकछयेन्नात्मानं श्लाघयेत् तथा व्याख्यानावसरेऽनाविलोलोनादिनिरपेक्षः स्यात्तथाऽकषायोनिक्षुः स्यात् ॥ २१ ॥ साधुर्व्याख्यानं कुर्वन्नशंकितनावोप्यर्थनिर्णयवेत्तापि शंकेत औद्धत्यं परिहरेत् तथा विनज्यवादं स्याद्वादं व्यागृणीयात् कथयेत्। सत्या असत्या मृषावेति नाषाद्वयं वदेत् समुछितैः साधुनिः सह विहरन् सुप्रज्ञः सन्मतिर्नृपतिद्रमकयोः समतया रागद्वेषरहितोधर्मं व्यागृणीयात्. ॥ २२ ॥

॥ टीका—किंचान्यत् । (हासंपीत्यादि) यथा परात्मनोर्हास्यमुत्पद्यते तथा शब्दादिकं शरीरावयवमन्यान् वा पापधर्मान् सावद्यान्मनोवाक्कायव्यापारान्नसंधयेन्नविदध्यात् । तद्यथा । इदं छिंधि निंधि तथा कुप्रावचनिकान् हास्यप्रायं नोत्प्रासयेत्तद्यथा शोननीयं नवदीयं व्रतं । तद्यथा । मृद्वी शय्या प्रातरुछाय पेया, मध्ये नक्तं पानकं चापराह्णे । डाक्षाखंडं शर्करां चार्धरात्रे, मोक्षश्चांते शाक्यपुत्रेण दृष्टइत्यादिकं परदोषोन्नावनप्रायं पापबंधकमिति कृत्वा हास्येनापि नवक्तव्यं । तथा उजारागद्वेषरहितः सबाह्यान्यंतरग्रंथत्यागाद्वा निष्किंचनः संस्तथ्यमिति परमार्थतः सत्यमपि परुषं वचोपरचेतोविकारि ज्ञपरिज्ञया विजानीयात्प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहरेत् । यदिवा रागद्वेषविरहादोजास्तथ्यं परमार्थनूतमकृत्रिममप्रतारकं परुषं कर्म संश्लेषानावान्निर्ममत्वादल्पसत्वैर्डुरनुष्ठेयत्वाद्वा कर्कशमंतप्रांताहारोपनोगाद्वा परुषं संयमं विजानीयात्तदनुष्ठानतः सम्यगवगछेत्तथा स्वतः किंचिदर्थविशेषं परिज्ञाय पूजासत्कारादिकमवाप्य न तुछोनवेन्नोन्मादं गछेत्तथा नविकछयेन्नात्मानं श्लाघयेत् परं वा सम्यगवबुध्यमानोनोविकछयेन्नात्यंतं च मदयेत् तथा नाकुलोव्याख्यानावसरे धर्मकथनावसरे वा नाविलोलानादिनिरपेक्षोनवेत् । तथा सर्वदा अकषायः कषायरहितोनवेन्निक्षुः साधुरिति ॥ २१ ॥ सांप्रतं व्याख्यानविधिमधिकृत्याह । (संकेज्जेत्यादि) निक्षुः साधुर्व्याख्यानं कुर्वन्नर्वाग्दर्शित्वादर्थनिर्णयं प्रति अशंकितनावोपि शंकेत औद्धत्यंपरिहरन्नहमेवार्थस्य वेत्ता नापरः कश्चिदित्येवं न गर्वं कुर्वीत किंतु विषममर्थं प्ररूपयन् साशंकमेव कथयेद्यदिवा विनज्यवादः स्याद्वादस्तं सर्वत्रास्खलितं लोकव्यवहाराविसंवादितया सर्वव्यापिनं स्वानुनव

सिद्धं वदेदथवासम्यगर्थान् विनज्य पृथक्कृत्वा तद्वादं वदेत्तद्यथा नित्यं वादं इव्यार्थीत या पर्यायार्थीतया त्वनित्यवादं वदेत्तथा स्वइव्यक्षेत्रकालनावैः सर्वेपि पदार्थाः संति पर इव्यादिनिस्तु न संति । तथाचोक्तं । सदैव सर्वं कोनेछेत्स्वरूपादिचतुष्टयात् । असदे व विपर्यासान्नचेन्न व्यवतिष्ठतइत्यादिकं विनज्यवादं वदेदिति । विनज्यवादमपि नाषा द्वितयेनैव ब्रूयादित्याह । नाषयोराद्यचरमयोः सत्यासत्यामृषयोर्द्विकं नाषाद्विकं त न्नाषा द्वयं क्वचित्पृष्टोऽपृष्टोवा धर्मकथावसरेऽन्यदावा सदा वा व्यागृणीयात् नाषेत । किंनू तः सन् सम्यक् सत्संयमानुष्ठानेनोत्थिताः समुत्थिताः सत्साधवउद्युक्तविहारिणोन पुन रुदायिनृपमारकवत्कृत्रिमास्तैः सम्यगुत्थितैः सह विहरंश्चक्रवर्तिड्मकयोः समतया रागद्वेष रहितोवा शोनन प्रज्ञोनाषा द्वयोपेतः सम्यग्धर्मं व्यागृणीयादिति ॥ २२ ॥

अणुगछमाणे वि तहंवि जाणे, तहातहा साहु अ कक्कसेणं ॥
ए कुवई नास विहंसइज्जा, निरुद्धगं वावि न दीहइज्जा ॥ २३ ॥
समालवेज्जा पडिपुन्ननासी, निसामिया समिया अठदंसी ॥
आणाइसुद्धं वयणं निउंजे अनिसंधए पावविवेगनिक्खु ॥ २४ ॥

अर्थ-(अणुगछमाणे वि तहंवि जाणेके०) हवे तेने बे नाषायेंकरी धर्म कहेता थका कोइ एक पंमित होय ते समी रीते समजे अने कोइएक मूर्ख होय ते विपरीत पणे समजे एटले तेने अर्थनी पूरे पूरी समजण न पडे तो (तहातहा साहुअकक्कसेणं के०) तेम तेम साधु ते श्रोताने मधुर नाषाये करी सम्यक् समजावे सत्यमार्ग देखाडे परंतु (एकुवईनासविहंसइज्जा के०) तेनी नाषाने अवहिले नही तथा तेने ति रस्कार नकरे तथा तेनी नाषाने निंदे नही (निरुद्धगंवाविनदीहइज्जा के०) थोडो सूत्रा र्थ थोडा काल सुधी कहे पण व्याकर्ण तर्क करी घणो काल सुधी आलजाल कही विस्तारे नही. यतः सोअडोवत्तवो, जोनणई अरकरेहिं थोवेहिं । जाउण थोवोबहु अरक रेहिं सोहोईनिस्सारो ॥ १ ॥ इतिवचनात् ॥ २३ ॥ (समालवेज्जापडिपुन्ननासीके०) जे अत्यंत विषम अर्थ होय ते सम्यक् प्रकारे विस्तारीने बोले जेम श्रोता पुरुष सुखे स मजे तेम प्रतिपूर्ण नाषाये करी बोले अरकलियं अविच्चामेलिउं इत्यादिक पूरण नाषे (निसामियासमिया अठदंसी के०) तथा गुरुने समीपे सांनलीने सम्यक् प्रकारे अर्थ देखीने नलीरीते ते अर्थने विचारीने (आणाइसुद्धं वयणं निउंजे के०) आज्ञा विशुद्ध वचन प्रयुंजे एम उत्सर्ग अपवाद मार्गने दर्शावनारि एवि शुद्ध वाणी कहेतो थको (अ निसंधए पावविवेगनिक्खुके०) साधु पापनु विवेक करे एटले पापनुं परिहार करे. ॥ २४

॥ दीपिका—तस्यैवं नाषाद्वयेन वदतः कश्चिन्मेधावी तथैव तमर्थमाचार्यादिना कथितमनुगछन् सम्यगवबुध्यते । अन्यस्तु मंदमतिर्वितथमन्यथैव विजानीयात् । तंच सम्यगनवबुध्यमानं तथातथा तेन प्रकारेण कर्कशवचनेन वदेत् । यथाऽसौ तमर्थं बुध्यते न कुत्रचित्कुछमुखोनादरेण कथयेन्मनःपीडामुत्पादयेत् । तथा प्रश्नकर्तुर्नाषां नविहिंस्यान्नतिरस्कुर्यात् निरुद्धं स्तोकमर्थं न दीर्घयेत् अन्योन्यकथनेन दीर्घं कुर्यात् । तथा चोक्तं । सोअछो वत्तवो, जो नसाइ अरकरेहिं थोवेहिं ॥ जो पुण थोवा बहु अ,रकरेहिं सो होइ निःसारोइति ॥ २३ ॥ यः स्तोकाक्षरैर्नावबुध्यते तं प्रतिपूर्णनाषी पर्यायशब्दैर्नावार्थकथनश्च समालपेत् समंताद्भाषेत यथा सअवबुध्यते तथा कुर्यादित्यर्थः । तथाऽचार्यादेः सकाशादर्थं निशम्य श्रुत्वा सम्यगर्थदर्शी सत्पदार्थवेत्ता तीर्थकृताज्ञया निरवद्यं शुद्धं वचनमनियुंजीत वदेत् । एवं वाऽनियुंजन् निक्षुः पापविपाकं लानसत्कारादिं निरपेक्षतया कांक्षमाणोनिर्दोषं वचनमनिसंधयेत् ॥ २४ ॥

॥ टीका—(किंचान्यत् । (अणुगछमाणेइत्यादि) तस्यैवं नाषाद्वयेन कथयतः कश्चिन्मेधावितया तथैव तमर्थमाचार्यादिना कथितमनुगछन् सम्यगवबुध्यते । अपरस्तु मंदमेधावितया वितथमन्यथैवानिजानीयात्तंच सम्यगनवबुध्यमानं तथातथा तेन हेतूदाहरणसद्युक्तिप्रकटनप्रकारेण मूर्खस्त्वमसि तथा डुर्डुरूढः खसूचिरित्यादिना कर्कशवचनेनानिनर्त्सयन् यथातथासौ बुध्यते तथा साधुः सुष्ठु बोधयेन्न कुत्रचित्कुछमुखहस्तौष्ठनेत्रविकारैरनादरेण कथयन् मनःपीडामुत्पादयेत्तथा प्रश्नयतस्तन्नाषामपशब्दादिदोपडुष्टामपि धिग्मूर्खासंस्कृतमते किंवाऽनेन संस्कृतेन पूर्वोत्तरव्याहतेन वोच्चारितेनेत्येवं नविहिंस्यान्न तिरस्कुर्यादसंबद्धोद्घट्टनस्तं प्रश्नयितारं न विडंबयेदिति । तथा निरुद्धमर्थं स्तोकं दीर्घवाक्यैर्महता शब्ददर्डुरेणार्कविटपिकोष्टिकान्यायेन नकथयेन्निरुद्धं वा स्तोककालीनं व्याख्यानं व्याकरणतर्कादिप्रवेशनद्वारेण प्रसक्त्यानुप्रसक्त्या नदीर्घयेन्नदीर्घकालिकं कुर्यात् । तथाचोक्तं । सो अछो वत्तवो, जो नसाइ अरकरेहिं थोवेहिं ॥ जो पुण थोवो बहु अ, रकरेहिं सो होइ निःसारो ॥ तथा ॥ किंचित्सूत्रमल्पाक्षरमल्पार्थं वा इत्यादि चतुर्नंगिका तत्र यदल्पाक्षरं महार्थं तदिह प्रशस्यतइति ॥ २३ ॥ अपिच । (समालवेज्जाइत्यादि) यत्पुनरतिविपमत्वादल्पाक्षरैर्न सम्यगवबुध्यते तत्सम्यक् शोननेन प्रकारेण समंतात्पर्यायशब्दोच्चारणतोनावार्थकथनतश्चालपेन्नापेत समालपेन्नाल्पैरेवाक्षरैरुक्त्वा कृतार्थोनिवेदपितु ज्ञयगहनार्थेनाषणे सद्धेतुयुक्त्यादिनिः श्रोतारमुपेक्ष्य प्रतिपूर्णनाषी स्यादस्खलिताहीनाक्षरार्थवादी नवेदिति । तथाचार्यादेः सकाशाद्यथावदर्थं श्रुत्वा ऽवगम्य निशम्य च यथावस्थितमर्थं यथागुरुसकाशादवधारितमर्थं प्रतिपाद्यं श्ठ

शीलमस्य भवति सम्यगर्थदर्शी सएवंभूतः संस्तीर्थकराज्ञया सर्वज्ञप्रणीतागमानुसारेण शुद्धमवदातं पूर्वापराविरुद्धं निरवद्यं वचनमभियुंजीतोत्सर्गविषयेसति उत्सर्गमपवादविषये वा ऽपवादं तथा स्वपरसमययोर्यथास्वं वचनमभिवदेत् । एवं चाभियुंजन् भिक्षुः पापविवेकलाभं सत्कारादिं निरपेक्षतया कांक्षमाणोनिर्दोषं वचनमभिसंधयेदिति ॥ २४ ॥

अहाबुइयाइं सुसिरकएक्का, जइज्जया णातिवेलं वदेज्जा ॥ से दिठिमं दिठिण लूसएज्जा, से जाणई भासिउं तं समाहिं ॥ २५ ॥ अलूसए णो पछन्नभासी, णो सुत्तमछं च करेज्ज ताई ॥ सछारभत्ती अणुवीइ वायं सुयं च सम्मं पडिवाययंति ॥ २६ ॥ से सुद्धसुत्ते उवहाणवं च, धम्मं च जे विंदति तछतछ ॥ आदेज्जवक्के कुसले वियत्ते, स अरिहइ भासिउं तं समाहित्तिबेमि ॥ २७ ॥ इतिग्रंथनामा चउदसमअध्ययणं सम्मत्तं ॥

अर्थ– (अहाबुइयाइंसुसिरकएक्का के०) श्रीतीर्थंकरादिके जेम वचन कह्यांछे तेमज भलीरीते शीखे (जइज्जयाणातिवेलंवदेज्जा के०) तेमज पाले तेमज मुखथी भाषे एटले प्रकाशे तथा वेलं एटले मर्यादा उल्लंघे नही वली सावद्य वचन बोले नही (सेदिठिमंदिठिणलूसएज्जा के०) एवो ते दिठिमं एटले सम्यक् दृष्टीवंत ते पोतानो सम्यक् दर्शन लूसाए नही तेवी रीते प्ररूपणा करे (सेजाणईभासिउंतंसमाहिं के०) ते पुरुष श्रीतीर्थंकरभाषित समाधि मार्ग बोली जाणे ॥ २५ ॥ (अलूसएणोपछन्नभासी के०) आगमार्थ कहेतो थको लूसे नही एटले अपशब्द बोली सूत्रार्थ डुषवेनही तथा प्रछन्नभाषी नथाय एटले सूत्रार्थ गोपवे नही सूत्रनो भलो अर्थ प्रकाशे (णोसुत्तमछंच करेज्जताई के०) तथा त्राई एटले छकायनो रक्षपाल एवो साधु सूत्र अर्थ अन्यथा नकरे (सछारभत्तीअणुवीइवायंके०) गुरूनी भक्तिआलोचीने बोले पण गुरूनी अभक्ति थाय तेम नबोले (सुयंचसम्मंपडिवाययंतिके०) जेरीते श्रुतने सम्यक् प्रकारे करीने गुरूसमीपेंसांभल्युं होय तेरीतेज अर्थ बोले अन्यथाक्षणोबंदोभवति ॥ २६ ॥ (सेसुद्धसुत्ते के०) ते साधुनुं ए रीते उपदेशादिक अवशरे प्रकाशतो सूत्र शुद्ध कहेवाय (उवहाणवंचके०) तथा उपधानवंत एटले जे सूत्रनो जे तप सिद्धांतोमां कह्योछे तेने उपधान कहियें तेनो करनार (धम्मंचजेविंदतितछतछके०) जेजे धर्म सम्यक् जाणे तेते धर्म त्यां त्यां अंगीकार करे जेम जेम श्रीवीतरागनी आज्ञा मले तेम तेम धर्मभाषे पण श्रीवीतरागनी आज्ञा विरूद्ध नबोले (आदेज्जवक्केकुसलेवियत्तेके०) एवो जेथाय ते आदेय वचन एटले समस्त लोकने ग्राह्य माननीक वचन बोले तथा कुशल

निपुण तथा व्यक्त स्पष्ट ते अविमास्यो नकरे (सअरिहइनासिउंतंसमाहित्तिबेमिके०)ते साधु श्रीवीतराग प्रणीत सूधो समाधि धर्म मार्ग नाषवाने योग्य थाय त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २७ ॥ एरीते ग्रंथनामा चौदमां अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका—(यथोक्तानि जिनैस्तानि सुष्ठु शिक्षेत शिक्षितश्च देशनायां यतते । देश नोद्यतोपि योयस्य कर्तव्यस्य कालस्तां वेलामतिक्रम्य न वदेत् कर्तव्यमर्यादां नातिलंघये दित्यर्थः । सद्दृष्टिमान् यथावस्थितपदार्थान् श्रद्दधानोदृष्टिं सम्यक्दर्शनं नलूषयेन्नदूष येत् । कोर्थः । देशनां व्याख्यानं वा कुर्वन् तथा कथयेद्यथाश्रोतुः सम्यक्त्वं स्थिरीभव ति । यश्चैवंभूतः सजानाति भाषितुं तं सर्वज्ञोक्तं समाधिं ज्ञानदर्शनचारित्राख्यं २५ सर्वज्ञोक्तं नलूषयेन्नदूषयेत्प्रछन्नभाषी नवेत्सिद्धांतार्थं शुद्धं प्रछन्नंवा न गोपयेदथ प्रछ न्नमर्थमपरिणताय न भाषेत । तथाचोक्तं । अप्रशांतमतौ शास्त्रसद्भावप्रतिपादनं ॥ दो षायाभिनवोदीर्णे,शमनीयमिव ज्वरे ॥ १ ॥ त्रायी स्वपररक्षकोन सूत्रमतिकल्पनय कुर्वीत । परहितकरः शास्ता तस्मिन् शास्तरि याभक्तिर्बहुमानस्तयाऽनुविचिंत्य वाद वदेत् । अनेनोक्तेनागमबाधा कापि न स्यादिति । तथा श्रुतं सम्यगाराधयन् प्रतिपादये त् सुखशीलः स्यादित्यर्थः ॥ २६ ॥ शुद्धं सूत्रं प्रवचनं यस्य सशुद्धसूत्रः उपधानवान् तपश्चरणयुक्तोयोधर्मं सम्यक् वेत्ति तत्रतत्रोत्सर्गापवादादौ आदेयवाक्योग्राह्यवचन स्यात् तथा कुशलोनिपुणोव्यक्तोनासमीक्ष्यकारी समाधिं ज्ञानादिकं भाषितुमर्हति योग्य स्यादिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २७ ॥ इति चतुर्दशं ग्रंथाध्ययनं समाप्तं ॥ ६ ॥

॥ टीका—पुनरपि भाषाविधिमधिकृत्याह । (अहोबुद्दियाइइत्यादि) यथोक्तानि तीर्थंकरगणधरादिभिस्तान्यहर्निशं सुष्ठु शिक्षेत ग्रहणशिक्षया सर्वज्ञोक्तागमं सम्यक् गृण्ही यादासेवनाशिक्षया त्वनवरतमुद्युक्तविहारितया सेवेताऽन्येषांच तथैव प्रतिपादयेदिति प्रसक्तलक्षणनिवृत्तये त्वपदिश्यते सदा ग्रहणासेवनाशिक्षयोर्देशनायां यतेत सदा यतमानो पि योयस्य कर्तव्यस्य कालोऽध्ययनकालोवा तां वेलामतिलंघ्य नातिवेलं वददध्ययनकर्त व्यमर्यादां नातिलंघयेत्सदनुष्ठानं प्रतिव्रजेद्वा यथावसरं परस्पराबाधया सर्वाः क्रियाःकु र्यादित्यर्थः । सएवंगुणजातीयोयथाकालवादी यथाकालचारी च सम्यक् दृष्टिमान् यथाव स्थितार्थान् पदार्थान् श्रद्दधानोदेशनां व्याख्यानं वा कुर्वन् दृष्टिं सम्यक्दर्शनं नलूपयेन्नदू येत् । इदमुक्तंभवति । पुरुषविशेषं ज्ञात्वा तथातथा कथनीयमपसिध्धांतदेशनापा हारेण यथायथा श्रोतुः सम्यक्त्वं स्थिरीभवति । नपुनः शंकोत्पादनतोदूष्यते यश्चै वंविधः सजानात्यवबुध्यते भाषितुं प्ररूपयितुं समाधिं सम्यक्दर्शनचारित्राख्यं सम्यक्

व्यवस्थानाख्यं वा तं सर्वज्ञोक्तं समाधिं सम्यगवगच्छतीति ॥ २५ ॥ किंचान्यत् (अनू सएइत्यादि) सर्वज्ञोक्तमागमं कथयन्नोनूषयेन्नान्यथापसिद्धांतव्याख्यानेन दूषयेत्तथा न प्रछन्ननाषी नवेत् सिद्धांतार्थमविरुद्धमवदातं सार्वजनीनं तत्प्रछन्ननाषणेन न गोपयेत्। यदिवा प्रछन्नं वाऽर्थपरिणताय न नाषेत नसिद्धांतरहस्यमपरिणतशिष्यविध्वंसनेन दोषायैव संपद्यते । तथाचोक्तं । अप्रशांतमतौ शास्त्र, सद्भावप्रतिपादनं ॥ दोषायानिनवोदीर्णे, शमनीयमिव ज्वरेइत्यादि । नच सूत्रमन्यत् स्वमतिविकल्पनतः स्वपरत्रायी कुर्वीतान्यथा सूत्रं तदर्थंवा संसारत्रायी त्राणशीलोजंतूनां नविदधीत । किमित्यन्यथा सूत्रं नकर्तव्यमित्याह । परहितैकरतः शास्ता तस्मिन् शास्तरि या व्यवस्थिता नक्तिर्बहुमानस्तया तद्भक्त्या ऽनुविचिंत्यमानेनोक्तेन न कदाचिदागमबाधा स्यादित्येवं पर्यालोच्य वाचं वदेत्तथातथा तच्छ्रुतमाचार्यादिन्यः सकाशात्तत्तथैव सम्यक्त्वाराधनामनुवर्तमानोऽन्येन्यऋणमोक्षं प्रतिपद्यमानः प्रतिपादयेत् प्ररूपयेन्न सुखशीलतां मन्यमानोयथाकथंचित्तिष्ठेदिति ॥ २६ ॥ अध्ययनोपसंहारार्थमाह । (सेसुद्धसुत्तेइत्यादि) ससम्यग्दर्शनस्यालूषकोयथावस्थितागमस्यप्रणेता ऽनुविचिंत्य नाषकः शुद्धमवदात्तं यथावस्थितवस्तुप्ररूपणतो ऽ ध्ययनतश्च सूत्रं प्रवचनं यस्यासौ शुद्धसूत्रः । तथोपधानं तपश्चरणं यद्यस्य सूत्रस्यानिहितमागमे तद्विद्यते यस्यासावुपधानवान् तथा धर्मं श्रुतचारित्राख्यं यः सम्यक् वेत्ति विंदतेवा सम्यक् लनते तत्र तत्रेति यआज्ञाग्राह्योर्थः सआज्ञयैव प्रतिपत्तव्योहेतुतस्तु सम्यग्वेतुना । यदिवा स्वसमयसिद्धोर्थः स्वसमये व्यवस्थापनीयः परसिद्धश्च परस्मिन्नथवोत्सर्गापवादयोर्व्यवस्थितोर्थस्ताभ्यामेव यथास्वंप्रतिपादयितव्यएतद्गुणसंपन्नश्चादेयवाक्योग्राह्यवाक्योनवति । तथा कुशलोनिपुणआगमप्रतिपादने सदनुष्ठाने च व्यक्तः परिस्फुटोनासमीक्ष्यकारी । यश्चैतद्गुणसमन्वित : सोर्हति योग्योनवति तं सर्वज्ञोक्तं ज्ञानादिकं वा नावसमाधिं नाषितुं प्रतिपादयितुं नापर : कश्चिदिति । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् । गतोनुगमोनया : प्राग्वद्याख्येया : ॥ २७ ॥ समाप्तं चतुर्दशं ग्रंथाख्यमध्ययनमिति ॥

हवे पंदरमुं आदान नामे अध्ययन प्रारंनिये बैयें आदान एटले ग्रहण करवुं एटले रूडी शिक्षारूप चारित्रानुष्ठानने ग्रहण करवुं तेनुं इव्ये करी तथा नावे करी शुद्ध स्वरूप कहेबे.

जमतीतं पडुप्पन्नं, आगमिस्सं च णायर्ज ॥ सवमन्नंति तं ताई,
दंसणावरणं तए ॥ १ ॥ अंतए वितिगिछाए, जे जाणंति अ
णेलिसं ॥ अणेलिसस्स अरकाया, ण से होइ तहिं तहिं ॥२॥

अर्थ-(जमतीतंपडुप्पन्नं के०) जे द्रव्यादिक पदार्थ अतीतकाले थया तथा जे वर्त्तमान कालें वर्त्तेबे (अगमिस्सं चणायउ के०) तथा अगमिक कालें जे थशे तेना यथावस्थित स्वरूपनो प्ररुपवो तेथी प्ररूपणाना अधिकारी पणा माटे नायक कहियें (सव्वमन्नंतितंताई के०) ते सर्व द्रव्यादिक चतुष्क संपूर्ण जाणे ते जाणतो बतो सर्व प्राणीउनो रक्षपाल (दंसणावरणंतए के०) ते दर्शनावरणीय कर्मनो अंतकरनार जाणवो अर्थात् ते दर्शनावरणादिक घातीकर्म चतुष्कने खपावे ॥ १ ॥ (वितिगिच्छाए के०) संदेह एटले मिथ्याज्ञान तेनो (अंतए के०) अंतकारक (जे जाणंतिअणेलिसं के०) जे घातीकर्मनो खपावनार ते सर्व निरुपम जाणे एटले तेना जेवो ज्ञानवंत बीजो कोइ नहीं (अणेलिसस्स अरकाया के०) एम जे निरुपम ज्ञानेकरी पदार्थनो प्रकाश करनार (णसेहोइतहिंतहिं के०) ते तिहां तिहां बौद्धादि दर्शनीने विषे न प्रवर्त्ते एटले ते प्राणी जिनमत टालीने अन्य दर्शनीने विषे तत्व न जाणे ॥ २ ॥

॥ दीपिका-अथ पंचदशमादानीयाध्ययनमारभ्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (जमतीत्यादि) यदतीतं प्रत्युत्पन्नं वर्तमानं यदनागतमेष्यत्कालनाविद्रव्यं तस्य सर्वस्यापि यथावस्थितस्वरूपनिरूपणतोनायकः प्रणेता त्रायी सर्वप्राणिरक्षकः सर्वं मन्यते जानाति यो दर्शनावरणांतकोमध्यग्रहणादघातिकर्मचतुष्कस्यांतकृदद्रष्टव्यः सएव सर्वज्ञइति ॥१॥ विचिकित्सायाः संशयस्यांतकः क्षयकृयः सअनीदृशं जगज्जानाति । यादृशं कर्मक्षयतः सर्वज्ञं सामान्यविशेषात्मकं जगज्जानाति तादृशमन्योबौद्धादिर्न जानातीत्यनीदृशमित्युक्तं । अनीदृशस्य च यथाख्याता प्ररूपकोनासौ तत्र तत्र बौद्धादिके दर्शनः स्यात् । किंतु जिनप्रवचनेऽर्हन्नेव त्रिकालवर्तिवस्तूनामाख्यातेति ॥ २ ॥

॥ टीका-अथ चतुर्दशाध्ययनानंतरं पंचदशमारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहानंतराध्ययने सबाह्याभ्यंतरस्य ग्रंथस्य परित्यागोविधेयइत्यभिहितं । ग्रंथपरित्यागाच्चायतचारित्रोभवति साधुस्ततोयादृगसौ यथासंपूर्णामायतचारित्रतां प्रतिपाद्यते तदनेनाध्ययेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराण्युपक्रमादीनि भवंति । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयं । तद्यथा । आयतचारित्रेण साधुना भाव्यं । नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे आदानीयमिति नाम।मोक्षार्थिनाऽशेषकर्मक्षयार्थं यज्ज्ञानादिकमादीयते तदत्र प्रतिपाद्यतइति कृत्वा आदानीयमिति नाम संवृत्तं। पर्यायद्वारेणच प्रतिपादितं सुग्रहं भवतीत्यतआदानशब्दस्य तत्पर्यायस्य च ग्रहणशब्दस्यच निक्षेपं कर्तुकामोनिर्युक्तिकृदाह । "आदाणे गहणंमि य णिरकेवो होंति दोन्नवि चउक्को । एगहं नाणहं, च होज्ज पगयं तु आदाणे" ॥ ३४ ॥ (आदाणेइत्यादि) अथवा (जमतीयंति) अस्याध्ययनस्य नाम

तच्चादानपदेनादावादीयते इत्यादानं तच्च ग्रहणमित्युच्यते । तत्रादानग्रहणयोर्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । (आदाणेइत्यादि) आदीयते कार्यार्थिना तदित्यादानं । कर्मणिल्युट् प्रत्ययः करणेवा । दीयते गृह्यते स्वीक्रियते विवक्षितमनेनेति कृत्वा आदानं च पर्यायतोग्रहणमित्युच्यते ॥ तत आदानग्रहणयोर्निक्षेपोभवति द्वौचतुष्कौ । तद्यथा । नामादानं स्थापनादानं द्रव्यादानं भावादानंच । तत्र नामस्थापने क्षुस्से । द्रव्यादानं वित्तं यस्माद्वौकिकैः परित्यक्तान्यकर्तव्यैर्महता क्लेशेन तदादीयते तेन वाऽपरंद्विपदचतुष्पदादिकमादीयतइति कृत्वा । भावादानंतु द्विधा प्रशस्तमप्रशस्तं क्रोधाद्युदयमिथ्यात्वाविरत्यादिकं वा । प्रशस्तं तूत्तरोत्तरगुणश्रेण्या विशुद्धाध्यवसायकंडकोपाख्यानं सम्यक् ज्ञानादिकं वेत्येतदर्थप्रतिपादनपरमेतदेव चाध्ययनं द्रष्टव्यमित्येवं ग्रहणेपि नामादिकश्चतुर्धा निक्षेपोद्रष्टव्यः । भावार्थोप्यादानपदस्येव द्रष्टव्यस्तत्पर्यायत्वादस्येति । एतच्च ग्रहणं नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रार्थनयाभिप्रायेणादानपदेन सहाज्ञोच्यमानं शक्रेंद्रादिवदेकार्थमभिन्नार्थं भवेत् शब्दसमभिरूढैवंभूतशब्दनयाभिप्रायेण च नानार्थं भवेत् । इहतु प्रकृतं प्रस्तावआदाने आदानविषये आदानपदमाश्रित्यास्याभिधानमाकार्यादानीयं वा ज्ञानादिकमाश्रित्य नाम कृतमिति आदानीयाभिधानस्यान्यथा वा प्रवृत्तिनिमित्तमाह । “ जं पढमस्संतिमए, बितियस्स उ तह वेज्जआदिंमि ॥ एतेणादाणिज्जं, एसो अनोवि पज्जाउ ” ॥ ३५ ॥ (जंपढमस्सेत्यादि) यत्पदं प्रथमश्लोकस्य तदर्धस्य चांते पर्यंते तदेव पदं शब्दतोर्थतश्चयतश्च द्वितीयश्लोकस्यादौ तदर्धस्य वादौ भवत्येतेन प्रकारेणाद्यंपदसदृशत्वेनादानीयं भवत्येप आदानीयाभिधानप्रवृत्तेः पर्यायोऽन्योवा विशिष्टज्ञानाद्यादानीयोपादानादिति । केचित्तु पुनरस्याध्ययनस्यांतादिपदयोः संकलनात्संकलिकेति नाम कुर्वते । तस्याअपि नामादिकश्चतुर्धानिक्षेपोविधेयः । तत्रापि द्रव्यसंकलिका निगडादौ भावसंकलनात्तूत्तरोत्तरविशिष्टावसायसंकलनमिदमेव वा ऽध्ययनमाद्यंतपदयोः संकलनादिति । येषामादानपदेनाभिधानं तन्मतेनादौ यत्पदं तदादानपदमतआदेर्निक्षेपं कर्तुकामआह । “ णामादी ठवणादी, दव्वादी चेव होंति भावादी ॥ तं दव्वादी पुण दवस्स जो सब्भावो सएढाणे ३६ (णामादी इत्यादि) आदेर्नामादिकश्चतुर्धा निक्षेपः । नामस्थापने सुगमत्वादनादृत्य द्रव्यादि दर्शयति । द्रव्यादिः पुनर्द्रव्यस्य परमाएवादेर्यः स्वभावः परिणतिविशेषः स्वके स्थाने स्वकीये पर्याये प्रथममादौ भवति सद्रव्यादिर्द्रव्यस्य दध्यादेर्यआद्यः परिणतिविशेषः क्षीरस्य विनाशकालसमकालीनएवमन्यस्यापि परमाएवादेर्द्रव्यस्य योयः परिणतिविशेषः प्रथममुत्पद्यते ससर्वोपिद्रव्यादिर्भवति । ननुच कथं क्षीरविनाशसमयएव दध्युत्पादः । तथाहि । उत्पादविनाशौ भावाभावरूपौ वस्तुधर्मौ वर्तेते । न च धर्मोधर्मिणमंतरेण भवितुमर्हत्यतएकस्मिन्नेव क्षणे तद्धर्मिणोर्दधिक्षीरयोः सत्तामाप्नोत्येतच्च दृष्टं

बाधितमिति नैषदोषः । यस्य हि वादिनः क्षणमात्रं वस्तु तस्यायं दोषोयस्यतु पूर्वोत्त रक्षणानुगतमन्वयि द्रव्यमस्ति अस्यायं दोषएव न जवति । तथाहि । तत्परिणामि द्रव्य मेकस्मिन्नेव क्षणे एकेन स्वजावेनोत्पद्यते परेण विनश्यत्यनंतधर्मत्वाद्वस्तुनइति । य त्किंचिदेतत् । तदेवं द्रव्यस्य विवक्षितपरिणामेन परिणमतोयआद्यः समयः सद्रव्यादि रिति स्थितं द्रव्यस्य प्राधान्येन विवक्षितत्वादिति । सांप्रतं जावादिमधिकृत्याह । " आ गमणो आगमउ जावादी तं बुहा उवदिसंती ॥ णो अगमउ जावो, पंचविहो होइ णायव्वो ॥ ३७ ॥ आगमउ पुण आदी, गणिपिंमगं होइ बारसं गंतु । गब्बसि लोगो पदपादअरकराइ चउ तब्बादी " ॥ ३८ ॥ (आगमइत्यादि) जावोंतःकरणस्य परिणति विशेषस्तं बुधास्तीर्थकरगणधरादयोव्यपदिशंति प्रतिपादयंति । तद्यथा आगमतोनोआगम तश्च । तत्र नोआगमतः प्रधानपुरुषार्थतया चिंत्यमानत्वात्पंचविधः पंचप्रकारोजवति । तद्यथा । प्राणातिपातविरमणादीनामाद्यः प्रतिपत्तिसमयइति । तथा (आगमउइत्यादि) आगममाश्रित्य पुनरादिरेवं द्रष्टव्यः । तद्यथा । यदेतद्गणिनआचार्यस्य पिटकं सर्व स्वमाधारोवा तद्द्वादशांगं जवति । तुशब्दादन्यदप्युपांगादिकं द्रष्टव्यं । तस्य प्रवचनस्यादि जूतोयोग्रंथस्तस्याप्याद्यः श्लोकस्तत्राप्याद्यं पदं तस्यापि प्रथममक्षरमेवंविधोबहुप्रकारो जावादिर्द्रष्टव्यइति । तत्र सर्वस्यापि प्रवचनत्वसामायिकमादिस्तस्यापि करोमीति पदं तस्यापि ककारो द्वादशानां त्वंगानामाचारांगमादिस्तस्यापि शास्त्रपरिज्ञाध्ययनमस्यापि च जीवोद्देशकस्तस्यापि सुयंतिपदं तस्यापि सुकारइति पदमादिरित्यस्य च प्रकृतांगस्य सम याध्ययनमादिस्तस्यापि उद्देशकश्लोकपादपदवर्णादिर्द्रष्टव्यइति । गतोनामनिष्पनोनिक्षे पस्तदनंतरमस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (जमतीयमित्यादि) अ स्य चानंतरसूत्रेण संबंधोवक्तव्यः सचायं । तद्यथा । आदेयवाक्यः कुशलोव्यक्तोर्हति त थोक्तं समाधिं जाषितुं यश्च यदतीतं प्रत्युत्पन्नमागामिच सर्वमवगच्छति सएव जाषितुमर्ह ति नान्यइति । परंपरसूत्रसंबंधस्तु यएवातीतानागतवर्तमानकालत्रयवेदी सएवाशेषबंधना नां परिज्ञानात्रोटयिता वेत्येतद्बुध्येतेत्यादिकः संबंधोऽपरसूत्रैरपि स्वबुध्या लगनीयइ ति । तदेवं प्रतिपादितसंबंधस्यास्य सूत्रस्य व्याख्या प्रस्तूयते । यत्किमपि द्रव्यजातमती तं यच्च प्रत्युत्पन्नं यच्चानागतमेष्यत्कालजावि तस्यासौ सर्वस्यापि यथावस्थितस्वरूपनि रूपणतोनायकः प्रणेता । यथावस्थितवस्तुस्वरूपप्रणेतृत्वं च परिज्ञानेसति जवत्यत स्तदपदिश्यते सर्वमतीतानागतवर्तमानकालत्रयजावतोद्रव्यादिचतुष्कस्वरूपतोद्रव्यपर्या यनिरूपणतश्च मनुतेऽसौ जानाति सम्यक् परिच्छिनत्ति तत्सर्वमवबुध्यते जानानश्च विशि ष्टोपदेशदानेन संसारोत्तारणतः सर्वप्राणिनां त्रायीसौ त्राणकरणशीलः । यदिवा अयव यपयमयतयणयगतावित्यस्य धातोर्ल्युट् प्रत्ययः । तयनं तायः सविद्यते यस्यासौ तायी ।

सर्वे गत्यर्थाज्ञानार्थाइति कृत्वा सामान्यस्य परिछेदकोमनुते इत्यनेकविशेषस्य तदनेकसर्व ज्ञः सर्वदर्शी चेत्युक्तं जवति । नच कारणमंतरेण कार्यं जवतीत्यतइदमपदिश्यते । दर्श नावरणीयस्य कर्मणोंतकोमध्यग्रहणेतु घातिचतुष्टयस्यांतकृद्दृष्टव्यइति ॥ १ ॥ यश्च घा तिचतुष्टयांतकृत्सईदृग्जवतीत्याह । (अंतएइत्यादि) विचिकित्सा चित्तविप्लुतिः संशयज्ञा नं तस्यासौ तदावरणक्षयादंतकृत् संशयविपर्ययमिथ्याज्ञानानामविपरीतार्थपरिछेदादंते वर्तते । इदमुक्तंजवति । तव दर्शनावरणक्षयप्रतिपादनात् ज्ञानाद् जिन्नं दर्शनमित्युक्तं जवति । ततश्च येषामेव सर्वज्ञस्य ज्ञानं वस्तुगतयोः सामान्यविशेषयोरचिंत्यशक्त्युपेतत्वा त्परिछेदकमित्येषोयेषामज्युपगमः सोऽनेन पृथगावरणप्रतिपादनेन निरस्तोजवतीति । यश्च घातिकर्मातकृदतिक्रांतसंशयादिज्ञानः सोऽनीदृशमनन्यसदृशं जानीते नतत्तुल्योवस्तु गतसामान्यविशेषांशपरिछेदकउजयरूपेणैव विज्ञानेन विद्यतइतीदमुक्तं जवति । न तज्ज्ञान मितरजनज्ञानतुल्यमतोयडुक्तं मीमांसकैः सर्वज्ञस्य सर्वपदार्थपरिछेदकत्वेऽज्युपगम्यमाने स र्वदा स्पर्शरूपरसगंधवर्णशब्दपरिछेदादनजिमतद्रव्यरसास्वादनमपि प्राप्नोति तदनेन व्युद स्तं दृष्टव्यं । यदप्युच्यते सामान्येन सर्वज्ञसद्भावेपि शेषहेतोरजावादर्हत्येव संप्रत्ययोनोपप द्यते । तथा चोक्तं । अर्हन्न यदि सर्वज्ञो, बुद्धोनेत्यत्र का प्रमा । अथोजावपि सर्वज्ञौ मत जेदस्तयोः कथमित्यादि । एतत्परिहारार्थमाह । अनीदृशस्यानन्यसदृशस्य यः परिछेदकआ ख्याताच नामासौ तत्र तत्र दर्शने बौद्धादिकोजवति तेषां द्रव्यपर्याययोरनज्युपगमादिति । तथाहि । शाक्यमुनिः सर्वं क्षणिकमिछन् पर्यायानेवेछति न द्रव्यं । द्रव्यमंतरेण च नि र्बीजत्वात् पर्यायाणामप्यजावः प्राप्नोत्यतः पर्यायानिछताऽवश्यमकामेनापि तदाधारजूतं परिणामिद्रव्यमेष्टव्यं तदनज्युपगमाच्च नासौ सर्वज्ञइति । तथा अप्रच्युतानुत्पन्नस्थि रैकस्वजावस्य द्रव्यस्यैवैकस्याज्युपगमादध्यक्षावसीयमानानामर्थक्रियासमर्थानां पर्याया णामनज्युपगमान्निष्पर्यायस्य द्रव्यस्याप्यजावात्कपिलोपि न सर्वज्ञइति तथा क्षीरोदकवद जिन्नयोर्द्रव्यपर्याययोरजेदेनाज्युपगमाडुलूकस्यापि न सर्वज्ञत्वाच्च तीर्थांतरीयाणां मध्ये न कश्चिदप्यनीदृशस्यानन्यसदृशस्यार्थस्य द्रव्यपर्यायोजयरूपस्याख्याता जवतीत्यर्हन्नेवाती तानागतवर्तमानत्रिकालवर्तिनोर्थस्य स्वाख्यातेति न तत्रतत्रेति स्थितं ॥ २ ॥

तहिं तहिं सुयख्कायं, से य सवे सुआहिए ॥ सया सच्चेण संपन्ने, मित्ति
जूएसु कप्पए ॥ ३ ॥ जूएहिं न विरुझेज्जा, एस धम्मे वुसीमउ ॥ साहू
जगं परिन्नाय, अस्सिं जीवितजावणा ॥ ४ ॥

अर्थ-(तहिंतहिंसुयख्कायंके०) जे जे जाव श्रीवीतरागें ज्यां ज्यां जलीपेरे कह्या ठे एटले मिथ्यात्व अविरत प्रमदादिकते संसारनुं कारणठे अने ज्ञान दर्शन चारित्र ते

मोक्ष मार्गछे त्यां त्यां (सेयसव्वेसुआहिए के०) तेहिज नावने सत्यकरी जाणवा (स यासच्चेणसंपन्नेके०) जे सदा एटले सर्वकाल एवा सत्य वचने करी संपन्न होय ते शुं करे तेकहेछे (मित्तिनूएसुकप्पएके०) नूत एटले प्राणी मात्रने विषे मैत्रीनाव कल्पे सर्व जीव आत्मा मात्रने समान करी लेखवे एटले जेवो पोतानो आत्मा तेवो परनो आत्मा जाणे ॥३॥ (नूएहिंनविरुज्जेक्काके०) त्रस अने स्थावर जेनूत एटले प्राणीसाथे विरोध न करे एटले प्राणी मात्रनेहणे नही (एसधम्मेबुसीमउके०) एवो धर्म बुसीमउ एटले संयमवंतनो जाणवो (साहूजगंपरिन्नायके०) साधु सर्व लोकमांहे त्रस अने स्थाव र जीवोने रुडीपेरे जाणीने (अस्सिंजीवितनावणाके०) शुद्ध धर्मनेविषे नावना नावे ॥४॥

॥ दीपिका—तत्र तत्र यद्यत्तेनार्हता जीवाजीवादिवस्तु स्वाख्यातं तत्र तत्र न विरोधः। सच सर्वज्ञः सत्यः स्वाख्याता । तथाचोक्तं । वीतरागाहि सर्वज्ञा, न मिथ्या ब्रुवते वचः॥ यस्मात्तस्माद्वचस्तेषां, तथानूतार्थदर्शिनां ॥१॥ सदा सर्वकालं सत्येन संपन्नः ससर्वज्ञो नूतेषु प्राणिषु मैत्रीं कल्पयेत् कुर्यात् । यतः मातृवत्परदाराणि, परद्रव्याणि लोष्टवत्॥ आत्मवत्सर्वनूतानि, यः पश्यति सपश्यतीति ॥३॥ नूतैः प्राणिनिः सह न विरुध्येत। न विरोधं कुर्यात् एष धर्मः (बुसीमउत्ति) तीर्थकृस्य साधोर्वा तथा बुसीमं साधुस्तीर्थकृद्वा जग द्विश्वं परिज्ञाय आगमतः स्वयंच ज्ञात्वा यस्मिन् नावनाः पंचविंशतिर्द्वादशवा ताजी वितनावनाजीवसमाधानकारिणीर्नावयेत् ॥ ४ ॥

॥ टीका—सांप्रतमेतदेव कुतीर्थिकानामसर्वज्ञत्वमर्हतश्च सर्वज्ञत्वं यथानवति तथा सोपपत्तिकं दर्शयितुमाह ।(तहिंतहिमित्यादि) तत्रतत्रेति वीप्सापदं । यद्यत्तेनार्हता जी वाजीवादिकं पदार्थजातं तथा मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगाबंधहेतवइति कृत्वा संसारकारणत्वेन तथा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गइति मोक्षांगतयेत्येतत्सर्वं पूर्वोत्तराविरोधितया युक्तिनिरुपपन्नतया सुष्ठ्वाख्यातं स्वाख्यातं तीर्थिकवचनं तु नहिं स्या न्नूतानीति नणित्वा तडुपमर्दकारंनान्यनुज्ञानात्पूर्वोत्तराविरोधितया तत्रतत्र चिंत्यमानं निर्युक्तिकत्वान्नस्वाख्यातं नवति । सचाविरुद्धार्थस्याख्याता रागद्वेषमोहानामनृतकारणा नामसंनवात्सद्भूत्योहितत्वाच्च सत्यः स्वाख्यातस्तत्स्वरूपविद्भिः प्रतिपादितः ॥ रागादयो ह्यनृतकारणं ते च तस्य न संत्यतः कारणानावात्कार्यानावइति कृत्वा तद्वचोनूतार्थप्र तिपादकं ॥ तथा चोक्तं । वीतरागाहि सर्वज्ञा, मिथ्यान ब्रुवते वचः । यस्मात्तस्माद्व चस्तेषां, तथानूतार्थदर्शिनां । ननु च सर्वज्ञत्वमंतरेणापि हेयोपादेयमात्रपरिज्ञानादपि सत्यता नवत्येव । तथा चोक्तं । सर्वं पश्यतु वा मावा, तत्वमिष्टं तु पश्यति । कीट

संख्यापरिज्ञानं, तस्य नकोपयुज्यते इत्याशंक्याह । सदा सर्वकालं सत्येनावितथनाष णेन संपन्नोसौ । अवितथनाषणत्वं च सर्वज्ञे सति नवति नान्यथा । तथाहि । की टसंख्यापरिज्ञानासंनवे सर्वत्रापरिज्ञानमाशंकेत । तथा चोक्तं । सदृशे बाधासंनवे त ल्लक्षणमेव दूषितं स्यादिति सर्वत्रानाश्वासस्तस्मात्सर्वज्ञत्वं तस्य नगवतोऽएष्टव्यमन्यथा त ह्वचःसत्यता न स्यात् । सत्योवाऽसंयमः संतः प्राणिनस्तेन्योहितत्वादतस्तेन तपः प्रधानसंयमेन नूतार्थहितकारिणा सदा सर्वकालं संपन्नोयुक्तएतजुणसंपन्नश्चासौ नूतेषु जंतुषु मैत्री तड्क्षणपरतया नूतदयां कल्पयेत् कुर्यात् । इदमुक्तं नवति । परमार्थतः सर्वज्ञस्तत्त्वदर्शितया योनूतेषु मैत्रीं कल्पयेत् । तथा चोक्तं। मातृवत्परदाराणि परद्रव्या णि लोष्टवत् ॥ आत्मवत्सर्वनूतानि यः पश्यति सपश्यति ॥१॥ यथा नूतेषु मैत्री संपूर्णनाव मनुनवति तथा दर्शयितुमाह । (नूएहिंइत्यादि) नूतैः स्थावरजंगमैः सह विरोधं न कुर्यात्त दुपघातकारिणमारंनं तद्विरोधकारणं दूरतः परिवर्जयेदित्यर्थः । सएषोऽनंतरोक्तोनूताविरो धकारी धर्मः स्वनावः पुण्याख्योवा (बुसीमउत्ति) तीर्थकृतोयं सत्संयमवतोवेति । तथा सत्सं यमवान् साधुस्तीर्थकृज्जगच्चराचरनूतग्रामाख्यं केवलालोकेन सर्वज्ञप्रतीतागमपरिज्ञाने न वा परिज्ञाय सम्यगवबुध्यास्मिन् जगति मौनींड्वा धर्मे नावनाः पंचविंशतिरूपाह्वा दशप्रकारावा या अनिमतास्ताजीवितनावनाजीवसमाधानकारिणीः सत्संयमांगतया मोक्षकारिणीर्नावयेदिति ॥ ४ ॥

नावणा जोगसुद्धप्पा, जलेणावाव आहिया ॥ नावाव तीरसंपन्ना,
सवडुरका तिउट्टइ ॥ ५ ॥ तिउट्टई उ मेधावी, जाणं लोगंसि
पावगं ॥ तुट्टंति पावकम्माणि, नवं कम्ममकुवए ॥ ६ ॥

अर्थ—जे नावनानावे तेने जे होय ते देखाडेडे. (नावणाजोगसुद्धप्पा के०) नाव नाना योगेकरी जेनो विशुद्ध निर्मल आत्माडे (जलेणावावआहिया के०) ते पुरुष संसार रूप समुड्ने विषे नौका समान कह्याडे ते उपर दृष्टांत कहेडे (नावावतीरसं पन्ना के०) जेम नावा समुड्ने तीरे पोहोचाडे तेम ते पुरुषना उपदेश थकी जीव चारित्ररूप प्रवहणे करीने (सवडुरकातिउट्टइ के०) संसारना सर्व डुःख थकी मुंकाए अने मोक्षरूप कांठे पोहोचे ॥ ५ ॥ (मेधावी के०) पंमित (तिउट्टईउ के०) सर्व डुःख थकी मूकाए ते पंमित केवो होय तोके (जाणंलोगंसिपावगंके०) सर्वलोकने विषे जे पाप एटले सावद्यानुष्ठान तेनो जाण होय एवाने (तुट्टंतिपावकम्माणिके०) पूर्वना सं चित सर्व पाप कर्म त्रूटे (नवंकम्ममकुवएके०) वली नवा कर्म नकरे एटले नबांधे एटले तेजीव अकर्मि थाय सर्व कर्मोना क्षय युक्त थाय ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—भावनानिर्योगः सध्यानरूपोभावनायोगस्तेन शुद्धआत्मा यस्य सतथा एवंविधः सन् त्यक्तसंसारस्वभावोनौरिव जलोपरि तिष्ठति । एवमाख्याता नौरिवानुकूलवातप्रेरिता तीरं प्राप्ता स्यादेवं चारित्रवान् जीवपोतस्तपोवायुवशात्सर्वदुःखात्मकः संसारोत्त्रुटयत्यपगच्छति ॥ ५ ॥ मेधावी मर्यादावान् त्रुटयति मुच्यते सर्वबंधनेभ्यः । किंकुर्वन् पापकं सावद्यकार्यं लोके ज्ञपरिज्ञया जानन् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् ॥ तस्य नवं कर्म अकुर्वतः पूर्वसंचितानि पापकर्माणि त्रुटयंति ॥ ६ ॥

॥ टीका—सद्भावनाभावितस्य यद्भवति तद्दर्शयितुमाह । (भावणाइत्यादि) भावनानिर्योगः सम्यक् प्रणिधानलक्षणोभावनायोगस्तेन शुद्धआत्मा अंतरात्मा यस्य सतथा । सच भावनायोगशुद्धात्मा परित्यक्तसंसारस्वभावोनौरिव जलोपर्यवतिष्ठते संसारोदन्वतइति नौरिव यथा जले निमज्जनत्वेन प्रत्याख्याता एवमसावपि संसारोदन्वति न निमज्जतीति । यथा चासौ नियामकाधिष्ठाताऽनुकूलवातेरिता समस्तद्वंद्वापगमात्तीरमास्कंदत्येवमायतचारित्रवान् जीवपोतः सदागमकर्णधाराधिष्ठितस्तपोमारुतवशात्सर्वदुःखात्मकात्संसारात्त्रुटयत्यपगच्छति मोक्षाख्यं तीरं सर्वद्वंद्वोपरमरूपमवाप्नोतीति ॥ ५ ॥ अपिच । (तिउट्टइत्यादि) सहि भावनायोगशुद्धात्मा नौरिव जले संसारे परिवर्तमानस्त्रिभ्योमनोवाक्कायेभ्योऽशुभेभ्यस्त्रुटयति यदिवातीव सर्वबंधनेभ्यस्त्रुटयति मुच्यते। अतित्रुटयति संसारादतिवर्तेत मेधावी मर्यादाव्यवस्थितः सदसद्विवेकी वाऽस्मिन् लोके चतुर्दशरज्ज्वात्मके भूतस्य ग्रामलोकेवा यत्किमपि पापकं कर्म सावद्यानुष्ठानरूपं तत्कार्यंवा अष्टप्रकारं कर्म तत् ज्ञपरिज्ञया जानन् प्रत्याख्यानपरिज्ञया च तदुपादानं परिहरन् ततस्त्रुटयति तस्यैवं लोकं कर्मवा जानतोनवानि कर्माण्यकुर्वतोनिरुद्धाश्रवद्वारस्य विप्रकृष्टतपश्चरणवतः पूर्वसंचितानि कर्माणि त्रुटयंति निवर्ततेवा नवं च कर्माकुर्वतोऽशेषकर्मक्षयोभवतीति ॥ ६ ॥

अकुव्वउ णवं णत्थि, कम्मं नाम वि जाणइ ॥ विन्नाय से महावीरे, जेण जाइ ण मिज्जइ ॥ ७ ॥ णमिज्जइ महावीरे, जस्स नत्थि पुरे कडं ॥ वाउव्वं जलमच्चेति, पिया लोगंसि इत्थिउ ॥ ८ ॥

अर्थ—(अकुव्वउणवंणत्थि के०) कारण के जे समस्त क्रिया रहित होय एवा अण करताने नवा कर्मनो बंध नथी (कम्मंनामविजाणइ के०) तेवारे अष्ट प्रकारना जे कर्म तेना विपाकनुं निर्जरवो ते सम्यक् जाणे (विन्नायसेमहावीरे के०) ते कर्म रूप शत्रुनो विदारण करवा थकी श्रीमहावीरदेव कर्मना बंधने तथाकर्मनी निर्जराने जाणी

ने ते प्रमाणे करे (जेणजाइणमिज्जइ के०) जे करे थके फरी संसारमां नउपजे अने उपजवाने अनावे फरी मरण पण न पामे. ॥ ७ ॥ (णमिज्जइमहावीरे के०) ए महा सुनट तुल्य श्रीमहावीर संसार चक्रमां मरण पामे नही (जस्सनब्रिपुरेकडं के०) जेने पूर्वेना करेला कर्म रह्या नथी तो ते नवाकर्म बांधवानी वांछा नकरे ए कारण जाणवो जे कारण माटे आ संसारमांहे स्त्रीनो संग प्रधानछे परंतु तेने स्त्री परानवी नशके. दृष्टांत कहेछे (वाउव्वजालमच्चेति के०) जेम वायु अग्नीनी ज्वालामां प्रवेश करीने तेने अतिक्रमि जाय परंतु वायु पोते प्रज्वले नही (पियालोगंसिइब्रिउ के०) तेम लोकने विषे स्त्री प्रियछे ते स्त्री अग्नि ज्वाला समानछे परंतु वायु सरखा साधुने जीपी नशके तेमाटे महावीर सुनटने कर्मनो बंध नथी ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–कामपि क्रियामकुर्वतोयोगप्रत्ययानावान्नवं कर्म नास्ति न नवति । एतद्गुणोपेतश्च नमनं नाम कर्मनिर्जरणं कर्मच जानाति ज्ञात्वाच कर्मबंधं समहावीरः कर्मदारणक्षमस्तत्करोति येन कृतेन न पुनर्जायते जन्मानावाच्च नम्रियते ॥ ७ ॥ महावीरस्त्यक्ताशेषकर्मा न म्रियते जन्ममरणे न प्राप्नोति यस्य नास्ति पुरस्कृतं कर्म वायुर्यथाग्निज्वालामत्येति अतिक्रामति न तया जीयते एवं लोके प्रियावल्लनास्त्रियोडुरतिक्रमणीयास्ताअतिक्रामंति न तानिर्जीयते। यड्ुक्तं। स्मितेन नावेन मदेन लज्जया पराङ्मुखैरर्धकटाक्षवीक्षणैः ॥ वचोनिरीर्ष्याकलहेन लीलया, समस्तपाशं खलु बंधनं स्त्रियः ॥१॥ स्त्रीणां कृते न्रातृयुगस्य नेदः संबंधिनेदे स्त्रियएव मूलं ॥ अप्राप्तकामाबहवोनरेंडानारीनिरुत्सादितराजवंशाइत्यादि ॥ ८ ॥

॥ टीका–केषांचित्सत्यामपि कर्मक्षयानंतरं मोक्षावाप्तौ तथापि स्वतीर्थनिकारदर्शनतः पुनरपि संसाराभिगमनं नवतीदमाशंक्याह । (अकुव्वउ इत्यादि) तस्याऽशेषक्रियारहितस्य योगप्रत्ययानावात्किमप्यकुर्वतोपि नवं प्रत्यग्रं कर्म ज्ञानावरणीयादिकं नास्ति ननवति कारणानावात्कार्यानावइति कृत्वा कर्मनावे च कुतः संसारानिगमनं कर्मकार्यत्वात्संसारस्य तस्य चोपरताशेष द्वंद्वस्य स्वपरकल्पनानावाद्रागद्वेषरहिततया स्वदर्शननिकारानिनिवेशोपि ननवत्येव । सचैतद्गुणोपेतः कर्माष्टप्रकारमपि कारणतस्तद्विपाकतश्च जानाति नमनं नाम कर्मनिर्जरणं तच्च सम्यक् जानाति । यदिवा कर्म जानाति तन्नामास्य चोपलक्षणार्थत्वात्तन्नेदांश्च प्रकृतिस्थित्यनुनावप्रदेशरूपान्सम्यगवबुध्यते । संनावनायां वा नामशब्दः । संनाव्यते चास्य नगवतः कर्मपरिज्ञानं विज्ञायच कर्मबंधनं तत्संचरणनिर्जरणोपायं चासौ महावीरः कर्मदारणसहिष्णुस्तत्करोति येन कृतेनास्मि

न्संसारोदरे नपुनर्जायते नपरिच्छिद्यते तदनावाच्च नम्रियते । यदिवा जात्या नारकोयं तिर्यग्योनिकायमिति । एवं नमीयते न परिच्छिद्यते ऽनेनच कारणान्नावात्संसारविनाव नेन । यत्कैश्चिदुच्यते । ज्ञानमप्रतिघं यस्य वैराग्यं च जगत्पतेः ॥ ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च सह सिद्धं चतुष्टयमित्येतदपि व्युदस्तं नवति । संसारस्वरूपं विज्ञाय तदनावः क्रियते नपुनः सांसिद्धिकः कश्चिदनादिसिद्धोस्ति तत्प्रतिपादकायायुक्तेरसंनवादिति ॥ ७ ॥ किंपुनः कारणमसौन जात्यादिना मीयते इत्याशंक्याह । (णमिज्जतीत्यादि) असौ महावीरः परित्यक्ताशेषकर्मा न जात्यादिना मीयते परिच्छिद्यते न म्रियते वा जातिजरामरणरोगशोकैर्वा संसारचक्रवाले पर्यटन् न म्रियते न पूर्यते किमिति । यतस्तस्यैव जात्यादिकं नवति यस्य पुरस्कृतं जन्मशतोपात्तं कर्म विद्यते यस्य तु नगवतोमहावीरस्य निरुद्धाश्रवद्वारस्य नास्ति न विद्यते पुरस्कृतं पुरस्कृतकर्मोपादानान्नावाच्च न तस्य जातिजरामरणैर्नरणं संनाव्यते । तदाश्रवद्वारनिरोधाश्रयाणां च प्रधानः स्त्रीप्रसंगस्तमधिकृत्याह । वायुर्यथा सततगतिरस्खलिततयाऽग्निज्वालां दहनात्मकामप्येत्यतिक्रामति परानवति न तथा परानूयते । यएवं लोके मनुष्यलोके हावनावप्रधानत्वात्प्रियादयितास्तत्प्रियत्वाच्च डुरतिक्रमणीयाअत्येत्यतिक्रामतिनतानि जीयते तत्स्वरूपावगमात्तज्जयविपाकदर्शनाच्चेति । तथाचोक्तं । स्मितेन नावेन मदेन लज्जया, पराङ्मुखैरर्धकटाक्षवीक्षितैः ॥ वचोनिरीर्ष्याकलहेन लीलया, समस्तनावैः खलु बंधनं स्त्रियः ॥ १ ॥ स्त्रीणां कृते नातृयुगस्य नेदः संबंधिनेदे स्त्रियएव मूलं ॥ अप्राप्तकामाबहवोनरेंद्रा, नारीनिरुत्सादितराजवंशाः॥२ इत्येवं तत्स्वरूपं परिज्ञाय तज्जयं विधत्ते नैतानिर्जीयतइति स्थितं । अथ किंपुनः कारणं स्त्रीप्रसंगाश्रवद्वारेण शेषाश्रवद्वारोपलक्षणं क्रियते नप्राणातिपातादिनेति । अत्रोच्यते । केषांचिद्दर्शनिनामंगनोपनोगआश्रवद्वारमेव नवति । तथाचोचुः । न मांसनक्षणे दोषो, न मद्ये न च मैथुने ॥ प्रवृत्तिरेषा नूतानां, निवृत्तिस्तु महाफला इत्यादि तन्मतव्युदासार्थमेवमुपन्यस्तमिति । यदिवा मध्यमतीर्थकृतांचतुर्यामएव धर्मइदंतु पंचयामोधर्मइत्यस्यार्थस्याविर्नावनायानेनोपलक्षणमकारि । अथवा पराणि व्रतानि सापवादानीदंतु निरपवादमित्यस्यार्थस्याविर्नावनाय प्रकटनायैवमकारि । अथवा सर्वाण्यपि व्रतानि तुल्यानि एकखंडेन सर्वविराधनमिति कृत्वा येन केनचिन्निर्देशोन दोषायेति॥८॥

इत्थिर्ज जे ण सेवंति, आइमोक्खा हु ते जणा ॥ ते जणा बंधणुम्मुक्का, नावकंखंति जीवियं ॥ ए ॥ जीवितं पिठतंकिच्चा, अंतं पावंति कम्मुणं ॥ कम्मुणा संमुहीनूता, जे मग्गमणुसासई ॥ १० ॥

अर्थ-(इत्थिर्जजेणसेवंति के०) जे पुरुषो स्त्रीने नथी सेवता (आइमोक्खाहुतेजणा

के०) ते पुरुषोने आदि एटले प्रथम मोक्षगामी जाणवा (तेजणाबंधणुम्मुक्का के०) तेपुरुषो स्त्रीना बंधन थकी मूकाणा थका (नावकंखंतिजीवियंके०) जीवित श ब्दे बीजो असंयमपणोकांइ पण वांछे नही कारणके परिग्रहादिकनुं मूल कारण सर्व स्त्रीजछे ॥ ए ॥ (जिवितंपिठ्ठकिच्चाके०) ते पुरुष असंयमने निषेधिने (अंतंपावं तिकम्मुणंके०) सर्व कर्मनो अंत करे (कम्मुणासंमुहीनूताके०) ते रुडा अनुष्ठाने करी मोक्षने सन्मुख थका (जेमग्गमणुसासईके०) जे श्रीवीतराग प्रणीत मार्गछे तेमार्गने लोकोना हितने अर्थे प्रकाशे अने पोते पण तेहिज समाचरे ॥ १० ॥

॥ दीपिका—ये नराः स्त्रियोनासेवंते स्त्रीप्रसंगं त्यजंति ते जनाआदिः प्रधानोमोक्षो येषां ते आदिमोक्षाः प्रधानजूतमोक्षपुरुषार्थसाधकाः स्युः । तथा ते जनाः कर्मबंधनो न्मुक्ताजीवितं नावकांक्षंति ॥ ए ॥ जीवितमसंयमजीवितं पृष्ठतः कृत्वा निराकृत्य कर्म णामंतं प्राप्नुवंति मोक्षमप्राप्ताअपि कर्मणाविशिष्टानुष्ठानेन मोक्षस्य सन्मुखीनूतायेमार्गम नुशासंति अन्येन्योवदंति स्वयंच कुर्वंति ॥ १० ॥

॥ टीका—अधुना स्त्रीप्रसंगाश्रवनिरोधफलमाविर्नावयन्नाह । (इछिउइत्यादि) येम हासत्वाः कटुविपाकोयं स्त्रीप्रसंगइत्येवमवधारणतया स्त्रियः सुगतिमार्गार्गलाः संसारवी थीनूताः सर्वाविनयराजधान्यः कपटजालशताकुलामहामोहनशक्तयोन सेवंते नतत्प्रसंग मनिलषंति । तएवंनूताजनाइतरजगातीताः साधवआदौ प्रथमं मोक्षोऽशेषद्वंद्वोपरमरू पोयेषांते आदिमोक्षाः । हुरवधारणे । आदिमोक्षाएव तेऽवंगतव्याः । इदमुक्तं नवति । सर्वाऽविनयास्पदनूतः स्त्रीप्रसंगोयैः परित्यक्तस्तएवादिमोक्षाः प्रधाननूतमोक्षाख्यपुरुषा र्थोद्यताः । आदिशब्दस्य प्रधानवाचित्वान्न केवलमुद्यतास्तेजनाः स्त्रीपाशबंधनोन्मुक्त तयाऽशेषकर्मबंधनोन्मुक्ताः संतोनावकांक्षंति नानिलषंति असंयमजीवितमपरमपि परि ग्रहादिकं नानिलपंते । यदिवा परित्यक्तविषयेछाः सदनुष्ठानपरायणामोक्षैकतानाजीवितं दीर्घकालजीवितं नानिकांक्षंतीति ॥ए॥ किंचान्यत् । (जीवियमित्यादि) जीवितमसंयमजी वितं पृष्ठतः कृत्वाऽनादृत्य प्राणधारणलक्षणं वा जीवितमनादृत्य सदनुष्ठानपरायणाः कर्म णां ज्ञानावरणादीनामंतं पर्यवसानं प्राप्नुवंति । अथवा कर्मणा सदनुष्ठानेन जीवितनिरपे क्षाः संसारोदन्वतोंऽतं सर्वद्वंद्वोपरमरूपं मोक्षाख्यमाप्नुवंति । सर्वडुःखविमोक्षलक्षणं मोक्षमप्राप्ताअपि कर्मणा विशिष्टानुष्ठानेन मोक्षस्य संमुखीनूताघातिचतुष्टयक्रियया उत्प न्नदिव्यज्ञानाः शाश्वतपदस्यानिमुखीनूताः। कएवंनूता इत्याह । ये विपच्यमानतीर्थंक न्नामकर्माणः समासादितदिव्यज्ञानामोक्षं मोक्षमार्गं ज्ञानदर्शनचारित्ररूपमनुशासंति स त्वहिताय प्राणिनां प्रतिपादयंति स्वतश्चानुतिष्ठंतीति ॥ १० ॥

अणुसासणं पुढो पाणी, वसुमं पूयणासुते ॥ अणासए जते दं
ते, दढे आरयमेहुणे ॥ ११ ॥ णीवारे व ण लीएज्जा, छिन्नसोए
अणाविले ॥ अणाइले सया दंते, संधिं पत्ते अणेलिसं ॥१२॥

अर्थ–(अणुसासणं पुढोपाणी के०) जेनो अनुशासन एटले उपदेश दान ते सर्व प्राणिने विषे पृथक् पृथक् जुदो जुदो परणमे कोनी पेरे तोके पृथ्वीने विषे जेम उदक जुदो जुदो परणमे तेनी पेरे जेनो उपदेश परणमेछे तथा (पूयणासु के०) पूजानेविषे (वसुमं के०) द्रव्यवंत एनो नावार्थ कहेछे जे देवतादिक समवसरणादिक पूजा करे छे त्यां त्यां तेने द्रव्य थकी नोगछे परंतु ते नाव थकी नोग नथी तेकारण माटे संयमवंत (ते के०) तेह्जि जाणवा ए वचन श्रीतीर्थंकर देव आश्री कह्याछे वली (अणासएजतेदंते के०) आश्रव रहित जयणावंत तथा इंद्रियनो दमन करनार (दढे आरयमेहुणे क०) संयमने विषे दृढ अने मैथुन थकी विरत एटले विषय रहित ॥ ११ ॥ (णीवारेवणलीएज्जा के०) मैथुनने नीवार समान जाणे जेम सूकरादिकने खावानी वस्तु आपी लोनावीने मारी नाखीये अथवा दुःख आपीये तेम मैथुनने एवो जाणीने स्त्रीनो संग नकरे ते केवो पुरुष जाणवो तोके (छिन्नसोए अणाविले के०) स्त्रोत एटले जे संसार तेमां अवतरवाना द्वारजे विषय कषायादिकछे ते जेणे छेद्याछे वली राग द्वेष थकी रहित तथा (अणाइलेसयादंते के०) अनाकुल एटले अक्षोन सदा दांत गुणवान् एवोछतो (संधिंपत्ते अणेलिसं के०) कर्म विवर लक्षणनी सिद्धि पामे एवी बीजी वस्तु कोइ जगतमां नथी तेमाटे ए सिद्धिने कोइ उपमा नथी ॥१२॥

॥ दीपिका–अनुशासनं देशनाकरणं पृथक् पृथक् नव्यानव्यप्राणिषु सर्वज्ञः करोति। नव्येषु देशना न सम्यक् परिणमति तथापि न सर्वज्ञस्य दोषः । तदुक्तं । सद्धर्मबीजवपनानघकौशलस्य सल्लोकबांधव तवापि खिलान्यनूवन् ॥ तत्राद्भुतं खगकुलेष्विह्तामसेषु, सूर्यांशवोमधुकरीचरणावदाताइति । किंनूतः सर्वज्ञोवसुमान् चारित्री ।पुनः किंनूतः पूजनं देवादिकृताशोकादिकमास्वादयति उपत्नुंक्ते पूजनास्वादकः । ननु देवादिकृतस्याधाकर्मणः समवसरणादेरुपनोगात्कथमसौ चारित्रीत्याशंक्याह । (अणासएत्ति) न विद्यते आशयः पूजानिप्रायोयस्य स अनाशयः द्रव्यतः समवसरणादिके विद्यमानेपि नावतोसौ नास्वादकोगाध्यीजावात् । यस्मादसौ यतोयत्नवान् दांतः संवृतेंद्रियः दृढः संयमे आरतमपगतं मैथुनं यस्य सतथा गतकामानिलाषः ॥ ११ ॥ नीवारः पशूनां वध्यस्थानप्रापणीयनूतोजक्ष्यविशेषस्तत्तुल्यं मैथुनं ततोनीवारे मैथुनं न लीयेत न प्रस

ज्येत । किंनूतः ब्रिन्नानि स्रोतांसि आश्रवद्वाराणि येन सब्रिन्नस्रोताः । अनाविलोऽकलुषः । एवंनूतोऽनाविलः सन् सदा दांतः स्यात् । एवंविधश्च कर्मविवररूपं नावसंधिमनीदृशमनन्यसदृशं प्राप्तः स्यात् ॥ १२ ॥

॥ टीका—अनुशासनप्रकारमधिकृत्याह । (अणुशासणमित्यादि) अनुशास्यंते सन्मार्गेऽवतार्यंते सदसद्विवेकतः प्राणिनोयेन तदनुशासनं धर्मदेशनया सन्मार्गावतारणं तत्पृथक् पृथक् नव्यादिषु प्राणिषु क्षित्युदकवत्स्वाशयवशादनेकधा नवति । यद्यपि च अनव्ये तदनुशासनं न सम्यक् परिणमति तथापि सर्वोपायज्ञस्यापि नसर्वज्ञस्य दोषः । तेषामेव स्वनावपरिणतिरियं यया तद्वाक्यममृतनूतमेकांतपथ्यं समस्तद्वंद्वोपघातकारि न यथावत् परिणमति । तथा चोक्तं । सद्धर्मबीजवपनानघकौशलस्य, यल्लोकबांधवतयाप्यखिलान्यनूवन् । तन्नाद्भुतं खगकुलेष्विह तामसेषु, सूर्यांशवोमधुकरीचरणावदाताः ॥१॥ किंनूतोसावनुशासकइत्याह । वसु द्रव्यं सच मोक्षंप्रति प्रवृत्तस्य संयमस्तद्विद्यते यस्यासौ वसुमान् पूजनं देवादिकृतमशोकादिकमास्वादयत्युपनुंक्तइति पूजनास्वादकः । ननु चाधाकर्मणोदेवादिकृतस्य समवसरणादेरुपनोगात्कथमसौ सत्संयमवानित्याशंक्याह । न विद्यते आशयः पूजानिप्रायोयस्यासावनाशयः । इव्यतोविद्यमानेपि समवसरणादिके नावतोनास्वादकोसौ तज्जतगार्ध्यानावात् सत्यप्युपनोगे । यतः सत्संयमवानेवासावेकांते संयमपरायणत्वात्कुतोयतइंद्रियनोइंद्रियाज्यां दांतः । एतद्गुणोपि कथमित्याह । दृढः संयमे । आरतमुपरतमपगतं मैथुनं यस्यसआरतमैथुनोऽपगतेछामदनकामः । इछामदनकामानावाच्च संयमे दृढोसौ नवति आयतचारित्रत्वाच्च दांतोसौ नवति । इंद्रियनोइंद्रियदमाच्च प्रयतः प्रयत्नवत्त्वाच्च देवादिपूजनास्वादकस्तदनास्वादनाच्च सत्यपि इव्यतः परिनोगे सत्संयमवानेवासाविति ॥११॥ अथकिमित्यसावुपरतमैथुनइत्याशंक्याह । (णीवारे इत्यादि) नीवारं सूकरादीनां पशूनां वध्यस्थानप्रवेशननूतोनक्ष्यविशेपस्तत्कल्पमेतन्मैथुनं । यथाहि असौ पशुर्नीवारेण प्रलोन्य वध्यस्थानमतिनीयमानोनानाप्रकारावेदनाः प्राप्यते एवमसावप्यसुमान् नीवारकल्पेनानेन स्त्रीप्रसंगेन वशीकृतोबहुप्रकारायातनाः प्राप्नोत्यतोनीवारप्रायमेतन्मैथुनमवगम्य न तस्मिन् ज्ञाततत्त्वोलीयेत न स्त्रीप्रसंगं कुर्यात् । किंनूतः सन्नित्याह । छिन्नान्यपनीतानि स्रोतांसि संसारावतरणद्वाराणि यथाविषयमिंद्रियवर्तनानि प्राणातिपातादीनि वा आश्रवद्वाराणि येन सछिन्नस्रोताः । यथाऽनाविलोकलुषोरागद्वेषासंपृक्ततया मलरहितोनाकुलोवा विषयाप्रवृत्तेः स्वछचेताएवंनूतश्चानाकुलोवा सदा सर्वकालमिंद्रियनोइंद्रियाज्यां दांतोनवति ईदृग्विधश्च कर्म विवरलक्षणं नावसंधिमनीदृशमनन्यतुल्यं प्राप्तोनवतीति ॥ १२ ॥

अणे लिसस्स खेयन्ने, ए विरुज्झिज्ज केणइ ॥ मणसा वयसा
चेव, कायसा चेव चक्कुमं ॥ १३ ॥ से हु चक्खू मणुस्साणं, जे
कंखाए य अंतए ॥ अंतेण खुरो वहती, चक्कं अंतेण लोट्टती ॥ १४ ॥

अर्थ-(अणेलिसस्सखेयन्नेके०) अणेलिस एटले संयम तेने विषे जे खेदज्ञ एटले निपुण होय ते (णविरुज्झिज्जकेणइके०) कोइजीवनी साथे विरोध नकरे सर्वजीवोनी साथे मैत्री नाव आणे (मणसावयसाचेवके०) मन वचन पुनः । (कायसाचेव चक्कुमंके०) कायाए करी त्रिकरण शुद्ध जे एम करे तेनेज परमार्थ थकी चक्षुवंत निर्मल दृष्टीवालो जाणवो ॥ १३ ॥ (सेहुचक्खूमणुस्साणंके०) हुइति निश्चें तेहिज पुरुष संयमी मनुष्योनी चक्षु जेवो जाणवो (जेकंखाएयअंतएके०) जे पुरुष कांक्षा एटले विषय तृष्णानो अंतकरे ते संसार अने कर्मनो अंतकारी जाणवो तेनाउपर दृष्टांत कहेछे (अंतेणखुरोवहतीके०) छेहडे जेम छुरी कोइ पदार्थ छेदवाने अर्थे अत्यंत तीक्ष्ण धारायें वहे धारने अंते छेदन क्रियामां समर्थ होय (चक्कंअंतेणलोट्टतीके०) जेम गाडानोपइडो पण अंते प्रवर्त्ते तेम मोहादिकने अंते मुक्तिरूप कार्य सिद्ध थाय ॥ १४ ॥

॥ दीपिका-अनीदृशः संयमस्तस्य खेदज्ञोनिपुणः केनचित्सार्द्धं नविरोधं कुर्वीत मनोवचःकायैः सएव परमार्थतश्चक्षुष्मान् नवति ॥ १३ ॥ सएव संयमी मनुष्याणां चक्षुर्नूतोयः कांक्षायानोगेछायाअंतकोंतवर्ती । यथा क्षुरोनापितोपकरणमंतेन वहति चक्रं रथांगमंतेनैव मार्गे वर्तते तथा साधुरपि विषयाद्यंतवर्ती मोक्षसाधकः ॥ १४ ॥

॥ टीका-किंच । (अणेलिसस्सेत्यादि) अनीदृशोऽनन्यसदृशः संयमोमौनींद्रधर्मो वा तस्य तस्मिन् वा खेदज्ञोनिपुणोऽनीदृशखेदज्ञश्च केनचित्सार्धं न विरोधं कुर्वीत सर्वेषु प्राणिषु मैत्रीं नावयेदित्यर्थः । योगत्रिककरणत्रिकेणेति दर्शयति । मनसांऽतःकरणेन प्रशांतमनास्तथावाचोहितमितनाषी तथा कायेन निरुद्धोडुष्प्रणिहितसर्वकायचेष्टोदृष्टिपूतपादचारी परमार्थतश्चक्षुष्मान् नवतीति ॥ १३ ॥ अपिच । (सेहचक्खूइत्यादि) हुरवधारणे । सएव प्राप्तकर्मविवरोऽनीदृशस्य खेदज्ञोनव्यमनुष्याणां सदसत्पदार्थाविर्नाविनान्नेत्रनूतोवर्तते । किंनूतोसौ यः कांक्षायानोगेछायाअंतकोविषयतृष्णायाः पर्यंतवर्ती । किमंतवर्तीति विवक्षितमर्थं साधयत्येवेत्यमुमर्थं दृष्टांतेन साधयन्नाह । अंतेन पर्यंतेन क्षुरोनापितोपकरणं तदंतेन वहति तथा चक्रमपि रथांगमंतेनैव मार्गे प्रवर्तते । इदमुक्तंनवति । यथा क्षुरादीनां पर्यंतएवार्थकार्येवं विषयकषायात्मकोमोहनीयांतएवापसदसंसारक्षयकारीति ॥ १४ ॥

अंताणि धीरा सेवंति, तेण अंतकरा इह ॥ इह माणुसए ठाणे, धम्ममाराहिउं णरा ॥ १५ ॥ णिठ्ठियठा व देवावा, उत्तराए इ मं सुयं ॥ सुत्तं च मेयमेगेसिं, अमणुस्सेसु णे तहा ॥ १६ ॥

अर्थ–(अंताणिधीरासेवंतिके०) तेम धीर पुरुष पण अंत सेवे एटले विषयनो अंत करे तथा अंत प्रांत आहार सेवे (तेणअंतकराइहके०) ते कारणे आ संसारने विषे अंतना करनार जाणवा (इहमाणुसएठाणेके०) आमनुष्य लोक रूप स्थानकने पाम्या थका (धम्ममाराहिउंणराके०) एवा मनुष्य धर्मजे सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्ररूप तेने आराधीने मुक्ति गामी थाय ॥ १५ ॥ (णिठ्ठियठावदेवावाके०) एवा संयमना पालनार पुरुषो निष्ठितार्थ एटले सिद्धिने पामे अथवा प्रचुर कर्मने सद्भावे देवत्व पणाने विषे सौधर्मादिक विमाने उपजे (उत्तराएइमंसुयंके) ए वचन उत्तरा एटले लोकोत्त र प्रवचने में सांभल्युंछे एरीते श्रीसुधर्मा स्वामी श्रीजंबूस्वामि प्रत्ये कहेछे. (सुत्तंचमेय मेगेसिंके०) में श्रीतीर्थंकरादिक समीपे सांभल्युंछे जे (अमणुस्सेसुणेतहाके०) ए मोक्षनी प्राप्ति ते मनुष्यनी गति टालीने अन्यत्र नथी ते कारण माटे मनुष्य पणे संय म पालवाने विषे प्रमाद नकरवो ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–अंतान् अंतप्रांताहारान् सेवंते वीरास्तेन संसारस्यांतकरास्ते इहार्यक्षे त्रे स्युः । यतइह मनुष्यलोके स्थाने नराधर्ममाराध्य निष्ठितार्थाः स्युः ॥ १५ ॥ केचि न्निष्ठितार्थाः कृतकृत्याः स्युः केचिद्देवाः । एतल्लोकोत्तरीये प्रवचने श्रुतं मयेति सुधर्मस्वा मी जंबूस्वामिनमाह । एतच्च मया तीर्थंकरांते श्रुतं । गणधरः स्वशिष्याणामेकेषामिद माह । अमनुष्येषु मनुष्यवर्जितेषु नतथा नमोक्षावाप्तिः स्यादित्यर्थः ॥ १६ ॥

॥ टीका–अमुमेवार्थमाविर्भावयन्नाह । (अंताणीत्यादि) अंतान् पर्यंतान् विषय कषायतृष्णायास्तत्परिकर्मणार्थमुद्यानादीनामाहारस्य वांतप्रांतादीनि धीरामहासत्वाविष यसुखनिस्पृहाः सेवंते ऽभ्यस्यंति तेन चांतप्रांताभ्यसनेनांतकराः संसारस्य तत्कारणस्य वा कर्मणः क्षयकारिणोभवंति । इहेति मनुष्यलोके आर्यक्षेत्रे न केवलं तएव तीर्थंकराद योऽन्येऽपीह मानुष्यलोके स्थाने प्राप्ताः सम्यग्दर्शनभावज्ञानचारित्रात्मकं धर्ममाराध्य न रामनुष्याः कर्मभूमिगर्भव्युत्क्रांतिजसंख्येयवर्षायुषः संतः सदनुष्ठानसामग्रीमवाप्य नि ष्ठितार्थाचपरतसर्वं दुःखाभवंति ॥ १५ ॥ इदमेवाह । (णिठ्ठियठाइत्यादि) निष्ठितार्थाः कृतकृत्याभवंति केचन प्रचुरकर्मतया सत्यामपि सम्यक्त्वादिकायां सामग्र्यां न तद्भवएव मोक्षमास्कंदंति । अपितु सौधर्माद्याः पंचोत्तरविमानावसानादेवाभवंतीति । एतल्लोको

त्तरीये प्रवचने श्रुतमागमे । एवंभूतः सुधर्मस्वामी वा जंबूस्वामिनमुद्दिश्यैवाह । यथा मयैतल्लोकोत्तरीये भगवत्यर्हत्युपलब्धं तद्यथा अवाप्तसम्यक्त्वादिसामग्रीकः सिध्यति वैमानिकोवा भवतीति । मनुष्यगतावेवैतन्नान्यत्रेति दर्शयितुमाह ॥ सुयंमेइत्यादि पश्चार्द्ध । तच्च मया तीर्थकरांतिके श्रुतमवगतं । गणधरः स्वशिष्याणामेकेषामिदमाह । यथा मनुष्यएवाशेषकर्मक्षयात्सिद्धिगतिभाग्भवति नामनुष्यइति । एतेन यच्छाक्यैरभिहितं । तद्यथादेवएवाशेषकर्मप्रहाणं कृत्वा मोक्षभाग्भवति तदपास्तं भवति । नह्यमनुष्येषु गतित्रयवर्तिषु सच्चारित्रपरिणामाभावाद्यथा मनुष्याणां तथामोक्षावाप्तिरिति ॥ १६ ॥

अंतं करंति डुरकाणं, इहमेगेसि आहियं ॥ अघायं पुण एगेसिं, डुल्लभे यं समुस्सए ॥ १७ ॥ इउविद्धंसमाणस्स, पुणो संबोहि डुल्लभा ॥ डुल्लहाउ तहच्चाउ, जे धम्मठं वियागरे ॥ १८ ॥

अर्थ-(अंतंकरंतिडुरकाणं के०) मनुष्य सर्व दुःखनो अंत करे पण मनुष्यनी जाति विना अन्य जातीने मुक्ति नथी (इहमेगेसिआहियंके०) एम कोइएके कह्योछे तथा गणधरादिके एम कह्योछेके (आघायंपुणएगेसिंके०) ए मनुष्य संबंधी देह पामवो एक एक बहुल कर्मिजीवोने अत्यंत (डुल्लभेयंसमुस्सएके०) डुर्लभछे वली वली मनुष्य जन्म पामवो डुर्लभछे चुलग पासके इत्यादिक दृष्टांते डुर्लभछे ॥ १७ ॥ (इउविद्धंसमाणस्सके०) ए मनुष्य देह थकी विध्वंस एटले भ्रष्ट थयलाने एटले जे मनुष्य जन्म हार्या एवाने (पुणोसंबोहिडुल्लभाके०) अन्यगतीने विषे बोधी एटले सम्यक्त्व लाभ पामवो डुर्लभछे (तहच्चाउके०) तथार्चा एटले लेश्या चित्तना परिणाम अथवा अर्चा एटले मनुष्यनुं शरीर ते (डुल्लहाउके०) डुःप्राप्यछे (जेधम्मठंवियागरेके०) वली धर्मनो अर्थजे वियागरे एटले शुधो प्रकाशे एवो शरीर धारी मनुष्य पणुं पण डुर्लभछे ॥१८॥

॥ दीपिका-इह एकेषां वादिनामाख्यातं यत् देवाएवांतकरामोक्षगामिनः स्युरिति न तथा इहार्हते प्रवचने । इदमन्यत् पुनरेकेषां गणधरादीनामाख्यातं यदयं मानुष्यः शरीरसमुच्छ्रयोडुर्लभः । यतः । ननु पुनरिदमतिडुर्लभ, मगाधसंसारजलधिविभ्रष्टं ॥ मानुष्यं खद्योतक,तडिल्लताविलसितप्रतिममित्यादि ॥ १७ ॥ इतोमनुष्यभवाद्विध्वंसमानस्य जीवस्य पुनः संबोधिधर्मप्राप्तिर्डुर्लभा तथाभूता सम्यक्त्वप्राप्तियोग्याऽर्चा लेश्या डुर्लभा । जंतूनां ये धर्मरूपमर्थं व्याकुर्वंति ये धर्मप्रतिपत्तियोग्याइत्यर्थः । तेषां तथाभूतार्चा डुर्लभा स्यात् ॥ १८ ॥

॥ टीका—इदमेव स्वनामग्राहमाह । (अंतकरेंतीत्यादि) नह्यमनुष्याअशेषदुःखानामंतं कुर्वंति तथाविधसामग्र्याजावाद्यथैकेषां वादिनामाख्यातं । तद्यथा । देवाएवोत्तरोत्तरं स्थानमास्कंदंतोऽशेषक्लेशप्रहाणं कुर्वंति न तथेहार्हते प्रवचने इति । इदमन्यत् पुनरेकेषां गणधरादीनां स्वशिष्याणां वा गणधरादिनिराख्यातं । तद्यथा । युगसमिलादिन्यायावाप्तः कथंचित्कर्मविवरात् योयं शरीरसमुच्छ्रयः सोकृतधर्मोपायैरप्यसुमद्भिर्महासमुद्रप्रभ्रष्टरत्नवत्पुनर्दुर्लजोजवति । तथाचोक्तं । ननु पुनरिदमतिदुर्लज,मगाधसंसारजलधिविभ्रष्टं ॥ मानुष्यं खद्योतक,तडिल्लताविलसितप्रतिममित्यादि ॥१७॥ अपिच (इउविद्धंसेइत्यादि) इतोऽमुष्मात् मानुष्यजवात्स्थमेतोवा विध्वंसनस्याकृतपुण्यस्य पुनरस्मिन् संसारे पर्यटतोबोधिः सम्यक्दर्शनावाप्तिः सुदुर्लजोत्कृष्टतः अपार्धपुजलपरावर्तकालेन यतोजवति तथा दुर्लजा दुरापा तथाजूता सम्यक्दर्शनप्राप्तियोग्यर्चा लेश्यांतःपरिणतिरकृतधर्माणामिति । यदि वाऽर्चा मनुष्यशरीरं तदप्यकृतधर्मबीजानामार्यक्षेत्रसुकुलोत्पत्तिसकलेंद्रियसामग्र्यादिरूपं दुर्लजं जवति । जंतूनां धर्मरूपमर्थं व्याकुर्वंति ये धर्मप्रतिपत्तियोग्याइत्यर्थः । तेषां तथाजूतार्चा सुदुर्लजा जवतीति ॥ १७ ॥

जे धम्मं सुद्धमस्कंति. पडिपुन्नमणेलिसं ॥ अणेलिसस्स जं
ठाणं, तस्स जम्मकहा कउ ॥ १ए॥ कउ कयाइ मेधावी, उप्प
ज्जंति तहागया ॥ तहागया अप्पडिन्ना, चस्कू लोगस्सणुत्तरा ॥२०॥

अर्थ—(जेधम्मंसुद्धमस्कंतिके०) जे श्रीवीतरागादिक महापुरुषो शुद्ध निर्मल धर्म कहे अने पोते पण तेजरीते समाचरे (पडिपुन्नके०) प्रतिपूर्ण (अणेलिसंके०) अनीदृश एटले सम्यक् चारित्रिउ (अणेलिसस्सजंगणंके०) जेनो ज्ञान दर्शन अने चारित्ररूप मोक्ष स्थानकछे परंतु बीजो स्थानक नथी (तस्सजम्मकहाकउके०) तेने जन्मकथा क्यांथी होय एटले कर्मने क्षयें जन्म मरणनो अजाव होय ॥ १ए ॥ (कउकयाइमेधावीके०) कदाचित् मेधावी एटले सम्यक् ज्ञानवंत क्यांथकी आवीने (उप्पज्जंतिके०) उपजे खरा परंतु ते केवा होय तोके (तहागयाके०) तेमज कर्म खपावीने गया (तहागयाअप्पडिन्नाके०) जे कर्मखपावीने गया जेने निदाने प्रतिज्ञा नही ते अप्रतिज्ञ निराशंस एवा होय तेने संसार मांहे उत्पत्ति अने मरण नथी जे कारणे तथागत श्रीतीर्थंकरादिक निदान रहित निराशंस (चस्कूलोगस्सणुत्तराके०) तथा लोकने अनुत्तर सर्वोत्तम प्रधान ज्ञानथकी चक्षुजूत जाणवा ॥ २० ॥

॥ दीपिका—ये सर्वज्ञाः शुद्धं धर्ममाख्यांति परिपूर्णमनन्यसदृशं । तदेवमनन्यसदृश

स्याज्ञानक्रियोपेतस्य यत् स्थानं तत्प्राप्तस्य जन्मकथा कुतः। तस्य जन्ममरणे न नव तइत्यर्थः. ॥ १ए ॥ मेधाविनोज्ञानिनस्तथा नवन्त्रमणेन गतास्तथागताः कुतः कदाचि डुत्पद्यंते नवेनोत्पद्यंतएवेत्यर्थः । तथागताअर्हन्गणधरादयोऽप्रतिज्ञाश्चनिदानाश्चनुत्तराः सर्वज्ञत्वात्ते लोकस्य चक्षुर्नूताः स्युः ॥ २० ॥

॥ टीका–किंचान्यत् (जेधम्ममित्यादि) ये महापुरुषावीतरागाः करतलामलकवत्स कलजगद्द्रष्टारस्तएवंनूताः परहितैकरताः शुद्धमवदातं सर्वोपाधिविशुद्धं धर्ममाख्यांति प्र तिपादयंति स्वतः समाचरंति च प्रतिपूर्णमायतचारित्रसद्भावात्संपूर्णं यथाख्यातचारित्र रूपं वाऽनीदृशमनन्यसदृशं धर्ममाख्यांत्युपतिष्ठंति । तदेवमनीदृशस्यानन्यसदृशस्य ज्ञा नचारित्रोपेतस्य यत् स्थानं सर्वद्वंद्वोपरमरूपं तदवाप्तस्य कुतोजन्मकथा जातोमृतोवे त्येवंरूपा कथा स्वप्नांतरेपि तस्य कर्मबीजानावात् कुतोविद्यतइति । तथोक्तं । दग्धे बीजे यथाऽत्यंतं, प्राडुर्नवति नांकुरः ॥ कर्मबीजे तथा दग्धे, न रोहति नवांकुरइत्यादि ॥ १ए ॥ किंचान्यत् । (कउकयाइत्यादि) कर्मबीजानावात्कुतः कस्मात्कदाचिदपि मेधा विनोज्ञानात्मकास्तथा पुनरावृत्त्याऽगतास्तथागताः पुनरस्मिन् संसारेऽशुचिगर्नाधाने स मुत्पद्यंते न कथंचित्कदाचित्कर्मोपादानानावाडुत्पद्यंतइत्यर्थः । तथा तथागतास्तीर्थकृग णधरादयोन विद्यंते प्रतिज्ञा निदानबंधनरूपा येषां तेऽप्रतिज्ञानिदानानिराशंसाः सत्वहि तकरणोद्यताश्चनुत्तरज्ञानत्वादनुत्तरालोकस्य जंतुगणस्य सदसदर्थनिरूपणकारणतश्चक्षुर्नू ताहिताहितप्राप्तिपरिहारं कुर्वंतः सकललोकलोचननूतास्तथागताः सर्वज्ञानवंतीति॥२०॥

अणुत्तरे य ठाणे से, कासवेण पवेदिते। जं किच्चा णिवुमा एगे,
निघं पावंति पंमिया ॥ २१ ॥ पंमिए वीरियं लद्धुं, निग्घायाय
पवत्तगं ॥ धुणे पुव्वकडं कम्मं, णवं वा वि ण कुव्वती ॥ २२ ॥

अर्थ–(अणुत्तरेयठाणेसेके०) अनुत्तर एटले प्रधान संयमरूप स्थानक ते (कास वेणपवेदितेके०) काश्यप श्रीमहावीर देवे कह्यो (जंकिच्चाके०) जे संयम स्थानक पा लीने (णिवुमाएगेके०) एक महापुरुष उपशांत कषायवंत एवा उता (निठंपावंतिपंमिया के०) पंमित विवेकना जाण संसारनो अंत पामे ॥ २१ ॥ (पंमिएवीरियंलद्धुंके०) पंमित एटले सदसद्विवेकना जाण ते संयमनो वीर्य बल पामीने निःशेष समस्त कर्मनो (निग्घायायके०) निर्घातन करवाने अर्थें (पवत्तगंके०) प्रवर्त्तक ए पंमित वी र्य घणा नवे पामवो डुर्लन तेने पामीने (धुणेपुव्वकडंकम्मंके०) पूर्वकृत कर्मने धुणे एटले खपावे (णवंवाविणकुव्वतीके०) कोइ नवा कर्मने नकरे ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–अनुत्तरं स्थानं संयमरूपं काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितं कथितं यत्संयम स्थानं कृत्वाऽनुपाल्यैके निर्वृतामोक्षं गतानिष्ठां जवपर्यंतं प्राप्नुवंति पंडिताः ॥ २१ ॥ पंडितः संयमवीर्यं लब्ध्वा पूर्वकृतं कर्म धुनीयादपनयेत् । वीर्यं किंनूतं निर्घाताय निर्जरणाय प्रवर्तकं । नवं च कर्म न कुर्यात् ॥ २२ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् (अणुत्तरेयइत्यादि) न विद्यते उत्तरं प्रधानं यस्मादनुत्तरं तच्च तत्संयमाख्यं काश्यपेन काश्यपगोत्रेण श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिना प्रवेदितमाख्यातं । तदस्य चानुत्तरत्वमाविर्नावयन्नाह । यदनुत्तरं संयमस्थानं एके महासत्वाः सदनुष्ठायिनः कृत्वाऽनुपाल्य निर्वृतानिर्वाणमनुप्राप्ताः । निर्वृताश्च संतः संसारचक्रवालस्य निष्ठां पर्यवसानं पंडिताः पापाड्डीनाः प्राप्नुवंति । तदेवं जूतं संयमस्थानं काश्यपेन प्रवेदितं सदनुष्ठायिनः संतः सिद्धिं प्राप्नुवंतीति तात्पर्यार्थः ॥२१॥ अपिच (पंडिएइत्यादि) पंडितः सदसद्विवेकज्ञोवीर्यं कर्मोद्दलनसमर्थं सत्संयमवीर्यं तपोवीर्यंवा लब्ध्वाऽवाप्य । तदेव वीर्यं विशिनष्टि । निःशेषकर्मणोनिर्घातायनिर्जरणाय प्रवर्तकं पंडितवीर्यं तच्च बहुनवशतडर्लनं कथंचित्कर्मविवरादवाप्य धुनीयादपनयेत् । पूर्वनवेष्वनेकेषु यत्कृतमुपात्तं कर्माष्टप्रकारं तत्पंडितवीर्येण धुनीयात् नवं चाजिनवं चाश्रवनिरोधान्नकरोत्यसाविति ॥ २२ ॥

ए कुवती महावीरे, अणुपुवकडं रयं ॥ रयसा संमुहीनूता, कम्मं
हेच्चाण जं मयं ॥ २३॥ जं मयं सवसाहूणं, तं मयं सल्लगत्तणं॥
साहइत्ताण तं तिन्ना, देवावा अनविंसु ते ॥ २४ ॥ अनविंसु
पुरा धीरा, आगमिस्सावि सुवता ॥ डन्निबोहस्स मग्गस्स, अं
तं पाउकरातिन्नेतिबेमि ॥२५॥ इतिपनरसमंजंमइयंनामक्षयणं सम्मत्तं॥

अर्थ–(एकुवतीमहावीरेके०) श्रीमहावीर उत्तम साधु ते नकरें शुं नकरे तोके (अणुपुवकडंरयंके०) आनुपूर्वी मिथ्यात्व अविरति प्रमाद अनुक्रमे कीधुं जे पापरूप रज ते नकरे (रयसासंमुहीनूताके०) पापरूप रजेकरी संमुहीनूत एटले एकठा कीधा जे अष्टप्रकारना कर्म (कम्मंहेच्चाणजंमयंके०) ते कर्मने हित्वा एटले हणीने सत्व संयम पालीने मोक्षने संमुख थाय ॥ २३ ॥ (जंमयंसवसाहूणंके०) जे संयम रूप स्थानक ते सर्व साधु चारित्रियानो मनो वांछित स्थानक जाणवो (तंमयंसल्लगत्तणंके०) वलीते संयमानुष्ठान केहेवो तोके शल्यकर्तन एटले शल्यनो छेदनार (साहइत्ताणतंतिन्नाके०) एवा संयमने सम्यक् प्रकारे आराधीने घणा प्राणी सर्वथा कर्मने अनावे संसार

समुद्र थकी तस्या (देवावाअजविंसुतेकें०) अथवा सर्वथा कर्मना क्षयना अजावे देवत्व पणे वैमानिकमां जइ उपना एकावतारी प्रमुख थया ॥ २४ ॥ (अजविंसुपुराधीराके०) पूर्वे अतीतकाले घणा चारित्रिया थया अने वर्त्तमान काले पणछे तथा (आगमिस्साविसुव्वताके०) आगमिक काले पण घणा सुव्रत संयमानुष्ठानो थशे ते केवा थशे तोके (डुन्निबोहस्समग्गस्सके०) डुर्निबोध एटले डुर्लन एवोजे ज्ञान दर्शन अने चारित्ररूप मार्ग ते (अंतंपाउकरातिन्नेकें०) परम उत्कृष्टो पामीने तेह्जि मार्गना प्रकाशक बता संसार समुड्रने पूर्वे तस्या वर्त्तमाने तरेछे अने आगमिक काले तरशे. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २५ ॥ एरीते पंदरमां यतिनामा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका—अन्यजीवैर्यदनुपूर्वं कर्म आश्रित्य संयमात्संमुखीनूतोयन्मतमष्टनेदं तत् कर्म हित्वा मोक्षस्यानिमुखीनूतः ॥ २३ ॥ सर्वसाधूनां यन्मतमनिप्रेतं तत्संयमस्थानं शल्यकर्तनं कर्मछेदकं । तत्संयमस्थानं साधयित्वा बह्वः संसारं तीर्णामोक्षं प्राप्ताः । अथवा देवाअनूवन् नवंति नविष्यंतिच ॥ २४ ॥ पुरा पूर्वं बह्वोधीराअनूवन अनागते काले सुव्रतानविष्यंति च वर्तमानकाले तथानूताः संतिच । ये डुर्निबोधस्य डुष्प्रापस्य मार्गस्य दर्शनचारित्राख्यस्यांतं परमकाष्ठामवाप्य तस्यैव प्राडुष्कराः स्वतः सन्मार्गसेविनोऽन्येषां च प्राडुर्नाविकाः संतः संसारं तीर्णास्तरंति तरिष्यंति चेति ॥ २५ ॥ इति आदानीयाख्यं पंचदशमध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका—किंच (नकुव्वतीत्यादि) महावीरः कर्मदारणसहिष्णुः सन्नानुपूर्व्येण मिथ्यात्वविरतिप्रमादकषाययोगैर्यत्कृतं रजोऽपरजंतुनिस्तदसौ न करोति न विधत्ते । यतस्तत्प्राक्तनोपात्तरजसैवोपादीयते सच तत्प्राक्तनं कर्मावष्टन्य सत्संयमात्संमुखीनूतस्तदनिमुखीनूतश्च यन्मतमष्टप्रकारं तत्सर्वं हित्वा त्यक्त्वा मोक्षस्य सत्संयमस्य वा सम्मुखीनूतोऽसाविति ॥ २३ ॥ अन्यच्च (जम्मयमित्यादि) सर्वसाधूनां यन्मतमनिप्रेतं तदेतत्संयमस्थानं । तद्विशिनष्टि । शल्यं पापानुष्ठानं तज्जनितं वा कर्म तत्कर्तयति छिनत्ति तच्छल्यकर्तनं तच्च सदनुष्ठानं तद्युक्तविहारिणः साधयित्वा सम्यगाराध्य बह्वः संसारकांतारं तीर्णाः । अपरे तु सर्वकर्मक्षयाजावात् देवाअनूवन् ते चाप्तसम्यक्त्वाः सच्चारित्रिणोवैमानिकत्वमवापुः प्राप्नुवंति प्राप्स्यंतिचेति ॥ २४ ॥ सर्वोपसंहारार्थमाह । (अजविंसुइत्यादि) पुरा पूर्वस्मिन्ननादिके काले बह्वोमहावीराः कर्मविदारणसहिष्णवः अनूवन नूतास्तथा वर्तमाने च काले कर्मनूमौ तथानूतानवंति तथागामिनि चानंते काले तथानूताः सत्संयमानुष्ठायिनोनविष्यंति । किंनूतवंतः कुर्वंति करिष्यंतिचेत्याह । यस्य डुर्निबोधस्याती

वडुष्प्रापकस्य ज्ञानदर्शनचारित्राख्यस्यांतं परमकाष्ठामवाप्य तस्यैव मार्गस्य प्राडुःप्राकार्यं तत्करणशीलाः प्राडुष्कराः स्वतः सन्मार्गानुष्ठायिनोऽन्येषांच प्राडुर्नाविकाः संतः संसारार्णवं तीर्णास्तरंति तरिष्यंतिचेति । गतोऽनुगमः । सांप्रतं नयास्तेच प्राग्वत् इष्टव्याः । इतिरध्ययनपरिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ १५ ॥ इति आदानीयाख्यं पंचदशाध्ययनं समाप्तं ॥

हवे सोलमुं गाहा नामे अध्ययन प्रारंनिये बैए पंदरमां अध्ययनमां जे विधिरूप तथा प्रति निषेधरूप नाव कह्या ते यथोक्त विधि आचरतो सुसाधु कहेवाय एवा नावे आ सोलमो अध्ययन कहेबे.

अहाह नगवं एवं, से दंते दविए, वोसठकाएत्ति वच्चे, माहणे
त्ति वा, समणेत्तिवा निक्खूत्तिवा, णिग्गंथेत्तिवा, पडिआह नंते
कहं तु दंते दविए वोसठकाएत्ति वच्चे माहणेत्तिवा समणेत्ति
वा निक्खूत्तिवा णिग्गंथेत्तिवा तंनो बूहि महामुणी ॥ १ ॥

अर्थ–(अहाहनगवं एवं के०) यथाह नगवान् हवे श्री नगवंत महावीरदेव सनामांहे एम कहेबे. (सेदंते दविए के०) ते साधु इंडियोने दमवे करी दांत तेणे करी मुक्तिगमन योग्य तथा (वोसठ के०) निःप्रतिकर्म एवो (काएत्तिवच्चे के०) शरीरबे जेहनो तेने एम कहेवो (माहणेत्तिवा के०) त्रस अने स्थावर जीवोने माहणो एवो जेनो उद्देशबे ते माहण कहिये अथवा नव विध ब्रह्मचर्यनी गुप्ति थकी माहण एटले ब्राह्मण कहिए (समणेत्तिवा के०) तथा श्रमण एटले तपस्वी शुद्ध क्रिया अनुष्ठानना करनार (निक्खूत्तिवा के०) आरंननो त्याग करे निर्दोष निक्षार्थे प्रवर्ते अथवा अष्ट प्रकारना कर्मने नेदे तेमाटे निक्षु कहिए (णिग्गंथेत्तिवा के०) तथा बाह्य अन्यंतर परिग्रह रहित माटे निर्ग्रंथ कहिए (एम श्री नगवाने कहे थके शिष्य पूबे बे के केवीरीते (दंतेदविए के०) दांत मुक्तिगमन योग्य (वोसठकाएत्ति के०) तथा शरीरनी शोना शुश्रूषा रहित तेने (वच्चे के०) कहिये शुं कहियें तोके (माहणेत्तिवा के०) माहण कहिये तथा (समणेत्तिवा के०) श्रमण कहिए तथा (निक्खूत्तिवा के०) निक्षु कहिए (णिग्गंथेत्तिवा के०) तथा निर्ग्रंथ कहिए (तंनोबूहिमहामुणी के०) ते हे महामुनि ए चार शब्दनो अर्थ अमने कहो. ॥ १ ॥

॥ दीपिका–अधुना गाथाषोडशाख्यं षोडशाध्ययनमारन्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (अहेति) । अथाह नगवान् सर्वज्ञः । एवमसौ साधुर्दांतः संवृतेंडियः । इव्यं मुक्तिगमन

योग्योव्युत्सृष्टकायोनिष्प्रतिकर्मशरीरः समाहनइति श्रमणइति निक्षुरिति निर्ग्रंथइति नगवतोक्ते शिष्यः प्रत्याह। हेनगवन् योऽसौ पूर्वोक्तपंचदशाध्ययनार्थानुष्ठायी साधुर्माह नादिशब्दवाच्यइति तत्कथं स्यादिति नोऽस्माकं ब्रूहि हेमहामुने ॥ १ ॥

॥ टीका—उक्तं पंचदशमध्ययनं सांप्रतं षोडशमारन्यते। अस्य चायमनिसंबंधः। इहानंतरोक्तेषु पंचदशस्वप्यध्ययनेषु येऽर्थाअनिहिता विधिप्रतिषेध द्वारेण तान् तथैवाचरन् साधुर्नवतीत्येतदनेनाध्ययनेनोपदिश्यते। ते चामी अर्थाः। तद्यथा। प्रथमाध्ययने स्वसमयपरसमयपरिज्ञानेन सम्यक्त्वगुणावस्थितोनवति। द्वितीयाध्ययने ज्ञानादिनिः कर्मविदारणहेतुनिरष्टप्रकारकं कर्म विदारयन् साधुर्नवति। तथा तृतीयाध्ययने यथानुकूलं प्रतिकूलोपसर्गान् सहमानः साधुर्नवति। चतुर्थे तु स्त्रीपरीषहस्य डुर्जयत्वात्तज्जयकारीति। पंचमेतु नरकवेदनान्यः समुद्विजमानस्तत्प्रायोग्यकर्मणोविरतः सन्साधुलमवाप्नुयात्। षष्ठेतु यथा श्रीवीरवर्धमानस्वामिना कर्मक्षयोद्यतेन चतुर्ज्ञानिनापि संयमं प्रति प्रयत्नः कृतस्तथान्येनापि उद्मस्थेन विधेयमिति। सप्तमे तु कुशीलदोषान् ज्ञात्वा तत्परिहारोद्यतेन सुशीलावस्थितेन नाव्यं। अष्टमेतु बालवीर्यपरिहारेण पंडितवीर्योद्यतेन सदा मोक्षानिलाषिणा नाव्यं। नवमे तु यथोक्तं क्षांत्यादिकं धर्ममनुचरन् संसारान्मुच्यतइति। दशमे तु संपूर्णसमाधियुक्तः सुगतिनाग्नवत्येकादशेतु सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राख्यं सन्मार्गं प्रतिपन्नोऽशेषक्लेशप्रहाणं विधत्ते। द्वादशेतु तीर्थिकदर्शनानि सम्यग्गुणदोषविचारणतोविजानन्न तेषु श्रद्धानं विधत्ते। त्रयोदशे तु शिष्यगुणदोषविज्ञः सज्जुणेषु वर्तमानः कल्याणनाग्नवति। चतुर्दशे तु प्रशस्तनावग्रंथितनावितात्मा विस्रोतसिकारहितोनवति। पंचदशेतु यथावदायतचरित्रोनवति निक्षुस्तडुपदिश्यतइति। तदेवमनंतरोक्तेषु पंचदशस्वध्ययनेषु येऽर्थाः प्रतिपादितास्तेत्र संक्षेपतः प्रतिपाद्यंतइत्यनेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्य चत्वार्युपक्रमादीन्यनुयोग द्वाराणि नवंति। तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोऽनंतरमेव संबंधप्रतिपादनेनैवानिहितः। नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे गाथाषोडशकमिति नाम। तत्र गाथानिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह। "णामं ठवणा गाहा, दव्वग्गाहा य नावगाहा य॥ पोत्थगपत्तगलिहिया, सो होइ दव्वगाहाउ ॥ १३ए ॥ (णामंठवणेत्यादि) तत्र गाथायानामादिकश्चतुर्धा निक्षेपस्तत्रापि नामस्थापने क्षुसत्वादनाहत्य ड्व्यगाथामाह। तत्र ज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्ता ड्व्यगाथा पत्रकपुस्तकादिन्यस्ता। तद्यथा। जयतिणवणलिणकुवलयवियसियसयवत्तपत्तलदलछो ॥ वीरोगयंदमयगल सुललियगयविक्कमो नगवं ॥ १ ॥ अथ चेयमेव गाथा षोडशाध्ययनरूपा पत्रकपुस्तकन्यस्ता ड्व्यगाथेति। नावगाथामधिकृत्याह। "होंति पुण नावगाहा, सागारुवउगनावणिप्पन्ना ॥ महुरानिहाणजु

त्ता, तेणं गाहाति णं बिंति "॥ ४० ॥ (होंतिपुंणइत्यादि) नावगाथा पुनरियं नवति। तद्यथा । योऽसौ साकारोपयोगः क्षायोपशमिकनावनिष्पन्नोगाथां प्रति व्यवस्थितः सा नावगाथेत्युच्यते । समस्तस्यापि च श्रुतस्य क्षायोपशमिकनावे व्यवस्थितत्वात् । तत्र चानाकारोपयोगस्यासंनवादेवमनिधीयते इति । पुनरपि तामेव विशिनष्टि । मधुरं श्रुति पेशलमनिधानमुच्चारणं यस्याः सा मधुरानिधानगाथा युक्ता । गाथा छंदसोपनिबद्धस्य प्राकृतस्य मधुरत्वादित्यनिप्रायोगीयते पठ्यते मधुराक्षरप्रवृत्त्या गायंति वा तामिति गाथा । यतएवमतस्तेन कारणेन गाथामिति तां ब्रुवते । णमिति वाक्यालंकारे । एनां वा गाथामिति । अन्यथावा निरुक्तमधिकृत्याह । " गाहीकयावअत्था,अहवणसामुद्दएण छंदेणं ॥ एएण होंति गाहा, एसो अन्नोवि पज्जाउ,, ॥ ४१ ॥ (गाहीकयावइत्यादि) गाथीकृताः पिंडीकृताविक्षिप्ताः संतएकत्र मीलिताअर्थायस्याः सा गाथेत्यथवा सामुद्रेण छंदसा वा निबद्धा सा गाथेत्युच्यते । तच्चेदं छंदोऽनिबद्धं च यल्लोकेगाथेति तत्पंडितैः प्रोक्तं । एषोऽनंतरोक्तोगाथाशब्दस्य पर्यायोनिरुक्तस्तात्पर्यार्थोऽद्रष्टव्यः । तद्यथा । गीयतेऽसौ गायंति वा तामिति गाथीकृतावार्थाः सामुद्रेण वा छंदसेति गाथेत्युच्यते। अन्योवास्वयमभ्यूह्य निरुक्तविधिना विधेयइति। पिंडितार्थग्राहित्वमधिकृत्याह।,, पन्नरससुअज्झयणे,पिंडितत्थेसुजो अवितहत्ति ॥ पिंडियवयणेणछं गेहेतिम्हा ततो गाहा,, ॥४२॥ (पन्नरससुइत्यादि) पंचदशस्वप्यध्ययनेषु अनंतरोक्तेषु पिंडितार्थानि तेषु सर्वेष्वपि यएवं व्यवस्थितोऽर्थस्तमवितथं यथावस्थितपिंडितार्थवचनेन यस्माद्ग्रथ्नात्येतदध्ययनं षोमशं ततः पिंमितार्थग्रथनाद्गाथेत्युच्यतइति । तत्त्वनेदपर्यायैर्व्याख्येति कृत्वा सूत्रार्थमधिकृत्याह । "सोलसमे अज्झयणे, अणगारगुणाणवणण नणिया ॥ गाहा सोलसणामं, अज्झयणमिणं उवदिसंति ॥ ४३ ॥ (सोलसमेइत्यादि) षोमशाध्ययने ऽनगाराः साधवस्तेषां गुणाः क्षांत्यादयस्तेषामनगारगुणानां पंचदशस्वप्यध्ययनेष्वनिहितानामिहाध्ययने पिंमितार्थवचनेन यतोवर्णनानिहिताऽतोगाथाषोमशानिधानमध्ययनमिदं व्यपदिशंति प्रतिपादयंति। उक्तोनामनिष्पन्नोनिक्षेपोनिर्युक्त्यानुगमस्तदनंतरं स्पर्शिकनिर्युक्त्याऽनुगमस्यावसरः सच सूत्रे सति नवति सूत्रं च सूत्रानुगमेऽसावप्यवसरप्राप्तएवातोऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रानुगमे सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (अहाहनगवमित्यादि) अथेत्ययं शब्दोऽवसानमंगलार्थः । आदिमंगलं तु वुध्यतेत्यनेनानिहितं । तेनाद्यंतयोर्मंगलत्वात्सर्वोपि श्रुतस्कंधोमंगलमित्येतदनेनावेदितं नवति । आनंतर्येवा शब्दः । पंचदशाध्ययनानंतरं तदर्थसंग्राहीदं षोमशमध्ययनं प्रारन्यते । अथानंतरमाह नगवानुत्पन्नदिव्यज्ञानः सदेवमनुजायां पर्षदीदं वक्ष्यमाणमाह । तद्यथा । एवमसौ पंचदशाध्ययनोक्तार्थयुक्तः ससाधुर्दांतइंद्रियदमनेन इव्यनूतोमुक्तिगमनयोग्यत्वात् इव्यंच नव्येइति वचनात् रागद्वेषकालिकायइव्यरहित

त्वाद्धा जात्यसुवर्णवत् शुद्धइव्यनूतस्तथा व्युत्सृष्टोनिष्प्रतिकर्मशरीरतया कायः शरीरं येन सनवति व्युत्सृष्टकायः । तदेवंनूतः सन् पूर्वोक्ताध्ययनार्थेषु वर्तमानः प्राणिनः स्थावरजंगमसूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकनेदनिन्नान् (माहणत्ति) प्रवृत्तिर्यस्यासौ माहनोनव ब्रह्मचर्यगुप्तिगुप्तोब्रह्मचर्यधारणाद्धा ब्राह्मणइत्यनंतरोक्तगुणकदंबकयुक्तः साधुमहितोब्राह्मणइति वा वाच्यः । तथा श्राम्यति तपसा खिद्यतइति कृत्वा श्रमणोवाच्योऽथवा समं तुल्यं मित्रादिषु मनोंतःकरणं यस्य ससमनाः सर्वत्रवासी चंदनकल्पइत्यर्थः । तथाचोक्तं । णत्थियसिकोइवेसो, इत्यादि । तदेवं पूर्वोक्तगुणकलितः श्रमणः सममनावा इत्येवं वाच्यः साधुरिति । तथा निक्षणशीलोनिक्षुर्निनत्ति वा ऽष्टप्रकारं कर्मेति निक्षुः ससाधुर्दांतादिगुणोपेतोनिक्षुरिति । तथा सबाह्याभ्यंतरग्रंथानावान्निर्ग्रंथः । तदेवमनंतरोक्तपंचदशाध्ययनोक्तार्थाऽनुष्ठायी दांतोद्रव्यनूतोव्युत्सृष्टकायश्च सनिर्ग्रंथइति वाच्यइति । एवं नगवतोक्ते सति प्रत्याह तच्छिष्योनगवन् नदंत नयांत नवांत इति वा योऽसौ दांतोद्रव्यनूतोव्युत्सृष्टकायः सन् ब्राह्मणः श्रमणोनिक्षुर्निर्ग्रंथइति वाच्यः । तदेतत्कथं यन्नगवतोक्तं ब्राह्मणादिशब्दवाच्यत्वं साधोरित्येतन्नोऽस्माकं ब्रूहि आवेदय महामुने यथावस्थितत्रिकालवेदिन् ॥ १ ॥

इतिविरए सवपावकम्मेहिं, पिज्जदोसकलह, अप्नरकाण, पेसुन्न, परपरिवाय, अरतिरति, मायामोस, मिछादंसणसल्ल, विरए, समिए सहिए, सयाजए,णो कुज्जे, णो माणी, माहणेत्ति,वच्चे॥२॥

अर्थ—एम शिष्यें पूछे थके हवे नगवंत ब्राह्मणादिक चार नामनो यथाक्रमे नेद सहित अर्थ कहेछे. (इतिविरएसव्वपावकम्मेहिंके०) जेणे प्रकारें सर्व पाप कर्मारंनक्रिया थकी निवर्त्या (पिज्जके०) प्रेम ते राग अने (दोसके०) द्वेष ते अप्रीति (कलहके०) कुवचननुं बोलवुं (अप्नरकाणके०) अन्याख्यान एटले अछता दोषनुं प्रकाशवुं (पेसुन्नके०) परना गुणनुं अण सहेवुं अने पारका दोषने प्रकाशवुं (परपरिवायके०) पारका दोष बीजा आगल प्रकाशवा (अरतिके०) संयमने विषे अरति (रतिके०) असंयम विषयादिकने विषे रति (मायामोसके०) परवंचना मृषा अलिक नाषानुं बोलवुं (मिछादंसणसल्लके०) मिथ्यादर्शन शल्य एटले अतत्वने विषे तत्वनी बुद्धि तेनेज शल्य कहिए ए सर्व थकी (विरएके०) विरत एटले निवर्त्याछे वली (समिएसहिएके०) पांच समितिए समिता थका ज्ञान दर्शन अने चारित्र सहित प्रवर्ते (सयाजएके०) सदा संयमने विषे प्रयत्न करे एटले सावधान थको रहे एवो छतो (णोकुज्जेके०) कोइना उपर क्रोध नकरे तथा (णोमाणीके०) अनिमान रहित होय उपलक्षणथकी माया तथा लोनरहित एवा गुणे सहितजे होय ते (माहणेत्तिवच्चेके०)माहण एटले ब्राह्मण जाणवा ॥ २ ॥

॥ दीपिका—इति पृष्टे नगवान् माहनादीनां चतुर्णामनिधानानामर्थमाचष्टे। इत्येवं पूर्वोक्ताध्ययनार्थवृत्तिर्विरतः सर्वपापकर्मन्यस्तथा प्रेम रागः द्वेषोऽप्रीतिरूपः कलहोराटिः अन्याख्यानमसदनियोगः पैशुन्यं परगुणमत्सरेण तद्दोषोद्घट्टनं । परपरिवादः काक्कापरदोषापादनं अरतिः संयमे रतिर्विषयेषु । माया परवंचनं मृषावादोऽसदर्थानिधानं मिथ्यादर्शनं तत्वेऽतत्त्वमतत्वेच तत्वमिति मतिः । तदेव शल्यं एतेन्योविरतः । तथा समितः संगतः पंचसमितिनिः सहितोज्ञानादिनिः सदा यत्तः संयमे कस्यापि न क्रुप्येत नापि मानी । उपलक्कणात् मायालोनान्यामपि निवृत्तइत्यादि गुणकल्पितः साधुर्माहनइति वाच्यः ॥ २ ॥

॥ टीका—इत्येवं पृष्टोनगवान् ब्राह्मणादिनां चतुर्णामप्यनिधानानां कथंचिद्भेदाद्भिन्नानां यथाक्रमं प्रवृत्तिनिमित्तमाह । इत्येवं पूर्वोक्ताध्ययनार्थवृत्तिः सन् विरतोनिवृत्तः सर्वेन्यः पापकर्मेन्यः सावद्यानुष्ठानरूपेन्यः सतथा तथा प्रेम रागानिष्वंगलक्कणं द्वेषोऽप्रीतिलक्कणः कलहो द्वंद्वाधिकरणमन्याख्यानमसदनियोगः पैशुन्यं परगुणासहनतया तद्दोषोद्घट्टनमितियावत् । परस्य परवादः काक्कापरदोषापादनं अरतिश्चित्तोद्वेगलक्कणा संयमे तथा रतिर्विषयानिष्वंगोमाया परवंचनतया कुटिलमतिर्मृषावादोऽसदर्थानिधानं गामश्वं ब्रुवतोनवति मिथ्यादर्शनमतत्त्वे तत्त्वानिनिवेशस्तत्वेवा तत्त्वमिति । यथा । णत्थिणणिच्चो कुणइकयं वेइ णत्थि णिव्वाणं ॥ णत्थिय मोरको वाउ ठमिछत्तस्सगणाइंइत्यादि । एतदेव शल्यं तस्मिंस्ततोवा विरतइति । तथा सम्यगितः समितईर्यासमित्यादिन्निः पंचनिः समितिनिः समितइत्यर्थः । तथा सह हितेन परमार्थनूतेन वर्ततइति सहितः । यदि वा सहितोयुक्तोज्ञानादिनिस्तथा सर्वकालं यतः प्रयतः सत्संयमानुष्ठानेन तदनुष्ठानमपि न कषायैर्निःसारी कुर्यादित्याह । कस्यचिदप्यपकारिणोपि न क्रुप्येत आक्रुष्टः सन्न क्रोधवशगोनूयात् नापि मानी नवेत् डुष्कततपोयुक्तोपि न गर्वं विदध्यात् । तथा चोक्तं । जइ सो वि निज्जरमउ, पडिसिद्धो अठमाणमहाणेहिं ॥ अवसेसमयठाणा परिहरियव्वा पयत्तेणं । अस्य चोपलक्कणार्थत्वाडागोपि मायालोनात्मकोन विधेयइत्यादिगुणकलितः साधुर्माहनइति निःशंकं वाच्यइति ॥ २ ॥

एठवि समणे अणिस्सिए, अणियाणे, आदाणंच, अतिवायंच, मुसावायंच वहिद्धंच, कोहंच, माणंच मायंच, लोहंच, पिज्जंच, दोसंच, इच्चेव जउजउ आदाणं अप्पणोपद्दोसहेऊ तउतउ आदाणतो पुवं पडिविरते, पाणाइवायाए दंते दविए वोसठकाए समणेत्ति वच्चे ॥३

अर्थ-(एवविसमणे के०) जें माहणना लक्षण कह्या ते अंहीं सर्व जाणवा वली श्रमणना विशेष कहेछे जे (अणिस्सिए के०) अनाश्रित अप्रतिबंध विहारी तथा (अणियाणे के०) नियाणा रहित (आदाणंच के०) कषाय थकी रहित (अतिवायं च के०) अतिपातंच एटले जीवहिंसा तथा (मुसावायंचके०) मृषावाद (बहिद्धंचके०) मैथुन परिग्रह ए सर्वने ज्ञ परिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरे एटले मूलगुण कह्या हवे उत्तर गुण कहेछे (कोहंचमाणंचमायंचलोहंच के०) क्रोध मान, माया तथा लोन अने (पिज्जंच के०) प्रेम शब्दे राग (दोसंच के०) द्वेष एने पण सम्यक् प्रकारें संसारना कारण जाणीने परिहरे (इच्चेव के०) एरीते (जउजउ के०) जे जे (आदाणाउ के०) कर्मनो बंध (अप्पणोपद्देसेहेक के०) जे थकी पोताना आत्माने प्रदोष हेतु एटले अ वगुणना कारण देखे (तउतउआदाणतो के०) ते ते सावद्यानुष्ठान थकी चारित्रि (पुव्वंपडिविरते के०) पूर्वेज एटले आगल थकीज आत्म हित वांछतो थको विरति करे (पाणाइवायाए के०) प्राणातिपात नकरे एवो छतो (दंते के०) दांत एटले इंद्रि यनो दमनार (दविए के०) द्रविक एटले मुक्तिगमन योग्य (वोसट्ठकाए के०) निष्प्र तिकर्म शरीरवालो एटले शरीरनी शुश्रूषायें रहित (समणेत्तिवच्चे के०) एवा गुणे स हित विशिष्ट श्रमण कहेवो. ॥ ३ ॥

॥ दिपीका-अत्रापि पूर्वोक्तगुणसमूहे वर्तमानः श्रमणोपि वाच्यः । एतद्गुणयुक्तेनापि नाव्यमित्याह । अनिश्रितोऽप्रतिबद्धशरीरादौ अनिदानोनिराकांक्षः । आदानं कषायः परिग्रहोवा अतिपातोहिंसा मृषावादं बहिद्धं मैथुनं । उक्तामूलगुणाः । उत्तरगुणानाह । क्रोधं मानं मायां लोनं च प्रेम द्वेषं च इत्यादिकं सम्यक् परिज्ञाय परिहरेदिति । एवं यतो यतः कर्मोपादानादपायं पश्यति प्रद्वेषहेतूंश्च ततस्ततोहिंसादिकादानात्पूर्वमेव प्रतिविरतो नवेत् विरतिं कुर्यादित्यर्थः। एवंनूतोदांतः शुद्धोऽव्यनूतोव्युत्सृष्टकायः श्रमणोवाच्यः॥३॥

॥ टीका-सांप्रतं श्रमणशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तमुद्भावयन्नाह । अत्राप्यनंतरोक्ते विरत्या दिके गुणसमूहे वर्तमानः श्रमणोपि वाच्यः । एतद्गुणयुक्तेनापि नाव्यमित्याह । निश्रये नाधिक्येन चाश्रितोनिश्रितः ननिश्रितोऽनिश्रितः क्वचिच्छरीरादावप्यप्रतिबद्धस्तथा न वि द्यते निदानमस्येत्यनिदानोनिराकांक्षोऽशेषकर्मक्षयार्थी संयमानुष्ठाने प्रवर्तेत तथा दीय ते स्वीक्रियते ऽष्टप्रकारं कर्म येन तदादानं कषायः परिग्रहः सावद्यानुष्ठानं वा तथाऽ तिपातनमतिपातः प्राणातिपातइत्यर्थः । तं च प्राणातिपातं ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्या नपरिज्ञया परिहरेदेवमन्यत्रापि क्रिया योजनीया । तथा मृषावादोऽलीकवादस्तं च तथा बहिद्धंति मैथुनपरिग्रहौ तौच सम्यक् परिज्ञाय परिहरेत् । उक्तामूलगुणाः । उत्तरगुणान

धिकृत्यात् । क्रोधमप्रीतिलक्षणं मानं स्तंभात्मकं मायां च परवंचनात्मकां लोभं मूर्छास्वभावं तथा प्रेमाभिष्वंगलक्षणं तथा द्वेषं स्वपरात्मनोर्बाधारूपमित्यादिकं संसारावतरणमार्गं मोक्षाध्वनोपध्वंसकं सम्यक् परिज्ञाय परिहरेदिति । एवमन्यस्मादपि यतोयतः कर्मोपादनादिहामुत्र चानर्थहेतोरात्मनोपायं पश्यति प्रद्वेषहेतूंश्च ततस्ततःप्राणातिपातादिकादनर्थदंडदानात् पूर्वमेवानागतमेवात्महितमिच्छन् प्रतिविरतोभवेत् सर्वस्मादनर्थहेतुभूताङ्भयलोकविरुद्धाद्वा सावद्यानुष्ठानान्मुमुक्षुर्विरतिं कुर्यात् । यश्चैवंभूतोदांतः शुद्धोऽव्यभूतोनिष्प्रतिकर्मतया व्युत्सृष्टकायः सश्रमणोवाच्यः ॥ ३ ॥

एछवि भिक्खू अणुन्नए, विणीए, नामए दंते दविए, वोसठ्ठकाए, संविधुणीय विरूवरूवे, परीसहोवसग्गे, अज्झप्पजोगसुद्धादाणे, उवठिए, ठिअप्पा, संखाए परदत्तभोई भिक्खूत्ति वच्चे ॥४॥

अर्थ—हवे भिक्षु शब्दनो विशेष कहेछे (एछवि भिक्खू के०) अंहीयां भिक्षुने विषे पण जे पूर्वे ब्राह्मण श्रमणना गुण कह्या ते सर्व जाणवा अने वली अनेरा विशेष कहेछे (अणुन्नए के०) अभिमान रहित (विणीए के०) विनीत एटले विनयवंत (नामए के०) संयमने विषे आत्मानो नमाडनार (दंतेदविएवोसठ्ठकाए के०) ए त्रण शब्दना अर्थ पूर्ववत् जाणवा (संविधुणीय के०) सम्यक् प्रकारे सहन करे शुं सहन करे ते कहेछे (विरूवरूवे के०) विरूपरूप एटले अनुकूल प्रतिकूल एवा नाना प्रकारना (परीसहोवसग्गे के०) उपसर्ग परीसहने सहन करे तथा (अज्झप्पजोगसुद्धादाणे के०) अध्यात्मयोगे करी निर्मल चित्तने परिणामे शुद्ध चारित्रवंत थको (उवठिए के०) उपस्थित एटले चारित्रने विषे उठ्यो सावधान थयो (ठिअप्पाके०) परीसह उपसर्गे करी अंगजीतछे जेहनो आत्मा (संखाए के०) संसारनी असारता बोधिनुं दुर्लभ पणु जाणतो (परदत्तभोई के०) पारका दीधेला आहारनुं जमनार एटले निर्दोष आहारी (भिक्खूत्तिवच्चे के०) एवाने भिक्षु कहेवो ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—अत्रापि पूर्वोक्तमाहनशब्दप्रवृत्तिहेतवोत्रापि भिक्षुशब्दप्रवृत्तिहेतवस्तएव ज्ञेयाः । अमी चान्ये अनुन्नतोमदरहितोनावनीतोनदीनः दांतोविनयेन नामकोगुर्वादौ प्रह्वोऽव्यभूतव्युत्सृष्टकायः सम्यक् विधूयापनीय विरूपान् नानाविधान् परीषहोपसर्गान् । परीषहा द्वाविंशतिः उपसर्गादेवादिकृतास्तद्विधूननं सम्यक् सहनं अध्यात्मयोगेन शुभचेतसा शुद्धं आदानं चारित्रं यस्य सतथा सम्यगुत्थितः संयमोद्यतः स्थितोमोक्ष

मार्गे आत्मा यस्य सस्थितात्मा संख्याय ज्ञात्वा संसारासारतां परदत्तभोजी एवंगुण युतोभिक्षुर्वाच्यः ॥ ४ ॥

॥ टीका—सांप्रतं भिक्षुशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तमधिकृत्याह । अत्रापीति । ये ते पूर्वमुक्ताः पापकर्मविरत्यादयोमाहनशब्दप्रवृत्तिहेतवोऽत्रापि भिक्षुशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्ते तएवावगंतव्याः । अमी चान्ये । तद्यथा । न उन्नतोऽनुन्नतः शरीरेणोछ्रितः भावोन्नतस्त्वभिमानग्रहग्रस्तस्तत्प्रतिषेधात्तपोनिर्जरांमदमपि न विधत्ते । विनीतात्मतया प्रश्रयवान् यतएतदेवाह । विनयालंकृतोगुर्वादावादेशदानोद्यतोऽन्यदा वात्मानं नामयतीति नामकः सदा गुर्वादौ प्रह्वोभवति । विनयेन चाष्टप्रकारं कर्म नामयति वैयावृत्त्योद्यतोऽशेषमप्यपनयतीत्यर्थः । तथा दांतइंद्रियनोइंद्रियाभ्यां तथा शुद्धात्मा शुद्धद्रव्यभूतोनिष्प्रतिकर्मतया व्युत्सृष्टकायश्च परित्यक्तदेहश्च । यत्करोति तदर्शयति । सम्यक् विधूयापनीय विरूपरूपान् नानारूपाननुकूलप्रतिकूलानुच्चावचान् द्वाविंशतिपरीषहान् तथा दिव्यादिकानुपसर्गांश्चेति । तद्विधूननं तु यत्तेषां सम्यक् सहनं तैरपराजितता परीषहोपसर्गांश्च विधूयाध्यात्मयोगेन सुप्रणिहितांतःकरणतया धर्मध्यानेन शुद्धमवदातमादानं चरित्रं यस्य सशुद्धादानोभवति । तथा सम्यगुड्डानेन सच्चारित्रोद्यमेनोछितस्तथा स्थितोमोक्षाध्वनि व्यवस्थितः परीषहोपसर्गैरप्यधृष्यआत्मा यस्य सस्थितात्मा तथा संख्याय परिज्ञायाऽसारतां संसारांतस्य डुष्प्रापतां कर्मभूमेर्बोधेः सुडुर्लभत्वं चावाप्य च सकलां संसारोत्तरणसामग्रीं सत्संयमकरणोद्यतः परैर्गृहस्थैरात्मार्थं निर्वर्तितमाहारजातं तैर्दत्तं भोक्तुं शीलमस्य परदत्तभोजी सएवं गुणकलितोभिक्षुरिति वाच्यः ॥ ४ ॥

एछवि णिग्गंथे, एगे, एगविऊ बुद्धे, संछिन्नसोए सुसंजते सु
समिते, सुसामाइए, आयवायपत्ते, विऊ डुहउवि सोयपलि
छिन्ने, णोपूयणसक्कारलाभट्ठी, धम्मट्ठी धम्मविऊ णियोगपडि
वन्ने, समियंचरे, दंते दविए, वोसठकाए निग्गंथेत्ति वच्चे, ॥ ५ ॥

अर्थ—(एछविणिग्गंथेके०) हवे निर्ग्रंथनो विशेष कहेछे. अहींयां पण पूर्वला गुण सर्व लेवा वलीजे विशेष गुणछे ते कहेछे (एगेके०) एकलो राग द्वेष रहित तथा (एगविऊबुद्धेके०) पोताने एकलोज जाणे एटले संसारमां महारो कोइ संबंधी नथी एवो बुद्ध एटले तत्वनो जाण (संछिन्नसोएके०) सम्यक् प्रकारें जेणे आश्रवने छेद्योछे तथा (सुसंजतेके०) सुसंयत एटले काछवानी पेरें गुप्तेंद्रिय (सुसमितेके०) रुडी समितिए करी समितो (सुसामाइएके०) सुसामायिकवंत एटले जेने शत्रु मित्र समानछे

(आयवायपत्तेके०) आत्म वादे पहोतो एटले आत्माने वादे उपयोग लक्षण जीव असंख्य प्रदेशी जीव संकोच विकाशनो नजनार द्रव्य पर्यायरूप नित्यानित्य नेद जिन्न पोताना करेला कर्मनुं नोगवनार इत्यादिक आत्मवादे पहोतो एटले आत्म तत्वनो जाण (विक्कके०) तथा विद्वान् पंमित शुद्धमार्गनो जाण (डुहउविसोयपलिछिन्नेके०) तथा द्रव्य अने नावना नेदे करी बन्ने प्रकारना आश्रव रूपिया स्रोत जेणे परिछेद्याछे तथा (णोपूयणसक्कारलानछीके०) पूजा सत्कारना लाननो अर्थी न थाय किंतु निर्जरानो अर्थी थाय (धम्मछीके०) धर्मनो अर्थी (धम्मविऊके०) धर्मनो जाण शुद्धमार्गनो गवेषण हार (णियोगपडिवन्नेके०) नियोगप्रतिपन्न एटले मोक्षमार्गें पहोतो एवो छतो (समियंचरेके०) समता आचरे एवो थको (दंतेदविएवोसठकाएके०) दांत द्रविक वोसठकाए तेने (निग्गंथेत्तिवच्चेके०) निर्ग्रंथ कहेवो ॥ ५ ॥

॥ दीपिका—अत्रापि गुणगणे वर्तमानोनिर्ग्रंथोवाच्यः । अमी चान्ये गुणाः । एकोरागद्वेषरहितः । एकमेव परलोकगामितयात्मानं वेत्तीत्येकवित् बुद्धस्तत्त्वज्ञः सम्यक् छिन्नानि नावस्रोतांसि आश्रवद्वाराणि येन ससंछिन्नस्रोताः सुसंयतः सुसमितः समितिनिः सुष्ठु सामायिकं समनावोयस्य स तथा आत्मवादप्राप्तः सम्यगात्मस्वरूपवेदी विद्वान् ज्ञातसर्वपदार्थः द्विधा द्रव्यतोनावतश्च स्रोतांसि परिछिन्नानि येन सतथा द्रव्यस्रोतांसि विषयेंद्रियप्रवृत्तयः । नावस्रोतांसि तु शब्दादिषु शुनाशुनेषु रागद्वेषोत्पत्तिः । तानि येन त्यक्तानि तथा नोपूजासत्कारार्थी तथा धर्मार्थी धर्मवित् नियोगोमोक्षस्तं प्रतिपन्नः समतां चरेत् कुर्यात् दांतोद्रव्यनूतोव्युत्सृष्टकायः । एवंनूतः पूर्वोक्तमाहनादिगुणयुतश्च निर्ग्रंथोवाच्यः ॥ ५ ॥

॥ टीका—तथाऽत्रापि गुणगणे वर्तमानोनिर्ग्रंथइति वाच्यः । अमी चान्ये अपदिश्यंते । तद्यथा । एकोरागद्वेषरहिततया उंजाः । यदिवाऽस्मिन् संसारचक्रवाले पर्यटन्नसुमान् स्वकृतसुखडुःखफलनाक्त्वेनैकस्यैव परलोकगमनतया सदैककएव नवति । तत्रोद्यतविहारी द्रव्यतोप्येककोनावतोपि गछांतर्गतस्तु कारणिकोद्रव्यतोनाज्योनावतस्त्वेककएव । तथैकमेवात्मानं परलोकगामिनं वेत्तीत्येकवित् न मे कश्चिद्दुःखपरित्राणकारी सहायोस्तीत्येवमेकवित् । यदिवैकांतेन विदितसंसारस्वनावतया मौनींद्रमेव शासनं तथ्यं नान्यदित्येवं वेत्तीत्येकांतवित् अथवैकोमोक्षः संयमोवा तं वेत्तीति । तथा च बुद्धोऽवगततत्त्वः सम्यक् छिन्नान्यपनीतानि नावस्रोतांसि संवृतत्वात्कर्माश्रवद्वाराणि येन सतथा सुष्ठु संयतः कूर्मवत्संयतगात्रोनिरर्थककायक्रियारहितः सुसंयतस्तथा सुष्ठु पंचनिः समितिनिः सम्यगितः प्राप्तोज्ञानादिकं मोक्षमार्गमसौ सुसमितस्तथा सुष्ठु समनावतया सामा

यिकं समशत्रुमित्रभावोयस्य ससुसामायिकः । तथात्मनउपयोगलक्षणस्य जीवस्यासंख्ये यप्रदेशात्मकस्य संकोचविकाशभाजः स्वकृतफलभुजः प्रत्येकसाधारणतया व्यवस्थितस्य द्रव्यपर्यायतया नित्यानित्याद्यनंतधर्मात्मकस्य वा वादआत्मवादस्तं प्राप्तआत्मवादप्राप्तः सम्यग्यथावस्थितात्मस्वतत्त्ववेदीत्यर्थः । तथा विद्वानवगतसर्वपदार्थस्वभावोन व्यत्ययेन पदार्थानवगच्छति । यतोयत् कैश्चिदभिधीयते तद्यथैकएवात्मा सर्वस्वभावतया विश्वव्यापी श्यामाकतंडुलमात्रोंऽगुष्ठपर्वपरिमाणोवेत्यादिकोसद्भूताभ्युपगमः परिहृतोभवति । तथा विधात्मसद्भावप्रतिपादकस्य प्रमाणस्याभावादित्यभिप्रायः । तथा द्विधापीति द्रव्यतोभावतश्च । तत्र द्रव्यस्त्रोतांसि यथा स्वविषयेष्विंद्रियप्रवृत्तयः । भावस्त्रोतांसि तु शब्दादिष्वेवानुकूलप्रतिकूलेषु रागद्वेषोद्भवस्तान्युभयरूपाण्यपि स्त्रोतांसि संवृतेंद्रियतया रागद्वेषाभावाच्च परिछिन्नानि स्त्रोतांसि येन परिछिन्नस्त्रोतास्तथानपूजासत्कारलाभार्थी किंतु निर्जरापेक्षी सर्वास्तपश्चरणादिकाः क्रियाविदधति । एतदेव दर्शयति । धर्मः श्रुतचारित्राख्यस्तेनार्थः सएवार्थोधर्मार्थः सविद्यते यस्यासौ धमार्थीति । किमिति । इदमुक्तं भवति । नपूजाद्यर्थं क्रियासु प्रवर्तते अपितु धर्मार्थीति । किमिति । यतो धर्मं यथावत्तत्फलानि च स्वर्गावाप्तिलक्षणानि सम्यक् वेत्ति धर्मं च सम्यक् ज्ञानतः । यत्करोति तद्दर्शयति । नियोगो मोक्षमार्गः सत्संयमोवा तं सर्वात्मना भावतः (प्रतिपन्ननियोगपडिवन्नोत्ति) तथाविधश्च यत्कुर्यात् तदाह । (समियंति) समतां समभावरूपां वा शीतचंदनकल्पां चरेत् सततमनुतिष्ठेत् । किंभूतः सन्नाह । दांतोद्रव्यभूतोव्युत्सृष्टकायश्चैतद्गुणसमन्वितः सन् यत्पूर्वोक्तमाहनश्रमणभिक्षुशब्दानां प्रवृत्तिनिमित्तं तत्समन्वितश्च निर्ग्रंथइति वाच्यः । तेपि माहनादयः शब्दानिर्ग्रंथशब्दप्रवृत्तिनिमित्ताअविनाभाविनोभवंति । सर्वेप्येते भिन्नव्यंजनाअपि कथंचिदेकार्थाइति ॥ ५ ॥

से एवमेव जमह जाणहं भयंतारो त्तिबेमि ॥ ६ ॥ इतिसोडसमं गाहानामज्झयणं सम्मतं ॥ पढमो सुअखंधो सम्मत्तो ॥ १ ॥

अर्थ—हवे श्रीसुधर्म स्वामी जंबू प्रभृति साधु प्रत्ये कहेछे के (सेएवमेवजाणहंजमह के०) तमे एम जाणोके जे में कह्यो ते निश्चे करी सत्य छे एम जाणो कारणके हुं सर्वज्ञनी आज्ञायें कहुंछुं. ते सर्वज्ञ भगवंत तीर्थंकर देव परोपकारी केवाछे तोके (भयंतारो के०) महाभय थकी राखनारछे माटे तेमना कहेला वचन हुं तमने कहुंछुं. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. एरीते श्रीसुधर्म स्वामियें जंबूस्वामि प्रत्यें कह्यो. ए गाहानामे सोलमां अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो. इति श्रीसुयगडांग सूत्रना प्रथम श्रुतस्कंधनो बालावबोध लेश्यार्थ समाप्तः ॥

॥ दीपिका—एते चत्वारोभिन्नाअपि कथंचिदेकार्थाइति । सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह । सेतत् यन्मयोक्तं एवमेव जानीत यूयं यस्मादहं सर्वज्ञाज्ञया वच्मि । नच भगवतोगवंभयात्रातारोवा सर्वज्ञाअन्यथा वदंति अतोमडुक्तमेवमेवावगच्छतेति । इति समाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत्. ॥ ६ ॥ ॥ इति श्रीतपागच्छाधिराजश्रीहेमविमलसूरीश्वरशिष्य हर्षकुलपंडितप्रणीतायां सूत्रकृतांगदीपिकायां गाथाषोडशाख्यं षोडशमध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका—सांप्रतमुपसंहारार्थमाह । (सेएवमेवजाणहइत्यादि) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिप्रभृतीनुद्दिश्येदमाह । सेइति । तद्यन्मया कथितमेव जानीत यूयं । नान्योमच्चसि विकल्पोविधेयः । यस्मादहं सर्वज्ञाज्ञया ब्रवीमि । नच सर्वज्ञाभगवंतः परहितैकरता भयात्रातारोरागद्वेषमोहान्यतरकारणाभावादन्यथा ब्रुवते । अतोयन्मयाऽऽदितः प्रभृति कथितं तदेवमेवावगच्छेदिति । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् । उक्तोनुगमः सांप्रतं नयास्ते च नैगमादयः सप्त । नैगमस्य सामान्यविशेषात्मतया संग्रहव्यवहारप्रवेशात्संग्रहादयः षट् । समभिरूढेवंभूतयोः शब्दनयप्रवेशान्नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दाः पंच । नैगमनस्याप्यंतर्भावाच्चत्वारोव्यवहारस्यापि । सामान्यरूपविशेषतया सामान्यविशेषात्मनोः संग्रहर्जुसूत्रयोरंतर्भावात्संग्रहर्जुसूत्रशब्दास्त्रयस्तेपि च द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकांतर्भावाद्द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकाभिधानौ द्वौ नयौ । यदि वा सर्वेषामेव ज्ञानक्रिययोरंतर्भावात् ज्ञानक्रियाभिधानौ द्वौ तत्रापि ज्ञाननयोज्ञानमेव प्रधानमाह क्रियानयश्च क्रियामिति । नयानांच प्रत्येकं मिथ्यादृष्टित्वाज्ज्ञानक्रियाश्च परस्परापेक्षतया मोक्षांगत्वाडुभयमात्रप्रधानं । तच्चोभयं सत्क्रियोपेते साधौ भवतीति । तथाचोक्तं । णायम्मिगिण्हियव्वे, अगिण्हियव्वंमि चेव अत्थंमि ॥ जइ यव्वमेव इति जो उवएसो सो नउ नाम ॥ १ ॥ सव्वेसिंपि णयाणं, बहुविहवत्तव्वयं णिसामेत्ता ॥ तं सव्वनयविसुद्धं जं चरणगुणठीउ साहुत्ति ॥ ६ ॥ समाप्तं षोडशाख्यं षोडशमध्ययनं तत्समाप्तौ च समाप्तः प्रथमः श्रुतस्कंधइति ॥

॥ इति श्रीद्वितीये सूत्रकृतांगे, गुर्जरभाषासहितः
श्रीहर्षकुलकृतदीपिकायुक्तः शीलंगाचार्यकृतटी
कासंयुतश्च, प्रथमः श्रुतस्कंधः समाप्तः ॥

ॐ नमो श्री वीतरागाय

अथश्री द्वितीय सूत्रकृतांगे द्वितीय श्रुतस्कंधस्य बालावबोध दीपिकासहितस्य टीकायुतस्य प्रारंभः

मूल गद्य--सुयं मे आउसंतेणं भगवया एव मक्खाय इह खलु पोंमरीए णामज्झयणे तस्सणं अयमट्ठे पन्नत्ते ॥१॥ से जहा णामए पुक्खरिणी सिया बहुउदगा बहुसेया बहुपुक्खला लद्धठा पुंमरिकिणी पासादिया दरिसणिया अभिरूवा पडिरूवा ॥२॥ तीसेणं पुक्खरिणीए तत्र तत्र देसे देसे तहिं तहिं बहवे पउमवरपोंमरीया बुइया अणुपुव्वुठिया ऊसिया रुइला वन्नमंता गंधमंता रसमंता फासमंता पासादिया दरिसणिया अभिरूवा पडिरूवा॥३॥ तीसेणं पुक्खरिणीए बहुमज्झदेसभाए एगेमहं पउमवरपोंमरीए बुइए अणुपुव्वुठिए उस्सिते रुइले वन्नमंते गंधमंते रसमंते फासमंते पासादीए जावपडिरूवे ॥ ४ ॥ सव्वावंतिचणं तीसेणं पुक्खरिणीए तत्र तत्र देसे देसे तहिं तहिं बहवे पउमवरपोंमरीया बुइया अणुपुव्वुठिया ऊसिया रुइला जावपडिरूवा सव्वावंतिचणं तीसेणं पुक्खरिणीए बहुमज्झदेसभाए एगं महं पउमवरपोंमरीए वुइए अणुपुव्वुठिए जावपडिरूवे॥५॥ अह पुरिसे पुरिच्छिमाउ दिसाउ आगम्म तं पुक्खरिणीं तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं महं एगं पउमवरपोंमरीयं अणुपुव्वुठियं ऊसियं जावपडिरूवं तएणं से पुरिसे एवं वयासि अहमंसी पुरिसे खेयन्ने कुसले पंमिते वियत्ते मेहावी अबाले मग्गह्े मग्गविऊ मग्गस्सगतिपराकमण्णू अहमेयं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामित्ति कट्टु इतिवच्चा से पुरिसे अभिक्कमेति तं पुक्खरिणीं जावंजावंचणं अभिक्कमेइ तावंतावंचणं महंते उदए महंते सेए पहीणे तीरं अपत्ते पउमपरपोंमरीयं णोहव्वाए णोपाराए अंतरा पोक्खरिणीए सेयंसि निसन्ने पढमे पुरिसजाए ॥ ६ ॥

अर्थ–हवे श्री सुधर्म स्वामि जंबू स्वामि प्रत्ये कहेछे (सुयंमेआउसंतेणं के०)

सांनळ्युं ळे में आयुष्यवंत एवा (नगवया के०) नगवंते (एवमरकाय के०) एम कह्युं ळे (इह के०) ए वचन थकी सुयगडांगने बीजे श्रुतस्कंधे (खलु) ए शब्द वाक्यालंकारने अर्थे (पोंमरीएणामअ्झयणे के०) पुंमरीक नामे अध्ययन ते पुंमरीक कमलनी उपमायें थशे (तस्सणं के०) ते कारणे एवो नाम कह्यो तेनुं (अयमठ्ठेपस्नुते के०) एजे आगळ कहेशे ते अर्थ जाणवो ॥ १ ॥ (सेज हाणामए के०) ते जेमळे तेम कहेवो. नाम इति संनावनाने अर्थेळे. जेम कोइ एक (पुरकरिणीसिया के०) पुष्करणी एटले कमल सहित वावडीळे ते केवीळे तोके (बहुउदगाके०) घणो अगाध जेमां पाणीळे (बहुसेयाके०) घणो जेमां कर्दमळे (बहुपुरकलाल-ध्या के०) घणो पुष्करणी पणो संपूर्णळे अर्थात् पुष्करणीनो अर्थ जेणे लाधोळे एटले जेवो नाम तेवा परिणामे एवी (पुंमरिकिणी के०) पुंमरिकिणी एटले श्वेत कमल सहित वावडीळे (पासादिया के०) निर्मल जले करीने प्रसन्न चित्त कारणीळे (दरिसणिया के०) घणा लोकने देखवा योग्यळे (अनिरूवा के०) जेने विषे सर्व काल हंस चक्रवाक गजमहिषादि रूपळे ते कारणे अनिरूपळे (पडिरूवा के०) स्वछ नाव थकी सर्व रूप प्रत्यें वंचेळे ते माटे प्रतिरूपळे ॥ २ ॥ (तीसेणंपुरकरिणीए के०) ते पुष्करणीने विषे (तह्नतह्नदेसेदेसे के०) त्यां त्यां ते ते प्रदेशे (तहिंतहिंबहवेपउमरपोंमरीयाबुइया के०) त्यां त्यां घणा प्रधान पुंमरीक नामे पद्म एटले कमल नगवंत श्रीमहावीर देवे कह्याळे (अणुपुव्वुठ्ठिया के०) ते कमल आनुपूर्वियें उठ्या (ऊसियाके०) पाणी थकी उपर वर्त्तेळे (रुइलाके०) दीपता (वन्नमंताके०) प्रधान वर्ण वाला कमलळे (गंधमंता के०) सुगंधवाला (रसमंता के०) रसवाला (फासमंता के०) सुकोमल स्पर्श सहित ळे (पासादिया के०) प्रासादनीक प्रसन्नचित्तकारणीक (दरिसणिया के०) लोकने देखवा योग्य (अनिरूवा के०) अनिरूप (पडिरूवा के०) प्रतिरूप ॥ ३ ॥ (तीसेणंपुरकरिणीए के०) ते पुष्करणीने विषे (बहुमश्रदेसनाए के०) घणा मध्य प्रदेशना नागने विचाले (एगेमहंपउमवरपोंमरीएबुइए के०) एक महोटुं प्रधान पोंमरीक नामा कमल बोल्युंळे (अणुपुव्वुठ्ठिए के०) ते आनुपूर्वियें चडती चडती पांखडीयें करी उठ्योळे उस्सिते रुइले वन्नमंते गंधमंते रसमंते फासमंते पासादीए जाव पडिरूवे एम यावत् प्रतिरूप सुधीना अर्थ पूर्ववत् जाणवा ॥ ४ ॥ (सव्वावंतिचणं के०) इत्यादिक सर्व समग्र नाव णं एवे वाक्यालंकारें जाणवा (तीसेणंपुरकरिणीए के०) ते पुष्करणीने विपे (तह्नतह्नदेसेदेसे के०) त्यां त्यां प्रदेशे एटले एवा समग्रनागोने विपे (तहिंतहिंबहवेपउमवरपोंमरीयाबुइयाके०) त्यां त्यां पूर्वोक्त गुण सहित एवा घणा पुंमरीक कमल बोल्याळे ते सर्व अणुपुव्वुठ्ठिया ऊसिया रुइला जावपडि

रूवा सव्वावंतिचणं इत्यादिक उपमायें जाणवा (तीसेणंपुरकरिणीएवहुमश्चदेसन्नाएके०) ते पुष्करणीना बहु मध्यदेश नागने विषे (एगंमहं के०) एक महोटुं (पउमवरपोंमरि एवुइए के०) प्रधान पौंमरिक कमल बोल्योछे अणुपुवुठिए जावपडिरूवे सुधी अर्थ पूर्वे लखाइ गयुंछे ॥५॥ (अहपुरिसेके०) अथ हवे एक पुरुष (पुरिछिमाउदिसाउके०) पूर्वदिशा थकी (आगम्मके०) आवीने (तंके०) ते (पुरकरिणींके०) पुष्करणी (तीसे पुरकरिणीएके०) तेपुष्करणीना (तीरेठिच्चाके०) तीरने विषे उन्नो रहीने (तंमहंएगंपउमवर पोंमरीयंके०) ते महोटुं एक पौंमरीक कमल पूर्वोक्त गुण सहित तेने (पासंतिके०)देखे ते क मलकेवो तोके अणुपुवुठियं उस्सियं जावपडिरूवं इत्यादिकना अर्थ पूर्वे लखाइ गयाछे एवी शोजा सहित ते पौंमरीक कमलने देखीने (तत्तेणं के०) तेवारे (सेपुरिसे के०) ते पुरुष (एवंवयासि के०) एम बोल्यो शुं बोल्यो ते कहेछे (अहमंसीपुरिसे के०) हुं पुरुषछुं परंतु केवोछुं तोके (खेयन्ने के०) परपीडानो जाण तथा अवसरनो जाण छुं (कुसलेपंमिते के०) डाह्यो पंमितछुं (वियत्ते के०) विवेक युक्त (मेहावी के०) परिणत बुद्धिवालो छुं (अबाले के०) बाल पणा रहित (मग्गछे के०) मार्गस्थ एटले मार्गने विषे स्थित रह्यो (मग्गविऊ के०) रुडा मार्गनो जाण (मग्गस्सगति के०) मार्गनी गतिना (परक्कमस्सू के०) पराक्रम तेनो जाणछुं (अहमेयंके०) तेन णी हुं ए (पउमवरपोंमरीयंके०) प्रधान पौंमरीक कमलने ए पुष्करणी थकी (उन्नि रिकस्सामित्ति के०) उद्धरीश (कट्टु के०) एम करीने (इतिवच्चा के०) ए पूर्वो क्त वचन बोलतो जेटले (सेपुरिसे के०) ते पुरुष (अनिक्कमेति के०) पुष्करणी मांहे प्रवेश करेछे (तंपुरकरिणीके०) ते पुष्करिणी मांहे (जावंजावंचणंअनिक्कमेइके०) जेम जेम जायछे अतिक्रमेछे (तावंतावंचणंके०)तेम तेम ते पुरुप पुष्करणी मांहे (महंते उदए के०) महोटा अगाध पाणीने विषे (महंतेसेए के०) घणा कादवने विषे (प हीणेतीरं के०) एक कांठो मूकी बीजे कांठे (अपत्तेके०) अण पहोतों एटले न पहो तो अने (पउमवरपोंमरीयंके०) पौंमरीक कमले पण पहोतो नही तेने उद्धरी पण शक्यो नही (णोहच्चाए के०) कांठे रह्यो नही (णोपाराएके०) पार पण पाम्यो नही कमलपण लइ नशक्यो (अंतरापोरकरिणीए के०) विचाले पुष्करणी मांहेज (सेयंसि के०) का दवने विषे (निसन्ने के०) खुची रह्यो एटले बेहु तीर थकी ज्रष्ट थयो अने कम लने पण उद्धरी न शक्यो अने पोते पण कादवमां खुची रह्यो नीकली शक्यो नही (पढमेपुरिसजाए के०) एटले प्रथम पुरुष जात जाणवो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—श्रीसूत्रकृतांगस्य प्रथमः श्रुतस्कंधउक्तः ॥ अथ द्वितीयः प्रारज्यते । त

स्य सप्ताध्ययनानि । तेषु प्रथमं पुंडरीकाध्ययनं तस्येदमादिसूत्रं । (सुअंमेइति) श्रुतं मया आयुष्मता जगवता एवमाख्यातं । इह प्रवचने । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । पौंडरीकाख्यमध्ययनं पुंडरीकेण श्वेतपद्मेन उपमा यत्र तत्पौंडरीकं । तस्यायमर्थः प्रज्ञप्तः । णं वाक्यालंकारे ॥ १ ॥ तद्यथा । नामशब्दः संजावनायां । संजाव्यते पुष्करिणीदृष्टांतः पुष्कराणि पद्मानि यस्यां सा पुष्करिणी वापी स्यात् । किंजूता । बहूदका बहूदकप्रचुरा । सीयंते यस्मिन्नसौ सेयः कर्दमः सयस्यां बहुसेया बहुपुष्कला बहुसंपूर्णा लब्धोनामानुगतोर्थोयया सा लब्धार्था पुंडरीकिणी श्वेतपद्मप्रचुरा प्रासादिका निर्मला दर्शनीया शोजना । अजितः सर्वतोरूपाणि हंसचक्रादीनि यस्यां सा तथा प्रतिरूपा प्रतिबिंबवती निर्मलत्वात्तस्यां सर्वत्र प्रतिबिंबानि वीक्ष्यंते ॥ २ ॥ तस्यां पुष्करिण्यां । तत्रतत्रेति पुंडरीकैर्व्याप्तिमाह । देशेदेशे इत्यनेन तु एकैकप्रदेशे प्राचुर्यमाह । तस्मिंस्तस्मिन्नित्यनेन तु नास्त्येवासौ प्रदेशोयत्र तानि न संतीति । अथवा अत्यादरज्ञापनाय एकार्थान्येवैतानि त्रीणि पदानि । तेषु पुष्करिण्याः सर्वप्रदेशेषु बहूनि पद्मान्येव वराणि पौंडरीकाणि श्वेतशतपत्राण्युक्तानि आनुपूर्व्येण विशिष्टरचनया स्थितानि उच्छ्रितानि पंकजले अतिलंघ्य उपरि व्यवस्थितानि रुचिं कांतिं लांतीति रुचिलानि दीप्तिमंति शोजनवर्णगंधरसस्पर्शवंति प्रासादीयानि दर्शनीयानि अजिरूपाणि प्रतिरूपाणि ॥ ३ ॥ तस्यां पुष्करिण्यां । णं वाक्यालंकारे । मध्यदेशे एकं पद्मवरमेव पुंडरीकमुक्तं शेषव्याख्या पूर्ववत् ॥४॥ (सवावंतिचि) सर्वस्याअपि तस्याः पुष्करिण्याः सर्वप्रदेशेषु बहूनि पद्मानि तथा सर्वस्याश्च तस्याबहुमध्यदेशे पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टं महदेकं पौंडरीकं विद्यतइति ॥ ५ ॥ अथ पूर्वस्यादिशः कश्चिदेकः पुरुषः समागम्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे तटे स्थित्वा तत्पद्मं प्रासादीयादिविशेषणं सपुरुषएवं वक्ष्यमाणं वदेत् । (अहमंसित्ति) अहमस्मि पुरुषः कुशलः पंडितः क्षेत्रज्ञोव्यक्तोबाल्यादतिक्रांतोमेधावी अबालोमध्यमवयामार्गस्थः सद्भिराचीर्णमार्गस्थोमार्गवित् मार्गस्य या गतिर्गमनं तया पराक्रमं विवक्षितदेशगमनं तज्जानातीति मार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः एवंविधोऽहमेतत्पद्मवरपुंडरीकं पुष्करिणीमध्यस्थं उत्क्षेप्स्यामि उत्खनिष्यामीति कृत्वा इहागतइत्युक्त्वा सपुरुषस्तां पुष्करिणीमजिक्रामेत् संमुखं गछेत् । यावच्च यावच्च तदवतरणेछुः संमुखं गछेत्तावत्तावच्च । णं वाक्यालंकारे । तस्याः पुष्करिण्यामहदगाधमुदकं महांश्च सेयः कर्दमः । ततः समहाकर्दमोदकाज्यामाकुलः प्रहीणस्तीरं विजक्तिव्यत्ययात्तीराद्भ्रष्टः । अप्राप्तश्च पद्मवरपुंडरीकं । तस्याः सेयः कर्दमस्तस्मिन्निपन्नोनिमग्नस्तीरपद्मयोरंतरंतरालएव तिष्ठति (नोहवाएत्ति) नार्वाक्तटवर्ती (नोपाराएत्ति) नापि पारगमनाय समर्थः । एवमसावुजयभ्रष्टः प्रथमः पुरुषजातः पुरुषजातीयः ॥ ६ ॥

टीका—प्रथमश्रुतस्कंधानंतरं द्वितीयः समारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहानं तरश्रुतस्कंधे योर्थः समासतोऽभिहितोऽसावेवानेन श्रुतस्कंधेन सोपपत्तिकोव्यासेनाभि धीयते । तएव विधयः सुसंगृहीताभवंति येषां समासव्यासाभ्यामभिधानमिति । यदि वा पूर्वश्रुतस्कंधोक्तएवार्थोऽनेन दृष्टांतद्वारेण सुखावगमार्थं प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधे नायातस्यास्य श्रुतस्कंधस्य संबंधीनि सप्त महाध्ययनानि प्रतिपाद्यंते । महांति च ता न्यध्ययनानि च पूर्वश्रुतस्कंधाध्ययनेभ्योमहत्वादेतेषामिति । तत्र महच्छब्दाध्ययनशब्दयो र्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । णामंठवणा दविए खेत्ते काले तहेव भावेय ॥ एसो खलु म ह तंमि निक्खेवो छव्विहो होंति ॥ १ ॥ (णामंठवणेत्यादि) नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रका लभावात्मकोमहति षड्विधोनिक्षेपोभवत्ति । तत्र नामस्थापने सुज्ञाते द्रव्यमहदागमतो नोआगमतश्च । आगमतोज्ञाता तत्र चानुपयुक्तः । नोआगमतस्तु ज्ञशरीरभव्यशरीरव्य तिरिक्तं सचित्तमिश्रभेदात्रिधा । तत्रापि सचित्तद्रव्यमहतऔदारिकं शरीरं तत्रौदारिकं योज नसहस्रपरिमाणं मत्स्यशरीरं वैक्रियं तु योजनशतसहस्रपरिमाणं । तैजसकार्मणे तु लोका काशप्रमाणे । तदेतदौदारिकवैक्रियतैजसकार्मणरूपं चतुर्विधं द्रव्यं सचित्तमहदचित्तमहत् समस्तलोकव्याप्यचित्तमहास्कंधः । मिश्रं तु तदेव मत्स्यादिशरीरं क्षेत्रमहत् लोकाकाशं कालमहत्सर्वाद्धाभावमहदौदयिकादिभावरूपतया षोढा । तत्रौदयिकोभावः सर्वसंसा रिषु विद्यतइति कृत्वा बव्हाश्रयत्वान्महान् भवति । कालतोप्यसौ त्रिविधः । तद्यथा । अनाद्यपर्यवसितोऽभव्यानामनादिसपर्यवसितोभव्यानां सादिसपर्यवसितोनारकादीनामि ति । क्षायिकस्तु केवलज्ञानदर्शनात्मकः साद्यपर्यवसितत्वात्कालतोमहान् क्षायोपशमि कोप्याश्रयबहुत्वादनाद्यपर्यवसितत्वाच्च महानिति । औपशमिकोपि दर्शनचारित्रमोहनी यानुदयतया शुभभावत्वेन च महान् भवति । पारिणामिकस्तु समस्तजीवाजीवाश्रयम हत्वान्महानिति । सान्निपातिकोप्याश्रयबहुत्वादेव महानिति उक्तं । महदध्ययनस्यापि नामादिकं षोढानिक्षेपं दर्शयितुं निर्युक्तिकृदाह । " णामंठवणा दविए खेत्ते काले तहेव भावेय ॥ एसो खलु अज्झयणे निक्खेवो छव्विहो होंति " ॥ २ ॥ (नामंठवणेत्यादि) अध्ययनस्य नामादिकः षोढा निक्षेपः । सचान्यत्र न्यक्षेण प्रतिपादितइति नेह प्रतन्य ते । अत्रच श्रुतस्कंधे सप्त महाध्ययनानि तेषामाद्यमध्ययनं पौंडरीकाख्यं तस्य चोपक्र मादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराणि प्ररूपणीयानि । तत्रोपक्रमआनुपूर्वी,नाम,प्रमाण,वक्त व्यता,र्थाधिकार, समवतार, भेदात्षोढा । तत्र पूर्वानुपूर्व्यां प्रथममिदं पश्चानुपूर्व्यां स समगच्छगतायाः श्रेण्याअन्योन्याभ्यासोने द्विरूपोने सति पंचाशच्छतान्यष्टात्रिंशदधिकानि भ वंति नाभितु षट् । तत्रापि क्षायोपशमिके भावे सर्वस्यापि च श्रुतस्य क्षायोपशमिकत्वा त्प्रमाणचिंतायां जीवगुणप्रमाणे वक्तव्यतायां सामान्येन सर्वेष्वध्ययनेषु स्वसमयवक्तव्य

ता । अर्थाधिकारः पौंडरीकोपमया स्वसमयगुणव्यवस्थापनं । समवतारेतु यत्र यत्र स मवतरति तत्रतत्र लेशतः समवतारितमेवेति । उपक्रमानंतरं निक्षेपः सच नामनिष्पन्ने निक्षेपे पौंडरीकमित्यस्याध्ययनस्य नाम तन्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । " णामंठवणा द विए, खेत्ते कालेय गणणसंगणे ॥ भावेय अठमे खलु, णिरकेवो पुंडरीयस्य " ॥ ३ ॥ (णामंठवणेत्यादि) पौंडरीकस्य नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालगणनासंस्थापनभावात्म कोऽष्टधा निक्षेपः । तत्र नामस्थापने क्षुण्णत्वादनादृत्य द्रव्यपौंमरीकमभिधित्सुराह । " जो जीवो भविउ खलु, उववज्जि कामो पुंडरीयस्य ॥ सोदव्वपुंडरीउं, भावंमि विजा णउं भणिउं " ॥४॥ (जोजीवोइत्यादि) यः कश्चित्प्राणधारणलक्षणोजीवोभविष्यतीति भव्यस्तदेव दर्शयति । उत्पतितुकामः समुत्पित्सुस्तथाविधकर्मोदयात्पौंडरीकेषु श्वेतपद्मेषु वनस्पतिकायविशेषेष्वनंतरभवे भावी सद्रव्यपौंमरीकः । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । भावपौं मरीकं त्वागमतः । पौंडरीकपदार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्तइति । एतदेव द्रव्यपौंडरीकं विशेषत रं दर्शयितुमाह । " एगभविएयबद्धा, उएय अभिमुहिय नामगोएय ॥ एते तिन्न देसा, दव्वंमिय पोंमरीयस्स " ॥ ५ ॥ एकेन भवेन गतेनानंतरभवएव पौंडरीकेषूत्पत्स्यते स एकभविकस्तथा तदासन्नतरः पौंडरीकेषु बद्धायुष्कस्ततोप्यासन्नतमोभिमुखनामगोत्रोऽ नंतरसमयेषु यः पौंडरीकेषूत्पद्यते । अनंतरोक्ताएते त्रयोदेशविशेषाद्रव्यपौंमरीकेऽवगंत व्याइति । भूतस्य भाविनोवा भावस्य हि कारणं तु यल्लोके । तद्द्रव्यं तत्त्वज्ञैः सचेतना चेतनं कथितमिति वचनात् । इहच पुंडरीककंडरीकयोर्भ्रात्रोर्महाराजपुत्रयोः सदसदनुष्ठा नपरायणतया शोभनत्वमवगम्य तदुपमयाऽन्यदपि यच्छोभनं तत्पौंडरीकमितरत्तु कंमरीकमि ति । तत्र च नरकवर्जासु तिसृष्वपि गतिषु ये शोभनाः पदार्थास्ते पौंमरीकाः शेषास्तु कांमरीकाइत्येतत्प्रतिपादयन्नाह । " तेरिच्छिया मणुस्सा, देवगणा चेव होंति जेय व रा ॥ ते होंति पुंमरीया, सेसा पुण कंमरीयाउ " ॥ ६ ॥ (तेरिच्छियाइत्यादि) कंठ्या तत्र तिर्यक्षु प्रधानस्य पौंमरीकत्वप्रतिपादनार्थमाह । " जलयर थलयर खयरा, जे पवराचेव होंति कंताय । जे वसभावमणुमया,ते होंति पुंमरीयाउ " ॥ ७ ॥ जलचरेषु मत्स्यकरिमकरादयः स्थलचरेषु सिंहादयोबलवर्णरूपादिगुणयुक्ताउरःपरिसर्पे मणिफणि नोभुजपरिसर्पेषु नकुलादयः खचरेषु हंसमयूरादयः इत्येवमन्येपि स्वभावेन प्रकृत्या लो कानुमतास्ते च पौंमरीकाइव प्रधानाभवंति । मनुष्यगतौ प्रधानाविष्करणायाह । " अ रिहंत चक्कवत्ती चारणविज्जाहरा दसाराय ॥ जे अन्ने इतिमंता, तेहोंति पोंमरीया उ ॥ ८ ॥ सर्वातिशायिनीं पूजामर्हंतीत्यर्हंतः । ते निरुपमरूपादिगुणोपेतास्तथा चक्रव र्तिनः षट्खंडभरतेश्वरास्तथाचारश्रमणाबहुविधैश्वर्यभूतलब्धिकलापोपेतामहातपस्विनस्त था विद्याधरावैताढ्यपुराधिपतयस्तथा दाशार्हाहरिवंशकुलोद्भवाः । अस्य चोपलक्षणार्थं

त्वादन्येपीक्ष्वाकादयः परिगृह्यंते । एतदेव दर्शयति । ये चान्ये महर्धिमंतोमहेन्यः को टीश्वरास्ते सर्वेपि पौंडरीकाजवंति । तु शब्दस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वात् । येचान्ये विद्याक लापोपेतास्ते पौंडरीकाइति । सांप्रतं देवगतौ प्रधानस्य पौंडरीकत्वं प्रतिपादयन्नाह । जव णवइयाणमंतर, जोतिसवेमाणियाणि देवाणं ॥ जे तेसिं पवरा खलु, ते होंति पुंडरीयाउ ॥ ए ॥ जवनपतिव्यंतरज्योतिष्कवैमानिकानां चतुर्णां देवनिकायानां मध्ये ये प्रवरा प्रधानाइंइंइसामानिकादयस्ते प्रधानाइति कृत्वा पौंडरीकाजिधानाजवंति । सांप्रतमचित्त इव्याणां यत्प्रधानं तत्पौंमरीकत्वप्रतिपादनायाह । " कंसाणं दूसाणं, मणिमोत्तियसि लप्पवालमादीणं ॥ जे तेसिं पवरा खलु ते होंति पोंमरीयाउ ॥ १० ॥ कांस्यानां म ध्ये जयघंटादीनि दूष्याणां चीनांशुकादीनि मणीनामिंइनीलवैदूर्यपद्मरागादीनि रत्नानि मौक्तिकानां यान्यनेकवर्णसंस्थानप्रमाणाधिकानि । तथा शिलानां मध्ये पांडुकंबला दयः शिलास्तीर्थकृज्जन्माजिषेकसिंहासनाधारजूतास्तथा प्रवालानां यानि वर्णादिगुणोपे तान्यादिग्रहणाज्जात्यचामीकरं तद्विकाराश्चाजरणविशेषाः परिगृह्यंते । तदेवमनंतरोक्ता नि कांस्यादीनि प्रवराणि तानि चित्तपौंमरीकाख्यजिधीयंतइति । मिश्रइव्यपौंमरीकं तु ती र्थकृच्चक्रवर्त्यादयएव प्रधानकटककेयूराद्यलंकारालंकृताइति । इव्यपौंडरीकानंतरं क्षेत्र पौंमरीकाजिधित्सयाह । " जाइं खेत्ताइं खलु, सुहाणुजावाइं होंति लोगंमि ॥ देवकु रुमादियाइं, ताइं खेत्ताइं पवराइं " ॥ ११ ॥ (जाइमित्यादि) यानि कानिचिदिह देव कुर्वादीनि शुजानुजावानि क्षेत्राणि तानि प्रवराणि पौंडरीकाजिधानानि जवंति । सां प्रतं कालपौंडरीकप्रतिपादनायाह । " जीवा जवठितीए, कायठितीए य होंति जे पवरा॥ ते होंति पौंमरीया, अवसेसा कंडरीयाउ ॥ १२ ॥ (जीवाइत्यादि) जीवाः प्राणिनोज वस्थित्या च ये प्रवराः प्रधानास्ते पौंडरीकाजवंति शेषास्त्वप्रधानाः कंमरीकाइति । तत्र जवनस्थित्या देवाअनुत्तरोपपातिकाः प्रधानाजवंति । तेषां यावद्भवं शुजानुजावत्वात्का यस्थित्या तु मनुष्याः शुजकर्मसमाचाराः सप्ताष्टजवप्रमाणानि मनुष्येषु पूर्वकोटघायुष्के ष्वनुपरिवर्त्यानंतरजवे त्रिपल्योपमायुष्केषूत्पादमनुजूय ततोदेवेषूत्पद्यतइति कृत्वा ततस्ते कायस्थित्या पौंमरीकाजवंत्यवशिष्टास्तु कंडरीकाइति । कालपौंडरीकानंतरं गणनासंस्था नपौंडरीकद्वयप्रतिपादनायाह । " गणणाए रज्जू खलु संगणं चेव होंति चउरंसं । ए याइं पोंमरीगाइं होंति सेसाइं इयराइं " ॥ १३ ॥ (गणणाएइत्यादि) गणनया संख्य या पौंमरीकं चिंत्यमानं दशप्रकारस्य गणितस्य मध्ये रज्जुगणितं प्रधानत्वात्पौंमरीकं । दशप्रकारं तु गणितमिदं । परिकम्मुरज्जुरासी, ववहारे तह कलासवन्ने य ॥ पुग्गलजावं तावे, घणे य घणवग्ग वग्गेय । एषां संस्थानानां मध्ये समचतुरस्रं संस्थानं प्रवर त्वात्पौंमरीकमित्येवमेते द्वे अपि पौंमरीके शेषाणि तु परिकर्मादीनि गणितानि न्यग्रो

धपरिमंमलादीनि च संस्थानानि इतराणि कंमरीकाण्यप्रवराणि नवंतीति यावत् । सांप्रतं नावपौंमरीकप्रतिपादनानिधित्सयाह । "उदइयउ वसमिए खलु, खइए य तहा खउं वसमिएय ॥ परिणामसन्निवाए, जे पवरा ते वि ते चे व ॥ १४ ॥ (उदयेइत्यादि) औदयिके नावे तथौपशमिके क्षायिकक्षायोपशमिके पारिणामिके सान्निपातिकेच नावे चिंत्यमानेषु तेषु वा मध्ये ये प्रवराः प्रधानास्तेप्यौदयिकादयोनावास्तएव पौंडरीकाएवावगंतव्यास्तथौदयिके नावे तीर्थकराअनुत्तरोपपातिकसुरास्तथान्येपि सितशतपत्रादयः पौंमरीका औपशमिके समस्तोपशांतमोहाः क्षायिके केवलज्ञानिनः क्षायोपशमिके विपुलमतिश्चतुर्दशपूर्वविरपरमावधयोन्यस्ताः समस्तावा पारिणामिके नावे नव्याः सान्निपातिके नावे द्विकादिसंयोगाः सिद्धादिषु स्वबुध्या पौंडरीकत्वेन योजनीयाः शेषास्तु कांडरीका इति । सांप्रतमन्यथानावपौंडरीकप्रतिपादनायाह । " अहवावि नाणदंसण, चरित्तविणए तहेव अश्रप्पे ॥ जे पवरा होंति मुणी, ते पवरा पुंडरीयाउ ॥ १५॥ (अहवेत्यादि) अथवापि नावपौंडरीकमिदं । तद्यथा । सम्यक्ज्ञाने तथा सम्यग्दर्शने सम्यक्चारित्रज्ञानादिके विनये तथाऽध्यात्मनि च धर्मध्यानादिके प्रवराः श्रेष्ठामुनयोनवंति ते पौंमरीकत्वेनावगंतव्यास्ततोऽन्ये कंमरीकाइति । तदेवं संनविनमष्टधा पौंडरीकस्य निक्षेपं प्रदर्श्याधुनेह येनाधिकारस्तमाविर्नावयन्नाह । " एबं पुण अहिगारो, वणस्सतीकायपुंमरीएणं ॥ नावंमि य समणेणं, अज्ञयणे पुंमरीए य" ॥ १६॥ (एबंपुणेत्यादि) अत्र पुनर्दृष्टांतप्रस्तावे ऽधिकारोव्यापारः सचित्ततिर्यग्योनिकैकेंद्रियवनस्पतिकायद्रव्यपौंडरीकेन जलरुहेणवा औदयिकनाववर्तिना वनस्पतिकायपौंडरीकेण सितशतपत्रेण तथा नावे श्रमणेन सम्यग्दर्शनचारित्रविनयाध्यात्ममूर्तिना सत्साधुनाऽस्मिन्नध्ययने पौंडरीकाख्ये ऽधिकारइति । गता निक्षेपनिर्युक्तिरधुनासूत्रस्पर्शितकनिर्युक्तेरवसरः । साच सूत्रे सति नवति । सूत्रंच सूत्रानुगमे सचावसरप्राप्तोऽतोऽस्खलितादिगुणोपतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (सुयंमेआउसंतेणमित्यादि) अस्य चानंतरं सह सूत्रेण संबंधोवाच्यः । सचायं । (सेएवमेवं जाणह जमहं नयंतारोत्ति) तमेव देवं जानीत नयस्य त्रातारं । तद्यथा । श्रुतं मयाऽऽयुष्मता नवतैवमाख्यातमादिसूत्रेण च सह संबंधोयं । तद्यथा । यद्भगवताख्यातं मया च श्रुतं तद्बुध्येतेत्यादि । किं तद्भगवताख्यातमित्याह । इह प्रवचने सूत्रकृत् द्वितीयश्रुतस्कंधे वा । खलुशब्दो वाक्यालंकारे । पौंडरीकानिधानमध्ययनं पौंडरीकेण सितशतपत्रेणात्रोपमा नविष्यतीति कृत्वाऽतोस्याध्ययनस्यपौंडरीकमिति नाम कृतं तस्य चायमर्थः । णमिति वाक्यालंकारे । प्रक्रमः प्ररूपितः ॥१॥ (सेजहत्ति) तद्यथार्थः सच वाक्योपन्यासार्थः । नामशब्दः संज्ञावनायां । संनाव्यते पुष्करिणी दृष्टांतः । पुष्कराणि पद्मानि तानि विद्यंते यस्यामसौ पुष्करिणी स्यात्अवेदेवंनूता । तद्यथा बहुप्रचुरमगाधमुदकं यस्यां सा बहूदका बहूदकप्रचुरा

तथा सीयंतेऽवबध्यंते यस्मिन्नसौ सेयः कर्दमः सयस्यां सा बहुसेया प्रचुरकर्दमा च ब
हुश्वेतपद्मसद्भावात् स्वछोदकसंनवाच्च बहुश्वेता वा तथा बहुपुष्कला बहुसंपूर्णा प्रचु
रोदकनृतेत्यर्थः। तथा लब्धः प्राप्तः पुष्करिणीशब्दान्वर्थतयार्थोयया सा लब्धार्थाऽथवाऽऽ
स्थानमास्था प्रतिष्ठा सा लब्धा यया सा लब्धास्था तथा पौंडरीकाणि श्वेतशतपत्राणि
विद्यंते यस्यां सा पौंडरीकिणी। प्रचुरार्थेन मत्वर्थीयोत्पत्तेर्बहुपद्मेत्यर्थः। तथा प्रसादः प्र
सन्नता निर्मलजलता सा विद्यते यस्याः सा प्रसादिका प्रासादावा देवकुलसन्निवेशा
स्ते विद्यंते यस्यां समंततः प्रासादिका दर्शनीया शोजना सत्संनिवेशतोद्रष्टव्या दर्शन
योग्या तथाऽनिमुख्ये च सदावस्थितानि रूपाणि राजहंसचक्रवाकसारसादीनि गजमहि
षमृगयूथादीनि वा जलांतर्गतानि वा करिमकरादीनि वा यस्यां साऽनिरूपेति तथा प्र
तिरूपाणि प्रतिबिंबानि विद्यंते यस्यां सा प्रतिरूपा। एतडुक्तं नवति। स्वछत्वात्तस्याः सर्वे
प्रतिबिंबानि समुपलन्यंते तदतिशयरूपतया वा लोकेन तत्प्रतिबिंबानि क्रियते सा प्र
तिरूपेति। यदिवा (पासादीयादरिसणीयाअनिरूवापडिरूपत्ति) पर्यायाइत्येते चत्वारो
प्यतिशयरमणीयत्वख्यापनार्थमुपात्ताः ॥ १ ॥ तस्याश्च पुष्करिण्याः। णमिति वाक्यालं
कारे। तत्र तत्रेत्यनेन वीप्सापदेन पौंमरीकैर्व्यापकत्वमाह। देशेदेशे इत्यनेन त्वेकैकप्रदे
शे प्राचुर्यमाह। तस्मिंस्तस्मिन्नित्यनेन तु नास्त्येवासौ पुष्करिण्याः प्रदेशोयत्र तानि न
संतीति। यदिवा देशेदेशइत्येतत्प्रत्येकमनिसंबध्यते। तत्रतत्रेति। कोर्थोदेशेदेशे तस्मिंस्त
स्मिन्निति चार्थोदेशैकदेशइति। यदिवा अत्यादरख्यापनायैकार्थान्येवैतानि त्रीण्यपि पदा
नि। तेषु च पुष्करिण्याः सर्वप्रदेशेषु बहूनि प्रचुराणि पद्मान्येव वराणि श्रेष्ठानि पौंडरी
काणि पद्मवरपौंडरीकाणि। पद्मग्रहणं छत्रव्याघ्रव्यवछेदार्थं। पौंडरीकग्रहणं श्वेतशतपत्र
प्रतिपत्त्यर्थं। वरग्रहणमप्रधाननिवृत्त्यर्थं। तदेवंनूतानि बहूनि पद्मवरपौंडरीकाणि (बुइय
त्ति) उक्तानि प्रतिपादितानि विद्यंतइत्यर्थः। आनुपूर्व्येण विशिष्टरचनया स्थितानि त
थोछ्रितानि पंकजले अतिलंध्योपरि व्यवस्थितानि तथा रुचिर्दीप्तिस्तां लात्याददति रुचि
लानि सद्दीप्तिमंति तथा शोजनवर्णगंधरसस्पर्शवंति तथा प्रसादीयानि अनिरूपाणि प्र
तिरूपाणि ॥ ३ ॥ तस्याश्च पुष्करिण्याः सर्वतः पद्मावृतायाः। णमिति वाक्यालंकारे। ब
हुदेशमध्यनागे निरुपचरितमध्यदेशे एकं महत्पद्मवरपौंडरीकमुक्तमानुपूर्व्येण व्यवस्थित
मुछ्रितं रुचिलवर्णगंधरसस्पर्शवत् तथा प्रासादीयं दर्शनीयं अनिरूपतरं प्रतिरूपतरमि
ति ॥ ४ ॥ सांप्रतमेदेवानंतरोक्तं सूत्रद्वयं सव्वावत्तिचणंतीत्यनेन विशिष्टमपरं सूत्रद्वयं
द्रष्टव्यं। अस्यायमर्थः (सव्वावंतित्ति) सर्वस्याअपि तस्याः पुष्करिण्याः सर्वप्रदेशेषु यथो
क्तविशेषणविशिष्टानि बहूनि पद्मानि तथा सर्वस्याश्च तस्याबहुमध्यदेशनागे यथोक्तवि
शेषणविशिष्टं महदेकं पौंडरीकं विद्यतइति। उनयत्रापि चः समुच्चये। णमिति वाक्यालंका

रे ॥ ५ ॥ अथानंतरमेवंभूतपुष्करिण्याः पूर्वस्यादिशः कश्चिदेकः पुरुषः समागत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे तटे स्थित्वा तदेतत्पद्मप्रासादादिप्रतिरूपांतविशेषणकलापोपेतं स पुरुषः पूर्वदिग्भागव्यवस्थितएवमिति वक्ष्यमाणनीत्या वदेत् ब्रूयात् । (अहमंसेत्ति) अहमस्मि पुरुषः । किंभूतः कुशलोहिताहितप्रवृत्तिनिपुणस्तथा पापाड्डीनः पंडितोधर्मज्ञो देशकालज्ञः क्षेत्रज्ञोव्यक्तोबालभावान्निष्क्रांतः परिणतबुद्धिर्मेधावी प्लवनोत्प्लवनयोरुपायज्ञस्तथा बालोमध्यमवयाः षोडशवर्षोपरिवर्ती मार्गस्थः सद्भिराचीर्णमार्गव्यवस्थितस्तथा सन्मार्गज्ञस्तथा मार्गस्य या गतिर्गमनं वर्तते तया यत्पराक्रमणं विवक्षितदेशगमनं तज्जानातीति पराक्रमज्ञः । यदिवा पराक्रमः सामर्थ्यं तज्ज्ञोहमात्मज्ञइत्यर्थः । तदेवंभूतविशेषणकलापोपेतोऽहमेतत्पूर्वोक्तविशेषणकलापोपेतं पद्मवरपौंडरीकं पुष्करिणीमध्यंदेशावस्थितमहमुत्क्षेप्स्यामीति कृत्वेहागतइत्येतत्पूर्वोक्तं तत्प्रीत्योक्त्वाऽसौपुरुषस्तां पुपुष्करिणीमभिमुखं क्रामेत्- अभिमुखं गच्छेद्यावद्यावच्चासौ तदवतरणाभिप्रायेणाभिमुखं क्रामेत्तावत्तावच्च । णमिति वाक्यालंकारे । तस्याश्च पुष्करिण्यामहदगाधमुदकं तथा महांश्च सेयः कर्दमस्ततोऽसौ महाकर्दमोदकाभ्यामाकुलीभूतः प्रहीणस्तद्विवेकेन रहितस्त्यक्त्वा तीरं सुब्व्यत्ययात्द्वा तीरात्प्रहीणः प्रभ्रष्टोऽप्राप्तश्च विवक्षितं पद्मवरपौंडरीकं तस्याः पुष्करिण्यास्तस्यां वा यः सेयः कर्दमस्तस्मिन्निषण्णोनिमग्नआत्मानमुद्धर्तुमसमर्थस्तस्माच्च तीरादपि प्रभ्रष्टस्ततस्तीरपद्मयोरंतरालएवावतिष्ठते । यतएवमतः (नोहव्वाएत्ति) नार्वाकृतटवर्त्यसौ भवति (नोपाराएत्ति) नापि विवक्षितप्रदेशप्राप्त्या पारगमनाय समर्थोभवति । एवमसावुभयभ्रष्टोमुक्तमुक्तोलीवदनर्थायैव प्रभवतीत्ययं प्रथमः पुरुषएव पुरुषजातः पुरुषजातीयइति ॥ ६ ॥

अहावरे दोच्चे पुरिसजाए अह पुरिसे दक्खिणाउ दिसाउ आगम्म तं पुक्खरिणिं तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं महं एगं पउमवर पोंमरीयं अणुपुवुठियं पासादीयं जाव पडिरूवं तंच एछ एगं पुरिसजातं पासंति तं पहीणे तीरं अपत्ते पउमवरपोंमरीयं णोहव्वाए णोपाराए अंतरा पोक्खरिणीए सेयंसि णिसन्ने तएणं से पुरिसे तं पुरिसं एवं वयासी अहो णं इमे पुरिसे अखेयन्ने अकुसले अपंमिए अवियत्ते अमेहावी बाले णोमग्गठे णोमग्गविऊ णोमग्गस्सगतिपरक्कमण्णू जन्नं एस पुरिसे अहंखेयन्ने अहंकुसले जाव पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामि णो खलु एयं पउमवरपोंमरीयं एवं उन्निक्खेयव्वं जहा णं

एस पुरिसे मन्ने॥ ७॥ अहमंसि पुरिसे खेयन्ने कुसले पंमिए वियत्ते मेहावी अबाले मग्गछे मग्गविऊ मग्गस्सगतिपरक्कमण्णू अहमेयं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामित्ति कट्टु इति वच्चा से पुरिसे अन्निक्कमे तं पुक्करिणिं जावजावंचणं अन्निक्कमेइ तावतावंचणं महंते उदए महंते सेए पहीणे तीरं अपत्ते पउमवरपोंमरीयं णोहव्वाए णोपाराए अंतरा पोक्करिणीए सेयंसि णिसन्ने दोच्चे पुरिसजाते अहावरे तच्चे पुरिसजाते अह पुरिसे पच्छिमाउ दिसाउ आगम्म तं पुक्करिणिं तीसे पुक्करिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं एगं महं पउमवरपोंमरीयं अणुपुव्वुठियं जाव पडिरूवं ते तछ दोन्नि पुरिसजाते पासंति पहीणे तीरं अपत्ते पउमवरपोंमरीयं णोहव्वाए णोपाराए जाव सेयंसि णिसन्ने तएणंसे पुरिसे एवं वयासी अहो णं इमे पुरिसा अखेयन्ना अकुसला अपंमिया अवियत्ता अमेहावी बाला णोमग्गछा णोमग्गविऊ णोमग्गस्सगतिपरक्कमण्णू जन्नं एते पुरिसा एवं मन्ने अम्हे तं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामो नोय खलु एयं पउमवरपोंमरीयं एवं उन्निक्खेतव्वं जहाणं एए पुरिसा मन्ने अहमंसि पुरिसे खेयन्ने कुसले पंमिए वियत्ते मेहावी अबाले मग्गछे मग्गविऊ मग्गस्सगतिपरक्कमण्णू अहमेयं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामित्ति कट्टु इतिवच्चा सेपुरिसे अन्निक्कमे तं पुक्करिणिं जाव जावंचणं अन्निक्कमे तावतावंचणं महंते उदए महंते सेए जावअंतरा पोक्करिणीए सेयंसि णिसन्ने तच्चे पुरिसजाए॥ ८॥ अहावरे चउछे पुरिसजाए अह पुरिसे उत्तराउ दिसाउ आगम्म तं पुक्करिणिं तीसे पुक्करिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं महं एगं पउमवरपोंमरीयं अणुपुव्वुठियं जावपडिरूवं ते तछ तिन्नि पुरिसजाते पासंति पहीणे तीरं अपत्ते जाव सेयंसि णिसन्ने तएणं से पुरिसे एवं वयासी अहो णं इमे पुरिसा अखेयन्ना जावणोमग्गस्सगतिपरिक्कमण्णू जन्नं एते पुरिसा एवं मन्ने अम्हे तं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामि

णो खलु एयं पउमवरपोंमरीयं एवं उन्निक्खेयव्वं जहा णं एते पुरिसा मन्ने अहमं सि पुरिसे खेयन्ने जाव मग्गस्सगतिपरक्कमस्सू अहमेयं पउमवरपोंमरीयं उन्नि क्खिस्सामित्ति कट्टु इतिवच्चा से पुरिसे तं पुक्करिणिं जावजावंचणं अन्निक्कमे ताव तावंचणं महंते उदए महंते सेए जाव णिसन्ने चउछे पुरिसजाए॥ ए॥

अर्थ– (अहावरे के०) अथ हवे प्रथम पुरुष अनंततर (दोच्चेपुरिसजाए के०) बीजो पुरुष जात कहेछे (अहपुरिसेके०) अथ हवे ए बीजो पुरुष (दक्खिणाउदिसाउ आगम्म के०) दक्षिण दिशा थकीआव्यो (तंपुक्करिणिंके०) ते पुष्करणीने विषे (ती सेपुक्करिणीएतीरेठिच्चा के०) ते पुष्करणीने कांठे उनो रहीने (तंमहंएगंपउमवरपोंमरी यंके०) ते महोटो प्रधान पोंमरीक कमलने (पासंति के०) दीठो ते कमल केवोछे तो के अणुपुव्वुठियं पासादीयं जावपडिरूवं) इत्यादिक पूर्ववत् शोजायें करी सहित छे (तंच के०) त्यां ते पुरुषे (एछके०) अंहीया (एगंपुरिसजातंपासंतिके०) एक पुरुष जा त दीठो (तंपहीणेतीरेके०) ते पुरुष वावडीना कांठाथी भ्रष्ट (पउमवरपोंमरीयंके०) प्रधान पुंमरीक कमलने (अपत्तेके०) अण पाम्यो थको (णोहच्चाएके०) वावडीनो बीजो कांठो अणपाम्यो (णोपाराएके०) कमल उद्धरवाने पण असमर्थ (अंतरापोक्क रिणीएके०) पुष्करणीने विचालें (सेयंसिके०) कादवमांहे (णिसन्नेके०) खुतोछे (तए णंसेपुरिसेके०) तेवार पछी ते पुरुष (तंपुरिसंके०) ते कादवमां खुचेला पुरुष प्रत्ये (ए वंवयासीके०) एम कहेवा लागो के (अहोणंइमेपुरिसेके०) अहो हे पुरुष अखेयन्ने अकुसले अपंमिए अवियत्ते अमेहावी बाले णोमग्गछे णोमग्गविक णोमग्गस्स गति परक्कमस्सू ए नव पदनुं अर्थ सुजनछे (जन्नंएसपुरिसेके०) जे कारणे ए पुरुष पोता ना आत्माने (अहंखेयन्नेके०) हुं खेदज्ञछुं (अहंकुसलेके०) हुंकुसलछुं (जावपउम वरपोंमरीयंउन्निक्खिस्सामिके०) इत्यादिक जाणतो यावत् प्रधान पुंमरीक कमल हुं उ द्धरीश एवा नावे अहीं आव्यो परंतु (णोखलुएयंपउमवरपोंमरीयं के०) निश्चें थकी पुं मरीक कमल उद्धरी शक्यो नथी अने कादवमांज खूतोछे (एवंउन्निक्खेयव्वं जहाणंएसपुरि सेमन्नेके०) जेम तेपुरुष पोताने महोटो माह्यो मानीने कमल उद्धरवा गयो तेज विधिये ए बीजो पुरुष पण पोताने माने ॥७॥ (अहमंसिपुरिसेके०) हुं पुरुष खेयन्ने कुसले पंमिए वियत्ते मेहावी अबाले मग्गछे मग्गविक मग्गस्सगतिपरिक्कमस्सू इत्यादिक पोतामां मा ह्या पणो मानतो (अहमेयंके०) हुं ए (पउमवरपोंमरीयंउन्निक्खिस्सामित्तिके०) प्रधान पुं मरीक कमलने उद्धरीश (कट्टुके०) एमकरी (इतिवच्चा के०) एवुं कहीने (सेपुरिसे

के०) ते पुरुष (अभिक्कमेतंपुरकरिणिंके०) ते पुष्करणीमां चाल्यो (जावजावंचणंअ भिक्कमेइके०) जेम जेम ते कमल सामो आवीने मांहे प्रवेश कस्यो (तावतावंचणं के०) तेमतेम (महंतेउदएके०) ऊंमापाणी मांहे (महंतेसेएके०) महोटा कादवमां हे खूतो (पहीणेतीरंके०) वाव्यनातीर थकी पण ज्रष्ट थयो (अपत्तेपउमवरपोंमरीयं के०) अने प्रधान पुंमरीक कमलने पण अण पाम्यो (णोहव्वाएके०) एक कांठा थकी ज्रष्ट (णोपाराएके०) अने बीजा कांठाने पण नपाम्यो तथा कमल पण उद्धरी नशक्यो (अंतरापोरकरिणीएके०) पुष्करणीने विचाले ज (सेयंसिके०) कादव मांहे (णिसन्ने के०) खूची रह्यो (दोच्चेपुरिसजातेके०) एटले बीजो पुरुष जात कह्यो. ॥ अथ हवे ए बीजो पुरुष कह्यानंतर त्रीजो पुरुष कहेले ए त्रीजो पुरुष पश्चिमदिशा थकी आवी पुष्करणीने कांठे उनो रहीने आगला पुरुषनी पेरे समस्त वचन बोली कमल उद्धरवा ने अर्थे पुष्करणीमां प्रवेश कस्युं पण ते कमलने उद्धरी नशक्यो पोते पुष्करणीने अं तराले पाणी अने कादव मांहे खूतो एटले त्रीजो पुरुष जात कह्यो॥ ८ ॥ हवे चोथो पुरुष उत्तर दिशा थकी आवीने पुष्करणीने तीरे उनो रही आगला त्रण पु रुषनी रीतेज वचन बोली तेमनी पेरेज कमल उद्धरवाने पुष्करणी मांहे प्रवेश कस्यो परंतु तेपण कमल उद्धरी नशक्यो अने वाव्यने अंतराले ते त्रण पुरुषोनीपेरे कादव मांहेज खूची रह्यो एटले चोथो पुरुष जात कह्यो ॥ ए ॥

॥ दीपिका–अथापरोद्वितीयः पुरुषजातः पुरुषइति । अथ कश्चित्पुरुषोदक्षिणदिग्भा गादागत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे स्थित्वा पश्यति पद्मं तीरस्थश्च तं पूर्वस्थितं पुरु षमेकं पश्यति । तीरादभ्रष्टं पद्ममप्राप्तं उनयभ्रष्टं दृष्ट्वा सद्वितीयः पुरुषस्तमेवं वदेत् अहोखेदे । णं वाक्यालंकारे । योयं कर्दमे निमग्नः पुरुषः सोखेदज्ञोऽकुशलोऽपंडितोऽ व्यक्तोमेधावी बालोन मार्गस्थोनोमार्गज्ञोनोमार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः । यस्मादेषपुरुषः कुश लइत्युक्त्वा पद्ममुत्क्षेप्स्यामीत्येवं प्रतिज्ञां कृतवान् । नचैतत् पद्ममेवमुत्क्षेप्तव्यं यथायं पुरु षोमन्यतइति नावः । शेषं सुगमं ॥ ७ ॥ ततः (अहमंसीत्यादि) अहमेवास्य पुंडरी कस्योत्क्षेपणे कुशलइतिभावः । शेषं सुगमं (अहावरेतच्चेत्ति) सुगमं । ॥ ८ ॥ (अहा वरेचउत्थेत्ति) सुगमं ॥ ए ॥

॥ टीका–अथ प्रथमपुरुषादनंतरमपरोद्वितीयः पुरुषजातः पुरुषइति । अथवेति वा क्योपन्यासार्थे । अथ कश्चित्पुरुषोदक्षिणदिग्भागादागत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च पुष्करि ण्यास्तीरे स्थित्वा तत्रस्थश्च पश्यति । महदेकं पद्मवरपौंडरीकमानुपूर्व्येण व्यवस्थितं प्रा सादीयं यावत्प्रतिरूपमत्र चास्मिंश्च प्रतीते तीरे व्यवस्थितस्तंच पूर्वव्यवस्थितमेकं पुरुषं

पश्यति। किंभूतं । तीरात्परिभ्रष्टमनवाप्तपद्मवरपौंडरीकमुभयभ्रष्टमंतरालएवावसीदंतं च दृष्ट्वा तमेवमवस्थं पुरुषं ततोसौ द्वितीयः पुरुषस्तं प्राक्तनं पुरुषमेवं वदेत् ॥ अहोइति खेदे। सर्वत्र णमिति वाक्यालंकारे। इष्टव्योयोयं कर्दमे निमग्नः पुरुषः सोखेदज्ञोऽकुशलोऽ पंडितोव्यक्तोमेधावी बालोनमार्गस्थोनोमार्गज्ञोनोमार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः । अकुशलत्वा दिके कारणमाह । यद्यस्मादेषपुरुषएतत्कृतवान् । यदहं खेदज्ञः कुशलइत्यादि भणित्वा पद्मवरपौंडरीकमुत्क्षेप्स्यामीत्येवं प्रतिज्ञातवान् । नचैतत्पद्मवरपौंडरीकमेवमनेन प्रकारेण यथाऽनेनोत्क्षेप्तुमारब्धं नैवमुत्क्षेप्तव्यं यथायं पुरुषोमन्यतइति ॥७॥ ततोहमेवा स्योत्क्षेप णे कुशलइति दर्शयितुमाह । (अहमंसीत्यादि) जावदोच्चेपुरिसाजाएत्ति। सुगमं ॥८॥ तृतीयं पुरुषमधिकृत्याह । (अहावरेतच्चेइत्यादि) सुगमं यावच्चतुर्थः पुरुष जातइति ॥९॥

अह भिक्खू लूहे तीरठी खेयन्ने जाव परक्कमस्स अन्नतराउ दिसाउ वा अणुदिसाउ वा आगम्म तं पुक्खरिणिं तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं एगं महंतं पउमवरपोंमरीयं जावपडिरूवं ते तब चत्तारि पुरिसजाए पासंति पहीणे तीरं अपत्ते जाव पउमवर पोंमरीयं णोहव्वाए णोपाराए अंतरापुक्खरिणीए सेयंसि णिसन्ने तएणं से भिक्खू तं एवं वयासी अहो णं इमे पुरिसा अखेयन्ना जाव णो मग्गस्स गति परक्कमस्स जन्नं एते पुरिसा एवं मन्ने अम्हे तं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामो णो खलु एयं पउमवपोंमरीयं एयं उन्निखेतव्वं जहा णं एते पुरिसा मन्ने अहमंसि भिक्खू लूहे तीरठी खेयन्ने जाव मग्ग स्स गतिपरक्कमस्स अहमेयं पउमवरपोंमरीयं उण्णिक्खिस्सामित्ति कट्टु इतिवच्चा से भिक्खू णो अभिक्कमे तं पुक्खरिणिं तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा सद्दं कुज्जा उप्पयाहि खलु भो पउमवरपोंमरीया उप्पया हि अहसे उप्पति ते पउमवरपोंमरीए ॥ १० ॥ किट्टिए नाए समणाउसो अठे पुण से जाणितवे भवति भंतेति समणं भगवं महावीरं बहवे निग्गंथाय निग्गंथीउय वंदंति नमंसंति वंदेत्ता नमंसित्ता एवं वयासि किट्टिए नाए समणाउसो अठं पुण से ण जाणामो समणाउसोत्ति समणे भगवं महावीरे तेय बहवे निग्गंथेय निग्गंथीउय आ

मंतेत्ता एवं वयासी हं जोसमणाउसो ते आइस्कामि विन्नावेमि किट्टेमि पवेदेमि सअट्ठं सहेउं सनिमित्तं जुज्जोजुज्जो उवदंसेमि सेवेमि ॥ ११ ॥

अर्थ-(अहके०) हवे चोथा पुरुष नंतर पांचमो पुरुष कहेछे ते केवोछे तोके (निस्कू के०) निक्षुण शील पचन पाचनादिक सावद्यानुष्ठान रहित निर्दोष आहार नोजी (लूहे के०) राग द्वेष रहित (तीरछी के०) संसार समुद्रना तीरनो अर्थी (खेयन्ने के०) खेदज्ञ एटले समस्त जीवोना खेदनो जाण (जावपरक्कमस्सू के०) यावत् मार्गेनी गतिना पराक्रमनुं जाण अंही बीजो आगलनो वर्णन सर्व करवो एवो जाण पुरुषते (अन्नतराउदिसाउवाअणुदिसाउवा के०) अन्य कोइएक दिशा थकी अथवा विदिशा थकी (आगम्म के०) आवीने (तंपुस्करिणिं के०) ते पुष्करणी (तीसेपुस्करिणीएतीरेठिच्चा के०) ते पुष्करणीने कांठे रहीने (तंएगंमहंतंपउमवरपोंमरीयंके०) ते एक महोटुं प्रधान पुंमरीक कमलने (पासंति के०) दीठो (जावपडिरूवं के०) ते कमल ज्यांलगे प्रतिरूप सुधी पूर्वे वर्णन करेलुंछे तेवो कमल दीठो (तेतछचत्तारिपुरिसजाएपासंति के०) तेणे त्यां चार पुरुषजात पूर्वोक्त चारदिशाना आवेला दीठा ते चारे पुरुष (पहीणेतीरं के०) वाव्यना तीर थकी च्रष्ट अने (अपत्तेजावपउमवरपोंमरीयंणो हव्वाएणोपाराए के०) पुंमरीक कमलने पण यावत् नथी पाम्या (अंतरापुस्करिणीएके०) वाव्यने विचाले (सेयंसि के०) कादव मांहे (णिसन्ने के०) खुताछे तेनें देखीने (तएणंसे निस्कू के०) तेवार पछी ते निक्षु साधु (तं के०) ते चार पुरुषोने (एवंवयासि के०) एम बोल्यो (अहोणंइमेपुरिसा के०) अहो ए पुरुष बापडा (अखेयन्ना के०) अखेदज्ञ (जावणोमग्गस्सगतिपरक्कमस्सू के०) यावत् मार्गेनी गतिना पराक्रमना अजाण (जन्नंएतेपुरिसाके०) जेम ए पुरुष (एवंमन्नेके०) एम जाणे जे (अम्हेतंपउमवरपोंमरीयंउस्सििक्खस्सामो के०) अमे ए कमल उद्धरी सुं तेवा विधियें उद्धरवाने अर्थें गया परंतु (णोखलु के०) निश्चें थकी नहीज (एयंपउमवरपोंमरीयंके०) ए पोंमरीक कमलने (एयंउन्निरेकतव्वं के०) एम उद्धरी शके नही (जहाणंएतेपुरिसामन्ने के०) जेम ए चार पुरुष जाणेछे ते विधियें कमल उद्धरी शकाय नही (अहमंसिनिस्कुलूहे के०) जेमाटे हुं साधु राग द्वेष रहित (तीरछी के०) संसारना तीरनो अर्थी (खेयन्नेके०) खेदज्ञ (जावमग्गस्सगतिपरक्कमस्सूके०) यावत् मार्गेनी गतिना पराक्रमनुं जाण (अहमेयंपउमवरपोंमरीयंउस्सििक्खस्सामित्ति के०) हुं ए पुंमरीक कमल निश्चे थकी उद्धरीश (कट्टु के०) एम करीने (इतिवच्चा के०) एवुं वचन कहीने (सेनिस्कु के०) तेसाधु (णोअभिक्कमे तं पुरक

रिणिं के०) ते पुष्करणी मांहे पेगे नहीं (तीसेपुस्करिणीएतीरेठिच्चा के०) ते पुष्करणीने कांठे रहीनेज (सद्दंकुज्जा के०) शब्द करेछे (उप्पयाहिखलुनोपउमवरपोंमरीयाउप्पयाहि के०) अहोपुंमरीक कमल ए पुष्करणी मांहेथी उपडीने बाहेर आव बाहेर आव एम बे वार कह्यो (अहसेउप्पतितेपउमवरपोंमरीएके०) हवे ते पुंमरीक कमल त्यांथी उपड्यो ॥१०॥ (किट्टिए के०) हवे ए दृष्टांत देखाडीने (नाएसमणाउसोके०) श्रीमहावीर देव शिष्य आगले अंतर नाव मेलवेछे के अहो आयुष्यमंत श्रमण महात्माउ तमने ए दृष्टांत कह्यो तेना (अठे के०) अर्थने (पुण के०) वली (से के०) ते (जाणितव्वे नवति के०) जाणोछो एम कहे थके तेवारे (नंतेति के०) हे नगवान् एवो शब्द कहीने (समणंनगवंमहावीरं के०) तपस्वी नगवंत श्रीमहावीरदेवने (बहवेनिग्गंथाय के०) घणानिर्ग्रंथ (निग्गंथीउंयवंदंति के०) घणी साधवी ते श्रीमहावीर देवने वांदे (नमंसंति के०) नमस्कार करे (वंदेत्ता के०) वंदना करीने (नमंसित्ता के०) नमस्कार करीने (एवंवयासि के०) एम बोल्या (किट्टिएनाएसमणाउसो के०) के हे नगवंत श्रमणआयुष्यमंत तमे जे दृष्टांत कह्यो तेना (अठं के०) अर्थने (पुण के०) वली (से के०) ते (णजाणामो के०) अमे नथी जाणता तेवारे श्रीमहावीर देव (समणाउसोत्ति के०) हे श्रमणो आयुष्यमंत साधुउं एवो शब्द कहीने (समणेनगवंमहावीरे के०) श्रमण नगवंत श्रीमहावीर देव (तेयबहवेनिग्गंथेय के०) ते घणा निर्ग्रंथ (निग्गंथीउंय के०) घणी साधवीने (आमंत्तेता के०) आमंत्रण करीने (एवंवयासी के०) एम कहेछे (हंनोसमणाउसोते के०) अहो साधुउं तमे पुछ्यो ते (आइक्खामि के०) हुं तमने कहुंछुं (विनावेमि के०) प्रगटार्थ कहुंछुं (किट्टेमि के०) तेना पर्याय कहुंछुं (पवेदेमिके०) हेतु दृष्टांते करी तमारे चित्तने सुगम थाय तेम कहुंछुं (सयठंके०) अर्थ सहित (सहेउंके०) हेतुये सहित (सनिमित्तंके०) कारण सहित (नुज्जोनुज्जो के०) वली वली (उवदंसेमिके०) देखाडीश (सेबेमिके०) ए हुं कहुंछुंते तमे सांनलो॥११॥

॥ दीपिका—अथ पंचमं पुरुषमाश्रित्याह । अथ निक्षुर्निर्दोषाहारनोजी रूक्षोरागद्वेषपरहितस्तीरार्थी संसाराब्धितीरानिलाषी । खेदज्ञइत्यादिविशेषणानि पूर्वं व्याख्यातानि । यावन्मार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः सचान्यतरस्यादिशोवा आगत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे स्थित्वा तन्महदेकं पद्मवरपौंडरीकं पश्यति तांश्चतुरः पुरुषान्पश्यति पंकनीरमग्नान् । दृष्ट्वा च सनिक्षुरेवं वदेत् अहो इमे चत्वारोपि पुरुषाअक्षेत्रज्ञाअकुशलान मार्गस्य गतिपराक्रमज्ञाः । यस्मात्ते पुरुषाएवं ज्ञातवंतोयथा वयं पुंडरीकमुन्निक्षेप्स्यामउत्खनिष्यामः । नच तत्पुंडरीकमेवमुत्क्षेप्तव्यं यथैते मन्यंते । किंतु अहमस्मि निक्षुरूक्षोयावन्मार्गस्य ग

तिपराक्रमज्ञोऽहमेवैतत्पुंडरीकमुत्खनिष्यामीत्युक्त्वा सनिक्कुर्नातिक्रामेत्तां पुष्करिणीं न प्रविशेत्तस्यास्तीरे स्थित्वा तटस्थएव शब्दंकुर्यात् । तद्यथा । उत्पत हेपुंडरीक उत्प त इति शब्दश्रवणात्तडुत्पतितं पुंडरीकं ॥ १० ॥ दार्ष्टांतिकं योजयन् श्रीवीरः शिष्याना ह । कीर्तिते कथिते ज्ञाते दृष्टांते हेश्रमणाआयुष्मंतोऽर्थः पुनरस्य ज्ञातव्योनवति नव द्भिः । एवमुक्ते नगवता बहवोनिर्ग्रंथानिर्ग्रंथ्यश्च श्रमणं नगवंतं महावीरं वंदंति कायेन नमस्यंति शब्दैः स्तुवंति । वंदित्वा नमस्कृत्वाच एवं वदेयुः । तद्यथा । कीर्तितं ज्ञातमु दाहरणं नगवता । अर्थं पुनरस्य न जानीमइति पृष्टोनगवान् तान् बहून्निर्ग्रंथादीनेवं व देत् । हंतेति आमंत्रणे । हेश्रमणाआयुष्मंतोयद्भवद्भिरहं पृष्टस्तदाख्यामि आविर्नावया मि प्रकटयामि कीर्तयामि पर्यायैः प्रवेदयामि हेतुदृष्टांतैः । एकार्थिकान्येव वा एतानि कथमाख्यामीत्याह । सार्थः सहेतुरन्वयव्यतिरेकरूपः कारणं कार्यसाधनं तेन युतं नू योनूयउपदर्शयामि ॥ ११ ॥

॥ टीका—सांप्रतमपरं पंचमं तद्विलक्षणं पुरुषजातमधिकृत्याह । (अहनिरकूलूहे इत्यादि) अथेत्यानंतर्ये । चतुर्थपुरुषादयमनंतरः पुरुषस्तस्यामूनि विशेषणानि । निक्ष णशीलोनिक्कुः पचनपाचनसावद्यानुष्ठानरहिततया निर्दोषाहारनोजी तथा रूक्षोरागद्वेष रहितः । तौहि कर्मबंधहेतुतया स्निग्धौ । यथाहि स्नेहानावाड्जोन लगति तथा राग द्वेषानावात्कर्मरेणुर्नलगत्यतस्तद्रहितोरूक्षइत्युच्यते । तथा संसारसागरस्य तीरार्थी त था क्षेत्रज्ञः खेदज्ञोवा । पूर्वं व्याख्यातान्येव विशेषणानि । यावन्मार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः सचान्यतरस्यादिशोनुदिशोवाऽऽगत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे स्थित्वा समंतादवलोक येद्दा बहुमध्यदेशनागे तन्महदेकं पद्मवरपौंमरीकं पश्यति तांश्चतुरः पुरुषान् पश्यति यत्र च व्यवस्थितानिति । किंनूतांस्त्यक्ततीरानप्राप्तपद्मवरपुंमरीकान् पंकजलावमग्नान् पुनस्तीरमप्यागंतुमसमर्थान् दृष्ट्वाच तांस्तदवस्थान् ततोसौ निक्कुरेवमिति वक्ष्यमाण नीत्या वदेत् । तद्यथा । अहोइति खेदे णमितिवाक्यालंकारे । इमे पुरुषाश्चत्वारोपि अखे दज्ञायावन्नोमार्गस्य गतिपराक्रमज्ञायस्मात्ते पुरुषाएवं ज्ञातवंतोयथा वयं पद्मवरपौंडरीक मेवमनेन प्रकारेण यथैते मन्यंते तथोत्क्षेप्तव्यं । अपि त्वहमस्मिन् निक्कुरूपोयावजति पराक्रमज्ञएतद्गुणविशिष्टोऽहमेतत्पौंडरीकमुत्क्षेप्स्यामि उत्खनिष्यामि समुद्धरिष्यामीत्ये वमुक्त्वाऽसौ नातिक्रामेत् तां पुष्करिणीं न प्रविशेत् । तत्रस्थएव यत्कुर्यात्तद्दर्शयति । तस्यास्तीरे स्थित्वा तथाविधं शब्दं कुर्यात्तद्यथा ऊर्ध्वमुत्पततोत्पत । खलुशब्दोवाक्यालंका रे । हे पद्मवरपौंडरीक तस्याः पुष्करिण्यामध्यदेशात्त्वमुत्पततोत्पत । अथ तच्छब्दश्रवणा नंतरं तडुत्पतितमिति ॥ १० ॥ तदेवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकं दर्शयितुकामः श्रीमन्म

हावीरवर्धमानस्वामी स्वशिष्यानाह । कीर्तिते कथिते प्रतिपादिते मयास्मिन् ज्ञाते उदाहरणे श्रमणाआयुष्मंतोऽर्थः पुनरस्य ज्ञातव्योनवति नवद्भिरेतडुक्तं नवति । नास्योदाहरणस्य परमार्थं यूयं जानीथैवमुक्ते नगवता ते बहवोनिर्ग्रंथानिर्ग्रंथ्यश्च तं श्रमणं नगवंतं महावीरं ते निर्ग्रंथादयोवदंति कायेन नमस्यंति तत्प्रव्हैः शब्दैः स्तुवंति वंदित्वा चैवं वक्ष्यमाणं वदेयुः । तद्यथा । कीर्तितं प्रतिपादितं ज्ञातमुदाहरणं नगवता अर्थं पुनरस्य न सम्यक् जानीमइत्येवं पृष्टोनगवान् श्रमणोमहावीरस्तान्निर्ग्रंथादीनेवं वदेत् । हंतेति संप्रेषणे । हेश्रमणाआयुष्मंतोयन्नवद्भिरहं पृष्टस्तत्सोपपत्तिकमाख्यामि नवतां तथा विनावयाम्याविनावयामि प्रकटार्थं करोमि तथा कीर्तयिष्यामि पर्यायकथनद्वारेणेति । तथा प्रवेदयामि प्रकर्षेण हेतुदृष्टांतैश्चित्तसंततावारोपयामि । अथ चैकार्थिकानि चैतानि कथं प्रतिपादयामीति दर्शयति । सहार्थेन दार्ष्टांतिकेन सार्थः वर्ततइति पुष्करिणीदृष्टांतस्तं तथा सह हेतुना अन्वयव्यतिरेकरूपेण वर्ततइति सहेतुस्तं तथानूतमार्गं प्रतिपादयिष्यामि यथा ते पुरुषाअप्राप्तप्रार्थितार्थाः पुष्करिणीकर्दमे डुरुत्तारे निमग्नाएवं वक्ष्यमाणास्तीर्थिकाअपारगाः संसारसागरस्य तत्रैव निमज्जंतीत्येवंरूपोर्थः सोपपत्तिकः प्रदर्शयिष्यते । तथा सह निमित्तेन उपादानकारणेन सहकारिकारणेन वा वर्ततइति सनिमित्तं सकारणं दृष्टांतार्थं नूयोऽपरैर्हेतुदृष्टांतैरुपदर्शयामि सोहं सांप्रतमेव ब्रवीमि शृणुत यूयमिति ॥ ११ ॥

लोयंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो पुरकरिणीबुइया कम्मंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो सेउदए बुइए कामनोगेयं खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से सेए बुइए जण जाणावयंच खलु मए अपाहट्टु समणाउसो तेवहवे पउमवरपोंमरीए बुइए रायाणंच से खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से एगे महंपउमवरपोंमरीए बुइए अन्नउत्थियाय खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो ते चत्तारिं पुरिसजाया बुइया धम्मंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से निक्खू बुइए धम्मतित्थंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो सेतीरे बुइए धम्मकहंच खलुमए अप्पाहट्टु समणाउसो से सद्दे बुइए निव्वाणंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से उप्पाए बुइए एवमेयंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से एवमेयं बुइयं ॥ १२ ॥

अर्थ–खलु इति वाक्यालंकारे (लोयंचमएके०) एलोक जे मनुष्य खेत्र ते में (अप्पाहट्टु के०) पोता थकी जाणीने (समणाउसो के०) अहोआयुष्यमंत श्रमणो (पुरकरिणीबुइयाके०) पुष्करणी कही अने (कम्मंचखलुमए के०) अष्ट प्रकारना कर्म ते

में (अप्पाहट्टुके०) पोतायकी जाणीने (समणाउसोके०) हेसाधुउं (सेउदएके०) ते पाणी (बुइएके०) कह्यो (कामजोगेयंके०) कामजोगने खलुइति वाक्यालंकारे (म एके०) में (अप्पाहट्टुके०) पोता थकी जाणीने (समणाउसोके०) हेसाधुउं (सेके०) तेने (सेएके०) कर्दम (बुइएके०) कह्यो जेकर्दममांहे खुता थका जीव पोते पोताने उद्धरी नशके अने (जणके०) सामान्यलोक ते (जाणवयंचके०) जनपद एटले आर्य देशना उपना एवा अनेक लोक तेने (खलु मएके०) में निश्चेकरी (अप्पाहट्टुके०) पोतायकी जाणीने (समणाउसोके०) हे आयुष्यमंत श्रमणो (तेबहवेके०) तेवा घणा एक (पउमवरपोंमरीएबुइए के०) पद्मकमलो कह्या तथा (रायाणंचसेखलुमएआप्पा हट्टुसमणाउसोके०) राजा जे सामान्य लोकना अधिपति केवायछे तेने में पोता थकी जाणीनें हे श्रमणो (एगेमहंपउमवरपोंमरीएबुइएके०) एक महोटुं पुंमरीक कमल क ह्यो अने जे (अन्नउत्थियायके०) अन्यतीर्थिक क्रियावादि अक्रियावादि प्रमुख (तेके०) तेने (खलुमएअप्पा हट्टुसमणाउसो के०) में पोता थकी जाणीने हे श्रमणो (चत्ता रिपुरिसजायाबुइया के०) चार पुरुष जात कह्या तेउं राजारूपमहोटो कमल तेने उ द्धरवाने असमर्थ कह्या अने (धम्मंचखलुमएअप्पाहट्टुसमणाउसोसेनिक्खूबुइए के०) जे श्रुतचारित्ररूप धर्म तेने में पोता थकी जाणीने हेश्रमणो निक्षु एटले अणगार कह्यो जेमां पुंमरीक कमलरूप राजाने उद्धरवानी समर्थाइ कही (धम्मतित्थंचखलुम एअप्पाहट्टुसमणाउसो सेतीरेबुइए के०) तथाजे धर्मतीर्थते निश्चें में पोता थकी जा णीने तीर एटले कांठो कह्यो (धम्मकहंचखलुमएअप्पाहट्टुसमणाउसोसेसद्देबुइएके०) तथा जेधर्म कथा ते निश्चें में पोता थकी जाणीने हे श्रमणो तेने में शब्द कह्यो (नि व्वाणंचखलुमएअप्पाहट्टुसमणाउसोसेउप्पाएबुइए के०) तथा जे मोक्षपद ते निश्चें में पोता थकी जाणीने हे श्रमणो तेने में कमलनो उद्धरवो कह्यो (एवमेयंच के०) ए पूर्वोक्त सर्व लोकादिकपदार्थ ते खलु शब्दवाक्यालंकारेंछे (मएके०) में (आप्पाहट्टु के०) आप थकी जाणीने (समणाउसो के०) हेश्रमणो आयुष्यमंतो (सेएवमेयंबु इयंके०) तेने पुष्करणी कमल प्रमुख एरीते में कह्या एटले सामान्य प्रकारें दृष्टांत क ह्यो हवे विशेष थकी राजा उद्धरणादिकनाव कहेछे ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–लोकं मनुष्यक्षेत्रं । चशब्दः समुच्चये । खलुर्वाक्यालंकारे । मया (अप्पा हट्टुत्ति) आत्मनि आहत्य व्यवस्थाप्य अथवा आत्मना स्वयमाहत्या ज्ञात्वा न परोपदे शतः सा पुष्करिणी उक्ता । कर्म चाष्टप्रकारं खलु मयात्मनि आहत्य आत्मना वा आ हत्य हेश्रमण आयुष्मन् तडुदकमुक्तं पुंडरीकोत्पत्तिकारणं । कामइच्छारूपा जोगामदन

व्यापाराः । सकर्दमः । यथा पंकेमग्नमात्मानमुध्दर्तुं डुःशक्यं । एवंविषयेष्वपीति विषय पंकयोः साम्यं । जनं सामान्यलोकं जानपदा आर्यदेशजातास्तानाश्रित्य तानिबहूनि पुंडरीकाणि उक्तानि राजानं चक्रवर्त्यादिकमाश्रित्य पद्मवरपुंडरीकमुक्तं । अन्यतीर्थिकानाश्रित्य ते चत्वारः पुरुषाउक्ताः । तेषां राजपुंडरीकोध्दरणे सामर्थ्याभावाध्दर्मं चाऽऽत्मन्याश्रित्य सभिक्कुरुक्तः । तस्यैव राजपुंडरीकोध्दरणेसमर्थत्वात् धर्मतीर्थं च खल्वाश्रित्य मया तत्तीरमुक्तं धर्मदेशनां चाश्रित्य मया सभिक्कोः संबधी शब्दउक्तः । निर्वाणं मोक्कंचाश्रित्य पुंडरीकस्योत्पातउक्तः । एवमेतल्लोकादिकं च खल्वात्मन्याश्रित्य मया श्रमणायुष्मन् से एतत्पुष्करिण्यादिकं दृष्टांतत्वेनकिंचित्साधर्म्यादेवमुक्तं ॥ १२ ॥

॥ टीका—तदधुना भगवान् पूर्वोक्तस्य दृष्टांतस्य यथास्वं दार्ष्टांतिके दर्शयितुमाह ॥ (लोगंचेत्यादि) लोकमिति मनुष्यक्षेत्रं । चशब्दउत्तरापेक्षया समुच्चयार्थः । खलुरिति वाक्यालंकारे । मयेत्यात्मनिर्देशः । योयं लोकोमनुष्याधारस्तमात्मन्याहृत्य व्यवस्थाप्य अपाहृत्य वा आयुष्मन् श्रमण आत्मनावा मयाऽऽहृत्य न परोपदेशतः सा पुष्करिणी प आधारभूतोक्ता । तथा कर्म चाष्टप्रकारं यद्बलेन पुरुषपौंडरीकाणि भवंति । तदेवंभूतं कर्म मयात्मन्याहृत्य आत्मनावा आहृत्यअपाहृत्य वा । एतडुक्तं भवति । हेश्रमण आयुष्मन् सर्वावस्थानां निमित्तभूतं कर्माश्रित्य तडुदकं दृष्टांतत्वेनोपन्यस्तं कर्मचात्र दार्ष्टांतिकं भविष्यति । तत्रेछामदनकामाः शब्दादयोविषयास्ते एव भुज्यंतइतिभोगाः । यदि वा कामाइछारूपामदनकामास्तु भोगास्तान् मयात्मन्याहृत्य सेयः कर्दमोऽभिहितस्तथा पंके निमग्नोडुःखेनात्मानमुध्दरत्येवं विषयेष्यासक्तोनात्मानमुध्दर्तुमलमित्येतत्कर्दमविषययोःसाम्यमिति । यथा जनं सामान्येन लोकं तथा जनपदे भवाजानपदाविशिष्टार्यदेशोत्पन्नागृह्यंते । ते चार्ध्दषड्विंशतिजनपदोद्भवाइति तांश्च समाश्रित्य मया दार्ष्टांतिकत्वेनांगीकृत्य तानि तानि बहूनि पद्मवरपौंडरीकाणि दृष्टांतत्वेनाभिहितानि । तथा राजानमात्मन्याहृत्य तदेकं पद्मवरपौंडरीकं दृष्टांतत्वेनाभि हितं तथान्यतीर्थिकान् समाश्रित्य ते चत्वारः पुरुषजाताअभिहितास्तेषां राजपौंडरीकोध्दरणे सामर्थ्यवैकल्यात् । तथा धर्मंच खल्वात्मन्याहृत्य श्रमणायुष्मन् सभिक्कुः रूक्कवृत्तिरहितस्तस्यैव चक्रवर्त्यादिराज पद्मवरपौंडरीकोध्दरणसामर्थ्यसभ्भावाध्दर्मं तीर्थंच खल्वाश्रित्य मया तत्तीरमुक्तं । तथा सध्दर्म देशनां चाश्रित्य मया सभिक्कुसंबंधी शब्दोऽभिहितस्तथा निर्वाणं मोक्कपदशेषं कर्मक्कयरूपमीषत् प्राग्भाराख्यं भूभागोपर्यवस्थितक्षेत्रखंडं चात्मन्याहृत्य सपद्मवरपौंडरीकस्योत्पातोऽभिहितइति । सांप्रतं समस्तोपसंहारार्थमाह । एवं पूर्वोक्तप्रकारेण एतल्लोकादिकंच खल्वात्मन्याहृत्याश्रित्य मया श्रमणायुष्मन् से एतत्पुष्करि ण्यादिकं दृष्टांतत्वेन किंचित्साधर्म्यादेवमेतडुक्तमिति ॥ १२ ॥

इह खलु पाईणंवा पडीणंवा उदीणंवा दाहिणंवा संतेगतिया मणुस्सा भवंति अणुपुवेणं लोगं उववन्ना तं जहा आरियावेगे अणारियावेगे उच्चागोत्तावेगे णीयागोयावेगे कायमंतावेगे रहस्समंतावेगे सुवन्नावेगे डुवन्नावेगे सुरूवावेगे डुरूवावेगे तेसिंचणं मणुयाणं एगे राया भवइ महयाहिमवंतमलयमंदरमहिंदसारे अच्चंतविसुद्धरायकुलवंसप्पसूते निरंतररायलरकणविराइयंगमंगे बहुजणबहुमाणपूइए सवगुणसमिद्धे खत्तिए मुदिए मुद्धाभिसित्ते माउपिउसुजाए देयप्पिए सीमंकरे सीमंधरे खेमंकरे खेमंधरे मणुस्सिंदे जणवयपिया जणवयपुरोहिए सेउकरे केउकरे नरपवरे पुरिसपवरे पुरिससीहे पुरिसआसीविसे पुरिसवरपोंमरीए पुरिसवरगंधहत्री अढे दित्ते वित्ते विछिन्नविउलभवणसयणासणजाणवाहणाइसे बहुधणबहुजातरूवरतए आउगपउगसंपउत्ते विछडियपउरभत्तपाणे बहुदासीदासगोमहिसगवेलगप्पभूते पडिपुस्सकोसकोठागाराउद्धागारे बलवं डुबलपच्चामिए उहयकंटयं मलियकंटयं उहयकंटयं निहयकंटयं अकंटयं उहयसत्तू निहयसत्तू मलियसत्तू उद्धियसत्तू निज्जियसत्तू पराइयसत्तू ववगयडुभिरकमारिभयविप्पमुक्कं रायवन्नउ जहाउववाइए जावपसंतडिंबडमररज्जं पसाहेमाणे विहरंति तस्सणं रन्नो परिसा भवइ उग्गा उग्गपुत्ता भोगा भोगपुत्ता इरकागाइ इरकागाइ नायना नायना कोरवा कोरवा भट्टा भट्टपुत्ता माहणा माहणपुत्ता लेबइ लेबइपुत्ता पसबारो पसबारोपुत्ता सेणावइ सेणावइपुत्ता ॥ १३ ॥ तेसिंचणं एगतीए सड्ढाभवइ कामंतं समणावा माहणावा संपहारिंसु गमणाए तत्र अन्नतरेणं धम्मेणं पन्नत्तारोवयं इम्मेणं धम्मेणं पन्नवइस्सामो सेएवंमायाणह भयंतारो जेहामए एस धम्मे सुयरकाए सुपन्नते भवइ ॥ १४ ॥

अर्थ–(इहखलुके०) ए मनुष्य लोक मांहे खलुइति वाक्यालंकारे (पाईणंवाके०) पूर्वदिशि (पडीणंवाके०) पश्चिमदिशि (उदीणंवाके०) उत्तरदिशि (दाहिणंवाके०) दक्षणदिशि ए चार दिशि अथवा विदिशिए (संतेगतियामणुस्साभवंतिके०) कोइ एक मनुष्य होय ते (अणु

पुव्वेणं के०) अनुक्रमे (लोगं के०) लोकपणे (उववन्नाके०) उपना छे (तंजहा के०) ते देखाडेछे (आरियावेगे के०) एक आर्य मनुष्यते साढा पचीश देशना उपना (अणारियावेगे के०) एक अनार्य देशना उपना ते संग यवन सबर बब्बरादिक जाणवा (उच्चागोत्तावेगे के०) एक उंचगोत्रना उपना (णीयागोयावेगे के०) एक नीचगोत्रना उपना (कायमंतावेगे के०) एक लांबा दीर्घ काय वाला (रहस्समंतावेगे के०) एक न्हस्व न्हानी काय वाला (सुवन्नावेगे के०) एक रुडा वर्ण वाला (डुवन्नावेगे के०) एक माठा वर्ण वाला (सुरूवावेगे के०) एक जला रूपवाला (डुरूवावेगेके०) एक माठा रूप वाला (तेसिंचणंमणुयाणं के०) ते मनुष्य मांहे वली (एगेरायाजवइ के०) एक राजा होय ते राजा केवोहोय तोके (महयाहिमवंत के०) महोटो हिमवंत (मलय के०) मलयाचल (मंदरके०) मेरुपर्वत (महिंद के०) महेंड एनी पेरे जेनु (सारेके०) सामर्थ्यपणुछे (अच्चंतविसुद्धरायकुलवंसप्पसूतेके०) अत्यंत निर्मल दोष रहित राजानु कुल उत्तम क्षत्रीयनो कुल तेने विषे जन्म पाम्याछे (निरंतररायलरकण के०) आंतरा रहितजे राजाना लक्षण तेणेकरी (विराइयंगमंगे के०) बिराजमान एटले शोनायमानछे शरीरना अंगोपांग जेना (बहुजण के०) घणालोक (बहुमाण के०) घणो मान आपीने (पूइए के०) पूजेछे (सवगुणसमिद्धे के०) समस्त राजाना जे गुणछे तेणेकरी समृद्धिवान एटले संपूर्णछे (खत्तिएके०) क्षत्रिय जातवंत (मुदिए के०) सर्वकाल प्रमोद सहित (मुद्धानिसित्ते के०) मातापितादिक परिवार मलीने राजाभिषेक कीधोछे (माउपिउसुजाए के०) माता पिता सुजातवंतछे अथवा माता पितानो सुविनीत सुपुत्रछे (देयप्पिए के०) वछल तथा करुणाना गुणे करी सहित (सीमंकरे के०) मर्यादानोकरनार (सीमंधरे के०) मर्यादानो धरनार (खेमंकरे के०) कल्याणनो करनार उपद्रवनो टालनार (खेमंधरे के०) कल्याणनो धरनार (मणुस्सिंदे के०) मनुष्यनुं इंड (जणवयपिया के०) जनपद एटले देशना लोकने पिता समान (जणवयपुरोहिए के०) जनपद एटले देशना लोकने शांतिनु करनार उपद्रवनुं निवारक (सेउकरे के०) मार्गनो देखाडनार (केउकरे के०) अद्भुत कार्यनो करनार (नरपवरेके०) मनुष्य मांहे प्रधान (पुरिसपवरे के०) पुरुषमांहे प्रधान (पुरिससीहे के०) पुरुष मांहे सिंह समान (पुरिसआसीविसे के०) पुरुष मांहे आशीविष सर्प समान अपराध खमे नही (पुरिसवरपोंमरीए के०) पुरुष मांहे प्रधान पुंमरीक कमल समान (पुरिसवरगंधहत्थी के०) पुरुष मांहे प्रधान गंध हस्ति समान (अड्ढे के०) धन धान्यादिके परिपूर्ण (दित्ते के०) दीपता (वित्ते के०) पहोला (विछिन्न के०) विस्तीर्ण एवा (विउल के०) विपुल एटले घणा (जवण के०) घर (सयणासण के०) पल्यंका

दिक आशन नद्रासन (जाण के०) पालखीप्रमुख (वाहणाइसे के०) गाडी घोडादिक तेणेकरीने आकीर्ण (बहुधण के०) घणो धन (बहुजातरूव के०) घणो सुवर्ण (रतए के०) घणो रजत एटले रुपु (आउगपउगसंपउत्ते के०) अर्थ लान बमणा बमणादिक तेहवो उपाय व्यापारादिक तेणे करी संयुक्तछे (विछडियपउरन्नत्तपाणे के०) घणा नात पाणी लोक जमेछे विशेषे देवरावेछे (बहुदासीदास के०) घणा दासी तथा दासछे (गोके०) वृषन (महीस के०) नेंस (गवेलग के०) गाय गेटी गाडरा बकरी ते (प्पनूते के०) प्रनूत एटले घणाछे वली (पडिपुस्स के०) प्रतिपूर्णछे (कोसके०) लक्ष्मीना नंमार (कोठागारा के०) धानना नंमार (उढागारे के०) खड्ग त्रिसूल नालादिकना नंमार (बलवं के०) पोते बलवंतछे (डुब्बल के०) डुर्बलछे (पव्वामिए के०) वैरी जेना (उहतकंटयं के०) विणास्याछे समस्त गोत्री जेणे (मलियकंटयं के०) ऋद्धि अपहारीने मान नंग कीधाछे गोत्री जेणे (उद्दयकंटयं के०) उद्देश थकी काढयाछे गोत्री जेणे (निद्दयकंटयं के०) जेणे गोत्रीने हराव्याछे (अकंटयंके०) प्रतिमल वैरीयें रहितछे (उहयसत्तूके०) विणास्याछे शत्रू जेणे (निहियसत्तूके०) जेणे शत्रुने हराव्याछे (मलियसत्तूके०) ऋद्धि अपहरीने मान नंग कस्याछे वैरी जेणे (उद्धियसत्तुके०) उद्देश थकी कढाव्याछे वैरी जेणे (निज्ञियसत्तुके०) विशेष थकी जीत्याछे वश कस्याछे वैरी जेणे (पराइयसत्तू के०) तेना राज्यने लेवे करी पराजय पमाड्याछे शत्रु जेणे वली (ववगय के०) वपगत एटले गयाछे जेना राज्यने विषे शुं गयाछे ते कहेछे (डुन्निरकके०) डुकाल डुर्निक्ष (मारिके०) देवादिकना करेला मारी मरकीना नय (नयके०) वैरीना नय थकी (विप्पमुक्कके०) रहितछे (रायवन्नउके०) एरीते राजानुं वर्णन (जहाउववाइए के०) जेम उववाइ सूत्रमां वर्णन कस्योछे तेना सरिखो (जावपसंत के०) ज्यांलगे उपशमाव्याछे (फिंबमरमरंरक्कं के०) स्वचक्र परचक्रना नय ज्यां नथी एवो राज्य (पसाहेमाणे के०) पालतो थको (विहरति के०) विचरेछे (तस्सणंरन्नो के०) हवे तेराजानी (परिसाल्नवंति के०) परषदा केवी होए ते कहेछे. (उग्गाउग्गपुत्ता के०) उग्रकुलना उपना ते उग्रकुलना पुत्र (नोगानोगपुत्ता के०) नोगकुलना उपना ते नोगकुलना पुत्र (इरकागाइइरकागाइ के०) श्रीआदीश्वरनो वंश जे इद्वाग तेना उपना ते इद्वागवंशना पुत्र (नायानानायानाके०) ज्ञातकुलना उपना ते ज्ञातकुलना पुत्र (कोरव्वाकोरव्वा के०) कौरवकुलना उपना ते कौरवकुलना पुत्र (नट्टानट्टपुत्ताके०) सुनटकुलना उपना ते सुनटना पुत्र (माहणामाहणपुत्ताके०) ब्राह्मणकुलना उपना ते ब्राह्मणना पुत्र (लेछइलेछइपुत्ताके०) लछाधिपति वणिक् जाति विशेष तेना पुत्र (पसछारोपसछारोपुत्ता के०) घणो जेने घरे लक्ष्मीनो विस्तार होय तेने घेर उपना ते

तेना पुत्र (सेणावइसेणावइपुत्ताके०) सेनाधिपतिना पुत्र इत्यादिक सनावर्णन थकी जाणवो.॥१३॥(तेसिंचणं के०) तेमांहे (एगतीएके०) कोइ एक पुरुष (सड्ढीनवइके०) धर्म करवाने श्रद्धावंत धर्मार्थी होय तेने एवो (कामंतं के०) धर्मार्थी जाणीने (समणावा माहणावाके०) श्रमण ब्राह्मण मली (संके०) सम्यक् प्रकारे पोतानो धर्मप्रतिबोधवानिमित्त (पहारिंसुगमणाए के०) तेना समीपे आलोचवो चिंतवे ते केवो (तन्नअन्नतरेणंधम्मेणंपन्नत्तारोवयं के०) त्यां अमे अमारा धर्मना प्ररूपणहार आपणो धर्म प्ररूपशुं एवो आलोची राजाने संमुख आवी बोल्या (इम्मेणंधम्मेणंपन्नवइस्सामो के०) ए आगल कहेछे ते धर्म परूपशुं तेज कहेछे (सेएवंमायाणह के०) अमे धर्म कहीशुं ते एम जाणो (नयंतारो के०) अहो नय थकी राखनार (जेहामए के०) जेम ए प्रकारे अमारो (एसधम्मेसुयरकाएसुपन्नत्तेनवइ के०) ए धर्म स्वाख्यात स्वप्रज्ञप्तछे. ॥१४॥

॥ दीपिका–एवंसामान्येन दृष्टांतयोजनामुक्त्वा विशेषेण तामाह । (इहेति) इहास्मिन् लोके । खलुर्वाक्यालंकारे । प्राच्यां प्रतीच्यां दक्षिणायामुदीच्यामन्यतरस्यां वा दिशि संति विद्यंते एके केचन मनुष्यानवंति । आनुपूर्व्येणेमं लोकमाश्रित्योत्पन्नाः । तद्यथा । आर्याआर्यदेशोत्पन्नास्तदन्येऽनार्याएके उच्चैर्गोत्रानीचैर्गोत्राएके कायो महाकायः प्रांशुत्वं तद्विद्यते येषां ते कायवंतोऽह्स्ववंतोवामनकुब्जादयः सुवर्णाः शोननकांतयोडुर्वर्णाः कृष्णरूक्षादिवर्णाएके सुरूपाएके डुष्टरूपास्तेषांमध्ये महान् कश्चिदेकोराजा नवति । किंनूतः । महाहिमवन्मलयमंदरमहेंद्राणामिव सारं सामर्थ्यं धनं वा यस्य सतथा । इत्येवं राजवर्णकोयावडुपशांतडिंबडमरं राज्यं प्रसाधयन् तिष्ठति । तत्र डिंबं परानीकनयं डमरं स्वराष्ट्रक्षोनः । तस्य च राज्ञः पर्षत् सना नवति । तद्यथा । उग्रातत्कुमाराश्च उग्रपुत्राः । एवं नोगपुत्रादयोपि ज्ञेयाः । (लेच्छइत्ति) लिप्सुकोवणिगित्यर्थः । प्रशास्तारोबुध्युपजीविनोमंत्र्यादयः सेनापतयश्च एके ॥ १३ ॥ तेषां मध्ये कश्चिदेवैकः श्रद्धावान् धर्मलिप्सुर्नवति । कामं निश्चितं तं श्रद्धावंतं श्रमणावा तदंतिकगमनाय प्रधारितवंतस्तत्प्रतिबोधाय तत्समीपे गमनं चिंतितवंतः । तत्रान्यतरेण धर्मेण स्वसमयप्रसिद्धेन प्रज्ञापयितारोवयमिति विचिंत्य तं राजानं स्वकीयेन धर्मेण प्रज्ञापयिष्यामएवं संप्रधार्य राजांतिकं गत्वा एवमूचुः । यथाहं वदामि एवं नवंतोयूयं जानीत यथा येन प्रकारेण मयैपधर्मः स्वाख्यातः सुप्रज्ञप्तोनवतीत्येवं तीर्थिकः स्वमतानुरागी राजादेः स्वानिप्रायेणोपदेशं ददाति । तत्राद्यः पुरुषस्तज्जीवतच्छरीरवादी राजानमुद्दिश्यैवं धर्मदेशनां चक्रे ॥ १४ ॥

॥ टीका–तदेवं सामान्येन दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोर्योजनां कृत्वाऽधुना विशेषणप्रधानभूत

राजद्वार्थोतिकं तदुद्धरणार्थत्वात्सर्वप्रयासस्येति दर्शयितुमाह । (इहखलुइत्यादि) इहास्मिन्मनुष्यलोके । खलु वाक्यालंकारे । इहास्मिन् लोके प्राच्यां प्रतीच्यां दक्षिणायामुदीच्यामन्यतरस्यां वा दिशि संति विद्यंते एके केचन तथाविधामनुष्या आनुपूर्व्येणेमं लोकमाश्रित्योत्पन्नाभवंति तानेवानुपूर्व्येण दर्शयति । तद्यथेत्युपन्यासार्थः । आराद्याताः सर्वहेयधर्मेभ्यइत्यार्यास्तत्र क्षेत्रार्याअर्धषड्विंशतिजनपदोत्पन्नास्तद्व्यतिरिक्तास्त्वनार्याएके केचन भवंति । ते चानार्याः क्षेत्रोत्पन्नाअमी द्रष्टव्याः ॥ सगजगणसवरबब्बर,कायमुरुडोडगोडपक्किणिया ॥ आवगाहो णरोमय,पारसरवसरवासिया चेव ॥ १ ॥डोंबिलयतउसबोक्कस,भिल्लंधपुलिंदकोंबभमररुया ॥ कोंचाय चीण चंचुय,मालवदमिलाकुलंपाय ॥ २ ॥ कैकयकिरीयहयमुह,खरमुह तह तुरगमेंढयमुहाय ॥ हयकन्नागयकन्ना, अन्ने य अणारिया बहवो ॥ ३ ॥ पावायचंडदंडा,अणारिया णिग्घिणा णिरणुकंपा ॥ धम्मोत्ति अक्कराइं, जे सुण णज्जंतिसुमिणेविइत्यादि । तथोच्चैर्गोत्रमिक्ष्वाकुवंशादिकं येषां ते तथाविधाएके केचन तथाविधकर्मोदयवर्तिनः । वाशब्दउत्तरापेक्षया विकल्पार्थः । तथा नीचैर्गोत्रं सर्वजनावगीतं येषांते तथा एके केचन नीचैर्गोत्रोदयवर्तिनोभ सर्वे । वाशब्दः पूर्ववदेव । ते चोच्चैर्गोत्रानीचैर्गोत्रा वा । कायोमहाकायः प्रांशुत्वं तद्विद्यते येषां ते कायवंतस्तथा ऱ्हस्ववंतोवामनककुब्जवडभादयएके केचन तथाविधनामकर्मोदयवर्तिनस्तथाशोभनवर्णाः सुवर्णाः प्रतप्तचामीकरचारुदेहास्तथा दुर्वर्णाः कृष्णरूक्षादिवर्णाएके केचन तथा सुरूपाः सुविभक्तावयवचारुदेहास्तथा दुष्टरूपादुरूपाबीभत्सदेहास्तेषां चोच्चैर्गोत्रादिविशेषणविशिष्टानां महान् कश्चिदेवैकस्तथाविधकर्मोदयाद्राजा भवति सविशेष्यते महाहिमवन्मलयमंदरमहेंद्राणामिव सारः सामर्थ्यं विभवोवा यस्य सतथा इत्येव राजवर्णकोयावदुपशांताडिंबडमरं राज्यं प्रसाधयंस्तिष्ठतीति । तत्र डिंबः परानीकस्तृगालिकोडमरः स्वराष्ट्रक्षोभः। पर्यायावेतावत्यादरख्यापनार्थमुपात्तौइति । तस्य चैवंविधगुणसंपदुपेतराज्ञएवंविधा पर्षद्भवतीति । तद्यथा । उग्रास्तत्कुमाराश्चोग्रपुत्राः । एवं भोगपुत्रादयोपि द्रष्टव्याः ॥ शेषंसुगमं । यावत्सेनापतिपुत्रइति । णवरंलेच्छइत्ति । लिप्सुकः सवणिगादिस्तथा प्रशास्तारोबुध्युपजीविनोमंत्रिप्रभृतयः ॥ १३ ॥ तेषां च मध्ये कश्चिदेवैकः श्रद्धावान् धर्मलिप्सुः काममित्येवधृतार्थेऽवधृतमेतद्यथार्थं धर्मश्रद्धालुरवधार्य चतं धर्मलिप्सुतया श्रमणाब्राह्मणावा संप्रधारितवंतः समालोचितवंतोधर्मप्रतिबोधनिमित्तं तदंतिकगमनाय तत्र चान्यतरेण धर्मेण स्वसमयप्रसिद्धेन प्रज्ञापयितारोवयमित्येवं नाम संप्रधार्य तं राजानं स्वकीयेन धर्मेण प्रज्ञापयिष्यामएवं संप्रधार्य राज्ञोंतिकं गत्वैवमूचुः। तद्यथा। एतद्यथाहं कथयिष्यामि एवमितिच वक्ष्यमाणनीत्या भवंतोयूयं जानीत भयात्रातारोवा यथा येन प्रकारेण मयैषधर्मः स्वाख्यातः सुप्रज्ञप्तोभवतीत्येवं तीर्थिकः

स्वदर्शनानुरंजितोन्यस्यापि राजादेः स्वाभिप्रायेणोपदेशं ददाति । तत्राद्यः पुरुषजातस्त ज्जीवतच्छरीरवादी राजानमुद्दिश्यैवं धर्मदेशनां चक्रे ॥ १४ ॥

तं जहा उड्ढंपादतला अहे केसग्गमछया तिरियंतेयपरियंते जीवे एस आयापज्जवे कसिणे एसजीवे जीवति एसमय णोजीवइ सरीरे धरमाणे धरइ विणठंमिय णोधरइ एयं तं जीवियं भवति अदहणाए परेहिं निज्जइ अगणिज्जामिए सरीरे कवोतवन्नाणि अठीणि भवंति आसंदीपं चमापुरिसा गामं पच्चागछंति एवं असंते असंविज्जमाणे जेसिंतं असं ते असंविज्जमाणे तेसिंतं सुयरकायं भवति अन्नोभवति जीवो अन्नं सरी रं तम्हा तेएवं नोविपडिवेदेंति अयमाउसो आयादीहेतिवा हस्सेतिवा परिमंमलेतिवा वट्टेतिवा तंसेतिवा चउरंसेतिवा आयतेतिवा छलंसिए तिवा अट्ठंसेतिवा किण्हेतिवा णीलेतिवा लोहियहालिद्दे सुक्किलेतिवा सुब्भिगंधेतिवा डुब्भिगंधेतिवा तित्तेतिवा कडुएतिवा कसाएतिवा अंबि लेतिवा महुरेतिवा कक्खडेतिवा मउएतिवा गुरुएतिवा लहुएतिवा सि एतिवा उसिणेतिवा निद्धेतिवा लुक्खेतिवा एवं असंते असंविज्जमाणे जे सिंतं सुयरकायं भवति अन्नोजीवो अन्नंसरीरं तम्हा तेणो एवं उवलभंति १५

अर्थ—हवे त्यां आदि पुरुषजात ते तज्जीव तच्छरीरवादी जीव छे ते राजाने उद्देशी पोताना धर्मनी देशना आपेछे (तंजहा के०) ते जेमछे तेम कहेछे (उड्ढंपादतला के०) पगना तलीआ थकी उपरें अने (अहेकेसग्गमछया के०) मस्तकना केशाग्र थकी नीचे त था (तिरियंतेयपरियंते जीवेके०) तिर्छो त्वचा जे चामडी ते पर्यंत जीव जाणवो एटला सी म शरीर थकी निकलतो जीव जुदो देखातो नथी तेथीज जणायछे के तेज शरीर अने तेज जीव एटले एशरीर तेहज जीवछे परंतु ए शरीर थकी आत्मा जुदोछे एम न जाणवुं (एसआयापज्जवेकसिणे के०) ए जे शरीरछे तेहिज आत्मानुं संपूर्ण पर्याय अवस्था विशेष जाणवो (एसजीवेजीवति के०) जेटलो काल ए काया जीवे तेटलो काल ए जीव पण जीवे (एसमयणोजीवइ के०) ए शरीर मरण पामे तेवारे जीव पण म रण पामे पण णोजीवइ एटले जीवे नहीं (सरीरेधरमाणेधरइ के०) ए शरीर ज्यां सुधी पांचभूतने धरे त्यां सुधी आत्माने पण धरे (विणिठंमिय णोधरइके०) ए शरीर विणठे

छते जीवनो पण विनाश थाय एणेधरइ एटले पछी जीवने धरी न शके (एयंतंजीवियंनवति के०) ए जीवनो जीवितव्य छे तेथी शरीर विणशे थके आत्मा पण विणशे एवो करीने (अद ह णाएपरेहिंनिज्जइके०) अन्यलोक बालवाने अर्थे स्मशानादिकने विषे लेइजाय (अगणि ज्झामिएसरीरे के०)तेवारे अग्नीयें करी शरीर प्रज्वाले छते त्यां निःकेवल(कवोतवन्नाणिके०) कपोत वर्णे (अहीणिनवंति के०) अस्थि एटले हाम देखायछे परंतु तेथकी अन्य आ त्मादिक पदार्थ कोइ देखाय नहीं के जे थकी आत्मानुं अस्तिपणु अमे जाणीयें (आ संदीपंचमापुरीसागामंपच्चागछंति के०) तथा पांचमो जेनो मांचोछे एवा चार पुरुष ते मुवेलाने प्रज्वालीने पोताने गामे आवे माटे जो आत्मा शरीर थकी जुदो होय तो श रीर थकी निकलतो देखाय अने ते जेवारे नथी देखातो तो जाणियें छैए जे तेहिज शरीर अने तेहीज जीवछे (एवंके०) एरीते (असंतेके०) जीव अछतोछे (असंविज्जमाणे के०) अविद्यमान जातो थको जाणवामां नथी आवतो (जेसिंतंअसंते के०) जेनो ए पक्षछे के जीव अछतोछे (असंविज्जमाणे के०) अविद्यमानछे जेनो एवो पक्षछे (तेसिंतं के०) तेनो ए पूर्वोक्त वचन (सुयरकायंनवति के०) स्वाख्यातछे एम जाण वो अने जेनो (अन्नोनवतिजीवो के०) जीव अन्यछे अने (अन्नंसरीरं के०) शरीर पण अन्यछे एवुं जे कहेछे ते गामरी प्रवाहे पड्या थका (तम्हा के०) तस्मात् (ते एवं के०) ते एवो (नोविपडिवेदेंति के०) जे आगल कहेशे ते नथी जाणता. तेज कहेछे (अयमाउसो के०) अहो आयुष्यमंत ए जीव शरीर थकी जुदो गणीए तो एनो शो प्रमाणछे (आयादीहेतिवा के०) आत्मा शुं दीर्घ एटले लांबोछे (हस्से तिवा के०) किंवा न्हस्व एटले अंगुठ अथवा तंडुल प्रमाण न्हानोछे (परिमंमलेति वा के०) किंवा चुडी अथवा चंद्र मंमलने आकारेंछे (वट्टेतिवा के०) किंवा वाटला लाडुने आकारेंछे (तंसेतिवा के०) किंवा त्रिखूणा सीघोडाने आकारेंछे (चउरंसेति वा के०) चौखूणोछे (आयतेतिवा के०) थांना सरीखो लांबोछे (छलंसिएतिवाके०) छखूणा छहांशनोछे (अठंसेतिवा के०) आठहांसनो आठ खूणोछे (किण्हेतिवाके०) काले वर्णेछे (णीलेतिवा के०) नीले वर्णेछे (लोहियहालिद्दसुक्किलेतिवा के०) लाल वर्णेछे किंवा हलदर जेवा पीले वर्णेछे किंवा उज्वलें वर्णेछे (सुब्भिगंधेतिवा के०) सु रनिगंध कपूर समानछे (डुब्भिगंधेतिवा के०) डुर्गंध गुमडादि समानछे अथवा रस आश्री (तित्तेतिवा के०) तीखो रस मिरची समानछे (कडूएतिवा के०) कडवुंरस नीमडा समानछे (कसाएतिवा के०) कसायलो काचाफल समान रसवालोछे (अंबिलेति वा के०) खाटा रस समानछे (मडुरेतिवा के०) मिसरी समान मधुर रसेछे तथा स्पर्शआश्री (करकडेतिवा के०) कर्कश खरखरो फरशछे (मउएतिवा के०)

आकतुल समान सुंहालो फरशछे (गुरुएतिवा के०) लोहवत् नारी फरशछे (लहुएति वा के०) अर्कतुलवत् हलवो फरशछे (सिएतिवा के०) शीतल फरशछे (उसिणेति वा के०) उष्ण फरशछे (निद्धेतिवा के०) चीकणो फरशछे (लुक्खेतिवा के०) लुखो फरशछे एटला फरश मांथी आत्मानो कयो फरशछे (एवंअसंतेअसंविज्जमाणेजेसिं के०) ए कारण माटे जे आत्माने अछतो अविद्यमान कहे (तंसुयरक्वायंनवति के०) तेनो पक्ष नलो स्वाख्यात जाणवो वली जे (अन्नोजीवो के०) अन्य जीव (अन्नंस रीरं के०) अने शरीर पण अन्यछे एम कहेछे (तम्हाके०) तस्मात् (तेणो एवंउवलप्नं ति के०) ते एवातना अजाण पणाने लीधे नथी जाणता माटे ते नास्तिकछे.॥ १५ ॥

॥ दीपिका—तद्यथा । ऊर्ध्वं पादतलादधश्च केशाग्रमस्तकात्तिर्यक्च त्वक्पर्यंतो जीवः। कोर्थः । यदेव शरीरं सएव जीवः । न शरीरादन्यः कश्चिदात्मास्ति । अयं कायएवात्मनः पर्यंतोऽवस्थाविशेषः कृत्स्नः संपूर्णः शरीरोपलंने जीवएवोपलब्धइत्य र्थः। एषकायोयावज्जीवति तावज्जीवोपि जीवतीत्युच्यते । एषकायोयदा मृतस्तदा जीवोपिमृतइति व्यपदिश्यते । यावच्छरीरमव्यंगं धरति तिष्ठति तावज्जीवोपि विनष्टे शरी रे जीवोपि न धरति विनष्टइत्यर्थः । तदेवं यावदेतच्छरीरमच्युतं तावदेव जीवस्य तज्जीवि तं नवति विनष्टे शरीरे तद्रूपोजीवोपि विनष्टइति कृत्वाऽऽदहनायासमंतादहनार्थं श्म शानादौ नीयतेऽसौतस्मिंश्च शरीरेऽग्निना ध्मापिते कपोतवर्णान्यस्थीनि केवलमुपलन्यंते न कश्चित्तदपरोजीवः । ते च तद्बांधवाजघन्यतोपिच चत्वारः । आसंदी मंचकः सपंचमो येषांते आसंदीपंचमाः पुरुषास्तं कायमग्निना ध्मापयित्वा स्वं ग्रामं प्रत्यागछंति। यदि पुन रात्मा कायाद्भिन्नः स्यात्तदा निर्गछन् दृश्येत नच दृश्यते तस्मात्तज्जीवस्तदेव शरीरमिति स्थितं । एवमुक्तनीत्याऽसौ जीवोऽसन्नविद्यमानोयेषामयं पक्षोयत्काये तिष्ठन् गछंश्च संवे द्यमानोऽनुनूयमानोजीवइति तेषां तत् स्वाख्यातं नवति । येषां पुनरन्योजीवोऽन्यछरीर मेवंनूतोऽप्रमाणकएवांगीकारस्तस्मात्ते मूढतया प्रवर्तमानाएवं वक्ष्यमाणं न विप्रतिवेदयंति जानंति । यथा हे आयुष्मन् अयमात्मा शरीराद्भिन्नः स्वीक्रियमाणः किंपरिमाणः स्या दिति वाच्यं । किंदीर्घः किंन्ह्रस्वइत्यादि संस्थानेषु किंपरिमंडलइत्यादि वर्णेषु किंकृष्णइ त्यादि गंधयोः किं सुरनिगंधइत्यादि । रसेषु किं तिक्तइत्यादि स्पर्शेषु किंकर्कशइत्यादि। तदेवं संस्थानवर्णगंधरसस्पर्शानामनावादसन्नविद्यमानोऽसंवेद्यमानोपि येषां तत् स्वा ख्यातं नवति यथान्योजीवोन्यछरीरमिति पक्षस्तस्मात्पृथगविद्यमानत्वात् ते जीववादि नोनैवात्मानमुपलनंते ॥ १५ ॥

॥टीका—तद्यथोर्ध्वमुपरि पादतलादधश्च केशाग्रमस्तकात्तिर्यक् च त्वक्पर्यंतोजीवः। एत

डुक्तं नवति। यदेवैतच्छरीरं सएव जीवोनैतस्माच्छरीरा द्व्यतिरिक्तोस्त्यात्मेत्यतस्तत्प्रमाणएव नवत्यसावित्येवंच कृत्वैषआत्मायोयं कायोऽयमेव च तस्यात्मनः पर्यवः कृत्स्नः संपूर्णः पर्यायोऽवस्थाविशेषः तस्मिंश्च कायात्मन्यवाप्ते तदव्यतिरेकाज्जीवोप्यवाप्तएव नवति । एषच कायोयावंतं कालं जीवेदविकृतआस्ते तावंतमेव कालं जीवोपि जीवतीत्युच्यते। तदव्यतिरेकात्तथैव कायोयदा मृतोविकारनाग्नवति तदा जीवोपि न जीवति जीवशरीरयोरेकात्मकत्वात् । यावदिदं शरीरं पंचनूतात्मकमव्यंगं चरति तावदेव जीवोपीति । तस्मिंश्च विनष्टे सत्येकस्यापि नूतस्यान्यथानावे विकारे सति जीवस्यापि तदात्मनोविनाशस्तदेवं यावदेतच्छरीरं वातपित्तश्लेष्माधारं पूर्वस्वनावादप्रच्युतं तावदेव तज्जीवस्य जीवितं नवति । तस्मिंश्च विनष्टे तदात्मा जीवोपि विनष्टइतिकृत्वा आदहनायासमंतादहनार्थं श्मशानादौ नीयते यतोऽसौ तस्मिंश्च शरीरेऽग्निध्मापिते कपोतवर्णान्यस्थीनि केवलमुपलन्यंते न तदतिरिक्तोऽपरः कश्चिद्विकारः समुपलन्यते यतआत्मास्तित्वशंकास्यात् । ते च तद्बांधवाजघन्यतोपि चत्वारः । आसंदी मंचकः सपंचमोयेषांते आसंदीपंचमाः पुरुषास्तं कायमग्निनाध्मापयित्वा पुनः स्वग्रामं गच्छंति। यदि पुनस्तत्रात्मा निजशरीराद्भिन्नः स्यात्ततः शरीरान्निर्गच्छन्दृश्येत नचोपलन्यते तस्माज्जीवस्तदेव शरीरमिति स्थितं। तदेव मुक्तनीत्याऽसौ जीवोऽसन्नविद्यमानस्तत्र तिष्ठन् गच्छंश्चासंवेद्यमानोयेषामयं पक्षस्तेषां तत्स्वाख्यातं नवति । येषां पुनरन्योजीवोन्यच्छरीरमेवंनूतोऽप्रमाणकएवान्युपगमस्तस्मात्ते स्वयमूह्याप्रवर्तमानाएवमिति वक्ष्यमाणं तेनैव विप्रतिवेदयंति जानंति । तद्यथा । आयुष्मन् शरीराद्बहिरन्युपगम्यमानः किंप्रमाणकः स्यादितिवाच्यं । तत्र किं दीर्घः शरीरात्प्रांशुतरः उत न्हस्वोंगुष्ठश्यामाकतंडुलादिपरिमाणोवा । तथा संस्थानानां परिमंडलादीनां मध्ये किंसंस्थानस्तथा कृष्णादीनां वर्णानां मध्ये कतमवर्णवर्ती तथा किंगंधः षसुां रसानां मध्ये कतमरसवर्ती तथा ऽष्टानां स्पर्शानां मध्ये कतमोयस्पर्शोवर्तते। तदेवं संस्थानवर्णगंधरसस्पर्शान्यरूपतया कथमप्यसावगृह्यमाणोऽसन्नसौ तथापि केनापि प्रकारेण संवेद्यमानोपि येषां तत्स्वाख्यातं नवति यथान्योजीवोन्यच्छरीरकमित्ययं पक्षस्तस्मात्पृथगविद्यमानत्वात्ते शरीरात्पृथगात्मवादिनोनैव वक्ष्यमाणनीत्यात्मानमुपलनंते ॥ १५ ॥

से जहा णाम एकेइ पुरिसे कोसीन असिं अनिनिवटित्ताणं नवदंसेज्जा अयमानसो असी अयं कोसी एवमेव णत्थि केइपुरिसे अनिनिवटित्ता णं नवदंसेत्तारो अयमानसो आया इयं सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे मुंजान इसियं अनिनिवटित्ताणं नवदंसेज्जा अयमानसो मुंजे इयं इसियं एव मेव नत्थि केइपुरिसे नवदंसेत्तारो अयमानसो आया इयं

सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे मंसाउअडिं अभिनिव्वटित्ताणं उवदं सेज्जा अयमाउसो मंसे अयं अडी एवमेव नत्थि केइ पुरिसे उवदंसे त्तारो अयमाउसो आया इयं सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे करय लाउ आमलकं अभिनिव्वटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो करतले अयं आमलए एवमेव णत्थि केइपुरिसे उवदंसेत्तारो अयमाउसो आया इयं सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे दहिउ नवनीयं अभिनिव्व टित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो नवनीयं अयंतु दही एवमेव णत्थि केइपुरिसे जाव सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे तिलेहिंतो तिल्लं अभि निव्वटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो तेल्लं अयं पिन्नाए एवमेव जाव स रीरं से जहा णाम एकेइपुरिसे इक्कूतोखोतरसं अभिनिव्वटित्ताणं उवदं सेज्जा अयमाउसो खोतरसे अयं गेए एवमेव जाव सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे अरणीतोअग्गिं अभिनिव्वटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो अरणी अयं अग्गी एवमेव जाव सरीरं एवं असंते असंविज्जमाणे जेसिं तं सुयरकायं भवति तं अन्नोजीवो अन्नं सरीरं तम्हा ते मिच्छा ॥ १६ ॥

अर्थ—(सेजहाणामए के०) ते जेम यथा दृष्टांते छे तेम कही देखाडे छे. नाम इति संभावनायेछे (केइपुरिसे के०) कोइ एक पुरुष (कोसीउ के०) पडीयार थकी (असिंके०) खड्ग काढीने (अभिनिव्वटित्ताणंके०) देखाडे अने (उवदंसेज्जा के०) कहे (अयमाउसो के०) हे आयुष्यमंतो आ (असी के०) तलवार (अयंकोसी के०) ए पडियार एम जुदा जुदा देखाडी आपे (एवमेवणत्थिकेइपुरिसेअभिनिव्वटित्ताणंउवदंसे त्तारोअयमाउसोआयाइयंसरीरं के०) जेम ए पडिहार अने ए खड्ग एम बन्ने जुदा जु दा करी देखाडे तेम एवो कोइ पुरुष शरीर अने जीवने जुदो जुदो करी देखाडनार जगत मांहे नथी (सेजहाणामए के०) ए वचन यथा दृष्टांते करी देखाडेछे नाम इति संभाव नायेछे (केइपुरिसेमुंजाउइसियं के०) जेम कोइ एक पुरुष मुंज एटले तृण थकी तेनो गर्भ भूत जे शली तेने (अभिनिव्वटित्ताणं के०) जुदा जुदा काढीने (उवदंसेज्जा के०) देखाडे जे ए तृण अने ए शली एम देखाडे के (अयमाउसोके०) अहो आयुष्यमंत (मुं जेइयंइसियं के०) ए तृण अने ए शली (एवामेवनत्थिकेइपुरिसेउवदंसेत्तारोअयमाउ सोआयाइयंसरीरं के०) एम आत्मा अने शरीरने जुदो जुदो करी देखाडनार कोइ पुरुष

नथी (सेजहाणामए के०) ते वली यथा दृष्टांते करी देखाडेछे (केइपुरिसेमंसाउअठी अभिनिव्वटित्ताणंउवदंसेज्जा के०) कोइक पुरुष मांस थकी हाड जुदा काढीने देखाडेके (अयमाउसो के०) अहो आयुष्यमंतो (मंसेअयंअठीके०) आ मांस अने ए हाड (एवामेवणत्रिकेइपुरिसेउवदंसेत्तारोअयमाउसोआयाइयंसरीरं के०) एम आ आत्मा अने ए शरीर एने जुदो जुदो देखाडनार कोइ पुरुष नथी (सेजहाणामएकेइपुरिसेकरयलाउ आमलकंअभिनिव्वटित्ताणंउवदंसेज्जा के०) यथा दृष्टांते कोइ एक पुरुष करतल एटले हथेली थकी आमलो जुदो करी देखाडे (अयमाउसोकरतलेअयंआमलए के०) हे आयुष्यमंतो आ हथेली अने आ आमलो (एवमेवनत्रिकेइपुरिसेउवदंसेत्तारोअयमाउसोआयाइयंसरीरंके०) एम आ आत्मा अने आ शरीर एरीते जुदा जुदा करी देखाडनार कोइ पुरुष नथी (सेजहाणामएकेइपुरिसेदहीउनवनीयंअभिनिव्वटित्ताणंउवदंसेज्जाअयमाउसोनवनीयं अयं तुदहीएवामेवनत्रिकेइपुरिसेजावसरीरं के०) यथा दृष्टांते केइ एक पुरुष दही थकी माखण जुदो काढीने देखाडे के अहो आयुष्यमंतो आ माखण अने आ दही एम आ आत्मा अने आ शरीर एरीते जुदा जुदा करी देखाडनार कोइ पुरुष नथी. एमज यथा दृष्टांते कोइ एक पुरुष तिल थकी तेलने जुदो काढीने देखाडे के अहो आयुष्यमंतो आ तेल अने आ खल एम आत्मा अने शरीरने कोइ पुरुष जुदो करी देखाडनार नथी एमज यथा दृष्टांते कोइ एक परुष सेलडी थकी सेलडीनो रश जुदो काढीने देखाडे के अहो आयुष्यमंतो आ इक्षुरस अने आ छोतरा एम आत्मा अने शरीरने जुदो करी देखाडनार कोइ पुरुष नथी यथादृष्टांते कोइ एक पुरुष अरणी थकी अग्नी जुदो काढीने देखाडे के हे आयुष्यमंतो आ अग्नि अने आ अरणी एम शरीर अने अत्माने जुदो करी देखाडनार कोइ पुरुष नथी. ॥ (एवंअसंतेके०) एम अछतो अने (असंविज्जमाणे के०) अविद्यमान जे आत्माछे तेने पूर्वोक्त पदार्थोने जेम जुदा जुदा करी देखाडे तेम ए आत्मा अने शरीरने जुदो जुदो करी देखाडनार जगतमां कोइ पुरुष नथी (जेसिंतंसुयखायंनवतितंके०) ते कारण माटे तेहिज जीव अने तेहिज शरीर ए पक्ष सत्य स्वाख्यात जाणवो (तम्हाके०) तस्मात् (अन्नोजीवोके०) अन्य जीव अने (अन्नंसरीरंके०) शरीर पण अन्यछे ए वचन (तेमिच्छाके०) तेमिथ्याछे ॥१६॥

॥ दीपिका–आत्मनास्तित्वं दृष्टांतैराह । (सेजहा इत्यादि) तद्यथा नाम कश्चित्पुरुषः कोशतः प्रत्याकारादसिं खड्गमनिनिवृत्य समाकृष्यान्येषामुपदर्शयेत् । तद्यथा । अयमायुष्मन् असिः खड्गः । अयं च कोशप्रत्याकारः । एवमेव जीवशरीरयोर्नास्त्युपदर्शयिता तथायं जीवइदंच शरीरमिति नास्त्येवमुपदर्शयिता कश्चिदतोन

कायाद्भिन्नोजीवइति । अत्रार्थे बहून् दृष्टांतानाह । तद्यथा । कश्चित्पुरुषोमुंजात्तृणविशेषात् (इसिअंति) तज्जनूतां शलाकां पृथक् कृत्य दर्शयेत् तथा मांसादस्थि करतलादामलकं दध्नोनवनीतं तिलेभ्यस्तैलं इक्षोरसमरणितोऽग्निमभिनिवृत्य पृथक् कृत्य दर्शयेदेवं शरीरादपि जीवं नास्त्येवमुपदर्शयिता कश्चिदतोसन्नात्मा शरीरात्पृथगसंवेद्यमानश्चेति । येषां च स्वमतानुरागादेतत्स्वाख्यातं नवति । यदन्योजीवोन्यच्च शरीरमिति । एवमात्मा च पृथक् नोपलन्यते तस्मात्तन्मिथ्या ॥ १६ ॥

॥टीका—तद्यथा नाम कश्चित्पुरुषः कोशतः परिवारादसिं खड्गमभिनिर्वर्त्य समाकृष्यान्येषामुपदर्शयेत्तद्यथाऽयमायुष्मानसिः खड्गोयं च कोशः परिवारएवमेव जीवशरीरयोरपिनास्त्युपदर्शयिता । तद्यथाऽयं जीवइदंच शरीरमिति । नचास्त्येवमुपदर्शयिता कश्चिदतः कायाद्भिन्नोजीवइति । अस्मिंश्चार्थे बह्वोदृष्टांताः संतीत्यतोदर्शयितुमाह । तद्यथा वा कश्चित्पुरुषोमुंजात् तृणविशेषात् (इसियंति) तज्जनूतां शलाकां पृथक्कृत्य दर्शयेत् । तथा मांसादस्थि तथा करतलादामलकं तथा दध्नोनवनीतं तिलेभ्यस्तैलमिति । तथेक्षोरसं तथाऽरणितोऽग्निमभिनिर्वर्त्य दर्शयेदेवमेव शरीराददि जीवमिति । नचास्त्येवमुपदर्शयितातोऽसन्नात्माशरीरात्पृथगसंवेद्यमानश्चेति । प्रयोगश्चात्र सुखडुःखनाक् परलोकायायीनास्त्यात्मा तिलशश्छिद्यमानोपि शरीरकेपृथगनुपलब्धेर्घटात्मवत् व्यतिरेकेणच कोशखड्गवत्तदेवंयुक्तिनिः प्रतिपादितोप्यात्मानवेत् । येषां पृथगात्मदिनां स्वदर्शनानुरागादेतत्स्वाख्यातं नवति । तद्यथा । अन्योजीवः परलोकानुयायी अमूर्तोऽन्यच्च तन्नववृत्तिमूर्तिमच्छरीरमेतच्च पृथङ्नोपलन्यते तस्मात्तन्मिथ्या यैः कैश्चिदुच्यते यथास्त्यात्मा परलोकानुयायीति ॥ १६ ॥

सेहंता तंहणह खणह ठणह म्हह पयह आलुंपह विलुंपह सहसाकारेह विपरामुसह एतावतावजीवे णत्थि परलोएवा ते णो एवं विप्पडिवेदेंति तंकिरियाइवा अकिरियाइवा सुक्कडेइवा डुक्कडेइवा कल्लाणेइवा पावएइवा साहुइवा असाहुइवा सिद्धाइवा असिद्धाइवा निरएइवा अनिरएइवा एवंतेविरूवरूवेहिं कम्मसमारंनेहिं विरूवरूवाइं कामन्नोगाइं समारंनंति न्नोयणाए ॥ १७ ॥ एवं एगेपागब्भिया णिस्कम्म मामगं धम्मं पन्नवेंति तंसहहमाणा तंपत्तियमाणा तंरोयमाणा साहु सुयस्काए समणेतिवा माहणेतिवा कामं खलु आउसो तुमं पूययामि तं जहा असणेणवा पाणेणवा खाइमेणवा साइमेणवा

वत्थेणवा पडिग्गहेणवा कंबलेणवा पायपुंछणेणवा तत्थेगे पूयणाए समाउट्टिंसु तत्थेगेपूयणाए निकाइंसु ॥ १८ ॥

अर्थ–हवें ए पक्ष ग्रहण करनार नास्तिकछे ते देखाडेछे एवा अध्यवसायें प्रवर्त्तंतो एवो नास्तिकवादि (सेहंताके०) ते पोते पण प्राणीओने हणे केमके ते प्राणातिपातने विषे दोष ने अण जाणतो थको छे माटे बीजाने पण जीवघात करवानो उपदेश आपे ते उपदेश क हेछे. (तंहणहके०) ते खड्गादिके करी प्राणीउने हणो एमां दोष नथी (खणहके०) पृथिव्यादिकने खणो (छणहके०) छेदो (डहहके०) बालो दहन करो (पयहके०) पचावो रसोइ करो (आलुंपहके०) लूंटो (विलुंपहके०) विशेषे लूंटो (सहसाक्कारे हके०) वस्त्र पात्रादिक सर्व अण विमास्या करो (विपरामुसहके०) इत्यादिक विपरी त मतिनुं उपदेश आपे (एतावतावजीवेणत्थिके०) एटले जीव नथी जेटले शरीर ते टलेज जीवछे (परलोएवाके०) परलोक पण नथी तो परलोकने अन्नावे पोतानी इच्छा प्रमाणे खाउ पीउ लाड करो (तेणोएवंविप्पडिवेदेंतिके०) अंही श्री सुधर्म स्वामि श्रीजंबू स्वामिने कहेछे केपरलोकने अन्नावे पुण्य पाप पण नथी जेनो एवो पक्षछे ते बापडा नास्ति क मतिना धणी एवाछे ते आगल वक्ष्यमाण एटले जे आगल हुं कहीश तेने नथी जा णता (तंकिरियाइवाके०) ते क्रिया एटले रुडा अनुष्ठानने नथी जाणता (अकिरिया इवाके०) माठा अनुष्टानने नथी जाणता (सुक्कडेइवाडुक्कडेइवाके०) रुडुंकर्युं नथी जाणता तथा माठुंकर्युं नथी जाणता (कल्लाणेइवापावएइवा के०) पुण्यने नजा णे पाप नजाणे (साहुइवाअसाहुइवा के०) साधु तथा असाधुने नथी जाणता (सिद्धाइवाअसिद्धाइवा के०) सिद्धने नजाणे असिद्ध एटले संसारने नजाणे (निरए इवाअनिरएइवाके०) नारकी अने अनारकी जे तिर्यंच मनुष्य अने देवता तेने पण नजा णे (एवंतेविरूवरूवेहिं के०) एरीते ते नास्तिकवादि विरूपरूप आत्मानो अन्नाव पडिवजीने (कम्मसंमारंन्नेहिंके०) नाना प्रकारना कर्मने समारंन्ने ते नाना प्रकारना कर्म ने करवे करीने (विरूबरूवाइंकामन्नोगाइंसमारंन्नंतिन्नोयणाएके०) नाना प्रकारना काम न्नोगने संमारंन्ने न्नोजनने अर्थेन्नोगवे ॥१७॥ (एवंएगेपागब्निियाके०) एरीते एक नास्तिक वादि अत्यंत धृष्ट थका एम कहे छे के (णिरकम्मके०) ए आत्मा शरीर थकी जुदो नथी एटले तेहिज शरीर अने तेहिज जीव एवा धृष्ट पणे प्रवर्त्ते तथा पोताना दर्शन ने अनुसारे प्रवर्ज्या ग्रहण करीने (मामगंधम्मंपन्नवेंतिके०) महारो धर्म सत्यछे एवी प्ररूपणा करे (तंसद्दहमाणाके०) तेनास्तिकवादिनो न्नाषेलो जे धर्म तेने सर्दहता (तं पत्तियमाणा के०) तथा तेने सत्य करीमानता (तंरोयमाणा के०) तेने विषे रुचि करता

थका तथा (साहुसुयरकाएके०) ए अमारो धर्म नलो रुडो स्वाख्यातछे अने अनेरा दर्शनी वापडा मुगध लोकने परलोकनो नय देखाडी आ लोकनां सुख थकी वंचेछे ते कारणे (समणेतिवाके०) अहो श्रमणो (माहणेतिवाके०) अहो ब्राह्मणो तेहिज जीव अने तेहिज शरीर ए धर्मने घणोज सारो कहीने (कामंखलुके०) निश्चे थकी ए धर्मने इचो (आउसोके०) अहो आयुष्यमंतो अमे तमने उद्दस्या नहीकां क्यां एक कपटी दर्शनीयें तमने वेंच्यो हतो तेकारणे अमे तमारा उपकारी छैए माटे अमने (तुमंपूययामि के०) तुमे पूजो प्रत्युपकार करो (तंजहाके०) तेहिज कहेछे (असणेणवा पाणेणवा खाइमेणवा साइमेणवाके०) अशने करी पाने करी खादिमे करी स्वादिमे करी ए चतुर्विध आहारे करी पूजो (वछेणवाके०) वस्त्रे करी (पडिग्गहेणवाके०) पात्रादिके करी (कंबलेणवाके) कंबले करी (पायपुंछणेणवाके०) पायपुंछणे करी पूजो प्रतिलाजो (तछेगेपूयणाएके०) त्यां कोइ एक एवी पूजाने विषे (समाउंहिंसुके०) गृद्ध थया अथवा (तछेगेपूयणाएनिकाइंसु के०) त्यां कोइ एक पूजाने विषे प्रवर्त्तमान थका एवा राजादिक लोकने ते नास्तिको पोताना धर्मने विषे निश्चल करे अने तेने कहेके ए अमारो उपदेश्यो धर्म टालीने अनेरो धर्म आदरशो नही ॥ १७ ॥

॥ दीपिका—एतदध्यवसायी सनास्तिकः स्वतः प्राणिनां हंता व्यापादकः स्यात् अन्येषामपिवक्ति । हणहइत्यादि । घातयत क्षणत क्षणनं हिंसा दहत पचत आलुंपत विलुंपत सहसा कारयत विपरामृशत एतावान् शरीरमात्रएव तावज्जीवोजीवानावाच्च नास्ति परलोकः । ततस्तेन न तज्जीवतच्छरीरवादिनोनास्तिकाए तन्न विप्रतिवेदयंते नांगीकुर्वंति । तद्यथा । क्रियां सदनुष्ठानात्मिकामक्रियां वाऽसदनुष्ठानरूपां सुकृतं वा डुष्कृतं वा कल्याणंवा पापकंवा साधुकृतमसाधुकृतंवा इत्यादिका चिंतैव नास्ति । कोर्थः । सुकृतानि साधुत्वात्कल्याणफलानि डुष्कृतान्यसाधुत्वाद्विरूपफलानीति । आत्मानं विनाऽसौ चिंता न युज्यतइत्यर्थः । तथा सुकृतेन सिद्धिर्डुष्कृते नासिद्धिस्तथा डुष्कृतेनैव नरकः अनरकस्तिर्यङ्नरामरगतिरूपः स्यादित्यादिका चिंता न युक्ता । जीवस्यैवानावात् (एवंतेत्ति) एवमुक्तप्रकारेण ते नास्तिकाविरूपरूपैः कर्मसमारंनैः सावद्यानुष्ठानैर्विरूपान् कामनोगान् समारनंते समाददति तडपनोगार्थं ॥ १७ ॥ एवमुक्तप्रकारेणैके नास्तिकाः प्रागल्भिकाःप्रागल्भ्येन चरंति धृष्टतां प्राप्ताआत्मा नास्तीति वदंति । तथा निष्क्रम्य स्वतानुगतां प्रव्रज्यां गृहीत्वा मामकं धर्मं मदीयोऽयं धर्मइत्यंगीकृत्य परेन्यः प्रज्ञापयंति । यद्यपि नास्तिकानां नास्ति दीक्षा तथापि बौद्धादिमते प्रव्र

ज्य पश्चान्नास्तिकीभूते संभवति प्रव्रज्या । अथवा नीलपटाद्यंगीकृतः कश्चिदस्त्येव प्रव्रज्या विशेषइति । तं नास्तिकधर्मं श्रद्दधानारोचयंतः स्वमतौ प्रतियंतोऽवितथभावेन गृह्णंतः साधुशोभनमेतद्यथा स्वाख्यातोभवता धर्मः । हेश्रमण ब्राह्मण शोभनं कृतं यदयं तज्जीव तच्छरीरधर्मोऽस्माकमुक्तः काममिष्टमेतदस्माकं । खलुर्वाक्यालंकारे । हे आयुष्मन् उप कारिणं त्वां पूजयाम्यहमिति तच्छिष्यावदंति । पूजामेवाह । (असणेत्यादि) सुगमं । यावत् पादपुंछनकमिति । तत्रैके पूजायां (समाउट्टिंसु) समावृत्ताः प्रव्हीभूताराजाद यः । एके तत्र स्वमतस्थित्या निकाचितवंतस्तं नृपादिकं स्वधर्मे नियमितवंतइत्यर्थः १७

॥ टीका—एतदध्यवसायीच सलोकायतिकः स्वतः प्राणिनामेकेंद्रियादीनां हंता व्यापादको भवति प्राणातिपाते दोषाभावमभ्युपगम्यान्येषामपि प्राण्युपघातकारिणामुपदेशं ददाति । तद्यथा । प्राणिनः खड्गादिना घातयत पृथिव्यादिकं खनतेत्यादिसुगमं । यावदेतावानेव शरीरमात्रएव जीवस्ततः परलोकिनोऽभावान्नास्ति परलोकोऽतस्तदभावाच्च यथेष्टमासत । तथाचोक्तं । पिब खादच साधु शोभने यदतीतं वरगात्रि तन्न ते ॥ नहि भीरुगतं निवर्त ते समुदयमात्रमिदंकलेवरं । तदेवं परलोकयायिनोजीवस्याभावान्नपुण्यपापे स्तोनापि पर लोकइत्येवं येषां पक्षस्ते लोकायतिकास्तज्जीवतच्छरीरवादिनोनैवैतद्वक्ष्यमाणं प्रतिवेदयंति अभ्युपगच्छंति । तद्यथा । क्रियांवा सदनुष्ठानात्मिकामक्रियांवा असदनुष्ठानरूपां एवं नैव ते विप्रतिवेदयंति । यदिहि आत्मा तत्क्रियावान्नकर्मणोभोक्ता स्यात्ततोपापभयात्सदनुष्ठान चिंता स्यात्तदभावाच्च सत्क्रियादिचिंतापि दूरोत्सादितैव । तथा सुकृतं डुष्कृतं वा कल्या णमिति पापमिति वा साधुकृतमसाधुकृतमित्यादिका चिंतैव नास्ति । तथाहि । सुकृता नां कल्याणविपाकिनां साधुतया ऽवस्थानं डुष्कृतानां च पापविपाकिनामसाधुत्वेनावस्था नमेतडुभयमपि सत्यात्मनि तत्फलभुजि संभवति तदभावाच्च कुतोनर्थकौ हिताहितप्रा प्तिपरिहारौ स्यातां । तथा सुकृतेन कल्याणेन साध्वनुष्ठानेनाशेषकर्मक्षयरूपासिद्धिस्तथा डुष्कृतेन पापानुबंधिना असाध्वनुष्ठानेन नरकोनरकेवा तिर्यङ्नरामरगतिलक्षणं स्यादित्ये वमात्मिका चिंतैव न भवेत्तदाधारस्यात्मसद्भावस्यानभ्युपगमादिति भावः । पुनरपि लोकाय तिकानुष्ठानदर्शनायाह । (एवंतेइत्यादि) एवमनंतरोक्तेन प्रकारेण ते नास्तिकाआत्माभावं प्रतिपाद्य विरूपं नानाप्रकारं रूपं स्वरूपं येषांते तथा कर्मसमारंभाः सावद्यानुष्ठानरूपाः पशुघातमांसभक्षणसुरापाननिर्लांछनादिकास्तैरेवंभूतैर्नानाविधैः कर्मसमारंभैः कृषीवलानु ष्ठानादिभिर्विरूपकान् कामभोगान् समारभंतेसमाददति तडुपभोगार्थमिति ॥ १७ ॥ सांप्रतं तज्जीवतच्छरीरवादिमतमुपसंजिघृक्षुः प्रस्तावमारचयन्नाह । (एवंचेगइत्यादि)

मूर्तिमतः शरीरादन्यदमूर्तं ज्ञानमात्मन्यनुभूयते तस्य चामूर्तेनैव गुणिना जाव्यमतः श रीरात्पृथग्भूतआत्माऽमूर्तोज्ञानवत्तदाधारभूतोस्तीति । नचात्माभ्युपगममंतरेण तज्जीव तच्छरीरवादिनः किंचिद्विचार्यमाणं मरणमुपपद्यते । दृश्यंते च तथाभूतएवशरीरे म्रिय माणामृताश्च । कुतः समागतोहं कुत्र चेदं शरीरं परित्यज्य यास्यामि तथेदं मे शरीरं पुराणं कर्मेत्यधमादिकाः शरीरात्पृथग्भावेनात्मनि संप्रत्ययाअनुभूयंते । तदेवमपि स्वा नुभवसिद्धेप्यात्मनि एके केचन नास्तिकाः पृथक्जीवास्तित्वमश्रद्दधानाः प्रागल्भिकाः प्रागल्भ्येन चरंति धृष्टतामापन्नाअभिदधति । तद्यथा । अयमात्मा शरीरात्पृथग्भूतः स्यात्ततः संस्थानवर्णगंधरसस्पर्शान्यतमगुणोपेतः स्यात् । नच ते वराकाः स्वदर्शनानु रागांधतमसावृतदृष्टयएतद्विदंति । तथा मूर्तस्यायं धर्मोनामूर्तस्य । नहि ज्ञानस्य सं स्थानादयोगुणाः संभाव्यंते । नच तत्तदभावेपि नास्तीत्येवमात्मापि संस्थानादिगुणरहि तोपि विद्यतइति । एवं युक्तियुक्तमप्यात्मानं धाष्टर्यान्नाभ्युपगच्छंति तथा निष्क्रम्यच स्व दर्शनविहितां प्रव्रज्यां गृहीत्वा नान्योजीवः शरीराद्विद्यतइत्येवं योधर्मोमदीयोयमित्येव मभ्युपगम्य स्वतोऽपरेषां च तं तथाभूतं धर्मं प्रतिपादयंति । यद्यपि लोकायतिकानां ना स्ति दीक्षादिकं तथाप्यपरेण शाक्यादिना प्रव्रज्याविधानेन प्रव्रज्य पश्चाल्लोकायतिकमधी यानस्य तथाविधपरिणतेस्तदेवाभिरुचितमतोमामकोयं धर्मः स्वयमभ्युपगच्छंत्यन्येषां च प्रज्ञापयंति । यदिवा नीलपटाद्यभ्युपगंतुः कश्चिदस्त्येव प्रव्रज्याविशेषइत्यदोषइति । सां प्रतं तत्प्रतिज्ञापितशिष्यव्यापारमधिकृत्याह । (तंसद्दहमाणेत्यादि) तं नास्तिकवादु पन्यस्तं धर्मं विषयिणामनुकूलं श्रद्दधानाः स्वमतावतिशयेन रोचयंतस्तथा प्रतिपादयंतो वितथभावेन गृह्णंतस्तथा तत्र रुचिं कुर्वंतस्तथा साधुशोभनमेतद्यथास्वाख्यातोयथाव स्थितोभवतोधर्मोन्यथा सति हिंसादिष्ववर्तमानः परलोकभयात्सुखसाधनेषु मांसम द्यादिष्वप्रवृत्तिं कुर्वंतोमनुष्यजन्मफलवर्जिताभवेयुः । ततः शोभनमकारि भवता हेश्र मण ब्राह्मण इतिवा यदयं तज्जीवतच्छरीरधर्मोऽस्माकमावेदितः काममिष्टे तदस्माकं ध र्मकथनं । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । हेआयुष्मंस्त्वया वयमभ्युद्धृताः कार्पटिकैस्तीर्थिकै र्वंचिताः स्युरिति । तस्मादुपकारिणं त्वां भवंतं पूजयामोहमपि कंचिदायुष्मतोभगवतः प्रत्युपकारं करोमि । तदेव दर्शयति । तद्यथा । (असणेत्यादि) सुगमं यावत्पादपुंछन कमिति । तत्रैके पूर्वोक्तया पूजया पूजायां वा (समाउर्हिसुत्ति) समावृताः प्रव्हीभू तास्ते राजानः पूजां प्रति प्रवृत्तास्तदुपदेष्टारोवा पूजामध्युपपन्नाः संतस्तं राजादिकं स्वद र्शनप्रतिपन्नमेके केचन स्वदर्शनस्थित्या हिताहितप्राप्तिपरिहारेषु निकाचितवंतोनियमि तवंतः । तथाहि । भवतेदं तच्छरीरमित्यभ्युपगंतव्यमन्योजीवोन्यच्च शरीरमित्येतत् परि त्याज्यमनुष्ठानमपि एतदनुरूपमेतद्विधेयमित्येवं निकाचितवंतइति ॥ १० ॥

पुव्वमेव तेसिं णायं नवति समणा नविस्सामो अणगारा अकिंचणा अपुत्ता अपसू परदत्तनोइणो निरकुणोपावं कम्मं णोकरिस्सामि समुट्ठीए ते अप्पणो अप्पडिविरया नवंति सयमाइयंति अन्नेवि आदियावेंति अन्नंपि आयतं तं समणुजाणंति एवमेव ते इत्थिकामनोगेहिं मुच्छिया गिद्धा गढिया अज्झोववन्ना लुद्धा रागदोसवसट्टा ते णोअप्पाणं समुच्छेदेंति ते णोपरं समुच्छेदेंति णोअन्नाइं पाणाइं नूताइं जीवाइं सत्ताइं समुच्छेदेंति पहीणा पुव्वसंजोगं आयरियं मग्गं असंपत्ता इति ते णोहव्वाए णोपाराए अंतराकामनोगेसु विसन्ना इति पढमे पुरिसजाए तज्जीवतच्छरीरएति आहिए ॥ १९ ॥

अर्थ-(पुव्वमेवके०) एरीते पहेलोज (तेसिंके०) तेनास्तिक मतिओने (णायंनवति के०) एवो विपरीत ज्ञान होय के (समणानविस्सामोके०) अमे श्रमण संयति थइशुं (अणगाराके०) घर रहित थइशुं (अकिंचणाके०) परिग्रह रहित थइशुं (अपुत्ता के०) पुत्र मित्र कलत्रादिथी रहित थइशुं (अपसूके०) गोमहिषादिकथी रहित थइशुं (परदत्तनोइणोके०) अन्यनो दीधेलो आहार नोगवीशुं पोते पचन पाचनादिक क्रियाथी रहित थइशुं (निरकुके०) निक्षाचर छता (णोपावकम्मंणोकरिस्सामिके०) पाप कर्म सावद्यानुष्ठान करीशुं नहीं (समुठ्ठीएके०) ऐवो नाव पडिवजीने सम्यक्प्रकारे उठी सावधान थइने पछी नास्तिक नाव प्राप्त करे लोकायतिक मार्गे आव्या थका (तेअप्पणोअप्पडिविरया नवंतिके० (ते आप पोते पापकर्म थकी अविरत थाय पोतानीज प्रतिज्ञा थकी भ्रष्ट थाय एवा थका जे करे ते कहेछे (सयमाइयंतिके०) सावद्यानुष्ठान हिंसा मृषावादादिक स्वयं पोते आदरे (अन्नेविआदियावेंतिके०) अन्यने आदरावे (अन्नंपिआयतं के०) अन्यकोइ आदरतो होय (तंसमणुजाणंतिके०) तेने अनुमोदे (एवमेवतेके०) एरीते ते (इत्थिकामनोगेहिंमुच्छियाके०) स्त्री संबंधी काम नोगने विषे मूर्छित (गिद्धा के०) गृद्ध एटले तेना अनिलाषी (गढियाके०) अधिक काम नोगने विषे बंधाणा (अज्झोववन्ना के०) कामनोगने विषे एकाग्र चित्ते थया (लुद्धा के०) लुब्ध थया (रागदोसवसट्टा के०) राग द्वेषने विषे पहोता (तेणोअप्पाणंसमुच्छेदेंति के०) ते पोताना आत्माने कर्म पास थकी न छोडावे (तेणोपरंसमुच्छेदेंति के०) ते अन्यने पण कर्म बंध थकी नछोडावे (णोअन्नाइं पाणाइं नूताइं जीवाइं सत्ताइं समुच्छेदेंतिके०) ते अन्य प्राणी नूत जीव सत्व तेने पण कर्म पास थकी छोडावी नशके एवा नास्तिक

वादि (पहीणपुव्वसंजोगं के०) पूर्वे संयोगजे पुत्र कलत्रादिक ते थकी पण भ्रष्ट थया अने (आयरियंमग्गं के०) आर्य मार्गनेपण (असंपत्ता के०) अणपाम्या एटले नपाम्या (इतिके०) एम उनय भ्रष्ट थया थका (तेणोहच्चाएके०) ते एवा प्रकारे पुष्करणीने तीरे पण रह्या नहीं अने (णोपाराएके०) पार पण पहोता नहीं (अंतराकामनोगेसुविसन्ना के०) विचाले कामनोगरूप कादवने विषेज खूता थका रह्या ते पुंमरीक कमल सरखा राजाने उद्धरी नशके (इतिपढमपुरुषजाएतज्जीवतच्छरीरएतिआहिएके०) इति तज्जीव तच्छरीरवादिनामा एम प्रथम पुरुष जात कह्यो ॥ १ए ॥

॥ दीपिका—ये नागवतादिलिंगमंगीकृत्य पश्चान्नास्तिकाः संवृतास्तेषां पूर्वमादौ प्रव्रज्याग्रहणावसरएतत् परिज्ञातं नवति । यत् श्रमणायतयोनविष्यामोऽनगाराः किंच न द्रव्यं तद्रहितानिष्किंचनाअपुत्राअपशवः परदत्तनोजिनोनिक्षवः किंचित्पापं कर्म सावद्यं नकरिष्यामइति समुछाय पश्चान्नास्तिकतां प्राप्तास्ते आत्मना स्वयं सावद्यादप्रतिविरताअनिवृत्तानवंति । स्वयं सावद्यमाददते स्वीकुर्वंति अन्यानप्यादापयंति ग्राहयंत्यादानं समनुजानंति । एवमेव स्त्रीप्रधानाः कामनोगाः स्त्रीकामनोगास्तेषु मूर्बिताग्रुछाअध्युपपन्नाआधिक्येन नोगेषु लुब्धारागद्वेषार्ताः संतोनात्मानं संसारात्समुच्छेदयंति । नापि परं समुच्छेदयंति नाप्यन्यान् प्राणिनोनूतानि जीवान् सत्वान् समुच्छेदयंत्यसदनिप्रायप्रवृत्तत्वात् । ते चैवंविधालोकायतिकाः पूर्वसंयोगात्पुत्रादिकात्प्रहीणाभ्रष्टाआर्यमार्गं सदनुष्ठानरूपमसंप्राप्ताइति लोकद्वयसदनुष्ठानभ्रष्टाअंतरालएव नोगेषु विषस्सास्तिष्ठंति न पुंडरीकोत्क्षेपादिकार्यं साधयंतीत्ययं तज्जीवतच्छरीरवादीप्रथमः पुरुषः समाप्तः ॥ १ए ॥

॥ टीका—तत्र ये नागवतादिकं लिंगमन्युपगताः पश्चाल्लोकायतग्रंथश्रवणेन लोकायताः संवृतास्तेषामादौ प्रव्रज्याग्रहणकालएवैतत्परिज्ञातं नवति । तद्यथा । परित्यक्तपुत्रकलत्राः श्रमणायतयोनविष्यामोऽनगारागृहरहितास्तथा निष्किंचनाः किंचनद्रव्यं तद्रहितास्तथाऽपशवोगोमहिष्यादिरहिताः परदत्तनोजिनः स्वतः पचनपाचनादिक्रियारहितत्वात् निक्षणशीलानिक्षवः किंच द्दृयतेऽन्यदपि यत्किंचित्पापं सावद्यं कर्मानुष्ठानं तत्सर्वं नकरिष्यामीत्येवं सम्यगुछानेनोछाय पूर्वं पश्चाल्लोकायतिकमुपगताआत्मनः स्वतः कर्मन्योऽप्रतिविरतानवंति । विरत्यनावेपि यत्कुर्वंति तदर्शयति । पूर्वं सावद्यारंनान्निवृत्तिं विधाय नीलपटादिकं च लिंगमास्थाय च स्वयमात्मना सावद्यमनुष्ठानमाददते स्वीकुर्वंति अन्यान्यप्यादापयंति ग्राहयंत्यन्यमप्यादानं परिग्रहं स्वीकुर्वंतं समनुजानंति । एवमेव पूर्वोक्तप्रकारेण स्त्रीप्रधानाः स्त्रियोपलक्षितावा काम्यंतइति कामानुज्यंतइति नोगास्तेषु सातबहु

नतया ऽजितेंड्रियाः संतस्तेषु कामनोगेषु मूर्छिताएकीनावतामापन्नागृद्धाः कांक्षावंतो ग्रथिताअवबद्धाअध्युपपन्नाआधिक्येन नोगेषु लुब्धारागद्वेषार्तारागद्वेषवशगाः काम नोगांधावा तएवं कामनोगेषु आश्रवबद्धाः संतोनात्मानं संसारात्कर्मपाशाद्वा समुछे दयंति मोचयंति नापि परं सडुपदेशदानतः कर्मपाशावपाशितं समुछेदयंति कर्मबंधान्नोट यंति नाप्यन्यान् दशविधप्राणवर्तिनः प्राणान् प्राणिनस्तथा वानूवन् नवंति नविष्यं तिच नूतानि तथा वा आयुष्कधारणाज्जीवास्तांस्तथा सत्वास्तथाविधवीर्यांतरायक्षयोप शमापादितवीर्यगुणोपेतास्तान्नसमुछेदयंति । असदनिप्रायप्रवृत्तत्वात् । ते चैवंविधास्त ज्जीवतच्छरीरवादिनोलोकायतिकाअजितेंड्रियतया कामनोगावसक्ताः पूर्वसंयोगात्पुत्रदा रादिकात्प्रहीणाः प्रभ्रष्टाआराद्याताः सर्वहेयधर्मेन्यइत्यार्योमार्गः सदनुष्ठानरूपस्तमसं प्राप्ताइत्येवं पूर्वोक्तया नीत्या ऐहिकामुष्मिकलोकद्वयसदनुष्ठानभ्रष्टाअंतरालएव नोगे षु विषण्णास्तिष्ठंति । न विवक्षितं पौंडरीकोत्क्षेपणादिकं कार्यं प्रसाधयंतीति । अयं च प्रथमःपुरुषस्तज्जीवतच्छरीरवादी परिसमाप्तइति ॥ १ए ॥

अहावरे दोच्चे पुरिसजाए पंचमहब्भूतिएति आहिज्जइ इह खलु पाइ एंवा संतेगतियामणुस्सा नवंति अणुपुव्वेणं लोयं उववन्ना तं जहा आरि यावेगे अणारियावेगे एवं जाव डुरूवावेगे तेसिंचणं महंएगे राया नव इ महाएवंचेव णिरविसेसं जाव सेणावइपुत्ता तेसिंचणं एगेतिए सड्ढी न वंति कामंतं समणाय माहणाय पहारिंसु गमणाए तब अन्नयरेणं धम्मे एं पन्नत्तारो वयं इमेणं धम्मेणं पन्नवइस्सामो सेएवं मायाणहनयंतारो जहाए एसधम्मे सुअक्खाए सुपन्नत्ते नवंति ॥ २० ॥

अर्थ-(अहावरेदोच्चेपुरिसजाए के०) अथ हवे अपर एटले बीजो पुरुषजात को णढे ते हुं कहुंबुं माटे हे श्रमणो तमे सांनलो (पंचमहब्भूतिएति के०) जे पुरुष पृथ्व्यादिक पांच महानूत तत्वे करी माने ते पांच महानूतिक पुरुष सांख्यमति (आहिज्ज इ के०) कहिए ते प्रथम पुरुषनी परे ज्यांलगे राजसनामां आवी राजा प्रत्ये पोतानो धर्म रुडो करी प्रकाशे तेनी पेरे कहेढे (इहखलुपाइणंवाके०) निश्चे आ संसारमां पूर्वादिक दिशिने विषे (संतेगतियामणुस्सानवंतिके०) कोइएक मनुष्य पंचमहानूतिक सांख्यमतिढे (अणुपुव्वेणंलोयंउववन्ना के०) ते अनुक्रमे लोकमांहे उपना (तंजहाके०) ते कहेढे (आरियावेगेके०) एक आर्य मनुष्यते साडा पचीश आर्य देशना उपना (अणारियावेगे के०) एक अनार्य मनुष्यते अनार्य देशना उपना (एवंजावडुरूवावेगे के०)

एम यावत् कोइएक मनुष्य कुरूपवंत छे इत्यादिक अर्थ आगल लखाइ गयाछे (ते सिंचणं के०) ते मनुष्य मांहे (महंएगेरायाजवइ के०) एक महोटो राजा होय तेके वो तोके (महाएवंचेव के०) महोटो हिमवंत पर्वतादिक समान होय (णिरविसेसं के०) एमज पूर्ववत निरविशेष (जावसेणावइपुत्ता के०) यावत् सेनापतिना पुत्र केवा (तेसिंचणं के०) तेमांहे (एगेतिएसड्ढाजवंति के०) कोइ एकने धर्म करवानी श्रद्धा होय एटले धर्मार्थी होय (कामंतं के०) तेने धर्मार्थी जाणीने (समणा य माहणाय के०) श्रमण अने ब्राह्मण मलीने तेना समीपे धर्म प्रतिबोधवा निमित्त (पहारिंसुगमणाए के०) आलोचवो चिंतवीने आवे (तत्र के०) त्यां (अन्नयरेणंध म्मेणंपन्नत्तारोवयं के०) अनरो पोतानो धर्म प्ररूपण हार एटले धर्मोपदेशक थइने (इमेणं के०) ए आगल कहेशे तेरीते (धम्मेणंपन्नवइस्सामो के०) राजानी आगल धर्म कहीशुं एम आलोचीने (सेएवं के०) तेएम (मायाणहनयंतारो के०) माहरो धर्म क हुंछुं अहो नयथकी राखनार ते (जहाए के०) जेम (एसधम्मे के०) महारो एधर्म (सुअरकाए के०) स्वाख्यात (सुपन्नत्तेजवंति के०) रुडो प्ररूपवो होय ॥२०॥ हवे ते राजा आगल जेवी रीते धर्म प्ररूपे तेवी रीते आगल कहेछे.

॥ दीपिका–अथापरोद्वितीयः पुरुषजातः पंचभिर्भूतैः पृथिव्यप्तेजोवायुव्योमाख्यैश्चर ति पांचभौतिकः। सांख्याजीवस्य तृणमोटनेप्यसामर्थ्यं । भूतरूपायाः प्रकृतेरेव सर्वकर्तृ त्वमिति तन्मतं । नास्तिकविशेषोवा पंचभूतव्यतिरिक्तनास्तित्वांगीकारात् । (आहिज्जइ) आख्यायते । अत्र च प्रथमपुरुषगमेन इह खलु पाईणंवा इत्यादिकोग्रंथः सुपन्नत्ते भ वतीत्येतदंतोज्ञेयः ॥ २० ॥

॥टीका–प्रथमपुरुषानंतरं द्वितीयं पुरुषजातमधिकृत्याह । (अहावरेदोच्चे इ त्यादि) अथशब्दआनंतर्यार्थे । प्रथमपुरुषानंतरमपरोद्वितीयः पुरुषएव पुरुषजातः पंचभिः पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाख्यैश्चरति पांचभौतिकः । पंचवा भूतानि अभ्युपगमद्वारे ण विद्यंते यस्यसपंचभूतिको मत्वर्थीयष्ठन् । सच सांख्यमतावलंब्यात्मनस्तृणकुब्जीकर णेप्यसामर्थ्याभ्युपगमात् इष्टव्योलोकायतमतावलंबी नास्तिकोभूतव्यतिरिक्तत्वाभ्युपगमा दाख्यायते प्रथमपुरुषानंतरमयं पंचभूतात्मवाद्यभिधीयते चेति । अत्र च प्रथमपुरुषगम ने (इहखलुपाईणं) चेत्यादिकोग्रंथः सुपसुचेभवतीत्येतत्पर्यवसानोवगंतव्यइति ॥ २०॥

इहखलु पंचमहब्भूता जेहिं नोकज्जइ किरियातिवा अकिरियातिवा सु क्कडेतिवा डक्कडेतिवा कल्लाणेतिवा पावएतिवा साहुतिवा सिद्धितिवा असिद्धितिवा णिरएतिवा अणिरएतिवा इति अंतसो तणमायमवि ॥२१॥

अर्थ-(इहखलु के०) निश्चें आसंसारने विषे (पंचमहप्नूता के०) पांच महोटा नूत सर्व जगतमां व्यापी रह्याछे (जेहिंनोकज्जइकिरियातिवाअकिरियातिवा के०) ते हिज पांच नूते अमे क्रिया अक्रिया सर्व करियें परंतु जेहिं एटले जे बगो आत्मा ए वे नामे पदार्थछे ते क्रिया अक्रिया नोकज्जइ एटले नथी करतो तथा सुक्कडेतिवा डुक्कडेतिवा कल्लाणेतिवा पावएतिवा साहुतिवा सिद्धितिवा असिद्धितिवा णिरएतिवा अणिरएतिवा एटले सुकृत करणी डुष्कृत करणी कल्याण कारी क्रिया पापकारी क्रिया साधु एटले नली क्रिया असाधु एटले माठी क्रिया सिद्धि एटले मोक्ष जवा योग्य क्रिया असिद्धि एटले मोक्ष न जवा योग्यक्रिया नरक जवा योग्य क्रिया नरके नजवा योग्य क्रिया ए सर्व आत्मा नथी करतो (अंतसोतणमायमवि के०) ए कारणे सांख्यने मते जे कांइ सूक्ष्म तृणनु नमाववो तेनो पण उपदेश पांच नूतज करेछे पण आत्मा सर्वथा कांइ पण नथी करतो ॥ २१ ॥

॥ दीपिका-सांख्यनास्तिकयोर्मतमाह । इह मते पंच महान्नूतानि यैर्नोऽस्माकं क्रिया व्यापारता वा नक्रियते सुकृतं डुष्कृतंवा कल्याणं पापकमिति या साध्वितिवा सिद्धिर्मुक्तिरसिद्धिः संसारोनरकोऽनरकस्तिर्यङ्नरामरगतिः । एतत्सर्वं सत्वरजस्तमोरूपा प्रकृतिरेव नूतरूपा करोति । आत्मा केवलमुपज्नुंक्ते नतु करोति किंचित् । नास्तिकान्निप्रायेणापि इहैव सुखडुःखे स्वर्गनरकौ इत्युच्यतइति । एवमंतशस्तृणमात्रमपि यत्कार्यं तन्नूतै रेव प्रकृतिरूपापन्नैः क्रियते । एवं सांख्यमते आत्मा किंचित्करः । नास्तिकमतेतु आत्मनः सर्वथाप्यन्नावस्ततो द्वयोरपि नूतान्येव सर्वकार्यकर्तृणीति ॥ २१ ॥

॥ टीका-सांप्रतं सांख्यस्य लोकायतिकस्य चान्युपगमं दर्शयितुमाह । (इहखलुपंच मह्प्नूताइत्यादि) इहास्मिन् संसारे द्वितीयपुरुषवक्तव्यताधिकारे वा । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । पृथिव्यादीनि पंचमहान्नूतानि विद्यंते महांति च तानिच महान्नूतानि सर्व व्यापितयान्युपगमात् महत्वं । तानिच पंचैव । परस्य षष्ठस्य क्रियाकर्तृत्वेनानन्युपगमाद्यैर्हि पंचनिर्नूतैरप्युपगम्यमानैर्नोऽस्माकं क्रिया परिस्पंदात्मिका चेष्टारूपा क्रियते क्रिया वा निर्व्यापारतया स्थितिरूपा क्रियते । तथाहि । तेषां दर्शनं सत्वरजस्तमोरूपा प्रकृतिर्नूतात्मनूताः सर्वाअर्थक्रियाः करोति पुरुषः केवलमुपज्नुंक्तेऽध्यवसितमर्थं पुरुषश्चेतयतीति वचनात् । बुद्धिश्च प्रकृतिरेव तद्विकारत्वात् । तस्याश्च प्रकृतेर्नूतात्मिकायाः सत्वरजस्तमसां चयापचयान्यां क्रियाक्रिये स्यातामिति कृत्वा नूतेन्यएव क्रियादीनि प्रवर्तंते तद्व्यतिरेकेणापरस्यान्नावादिति नावः । तथा सुष्ठु कृतं सुकृतमेतच्च सत्वगुणाधिक्येन नवति ।

तथा डुष्टं कृतं डुष्कृतमेतदपि रजस्तमसोरुत्कटतया प्रवर्तते । एवं कल्याणमिति वा पापकमितिवा साध्वितिवा असाध्वितिवा इत्येतत्सत्वादीनां गुणानामुत्कर्षानुत्कर्षतया यथा संज्ञवमायोजनीयं । तथेप्सितार्थनिष्ठानं सिद्धिविपर्ययः स्वसिद्धिर्निर्वाणं वा सिद्धिः संसारः संसारिणां तथा नरकः पापकर्मिणां यातनास्थानमनरकस्तिर्यङ्मनुष्यामराणामेतत्सर्वं सत्वादिगुणाधिष्ठिता नूतात्मिका प्रकृतिर्विधत्ते । लोकायताजिप्रायेणापीहैव तथा विधसुखडुःखावस्थाने स्वर्गनरकावितीत्येवमंतशस्तृणमात्रमपि यत्कार्यं तन्नूतैरेव प्रधानरूपापन्नैः क्रियते । तथा चोक्तं । सत्वं लघुप्रकाशकमिष्टमुपष्टंजकं चलंच रजः ॥ गुरुचरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतोवृत्तिरित्यादि । तदेवं सांख्याजिप्रायेणात्मनस्तृणकुब्जीकरणेप्यसामर्थ्याल्लोकायतिकाजिप्रायेण त्वात्मनएवाजावान्नूतान्येव सर्वकार्यत्वात्कर्तृणीत्येवमज्युपगमस्तानिच समुदायरूपापन्नानि नानास्वजावं कार्यं कुर्वंति ॥ २१ ॥

तं च पिहुद्देसेणं पुढोनूतसमवातं जाणेज्जा तं जहा पुढवी एगे महप्नूते आऊडुच्चे महप्नूते तेऊतच्चेमहप्नूते वाऊचउछेमहप्नूते आगासे पंचमे महप्नूते इच्चेते पंचमहप्नूया अणिम्मिया अणिम्माविता अकडा णोकित्तिमा णोकडगा अणाइया अणिहणा अवंजा अपुरोहिता सतंता सासता आयठठा पुण एगे एवमाहु सतो णत्थि विणासो असतो णत्थि संज्ञवो ॥ २२ ॥

अर्थ-(तंचपिहूदेसेणंपुढोनूतसमवातंजाणेज्जाके०) ते पांचनूतनो समवाय पृथक् एटले जुदो जुदो जाणवो (तंजहाके०) ते कहेछे. (पुढवीएगेमहप्नूते के०) पृथवी पर्वतादिक ए एक महानूत जाणवो (आऊडुच्चेमहप्नूते के०) पाणी नदी सरोवर समुड़ादिकनो ए बीजो महानूत जाणवो (तेऊतच्चेमहप्नूते के०) अग्नि ते उष्ण अजवालानो कारण ए त्रीजो महानूत जाणवो (वाऊचउछेमहप्नूते के०) वायु वृक्ष कंपननो लक्षण ए चोथो महानूत जाणवो (आगासेपंचमेमहप्नूते के०) आकाश अवकाश लक्षण ए पांचमो महानूत जाणवो (इच्चेतेपंचमहप्नूया के०) ए पांच महानूत ते (अणिम्मिया के०) ईश्वरादिके नीपजाव्या नथी (अणिमाविता के०) हवे नीपजाववा पण नथी (अकडा के०) कोइना करेला नथी (णोकित्तिमा के०) घटादिकपदार्थनी पेरे कृत्रिम नथी (णोकडगा के०) तेनी निष्पत्तिने विषे अन्य कोइनी अपेक्षा नथी (अणाइया के०) तेनी आदि नथी (अणिहणा के०) तेनो अंत नथी (अवंजा के०) अवंध्यते समस्त कार्यना करनार जाणवा (अपुरोहिता के०) तेओने कार्यने विषे प्रवर्त्तावनार कोइ नथी (सतंता के०) स्वाधीनछे (सा

सता के०) शाश्वता बे (आयबहा के०) आत्माबे जेने बहो एवा ए पांचमहान्नूत जाणवा (पुणएगेएवमाहु के०) एक वली एम कहेबे (सतोणबिविणासोके०) बतो विद्यमान पदार्थ तेनो विनाश नथी (असतोणबिसंन्नवो के०) अविद्यमान शशशृं गादिकनो उत्पत्तिनो संन्नव नथी ए कारणे सांख्य दर्शनवालो आत्माने कर्त्ता नथी मान तो जो आत्मा कर्त्ता होय तो अबति वस्तु उपजावे ते कारणे आत्मा कर्त्ता नथी. ॥ १ १॥

॥ दीपिका–तं च नूतानां समवायं पृथग्नूतपदोद्देशेन जानीयात् । तद्यथा । पृथिव्यै का महान्नूतमित्यादि । एषां कायाकारतया यः समवायः सएकत्वे लक्ष्यते । इत्येतानि पंच महान्नूतान्यनिर्मितानि कालेश्वरादिना केनचिदकृतानि परेणाऽनिर्मापयितव्यानि अ कृतानि विश्रसापरिणामेन निष्पन्नत्वात् । तथा न घटवत्कृत्रिमाणि अनादीनि अनि धनानि आद्यंतरहितानि अवंध्यान्यवश्यकार्यकर्तृणि नविद्यते पुरोहितः कार्यं प्रतिवर्त यिता येषां तान्यपुरोहितानि स्वतंत्राणि शाश्वतानि नित्यानि आत्मषष्ठानि पंच महान्नूता नीत्येकआहुः । सांख्यानामात्मा किंचित्करः । नास्तिकानांतु कायाकारपरिणतानि नूता न्येवान्निव्यक्तचैतन्यान्यात्मव्यपदेशं लन्नंते । तदेवं सांख्यमते सतोविद्यमानस्य प्रधा नादेर्नास्तिविनाशोऽसतः शशविषाणादेर्नास्ति संन्नवः । यडुक्तं । नासतोजायतेन्नावो नान्नावोजायतेसतइति ॥ १ १ ॥

॥ टीका–तंच तेषां समवायं पृथग्नूतपदोद्देशेन जानीयात् । तद्यथा । पृथिव्येका काठिन्यलक्षणा महान्नूतं । तथापोद्रवलक्षणामहान्नूतं तथा तेजउष्णोद्योतलक्षणं तथा वायुर्धूतिकंपलक्षणस्तथावगाहदानलक्षणं सर्वद्रव्याधारनूतमाकाशमित्येवं पृथग्नूतपदो द्देशेनकायाकारतया यस्तेषां समवायः सएकत्वेपि लक्ष्यते इत्येतानि पूर्वोक्तानि पृ थिव्यादीनि संख्याद्युपादीयमाना संख्यांतरं निवर्तयतीति कृत्वा नन्यूनानि नाप्यधिका नि विश्वव्यापितया महांति त्रिकालन्नवनाद्भूतानि । तदेवमेतान्येव पंच महान्नूतानि प्रकृ तेर्महान् महतोहंकारस्तस्माच्च गणः षोडशकस्तस्मादपि षोडशकात्पंचन्यः पंचन्नूतानी त्येवं क्रमेण व्यवस्थितान्यपरेण लोकेश्वरादिना केनचिदनिर्मितान्यनिष्पादितानि । तथा परेणानिर्मापयितव्यानि तथा कृतानि न केनचित्तानि क्रियंते । अन्द्रेंद्रधनुरादिवद्विस्रसा परिणामेन निष्पन्नत्वात्तथा नघटवत्कृत्रिमाणि कर्तृकरणव्यापारसाध्यानि नन्नवंतीत्य र्थः । तथा परान्नावतया नोनैव कृतकानि । अपेक्षितपरव्यापारस्वन्नावनिष्पत्तौ न्नावः कृतकइतिव्यपदिश्यते । तानि च विस्रसापरिणामेन निष्पन्नत्वात्कृतकव्यपदेशन्नांजि न नवंति तथा नाद्यनिधनानि अवंध्यान्यवश्यकार्यकर्तृणि तथा न विद्यते पुरोहितः कार्ये

प्रति प्रवर्तयिता येषां तान्यपुरोहितानि स्वतंत्राणि स्वकार्यकर्तृत्वं प्रत्यपरनिरपेक्षाणि शाश्वतानि नित्यानि वा नकदाचिदनीदृशं जगदिति वचनात्तदेवंभूतानि पंच महाभूतान्यात्मषष्ठानि। पुनरेके एवमाहुरात्माचा किंचित्कारः सांख्यानां लोकायतिकानां पुनः कायाकारपरिणतान्येव भूतान्यभिव्यक्तचेतनानि आत्मव्यपदेशं भजंतइति । तदेवं सांख्याभिप्रायेण सतोविद्यमानस्य प्रधानादेर्नास्ति विनाशोऽत्यंताभावरूपोनाप्यसतः शशविषाणादेः संभवः समुत्पत्तिरस्ति कार्यस्य विद्यमानस्यैवोत्पत्तिरिष्टा नासतः सर्वस्मात्सर्वस्योत्पत्तिप्रसंगात् । तथाचोक्तं । नासतोजायते भावोऽनाभावोजायते सतइत्यादि तथा असतः खरविषाणादेरकरणाडुपादानकारणस्यच मृत्पिंडादेर्घटार्थिभिरुपादानादिभ्यश्च हेतुभ्यः कारणे सत्कार्यवादः ॥ २२ ॥

एतावतावजीवकाए एतावतावअत्थिकाए एतावतावसव्वलोए ए
तं मुहं लोगस्स करणयाए अवियंतसो तणमायमवि ॥ २३ ॥

अर्थ–(एतावतावजीवकाए के०) ते सांख्य एम कहेछे के जीवकाय जे छे एटलोज पांच भूत जाणवो कार्यनो करनार पण एटलोज जाणवो (एतावतावअत्थिकाए के०) वली एटलोज अस्तिकाय टाली बीजो पदार्थ पण कोइ नथी (एतावतावसव्वलोए के०) एटलोज सर्वलोक पांचभूत आत्मिक जाणवो (एतंमुहंलोगस्सकरणयाए के०) लोकने करवे एहिज मुख्य प्रधान कारण जाणवो (अवियंतसोतणमायमवि के०) तृण मात्र कार्यनुं करनार पण ए पांचभूत टाली बीजो कोइ नथी ॥ २३ ॥

॥ दीपिका–एतावानेव भूतमात्रएव जीवकायः । एतावानेवास्तिकायोनापरः कश्चित्पदार्थः एतावानेव सर्वलोकः । तथा एतदेव पंचभूतास्तित्वं मुख्यं कारणं लोकस्य सांख्यस्य हि प्रधानात्मभ्यांसृष्टेरुत्पत्तिर्नास्तिकस्यतु भूतान्येवांतशस्तृणमात्रमपि कार्यं कुर्वंति ॥ २३ ॥

॥ टीका–तदेवमेतावानेव तावदिति सांख्योलोकायतिकोवा माध्यस्थ्यमवलंब्यमानएवमेवाह । तद्यथा । निर्युक्तिभिर्विचार्यमाणस्तावदेतावानेव जीवकायोयडुत पंचमहाभूतानि यतस्तान्येव सांख्याभिप्रायेण प्रधानरूपतापन्नानि सत्वादिगुणोपचयापचयाभ्यां सर्वकार्यकर्तृण्यात्मा वा किंचित्करत्वादसत्कल्पएव लोकायतस्यतु सनास्त्येवेत्यतएतावानेव भूतमात्रएव जीवकायस्तथा एतावानेव भूतास्तित्वमात्रएवास्तिकायोनापरः कश्चित्तीर्थिकाभिप्रेतः पदार्थोस्तीति । तथा एतावानेव सर्वलोकोयडुत पंचमहाभूतानि प्रधानरूपापन्नान्यात्मा चाकर्ता निर्गुणः सांख्यस्य लोकायतिकस्यतु पंचभूतात्मकाएव लोकास्तदतिरिक्तस्यापरस्य पदार्थस्याभावादिति । तथा एतदेव पंचभूतास्तित्वं मुख्यं कारणं लोक

स्यैतदेव चरणकरणतया सर्वकार्येषु व्याप्रियते । तथाहि । सांख्यस्य प्रधानात्मन्यां सृष्टिरुपजायते । लोकायतिकस्यतु नूतान्येवांतस्तृणमात्रमपि कार्यं कुर्वंति तदतिरिक्तस्यापरस्याजावादिति जावः ॥ २३ ॥

से किणंकिणावेमाणे हणंघायमाणे पयंपयावेमाणे अविअंतसो पुरिसमविक्किणित्ता घायइत्ता एडंपि जाणाहि णडिडदोसो ते णोएवं विप्पडिवेदेंति तंजहा किरियाइवा जाव णिरएइवा एवंते विरूवरूवेहिं कम्मसमारंजेहिं विरूवरूवाइं कामजोगाइं समारजंति जोयणाए एवमेव ते अणारिया विप्पडिवन्ना तं सद्दहमाणा तं पत्तियमाणा जावइति ते णो हवाए णोपाराए अंतरा कामजोगेसु विसपणा दोच्चे पुरिसजाए पंचमहनूतिएत्ति आहिए ॥ २४ ॥

अर्थ—हवे एक वादी एम कहेछे के आत्मा सर्वथापि नथी वली एक वादी एम कहेछे के आत्माछे परंतु क्रिया कांइ करतो नथी तो तेने मते आत्माने शुनाशुन कर्मनो बंध नथी एवो देखाडेछे (सेकिणंकिणावेमाणे के०) ते क्रियानो अर्थी पुरुष कोइएक जातनो क्रियाणो लेतो अथवा अन्य पाशे लेवरावतो (हणंघायमाणे के०) तथा प्राणीउने हणतो अथवा अनेरा पाशे हणावतो (पयंपयावेमाणे के०) पचन पाचनादि क्रिया पोते करतो अथवा अनेरा पाशे करावतो थको (अविअंतके०) पण निश्चेकरी जाणे (सोपुरिसमविक्किणित्ताके०) अथवा ते पुरुष पंचेंडीने मोले वेचातु लेइने (घायइत्ताके०) हणतो थको (एडंपिजाणाहिंके०) अहींयां पण ते एवुं जाणे के (णडिडदोसो के०) ते हिंसाना दोषनो विजागी न थाय एवो जाणी यथाछंदे हिंसादिक सावद्य व्यापारमां प्रवर्त्ते (तेणोएवंविप्पडिवेदेंतिके०) ते बापडा मूर्ख एटलो न जाणे शुं नजाणे (तंजहाके०) ते कहेछे (किरियाइवाके०) क्रिया एटले रूडो अनुष्ठान ते नजाणे (जावणिरएइवाके०) ज्यां सुधी नरक नजाणे एम सर्व पूर्ववत् जाणवो (एवंतेविरूवरूवेहिं के०) एम ते नाना प्रकारना (कम्मसमारंजेहिंके०) कर्मनो समारंज करता (विरूवरूवाइंकामजोगाइंसमारजंति के०) न्हाना प्रकारना कामजोगने समारंजे (जोयणाए के०) आहारने अर्थे जोगवता (एवमेवतेअणारियाविप्पडिवन्ना के०) एरीते ते अनार्य पोतानो धर्म रुडो करी प्ररूपता कामजोगने विषेमूर्छाणा थका (तंसद्दहमाणा के०) ते पारवंमी धर्म ने सर्दहता थका (तंपत्तियमाणा के०) तेनी प्रतीत करता थका (जावइतिते के०) ज्यां सुधी ए प्रकारे ते (णोहवाए के०), तीरे पण रह्या नही

अने (णोपाराए के०) पार पण पाम्या नही इहलोक परलोकथी भ्रष्ट थया थका (अं तराकामभोगेसुविसस्पा के०) विचाले कामभोगने विषे संसार मांहेज खूता रहे पण पुंमरक कमल सरखा राजाने उद्धरी शके नही (दोच्चेपुरिसजाए के०) ए बीजो पुरुष जात (पंचमहभूत्तिएतिआहिए के०) ए पंचमहाभूतिक नामे कह्यो. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका–आत्मनोऽकिंचित्करत्वात्सांख्यमतेऽसत्वान्नास्तिकमते न कर्मभिर्बंधइत्याह। सक्रयार्थी पुरुषः क्रीणन् किंचि द्वस्तु मूल्येन गृह्णन् परं क्रीणयन् मूल्येन ग्राहयन् तथा प्राणिनोघ्नन् हिंसन् परैर्घातयन् तथा पचन् पाचयन् एतानि कुर्वतोन्यानप्यनुजानन्नप्यं तशः पुरुषमपि पंचेंद्रियं विक्रीय हत्वा घातयित्वाऽत्रापि पंचेंद्रियवधे नास्ति दोषः। अत्रैवं जानीहि किंपुनरेकेंद्रियवधइत्यपिशब्दार्थः। ततस्ते नैवैतद्विप्रतिवेदयंति जानंति। तद्यथा। क्रिया वलनात्मिका सावद्यानुष्ठानरूपा अक्रिया स्थानरूपा यावदेवमेव विरूपविरूपैर्नाना रूपैः कर्मसमारंभैः सावद्यानुष्ठानैर्विरूपरूपान्नानाप्रकारान् कामोपभोगान् समारभंते स्वयं अन्यांश्च कारयंति नास्त्यत्र दोषइति प्रतार्य एवमेव तेऽनार्याविप्रतिपन्नाविरुद्धं मार्गं प्रति पन्नास्तमात्मीयं धर्मं श्रद्दधानाआत्मीयांगीकारं रोचयंतस्तद्धर्मस्याख्यातारं प्रशंसयंतः। त द्यथा। स्वाख्यातोभवता धर्मइत्यादितावन्नेयं। यावदंतरा कामभोगेषु विषस्पाइह परलोकत्र ष्टानात्मत्राणाय नापि परेषामिति द्वितीयः पुरुषजातः पंचमहाभौतिकोव्याख्यातः ॥२४॥

॥ टीका– सचैवंवाद्येकत्रात्मनोऽकिंचित्करत्वादन्यत्र वात्मनोसत्वादसदनुष्ठानैरप्या त्मा पापैः कर्मभिर्न बध्यतइति दर्शयितुमाह (सेकिणमित्यादि) सेतियः कश्चित्पुरुषः क्रयार्थी क्रीणन् किंचित् क्रयेण गृह्णंस्तथापरं क्रापयंस्तथाहि प्राणिनोघ्नन् हिंसन् तथा परैर्घातयन् व्यापादयन् तथा पचन् पाचनादिकां क्रियां कुर्वंस्तथाऽपरैश्च पाचयन्। अस्य चोपलक्षणार्थत्वात् क्रीणतः क्रयतोघ्नतोघातयतः पचतः पाचयतश्चापरांस्तथाप्यंतशः पुरुष मपि पंचेंद्रियं विक्रीय घातयित्वापि पंचेंद्रियघाते नास्ति दोषोत्रैवंजानीहि अवगच्छ किंपुन रेकेंद्रियवनस्पतिघातइत्यपिशब्दार्थः। ततश्चैवंवादिनः सांख्याबार्हस्पत्यावा नोनैवैत द्वद्य माणं विप्रतिवेदयंति जानंति। तद्यथा। क्रिया परिस्पंदात्मिका सावद्यानुष्ठानरूपाएवम क्रिया स्थानादिलक्षणा यावदेवमेव विरूपरूपैरुच्चावचैर्नानाप्रकारैर्जलस्नानावगाहनादिकै स्तथा प्राण्युपमर्दकारिभिः कर्मसमारंभैर्विरूपरूपान्नानाप्रकारान् सुरापानमांसभक्षणाग म्यागमनादिकान् कामोपभोगान् समारभंते स्वतः परांश्चोदयंति नास्त्यत्र दोषइत्येवं प्रता र्यासत्कारणाय प्रेरयंत्येवं च तेऽनार्याअनार्यकर्मकारित्वादार्यान्मार्गाद्विरुद्धं मार्गं प्रतिप न्नाः। तथाहि। सांख्यानामचेतनत्वात्प्रकृतेः कार्यकर्तृत्वं नोपपद्यते। अचेतनत्वं तु त

स्याश्चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमिति वचनात् आत्मैव प्रतिबिंबोदयन्यायेन करिष्यतीति चेत्त द्पि न युक्तिसंगतं । यतोऽकर्तृत्वादात्मनोनित्यत्वाच्च प्रतिबिंबोदये न युज्यते । किंचानि त्यत्वात्प्रकृतेर्महदादिविकारतया नोत्पत्तिः स्यात् । अपिच । नासतोजायते भावोनाभा वोजायते सतइत्याद्यभ्युपगमात्प्रधानात्मनोरेव विद्यमानत्वान्महदहंकारादेरनुत्पत्तिरेवैक त्वाच्च प्रकृतेरेकात्मवियोगेसति सर्वात्मनां वियोगः स्यादेकसंबंधेवा सर्वात्मनां प्रकृतिसंयो गोन पुनः कस्य चित्तत्त्वपरिज्ञानात् प्रकृतिवियोगे मोक्षोऽपरस्य तु विपर्ययात्संसारइत्येवं जगद्वैचित्र्यं नस्यादात्मनश्चाकर्तृत्वे तत्कृतौ बंधमोक्षौ नस्यातामेतच्च दृष्टेष्टबाधितं नापि कारणे सत्कार्यवादोयुक्तिभिरनुपपाद्यमानत्वात् । तथाहि । मृत्पिंडावस्थायां घटोत्पत्तेः प्राग्घटसंबंधानां कर्मगुणव्यपदेशानामभावाद्घटार्थिनां च क्रियासु प्रवृत्तेर्न कारणे कार्यमि ति लोकायतिकस्यापि भूतानामचेतनत्वात्कर्तृत्वानुपपत्तिः । कायाकारपरिणतानां चै तन्याभिव्यक्त्यभ्युपगमेच मरणाभावप्रसंगः स्यात्तस्मान्न पंचभूतात्मकं जगदिति स्थितं । अपि चेदं ज्ञानं स्वसंवित्तिसिद्धमनात्मधर्मिणमुपस्थापयति । नच भूतान्येवं धर्मित्वेन परिकल्पयितुं युज्यंते तेषामचेतनत्वादथ कायाकारपरिणतानां चैतन्यधर्मोभविष्यती त्येतदप्ययुक्तं । यतः कायाकारपरिणामएव तेषामात्मानमधिष्ठातारमंतरेण न भवितुम र्हति निर्हेतुकत्वप्रसंगान्निर्हेतुकत्वेच नित्यं सत्वमसत्वंवा स्यादिति । तदेवंभूतव्यतिक्त आत्मा तस्मिंश्च सति सदनुष्ठानतः पुण्यपापे ततश्च जगद्वैचित्र्यसिद्धिरिति । एवं व्यवस्थि ते तेऽनार्याः सांख्यालोकायतिकावा पँचमहाभूतप्रधानाभ्युपगमेन विप्रतिपन्नायत्कुर्यु स्तद्दर्शयितुमाह । (तंसद्दहमाणाइत्यादि) तमात्मीयमभ्युपगमं ये चोक्तया नीत्या निर्युक्ति कत्वमपि श्रद्दधानाः पंचमहाभूतात्मप्रधानस्य सर्वकार्याणि उपगच्छंति । तदेवच सत्य मित्येवं प्रतिपादयंतः प्रतिपद्यमानास्तदेव चात्मीयमभ्युपगमं रोचयंतस्तद्धर्मस्याख्यातारं प्रशंसयंतः । तद्यथा । स्वाख्यातोभवता धर्मोऽस्माकमयमत्यंतमभिप्रेतइत्येवं ते तदध्यव सायाः सावद्यानुष्ठानेनाप्यधर्मोन भवतीत्यध्यवसायिनः स्त्रीकामेषु मूर्छिताइत्येवं पूर्ववज्ज्ञे यं। यावत्तदंतरे कामभोगेषु विषम्पाऐहिकामुष्मिकोभयकार्यभ्रष्टानात्मत्राणाय नापि परेषा मिति । भवत्येवं द्वितीयः पुरुषजातः पंचमहाभूताभ्युपगमिकोव्याख्यातइति ॥ २४ ॥

अहावरे तच्चे पुरिसजाए ईसरकारणिए इति आहिज्जइ इह खलु पासा दीणंवा संतेगतिया मणुस्सा भवंति अणुपुव्वेणं लोयं उववन्ना तं आरि यावेगे जाव तेसिंचणं महंते एगे राया भवइ जाव सेणावइपुत्ता तेसिं चणं एगतीए सड्ढा भवइ कामं तं समणाय माहणाय पहारिंसुगमणाए जाव जहा मए एसधम्मे सुअक्खाए सुपन्नत्ते भवइ॥ २५॥

अर्थ—हवे अपर त्रीजो पुरुष जात कहेछे जे ईश्वर लोकनो करनार छे एवुं मानेछे ते मते एने ईश्वर कारणिक कहेछे खलु इति निश्चें आ मनुष्य लोकने विषे पूर्वोक्तरीते पूर्वादिक चार दिशिये कोइएक मनुष्य होय ते अनुक्रमे लोक मांहे उपना तेमां कोइ एक आर्य देशना उपना ते ज्यां सुधी महोटो राजा होय तेने परषदा होय ते वली ज्यां सुधी सेनापतिना पुत्र इत्यादिक परखदा सुधी कहेवुं तेमांहे कोइ एक धर्मनी श्रद्धावान होय धर्मार्थी होय तेने धर्मार्थी जाणीने श्रमण ब्राह्मण मली धर्म प्रतिबोधवा निमित्ते आलोचीने ते पूर्वोक्त राजादिकने संमुख जइने अंहीं यावत् पूर्वोक्त रीते सन्नादिकनु प्रस्ताव सर्व कहेवो पछीते राजादिकने तेईश्वरकारणिक पुरुष आवी पोतानो स्वाख्यात सुप्रज्ञ धर्म वर्णवेछे. ॥ २५ ॥

॥ दीपिका—अथापरस्तृतीयः पुरुषजातईश्वरोजगतः कारणं यस्य सईश्वरकारणिक आत्माऽद्वैतवादी व्याख्यायते । (इहखलुइत्यादि) प्राच्यादिषु दिक्षु एकस्यां दिशि स्थितः कश्चिदेवं ब्रूयात् । यथा राजानमुद्दिश्य तावद्यावत्स्वाख्यातः सुप्रज्ञप्तोधर्मोभवति॥२५॥

॥ टीका—सांप्रतमीश्वरकारणिकमधिकृत्याह । (अहावरेइत्यादि) अथ द्वितीयपुरुषानंतरं तृतीयईश्वरकारणिकआख्यायते । समस्तस्यापि चेतनाचेतनरूपस्य जगतईश्वरः कारणं। प्रमाणं चात्र तनुभुवनकरणादिकं धर्मित्वेनोपादीयते ईश्वरकर्तृकमिति साध्योधर्मः संस्थानविशेषत्वात्कूपदेवकुलादिवत्तथा स्थित्वा प्रवृत्तेर्वास्यादिवत्। उक्तंच। अज्ञोजंतुरनीशः स्या,दात्मनः सुखदुःखयोः ॥ ईश्वरप्रेरितोगच्छे,त्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा इत्यादि। तथा पुरुष एवेदं यद्भूतं यच्च भव्यमित्यादि । तथा चोक्तं। एकएव हि भूतात्मा भूते भूते प्रतिष्ठितः॥ एकधा बहुधाचैव दृश्यते जलचंद्रवदित्यादि । तदेवमीश्वरकारणिकआत्मा द्वैतवादी वा तृतीयः पुरुषजातआख्यायते । (इहखलुइत्यादि) इहैव पुरुषजातप्रस्तावे । खलुशब्दोवाक्यालंकारे ।प्राच्यादिषु दिक्ष्वन्यतमस्यां व्यवस्थितः कश्चिदेवं ब्रूयात् । तद्यथा। राजानमुद्दिश्य तावद्यावत्स्वाख्यातः सुप्रज्ञप्तोधर्मोभवति ॥ २५ ॥

इह खलु धम्मा पुरिसादिया पुरिसोत्तराया पुरिसप्पणीया पुरिससंभूया पुरिसपज्जोतिता पुरिसअभिसमण्णागया पुरिसमेव अभिभूय चिठंति सेजहा णामए गंमेसिया सरीरे जाए सरीरे संवुड्ढे सरीरे अभिसमण्णागए सरीरमेव अभिभूय चिठंति एवमेव धम्मा पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिठंति सेजहा णाम ए अरईसिया सरीरे जाया सरीरे संवुड्ढा सरीरे अ

न्निसमण्णागया सरीरमेव अन्निन्नूय चिठंति एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अन्निन्नूय चिठंति सेजहा णामए वम्मिएसिया पुढविजाए पुढविसंवुड्ढे पुढविअन्निस्समण्णागए पुढविमेव अन्निन्नूय चिठइ एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अन्निन्नूय चिठंति सेजहा णामए रुक्खेसिया पुढविजाए पुढविसंवुड्ढे पुढविअन्निसमण्णागए पुढविमेव अन्निन्नूय चिठंति एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अन्निन्नूय चिठंति सेजहा णामए पुक्करिणी सिया पुढविजाया जाव पुढविमेव अन्निन्नूय चिठंति एवमेव धम्माविपुरिसादिया जाव पुरिसमेव अन्निन्नूय चिठंति सेजहा णामए उदगपुक्खलेसिया उदगजाए जाव उदगमेव अन्निन्नूय चिठंति एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अन्निन्नूय चिठंति सेजहा णामए उदगबुब्बुएसिया उदगजाए जाव उदगमेव अन्निन्नूय चिठंति एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अन्निन्नूय चिठंति ॥ २६ ॥

अर्थ–(इहखलुधम्मापुरिसादियाके०) आ संसारने विषे. खलु एवे वाक्यालंकारे धर्म जे सचेतना अचेतनारूप स्वनाव ते पुरुषादिक जाणवा एटले एम कह्युंजे एनी आदिनुं करनार पुरुष शब्दे ईश्वरछे तेकारणे पुरुषादिक एम पाठ कह्यो तथा (पुरिसोत्तरायाके०) पुरुषज जेने उत्तर एटले प्रधानछे तथा (पुरिसप्पणीया के०) पुरुष प्रणीत एटले एनो अधिष्ठाता पण पुरुष ईश्वरजछे तथा (पुरिससंन्नूयाके०) पुरुष थकीज उपना (पुरिसपज्जोतिता के०) पुरुषजे ईश्वर तेणेज प्रगट कस्या जेम प्रदीप मणी अने सूर्यादिके घटपटादिक पदार्थ प्रगट कस्या तेनी पेरें जाणी लेवुं (पुरिसअनिसमण्णागया के०) जीवने जन्म जरा मरण रोग शोक वर्ण गंध रस स्पर्श मूर्त्तिपणो ए अनागतादिक धर्म ते सर्व पदार्थ ईश्वरना अनुगामीछे (पुरिसमेवअनिन्नूयचिठंति के०) किंबहुना ए सर्व पुरुषनेज व्यापीने रहेछे (सेजहाणामए के०) ए अर्थ उपर दृष्टांत देखाडेछे जेम णाम एवे संनावनाये (गंमेसिया सरीरेजाएके०) पुरुषने शरीरे गंम एटले गुंबडो रोग विशेष थाय ते तेज शरीरने विषे उपनो (सरीरेसंवुड्ढे के०) तेज शरीरने विषे वृद्धि पाम्यो (सरीरें अनिसमण्णागए के०) शरीरने पठवाडेज अनुगत गामिछे (सरीरमेवअनिन्नूयचिठंति के०) शरीरने विषेज व्यापि रहेछे पण तेनो अवयव शरीर थकी बाहेर नथी (एवमेव के०) एमज (धम्मावि के०) ए पदार्थ मात्रजेछे ते पण (पुरिसादिया

के०) पुरुष जे ईश्वर ते थकी उत्पन्न थया ते (जावअभिभूयचिट्ठंति के०) यावत् ईश्वरनेज व्यापि रहेछे परंतु ईश्वर थकी कांइ जुदा नथी.

वली बीजो दृष्टांत कहेछे. जेम (अरइसियाके०) अरति एटले चित्तनो उद्वेग पणो ते शरीर थकीज उपजे अने शरीर थकीज वृद्धि पामे अने शरीर मांहेज व्यापि रहेछे तेम ए धर्म जे पदार्थ ते पण पुरुष थकीज उपजे पुरुष थकीज वृद्धि पामे अने पुरुष मांहेज व्यापिरहेछे वली त्रीजो दृष्टांत कहेछे. (वम्मिएसियाके०) जेम वम्मिजे पृथवी तेनो विकार होय ते पृथवीने विषेज उपजे पृथवी थकीज वृद्धि पामे अने पृथवीने विषेज व्यापिने रहे तेम ए धर्म अने पुरुषादिक पण जाणी लेवा वली चोथो दृष्टांत कहेछे. जेम कोइएक वृक्ष होय ते पृथवी थकी उपजे पृथवीने विषेज वृद्धि पामे अने पृथवीनेज व्यापि रहे तेम ए धर्म अने पुरुषादिक पण जाणी लेवा. वली पांचमो दृष्टांत कहेछे. जेम पुष्करिणी होय ते पृथवी थकी उपजे पृथवी थकी वृद्धि पामे अने पृथवीने विषेज व्यापि रहे तेम ए पदार्थ अने पुरुषादिक पण जाणी लेवा. वली छट्ठो दृष्टांत कहेछे. जेम घणा पाणी मांहे कमल होय ते कमल जल थकी नीपजे जल थकीज वृद्धि पामे अने जल मांहेज व्यापि रहे तेमज ए पदार्थ पण ईश्वर थकीज नीपजे ईश्वर थकीज वृद्धि पामे अने ईश्वरनेज व्यापि रहे वली सातमो दृष्टांत कहेछे. जेम पाणीनुं बुदबुदो होय ते जल थकीज नीपजे जल थकीज वृद्धि पामे अने जल मांहेज व्यापि रहे तेम ए पदार्थो सर्व ईश्वर थकीज उपजेछे इत्यादिक सर्व जाणी लेवुं ॥ २६ ॥

॥ दीपिका—इह खलु धर्माः स्वभावाश्चेतनाचेतनरूपाः पुरुषईश्वरआत्मा वा कारणमादिर्येषां ते पुरुषादिकाईश्वरकारणिकाआत्मकारणिकावा तथा पुरुषएव उत्तरं कार्यं येषांते पुरुषोत्तरास्तथा पुरुषेण प्रणीताः पुरुषेण द्योतिताः प्रकाशीकृतायथा सूर्येण घटादयः । ते च धर्माजीवानां जन्ममरणरोगशोकादयः । अजीवधर्मास्तु मूर्तद्रव्याणां वर्णगंधरसस्पर्शाः । अमूर्तद्रव्याणां धर्माधर्माकाशानां गत्यादिकाधर्माः सर्वेपीश्वरकृताः । आत्माद्वैतवादे चात्मविवर्ताः । सर्वेऽप्येते पुरुषमेवाभिभूय व्याप्य तिष्ठंति । अत्रार्थे दृष्टांतान् बहूनाह । (सेजहानामएइत्यादि) सेजहा तद्यथा । नामेति संभावनायां । गंडं स्यात् । संभाव्यते हि प्राणिनां कर्मवशगानां गंडादिरोगइति । गंडं च शरीरे जातं शरीरावयवभूतं तथा शरीरे वृद्धिमुपगतं शरीरवृध्या तस्य वृद्धिरिति । शरीरेऽभिसमत्वागतं न तदवयवोपि शरीरात्पृथक्भूतइति । शरीरमेवाभिभूय पीडयित्वा तिष्ठति । एवमेव येऽमी धर्माश्चेतनाचेतनरूपास्ते सर्वेपीश्वरकर्तृकाः । न ते ईश्वरात्पृथक्कर्तुं न शक्यंते यथा गंडं शरीरविकारभूतं तद्विनाशेच शरीरमेव तिष्ठति एवं धर्माः पुरुषादिकाः पुरुषवि

काररूपान पुरुषात् पृथग्नवंति तद्विकारापगमे चात्मानमेवाश्रित्य तिष्ठंति । एवम न्यदृष्टांताअपि नाव्याः । (सेजहेत्यादि) अरतिश्चित्तोद्वेगरूपा साच शरीरजातेत्यादि । यथावा वल्मीकं पृथिवीविकाररूपं पृथिव्यां जातमित्यादि । एवं सर्वमीश्वरकारणिक मात्मविवर्तरूपं वा । यथा वा वृक्षोऽशोकादिः पृथिवीजातः । यथा वा पुष्करिणी तडा गरूपा पृथिव्यामेव जातेत्यादि प्राग्वत् । तथा उदकपुष्कलमुदकप्राचुर्य मुदकजातमि त्यादि यथावा उदकबुद्बुदइत्यादि सुगमं ॥ २६ ॥

॥ टीका–सचार्यं । इह खलु धर्माः स्वनावाश्चेतनाचेतनरूपाः पुरुषईश्वरआत्मावा कारणमादिर्येषांते पुरुषादिकाईश्वरकारणिकाआत्मकारणिकावा तथा पुरुषएवोत्तरं का र्यं येषांते पुरुषोत्तरास्तथा पुरुषेण प्रणीताः सर्वस्य तदधिष्ठितत्वात् तदात्मकत्वाद्वा त था पुरुषेण द्योतिताः प्रकाशीकृताः प्रदीपमणिसूर्यादिनेव घटपटादयइति । तेच धर्मा जीवानां जन्मजरामरणव्याधिरोगशोकसुखडुःखजीवनादिकाः । अजीवधर्मास्तु मूर्तिमतां ड्व्याणां वर्णगंधरसस्पर्शाअमूर्तिमतां ड्व्याणां धर्माधर्माकाशानां गत्यादिकाधर्माः । स र्वेपीश्वरकृताआत्माद्वैतवादेवाऽत्मविवर्ताः सर्वेप्येते पुरुषमेवानिनूय व्याप्य तिष्ठंति । अ स्मिन्नर्थे दृष्टांतानाविर्नावयन्नाह । (सेजहाणामएइत्यादि) सेशब्दस्तच्छब्दार्थे । नामश ब्दः संनावनायां । तद्यथा । नाम गंडं स्याद्भवेत्संनाव्यते च शरीरिणां संसारांतर्गता नां कर्मवशगानां गंडादिसमुद्भवस्तच्च शरीरे जातं शरीरावयवसंनूतं तथा शरीरे वृद्धिमुप गतं शरीरानिवृद्धौ च तस्यानिवृद्धिस्तथा शरीरेऽनिसंबंधागतं शरीरमानिमुख्येन व्याप्य व्यवस्थितं न तदवयवोपि शरीरात्पृथग्नूतइति नावः । तथा शरीरमेवानिनूयानिमुख्येन पीडयित्वा तिष्ठति । यदिवा तडुपशमे शरीरमे वाश्रित्य तगंडं तिष्ठति न शरीराद्बहिर्नव ति । एतडुक्तं नवति । यथा तत्पिटकं शरीरैकदेशनूतं नयुक्तिशतेनापि शरीरात्पृथग्दर्श यितुं शक्यते एवमेवामी धर्माश्चेतनाचेतनरूपास्ते सर्वेपीश्वरकर्तृकान ते शरीरात्पृथक्कर्तुं पार्यंते । यदिवा सर्वव्यापिनआत्मनस्त्रैलोक्योदरविवरवर्तिपदार्थात्मनोये केचन धर्माः प्रा डुःषंति ते पृथक्कर्तुं नशक्यंते तथा तगंडं शरीरविकारनूतं तदपृथग्नूतं तद्विनाशेच शरीरमेवा वतिष्ठते । एवमेव सर्वेपि धर्माः पुरुषादिकाः पुरुषकारणिकाः पुरुषविकाररूपा नपुरुषा त्पृथग्नवितुमर्हंति तद्विकारापगमेवाऽत्मानमेवाश्रित्यावतिष्ठंति न तस्माद्बहिर्नवंतीति शास्त्रेच दृष्टांतप्राचुर्यमविरुद्धं । यदिवाऽस्मिन्नर्थे बहवोदृष्टांताः । संनवंतीश्वरकर्तृत्ववादस्या द्वैतवादस्यच सुप्रसिद्धत्वाद्दृष्टांतबहुत्वमित्याह । (सेजहाइत्यादि) तद्यथा नामारतिश्चि त्तोद्वेगलक्षणः स्याद्भवेत् । साच शरीरजाताइत्यादि गंडवन्नेया । दार्ष्टांतिकेप्येवमेव सर्वे धर्माः पुरुषादिकाः पुरुषप्रनवाइत्यादिपूर्ववन्नेयं । तथा यथा नाम वल्मीकं पृथ्वीविकार

रूपं स्यात्तच्च पृथिव्यां जातं पृथिवीसंवृद्धं पृथिव्यभिसंबंधागतं पृथिवीमेवाभिसंभूय ति ष्ठत्येवं दार्ष्टांतिकेप्यायोज्यं । एवमेव यदेतच्चेतनरूपं तत्सर्वमीश्वरकारणिकमात्मविवर्त रूपं वा नात्मनः पृथग्भवितुमर्हति पृथिव्यां वल्मीकवत्तथा तद्यथा नाम वृक्षोऽशोका दिकः स्यात्सच पृथिवीजातइति दृष्टांतदार्ष्टांतिके पूर्ववदायोज्ये । तद्यथा । नामपुष्क रिणी स्यात्तडागरूपा भवेत्साच पृथिव्यामेव जातेत्यादि प्राग्वच्चर्च्यस्तथा तद्यथा नामपु ष्कलं प्रचुरमुदकं पुष्कलमुदकप्राचुर्यं तच्च तद्धर्मत्वादुदकमेव यावदुदकमेवाभिभूय तिष्ठ त्येवं दार्ष्टांतिकेप्यायोज्यं । तथा तद्यथा नामोदकबुद्बुदः स्यादत्रापि दृष्टांतदर्ष्टांतिके न तस्मादवयविनः पृथग्भूतइति सुगमं ॥ २६ ॥

जंपिय इमं समणाणं णिग्गंथाणं उद्दिठं पणियं वियं जियं डुवालसंगं गणिपिम्रयं तंजहा आयारो सूयगडो जाव दिठिवातो सवमेवं मिछा ण एयं तहियं णएयं आहातहियं इमं सच्चं इमं तहियं इमं आहात हियं एवं सन्नं कुवंति ते एवं सन्नं संठवेंति तेएवं सन्नं सोवठवयंति तमेवं ते तज्जाइयं डुरकं णातिउट्टंति सउणी पंजरं जहा ॥२७॥ ते णो एवं विप्पडि वेदेंति तंजहा किरियाइवा जाव अणिरएइवा एवमेव ते विरूवरूवेहिं कम्मसमारंभेहिं विरूवरूवाइं कामभोगाइं समारभंति भोयणाए एव मेव ते अणारिया विप्पडिवन्ना एवं सद्दहमाणा जावइति ते णोहच्चाए णोपाराए अंतरा कामभोगेसु विसमेति तच्चे पुरिसजाए ईसरकारणि एति आहिए ॥ २८ ॥

अर्थ—हवे जे ईश्वरे कस्यो ते सर्व सत्यछे अने बीजो सर्व मिथ्या छे एवो भाव कहेछे (जंपियइमंके०) जे ए प्रत्यक्ष लक्षण (समणाणंणिग्गंथाणंके०) श्रमण निग्रंथनो (उ दिठंके०) उद्देस्यो एटले ते निग्रंथने अर्थे भाख्यो (पणियंवियंजियं के०) तेने अर्थे प्रग ट कस्यो (डुवालसंगगणिपिम्रयं के०) द्वादशांगी गणि पिटक एटले आचार्यनो भंमा र (तंजहा के०) तेना नाम कहेछे. (आयारो के०) आचारांग (सूयगडो के०) सू त्रकृतांग इत्यादिक (जावदिठिवातो के०) ज्यांसुधी दृष्टिवाद लोक बिंडुसार नामा पूर्व पर्यंत (सवमेवंमिछा के०) ए सर्व मिथ्याछे कारण के ए कांई ईश्वरकृत नथी एतो सर्व पोतानी इछायें कल्पितछे माटे मिथ्याछे जेम कोइ छताने अछतो कहे अछताने छतो कहे जेम कोइ साधुने चोर कहे अने चोरने साधु कहे तथा गायने घोडो कहे अने घोडाने गाय कहे तेमज आत्मा कर्त्ता नथी तेने जे कर्त्ता कहेछे अने जे ईश्वर कर्त्ताछे

तेने अकर्त्ता कहेछे तेमाटे (णएयंतहियंके०) ए तथ्य नथी (णएयंआहातहियंके०) ए यथातथ्य नथी हवे ए दर्शनी जेने सत्य करी माने ते कहेछे. (इमंके०) ए ईश्वर कारणिक छे एमजे मानीये तेहिज (सच्चंके०) सत्यछे (इमंतहियंके०) तेहिज तथ्य जाणवो (इमंआहातहियंके०) एज यथा तथ्यविशेषे जाणवो एरीते ते ईश्वर कारणिक पोताना दर्शनने अनुरागे (एवंसन्नंकुव्वति के०) एवी संज्ञा करे (तेएवंसन्नंसंठवेंति के०) ते बीजा आगल पण एवीज संज्ञा स्थापन करे यद्यपि एवात युक्ति शून्यछे तथापि (तेएवं सन्नं सोवठ्ठवयंतिके०) ते एवी संज्ञाने अनेक हेतु युक्ति दृष्टांते करी स्थापेछे (तमेवंते तज्जाइयंडुरकं के०) ते कारणे ते उत्सूत्रने स्थापवे करी उत्पन्न थाय जे डुःख ते डुःखने (णातिउट्टंति के०) त्रोडी नशके तेना उपर दृष्टांत कहेछे (सउणीपंजरंजहा के०) जेम शकुनी एटले पक्षी ते पांजराने त्रोडी नशके न्रमण करी करीने वली तेहिज पांजरा मांहे रहे तेम ते पूर्वोक्त अन्य दर्शनीउ पण संसार रूप पांजरा मांहेज रहे परंतु मोक्षे जइ शके नही अने बीजाने पण मोक्षे पोचाडी नशके ॥ २७ ॥ (तेणोएवं विप्पडिवेदेंति के०) ते अन्य दर्शनी पांखमी बापडा आटली वात नथी जाणता शुं नथी जाणता (तंजहा के०) ते कहेछे. (किरियाइवा के०) रुडो अनुष्ठान नथी जाणता (जावअणिरएतिवा के०) यावत् अनरक पर्यंत नथी जाणता (एवमेव के०) एम अणजाणता थका (तेविरूवरूवेहिंकम्मसमारंनेहिं के०) ते नाना प्रकारना सावद्यकर्मने करवे करी (विरूवरूवाइंकामनोगाइंसमारन्नंति के०) अनेक प्रकारना कामनोग समारंने नोगवे (नोयणाए के०) नोजनने अर्थे एरीते ते अनार्य पोताना धर्मने रुडो देखाडी प्ररूपता छता कामनोगने विषे मूर्छाणा थका एमते पाखंमी धर्म राजादिकने सद्दावता थका ज्यांलगे ते तीरे पण रह्या नही अने पारपण पाम्या नही एम आलोक थकी चूका अने परलोके पण पोता नही विचाले संसार मांहे काम नोग रूप कादवने विषेज खुता थका रहे ते राजारूप पुंमरीक कमलने उद्धरी शके नही ए त्रीजो पुरुष जात ईश्वर कारणिक कह्यो. ॥ २८ ॥

॥ दीपिका—ईश्वरकर्तं सत्यमन्यन्मिथ्येत्याह । यदपि चेदं श्रमणनां यतीनां निर्ग्रंथानां निष्किंचनानामुद्दिष्टं प्रणीतं व्यक्तीकृतं द्वादशांगं गणिपिटकं । तद्यथा । आचारः सूत्रकृतांगमित्यादि यावद्दृष्टिवादः । सर्वमेतन्मिथ्याऽनीश्वरप्रणीतत्वात् नैतत्तथ्यं नैतद्याथातथ्यं न यथास्थितार्थकथकं । इदं पुनरीश्वरकर्तृत्वं आत्माद्वैतंच सत्यं इदमेव तथ्यं इदमेव याथातथ्यं । तदेवं ते पूर्वोक्तनीत्या संज्ञां कुर्वंति ज्ञानं दधते अन्येन्यश्च संज्ञां संस्थापयंति । ते एवं संज्ञामुपस्थापयंति सुष्ठु उपसामीप्येन युक्तिभिः स्थापयंति । ते चै

वं वादिनस्तदंगीकारजातीयं दुःखं दुःखहेतुत्वान्नातिवर्त्तंते न त्रोटयंति । यथा शकुनिः पक्षी पंजरं न त्रोटयति एवं तेपि तडुपदेशात्कर्मबंधनं नातिवर्त्तंते ॥ २७ ॥ ते कदाग्रहग्रस्ताएत द्वक्ष्यमाणं नविप्रतिवेदयंति न जानंति । तद्यथा । इयंक्रियाइत्यादि यावदनरकइत्येवं निर्विवेकत्वान्न जानंति । एवमेव यथाकथंचित्ते विरूपरूपैः कर्मसमारंजैर्विरूपरूपान् कामजोगान् समारजंते जोजनाय उपजोगाय । एवं ते अनार्याविप्रतिपन्नाः स्वपक्षं प्रतियंति अद्दधतीति पूर्ववत् । यावत्ते कामजोगेषु विषसाः । इत्ययमीश्वरकारणिकआत्माद्वैतवादी तृतीयः पुरुषजातः संपूर्णः ॥ २८ ॥

॥ टीका—तदेवं यदीश्वरकृतत्वेनाज्युपगम्यते तत्सर्वं तथ्यमपरं मिथ्या इत्येतदाविर्जावयन्नाह । (जंपियेत्यादि) यदपि चेदं संव्यवहारतः प्रत्यक्षासन्नजूतं श्रमणानां यतीनां निर्ग्रंथानां निष्किंचनानामुद्दिष्टं तदर्थं प्रणीतं व्यंजितं तेषामजिव्यक्तीकृतं द्वादशांगं गणिपिटकं तद्यथाचारइत्यादि यावद्दृष्टिवादः सर्वमेतन्मिथ्या अनीश्वरप्रणीतत्वात्स्वरुचिविरचितरथ्यापुरुषवाक्यवत्तथ्यं नैतत्तथ्यंमिथ्येत्यनेनोद्भूतोद्भावनमाविष्कृतमचौरत्ववत् । नैतत्तथ्यमित्यनेन तु सद्भूतार्थनिन्ह्वोयथानास्त्यात्मेति तथा नैतद्याथातथ्यमवस्थितोर्थः । तथावस्थितमिति जावोनेन सद्भूतार्थनिन्ह्वेनासद्भूतार्थारोपणमाविष्कृतं । तद्यथा । गामश्वं ब्रुवतोश्वं वा गामित्येकार्थिकानि चैतानि शक्रेंडादिवद्द्रष्टव्यानि । तदेवं यदि तद्द्वादशांगं गणिपिटकं तदनीश्वरप्रणीतत्वान्मिथ्येति स्थितमिदं तु पुनरीश्वरकर्तृकत्वं नामात्माद्वैतं वा सत्यं यथावस्थितार्थप्रतिपादनात् । तथेदमेव तथ्यं सद्भूतार्थोद्भासनात्तदेवं ते ईश्वरकारणिकाआत्माद्वैतवादिनोवा । एव मनंतरोक्तया नीत्या सर्वं तनुजुवनकारणादिकमीश्वरकारणिकं तथा सर्वं चेतनमचेतनं वाऽऽत्मनि निवर्तितस्वजावमात्मनएव सर्वाकारतयोत्पत्तेरित्येवं संज्ञानं संज्ञा तामेवं कुर्वंत्यन्येषांच ते स्वदर्शनानुरक्तमनसः संज्ञां स्थापयंति तथा एवंजूतां संज्ञां वक्ष्यमाणेन न्यायेन निर्युक्तिकामपि सुष्ठूपसामीप्येन तदाग्रहितया तदाजिमुख्यायुक्तीर्निर्णीपवः स्थापयंति प्रतिष्ठापयंति । ते चैवं वादिनस्तमीश्वरकर्तृत्ववादमात्माद्वैतवादंवा नातिवर्त्तंते तदज्युपगमजातीयं च दुःखं दुःखहेतुत्वाद्दुःखं नातिवर्त्तंते न त्रोटयंति । अस्मिन्नर्थे दृष्टांतमाह । यथा शकुनिः पक्षिविशेषोलावकादिकः पंजरं नातिवर्तते पौनःपुन्येन जांत्वा तत्रैव वर्तते एवं तेप्येवंजूताज्युपगमवादिनस्तदापादितकर्मबंधं नातिवर्त्तंते नवा त्रोटयंति ॥२७॥ तेच स्वाजिमानग्रहग्रस्तानैत द्वक्ष्यमाणं विप्रतिवेदयंति न सम्यक् जानंति । तद्यथेयं क्रियासदनुष्ठानरूपेयं चाक्रिया तद्विपरीतेत्येवं स्वाग्रहिणोनान्यत् शोजनमशोजनं वा यावदयमनरकइत्येवं सद्विवेकरहितत्वान्नावधारयंत्येवमेव यथाकथंचित्ते विरूपरूपैः कर्मसमारंजैर्नानाप्रकारैः सावद्यानुष्ठानैर्द्रव्योपार्जनोपायजूतैर्द्रव्यमुपादाय विरूपरूपान्कामजोगानुच्चावचान्समाचरंति जोजनायोपजोगार्थमित्येवमनार्यास्ते

विरुद्धं मार्गं विप्रतिपन्नान सम्यग्वादिनोभवंति । तथाहि । सर्वमीश्वरकर्तृकमित्यत्राभ्यु पगमे किमसावीश्वरः स्वतएवापरान् क्रियासु प्रवर्तयेडुतापरेण प्रेरितस्तत्र यद्याद्यः पक्षस्त द्वदन्येषामपि स्वतएव क्रियासु प्रवृत्तिर्भविष्यति कियंतर्गडुनेश्वरकल्पनेन । अथासावप्यपर प्रेरितः सोप्यपरेणेत्येवमनवस्थालता नभोमंडलमालिनी प्रसर्पति । किंचासावीश्वरोमहा पुरुषतया वीतरागोपेतः सन्ननेकान्नरकयोग्यासु क्रियासु प्रवर्तयत्यपरांस्तु स्वर्गापवर्गयोग्या स्वित्यथ ते पूर्वशुभाशुभचरितोदयादेव तथाविधासु तासु क्रियासु प्रवर्तंते सतु निमित्त मात्रमेतदपि नयुक्तिसंगतं । यतः प्राक्तनाशुभाशुभप्रवर्तनमपि तदायत्तमेव । तथा चो क्तं । अज्ञोजंतुरित्यादि । अथ तदपि प्राक्तनमन्येन प्राक्तनतरेण कारितमित्येवमनादिहे तुपरंपरेत्येवं च सति ततएव शुभाशुभे स्थाने भविष्यतः किमीश्वरपरिकल्पनेन । तथा चो क्तं । शास्त्रौषधादिसंबंधाच्चैत्रस्य व्रणरोहणे ॥ असंबद्धस्य कः स्थाणोः कारणत्वं नक ल्पतइत्यादि । यच्चोक्तं । सर्वं तनुभुवनकरणादिकं बुद्धिमत्कारणपूर्वकं संस्थानविशेषत्वा त् देवकुलवदित्येतदपि नयुक्तिसंगतं । यतएतदपि साधनं भवदभिप्रेतमीश्वरं साधयति तेन सार्धं व्याप्त्यसिद्धेः । देवकुलादिके दृष्टांतेऽनीश्वरस्यैव कर्तृत्वेनाभ्युपगमात् । नच सं स्थानशब्दप्रवृत्तिमात्रेण सर्वस्य बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वं सिध्यति । अन्यथानुपपत्तिलक्षण स्य साध्यसाधनयोः प्रतिबंधस्याभावात् । अथाविनाभावमंतरेणैव संस्थानमात्रदर्शना त्साध्यसिद्धिः स्यादेवंच सत्यतिप्रसंगः स्यात् । उक्तंच । अन्यथा कुंभकारेण मृद्विकारस्य कस्यचित् ॥ घटादेः कारणात्सिद्धेर्वल्मीकस्यापि तत्कृतिरित्यादि । नचेश्वरकर्तृत्वे जगद्वै चित्र्यं सिध्यति तस्यैकरूपत्वादित्युक्तप्रायमिति । आत्माद्वैतपक्षस्त्वत्यंतमयुक्तिसंगतत्वा न्नाश्रयणीयः । तथाहि । तत्र न प्रमाणं न प्रमेयं नप्रतिपाद्यं न प्रतिपादकोन हेतुर्न दृष्टांतोन तदाभासोभेदेनावगम्यते । सर्वस्यैव जगतएकत्वं स्यादात्मनोभिन्नत्वात् तदभा वेच कः केन प्रतिपाद्यते इत्यप्रणयनमेव शास्त्रस्यात्मनश्चैकत्वात्तत्कार्यमप्येकाकारमेव स्यादित्यतोनिर्हेतुकं जगद्वैचित्र्यं । तथाच सति । नित्यं सत्वमसत्वं वा, हेतोरन्यानपेक्ष णात् ॥ अपेक्षातोहिभावानां, कादाचित्कत्वसंभवइत्यादि । तदेवमीश्वरकर्तृत्वमात्माद्वैतप क्षश्च युक्तिविचार्यमाणोन कथंचिद्घटां प्रांचति । तथा ते स्वदर्शनमोहमहितास्तज्जातीया दुःखात् शकुनिः पंजरादिव नातिमुच्यंते विप्रतिपन्नाश्च तत्प्रातिपादिकानिर्युक्तिभिस्तदेव स्वपक्षं प्रतियंति श्रद्दधतोति पूर्ववन्नेयं । (यावत् णोहव्वाएणोपाराएअंतराकामभोगेसु विसप्तुत्ति) इत्ययं तृतीयः पुरुषजातईश्वरकारणिकइति । सह्येवमाह । यस्य बुद्धि र्न लिप्येत हत्वा सर्वमिदं जगत् ॥ आकाशमिव पंकेन नासौ पापेन लिप्यतइत्याद्यसमंज सभाषितया त्यक्त्वा पूर्वसंयोगमप्राप्तोविवक्षितं स्थानमंतरालएव कामभोगेषु मूर्छितोवि षम्नइत्यवगंतव्यमिति ॥ १७ ॥

अहावरे चउहे पुरिसजाए णियतिवाइएत्ति आहिज्जइ इह खलु पाईणंवा तहेव जावसेणावईपुत्तावा तेसिंचणं एगताए सड्ढा नवइ कामं तं समणाय माहणाय संपहारिं सुगमणाए जाव मए एस धम्मे सुअस्काए सुपन्नते नवइ ॥ २ए ॥

अर्थ–अथ हवे अनेरो चोथो पुरुषजात नियतवादि कहिये बैयें जे कार्य सिद्धिने विषे नवितव्यता टालीने बीजो कारण कांइ पण न माने ते नियतवादि कहिए. खलु एवे वाक्यालंकारे ए मनुष्य लोकने विषे पूर्वादिक चारदिशि मांहेलो कोइएक पुरुष होय ते ज्यां सुधी सेनापतिना पुत्र इत्यादिक परषदा कहेवी तेमांहे कोइएकने धर्मनी श्रद्धा होय धर्मार्थी होय एवो धर्मार्थी जाणीने ब्राह्मण श्रमण मली तेने धर्म प्रति बोधवा निमित्ते आलोची राजादिकने संमुख जइने पोतानो धर्म प्ररूपे ते नियतवादि राजादिकनी पाशें पोताना धर्मनी स्थापना जे रीते करे तेरीते कहेबे. ॥ २ए ॥

॥ दीपिका–अथापरश्चतुर्थः पुरुषजातोनियतिवादी आख्यायते । इह खलुपाईणं इत्यादिप्राग्वत् । यावदेषधर्मः स्वाख्यातोनवतीति ॥ २ए ॥

॥ टीका–सांप्रतं चतुर्थपुरुषजातमधिकृत्याह । (अहावरेइत्यादि) अथ तृतीयपुरुषानंतरमपरश्चतुर्थः पुरुषएव पुरुषजातोनियतिवादिकआख्यायते प्रतिपाद्यते सचैवमाह । नात्र कश्चित्कालेश्वरादिकः कारणं नापि पुरुषकारः समानक्रियाणामपि कस्यचिदेव नियतिवादवलादर्थसिद्धेरतोनियतिरेव कारणं । उक्तंच । प्राप्तव्योनियतिवलाश्रयेण योर्थः सोवश्यं नवति नृणां शुनोऽशुनोवा ॥ नूतानां महति कृतेपि हि प्रयत्ने नानाव्यं नवति न नाविनोस्ति नाशइत्यादि ॥ २ए ॥

इह खलु उवे पुरिसा नवंति एगे पुरिसे किरियामाइरकइ एगे पुरिसे णोकिरियामाइरकइ जेयपुरिसे किरियामाइरकइ जेपुरिसे णोकिरियामाइरकइ दोवि ते पुरिसा तुल्ला एगठा कारणमावन्ना ॥ ३० ॥

अर्थ–(इहखलुउवेपुरिसानवंति के०) आ संसार मांहे खलु एवे वाक्यालंकारे बे पुरुष होय तेमांहे (एगेपुरिसेकिरियामाइरकइ के०) एक पुरुष क्रिया बोले (एगेपुरिसेणोकिरियामाइरकइ के०) अने एक पुरुष अक्रिया बोले त्यां एक देश थकी बीजे देशे जइयें ते क्रिया जाणवी अनेजे देशांतरने विषे नजावुं एम उपक्रम विना कार्य आ

प्ति थाय तेने अक्रिया कहिए (जेयपुरिसेकिरियामाइरकइ के०) जे पुरुष क्रिया कहेछे अने (जेपुरिसेणोकिरियामाइरकइ के०) जेपुरुष अक्रिया कहेछे (दोवितेपुरिसातुल्ला के०) ए क्रियावादि अने अक्रियावादि बंने पुरुष तुल्य एटले सरखा जाणवा (एगट्ठा कारणमावन्ना के०) ए बेनुं एकज अर्थछे कारणके ते नियतने वशें वर्ते जो ते पोताने वशें होय तो सरखा नकहेवाय ॥ ३० ॥

॥ दीपिका–नियतिवादी स्वमतमाह । इह द्वौ पुरुषौ नवतः । एकः क्रियामाख्याति । देशाद्देशांतरप्राप्तिः क्रिया सा नियतेरेवस्यात् एवमक्रियापि । द्वावेतौ नरौ तुल्यौ नियतिवशवर्तित्वात् एकार्थौ एककारणापन्नत्वात् क्रियाक्रिये नियत्येककारणाधीनेइत्यर्थः ॥ ३० ॥

॥ टीका–इह खलु (ङवेपुरिसानवंतीत्यादि) इहास्मिन् जगति । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । द्वौ पुरुषौ नवतस्तत्रैकः क्रियामाख्याति । क्रिया हि देशाद्देशांतरावाप्तिलक्षणा पुरुषस्य नवतीति न कालेश्वरादिना चोदितस्य नवत्यपितु नियतिप्रेरितस्यैवमक्रियापि । यदि तावतंत्रौ नवतः । ततः क्रियावादमक्रियावादंच समाश्रितौ द्वावपि नियत्यधीनत्वात्तुल्यौ । यदि पुनस्तौ स्वतंत्रौ नवतस्ततः क्रियाक्रियानेदान्नतुल्यौ स्यातामित्यत एकार्थावेककारणापन्नत्वादिति नियतिवशेनैव तौ नियतिवादमनियतिवादं चाश्रिताविति नावः । उपलक्षणार्थत्वाच्चान्योपि यःकश्चित्कालेश्वरादिपक्षांतरमाश्रयति । सोपि नियतिचोदितएव इष्टव्यइति ॥ ३० ॥

बाले पुण एवं विप्पडिवेदेंति कारणमावन्ने अहमंसि ङकामिवा सोयामिवा जूरामिवा तिप्पामिवा पीडामिवा परितप्पामिवा अहमेयमकासिपरोवा जं ङक्कइवा सोयाइवा जूराइवा तिप्पाइवा पीडाइवा परितप्पाइवा परोएवमकासि एवं सेबाले सकारणंवा एवं विप्पडिवेदेंति कारणमावन्ने॥ ३१ ॥

अर्थ–हवे ए नियतवादी परमतने विनावेछे (बालेपुणएवं विप्पडिवेदेंतिके०) ते परमतवादी बाल एटले अज्ञाने करी वली अजाणे ते कहेछे. (कारणमावन्ने के०) सुख ङःखादिकने उपजवे ईश्वरादिकनुं कारण माने ते कहेछे (अहमंसि ङकामिवा के०) हुं आ जगत मांहे शारीरिक तथा मानसिक ङःख अनुनवुंछुं (सोयामिवाके०) इष्ट वियोग अने अनिष्ट संयोगनो करेलो शोक अनुनवुंछुं (जूरामिवा के०) अनर्थनी प्राप्तियें स्मरणायें ज्रुरुछुं अथवा अर्थ प्राप्तियें विचरुछुं (तिप्पामिवा के०) शरीरनो बल उछुं थायछे (पीडामिवाके०) बाह्यान्तर पीडा अनुनवुंछुं (परितप्पामिवाके०) परितापना

अनुनवुंबुं (अहमेय मकासिके०) ए सुख दुःखादिक अनुनवुंबुं ते माहाराज करेलाबे (परोवा के०) अथवा पर एटले बीजो पण (जं के०) जे दुःख अनुजवेबे शोक अनुनवेबे जूरेबे तेना शरीरनो बल उबुं थायबे पीडा अनुनवेबे परितापना अनुनवेबे ते (परोएवमकासिके०) तेणेज अनरे एम कीधोबे अथवा माहारे विषे बीजो कोइ सुख दुःखादिक उपजावे तेपण माहाराज करेलाबे (एवंके०) एम (सेबालेके०) ते बाल अज्ञानी (सकारणंवा के०) स्वकारण अथवा (परकारणंवाके०) पर कारण सर्व दुःखादिक जे बे ते पुरुषकार कारणकरी मानेबे (एवं के०) एम (विप्पडिवेदेंति के०) जाणेबे (कारणमावन्ने के०) ए जे पुरुषकार कारणने मानेबे ते बाल जाणवा ॥ ३१ ॥

॥ दीपिका–बालोज्ञः पुनरेवं विप्रतिवेदयति जानीते कारणमापन्नः कारणमुद्दिश्य । तद्यथा । योहमस्मि (दुःखामित्ति) दुःखमनुनवामि (सोयामित्ति) शोकमनुनवामि (जूरामित्ति) दुष्कृतप्रवृत्तमात्मानं गर्हामि अनर्थावाप्तौ विस्तरयामीत्यर्थः । तिप्पामि शरीरबलात्क्षरामि पीडामि पीडामनुनवामि परितापमनुनवामि । एवं यत्सुखदुःखादिकमनुनवामि तदहमेवाकार्पं परोवा यःदुखादिकमनुनवति मयिवाऽऽपादयति तत्स्वयमेव कृतमिति । एवं सपुरुषकारणमापन्नः स्वकृतं परकृतं वा दुःखादि सर्वं पुरुषकारकृतमिति जानीते बालइत्यर्थः ॥ ३१ ॥

॥ टीका–नियतिवादी परमतोद्भिनावयिषयाह । (बालेपुणइत्यादि) बालोज्ञः पुरुषः कालेश्वरवादीत्यादिकः । पुनरिति विशेषणार्थस्तदेव दर्शयति । एवमिति । वक्ष्यमाणनीत्या विप्रतिवेदयति जानीते कारणमापन्नः सुखदुःखयोः स्वकृतएव पुरुषः कालेश्वरादिर्वा कारणमित्येवमन्युपपन्नोनान्यन्नियत्यादिकं कारणमस्तीति । तदेवाह । तद्यथा । योहमस्मिन् दुःखमिति शारीरं मानसं दुःखमनुनवामि तथा शोचामीष्टानिष्टवियोगसंप्रयोगकृतं शोकमनुनवामि तथा (तिप्पामित्ति) शारीरबलं क्षरामि तथा (पीडामित्ति) सबाह्यान्यंतरया पीडया पीडामनुनवामि तथा (परितप्पामित्ति) परितापमनुनवामि तथा (जूरामित्ति) अनार्यकर्मणि प्रवृत्तमात्मानं गर्हामि अनर्थावाप्तौ विस्तरयामीत्यर्थः । तदेवं यदहं दुःखमनुनवामि तदहमेवाकार्षं परपीडया कृतवानस्मीत्यर्थः । तथा परोपि यदुःखशोकादिकमनुनवति मयि चापादयति तत्स्वयमेव कृतमिति । तदेव दर्शयति । परोवेत्यादि । तथा परोपि यन्मां दुःखयति शोचयतीत्यादि प्राग्वन्नेयं । तत्सर्वमहमकार्पमित्येवं द्वान्यामाकलितोऽज्ञोज्ञोवा बालएवं विप्रतिवेदयते जानीते स्वकारणंवा परकारणंवा सर्वं दुःखादिपुरुषकारणमिति जानीते एवं पुरुषकारकारणमापन्नइति ॥ ३१ ॥

मेहावि पुण एवं विप्पडिवेदेंति कारणमावन्ने अहमंसि डुक्कामिवा सो यामिवा जूरामिवा तिप्पामिवा पीडामिवा परितप्पामिवा णोअहं एव मकासि परोवा जं डुक्काइवा जाव परितप्पाइवा णोपरो एवमकासि एवं से मेहावि सकारणंवा परकारणंवा एवंविप्पडिवेदेंति कारणमावन्ने से बे मि पाईणंवा जे तसथावरा पाणा तेएवं संघायमागछंति ते एवं विपरियासमावजंति तेएवं विवेगमागछंति तेएवं विहाणमागछंति तेएवं संगतियंति उवेहाए णोएवं विप्पडिवेदेंति तंजहा किरियातिवा जावणिरएतिवा अणिरएतिवा एवंते विरूवरूवेहिं कम्मसमारंभेहिं विरूवरूवाइं काम भोगाइं समारभंति भोयणाए ॥ ३१ ॥

अर्थ—हवे ए नियतवादी लोक ते पूर्वोक्त पुरुषकार कारणने बालत्व पणो मानीने पोताना मतनी स्थापना करेछे. (मेहाविपुणएवंविप्पडिवेदेंति के०) वली पंमित एवा नियत पक्ष ग्राही एम जाणेछे शुं जाणेछे ते कहेछे. (कारणमावन्ने के०) सुख डुःख जे उपजेछे तेने नियतटाली बीजो कारण कांइ जाणवो नही ते उपर कहेछे डुक्कामिवा सोयामिवा इत्यादि पाठनो अर्थ पूर्व प्रमाणे लखेछे हुं सुख डुःख अनुभवुंछुं हुं शोक अनुभवुंछुं जुरुछुं शरीरनो बल ओछुं थायछे पीडा अनुभवुंछुं परितापना अनुभवुंछुं (णो अहंएवमकासि के०) ते में नथी कर्युं किंतु नियतने भवितव्यताना बलथकी माहारे विषे आव्योछे परंतु पुरुषकारादिक प्रमाण कांइ नथी जे कारण माटे कोइपुरुष पोताना आत्माने अनिष्ट नथाय एम वांछेछे तो शावास्ते ते शुं करवाने एवो करें के जे थकी ते डुःखी थाय परंतु अहींया नियतज प्रमाणछे (परोवा के०) अथवा पर एटले बीजो (जंडुक्काइवा के०) जे कांइ डुःख अनुभवेछे (जावपरितप्पाइवा के०) यावत् परितापना अनुभवेछे ते पण (णोपरोएवमकासि के०) तेणे कीधो नथी परंतु नियति अने भवितव्यताने योगेंज सर्व उपजेछे)एवंसेमेहाविके०) एम ते मेधावि एटले पंमित पुरुष (सकारणंवापरकारणंवा के०) पोताने डुःखनो कारण अथवा परने डुःखनु कारण भवितव्यता छे परंतु भवितव्यता टाली बीजो कोइ पण कारण नथी (एवंविप्पडिवेदेंति के०) एम ते नियतवादि जाणेछे के जगत मांहे कोइ एक पापना करनारने पण डुःख उपजतुं नथी अने कोइएक सुकृतना करनारने डुःख उपजेछे माटे अंहींया पुरुषजे ईश्वर तेनुं कारण कांइपण नथी देखातुं किंतु (कारणमावन्ने के०) नियतज कारण देखायछे एमाटे भवितव्यता बलीष्ठछे हवे बीजो पण जे कांइ जगत मांहे

ठे ते सर्वे नियतनेज वशेंठे एवो देखाडेठे (सेवेमि के०) ते नियतवादी युक्तियें निश्चे करी बोलेठे (पाईणंवा के०) पूर्वादिक चार दिशिने विषे (जे तसथावरापाणाके०) जे कांइ त्रस अने स्थावर प्राणीठे (ते एवंसंघायमागछंति के०) ते एम जे कांइ शरीरादिक संबंध पामेठे ते नियतिनेज वशें पामेठे परंतु बीजो कर्मादिक कारण तेने कांइ नथी (ते एवंविपरियासमावज्जंति के०) ते एम बाल कुमार यौवन अने वृद्ध अवस्थादिक नानाप्रकारना पर्याय पामेठे ते सर्वे नियति थकीज अनुभवेठे (ते एवंविवेगमागछंतिके०) तथा ते एम नियति थकीज विवेक एटले शरीर ते थकी पृथक् भाव पामेठे (ते एवंविहाणमागछंति के०) तथा ते एम नियति थकीज विधान एटले अवस्था विशेष अर्थात् कुब्ज काणो खंज वामन जरा मरण रोग शोकादिक पामेठे (ते एवंसंगतियंतिउवेहाए के०) एरीते ते त्रस अने स्थावर प्राणी नियतने बले एटला भावने अनुभवेठे हवे श्रीसुधर्म स्वामि श्रीजंबूस्वामि प्रत्ये कहे ठे के एवा नियतवादि पुरुषो मात्र एक नियतनोज पक्ष अनुसरीने परलोकनी बीक नराखता सावद्यानुष्ठान करेठे परंतु (णोएवंविप्पडिवेदेंतिके०) ते एवो नथी जाणता शुं नथी जाणता (तंजहा के०) ते कहेठे (किरियातिवा जाव अणिरएतिवा के०) क्रिया अक्रिया सिद्धि असिद्धि इत्यादिक यावत् नरक अनरक पर्यंतने नथी जाणता (एवंते के०) एम ते सर्वे दोष एक नियत उपरे स्थापन करीने (विरूवरूवे हिंकम्मसमारंभेहिं विरूवरूवाइंकामभोगाइंसमारभंति भोयणाए के०) नानाप्रकारना कर्म समारंभे भोजननेअर्थे अने भोगने अर्थे नाना प्रकारना कामभोगने समारंभे ॥ ३१ ॥

॥ दीपिका–मेधावी नियतिवादी कारणमापन्नः स्वकारणं परकारणं वा उद्दिश्य प्रवृत्तिर्न पुरुषकारकृता यतोनहि कस्यचिदात्माऽनिष्टोयेनानिष्टाडुःखोत्पादिकाः क्रियाः समारभंते किंतुनियत्यैवायमनिछन्नपि तत्कार्यते येन डुःखभाग्भवति । एवमसौ कारणमापन्नोवेत्तीति कारणं वात्र एकस्याऽसदनुष्ठानपरस्यापि न डुःखमुत्पद्यते ततोनियतिरेव कर्त्रीति। एतदेवाह । (सेबेमित्ति) सोहं नियतिवादी ब्रवीमि ये केचित्त्रसाः स्थावराश्च प्राणिनस्ते नियतितएव औदारिकादिशरीरसंबधमागछंति बालकुमारादिकं विविधं पर्यायं नियतितएवानुभवंति नियतितएव विवेकं शरीरात्पृथग्भावं प्राप्नुवंति । विधानमवस्थाविशेषं कुब्जकाणांधत्वजरामरणादिकमागछंति तदेवं ते प्राणिनोनियत्यैव संगतिं यांति नानाविधसुखडुःखभाजः स्युः । एवं नियतिवादोत्प्रेक्षया एतद्वक्ष्यमाणं न विप्रतिवेदयंति न जानंति । तद्यथा । क्रियाअक्रियाइत्यादि यावद्विरूपरूपान् कामान् भोगान् भोजनायोपभोगार्थं समारभंते ॥ ३१ ॥

॥ टीका–तदेवं नियतिवादी पुरुषकारकारणवादिनोबालत्वमापाद्य स्वमतमाह । (मे हावीत्यादि) मेधा मर्यादा प्रज्ञा वा तद्वान् मेधावी नियतिवादपक्षाश्रय्येवं विप्रतिवेद यति जानीते कारणमापन्नइति नियतिरेव कारणं सुखाद्यनुभवस्य । तद्यथा योहमस्मि न् दुःखयामि शोचयामि तथा (तिप्पामित्ति) क्षरामि (पीडामित्ति) पीडामनुभवामि (परितप्पामित्ति) परितापमनुभवामि नाहमेवाकार्षं दुःखमपि तु नियतितएवैतन्मय्या गतं न पुरुषकारादिकृतं । यतोनहि कस्यचिदात्मानिष्टोयेनानिष्टादुःखोत्पादिताः क्रियाः समारभंते नियत्यैवासावनिछन्नपि तत्कार्यते येन दुःखपरंपराभाग्भवति कारणमापन्नइ ति परेप्येवमेव योजनीयं । एवं सति नियतिवादी मेधावीति सोल्लुंठमेतत्सकिल नियति वादी दृष्टं पुरुषकारं परित्यज्याहृष्टनियतिवादाश्रयेण महाविवेकीत्येवमुल्लंघ्यते स्वकार णं परकारणं च दुःखादिकमनुभवन्नियतिकृतमेतदेवं विप्रतिवेदयति जानाति कारणमापन्नं नियतिकारणं चात्रैकस्यासदनुष्ठानरतस्यापि नदुःखमुत्पद्यते परस्य तु सदनुष्ठायिनोपि तद्भवति यतोनियतिरेव कर्त्रीति । तदेवं नियतिवादे स्थिते परमपि यत्किंचित्तत्सर्वं निय त्यधीनमिति दर्शयितुमाह (सेबेमीत्यादि) सोहं नियतिवादी युक्तितोनिश्चित्य ब्रवीमीति प्र तिपादयामि । ये केचन प्राच्यादिषु दिक्षु त्रस्यंतीति त्रसा द्वींद्रियादयः स्थावराश्च पृथिव्या दयः प्राणिनस्ते सर्वेप्येवं नियतितएवौदारिकादिशरीरबंधमागछंति नान्येन केनचित्कर्मा दिना शरीरं ग्राह्यंते तथा बालकौमारयौवनस्थविरवृद्धावस्थादिकं विविधपर्यायं नियति तएवानुभवंति तथा विवेकं शरीरात्पृथग्भावमनुभवंति । तथा नियतितएव विविधं विधान मवस्थाविशेषं कुब्जकाणखंजवामनकजरामरणरोगशोकादिकं बीभत्समागछंति । तदेवं ते प्राणिनस्त्रसाः स्थावराएवं पूर्वोक्तनीत्या संगतिं यांति नियतिमापन्नानानाविधविधान भाजोभवंति । तएव वा नियतिवादिनः संगइयंति नियतिमाश्रित्य तदुत्प्रेक्षया नियतिवा दोत्प्रेक्षया यत्किंचन कारितया परलोकभीरवोनो नैव तद्वक्ष्यमाणं विप्रतिवेदयंति । त द्यथा । क्रिया सदनुष्ठानरूपा अक्रियाऽसदनुष्ठानरूपाइत्यादि यावदेवं ते नियतिवादिन स्तदुपरि सर्वं दोषजातं प्रक्षिप्य विरूपरूपैः कर्मसमारंभैर्विरूपरूपान् कामभोगान्भोजना योपभोगार्थं समारभंतइति ॥ ३२ ॥

एवमेव ते अणारिया विप्पडिवन्नाइं तंसद्दहमाणा जावइति ते
णोहवाए णोपाराए अंतरा कामभोगेसु विसएणा चउबे पुरिस
जाए णियइवाइ एत्ति आहिए ॥ ३३ ॥

अर्थ–एरी ते ते अनार्य पुरुष कामभोगने विषे गृद्ध थता पोतानो धर्म रुडो करी प्ररूपता ते पाखंडी धर्म राजादिकने सद्दहावता थका ज्यां सुधी एम ते कांते पण रह्या

नही अने पार पण पोता नही विचाले कामभोगने विषे खूता रहे ते पोताने पण उ द्धरी शके नही अने राजारूप पुंमरीक कमलने पण उद्धरी शके नही ते आ लोक थ की पण भ्रष्ट थया अने मुक्तियें पण पोचे नही परंतु विचाले संसार मांहेज खुची रहे ए चौथो पुरुषजात नियत वादी कह्यो ॥ ३३ ॥

॥ दीपिका—तदेवं ते नियतिवादिनो ऽनार्याविप्रतिपन्नास्तं निर्युक्तिकं नियतिवादं श्रद्दधा नाइत्यादि तावन्नेयं यावदंतरा कामभोगेषु विषण्णा इति चतुर्थः पुरुषजातः संपूर्णः ॥३३॥

॥ टीका—तदेवमेव पूर्वोक्तया नीत्या तेऽनार्याविरूपं नियतिमार्गं प्रतिपन्नाविप्रतिपन्नाः। अनार्यत्वं पुनस्तेषां निर्युक्तिकस्यैव नियतिवादस्य समाश्रयणात् । तथा ह्यसौ नियतिः किं स्वतएव नियतिस्वभावा उतान्यया नियत्या नियम्यते किंवाऽतस्तत्र यद्यसौ स्वयमेव तथा स्वभावः सर्वपदार्थानामेव तथा स्वभावत्वं किं न कल्प्यते किं बहुदोषया नियत्या समाश्रितया । अथान्यया नियत्या तथा नियम्यते साप्यन्ययेत्येवमनवस्था । तथा नियतेः स्वभावत्वान्नियतिस्वभावया तया भवितव्यं न नानास्वभावयेति । एकत्वाच्च नियतेस्तत्का र्येणाप्येकाकारेणैव भवितव्यं । तथाच सति जगद्वैचित्र्याभावः । नचैतदृष्टमिष्टंवा । त देवं युक्तिनिर्विचार्यमाणा नियतिर्नकथंचिद्घटते । यदप्युक्तं । द्वावपि तौ पुरुषौ क्रियाक्रि यावादिनौ तुल्यौ एतदपि प्रतीतिबाधितं । यतस्तयोरेकः क्रियावाद्यपरस्त्वक्रियावादीति कथमनयोस्तुल्यत्वमथैकया नियत्या तथा नियतित्वात्तुल्यता अनयोरेतच्च निरंतराः सुहृ दः प्रत्येष्यंति । नियतेरप्रमाणत्वात् । अप्रमाणत्वं च प्राग्लेशतः प्रदर्शितमेव । यदप्युक्तं । यद्दुःखादिकमहमनुभवामि तन्नाहमकार्षमित्यादि तदपि बालवचनप्रायं । यतोजन्मांतरकृ तं शुभमशुभंवा तदिहोपभुज्यते स्वकृतकर्मफलेश्वरत्वादसुमतां । तथा चोक्तं । यदिह क्रिय ते कर्म, तत्परत्रोपभुज्यते । मूलसिक्तेषु वृक्षेषु, फलं शाखासु जायते । तथा यदुपात्तमन्य जन्मनि शुभाशुभं वा स्वकर्मपरिणत्या तच्छक्यमन्यथा नोकर्तुं देवासुरैरपि हि । तदेवं ते निय तिवादिनोनार्याविप्रतिपन्नास्तमेव निर्युक्तिकं नियतिवादं श्रद्दधानास्तमेव च प्रतीयंते इत्यादि तावन्नेयं यावदंतरा कामभोगेषु विषण्णाइति । चतुर्थः पुरुषजातः समाप्तः ॥ ३३ ॥

इच्चेते चत्तारि पुरिसजाया णाणापन्ना णाणाछंदा णाणासीला णाणादिठी णाणारुई णाणारंभा णाणाअज्झवसाणा संजुत्ता प हीणपुव्वसंजोगा आरियं मग्गं असंपत्ता इति ते णोहव्वाए णो पाराए अंतरा कामभोगेसु विसन्ना ॥ ३४ ॥

अर्थ-(इच्चेतेचत्तारिपुरिसजाया के०) एरीते ते पूर्वोक्त चार पुरुष जात तेमां एक जीव तच्छरीरवादी बीजो पंचमहाजूतिक त्रीजो ईश्वरकारणी अने चोथो नियतवादी ए चार पुरुषते (णाणापन्ना के०) नानाप्रकारनी प्रज्ञा एटले बुद्धिवाला तथा नाना प्रकारना अजिप्राय वाला नाना प्रकारना शील एटले आचार वाला नाना प्रकारनी दृष्टी वाला नाना प्रकारनी रुची वाला नाना प्रकारना आरंजना करनार नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करी (संजुत्ता के०) संयुक्त बता पोताना धर्मनेविषे सावधान थया (पहीणपुव्वसंजोगा के०) पूर्व संयोगजे माता पिता पुत्र कलत्रादिकनो संबंध तेनेत्यागीने (आरियंमग्गंअसंपत्ता के०) आर्य मार्गने अण पाम्या एमते कांठे पण न रह्या पार पण नपाम्या विचाले कामजोगने विषे खूता एटले परतीर्थिक चार पुरुष कह्या॥ ३४ ॥

॥ दीपिका-इत्येते चत्वारः पुरुषानानाप्रज्ञानानामतयोनानाछंदानानाजिप्रायानानाशीलाअनेकाचारानानादृष्टयोऽनेकदर्शनानानारुचयोनानाप्रकारआरंजोधर्मानुष्ठानं येषां ते तथा नानाप्रकारेणाध्यवसायेन संयुक्ताधर्मार्थमुद्यताः प्रहीणपूर्वसंयोगामातापितृकलत्रादिसंबंधरहिताआर्यं निर्दोषं मार्गमसंप्राप्ताः (णोहव्वाएत्ति) ऐहिकसुखजाजः (णोपराएत्ति) नापि जवपारगाः स्युः किंतु अंतरालएव कामजोगेषु विषम्राः ॥ ३४ ॥

॥ टीका-सांप्रतमुपसंजिघृक्षुराह । (इच्चेतेइत्यादि) इत्येते पूर्वोक्तास्तज्जीवतच्छरीरपंचमहाजूतेश्वरकर्तृनियतिवादपक्षाश्रयिणश्चत्वारः पुरुषानानाप्रकारा प्रज्ञा मतिर्येषां ते तथा नानाजिन्नश्छंदोऽजिप्रायोयेषां ते तथा नाना प्रकारं शीलमनुष्ठानं येषां तथा नानारूपा दृष्टिर्दर्शनं येषां ते तथा नानारूपा रुचिश्चेतोजिप्रायोयेषां ते तथा नानाप्रकारआरंजोधर्मानुष्ठानं येषां ते तथा नानाप्रकारेण परस्परजिन्नेनाध्यवसायेन संयुक्ताधर्माधर्मार्थमुद्यताः प्रहीणः परित्यक्तः पूर्वसंयोगोमातृपितृकलत्रपुत्रसंबंधोयैस्ते तथा । आराद्यातः सर्वहेयधर्मेज्य इत्यार्योमार्गोनिर्दोषः पापलेश्यासंपृक्तस्तमार्यं मार्गमसंप्राप्ताइति पूर्वोक्तया नीत्या ते चत्वारोपि नास्तिकादयो (णोहव्वाएइत्ति) परित्यक्तत्वान्मातृपित्रादिसंबंधस्य धनधान्यहिरण्यादिसंचयस्य च नैहिकसुखजाजोजवंति । तथा (णोपाराएत्ति) असंप्राप्तत्वादार्यस्य मार्गस्य सर्वोपाधिविशुद्धस्य प्रगुणमोक्षपद्धतिरूपस्य न संसारपारगामिनोजवंति न परलोकसुखजाजोजवंतीति किंत्वंतरालएव गृहवासार्यमार्गयोर्मध्यवर्तिनएव कामजोगेषु विषम्राअध्युपपन्नाडुष्पारपंकमग्नाइव करिणोविषीदंतीति स्थितं ॥ ३४ ॥

सेबेमि पाईणंवा संतेगतिया मणुस्सा जवंति तंजहा आयरियावेगे अणारियावेगे उच्चागोयावेगे णीयागोयावेगे कायमंतावेगे हस्समंतावेगे सुव

न्नावेगे डुवन्नावेगे सुरूवावेगे डुरूवावेगे तेसिंचणं खेत्तवत्थूणि परिग्गहिया णि न्नवंति तं अप्पयरोवा न्नुज्जयरोवा तेसिंचणं जण जाणवयाइं परिग्ग हियाइं न्नवंति तं अप्पयरोवा न्नुज्जयरोवा तहप्पगारेहिं कुलेहिं आगम्म अन्निनूय एगे न्निरकायरियाए समुठिता सतोवावि एगे णाय ठय उवग रणंच विप्पजहाय न्निरकायरियाए समुठिता असतोवा वि एगे णाय ठय उवगरणंच विप्पजहाय न्निरकायरियाए समुठिता जेते सतोवा असतोवा णाय ठय अणाय ठय उवगरणंच विप्पजहाय न्निरकायरियाए समुठिता॥३५

अर्थ–हवे पांचमो पुरुष स्वतीर्थिक कहियेंछैयें (सेवेमि के०) जे पुरुष कामन्नोगने विषे अनासक्तठतो अंतराले नखुचे पुंमरीक कमलने उद्धारवा समर्थ ते हुं कहुंछुं (पाईणंवासंतेगतियामणुस्सा के०) पूर्वादिक दिशियें कोइ एक मनुष्य होय ते कहे वो होय (तंजहा के०) ते कहेछे. एक आर्य एक अनार्य एक उंचगोत्रना उपना ए क नीचगोत्रना उपना एक महोटी कायाना धणी एक न्हानी कायाना धणी एक सा रावर्ण वाला एक मागावर्ण वाला एक स्वरूपवान् एक कुरूपवान् (तेसिंचणं के०) ते पूर्वोक्त आर्यादिक पुरुषने (खेत्तवत्थूणिपरिग्गहियाणिन्नवंति के०) क्षेत्रते उघाडी नूमिका शाली क्षेत्रादिक तथा वस्तु ते घर हाट प्रमुख ढाकेली नूमिका ए परिग्रह होय (तंअप्प यरोवान्नुज्जयरोवा के०) तेअल्पतर एटले थोडा होय अथवा प्रनूततर एटले घणा होय वली (तेसिंचणंजणजाणवयाइंपरिग्गहियाइंन्नवंति के०) तेने जन एटले लोक जानपद एटले देश ए परिग्रह होय (तंअप्पयरोवान्नुज्जयरोवा के०) तेपण अल्पतर एटले थोडा होय अथवा प्रनूततर एटले घणा होय (तहप्पगारेहिंकुलेहिं आगम्मअन्निनूय के०) तथा ते आर्यादिक तथा प्रकारना कुलने विषे आगम्म एटले जन्म पामीने कोइ एक महास त्ववंत पुरुष विषय कषायने जीपीने (एगेन्निरकायरियाए के०) कोइएक न्निक्षाचर्याने विषे (समुठिता के०) सम्यक् प्रकारे उठ्या सावधान थया (सतोवाविएगेणायठयउ वगरणंच के०) कोइएक महा सत्ववंत पुरुष विद्यमान एवा णायठय एटले ज्ञाति स्व जनादिक तथा उपकरण ते धन धान्य सुवर्ण रूपादिक अनेक प्रकारनाछे तेने (विप्प जहाय के०) त्यागीने (न्निरकायरियाए के०) न्निक्षाचर्याने विषे (समुठिता के०) सम्यक् प्रकारे उठ्या एटले चारित्रिया थया (असतोवाविएगेणायठवगरणंचविप्पजहा यन्निरकायरियाएसमुठिता के०) कोइ एक महा सत्ववंत पुरुष ते अछता ज्ञाति स्वजन उपकरणादिक अनेक प्रकारनाछे तेने त्यागीने न्निक्षाचर्याने विषे सम्यक् प्रकारे सावधान

थया (जेते के०) हवे जे ते (सतोवा असतोवा के०) बतो अथवा अबतो एवो (णा यञय के०) ज्ञाति स्वजनादिक नोपरिग्रह (अणायञय के०) ज्ञाति स्वजनादिकथी रहित पणानोपरिग्रह (उवगरणंच के०) तथा धन धान्य सुवर्णादिक नोपरिग्रह तेने (विप्पजहाय के०) त्यागीने (जिरकायरियाए के०) जिक्षाचर्याने विषे एटले चारित्रने विषे (समुछिता के०) सम्यक्‌ प्रकारे उठ्या सावधान थया ॥ ३५ ॥

॥ दीपिका–अथलोकोत्तरं पंचमं जिक्षुं पुरुषमाह । तदहं ब्रवीमि । यत्प्राच्यादिदिशमुद्दिश्य एके केचन मनुजाः संति जवंति । तद्यथा आर्याआर्यदेशोत्पन्नास्तद्विपरीताअनार्याउच्चैर्गोत्रोद्भवानीचैर्गोत्रोद्भवाः कायवंतउच्चशरीराल्हस्वावामनादयः सुवर्णाडुर्वर्णाः सुरूपाडुरूपास्तेषां वाऽऽर्यादीनां क्षेत्राणि शालिक्षेत्रादीनि वस्तूनि गृहाणि परिगृहीतानि स्वीकृतानि जवंति । किंजूतानि अल्पतराणि प्रजूततराणि वा । तथा तेषां जनपदाः स्वीकृता जवंति तेप्यल्पतराः प्रजूततरावा । तेष्वार्यादिषु तथा प्रकारेषु कुलेषु आगम्य जन्म लब्ध्वा ऽनिजूय विषयादीन् प्रव्रज्यां गृहीत्वा एके केचन सत्ववंतोनिक्षाचर्यायां समुछितानद्यताः । तथा सतोविद्यमानान् ज्ञातीन् स्वजनानुपकरणं च धनधान्यादिकं विप्रहाय त्यक्त्वा असतोवा ज्ञातीनुपकरणंच त्यक्त्वा समुछिताः प्रव्रज्योद्यताः ॥ ३५ ॥

॥ टीका–उक्ताः परतीर्थिकाः सांप्रतं लोकोत्तरं निक्षावृत्तिं जिक्षुं पंचमं पुरुषजातमधिकृत्याह । (सेबेमीत्यादि) यादृक्कामजोगेष्वसक्तः सन्नंतरा नोवसीदति पद्मवरपौंडरीकोद्धरणाय च समर्थोजवति तदेतदहं ब्रवीमीति । अस्य चार्थस्योपदर्शनाय प्रस्तावमारचयन्नाह । प्राच्यादिकामन्यतरां दिशमुद्दिश्यैके केचन मनुष्याः संति जवंति । तद्यथा । आर्यदेशोत्पन्नामगधादिजनपदोद्भवास्तथाऽनार्याः शकयवनादिदेशोद्भवास्तथा चोच्चैर्गोत्रोद्भवाइक्ष्वाकुहरिवंशादिकुलोद्भवास्तथा नीचैर्गोत्रोद्भवावर्णापसदसंजूतास्तथा कायवंतः प्रांशवस्तथा न्हस्वावामनकादयस्तथा सुवर्णाडुर्वर्णाः सुरूपाः कुरूपावा एके एव केचन परवशाज्जवंति तेषां चार्यादीनां । णमितिवाक्यालंकारे । क्षेत्राणि शालिक्षेत्रादीनि वस्तूनि खातोच्छ्रितादीनि तानि परिगृहीतानि स्वीकृतानि जवंति । तान्येव विशिनष्टि । अल्पतराणि स्तोकतराणि वा प्रजूततराणिवा जवंति । तथा तेषामेव च जानपदाः परिगृहीताजवंति तेऽल्पतराः प्रजूततरावा जवेयुस्तेषु चार्यादिविशिष्टेषु तथाप्रकारेषु कुलेष्वागम्यैवंजूतानि गृहाणि गत्वा तथा प्रकारेषु वा कुलेष्वागम्य जन्म लब्ध्वाऽनिजूयच विषयकषायादीन् परीषहोपसर्गान् वा सम्यगुत्थानेनोत्थाय प्रव्रज्यां गृहीत्वैके केचन तथाविधसत्ववंतोनिक्षाचर्यायां सम्यगुछितास्तथा सतोविद्यमानानपिवा एके केचन महासत्वोपेताज्ञातीन् स्वज

नास्तथोपकरणं च कामन्नोगांगं धनधान्यहिरण्यादिकं विविधं प्रकर्षेण हित्वा त्यक्त्वा निक्षाचर्यायां सम्यगुह्लिताअसतोवा ज्ञातीनुपकरणंच विप्रहाय निक्षाचर्यायामेके केच नापगतस्वजनविन्नवाः समुह्लिताः ॥ ३५ ॥

पुव्वमेव तेहिं णायं नवइ तं जहा इह खलु पुरिसे अन्नमन्नं ममठ्ठाए एवं विप्पडिवेदेंति तं जहा खेत्तंमे वत्थूमे हिरणंमे सुवन्नंमे धणंमे धणंमे कंसंमे दूसंमे विपुलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणसंतसारसावतेयंमे सद्दामे रूवामे गंधामे रसामे फासामे एते खलु मम कामन्नोगा अहमवि एतेसिं ॥ ३६ ॥ सेमेहावि पुव्वमेव अप्पणो एवं समन्निजाणेज्जा तं जहा इह खलु मम अन्नयरे दुक्खे रोयातंके समुप्पज्जेज्जा अणिठ्ठे अकंते अप्पिए असुन्ने अमणुन्ने अमणामे दुक्खे णोसुहे सेहंता नयंतारो कामन्नोगाइं मम अन्नयरं दुक्खं रोयातंकं परियाइयह अणिठ्ठं अकंते अप्पियं असुन्नं अमणुन्नं अमणामं दुक्खं णोसुहं तहिं दुक्खामिवा सोयामिवा जूरामिवा तप्पामिवा पीडामिवा परितप्पामिवा इमाउ ममे अण्णयराउ दुक्खाउ रोगातंकाउ पडिमोयउ अणिठ्ठाउ अकंताउ अप्पियाउ असुन्नाउ अमणुन्नाउ अमणामउ दुक्खाउ णोसुहाउ एवमेव णोलद्धपुव्वं नवइ ॥ ३७ ॥

अर्थ–(तेहिं के०) ते पुरुषने (पुव्वमेव के०) प्रथम चारित्र लेवाना वखतेज एवो (णायंनवइ के०) जाणवुंछे (तंजहा के०) ते कहेछे. (इह के०) आ जगत मांहे खलु इति वाक्यालंकारे (पुरिसे के०) ते पुरुषे (अन्नमन्नं के०) अनेरी अनेरी वस्तु एटले अमुक अमुक जुदी जुदी वस्तु (ममठ्ठाए के०) महारा उपन्नोगने अर्थे थशे (एवं के०) एम (विप्पडिवेदेंति के०) वेद प्रवितियति एटले जाणवुंछे (तंजहा के०) ते वस्तुना नाम कहेछे. (खेत्तंमे के०) आ क्षेत्र महारुंछे (वत्थूमे के०) ए घर हाट महाराछे (हिरणंमे के०) आ रूपुं महारुंछे (सुवणंमे के०) आ सोनुं महारुं छे (धणंमे के०) आ धन महारुंछे (धन्नंमे के०) आ धान्य महारुंछे (कंसंमे के०) आ कांसाना नाजन महाराछे (दूसंमे के०) आ दुष्य एटले वस्त्र महाराछे (विपुल, धण, कणग, रयण, मणि, मोत्तिय, संख, सिल, प्पवाल, रत्त, रयण, संत सार सावतेयंमे के०) एम विस्तीर्ण धन कनक सोलजातिना रत्न सात जातना मणी मोक्तिको संख

ते दक्षिणावर्त्त प्रमुख शीलते कशवटी प्रवाला रक्तरत्न तथा संत एटले बतो सार एटले प्रधान एवो सावतेयं एटले धन ए सर्व महारा उपनोगने अर्थे थशे (सद्दामे के०) शब्द वंशादिकना (रूवामे के०) रूप स्त्रियादिकना (गंधामे के०) गंध ते कस्तूरी कर्पूरादिक वस्तुना (रसामे के०) रसमधुरादिक वस्तुना (फासामे के०) स्पर्श मृडु करणादिक वस्तुना (एते के०) ए समस्त वस्तु ते खलु इति निश्चे (ममकामनोगा के०) ए कामनोग ते माहाराछे अने (अहमवि के०) हुंपण (एतेसिं के०) एनोबु ॥३६॥ हवे (से मेहावि के०) ते पंमित (पुवमेव के०) पूर्वे (अप्पणो के०) पोताना हृदय साथे (एवं के०) एवुं (समनिजाणेज्जा के०) सम्यक् प्रकारे जाणे आलोचे एटले प्रथम थीज पोताना हृदयसाथें विचारे के ए महाराछे किंवा नथी एवो विचारे ते शुं विचारे (तंजहा के०) ते कहेछे. (इहखलु के०) आ संसारनेविषे निश्चे (ममअन्नयरे के०) महारा शरीरने विषे अन्य कोइ एक (डुक्के के०) दुःख मस्तक पीडादिक (रोयातंके के०) रोगातंक एटले असाध्य रोग शूलादिक (समुप्पज्जेज्जा के०) उपजे ते रोग केवोहोय ते कहेछे. (अणिठे के०) अनिष्टकारी (अकांते के०) आक्रांतकारी (अप्पिए के०) अप्रिय कारी (असुने के०) अशुनकारी (अमणुन्ने के०) अमनोज्ञ एटले मनने गमे नही (अमणामे के०) विशेष प्रकारें पीडानो करनार (डुक्के के०) दुःख रूप (णोसुहेसेहंता के०) नथी ज्यां लवलेशमात्र सुख, एवो दुःख उपने थके ते पूर्वोक्त कामनोगादि योग्य जे वस्तुछे ते प्रत्ये एवुं कहे के (नयंतारो के०) अहो नय थकी राखनाराउ (कामनोगाइं के०) धन धान्यादिक तथा शब्दादिक कामनोगो तुमें (मम के०) महारे शरीरे (अन्नयरंदुःखं के०) अनेरा दुःख जे (रोयातंकं के०) रोगातंक शूलादिक उपनाछे (परियाइयह के०) तेने तमे वेहेंची ल्यो महारे अर्थे (अणिठं के०) अनिष्ट कारी (अकंतं के०) अक्रांत कारी (अप्पियं के०) अप्रियकारी (असुनं के०) असुनकारी (अमणुन्नं के०) अमनोज्ञ (अमणामं के०) विशेषे अमनोज्ञ पीडाकारी (डुक्खं के०) दुःखरूप (णोसुहं के०) नथी ज्यां लव लेश मात्र सुख (तहिं के०) तेणेकरी (डुक्खामिवा के०) आकरो दुःखी छुं (सोयामिवा के०) शोक अनुनवुंछुं (जूरामिवा के०) जुरुंछुं (तप्पामिवा के०) महारो हृदय तपेछे बीजायछे (पीडामिवा के०) पीडा अनुनवुंछुं (परितप्पामिवा के०) विशेषे पीडा अनुनवुंछुं इत्यादिक (इमाउ के०) ए (ममे के०) मने (असुयराउ के०) अनेरा (डुक्खाउ के०) दुःख जे पूर्वोक्त मस्तक पीडादिक असाध्य (रोगातंकाउपडीमोहय के०) रोग आंतक शूलादिक जे थकी तत्काल प्राणनो नाश थाय ते थकी तमे मने मूकावो एवा (अणिठाउ के०) अनिष्टकारी (अकंताउ के०) आक्रां

त कारी (अप्पियाउ के०) अप्रियकारी (असुनाउ के०) असुनकारी (अमणुन्नाउ के०) अमनोज्ञ (अमणामउके०) अरुचता विशेषे अमनोज्ञ पीडाकारी एवा (डुरकाउ के०) डुःख (णोसुहाउ के०) नथी जेमांहे लेश मात्र शुख एवा जे डुःख ते थकी हे काम नोगादिको तमे मने मूकावो (एवमेव के०) एवीरीते जे कामनोगादिकने प्रार्थना करेठे तोपण (णोलद्धेपुव्वंनवइ के०) ते कामनोगापूर्वेलब्धोननवति एटले ते काम नोगादिक जेठे तेणे कोइ मनुष्यने पूर्वोक्त डुःख थकी मूकाव्यो ठे एवो पूर्वे क्यां जाणवामां आव्युं नथी. ॥ ३७ ॥

॥ दीपिका—ये निक्षाचर्योद्यतास्तैः पूर्वमेव प्रव्रज्याग्रहणकालएतज्ज्ञातं स्यात् । तद्यथा । अन्य इस्तूद्दिश्य पुरुषः प्रव्रजितः प्रव्रज्यां ग्रहीतुकामोवा एवं विप्रतिवेदयति जानाति । तद्यथा । क्षेत्रं वास्तुगृहं हिरण्यं सुवर्णं कनकं धनंगोमहिष्यादि धान्यं शाल्यादि कांस्यं कांस्यपात्रादि दूष्यं वस्त्रादि । तथा विपुलानि धनकनकादीनि शंखादद्दिणावर्ताः मुक्तशैलादिकाः शिलाः प्रवालंविद्रुमं रक्तरत्नं पद्मरागादि सत्सारं शोननसारं शूलमण्यादि स्वापतेयं इव्यं सर्वमेतन्ममोपनोगाय नविष्यति । तथा शब्दरूपगंधरसस्पर्शामे कामनोगाअहमप्येतेषां नोगानां संबंधी ॥ ३६ ॥ अयमपि नोगसंबंधीति विचार्य समेधावी पूर्वमेवात्मना एवं समनिजानीयात् । तद्यथा । इह जन्मनि ममान्यत् डुःखं शिरोवेदनादिकं आतंकोवा आशु जीवितापहारी शूलादिकः । सकिंनूतः । अनिष्टोऽकांतोऽशुनोऽमनोज्ञः । अवनामयतीत्यवनामः पीडाविशेषकारी डुःखरूपः । नशुनोऽशुनकर्मकृतत्वात् । पुनर्डुखोत्पादनमत्यंतडुःखज्ञापनार्थं । तदेवंनूतं डुःखं रोगातंकं वा हंतइति खेदे हेनगवंतः कामनोगायूयं मया पालितास्ततोयूयमपीदं डुःखं रोगातंकं वा (परियाइयह) विनज्य गृएहीत । अत्यंतडुःखपीडितः पुनस्तान्येव विशेषणान्याह । अनिष्टादिविशेषणानि पूर्वं प्रथमांतानि पुनर्द्वितीयांतानि सांप्रतं पंचम्यंतानि । सचायमर्थः पूर्वं लब्धोन नवति । कोर्थः । नहि ते नोगादयोनरं डुःखान्मोचयंतीतिपूर्वं नज्ञातं॥३७॥

॥ टीकाः—ते पूर्वोक्तविशिष्टानिक्षाचर्यायामन्युद्यताः पूर्वमेव प्रव्रज्याग्रहणकालएव तैरेतज्ज्ञातं नवति । तद्यथा (इहेत्यादि) इह जगति । खलुवाक्यालंकारे । अन्यदन्य इस्तूद्दिश्य ममैतद्भोगाय नविष्यतीत्येवमसौ प्रव्रज्यां प्रतिपन्नः प्रवव्रजिषुर्वा प्रवेदयति जानात्येवं परिनिनत्ति । तद्यथा । क्षेत्रं शालिक्षेत्रादिकं वास्तु खातोच्छ्रितादिकं हिरण्यं धर्मेलानादिकं सुवर्णकनकं धनंगोमहिष्यादिकं धान्यंगोधूमादिकं कांस्यंकांस्यपात्रादिकं तथा विपुलानि प्रनूततराणि धनकनकरत्नमणिमौक्तिकानि (शंखशिलंति) मुक्तशिला

दिकाः शिलाः प्रवालं विद्रुमं । यदिवा (शिलप्पवालंति) श्रियायुक्तं प्रवालं श्रीप्रवालं वर्णादिगुणोपेतं तथा (रत्तरयणंति) रक्तरत्नं पद्मरागादिकं तथा सत्सारं शोजन सारमित्यर्थः । शूलमण्यादिकं तथा स्वापतेयं शुद्धं ड्व्यजातं सर्वमेतत्पूर्वोक्तं मे ममोपनोगाय नविष्यति । तथा शब्दावेणवादयोरूपाण्यंगनादीनि, गंधाः कोष्ठपुटाद योरसामधुरादयोमांसरसादयोवा, स्पर्शामृ द्वादयएते सर्वेपि खलु मे कामनोगायाहमप्ये षां योगक्षेमार्थं प्रनविष्यामीत्येवं संप्रधार्य; ॥ ३६ ॥ समेधावी पूर्वमेवात्मानं विजानीया देवं पर्यालोचयेत् । तद्यथा । इह संसारे । खलुशब्दोऽवधारणे । इहैवास्मिन्नेव जन्मनि म नुष्यनवे ममान्यतरडुःखं शिरोवेदनादिकं आतंकोवाऽऽशु जीवितापहारी शूलादिकः समु त्पाद्यते । तमेव विशिनष्टि । अनिष्टोऽकांतोऽप्रियोऽशुनोऽमनोज्ञोऽवनामयतीत्यवनामः पीडाविशेषकारी डुःखरूपोयदि वा नमनागमनाक् मे मम नितरामित्यर्थः । डुःखयतीति डुःखं पुनरपि डुःखोत्पादनं अत्यंतडुःखप्रतिपादनार्थं सुखलेशस्यापि परिहारार्थं च नोनै व शुनकर्मविपाकोदितत्वादिति । अत्रच यडुक्तं पुनरुच्यते तदत्यादरख्यापनार्थं तद्विशे षप्रतिपादनार्थं वेति । तदेवंनूतं डुःखं रोगातंकं वा हंतइतिखेदे नयात्रातारोयूयं क्षेत्रवस्तु हिरण्यसुवर्णधनधान्यादिकाः परिग्रहविशेषाः शब्दादयोवा विषयास्तथा हे नगवंतः! कामनोगायूयं मया पालिताः परिगृहीताश्च ततोयूयमपीदं डुःखं रोगातंकं वा (परि याइयहत्ति) विनागशः परिगृहीत यूयं । अत्यंतपीडयोद्विग्नः पुनस्तदेव डुःखं रोगातंकं वा विशेषण द्वारेणोच्चारयति । अनिष्टमप्रियमकांतमशुनममनोज्ञममनाग्नूतमवनामकं वा डुःखमेवैतन्नोशुनमित्येवंनूतं समोत्पन्नं यूयं विनजताहमनेनातीव डुःखामीति डुःखि तइत्यादि पूर्ववन्नेयमित्यतोऽमुष्मान्मामन्यतरस्माड्डुःखाद्रोगातंकाद्वा प्रतिमोचयत यूयं । अनिष्टादिविशेषणानि तु पूर्ववद्व्याख्येयानि । प्रथमं प्रथमांतानि पुनर्द्वितीयांतानि सां प्रतं पंचम्यंतानीति । नचायमर्थस्तेन डुःखितेनैवमेवेति यथाप्रार्थितस्तथैव लब्धपूर्वोन वति । इदमुक्तंनवति । नहि ते क्षेत्रादयः परिग्रहविशेषानापि शब्दादयः कामनोगास्त डुःखितं डुःखाद्विमोचयंतीति ॥ ३७ ॥

इह खलु कामनोगा णोताणाएवा णोसरणाएवा पुरिसेवा एगता पुव्विं कामनोगे विप्पजहंति कामनोगावा एगता पुव्विं पुरिसं विप्पजहंति अन्ने खलु कामनोगा अन्नो अहमंसि से किमंगपुण वयं अन्नमन्नेहिं काम नोगेहिं मुच्चामो इति संखाएणं वयंच कामनोगेहिं विप्पजहिस्सामो से मेहावि जाणेज्जा बाहिरंगमेत्तं ॥ ३८ ॥

॥ अर्थ-(इहखलु के०) आ जगत् मांहे निश्चे थकी (कामजोगा के०) ते काम जोगादिकजेछे ते, पूर्वोक्त दुःखिया जीवने (णोताणाएवाके०) त्राणजणी नथाय. (णोसरणाएवा के०) अथवा शरण जणी नथाय. (पुरिसेवा के०) ते पूर्वोक्त दुःखी पुरुषने पूर्वोक्त रोगादिक उपने थके त्राण शरण जणी नथाय. हवे रुडा कामजोगनी लीलानो अंत देखाडेछे (एगता के०) एकदा (पुव्विं के०) प्रथम व्याधि उत्पन्न कालें, अथवा जरा जीर्णकालें, अथवा राजादिकना उपद्रवने कालें पुरुष, (कामजोगेविप्पजहंति के०) ए कामजोगने मूकेछे. (कामजोगावाएगतापुव्वंपुरिसंविप्पजहंतिके०) अथवा ए काम जोग पोतेंज एकदा इव्यादिकने अजावें विषयाजिलाषी पणुं बतांज ते पुरुषने त्यागी मूकेछे; ते कारण माटे जे पंमित पुरुष होय ते एवीरीते अवधारण करे के, (अन्नेखलुकामजोगा के०) निश्चे करी ए कामजोगादिक जेछे ते, महारा थकी अन्यछे जुदाछे. (अन्नोअहमंसि के०) हुं पण ए कामजोगथकी अन्यछुं जुदोछुं. जो एमछे तो, (सेकिमंगपुणवयं के०) ते शा अर्थें वली अमे (अन्नमन्नेहिंकामजोगेहिं मुच्छामो के०) अनित्य अशाश्वत एवा जे ए कामजोग, तेने विषे मूर्छा एटले ममत्व करियें, केमके एवुं ए ममत्व करवुं तेतो व्यर्थछे. (इतिसंखाएणंके०) एरीते कोइ महा सत्ववंत पुरुष ते कामजोगादिकने पूर्वोक्त रीते व्यर्थ जाणीने, (वयंचकामजोगेहिंविप्पजहिस्सामो के०) अमे ए कामजोगादिकनो त्याग करशुं. एवो अध्यवसाय करे ते महापुरुष जाणवो. वली अन्य बीजुं वैराग्यनुं कारण कहेछे. (सेमेहाविजाणेज्जा के०) ते पंमित एम जाणे जे,(बाहिरंगमेत्तं के०) ए नवविध परिग्रह तथा शब्दादिक विषय जे छे ते दुःखथकी राखनार नथी; एतो सर्व बाहिरंग संयोगि छे एटले बाह्यरूपछे, एवुं पंमित जाणेछे. ॥ ३७ ॥

॥ दीपिका-एतदेवाह । इह जवे खलु कामजोगान त्राणाय वा स्युः । पुरुषः प्राणी एकदा पूर्वं कामजोगान् त्यजति कामजोगावा एकदा कदाचित्पुरुषं त्यजंति । सचैवं जानाति अन्ये जिन्नाः खलु मत्तः कामजोगाएतेन्यश्च जिन्नोऽहं एवं सति वयमेतेषु अन्यनूतेषु कामजोगेषु मूर्छां कुर्मइत्येवं केचिन्महापुरुषाः परिसंख्याय सम्यक् ज्ञात्वा, कामजोगान् वयं विप्रजहिष्यामस्त्यक्ष्यामइत्यध्यवसायिनः स्युः । पुनर्वैराग्यकारणमाह । समेधावी एतत्क्षेत्रादिकं बाह्यांगं वर्ततइति जानीयात् ॥ ३७ ॥

॥ टीका-एतदेव लेशतोदर्शयति (इहखलुइत्यादि) इहास्मिन् । खलुवाक्यालंकारे । ते कामजोगाअत्यंतमन्यस्तान तस्य दुःखितस्य त्राणाय शरणाय वा जवंति । सुलालितानामपि कामजोगानां पर्यवसानं दर्शयितुमाह । (पुरिसेवाइत्यादि) पुरिशयनात्पुरुषः एकदा व्याध्युत्पत्तिकाले वाऽन्यस्मिन्वा राजाद्युपद्रवे तान्कामजोगान् परित्यजति । सवा पुरुषोद्रव्याद्यजावे

तैः कामनोगैर्विषयोन्मुखोपि त्यज्यते । सचैवमवधारयति अन्ये मत्तोनिन्नाः खल्वमी कामनोगास्तेन्यश्चान्योहमस्मि । तदेवं व्यवस्यिते “किमिति वयं पुनरेतेष्वनित्येषु परनूतेष्वन्येषु कामनोगेषु मूर्ग कुर्म” इत्येवं केचन महापुरुषाः परिसंख्याय सम्यक् ज्ञात्वा, कामनोगान्वयं विप्रजहिष्यामस्त्यक्ष्यामइत्येवमध्यवसायिनोनवंति । पुनरपरं वैराग्योत्पत्तिकारणमाह । (सेमेहावी) समेधावी श्रुतिकः एतज्ञानीयात् । यदेतत्क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णशब्दादिविषयादिकं डुःखपरित्राणाय न नवतीत्युपन्यस्तं तदेतद्वाह्यांतरं वर्तते ॥ ३७ ॥

इणमेव ठवणीयतरागं तं जहा मायामे पितामे नायामे नगिणीमे नज्ञामे पुत्तामे धूतामे पेसामे नन्नामे सुएहामे सुहामे पियामे सहामे सयणसंगथसंथुयामे एते खलु मम णायठ अहमवि एतेसिं एवं से मेहावि पुव्वमेव अप्पणाएवं समन्निजाणेज्जा इह खलु मम अन्नयरे डुक्के रोयातंके समुप्पज्जेज्जा अणिठे जाव डुक्के णोसुहे सेहंता नयंतारो णायठ इम मम अन्नयरं डुक्कं रोयातंकं परियाइयह अणिठं जाव णोसुहं ताहिं डुक्कामिवा सोयामिवा जाव परितप्पामिवा इमाठमे अन्नयरातो डुक्कातो रोयातंको परिमोएह अणिठाठ जाव णोसुहाठ एवमेव णोलह्र पुव्वं नवइ ॥ ३ए ॥ तेसिंवावि नयंताराणं मम णाययाणं अन्नयरे डुक्के रोयातंके समुपज्जेज्जा अणिठे जाव णोसुहं सेहंता अहमेतेसिं नयंताराणं णाययाणं इमं अन्नयरं डुक्कं रोयातंकं परियाइयामि अणिठं जाव णोसुहं मामे डुक्कंतुवा जाव मामे परितप्पंतुवा इमाठणं अन्नयराठ डुक्कातो रोयातंकाठ परिमोएमि अणिठाठ जाव णोसुहाठ एवमेव णोलह्रपुव्वं नवइ अन्नस्स डुक्कं अन्नोन परियाइयंति अन्नेन कडं अन्नो नोपडिसंवेदेंति॥ ४० ॥ पत्तेयं जायतियं पत्तेयं मरइ पत्तेयं चयइ पत्तेयं ठववज्जइ पत्तेयं ऊंऊा पत्तेयं सन्ना पत्तेयं मन्ना एवं विन्नू वेदणाइति खलु णातिसंजोगा णोताणाएवा णोसरणाएवा पुरिसेवा एगता पुव्विं णातिसंजोए विप्पजहंति णातिसंजोगावा एगता पुव्विं पुरिसं विप्पजहंति अन्ने खलु णातिसंजोगा अन्नो अहमंसि सेकिमंग पुणवयं अन्नमन्नेहिं णातिसंजोगेहिं मुच्चामो इति संखाएणं वयं णातिसंजोगं विप्पजहिस्सामो ॥ ४१ ॥

अर्थ-(इणमेवउवणीयतरागं के०) आ जे आगल कहेशे ते घणाज आसन्न ढुकडा व र्त्तेछे. (तंजहा के०) ते कहेछे. (मायामे के०) माता महारी. पिता महारो, नाइ म हारो, बहेन महारी,नार्या एटले स्त्री महारी,पुत्र महारा धूता एटले बेटी महारी, पेसा एटले दास महारा, (नत्तांमे के०) मित्र महारा सखाइ महारा, अथवा पोत्रा तथा न्यातमहारी (सुन्हामेके०) सुपा एटले पुत्रनी वहु महारी, (पियामेके०) प्रिय (सहामे के०) सखा (सुहामेके०) सुहृत् एटले सज्जन महारा, (सयणसंगथसंथुयामेके०) स्वजन संस्तुत श्वशुरकुलादिक पितरियादिक ए सर्व महारा,तथा जेनी साथे घणो आलाप संला प परिचय थाय ते सर्व महारा, (एतेखलुममणायउके०) ए सर्व निश्चे थकी महारा ज्ञाति ना घणाज ढूकडा संबंधीछे. अने (अहमवि के०) हुंपण (एतेसिं के०) एहोनो छुं ए मने उपकार करशे, हुं एने उपकार करीश. (एवं के०) एरीते (सेमेहावि के०) ते पंमित (पुव्वमेव के०) पूर्वें (अप्पणा के०) पोताना आत्माने विषे (एवंसमनि जाणेज्जा के०) एम समस्त प्रकारें जाणे मनमांहे विचारे जे, (इहखलुमम के०) आ नवने विषे निश्चे मुजने (अन्नयरे के०) अनेरो कोइ (डुक्केरोयांतकेसमुपज्जेज्जाअ णिछेज्जावडुक्केणोसुहे के०) डुःख शूलादिक असाध्य रोग अनिष्ट यावत् डुःख कारी, अने नथी जेमां लेशमात्र सुख एवा रोगादिक उपने थके तेवारे ते पुरुष ते डुःखे डुःखित छतो, (सेहंताके०) माता पितादिक ज्ञाति गोत्री स्वजनादिकने प्रार्थना करे के, (नयंतारोके०) अहो नय थकी राखनारा एवा (णायउ के०) ज्ञाति गोत्रीउ ! (इम के०) एम (म म के०) मने (अन्नयरं के०) अनेरो डुःख रोगातंक शूलादिक उपनुंछे ते तमो वहें ची ल्यो. केमके ए अनिष्टकारी ज्यांसुधि लवलेश मात्र सुख नही (तहिंडुक्कामिवा के०) तेवा डुःखे करी अत्यंत डुखीछुं सोचुछुं, यावत् पीडा अनुनवुंछुं. (इमाउणंअन्न यरातोडुक्कातो के०) एमज अनेरे डुःखे अत्यंत डुःखीछुं, शोक परिताप पीडा अनुनवुं छुं, ते कारणे ए डुःक तथा रोग आंतक थकी मुजने (परिमोएह के०) मूकावो. प रंतु अनिष्टकारी ज्यांसुधि जेमांहे लेश मात्र सुख नथी एवा डुःख थकी मूकाववाने (एवमेवणो लद्धपुव्वंनवइके०) एरीते ते अर्थ मागतो लीये नही एटले ते डुःखने वहेंचीलीये नही; अर्थात् ते ज्ञाती, गोत्री, तेने डुःख थकी मूकववाने समर्थ नथाय. ॥३ण॥ (तेसिंवावि नयंताराणं के०) अथवा ते नयथकी राखनारा एवा जे (ममणाययाणं के०) महा रा ज्ञाति, गोत्री. तेने पण अनेरो कोइएक डुःख रोगांतक उपजे ते केवो उपजे तोके अनिष्टकारी यावत् नथी जेमां लेशमात्र सुख एवो रोग उपने थके हुंपण ते नयथकी राखनार थइश ज्ञाती गोत्रीयोनो डुःख रोगातंक वहेची लइश, कारणके तेवा अनिष्टकारी जेमांहे लेशमात्र सुख नथी एवा डुःख थकी महारा ज्ञाती गोत्री डुःखी थाय यावत्

महारा ज्ञाति विशेषे पीडा अनुनवे माटे एने पण अनेरा कोइ डुःख थकी, रोगातंक थकी, मुकावशुं. एवुं यद्यपि ते पोताना मन मांहे जाणे परंतु ते अनिष्टकारी जेमां लेश मात्र सुख नथी एवा डुःख ते ज्ञाती गोत्रीने उपने थके ते मांहेथी वहेंची नशके, एट ले तेमनु डुःख पोते लइ शके नही कारणके, (अन्नस्सडुरकंअन्नोनपरियाइयंति के०) अनेरानुं डुःख अनेरो वहेंची लइ शके नही, एटले एकनुं डुःख बीजो वहेंची लइ शके नही. (अन्नेनकडं के०) अनेरानुं करेलुं कर्म (अन्नोनोपडिसेवेदेंति के०) अनेरो नो गवे नही. जेणे जे कीधुं होय ते तेहिज नोगवे ॥४०॥ (पत्तेयंजायतियंके०) जीव प्रत्येक प्रत्येक उपजेछे. (पत्तेयंमरइ के०) प्रत्येक प्रत्येक मरण पामेछे. (पत्तेयंचयइ के०) प्रत्येक प्रत्येक धन धान्यादिक ने गंमेछे. (पत्तेयंउववज्जइ के०) प्रत्येक प्रत्येक उपार्ज न करेछे संग्रहेछे. (पत्तेयंऊंऊा के०) प्रत्येक प्रत्येक ऊंऊायक कलह लहेछे. (पत्तेयंसन्ना के०) प्रत्येक प्रत्येकने संज्ञा एटले पदार्थनुं परिज्ञानछे, ते कोइएकने अल्पछे, कोइएकने घणुंछे. एम तरतम योग ज्ञान उपजेछे. (पत्तेयंमन्ना के०) प्रत्येक प्रत्येक चित्तनो चिं तवनछे. (एवंविन्नूवेदणाइतिके०) एरीते विन्नू एटले जाणवुं. प्रत्येक प्रत्येक सुख डुः खरूप वेदनानो अनुनव थायछे, एतावता एकनुं करेलुं बीजो न नोगवे. (एवं के०) ए कारणे खलु इति निश्चे (णातिसंजोगा के०) ज्ञातिनो जे संयोगछे ते जीवने (णोता णाएवा के०) त्राण नणी नथाय. (णोसरणाएवा के०) जीवने शरण नणी न थाय. (पुरिसेवाएगतापुव्विंणातिसंजोएविप्पजहंति के०) एकदा प्रस्तावे ज्ञाति संयोगने ते पु रुष प्रथम गंमे. (णातिसंजोगावाएगतापुव्विंपुरिसंविप्पजहंति के०) अथवा एकदा प्र स्तावे ज्ञाति संयोग ते पुरुषने प्रथमथीज गंमे ते कारणे, (अन्नेखलुणातिसंजोगाके०) निश्चे ए ज्ञातिना संयोग जे छे, ते मुज थकी अन्यछे. (अन्नोअहमंसि के०) अने हुं एना थकी अन्यछुं एटले जुदोछुं जो एमछे तोपण (सेकिमंगपुणवयंके०) किशोर कोमल वचने करी वली अम्हे ते (अनमन्नेहिं के०) माहो मांहे (णातिसंयोगेहिं के०) ज्ञाति ना संयोग साथे (मुछामो के०) मूर्छा कीधीछे. ते मूर्छा करवी योग्य नथी (इतिसंखा एणं के०) एवुं जाणीने (वयंणातिसंजोगंविप्पजहिस्सामो के०) अमे ज्ञाति संयोग गंमशुं. एवो अध्यवसाय जेनो होय तेने पंमित जाणवो. ॥४१॥

॥ दीपिका–इदमेव च वक्ष्यमाणमुपनीततरमासन्नतरं वर्तते । तद्यथा । माता, पिता, त्राता, नगिनी, नार्या, पुत्रः, सुता, स्नुषा, प्रियः, सखा सुहृत्, इत्यादि ज्ञातयः पूर्वापरसंस्तुताएते खलु ज्ञातयोममोपकाराय नविष्यंति अहमप्येतेषां ज्ञातीनामुपकरि ष्यामीत्येवं समेधावी पूर्वमेवात्मना एवं समनिजानीयाद्विचारयेत् । इह नवे ममानिष्टा

द्विविशेषणोडुःखातंकः समुत्पद्यते, ततोऽसौ तद्दुःखडुखितोज्ञातीन् एवमन्यर्थयेत्। यथा ममान्यतरं दुःखमुत्पन्नं परिगृएहीत यूयं अहमनेनोत्पन्नेन डुःखातंकेन पीडयिष्यामीति ततोऽस्माद्दुःखान्मां परिमोचयत यूयमिति॥३ए॥इदं सर्वं प्राग्वत् योज्यं। यावदेवं नोपलब्ध पूर्वं नवति। यतः अन्यस्य डुःखमन्योन पर्याददाति न गृएहाति अन्येन कृतं कर्म अन्यो न प्रतिसंवेदयति नानुनवति ॥ ४० ॥ यतःयस्मात्प्रत्येकं जीवोजायते, प्रत्येकं म्रियते, प्रत्येकं त्यजति परिग्रहं प्रत्येकमुत्पद्यते । यडुक्तं । एकस्य जन्ममरणे, गतयश्च शुनाशु नानवावर्त्ते ॥ तस्मादाकालिकहितमेकेनैवात्मनः कार्यं ॥ १ ॥ तथा प्रत्येकं ऊंऊा कल हः । तद्ग्रहणात्कषायाग्रह्यंते प्रत्येकमेव जीवानां कषायोदयः स्यादित्यर्थः । संज्ञापदा र्थपरिछित्तिः सापि प्रत्येकं (मन्नत्ति) मननं चिंतनं पर्यालोचनमिति यावत् । प्रत्येकमे व विद्वान् प्रत्येकं वेदनाः (इतिखलुत्ति) इति पूर्वोक्तप्रकारेण खलु अमी ज्ञातिसंयोगा न त्राणाय न शरणाय। उत्पन्नपीडार्तिनिवारणं त्राणं, अनागतार्तिसंरक्षणं शरणं । यतः पुरुषएकदा ज्ञातिसंयोगान् विप्रजहाति, ज्ञातिसंयोगावा पुरुषं परित्यजंति तस्मादन्ये ज्ञा तिसंयोगाअहमन्योस्मीति नावनीयं । एवं सति किमिति पुनर्वयमन्यैरन्यैर्ज्ञातिसंयोगे मूर्छां कुर्मः । मूर्छाकरणं न युक्तमित्यर्थः। इति संख्याय ज्ञात्वा, वयं "ज्ञातिसंयोगान् त्य क्ष्यामः परिहरिष्याम" इति कृताध्यवसायाज्ञानतत्त्वाः स्युः ॥ ४१ ॥

॥ टीका—इदमेव चान्य द्वक्ष्यमाणमुपनीततरमापन्नतरं वर्तते। तद्यथा। माता, पिता, भ्रा ता, नगिनीत्यादयोज्ञातयः पूर्वापरसंस्तुताएते खलु ममोपकाराय ज्ञातयोनविष्यंति, अह म"प्येतेषांस्नानन्नोजनादिनोपकरिष्यामी" त्येवं समेधावीपूर्वमेवात्मे नैवंसमन्निजानीयादि त्यादि।एवं पर्यालोचयेत्कल्पितवानिति वा।एतदध्यवसायी चासौ स्यादिति दर्शयितुमाह। (इहखलुइत्यादि) इहास्मिन्नवे मम वर्तमानस्यानिष्टादिविशेषणविशिष्टोडुःखातंकः स मुत्पद्येत ततोऽसौ तद्दुःखडुःखितोजानीते । तमेवमन्यर्थयेत् । तद्यथा । ममान्यतरं डुःखातंकमुत्पन्नं परिगृएहीत यूयमहमनेनोत्पन्नेन डुःखातंकेन पीडयिष्यामीत्यतोमुष्मान्मां परिमोचयत यूयमिति। नचैतत्तेन डुःखितेन लब्धपूर्वं नवति नहि ताज्ञातयस्तं डुःखान्मोच यितुमलमितिन्नावः॥३ए॥ नासौ तेषां डुःखमोचनायालमिति दर्शयितुमाह. (तेसिंवावीत्या दि) सर्वं प्राग्वद्योजनीयं यावदेवमेव नो लब्धपूर्वं नवतीति । किमित्येवं नोपलब्धपूर्वं नवतीत्याह । (अएस्सडुःखमित्यादि) सर्वस्यैव संसारोदरविवरवर्तिनोऽसुमतः स्वकृतक र्मोदयाद्दुःखमुत्पद्यते तदन्यस्य संबंधि डुःखमन्योमातापित्रादिकोनप्रत्यापिधत्ते न तस्मा त्पुत्रादेर्डुःखेनासह्येनात्यंतपीडिताःस्वजनाः नापि डुःखमात्मनि कर्तुमलं । किमित्येवमा शंक्याह । (असोपकडमित्यादि) अन्येन जंतुना कषायवशगेन इंद्रियानुकूलतयाऽनिला

षिणा ज्ञानावृतेन मोहोदयवर्तिना यत्कृतं कर्म तडुदयमन्यः प्राणी नोप्रतिसंवेदय ति, नानुनवति तदनुनवने ह्यकृतागमकृतनाशौ स्यातां । नचेमौ युक्तिसंगतावतोयद्येन कृतं तत्सर्वं सएवानुनवति । तथाचोक्तं । परकृतकर्मणि यस्मान्नाक्रामति संक्रमोविन्ना गोवा ॥ तस्मात्सत्वानां कर्म यस्य यत्तेन तद्वेद्यं ॥१॥४०॥ यस्मात्स्वकृतकर्मफलेश्वराजंतव स्तस्मात्तदेतन्नवतीत्याह । (पत्तेयमित्यादि) एकमेकं प्रत्येकं सर्वोप्यसुमान् जायते, त था क्षीणे चायुषि प्रत्येकमेव म्रियते । उक्तंच । एकस्य जन्ममरणे, गतयश्च शुनाशुना नवावर्ते ॥ । तस्मादाकालिकहितमेकेनैवात्मनः कार्यमिति ॥१॥ तथा प्रत्येकं क्षेत्रवस्तु हिरण्यसुवर्णादिकं परिग्रहं शब्दादींश्च विषयान्मातापितृकलत्रादिकं च त्यजति, यथा प्रत्ये कमुपपद्यते युज्यते, परिग्रहस्वीकरणतया तथा प्रत्येकं ऊंऊाकलहस्तद्ग्रहणात्कषायाः प रिगृह्यंते । ततः प्रत्येकमेवासुमतां मंदतीव्रतया कषायोद्भवोनवति । तथा संज्ञानं संज्ञा पदार्थपरिछित्तिः । सापि मंदमंदतरपटुपटुतरनेदात्प्रत्येकमेवोपजायते । सर्वज्ञादारतस्तरत मयोगेन मतेर्व्यवस्थितत्वात् । तथा प्रत्येकमेव । (मन्नत्ति) मननं चिंतनं पर्यालोचन मिति यावत् । तथा प्रत्येकमेव (विन्नुत्ति) विद्वांस्तथा प्रत्येकमेव सातासातरूपवेद ना सुखडुःखानुनवः । उपसंजिघृक्षुराह । (इतिखलुइत्यादि) इत्येवं पूर्वोक्तेन प्रकारे ण यतोनान्येन कृतमन्यः प्रतिसंवेदयते प्रत्येकं जातिजरामरणादिकं । ततः खल्वमी ज्ञा तिसंयोगाः स्वजनसंबंधाः संसारचक्रवाले पर्यटतोत्यंतपीडितस्य तडुद्धरणेन त्राणाय न त्राणं कुर्वंति, नाप्यनागतसंरक्षणतः शरणाय नवंति । किमिति । यतः पुरुषएकदा क्रो धोदयादिकाले ज्ञातिसंयोगान् विप्रजहाति परित्यजति, स्वजनाश्च न बांधवाइति व्यवहा रदर्शनात् ज्ञातिसंयोगादेकदा तदसदाचारदर्शनतः पूर्वमेव तं पुरुषं परित्यजंति स्वसंबं धाडुत्तारयंति । तदेवं व्यवस्थिते एतन्नावयेत्तद्यथान्ये खल्वमी ज्ञातिसंयोगामत्तोनिन्ना एन्यश्चान्योहमस्मि । तदेवं व्यवस्थिते किमिति पुनर्वयमन्यैरन्यैर्ज्ञातिसंयोगैर्मूर्छां कु र्मोन तेषु मूर्छा क्रियमाणा न्याय्यैवं संख्याय ज्ञात्वा, प्रत्याकलय्य वयमुत्पन्नवैराग्याज्ञाति संयोगांस्त्यक्ष्यामइत्येवं कृताध्यवसायिनोविदितवेद्यानवंतीति ॥ ४१ ॥

से मेहावि जाणेज्जा बाहिरंगमेयं इणमेव उवणियतरागं तं जहा हत्रामे पा यामे बाहामे ऊरूमे उदरंमे सीसंमे सीलम्मे आउमे बलंमे वन्नोमे तयामे छायामे सोयंमे चक्खूमे घाणंमे जिप्नामे फासामे ममाइज्जंसि वयाउपडि जूरइ तंजहा आउउ बलाउ वन्नाउ तयाउ गयाउ सोयाउ जाव फा साउ सुसंधिता संधीविसंधी नवइ बलितरंगेगाए नवइ किण्हा केसा प लिया नवंति तंजहा जंपियं इमं सरीरगं उरालं आहारोवइयं एयंपिय

अणुपुव्वेणं विप्पजहियव्वं नविस्सति एयं संखाए सेभिक्खू भिक्खायरियाए स मुठिए डहतो लोगं जाणेज्जा तं जीवाचेव अजीवाचेव तसाचेव थावराचेव॥४३॥

अर्थ–हवे वली बीजुं विशेष वैराग्यनुं कारण कहेछे. (सेमेहाविजाणेज्जाबाहिरंग मेयं के०) ते पंमित एवुं जाणेजे ए आगल कहेशे ते सर्व बाह्यछे. ए स्वजनादिक सर्वे बाह्यछे. एवुं पूर्वे कह्युं; वली (इणमेव के०) ए थकी (उवणीयतरागंके०) आसन ढुकडां एटले घणा नजीक जे छे (तंजहा के०) ते देखाडेछे. (हत्थामे के०) हाथ महारा अशोक पल्लव सरखा अनेक शत्रुउना विनाश करनार, तथा स्वजन जनोना मनोरथ पूरणहार, एवा हस्त बीजाना नथी एम चिंतवना करे. (पायामे के०) पग महारा काछवा सरखा उंचा, तथा पद्म जेवा सुंवालाछे. एवा बीजाना नथी (बाहामे के०) तथा बाहू महारा नोगल समान अनेक शत्रुना विनाश करनाराछे. एवा बीजाना नथी (ऊरूमे के०) साथल महारा केलना गर्न समानछे (उदरंमे के०) पेट महारुं अत्यंत सुवालुं माछला समानछे. (सीसंमे के०) मस्तक महारुं अत्यंत सुंदरछे. (सीलम्मे के०) आचार महारो बहुज रूडोछे. (आउमेके०) आयुष्य महारुं सबलछे एटले घणुंछे. (बलंमे के०) शरीरनुं बल महारुं घणुंछे. (वस्रोमेके०) वर्ण महारो गौर छे. (तयामे के०) त्वचा महारी शीघ्रछे. (छायामे के०) कांती महारी सुंदर छे. (सोयंमे के०) श्रोत्र एटले कान महारा नलाछे. (चक्खूमे के०) चक्षु महारी निर्मलछे. (घाणंमे के०) नासिका महारी नली तीक्ष्ण छे (जिप्नामे के०) जिव्हा महारी रुडीछे. (फासामेके०) स्पर्शेंद्रिय महारी सुंदरछे. (ममातिक्कंति के०) एटला ए वाना महारा घणाज सारांछे एवी शरीरनी ममता करे के, जेवा महारा शरीरना अवयव छे तेवा बीजाना नथी एम जाणे. (वयाउपडिजूरन्ति के०) परंतु ते हस्तादिक शरीरना अवयव जे छे ते केवाछे तोके, वयना परिणाम थकीज जीर्ण थायछे. ते जीर्ण थवाथी ते प्राणी पूर्वोक्त सुंदर अवयवो थकी त्रष्ट थाय (तंजहा के०) जे थकी त्रष्ट थाय तेना नाम कहेछे. आयुष्य थकी, बल थकी, वर्ण थकी, त्वचा थकी, कांति थकी, श्रोत्र एटले कान थकी, यावत् स्पर्शेंद्रियादिक पांचेइंद्रिय थकी, उछुं थाय. (सुसंधितासंधीविसंधीनवइके०) जेरुडी रीते जानुं कूर्प्परादिकनी संधि मलीछे ते विसंधि एटले विपरित संधि थाय. (वलितरंगेगाएनवंतिके०) शरीर सर्व वलियां रूप तरंग तेणे करी आकुल थाय, शरीर एवुं थाय जे,पोतानेज उद्वेग करे तो पछी बीजाने उद्वेग करे तेमां केवुंजद्युं? (किएहाकेसापलियानवंति के०) काला केशछे ते सपेत थाय. (तंजहाके०) ते कहेछे किंबहुना (जंपियंइमंसरीरगं के०) जे ए शरीर सारुं मनोहर (उरालंआहारोवइयं के०) उदा

र रुडा आहारें करी वृद्धिने पमाड्युं. (एयंपियं के०) एने पण (अणुपुव्वेणं के०) अ नुक्रमे वयने परिणामे (विप्पजहियवं‍जविस्सति के०) छांमवुं थशे. (एयंसंरकाए के०) एवुं जाणीने (सेनिरकू के०) ते साधु पंमित समस्त धन धान्यादिक बाह्य परिग्रह छांमीने तथा राग द्वेषादिक अंतरंग परिग्रह छांमीने (निरकायरियाएसमुठिए के०) निक्षाचर्याने विषे सावधान थाय. (डुहउलोगंजाणेज्जा के०) ते साधु बे प्रकारे लोक ने जाणे (तंके०) ते बे प्रकार कहेछे. (जीवाचेवके०) एक जीवते जीवास्तिकाय प्राणि मात्र जाणवा. बीजो (अजीवाचेव के०) धर्मास्तिकायादिक पांचद्रव्य अजीव जाण वा. हवे ए निक्षु चारित्रियाने दया जाणवाने अर्थे जीवना नेद कहेछे. (तसाचेवथाव राचेव के०) एक त्रस ते बेइंद्रियादिक जाणवा. बीजा स्थावरते पृथ्वी कायादिक जाण वा ते वली सूक्ष्म बादर पर्याप्ता अपर्याप्ताना नेदेंकरी घणा प्रकारें जाणवा. ॥ ४२ ॥

॥ दीपिका—वैराग्योत्पत्तिकारणमेवाह । समेधावी जानीयात् । तद्यथा । बाह्यतरमे तत् यज्ज्ञातिसंबंधनं इदमन्यडुपनीततरमासन्नतरं ज्ञातिन्यः शरीरावयवानामासन्नतरत्वा त् । तद्यथा । हस्तौमे मनोहरौ एवं पादौ बाहू करू शीर्षमुदरमायुर्बलं वर्णस्त्वक् छा या श्रोत्रं चक्षुर्घ्राणं जिह्वास्पर्शइति सर्वं ममाति ममीकरोति. यादृङ् मे,न तादृगन्यस्येति नावः । एतच्च हस्तपादादिकं वयसः परिणामात्. (परिजूरइत्ति) परिजीर्णतां यांति। तद्यथा। आयुषः सकाशाद्धीयते बलात् वर्णात् त्वचश्छायातः श्रोत्रात् यावत्स्पर्शाद्धीयते । अ त्रच सनत्कुमारचक्रिदृष्टांतोवाच्यः । शरीरे हीयमाने श्रोत्रादीनींद्रियाण्यपि हीयंते । य डुक्तं । बाल्यं वृद्धिर्वयोमेधा,त्वक्चक्षुःशुक्रविक्रमाः ॥ दशकेषु निवर्तंते मनः सर्वेंद्रियाणि च । तथा सुसंधितः सुबद्धः संधिर्जानुकूर्परादिकोविसंधिर्नवति। गात्रं शरीरं वलितरंगा कुलं शिराजालवेष्टितं नवति । यतः । वलिसंततमस्थिशेषितं,शिथिलस्नायुवृतं कलेवरं॥ स्वयमेव पुमान् जुगुप्सते किमुकांताः कमनीयविग्रहाइति । तथा कृष्णाः केशाः पलिताः श्वेताः स्युः । यदपीदं शरीरमुदारं शोननं विशिष्टाहारोपचितं एतदपि मयाऽवश्यं वि प्रहातव्यं त्यक्तव्यं नविष्यति इत्यवगम्य संसारासारतां संख्याय ज्ञात्वा सनिक्षुर्निक्षाच र्यायां समुत्थितः सन् द्विधा लोकं जानीयात् । तद्यथा । जीवाअजीवाश्च । जीवाद्विवि धाः त्रसाः स्थावराश्च । एतेषामुपरि बहुधा व्यापारः प्रवर्तते ॥ ४२ ॥

॥ टीका—सांप्रतमन्येन प्रकारेण वैराग्योत्पत्तिकारणमाह । (समेहावीत्यादि) सश्रु तिकएतद्वक्ष्यमाणं जानीयात् । तद्यथा । बाह्यतरमेतद्यज्ज्ञातिसंबंधनमिदमेवान्यडुपनी ततरमासन्नतरं शरीरावयवानां निन्नज्ञातिन्यआसन्नतरत्वात् । यथा हस्तौ ममाशोकप

त्वसदृशौ तथा भुजौ करिकराऽकारौ परपुरंजयौ प्रणयिजनमनोरथपूरकौ शत्रुशतजीवितांतकरौ यथा मम न तथान्यस्य कस्यापीत्येवं पादावपि पद्मगर्भसुकुमारावित्यादि सुगमं । यावत्स्पर्शाः स्पर्शनेंद्रियं ममाति ममीकरोति । यादृङ् मे, न तादृगन्यस्येति नावः । एतच्च हस्तपादादिकं स्पर्शनेंद्रियपर्यवसानं शरीरावयवसंबंधित्वेन विवक्षितं यत्किमपि वयसः परिणामात्कालकृतावस्थाविशेषात् (परिजूरइत्ति) जीर्णतां यांति प्रतिक्षणं विशरारुतां याति तस्मिंश्च प्रतिशरीरं विशीर्यति शरीरे प्रतिसमयमसौ प्राणी एतस्माद्भ्रश्यते । तद्यथा । आयुषः पूर्वनिबद्धात्समयादिहान्याऽपचीयते आवीचीमरणाभ्युपगमात् । तथा बलादपचीयते तथा वयसोयौवनावस्थायाश्चवमाने शरीरे प्रतिक्षणं शिथिलीभवत्सु संधिबंधनेषु बलादवश्यं भ्रश्यते । तथा वर्णात्त्वचश्छायातोऽपचीयते तत्र च सनत्कुमारदृष्टांतोवाच्यः तथा जीर्यति शरीरे श्रोत्रादीनींद्रियाणि सम्यक् स्वविषयं परिछेत्तुमलं । तथाचोक्तं । बाल्यं वृद्धिर्वयोमेधा, त्वक्चक्षुःशुक्रविक्रमाः ॥ दशकेषु निवर्तंते मनः सर्वेंद्रियाणि च ॥ १ ॥ विशिष्टवयोहान्या सुसंधितः सुबद्धः संधिर्जानुकूर्परादिकोविसंधिर्भवति विगलितबंधनोभवतीत्यर्थः । तथा वलितरंगाकुलं सर्वतः शिराजालवेष्टितमात्मनोपि शरीरमिदमुद्वेगकृद्भवति किंपुनरन्येषां । तथाचोक्तं । वलिसंततमस्थिशेषितं शिथिलस्नायुवृतं कलेवरं ॥ स्वयमेव पुमान् जुगुप्सते, किमु कांताः कमनीयविग्रहाः ॥ १ ॥ तथा कृष्णाः केशावयःपरिणामे जलप्रक्षालिताधवलतां प्रतिपद्यंते । तदेवं वयःपरिणामापादितसन्मतिरेतद्भावयेत् । तद्यथा । यदपीदं शरीरमुदारं शोभनावयवरूपोपेतं विशिष्टाहारोपचितमेतदपि मयावश्यं प्रतिक्षणं विशीर्यमाणमायुषः क्षये विप्रहातव्यं भविष्यतीत्येतदवगम्य शरीरानित्यतया संसारासारतां संख्यायावगम्य परित्यक्तसमस्तगृहप्रपंचो निष्किंचनतामुपगम्य सभिक्षुर्देहदीर्घसंयमयात्रार्थं भिक्षाचर्यायां समुत्थितः सन् द्विधा लोकं जानीयादिति । तदेव लोकद्वैविध्यं दर्शयितुकामआह । तद्यथा । जीवाश्च प्राणधारणात्तद्विपरिताश्चाजीवाधर्माधर्माकाशादयः । तत्र तस्य भिक्षोरहिंसाप्रसिद्धये जीवान् विभागेन दर्शयितुमाह । जीवाअप्युपयोगलक्षणा द्विधा । तद्यथा । त्रस्यंतीति त्रसाद्वींद्रियादयः तथा तिष्टंतीति स्थावराः पृथिवीकायादयः । तेपि सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकादिभेदेन बहुधाऽष्टव्याः । एतेषु चोपरि बहुधा व्यापारः प्रवर्तते ॥ ४२ ॥

इह खलु गारत्था सारंभा सपरिग्गहिया संतेगतिया समणा माहणावि सारंभा सपरिग्गहावि जेइमे तसा थावरा पाणा ते सयं समारभंति अन्नेणावि समारंभावेंति अन्नंपि समारभं तं समणुजाणंति ॥ ४३ ॥ इह खलु गारत्था सारंभा सपरिग्गहा संतेगतिया समणा माहणावि सा

रंन्ना सपरिग्गहा जेइमे कामन्नोगा सचित्तावा अचित्तावा ते सयं परिगिएहंति अन्नेणवि परिगिएहावेंति अन्नंपि परिगिएहंतं समणुजाणंति ॥ ४४ ॥ इह खलु गारह्वा सारंन्ना सपरिग्गहा संते गतिया समणा माहणावि सारंन्ना सपरिग्गहा अहं खलु अणारंन्ने अपरिग्गहे जे खलु गारह्वा सारंन्ना सपरिग्गहा संतेगतिया समणा माहणावि सारंन्ना सपरिग्गहा एते चेव निस्साए बंन्नचेरंवा संवसिस्सामो कस्सणं तं हेउं जहा पुव्वं तहा अवरं जहा अवरं तहा पुव्वं अंजू एते अणुवरया अणुवह्रिया पुणरवि तारिसगा चेव ॥ ४५ ॥

अर्थ—हवे ए जीवोना उपमर्दक देखाडेछे. (इहखलु के०) आ संसारने विषे निश्चें थकी (गारह्वासारंन्ना के०) ग्रहस्थ जेछे ते सारंन्नी, तथा (सपरिग्गहिया के०) सपरिग्रहिया जाणवा. (संतेगतियासमणामाहणावि के०) तथा कोइ एक श्रमण अने ब्राह्मणछे तेपण (सारंन्नासपरिग्गहावि के०) सारंन्नी अने सपरिग्रहीछे. ते सारंन्नी सपरिग्रही केवाछे ते कहेछे. (जेइमेतसाथावरापाणा के०) जे कोइ ए त्रस अने स्थावर प्राणीछे (तेसयंसमारन्नंति के०) तेनो स्वयं पोते समारंन्न करेछे (अन्नेणाविसमारंन्नावेंति के०) अन्य बीजापासें आरंन्न करावेछे (अस्संपिसमारन्नंतंसमणुजाणंति के०) बीजो कोइ आरंन्न करतो होय तेने अनुमोदन आपेछे. ॥४३॥ हवे ए सारंन्नी सपरिग्रहिने प्राणातिपात देखाडीने न्नोगांगन्नूत परिग्रह देखाडेछे. अंही इहखलु इत्यादिकनो अर्थ लखेछे. आ जगत् मांहे निश्चे थकी ग्रहस्थ सारंन्नी सपरिग्रही होयछे अने कोइएक श्रमण ब्राह्मण पण सारंन्नी सपरिग्रहीछे. (जेइमेकामन्नोगासचित्तावाअचित्तावाके०) जे ते स्त्रियादिकना न्नोगने अर्थें पुष्प, चंदन, गीत, वाजित्रादिक करावे ते सचित्त अने अचित्त परिग्रह जाणवो. (तेसयंपरिगिएहंतिके०) ते स्वयं पोते कामन्नोगना अर्थी थका सचित्ताचित्तरूप परिग्रह अंगीकार करे. (अन्नेणविपरिग्गिएहावेंतिके०) बीजा पासें परिग्रहावे. (अन्नंपिपरिग्गिएहंतंसमणुजाणंतिके०) बीजोजे परिग्रहे तेने अनुमोदन आपे. ॥ ४४ ॥ एम आ जगत् मां ग्रहस्थ सारंन्नी सपरिग्रहीछे अने केटलाएक श्रमण ब्राह्मण पण सारंन्नी सपरिग्रही छे एवुं जाणीने निक्षु चारित्रिउ एवुं चिंतवे जे (अहं के०) हुं खलु इति निश्चें निरारंन्नी निःपरिग्रहीछुं. तो जे ए ग्रहस्थ तथा श्रमण ब्राह्मण सारंन्नी सपरिग्रहीछे एनी निश्रायें अमे ब्रह्मचर्य आदरशुं एतावता निरारंन्न निःपरिग्रही थका धर्माधारन्नूत देहने प्रतिपालवा निमित्ते आहारादिकने अर्थें सारंन्नी सपरिग्रही एवा ग्रहस्थनी निश्रायें

प्रवर्ज्या पालवुं इत्यर्थः । (कस्सणंतंहेउं के०) वली तेनी निश्रायें विचरवुं ते नुं कारण शुं? एवा संदेहें शिष्यें पूछे थके तदनंतर आचार्य ते शिष्यनो अनि प्राय जाणीने तेने उत्तर आपेछे. (जहापुवंतहाअवरं के०) जेम गृहस्थने सारं नि सपरिग्रही पणु प्रथम होय तेम पछी पण होय. (जहाअवरंतहापुवं के०) अने कोइ एकश्रमण ब्राह्मण पण गृहस्थने नावें होय तेवारे सारंनि सपरिग्रही होय तेमज पछी प्रवर्ज्याना अवसरे पण तेवाज सारंनी सपरिग्रही थका वर्त्ते तो ते पण गृहस्थ सरखाज जाणवा केमके जेम पछी प्रवर्ज्याने अवसरेछे तेम प्रथम गृहस्थने नावे पण तेवाज ह ता. ए कारणे निरारंनि थका चारित्रियायें सारंनिनो आश्रय ग्रहण करवो जेम ए गृह स्थ सारंनि सपरिग्रही प्रत्यक्ष देखायछे तेम देखाडेछे. (अंजूएतेअणुवरयाअणुवहिया के०) ए वात प्रगट पणेछे के ए गृहस्थादिक सावद्यानुष्ठान थकी अनुपरत एटले नि वर्त्या नथी जे कारण माटे ते सारंनी, सपरिग्रही प्रत्यक्ष पणेछे. अने जे कोइ चारित्र ल हिने पछी सावद्यानुष्ठानने विषे प्रवर्त्ते. आधाकर्मादिक आहार लिये तेपण (पुणरवि के०) वली पण (तारिसगाचेवके०) तादृश तेवाज जाणवा. जेम पछी प्रवर्ज्याने अव सरे वर्त्तेछे तेम प्रथम गृहस्थने नावे पण वर्त्तता हता ॥ ४५ ॥

॥ दीपिका—तमेवाह । इह संसारे खलु गृहस्थाः सारंनाः सपरिग्रहाः संति विद्यंते। एके केचन श्रमणाः शाक्यादयोब्राह्मणाश्च सारंनाः सपरिग्रहाः । यतोयइमे त्रसाः स्था वराः प्राणिनएतान् स्वयं समारन्नंते अन्यांश्च समारंनयंति समारंनं कुर्वतश्चान्यान् सम नुजानंति ॥४३॥ एवं प्राणातिपातं प्रदर्श्य परिग्रहमाह । इह खलु गृहस्थाः सारंनाः सप रिग्रहाः संति श्रमणाब्राह्मणाअपि तादृशाः । यइमे कामनोगाः कामाः स्त्रीसंगादयो नोगाः स्रक्चंदनगीतादयः । एते सचित्ताअचित्तावा तान् स्वयं परिगृह्णंति अन्यान् प रिग्राहयंति परंच परिगृह्णंतं समनुजानंति ॥४४॥ उपसंहारमाह । इह खलु गृहस्थाः श्रम णाब्राह्मणाश्च सारंनाः सपरिग्रहाइति ज्ञात्वा नित्क्षुरेवं चिंतयेत्. अहमेव खलु अनारं नोऽपरिग्रहश्च । ये चामी गृहस्थादयः सारंनाः सपरिग्रहास्तदेतन्निश्रयाब्रह्मचर्यं श्राम ण्यं वत्स्यामआचरिष्यामोऽनारंनाअपरिग्रहाः संतोधर्माधारदेहधारणार्थमाहारादिकृते सारंनसपरिग्रहगृहस्थनिश्रयां प्रव्रज्यां करिष्यामइत्यर्थः । शिष्यः प्राह । कस्य हेतोर्गृह स्थस्य श्रमणादिनिश्राकरणं? आचार्यआह । यथा पूर्वमादौ सारंनपरिग्रहत्वं तेषां तथा पश्चादपि सर्वकालमपि गृहस्थाः सारंनादिदोपडुष्टाः श्रमणाश्च पूर्वं गृहस्थत्वे सारंनास्त था परस्मिन्नपि प्रव्रज्याकाले तथाविधाएव ते यथा परमपरस्मिन् प्रव्रज्याकाले तथा पूर्वं गृहस्थत्वेपीति । ततः साधुनिरनारंनैः सारंनाश्रयणं कार्यं । गृहस्थासारंनत्वमाह (अंजू

इति) व्यक्तमिदं ये गृहस्थाः सावद्यादनुपस्थिताअनुद्यताः । येपि शाक्यादयः प्रव्रजिता स्तेप्युद्दिष्टनोजित्वात्सावद्यानुष्ठानपरत्वात्पुनरपि तादृशाएव गृहस्थतुल्याएव ॥ ४५ ॥

॥ टीका—सांप्रतं तडुपमर्दकव्यापारकर्तॄन् दर्शयन्नाह । (इहखलुइत्यादि) इहास्मिन्संसारे । खलुवाक्यालंकारे । गृहमागारं तत्र तिष्ठंतीति गृहस्थास्तेच सहारंनेण जीवोपमर्दकारिणा वर्तंते सारंनास्तथा सहपरिग्रहेण द्विपचतुष्पदधनधान्यादिना वर्ततइति सपरिग्रहाः । न केवलं तएवान्येपि संति विद्यंते एके केचन श्रमणाः शाक्यादयस्तेच पचनपाचनाद्यनुमतेः सारंनादास्यादिपरिग्रहाच्च सपरिग्रहास्तथा ब्राह्मणाश्चैवंविधाएव । एतेषां च सारंनकत्वं स्पष्टतरं सूत्रेणैव दर्शयति । यइमे प्राग्वर्णितास्त्रसाः स्थावराश्च प्राणिनस्तावत्स्वयमेवापरप्रेरिताएव समारन्नंते तडुपमर्दकं व्यापारं स्वतएव कुर्वंतीत्यर्थः । तथान्यांश्च समारंनं कुर्वतश्चान्यान् समनुजानंते ॥४३॥ तदेवंप्राणातिपातं प्रदर्श्य नोगांगनूतं परिग्रहं दर्शयितुमाह । यइमे प्रत्यक्षाः कामप्रधानानोगाः कामनोगाः काम्यंतइति कामाः स्त्रीगात्रपरिष्वंगादयोनुज्यंतइति नोगाः स्रक्चंदनवादित्रादयस्तएते सचित्ताः सचेतनाअचेतनावा नवेयुस्तडुपादाननूतार्थास्तांश्च सचित्तानचित्तान्वाऽर्थांस्ते कामनोगार्थिनोगृहस्थादयस्ततएव परिगृण्हंति अन्येनच परिग्राहयंति अपरंच परिगृण्हंतं समनुजानंतइति ॥४४॥ सांप्रतमुपसंजिघृक्षुराह । इहास्मिन् जगति विद्यंते गृहस्थास्तथाविधश्रमणाब्राह्मणाश्च सारंनाः सपरिग्रहाइत्येवं ज्ञात्वा सनिक्षुरेवमवधारयेदहमेवात्र खल्वनारंनोऽपरिग्रहश्च । ये चामी गृहस्थादयः सारंनादिगुणयुक्तास्तदेतन्निश्रयास्तदाश्रयेणच ब्रह्मचर्यं श्रामण्यमाचरिष्यामोऽनारंनाअपरिग्रहाः संतोधर्माधारदेहप्रतिपालनार्थमाहारादिकृते सारंनपरिग्रहस्य निश्रयां प्रव्रज्यां करिष्यामइत्यर्थः । ननु च यदि तन्निश्रयापुनरपि विहर्तव्यं किमर्थं ? ते त्यज्यंतइति जाताशंकः पृष्ठति । कस्य हेतोः केन कारणेन तदेतद्गृहस्थश्रमणब्राह्मणत्यजनमनिहितमित्याचार्योपि विदितानिप्रायउत्तरं ददाति । यथा पूर्वमादौ सारंनपरिग्रहत्वं तेषां तथा पश्चादपि सर्वकालमपि गृहस्थाः सारंनादिदोषडुष्टाः श्रमणाश्च केचन यथा पूर्वं गृहस्थानावे सारंनाः सपरिगृहास्तथा परस्मिन्नपि प्रव्रज्याकाले तथाविधाएव तइति । अधुनोनयपदाव्यनिचारित्वप्रतिपादनार्थमाह । यथा परमपरस्मिन् प्रव्रज्याप्रतिपत्तिकाले तथा पूर्वमपि गृहस्थनावादावपीति । यदि वा कस्य हेतोस्तद्गृहस्थाद्याश्रयणं क्रियते यतिनेत्याह । यथा पूर्वं प्रव्रज्यारंनकाले सर्वमेव निक्षादिकं गृहस्थायत्तं तथा पश्चादप्यतः कथंनु नामानवद्यावृत्तिर्नविष्यतीत्यतः साधुनिरनारंनैः सारंनाश्रयणं विधेयं । तथा चैते गृहस्थादयः सारंनाः सपरिग्रहाश्च । तथा प्रत्यक्षेणैवोपलन्यंतइति दर्शयितुमाह । (अंजूइत्ति) व्यक्तमेतदेते गृहस्थादयोयदि वांजूइति प्रगुणेन न्यायेन स्वरसप्रव्रज्यासावद्यानु

ष्ठानेभ्योऽनुपरताः परिग्रहारंभाच्च सत्संयमानुष्ठानेन चानुपस्थिताः सम्यग्ज्ञानमकृतवंतोपि कथंचिद्धर्मकरणायोत्थितास्तेप्युद्दिष्टभोजित्वात्सावद्याऽनुष्ठानपरत्वाच्च गृहस्थभावेऽनुष्ठानमनतिवर्तमानाः पुनरपि तादृशाएव गृहस्थकल्पाएवेति ॥ ४५ ॥

जे खलु गारत्था सारंभा सपरिग्गहा संतेगतिया समणा माहणावि सारंभा सपरिग्गहा उहतो पावाइं कुव्वंति इति संखाए दोहिंवि अंतेहिं अदिस्समाणो इति भिक्खू रीएज्जा ॥ ४६ ॥ सेबेमि पाईणंवा जाव एवं से परिण्णायकम्मे एवं से ववेयकम्मे एवं सेविअंतकारए भवतीति मक्खायं॥४७॥

अर्थ-(जेखलुगारत्थासारंभासपरिग्गहा के०) जे निश्चे थकी ग्रहस्थ सारंभी सपरिग्रहीछे (संतेगतियासमणामाहणाविसारंभासपरिग्गहा के०) अने कोइ एक श्रमण ब्राह्मण पण सारंभी अने सपरिग्रहीछे (उहतोपावाइंकुव्वंति के०) ए कारणे ए बन्ने पापना करनारा जाणवा (इतिसंखाए के०) एवुं जाणीने (दोहिंविअंतेहिं के०) आरंभ अने परिग्रह ए बेउ थकी अंत एटले दूर रहे (अदिस्समाणो के०) आरंभ अने परिग्रह थकी अदृश्य मान छतो (इतिभिक्खूरीएज्जा के०) एम चारित्रवान् साधु निरवद्य आहारनुं भोजन करनार थको संयमानुष्ठानने विषे प्रवर्ते ॥४६॥ (सेबेमिके०) वली तेज अर्थ विशेषें करी कहुंछुं (पाईणंवा के०) पूर्व पश्चिम उत्तर अने दक्षिण दिशि थकी आव्यो एवो साधु निरारंभी निःपरिग्रही संयमने विषे प्रवर्त्तमान थको (जावएवंसेपरिण्णायकंमे के०) ज्यां सुधी एम ते साधु ज्ञपरिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें पच्चरकीने (एवंसेववेयकम्मे के०) एम ते कर्मना अंतनो करनार थाय (एवंसेविअंतकारएभवतीतिमरकायं के०) ए प्रकारे ते योगनिरोधे करी विशेष अंतकारी थाय एम श्री तीर्थंकर गणधरें कह्युंछे ॥ ४७ ॥

॥ दीपिका-उपसंहारमाह । (जेखलुत्ति) येइमे गृहस्थादयस्ते द्विधापि रागद्वेषाभ्यामुभाभ्यां पापानि कुर्वंति इति संख्याय ज्ञात्वा द्वयोरप्यंतयोरागद्वेषयोरनुपलभ्यमानः सन् इत्येवंभूतोभिक्षुः संयमे रीयेत प्रवर्तेत । कोर्थः । यइमे ज्ञातिसंयोगायश्चायं धनादिपरिग्रहः यच्चेदं हस्ताद्यवयवयुक्तं शरीरं यच्चायुर्बलवर्णादिकं तत्सर्वमसारमनित्यं । गृहस्थश्रमणब्राह्मणाश्च सारंभपरिग्रहाः एतत्सर्वं ज्ञात्वा भिक्षुः संयमे रीयेत तिष्ठेदितिस्थितं ॥४६॥(सेबेमि) सोहं ब्रवीमि प्राच्यादिशोन्यतरस्याः समागतः सभिक्षुर्द्वयोरपि रागद्वेषयोरदृश्यमानः संयमे रीयमाणः सन् एवं पूर्वोक्तप्रकारेण परिज्ञातकर्मा स्यात् ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याख्यातकर्मा स्यादित्यर्थः । एवं सयोगनिरोधेन व्यंतकारकः विशेषेणकर्मणामंतकारकः स्यादिति तीर्थकृद्गणधरादिभिराख्यातं ॥ ४७ ॥

॥टीका–सांप्रतमुपसंहरति। (जेखलुइत्यादि) यइमे गृहस्थादयस्ते द्विधापि सारंभसपरिग्रहत्वाभ्यामुभाभ्यामपि पापान्युपाददते। यदिवा रागद्वेषाभ्यामुभाभ्यामपि पापान्युपाददते यदिवा गृहस्थप्रव्रज्यापर्यायाभ्यामुभाभ्यां पापानि कुर्वंतइत्येवं संख्याय परिज्ञाय द्वयोरप्येतयोरारंभपरिग्रहयोरागद्वेषयोर्वा दृश्यमानोनुपलभ्यमानोयदिवा रागद्वेषयोर्यावत्तावभ्नावौ तयोरादिश्यमाने रागद्वेषाभाववृत्तित्वेनापदिश्यमानः सन्नित्येवंभूतोभिक्षणशीलोऽनवद्याहारभोजी सत्संयमानुष्ठाने रीयेत प्रवर्तेत। एतदुक्तं भवति। ये इमे जातिसंयोगायश्चायं धनधान्यादिकः परिग्रहोयच्चेदं हस्तपादाद्यवयवयुक्तं शरीरं यच्च सदायुर्बलवर्णादिकं तत्सर्वमशाश्वतमनित्यं स्वप्नेंद्रजालसदृशमसारं। गृहस्थश्रमणब्राह्मणाश्च सारंभाः सपरिग्रहाश्चैतत्सर्वं परिज्ञाय सत्संयमानुष्ठाने भिक्षुरीयेतेति स्थितं॥ ४६॥ सपुनरप्यहमधिकृतमेवार्थं विशेषिततरं सोपपत्तिकं ब्रवीमीति। तत्र प्रज्ञापकापेक्षया प्राच्यादिकायादिशोन्यतरस्याः समायातः सभिक्षुर्द्वयोरप्येतयोरदृश्यमानतया सत्संयमे रीयमाणः सन् एवमनंतरोक्तेन प्रकारेण ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिज्ञातकर्मा भवति। पुनरप्येवमिति परिज्ञातकर्मत्वा व्यपेतकर्मा भवति अपूर्वस्याबंधकोभवतीत्यर्थः। पुनरेवमित्यबंधकयोगनिरोधोपायतः पूर्वोपचितस्य कर्मणोविशेषेणांतकारकोभवतीत्येतच्च तीर्थंकरगणधरादिभिर्ज्ञातज्ञेयैर्व्याख्यातमिति॥ ४७॥

तत्थ खलु भगवंता छज्जीवनिकायहेउं पण्णत्ता तंजहा पुढवीकाए जाव तसकाए से जहा णामए मम असायं दंडेणवा अट्ठीणवा मुट्ठीणवा लेलूणवा कवालेणवा आउट्टिज्जमाणस्सवा हम्ममाणस्सवा तज्जिज्जमाणस्सवा ताडिज्जमाणस्सवा परियाविज्जमाणस्सवा किलाविज्जमाणस्सवा उद्दविज्जमाणस्सवा जावलोमुक्खणणमायमवि हिंसाकारगं दुक्खं भयंपडिसंवेदेमि इच्चेवं जाण सव्वे जीवा सव्वेभूता सव्वपाणा सव्वेसत्ता दंडेणवा जाव कवालेणवा आउट्टिज्जमाणावा हम्ममाणावा तज्जिज्जमाणावा ताडिज्जमाणावा परियाविज्जमाणावा किलाविज्जमाणावा उद्दविज्जमाणावा जाव लोमुक्खणणमायमवि हिंसाकारगं दुक्खं भयं पडिसंवेदेंति एवं नच्चा सव्वेपाणा जाव सत्ता णहंतव्वा णअज्जावेयव्वा णपरिघेतव्वा णपरितावेयव्वा णउद्दवेयव्वा॥ ४८॥ सेबेमि जेयअतिता जेयपडुप्पन्ना जेयआगमिस्सामि अरिहंता भगवंता सव्वे ते एवमाइक्खंति एवंभासंति एवंपण्णवेंति एवं

परूवेंति सवेपाणा जावसत्ता णहंतवा णअज्जावेयवा णपरिघेतवा ण परितावेयवा णउद्दवेयवा एसधम्मे धुवे णीतिए सासए समिच्चं लोगं खे यन्नेहिं पवेदेंति एवंसे निक्खू विरते पाणातिवायतो जाव विरते परिग्गहा तो णोदंतपरकालणेणं दंतपरकालेज्जा णोअंजणं णोवमणं णोधूवणे णोतं परिआविएज्जा ॥ ४ए ॥

अर्थ–(तब के०) त्यां कर्मबंधने प्रस्तावे खलु इति वाक्यालंकारे (नगवंता के०) नगवंत श्रीतीर्थंकरदेवे (ब ज्जीवनिकायहेउं के०) बजीवनिकाय कर्मबंधना कारण (पसुत्ता के०) कह्याबे (तंजहा के०) ते ब कायना नाम कहेबे (पुढवीकाएजा वतसकाए के०) पृथ्वी कायथी मांमीने यावत् त्रसकाय पर्यंत ब जीव निकाय जाण वा तेने पीडतां पीडावता जेम ङःख उपजे तेम दृष्टांते करी देखाडेबे (सेजहाणामए के०) ते जेम नाम एवी संनावनायें (मम के०) मुजने (अस्सायं के०) असाता उ पजे शा थकी असाता उपजे ते कहेबे (दंमेणवा के०) दंमादिकेंकरी हणता थका (अठीणवा के०) अस्थिखंमे करी हाडकायें करी (मुठीणवा के०) मुष्टीयें करी(लेलूणवा के०) पापाणे करी (कवालेणवा के०) ठीकरीयें करी (आउट्टिज्जमाणस्सवा के०) आक्रोश करताथका तथा सन्मुख नाखता थका (हम्ममाणस्सवा के०) अथवा हणता थका (तज्जिज्जमाणस्सवा के०) तर्जना करता थका (ताडिज्जमाणस्सवा के०) ताडना करता थका (परियाविज्जमाणस्सवा के०) परितापना करता थका (किलाविज्जमाणस्सवा के०) किलामणाकरताथका (उद्दविज्जमाणस्सवा के०) उ द्वेग करता थका तथा जीवने काया थकी रहित करताथका (जावलोमुक्खणण मायमवि के०) यावत् शरीर मांहेथी एक रोम उखेडवा मात्र एवुं पण (हिंसा कारगं के०) हिंसानु कारण तेथी पण (ङक्खंनयंपडिसंवेदेमि के०) ङःख अने नय हुं वेडं अनुनवुं (इच्चेवंजाण के०) ए प्रकारे तेजाणे के (सव्वेजीवा के०) सर्व जीवते सर्व पंचेंद्रियजीव जाणवा (सव्वेनूता के०) सर्व नूतते सर्व वनस्प ति प्रमुखना जीव जाणवा (सव्वेपाणा के०) सर्व प्राणी ते सर्व बे इंद्रियादिक विक लेंद्रि जीव जाणवा (सव्वेसत्ता के०) सर्वसत्व ते पृथिव्यादिक सर्वजीव जाणवा ते जीवोने (दंमेकरी हणता थका (जावकवालेणवा के०) यावत् ठीकरीयें करी हणता थका (आउट्टिज्जमाणावा के०) आक्रोश करता थका (हम्ममाणावा के०) हणता थका (तज्जिज्जमाणावा के०) तर्जना करता थका (ताडिज्जमाणावा के०) ताडना करता थका (परियाविज्जमाणावा के०) परितापना करता थका (किलाविज्जमाणावा

के०) किलामणा करता थका, (उद्दविज्जमाणावा के०) उद्वेग करता थका, तथा जीव ने काया थकी रहित करता थका, (जावलोमुक्खणणमायमवि के०) यावत् एक रोम उखेडवा मात्र एवुं पण (हिंसाकारगं के०) हिंसानु कारण ते थकी पण, (दुक्खं भयंपडिसंवेदेंति के०) ते जीवो दुःख अने भय एवुंज वेदे अनुभवे एटले जेवुं दुःख मने वेदवुं पडे, तेवुं दुःख सर्वे जीवने वेदवुं पडे. एम सर्वे जीवोने पोता सरखुं दुःख देखाडीने अन्य जीवोने शिक्षानो उपदेश आपेछे. (एवंनच्चा के०) एवुं जाणीने (सव्वेपाणाजावसत्ता के०) सर्वे प्राणी, सर्वभूत, सर्वजीव अने सर्वे सत्वने (णहंतव्वा के०) हणवा नही, (णअज्जावेयव्वा के०) दंभादिकें करी ताडवा नही, (णपरिघेतव्वा के०) बलात्कारें करी दासनी पेरें परिग्रहवा नही, एटले बलात्कारे करी चाकरनी पेरें कोइ कार्यने विषे प्रेरवा नही. (णपरितावेयव्वा के०) शारीरिक मानसी पीडाने उपजावीने परितापवा नही. (किलविग्रमाणवा णउद्दवेयव्वा के०) किलामणा करी करी उपद्रववा नही, तथा काया थकी रहित करवा नहीं ॥४०॥ हवे सुधर्म स्वामी कहेछे. (सेबेमिके०) ए वचन जे हुं कहुं छुं, ते पोतानी मतियें नथी कहेतो पण एम सर्वे तीर्थंकरनी आज्ञाछे, ते देखाडेछे; (जे यअतीता के०) जे अतीत कालें तीर्थंकर थया, (जेयपडुप्पन्ना के०) जे वर्त्तमान कालें तीर्थंकर वर्त्तेछे, (जेयआगमिस्सामि के०) जे आगमिक कालें थशे ते (अरिहंत के०) पूजा सत्कार योग्य (भगवंता के०) ज्ञानवंतआश्चर्यादिक गुणे करी संयुक्त एवा (सव्वेते के०) समस्त श्री अरिहंत भगवंत ते (एवमाइक्खंति के०) एम सामान्य थकी कहेछे (एवंभासंति के०) एम अर्द्धमागधीभाषायें भांखेछे (एवंपन्नवेंति के०) एम शिष्यने देशना आपेछे (एवंपरूवेंति के०) एम सम्यक् प्रकारें प्ररूपे छे के, (सव्वेपाणा जावसत्ता के०) सर्वे प्राणीथी मांमीने यावत् सर्वे सत्व ने (णहंतव्वा के०) हणवा नही, दंभादिकें करी ताडवा नही, वली बलात्कारें दासनी पेरें परिग्रहवा नही, शारीरिक मानसी पीडा उत्पन्न करीने, परितापवा नही उपद्रववा नही, जीव काया थकी रहित करवा नही, (एसधम्मेधुवे के०) ए धर्म प्राणीनी दया लक्षण दुर्गतियें जाता जीवने राखनार ते धर्म केवोछे तोके, ध्रुव एटले निश्चल (णीतिए के०) नित्य सदा सर्वकालछे, कोइ काले जेनो क्षय नथी (सासएके०) शाश्वतछे, तेने (समिच्चंके०) केवल ज्ञाने करी आलोचीने शुं आलोचीने? तो के, (लोगं के०) चौद रज्वात्मक लोक एटले षट् जीव निकायरूप लोक तेने दुःखरूप समुद्रमांहे पड्यो देखीने (खेयन्नेहिं के०) खेदज्ञ एटले बीजा जीवोनां दुःखोना जाणनार, एवा श्रीतीर्थंकर भगवंते (पवेदेंति के०) पूर्वोक्त जीवदयालक्षण धर्म भांख्यो. (एवं के०) ए प्रकारें जाणीने (सेभिक्खूविरते के०) ते साधु निवर्त्या (पाणातिवायतो के०) प्राणातिपात एटले हिंसा थकी, तेमज मृषा

वाद थकी, तथा अदत्तादान थकी, तथा मैथुन एटले कुशील थकी, (जावविरतेपरिग्गहातो के०) यावत् परिग्रह थकी, विरति करतो थको जेवा आचारें प्रवर्त्ते, ते आचार कहेछे. (णोदंतपरकालणेणं दंतपरकालेज्जा के०) दंत पक्षालने करी दंत धोवे नही, एतावता जावजीव सुधी दातण न करे. (णोअंजणं के०) जावजीव सुधी सौजाग्यने अर्थे आंखमां अंजन नाखे नही. (णोवमणं के०) वमन विरेचनादिक क्रिया न करे, (णोधूंवणे के०) शरीर वस्त्रादिकनुं धूपन न करे (णोतंपरिआविएज्जा के०) कासादि रोगने मटाडवा माटे धूम पान पण न करे, ते जिक्षु एटला वाना पोते आचरे नही.॥४ए॥

॥ दीपिका–प्राणातिपातेन कर्मबंधप्रस्तावे खलु जगवता षड्जीवनिकाया हेतुत्वेनोक्ताः । तद्यथा । पृथिवीकायोयावत्त्रसकायः । एतेषां दुःखं दृष्टांतेनाह । तद्यथा नाम ममासातं दुःखं दंडेन अस्थ्ना मुष्टिना लेलुना लोष्टेन कर्परेण आकोटयमानस्य संकोच्यमानस्य हन्यमानस्य कशादिनिस्ताड्यमानस्य कुड्यादावजिघातादिना परिताप्यमानस्याग्न्यादावन्येन प्रकारेण परिक्रम्यमाणस्यापद्राव्यमानस्य मार्यमाणस्य यावल्लोमोत्खननमात्रमपि हिंसाकरं दुःखं जयं च यन्मयि क्रियते तत्सर्वमहं संवेदयामि इत्येवं जानीहि । तथा सर्वे प्राणाजीवाजूतानि सत्वाइत्येकार्थिकाः कथंचिद्भेदेन वा व्याख्येयाः । तथाहि । प्राणाद्वित्रिचतुःखाःस्यु,र्भूतानि तरवः स्मृताः ॥ जीवाः पंचेंद्रियाः प्रोक्ताः शेषाः सत्वाइतीरिताइति । एषां दंडादिना कोटयमानानां यावल्लोमोत्खननमात्रमपि दुःखं प्रतिसंवेदयतां । एतच्च हिंसाकरं दुःखं जयं चोत्पन्नं ते सर्वेपि प्राणिनः साक्षादनुजवंत्यतः सर्वेपि प्राणिनोन हंतव्यान आज्ञापयितव्याबलान्न कार्ये प्रयोक्तव्यान परिग्राह्या न परितापयितव्यानापद्रावयितव्याः ॥४०॥ सोहं साधुर्ब्रवीमि न स्वमत्या किंतु तीर्थकृदाज्ञेत्याह । येअतीताये च प्रत्युत्पन्नावर्तमानाः सीमंधरादयोये चागमिष्याअनागताः पद्मनाजादयोऽर्हंतोजगवंतः सर्वेप्येवमाख्यांति एवं जाषंते स्वत एवं प्रज्ञापयंति हेतुजिरेवं प्ररूपयंति नामादिजिर्यथा सर्वेप्राणा न हंतव्याइत्यादि । एषधर्मो ध्रुवोनित्यः शाश्वतः समेत्य ज्ञात्वा, लोकं खेदज्ञैस्तीर्थंकरैः प्रवेदितः । एवं ज्ञात्वा सजिक्षुर्विरतः प्राणातिपाताद्यावत्परिग्रहान्महाव्रतपालनार्थमुत्तरगुणाः कथ्यंते । (नोदंतइत्यादिना) निष्किंचनः सन् साधुर्नो दंतप्रक्षालनेन काष्ठेन दंतान् प्रक्षालयेत् नोअंजनं नेत्रयोर्विजूषार्थं कुर्यात्, वमनं विरेचनादि न कुर्यात्, वस्त्राणां धूपनं न कुर्यात् कासाद्यपनोदनार्थं धूमं न पिवेत् ॥४ए॥

॥ टीका–कथं पुनः प्राणातिपातविरतिव्रतादिव्यवस्थितस्य कर्मापगमोजवतीत्युक्तं यतस्तत्प्रवृत्तस्यात्मौपम्येनप्राणिनां पीडोत्पद्यते तया च कर्मबंधइत्येवं सर्वं मनस्याधा

याह । (तत्नखलुइत्यादि) तत्रेति कर्मबंधप्रस्तावे । खलुवाक्यालंकारे । नगवतोत्पन्न ज्ञानेन तीर्थकृता षड्जीवनिकायाहेतुत्वेनोपन्यस्ताः । तद्यथा । पृथिवीकायोयावत्त्रसका योपीति । तेषांच पीड्यमानानां यथा डुःखमुत्पद्यते तथा स्वसंवित्तिसिद्धेन दृष्टांतेन द र्शयितुमाह । तद्यथाच मे ममासातं डुःखं वक्ष्यमाणैः प्रकारैरुत्पद्यते तथान्येषामपीति तद्यथा । दंडेनास्थ्ना मुष्टिना लेखुनालोष्ठेन कपालेन कर्परेण आकोटयमानस्य संकोच्यमा नस्य हन्यमानस्य कशादिनिस्तर्जमानस्यांगुल्यादिनिस्ताडयमानस्य कुड्यदावनिघातादिना परितप्यमानस्याग्न्यादावन्येन प्रकारेण वा परिक्लाम्यमानस्य तथापड्राव्यमाणस्य मार्यमा णस्य यावल्लोमोत्खननमात्रमपि हिंसाकरं डुःखं नयं च यन्मयि क्रियते तत्सर्वमहं संवेद यामीत्येवं जानीहि । यथा सर्वे प्राणाजीवाभूतानि सत्वाइत्येते एकार्थिकाः कथंचिद्भेद माश्रित्य व्याख्येयास्तत्रैतेषां दंडादिना कुटयमानानां यावल्लोमोत्खननमात्रमपि डुःखं प्रतिसंवेदयतामेतच्च हिंसाकरं डुःखं नयं चोत्पन्नं ते सर्वे प्राणिनः प्रतिसंवेदयंति सा क्षादनुनवंतीत्येवमात्मोपमया पीड्यमानानां जंतूनां यतोडुःखमुत्पद्यतेऽतः सर्वे प्राणि नोन हंतव्यान व्यापादयितव्याबलात्कारेण व्यापारे न प्रयोक्तव्यास्तथा न परिग्राह्यान परितापयितव्यानापड्रावयितव्याः ॥ ४७ ॥ सोहं ब्रवीम्येतन्न स्वमनीषिकतया किंतु सर्व तीर्थकराज्ञयेति दर्शयति (येअतीएइत्यादि) ये केचन तीर्थकृतऋषनादयोऽतीतायेच विदेहेषु वर्तमानाः सीमंधरादयोये चागामिन्यामुत्सर्पिण्यां नविष्यंति ब्रह्मनानादयोऽर्हं तोऽमरासुरनरेश्वराणां पूजार्हान्नगवंतऐश्वर्यादिगुणकलापोपेताः सर्वेप्येवं ते व्यक्तवाचा आख्यांति प्रतिपादयंति । एवं सदेवमनुजायां पर्षदि नाषंते स्वतएव न यथा बौद्धानां बोधिसत्वप्रनावात् कुड्यादिदेशनतइत्येवं प्रकर्षेण ज्ञापयंति हेतूदाहारणादिनिः । एवं प्ररूपयंति नामादिनिर्यथा सर्वे प्राणान हंतव्याइत्यादि । एषधर्मः प्राणिरक्षणलक्षण प्राग्व्यावर्णितस्वरूपोध्रुवोऽवश्यंनावी नित्यः क्षांत्यादिरूपेण शाश्वतइत्येवं चानिसमेत्य केवलज्ञानेनावलोक्य, लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं खेदज्ञैस्तीर्थकृद्भिः प्रवेदितः कथितइत्ये वं सर्वं ज्ञात्वा, सनिक्षुर्विदितवेद्योविरतः प्राणातिपाताद्यावत्परिग्रहादिति । एतदेव दर्शयितुमाह । (णोदंतइत्यादि) इह पूर्वोक्तमहाव्रतपालनार्थमनेनोत्तरगुणाः प्रतिपा द्यंते । तत्रापरिग्रहोनिष्किंचनः ससाधुर्नो दंतप्रक्षालनेन कदंबादिकाष्ठेन दंतान् प्रक्षाल येत्तथा नो अंजनं सौवीरादिकं विनूपार्थमक्ष्णोर्दद्यात्तथा नो वमनविरेचनादिकाः क्रि याः कुर्यात्तथा नो शरीरस्य स्वीयवस्त्राणां वा धूपनं कुर्यान्नापि कासाद्यपनयनार्थं तं धू मं योगवर्तिनिष्पादितमापिबेदिति ॥ ४९ ॥

सेनिक्खू अकिरिए अलूसए अकोहे अमाणे अमाए अलोहे उवसं ते परिनिवुडे णोआससं पुरतोकुज्जा इमेणमे दिठ्ठेणवा सुएणवा मुएण

वा णाएणवा विन्नाएणवा इमेणवा सुचरिय तवनियमबंभचेरवासेण इमेणवा जायामायावुत्तिएणं धम्मेणं इउवए पेच्चा देवेसिया कामभोगा वसवत्ति सिद्धेवा अडक्खमसुभे एडविसिया एडविणोसिया ॥ ५० ॥

अर्थ–(सेभिक्खू के०) ते चारित्रियो (अकिरिए के०) सावद्य क्रिया रहित, (अलूसए के०) जीवनो अहिंसक, (अकोहे के०) क्रोधरहित (अमाणे के०) मानरहित (अमाए के०) मायारहित (अलोहे के०) लोभरहित (उवसंतेपरिनिवुडे के०) एकारणे उपशांत परिनिवृत समाधिवंत एवो उतो, (णोआसंसंपुरतोकुज्जा के०) आ शंसा न करे एटले जन्मांतरें कामभोगनी प्रार्थना न करेः (इमेणमेदिठ्ठेणवा के०) वली आ जन्मने विषे आमोसही इत्यादिक लब्धि पाम्या तेथी तपश्यानुं फल प्रत्यक्ष दीठुं. तथा वली (सुएणवा के०) सिद्धांत भणवा थकी (मुएणवा के०) मनन करवाना (णाएणवा के०) ज्ञानेकरी (विन्नाएणवा के०) विज्ञानेकरी, (इमेणवा के०) एवा धर्मेकरी (सुचरिय के०) सुकृतरूप आचरण (तव के०) तप अनशनादिक (नियम के०) नियम अभिग्रहादिक (बंभचेर के०) ब्रह्मचर्यने विषे (वासेण के०) वसवा थकी (इमेणवा के०) ए धर्मेकरी (जायामायावुत्तिएणं के०) संयमयात्रामात्रा वृत्तिरूप एटले मानोपेत आहार लेवे करी (धम्मेणंइउवएपेच्चादेवेसिया के०) एवा धर्मेकरी अहींयां थकी चवीने परभवांतरें देवत्व पणु पामुं एवी आशंसा पण न करे (कामभोगावसवत्ति के०) अथवा नाना प्रकारना कामभोग महारें वशवर्ति थाउं एवी प्रार्थना पण नकरे (सिद्धि के०) अष्ट प्रकारनी अणिमा महिमादिकजे सिद्धि उठे ते सिद्धियें करी सिद्धियें सहित थाउं, एवी आशंसा नकरे (अडक्खमसुभे के०) डुःख रहित थाउं, शुभाशुभ कर्मेरहित थाउं, तथा मध्यस्थ थाउं, एवी आशंसा पण न करे. एवी आशंसाने न करवानुं कारण कहेठे. (एडविसियाएडविणोसिया के०) तपश्चरण करतां मनःप्रार्थितसिद्धि होय अथवा न होय ए कारणे वांछा न करे ॥ ५० ॥

॥ दीपिका–मूलोत्तरगुणसंग्रहमाह । सभिक्षुः नविद्यते सावद्या क्रिया यस्य सोऽक्रियः सांपरायिककर्माबंधकइत्यर्थः । यतः प्राणिनामलूषकोऽहिंसकस्तथाऽक्रोधोऽमायोऽलोभउ पशांतः परिनिर्वृतः शीतीभूतआशंसां जन्मांतरे कामभोगावाप्तिवांछां न पुरस्कुर्यात् । (इमेणत्ति) अमुना तपश्चरणफलेन दृष्टेनामर्षौषध्यादिना श्रुतेन पारलौकिकेनाईकधम्मि लब्रह्मदत्तादीनां तपश्चरणफलेन (मएणत्ति) मननं च जातिस्मरणादिज्ञानेन आचार्या देः सकाशाद्विज्ञातेनावगतेन ममापि विशिष्टं फलं भविष्यतीत्येवं नाशंसां विदध्यात् । त

थाऽमुना सुचरितेन तपोनियमब्रह्मचर्यवासेन तथाऽमुना यात्रामात्रावृत्तिना धर्मेण इतोऽस्माद्भवात् च्युतस्य प्रेत्य, जन्मांतरे देवः स्यामहं तत्रस्थस्यच कामनोगावशवर्तिनः स्युः। सिद्धोवाऽडुःखःअशुनः शुनाशुनकर्मापेक्षया एवंनूतोहं स्यामिति एवमाशंसां न विदध्यात्। अत्रापि तपश्चरणे सत्यपि डुर्ध्यानसन्नावात्कदाचित्सिद्धिर्मुक्तिरणिमादिसिद्धिर्वा स्यात्कदाचिच्च न स्यात् एवं सति साधोराशंसां कर्तुं न युक्तेति इहलोकार्थं परलोकार्थं कीर्तिवर्णश्लोकाद्यर्थं च तपोन विधेयमिति स्थितं ॥ ५० ॥

॥ टीका–सांप्रतं मूलगुणोत्तरगुणप्रस्तावमुपसंजिघृक्षुराह। (सेनिरकूइत्यादि) समूलोत्तरगुणव्यवस्थितोनिक्षुर्नास्य क्रिया सावद्या विद्यतेइत्यक्रियः संवृतात्मकतया सांपरायिककर्माबंधकइत्यर्थः। कुतएवंनूतोयतः प्राणिनामलूषकोऽहिंसकोऽनुपमर्दकइत्यर्थः। तथा न विद्यतेक्रोधोयस्येत्यक्रोधएवममानोऽमाय्यलोनः कषायोपशमाच्चोपशांतः शीतीनूतस्तडुपशमाच्च परिनिर्वृतइव परिनिर्वृतः। एवं तावदैहिकेन्यः कामनोगेन्योविरतः पारलौकिकेन्योपि विरतइति दर्शयति।(नोआसंसंइत्यादि) नो नैवाशंसां पुरस्कृत्य ममानेन विशिष्टतपसा जन्मांतरे कामनोगावाप्तिर्नविष्यतीति। एवंनूतामाशंसां न पुरस्कुर्यादित्येतदेव दर्शयितुमाह। (इमेणमेइत्यादि) अस्मिन्नेव जन्मन्यमुना विशिष्टतपश्चरणफलेन दृष्टेनामर्षोषध्यादिना पारलौकिकेन च श्रुतेनाऽइकधम्मिल्लब्रह्मदत्तादीनां तथा (मुएणवत्ति) मननंज्ञानं जातिस्मरणादिना ज्ञानेन तथाऽचार्यादेः सकाशाद्विज्ञानेनावगतेन ममापि विशिष्टं नविष्यतीत्येवं नाशंसां विदध्यात्। तथाऽमुना सुचरित्रतपोनियमब्रह्मचर्यवासेन तथाऽमुना वा यात्रावृत्तिना धर्मेणानुष्ठितेनातोस्माद्भवाच्च्युतस्य प्रेत्य जन्मांतरे स्यामहं देवस्तत्रस्थस्यच मे वशवर्तिनः कामनोगान्नवेयुरशेषकर्माऽवियुतोवा सिद्धोऽडुःखोशुनाशुनकर्मप्रकृत्यपेक्षयेत्येवं नूतोहं स्यामागामिकालइत्येवमाशंसां न विदध्यादिति। यदिवा विशिष्टतपश्चरणादिनाऽऽगामिनि काले ममाणिमा लघिमेत्यादिकाऽष्टप्रकारा सिद्धिर्नविष्यतीत्यनया च सिद्ध्या सिद्धोहमडुःखोऽशुनोवाम ध्यस्थइत्येवंरूपामाशंसां न कुर्यात्। तदकरणे च कारणमाह। (एङविइत्यादि) अत्रापि विशिष्टतपश्चरणे सत्यपि कुतश्चिन्निमित्ताद्दुष्प्रणिधानसद्भावे सति कदाचित्सिद्धिः स्यात्कदाचिच्च नैवाशेषकर्मक्षयलक्षणा सिद्धिः स्यात्। तथाचोक्तं। जे जत्तियाउहेऊ नविस्स ते चे व तत्तिया मोरकेइत्यादि। यदिवाऽत्राप्यणिमाद्यष्टगुणकारणे तपश्चरणादौ सिद्धिः स्यात्कदाचिच्च न स्यात् तद्विपर्ययोपि वा स्यादित्येवं व्यवस्थिते प्रेक्षापूर्वकारिणां कथमाशंसा कर्तुं युज्यते इति। सिद्धिश्चाष्टप्रकारेयं। अणिमा १ गरिमा २ लघिमा ३ महिमा ४ प्राप्तिः ५ प्राकाम्यं ६ ईशित्वं ७ वशित्वं ८ यत्र कामावसायित्वमिति। तदेवमैहिकार्थमामुष्मिकार्थं च कीर्तिवर्णश्लोकाद्यर्थं च तपोन विधेयमिति स्थितं ॥ ५० ॥

सेभिरकू सद्देहिं अमुछिए रूवेहिं अमुछिए रसेहिं अमुछिए गंधेहिं अमुछिए फासेहिंअमुछिए विरए कोहाउ माणाउ मायाउ लोभाउ पेज्जाउ दोसाउ कलहाउ अप्नरकाणाउ पेसुन्नाउ परपरिवायाउ अरइरइउ मायामोसाउ मिछादंसणसल्लाउ इति सेमहतो आयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरते सेभिरकू॥ ५१ ॥ जेइमे तसथावरा पाणा भवंति ते णो सयं समारंभइ णोवसेहिं समारंभावेंति अन्नं समारभंतं नसमणुजाणंति इति सेमहतो आयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरते सेभिरकू॥ ५२ ॥ जेइमे कामभोगा सचित्तावा अचित्तावा ते णो सयं परिगिण्हंति णोअन्नेणं परिगिण्हावेंति अन्नं परिगिण्हंतंपि णसमणुजाणइ इति सेमहतो आयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरतो सेभिरकू॥ ५३ ॥

अर्थ–(सेभिरकू के०) ते साधु (सद्देहिंअमुछिए के०) शब्दने विषे अमूर्छित (रूवेहिंअमुछिएके०) रूपने विषे अमूर्छित (रसेहिंअमुछिए के०) रस मधुरादिकने विषे अमूर्छित (गंधेहिंअमुछिए के०) सुरभिगंधादिकने विषे अमूर्छित (फासेहिंअमुछिएके०) स्पर्शने विषे अमूर्छित (विरएके०) निवर्त्यो, शा थकी निवर्त्यो ? ते कहेछे क्रोध थकी, मान थकी, माया थकी, लोभ थकी, राग थकी, द्वेष थकी, कलह थकी, अन्याख्यान एटले जुठुं आल देवा थकी, चाडी करवा थकी, परना अवर्णवाद बोलवा थकी, अरति थकी, रति थकी, माया सहित मृषावाद बोलवा थकी, अने मिथ्यात्वदर्शन शल्य ए थकी निवर्त्यो (इतिसेमहतोआयाणाउके०) एवो ते चारित्रिउ महोटा कर्मबंधना कारण थकी, (उवसंतेके०) उपशम्यो (उवठिएके०) उपस्थित एटले सावधान थयो (पडिविरतेके०) विशेषें निवर्त्यो (सेभिरकू के०) ते चारित्रिउ ॥५१॥ (जेइमेतसथावरापाणाभवंति के०) जे ए त्रस अने स्थावर प्राणीउछे (तेणोसयंसमारभंति के०) तेनो पोते समारंभ करे नही (णोवसेहिंसमारंभावेंति के०) बीजा पासे समारंभ करावे नही (अन्नंसमारंभंतंनसमणुजाणंति के०) बीजा समारंभ करता होय तेने अनुमोदे नही (इतिसे के०) एवो ते चारित्रिउ (महतो के०) महोटा (आयाणाउ के०) कर्मबंधना कारण थकी (उवसंते के०) उपशम्यो (उवठिएके०) उपस्थित एटले सावधान थयो (पडिविरते के०) विशेषे निवर्त्यो (सेभिरकूके०) ते चारित्रिउ ॥५२॥ (जेइमेकामभोगा के०) जे आ जगत् मांहे काम भोगछे ते कहेछे (सचित्तावा के०) सचित्त (अचित्तावा के०)

अचित्त (तेणोसयंपरिगिएहंति के०) ते कामनोगने पोते परिग्रहे नही अंगीकार करे नही (णोअन्नेणंपरिगिएहावेंति के०) बीजा पासें परिग्रहावे नही (अन्नंपरिगिएहंतं पि णसमणुजाणइ के०) बीजो परिग्रहतो होय तेने अनुमोदे नही (इतिसेमहंतो के०) एवोते चारित्रिउ महोटा (आयाणाउ के०) कर्मबंधना कारण थकी (उवसंते के०) उपशम्यो (उवहिए के०) सावधान थयो (पडिविरए के०) विशेषे निवर्त्त्यो (सेनिखू के०) ते चारित्रिउ ॥ ५३ ॥

॥ दीपिका—अथ रागद्वेषानावमाह । (सेनिरकूइत्यादि) सनिक्षुः शब्देषु शुनाशुनेष्व मूर्छितोऽद्विष्टश्च । एवं रूपगंधरसस्पर्शेष्वपि वाच्यं । तथा विरतः क्रोधमानमायालोनेन्य स्तथा प्रेमतोदोषात् कलहादन्याख्यानात् पैशुन्यात् परपरिवादात् अरतितोरतितोमाया मृषातोमिथ्यादर्शनशल्याद्विरतः सनिक्षुर्योमहतः कर्मोपादानाडुपशांतसंयमे उपस्थितः सावद्येन्यः प्रतिविरतः सनिक्षुः स्यात् ॥५१॥ येऽमे त्रसाः स्थावराः प्राणिनोनवंति तान् स्वयं न समारनते नैवान्यैः समारंनयंते अन्यं समारनमाणं न समनुजानाति इत्येवं म हतः कर्मोपादानाडुपशांतः प्रतिविरतः सनिक्षुःस्यात् ॥५२॥ येमी कामनोगाः सचित्ताअ चित्तावा तान् स्वयं न परिगृएहाति नान्येन परिग्राहयति अन्यं परिगृएहंतं न समनुजा नाति इत्येवं कर्मोपादानाद्विरतः सनिक्षुः स्यात् ॥ ५३ ॥

॥ टीका—सांप्रतमनुकूलप्रतिकूलेषु शब्दादिषु विषयेषु रागद्वेषानावं दर्शयितुमाह । (सेनिरकूइत्यादि) सनिक्षुः सर्वाशंसारहितोवेणुवीणादिषु शब्देष्वमूर्छितोऽगृद्धोऽनध्युप पन्नस्तथा रासनादिशब्देषु कर्कशेषु द्विष्टः एवं रूपरसगंधस्पर्शेष्वपि वाच्यमिति । पुनरपि सामान्येन क्रोधाद्युपशमं दर्शयितुमाह (विरएकोहाउइत्यादि) क्रोधमानमायालोनेन्यो विरतइत्यादिसुगमं । यावदिति । (सेमहयाआयाणाउउवसंतेउवहिएपडिविरएसेनिरकू त्ति) सनिक्षुर्नवति योमहतः कर्मोपादानाडुपशांतः सन्स्वयमेवोपस्थितः सर्वपापेन्यश्च विर तइति ॥५१॥ एतदेवमहतः कर्मोपादनाद्विरमणं साक्षाद्दर्शयितुमाह । (जेइमेइत्यादि) ये केचन त्रसाः स्थावराश्च प्राणिनोनवंति तान् सर्वानपि नोनैव स्वयं सत्साधवः समारन्नं ते प्राण्युपमर्दकमारनंतइतियावत् । तथा नान्यैः समारंनयंते नचान्यान् समारंनमाणान् समनुजानतइत्येवं महतः कर्मोपादानाडुपशांतः प्रतिविरतोनिक्षुर्नवतीति ॥५२॥ सांप्रतं सामान्यतः सांपरायिककर्मोपादानकामनोगनिवृत्तिमधिकृत्याह । (जेइमेइत्यादि) ये केच नामी काम्यंतइति कामाजुज्यंत इतिनोगास्तेच सचित्ताअचित्तावा नवेयुस्तांश्च नस्वतो गृएहीयान्नाप्यन्येन ग्राहयेत् नाप्यपरं गृएहंतं समनुजानीयादित्येवं कर्मोपादानाद्विरतो निक्षुर्नवतीति ॥ ५३ ॥

कारवेति अन्नंपिकरेंतं णसमणुजाणइ इति सेमहतो आयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरते ॥५४॥ से भिक्खूजाणेज्जा असणंवा अस्सिं पडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स पाणाइं भूताइं जीवाइं सत्ताइं समारंभ समुद्दिस्स कीतं पामिच्चं अछिज्जं अणिसठं अभिहडं आहट्टुदेसियं तंचेतियंसिआतं णो सयं भुंजइ णोअन्नेणं भुंजावेंति अन्नंपि भुंजंतं णसमणुजाणइ इति से महतो अयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरते ॥ ५५ ॥

अर्थ–(सेभिक्खू के०) ते चारित्रिउ (जंपियं के०) जे (इमं के०) ए (संपराइयं कम्मंकज्जइ के०) सांपरायिक एटले जे कर्मे करी संसार मांहे परिभ्रमण करियें ते सांपरायिक कर्म कहिए जे कारणे करी बंधाय ते कारण प्रद्वेष निन्हव मात्सर्य अंतराय आशातना उपघातादिक ए कर्मबंधना कारणछे (णोतंसयंकरेति के०) ते स्वयं पोते नकरे (णोअन्नेणंकारवेंति के०) बीजा पासें करावे नही (अन्नंपिकरेंतं णसमणुजाणइके०) बीजो करतो होय तेने अनुमोदे नही (इतिसेमहतोआयाणाउ के०) एवो ते मोहोटा कर्म बंधना कारण थकी (उवसंते के०) उपशम्यो (उवठिए के०) सावधान थयो (पडिविरतेके०) विशेषें निवर्त्यो ते भिक्षु कहिए ॥५४॥ हवेचारित्रियानी आहार विशुद्धि कहेछे. (सेभिक्खूजाणेज्जा कें०) ते चारित्रिउ एम जाणे ते कहेछे. जे (असणंवाके०) अशनादिक आहार अशन पान खादिम स्वादिम जाणे (अस्सिंपडियाए के०) साधुने निमित्ते कोइएक प्रकृति भद्रक श्रावक गृहस्थ ते (एगंसाहम्मियं समुद्दिस्स के०) एक साधर्मिक साधुने समुद्देशीने (पाणाइं भूताइं जीवाइं सत्ताइं समारंभ के०) प्राणी भूत जीव सत्वनो आरंभ करे मर्दन करे (समुद्दिस्स के०) तथा साधुने निमित्ते उद्देशीने (कीतं के०) वेचातुं लीये (पामिच्चं के०) उछीतुं लावे (अछिज्जं के०) बीजा पासेथी छीनीलीए (अणिसठं के०) बीजानी वस्तु होय ते तेना धणीने कह्या विना साधुने आपे (अभिहडंआहट्टुदेसियं के०) ग्रामादिक थकी साधुने सन्मुख लावे एवो आहार आधाकर्मादिक दोषें करी दुष्ट (तंचेतियंसिया के०) ते आहार साधुने दीधो अने साधुए पण अजाणता लीधो परंतु एवो दोष दुष्ट आहार जाणे तो (तेणोसयंभुंजइ के०) ते आहार साधु पोते जमे नही (णोवअन्नेणंभुंजावें ति के०) तथा बीजाने तेवो आहार जमाडे नही अने (अन्नंपिभुंजंतंणसमणुजाण इ के०) बीजो कोइ एवो आहार जमतो होए तेने अनुमोदे नही (इतिसेमहतोआ

याणाउवसंतेउवहिए पडिविरतेके०) एरीते ते महोटा कर्मबंधना कारण एवा जे आ हारना दोष ते थकी उपशम्यो सावधान थयो विशेषें निवर्त्यो तेने साधु कहिए ॥५५॥

॥ दीपिका—यदपीदं सांपरायिकं कर्म तच्च प्रद्वेषनिन्ह्वमात्सर्यांतरायासातनोपघातै र्बध्यते तत्कर्म कारणंवा न कृतकारितानुमतिनिः करोति सनिक्षुः कथ्यते ॥५४॥ सनि क्षुर्यत्पुनरेवंनूतमाहारं जानीयात् (अस्सिंपडियाए) एतत्प्रतिज्ञया एकं साधुं साधर्मिकं समुद्दिश्य कश्चित्प्रकृतिनद्रकः श्रावकः साध्वाहारदानार्थं प्राणिनः समारन्य प्राणिघात कमारंनं कृत्वा समुद्दिश्य तत्पीडां सम्यगुद्दिश्य क्रीतं (पामिच्चं) उच्छिन्नकमाछेद्यमन्य स्मादाछिद्य गृहीतमनिसृष्टं परेणाननुमतमन्याहृतं साधुसंमुखमानीतमाहृत्य उपेत्य ज्ञा त्वा साध्वर्थं कृतमुद्देशिकमेवंनूतमाहारं साधवे दत्तं स्यात्साधुनावाऽकामेन गृहीतं स्या त्तद्दोषडुष्टं ज्ञात्वा स्वयं न ञुंजीत अन्येन न नोजयेत् नच ञुंजानमन्यं समनुजानीयात् एवं डुष्टाहारान्निवृत्तोनिक्षुः स्यात् ॥ ५५ ॥

॥ टीका—सांप्रतं सामान्यतः सांपरायिककर्मोपादाननिषेधमधिकृत्याह । (जंपियइय इत्यादि) यदपीदं सपर्येति तासुतासु गतिष्वनेककर्मणेति सांपरायिकं तच्च तत्प्रद्वेषनि न्ह्वमात्सर्यांतरायासातनोपघातैर्बध्यते तत्कर्म तत्कारणं वा न कृतकारितानुमतिनिः क रोति सनिक्षुरनिधीयतइति ॥५४॥सांप्रतं निक्षाविशुद्धिमधिकृत्याह । (सेनिक्खूइत्यादि) स निक्षुर्यत्पुनरेवंनूतमाहारजातं जानीयात् (अस्सिंपडियाएत्ति) एतत्प्रतिज्ञयाऽऽहारदानप्र तिज्ञया यदि वास्मिन्पर्याये साधुपर्याये व्यवस्थितमेकं साधुं साधर्मिकं समुद्दिश्य कश्चिछ्रा वकः प्रकृतिनद्रकोवा साध्वाहारदानार्थं प्राणिनः प्रव्यक्तेंद्रियान् नूतानि त्रिकालनाविनि जीवानायुष्कधरणलक्षणान्सत्वान्सदा सत्वोपेतान्समारन्य तडुपमर्दकमारंनं विधाय स मुद्दिश्य तत्पीडां सम्यगुद्दिश्य, क्रीतं क्रयेण द्रव्यविनिमयेन (पामिच्चंति) उद्यतकमाछे द्यमित्यन्यस्मादाछिद्य निसृष्टमिति परेणानुत्संकलितमन्याहृतमिति साध्वनिमुखं ग्रामा देरानीतमाहृत्योपेत्य साध्वर्थं कृतमुद्देशिकमित्येवंनूतमाहारजातं साधवे दत्तं स्यात्तच्चा कामेन तेन परिगृहीतं स्यात् । तदेवं दोषडुष्टं च ज्ञात्वा स्वयं न ञुंजीत नाप्यपरेण नोजये न्नच ञुंजानमपरं समनुजानीयादित्येवं डुष्टाहारदोषान्निवृत्तोनिक्षुर्नवतीत्यर्थः ॥ ५५ ॥

सेनिक्खू अह पुणेवं जाणेज्जा तं विज्जति तेसिं परक्कमे जस्सठा तेवेइयं सियातं जहा अप्पणो से पुत्ताणं धूयाणं सुण्हाणं धातीणं णातीणं राईणं दासाणं दासीणं कम्मकराणं कम्मकरीणं आदेसाणं पुढोपहेणाए सा मासाए पातरासाए सन्निहीसंचएकज्जंति इहमेगेसि माणवाणं नोयणा

ए तत्थ निक्खू परकडं परणिट्ठितं उग्गमुप्पायणेसणासुद्धं सत्थाइयं सत्थ परिणामियं अविहिंसियं एसियं वेसियं सामुदाणियं पन्नमसणं कारण ट्ठा पमाणजुत्तं अक्खोवंजणवणलेवणनूयं संजमजायामायावत्तियं बिलमिव पन्नगनूतेणं अप्पाणेणं आहारं आहारेज्जा अन्नं अन्नकाले पाणं पाणकाले वत्थं वत्थकाले लेणं लेणकाले सयणं सयणकाले ॥ ५६ ॥

अर्थ-(सेनिक्खू के०) ते चारित्रिउ (अह के०) हवे (पुणेवंजाणेज्जा के०) व ली एवुं जाणे ते कहेछे. (तंविज्जतितेसिंपरक्कमे के०) ते गृहस्थने एवो पराक्रम आ हार करवानोछे के जे पराक्रमे करी (जस्सट्ठातेवेइयंसिया के०) जेने अर्थे ते आहार नीपजाव्यो होए (तंजहा के०) ते कहेछे. (अप्पणोसेपुत्ताणं के०) पोताने अर्थे त था पुत्रने अर्थे (धूयाणं के०) दीकरीने अर्थे (सुण्हाणं के०) छोकरानी वहुने अ र्थे (धातीणं के०) धाव्यने अर्थे (णातीणं के०) ज्ञातीने अर्थे (राईणं के०) राजा ने निमित्तें (दासाणं के०) दासने अर्थे (दासीणं के०) दासीने अर्थे (कम्मकराणं के०) कर्म करने अर्थे (कम्मकरीणं के०) परोणाने अर्थे (आदेसाणंपुढोपेहेणाए सामासाए के०) अन्यत्र स्थानके बीजाने मोकलवाने अर्थे नीपजाव्यांछे रात्रे जमवाने निमित्तें तथा लोकोक्तिए व्यालुने अर्थे (पातरासाए के०) कलेवा निमित्तें (स न्निहिसंचएकज्जंति के०) एप्रकारे आहारनो संनिधि संचय करे एटले दही उद नादिक विनाशी द्रव्य, अने हरडे शर्करादिक अविनाशी द्रव्यनो संचय करे. (इहमेगेसि माणवाणंनोयणाए के०) आ मनुष्य लोक मांहे कोइएक मनुष्यने एवो आहार नोज नने अर्थे थाय (तत्थनिक्खू के०) त्यां चारित्रिउ (परकडं के०) परनो करेलो (पर णिट्ठितं के०) परनिष्ठित एटले अन्यने अर्थे नीपजाव्यो (उग्गमुप्पायणेसणासुद्धं के०) उद्गमना सोल दोषने दातार अजाणतो लगावे, अने उत्पादनना सोल दोष ते साधु लगा वे, वली एषणाविशुद्धना दश दोष रहित एटले सर्वमली बेंतालीश दोष रहित (सत्थाइयं के०) शस्त्रातीत एटले अग्न्यादिकें करी अचित कीधो (सत्थपरिणामियं के०) शस्त्रें क री वर्ण गंध रसादिके करी परिणामाव्यो (अविहिंसियं) निर्जीव एटले जीव रहित तेपण (एसियं के०) गवेष्युं निक्षाचर्या करतां पाम्यो तेपण वली (वेसियं के०) निः केवलसाधुने वेषे प्राप्त थयो तेपण वली (सामुदाणियं के०) माधुकरी वृत्तिए घणा घ र फरतां प्राप्त थयो तथा (पन्नमसणं के०) गीतार्थनो आणेलो, एवो आहार अशना दिक तेवली (कारणट्ठा के०) वैयावच्चादिक कारणने अर्थे तेवली (पमाणजुत्तं के०) प्रमाणयुक्त एटले प्रमाणोपेत आहार जाणवो. तेवली वर्णवलादिकने अर्थे नही किंतु

जेटले आहारें करी शरीर क्रियाने विषे प्रवर्ते तेटलोज आहार लेवो. ते उपर दृष्टांत कहेले. (अरकोवंजण के०) जेटलो गाडानी धरीने जोइए तेटलो किल आपिए चोपडीए तेटलुंज गाडुं पण चाले तथा (वण के०) व्रण एटले गुंबडा उपर (लेवणजूयंके०) जेटलो लेप लागे तेटलोज लगाडीए. ए उपमायें चारित्रिउ पण आहार लीए. (संजमजायामायावत्तियंके०) जेटले आहारें संयम जात्रायें प्रवृत्ताय तेटली मात्रायें तेटलो आहारलीए, ते वली तेटली मात्रा टालीने अधिक आहार न लेवो. (बिलमिवपन्नग जूतेणंके०) ते आहार वली बिलप्रवेश सर्पनी पेठें (अप्पाणेणं के०) पोतें (आहारंआहारेज्जाके०) आहार आहारे,एटले जेम सर्प बिल मांहे प्रवेश करे तेवारे उतावलो प्रवेश करे तेम साधु पण, आहार करतो सुस्वाद निरास्वाद अण जोतो आहार लीए (अन्नंअन्नकाले के०) ते अन्न अन्नने काले लीए, उत्सर्ग मार्गें सूत्र अर्थ पौरसीनुं अनंतर अहार काल जाणवो. (पाणंपाणकालेके०) एवीज रीते पाणी, पाणीने कालें पीए एटले तृषा लागे थके जमवुं नही, अने क्षुधातुर थके पाणी पीवुं नही इत्यर्थः (वबंवबकाले के०) तथा वस्त्र वस्त्रने कालें लेवुं उढवुं (लेणंलेणकाले के०) उपाश्रय उपाश्रयने काले लीये, एटले वर्षादिकाल समयें अवश्य उपाश्रयने विषे रहे बीजाकालने विषे नियम नथी (सयणंसयणकालेके०) शयन कालें शयन करे त्यां अगीतार्थने बे पहोर निड़ा जाणवी. अने निड़ा थकी विमुक्त गीतार्थने एक पहोर निड़ा जाणवी॥५६॥

॥ दीपिका—सनिक्षुरस्य पुनरेवं जानीयात् । तद्यथा । तेषां गृहस्थानां वक्ष्यमाणः पराक्रमः सामर्थ्यं आहारकरणारंजइति यावत् । यस्य चार्थाय यत्कृते तच्चेति तं दत्तं निष्पादितं स्यात् । तद्यथा । आत्मनः कृते से तदाहारजातं कृतंस्यात्तथा पुत्राणां सुतानां स्नुषाणां वधूनां धात्रीणां राज्ञां दासीनां कर्मकरीणामादेशकः प्राघूर्णकस्तस्यार्थं तथा पृथक् प्रग्रहणार्थं (सामासाएत्ति) श्यामारात्रिस्तत्राशनं श्यामाशोरात्रिनोजनार्थं प्रातरशनं प्रातराशस्तदर्थं सन्निचयोविशिष्टाहारनिष्पादनं क्रियते । अनेन चैतत्सूच्यते यद्बालवृद्ध्ग्लानादिनिमित्तं प्रनातादिसमयेष्वपि निक्षाटनं क्रियते तस्यायमुक्तः संजवः ससन्निधिसंजवइहैकेषां मानवानां नोजनाय स्यात् । तत्र निक्षुः परकृतपरनिष्ठितमुजमोत्पादनैषणाशुद्धमाहारमाहरेत् । अत्र परकृतपरनिष्ठिते चत्वारोनंगाः। तद्यथा । तस्यकृतं तस्यैवनिष्ठितं १ तस्य कृतमन्यस्यनिष्ठितं २ अन्यस्य कृतं तस्य निष्ठितं ३ अन्यस्य कृतमन्यस्यनिष्ठितं ४ । तत्र चतुर्थनंगः सूत्रोपात्तः शुद्धः । द्वितीयोपिशुद्धः । उजमदोषाः १६ उत्पादनादोषा अपि १६ एषणादोषाः १० इतिद्विचत्वारिंशता दोषैः शुद्धं शास्त्रातीतं प्रासुकीकृतं शस्त्रपरिणामितं स्वकायपरकायादिशस्त्रेण निर्जीवीकृतं वर्णगंधरसादिनिश्च

परिणामितमविहिंसितं सम्यक् निर्जीवमित्यर्थः। एपितं भिक्षाचर्याविधिप्राप्तं वैषिकं केवलसाधुवेपप्राप्तं नपुनर्निमित्तादिनोत्पादितं सामुदानिकं मधुकरवृत्त्यास्तोकं स्तोकं गृहीतं प्राज्ञस्येदं प्राज्ञं गीतार्थोपात्तमशनं तदपि वेदनावैयावृत्त्यादिकारणे सति ।यडुक्तं। वेयण १ वेयावच्चे, २ इरियठ्ठाएय ३ संजमठ्ठाए ४ । तह पाणवत्तियाए ५ छठ्ठं पुण धम्मचिंताए ।६। एषु कारणेष्वाहारं गृह्णीयात्। तदपि प्रमाणयुक्तं नातिमात्रं। यडुक्तं। अद्धमसणस्स सवंजणस्स कुज्जादवस्सदोनाए॥ वायपवियारणठ्ठा, छप्नागं ऊणगं कुज्जाइति॥१॥ अक्षस्य शकटस्य उपांजनमन्यंगः व्रणस्यच लेपनं तडुपमयाऽहारमाहरेत्। यतः। अप्नंगे णवसगमं णतरइविणाउजो साहू॥ सो रागदोसरहिउं, मत्ताइविहीइ तंसेवे ॥१॥ एतदेवाह। संयमयात्रायां मात्रा संयमयात्रामात्रा यावत्याहारमात्रया संयमयात्रा प्रवर्तते तया संयमयात्रामात्रया वृत्तिर्यस्य तत्तथा। तदपि बिलप्रवेशपन्नगजूतेनात्मनाऽऽहारमाहरेत्। कोर्थः। यथा बिलं प्रविशन् सर्पस्तूर्णं प्रविशति एवं साधुनापि स्वादमगृएहताऽहारः शीघ्रं प्रवेशयितव्यः। अथवा सर्पेणेवाहारोऽलब्धास्वादं नक्षणीयइति । तद्यथा। अन्नमन्नकाले सूत्रार्थपौरुपीकरणोत्तरकालं पानकं पानकाले न तृपितोभुंजीत न बुभुक्षितः पानकं पिबेत्। वस्त्रं वस्त्रकाले ग्राह्यं लयनं गुहादिकमाश्रयस्तस्य वर्षास्वत्यवश्यमुपादानमन्यदात्वनियमः। शयनं संस्तारकः शयनकाले तत्रागीतार्थानां प्रहरद्वयं निद्राविमोक्षोगीतार्थानां तु प्रहरमेकमिति ॥ ५६ ॥

॥ टीका–पुनरेवं जानीयादित्यादि । तद्यथा । गृहं विद्यते येषां तेपां गृहस्थानामेवंनूतोवक्ष्यमाणः पराक्रमः सामर्थ्यमाहारनिवर्तनं प्रत्यारंजस्तेनच यदाहारजातं निर्वर्तितं यस्य चार्थाय यत्कृते तच्चेति तमिति दत्तं निष्पादितं स्याद्भवेत्। यत्कृते च निष्पादितं तत्स्वनामग्राहमाह । तद्यथा । आत्मनः स्वनिमित्तमेवाहारादिपाकनिर्वर्तनं कृतमिति तथा पुत्रार्थं यावदादेशायादिश्यते यस्मिन्नागते संभ्रमेण परिजनस्तदातदाशनदानादिव्यापारः सआदेशकः प्राघूर्णकस्तदर्थंवा पृथक् प्रग्रहणार्थं विशिष्टाहारनिर्वर्तनं क्रियते तथा श्यामा रात्रिस्तस्यामशनमाशः श्यामाशस्तदर्थं प्रातरशनं प्रातराशः प्रत्यूपस्येव नोजनं तदर्थं सन्निधिः संनिचयोविशिष्टाहारसंग्रहस्य संचयः क्रियते । अनेन चैतत्प्रतिपादितं नवति।बालवृद्धग्लानादिनिमित्तं प्रत्यूषादिसमयेष्वपि भिक्षाटनं क्रियते तस्य चायमभिहितः संनवः। सच (संनिहिति) संचयइहैकेपां मानवानां नोजनार्थं नवति तत्र भिक्षुरुद्यतविहारी परकृतपरनिष्ठितमुद्गमोत्पादनैपणाशुद्धमाहारमाहरेत्। अत्र च परकृतपरनिष्ठिते चत्वारोनंगाः। तद्यथा। तस्य कृतं तस्यैव च निष्ठितं तस्य कृतमन्यस्य निष्ठितमन्यस्य कृतं तस्यैव निष्ठितमन्यस्य कृतमन्यस्य निष्ठितमित्ययं चतुर्थोनंगः सूत्रे

णोपात्तोऽयं च शुद्धोद्वितीयश्चान्यस्य निष्ठितत्वात्तत्राधाकर्मौद्देशिकादयउद्गमदोषाः षोड
श तथोत्पादनादोषाधात्रीदूत्यादिकाः षोडशैव तथैषणादोषाः शंकितादयोदश । एवमेनि
र्द्विचत्वारिंशद्दोषैरहितत्वाच्छुद्धं । यथाशस्त्रमग्न्यादिकं तेनानीतं प्रासुकीकृतं शस्त्रपरिणा
मितमिति शस्त्रेण स्वकायपरकायादिना निर्जीवीकृतं वर्णगंधरसादिनिश्च परिणमितं हिं
साप्राप्तं हिंसितं विरूपं हिंसितं विहिंसितं नसम्यक् निर्जीवीकृतमित्यर्थः । तत्प्रतिषेधाद
विहिंसितं निर्जीवमित्यर्थः । तदप्येषितमन्वेषितं निक्षाचर्याविधिना प्राप्तं वैषिकमिति केवल
साधुवेषावाप्तं नपुनर्जात्याद्याजीवनतोनिमित्तादिना चोत्पादितं तदपि सामुदानिकं समुदा
नं निक्षासमूहस्तत्र नवं सामुदानिकं । एतडुक्तं नवति । मधुकरवृत्त्यावाप्तं सर्वत्र स्तोकंस्तोकं
गृहीतमित्यर्थः । तथा प्राज्ञस्येदं प्राज्ञं गीतार्थेनोपात्तमशनमाहारजातं तदपि वेदनावैय्या
वृत्त्यादिके कारणेसति तत्रापि प्रमाणयुक्तं नातिमात्रं । प्रमाणं चेदं । अद्धमसणस्स स
व्वं जणस्स कुज्जादवस्स दोनाए । वाउपवियारणठाठप्नागं ऊणयं कुज्जत्ति । एतदपि न व
र्णबलाद्यर्थं किंतु यावन्मात्रेणाहारेण देहः क्रियासु प्रवर्तते । तत्र दृष्टांतद्वयमाह । तं
यथा । अक्षस्योपांजनमन्यंगोव्रणस्य च लेपनं प्रलेपस्तडुपमया आहारमाहरेत् । तथाचो
क्तं । अप्रंगेण वसगमं एतरइ विगइं विणाइ जो साहू । सो रागदोसरहिउ मत्तादविही
इतं सेवे । एतदेव दर्शयति । संयमयात्रायामात्रा संयमयात्रामात्रा यावत्याहारमात्रया
संयमयात्रा प्रवर्तते सा तथा तया संयमयात्रामात्रया वृत्तिर्यस्य तत्तथा तदपि बिलप्रवे
शपन्नगनूतेनात्मनाऽऽहारमाहरेत् । एतडुक्तं नवति । यथाहिर्बिलं प्रविशन् तूर्णं प्रविश
त्येवंसाधुनाप्याहारस्तत्स्वादमनास्वादमन्यवहार्यतइति । तदेवाहारजातं दर्शयितुमाह ।
अन्नं नक्तमन्नकाले सूत्रार्थपौरुष्युत्तरकालं निक्षाकाले प्राप्ते पुरः पश्चात्कर्मपरित्हतं नव
ति । यथोक्तनिक्षाटनेन ग्रहणकालावाप्तं नैक्षं परिनोगकाले ज्ञुंजीत । तथा पानकं पान
काले नातितृषितोज्जुंजीत नाप्यतिबुजुक्षितः पानकं पिबेदिति । तथा वस्त्रं वस्त्रकाले गृ
ह्णीयाडुपनोगंवा कुर्यात्तथा लयनं गुहादिकमाश्रयस्तस्य वर्षास्ववश्यमुपादानमन्यदात्व
नियमस्तथा शय्यतेऽस्मिन्निति शयनं संस्तारकः सच शयनकाले । तत्राप्यगीतार्थानां प्र
हरद्वयं निद्राविमोक्षोगीतार्थानां प्रहरमेकमिति । ॥ ५६ ॥

सेनिक्खू मायन्ने अन्नयरं दिसं अणुदिसंवा पडिवन्ने धम्मं आ
इक्के विन्नए किट्टे उवठिएसुवा अणुवठिएसुवा सुस्सूसमाणेसु प
वेदए संतिविरतिं उवसमं निव्वाणं सोयवियं अज्जवियं मद्दवि
यं लाघवियं अणतिवातियं सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं नूताणं जा
व सत्ताणं अणुवाइं किट्टिए धम्मं ॥ ५७ ॥

अर्थ-(सेनिरकूके०) ते चारित्रिउं आहार, उपधी, शयन, स्वाध्याय, अने ध्यानादिकना (मायन्नेके०) मात्रा एटले विधिनो जाण ठतो (अन्नयरंदिसंअणुदिसंवाके०) अन्य दिशि अथवा विदिशि प्रत्यें (पडिवन्ने के०) आश्रित होतो एटले अंगीकार करतो ठतो (धम्मंआइरके के०) धर्म कहे. जे धर्म जेने करवा योग्य होय तेने तेवो उपदेश आपे (विन्नए के०) धर्म अने अधर्मना फल जुदा जुदा करी देखाडे (किट्टे के०) धर्मनी कीर्त्ति करे, प्रशंसा करे वली परना हितने अर्थे साधु चारित्रिउं (उवट्ठिएसुवा के०) उपस्थित एटले उद्यमवंत एवा शिष्यने विषे तथा (अणुवट्ठिएसुवा के०) अनुपस्थित एटले कौतुकार्थी शिष्यने विषे (सुस्सूसमाणेसु के०) सांजलवा वांठताने विषे पोताना आत्माना तथा परना हित जणी (पवेदए के०) धर्म कहे. जे धर्म कहे ते देखाडेठे. (संतिं के०) उपशम ते कषायनुं जीपवुं तथा (विरतिं के०) विरति ते प्राणातिपातादिक थकी निवर्त्तवुं एवो धर्म प्ररूपे (उवसमंके०) इंड्रिय तथा नोइंड्रियनुं उपशमाववुं एटले राग द्वेषनो अनाव करवो (निव्वाणं के०) तथा निरवाणते सर्व जीवोने समाधिरूप एटले मोक्ष कहे तथा (सोयवियं के०) शौचते व्रतनुं निर्मल पणु एटले जेम व्रतने मल नलागे तेवीरीते धर्म कहे (अज्जवियं के०) आर्जव एटले सरलता मायानो अनाव (मद्दवियं के०) कोमल मृडुनावयुक्त तेवा विधिये धर्म कहे (लाघवियं के०) तथा कर्म हलवां थाय तेवा विधियें धर्म कहे. हवे सर्व शुनानुष्ठानतु मूल कारण कहेठे (अणतिवातियं के०) अहिंसा आदरवानो उपदेश आपे ते कोनी अहिंसा? ते कहेठे (सव्वेसिंपाणाणंके०) सर्व प्राणीनी (सव्वेसिंनूताणं के०) सर्वनूत सर्वजीव (जावसत्ताणं के०) यावत् सर्व सत्वनी अहिंसाने (अणुवाइंकिट्टिएधम्मं के०) विचारीने धर्मोपदेश आपे एटले समस्त जीवमात्रनी जे प्रकारे हिंसा नथाय ते प्रकारें धर्म कहे ॥ ५७ ॥

॥ दीपिका-आहारादिमात्रज्ञः सनिक्षुः अन्यतरां दिशमनुदिशंवा प्रतिपन्नोधर्ममाख्यापयेत् कथयेत् यद्येन साधुना गृहस्थेन वा विधेयं तद्यथायोगं विनजेत् धर्मफलानि कीर्तयेत् उपस्थितेपूद्यतेषु अनुपस्थितेषु कौतुकादिप्रवृत्तेषु शुश्रूषमाणेषु श्रोतुं प्रवृत्तेषु प्रवेदयेत् । यत्कथयेत्तदाह । शांतिः क्षमा तत्प्रधाना विरतिस्तां कथयेत् । उपशममिंड्रियदमं निर्वाणं मोक्षं (सोयवियं) शौचं नावशौचमित्यर्थः । आर्जवं निर्मायत्वं मार्दवं मृडुनावोविनीतत्वमितिनावः । लाघवं कर्मलघुत्वक्रिया । अतिपातोहिंसा सविद्यते यस्यसोतिपातिकस्तन्निषेधादनतिपातिकस्तं सर्वेषां प्राणिनां यावत्सत्वानां धर्ममनुविविच्य विचिंत्य, कीर्तयेत् । कोर्थः । सर्वप्राणिरक्षानूतं धर्मं कथयेदित्यर्थः ॥ ५७ ॥

॥ टीका—सनिक्कुराहारोपधिशयनस्वाध्यायादीनां मात्रां जानातीति तद्विधिज्ञः सन् अन्यतरां दिशमनुदिशंवा प्रतिपन्नः समाश्रितोधर्ममाख्यापयेत् यद्येन विधेयस्तद्यथा नोगं विनजेद्धर्मफलानि च कीर्तयेदाविर्नावयेत्तच्चैकार्थप्रवृत्तेन साधुना सम्यगुपस्थितेषु वा कौतुकादिप्रवृत्तेषु शुश्रूषमाणेषु श्रोतुं प्रवृत्तेषु स्वपरानिप्रायं वेदयेदावेदयेत्प्रकथयेदितियावत् । श्रोतुमुपस्थितेषु यत्कथयेत्तद्दर्शयितुमाह । (संतिविरइइत्यादि) शांतिरुपशमः क्रोधजयस्तत्प्रधाना प्राणातिपातिन्योविरतिः शांतिविरतिः । यदिवा शांतिरशेषक्लेशापगमरूपा तस्यै तदर्थं विरतिस्तां कथयेत्तथोपशममिंद्रियोपशमरूपं रागद्वेषानावजनितं तथा निर्वृतिं निर्वाणमशेषद्वंद्वोपरमरूपं तथा (सोयवियंति) शौचं तदपि नावशौचं सर्वोपाधिशुद्धता व्रतामालिन्यं । (अज्जवियंति) आर्जवममायित्वं तथा मार्दवं मृडुनावं सर्वत्र प्रश्रयवत्वं विनयनम्रतेति यावत् । तथा (लाघवियंति) कर्मणां लाघवापादनं कर्मगुरोर्वात्मनः कर्मापनयनतोलघ्ववस्थासंजननं । सांप्रतमुपसंहारद्वारेण सर्वशुनानुष्ठानानां मूलकारणमाह । अतिपतनमतिपातः प्राण्युपमर्दनं तद्विद्यते यस्यासावतिपातिकस्तत्प्रतिषेधादनतिपातिकस्तं सर्वेषां प्राणिनां नूतानां यावत्सत्वानां धर्ममनुविधिमनुविचिंत्य, वा कीर्तयेत्कथयेत् । इदमुक्तं नवति सर्वप्राणिनां रक्षानूतं धर्मं कथयेदिति ॥ ५७ ॥

सेनिक्खू धम्मं किट्टमाणे णो अन्नस्स हेउं धम्म माइक्खेज्जा णोपाणस्स हेउं धम्ममाइक्खेज्जा णोवत्थस्सहेउं धम्ममाइक्खेज्जा णोलेणस्स हेउं धम्ममाइक्खेज्जा णोसयणस्सहेउं धम्ममाइक्खेज्जा णोअन्नेसिं विरूवरूवाणं कामनोगाणं हेउं धम्ममाइक्खेज्जा अगिलाए धम्ममाइक्खेज्जा नन्नत्थ कम्मनिज्जरठाए धम्ममाइक्खेज्जा ॥५८॥ इहखलु तस्स निक्खुस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म उठाणेणं उठाय वीरा अस्सिं धम्मे समुठिया जे तस्सनिक्खू अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म सम्मं उठाणेणं उठायवीरा अस्सिंधम्मे समुठिया तेएवं सव्वोवगता तेएवं सव्वोवरता तेएवं सव्वोवसंता तेएवं सव्वताए परिनिवुमेत्तिबेमि ॥ ५९ ॥

अर्थ—(सेनिक्खू के०) ते साधु (धम्मंकिट्टमाणे के०) धर्म कहेतो थको (णो अन्नस्सहेउं धम्ममाइक्खेज्जा के०) अन्न एटले आहारने हेतुयें धर्म न कहे ते आवी रीते के आ अमुक मनुष्य धनवंतछे माटे महारी पासेंथी धर्म सांनलीने मने मनो वांछित आहार आपशे, एवो विचार करे नही तथा वली (णोपाणस्सहेउंध

म्ममाइरकेज्जा के०) पाणीने हेतुयें पण धर्म नकहे एवो संयति होए (णोवह्यस्सहे उंधम्ममाइरकेज्जा के०) तथा वस्त्रने हेतुयें धर्म न कहे (णोलेणस्सहेउंधम्ममाइरकेज्जा के०) उपाश्रय वस्ति पामवाने हेतुयें धर्म न कहे (णोसयणस्सहेउंधम्ममाइरकेज्जा के०) तथा पाट पाटलादिक सयनने हेतुयें धर्म नकहे (णोअन्नेसिंविरूवरूवाणंकाम न्नोगाणंहेउंधम्ममाइरकेज्जा के०) नाना प्रकारना कामन्नोगने हेतुयें धर्म नकहे (अ गिलाएधम्ममाइरकेज्जा के०) अग्लान पणे धर्मकहे एटले पूछ्यो थको धर्म कहेवानो प्रमाद नकरे (नन्नछकम्मनिज्जरहाएधम्ममाइरकेज्जा के०) एक कर्मनिर्ज्जरानुं कारण टाली, अनेरे अर्थें धर्म नकहे. ॥५७॥ हवे एवी रीते धर्म कहेवा थकी जे फल थाय ते देखा डेबे. (इहखलुतस्सन्निरकुस्स के०) आ जगत् मांहे खलु इति वाक्यालंकारे ते गुणवं त साधुने (अंतिए के०) समीपे (धम्मंसोच्चा के०) धर्म सांनलीने (णिसम्मउ हाएणं के०) सम्यक् हृदयने विषे धारण करीने, संयमने विषे सावधान थइने, (उ हायवीरा के०) धर्ममार्गे प्रवर्त्तता वीर एटले कर्म विदारवाने समर्थ (अस्सिंधम्मे समुठियाके०) एवो धर्मजे सम्यक् ज्ञान दर्शन अने चारित्ररूप तेने विषे पहोता (जेत स्सन्निरकू के०) जे ते साधुने समीपें धर्म सांनलीने. ते साधु केवाछे तोके सम्यक् ह दय धरीने सयंमने विषे सावधान थइ धर्म मार्गें प्रवर्त्तता कर्मविदारवाने समर्थ ए स म्यक् ज्ञानादिक ने विषे सावधान थया (तेएवंसव्वोवगता के०) ते एम सर्व कर्म खपावीने मोक्षे पहोता (तेएवंसव्वोविरता के०) ते एम सर्व अढारे पापस्थानक थकी निवर्त्त्या. (तेएवंसव्वोवसंता के०) ते एम सर्व प्रकारे उपशांत एटले कषा य जीपीने (तेएवंसव्वताएपरिनिव्वुम्मे के०) ते एम सर्व प्रकारें समर्थ पणे करीने शी तलीनूत थइ मोक्षे पहोता (त्तिबेमि के०) श्रीसुधर्मस्वामि श्रीजंबूस्वामि प्रत्ये कहे छे के साधुने समीपे धर्म सांनल्यानुं फल में कह्युं ते जेवीरीते श्रीन्नगवंत श्रीमहावीर देव पासेंथी में सांनल्युंछे तेवीरीते तमने कह्युं ॥ ५९ ॥

॥ दीपिका–सन्निक्षुर्धर्मं कीर्तयन्नान्नस्य हेतोर्धर्ममाचक्षीत । तथा पानवस्त्रलयनशय ननिमित्तं न धर्ममाख्याति । विरूपरूपाणां शुन्नाशुन्नानां कामन्नोगानां हेतोर्न धर्ममाख्या ति । अग्लानतया धर्ममाख्याति । निर्जरां विनाऽन्यकार्यर्थि न धर्मं वदेत् ॥५७॥ अथोप संहारमाह । इह जगति खलु तस्य निक्षोरंतिके समीपे धर्मं श्रुत्वा निशम्यावगम्य सम्य गुह्यानेनोह्याय वीराः समर्थाये ते चैवंनूताः सर्वस्मिन् मोक्षकारणे उपगताः प्राप्ताः स र्वोपगतास्तेचैवं सर्वेन्यः पापस्थानेन्य उपरतानिवृत्ताः सर्वोपरतास्तेचैवं सर्वोपशांता

स्तेचैवं सर्वात्मतया सर्वसामर्थ्येन सदनुष्ठाने उद्यताःपरिनिर्वृतानिर्वाणं प्राप्ताइ ति ब्रवीमीति ॥ ५ए ॥

॥ टीका–सांप्रतं धर्मकीर्त्तनं यथा निरुपधि नवति तथा दर्शयितुमाह। (सेनिरकूइत्यादि) सनिकुः परकृतपरनिष्ठिताहारनोजी यथाक्रियाकलानुष्ठायी शुश्रूषन् सुधर्मं कीर्तयन्नान्नस्य हेतोर्ममायमीश्वरोधर्मकथाप्रश्रवणे विशिष्टमाहारजातं दास्यतीति। एतन्निमित्तं न धर्ममाचक्षीत तथा पानवस्त्रलयनशयननिमित्तं न धर्ममाचक्षीत । नान्येषां विरूपरूपाणामुच्चावचानां कार्याणां कामनोगानां वा निमित्तं तथा धर्ममाचक्षीत ग्लानिमनुपगछन् न धर्ममाचक्षीत कर्मनिर्जरायाश्चान्यत्र न धर्मं कथयेदपरप्रयोजननिरपेक्षएव धर्मकथयेदिति ॥५७॥ धर्मकथाश्रवणफलदर्शन द्वारेणोपसंजिघृक्षुराह।(इहखलुतस्सेत्यादि) इहास्मिन् जगति । खलु वाक्यालंकारे । तस्य निक्षोर्गुणवतोंतिके समीपेपूर्वोक्तविशेषणविशिष्टं धर्मं श्रुत्वा निशम्यावगम्य सम्यगुत्थानेनोत्थाय धीराः कर्मविदारणसहिष्णवोये चैवंनूतास्ते एवं पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टानुष्ठानतया सर्वस्मिन्नपि मोक्षकारणसम्यग्दर्शनादिके उपसामीप्येन गताः सर्वोपगतास्तथैवं सर्वेन्य उपरताः सर्वोपरतास्तथा तएवं सर्वोपशांताजितकषायतया शीतलीनूतास्तथा एवं सर्वात्मतया सर्वसामर्थ्येन सदनुष्ठानेनोद्यमं कृतवंतोये चैवंनूतास्तेऽशेषकर्मक्षयं कृत्वा परि समंतान्निर्वृताअशेषकर्मक्षयं कृतवंतइति ब्रवीमीति पूर्ववत् ५७

एवं सेनिरकू धम्मट्ठी धम्मविऊ णियागपडिवसे से जहेयं बुत्तियं अडु
वा पत्ते पउमवरपोंमरीयं अडुवा अपत्ते पउमवरपोंमरीयं एवं सेनिरकू
परिणायकम्मे परिणायसंगे परिणायगेहवासे उवसंते समिए सहिए स
याजए सेवं वयणिज्जं तंजहा समणेतिवा माहणेतिवा खंतेतिवा दंतेतिवा
गुत्तेतिवा मुत्तेतिवा इसीतिवा मुणीतिवा कतीतिवा विऊतिवा निरकूतिवा
लूहेतिवा तीरट्ठीतिवा चरणकरणपारविउत्तिबेमि॥ ॥ इति बितियं सु
यरकंधस्स पोंमरीयं नाम पढमज्झयणं सम्मत्तं ॥ ६७ ॥

अर्थ–हवे अध्ययन परिसमाप्ति नणी कहेछे. (एवंसेनिरकूधम्मट्ठीके०) एम पूर्वोक्त गुण युक्त ते साधु धर्मनो अर्थी (धम्मविऊ के०) धर्मनो जाण, (णियागपडिवसे के०) मोक्ष अथवा संयमने विषे प्रतिपन्न एवो पांचमो पुरुष, (सेजहेयंबुत्तियं के०) ते आश्रीने जेम पूर्वे कह्युं (अडुवापत्तेपउमवरपोंमरीयं के०) ते अथवा प्रधान पौंमरीक कमलने पहोतो (अडुवाअपत्तेपउमवरपोंमरीयं के०) अथवा प्रधान पौंमरीक कम

सएवंभूतगुणएत द्वचनीयएतैर्नामभिर्वाच्यः स्यात् । तद्यथा । श्रमणोवा माहनोवा ब्र ह्मचारित्वाद्ब्राम्हणोवा, क्षांतोवा, दांतोवा, गुप्तिभिर्गुप्तोवा, निर्लोभत्वान्मुक्तोवा, ऋषिर्वा, कृत मस्यास्तीतिकृती पुण्यवान् वित् विद्योपेतोभिक्षुर्वा, अंतप्रांताहारत्वेन रूक्षोवा, संसारब्धेस्ती रार्थीवा, चरणं मूलगुणाः, करणमुत्तरगुणास्तेषां पारं पर्यंतगमनं वेत्तीत्ति चरणकरणपा रवित् । इति समाप्तौ । ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह ॥ ॥ इतिद्वि तीयश्रुतस्कंधस्य पुंडरीकाध्ययनं प्रथमं समाप्तम् ॥ ६० ॥

॥ टीका–सांप्रतमध्ययनोपसंहारार्थमाह । (एवंसेभिरकूइत्यादि) एवमिति पूर्वो क्तविशेषणकलापविशिष्टः सभिक्षुः पुनरपि सामान्यतोविशिष्यते । धर्मः श्रुतचारित्राख्य स्तेनार्थी यथावस्थितं परमार्थतोधर्मं सर्वोपाधिविशुद्धं जानातीति धर्मवित्तथा नियागः संयमोमोक्षोवा कारणे कार्योपचारं कृत्वा तं प्रतिपन्नोनियागप्रतिपन्नः सचैवंभूतः पंचम पुरुषजातस्तं चाश्रित्य यथेदं प्राक् प्रदर्शितं तत्सर्वमुक्तं । सच प्राप्तोवा स्यात्पद्मवरपौंड रीकमनुग्राह्यं पुरुषविशेषं चक्रवर्त्यादिकं । तत्प्राप्तिश्च परमार्थतः केवलज्ञानावाप्तौ सत्यां भवति । साक्षाद्यथावस्थितवस्तुस्वरूपपरिच्छित्तेरप्राप्तोवास्यान्मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानै र्यस्तैः समस्तैर्वा समन्वितः सचैवंभूतः प्राग्व्यावर्णितगुणकलापोपेतोभिक्षुः परि समं तात् ज्ञातं कर्म स्वरूपतोविपाकतस्तडुपादानतश्च येन सज्ञातकर्मा तथा परिज्ञातः संगः सं बंधः सबाह्याभ्यंतरोयेन सतथा परिज्ञातोनिःसारतया गृहवासोयेन सतथोपशांतइंद्रियनो इंद्रियोपशमात्तथा समितः पंचभिः समितिभिस्तथा सह हितेन वर्ततइति सहितोज्ञानादि भिर्वा सहितः समन्वितः सदा सर्वकालं यतः संयतः एत द्वचनीयस्तद्यथा श्राम्यतीति श्रम णः समनावा तथा मा प्राणिनोजहि व्यापादयेत्येवं प्रवृत्तिरुपदेशोयस्य समाहनः सब्रह्मचा रीवा ब्राम्हणः क्षांतः सक्षमोपेतोदांतइंद्रियनोइंद्रियदमनेन तथा तिसृभिर्गुप्तिभिर्गुप्तः तथा मुक्तइवमुक्तस्तथाविशिष्टचरणोपेतोमहर्षिस्तथा । मनुते जगतस्त्रिकालावस्थामिति मुनिस्त था कृतमस्यास्तीति कृती पुण्यवान् परमार्थपंडितोवा तथा विद्वान् सद्विद्योपेतस्तथा भिक्षु र्निरवद्याहारतया भिक्षणशीलस्तथांऽतप्रांताहारत्वेन रूक्षस्तथा संसारतीरभूतोमोक्षस्तदर्थी तथा चर्यतइति चरणं मूलगुणाः क्रियतइति करणमुत्तरगुणास्तेषां पारं तीरं पर्यंतगमनं त द्वेत्तीति करणचरणविदिति । इतिशब्दः परिसमाप्तौ । ब्रवीमीतितीर्थकरवचनादार्यः सुधर्मस्वा मी जंबूस्वामिनमुद्दिश्य एवं भणति तथाहं न स्वमनीषिकया ब्रवीमीति ॥ सांप्रतं समस्ताध्य यनोपात्तदृष्टांतदार्ष्टांतिकयोस्तात्पर्यार्थं गाथाभिर्निर्युक्तिकृद्दर्शयितुमाह । उवमयपुंडरीए, तस्सेवयउववएणनिक्कुत्ती । अधिगारो पुण भणिर्ज, जिणोवदेसेण सिद्धित्ति ॥ १ ॥ सु रमणुयतिरियनिरउ, वंगेसुमणुया पद्धचरित्तम्मि ॥ अवियमहाजणनेयत्तिचक्कवट्टमि

अधिगारो ॥ २ ॥ अवियद्भुनारियकम्मा, नियमा उक्कस्स निरयठितिगामी । ते विद्भुजिणोवदेसेण तेणेव नवेण सिज्झंति ॥ ३ ॥ जलमालकद्दमालं, बहुविहवल्लिगहणं च पुक्करणी । जंघाहिव वाहाहिव नावाहिवतं डुरवगाहा ॥ ४ ॥ पउमं उल्लंघेत्तुं, उपरमाणस्सहोनवावत्ती । किंनभिसेज्जवाउ, जेणुल्लंघेज्ज अविवन्नो ॥ ५ ॥ विज्जावदेव कम्मं, अहवा आगासियाविउव्वणया । पउमं उल्लंघेत्तुं नएसरुणमोजिणुरकाउ ॥ ६ ॥ सुद्दप्पउगविज्जासिद्धाउ जिणस्स जाणणेविज्जा । नवियजणपोंडरीयाउ जाए सिद्धिगतिमुवेंति ॥ ॥ ७ ॥ (उवमाइत्यादि) इहोपमा दृष्टांतः पौंडरीकेण श्वेतशतपत्रेण कृतस्तस्येहान्यहिंतत्वात् तस्यैव चोपचयेन सर्वावयवनिष्पत्तिर्याचद्विशिष्टोपायेनोद्धरणं । दार्ष्टांतिकाधिकारस्तु पुनरत्र नणितोनिहितश्चक्रवर्त्यादिर्नव्यस्य जिनोपदेशेन सिद्धिरिति तस्यैव पूज्यमानत्वादिति । पूज्यमेव दर्शयितुमाह । (सुरमणुएइत्यादि) सुरादिषु चतुर्गतिकेषु जंतुषु मध्ये मनुजाश्चरित्रस्य सर्वसंवररूपस्य प्रनवः शक्तावर्तंते न शेषाः सुरादयः । तेष्वपि मनुजेषु महाजननेतारश्चक्रवर्त्यादयोवर्तंते तेषु प्रबोधितेषु प्रधानानुगामित्वात् इतरजनः सुप्रतिबोधएव नवतीत्यतोत्र चक्रवर्त्यादिना पौंडरीककल्पेनाधिकारइति । पुनरप्यन्यथामनुजप्राधान्यं दर्शयितुमाह । (अविपहुइत्यादि) गुरुकर्माणोपि मनुजाश्चासंकलितनरकायुपोपि नरकगमनयोग्याश्रपि तेष्वेवंनूतजिनोपदेशात्तेनैव नवेन समस्तकर्मक्षयात् सिद्धिगामिनोनवंतीति । तदेवं दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोस्तात्पर्यार्थं प्रदर्श्य दृष्टांतनूतपौंडरीकाऽधारायाः पुष्करिण्याडुरवगाहित्वं सूत्रालापकोपात्तनिर्युक्तिकृद्दर्शयितुमाह । (जलमालेत्यादि) जलमालामित्यर्थप्रचुरजलां तथा कर्दममालामप्रतिष्ठिततलतया प्रनूततरपंकां तथा बहुविधवल्लिगहनां च पुष्करिणीं जंघाभ्यां वा बाहुभ्यां नावा वा डुस्तरां पुष्करिणीं दृष्ट्वेति क्रियाध्याहारः–किंचान्यत् । (पउमइत्यादि) तन्मध्ये पद्मवरपौंडरीकं गृहीत्वा समुत्तरतोऽवश्यं व्यापत्तिः प्राणानां नवेत् किं तत्र कश्चिडुपायः सनास्ति येनोपायेन गृहीतकमलः सन् तां पुष्करिणीमुल्लंघयेन्नविपन्नइति । तडुल्लंघनोपायं दर्शयितुमाह । (विद्यावेत्यादि) विद्या वा काचित्प्रज्ञप्त्यादिका देवता कर्मवाऽथवाऽकाशगमनलब्धिर्वा कस्यचिन्नवेत्तेनासावविपन्नोगृहीतपौंडरीकः सन्नुल्लंघयेत्तां पुष्करिणीमेपच जिनैरुपायः समाख्यातः । सर्वोपसंहारार्थमाह । (सुद्धप्पेत्यादि) शुद्धप्रयोगविद्यासिद्धा जिनस्यैव विज्ञानरूपा नान्यस्य कस्यचिद्यया विद्यया तीर्थकरदर्शितया नव्यजनपौंडरीकाः सिद्धिमुपगच्छंतीति । गतोनुगमः सांप्रतं नयास्तेच पूर्ववद्द्रष्टव्याइति ॥ समाप्तं पौंडरीकाख्यं द्वितीयश्रुतस्कंधप्रथमाध्ययनमिति ॥ ६० ॥ ॥

॥ अथ द्वितीयक्रियास्थानाख्याध्ययनस्य प्रारंभः ॥



हवे बीजुं अध्ययन प्रारंभियें बैयें. पहेला अध्ययनमां पौंमरीक कमलने दृष्टांते अन्यतीर्थिकने कर्मना बंधक कह्या, तथा साधुने कर्मथी मूकावनारा कह्या. हवे ते कर्म बार क्रिया स्थानकें करी बांधीयें अने तेरमे क्रिया स्थानके मूकीयें तेकारणे बीजा अध्ययनमां क्रियास्थानक कहेबे.

सुयंमे आउसंतेणं भगवया एवमरकायं इह खलु किरियाठाणे णामश्रयणे पन्नत्ते तस्सणं अयमठे इह खलु संजूहेणं डुवे ठाणे एवमाहिज्जंति तंजहा धम्मेचेव अधम्मेचेव उवसंतेचेव अणुवसंतेचेव ॥१॥ तब एणं जेसे पढमस्स ठाणस्स अहम्मपरकस्स विभंगे तस्स एं अयमठे पन्नते इह खलु पाईणंवा संतेगतिया मणुस्सा भवंति तं जहा आरियावेगे अणारियावेगे उच्चागोयावेगे णीयागोयावेगे कायमंतावेगे हस्समंतावेगे सुवन्नावेगे डुवन्नावेगे सुरूवावेगे डुरूवावेगे॥२॥ तेसिंचणं इमं एतारूवं दंमसमादाणं संपेहाए तं जहा णेरइएसुवा तिरिरकजोणिएसुवा मणुस्सेसुवा देवेसुवा जेयावन्ने तहप्पगारा पाणाविन्नू वेयणं वेयंति॥३॥तेसिं पियणं इमाइं तेरसकिरियाठाणाइं भवंतीति मरकायं तंजहा अठादंमे अणठादंमे हिंसादंमे अकम्मादंमे दिठीविपरियासियादंमे मोसवत्तिए अदिन्नादाणवत्तिए अश्झबवत्तिए माणवत्तिए मित्तदोसवत्तिए मायावत्तिए लोभवत्तिए इरियावहिए ॥ ४ ॥

अर्थ—(सुयंमे के०) श्रीसुधर्मस्वामी जंबूस्वामि प्रत्ये कहेबे. के, में सांभल्युंबे (आउसंतेणंभगवयाएवमरकायं के०) आयुष्यवंत भगवंते मने एम कह्युं बे ते में जेम सांभल्युंबे. तेम हुं तुज प्रत्ये कहुंबुं. (इहखलु के०) निश्चेंकरी आ जिनशासनने विषे (किरियाठाणेणामश्रयणेपन्नत्ते के०) क्रियास्थान नामे अध्ययन प्ररूप्युं. (तस्सणंअयमठे के०) तेनो ए अर्थबे. (इहखलु के०) अहिंयां खलु एवी संभावनायें (संजूहेणं के०) संक्षेपें करी (डुवेठाणेएवमाहिज्जंति के०) एकशुभ, बीजोअशुभ एम बे स्थानक, कहियें. (तंजहा के०) तेना नाम कहेबे. (धम्मेचेवअधम्मेचेव के०) एक धर्मस्थानक अने बीजो अधर्मस्थानक, (उवसंतेचेवअणुवसंतेचेव के०) एक उपशां

स्थानक, अने बीजो अनुपशांत स्थानक ॥१॥ (तत्थणं के०) त्यां (जेसे के०) जे कहेशे ते (पढमठाणस्सअहम्मपरकस्सविभंगेके०) प्रथम स्थानक अधर्म पक्षनो विभंग एटले विचार. (तस्सणंअयमट्ठेपसत्तेके०) तेनो ए अर्थ कहेछे. (इहखलुपाईणंवाके०) ए संसार मांहे पूर्वादिक दिशिमांहे अनेरी दिशायें (संतेगतियामणुस्साभवंति के०) केटलाएक मनुष्यछे. ते केवाछे (तंजहाके०) ते कहेछे. एक आर्य, एक अनार्य, एक उंचगोत्रना उपना, एक नीचगोत्रना उपना, एक महोटी कायावाला, एक न्हानी काया वाला, एक शुभवर्णना शरीरवाला, एक माठवर्णवाला, एक सुरूपवान् अने एक कुरूपवान् ॥२॥ (तेसिंचणंइमंएतारूवंके०) ते आर्यादिक मनुष्यने एवो एतादृशरूपजे आगल कहेशे (दंमसमादाणं के०) दंम समादान एटले पापरूप संकल्पनुं ग्रहणते, (संपेहाए के०) आलोचवुं ते चतुर्गतिक, जीवने होय (तंजहा के०) ते चारगतिना नाम कहेछे. (णेरइएसुवा के०) एक नारकीमांहे (तिरिक्खजोणिएसुवाके०) तिर्यंचनी योनी मांहे (मणुस्सेसुवाके०) मनुष्य मांहे (देवेसुवाके०) देवतामांहे ए चतुर्गतिक जीव जाणवा. तेमांहे (जेयावन्नेके०) जे अनेरा (तहप्पगारा के०) तथा प्रकारना (पाणाविन्नू के०) प्राणि जाणवा (वेयणंवेयंति के०) ते प्राणी एवा छता वेदना जे साता असातारूप तेने वेदे एटले अनुभवे. अत्र चतुर्भंगी कहेछे. एक संज्ञिया जीवजेछे ते वेदनाने अनुभवे तथा जाणे पण, अने बीजा सिद्धना जीव जेछे ते वेदनाने मात्र जाणे, पण अनुभवे नहीं. तथा त्रीजा असंज्ञिया जीव जेछे ते वेदनाने अनुभवे, पण जाणे नही. चोथा अजीव जेछे ते वेदनाने अनुभवे पण नहीं, अने जाणे पण नहीं, तेमांहें अहीं पहेला अने त्रीजा भंगनो अधिकारछे ॥३॥ (तेसिंपियणं इमाइं के०) ते नारकियादिकने एजे आगल कहेशे ते. (तेरसकिरियाठाणाइं भवंतीतिमरकायं के०) तेर क्रियाना स्थानक होय, ते श्रीतीर्थंकर गणधरे एम कह्या (तंजहा के०) तेना नाम कहेछे. एक (अट्ठादंमे के०) अर्थ दंम, बीजो (अणट्ठादंमे के०) अनर्थदंम, त्रीजो (हिंसादंमेके०) हिंसादंम, चोथो (अकम्मादंमे के०) अकस्मात् दंम, पांचमो (दिट्ठीविपरियासियादंमे के०) दृष्टि विपर्यास दंम, छठो (मोसवत्तीए के०) मृषावाद प्रत्ययिक दंम, सातमो (अदिन्नादाणवत्तिए के०) अदत्तादान प्रत्ययिक दंम, आठमो (अज्झत्थ वत्तिएके०) अध्यात्मिक ते मननुं दुर्ध्यान प्रत्ययिक तेरूप दंम, नवमो (माणवत्तिएके०) मान प्रत्ययिक दंम, दशमो (मित्तदोसवत्तिए के०) मित्र उपर द्वेष करवो ते मित्रदोष प्रत्ययिक दंम, अगीयारमो (मायावत्तिए के०) परने वंचवुं ते मायाप्रत्ययिक दंम, बारमो (लोभवत्तिए के०) लोभ प्रत्ययिक दंम, तेरमो (इरियावहिए के०) इरियापथिक प्रत्ययिक दंम. हवे अनुक्रमे ए तेर क्रिया स्थानकोनो विचार कहेछे. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—अथ द्वितीयं क्रियास्थानाध्ययनमारन्यते तस्येदमादिसूत्रं (सुयंमेइत्यादि) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह । श्रुतं मया आयुष्मता नगवतैवमाख्यातं । इह खलु क्रियास्थानं नामाध्ययनं नवति । अस्य चायमर्थः । (संजूहेणं) सामान्येन संक्षेपेण द्वे स्थाने नवतः । ये केचन क्रियावंतस्तेऽनयोरेवं स्थानयोराख्यायंते । तद्यथा । धर्मे चैव अधर्मेचैव । उपशांतं धर्मस्थानमनुपशांतमधर्मस्थानं ॥१॥ तत्र णमितिवाक्यालंकारे । योऽसौ प्रथमानुष्ठेयतया प्रथमस्याधर्मपक्षस्य विनंगोविचारः । तस्यायमर्थः । इह जगति प्राच्यादिषु दिक्षु मध्येऽन्यतरस्यां दिशि संति विद्यंते एके केचन मनुष्याः । तद्यथा । आर्याअनार्याः उच्चैर्गोत्रानीचैर्गोत्राः कायवंतउन्नताऱ्ह्स्ववंतोनीचशरीराः सुवर्णाः सुकांतयोडुर्वर्णानिस्तेजसः सुरूपादूरूपाश्च ॥२॥ तेषामार्यादीनामिदं वक्ष्यमाणमेतडूपं दंडसमादानं पापोपादानं (संपेहाएत्ति) संप्रेक्ष्य तद्यथा नारकेषु तिर्यग्योनिषु मनुष्येषु ये चान्ये तथा प्रकाराः सुवर्णडुर्वर्णाः प्राणिनोविद्वांसोवेदनां सातासातरूपां विदंति अनुनवंति । अत्र चत्वारोनंगाः । तथाहि । संज्ञिनोवेदनामनुनवंति जानंतिच १ सिद्धास्तु वेदनाजानंति नानुनवंति २ असंज्ञिनोऽनुनवंति न पुनर्जानंति ३ अजीवास्तु न जानंति नाप्यनुनवंति ४ इह प्रथमतृतीयान्यामधिकारोद्वितीयचतुर्थाववस्तुनूताविति ॥३॥ तेषां नारकादीनामिमानि वक्ष्यमाणानि त्रयोदश क्रियास्थानानि नवंतीत्याख्यातं तीर्थकृदादिनिः । तद्यथा । स्वार्थायदंडः पापोपादानमर्थदंडः १ निष्प्रयोजनं सावद्यक्रियानर्थदंडः २ हिंसा प्राणिघातस्तयादंडोहिंसादंडः ३ अकस्मादनुपयुक्तस्य दंडोऽकस्माद्दंडः। अन्यस्य क्रियाऽन्यस्य घातइत्यर्थः ४ दृष्टेर्विपर्यासोरज्जुविषये यथा सर्पबुद्धिस्तया दंडो दृष्टिविपर्यासदंडः यथा शरादिक्षेपेण लेष्टुकादिबुध्या चटकादिहननं ५ मृषावादप्रत्ययिकः ६ अदत्तादानप्रत्ययिकः ७ अध्यात्मिकोदंडोयथा निर्निमित्तमेव डुर्मनाश्चिंतातुरस्तिष्ठति ८ मानप्रत्ययिकोदंडोयथाऽष्टमदस्थानोपगतः परं हीनं मन्यते ९ मित्राणामुपतापेन दोषोमित्रदोषस्तत्प्रत्ययिकोदंडः १० माया परवंचनबुद्धिस्तयादंडः ११ लोनप्रत्ययिकः १२ ईर्याप्रत्ययिकोदंडः समितिगुप्तियुतस्य दोषयुक्तस्य सामान्येन कर्मबंधः स्यात्॥ ४ ॥

॥ टीका—व्याख्यातं प्रथमाध्ययनं सांप्रतं द्वितीयमारन्यते । अस्य चायमन्निसंबंधः । इहानंतराध्ययने पुष्करिणीपौंडरीकदृष्टांतेन तीर्थिकाः सम्यङ्मोक्षोपायानावात्कर्मणां बंधकाः प्रतिपादिताः सत्साधवश्च सम्यग्दर्शनादिमोक्षमार्गप्रवृत्तत्वान्मोचकाः सडुपदेशदानतोपरेषामपीति । तदिहापि यथा कर्म द्वादशनिः क्रियास्थानैर्बध्यते यथाच त्रयोदशेन मुच्यते तदेतत्पूर्वोक्तमेव बंधमोक्षयोः प्रतिपादनं क्रियते । अनंतरसूत्रेण चायं संबंधः । तद्यथा । निक्षुणा चरणकरणविदा कर्मक्षपणायोद्यतेन द्वादश क्रियास्थानानि कर्मबं

धकारणानि सम्यक्परिहर्तव्यानि तद्विपरीतानि च मोक्षसाधनानि आसेवितव्यानि इत्यनेन संबंधेनायातस्याध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोग द्वाराणि नवंति । तत्राप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोयं । तद्यथा कर्मणां संबधोऽनेन प्रतिपाद्यते तद्विमोक्षश्चेति । नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे क्रियास्थानमिति द्विपदं नाम । तत्रापि क्रियापदनिक्षेपार्थं प्रस्तावमारचयन्निर्युक्तिकृदाह । "किरियाउनणियाउ, किरियागणंति तेण अज्झयणं ॥ अहिगारो पुण नणिउ, बंधे तह मोरकमग्गेय" ॥ १५७ ॥ (किरियाउ इत्यादि) तत्र क्रियंतइति क्रियास्ताश्च कर्मबंधकारणत्वेनावश्यकांतर्वर्तिनि प्रतिक्रमणाध्ययने (पडिक्कमामितेरसहिंकिरियागणेहिंति) अस्मिन्सूत्रेऽनिहिताः । यदि वैहिकक्रियानणिताअनिहितास्तेनेदमध्ययनं क्रियास्थानमित्युच्यते । तच्च क्रियास्थानं क्रियावत्स्वेव नवति नाक्रियावत्सु । क्रियावंतश्च केचिद्बध्यंते केचिन्मुच्यंतेऽसोध्ययनार्थाधिकारः पुनरनिहितोबंधे तथा मोक्षमार्गेचेति । तत्र नामस्थापने सुगमत्वादनादृत्य इव्यादिकां क्रियां प्रतिपादयितुमाह । " दव्वे किरिए अवणय, पयोगुवायकरणिज्ज समुदाणे ॥ इरियावहसंमत्तो, सम्मत्तेचैव मिच्छत्ते" ॥ १५९ ॥ दव्वेइत्यादि) तत्र इव्यविषये या क्रिया एजनता । एजृकंपने । जीवस्याजीवस्य वा कंपनरूपा चलनस्वनावा सा इव्यक्रिया । सापि प्रयोगाद्विस्रसया वा नवेत् । तत्राप्युपयोगपूर्विका वाऽनुपयोगपूर्विका वाऽक्षिनिमेषमात्रादिका वा सा सर्वा इव्यक्रियेति । नावक्रियात्वियं । तद्यथा प्रयोगक्रिया उपायक्रिया करणीयक्रिया समुदानक्रिया ईर्यापथक्रिया सम्यक्त्वक्रिया मिथ्यात्वक्रिया चेति । तत्र प्रयोगक्रिया मनोवाक्कायलक्षणा त्रिधा । तत्र स्फुरन्निर्मनोइव्यैरात्मनउपयोगोनवत्येवं वाक्काययोरपि वक्तव्यं । तत्र शब्दे निष्पाद्ये वाक्काययोर्द्वयोरन्युपयोगः । तथा चोक्तं । गिएहइ य काइएणं, णिसिरइ तहवा इएण जोगेण ॥ गमनादिका तु कायक्रियैव । उपायक्रियातु घटादिकं इव्यं येनोपायेन क्रियते । तद्यथा । मृत्खननमर्दनचक्रारोपणदंडचक्रसलिलकुंनकारव्यापारैर्योविनिरुपायैः क्रियते सा सर्वोपायक्रिया । करणीयक्रियातु यद्येन प्रकारेण करणीयं तत्तेनैव क्रियते नान्यथा । तथाहि । घटोमृत्पिंडादिकयैव क्रियते न पाषाणसिकतादिकयेति ३ समुदानक्रियातु यत्कर्म प्रयोगगृहीतं समुदायावस्थं सत्प्रकृतिस्थित्यनुनावप्रदेशरूपतया यया व्यवस्थाप्यते सा समुदानक्रिया । साच मिथ्यादृष्टेरारन्य सूक्ष्मसंपरायं यावत् नवति । ४ ईर्यापथक्रिया तूपशांतमोहादारन्य सयोगिकेवलिनं यावदिति ५ सम्यक्त्वक्रिया तु सम्यग्दर्शनयोग्याः कर्मप्रकृतीः सप्तसप्ततिसंख्या यया बध्नाति साऽनिधीयते । मिथ्यात्वक्रिया तु सर्वाः प्रकृतीर्विंशत्युत्तरसंख्यास्तीर्थंकराहारकशरीरतदंगोपांगत्रिकरहिता यया बध्नाति सामिथ्यात्वक्रियेत्यनिधीयते । सांप्रतं स्थाननिक्षेपार्थमाह । " नामं ठवणा दविए, खेत्ते दाउद्ध उवरवीवसहि । संजम प

ङागहजोहे, अचल गणण संधणा नावे, ॥ १६० ॥ (नामंठवणेत्यादि) इयंच गाथा ऽऽचारप्रथमश्रुतस्कंधे द्वितीयाऽध्ययने लोकविजयाख्ये (जेगुणे से मूलगणे) इत्यत्र स्थानशब्दस्य सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यां प्रबंधेन व्याख्यातेति नेह प्रतन्यते । इह पुनर्यया क्रि यया येन च स्थानेनाधिकारस्तद्दर्शयितुमाह । " समुदाणियाणिह तउ, समं पउत्तेय नावठाणंमि ॥ किरियाहिं पुरिस यावा, इएउ सवेपरिरकेवो,, ॥ १६१ ॥ (समुदाणीत्या दि) क्रियाणां मध्ये समुदानिकाक्रिया व्याख्याता; तस्याश्च कषायानुगतत्वात् बहवो नेदा यतस्ततस्तासां सामुदानिकानां क्रियाणामिह प्रकारे (ठाणउत्ति) अधिकारो व्यापारः सम्यक्प्रयुक्तेच नावस्थाने । तच्चेह विरतिरूपं संयमस्थानं प्रशस्तनावसंधान रूपंच गृह्यते । सम्यक्प्रयुक्तनावस्थानग्रहणसामर्थ्यादैर्यापथिका क्रियापि गृह्यते । सामुदा निका क्रियाग्रहणाच्चाप्रशस्तनावस्थानान्यपि गृहीतान्यानिश्च पूर्वोक्ताजिः क्रियाजिः पूर्वो क्तान् पुरुषान् तद्द्वारायातान्प्रावाडुकांश्च परीक्षते सर्वानपीति । यथा चैवं तथा स्वतएव सूत्रकारस्तं (जहासे एगइयामणुस्साजवंतीत्यादि) तथा प्रावाडुकपरिक्षायामपि (णायउ उगरणंचविप्पजहा निरकायरियाए समुठिया) इत्यादिना वक्ष्यतीति गतोनिर्युक्त्यनुगमः । सांप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (सुयंमे आउसंतेणमि त्यादि) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमुद्दिश्येदमाह । तद्यथा । श्रुतं मयाऽऽयुष्मता जगवतैव माख्यातमिह खलु क्रियास्थानं नामाध्ययनं तस्यचायमर्थः । (इह खलु संजूहेणंति) सामान्येन संक्षेपेण समासतोद्वे स्थाने नवतः । ये क्रियावंतस्ते सर्वेप्यनयोः स्थानयोरे वमाख्यायंते । तद्यथा धर्मेचैवाधर्मेचैव । इदमुक्तं नवति धर्मस्थानमधर्मस्थानंच । यदिवा धर्मादनपेतं धर्मं विपरीतमधर्मं । कारणशुद्ध्या च कार्यशुद्धिर्नवतीत्याह । उपशांतं यत्तद्धर्म स्थानमनुपशांतं वाऽधर्मस्थानं तत्रोपशांते उपशमप्रधाने धर्मस्थाने ऽधर्मस्थानेवा केच न महासत्वाः समासन्नोत्तरगुनादयोवर्तंते । परेच तद्विपर्यस्ते विपर्यस्तमतयः संसारा जिष्वंगिणोऽधोऽधोगतयोवर्तंते । इहच यद्यप्यनादिनवाज्यासादिंद्रियानुकूलतया प्रायशः पूर्वमधर्मप्रवृत्तोनवति पश्चात्सडुपदेशयोग्याचार्यसंसर्गाद्धर्मस्थाने प्रवर्तते । तथाप्यन्यर्हि तत्वात्पूर्वं धर्मस्थानमुपशमस्थानंच प्रदर्शितं पश्चात्तद्विपर्यस्तमिति ॥ १ ॥ सांप्रतं तु यत्र प्राणिनामनुपदेशः स्वपरप्रवृत्त्यादावेव स्थानं नवति तदधिकृत्याह । (तन्नणंइत्या दि) तत्रेति वाक्योपन्यासार्थे । णमिति वाक्यालंकारे । योऽसौ प्रथमानुष्ठेयतया प्रथम स्याधर्मपक्षस्य स्थानस्य विविधोनंगोविनंगोविचारस्तस्यायमर्थइति । इहास्मिन् जगति प्राच्यादिषु दिक्षु मध्येऽन्यतरस्यां दिशि संति विद्यंते एके केचन मनुष्याः पुरुषास्तेचैवं नू तानवंतीत्याह । तद्यथा । आराद्याताः सर्वहेयधर्मेन्यइत्यार्यास्तद्विपरीताश्चाऽनार्याएके केचन नवंति यावहूरूपाः सुरूपाश्चेति । तेषां चाऽऽर्यादीनामिदं वक्ष्यमाणमेतद्रूपं । दंडय

तीति दंडः पापोपादानसंकल्पस्तस्य समादानं ग्रहणं (संपेहाएत्ति) संप्रेक्ष्य । तच्चतुर्गति कानामन्यतमस्य भवतीति दर्शयति । (तंजहेत्यादि) तद्यथा नारकादिषु ये चान्ये त थाप्रकारास्तद्वर्तिनः सुवर्णड्वर्णादयः प्राणाः प्राणिनोविद्वांसोवेदनाज्ञानं तद्वेदयं त्यनुभवंति । यदिवा सातासातरूपां वेदनामनुभवंतीत्यत्र चत्वारोभंगाः । तद्यथा । संज्ञि नोवेदनामनुभवंति विदंतिच १ सिद्धास्तु विदंति नानुभवंति २ असंज्ञिनोऽनुभवंति न पुनर्विदंति ३ अजीवास्तु न विंदंति नाप्यनुभवंतीति ४ इह पुनः प्रथमतृतीयाभ्यामधि कारोद्वितीयचतुर्थाववस्तुभूताविति । तेषांच नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवानां तथाविधज्ञानव तामिमानि वक्ष्यमाणलक्षणानि त्रयोदशस्थानानि भवंतीत्येवमाख्यातं तीर्थंकरगणधरा दिभिरिति । कानि पुनस्तानीति दर्शयितुमाह । (तंजहेत्यादि) तद्यथेत्ययमुदाहरणवा क्योपन्यासार्थः । आत्मार्थाय स्वप्रयोजनकृते दंडोऽर्थदंडः पापोपादानं १ तथाऽनर्थदं डइति निष्प्रयोजनमेव सावद्यक्रियानुष्ठानमनर्थदंडः । तथा हिंसनं हिंसा प्राण्युपमर्दरूपा तया सैव वा दंडोहिंसादंडः तथा ऽकस्मादनुपयुक्तस्य दंडो ऽकस्माद्दंडोऽन्यस्य क्रिययान्यस्य व्यापादनमिति ४ तथा दृष्टेर्विपर्यासोरज्जुमिव सर्पबुद्धिस्तया दंडोदृष्टिविपर्यासोऽबुद्धिदं डस्तद्यथा लेष्टुकादिबुध्या शराद्यभिघातेन चटकादिव्यापादनं । तथा मृषावादप्रत्ययिकः सच सद्भूतनिन्हवासद्भूतारोपणः ६ तथा अदत्तस्य परकीयस्यादानं स्वीकरणमदत्तादानं स्तेयं तत्प्रत्ययिकोदंडइति ७ तथाऽत्मन्यध्यध्यात्म तत्र भव अत्थ्यात्मिकोदंडस्तद्यथा नि र्निमित्तमेव दुर्मनाउपहतमनःसंकल्पोहृदयेन भ्रियमाणश्चिंतासागरावगाढः संतिष्ठते ८ तथा जात्याद्यष्टमदस्थानोपहतमनाः परावमदर्शी तस्य मानप्रत्ययिकोदंडोभवति ९ तथा मित्राणामुपतापेन दोषोमित्रदोषस्तत्प्रत्ययिकोदंडोभवति १० तथा माया पर वंचनबुद्धिस्तया दंडोमायाप्रत्ययिकः ११ तथा लोभप्रत्ययिकोलोभनिमित्तोदंडइति १२ तथा एवं पंचभिः समितिभिः समितस्य तिसृभिर्गुप्तिभिर्गुप्तस्य सर्वोपयुक्तस्येर्याप्रत्ययिकः सामान्येन कर्मबंधोभवति । एतच्च त्रयोदशं १३ क्रियास्थानमिति ॥ ४ ॥

पढमे दंमे समादाणे अट्ठादंमे वत्तिएत्ति आहिज्जइ सेजहा णामए केइ पुरिसे आयहेउंवा णाइहेउंवा आगारहेउंवा परिवारहेउंवा मित्तहेउंवा णागहेउंवा भूतहेउंवा जक्खहेउंवा तं दमं तसथावरेहिं पाणेहिं सयमे व णिसिरिंति असेणविणिसिरावेंति असंपि णिसिरितं समणुजाण इ एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ पढमे दंमसमादाणे अट्ठादंमवत्तिएत्ति आहिए ॥ ५ ॥

अर्थ-(पढमे दंमसमादाणे के०) त्यां पहेलोजे क्रिया स्थानक ते (अट्ठादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ के०) अर्थ दंम प्रत्ययिक एवे नामे कहियेंबैयें (सेजहाणामए के०) ते यथा दृष्टांते कहेछे. णाम एवी संनावनायें छे. (केइपुरिसे के०) कोइएक पुरुष, (आयहेउंवा के०) पोताने अर्थें, अथवा (णाइहेउंवा के०) ज्ञाति स्वजनादिकने अर्थें, (आगारहेउंवा के०) घरने अर्थें, (परिवारहेउंवा के०) दास दासी कुमारादिक परिवारने अर्थें, (मित्तहेउंवा के०) मित्रने अर्थें, (णागहेउंवा के०) नागकुमार देवताने अर्थें, (नूतहेउंवा के०) नूत देवताने अर्थें, (जरकहेउंवा के०) यक्ष देवताने अर्थें, (तंदंमंतसथावरेहिंपाणेहिं के०) ते दंम, त्रस अने स्थावर प्राणीउंने विषे (सयमेवणिसिरिंति के०) स्वयमेव एटले पोतेंज उपघात करे. (अस्सेणविणिसिरावेंति के०) अनेरा बीजा पासें उपघात करावे. (अस्संपिणिसिरिंतंसमणुजाणइ के०) अनेरो बीजो कोइ उपघात करतो होय तेने अनुमोदे. (एवंखलु के०) एरीतें निश्चें थकी (तस्सतप्पत्तियंसावज्जंति के०) करण करावण अने अनुमतियें करी करे, तेहने तत्प्रत्ययिक सावद्य पाप कर्म (आहिज्जइ के०) बंधाय (पढमेदंमसमादाणेअट्ठादंमवत्तिएत्तिआहिए के०) एटले प्रथम क्रिया स्थानक अर्थदंम प्रत्ययिक एवे नामे कह्युं. ॥ ५ ॥

॥ दीपिका-प्रथमं दंडसमादानमर्थदंडप्रत्ययइत्याख्यायते । तद्यथा नाम कश्चित्पुरुषः आत्महेतुमात्मार्थं ज्ञातिहेतुं स्वजनाद्यर्थं आगारहेतुं गृहार्थं परिवारार्थं मित्रनागनूतयक्षाद्यर्थं तं दंडं त्रसस्थावरेषु प्राणिषु स्वयं निसृजति निक्षिपति अन्येनापि कारयति अन्यं निसृजंतं समनुजानीते एवं तस्य तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्म आधीयते संबध्यते एतत्प्रथमं दंडसमादानमर्थदंडप्रत्ययिकमित्याख्यातं ॥ ५ ॥

॥ टीका-यथोद्देशस्तथा निर्देशइतिकृत्वा प्रथमात्क्रियास्थानादारन्य व्याचिख्यासुराह । (पढमे त्यादि) यत्प्रथममुपात्तं दंडसमादानमर्थायदंडमित्येवमाख्यायते । तस्यायमर्थः । तद्यथा नामकश्चित्पुरुषः । पुरुषग्रहणमनुक्तमुपलक्षणं । सर्वोपि चातुर्गतिकः प्राण्यात्मनिमित्तमात्मार्थं तथाज्ञिज्ञातिनिमित्तं स्वजनाद्यर्थं तथाऽगारं गृहं तन्निमित्तं तथा परिवारोदासीकर्मकरादिकः परिकरोवा गृहादेर्वृत्त्यादिकस्तन्निमित्तं तथा मित्रनागनूतयक्षाद्यर्थं तथानूतं स्वपरोपघातरूपं दंडं त्रसस्थावरेषु स्वयमेव निसृजति निक्षिपति दंडमिव दंडमुपरि पातयति प्राण्युपमर्दकारिणीं क्रियां करोतीत्यर्थः । तथाऽन्येनापि कारयत्यपरं दंडं निसृजंतं समनुजानीते । एवं कृतकारितानुमतिनिरेव तस्याऽनात्मज्ञस्य तत्प्रत्ययिकं सावद्यक्रियोपात्तं कर्माधीयते संबध्यतेइति । एतत्प्रथमं दंडसमादानमर्थदंडप्रत्ययिकमित्याख्यातमिति ॥ ५ ॥

अहावरे दोच्चे दंमसमादाणे अणघादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे जे इमे तसा पाणा नवंति ते णो अच्चाए णोअजिणाए णो मंसाए णोसोणियाए एवं हिययाए पित्ताए वसाए पिञ्छाए पुञ्छाए वालाए सिंगाए विसाणाए दंताए दाढाए णहाए एहारुणिए अच्चीए अठिमंजाए णोहिंसंसुमेत्ति णोहिंसिंतिमेत्ति णोहिंसिस्संतिमेत्ति णोपुत्तपोसणाए णोपसुपोसणयाए णोआगारपरिबूहणताए णोसमणमाहणवत्तणाहेनं णोतस्स सरीरगस्स किंचिविप्परियादित्ता नवंति सेहंता छेत्ता नेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता उज्झिउं वाले वेरस्स आनागी नवंति अणघादंमे ॥ ६ ॥ से जहा णामए केइ पुरिसे जे इमे थावरा पाणा नवंति तंजहा इक्कडाइवा कडिणाइवा जंतुगाइवा परगाइवा मोक्काइवा तणाइवा कुसाइवा कुच्छगाइवा पप्पगाइवा पलालाइवा ते णोपुत्तपोसणाए णोपसुपोसणाए णोआगारपडिबूहणयाए णोसमणमाहणपोसणयाए णोतस्स सरीरगस्स किंचिविपरियाइ नवंति सेहंता छेत्ता नेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दविइत्ता उज्झिउं वाले वेरस्स आनागी अणघादंमे ॥ ७ ॥ सेजहा णामए केइ पुरिसे कच्छंसिवा दहंसिवा उदगंसिवा दवियंसिवा वलयंसिवा णूमंसिवा गहणंसिवा गहणविडुग्गंसिवा वणंसिवा वणविडुग्गंसिवा पव्वयंसिवा पव्वयविडुग्गंसिवा तणाइं ऊसविय सयमेव अगणिकायं णिसिरिंति अस्सेणवि अगणिकायं णिसिरावेंति असंपि अगणिकायं णिसिरिंतं समणुजाणइ अणघादंमे एवं खलु तस्स तप्पत्तियंसावज्जेंति आहिज्जइ दोच्चे दंमसमादाणे अणघादंमवत्तिएत्ति आहिए ॥ ८ ॥

अर्थ—(अहावरेदोच्चेदंमसमादाणेअणघादंमवत्तिएत्तिआहिज्जइ के०) हवे अपर बीजो क्रिया स्थानक अनर्थदंम, प्रत्ययिक कहियें डैयें (सेजहाणामए के०) ते यथादृष्टांते नाम एवी संनावनायें जेम (केइपुरिसे के०) कोइएक पुरुष, निःकारणे, निर्विवेक पणे, जीवहिंसा करे; तें कहेछे. (जेइमेतसापाणानवंति के०) जे ए संसार मांहे प्रत्यक्ष ज हण त्रस प्राणी, ढागादिक ढे ते प्राणीने निरर्थक हणे, ते केवीरीते हणे तोके (तेणोअच्चाए के०) तेजीवोने शरीरने अर्थें न हणे, (णोअजिणाए के०) चर्मने अर्थें न ह

णे, (णोमंसाए के०) मांसने अर्थें न हणे, (णोसोणियाए के०) शोणितने अर्थें न हणे, (एवंहियियाए के०) एमज हियो एटले रुदयना मांस ने अर्थें न हणे, (पित्ता ए के०) पित्तने अर्थें न हणे, (वसाए के०) वसाने अर्थें न हणे, (पिछाए के०) पिछने अर्थें न हणे, (पुछाए के०) पुछने अर्थें न हणे, (वालाए के०) वाल रोमने अर्थें न हणे, (सिंगाए के०) सिंगडाने अर्थें न हणे, (विसाणाए के०) वृषण प्रताल पोइसने अर्थें न हणे, (दंताए के०) दांतने अर्थें न हणे, (दाढाए के०) दाढने अर्थें नहणे (णहा ए के०) नखने अर्थें न हणे, (एहारुणिए के०) नसा नाडीने अर्थें न हणे, (अठिए के०) अस्थिने अर्थें न हणे, (अठिमंजाए के०) हाडकानी मिंजाने अर्थें न हणे, एटला ए कार णने अर्थें कोइ जीवने हणे नहीं, परंतु कारण विना जीवने हणे, (णोहिंसंसुमित्ति के०) अतीतकाले पण एटला कारण नणी जीव हण्या नथी, तथा (णोहिंसिंतिमे त्ति के०) वर्त्तमान काले पण हणे नहीं. (णोहिंसिस्संतिमेत्ति के०) आगमिक काले पण हणशे नहीं, (णोपुत्तपोसणाए के०) एवुं पण न जाणे जे ए जीवनो विनाश क रीने महारा पुत्रनुं पोषण करीश. (णोपसुपोसणयाए के०) पशुनुं पोषण कर शुं, एम पण न जाणे, (णोआगारपरिबूहणताए के०) ग्रह घरनी वृद्धि शांतिक पुष्टि कादिक निमित्तें पण हणे नहीं. (णोसमणमाहणवत्तणाहेउं के०) श्रमण ब्राह्मणनुं पोष ण करवा निमित्तें पण न हणे. (णोतस्ससरीरगस्सकिंचिविप्परियादित्ताजवंति के०) तथा पोताना शरीरना परित्राणने अर्थें एटले पोषणनेअर्थें पण न हणे. किंतु? क्रीडा निमित्तें, अ थवा व्यसने करी निरर्थक पणे (सेहंता के०) ते जीवनो हणनार थाय दंमादिक ना प्रहारे करी जीवने हणे, (छेत्ता के०) जीवोना कर्ण नासिकादिक छेदे, (नेत्ता के०) नेदे, शूलिकारोपण करे (लुंपइत्ता के०) अंगना अवयव कापी नाखे (विलुंपइत्ता के०) चामडी उपाडी उखेडी नाखे, (उद्दवइत्ता के०) नाना प्रकारना पीडाकारी उप इव उपजावे, (उश्रिउंबालेवेरस्सआनागीनवंति के०) एतावता तेबाल विवेक बांमीने निःकेवल वैरनो विनागी थाय. (अणठादंमे के०) एटले त्रस जीव आश्रित अनर्थ दंम कह्यो. ॥६॥ (हवे स्थावर जीव आश्रित अनर्थ दंम कहेछे. (सेजहाणामए के०) ते यथा दृष्टांते जेम. (केइपुरिसे के०) कोइएक पुरुष मार्गे जतो थको निरर्थक निर्विवेक पणे वृक्षना पल्लवने दंमादिके करी जाटकी नाखे, परंतु लेवानी वांछा कांइ न होय, वली (जेइमेथावरापाणाजवंति के०) जे ए स्थावर प्राणी होय (तंजहा के०) ते देखाडेछे. (इक्कडा इवा के०) तृण विशेष प्रसिद्धछे (कडिणाइवाजंतुगाइवापरगाइवा के०) वांसथकी उपनुं जे तृण विशेष, जेणे करी फुल गुंथाय ते जाणवुं (मोरकाइवा के०) नदीमां थायछे ते, (त णाइवा के०) तृण प्रसिद्ध (कुसाइवा के०) माल, (कुछगाइवा के०) वनस्पति विशेष, (प

प्पगाइवा के०) प्रसिद्ध तृण विशेष, एटला मांहे सर्वकाष्ट जाणवा (पलालएइवा के०) पलाल इत्यादि अनेक जगत् मांहेछे ते, पुत्र पोषवाने निमित्ते नहीं, तथा पशु पोषण करवाने अर्थे पण नहीं, आगार समारवाने अर्थे पण नहीं, श्रमण ब्राह्मणना पोषण करवाने अर्थे पण नहीं, पोताना शरीरना पोषण करवाने अर्थे पण नही, एटले आत्माना त्राणने अर्थे पण नहीं किंतु? क्रीडा निमित्ते अथवा व्यसने करी निरर्थक ते जीवनो हणनार थाय. ते दंमादिके प्रहार करी छेदे, भेदे, अनेरा अंगनो अवयव कापे, गल उतारे; नाना प्रकारना पीडा कारी उपद्रव करे, एरीते ते बाल अविवेकी निःकेवल वैरनो विभागी थाय. एम वनस्पतिकाय आश्रि अनर्थ दंम कह्यो. ॥७॥ (हवे अग्निकाय आश्रि अनर्थ दंम कहेछे. ते यथा दृष्टांते नाम एवी संभावनायें जेम कोइएक पुरुष विवेक विकल थको (कछंसिवा के०) कच्छादिकने विषे, (उदगंसिवा के०) पाणीने विषे, (दहंसिवा के०) द्रहने विषे, (दवियंसिवा के०) समुद्र तथा नदीने विषे, (वलयंसिवा के०) नदियें वेष्टित भूमिकाने विषे, णूमंसिवा के०) गर्त्तादिक तथा नीचीभूमिकाने विषे, (गहणंसिवा के०) जल रहित स्थानक तथा अटवी माहेला क्षेत्रने विषे, (गहणविडुग्गंसिवा के०) गहन अटवीमां वली विषम स्थानकने विषे (वणंसिवा के०) वनने विषे, (वणविडुग्गंसिवा के०) वनमांहे विषम स्थानकने विषे, (पव्वयंसिवा के०) पर्वतने विषे, (पव्वयविडुग्गंसिवा के०) पर्वतमांहे विषम स्थानकने विषे, इत्यादिक देशस्थानकनेविषे, वर्त्ततो (तणाइंऊसविय के०) तृण दर्भादिक एकठा करी करीने (सयमेवअगणिकायंणिसिरंति के०) वलीवली पोते अग्नि करवाने अर्थे अग्निकायने तेमां प्रक्षेपे (असेणविअगणिकायंणिसिरावेंति के०) अन्य पासेंअग्नि प्रक्षेपावे एटले बीजा पासें जलावे, (असंपिअगणिकायंणिसिरिंतंसमणुजाणइ के०) बीजो कोइ अग्निकायने तेमांहे प्रक्षेपतो होय तेने अनुमोदे,(अणहादंमेएवंखलु के०) अनर्थ दंम एम निश्चे तेने (तस्सतप्पत्तियं के०) तत्प्रत्ययिक एटले ते आश्रित (सावज्जेति के०) सावद्य कर्म (आहिज्जइ के०) बंधाय. एटले (दोच्चेदंमसमादाणेअणट्ठादंमवत्तिएतिआहिए के०) ए बीजो क्रियास्थानक अनर्थ दंम समादान प्रत्ययिक कह्यो. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—अथापरं द्वितीयं दंडसमादानमनर्थदंडप्रत्ययिकमित्यभिधीयते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषोनिर्निमित्तमेव प्राणिनोहंति । तदेवाह । ये इमे त्रसाः प्राणिनस्तान् अर्चाशरीरं तदर्थं नहंति । अजिनं चर्म नापि तदर्थं । एवं मांसशोणितहृदयपित्तवसापिछपुछवालशृंगविषाणदंतदंष्ट्रानखस्नाय्वस्थिमज्जाइत्यादिनिमित्तमुद्दिश्य नैवाऽहिंसि पुर्नापि हिंसंति नापि हिंसयिष्यंति मां मदीयं चेति तथा नो पुत्रपोषणाय नापि पशु

पोषणाय अगारं गृहं तस्य परिबृंहणं वृद्धिस्तदर्थं नोहिनस्ति तथा श्रमणब्राह्मणवर्तनहे तुं यत्पाल्यते तस्य शरीरस्य किमपि परित्राणाय तत्प्राणिहिंसनं न स्यात् इत्यादिहेतून् विनाऽसौ क्रीडया हंता भवति दंडादिभिश्छेत्ता कर्णादीनां भेत्ता शूलादिना लुंपयिता अंगावयवकर्तनतोविलुंपयिता नेत्रोत्पाटनचर्मकर्तनादितोजीवितादपद्रावयिता सच सद्विवेकमुज्झित्वा बालोऽज्ञोवैरस्य भागी भवति। पंचेंद्रियजीवपीडातोऽनर्थदंडउक्तः॥६॥ अथ स्थावरानाश्रित्याह । यथा कश्चित्पुरुषः पथि गछन् निर्निमित्तमेव वृक्षादेः पल्लवादिकं दंडादिना प्रध्वंसयति । एतदेवाह । येऽमी स्थावरावनस्पतिकायाः प्राणिनः स्युः । तद्यथा । इक्कडादयोवनस्पतिविशेषास्तान् पत्रपुष्पफलादि निरपेक्षः क्रीडया छिनत्ति न पुत्रपोषणायेत्यादि पूर्ववत् । यावज्जन्मांतरानुबंधिनोवैरस्य भागी भवति । अयमनर्थदंडो वनस्पत्याश्रयउक्तः ॥७॥ सांप्रतमग्न्याश्रितमाह । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः कछे नदीजलवेष्टिते वृक्षादिमति प्रदेशे ह्रदेप्रतीते उदकेजलाशयमात्रे (दवियंसि) तृणादिद्रव्यसमुदाये वलये वृत्ताकारनद्यादिजलकुटिलगतियुक्तप्रदेशे तमे अवतमसे गहने वृक्षवल्लीसमुदाये गहनविदुर्गे पर्वतैकदेशावस्थितवृक्षवल्लीसमुदाये वनविदुर्गे नानाविधवृक्षसमूहे एतेषु कछादिषु दशस्थानेषु तृणानि उत्सर्प्य ऊर्ध्वीकृत्य, स्वयमेवाऽग्निकायं निसृजति निक्षिपति अन्येन वाऽग्निकायं निसर्जयति निक्षेपयति अन्यमप्यग्निकायं निसृजंतं समनुजानीते अयमनर्थदंडः । तदेवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकं दवदाननिमित्तं सावद्यं कर्मव्याख्यातं । एतच्च द्वितीयमनर्थदंडसमादानमाख्यातमिति ॥ ८ ॥

॥ टीका–अथापरं द्वितीयं दंडसमादानमनर्थदंडप्रत्ययिकमित्यभिधीयते तदधुना व्याख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषोनिर्निमित्तमेव निर्विवेकतया प्राणिनोहिनस्ति । तदेव दर्शयितुमाह। (जेइमेइत्यादि) ये केचनामी संसारांतर्वर्तिनः प्रत्यक्षांबष्ठादयः प्राणिनस्तांश्चासौ हिंसन्नर्चाशरीरं नो नैवार्चायै हिनस्ति तथाऽजिनं चर्म नापि तदर्थमेवं मांसशोणितहृदयपित्तवसापिछपुछवालशृंगविषाणनखस्नाय्वस्थिमज्जा इत्येवमादिकं कारणमुद्दिश्य नैवाहिंसिषिषुर्नापि हिंसयिष्यंति मां मदीयं चेति तथा नो पुत्रपोषणायेति पुत्रादिकं पोषयिष्यामीत्येतदपि कारणमुद्दिश्य न व्यापादयति तथा नापि पशूनां पोषणाय तथाऽगारं गृहं तस्य परिबृंहणमुपचयस्तदर्थंवा न हिनस्ति तथा न श्रमणब्राह्मणवर्तनाहेतुं तथा यत्नेन पालयितुमारब्धं नोत स्य शरीरस्य किमपि परित्राणाय तत्प्राणव्यपरोपणं भवति इत्येवमादिकं कारणमनपेक्ष्यैवासौ क्रीडया तच्छीलतया व्यसनेन वा प्राणिनां हंता भवति दंडादिभिः । तथा छेत्ता भवति कर्णनासिकाविकर्तनतस्तथा भेत्ता शूलादिना तथा लुंपयितान्यतरांगावयवविकर्तनतस्तथा विलुंपयिताऽक्ष्युत्पाटनचर्मविकर्त्तनक

रपादादिच्छेदनतः परमाऽधार्मिकवत्प्राणिनां निर्निमित्तमेव नानाविधोपायैः पीडोत्पादको नवति तथा जीविताद्प्यपद्रावयिता नवति सच सद्विवेकमुज्झित्वात्मानं वा परित्यज्य बालवद्बालोऽज्ञोऽसमीक्षितकारितया जन्मांतरानुबंधिनोवैरस्य नागी नवति ॥ ६ ॥ तदेवं निर्निमित्तमेवं पंचेंद्रियप्राणिपीडनतोयथानर्थदंडोनवति तथा प्रतिपादितं । अधुना स्थाव वरानधिकृत्योच्यते । (सेजहेत्यादि) यथाकश्चित्पुरुषोनिर्विवेकः पथि गछन् वृक्षादेः प छवादिकं दंडादिना प्रध्वंसयन् फलनिरपेक्षस्तछीलतया व्रजति । एतदेव दर्शयति (जे इमेइत्यादि) ये केचनामी प्रत्यक्षाः स्थावरावनस्पतिकायाः प्राणिनोनवंति तद्यथेक्क डादयोवनस्पतिविशेषाउत्तानार्थास्तदिदेक्कडा ममानया प्रयोजनमित्येवमनिसंधाय न छिनत्ति केवलं तत्पत्रपुष्पादिनिरपेक्षस्तछीलतया छिनत्तीत्येतत्सर्वत्र योजनीयमिति । त था न पुत्रपोषणाय नो पशुपोषणाय नागारप्रतिबृंहणाय नश्रमणब्राह्मणप्रवृत्तये नापि शरीरस्य किंचित्त्राणं नविष्यतीति केवलमेवासौ वनस्पतिहंताछेत्तेत्यादियावज्जन्मांतरानु बंधिनोवैरस्य नागी नवति । अयं वनस्पत्याश्रयोऽनर्थदंडोऽनिहितः ॥७॥ सांप्रतमग्न्याश्रि तमाह । (सेजहेत्यादि) तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः सदसद्विवेकविकलतया कछादिकेषु दशसु स्थानेषु वनदुर्गपर्वतेषु तृणानि कुशइषीकादीनि पौनःपुन्येनोर्ध्वाधस्थानि कृत्वा ऽग्निकायं हुतनुजं निसृजति प्रक्षेपयत्यन्येन वाग्निकायं बहुसत्वापकारी दवाग्निं निसर्जय ति प्रक्षेपयत्यन्यंच निसृजंतं समनुजानीते । तदेवं योगत्रिकेण कृतकारितानुमतिनिस्तस्य यत्किंचनकारिणस्तत्प्रत्ययिकं दवदाननिमित्तं सावद्यं कर्म महापातकमाख्यातं द्वितीय मनर्थदंडसमादानमाख्यातमिति ॥ ८ ॥

आहावरे तच्चे दंमसमादाणे हिंसादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णाम ए केइ पुरिसे ममंवा ममिंवा अन्नंवा अन्निंवा हिंसंसुवा हिंसइवा हिंसि स्संइवा तंदंमं तसथावरोहिं पाणेहिं सयमेव णिसिरिंति अस्सेणवि णिसि रावेंति अन्नंपि णिसिरिंतं समणुजाणइ हिंसादंमे एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ तच्चे दंमसमादाणे हिंसादंमवत्तिएत्ति आहिए॥ ए॥

अर्थ—हवे अपर त्रीजो क्रियास्थानक हिंसादंम प्रत्ययिक कहेछे. ते जेम नाम एवी संनावनायें कोइएक पुरुष (ममंवा के०) मुजने (ममिंवा के०) महारा पिताने ह णेछे, हएयोछे, हणशे, एम पुरुषाकार वहेतो पोताना मरण थकी मरतो बीकराख तोके, ए महारो विनाश करशे एवुं जाणीने सर्प्प सिंहादिक जीवोने हणे, जेम कंस देवकीना पुत्रने हण्या तेनी पेठे जाणी लेवुं. (अन्नंवाके०) अथवा अन्य महारा गोत्री

स्वजनादिकने हणशे. (अन्निवा के०) अथवा तेना कोइएक बीजाने (हिंसंसुवा के०) अतीतकालें हण्योछे. (हिंसइवा के०) वर्तमान कालें हणेछे. (हिंसिस्सइवा के०) आगमिक कालें हणशे. (तंदमंतसथावरेहिंपाणेहिंसयमेवणिसिरिंतिके०) एम जाणीने दंमेक रीत्रसस्थावर प्राणीनो पोते घात करे, बीजानी पासें घात करावे, अथवा अन्य कोइ घात करतो होए तेने अनुमोदन आपे. ए हिंसादंम, एम निश्चें एने प्रत्ययें एटले ते आश्रित सावद्यकर्म बंधाय; एटले त्रीजो क्रिया स्थानक हिंसादंम प्रत्ययिक एवे नामे कह्यो.॥ए॥

॥ दीपिका—अथ तृतीयमाह । अथापरं तृतीयं दंडसमादानं हिंसादंडप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषोमामयं घातयिष्यतीति मत्वा, सर्पादिकं हंति यथा कंसोदेवकीसुतान् परशुरामोवा यथा कार्तवीर्यं जघान । मदीयं पितरमन्यदीयस्य वा कस्यचित्सुवर्णपशुप्रभृतेरयमुपद्रवकारीति मत्वा, तत्र दंमं निसृजति तदेवं मां मदीयं अन्यमन्यदीयं वा हिंसितवान् हिनस्ति हिंसिष्यतीत्येवं संभाविते त्रसे स्थावरे वा तं दंमं स्वयं निसृजति अन्येन निसर्जयति अन्यं निसृजंतं समनुजानीते । एतत्तृतीयं दंडसमादानं हिंसादंडप्रत्ययिकमाख्यातम् ॥ ए ॥

॥ टीका—तृतीयमधुना व्याचिख्यासुराह । (अहावरे इत्यादि) अथापरं तृतीयं दंडसमादानं हिंसादंडप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः पुरुषकारं वहन् स्वतोमरणभीरुतया वा मामयं घातायिष्यतीत्येवं मत्वा, कंसवद्देवकीसुतान् भावतो जघान मदीयं वा पितरमन्यं वा मामकं ममीकारोपेतं परशुरामवत्कार्तवीर्यं जघानान्यं वा कंचनायं सर्पसिंहादिकं व्यापादयिष्यतीति मत्वा सर्पादिकं व्यापादयति अन्यदीयस्य वा कस्यचिद्धिरण्यपश्वादेरयमुपद्रवकारीति कृत्वा तत्र दंडं निसृजति । तदेवमयं मां मदीयमन्यदीयं वा हिंसितवान् हिनस्ति हिंसिष्यतीतिवेत्येवं संभाविते त्रसे स्थावरे वा तं दंडं प्राणव्यपरोपणलक्षणं स्वयमेव निसृजति अन्येन निसर्जयति निसृजंतं वाऽन्यं समनुजानीते । इत्येतत्तृतीयं दंडसमादानं हिंसाप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ ए ॥

अहावरे चउत्थे दंमसमादाणे अकम्मादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहाणामए केइ पुरिसे कछंसिवा जाव वणविडुग्गंसिवा मियवत्तिए मियसंकप्पे मियपणिहाणे मियवहाए गंता एए मियत्तिकाउं अन्नयरस्स मियस्स वहाए उसुआयामेत्ताणं णिसिरेज्जा स मियं वहिस्सामित्ति कट्टु तित्तिरंवा वट्टगंवा चडगंवा लावगंवा कवोयगंवा काविंवा काविंजलंवा विंधित्ता भ

वइ इहखलु से अन्नस्स अघाए अस्रं फुसंति अकम्मादंमे॥१०॥से जहा णा मए केइ पुरिसे सालीणिवा वीहीणिवा कोद्दवाणिवा कंगूणिवा परगाणिवा रालाणिवा णिलिज्जमाणे अन्नयरस्स तणस्स वहाए सत्थं णिसिरेज्जा से सामगं तणगं कुमुदुगं वीहीऊसियं कलेसुयं तणं छिंदिस्सामित्ति कट्टु सालिंवा वीहिंवा कोद्दवंवा कंगुंवा परगंवा रालयंवा छिंदित्ता जवइ इति खलु से अन्नस्स अघाए अन्नं फुसंति अकम्मादंमे एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जं आहिज्जइ चउत्थे दंमसमादाणे अकम्मादंमवत्तिए आहिए॥११॥

अर्थ–हवे चोथो क्रिया स्थानक अकस्मात् प्रत्ययिक दंम कहियेंछैयें. जेम कोइएक लुब्धकादिक पुरुष कच्छने विषे, अथवा यावत् वन गहन पर्वतादिकने विषे, (मियवत्तिए के०) मृगें करी जेनी आजीविका वर्त्तेछे ते मृगवर्त्तिक (मियसंकप्पे के०) तथा मृगने विषे, जेनो संकल्पछे. (मियपणिहाणे के०) मृगनेविषे जेनो प्रणिधान एटले अंतःकरणछे एवो छतो (मियवहाएगंता के०) मृगना वधने अर्थें वन पर्वतादिकने विषे जइने, (एएमियत्तिकाउं के०) आ अमुक मृग नजीक देखायछे एमकरीने (अन्नयरस्समियस्सवहाए के०) ते अन्य मृगना वधने अर्थें (उसुआयामेत्ताणंणिसिरेज्जा के०) धनुष्य बाण ताकीने मूके चलावे. (सेमियंवहिस्सामित्तिकट्टु के०) ते मृगनो वध करीश, एम करीने एटले ते मृगने वेधवुं एवा नावें बाण मूके थके वचालें अन्य जीव हणाए. ते कहेछे (तित्तिरंवा के०) तित्तर, (वट्टगंवा के०) वर्त्तक, (चडगंवा के०) चकलो, (लावगंवा के०) लावक, (कवोयगंवा के०) कपोत, (कविंवा के०) होलो, (कविंजलंवा के०) कपिंजल, ए माहेला जीवोने (विधिंत्ताजवइ के०) विंधनारो होयछे. (इहखलुसेअन्नस्सअट्ठाए के०) अहीं निश्चें ते अन्यने अर्थें प्राणघात चिंतव्यो, अने वचमां (अस्रंफुसंति के०) अन्यनो घात करे एटले एकने हणवानो प्रयोग कर्यो तेनी वचमां बीजा प्राणीनो घात करे, ते कारणे एने (अकम्मादंमे के०) अकस्मात् दंम कहियें.॥१०॥

हवे वनस्पति आश्रित अकस्मात् दंम कहेछे. जेम नाम एवी संनावनायें कोइएक करसणी पुरुष (सालीणिवा के०) सालधान (वीहीणिवा के०) व्रीहीधान्य (कोद्दवाणिवा के०) कोद्रधान्य, (कंगूणिवा के०) कांगणीधान्य, (परगाणिवा के०) बंटीधान्य, (रालाणिवा के०) रालो धान्य, इत्यादिक सर्व चोवीश जातना धान्यछे, ते धान्यनुं (णिलिज्जमाणे के०) निदान करतां थकां (अन्नयरस्सतणस्सवहाए के०) ते धान्य मांहेलुं शाल्यादिक तृण कापवाने अर्थें (सत्थंणिसिरेज्जा के०) दात्रादिक शस्त्र, वाहे एट

ले चलावे. (सेसामगंतणगंकुमुडुगं के०) ते मनमांहे एवुं जाणे ठेजे हुं ए श्यामादिक ककुमुद तृणविशेषने ठेदिश. पठी (वीहीऊसियंकलेसुयं के०) व्रीहीकलेसुकादिक धान्य,ऊंचु करीने ए धान्यमाहेलुं (तणंछिंदिस्सामित्तिकट्टु के०) तृण ठेदीश. एप्रकारें करीने, पठी ते तृणो ठेदतो थको शाली, व्रीही, कोड्वा, कंगुणी, बंटी, रालो, इत्यादिक धान्यनो (छिंदित्तानवंति के०) ठेदनारो थाय (इतिखलुसे के०) एप्रकारे निश्चें ते (अन्नस्सअघाए के०) अन्यना घातनो अर्थे चिंतवतो थको (अन्नंफुसंति के०) अन्यनो घात उपजावे एटले तृणोने ठेदतो थको धान्यने ठेदे, ते कारणे (अकम्मादंमे के०) एने अकस्मात् दंमकहिए, एम निश्चें तेने ते निमित्तें एटले तत्प्रत्ययिक सावद्य कर्म बंधाय. एप्रकारें ए चोथो क्रिया स्थानक अकस्मात् दंम प्रत्ययिक एवे नामे कह्यो. ॥ ११ ॥

॥ दीपिका–अथापरं चतुर्थं दंडसमादानमकस्माद्दंडप्रत्ययिकमाख्यायते । अकस्मादित्ययंशब्दोमगधदेशे लोके संस्कृतएवोच्चार्यते ततइहापि तथैवोक्तः । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषोलुब्धकादिः कछादिषु गत्वा मृगैर्वृत्तिर्जीविका यस्य समृगवृत्तिकोमृगेषु संकल्पो यस्यसतथा मृगेषु प्रणिधानं चित्तवृत्तिर्यस्यसतथा मृगवधार्थं कछादिषु गंता नवति तत्रच गतः सएते मृगाइति कृत्वा ऽन्यतरस्य मृगस्य वधार्थमिषुं शरमायामेन समाकृष्य, निसृजति सच मृगं हनिष्यामीति कृत्वा इषुं क्षिप्तवान् सच तेनेषुणा तित्तिरं, वर्तकंवा लावकंवा,कपोतकंवा, कपिंवा, कपिंजलंवा, पक्षिविशेषं व्यापादयिता नवति । इह खल्वसावन्यस्यार्थाय निक्षिप्तोदंडोयदाऽन्यं स्पृशति घातयति सोऽकस्माद्दंडइत्युच्यते॥१०॥ अथ वनस्पतिमुद्दिश्येममेव दंडमाह । तद्यथानामकश्चित्पुरुषः कृषीवलादिः शालिव्रीहिकोड्रवकंगुरालादिधान्यस्य श्यामतृणककुमुदकलेसुकतृणानि तृणविशेषास्तानि (णिलिज्जमाणे) अपनयन् धान्यशुद्धिं कुर्वाणोऽन्यतरस्य तृणस्य छेदाय शस्त्रं दात्रादिकं निसृजेत् । सच श्यामादिकं तृणं छेत्स्यामीति कृत्वाऽकस्माच्छालिं वा यावद्रालादिकं वा छिंद्यात् । रक्षणीयस्यैवाऽकस्मादसौ छेत्ता स्यादित्यन्यस्य कृतेऽन्यं स्पृशति छिनत्ति । एवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकमकस्माद्दंडनिमित्तं सावद्यं पापमाधीयते संबध्यते । एतच्चतुर्थं दंडसमादानमकस्माद्दंडप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ ११ ॥

॥ टीका–अथापरं चतुर्थं दंडसमादानमकस्माद्दंडप्रत्ययिकमाख्यायते । इह चाकस्मादित्ययंशब्दोमगधदेशे सर्वेणाप्यागोपालांगनादिना संस्कृतएवोच्चार्यतइति तदिहापि तथाभूतएवोच्चारितइति । तद्यथा नामकश्चित्पुरुषोलुब्धकादिकः कछे वा यावद्वनडुर्गेवा गत्वा मृगैर्हरिणैराटव्यपशुभिर्वृत्तिर्वर्त्तनं यस्यस मृगवृत्तिकः सचैवंभूतोमृगेषु संक

ल्पोयस्यासौ मृगसंकल्पः । एतदेव दर्शयति । मृगेषु प्रणिधानमंतःकरणवृत्तिर्यस्यासौ मृगप्रणिधानः क्व मृगान्हनिष्यामीत्येतदध्यवसायी सन् मृगवधार्थं कच्छादिषु गंता नवति तत्रच गतः सद्दृष्ट्वा मृगानेते मृगाइत्येवं कृत्वा तेषां मध्येऽन्यतरस्य मृगस्य वधार्थमिषुं शरं (आयामेतत्ति) आयामेन समाकृष्य मृगमुद्दिश्य निसृजति सचैवंसंकल्पोनवति। तथाऽहं मृगं हनिष्यामीति इषुं क्षिप्तवान् सच तेनेषुणा तित्तिरादिकं पक्षिविशेषं व्यापादयिता नवति । तदेवं खल्वसावन्यस्यार्थाय निक्षिप्तो दंडो यदाऽन्यं स्पृशति घातयति तदाऽकस्माद्दंडइत्युच्यते ॥१०॥ अधुना वनस्पतिमुद्दिश्याकस्माद्दंडउच्यते (सेजहेत्यादि) तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः कृषीवलादिः शाल्यादेर्धान्यजातस्य श्यामादिकं तृणजातमपनयन् धान्यशुद्धिंकुर्वाणः सन्नन्यतरस्य तृणजातस्यापनयनार्थं शस्त्रं दात्रादिकं निसृजेत्सच श्यामादिकं तृणं छेत्स्यामीति कृत्वाऽकस्माच्छालिंवा रालकंवा छिंद्यात्छूणीयस्यैवासावकस्माच्छेत्ता नवति. इत्येवमन्यस्यार्थायान्यकृते ऽन्यंवा स्पृशति छिनत्ति । यदिवा स्पृशतीत्यनेनापि परितापं करोतीति दर्शयति । तदेवं खलु तस्य तत्कर्तुस्तत्प्रत्ययिकमकस्माद्दंडनिमित्तं सावद्यमिति पापमाधीयते संबध्यते । तदेतच्चतुर्थंदंडसमादानमकस्माद्दंडप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ ११ ॥

अहावरे पंचमे दंमसमादाणे दिठिविपरियासियादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे माइहिंवा पिइहिंवा नाइहिंवा नगिणीहिंवा नज्जाहिंवा पुत्तेहिंवा धूताहिंवा सुण्हाहिंवा सद्धिं संवसमाणे मित्तं अमित्तमेव मन्नमाणे मित्तेहयपुवे नवइ दिठि विपरियासियादंमे ॥१२॥ से जहा णामए केइपुरिसे गामघायंसिवा णगरघायंसिवा खेडकवडमंमबघायंसिवा दोणमुहघायंसिवा पट्टणघायंसिवा आसमघायंसिवा सन्निवेसघायंसिवा निग्गमघायंसिवा रायहाणिघायंसिवा अतेणं तेणमित्ति मन्नमाणे अतेणं हयपुवे नवइ दिठिविपरियासियादंमे एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ पंचमे दंमसमादाणे दिठिविपरियासिया दंमेवत्तिएत्ति आहिए ॥१३॥

अर्थ—हवे अपर पांचमो दृष्टिविपर्यास नामे क्रिया स्थानक कहियें बैए. ते जेम नाम एवी संनावनायें. कोइएक पुरुष माता, पिता, नाइ, बेन, नार्या, पुत्र, दीकरी, पुत्रनी वहु, प्रमुख परिवार (सद्धिंसंवसमाणे के०) सहित वसतो थको ज्ञाति पालवाने अर्थें (मित्तंअमित्तमेवमन्नमाणे के०) पोताना मित्रने दृष्टिना विपर्यास थकी " ए महारो

शत्रुछे ” एम जाणतो थको (मित्तेहयपुव्वेभवइ के०) मित्रने हणे. एटले ए पुरुष शत्रुनो विनाश करवा वांछतो मित्रनेज हणे तेने मित्रज हत पूर्व थाय. (दिठ्ठिविपरियासियादंमे के०) एने दृष्टि विपर्यास दंम कहियें. ॥ १ २ ॥

वली बीजी रीतें देखाडेछे, ते जेम कोइएक पुरुष (गामघायंसिवा के०) गामनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (णगरघायंसिवा के०) नगरनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (खेडकवडमंमबघायंसिवा के०) खेड कब्बड मंमपनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (दोणमुहघायंसिवा के०) द्रोणमुखनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (पट्टणघायंसिवा के०) पट्टणनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (आसमघायंसिवा के०) आश्रमनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (सन्निवेसघायंसिवा के०) सन्निवेशनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (निग्गमघायंसिवा के०) निगमनी घाते प्रवर्त्ततो थको, रायहाणिघायंसिवा के०) राजधानीनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (अतेणंतेणमितिमन्नमाणेके०) अचोरने चोर करी जाणतो थको, (अतेणंहयपुव्वेभवंति के०) अचोर एटले साधुनेज हणे तेथी साधुज हत पूर्वथाय, तेथी ए दृष्टि विपर्यास दंम कहिए. एम निश्चें तेने तत्प्रत्ययिक सावद्य कर्म बंधाय। ए पांचमो क्रियास्थानक दृष्टिविपर्यास नामे दंम समादान कह्यो. ॥१३॥

॥ दीपिका—अथापरं पंचमं दंडसमादानं दृष्टिविपर्यासप्रत्ययिकमित्याख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषश्चारभट्टादिर्मातृपितृभगिनीभार्यापुत्रदुहितृस्नुषादिभिः सार्धं वसन् ज्ञातिपालनाय मित्रमेव दृष्टिविपर्यासादमित्रोयमिति मन्यमानोहन्यात्तेनच दृष्टिविपर्यासान्मित्रमेव हतपूर्वं स्यादतोदृष्टिविपर्यासदंडोऽयं॥ १ २॥ पुनरन्यथा तमेवाह । यथावा कश्चित्पुरुषोग्रामघातादिके विभ्रांतचेतादृष्टिविपर्यासादचौरमेव चौरोयमिति मन्यमानोहन्यात् । एवं तेन भ्रांतेनाचौरएव हतपूर्वः स्यात् । ग्रामादिलक्षणं चेदं । ग्रामोवृत्त्यावृतः स्यान्नगरमुरुचतुर्गोपुरोद्भासिशोभं । खेटं नद्यद्रिवेष्टं परिवृतमभितः खर्वटं पर्वतेन ॥ ग्रामैर्युक्तं मटं बंदलितदशशतैः पत्तनं रत्नयोनिं द्रोणाख्यं सिंधुवेलावलयितमथ संबाधनंवाऽद्रिशृंगेइति । आश्रमस्तापसस्थानं । सन्निवेशः सार्थकटकादिवासः । निगमोबहुवणिग्वासः । राजधानी राजकुलस्थानं । सोयं दृष्टिविपर्यासदंडः । तदेवं खलु तस्य दृष्टिविपर्यासप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते । इदं पंचमं दंडसमादानं दृष्टिविपर्यासप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ १३ ॥

॥ टीका—अथापरं पंचमं दंडसमादानं दृष्टिविपर्यासदंडप्रत्ययिकमित्याख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषश्चारभट्टादिकोमातृपितृभ्रातृभगिनीभार्यापुत्रदुहितृस्नुषादिभिः सार्धं वसंस्तिष्ठन् ज्ञातिपालनकृते मित्रमेव दृष्टिविपर्यासादमित्रोयमित्येवं मन्यमानोहन्या

त् व्यापादयेत्तेन च दृष्टिविपर्यासवता मित्रमेव हतपूर्वं नवतीति अतोदृष्टिविपर्या
डोयं ॥१२॥ पुनरप्यन्यथा तमेवाह । (सेजहेत्यादि) तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः पु
कारमुद्दहन् ग्रामघातादिके विभ्रमे भ्रांतचेतादृष्टिविपर्यासादचौरमेव चौरोयमित्येवं
न्यमानोव्यापादयेत् । तदेवं तेन भ्रांतमनसा विभ्रमाकुलेनाचौरएव हतपूर्वोजव
सोऽयं दृष्टिविपर्यासदंडः । तदेवं खलु तस्य दृष्टिविपर्यासवत् तत्प्रत्ययिकं सावद्यं क
धीयते । तदेवं पंचमं दंडसमादानं दृष्टिविपर्यासप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ १३ ॥

अहावरे उठे किरियाठाणे मोसावत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पु
रिसे आयहेउंवा णाइहेउंवा अगारहेउंवा परिवारहेउंवा सयमेव मुसंवयं
ति अन्नेणंवि मुसंवयावेंति मुसंवयंतंपि अन्नं समणुजाणइ एवं खलुतस्स त
प्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ उठे किरियाठाणे मोसावत्तिएत्ति आहिए॥१४

अर्थ—हवे उठो क्रिया स्थानक मृषावादप्रत्ययिक कहेछे. पूर्वोक्त पांचने दंमसमादा
पणे कह्या. कारण के, तेमांहे प्रायः परनो उपघात थायछे, अने अहींथी हवे क्रि
जछे माटे एने क्रियास्थान एवी संज्ञा करवी अने हवे एथकी आगलजे क्रिया स्था
क कहेशे, ते थकी प्रायः परजीवनो विनाश नथी, तेमाटे तेने क्रियास्थान संज्ञा कहे
य अने पूर्वेना पांच स्थानने दंमसमादान एवी संज्ञाछे. एटलुं विशेष जाणवुं.

हवे उठो क्रिया स्थानक विचारियें छैयें. ते जेम नाम एवी संभावनायें कोइएक पु
ष (आयहेउंवा के०) पोताने अर्थें (णाइहेउंवा के०) ज्ञाति गोत्रीने अर्थें (अग
रहेउंवा के०) घरने अर्थें (परिवारहेउंवा के०) परिवार जे दास दासी तेने अ
(सयमेवमुसंवयंति के०) स्वयमेव मृषावाद बोले एटले जेम हुं कोइ प्रकारे चोर नथ
अथवा मह्मारो परिवार कोइ चोर नथी एवो मृषावाद बोले. (अन्नेणंविमुसंवयावेंति के०
अन्य पासें मृषावाद बोलावे, (मुसंवयंतंपिअन्नंसमणुजाणइत्ति के०) अन्य कोइ मृषाव
द बोले तेने अनुमोदे, एरीते त्रिर्थें करण करावण अनुमोदन थकी मृषावाद बो
तेने तत्प्रत्ययिक सावद्यकर्म बंधाय. ए उठो क्रियास्थानक मृषावाद प्रत्ययिक कह्यो.॥१४

॥ दीपिका—अथापरं षष्ठं क्रियास्थानं मृषावादप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम
कश्चित्पुरुषआत्मनिमित्तं ज्ञातिपरिवारनिमित्तंवा स्वयमेव मृषावादं वदति नायं मदीयइत्या
दि तथाऽचौरं चौरं वदति तथाऽन्येन मृषावादं वादयति अन्यं मृषावादं वदंतं समनुजानी
ते।एवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते बध्यते। एतत्षष्ठं क्रियास्थानं मृषाव
दप्रत्ययिकमाख्यातं । पूर्वोक्तानां पंचानां क्रियास्थानानां सत्यपि क्रियास्थानत्वे प्राय

परोपघातित्वाद्दंडसमादानसंज्ञा कृता । षष्ठादिषु च प्रायेण परघातः स्यादतः क्रियास्था नसंज्ञोच्यते ॥ १४ ॥

॥ टीका—अपरं षष्ठं क्रियास्थानं मृषावादप्रत्ययिकमाख्यायते । तत्रच पूर्वोक्तानां क्रियास्थानत्वे प्रायशः परोपघातोऽभवतीति कृत्वा दंडसमादानकृता षष्ठादिषुच बाहुल्येन न परव्यापादानं भवतीत्यतः क्रियास्थानमित्येषा संज्ञोच्यते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः स्वपक्षावेशादाग्रहादात्मनि कृतं निमित्तं यावत्परिवारनिमित्तं वा सद्भूतार्थनिन्हवरूप मसद्भूतोद्भावनस्वभावं स्वयमेव मृषावादं वदति । तद्यथा नाहं मदीयोवा कश्चिच्चौरः सच चौरमपि सद्भूतमप्यर्थमपलपति तथा परमचौरं चौरमिति वदति तथान्येन मृषा वादं भाणयति तथान्यांश्च मृषावादं वदतः समनुजानीते । तदेवं खलु तस्य योगत्रिककारणत्रिकेण मृषावादं वदतस्तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते संबध्यते । तदेतत्षष्ठं क्रियास्थानं मृषावादप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ १४ ॥

अहावरे सत्तमे किरियाठाणे अदिन्नादाणवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे आयहेउंवा जाव परिवारहेउंवा सयमेव अदिन्नं आदियइ अन्नेणंवि अदिन्नं आदियावेति अदिन्नं आदियंतं अन्नं समणुजाणइ एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ सत्तमे किरियाठाणे अदिन्नादाणवत्तिएत्ति आहिए ॥ १५ ॥

अर्थ—हवे अपर सातमो क्रिया स्थानक अदत्तादान प्रत्ययिक कहेछे. ते जेम नाम एवी संभावनायें. कोइ एक पुरुष पोताना आत्माने अर्थे ज्ञातिगोत्रीने अर्थे यावत् परिवारने अर्थे पोते अदत्तादान ग्रहण करे, बीजाने अदत्तादान लेवरावे, अदत्तादान बीजो कोइ लेतो होय तेने अनुमोदन आपे, एरीते त्रिकें थकी तेने अदत्तादान तत्प्रत्ययिक कर्म बंधाय; एटले सातमो क्रियास्थानक अदत्तादान प्रत्ययिक कह्यो. ॥ १५ ॥

॥ दीपिका—अथाऽपरं सप्तमं क्रियास्थानं अदत्तादानप्रत्ययिकमाख्यायते । इदं प्राग्वत् ॥ १५ ॥

॥ टीका—अथापरं सप्तमं क्रियास्थानं अदत्तादानप्रत्ययिकमाख्यायते । एतदपि प्राग्वज्ज्ञेयं । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषआत्मनिमित्तं यावत्परिवारनिमित्तं परद्रव्यमदत्तमेव गृण्हीयादपरंच ग्राहयेद्गृण्हंतमप्यपरं समनुजानीयादित्येवं तस्यादत्तादानप्रत्ययिकं कर्म संबध्यते । इति सप्तमं क्रियास्थानमाख्यातमिति ॥ १५ ॥

अहावरे अठमे किरियाठाणे अज्झत्थवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णाम ए केइ पुरिसे णत्थिणं केइकिंविसंवादेति सयमेव हीणे दीणे दुठ्ठे दुम्मणे उहयमणसंकप्पे चिंतासोगसागरसंपविठे करतलपल्लत्थमुहे अट्टज्झा णोवगए नूमिगयदिठिएज्झियाइ तस्सणं अज्झत्थया आसंसइया चत्तारि ठाणा एवमाहिज्जइ तं कोहे माणे माया लोहे अज्झत्थमेव कोहमाणमा यालोहे एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ अठमे किरिया ठाणे अज्झत्थवत्तिएत्ति आहिए॥ १६॥

अर्थ–हवे अपर आठमो क्रिया स्थानक अध्यात्मिकप्रत्ययिक नामे कहेछे. अध्या त्मिक केहेतां जे कर्म बंधनुं कारण एवो जाव चित्त थकी उपजे, तेमाटे अध्यात्मिक क हिये. ते जेम नाम एवी संजावनायें कोइएक पुरुषछे तेने (णत्थिणं केइकिंविसंवादेति के०) कोई विखवादनुं कारण नथी. विखवाद एटले पराजव तेने कोइ करे नही, तथापि ते पुरुष, (सयमेवके०) पोतेज (हीणेदीणेदुठ्ठेदुम्मणेके०) हीन, दीन, दुष्ट, अने दुर्मन एटले जुंमा मन वालो थाय. (उहयमणसंकप्पे के०) अनवस्थित चित्त संकल्प एवो थको, (चिंतासोगसागरसंपविठे के०) चिंता शोक रूप समुद्रमांहे पेठो एवो थको, जे अव स्था करे, ते देखाडेछे. (करतलपल्लत्थमुहे के०) हाथना तलाने विषे स्थाप्युंछे मुख जेणे एटले गालने विषे हाथ देइने (अट्टज्झाणोवगए के०) आर्त्तध्यान सहित (नू मिगयदिठिएझियाई के०) नूमिनी सन्मुख एकाग्रचित्तें जोतो निर्विवेक पणे आर्त्त, रौ द्र, ध्यान ध्यावे (तस्सणंअज्झत्थया के०) तेने अध्यात्मनी (आसंसइया के०) आ शंसा मिश्रित (चत्तारिठाणाएवमाइज्जइतं के०) चार स्थानक कहिए. ते कहेछे पेहे लो क्रोध, बीजुं मान, त्रीजी माया, अने चोथो लोज (अज्झत्थमेव के०) ते पोताना मनथीज उत्पन्नथाय ए क्रोध, मान, माया, अने लोज; ए चारे करी जीवनो मन दोष दुष्ट थायः एरीते निश्चें तेने तत्प्रत्ययिक सावद्य कर्म बंधाय. तेमाटे ए आठमो क्रिया स्थानक आध्यत्मिक प्रत्ययिक एवे नामे कह्यो. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–अथापरमष्टमं क्रियास्थानमाध्यात्मिकमंतःकरणोद्भवमाख्यायते । य था कश्चिन्नरस्तस्य नास्ति कश्चिद्विसंवादयिता पराजवकरस्तथाप्यसौ स्वयमेव हीनोदीनो दुष्टोदुर्मनाअपहतमनःसंकल्पः चिंताप्रधानः शोकश्चिंताशोकस्तत्र प्रविष्टः करतले पर्यस्तं स्थितं मुखं यस्य सतथा आर्तध्यानोपगतोनूमिगतदृष्टिर्ध्यायति तस्यैवमाध्यात्मिकानि चित्तोद्भवानि असंशयितानि निःसंशयानि चत्वारि स्थानानिस्युः । तानि चैवमा

ख्यायंते । तद्यथा । क्रोधमानमायालोनस्थानानि । तेच क्रोधमानमायालोनाआत्मोद्भ वाः । एनिरेव मनोदुष्टं स्यात् । एवं तस्य तत्प्रत्ययिकमध्यात्मनिमित्तं सावद्यं कर्माधीयते । तदेवमष्टममाध्यात्मिकाख्यं क्रियास्थानमाख्यातं ॥ १६ ॥

॥ टीका—अथापरमष्टमं क्रियास्थानमाध्यात्मिकमित्यंतःकरणोद्भवमाख्यायते । तद्यथा नामकश्चित्पुरुषश्चित्तोपेक्षाप्रधानस्तस्य च नास्ति कश्चिद्विसंवादयिता । न तस्य कश्चिद्विसंवादेन परिनावेनवा सद्भूतोद्भावनेनवा चित्तदुःखमुत्पादयति तथाप्यसौ स्वयमेव वर्णापसदवद्दीनोदुर्गतवद्दीनोदुश्चित्ततया दुष्टोदुर्मनास्तथोपहतोऽस्वछतया मनःसंकल्पो यस्य सतथा चिंतैव शोकइति सागरश्चिताप्रधानोवा शोकश्चिताशोकसागरप्रविष्टः । तथानूतश्च यदवस्थोनवति तद्दर्शयति । करतले पर्यस्तं मुखं यस्य सतथाऽहर्निशं नवति तथा र्तध्यानोपगतोऽपगतसद्विवेकतया धर्मध्यानदूरवर्ती निर्निमित्तमेव द्वंद्वोपहतवद्धयायति । तस्यैवं चिंताशोकसागरावगाढस्य सतआध्यात्मिकान्यंतःकरणोद्भवानि मनःसंश्रितान्यसंशयितानि वा निःसंशयितानि चत्वारि वक्ष्यमाणानि स्थानानि नवंति । तानि चैव समाख्यायंते । तद्यथा क्रोधस्थानं, मानस्थानं, मायास्थानं, लोनस्थानमिति । ते चावश्यं क्रोधमानमायालोनाआत्मनोऽधिनवंत्याध्यात्मिकाएनिरेव सद्भिर्दुष्टं मनोनवति । तदेव तस्य दुर्मनसः क्रोधमानमायालोनवतएवमेवोपहतमनःसंकल्पस्य तत्प्रत्ययिकमध्यात्मनिमित्तं सावद्यं कर्माधीयते संबध्यते । तदेवमेतक्रियास्थानमाध्यात्मिकाख्यमाख्यातमिति॥१६॥

अहावरे णवमे किरियाठाणे माणवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे जातिमएणवा कुलमएणवा बलमएणवा रूवमएणवा तवमएणवा सुयमएणवा लानमएणवा ईस्सरियमएणवा पन्नामएणवा अन्नतरेणवा मयठाणेणं मत्ते समाणे परं हिलेंति निंदेति खिंसति गरहति परिनवइ अवमणेति इत्तरिए अय अहमंसि पुण विसिठे जाइकुलबलाइगुणोववेए एवं अप्पाणं समुक्कस्से देहाचुए कम्मबित्तिए अवसेपयाइं तंजहा गप्नाउगप्नं जम्माउजम्मं माराउमारं णरगाउणरगं चंमे थद्धे चवले माणियावि नवइ एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ णवमे किरियाठाणे माणवत्तिएत्ति आहिए ॥ १७ ॥

अर्थ—अथ हवे अपर नवमो क्रियास्थानक मान प्रत्ययिक नामे कहिए बैएं. ते जेम नाम एवी संनावनायें कोइएक पुरुष (जातिमएणवा के०) जाति एटले माता

नो पक्ष, तेना मदें करीने, (कुलमएणवा के०) कुल एटले पितानो पक्ष, तेना मदें करीने, (बलमएणवा के०) शरीरनुं बल, तेना मदें करीने, (रूवमएणवा के०) रूपने मदें करीने, (तवमएणवा के०) तपने मदें करीने, (सुयमएणवा के०) श्रुतज्ञानने मदें करीने, (लाभमएणवा के०) लाभने मदें करीने, (ईस्सरियमएणवा के०) ऐश्वर्य एटले ठकुराइने मदें करीने, (पन्नामएणवा के०) प्रज्ञाना मदें करीने, एटलाना मद (अन्नतरेणवा के०) अथवा अन्य एटले बीजा कोइ (मयठाणेणं के०) मदना स्थानकें करीने (मत्तेसमाणे के०) मातो थतो (परंहिलेंति के०) बीजानी हेलना करे, (निंदेंति के०) निंदा करे, (खिंसति के०) खष्ट करे, (गरहति के०) गर्हा करे, (परिभवइ के०) पराभव करे, (अवमन्नेति के०) अपमान करे, (इत्तरिएअ य के०) ए बापडो जघन्य एटले जातिकुलादिकें हीनछे. (अहमंसिपुणविसिठ्ठजाइकुलबलाइगुणोववेए के०) हुं वली विशेष जाति, कुल, बलादिकगुणेकरी सहितछुं (एवंअप्पाणंसमुक्कस्से के०) एम पोताना आत्माने उत्कर्षे एटले अहंकार करे. हवे एवा मद करनारने विपाक देखाडेछे. (देहाचुए के०) ते पुरुष आ लोक मांहे पण निंदा अने गर्हानुं स्थानक थाय, अने परलोके पण निंदा अने गर्हानुं स्थानक थाय. देहाचुए एटले आ शरीरथकी चवीने परभवे (कम्मबित्तिए के०) कर्मद्वितीय (अवसेपयाइ के०) एतावता कर्मने वश वर्त्ततो चतुर्गतिक संसार मांहे परिभ्रमण करे (तंजहा के०) ते कहेछे (गम्भाउगब्भं के०) एक गर्भ थकी मरण पामिने, वली बीजा गर्भ मांहे उपजे. (जम्माउजम्मं के०) एक जन्म थकी बीजुं जन्म पामे, (माराउमारं के०) मरण थकी मरण पामे, (णरगाउणरगं के०) नरक थकी निकलीने वली नरकांतरे नरकमां जइने तीव्र डुःख भोगवे, एटले ते नरकमांहे थी निकलीने, सिंह मत्स्यादिक मांहे उत्पन्न थाय, फरी त्यांथी मरण पामीने तीव्रतर नरकांतरें जाय. एतावता ते (चंमे के०) रौड् अहंकारी (थद्धे के०) स्तब्ध अनम्र शील (चवले के०) चपल एवा लक्षणेयुक्त (माणियाविभवइ के०) ते अभिमानी पुरुष होय एम निश्चें तेने तत्प्रत्ययिक सावद्य कर्म बंधाय, ए नवमो क्रिया स्थानक मान प्रत्ययिक नामे कह्यो ॥ १७ ॥

॥ दीपिका—अथापरं नवमं क्रियास्थानं मानप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथा कश्चित्पुरुषो जात्यादिगुणोपेतः सन् जातिकुलबलरूपतपःश्रुतलाभैश्वर्यप्रज्ञामदाख्यैरष्टभिर्मदस्थानैर न्यतरेण वा मत्त. परं हीनबुद्ध्या हीलयति, निंदति, जुगुप्सते, गर्हति, परिभवति । यथाय मितरोजघन्योहीनोमत्तः कुलादिभिः । अहं पुनर्विशिष्टकुलादिगुणोपेतएवमात्मानमुत्क

र्षयेत् । एवं जात्यादिमदमत्तः सन् इहैव निंद्यः स्यात् । अत्रच जात्यादिमद द्व्यादिसंयो गैर्नंगाज्ञेयाः । तथाहि । जातिमदः कस्यचिन्न कुलमदः, १ कस्यचित्कुलमद एव, न जातिम दः २ कस्यचिद्द्वयं ३ कस्यचिडुनयमपि न. ४ एवं पद द्व्येन चत्वारोनंगाः । पदत्रयेणाष्टौ, पदचतुष्टयेन पोडश, पंचनिः पदै द्वींत्रिंशत् षड्निश्चतुःषष्टिः सप्तनिः १२७ अष्टनिः २५६ सर्वत्र मदानावरूपश्चरमनंगः शुद्धइति । समानी देहाच्च्युतोमृतः सन् कर्मद्वितीयः क र्मसहायोऽवशः परवशः प्रयाति नवांतरं । तद्यथा गर्नाजर्नं जन्मनएकस्मात्परं जन्म, मा रान्मरणान्मारं मरणांतरं व्रजति नरकतुल्याच्चंडालादिवासान्नरकं रत्नप्रनादिकं याति । अथवा नरकाडुदृत्य सिंहमत्स्यादावुत्पद्य पुनरतितीव्रं नरकांतरं याति । तदेवं मानी परपरिनवे सति चंडोरौद्रोऽन्यं हंति तदनावे आत्मानमेव हंति स्तब्धश्चपलो यत्किंचन कारी स्यात् मानी सन् एवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकं माननिमित्तं सावद्यं कर्माधीयते ब द्ध्यते । नवममेतक्रियास्थानमाख्यातमिति ॥ १७ ॥

॥ टीका—अथापरं नवमं क्रियास्थानं मानप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पु रुषोजात्यादिगुणोपेतः सन् जातिकुलबलरूपतपःश्रुतलानैश्वर्यप्रज्ञामदाख्यैरष्टनिर्मदस्था नैरन्यतरेणवा मत्तः परमवबुध्या हीलयति तथा निंदति, जुगुप्सते, गर्हति, परिनवति, एतानि चैकार्थिकानि कथंचिद्भेदं चोत्प्रेक्ष्य व्याख्येयानीति । यथा परिनवति तथा दर्शी यति । इतरोयं जघन्योहीनजातिकः कुलबलरूपादिनिर्दूरमपन्नष्टः सर्वजनावगीतोयमि ति । अहं पुनर्विशिष्टजातिकुलबलादिगुणोपेतएवमात्मानं समुत्कर्षयेदिति । सांप्रतं मानोत्कर्षविपाकमाह । (देहाच्चुएइत्यादि) तदेवं जात्यादिमदोन्मतः सन्निहैव लोके गर्हितोनवति । अत्र जात्यादिपद द्व्यादिसंयोगाद्रष्टव्यास्ते चैवं नवंति । जातिमदः, कस्य चिन्न कुलमदोऽपरस्य कुलमदो,न जातिमदः परस्योनयमपरस्यानुनयमित्येवं पदत्र येणाष्टौ चतुर्निः षोडशेत्यादि यावदष्टनिः पदैः षट्पंचाशदधिकं शत द्व्यमिति । सर्वत्र मदानावरूपचरमनंगः शुद्धइति । परलोकेऽपिच मानी डुःखनाग्नवतीत्यनेन प्रदर्श्यते । स्वायुषः क्षये देहाच्च्युतोनवांतरं गच्छन्नुनाशुनकर्मा द्वितीयः कर्मपरायत्तत्वादवशः परतं त्रः प्रयाति । तद्यथा गर्नाजर्नं पंचेंद्रियापेक्षं तथा गर्नाजर्नं विकलेंद्रियेषूत्पद्यमानः पुनर गर्नाजर्नमेवं गर्नादगर्नमेतच्च नरककल्पगर्नेडुःखापेक्षायामनिहितमुत्पद्यमानडुःखापेक्षया त्विदमनिधीयते । जन्मनएकस्मादपरं जन्मांतरं व्रजति । तथा मरणं मारस्तस्मान्मारांतरं व्रजति तथा नरकदेश्याच्छ्वपाकादिवासाद्रत्नप्रनादिकं नरकांतरं व्रजति । यदिवा नरका त्सीमंतकादिकाडुदृत्य सिंहमत्स्यादावुत्पद्य पुनरपि तीव्रतरं नरकांतरं व्रजति । तदेवं नटवद्रंगनूमौ संसारचक्रवाले स्त्रीपुंनपुंसकादीनि बहून्यवस्थांतराण्यनुनवंति । तदेवं मा

नी परपरिज्ञवेलति चंडरौद्रोज्ञवति परस्यापकरोति तदज्ञावे ह्यात्मानं व्यापादयति। तथा स्तब्धश्चपलोयत्किंचनकारी मानी सन्सर्वोऽप्येतदवस्थोज्ञवतीति । तदेवं तत्प्रत्ययिकं माननिमित्तं सावद्यं कर्माधीयते संबध्यते । नवममेतत्क्रियास्थानमाख्यातमिति॥१३॥

अहावरे दसमे किरियाठाणे मित्तदोसवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे माईहिंवा पिताहिंवा ज्ञाईहिंवा ज्ञइणीहिंवा ज्ञज्जाहिंवा धूयाहिंवा पुत्तेहिंवा सुण्हाहिंवा सद्धिं संवसमाणे तेसिं अन्नयरेसि अहालहुगंसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंरू निवत्तेति तं जहा सीउदगवियडंसि वा कायं उबोलित्ताज्ञवति उसिणोदगवियडेणवा कायं उसिंचित्ता ज्ञवति अगणिकाएणं कायं उवडहित्ताज्ञवति जोतेणवा वेतेणवा णेतेणवा तयाइ वा कसेणवा ठियाएवा लयाएवा पासाइं उद्दालित्ताज्ञवति दंरूणवा अठीणवा मुठीणवा लेलूणवा कवालेणवा कायंआउडित्ता ज्ञवति तहप्पगारे पुरिसजाए संवसमाणे डुम्मणा ज्ञवति पवसमाणे सुमणा ज्ञवति तहप्पगारे पुरिसजाए दंरूपासी दंरूगुरुए दंरूपुरक्कडे अहिए इमंसि लोगंसि संजलणे कोहणे पिठिमंसियावि ज्ञवति एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जंति दसमे किरियाठाणे मित्तदोसवत्तिएत्ति आहिए॥१८॥

॥ अर्थ—अथ हवे अपर दशमो क्रिया स्थानक मित्र दोष प्रत्ययिक कहियेंबैयें. ते जेम नाम एवी संज्ञावनायें कोइएक पुरुष माता, पिता, ज्ञाइ, बेन, स्त्री, बेटी, पुत्र, पुत्रनीस्त्री, तेवहु जाणवी. (सिद्धिंसंवसमाणे के०) एटला सार्थे वसतो थको (तेसिंअन्नयरेसि के०) ते मातापिताद्किथी कोइ अनेरो अजाण पणे अनाज्ञोग थकी (अहालहुगंसि के०) यथा कथंचित् न्हानो डुर्वचन प्रमुखनो अथवा काय थकी हस्त पादादिकनो संघट्ट प्रमुख एवो (अवराहंसि के०) अपराध थये बते (सयमेव के०) पोतेंज क्रोधें करी धमतो थको तेने (गुरुयंदंरूंनिवत्तेति के०) महोटो दंरू करे. (तंजहा के०) ते कहेबे. (सीउदगवियडंसिवा के०) सीतल पाणीयें करी सीतकालने विषे (कायंउबोलित्ताज्ञवति के०) ते अपराधीनु शरीर ठंमापाणी मांहे बोले. एवा अकार्यनो करनार थाय तथा (उसिणोदगवियडेणवाकायंउसिंचित्ताज्ञवति के०) उस्लकालें अत्यंत उस्न पाणीयें करीने उस्न तेलें करीने तेना शरीरनेसिंचे शरीरनुं शोषण करनार थाय, (अगणिकाएणंकायंउवडहित्ताज्ञवंति के०) अग्निकायें करीने तेना शरीरनुं दहन करनार

थाय, (जोतेणवा के०) जोत्रे करी, (वेतेणवा के०) वेत्रें करी, अथवा (णेतेणवा के०) नेतरे करी, (तयाइवाके०) त्वचायें करी, अथवा (कसेणवाके०) ताजणे चाबखुकें करी, (बियाएवा के०) नाडायें करी, (लयाएवा के०) लता एटले वेलुयें करी, दोरडीयेंकरी (पासाइंउद्दालित्ताजवति के०) तेना पार्श्वनागना चामडाने उखेडनार थाय, (दंमेणवा के०) दंमे करी लाकडीयें करी, (अट्ठीणवा के०) हाडकायें करी, (मुट्ठीणवा के०) मुष्टियें करी, (लेलूणवा के०) पाषाणने कटके करी, (कवालेणवा के०) ठींकरीयें करी, कपालादिकेंकरी, (कायंआउडित्ताजवति के०) तेना शरीरने ताडनार थाय, किंबहुना (तहप्पगारे के०) तथा प्रकारना दंमना करनार एवा (पुरिसजाए के०) पुरुष जाति जे तथा प्रकारना कुकर्मना करनार होए तेनी साथे (संवसमाणे के०) एकठां रहेतां बता सज्ञान पुरुष जे माता पितादिक ते पण (डुम्मणाजवंति के०) डुर्मन थइने देशांतर जता रहे पठी (पवसमाणे के०) ते थकी अलगा रहेवा थी (सुमणाजवंति के०) सुमन थाय, एटले तेने ठोडयाथी हर्षित थाय. एवा (तहप्पगारे के०) तथा प्रकारना (पुरिसजाए के०) पुरुष जाति जे थोडा अपराधीने पण दंमना देनार, (दंमपासीके०) अल्पापराधने विषे अति कोपकरनार, ते दंडपार्श्वी (दंमगुरुएके०) दंमेंकरी आकरो दंम करे, (दंमपुरेक्कडेके०) तेने सर्व काल दंमज अग्रेसर ठे. ते पुरुष (अहिएइमंसिलोगंसिकें०) आलोकने विषे पण पोताना जीवने अहित कारी अने (अहिएपरंसिलोगंसि के०) परलोकने विषे पण पोताना जीवने अहित कारीठे तेनुं कारण शुं? तोके तेजीव, (संजलणे के०) क्षणे क्षणे ज्वले, (कोहणे के०) क्षणेक्षणे क्रोध करे, (पिठिमंसियाविजवति के०) पृष्ठ मांस जक्षण करनार होय, पुंठे पाठल अवर्णवादनो बोलनार होयं, एम निश्चें तेहने तत्प्रत्ययिक एटले ते निमित्तें सावद्य कर्म बंधाय. ए दशमो क्रिया स्थानक मित्र दोष प्रत्ययिक नामे कह्यो. ॥ १० ॥

॥ दीपिका—अथापरं दशमं क्रियास्थानं मित्रदोषप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः प्रजुकल्पोमातापितृसुल्हृत्स्वजनादिजिः सार्धं संवसन् तेषां मातापित्रादीनामन्यतमेनाऽनाजोगतोयथाकथंचिल्लघुतमेप्यपराधे स्वयमेवात्मनाक्रोधतोगुरुतरं दंडं वर्तयति करोति । तद्यथा शीतोदकविकटे शिशिरादावतिशीतोदके कायं शरीरमपराधिनोऽवबोलयिता जवति तथा उष्णोदकविकटेन कायमपसिंचयिता जवति । विकटग्रहणाडुष्णतैलकांजिकादिना अग्निकायेन उल्मुकेन तप्तलोहेनवा कायमुपदाहयिता जवति । (जोएणत्ति) जोत्रेण वेत्रेणवा नेत्रोवृक्कविशेषस्तेन कशादिनावा लतयावा शरीरपार्श्वाणि उद्दालयितुं चर्माणि लुंपयितुं जवति । दंडेन अस्थ्ना मुष्टिना लेष्टुना कपालेन जांडखंडेन कायमु

पताडयिता भवति । तथाविधे पुरुषे स्वल्पापराधेपि महादंडकारिणि एकत्र वासं कुर्वति मातापित्रादयोदुर्मनसः स्युः । तस्मिन् प्रवसति दूरं गच्छति सति सहवासिनः सुमनसः सुखिनः स्युः । तथाप्रकारस्तादृशः पुरुषोदंडस्य पार्श्वे दंडपार्श्वे तद्विद्यते यस्यासौ, दंडप्रवृत्तोदंडः पुरस्कृतोयेन सदंडपुरस्कृतोऽस्मिन् लोके स्वस्य परेषां चाऽहितः परलोकेप्यहितः संज्वलनः क्रोधकारी क्रोधनोवधबंधादिषु अविमृश्य प्रवृत्तिकृत् पृष्ठिमांसखादकः परममोद्घट्टनतः । एवं तस्य स्वल्पापराधेपि महादंडकर्तुस्तद्दंडप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते बध्यते । तदेतद्दशमं क्रियास्थानमाख्यातमिति । अन्ये पुनरष्टमं क्रियास्थानमात्मदोषप्रत्ययिकमाचक्षते । नवमंतु परदोषप्रत्ययिकं । दशमं पुनः प्राणवृत्तिकमिति ॥ १७ ॥

॥ टीका—अथापरं दशमं क्रियास्थानं मित्रदोषप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः प्रभुकल्पोमातापितृसुहृत्स्वजनादिभिः सार्धं परिवसंस्तेषांच मातापित्रादीनामन्यतमे नानाभोगतया यथाकथंचिल्लघुतमेप्यपराधे वाचिके दुर्वचनादिके तथा कायिके हस्तपादादिके संघट्टरूपे कृते सति स्वयमेवात्मना क्रोधध्मातोगुरुतरं दंडं दुःखोत्पादकं निवर्तयति करोति । तद्यथा शीतोदके विकटे प्रभूते शीतेवा शिशिरादौ तस्यापराधकर्तुः कायमधोबोलयिता भवति तथोष्णोदकविकटेन कायं शरीरमपसिंचयिता । तत्र विकटग्रहणाडुष्णतैलेन कांजिकादिनावा कायमुपतापयिता भवति तथाऽग्निकायेनाल्मुकेन तप्तायसावा कायमुपदाहयिता भवति तथा जोत्रेणवा वेत्रेणवा नेत्रेणवा त्वचा वासनादिकपालनतया वाऽन्यतरेण वा दवरकेण ताडनतस्तस्यापराधकर्तुः शरीरपार्श्वाणि उद्दालयितुं चर्माणि लुंपयितुं भवति तथा दंडादिना कायमुपताडयिता भवति । तदेवमल्पापराधिन्यपि महाक्रोधदंडवति तथा प्रकारे पुरुषजाते एकत्र वसति सति तत्सहवासिनोमातापित्रादयोदुर्मनसस्तदनिष्टाशंकया भवंति तस्मिंश्च प्रवसति देशांतरे गच्छति गतेवा तत्सहवासिनः सुमनसोभवंति । तथाप्रकारश्च पुरुषजातोऽल्पेप्यपराधे महांतं दंडं कल्पयतीत्येतदेव दर्शयितुमाह । दंडस्य पार्श्वे दंडपार्श्वे तद्विद्यते यस्यासौ दंडपार्श्वी स्वल्पतया स्तोकापराधे कुप्यति दंडं च पातयति । तमप्यतिगुरुमिति दर्शयितुमाह । दंडेन गुरुकोदंडगुरुः । यस्यच महान् दंडोभवति असौ दंडेन गुरुर्भवति । तथा दंडः पुरस्कृतः सदा पुरस्कृतदंडइत्यर्थः । सचैवंभूतः स्वस्य परेषां चास्मिन् लोकेऽस्मिन्नेव जन्मनि अहितः प्राणिनामहितदंडपातनात् तथा परस्मिन्नपि जन्मन्यसावहितस्तच्छीलतया चासौ यस्य कस्यचिदेव येन केनचिदेव निमित्तेन क्षणेक्षणे संज्वलयतीति संज्वलनः सचात्यंतक्रोधनोवधबंधनविच्छेदादिषु शीघ्रमेव क्रियासु प्रवर्तते तदभावेप्युत्कटद्वेषतया मर्मोद्घट्टनतः पृष्ठिमांसमपिखादेत्तत्तदसौ ब्रूयात् । येनासावपि परः संज्वलयेत् ज्वलितश्चान्येषामपकुर्यात् त

देवं खलु तस्य महादंडं प्रवर्तयितुस्तद्दंडप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माऽधीयते । तदेतद्दशमं क्रियास्थानं मित्रद्रोहप्रत्ययिकमाख्यातमिति । अपरे पुनरष्टमं क्रियास्थानमात्मदोषप्रत्ययिकमाचक्षते. नवमंतु परदोषप्रत्ययिकंच. दशमं पुनः प्राणवृत्तिकं क्रियास्थानमिति ॥ १८॥

अहावरे एक्कारसमे किरियाठाणे मायावत्तिएत्ति आहिज्जइ जे इमे नवंति गूढायारा तमोकसिया उलुगपत्तलहुया पव्वयगुरुया ते आयरियाविसंता अणारियाउ नासाउवि पउजंति अन्नहासंतं अप्पाणं अन्नहामन्नंति अन्नंपुठा अन्नंवागरंति अन्नं आइक्खियव्वं अन्नंआइक्खंते॥ १९॥से जहा णामए केइ पुरिसे अंतोसल्ले तं सल्लं णोसयं णिहरति णोअन्नेण णिहरावेंति णोपडिविद्धंसेइ एवमेव निण्हवेइ अविउट्टमाणे अंतोअंतोरियाइ एवमेव माई मायं कट्टु णोआलोएइ णोपडिक्कमेइ णोणिंदइ णोगरहइ णोविउट्टइ णोविसोहेइ णोअकरणाए अब्भुट्ठेइ णोअहारिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जइ माइ अस्सिंलोए पच्चायाइ माइ परंसिलोए पच्चायाइ निंदइ गरहइ पसंसइ णिच्चरइ णनियट्टइ णिसिरियं दंडंछाएति माइ असमाहडसुहलेस्सेयावि नवइ एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ एक्कारसमे किरियाठाणे मायावत्तिएत्ति आहिए ॥ २० ॥

अर्थ—हवे अपर अगिआरमो क्रिया स्थानक मायाप्रत्ययिक कहियें छैयें (जेंइमे नवंति के०) जे आ जगत्मांहे पुरुषछे ते कया पुरुष तोके, (गूढायारा के०) गूढाचारी एटले धूतारा, ठगारा, गंठीछोडा प्रमुखछे ते नाना प्रकारना उपायें करीने लोकने विश्वास उपजावीने वंचे. (तमोकसिया के०) अंधाराने विषे विचरनारा, अर्थात् लोक थकी छाना क्रियाना करनारा, (उलुगपत्तलहुयाके०) ते पोतें जाते घूवडनी पांख थकी पण हलकाछे परंतु (पव्वयगुरुया के०) पोताने पर्वत थकी पण महोटा माने, (तेआयरियाविसंता के०) ते आर्य देशमां उत्पन्न थया होय तेम छतां पण परने वंचवाने अर्थें शठ पणे, पोताने गोपववा जणी (अणारियाउनासाउविपउजंति के०) अनार्य देशनी नापा बोले, अथवा पोतानी कल्पित नापा जे बीजाथी अजाणी होय तेवी नापा बोले, (अन्नहासंतं के०) लिपी पण तेवी अजाणी अन्य लखे (अप्पाणंअन्नहामन्नंति के०) पोतें वली बीजी रीते माने, (अन्नंपुठा के०) अन्य कांइ पुछे थके (अन्नंवागरंति के०) अन्य कहे, (अन्नंआइक्खियव्वं के०) अन्य कांहिं

एक प्ररूपवुंछे तेने ठेकाणे (अन्नंआइक्खंते के०) अन्य बीजुं कांइक जुदूंज प्ररूपे ॥ १ए॥ (सेजहाणामए के०) ते यथादृष्टांते नाम एवी संभावनायें जेम. (केइपुरिसे के०) कोइ एक पुरुष संग्राम थकी निकल्यो, (अंतोसल्ले के०) तीर भालादिकना शल्यें क री सशल्य छतो (तंसल्लं के०) ते शल्यने (णोसयंणिहरति के०) वेदना थकी बीहि तो थको पोतें पोताने हाथे काढे नही, (णोअन्नेणणिहरावेंतिके०) बीजाने हाथे पण कढावे नही, (णोपडिविद्धंसेइ के०) तथा वैद्यने उपदेशें औषधादिक प्रयोगें करीने पण ते शल्यनो विध्वंस थशे नही (एवमेव के०) एम जाणीने, (निण्हवेइ के०) ते शल्यने गोपवी राखे. (अविउट्टमाणे के०) पुछ्यो थको कहे नही, (अंतोयंतो रियाइके०) ते डुःखें पीडयो थको माहोमांहे डुःखी थाय, (एवमेव के०) एम ते (माइमायंकट्टु के०) मायावी पुरुष, माया शल्ये करीने तेणे जे कोइ अकार्य कस्या हो य ते (णोआलोएइ के०) गुरु समक्ष आलोवे नही (णोपडिक्कमेइके०) पडिकमे नहीं (णोणिंदइ के०) आत्मानी साखें निंदे नहीं; (णोगरहइ के०) परसाक्षीक गर्हे न हीं (णोविउट्टइ के०) तेवा अकार्य करवा थकी निवृत्तिपामे नहीं (णोविसोहेइ के०) शुभभाव रूप पाणीयें करी ते अतिचारनुं कलंक पखाले नहीं, (णोअकरणाएअब्भुट्टेइ के०) तेवा अकार्यने अणकरवाने उठे नहीं एटले अण करवानो उद्यम न करे,(णो अहारिहंतवोकम्मंपायच्छित्तपडिवज्जइ के०) यथायोग्य तप कर्म रूप प्रायश्चित पडिव जे नहीं. एरीतें (माइ के०) ते मायावी पुरुष (असिंसलोएपच्चायाइके०) आ लोक मांहे पण अविश्वासनी प्रसिद्धि पामे (माइपरंसिलोएपच्चायाइ के०) मायावी पुरुष परलोके नरकादिक पीडाना स्थानकने विषे वली वली अरहट्ट घटिकाने न्यायें गतिआ गति करे, तथा मायावी पुरुष परनी (निंदइ के०) निंदा करे, (गरहइ के०) गर्हा करे (पसंसइ के०) अने पोतानी पोते प्रशंसा करे, (णिच्चरइ के०) अकार्यने वि षे रती करे, (णनियट्टइ के०) अकार्य थकी निवर्त्ते नहीं (णिसिरियंदम्मंछाएति के०) अकार्य करीने पोतानो अपराध ढांकी राखे एरीते (माइअसमाहड के०) माया वी पुरुष अपहारे एटले त्यागकरे; शेनो त्यागकरे? ते कहेछे. (सुहलेस्सेयाविभवइ के०) शुभ लेश्यानो त्याग करे अने सर्व कालें अशुभ लेश्यायें करी प्रवर्त्तमान थको होए एरीते निश्चे तेने तत्प्रत्ययिक एटले ते निमित्तें सावद्य कर्मबंधाय. एटले अगी आरमो क्रिया स्थानक मायाप्रत्ययिक नामे कह्यो. ॥ २० ॥

॥ दीपिका–अथापरमेकादशं क्रियास्थानमाख्यायते । तद्यथा । ये केचनामी भवंति पुरुषाः । किंभूताः । गूढाचारागलकर्तकग्रंथिछेदकादयस्ते बहूपायैर्विश्वासमुत्पाद्य, विरू

पं कुर्वंति चंडप्रद्योतादेरजयकुमारादिवत् तमसि कषितुं शीलं येषांते तमःकषिणस्तएव तमःकाषिकाः पराविज्ञाताः क्रियाः कुर्वंतीत्यर्थः । तेच उलूकपिच्छवल्लघवोपि पर्वतवगुरुमात्मानं मन्यंते आर्याअपि संतस्ते परव्यामोहार्थमनार्यनाषा (विउव्वंति) प्रयुंजंते अन्यथा स्थितमात्मानमन्यथा साध्वाचारेण मन्यंते व्यवस्थापयंति अन्यत् पृष्टामायया ऽन्यदेव वदंति आम्रान् पृष्टा निंबान् वदंति । व्याकरणं पृष्टस्तदज्ञस्तर्कमवतारयति । यथा वा शरदि वाजपेयेन यजेतइत्यस्य वाक्यस्यार्थं पृष्टस्तदर्थानभिज्ञः कालविलंबार्थं शरत्कालमेव वर्णयति (अन्नमाइक्खियव्वंति) अन्यस्मिन्नर्थे कथयितव्येऽन्यमेवाख्यांति ॥ १ ए॥ (सेजहेति) तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः संग्रामान्निर्गतेंऽतर्मध्ये शल्यं यस्य सोंतःशल्यः सवेदनान्नीतः स्वयं शल्यं ननिर्हरति नकृषति नाप्यन्येन कर्षयति । नापि वैद्योपदेशादोषधप्रयोगैः प्रतिध्वंसयति विनाशयति अन्येन दृष्टस्तच्छल्यं निन्हुतेऽपलपति तेन शल्येन (अविउट्टमाणेत्ति) पीड्यमानः (अंतोअत्ति) मध्ये पीड्यमानोपि रीयते व्रजति वेदनां सहमानोपि क्रियासु प्रवर्त्ततइत्यर्थः । दृष्टांतं योजयति (एवमेव मायीति) यथा सशल्यो डुःखन्नाग्नवति एवमेव मायी, कृतं कार्यं निगूहयन् मायां कृत्वाऽन्यस्मै नालोचयति नकथयति न तस्मात्स्थानात्प्रतिक्रमति न निवर्त्तते न आत्मसाक्षिकं निंदति नापिपरसाक्षिकं गर्हति आलोचनार्हसमीपे गतोनापि च जुगुप्सते (नविउट्टइत्ति) न वित्रोटयत्यपनयति मायाशल्यं नविशोधयति नापि पुनस्तदाकरणतयाऽभ्युत्तिष्ठते नापि यथार्हं तपःकर्मरूपं प्रायश्चित्तं प्रतिपद्यते । तदेवं मायावी अस्मिन् लोकेऽविश्वासतया प्रत्याख्यातिं याति । यडुक्तं । मायाशीलः पुरुषोयद्यपि, नकरोति कंचिदपराधं ॥ सर्पइवाऽविश्वास्यो नवति तथाप्यात्मदोषहतइति ॥ तथा मायावी परस्मिन् लोके नरकतिर्यगादिषु प्रत्यायाति नूयोनूयोयाति (निंदंगाहयति) परं निंदयित्वा आत्मप्रशंसया तुष्यति । एवंचासौ लब्धप्रसरोऽधिकं निश्चरति तथाविधानुष्ठायी नवति । तत्रच गृद्धस्तस्मान्मातृस्थानान्ननिवर्त्तते दंडं निसृज्य हिंसां कृत्वा प्रछादयत्यपलपति अन्यस्यवा मस्तके क्षिपति समायावी असमाहृतशुनलेश्योऽनंगीकृतशुनध्यानश्चापि नवति । एवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकं मायाशल्यप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते । एतदेकादशक्रियास्थानं मायाप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ २० ॥

॥ टीका—अथापरमेकादशं क्रियास्थानमाख्यायते । तद्यथा ये केचनामी नवंति पुरुषाः । किंविशिष्टाः । गूढाआचारायेषां ते गूढाचारागलकर्तकग्रंथिछेदादयस्तेच नानाविधैरुपायैर्विश्रंनमुत्पाद्य पश्चादपकुर्वंति प्रद्योतादेरजयकुमारादिवत् । तथा मायाशीलत्वेनाप्रकाशकचारिणस्तमसि कषितुं शीलं येषांते तमसिकाषिणस्तएवच तमः

काषिकाः पराऽविज्ञाताः क्रियाः कुर्वंतीत्यर्थः । तेच स्वचेष्टयैवोलूकपत्रवल्लघवः कौशिक पिछवल्लघीयांसोपि पर्वतवद्गुरुमात्मानं मन्यंते । यदिवा कार्यप्रवृत्तेः पर्वतवन्नो स्तंन यितुं शक्यंते ते चाऽऽर्यदेशोत्पन्नाअपि संतः शाठ्यादात्मप्रछादनार्थमपरज्ञयोत्पादनार्थं चाऽनार्यज्ञाषाः प्रयुंजंते परव्यामोहार्थं स्वमतिपरिकल्पितज्ञाषाभिरपराऽविदिताभिर्जंष ते तथाऽन्यथाऽव्यवस्थितमात्मानमन्यथासाध्वाकारेण मन्यंते व्यवस्थापयंति तथाऽ न्यत्पृष्टामातृस्थानतोऽन्यदाचक्षते । यथाम्रान् पृष्टाः कोविदारकानाचक्षते । वादकालेवा कश्चिन्नाथवादितया व्याकरणे प्रवीणस्तर्कमार्गमवतारयति । यथावा शरदि वाजपेयेन यजेतेत्यस्य वाक्यस्यार्थं पृष्टस्तदर्थानभिज्ञः कालातिपातार्थं शरद्कालं व्यावर्णयति। तथा ऽन्यस्मिंश्चार्थे कथयितव्येऽन्यमेवार्थमाचक्षते । तेषां सर्वार्थविसंवादिनां कपटप्रपंचचतु राणां विपाकोद्भावनाय दृष्टांतं दर्शयितुमाह ॥ ३१ ॥ (सेजहेत्यादि) यथानाम कश्चित्पुरु षः संग्रामादपक्रांतोंऽतर्मध्ये शल्यं तोमरादिकं यस्य सोंऽतःशल्यः सच शल्यघट्टनवेदनाज्ञी रुतया तच्छल्यं न स्वतोनिर्हरत्यपनयति उद्धरति तथाप्यन्येन नोद्धारयति नापि तच्छल्यं वै द्योपदेशेनौषधोपयोगादिभिरुपायैः प्रतिध्वंसयति विनाशयति अन्येन केनचित्पृष्टोवाऽपृष्टो वातच्छल्यं निष्प्रयोजनमेव निन्हुतेऽपलपति तेन च शल्येनासावंतर्वर्तिना (अविउट्ट माणेत्ति) पीड्यमानः (अंतोत्ति) मध्येमध्ये पीड्यमानोपि रीयते व्रजति तत्कृतां वेदनाम सहमानः क्रियासु प्रवर्ततइत्यर्थः । सांप्रतं दार्ष्टांतिकमाह । (एवमेवेत्यादि) यथाऽसौ स शल्योदुःखनाग्जवत्येवमेवासौ मायी मायाशल्यवानन्यत्कृतमकार्यं तन्मायया गूहयन् मायां कृत्वा न तां मायामन्यस्मै आलोचयति कथयति नापि तस्याः स्थानात्प्रतिक्रामति न ततोनिवर्तते नाप्यात्मसाक्षिकं तन्मायाशल्यं निंदति । तद्यथा धिङ्मां यदहमेवंनूत मकार्यं कर्मोदयात्कृतवांस्तथा नापि परसाक्षिकं गर्हति आलोचनार्हसमीपे गतोनापि च जुगुप्सते तथा (नोविउट्टत्ति) नापि तन्मायाख्यं शल्यमकार्यकरणात्मकं विविधमने कप्रकारं त्रोटयत्यपनयति । यद्यस्यापराधस्य प्रायश्चित्तं तत्तेन पुनस्तदकरणतया निवर्त्त यतीत्यर्थः।नापि तन्मद्यादिकमकार्यं सेवित्वा लोचनार्हायात्मानं निवेद्य,तदकार्यकरणतया ऽन्युत्तिष्ठते प्रायश्चित्तं प्रतिपद्यापि नोद्युक्तविहारी जवतीत्यर्थः। तथा नापि गुर्वादिभि रभिधीयमानोपि यथार्हमकार्यनिर्वहणयोग्यं प्रायश्चित्तं शोधयतीति । प्रायश्चित्तं तपः कर्मविशिष्टं चांद्रायणाद्यात्मकं प्रतिपद्यते ऽन्युपगछति । तदेवं मायया सत्कार्यप्रछादको ऽस्मिन्नेव लोके मायावीत्येवं सर्वकार्येष्वेवाविश्रंजणत्वेन प्रत्यायाति प्रख्यातिं याति त थानूतश्च सर्वस्यापि विश्वास्योजवति । तथाचोक्तं । मायाशीलः पुरुषइत्यादि । तथाति मायावित्वादसौ परस्मिन् लोके जन्मांतराऽवाप्तौ सर्वाऽधमेषु यातनास्थानेषु नरकतिर्य गादिषु पौनःपुन्येन प्रत्यायाति जूयोजूयस्तेष्वेवारघट्टघटीयंत्रन्यायेन प्रत्यागछतीति

तथा नानाविधैः प्रपंचैर्वंचयित्वा. परं निंदति जुगुप्सते । तद्यथाऽयमज्ञः पशुकल्पोनाने न किमपि प्रयोजनमित्येवं परं निंदयित्वाऽत्मानं प्रशंसयति । तद्यथा ह्यसावपि मया वंचितइत्येवमात्मप्रशंसया तुष्यति । तथा चोक्तं । येनापत्रपते साधुरसाधुस्तेन तुष्यतीति । एवं चासौ लब्धप्रसरोऽधिकं निश्चयेन वा चरतीति तथाविधानुष्ठायी नवतीति निश्चरति । तत्रच गृद्धःसंस्तस्मान्मातृस्थानान्न निवर्तते तथासौ मायावलेपेन दंडं प्राण्युपमर्दकारणं निसृज्य पातयित्वा पश्चान्नादयत्यपलपति अन्यस्य चोपरि प्रक्षिपतिसच मायावी सर्वदा वंचनपरायणः संस्तन्मनाः सर्वानुष्ठानेष्वेवंनूतोनवति । असमाहृताऽनंगीकृता शोनना लेश्या येन सतथार्त्तध्यानोपहततयाऽसावशोननलेश्यइत्यर्थः । तदेवमपगतधर्मध्यानोसमाहितोशुद्धलेश्यश्चापि नवति । तदेवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकं मायाशल्यप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माऽधीयते । तदेकादशं क्रियास्थानं मायाप्रत्ययिकं व्याख्यातं ॥ २० ॥

अहावरे बारस्समे किरियाठाणे लोनवत्तिएत्ति आहिज्जइ जे इमे नवंति तंजहा आरन्निया आवसहिया गामंतिया कण्हुईरहस्सिया णो बहुसंजया णोबहुपडिविरया सवपाणनूतजीवसत्तेहिं ते अप्पणो सच्चामोसाइं एवं विउंजंति अहं ण हंतवो अन्ने हंतवा अहं ण अज्जावेयवो अन्ने अज्जावेयवा अहं ण परिघेतवो अन्ने परिघेतवा अहं ण परितावेयवो अन्ने परितावेयवा अहं ण उद्दवेयवो अन्ने उद्दवेयवा एवमेव ते इत्थिकामेहिं मुच्छिया गिद्धा गढिया गरहिया अज्झोववन्ना जाव वासाइं चउपंचमाइं बहसमाइं अप्पयरोवा नुज्जयरोवा नुंजित्तुंनोगनोगाइं कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु आसुरिएसु किव्विसिएसु ठाणेसु उववत्तारो नवंति ततोविप्पमुच्चमाणे नुज्जोनुज्जो एलमूयत्ताए तमूयत्ताए जाइमूयत्ताए पच्चायंति एव खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ डुवालसमे किरियाठाणे लोनवत्तिएत्ति आहिए ॥ २१ ॥

अर्थ–हवे अपर बारमो क्रियास्थानक लोनप्रत्ययिक कहिए बैयें. (जेइमेनवंति के०) जे आगल कहेशे ते पुरुष कोण? (तंजहा के०) ते कहेबे. (आरन्निया के०) अरण्यमां वसनारो, कंदमूलफलाहारी, वृक्षने मूले वसनारो, वली (आवसहिया के०) कोइएक पानडानी पर्णकूटी करीने तेमां रहे, (गामंतिया के०) तथा कोइएक आजीविका निमित्तें ग्रामने समीपें निवास करी रहे, (कण्हुईरहस्सिया के०) कोइएक का

थेने विषे रहस्यना करनार, ए सर्व प्रायः त्रसजीवोनी विराधना नकरे परंतु एकेंद्रियनी विराधनायें उपजीवन करे, (णोबहुसंजया के०) ते घणा संयत नहीं, (णोबहुपडिविरया के०) घणी हिंसा थकी निवर्त्त्यां नथी, एटले सर्व प्राणातिपात विरमणव्रतादिकने विषे न प्रवर्त्ते; किंतु? द्रव्य थकी केटलाएक व्रत पाले, अने सर्व विरतिनुं कारण जे सम्यक् दर्शनछे, ते गुण तेमांहे नथी ते कारणे, (सव्वपाणभूतजीवसत्तेहिं के०) सर्व प्राणी, भूत, जीव, अने सत्वथकी अविरत, हिंसा थकी अविरत (तेअप्पणो के०) ते पारखमी पोते, (सच्चामोसाइं के०) घणां सत्यामृषावचन (एवंविउंजंति के०) एम आगल केशे. जेरीतें बोले तेज कहेछे. (अहंणहंतव्वो के०) हुं ब्राह्मण पणा थकी मने दंभादिकें हणवो नही, (अन्नेहंतव्वा के०) अन्य क्षुद्रादिकने हणवा. (अहंणअज्जावेयव्वो के०) तथा हुं वर्णोत्तम छुं, माटे मने आज्ञा करवी नहीं एटले मने कांइ आदेश आपवो नही. तथा (अन्नेअज्जावेयव्वा के०) क्षुद्रादिक आज्ञापयितव्यछे एटले तेमने आदेश आपवो. (अहंणपरिघेतव्वो के०) हुं वर्णोत्तमछुं, माटे मने बलात्कारें ग्रहण करवो नही, (अन्नेपरिघेतव्वा के०) अन्य क्षुद्रादिकने बलात्कारें ग्रहण करवा. (अहंणपरितावेयव्वो के०) तथा मने परितापवो नही, (अन्नेपरितावेयव्वा के०) अन्य क्षुद्रादिकने परितापवा. (अहंणउद्दवेयव्वो के०) तथा मने उपद्रव करवो नही, तथा जीव, काया थकी रहित करवो नही, (अन्नेउद्दवेयव्वा के०) अन्य क्षुद्रादिकने उपद्रवो करवा. एम ते परपीडाना उपदेशना करनार मूढ, असंबंध प्रलापी (एवमेवतेइत्थिकामेहिंमुच्छिया के०) एरीते पूर्वोक्त प्रकारे ते मूढ परमार्थना अजाण थका स्त्रियादिकना कामभोगने विषे मूर्छित थका (गिद्धाके०) गृद्ध एटले ते कामभोगना अभिलाषी छता, (गढिया के०) कामभोगने विषे आसक्त छता (गरहिया के०) निंदवा योग्य, अत्यंत आसक्त छता (अज्झोववन्ना के०) अध्युपपन्न एटले कामभोगने विषे एकाग्र चित्त थया छता (जाववासाइंचउपंचमाइं के०) यावत् चार पांच वर्ष सुधी अथवा (छद्दसमाइं के०) छ अथवा दश वर्ष एटलो काल तेमांहे ते तीर्थिक (अप्पयरोवा के०) अल्पतर एटले अल्प काल सुधी (भुज्जयरोवाके०) अथवा घणा काल सुधी घर वास छांमीने (भुंजित्तुभोगभोगाइं के०) वली काम भोग जे शब्दादिक विषयछे तेने धर्मने पांखमे भोगवीने, (कालमासे कालंकिच्चा के०) मरण प्रस्तावे काल करीने कांइ एक बालतपना प्रभावथी (अन्नयरेसु आसुरिएसु किव्विसिएसु ठाणेसु उववत्तारो भवंतिके०) तेने अनेरा आसुरिक किल्विषीने स्थानकें उपजवुं थाय, (ततोविप्पमुच्चमाणे के०) ते स्थानकथी आयुष्यने क्षये चवीने (भुज्जोभुज्जोएलमूयत्ताए के०) वलीवली मनुष्य भव पामे, तोपण एल एटले बोडा, काणा, अथवा मूयत्ता एटले मुंगा तथा

(तमूयत्ताएजाइमूयत्ताएपच्चायंति के०) ते जात्यंध एटले जन्म थकी अंध, तथा जन्म थकी बहेरा, एवा थाय. एम प्रत्यागच्छंति एटले फरीने आ लोकमां आवेछे. एरीते निश्चें थकी तेने तत्प्रत्ययिक एटले ते निमित्ते सावद्य कर्म बंधाय. ए बारमो लोनप्रत्ययिक नामे क्रिया स्थानक कह्यो. ॥ २१ ॥

॥ दीपिका–एतान्येकादश क्रियास्थानानि सामान्येनाऽसंयतानां नवंति । इदंतु द्वादशं क्रियास्थानं पाखंडिकानुद्दिश्य कथ्यते ॥ अथापरं द्वादशं क्रियास्थानं लोनप्रत्ययिक माख्यायते । तद्यथा । यइमे नवंत्यारण्यकाअरण्यवासिनआवसथिकाउटजवासिनोग्रा मांतिकाग्रामादिकमुपजीवंतोग्रामस्यांते समीपे वसंतीति (कएहुई) क्वचित्कार्ये मंडल प्रवेशादिके रहस्यं येषां ते क्वचिद्राहसिकास्तेच न बहुसंयतान सर्वसावद्यनिवृत्ताश्च प्राय इत्यर्थः । एतएव न बहुविरतान सर्वव्रतपालकाः किंतु ? इव्यतः कतिपयव्रतानावतः स म्यक्त्वानावात् । एतदेवाह । (सवपाणेत्ति) ते आरण्यकादयः सर्वप्राणिनूतजीवसत्वेन्य आत्मना स्वतोविरताः सत्यामृषानूतानि वाक्यान्येवं वक्ष्यमाणनीत्या वियुंजंति विशेषे ण प्रयुंजंति कथयंतीत्यर्थः । तद्यथाहं ब्राह्मणत्वाद्दंडादिनिर्न हंतव्योऽन्येशूद्रत्वाद्धंतव्याः । तथा च तद्वाक्यं शूद्रं व्यापाद्य प्राणायामं जपेत् । तथा क्षुद्रसत्वानामनस्थिकानां शकटना रमपि व्यापाद्य ब्राह्मणं नोजयेदित्यादि । तथाहं न आज्ञापयितव्योऽन्येतु मत्तोऽधमाः स मापयितव्याः । नाहं परितापयिनव्योऽन्ये परितापयितव्याः । अहं मूल्येन कर्मकरणा य न ग्राह्योऽन्ये ग्राह्याः । नाहमपद्रावयितव्योजीवितादपरोपयितव्योऽन्येत्वपद्रावयित व्याः । तदेवं तेषां परपीडोपदेशान्न प्राणातिपातविरतिव्रतमस्ति । उपलक्षणान्मृषावा दादत्तादानविरतिव्रतानावोपि ज्ञेयः । तुर्यव्रतमाश्रित्याह । (एवमेवत्ति) एवं पूर्वोक्त प्रकारेण स्त्रीषु कामेषु च मूर्छिताग्रद्धाग्रथिताअध्युपपन्नाः । कियंतं कालमासक्ताइत्याह । (जाववासाइत्ति) यावद्वर्षाणि चतुःपंचषड्दशकानि । अयं च मध्यमः कालः । एताव त्कालग्रहणं च सानिप्रायं । प्रायस्तीर्थिकाअतिक्रांतवयसएव व्रजंति तेषां च एतावानेव कालः संनाव्यते । यदिवा मध्यग्रहणात्ततऊर्ध्वमधश्च गृह्यतइत्याह । तस्माच्च उपात्ता त्कालादल्पतरः प्रनूततरोवापि कालः स्यात् । तत्रच ते त्यक्त्वापि गृहवासं नुक्त्वापि नो गान् स्त्रीनोगान् स्त्रीनोगे सत्यवश्यं शब्दादयोनोगनोगास्तान् नुक्त्वा ते हि वयं प्रव्रजिता इति नच नोगेन्योनिवृत्ताअज्ञानित्वात्ते एवंनूतपरिणामाः कालमासे स्वायुःक्षये कालं कृत्वा विकृष्टतपसोपि आसुरिकेषु किल्बिषिकेषु स्थानेषूत्पादयितारोनवंति । तस्मादपि स्थानाद्विप्रमुच्यमानाश्च्युताएडमूकत्वेनोत्पद्यंते । यथा एडकोव्यक्तवाक् तथायमपि । (त मूयत्ताएत्ति) तमस्त्वेन जात्यंधतयाऽत्यंताज्ञानावृततया वा जातिमूकत्वेनापगतवा

चइह् प्रत्यायांति । तदेवं तेषां तीर्थिकानां तत्प्रत्ययिकं सावद्यानुष्ठाननिमित्तं सावद्यं कर्माधीयते । तदेतल्लोजप्रत्ययिकं द्वादशं क्रियास्थानमाख्यातमिति ॥ २१ ॥

॥ टीका–एतानि चानर्थदंडादीनि एकादश क्रियास्थानानि सामान्येनाऽसंयतानां ज वंति। इदंतु द्वादशं क्रियास्थानं पाखंडिकानुदिश्याऽनिधीयते (अहावरेइत्यादि) एकादशा त् क्रियास्थानादनंतरमथापरं द्वादशं क्रियास्थानं लोजप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथा । य इमे वक्ष्यमाणाअरण्ये वसंत्यरण्यकास्ते च कंदमूलफलाहाराः संतः केचन वृक्षमूले वसं ति, केचनावसथेपूटजाकारेषु गृहेषु, तथापरे ग्रामादिकमुपजीवंतोग्रामस्यांते समीपे वसं तीति ग्रामांतिकास्तथा क्वचित्कार्ये मंडलप्रवेशादिके रहस्यं येषांते क्वचिद्राहसिकास्तेच न बहुसंयतान सर्वसावद्यानुष्ठानेन्योनिवृत्ताः । एतडुक्तं नवति । नबाहुल्येन त्रसेषु दंडस मारंनं विदधति एकेंडियोपजीविनस्त्वविगानेन तापसादयोजवंतीति तथा न बहुविरता न सर्वेष्वपि प्राणातिपातविरमणादिषु व्रतेषु प्रवर्तंते किंतु? इव्यतः कतिपयव्रतव्रतिनोन नावतोमनागपि तत्करणस्य सम्यग्दर्शनस्यानावादित्यनिप्रायः । इत्येतदाविर्नाविषितु माह । (सव्वपाणेत्यादि) ते ह्यारण्यादयः सर्वप्राणिनूतजीवसत्वेन्यआत्मना स्वतोविरता स्तडुपमर्दकारंनाद्‌विरताइत्यर्थः। तथा पाषंडिकाआत्मना स्वतोबहूनि सत्यामृषानूतानि वाक्यान्येवं वक्ष्यमाणनीत्या विशेषेण युंजंति प्रयुंजंति ब्रुवतइत्यर्थः। यदि वासत्यान्यपि तानि प्राण्युपमर्दकत्वेन मृषानूतानि सत्यामृषाण्येवं ते प्रयुंजंतीति दर्शयति । तद्यथाऽ हं ब्राह्मणत्वाद्दंडादिनिर्न हंतव्योऽन्येतु शूइत्वाद्धंतव्याः । तथाहि । त द्वाक्यं ।शूइं व्या पाद्य प्राणायामं जपेत् किंचिद्वा दद्यात् तथा क्षुइसत्वानामनस्थिकानां शकटनारमपि व्या पाद्य ब्राह्मणं नोजयेदित्यादि। अपरं चाहं वर्णोत्तमत्वात् नाज्ञापयितव्योन्येतु मत्तोऽधमाः समाज्ञापयितव्यास्तथा नाहं परितापयितव्योऽन्येतु परितापयितव्यास्तथाहं वेतनादिना कर्मकरणाय न ग्राह्योऽन्येतु शूइाग्राह्याइति । किंबहुनोक्तेन नाहमुपड्रावयितव्योजीवि तादपरोपयितव्योऽन्येतु अपरोपयितव्याइति । तदेवं तेषां परपीडोपदेशनतोऽतिमूढतया ऽसंबद्धप्रलापिनामज्ञानावृतानामात्मंनरीणां विषमदृष्टीनां न प्राणातिपातविरतिरूप व्रतमस्त्यस्य चोपलक्षणार्थत्वात् मृषावादादत्तादानविरमणानावोप्यायोज्यः । अधुना त्वनादिनावान्यासाडुस्त्यजत्वेन प्राधान्यात् सूत्रेणैवाब्रह्माधिकृत्याह । (एवमेवेत्या दि) एवमेव पूर्वोक्तेनैव कारणत्वेनातिमूढत्वादिना परमार्थमजानास्ते तीर्थिकाः स्त्रीप्रधा नाः कामाः स्त्रीकामाः । यदिवा स्त्रीषु कामेषु च शब्दादिषु मूर्छिताग्रृद्धाग्रथिताअध्यु पपन्नाः । अत्र चात्यादरख्यापनार्थं प्रनूतपर्यायग्रहणं । एतच्च स्त्रीषु शब्दादिषुच प्रवर्त नं प्रायः प्राणिनां प्रधानं संसारकारणं । तथा चोक्तं । मूलमेयमहम्मस्स महादोससमु

स्सयमित्यादि । स्त्रीसंगासक्तस्यावश्यंनाविनी शब्दादिविषयासक्तिरित्यतः स्त्रीकामग्रहणं। तत्र चासक्तायावंतं कालमासते तत्सूत्रेणैव दर्शयति । याव इर्षाणि चतुःपंचषड्दशकानि । अयंच मध्यमकालोगृहीतः । एतावत्कालोपादानं च साभिप्रायं प्रायस्तीर्थिकाअतिक्रांतवयसएव प्रव्रजंति तेषां चैतावानेव कालः संनाव्यते । यदिवा मध्यग्रहणात्ततऊर्ध्वमधश्च गृह्यते इति दर्शयति । तस्माच्चोपात्तादल्पतरः प्रनूततरोवापि कालोनवति । तत्रच ते त्यक्त्वापि गृहवासं नुक्त्वा नोगनोगान् इति स्त्रीनोगे सति अवश्यं शब्दादयोनोगाः नोगनोगास्तान्नुक्त्वा तेच किल वयं प्रव्रजिताइति नच नोगेन्योविनिवृत्ताः । यतोमिथ्यादृष्टितया ज्ञानांधत्वात्सम्यग्विरतिपरिणामरहितास्तेचैवंनूतपरिणामाः स्वायुषः कालमासे कालं कृत्वा निकृष्टतपसोपि संतोऽन्यतरेष्वासुरिकेषु किल्बिषिकेषु स्थानेषूत्पादयितारोनवंति । ते ह्यज्ञानतपसा मृताअपि किल्बिषिकेषु स्थानेषूत्पत्स्यंते तस्मादपि स्थानादायुषः क्षयाद्विप्रमुच्यमानाश्च्युताः किल्बिषिकबहुलास्तत्कर्मशेषेणैलवन्मूकाएलमूकास्तद्भावेनोत्पद्यंते । किल्बिषिकस्थानाच्च्युतः सन्ननंतरनवे वा मानुषत्वमवाप्य यथैलमूकोऽव्यक्तवाक् समुत्पद्यतइति । तथा (तममूयत्तायेत्ति) तमस्त्वेन जात्यंधतया अत्यंताऽज्ञानावृततया वा तथा जातिमूकत्वेनापगतवाचइह प्रत्यागच्छंतीति । तदेवंनूतं खलु तेषां तीर्थिकानां परमार्थतः सावद्यानुष्ठानादनिवृत्तानामाधाकर्मादिप्रवृत्तेस्तत्प्रायोग्यनोगनाजां तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते । तदेतल्लोनप्रत्ययिकं हादशं क्रियास्थानमाख्यातमिति ॥ २१ ॥

इच्चियाइं डुवालस किरियाठाणाइं दविएणं समणेणवा माहणेणवा सम्मं सुपरिजाणिअव्वाइं नवंति ॥ २२ ॥

अर्थ—एरीते ए बारे क्रिया स्थानक तेने (दविएणं के०) मुक्ति गमन योग्य एवा जे श्रमण तथा ब्राह्मणो होय तेणे (सम्मंसुपरिजाणिअव्वाइंनवंति के०) सम्यक् प्रकारे संसारना कारण जाणीने. प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरवा ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—उपसंहारमाह । (इच्चेइत्यादि) इत्येतान्यनर्थदंडादीनि हादश क्रियास्थानानि कर्मग्रंथिद्रावणाद्रवः संयमः सविद्यते यस्यासौ इविकस्तेन श्रमणेन साधुना मावधीरिति प्रवृत्तिर्यस्य समाहनस्तेन सम्यक् सुपरिज्ञातव्यानि संसारकारणानीति ज्ञात्वा, परिहर्तव्यानि नवंति ॥ २२ ॥

॥ टीका—सांप्रतमेतेषां हादशानामप्युपसंहारार्थमाह । (इच्चेयाइत्यादि) इतिरूपप्रद

र्शने । एतान्यनर्थदंडादीनि लोजप्रत्ययिकक्रियास्थानपर्यवसानानि द्वादश क्रियास्थानानि । कर्मग्रंथिद्रावणाद्रूवः संयमः सविद्यते यस्यासौ द्रविकोमुक्तिगमनयोग्यतया वा द्रव्यनूतः श्रमणः साधुः । तमेव विशिनष्टि । मावधीरित्येवं प्रवृत्तिर्यस्यासौ माहनस्तेनैवंवतजुणविशिष्टेनैतानि सम्यग्यथावस्थितवस्तुस्वरूपनिरूपणतोमिथ्यादर्शनाश्रितानि संसारकारणानीति कत्वा ज्ञपरिज्ञया ज्ञातव्यानि प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहर्तव्यानि नवंतीति ॥ २१ ॥

अहावरे तेरसमे किरियाठाणे इरियावहिएत्ति आहिज्जइ इह खलु अत्ताए संवुमस्स अणगारस्स इरियासमियस्स नासासमियस्स एसणासमियस्स आयाणनंमत्तणिरकेवणासमियस्स उच्चारपासवणखेलसिंघाण जल्लपारिठावणियासमियस्स मणसमियस्स वयसमियस्स कायसमियस्स मणगुत्तस्स वयगुत्तस्स कायगुत्तस्स गुत्तिंदियस्स गुत्तबंनयारिस्स आउत्तंगडमाणस्स आउत्तंचिठमाणस्स आउत्तंणिसियमाणस्स आउत्तंतुयट्टमाणस्स आउत्तंनुंजमाणस्स आउत्तंनासमाणस्स आउत्तंवडं पडिग्गहं कंबलं पायपुंडणं गिणहमाणस्सवा णिरिकवमाणस्सवा जाव चरकुपम्हणिवायमवि अबिविमाया सुहुमा किरिया इरियावहिया नाम कज्जइ सापढमसमए बघा पुठा बितीयसमए वेइया तइयसमए णिज्जिता सावद्धा पुठा उदीरिया वेइया णिज्जिता सेयं काले अकम्मयावि नवंति एवं खलु तस्स तप्पतियं सावज्जंति आहिज्जइ तेरसमे किरियाठाणे इरियावहिएति आहिज्जइ ॥ से बेमि जेयअतीता जेयपडुपन्ना जेयआगमिस्सा अरिहंता नगवंता सवेते एयाइं चेव तेरसकिरियाठाणाइं नासिंसुवा नासेंतिवा नासिस्संतिवा पन्नविंसुवा पन्नविंतिवा पन्नविस्सिवा एवंचेव तेरसमं किरियाठाणं सेविंसुवा सेवंतिवा सेविस्संतिवा ॥ ७३ ॥

अर्थ–हवे अपर तेरमो क्रिया स्थानक इरिया पथिक नामे कहिए बैए (इहखलुअत्ताए के०) निश्चे आ जगत्मांहे आत्म नाव पामवाने अर्थें (संवुमस्स के०) मन, वचन, अने कायायें करी संवृत एटले संवर सहित एवा (अणगारस्स के०) साधुने इरियावहि क्रिया कहियें. ते साधुना गुण कहेबे. ईर्यासमितिए समितो, नाषासमितिए समितो, एषणासमितिए समितो, आदान नांम मात्रा निक्षेपण समितिए समि

तो, उच्चार एटले वडीनीत, अने पासवण एटले लघुनीत, खेलसिंघाणजल्ल एटले थूंक, बडखो, नाकनो मेल, श्लेष्म, शरीरनो मेल, तेने पारिष्ठापन एटले परठववा रूप समितिए समितो, (मणसमियस्स के०) मनसमितवंत, (वयसमियस्स के०) वचनसमितवंत, (कायसमियस्स के०) कायसमितवंत, (मणगुत्तस्स के०) मनगुप्तें गुप्तो, (वयगुत्तस्स के०) वचनगुप्तें गुप्तो, (कायगुत्तस्स के०) कायगुप्तें गुप्तो, (गुत्तिंदियस्स के०) गुप्तेंद्रिय एटले इंद्रियोनो गोपवनार, (गुत्तबंनयारिस्स के०) गुप्त ब्रह्मचारी, एटले नववाडे विशुद्ध, ब्रह्मचर्यनो पालनार, (आउत्तंगछमाणस्स के०) उपयोग सहित सावधान पणे चालनार, (आउत्तंचिठ्ठमाणस्सके०) सावधान पणे उनो रहेनार, (आउत्तंणिसियमाणस्स के०) सावधान पणे बेसनार, (आउत्तंतुयट्टमाणस्स के०) सावधान पणे शयन करनार, (आउत्तंनुंजमाणस्स के०) सावधान पणे नोजन करनार, (आउत्तंनासमाणस्स के०) सावधान पणे बोलनार, (आउत्तंवछंपडिग्गहंकंबलंपायपुंछणंगिण्हमाणस्सवा के०) सावधान पणे वस्त्र, पात्र, कांबल, पायपुंछणने लेतो, तथा (णिक्खिवमाणस्सवा के०) निक्षेप एटले तेने सावधान पणे मूकतो, तथा (जावचक्खूपम्हणिवायमवि के०) किंबहुना यावत् चक्षुनी पांपण एटले मिषोन्मिष मात्र, ते पण उपयुक्त पणे करतो, एवो जे साधु तेने एछे. (सुहुमाकिरियाइरियावहियानामकज्जइ के०) सूक्ष्मकिरिया इरियावहि नामे छे, परंतु ते क्रिया केवी छे, तोकें (अछिविमायाके०) विविध प्रकारें जेनी मात्राछे एवी क्रियाछे ते लागे, ए क्रिया केवलीने पण लागे, कारणके केवली पण सयोगीछे ते सयोगी जीव तो एक क्षणवार पण अग्निना ताप मांहे पाणीनी पेठें निश्चल रही शके नही, ते कारणे इरियावहि क्रिया लागे. (साके०) ते क्रिया कषाय विना (पढमसमए के०) पहेला समयने विषे (बद्धा के०) बंधाय. (पुठ्ठा के०) फरशे, तथा (बितीयसमएवेइया के०) बीजा समयने विषे वेदाय एटले एनुं वेदवुं थाय, अने (तइयंसमएणिज्जिन्ना के०) त्रीजा समयने विषे निर्जराय एटले एनुं निर्जरवुं थाय, ते कहे छे. (साबद्धा पुठ्ठाउदीरियावेइयाणिज्जिन्ना के०) ते क्रिया बंधाए, फरशाए, उदिराए, वेदाय, अने निर्जराए, जे कारण माटें कर्मबंधनी स्थिति कषायितछे ते इरियावहिना धणी होय तेने ते नथी. केमके, कषाय वालाने सांपरायिक कर्म बंधायछे. परंतु ते कषाय, इरियावहिवालाने नथी ए कारणे ते इरियावहि क्रिया (सेयंकाले के०) ते आगमिककालें त्रीजा समयने विषे (अकम्मयाविनवंति के०) अकर्मता पणे होय, एटले कर्म रहितपणे होय. तेथी वीतरागनेज इरियावहि क्रिया लागे. एरीतें निश्चें तेहने तत्प्रत्ययिक एटले ते निमित्तें सावद्य कर्म बंधाय. ए तेरमो क्रिया स्थानक इरियावहि एवे नामे कह्यो. ॥ १३ ॥

ए तेर जे क्रियाना स्थानक छे ते मात्र एक श्रीवर्द्धमान स्वामियेंज नथी कह्या, किंतु? अन्य बीजा पण सर्वे तीर्थंकरें कह्याछे. एवो नाव देखाडेछे. (सेबेमि के०) श्री सुधर्मस्वामि जंबूस्वामि प्रत्ये कहेछे के, में श्री महावीर पासेंथी सांजल्याछे जे पूर्वोक्त अर्थ, ते तुजने कह्या. ते अर्थ (जेयअतीता के०) अतीतकालें जे तीर्थंकर थया (जेयपडुपन्ना के०) तथा जे तीर्थंकर हमणा वर्त्तमान कालेंछे, वली (जेआगमिस्सा के०) जे आगमिककालें तीर्थंकर थशे, (अरिहंता के०) ते श्री अरिहंत पूजा सत्कार करवा योग्य, (नगवंता के०) ऐश्वर्यादिकगुण युक्त, (सवेतेएयाइंचेव के०) ते सर्वे तीर्थं करें निश्चे थकी, ए (तेरसकिरियाठाणाइं के०) तेर क्रियाना स्थानक जेछे ते अतीतका लें नांख्या, वर्त्तमान काले नांखेछे,अने आगमिक कालें नांखशे. विशेषे प्ररूप्या. विशेषें प्ररूपेछे, अने विशेषें प्ररूपशे. एम निश्चें ए तेरमो क्रिया स्थानक अतीतकालें सेव्यो, वर्त्तमान कालें सेवेछे, अने आगमिक कालें सेवशे. जेम जंबूद्दीपने विषे बे सूर्य सरखो प्रकाश करेछे, तथा जेम प्रदीप सरखुं अजवाळुं करेछे, तेम तीर्थंकर पण त्रणेकालें वर्त्त मान ठता, सरखो उपदेश आपेछे. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—अथापरं त्रयोदशं क्रियास्थानमीर्यापथिकं नाम आख्यायते । ईरणं ईर्या तस्यास्तया वा पंथाईर्यापथः सविद्यते यस्य तदीर्यापथिकं । एतच्च शब्दव्युत्पत्तिनिमित्तं । प्र वृत्तिनिमित्तंतु इदं । सर्वत्रोपयुक्तस्य निकषायस्य समीक्षितमनोवाक्कायक्रियस्य या क्रि या तया यत्कर्म तदीर्यापथिकं सैव वा क्रिया ईर्यापथिका । तस्याः स्वरूपमाह । (इहखलु इत्यादि) आत्मनावार्थं संवृतस्याऽनगारस्य ईर्यादिकानिः पंचनिः समितिनिर्मनोवाक्का यैः समितस्य तिसृनिर्गुप्तिनिर्गुप्तस्य गुप्तेंद्रियस्य नवब्रह्मचर्यगुप्तिसहितब्रह्मचारिणश्च उ पयुक्तं गच्छतस्तिष्ठतोनिषीदतस्त्वग्वर्तनां कुर्वाणस्य तथा उपयुक्तमेव वस्त्रं पतद्ग्रहं कं बलं पादपुंछनंवा गृह्णतोनिक्षिपतोवा यावच्चक्षुःपक्ष्मनिपातमपि उपयुक्तं कुर्वतः सतो प्यस्ति विद्यते विमात्रा विविधा मात्रा सूक्ष्मा क्रिया ईर्यापथिकानाम केवलिनापि क्रिय ते । यतः सयोगी जीवः क्षणमप्येकं निश्चलः स्थातुं नशक्तोऽतिवह्निताप्यमानजलव त्कार्मणशरीरानुगतः सदा परिवर्तमानएवास्ते । ततः केवलिनोपि सूक्ष्मगात्रसंचाराः स्युस्तैश्च कर्म बध्यते तदीर्यापथिकं तस्य याऽवस्था सा क्रिया । (सापढमेति) निकषा यिणा यत्कर्म बध्यते तत्प्रथमसमये बद्धं स्पृष्टं चेति तत्क्रियैव बद्धस्पृष्टेत्युक्ता । द्वितीय समये वेदिताऽनुनूता तृतीयसमये निर्जीर्णा । केवलयोगनिमित्तं यत्कर्म बध्यते तस्य न सांपरायिकस्येव स्थितिः किंतु प्रकृतितः सातावेदनीयं तत् १ स्थितितोद्विसमया स्थितिकं २ अनुनावतः शुनानुनावमनुत्तरसुरसुखातिशायि ३ प्रदेशतो बहुप्रदेशमस्थि

बंधं बहुव्ययंच ४ । तदेवं सारक्रिया प्रथमसमये बद्धस्पृष्टा द्वितीयसमये उदिता निर्जीर्णा स्यात् । (सेयंकालेत्ति) एष्यत्काले आगामिनि तृतीयसमये तत्कर्मापेक्षया कर्मतापि नवति । एवं खलु तस्य वीतरागस्य तत्प्रत्ययिकमीर्याप्रत्ययिकं कर्माधीयते बध्यते । एतत्त्रयोदशं क्रियास्थानमाख्यातं । ये पुनस्तस्मादन्ये प्राणिनस्तेषां मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगनिमित्तः सांपरायिकोबंधः स्यात् । केवलयोगनिमित्तस्तु वीतरागस्यैव । सच द्विसमयस्थितिकइति ॥ २३ ॥ सोहं ब्रवीमि येऽतीतायेच प्रत्युत्पन्नाये चागामिनोर्हंतो नगवंतः सर्वे ते एतान्येव त्रयोदश क्रियास्थानानि अनाषिषुर्नाषंते नाषिष्यंतेच विपाकतः प्रज्ञापितवंतः प्रज्ञापयंति प्रज्ञापयिष्यंतिच । तथैतदेव त्रयोदशं क्रियास्थानं सेवितवंतः सेवंति सेविष्यंते च ॥ २४ ॥

॥ टीका—अथापरं त्रयोदशं क्रियास्थानमीर्यापथिकं नामाख्यायते । ईरणमीर्या तस्यास्तया वा पंथाईर्यापथस्तत्र नवमीर्यापथिकमेतच्च शब्दव्युत्पत्तिनिमित्तं । प्रवृत्तिनिमित्तं त्विदं सर्वत्रोपयुक्तस्य निकषायस्य समीक्षितमनोवाक्कायक्रियस्य या क्रिया तया यत्कर्म तदीर्यापथिकं सैव वा क्रिया ईर्यापथिकेत्युच्यते । सा कस्य नवति किंनूता वा कीदृक्कर्मफलावा इत्येतद्दर्शयितुमाह । (इहखलुइत्यादि) इह जगति प्रवचने संयमेवा वर्तमानस्य । खलुशब्दोऽवधारणेऽलंकारेवा । आत्मनोनावआत्मत्वं तदर्थमात्मत्वार्थं संवृतस्य मनोवाक्कायैः परमार्थतएवंनूतस्यैवात्मनावोऽपरस्य त्वसंवृतस्यात्मतत्त्वमेव नास्ति सद्नूतात्मकार्यकारणात् । तदेवमात्मार्थं संवृतस्यानगारस्येर्यापथिकादिनिः पंचनिः समितिनिर्मनोवाक्कायैः समितस्य तथा तिसृनिर्गुप्तस्य । पुनर्गुप्तिग्रहणमेतानिरेव गुप्तिनिर्गुप्तोनवतीत्यस्यार्थस्याविर्नावनायात्यादरख्यापनार्थं वेति । तथा गुप्तेंद्रियस्य नवब्रह्मचर्यगुप्त्युपेतब्रह्मचारिणश्च सततस्तथोपयुक्तं गछतस्तिष्ठतोनिषीदतोमुनेस्त्वक्वर्तनां कुर्वाणस्य तथोपयुक्तमेव वस्त्रं पतद्ग्रहं कंबलंवा पादपुंछनकं वा गृह्णतोनिक्षिपतोवा यावच्चक्षुः पक्ष्मनिपातमप्युपयुक्तं कुर्वतः सतोऽत्यंतमुपयुक्तस्याप्यस्ति विद्यते विविधा मात्रा विमात्रा तदेवंविधा सूक्ष्माक्षिपक्ष्मसंचलनरूपादिकेर्यापथिकानाम क्रिया केवलिनापि क्रियते । तथाहि । सयोगी जीवोन शक्नोति क्षणमप्येकं निश्चलः स्थातुमग्निना ताप्यमानोदकवत्कार्मणशरीरानुगतः सदा परिवर्तयन्नेवास्ते । तथा चोक्तं । केवलीणं नंते अस्सिसमयं सिजेसु आगासयएसेसु इत्यादि । तदेवं केवलिनोपि सूक्ष्मगात्रसंचारानवंतीहच कारणे कार्योपचारात्तया क्रियया यद्बध्यते कर्म तस्य कर्मणो याअवस्थास्ताः क्रियाः । ताएव दर्शयितुमाह । (सापढमसमयेइत्यादि) यासावकापिणः क्रिया तया यद्बध्यते कर्म तत्प्रथमसमयएव बद्धं स्पृष्टंचेति कृत्वा तत्क्रियैव बद्ध

स्पृष्टेत्युक्ता तथा द्वितीयसमये वेदितेत्यनुभूततृतीयसमयेऽतिजीर्णा । एतदुक्तं भवति। कर्मयोगनिमित्तं बध्यते तत्स्थितिश्च कषायायत्ता तदभावाच्च न तस्य सांपरायिकस्येव स्थितिः किंतु योगसद्भावाद्बध्यमानमेव स्पृष्टतां संश्लेषं याति । द्वितीयसमये त्वनुभूय ते तच्च प्रकृतितः सातावेदनीयं स्थितितोद्विसमयस्थितिकमनुभावतः शुभानुभावं अनुत्तरोपपातिकदेवसुखातिशायि देशतोबहुप्रदेशमस्थिरबंधं बहुव्ययंच । तदेवं सेर्यापथिका क्रिया प्रथमसमये बद्धस्पृष्टा द्वितीयसमये उदिता वेदिताऽतिजीर्णा भवति (सेयंकालेत्ति) आगामिनि तृतीयसमये तत्कर्मापेक्षया कर्मतापि च भवति । एवं ताव द्वीतरागस्येर्याप्रत्ययिकं कर्माधीयते संबध्यते । तदेतत्त्रयोदशं क्रियास्थानं व्याख्यातं। ये पुनस्तेभ्योऽन्ये प्राणिनस्तेषां सांपरायिकोबंधस्तेतु यानि प्रागुक्तानीर्यापथवर्ज्यानि द्वादश क्रियास्थानानि तेषु वर्तंते तेषां तद्वर्तिनामसुमतां मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगनिमित्तः सांपरायिकोबंधोभवति । तत्रच प्रमादस्तत्र कषायायोगाश्च नियमाद्भवंति । कषायिणश्च योगायोगिनस्त्वेते भाज्याः । तत्र प्रमादकषायप्रत्ययिकोबंधोऽनेकप्रकारा स्थितिः । तद्रहितस्तु केवलयोगप्रत्ययिकोद्विसमयस्थितिरेवेर्याप्रत्ययिकइति स्थितं॥ २३ ॥ एतानि त्रयोदश क्रियास्थानानि भगवद्वर्धमानस्वामिनैवोक्तान्यपि त्वन्यैरपीत्येतद्दर्शयितुमाह । (सेबेमीत्यादि) सोहं ब्रवीमीति यत्प्रागुक्तं तद्वा ब्रवीमीति। तद्यथा । ये तेऽतिक्रांताऋषभादयस्तीर्थंकृतोयेच वर्तमानाः क्षेत्रांतरे सीमंधरस्वामिप्रभृतयोये चागामिनः पद्मनाभादयोऽर्हंतोभगवंतः सर्वेपि ते पूर्वोक्तान्येतानि त्रयोदश क्रियास्थानान्यभाषंतभाषंते भाषिष्यंतेच । तथा तत्स्वरूपतस्तद्विपाकतश्च प्ररूपितवंतः प्ररूपयंति प्ररूपयिष्यंतिच। तथैतदेव त्रयोदशं क्रियास्थानं सेवितवंतः सेवंते सेविष्यंतेच। तथाहि जंबूद्वीपे सूर्यद्वयं तुल्यप्रकाशं भवति । यथा वा सदृशोपकरणाः प्रदीपास्तुल्यप्रकाशाभवंत्येवं तीर्थंकृतोपि निरावरणत्वात् कालत्रयवर्तिनोपि तुल्योपदेशाभवंति॥ २४

अडुत्तरंचणं पुरिसविजयं विभंगमाइक्खिस्सामि इह खलु णाणापण्णाणं णाणाछंदाणं णाणासीलाणं णाणादिठ्ठीणं णाणारूईणं णाणारंभाणं णाणाझवसाणं संजुत्ताणं णाणाविहपावसुयाझयणं एवं भवइ॥२५॥ तंजहा भोमं उप्पायं सुविणं अंतलिरकं अंगं सरं लरकणं वंजणं इथिलरकणं पुरिसलरकणं हयलरकणं गयलरकणं गोणलरकणं मिंढलरकणं कुक्कडलरकणं तित्तिरलरकणं वट्टगलरकणं लावयलरकणं चक्कलरकणं छत्तलरकणं चम्मलरकणं दंमलरकणं असिलरकणं म

णिलक्खणं कागिणिलक्खणं ॥ २६ ॥ सुनगाकरं डुन्नगाकरं गप्नाकरं मोहणकरं आहव्वाणिं पागसासणिं दव्वहोमं खत्तियविज्जं चंदचरियं सूरचरियं सुक्कचरियं वहस्सइचरियं उक्कापायं दिसादाहं मियचक्कं वायसपरिमंमलं पंसुवुठिं केसवुठिं मंसवुठिं रूहिरवुठिं वेतालिं अद्धवेतालिं उसोवणिं तालुघाडणिं सोवागिं सोवरिं दामिलिं कालिंगिं गोरिं गंधारि उवतिणिं नुप्पयणिं जंन्नणिं थंन्नणिं लेसणिं आमयकरणिं विसल्लकरणिं पक्कमणिं अंतद्धाणिं आयमिणिं एवमाइआउ विज्जाउ अन्नस्स हेउं पउंजंति पाणस्स हेउं पउंजंति वत्थस्स हेउं पउंजंति लेणस्स हेउं पउंजंति सयणस्स हेउं पउंजंति अन्नेसिंवा विरूवरूवाणं कामन्नोगाण हेउं पउंजंति तिरिछं तेविज्जं सेवेंति ते अणारिया विप्पडिवन्ना कालमासे कालं किच्चा अन्नयराइं आसुरियाइं किब्बिसियाइं ठाणाइं उववत्तारो नवंति ततोवि विप्पमुच्चमाणा नुज्जोएलमूयताए तमअंधयाए पच्चायंति ॥ २७ ॥

अर्थ–हवे जे कांइ ए तेरमां क्रियास्थानकने विषे पाप न कह्युं, ते कहेछे. (अडुत्तरंच णं के०) जे कांइ तेरमां क्रियास्थानकने विषे नकेवाणुं ते आगले ग्रंथे कहिए छैए (पुरिसविजयंविनंगेमाइक्खिस्सामि के०) हवे पुरुषविचय अथवा पुरुषविजय एटले केटला एक अल्पसत्ववंत पुरुषनो विनंग एटले ज्ञानक्रियाविशेष कहीशुं (इहखलु के०) आ मनुष्य क्षेत्रने विषे निश्चें थकी (णाणापन्नाणं के०) नाना प्रकारनी जेनी प्रज्ञाछे तथा (णाणाछंदाणं के०) नाना प्रकारें जेनो अनिप्रायछे (णाणासीलाणं के०) नाना प्रकारें जेनो आचारछे (णाणादिठीणं के०) नाना प्रकारें जेनी दृष्टीछे एतावता त्रणशेंने त्रेसठ जेनुं प्रमाणछे. तेकारणे नाना दृष्टिना जाणवा (णाणारूईणं के०) आहार, विहार, शयन, आनरण, यान, वाहन, गीत, अने वाजित्रादिकनेविषे जुदी जुदी जेनी रुचिछे. (णाणारंनाणं के०) तथा नाना प्रकारना जेना आरंन एटले कर्षण, पशुपालन, शिल्पकर्म, इत्यादिक जेने आरंनछे. (णाणाज्झवसाणं के०) नाना प्रकारना शुनाशुन अध्यवसाय तेणेकरी (संजुत्ताणं के०) सहित जे वर्त्तेछे. (णाणाविहपावसुयाज्झयणं के०) तेना ए आगलजे केहेशे ते प्रमाणे, नाना प्रकारें पापश्रुताध्ययन (एवंनवइ के०) एम होय. ॥२५॥ (तंजहा के०) ते कहेछे. (नोमं के०) नूमिनिर्घात एटले नूमिकंपादिक जे ग्रंथ

कह्याछे, तथा (उप्पायं के०) उत्पातिक, कपिहसितादिक. तथा आकाश थकी रुधिरवृष्ट्यादिक (सुविणं के०) स्वप्नते रात्रीने विषे गजवृषनादिक दर्शन, (अंतलिरकं के०) उल्कापात मेघ वृष्ट्यादिक तथा (अंग के०) अंग नेत्र बाहु स्फुरणादिक, (सरं के०) काकशिवादिक स्वर विचारणा, (लरकणं के०) पद्म, यव, शंख, चक्रादिक लक्षण, (वंजणं के०) मस तिलकादिक, (इत्थिलरकणंपुरिसलरकणं के०) स्त्रीलक्षण, तथा पुरुषना लक्षण, ते सामुद्रिकादिक प्रसिद्धछे. (हयलरकणं के०) घोडाना लक्षण. (गयलरकणंके०) हाथीना लक्षण, (गोणलरकणं के०) गौ वृषभना लक्षण, (मिंढलरकणं के०) मिंढाना लक्षण, (कुक्कडलरकणंके०) कुकडाना लक्षण, (तित्तिरलरकणं के०) तित्तिरपक्षीना लक्षण, (वट्टगलरकणं के०) वर्तकना लक्षण, (लावयलरकणं के०) लावकना लक्षण, (चक्कलरकणं के०) चक्रना लक्षण, (छत्तलरकणंके०) छत्रना लक्षण, (चम्मलरकणं के०) चर्मना लक्षण, (दंमलरकणं के०) दंमना लक्षण (असिलरकणं के०) खड्गना लक्षण, (मणिलरकणं के०) मणि चंद्र सूर्यकांतादिकना लक्षण, (कागिणिलरकणं के०) कागिणिना लक्षण, एवीरीते एना प्ररूपक शास्त्र जाणवां. ॥ २६ ॥ हवे मंत्रविद्या कहेछे. (सुभगाकरं के०) जे थकी दुर्भाग्य वंत प्राणी सौभाग्य वंत थाय. (दुप्भगाकरं के०) जेथकी सौभाग्य वंत प्राणी दौर्भाग्यवंत थाय. (गप्भाकरं के०) जे विद्याने बले गर्भाधान ऊपजे तेवी विद्या, (मोहणकरं के०) लोकने व्यामोह ऊपजे तथा वेदनो उदय दीपे, (आहव्वणिं के०) आथर्वणीविद्या एटले तत्काल अनर्थनी करनारी विद्या, (पागसासणिं के०) इंद्रजाल विद्या, (दव्वहोमं के०) मधु घृतादिक द्रव्य, उच्चाटनादिक कार्य निमित्तें होमीए ते द्रव्यहोम जाणवो (खत्तियविज्जं के०) क्षत्रीनी धनुर्विद्यादिक विद्या, (चंदचरियं के०) चंद्रमानु चरित्र चंद्रमानोवार जाणे (सूरचरियंके०) सूर्यनु चरित्र सूर्यनो वार जाणे, (सुक्कचरियं के०) शुक्रनुं चरित्र शुक्रनो वार जाणे, (वहस्सइचरियंके०) बृहस्पतिनुं चरित्र बृहस्पतिनो वार जाणे, एवं नवग्रह चरित्र ते ज्योतिष शास्त्र प्रसिद्ध जाणवुं. तथा (उक्कापायं के०) उल्कापात, (दिसादाहं के०) दिग्दाह (मियचक्कं के०) आरण्यक जीव तेनो ग्राम नगरने विषे प्रवेश करतां दर्शनथाय, अथवा शब्द शुभाशुभ चिंतवियें ते मृगचक्र कहिए. (वायसपरिमंमलं के०) काकादिक पक्षीना शब्दादिकनो विचार करे एवीविद्या (पंसुवुट्ठिं के०) पंसु धूल वृष्टि, (केसवुट्ठिं के०) केश वृष्टि, (मंसवुट्ठिंके०) मांस वृष्टि, (रुहिरवुट्ठिं के०) रुधिरवृष्टि, तेनुं शुभाशुभ फल. जे शास्त्रने विषे चिंतवियें. ते शास्त्रो (वेतालिं के०) वेतालि नामे विद्या केटला एक अक्षर प्रमाणछे ते केटला एक दिवस जपतां अचेतन काष्ठ माहें चेतन उगडे (अद्धवेतालिं के०) ते दंमने उपशमावे,

(उसोवणिंके०) उपस्वापिनी विद्या, (तालुघाडणिंके०) ताला उघाडवानी विद्या; तालो द्घट्टनी (सोवागिं के०) चांमालिणीश्वापकी विद्या, (सोवरिंके०) शांबरी विद्या. (दा मिलिंके०) डाविडीविद्या (कालिंगिंके०) कालिंगी विद्या, (गोरिंके०) गोरी विद्या (गंधारिं के०) गांधारी विद्या, (उवतिणिं के०) अवपतनी नीचे पाडवानी विद्या, (उप्पयणिं के०) उत्पतनी एटले उंचे जवानी विद्या. (जंनणिंके०) जृंनणी विद्या, (थंनणिंके०) स्तंननी विद्या (लेसणिं के०) श्लेषनी विद्या (आमयकरणिं के०) आमय करणी विद्या (विसल्लकरणिं के०) विशल्य करणी विद्या (पक्कमणिं के०) प्रक्रामणी फेरे चडा वानी विद्या (अंतधाणिं के०) अदृश्य करणि विद्या (आयमणिं के०) आतमणी वि द्या, (एवमाइआउविज्जाउ के०) इत्यादिक विद्याउ आदि शब्दथकी प्रज्ञप्त्यादिक वि द्याउ लेवी ते विद्याउने जे शास्त्रो थकी जाणीयें. तेवां शास्त्रो नणीने पांखमी, परद र्शनी अथवा गृहस्थ, अथवा स्वपक्षीक इव्यलिंगी साधु ते ए पूर्वोक्त विद्याउने (अन्नस्सहेउं के०) अन्नने अर्थे (पउंजंति के०) प्रयुंजे (पाणस्सहेउंपउंजंति के०) पाणीने अर्थे प्रयुंजे (वत्थस्सहेउंपउंजंति के०) वस्त्रने अर्थे प्रयुंजे (लेण स्सहेउंपउंजंति के०) उपाश्रयने अर्थे प्रयुंजे (सयणस्सहेउंपउंजंति के०) शयनने अर्थे प्रयुंजे (अन्नेसिंवाविरूवरूवाणंकामनोगाणहेउंपउंजंति के०) अथवा बीजा नाना प्रकारना कामनोगने अर्थे प्रयुंजे ते पुरुष (तिरिछं तेविज्जंसेवेंति के०) तिरछि एटले रूडा अनुष्ठाननी हणनारी एवी ते विद्याने सेवे (तेअणारियाविप्पडिवन्ना के०) ते अनार्य जाणवा. यद्यपि क्षेत्रें करी अने नाषायें करी तो आर्यछे तथापि, मिथ्यात्व ना आसेवन थकी, अनार्य कर्मना करनार, अनार्य, अनाचारी, केवाय ते (काल मासे कालंकिच्चा के०) आयुष्यने क्षये कालने अवसरे काल करीने अज्ञान तपने प्र माणे यद्यपि देवलोकें जाय तथापि ते,(अन्नयराइं आसुरियाइं किब्बिसियाइं गणाइं उ ववत्तारो नवंति के०) तेउनुं अनेरा आसुरी किल्विषिकादिक स्थानकोने विषे उपजवुं थाय. (ततोविविप्पमुच्चमाणाके०) त्यां थकी चवीने (नुज्जोके०)वली मनुष्यमां उपजे तो केवा थाय तोके (एल के०) बेरा थाय. (मूयताए के०) मुंगा थाय, (तम अंधयाए के०) आंधला एवा ते जीव थाय. त्यार पछी (पच्चायंति के०) नरक तिर्य चादिक गतिने विषे परिन्रमण करे; अधर्मपक्ष आश्री एटले व्रतधारीने पापनो विपाक कह्यो. हवे गृहस्थ उद्देशिने अधर्म पक्ष कहेछे. ॥ २७ ॥

॥ दीपिका–सांप्रतं त्रयोदशसु क्रियास्थानेषु यन्नोक्तं पापस्थानं तदाह । इदमुत्तरं अस्मात्क्रियास्थानप्रतिपादनादुत्तरं यदत्र नोक्तं तदुत्तरग्रंथेनोच्यते । चसमुच्चये । णं

वाक्यालंकारे। पुरुषा विचीयंते मृग्यंते येन सपुरुषविचयः पुरुषविजयोवा अल्पसत्वानां केषांचित्पुरुषाणां ज्ञानलवेनार्थानुबंधिना विजयस्तस्य विभंगं ज्ञानविशेषं चाख्यास्यामि। यादृशानां चासौ विभंगः स्यात्तानाह। (इहखलुइत्यादि) इह जगति नानाप्रज्ञाविचित्रमतयः पुरुषानानाछंदाविचित्राभिप्रायानानाशीलानानारूपादृष्टिरंतः करणप्रवृत्तिर्येषां ते तथा तेषांच त्रीणि शतानि त्रिषष्ट्यधिकानीति प्रमाणं ज्ञेयं। तथा नानारुचीनां नानारंभाणां नानाध्यवसायसंयुतानां इह लोकप्रतिबद्धानां परलोकपराङ्मुखानां तेषां नानाविधं पापश्रुताध्ययनं भवति॥२५॥तद्यथा। भूमौ भवं भौमं निर्घातभूकंपादिकं उत्पातं कपिहसितादि स्वप्नं गजादि, आंतरिक्षं मेघादि, आंगं बाहुनेत्रस्फुरणादि, स्वरलक्षणं काकस्वरादिलक्षणं, मत्स्ययवश्रीवत्सादि व्यंजनं तिलमाषादि स्त्रीलक्षणं रक्तपाणिपादादिकं। एवं पुरुषहयगजगोमिंढकुक्कुटतित्तिरवर्तकलावकचक्रछत्रचर्मदंडासिमणिकाकिणीरत्नलक्षणानि॥ २६ ॥ सुभगमाकरोति सुभगाकाराविद्या, दुर्भगमाकरोति दुर्भगाकारा, गर्भकरा मोहनकरा आथर्वणी अथर्वणाख्या, सद्योऽनर्थकारिणी विद्या पाकशासनी इंद्रजालविद्या कणवीरपुष्पादिभिर्द्रव्यैरुच्चाटनादिकार्यैर्होमोयस्यां सा द्रव्यहोमा, क्षत्रविद्या धनुर्वेदादिका, तामधीत्य प्रयुंजते। ज्योतिषविद्यामाह। (चंदचरियमित्यादि) चंद्रचरित्रं, नक्षत्रयोगराहुग्रहणादिकं सूर्यचरित्रं, तथैव शुक्रबृहस्पतिचरितं उदयास्तवर्षकालादि। उल्कापातदिग्दाहमंडलविचारेण शुभाशुभकारिणोमृगाहरिणशृगालादयआरण्यास्तेषां दर्शनं ग्रामप्रवेशादौ शुभाशुभं यत्र चिंत्यते सग्रंथोपि मृगचक्रं वायसादीनां पक्षिणां स्थानस्वरादिकं शुभाशुभं चिंत्यते तद्वायसपरिमंडलं पांसुकेशमांसरुधिरवृष्टयोऽनिष्टफलायत्र शास्त्रे चिंत्यंते तत्तन्नाम. तथा वैतालीविद्या सा च किल कतिभिर्जपैर्दंडमुत्थापयति। अर्धवैताली तं दंडमुपशमयति। उपस्वापिनी, तालोद्घाटनी, श्वपाकी, शांबरी, द्राविडी, कालिंगी, गौरी, गांधारी, अवपतनी, उत्पतनी, जृंभणी, स्तंभनी, श्लेषणी, आमयकरणी. विशल्यकरणी, प्रक्रामणी, अंतर्धानकरणी इत्यादिका विद्या अधीयते। आदिशब्दात्प्रज्ञप्त्यादयोग्राह्याः। एताश्च विद्याः पाखंडिकागृहस्थावा स्वयूथ्याद्रव्यलिंगधारिणोवा अन्नपानवस्त्रलयनशयनार्थं प्रयुंजंति अन्येषां वा विरूपरूपाणां विचित्राणां कामभोगानां कृते प्रयुंजंति। सामान्येन विद्यासेवनमनिष्टमित्याह। (तिरिमिति) तिरश्चानामननुकूलां सदनुष्ठानप्रतिघातकारिणीं तेऽनार्याविप्रतिपन्नां विद्यां सेवंते तेच यद्यपि क्षेत्रार्याभाषार्यास्तथाप्यनार्यकर्मकारित्वादनार्याएव ज्ञेयाः। तेच कालमासे मरणावसरे कालं कृत्वा यदि कथंचिद्देवलोकगामिनोभवंति ततोन्यतरेषु आसुरीयकेषु किल्बिषिकादिस्थानेषु उत्पत्स्यंते ततोपि विप्रमुक्ताश्च्युतायदि मनुष्येषूत्पद्यंते तदा एडमूकत्वेनाऽव्यक्तभाषित्वेन तमस्त्वेनांधतया मूकतयावा प्रत्यायांति ततोनरकतिर्यगादिषूत्पद्यंते ॥ २७ ॥

॥ टीका—सांप्रतं त्रयोदशसु क्रियास्थानेषु यन्नाभिहितं पापस्थानं तद्भिधित्सुराह । (अडुत्तरमित्यादि) अस्मात्त्रयोदशक्रियास्थानप्रतिपादनाडुत्तरं यत्र न प्रतिपादितं त दधुनोत्तरभूतेनानेन सूत्रसंदर्भेण प्रतिपाद्यते । यथाऽऽचारे प्रथमश्रुतस्कंधे यन्नाभिहितं तडुत्तरभूताभिश्चूलिकाभिः प्रतिपाद्यते । तथा चिकित्साशास्त्रे मूलसंहितायां श्लोक स्थाननिदानशारीरचिकित्सितकल्पसंज्ञकायां कार्यं यन्नाभिहितं तडुत्तरेऽभिधीयते एवमन्य त्रापि बंदःस्वित्यादावुत्तरसद्भावोऽवगंतव्यः । तदिहापि पूर्वेण यन्नाभिहितं तदनेनोत्तरग्रं थेन प्रतिपाद्यतइति । च समुच्चये । णमितिवाक्यालंकारे । पुरुषाविचीयंते मृग्यंते वि ज्ञानद्वारेणान्वेष्यंते येन सपुरुषविचयः पुरुषविजयोवा केषांचिदल्पसत्वानां तेन ज्ञानब लेनावधिप्रयुक्तेनानर्थानुबंधेनाविजयादिति । सच विभंगवदवधिविपर्ययवद्भिभंगोज्ञानवि शेषः पुरुषविचयश्चासौ विभंगश्च पुरुषविचयविभंगस्तमेवंभूतं ज्ञानविशेषमाख्यास्यामि प्र तिपादयिष्यामि । यादृशानां चासौ भवति तांल्लेशतः प्रतिपादयितुमाह । (इह खलुइ त्यादि) इह जगति मनुष्यक्षेत्रे प्रवचने वा नानाप्रकारा विचित्रक्षयोपशमात् प्रज्ञायतेऽन येति प्रज्ञा सा विचित्रा येषां ते नानाप्रज्ञास्तया वाऽल्पाल्पतराल्पतमया चिंत्यमानाः पुरुषाः षट्स्थानपतिताभवंति । यथा बंदोऽभिप्रायः सनानायेषां ते तथा तेषां नानाशी लानां तथा नानारूपा दृष्टिरंतःकरणप्रवृत्तिर्येषां ते तथा तेषामिति । तेषांच त्रीणि श तानि षष्ठ्यधिकानि प्रमाणमवगंतव्यं । तथा नाना रुचिर्येषां ते नानारुचयः । तथा हि । आहारविहारशयनासनाछादनाभरणयानवाहनगीतवादित्रादिषु मध्ये ऽन्यस्यान्यारु चिर्भवति तेषां नानारुचीनामिति । तथा नानारंभाणां कृषिपाशुपाल्यविपणिशिल्पिक र्मसेवादिष्वन्यतरमारंभेणेति । तथा नानाध्यवसायसंयुतानां शुभाध्यवसायभाजां इह लोकमात्रप्रतिबद्धानां परलोकनिष्पिपासानां विषयतृषितानामिदं नानाविधं पापश्रुताध्य यनं भवति ॥२५॥ तद्यथा भूमौ भवं निर्घातभूकंपादिकं, तथोत्पातं कपिहसितादिकं, त था स्वप्नं गजवृषभसिंहादिकं, तथांऽतरिक्षं मेघादिकं, तथांगे भवमांगं अक्षिबाहुस्फुर णादिकं, तथा स्वरलक्षणं काकस्वरगंभीरस्वरादिकं तथा लक्षणं यवमत्स्यपद्मशंखच क्रश्रीवत्सादिकं व्यंजनं तिलकमाषादिकं, तथा स्त्रीलक्षणं रक्तकरचरणादिकं, एवंपुरुषा दीनां काकिणीरत्नपर्यंतानां लक्षणप्रतिपादकशास्त्रपरिज्ञानमवगंतव्यं ॥२६॥ तथा मंत्रवि शेषरूपाविद्याः तद्यथा । डुर्भगमपि सुभगमाकरोमि सुभगकारां, तथा सुभगमपि डुर्भगमा करोमि डुर्भगकारां, तथा गर्भकरां गर्भाधानविधायिनीं तथा मोहोवेदादयोवा तत्करण शीलामाथर्वणाभिधानां सद्योऽनर्थकारिणीं विद्यामभीधीयते तथा पाकशासनीमिंद्रजाल संज्ञिकां तथा नानाविधैर्द्रव्यैः कणवीरपुष्पादिभिर्मधुघृतादिभिर्वोच्चटनादिकैः कार्यैर्हो मोहवनं यस्यां सा द्रव्यहवना तां तथा क्षत्रियाणां धनुर्वेदादिकापरा वा या स्वगोत्रक्रमे

णायाता तामधीत्य प्रयुंजते । तथा नानाप्रकारं ज्योतिषमधीत्य व्यापारयतीति दर्शयति (चंदचरियमित्यादि) चंद्रस्य ग्रहपतेश्चरितं चंद्रचरितमिति । तच्च वर्णसंस्थानप्रमाण प्रभानक्षत्रयोगराहुग्रहादिकं । सूर्यचरितंत्विदं । सूर्यस्यमंडलपरिमाणराशिपरिभोगोद्यो तावकाशराहूपरागादिकं । तथा शुक्रचारोविथीत्रयचारादिकस्तथा बृहस्पतिः शुनाशुन फलप्रदः संवत्सरराशिपरिनागादिकश्च तथोल्कापातादिग्दाहाश्च वायव्यादिषु मंडलेषु नवंतः शस्त्राग्निक्षुत्पीडाविधायिनोनवंति । तथा मृगाहरिणशृगालादयश्चारण्यास्तेषां द र्शनरुतं ग्रामनगरप्रवेशादौ सति शुनाशुनं यत्र चिंत्यते तन्मृगचक्रं । तथा वायसादीनां प क्षिणां यत्र स्थानादिकं स्वराश्रयेणाऽशुनफलं चिंत्यते तद्वायसपरिमंडलं । तथा पांसु केशमांसरुधिरादिवृष्टयोऽनिष्टफलदायत्र शास्त्रे चिंत्यंते तत्तदनिधानमेव नवति । त था विद्यानानाप्रकाराः क्षुद्रकर्मकारिण्यस्ताश्चेमाः । वैतालीनामविद्या । नियताक्षरप्रतिब द्धा । साच किल कतिनिर्जपैर्दंडमुत्थापयति तथार्धवैताली तमेवोपशमयति । तथोपस्वा पिनी तालोद्घाटनी श्वापाकी शांबरी तथा परिद्राविडी कालिंगी गौरी गांधार्यवपतन्युत्पत नीजृंनणी स्तंननी श्लेषणी आमयकरणी विशल्यकरणी प्रक्रामण्यंतर्धानकरणीत्येवमादि काविद्याअधीयंते । आसां चार्थः संज्ञातोऽवसेयइति न वरं । स्वापिनीद्राविडीकालिंग्य स्तद्देशोद्भवास्तद्भाषानिबद्धावा चित्रफलाः । अवपतनी तुजपत्स्वतएवपतत्यन्यं वापात यत्येवमुत्पतन्यपि द्रष्टव्या । तदेवमेवमादिकाविद्या । आदिग्रहणात्प्रज्ञप्त्यादयो गृह्यंते। एताश्च विद्याः पाषंडिकाअविदितपरमार्थागृहस्थावास्वयूथ्यावाद्रव्यलिंगधारिणोन्नपा नाद्यर्थं प्रयुंजंति अन्येषां वा विरूपाणामुच्चावचानां शब्दादीनां कामनोगानां कृते प्रयुं जंति । सामान्येन विद्यासेवनमनिष्टकारीति दर्शयितुमाह । (तिरिच्छमित्यादि) तिरश्ची नामननुकूलां सदनुष्ठानप्रतिपादिकां घातिकां ते अनार्यविप्रतिपन्ना विद्यां सेवंते । तेच य द्यपि क्षेत्रार्थनाषार्या स्तथापि मिथ्यात्वहतबुद्धयोऽनार्यकर्मकारित्वादनार्याएव द्रष्टव्या स्तेच स्वायुषःक्षये कालमासे कालंकृत्वा यदि कथंचिद्देवलोकगामिनोनवंति ततोऽन्यतरे षु आसुरीयकेषु किल्बिषिकादिषु स्थानेषूत्पत्स्यंते ततोपि विप्रमुक्ताश्च्युतायदिवा मनुष्ये षूत्पत्स्यंते तत्रच तत्कर्मशेषतयैडमूकेनाव्यक्तनाषिणस्तमस्त्वेनांधतया मूकतया वा प्र त्यागच्छंति ततोपि नानाप्रकारेषु यातनास्थानेषु नरकतिर्यगादिषूत्पद्यंते ॥ २१ ॥

से एगईउ आयहेउंवा णायहेउंवा सयणहेउंवा आगारहेउंवा परि वारहेउंवा नायगंवा सहवासियंवा णिस्साए अदुवा अणुगामिए अदुवा उवचरए अदुवा पडिपहिए अदुवा संधिछेदए अदुवा गंठिछे दए अदुवा उरन्निए अदुवा सोवरिए अदुवा वागुरिए अदुवा सोउ

णिए अडुवा मछिए अडुवा गोघायए अडुवा गोवालए अडुवा सोव णिए अडुवा सोवणियंतिए ॥ २८ ॥

अर्थ—हवे गृहस्थ उद्देशीने अधर्मे पक्ष कहेछे. (सेएगईउ के०) ते गृहस्थ कोइ एक महा निर्दय परलोक थकी न बिहितो थको, संसारना सुख वांछतो छतो जे कर्कश कर्म करे ते कहेछे. (आयहेउंवा के०) पोताने निमित्तें अथवा (णायहेउंवा के०) ज्ञातिने निमित्तें (सयणहेउंवा के०) स्वजनने निमित्तें (आगारहेउंवा के०) घरने निमित्तें (परिवारहेउंवा के०) परिवारने निमित्तें (नायगंवा के०) परिचित एटले जाणेला पुरुषने निमित्तें (सहवासियंवाणिस्साए के०) सहवासि एटले पाडोशीनी निश्राये, एटलां अकार्य करे, ते कहेछे. (अडुवा के०) अथवा (अणुगामिए के०) अकार्य करवाने अर्थें बीजो जतो होय तेनी पछवाडे जाय, (अडुवाउवचरए के०) अथवा अकार्य करवाने अर्थे तेने अनेक उपचार करे विश्वासे, (अडुवापडिपहिएके०) अथवा प्रतिपथिक एटले मार्गें जता माणासनी सन्मुख आवे (अडुवासंधिछेदएके०) संधिछेदक, एटले चोरी करे, (अडुवागंठिछेदए के०) अथवा ग्रंथिछेद करे, एटले गांठी छोडो थाय, (अडुवाउरब्भिए के०) अथवा छाली एटले गाडरां चरावे (अडुवासोवरिए के०) अथवा सूवर डुक्कर चरावे (अडुवावागुरिए के०) अथवा वाघरी थाय, एटले मृग मारवानां कर्म करे (अडुवासोउणिए के०) अथवा शकुनी एटले पक्षीउने पाश नाखे, (अडुवामछिए के०) अथवा माछी थाय, (अडुवागोघायए के०) अथवा गोघातक कसाइ थाय, गायने मारे, अथवा गोधाने नाथे (अडुवागोवालए के०) गोवालिया पणु करे, इत्यादिक नीचकर्म करे, (अडुवासोवणिए के०) कुतरानो राखनार थाय, (अडुवा सोवणियंतिए के०) कुतराये करी शिकार खेले. इत्यादिक बधा मलीने चउद प्रकारें करी अनेक जीवोनो विनाशकरे. ॥ २८ ॥

॥ दीपिका—अथ गृहस्थानुदिश्याधर्मसेवामाह । (सेएगईउआयहेउंवा) सएकः कदाचिन्निस्त्रिंशआत्मनिमित्तं ज्ञातिहेतुंवा अगारहेतुं गृहसंस्करणार्थं परिवारहेतुंवा ज्ञातकः परिचितस्तं समुद्दिश्य सहवासिकं प्रातिवेश्मिकं निश्रीकृत्य एतानि कुर्यात् । तान्येवाह । (अडुवेत्ति) अथवेति पक्षांतरापेक्षया । गछंतमनुगछतीत्यनुगामुकः सचाकार्यकरणमनास्तं गछंतमनुगछति । अथवाऽन्यस्य विरूपकरणावसरापेक्षी उपचारकः स्यात् । अथवा उरभ्रेण चरत्यौरभ्रिकः । अथवा सौकरिकः । अथवा शकुनिभिश्चरति शाकुनिकः अथवा वागुरिकः अथवा मात्स्यिकःअथवा गोघातकः अथवा गोपालत्वं श्रयति

अथवा श्वभिश्चरति शौवनिकः शुनां पालकइत्यर्थः। अथवा (सोवणियंतएत्ति) श्वभिः पापर्द्धिकुर्वन्मृगादीनामंतं करोतीत्यर्थः ॥ २७ ॥

॥ टीका–सांप्रतं गृहस्थानुद्दिश्याधर्मपक्षसेवनमुच्यते । (सेएगइउइत्यादि) सएकः क दाचिन्निस्त्रिंशः सांप्रत्यापेक्ष्यपगतपरलोकाध्यवसायः कर्मपरतया भोगलिप्सुः संसारस्वभा वानुवर्त्यात्मनिमित्तं चेत्येतान्यनुगामुकान्यकर्तव्य हेतुभूतानि चतुर्दशासदनुष्ठानानि विधत्ते तद्यथा ज्ञातयः स्वजनास्तन्निमित्तं तथाऽगारनिमित्तं गृहसंस्कारणार्थं सामान्येनवा कुटुं वार्थं परिवारनिमित्तंवा दासीदासकर्मकरादिपरिकरकृते तथा ज्ञातएवज्ञातकः परिचित स्तं समुद्दिश्य तथा सहवासिकंवा प्रातिवेश्मिकंवा निश्रीकृत्यैतानि वक्ष्यमाणानि कुर्यादि ति संबंधः। तानिच दर्शयितुमाह। (अडुवेत्यादि) अथवेत्येवं वक्ष्यमाणावेक्षया पक्षां तरोपलक्षणार्थः । गच्छंतमनुगच्छतीत्यनुगामुकः सचाऽकायाध्यवसायेन विवक्षितस्थला द्यपेक्षया विरूपकर्तव्यचिकीर्षुस्तं गच्छंतमनुगच्छति । अथवा तस्यापकर्तव्यस्यापकाराव सरापेक्ष्युपचारकोभवत्यथवा तस्य प्रातिपथिकोभवति प्रतिमुखं संमुखीनमागच्छत्यथवाऽऽ त्मस्वजनार्थं संधिच्छेदकोभवति चौर्यं प्रतिपद्यते अथवौरभ्रैर्मेषैश्चरत्यौरभ्रिकोथवा सौ करिकोभवत्यथवा शकुनिभिः पक्षिभिश्चरतीति शकुनिकोऽथवा वागुरया मृगादिबंधनो ज्ज्वा चरति वागुरिकोथवा मत्स्यैश्चरति मात्स्यकोथवा गोपालभावं प्रतिपद्यतेऽथवा गो घातकः स्यादथवा श्वभिश्चरति शौवनिकः शुनां परिपाकोभवतीत्यर्थोऽथवा (सोवणियं ति) श्वभिः पापर्द्धि कुर्वन्मृगादीनामंतं करोतीत्यर्थः ॥ २७ ॥

से एगईउ आणुगामियभावं पडिसंधाय तमेव आणुगामियाणु गामियं हंता छेत्ता भेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता आहारं आहारेंति इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवरकाइत्ता भवइ ॥२९॥ से एगईउ उवचरयं भावं प डिसंधाय तमेव उवचरियं हंता छेत्ता भेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता आ हारं आहारेंति इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवरकाइत्ता भवइ ॥३०

अर्थ–हवे ए चौद स्थानकने प्रत्येके प्रथम थकी विवर्णकरीने कहेछे. (सेएगईउ आणुगामियभावंपडिसंधाय के०) ते कोइ एक पुरुष आत्माने अर्थें कोइ एक ग्रामांत रे जनारा पुरुषनी पासें द्रव्यछे एवुं जाणीने (तमेवआणुगामियाणुगामियं के०) तेमज तेनी पठवाडे जाय, पछी तेने विश्वास उपजावीने (हंता के०) तेने हणे, छेदे, भेदे, लुं टे, विशेषे लुंटे, (उद्दवइत्ता के०) उपद्रव करे, जीवितव्य थकी विनाश करे, पछी

तेनुं धनलइने ते धनेकरी अनेक प्रकारें (आहारंआहारेंति के०) अहार आहारे. (इतिसेमहयापावेहिंकम्मेहिंअत्ताणंउवरकाइत्ताजवइ के०) एवी रीतें ते पुरुष महोटा क्रूर पाप कर्मानुष्ठाने, पोताना आत्माने डुर्गतिमांहे पाडे. नरक तिर्यंचगतिने नामे विख्यात थाय ॥ २ए ॥ ते कोइएक पुरुष धनवंतनी वंचना निमित्तें (उवचरयंजावंपडिसंधाय के०) उपचारक जाव आदरीने तेमज नाना प्रकारना उपाय करी विश्वास उपजावी तेने हणी, बेदी, जेदी, लुंटी, विशेषे लुंटी, उपद्रव करी, जीवितव्यथकी विनाशकरीने तेनु धनलेइने, तेधने करी अनेक प्रकारना आहार आहारे. एरीते ते पुरुष महोटा क्रूर पापानुष्ठाने करीने पोताना आत्माने डुर्गतिमांहे पाडे चतुर्गतिक संसारमांहे परिज्रमणकरे नरकादि गतिने विषे विख्यात थाय ॥ ३० ॥

॥ दीपिका–एवमेतेषां चतुर्दशकर्तव्यानामुद्देशं कृत्वा तानि प्रत्येकं विवृणोति । तत्रैकः कश्चिदात्माद्यर्थं ग्रामांतरं गबन् पुरुषस्य समीपे किंचिद्द्रव्यं ज्ञात्वा तज्जिघृक्षुस्तस्यानुगामुकजावं प्रतिसंधाय सहगमनेनानुकूल्यं प्रतिपद्य वंचनावसरं समीहमानोगबंतमनुगबति । अवसरं लब्ध्वा तस्य हंता, दंडादिजिश्बेत्ता, खड्गादिना जेत्ता, वज्रमुष्ट्यादिना लुंपयिता, केशाकर्षणादिजिर्विलुंपयिता, कशाप्रहारादिजिः अपड्डावयिता, जीवितविनाशकः स्यात् इत्यादि कृत्वाऽहारमाहारयति इत्येवमसौ महद्भिः पापैः कर्मजिरात्मानमुपख्यापयिता जवति । अयं महापापकारीत्येवं लोके ख्यापयति ॥२ए॥ तदेवमेकः कश्चिद्धनवतः कस्यचिडुपचरकजावमाश्रित्य तं विश्वासे पातयित्वा धनादिकृते तस्य हंता बेत्ता इत्यादि । एवमसौ महद्भिः पापैरुपख्यापयिता जवति ॥ ३० ॥

॥ टीका–तदेवमेतानि चतुर्दशाप्युद्दिश्य प्रत्येकमादितःप्रजृति विवृणोति । (सेएगइउइत्यादि) तत्रैकः कश्चिदात्मार्थं अपरस्य गंतुर्ग्रामांतरं किंचिद्द्रव्यजातमवगम्य तदादित्सुस्तस्यैवानुगामुकजावं प्रतिसंधाय सहगंतृजावेनानुकूल्यं प्रतिपद्य विवक्षितवंचनावसरकालाद्यपेक्षी तमेव गबंतमनुव्रजति तमेव चाच्युबानविनयादिजिरत्यंतोपचारैरुपचर्यानुव्रज्य च विवक्षितमवसरं लब्ध्वा, तस्यासौ हंता दंडादिजिस्तथा बेत्ता खड्गादिना हस्तपादादेस्तथा जेत्ता वज्रमुष्ट्यादिना तथा लुंपयिता केशाकर्षणादिकदर्थनतस्तथा विलुंपयिता कशाप्रहारादिजिरत्यंतडुःखोत्पादनेन तथा डावयिता जीविताद्व्यपरोपणतोजवतीत्येवमादिकं कृत्वाऽहारमाहारयत्यसौ । एतडुक्तं जवति । गलकर्तकः कश्चिदन्यस्य धनवतोऽनुगामुकजावं प्रतिपद्य तं बहुविधैरुपायैर्विश्रंजे पातयित्वा जोगार्थी मोहांधः सांप्रतेक्षितया तस्य । रिक्थवतोप्रकृत्याहारादिकां जोगक्रियां विधत्ते । इत्येवमसौ महद्भिः क्रूरैः क

र्मभिरनुष्ठानैर्महापातकभूतैर्वा तीव्रानुभावैर्दीर्घस्थितिकैरात्मानमुपाख्यापयिता भवति त थाह्ययमसौ महापापकारीत्येवमात्मानं लोके ख्यापयत्यष्टप्रकारैः कर्मभिरात्मानं तथा बंधयति यथा लोके तद्विपाकापादितेनावस्थाविशेषेण सता नारकतिर्यङ्नरामररूपत या ख्यापयतीति ॥ २ए॥ तदेवमेकः कश्चिदकर्तव्याभिसंधिना परस्य स्वापतेयवतस्तद्वंचना र्थमुपचरकभावं प्रतिज्ञाय पश्चात्तं नानाविधैर्विनयोपायैरुपचरति उपचर्य च विश्रंभे पा तयित्वा तद्द्रव्यार्थी तस्य हंता छेत्ता यावदपद्रावयिता भवतीत्येवमसावात्मानं पापैः क र्मभिः ख्यापयतीति ॥ ३० ॥

से एगइए पाडिपहियभावं पडिसंधाय तमेव पाडिपहेठिच्चा हंता छेत्ता भेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता आहारं आहारेति इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ ॥ ३१ ॥ से एगइए संधिछे दगभावं पडिसंधाय तमेव संधिं छेत्ता भेत्ता जाव इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ ॥ ३२ ॥

अर्थ–ते कोइएक पुरुष (पाडिपहियभावंपडिसंधाय के०) धनवंत पुरुष जाणी, मार्ग मां सन्मुख आवे, पढी (तमेवपडिपहेठिच्चा के०) तेने तेमज विश्वास उपजावी सन्मुख स्थित रहीने. हणी, छेदी, भेदी, लुंटीने, विशेषें लुंटीने, उपद्रव करे, जीवितव्य थकी विनाश करीने तेनुं धनलेइने अनेक प्रकारना आहार आहारे ते पुरुष महोटा क्रूर पापक र्मना अनुष्ठाने करी पोताना आत्माने डुर्गतिमां पाडे नरकादिक गतिने विषे विख्यात था य ॥३१॥ कोइएक पुरुष धनवंत पुरुष जाणीने संधिछेदक एटले खातर पाडवानोभाव आदरीने, आजीविकाने अर्थे पारकुं धनलीए, छेदे, भेदे इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं॥३२॥

॥ दीपिका–अथैकः कश्चित्प्रतिपथेनाभिमुखेन चरतीति प्रातिपथिकस्तद्भावं प्रतिप द्य तस्यार्थवतोविश्रंभतोर्हंतेत्यादि पूर्ववत् ॥ ३१ ॥ एकः कश्चित्संधिछेदकभावं खात्र खननत्वं प्रतिपद्य ततोसौ संधिं छिंदन् खात्रं खनन् प्राणिनां छेत्तास्यादित्यादि ॥ ३२॥

॥ टीका–अथैकः कश्चित्प्रतिपथेनाभिमुखेन चरति प्रातिपथिकस्तद्भावं प्रतिपद्यापरस्या र्थवतस्तदेव प्रतिपंथिकत्वं कुर्वन् प्रतिपथे स्थित्वा तस्यार्थवतोविश्रंभतश्छेत्ता यावदप द्रावयिता भवतीत्येवमसावात्मानं पापैः कर्मभिः ख्यापयतीति ॥३१॥ अथैकः कश्चिद्विरू पकर्मणा जीवितार्थी संधिछेदकभावं खात्रखननत्वं प्रतिपद्यानेनोपायेनात्मानमहं कर्त यिष्यामीत्येवं प्रतिज्ञां कृत्वा तमेव प्रतिपद्यते ततोसौ संधिं छिंदन् खात्रं खनन् प्राणिनां

छेत्ता भेत्ता विलुंपयिता भवतीत्येतच्च कत्वाऽहारमाहरयतीत्येतच्चोपलक्षणमन्यांश्च काम भोगान् स्वतो भुंक्तेऽन्यदपि ज्ञातिगृहादिकं पालयतीत्येवमसौ महद्भिः पापैः कर्मभिरा त्मानमुपख्यापयति ॥ ३२ ॥

से एगइउ गंठिछेदभावं पडिसंधाय तमेवगंठिं छेत्ता भेत्ता जाव इति से मह या पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवरकाइत्ता भवइ ॥ ३३ ॥ से एगइउ उर ब्भियभावं पडिसंधाय उरब्भंवा अन्नतरं तसं पाणहंता जाव उवरकाइत्ता भवइ एसो अभिलावो सवछ ॥ ३४ ॥

अर्थ—कोइएक पुरुष गंठी छोडानो भाव आदरीने, घुर्घुरादिक अनेक उपायकरी लोकने हणे, छेदे, भेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥३३॥ कोइएक पुरुष औरभ्रिकभाव उरभ्र एटले उरणा बकरां तेना मांसादिकें करी आजीविका करे; ते उरभ्रिक उरणा तथा अ न्यत्रस प्राणीने हणे, छेदे, भेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ ३४ ॥

॥ दीपिका—अथैकः कश्चिद्ग्रंथिछेदकभावं प्रतिपद्य घुर्घुरादिना ग्रंथिछेत्तास्यादित्यादि ॥३३॥ अथैकः कश्चिदधर्मवृत्तिः उरभ्राउरणकास्तैश्चरति औरभ्रिकः। सच तद्धूर्णया तन्मां सादिना वात्मानं वर्तयति सतद्भावं प्रतिपद्य उरभ्रंवाऽन्यंवा त्रसं प्राणिनं स्वपुष्टये हं ति तस्य वा हंता छेत्ता इत्यादि पूर्ववत् ॥ ३४ ॥

॥ टीका—अथैकः कश्चिदसदनुष्ठायी घुर्घुरादिना ग्रंथिछेदकभावं प्रतिपद्य तमेवानुया ति । शेषं पूर्ववत् ॥ ३३ ॥ अथैकः कश्चिदधर्मकमवृत्तिरुरभ्राउरणकास्तैश्चरति यः स औरभ्रिकः सच तद्धूर्णया तन्मांसादिना वात्मानं वर्तयति तदेवमसौ तद्भावं प्रतिपद्योरभ्रं वाऽन्यंवा त्रसं प्राणिनं स्वमांसपुष्ट्यर्थं व्यापादयति तस्य सवा हंता छेत्ता भेत्ता भवतीति शेषंपूर्ववत् ॥ ३४ ॥

से एगईउ सोवरिय भावं पडिसंधाय महिसंवा अन्नतरंवा तसं पाणं जाव उवरकाइत्ता भवइ ॥ ३५ ॥ से एगईउ वागुरियभावं पडिसंधाय मियंवा अन्नतरंवा तसं पाणं हंता जाव उवरकाइत्ता भवइ ॥ ३६ ॥

अर्थ—कोइएक पुरुष सौकरिक एटले खाटकीनो भाव अंगीकार करीने खाटकी थइने अनेक महिषादिक तथा बीजा त्रस जीवोने हणे, छेदे, भेदे, यावत् संसार परिभ्रमण करे इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. ॥३५॥ ते कोइएक पुरुष, पापात्मा वाघरी पणु आदरीने मृ गादिक तथा बीजा त्रस जीवोने हणे छेदे, भेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. ॥ ३६ ॥

॥ दीपिका—अथैकः कश्चित्सौकरिकः श्वपचश्चांडालः खाटिकइत्यर्थः । तद्भावमाश्रित्य महिषं वान्यं त्रसं प्राणिनं हंतीति तस्य हंता छेत्ताइत्यादि ॥३५॥ अथैकः कश्चिद्वागुरिकत्वमाश्रित्य मृगं वाऽन्यं प्राणिनं हंति तस्यच हंता नवति शेषं पूर्ववत् ॥ ३६ ॥

॥ टीका—अत्रांतरे सौकरिकपदं तच्च स्वबुध्या व्याख्येयं । सौकरिकाः श्वपचाश्चांडालाः खट्टिकाइत्यर्थः ॥३५॥ अथैकः कश्चित्क्रुद्धसत्वोवागुरिकनावं लुब्धकत्वं प्रतिसंधाय प्रतिपद्य वागुरया मृगं हरिणमन्यंवा त्रसं प्राणिनं शशादिकमात्मवृत्त्यर्थं स्वजनाद्यर्थंवा व्यापादयति तस्यच हंता छेत्ता नवति । शेषं पूर्ववत् ॥ ३६ ॥

से एगईठ सऊणियं नावं पडिसंधाय सऊणिंवा अस्रतरंवा तसं पाणं हंता जाव उवरकाइत्ता नवइ ॥३७॥ से एगइठ मिछियनावं पमिसंधाय मछंवा अस्रतरं वा तसं पाणं हंत्ता जाव उवरकाइत्ता नवइ ॥ ३८ ॥

अर्थ—कोइएक पुरुष, शाकुनी एटले पक्षीउनो विनाश करीने, अजीविका करे; एवो थको अनेक पक्षीउने हणे, छेदे, नेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. ॥ ३७ ॥ कोइएक पुरुष अधमाधम माछी थइने अनेक माछलादिक जलचर जीवोने हणे, छेदे, नेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवु. ॥ ३८ ॥

॥ दीपिका—अथैकः कश्चिच्छकुनालावकादयस्तै श्चरति शाकुनिकस्तद्भावमाश्रित्य शकुनमन्यं वा त्रसं हंति तस्य च हननादिकां क्रियां करोतीति ॥ ३७ ॥ अथैकः कश्चिन्मात्स्यकनावमाश्रित्य मत्स्यं वाऽन्यं त्रसं वा जलचरं प्राणिनं हन्यात् । शेषं सुगमं ॥३८॥

॥ टीका—अथैकः कश्चिदधमोपापजीवी शकुनालावकादयस्तैश्चरति शाकुनिकस्तद्भावं प्रतिसंधाय तन्मांसाद्यर्थी शकुनमन्यं वा त्रसं व्यापादयति तस्यच हननादिकां क्रियां करोतीति । शेषं पूर्ववत् ॥३७॥ अथैकः कश्चिदधमाधमोमात्स्यकनावं प्रतिपद्य, मत्स्यं वाऽन्यं जलचरं प्राणिनं व्यापदयेद्धननादिकाः क्रियाः कुर्यात् । शेषं सुगमं ॥ ३८ ॥

से एगईठ गोघायनावं पडिसंधाय तमेव गोणवा अस्रयरंवा तसं पाणं हंता जाव उवरकाइत्ता नवइ ॥३९॥ से एगईठ गोवालनावं पडिसंधाय तमेव गोवालंवा परिजविय परिजवियहंता जाव उवरकाइत्ता नवइ॥ ४० ॥

अर्थ—कोइएक अधर्मी पुरुष, क्रूरकर्मनो करनार, गोघातकनो नाव आदरी, गाय, अथवा बीजा त्रस जीवोने छेदे, नेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ ३९ ॥ कोइएक पुरुष, क्रूर

॥ टीका—अथैकः कश्चिज्जघन्यकर्मकारी शौवनिकभावं प्रतिपद्य सारमेयपापर्द्धिभावं प्रतिज्ञाय तमेव श्वानं तेन वा परं मृगसूकरादिकं त्रसं प्राणिनं व्यापादयेत्तस्य च हननादिकाः क्रियाः कुर्यादिति ॥ ४१ ॥ अथैकः कश्चिदनार्योनिर्विवेकः (सोवणियंतियं भावंति) श्वभिश्चरति शौवनिकः अंतोस्यास्तीत्यंतिकोऽतेवा चरत्यंतिकः पर्यंतवासीत्यर्थः । शौवनिकश्चासावंतिकश्च शौवनिकांतिकः क्रूरसारमेयपरिग्रहः प्रत्यंतनिवासीच प्रत्यंतनिवासिनिर्वा श्वभिश्चरतीति तदसौतद्भावं प्रतिसंधाय डुष्टसारमेयपरिग्रहं प्रतिपद्य, मनुष्यं वा कंचनपथिकमभ्यागतमन्यं वा मृगसूकरादिकं त्रसं प्राणिनं हंता भवति । अयं च ताच्छीलिकस्तृन् लुट् प्रत्ययोवा डृष्टव्यः । तृचि तु साध्याहारं प्राग्वद्व्याख्येयं । तद्यथा । पुरुषं व्यापादयेत्तस्य च हंता छेत्ता इत्यादि । तृन्लुट्प्रत्ययौ प्रागपि योजनीयाविति । तदेवमसौ महाक्रूरकर्मकारी महद्भिः कर्मभिरात्मानमुपख्यापयिता भवतीति ॥ ४२ ॥

से एगइउ परिसामज्झाउ उठित्ता अहमेयं हणामित्ति कट्टु तित्तिरंवा वट्टगंवा लावगंवा कवोयगंवा कविंजलंवा अन्नयरंवा तसं पाणं हंता जाव उवक्खाइत्ता भवइ ॥ ४३ ॥ से एगइउ केणइ आयाणेणं विरुद्धे समाणे अडुवा खलदाणेणं अडुवा सुराथालएणं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणंवा सयमेव अगणिकाएणं सस्साइं झामेइ अन्नेणवि अगणिकाएणं सस्साइं झामावेइ अगणिकाएणं सस्साइं झामंतंपि अन्नं समणुजाणइ इति से महया पावकम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ ॥ ४४ ॥

अर्थ—हवे कांहिं एक पापनुं विशेष कारण कहेछे. जे प्रथम कह्युं, अने हवे कहेशे, तेमां विशेष एटलुंजछे के, प्रथमजे जीवहिंसा कही ते हिंसा लोक थकी प्रछन्न पणे करे, अने हवे जे कहेशे ते हिंसा लोकमां प्रगट पणे करे, एटलुं विशेष जाणवुं. ते एवी रीतें के, जेम कोइएक पुरुष मांस भक्षण करवानी इछायें, अथवा व्यसनने जोधे अथवा क्रीडाने निमित्तें (परिसामज्झाउउठित्ता के०) परिषदामांहेथी उठीने (अहमेयं के०) हुं आ अमुक जीवने (हणामित्तिकट्टु के०) हणीश. एवी प्रतिज्ञा करीने, पछी (तित्तिरंवा के०) तित्तर, अथवा (वट्टगंवा के०) वर्त्तक, अथवा (लावगंवा के०) लावक, अथवा (कवोयगंवा के०) कपोत पक्षी, अथवा (कविंजलंवा के०) कपिंजल एटले पारेवां, तथा सारस पक्षिविशेष जाणवां, अथवा (अन्नयरंवा के०) अन्य (तसंपाणं के०) त्रस जीवने हणे, छेदे, भेदे, इत्यादिक यावत् पोताना आत्माने कर्मबंधन विषे पाडे ॥ ४३ ॥ हवे कोइएक पुरुष, प्रकृतियें क्रोधी छतो, (केणइ के०)

ति प्रतिज्ञां कृत्वा पश्चात्तित्तिरादिकं हंता छेतेति नेतेत्ति ताच्छीलिकस्तृन् तुट्प्रत्ययोवा। तस्य वा हंतेत्यादि यावदात्मानं पापेन कर्मणा ख्यापयिता नवतीति ॥४३॥ इह चाधर्मे पाक्षिकेष्वनिधीयमानेषु सर्वेपि प्राणद्रोहकारिणः कथंचिदनिधातव्यास्तत्र पूर्वमनपराधक्रूधाध्यनिहिताः सांप्रतमपराधक्रूद्धान् दर्शयितुमाह ॥ (सेएगइउइत्यादि) अथैकः कश्चित्प्रकृत्या क्रोधनोऽसहिष्णुतया केनचिदादीयतइत्यादानं शब्दादिकं कारणं तेन विरुद्धः समानः परस्यापकुर्यात् । शब्दादानेन तावत्केनचिदाक्रुष्टोनिंदितोवाचा विरुध्येत । रूपादानेनतु बीनत्सं कंचन दृष्ट्वाऽपशकुनाध्यवसायेन कुप्येत । गंधरसादिकं त्वादानं सूत्रेणैव दर्शयितुमाह । अथवा खलस्य कुथितादिविशिष्टस्य दानं खलस्य वाल्पधान्यादेर्दानं खलदानं तेन कुपितोऽथवा सुरायाः स्थालकं कोशकादि तेन विवक्षितलानाऽनावात् कुपितः । गृहपत्यादेरेतत् कुर्यादित्याह । स्वयमेवाग्निकायेनाग्निना तत्सस्यानि खलकवर्तीनि शालिव्रीह्यादीनि ध्मापयेद्दहेदन्येन वा दाहयेद्दहतोवाऽन्यान्समनुजानीयादित्येवमसौमहापापकर्मनिरात्मानमुपख्यापयिता नवतीति ॥ ४४ ॥

से एगइउ केणइ आयाणेणंवा विरुद्धे समाणे अडुवा खलदाणेणं अडुवा सुराघालएणं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा उट्टाणवा गोणाणवा घोडगाणवा गद्दनाणवा सयमेव घूराउ कप्पेंति अन्नेणवि कप्पावेंति कप्पंतंपि अन्नं समणुजाणइ इति से महया जाव नवइ ॥४५॥

अर्थ—अथ हवे कोइएक पुरुष कोइएक आदान एटले कारणे करी रीसाणो थको, अन्नने दाने अथवा धान्यना खलाने विषे अल्प दाने, अथवा कोइएक अधिकारादिकने विषे वांछित लानने अनावे, गृहपतिनां अथवा गृहपतिनां पुत्रनां (उट्टाणवाके०) उंट, अथवा(गोणाणवा के०) वृषन, (घोडगाणवा के०) घोडो, (गद्दनाणवा के०) गर्दन. तेनो (सयमेवघूराउकप्पेंति के०) जंघादिक अवयव कल्पे छेदे, नेदे, बंधन, नाथ, वाग प्रनृति आदि लेइने पोतेज कापे, बीजा पासें कपावे, बीजो कापतो होय तेने अनुमोदन आपे, एरीतें ते पुरुष महोटुंपोपार्जन करे ॥ ४५ ॥

॥ दीपिका—अथैकः कश्चित्केनचित्खलदानादिनाऽदानेन गृहपत्यादेः कुपितस्तत्संबंधिनउष्ट्रादेः स्वयमेव परशुप्रनृतिशस्त्रेण (घूराउत्ति) जंघाद्यवयवान् कल्पयति छिनत्ति अन्येन छेदयति छिदंतं समनुजानीते । एवं पापकर्मणात्मानं प्रसिद्धिं नयति ॥ ४५ ॥

॥ टीका—सांप्रतमन्येन प्रकारेण पापोपादानमाह । (सेएगइउइत्यादि) अथैकः कश्चित्केनचित्तु खलदानादिनाऽनेन गृहपत्यादेः कुपितस्तत्संबंधिनउष्ट्रादेः स्वयमेवात्मना प

आजरणादिक द्रव्य, पोतें अपहरे, बीजाने हाथे अपहरावे,बीजो कोइ अपहरतो होय तेने अनुमोदे, एम करतो जीव घणां पाप कर्मोपार्जन करे ॥ ४७ ॥

॥ दीपिका—अथैकः केनचिदादानेन कुपितोगृहपत्यादेः कुंडलादि द्रव्यमपहरेत् । शेषं पूर्ववत् ॥ ४७ ॥

॥ टीका—अपिच (सेएगउइत्यादि) अथैकः कश्चित्केनचिदादानेन कुपितोगृहपत्यादेः संबंधि कुंडलादिकं द्रव्यजातं स्वयमेवापहरेदवशिष्टं पूर्ववत् ॥ ४७ ॥

से एगइउ केणइवि आदाणेणं विरुद्धे समाणे अडुवा खलदाणेणं अडु वा सुराघालएणं समणेणवा माहणेणवा छत्तगंवा दंमगंवा नंमगंवा म त्तगंवा लडिंवा निसिगंवा चेलगंवा चिलिमिलिगंवा चम्मगंवा छेयण गंवा चम्मकोसियंवा सयमेव अवहरंति जाव समणुजाणइ इति से म हया जाव उवक्खाइत्ता नवइ ॥ ४८ ॥

अर्थ—हवे पाखंमी दर्शन उपर कोप्यो थको, जे करे; ते देखाडेछे. कोइएक कारणे रीसाणो छतो वादीयें जींत्यो अथवा पोताना दर्शनने दृष्टिरागें अथवा अन्न अने धान्यने थोडे दाने, अथवा कोइएक अधिकारादिकने विषे वांछितलाजने अनावे, कोप्यो थको श्रमण अथवा ब्राह्मण तेनां दंम, छत्र, माटीना नांम, मात्रो, लाकडी, वेसवानो पाट, वस्त्र, मटको, ढांकवानो वस्त्र, चर्म, चर्मछेदनी तरवार, चर्मनी कोथली इत्यादिक अनेक उपकरण पोतें अपहरे, बीजा ने हाथे अपहरावे, बीजो कोइ अपहरतो होय तेने अनुमोदन आपे, एरीते घणा कर्म उपार्जन करे. एटला कारणे क्रोधें करी पापनुं विशेषपणुं कह्युं ॥ ४८ ॥

॥ दीपिका—अथ पाखंडिकोपरिकोपमाह । अथैकः कश्चित्स्वमतानुरागेण वादपराजितो वा अन्येन वा केनचिन्निमित्तेन कुपितः श्रमणानां ब्राह्मणानां छत्रकं वा नांडं किंचिद्वस्तु दंडकं वा नांडकं किंचिद्वस्तुमात्रकं पात्रं (लडिगं) यष्टिं (निसिगं) वृसीमासनमिति यावत् । चेलकं वस्त्रं (चिलिमिलिगं) प्रछादपटीं चर्मकं पादुकादि चर्मछेदनकं शस्त्रादि चर्मकोशं शस्त्रक्षेपकोछलकं स्वयमपहरेत् । शेषंपूर्ववत् ॥ ॥ ४८ ॥

॥ टीका—सांप्रतं पाखंडिकोपरि कोपेन यत्कुर्याचद्दर्शयितुमाह । (सेएगइउइत्यादि) अथैकः कश्चित्स्वदर्शनानुरागेण वा वादपराजितोवान्येनवा केनवा केनचिन्निमित्तेन कु

पितः सन्नेतत्कुर्यादित्याद । तद्यथा । श्राम्यंतीति श्रमणास्तेषामन्येषामपि तथानू तानां केनचिदादानेन कुपितः सन् दंडकादिकमुपकरणजातमपहरेत् अन्येनं वा हारये दन्यंवा हरंतं समनुजानीयात् इत्यादिपूर्ववत् ॥ ४७ ॥.

से एगइउ णोवितिगिंबइ तं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा सयमेव अगणिकाएणं उसहीउ झामेइ जाव अन्नंपि झामंतं समणुजाणइ इति से महया जाव उवरकाइत्ता नवति ॥ ४ए ॥

अर्थ—हवे निःकारण पापनुं विशेष कहेबे. अथ कोइएक पुरुष, अत्यंत मूर्खबतो (णोवितिगिंबइके०) एवो विचार करे नहीं के, अकार्य करवा थकी मने आ नवमां अथ वा परनवमां अनिष्टफलनी प्राप्ति थशे, अथवा महारो अनुष्ठान अत्यंत मागोबे एवुं आलोचे नहीं, एवो बतो आलोक तथा परलोक विरुद्ध क्रिया करे ते देखाडेबे गृहप तिना अथवा गृहपतिना पुत्रना धान्यने नि.कारणे पोतें अग्निकायें करी प्रज्वाले, बी जाने हाथे प्रज्वालावे, बीजो कोइ प्रज्वालतो होय तेने अनुमोदे ॥ ४ए ॥

॥ दीपिका—पूर्वं विरोधिनोऽनिहिताः अथ इतरे कथ्यंते । अथैकः कश्चिन्मूढतया (णोवितिगिंबइत्ति) न विमर्षति नविचारयति यन्ममानेन कृतेन परलोकेऽनिष्टं नावि । अथवा मदीयमिदमनुष्ठानं पापानुबंधीति न वेत्ति एवंनूतश्च गृहपत्यादेर्निमित्तमेव त त्कोपं विनैव स्वयमग्निना सस्यानि शालिव्रीह्यादीनि दहेदित्यादि ज्ञेयं ॥ ४ए ॥

॥ टीका—एवं तावद्विरोधिनोऽनिहिताः सांप्रतमितरेऽनिधीयंते । (सेएगइउइत्यादि) अथै कः कश्चित् दृढमूढतया (नोवितिगिंबिइत्ति) न विमर्षति नमीमांसते । यथाऽनेन कृतेन ममा ऽमुत्राऽनिष्टफलं स्यात् तथा मदीयमिदमनुष्ठानं पापानुबंधीत्येवं न पर्यालोचयति तन्नावाप न्नाश्च यत्किंचनकारितया इहलोकपरलोकविरोधिनीः क्रियाः कुर्यात् । एतदेवोद्देशतोदर्शयति तद्यथा गृहपत्यादेर्निमित्तमेव तत्तत्कोपमंतरेणैव स्वयमेवात्मानाग्निकायेनौषधीः शालिव्री ह्यादिकाः ध्मापयेद्दहेत्तथाऽन्येन दाहयेद्दहंतं च समनुजानीयादित्यादि ॥ ४ए ॥

से एगइउ णोवितिगिंबइ तं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा उट्टाणवा गोणाणवा घोडगाणवा गद्दनाणवा सयमेव घूराउकप्पइ अन्नेणवि क प्पावेंति अन्नंपि कप्पंति तं समणुजाणइ ॥५०॥ से एगइउ णोवितिगिंब इ तं गाहावतीणवा गहावइपुत्ताणवा उट्टसालाउवा जाव गद्दनसाला

उत्ता कंटकबोंदियाहिं पडिपेहित्ता सयमेव अगणिकाएणं झामेइ जाव समणु जाणइ ॥ ५१ ॥ से एगइउ णोवितिगिंछइ तं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणंवा जाव मोत्तियंवा सयमेव अवहरइ जाव समणु जाणइ॥ ५२ ॥ से एगइउ णोवितिगिंछइ तंसमणंवा माहणाणंवा छत्तगंवा दंमगंवा जाव चम्मछेदणगंवा सयमेव अवहरइ जाव समणुजाणइ इति सेमहया जाव उवरकाइत्ता नवइ ॥ ५३ ॥

अर्थ—एरीतेंज वली कोइएक पुरुष, गृहपति अथवा गृहपतिना पुत्रना उंट, गाय, बलद, घोडा, गर्द्दननां बंधन, तथा वाग, नाथ, प्रमुख पोतें कापे, बीजाने हाथे कपावे बीजो कापतो होय तेने अनुमोदे ॥ ५० ॥ तथा तेमज ते गृहपतिना तथा गृहपतिना पुत्रना उंटनीशाला, यावत् गर्द्दननी शालाने कांटा थकी ढांकीने पोते बाले, बीजाने हाथे बलावे, बीजो बालतो होए तेने अनुमोदे ॥ ५१ ॥ तथा तेमज ते गृहस्थना अथवा गृहस्थना पुत्रना कुंमलादिक आनरण, तथा मौक्तिकादिक इव्य, पोतें अपहरे, बीजाने कहिने तेने हाथे अपहरावे, बीजो कोइ अपहरतो होय तेने अनुमोदे ॥ ५२ ॥ तथा कोइएक पुरुष, श्रमण ब्राह्मणना दंम छत्रादिक यावत् चर्मछेदक ए उपकरणोने पोतें अपहरे बीजाने हाथे अपहरावे अपहरतो होय तेने अनुमोदे ए प्रथम लखेला पांच आलावा, तथा पाछलना आलावा चार ते सरखाजछे परंतु ते सकारण, अने निष्कारण, एटलुं विशेषछे. ॥ ५३ ॥

॥ दीपिका—अथैकोनिस्त्रिंशतया गृहपत्यादिसंबंधिनामुष्ट्रादीनां जंघाद्यवयवान् छिंद्यात्यादि ॥ ५० ॥ कश्चिडुष्ट्रादिबंधनं गृहाणि दहेत् ॥ ५१ ॥ सुगमं ॥ ५२ ॥ निर्निमित्तमेवं तत्कुर्यात् व्याख्या पूर्ववत् ॥ ५३ ॥

॥ टीका—तथेहामुत्रच दोषापर्यालोचकोनिस्त्रिंशतया गृहपत्यादिसंबंधिनां क्रमेलकादीनां जंघादीनवयवांश्छिंद्यात् ॥ ५० ॥ तथा शालां दहेत् ॥ ५१ ॥ तथा गृहपत्यादेः संबधि कुंडलमणिमौक्तिकादिकमपहरेत् ॥ ५२ ॥ तथा श्रमणब्राह्मणादीनां दंडादिकमुपकरणजातमपहरेदित्येवं प्राक्तनाएवालापकाआदानकुपितस्य येऽनिहितास्तएव तदनावे नानिधातव्याइति ॥ ५३ ॥

से एगइउ समणंवा माहणंवा दिस्सा णाणाविहेहिं पावकम्मेहिं अत्ताणं उवरकाइत्ता नवइ अङ्वाणं अछराए आफालित्ता नवइ अङ्वाणं

फरुसंवदित्ता नवइ कालेणवि से अणुपविठस्स असणंवा पाणंवा जा
व णोदेवावेत्ता नवइ जे इमे नवइ वोनमंता नारक्कंता अलसगा वे
सलगा किवणगा निवज्झमा वणगा समणगा पवयंति ॥ ५४ ॥

अर्थ—हवे मिथ्यादृष्टिना पापनो अधिकार विशेष कहेछे. कोइएक मिथ्यादृष्टि पुरुष, श्रमण तपस्वी साधुनो निंदक होय, ते श्रमण अथवा ब्राह्मणने निसरतां पेसतां (दिस्सा के०) देखीने नानाप्रकारना पापोपार्जन करीने पोताना आत्माने दुर्गतिने विषे पाडे, तेज कारण कहेछे. (अदुवाणंअछराएके०) क्यांहिं एक साधुने देखीने पोतानी मिथ्यादृष्टीयें करी एवुं जाणेजे, ए मने अपशकुन थयुं. एम जाणतो थको पोतानी दृष्टिआगलथी ते साधुने अलगो करावे, अथवा (आफालित्तानवइ के०) चपटीयें करी साधुने आस्फाले एटले तेने तिरस्कार करे, (अदुवाणंफरुसंवदित्तानवइ) अथवा कठोर वचन बोले, अरे मूर्ख! निरर्थक कायक्लेशना करनार! हे दुर्बुद्धि! माहारा आगलथी दूरथइजा. एवा कठोर वचन बोले, तथा (कालेणविसेअणुपविठस्स के०) निक्षावेलायें ते चारित्रियाने अन्न पाणीने अर्थे आव्यो देखीने तेने (असणंवापाणंवा के०) अशन पानादिक देतां अत्यंत दुष्टपणे पोतें निंदे अने (जावणोदेवावेत्तानवइ के०) बीजो कोइ अशनपानादिक आपतो होय तेने निषेधे, तथा एवां दुर्वचन बोले के, (जेइमेनवइ के०) जे ए पाखंमीने आपवा थकी कांही फल नथी एम कहे (वोनमंता के०) ए तृण काष्ठना नारानो आणनारछे (नारक्कंता के०) ए कुंटुबना नारनो निर्वाह करी शक्यो नथी, ते कारणे मुंमित थयोछे. (अलसगा के०) आलसु क्रमागत कुटुंब धर्म पालवाने असमर्थ, माटे पाखंमी थयोछे (वेसलगा के०) वृषल कोइएक क्षुद्र जातिकछे तथा (किवणगानिवज्झमा के०) कृपण, निरुद्यमी, कोइपण कार्यनो उद्यम करी नशके ते कारणे (वणगासमणगापवयंति के०) प्रवर्ज्या लिए. ॥ ५४ ॥

॥ दीपिका—अथैकः कश्चिदनिगृहीतमिथ्यादृष्टिः साधुप्रत्यनीकः श्रमणं ब्राह्मणं साधुं दृष्ट्वा, अपशकुनोयमिति मन्यमानः पापकर्मनिरात्मानमुपख्यापयिता नवति (अदुवाणंति) अथवा साधुं दृष्ट्वाऽवज्ञयाऽप्सरायाश्च पुटिकाया आस्फालयिता नवति परुषं कठिनं वचोब्रूयात् निक्षाकालेपि (से) तस्य निक्षोर्निक्षार्थमनुप्रविष्टस्यान्नादेर्दापयिता न नवति प्रत्यनीकः सन्निदं ब्रूते ।(जेइमेत्ति) पाखंडिकाः स्युस्ते चोन्नमंतस्तृणकाष्ठहारादिकं कर्म तद्विद्यते येषां तेचोन्नमंतः नाराक्रांताः कुटुंबं पालयितुमसमर्थास्ते पाखंडव्रतमाश्रयंति । तथा वृषलाअधमाः कृपणाः क्लीबाअकिंचित्कराः श्रमणाः स्युः प्रव्रज्यां गृह्णंतीति॥५४॥

॥ टीका—सांप्रतं विपर्यस्तदृष्टयोऽगाढमिथ्यादृष्टयोऽनिधीयंते (सेएगइउइत्यादि) अथै कः कश्चिदनिगृहीतमिथ्यादृष्टिरनद्रकः साधुप्रत्यनीकतया श्रमणादीनां निर्गच्छतां प्रविश तां वा स्वतश्च निर्गच्छन् प्रविशन् वा नानाविधैः पापोपादानभूतैः कर्मभिरात्मानमुपख्या पिता नवतीत्येतदेव दर्शयति । अथवेत्ययमुत्तरापेक्षया पक्षांतरोपग्रहार्थः । क्वचित्साधु दर्शने सति मिथ्यात्वोपहतदृष्टितयाऽपशकुनोयमित्येवं मन्यमानः सन् दृष्टिपथादपसारयन् साधुमुद्दिश्यावज्ञयाप्सरायाश्च पुटिकायाः स्फालयिता नवत्यथवा तत्तिरस्कारमापादय न परुषं वचोब्रूयात् । तद्यथौदनमुंमनिरर्थककायक्लेशपरायणडुर्बुद्धेऽपसराग्रतस्तदसौ भ्रुकुटिं विदध्यादसत्यंवा ब्रूयात् तथा भिक्षाकालेनापि (से) तस्य भिक्षोरन्येभ्योभिक्षा चरेभ्योऽनु पश्चात्प्रविष्टस्य सतोऽत्यंतडुष्टतयाऽन्नादेर्नोदापयिता नवत्यपरंच दानोद्यतं नि षेधयति तत्प्रत्यनीकतयैतच्च ब्रूते । इमे पाखंडिकानवंति तएवंभूतानवंतीत्याह । (चो सुंत्ति) तृणकाष्ठहारादिकमधमकर्म विद्यते येषां ते तद्वंतस्तथा नारेण कुटुंबनारेण पोट्ट लिकादिनारेण वाऽऽक्रांताः परान्नग्राः सुखलिप्सवोऽलसाः क्रमागतं कुटुंबं पालयितुमसम र्थास्तथा पाखंमव्रतमाश्रयंति । तथाचोक्तं । गृहाश्रमपर इत्यादि । तथा (वेसलगत्ति) वृषलाअधमाः शूद्रजातयस्त्रिवर्गप्रतिवारकास्तथा कृपणाः क्लीबा अकिंचित्कराः श्रमणा नवंति प्रव्रज्यां गृह्णंतीति ॥ ५४ ॥

ते इणामेव जीवितं धिक्जीवितं संपडिवुहेंति नाइ ते पारलोगस्स अट्ठाए किंचिवि सिलीसंति ते डुक्कंति तेसोयंति तेजूरंति तेतिप्पंति तेपिट्टं ति तेपरितप्पंति तेडुक्खण जूरण सोयण तिप्पण पिट्टण परितिप्पण वहवंधणपरिकिलेसाउ अप्पडिविरया नवंति ते महया आरंभेणं ते महया समारंभेणं तेमहया आरंभसमारंभेणं विरूवरूवेहिं पाव कम्मे किच्चेहिं उरालाइं मणुस्सगाइं नोगनोगाइं भुंजित्तारो नवंति ॥ तं जहा अन्नं अन्नकाले पाणं पाणकाले वत्थं वत्थकाले लेणंलेणकाले सयणंसयणकाले पुव्वावरंचणं ण्हाए कयवलिकम्मे कयकोउयमंगल पायच्छित्ते सिरस्साण्हाए कंठेमालाकडे आवद्धमणिसुवन्ने कप्पियमा लामउली पडिवद्धसरीरवग्घारियसोणिसुत्तगमल्लदामकलावे अ हतवत्थपरिहिए चंदणोक्खितगायसरीरे महति महालियाए कूडा गारसालाए महति महालयंसि सीहासणंसि इत्थीगुम्मसंपरि वुडे स

वराइएणं जोइणाभियायमाणाणं महया हयनट्टगीयवाइयं तंतीतल तालतुम्यियघणमुइंगपडुपावाइयं रवेणं उरालाइं माणुस्सगाइं भोग भोगाइं भुंजमाणे विहरइ ॥ ५५ ॥

अर्थ–(तेइणमेवजीवितंधिभ्भीवि के०) ते साधुना अवर्णवादि एम कहे जे आ साधुनुं जीवितव्य धिक् छे. (तंसंपडिबुहंति के०) अने पोताने प्रशंसे जे अमे भला छैए, एरीते ते इह लोक प्रतिबंध साधुना निंदक मोहांध पुरुष ते साधुनो अपवाद बोले, (नाइतेपारलोगस्सअट्ठाएकिंचिविसिलीसंति के०) ए पुरुष, परलोकना अर्थनो साधनार एवो स्वल्प मात्र कांहींपण अनुष्ठान करे किंतु? परने डुर्वचनादिकें करी पीडा उपजावे (तेडुरकंति के०) ते अज्ञानना अंधकारे डुःखी थाय. (तेसोयंति के०) ते अधिक शोचे, अन्यने शोक करावे (तेजूरंति के०) ते जूरे तथा परने निंदे. (तेतिप्पंति के०) ते पोताने तथा परने सुख थकी चूकावे (तेपिट्टंति के०) ते पोतें पीडाय, अने बीजाने पीडावे. (तेपरितप्पंति के०) ते पोते माहोमांहे दाजे, बीजाने दजावे, (तेडुरकणजूरणसोयण के०) ते पुरुष, एरीते डुःख, जूरण, शोक, इत्यादिक करतो करावतो थको (तिप्पण के०) सुखनो टालनार (पिट्टण के०) पीडानो करनार, (परितिप्प ण के०) पश्चात्ताप करनार, (वहबंधण के०) वध बंधननो करनार (परिकिलेसाउ के०) महोटा क्लेश, तेथकी (अप्पडिविरयाभवंति के०) नथी निवर्त्या ते पुरुष, एवा छता ते महोटा आरंभ प्राण वध रूप तथा महोटा समारंभ परजीवने किलामणा उपजावी ते महोटा आरंभ समारंभे करीने नाना प्रकारना पापनुष्ठाने करीने प्रधान मनुष्य भाव संबधिया मधु मांसादिक अनेक काम भोगने भोगवतो थको विचरनारो थाय. (तंजहा के०) तेज कहेछे (अन्नंअन्नकाले के०) अन्नने काले अन्न, (पाणं पाणकाले के०) पाणीने कालें पाणी, (वत्थंवत्थकाले के०) वस्त्रने कालें वस्त्र, (ले णंलेणकाले के०) घरने कालें घर (सयणंसयणकाले के०) शयनने कालें शयन, (पु व्वावरंचणंसहाए के०) पहेले पहोरे, अने वली पाछले पहोरें स्नान करे, (कयबलिक म्मे के०) देवतादिक निमित्त बलि कर्म करे, (कयकोउय के०) अनेक कौतुक उत्ता रणादिक करे, (मंगलपायच्छित्ते के०) दधि, दूर्वादिक मंगल करे, डुःस्वप्नादिकना निवा रणने अर्थें ए क्रिया करे,(सिरसाणहाएकंठेमालाकडे के०) शिरें स्नान करीने कंठे माला पेरे, (आवद्धमणिसुवन्नेकप्पियमालामउली के०) आबद्ध एटले शुंपहेरे ? तोके, मणि अने सुवर्ण, यथा योग्य स्थानके पहेरे, अनेक हार, अर्धहार, कटीसूत्र, इत्यादिक आ भरणे करीने, (पडिबद्धसरीरवग्घारीय के०) प्रतिबंध नाम दृढ शरीर देहछे जेनो एवो,

प्रलंबित (सोणिसुत्तगमदल्लदामकलावे के०) कडने विषे कंदोरोछे जेने एवो, अने फुलनीमा लाना समूह पेरतो एवो, (अहतवच्छपरिहिए के०) अत्यंत बहु धोलां निर्दोष वस्त्र पेहेरे, (चंदणोक्खितगायसरीरे के०) चंदने करी गात्रने विलेपन करे एवो थको, (महतिम हालियाए के०) अत्यंत महोटी (कूडागारसालाए के०) कूटने आकारें शिला तेने वि षे (महतिमहालयंसिसीहासणंसि के०) महोटा सिंहासने बेगे थको (इत्थिगुम्मसंप रिवुडे के०) स्त्रीना वृंदे पर वर्यो (सव्वराइएणं के०) सर्व रात्री संबंधि (जोइणा के०) प्रदीपनी ज्योति (झियायमाणाणं के०) तेना अजवाला थकि (महयाहयनट्टगीयवाइ यं के०) महोटा नट्ट, गीत, वाद्यादिक वाजीत्रादिकने शब्दें, (तंतीतलतालतुडियतघणमुइ गपरुपावाइयंरवेणं के०) वीणा, हाथना ताल, कांशियाना ताल, तुरी एटले वाजीत्र, हाथ विशेष, घन ध्वनि सरखो जेनो घोषछे, मृदंग, पटह, माह्या पुरुषें वजाव्याछे, तेनें शब्दें करी, (उरालाइंमाणुस्सगाइं के०) उदार प्रधान मनुष्य संबंधीया (नोगनोगाइं के०) कामनोगने (भुंजमाणे के०) नोगवतो थको (विहरइ) विचरे ॥ ५५ ॥

॥ दीपिका–अथ गृहस्थानामत्यंतविपरीतमतीनामसदाचारत्वं प्रकटयन्नाह । ते साधुधर्मप्रत्यनीकाइदमेव जीवितं परापवादप्रकटनजीवितं धिक्जीवितं कुत्सितं जीवि तं संप्रतिबृंहंति प्रशंसंति ते परलोकस्यार्थाय किंचित्सदनुष्ठानं न श्लिष्यंते नाश्रयंते तेऽ पवादैः परान् डुःखयंति आत्मानंच अज्ञानांधास्तत्कुर्वंति येन शोचंते परानपि शोचयंति ते परान् (जूरयंति) गर्हंति ते स्वकर्मनिः पीडयंते (तेतिप्पंति) सुखाच्यावयंत्यात्मा नं परांश्च ते पापेन परितप्यंतेऽतर्दह्यंते परांश्च परितापयंति । एवं ते डुःखनशोचनादि क्लेशादिप्रतिविरताः स्युस्ते महतारंनेण प्राणिघातरूपेण महता समारंनेण प्राणि परितापरूपेण विरूपरूपैश्च नानाविधैः पापकर्मकृत्यैरुदारानुत्कृष्टान्मद्यमांसादिसुतान् मानुष्यकान् मनुष्यनवयोग्यान् नोगेन्योऽप्युत्कटान्नोगान्नोगनोगास्तान् नोक्तारःस्युः ॥ तद्यथा अन्नमन्नकाले यथेप्सितं तस्य पापानुष्ठानात्संपद्यते । एवं पानवस्त्रशयना सनादिकं सपूर्वापरं सहपूर्वकृत्येन स्नानादिना परकृत्येन विलेपननोजनादिना वर्ततइति सपूर्वापरं । कोऽर्थः । यद्यदा प्रार्थ्यते तत्तदा संपद्यतइति । तद्यथा । स्नातः कृ तं देवतानिमित्तं बलिकर्म येन सःकृतबलिकर्मा कृतानि कौतुकान्यवतारणकादीनि मंगल सुवर्णचंदनाक्षतदूर्वासिद्धार्थादीनि प्रायश्चित्तानि डुःखप्रतिघातकानि येन सःकृतकौतुक मंगलप्रायश्चित्तः । शिरसि स्नातः कल्पितोयोमालाप्रधानोमुकुटः सविद्यते यस्य सःक ल्पितमालामुकुटी प्रतिबद्धशरीरोदृढांगः । (वग्घारितं) प्रलंबितं श्रोणी श्रोत्रं कटिसू त्रं मल्लदामकलापश्च येन सतया कंठे कृतमालः । आविद्धानि परिहितानि मणिसुव

णीनि येन सतथा अहतमखंडितं वस्त्रं परिहितं येन सतथा चंदनेन उक्षितं सिक्तं गात्रं शरीरावयवायस्य सतथा नानाविधविलेपनावलिप्तइत्यर्थः । महत्यामुच्चायां (महालियाइति) विस्तीर्णायां कूटागारशालीयां महति महालये विस्तीर्णे सिंहासने भद्रासने स्थितः । स्त्रीगुल्मेन स्त्रियोयुवतयः गुल्मोऽन्यः परिवारस्तेन परिवृतः, निशि सर्वरात्रिसंबंधिना ज्योतिषा प्रदीपादिभवेन क्रियमाणेन दीप्यमानेन महता बृहत्तरेण प्रहतनाट्यगीतवादित्रतंत्रीतलतालत्रुटिकघनमृदंगपटुप्रवादितरवेण उदारान् मानुष्यकान् भोगभोगान् भुंजानोविहरति ॥ ५५ ॥

॥ टीका–सांप्रतमेषामगारिकाणामत्यंतविपर्यस्तमतीनामसद्वृत्तमाविर्भावयन्नाह । (तेइणमेवइत्यादि) तेहि साधुवर्गापवादिनः सद्धर्मप्रत्यनीकाइदमेव जीवितं परापवादोद्घाट्टनजीवितं धिक्जीवितं कुत्सितं जीवितं साधुजुगुप्सापरायणं संप्रतिबृंहंत्येतदेवासद्वृत्तजीवितं प्रशंसंतीति भावः । ते चेह लोकप्रतिबद्धाः साधुजुगुप्साजीविनोमोहांधाः साधूनपवदंति नापिच ते पारलौकिकस्यार्थस्य साधनमनुष्ठानं किंचिदपि स्वल्पमपि श्लिष्यंते समाश्रयंति । केवलं ते परान् साधून् वाचादिभिरनुष्ठानैर्दुःखयंति पीडामुत्पादयंति आत्मनः परेषांच । तथा ते ज्ञानांधास्तथा तत्कुर्वंति येनाधिकं शोचंते परानपि शोचयंति दुर्भाषितादिभिः शोकं चोत्पादयंति तथा ते परान् (जूरयंति) गर्हंति तथा तिप्यंति सुखाद्च्यावयंत्यात्मानं परांश्च तथा ते वराकाअपुष्टधर्माणोऽसदनुष्ठानाः स्वतः पीड्यंते परांश्च पीडयंति तथाते पापेन कर्मणा परितप्यंतेऽतर्दह्यंते परांश्च परितापयंति । तदेवं तेऽसद्वृत्तयः संतोदुःखीनः शोचनादिक्लेशादप्रतिविरताः सदा भवंति । एवं भूताश्च संतस्ते महताऽऽरंभेण प्राणिव्यापादनरूपेण तथोभाभ्यामप्यारंभसमारंभाभ्यां विरूपरूपैश्च नानाप्रकारैः सावद्यानुष्ठानैः पापकर्मकल्पैरुदारानत्यंतोद्भटान्समग्रसामग्रीकान् मधुमद्यमांसाद्युपेतान् मानुष्यकान् मनुष्यभवयोग्यान् भोगेभ्योप्युत्कटान् भोगान् ते सावद्यानुष्ठायिनोभोक्तारोभवंति ॥ एतदेवदर्शयितुमाह । (तंजहेत्यादि) तद्यथेत्युपदर्शने । अन्नमन्नकाले यथेप्सितं तत्पापानुष्ठानात्संपद्यते । एवं पानवस्त्रशयनासनादिकमपि । सर्वमेतद्यथाकालं सपूर्वापरं संपद्यते सहपूर्वेण पूर्वाह्णकर्तव्येनापरेण चापराह्णकर्तव्येन । यदिवा पूर्वं यत्क्रियते स्नानादिकं तथा परंच यत्क्रियते विलेपनभोजनादिकं तेन सह वर्ततइति सपूर्वापरं । इदमुक्तंभवति । यद्यदा प्रार्थ्यते तत्तदा संपद्यतइति । अभिलपितार्थप्राप्तमेव लेशतोदर्शयितुमाह । तद्यथा । विभूत्या स्नातस्तथा कृतं देवतादिनिमित्तं बलिकर्म येन स तथा तथाकृतानि कौतुकान्यवतारणकादीनि मंगलानिच सुवर्णचंदनदध्यक्षतदूर्वासिद्धार्थकादर्शस्पर्शनादीनि तथा दुःस्वप्नादिप्रतिघातकानि प्रायश्चित्तानि येन सकृतकौतुकमं

गलप्रायश्चित्तः । तथा कल्पितश्चासौ मालाप्रधानोमुकुटश्च सतथा विद्यते यस्य सनवति कल्पितमालामुकुटी । तथा प्रतिबद्धशरीरोदृढावयवकायोयुवेत्यर्थः । तथा (वग्घा रियंति) प्रलंबितं श्रोणीसूत्रं कटिसूत्रं मल्लदामकलापश्च येन सतथा तदेवमसौ शिरसि स्नातः नानाविधविलेपनावलिप्तश्च कंठे कृतमालस्तथाऽपरयथोक्तनूषणनूपितः सन्महत्या मुच्चायां (महालियाएत्ति) विस्तीर्णायां कूटागारशालायां तथा महति महालये विस्तीर्णे सिंहासने नद्रासने समुपविष्टः स्त्रीवृंदेन युवतिजनेन सार्द्धमपरपरिवारेण संपरिवृतो वेष्टितोयस्तथा महता बृहत्तरेण प्रहतगीतवादित्रतंत्र्यादिरवेणोदारान्मानुष्यकान् नोगा नोगान्भुंजानोविहरति प्रविचरति विजृंनतीत्यर्थः ॥ ५५ ॥

तस्सणं एगमवि आणवेमाणस्स जाव चत्तारि पंचजणा आवुत्ता चेव अनुठंति नणह देवाणुप्पिया किंकरेमो किंआहारेमो किंउवणेमो किं आचिठामो किंनेहियं इछियं किंनेआसगस्स सयइ तमेवपासित्ता अणारिया एवं वयंति देवे खलु अयंपुरिसे देवसिणाए खलु अयं पुरिसे देवजीवणिज्जे खलु अयंपुरिसे अन्नेण विचणं उवजीवंति तमेव पासित्ता आरिया वयंति अभिक्कंतकूरकम्मे खलु अयंपुरिसे अति धुत्ते अइयायरक्खे दाहिणगामिए नेरइए कण्हपक्खिए आगमिस्साणं डुल्लहवोहियाएयावि नविस्सइ ॥ ५६ ॥

अर्थ–(तस्सणंएगमविआणवेमाणस्सके०) ते पुरुषने कोइ एक कार्य उपने एक माणसने आज्ञा देतां (जावचत्तारिपंचजणाके०) यावत् चार, पांच, पुरुष (आवुत्ताचेव के०) अणवो लाव्या (अनुठंतिके०) उठी सावधान थइने एम कहेके, (नणहदेवाणुप्पियाके०) हेस्वामि! आज्ञा आपो? हे देवाणुप्रिय सरल स्वनावि! (किंकरेमोके०) शुं कार्य अमे करियें? जेवो आपनो हुकम होय ते करवाने तैयारछैए. (किंआहारेमो के०) केवो आहार करशो? किंवा केवो आहार निपजावीये? (किंउवणेमोके०) शुं वस्तु लावी आपुं? (किंआचिठामो के०) शुं स्थापना करू? तथा केवां आनरण पेरशो? (किंनेहियंइछियं के०) शुं तमारा हृदयने वल्लनछे. एटले शुं इछोछो? (किंनेआसगस्सई के०) शुं तमारा मुखने सयई रुचेछे? जेकांइ तमारा मुख मांहेथी वचन निकले ते अमे करियें, (तमेवपासित्ताके०) ते राजादिकने देखीने (अणारियाएवंवयंतिके०) अनार्य एवुं कहे के, (देवेखलु अयंपुरिसे के०) खलुइति निश्चे ए पुरुष देव, (देवसिणाए खलु अयं पुरिसे के०) ए पुरुष देव स्नातक, (देवेजीवणिज्जे खलुअयं पुरिसे के०) ए पुरुषनो देवताना

जेवो जीवछे, निश्चें ए पुरुष घणा लोकने आजीविकानो करनारछे, एने (अन्नेणविचणं उव जिवंति के०) बीजा घणा पुरुषो सेवेछे, एरीतें ते राजादिकने देखीने अनार्य लोको कहे अने तेना वखाण करे. हवे (तमेव पासित्ता के०) वली ते राजादिकने देखीने (आ रियावयंति के०) आर्य पुरुष जे होयते एवुं कहेके (अनिक्कंतकूरकम्मेखलुअयं पुरिसे के०) निश्चें ए पुरुष अत्यंत क्रूर कर्मी हिंसादिक क्रियाने विषे प्रवर्त्तेछे, (अतिधूत्तेके०) तथा ए पुरुष अत्यंत धूर्त्तछे घणां कर्मे करी सहितछे, तथा (अइयायरक्केके०) घणा कर्मेकरी आपणा आत्माने संसार मांहे राखनारछे, (दाहिणगामिए नेरइए के०) त था ए दक्षणगामि नारकीमां उपजनार, प्रायः जे क्रूरकर्मेना करनार, साधुना निंदक, सा धुने दान आपवानो निषेध करनार होय, ते दक्षिणगामि नारकीमांहे उपजे. तेमाटे ए पुरुष दक्षिण गामि जाणवो. (कण्हपक्खिएके०) कृष्ण पाक्षिक नारकी थशे; कृष्ण पक्षि क नारकी मांहे शुं विशेषछे? ते कहेछे. (आगमिस्साणं डुल्लहबोहियाएयाविभविस्सइ के०) आगमिक कालें डुर्लन बोधी थशे एटले शुं कह्युं? जे, दिशि मांहे दक्षिणदिशि, अने अप्रशस्त गतिमांहे नरकगति, तथा पक्ष मांहे कृष्ण पक्ष, एटला वाना अप्रशस्तछे तेम विषयांध पुरुष जे छेते परलोकना निस्पृहि, एवा साधुने देखीने तेने दानांतरायना कर नार थायतो एवा अप्रशस्त पुरुषने बोधबीज पामवुं डुर्लनछे. तथा जे ए थकी विपरी त विषयने विषे निस्पृहि, परलोकना नीरु, तथा साधुनी प्रशंसाना करनार, एवा पुरुष उत्तरदिशि तथा देवतानी गति अने शुक्लपक्ष, एटला वानां पामे तेने मनुष्य नवमां बो धबीज पामवुं सुलनछे. ॥ ५६ ॥

॥ दीपिका—तस्यैवंनूतस्य पुरुषस्य क्वचित्कार्ये सति एकपुरुषमाज्ञापयतोयाव च्चत्वारः पंचवा पुरुषाअनुक्ताएव समुपतिष्ठंते एवं वदंति च नण स्वामिन्! किंकु र्मोवयं किमाहराम आनयामः? किमुपनयामोढौकयामः? (किंआचिंठामोत्ति) किंनू पणादि परिधापयामः? किं युष्माकं हृदयेप्सितं? किंयुष्माकमास्यकस्य मुखस्य (सयइ त्ति) स्वदते स्वाडु प्रतिनाति? अथवा यदेव तवास्यस्य स्रवति तव मुखान्निर्गच्छति तदे व वयं कुर्मइति। (तमेवपासित्तत्ति) यं राजानं तथाक्रीडमानं दृष्ट्वा अनार्याएवं वदंति देवः खलु अयं पुरुषोदेवस्नातकोदेवश्रेष्ठोबहूनामुपजीव्योऽन्योप्येनमुपजीवति तथा तं तादृशमसदाचारं दृष्ट्वाऽर्याविवेकिनोवदंति अनिक्रांतक्रूरकर्मा अयं पुरुषोहिंसादि क्रियाप्रवृत्तः अतिधूर्तोबहुलकर्मा अतीवात्मानं पापैरक्षतील्यत्यात्मरक्षः दक्षिणदिग्गामी नैरयिकः कृष्णपाक्षिकः। कोर्थः। यः क्रूरकर्मा साधुप्रत्यनीकस्तद्दाननिषेधकः सदक्षिण दिशि नरकतिर्यगादिरुत्पद्यते। दिक्षु मध्ये दक्षिणा दिक् अप्रशस्ता गतिषु नरकगतिः प

क्षयोः कृष्णपक्षः । ततोऽस्य दिगादिकमप्रशस्तमुक्तं । अन्यदपि अबोधिलाभादिकं योज्यं । (आगमिस्सनत्ति) सचाऽऽगामिकाले दुर्लभबोधिकः स्यादिति ॥ ५६ ॥

॥ टीका—तस्यच क्वचित्प्रयोजने समुत्पन्ने सति एकमपि पुरुषमाज्ञापयतोयावच्चत्वारः पंचवा पुरुषाअनुक्ताएव समुपतिष्ठंते । तेच किंकुर्वाणाएत द्वक्ष्यमाणमूचुः । तद्यथा। भणाज्ञापय स्वामिन्! धन्यावयं येन भवताप्येवमादिश्यंते किंकुर्मइत्यादिसुगमं । याव द्धृदयेप्सितमिति । तथा किंच ते युष्माकमास्यकस्य मुखस्य स्वदते स्वादु प्रतिभाति? यदिवा यदेवास्य भवदीयास्यस्य स्रवति निर्गछति तदेव वयं कुर्मइति । तथा तमेवेत्यादि । तमेव राजानं तथा क्रीडमानं दृष्ट्वा अन्येऽनार्याएवं वदंति । तद्यथा । देवः खल्वयंपुरुषस्तथा देवस्नातकोदेवश्रेष्ठोबहूनामुपजीव्यस्तथा तमेवंसंप्रतेक्षितया सदनुष्ठायिनं दृष्ट्वा आर्याविवेकिनः सदाचारवंतएवं ब्रुवते तद्यथाऽभिक्रांतक्रूरकर्मा खल्वयं पुरुषोहिंसादिक्रियाप्रवृत्तइत्यर्थः । तथा धूयते रेणुवद्वायुनासंसारचक्रवाले भ्राम्यते येन तद्धूतं कर्म । औणादिकोनक्प्रत्ययः । अतीव प्रभूतंधूतमष्टप्रकारं कर्म यस्य सोतिधूतस्तथाऽतीवात्मनः परैः पापकर्मभिः रक्षा यस्य सोत्यात्मरक्षस्तथा दक्षिणस्यां दिशि गमनशीलोदक्षिणगामुकः । इदमुक्तं भवति । योहि क्रूरकर्मकारी साधुनिंदापरायणस्तद्दाननिषेधकः सन् दक्षिणगामुकइत्युक्तं । इदमेवाह । (नेरइएइत्यादि) नरकेषु भवोनारकः कृष्णपक्षोस्यास्तीति कृष्णपाक्षिकस्तथा आगामिनि काले नरकाद्धृतोदुर्लभबोधिकश्चायं बाहुल्येन भविष्यतीति । इदमुक्तं भवति । दिक्षुमध्ये दक्षिणा दिग् शस्ता गतिषु नरकगतिः, पक्षयोः कृष्णपक्षः तदस्य विषयोस्येंद्रियानुकूलवर्तिनः परलोकनिस्पृहमतेः साधुप्रद्वेषिणोदानांतरायविधायिनोदिगादिकमशस्तं दर्शितमन्यदपि यदशस्तं तिर्यग्गत्यादिकमबोधिलाभादिकं च तद्योजनीयमस्येति । एतद्विपरीतस्य तु विषयनिःस्पृहस्य इंद्रियानुकूलस्य परलोकभीरोः साधुप्रशंसावतः सदनुष्ठानरतस्य दक्षिणगामुकत्वं सुदेवत्वं शुक्लपाक्षिकत्वं तथा सुमानुषतया तस्य सुलभबोधित्वमित्येवमादिकं सद्धर्मानुष्ठायिनः सर्वं भवतीति ॥ ५६ ॥

इच्चेयस्स ठाणस्स उठियावेगे अभिगिज्झंति अणुठियावेगे अभिगिज्झंति अभिजंजाउरा अभिगिज्झंति एसठाणे अणारिए अकेवले अपडिपुन्ने अणेयाउए असंसुध्धे असल्लगत्तणे असिद्धिमग्गे अमुत्तिमग्गे अनिवाणमग्गे अणिज्जाणमग्गे असवदुक्खपहीणमग्गे एगंतमिछे असाहु एसखलु पढमस्स ठाणस्स अधम्मपक्खस्स विभंगे एवमाहिए ॥५७॥

अर्थ-(इच्चेयस्सट्ठाणस्सउट्ठियावेगेके०) ए पूर्वोक्त स्थानक ऐश्वर्य लक्षण शृंगार मूल तेने कोइएक पाखंमीने मार्गे प्रवर्त्तता, परमार्थना अजाण, एवा पुरुष (अनिगिझंतिके०) वांछे, नियाणादिक चिंतवे, तथा वली (अणुट्ठियावेगेके०) कोइएक अनुब्रित गृहस्थ तेपण (अनिगिझंति के०) वांछे, (अनिझंझाउरा के०) तृष्णावंत लोभिया तदातुर थका ते राजानी पदवीने (अनिगिझंति के०) वांछे, (एसट्ठाणेअणारिए के०) ए स्थानक अनार्य छे, महा पुरुषने अनाचीर्ण, (अकेवलेके०) एने विषे केवल ज्ञान नथी ए कारण माटे अशुद्ध तथा (अप्पडिपुन्ने के०) अप्रतिपूर्ण सद्गुण रहित तथा पूर्णता रहित तथा (अणेयाउए के०) अन्याय प्रवर्तक एटले न्यायमार्ग जेमां नथी, (असंसुद्धे के०) मलयुक्त (असल्लगत्तणे के०) तथा शल्यनुं कापनार नथी, (असिद्धिमग्गेके०) ए स्थानक थकी सिद्धिनो मार्ग नथी, एटले ए स्थानक सर्वदुःखना क्षयनो करनार नथी, (अमुत्तिमग्गे के०) कर्मबंधनुं स्थानक छे. (अनिव्वाणमग्गे के०) असमाधिनुं स्थानक छे. (अणिज्जाणमग्गेके०) मोक्षने नजाणवानो मार्ग छे, (असव्वदुक्खपहीणमग्गे के०) सर्वथा सर्वदुःखना क्षयनो मार्ग नथी, एवुं ए स्थानकछे. (एगंतमिच्छे के०) ए एकांत मिथ्यात्वनुं स्थानकछे, एकारणे ए (असाहु के०) असाधुनो मार्गछे एसखलुके०) निश्चे थकी ए (पढमस्सट्ठाणस्स के०) प्रथम स्थानकनुं (अधम्मपक्खस्स (वभंगे के०) अधर्म पक्षना विभंग एटले विचार (एवमाहिए के०) एम कह्यो. ॥ ५७ ॥

॥ दीपिका-अस्योपसंहारमाह । इत्येतस्य स्थानस्य सावद्यरूपस्य एके उत्थिताः पाखंडाश्रिता (अनिगिझंति) लुभ्यंते लोभवशगाः स्युः । अनुष्ठितागृहस्थाअपि संतोलुभ्यंते (झंझाउरा) तृष्णातुरालुभ्यंते अतइदं स्थानमनार्यं अकेवलमशुद्धं अप्रतिपूर्णं गुणशून्यत्वात्तुच्छं अनैयायिकमन्यायवृत्तिकं असंशुद्धं समलं शल्यं मायानुष्ठानमकार्ये न शल्यकर्तनमशल्यकर्तनं । नविद्यते सिद्धेर्मार्गोयस्मिन् तदसिद्धिमार्गं नविद्यते मुक्तेर्मार्गोज्ञानादिकोयस्मिन् तदमुक्तिमार्गं नविद्यते निर्वाणस्य चित्तस्वास्थ्यस्य मार्गोयस्मिन् तत्तथा अनिर्वाणमार्गं न संसारनिर्याणमार्गरूपमित्यर्थः। न सर्वदुःखप्रक्षेपमार्गरूपं यस्मादेकांतेन मिथ्यादृशां असाधु असदाचारत्वात् । एषखलु प्रथमस्थानस्याधर्मपक्षस्य विभंगोविशेषः स्वरूपमिति यावत् आख्यातः कथितः ॥ ५७ ॥

॥ टीका-सांप्रतमुपसंजिघृक्षुराह । (इच्चेइयस्सेत्यादि) इत्येतस्य पूर्वोक्तस्य स्थानस्य ऐश्वर्यलक्षणस्य शृंगारमूलस्य संसारिकस्य परित्यागबुध्या एके केचन विपर्यस्तमतयः पापंडिकोत्थानेनोत्थिताः परमार्थमजानानाः (अनिगिझंतित्ति) आभिमुख्येन लुभ्यंते लोभ

वशगान्नवंतीत्यर्थः । तथा एके केचन सांप्रतेक्षिणस्तस्मात्स्थानादनुपस्थितागृहस्थाए व संतः (अनिगिझंतित्ति) फंफा तृष्णा तदातुराः संतोऽर्थेष्वत्यर्थं लुभ्यंते यतएवमतो दःस्थानमनार्यानुष्ठानपरत्वादनार्यं महापुरुषानुचीर्णं नवति तथा नविद्यते केवलमस्मि न्नित्यकेवलमशुद्धमित्यर्थः । तथेतरपुरुषाचीर्णत्वादपरिपूर्णं सद्गुणविरहात्तच्छमित्यर्थः । तथा न्यायेन चरति नैयायिकं न नैयायिकमनैयायिकमसन्न्यायवृत्तिकमित्यर्थः । तथा र गेलगेसंवरणे । शोननं लगनं संवरणं इंद्रियसंयमरूपं सल्लगस्तद्भावःसल्लगत्वंवा विद्यते सल्लगत्वमस्मिन्निव्यसल्लगत्वमिंद्रियासंवरणरूपमित्यर्थः । यदिवा शल्यवच्छल्यं मायानुष्ठा नकार्यं तजायति कथयति तच्छल्यगं यत्परिज्ञानं तन्नात्रेत्यशल्यगत्वमिति । तथा विद्यते सिद्धेर्मोक्षस्य विशिष्टस्थानोपलक्षितस्य मार्गोयस्मिंस्तदसिद्धिमार्गं तथा नविद्यते मुक्ते रशेषकर्मप्रच्युतिलक्षणायामार्गः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकोयस्मिंस्तदमुक्तिमार्गं तथा न विद्यतः परिनिर्वृतेः परिनिर्वाणस्यात्मस्वास्थ्योत्पत्तिरूपस्य मार्गः पंथा यस्मिन् स्थाने तदपरिनिर्वाणमर्गं तथा नविद्यते सर्वं डुःखानां शारीरमानसानां प्रक्षयमार्गः सडुपदेशा त्मकोयस्मिंस्तदसर्वडुःखप्रक्षीणमार्गं । कुतएवंनूतं तत्स्थानमित्याशंक्याह । (एगंतेत्या दि) एकांतेनैव तत्स्थानं यतोमिथ्यानूतं मिथ्यात्वोपहतबुद्धीनां यतस्तन्नवत्यतएवासा ध्वसद्वृत्तत्वान्नह्ययं सत्पुरुषसेवितः पंथा येन विषयांधाः प्रवर्ततइति । तदयं प्रथमस्य स्था नस्याधर्मपाक्षिकस्य पापोपादाननूतस्य विनंगोविनागोविशेषः स्वरूपमिति यावत् ॥५७॥

अहावरे दोच्चस्स ठाणस्स धम्मपरकस्स विनंग एव माहिज्जइ इह ख लु पाईणंवा पडीणंवा उदीणंवा दाहिणंवा संतेगइया मणुस्सा नवंति तं जहा आयरियावेगे अणारियावेगे उच्चागोयावेगे णीयागोयावेगे कायमं तावेगे हस्समंतावेगे सुवन्नावेगे डुवन्नावेगे सुरूवावावेगे डुरूवावेगे तेसिं चणं खेत्तवत्थूणि परिग्गहियाइं नवंति एसोआलावगो जहा पोंमरीए तहा णेतवो तेणेव आलावेण जाव सवोवसंता सवताए परिनिवुमंत्तिबेमि॥५८॥ एसठाणे आरिए केवले जाव सवडुरकपहीणमग्गे एगंतसम्मे साहु दोच्च स्स ठाणस्स धम्मपरकस्स विनंगे एव माहिए॥५९॥

अर्थ—हवे अपर वीजुं स्थानक धर्म पक्षनो विनंग एटले विचार कहियेंछेए. निश्चे आ जगत् मांहे पूर्वदिशियें, पश्चिमदिशियें, उत्तरदिशियें, अने दक्षिण दिशियें. अथवा विदि शियें, एवा कोइएक मनुष्यछे; ते कहेछे. एक आर्य, एक अनार्य, एक उंचगोत्रना उपना, एक नीचगोत्रना उपना, एक महोटी कायाना धणी, एक न्हानी कायाना धणी, एक

सारावर्ण वाला, एक मागा वर्ण वाला, एक सुंदर स्वरूपवान्, एक कुरूपवान्, तेने क्षेत्र एटले उघाम्नी जूमिका, अने वस्तु एटले घर हाट, प्रमुख एवो परिग्रह होय, इत्यादि (एसोआलावगोजहापोंमरीएतहाणेतव्वो के०) ए समस्त आलावो जेम पूर्वेना पौंमरीकाध्ययनमां कह्योढे तेमज जाणवुं, एटले "तेणेवअलावेणजावसव्वोवसंता सव्वत्ताएपरिनिव्वुमंत्तिबेमि" एटला सुधीनो पाठ पौंमरीक अध्ययनमांढे. ते प्रमाणे अहीं पण जाणी लेवुं. अर्थात् तेज आलावे ज्यां सुधी सर्वे प्रकारे उपशांत एटले कषायने जीपीने तथा सर्वे प्रकारे सर्वे पापस्थानकथकी उपशम्या. ए कारणे सर्वात्मा, सर्वे जीव उपर समजावे वर्त्तमान, शीतलीजूत थया. ए प्रमाणे श्रीसुधर्मस्वामि जंबूप्रत्यें कहेढे के ते आलावो सर्वे आहीं जाणवो. ॥ ५७ ॥ ए स्थानकने आर्य रूडुं जाणवुं. एने विषे केवल ज्ञान होय यावत् ए सर्वे डुःख क्षय करवानो मार्ग ढे, एकांत सम्यक्मार्ग, एकांत सम्यक्दृष्टीनो मार्ग ते कारणे ए साधुनुं स्थानक जाणवुं एटले बीजुं स्थानक धर्मपक्ष, तेनो विजंग एटले विचार एरीतें कह्यो. ॥ ५९ ॥

दीपिका-(अहावरेत्ति) अथापरोद्वितीयस्थानस्य धर्मपक्षस्य विजंगोविशेषएवमाख्यायते । तद्यथा (पाईणंति) प्राचीनं प्रतीचीनमुदीचीनं दक्षिणंवा दिग्जागमाश्रित्य संत्येके केचन कल्याणजाजः पुरुषाः । तद्यथा आर्या एके अनार्याइत्यादि यथा पुंडरीकाध्ययने तथेहापि सर्वं वाच्यं यावत्ते एवं सर्वपापस्थानेज्य उपशांताअतएव सर्वात्मतया परिनिर्वृता इत्यहं ब्रवीमि ॥५७॥ एतत्स्थानमार्यं महापुरुषाचरितं केवलमित्यादिप्राग्वद्विपरीतं ज्ञेयं । यावद्वितीयस्थानस्य धर्मपक्षस्य विजंगोविशेषआख्यातः ॥ ५९ ॥

टीका-सांप्रतं द्वितीयं धर्मोपादानजूतं पक्षमाश्रित्याह । (अहावरेइत्यादि) अथेत्य धर्मपाक्षिकस्थानादनंतरमयमपरोद्वितीयस्य स्थानस्य धर्मपाक्षिकस्य पुण्योपादानजूतस्य विजंगोविजागः स्वरूपं समाधीयते सम्यगाख्यायते । तद्यथा प्राचीनं प्रतीचीनमुदीच्यं दक्षिणंवा दिग्विजागमाश्रित्य संतिवि द्यंते एके केचन कल्याणपरंपराजाजः पुरुषामनुष्यास्तेच वक्ष्यमाणस्वजावानवंति । तद्यथेत्ययमुपप्रदर्शनार्थः । आर्याएके केचनार्यदेशोत्पन्नास्तथाऽनार्याः शकयवनशवरबर्बरादयइत्याद्येवं । यथा पौंडरीकाध्ययने तथेहापि सर्वं निरवयवं जणितव्यं एवं पूर्वोक्तेन प्रकारेण सर्वेज्यः पापस्थानेज्य उपशांतास्तथा अतएव सर्वात्मतयापरिनिर्वृताइत्यहमेवं ब्रवीमि ॥५७॥ तदेवमेतत्स्थानं कैवलिकं प्रतिपूर्णं नैयायिकमित्यादि प्राग्वद्विपर्ययेण नेयं । यावद्वितीयस्य स्थानस्य धार्मिकस्यैव विजंगोविजागः स्वरूपमाख्यातमिति ॥ ५९ ॥

अहावरे तच्चस्स ठाणस्स मिस्सगस्स विभंग एव माहिज्जइ जे इमे भवंति आरण्णिया आवसहिया गामणियंतिया कण्हुईरहस्सित्ता जाव ते तउविप्पमुच्चमाणा भुज्जो एलमूयत्ताए पच्चायंति एसठाणे अणारिए अकेवले जाव असव्वदुक्खपहीणमग्गे एगंतमिच्छे असाहु एसखलु तच्चस्स ठाणस्स मिस्सगस्स विभंगे एव माहिए ॥ ६० ॥

अर्थ–अथ हवे अपर त्रीजुं स्थानक मिश्र पक्षनो विचार एम कहेछे. (जेइमेभवंति के०) जे ए मिश्रस्थानकछे ते एने मिश्रस्थानक शा कारणे कहियें? तेमाटें विशेष कहेछे. अधर्म पक्षें मिश्रित जे धर्म पक्ष, ते कारणे एने मिश्र पक्ष कहियें. परंतु, अधर्मना बाहुल्य पणा थकी, ए अधर्म पक्षज जाणवो. यद्यपि मिथ्यादृष्टि पण केटली एक विरति करेछे, तथापि ते चित्तने अशुद्ध पणे, अने परमार्थने अजाण पणे, तथा अभिनव पित्तनाभावने उदयें, साकर मिश्रित दूधपाननी पेठें, तथा उखर क्षेत्रमां मेघ वृष्टिनी पेठें ते धर्म पण तेनो फलदायक नथाय. ते कारणे मिश्र पक्ष, विशेष अधर्म पक्षने मलतोज छे. (आरण्णिया के०) जे आरण्यक एटले कंदमूल फलाहारी वृक्षने मूलें वसता (आवसहियाके०) कोइएक पानडानी झुंपडी करीने रहे, (गामणियंतिया के०) आजीविका चलाववा निमित्तें ग्रामने समीपे रहे, (कण्हुईरहस्सित्ता के०) कोइएक कार्यने विषे रहस्यना करनार, एवा तापसादिक पूर्वोक्त जेहोय ते मिश्रपक्षवाला जाणवा. (जावतेतउविप्पमुच्चमाणाके०) यावत् यद्यपि ए कांहींएक काय क्लेश करे तथापि ते आसुरी किल्बिषिया उने स्थानके जइ उपजे. ते स्थानक थकी आयुष्यने क्षयें चवीने, (भुज्जो के०) वली मनुष्य भव पामे. तो, (एलमूयत्ताएके०) बेहेरा, मुंगा, आंधला, जन्मांध, (पच्चायंति के०) एवा थाय. एरीतें चतुर्गतिक संसार मांहे परिभ्रमण करे. ए कारणे ए स्थानक अनार्य एटले महापुरुषने अनाचरणीय छे, एने विषे केवलज्ञान नथी, यावत् सर्व दुःखना क्षयनुं कारक ए स्थानक नथी ए मार्ग एकांत मिथ्यात्वनुं स्थानक, माटे ए असाधुनो पंथ जाणवो. ए निश्चें त्रीजुं स्थानक जे मिश्रपक्ष, तेनो विचार एरीतें कह्यो. ॥६०॥

॥ दीपिका–अथापरस्तृतीयस्थानस्य मिश्रकाख्यस्य विभंगोविभागः कथ्यते । अत्र चाधर्मपक्षयुक्तोधर्मपक्षइति मिश्रउच्यते । तत्राधर्मस्येह बहुत्वादयमधर्मपक्षवज्ज्ञेयः । यतोमिथ्यादृशः कांचिज्जीवहिंसादिनिवृत्तिं कुर्वंति तथापि चित्ताशुद्धरभावाभ्नवीने पित्तोदये शर्करामिश्रक्षीरपानवत् उपरप्रदेशे वृष्टिवद्दा कार्यासाधकत्वान्निरर्थकतां याति सा । तथा मिथ्यात्वानुभवान्मिश्रपक्षोप्यधर्मपक्षएवेति दर्शयति । (जेइमेआरण्णिया) ये इमे

अरण्ये चरंतीत्यारण्यिकाः कंदमूलफलाशिनस्तापसाः आवसथोगृहं तेन चरंतीत्यावस थिकागृहिणः। यद्यप्येते कायक्लेशेन देवाः स्युस्तथापि आसुरीयेषु किल्बिषिकेषु उत्प द्यंते इत्यादि सर्वं पूर्वोक्तं वाच्यं। यावत्ततश्च्युतानरनवे एलमूकत्वेन प्रत्यायांति तदेतत्स्था नमनार्यमित्यादि पूर्ववत्। एषस्तृतीयस्थानस्य मिश्रकस्य विन्नंगोविचारोज्ञेयः ॥ ६० ॥

॥ टीका—सांप्रतं धर्माधर्मयुक्तं तृतीयस्थानमाश्रित्याह। (अहावरेत्यादि) अथापरस्तृतीय स्य स्थानस्य मिश्रकाख्यस्य विन्नंगोविन्नागः स्वरूपमाख्यायते। अत्र चाधर्मपक्षेण युक्तोऽधर्म पक्षोमिश्रइत्युच्यते। तत्राधर्मस्येह नूयिष्ठत्वादधर्मपक्षएवायं इष्टव्यः। एतडुक्तं नवति। यद्यपि मिथ्यादृष्टयः कांचित्तथाप्रकारां प्राणातिपातादिनिर्वृतिं विदधति तथाप्याशया शुध्दत्वादन्निनवे पित्तोदये सति शर्करामिश्रक्षीरपानवदूषरप्रदेशवृष्टिवद्विवक्षितार्थसाध कत्वान्निरर्थकतामापद्यते। ततोमिथ्यात्वानुनावात् मिश्रपक्षोप्यधर्मएवावगंतव्य इति। एतदेव दर्शयितुमाह ॥ (जेइमेनवंतीत्यादि) ये इमेऽनंतरमुच्यमानाअरण्ये चरंतीत्यार ण्यिकाः कंदमूलफलाशिनस्तापसादयोये चावसथिकाआवसथोगृहं तेन चरंतीत्यावस थिकागृहिणस्तेच कुतश्चित् पापस्थानान्निवृत्ताअपि प्रबलमिथ्यात्वोपहतबुध्दयस्ते यद्य प्युपवासादिना महता कायक्लेशेन देवगतयः केचन नवंति तथापि ते आसुरीयेषु स्था नेषु किल्बिषिकेषूत्पद्यंतइत्यादि सर्वं पूर्वोक्तं नणनीयं यावत्ततश्च्युतामनुष्यनवं प्रत्याया ता एलमूकत्वेन तमोंधतया जायंते। तदेवमेतत्स्थानमनार्यमकेवलमसंपूर्णमनैयायि कमित्यादि यावदेकांतमिथ्यानूतं सर्वथैतदसाध्विति। तृतीयस्थानस्य मिश्रस्यायं विन्नं गोविन्नागः स्वरूपमाख्यातमिति ॥ ६० ॥

अहावरे पढमस्स ठाणस्स अधम्मपरकस्स विन्नंगे एव माहिज्जइ इह खलु पाईणंवा संतेगतिया मणुस्सा नवंति गिहत्था महिच्छा महारंन्ना महापरि ग्गहा अधम्मिया अधम्माणुया अधम्मिठा अधम्मरकाई अधम्मपावजी वि अधम्मपलोई अधम्मवलज्जणा अधम्मसील समुदायारा अधम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति ॥ ६१ ॥

अर्थ—हवे वली ए पूर्वे त्रण प्रकार जे कह्या, तेज प्रकार विशेषें करी कहेछे. तेमां प्रथम स्थानक कहेछे. अथ हवे अपर प्रथम स्थानक अधर्म पक्षनो स्वरूप विचार आवीरीते कहेछे. आजगत्मांहे निश्चें पूर्वादिक चारदिशिने विषे कोइएक मनुष्य छे ते केवा छे तोके. (महिच्छा के०) महोटी जेनी इच्छाछे, चित्तनो अविरतिछे, तथा (महारं

ना के०) कृष्यादिक महाआरंभना करनार, तथा (महापरिग्गहा के०) क्षेत्र, धन, धान्य, द्विपद. चतुःपदादिक, अनेक परिग्रहवंत अधर्मिक अधर्मानुय एटले अधर्मनीज अनुमोदना करनारा, (अधम्मिठा के०) अधर्मज जेने इष्टछे वल्लनछे, (अधम्मरकाई के०) अधर्मना बोलनार, अथवा अधर्मथीछे ख्याति जेनी, अधर्मे करी आजीविकाना करनार, एटले अधर्मेज जीवे, प्राण धारण करे. तथा अधर्मज देखे तथा अधर्मनेज अंगीकार करवा प्रलोके एटले देखे, ते अधर्म प्रलोइ केवाय. (अधम्मवलज्ञणाके०) अधर्मने विषे राचे, अधर्मशील एटले अधर्मज जेनो स्वनावछे, (समुदायारा के०) तथा चारनो समुदाय छे जेनो (अधम्मेणंचेववित्तिंकप्पेमाणाविहरंति के०) तथा जे अधर्मे करीनेज वृत्ति कल्पीने विचरे. कालक्षेप करे ॥६१॥

॥ दीपिका—उक्तानि अधर्मधर्ममिश्रस्थानानि । अथ तेषां स्थानिनोऽनिर्धार्यंते । अथवा पूर्वोक्तमेव प्रकारांतरेण विशिष्टतरमाह । अथापरः प्रथमस्थानस्य धर्मपक्षस्य विनंगोविनागएवमाख्या यते । (इहखलुइत्यादि) एते च प्रायोगृहस्थाएव स्युरित्याह । (गिहत्था) गृहस्थाः (महेच्छा) महारंनाः महापरिग्रहाअधर्मेण चरंत्याधार्मिकाअधर्मानुज्ञाः अधर्मिष्टानिस्त्रिंशाः अधर्माख्यायिनोऽधर्मवादिनः अधर्मजीविनोऽधर्मप्रलोकिन अधर्मे प्रकर्षेण रज्यंतइत्यधर्मप्ररक्तकाः अधर्मशीलः समुदाचारोयत्किंचनकारित्वं येषां ते तथा अधर्मेण वृत्तिं जीविकां कल्पयंतः कुर्वंतोविहरंति तिष्ठंति । पापानुष्ठानमाह ॥६१॥

॥ टीका—उक्तान्यधर्मधर्ममिश्रस्थानानि । सांप्रतं तदाश्रिताः स्थानिनोऽनिर्धार्यंते । यदिवा प्राक्तनमेवान्येन प्रकारेण विशेषिततरमुच्यते । तत्राद्यमधर्मस्थानकमाश्रित्याह (अहावरेइत्यादि) अथापरोन्यः प्रथमस्य स्थानस्याधर्मपाक्षिकस्य विनंगोविनाग आख्यायते (इहखलु इत्यादि) सुगमं । यावन्मनुष्याएवंस्वनावानवंतीति । एते च प्रायोगृहस्थाएवं नवंतीत्याह । (महेच्छाइत्यादि) महती राज्यविनवपरिवारादिका सर्वातिशायिनी स्वच्छांतःकरणप्रवृत्तिर्येषां ते महेच्छास्तथा महानारंनोवहनोष्ट्रमंडलिकागंत्रीप्रवाहकृपिपिंडपोषणादिकोयेषां ते महारंनाः । ये चैवं नूतास्ते महापरिग्रहाधनधान्यद्विपदचतुष्पदवास्तुक्षेत्रादिपरिग्रहवंतः क्वचिदप्यनिवृत्ताअतएवाधर्मेण चरंतीत्यधर्मिकास्तथा धर्मिष्ठानिस्त्रिंशकर्मकारित्वादधर्मबहुलास्ततश्चाधर्मे कर्तव्ये अनुज्ञाअनुमोदनं येषां ते नवंत्यधर्मानुज्ञा एवमधर्ममाख्यातुं शीलं येषां ते तथा एवमधर्मप्रायजीविनस्तथा अधर्ममेव प्रविलोकयितुं शीलं येषां ते नवंत्यधर्मप्रविलोकिनस्तथा धर्मप्रायेषु कर्मसु प्रकर्षेण रज्यंतइति अधर्मरक्ताः । रलयोरैक्यमिति रस्य स्थाने लकारोऽत्र कृत इति ।

तथाऽधर्मशीलाअधर्मस्वभावास्तथाऽधर्मात्मकः समुदाचारोयत्किंचनानुष्ठानं येषांते भवं त्यधर्मशीलसमुदाचारास्तथाऽधर्मेण पापेन सावद्यानुष्ठानेनैव दहनांकननिर्लांछनादिके कर्मणा वृत्तिर्वर्तनं कल्पयंतः कुर्वाणाविहरंतीति कालमतिवाहयंति ॥ ६१ ॥

हण छिंद भिंद विगत्तगा लोहियपाणी चंमा रुद्दा खुद्दा साहस्सिया उ क्कंचण वंचण मायाणियडि कूडकवडसाइ संपउगबहुला दुस्सीला दुव्व या दुप्पडियाणंदा असाहु सव्वाउ पाणाइवायाउ अप्पडिविरया जाव ज्जीवाए जाव सव्वाउ परिग्गहाउ अप्पडिविरया जाव जीवाए सव्वउ कोहाउ जाव मिछादंसणसल्लाउ अप्पडिविरया सव्वाउ एहाणुम्रण म हण वस्त्रगंधविलेवणसद्द फरिसरसरूव गंधमल्लालंकाराउ अप्पडिवि रया जावजीवाए सव्वाउ सगड रहजाण जुगगिल्लिथिल्लिसिया संदमा णिया सयणासणजाण वाहणभोगभोयणपविछरविहीउ अप्पडिविरया जावजीवाएसव्वाउ कयविक्कयमासद्धमासरूवगसंववहाराउ अप्पडिवि रया जावजीवाए सव्वाउहिरस्स सुवस्सधणधस्स मणिमोत्तियसंखसिलप्प वालउ अप्पडिविरया जावजीवाए सव्वाउ कूडतुलकुडमाणाउ अप्पडिवि रया जावजीवाए सव्वाउ आरंभ समारंभाउ अप्पडिविरया जावजीवाए उ सव्वाउ करणकाराणाउ अप्पडिविरया जावजीवाए सव्वाउ पयण पायाणाउं अप्पडिविरया जावजीवाए सव्वाउ कुट्टणपिट्टणतज्जणताड णवहबंधपरिकिलेसाउ अप्पडिविरया जावजीवाए जेआवस्से तहप्प गारे सावज्जा अबोहिया कम्मंता परपाणपरियावणकरा जे अणारि एहिं कज्जंति ततो अप्पडिविरया जावजीवाए ॥ ६२ ॥

अर्थ—हवे एनो अधर्माचार कहेछे. ते पोते अधर्मी छता बीजाने पण एवा आदेश आपे ते कहेछे, के, (हण के०) अरे एने हणो, (छिंद भिंद के०) कर्णादिक, छेदी शूलादिकें करी भेदी, (विगत्तगाके०) एनां चर्म उखेडो, इत्यादिक कहीने प्राणीउने दुःखना उ पजावनार थाय. ए कारणे (लोहियपाणी के०) सर्वकाल लोहीयें करी हाथ राताछे परंतु तेउ जीवोने हणीने कोइ वारें हाथ पण धोवे नहीं, (चंमा के०) तीव्रक्रोध, (रुद्दा के०) रौद्र ध्यान, शौचरहितकर्मना करनार, (खुद्दाके०) क्षुद्र दुष्ट, भूंमा, (साहस्सि

या के०) अणविमास्या कार्यना करनार, (उक्कंचण के०) तथा शूलिकारोपणने विषे ऊर्ध्वमहोटुं करवुं (वंचण के०) वंचणा. एटले परने नगवानी वुधिराखे, जेम अजयकुमारने चंडप्रद्योतनी गणिकायें वंच्यो, तेनी पेरें वंचक, (मायाणियडि के०) वंचवानीबुद्धियें वाणीयानी पेरें मायानियड नियड एटले बगनी वृत्तियें वंचवानें अर्थे साधुने स्वरूपे रहे जेम उदायिराजाने चलेईकियें वंच्यो, मास्यो, तेनी पेरें जाणी लेवुं (कूडके०) मृषा बोलवुं. (कवडसाइ के०) कपट एटले रूप पालटवुं तथा नापादिक परावर्ति एटले प्रकारें (संपउग के०) तथा ते तोलानु न्यूनाधिक करवुं तथा नेलसेलनुं करवुं इत्यादिक व्यापार जाणवो (बहुला के०) घणाछे बहुलकर्मी, ते उपर योगी सन्यासीनी कथा जाणवी. (डुस्सीला के०) डुःशील (डुवया के०) डुष्टव्रत वाला (डुप्पडियाणंदा के०) डुःखें आनंद पमाडियें जेने डुःखें हर्ष पमाडियें डुराराध्य इत्यर्थः एवा (असाहु के०) असाधु (सव्वाउ के०) सर्वथा प्रकारें (पाणाइवायाउ के०) प्राणातिपात थकी, (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या, (जावजीवाए के०) जावजीवसुधी (जावसव्वाउपरिग्गहाउ के०) यावत् सर्वथा परिग्रह थकी, (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या (जावजीवाए के०) जावजीव सुधी (सव्वतोकोहाउ के०) सर्वथा प्रकारें क्रोध थकी (जावमिछादंसणसल्लाउ के०) यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य थकी, (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या. (सव्वाउके०) सर्वथा (एहाणुचणके०) स्नान, (मद्दणके०) मर्दन. करावधुं (वस्रके०) वर्ण ते अंबीर, गुलाल, (गंधके०) सुवास, (विलेवणके०) विलेपन करवा थकी, (सद्दके०) शब्द, गीत, वाद्यादिकना (फरिसके०) आठ जातना स्पर्श, (रूवके०) रूप, सुंदराकारादिक, (गंध के०) कर्पूरादिकनी सुगंध (मल्लालंकाराउ के०) माला, अलंकार ते थकी, (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या (जावजीवाए के०) जावजीव सुधी (सव्वाउ के०) सर्वथा (सगड के०) शकट एटले गाडां (रह के०) रथ (जाणके०) वहेल (जुग के०) पुरुषे उपाड्यो आकाश यान तथा (गिल्लि के०) मोली, अथवा उंटना पलाण (थिल्लिके०) हस्तिना पलाण, (सिया के०) शिबिका. ते देशविशेष प्रसिद्ध यान शिबिका (संदमाणियाके०) शिबिका देशविशेषें अन्यजातिछे: (सयणासणजाणवाहण के०) पर्यंकादिक आसयान वाहनादिकना (नोग के०) नोग थकी तथा (नोयण के०) नोजन (पविछर के०) घर वखारो (विहीउ के०) तेना विस्तारथी (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या (जावजीवाए के०) जावजीवसुधी (सव्वाउ के०) सर्व (कयविक्कय के०) क्रय वक्रय एटले लेवो वेचवो (मासद्धमासरूवग के०) माप अर्धमाप रूपादिक (संववहाराउ के०) इत्यादिक लेवा देवा रूप व्यापार थकी (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या. (जावजीवाए के०) जावजीवसुधी सर्वथा हिरण्य एटले रु

पुं, तथा सुवर्ण, धन, धान्य, चिंतामणी प्रमुख मणी, तथा मौक्तिक दक्षणावर्त्त शंख, राजपट, प्रवालादिक परिग्रह, तेथकी अनिवृत्त्या; तथा जावजीवसुधी सर्वे कूडां तोलां, कूडां मापथकी, नथी निवृत्या; तथा जावजीव सुधी सर्वे आरंभ जें कर्षणादिक, तथा समारंभ विशेष, तेथकी नथी निवृत्या, तथा जावजीवसुधी सर्वथा करण करावण थकी नथी निवृत्या, तथा जावजीव सुधी पचन ते पोतें पचाववानुं करे, तथा पचावण ते बीजा पासें पचाववानुं करावे, ए क्रिया थकी नथी निवृत्या, तथा सर्व कुटण पिट्टन तर्जन अंगुलीयेंकरी तर्जना करे चपटीयादिकें करी ताडन करे, वध, बंधन करे, इत्यादिक जीवने क्लेषना कारण थकी नथी निवृत्या, तथा जावजीव सुधी जे बीजां, तथाप्रकारें पाठल कह्यां एवा सपापकारी परपीडानां करनार, सावद्य कर्म, (अबोहिया के०) बोधबीजना नसाडनार एवां (कम्मता के०) कर्म, परजीवने परितापना करनार जे अनार्य पुरुषोने करवा योग्य, तेथकी पण जावजीव सुधी निवृत्या नथी. ॥ ६२ ॥

॥दीपिका-(हणछिंदत्ति) जहि दंडादिना, छिंधि कर्णादिकं, भिंधि शूलादिना, एवं परोपदेशं ददते । किंभूताः विकर्तकाः प्राणिनां चर्मापनेतारस्तेनैव लोहितपाणयश्चंडारौद्राः निस्त्रिंशाः क्षुद्राः साहसिकाअविचारितकारिणः उत्कुंचनवंचनमायानिकृतिकूटकपटादिभिः सहातिसंप्रयोगोगार्ध्यं तेन बहुलाः । तत्र शूलाद्यारोपणार्थमूर्ध्वं कुंचनमुत्कुंचनं वंचनं प्रतारणं । यथाऽभयकुमारः प्रद्योतगणिकाभिर्धर्मवंचनया वंचितः । माया, वंचनबुद्धिः प्रायोवणिजामिव निकृतिस्तु बकवृत्त्या देशभाषावेषादिविपर्ययकरणं कूटं तु लामानादेर्न्यूनाधिककरणं, कपटं यथाषाढभूतिना वेषपरावृत्त्याचार्योपाध्यायसंघाटकात्मार्थं चत्वारोमोदकालब्धाः एवं मायायुतानराः । पुनः किंभूताः । दुःशीलाश्चिरं परिचिताअपि शीघ्रं विसंवदंतोडुष्टव्रताडुःखेन प्रत्यानंद्यंते हर्षंतइति डुष्प्रत्यानंद्याअसाधवः पापाः सर्वतः प्राणातिपातादप्रतिविरतालोकनिंद्यादपि ब्राह्मणघातादेरनिवृत्ताइति सर्वग्रहणं । एवं यावज्जीवं सर्वतोमृषावादाऽदत्तादानमैथुनपरिग्रहादप्रतिविरताः । एवं सर्वेभ्यः क्रोधमानमायालोभेभ्यस्तथा प्रेमद्वेषकलहाभ्याख्यानपैशुन्यपरिवादाऽरतिरतिमायामृषावादमिथ्यादर्शनशल्यादिभ्योऽविरताः स्नानोद्वर्तनवर्णकविलेपनशब्दस्पर्शरूपरसगंधमाल्यालंकारादप्रतिविरताः सर्वतः शकटरथादेर्यानादिकात्प्रविस्तरविधेः परिकरादप्रतिविरताः । अत्र शकटरथादिकमेव यानं शकटरथयानं युग्यंतरोत्क्षिप्तं चाकाशयानं (गिल्लित्ति) दोलिका (थिल्लित्ति) तुरगद्वयनिर्मितं यानं (संदमाणियत्ति) शिबिकाविशेषः । तथा सर्वतः क्रयविक्रयाभ्यां योमाषकार्धमाषकरूपकनाणकादिभिः संव्यवहारस्तस्मादविरताः सर्वस्माद्धिरण्यसुवर्णधान्यमणिमौक्तिकशंखशिलाप्रवालादिपरिग्रहात् कूटतुलाकूटमानात्

कृष्यादेः स्वयंकरणमारंभः परेण कारयणं समारंभस्तस्मात्, पचनपाचनतः कंमनकुट्टन पिट्टनतर्जनताडनवधबंधादिभिर्यः परिक्लेशस्तस्मादनिवृत्ताये चान्ये तथाप्रकाराः सावद्याः कर्मसमारंभाअबोधिकाबोधिनाशकाः परप्राणपरितापनकरायेऽनार्यैः क्रियंते ततोनिवृत्तायावज्जीवयेति ॥ ६१ ॥

॥ टीका—पापानुष्ठानमेव लेशतोदर्शयितुमाह । (हणबिंदभिंदेत्यादि) स्वतएव हननादिकाः क्रियाः कुर्वाणाअपरेषामप्येवमात्मकमुपदेशं ददति । तत्र हननं दंडादिभिस्तत्कारयंति तथा छिंधि कर्णादिकं, भिंधि शूलादिना, विकर्तकाः प्राणिनामजिनापनेतारोऽतएव लोहितपाणयस्तथा चंडारौद्रानिस्त्रिंशाः क्षुद्राः क्षुद्रकर्मकारित्वात्तथा साहसिकाअसमीक्षितकारिणस्तथा उत्कुंचनवंचनमायानिकृतिकूटकषायादिभिः सद्दातिसंप्रयोगोगाढर्थ्य तेन बहुलास्तत्प्रचुरास्ते तथा तत्रोर्ध्वं कुंचनं शूलाद्यारोपणार्थमुत्कुंचनं । वंचनं प्रतारणं । तद्यथाऽभयकुमारः प्रद्योतगणिकाभिर्धार्मिकवंचनया वंचितः । माया, वंचनबुद्धिः प्रायोवणिजामिव । निकृतिस्तु बकवृत्त्या कुंर्कुटादिकरणेन दंभप्रधानवणिक् श्रोत्रियसाध्वाकारेण परवंचनार्थं गलकर्तकानामिवावस्थानं । देशभाषानेपथ्यादिविपर्ययकरणं कपटं । यथा आषाढभूतिना नटेन वा परापरवेषपरावृत्त्याचार्योपाध्यायसंघाटकात्मार्थं चत्वारोमोदकाअवाप्ताः । कूटंतु कार्षापणतुलाप्रस्थादेः परवंचनार्थं नानाविधकरणं । एतैरुत्कुंचनादिभिः सद्दातिशयेन प्रयोगोयदिवातिशयेन द्रव्येण कस्तूरिकादिना परस्य द्रव्यस्य संप्रयोगः सोतिसंप्रयोगस्तद्बहुलास्तत्प्रधानाइत्यर्थः । उक्तंच सोहोइ सातिजोगो, दव्वं जं छादियसुदवेसु । दोसगुणावयणेसुय, अत्थविसंवाइणं कुणइ ॥ १ ॥ एते चोत्कुंचनादयोमायापर्यायाईषद्भेदादिवत् कथंचित्क्रियाभेदेपि द्रष्टव्याः । तथा दुष्टं शीलं येषांते दुःशीलाश्चिरमुपचरिताअपि क्षिप्रं विसंवदंति । दुःखानुमेयादारुणस्वभावाइत्यर्थः । तथा दुष्टानि व्रतानि येषांते तथा । यथा मांसभक्षणव्रतकालसमाप्तौ प्रभूततरसत्वोपघातेन मांसप्रदानमन्यदपि नक्तभोजनादिकं दुष्टव्रतमिति तथान्यस्मिन् जन्मांतरे मधुमद्यमांसादिकमभ्यवहरिष्यामीत्येवमज्ञानांधाजन्मांतरविधिद्वारेण सनिदानमेव व्रतं गृह्णंति, तथा दुःखेन प्रत्यानंद्यंते दुष्प्रत्यनंद्याः । इदमुक्तं भवति । तैरानंदितेनापरेण केनचित्प्रत्युपकारेप्सुना गर्वाध्मातादुःखेन प्रत्यानंद्यंते । यदिवा सत्यप्युपकारे प्रत्युपकारभीरवोनैवानंद्यंते प्रत्युत शवतयोपकारे दोषमेवोत्पादयंति । तथा चोक्तं । प्रतिकर्तुमशक्तिष्ठानराः पूर्वोपकारिणां ॥ दोषमुत्पाद्य गच्छंति मद्गूनामिव वायसाः ॥ १ ॥ यतएवमतोऽसाधवस्ते पापकर्मकारित्वात् तथा यावज्जीवं यावत्प्राणधारणेन सर्वस्मात्प्राणातिपातादप्रतिविरतालोकनिंद्यादपि ब्राह्मणघातादेरविरताइति । सर्वग्रहणं सर्वस्मादपि कूटसाक्ष्यादेरप्रतिविरताइति । तथा सर्वस्माद

पि कूटसाक्ष्यादेरप्रतिविरताइति । तथा सर्वस्मात्स्त्रीबालादेः परद्रव्यापहरणादविरतास्तथा सर्वस्मात्परस्त्रीगमनादेर्मैथुनादविरताएवं सर्वस्मात्परिग्रहाद्योनिपोषकादप्यविरताएवं सर्वेभ्यः क्रोधमानमायालोनेभ्योऽविरतास्तथा प्रेमद्वेषकलहाभ्याख्यानपैशुन्यपरपरिवादाऽरतिरतिमायामृषावादमिथ्यादर्शनशल्यादिभ्योऽसदनुष्ठानेभ्योयावज्जीवं ये प्रतिविरतान्नवंति। तथा सर्वस्मात्स्नानोन्मर्दनवर्णकविलेपनशब्दस्पर्शरूपरसगंधमाल्यालंकारात्कामांगान्मोहजनितादप्रतिविरतायावज्जीवयेति । इहच वर्णकग्रहणेन वर्णविशेषापादकं लोध्रादिकं गृह्यते । तथा सर्वतः शकटरथादेर्यानविशेषादिकात्प्रतिविस्तरविधेः परिकररूपात्परिग्रहादप्रतिविरताः । इहच शकटरथादिकमेव यानं शकटरथयानं युग्यं पुरुषोत्क्षिप्तमाकाशयानं (गिल्लित्ति) पुरुषद्वयोत्क्षिप्ता जोल्लिका । (थिल्लित्ति) वेसरादिद्वयविनिर्मितोयानविशेषः तथा (संदमाणियत्ति) शिबिकाविशेषएव । एतदेवमन्यस्मादपि वस्त्रादेः परिग्रहाडुपकरणनूतादविरतास्तथा सर्वतः सर्वस्मात्क्रयविक्रयाभ्यां करणनूताभ्यां योमापकार्धमाषकरूपकार्षापणादिभिः पण्यविनिमयात्मकः संव्यवहारस्तस्मादविरतायावज्जीवयेति । तथा सर्वस्माद्धिरण्यसुवर्णादेः प्रधानपरिग्रहादविरतास्तथा कूटतुलाकूटमानादेरविरतास्तथा सर्वतः कृषिपाशुपाल्यादेर्यत्स्वतः करणमन्येन च यत्किंचित्कारयति तस्मादविरतास्तथा पचनपाचनतस्तथा कंडनकुट्टनपिट्टनतर्जनताडनबंधादिना यः परिक्लेशः प्राणिनां तस्मादविरताः । सांप्रतमुपसंहरति । ये चान्ये परपीडाकारिणः सावद्याः कर्मसमारंनाअबोधिकाबोधकारिणस्तथा परप्राणपरितापनकरागोग्रहबंदीग्रहग्रामघातात्मकायेऽना यैः क्रूरकर्मभिः क्रियंते ततोऽप्रतिविरतायावज्जीवयेति ॥ ६२ ॥

से जहा णामए केइ पुरिसे कलममसूरतिलमुग्गमासनिप्फावकुलत्थआलिसंदग पलिमंथगमादिएहिं अयंते कूरे मिछादंमं पउंजंति एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाए तित्तिरवट्टगलावगकवोतकविंजलमियमहिसवराहगाहगोहकुम्मसिरिसिवमादिएहिं अयंते कूरेमिछादंमं पउंजंति जावियसे बाहिरिया परिसा नवइ तंजहा दासेइवा पेसेइवा नयएइवा नाइल्लेइवा कम्मकरएइवा नोगपुरिसेइवा तेसिंपियणं अन्नयरंसिवा अहालहुगंसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंमं निवत्तेइ तंजहा इमंदंमेह इमंमुंमेह इमंतज्जेह इमंतालेह इमंअडुयबंधणं करेह इमंनियलबंधणं करेह इमंहडिबंधणं करेह इमंचारगबंधणं करेह इमंनियलजुयलसंकोडियमोडियं करेह इमंहत्थछिन्नयं करेह इमंपायछिन्नयं करेह इमं कन्नछिन्नयं

करेह इमंनक्कउठसीसमुहछिन्नयं करेह वेयगछहियं अंगछहियं इमंपुक्का प्फोडियं करेह इमंणयणुप्पाडियं करेह इमंदंसणुप्पाडियं वसणुप्पाडियं जि न्नुप्पाडियं उल्लंबियं करेह घसियं करेह घोलियं करेह सूलाइयं करेह सूला न्निन्नयं करेह खारवत्तियं करेह वप्नवत्तियं करेह सीहपुछियंगं करेह वसन्नपुछियंगं करेह दवग्गिदह्ढयंगं कागणिमंसखावियंगं नत्तपा णनिरुद्धगं इमं जावजीवं वहबंधणं करेह इमं अन्नयरेणं असुन्नेणं कु मारेणं मारेह ॥ ६३ ॥

अर्थ—हवे वली बीजा प्रकारें अधर्मिक पुरुषनो विशेष कहेछे. यथादृष्टांतें नामएवं संन्नावनायें कोइएक पुरुष. कलम एटले वटाणा, चणा, मसूरनी दाल, तल, मग मास एटले अडद, निप्फाव एटले वाल, (कुलछ के०) तुवर, (आलिसंद पलिमंथग मादिएहिं के०) चवथ, कालाचणा, आदेलेइने जे धान्य विशेषछे तेने प न पाचनादिक क्रियायें करी पोताने तथा परने अर्थें (अयंते के०) अयत्नवता निर्दय नावें (कूरेके०) क्रूरपणे डुष्ट थको (मिछादंमंपउंजंति के०) मिथ्या दंम प्रयूजे (वमेव के०) एरीते (तहप्पगारे के०) तथा प्रकारें पूर्वोक्त जे (पुरिसजाए के०) पुरुषज ति छे ते निर्दय पणे त्तितर, वर्त्तक, लावक, कपोतपक्षी, कपिंजलपक्षी, मृग, पामो, सूवर मयूर, गौ नकुलादिक, जलचर घो,काचबो, अने नूजपुरी सर्प इत्यादिक प्राणीने विषे अर्थ अथवा अनर्थी थको यत्नविना निर्दय नावे क्रूर डुष्ट थकोमिथ्यादंम प्रयूजे;एवा पुरु ने परिवार पण एवोज सांपडे "यथा राजा तथा प्रजा" इतिवचनात् ते देखाडेछे (जावियसेबाहिरियापरिसान्नवइ के०) जेपण तेनी बाहेरनी परिषदा होय (तंजह के०) ते कहेछे (दासेइवा के०) ए दास आपणी दासीनो पुत्रछे (पेसेइवा के०) प्रेक्षक काम काज उपने ज्यां त्यां मोकलवुं (नयएइवा के०) नृत ते मजूरीनो करन र, तथा (नाइल्लेइवा के०) नागीक, पष्ठादिक नागें कर्षणादिकने विषे प्रवर्त्ते, (कम्मक रएइवा के०) कामनो करनार प्रसिद्ध ते कर्मकर कहियें (नोगपुरिसेइवा के०) स्वतः नोगने मार्टे राखेलो दास तेपण बाहेरनी परिषदा मांहे कोइ रूडो पुरुष होय. (तेसि पियणं के०) तेनो पण (अन्नयरंसिवा के०) अन्य कोइ एकनो (अहालहुगंसिके० यथा शब्दादिक सांनलेछते पछी तेनो एवो न्हानो (अवराहंसिके०) अपराध उपने छ ते नायकना दासादिकपण (सयमेवगुरुयंदंमंनिवत्तेइके०) पोतें तेने मह्होटो दंम करे (तंजहा के०) ते केवा दंम करे. ते कहेछे (इमंदंमेह के०) एने दंमो, एनुं स

स्व अपहरी ल्यो, (इमंमुंमेह के०) एने सर्वमुंमन करावो (इमंतक्रेह के०) एने अंगुलीयें करी तर्जना करो, (इमंतालेह के०) एने चिपटे करी ताडन करो, (इमंअडयंबंधणंकरेहके०) एने पठवाडे बाहु करीने बंधने बंधन करो, (इमंनियलबंधणंकरेहके०) एना हाथमां बेडी नाखीने बंधन करो, (इमंहडिबंधणंकरेह) एने हडनुं बंधन करो, (इमंचारगबंधणंकरेह के०) एने नाकसी बंधन करो, (इमंनियलजुयलसंकोडियमोडियंकरेहके०) एने बेडीना युगलें करी संकोच करो, मोडिय एटले अंगोपांग नंग करी मरडो, अथवा एना हाथ पग संकोचीने बांधो, (इमंहबछिन्नयंकरेह के०) एना हाथ छेदन करो, (इमं पायछिन्नयं करेह के०) एना पग छेदन करो (इमंकन्नछिन्नयंकरेह के०) एमज एना कान छेदन करो, (इमंनक्कउठसीसमुहछिन्नयंकरेहके०) एनुं नाक छेदन करो, एना होठ, एनुं मस्तक, एनुं मुख, छेदन करो, (वेयगछहियंअंगछहियं के०) एनुं वेदछेद करो, एना जीवतांज हैयाने छेदो, कापो, एम करो. (इमंपुरकाप्फोडियंकरेहके०) एना शरीरनी खालने उपाडो एम करो, (इमंणयणुप्पाडियंकरेह के०) एनी आंख उखेडो एटले चक्षुकाढो, एम करो. (इमंदंसणुप्पाडियंवसणुप्पाडियंजिप्नुप्पाडियंउलंबियंकरेह के०) एना दांत काढो, वृषण काढो, एनी जीन काढो. एने उंचो बांधोएने कूप, पर्वत नदीने नाखो एम करो, (घसियंकरेह के०) एने पग बांधीने घसो, (घोलियं करेहके०) एने विषे आंबानी पेठें घोलो, (सूलाइयंकरेहके०) एने शूली उपर आरोपण करो, (सूलाभिन्नयंकरेहके०) एने त्रिशूलें नेद करो, (खारवत्तियं करेहके०) एने शस्त्रें करी छेदीने लूणनुं पाणी सींचो (वज्झवत्तियं करेह के०) एनुं शरीर माने करी, कार्शे छेदो. (सीहपुछियंगं करेह के०) एने सिंहने पुंछडे बांधो, (वसनपुछियंगं करेह के०) एने बलदने पुंछडे बांधो (दवग्गिंदढयंगं के०) एने दावानल मांहे बालो, (कागणिमंसखावियंगंके०) एने काक पक्षीनु मांस काढीने खवरावो, तथा एनुं पोतानुं मांस काढीने एनेज खवरावो, (नत्तपाणनिरुद्धगंके०) एने नात पाणीनो निरोध करो, (इमंजावजीवंवहबंधणंकरेह के०)एने जावजीव सुधी बांधी मूको, वध, बंधन करो, (इमंअन्नयरेणंअसुनेणंकुमारेणंमारेहके०)एम एने बीजा केटलाएक अशुन मारें करीने मारो, इत्यादिक एवा दंम तेने आपे.६३

॥ दीपिका–अधार्मिकपदमेव सविस्तरमाह । (सेजहेत्ति) तद्यथा । नामसंनावने । संनाव्यंते अत्र नवे केचिदेवंनूतानराः ये कलममसूरादिषु पचनादिक्रियया ऽयताअयतवंतोनिष्क्रियाः क्रूराः मिथ्या अपराधं विना दोषमारोप्य दंडोमिथ्यादंडस्तं प्रयुंजंति । तथा एवमेव प्रयोजनं विनैव तथाप्रकारानिर्दयाः पुरुषास्तित्तिरिवर्तकादिप्राणिव्यपताः क्रूरकर्माणोमिथ्यादंडं प्रयुंजंति तेषां परिकरोपि तादृशः स्यादित्याह (जावियसेत्ति) यापिच

तेषां बाह्या पर्षद्भवति । तद्यथा दासः स्वदासीसुतः प्रेष्यः प्रेषणयोग्यः भृतकोमूल्यगृहीतः भागिकः कृष्यादौ सभागग्राही कर्मकरः प्रतीतः भोगपरोनायकाश्रितः कश्चित् ते दासादयोऽन्यतरस्मिन्स्वल्पेऽप्यपराधे स्वयं गुरुतरं दंडं प्रयुंजंति । सच नायकस्तेषां दासादीनां यथा लघौ स्वल्पेऽपराधेपि गुरुदंडं वक्ष्यमाणं प्रयुंक्ते । तद्यथा इमं दासं दंडयत यूयमित्यादि सुगमं । यावदिममन्यतरेणाऽशुभेन कुत्सितमारेण मारयतइति॥ ६३ ॥

॥ टीका–पुनरन्यथा बहुप्रकारमधार्मिकपदं प्रतिपिपादयिषुराह । (सेजहाणामएइत्यादि) तद्यथेत्युपदर्शनार्थोनामशब्दः संभावनायां संभाव्यते । अस्मिन्विचित्रे संसारे केचनैवंभूताः पुरुषाः केवलमसूरतिलमुद्गादिषु पचनपाचनादिकया क्रियया स्वपरार्थमयताअप्रयत्नवंतोनिष्कृपाः क्रूरामिथ्यादंडं प्रयुंजंति । मिथ्यैवाऽनपराधिष्वेव दोषमारोप्य दंडोमिथ्यादंडस्तं विदधति । तथैवेमे प्रयोजनं विनैव तथाप्रकाराः पुरुषानिष्करुणा जीवोपघातनिरतास्तित्तिरवर्तकलावकादिषु जीवनप्रियेषु प्राणिष्वयताः क्रूरकर्माणोदंडं प्रयुंजंति। तेषां च क्रूरधियां “यथा राजा तथा प्रजा” इति प्रवादात् परिवारोपि तथाभूतएव भवतीति । तथा दर्शयितुमाह । (जावियसेइत्यादि) यापिच तेषां बाह्या पर्षद्भवति। तद्यथा । दासः स्वदासीसुतः प्रेष्यः प्रेषणयोग्योभृत्योभृत्यदेश्योभृतकोवेतवेनोदकाद्यानयनविधायी तथा भागिकोयः षष्ठंशादिलाभेन कृष्यादौ व्याप्रियते कर्मकरः प्रतीतस्तथा नायिकाश्रितः कश्चिद्भोगस्तदेवं ते दासादयोऽन्यस्य लघावप्यपराधे गुरुतरं दंडं प्रयुंजंति प्रयोजयंतिच । सच नायकस्तेषां दासादीनां बाह्यपर्षद्भूतानामन्यतरस्मिंस्तथा लघावपराधे शब्दश्रवणादिके गुरुतरं दंडं वक्ष्यमाणं प्रयुंक्ते । तद्यथा । इमं दासं प्रेष्यादिकंवा सर्वस्वापहारेण दंडयत यूयमित्यादि सूत्रसिद्धं यावदिममन्यतरेणाशुभेन कुत्सितमारेण व्यापादयत यूयं ॥ ६३ ॥

जावियसे अभिंतरिया परिसा भवइ तंजहा मायाइवा पियाइवा भायाइवा भगिणीइवा भज्जाइवा पुत्ताइवा धूताइवा सुण्हाइवा तेसिंपियणं अन्नयरंसि अहालहुगंसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंमं णिवत्तेइ सीउदगवियडंसि उबोलित्ता भवइ जहा मित्तदोसवत्तिए जाव अहिए परंसि लोगंसि तेडक्कंति सोयंति भूरंति तिप्पंति पिट्टंति परितप्पंति ते डुक्कणसोयणभूरणपिट्टणपरितप्पणवहबंधणपरिकिलेसाउ अपडिविरया भवंति ॥ ६४ ॥

अर्थ–(जावियसेअभिंतरियापरिसाभवइके०) जे पण तेनी अभ्यंतरनी परिषदा होय

जहा के०) ते कहेछे. माता, अथवा पिता, अथवा नाइ, नगनी, स्त्री, पुत्र, बेटी, पुत्रनीस्त्री, इत्यादिक माहेली परिषदावालामांथी कोइकनो पण अजाण पणे यथा न्हानो सरखो अपराध उपने थके पोतेंज तेने महोटो दंम करें, मारे, शीतकालें तेना शरीरने टाढापाणीमां बोले, एवा अकार्य करें, ए जेम पूर्वें मित्रदोष प्रत्ययिक क्रियास्थानक कह्युंछे, तेमज अहींयां पण जाणीलेवुं. एवा दंमनो करनार पुरुष, ते यावत् आ लोकने विषे अहित कारी अने परलोकने विषे आत्माने अहितकारी थाय ते अनेक जीवने डुःख उपजावे, शोक उपजावे, जूरावे, तपावे, पीटे, परिताप आपे, ते घणा जीवोने डुःखदायक शोकनो करनार गर्हा, निंदा करावनार, पीटीने पीडानो उपजावनार, परिताप करावनार, वध करावनार, बंधन करावनार, एवा महोटा क्लेश उपजाववाना कर्म थकी, जावजीव नथी निवृत्या एवो थका होय ॥ ६४ ॥

॥ दीपिका—यापि च तेषामभ्यंतरा पर्षद्भवति मातापित्रादिका मित्रदोषःप्रत्ययिका ख्यदशमक्रियास्थानवज्ज्ञेयं यावदहितोऽस्मिन् लोके। ते क्रूरकर्माणः स्वल्पापराधिनामपि गुरुतरदंडकरणाडुःखयंति शोकयंति याव द्वधबंधपरिक्लेशादप्रतिविरताभवंति ॥ ६४ ॥

टीका—यापिच क्रूरकर्मवतामभ्यंतरा पर्षद्भवति । तद्यथा । माता पित्रादिका मित्रदोष प्रत्ययिकक्रियास्थानवद्ज्ञेयं यावदहितोयमस्मिन् लोके इति । तथाहि । आत्मनोऽपथ्यकारि परस्मिन्नपि लोके । तदेवं ते मातृपित्रादीनां स्वल्पापराधिनामपि गुरुतरदंडापादनतोडुःखमुत्पादयंति तथा नानाविधैरुपायैस्तेषां शोकमुत्पादयंति शोकयंतीत्येवं ते प्राणिनां बहुप्रकारपीडोत्पादकाः याव द्वधबंधपरिक्लेशादप्रतिविरताभवंति ॥ ६४ ॥

एवमेव ते इच्छिकामेहिं मुच्छिया गिद्धा गढिया अज्झोववन्ना जाव वासाइं चउपंचमाइं छद्दसमाइवा अप्पतरोवा नुज्जतरोवा कालं नुंजित्तु नोग नोगाइं पविसुइत्ता वेरायतणाइं संचिणित्ता बहूइं पावाइं कम्माइं उस्सन्नाइं संनारकडेण कम्मणा से जहा णामए अयगोलइवा सेलगोलइवा उदगंसि पक्खित्ते समाणे उदगतलमइवइत्ताइ अहे धरणितल पइठाणे नवइ एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाते वज्जबहुले धूतबहुले पंकबहुले वेरबहुले आप्पत्तियबहुले दंनबहुले णियडिबहुले साइबहुले अयसबहुले उस्सन्नतसपाणघाती कालमासे कालंकिच्चा धरणितल मइवइत्ताइ अहे णरगतलपइठाणे नवइ ॥ ६५ ॥

अर्थ–एरीतें ते पूर्वोक्त स्वभाव वालो पुरुष निर्दय थको बाह्याभ्यंतर एवी पोतानी जे प रिपदा तेने पण पीडानो करनार एवो, छतो स्त्रियादिकना काम भोगने विषे मूर्छित गृद्ध ए टले लोभी, भोगने विषे पोतें गुंथाणो थको परम आसक्त छतो, यावत् चार, तथा पांच, तथा सात, तथा दश वर्ष एम अल्प काल अथवा घणोकाल सुधी भोगववा योग्य भोग भोगवीने, घणा जीवोनी साथे अनेक जातना वैर उपजावी वैरभावना स्थानकनो संचय करीने, ज्यां प णापापरूप हिंसादिक क्रूर कर्म संभारीकरी करेला कर्मने प्ररेतो एवा छतो, नरक रूप स्था नकने पामे. (सेजहाणामए के०) ते यथा दृष्टांते जेम (अयगोलइवा के०) लोहनो गोलो, (सेलगोलइवा के०) पाषाणनो गोलो, तेने (उदगंसिपक्खित्तेसमाणे के०) पाणीना द्रहमां हे अथवा नदी तलाव मांहे नाख्यो थको, (उदगतलमइवइत्ताइ के०) उपलुं तलुं अति क्रमीने पाणीना तलामां जइ पेसे, (अहेधरणितलपइट्ठाणेभवइ के०) नीचे धरतिना त लाने विषे जइ बेसेछे. (एवमेव के०) एरीतें (तहप्पगारे के०) तथा प्रकारें, ए पूर्वोक्त प्र कारना दुष्ट निर्दय नास्तिक वादि प्रमुख एवा जे (पुरिसजाते के०) पुरुष जातिछे ते (वज्ज बहुलेके०) घणा पापरूप कर्म, (धूतबहुलेके०) घणी कर्मरूपरज (पंकबहुलेके०) घणो क र्मरूप कादव, (वेरबहुले के०) घणो जीवोनी साथे वैरभाव, (अप्पत्तियबहुले के०) अविश्वासलायक एवुं मननुं दुर्ध्यान (अयसबहुले के०) घणो अपयश (दंभबहु ले के०) घणुं कपट परने वंचवा पणु छे जेमां, (णियडिबहुले के०) घणो वेष तथा भाषानु पलटाववुंछे जेमां (साइबहुले के०) सातिशय द्रव्य साथें गुणहीन पुरुषोना द्रव्यनुं मेलाववुं (उस्सन्नंतसपाणघाती के०) प्रायः त्रस प्राणी जीवनो घात करनार, ते (कालमासेकालंकिच्चा के०) कालने अवसरें काल करीने (धरणितलमइवइत्ताइ के०) पृथ्वीना तलाने सहस्र योजन प्रमाण अतिक्रमि जाये; जइने, (अहेणरगतल पइट्ठाणेभवइ के०) नीचें नरकना तलियाना स्थानकने विषे तेनुं पडवुं थायछे. ॥६५॥

॥दीपिका–(एवमेवत्ति) एवमेव ते निर्दयाः स्त्रीप्रधानेषु कामेषु मूर्छिता गृद्धाग्रथिता अध्युपपन्नायावद्वर्षाणि चतुःपंचषट्सप्त वा दशवाल्पतरंप्रभूततरं वा कालं भोगान् भु क्त्वा वैरायतनानि वैरानुबंधान् प्रविसूय उत्पद्य बहूनि पापकर्माणि संचित्य वर्धयित्वा उत्पन्नं प्रायः संभारकृतेन कर्मणा प्रेर्यमाणानरकतलप्रतिष्ठानाः स्युः । यथाऽयोगोलः शिलागोलकोवा उदकक्षिप्तउदकतलमतिवर्त्य उल्लंघ्याधोधरणितलप्रतिष्ठानोभवति एवमे व सनरोवज्रं वध्यमानं कर्म तद्बहुलः धूतं प्राग्बद्धं कर्म तत्प्रचुरः पंकबहुलः पंकपाप वैरबहुलः (अप्पत्तियत्ति) मनसोदुर्ध्यानं दंभोमायया परवंचनं निकृतिर्भाषावेषादिपरा वर्त्तेन परद्रोहबुध्धिः सातिशयेन द्रव्येणहीनद्रव्यस्य मेलनं सातिः तद्बहुलः अयशोबहु

नः प्रायस्त्रसघाती कालमासे स्वायुःक्षये कालं कृत्वा धरणितलं रत्नप्रभादिकायाः पृथिव्यास्तलमतिलंघ्याऽधोनरकतलप्रतिष्ठानः स्यात् ॥ ६५ ॥

॥ टीका—तेच विषयासक्ततया एतत्कुर्वंतीत्येतद्दर्शयितुमाह । (एवमेवइत्यादि) एवमेव पूर्वोक्तस्वभावाएवं ते निष्कृपानिरनुक्रोशाबाह्याभ्यंतरपर्षदोरपि कर्णनासाविकर्तनादिना दंडपातनस्वभावाः स्त्रीप्रधानाः कामाः स्त्रीकामाः यदिवा स्त्रीषु मदनकामविषयभ्रतासु कामेषुच शब्दादिषु इच्छाकामेषु मूर्छितागृद्धाग्रथिताअध्युपपन्नाः । एते च शक्रपुरंदरादिवत्पर्यायाः कथंचिद्भेदं वाश्रित्य व्याख्येयाः । तेच भोगासक्ताव्यपगतपरलोकाध्यवसायायावद्वर्षाणि चतुःपंचषट् सप्तवा दशवाल्पतरं वा कालं भुक्त्वा भोगासक्ततयाच परपीडोत्पादनतो वैरायतनानि वैरानुबंधाननुप्रसूयोत्पाद्य विधाय तथा संचयित्वा संचिंत्योपचित्य बहूनि प्रभूततरकालस्थितिकानि क्रूराणि क्रूरविपाकानि नरकादिषु यातनास्थानेषु क्रकचपाटनशाल्मल्यवरोहणतप्तत्रपुपानात्मकानि कर्माण्यष्टप्रकाराणि बद्धस्पृष्टनिधत्तनिकाचनावस्थानि विधाय तेनच संभारकृतेन कर्मणा प्रेर्यमाणास्तत्कर्मगुरवोवा नरकतलप्रतिष्ठानाभवंतीत्युत्तरक्रियायापादितबहुवचनरूपयेति संबंधः । अस्मिन्नेवार्थे सर्वलोकप्रतीतं दृष्टांतमाह । (सेजहाणामएइत्यादि) तद्यथानामायोगोलकोऽयस्पिंडः शिलागोलकोवृत्तात्मशकलं बोदके प्रक्षिप्तः समानसलिलतलमतिवर्त्यातिलंघ्याधोधरणीतले प्रतिष्ठानोभवति । अधुना दार्ष्टांतिकमाह । (एवमेवेत्यादि) यथासावयोगोलकोवृत्तत्वाच्छीघ्रमेवाधोयात्येवमेव तथाप्रकारः पुरुषजातः । तमेव लेशतोदर्शयति । वज्रवद्वज्रं गुरुत्वात्कर्म तद्बहुलस्तत्करणप्रचुरस्तथा बध्यमानकर्मगुरुरित्यर्थः । तथा धूयतइति धूतं प्राग्बद्धं कर्म तत्प्रचुरः । पुनः सामान्येनाह । पंकयतीति पंकं पापं तद्बहुलस्तथा । तदेव कारणतोदर्शयितुमाह । वैरबहुलो वैरानु बंधप्रचुरस्तथा (पत्तियंति) मनसोदुष्प्रणिधानं तत्प्रधानस्तथा दंभोमायया परवंचनं तदुत्कटस्तथा निकृतिर्मायावेषभाषापरावृत्तिच्छद्मना परद्रोहबुद्धिस्तन्मयस्तथा सातिबहुलइतिसातिशयेन द्रव्येणापरस्य हीनगुणस्य द्रव्यस्य संयोगः सातिस्तद्बहुलस्तत्करणप्रचुरस्तथाऽयशोश्लाघासद्वृत्ततया निंदा यानि यानि परापकारभूतानि कर्मानुष्ठानानि विधत्ते तेषु तेषु कर्मसु करचरणच्छेदनादिषु अयशोभाग्भवतीति । सएवंभूतः पुरुषः कालमासे स्वायुषः क्षये कालं कृत्वा पृथिव्यारत्नप्रभादिकायास्तलमतिवर्त्य योजनसहस्रपरिमाणमतिलंघ्य नरकतलप्रतिष्ठानोऽसौ भवति ॥ ६५ ॥

तेणं णरगा अंतोवट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिया णिच्चंधकारतमसा ववगयगहचंदसूरनक्खत्तजोइसप्पहा मेदवसामंसरुहिरपूयपडलचिक्खलालित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा कण्हा

अगणिवन्नाभा कक्खडफासा दुरुहियासा असुभा णरगा असुभा णरए सु वेयणाउ ॥ ६६ ॥

अर्थ—(तेणंणरगाके०) ते नरकनुं स्वरूप कहेछे. (अंतोवट्टा के०) सीमंतादिक नरकावासा माहेली कोरें वाटलाआकारेछे, (बाहिंचउरंसा के०) बाहेर चारखुणाछे. (अहेखुरप्पसंगणसंठिया के०) नीचें सजायानी धारने आकारें संस्थितछे एटले रह्याछे (णिच्चंधकारतमसा के०) नित्य सर्वकाल मेघ छायानी पेठें, कृष्णपक्षनी रात्रीनी पठें, महाअंधकारे युक्तछे बहुल अंधकारछे. (ववगयचंदसूरगहनरकत्तजोइसप्पहा के०) बुधादिक ग्रह, चंद्रमा, सूर्य, नक्षत्र, ज्योतिष्य प्रकाश, ते थकी व्यपगत एटले रहितछे. (मेदवसामंसरुहिरपूयपडलचिरकल्लित्ताणुलेवणतला के०) मेद, वसा, मांस, रुधिर, परसेवो, तेना पडल एटले समूह तेना कादवें करी अनु लिप्तछे जेना भूमितल एवाछे, एटले जे एकवार लिपीयें तेने लिप्त कहियें अने जे वारंवार लिपीयें तेने अनुलिप्त कहियें, (असुईवीसापरमदुब्भिगंधाकसहा के०) अशुचि बीभत्सविष्टायें खरड्या कुत्सित एटले मांससमान दुर्गंध, खराब कृष्णवर्ण वाला (अगणिवन्नाभाके०) मशाणनो अग्नि, तथा धम्या लोहना अग्निनी ज्वालाउना जेवा वर्ण थाय ते समान आकारछे जेनो, जे अत्यंत कठोर, सहन करता अत्यंत दुःसहछे (कक्खसफासादुरुहियासा. असुभके०) दुःखे सहन थाय एवा खरखरा कर्कश फरशछे जेने विषे, एवा अशुभ (णरगा के०) नरकने विषे (असुभ णरए सुवेयणाउ के०) महा अशुभ वेदना प्रवर्त्तेछे. ॥ ६६ ॥

॥ दीपिका—नरक स्वरूपमाह । ते नरकाअंतर्वृत्ताबहिश्चतुरस्राः अधश्च क्षुरप्रसंस्थानस्थिताः । एतच्च संस्थानं पुष्पावकीर्णानां तेषामेव प्रचुरत्वात् । आवलिकां गतास्तु वृत्तत्र्यस्रचतुरस्रसंस्थानाएव तथा नित्यांधकारतमसा भृशं तमोबहुलाः व्यपगतग्रहचंद्रसूर्यनक्षत्रज्योतिष्पथाः । मेदवसामांसरुधिरपूयपटलैर्लिप्तानि अनुलेपनप्रधानानि तलानियेषां ते तथा । तथा अशुचयोविस्राः कुथितमांसादिलिप्तत्वात् परमदुरभिगंधाः कृष्णाग्निवर्णाभाः कर्कशस्पर्शादुःखेनाधिसह्यंते यतोऽशुभास्तत्र नरकेषु अशुभादुःसहावेदनाः ॥ ६६ ॥

॥ टीका—नरकस्वरूपनिरूपणमाह । (तेणमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे । ते नरकाः सीमंतकादिकाबाहुल्यमंगीकृत्यांतर्मध्ये वृत्ताबहिरपि चतुरस्राअधश्च क्षुरप्रसंस्थानसंस्थिताः । एतच्च संस्थानं पुष्पावकीर्णानाश्रित्योक्तं तेषामेव प्रचुरत्वात् । आवलिकाप्रविष्टास्तु वृत्तत्र्यस्रचतुरस्रसंस्थानाएव भवंति । तथा नित्यमेवांधतमसं येषु ते नित्यांधतमसाः । क्वचित्पाठोनित्यांधकारतमसाइति । मेघावच्छिन्नांबरतलकृष्णपक्षरजनीवत् तमो

बहुलास्तथा व्यपगतोग्रहसूर्यचंद्रज्योतिःपथोयेषां ते तथा । पुनरप्यनिष्टापादनार्थं तेषा मेव विशेषणान्याह । (मेदवसेत्यादि) डुष्कृतकर्मकारिणां ते नारकास्तद्दुःखोत्पादनार्थैवं नूतान्नवंति । तद्यथा । मेदवसामांसरुधिरपूयादीनां पटलानि संघास्तैर्लिप्तानि पिच्छिलीकृ तान्यनुलेपनतलान्यनुलेपनप्रधानानि तलानि येषां ते तथा अशुचयोविष्ठासृक्क्लेदप्रधान त्वादतएव विश्राः कुथितमांसादिकल्पकर्दमावलिप्तत्वात् । एवं परमडुर्गंधाः कुथितगो मायुकलेवरादपि असह्यगंधास्तथा कृष्णाग्निवर्णानारूपतः । स्पर्शतस्तु कर्कशः कठिनोवज्र कंटकादप्यधिकतरः स्पर्शोयेषां ते तथा किंबहुनाऽतीव डुःखेनाधिसह्यंते । किमिति । यत स्ते नरकाः पंचानामपींद्रियार्थानामशोजनत्वादशुनास्तत्रच सत्वानामशुनकर्मकारिणामु दग्रदंडपातिनांच वज्रप्रचुराणां तीव्राअतिडुःसहवेदनाः शारीराः प्राडुर्नवंति ॥ ६६ ॥

णोचेव णरएसु नेरइया णिद्दायं तिवा पलायंतिवा सूइंवा रतिंवा धीतिं वा मतिंवा उवलनंते तेणं तत्र उज्जलं विउलं पगाढं कडुयं कक्कसं चंमं डुक्खं डुग्गं तिव्वं डुरुहियासं णेरइया वेयणं पच्चणुन्नवमाणा विहरंति ॥६७॥

अर्थ—(णोचेवणरएसुरनरइया के०) पणते नरकने विषे जे नारकी जीवोढे ते एटलावा नां पामता नथी शुं नथी पामता ? तोके (णिद्दायंतिवा के०) निद्रा नथी पामता, (पलायंतिवाके०) घणी निद्रा जे प्रचला ते पण नथी पामता, (सूइंवाके०) श्रुति एटले विशेष ज्ञाननी स्मृति तेपण नथी पामता, (रतिंवा के०) चित्तने विषे रति पामता नथी, (धतिंवा के०) विशेष धैर्य धृतिने पण नथी पामता, तथा (मतिंवा के०) बुद्धिने पण (उवलनंते के०) पामे नहीं (तेणंतत्रउज्जलं के०) ते नारकी ते नरकने विषे प्रवर्त्तमान थका उज्वली केतां तीव्र उत्कृष्ट (विउलं के०) विस्तीर्ण (पगाढं के०) आकरी, (कडुयं के०) कडवी, (कक्कसं के०) कर्कश, (चंमं के०) रौद्र, (डुःक्खं के०) डुःखनुं कारण, (डुग्गंतिव्वं के०) तीव्र डुर्ग, तीक्ष्ण, (डुरुहियासं के०) डुःखे सहन करवा योग्य (णेरइयावेयणं के०) नरकने विषे नारकीने वेदनाने (पच्चणुन्नवमाणाविहरंतिके०) नोगवता थका विचरेढे. काल अतिक्रमण करेढे ते उपर दृष्टांत कहेढे. ॥ ६७ ॥

॥ दीपिका—(णोचेवत्ति) तेषु नरकेषु वेदनानिनूता न निद्रायंते न प्रचलायंते ईषन्नि द्रामपि नगढंतीत्यर्थः । श्रुतिंवा रतिंवा धृतिंवा मतिंवा नोपलनंते ते नारकास्तत्र उज्वला मुत्कटां विपुलां प्रगाढां कटुकां कर्कशां चंडां डुःखरूपां तीव्रां डुरधिसह्यां नरकवेदनां प्र त्यनुनवमानास्तिष्ठंति ॥ ६७ ॥

॥ टीका–तयाच वेदनयाभिभूतास्तेषु नरकेषु नारकानैवाक्षिनिमेषमपि कालं निद्रायं ते नाप्युपविष्टाद्यवस्थाश्रक्षिसंकोचनरूपामीषन्निद्रामवाप्नुवंति । नह्येवंभूतवेदनाभिभूतस्य निद्रालाभोभवतीति दर्शयति । तामुज्वलां तीव्रानुभावेनोत्कटामित्यादि विशेषणविशिष्टां यावद्वेदयंत्यनुभवंतीति ॥ ६७ ॥

से जहाणामए रुक्खसिया पव्वयग्गे जाए मूले छिन्ने अग्गे गरुए ज ओणित्तं जओ विसमं जओडुग्गं तओपवडंति एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाए गप्नातोगप्नं जम्मातोजम्मं माराओमारं णरगाओ णरगं डुक्खाओ डुक्खं दाहि णगामिए णेरइए कण्हपक्खिए आगमिस्साणं डुल्लभबोहिएयावि भवइ एसठाणे अणारिए अकेवले जाव असव्वडुक्खपहीणमग्गे एगंतमिच्छे असाहू पढमस्स ठाणस्स अधम्मपक्खस्स विभंगे एव माहिए ॥६८॥

अर्थ–(सेजहाणामए के०) ते यथा दृष्टांते नाम एवी संभावनाये जेम कोइएक (रुक्खसिया के०) वृक्ष होय, (पव्वयग्गेजाए के०) पर्वतने अग्रे उपनो (मूलेछिन्ने के०) मूल मांहेथी छेद्यो (अग्गेगरुएके०) अग्रे भारी एवो छतो ते वृक्ष (जओणित्तं जओविसमं के०) ज्यां ज्यां नीचा खाडानु स्थानक होय, ज्यां त्यां विषम, समान नही, (जओडुग्गंके०) ज्यां ज्यां डुर्गम कष्टस्थान होय, (तओपवडंतिके०)त्यां ते वृक्ष उतावलो पडे. (एवमेवतहप्पगारे के०) एदृष्टांते तथा प्रकारना डुष्ट असाधु कर्मकारी 'पुरुष जाति ते कर्मरूपी वायरे प्रेर्यो छतो उतावलो नीचो नरकगतिमां जइ पडे; फरी त्यां थकी उद्वर्त्यो थको फरी गर्भ थकी गर्भ, जन्म थकीजन्म, मरण थकी मरण पामे, नरकथकी नरक पामे, डुःख थकी वली डुःख पामे, एरीते दक्षणदिशिनो जनारो, नारकी, कृष्णपक्षी ते दीर्घसंसार पणाने लीधे आगमिक कालें डुर्लभ बोधि थाय ए स्थानक अनार्य अकेवल यावत् जेमां सर्वडुःख थकी छुटवानो मार्ग नथी एकांत मिथ्यात्व असाधुनो मार्ग जाणवो ए प्रथम स्थानक अधर्म पक्षनो विचार एम कह्यो. ॥ ६८ ॥

॥ दीपिका–(सेजहत्ति) तद्यथा नामकश्चिद्वृक्षः पर्वताग्रे जातोमूले छिन्नः शीघ्रं य या निम्नं नीचं स्थानं ततः पतति एवमसावसाधुरपि नरके पतति ततोप्युद्वृत्तो गर्भाद्ग र्भं याति एवं न तस्य किंचित्त्राणं भवति यावदागामिन्यपि कालेऽसौडुर्लभ बोधिः स्यात् (ए सठाणत्ति) तदेतत् स्थानमनार्यं यावदेकांतमिथ्यारूपमसाधु । तदेवं प्रथमस्याधर्मपाक्षि कस्य स्थानस्य विभंगोविभागः समाख्यातः ॥ ६८ ॥

॥ टीका–एवं तावदयोगोलपाषाणदृष्टांतः शीघ्रमधोनिमज्जनार्थप्रतिपादकः प्रदर्शितो ऽधुना शीघ्रपातार्थप्रतिपादकमेवापरं दृष्टांतमधिकृत्याह । (सेजहाणामएइत्यादि) तद्यथा नाम कश्चिद्वृक्षः पर्वताग्रे जातोमूले छिन्नः शीघ्रं यथा निम्नं पतति एवमसावप्यसाधुकर्म कारी तत्कर्मवातेरितः शीघ्रमेव नरके पतति ततोप्युदृतोगर्नाज्जन्मवश्यं याति न तस्य किं चित्राणं नवति यावदागामिन्यपि काले डुर्लनधर्मप्रतिपत्तिर्नवतीति । सांप्रतमुपसंहरति (एसगणेइत्यादि) तदेतत्स्थानमनार्यं पापानुष्ठानपरत्वाद्यावदेकांतमिथ्यारूपमसाधु । तदेवं प्रथमस्याधर्मपाक्षिकस्य स्थानस्य विनंगोविनागः स्वरूपमेव व्याख्यातः ॥ ६७ ॥

अहावरे दोच्चस्स ठाणस्स धम्म पक्खस्स विनंगे एव माहिज्जइ इह ख लु पाइणंवा संतेगतिया मणुस्सा नवंति तंजहा अणारंना अपरिग्ग हा धम्मिया धम्माणुया धम्मिठा जाव धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा वि हरंति सुस्सीला सुव्वया सुप्पडियाणंदा सुसाहु सव्वतो पाणातिवायाउ प डिविरया जावजीवाए जावजेयावन्ने तहप्पगारा सावज्जा अबोहिया कम्मंता परपाणपरियावणकरा कज्जंति ततोविपडिविरता जाव जीवाए॥६ए

अर्थ–अथ हवे बीजो स्थानक धर्म पक्षनो विचार कहियें बैयें. आजगत् मांहे नि श्चें पूर्वादिक दिशिने विषे कोइएक मनुष्य एवाछे ते कहेछे. निरारंनी, निःपरिग्रही धार्मि क धर्मानुगामि, धर्मज जेने इष्टछे. यावत् धर्मेकरी वृत्ति आजीविका करता थका विचरे छे. सुशील, सुव्रत, रूडा आनंद पामनारा, सुसाधु, तथा सुखसाध्य पदवीरूप गुणे क री विराजमान, ते पुरुष सर्वथा प्राणातिपात थकी निवृत्या, जावजीव सुधी यावत्. जे बीजा, तथा प्रकारनां पापकारी, सावद्यकर्म अबोधिना करनार बीजा प्राणीने परिताप ना करनार कार्य करियें, तेवा कार्य थकी पण निवृत्या छे. ॥ ६ए ॥

दीपिका–अथापरस्य द्वितीयस्थानस्य धर्मपक्षस्य विनंगः स्वरूपमेवमाख्यायते । य था प्राच्यादिदिक्षु मध्येऽन्यतरस्यां दिशि संति विद्यंते केचिन्मनुष्यानवंति । तद्यथा अना रंनाअपरिग्रहाधार्मिकाधर्मानुगाधार्मिष्ठाधर्मेणैव वृत्तिं कल्पयंतोविहरंति तथा सुशीलाः सुव्रताः सुप्रत्यानंदाः सुसाधवः सर्वस्मात्प्राणातिपाताद्विरतायावत्परिग्रहाद्विरताः । ये चान्ये तथाप्रकाराः सावद्याअबोधिकारिणः कर्मकाः कर्महेतवः परप्राणपरितापनकरा आरंनाक्रियंते ततोविरताः ॥ ६ए ॥

॥ टीका–अथापरस्य द्वितीयस्य विनंगोविनागः स्वरूपमेवं वक्ष्यमाणनीत्या व्याख्या

यते । तद्यथा (इहखलुइत्यादि) प्राच्यादिषु मध्येऽन्यतरस्यां दिशि संति विद्यंते ते वंभूतानवंतीति । तद्यथा । न विद्यते सावद्यआरंजोयेषांते तथा अपरिग्रहानिष्किंचन धर्मेण चरंतीति धार्मिकायावद्धर्मेणैवात्मनोवृत्तिं परिकल्पयंति तथा सुशीलाः सुव्रताः प्रत्यानंदाः सुसाधवः सर्वस्मात्प्राणातिपाताद्विरताएवं यावत्परिग्रहाद्विरताइति । तथा चान्ये तथाप्रकाराः सावद्याआरंजायावदबोधिकारिणस्तेन्यः सर्वेन्योपि विरताइति ॥६

से जहा णामए अणगारा जगवंतो इरियासमिया जासासमिया एसणासमिया आयाणजंममत्तणिखेवणासमिया उच्चारपासवणखेलसिंघाणजल्लपारिठावणियासमिया मणसमिया वयसमिया कायसमिया मणगुत्ता वयगुत्ता कायगुत्ता गुत्ता गुत्तिंदिया गुत्तबंजचारी अकोहा अमाणा अमाया अलोजा संता पसंता उवसंता परिणिवुमा अणासवा अग्गंथा ठिन्नसोया निरुवलेवा कंसपाइ वमुक्कतोया संखइव णिरंजणा जीवइव अपडिहयगती गगणतलंपिव निरालंवणा वाउरिव अपडिबंधा सारदसलिलइव सुद्धहियया पुक्करपत्तंइव निरुवलेवा कुम्मोइव गुत्तिंदिया विहगइव विप्पमुक्का खग्गविसाणंव एगजाया जारंमपरकीव अप्पमत्ता कुंजरोइव सोंमीरा वसजोइव जातत्थिमा सीहोइवदुद्धरिसा मंदरोइवअप्पकंप्पा सागरोइवगंजीरा चंदोइवसोमलेसा सूरोइव दित्ततेया जच्च कंचणगंचइव जातरूवा वसुंधराइव सव्वफासविसहा सुहुयहुयासणोविव तेयसा जलंता णत्थिणं॥७०॥तेसिंजगवंताण कत्तविपडिबंधेजवइ से पडिबंधे चउविहे पसते तं जहा अंमएइवा पाठांतरेबोमजेइवा पोयएइवा उग्गहेइवा पग्गहेइवा जन्नंजन्नंदिसं इछंति तन्नं तन्नं दिसं अपडिबद्धा सुइजूया अप्पलहुजूया अप्पग्गंथा संजमेणं तवसा अप्पाणं जावेमाणे विहरंति॥७१॥तेसिणं जगवंताणं इमा एतारूवा जाया माया वित्ती होत्था तंजहा चउत्थेजत्ते ठठेजत्ते अठमेजत्ते दसमेजत्ते डुवालसमे जत्ते चउदसमे जत्ते अद्धमासिएजत्ते मासिएजत्ते दोमासिए तिमासिए चाउम्मासिए पंचमासिए ठम्मासिए अउत्तरंचणं उक्खित्तचरया सिक्खित्तचरया उक्खित्तसिक्खित्तचरगा अंतचरगा पंतचरगा लूहचरगा समुदाणचरगा सं

सठ्ठचरगा असंसठ्ठचरगा तज्जातसंठ्ठचरगा दिठ्ठलाभिया अदिठ्ठला भिया पुठ्ठलाभिया अपुठ्ठलाभिया भिक्खुलाभिया अभिक्खुलाभिया अन्नायचरगा अन्नायलोगचरगा उवनिहिया संखादत्तिया परिमित पिंमवाइया सुद्धेसणिया अंताहारा पंताहारा अरसाहारा विरसाहारा लूहाहारा तुछाहारा अंतजीवी पंतजीवी आयंबिलिया पुरिमढिया विग इया अमज्जमंसा ससिणो णोणियामरसभोइ ठाणाइया पडिमाठाणा इया उक्कडुआसणिया णेसज्जिया वीरासणिया दंमायतिया लगंमसाइ णो अप्पाउडाअगत्तया अकंमुया अणिठुहा धुतकेसमंसरोमनहा सवगा यपडिकम विप्पमुक्का चिठ्ठंति॥७२॥तेणं एतेणं विहारेणं विहरमाणा बहुइ वासाइं सामन्नपरियागं पाउणंति बहुबहु आबाहंसि उप्पन्नंसिवा अणु प्पन्नंसिवा बहुइंभत्ताइं पच्चक्खाइ पच्चक्खाइत्ता बहुइं वासाइं अणसणाइ छेदिंति अणसणाइं छेदित्ता जस्सठाएकीरति नग्गभावे मुंमभावे अ राहाणभावे अदत्तंवणगे अछत्तए अणोवाहणए भूमिसेज्जा फलगसेज्जा कठ्ठसेज्जा केसलोए बंभचेरवासे परघरपवेसे लद्धाअलद्ध माणाअमा णणाउ हीलणाउ निंदणाउ खिंसणाउ गरहणाउ तज्जणाउ तालणाउ उ च्चावयागामकंटगा बावीसंपरीसहो वसग्गअहियासिज्जंति तमठ्ठंआरा हंति तमठ्ठ आराहित्ता चरमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं अणंत अणुतरं निवाघातं निरावरणं कसिणं पडिपुन्नं केवलवरणाणदंसणसमुप्पाडेंति समुप्पाडेंतित्ता ततोपछा सिज्झंतिबुज्झंति मुच्चंति परिणिवायंति सवायं ति सवडुक्खाणं अंतकरेंति ॥ ७३ ॥

अर्थ–वली बीजे प्रकारें साधुना गुण देखाडे छे. ते यथा नाम एवी संभावनायें जे म कोइएक उत्तम संघयणवंत, महाबलें करी सहित अणागार भगवंत होय, ते केवा होय? तोके इर्या समितियें समिता, भाषासमितियें समिता, एटले सत्यनिरवद्य भा षाना बोलनार, एषणासमितियें समिता, एटले बेंतालीश दोषरहित, आहारनी गवेष णाना करनार, (आयाणभंमभत्तणिरकेवणासमितियेंसमिता) एटले माटीनुं भाजन, तथा मात्रा, अने वस्त्रादिक ने जयणायें पुंजी प्रमार्जीने मूकनारा, (उच्चारपासवणखेलसिंघाण

जल्लपारिठावणिया समितियें समिता) एटले वडीनीत, लघुनीत, थूंक नासीकानो श्ले घाण, शरीरनो मल, तेने जयणा सहित परठवे. एमपांच समितियें समिता, मन समितियें सहित. वचन समितियें सहित, काय समितियें सहित, मन ने असंयम थकी गोपवीने प्रवर्त्तावे, माटे मनगुप्तियें गुप्त, वचनने असंयमथी गोपवीने प्रवर्त्तावे, माटे वचन गुप्तियें गुप्त, कायाने असंयमथी गोपवीने प्रवर्त्तावे, माटे कायगुप्तियें गुप्त, एरीतें त्रण गुप्तियें गुप्त, तथा गुप्तेंद्रिय एटले असंयम थकी इंद्रियोने गोपवी राखनार, नववाडविशुद्ध ब्रह्मचर्यना पालनार, क्रोध रहित, मान रहित, माया रहित, लोभ रहित, संता एटले मध्यवर्त्तियें, अने पसंता, एटले बाह्य वृत्तियें उवसंता, एटले उपशांतते उजयथापि शांतवृत्तिवाला, परिनिवृत्ता एटले समस्त संताप वर्जीत, अनाश्रय एटले पापकर्म बंध थकी रहित, अग्रंथा एटले हिरण्यादिक परिग्रह थकी रहित, छिन्नश्रोत एटले छेद्योछे संसारनो प्रवाह जेणे, तथा निरुवलेवा एटले निर्लेप कर्म मल थकी रहित, कंसपातीवमुक्ततोया एटले कांसाना पात्रनी पेठें पापरूप पाणी जेने छवतुं नथी; जेम कांसाना पात्रने पाणी न लागे तेम, ते साधुने पापरूप पाणी लागे नहीं, तथा शंखनी पेठें निरंजन एटले रागादिक रंग रहित, जीवनी पेठें अप्रतिहत गतिवाला जाणवा, एटले जेम जीवनी गति अप्रतिहतछे स्खलाय नही, तेम साधुने पण देश नगरादिकने विषे विहार करवाने विषे अप्रतिहत अस्खलित गतिछे. आकाशनी पेठें निरालंब एटले आकाश जेम स्तंभादिकना आलंबने रहितछे तेम, साधु पण गाम, नगर, कुलना आलंबनथी रहितछे. वायुनी पेठें अप्रतिबंध थका ग्रामने विषे एक रात्र, अने नगरने विषे पांच रात्र, विचरे. गामेएगराइयं णगरेपंचराइया इति वचनात् शारद एटले शीतकाल तेनुं सलील एटले पाणी तेनी पेठें अथवा आश्विन, अने कार्तिक मासना पाणीजेम निर्मलहोय, तेनी पेठें निर्मल हृदय वाला, (पुस्करपत्तंइवनिरूवलेवा) एटले जेम कमलना पत्रने पाणी तथा कादव न लागे तेम, साधुने कर्म रूप लेप न लागे. काचबानी पेठें गुप्तेंद्रिय, जेम काचबो, चार पग अने पांचमी ग्रीवा गोपवीने प्रवर्त्ते तेम, साधु इंद्रियो गोपवीने प्रवर्त्ते. पक्षीनी पेठें विप्रमुक्त, अनियतवासी, एटले पक्षी जेम सर्व परिवार स्थानकनी ममता रहित होय, तेम साधुपण परिवारादिकनी ममताथी रहित होय. (खग्गविसाणंवएगजाया) एटले गेंडानुं शींगडुं जेम एक होय, तेम साधु, राग द्वेष रहित थको एक होय. भारंडपक्षीनी पेठें अप्रमत्त होय, जेम भारंड पक्षी अप्रमादी होयछे, तेम साधु प्रमाद रहित थको धर्म कार्यने विषे प्रवर्त्ते. कुंजरनी पेठें शूरवीर एटले जेम हस्ती शूरवीर होय, तेम साधु कषायादिक निवारवाने शूरवीर होय, परंतु कायर पणु जणावे नहीं. वृषभनी पेठें बलवंत जेम बेल भार उपाडे अंगीकार करे निर्वाह करे तेम सा

धु पण, व्रतभार निर्वाह करवाने सामर्थ्यवान् धर्मधुरंधर जाणवो, सिंहनी पेठें डुर्द्धर्ष एटले सिंह जेम बीजा मृगादिक जानवरोने डुर्द्धर्ष एटले तेनाथी पराभवाये नही, तेम साधु पण परीसह उपसर्गादिकें करी पराभवाये नहीं. मंदर एटले मेरुपर्वतनी पेठें अप्रकंप, जेम मेरुपर्वत कंपायमान न थाय, तेम साधु पण परीसह अने उपसर्गादिकें कंपायमान न थाय. समुद्रनी पेठें गंभीर, एटले समुद्र जेम गंभीर होयछे, तेम साधु हर्ष शोकादिक कारण रहित थका गंभीर होय. चंद्रमानी पेठें सोम लेश्यावंत एटले चंद्रमा जेम शीतल प्रकृतिवंत होय, तेम साधु सर्वकाल मनने उद्धार करनारो, महा शीतल प्रकृति सहित होय, सूर्यनी पेठें दीप्ततेज एटले सूर्य जेम तेजवंत होयछे, तेम साधुपण तपश्चर्यायें करी तेजवंत प्रतापवंत देखायछे. साचा सुवर्णनी पेठें जातिरूप सतेज, एटले सुवर्णने जेम मेल न लागे, तेम साधुने पण कर्म मेल नलागे. वसुंधरानी पेठें सर्व स्पर्श सहे एटले पृथ्वी जेम कांटा, कांकरी, अग्न्यादिकना सर्व स्पर्श सहन करे, तेम साधु पण क्षमागुणें सहित थको, टाढ तापादिकना स्पर्शने सहन करे. सुहुयहुतासणोविव तेयसाजलंता एटले रुडे द्रव्यें घृतादिक सींचतां जेम हुताशन जे अग्नि ते सदा ते यसा एटले तेजवंत देखायछे जाज्वल्यमान देखायछे तेम,साधु पण ज्ञान तेजें करी सर्वकाल तेजवंत देखायछे. ॥ ७० ॥ (णछिणंतेसिंभगवंताणंके०) ते भगवंत महिमावंत साधुने नथी कछविपडिबंधेभवइ एटले क्यांहि पणप्रतिबंध नथी. सेपडिबंधे चउविहेपसुत्ते एटले ते प्रतिबंध चार प्रकारनो कह्योछे, ते कहेछे. (अंमएइवा के०) जे अंम थकी उपजे एवा पक्षी कीडा मयूरादिक ते आश्री प्रतिबंध नथी, (पोयएइवा के०) पोत ते हस्त्यादिकना बालक ते आश्रित प्रतिबंध नथी, उग्गहेइवा के०) उग्रह एटले वस्ति पीठ फलगादिक तेनो पण प्रतिबंध नथी, (पग्गहेइवा के०) उंधीक उपग्रहिक उपकरण तेनिमित्त प्रतिबंध नथी, (जन्नंजन्नंदिसंइछंति के०) जे जे दिशायें विहार करवा वांछे, (तन्नंतन्नंदिसं अप्पडिबध्धा के०) ते ते दिशायें अप्रतिबंध पणे विचरे. (सुइन्नूया के०) शुचिर्भूत निर्मलांतर आत्मावंत (अप्पलहुन्नूया के०) अल्प लघुभूत एटले अल्प परिग्रही थका, (अप्पग्गंथाके०) अल्प ग्रंथवंत बहुश्रुत, (संजमेणंतवसा के०) संयम अने तपें करी (अप्पाणंभावेमाणे के०) पोताना आत्माने भावता थका,(विहरंति के०) विचरे.॥७१॥ (तेसिंणं भगवंताणं के०) ते भगवंत एटले साधुने, (इमाएतारूवा के०) एवाए तद्रूप (जायामायावित्तिहोछा के०) संयमयात्रा एटले संयमनो निर्वाह, तेने अर्थें, मात्रावृत्ति प्रमाणोपेत भातपाणी लेवुं, ते तपें करी निर्मल थाय. (तंजहा के०) ते कहेछे. एक उपवास, बे उपवास, त्रण उपवास, चार उपवास, पांच उपवास, छ उपवास, सात उपवास, अर्द्धमासना उपवास, एक मास क्षमण, बे मास

क्षमण, त्रण मास क्षमण, चतुर्मासिक, पंच मासिक, ब मासिक, एवां तपना करनारा, (अडुत्तरंचरणं के०) अथवा एक साधु एवा अभिग्रहना करनाराछे, ते कहेछे. (उक्खि त्तचरया के०) उत्क्षिप्तचर्या एटले पोताने अर्थे हांमली मांहे थकी काढयुं एवुं जे कु सार अन्न तेना लेनारा, (णिक्खित्तचरया के०) निक्षिप्तचर्या एटले पिरसवाने अर्थे हांमली मांहेथी काढी वली हांमली मांहे प्रक्षेप्यो, एवो जे आहार तेनी गवेषणा करनारा, (उक्खित्तणिक्खित्तचरगा के०) पूर्वोक्त बन्ने जातना आहारनी गवेषणा करनारा, (अं तचरगा के०) जे गाममांहे ससता मूल्यनो आहार मले, तेना लेनारा, (पंतचर गा के०) नीरस आहार जमता थका, तेमांथी जे वध्यो होय तेना लेनारा, (लूह चरगा के०) जावजीव सुधी लूखा आहारना लेनारा,(समुदाणचरगा के०) हर्ष सहित जे आहार आपे तेना लेनारा, (संसठ्ठचरगा के०) खरडे हाथे आहार आपे तेना ले नारा, (असंसठ्ठचरगा के०) अण खरडे हाथे आहार आपे तेना लेनारा, (तज्जात संसठ्ठचरगा के०) ते जे द्रव्यें हाथ अथवा कडछी खरडी होय तेवा हाथे करी, अथ वा तेवी कडछीये करी, तेज आहार आपे, तेवा आहारना लेनारा, (दिठ्ठलाभिया के०) दीठा आहारनाज लेनारा, तथा (अदिठ्ठलाभिया के०) अणदीठो आहार, तथा अणदीठो दातार, तेनी गवेषणा करनारा, (पुठ्ठलाभिया के०) तथा पुछीनेज आहारना लेनारा, (अपुठ्ठलाभिया के०) अणपुछ्या आहारना लेनारा, (भिक्खलाभिया के०) थोडुं अन्न आपे अने हेलणा करे एवा तुछ आहारना लेनारा, (अभिक्खलाभिया के०) अतुछ आहारना लेनारा, (अन्नायचरगा के०) ज्यां कोइ पण उलखे नहीं त्यां अज्ञात आहारना लेनारा, (अन्नायलोगचरगाके०) अज्ञात लोकना कुत्सित अन्नना लेनारा, (उवनिहिया के०) जे आहार पोता थकी नजीक जाणे, तेना लेनारा, (संखादत्तिया के०) दात्तिनी संख्याना करनारा, (परिमित्तपिंमवाइयाके०) प्रमा णोपेत पिंमना लेनारा, (सुद्धेसणिया के०) शुद्धएषणिक दोष रहित एवा आहार ना गवेषण हार, (अंताहारा के०) अंताहारी एटले वाल, चणकादिकना आहारना गवेषनारा, (पंताहारा के०) तेज टाढुं उगखुं, एवा अन्नना लेनारा, (अरसा हारा के०) हिंग जीरादिकना वघारें रहित एवा अरस आहारना लेनारा (विरसाहा रा के०) जुना धान्य खांमेलाना आहारना लेनारा, (लूहाहारा के०) लूक्ष आहारना लेनारा, (तुछाहाराके०) तुछआहारना लेनारा,(अंतजीवीके०) अंताहारें जीवे, (पंतजीवी के०) प्रांतआहारें जीवे, (आयंबिलिया के०) कूर, अडदना, बाकला लेइ, आयंबिल सदाय करे. (पुरंमढिया के०) सर्व काल बे पहोर दिवस वित्या पछी आहार जमे, (णिब गइया के०) सर्वकाल निवी करे, विगय रहित अन्न जमे, (अमज्जमंसासस्सीणो के०)

मद्य मांसना परित्यागी होय, (णोणियामरसन्नोइ के०) सर्व काल अत्यंत सरस आहार लीये नहीं, (ठाणाइया के०) सर्वकाल कायोत्सर्गना करनारा, (पडिमठाइया के०) प्रतिमाना वहणनारा, (उक्कडुआसणिया के०) एक स्थानकें केटलो एक काल निवृत्तियें रहे,(णिसज्जियाके०) निषेधआसनना बेसनारा एटले निषेध पदार्थयुक्तपृथ्वीपर बेसे, (वीरासणिया के०) वीरासने करी रहे, बाजोठ उपर बेशी, पग नीचामूके, पछी बाजोठ दूर करीने तेज आसने बेसे. (दंमायतिया के०) दंमनी पेठें लांबो थयो थको रहे. (लगंमसाइणो के०) वांका काष्ठनी पेठें शयन करे, मस्तक, पानी अने वासो, तेने नूमीलागे, परंतु बीजे नलागे (अप्पाउडाअगत्तया के०) वस्त्र रहित, वस्त्ररूप प्रावरण न राखे, (अकंमुयाके०) शरीरें खाजी नखणे, (अणिठुहाके०) मुखनुं थूंक परठवे नहीं, (धुतकेसमंसरोमनहाके०) माथाना केश, गुह्यस्थानकना केश, दाढीमुछना केश, काखली ना केश, शरीरनां रोम, तथा नख, समारे नही, (सव्वगायपडिक्कमविप्पमुक्का के०) सर्व गात्र एटले शरीरनी शुश्रूषा करवा थकी विप्रमुक्त, एटले मूकाणा थका, (चिठंतिके०) रहे. ॥७१॥ (तेणंएतेणंविहारेणंविहरमाणा के०) तेसाधु एवा उग्र विहारे करी विचरता थका (बहुइंवासाइं के०) घणाएक वर्ष (सामन्नपरियागंपाउणंति के०) चारित्र पर्याय पाले. एवो चारित्र पाली (बहुबहुआबाहंसि के०) रोगादिकनी आबाधा (उपन्नंसिवा के०) उपनी, तथा (अणुपन्नंसिवा के०) अणउपने छते (बहुइंनत्ताइंपच्चारकाइके०) घणानात पाणी पच्चरके. (पच्चरकाइत्ता के०) ते पच्चरकीने (बहुइंवासाइंअणसणाइंछेदिंति के०) घणा काल सुधी अनशन पाले, (अणसणाइंछेदित्ता के०) ते अनशन पाली ने किंबहुना शुंजाजुंकहेवाथी? (जस्सठाएकीरतिके०) जे साधुधर्मने अर्थे आधर्म एवोके, लोहगोलकनी पेठें निरास्वाद खड्गधारानी पेठें डःसाध्य,एवो चारित्र पाले. (नग्गनावेके०) नग्नपणानो नाव एटले प्रमाणोपेत वस्त्रपहेरें, (मुंमनावे के०) पांचइंद्रियो तथा चार कषायनो संवर करे, (अएहाणनावे के०) अंघोल स्नान नो त्यागनाव करे, (अदंतवणगे के०) दातण करवानो परिहार करे, (अछत्तएके०) मस्तकें छत्र धरावे नही, (अणोवाहणए के०) पगरखानो त्याग करे, (नूमिसेज्जा के०) नूमिकाने विषे शयन करे, (फलगसेज्जा के०) पाट, पाटीया उपर शयन करे, (कठसेज्जा के०) काष्ठ, पाषाण उपर शयन करे (केसलोए के०) मस्तकें केशनो लोच करे, (बंनचेरवासे के०) ब्रह्मचर्यने विषे वास करे, अर्थात् ब्रह्मचर्यने पाले, (परघरपवेसे के०) निक्षाने अर्थें पारका घरने विषे नमण करे, (लघ्घाअलघ्द के०) त्यां परघर नमण करतां कदाचित् निक्षानो प्रातिथाय, अथवा नथाय, तोपण समता नाव धरे, (माणाअमाणणाउ के०) मान, अथवा अपमान, देता थका पण समता नाव धरे. (हीलणा

उ के०) जन्मनां कर्मरूपकरणीने उघाडी, हेलना करतां पण समता भाव धरे. (निंदणाउ के०) कोइ निंदा करे. (खिंसणाउ के०) कोइ बीजा लोकोनी साखें हेलना करे, (गरहणाउ के०) कोइ तेना मुख अगलज हेलना करे, (तज्जणाउ के०) कोइ तर्जना करे, (तालणाउ के०) कोइ ताडना करे, (उच्चावयागामकंटगा के०) उंचा नीचा ग्रामकंटक एटले ग्रामीण लोकना वचन, पांच इंद्रियने कंटक समान, तेने सहन करे, (बावीसंपरीसहोवसग्ग के०) बावीश परिसह अने देवादिकना करेला उपसर्गादिक ए सर्वने (अहियासिज्जंति के०) मन वचन अने कायायें करी, अहियासे एटले सहन करे, (तमठ्ठंआराहंति के०) साधु ते अर्थ जे सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र रूप तेने आराधे, (तमठ्ठंआराहित्ता के०) ते ज्ञान दर्शन चारित्ररूप अर्थ आराधिने, (चरमेहिंउस्सासनिस्सासेहिं के०) छेला उश्वास, निःश्वासें ज्ञान उपजे ते केवो ज्ञान उपजे, ते कहेछे. (अणतं के०) अंतरहित, (अणुत्तरं के०) प्रधान, (निव्वाघायं के०) निर्व्याघात, (निरावरणं के०) आवर्ण रहित, (कसिणं के०) कृत्स्नं संपूर्ण, (पडिपुन्नं के०) परिपूर्ण एवो, (केवलवरणाणदंसणसमुप्पाडेंति के०) प्रधान केवलज्ञान अने केवलदर्शन, पामे (समुप्पाडेतित्ताके०) ते केवल ज्ञान अने केवल दर्शन उपजावीने एटले पामिने, (ततोपच्छा के०) तेवार पछी (सिज्झंतिके०) सीजे एटले तेने सर्व अर्थनी सिद्धि थाय, (बुज्झंति के०) चउदराज लोकनुं स्वरूप बुजे, (मुच्चंति के०)सर्व दुःख थकी मूकाय, (परिनिव्वायंति के०) कर्मरूप दावनलने उपशमाववे करी शीतलीभूत थाय (सव्वदुक्खाणं अंतकरेंति के०) सर्व दुःखनो अंत करे, ॥ ७३ ॥

॥दीपिका—प्रकारांतरेण पुनः साधुगुणानाह । (सेजहत्ति) तद्यथानाम केचन भगवंतोऽनगाराभवंति । ईर्यासमिताइत्यादि सुगमं । यावत्सुहुतहुताशनइव दीप्तवन्हिरिव तेजसाज्वलंतो दीप्यमानाः॥ ७०॥(णत्थिणंति)नास्ति तेषां कुतश्चित्प्रतिबंधः। प्रतिबंधश्चतुर्विधः। तद्यथा। अंमजोहंसादिः । अंडकंवा मयूरांडकादि क्रीडामयूरादिहेतुः स्यात्तेन तत्र निबंधः स्यात् । पोतजे हस्त्यादौ पोतके वा शिशुत्वात्प्रतिबंधः स्यात् । अथवा (अंमजोइवाबोंडजोइवाइतिपाठांतरं) अंडजं शणिकादिवस्त्रं बोंडजं कार्पासं वस्त्रं तत्र प्रतिबंधः स्यात् (उग्गहेइवा) अवगृहीतं परिवेषणार्थमुत्पाटितं भक्तपानं प्रगृहीतं भोजनार्थमुत्पाटितं तदेव । अथवा अवग्रहिकं वसतिपीठफलकादि औपग्रहिकं वा दंडकाद्युपधिजातं प्रगृहीतंतु रजोहरणाद्यौघिकोपधिरूपं तत्र प्रतिबंधः स्यात् ।(जन्नंति) यां यां दिशमिछंति विहर्तुं तां तां दिशं विहरंति । किंभूताः । अप्रतिबद्धाः शुचिर्भूताभावशुद्धिमंतः श्रुतिभूतावा प्राप्तसिद्धांताः लघुता अल्पोपधयोऽगौरवाश्च अनल्पग्रंथावद्धागमाः न विद्यते आत्मनः संबधी ग्रंथोहिरण्यादि

षां तेऽनात्मग्रंथाइति वा॥ ७१॥तेषां साधूनां नगवतां (इमाए) तद्रूपायात्रामात्रा वृत्तिः संयम यात्राप्रमाणाजीविकाऽनवत्। तद्यथा। चतुर्थनक्तमेकोपवासः षष्ठनक्तं यावत्षण्मासिकं। अथच (उक्खित्तचरयत्ति) उत्क्षिप्तं स्वकार्याय पाकनाजनाडुध्दृतं तदर्थमनिग्रहतश्चरंति तजवेषणाय गबंतीति उत्क्षिप्तचरकाः। (निक्खित्तचरयत्ति) निक्षिप्तनाजनादनुध्दृतं तदर्थमनिग्रहतश्चरंति तजवेषणाय गबंतीति निक्षिप्तचरकाः। (उक्खित्तनिक्खत्तचरयत्ति) पाकनाजनाडुत्क्षिप्तं तत्रैवाऽन्यत्र वा स्थाने यदन्नं तदर्थमनिग्रहवंतश्चरंति। अंतेन प्रांतेन रूक्षेण नक्तादिना चरंति ये ते तथा समुदानेन निक्षया चरंतीति (संसठेन) खरंटितेन हस्तादिना दीयमानं संसृष्टमुच्यते उक्तविपरीतमसंसृष्टं तेन चरंति (तज्जायत्ति) तज्जातेन देयद्रव्याविरोधिना यत्संसृष्टं हस्तादि तेन चरंति ते तथा। (दिठलानियत्ति) दृष्टस्यैव नक्तादेर्लानिः अदृष्टस्यापकवरकादिमध्यान्निर्गतस्य श्रोत्रादिनिः कृतोपयोगस्य नक्तादेर्लानिस्तेन चरंति ये ते तथा। (पुठलानियत्ति) पृष्टस्यैव हे साधो! किंते दीयते इत्यादिप्रश्नेन योलानः सयेषामस्ति ते तथा। एवमपृष्टलानिकाविपरीताः। निक्षेव निक्षा तु छमवज्ञातं वा तल्लानोयेषामस्ति ते तथा अनिक्षालानिका विपरीताः। अज्ञातचरकाअज्ञातगृहेषु चरंतीत्यनिग्रहवंतः अन्नं नोजनं वा ग्लायंति अन्नग्लायिकास्तेच अनिग्रहविशेषात्प्रातरेवान्नं गृण्हंति(उवणिहया) उपनिहितं यथाकथंचिदासननीनूतं तेन चरंति ये ते उपनिहितकाः संख्याप्रधानादत्तयोयेषां ते तथा। प्रातरेवग्रण्हंनक्तादि(परिमियत्ति) परिमितः पिंडपातः अर्धपोषादिलानोयेषामस्ति ते तथा। (सुद्धेसणिया) शुद्धेषणाः शुद्धस्य वा निर्व्यंजनस्य क्रूरादेरेषणा येषामस्ति ते अंतप्रांतवल्लवणकादिः सआहारोयेषां ते तथा। विरसं नीरसं शीतलीनूतं रूक्षाहाराः (अंबिलिया) आचाम्लं उंदनकुल्माषादि तेन चरंतीति। निर्विकृतिकाः घृतादिविकृतित्यागिनः अमद्यमांसाशिनः मद्यमांसं नाश्नंतीति। (नोनियागत्ति) ननित्यं रसनोजिनः (नेसज्जीया) निपद्यायुतायां नूमौ उपविशनं तथा चरंतीति नैपद्यकाः। वीरासनं सिंहासननिविष्टस्य नून्यस्तपादस्य सिंहासनापनोदे सति यादृशमवस्थानं तद्यस्यास्ति सवीरासनिकः (दंडायतिया) दंडस्येवायतमायामोयेपां ते दंडायतिकाः। लगंमं वक्रकाष्ठं तद्वत् शेरते ये ते लगंमशायिनः पार्श्विका शिरश्च पृष्ठमेव वा नूमौ लगति तथा शयनं कुर्वंति आतापकाआतापनाग्राहिणः (अप्पाउडा) अप्रावृताः प्रावरणवर्जकाः (अगंडुया) अकंडूयकाः (अनिठहा) अनिष्ठीवनाः (धुतमंससत्ति) धूतानि नीतिकर्मतया त्यक्तानि केशश्मश्रुरोमाणि शिरोजकूर्चकक्षादिलोमानि यैस्ते तथा सर्वशरीरपरिकर्मणा रहिताऽइत्यर्थः॥ ७२॥(तेणंति) ते साधवएवं विहृत्य बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायमनुपाल्य (आबाहंसत्ति) रोगातंके उत्पन्नेऽनुत्पन्ने वा नक्तप्रत्याख्यानं कुर्वंति। किं बहुना यत्कृते क्रियते नग्ननावोमुंडनावश्च (अएहाणगे) स्नानानावः अदंतधावनं अबत्रकं।शरसि आतपे प

तत्यपि कंबलवस्त्रादिधारणाजावः अनुपानत्कता पाडुकाद्यजावः नूमिशयनं फलकशयनं काष्ठशयनं केशलोचः ब्रह्मचर्यधारणं। निक्षार्थं परगृहप्रवेशः लब्धमानापमानानि हेलन हिंसागर्हातर्जनताडनानि उच्चावचग्रामकंटकाः शुनाशुनाइंद्रियविषयारागद्वेषरहिततया सोढव्याइत्यर्थः। द्वाविंशतिः परीषहाः। देवादिकृताउपसर्गाश्चध्यास्यंते यदर्थमेताड्फकराः क्रियाः क्रियंते तमर्थं सम्यक् ज्ञानदर्शनचारित्राख्यमाराध्य चरमरुच्छ्वासनिःश्वासैः प्रांतसमयं यावदित्यर्थः। ततोऽनंतमनुत्तरं निर्व्याघातं प्रतिपूर्णं केवलवरज्ञानदर्शनमाप्नुवंति ततः सिध्यंति मोक्षमाप्नुवंतीति ॥ ७२ ॥

॥ टीका—पुनरन्येन प्रकारेण साधुगुणान् दर्शयितुमाह। (सेजहेत्यादि) तद्यथानाम केचनोत्तमसंहननधृतिबलोपेताअनगाराजगवंतोजवंतीति। ते पंचजिः समितिजिः समिताः। एवमित्युपदर्शने। औपपातिकमाचारांगसंबंधि प्रथममुपांगं। तत्र साधुगुणाः प्रबंधेन व्यावर्ण्यंते तदिहापि तेनैव क्रमेण द्रष्टव्यमित्यतिदेशः। यावद्भूतमपनीतं केशश्मश्रुलोम नखादिकं यैस्ते तथा सर्वगात्रपरिकर्मविप्रमुक्तानिष्प्रतिकर्मशरीरास्तिष्ठंतीति॥७०॥७१॥७२ तेचोग्रविहारिणः प्रव्रज्यामनुपाल्य, बाधारूपे रोगातंके समुत्पन्नेऽनुत्पन्ने वा नक्तप्रत्याख्यानं विदधति। किंबहुनोक्तेन यत्कृतेऽयमयोगोलकवन्निरास्वादः करवालधारामार्गवद्दुरध्यवसायः श्रमणजावोऽनुपाल्यते तमर्थं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राख्यमाराध्य व्याहतमनंतं मोक्षकारणं केवलज्ञानमाप्नुवंति केवलज्ञानावाप्तेरूर्ध्वं सर्वदुःखविमोक्षलक्षणं मोक्षमवाप्नुवंतीति ॥ ७२ ॥

एगच्चाए पुणएगे नयंतारो नवंति अवरेगंपुण पुव्वकम्मावसेसेणं कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवताए उववत्तारो नवंति तंजहा महड्डिएसु महजुत्तिएसु महापरिक्कमेसु महाजसेसु महाबलेसु महाणुनावेसु महासुखेसु तेणं तब देवा नवंति महड्डिया महजुत्तिया जाव महासुखा हारविराइयवब्बा कडगतुडियथंनियनुया अंगय कुंमल मध्गंमयल कन्नपीढधारी विचित्तहब्बानरणा विचित्तमालामउलिमउडा कल्लाणगंधपवरवब्बपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा नासुरबोंदीपलंबवणमालधरा दिव्वेणं रूवेणं दिव्वेणं वन्नेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघाएणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्डिए दिव्वाए जुत्तीए दिव्वाए पन्नाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चाए दिव्वेणं तेयणं दिव्वाए लेसाए दसदिसाउ उज्जो

वेमाणा पन्नासेमाणा गइकल्लाणा ठिइकल्लाणा आगमेसिन्नद्दयावि नवंति एसठाणे आयरिए जाव सवडुरकपहीणमग्गे एगंतसम्मे सुसाहू दोच्चस्स ठाणस्स धम्मपरकस्स विन्नंगे एवमाहिए ॥ ७४ ॥

अर्थ-(एगच्चाए के०) एम कोइ एक पुरुष (पुणे के०) वली (एगे के०) एक ज शरीरें एटले तेज एक नवमां (नयंतारोनवंति के०) सिद्धिगति गामि होय. (अवरेपुण के०) अपर एटले बीजा वली (पुव्वकम्मवसेसेणं के०) जेने पूर्वकृत कर्म अवशेष रह्यां होय तो तेवा पुरुष (कालमासेकालंकिच्चा के०) कालने अवसरें काल करीने (अन्नयरेसु के०) अन्यत्र (देवलोएसु के०) देवलोकने विषे (देवत्ताएउववत्तारो नवंति के०) देव पणे उपजनार थाय (तंजहा के०) ते देवलोक केवा होय तेकहेछे (महड्ढिएसु के०) महर्द्धिक महोटी ऋद्धिना धणी, (महज्जुत्तिएसु के०) महाद्युतिवान. (महापरिक्कमेसु के०) महोटा पराक्रम वाला, (महाजसेसु के०) महोटा यशना धणी, (महाबलेसु के०) महोटा बलवान, (महाणुनावेसु के०) महोटा अतिशयवान एवा महानुनाव वैक्रियादिक शक्तियें करी सहित होय. (महासुखेसु के०) महोटा सुखना धणी, एटला वाना जेस्थानकने विषेछे (तेणंतछदेवानवंति के०) ते त्यां देवता पणे होय, ते देवता केवा होय. ते कहेछे. महोटी ऋद्धियादिक गुणें सहित यावत् महोटां सुख सहित (हारविराइयवछा के०) हारें करी विराजित शोनायमानछे, हृदय कमल जेनां वली (कडगतुडियथंनियनूया अंगयं के०) कटक, केयूर, अंगदादिकें करी स्तंनितछे नुजा जेनी, वली देदीप्यमान (कुंमलमठगंमयल के०) कुंमलें करी घसायेला एवा गालना तट जेणे शोनित कर्याछे (कन्नपीढधारी के०) कुंमलना आधार माटें कानछे माटे कर्णपीठ धारी कह्या अथवा कर्णपीठते काननुं आनरण विशेष जाणवुं. ते आनर्ण कुंमलछे, तेना धरनारा. (विचित्तहछानरणा के०) विचित्रप्रकारना मुद्रादिक आनरण जेना हाथमां रहेलांछे तेणेकरीसहित (विचित्तमालामउलिमउडाके०) विचित्र प्रकारनी माला सहित मुकुटना धरनार, (कल्लाणगंधपवरवछपरिहिया के०) कल्याणकारी सुगंधित वस्त्रना पेरनार, तथा (कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा के०) कल्याणकारी प्रवर माल्य विलेपनना धरनार, (नासुरबोंदीपलंबवणमालधरा के०) देदीप्यमान शरीर प्रलंब एवी लटकतिजे वनमाला रूप आनर्ण विशेष, तेना धरनारा, (दिव्वेणंरूवेणं के०) प्रधान रूपें करी सहित, (दिव्वेणंवन्नेणं के०) दिव्य वर्णेकरी सहित, (दिव्वेणंगंधेणं के०) दिव्य गंधें करी सहित, (दिव्वेणंफासेणंके०) दिव्य स्पर्शें करी सहित. (दिव्वेणंसंघाएणं के०) दिव्य शरीरनो संघातन समुदाय तेणे करी सहित, (दिव्वेणं

संगणेणं के०) दिव्य संस्थान समचतुरस्र रूप तेणे करी सहित, (दिव्वाएइड्डीए के०) दिव्य वैमानादिकनी रुद्धि, तेणे करी सहित, (दिव्वाएजुत्तीए के०) दिव्यद्युति एटले प्रधान अन्योन्य नक्तियें करी सहित, (दिव्वाएप्पनाए के०) दिव्य प्रना एटले कांती तथाविध ड्व्य जोडवाने प्रनावे महात्में करी सहित, (दिव्वाएछायाए के०) दिव्य प्रतिबिंब एवा रूपें करी सहित, (दिव्वाएअच्चाए के०) दिव्य अर्चा, (दिव्वेणंतेयणं के०) प्रधान एवी शरीर थकी निकलति जे तेजनी ज्वाला तेणे करी सहित, एटले दिव्यतेजें करी सहित, (दिव्वाएलेसाएके०) अन्यंतरना परिणामरूप शुक्लादिक लेश्यायें करी सहित थका, (दसदिसाउज्जोवेमाणा के०) प्रधान शरीर माहेली कांतियें करी दशेदिशा उने उज्वल करता, (पनासेमाणा के०) दशेदिशाउने अलंकारता प्रकासता, (गइक ल्लाणा के०) देवता संबंधिनी गतियें करी प्रधान, (विइकल्लाणा के०) देवता संबंधिनी स्थितियें करी कल्याण एटले प्रधान, (आगमेसिनद्दयाविनवंति के०) आगमिक कालें नड्क प्रधान मनुष्य नव रूप संपदा पामवा आश्री तथा रूडा धर्म प्रतिपत्ति सहित प्रत्यें पामवा आश्री आगमिक कालें नड्क कह्याछे. ए स्थानक आर्य यावत् सर्व डुःख थकी रहित थवानो मार्ग एकांत सम्यक्, सत्य, सुसाधुनुं स्थानक छे, एटले बीजुं स्थानक धर्मपक्षनो विचार एम कह्यो. ॥ ७४ ॥

॥ दीपिका–(एगच्चाएत्ति) एके पुनरेकयार्चया एकेन शरीरेण एकनवाद्वा मोक्षगंतारः स्युः । एके पुनः पूर्वकर्मविशेषे सति कालं कृत्वाऽन्यतरेषु देवलोकेषु देवतयोत्पद्यंते । तद्यथा । महर्द्धिमहाद्युतिमहाशुक्लमहाबलमहानुनावमहासुखेषु देवलोकेषु । देवास्ते प्येवंनूताइत्याह । महर्द्धिकादयस्तथा हारविराजितवक्षसः कटकत्रुटितस्तंनितनुजाः अंगदकुंडलघृष्टगंडतलकर्णपीठधराविचित्रहस्तानरणाः विचित्रमालामुकुलितमुकुटाः परिहितकल्याणप्रवरवस्त्राः कल्याणप्रवरमाल्यानुलेपनधराः (नासुरबोंदी) नास्वरशरीराः प्रलंबवनमालाधराः (दिव्वेणंति) दिवि नवं दिव्यं तेन रूपेण यावद्दिव्यया ड्व्यलेश्यया युतादशदिशोविद्योतयंतः प्रनासयंतोगत्या देवलोकरूपया कल्याणाः शोननाः स्थित्या उत्कृष्टमध्यमया कल्याणाः (आगमेसित्ति) आगामिनि काले नड्काः शोननमनुष्यनवं प्राप्ताः सद्धर्मप्रतिपत्तारः स्युः । तदेतत्स्थानमार्यं साधु श्रेष्ठं । एतद्द्वितीयस्य स्थानस्य धर्मपाक्षिकस्य विनंगोविचारः समाख्यातः ॥ ७४ ॥

॥ टीका–एके पुनरेकयार्चयैकेन शरीरेणैकस्माद्वा नवात्सिद्धिगतिं गंतारोनवंति अथ ते पुनस्तथाविधपूर्वकर्मशेषे सति तत्कर्मवशगाः कालं कृत्वा वैमानिकेषु देवेषूत्पद्यंते तत्र

डुसामानिकत्रयस्त्रिंशल्लोकपालपार्षदात्मरक्षप्रकीर्णेषु नानाविधसमृद्धिषु भवंतीति भत्वा भियोगिककिल्बिषिकादिष्विति । तदेवाह । (तंजहेत्यादि) तद्यथा महर्ध्यादिषु देवलोके भूत्पद्यंते । देवास्त्वेवंभूताभवंतीति दर्शयति । (तेणंतच्छदेवा इत्यादि) ते देवानानाविध तपश्चरणोपात्तशुभकर्माणोमहर्ध्यादिगुणोपेताभवंतीत्यादिकः सामान्यगुणवर्णकः । ततो हारविराजितवक्षसइत्यादिकआभरणवस्त्रपुष्पवर्णकः । पुनरतिशयापादनार्थं दिव्यरूपादिप्रतिपादनं चिकीर्षुराह । (दिव्वेणंरूवेणमित्यादि) दिविभवं दिव्यं तेन रूपेणोपात्ताया वद्दिव्यया डुव्यलेश्ययोपेतादशापि दिशः समुद्योतयंतस्तथा प्रभासयंतोऽलंकुर्वंतोगत्या देव लोकरूपया कल्याणाः शोभनागत्या वा शीघ्ररूपया प्रशस्तविहायोगतिरूपया वा कल्याणास्तथा स्थित्या उत्कृष्टमध्यमया कल्याणास्ते भवंति तथाऽऽगामिनि काले भद्रकाः शोभनमनुष्यभवरूपसंपडुपेतास्तथा सद्धर्मप्रतिपत्तारश्च भवंतीति । तदेतत्स्थानमार्यमेकांतेनैव सम्यग्भूतं सुसाध्विति । एतद्द्वितीयस्य स्थानस्य धर्मपाक्षिकस्य विभंगएवमाख्यातः॥७४॥

अहावरे तच्चस्स ठाणस्स मीसगस्स विभंगे एव माहिज्जइ इह खलु पाईणंवा संतेगतिया मणुस्सा भवंति तंजहा अप्पिछा अप्पारंभा अप्पपरिग्गहा धम्मिया धम्माणुया जाव धम्मेणं चेव वित्तिकप्पेमाणा विहरंति सुसीला सुव्वया सुपडियाणंदा साहू एगच्चाउ पाणाइवायाउ पडिविरता जावजीवाए एगच्चाउ अप्पडिविरया जाव जेयावसे तहप्पगारा सावज्जा अबोहिया कम्मंता परपाणपरितावणकरा कज्जंति ततोवि एगच्चाउ अप्पडिविरया ॥ ७५ ॥

अर्थ—अथ हवे अपर त्रीजुं स्थानक मिश्रपक्ष तेनो विचार कहियें ठैयें; यद्यपि ए स्थानक धर्म अधर्मे करीने मिश्रितठे, तथापि एमां धर्मनुं बाहुल्य पणुठे, तेमाटें ए धर्म पक्षज जाणवो. आ जगत् मांहे निश्चें पूर्वादिक दिशिने विषे कोइ एक मनुष्य एवा ठे, ते कहेठे. अल्प इछावाला, अल्पारंभी एटले थोडेज आरंभे व्यापारादिक सार्थे संबंधठे जेने, अल्प परिग्रही एटले थोडोज परिग्रह संग्रह करवानी मूर्छा संबंधि बुद्धि ठे जेनी, धर्मानुगामि एटले धर्मजे श्रुत चारित्ररूप तेनीकेडे चालनार, यावत् देश थकी चारित्रने अखंड पालवे करी श्रुतने आराधवे करी आजीविका करता थका विचरेठे. भलो ठे आचार जेनो,भलां व्रतठे जेने, सुप्रत्यानंद, साधु एटले सुखसाध्यसाधु, तथा साधुने विषेज आनंद हर्ष सहित वर्त्तेठे, तथा (एगच्चाउपाणाइवायाउ के०) एकेक प्राणी जे बे इंडियादिक त्रस जीवोठे, तेने हणवा थकी निवर्त्या एवा, तथा एकेक स्थूल

प्राणातिपात थकी, अत्यंत पणे विरम्याछे विरक्त थयाछे, जाव जीव सुधी एकेक प्राण जे पृथिव्यादिक छार तेने हणवा थकीअत्यंत विरम्या नथी उसरया नथी, एटले एक सूक्ष्म प्राणातिपात थकी अविरता इत्यादिक सर्वपद, जेवां अविरतने आलावे कह्यांछे, तेवां आहीं पण जाणी लेवां, परंतु एटलुं विशेषछे जे; एक पक्षें विरति, अने एक पक्षें अविरति, (जावजेयावन्ने के०) यावत् जेकांइ अनेरा तथाप्रकारना पूर्वोक्त सावद्य अबोधिनां कारण एवा कर्म रूप व्यापार, बीजा जीवोने परितापना करनार नीपजावीयें, ते थकी पण एक पक्षें विरति, अने एक अपक्षें अविरति, ते विरताविरत कहियें. ॥७५॥

॥ दीपिका—अथापरस्य तृतीयस्थानकस्य मिश्रकाख्यस्य विनंगः स्वरूपमाख्यायते। (इहखलु इत्यादि) एतच्च यद्यपि मिश्रत्वाद्धर्माधर्माभ्यां युतं नवति तथापि धर्मनूयिष्ठत्वाद्धार्मिकपक्षएवावतरति। यथा बहुषु गुणेषु मध्यपतितोऽल्पदोषोन स्वरूपं लनते कलंकश्व चंद्रिकायां बहूदकमध्यपतितोमृत्खंडावयवोन जलं कलुषयितुमलं एवमधर्मोपि धर्मे, ततोयं मिश्रपक्षोधर्मपक्षएवेति स्थितं। इह जगति प्राच्यादिदिक्षु एके शुनकर्माणो मनुष्याः स्युः। तद्यथा अल्पेछाः अल्पारंनाधार्मिकवृत्तयः शीलाः सुव्रताः सुप्रत्यानंदाः साधवः स्युः। तेच एकस्मात् स्थूलात् संकल्पकृतात्प्राणातिपातान्निवृत्ताः। एकस्मात् सूक्ष्मादारंनजादप्रतिविरताः। एवं शेषाण्यपि व्रतानि वाच्यानि। (जावजेयावन्नेत्ति) ये चान्ये सावद्याः कर्मारंनास्तेभ्यएकस्माद्यंत्रपीडानिर्लांछनकृषीवलादेर्निवृत्ताः। एकस्मात् क्रयविक्रयादेरनिवृत्ताः ॥ ७५ ॥

॥ टीका—अथापरस्य तृतीयस्य स्थानस्य मिश्रकाख्यस्य विनंगः समाख्यायते। (इहखलुइत्यादि) एतच्च यद्यपि मिश्रत्वाद्धर्माधर्माभ्यामुपेतं तथापि धर्मनूयिष्ठत्वाद्धार्मिकपक्षएवावतरति। तद्यथा। बहुषु गुणेषु मध्यपतितोदोषोनात्मानं लनते कलंकश्व चंद्रिकायास्तथा बहूदकमध्यपतितोमृच्चकलावयवोनोदकं कलुषयितुमलं एवमधर्मोपि धर्ममिति स्थितं। धार्मिकपक्षएवायं। इहास्मिन् जगति प्राच्यादिषु दिक्षु एके केचन शु नकर्माणोमनुष्याजवंतीति। अल्पाः स्तोकाः परिग्रहारंनेष्विछांतःकरणप्रवृत्तिर्येषां ते तथा एवंनूताधार्मिकवृत्तयः प्रायः सुशीलाः सुव्रताः सुप्रत्यानंदाः साधवोनवंतीति। त थैकस्मात् स्थूलात्संकल्पकृतात् प्रतिनिवृत्ताएकस्माच्च सूक्ष्मादारंनजादप्रतिनिवृत्ताएवं शे षाण्यपि व्रतानि संयोज्यानि। एतस्मादपि सामान्येन निवृत्ताइत्यतिदिशन्नाह। (जेयाव न्नेइत्यादि)। ये चान्ये सावद्यानरकादिगमनहेतवः कर्मसमारंनास्तेभ्यएकस्माद्यंत्रपी डननिर्लांछनकृषीवलादेर्निवृत्ताएकस्माच्च क्रयविक्रयादेरनिवृत्ताइति ॥ ७५ ॥

से जहा णामएसमणोवासगा भवंति अभिगयजीवाजीवा उवलद्धपुण्णपा वा आसवसंवरवेयणाणिज्जरा किरियाहिगरणबंधमोरककुसला असहे ज्ज देवासुरनागसुवन्नजरकरस्कसकिंनरकिंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगा इए हिं देवगणेहिं निग्गंथाउ पावयणाउ अणइक्कमणिज्जा इणमे निग्गंथे पा वयणे णिस्संकिया णिक्कंखिया निव्वितिगिछा लद्धठा गहीयठा पुछियठा विणिछियठा अभिगयठा अठिमिंजपेम्माणुरागरत्ता अयमाउसो नि ग्गंथे पावयणे अयं परमठे सेसे अणठे उसियफलिहा अवगुयडुवा रा अचियत्तं तेउरपरघरपवेसा चाउद्दसठमुद्दिठपुणिमासिणीसुपडिपुन्नं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा समणे निग्गंथे फासुए सणिज्जेणं असण पाणखाइमसाइमेणं वछपडिग्गहकंबलपायपुंछणेणं उसहभेसज्जेणं पी ठफलगसेज्जासंथारएणं पडिलाभेमाणा बहूहिं सीलवयगुणवेरमणपच्च रकाणपोसहोववासेहिं अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमा णा विहरंति ॥७६॥ तेणं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा बहुइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणंति पाउणंतित्ता आबाहंसि उप्पन्नंसिवा अ णुप्पन्नंसिवा बहुइं भत्ताइं अणसणाए पच्चरकाए बहुइं भत्ताइं अणसणाए पच्चरकाएत्ता बहुइं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ बहुइं भत्ताइं अणासणाए छेदेइत्ता आलोइयपडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा अन्न यरेसु देवलोएसु देवताए उववतारोभवंति तंजहा महड्ढिएसु महज्जु इएसु जाव महासुखेसु सेसं तहेव जाव एसठाणे आयरिए जाव एगं तसम्मे साहू तच्चस्स ठाणस्स मिस्सगस्स विभंगेएवं आहिए ॥ ७७ ॥

अर्थ—वली विशेष कहियेछेयें. ते यथा दृष्टांते नाम एवी संभावनायें जेम कोइ एक उत्तम पुरुष, विशिष्ट उपदेश सांभवालवाने अर्थें (समणोवासगाभवंति के०) श्रमणो पासकनो धर्म सेवन करे, ते श्रमणोपासक विशेषतः धर्मना करनार जाणवा, ते श्रम णोपासकना लक्षण कहेछे. (अभिगय के०) अभिगत एटले उलख्याछे जाण्याछे (जी वाजीवा के० जीव जे चेतन लक्षण रूप, अने अजीव जे चेतनरहित, एटले जीवा जीवना उलखनार, तथा (उवलद्धपुण्णपावा के०) शुभ प्रकृतिरूपजे पुण्य, अने अशु

न प्रकृतिरूपजे पाप, तेना स्वरूपने उपलब्ध एटले पाम्याछे, तथा (आसव के०) आश्रव ते शुनाशुनकर्मनुं आववुं, अने (संवर के०) संवर ते आवता कर्मनुं रोकवुं संवरवुं, तथा (वेयणा के०) वेदना ते साता असातारूप बे प्रकारनी, (णिज्जराके०) निर्ज्जराते कर्मनुं खपाववुं, (किरियाहिगरण के०) क्रियाअधिकरण एटले घर, हाट, खड्ग, कटारी, उखल, मुसल थकी कर्म बंधाय ते, (बंधके०) बंध चार प्रकारना तथा (मोरकके०) कर्म थकी मूकाववुं ते जाणवाने विषे (कुसला के०) मह्याछे, (अस हेज्ज के०) कोइ कष्ट पड्या थकी देवादिकनी सहायतानी वांछा न करे सहायरहित धर्मना करनार होय. (देवासुरनागसुवन्नजरकररकसकिंन्नरकिंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगाइए हिंके०) तथा देव एटले वैमानिक देवो, असुर एटले असुर कुमार नवनवासी देवो, नाग कुमार, सुवर्ण कुमार, यक्ष, राक्षस, किंन्नर, किंपुरिस, अश्वमुख गरुड, गंधर्व, महोरगादिक, (देवगणेहिं के०) इत्यादिक देवताना समूह ते, (निग्गंथाउपावयणाउ के०) निग्रंथना एटले नगवंतना प्रवचन थकी तेने (अणइक्कमणिज्जा के०) च लावी नशके, मोलवी नशके. (इणमेनिग्गंथेपावयणेणिस्संकिया के०) तथा ए निग्रंथना प्रवचनने विषे निःशंकित एटले संदेहरहित होय, एटले जे श्रीवीतराग बोल्या तेज सत्य छे एम जाणे. (णिक्कंखियाके०) सूत्र छोडी बीजुं शास्त्र वांछे नही, (निवितिगिछा के०) धर्मना फलने विषे संदेहरहित होय, तथा सूत्रोक्त साधुना मार्गने विषे डुगछारहित होय, (लद्धठा के०) सूत्रसांनलवा थकी लाधाछे सूत्रना अर्थ जेने, (गहीयठा के०) धारणायें करी ग्रह्याछे अर्थ जेणे, (पुछियठा के०) संशय उत्पन्न थया थकी पूछीने खरा कस्याछे अर्थ जेणे, (विणिछियठा के०) वारंवार विशेषें पूछीने निश्चित कस्याछे अर्थ जेणे, (अनिगयठा के०) प्राप्त थयेला अर्थने पूछ्या पछी, निर्णय करी धास्याछे अर्थ जेणे, एटले प्रकारें तत्वार्थना जाण, (अछिमिंजपेम्माणुरागरत्ता के०) अस्थि अने हाड मांहेली मिंजा जे धातु विशेष ते नगवंतना सिद्धांतरूप कसुंबादिकने विषे प्रेमरूप रागें करी रंगाणाछे एटले रागरक्तछे, तथा पांच मांहे मल्या थका एवी धर्मनी कथा कहे के, (अयमाउसो के०) अहो आयुष्मंतो! (निग्गंथेपावयणेके०) निग्रंथ एटले साधु संबंधि जे प्रवचनसिद्धांत छे (अयंपरमठेके०) एज आत्माने अर्थे उत्कृष्ट मोक्ष साधन रूप मार्गछे. (सेसेअणठे के०) अने शेष बीजा कपिलादिकना ग्रंथ, तथा धनधान्यादिक पुत्रकलत्रादिक ए सहु अनर्थ कारीछे, ए सर्व असार एवोजे आ संसार तेनी वृद्धिनां कारण रूपछे. एवी कथा करे, एरीतें निग्रंथना प्रवचनने विषे रागीछे, (उसियफलिहा के०) निर्मल स्फाटिकना जेवुं चित्तछे जेनुं (अवगुयडुवारा के०) जेना घरना बारणा नोगल रहित एटले सर्व काल उघाडां छे,

(अचियत्तंतेउरपरघरपवेसा के०) राजाना अंतःपुरनी पेठें लोकना घरने विषे प्रवेश करवानो जेणे त्याग कर्योछे, अथवा अप्रीतिकारि छे परदर्शनादिकना घरने विषे प्रवेश जेनो, एतावता परतीर्थिकने पर घर जाणीने, घणा मजबूत कारणो विना, तेमने घरे न जाय, तथा (चाउद्दसट्ठमुद्दिठ के०) चतुर्दशी, अष्टमी, अने उद्दिष्ट एटले महाकल्याणिक तिथि (पुन्निमासिणीसु के०) पूर्णिमा चतुर्मासिक तिथि, एटला दिवसोने विषे (पडिपुन्नंपोसहंसम्मंअणुपालेमाणा के०) प्रतिपूर्ण पोसहने सम्यक् प्रकारें पालता थका विचरेछे. वली ते श्रावक कहेवाछे तोके, (समणेनिग्गंथे के०) श्रमण तपस्वी निग्रंथने (फासुएसणिज्जेणं के०) प्राशुक एटले निर्जीव एषणीक, एटले बहेंतालीश दो रहित एवो (असणपाणखाइमसाइमेणं के०) अशन, पान, खादिम, स्वादिम, (वत्थपडिग्गहकंबलपायपुंछणेणं के०) तथा वस्त्र, पात्र, कंबल, पायपुंछण, (उसहनेसज्जेणंके०) औषध, नैषज्य, (पीढफलगसेज्जासंथारएणंपडिलानेमाणा के०) पीठ, फलक, शय्या, संथारो तेणेकरी प्रतिलानता थका, (बहुहिंसीलवयगुणवेरमणपच्चरकाणपोसहोववासेहिं के०) घणां एक शीलव्रत तथा शीलते शुनाचार, तथा स्थूल प्राणातिपात, वेरमणादिक गुण व्रत ते देशव्रतादिक योग्य पणे लीधेला, तथा नवकारसी पोरसी प्रमुख पच्चरकाण ना करनार, तथा पौषध सहित उपवासना करनार, (अहापरिग्गहिएहिं के०) तथा यथा परिग्रहित एटले पोतानी इछा माफक आदर्याछे जेणे; ते शुं आदर्याछे? तोके (तवोकम्मेहिं के०) तप कर्म, तेणे करी, (अप्पाणंनावेमाणाविहरंति के०) पोताना आत्मानें नावता थका विचरेछे. ॥७६॥ (तेणंएयारूवेणंविहारेणंविहरमाणा के०) ते एतद्रूप पणे एटले एवा पूर्वोक्त श्रावकने आचारें प्रवर्त्तता थका, (बहुइंवासाइं के०) घणा वर्ष सुधी (समणोवासगपरियागं के०) श्रमणोपासकना पर्यायने (पाउणंति के०) पाले, (पाउणंतित्ताके०) पालीने (आबाहंसिउप्पन्नंसिवा के०) रोगादिक आबाधा उपनी, (अणुप्पन्नंसिवा के०) अथवा अनुत्पन्न एटले नउपनी छते (बहुइंनत्ताइं के०) घणा नात पाणीनो (अणसणाएपच्चरकाए के०) अनशनपच्चरके (पच्चरकाएता के०) एम घणा नक्त पानन्नो अनशन पच्चरकिने (बहुइंनत्ताइंअणसणाछेदइ के०) ते अनशनने विषे घणा नक्त पानने छेदे, एटले परिहरे. (छेदेइत्ता के०) छेदी एटले परिहरीने, घणादिवस अनशन पालीने (आलोइयपडिक्कंता के०) आलोचे पडिकमे एटले जे पाप लागां होय, ते अरिहंतादिक आगल प्रकाशीने तेनां मिथ्या डुष्कृतादिक आपीने (समाहिपत्ता के०) ज्ञानादिकनी निर्व्याघात पणे समाधि पामिने एटले पडिकमीने समाधि प्राप्त थइने, मरणना अवसरें काल करीने एटले समाधि मरण करीने अनेरा देवलोकने विषे देवता पणे उपजनार थाय. ते कहेछे, महोटी रुद्धिछे वैमानिकादिकनी तेने विषे, महो

टा द्युतिने विषे, यावत् घणा सुख तेने विषे, इत्यादिक शेष बोल पूर्ववत् एटले तेमज जाणवा. ज्यांसुधी एवुं स्थानक आर्य एटले धर्मपक्ष साधुनुं कह्युं. यावत् एकांत सम्यक्त्व मार्ग साधु त्यांसुधीनो आलावो बधो केवो. ए त्रीजुं स्थानक जे मिश्रपक्ष तेनुं विचार स्वरूप कह्युं. एटले धर्म पक्ष, अधर्मपक्ष, अने मिश्रपक्ष, ए त्रणे पक्ष कह्या.॥ ३३ ॥

॥ दीपिका–तान् विशेषतआह । (सेजहत्ति) तद्यथा श्रमणोपासकाअधिगतजीवा जीवाउपलब्धपुण्यपापाः । इह प्रायः सूत्रादर्शेषु नानाविधानि सूत्राणि दृश्यंते । टीकानुगतं सूत्रं तु प्रायोन दृश्यते । परं इममेवादर्शमंगीकृत्य मया विवरणं क्रियते इति सूत्रांतरविसंवाददर्शनान्न व्यामोहोविधेयइति । तेच श्रावकाआश्रवसंवरवेदनानिर्जराक्रियाधिकरणबंधमोक्षकुशलाः (असहेज्जत्ति) असहायाअपि देवासुरादिभिर्नैर्ग्रंथात्प्रवचनमतादनतिक्रमणीयाअकंपनीयाः (इणमेत्ति) अस्मिन्नेव नैर्ग्रंथे प्रवचने निःशंकितानिःकांक्षानिर्विचिकित्सालब्धार्थागृहीतार्थाविनिश्चितार्थाअधिगतार्था (अस्थिमिंजा) अस्थिमध्यं यावत्प्रेमानुरागरक्ताः दर्शनेत्यंतं जावितमतयइत्यर्थः । अत्रार्थे कथानकं । राजगृहे कश्चित्परिव्राजकोविद्यासिद्धोयांयां स्त्रियं रम्यां पश्यति तांतामपहरति ततोलोकैर्नृपाय विज्ञप्तं राज्ञोक्तं गछत स्वस्थानं यूयं सुखं तिष्ठत अहं तं दुरात्मानं यदि पंचषैर्दिनैर्नलजे तदा वन्हौ प्रविशामि । गतानागरिकाः स्थानं राज्ञा आरक्षकास्तदन्वेषणाय नियुक्ताः स्वयं च खड्गपाणिर्भ्रमति नृपः। नचोपलभ्यते चौरस्ततः पंचमदिने तांबूलपुष्पादि गृह्णन् रात्रौ नृपेण दृष्टः परिव्राट् तत्पृष्ठगामिना राज्ञा नगरोद्यानवृक्षकोटरप्रवेशेन गुहाभ्यंतरे प्रविश्य हतः सः । ततः समर्पितं यच्छनं यस्य सत्कं स्त्रियोपि। तत्रैका कामिनी अत्यंतमोषधैर्जावितानेछति स्वपतिमपि ततः प्राज्ञैरुक्तं अस्याश्चौरास्थीनि दुग्धेन सह संघृष्य यदि दीयंते तदासौ तदाग्रहं मुंचति ततः स्वजनैरेवं कृतं । यथायथा चासौ तदस्थीनि जक्षयति तथा स्नेहोयाति सर्वास्थिपाने च गतः सर्वोपि चौरस्नेहः अनुरक्तानून्निजे जर्तरि। तदेवं यथा सात्यंतं जाविता नेछत्यपरं तथा श्रावकाअपि नितरां जाविताः शासने नक्ष्यंतेऽन्यथाकर्तुं अत्यंतं सम्यक्त्वौषधजावितत्वादिति । श्रावकाः किंभूताः । (अयमाउसोत्ति) इदमायुष्मन् जैनं शासनं अर्थस्तत्त्वभूतं अयमेव परमार्थः शेषोऽनर्थइति चिंतयंतः । तथा चतुर्दश्यष्टम्यादिषु प्रतिपूर्णं पोषधं सम्यक्त्वमनुपालयंतः (उसियफलिहत्ति) उछ्रितानि स्फाटिकानि चित्तानि येषांते तथा वर्धमानपरिणामाइत्यर्थः । (अवगुयदुवारत्ति) अप्रावृतानि द्वाराणि येषांते तथा सन्मार्गलाजान्नकुतोपि जयं कुर्वंतीत्युद्घाटितद्वाराः (अचियत्तत्ति) अचियत्तोऽननिमतोंऽतःपुरप्रवेशवत्परगृहप्रवेशोयेषांते तथा श्रमणान्निर्ग्रंथान् प्रासुकेनैषणीयेन अशनादिना वस्त्रप्रतिग्रहकंबलपादपुंछनेन औषधभेषजे

न पीठफलकशय्यासंस्तारकेण प्रतिलाभयंतोबहूनि । शीलव्रतगुणविरमणप्रत्याख्यानपौष धोपवासैर्यथा परिगृहीतैस्तपःकर्मभिरात्मानं भावयंतस्तिष्ठंति ॥७६॥ (तेणंति) ते श्रमणोपा सकाएतद्रूपेण विहारेण विहरमाणाबहूनि वर्षाणि श्रमणोपासकं पर्यायं प्रपाल्य रोगातं के समुत्पन्नेऽनुत्पन्ने वा भक्तं प्रत्याख्याय स्वायुःक्षये देवेषूत्पद्यंते ततोपि च्युताः सुमानुष भवं प्राप्य तेनैव भवेनोत्कृष्टतः सप्तसु अष्टसु वा भवेषु सिध्यंति । तदेवं स्थानमार्यं तृ तीयस्य स्थानस्यार्यं विभंगोविचारआख्यातः ॥ ७७ ॥

॥ टीका–तांश्च विशेषतोदर्शयितुमाह (सेजहेत्यादि) विशिष्टोपदेशार्थं श्रमणानुपास ते सेवंतइति श्रमणोपासकास्तेच श्रमणोपासनतोऽभिगतजीवाजीवस्वभावास्तथोपलब्धपु ण्यपापाः । इह च प्रायः सूत्रादर्शेषु नानाविधानि सूत्राणि दृश्यंते न टीकासंवाद्येकोप्यस्मा भिरादर्शः समुपलब्धोतएकमादर्शमंगीकृत्यास्माभिर्विवरणं क्रियते इत्येतदवगम्य सूत्रवि संवाददर्शनाच्चित्तव्यामोहोविधेयइति । ते श्रावकाः परिज्ञातबंधमोक्षस्वरूपाः संतोन धर्मा त्र्याव्यंते मेरुरिव निष्प्रकंपादृढमार्हते दर्शनेऽनुरक्ताः । अत्र चार्थे सुखप्रतिपत्त्यर्थं दृष्टांत भूतं कथानकं । तच्चेदं । तद्यथा राजगृहे नगरे कश्चिदेकः परिव्राट् विद्यामंत्रौषधिलब्ध सामर्थ्यः परिवसति सच विद्यादिबलेन पत्तने पर्यटन् यां यामभिरूपतरामंगनां पश्यति तां तामपहरति ततः सर्वैर्नागरैराज्ञे निवेदितं । यथा देव! प्रत्यहं पत्तनं मुष्यते केनापि नीयते सर्वसारमंगनाजनोपि यस्तस्यानभिमतः सोऽत्र केवलमास्ते । तदेवं क्रियतां प्रसादस्तदन्वे षणेनेति । राज्ञाभिहितं गछत यूयं विश्रब्धाभवतावश्यमहं तं डुरात्मानं लप्स्ये । किंचय दि पंचभिरहोभिर्न लभे चौरं विमर्षयुक्तोपि च त्यक्ष्याम्यात्मानमहं ज्वालामालाकुले वन्हौ तदेवं कृतप्रतिज्ञं राजानं प्रणम्य निर्गतानागरिकाः । राज्ञा च सविशेषं नियुक्ताआरक्षकाः । आत्मनाप्येकाकी खड्गखेटकसमेतोन्वेष्टुमारब्धोन चोपलभ्यते चौरस्ततोराज्ञा निपुणतरम न्वेषता पंचमेऽहनि भोजनतांबूलगंधमाल्यादिकं गृह्णन् रात्रौ स्वतोनिर्गतेनोपलब्धः सपरिव्राट् तत्पृष्ठगामिना नगरोद्यानवृक्षकोटरप्रवेशेन गुहाभ्यंतरं प्रविश्य व्यापादितस्त दनंतरं समर्पितं यद्यस्य सत्कमंगनाजनोपीति । तत्र चैका सीमंतिनी अत्यंतमौषधिना विता नेछत्यात्मीयमपि भर्तारं ततस्तद्भिषग्भिरभिहितं यथाऽस्याः परिव्राट्सत्कान्यस्थीनि डुग्धेन सह संघृष्य यदि दीयते तदेयं तदाग्रहं मुंचति ततस्तत्स्वजनैरेवमेव कृतं यथा यथा चासौ तदस्थ्यभ्यवहारं विधत्ते तथातथा तत्स्नेहानुबंधोऽपैति सर्वास्थिपाने चापगतः प्रेमानुबंधस्तदनुरक्ता निजे भर्तरि । तदेवं यासावत्यंतं तेन परिव्राजा नेछत्यपरमेवं श्रावक जनोपीति नितरां भावितात्मा मौनींद्रशासने न शक्यते अन्यथाकर्तुमत्यंतं सम्यक्त्वौषधे न वासितत्वादिति । पुनरपि श्रावकान् विशिनष्टि (जावउसियफलिहाइत्यादि) उच्छ्रिता

टा द्युतिने विषे, यावत् घणा सुख तेने विषे, इत्यादिक शेष बोल पूर्ववत् एटले तेमज जाणवा. ज्यांसुधी एवुं स्थानक आर्य एटले धर्मपक्ष साधुनुं कह्युं. यावत् एकांत सम्यक्त्व मार्ग साधु त्यांसुधीनो आलावो बधो केवो. ए त्रीजुं स्थानक जे मिश्रपक्ष तेनुं विचार स्वरूप कह्युं. एटले धर्म पक्ष, अधर्मपक्ष, अने मिश्रपक्ष, ए त्रणे पक्ष कह्या.॥ ३३ ॥

॥ दीपिका–तान् विशेषतआह । (सेजहत्ति) तद्यथा श्रमणोपासकाअधिगतजीवाजीवाउपलब्धपुण्यपापाः । इह प्रायः सूत्रादर्शेषु नानाविधानि सूत्राणि दृश्यंते । टीकानुगतं सूत्रं तु प्रायोन दृश्यते । परं इममेवादर्शमंगीकृत्य मया विवरणं क्रियते इति सूत्रांतरविसंवाददर्शनान्न व्यामोहोविधेयइति । तेच श्रावकाआश्रवसंवरवेदनानिर्जराक्रियाधिकरणबंधमोक्षकुशलाः (असहेज्जत्ति) असहायाअपि देवासुरादिभिर्नैर्ग्रंथात्प्रवचनमतादनतिक्रमणीयाअकंपनीयाः (इणमेत्ति) अस्मिन्नेव नैर्ग्रंथे प्रवचने निःशंकितानिःकांक्षानिर्विचिकित्सालब्धार्थागृहीतार्थाविनिश्चितार्थाअधिगतार्था (अस्थिमिंजा) अस्थिमध्यं यावत्प्रेमानुरागरक्ताः दर्शनेत्यंतं नावितमतयइत्यर्थः । अत्रार्थे कथानकं । राजगृहे कश्चित्परिव्राजकोविद्यासिद्धोयांयां स्त्रियं रम्यां पश्यति तांतामपहरति ततोलोकैर्नृपाय विज्ञप्तं राज्ञोक्तं गछत स्वस्थानं यूयं सुखं तिष्ठत अहं तं दुरात्मानं यदि पंचपौर्दिनैर्नलन्ने तदा वन्हौ प्रविशामि । गतानागरिकाः स्थानं राज्ञा आरक्षकास्तदन्वेषणाय नियुक्ताः स्वयं च खड्गपाणिर्भ्रमति नृपः । नचोपलभ्यते चौरस्ततः पंचमदिने तांबूलपुष्पादि गृह्णन् रात्रौ नृपेण दृष्टः परिव्राट् तत्पृष्ठगामिना राज्ञा नगरोद्यानवृक्षकोटरप्रवेशेन गुहाभ्यंतरे प्रविश्य हतः सः । ततः समर्पितं यद्धनं यस्य सत्कं स्त्रियोपि। तत्रैका कामिनी अत्यंतमोषधैर्नावितानेछति स्वपतिमपि ततः प्राज्ञैरुक्तं अस्याश्चौरास्थीनि दुग्धेन सह संघृष्य यदि दीयंते तदासौ तदाग्रहं मुंचति ततः स्वजनैरेवं कृतं । यथायथा चासौ तदस्थीनि नक्षयति तथा स्नेहोयाति सर्वास्थिपाने च गतः सर्वोपि चौरस्नेहः अनुरक्तानून्निजे नर्तरि। तदेवं यथा सात्यंतं नाविता नेछत्यपरं तथा श्रावकाअपि नितरां नाविताः शासने नशक्यंतेऽन्यथाकर्तुं अत्यंतं सम्यक्त्वौषधनावितत्वादिति । श्रावकाः किंनूताः । (अयमाउसोत्ति) इदमायुष्मन् जैनं शासनं अर्थस्तत्त्वनूतं अयमेव परमार्थः शेषोऽनर्थइति चिंतयंतः । तथा चतुर्दश्यष्टम्यादिषु प्रतिपूर्णं पोषधं सम्यक्त्वमनुपालयंतः (उसियफलिहत्ति) उछ्रितानि स्फाटिकानि चित्तानि येषांते तथा वर्धमानपरिणामाइत्यर्थः । (अवगुयदुवारत्ति) अप्रावृतानि द्वाराणि येषांते तथा सन्मार्गलानान्नकुतोपि नयं कुर्वंतीत्युद्घाटितद्वाराः (अचियत्तत्ति) अचियत्तोऽनन्निमतोंऽतःपुरप्रवेशवत्परगृहप्रवेशोयेषांते तथा श्रमणान्निर्मंथान् प्रासुकेनैषणीयेन अशनादिना वस्त्रप्रतिग्रहकंबलपादपुंछनेन औषधनेषजे

न पीठफलकशय्यासंस्तारकेण प्रतिलान्नयंतोबहूनि । शीलव्रतगुणविरमणप्रत्याख्यानपौष धोपवासैर्यथा परिगृहीतैस्तपःकर्मनिरात्मानं नावयंतस्तिष्ठंति ॥७६॥ (तेणंति) ते श्रमणोपा सकाएतद्रूपेण विहारेण विहरमाणाबहूनि वर्षाणि श्रमणोपासकं पर्यायं प्रपाल्य रोगातं के समुत्पन्नेऽनुत्पन्ने वा नक्तं प्रत्याख्याय स्वायुःक्षये देवेषूत्पद्यंते ततोपि च्युताः सुमानुष नवं प्राप्य तेनैव नवेनोत्कृष्टतः सप्तसु अष्टसु वा नवेषु सिद्ध्यंति । तदेवं स्थानमार्यं तृ तीयस्य स्थानस्यायं विनंगोविचारआख्यातः ॥ ७७ ॥

॥ टीका–तांश्च विशेषतोदर्शयितुमाह (सेजहेत्यादि) विशिष्टोपदेशार्थं श्रमणानुपास ते सेवंतइति श्रमणोपासकास्तेच श्रमणोपासनतोऽनिगतजीवाजीवस्वन्नावास्तथोपलब्धपु एयपापाः । इह च प्रायः सूत्रादर्शेषु नानाविधानि सूत्राणि दृश्यंते न टीकासंवाद्येकोप्यस्मा निरादर्शः समुपलब्धोतएकमादर्शमंगीकृत्यास्मानिर्विवरणं क्रियते इत्येतदवगम्य सूत्रवि संवाददर्शनाच्चित्तव्यामोहोविधेयइति । ते श्रावकाः परिज्ञातबंधमोक्षस्वरूपाः संतोन धर्मा च्चाल्यंते मेरुरिव निष्प्रकंपाद्दढमार्हते दर्शनेऽनुरक्ताः । अत्र चार्थे सुखप्रतिपत्त्यर्थं दृष्टांत नूतं कथानकं । तच्चेदं । तद्यथा राजगृहे नगरे कश्चिदेकः परिव्राट् विद्यामंत्रौषधिलब्ध सामर्थ्यः परिवसति सच विद्यादिबलेन पत्तने पर्यटन् यां यामनिरूपतरामंगनां पश्यति तां तामपहरति ततः सर्वैर्नागरैराज्ञे निवेदितं । यथा देव! प्रत्यहं पत्तनं मुष्यते केनापि नीयते सर्वसारमंगनाजनोपि यस्तस्यानभिमतः सोऽत्र केवलमास्ते । तदेवं क्रियतां प्रसादस्तदन्वे षणेनेति । राज्ञाभिहितं गच्छत यूयं विश्रब्धान्नवतावश्यमहं तं डुरात्मानं लप्स्ये । किंचय दि पंचभिरहोभिर्न लन्ने चौरं विमर्षयुक्तोपि च त्यक्ष्याम्यात्मानमहं ज्वालामालाकुले वन्हौ तदेवं कृतप्रतिज्ञं राजानं प्रणम्य निर्गतानागरिकाः । राज्ञा च सविशेषं नियुक्ताआरक्षकाः । आत्मनाप्येकाकी खड्गखेटकसमेतोन्वेष्टुमारब्धोन चोपलन्यते चौरस्ततोराज्ञा निपुणतरम न्वेषता पंचमेऽहनि नोजनतांबूलगंधमाल्यादिकं गृण्हन् रात्रौ स्वतोनिर्गतेनोपलब्धः सपरिव्राट् तत्पृष्ठगामिना नगरोद्यानवृक्षकोटरप्रवेशेन गुहाभ्यंतरं प्रविश्य व्यापादितस्त दनंतरं समार्पितं यद्यस्य सत्कमंगनाजनोपीति । तत्र चैका सीमंतिनी अत्यंतमौषधिन्ना विता नेच्छत्यात्मीयमपि नर्तारं ततस्तद्भिरभिहितं यथाऽस्याः परिव्राट्सत्कान्यस्थीनि डुग्धेन सह संघृष्य यदि दीयते तदेयं तदाग्रहं मुंचति ततस्तत्स्वजनैरेवमेव कृतं यथा यथा चासौ तदस्थ्यन्यवहारं विधत्ते तथातथा तत्स्नेहानुबंधोऽपैति सर्वास्थिपाने चापगतः प्रेमानुबंधस्तदनुरक्ता निजे नर्तरि । तदेवं यासावत्यंतं तेन परिव्राजा नेच्छत्यपरमेवं श्रावक जनोपीति नितरां नावितात्मा मौनींद्रशासने न शक्यते अन्यथाकर्तुमत्यंतं सम्यक्त्वौषधे न वासितत्वादिति । पुनरपि श्रावकान् विशिनष्टि (जावज्जीवफलिहाइत्यादि) उच्छ्रिता

नि स्फाटिकानीव स्फाटिकानि अंतःकरणानि येषांते तथा । एतडुक्तं नवति। मौनींद्र शैनावासौ सत्यां परितुष्टमानसाइति । तथा अप्रावृतानि द्वाराणि यैस्ते तथा उद्घाटित गृह द्वारास्तिष्ठंति सदर्शनलानेन न कस्यचिद्बिन्यति शोजनमार्गेपरिग्रहे नोद्घाटितशिरसो विश्रब्धं तिष्ठंतीति अचिंतयन्तोऽननिमतोंऽतःपुरप्रवेशवत्परगृह द्वारप्रवेशोऽन्यतीर्थिकप्र वेशोयेपां ते तथा अनवरतं श्रमणानुद्युक्तविहारिणोनिर्ग्रंथान् प्रासुकेनैषणीयेनाशनादिना तथा पीठफलकशय्यासंस्तारकादिनाच प्रतिलानयंतस्तथा बहूनि वर्षाणि शीलव्रतगुणव्रत प्रत्याख्यानपोषधोपवासैरात्मानं नावयंतस्तिष्ठंति ॥७६॥ तदेवं ते परमश्रावकाः प्रनूतकाल मणुव्रतशिक्षाव्रतानुष्ठायिनः साधूनामौषधवस्त्रपात्रादिनोपकारिणः संतोयथोक्तं यथाशक्ति सदनुष्ठानं विधायोत्पन्ने वा कारणेऽनुत्पन्नेवा नक्तं प्रत्याख्यायालोचितप्रतिक्रांताः समाधि प्राप्ताः संतः कालमासे कालं कृत्वाऽन्यतरेषु देवेपूत्पद्यंतइति । एतानि चानिगतजीवाजी वादिकानि पदानि हेतुहेतुमद्भावेन नेतव्यानि । तद्यथा यस्मादनिगतजीवास्तस्माडुपल ब्धपुण्यपापाः । यस्माडुपलब्धपुण्यपापास्तस्माडुब्रितमनसः । एवमुत्तरत्रापि एकैकं पदंत्य जन्निरेकैकं चोत्तरं गृएहन्निर्वाच्यं । तेच परेण पृष्टाअपृष्टावाएतदूचुः । तद्यथाऽयमेव मौ नींद्रोक्तोमार्गः सदर्थः । शेषस्त्वनर्थोयस्मादेवं प्रतिपद्यंते तस्मात्ते समुब्रितमनसः संतः साधुधर्मं श्रावकधर्मं च प्रकाशयंतोविशेषेणैकादशोपासकप्रतिमाः स्पृशंतोविहरंतोऽष्टमीच तुर्दश्यादिषु पोषधोपवासादौ साधून् प्रासुकेन प्रतिलानयंति पाश्चात्ये च कालेसंलिखि तकायाः संस्तारकश्रमणनावं प्रतिपद्य नक्तं प्रत्याख्यायायुषः क्षये देवेपूत्पद्यंते । ततोपि च्युताः सुमानुषनावं प्रतिपद्य तेनैव नवेनोत्कृष्टतः सप्तस्वष्टसु नवेषु सित्स्यंतीति । तदे तत्स्थानं कल्याणपरंपरया सुखविपाकमिति कृत्वाऽर्यमिति । अयं विनंगस्तृतीयस्य स्थानस्य मिश्रकाख्यस्याख्यातइति. ॥ ७७ ॥

अविरइं पडुच्च बाले आहिज्जइ विरइं पडुच्च पंमिए आहिज्जइ विरया विरइं पडुच्च बालं पंमिए आहिज्जइ तब्रणं जासा सव्वतो अविरइ एसघा णे आरंन्नघाणे अणारिए जाव असव्वडुःखप्पहीणमग्गे एगंतमिब्रे अ साहू तब्रणं जासा सव्वताविरइ एसघाणे अणारंन्नघाणे आरिए जा व सव्वडुक्खप्पहीणमग्गे एगंतसम्मे साहू तब्रणं जासा सव्वउ विरया वि रई एसघाणे आरंन्नणोरंन्नघाणे एसघाणे आरिए जाव सव्वडुक्खप्पही णमग्गे एगंतसम्मे साहू ॥ ७८ ॥

अर्थ—हवे ए त्रणे स्थानकनें संक्षेपें करी सविशेष कहेळे. (अविरइंपडुच्च के०)

अविरति एटले असंयम ते आहीं सम्यक्त्वने अनावें जोपण मिथ्यादृष्टिनी विरतिछे, तोप ण तेने अविरतिज कहेवाय; ते अविरति आश्री तेने (बालेआहिज्जइ के०) बाल कहि यें, (विरईपडुच्चपंमिएआहिज्जइ के०) अने विरति एटले सावद्य परित्यागरूप ते आश्री तेने पंमित परमार्थनो जाण कहियें, (विरयाविरईपडुच्चबालपंमिएआहिज्जइ के०) त था विरताविरत एटले कांइक संयम कांइक असंयम ते आश्री तेने बाल पंमित कहियें, (तबणंजासासव्वतोअविरइ के०) त्यां पूर्वोक्त त्रण स्थानकने विषे जे सर्व थकी अविरति स्थानकछे एटले जेमां सर्वथा विरति परिणामनो अनावछे. (एसठाणे के०) ए स्थानक ते (आरंनठाणे के०) आरंननुं स्थानक, (अणारिए के०) अनार्य, (जावअसव्वडुरकप्प हीणमग्गे के०) यावत् सर्व डुःख थकी मूकाववानो मार्ग नथी. (एगंतमिछेअसाहु के०) एकांत मिथ्यात्व मार्ग असाधु एटले ए सारो मार्ग नहीं. हवे बीजुं धर्मपक्षनुं स्थानक कहेछे. (तबणंजासासव्वताविरइ के०) त्यां जे सर्व थकी विरति सम्यक् पूर्वक आरंन परित्यागरूप (एसठाणे के०) ए स्थानक (अणारंनठाणे के०) अनारंननुं स्थानक (आरिए के०) आर्य, (जावसव्वडुरकप्पहीणमग्गे के०) यावत् सर्व डुःख थकी मुका ववानो मार्ग, (एगंतसम्मेसाहु के०) एकांत सम्यक्त्व साधु मार्ग जाणवो. हवे त्रीजुं मिश्रपक्षनुं स्थानक कहेछे. (तबणंजासासव्वउविरयाविरइएसठाणेआरंनणोरंनठाणे के०) त्यां जे सर्व थकी विरताविरत एटले संयमासंयमरूप स्थानक ते आरंन अने अनारंन रूप स्थानक जाणवुं. (एसठाणे के०) ए स्थानक (आरिए के०) आर्य यावत् सर्व डुःख थकी मूकाववानो मार्ग एकांत सम्यक् नलो मार्ग जाणवो. ॥ ७७ ॥

॥ दीपिका—अथेदं पक्षत्रयमुपसंहरन् संक्षेपतोवक्ति। अविरतिं प्रतीत्याश्रित्य बालआ धीयते स्थाप्यते विरतिमाश्रित्य बालपंडितइत्युच्यते । तत्र वा अविरतिः। एतत् स्थानं यावन्नायं सर्वडुःखक्षयमार्गः किंतु? एकांतमिथ्यात्वमार्गोऽसाधुः । तत्र या सर्वविरतिः एतत्स्थानमनारंनस्थानं आर्यं यावदयं सर्वडुःखक्षयमार्गः साधुः शोननः । या सर्वतो विरताविरतिः । इदं स्थानमारंनानारंनस्थानं । इदमपि स्थानमार्यं परंपरया सर्वडुःख क्षयमार्गः एकांतः सम्यक् साधुः ॥७७॥

॥ टीका—उक्ता धार्मिकाअधार्मिकास्तडुनयरूपाश्चानिहिताः।सांप्रतमेतदेव स्थानत्रिकमु पसंहारद्वारेण संक्षेपतोबिनणिषुराह । (अविरइइत्यादि) येयमविरतिरसंयमरूपा स म्यक्त्वानावान्मिथ्यादृष्टेर्ड्व्यतोविरतिरप्यविरतिरेव तां प्रतीत्याश्रित्य बालवद्बालोऽज्ञः सद सद्विवेकविकलत्वात् इत्येवमाधीयते व्यवस्थाप्यते आख्यायते वा तथा विरतिं चाश्रित्य

प्रतीत्य पापाल्लीनः पंडितः परमार्थज्ञोवेत्त्येवमाधीयते व्याख्यायते तथा विरताविरतिं श्रित्य बालपंडितइत्येतत्प्राग्वदायोज्यमिति । किमित्यविरतिविरत्याश्रयेण बालपांडि पत्तिरित्याशंक्याह । तत्थणमित्यादि । तत्र पूर्वोक्तेषु येयं सर्वात्मना सर्वस्मात् अवि विरतिपरिणामाभावः। एतत्स्थानं सावद्यारंभस्थानमाश्रयस्तदाश्रित्य सर्वाण्यपि कार्या क्रियंते । यतएवमतएतदनार्यस्थानं निःशूकतया यत्किंचनकारित्वाद्यावदसर्वदुःखप्रक्ष मार्गोयं तथैकांतमिथ्यारूपोसाधुरिति । तत्र चेयं विरतिः सम्यक्त्वापूर्विका सावद्या न्निवृत्तिः सावद्यानुष्ठानरहितत्वात्संयमस्थानं तत्र चैतत्स्थानमार्यस्थानं । आराद्यातं र्वहेयधर्मेभ्यइत्यार्यं तथा सर्वदुःखप्रक्षीणमार्गोऽशेषकर्मक्षयपथस्तथैकांतः सम्यग्भूत एतदेवाह । साधुरिति । साधुभूतानुष्ठानात्साधुरिति । तत्रच येयं विरताविरतिरभिधी सैव मिश्रस्थानभूता तदेव तदारंभरूपस्थानमेतदपि कथंचिदार्यमेवं पारंपर्येण सर्वदु प्रहीणमार्गस्तथैकांतसम्यग्भूतः साधुश्चेति तदेवमनेकविधोयमधर्मपक्षोधर्मपक्षस्तथा श्रपक्षश्चेति संक्षेपेणाभिहितपक्षत्रयसमाश्रयणेन ॥७८॥

एवमेव समणुगम्ममाणा इमेहिं चेव दोहिं ठाणेहिं समोअवतरंति तंज हा धम्मेचेव अधम्मेचेव उवसंतेचेव अणुवसंतेचेव तत्थणं जे से पढमठा णस्स अधम्मपरकस्स विनंगे एवमाहिए तस्सणं इमाइं तिन्नि तेवठाइं पावाउयसयाइं नवंतीति मरकाई तंजहा किरियावाईणं अकिरियावाई णं अन्नाणियवाईणं वेणइयवाईणं तेवि निवाणमाहंसु तेवि परिमोक्ख माहंसु तेवि लवंति सावगा तेवि लवंति सावइत्तारो ॥ ७९ ॥

अर्थ—(एवमेव के०) एप्रकारें (समणुगम्ममाणा के०) अन्य बीजा जे मार्ग, नेक उन्मार्गछे ते सर्व, (इमेहिंचेवदोहिंठाणेहिंसमोअवतरंति के०) ते निश्चें थकी बे स्थानकने विषे अवतरेछे समायछे. (तंजहा के०) ते बे स्थानकनां नाम कहेछे (धम्मेचेवअधम्मेचेव के०) एक धर्म स्थानक, बीजुं अधर्म स्थानक, (उवसंतेचेवअ वसंतेचेवके०) एक ज्यां कषायादिक उपशम्याछे ते उपशांत स्थानक जाणवुं, अने बी ज्यां कषायादिक उपशम्या नथी ते अनुपशांत स्थानक जाणवुं. (तत्थणंजेसेपढमठाणस अधम्मपरकस्सविनंगेएवमाहिए के०) त्यां ए बेहु स्थानक मांहे प्रथम स्थानक, अधर्म पक्षछे, तेनुं स्वरूप विचार एम कहियें. (तस्सणं के०) ते अधर्मपक्ष स्थान मांहे (इमाइं के०) ए (तिन्नितेवठाइंपावाउयसयाइंनवंतीतिमरकाइ के०) त्रणशें त्रेशठ प्रावाडुक एटले पाखंमीना भेद अवतरेछे, एम भगवंतें कह्युंछे. (तंजहा के०

ते कहेछे. (किरियावाईणं के०) एक क्रियावादी, तेना एकसोने एंशी भेदछे. (अकिरियावाईणं के०) बीजा अक्रियावादी तेना चोराशी भेदछे. (अन्नाणियवाईणं के०) त्रीजा अज्ञानवादी, तेना सडसठ भेदछे (वेणइयवाईणं के०) चोथो विनयवादी, तेना बत्रीश भेदछे. एम सर्वे मली त्रणशेंने त्रेसठ भेदोछे. (तेवि निव्वाणमाहंसु के०) ते पण सर्वे पोत पोताना मतने अनुरागें निर्वाण एटले मोक्षनो मार्ग कहेछे. (तेवि परिमोरकमाहंसु के०) तेपण कर्म थकी मूकाववानो उपाय कहेछे. (तेविलवंतिसावगा के०) तेपण कहेछेके अहो श्रावको ! अमे जे धर्म प्ररूपीयें छैयें ते धर्म तमे आदरो (तेविलवंतिसावइत्तारो के०) तेपण कहेछे के, अमे धर्मना संभलावनारा छैयें. ॥ ७९॥

॥ दीपिका—मिश्रपक्षोपि धर्माधर्मयोरेवांतर्भवतीत्याह । एवमेव संक्षेपेण समनुगम्यमानाव्याख्यायमानाः सम्यगनुगृह्यमाणाअनयोरेव धर्माधर्मपक्षयोरनुपतंति । उपशांतस्थानं धर्मपक्षः अनुपशांतस्थानमधर्मस्थानं (तह्वणंति) तत्रच यत्प्रथमस्थानस्याधर्मपक्षस्य स्थानं तत्रामूनि त्रीणि त्रिषष्ट्यधिकानि प्रावादुकशतान्यंतर्भवंतीत्येवमाख्यातं पूर्वाचार्यैः । तद्यथा । क्रियावादिनः अक्रियावादिनः अज्ञानिकवादिनवैनयिकवादिनः । अत्र षष्ठीबहुवचनेनेदमाह । क्रियावादिनामशीत्युत्तरंशतं १८० अक्रियावादिनां चतुरशीतिः ८४ अज्ञानिकानां सप्तषष्टिः ६७ वैनयिकानां द्वात्रिंशत् ३२ सर्वे मिलिताः ३६३ मौलभेदाः । भेदानयने प्रकारश्चायं । जीवाजीवाश्रवसंवरनिर्जरापुण्यपापबंधमोक्षरूपान् नव पदार्थान् विन्यस्य जीवपदार्थस्याधः स्वपरभेदौ स्थाप्यौ । तयोरधोनित्यानित्यभेदौ तयोरप्यधः काल १ श्वरा २ त्म ३ नियति ४ स्वभाव ५ भेदाः पंच स्थाप्याः । ततएवं भेदाः कार्याः । अस्ति जीवः स्वतोनित्यः कालतः १ अस्तिजीवः स्वतोनित्यईश्वरतः २ एवमात्मनियतिस्वभावैरपि । एवं पंच भेदानित्यपदेन लब्धाः । अनित्यपदेनापि पंच । एते दश विकल्पाः स्वतःपदेन लब्धाः । एवं दश विकल्पाः परतः पदेनापि । जाता विंशतिर्जीवपदेन । एवमजीवाद्यष्टपदैरपि विंशतिर्विंशतिः स्युः । नवभिर्विंशतिभिश्चाशीत्यधिकं शतं । एते क्रियावादिभेदाः । न कस्यचित्पदार्थस्य क्रिया संभवति । उत्पत्त्यनंतरमेव विनाशात् । क्षणिकाः सर्वसंस्काराः अस्थिराणां कुतः क्रिया इत्यादि ये वदंति तेऽक्रियावादिनः । तेषां भेदाः ८४ । यथा । पुण्यपापवर्जितजीवाजीवादिपदार्थसप्तकस्य न्यासः । तस्याधः प्रत्येकं स्वपरभेदौ असत्वादात्मनोनित्यानित्यविकल्पौ नस्तः । कालादीनां पंचानामधस्तात्षष्ठी यदृछा स्थाप्या । इह यदृछावादिनः सर्वेप्यक्रियावादिनएव । ततः प्राक् यदृछा नोक्ता । ततएवं भेदाः कार्याः । नास्ति जीवः स्वतः कालतः १ नास्तिजीवः स्वतईश्वरतः २ एवमात्मादिभिरपि । एवं षड्भेदाः स्वतः प

देन । परतः पदेनापि षट् जाताः १२ एवमजीवादिपदार्थेषु प्रत्येकं १२ ततो द्वादश स
प्तनिर्गुणिताजाताः ८४ एते क्रियावादिन्नेदाः । अज्ञानिकन्नेदाः ६७ । यथा । जीवाजी
वाद्यानव पदार्थाः स्थाप्यंते । उत्पत्तिश्च दशमी नवपदार्थानामधः प्रत्येकं सप्त सत्वा
यः स्थाप्याः । तद्यथा । सत्वं असत्वं सदसत्वं अवाच्यत्वं सदवाच्यत्वं असदवाच्यत्वं स
दसदवाच्यत्वं चेति । नवसप्तनिर्गुणिताजाताः ६३ । उत्पत्तेश्चत्वारएवाद्याविकल्पाः । त
द्यथा । सत्वं सदसत्वं अवाच्यत्वं चेति । शेषविकल्पत्रयं तु उत्पत्तेरनंतरं पदार्थावयवापेक्षं
अतउत्पत्तौ न संन्नवतीति चत्वारएव न्नेदास्त्रिषष्टिमध्ये क्षिप्ताजाताः ६७ । एषामर्थस्त्वे
शोयथा । कोजानाति जीवः सन्नित्येकोन्नेदः १ कश्चिदपि नजानाति तद्ग्राहकप्रमाणाना
वादित्यर्थः । ज्ञातेन वा किं तेन प्रयोजनं । ज्ञातस्य कदाग्रहतया परलोकप्रतिपंथित्वात् ।
एवमसदादयोपि न्नंगान्नाव्याः । उत्पत्तिरपि किंसतोऽसतः सदसतोवाच्यस्य वेति कोजा
नाति । ज्ञातेनवा नकिंचिदपि प्रयोजनं । इत्यज्ञानिकन्नेदाः । वैनयिकाः ३२ । यथा ।
सुरनृपतियतिज्ञातिस्थविराधममातृपितृरूपेषु अष्टसु स्थानेषु कायेन मनसा वाचा दाने
नच देशकालोपपन्नेन विनयः कार्यइति चत्वारः कायादयः स्थाप्याः । चत्वारश्चाष्टनि
र्गुणिताजाताः ३२ । एवं सर्वेपि मीलिताजाताः ३६३ परवादिन्नेदाः । एषां विशेषव्या
ख्या प्रथमांगतोज्ञेया । ते सर्वे प्रावादुकाजैनाइव निर्वाणं मोक्षमाहुः । तेपि लपंति वदं
ति धर्मदेशनां यथा हेश्रावकाः ! शृण्वंतीति श्रावकाः। एवं गृह्णीत यूयं यथाहं देशयामीति।
तथा तेपि धर्मश्रावयितारः संतएवं लपंति तदनेनोपायेन स्वर्गमोक्षप्राप्तिरिति ॥ ३९ ॥

॥ टीका—सांप्रतमसावपि मिश्रपक्षोधर्माधर्मसमाश्रयणेनानयोरंतर्वर्ती न्नवतीति दर्श
यति । (एवमेवेत्यादि) एवमेव संक्षेपेण सम्यगनुगम्यमानाव्याख्यायमानाः सम्यगनु
गृह्यमाणाअनयोरेव धर्माधर्मस्थानयोरनुपतंति । किमिति । यतोयदुपशांतस्थानं तद्ध
र्मपक्षस्थानमनुपशांतस्थानमधर्मपक्षस्थानमिति । तत्रच यदधर्मपाक्षिकं प्रथमं स्थानं
तत्रामूनि त्रीणि षष्ट्यधिकानि प्रावादुकशतान्यंतर्न्नवंतीति । एवमाख्यातं पूर्वाचार्यैरिति ।
एतानि वा सामान्येन दर्शयितुमाह । (तंजहेत्यादि) तद्यथेत्युपदर्शनार्थः । क्रियां ज्ञा
नादिरहितामेकामेव स्वर्गापवर्गसाधनत्वेन वदितुं शीलं येषां ते क्रियावादिनस्ते च दीक्षा
तएव मोक्षं वदंतीत्येवमादयोद्रष्टव्याइति । तेषांच बहवोन्नेदास्तथा क्रियां परलोक
साधनत्वेन वदितुं शीलं येषां ते तथा तेषामिति अज्ञानमेव श्रेयइत्येवं वदितुं शीलं येषां
ते न्नवंत्यज्ञानवादिनस्तेशं तथा विनयएव परलोकसाधने प्रधानं कारणं येषांते तथा
तथा तेषामिति । अत्रच सर्वत्र षष्ठीबहुवचनेनेदमाह । तद्यथा क्रियावादिनामशीत्युत्तरश
तं अक्रियावादिनां चतुरशीतिरज्ञानिकानां सप्तषष्टिर्वैनयिकानां द्वात्रिंशदिति । तत्र सर्व

प्येते मौलास्तच्छिष्याश्च प्रवदनशीलत्वात्प्रावाडुकास्तेषां च नेदसंख्या परिज्ञानोपायश्चा चारएवाभिहितइति नेह प्रतन्यते । तें सर्वेप्यार्हताइव परिनिर्वाणमशेषद्वंद्वोपरमरूपव र्णगंधरसस्पर्शस्वनावमनुपचरितपरमार्थस्थानं ब्रह्मपदाख्यमबाधात्मकं परमानंदसुखस्व रूपमाहुरुक्तवंतस्तथा तेपि प्रावाडुकाः संसारबंधनान्मोचनात्मकं मोक्षमाहुः । पूर्वेण नि रुपाधिकं कार्यमेव निर्वाणाख्यमुक्तमनेन तु तदेव कारणोपाधिकमित्ययं विशेषः । तत्र येषामप्यात्मा नास्ति ज्ञानसंततिवादिनां तेषामपि कर्मसंततेः संसारनिबंधनजूताया विच्छे दान्मोक्षनावाविरोधः । तेषां चोपादानक्षयादनागतानुत्पत्तेः संततिच्छेदएव मोक्षः प्रदी पस्येव तैलवर्त्यनावे निर्वाणमिति । तथाचाहुः । न तस्य किंचिद्भवति न नवत्येव केव लमिति । एतच्च तेषां महामोहविजृंनितं । यतः । कर्म चास्ति फलं चास्ति कर्ता नैवास्ति कर्मणां ॥ संसारमोक्षवादित्वमहोह्यांध्यविजृंनितमिति ॥ येषां चात्मास्ति सांख्यादीनां तेषां प्रकृतिविकारवियोगोमोक्षः क्षेत्रज्ञस्य पंचविंशतितत्त्वपरिज्ञानादेव विद्यमानैःप्रधानवि कारैर्विमोचनं मोक्षइति । तेषामप्येकांतनित्यवादितया मोक्षानावः । एवमन्येपि नैया यिकवैशेषिकादयः संसारानावमिच्छंतोपि न मुच्यंते सम्यग्दर्शनादिकस्योपायस्यानावादि त्यन्यूह्याह । यदि न तेषां मोक्षः कथं ते लोकस्योपास्यानवंतीत्याशंक्याह । तेपि तीर्थि कालपंति ब्रुवते मोक्षं प्रति धर्मदेशनां विदधति । शृएवंतीति श्रावकाः हेश्रावका! एवं गृएही त यूयं यथाहं देशयामि तथा तेऽपि धर्मश्रावयितारः संतएवं लपंति नाषंते यथाऽनेनोपा येन स्वर्गमोक्षावाप्तिरिति तद्वचनं मिथ्यात्वोपहतबुद्धयोवितथमेव गृएहंति कूटपएयदायि नां विपर्यस्तमतयएवेति । तदेवमादितीर्थिकास्तच्छिष्याश्च पारंपर्येण मिथ्यादर्शनानुनावा त्परान्प्रतारयंति तेपिच तेषां प्रतारयंति आहुः कथमेते प्रवाडुकामिथ्यावादिनोनवंति । अ त्रोच्यते । यतस्तेप्यहिंसां प्रतिपादयंति नच तां प्रधानमोक्षांगनूतां सम्यगनुतिष्ठंति । कथं सांख्यानां तावज्ज्ञानादेव धर्मोन तेपामहिंसाप्राधान्येन व्यवस्थितः किंतु पंचयमाइत्यादि कोविशेषइति । तथा शाक्यानामपि दश कुशलाधर्मपथाअहिंसापि तत्रोक्ता नतु सैव ग रीयसी धर्मसाधनत्वेन तैराश्रिता । वैशेषिकाणामपि अनिसेवनोपवासब्रह्मचर्यगुरुकुल वासप्रस्थादानयज्ञादिनक्षत्रमंत्रकालनियमादृष्टास्तेषु चानिषेचनादिषु पर्यालोच्यमानेषु हिंसैव संपद्यते वैदिकानां हिंसैव गरीयसी धर्मसाधनं यज्ञोपदेशात् तस्य च तयाविनानाा वादित्यनिप्रायः । उक्तंच । ध्रुवः प्राणिवधोयज्ञे ॥ ७ए ॥

ते सव्वे पावाउया आदिकरा धम्माणं णाणापन्ना णाणाछंदा णाणासीला णाणादिट्ठी णाणारुई णाणारंन्ना णाणाज्झवसाणसंजुत्ता एगंमहं मंम लिबंधं किच्चा सव्वे एगयाउ चिठंति ॥ ८० ॥

अर्थ–(तेसव्वेपावाउयाआदिकराधम्माणं के०) ते सर्वे प्रावाडुक एटले पाखंमी पोता ने छंदे धर्मना आदिना करनार कहियें, परंतु ते (णाणापन्ना के०) नाना प्रकारनी बु द्धि वाला, (णाणाछंदा के०) नाना प्रकारना अनिप्राय वाला, (णाणासीला के०) नानाप्रकारना आचारवाला, (णाणादिठ्ठी के०) नाना प्रकारनी दृष्टि वाला, (णाणारु ई के०) नाना प्रकारनी रुची वाला, (णाणारंना के०) नाना प्रकारना आरंनना करनारा, (णाणाझवसाणसंजुत्ता के०) नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करीने सहित एवा थका, पोतपोतानुं (एगंमहंमंमलिबंधंकिच्चा के०) एक महोटुं मंमल बांधि करीने, एटले पंक्ति करीने, (सव्वेएगयाउचिठंति के०) ते सर्वे एकज प्रदेशें तिष्ठंति एटले बेगाबे. ॥ ८० ॥

॥ दीपिका–ते सर्वे प्रावाडुकाआदिकराः स्वधर्माणां। नानाप्रज्ञानानाछंदानानानिप्रायाना नाविधादृष्टिर्दर्शनं येषां ते तथा नानाविधा रुचिर्येषां ते तथा नानाविधारंनानानाविधा ध्यवसायसंयुक्ताएकं महांतमंडलिबंधं कृत्वा तिष्ठंति ॥८०॥

॥ टीका–तदेवं सर्वेप्रावाडुकामोक्षांगनूतामहिंसां न प्राधान्ये न प्रतिपद्यंतइति दर्शयि तुमाह । (तेसव्वेइत्यादि) प्रवदनशीलाः प्रावाडुकाः सर्वेपि त्रिषष्ट्युत्तरत्रिशतपरिमाणाअ पि आदिकरायथा स्वं धर्माणां । येपिच तच्छिष्यास्तेपि सर्वे नानानिन्ना प्रज्ञा ज्ञानं येषांते नानाप्रज्ञाः । आदिकराइत्यनेनेदमाह । स्वरुचिविरचितास्ते नत्वनादिप्रवाहायाताः । ननु चार्हतानामपि आदित्वविशेषणमस्त्येव सत्यमस्ति किंतु अनादिर्हेतुपरंपरेत्यनादित्व मेव तेषांच सर्वज्ञप्रणीतागमानाश्रयणान्निबंधनानावस्तदनावाच्च निन्नपरिज्ञानमतएव नानाछंदाः। छंदोऽनिप्रायः । निन्नानिप्रायाइत्यर्थः।तथाहि । उत्पादव्ययध्रौव्यात्मके वस्तु नि सांख्यैरेकांतेनाविर्नावतिरोनावाश्रयणादन्वयिनमेव पदार्थं सत्यत्वेनाश्रित्य नित्यप क्षं समाश्रितास्तथा शाक्याअत्यंतक्षणिकेषु पूर्वोत्तरनिन्नेषु पदार्थेषु सत्सु सएवायमिति प्रत्यनिज्ञा प्रत्ययः सदृशापरापरोत्पत्तिर्वितथानां नवतीत्येतत्पक्षसमाश्रयणादनित्यपक्षं समाश्रिताइति । तथा नैयायिकवैशेषिकाः केषांचिदाकाशपरमाण्वादीनामेकांतेन नित्य त्वमेवकार्यद्रव्याणांच घटपटादीनामेकांतेनानित्यत्वमेवाश्रिताः । एवमनया दिशाऽन्येपि मीमांसकतापसादयोऽन्यूह्याइति । तथा ते तीर्थिकानानाशीलं येषां ते तथा शीलं व्रत विशेषः सच निन्नस्तेषामनुनवसिद्धएव । तथा नाना दृष्टिर्दर्शनं येषांते तथा नानारु चिरेषां ते नानारुचयस्तथा नानारूपमध्यवसानमंतःकरणप्रवृत्तिर्येषां ते तथा इदमुक्तं नवति । अहिंसा परमं धर्मांगं । साच तेषां नानानिप्रायत्वादविकलत्वेन व्यवस्थिता । तस्याएव सूत्रकारः प्राधान्यं दर्शयितुमाह । ते सर्वेपि प्रावाडुकायथास्वपक्षमाश्रिताएक त्र प्रदेशे संयुतामंमलिबंधमाधाय तिष्ठंति ॥८०॥

पुरिसेयं सागणियाणं इंगालाणं पाइं बहुपडिपुन्नं गहाय अउमएणं संडासएणं गहाय ते सव्वे पावाउए आइगरा धम्माणं णाणापन्ना जाव णाणाअवसाणसंजुत्ते एवं वयासीहंभो पावाउया आइगरा धम्माणं णाणापन्ना जाव णाणाअवसाणसंजुत्ता इमं ताव तुम्ह सागणिया णं इंगालाणं पाइं बहुपडिपुन्नं गहाय मुहुत्तयं पाणिणा धरेह णोबहु संडासगं संसारियं कुज्जा णो बहुअग्गियंभणियं कुज्जा णोबहु साह म्मियवेयावडियं कुज्जा णोबहुपरधम्मियवेयावडियं कुज्जा उज्जयाणिया गपडिवन्ना अमायं कुव्वमाणा पाणिं पसारेह इति वुच्चा से पुरिसे तेसिं पावाउयाणं तं सागणियाणं इंगालाणं पाइं बहुपडिपुन्नं अउमएणं संडासएणं गहाय पाणिंसु णिसिरिंति तएणं तेपावाउया आइगरा ध म्माणं णाणापन्ना जाव णाणाअवसाणसंजुत्ता पाणिंपडिसाहरंति तए णं से पुरिसे ते सव्वे पावाउए आदिगरे धम्माणं जाव णाणाअवसाणसं जुत्ता एवं वयासी हंभो पावाउया आइगरा धम्माणं णाणापन्ना जाव णाणाअवसाणसंजुत्ता कम्हाणं तुब्भे पाणिं पडिसाहरह पाणिं नोडहि ज्जा दड्ढे किं भविस्सइ दुक्खंति मन्नमाणा पडिसाहरह एसतुला एस प्पमाणे एस समोसरणे पत्तेयंतुला पत्तेयं पमाणे पत्तेयं समोसरणे तत्थणं जेते समणा माहणा एवमातिक्खंति जाव परुवेंति सव्वे पाणाजाव सत्ता हंतव्वा अज्जावेयव्वा परिघेतव्वा परितावेयव्वा किलामेतव्वा उद्दवेतव्वा तेआगंतुछेयाए तेआगंतुभेयाए जाव ते आगंतु जाइजरामरणजोणि जम्मणसंसारपुणभवगब्भवासभवपवंच कलंकलीभागिणो भविस्संति ॥

अर्थ—तेवारें कोई एक (पुरिसेयं के०) पुरुष जैन मार्गनो जाण ते तेमने अहिंसा दिकने विषे पाडवाने अर्थें (सागणियाणंइंगालाणं के०) अग्नियें बलता अंगारा तेणे करी एक लोढानुं (पाइंके०) पात्र एटले भाजन भरीने (बहुपडिपुन्नं के०) घणो प्र तिपूर्ण भरीने (अउमएणं के०) लोहना (संडासएणंगहाय के०) संडासी सहित ग्र हण करीने (तेसव्वेपावाउए के०) ते सर्वे प्रावाडुक एटले परदर्शनी (आइगराधम्माणं के०) पोतपोताना धर्मनी आदिना करनार, (णाणापन्नाजावणाणाअवसाणंसंजुत्तेके०)

न्हाना प्रकारनी प्रज्ञावाला, यावत् नाना प्रकारना जे अध्यवसाय तेणे करी संयुक्त ए वा परदर्शनी ते आगल आवीने, (एवंवयासी के०) एवुं कहेछे के (हंनोपावाउया के०) अहो प्रावाडको! (आइगराधम्माणं के०) तमे धर्मनी आदिना करनारछो; (णाणा पन्नाजावणाणाअवसाणसंजुत्ता के०) तमे न्हाना प्रकारनी बुद्धिवाला, तथा न्हाना प्रकारना जे अध्यवसाय तेणें करी संयुक्तछो ते माटे, (इमंतावतुम्हेसागणियाणंइंगालाणंके०) ए तुमे अग्नियें बलता अंगारा तेणे करी सहित एवोआ एक लोहनुं (पाइंके०) नाजन (बहुपडिपुन्नं के०) घणुं प्रतिपूर्ण तेने (गहायमुहुत्तयं के०) ग्रहण करीने, एक मुहूर्त्त मात्र (पाणिणाधरेह के०) हाथ मांहे धरी राखो, (णोबहुसंमासगंसंसारियंकुज्ञा के०) घणी संमासानो सहाय मकरो. (णोबहुअग्गिथंत्नणियंकुज्ञाके०) घणो अग्निने स्तंननी एटले स्थंनि राखे तेवी विद्यानुं सहाय मकरो (णोबहुसाहम्मियवेयावडियंकुज्ञाके०) घणो मांहो मांहे साधर्मिकनुं वैयावच्च नो करवो, एटले अग्नि दीधानो उपशमाववुं मकरो. (णोबहुपरधम्मियंवेयावडियंकुज्ञा के०) घणो परधर्मिकनो माहो मांहे वैयावच्चनो करवो एटले अग्नि दीधानो उपशमाववुं मकरो. मात्र (उज्जुयाके०) सरल थका (णियागपडिवन्नाके०) मोक्ष मार्ग प्रतिपन्न थका, (अमायंकुव्वमाणापाणिपसारेह के०) माया रहित पणु करता थका हाथ पसारो. (इतिवच्चाके०) एम कहीने, (सेपुरिसेके०) ते पुरुष (तंसागणियाणंइंगालाणंपाइंबहुपडिपुन्नं के०) ते अग्नि बलता अंगरानुं नाजन घणु प्रतिपूर्ण नरीने (अउमएणंसंमासएणंगहाय के०) लोहना संमासा सहित ग्रहीने (तेसिंपावाउयाणंके०) ते प्रावाडकना (पाणिंसु के०) हाथनी उपरें (णिसिरिंति के०) मूके. (तएणंके०) तेवारें (तेपावाउयाआइगराधम्माणं के०) ते प्रावाडक धर्मनी आदिना करनार (णाणापन्नाजावणाणाअवसाणसंजुत्ता के०) नाना प्रकारनी प्रज्ञा वाला यावत् नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करी सहित एवा छता ते प्रावाडकने हाथमां अग्नि आपे छते (पाणिंपडिसाहरंति के०) पोताना हाथ पाछा खेंचे एम पाछा हाथ करता देखीने (तएणं के०) तेवारें (सेपुरिसे के०) ते पुरुष ते सर्व प्रावाडक धर्मना आदिना करनार नाना प्रकारनी प्रज्ञावाला यावत् नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करी सहित ते प्रत्यें (एवंवयासी के०) एम कहेके (हंनोपावाउया के०) हे प्रावाडको! पोताना छंदे धर्मनी आदिना करनाराउ! नाना प्रकारनी प्रज्ञा वाला यावत् नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करी सहित (कम्हाणंतुप्नेपाणिंपडिसाहरह के०) शाकारणे तमे हाथ पाछा खेंचोछो. तेवारें ते बोल्या (पाणिंनोमहिज्ञाके०) अमारा हाथ नथी बलताछुं? अमारा हाथ बलेछे दाजेछे ते कारण माटे हाथ पाछा खेची लीधाछे तेवारे ते पुरुष फरी बोल्यो के (दड्ढेकिंनविस्सइ के०) तमारो हाथ दाजवाथी शुं थवानुंछे एवुं सांनली फरी ते

प्रावाडुक पाखंमी दर्शनीउं बोल्या के, अमने दुःख उपजेठे, तेवारें फरी ते पुरुष बोल्यो के, (दुक्कंतिमन्नमाणा के०) जो तमे दुःख जाणता अग्निनी दाऊ थकी बीहिता थका हाथ ने (पडिसाहरहके०) पाठा करोठो ? तो जेम तमे दुःख थकी बीक राखोठो, तेम सर्व जीवने (एसतुल्लाके०) ए तुल्य एटले बराबर ठे; (एसप्पमाणेके०) एप्रमाणे जाणवुं. (एससमो सरणे के०) ए समोसरण) पत्तेयंतुल्ला के०) प्रत्येक प्रत्येकने सरखुं, अने (पत्तेयंप्प माणे के०) प्रत्येक प्रत्येकने प्रमाण, एवुं (पत्तेयंसमोसरणेके०) प्रत्येक प्रत्येकने समोस रण जाणवुं. (तबणंजेतेसमणामाहणाएवमातिक्खंति के०) त्यां जे श्रमण ब्राह्मण एम कहेठे (जावपरूवेंतिके०) यावत् एम प्ररूपे ठे के, (सवेपाणाजावसत्ताहंतवा के०) सर्व प्राणी, यावत् सर्व सत्वने हणवा, (अज्जावेयवाके०) दंम काशादिकें करी ताडवा, (प रिघेतवा के०) बलात्कारें करी दासनी पेठें परिग्रहवा. (परितावेयवा के०) शारीरिक मानसीक पीडा उपजाववी, (किलामेतवा के०) किलामण उपजाववी. (उद्दवेतवा के०) उपडववा, तथा जीव, काया थकी रहित करवा. एवां वचनना बोलनारा, (ते आगंतुठेयाए के०) ते आगमिक कालें वारंवार पोताना शरीरनुं ठेदन पामशे. (तेआ गंतुनेयाए के०) ते आगमिक कालें नालादिकें करी पोताना शरीरनुं नेदन पामशे, (जावतेआगंतुं के०) यावत् ते जीव आगमिक कालें (जाइजरामरण जोणिजम्मणं के०) जाति, जरा, मरण, तथा नवी नवी योनी मांहे उपजवुं, तथा जन्मना दुःख (संसारके०) एरीतें संसार मांहे परिन्रमण करतां (पुणनव के०) वली वली नव नवा नवनुं करवुं, (गप्नवास के०) वली वली गर्नवास मांहे वसवुं, एरीतें (नवपवं च के०) संसारनो प्रपंच एटले संसारनो विस्तार, (कलंकलि के०) कलकलाट एटले दुःखें करी व्याकुल पणुं, तेना (नागिणोनविस्संति के०) विनागी थशे. ॥ ८१ ॥

॥ दीपिका-(पुरिसेयत्ति) एकः कश्चित्पुरुषः साग्निकानां ज्वलतामंगाराणां प्रतिपू र्णी (पाइ) पात्रीं अयोमयेन लोहमयेन संदंशकेन गृहीत्वा तेषां ढौकितवान् उवाच। नोः प्रावाडुकाः ! इदमंगारनृतं नाजनं एकैकं मुहूर्तं प्रत्येकं बिनृत यूयं? । नचेदं संदंशकं सांसारिकं नापि चाग्निस्तंननं विदध्युः । नापिच साधर्मिकानामग्निदाहोपशमादिना उ पकारं कुर्युरिति । ऋजवोमायामकुर्वाणाः पाणिं प्रसारयत तेपि तथैव कुर्युः ततोसौ नर स्तन्नाजनं तत्पाणौ समर्पयति । तेपि च दाहनयाद्धस्तं संकोचयंति । ततोसौ पुरुषस्तान् प्राह किमिति पाणिं संहरत यूयं? । ते प्राहुर्दाहनयात् । नरः प्राह । दग्धेन हस्तेन किंनावि? । दुःखमिति चेदेवं यूयं दाहोत्पन्नदुःखनीरवः सुखलिप्सवः । एवं सति सर्वे पि जंतवः संसारवर्तिनएवंविधाएवेति आत्मतुलया आत्मतुल्यत्वेन यथा मम दुःखं

न संमतं तथा सर्वजीवानामित्येतत्प्रमाणं । एषा युक्तिः तदेतत्समवसरणं एषधर्म विचारः । आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति सपश्यतीति प्रत्येकं तुलासाम्यमित्यादि (तन्नणंति) तत्र एवं सति ये श्रमणब्राह्मणादयएवमाख्यांति । सर्वे प्राणाहंतव्या दंडादिभिः परितापयितव्याधर्मार्थमरघट्टादिवहनादिभिः परिग्राह्याः श्राद्धादौ मत्स्याइव अपद्रावयितव्यायागादौ मेषाइव । एवं ये भाषंते ते आगामिनि काले स्वशरीरस्य छेदाय भेदायच भाषंते । तथाऽगामिनि काले जातिजरामरणानि बहूनि प्राप्नुवंति योन्यां जन्म योनिजन्म तद्बहुशोगर्भजावस्थायां लभंते संसारप्रपंचांतर्गतास्तेजोवायुषु उच्चैर्गोत्रोच्छ लनेन कलंकलीभावनाजोदुःखव्याकुलाः स्युः ॥ ८१ ॥

॥ टीका—तेषां चैवं व्यवस्थितानामेकः कश्चित्पुरुषस्तेषां संविदर्थं ज्वलतामंगाराणां प्रतिपूर्णां पात्रीमयोमयं भाजनमयोमयेनैव संदंशकेन गृहीत्वा तेषां ढौकितवानुवाच तान् । यथा भो प्रावादुकाः! सर्वोक्तविशेषणविशिष्टाइदमंगारभृतं भाजनमेकैकं मुहूर्तं प्रत्येकं सांसारिकाणामिवाऽग्निस्तंभनं विधत्ते नापिच साधर्मिकाऽन्यधार्मिकाणामग्निदाहोपशमादिनोपकारं कुरुतइति ऋजवोमायामकुर्वाणाः पाणिं प्रसारयत? तेपिच तथैव कुर्युस्त तोऽसौ पुरुषः तद्भाजनं पाणौ समर्पयति तेपिच दाहशंकया हस्तं संकोचयेयुरिति । ततोसौ तानुवाच । किमिति पाणिं प्रतिसंहरत? यूयं एवमभिहितास्ते ऊचुर्दाहभयादिति । एतदुक्तं भवति । अवश्यमग्निदाहभयान्न कश्चिदग्न्यभिमुखं पाणिं ददातीत्येतत्परोयं दृष्टांतः । पाणिना दग्धेनापि किंभवतां भविष्यतीति दुःखमिति चेद्यद्येवं भवंतोदाहापादितदुःखभीरवः सुखलिप्सवस्तदेवंसति सर्वेपि जंतवः संसारोदरविवरवर्तिनएवंभूताएवेत्येवमात्मतुलयाऽत्मौपम्येन यथा मम नाभिमतं दुःखमित्येवं सर्वजंतूनामित्यवगम्याहिंसैव प्राधान्येनाश्रयणीया तदेतत्प्रमाणं एषा युक्तिः । आत्मवत्सर्वभूतानि यःपश्यति सपश्यति । तदेव समवसरणं सएषधर्मविचारोयत्राहिंसा संपूर्णा ॥ तत्रैव परमार्थतोधर्म इत्येवं व्यवस्थिते तत्र ये केचनाविदितपरमार्थाः श्रमणब्राह्मणादयएवं वक्ष्यमाणमाचक्षते परेषामात्मदार्ढ्योत्पादनायैवं भाषंते तथैवमेवं धर्मं प्रज्ञापयंति व्यवस्थापयंति तथान्येन प्राण्युपतापकारिणा प्रकारेण परेषां धर्मं प्ररूपयंति व्याचक्षते । तद्यथा । सर्वे प्राणाइत्यादि यावद्धंतव्यादंडादिभिः परितापयितव्याधर्मार्थमरघट्टादिवहनादिभिः परिग्राह्याविशिष्टकाले श्राद्धादौ रोहितमत्स्याइव तथाऽपद्रावयितव्यादेवतायागादिनिमित्तं वस्तादयइवेत्येवं ये श्रमणादयः प्राणिनामुपतापकारिणीं भाषां भाषंते आगामिनि काले ऽनेकशोबहुशः स्वशरीरच्छेदायच भाषंते तथा ते सावद्यभाषिणोभविष्यंति काले जातिजरामरणानि बहूनि प्राप्नुवंति । योन्यां जन्म योनिजन्म तदनेकशोबहुशोगर्भेषु

क्कांतजावस्थायां प्राप्नुवंति तथा संसारप्रपंचांतर्गतास्तेजोवायुषूच्चैर्गोत्रो छलनेन कलं कलीनावन्नाजोनवंति बहुशोनविष्यंति च ॥ ८१ ॥

ते बहुणं दंमणाणं बहूणं मुंमणाणं तज्जणाणं तालणाणं अडुबंधणाणं जाव घोलणाणं माइमरणाणं पितामरणाणं नाइमरणाणं नगिणीमरणाणं नज्जापुत्तधूत्तसुण्हामरणाणं दारिद्दाणं दोहग्गाणं अप्पियसंवासाणं पियविप्पजंगाणं बहुणं डुक्कदोमणस्साणं आनागिणो नविस्संति अणादियंचणं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं नुज्जोनुज्जो अणुपरियट्टिस्संति ते णोसिज्झिस्संति णोबुज्झिस्संति जाव णोसवडुक्काणं अंतं करिस्संति एस तुल्ला एस पमाणे एस समोसरणे पत्तेयं तुल्ला पत्तेयं पमाणे पत्तेयं समोसरणे ॥ ८२ ॥

अर्थ-(तेबहूणंदंमणाणं के०) ते जीव घणा दंमाशे, (बहूणंमुंमणाणं के०) ते जीव घणा शरीरादिकें मुंमाशे, (तज्जणाणं के०) अंगुलीयादिकनी तर्जना पामशे, (तालणाणं के०) दंमादिकें ताडना पामशे, (अडुबंधणाणं के०) बंधीखानानां बंधन पामशे, (जावघोलणाणं के०) यावत् आंबानी पेठें घोलाशे, (माइमरणाणं के०) ते जीव मातानां मरणनां दुःखने पामशे, (पितामरणाणं के०) पितानां मरण, (नाइमरणाणंके०) नाइनां मरण, (नगिणीमरणाणंके०) बेहेननां मरण, (नज्जापुत्तधूतसुण्हामरणाणंके०) नार्यानां मरण, पुत्रनां मरण, दीकरीनां मरण, पुत्रनीवहुनां मरण थशे, तेने देखीने दुःख पामशे, दुःखी थशे, ते पुरुष, (दारिद्दाणंके०) दरिद्री थशे, (दोहग्गाणं के०) दौर्नागी थशे, (अप्पियसंवासाणंके०) अप्रियकारीयो साथें तेनो संवास थशे, (पियविप्पजंगाणं के०) ते प्राणी प्रियकारी वस्तुनो विप्रयोग एटले वियोग पामशे, (बहूणंडुक्कदोमणस्साणं के०) घणां दुःख अने दौर्मनस्य पणानो (आनागिणोनविस्संति के०) विनागी थशे, तेपुरुष, (अणादियंचणं के०) आदि रहित, (अणवयग्गं के०) अंत रहित, (दीहमद्धं के०) दीर्घकालपर्यंत एटले घणाकालसुधी (चाउरंतसंसारकंतारं के०) चारगतिरूप अंत अवयवछे जेने विषे तेने चाउरंत कहियें एवी संसार रूप अटवी तेने विषे, (नुज्जोनुज्जो के०) वली वली (अणुपरियट्टिस्संति के०) परिभ्रमण परावर्त्तन करशे, (तेणोसिज्झिस्संति के०) ते पांखमी जीव सीजशें नही, एटले पोताना कार्यनी सिद्धि करशें नही, (णोबुज्झिस्संति के०) लोकालोकना स्वरूपने बुजशें नही, (जावणोसवडुक्काणंअंतंकरिस्संति के०) यावत् ते प्राणी सर्वदुःखनो अंत क

रशे नहीं. एवी रीतें स्वदर्शनी पण, जे पूर्वोक्त जाषा बोलशें ते सीजसे नही एम निश्चे जाणवुं. हवे जे उत्तम पुरुषने एवी तुल्यता राखवी जे सर्व जीव प्रत्येक तुल्य, प्रत्येक प्रमाण, एप्रमाणे प्रत्येक समोसरण पण छे ॥ ८१ ॥

॥ दीपिका—ते नराबहूनां दंडनादीनां शरीरदुःखानां जाजनं जवंति तथा मातृमरणादीनां मानसदुःखानां तथाऽन्येषामप्रियसंयोगार्थनाशादिनिर्दुःखजागिनोजविष्यंति । किं बहुना । (अणादियंति) अनादिकं नविद्यतेऽवदग्रोऽतोयस्य सोऽनवदग्रोऽनंतः तं दीर्घाध्वानं चतुर्गतिमार्गं चातुरंतं संसारकांतारमनुपरिवर्तिष्यंते अरहट्टघटीवद्भ्रमिष्यंति न बोधं प्राप्स्यंति न सेत्स्यंति सर्वदुःखानामंतं न करिष्यंति एषतुला एतत्साम्यं यत्सावद्याचारान सिध्यंति कुमतिनः स्वमतेपि औद्देशिकादिजोजिनस्तथैव एतत्प्रमाणं प्रत्यक्षादिकं प्रत्यक्षेण चौराद्याबाध्यमानाद्दश्यंते । एवमन्येपि एतत्समवसरणं आगमविचारः प्रत्येकं प्रतिजीवमिदं साम्यं द्रष्टव्यं ॥ ८१ ॥

॥ टीका—तथा ते बहूनां दंडादीनां शारीराणां दुःखानामात्मानं जाजनं कुर्वंति तथा ते निर्विवेकामातृवधादीनां मानुषाणां दुःखानां तथान्येषामप्रियसंयोगार्थनाशादिनिर्दुःखदौर्मनस्यानामाजागिनोजविष्यंतीति । किंबहुनोक्तेनोपसंहारव्याजेन । गुरुतरमर्थंतं बंधं दर्शयितुमाह । (अणादियं इत्यादि) नास्यादिरस्तीत्यनादिः संसारः। तदनेनेदमुक्तंजवति । यत्कैश्चिदजिहितं यथायमंमकादिक्रमेणेत्यादितइत्येतदपास्तं । नविद्यतेऽवदग्रं पर्यंतो यस्य सोयमनवदग्रोऽपर्यंतइत्यर्थः । तदनेनेदमुक्तं जवति । यदुक्तं कैश्चिद्यथा प्रलयकालेऽशेषसागरजलप्लावनं द्वादशादित्योद्गमेन चात्यंतदाहइत्यादिकं सर्वं मिथ्येति दीर्घमित्यनंतपुजलपरावर्तरूपं कालावस्थानं तथा चत्वारोंतागतयोयस्य सतथा चातुर्गतिकइत्यर्थः। तत्संसारएव कांतारः संसारकांतारोनिर्जलः सजयस्त्राणरहितोऽरण्यप्रदेशः कांतारइति । तदेवंजूतं जूयोजूयः पौनःपुन्येनानुपरिवर्तिष्यंते अरहट्टघटीन्यायेन तत्रैव भ्रमंतःस्थास्यंतील्यतएवाह । यतस्ते प्राणिनां हंतारः कुतएतदिति चेत्सावद्योपदेशादेतदपि कथमिति चेदतऔद्देशिकादिपरिजोगाज्जइयेत्येवमवगंतव्यमित्यतस्ते कुप्रावचनिकानैव सेत्स्यंति नैव ते लोकाग्रस्थानमाक्रमिष्यंति तथा न ते सर्वपदार्थान् केवलज्ञानावाप्त्या जोत्स्यंते । अनेन ज्ञानातिशयजावमाह । तथा न तेऽष्टप्रकारेण कर्मणा मोक्ष्यंते। अनेनाप्यसिद्धेरकैवल्यावाप्तेश्च कारणमाह । तथा परिनिर्वृतिः परिनिर्वाणमानंदसुखावाप्तिस्तां ते नैव प्राप्स्यंते तेनापि सुखातिशयाजावः प्रदर्शितोजवतीति । तथा नैते शारीरमानसानां दुःखानामात्यंतिकमंतं करिष्यंतील्यनेनाप्यपायातिशयाजावः प्रदर्शितोजवति । एषातु

ला तदेतडुपमानं यथा सावद्यानुष्ठानपरायणाः सावद्यनाषिणश्च कुप्रावचनिकान सिध्यंत्ये वं स्वयूथ्या अप्यौद्देशिकादिपरिनोगिनोन सित्ध्यंतीति। तदेतत्प्रमाणं प्रत्यक्षानुमानादिकं। तथाहि। प्रत्यक्षेणैव जीवपीडाकारि चौर्यादिर्बंधनान्न मुच्यते। एवमन्येपीत्यनुमानादि कमप्यायोज्यं। तथा तदेतत्समवसरणमागमविचाररूपमिति प्रत्येकंच प्रतिप्राणि प्रतिप्रा वाडुकमेतत्तुलादिकं इष्टव्यमिति ॥ ७२ ॥

तञ्चणं जे ते समणा माहणा एवमाइक्खंति जाव परूवेंति सवे पाणा स वेन्नूया सवेजीवा सवेसत्ता णहंतवा णञ्जावेयवा णपरिघेतवा णउद्दवेय वा तेणो आगंतुछेयाए तेणोआगंतुन्नेयाए जाव जाइजरामरणजोणि जम्मण संसारपुणप्नवगप्नवासन्नवएवं कलंकलीन्नागिणो नविस्संति तेणोबहूणं दंमणाणं जाव णोबहूणं मुंमणाणं जाव बहूणं डुक्खदोमण स्साणं णोन्नागिणो नविस्संति अणादियंचणं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंत संसारकंतारे नुजोनुजो णोअणुपरियट्टिस्संति तेसिं स्सिस्संति जाव सवडुक्खाणं अंतं करिस्संति ॥ ७३ ॥

अर्थ—त्यांजे श्रमण ब्राह्मण, सर्व जीवने पोताना आत्मा समान लेखवीने एवो धर्म कहेशे, यावत् प्ररूपशे, के सर्व प्राणी, सर्वनूत, सर्व जीव, सर्व सत्वने हणवा नही, एकांतदया पालवी, यावत् सर्व सत्वने उपद्रववा नही, ते पुरुषो, आगमिक कालें पोताना शरीरनुं छेदन नहीं पामशे, ते आगमिक कालें नेदन नहीं पामशे, ते पुरुष यावत् जाति, जरा, मरण, वली वली योनीमांहे उपजवुं, जन्मनुं डुःख, संसारमांहे परिन्रमण करवुं, वली वली गर्नवास मांहें वसवुं, संसारनो विस्तार प्रपंच, तथा कलकलाट तेनो विन्नागी नहीं थशे. ते पुरुष, घणो दंमाशे नहीं, यावत् डुःख दौर्मनस्य पणानो विन्नागी नहीं थशे, आदिरहित अंतरहित दीर्घ पंथछे, एटले दीर्घ काल पर्यंत चारगति रूप संसार, तद्रूप अटवीने विषे वली वली परिन्रमण परावर्त्त नही करशे. ए रीतें दया धर्मना प्ररूपनार पुरुषो सीजशे कार्यसिद्धि करशे, यावत् सर्व डुःखनो अंत करशे. ॥ ७३ ॥

॥ दीपिका—अथैतद्विपरीतानाह। (तञ्चणंति) तत्र ये ज्ञातव्याः श्रमणमाहनास्ते ए वमाख्यांतीत्यादि सर्वं पूर्वसूत्रविपरीतं वाच्यं ॥ ७३ ॥

॥ टीका—ये पुनर्विदिततत्वाआत्मौपम्येनात्मतुलया सर्वजीवेष्वहिंसां कुर्वाणाएवमा चक्षते। तद्यथा सर्वेपि जीवाडुःखद्विषः सुखलिप्सवस्ते न हंतव्याइत्यादि। तदेवं पूर्वोक्तं दंडनादिकं सप्रतिषेधं नणनीयं यावत्संसारकांतारमचिरेणैव ते व्यतिक्रमिष्यंतीति॥७३

इच्चेतेहिं बारसहिं किरियाठाणेहिं वट्टमाणा जीवा णोसिज्झिंसु णोबुज्झिंसु णोमुच्चिंसु णोपरिणिवाइंसु जाव णोसव्व डुक्खाणं अंतंकरेसुवा णो करेंतिवा णोकरिस्संतिवा ॥ ७४ ॥

अर्थ–ए पूर्वोक्त बार क्रियाना स्थानकने विषे वर्त्तता एवाजे जीव, ते कोइ अतीत कालें सिधा नथी, बुज्या नथी, कर्म थकी मूकाणा नथी, निवृत्या नथी, यावत् सर्वडुःखनो अंत पण कोइयें अतीत कालें कस्यो नथी, वर्त्तमान कालें करता नथी, आगमिक कालें पण करशे नही. कारणके, ए बार क्रियाना स्थानक जे छे, ते अधर्मपक्षने मळताज छे. ॥ ७४ ॥

॥ दीपिका–अथोपसंहरति । (इच्चेतेहिंति) इत्येतेषु द्वादशसु क्रियास्थानेषु अधर्मे पक्षोऽवतार्यते । ततएतेषुवर्त्तमानाजीवान सिद्धान सिध्यंति न सेत्स्यंति न मुक्तान मुच्यंते मोक्ष्यंते न बुद्धान बुध्यंते न भोत्स्यंते न सर्वडुःखानामंतं चक्रुर्न कुर्वंति न करिष्यंति ॥७४॥

॥ टीका–जणितानि क्रियास्थानाति सांप्रतमुपसंजिघृक्षुरेतदेव पूर्वोक्तं समासेन बिजणिषुराह (इच्चेतेहिंइत्यादि) इत्येतेषु द्वादशसु क्रियास्थानेष्वधर्मपक्षोऽनुपशमरूपः समवतार्यते न एतेषु वर्तमानाजीवाअतीते काले सिद्धान वर्तमाने सिध्यंति न जविष्यंति सेत्स्यंति तथा न बुबुधिरे न बुध्यंते नच जोत्स्यंते तथा न मुमुचुर्न मुंचंति नच मोक्ष्यंते तथा न निवृत्ता न निर्वर्त्यंते नचनिर्वास्यंति तथा न डुःखानामंतं ययुर्न पुनर्यांति नच यास्यंतीति॥७४

एयंसि चेव तेरसमे किरियाठाणे वट्टमाणा जीवा सिज्झिंसु बुज्झिंसु मुच्चिंसु परिणिवाइंसु जाव सव्वडुक्खाणं अंतं करेसुवा करंति करिस्संतिवा एवं से जिक्कु आयठी आयहिते आयगुत्ते आयजोगे आयपरक्कमे आयरक्खिए आयाणुकंपए आयनिप्फेडए आयाणमेवपडिसा हरेज्जासि त्तिवेमि ॥७५॥ इति बीयसुयखंधस्सकिरियाठाणंनामबीयमज्झयणंसम्मत्तं॥

अर्थ–ए पूर्वे कह्युंजें निश्चें तेरमुं क्रिया स्थानक तेने विषे वर्त्तता एवा जे जीव, ते जीव अतीत कालें सिधा तत्वमार्गने बुज्या, आठ कर्म थकी मूकाणा. परिनिवृत्त शीतलीजूत थया, यावत् सर्व डुःखनो अतीत कालें अंत कीधो, वर्त्तमान कालें अंत करे छे, अने आगमिक कालें अंत करशे, एम ते साधु चारित्रिड बार क्रिया स्थानकनो वर्जनार मोक्षार्थी, आत्मार्थी, आत्मानुं हित चिंतवनार, आत्मानो गोपवनार, मनादिक

योगने स्ववश करनार, ते आत्मयोगी कहेवाय. आत्माना सुखनें अर्थें पराक्रमनो करनार, आत्मानो रक्षक, आत्माने अनुकंपानो करनार, आत्मानो संसार थकी निस्तार करनार, आत्माने ए बार क्रियाना स्थानक थकी निवृत्तावे, तेने महा पुरुष जाणियें. त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ए श्री सूयगडांगसूत्रना बीजा श्रुतस्कंधने विषे क्रियास्थानक नामे बीजा अध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो. ॥ ७५ ॥

॥ दीपिका–तथा एतस्मिन् त्रयोदशें क्रियास्थाने धर्मपक्षावतारः। ततोत्र वर्तमाना जीवाः सिद्धाः सिध्यंति सेत्स्यंतीत्यादि। तदेवं सन्भिक्षुर्द्वादशक्रियास्थानवर्जकोऽधर्मपक्षत्यागी धर्मपक्षस्थस्त्रयोदशक्रियास्थानवर्ती आत्मनोर्थः आत्मार्थः सविद्यते यस्य स आत्मार्थी आत्महितः आत्मा गुप्तोयस्य सतथा आत्मयोगः कुशलमनःप्रवृत्तिरूपः सयस्यास्ति सआत्मयोगी आत्मपराक्रमः स्वयं संयमानुष्ठानप्रवृत्तः। आत्मा रक्षितोडुर्गतिपाताद्येन सआत्मरक्षितः आत्मानमनर्थपरिहारेणानुकंपते इत्यात्मानुकंपकः (आयनिप्फेडएत्ति) आत्मानं संयमेन संसारचारकान्निष्कासयतीति आत्मानं द्वादशक्रियास्थानेन्यः प्रतिसंहरेत्समहापुरुषः। इतिसमाप्तौ। ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ७५ ॥ इति तपागच्छाधिपतिश्रीहेमविमलसूरीश्वरशिष्यहर्षकुलपंडितप्रणीतायां श्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां द्वितीयश्रुतस्कंधस्य क्रियास्थानाख्यं द्वितीयमध्ययनं समाप्तं ॥ ॥ ॥

॥ टीका–सांप्रतं त्रयोदशं क्रियास्थानं दर्शयितुमाह। (एवमित्यादि) एतस्मिंस्त्रयोदशें क्रियास्थाने वर्तमानाजीवाः सिद्धाः सिध्यंति सेत्स्यंतीति यावत्सर्वडुःखानामंतं करिष्यंतीति स्थितं। तदेवं सन्भिक्षुर्यः पौंडरीकाध्ययनेऽभिहितो द्वादशक्रियास्थानवर्जकः अधर्मपक्षानुपशमपरित्यागी धर्मपक्षे स्थितउपशांतआत्मनोवार्थः आत्मार्थः सविद्यते यस्य सतथा योह्यन्यमपायेन्योरक्षति स आत्मार्थ्यात्मवानित्युच्यते। हिताचाराश्चौरादयोनात्मवंतोऽर्थत्वात्महितऐहिकामुष्मिकापायन्नीरुत्वात्तथात्मागुप्तोयस्य तथा। एतडुक्तं नवति। स्वयमेवासौ संयमानुष्ठाने पराक्रमते तथात्मयोगी आत्मनोयोगः कुशलमनःप्रवृत्तिरूपआत्मयोगः सयस्यास्ति। सदाधर्मध्यानावस्थितइत्यर्थः। तथात्मा पापेन्योडुर्गतिगमनादिन्योरक्षितोयेन सतथा डुर्गतिगमनहेतुनिबंधनस्य सावद्यानुष्ठानस्य निवृत्तत्वादितिनावः। तथात्मानमेवानर्थपरिहारद्वारेणानुकंपते शुनानुष्ठानेन सजतिगामिनं विधत्तइति। तथात्मानं सम्यग्दर्शनादिकेनानुष्ठानेन संसारचारकान्निःसारयतीति। तथात्मानमनर्थनूतेन्योद्वादशेन्यः क्रियास्थानेन्यः प्रतिसंहरेत्। यद्वि वोपदेशआत्मानं सर्वपापेन्यः प्रतिसंह्रियात् सर्वानर्थेन्योनिवर्तयेदित्येतस्मिन्महापुरुषे संनाव्यतइति। इतिः परि

समाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् । नयाः पूर्ववद्व्याख्येयाः ॥ समाप्तं क्रियास्थानाख्यं द्वितीयमध्ययनमिति ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ अथ द्वितीयश्रुतस्कंधे तृतीयाध्ययनप्रारंभः ॥

हवे बार क्रिया स्थानकने वर्जनार एवा चारित्रवान पुरुषें शुद्धाहार लेवो, ते कारण माटे हवे आहार परिज्ञा नामे त्रीजुं अध्ययन प्रारंभियें बैयें.

सुयंमे आउसं तेणं भगवया एव मरकायं इह खलु आहारपरिण्णाणाम ज्झयणे तस्सणं अयमठे इह खलु पाईणंवा सवतो सवावंतिचणं लो गंसि चत्तारि बीयकाया एव माहिज्जंति तंजहा अग्गबीया मूलबीया पोरबीया स्कंधबीया तेसिंचणं अहा बीएणं अहावगासेणं इहेगतिया सत्ता पुढवीजोणिया पुढविसंभवा पुढवीवुक्कमये तज्जोणिया तस्सं भवा तडवक्कमा कम्मोवगा कम्मणियाणेणं तब्बुक्कमा णाणाविह जोणियासु पुढवीसु रुक्कत्ताए विउट्टंति तेजीवा तेसिं णाणाविहजो णियाणं पुढवीणं सिणेह माहारेंति ॥ १ ॥ ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं आउसरीरं तेउसरीरं वाउसरीरं वणस्सइसरीरं णाणाविहाणतसथा वराणं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुवंति परिविद्धबं तं सरीरं पुवाहारियं तयाहारियं विपरिणयं सारूवियकडं संतं अवरेवियणं तेसिं पुढविजो णियाणं रुक्काणं सरीरा णाणावण्णा णाणागंधा णाणारसा णाणाफा सा णाणासंठाणसंठिया णाणाविहसरीरपुग्गलविउब्विता तेजीवा क म्मोववन्नगा भवंति तिमरकायं ॥ २ ॥

अर्थ—(सुयंमेआउसंतेणं के०) श्रीसुधर्मस्वामी जंबू प्रत्यें कहेछे के, में एवुं सांभळ्युं छे जे, आयुष्यमंत (भगवयाएवमरकायं के०) भगवंत श्रीमहावीर देवें एम कह्युंछे (इहखलु के०) निश्चें आ जिनशासनने विषे (आहारपरिण्णाणामज्झयणे के०) आ हारपरिज्ञा एवे नामे अध्ययन कह्युं. (तस्सणंअयमठे के०) तेनो ए अर्थ आगल क हेछे. (इहखलु के०) निश्चें आ जगत् मांहे (पाईणंवा के०) पूर्वादिक चारदिशिने विषे तथा विदिशिने विषे (सव्वतोसव्वावंतिचणंलोगंसि के०) सर्व थकी सर्व, एतावता सर्व लोकने विषे (चत्तारिबीयकाया के०) चार, बीज कायना प्रकार एटले उत्पत्तिना

भेद होय. (एवमाहिज्जंइ के०) ते आ प्रकारें तीर्थंकरें कह्या. (तंजहा के०) ते कहेले. (अग्गबीया के०) जेने अग्रे बीज उपजे ते अग्र बीज कहेवाय ते तिल, ताल, सह कारादिक अथवा शाल्यादिक जाणवा, तथा जे अग्र तेने विषे उत्पत्तिना कारणने पामे तेपण, अग्र बीज कहेवाय, ते कोरंटकादिक जाणवा; एटले ए प्रथम भेद जाणवो. तथा (मूलबीयाके०) आईकादिक ए बीजो भेद जाणवो; (पोरबीयाके०) पर्व बीज ते सेलडी प्रमुख, ए त्रीजो भेद जाणवो. (स्कंधबीयाके०) स्कंधबीज ते सालरा नाग र्जुन प्रमुख, ए चोथो भेद जाणवो. (तेसिंचणंके०) ते चार प्रकारना वनस्पतिकाय (अ हाबीएणंके०) यथा जे जेनुं बीज उत्पत्ति कारण, ते यथा बीज एटले ते तेनुं बीज जाणवुं. जेम शालीना अंकुरनुं शाली बीज उत्पत्ति कारणले, एम अन्यत्र स्थानकें पण जाणी लेवुं. (अहावगासेणं के०) तथा जे जेनो अवकाश एटले उत्पत्ति स्थानक पृथवी, पाणी, काल, आकाश, बीज, संयोग, एने यथावकाश कहियें. एम यथा बीजें तथा यथावकाशें करीने, (इहेगतियासत्ता के०) आ जगत्मांहे कोइ एक सत्व, तथाविध कर्मना उदय थकी, वनस्पतिने विषे उपजनार लतो उपजे, ते वनस्पतिने विषे उपजतां (पुढवीजोणि याके०) पृथवीयोनिक थाय. यद्यपि तेनुं वनस्पतिज बीज कारणले परंतु, आधार विना उत्पत्तिनो अभावले, ते कारण मार्टे पृथवीयोनिक कह्या. जेम शेगालादिक कर्दमना आ धारेंले, पण पृथ्वी विना थाय नही, एम आहां पण जाणी लेवुं. (पुढविसंभवाके०) पृथ वीने विषे वनस्पतिकायनो संभवले (पुढवीवुक्कमाके०) तथा पृथवीने विषे विविध एटले नाना प्रकारें प्रबल पणे संक्रमणले जेनुं ते पृथवीवुक्कमाकहियें एटले एम कह्युंजे पृथवीने विषे ते वनस्पतिकायनी उपर उपर वृद्धिले (तज्जोणिया के०) ते पृथवीयोनिक होय. (तस्संभवाके०) ते पृथवीने विषे वनस्पतिकायनो संभवले, (तडुक्कमाके०)ते पृथवीने विषे नाना प्रकारें प्रबल पणे संक्रमणले,(कम्मोवगाके०)ते जीव तथाविध वनस्पतिकाय संभवि कर्मे प्रेर्यमान लता त्यां वनस्पतिने विषे उपशमोप पृथवीने विषे जाय; ते कारणे एने कम्मो वगा कहियें, एटले ते जीव कर्मना वशांगत वनस्पतिकाय थकी आवीने वली तेज वनस्प तिकायने विषे उपजे,पण अन्यत्रथी आव्या अन्यत्र नउपजे. जेम कुसम पुरियें वाव्यां एवां बीजोना मथुरायें अंकुरो नमले, ज्यां जेहनुं बीज, त्यांज तेना अंकुरोनी उत्पत्ति जाणवी. (कम्मणियाणेणंके०) तथा ते जीव कर्मने कारणे आकर्षित (तत्ववुक्कमाके०) त्यां पृथ विने विषे तथा वनस्पतिने विषे, वुक्कमा एटले आव्या लता (णाणाविहजोणितासुपुढ वीसु के०) नाना प्रकारयोनी पृथवीने विषे (रुरकत्ताए के०) रूख पणे (विउट्टंतिके०) उपजे, (तेजीवातेसिंणाणाविहजोणियाणंपुढवीणं के०) ते जीव ते नाना प्रकार योनी पृथवीनो (सिणेहमाहारेंति के०) स्नेह आहारे तेहीज तेनो आहार. ते पृथवीना

शरीरने आहारतां पृथवीने पीडा उपजावे नहीं. ॥ १ ॥ पछी (तेजीवा के०) ते जीव, (आहारेंतिपुढवीसरीरं के०) पृथवीनु शरीर आहारे, एमज (आउसरीरं के०) अपकायनुं शरीर, (तेउसरीरं के०) तेज कायनुं शरीर, (वाउसरीरं के०) वायुकायनुं शरीर, (वणस्सइसरीरं के०) वनस्पतिकायनुं शरीर, (णाणाविहाणतसथावराणं पाणाणंसरीरं के०) तथा नाना प्रकारनां त्रस अने स्थावर प्राणीउनां शरीर आहारे, परंतु तेमने पीडा नउपजावे. तेनुं कारण कहेछे, जेम अंमजादिक जीव गर्नस्थ छतां माताना उदरनो आहार करे, परंतु माताने पीडा उपजावे नहीं, तेम अंहीं पण जाणी लेवुं. तथा उपन्या पछी वृद्धि प्राप्त अनेक वर्ण रसादिक गुण सहित थाय, तेवारें पण कांइ पीडा उपजावे एरीतें ते जीव पृथवीकाय प्रमुख जीवोनुं (सरीरंअचित्तंकुवंति के०) शरीर अचित्त करे. (परिविद्धत्थं के०) परिविध्वंस करे. (तंके०) ते वनस्पतिना जीव तेणे (सरीरंपुव्वाहारियं के०) पृथवी कायादिकनुं जे शरीर पूर्वें आहार्युं, ते अधुना हमणा वनस्पतिना जीव उत्पद्यमान उपजता, अथवा उपना (तयाहारियं के०) त्वचाने स्पर्शें करी आहारीने, (विपरिणयं के०) परिणमावीने (सारूवियकडंसंतं के०) पोतानी काया सरखां रूप करे, (अवरेवियणं के०) अपर एटले अन्य बीजां शरीर मूल, शाखा, प्रतिशाखा, पत्र, पुष्प, फलादिक, एवां रूप करे. तथा (तेसिं पुढवीजोणियाणं के०) ते पृथवीयोनिक (रुरकाणं के०) वृक्ष, तेनां (सरीर के०) शरीर, ते (णाणावन्नाणं के०) नाना प्रकारना वर्ण, (णाणागंधा के०) नाना प्रकारना गंध, (णाणारसा के०) नाना प्रकारना रस, (णाणाफासा के०) नाना प्रकारना स्पर्श, (णाणासंठाणसंठिता के०) नाना प्रकारना संस्थानें करी संस्थित, (णाणाविहसरीरपुग्गलविउव्विता के०) तथा नाना प्रकारना शरीरना पुद्‌लें करी विकूर्व्यां थका होय, एरीतें (तेजीवा के०) तेजीव (कम्मोववन्नगाभवंति मरकायं के०) वनस्पतिने विषे तथाविध कर्मने उदये उपना होय. परंतु आंहें काल, ईश्वरादिक कारण कोइ समजवो नही. एम नगवंत श्रीतीर्थंकर देवें कह्युं छे एटले पृथवीयोनिक वृक्ष कह्या ॥ २ ॥

॥ दीपिका–अथाहारपरिज्ञाख्यं तृतीयमध्ययनमारभ्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (सुयं मे इत्यादि) श्रुतं मयाऽयुष्मन्नगवतेदमाख्यातं आहारपरिज्ञानाख्यमध्ययनं । तस्य च यमर्थः । प्राच्यादिदिक्षु सर्वतः (सव्वावंतित्ति) सर्वस्मिन् लोके चत्वारोबीजकायाबीजकारान्नवंति । तद्यथा । अग्रे बीजं येषामुत्पद्यते तेऽग्रबीजास्तालसहकारादयः । अथवा याग्रएवोत्पत्तौ कारणं येषां तेऽग्रबीजाः कोरंटादयः । मूलबीजाआर्द्रकादयः पर्वबीज

अनुनवंति । पुनःपुनः संसारचक्रवाले व्याधिमृत्युजरान्निराकुले व्याप्ते ॥ २६ ॥ तेषां डुःखफलमुपसंहारं चाह । (उच्चेति) । उच्चावचान्यधमोत्तमानि स्थानानि गर्भतोग्रमंतोगर्नाजन्नमेष्यंति यास्यंत्यनंतशः । (नायपुत्तेति) । ज्ञातः सिद्धार्थक्षत्रियस्तस्य पुत्रः श्रीमहावीरो जिन एवमुक्तवान् । इति ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं प्रत्याहेति ॥ २७ ॥ इति श्रीसूत्रकृते द्वितीयांगे प्रथमाध्ययनेप्रथमोद्देशकव्याख्या संपूर्णा ॥ ॥

॥ टीका–यत्पुनस्ते प्राप्नुवंति तद्दर्शयितुमाह (नाणाविहाइंइत्यादि) नानाविधानि बहुप्रकाराणि डुःखान्यासातोदयलक्षणान्यनुनवंति पुनः पुनः । तथाहि नरकेषु करपत्रदारण,कुंनीपाक,तप्तायःशाल्मलीसमालिंगनादीनि तिर्यक्षु च शीतोष्णादिदमनांकताडनातिसारारोपणक्षुत्तृडादीनि । मनुष्येषु इष्टवियोगाऽनिष्टसंयोगशोकाक्रंदनादीनि देवेषु च नियोगेर्ष्याकिल्बिषिकत्वच्यवनादीन्यनेकप्रकाराणि डुःखानि ये एवंनूता वादिनस्ते पौनःपुन्येन समनुनवंति। एतच्च श्लोकार्द्धं सर्वेपूत्तरश्लोकार्धेषु योज्यं। शेषं सुगमं यावडुद्देशकसमाप्तिरिति ॥२६॥ नवरमुच्चावचानीति अधमोत्तमानि नानाप्रकाराणि वासस्थानानि गर्भतीति गर्भतोग्रमंतोगर्नाजन्नमेष्यंति यास्यंत्यनंतशो निर्विछेदमिति ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं प्रत्याह । ब्रवीम्यहं तीर्थंकराज्ञया न स्वमनीषिकया सचाहं ब्रवीमि येन मया तीर्थंकरसकाशाछ्रुतं । एतेनच क्षणिकवादिनिरासो डष्टव्यः ॥२७॥ इति समयाख्यप्रथमाध्ययने प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ।

अथ प्रथमाध्ययनेद्वितीयउद्देशकः प्रारन्यते

आघायं पुण एगेसिं, उववन्ना पुढो जिया ॥ वेदयंति सुहं डुःखं, अडु
वा लुप्पंति ठाणउ ॥ १ ॥ न तं सयं कडं डुक्खं, कउ अन्नकडं च णं॥सुहं
वा जइ वा डुखं, सेहियं वा असेहियं ॥ २ ॥ सयं कडं न अन्नेहिं,
वेदयंति पुढो जिया ॥ संगइअं तं तहा तेसिं, इहमेगेसि आहिअं ॥३॥

अर्थ–पुणके० वली एगेसिंके० एक नियतवादिने मते, आघायंके० एम कहुंछे. एटले तेनो जे अनिप्राय छे ते कहेछे. उववन्नापुढोजियाके० पृथक् पृथक् नारकादिकनवे जे जीवछे, ते पोतपोताना देहस्थित थका सुहंडुक्खं के० सुखडुःखने वेदयंतिके० वेदेछे. अडुवाके० अथवा ते प्राणीउ सुख डुःख अनुनवता ठाणउके० ते स्थानकथी पोतानुं आयुष्य पूर्णकरीने लुप्पंतिके० स्थानांतरे संक्रमे. एम नियतवादी कहेछे ॥ १ ॥ वली पण बेगाथाए नियतवादीनां मतनो अनिप्राय कहेछे. जे ते प्राणी सुख डुःख अनुनवेछे, एक स्थानक थकी बीजे स्थानकं उपजेछे, नतंसयंकडंडुक्खंके० ते डुःखादिक ते जीवनुं पोतानुं कीधेलुं नथी. तेम कउअन्नकडंचणं के० अनेरा क

त्रुप्रमुखाः स्कंधबीजाः सल्लक्यादयः । नागार्जुनीयास्तु पठंति । वणस्सइकायाइयाणं चविहा बीजवक्कंति ॥ एवमाहिज्जइ तं अग्गमूलपोर खंधबीयरुहा ॥ छहाविएगंतियासं ुछिमाबीयाजायंते । यथा दवदग्धनूमौ हरितानि विविधानि उत्पद्यंते (तेसिंचणंति) षां चतुर्विधानामपि वनस्पतिकायानां यद्यस्य बीजं तद्यथा बीजं तेन यथाबीजेन ।को ः? । शाल्यंकुरस्य शालिबीजमुत्पत्तिकारणं एवमन्यदपि ज्ञेयं । योयस्यावकाशोयद्यस्यो पत्तिस्थानं तद्यथावकाशं तेन इह जगति एके केचन जीवावनस्पतौ उत्पद्यमानाअपि ृथिवीयोनिकाः पृथिवीसंनवाः । कोर्थः? । बीजाडुत्पद्यमानोवनस्पतिकायः पृथिव्याधारे समुत्पद्यते । यथा शैवलकर्दमादयोजलाधारे जायंते तथा वनस्पतयोनूमौ जायंते इत्य र्थः । तथा पृथिव्यां व्युत्क्रमोवृद्धिर्येषां ते तथा एवं ते तद्योनिकास्तत्संनवास्तद्व्युत्क्रमाः कर्मोपगाः कर्मप्रेर्यमाणाः कर्मनिदानेन तत्र पृथिव्यां वनस्पतौ वा व्युत्क्रांताआगताः सं तोनानाविधयोनिकासु पृथिवीषु षएणां कायानां उत्पत्तिस्थाननूतासु सचित्ताचित्तमिश्रा सु वृक्षतया विवर्तंते जायंते । तेच तत्रोत्पन्नास्तासां पृथिवीनां स्नेहं स्निग्धनावमाहारंति गृह्णंति ॥१॥ तेच तत्रोत्पन्नाआहारंति पृथिवीशरीरं । एवमप्कायतेजोवायुवनस्पतिशरीर मपि । नानाविधानां त्रसस्थावराणां प्राणिनां यच्छरीरं तत्स्वकायेनाश्रित्याचित्तं कुर्वंति । तदिवा परिविध्वस्तं पृथिव्यादिशरीरं पूर्वाहारितमिति पूर्वमुत्पत्तिसमये पृथिव्यादिनिरेव आहारितमासीत् । तदधुना वनस्पतिजीवस्तत्रोत्पद्यमानउत्पन्नोवा त्वचा स्पर्शेनाहारय ते आहार्यच स्वकायत्वेन विपरिणामितं स्वकायेन सह (सारूविंत्ति) स्वरूपतः नीतं तन्मयं स्यात् (अवरेवियत्ति) अपराण्यपि पृथिवीकानां वृक्षाणां शरीराणि नानाव र्णादीनि यथा स्कंधस्यान्योवर्णादिर्मूलस्यान्यएव एवं यावन्नानाविधशरीरपुजलविकुर्विताः स्युः । तथाहि । नानारसवीर्यविपाकानानापुजलोपचयात्सुरूपसंस्थानाद्दृढाल्पसंहनना श्च स्युरिति । ते जीवावनस्पतिकायाः कर्मोत्पन्नाएव न पुनः कालेश्वरादिना तत्रोत्पद्यंत इत्याख्यातमर्हदादिनिः ॥ २ ॥

॥ टीका–द्वितीयाध्ययनानंतरं तृतीयमारन्यते । अस्य चायमनिसंबंधः । कर्मक्षपणा येमुद्यतेन निक्षुणा द्वादशक्रियास्थानरहितेनांत्यक्रियास्थानसेविना सदाहारगुप्तेन नवि तव्यं । धर्माधारनूतस्य शरीरस्याधारोनवत्याहारः । सच मुमुक्षुणोद्देशकादिरहितोग्राह्यः । तेनच प्रायः प्रतिदिनं कार्यमित्यनेन संबंधेनाहारपरिज्ञाध्ययनमायातं । अस्य चत्वार्यनु योगद्वाराण्युपक्रमादीनि नवंति । तत्रेदमध्ययनं पूर्वानुपूर्व्या तृतीयं पश्चानुपूर्व्या पंचम मानुपूर्व्यात्वनियतमित्यर्थाधिकारः । पुनरत्राहारः शुद्धाशुद्धनेदेन निरूप्यते । निक्षेपस्त्रि विधउंवादिस्तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽध्ययनं । नामनिष्पन्ने तु आहारपरिज्ञेति द्विपदंनाम।

तत्राहारपदनिक्षेपार्थमाह निर्युक्तिकारः ॥ "नामंठवणादविए, खेत्ते नावेय होंति बोधवो॥ एसो खलु आहारे, निरकेवो होइ पंचविहो" ॥ १ ॥ (नामंठवणेत्यादि) नामस्थाप नाद्रव्य क्षेत्रनावरूपः पंचप्रकारोनवति निक्षेपआहारपदाश्रयइति । तत्र नामस्थापने नादृत्य द्रव्याहारं प्रतिपादयितुमाह । "दवसच्चित्तादी खेत्ते नगरस्स जणवउ होइ ॥ ना वाहारो तिविहो, उए लोमेयपरकेत्ते" ॥ २ ॥ (दवइत्यादि) द्रव्याहारे चिंत्यमाने सचि त्तादिराहारस्त्रिविधोनवति । तद्यथा । सचित्तोऽचित्तोमिश्रश्च । तत्रापि सचित्तः षड्वि धः पृथिवीकायादिकः । तत्र सचित्तस्य पृथिवीकायस्य लक्षणादिरूपापन्नस्याहारोऽद्र व्यः । तथाप्कायादेरपीति । एवंमिश्रोऽचित्तश्चायोज्यः नवरमग्निकायमचित्तं प्रायशोमनु ष्याआहारयंति उदनादेस्तद्रूपत्वादिति । क्षेत्राहारस्तु यस्मिन्क्षेत्रे आहारः क्रियते उत्प द्यते व्याख्यायते । यदिवा नगरस्य योदेशोधान्यधनादिनोपनोग्यः सक्षेत्राहारः । तद्यथा। मथुरायाः समासन्नोदेशः परिनोग्योमथुराहारो माठरकाहारः खेडाहारइत्यादि । नावाहार स्त्वयं । क्षुधोदयाद्भक्ष्यपर्यायोपपन्नं वस्तु यदाहारयति सनावाहारइति । तत्रापि प्रायशआ हारस्य जिह्वेंद्रियविषयत्वात्तिक्तकटुककषायाम्ललवणमधुररसागृह्यंते । तथाचोक्तं। राइन त्ते नावउ तित्तेवाजावमधुरेत्यादि । अन्यदपि प्रसंगेन गृह्यते । तद्यथा खरविशदमभ्यव हार्यं नद्यं । तत्रापि पुष्पाढ्यउदनः प्रशस्यते न शीतः । उदकंतु शीतमेव । तथाचोक्तं शैत्यमपां प्रधानोगुणः । एवं तावदभ्यवहार्यं द्रव्यमाश्रित्य नावाहारः प्रतिपादितः । सांप्र तमाहारकमाश्रित्य नावाहारं निर्युक्तिकृदाह । नावाहारस्त्रिविधस्त्रिप्रकारोनवति । आ हारकस्य जंतोस्त्रिनिः प्रकारैराहारोपादानादिति । प्रकारानाह । (उहेत्ति) तैजसेन श रीरेण तत्सहचरितेनच कर्मणा कार्मणेनाभ्यां द्वाभ्यामप्याहारयति यावदपरमौदारिकं शरीरं न निष्पद्यते । तथाचोक्तं। तेएण कम्मएणं आहारेइ अणंतरं जीवो ॥ तेण परं मिस्से णं, जाव शरीरस्स निप्पत्ती ॥ १ ॥ तथा । उआहाराजीवा, सवे आहारगाअपज्जत्ता ॥ लोमा हारस्तु शरीरपर्याप्त्युत्तरकालं बाह्यया त्वचा लोमनिराहारोलोमाहारस्तथा प्रक्षेपेण कव लादेराहारः प्रक्षेपाहारः सच वेदनीयोदयेन चतुर्निः स्थानैराहारसञ्ज्ञावाद्भवति ।तथाचोक्तं। चउहिं गणेहिं आहारसण्णासमुप्पज्जइ तंजहा उमोठयाए बुहावेयणिज्जस्स कम्मस्स उदए णं मई एतयठोवउगेणंति । सांप्रतमेतेषां त्रयाणामप्येकयैव गाथया व्याख्यानं कर्तुमाह "स रीरेणोयाहारो,तयाय फासेण लोमआहारो ॥ परकेवाहारो पुण,कावलितो होइनायवो" ॥३ (सरीरेणेत्यादि) तैजसेन कार्मणेनच शरीरेणौदरिकादिशरीरानिष्पत्तेर्मिश्रेणच यआहारः ससर्वोप्योजाहारइति केचिद्व्याचक्षते । औदरिकादिशरीरपर्याप्त्या पर्याप्तकोपींद्रियानापा ननाषामनःपर्याप्तिनिरपर्याप्तकः शरीरेणाहारयन् उजाहारइति गृह्यते । तदुत्तरकालं त्व चा स्पर्शेंद्रियेण आहारः सलोमाहारइति । प्रक्षेपाहारस्तु कावलिकः कवलप्रक्षेपनिष्पा

दितइति ज्ञातव्योनवति। पुनरप्येषामेव स्वामिविशेषेणविशेषमाविर्नावयन्नाह। "उयाहारा जीवा, सवेअपजत्तगामुणेयवा ॥ पज्जत्तगायलोमे, परकेवेहोइनायवा " ॥४॥ (उयाहारइत्यादि) यः प्रागुक्तः शारीरेणौजसाहारस्तेनाहारेणाहारकाजीवाः सर्वेप्यपर्याप्तकाज्ञातव्याः । सर्वानिः पर्याप्तिनिरपर्याप्तास्ते वेदितव्याः । तत्र प्रथमोत्पत्तौ जीवः पूर्वशरीरपरित्यागे विग्रहेणाविग्रहेण चोत्पत्तिदेशे तैजसेन कार्मणेन शरीरेण तप्तस्नेहपतितसंपानकवत्तत्प्रदेशस्थानात्पुज्जलानादत्ते तडुत्तरकालमपि यावदपर्याप्तकावस्था तावदोजआहारइति। पर्याप्तकास्त्विंडियादिनिः पर्याप्तिनिः पर्याप्ताः केषांचिन्मतेन शरीरपर्याप्तकावा गृह्यंते । तदेवं ते लोमाहारानवंति । तत्र स्पर्शेंडियेणोष्मादिना तप्तछायया शीतवायुनोदकेन प्रीयते प्राणी गर्नस्थोपि पर्याप्त्युत्तरकालं लोमाहारएवेति । प्रक्षेपाहारे तु नजनीया यदैव प्रक्षेपं कुर्वंति तदैव प्रक्षेपाहारानान्यदा लोमाहारता तु वाय्वादिस्पर्शात्सर्वदैवेति । सच लोमाहारश्चक्षुष्मतामर्वाग्दृष्टिमतां न दृष्टिपथमवतरत्यतोऽसौ प्रतिसमयवर्ती प्रायशः । प्रक्षेपाहारस्तूपलन्यते प्रायः सच नियतकालीयः। तद्यथा । देवकुरूत्तरकुरुप्रनवाअष्टमनक्ताहाराः संख्येयवर्षायुषामनियतकालीयः प्रक्षेपाहारइति । सांप्रतं प्रक्षेपाहारं स्वामिविनागेन दर्शयितुमाह । "एगिंदियदेवाणं, नेरइयाणंच नत्थि परकेवो ॥ सेसाणं परकेवो, संसारत्थाणजीवाणं " ॥ ५ ॥ (एगिंदियइत्यादि) एकमेव स्पर्शेंडियं येषां नवंत्येकेंडियाः पृथिवीकायादयस्तेषां देवनारकाणांच नास्ति प्रक्षेपस्तेहि पर्याप्त्युत्तरकालं स्पर्शेंडियेणैवाहारयंतीति कृत्वा लोमाहाराः। तत्र देवानां मनसा परिकल्पिताः शुनाःपुज्जलाः सर्वेणैव कायेन परिणमंति नारकाणां त्वशुनाइति । शेषास्त्वौदारिकशरीराद्वींडियादयस्तिर्यङ्मनुष्यास्तेषां प्रक्षेपाहारइति। तेषां संसारस्थितानां कायस्थितेरेवानावात्प्रक्षेपमंतरेण कावलिकआहारोजिव्हेंडियसन्नावादिति । अन्येत्वाचार्याअन्यथा व्याचक्षते । तत्र योजिव्हेंडियेण स्थूलः शरीरे प्रक्षिप्यते सप्रक्षेपाहारः । यस्तु घ्राणदर्शनश्रवणैरुपलन्यते धातुनावेन परिणमति सउजाहारः । यःपुनः स्पर्शेंडियेणैवोपलन्यते धातुनावेन प्रयाति स लोमाहारइति । सांप्रतं कालविशेषमधिकृत्याऽनाहाकाननिधित्सुराह । "एक्कंच दोव समए, तिन्निव समए मुहुत्तमद्धंवा ॥ सादीयमनिहणंपुण, कालमणाहारगाजीवा ॥ ६ ॥ (एक्कंचेत्यादि) तत्र । विग्गहगइमावन्ना, केवलिणो समुहया अयोगीया ॥ सिद्धाय अणा हारा, सेसा आहारगाजीवा । अस्यालेशतोयमर्थः । उत्पत्तिकाले विग्रहगतौ वक्रगतिमापन्नाः केवलिनोलोकपूरणकाले समुद्घातावस्थिताअयोगिनः शैलेश्यवस्थाः सिद्धाश्चानाहारकाः शेषास्तु जीवाहारकाइत्यवगंतव्यं । तत्र नवाद्भवांतरं यदा समश्रेण्या याति । तदा नाहारकोन लन्यते । यदापि विश्रेण्यामेकेन वक्रेणोत्पद्यते तदापि प्रथमसमये पूर्वशरीरस्थेनाहारितं द्वितीयेत्ववक्रसमये समाश्रितशरीरस्थेनेति ।

वक्रद्वयेतु त्रिसमयोत्पत्तौ मध्यसमयेनाहारकइति इतरयोस्त्वाहारकइति । वक्रत्रये तु चतुःसमयोत्पत्तिके मध्यवर्तिनोः समययोरनाहारकश्चतुःसमयोत्पत्तिश्चैवं भवति । त्रस नाड्या बहिरुपरिष्टादधोधस्ताद्वा पर्युत्पद्यमानो दिशोविदिशि विदिशोवादिशि यदोत्पद्यतेत दा लभ्यते । तत्रैकेन समयेन त्रसनाडीप्रवेशोद्वितीयेनोपर्यधोवा गमनं तृतीयेनच बहिर्निः सरणं चतुर्थेन तु विदिक्कृत्पत्तिदेशप्राप्तिरिति । पंचसमयास्तु त्रसनाड्याबहिरेव विदिशो विदिगुत्पत्तौ लभ्यते । तत्रच मध्यवर्तिषु अनाहारकइत्यवगंतव्यं । आद्यंतसमययोस्त्वा हारकइति । केवलिसमुद्घातेपि कार्मणशरीरवर्तित्वात् तृतीयचतुःपंचसमयेष्वनाहार कोद्रष्टव्यः । शेषेषु तुंत्वौदरिकत मिश्रवर्तित्वा तृतीयचतुः पंचम समयेज्ञाना हारको द्र ष्टव्यः शेषेषुतु त्वौदारिकतन्मिश्रवर्तित्वादाहारकइति । (मुहुत्तमद्धंचत्ति) अंतर्मुहू र्तं गृह्यते । तच्च केवली स्वायुषःक्षये सर्वयोगनिरोधे सति ह्रस्वपंचाक्षरोच्चिरणमात्रकालं यावदनाहारकइत्येवमवगंतव्यं । सिद्धजीवास्तु शैलेश्यवस्थायाआदिसमयादारभ्यानंत मपि कालमनाहारकाइति । सांप्रतमेतदेव स्वामिविशेषविशेषिततरमाह । " एकंच दोव समए, केवलिपरिवज्जिया अणाहारा ॥ पंचम्मि दोण्णि लोए, यपूरिए तिन्नि समयाउ ॥७॥ (एकंचेत्यादि) केवलपरिवर्जिताः संसारस्थाजीवाएकं द्वौवा अनाहारकाभवंति । तेच द्विविग्रहत्रिविग्रहोत्पत्तौ त्रिचतुःसामयिकायां द्रष्टव्याः । चतुर्विग्रहपंचसमयो त्पत्तिस्तु स्वल्पसत्वाश्रितेति न साक्षादुपात्ता । तथा चान्यत्राप्यभिहितं । एकं द्वौवा नाहारकः । वाशब्दात् त्रीन् वा आनुपूर्व्या अभ्युदग्रउत्कृष्टतोविग्रहगतौ चतुरः समया नागमेऽभिहिताः । तेच पंचसमयोत्पत्तौ लभ्यंते नान्यत्रेति । भवस्थकेवलिनस्तु समुद् घाते मंथे तत्करणोपसंहारावसरे तृतीयपंचसमयौ द्वौ लोकपूरणाच्चतुर्थसमयेन सहि तास्त्रयः समयाभवंतीति । पुनरपि निर्युक्तिकारः सादिकमपर्यवसानं कालमनाहारकत्वं दर्शयितुमाह । " अंतोमुहुत्तमद्धं, सेलेसीए भवे अणाहारा ॥ सादीयमनिहणंपुण, सिद्धायणाहारगाहोंति " ॥ ८ ॥ (अंतोमुहुत्तमित्यादि) शैलेश्यवस्थायाआरभ्य सर्वथानाहारकः सिद्धावस्थाप्राप्तावनंतमपि कालं यावदिति । पूर्वंतु कावलिकाख्यव्य तिरेकेण प्रतिसमयमनाहारकः कावलिकेनतु कादाचित्कइति । ननु केवलिनोघाति कर्मक्षयेनंतवीर्यत्वान्न भवत्येवकावलिकआहारकः । तथाहि । आहारादाने यानि वेद नीयादीनि षट्कारणान्यभिहितानि तेषां मध्ये एकमपि नविद्यते केवलिनि तत्कथमसा वाहारं बहुदोषदुष्टं गृह्णीयात् ? । तत्र न तावत्तस्यवेदनोत्पद्यते तद्वेदनीयस्य दग्धरज्जु स्थानिकत्वात्सत्यामपि न तस्य तत्कृता पीडा अनंतवीर्यत्वात् । वैयावृत्यकरणंतु भगव ति सुरासुरनराधिपतिसंभवेन संभाव्यतएवेति । ईर्यापथः पुनः केवलज्ञानावरणपरिक्षया त्सम्यगवलोकयत्येवासौ । संयमस्तु तस्य यथाख्यातचारित्रिणोनिष्ठितार्थत्वादनंतवीर्य

त्वान्नाहारग्रहणाय कारणीभवति । प्राणवृत्तिस्तु तस्यानुपवर्तित्वात् आयुषोऽनंतवीर्यत्वा
च्चान्यथा सिद्धैव धर्मचिंतावसरस्त्वपगतोनिष्ठितार्थत्वात् । तदेवं केवलिनः कावलिका
काहारोबऽहुपायत्वान्न कथंचिद्घटतइति स्थितं। अत्रोच्यते। तत्र तावद्यदुक्तं घातिकर्मक्षये
केवलज्ञानोत्पत्तावनंतवीर्यत्वान्न केवलिनोभुक्तिरिति । तदागमानभिज्ञस्य तत्वविचाररहित
स्य युक्तिहृदयमजानतोवचनं । तथाहि यदाहारनिमित्तं वेदनीयं कर्म तत्तस्य तथैवास्ते ।
किमिति ? । सा शारीरी स्थितिः प्राक्तनी नभवति प्रमाणंच अस्ति केवलिनोभुक्तिः समग्र
सामग्रीकत्वात्पूर्वभुक्तिवत् । सामग्रीचेयं प्रक्षेपाहारस्य तद्यथापर्याप्तत्वं वेदनीयोदयः
आहारपक्तिनिमित्तं तैजसशरीरं दीर्घायुष्कत्वंचेति । तानिच समस्तान्यपि केवलिनि सं
ति । यदपि दग्धरज्जुसंस्थानिकत्वमुच्यते वेदनीयस्य । तदप्यनागमिकमयुक्तिसंगतंच आग
मेह्यत्यंतोदया सा तस्य केवलिन्यभिधीयते युक्तिरपि । यदि घातिकर्मक्षयाज्ज्ञानादयस्त
स्याभूवन् वेदनीयोद्भवायाः क्षुधः किमायातं येनासौ न भवति । नतयोश्छायातपयोरिव
सहानवस्थानलक्षणानामपि भावाभावयोरिव परस्परपरिहारलक्षणः कश्चिद्विरोधोस्ती
ति। सातासातयोश्चांतर्मुहूर्तपरिवर्तमानतया यथा सातोदयएवमसातोदयोऽपीत्यनंतवीर्य
त्वे सत्यपि शरीरबलापचयः क्षुद्वेदनीयोद्भवा च पीडा भवत्येव । नचाहारग्रहणे तस्य किं
चित्क्षीयते केवलमाहोपुरुषिकामात्रमेवेति । यदप्युच्यते वेदनीयस्योदीरणायाअभावा
त्प्रभूततरपुद्गलोदयाभावाद्वात्यंतं वेदनीयपीडाभावइति वाङ्मात्रं । तथाह्यविरतसम्यग्दृ
ष्ट्यादिष्वेकादशसु स्थानेषु वेदनीयगुणश्रेणीसद्भावात्प्रभूतपुद्गलोदयसद्भावः किंतेषु प्राक्त
नेभ्योऽधिकपीडासद्भावइति । अपिच योजिने सातोदयस्तीव्रः किमसौ प्रचुरपुद्गलोदये
नेति अतोयत्किंचिदेतदिति । तदेवं सातोदयवदसातोदयोपि केवलिन्यवतारितइति तयोरं
तर्मुहूर्तकालेन परिवर्तमानत्वात्। यदपि क्वचित्कैश्चिदभिधीयते विपच्यमानतीर्थंकरनाम्नो
देवस्य च्यवनकाले षण्मासकालं यावदत्यंतं सातोदयएवेत्यसावपि यदिस्यान्न ततोबाधायै
केवलिनां भुक्तेरनिवारितत्वात्। यदप्युच्यते आहारविषयाकांक्षारूपा क्षुद्भवति अभिकां
क्षावाऽहारपरिग्रहबुद्धिः साच मोहनीयविकारस्तस्य चापगतत्वात्केवलिनोन भुक्तिरिति।
एतदप्यसमीचीनं । यतोमोहनीयविकारात्क्षुन्न भवति तद्विपाकस्य प्रतिपक्षभावनया प्र
तिसंख्यानेन निवर्त्यमानत्वात् । तथाहि । कषायाः प्रतिकूलभावनया निवर्त्यंते । तथा
चोक्तं । उपसमेण हणे कोहं माणं मद्दवयाजिणे॥मायं वज्जवभावेन लोभं संतुट्ठिए जिणे।
मिथ्यात्वसम्यक्त्वयोश्च परस्परनिवृत्तिर्भावना कृता प्रतीतैव । वेदोदयोपि विपरीतभावन
या निवर्तते । तदुक्तं । काम जाना मिते मूलं, संकल्पात्किल जायसे ॥ ततस्त्वं नकरिष्या
म, ततोमे न भविष्यसि ॥ १ ॥ हास्यादिषट्कमपि चेतोविकारूपतया प्रतिसंख्यानेन
नवर्तते क्षुद्वेदनीयंतु रोगशीतोष्णादिवज्जीवपुद्गलविपाकितया न प्रतीपवासनामात्रेण नि

वर्ततेऽतोन मोहविपाकस्वभावा क्षुदिति । तदेवं व्यवस्थिते यत्कैश्चिदाग्रहगृहीतैरनि
धीयते यथा प्रवर्त्यते कृतार्थे नायुर्ज्ञानादयोन हीयंते जगडुपकृतावनंतं वीर्यं किं गततृषो
भुक्तिस्तदेतत् प्लवते यतश्छद्मस्थावस्थायामप्येतदस्तीति तत्रापि किमिति भुंक्ते तत्र सम
स्तवीर्यांतरायक्षयाभावान्मुक्तिसद्भावइतिचेत्तदयुक्तं । यतः किं तत्रायुषोपवर्तनं स्यात् किंवा
चतुर्णां ज्ञानानां काचिद्धानिःस्याद्येन न भुक्तिरिति । तस्माद्यथा दीर्घकालस्थितेरायुष्कं
कारणमेवमाहारोपि । यथा सिद्धिगतेर्व्युपरतक्रियस्य ध्यानस्य चरमक्षणः कारणमेवं सम्य
क्त्वादिकमपीति । अनंतवीर्यतापि तस्याहारग्रहणे सति न विरुध्यते । यथा तस्य देवछंदा
दीनि विश्रामकारणानि गमनविषीदनानिच भवंत्येवमाहारक्रियापि विरोधाभावान्नह्यत्र
बलवत्तरवीर्यवतोऽल्पीयसी क्षुदिति । एवंच स्थिते यत्किंचिदेतत् । अपि चैकादशपरीषहावे
दनीयकृता जिने प्राङःष्यंति । अपरेतु एकादशज्ञानावरणीयादिकृतास्तत्क्षयेऽपगता इती
यमप्युपपत्तिः केवलिनि भुक्तिं साधयति । तथाहि । क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यादिरि
ति स्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाञ्चालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञानदर्शना
नीत्येते द्वाविंशतिर्मुमुक्षुणा परिसोढव्याः परिषहास्तेषांच मध्ये ज्ञानावरणीयोद्भौ प्रज्ञा
ज्ञानाख्यौ दर्शनीयमोहनीयसंभवोदर्शनीयपरिषहोंतरायोद्भोलाभपरिषहोस्ति । चारित्र
हनीयसंभूतास्त्वमी नामोयारतिस्त्रीनिषद्यायाञ्चासत्कारपुरस्काराः । एते चैकादशापि जिने
केवलिनि न संभवंति तत्कारणानामपगतत्वात् । नहिकारणाभावे क्वचित्कार्योपपत्तिः ।
शेपास्त्वेकादश जिने संभवंति तत्कारणस्य वेदनीयस्य विद्यमानत्वात् । तेचामी क्षुत्पि
पासाशीतोष्णदंशकचर्याशय्यावधरोगतृणस्पर्शमलाख्याः । एतेच वेदनीयप्रभवास्तत्र केव
लिनि विद्यंते । नच निदानानुच्छेदे निदानिनउच्छेदः संभाव्यते अतःकेवलिनि क्षुद्वेदनी
यादिपीडा संभाव्यते । केवलमसावनंतवीर्यत्वान्न विह्वलीभवति । नचासौ निष्ठितार्थो
निःप्रयोजनमेव पीडामधिसहते । नच शक्यते वक्तुमेवंभूतमेव तस्य भगवतः शारीरं यहुत
क्षुत्पीडा न बाधते आहारमंतरेण वर्तते यथास्वभावेनैव प्रस्वेदादिरहितमेव प्रक्षेपाहार
रहितं इत्येतच्चाप्रमाणकत्वादपकर्णनीयं । अपिच केवलोत्पत्तेः प्राग्भुक्तेरभ्युपगमात्केव
लोत्पत्तावपि तदेवौदारिकं शरीरमाहाराद्युपसंस्कार्यमयान्यथाभावः कैश्चिडुच्यते असाव
पि युक्तिरहितत्वादभ्युपगममात्रकएवेति । तदेवं देशोन पूर्वकोटिकालस्य केवलस्थितेः सं
भवादौदारिकशरीरस्थितेश्च यथायुष्कं कारणमेवं प्रक्षेपाहारोपि । तथाहि । तैजसशरीरेण
मृडुकृतस्यान्यवल्हतस्य ड्रव्यस्य स्वपर्यायैः परिणामितस्योत्तरोत्तरपरिणामक्रमेणौदारिक
शरीरिणामनेन प्रकारेण क्षुडुद्भवो भवति वेदनीयोदये सतीयं च सामग्री सर्वापि भगवति
केवलिनि संभवति तत्किमर्थमसौ न भुंक्ते नच घातिचतुष्टयस्य सहकारिकारणभावोस्ति
येन तदभावात्तदभावइत्युच्यते । तदेवं संसारस्याजीवाविग्रहगतौ जघन्येनैकं समयं उत्क

ष्टतः समयत्रयं भवस्थकेवली च समुद्घातावस्थः समयत्रयमनाहारकः शैलेश्यवस्थायां त्वंतर्मुहूर्तं। सिद्धास्तु सादिकमपर्यंतं कालमनाहारकाइति स्थितं। सांप्रतं प्रथमाहारग्रहणं येन शरीरेण करोति तद्दर्शयति । जोएण कम्मएणं, आहारेइ अणंतरं जीवा॥ तेण परं मीसेणं, जीवसरीरस्स पक्षत्ती ,, ॥ ए ॥ (जोएणेत्यादि) ज्योतिस्तेजस्तदेव तत्र वा भवं तैजसं कार्मणेन चाहारयति। तैजसकार्मणे हि शरीरे आसंसारभाविनी ताभ्यामेवोत्पत्तिदेशं गताजीवाः प्रथममाहारं कुर्वंति ततः परमौदारिकमिश्रेण वैक्रियमिश्रणेन वा यावच्छरीरं निष्पद्यते तावदाहारयंति । शरीरनिष्पत्तौ त्वौदारिकेण वैक्रियेण वाऽहारयंतीति स्थितं। सांप्रतं परिज्ञानिक्षेपार्थमाह । " णामं ठवणपरिन्ना, दव्वभावेय होइ नायव्वा॥ दव्वपरिन्ना तिविहा, भावपरिन्ना भवे डुविहा,, ॥१०॥ (णाममित्यादि) तत्र नामस्थापना इव्यभाववभेदात्परिज्ञा चतुर्धा । तत्रापि नामस्थापने क्षुस्लादनादृत्य इव्यपरिज्ञां प्रतिपादयन् गाथापरार्द्धमाह । इव्यपरिज्ञेति । इव्यस्य इव्येण वा परिज्ञा सा च परिच्छेद्यइव्यप्राधान्यात्तस्यच सचित्ताचित्तमिश्रभेदेन त्रैविध्यात्रिविधेति । भावपरिज्ञापि ज्ञपरिज्ञाप्रत्याख्यानभेदेन द्विविधेति । शेषास्त्वागमनोआगमज्ञशरीरव्यतिरिक्तादिकोविचारः शस्त्रपरिज्ञावद्द्रष्टव्यः । गतानिक्षेपनिर्युक्तिरधुना सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (सुयंमे आउसंतेणमित्यादि) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमुद्दिश्येदमाह । तद्यथा । श्रुतं मयाऽऽयुष्मता तु भगवतेदमाख्यातं । तद्यथा । आहारपरिज्ञेदमध्ययनं तस्य चायमर्थः । प्राच्यादिषु दिक्षु सर्वतइत्यूर्ध्वाधोविदिक्षु च (सव्वावंतित्ति) सर्वस्मिन्नपि लोके क्षेत्रे प्रज्ञापकभावदिगाधारभूतेऽस्मिन् चत्वारोबीजकायाबीजमेव कायोयेषां ते तथा । बीजं वक्ष्यमाणं । चत्वारोबीजप्रकाराः समुत्पत्तिभेदाद्भवंति । तद्यथा । अग्रे बीजं येषामुत्पद्यते ते तलतालीसहकारादयः शाल्यादयोवा । यदिवाऽग्राएवोत्पत्तौ कारणतां प्रतिपद्यंते येषां कोरंटादीनां ते अग्रबीजास्तथा मूलबीजाआर्इकादयः पर्वबीजास्त्विक्षुवादयः स्कंधबीजाः सल्लक्यादयः । नागार्जुनीयास्तु पठंति । वणस्सइकाइयाण पंचविहा बीजवक्कंती ॥ एवमाहिज्जइ तंजहा अग्गमूलपोरुखंधबीयरुहाछठाविएगेंदियासमुच्छिमाबीया जायंते । यथा दग्धवनस्थलीषु नानाविधानि हारितान्युद्भवंति पद्मिन्योवाऽभिनवतडागादाविति । तेषां च चतुर्विधानामपि वनस्पतिकायानां यद्यस्य बीजमुत्पत्तिकारणं तद्यथाबीजं तेन यथा बीजेनेति । इदमुक्तं भवति । शाल्यंकुरस्य शालिबीजमुत्पत्तिकारणं । एवमन्यदपि इष्टव्यं । यथावकाशेति । योयस्यावकाशः यद्यस्योत्पत्तिस्थानमथवा भूम्यंबुकालाकाशबीजसंयोगाययथावकाशो गृह्यंते तेनेति । तदेवं यथाबीजं यथावकाशेन चेहास्मिन् जगत्येके केचन सत्वाये तथाविधकर्मोदयाद्वनस्पतिषूत्पित्सवस्तेहि वनस्पतावुत्पद्यमानाअपि पृथिवीयोनिका भवंति यथा तेषां वनस्पतिबीजं कारणमेवमाधारमंतरेणोत्पत्तेरभावात्पृथिव्यपि

शेवालजंबालादेरुदकवदिति । तथा पृथिव्यां संभवः सदा भवनं येषां वनस्पतीनां तथा। इदमुक्तं भवति न केवलं ते तद्योनिकायस्थितिकाश्चेति । तथा पृथिव्यामेव विविधमुत्प्राबल्येन क्रमः क्रमणं येषां ते पृथिव्युत्क्रमाः । इदमुक्तं भवति । पृथिव्यामेव तेषामूर्ध्वं क्रमणलक्षणावृद्धिर्भवति । एवंच ते तद्योनिकास्तत्संभवास्त द्व्युत्क्रमाइत्येतदनूद्याप्यपरं विधातुकामआह। (कम्मोवगाइत्यादि) तेहि तथाविधेन वनस्पतिकायसंभवेन कर्मणा प्रेर्यमाणास्तेष्वेव वनस्पतिषूपसामीप्येन तस्यामेव च पृथिव्यां गच्छंतीति कर्मोपगाभण्यंते । तेहि कर्मवशगावनस्पतिकायादागत्य तेष्वेव पुनरपि वनस्पतिषूत्पद्यंते न चान्यत्रोसाअन्यत्र भविष्यंतीति। उक्तंच । कुसुमपुरोप्ते बीजे, मथुरायां नांकुरः समुद्भवति ॥ यत्रैव तस्य बीजं तत्रैवोत्पद्यते प्रसवः । तथा ते जीवाः कर्मनिदानेन कारणेन समाकृष्यमाणास्तत्र वनस्पतिकाये वा व्युत्क्रमाः समागताः संतोनानाविधयोनिकासु पृथिवीष्वित्यन्येषामपि षण्णां कायानामुत्पत्तिस्थानभूतासु सचित्ताऽचित्तमिश्रासु वा श्वेतकृष्णादिवर्णतिक्तादिरससुरभ्यादिगंधमृदुकर्कशादिस्पर्शादिकैर्विकल्पैर्बहुप्रकारासु भूमिषु वृक्षतया विविधं वर्तंते तेच तत्रोत्पन्नास्तासां पृथिवीनां स्नेहं स्निग्धभावमाददते सएवच तेषामाहारइति । नच ते पृथिवीशरीरमाहारयंतः पृथिव्याः पीडामुत्पादयंति ॥१॥ एवमप्कायतेजोवायुवनस्पतीनामायोज्यं । अत्रच पीडानुत्पादनेऽयं दृष्टांतः । तद्यथा । अंडोद्भवाद्याजीवामातुरुष्मणा विवर्धमानागर्भस्थाएवोदरगतमाहारयंतोनातीव पीडामुत्पादयंत्येवमसावपि वनस्पतिकायिकः पृथिवीस्नेहमाहारयन्नातीव तस्याः पीडामुत्पादयति उत्पद्यमानः समुत्पन्नश्च वृद्धिमुपगतोऽसदृशवर्णरसाद्युपेतत्वात् बाधां विदध्यादपीति । एवमप्कायस्य भौमस्यांतरिक्षस्य वा शरीरमाहारयंति तथा तेजसोभस्मादिकं शरीरमाददति । एवं वाय्वादेरपीति द्रष्टव्यं । किंबहुनोक्तेन नानाविधानां त्रसस्थावराणां प्राणिनां यच्छरीरं तत्ते समुत्पद्यमानाअचित्तमपि स्वकायेनावष्टभ्य प्रासुकीकुर्वंति । यदिवा परिविध्वस्तं पृथिवीकायादिशरीरं किंचित्परितापितं कुर्वंति ते वनस्पतिजीवाएतेषां पृथिवीकायादीनां तच्छरीरं पूर्वमाहारितमिति तैरेव पृथिवीकायादिभिरुत्पत्तिसमये आहारितमासीत् स्वकायत्वेन परिणामितमासीत् । तदधुना वनस्पतिजीवस्तत्रोत्पद्यमानउत्पन्नोवा त्वचा स्पर्शेनाहारयत्याहार्य च स्वकायत्वेन विपरिणामयति विपरिणामितं च तच्छरीरं स्वकायेन सह स्वरूपतां नीतं सत्तन्मयतां प्रतिपद्यते । अपराण्यपि मूलशाखाप्रतिशाखापत्रपुष्पफलादीनि तेषां पृथिवीकायिकानां वृक्षाणां नानावर्णानि । तथाहि । स्कंधस्यान्य तोवर्णोमूलस्य चान्यादृशइति । एवं यावन्नानाविधशरीरेषु । तथाहि । नानारसवीर्यविपाकानानाविधपुद्गलोपचयात्सुरू नाऽऽत्ते । तथा दृढाल्पसंहननाः कृशस्थूलस्कंधाश्च भवंत्येवमादिक । केषां

चिह्नाक्यादीनां वनस्पत्याद्याः स्थावरजीवाएव न भवंतीति अतस्तत्प्रतिषेधार्थमाह ।(ते जीवाइत्यादि) ते वनस्पतिषूत्पन्नाजीवाउपयोगलक्षणत्वाज्जीवानां । तेषामप्याश्रयोत्सर्पणादिकया क्रिययोपयोगोलक्ष्यते । तथा विशिष्टाहारोपचयाऽपचयाभ्यां शरीरोपचयापचयसद्भावादनेकजीवाः स्थावरास्तथा छिन्नप्ररोहणात्स्वापात्सर्वत्वगपहरणे मरणादित्येव मादयोहेतवोऽत्र डष्टव्याः। यदत्र कैश्चित्पृष्टेपि वनस्पतीनां चैतन्ये सिद्धानैकांतिकत्वादिक मुक्तं स्वदर्शनानुरागात्तदपकर्णनीयं। नहि सम्यगार्हतमताभिज्ञोसिद्ध विरुद्धानैकांतिकोपन्यासेन व्यामोह्यते सर्वस्य कथंचिदभ्युपगतत्वात्प्रतिषिद्धत्वाच्चेति ते जीवास्तत्र वनस्पतिषु तथाविधेन कर्मणा उपपन्नगाः। तच्चेदं एकेंद्रियजातिस्थावरनामवनस्पतियोग्यायुष्कादिकमिति तत्कर्मोदयेन तत्रोत्पन्नाउच्यंते न पुनः कालेश्वरादिना तत्रोत्पाद्यंते इत्येवमाख्यातं तीर्थकरादिभिरिति । एवंतावत्पृथिवीयोनिकावृक्षाअभिहिताः ॥ २ ॥

अहावरं पुरकायं इहेगतिया सत्ता रुरकजोणिया रुरकसंभवा रुरकवुक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तडवक्कमा कम्मोवगा कम्मनियाणेणं तत्थवुक्कमा पुढवीजोणिएहिं रुरकेहिं रुरकत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं पुढवीजोणियाणं रुरकाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढवीसरीरं आउतेउवाउवणस्सइसरीरं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुव्वंति परिविद्धत्थं तं सरीरं पुव्वाहारियं तयाहारियं विप्परिणामियं सारुविकडं संतं अवरेवि यणं तेसिं रुरकजोणियाणं रुरकाणं सरीरा णाणावन्ना णाणागंधा णाणारसा णाणाफासा णाणासंठाणसंठिया णाणाविहसरीरपुग्गलविउव्विया ते जीवा कम्मोववन्नगा भवंतीतिमरकायं ॥ ३ ॥

अर्थ—हवे तद्योनिक वनस्पतिने विषे अन्य बीजा जीव उपजे, ए देखाडेछे, श्री सुधर्मस्वामी श्री जंबूस्वामि प्रत्यें कहेछे के, वली वनस्पतिनो (अहावरंपुरकायं के०) अपर एटले बीजो प्रकार, पूर्वें श्री तीर्थंकर देवें कह्योछे, ते हवे कहेछे. (इहेगतिया के०) कोइ एक (सत्ता के०) जीव प्राणी, (रुरकजोणिया के०) वृक्षज जेनी योनि एटले उत्पत्तिस्थानकछे, ते पृथ्वीयोनिक वृक्षने विषे वृक्ष पणेज उपजे. (रुरकसंभवा के०) ते पृथ्वीयोनिक वृक्षने विषे वनस्पतिकायनो संभवछे. (रुरकवुक्कमा के०) तथा वृक्षने विषे नाना प्रकारें प्रबल पणे संक्रमण छे जेनो, एटले वृद्धिछे. (तज्जोणिया के०) तद्योनिकछे, (तस्संभवा के०) तत्संभवछे, (तडवक्कमा के०) तेना सरखोछे उ

पक्रमजेनो (कम्मोवगाके०) कर्मना वशं गत वनस्पतिकायथी आवी वली तेहीज वनस्पतिकायने विषे (कम्मनियाणेणं के०) कर्मना कारण थकी आकर्षिता (तव्वुक्कमा के०) त्यां आव्या बता (पुढवीजोणिएहिंरुरकेहिं के०) पृथ्वीयोनिक वृक्षनी पेठें (रुरकत्ताएविउट्टंतिके०) वृक्ष पणे उपजे. ते जीव तेहीज पृथ्वीयोनिक वृक्षनो स्नेह आहार आहारे, तेणे करी उपचय पामे. हवे ते जीवो शुं आहारे ? तोके पृथ्वी, अप, तेज, वायु अने वनस्पतिना शरीर, तथा नाना प्रकारना, त्रस स्थावर जीवोनां शरीर, अचित्त करे; परंतु तेने पीडा न उपजावे, परिविध्वंस करे. ते शरीरने पूर्वे आहारखुं ते, अथवा हमणा उपजतां आहारेबे, अथवा उपना पबी आहारेबे, त्वचाने स्पर्शे करी आहारीने परिणमावीने, पोतानी काया सरखां रूप करे. इत्यादिक बीजुं सर्व पूर्ववत् जाणवुं ॥ ३ ॥

॥ दीपिका—पूर्वं पृथिव्यां ये वृक्षाउत्पद्यंते. ते उक्ताः । अत्र तु वृक्षेष्वेव ये वृक्षाजायंते तान् वक्ति (अहावरंति) अथापरमेतदाख्यातं पुरार्हता । इहैके सत्वावृक्षएव योनिरुत्पत्तिस्थानमाश्रयोयेषां ते वृक्षयोनिकावृक्षाः । इहच पूर्वं पृथिवीयोनिकेषु वृक्षेषु कथितं यत्तदेवात्र व्याख्येयं पूर्ववत् ॥ ३ ॥

॥ टीका—सांप्रतं तद्योनिकेष्वेव वनस्पतिषु अपरे समुत्पद्यंतइत्येतद्दर्शयितुमाह । (अहावरमित्यादि) सुधर्मस्वामी शिष्योद्देशेनेदमाह । अथापरमेतदाख्यातं पुरा तीर्थकरेण । यदिवा तस्यैव वनस्पतेः पुनरपरं वक्ष्यमाणमाख्यातं । तद्यथेहास्मिन् जगत्येके केचन तथाविधकर्मोदयवर्तिनः सत्वाः प्राणिनोवृक्षाएव योनिरुत्पत्तिस्थानमाश्रयोयेषां ते वृक्षयोनिकाः । इहच यत्पृथिवीयोनिकेषु वृक्षेष्वभिहितं तदेतेष्वपि वृक्षयोनिकेषु वनस्पतिषु तडुपचयकर्तृ सर्वमायोज्यं यावदाख्यातमिति ॥ ३ ॥

अहावरं पुरकायं इहेगतिया सत्ता रुरकजोणिया रुरकसंभवा रुरकवुक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तडुवक्कमा कम्मोवगा कम्मणियाणेणं तब वुक्कमा रुरकजोणिएसु रुरकत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं रुरकजोणियाणं रुरकाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं आउतेउवाउवणस्सइसरीरं तसथावराणं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुवंति परिविद्धबं तं सरीरं पुवाहारियं तयाहारियं विपरिणामियं सारूविकडं संतं अवरेवि यणं तेसिं रुरकजोणियाणं रुरकाणं सरीरा णाणावन्ना जाव ते जीवा कम्मोववन्नगा भवंतीति मरकायं ॥ ४ ॥

ल ईश्वर स्वजावादिकनुं करेखुं क्यांथी होय. जो स्वयंकृत सुख डुःख बे, तो सर्व जीव व्यापारादिक सरिखो व्यापार करतां सर्व सरखाज केम नथी थता. माटे पुरुषाकारे कांइज नथाय, अने जो काल ईश्वरादिकना करेलां सुख डुःख होय तो जगतनी विचित्रता केम थाय? तेमाटे काल ईश्वरादिकनुं करेखुं पण सुख डुःख थतुं नथी. एटले जीवने सुहंवाजइवाडुरकंके० सुख अथवा डुख जे बे ते केवां बे, तोके सेद्दियं वा असेद्दियं के० सैद्धिक अथवा असैद्धिक बे. तेमां स्रग् चंदन विनितादिक तेथकी उपनुं जे सुख तेने सैद्धिक कहिये. अने अंतरंग आनंदरूप जे सुख तेने असैद्धिक कहिये. एवीरीते बे प्रकारे डुःख पण जाणवुं, तेमां एक वध, बंधन, ताडनादिक क्रियाना करवाथीकरी अने बीजुं शूलज्वरादिरूप जाणवुं, एटले एक कारणे निष्पन्न अने बीजुं स्वाजाविक निष्पन्न बे. ॥ २ ॥ ए सुखडुःख जो कोइए कस्यां नथी, तो ए जीव सुखी डुःखी केम थायबे, ते कहेबे. सयंकडंनअस्रोहिंवेदयंति पुढोजियाके०सयं एटले पोतानुं करेखुं अथवा अनेरानुं करेखुं जे सुख डुःख ते जीव वेदतो नथी. किंतु संगइअंतंतहातेसिंके० जवितव्यतानुं करेखुं तेहिज जीवने सुख डुःख उपजेबे. तथाच तन्मतं। प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थः, सोवश्यं जवति नृणां शुजोशुजो वा ॥ जूतानां महति कृतेपिहि प्रयत्ने, नाजाव्यं जवति न जाविनोस्ति नाशः ॥ १ ॥ इति वचनात् ॥ ३ ॥ एप्रमाणे नियतवादीना मतनो अजिप्राय दर्शाव्यो.

॥ दीपिका—उक्तः प्रथमोद्देशकः । अथ द्वितीयोद्देशकः कथ्यते । तस्यायमर्थसंबंधः । आद्योद्देशके जूतवादादिमतं प्रदर्श्य निराकृतं । इहाप्यवशिष्टं तदेवोपदर्श्य निराक्रियत इत्यनेन संबंधेनागतस्यास्योद्देशकस्य सूत्रं यथा । (आघायमिति) । पुनः एकेषां नियतिवादिनामेतदाख्यातं । आख्यातमित्यत्र जावे क्तप्रत्ययः।तद्योगेन वा क्लीबइति कर्तरिषष्ठी । ततश्च नियतिवादिजिरिदमाख्यातमित्यर्थः । किं तदित्याह । (उववस्रुत्ति) उपपन्ना युक्त्या घटमानाः पृथक् अनेके जीवाः। जीवसत्वे पंचजूततच्छरीरवादिमतं निराकृतं । पृथगित्यनेन आत्माऽद्वैतवादिनिरासश्च । तेऽनेके जीवाः सुखं डुःखं देवनारकादिजवेषु वेदयंत्यनुजवंति अनेनाऽकर्तृवादो निरस्तः (अडुवेत्ति)। अथवा लुप्यंते स्थानात् स्थानांतरं संक्राम्यंते । एतेनोपपातिकत्वमप्युक्तं ॥ १ ॥ नियतिवादमतमेवाह श्लोकद्वयेन । (नतमिति) यत्तैः प्राणिजिरनुजूयते सुखं डुःखं स्थानविलोपनं वा न तत्स्वयमात्मना पुरुषकारेण कृतं डुःखं। डुःखस्यचोपलक्षणात्सुखमपि ग्राह्यं । सुखडुःखानुजवः पुरुषकारकृतो न स्यादित्यर्थः। अनेन कालेश्वरस्वजावकर्मादिना च कुतः कृतं । णमित्यलंकारे । कालादिजिरपि न कृतमित्यर्थः । किंतु नियतेरेव निष्पद्यते सर्वमिति । ततः सुखं सैद्धिकं सिद्धौ मोक्षे जवं सै

अर्थ–हवे वनस्पतिना अवयवोनो अधिकार कहेडे. (अहावरंपुरस्कार्यं के०) अथ हवे अपर स्थानक तीर्थंकरें कह्युंडे, ते कहेडे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव, वृक्ष ज जेनी योनि एटले उत्पत्तिस्थानकडे, वृक्षने विषेज जेनो संनवडे, एटले वृद्धिडे वृक्षने विषेज जेनुं नाना प्रकारें संक्रमणडे, ते योनिक ते संनवडे कर्मना वशंगत वन स्पतिकाय थकी आवी वली तेज वनस्पतिने विषे कर्मने कारणें आकर्षिता त्यां आ व्या डता, वृक्षयोनिक वृक्षने विषे वृक्ष पणे उपजे. ते जीव तेहज वृक्षयोनिक वृक्ष नो स्नेह आहारे ते जीव आहारे पृथ्वी, अप, तेज, वायु, अने वनस्पति कायनां शरीर, त्रस अने स्थावर प्राणीनां शरीर अचित्त करे परिविध्वंस करे ते वनस्पतिना जीव पृथ्वी कायादिकनुं जे शरीर पूर्वे आहार्युं, तथा हमणां उपजतां अथवा उपनां पडी जे आ हारेडे, ते त्वचाने स्पर्शें करी आहारीने परणमावीने पोतानी काया सरखां रूप करें, ते अवयवरूप रूप करे, ते कहेडे. एक मूल, बीजुं कंद, त्रीजी त्वचा, चोथी शाखा, पांचमां प्रवाल एटले नवांकुर, डहा पुष्प, सातमां पत्र, आठमां फल, नवमां बीज, दश मो स्कंधनूत, ते वृक्षनां ए दश स्थानकने विषे जीव उपजे डे. ते वृक्ष योनिक, ते वृक्ष ना शरीर नाना प्रकारना वर्ण वाला यावत् ते वनस्पतिना जीव कर्मना उदयें उपना होय. एरीतें नगवंत श्री तीर्थंकर देवें कह्या, परंतु काल ईश्वरादिक कारण कोइ नथी. ॥४॥

॥ दीपिका–अथापरमेतदाख्यातं । इदं वनस्पत्यवयवसूत्रं । यथा इहैके जीवावृक्षयो निकाः स्युस्तदवयवाश्रिताश्चान्ये वनस्पतिरूपाएव जीवाः स्युः । तथाहि । योहि एकोव नस्पतिजीवः सर्ववृक्षावयवव्यापी स्यात् तस्य चापरे तदवयवेषु मूल १ कंद २ त्वक् ३ शाखा ४ प्रवाल ५ पुष्प ६ पत्र ७ फल ८ बीज ९ स्कंध, १० नूतेषु दशस्थानेषु जीवाः समुत्पद्यंते तेच तत्रोत्पद्यमानावृक्षयोनिकावृक्षोन्नवावृक्षव्युत्क्रमाश्चोत्पद्यंते इति शेषं पूर्ववत् । इह चत्वारि सूत्राणि यथापूर्वमुक्तानि । यथा वनस्पतयः पृथिव्याश्रिता नवंतीत्येकं १ तच्छरीरमप्कायादिशरीरं चाहारयंति २ वृक्षास्तदाहारितं शरीरमचित्तं वि ध्वस्तंच कृत्वात्मसात्कुर्वंति ३ अन्यान्यपि तेषां पृथिवीयोनिकानां वनस्पतीनां शरीराणि मूलकंदादीनि नानावर्णानि नवंति ४ एवमत्रापि चत्वारि सूत्राणि ज्ञेयानि ॥ ४ ॥

॥ टीका–सांप्रतं वनस्पत्यवयवानधिकृत्याऽऽह । (अहावरमित्यादि) अथापरमेतदा ख्यातं तदर्शयति । इहास्मिन् जगत्येके न सर्वे तथाविधकर्मोदयवर्तिनोवृक्षयोनिकाः स त्वानवंति तदवयवाश्रिताश्च परे वनस्पतिरूपाएव प्राणिनोनवंति । तथा योह्येकोवनस्प तिजीवः सर्ववृक्षावयवव्यापी नवति तस्य चापरे तदवयवेषु मूलकंदस्कंधत्वक्शाखाप्रवा

लपत्रपुष्पफलबीजन्नूतेषु दशसु स्थानेषु जीवाः समुत्पद्यंते तेच तत्रोत्पद्यमानावृक्षयोनिकावृक्षव्युत्क्रमाश्चोच्यंते इति । शेषंपूर्ववत् । इहच प्राक्चतुर्विधार्थप्रतिपादकानि सूत्राण्यनिहितानि । तद्यथा । वनस्पतयः पृथिव्याश्रितान्नवंतीत्येकं तच्छरीरं १ अप्कायादिशरीरं वाऽहारयंतीति द्वितीयं २ तथा विवृद्धास्तदाहारितं शरीरमचित्तं विध्वस्तंच कृत्वात्मसात्कुर्वंतीति तृतीयं ३ अन्यान्यपि तेषां पृथिवीयोनिकानां वनस्पतीनां शरीराणि मूलस्कंधकंदादीनि नानावर्णानि न्नवंतीति चतुर्थं ४ एवमत्रापि वनस्पतियोनिकानां वनस्पतीनामेवंविधार्थप्रतिपादकानि चतुःप्रकाराणि सूत्राणि इष्टव्यानीति यावत्ते जीवावनस्पत्यवयवमूलस्कंधादिरूपाः कर्मोपपन्नगान्नवंत्येवमाख्यातं ॥ ४ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंन्नवा रुक्खवुक्कमा तज्जोणिया तस्संन्नवा तडवक्कमा कम्मोवगा कम्मनियाणेणं तब्वुक्कमा रुक्खजोणिएसु रुक्खेसु मूलत्ताए कंदत्ताए खंधत्ताए तयत्ताए सालत्ताए पवालत्ताए पत्तत्ताए पुप्फत्ताए फलत्ताए बीयत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं आउतेउवाउवणस्सइ णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुवंति परिविद्धत्थं तं सरीरगं जाव सारूविकडं संतं अवरेवियणं तेसिं रुक्खजोणियाणं मूलाणं कंदाणं खंधाणं तयाणं सालाणं पवालाणं जाव बीयाणं सरीरा णाणावन्ना णाणागंधा जाव णाणाविहसरीरं पुग्गल विउविता ते जीवा कम्मोववन्नगा न्नवंतीति मक्खायं॥५॥

अर्थ—अथ हवे अन्य स्थानक पूर्वे तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहे कोइ एक वृक्षयोनिक तथा अन्य तेना अवयवरूप प्राणी उपजे तथा जे एक वनस्पतिनो जीव सर्व वृक्षना अवयव व्यापारें, अन्य जीव वली तेना अवयव व्यापारें, ते वृक्षने विषे मूलपणे, कंद पणे, स्कंध पणे, त्वचा पणे, शाखा पणे, पत्र पणे. फूल पणे, फल पणे अने बीज पणे, प्रवाल एटले अंकुरपणे, एटला स्थानकें उपजे. ते जीव त्यां उपजता वृक्षयोनिक वृक्षनो स्नेह आहारे. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. यावत् ते जीव मूल कंदादिक वनस्पतिना अवयवरूप कर्म तेने वशें त्यां उपजे. एम श्रीतीर्थंकरें कह्युंछे. ॥ ५॥

॥ दीपिका—अथवृक्षोपर्युत्पन्नान् वृक्षानाश्रित्याह । (अहावरमिति) अथापरमेतदाख्यातं । इहैके सत्वावृक्षयोनिकाः स्युः । तस्यैकस्य वनस्पतेर्मूलारंन्नस्य उपचयकारिण

स्ते वृक्षयोनिकाउच्यंते । यदिवा मूलस्कंधादिकाः पूर्वोक्तदशस्थानवर्तिनस्ते एवमुच्यंते। अत्रापि सूत्रचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ ५ ॥

॥ टीका–सांप्रतं वृक्षोपर्युत्पन्नान् वृक्षानाश्रित्याह । (अथावरमिति) अथापरमेतत्पुरा ऽऽख्यातं य द्दक्ष्यमाणमिहैके सत्वावृक्षयोनिकाजवंति । तत्र ये ते पृथिवीयोनिकावृक्षास्ते ष्वेव प्रतिप्रदेशतया येपरे समुत्पद्यंते तस्यैकस्य वनस्पतेर्मूलारंजकस्योपचयकारिणस्ते वृ क्षयोनिकाइत्यनिधीयंते । यदिवा ये ते मूलकंदस्कंधशाखादिकाः पूर्वोक्तदशस्थानवर्तिन स्तएवमनिधीयंते तेषुच वृक्षयोनिकेषु वृक्षेषु कर्मोपादननिष्पादितेषु उपर्युपरि अध्यारोहं तीत्यध्यारुहावृक्षोपरिजातावृक्षानिधानाः कामवृक्षानिधानावा इष्टव्यास्तदजावेऽवापरे व नस्पतिकायाः समुत्पद्यंते वृक्षयोनिकेषु वनस्पतिष्विति । इहापि प्राग्वच्चत्वारि सूत्रा णि इष्टव्यानि ॥ ५ ॥

अहावरं पुरस्कायं इहेगतिया सत्ता रुस्कजोणिया रुस्कसंजवा रुस्कवु क्कमा तज्जोणिया तस्संजवा तडुवक्कमा कम्मोववन्नगा कम्मनियाणेणं तब वुक्कमा रुस्कजोणिएहिं रुस्केहिं अज्ञारोहत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं रुस्कजोणियाणं रुस्काणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं जाव सारूविकडं संतं अवरेवि यण तेसिं रुस्कजोणियाणं अज्ञारुहाणं सरीरा णाणावन्ना जावमस्कायं ॥ ६ ॥

अर्थ–हवे वृक्ष उपरना वृक्ष आश्री कहेछे. अथ हवे अन्य स्थानक श्री तीर्थंकरें क ह्युंछे. आजगत्मांहे कोइ एक वृक्षयोनिक सत्व एटले जीव होयछे त्यां जे पृथ्वीयोनिक वृक्ष, ते वृक्षने विषेज बीजा मूलादिक वृद्धिना करनार, ते वृक्षयोनिक वृक्षने विषे अव यवरूपे उपजे, तेनी उपर उपर जे आरूढे ते वल्ली वृक्षादिक अथवा पींपलादिक वड वृक्षनी उपर उपजे, ते कामवृक्षादिक जाणवा. ते कारणे एने अध्यारोह वृक्ष कहियें, ते अध्यारोह, वृक्षनोज स्नेह आहारे. इत्यादिक सर्व पूर्ववत् जाणी लेवुं ते यावत् पो ताना कर्मने वशे उपजे. एटले अध्यारोहनुं प्रथम सूत्र कह्युं ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–वृक्षयोनिकेषु एके अध्यारोहाजायंते वृक्षोपरिजातावृक्षाअध्यारोहाइत्यु च्यंते । तेच वल्लीवृक्षानिधानाः । शेषं प्राग्वत् । इदं प्रथमसूत्रं ॥ ६ ॥

॥ टीका–तद्यथा योनिकेषु वृक्षेष्वपरेऽध्यारुहाः समुत्पद्यंते तेच तत्रोत्पन्नाः स्वयोनिभू

तं वनस्पतिशरीरमाहारयंति तथा पृथिव्यप्तेजोवाय्वादीनां शरीरकमाहारयंति तथा तच्छरीरमाहारितं सदचित्तं विध्वस्तं परिणामितमात्मसात्कृतं स्वकायावयवतया व्यवस्थापयंत्य पराणिच तेषामध्यारुहाणां नानाविधरूपरसगंधस्पर्शोपेतानि नानासंस्थानानि शरीराणि नवंति ते जीवास्तत्र स्वकृतकर्मोपपन्ना नवंतीत्येतदाख्यातमिति प्रथमं सूत्रं ॥ ६ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता अभारोहजोणिया अभारोहसंनवा जाव कम्मनियाणेणं तत्र वुक्कमा रुक्खजोणिएसु अभारोहेसु अभारोहत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं अभारोहजोणियाणं अभारोहाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति ते जीवा पुढवीसरीरं जाव सारूविकडं संतं अवरेवि यणं तेसिं अभारोहजोणियाणं अभारोहाणं सरीरा णाणावन्ना जावमक्खायं ॥ ७ ॥

अर्थ—हवे अन्य स्थानक श्री तीर्थंकरें कह्युंछे, ते कहेछे. जे प्रथम वृक्षयोनिक वृक्षने विषे अध्यारोह कह्या,तेनेज विषे वली बीजा प्रदेश वृद्धिना करनार एवा अध्यारोह वनस्पति पणे उपजे; ते जीव अध्यारोह प्रदेशने विषे उपना ते वृक्षयोनिक अध्यारोहना स्नेह आहारे. इत्यादिक सर्व पूर्ववत् जाणवुं. एटले अध्यारोहनुं बीजुं सूत्र कह्युं. ॥७॥

॥ दीपिका—प्राग्वृक्षयोनिकेषु वृक्षेष्वध्यारोहा उक्ताः । अत्र तेष्वेवान्ये प्रतिप्रदेशोपचयकर्तारोऽध्यारोहवनस्पतित्वेन जायंते । तेच जीवाअध्यारोहप्रदेशेषूत्पन्नाअध्यारोहजीवास्तेषां स्वयोनिनूतानि शरीराणि आहारयंति तत्र पराण्यपि पृथिव्यादिनि शरीराण्याहारयंति अपराणि वाऽध्यारोहसंनवानामध्यारुहजीवानां नानावर्णकादिकानि शरीराणि नवंत्येवमाख्यातमिति द्वितीयं सूत्रं ॥ ७ ॥

॥ टीका—द्वितीयं त्विदमथापरं पुराख्यातं । ये ते प्राग्वृक्षयोनिषु वृक्षेषु अध्यारुहा प्रतिपादितास्तेष्वेवोपरि प्रतिप्रदेशोपचयकर्तारोऽध्यारुहवनस्पतित्वेनोपपद्यंते । तेच जीवाअध्यारुहप्रदेशेषूत्पन्नाअध्यारुहजीवास्तेषां स्वयोनिनूतानि शरीराण्याहारयंति । तथाऽपराण्यपि पृथिव्यादीनि शरीराणि आहारयंति अपराणि चाध्यारुहसंनवानामध्यारुहजीवानां नानाविधवर्णकादिकानि शरीराणि नवंतीत्येवमाख्यात. ॥ ७ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता अभारोहजोणिया अभारोहसंनवा जाव कम्मनियाणेणं तत्र वुक्कमा अभारोहजोणिएसु अभारोह

त्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं अज्ञारोहजोणियाणं अज्ञारोहाणं सिणेह माहारेंति ते जीवा आहारंति पुढविसरीरा आउसरीरा जाव सारूविक डं संतं अवरेवि यणं तेसिं अज्ञारोहजोणियाणं अज्ञारोहाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ७ ॥

अर्थ-अथ हवे अन्य स्थानक तीर्थंकरें कह्युंछे. आजगत् मांहे कोइ एक जीव, अध्यारोहयोनियाछे, ते अध्यारोह योनिया तेने विषे वली अध्यारोह पणे उपजे, ते अध्यारोहयोनिक अध्यारोहनां शरीर आहारे. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. आहीं पूर्वे बीजा सूत्रमां वृक्षयोनिक अध्यारोहनां शरीर बीजा अध्यारोह जीव अहारें, अने आ त्रीजा सूत्रमां अध्यारोहयोनिक अध्यारोह जीवनां शरीर अहारे, एटलुं विशेषछे. ए अध्यारोहनुं त्रीजुं सूत्र कह्युं. ॥ ७ ॥

॥ दीपिका-एके सत्वाअध्यारोहसंनवेषु अध्यारोहेषु अध्यारोहत्वेन जायंते। येच एवं जायंते तेऽध्यारोहयोनिकानाध्यारोहाणां यानि शरीराणि तान्याहारयंति। द्वितीयसूत्रे वृक्षयोनिकानामध्यारोहाणां यानि शरीराणि तान्यपरेऽध्यारोहाजीवाआहारयंति। अत्रतु अध्यारोहयोनिकानां अध्यारोहजीवानां शरीराणीति विशेषः। इदं तृतीयसूत्रं ॥ ७ ॥

॥टीका-तृतीयं त्विदं (अहावरमित्यादि) अथापरं पुराख्यातं। तद्यथा। इहैके सत्वा अध्यारुहसंनवेष्वध्यारुहत्वेनोपपद्यंते। ये चैवमुत्पद्यंते तेऽध्यारुहजीवाआहारयंति। तृतीये त्वध्यारुहयोनिकानामध्यारुहजीवानां शरीराणि द्रष्टव्यानीति विशेषः ॥ ७ ॥

अहावरं पुरकायं इहेगतिया सत्ता अज्ञारोहजोणिया अज्ञारोह संनवा जाव कम्मनियाणेणं तत्र वुक्कमा अज्ञारोहजोणिएसु अज्ञारोहेसु मूलत्ताए जाव बीयत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं अज्ञारोहजोणियाणं अज्ञारोहाणं सिणेहमाहारेंति जाव अवरेवि यणं तेसिं अज्ञारोहजोणियाणं मूलाणं जाव बीयाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ए ॥

अर्थ-हवे अध्यारोहनुं चोथुं सूत्र श्री तीर्थंकरें कह्युंछे, ते कहेछे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव, अध्यारोहयोनिक ते अध्यारोहने विषे मूल कंदादिक अवयव थइने उपजे, ते त्यां उपना थका तेनां शरीर आहारे, इत्यादिक अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ए॥

॥ दीपिका-अथापरमिदमाख्यातं इहैके सत्वाअध्यारुहयोनिकेष्वध्यारोहेषु मूलकंद

स्कंधत्वक्शाखाप्रवालपत्रपुष्पफलबीजत्वेन जायंते ते तथा कर्मोपगाजवंतीत्याख्यात मिति चतुर्थं सूत्रं ॥ ए ॥

॥ टीका—इदंतु चतुर्थकं । तद्यथा (अहावरमित्यादि) अथापरमिदमाख्यातं । तद्यथा इहैके सत्वाअध्यारुहयोनिकेष्वध्यारुहेषु मूलकंदस्कंधत्वक्शाखाप्रवालपत्रपुष्पफलबीज ज्ञावेनोत्पद्यंते तेच तथाविधकर्मोपगाजवंतीत्येतदाख्यातमिति शेषं तदेवेति ॥ ए ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता पुढविजोणिया पुढविसंज्ञवा जाव णाणाविहजोणियासु पुढवीसु तणत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणावि हजोणियाणं पुढवीणं सिणेहमाहारेंति जाव ते जीवा कम्मोववन्ना ज्ञवंती तिमक्खायं॥१०॥एवं पुढविजोणिएसु तणेसु तणत्ताए विउट्टंति जावमक्खा यं ॥ ११ ॥ एवं तणजोणिएसु तणेसु तणत्ताए विउट्टंति तणजोणियं त णसरीरं च अहारेंति जावमक्खायं॥१२॥ एवं तणजोणिएसु तणेसु मूल त्ताए जाव बीयत्ताए विउट्टंति तेजीवा जावएव मक्खायं ॥१३॥ एवं उस हीणवि चत्तारि आलावगा॥१४॥ एवं हरियाणवि चत्तारि आलावगा॥१५॥

अर्थ—हवे वली वृक्ष वर्जीने बीजा वनस्पतिकायना विशेष आश्री कहेछे. हवे बीजुं स्थानक पूर्वे तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहे कोइ एक पृथ्वीकाय योनिक पृथ्वीनेविषे वनस्पतिकायनो संज्ञवछे, पृथ्वीव्युत्क्रमछे, यावत् नाना प्रकारें योनिक, पृथ्वीने विषे तृण पणे उपजे, ते पृथ्वीनो आहार आहारे. इत्यादिक जेम वृक्षनो पहेलो आलावो क ह्यो हतो, तेमज जाणवो. एमज चार आलावा जेम वृक्षना कह्याछे, तेम तृणना पण जाणवा ॥ १० ॥ बीजे आलावे पृथ्वीयोनिक तृणनेविषे उपजे. आगलनुं सर्व पूर्ववत् जाणवुं, ॥ ११ ॥ त्रीजे आलावे तृणयोनिक तृणनेविषे तृणपणे उपजे. शेषं पूर्ववत् जाणवुं ॥ १२ ॥ चोथे आलावे तृणयोनिक तृणने विषे मूलकंदादिकने जावें उपजे. शेषं पूर्ववत् जाणवुं, ॥ १३ ॥ (एवंउसहीणविचत्तारिआलावगा के०) एज रीतें उषधि एटले धान्यनी जाति तेना पण चार आलावा जाणवा ॥ १४ ॥ (एवंहरियाणविचत्ता रिआलावगा के०) एवं हरितकाय आश्री पण चार आलावा जाणवा. ए सर्व मली ने वीश आलावा थया. ॥ १५ ॥

॥ दीपिका—अथ वृक्षवर्जितं शेषवनस्पतिमाश्रित्याह । अथापरमिदमाख्यातं । इहै

के सत्वाः पृथिवीयोनिकाः पृथिवीसंभवाइत्यादयोयथावृक्षेषु चत्वारि सूत्राणि एवं तृणा न्यप्याश्रित्य ज्ञेयाः । ते चामी नानाविधासु पृथिवीयोनिषु तृणत्वेनोत्पद्यंते पृथिवीशरीरं चाहारयंतीत्येकं, ॥१०॥ पृथिवीयोनिकेषु तृणेषूत्पद्यंते तृणशरीरं चाहारयंतीति द्वितीयं ॥११॥ तृणयोनिकेषु तृणेषूत्पद्यंते तृणयोनिकतृणशरीरं चाहारयंतीति तृतीयं ॥ १२ ॥ तृणयोनिकेषु तृणावयवेषु मूलादिषु दशस्थानेषूत्पद्यंते तृणशरीरं चाहारयंतीति चतुर्थं सूत्रं ॥ १३ ॥ (एवंउसहीणं) इत्यादि सुगमं ॥ १४ ॥ १५ ॥

॥ टीका–सांप्रतवृक्षव्यतिरिक्तं शेषवनस्पतिकायमाश्रित्याह । (अथावरमित्यादि) अथापरमिदमाख्यातं यदुत्तरत्र वक्ष्यते । तद्यथा । इहैके सत्वाः पृथिवीयोनिकाः पृथिवी संभवाः पृथिवीव्युत्क्रमाइत्यादयोयथावृक्षेषु चत्वारआलापकाएवं तृणान्यप्याश्रित्य द्रष्टव्याः । ते चामी नानाविधासु पृथिवीयोनिषु तृणत्वेनोपपद्यंते पृथिवीशरीरं चाहारयंति ॥१०॥ द्वितीयंतु पृथवीयोनिकेषु तृणेषूत्पद्यंते तृणशरीरं चाहारयंतीति ॥ ११ ॥ तृतीयं तु तृणयोनिकेषु तृणेषूत्पद्यंते तृणयोनिकशरीरं चाहारयंतीति ॥१२॥ चतुर्थं तृणयोनिकेषु तृणावयवेषु मूलादिषु दशप्रकारेषूत्पद्यंते तृणशरीरं चाहारयंत्येवं यावदाख्यातमिति ॥१३॥ एवमौषध्याश्रयाश्चत्वारआलापकाज्ञाणनीयाः ॥१४॥ नवरमोषधिग्रहणं कर्तव्यमेवं हरिताश्रयाश्चत्वारआलापकाज्ञाणनीयाः । कुहणेषु त्वेकएवालापकोऽष्टव्यस्तद्योनिकानाम परेषामभावादिति भावः ॥ १५ ॥

अहावरं पुरस्कायं इहेगतिया सत्ता पुढविजोणिया पुढविसंभवा जाव कम्म नियाणेणं तब वुक्कमा णाणाविहजोणियासु पुढवीसु आयत्ताए वायत्ताए कायत्ताए कूहणत्ताए कंडुकत्ताए उव्वेहणियत्ताए निव्वेहणियत्ताए सबत्ताए बत्तगत्ताए वासाणियत्ताए कूरत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविहजो णियाणं पुढवीणं सिणेहमाहारेंति तेवि जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं पुढविजोणियाणं आयत्ताणं जाव कूराणं सरीरा णाणावसा जावमरकायं एगोचेव आलावगो सेसा तिन्नि णत्थि ॥ १६ ॥

अर्थ–अथ हवे अन्य स्थानक पूर्वे तीर्थंकर देवें कह्युंछे. आ जगत् मांहे कोइ एक सत्व, पृथ्वीयोनिक पृथ्वीने विषे संभवछे. यावत् कर्मने कारणे आकर्षिता त्यां उपना छता नाना प्रकारनी योनीने विषे, पृथ्वीने विषे, आर्यनामा वनस्पति पणे, वाय नामा वनस्पति पणे, कायनामा वनस्पति पणे कुहणत्ताए एटले तोईकोडी नामा

वनस्पतिपणे, कंडुकनामा वनस्पतिपणे, उवहिणिकानामा वनस्पतिपणे, निव्वेहणीय नामा वनस्पतिपणे, सछत्रपणे, छत्तगत्ताए पणे, वासाणितापणे, कुरुनामा वनस्पति पणे, उपजे. ते जीव तेहीज नानाविध योनिक पृथ्वीनो स्नेह आहारे ते जीव पृथिव्या दिकनां शरीर आहारीने, यावत् पोतानी काया सरखां रूप करे. बीजा पण तेवा पृथ्वीयोनिक आयनामा वनस्पतिः यावत् कुरनामा वनस्पतिनां शरीर जेवां रूप करे ते शरीर नाना प्रकारना वर्णवालां होय. इत्यादिक यावत् पूर्ववत् भगवंते कह्युं ए कुहण नामा वनस्पतिनो विशेष ते आश्री एकज आलावो जाणवो. कारण के, ते योनिक बीजा नथी, तेथी एना शेष त्रण आलावा नथी. एनुं विशेष श्रीपन्नवणा थकी जाणवुं. एवं सर्व मली एकवीश आलावा पृथ्वीयोनिक वनस्पतिना कह्या. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—आर्यादयोवनस्पतिविशेषालोकतोज्ञेयाः । कुहणेषु तु एकएवालापकोवाच्यः । शेषास्त्रयोन संति तद्योनिकानामन्येषामभावादिति ॥ १६ ॥

॥ टीका—इह चामी वनस्पतिविशेषालोकव्यवहारतोऽनुगंतव्याः प्रज्ञापनातोवावसेया इति । अत्रार्थे सर्वेषामेव पृथिवीयोनिकत्वात्पृथिवीसमाश्रयत्वेनाभिहिताः। इह च स्थावराणां वनस्पतेरेव प्रस्पष्टचैतन्यलक्षणत्वात्तस्यैव प्राक्प्रदर्शितं चैतन्यं ॥ १६ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणिया, उदगसंभवा जाव कम्मनियाणेणं तत्र वुक्कमा णाणाविहजोणिएसु उदएसु रुक्खत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाजोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं उदगजोणियाणं रुक्खाणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं जहा पुढविजोणियाणं चत्तारि गमा अज्झारुहाणवि तहेव तणाण उसहीणं हरियाणं चत्तारि आलावगा भणियव्वाएक्केक्के तहा उदगजोणियाणं रुक्खाणं इक्कक्के ॥ १७ ॥

अर्थ—हवे अप्काययोनिक वनस्पतिनुं विशेष देखाडेछे. ते अनेरुं स्थानक पूर्वे श्री तीर्थंकर देवें कह्युंछे, ते कहेछे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव उदकयोनिक उदक संभव शैवलादिक वनस्पति ते जीव, यावत् कर्मने उदयें नानाविध योनिक पाणीने विषे वृक्षपणे उपजे. त्यां उपना छता नानाविध योनिक उदकनो स्नेह आहारे. पृथ्वीकायादिकनुं शरीर आहारे. इत्यादिक यावत् बीजुं सर्व पूर्वनी पेठें जाणवुं. ए जेम पूर्वें पृथ्वीयोनिकवृक्षना चार आलावा कह्या, तेम आहीं पण अप्काययोनिक वृक्षना चार आला

वा जाणवा. ए सर्व मली पच्चीश आलावा थया ॥ २५ ॥ तेमज अध्यारोहना पण उदक योनि आश्री चार आलावा कहेवा तेमज तृणना पण चार आलावा उदकयोनी आश्री कहेवा. ॥ ३२ ॥ तथा उषधिना पण चार आलावा कहेवा ॥ ३७ ॥ एम हरितकायना पण चार आलावा आहिं उदकयोनिकने विषे जाणवा. एम एकेकना चार चार आलावा करतां बधा मलीने वीश आलावा उदक योनिक वनस्पतिना थया; तथा एकवीश आलावा पूर्वे पृथ्वीयोनिक वनस्पतिना कह्याछे, ए बधा मलीने एकतालीश आलावा वनस्पतिना थया ॥ १७ ॥

॥ दीपिका—अथाप्काययोनिकस्य वनस्पतेः स्वरूपमाह । अथापरमाख्यातं । इहैके सत्वाउदकं योनिरुत्पत्तिस्थानं येषां ते तथा तेच कर्मवशगानानाविधयोनिकेषु जलेषु वृक्षत्वेन पनकशैवलादित्वेन जायंते तेच जलशरीरमाहारयंति न केवलं तदेवान्यदपि पृथिव्यादिशरीरमाहारयंति। यथा पृथ्वीयोनिकानां वृक्षाणां चत्वारआलापकास्तथा जलयोनिकानां वृक्षाणां न स्युः। तत्रोत्पन्नानामन्यविकल्पाभावात् किंतर्हि? एकएवाऽऽलापकः स्यात्॥ १७॥

॥ टीका—सांप्रतमप्काययोनिकस्य वनस्पतेः स्वरूपं दर्शयितुमाह । (अथावरमित्यादि) अथानंतरमेतद्वक्ष्यमाणमाख्यातं । तद्यथा । इहैके सत्वास्तथाविधकर्मोपचयाडुदकं योनिरुत्पत्तिस्थानं येषां ते तथा तथोदके संभवोयेषां ते तथा यावत्कर्मनिदानेन संदानितास्तडुपक्रमाद्भवंतीति । तेच तत्कर्मवशगानानाविधयोनिषूदकेषु वृक्षत्वेन व्युत्क्रामंत्युत्पद्यंते । येच जीवाउदकयोनिकावृक्षत्वेनोत्पन्नास्ते तच्छरीरमुदकं शरीरमाहारयंति न केवलं तदेवान्यदपि पृथिवीकायादिशरीरमाहारयंतीति । शेषं पूर्ववत् । यथा पृथिवीयोनिकानां वृक्षाणां चत्वारआलापकाएवमुदकयोनिकानामपि वृक्षाणां भवंतीत्येवं डृष्टव्यं । अपरस्य प्रागुक्तस्य विकल्पाभावादिति किंतर्हि? एकएवालापकोभवति ॥ १७ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणिया उदगसंभवा जाव कम्मणियाणेणं तत्थ वुक्कमा णाणाविहजोणिएसु उदएसु उदगत्ताए अवगत्ताए पणगत्ताए सेवालत्ताए कलंबुगत्ताए हडत्ताए कसेरुगत्ताए कच्छभाणियत्ताए उप्पलत्ताए पउमत्ताए कुमुयत्ताए नलिणत्ताए सुभगत्ताए सोगंधियत्ताए पोंमरियमहापोंमरियत्ताए सयपत्ताए सहस्सपत्ताए एवं कहलारकोकणयत्ताए अरविंदत्ताए तामरसत्ताए भिसभिसमुणालपुक्कलत्ताए पुक्कलच्छिभगत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविह

जोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं उदगजोणियाणं उदगाणं जाव पुक्खल छिन्नगाणं सरीरा णाणावन्ना जावमक्खायं एगोचेव आलावगो ॥१८॥

अर्थ—हवे अनेरुं स्थानक पूर्वें तीर्थंकरे कह्युंछे. आ जगत् मांहें कोइ एक जीव उदकयोनिक उदकने विषे वनस्पतिकायनो संभव, यावत् कर्मने कारणे आकर्षिता थकां आव्या छता नानाविध योनिक उदकने विषे उदक पणे, अवनक पणे, पणग एटले पन्य पणे, सेवाल पणे, कलंबुक पणे, आह्डपणे, कसेरुग पणे, कच्छभाण पणे, उत्पलनामा कमलनी जाति पणे, लाल वर्णे सूर्यविकाशी कमलनी जाति पणे, चंद्रविकासी कमलनी जाति पणे, नलिन कमलनी जाति पणे, सुभग कमल पणे, सुगंध कमलनी जाति पणे, पुंमरीक एटले धवलश्वेत कमलनी जाति पणे, महापुंमरीक एटले अत्यंत धवलश्वेत कमलनी जाति पणे,सो पांखडीछे जेनी एवा कमलनी जाति पणे पुष्कर जे थकी पान निकले ते पणे उपजे; हजार पांखडी छे जेनी एवा कमलनी जाति पणे, एम कह्लारनी जाति पणे, कोकणा पणे, अरविंद कमल पणे, तामरस कमल पणे, बीस मृणाल पणे, पुष्कर पणे, उपजे ; एटले एवा एवा भावें उपजे, ते जीव नाना विध योनिक उदकनो स्नेह आहारे. इत्यादिक सर्व पूर्ववत् कहेवुं. एनो एकज आलावोछे, पण बीजा आलावा नथी. ए उदक योनिक वनस्पतिनाएकवीश आलावा, एम बधामली वनस्पतिकायना बेहेंतालीश आलावा थया ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—एतेषामुदकाकृतीनामवकपनकादीनामन्यस्य प्रागुक्तविकल्पस्याभावादेक एवालापकः स्यात् । एते जलाश्रिताः कलंबकाह्डादिवनस्पतयोलोकतोज्ञेयाः ॥ १८ ॥

॥ टीका—एतेषां हि उदकाकृतीनां वनस्पतिकायानां तथावयवपनकशैवलादीनामपरस्य प्रागुक्तस्य विकल्पस्याभावादिति । एते च उदकाश्रयावनस्पतिविशेषाः कलंबुकाहडादयोलोकव्यवहारतोवसेयाइति ॥ १८ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता तेसिं चेव पुढवीजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहिं मूलेहिं जाव बीएहिं रुक्खजोणिएहिं अज्झारोहेहिं अज्झारोहजोणिएहिं अज्झारुहेहिं अज्झारोहजोणिएहिं मूलेहिं जाव बीएहिं पुढविजोणिएहिं तणेहिं तणजोणिएहिं तणेहिं तणजोणिएहिं मूलेहिं जाव बीएहिं एवं उसहीहिं वि तिन्नि आलावगा एवं हरिएहिं वि तिन्नि आ

द्धिकं । यदिवा दुःखमसैद्धिकं सांसारिकं । अथवा सैद्धिकमसैद्धिकं च सुखं यथा । स्रक् चंदनांगनाद्युपभोगक्रियासिद्धौ भवं सैद्धिकं । आंतरं सुखमानंदरूपमसैद्धिकं । तथा सैद्धिकमसैद्धिकं च दुःखं यथा । कशाताडनांकनादिक्रियासिद्धौ भवं सैद्धिकं । ज्वरशिरोर्तिशूलादिरूपमंगोद्भवमसैद्धिकं दुःखं । एतदुभयमपि सुखं दुःखं च नपुरुपकारकृतं । नचान्यैः कालादिभिः कृतं वेदयंत्यनुभवंति पृथक्जीवाः । कथं तर्हि प्राणिनांसुखं दुःखं च स्यादित्याह । (संगइअंति) । सम्यक् स्वपरिणामेन गतिर्यस्याः यदा यत्र यत्सुखदुःखानुभवनं सा संगतिर्नियतिस्तस्याभवं सांगतिकं नियतिकृतमित्यर्थः । इहाऽस्मिन्सुखदुःखानुभववादे एकेषां नियतिवादिनामिदमाख्यातं । यदुक्तं तैः । प्राप्तव्योनियतिबलाश्रयेण योर्थः, सोऽवश्यं भवति नृणां शुभोऽशुभो वा ॥ भूतानां महति कृतेपि हि प्रयत्ने, नाभाव्यं भवति न भाविनोस्ति नाश इति ॥ २ ॥

॥ टीका—उक्तः प्रथमोद्देशकस्तदनु द्वितीयोऽभिधीयते । तस्य चायमभिसंबंधः । इहाऽनंतरोद्देशके स्वसमयपरसमयप्ररूपणाकृता । इहाप्यध्ययनार्थाधिकारत्वात्सैवाभिधीयते । यदि चानंतरोद्देशके भूतवादादिमतं प्रदर्श्य तन्निराकरणं कृतं । तदिहापि तदवशिष्टनियतिवाद्यादिमिथ्यादृष्टिमतान्युपदर्श्य निराक्रियंते । अथवा प्रागुद्देशकेऽन्यथापि यथा बंधनं बुध्येत तच्च त्रोटयेदिति तदेव च बंधनं नियतिवाद्यभिप्रायेण न विद्यतइति प्रदर्श्यते । तदेवमनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि व्यावर्ण्य सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (आघायमित्यादि) अस्य चाऽनंतरपरंपरसूत्रैः संबंधोवक्तव्यस्तत्राऽनंतरसूत्रसंबंधोयं । इहानंतरसूत्रे इदमभिहितं यथा । पंचभूतस्कंधादिवादिनोमिथ्यात्वोपहताऽतरात्मनोऽसद्ग्राहाभिनिविष्टाः परमार्थाऽवबोधविकलाः संतः संसारचक्रवाले व्याधिमृत्युजराकुले उच्चावचानि स्थानानि गच्छंतो गर्भमेष्यंत्यन्वेषयंति वाऽनंतशइति । तदिहापि नियत्यज्ञानिज्ञानचतुर्विधकर्मोपचयवादिनां तदेव संसारचक्रवालभ्रमणगर्भान्वेषणं प्रतिपाद्यते । परंपरसूत्रसंबंधस्तु (बुज्झेज्जत्यादि) । तेन च सहायं संबंधस्तत्र बुध्येतेत्येतत् प्रतिपादितमिहापि यदाख्यातं नियतिवादिभिस्तद्बुध्येतेत्येवं मध्यसूत्रैरपि यथासंभवं संबंधो लगनीयइति । तदेवं पूर्वोत्तरसंबंधसंबद्धस्यास्य सूत्रस्याऽधुनार्थः प्रतन्यते । पुनःशब्दः पूर्वादिभ्यो विशेषं दर्शयति नियतिवादिनां पुनरेकेषामेतदाख्यातं । अत्र चाविवक्षितकर्मकाप्यपि अकर्मका भवंतीति ख्यातेर्धातोर्भावे निष्ठाप्रत्ययस्तद्योगे कर्तरि षष्ठी । ततश्चायमर्थस्तैर्नियतवादिभिः पुनरिदमाख्यातं तेषामयमाशयइत्यर्थः । तद्यथा । उपपन्नो युक्त्या घटमानकाइत्यनेन च पंचभूततज्जीवतच्छरीरवादिमतमपाकृतं भवति । युक्तिस्तु लेशतः प्राग्दर्शितैव । प्रदर्शयिष्यते

लावगा पुढविजोणिएहिंवि आएहिं काएहिं जाव कूरेहिं उदगजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणियेहिं मूलेहिं जाव बीएहिं एवं अझारुहेहिंवि तिन्नि तणेहिंवि तिन्नि आलावगा उसहीहिंवि तिन्निहरि एहिंवि तिन्नि उदगजोणिएहिं उदएहिं अवएहिं जाव पुक्खलच्छिन्न एहिं तसपाणत्ताएविउट्टंति ॥ १९ ॥ तेजीवा तेसिं पुढवीजोणियाणं उदगजो णियाणं रुक्खजोणियाणं अझारोहजोणियाणं तणजोणियाणं उसहीजो णियाणं हरियजोणियाणं रुक्खाणं अझारुहाणं तणाणं उसहीणं हरि याणं मूलाणं जाव बीयाणं आयाणं कायाणं जावं करवाणं उदगाणं अ वगाणं जाव पुक्खलच्छिन्नगाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पु ढवीसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं रुक्खजोणियाणं अझारोहजोणि याणं तणजोणियाणं उसहिजोणियाणं हरियजोणियाणं मूलजोणिया णं कंदजोणियाणं जाव बीयजोणियाणं आयजोणियाणं कायजोणिया णं जाव कूरजोणियाणं उदगजोणियाणं अवगजोणियाणं जाव पुक्खल च्छिन्नगजोणियाणं तसपाणाणं सरीरा णाणावन्ना जाव मक्खायं ॥ २० ॥

अर्थ–हवे अन्यत्र प्रकारें वनस्पतिनुं स्वरूप कहेछे. हवे अनेरुं स्थानक पूर्वें श्री तीर्थंक रदेवें कह्युं. आजगत् मांहें कोइ एक जीव ते पृथ्वीयोनिक वृक्षें करी, तथा वृक्षयोनि क वृक्षें करी, तथा वृक्ष योनिक मूलें करी, यावत् बीजें करी, तथा वृक्षयोनिक अ ध्यारोहें करी, तथा अध्यारोहयोनिक अध्यारोहें करी, तथा अध्यारोहयोनिक मूलें करी, यावत् बीजें करी, पृथ्वीयोनिक तृणें करी, तृणयोनिक तृणें करी, तृणयोनिक मू लेंकरी, यावत् बीजें करी, ए प्रकारें ए त्रणना त्रण त्रण आलावा जाणवा. ए रीतेंज व ली उषधियें करीपण, त्रण, त्रण, आलावा जाणवा. एमज हरितकायना पण त्रण आलावा जाणवा.पृथ्वीयोनिक, आयनामा वनस्पति, कायनामा वनस्पति, यावत् कुरंवा दनामा वनस्पति, उदकयोनिकना वृक्षें करी, वृक्षयोनिकना वृक्षें करी, वृक्षयोनिकना मूलें करी, यावत् बीजें करी, एमज अध्यारोहना पण त्रण आलावा जाणवा. तृणना पण त्रण आलावा जाणवा.उषधियें करी पण,त्रण आलावा जाणवा, हरितें करी पण त्रण आलावा जाणवा, उदकयोनिक उदक अवकपनक यावत् पुक्खलच्छि जे थकी पान निकले तेने विषे, त्रस प्राणि पणे उपजे.ए सर्वे, बत्रीश आलावा थया. अने आगलना

बेहंतालीश बधामली चमोतेर आलावा थया.॥१९॥ ते जीव ते वनस्पतिने विषे उपना थका पृथ्वीयोनिक, उदकयोनिक. वृक्षयोनिक अध्यारोहयोनिक, तृणयोनिक, उषधियोनिक, हरितयोनिक, वृक्षनो, अध्यारोहनो, तृणनो, उषधिनो, हरितनो, मूलनो, यावत् बीजनो, आयनो, कायनो, यावत् कुरवंदनो, उदकनो, अवगाहिनो, यावत् पुरकलछि एटले जे थकी पान निकले तेनो, स्नेह आहारे ते जीव पृथ्व्यादिकनां शरीर आहारीनें यावत् आपणां सरखां रूप करे. इत्यादिक अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ते जीव वृक्षयोनिक, अध्यारोह योनिक तृणयोनिक, यावत् पुरकलछि योनिक, त्रसप्राणिनां, शरीरना नाना प्रकारना वर्ण, गंध, रस, स्पर्शवाला होय. ते पोताना कर्मने वश जाणवा. यावत् एम श्री तीर्थंकर गणधरादिकें कह्युं. त्यां सुधीनो आलावो जाणवो. एटले वनस्पतिकायनुं स्वरूप कह्युं, अने पृथ्वीकायादिक चार जातिनां एकेंद्रियनां स्वरूप आगल कहेशे ॥ २० ॥

॥ दीपिका—अथ प्रकारांतरेण वनस्पत्यालापकत्रयमाह । पृथिवीयोनिकैर्वृक्षैर्वृक्षयोनिकै र्मूलादिभिरिति । एवं वृक्षयोनिकैरध्यारुहैः अध्यारुहयोनिकैरध्यारुहैः अध्यारुहयोनिकै र्मूलादिभिरिति । एवमन्येष्वपि तृणादयोज्ञेयाः । एवमुदकयोनिष्वपि वृक्षेषु योज्यं।१९।ते वनस्पतिषूत्पन्नाजीवाः पृथिवीयोनिकानां तथा उदकानां वृक्षाध्यारोहतृणौषधिहरितयोनिकानां वृक्षाणां यावत् स्नेहमाहारयंतीत्येतदाख्यातं । तत्र त्रसानां शरीरमाहारयंतीत्यंतं ज्ञेयं । इति वनस्पतीनां स्वरूपमुक्तं । शेषाः पृथिवीकायादयश्चत्वारएकेंद्रियाअग्रे वक्ष्यंते॥२०॥

॥ टीका—सांप्रतमन्येन प्रकारेण वनस्पत्याश्रयमालापकत्रयं दर्शयितुमाह । तद्यथा । पृथिवीयोनिकैर्वृक्षैर्वृक्षयोनिकैर्वृक्षैस्तथा वृक्षयोनिकैर्मूलादिभिरिति । एवं वृक्षयोनिकैरध्यारुहैस्तथाध्यारुहयोनिकैर्मूलादिभिरिति । एवमन्येपि तृणादयोऽद्रष्टव्याः । एवमुदकयोनिकेष्वपि वृक्षेषु योजनीयं ॥१९॥ तदेवं पृथिवीयोनिकवनस्पतेरुदकयोनिकवनस्पतेश्च भेदानुपदर्श्याऽधुना तदनुवादेनोपसंजिघृक्षुराह । (तेजीवाइत्यादि) ते वनस्पतिषूत्पन्नाजीवाः पृथिवीयोनिकानां तथोदकवृक्षाध्यारुहतृणौषधिहरितयोनिकानां वृक्षाणां यावत्स्नेहमाहारयंतीत्येतदाख्यातमिति। तथा त्रसानां प्राणिनां शरीरमाहारयंत्येतदवसाने द्रष्टव्यमिति । तदेवं वनस्पतिकायिकानां सुप्रतिपाद्यचैतन्यानां स्वरूपमभिहितं । शेषाः पृथ्वीकायादयश्चत्वारएकेंद्रियावक्त्तरत्र प्रतिपादयिष्यंते ॥ २० ॥

अहावरं पुरक्कायं णाणाविहाणं मणुस्साणं तंजहा कम्मभूमगाणं अकम्मभूमगाणं अंतरदीवगाणं आरियाणं मिलुक्कयाणं तेसिंचणं अहाबीएणं अहावकासेणं इत्थीए पुरिस्ससयं कम्मकडाए जोणिए एत्थणं मेहुणवत्ति

थाएव णामं संजोगे समुप्पज्जइ ते दुहउवि सिणेहं संचिणंति तछणं जीवा इछित्ताए पुरिसत्ताए णपुंसगत्ताए विउट्टंति ते जीवा माउउयं पिउसुक्कं तं तदुभयं संसठं कलुसं किविसं तं पढमत्ताए आहारमाहारेंति ततो पछ जं से माया णाणाविहाउ रसविईउ आहारमाहारेंति ततो एगदेसेणं उय माहारेंति आणुपुवेण वुढा पलिपागमणुविन्ना ततोकायातो अभिनिवट्ट माणा इछिं वेगया जणयंति पुरिसं वेगया जणयंति णपुंसगं वेगया जणयं ति ते जीवा डहरा समाणा माउक्खीरं सप्पिं आहारेंति आणुपुवेणं वुढा उ यणं कुम्मासं तसथावरेय पाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव सा रूवि कडं संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं मणुस्सगाणं कम्मभूम गाणं अकम्मभूमगाणं अंतरद्दीवगाणं आरियाणं मिलक्खूणं स रीरा णाणावन्ना भवंतीतिमक्खायं ॥ ११ ॥

अर्थ—हवे त्रसकायनो अवसर छे. ते त्रसकाय तो एक नारकी, बीजा तिर्यंच, त्रीजा मनुष्य, अने चोथा देवता, ए चार प्रकारे छे. तेमांहें नारकी अप्रत्यक्ष पणे अनुमान ग्राह्य जाणवा. अथवा दुष्कृत कर्मनां जे फल तेना भोगवनार छे, तेने आहार पण, एकांते अशुभ पुद्गल थकी नीपनो उज थकीछे, पण प्रक्षेप थकी नथी, अने देवता पण हमणां प्रायः अनुमानगम्यछे, तेनो आहार एकांत शुभछे, तेनो पण उजाहारछे. परंतु प्रक्षेपकृत नथी. देवतानो आहार बे प्रकारेछे. एक आभोगिक बीजो अनाभोगि क, तेमां जे अनाभोगिक ते समय समयपर छे अने आभोगिक ते, जघन्यथीतो चतुर्थ भक्तें आहार, अने उत्कृष्ट तेत्रीश हजार वर्षे आहारछे. हवे तिर्यंच अने मनुष्य मांहें प्रथम मनुष्यनुं स्वरूप कहेछे. अथ हवे बीजुं अन्य स्थानक श्री तीर्थंकर देवें प रापूर्वें कह्युंछे. आ जगत् मांहें नाना प्रकारनां मनुष्यछे, एक आर्य, एक अनार्य, एक पन्नर कर्म भूमीनां उपनां, एक त्रीश अकर्म भूमीनां उपना, एक अंतर द्वीपनां उप नां, एक आर्य, एक म्लेछ छे. (तेसिंचणंअहाबीएणं के०) तेनें यथा बीजें करी एटले स्त्री पुरुष नपुंसकने भेदें करी, जे जेनुं बीज ते यथा बीज, तेणें करी, तथा यथावकाशें एटले मातानी कुक्ष्यादिक जेम वाम कुक्षें स्त्री उपजें, दक्षिण कुक्षें पुरुष उपजे, अने वाम दक्षिणाश्रित नपुंसक उपजे,इत्यादिक यथावकाशें करी,(इछीएपुरिसस्सयंके०) स्त्री पुरुषना वेदनो उदय छते (कम्मकडाएजोणिएणं के०) पूर्वकर्म निर्मित योनिने विषे (एछणंमेहुण वत्तियाएवणामंके०) आहीं मैथुन प्रत्ययिक नाम अरणी अने काष्ठनी पेठें(संजोगेसमुप्पज्जइ

के०) संयोग उपजे. ते संयोग उपने छते त्यां जीव. तैजस कार्मण शरीरें करी उपजे. (तेडु ढविसिणेहंसंचिणंतिके०) ते जीव उपजतां छतां प्रथम समयें बेहुनो स्नेह संचिणे एट ले आहारे, ते आहारीने, (तछणंजीवा के०) त्यां ते जीव (इत्थित्ताएपुरिसत्ताएणपुंसग त्ताएविउट्टंति के०) स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक पणे उपजे. (तेजीवामाउउयंपिउसुक्कं के०) तेजीव माता संबंधि रक्त, अने पिता संबंधि शुक्र, ते (तछुनयंसंसछं के०)बेहु मिश्रित एकठुं नलेलुं डुगछनिक (कलुसंकिव्विसंके०) कलुष मलीन बीनत्स (तंपढमत्ताए के०) तेनो, प्रथम समयने विषे (आहारमाहारेंति के०) आहार आहारे. (ततोप छा के०) त्यार पछी, (जंसेमाया के०) जे तेनी माता (णाणाविहाउरसविईउ आहारमाहारेंति के०) नाना प्रकारना रसवाला आहार आहारे, (ततोएगदेसेणंउय माहारेंतिके०) तेवार पछी तेनो एक देशे उज आहार आहारे. (आणुपुव्वेणवुड्ढापलिपा गमणुविन्नाके०) ते स्नेहें करी ते जीवनी अनुक्रमें निष्पति उपजे. एवा अनुक्रमें वृद्धियें पहोंते छते (ततोकायातोअनिनिवट्टमाणाके०) तेवार पछी तेनी काया थकी एटले तेनी योनि थकी निकले (इत्थिवेगयाजणयंतिके०) ते एक स्त्री थइ निकले, (पुरिसंवेगयाज णयंति के०) एक पुरुष थइ निकले, (णपुंसगंवेगयाजणयंति के०) एक नपुंसक थइ निकले, (तेजीवाडहरासमाणाके०) ते जीव बालक थका (माउक्खीरंसप्पिआहारेंतिके०) माताना स्तननुं डुग्ध आहारे तथा मोटो थाय त्यारे घृत आहारे. तेवार पछी (आणुपुव्वे णंवुड्ढाके०) अनुक्रमें वधता थका (उयणंकुम्मासंतसथावरेयपाणेतेजीवाआहारेंति के०) उदन चावलादिक अडदादिक तथा त्रस अने स्थावर प्राणी पण आहारे. (पुढविसरीरं के०)पृथ्वीनुं शरीर जे लवणादिक ते आहारे.ते आहाखो छतो (जावसारूविकडंसंतंके०) पोताना शरीर सरखो करे, एटले पोतानी काया रूप करे, एटले ते आहार धातु पणे परिणमावे. (अवरेवियणंतेसिं के०) तथा बीजां पण तेने (णाणाविहाणं के०) नाना प्रकारना (मणुस्सगाणं के०) कर्मनूमीने विषे उपना एवा मनुष्यनां, अकर्मनूमी ना मनुष्यनां, अंतरद्वीपना मनुष्यनां, आर्य मनुष्यना, म्लेछ मनुष्यनां, शरीर, नाना प्रकारना वर्ण गंध रस स्पर्शे करी सहित थकां, एवां पोताना कर्मने वशें उपजे. इत्या दिक पूर्ववत् यावत् श्री तीर्थंकर गणधरें कह्युं ॥ २१ ॥

॥ दीपिका—अथ त्रसकायेषु पूर्वं मनुष्यानाह । अथापरमाख्यातं । नानाविधानां म नुष्याणां स्वरूपमुक्तमित्यर्थः । तद्यथा । कर्मनूमिजाइत्यादिमनुष्याणां (यथाबीजेनेति) यद्यस्य बीजं तत्र शुक्राधिकं नरस्य शोणिताधिकं स्त्रियाः उजयसमता नपुंसकस्य कारणमि ति । यथावकाशेनेति । योयस्यावकाशोमातुरुदरकुक्षिप्रमुखस्तत्र वामा कुक्षिः स्त्रियाः, द

क्षिणा नरस्य, उन्नयाश्रिता षंढस्येति। तत्र चाविध्वस्ता योनिरविध्वस्तं बीजं१ विध्वस्ता यो निर्विध्वस्तं बीजं२ विध्वस्ता योनिरविध्वस्तं बीजं ३ अविध्वस्ता योनिर्विध्वस्तं बीजं। चतुर्षु नंगेषु आद्यनंगएव उत्पत्तेरवकाशोन शेषेषु त्रिषु । अत्रच स्त्रीपुंसयोर्वेदोदये सति पूर्वकर्मकृतायां योनौ मैथुनप्रत्ययिकोरतानिलाषोदयजनितोऽग्निकारणयोररणिकाष्ठयोरिव संयोगोजायते तत्संयोगेच तच्छुक्रशोणिते तैजसकार्मणाभ्यां गृहीत्वा तत्रोत्पद्यंते जीवाः। (तेडुहउंत्ति) ते जीवाः प्रथममुन्नयोरपि स्नेहमाचिन्वंति अविध्वस्तयोनौ । विध्वस्यते तु योनिः । पंचपंचाशिका नारी सप्तसप्ततिकः पुमानिति । द्वादशमुहूर्तान् यावद्बीजमविध्वस्तं स्यात् ततऊर्ध्वं ध्वंसयंति तत्र जीवाः कर्मवशतः स्त्रीपुंनपुंसकत्वेन (विउट्टंति) जायंते ते जीवामातुः ऋतुं शोणितं पितुः शुक्रं तत्तडुन्नयसंसृष्टं कलुषं किल्बिषं बीन्नत्सं तत्प्रथमतयाऽऽहारमाहारयंति ततः पश्चात्सेतस्य माता यन्नानाविधरसवंतमाहारमाहारयति तत्स्नेहेन तेषां जंतूनां वृद्धिः स्यात् ततस्तदेकदेशेन त्वगेकदेशेनवा मातुराहारमोजसा मिश्रेण वा लोमनिर्वाऽऽहारयति आनुपूर्व्येण यथाक्रमं पुष्टावृद्धिं प्राप्ताजीवाग र्नपरिपाकं गर्नेनिष्पतिमनुप्रपन्नास्ततोमातुः कायादन्निनिवर्तमानाः पृथग्नवंतोनिर्गच्छंति । कर्मवशादात्मनः स्त्रीनावमेके जनयंति एके पुंनावं नपुंसकनावं वा तेच डहराबालाः संतोमातुः क्षीरं स्तन्यमाहारयंति वृद्धाःसंतः सर्पिर्घृतं धान्यमोदनं कुल्माषान् नुंजते नानाविधान् त्रसस्थावरान् प्राणिनोजीवान् आहारयंति । नानायोनिकजंतुशरीराण्याहारयंतीत्यर्थः । नानामनुष्याणां शरीराणि केचित्तद्योनिकत्वादाहारयंति इत्याख्यातं ॥२१॥

॥ टीका—सांप्रतं त्रसकायस्यावसरः सच नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवन्नेदनिन्नः । तत्र नारकाअप्रत्यक्षत्वेनानुमानग्राह्याडुष्कृतकर्मफलन्नुजः केचन संतीत्येवं ते ग्राह्याः । तदाहारोप्येकांतेनाशुन्नपुजलनिवर्तितउजसा प्रक्षेपेणेति। देवाअप्यधुना बाहुल्येनानुमानगम्याएव तेषामप्याहारः शुन्नएकांतेनोजोनिवर्तितोन प्रक्षेपकृतइति। सचाऽनोगनिवर्तितोनान्नोगकृतश्च । तत्र नान्नोगकृतः प्रतिसमयन्नावी आन्नोगकृतश्च जघन्येन चतुर्नक्तकृतउत्कृष्टतस्तु त्रयस्त्रिंशद्वर्षसहस्रनिष्पादितइति । शेषास्तु तिर्यङ्मनुष्यास्तेषांच मध्ये मनुष्याणामन्यर्हितत्वात्तानेव प्राग्दर्शयितुमाह । (अथावरं पुरस्काय मित्यादि) अथानंतरमेव तु पुरा पूर्वमाख्यातं । तद्यथा । आर्याणामनार्याणां च कर्मन्नूमिजाऽकर्मन्नूमिजादीनां मनुष्याणां नानाविधयोनिकानां स्वरूपं वक्ष्यमाणनीत्या समाख्यातं । तेषांच स्त्रीनपुंसकन्नेदनिन्नानां यथा बीजेनेति । यद्यस्य बीजं तत्र स्त्रियाः संबंधि शोणितं पुरुषस्य शुक्रं एतडुन्नयमप्यविध्वस्तं शुक्राधिकं सन्मनुष्यस्य, शोणिताधिकं स्त्रियास्तत्समता नपुंसकस्य कारणतां प्रतिपद्यते तथा यथावकाशेनेति । योयस्यावकाशोमातुरुदरकुक्ष्यादिकस्तत्रापि

किंच वामा स्त्रियोदक्षिणा कुक्षिः पुरुषस्योनयाश्रितः षंढइति । अत्र चाविध्वस्ता योनिरवि ध्वस्तं बीजमिति चत्वारोनंगाः । तत्राप्याद्यएव नंगकउत्पत्तेरवकाशोन शेषेषु त्रिष्विति। अत्रच स्त्रीपुंसयोर्वेदोदये सति पूर्वकर्मनिवर्तितायां योनौ मैथुनप्रत्यायिकोरतानिलाषोदय जनितोऽग्निकारणयोररणिकाष्ठयोरिव संयोगः समुत्पद्यते तत्संयोगेच तच्छुक्रशोणिते समुपा दाय तत्रोत्पित्सवोजंतवस्तैजसकार्मणाभ्यां शरीराभ्यां कर्मरज्जुसंदानितास्तत्रोत्पद्यंते। तेच प्रथममुनयोरपि स्नेहमाचिन्वंत्यविध्वस्तायां योनौ सत्यामिति । विध्वस्यते तु योनिः पंचपंचाशिका नारी सप्तसप्ततिः पुरुषइति। तथा द्वादशमुहूर्तानि यावच्छुक्रशोणिते अवि ध्वस्तयोनिके नवतस्ततऊर्ध्वं ध्वंसमुपगच्छतइति । तत्र जीवाउनयोरपि स्नेहमाहार्य स्वक मेविपाकेन यथास्वं स्त्रीपुंनपुंसकनावेन (विउट्टंतिति) वर्तंते समुत्पद्यंतइति यावत् । तदु त्तरकालं च स्त्रीकुक्षौ प्रक्षिप्ताः संतः स्त्रियाऽऽहारितस्याहारस्य निर्यासं स्नेहमाददति त त्स्नेहेनच तेषां जंतूनां क्रमोपचयादानेन क्रमेण निष्पत्तिरुपजायते । सत्ताहं कललं होइ सत्ताहं होइ बुब्बुयं इत्यादि । तदेवमनेन क्रमेण तदेकदेशेनवा मातुराहारमोजसा मि श्रेणवा लोमनिर्वाऽऽनुपूर्व्येणाहारयंति यथाक्रममानुपूर्व्येण वृद्धिमुपागताः संतोगर्नपरि पाकं गर्ननिष्पत्तिमनुप्रपन्नास्ततोमातुः कायादनिनिवर्तमानाः पृथग्नवंतः संतस्तद्योनेर्नि र्गच्छंति । तेच तथाविधकर्मोदयादात्मनः स्त्रीनावमप्येकदा जनयंत्युत्पादयंत्यपरे केचन पुंनावं नपुंसकनावंच। इदमुक्तं नवति। स्त्रीपुंनपुंसकनावः प्राणिनां स्वकृतकर्मनिवर्तितो नवति न पुनर्योयादृगिहनवे सोमुष्मिन्नेव तादृगेवेति । तेच तदहर्जातबालकाः संतः पू र्वनवाभ्यासादाहारानिलाषिणोनवंति मातुः स्तन्यमाहारयंति तदाहारेण चानुपूर्व्येण च वृद्धास्तडत्तरकालं नवनीतदध्योदनादिकं यावत्कुल्माषान् नुंजंते तथाहारत्वेनोपगतान् सांस्थावरांश्च प्राणिनस्ते जीवाआहारयंति तथा नानाविधपृथिवीशरीरं लवणादिकं सचे तनं वाऽऽहारयंति तच्चाहारितमात्मसात्कृतं सारूप्यमापादितं सत् रसासृङ्मांसमेदोस्थिम ज्जाशुक्राणि धातवइति सप्तधा व्यवस्थापयंत्यपराण्यपि तेषां नानाविधमनुष्याणां शरीराणि नानावर्णान्याविर्नवंति । तेच तद्योनिकत्वात्तदाधारनूतानि नानावर्णानि शरीराण्याहारयं तीत्येवमाख्यातमिति ॥ २१ ॥

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं जलचराणं पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तंजहा मच्छाणं जाव सुसमाराणं तेसिंचणं अहाबीएणं आहावगासेणं इत्थीए पुरिसस्सयकम्मकडा तहेव जाव ततो एगदेसेणं उयमाहारेंति आ णुपुव्वेणं वुड्ढा पलिपागमणुपविन्ना ततोकायाउ अनिनिवट्टमाणा अंडं वेगया जणयंति पोयं वेगया जणयंति से अंडे उप्निज्जमाणे इत्थिं वेगया

जणयंति पुरिसं वेगया जणयंति नपुंसगं वेगया जणयंति ते जीवा महरा समाणा आउसिणेहमाहारेंति आणुपुवेणं वुड्ढा वणस्सतिकायं तसथा वरेयपाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं ते सिं णाणाविहाणं जलचरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं मच्छाणं सुसुमा राणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं ॥ २२ ॥

अर्थ–हवे अनेरुं स्थानक पराष्टूर्वें तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहें नाना प्रकारना जलचारी पंचेंड्रिय तिर्यंच योनिक जीवछे, ते कहेछे. माछलां,कछप, मगरमछ, नक्र, च क्र, पाठीन, पीव, ग्राहक, सुसुमारादिक, तेने यथाबीजें करी स्त्रियादिकना नेदें करी, य थावकाश एटले मातानी कुक्ष्यादिक जेम वाम कुक्षें स्त्री उपजे, इत्यादिक यथावकाशें करी स्त्री पुरुषादिक वेदने उदयें कर्म निवर्त्तित पूर्वयोनिने विषे, अहीं मैथुन प्रकृतिय नाम अरणीय काष्ठनी पेठें संयोगें उपजे. (तहेव के०) तेमज यावत् ते जीव माता नी कुक्षियें उपना पछी एक देशें उज आहारे, अनुक्रमें वृद्धिये पोहोतो छतो तेवार प छी ते काया थकी एटले योनिथकी कालें करी निकले, निकलता थका त्यां एक जण अंम रूप, एक पोत रूप, त्यां अंमथकी उद्भिद्यमान ते स्त्री पुरुष नपुंसक पणे उपजे; ते जीव बालक छतां अप्कायनो स्नेह आहारे. पछी अनुक्रमें वर्द्धमान थका एटले वृ द्धि पाम्या थका वनस्पतिकायनुं शरीर तथा त्रस अने स्थावर प्राणीने आहारे. ते जी व पृथ्वीनुं शरीर आहारे यावत् पोतानी काया सरखां रूप करे. अन्य पण ते नाना प्र कारें जलचर पंचेंड्रिय तिर्यंच योनिक यावत् सुसुमारना सरखा रूप करे ते कर्मने वशें उपजे, ते नाना प्रकारना वर्ण गंध रस स्पर्शवान् थाय. एम श्री तीर्थंकरें कह्युं ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–गर्नजमनुष्याउक्ताः संमूर्छनजाश्चाग्रे वक्ष्यंते सांप्रतं तिर्यग्योनिकास्तत्रापि पूर्वं जलचरानाह । अथापरं तिर्यग्योनिकानां जलजरपंचेंड्रियाणां स्वरूपमाख्यातं प्रथ मं मत्स्यकछपमकरग्राहसुसुमारादीनां यस्य यद्बीजं यस्योदराद्यवकाशोयस्तेन स्त्रियाः पु रुषस्य च कर्मकृतायां योनौ जायंते । तेच तत्र मातुराहारेण वृद्धाः स्त्रीपुंनपुंसकानाम न्यतमत्वेन जायंते गर्ननिर्गताबालाः संतो ऽपांस्नेहमप्कायमेवाहारयंति । वृद्धास्तु वनस्पतिकायं अन्यान् त्रसस्थावरांश्च यावत्पंचेंड्रियानपि आहारयंति । यडुक्तं । अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम अस्तिमत्स्यस्तिमिंगिलः । तिमिंगिलगिलोप्यस्ति तद्गिलोप्यस्ति राघव ! । तथा ते जीवाः पृथवीशरीरं कर्दमस्वरूपमाहारयंति तच्चाऽऽहारितं सत्समानरूपीकृतं आत्मसात्परिणामियंति । शेषं सुगमं ॥ २२ ॥

॥ टीका—एवं तावज्जर्भव्युत्क्रांतजमनुष्याः प्रतिपादितास्तदनंतरं संमूर्छनजानामवसरस्तांश्चोत्तरत्र प्रतिपादयिष्यामि सांप्रतं तिर्यग्योनिकास्तत्रापि जलचरानुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) अथानंतरमेतद्वक्ष्यमाणं पूर्वमाख्यातं । तद्यथा । नानाविधजलचरपंचेंद्रियतिर्यग्योनिकानां संबंधिनः कांश्चित्स्वनामग्राहमाह । तद्यथा । (मच्छाणंजावसुसुमाराणमित्यादि) तेषां मत्स्यकच्छपमकरग्राहसुंसुमारादीनां यस्य यथा यद्बीजं तेन तथा यथावकाशेन योयस्योदरादावक्काशस्तेन स्त्रियाः पुरुषस्यच स्वकर्मनिवर्तितायां योनावुत्पद्यंते । तेच तत्रानिव्यक्तामातुराहारेण वृद्धिमुपगताः स्त्रीपुंनपुंसकानामन्यतमेनोत्पद्यंते तेच जीवा जलचरागर्भाद्व्युत्क्रांताः संतस्तदनंतरं यावड्डहरंतिलघवस्तावदप्स्नेहमप्कायमेवाहारयंति । आनुपूर्व्येणच वृद्धाः संतोवनस्पतिकायं तथापरांश्च त्रसांस्थावरांश्चाहारयंति यावत्पंचेंद्रियानप्याहारयंति । तथा चोक्तं । अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनविस्तरः॥तिमिंगिलगिलोप्यस्ति, तद्गिलोप्यस्ति राघव !॥१॥ तथा ते जीवाः पृथिवीशरीरं कर्दमस्वरूपं क्रमेण वृद्धिमुपगताः संतआहारयंति तच्चाऽऽहारितं सत्समानरूपीकृतमात्मसात्परिणामयंति शेषं सुगमं । यावत्कर्मोपगताजवंतीत्येवमाख्यातं ॥ २१ ॥

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं चउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं एगखुराणं दुखुराणं गंमीपदाणं सणप्पयाणं तेसिंचणं अहाबीएणं अहावगासेणं इत्थिपुरिसस्सयकम्मजाव मेहुणवत्तिए णामं संजोगे समुपज्जइ ते दुहउ सिणेहं संचिणंति तच्छणं जीवा इत्थित्ताए पुरिसत्ताए जाव विउट्टंति ते जीवा माउउयं पिउसुक्कं एवं जहा मणुस्साणं इत्थिंवि वेगया जणयंति पुरिसंपि नपुंसगंपि तेजीवा डहरा समाणा माउक्खीरं सप्पिं आहारेंति आणुपुव्वेणं वुड्ढा वणस्सइकायं तसथावरेयपाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं एगखुराणं जाव सणप्पयाणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं ॥२३॥

अर्थ—हवे अन्य स्थानक तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहें नाना प्रकारना चतुष्पद स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यंच योनिया जीवछे, ते कहेछे. एक खुर ते अश्वादिक, द्विखुर ते गो महिष वृषभादिक , गंमीपद ते हस्त्यादिक, तथा षट्पद ते सिंह व्याघ्रादिक, ते यथा बीजें यथावकाशें इत्यादिक पूर्वनी पेठें ते जीवोनी उत्पत्ति जाणवी. ते जीव उप

जतां मातानुं रक्त अने पितानुं शुक्र इत्यादिक आहारे. एम मनुष्यनी पेठें एक स्त्र एक पुरुष, एक नपुंसक थाय. ते जीव बालक छतां मातानुं डुग्धादिक आहारे, पछ अनुक्रमे वधता वनस्पतिकाय अने त्रस स्थावर प्राणिनो आहार करे. इत्यादिक त स्थलचारि चतुष्पदनां शरीर नाना प्रकारना वर्ण गंध रस स्पर्शवान् कर्मने वशें थाय इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. ॥ २३ ॥

॥ दीपिका–अथस्थलचरानाह । अथापरमाख्यातं नानाविधानां चतुष्पदानां स्वरूपं । तद्यथा । एकखुराणामश्वखरादीनां द्विखुराणां गोमहिष्यादीनां गंमीपदानां हस्तिगंडकादीनां सनखपदानां सिंहव्याघ्रादीनां यथाबीजेन यथावकाशेन सर्वपर्याप्तिमवाप्य उत्पद्यंते उत्पन्नाश्च मातुः स्तन्यमाहारयंति वृद्धिं प्राप्ताः परेषां शरीरमप्याहारयंति । शेषं सुगमं ॥ २३ ॥

॥ टीका–सांप्रतं स्थलचरानुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) अथापरमेतदाख्यातं नानाविधानां चतुष्पदानां तद्यथा एकखुराणामित्यश्वखरादीनां तथा द्विखुराणां गोमहिष्यादीनां तथा गंमीपदानां हस्तिगंमकादीनां तथा सनखानां सिंहव्याघ्रादीनां यथाबीजेन यथावकाशेन सकलपर्याप्तिमवाप्योत्पद्यंते तथोत्पन्नाः संतस्तदनंतरं मातुः स्तन्यमाहारयंतीति । क्रमेणच वृद्धिमुपगताः संतोपरेषामपि शरीरमाहारयंति शेषं सुगमं । यावत्कर्मोपगताभवंतीति ॥ २३ ॥

अहावरं पुरकायं णाणाविहाणं उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिरकजोणियाणं तंजहा अहीणं अयगराणं असालियाणं महोरगाणं तेसिंचणं अहाबीएणं अहावगासेणं इबीए पुरिस जावएबएणं मेहुणे एवं तं चेव नाणत्तं अंमं वेगइया जणयंति पोयं वेगइया जणयंति से अंमे उप्भिज्जमाणे इब्लिं वेगइया जणयंति पुरिसंपि णपुंसगंपि ते जीवा मह रा समाणा वाउकायमाहारेंति आणुपुवेणं वुड्ढा वणस्सइकायं तसथावरपाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं उरपरिसप्पथलयरतिरिरकापंचिंदियअहीणं जाव महोरगाणं सरीरा णाणावम्ना णाणागंधा जावमरकायं ॥ ७४ ॥

अर्थ–हवे अनेरुं स्थानक परापूर्वें तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत्मांहें नाना प्रकारे उरपरिसर्प स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यंच योनियाछे. ते कहेछे. अही सर्प्प, अजगर सर्प्प, अ

सालिया सर्प्प, महोरग तथा हजार योजन प्रमाण शरीर वाला, इत्यादिक जीव छे. तेने यथा बीजें यथावकाशें इत्यादिक पूर्ववत् ते जीवनी उत्पत्ति जाणवी. एक अंमरूप निपजे, एक पोतरूप नीपजे, ते ते अंमथकी उद्भिषमान पुरुष, स्त्री, अने नपुंसक थाय. ते जीव बालक थका वायुकाय आहारे. पछी अनुक्रमें वधता थका वनस्पति काय तथा त्रस स्थावर प्राणी आहारे. इत्यादिक सर्व पूर्ववत् जाणवुं ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—अथ उरःपरिसर्प्पानाह । उरःपरिसर्प्पाअहिप्रमुखाअंमजत्वेन पोतजत्वेनवा गर्नान्निर्गछंति तेच निर्गतामातुरूष्माणं वायुं चाहारयंति तेषां च जातिविशेषात्तेनैवाहारेण वृद्धिर्जायते । शेषं सुगमं ॥ २४ ॥

॥ टीका—सांप्रतमुरःपरिसर्पानुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) नानाविधानां बहुप्रकाराणामुरसा ये प्रसर्प्पंति तेषां । तद्यथा अहीनामजगराणामाशालिकानां महोरगाणां यथावकाशेन यथाबीजत्वेन चोत्पत्त्यांमजत्वेन पोतजत्वेनवा गर्नान्निर्गछंतीति । तेच निर्गता मातुरूष्माणं वायुं चाहारयंति तेषां जातिप्रत्ययेन तेनैवाहारेण क्षीरादिनैव वृद्धिरुपजायते । शेषं सुगमं यावदाख्यातमिति ॥ २४ ॥

अहावरं पुरस्कायं णाणाविहाणं भुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तंजहा गोहाणं नउलाणं सिहाणं सरडाणं सल्लाणं सरघाणं खाराणं घरकोइलियाणं विस्संभराणं मुसगाणं मंगुसाणं पयलाइयाणं बिरालियाणं जोहाणं चउप्पाइयाणं तेसिंचणं अहाबीएणं अहावगासेणं इत्थिए पुरिसस्सय जहा उरपरिसप्पाणं तहान्नाणियव्वं जाव सारूवि कडं संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं भुयपरिसप्पपंचिंदियथलयरतिरिक्खाणं तं गाहाणं जावमक्खायं ॥ २५ ॥

अर्थ—हवे अनेरुं स्थानक परापूर्वें श्रीतीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहें नाना प्रकारे भुजपरि सर्प्प स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यंच योनिक छे ते कहेछे. गोहजाति, नोलिउ, सिहल, सरड किरकाटीया प्रमुख, सलगा, सरवा, खारा, जीवविशेष घरकोइला, एटले गिलोइ, विसंभरा एटले छपका, मुसक एटले उंदर, खसकला पयालि, विरालि एवीरीतें चतुष्पद भुजपरिसर्प्प जीवविशेष छे ते जीवोनी उत्पत्ति यथा बीजें करी यथावकाशें करी

च पृथक्पृथक्नारकादिनवेषु शरीरेषु चेत्यनेनाऽप्यात्माऽद्वैतवादिनिरासोऽवसेयः। के पुनस्ते पृथगुपपन्नास्तदाह।जीवाः प्राणिनः सुखडुःखनोगिनः। अनेन च पंचस्कंधातिरिक्तजीवानावप्रतिपादकबौद्धमताऽपक्षेपः कृतोऽष्टव्यः। तथा ते जीवाः पृथक्पृथक् प्रत्येकदेहे व्यवस्थिताः सुखं डुःखं च वेदयंत्यनुनवंति। न वयं प्रतिप्राणिप्रतीतं सुखडुःखानुनवं निह्नुमहे। अनेन चाऽकर्तृवादिनोनिरस्तानवंति। अकर्तर्यविकारिण्यात्मनि सुखडुःखानुनवानुपपत्तेरिति नावः। तथैतदस्मानिर्नोऽपलप्यते। अडुवेत्यथवा। तेप्राणिनः सुखं डुःखं चानुनवंति विलुप्यंते नबिद्यंते स्वायुषः प्रच्याव्यंते स्थानात्स्थानांतरं संक्राम्यंत इत्यर्थः। ततश्चौपपातिकत्वमप्यस्मानिस्तेषां न निषिध्यते इतिश्लोकार्थः॥ १॥ तदेवं पंचनूतास्तित्वादिवादिनिरासं कृत्वा यत्तैर्नियतिवादिनिराश्रीयते तच्लोकद्वयेन दर्शयितुमाह। (नतंसयमित्यादि) यत् तैः प्राणिनिरनुनूयते सुखं डुःखं स्थानविलोपनं वा न तत्स्वयमात्मना पुरुषकारेण कृतं निष्पादितं डुःखमिति। कारणेकार्योपचारात्। डुःखकारणमेवोक्तं। अस्य चोपलक्षणत्वात् सुखाद्यपि ग्राह्यं। ततश्चेदमुक्तं नवति। योयं सुखडुःखानुनवः सपुरुषकारकृतकारणजन्यो न नवतीति। तथा कुतोऽन्येन कालेश्वरस्वनावकर्मादिना च कृतं नवेत्। एमित्यलंकारे। तथाहि। यदि पुरुषकारकृतं सुखाद्यनुनूयेत ततः सेवकवणिक्कर्षकादीनां समाने पुरुषकारे सति फलप्राप्तिवैसदृश्यं फलप्राप्तिश्च न न वेत्। कस्यचित्तु सेवादिव्यापारानावेपि विशिष्टफलावाप्तिर्दृश्यत इत्यतो न पुरुषकारात्किंचिदासाद्यते किं तर्हिनियतेरेवेत्येतच्च द्वितीयश्लोकांतेऽनिधास्यते। नापि कालः कर्ता। तस्यैकरूपत्वाज्जगति फलवैचित्र्यानुपपत्तेः। कारणनेदे हि कार्यनेदोनवति नानेदे। तथा ह्ययमेवहि नेदो नेदहेतुर्वा घटते। यडुत विरुद्धधर्माध्यासः कारणनेदश्च। तथेश्वरकर्तृकेपि सुखडुःखे नन वतः। यथाऽसावीश्वरो मूर्तोऽमूर्तो वा। यदि मूर्तस्ततः प्राकृतपुरुषस्येव सर्वकर्तृत्वानावः। अथाऽमूर्तस्तथा सत्याकाशस्येव सुतरां निष्क्रियत्वं। अपिच यद्यसौ रागादिमात्रस्ततोऽस्मदाद्यव्यतिरेकाद्विश्वस्याकर्तैव। अथासौ विगतरागस्ततस्तत्कृतं सुनगडुर्नगेश्वरदरिद्रादिजगद्वैचित्र्यं न घटां प्रांचति ततोनेश्वरः कर्तेति। तथा स्वनावस्यापि सुखडुःखादिकर्तृत्वानुपपत्तिः। यतोऽसौ स्वनावः पुरुषाद्भिन्नोऽनिन्नोवा। यदि निन्नोन पुरुषाश्रिते सुखडुःखे कर्तुमलं तस्माद्भिन्नत्वादिति। नाप्यनिन्नोऽनेदे पुरुषएव स्यात्तस्य चाकर्तृत्वमुक्तमेव। नापि कर्मणः सुखडुःखं प्रति कर्तृत्वं घटते। यतस्तत्कर्म पुरुषाद्भिन्नमनिन्नं वा नवेत्। अनिन्नं चेत्पुरुषमात्रतापत्तिः कर्मणस्तत्र चोक्तो दोषः। अथ निन्नं तत्किं सचेतनमचेतनं वा। यदि सचेतनं एकस्मिन् काये चैतन्यद्वयापत्तिः। अथाचेतनं तथा सति कुतस्तस्य पाषाणखंडस्येवास्वतंत्रस्य सुखडुःखोत्पादनंप्रति कर्तृत्वमित्येतच्चोत्तरत्र व्यासेन प्रतिपादयिष्ये इत्यलं प्रसंगेन। तदेवं सुखं सैद्धिकं सिद्धावपवर्गलक्षणायां

इत्यादिक जेम पूर्वें उरःपरिसर्पनो विचार कह्यो तेम जाणवो. ते जीव अनुक्रमे वधता पृथ्व्यादिकनो आहार करे. इत्यादिक सर्व अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥ २५ ॥

॥ दीपिका–भुजपरिसर्प्पानाह। भुजपरिसर्प्पाणां गोधानकुलादीनां यथाबीजेन काशेनोत्पत्तिः स्यात् । तेच अंडजत्वेन पोतजत्वेन वा उत्पन्नामातुरूष्मणा चाऽऽहारितेन वृद्धिं यांति । शेषं सुगमं ॥ २५ ॥

॥ टीका–सांप्रतं भुजपरिसर्पानुद्दिश्याह (अहावरमित्यादि) नानाविधान्यां न्यां ये परिसर्प्पंति तेषां । तद्यथा । गोधानकुलादीनां स्वकर्मोपात्तेन यथाबीजेन काशेन चोत्पत्तिर्भवति । ते चांडजत्वेन पोतजत्वेन चोत्पन्नास्तदनंतरं मातुरूष्मणा वा हारितेन वृद्धिमुपयांति । शेषं सुगमं यावदाख्यातमिति ॥ २५ ॥

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं खहचरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तंजहा चम्मपक्खीणं लोमपक्खीणं समुग्गपक्खीणं विततपक्खीणं ते सिंचणं अहाबीएणं अहावगासेणं इत्थीए जहा उरपरिसप्पाणं नाणत्तं ते जीवा महरा समाणा माउगात्त सिणेह माहारेंति आणुपुवेणं वुड्ढा व णस्सतिकायं तसथावरेय पाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं खहचरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं चम्मपक्खीणं जावमक्खायं ॥ २६ ॥

अर्थ–हवे अनेरुं स्थानक श्री तीर्थंकरें कह्युं छे. आ जगत् मांहे नाना प्रकारें खेचर पंचेंद्रिय तिर्यंचछे, ते कहेछे. चर्मपक्षी ते वल्गुली प्रमुख, लोमपक्षी ते सारस राजहंसादिक, तथा समुद्गपक्षी अने विततपक्षी ए बे जाति, मनुष्य क्षेत्र थकी बाहेर जाणवी. ते खेचर जातिने यथाबीजें यथावकाशें जेम उरःपरिसर्प्पनी पूर्वें उत्पत्ति कही, तेमज ए जीवनी पण उत्पत्ति जाणवी. ते जीव बालक छता मातानो स्नेह आहारे. इत्यादिक आलावो सर्व पूर्ववत् जाणवो. ॥ २६ ॥

॥ दीपिका–अथ खेचरानाह । खेचराणामुत्पत्तिरेवं ज्ञेया । तद्यथा । चर्मपक्षिणां चर्मकीटवल्गुलीचर्मचटकादीनां लोमपक्षिणां सारसराजहंसकाकबकादीनां समुद्गपक्षिणोविततपक्षिणश्च बहिर्द्वीपवार्तिनस्तेषां यथाबीजेन यथावकाशेन चोत्पन्नानामेवमाहारः स्यात् । सा पक्षिणी तदंडकं स्वपक्षाभ्यामावृत्य तावत्तिष्ठति यावत्तदंडकं तद्रू

ष्मणाऽऽहारितेन वृद्धिं प्राप्तं सत् कललावस्थां त्यक्त्वा चंचूप्रमुखान् अवयवान्निष्पाद्य न्नेदं याति (माउगात्तसिणंति) मातृगात्रोष्माणमित्यर्थः । ततः पश्चादपि जननीसमानी तेनाहारेण वृद्धिं प्राप्नोति । शेषं प्राग्वत् ॥ २६ ॥

॥ टीका–सांप्रतं खेचरानुद्दिश्याह । अहावरमित्यादि) नानाविधानां खेचराणामुत्पत्तिरेवं द्रष्टव्या । यथा चर्मपक्षिणां चर्मकीटवल्गुलीप्रभृतीनां तथा लोमपक्षिणां सारसराजहंसकाकबकादीनां समुद्गपक्षिविततपक्षिणां बहिर्द्वीपवर्तिनामेतेषां यथाबीजेन यथावकाशेन चोत्पन्नानामाहारक्रियैवमुपजायते । तद्यथा । सा पक्षिणी तदंडकं पक्षाभ्यामावृत्य तावत्तिष्ठति यावत्तदंडकं तदूष्मणाहारितेन वृद्धिमुपगतं सत् कललावस्थां परित्यज्य चंच्वादिकानवयवान् परिसंमापय्य न्नेदमुपयाति तदुत्तरकालमपि मात्रोपनीतेनाहारेण वृद्धिमुपयाति । शेषं प्राग्वत् ॥ २६ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणिया णाणाविहसंभवा णाणाविहवुक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तदुवुक्कमा कम्मोवगा कम्मणियाणेणं तत्र वुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पोग्गलाणं सरीरेसुवा सचित्तेसुवा अचित्तेसुवा अणुसूयत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं तसथावरजोणियाणं अणुसूयगाणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं ॥ २७ ॥

अर्थ–हवे पूर्वे कह्यो जे मनुष्य तथा तिर्यंचनो अधिकार तेथकी अपर एटले बीजुं स्थानक तीर्थंकरें कह्युं छे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव कर्मने उदयें वर्त्तता नानाविध योनिया पोताना करेलां कर्मने विशेषें नानाविध संभवछे. नानाविधना आव्या छता ते जोणिया ते संभव तदुपक्रम कर्मना वशंगत कर्मने कारणे आकर्षता त्यां आव्या छता, नाना प्रकारना त्रस अने स्थावर जीवोना पुद्गलने विषे,शरीरने विषे, सचित्तने विषे,अचित्तने विषे,अपर शरीरनी निश्रायें उपजे.ते विकलेंद्रिय जीव जाणवा अहीं सचित्त ते मनुष्यादिकना शरीरने विषे जू लीख,इत्यादिक भावें उपजे.तथा अचित्त ते मनुष्यने परिभुज्यमाण एवा मंचादिकने विषे मांकडादिकने भावें उपजे.ते जीव उपना थका ते नाना प्रकारना त्रस अने स्थावर प्राणीना स्नेह आहारे. ते जीव पृथ्वीनुं शरीर आहारीने, यावत् पोतानी काया सरखां रूप करे. अनेरा पण ते त्रस अने स्थावर योनिक अपर शरीरनी

निश्रायें विकलेंद्रियने भावें उपजे. तेनां शरीर नाना प्राकारना वर्ण गंध रस अने स्पर्शी वालां जाणवां. एम यावत् तीर्थंकरें कह्युं ॥ २७ ॥

॥ दीपिका—उक्ताः पंचेंद्रियामनुष्यास्तिर्यंचश्च । अथ विकलेंद्रियानाह । अथापरमाख्यातं । इहैके सत्वाः कर्मणा तत्रोत्पत्तिस्थाने उपक्रम्य आगत्य नानाविधत्रसस्थावराणां शरीरेषु सचित्तेषु अचित्तेषुवा (अणुसूयत्ताएत्ति) अन्यशरीराश्रिततया परनिश्रयाविवर्तंते उत्पद्यंतइत्यर्थ. । तेच विकलेंद्रियाः सचित्तेषु मनुष्यादिशरीरेषु यूकालिक्षादिकत्वेन जायंते नरभुज्यमानेषु मंचकादिषु अचित्तेषु मत्कुणत्वेनोत्पद्यंते तथा नरशरीरेषु विकलेंद्रियशरीरेषु वा सचित्ताचित्तेषु ते जीवा (अणुसूयत्ताएत्ति) अनुस्यूतत्वेन परिनिश्रयाकुम्यादित्वेन जायंते । केचित्सचित्तेऽग्नौ मूषिकादितया यत्र चाग्निस्तत्र वायुरिति ते वायूद्भवाअपि ज्ञेयाः। पृथिवीमाश्रित्य कुंथुपिपीलिकादयोवर्षादौ ऊष्मणा संस्वेदजाजायंते उदके पूतरकाडोल्लणकाभ्रमरिकादयः । वनस्पतिकाये पनकभ्रमरादयः एवं ते जीवास्तानि स्वयोनिशरीराणि आहारयंतीत्याख्यातं ॥ २७ ॥

॥ टीका—व्याख्याताः पंचेंद्रियामनुष्यास्तिर्यंचश्च तेषां चाहारो द्वेधा । आभोगनिर्वर्तिताऽनाभोगनिर्वर्तितश्च । तत्रानाभोगनिर्वर्तितः प्रतिक्षणभाव्यभोगनिर्वर्तितस्तु यथास्वं क्षुद्वेदनीयोदयभावीति । सांप्रतं विकलेंद्रियानुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) अथानंतरमेतदाख्यातमिहास्मिन् संसारे एके केचन तथाविधकर्मोदयवर्तिनः सत्वाः प्राणिनोनानाविधयोनिकाः कर्मनिदानेन स्वकृतकर्मणोपादानभूतेन तत्रोत्पत्तिस्थाने उपक्रम्यागत्य नानाविधत्रसस्थावराणां शरीरेषु अचित्तेषु सचित्तेषुवा (अणुसुयत्ताएत्ति) अपरशरीराश्रिततया परनिश्रयाविवर्तंते समुत्पद्यंते इति यावत् (तेच जीवाविकलेंद्रियाः सचित्तेषु मनुष्यादिशरीरेषु यूकालिक्षादिकत्वेनोत्पद्यंते तथा तत्परिभुज्यमानेषु मंचकादिष्वचित्तेषु मत्कुणत्वेनाविर्भवंति तथाऽचित्तीभूतेषु मनुष्यादिशरीरकेषु विकलेंद्रियशरीरेषुवा ते जीवाअनुस्यूतत्वेन परनिश्रयाकुम्यादित्वेनोत्पद्यंते । अपरेतु सचित्ते तेजःकायादौ मूषिकादित्वेनोत्पद्यंते । यत्र चाग्निस्तत्र वायुरित्यतस्तदुद्भवाअपि द्रष्टव्याः । तथा पृथिवीमनुश्रित्य कुंथुपिपीलिकादयोवर्षादावूष्मणा संस्वेदजाजायंते तथोदके पूतरकाडोल्लणकभ्रमरिकाछेदनकादयः समुत्पद्यंते तथा वनस्पतिकाये पनकभ्रमरादयोजायंते । तदेवं ते जीवास्तानि स्वयोनिशरीराण्याहारयंति इत्येवमाख्यातमिति ॥ २७ ॥

एवं दुरूवसंभवत्ताए ॥ २८ ॥

अर्थ—हवे पंचेंद्रियनां मल मूत्र मांहें उपजता एवा, जीव आश्री कहेछे. (एवंके०)

ए जेम सचित्ताचित्त शरीरनी निश्रायें विकलेंद्रिय जीव उपजेछे तेम, तेना मल, मूत्र, वमनादिकने विषे (दुरूव के०) विरूपरूप एटले कृम्यादिकने नावें उपजे, ते जीव तेणे विष्टादिकने विषे उपना बता तेहिज आहार लीये. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ २८ ॥

॥ दीपिका–अथ पंचेंद्रियमूत्रपुरीषोद्भवान् जीवानाह । (एवमित्यादि) एवं पूर्वोक्तप्रकारेण सचित्ताचित्तशरीरनिश्रयायथा विकलेंद्रियाजायंते । तथा तत्संनवेषु मूत्रपुरीषवांतादिषु परे जंतवोडुष्टं विरूपं रूपं येषां ते डुरूपास्तत्संनवत्वेन तद्भावेन जायंते। तेच विष्टादौ शरीरान्निर्गते अनिर्गतेवा उत्पन्नास्तदेव विष्ठादिकमाहारयंतीति। शेषं प्राग्वत्॥ २८॥

॥ टीका–सांप्रतं पंचेंद्रियमूत्रपुरीषोद्भवानसुमतः प्रतिपादयितुमाह । (एवमित्यादि) एवमिति पूर्वोक्तपरामर्शः । यथा सचित्ताचित्तशरीरनिश्रयाविकलेंद्रियाः समुत्पद्यंते तथा तत्संनवेषु मूत्रपुरीषवांतादिषु अपरे जंतवोडुष्टं विरूपं रूपं येषां कृम्यादीनां ते डुरूपास्तत्संनवत्वेन तद्भावेनोत्पद्यंते । तेच तत्र विष्ठादौ देहान्निर्गतेऽनिर्गतेवा समुत्पद्यमाना उत्पन्नाश्च तदेव विष्ठादिकं स्वयोनिनूतमाहारयंति । शेषं प्राग्वत् ॥ २८ ॥

एवं खुरडुगत्ताए ॥ २९ ॥

अर्थ–हवे सचित्त शरीरनी निश्रायें जे जीव उपजे ते आश्री कहेछे. (एवं के०) जेम मलमूत्रादिकने विषे जीवनी उत्पत्ति थायछे. तेम तिर्यंचना शरीरने विषे खुर एटले चर्मने विषे कीटकने नावें उपजे एटले गाय, नेंश प्रमुखना चर्म मांहें प्राणियो संमूर्छे, ते तेनुं चर्म मांस नक्षण करे, चर्मे विवर करे, ते थकी जे अशुद्ध पुजल निकले तेज आहारे ; तथा अचित्त गवादिक शरीरने विषे पण जीव उपजे तथा सचित्ताचित्त वनस्पति शरीरने विषे पण घूण कीटकादिक संमूर्छे. ते उपजतां तेनुंज शरीर आहारे. इत्यादिक जाणवुं ॥ २९ ॥

॥ दीपिका–अथ सचित्तदेहाश्रयान् जंतूनाह । (एवंखुरुडुगत्ताएत्ति) यथा मूत्रविष्टादावुत्पादस्तथा तिर्यग्देहेषु (खुरडुगत्तेत्ति) चर्मकीटत्वेन जायंते । तथाहि ।जीवतामेव गोमहिष्यादीनां चर्मणोऽतःप्राणिनः संमूर्छंते । तेच तन्मांसचर्मणी नक्षयंति नक्षयंतश्च तच्चर्मणोविवराणि कुर्वंति । गलच्छोणितेषु विवरेषुच तेषु तिष्ठंतस्तदेव शोणितं नक्षयंति तथाऽचित्तगवादिदेहेपि तथा सचित्ताचित्तवनस्पतिशरीरेपि घुणकीटकाः संमूर्छंते तद्देहमेव नक्षयंतीति ॥ २९ ॥

॥ टीका–सांप्रतं सचित्तशरीराश्रयान् जंतून् प्रतिपादयितुमाह । (एवंखुरडुगुत्ताएइ त्यादि) एवमिति यथा मूत्रपुरीषादावुत्पादस्तथा तिर्यक्शरीरेषु (खुरडुगुत्ताएत्ति) चर्मकीटतया समुत्पद्यंते । इदमुक्तं भवति जीवतामेव गोमहिष्यादीनां चर्मणोंतः प्राणिनः संमूर्छंते तेच तन्मांसचर्मणी भक्षयंति भक्षयंतश्चर्मणोविवराणि विदधति गलछोणितेषु विवरेषु तिष्ठंतस्तदेव शोणितमाहारयंति तथा अचित्तगवादिशरीरेपि तथा सचित्ताचित्तवनस्पतिशरीरेपि घुणकीटकाः संमूर्छंते तेच तत्र संमूर्छतस्तछरीरमाहारयंतीति ॥ २९ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणिया जाव कम्मणिया णेणं तत्थवुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसु वा अचित्तेसुवा तं सरीरगं वायसं सिद्धंवा वायसंगहियंवा वायं परिगहियं उड्ढवाएसु उड्ढभागी भवति अहेवाएसु अहेभागी भवति तिरियंवाएसु तिरियंभागी भवति तंजहा उसा हिमए महिया करए हरतणुए सुद्धोदए तेजीवा तेसिं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा अहारेंति पुढविसरीरं जावसंतं अवरेवियणं तेसिं तसथावरजोणियाणं उसाणं जावसुद्धोदगाणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं ॥ ३० ॥

अर्थ–हवे अप्कायनुं प्रतिपादन करे छे. हवे बीजुं स्थानक छे. श्री तीर्थंकरें कह्युंछे आ जगत् मांहे कोइ एक जीव तथाविध कर्मने उदयें नानाविध योनिक छता यावत् कर्मने कारणे आकर्षिता त्यां आव्या छता नाना प्रकारें त्रस ते दर्दुरादिक अने स्थावर ते हरिकाय लवणादिक प्राणीनां सचित्त अचित्त शरीरने विषे ते अप्कायनुं शरीर वायुयें करी निपजाव्युं तथा (वायसंगहियंवा के०) वायरे करी सम्यक् प्रकारें ग्रह्युं तथा (वायंपरिहियं के०) वायरे करी अन्योन्य परिगत एटले माहोमांहें मेलव्युं तथा (उड्ढवाएसुउड्ढभागीभवति के०) ऊर्ध्वगत वायराने विषे ऊर्ध्वगत भागी थाय एटले ऊर्ध्व वायु थके पाणी पण उपहरो रहे. (अहेवाएसुअहेभागीभवतिके०) तथा निचे निचे वायरे निचो होय, (तिरियंवाएसुतिरियंभागीभवति के०) तिर्छे वायरे तिर्छो थाय, जे जे परिणामे वायु वर्त्ते, तेम तेम पाणी पण परिणमे (तंजहा के०) हवे तेना नाम कहेछे. (उसा के०) उसपडे ते (हिमएके०) हिम (महिया के०) धूयरी (करए के०) करगडा (हरतणुए के०) तृणने अग्रें स्थित एवा पाणीना बिंदुआ (सुद्धोदए के०) शुद्धोदक ते स्वछ पाणी इत्यादिक पाणी जाति मांहें जीव उपजे.

ते जीव त्यां उपना थता ते नाना प्रकारना त्रस अने स्थावर प्राणियोनो स्नेह आहा रे. इत्यादिक शेषं सुगमं ॥ एटले वात योनिक अप्काय देखाड्यो. ॥ ३० ॥

॥ दीपिका—अथाप्कायं वक्तुकामस्तत्कायकारणभूतवायुकथनपूर्वमाह । (अहावर मित्यादि) अथैतदाख्यातं । इहैके सत्वाः कर्मोदयात्तत्र वायुयोनिकेऽप्काये व्युत्क्रम्यागम्य नानाविधानां त्रसानां दर्डुरादीनां प्राणिनां स्थावराणां च हरितलवणादीनां सचित्ताचित्त देहेषु तदप्कायशरीरं वायुयोनिकत्वादप्कायस्य वायुना उपादानहेतुभूतेन निष्पादितं तथा वातेन संगृहीतं अभ्रपटलांतर्निर्वृत्तं तथा वातपरिगतं वायुनाऽन्योन्यानुगतं ऊर्ध्वगते वाते उर्ध्वभाग्भवति । गगनगतवायुवशाज्जलं व्योम्नि संमूर्छते । अधोगते वाते जलमप्यधः स्यात् तिर्यग्गतेच तिर्यक् वातयोनिकत्वाज्जलस्य यत्र यत्र वायुः परिणमति तत्र तत्र तत्कार्यभूतं जलमपि संमूर्छते । जलभेदान् वक्ति । (उसत्ति) अ वश्यायः हिमं महिकाधूमरीकरकाः (हरतणुत्ति) तृणाग्रप्रासाजलबिंदवः शुद्धोदकं प्रतीतं । इहैके जीवाः शुद्धजले जातानानाविधत्रसस्थावराणां उत्पत्त्याऽऽधारभूतानां स्नेहं भक्षयंति । शेषं सुगमं ॥ ३० ॥

॥ टीका—सांप्रतमप्कायं प्रतिपादयिषुस्तत्कारणभूतवातप्रतिपादनपूर्वकं प्रतिपाद यतीत्याह । (अहावरमित्यादि) अथानंतरमेतद्वक्ष्यमाणं पुरा पूर्वमाख्यातं । इहास्मि न् जगत्येके सत्वास्तथाविधकर्मोदयानानाविधयोनिकाः संतोयावत्कर्मनिदानेन तत्र तस्मिन्वातयोनिकेऽप्काये व्युत्क्रम्यागत्य नानाविधानां बहुप्रकाराणां त्रसानां दर्डुरप्रभृ तीनां स्थावराणांच हरितलवणादीनां प्राणिनां सचित्ताचित्तभेदभिन्नेषु शरीरेषु तदप्का यशरीरं वातयोनिकत्वादप्कायस्य वायुनोपादानकारणभूतेन सम्यक् संसिद्धं निष्पा दितं । तथा वातेनैव सम्यग्गृहीतमभ्रपटलांतर्निर्वृत्तं तथा वातेनान्योन्यानुगतत्वा त्परिगतं तथोर्ध्वगतेषु वातेषूर्ध्वभागी भवत्यप्कायोगगनगतवातवशाद्दिवि संमूर्छते जलं तथाऽधस्ताजतेषु तद्वशाद्भवत्यधोभागीत्यप्कायएवं तिर्यग्गतेषु तिर्यग्भागी भवत्यप्कायः। इदमुक्तं भवति । वातयोनिकत्वादप्कायस्य यत्र यत्रासौ तथाविधपरिणामपरिणतोभव ति तत्र तत्र तत्कार्यभूतं जलमपि संमूर्छते । तस्य चाभिधानपूर्वकं भेदं दर्शयितुमा ह । तद्यथा । (उसत्ति) अवश्यायः (हिमयेत्ति) शिशिरादौवातेरिताहिमकणामिहि काः धूमिकाः करकाः प्रतीताः (हरतणुयत्ति) तृणाग्रव्यवस्थिताजलबिंदवः शुद्धोदकं प्रतीतमिति । इहास्मिन्नुदकप्रस्तावे एके सत्वास्तत्रोत्पद्यंते स्वकर्मवशगास्तत्रोत्पन्नास्ते जीवास्तेषां नानाविधानां त्रसस्थावराणां स्वोत्पत्त्याधारभूतानां स्नेहमाहारयंति ते जीवा स्तच्छरीरमाहारयंति अनाहारकान भवंतीत्यर्थः।शेषं सुगमं यावदेतदाख्यातमिति ॥३०॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतियासत्ता उदगजोणिया उदगसंजवा जाव कम्मणियाणेणं तब वुक्कमा तसथावरजोणिएसु उदएसु उदगत्ताए विउट्टंति तेजीवा तेसिं तसथावरजोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तोसिं तसथावरजोणियाणं उदगाणं सरीरा णाणावण्णा जावमरकायं ॥ ३१ ॥

अर्थ—हवे अप्काय योनिक अप्काय देखाडेछे. अथ हवे अपर स्थानक श्री तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहें कोइ एक जीव उदकयोनिक उदकने विषे संजवछे,यावत् कर्मने कारणे करी·एटले तथाविध कर्मने उदयें वातवशें उपना एवा त्रस अने स्थावर जीव, तेना शरीरने आधार जूत एवुं उदक जे पाणी ते उदकें उपना त्रस स्थावर योनिक उदक तेने विषे उदक पणे उपजे,ते जीव त्यां उपना थका ते उदकनो स्नेह आहारे. इत्यादिकं शेषं सुगमम् ॥ ३१ ॥

॥ दीपिका—वातयोनिकं जलमुक्त्वा जलसंजवं जलमाह । (अहावरमित्यादि) इहैके सत्वावातवशोत्पन्नत्रसस्थावरदेहाधारजूतमुदकं योनिरुत्पत्तिस्थानं येषां ते तथा उदकसंजवास्त्रसस्थावरयोनिकेषु उदकेषु अपरोदकतया उत्पद्यंते । तेच जलसत्वास्तेषां त्रसस्थावरयोनिकानां जलानां स्नेहं पराण्यपि पृथिव्यादिशरीराणि चाहारयंति । तच्च पृथिव्यादिशरीरं जक्ितं सत्सारूप्यमानीयात्मसात्कुर्वंति । अन्यान्यपि तत्र त्रसस्थावरशरीराणि वर्त्तंते तेषां च नीरयोनिकानां नीराणां नानाविधानि शरीराणि वर्त्तंते एतदाख्यातं ॥ ३१ ॥

॥टीका—तदेवं वातयोनिकमप्कायं प्रदर्श्याधुनाप्कायसंजवमेवाप्कायं दर्शयितुमाह । (अहावरमित्यादि) अथापरमाख्यातमिहास्मिन् जगति उदकाधिकारे वा एके सत्वास्तथाविधकर्मोदया द्वातवशोत्पन्नत्रसस्थावरशरीराधारमुदकं योनिरुत्पत्तिस्थानं येषां ते तथा तथोदकसंजवा यावत्कर्मनिदानेन तत्रोत्पित्सवस्त्रसस्थावरयोनिकेषूदकेष्वपरोदकतया विवर्त्तंते समुत्पद्यंते ते चोदकजीवास्तेषां त्रसस्थावरयोनिकानामुदकानां स्नेहमाहारयंत्यन्यान्यपि पृथिव्यादिशरीराण्याहारयंति । तच्च पृथिव्यादिशरीरमाहारितं सत् सारूप्यमानीयात्मसात्प्रकुर्वंत्यपराण्यपि तत्र त्रसस्थावरशरीराणि विवर्त्तंते तेषां चोदकयोनिकानामुदकानां नानाविधानि शरीराणि विवर्त्तंते इत्येतदाख्यातं ॥ ३१ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणियाणं जाव कम्मनियाणेणं तब वुक्कमा उदगजोणिएसु उदएसु उदगत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं

उदगजोणियाणं जीवाण उदगाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जावसंतं अवरेवियणं जीवाणं उदगजोणियाणं उदगाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ३२ ॥

अर्थ—हवे अन्य स्थानक श्री तीर्थंकरें कह्युं छे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव तथाविध कर्मना उदय थकी उदक योनिक उदकने विषे उपजे. त्यां उपना थका उदक जीवनो स्नेह आहारे, शेषं सुगमं ॥ ३२ ॥

॥ दीपिका—तदेवं त्रसस्थावरदेहसंभवं जलयोनित्वेन प्रदर्श्याऽधुना निर्विशेषणजलसंभवमेव जलं दर्शयति । (अहावरमिति) इह एके सत्वाउदकयोनिकेषु उदकेषूत्पद्यंते तेच तेषां जलसंभवानां आत्माधारभूतानां शरीरं भक्षयंति । शेषं प्राग्वत् ॥ ३२ ॥

॥ टीका—तदेवं त्रसस्थावरसंभवमुदकयोनित्वेन प्रदर्श्याऽधुना निर्विशेषणमप्कायसंभवमेवाप्कायं दर्शयितुमाह । (अहावरमित्यादि) अथापरमाख्यातमिहास्मिन् जगत्युदकाधिकारे वा एके सत्वाः स्वकृतकर्मोदयाडुदकयोनिषूदकेषूत्पद्यंते तेच तेषामुदक संभवानामुदकजीवानामात्माधारभूतानां शरीरमाहारयंति । शेषं सुगमं। यावदाख्यातमिति३२

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणियाणं जावकम्मनियाणेणं तत्र वुक्कमा उदगजोणिएसु उदएसु तसपाणत्ताए विउट्टंति तेजीवा तेसिं उदगजोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढविसरीरं जावसंतं अवरेवियणं तेसिं उदगजोणियाणं तसपाणाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ३३ ॥

अर्थ—हवे अन्य स्थानक श्री तीर्थंकर देवें कह्युं. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव कर्मे प्रेर्या थका उदक योनिक उदकने विषे पूयरादिक त्रस प्राण पणे उपजे. ते उपना छता तेनुं शरीर आहारे. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ ३३ ॥

॥ दीपिका—अथ जलाधारभूतान् त्रसानाह । इहैके सत्वाउदकयोनिकेषूदकेषु त्रसप्राणितया पूतरकादित्वेन उत्पद्यंते । तेच उत्पद्यमानाउत्पन्नाश्च तेषां जलयोनिकानां जलानां स्नेहमाहारयंति । शेषं प्राग्वत् ॥ ३३ ॥

॥ टीका—सांप्रतमुदकाधारानपरान् पूतरकादिकांस्त्रसान्दर्शयितुमाह । (अहावरमि

त्यादि) अथापरमेतदाख्यातमिहैके सत्वाउदकयोनिषु चोदकेषु त्रसप्राणितया पूतरक दित्वेन विवर्तंते समुत्पद्यंते ते चोत्पद्यमानाः समुत्पन्नाश्च तेषामुदकयोनिनामुदकानां स्ने हमाहारयंति । शेषं सुगमं यावदाख्यातमिति ॥ ३३ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणिया जाव कम्मनिया णेणं तत्र वुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्ते सुवा अचित्तेसुवा अगणिकायत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणावि हाणं तसथावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढ विसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं तसथावरजोणियाणं अगणीणं सरीरा णाणावन्ना जाव मक्खायं सेसा तिन्नि आलावगा उदगाणं ॥३४॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणियाणं जाव कम्मनि याणेणं तत्र वुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु सचि त्तेसुवा अचित्तेसुवा वाउक्कायत्ताए विउट्टंति जहा अगणीणं तहा भा णियव्वा चत्तारि गमा ॥ ३५ ॥

अर्थ—हवे अग्निकाय जीव आश्री कहेछे. अथ हवे अनेरुं स्थानक श्री तीर्थंकर देवें कह्युं. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव नाना प्रकारना योनि वाला, ते एवा प्रकारनुं कर्मोपा र्जन करीने, नानाविध त्रस अने स्थावर प्राणिना शरीरने विषे सचित्तने विषे, अचित्त ने विषे, अग्निकाय पणे उपजे. त्यां उपजता छता, ते त्रस अने स्थावर प्राणीनो स्ने ह आहारे. इत्यादिकं शेषं सुगमं ॥ अहीं अग्निकायने विषे शेष त्रण आलावा उदकना आलावानी पेरें जाणी लेवा. ॥३४॥ हवें वायुकाय जीव आश्री कहेछे. हवे अनेरुं स्था नक श्री तीर्थंकरें कह्युं. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव नानाविध योनिक कर्मने वशव र्त्ति थका नाना प्रकारना त्रस अने स्थावर जीवोनां शरीर सचित्त अने अचित्तने विषे वायुकाय पणे उपजे. इत्यादिक जेम अग्निकायना चार आलावा कह्या. तेम ए वायु कायना पण चार आलावा केहेवा. ॥ ३५ ॥

॥ दीपिका—अथ तेजःकायमाह । एके सत्वाः कर्मोदयान्नानाविधानां त्रसस्थावरा णां देहेषु सचित्तेष्वचित्तेषु, वाऽग्नित्वेन विवर्तंते प्रादुर्भवंति । तथाहि । पंचेंद्रियतिरश्चां दंतिमहिषादीनां परस्परं युद्धावसरे दंतशृंगयोगेऽग्निरुत्पद्यते । एवमचित्तेष्वपि तद स्थिघर्षणादग्निरुत्पत्तिः । विकलेंद्रियशरीरेष्वपि यथासंभवं योज्यं । स्थावरेषु वनस्पति

पाषाणादिषु सचित्ताचित्तेषु अग्निजीवाः समुत्पद्यंते । तेच तत्रोत्पन्नास्तेषां त्रसस्थावराणां स्नेहमाहारयंति । शेषं सुगमं । अन्ये त्रयोप्यालापकाउदकवद्द्रष्टव्याः ॥३४॥ अथ वायुकायमाह । इदमग्निकायवद्व्याख्येयं ॥ ३५ ॥

॥ टीका–सांप्रतं तेजःकायमुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) अथैतदपरमाख्यातं । इहास्मिन् संसारे एके केचन सत्वाः प्राणिनस्तथाविधकर्मोदयवर्त्तिनोनानाविधयोनयः प्राक् संतः पूर्वजन्मनि तथाविधं कर्मोपादाय तत्कर्मनिदानेन नानाविधानां त्रसस्थावराणां प्राणिनां सचित्तेष्वचितेषु शरीरेषु चाग्नित्वेन विवर्तते प्रादुर्भवंति । तथाहि । पंचेंद्रियतिरश्चां दंतिमहिषादीनां परस्परं युद्धावसरे विषाणसंघर्षे सति अग्निरुत्तिष्ठते एवमचित्तेष्वपि तदस्थिसंघर्षादग्नेरुत्थानं तथा द्वींद्रियादिशरीरेष्वपि यथासंभवमायोजनीयं । तथा स्थावरेष्वपि वनस्पत्युपलादिषु सचित्ताचित्तेष्वग्निजीवाः समुत्पद्यंते ते चाग्निजीवास्तत्रोत्पन्नास्तेषां नानाविधानां त्रसस्थावराणां स्नेहमाहारयंति । शेषं सुगमं यावद्भवंतीत्येवमाख्यातं ।अपरे त्रयोप्यालापकाः प्राग्वद्द्रष्टव्याइति ॥ ३४ ॥ सांप्रतं वायुकायमुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) अथापरमेतदाख्यातमित्याद्यग्निकायागमेन व्याख्येयं ॥ ३५ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणियाणं जाव कम्मनियाणेणं तत्थ वुक्कम्मा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसुवा अचित्तेसुवा पुढवित्ताए सक्करत्ताए वालुयत्ताए इमाउ गाहाउ अणुगंतव्वाउ " पुढवीय सक्करा वा, लुयाय उवले सिलाय लोणूसे ॥ अयत उय तंब सीसग, रुप्प सुवण्णेय वइरेय ॥ १ ॥ हरियाले हिंगुलए, मणोसिला सासगंजणपवाले ॥ अब्भपडलब्भवालुय, बायरकाए मणिविहाणा ॥२॥ गोमेज्जएय रूयए, अंकेफलिहिय लोहियक्खेय ॥ मरगयमसारगल्ले, भूयमोयग इंदणीलेय ॥ ३ ॥ चंदण गेरुय हंसगब्भे, पुलए सोगंधिएय बोद्धव्वे ॥ चंदप्पभ वेरुलिए, जलकंते सूरकंतेय ॥४॥ एयाउ एएसु भाणियव्वाएउ गाहाउ जाव सूरकंताएवि वुट्टंति तेजीवा तेसिं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं तसथावरजोणियाणं पुढवीणं जाव सूरकंताणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं सेसं तिन्नि आलवगा जहा उदगाणं ॥ ३६ ॥

नवं यदि वा दुखं आसातोदयलक्षणमसैद्धिकं सांसारिकं । यदिवोत्तयमप्येतत्सुखं दुःखं वा स्रक्चंदनांगनाद्युपत्नोगक्रियासिद्धौत्तवं तथा कशाताडनांकनादिसिद्धौ त्तवं सैद्धिकं । त थाऽसैद्धिकं सुखमांतरमानंदरूपमाकस्मिकमनवधारितबाह्यनिमित्तं । एवं दुःखमपि ज्वर शिरोर्तिशूलादिरूपमंगोत्थमसैद्धिकं । तदेतद्दुत्तयमपि न स्वयं पुरुषकारेण कृतं नाप्यन्येन केनचित् कालादिना कृतं वेदयंत्यनुत्तवंति पृथक्जीवाः प्राणिनइति । कथं तर्हि तत्तेषाम नूदिति नियतिवादी स्वात्तिप्रायमाविष्करोति (संगइयंति) सम्यक्स्वपरिणामेन गतिर्यस्य यदा यत्र यत्सुखदुःखानुत्तवनं सा संगतिर्नियतिस्तस्यां त्तवं सांगतिकं । यतश्चैवं न पुरु षकारादिकृतं सुखदुःखाद्यतस्तत्तेषां प्राणिनां नियतिकृतं सांगतिकमित्युच्यते । इहास्मि न् सुखदुःखानुत्तववादे एकेषां वादिनामाख्यातं तेषामयमत्त्युपगमः । तथाचोक्तं । प्राप्त व्यो नियतिबलाश्रयेण योर्थः, सोऽवश्यं त्तवति नृणां शुत्तोऽशुत्तो वा ॥ त्तूतानां महति कृतेपि हि प्रयत्ने नात्ताव्यं त्तवति न त्ताविनोस्ति नाशः ॥ १ ॥ ३ ॥

एवमेयाणि जंपंता, बाला पंमिअमाणिणो ॥ नियया नियंयं संतं,
अयाणंता अबुद्धिया ॥ ४ ॥ एवमेगे उ पासत्था, ते भुज्जो विप्पग
प्रिया ॥ एवं उवठिआ संता, ण ते दुःखविमोरकया ॥ ५ ॥

अर्थ—हवे ग्रंथकार एने उत्तर आपेठे एवमेयाणिजंपंता के० एवं पूर्वोक्त वचन नि यतवादाश्रित बोलतां एवा ते बालाके०बाल अज्ञानी उतां पोताने पंमिअमाणिणोके० पंमित करी मानतां शा माटे मानेठे ते कहेठे के; नियया नियंयंके० ते अज्ञानी नियतिकृ त सुख दुःख अथवा अनियतिकृत पुरुषकारादिकनुं करेलुं एवुं सुख दुःख ते संतं के० एकांते त्तवितव्यतायेज कखुं एम कहेठे; ते कारणे तेने सुखदुःखादि कारणना अया णंता अबुद्धियाके० अजाण, बुद्धिरहित कहिए. अने जैनतो नियतिकृतपणे तथा अ नियतिकृतपणे ए बंने प्रकारे सुख दुःख मानेठे एटले स्याद्वादी कहिए. ॥ ४ ॥ हवे ते ने एवी प्ररूपणानुं विपाक देखाडेठे एवमेगेके० एरीते कोइ एक नियतवादने विषे आ श्रित परवादीठे ते केवाठे; तोक पासत्थाके० पार्श्वस्थ एटले न्यायपक्षथकी बाहेर अथ वा पासत्था एटले पाशके० कर्मनुं बंधन तेने विषे स्थित ठुज्जो के० तेवली पुनः विप्पगप्रियाके० विविध प्रगल्भित एटले अत्यंत धिठायका मुक्तिमार्गनेविषे प्रवर्त्ते; वली एवुं कहेठे के अमे एवी क्रिया करता थका मुक्तिपामीशुं परंतु एवंके० ए प्रकारे ते उ वठियासंताके० उठित एटले पोतानी क्रियानेविषे प्रवर्ततां उतां णतेदुःखविमोरकयाके० पोताने दुःखथी मूकावनार न होय एटले मुक्ति पामेनहीं.॥५॥ एटले नियतवादी कह्या.

॥ दीपिका—अन्योत्तरमाह । (एवमिति) । एवमेतानि पूर्वोक्तानि वचनानि जल्पंतो

अर्थ—हवे पृथ्वीकाय जीव आश्री कहेछे. हवे अन्य स्थानक पूर्वें श्री तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहें कोइ एक जीव, नाना प्रकार योनिक, यावत् कर्माधीन थका त्यां उपजे. नाना प्रकारना त्रस स्थावर प्राणीनां शरीरने विषे, सचित्तने विषे, अचित्तने विषे, शर्करा एटले कांकरा पणे, वेलु एटले रेति पणे, इत्यादिक (इमाउगाहाउ के०) ए आगलनी चार गाथायें करी पृथ्वीकायना नेद कहेशे ते प्रमाणे. (अणुगंतवाउ के०) सर्व जाणी लेवा. (पुढवीय के०) पृथ्वी पणे (सक्करा के०) कांकरा पणे, (वालुयाय के०) वेलू ते रेती पणे, (उवले के०) उपल एटले पाषाणना कटका पणे, (सिलाय के०) माटी अने पाशाणनी शिलापणे, (लोणूसेके०) समुडादिकना लूण ते पणे, उसे एटले उस पणे, ते खारी धूल पणे, (अयत के०) लोह पणे, (उय के०) जसत तरुआ पणे, (तंब के०) त्रांबा पणे, (सिसगं के०) शींसा पणे, (रुप्प के०) रूपा पणे, (सुवस्रेय के०) सुवर्ण पणे, (वइरेय के०) वज्र, ते हीरा पणे, (हरियाले के०) हरिताल पणे, (हिंगुलएके०) हिंगलो पणे, (मणोसिलाके०) मणसील पणे, (सासगंजणेके०) सासग एटले रत्ननीजाति, अंजन एटले सुरमो ते पणे, (पवालेके०) परवालां, (अप्नपमलप्नवालुय के०) अन्नपडल अने अन्नवालुक एटले आकाशना जलउस तथा अकाशना जलउस सहित धूल,ए (बायरकाय के०) बादरकाय, पृथ्वीना नेद कह्या. हवे (मणिविहाणा के०) मणिना नेद कहेछे. (गोमेज्जएय के०) गोमेद्य रत्न, (रूयए के०) रजत रत्न, (अंके के०) अंक रत्न, (फलिहिय के०) स्फाटिक रत्न, (लोहियस्केय के०) लोहिताक्ष रत्न, (मरगय के०) मरकत रत्न, (मसारगह्ने के०) मसारगह्न रत्न, (नूयमोयग के०) नूजमोचक रत्न, (इंदणीलेय के०) इंडनील रत्न, (चंदण के०) चंदन रत्न, (गेरुय के०) गेरुक रत्न, (हंसगप्ने के०) हंसगर्ने रत्न, (पुलए के०) पुलाक रत्न, (सोगंधिएय के०) सुगंधिक रत्न, (बोधव्वे के०) जाणवां. (चंदप्पन्न के०) चंडप्रन्न रत्न, (वेरुलिए के०) वैडूर्य रत्न, (जलकंते के०) जलकंत रत्न, (सूरकंतेय के०) सूर्यकांति रत्न, सुवर्णकांत रत्न पण एनुं नाम छे. ए चार गाथाने विषे, पृथ्वीकायना नाम कह्यांछे. यावत् सूर्यकांत पणे एटले एटला दूर लगे पृथ्वीकायने नावें जीव उपजे. ते जीव त्यां उपजता छता ते नाना प्रकारना त्रस अने स्थावर प्राणीना स्नेह आहारे ; इत्यादिक शेष सुगमछे. ए पृथिवीकायना शेष त्रण आलावा जेम उदकना कह्या तेनी पेंठे जाणी लेवा. ॥ २६ ॥

॥ दीपिका—अथ पृथिवीकायमाह । इहैके सत्वाः कर्मवशगानानाविधत्रसस्थावराणां देहेषु सचित्तेषु अचित्तेषुवा पृथिवीत्वेनोत्पद्यंते । तद्यथा । सर्प्पशिरस्सु मणयः करिदं

तेषु मौक्तिकानि स्थावरेष्वपि वंशादिषु तान्येव। एवमचित्तेषूषरादिषु लवणत्वेन जायंते तदेवं पृथ्वीकायिकानानाविधासु पृथ्वीषु शर्करावालुकोपलशिलालवणादिभावेन तथा गोमेदकादिरत्नभावेन बादरमणिविधानतया समुत्पद्यंते ॥ (एयाउंगाहाउत्ति) एतागाथा अनुगंतव्याः। एतद्गाथानुगमेन पदानि वाच्यानि। (पुढवीयसक्करावालुयायइत्यादि) अत्र पदोच्चारोयथा पुढवित्ताए। सक्करत्ताए वालुयत्ताए इत्यादि। एवं गाथानुसारेण पदानि वाच्यानि। यावत्सूरकंतत्ताएत्ति। शेषं सुगमं। एवं चत्वारोप्यालापकाउदकागमेन ज्ञेयाः॥३६॥

॥ टीका–सांप्रतमशेषजीवाधारं पृथिवीकायमधिकृत्याह। (अहावरमित्यादि) अथापरमेतत्पूर्वमाख्यातं। इहैके सत्वाः पूर्वं नानाविधयोनिकाः स्वकृतकर्मवशानानाविध त्रसस्थावराणां शरीरेषु पृथिवीत्वेनोत्पद्यंते। तद्यथा। सर्पशिरःसु मणयः करिदंतेषु मौक्तिकानि स्थावरेष्वपि वेण्वादिषु तान्येवेति। एवमचित्तेषूपलादिषु लवणभावेनोत्पद्यंते। तदेवं पृथिवीकायिकानानाविधासु पृथिवीषु शर्करावालुकोपलसितालवणादिभावेन तथा गोमेदकादिरत्नभावेनच बादरमणिविधानतया समुत्पद्यंते। शेषं सुगमं। यावच्चत्वारोप्यालापकाउदकागमेन नेतव्याइति ॥ ३६ ॥

अहावरं पुरक्खायं सव्वेपाणा सव्वेभूता सव्वेजीवा सव्वेसत्ता णाणाविहजोणिया णाणाविहसंभवा णाणाविहवुक्कमा सरीरजोणिया सरीरसंभवा सरीरवुक्कमा सरीराहारा कम्मोवगा कम्मनियाणा कम्मगतीया कम्मठिइया कम्मणाचेव विप्परियासमुवेंति ॥ ३७ ॥

अर्थ–हवे समस्त जीव आश्री कहेछे. हवे अनेरुं स्थानक पूर्वे श्री तीर्थंकरें कह्युं. आ जगत् मांहे सर्वप्राण, सर्वभूत, सर्वजीव, सर्वसत्व, नाना प्रकार योनिक नाना प्रकारनी योनिने विषे संभव एटले उत्पत्तिछे जेनी, नाना प्रकारें आव्या छता, शरीरयोनिक शरीरने विषे उपजे. शरीरने विषे आव्या छता त्यां उपजे एटले नरकादिक चार गतिने विषे शरीर पणे उपजे. त्यां त्यां यथायोग्य शरीरनो आहार करे. कर्मने वशें उपजे कर्मने कारणे करीने कर्मे करी कर्मने अनुसारें गति पामे. कर्मे करी जघन्य मध्यम अने उत्कृष्ट स्थिति पामे. एटले जे जीव आ भवमां जेवोछे तेवोज आगले भवें न थाय. ए कारणे जीव, कर्मने वशें सुख वांछतो पण विपर्यास दुःख पामे. ॥३७॥

॥ दीपिका–अथ सर्वजीवानाश्रित्याह। अथापरमिदमाख्यातं। सर्वे जीवानानाविधयोनिकानानाविधयोनिषूत्पद्यंते यत्रच उत्पद्यंते तत्र तद्देहाऽऽहारिणः स्युः। तेनाहारेण चायुताः कर्मवशगाश्चतुर्गतिषु भ्रमंति ॥ ॥ ३७ ॥

॥ टीका–सांप्रतं सर्वोपसंहारद्वारेण सर्वजीवान् सामान्यतोबिन्नणिषुराह । (अहा वरमित्यादि) अथापरमेतदाख्यातं । तद्यथा । सर्वे प्राणाः प्राणिनोऽत्रच प्राणिनूतजीवन त्वशब्दाः पर्यायत्वेन डृष्टव्याः कथंचिद्भेदं चाश्रित्य व्याख्येयाः । तेच नानाविधयोनिकातो नाविधासु योनिषूत्पद्यंते नारकतिर्यङ्नरामराणां परस्परगमनसंनवात्तेच यत्र यत्रोत्पद्यंते ते तत्तच्छरीराण्याहारयंति तदाहारवंतश्च तत्रागुप्ताश्रवद्वारतया कर्मवशगानारकतिर्यङ्नरा मरगतिषु जघन्यमध्यमोत्कृष्टस्थितयोनवंति।अनेनेदमुक्तं नवति । योयादृगिह नवे स ता दृगेवामुत्रापि नवतीत्येतन्निरस्तं नवत्यपितु कर्मोपगाः कर्मनिदानाः कर्मायत्तगतयोनवंति तथा तेनैव कर्मणा सुखलिप्सवोपि तद्विपर्यासं डुःखमुपगच्छंतीति ॥ ३७ ॥

से एवमायाणह से एवमायाणित्ता आहारगुत्ते सहिए समिए सयाजए त्तिबेमि॥ बियसुयक्कंधस्स आहारपरिण्णा णाम तईयंमज्झयणं सम्मत्तं ॥३८॥

अर्थ–हवे गुरु, शिष्य प्रत्यें कहेछे के, (सेएव के०) ते एम (मायाणह के०) त मे जाणो जे, में आदि थकी सर्वजीव आश्री आहारनुं विशेष संसार परिज्रमण क ह्युंछे. (सेएवमायाणित्ता के०) एवुं जाणीने जे विवेकी जन होय ते, (आहारगुत्ते के०) आहारने विषे गुप्त थाय. एतावता शुद्ध निर्दोष एषणीक आहारनुं खप करे,अ ने (सहिए के०) ज्ञान दर्शन अने चारित्रें करी सहित थको (समिए के०) पांच समि तियें समितो, (सयाजए के०) सदा सर्वकाल एटले जावजीव सुधी संयमने विषे यत्न करे. त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ ए श्री सूयगडांगसूत्रना बीजा श्रुतस्कंधने विषे, आहारपरिज्ञा नाम त्रीजा अध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो. ॥ ३८ ॥

॥दीपिका–(सेएवमायाणहत्ति) तदेवं जानीत यूयं! यत्पूर्वोक्तं सर्वं।एवं ज्ञात्वा चाहारगुप्त एव समितियुतः समितः सहितोवा ज्ञानादिनिः सदा यतेत संयमे प्रयत्नवान् नवेदिति। ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥३८॥ इतिद्वितीयश्रुतस्कंधे आहारपरिज्ञाख्यं तृतीयमध्ययनं समाप्तम्॥

॥ टीका–सांप्रतमध्ययनार्थमुपसंजिघृक्षुराह । (सेएवमायाणहेत्यादि) यदेतन्मया ऽऽदितः प्रनृत्युक्तं।तद्यथा। योयत्रोत्पद्यते स तच्छरीराहारकोनवत्याहारगुप्तश्च कर्मादत्ते क र्मणाच नानाविधासु योनिषु अरहट्टघटीन्यायेन पौनःपुन्येन पर्यटतीत्येवमाजानीत यूयं! एतद्विपर्यासं डुःखमुपगच्छंतीति । एतत्परिज्ञायच सदसद्विवेक्याहारगुप्तः पंचनिः समिति निः समितोयदिवा सम्यक् ज्ञानादिके मार्गे इतोगतः समितस्तथा सह हितेन वर्तते सहितः सन्सदा सर्वकालं यावडुच्छ्वासं तावद्यतेत तत्संयमानुष्ठाने प्रयत्नवान् नवेदिति । इति परि समाप्त्यर्थे।ब्रवीमीति पूर्ववत्। गतोऽनुगमः। सांप्रतं नयास्ते च प्राग्वद्दृष्टव्याः ॥३८॥ समा प्तमाहारपरिज्ञाख्यं तृतीयमध्ययनम् ॥ ३ ॥ ॥ ॥

अथ द्वितीयश्रुतस्कंधे चतुर्थाध्ययनप्रारंभः

हवे चोथुं प्रत्याख्यान क्रियानामा अध्ययन प्रारंभियें छैयें. त्रीजा अध्ययनमां आहार आश्री कर्मबंध थाय. एम कह्यो ते कर्मबंध पच्चरकाण करवाथी टळी जायछे, ते कारण माटे चोथुं अध्ययन प्रत्याख्यान क्रिया नामें कहियें छैयें.

सुयंमे आउसंतेणं भगवया एवमरकायं इह खलु पच्चरकाणकिरियाणामज्झयणे तस्सणं अयमठे पण्णत्ते आया अपच्चरकाणीयावि भवति ॥ आया अकिरिया कुसलेयावि भवति आया मिछा संठियावि भवति आया एगंतदंमेयावि भवति आया एगंतबालेयावि भवति आया एगंतसुत्तेयावि भवति आया अवियारमणवयणकायवक्केयावि भवति आया अप्पडिहयअपच्चरकायपावकम्मेयावि भवति एस खलु भगवता अरकाए असंजते अविरते अप्पडिहयपच्चरकायपावकम्मे सकिरिए असंवुमे एगंतदंमे एगंतबाले एगंतसुत्ते सेबाले अवियारमणवयणकायवक्के सुविणमवि ण परुसति पावेयसे कम्मे कज्जइ ॥ १ ॥

अर्थ—सुधर्म स्वामी जंबूस्वामि प्रत्यें कहेछे के, (सुयंमे के०) में एम सांभळुंछे. (आउसंतेणं के०) आयुष्मन् (भगवयाएवमरकायं के०) भगवंत श्री महावीरदेव तीर्थंकर तेणें एम कह्युंछे. (इहखलुपच्चरकाणकिरियाणामज्झयणे के०) ए प्रवचनने विषे खलु ए वाक्यालंकारे प्रत्याख्यानक्रिया नामें अध्ययन, (तस्सणंअयमठेपण्णत्ते के०) तेनो ए अर्थ जे आगळ कहेशे, ते कहेछे, (आयाअपच्चरकाणियाविभवति के०) ए आत्मा जीव मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, अने योग सहित स्वभावें रह्यो थको, अप्रत्याख्यानी होय. अपि शब्द थकी तेहीज आत्मा, कोइ एक रूडां कारण थकी पच्चरकाणी पण होय. (आयाअकिरियाकुसलेयाविभवति के०) ए आत्मा रूडा अनुष्ठानें रहित पण होय.अपि शब्द थकी रूडा अनुष्ठानें सहित पण होय,तथा (आयामिछासंठियाविभवति के०) ए आत्मा मिथ्यात्वें संस्थित पण होय, अने अपि शब्द थकी मिथ्यात्व थकी रहित पण होय, (आयाएगंतदंमेयाविभवति के०) ए आत्मा एकांते प्राणीउने दंमनो करनार पण होय, तथा (आयाएगंतबालेयाविभवति के०) ए आत्मा एकांत बाळ पण होय, (आयाएगंतसुत्तेयाविभवति के०) तथा

ए आत्मा एकांत सुतो एटले शयन करनार पण होय, (आयाएगंतअवियारमणवयण कायवक्केयाविनवति के०) तथा ए आत्मा एकांत अविचार्युं कोइ कार्य करे, एवा मन वचन अने कायायें करी सहित पण होय, (आयाअपडिहयअपच्चरकायपावकम्मेया विनवति के०) तथा ए आत्मा, अप्रतिहत एटले विरतें करी नथी हण्यां तथा नथी पच्चरव्या पाप कर्म जेणे एवो पण होय, (एसखलुनगवताअरकाए के०) एवो जीव श्री नगवंते कह्योछे वली केवो कह्यो तो के? (असंजते के०) असंयत (अविरते के०) अविरति (अपडिहयपच्चायपावकम्मे के०) अप्रतिहत एटलें नथी हण्यां पच्चरकाणें करीने पाप कर्म जेणे, (सकिरिए के०) क्रिया सहित, (असंवुम्मे के०) संवर रहित (एगंतदंम्मे के०) एकांतें दंम, (एगंतबाले के०) एकांते बाल, (एगंत सुत्ते के०) एकांतें सुतो एटले शयन करनार, एवो कह्यो. (सेबालेअवियारमणवयणकायवक्केके०) ते बाल, अविचारवान् एवो मन वचन अने कायायें करी रहित बतो, जे पाप कर्मने (सुविणमविणपस्संति के०) स्वप्नांतरें पण देखे नही. (पावेयसेकम्मेकज्जइ के०) तो पण तेने तेवां पापकर्मनो बंध थायछे. ॥ १ ॥

॥ दीपिका–अथ प्रत्याख्यानक्रियाख्यं चतुर्थमध्ययनमारन्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (सुयंमेइत्यादि) श्रुतं मयाऽऽयुष्मता नगवतेदमाख्यातं । इहांगे प्रत्याख्यानक्रियानामाध्ययनं तस्यायमर्थः । आत्मा स्वनावतएवाऽप्रत्याख्यानी नवति । अपिशब्दात्सकदाचित्प्रख्यान्यपि नवति । आत्मा क्रियाकुशलः सदाचारः स्यादक्रियाकुशलोपि । आत्मा मिथ्यात्वसंस्थितः आत्मा एकांतदंडोहिंसकः स्यात् आत्मा बालः सुप्तोनावसुप्तश्च । अविचाराणि अशोननानि मनोवचःकायवाक्यानि यस्य स तथा । वाग्ग्रहणेनैव वाक्यस्य गतार्थत्वात्पुनर्वाक्यग्रहणं वाग्व्यापारस्य प्राचुर्यज्ञापनार्थं । तथाऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा अप्रतिहतं अनिवारितं प्रत्याख्यातेन विरत्या पापकर्म येन स तथा एवमेषआत्मा असंयतोऽविरतोऽ प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा सक्रियोऽसंवृतः एकांतदंडः एकांतबालः एकांतसुप्तः स बालोऽविचारमनोवचःकायवाक्यः स एवंनूतः पटुविज्ञानरचितः स्वप्नमपि न पश्यति तेनाप्येवंनूतेनाव्यक्तज्ञानेनापि पापं कर्म बध्यते ॥ १ ॥

॥ टीका–तृतीयाध्ययनानंतरं चतुर्थमारन्यते। अस्य चायमनिसंबंधः । इहानंतराध्ययने आहारगुप्तस्य कर्मबंधोऽ निहितोऽत्र तत्प्रत्याख्यानं प्रतिपाद्यते । यदि वोत्तरगुणसंपादनार्थं शुद्धेतराहारपरिज्ञोक्ता। सा चोत्तरगुणरूपा प्रत्याख्यानक्रियासमन्वितस्य नवतीत्यतआहारपरिज्ञानंतरं प्रत्याख्यानक्रियाध्ययनमारन्यते इत्यनेन संबंधेनायातस्याऽध्यय

नस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोग द्वाराणि नवंति । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयम् । तद्यथे ह कर्मोपादानभूतस्याशुभस्य प्रख्यानं प्रतिपाद्यतइति । सांप्रतं निक्षेपस्तत्राप्योघनिष्पन्नेऽध्ययनं नामनिष्पन्ने प्रत्याख्यानक्रियेति द्विपदं नाम । तत्र प्रत्याख्यानपद निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह ।'' णामं ठवणादविए, अइछ पडिसेह एय भावेय ॥ एसोपच्चक्खाण,स्स छव्विहो होइनिक्खेवो „ ॥ १ ॥ (णामंठवणेत्यादि) नामस्थापना द्रव्यादित्साप्रतिषेधभावरूपः । प्रत्याख्यानस्यायं षोढा निक्षेपः । तत्रापि नामस्थापने सुगमे । द्रव्यप्रत्याख्यानं द्रव्यस्य द्रव्येण द्रव्याद्द्रव्ये द्रव्यभूतस्य वा प्रत्याख्यानं । तत्र सचित्ताचित्तभेदमिश्रस्य प्रत्याख्यानं द्रव्यनिमित्तं वा प्रत्याख्यानं यथा धम्मिल्लस्य । एवमपराण्यपि कारकाणि स्वधिया योजनीयानि । तत्र दातुमिछा दित्सा न दित्सा अदित्सा तया प्रत्याख्यानमदित्साप्रत्याख्यानं । सत्यपि देये सतिच संप्रदानकारके केवलं दातुर्दातुमिछा नास्तीत्यतोऽदित्साप्रत्याख्यानं तथा प्रतिषेधप्रत्याख्यानमिदं । तद्यथा । विवक्षितद्रव्याभावाद्विशिष्टसंप्रदानकारकाभावाद्वा सत्यामपि दित्सायां यः प्रतिषेधस्तत्प्रत्याख्यानं । भावप्रत्याख्यानं तु द्विधाऽतः करणशुद्धस्य साधोः श्रावकस्य वा मूलगुणप्रत्याख्यानमुत्तरगुणप्रत्याख्यानं चेति । च शब्दाद्विविधमपि नोआगमतोभावप्रत्याख्यानं द्रष्टव्यं नान्यदिति । सांप्रतं क्रियापदं निक्षेप्तव्यं । तच्च क्रियास्थानाध्ययने निक्षिप्तमिति । न पुनर्निक्षिप्यते । इह पुनर्भावप्रत्याख्याने नाधिकारइति दर्शयितुमाह । " मूलगुणे सुयपगयं, पच्चक्खाणे इहं अधीगारो ॥ होक्ता हुतप्पच्चइया, अप्पच्चक्खाणकिरियाउ „ ॥ २ ॥ (मूलगुणेसुयइत्यादि) मूलगुणाः प्राणातिपातविरमणास्तेषु प्रकृतमधिकारः प्राणातिपातादेः प्रत्याख्यानं कर्तव्यमिति यावत् । इह प्रत्याख्यानक्रियाध्ययने नार्थाधिकारोयदि मूलगुणप्रत्याख्यानं न क्रियते तत्रोपायं दर्शयितुमाह । प्रत्याख्यानाभावेऽनियतत्वाद्यत्किंचनकारितया तत्प्रत्ययिका तन्निमित्ताभावाद्रुत्पद्यते प्रत्याख्यानक्रिया सावद्यानुष्ठानक्रिया तत्प्रत्ययिकश्च कर्मबंधस्तन्निमित्तश्च संसारइत्यतः प्रत्याख्यानक्रिया मुमुक्षुणा विधेयेति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपोऽधुना सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं (सुयंमेआउसंतेणमित्यादि) अस्य चानंतरपरंपरसूत्रैः सह संबंधोवक्तव्यः । सचायमिहानंतराध्ययनपरिसमाप्ताविदं सूत्रमाहारगुप्तः समितः सहितः सदा यतेतेत्येतन्मया श्रुतमायुष्मता भगवतेदमाख्यातमेवमनया दिशा परंपरसूत्रैरपि संबंधोऽभ्यूह्यः । इहास्मिन् प्रवचने सूत्रकृतांगेवा । खल्विति वाक्यालंकारे । प्रत्याख्यानक्रियानामाध्ययनं तस्यायमर्थोवक्ष्यमाणलक्षणः । अततीत्यात्मा जीवः प्राणी सचानादिमिथ्यात्वाविरतिप्रमादयोगानुगततया स्वभावतएव प्रत्याख्यान्यपि भवत्यपिशब्दात्सएव कुतश्चिन्निमित्तात्प्रत्याख्यान्यपि । तत्रात्मग्रहणमपरदर्शनव्युदासार्थं । तथाहि । सांख्यानामप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावआत्मा । सच तृणकु

ह्जीकरणेप्यसमर्थतया किंचित्करत्वान्न प्रत्याख्यानक्रियायां जवितुमर्हति। बौद्धानामप्या त्मनोजावात् ज्ञानस्य च क्षणिकतया स्थितेरजावात् कुतः प्रत्याख्यानक्रियेति एवमन्य त्रापि प्रत्याख्यानक्रियायाश्चजावोवाच्यः । तथा सदनुष्ठानं क्रिया तस्यां कुशलः क्रि याकुशलस्तत्प्रतिषेधादक्रियाकुशलोप्यात्मा जवति । तथात्मा मिथ्यात्वोदयसंस्थितो जवति तथैकांतेन नापरान् प्राणिनोदंमयतीति दंमस्तदेवंजूतश्चात्मा जवति तथाऽसा रतापादनाद्रागद्वेषाकुलितत्वाद्बालवद्बालश्चात्मा जवति तथा सुप्तवत्सुप्तः । यथाहि ड्व्यसुप्तः शब्दादीन् विषयान् न जानाति हिताहितप्राप्तिपरिहारविकलश्च तथा जाव सुप्तोप्यात्मैवंजूतएव जवतीत्येवमविचारणीयान्यशोजनतया निरूपणीयान्यपर्यालोच नीयानि मनोवाक्कायवाक्यानि यस्य स तथा । तत्र मनोंतःकरणं वाग्वाणी कायोदेहो ऽर्थप्रतिपादकं पदसमूहात्मकं वाक्यमेकं तिङंतं सुबंतंवा । तत्र वाग्ग्रहणेनैव वाक्यार्थ स्य गतार्थत्वाद्यत्पुनर्वाक्यग्रहणं करोति तदेवं ज्ञापयतीह वाग्व्यापारस्य प्रचुरतया प्रा धान्यं प्रायशस्तत्प्रवृत्त्यैव प्रतिषेधविधानेन तयोरन्येषां प्रवर्त्तनं जवति । तदेवम प्रत्याख्यानक्रियः सन् आत्माऽविचारितमनोवाक्कायवाक्यश्चापि जवतीति । तथा प्रतिहतं प्रतिस्खलितं प्रत्याख्यातं विरतिप्रतिपत्त्या पापकर्माऽसदनुष्ठानं येन सः प्रतिहतप्रत्याख्या तपापकर्मा तत्प्रतिषेधादसनुष्ठानपरश्चात्मा जवति । तदेवमेषपूर्वोक्ताऽसंयतोऽविरतो ऽप्रतिहतप्रख्यातपापकर्मा सक्रियः सावद्यानुष्ठानस्तथाजूतश्चासंवृतोमनोवाक्कायैरगुप्तो गुप्तत्वाच्चात्मनः परेषां च दंडहेतुत्वादंडस्तदेवंजूतश्च सन् एकांतेन बालवद्बालः सुप्तवदेकां तेन सुप्तस्तदेवंजूतश्च बालसुप्ततयाऽविचाराण्यविचारितरमणीयानि परमार्थविचारगुणया युक्त्या वा विघटमानानि मनोक्कायवाक्यानि यस्य स तथा। यदिवा परसंबंध्यविचारितम नोवाक्कायवाक्यः सत्क्रियासु प्रवर्त्तते तदेवंजूतोनिर्विवेकतया पटुविज्ञानरहितः स्वप्नम पि न पश्यति तस्य चाव्यक्तविज्ञानस्य स्वप्नमप्यपश्यतः पापं कर्म बध्यते तेनैवंजूतेनाव्य क्तविज्ञानेनापि पापं कर्म क्रियतइति जावः ॥ १ ॥

तत्र चोयए पन्नवगं एवं वयासि असंतएणं मणेणं पावयणं असंतिया ए वतीयाए पावियाए असंतएणं काएणं पावएणं अहणंतस्स अमण क्कस्स अ वियारमणवयकायवक्कस्स सुविणमवि अपस्सन पावक म्मे णो कज्जइ कस्सणं तंहेउं चोयए एवं ववीति अन्नयरेणं मणेणं पाव एणं मणवत्तिए पावे कम्मे कज्जइ अन्नयरीए वत्तिए पावियाए वत्तिवत्तिए पावे कम्म कज्जइ अन्नयरेणं काएणं पावएणं कायवत्तिए पावे कम्मे कज्ज

इ हणंतस्स समणक्कस्स सवियारमणवयकायवक्कस्स सुविणमवि पासउ एवं गुणजातीयस्स पावे कम्मे कज्जइ पुणरवि चोयए एवं बवीति तच्चणं जेते एवमाहंसु असंतएणं मणेणं पावएणं असंतीयाए वत्तिए पावियाए असंतएणं काएणं पावएणं अहणंतस्स अमणक्कस्स अवियारमणवयणकायवक्कस्स सुविणमवि अपस्सउ पावे कम्मे कज्जइ तच्चणं जेते एवमाहंसु मिच्छा ते एवमाहंसु ॥ २ ॥

अर्थ—ए प्रकारें कहे थके, (तच्चचोयएपन्नवगंएवंवयासि के०) त्यां शिष्य प्रज्ञापक एटले गुरु प्रत्यें एवुं बोल्यो के, हे भगवन्! (असंतएणं के०) अछते अप्रवर्ते (मणेणं के०) मने (पावयणं के०) पापकर्मने विषे, तथा (असंतियाएवत्तिएपावियाए के०) अछते अप्रवर्त्ते वचनें पापकर्मनें विषे, (असंतएणंकाएणंपावएणं के०) अछते अप्रवर्ते कायायें पापकर्मने विषे, (अहणंतस्स के०) अणहणताने विषे, (अमणक्कस्स के०) पापकर्म उपर मनना परिणाम रहित, (अवियारमणवयकायवक्कस्स के०) अविचारवंत मन वचन काया एवा रहे, एटले पापकर्मना विचार विनाना रहे, (सुविणमविअप्पसउपावकम्मेणोकज्जइ के०) स्वप्नांतरें पण पापकर्मने अण देखता, एटले जे पापकर्म स्वप्नांतरें पण देखे नहीं, तो तेने पापकर्म सर्वथाऽपि लागे नहीं, (कस्सणंतंहेउं के०) तो शा कारणे ते पाप कर्म तेने लागे,? अंहीं अव्यक्तपणा थकी पापकर्म लागे, तेने कांइ बंधनुं कारण जाणवुं नहीं. (चोयएएवंबवीति के०) तेहिज वली नोदक शिष्य, पोताना अभिप्रायें करी पापकर्मना बंधनुं कारण आवी रीतें कहेछे. (अन्नयरेणंमणेणंपावएणं के०) अन्य कोइ एक प्राणातिपातादिक पापकर्मने विषे मनें करी प्रवर्त्ते, (मणवत्तिएपावेकम्मेकज्जइ के०) ते मन निमित्तें पापकर्म करे बांधे, (अन्नयरीएवत्तिएपावियाए के०) अन्य कोइ एक प्राणातिपातादिक पापकर्मने विषे वचनें करी प्रवर्त्ते, (वत्तिवत्तिएपावेकम्मेकज्जइ के०) ते वचन निमित्तें पापकर्मने करे बांधे, (अन्नयरेणंकाएणंपावएणं के०) अन्य कोइ एक प्राणातिपातादिक पापने विषे कायाने प्रवर्त्तावे. (कायवत्तिएपावेकम्मेकज्जइ के०) ते कायनिमित्तें पाप कर्म करे, बांधे. (हणंतस्ससमणक्कस्ससवियारमणवयकायवक्कस्स के०) हणताने विषे पापकर्म उपर मन परिणाम सहितने विषे सविचार मनें करी, वचनें करी, अने कायायें करी सहित, (सुविणमविपासउ के०) स्वप्नांतरने विषे पण पापकर्म देखे छे (एवंगुणजातीयस्सपावेकम्मेकज्जइ के०) एम गुण

जातिने यथायोग्यें पापकर्म लागे, बंधाय. (पुणरविचोयएएवंबवीति के०) वली पण नोदक शिष्य, आचार्य प्रत्यें एम कहेठे. (तबणंजेतेएवमाहंसु के०) त्यां जे, ते एम कहेठे के, (असंतएणंमणेणंपावएणं के०) पापकर्मने विषे अठते मनें, (अ संतीयाएवत्तिएपावियाए के०) पापकर्मनें विषे अठते वचनें, (असंतएणंकाएणंपाव एणं के०) पापकर्मने विषे अठते कायायें करी, एटलें पापकर्मने विषे मन, वचन, अने कायाने अणप्रवर्त्तावतो. तथा (अहणंतस्सअमणस्कस्सअवियारमणवयणकायवक्क स्सके०) अण हणतानें पाप उपर मन परिणाम रहित अणविचास्या मन वचन अने कायानें विषे, तेणें करी सहित. (सुविणमविअपस्सउपावेकम्मेकज्जइ के०) स्वप्नांत रें पण पापकर्म करवाने विषे, बांधवाने विषे, अणदेखतो एवो जे होय ते पण पापक र्म बांधे, (तबणंजेते के०) त्यां जे ते (एवमाहंसु के०) एम कहेठे. (मिछातेएव माहंसु के०) ते मिथ्या एटले जुठुं कहेठे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—एवं स्थिते शिष्यः प्रज्ञापकमाचार्यमेवमवादीत् अथवा आचार्याभिप्रायं शिष्योऽनूद्य निषेधति । (असंतएणमित्यादि) असता अविद्यमानेन मनसाऽप्रवृत्तेनाऽ शोभनेन तथा वाचा कायेनच पापेनाऽसता तथा सत्वान् घ्नतः अमनस्कस्याविचारमनो वाक्कायवाक्यस्य स्वप्नमप्यपश्यतः स्वप्नांतिकं च कर्म नोपचयं यातीत्येवं अव्यक्तविज्ञा नस्यापि पापं कर्म न बध्यते । कस्य हेतोः केन कारणेन तत्पापं कर्म बध्यते? । नात्र कश्चिदव्यक्तविज्ञानत्वात्पापं कर्म बंधहेतुरित्यर्थः । तदेवं शिष्यएव स्वाभिप्रायेण पापक र्मबंधहेतुमाह । (अन्नयरेणंति) कर्माश्रवद्वारभूतेन मनोवाक्कायानामन्यतरेण क्लिष्टेन तत्प्रत्ययिकं कर्म बध्यते तथा घ्नतः सत्वान् समनस्कस्य सविचारमनोवाक्कायवाक्यस्य स्वप्नमपि पश्यतः स्पष्टविज्ञानस्य एवं गुणजातीयस्य पापं कर्म बध्यते न पुनरेकेंद्रियवि कलेंद्रियादेः पापकर्मसंभवइति । तेषां घातकस्य मनोवाक्कायव्यापारस्याभावात् । तस्मा न्नैव स्वप्नांतिकमविज्ञोपचितं कर्म विद्यतइति । एवं सति ये ते एवमुक्तवंतस्तद्यथा । विद्य मानैरेवाशुभैर्योगैः पापं कर्म क्रियते मिथ्या ते एवमुक्तवंतइति ॥ २ ॥

॥ टीका—तत्र चैवं व्यवस्थिते चोदकः प्रज्ञापकमेवमवादीत् । अत्र चाचार्याभिप्रायं चोदकोऽनूद्य निषेधयति । (असंतएणमित्यादि) अविद्यमानेनाऽसताऽमनसाऽसत्प्रवृत्तेनाऽ शोभनेन तथा वाचा कायेनच पापेनाऽसता तथा सत्वान् घ्नतस्तथा मनस्कस्याविचारमनो वाक्कायवाक्यस्य स्वप्नमप्यपश्यतः स्वप्नांतिकंचकर्म नोपचयं यातीत्येवमव्यक्तविज्ञानस्यापि पापं कर्म न बध्यते एवंभूतविज्ञानेन पापं न क्रियतइति यावत् । कस्य हेतोः केन हेतुना केन

कारणेन तत्पापं कर्म बध्यते।?नात्र कश्चिदव्यक्तविज्ञानत्वात्पापं कर्म बंधहेतुरिति नावः। तदेवं चोदकएव स्वाभिप्रायेण पापकर्मबंधहेतुमाह।(अन्नयरेणमित्यादि) कर्माश्रव द्वारभूतैर्मनोवाक्कायकर्मभिः कर्म बध्यत इति दर्शयति। अन्यतरेण क्लिष्टेन प्राणातिपातादिप्रवृत्त्या मनसा वाचा कायेनच तत्प्रत्ययिकं कर्म बध्यतइति।इदमेव स्पष्टतरमाह। अतस्समनस्कस्य समनोवाक्कायवाक्यस्य स्वप्नमपि पश्यतः अस्पष्टविज्ञानस्यैतद्गुणजातीयस्य पापं कर्म बध्यते न पुनरेकेंद्रियविकलेंद्रियादेः पापकर्मसंनवइति तेषां घातकस्य मनोवाक्काय व्यापारस्याभावात्। अथैतद्व्यापारमंतरेणापि कर्मबंधइष्यते एवंच सति मुक्तानामपिकर्म बंधः स्यात्। न चैतदिष्यते। तस्मान्नैव स्वप्नांतिकमविज्ञोपचितं कर्म बध्यतइति। तत्र य द्येवंभूतैरेव मनोवाक्कायव्यापारैः कर्मबंधोऽभ्युपगम्यते तदेवं व्यवस्थिते सति ये ते एवमुक्तवंतस्तद्यथा विद्यमानैरेवा शुभैर्योगैः पापं कर्म क्रियते मिथ्या तएवमुक्तवंतइति स्थितं॥२॥

तञ पन्नवए चोयगं एवं वयासी तं सम्मं जं मए पुव्वेवुत्तं असंतएणं मणेणं पावएणं असंतियाए वत्तिए पावियाए असंतएणं काएणं पावएणं अहणं तस्स अमणस्कस्स अवियारमणवयकायवक्कस्स सुविणमवि अपस्सञ पावे कम्मे कज्जति तं सम्मं कस्सणं तं हेउं आचार्या आह तञ खलु भगवया ठजीवणिकायहेऊपसत्ता तं जहा पुढविकाइया जाव तसकाइया इच्चे एहिं ठहिं जीवणिकाएहिं आया अपडिहयपच्चरकायपावकम्मे निच्चं पसढविठवातचित्तदंमे तं जहा पाणातिवाए जाव परिग्गहे कोहे जाव मिञ्चादंसणसल्ले ॥ ३ ॥

अर्थ—एवुं शिष्यें अचार्यना पक्षने दूषण आप्युं, (तञ के०) तेवारें (पन्नवएचोयगं के०) आचार्य पोताना शिष्यप्रत्यें (एवंवयासी के०) एवुं बोल्या के,अहो शिष्य! (तंसम्मं जंमएपुव्वेवुत्तंके०) जे में पूर्वें वचन कह्युंके जे मन,वचन, अने कायानी प्रवर्त्ति विना पण पाप कर्म लागे ते सत्यछे. इत्यादि पाठनो अर्थ सुलन्न छे माटें नथी लख्यो. (तं सम्मं के०) ते सत्य जांणजे,युक्तिसहित जांणजे. एवुं आचार्यनुं वचन सांभली, फरी शिष्य बोल्यो के, (कस्सणंतंहेउं के०) शे कारणे तमारुं वचन सत्य छे ते कहो.? हवे (आचार्याआह के०) आचार्य कहेछे. (तञखलुभगवया के०) त्यां खलु ए वाक्यालंकारे भगवान् श्रीवर्द्धमान स्वामी तेणें (छजीवणिकायंहेऊपसत्ता के०) छ जीव निकाय कर्मबंधनां कारण कह्यांछे, (तंजहा के०) ते कहेछे. (पुढविकाईया के०) पृथिवीकाय थकी मांमीने (जावतसकाइया के०) यावत् त्रसकाय पर्यंत, (इच्चेएहिंछहिंजीवणिकाएहिं के०)

नियतिवादिनोबाला मूर्खाः पंडितमानिनः स्वयमपंमिताअप्यात्मानं पंडितं मन्यमा नाः। किंनूताः नियताऽनियतमजानंतः किंचिन्नियतिकृतमवश्यंनावि नियतमात्मपुरुषकारेश्वरादिकृतं किंचिदनियतमेवं द्विविधं वस्तु अजानंतोनियतिकृतमेवैकांतेनाश्रयंतोऽतएवाबुद्धिकाबुद्धिरहितानवंति । पुरुषकारादयोपि वस्तूत्पादकाः । यतः । न दैवमिति संचिंत्य, त्यजेडुद्यममात्मनः । अनुद्यमेन कस्तैलं तिलेन्यः प्राप्तुमर्हति ॥ १ ॥ इत्याद्यजानंतोऽतएव निर्बुद्धिकाः ॥ ४ ॥ एतद्वादिनामपायमाह । (एवमिति) । एवमेके नियतिवादिनं पार्श्वस्थाः युक्तिसमूहाद्बहिस्तिष्ठंतीति पार्श्वस्थाः परलोकक्रियापार्श्वस्थावा । अथवा पाशः कर्मबंधनं तत्र स्थिताः । (तेन्नुज्ञोत्ति) । ते नूयो विविधं प्रगल्जिता धार्ष्ट्योपेतानियतिवादमंगीकृत्यापि एवं पुनरपि स्वकार्यपरलोकक्रियासु प्रवर्तमानाअतएव धार्ष्ट्योपेतानते डुःखविमोचकाआत्मानं डुःखान्न मोचयंति ॥ ५ ॥ नियतिवादिनोगताः॥

॥टीका–एवं श्लोकद्वयेन नियतिवादिमतमुपन्यस्यास्योत्तरदानायाह । (एवमेयाणि इत्यादि) एवमित्यनंतरोक्तस्योपप्रदर्शने । एतानि पूर्वोक्तानि नियतिवादाश्रितानि वचनानि जल्पंतोऽनिदधतो बालाअज्ञाः सदसद्विवेकविकलाअपि संतः पंडितमानिनआत्मानं पंमितं मंतुं शीलं येषां ते तथा । किमिति तएवमुच्यंतइति तदाह । यतो (निययानिययंसंतमिति) । सुखादिकं किंचिन्नियतिकृतमवश्यं नाव्युदयप्रापितं तथाऽनियतमात्मपुरुषकारेश्वरादिप्रापितं सतु नियतिकृतमेवैकांतेनाश्रयंत्यतोऽजानानाः सुखडुःखादिकारणमबुद्धिकाबुद्धिरहितानवंतीति । तथाह्यार्हतानां किंचित्सुखडुःखानि नियतितएव नवंति । तत्कारणस्य कर्मणः कस्मिंश्चिदवसरेऽवश्यंनाव्युदयसद्भावान्नियतिकृतमित्युच्यते । तथा किंचिदनियतिकृतं च पुरुषकालेश्वरस्वनावकर्मादिकृतं तत्र कथंचित्सुखडुःखादेः पुरुषकारसाध्यत्वमप्याश्रीयते । यतः क्रियातः फलं नवति क्रिया च पुरुषकाराऽयत्ता प्रवर्तते । तथाचोक्तं । न दैवमिति संचिंत्य, त्यजेडुद्यममात्मनः । अनुद्यमेन कस्तैलं तिलेन्यः प्राप्तुमर्हति ॥१॥ यत्तु समाने पुरुषव्यापारे फलवैचित्र्यं दूषणत्वेनोपन्यस्तं तददूषणमेव । यतस्तत्रापि पुरुषकारवैचित्र्यमपि फलवैचित्र्ये कारणं नवति । समाने वा पुरुषकारे यः फलानावः कस्यचिन्नवति सोऽदृष्टकृतः । तदपि चास्मानिः कारणत्वेनाश्रितमेव । तथा कालोपि कर्ता । यतो बकुलचंपकाशोकपुन्नागसहकारादीनां विशिष्टएव काले पुष्पफलाद्युन्नवोन सर्वदेति । यच्चोक्तं । कालस्यैकरूपत्वाज्जगद्वैचित्र्यं न घटतइति तदस्मान् प्रति न दूषणं । यतोऽस्मान्निर्न कालएवैकः कर्तृत्वेनान्युपगम्यतेऽपितु कर्मापि ततो जगद्वैचित्र्यमित्यदोषः । तथेश्वरोपि कर्ता । आत्मैवहि तत्र तत्रोत्पत्तिद्वारेण सकलजगद्व्यापनादीश्वरः । तस्य सुखडुःखोत्पत्तिकर्तृत्वं सर्ववादिनामविगानेन सिद्धमेव । यच्चात्र मूर्तामू

ए ब जीव निकायने विषे, (आयाअपडिहयपच्चरकायपावकम्मे के०) आत्मा सर्व काल अप्रतिहत एटले हण्यां नथी पच्चरकाणें करी पापकर्म जेणे एवो, तथा (निच्चंपसढविउ वातचित्तदंमे के०) नित्य शठ एटले जड जेवो, एनो परमार्थ जाणे नहीं, प्राणघातने विषे चित्त बे जेनुं ते कारणे प्राणीउने दंमनो करनार जाणवो. (तंजहा के०) ते क हेबे (पाणातिवाए के०) प्राणातिपात आदें देइने, (जावपरिग्गहे के०) मृषावाद, अ दत्तादान, मैथुन, यावत् परिग्रह, अने (कोहे के०) क्रोध थी मांमीने, (जावमिच्छादं सणसल्ले के०) यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य ए अढार पापस्थानकने विषे अनिवृत्ति बे एटले अढार पापस्थानक थकी निवृत्या नथी, ते कारण माटें एकेंडियादिक जीवोने पण अपच्चरकाणी क्रियानो बंध लागे बे. ॥ ३ ॥

॥ दीपिका–एवमाचार्यपक्षं दूषयित्वा नोदकेन स्वपक्षे स्थापिते आचार्य आह । तब पन्नवएति) आचार्यः स्वमतमनूद्य युक्त्या साधयति (तंसम्मंति) तत्सम्यक् यन्मयोक्तं अव्यक्तयोगानामपि कर्म बध्यतइति तद्युक्तं । एवमुक्ते शिष्यआह । कस्य हेतोः केन का रणेन तत्सम्यक् गिति चेदाह । (तबखलु इत्यादि) तत्र नगवता षड्जीवनिकायाः कर्मबंध हेतुत्वेन स्थापिताः । तद्यथा । पृथिवीकायिकाइत्यादि । इत्येतैः षड्जीवनिकायैरात्मा प्रतिहतं विघ्नितं प्रत्याख्यातं नियमितं पापं कर्म येन स तथा जीवेषु विरतः एवंनूतोन स अप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा नित्यं प्रकर्षेण शठः प्रशठः व्यतिपाते हिंसायां चित्तं यस्य स व्यतिपातचित्तः स्वपरदंमहेतुत्वादंमः प्रशठश्चासौ व्यतिपातचित्तदंमश्चेति । तद्यथा प्राणातिपाते विधेये प्रशठव्यतिपातचित्तदंमः । एवं मृषावादादिष्वपि वाच्यं यावन्मि थ्यादर्शनशल्यं । तदेवमेकेंडियविकलेंडियाअपि हिंसादिदोषवत्तया मिथ्यात्वाविरतिप्रमा दकषाययोगाश्रितत्वेन अस्वप्नाद्यवस्थायामपि कर्मबंधइति तन्निरस्तं ज्ञेयम् ॥ ३ ॥

॥ टीका–तदेवं चोदकेनाचार्यपक्षं दूषयित्वा स्वपक्षव्यवस्थापिते सत्याचार्य आह (तबपन्नव इत्यादि) तत्राचार्यः स्वमतमनूद्य तस्योपपत्तिकं साधयितुमाह । (तंसम्म मित्यादि) यदेतन्मयोक्तं प्राग् यथा स्पष्टाव्यक्तयोगानामपि कर्म बध्यते तत्सम्यक् शोननं युक्तिसंगतमित्येवमुक्ते परआह । कस्य हेतोः केन कारणेन तत्सम्यगिति चेदाह (तबखलु इत्यादि) तत्रेति वाक्योपन्यासार्थे । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । नगवता वीरवर्द्धमानस्वा मिना षड्जीवनिकायाः कर्मबंधहेतुत्वेनोपन्यस्ताः । तद्यथा पृथिवीकायिकाइत्यादि या वत्त्रसकायिकाइति । कथमेते षड्जीवनिकायाः कर्मबंधस्य कारणमित्याह (इच्चेएहिं मित्यादि) इत्येतेषु पृथिव्यादिषु षड्जीवनिकायेषु प्रतिहतं विघ्नितं प्रत्याख्यातं नियमितं

पापं कर्म येन सतथा पुनर्नञ्समासेनाऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा यश्चात्मा जंतुस्तथा तद्भवत्वादेव नित्यं सर्वकालं प्रकर्षेण शठस्तथा व्यतिपाते प्राणव्यपरोपणे चित्तं यस्य स व्यतिपातचित्तः स्वपरदंडहेतुत्वाद्दंडः प्रशठश्चासौ व्यतिपातचित्तदंडश्चेति कर्मधारयः । इत्येतदेव प्रत्येकं दर्शयितुमाह (तंजहेत्यादि) तद्यथा प्राणातिपाते विधेये प्रशठचित्तदंडएवं मृषावाददत्तादानमैथुनपरिग्रहेष्वपि वाच्यं यावन्मिथ्यादर्शनशल्यमिति । तेषामिहैकेंद्रियविकलेंद्रियादीनामनिवृत्तत्वान्मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगानुगतत्वं द्रष्टव्यं । तद्भावाच्च ते कथं प्राणातिपातादिदोषवत्तया व्यक्तविज्ञानाअपि स्वप्नाद्यवस्थायामिति ते कर्मबंधकाएव । तदेवं व्यवस्थिते यत्प्रागुक्तं परेण यथा नाव्यक्तविज्ञानानामघ्नताममनस्कानां कर्मबंधइत्येतत् प्लवते ॥ ३ ॥

आचार्यआह तच्च खलु भगवया वहए दिठंते पण्णत्ते से जहा णामए वहए सिया गाहावइस्सवा गाहावइपुत्तस्सवा रण्णोवा रायपुरिसस्सवा खणं निद्दाए पविसिस्सामि खणंलद्धूणं वहिस्सामि पहारेमाणे से किंतु हुनाम से वहए तस्स गाहावइस्सवा गाहावइपुतस्सवा रण्णोवा रायपुरिसस्सवा खणं निद्दाए पविसिस्सामि खणं लद्धूणं वहिस्सामि पहारेमाणे दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभुत्ते मिच्छासंठित्ते निच्चं पसढविउवायचित्तदंडे भवति एवं वियागरेमाणे समियाए वियागरे-चोयए हंता भवति ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे आचार्य एनी उपर दृष्टांत कहेछे. (तच्चखलुभगवया के०) त्यां निश्चें भगवंत श्री महावीर देवें (वहएदिठंते के०) वधकनो दृष्टांत (पण्णत्ते के०) कह्यो छे. (सेजहाणामए के०) ते जेम नाम एवी संभावनायें कोइ एक पुरुष, (वहएसिया के०) वधक होय ते कोइ एक कारणें कोप्यो थको, (गाहावइस्सवा के०) गृहपति उपर, तथा (गाहावइपुत्तस्सवा के०) गृहपतिना पुत्र उपर, अथवा (रण्णोवा के०) राजा उपर, (रायपुरिसस्सवा के०) अथवा राजानो पुरुष, तेओनो विनाश करवा वांछतो, एवी चिंतवना करे के, (खणंनिद्दाए के०) अवसर पामिने, एना घरमां (पविसिस्सामि के०) प्रवेश करीश (खणंलद्धूणंवहिस्सामि के०) छिद्रादिक पामिनें अथवा देखीने एने हणीश. (पहारेमाणे के०) ते पुरुष एम चिंतवतो, (सेकिंतुहुनामसेवहए के०) ते केवो जाणवो? तु अवधारणे छे नाम संभावनायें छे. तो के, ते वधक कहियें. हवे ते वधक गृहपतिनो, अथवा गृहपतिना पुत्रनो, अथवा राजानो, अथवा राजपुरुषनो, वध

चिंतवतो अवसर पामिने, तेना घर मांहें प्रवेश करीश, अवसर देखीने तेने हणीश, एम चिंतवतो, दिवसें अथवा रात्रीयें सुतो, अथवा जागतो, अमित्रनूत मिथ्यामित्र पणामां संस्थित एटले माग कार्यने विषे रह्यो, (निच्चंपसढ के०) नित्यज प्रशठ एट ले एनो परमार्थ जाणे नहीं. (विऊवायचित्त के०) प्राणिघात तेने विषे जेनुं चित्तछे ते कारणे, (दंमेनवति के०) प्राणीउने दंमनो करना होय, ते पुरुष जीवनो विनाश न करतो थको पण वधक कहेवाय, किंवा न कहेवाय ? (एवंवियागरेमाणे के०) एरीतें आचार्यें कहे बते, (समियाएवियागरेचोयएहंतानवति के०) शिष्य बोल्यो के, हे नग वन् ! ए तमें सत्य बोल्या. ते वधक कहेवाय ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—अथाचार्यः स्वमतसिद्ध्ये दृष्टांतमाह । (तत्रखलुइत्यादि) तत्र खलु नगवता वधकदृष्टांतः प्रज्ञप्तः । तद्यथानाम कश्चिद्वधकः स्यात् गृहपतेर्गृहपतिपुत्रस्य वा राज्ञोराजपुरुषस्य वा उपरि कुतश्चिन्निमित्तात्कुपितः सन् क्षणमवसरं निदाय प्राप्य गृहे पुरे वा घाताय प्रवेक्ष्यामि क्षणमवसरं छिद्रादिकं लब्ध्वा वध्यं हनिष्यामीति संप्रधा रयन् दिवा रात्रौ वा सुप्तोवा जाग्रद्वा मित्रनूतोमिथ्यासंस्थितोनित्यं प्रशठव्यतिपातचित्त दंमोहिंसाध्यवसायी नवति । अयमर्थः । कोऽपि कस्यापि गृहपत्यादेरुपरि कुपितस्तं हं तुकामोपि यावदवसरं छिद्रं न लनते तावत्कार्यांतरे प्रवृत्तोपि हिंसामकुर्वन्नपि वध्यस्य हिंसावसरापेक्षी नित्यं रागद्वेषाकुलः स्यात् । एवमेकेंद्रियविकलेंद्रियाअपि विरतेरना वात्तदयोग्यतया हिंसामकुर्वंतोपि तत्प्रत्ययिकेन कर्मणा बध्यंतएवेत्यर्थः ॥ ४ ॥

॥ टीका—सांप्रतमाचार्यः स्वपक्षसिद्ध्ये दृष्टांतमाह । (तत्रखलुनगवयाइत्यादि) त त्रेति वाक्योपन्यासार्थः । खलु शब्दोवाक्यालंकारे । नगवतैश्वर्यादिगुणोपेतेन चतुस्त्रिंश दतिसमयसमन्वितेन तीर्थकृता वधकदृष्टांतः प्रज्ञप्तः प्ररूपितस्तद्यथा नाम वधकः कश्चि त्स्यादिति कुतश्चिन्निमित्तात्कुपितः सन् कस्यचिद्वधपरिणतः कश्चित्पुरुषोनवति । य स्यासौ वधकस्तं विशेषेण दर्शयितुमाह । (गाहावइस्सवेत्यादि) गृहस्य पतिर्गृहपति स्तत्पुत्रोवाऽनेन सामान्यतः प्राकृतपुरुषोऽनिहितस्तस्योपरि कुतश्चिन्निमित्ताद्वधकः कश्चि त्संवृत्तः सच वधपरिणामपरिणतोपि कस्मिंश्चित्क्षणे पापकारिणमेनं घातयिष्यामीति । तथा राज्ञस्तत्पुत्रस्योपरि कुपितएतत्कुर्यादित्याह । (खणंनिद्दायइत्यादि) क्षणमवसरं (णिद्दायत्ति) प्राप्य तथाविधस्य पुरे गृहे वा प्रवेक्ष्यामीत्येतदध्यवसायी नवति तथा क्ष णमवसरं छिद्रादिकं वध्यस्य लब्ध्वा तडुत्तरकालं तं वध्यं हनिष्यामीत्येवं संप्रधारयति। एतडुक्तं नवति । गृहपतेः सामान्यपुरुषस्य राज्ञोवा विशिष्टतमस्य कस्यचिद्वधपरिणतो

प्यात्मनो ऽवसरं लब्ध्वाऽपरकार्यैक्षणे सति तथा वध्यस्यच छिद्रमपेक्षमाणस्तदवसरा पेक्षी किंचित्कालमुदास्ते सच तत्रौदासीन्यं कुर्वाणोऽपरकार्यं प्रति व्यग्रचेताः संस्तस्मि न्नवसरे वधं प्रत्यस्पष्टविज्ञानोजवति । सचैवंजूतोपि तथा तं वध्यं प्रति नित्यमेव प्रशठ व्यतिपातचित्तदंमोजवत्येवमविद्यमानैरपि प्रव्यक्तैरशुनैर्योगैरेकेंद्रियविकलेंद्रियादयोऽस्पष्ट विज्ञानाअपि मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगानुगतत्वात्प्राणातिपातादिदोषवंतोजवंति । नच तेऽवसरमपेक्षमाणाउदासीनाअप्यवैरिणोन जवंतीति । अत्रच वध्यवधकयोः क्ष णापेक्षया चत्वारोजंगाः । तद्यथा । वध्यस्याऽनवसरोवधकस्य च उनयोर्वाऽनवसरोद्द योरप्यवसरइति । नागार्जुनीयास्तु पठंति । अप्पणो अरकाणया एतस्सवा पुरिसस्स छिद्दं अलनमाणे णोवहे इतं जयामेरकणो जविस्सइ तस्स पुरिसस्स छिद्दं लनिस्सामि तया मेस पुरिसे अवस्सं वहयव्वे जविस्सइ एवं मणोपहारे माणेत्ति सूत्रं निगदसिद्धं ॥ ४ ॥

आचार्यआह जहासे वहए तस्स गाहावइस्सवा तस्स गाहावइपुत्त स्सवा रस्लोवा रायपुरिसस्स खणं निद्दाए पविसिस्सामि खणं लद्धूणं वहिस्सामित्ति पहारेमाणे दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमि त्तभूए मिछासंठित्ते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे एवमेव बालेवि सव्वेसिं पाणाणं जाव सव्वेसिं सत्ताणं दियावा राउवा सुत्तेवा जागरे माणेवा अमित्तजूए मिछासठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे तं पाणाति वाए जाव मिछादंसणसल्ले एवंखलु जगवया अरकाए असंजए अवि रए अप्पडिहयपच्चरकायपावकम्मे सकिरिए असंवुमे एगंतदंमे एगंतबाले एगंतसुत्तेयावि जवइ से बाल अवियारमणवयणकायवक्के सुविणम विणपस्सइ पावेय से कम्मे कज्जइ ॥ ५ ॥

अर्थ–तेवारें अचार्य बोल्या के, अहो शिष्य ! जेम ते वधक पुरुष, ते गृहपति, तथा गृहपतिना पुत्र, अथवा राजा, तथा राज पुरुष उपर विनाशनो जाव चिंतवतो प ठो, तेमना विनाशनी क्रिया कस्या विना पण ते वधक कहेवाय; बीजा पदोनो अर्थ सु गम छे माटें आहीं लख्यो नथी. (एवमेव के०) एम ते, (बालेवि के०) बाल जीव पण, सर्व प्राणीने विषे यावत् सर्व सत्व, तेनो दिवसें अथवा रात्रियें सुतां अथवा जागतां, अमित्रजूत एटले शत्रुजूत मिथ्यात्वसंस्थित निरंतर शठ,प्राणिघातने विषे चित्त छे जेनुं, प्राणीयोने दंम कारक, (तं के०) ते कहेछे. प्राणातिपात मृषावादथी मांमी

ने यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य, एवा अढारे पापस्थानकने विषे अनिवृत्त बतो होय. एम निश्चें नगवंतें कह्युंछे, तेम असंयति अविरति अप्रतिहत एटले पच्चरकाणें करीने पाप कर्म जेणें हण्यां नथी, क्रिया सहित संवर रहित एकांत दंमनो आपनार, एकांत बाल, एकांत शयन करनार होय. ते बाल, अविचारवालां, एवां मन वचन अने काया तेणें करी सहित बतो जे पाप स्वप्नांतरमां पण देखे नहीं. एवां पापकर्मनुं बंधन करे. एम अविरतिपणायें करी तेने पापकर्म लागे ॥ ५ ॥

॥ दीपिका—अथाचार्यएव स्वाजिमतार्थं परप्रश्नपूर्वमाह । (सेकिंतुइत्यादि) आचार्यः स्वयं निर्णीतार्थोपि ईर्ष्यया परं पृब्रति किमसौ वधकपुरुषोहननावसरापेक्षी नित्यं हिंसानुगतचित्तः स्यात्किंवा न? इति पृष्टे परः समतया मध्यस्थः सन् यथास्थितमेव व्यागृणीयात् कथयेत् । तद्यथा हंताचार्यनवत्यसौ अमित्रनूतइति ॥ अथ दार्ष्टांतिकं दर्शयति । (जहासत्ति) यथासौ वधकइत्यादिना दृष्टांतमनूद्य दार्ष्टांतिकं दर्शयति । (एवमेवेत्यादि) यथासौ वधकोऽवसरापेक्षी वध्यस्य हिंसामकुर्वाणोपि अमित्रनूतोनवति एवमसावपि बालोऽस्पष्टविज्ञानोनिवृत्तेरनावाद्योग्यतया सर्वेषां प्राणिनां हंता स्यात् यावन्मिथ्यादर्शनशल्योपेतः स्यात् । कोर्थः । यद्यपि विनयादिकं कुतश्चित्कारणादसौ विधत्ते तथापि उदायिनृपमारकवदंतर्डुष्टएव नित्यं हिंसानुगतचित्तश्च । यथा परशुरामः कृतवीर्यं हत्वापि ततः सप्तवारं निःक्षत्रां पृथिवीं चकार । यडुक्तं । "अपकारसमेन कर्मणा, न नरस्तुष्टिमुपैति शक्तिमान् ॥ अधिकां कुरुतेऽरियातनां द्विषतां मूलमशेषमुद्धरेत्" ॥ १ ॥ एवमसावपि अमित्रनूतः स्यादिति । अथ पूर्वोक्तार्थमनुवदन्नुपसंहरति । (एवंखलुनगवयाइत्यादि) यथा वधकोऽनिवृत्तत्वाद्दुष्टएवमेकेंद्रियादिकोऽस्पष्टविज्ञानोपि अविरतत्वाद्दुष्टएवेति । शेषं सुगमं । यावत्पापं कर्म क्रियतइति ॥ ५ ॥

॥ टीका—सांप्रतमाचार्यएव स्वाजिप्रेतमर्थं परप्रयत्नपूर्वकमाविर्जावयन्नाह । (सेकिंतुहुइत्यादि) आचार्यः स्वतोहि निर्णीतार्थोऽसूयया परं पृब्रति । किमिति परप्रश्ने । तुरिति वितर्के । हुशब्दोवाक्यालंकारे । किमसौ वधकपुरुषावसरापेक्षी विद्रमवसरं प्रधारयन् पर्यालोचयन्नहर्निशं सुप्तोजाग्रदवस्थोवा तस्य गृहपतेराज्ञोवा वध्यस्यामित्रनूतोमिथ्यासंस्थितोनित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोनवत्याहोस्विन्नेत्येवं पृष्टः परः समतया माध्यस्थ्यमवलंब्यमानोयथावस्थितमेव व्यागृणीयात् । तद्यथा हंताचार्य नवत्यसावमित्रनूतइतीत्यादि ॥ तदेवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकं दर्शयितुमाह(जहासेवहएइत्यादि) यथासौ वधकइत्यादिना दृष्टांतमनूद्य दार्ष्टांतिकमर्थं दर्शयितुमाह ।

(एवमेवेत्यादि) एवमेवेति यथासौ वधकोऽवसरापेक्षितया वध्यस्य व्यापत्तिमकुर्वाणो ऽप्यमित्रभूतोभवत्येवमेवासावपि बालवद्बालोस्पष्टविज्ञानोभवत्येव निवृत्तेरभावाद्योग्य तया सर्वेषां प्राणिनां व्यापादकोभवति यावन्मिथ्यादर्शनशल्योपेतोभवति । इदमुक्तं भ वति । यद्यप्युत्थानादिकं विनयं कुतश्चिन्निमित्तादसौ विधत्ते तथाप्युदायिनृपव्यापादक वदंतर्दुष्टएवेति नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंडश्च यथा परशुरामः कृतवीर्यं व्यापाद्यापि तदुत्तरकाले सप्तवारं निःक्षत्रां पृथिवीं चकार (आहत्ति) "अपकारसमेन कर्मणा, न नरस्तु ष्टिमुपैति शक्तिमान् ॥ अधिकां कुरुतेऽरियातनां, द्विषतां मूलमशेषमुद्धरेत् ॥ १ ॥ इत्ये वमसावमित्रभूतोमिथ्याविनीतश्च भवतीति । सांप्रतमुपसंहरन् प्राक् प्रतिपादितमर्थमनु वदन्नाह । (एवंखलुभगवयाइत्यादि) यथासौ वधकः स्वपरावसरापेक्षी सन्न तावद्घात यत्यथवा निवृत्तत्वाद्दोषदुष्टएव एवमसावप्येकेंद्रियादिकोस्पष्टविज्ञानोपि तथाभूतएवावि रताप्रतिहतप्रत्याख्यातसत्क्रियादिदोषदुष्टइति । शेषं सुगमं । यावत्पापं कर्म क्रियतइति॥५॥

जहा से वहए तस्सवा गाहावइस्स जाव तस्सवा रायपुरिसस्स पत्तेयं प त्तेयं चित्तसमादाए दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभूत्ते मिह्वासंठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे भवइ एवमेव बाले सवे सिं पाणाणं जाव सवेसिं सत्ताणं पत्तेयं पत्तेयं चित्तसमादाए दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभूते मिह्वासंठिते निच्चं पसढ विउवायचित्तदंमे भवइ ॥ ६ ॥

अर्थ–(जहासेवहए के०) जेम ते वधक पुरुष, ते गृहपत्यादिक उपर प्रत्येक प्रत्ये क चित्तें करी विनाश चिंतवतो, दिवसें रात्रियें सुतो, जागतो थको अमित्रभूत एटले शत्रु समान मिथ्यात्व संस्थित निरंतर शठ प्राणघातने विषे चित्तछे जेनूं माटें, प्राणीयोने दंमनो करनार होय. तेने पापकर्म बंधाय. (एवमेव के०) एमज ए बाल जे एकेंद्रिया दिक जीवो छे ते पण सर्व प्राणी, सर्वभूत, सर्वजीव, सर्वसत्व, तेने विषे अविरति प णाने भावें ते सर्वने विषे प्रत्येक प्रत्येक चित्तें करी विनाश चिंतवतो, दिवसने विषे, रात्रिने विषे, सुतो, जागतो, अमित्र भूत मिथ्यात्व संस्थित, निरंतर शठ, प्राणिघातने विषे चि त्तछे जेनूं, प्राणीयोने दंमनो करनार होय, एम बोलाय. ते कारणें तेने पापकर्म बंधाय॥६॥

॥ दीपिका–तदेवं पूर्वोक्तार्थनिगमनं कृत्वाऽधुना स सर्वप्राणिनां दुष्टात्मा स्यादिति दर्शयति । यथासौ वधकोगृहपत्यादेः प्रत्येकं सर्वेषु वध्येषु घातकचित्तं समादाय प्रास्ताव सरोऽहमेनं हनिष्यामीति कृत्वा दिवा रात्रौवा सुप्तोजाग्रद्वा सर्वावस्थासु सर्वप्राणि

नां प्रत्येकममित्रनूतोघ्नन्नपि मिथ्यासंस्थितोनित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोनवति । एवं बालकएकेंड्रियादिरपि सर्वप्राणिनां विरतेरनावात्प्रत्येकं घातकचित्तं समादाय नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमः स्यात्तत्प्रत्ययिकेन कर्मणा बध्यतइति ॥ ६ ॥

॥ टीका—तदेवं दृष्टांतदार्ष्टांतिकप्रदर्शनेन पूर्वप्रतिपादितार्थस्य निगमनं कृत्वाऽधुना सर्वेषामेव प्रत्येकं प्राणिनां डुष्टात्मा नवति इत्येतत्प्रतिपादितुकामआह । (जहासेवहएइत्यादि) यथाऽसो वधकः परात्मनोरवसरापेक्षी तथास्य गृहपतेस्तत्पुत्रस्य वाऽन्यहितस्य वा राजादेस्तत्पुत्रस्य चैकमेकं पृथक् पृथक् सर्वेष्वपि वध्येषु घातकचित्तं समादाय प्राप्तावसरोऽहमेनं वैरिणं मदाधिविधायिनं पातयिष्यामीत्येवं प्रतिज्ञाय दिवा रात्रौ वा सुप्तोवा जाग्रद्दा सर्वाप्यवस्थासु सर्वेषामेव वध्यानां प्रत्येकममित्रनूतोऽवसरापेक्षितया घ्नन्नपि मिथ्यासंस्थितोनित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोनवति इति रागद्वेषाकुलितोबालवद्बालोज्ञानावृतएकेंड्रियादिरिति । सर्वेषामेव प्राणिनां विरतेरनावात्तद्योग्यतया प्रत्येकं वध्येषु घातकचित्तं समादाय नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोनवतीति । इदमुक्तं नवति । यथासौ तस्माद्गृहपतीराजानुघाताडुपशांतवैरः कालावसरापेक्षितया वधमकुर्वाणोप्यविरतिसद्भावाद्वैरान्न निवर्त्तते तत्प्रत्ययिकेनच कर्मणा बध्यते । एवं मृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रहेष्वपि प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमनार्थविधानेन पंचावयवत्वं वाच्यमिति । इहैव पंचावयवस्य सूत्राणां विनागोदृष्टव्यः । तद्यथा । आया अपच्चरकाणीयावि नवतीत्यतआरन्य यावत्पावेयसे कम्मे कज्जइत्ति इतीयं प्रतिज्ञा । तत्र परः प्रतिज्ञामात्रेणोक्तमनुक्तसममिति कृत्वा चोदयति । तद्यथा । तब चोयए पन्नवगं एवं वयासीत्यतआरन्य यावज्जंते एवमाहिंसुमिच्छंते एवमाहिंसुत्ति । तत्र प्रज्ञापकश्चोदकं प्रत्येवं वदेत् । तद्यथा । यन्मया पूर्वं प्रतिज्ञातं तत्सम्यक् कस्य हेतोः केन हेतुनेतिचेत् तत्र हेतुमाह । तब खलु नगवया छजीवनिकाया हेऊपन्नत्ताइत्यतआरन्य यावमिच्छादंसणसल्लेइत्ययं हेतुः । तदस्य हेतोरनैकांतिकत्वव्युदासार्थं स्वपक्षे सिद्धिं दर्शयितुं दृष्टांतमाह । तद्यथा । खलु नगवया वहए दिठंते पन्नत्ते इत्येतदारन्य यावत्तस्याखणं लद्धूणं वहिस्सामीति पहारमाणेत्ति । तदेवं दृष्टांतं प्रदर्श्य तत्र च हेतोः सत्तां स्वानिप्रेतां परेण नणयितुमाह । से किंतुहुणाम से वहए इत्यादेरारन्य यावद्भंता नवति । तदेवं हेतोर्दृष्टांते सत्वं प्रसाध्य हेतोः पक्षधर्मत्वं दर्शयितुमुपनयार्थं दृष्टांतधर्मिणि हेतोः सत्तां परेणान्युपगतामनुवदति । जहासे वहए इत्यतआरन्य यावन्निच्चं पसढविउवायचित्तदंडेत्ति । सांप्रतं हेतोः पक्षधर्मत्वमाह । एवमेव बालेअवीत्यादीत्यतआरन्य यावत्पावेयसे कम्मे किज्जइत्ति । तदेवं प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपन

यनप्रतिपादकानि यथाविधिसूत्राणि विनागतः प्रदर्श्याधुना प्रतिज्ञाहेत्वोः पुनर्वचनं निगमनमित्येतत्प्रतिपादयितुमाह । जहा से वहए तस्सवागाहावइस्स इत्यादि यावन्निच्चं पसढविउवायचित्तदंमेत्ति) एतानि प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमान्यर्थतः सूत्रैः प्रदर्शितानि । प्रयोगस्त्वेवं द्रष्टव्यः । तत्राप्रतिहतप्रत्याख्यातक्रियआत्मा पापानुबंधीति प्रतिज्ञा सदा षड्जीवनिकायेषु प्रशठव्यतिपातचित्तदंमत्वादिति हेतुः स्वपरावसरापेक्षि तया कदाचिदव्यापादयन्नपि राजादिवधकवदिति दृष्टांतः । यथासौ वधपरिणामादनिवृत्तत्वा द्वध्यस्यामित्रभूतस्तथाऽत्माऽपि विरतेरभावात्सर्वेष्वपि सत्वेषु नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमइत्युपनयः । यतएवं तस्मात्पापानुबंधीति निगमनम् । एवं मृषावादादिष्वपि पंचावयवत्वं योजनीयमिति । केवलं मृषावादादिशब्दोच्चारणं विधेयं तच्चानेन विधिना नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमत्वात्तथा नित्यं प्रशठादत्तादानचित्तदंमत्वादिति ॥ ६ ॥

णो इणठे समठे चोदक इह खलु बहवे पाणा जे इमेणं सरीरसमणुस्स एणं णो दिठावा सुयावा नाभिमयावा विन्नायावा जेसिं णो पत्तेयं पत्तेयं चित्तसमायाए दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभूते मिछा संठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे तं पाणातिवाए जाव मिछादंसण सल्ले ॥ ७ ॥

अर्थ—एम गुरुयें कहे थके, हवे (चोदक के०) शिष्य बोल्योके, हे भगवन्! तमे जे अर्थ कह्यो, ते योग्य नथी (णोइणठेसमठे के०) ते अर्थ समर्थ नथी, तेनूं कारण कहेछे. (इहखलु के०) आ चउदरज्ज्वात्मक लोकमांहे (बहवेपाणा के०) अनंता प्राणीछे (जेइमेणंसरीरसमणुस्सएणं के०) जे आ शरीरें करी, समुणस्सए एटले पुरुषें करी, जीवें दृष्टियें करी कदाचित् कोइ वारें पण (णोदिठावा के०) दीठा नथी, (सुयावा के०) कानें सांभल्या नथी, (नाभिमयावा के०) उलख्या पण नथी, अथवा (विन्नायावा के०) विशेषें करी, जाण्या पण नथी, (जेसिंणोपत्तेयंपत्तेयंचित्तसमायाए के०) जेणे ए कारणे प्रत्येक प्रत्येक चित्तें करीने ए जीवोनो विनाश चिंतव्यो नथी तो दिवसने विषे, रात्रीने विषे, सुतां, जागतां, अमित्रभूत मिथ्यासंस्थित निरंतर शठ प्राणिना घातनेविषे चित्तछे जेनूं प्राणीने दंमकारक ते केम केहेवाय? अने प्राणातिपात थकी मांमीने यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य सुधी अढारे पापस्थानकने अण करवाथी तेने कर्मनुं बंधन केम लागे? एतावता तेनें नज लागे. ॥ ७ ॥

॥ दीपिका—एवं षड्जीवनिकायेषु प्रत्येकं अमित्रभूततया पापानुबंधित्वे दर्शिते

परोव्यनिचारं दर्शयति । (णोइणट्ठेइति) नायमर्थः समर्थोयत्सर्वेऽपि प्राणिनः सर्वे षां जीवानाममित्रनूताइति । तत्र परः स्वपक्षसिद्ध्ये युक्तिमाह । इह बहवोऽनंताः प्राणिनः संति येऽमुना शरीरसमुछ्रयेणानेन शरीरेण न कदाचिद्दृष्टाश्चक्षुषा न श्रुताः कर्णान्यां नानिमतानेष्टाः । नच विज्ञाताज्ञानेनेति कथं तद्विषयस्तेषु अमित्रनावः स्यात् ! । तेषां जीवानां कदाचिदपि विषयमप्राप्तानां कथं वधं प्रति चित्तसमादानं स्यात् ! । न चासौ तान् प्रति प्रशठव्यतिपातचित्तदंमः स्यात् । शेषं सुगमम् ॥ ७ ॥

॥ टीका–तदेवं सर्वात्मना षट्स्वपि जीवनिकायेषु प्रत्येकममित्रनूततया पापानुबंधि त्वे प्रतिपादिते व्यनिचारं दर्शयन्नाह । (णोइणट्ठेसमट्ठेइत्यादि) नायमर्थः समर्थ इति प्रतिपत्तुं योग्यः । तद्यथा । सर्वे प्राणिनः सर्वेषामेव सत्वानां प्रत्येकममित्रनूता इति । तत्रापरः स्वपक्षसिद्ध्ये सर्वेषां प्रत्येकं मित्रानावं दर्शयितुं कारणमाह । इहा स्मिंश्चतुर्दशरज्ज्वात्मके लोके बहवोऽनंताःप्राणिनः सूक्ष्मबादरनेदनिन्नाः संति । यद्येवं ततः किमित्याह । तेच देशकालस्वनावविप्रकृष्टास्तथानूताबहवः संति । ये प्राणिनः सू क्ष्मादिविप्रकृष्टाद्यवस्था अमुना शरीरसमुछ्रयेणेत्यनेनेदमाह । प्रत्यक्षासन्नवाचित्वादिद मनेनार्वाग्दर्शिज्ञानसमन्वितसमुछ्रयेण न कदाचिद्दृष्टाश्चक्षुषा न श्रुताः श्रवणेंद्रियेण विशे षतोनानिमताइष्टानच विज्ञाता प्रतिनेदज्ञानेन स्वयमेवेत्यतः कथंचित्तद्विपर्ययस्तस्य मित्र नावः स्यात् अतस्तेषां कदाचिदविज्ञातानां कथं प्रत्येकं वधं प्रतिचित्तसमादानं न नवति । न चासौ तान् प्रति नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोनवतीति शेषं सुगमम् ॥ ७ ॥

आचार्यआह तब खलु नगवया डुवेदिठंता पणत्ता तं सन्निदिठंतेय असन्निदिठंतेय से किंतं सन्निदिठंते जे इमे सन्निपंचिंदिया पज्जत्तगा ए तेसिणं छजीवनिकाए पडुच्चं तं पुढवीकायं जाव तसकायं से एगइउ पुढवी काएणं किच्चं करेइवि कारावेइवि तस्सणं एवं नवइ एवं खलु अहं पुढवी काएणं किच्चं करेमिवि कारवेमिवि णो चेवणं से एवं नवइ इमेणावा इमे णावा से एतेणं पुढवीकाएणं किच्चं करेइवि कारावेइवि सेणं तातो पुढवी कायाउ असंजय अविरय अप्पडिहयपच्चखाणपावकम्मेयावि नवइ एवं जाव तसकाएत्ति नाणियवं से एगइउ छजीवनिकाएहिं किच्चं करे इवि कारावेइवि तस्सणं एवं नवइ एवं खलु अहं छजीवनिकाएहिं कि च्चं करेमिवि कारवेमिवि णो चेवणं से एवं नवइ इमेहिंवा से यतेहिं ब

यनप्रतिपादकानि यथाविधिसूत्राणि विभागतः प्रदर्श्याधुना प्रतिज्ञाहेत्वोः पुनर्वचनं निगमनमित्येतत्प्रतिपादयितुमाह । जहा से वहए तस्सवागाहावइस्स इत्यादि यावन्निच्चं पसढविउवायचित्तदंमेत्ति) एतानि प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमान्यर्थतः सूत्रैः प्रदर्शितानि । प्रयोगस्त्वेवं द्रष्टव्यः । तत्राप्रतिहतप्रत्याख्यातक्रियआत्मा पापानुबंधीति प्रतिज्ञा सदा षड्जीवनिकायेषु प्रशठव्यतिपातचित्तदंमत्वादिति हेतुः स्वपरावसरापेक्षितया कदाचिदव्यापादयन्नपि राजादिवधकवदिति दृष्टांतः । यथासौ वधपरिणामादनिवृत्तत्वा द्वध्यस्यामित्रनूतस्तथाऽत्माऽपि विरतेरनावात्सर्वेष्वपि सत्वेषु नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमइत्युपनयः । यतएवं तस्मात्पापानुबंधीति निगमनम् । एवं मृषावादादिष्वपि पंचावयवत्वं योजनीयमिति । केवलं मृषावादादिशब्दोच्चारणं विधेयं तच्चानेन विधिना नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमत्वात्तथा नित्यं प्रशठादत्तादानचित्तदंमत्वादिति ॥ ६ ॥

णो इणठे समठे चोदक इह खलु बहवे पाणा जे इमेणं सरीरसमणुस्सएणं णो दिठावा सुयावा नानिमयावा विन्नायावा जेसिं णो पत्तेयं पत्तेयं चित्तसमायाए दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तनूते मिछासंठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे तं पाणातिवाए जाव मिछादंसणसल्ले ॥ ७ ॥

अर्थ—एम गुरुयें कहे थके, हवे (चोदक के०) शिष्य बोल्योके, हे नगवन्! तमे जे अर्थ कह्यो, ते योग्य नथी (णोइणठेसमठे के०) ते अर्थ समर्थ नथी, तेनूं कारण कहेठे. (इहखलु के०) आ चउदरज्ज्वात्मक लोकमांहे (बहवेपाणा के०) अनंता प्राणीठे (जेइमेणंसरीरसमणुस्सएणं के०) जे आ शरीरें करी, समुस्सए एटले पुजलें करी, जीवें दृष्टियें करी कदाचित् कोइ वारें पण (णोदिठावा के०) दीठा नथी, (सुयावा के०) कानें सांनल्या नथी, (नानिमयावा के०) उलख्या पण नथी, अथवा (विन्नायावा के०) विशेषें करी, जाण्या पण नथी, (जेसिंणोपत्तेयंपत्तेयंचित्तसमायाए के०) जेणे ए कारणे प्रत्येक प्रत्येक चित्तें करीने ए जीवोनो विनाश चिंतव्यो नथी तो दिवसने विषे. रात्रीने विषे, सुतां, जागतां, अमित्रनूत मिथ्यासंस्थित निरंतर शठ प्राणिना घातनेविषे चित्तठे जेनूं प्राणीने दंमकारक ते केम केहेवाय? अने प्राणातिपात थकी मांमीने यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य सुधी अढारे पापस्थानकने अण करवाथी तेने कर्मेनुं बंधन केम लागे? एतावता तेनें नज लागे. ॥ ७ ॥

॥ दीपिका—एवं षड्जीवनिकायेषु प्रत्येकं अमित्रनूततया पापानुबंधित्वे दर्शिते

तोदिदूषणमुपन्यस्तं तदेवंनूतेश्वरसमाश्रयणे दूरोच्छेदितमेवेति । स्वजावस्यापि कथंचि त्कर्तृत्वमेव । तथा ह्यात्मनउपयोगलक्षणत्वमसंख्येयप्रदेशत्वं । पुजलानां च मूर्तत्वं ध र्माधर्मास्तिकाययोर्गतिस्थित्युपष्टंजकारित्वममूर्तत्वं चेत्येवमादिस्वजावापादितं । यदपि श्रा त्मव्यतिरेकाऽव्यतिरेकरूपं दूषणमुपन्यस्तं तददूषणमेव । यतः स्वजावआत्मनोऽव्यति रिक्तः । आत्मनोपि च कर्तृत्वमन्युपगतमेव तदपि स्वजावापादितमेवेति । तथा कर्मापि कर्तृ नवत्येव । तद्धि जीवप्रदेशैः सहान्योन्यानुवेधरूपतया व्यवस्थितं कथंचिच्चात्मनोऽनि न्नं तद्वशाच्चात्मा नरकतिर्यङ्मनुष्यामरजवेषु पर्यटन् सुखडुःखादिकमनुनवतीति । तदेवं नियत्यनियत्योः कर्तृत्वे युक्त्युपपन्ने सति नियतेरेव कर्तृत्वमन्युपगडंतोनिर्युक्तिकाजवंतीत्य वसेयम्॥४॥तदेवं युक्त्या नियतिवादं दूषयित्वा तद्वादिनामपायदर्शनायाह।(एवमेगेउइत्या दि । एवमितिपूर्वान्युपगमसंसूचकं । सर्वस्मिन्नपि वस्तुनि नियतानियते सत्येके नियतमेवा ऽवश्यंजाव्येव कालेश्वरादिनिराकरणेन निर्हेतुकतया नियतिवादमाश्रिताः । तुरवधार णे । तएव नान्ये । किंविशिष्टाः पुनस्ते इति दर्शयति । युक्तिकदंबकाद्वहिस्तिष्ठंतीति पा र्श्वस्थाः परलोकक्रियापार्श्वस्थावा । नियतिपक्षसमाश्रयणात्परलोकक्रियावैयर्थ्यं । य दि वा पाशइवपाशः कर्मबंधनं तच्चेह युक्तिविकलनियतिवादप्ररूपणं तत्रस्थिताः पाश स्थाः । अन्येप्येकांतवादिनः कालेश्वरादिकारणिकाः पार्श्वस्थाः पाशस्थावा इत्यव्या ख्यादि । ते पुनर्नियतिवादमाश्रित्यापि नूयोविविधं विशेषेण वा प्रगल्जिताधाष्टर्योपग ताः परलोकसाधकासु क्रियासु प्रवर्तंते । धाष्टर्याश्रयणं तु तेषां नियतिवादाश्रयणे स त्येव । पुनरपि तत्प्रतिपंथिनीषु क्रियासु प्रवर्तनादिति ते पुनरेवमप्युपस्थिताः परलोक साधकासु क्रियासु प्रवृत्ताअपि संतोनात्मडुःखविमोक्षकाः । असम्यक्प्रवृत्तत्वान्नात्मानं डुःखाद्विमोचयंति । गतानियतिवादिनः ॥ ५ ॥

जविणो मिगा जहा संता, परिताणेण वज्जिआ ॥ असंकियाइं संकंति, संकिआइं असंकिणो ॥६॥ परियाणिआणि संकंता, पासिताणि असंकि णो ॥ अणाणजयसंविग्गा संपलिंति तहिंतहिं ॥ ७ ॥ अह तं पवेज्ज वज्झं, अहे वज्झस्स वा वए ॥ मुच्चेज्ज पयपासाउ, तं तु मंदे ण देहए ॥ ८ ॥

अर्थ—हवे अज्ञानवादीना मत उपर दृष्टांत कहेछे. जहाके० जेम, मिगाके० मृग एटले अरण्यना पशु जविणो संता के० वेगवंत उतां ते केवांछे, तोके परिताणेणवज्जि याके० परित्राण एटले शरणेकरी वर्जित अर्थात् तेमनो कोइ राखनार नथी. एवा ते जयविव्हलजूत विवेकरहित थका असंकियाइं के० अशंकित स्थानक जे कूट पा शादिक रहित तेने संकंति के० शंकानुं स्थानक जाणे तथा जे संकिआइं के० शंकित

रोव्यभिचारं दर्शयति । (णोइणठेइति) नायमर्थः समर्थोयत्सर्वेऽपि प्राणिनः सर्वे
ां जीवानाममित्रभूताइति । तत्र परः स्वपक्षसिद्धये युक्तिमाह । इह बहवोऽनंताः
ाणिनः संति येऽमुना शरीरसमुछ्रयेणानेन शरीरेण न कदाचिद्दृष्टाश्चक्षुषा न श्रुताः
ःर्णाभ्यां नाभिमतानेष्टाः । नच विज्ञाताज्ञानेनेति कथं तद्विषयस्तेषु अमित्रभावः
यात्! । तेषां जीवानां कदाचिदपि विषयमप्राप्तानां कथं वधं प्रति चित्तसमादानं स्यात्!।
। चासौ तान् प्रति प्रशठव्यतिपातचित्तदंडः स्यात्। शेषं सुगमम् ॥ ७ ॥

॥ टीका—तदेवं सर्वात्मना षट्स्वपि जीवनिकायेषु प्रत्येकममित्रभूततया पापानुबंधि
वे प्रतिपादिते व्यभिचारं दर्शयन्नाह । (णोइणठेसमठेइत्यादि) नायमर्थः समर्थ
ति प्रतिपत्तुं योग्यः । तद्यथा । सर्वे प्राणिनः सर्वेषामेव सत्वानां प्रत्येकममित्रभूता
ति । तत्रापरः स्वपक्षसिद्धये सर्वेषां प्रत्येकं मित्राभावं दर्शयितुं कारणमाह । इहा
स्मिंश्चतुर्दशरज्ज्वात्मके लोके बहवोऽनंताःप्राणिनः सूक्ष्मबादरभेदभिन्नाः संति । यद्येवं
ातः किमित्याह । तेच देशकालस्वभावविप्रकृष्टास्तथाभूताबहवः संति । ये प्राणिनः सू
क्ष्मादिविप्रकृष्टाद्यवस्था अमुना शरीरसमुछ्रयेणेत्यनेनेदमाह । प्रत्यक्षासन्नवाचित्वादिद
ानेनार्वाग्दर्शिज्ञानसमन्वितसमुछ्रयेण न कदाचिद्दृष्टाश्चक्षुषा न श्रुताः श्रवणेंद्रियेण विशे
ातोनाभिमताइष्टानच विज्ञाता प्रतिभेदज्ञानेन स्वयमेवेत्यतः कथंचित्तद्विपर्ययस्तस्य मित्र
ावः स्यात् अतस्तेषां कदाचिदविज्ञातानां कथं प्रत्येकं वधं प्रतिचित्तसमादानं न
भवति । न चासौ तान् प्रति नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंडोभवतीति शेषं सुगमम् ॥ ७ ॥

आचार्यआह तत्र खलु भगवया दुवेदिठंता पण्णत्ता तं सन्निदिठंतेय
असन्निदिठंतेय से किंतं सन्निदिठंते जे इमे सन्निपंचिंदिया पज्जत्तगा ए
तेसिणं छजीवनिकाए पडुच्चं तं पुढवीकायं जाव तसकायं से एगइउ पुढवी
काएणं किच्चं करेइवि कारावेइवि तस्सणं एवं भवइ एवं खलु अहं पुढवी
काएणं किच्चं करेमिवि कारवेमिवि णो चेवणं से एवं भवइ इमेणावा इमे
णावा से एतेणं पुढवीकाएणं किच्चं करेइवि कारावेइवि सेणं तातो पुढवी
कायाउ असंजय अविरय अप्पडिहयपच्चक्खाणपावकम्मेयावि भवइ
एवं जाव तसकाएत्ति भाणियव्वं से एगइउ छजीवनिकाएहिं किच्चं करे
इवि कारावेइवि तस्सणं एवं भवइ एवं खलु अहं छजीवनिकाएहिं कि
च्चं करेमिवि कारवेमिवि णो चेवणं से एवं भवइ इमेहिंवा से यतेहिं छ

जीवनिकाएहिं जाव कारवेइवि से यतेहिं छहिं जीवनिकाएहिं असंज यं अविरयं अप्पडिहयपच्चखायपावकम्मेहिं तं पाणातिवाए ते जावमि च्छादंसणसल्ले एस खलु जगवया अखाए असंजए अविरए अपडि हयपच्चखायपावकम्मे सुविणमवि अपस्साउ पावेयसे कम्मे कज्ज इ से तं सन्निदिठंतेणं ॥ ८ ॥

अर्थ–हवे एम शिष्यें कह्यानंतर आचार्य कहेछे. (तत्रखलुजगवयाडवेदिठंतापस्त्ता के०) त्यां निश्चें जगवंतें ए अर्थ उपर बे दृष्टांत कह्याछे. ते जेमछे, तेम कहेछे. (तंसन्निदिठंतेय के०) एक संज्ञिदृष्टांत, अने (असन्निदिठंतेय के०) बीजो असंज्ञिदृष्टांत (सेकितंसंन्निदिठंते के०) त्यां संज्ञिदृष्टांत, कयो ? ते कहेछे (जेइमेसन्निपंचिंदियापज्जत्तगा के०) जे ए प्रत्यक्ष लक्षण संज्ञी पंचेंड्रिय पर्याप्ता जीवछे (एतेसिणं के०) तेमांहे कोइ एक (छजीवनिकाएपडुच्चं के०) छ जीवनिकाय आश्री एवी प्रतिज्ञा करे, (तं के०) ते छकायनां नाम कहेछे. (पुढवीकायंजावतसकायं के०) पृथिवीकाय यावत् त्रसकाय पर्यंत (सेएगइउ के०) ते कोइ एक पुरुष एवी प्रतिज्ञा करे के, (पुढवीकाएणंकिच्चंकरेइवि के०) पृथिवीकायें करीनेज कार्य करीश (करावेइविके०) अने पृथिवीकायें करीज कार्य करावीश, एवो जेने नियमछे (तस्सणंएवंजवइ के०) तेने एम होय ते कहेछे (एवंखलुअहंपुढवीकाएणं के०) एम निश्चें हुं पृथिवीकायें करी (किच्चंकरेमिविकारवेमिवि के०) कार्य करीश, अने बीजानी पासे पण करावीश परंतु (णोचेवणंसेएवंजवइ के०) तेनें निश्चें एवो अनिप्राय नथी के (इमेणवाइमेणवा के०) अमुक अमुक दिशिना, तथा हुं, अमुक अमुक कोइक कालें, अथवा धोले, नीले, पीले, राते, पृथिवीकायें कार्य करीश अथवा अनेक जेद पृथिवीकायना छे तेमांहेथी अमुक कोइ एक जेदेंज कार्य करीश, ज्यां सुधी एवो अनिप्राय नथी त्यां सुधी तेने सर्व पृथिवीकायनूं कर्म लागेछे (सेएतेणंपुढवीकाएणंकिच्चंकरेइवि कारावेइवि के०) ते पुरुष ते पृथिवीकायें करी पोतें कार्य करे, बीजा पासें कार्य करावे, (सेणंतातोपुढवीकायाउ के०) ते पुरुष ते पृथिवीकाययकी, (असंजय के०) असंयति अनिवृत्त (अविरय के०) अविरति, (अपडिहयपच्चखाणपावकम्मेयाविजवइ के०) तथा नथी हण्यां पच्चखाणें करीने पापकर्म जेणे एवो छे, (एवंजावतस्सकाएत्तिजाणियवे के०) एम यावत् त्रस काय सुधी एटले छए काय आश्री जाणी लेवुं जेने जे कायनी अविरति होय तेने ते कायनुं कर्म लागे. ए रीतें को

६ एक पुरुष बजीव निकायें करीने कार्य पोतें करें, बीजा पासें करावे, ते पुरुष बजीव निकायने विषे अविरति असंयति केहेवाय. ए आलावानो बीजो अर्थ पूर्वना आलावा मां लखाइ गयोछे, माटें आंहीं लख्यो नथी. ए रीतें जे प्राणी प्राणातिपातथी मांमीने यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य पर्यंत अढारे पापस्थानकने विषे असंयति अविरति तथा पच्चरकाणें करीने जेणे पापकर्म हण्यां नथी एम अविरतिने भावें होय, तेने स्वप्नां तरें अणदीतुं पण पापकर्म बंधाय, लागे. एम निश्चें श्री भगवंतें कह्युंछे, एटले सन्नीयानो दृष्टांत कह्यो ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—एवं सति न सर्वविषयं प्रत्याख्यानं युज्यते । ये जीवाहिंसादिविषयप्राप्ताः स्युस्तेषामेव प्रत्याख्यानं क्रियते इति परेणोक्ते आचार्यआह । (तत्रखल्वित्यादि) यद्य पि सर्वजीवेषु हिंसापरिणामोनोत्पद्यते तथाप्यविरतिसद्भावात्तद्विषयः कर्मबंधोभव त्येव । अत्र दृष्टांतद्वयमाह । संज्ञिदृष्टांतोऽसंज्ञिदृष्टांतश्च । कोयं संज्ञिदृष्टांतः ?। ये इमे सं ज्ञिपंचेंद्रियास्तेषां मध्ये कश्चिदेकः षड्जीवनिकायान् प्रतीत्याश्रित्य एवं प्रतिज्ञां कुर्यात् । अहं पृथिवीकायेनैव एकेन कृत्यं करोमि कारयामि । सच एवं कृतप्रतिज्ञस्तेन तस्मात् त स्मिन् तंच करोति कारयतिच शेषकायेभ्योनिवृत्तस्तस्य चैवंभूतोऽभिप्रायः । तद्यथा । अहं पृथिवीकायेन कृत्यं करोमि कारयामि एवं प्रतिज्ञायां कृतायां विशेषाभिप्रायोन स्यात् यत् श्वेतेन कृष्णेनवा पृथिवीकायेन कृत्यं करोमि कारयामिच स तस्मात्पृथिवीकायादनिवृ त्तोऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा भवति । एवमप्तेजोवायुवनस्पतिष्वपि वाच्यं । य था कश्चिदप्कायादनिवृत्तः कश्चित्तेजस्कायादिति । शेषकायैस्तु व्यापारं करोति कश्चित् ष ट्स्वपि जीवनिकायेषु अनिवृत्तोऽसंयतत्वात्तैः कार्यं करोति कारयति न पुनस्तद्विशेषप्रति ज्ञा एवं मृषावादेऽपि वाच्यं । यथा इदं मया वक्तव्यमनृतं इदं न वक्तव्यं सच तस्मान्मृषावा दादनिवृत्तत्वादसंयतः स्यात् तथा इदमदत्तं मया ग्राह्यं इदंतु न ग्राह्यं । एवं मैथुनपरिग्र हेष्वपि वाच्यं । तथा क्रोधमानमायालोभेष्वपि स्वयं विचार्यं वाच्यं । तदेवमसौ हिंसादी न्यकुर्वन्नपि अविरतत्वात्तत्प्रत्ययिकं कर्म बध्नाति । ततोदेशकालस्वभावविप्रकृष्टेष्वपि जीवेषु अमित्रभूतोऽसौ स्यात् । यथा कश्चिद्ग्रामघातादौ प्रवृत्तः । यद्यपि तेन केचि न्नरान दृष्टास्तथापि तद्घातनिवृत्तेरभावाद्योग्यतया तद्घातकइत्युच्यते । एवं अविरतेः कर्मबंधोज्ञेयः ॥ ८ ॥

॥ टीका—एवं व्यवस्थिते न सर्वं विषयं प्रत्याख्यानं युज्यते इत्येवं प्रतिपादिते परेण सत्याचार्यआह । (तत्रखलुभगवयाइत्यादि) यद्यपि सर्वेष्वपि देशकालस्वभावविप्र

कृष्टेपु वधकचित्तं नोत्पद्यते तथाप्यसावविरतिप्रत्ययत्वात्तेष्वमुक्तवैरएव भवत्यस्य चार्थ स्य सुखप्रतिपत्तये भगवता तीर्थकृता द्वौ दृष्टांतौ प्रज्ञप्तौ प्ररूपितौ । तद्यथा । संज्ञिदृष्टां तोऽसंज्ञिदृष्टांतश्च । अथ कोयं संज्ञिदृष्टांतो ये केचन इमे प्रत्यक्षासन्नाः षड्भिरपि पर्याप्ति भिः पर्याप्ताऊहापोहविमर्शरूपाः संज्ञा विद्यंते येषां ते संज्ञिनः पंचेंद्रियाणि येषां ते पंचेंद्रि याः करणपर्याप्त्या पर्याप्तकाएषां च मध्ये कश्चिदेकः षड्जीवनिकायान् प्रतीत्यैवंभूतां प्र तिज्ञां नियमं कुर्यात् । तद्यथा । षट्सु जीवनिकायेषु मध्ये पृथिवीकायेनैवैकेन वालुका शिलोपललवणादिस्वरूपेण कृत्यं कार्यं कुर्यां । सचैवं कृतप्रतिज्ञस्तेन तस्मिन् तस्मात्तं वा करोति कारयतिच शेषकायेभ्योऽहं विनिवृत्तस्तस्यच कृतनियमस्यैवंभूतोभवत्यध्यव सायः । तद्यथैवं खल्वहं पृथिवीकायेन कृत्यं करोमि कारयामिच तस्यच सामान्यकृत प्रतिज्ञस्य विशेषाभिसंधिनैव भवति । तद्यथा । अमुना कृष्णेनामुना श्वेतेन पृथिवी कायेन कार्यं करोति कारयतिच सतस्मात्पृथिवीकायादनिवृत्तोऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपा पकर्मा भवति । तत्र खननस्थाननिषीदनत्वग्वर्तनोच्चारप्रश्रवणादिकरणक्रियासद्भावा देवमप्तेजोवायुवनस्पतिष्वपि वाच्यं । तत्राप्कायेन स्नानपानावगाहनभांडोपकरण धावनादिषु प्रयोगस्तेजःकायेनापि पचनपाचनप्रकाशनादिषु वायुनापि व्यंजनतालवृंते त्यादिव्यापारादिषु प्रयोजनं वनस्पतिनापि कंदमूलपुष्पफलपत्रत्वक्शाखाद्युपयोगएवं विक लेंद्रियपंचेंद्रियेष्वप्यायोज्यमिति । तथैकः कश्चित् षट्स्वपि जीवनिकायेषु अविरतोसं यतत्वाच्च तैरसौ कार्यं सावद्यानुष्ठानं स्वयं करोति कारयतिच परैस्तस्यच क्वचिदपि निवृत्ते रभावादेवंभूतोध्यवसायोभवति । तद्यथैवं खल्वहं षड्भिरपि जीवनिकायैः सामान्येन कृ त्यं करोमि न पुनस्तद्विशेषप्रतिज्ञेति । सच तेषु षड्स्वपि जीवनिकायेष्वसंयतोऽप्रतिहतप्र त्याख्यातपापकर्मा भवत्येवं मृषावादेपि वाच्यं । तद्यथेदं मया वक्तव्यमीदृग्भूतं तु न वक्तव्यं सच तस्मान्मृषावादादनिवृत्तत्वादसंयतोभवति । तथा दत्तादानमप्याश्रित्य वक्तव्यं । त द्यथेदं मया दत्तादानं ग्राह्यमिदंतु न ग्राह्यमित्येवं मैथुनपरिग्रहेष्वपीति । तथा क्रोधमान मायालोभेष्वपि स्वयमभ्यूह्य वाच्यं । तदेवमसौ हिंसादीन्यकुर्वन्नप्यविरतत्वात्तत्प्रत्ययिकं कर्म चिनोतीत्येवं देशकालस्वभावविप्रकृष्टेष्वपि जंतुष्वमित्रभूतोसौ भवति तत्प्रत्ययिकं च कर्म चिनोतीति सोयं संज्ञिदृष्टांतोऽभिहितः । सच कदाचिदेकमेव पृथिवीकायं व्यापाद यति शेषेषु निवृत्तः कदाचिद्द्वावेवं त्रिकादिकाः संयोगाभणनीयायावत्सर्वानपि व्यापा दयतीति । सचैवं सर्वेषां व्यापादकत्वे न व्यवस्थाप्यते सर्वविषयारंभप्रवृत्तेस्तत्प्रवृत्तिरपि तदनिवृत्तेः । यथा कश्चिद्ग्रामघातादौ प्रवृत्तोयद्यपिच न तेन विवक्षितकाले केचन पुरुषा दृष्टास्तथाप्यसौ तत्प्रवृत्तिनिवृत्तेरभावात्तद्योग्यतया तद्घातकइत्युच्यते इत्येवं दार्ष्टांति केप्यायोज्यम् ॥ ८ ॥

से किंतं असन्निदिठंते जेइमे असन्निणो पाणा तं पुढवीकाइया जाव वणस्स इकाइया बठावेगइया तसा पाणा जेसिं णो तक्काइवा सन्नातिवा पन्नातिवा मणातिवा वईवा सयंवा करणाए अन्नेहिंवा कारावेंतए करंतंवा समणुजा णित्तए तेविणं बाले सव्वेसिं पाणाणं जाव सव्वेसिं सत्ताणं दियावा राउवा सु त्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभूतमिब्रासंठिया निच्चं पसढविउवातचित्तदंमा तं पाणाइवा ते जाव मिब्रादंसणसल्ले इच्चेव जाव णो चेवमणो णो चेववई पाणा णं जाव सत्ताणं डुक्कणत्ताए सोयणत्ताए जूरणत्ताए तिप्पणत्ताए पिट्टणत्ताए परितप्पणत्ताए ते डुक्कणसोयणजावपरितप्पणवहबंधणपरिकिलेसाउ अप्प डिविरया भवंति ॥ ए ॥

अर्थ-(सेकिंतंअसन्निदिठंते के०) हवे असंज्ञियानो दृष्टांत कयो ? ते कहेछे. (जेइ मेअसन्निणोपाणा के०) जे ए असंज्ञी प्राणीउछे (तं के०) ते कहेछे. (पुढवीकाइया के०) पृथिवीकायिक, (जाववणस्सइकाइया के०) यावत् वनस्पतिकाय पर्यंत, ए पांच स्थावर जाणवा. (बठावेगइयातसापाणा के०) तथा छठा, कोइ एक त्रस प्राणीउ पण असंज्ञी छे (जेसिंणोतक्काइवा के०) जेने तर्क नथी तर्क एटले ए स्तंभछे के, पुरुषछे ए आ गल शुंछे ! एवो भाव जेने न उपजे, एटले सारुं करवुं देखीने कहेके, आ रुडूं करेछे एवो भाव जेने नथी, (सन्नातिवा के०) तथा संज्ञा ते जे पूर्वेदृष्टनुं उलखवुं ते जेनें न थी (पन्नातिवा के०) तथा जेनें प्रज्ञा एटले बुद्धि नथी, (मणातिवा के०) तथा जेनें मन नथी, (वईवा के०) तथा जेनें वचन नथी, (सयंवाकरणाए के०) तथा जेने पो तें कार्य करवुं नथी, अथवा (अन्नेहिंवाकारावेंतए के०) बीजा पासें कार्य करावबुं नथी, (करंतंवासमणुजाणित्तए के०) तथा बीजो कोइ कार्य करतो होय तेने देखीने कहेके, ए रुडूं करेछे. एम कहीने तेने अनुमोदन आपवुं एवो भाव जेनें नथी, (तेवि णंबाले के०) ते असंज्ञी बाल अज्ञानी जीव, (सव्वेसिंपाणाणं के०) सर्व प्राणीनो (जा वसव्वेसिंसत्ताणंके०) यावत् सर्वसत्वनो (दियावाराउवासुत्तेवाजागरमाणेवा के०) दिवसें रात्रे,सुता,जागता, (अमित्तभूत के०) जीवोनो अमित्रभूत शत्रुसमान बोलियें. कारणके, तेनें तेनुं विरति पणुं नथी. (मिब्रासंठिया के०) ते मिथ्यात्व संस्थित (निच्चंपसढविउवात चित्तदंमा के०) निरंतर शठ एटले परमार्थ नथी जाणता,तथा प्राणघातने विषे जेनुं चि त्तछे, तथा प्राणीउने दंमना करनार,(तं के०) ते कहेछे. (पाणाइवातेजावमिब्रादंसण सल्ले के०) प्राणातिपात मृषावादादिकथी यावत् मिथ्यादर्शन शल्य पर्यंत ए अढार पा

पस्थानकने नथी करता, तो पण तेने विषे अविरतिपणा थकी ते असंज्ञी जीवोने कर्म लागेछे (इच्चेवजावणोचेवमणो के०)तथा यद्यपि ते असंज्ञीया जीव मनना व्यापार रहित छे, (णोचेववई के०) तथा वचनना व्यापार रहितछे, तथापि (पाणाणंजावसत्ताणं के०) सर्वप्राणीने यावत् सर्व सत्वने (डुरकणत्ताए के०) दुःखने उपजाववे करी, (सोयणत्ताए के०) शोकने उपजाववे करी, (जूरणत्ताए के०) वयनी हानीने करवे करी, (तिप्पणत्ताए के०) मन वचन अने काया ए त्रणेथी पीडवे करी, (पिट्टणत्ताए के०) यष्टि मुष्टिने प्रहारें करी, (परितप्पणत्ताए के०) बाहेर तथा अभ्यंतरने पीडवे करी, एवा ए वा प्रकारें यद्यपि ते असंज्ञीया जीव समस्त जीवोने दुःख नथी उपजावता, तथापि ते विरतिपणाने अभावें सर्व जीवोने दुःखनुं उपजाववुं, शोक,जूरण, तिप्पण, पिट्टण, यावत् बाह्य तथा अभ्यंतरनुं पीडवुं वध बंधननुं करवुं इत्यादिक क्लेशथकी विशेषें करी अनिवृत्त्याछे अविरति कहेवायछे ते विरतिपणाने अभावें ते जीवो तत्प्रत्ययिक कर्मेकरी बधायछे॥ए॥

॥ दीपिका—अथाऽसंज्ञिदृष्टांतमाह । (सेकिंतमिति) ये इमेऽसंज्ञिनस्तद्यथा पृथिवीकायायावद्वनस्पतिकायास्तथा षष्ठाअप्येके त्रसाः यावत्संमूर्छिमपंचेंद्रियास्ते सर्वेप्यसंज्ञिनो येषां न तर्कोविचारः न संज्ञा दीर्घकालसंबंधिनी न प्रज्ञा स्वबुद्धिकृता न मनोवग्रहादिमतिः न वाक् स्पष्टवर्णा तथा स्वयं करोमि अन्यैः कारयामि कुर्वंतमनुजानामि इत्यभिप्रायोनास्तीति । तेऽसंज्ञिनोबालाः सर्वेषां जीवानां घातनिवृत्तेरभावाद्योग्यतया घातकाएव असत्यभाषकाअपि अविरतत्वात् अदत्तग्राहिणोपि दध्यादिभक्षणात् तीव्रनपुंसकवेदोदयान्मैथुननिवृत्तेरभावाच्च मैथुनप्रवृत्ताः परिग्रहवंतोपि अशनादेः स्थापनात् । एवं क्रोधमानमायालोभायावन्मिथ्यादर्शनसशल्यसद्भावश्च तेषां ज्ञेयः । ततश्च ते कर्मबंधकाः स्युः । तथा यद्यपि ते विशिष्टमनोवाग्व्यापाररहितास्तथापि सर्वजंतूनां (दुःखणत्ताएत्ति) दुःखोत्पादनतया शोचनतया शोकोत्पादनत्वेन जूरणं वयोहानिस्तत्कारणतया त्रिभ्योमनोवाक्कायेभ्यः पातनं त्रिपातनं तद्भावस्तया (पिट्टणयाए) मुष्टिलोष्टादिभिः कुट्टनेन परितापनया बहिरंतश्च पीडया तेऽसंज्ञिनोयद्यपि दूरस्थानां विषयगतानां जीवानां दुःखं नोत्पादयंति तथाप्यविरतत्वाद्दुःखशोचनादेरविरताः स्युस्ततश्च कर्मणा बध्यंते ॥ ए ॥

॥ टीका—संज्ञिदृष्टांतानंतरमसंज्ञिदृष्टांतः प्रागुपन्यस्तः सोऽधुना प्रतिपाद्यते । (सेकिंतं असन्निदिठंतेइत्यादि) संज्ञानं संज्ञा सा विद्यते येषां ते संज्ञिनस्तत्प्रतिषेधादसंज्ञिनोमनसोऽव्यक्तया अभावात्तीव्राऽतीव्राध्यवसायविशेषरहिताः प्रसुप्तमत्तमूर्छितादिवदिति । ये इमे संज्ञिनस्तद्यथा पृथिवीकायिकायावद्वनस्पतिकायिकास्तथा षष्ठाअप्येके त्रसाः प्राणिनो विकलेंद्रियायावत्संमूर्छिनः पंचेंद्रियास्ते सर्वेप्यसंज्ञिनोयेषां न तत्कार्यविचारोमीमांसावि

शिष्टविमर्शोविद्यते यथा कस्यचित्संज्ञिनोमंदमंदप्रकाशे स्थाणुपुरुषोचिते देशे किमयं स्थाणुरुत पुरुषइत्येवमात्मककहस्तर्कः संजवति नैवं तेषामसंज्ञिनां तर्काः संजवंतीति । तथा संज्ञानं संज्ञा पूर्वोपलब्धार्थेतडुत्तरकालपर्यालोचना तथा प्रज्ञानं प्रज्ञा स्वबुध्योत्प्रेक्षणं,सएवायमित्येवंजूतं प्रज्ञानंच तथा मननं मनोमतिरित्यर्थः। सा चावग्रहादिरूपा तथा प्रस्पष्टवर्णा वाक्। साच न विद्यते तेषामिति। यद्यपिच द्वींद्रियादीनां जिव्हेंद्रियगलविवरादिकमस्ति तथापि न तेषां प्रस्पष्टवर्णत्वं ।तथा न चैषां पापं हिंसादिकं करोमि कारयामीत्येवंजूताध्यवसायपूर्विकामतिस्तथा स्वयं करोम्यन्यैर्वा कारयामीत्येवंजूतोध्यवसायो न विद्यते तेषां। तदेवं तेप्यसंज्ञिनोबालवद्बालाः सर्वेषां प्राणिनां घातनिवृत्तेरजावात्तद्योग्यतया घातकाव्यापादकाः। तथाहि । द्वींद्रियादयः परोपघाते प्रवर्तंते एव तन्नक्षणादिना अनृतजाषणमपि विद्यते तेषामविरतत्वात् केवलं कर्मपरतंत्राणां वागजावस्तथाऽदत्तादानमपि तेषामस्त्येव दध्यादिजक्षणात्तथेदमस्मदीयमिदंच पारक्यमित्येवंजूतविचाराजावाच्चेति । तथा तीव्रनपुंसकवेदोदयान्मैथुनाविरतेश्च मैथुनसद्भावोपि तथाशनादेः स्थापनात्परिग्रहसद्भावोपीत्येवं क्रोधमानमायालोजायावन्मिथ्यादर्शनशल्यसद्भावश्च तेषामवगंतव्यस्तद्भावाच्च ते दिवा रात्रौवा सुप्ताजाग्रदवस्थावा नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमाजवंति। तदेव दर्शयितुमाह । (तंजहाइत्यादि) तेह्यसंज्ञिनः क्वचिदपि निवृत्तेरजावात्तत्प्रत्ययिककर्मबंधोपेताजवंति । तद्यथा । प्राणातिपातयावन्मिथ्यादर्शनशल्यवंतो जवंति। तद्भत्तयाच यद्यपि वैशिष्ट्यमनोवाग्व्यापाररहितास्तथापि सर्वेषां प्राणिनां डुःखोत्पादनतया तथा शोचनतया शोकोत्पादनत्वेन तथा जूरणतया जूरणं वयोहानिरूपं तत्करणशीलतया तथा त्रिज्योमनोवाक्कायेज्यः पातनं त्रिपातनं तद्भावस्तथा यदिवा (तिप्पणयाएत्ति) परिवेदनतया तथा (पिट्टणया) मुष्टिलोष्टप्रहारेण परितापनतया बहिरंतश्च पीडया ते चासंज्ञिनोपि यद्यपि देशकाले स्वजावविप्रकृष्टानां न सर्वेषां डुःखं समुत्पादयंति तथापि विरतेरजावात्तद्योग्यतया डुःखपरितापक्लेशादेरप्रतिविरता जवंति तत्सद्भावाच्च तत्प्रत्ययिकेन कर्मणा बध्यंते ॥ ए ॥

इति खलु से असन्निणोवि सत्ता अहोनिसिं पाणातिवाए उवरकाइज्जंति जाव अहोनिसिं परिग्गह उवरकाइज्जंति जाव मिच्छादंसणसल्ले उवरकाइज्जंति एवंजूतवादी सवजोणियावि खलु सत्ता सन्निणो हुज्जा असन्निणो होंति असन्निणो हुज्जा सन्निणो होंति होच्चा सन्नी अडुवा असन्नी तच्छ से अविविचित्ता अविधूणित्ता असंमुच्छित्ता अणणुतावित्ता असन्निकायाउवा सन्नि

कायं संकमंति सन्निकायाउवा असन्निकायं संकमंति सन्निकायाउवा स न्निकायं संकमंति असन्निकायाउवा असन्निकायं संकमंति जे एए सन्नि वा असन्निवा सवे ते मिछायारा निच्चं पसढविउवायचित्तदंमा तं पाणा तिवाए जाव मिछादंसणसल्ले एवं खलु भगवया अरकाए असंजए अ विरए अपडिहयपच्चरकायपावकम्मे सकिरिए असंवुमे एगंतदंमे ए गंतबाले एगंतसुत्ते से बाले अवियारमणवयकायवके सुविणमवि ण प सइ पावेयसे कम्मे कज्जइ ॥ १० ॥

अर्थ-(इतिखलुसेअसन्निणोविसत्ता के०) एणी परें निश्चें ते पृथिवीकायादिक असंज्ञी जीव बता पण (अहोनिसिंपाणातिवाए के०) रात्री दिवस प्राणातिपातने विषे, (उवरका इज्जंति के०) कहियें, एटले तेने प्राणातिपातनुं कर्म लागे, एम बोलियें. (जावअहोनि सिंपरिग्गहउवरकाइज्जंति के०) यावत् रात्री दिवस परिग्रहने विषे प्रवर्त्तता बोलियें, क हियें (जावमिछादंसणसल्लेउवरकाइज्जंति के०) यावत् मिथ्यादर्शन शल्यने विषे प्रवर्त्तता कहियें, माटें असंज्ञियाने पण पापकर्मनो उपारूयान विरतिने अभावें कहियें. हवे शिष्य पूछे छे के, एवंभूतएटले वेदांतवादी एम कहे छे के,जे पुरुषछे ते पुरुष पणुंज पामे, अने जे पशु होय ते पशु पणुंज पामे,तेम आंहीं जैनशासनने विषे पण जे संज्ञिया ते संज्ञी पणुंज पामे अने जे असंज्ञीया ते असंज्ञी पणुंज पामे छे. किंवा बीजी कोइ रीतें छे? ते कहो. एम पूछे बते शिष्य प्रत्यें आचार्य कहेछे. (सवजोणियाविखलुसत्तासन्निणोहुज्जा के०) निश्चें सर्वयोनिक सत्व एटले जीव संज्ञिया पणे होइने (असन्निणोहोंति के०) असंज्ञिया पण होय, (असन्निणोहुज्जासन्निणोहोंति के०)असंज्ञिया होइने संज्ञिया होय (होच्चासन्नीअडुवाअसन्नी के०) एम संज्ञी अथवा असंज्ञी होय एटले वेदांतवादिनो पक्ष निराधार थयो, तथा कोइ एक संज्ञी पण तेज भवमां मूर्छादिकनी अवस्थायें असंज्ञी थाय एम एकज भवमांहे संज्ञीया मांहेथी असंज्ञीउ थाय, मूर्छाने अभावें ते वली संज्ञीउ पण थाय, जो एकज भवमां एमछे तो जन्मांतरनुं केवुंज शुं! जेम कोइ एक जागतो मनुष्य निद्राना उदय थकी सुतो थको वली निद्राने अभावें जागतोज कहेवाय. ए दृष्टांत संज्ञी असंज्ञी उपर जाणवो. (तछसेअविविचित्ता के०) त्यां ते जीवें पूर्वेनुं कर्म जे बांध्युंछे. अथवा उदय आव्युंछे तेने पृथक् अणकीधे, तथा (अविधूणित्ता के०) अण खपावे, तथा (असंमुच्चित्ताके०) अणछेदे, (अणणुतावित्ता के०) अण तपावे, थके (असन्निकाया उवासंन्निकायंसंकमंति के०) पहेलो भंग, असंज्ञिकाय थकी संज्ञिकायें संक्रमे. (स

न्निकायाउवाअसन्निकायंसंकमंतिके०) बीजो भंग, संज्ञिकाय थकी असंज्ञिकायें संक्रमे, (सन्निकायाउवासन्निकायंसंकमंति के०) त्रीजो भंग, संज्ञिकाय थकी संज्ञिकायें संक्रमे. (असन्निकायाउवाअसन्निकायंसंकमंति के०) चोथो भंग, असंज्ञिकाय थकी असंज्ञिकायें संक्रमे, एवं चतुर्भंग जाणवा. (जेएएसन्निवाअसन्निवा के०) जे ए संज्ञिया अथवा असंज्ञीया छे (सवेतेमिछायारा के०) ए सर्व अपच्चरकाणीने भावें मिथ्याचार वाला जाणवा. ते सर्व जीवने विषे नित्य अत्यंत शठ एटले मूर्ख पण छता प्राणीघातने विषे जेनु चित्तछे तथा प्राणिउने दंभना करनार केवाय. यावत् मिथ्यादर्शन शल्य पर्यंत अढारे पापस्थानकना करनार ते केवाय. ए रीतें भगवंत श्री महावीरदेवें कह्युंके जे असंयति अविरति अप्रतिहत प्रत्याख्यान पापकर्म वाला, तथा सक्रिय असंवर एकांत दंभना करनारा, एकांत बाल, एकांत सुता कह्या. ते बाल अविचारित मन वचन अने कायाना परिणाम वाला छतां जे पापकर्म स्वप्नांतरें पण न देखे, तेनुं पण कर्म तेने लागे ॥१०॥

॥ दीपिका–इति अमुना प्रकारेण । खलु वाक्यालंकारे । ते पृथ्वीकायादयोऽसंज्ञिनः संतोऽहर्निशं प्राणातिपाते कर्तव्ये तद्योग्यतया तदसंप्राप्तावपि ग्रामघातकवडुपाख्यायंते यावन्मिथ्यादर्शनशल्ये उपाख्यायंते।तेच कर्मवशात्सर्वयोनिकाअपि जीवाः पर्याप्त्यपेक्षया यावन्मनःपर्याप्तिर्न निष्पद्यते तावत्करणतोऽसंज्ञिनः संतः पश्चात्संज्ञिनोभवंत्येकस्मिन्नेव जन्मनि । अन्यजन्मनितु एकेंद्रियादयोपि मनुष्यादयः स्युः।परं भव्याभव्यत्ववन्न नियमः । भव्याभव्यत्वेहि न कर्मायत्ते अतोन ताभ्यां व्यभिचारः । ये पुनः कर्मवशगास्ते पुनः संज्ञिनोभूत्वाऽन्यत्रासंज्ञिनः स्युः असंज्ञिनश्च भूत्वा संज्ञिनइति । तत्र यत्कर्म बद्धमस्ति तस्मिन् सत्येव तदविविच्यापृथक् कृत्वाऽविधूयाऽसमुच्छिद्याऽननुताप्याएते चत्वारोपि शब्दाएकार्थिकाः । तदेवमत्यक्तकर्माणोऽसंज्ञिकायात्संज्ञिकायं संक्रामंति संज्ञिकायादसंज्ञिकायंच संज्ञिकायात्संज्ञिकायं असंज्ञिकायादसंज्ञिकायंच । एवं चत्वारोभंगाः । उपसंहरन्नाह । (जेएतेजीवत्ति) ये एते पर्याप्ताअपर्याप्ताः संज्ञिनोऽसंज्ञिनोवा सर्वे ते मिथ्याचाराअविरतत्वात् तथा सर्वधर्मेषु नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंभाः स्युरेवंभूताश्च प्राणातिपातादिषु सर्वेष्वप्याश्रवद्वारेषु वर्ततइति (एवंखलुत्ति) एवमुक्तनीत्या खलु निश्चितं भगवता आख्यातमित्यादिना पूर्वोक्तमनुवदति । यावत्पापं कर्म क्रियतइति ॥ १० ॥

॥ टीका–तदेवं विप्रकृष्टविषयमपि कर्मबंधं प्रदर्श्योपसंजिहीर्षुराह । (इतिखलुतेइत्यादि) इति रूपप्रदर्शने।खलुशब्दोवाक्यालंकारे विशेषणे वा। किं विशिनष्टि । ये इमे पृथिवीकायादयोऽसंज्ञिनः प्राणिनस्तेषां नतर्को,नसंज्ञा, नमनो, नवाक्, नस्वयं कर्तुं नान्येन

कारयितुं न कुर्वंतमनुमंतुं वा प्रवृत्तिरस्ति। ते चाऽहर्निशममित्रभूतामिथ्यासंस्थितानित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमाडुःखोत्पादनतया यावत्परितापनपरिक्लेशादेरप्रतिविरताश्चसंज्ञिनो पि संतोऽहर्निशं सर्वकालमेव प्राणातिपाते कर्तव्ये तद्योग्यतया तदसंप्राप्तावपि ग्रामघा तकवडुपाख्यायंते यावन्मिथ्यादर्शनशल्यउपाख्यायंतइति । उपाख्यानं वा संज्ञिनोपि । योग्यतया पापकर्मानिवृत्तेरित्यभिप्रायः । तदेवं दर्शिते दृष्टांतद्वये तत्प्रतिबद्धमेवार्थशेषं प्रतिपादयितुं चोद्यं क्रियते ।तद्यथा। किमेते सत्वाः संज्ञिनश्च भव्याभव्यत्ववन्नियतरूपा एवाहोस्वित्संज्ञिनोभूत्वाऽसंज्ञित्वं प्रतिपद्यंते।असंज्ञिनोपि संज्ञित्वमित्येवं चोदिते सत्या हाचार्यः (सवजोणियाविखलुइत्यादि) यदिवा संत्येवंभूतावेदांतवादिनोयएवं प्रतिपादयंति पुरुषः पुरुषत्वमश्नुते पशुरपि पशुत्वमिति। तदत्रापि संज्ञिनः संज्ञिनएव भविष्यंत्यसंज्ञिनो प्यसंज्ञिनइति । तन्मतव्यवच्छेदार्थमाह ।(सवजोणियावीत्यादि) यदिवा किं संज्ञिनोऽसंज्ञि कर्मबंधं प्राक्तने सत्येव कर्मणि कुर्वंति किंवा नेत्येवमसंज्ञिनोपि संज्ञिकर्मबंधं प्राक्तने स त्येव कुर्वंत्याहोस्विन्नेत्येतदाशंक्याह । (सवजोणियावीत्यादि) सर्वायोनयोयेषां ते सर्वयो नयः संवृतविवृतोभयशीतोष्णभयसचित्ताऽचित्तोभयरूपायोनयइत्यर्थः । तेच नारकतिर्यङ् नरामराअपिशब्दाद्विशिष्टैकयोनयोपि । खल्विति विशेषणे । एतद्विशिनष्टि । तज्जन्मापे क्षया सर्वयोनयोपि सत्वाः पर्याप्त्यपेक्षया यावन्मनःपर्याप्तिर्न निष्पद्यते तावदसंज्ञिनः करणतः संतः पश्चात्संज्ञिनोभवंत्येकस्मिन्नेव जन्मन्यन्यजन्मापेक्षयात्वेकेंद्रियादयो पि संतः पश्चान्मनुष्यादयोभवंतीति । तथाभूतकर्मपरिणामात् पुनर्भव्याभव्यत्ववन्न व्यव स्थानियमोभव्याभव्यत्वे हि न कर्मायत्ते अतोनानयोर्व्यभिचारः।ये पुनः कर्मवशगा स्ते संज्ञिनोभूत्वाऽसंज्ञिनोभवंत्यसंज्ञिनश्च भूत्वा संज्ञिनइति वेदांतवादिमतस्य प्रत्यक्षेणैव व्यभिचारः समुपलभ्यते । तद्यथा । संज्ञ्यपि कश्चिन्मूर्छाद्यवस्थायामसंज्ञित्वं प्रतिपद्यते तदपगमेतु पुनः संज्ञित्वमिति जन्मांतरे तु सुतरां व्यभिचारइति । तदेवं संज्ञ्यसंज्ञिनोः कर्मपरतंत्रत्वादन्योन्यानुगतिरविरुद्धा । यथा प्रतिबुद्धोनिद्रोदयात्स्वपिति सुप्तश्च प्रति बुध्यते इत्येवं स्वापप्रतिबोधयोरन्योन्यानुगमनमेवमिहापीति । तत्र प्राक्तनं कर्म यडुदीर्णं यच्च बद्धमास्ते तस्मिन् सत्येव तदविविच्यापृथक्कृत्य तथाऽविधूयाऽसमुच्छिद्याऽननुता प्यैते चाविविच्यादयश्चत्वारोप्येकार्थिकाअवस्थाविशेषं चाश्रित्य भेदेन व्याख्यातव्याः। तदेवमपरित्यक्तप्राक्तनकर्मणोऽसंज्ञिकायात्संज्ञिकायं संक्रामंति तथा संज्ञिकायादसंज्ञिकाय मिति । तथा नारकाः सावशेषकर्माणएव नरकाडुधृत्य प्रतनुवेदनेषु तिर्यक्षूत्पद्यंते एवं दे वाअपि प्रायशस्तत्कर्मशेषतया शुभस्थानेपूत्पद्यंते इत्यवगंतव्यं ।अत्र चतुर्भंगकसंभवं सूत्रे णैव दर्शयति । सांप्रतमध्ययनार्थमुपसंजिघृक्षुः प्राक् प्रतिपन्नमर्थं निगमयन्नाह । (जेए तेसेत्यादि) ये एते सर्वाभिरपि पर्याप्तिभिः पर्याप्ताः लब्ध्या करणेन च द्विकलाभापर्या

स्थानक जे वधनुं कारण ते स्थानक थकी असंकिणो के० शंका पामे नहीं. ॥ ६ ॥ वली एहिज कहेछे के, ते मृगादिक जीव परियाणिआणि के० परित्राण जे रक्षानुं स्थानक तेथी संकंता के० शंकाता अने पासिताणि असंकिणो के० पाशना स्थानक थकी अण शंकाता, असुाणभयके० अजाणपणे अथवा भयें करी, संविग्गा के० व्याकुल थका संपलिंति तहिं तहिं के० तेहिज तेहिज स्थानके जाय. ज्यां त्यां पाशादिक मांहेज पडे ॥ ७ ॥ वली एज दृष्टांत दिपावेछे. अह के० अथ एटले हवे तंके० ते मृगादिक जीव ते वागुरादिकनो जे बज्झंपवेज्ज के० बंधपाशादिकनां स्थानक ने अहेबज्झस्सवाव ए के० नीचे अथवा उपर आक्रमीने जाय. जो एम करे तो ते मुच्चेज्जपयपासाउके० पगना पाशथकी मूकाय एटले बुटो थाय परंतु ते अनर्थ परिहरवानो उपाय तंके० ते, मंदे के० मंद अज्ञानी, णदेहएके० नदेखे. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—अथाज्ञानिमतमाह । (जविणोत्ति) । यथा जविनोवेगवंतः संतोमृगाः परित्राणेन शरणेन वर्जितारहिताः । अथवा परित्राणं वागुरादिबंधनं तेन तर्जिताभयं प्रापिताः संतोऽशंकितानि स्थानानि शंकंते भयभ्रांताः संतोनिर्भयान्यपि स्थानानि सभयतया मन्यंते । शंकितानि च वागुरादीन्यशंकमानाः संपर्यंयंतइत्युत्तरसूत्रेण संबंधः ॥ ६ ॥ परित्राणं संजातं येषु तानि परित्राणितानि शरभूतानि स्थानानि मूढत्वात् शंकमानाः सभयानि मन्यमानाः पाशितानि पाशयुक्तान्यशंकमानास्तेषु शंकाम कुर्वाणाअज्ञानेन भयेन च (संविग्गत्ति) सम्यक्व्याप्तास्तत्र तत्र वागुरादिके बंधने संपर्यंयंते समेकीभावेन परिसमंतादयंते गच्छंतीति ॥ ७ ॥ इममेव दृष्टांतमाश्रित्याह । (अहेति) । अथानंतरमसौ मृगस्तत् (बज्झमिति) बंधोबंधनकारणं रज्जुवागुरादिबंधं वा यदि लवेतोपरिगच्छेत वा अथवा बंधस्याधोव्रजेत् तदा पदपाशात् वागुरादिबंधनान्मुच्यते । एवं संतमपि तमनर्थपरिहरणोपायं मंदोजडोन देहतीति न पश्यतीति ॥ ८ ॥

॥ टीका—सांप्रतमज्ञानिमतं दूषयितुं दृष्टांतमाह । (जविणोइत्यादि) यथा जविनोवेगवंतः संतोमृगाआरण्याः पशवः परिसमंतात् त्रायते रक्षतीति परित्राणं तेन वर्जिता रहिताः परित्राणविकलाइत्यर्थः । यदिवा परित्राणं वागुरादिबंधनं तेन तर्जिताभयं ग्राहिताः संतोभयोद्भ्रांतलोचनाः समाकुलीभूतांतःकरणाः सम्यक्विवेकविकलाअशंकनीयानि कूटपाशादिरहितानि स्थानान्यशंकार्हाणि तान्येव शंकंते अनर्थोत्पादकत्वेन गृण्हंति । यानि पुनः शंकार्हाणि शंका संजाता येषु योग्यत्वात्तानि शंकितानि शंकायोग्यानि वागुरादीनि तान्यशंकिनस्तेषु शंकामकुर्वाणास्तत्र तत्र पाशादिके संपर्यंयंतइत्युत्तरेण संबंधः ॥६॥ पुनरप्येतदेवाऽतिमोहाविष्करणायाह । (परियाणीत्यादि) परित्रायते इति परित्राणं तज्जातं येषु तानि । यथा परित्राणयुक्तान्येव शंकमानाअतिमूढत्वाद्विपर्यस्तबु

मकाः अन्योन्यसंक्रमनाजः संज्ञिनोऽसंज्ञिनोवा सर्वेप्येते मिथ्याचाराप्रत्याख्यानित्वादि त्यनिप्रायः । तथा सर्वजीवेष्वपि नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमाजवंतीत्येवंनूताश्च प्राणातिपाताद्येषु सर्वेष्वप्याश्रव द्वारेषु वर्ततइति ॥ तदेवं व्यवस्थिते यत्तदुक्तं चोदकेन तद्यथेहाविद्यमानाऽशुजयोगसंजवे कथं पापं कर्म बध्यतइत्येतन्निराकृत्य विरतेरजावात्तद्योग्यतया पापकर्मसद्भावं दर्शयति । (एवं खल्वित्यादि) एवमुक्तनीत्या । खल्ववधारणे ऽलंकारे वा । जगवता तीर्थकृतेत्यादिना यत्प्राक् प्रतिज्ञातं तदनुवदति । यावत्पापं च कर्म क्रियतइति ॥ १० ॥

चोदक से किंकुवं किंकारवं कहं संजयविरयपडिहयपच्चखायपावकम्मे जवइ आचार्यआह तब खलु जगवया बज्जीवणिकायहेउं पण्णत्ता तं जहा पुढवीकाइया जाव तसकाइया से जहा णामए मम अस्सातं दंमेणवा अट्ठीणवा मुट्ठीणवा लेलूणवा कवालेणवा आतोडिज्जमाणस्सवा जाव उद्दविज्जमाणस्सवा जाव लोमुक्खणणमायमविहिंसाकारं दुक्खं जयं पडिसंवेदेमि इच्चेवं जाणं सवे पाणा जाव सवे सत्ता दंमेणवा जाव कवालेणवा आतोडिज्जमाणेवा हम्ममाणेवा तज्जिज्जमाणेवा तालिज्जमाणेवा जाव उद्दविज्जमाणेवा जाव लोमुक्खणणमायमविहिंसाकारं दुक्खं जयं पडिसंवेदेति एवं णच्चा सवे पाणा जाव सवे सत्ता न हंतवा जाव ण उद्दवेयवा एस धम्मे धुवे णिइए सासए समिच्चलोगं खेयन्नेहिं पवेदिए एवं से जिक्खू विरते पाणाइवायातो जाव मिच्छादंसणसल्लाउ से जिक्खू णो दंतपक्खालेणं दंतेपक्खालेज्जा णो अंजणं णो वमणं णो धूवणं तंपि न आदते से जिक्खू अकिरिए अलूसए अकोहे जाव अलोजे उवसंते परिनिवुडे एस खलु जगवया अक्खाए संजयविरयपडिहयपच्चखायपावकम्मे अकिरिए संवुडे एगंतपंडिएयावि जवइ त्तिबेमि ॥ इति बीयसुयखंधस्स पच्चखाण किरियाणाम चउत्थं मज्झयणं सम्मत्तं॥११॥

अर्थ-(चोदक के०) हवे वली शिष्य पूछे छे के हे जगवन् ! (सेकिंकुवंकिंकारवंकहंसंजय के०)ते जीव केवां अनुष्ठान करतो,केवां अनुष्ठान करावतो,केवा प्रकारें संयत (विरय के०) विरति (पडिहयपच्चखायपावकम्मेजवइ के०) प्रतिहत प्रत्याख्यान पापकर्मी होय, ते कहो? एवुं सांजलीने (आचार्याह के०) आचार्य बोल्या. (तबखलुजगवयाबज्जी

वणिकायहेउंपसुत्ता के०) त्यां संयत पणाने नावें जगवत् श्री वीतराग देवें ब जीवनि काय कारण कह्याछे (तंजहा के०) ते कहेछे. (पुढवीकाइयाजावतसकाइया के०) पृथिवी कायथी मांमीने यावत् त्रसकाय पर्यंत छे (सेजहाणामए के०) तेने जेम नाम एवो संजाव नायें (ममअस्सातं के०) मुजने अशाता उपजे छे ते प्रमाणें दंमें करी हणतां थकां अस्थियें करी, मुष्टियें करी, पाषाणें करी, कपाल एटले ठींकरीयें करी ताडता थका. यावत् उद्वेग करता थका, एटले जीव काया थकी रहित करता थका, एक रोम उखेड वा मात्रें करीपण हिंसाकारक दुःख तथा जय हुं वेडुं. ए रीते जाणवुं के, सर्व प्राणी यावत् सर्व सत्वने महारी पेठें दंमना प्रहारें करी, कपाल एटले ठींकरीयें करी आक्रोश करावता ताडता थका, अथवा हणता थका, तर्ज्जनाकरता थका, यावत् उद्वेग करता थका, एक रोम मात्र उखेडवुं एवुं पण हिंसाकारी, कारण ते थकी ते जीवो पण दुःख अने नय एवुंज वेदे (एवंणच्चा के०)एम जाणीने सर्वप्राणी यावत् सर्व सत्वने हणवा नहीं, यावत् उपडववा नहीं, ए प्राणीनो दया लक्षण धर्म, ते ध्रौव, नित्य, शाश्वतो, एवो चउद रज्ज्वात्मक लोक जाणीने आलोचीने षट्जीवनिकायरूप दुःख समुद्रमां पड्यो ते पर जीवना दुःखना जाण, एवा खेदज्ञ श्रीनगवंत तीर्थंकर देव तेणे नांख्यो छे. (एवंसेनिरकू के०) एवुं जाणीने ते साधु प्राणातिपात मृषावादादिक यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य ए अढार पापस्थानक थकी निवृत्त्यो, तथा ते जिक्षु दंत धावनें करी दंत प्र क्षाले नहीं एमज अंजन वमन विरेचनादिकक्रिया न करे, धूपन एटले वस्त्रादिकनुं धूपन न करे (तंपिनआदते के०) एटलांवानां पोतें आदरे नहिं ते जिक्षु चारित्रिउक्रिया रहित ठजीवनिकायनो अहिंसक तथा क्रोध रहित यावत् मान, माया, लोज रहित उ पशांत एटले समाधिवंत परिनिवृत्त एवो ठतो होय तेनें निश्चें संयत विरति प्रतिहत पापकर्मा एटले पञ्चरकाणें करी पापकर्मने हणनार, क्रिया रहित संवृत्त, एकांत पंमित एम जगवंतें कह्योछे त्तिवेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ ११ ॥ ए श्री सुयगडांग सूत्रना बीजा श्रुतस्कंधनें विषे प्रत्याख्यान क्रियानामा चोथा अध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो ॥ ११ ॥

॥ दीपिका-अथ संजातवैराग्यः शिष्यः प्रश्नं करोति (सेकिंकुव्वमित्यादि) अथ किं कुर्वन् किंवा कारयन् कथं वा संयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यानपापकर्मा जंतुः स्यात्?। आचार्यआह। (तब्बखलुत्ति। तत्र संयतत्वसद्भावे। जगवता षड्जीवनिकायाहेतवः प्रज्ञप्ताः। तद्यथा। पृथिवीकायाः यावत्त्रसकायाः। यथाऽविरतस्य षड्जीवनिकाया नरकादिगतिहेतुत्वेनोक्तास्तथा विरतस्य तएव मोक्षहेतवोजवंति। यदुक्तं। "जेजत्ति

यायहेऊ, नवस्सते चेव वत्तिया मोरके ॥ गणणाईया लोया, दोसहवि पुसा नवे तुल्लाइति (सेजहत्ति) तद्यथा नाम ममासातं डुःखं दंमादिना नोद्यमानस्य पीड्यमानस्य नवति रोमोत्खननमात्रमपि डुःखमहं प्रतिसंवेदयामि अनुनवामि ततइत्येवं जानीहि त्वं सर्वे पि जीवादंमादिना ताड्यमानाडुःखिनः स्युः रोमोत्खननमात्रमपि डुःखमनुनवंति । एवं ज्ञात्वा सर्वे प्राणान हंतव्याः (एसधम्मेत्ति) एषधर्मोध्रुवोनित्यः परिणामानित्यतायाम पि सत्यां स्वरूपाच्यवनात्तथा सूर्योजतिरिव शश्वन्नवनात् शाश्वतः समेत्यावगम्य लोकं चतुर्दशरऊुमितं खेदज्ञैः सर्वज्ञैः प्रवेदितः । तदेवं स निक्कुर्निवृत्तः सर्वाश्रवेन्योदंतप्रक्षा लनं न कुर्यात् न नेत्रांजनं न वमनविरेचनादि वस्त्रधूपनंच न आदत्ते स निक्कुः क्रोधा दिरहितोऽलूशकोऽहिंसकोयावदेकांतेन पंमितोनवतीति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ११ ॥ इति सूत्रकृतांगदीपिकायां द्वितीयश्रुतस्कंधस्य चतुर्थाध्ययनं समाप्तम् ॥ ४ ॥

॥ टीका–तदेवमप्रत्याख्यानिनः कर्मसंनवात्तत्संनवाच्च नारकतिर्यङ्नरामरगतिलक्षणं संसारमवगम्य संजातवैराग्यश्चोदकआचार्यं प्रति प्रवणचेताः प्रश्नयितुमाह । (सेकिंकुव्व मित्यादि) अथ किमनुष्ठानं स्वतः कुर्वन् किंवा परं कारयन् कथंवा केन प्रकारेण संयत विरतप्रतिहतपापकर्मा जंतुर्नवति । संयतस्य हि विरतिसद्भावात्सावद्यक्रिया निवृत्तिस्तन्निवृ त्तेश्च कृतकर्मसंचयाजावस्तदनावान्नरकादिगत्यनावइत्येवं पृष्टे सत्याचार्यआह । (तत्रख लु इत्यादि) तत्र संयमसद्भावे षड्जीवनिकायान्नगवता हेतुत्वेनोपन्यस्ताः । यथा प्रत्याख्या नरहितस्य षड्जीवनिकायाः संसारगतिनिबंधनत्वेनोपन्यस्ताएवं तएव प्रत्याख्यानिनोमो क्षाय नवंतीति । तथा चोक्तं । "जेजेत्तियायहेऊ, नवस्सते चेव वत्तिया मोरके॥ गणणाईया लोगा, दोसहवि पुसहा नवे तुल्लाइत्यादि" । इदमुक्तं नवति । यथात्मनोदंमाद्युपघाते डुः खमुत्पद्यते एवं सर्वेषामपि प्राणिनामित्यात्मोपमया तडुपघातान्निवर्तते एषधर्मः सर्वापा यत्राणलक्षणोध्रुवोऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरस्वनावोनित्यइति परिणामानित्यतायामपि सत्यां रूपाद्यच्यवनात् तथा आदित्योजतिरिव शश्वन्नवनाच्छाश्वतः परैः क्वचिदप्यस्खलितोयुक्ति संगतत्वादित्यनिप्रायोयमेवंनूतश्च धर्मः समेत्यावगम्य लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं खेदज्ञैः सर्वज्ञैः प्रवेदितस्तदेवं स निक्कुर्निवृत्तश्च सर्वाश्रवद्वारेन्योदंतप्रक्षालनादिकाः क्रियाः कुर्वन् सावद्यक्रियायाअनावादक्रियोऽक्रियत्वाच्च प्राणिनामलूषकोऽव्यापादकोयावदेकांतेनैवासो पंमितोनवति । इतिः परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् नयाः प्राग्वद्व्याख्येयाः ॥११॥ समाप्तं प्रत्याख्यानाख्यं चतुर्थमध्ययनमिति ॥ ४ ॥

अथ पंचमाध्ययनप्रारंभः

हवे चोथा अध्ययननें विषे प्रत्याख्यान क्रिया कही, तेवा आचार वालानें सम्यक् कहेवाय, ते कारणमाटें अनाचारनो त्याग करवो अने आचार अंगीकार करवो; माटें आचार श्रुत, अथवा अनाचार श्रुत, एवे नामें पांचमुं अध्ययन कहियें ढैयें. ॥

आदाय बंभचेरं च, आसुपन्ने इमं वइं ॥ अस्सिं धम्मे अणायारं, नाय रेज्ज कयाइवि ॥ १ ॥

अर्थ-(आदायबंभचेरंच के०) ब्रह्मचर्य ग्रहण करीनें, (आसुपन्नेइमंवइं के०) आशुप्रज्ञ एटले विवेकी पुरुष, ए जे आगल कहेशे तेवी वाणी एटले वचन एम न कहे के, आ जगत् शाश्वत ढे. इत्यादिक नकहे (अस्सिधम्मेअणायारं के०) ए धर्मने विषे प्रवर्त्ततो, अनाचार जे सावद्यानुष्ठानरूप, (नायरेज्जकयाइवि के०) तेनें क्यारे पण आचरे नहीं॥१॥

॥ दीपिका–अथ पंचमाध्ययनमारन्यते तस्यानाचारवर्जनकथनादनाचारश्रुतमिति नाम । अथवा आचारप्रतिपादकत्वादाचरश्रुतमिति नाम । तस्येदं सूत्रं आदाय बंभचेरमिति ब्रह्म सत्यानुष्ठानं चर्यते सेव्यते यस्मिन् तद्ब्रह्मचर्यं जैनेंद्रशासनं आदाय गृहीत्वा आशुप्रज्ञः पंमितः इमां वक्ष्यमाणां वाचं इदं जगत् शाश्वतमेवेत्यादिकां नाचरेन्न वदेत् तथास्मिन् धर्मे स्थितोऽनाचारं नाचरेत्कदाचिदपि ॥ १ ॥

॥ टीका–सांप्रतं पंचममारन्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहानंतराध्ययने प्रत्याख्यानक्रियोक्ता । सा चाचारसंव्यवस्थितस्य सतोभवतीत्यतस्तदनंतरमाचारश्रुताध्ययनमभिधीयते । यदिवा नाचारपरिवर्जनेन सम्यक् प्रत्याख्यानमस्खलितं भवतीत्यतोनाचारश्रुताध्यनमभिधीयते । यदिवा प्रत्याख्यानयुक्तः सन्नाचारवान् भवतीत्यतः प्रत्याख्यानक्रियानंतरमाचारश्रुताध्ययनं तत्प्रतिपक्षभूतमनाचारश्रुताध्ययनंवा प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेनाऽऽयातस्यास्याध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोग द्वाराणि भवंति । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयं । तद्यथा । अनाचारं प्रतिषिध्य साधूनामाचारः प्रतिपाद्यते । नाम निष्पन्नेतु निक्षेपे आचारश्रुतमिति द्विपदं नाम । तदनयोर्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । " णामं ठवणादविए दव्वे भावेय होंति नायव्वा ॥ एमेवय सुत्तस्सा, निक्खेवो चउव्विहो होंति,,॥१॥ (णामंठवणेत्यादि)तत्राचारोनाम स्थापना द्रव्यभावभेदभिन्नश्चतुर्धा द्रष्टव्यः । एवं श्रुतमपीति।तत्राचारश्रुतयोरन्यत्राभिहितयोर्लाघवार्थमतिदेशं कुर्वन्नाह । "आयारसुयं भणियं,

वज्जेयव्वा सया अणायारा ॥ अबहुसुयस्स होज्जा, विरहेणाइब जइयव्वे,,॥१॥(आचारसुयमि त्यादि) आचारश्च श्रुतं च आचारश्रुतं। दंडैकवज्ञावस्तडुनयमपि जणितमुक्तं। तत्राचारः क्षुल्लिकाचारकथायामनिहितः श्रुतं तु विनयश्रुते। जावार्थस्तु वर्जयितव्याः परिहार्याः सदा सर्वकालं यावज्जीवं साधुरनाचारास्तांश्चाबहुश्रुतोऽगीतार्थोन सम्यक् जानातीत्यतस्तस्य विराधना जवेत्। बहुशब्दोऽवधारणे। बहुश्रुतस्यैव विराधना न गीतार्थस्येत्यतोत्र सदा चारे तत्परिज्ञानेच यतितव्यं।तथाहि। मार्गज्ञः पथिकः कुमार्गवर्जनेन नापथगामी ज वति न चोन्मार्गदोषैर्युज्यते एवमनाचारं वर्जयन्नाचारवान्जवति न चानाचारदोषैर्युज्य तइत्यतस्तत्प्रतिषेधार्थमाह। एयस्स पडिसेहो, इहमज्ञयणं मिहेति नायव्वा ॥ तोअणगार सुयं इयि, होई नामंतु एयस्स ॥ २ ॥ (एयस्सइत्यादि) एतस्यानाचारस्य सर्वदोषास्पदस्य डु र्गतिगमनैकहेतोः प्रतिषेधोनिराकरणं सदाचारप्रतिपत्त्यर्थमिहाध्ययने ज्ञातव्यः। सच पर मार्थतोऽनगारकारणमिति। ततः। केषांचिन्मतेनैतस्याध्ययनस्याऽनगारश्रुतमित्येतन्नाम जवतीति। गतोनामनिष्पन्नो निक्षेपस्तदनंतरं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयि तव्यं। तच्चेदं। (आदायबंनचेरमित्यादिश्लोकः) अस्य चानंतरपरंपरसूत्रैः संबंधोवाच्य स्तत्रानंतरसूत्रेण सहायमेकांतपंमितोजवति। कथमादाय ब्रह्मचर्यमिति। परंपरसूत्रसंबं धस्त्वयं बुध्येत। तथा त्रोटयेद्बंधनं। किंकृत्वेत्याह। आदाय ब्रह्मचर्यमित्येवमन्यैरपि सूत्रैः संबधोवाच्योर्थस्त्वयं। आदाय गृहीत्वा किं तद्ब्रह्मचर्यं सत्यतपोजूतदयेंडियनिरोधलक्षणं तच्चर्यतेऽनुष्ठीयते यस्मिन् तन्मौनींद्रप्रवचनं ब्रह्मचर्यमित्युच्यते। तदादायाऽऽशुप्रज्ञः पटुप्र ज्ञः सदसद्विवेकज्ञश्च। क्त्वाप्रत्ययस्योत्तरक्रियासव्यपेक्षित्वात्तामाह। इमां समस्ताध्ययनेना पि धीयमानां प्रत्यक्षासन्नजूतां वाचं इदं शाश्वतमेवेत्यादिकां कदाचिदपि नाचरेन्नाभिदध्यात् तथाऽस्मिन्धर्मे सर्वज्ञप्रणीते व्यवस्थितः सन्नानाचारं सावद्यानुष्ठानरूपं न समाचरेन्न वि दध्यादिति संबंधः। यदिवाऽऽशुप्रज्ञः सर्वज्ञः प्रतिसमयं केवलज्ञानदर्शनोपयोगित्वात्तत्संबंधि नि धर्मे व्यवस्थितइमां वक्ष्यमाणां वाचमनाचारं च कदाचिदपि नाचरेदितिश्लोकार्थः ॥१॥

अणादीयं परिन्नाय, अणवदग्गेति वा पुणो ॥ सासयमसासए वा, इ ति दिठिं न धारए ॥ २ ॥

अर्थ–हवे आचार अने अनाचार देखाडवानी इछायें यथावस्थित लोकस्वरूप प्रकटन पूर्वक कहेले. (अणादीयंपरिन्नाय के०) ए चौद रज्ज्वात्मक लोक ते अनादि एटले नथी जेनी आदि एटले आदि रहितले, एवुं जाणीनें (अणवदग्गेतिवापुणो के०) वली जेनो अंत नथी, एवुं जाणीनें, (सासयमसासएवा के०) एकांत शाश्वत, अय

वा एकांत अशाश्वत, (इतिदिठिंनधारए के०) एवी दृष्टि धरे नहीं, एटले पंमित जन एवो पक्ष आदरे नहीं ॥ २ ॥

॥ दीपिका—(अणादीयमिति) अनादिकं जगत्प्रमाणैः सांख्याभिप्रायेण परिज्ञाय अनवदग्रमनंतं च तन्मतएव ज्ञात्वा सर्वमिदं शाश्वतं बौद्धाभिप्रायेणवाऽशाश्वतं इति दृष्टिं न धारयेत् एनं पक्षं नाश्रयेत् ॥ २ ॥

॥ टीका—तत्रानाचरं नाचरेदित्युक्तं । अनाचारश्च मौनींद्रप्रवचनादपरोभिधीयते मौनींद्रप्रवचनं तु मोक्षमार्गहेतुतया सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकं। सम्यग्दर्शनंतु तत्त्वार्थ श्रद्धानरूपं । तत्त्वं तु जीवाजीवपुण्यपापाश्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षात्मकं तथा धर्मा धर्माकाशपुजलजीवकालात्मकं द्रव्यं नित्यानित्यस्वभावं सामान्यविशेषात्मकोऽनाद्यप र्यवसानश्चतुर्दशरज्ज्वात्मकोलोकस्तत्त्वमिति । ज्ञानंतु मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेव लस्वरूपं पंचधा । चरित्रं, सामायिकं, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धिय, सूक्ष्मसंपराय, यथाख्यातरूपं पंचधैव मूलोत्तरगुणभेदतोवा नैकधेत्येवं व्यवस्थिते मौनींद्रप्रवचनेन कदाचिदनीदृशं जगदिति कृत्वाऽनाद्यपर्यवसाने लोके सति दर्शनाचारप्रतिपक्षभूतमना चारं दर्शयितुकामश्चाचार्योयथावस्थितलोकस्वरूपोद्घट्टनपूर्वकमाह (अणादीयमित्यादि) नास्य चतुर्दशरज्ज्वात्मकस्य लोकस्य धर्माधर्मादिकस्यवा द्रव्यस्यादिः प्रथमोत्पत्तिर्विद्य तइत्यनादिकस्तमेवंभूतं परिज्ञाय प्रमाणतः परिछिद्य तथानवदग्रमपर्यवसानंच परिज्ञा याभयात्मकव्युदासेनैकनयदृष्ट्यावधारणात्मकं प्रत्ययमनाचारं दर्शयति शश्वद्भवतीति शाश्वतं नित्यं सांख्याभिप्रायेणाप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावं स्वदर्शनेचानुयायिनं सामा न्यांशमवलंब्य धर्माधर्माकाशादिष्वनादित्वमपर्यवसानत्वं चोपलभ्य सर्वमिदं शाश्वत मित्येवंभूतां दृष्टिं नावधारयेदिति एवं पक्षं न समाश्रयेत् । तथा विशेषपक्षमाश्रित्य वर्त्तमाननारकान् समुत्सेत्स्यंतीत्येतच्च सूत्रमंगीकृत्य यत्सत्तत्सर्वमनित्यमित्येवंभूतबौद्ध दर्शनाभिप्रायेण च सर्वत्र शाश्वतमनित्यमित्येवंभूतांच दृष्टिं न धारयेदिति ॥ २ ॥

एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जई॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणा यारं तु जाणए ॥ ३ ॥

अर्थ—हवे एनुं कारण कहेछे. सर्वलोक नित्यज छे अथवा अनित्यज छे, (एएहिंदो हिंठाणेहिं के०) ए बे स्थानकें करीनें (ववहारोणविज्जई के०) लोकनो व्यवहार न प्रवर्त्ते एटले आ लोक, तथा परलोक संबंधि कार्य जे प्रवृत्ति निवृत्ति लक्षण, एवो व्यव

हार प्रवर्त्ते नहीं. (एएहिंदोहिंगणेहिंश्रणायारंतुजाणए के०) तथा ए बेहु स्थानकें अ नाचार जाणवो, ए कारणें एकांत पक्ष आदरवो नहीं ॥ ३ ॥

॥ दीपिका-(एएहिंति) एताभ्यां एकांतं नित्यं, एकांतमनित्यंचेति द्वाभ्यां स्थानाभ्यां व्यवहारोन विद्यते । एकांतनित्ये एकांतानित्येच वस्तुनि व्यवहारोव्यवस्था न घटतइ त्यर्थः । तस्मादेताभ्यां स्थानाभ्यां स्वीकृताभ्यामनाचारं जानीयात् ॥ ३ ॥

॥ टीका-किमित्येकांतेन शाश्वतमशाश्वतं वाऽस्तित्येवंनूतां दृष्टिं न धारयेदित्याह । (एएहिंदोहिमित्यादि) सर्वं नित्यमेवानित्यमेव चैताभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यामभ्युपगम्य मानाभ्यामनयोर्वा पक्षयोर्व्यवहरणं व्यवहारोलोकस्यैहिकामुष्मिकयोः कार्ययोः प्रवृत्ति निवृत्तिलक्षणोन विद्यते । तथाह्यप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वनावं सर्वं नित्यमित्येवं न व्य वह्रीयते प्रत्यक्षेणैव नवपुराणादिनावेन प्रध्वंसानावेन वा दर्शनात्तथैवच लोकस्य प्रवृत्तेरा मुष्मिकेपि नित्यत्वान्मनोबंधमोक्षाद्यनावेन दीक्षायमनियमादिकमनर्थकमिति न व्यवह्री यते । तथैकांतानित्यत्वेनापि न लोकोधनधान्यघटपटादिकमनागतनोगार्थं संगृह्णीयात् तथामुष्मिकेपि क्षणिकत्वादात्मनः प्रवृत्तिर्न स्यात् । तथाच दीक्षाविहारादिकमनर्थकं त स्मान्नित्यानित्यात्मकस्याद्वादे सर्वव्यवहारप्रवृत्तिरतएव तयोर्नित्यानित्ययोः स्थानयोरेकां तत्वेन समाश्रीयमाणयोरैहिकामुष्मिककार्यविध्वंसरूपमनाचारं मौनींड्रागमबाह्यरूपं विजानीयात् । तुशब्दोविशेषणार्थः । कथंचिन्नित्यानित्ये वस्तुनि व्यवहारोयुज्यतइत्येत द्विशिनष्टि । तथाहि सामान्यसमन्वयिनमंशमाश्रित्य स्यान्नित्यमिति नवति तथा विशेषांशं प्रतिक्षणमन्यथाच नवपुराणादिदर्शनतः स्यादनित्यइति नवति । तथोत्पादव्ययध्रौव्याणि चार्हद्दर्शनाश्रितानि व्यवहारानि नवंति । तथा चोक्तं "घटमौलिसुवर्णार्थी, नाशोत्पादस्थि तिः स्वयं ॥ शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं, जनोयाति सहेतुक" मित्यादि । सदेवं नित्यानित्य पक्षयोर्व्यवहारोन विद्यते तथानयोरेवानाचारं विजानीयादिति स्थितं ॥ ३ ॥

समुच्छिहिंति सत्थारो, सव्वे पाणा अणेलिसा ॥ गंठिगावा न
विस्संति, सासयंतिव णो वए ॥४॥ एएहिं दोहिं गणेहिं, वव
हारो ण विज्जइ ॥ एएहिं दोहिं गणेहिं, अणायारं तु जाणए ॥५॥

अर्थ-वली पण अनाचार, निषेधवानें इछतो ठतो कहेढे. (समुच्छिहिंति के०) सर्वथापि उछेद पामशे एटले क्षय थइ जाशे, अथवा सर्वे सिद्धिने विषे जशे ते कोण जशे तोके (सत्थारो के०) तीर्थंकर सर्वज्ञ, तथा जे तेना शासनमां प्रवर्त्तेढे ते सर्वे

सिद्धिनें योग्य एवा सर्वनव्यजीव सिद्धिनें विषे जशे एम करतां सर्व नव्यजीवनो विछेद थशे. एवुं वचन विवेकी पुरुष न बोले, तथा (सवेपाणाअणेलिसा के०) सर्व प्राणी एटले सर्व जीव ते अणेलिसा एटले सरखा नथी तथा सरखाछे तथा विलक्षणछे एवुं वचन पण विवेकी जन एकांतें न बोले, तथा (गंठिगाएनविस्संति के०) तथा सर्व प्राणी कर्म ग्रंथि सहित थशे, एटले कर्मनी गांठ सहितज रहेशे, एवुं पण एकांतें वचन न बोले, (सासयंतिवणोवए के०) तथा सर्वज्ञ शाश्वताज सर्वकालें होशे, पण कदापि कालें विछे द नहींज पामे. एवुं वचन पण एकांतें बोले नहीं ॥४॥ (एएहिंदोहिंठाणेहिं के०) ए बे स्थानक जे तीर्थंकर विछेद पामशे, अथवा शाश्वताज रहेशे, अथवा सर्व नव्य जीव सिद्धिने पामशे, अथवा सर्व नव्य जीव कर्म सहितज रहेशे, ए बे स्थानक बे प्रकारना थयां एम कहेवुं, ते. (ववहारोणविज्जती के०) व्यवहार नथी एवुं जाणे. (एएहिंदोहिं ठाणेहिं के०) ए बेहु स्थानकें करी, (अणायारंतुजाणई के०) अनाचार जाणे, एटले दर्शनाचार आश्री अनाचार कह्यो. ॥ ५ ॥

॥ दीपिका-(समुछिहिंति) समुछेत्स्यंति उछेदं यास्यंति शास्तारोनव्याः सर्वनव्या नां मुक्तिगमनेन नव्यशून्योलोकः स्यादित्येवं नो वदेत् । तथा सर्वे प्राणाअनीदृशाविस दृशाविलक्षणाएव न कथंचित्तेषां सादृश्यमस्तीत्यपि नो वदेत् । ग्रंथिकाः कर्मग्रंथोपेता एवं नविष्यंति सर्वे जीवाइत्यपि नो वदेत् । कोर्थः ? । सर्वे प्राणिनः सेत्स्यंत्येव कर्मावृ त्तावा नविष्यंतीत्येकमपि पक्षमेकांतेन न वदेत्तथा शाश्वतास्तीर्थकृतइत्यपि न वदेत्॥४॥ (एएहिंति) शास्तारः क्षयं यास्यंति शाश्वतावा नविष्यंतीति । यदिवा सर्वे प्राणाविल क्षणाः सदृशावा तथा ग्रंथिकसत्वाएव तद्रहितं वा जगदिति वा एवमनयोः स्थानयो र्व्यवहारोन विद्यते । इदं पक्षद्वयमपि न घटतइत्यर्थः । यतोऽनागतकालस्येव नव्याना मनंतत्वान्निरंतरं मुक्तिगमनेपि न नव्यशून्यं जगदिति । केचिद्भव्याद्यपि सामग्र्यनावान्न सेत्स्यंति यथा प्रतिमायोग्यमपि दलिकं सामग्रीं विना प्रतिमारूपं न स्यादिति सर्वे जीवाअपि विचित्रकर्मसद्भावाद्विसदृशाः कथंचित् उपयोगामूर्तत्वासंख्यप्रदेशत्वादिधर्मैः सदृशाअपि । तथा सर्वेऽर्हंतः प्रवाहापेक्षया शाश्वताः एकैकापेक्षया अशाश्वताअपीति एताभ्यां द्वाभ्यामेकांतस्थानाभ्यामनाचारं जानीयात् ॥ ५ ॥

॥ टीका-तथान्यमप्यनाचारं प्रतिषेद्धुकामआह । (समुछिहिंतीत्यादि) सम्यक् निर्विशेषतयोत्सेत्स्यंत्युछेदं यास्यंति क्षयं प्राप्स्यंति सामस्त्येनोत्प्राबल्येन सेत्स्यंति वा सिद्धिं यास्यंति । के? ते शास्तारस्तीर्थकृतः सर्वज्ञास्तच्छासनप्रतिपन्नावा सर्वे निरवशेषाः

सिद्धिगमनयोग्याजव्यास्ततश्चोछिन्नजव्यं जगत्स्यादिति शुष्कतर्कानिमानग्रहगृहीतां युक्तिं चाजिदधति जीवसद्भावे सत्यप्यपूर्वोत्पादाजावादजव्यस्य च सिद्धिगमनासंजवात्कालस्य वाऽनंत्यादनारतसिद्धिगमनसंजवेन तद्यथोपपत्तेरपूर्वायाजावाद्भव्योछेदइत्येवं नो वदेत्त था सर्वेपि प्राणिनोजंतवोऽनीदृशाविसदृशाः सदा परस्परलक्षणाएव न कथंचित्तेषां सादृश्यमस्तीत्येवमप्येकांतेन नो वदेत् । यदिवा सर्वेषां जव्यानां सिद्धिसद्भावे विशिष्टाः सं सारेऽनीदृशाश्चजव्याएव जवेयुरित्येवं च नो वदेत् । युक्तिं चोत्तरत्र वक्ष्यति । तथा कर्मा त्मकोग्रंथोयेषां विद्यते ते ग्रंथिकाः सर्वेपि प्राणिनः कर्मग्रंथोपेताएव जविष्यंतीत्येवम पि नो वदेत् । इदमुक्तं जवति । सर्वेपि प्राणिनः सेत्स्यंत्येव कर्मावृतावा सर्वे जविष्यंती त्येवमेकमपि पक्षमेकांतिकं नो वदेत् । यदिवा ग्रंथिकाइति ग्रंथिकसत्वाजविष्यंतीति ग्रं थिजेदं कर्तुमसमर्थाजविष्यंतीत्येवं च नो वदेत्तथा शाश्वताइति शास्तारः सदा सर्वकालं स्थायिनस्तीर्थिकरान जविष्यंति न समुत्सेत्स्यंति नोछेदं यास्यंतीत्येवं नो वदेदिति ॥ ४ ॥ तदेवं दर्शनाचारनिषेधं वाङ्मात्रेण प्रदर्श्याऽधुना युक्तिं दर्शयितुकामआह । (एएहिं इत्या दि) एतयोरनंतरोक्तयोर्द्वयोः स्थानयोः । तद्यथा । शास्तारः क्षयं यास्यंतीति शाश्वतावा जविष्यंतीति । यदिवा सर्वे शास्तारस्तद्दर्शनप्रतिपन्नावा सेत्स्यंति शाश्वतावा जविष्यं ति । यदिवा सर्वे प्राणिनोह्यनीदृशाः विसदृशासदृशावा तथा ग्रंथिकसत्वास्तद्रहितावा ज विष्यंतीत्येवमनयोः स्थानयोर्व्यवहरणं व्यवहारस्तदास्तित्वे युक्तेरजावान्न विद्यते । तथा हि । यत्तावडुक्तं सर्वेशास्तारः क्षयं यास्यंतीत्येतदयुक्तं । क्षयनिबंधनस्य कर्मणोजावात्सि द्धानां क्षयाजावोन जवस्थकेवल्यपेक्षयेदमजिधीयते तदप्यनुपपन्नं यतोनाद्यनंतानां केवलि ना सद्भावात्प्रवाहापेक्षया तदजावाजावः । यदप्युक्तमपूर्वायाजावे सिद्धिगमनसद्भावेन च व्ययसद्भावाद्भव्यशून्यं जगत् स्यादित्येतदपि सिद्धांतपरमार्थाविदिनो वचनं । यतोजव्यरा शेराद्धांते जविष्यत्कालस्यवानंत्यमुक्तं तच्चैवमुपपद्यते । यदि क्षयोन जवति सतिच तस्मि न्नात्यंतं न स्यान्नापि चावश्यं सर्वस्यापि जव्यस्य सिध्धिगमनेन जाव्यमित्यानंत्याद्भव्यान तत् सामग्र्यजावाद्योग्यदलिकप्रतिमावत्तदनुपपत्तिरिति । तथा नापि शाश्वताएव जवस्थ केवलिनां शास्तॄणां सिद्धिगमनसद्भावात्प्रवाहापेक्षया शाश्वतत्वमेवातः कथंचिच्छाश्वताः कथंचिदशाश्वताइति। तथा सर्वे पि प्राणिनोविचित्रकर्मसद्भावान्नानागतिजातिशरीरांगोपांगा दिसमन्वितत्वादनीदृशा विसदृशास्तथोपयोगासंख्येयप्रदेशत्वामूर्तत्वादिजिर्धर्मैः कथंचित्स दृशास्तथोल्लसितसद्वीर्यतया केचिद्भिन्नग्रंथयोपरेच तथाविधपरिणामाजावाद्ग्रंथिकसत्वा एव जवंतीत्येवं व्यवस्थितेनैकांते नैकांतपक्षोजवतीति प्रतिषिध्धस्तदेवमेतयोरेव द्वयोः स्थानयोरुक्तनीत्या नानाचारं विजानीयादिति स्थितं । अपिचागमेअनंतानंतास्वप्युत्सर्पि एयवसर्पिणीषु जव्यानामनंतजागएव सित्ध्यतीत्ययमर्थः प्रतिपाद्यते ।यदा चैवंजूतं तदानं

त्यं तत्कथं तेषां क्षयः मुक्तिरप्यत्र संवधिशब्दावेत्तो । मुक्तिः संसारं विना न जवति संसारोपि न मुक्तिमंतरेण । ततश्च नव्योच्छेदे संसारस्याप्यनावः स्यादतोऽनिधीयते नाऽनयोर्व्यवहारोयुज्यतइति ॥ ५ ॥

जे केइ खुद्दगा पाणा, अडुवा संति महालया ॥ सरिसंतेहिंति वेरं ति असरिसंतीय णो वदे ॥६॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जई ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारंतु जाणए ॥ ७ ॥

अर्थ—हवे चारित्राचार आश्री कहेछे. (जेकेइखुद्दगापाणा के०) जे कोइ आ जगत्मां लघुप्राणी एटले सूक्ष्मजीवछे. एटले पृथविकायथी मांमीने पंचेंद्रियपर्यंत सूक्ष्म जीवछे, (अडुवासंतिमहालया के०) अथवा जे जीव महाकाय एटले महोटी कायावाळाछे, अंहीं न्हानाजीव ते कुंथुआदिक, अने महोटा जीव ते हस्त्यादिक जाणवा. (सरिसंतेहिंतिवेरं के०) ए बेहुनो विनाश करवा थकी सरखुंज वैर होय, एवुं एकांते वचन न बोले (असरिसंतीयणोवदे के०) अथवा असरीखुं होय एटले सरखुं वैर न होय. एवुं वचन पण एकांतें न बोले कारणके, कर्मबंधनें विषे न्हाना मोटानुं कांइ विशेष नथी किंतु ? अध्यवसाय विशेष कर्म बंधछे एवुं जाणे, अने बोले ॥६॥ ए बेहु स्थानक बोलतां व्यवरहार प्रवर्त्ते नहीं, एवुं जाणे, तथा एवुं एकांतें बोलतां अनाचारछे एम जाणे.॥७॥

॥ दीपिका—(जेकेइत्यादि) ये केचित् क्षुद्राः प्राणिनएकेंद्रियद्वींद्रियादयोऽल्पकायावा पंचेंद्रियाः । अथवा महालयामहाकायाः संति तेषां क्षुद्राणां कुंथ्वादीनां महतां हस्त्यादीनां च हनने सदृशं वैरं कर्मबंधस्तुल्यइत्येकांतेन नो वदेत् असदृशं वातद्घाते वैरं कर्मबंधइंद्रियज्ञानकायानां विचित्रत्वादित्यपि नो वदेत् । नहि वध्यवशात्कर्मबंधः किंतु? अध्यवसायवशात् तीव्राध्यवसायादल्पमपि सत्वं घ्नतोमहान् कर्मबंधः अकामस्यतु महाकायप्राणिहननेपि स्वल्पबंधइत्यर्थः ॥६॥ (एएहिंइति) एताभ्यां तुल्यातुल्यविरूपाभ्यां स्थानाभ्यां व्यवहारोन विद्यते अध्यवसायस्यैव बंधाबंधहेतुत्वात् । एताभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यां प्रवृत्तस्यानाचारं जानीयात् । तथाहि । नहि जीववधे हिंसा स्यात्तस्य नित्यत्वात् । यडुक्तं "पंचेंद्रियाणि त्रिविधं बलंच, उच्छ्वासनिश्वासमथान्यदायुः ॥ प्राणादशैते नगवद्भिरुक्तास्तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा" इति । किंच नावापेक्षएव कर्मबंधोयथा वैद्यस्य सम्यक् क्रियां कुर्वतोयद्यपि रोगी म्रियते तथापि न वैद्यस्य कर्मबंधोडुष्टाध्यवसायानावात् अन्यस्यतु सर्पबुद्ध्या रज्जुमपि घ्नतोनावदोषात्कर्मबंधः । यदागमः । उच्चालियं मियाए, इरियासमि

ह्यस्त्रातर्यपि नयमुत्प्रेक्षमाणानि पाशितानि पाशोपेतान्यनर्थोपादकान्यशंकिनस्तेषु शंकामकुर्वाणाः संतोऽज्ञानेन नयेन च (संविग्गंति)। सम्यक्व्यासावशीनूताः शंकनीयमशंकनीयं वा तत्राऽपरित्राणोपेतं पाशाद्यनर्थोपेतं वा सम्यक्विवेकेनाऽजानाना स्तत्र तत्राऽनर्थबहुले पाशवागुरादिके बंधने संपर्ययंते समेकीनावेन परिसमंतादयंते यांति वा गछंतीत्युक्तं नवति । तदेवं दृष्टांतं प्रसाध्य नियतिवादाद्येकांताऽज्ञानवादिनोदार्ष्टांतिकत्वेनाऽयोज्याः । यतस्तेप्येकांतवादिनोऽज्ञानकास्त्राणनूतानेकांतवादवर्जिताः सर्वदोषविनिर्मुक्तं कालेश्वरादिकारणवादान्युपगमेनाऽनाशंकनीयमनेकांतवादमाशंकंते शंकनीयं च नियत्यज्ञानवादमेकांतं न शंकंते । ते एवंनूताः परित्राणार्हेप्यनेकांतवादे शंकां कुर्वाणायुक्तयाऽघटमानकमनर्थबहुलमेकांतवादमशंकनीयत्वेन गृण्हंतोऽज्ञानावृतास्ते षु तेषु कर्मबंधस्थानेषु संपर्ययंत इति ॥ ७ ॥ पूर्वदोषैरतुष्यन्नाचार्योदोषांतरदिरसया पुनरपि प्राक्तनदृष्टांतमधिकृत्याह । (अहतंपवेज्जइत्यादि) अथानंतरमसौ मृगस्तत् (बज्ञमिति) बद्धं बंधनाकारेण व्यवस्थितं । वागुरादिकं वा बंधनं बंधकत्वाद्बंधमित्युच्यते । तदेवंनूतं कूटपाशादिकं बंधनं यद्यसावुपरिझवेत् तदधस्तादतिक्रम्योपरिगछेत् तस्य वर्ध्यादेर्बंधनस्याधोगछेत्तत एवं क्रियमाणेऽसौ मृगः पदेपाशः पदपाशोवागुरादिबंधनं तस्मान्मुच्यते । यदि वा पदं कूटं पाशः प्रतीतस्ताभ्यां मुच्यते । क्वचित्पदपाशादीति पठ्यते । आदिग्रहणाद्वधताडनमारणादिकाः क्रियागृह्यंते । एवं संतमपि तमनर्थोत्पादकं परिहरणोपायं मंदोजडोऽज्ञानावृतोन देहतीति न पश्यतीति ॥ ८ ॥

अहिअप्पाऽहियप्पन्नाणे, विसमंतेणुवागते ॥ सवद्धे पयपासेणं, तह घायं नियछइ ॥९॥ एवं तु समणा एगे, मिछदिठी अणारिआ ॥ असंकिआइं संकंति, संकिआइं असंकिणो ॥ १० ॥ धम्मपन्नवणा जा सा, तं तु संकंति मूढगा ॥ आरंन्नाइं न संकंति, अविअत्ता अकोविआ ॥ ११ ॥ सव्वप्पगं विउक्कस्सं, सव्वंणूमं विहूणिआ ॥ अप्पत्तिअं अकम्मंसे, एयमठं मिगे चुए ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे ते उपाय अण देखतो थको जे अवस्थाने पामे ते कहेछे. अहिअप्पा के० ते मृग आत्माने अहित तथा अहियप्पन्नाणेके० अहित जेनुं जाणपणु छे, एवा छता. विसमंते के० विषम कूट पाशादिक प्रदेशे, णुवागते के० आवे. एटले ते पाश मांहे पडे. सवद्धेपयपासेणं के० ते त्यां पडया छता बंधन पामे. तथा तहघायं के० त्यां ते विनाशने नियछइके० दुःखी थता पामे. ॥ ९ ॥ हवे ए दृष्टांत परवादिसाथे

पस्स संकमणाए ॥ वावज्जिज्जकुलिंगी, । मरिज्जतज्जोगमासज्ज ॥ १ ॥ नयतस्स तन्निमि त्तो,बंधेसुहमोविदेसिउ समए॥ अणवज्जाउपउंगेण,सवनावेणसोजह्मा ॥२॥ इत्यादि॥७॥

॥टीका–अधुना चारित्राचारमंगीकृत्याह॥(जेकेइइत्यादि)ये केचन क्षुद्रकाः सत्वाः प्राणिन एकेंद्रियद्वींद्रियादयोऽल्पकायावा पंचेंद्रियाअथवा महालयामहाकायाः संति विद्यंते तेषां क्षुद्रकाणामल्पकायानां कुंथ्वादीनां महानालयः शरीरं येषां ते महालयाहस्त्यादयस्तेषां च व्यापादने सदृशं वैरमिति वज्रकर्म विरोधलक्षणं वा वैरं सदृशं समानं तुल्यप्रदेशत्वात्सर्वे जंतूनामित्येवमेकांतेन नो वदेत्तथा विसदृशमसदृशं तद्व्यापत्तौ वैरं कर्मबंधोवा इंद्रियवि ज्ञानकायानां विसदृशत्वात् सत्यपि प्रदेशतुल्यत्वे न सदृशं वैरमित्येवमपि नो वदेत्। यदि हि वध्यापेक्षएवकर्मबंधः स्यात्तद्वशात्कर्मणोपि सादृश्यमसादृश्यंवा वक्तुं युज्यते। नच तद्वशादेव वधोपि त्वध्यवसायवशादपि ततश्च तीव्राध्यवसायिनोऽल्पकायसत्वव्यापादनेपि महद्वैरमकामस्यतु महाकायसत्वव्यापादनेपि स्वल्पमिति ॥ ६ ॥ एतदेवसूत्रेणैव दर्शयितुमाह ॥ (एएहिमित्यादि) आभ्यामनंतरोक्ताभ्यां स्थानाभ्यामनयोर्वा स्थानयोरल्पकायसत्वमहाकायव्यापादनापादितकर्मबंधसदृशत्वासदृशत्वयोर्व्यवहरणं व्यवहारोनिर्युक्तिकत्वान्न युज्यते ।तथाहि। न वध्यस्य सदृशत्वमसदृशत्वं चैकमेव कर्मबंधस्य कारणमपितु वधकस्य तीव्रनावोमंदनावोज्ञाननावोऽज्ञाननावोमहावीर्यत्वमल्पवीर्यत्वं चेत्येतदपि । तदेवं वध्यवधकयोर्विशेषात्कर्मबंधविशेषइत्येवं व्यवस्थिते वध्यमेवाश्रित्य सदृशत्वासदृशत्वव्यवहारोन विद्यतइति तथा तयोरेव स्थानयोः प्रवृत्तस्यानाचारं विजानीयादिति । तथाहि। यज्जीवसाम्यात्कर्मबंधसदृशत्वमुच्यते तदयुक्तं। यतोनहि जीवव्यापत्त्या हिंसोच्यते ।तस्य शाश्वतत्वेन व्यापादयितुमशक्यत्वादपि त्विंद्रियादिव्यापत्त्या ।तथाचोक्तं।"पंचेंद्रियाणि त्रिविधं बलं च, उछ्वासनिःश्वासमथान्यदायुः॥ प्राणादशैते नगवद्भिरुक्तास्तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा" ॥१॥ इत्यादि ।अपिच नावसव्यपेक्षस्यैव कर्मबंधोन्युपेतुं युक्तः। तथाहि। वैद्यस्यागमसव्यपेक्षस्य क्रियां कुर्वतोयद्यप्यातुरविपत्तिर्नवति तथापि न वैरानुषंगोनवेद्दोषा नावादपरस्यतु सर्पबुद्ध्या रज्जुमपि घ्नतोनावदोषात्कर्मबंधस्तद्दहितस्यतु न बंधइत्युक्तं चागमे । उच्चालियंमियाएइत्यादि । तंमुलमत्स्याख्यानकं तु सुप्रसिद्धमेव । तदेवंविधवध्यवधकनावापेक्षया स्यात् सदृशत्वं स्यादसदृशत्वमित्यन्यथाऽनाचारइति ॥ ७ ॥

अहाकम्माणि नुंजंति, अएमएो सकम्मुणा॥ उवलित्तेति जाणिज्जा, अणुवलित्तेति वा पुणो ॥८॥ एएहिं दोहिं गणेहिं, ववहारो ए विज्जई, एएहिं दोहिं गणेहिं, अणायारं तु जाणए ॥ ए ॥

अर्थ—हवे आहार आश्री आचार अनाचार कहेछे.(अहाकम्माणिभुंजंति के०) जे साधु आश्री छए कायनुं मर्दन करी,वस्तु जे भोजन उपाश्रयादिक कीधां होय, एटलानो जे उपभोग करे ते, (अण्णमण्णेसकम्मुणा के०) परस्पर मांहोमांहे पोतानें कर्मे, (उवलित्तेति जाणिज्जा के०) उपलिप्त जाणवा. एवुं पण वचन एकांतें न बोले, (अणुवलित्तेतिवापुणो के०)अथवा पोतानां कर्मे करी अनुपलिप्त,एटले उपलिप्त न जाणवा,एवुं पण वचन कांततें न बोले,कारणके, जे आधाकर्मिक आहार होय, तेनें पण श्रुतना उपदेशनें अर्थे शुद्ध एवो करीनें जमे तो ते कर्मे करी लेपाय नहीं. अथवा सुजतो आहार होय,परंतु ते आहारनें आहारगृद्धपणे जमे तो, ते कर्मे करी बंधायछे. एवुं जाणीनें, अनेकांत वचन बोले, पण एकांत वचन न बोले ॥८॥ ए बेहुस्थानकें करी व्यवहार न जाणे, अनें ए बेहु स्थानकें करी अनाचार जाणे ॥ ए ॥

॥ दीपिका—(अहाकम्माणित्ति) आधाकर्माणि ये भुंजतेऽन्योन्यं परस्परं तान्स्वकीयेन कर्मणा उपलिप्तान्वा नो वदेत् अनुपलिप्तान्वा न वदेत् । आधाकर्मापि श्रुतोपदेशेन शुद्धमिति कृत्वा भुंजानस्य न बंधः श्रुतोपदेशं विनाऽहारगृध्याऽधाकर्म भुंजानस्यापितु बंधस्तस्मादाधाकर्मभोगे कर्मबंधः स्यान्न स्याद्वा इति वदेत् ॥ ८ ॥ (एएहिंदोहिमिति) आधाकर्मभोगे कर्मबंधःस्यादेव न स्यादेवेति द्वाभ्यां स्थानाभ्यां व्यवहारो न विद्यते द्वाभ्यां स्थानाभ्यां स्वीकृताभ्यामनाचारं जानीयात् ॥ ए ॥

॥ टीका—पुनश्चारित्रमधिकृत्याहारविषयानाचाराचारौ प्रतिपादयितुकामआह । (अहाकम्माणीत्यादि) साधु प्रधानकारणमादायाश्रित्य कर्माण्याधाकर्माणि । तानितु वस्त्रभोजनवसत्यादीन्युच्यंते । एतान्याधाकर्माणि ये भुजंते एतैरुपभोगं ये कुर्वंत्यन्योन्यं परस्परं तान्स्वकीयेन कर्मणोपलिप्तान् विजानीयादित्येवं नो वदेत्तथाऽनुपलिप्तानितिवा नो वदेत् । एतडुक्तं भवति । आधाकर्मापि श्रुतोपदेशेन शुद्धमिति कृत्वा भुंजानः कर्मणा नोपलिप्यते तदाधाकर्मोपभोगेनावश्यतया कर्मबंधोभवतीत्येवं नो वदेत्तथा श्रुतोपदेशमंतरेणाहारगृध्याऽधाकर्म भुंजानस्य तन्निमित्तकर्मबंधसद्दशत्वासद्दशत्वयोर्व्यवहरणं व्यवहारोनिर्युक्तिकत्वान्न युज्यते । तथाहि । न वध्यस्य सद्दशासद्दशत्वयोर्व्यवहरणं व्यवहारो निर्युक्तिकत्वान्न युक्तसद्दशत्वमतोनुलिप्तानपि नो वदेद्यथावस्थितमौनींद्रागमज्ञस्य त्वेवं युज्यते वक्तुमाधाकर्मोपभोगे न स्यात्कर्मबंधः स्यान्नेति । यतउक्तं । "किंचितुद्धं कल्पमकल्पंवा स्यादकल्पमपि कल्पं ॥ पिंडः शय्या वस्त्रं पात्रं वा भेषजाद्यं वा" ॥१॥ तथान्यैरप्यभिहितं । उत्पद्येतहि सावस्था देशकालामयान्प्रति॥ यस्यामकार्यं कार्यं स्यात्कर्म कार्यंच

वर्ज्जयेदित्यादि ॥८॥ किमित्येवं स्याद्वादः प्रतिपाद्यतइत्याह।(एएहिंदोहिमित्यादि) आन्यां ह्यान्यां स्थानान्यामाश्रिताभ्यामनयोर्व्यवस्थानयोराधाकर्मोपनोगेन कर्मबंधानावानावनूत योर्व्यवहारोन विद्यते।तथाहि। यद्यवश्यमाधाकर्मोपनोगेनैकांतेन कर्मबंधोऽन्युपगम्येत । एवं चाहारानावेनापि क्वचित्सुतरामनर्थोदयः स्यात् । तथाहि । क्षुत्प्रपीडितोन सम्यगी र्यापथं शोधयेत्ततश्च व्रजन् प्राण्युपमर्दमपि कुर्यात् मूर्छादिसद्भावतया देहपाते सत्यव श्यंनावी त्रसादिव्याघातोऽकालमरणे चाविरतिरंगीकृता नवत्यार्तध्यानापत्तौच तिर्यग्गति रित्यागमश्च । सव्वह संजमं संजमाउ अप्पाणमेव रक्खेज्जाइत्यादिनापि तडपनोगे कर्मबं धानावइति । तथाहि । आधाकर्मण्यपि निष्पाद्यमाने षड्जीवनिकायवधस्तद्वधेच प्रतीतः कर्मबंधइत्यतोऽनयोःस्थानयोरेकांतेनाश्रीयमाणयोर्व्यवहरणं व्यवहारोन युज्यते तथान्या मेव स्थानान्यां समाश्रिताभ्यां सर्वमनाचारं विजानीयादिति स्थितं ॥ ए ॥

जमिदं उरालमाहारं, कम्मगं च तहेवय ॥ सव्वह वीरियं अहि,
णहि सव्वह वीरियं॥ १० ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण
विज्जई ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए ॥ ११ ॥

अर्थ—हवे बीजी रीतें परदर्शनी आश्री बोलवानो अनाचार कहेने. (जमिदंउरालमाहारं कम्मगंचतहेवय के०) जे ए शरीर सर्वलोक प्रसिद्ध औदारिक, ते तिर्यंच अने मनुष्यनुं शरीर जाणवुं, तथा जे चौदपूर्वधर मुनिराज होय, ते कोइ एक संशय उपने ठते शरी र करीनें केवली पासें पूबवाने अर्थे मोकले,ते आहारक शरीर जाणवुं. एना ग्रहणथी वैक्रिय शरीर पण ग्रहण करवुं, तथा कार्मण शरीर कर्मपुजलनिबद्ध जाणवुं. तेमज एनुं सहचारी ते तैजस शरीर जाणवुं, ए पांच शरीर जाणवां.हवे कोइ एकनें ए पांच श रीरठे तेमांहेथी औदारिक वैक्रियादिकने विषे एकज शरीरनी आशंका उपजे एटले ते एम कहे के, जे औदारिक शरीर, तेहिज तैजस, कार्मण शरीरठे, अनें तैजस कार्मण शरीर तेहिज औदारिक, वैक्रिय, अनें आहारक शरीरठे. परंतु एवी संज्ञा न करवी, तथा ए पांचे शरीर अत्यंत मांहो मांहे जुदां जुदांठे एवी पण संज्ञा न करवी. त्यारें केवी संज्ञा करवी? तोके,ए जीव आश्री पांचे शरीर अनिन्नठे अने नामनें नेदें,पर्यायनें नेदें,निन्न पणठे.एम कहेवुं. हवे सर्वद्रव्यनो नेदानेद देखाडवामाटें कहेठे. (सव्वहवीरियंअहि के०) स घलुं द्रव्य, सर्वद्रव्यनें विषेठे एवो सांख्यमतनो अनिप्राय जाणवो. ते सांख्य मत एम कहेठे के, सत्व, रज, तमरूपें जे प्रधाननामा तत्व ते सर्वद्रव्यनुं कारणठे, ए कारणें सर्वद्रव्य सर्वात्मक एवी व्यवस्था एटले सर्वत्र घट पटादिकद्रव्यनें विषे अन्यद्रव्यनुं

वीर्यछे, एवी संज्ञा पण करवी नहीं. (नत्थिसव्वत्थवीरियं के०) वली सर्वपदार्थनें विषे सर्वद्रव्यनुं वीर्य नथी, एवी संज्ञा पण करवी नहीं. अहीं एकांतनो निषेध करीनें स्याद्वाद बोलवो. इत्यर्थः ॥ १० ॥ अगीआरमी गाथानो अर्थ, पूर्ववत् जाणवो ॥ ११ ॥

॥ दीपिका—(जमिदमिति) यदिदमौदारिकं शरीरं आहारकंवा एतद्ग्रहणाद्वैक्रियमपि ग्राह्यं कार्मणं तथा तैजसमपि । एतेषां शरीराणामैक्यमेव तैजसकार्मणयोरभिन्नत्वात् । ततस्त्रयाणामेकत्वमेवेति नो वदेत् इत्यग्रेतनश्लोके संबंधः । तथा शरीराणां सर्वेषां सर्वथा भेदएवेत्यपि नो वदेत् कथंचिदेकत्वस्याप्यंगीक्रियमाणत्वात् तथा । (सव्वत्थ अत्थित्ति) सर्वं सर्वत्रास्तीति सांख्याभिप्रायेण सत्वरजस्तमोरूपायाः प्रकृतेरेकत्वात्तस्याएव हि सर्वस्य कारणत्वात्सर्वं सर्वात्मकमेवं सति सर्वत्र घटपटादौ अन्यस्य व्यक्तस्य वीर्यं शक्तिरस्ति सर्वस्य व्यक्तस्य प्रकृतिकार्यत्वात्कार्यकारणयोश्चैकत्वात्सर्वं सर्वत्र सर्वस्य वीर्यमस्तीति संज्ञां न कुर्यात् । तथा सर्वे भावाः स्वस्वशक्तियुक्ताइति न सर्वस्य सर्वत्र शक्तिरित्यपि संज्ञां न कुर्यात् भेदाभेदस्वरूपत्वात्सर्वभावानामिति ॥ १० ॥ (एएहिंदोहिंठाणेहिंति) द्वाभ्यामेताभ्यां सर्वत्र शक्तिरस्ति नास्तिवेति अथवा शरीराणां सर्वेषां भेदोऽभेदोवेति द्वाभ्यां स्थानाभ्यां व्यवहारोन विद्यते युक्तयोन संगछंतीत्यर्थः । एतयोः स्थानयोः प्रवृत्तस्याऽनाचारं जानीयात् ॥ ११ ॥

॥ टीका—पुनरप्यन्यथादर्शनं प्रति चागमानाचारं दर्शयितुमाह । (जमिदंउरालमित्यादि) यदि वा योयमनंतरमाहारः प्रदर्शितः स सति शरीरे भवति । शरीरं च पंचधा । तस्य चौदारिकादेः शरीरस्य भेदाभेदं प्रतिपादयितुकामः पूर्वपक्षद्वारेणाह । (जमिदमित्यादि) यदिदं सर्वजनप्रत्यक्षमुदारैः पुजलैर्निर्वृत्तमौदारिकमेतदेवोरालं निस्सारत्वादेतच्च तिर्यङ्मनुष्याणां भवति । तथा चतुर्दशपूर्वविदा क्वचित्संशयादावाह्नियतइत्याहारकमेतद्ग्रहणाच्च वैक्रियोपादानमपि द्रष्टव्यं । तथा कर्मणा निर्वृत्तं कार्मणमेतत् सहचरितं तैजसमपि ग्राह्यं । औदारिकवैक्रियाहारकाणां प्रत्येकं तैजसकार्मणाभ्यां सह युगपडुपलब्धेः कस्यचिदेकत्वाऽशंका स्यादतस्तदपनोदार्थं तदभिप्रायमाह । तदेव तद्यदेवौदारिकं शरीरं तएव तैजसकार्मणे शरीरे । एवं वैक्रियाहारकयोरपि वाच्यं । तदेवंभूतां संज्ञां नो निवेशयेदित्युत्तरश्लोके क्रिया । तथैतेषामात्यंतिकोभेदइत्येवंभूतामपि संज्ञां नो निवेशयेत् । युक्तिश्चात्र यद्येकांतेनाभेदएव । ततइदमौदारिकमुदारपुजलनिष्पन्नं तथैतत्कर्मणा निर्वर्त्तितं कार्मणं सर्वस्यैतस्य संसारचक्रवालस्य भ्रमणस्य कारणभूतं तेजोद्रव्यैर्निष्पन्नं तेजएव तैजसं आहारपक्तिनिमित्तं तैजसलब्धिनिमित्तं चेत्येवं भेदेन संज्ञानिरुक्तं कार्यंच न स्यात् । अथात्यंतिकोभेदएव ततोघटवद्भिन्नयोर्देशकालयोरप्युपलब्धिः स्यात् ।

न नियता युगपडुपलब्धिरित्येवं च व्यवस्थिते कथंचिदेवोपलब्धेर्नेदः कथंचिच्च संज्ञा नेदाभ्नेदइति स्थितं । तदेवमौदारिकादीनां शरीराणां नेदानेदौ प्रदश्यधुना सर्वस्यैव इव्यस्य नेदानेदौ प्रदर्शयितुकामः पूर्वपक्षं श्लोकपश्चार्द्धेन दर्शयितुमाह । (सव्वव्वीरिय मित्यादि) सर्वं सर्वत्र विद्यतइतिकृत्वा सांख्यानिप्रायेण सत्वरजस्तमोरूपस्य प्रधानस्यैकत्वात्तस्यच सर्वस्यैव कारणत्वात् अतः सर्वं सर्वात्मकमित्येवं व्यवस्थिते घटपटाद्यवयवस्य व्यक्तस्य वीर्यं शक्तिर्विद्यते सर्वस्यैव हि व्यक्तस्य प्रधानकार्यत्वात्कार्यकारणयोश्चैकत्वादतः सर्वस्य सर्वत्र वीर्यमस्तीत्येवं संज्ञा नो निवेशयेत्तथा सर्वे नावाः स्वनावेन स्वस्वनावव्यवस्थितताइति प्रतिनियतशक्तित्वान्न सर्वत्र सर्वस्य वीर्यं शक्तिरित्येवमपि संज्ञां नो निवेशयेत्।युक्तिश्चात्र यत्तावडुच्यते सांख्यानिप्रायेण सर्वं सर्वात्मकं देशकालाकारप्रतिबंधात्तु न समानकालोपलब्धिरिति तदयुक्तं। यतोनेदेन सुखडुःखजीवितमरणादूरासन्नसूक्ष्मबादरसुरूपकुरूपादिकं संसारवैचित्र्यमध्यक्षेणाऽनुनूयते ।नच दृष्टेऽनुपपन्नं नाम।नच सर्वं मिथ्येत्यभ्युपपन्नं युज्यते । यतोऽदृष्टहानिरदृष्टकल्पनाच पापीयसी। किंच सर्वथैक्येऽभ्युपगम्यमाने संसारमोक्षानावतया कृतनाशोकृताभ्यागमश्च बलादापतति। यच्चैतत्सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रधानमित्येतत्सर्वस्य जगतः कारणं तन्निरंतराः सुहृदः प्रत्येष्यंति निर्युक्तिकत्वादपिच सर्वथा सर्वस्य वस्तुनएकत्वेऽभ्युपगम्यमाने सत्वरजस्तमसामप्येकत्वं स्यात् तद्भेदे च सर्वस्य नेदइति। तथा यदप्युच्यते सत्वस्य व्यक्तस्य प्रधानकार्यत्वात्सत्कार्यवादत्वाच्च मयूरांमकरणे चंचुपिच्छादीनां सतामेवोत्पादाभ्युपगमादसडुत्पादे चाम्रफलादीनामप्युत्पत्तिप्रसंगादित्येतद्वाङ्मात्रं । तथाहि। यदि सर्वथा कारणे कार्यमस्ति न तर्ह्युत्पादोनिष्पन्नघटस्येवापिच मृत्पिंमावस्थायामेव घटगताः कर्मगुणव्यपदेशानवेयुर्नच नवंति ततोनास्ति कारणे कार्यमथाऽननिव्यक्तमस्तीति चेन्न । तर्हि सर्वात्मना विद्यते नाप्येकांतेनासत्कार्यवाद एव । तन्नावेहि व्योमारविंदानामप्येकांतेनासतोमृत्पिंमादेर्घटादेरिवोत्पत्तिः स्यान्न चैतद्दृष्टमिष्टं वा।अपिचैवं सर्वस्य सर्वस्माडुत्पत्तेः कार्यकारणनावान्नियमः स्यादेवंच न शाल्यंकुरार्थीशालीबीजमेवादद्यापितु यत्किंचिदेवेति नियमेनच प्रेक्षापूर्वकारिणामुपादानकारणादौ प्रवृत्तिरतोनासत्कार्यवादइति।तदेवं सर्वपदार्थानां सर्वज्ञेयत्वप्रमेयत्वादिनिर्धर्मैः कथंचिदेकत्वं तथा प्रतिनियतार्थकार्यतया यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थतः सदितिकृत्वा कथंचिद्भेदइति सामान्यविशेषात्मकं वस्त्विति स्थितं।अनेनच स्यादस्ति स्यान्नास्तीति नंगकद्वयेन शेषनंगकाअपि इष्टव्याः। ततश्च सर्ववस्तु सप्तनंगीस्वनावं। ते चामी स्वडव्यक्षेत्रकालनावापेक्षया स्यादस्ति परडव्यापेक्षया स्यान्नास्ति अनयोरेव धर्मयोर्यौगपद्येनानिधातुमशक्यत्वात्स्यादवक्तव्यं तथा कस्यचिदंशस्य स्वडव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्कस्यचिच्चांशस्य परडव्याद्यपेक्षया स्याद्वा नास्तिवा वक्तव्यं चेति। तथैकस्यांशस्य स्वडव्याद्यपेक्षया परस्य तु

सामस्त्येन स्वद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्स्यादस्तिचावक्तव्यं चेति। तथैकांशस्य परद्रव्याद्यपेक्षया स्यान्नास्ति चावक्तव्यं चेति तथैकस्यांशस्य स्वद्रव्याद्यपेक्षया परस्य तु परद्रव्याद्यपेक्षयाऽन्यस्य तु योगपद्येन स्वपरद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्स्यादस्तिच नास्तिचाऽवक्तव्यं इयं च सप्तभंगी यथायोगमुत्तरत्रापि योजनीयेति ॥ १० ॥ ११ ॥

णत्थि लोए अलोएवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि लोए अलोएवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १२ ॥ णत्थि जीवा अजीवावा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि जीवा अजीवावा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १३ ॥ णत्थि धम्मे अधम्मेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि धम्मे अधम्मेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १४ ॥

अर्थ—हवे सर्वशून्यवादीना मतनुं निराकरण करवानें अर्थे,लोक अनें अलोकनुं अस्तिपणुं देखाडेछे, (णत्थिलोएअलोएवा के०) चतुर्दशरज्ज्वात्मक एवो जे लोक,अथवा पंचास्तिकायरूप एवो जे लोक, ते नथी,एवी संज्ञा न करवी,तथा आकाशास्तिकाय रूप एवो जे अलोक,ते पण नथी,ते एवी संज्ञा पण न करवी. केमके,ए नास्तिकवादीनो मतछे. हवे केवी संज्ञा करवी? ते कहेछे.पंचास्तिकायरूप लोक ते पण छे,तथा आकाशास्तिकाय रूप अलोक ते पणछे, एवी संज्ञा करवी. ए केवलीनो मतछे॥१२॥हवे लोकालोकनुं अस्तिपणुं देखाडीनें तेना विशेषभूत जीव अनें अजीव तेनो अस्तिभाव देखाडेछे. जीव ते, उपयोग लक्षण संसारीक, अथवा मुक्तिगत,ए पण नथी. तथा अजीव ते धर्म, अधर्म, आकाश,पुद्गल,अनें कालात्मक ए पण नथी.एवी संज्ञा पण न करवी केमके,ए नास्तिकवादीनो मतछे त्यारें केवी संज्ञा करवी? तोके, जीव पणछे,अनें अजीव पणछे,एवी संज्ञा करवी.ए केवली भगवंतनो मतछे ॥१३॥ हवे एवा जीवनो अस्तिभाव देखाडीनें तेनें सदसत्क्रिया अनुष्ठाननें विषे धर्म, अनें अधर्म कारणछे,ते माटें हवे तेनो अस्तिभाव कहेछे. श्रुतचारित्ररूप जे धर्म, ते कर्मक्षयनो कारणरूपछे. ते पण नथी, तथा मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, अने योगरूप जे अधर्मछे, ते कर्मबंधनो कारणरूपछे, ते पण नथी, एवी संज्ञा पण न करवी. परंतु धर्म पणछे, अनें अधर्म पणछे, एवी संज्ञा करवी ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—(णत्थिलोएइत्यादि) शून्यवादिमताभिप्रायेण नास्ति लोकः अलोकोपि नास्तीति संज्ञां नो निवेशयेन्न स्थापयेत् अस्ति लोकः पंचास्तिकायात्मकः अस्ति वाऽलो

कश्राकाशास्तिकायमात्रइति संज्ञां निवेशयेत् ॥ १२ ॥ (णब्जिजीवाइति) न संति जीवाश्च जीवावा इति संज्ञां नो निवेशयेत् संति जीवाश्रजीवाश्चेति संज्ञां कुर्यात् ॥ १३ ॥ (णब्जि धम्मइति) नास्ति धर्मः श्रुतचारित्रात्मकः नास्ति वाऽधर्मो मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोग रूपः एवं संज्ञां न कर्यात् अस्ति धर्मोऽधर्मोवा एवं संज्ञां कुर्यात् ॥ १४ ॥

॥ टीका—तदेवं सामान्येन सर्वस्यैव वस्तुनोन्नेदान्नेदौ प्रतिपाद्याधुना सर्वशून्यवादिम तनिरासेन लोकालोकयोः प्रविन्नागेनास्तित्वं प्रतिपादयितुकामश्राह । (णब्जिलोए अलोएवाइत्यादि) यदि वा सर्वत्र वीर्यमस्ति नास्ति सर्वत्र वीर्यमित्यनेन सामान्येन वस्त्व स्तित्वमुक्तं । तथाहि । सर्वत्र वस्तुनोवीर्यं शक्तिरर्थक्रियासामर्थ्यं मनसः स्वविषयज्ञानोत्पा दनं तच्चैकांतेनात्यंतान्नावाच्छशविषाणादेरप्यस्तीत्येवं संज्ञां न निवेशयेत्सर्वत्र वीर्यं ना स्तीति नो एवं संज्ञां निवेशयेदिति । अनेनावशिष्टं वस्त्वस्तित्वं प्रसाधितमिदानीं तस्यैव वस्तुनईषद्विशेषितत्वेन लोकालोकरूपतयास्तित्वं प्रसाधयन्नाह । (णब्जिलोएअलोएइत्या दि) लोकश्चतुर्दशरज्ज्वात्मकोधर्माधर्माकाशादिपंचास्तिकायात्मकोवा स नास्तीत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत् । तथाऽऽकाशास्तिकायात्मकस्त्वलेकः सच न विद्यते एवेत्येवं सज्ञां नो निवेश येत् । तदन्नावप्रतिपत्तिनिबंधनं त्विदं । तद्यथा प्रतिन्नासमानं वस्त्ववयवद्वारेणवा प्रति न्नासेतावयविद्वारेणवा तत्र न तावदवयवद्वारेण प्रतिन्नासनमुत्पद्यते निरंशपरमाणूनां प्र तिन्नासमानासंन्नवात्सर्वारातीयन्नागस्य परमाण्वात्मकत्वात्तेषांच छद्मस्थविज्ञानेन द्रष्टुमश क्यत्वात् । तथाचोक्तं "यावद्दृश्यं परस्तावद्भागः सच न दृश्यते ॥ निरंशस्यच न्नागस्य नास्तिछ द्मस्थ दर्शन" मित्यादि।नाप्यवयविद्वारेण विकल्प्यमानस्यावयविनएवान्नावात्।तथा ह्यसौ स्वावयवेषु प्रत्येकं सामस्त्येनवा वर्त्ततांऽशांशिन्नावेनवा सामस्त्येनावयविबहुत्वप्रसंगान्नाप्यं शेन पूर्वविकल्पानतिक्रमेणानवस्थाप्रसंगात्तस्माद्विचार्यमाणं न कथंचिद्वस्त्वात्मकं न्नावं लनते ततस्तत्सर्वमेवैतन्मायास्वप्नेंद्रजालमरुमरीचिकाविज्ञानसदृशं। तथाचोक्तं। "यथा य थार्थाश्चिंत्यंते विविच्यंते तथा तथा॥ यद्येते स्वयमर्थेन्योरोचंते तत्र के वय" मित्यादि। तदेव वस्त्वन्नावे तद्विशेषलोकालोकान्नावः सिद्धएवेत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । किंत्वस्ति लोकऊर्ध्वाधस्तिर्यग्रूपोवैशाखस्थानस्थितकटिन्यस्तकरयुग्मपुरुषसदृशः पंचास्तिकायात्म कोवा तद्व्यतिरिक्तश्चालोकोप्यस्ति ।संबधिशब्दत्वाल्लोकव्यवस्थाऽनुपपत्तेरिति न्नावः । युक्ति श्चात्र यदि सर्वं नास्ति ततः सर्वांतःपातित्वात्प्रतिषेधकोपि नास्तीत्यतस्तदन्नावात्प्रतिषे धान्नावोपि च सति परमार्थन्नूते वस्तुनि माया स्वप्नेंद्रजालादिव्यवस्थान्यथा किमाश्रित्य कोवा मायादिकं व्यवस्थापयेदिति । अपिच "सर्वान्नावोयथान्नीष्टोयुक्त्यन्नावेन सिध्यति। सास्ति चेत्सैव नस्तत्वं तत्सिद्धौ सर्ववस्तुस" दित्यादि । यदप्यवयवावयविविन्नागकल्पनया

दूषणमभिधीयते तदप्यार्हतमतानभिज्ञेन । तन्मतं चैवंभूतं ।तद्यथा नैकांतोनावयवाएव नाप्यवयव्येव चेत्यतः स्याद्वादाश्रयणात्पूर्वोक्तविकल्पदोषानुपपत्तिरित्यतः कथंचिल्लोको स्त्येवमलोकोपीति स्थितं ॥१२॥ तदेवं लोकालोकास्तित्वं प्रतिपाद्याधुना तद्विशेषभूत योर्जीवाजीवयोरस्तित्वप्रतिपादनायाह । (णत्थिजीवाअजीवेत्यादि) जीवाउपयोग लक्षणाः संसारिणोमुक्तावा ते न विद्यंते तथा अजीवाश्च धर्माधर्माकाशपुजलकाला त्मकागतिस्थित्यवगाहदानछायातपोद्योतादिवर्त्तनालक्षणान विद्यंतइत्येवं संज्ञां परि ज्ञानं नो निवेशयेन्नास्तित्वनिबंधनं त्विदं प्रत्यक्षेणानुपलभ्यमानत्वाज्जीवान विद्यंते कायाकारपरिणतानि भूतान्येव धावनवल्गनादिकां क्रियां कुर्वंतीति । तथात्मा द्वैत वादमताभिप्रायेण पुरुषएवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यमित्यागमात्तथा अजीवान विद्यंते सर्वस्यैव चेतनाचेतनस्यात्ममात्रनिवर्त्तित्वान्नो एवं संज्ञां निवेशयेत् किंत्वस्ति जीवः सर्वस्यास्य सुखदुःखादेर्निबंधनभूतः स्वसंवित्तिसिद्धोऽहं प्रत्ययग्राह्यस्तथा तद्व्यतिरि क्ताधर्माधर्माकाशपुजलादयश्च विद्यंते । सकलप्रमाणज्येष्ठेन प्रत्यक्षेणानुभूयमानत्वा त्तद्गुणानां भूतचैतन्यवादीव वाच्यः । किं तानि भवदभिप्रेतानि भूतानि नित्यान्युताऽनि त्यानि। यदि नित्यानि ततोऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावत्वान्न कायाकारपरिणतेभ्युपगमः नापि प्रागविद्यमानस्य चैतन्यमुत्पद्यते आहोस्विद्विद्यमानं तावदविद्यमानमतिप्रसंगाद भ्युपेतागमलोपाच्चा ऽथविद्यमानमेव सिद्धं तर्हि जीवत्वं तथाऽत्मा द्वैतवाद्यपि वाच्यः। यदि पुरुषमात्रमेवेदं सर्वं कथं घटपटादिषु चैतन्यं नोपलभ्यते तथा तदैक्यभेदनिबंधनानां पक्ष हेतुदृष्टांतानामभावात्साध्यसाधनाभावस्तस्मान्नैकांतेन जीवाजीवयोरभावोपितु सर्वपदा र्थानां स्याद्वादाश्रयणाज्जीवः स्यादजीवः अजीवोपिच स्यादजीवः स्याज्जीवइत्येतच्च स्या द्वादाश्रयणं जीवपुजलयोरन्योन्यानुगतयोः शरीरस्य प्रत्यक्षतयाऽध्यक्षेणैवोपलंभाद्द्रष्ट व्यमिति ॥१३॥ जीवास्तित्वेच सिद्धे तन्निबंधनयोः सदसत्क्रिया द्वारायातयोर्धर्माधर्मयोर स्तित्वप्रतिपादनायाह । (णत्थिधम्मेअधम्मेवेत्यादि) धर्मः श्रुतचरित्राख्यात्मकोजीवस्या त्मपरिणामः कर्मक्षयकारणमात्मपरिणामएवमधर्मोपि मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययो गरूपः कर्मबंधकारणमात्मपरिणामएव।तावेवंभूतो धर्माऽधर्मौ कालस्वभावनियतीश्वरादि मतेन न विद्येते इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्। कालादयएवास्य सर्वस्य जगद्वैचित्र्यस्य धर्मा धर्माव्यतिरेकेणैकांततः कारणमित्येवमभिप्रायं कुर्याद्यतः तएवैककान कारणमपितु समु दिताएवेति। तथाचोक्तं । " नहि कालादी हिंतो, केवले हिंतो जायए किंचि ॥ इहमुग्गरं धणा इवि, तासवे समुदिया हेऊ " इत्यादि । यतोधर्माधर्ममंतरेण संसारवैचित्र्यं न घटामियर्त्यतोऽस्ति धर्मः सम्यग्दर्शनादिकोऽधर्मश्च मिथ्यात्वादिकइत्येवं संज्ञां नो निवे शयेदिति ॥ १४॥

णत्थि बंधेव मोक्खेवा, णेवं सन्नं निवेसए॥ अत्थि बंधेव मोक्खेवा, एवं सन्नं निवेसए॥ १५॥ णत्थि पुस्सेव पावेवा, णेवं सन्नं निवेसए॥ अत्थि पुस्सेव पावेवा, एवं सन्नं निवेसए॥ १६॥

अर्थ—हवे धर्माधर्मनें अस्तिनावें, बंध अनें मोक्षनो सद्भाव देखाडेछे. प्रकृति, स्थिति, अनुनाग, अनें प्रदेशरूप,एवो जे चार प्रकारनो बंध, ते पण नथी, तथा मोक्ष पण नथी, एवी संज्ञा पण न करवी, परंतु ए बंध पणछे अनें मोक्ष पणछे एवी संज्ञा करवी ॥१५॥ हवे बंधना सद्भावें अवश्य पुण्य अनें पापनो पण सद्भावछे. ते कहेछे. पुण्य जे शुन्न प्रकृतिलक्षण ते पण नथी, तथा पाप जे अशुन्नप्रकृतिलक्षण ते पण नथी, एवी संज्ञा न करवी, परंतु पुण्य पणछे अनें पाप पणछे. एवी संज्ञा करवी ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—(णत्थिबंधेइति) नास्ति बंधोमोक्षोवेति संज्ञां न कुर्यात् बंधमोक्षसद्भाव मंगीकुर्यात् ॥ १५ ॥ (णत्थिपुस्समिति) नास्ति पुण्यं सत्कर्म, नास्ति पापमसत्कर्म इति नांगीकार्यं तयोरस्तित्वं मंतव्यं ॥ १६ ॥

॥ टीका—सतोश्च धर्माधर्मयोर्बंधमोक्षसद्भावइत्येतद्दर्शयितुमाह । (णत्थिबंधेवमोक्खेवाइत्यादि) बंधः प्रकृतिस्थित्यनुनावप्रदेशात्मकतया कर्मपुजलानां जीवेन स्वव्यापारतः स्वीकरणं । सचामूर्तस्यात्मनोगगनस्येव न विद्यतइत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । तथा तदन्नावाच्च मोक्षस्याप्यन्नावइत्येवमपि संज्ञां नो निवेशयेत् । कथंतर्हि संज्ञां निवेशयेदित्युत्तरार्द्धेन दर्शयति।अस्ति बंधः कर्मपुजलैर्जीवस्येत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति । यत्तूच्यते मूर्तस्यामूर्तिमता संबंधोन युज्यतइति तदयुक्तं । आकाशस्य सर्वव्यापितया पुजलैः संबंधोडुर्निवार्यः । तदन्नावे तद्व्यापित्वमेव न स्यादन्यच्चास्य विज्ञानस्य हृत्पूरमदिरादिना विकारः समुपलन्यते। नचासौ संबंधमृतेऽतोयत्किंचिदेतत् । अपिच संसारिणामसुमतां सदा तैजसकार्मणशरीरसद्भावादात्यंतिकममूर्तत्वं न नवतीति । तथा तत्प्रतिपक्षनूतोमोक्षोप्यस्ति तन्नावे बंधस्याप्यन्नावः स्यादित्यतोऽशेषबंधनापगमस्वनावोमोक्षोस्तीत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥१५॥ बंधसद्भावें चावश्यं नावी पुण्यपापसद्भावइत्यतस्तन्नावं निषेधद्वारेणाह। (णत्थिपुस्स इत्यादि) नास्ति न विद्यते पुण्यं शुन्नकर्मप्रकृतिलक्षणं तथा पापं तद्विपर्ययलक्षणं नास्ति न विद्यते इत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । तदन्नावप्रतिपत्तिनिबंधनं त्विदं । तत्र केषांचिन्नास्ति पुण्यपापमेव ह्युत्कर्षावस्थं सत्सुखडुःखनिबंधनं तथा परेषां पापं नास्ति पुण्यमेव ह्यपचीयमानं पापं कार्यं कुर्यादित्यन्येषां तूनयमपि नास्ति । संसारवैचित्र्यं तु नियतिस्वनावादिकृतं तदेतदयुक्तं । यतः पुण्यपापशब्दौ संबंधिशब्दौ । संबंधिशब्दानामेकस्य

सत्तापरसत्तानांतरीयकतोनैतरस्य सत्तेति नाप्युनयाजावः शक्यते वक्तुं निबंधनस्य जगद्वैचित्र्यस्याजावात् । नहि कारणमंतरेण क्वचित्कार्यस्योत्पत्तिर्दृष्टा । नियतिस्वजावादिवादस्तु नष्टोत्तराणां पादप्रसारिकाणां पादप्रसारिका प्रायोपि च तद्वादेन्युपगम्यमाने सकलक्रियावैयर्थ्यं ततएव सकलकार्योत्पत्तिरित्यतोस्ति पुण्यं पापं चेत्येवं संज्ञां निवेशयेत् । पुण्यपापे चैवं रूपे । तद्यथा ॥ "पुजलकर्म शुनं य,त्तत्पुण्यमिति जिनशासने दृष्टम् ॥ यदशुनमथ तत्पाप,मिति नवति सर्वज्ञनिर्दिष्ट"मिति ॥ १६ ॥

णत्थि आसवे संवरेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि आसवे संवरेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १७ ॥ णत्थि वेयणा णिज्जरावा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि वेयणा णिज्जरावा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १८ ॥

अर्थ—हवे कारण विना कार्यनी उत्पत्ति नथी,माटें पुण्य अनें पाप ए बेनुं कारण आश्रव अनें संवरछे, तेथी हवे आश्रव अनें संवर देखाडेछे. प्राणातिपातादि रूप जे कर्म ग्रहण करवानां कारणछे ते आश्रव जाणवां. अनें जेणें करी आवता कर्मनें रोकी राखीयें तेनें संवर कहियें, माटें ए आश्रव अनें संवर बन्ने नथी, एवी संज्ञा करवी नहीं, परंतु आश्रव पणछे, अने संवर पणछे, एम कहेवुं ॥ १७ ॥ हवे आश्रव अनें संवरनें सद्भावें वेदना अनें निर्ज्जरानो सद्भाव देखाडेछे. वेदना एटले कर्मनुं अनुनववुं, अनें निर्ज्जरा एटले कर्म पुजलनुं साडवुं, ए बेहु नथी. एवी संज्ञा न करवी; परंतु वेदना पणछे अनें निर्ज्जरा पणछे. एवी संज्ञा गीतार्थ साधु करे ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—(णत्थिआसवेति) आश्रवसंवरसद्भावोंगीकार्यइति ॥ १७ ॥ (णत्थिवेयणेति) वेदना कर्मानुनवरूपा निर्जरा कर्मपुजलशाटरूपा एते द्वे अपि न स्तः । यतः पल्योपमसागरोपममसातवेद्यं कर्म अंतर्मुहूर्तेनैव क्षयं याति । यडुक्तं । "जं अन्नाणी कम्मं, खवेइ बहुयाहि वासकोडीहिं ॥ तन्नाणी तिहि गुत्तो, खवेइ ऊसास मित्तेणमित्यादि । तथा क्षपकश्रेण्यां शीघ्रमेव कर्मणः क्षयात् यथाक्रमबद्धस्यानुनवानावे वेदनायाअनावस्तदनावेच निर्जरायाअप्यनावइत्येवं नांगीकुर्यात् । यतः कस्यचिदेव कर्मणएवमुक्तनीत्या क्षयः अन्यस्य तु प्रदेशानुनवेन नोगसन्नावादस्तिवेदना । यडुक्तं । "पुव्विंडच्चिन्नाणं डुप्पडिकंताणकम्माणं॥वेइत्ता मोरको नत्थि अवेइत्ताइत्यादि । वेदनासन्नावेच निर्जराप्यस्तीति स्वीकुर्यात्॥१८॥

॥ टीका—न कारणमंतरेण कार्यस्योत्पत्तिरतः पुण्यपापयोः प्रागुक्तयोः कारणनूतावा

मेलवेछे. एवंतु के० एरीते जेम ते मृग अजाणतां थकां पाशमांहे पडेछे, तेम सम णाएगे के० कोइएक श्रमण शाक्यादिक दर्शनी ते केवाछे, तोके मिछदिट्ठी के० मि थ्यादृष्टी तथा अणारिआ के० अनार्य अज्ञानपणे अनाचारना सेवनारा ते असंकिया इंके० अशंकित एवां जे रुडा धर्मनां अनुष्ठानछे, तेनेविषे संकंति के० अधर्मनी शंका आणे; अने संकियाइं के० जे हिंसादिक शंकित स्थानकछे, तेथकी असंकिणो के० न शंकाय. ॥ १० ॥ वली ते दर्शनीउनी जे विपरीत मति छे ते देखाडेछे. धम्मपण्णव णाजासा के० क्षांत्यादिक दशविध धर्मसहित प्ररूपणा जेनीछे. तंतुसंकंतिमूढगा के० तेथकी ते अज्ञानी शंकाय अने कहेके ए अधर्मनी प्ररूपणाछे, तथा जे आरंभाइंके० आरंभादिक पापनां कारण छे. तेथकी नसंकंति के० न शंकाय अने तेनेज धर्म करी देखाडे. माटे ते केवा छे, अविअत्ता के० अव्यक्त, मुग्ध, विवेक, विकल तथा अकोवि याके० अकोविद एटले अपंडित छे. ॥ ११ ॥ हवे तेने फल देखाडेछे. सव्वप्पगं के० सर्वात्मक ते लोभ, विउक्कस्सं के० मान, सव्व के० समस्त, णूमं के० माया, तथा अप त्तियं के० क्रोध ए चार कषाय विहूणिया के० खपावीने जीव अकम्मंसेके० अकर्मांश थाय, एटले कर्मांशरहित थाय. एयमट्ठं के० एवो अर्थ ते मिगेके० मृगनी पेरे अज्ञान प क्षवादी दर्शनी चूएके० छांमेछे. सारांश जेथकी जीव मुक्ति पामे ते अर्थ जाणता नथी॥ १२॥

॥ दीपिका—पाशमपश्यतोयाऽवस्था स्यात्तामाह । (अहिअप्पेति । स मृगोऽहिता त्मा तथा अहितं प्रज्ञानं बोधोयस्य सोऽहितप्रज्ञानः विषमांतेन कूटपाशादियुक्तेन प्रदेशे नोपागतः। अथवा विषमांते कूटपाशे आत्मानमनुपातयेत्। तत्र चासौ बद्धः पादपाशा दीननर्थबहुलान् अवस्थाविशेषान् प्राप्तस्तत्र बंधने घातं विनाशं निगछति प्राप्नोति ॥ ॥ ए ॥ दृष्टांतयोजनामाह । (एवमिति) । एवं पूर्वोक्तमृगदृष्टांतेन । तुरवधार णे। एकेश्रमणाः पार्श्वमाश्रितमिथ्यादृष्टयोऽनार्याअसदनुष्ठानाअशंकितानि धर्मानुष्ठा नानि शंकमानास्तथा शंकितान्येकांतपक्षाश्रयणान्यशंकिनोमृगाइवाऽनर्थभाजः स्युः ॥ ॥ १० ॥ शंकिताशंकितविपर्यासमाह । (धम्मेत्ति)। धर्मप्रज्ञापना क्षांत्यादिदशविधधर्म प्ररूपणा या सा प्रसिद्धा तां शंकंते सद्धर्मप्ररूपणेयमिति मन्यंते । आरंभांश्च पापो पादानभूतान् शंकंते । यतोऽव्यक्तामुग्धाः सदसद्विवेकविकलाअकोविदाअपंडिताः स छास्त्रावबोधविधुराः ॥ ११ ॥ तेषां सत्फलाभावमाह । (सव्वप्पगमिति) सर्वात्मकोलो भस्तं। व्युत्कर्षोमानस्तं (सव्वंणूमंति) मायां तथा (अप्पत्तिअंति) क्रोधस्तं च विधूय अकर्मां शः न विद्यते कर्मांशोयस्य सोऽकर्मांशः स्यात् । अकर्मांशत्वं च ज्ञानाद्भवति नाऽज्ञानादि त्याह । (एयमट्ठंति) । एतमर्थं कर्माभावरूपं मृगइव मृगोऽज्ञानी (चुएत्ति) त्यजेत् ॥ १२॥

श्रवसंवरौ तत्प्रतिषेधद्वारेण दर्शयितुकामञ्चाह। (णत्थिआसवेसंवरेवेत्यादि) आश्रवति प्रविशति कर्म येन सप्राणातिपातादिरूपआश्रवः कर्मोपादानकारणं तथा तन्निरोधः संवरः एतौ द्वावपि न स्तइत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्तदनावप्रतिपत्त्या शंकाकारणंत्विदं कायवाङ्मनःकर्मयोगः स आश्रवइति यथेदमुक्तं तथेदमप्युक्तमेव । (उच्चालियंमिपाएइत्यादि) ततश्च कायादिव्यापारेण कर्मबंधो न नवतीति युक्तिरपि । किमयमाश्रवआत्मनोनिन्नउताऽनिन्नः । यदि निन्नोनामासावाश्रवोघटादिवद्भेदे पि नाश्रवत्वं सिद्धात्मनामपि आश्रवप्रसंगात्तदनावेच तन्निरोधलक्षणस्य संवरस्याप्यनावः सिद्धएवेत्येवमात्मकमध्यवसायं न कुर्यात् । यतोयत्तदनैकांतिकत्वं कायव्यापारस्योच्चालयंमि पाए इत्यादिनोक्तं तदस्माकमपि संमतमेव । यतोयमस्मानिरप्युपयुक्तकर्मबंधोन्युपगम्यते निरुपयुक्तस्य कर्मबंधस्तथा नेदानेदोन्नयपक्षसमाश्रयणात्तदेकपक्षाश्रितदोषानावइत्यस्त्याश्रवसद्भावस्तन्निरोधश्च संवरइति । उक्तंच। "योगः शुद्धः पुण्या,श्रवस्तु पापस्य तद्विपर्यासः ॥ वाक्कायमनोगुप्ति,निराश्रवः संवरस्तूक्त" इत्यतोस्त्याश्रवस्तथा संवरश्चेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १७ ॥ आश्रवसंवरसद्भावे चावश्यं नावी वेदनानिर्जरासद्भावइत्यतस्तं प्रतिषेधनिषेधद्वारेणाह । (णत्थिवेयणेत्यादि) वेदना कर्मानुनवलक्षणा तथा निर्जरा कर्मपुद्गलशाटनलक्षणा । एते द्वे अपि न विद्येते इत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । तदनावं प्रत्याशंकाकारणमिदं । तद्यथा । पल्योपमसागरोपमशतानुनवनीयं कर्मांतर्मुहूर्तेनैव क्षयमुपयातीत्यन्युपगमात् । तदुक्तं । "जं अन्नाणी कम्मं, खवेइ बहुयाइं वासकोडीहिं ॥ तन्नाणी तिहि गुत्तोखवेइ ऊसासमित्तेणं" इत्यादि । तथा क्षपकश्रेण्यां च ऊटित्येव कर्मणोनस्मीकरणाद्यथाक्रमबद्धस्य चानुनवनानावे वेदनायाअनावस्तदनावाच्च निर्जरायाअपीत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । किमिति । यतः कस्यचिदेव कर्मणएवमनंतरोक्तया नीत्या क्षपणात्तपसा प्रदेशानुनवेन चापरस्य तूदयोदीरणान्यामनुनवनमित्यतोस्ति वेदना । यतआगमोप्येवंनूतएव । तद्यथा । "पुव्विंडुच्चिन्नाणं, डुप्पडिकंताणकम्माणं ॥ वेइत्ता मोरको णत्थि अवेइत्ताइत्यादिवेदनासिद्धौ च निर्जरापि सिद्धेवेत्यतोस्ति वेदना निर्जरावेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १८ ॥

णत्थि किरिया अकिरियावा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि किरिया अकिरियावा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १९ ॥ णत्थि कोहेव माणेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि कोहेव माणेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २० ॥

अर्थ—हवे वेदना, अनें निर्जरा, ए बन्ने क्रिया अनें अक्रियाना आयतछे. माटें तेनो सद्भाव देखाडेछे क्रिया एटले करवुं,अनें जे ते थकी विपरीत ते अक्रिया,ए बन्ने नथी.एवी

ति स्वीकार्यं ॥ २२ ॥ (णत्थिरागदोसाविति) रागद्वेषौ न स्तइति न स्वीकार्ये विद्येते इति मतिः कार्या युक्तिः । पूर्वोक्ता ॥ २३ ॥

॥ टीका सांप्रतं मायालोनयोरस्तित्वं दर्शयितुमाह (णत्थिमायावलोनेत्यादि, पि प्राग्वन्मायालोनयोरन्नाववादीनां निराकृत्यास्तित्वं प्रतिपादनीयमिति ॥ २१॥ तेषांच क्रोधादीनां समासेनास्तित्वं प्रतिपादयन्नाह । (णत्थिपेज्जेवेत्यादि) प्रेम पुत्रकलत्रधनधान्याद्यात्मीयेषु रागस्तद्विपरीतस्त्वात्मीयोपघातकारिणि द्वावपि न विद्येते । तथाहि । केषांचिदन्निप्रायोयद्दुत मायालोनावेवावयवौ तत्समुदायरूपोऽवयव्यस्ति । तथा क्रोधमानावेव स्तः न त... इति । तथा ह्यवयवेन्योयद्यन्निन्नोवयवी तर्हि तदन्नेदात्तएव । नासावथ गुपलंनः स्याद्घटपटवदितित्येवमसिद्धिकल्पमूढतया नो संज्ञां निवेशयेत् । वयविनोः कथंचिद्भेदइत्येवं नेदान्नेदारव्यतृतीयपक्षसमा... पपत्तिरित्येवं चास्ति प्रीतिलक्षणं प्रेमाप्रीतिलक्षणश्च द्वेषइत्येवं संज्ञां निवेशयेत्

णत्थि चाउरंते संसारे, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि चाउरंते संसारे, एवं सन्नं निवेसए ॥ २३ ॥ णत्थि देवोव देवीवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि देवोव देवीवा, एवं सन्नं निवेसए॥

अर्थ—हवे पूर्वे कह्या जे क्रोधादिक चार कषाय ते कषायनें सद्भावें, व देखाडेछे. नरक, तिर्यंच, मनुष्य अनें देवता, ए चतुर्गतिलक्षण संसार संज्ञा न करे, परंतु ए चतुर्गतिलक्षण संसारछे एवी संज्ञा करे ॥ २३ ॥ हवे एज संसारनो सद्भाव देखाडेछे. नुवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी, अनें वैमानिकना देव, तथा एनी स्त्रियो ते देवि ए बेहु नथी. एवी संज्ञा न करे, णछे अनें देवीउ पणछे; एवी संज्ञा करे. एवी संनावनायें मनुष्य, नारकी, नो पण सद्भाव जाणवो ॥ २४ ॥

॥ दीपिका (णत्थिचाउरंतइति) नास्ति चातुरंतः च. श्चतुरंतश्चतुर्विधः संसारोनास्ति देवनार... अस्ति चतुर्विधः संसारः यतः संति सु... ग्यं संज्ञां निवेशयेत् ॥ २४ ॥ (ण ... स्ति अस्ति देवोवा देवी इति संज्ञां कुर्यात्

श्रवसंवरौ तत्प्रतिपेधद्वारेण दर्शयितुकामआह। (णत्थिआसवेसंवरेवेत्यादि) आश्रवति प्रविशति कर्म येन सप्राणातिपातादिरूपआश्रवः कर्मोपादानकारणं तथा तन्निरोधः संवरः एतौ द्वावपि न स्तइत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्तदनावप्रतिपत्त्या शंकाकारणंत्विदं कायवाङ्मनःकर्मयोगः स आश्रवइति यथेदमुक्तं तथेदमप्युक्तमेव । (उच्चालियंमिपाएइत्यादि) ततश्च कायादिव्यापारेण कर्मबंधो न नवतीति युक्तिरपि । किमयमाश्रवआत्मनोनिन्नउताऽनिन्नः । यदि निन्नोनामासावाश्रवोघटादिवदन्नेदेपि नाश्रवत्वं सिद्धात्मनामपि आश्रवप्रसंगात्तदनावेच तन्निरोधलक्षणस्य संवरस्याप्यनावः सिद्धएवेत्येवमात्मकमध्यवसायं न कुर्यात् । यतोयत्तदनैकांतिकत्वं कायव्यापारस्योच्चालयंमि पाए इत्यादिनोक्तं तदस्माकमपि संमतमेव । यतोयमस्मानिरप्युपयुक्तकर्मबंधोन्युपगम्यते निरुपयुक्तस्य कर्मबंधस्तथा नेदानेदोनयपक्षसमाश्रयणात्तदेकपक्षाश्रितदोषानावइत्यस्त्याश्रवसन्नावस्तन्निरोधश्च संवरइति । उक्तंच। "योगः शुद्धः पुण्या,श्रवस्तु पापस्य तद्विपर्यासः ॥ वाक्कायमनोगुप्ति,निराश्रवः संवरस्तूक्त" इत्यतोस्त्याश्रवस्तथा संवरश्चेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १७ ॥ आश्रवसंवरसन्नावे चावश्यं नावी वेदनानिर्जरासन्नावइत्यतस्तं प्रतिपेधनिषेधद्वारेणाह । (णत्थिवेयणेत्यादि) वेदना कर्मानुनवलक्षणा तथा निर्जरा कर्मपुजलशाटनलक्षणा । एते द्वे अपि न विद्येते इत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । तदनावं प्रत्याशंकाकारणमिदं । तद्यथा । पल्योपमसागरोपमशतानुनवनीयं कर्मांतर्मुहूर्तेनैव क्षयमुपयातीत्यन्युपगमात् । तडुक्तं । "जं अन्नाणी कम्मं, खवेइ बहुयाइं वासकोडीहिं ॥ तन्नाणी तिहि गुत्तोखवेइ ऊसासमित्तेणं"इत्यादि। तथा क्षपकश्रेण्यां च ऊटित्येव कर्मणोनस्मीकरणाद्यथाक्रमबद्धस्य चानुनवनानावे वेदनायाअनावस्तदनावाच्च निर्जरायाअपीत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । किमिति । यतः कस्यचिदेव कर्मणएवमनंतरोक्तया नीत्या क्षपणात्तपसा प्रदेशानुनवेन चापरस्य तूदयोदीरणान्यामनुनवनमित्यतोस्ति वेदना । यतआगमोप्येवंनूतएव । तद्यथा । "पुव्विंडुच्चिन्नाणं, डुप्पडिकंताणकम्माणं॥ वेइत्ता मोरको णत्थि अवेइत्ताइत्यादिवेदनासिद्धौ च निर्जरापि सिद्धेवेत्यतोस्ति वेदना निर्जरावेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १८ ॥

णत्थि किरिया अकिरियावा, णेवं सन्नं निवेसए॥ अत्थि किरिया अकिरियावा, एवं सन्नं निवेसए॥ १९ ॥ णत्थि कोहेव माणेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि कोहेव माणेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २० ॥

अर्थ—हवे वेदना, अनें निर्जरा, ए बन्ने क्रिया अनें अक्रियाना आयतनछे. माटें तेनो सन्नाव देखाडेछे क्रिया एटले करवुं,अनें जे ते थकी विपरीत ते अक्रिया,ए बन्ने नथी.एवी

संज्ञा न करवी, परंतु क्रिया पणछे, अनें अक्रिया पणछे. एवी संज्ञा करवी ॥१९॥ हवे क्रियानें सद्भावें क्रोधादिकनो सद्भाव देखाडेछे. जे पोतानें अनें परनें अप्रीतिनुं कारण ते क्रोध जाणवो, तथा जे गर्वलक्षण ते मान जाणवुं, ए बेहु नथी, एवी संज्ञा पण न करवी, परंतु क्रोध अनें मान ए वेहुछे एवी संज्ञा करवी ॥ २० ॥

॥ दीपिका–(णत्थिकिरियेत्यादि) सांख्यादीनां सर्वव्यापकत्वादात्मनोऽव्योम्नइव परिस्पंदात्मिका क्रिया न विद्यते बौद्धानांतु क्षणिकत्वात्सर्वभावानां प्रतिक्षणमुत्पत्तिरेव नान्या काचित्क्रिया तथा सर्वपदार्थानां प्रतिक्षणमवस्थांतरगमनात्सक्रियत्वमेव अतोऽक्रिया न विद्यते एवं संज्ञां न कुर्यात् किंतु ? अस्ति क्रियाऽक्रियाचेति संज्ञां कुर्यात् । यतः क्रियाभावे व्योम्नइव बंधे मोक्षाभावः प्रसज्येत । बौद्धानामपि प्रतिक्षणोत्पत्तिक्रियैव ततोऽस्ति क्रिया तद्भावेच तद्विपक्षभूताऽक्रियाप्यस्तीति ॥१९॥ (णत्थिकोहेवेति) नास्ति क्रोधः सद्दिमानांशएव क्षपकश्रेण्यांच भेदेन क्षपणानंगीकारात् । तथा क्रोधः किं ? आत्मनोधर्मः किंवा कर्मणउतान्यस्य । तत्रात्मधर्मत्वे सिद्धानामपि क्रोधोदयप्रसंगः । अथ कर्मणस्ततस्तदन्यकषायोदयेपि तदुदयसंगात् अन्यधर्मत्वेऽकिंचित्करत्वमतोनास्ति क्रोधः । एवं मानाभावोऽपि वाच्यइत्येवं नांगीकुर्यात् । यतः क्रोधाध्मातः पुरुषः प्रत्यक्षेणैवोपलभ्यते नायं मानांशोनिमित्तभेदात् । तथा जीवकर्मणोर्द्वयोरप्ययं धर्मस्ततः पूर्वोक्तः प्रत्येकदोषासंभवस्ततः क्रोधोमानश्चास्तीति संज्ञां निवेशयेत् ॥ २० ॥

॥ टीका–वेदनानिर्जरेच क्रियाक्रियत्वे ततस्तद्भावप्रतिषेधनिषेधपूर्वकं दर्शयितुमाह । (णत्थिकिरियाअकिरियावाइत्यादि) क्रिया परिस्पंदलक्षणा तद्विपर्यस्तात्वक्रिया । ते द्वे अपि न स्तोन विद्येते । तथाहि । सांख्यानां सर्वव्यापित्वादात्मनआकाशस्येव परिनिस्पंदिका क्रिया न विद्यते । शाक्यानांतु क्षणिकत्वात्सर्वपदार्थानां प्रतिसमयमन्यथा वान्यथोत्पत्तेः । पदार्थसत्तैव न तद्व्यतिरिक्ता काचित्क्रियास्ति ॥ तथा चोक्तं । भूतिर्येषां क्रियासैव कारकस्यैव चोच्यतइत्यादि । तथा सर्वपदार्थानां प्रतिक्षणमवस्थांतरगमनात्सक्रियात्वमतोन क्रिया विद्यते इत्येवं सज्ञां नो निवेशयेत् किंतह्यस्ति क्रिया अक्रिया वेत्येवं सज्ञां निवेशयेत् । तथाहि । शरीरात्मनोर्देशादेशांतरावाप्तिनिमित्ता परिस्पंदात्मिका क्रिया प्रत्यक्षेणैवोपलभ्यते । सर्वथा निष्क्रियत्वे चात्मनोऽभ्युपगम्यमाने गगनस्येव बंधमोक्षाद्यभावः सच दृष्टेष्टबाधितः । तथा शाक्यानामपि प्रत्यक्षेणोत्पत्तिरेव क्रियेत्यतः कथं क्रियायाअभावोपि चैकांतेन क्रियाभावे संसारमोक्षाभावः स्यादित्यतोऽस्ति क्रिया तद्विपक्षभूताचाक्रियेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १९ ॥ तदेवं सक्रियात्मनि सति क्रोधादिसद्भावइ

त्येतद्दर्शयितुमाह । (णत्थिकोहेवमाणेवेत्यादि) स्वपरात्मनोरप्रीतिलक्षणः क्रोधः ॥ सचानंतानुबंध्यप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनन्नेदेन चतुर्धाऽऽगमे पठ्यते।तथैतावन्नेदएव मानोगर्वः । एतौ द्वावपि न स्तोन विद्येते । तथाहि। क्रोधः केषांचिन्मतेन मानांशएवाजिमानग्रहगृहीतस्य तत्कृतावत्यंतक्रोधोदयदर्शनात् क्षपकश्रेण्यां च नेदेन क्षपणानन्युपगमात्। तथा किमयमात्मधर्मआहोस्वित्कर्मणउतान्यस्येति । तत्रात्मधर्मत्वे सिद्धानामपि क्रोधोदयप्रसंगोऽथ कर्मणस्ततस्तदन्यकषायोदयेपि तडुदयप्रसंगान्मूर्तत्वाच्च कर्मणोहि घटस्येव तदाकारोपलब्धिः स्यादन्यधर्मत्वे त्वकिंचित्करत्वमतोनास्ति क्रोधइत्येवं मानाजावोपि वाच्य इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्। यतः। कषायः कर्मोदयवर्ती दृष्टेष्ठ कृतत्रुकुटीनंगोरक्तवदनोगलत्स्वेदबिंडुसमाकुलः क्रोधाध्मातः समुपलन्यते न चासौ मानांशस्तत्कार्याकरणात्तथा परनिमित्तोद्बापिततत्वाच्चेति तथा जीवधर्मकर्मणोरुन्नयोरप्ययं धर्मस्तत्धर्मत्वेनच प्रत्येकविकल्पदोषानुपपत्तिरनन्युपगमात्संसार्यात्मनां कर्मणा सार्द्धं पृथग्नवनाजावात्तडुनयस्यच न नरसिंहव द्वस्त्वंतरत्वादित्यतोऽस्ति क्रोधोमानश्चेत्येवं संज्ञां निवेशयेत् ॥ २० ॥

णत्थि माया व लोन्नेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि माया व लो
न्नेवा, एवं सन्नं निवेसए॥ २१ ॥ णत्थि पेज्जेव दोसेवा, णेवं स
न्नं निवेसए ॥ अत्थि पेज्जेव दोसेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २२ ॥

अर्थ—हवे माया अनें लोन्ननो सद्भाव देखाडेबे, जे परवंचनरूप ते माया, अनें जे सन्निधि संचयरूप ते लोन्न, ए बेहु नथी, एवी संज्ञा न करवी, परंतु माया पणबे, अनें लोन्न पणबे एवी संज्ञा करवी ॥ २१ ॥ हवे क्रोधादिक जेबे, तेनो संक्षेप थकी सद्भाव कहेबे. प्रेम एटले प्रीतिलक्षण पुत्र, कलत्र, धन, धान्यादिक, विषेरागता ते राग, तथा अप्रीतिलक्षण ते द्वेष, ए बेहु नथी. एवी संज्ञा न करवी, परंतु राग पणबे, अनें द्वेष पणबे, एवी संज्ञा करवी ॥ २२ ॥

॥ दीपिका (णत्थिमायेवेति) मायालोन्नौ न स्तः इति सज्ञां न निवेशयेत् मायालोन्नयोर्निबंधः पूर्ववत् । प्रत्यक्षदृश्यत्वान्मायालोन्नौ स्तइति सज्ञां निवेशयेत् ॥ २१ ॥ (णत्थिपेज्जेवेति) प्रीतिः प्रेम पुत्रकलत्रधनादिषु रागस्तद्विपरीतोद्वेषस्तौ न स्तः । यतोमाया लोन्नावेव रागः क्रोधमानावेव द्वेषस्ताभ्यां रागद्वेषौ न स्तः अस्ति प्रेमद्वेपोप्यस्तीति संज्ञां कुर्यात यस्माद्रागोवयवी मायालोन्नौ अवयवौ तथा द्वेषोऽवयवी क्रोधमानौ अवयवौ अवयवीच अवयवेन्यः कथंचिद्भिन्नोऽभिन्नश्च तस्मान्मायालोन्नश्च प्रेमद्वेषश्च कथंचिदस्ति

ति स्वीकार्यं ॥ २२ ॥ (णत्थिरागदोसाविति) रागद्वषौ न स्तइति न स्वीकार्यं तौ वि द्येते इति मतिः कार्या युक्तिः । पूर्वोक्ता ॥ २३ ॥

॥ टीका सांप्रतं मायालोनयोरस्तित्वं दर्शयितुमाह (णत्थिमायावलोनेत्यादि) अत्रा पि प्राग्वन्मायालोनयोरनावववादीनां निराकृत्यास्तित्वं प्रतिपादनीयमिति ॥ २१॥ सांप्रतं तेषांच क्रोधादीनां समासेनास्तित्वं प्रतिपादयन्नाह । (णत्थिपेज्जेवेत्यादि) प्रीतिलक्षणं प्रेम पुत्रकलत्रधनधान्याद्यात्मीयेषु रागस्तद्विपरीतस्त्वात्मीयोपघातकारिणि द्वेषस्तावेतौ द्वावपि न विद्येते । तथाहि । केषांचिदनिप्रायोयद्भुत मायालोनावेवावयवौ विद्येते न तत्समुदायरूपोऽवयव्यस्ति । तथा क्रोधमानावेव स्तः न तत्समुदायरूपोऽवयवी द्वेष इति । तथा ह्यवयवेन्योयद्यनिन्नोवयवी तर्हि तदनेदात्तएव । नासावथ निन्नः पृथ गुपलंनः स्याद्घटपटवदितित्येवमसिद्धिकल्पमूढतया नो संज्ञां निवेशयेत् । यतोऽवयवा वयविनोः कथंचिन्नेदइत्येवं नेदानेदाख्यतृतीयपक्षसमाश्रयणात्प्रत्येकपक्षाश्रितदोषानु पपत्तिरित्येवं चास्ति प्रीतिलक्षणं प्रेमाप्रीतिलक्षणश्च द्वेषइत्येवं संज्ञां निवेशयेत् ॥२२॥

णत्थि चाउरंते संसारे, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि चाउरंते संसारे, एवं सन्नं निवेसए ॥ २३ ॥ णत्थि देवोव देवीवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि देवोव देवीवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २४ ॥

अर्थ—हवे पूर्वे कह्या जे क्रोधादिक चार कषाय ते कषायनें सद्भावें, संसारनो सद्भा व देखाडेछे. नरक, तिर्यंच, मनुष्य अनें देवता, ए चतुर्गतिलक्षण संसार नथी. एवी संज्ञा न करे, परंतु ए चतुर्गतिलक्षण संसारछे एवी संज्ञा करे ॥ २३ ॥ हवे वली पण एज संसारनो सद्भाव देखाडेछे. नुवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी. अनें वैमानिक, ए चार जा तना देव, तथा एनी स्त्रियो ते देविउ ए बेहु नथी. एवी संज्ञा न करे, परंतु ए देव प णछे अनें देवीउ पणछे; एवी संज्ञा करे. एवी संनावनायें मनुष्य, नारकी, अनें तिर्यंच नो पण सद्भाव जाणवो ॥ २४ ॥

॥ दीपिका (णत्थिचाउरंतइति) नास्ति चातुरंतः चत्वारोऽतागतिनेदायत्र ससंसार श्चतुरंतश्चतुर्विधः संसारोनास्ति देवनारकयोरनुपलन्यमानत्वात् इति संज्ञां न निवेशयेत् अस्ति चतुर्विधः संसारः यतः संति सुरनारकाःप्रकृष्टपुण्यपापफलनोगस्यान्यथानुपपत्तेः एवं संज्ञां निवेशयेत् ॥ २४ ॥ (णत्थिदेवेति) नास्ति देवोदेवी वा इति मतिं न कुर्यात् अस्ति देवोवा देवी इति संज्ञां कुर्यात् अत्र प्रकृष्टपुण्यफलनोगएव हेतुः ॥ २५ ॥

॥ टीका सांप्रतं कषायसद्भावे सिद्धे सति तत्कार्यभूतोऽवश्यं भावी संसारसद्भाव इत्येतत्प्रतिषेधनिषेध द्वारेण प्रतिपादयितुमाह । (णत्थिचाउरंते इत्यादि) चत्वारोऽतागति भेदानरकतिर्यङ्नरामरलक्षणायस्य संसारस्यासौ चतुरंतः संसारएव कांतारोनयैकहेतुं त्वात् । सच चतुर्विधोपि न विद्यते अपितुं सर्वेषां संसृतिरूपत्वात्कर्मबंधात्मकतया च डुःखैकहेतुत्वादथवा नारकदेवयोरनुपलभ्यमानत्वात्तिर्यङ्मनुष्ययोरेव सुखडुःखोत्क र्षतया तद्व्यवस्थानाद्विविधः संसारः पर्यायनयाश्रयणात्त्वनेकविधोऽतश्चातुर्विध्यं न क थंचिद्घटतइत्येवं संज्ञां नो निवेशयेदपितु अस्ति चतुरंतः संसारइत्येवं संज्ञां निवेशयेत् । यत्तूक्तमेकविधः संसारस्तन्नोपपद्यते यतोऽध्यक्षेण तिर्यङ्मनुष्ययोर्भेदः समुपलभ्यते न चा सावेकविधत्वे संसारस्य घटते । तथा संभवानुमानेन नारकदेवानामप्यस्तित्वाभ्युपगमा द्वैविध्यमपि न विद्यते । संभवानुमानंतु पुण्यपापयोः प्रकृष्टफलभुजस्तन्मध्यफलभु जां तिर्यङ्मनुष्याणां दर्शनादतः संभाव्यते प्रकृष्टफलभुजोज्योतिषां च प्रत्यक्षेणैव दर्शनाद थ तद्विमानानामुपलंभएवमपि तदधिष्ठातृभिः कैश्चिद्भवितव्यमित्यनुमानेन गम्यते । ग्रहगृ हीतवरप्रदानादिना च तदस्तित्वानुमानमिति तदस्तित्वेतु प्रकृष्टपुण्यफलभुजइव प्रकृष्टपा पफलभुग्भिरपि भाव्यमित्यतोऽस्ति चातुर्विध्यं । संसारस्य पर्यायनयाश्रयणेतु यदनेकवि धत्वमुच्यते तदयुक्तं । यतः सप्तपृथिव्याश्रिताअपि नारकाः समानजातीयाश्रयणादेकप्र काराएव तथा तिर्यंचोपि पृथिव्यादयः स्थावरास्तथा द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियाश्च द्विषष्टियोनिल क्षप्रमाणाः सर्वेप्येकविधाएव । तथा मनुष्याअपि कर्मभूमिजाऽकर्मभूमिजांतरद्वीपक संमूर्छनजात्मकभेदमनाहत्यैकविधत्वेनैवाश्रितास्तथा देवाअपि भवनपतिव्यंतरज्योतिष्क वैमानिकभेदेन भिन्नाएकविधत्वेनैव गृहीतास्तदेवं सामान्यविशेषाश्रयणाच्चातुर्विध्यं संसा रस्य व्यवस्थितं नैकविधत्वं संसारवैचित्र्यदर्शनान्नाप्यनेकविधत्वं सर्वेषां नारकादीनां स्व जात्यनतिक्रमादिति ॥ २३ ॥ २४ ॥

णत्थि सिद्धी असिद्धीवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि सिद्धी अ सिद्धीवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २५ ॥ णत्थि सिद्धी नियं ठाणं, णे वं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि सिद्धी नियं ठाणं, एवं सन्नं निवेसए ॥ २६ ॥

अर्थ—हवे संसारनें सद्भावें सिद्धिनो सद्भाव देखाडेछे. समस्तकर्मक्षयनुं स्थानक सिद्धि जाणवी. अने तेथकी विपरीत ते असिद्धि जाणवी, ए बेहु नथी, एवी संज्ञा न करे, परंतु सिद्धि पणछे, अने असिद्धि पणछे, एवी संज्ञा पोताना चित्तनें विषे स्थापन करे ॥२५॥हवे सिद्धिना स्थानकनो सद्भाव कहेछे. समस्तकर्मक्षयलक्षण जे सिद्धि तेनुं, (नियं

गाणं के०) पोतानुं स्थानक "इसीवप्भार" एवे नामेंछे ते नथी, एवी संज्ञा न करे परंतु सिद्धि एवुं निज पोतानुं स्थानकछे, एवी संज्ञा चित्तने विषे स्थापन करे ॥ २६ ॥

॥ दीपिका-(णत्थिसिद्धीइति) नास्ति सिद्धिः कर्मक्षयरूपा असिद्धिः संसाररूपा सापि नास्तीति संज्ञां न निवेशयेत् । संसारचातुर्विध्यं पूर्वमेवोक्तं । कियतः कर्मक्षयस्यच पीडोपशमादिना प्रत्यक्षेण दर्शनात्कस्यचिदात्यंतिककर्मक्षयोपि स्यात् तस्मादस्ति सिद्धिरसिद्धिरप्यस्तीति संज्ञां कुर्यात् ॥ २६ ॥ (णत्थिसेहाइति) सिद्धेः सर्वकर्मक्षयरूपायानिजं स्थानं सिद्धिशिलोपरियोजनचतुर्थक्रोशोपरितनषड्भागः स नास्तीति संज्ञां न कुर्यात् अस्ति सिद्धिर्निजं स्थानमिति संज्ञां च कुर्यात् आगमप्रमाणसिद्धत्वात् ॥ २७ ॥

॥ टीका-सर्वभावानां सप्रतिपक्षत्वात्संसारसद्भावे सति अवश्यं तद्विमुक्तिलक्षणया सिद्ध्यापि भवितव्यमित्यतोऽधुना सप्रतिपक्षां सिद्धिं दर्शयितुमाह । (णत्थिसिद्धीत्यादि) सिद्धिरशेषकर्मच्युतिलक्षणा तद्विपर्यस्ताचासिद्धिर्नास्तीत्येवं नो संज्ञां निवेशयेदपि त्वसिद्धेः संसारविलक्षणायाश्चातुर्विध्येनानंतरमेव प्रसाधितायाअविगाने नास्तित्वं प्रसिद्धं तद्विपर्ययेण सिद्धेरप्यस्तित्वमनिवारितमित्यतोस्ति सिद्धिरसिद्धिर्वेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति स्थितं । इदमुक्तं भवति । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकस्य मोक्षमार्गस्य सदावांकर्मक्षयस्य च पीडोपशमादिनाऽध्यक्षेण दर्शनादतः कस्यचिदात्यंतिककर्महानिसिद्धेरस्ति सिद्धिरिति । तथा चोक्तं । "दोषावरणयोर्हानिर्निःशेषास्त्यतिशायिनी ॥ क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्योबहिरंतर्मलक्षय"इत्यादि। सर्वज्ञसद्भावोपि संभवानुमानाद्रष्टव्यस्तथाह्यभ्यस्यमानायाः प्रज्ञायाव्याकरणादिना शास्त्रसंस्कारेणोत्तरोत्तरवृद्ध्या प्रज्ञातिशयोद्रष्टव्यः। तत्र कस्यचिदत्यंतातिशयप्राप्तेः सर्वज्ञत्वं स्यादिति संभवानुमानेन चैतदाशंकनीयं । तद्यथा । ताप्यमानमुदकमत्यंतोष्णतामियान्नाग्निसाद्भवेत् तथा दशहस्तांतरं व्योम्नि योनामोत्प्लुत्य गच्छति। न योजनमसौ गंतुं शक्तोभ्यासशतैरपीति दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्यात् । तथाहि । ताप्यमानं जलं प्रतिक्षणं क्षयं गच्छेत्प्रज्ञा तु विवर्द्धते । यदिवा क्षोषोपलब्धेरव्याहतमग्नित्वं तथा प्लवनविषयेपि पूर्वमर्यादायाअनतिक्रमाद्योजनोत्प्लवनाभावस्तत्परित्यागे चोत्तरोत्तरं वृद्ध्या प्रज्ञाप्रकर्षगमनवद्योजनशतमपि गच्छेदित्यतोदृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्यात्तदेवं नाशंकनीयमिति स्थितं । प्रज्ञावृद्धेश्च बाधकप्रमाणाभावादस्ति सर्वज्ञत्वप्राप्तिरिति । यदिवांजनभृतसमुद्गकदृष्टांतेन जीवाकुलत्वाज्जगतोहिंसायाअनिवार्यत्वात्सिद्ध्यभावः । तथा चोक्तं । "जले जीवाः स्थले जीवाआकाशे जीवमालिनि ॥ जीवमालाकुले लोके कथं भिक्षुरहिंसक"इत्यादि । तदेवं सर्वस्यैव हिंसकत्वात्सिद्ध्यभावइति । तदेतदयुक्तं । तथाहि । सदोपयुक्तस्य पिहि

ताश्रवद्वारस्य पंचसमितिसमितस्य त्रिगुप्तिगुप्तस्य सर्वथा निरवद्यानुष्ठायिनोद्विचत्वारिंश द्दोषरहितनिक्षाज़ुजईर्यासमितस्य कदाचिद्द्रव्यतः प्राणिव्यपरोपणेपि तत्कृतबंधाजावः सर्व था तस्यानवद्यत्वात् । तथाचोक्तं । उच्चालियंमिपाए, इत्यपि प्रतीतं तदेवं कर्मबंधाजावात्सि द्धेः सद्भावोव्याहतः सामग्र्यजावादसिद्धिसद्भावोपीति ॥ २५॥ सांप्रतं सिद्धानां स्थाननिरूप पणायाह । (णत्थिसिद्धीत्यादि) सिद्धेरशेषकर्मच्युतिलक्षणायानिजं स्थानमीषत्प्राग्जारा ख्यं व्यवहारतोनिश्चयतस्तु तडुपरि योजनक्रोशषड्जागस्तत्प्रतिपादकप्रमाणाजावात्स ना स्तीत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत् । यतोबाधकप्रमाणाजावात्साधकस्य चागमस्य सद्भावात्तत्स त्ता डुर्निवारेति । अपिचापगताशेषकल्मषाणां सिद्धानां केनचिद्विशिष्टेन स्थानेन जा व्यं तच्चतुर्दशरज्ज्वात्मकस्य लोकस्याग्रजूतं डृष्टव्यं । नच शक्यते वक्तुमाकाशवत्सर्वव्या पिनः सिद्धाइति यतोलोकालोकव्याप्याकाशं । न चालोके परद्रव्यस्याकाशमात्ररूपत्वात् लोकमात्रव्यापित्वमपि नास्ति विकल्पानुपपत्तेः । तथाहि । सिद्धावस्थायां तेषां व्यापित्व मन्युपगतमुतप्रागपि न तावत्सिद्धावस्थायां तद्व्यापित्वनवने निमित्ताजावान्नापि प्रागव स्थायां तद्भावे सर्वसंसारिणां प्रतिनियतसुखडुःखानुजवोन स्यान्नच शरीराद्बहिरवस्थित मवस्थानमस्ति । तत्सत्तानिबंधनप्रमाणस्याजावादतः सर्वव्यापित्वं विचार्यमाणं न कथं चिद्घटते तदजावे च लोकाग्रमेव सिद्धानां स्थानं तज्ञतिश्च कर्मविमुक्तस्योर्ध्वं गतिरिति। तथाचोक्तं । "लाउ एरंडफले,अग्गीधूमे उसूधणुविमुक्के ॥ गइ पुवपउगेणं,एवं सिद्धाणविग ईउ" इत्यादि । तदेवमस्ति सिद्धिस्तस्याश्च निजं स्थानमित्येवं संज्ञां निवेशयेदिति॥ २६॥

णत्थि साहू असाहूवा,णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि साहू असाहू वा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २७ ॥ णत्थि कल्लाण पावेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि कल्लाण पावेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २८ ॥

अर्थ—हवे सिद्धिना साधनारा साधुओछे. तेनो सद्भाव कहेछे. ज्ञान, दर्शन, अनें चारित्ररूप रत्नत्रयनें साधे,ते साधु जाणवा, ते पण नथी, तथा ए थकी विपरीत ते अ साधु जाणवा, ते पण नथी. एवी संज्ञा न करवी, परंतु साधु पणछे, अनें असाधु प णछे, एवी संज्ञा करवी ॥ २७ ॥ हवे सामान्य प्रकारें कल्याण अनें पापनो सद्भाव देखाडेछे. मनोवांछित अर्थनी प्राप्तिनुं करनारुं एवुं कल्याण, ते पण नथी. तथा ते थकी विपरीत जे पाप, ते पण नथी. एवी संज्ञा न करे, किंतु? कल्याण पणछे, अनें पाप पणछे. एवी संज्ञा करे ॥२८॥

॥ दीपिका—(णत्थिसाहू इति) नास्ति साधुर्मुनिः संपूर्णचारित्रगुणाजावात् तदजावे त

वाणं के०) पोतानुं स्थानक "इसीवप्नार" एवे नामेंछे ते नथी, एवी संज्ञा न करे परंतु सिद्धि एवुं निज पोतानुं स्थानकछे, एवी संज्ञा चित्तने विषे स्थापन करे ॥ २६ ॥

॥ दीपिका-(णत्थिसिद्धीइति) नास्ति सिद्धिः कर्मक्षयरूपा असिद्धिः संसाररूपा सापि नास्तीति संज्ञां न निवेशयेत् । संसारचातुर्विध्यं पूर्वमेवोक्तं । कियतः कर्मक्षयस्यच पीडोपशमादिना प्रत्यक्षेण दर्शनात्कस्यचिदात्यंतिककर्मक्षयोपि स्यात् तस्मादस्ति सिद्धिरसिद्धिरप्यस्तीति संज्ञां कुर्यात् ॥ २६ ॥ (णत्थिसेहाइति) सिद्धेः सर्वकर्मक्षयरूपाया निजं स्थानं सिद्धिशिलोपरियोजनचतुर्थक्रोशोपरितनषड्भागः स नास्तीति संज्ञां न कुर्यात् अस्ति सिद्धिर्निजं स्थानमिति संज्ञां च कुर्यात् आगमप्रमाणसिद्धत्वात् ॥ २७ ॥

॥ टीका-सर्वभावानां सप्रतिपक्षत्वात्संसारसद्भावे सति अवश्यं तद्विमुक्तिलक्षणया सिद्ध्यापि भवितव्यमित्यतोऽधुना सप्रतिपक्षां सिद्धिं दर्शयितुमाह । (णत्थिसिद्धीत्यादि) सिद्धिरशेषकर्मच्युतिलक्षणा तद्विपर्यस्ताचासिद्धिर्नास्तीत्येवं नो संज्ञां निवेशयेदपि त्वसिद्धेः संसारविलक्षणायाश्चातुर्विध्येनानंतरमेव प्रसाधितायाअविगाने नास्तित्वं प्रसिद्धं तद्विपर्ययेण सिद्धेरप्यस्तित्वमनिवारितमित्यतोस्ति सिद्धिरसिद्धिर्वेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति स्थितं । इदमुक्तं भवति । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकस्य मोक्षमार्गस्य सदावांक्कर्मक्षयस्य च पीडोपशमादिनाऽध्यक्षेण दर्शनादतः कस्यचिदात्यंतिककर्महानिसिद्धेरस्ति सिद्धिरिति । तथा चोक्तं । "दोषावरणयोर्हानिर्निःशेषास्त्यतिशायिनी ॥ क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्योबहिरंतर्मलक्षय"इत्यादि। सर्वज्ञसद्भावोपि संभवानुमानाद्रष्टव्यस्तथात्यभ्यस्यमानायाः प्रज्ञायाव्याकरणादिना शास्त्रसंस्कारेणोत्तरोत्तरवृद्ध्या प्रज्ञातिशयोद्दष्टव्यः। तत्र कस्यचिदत्यंतातिशयप्राप्तेः सर्वज्ञत्वं स्यादिति संभवानुमानेन चैतदाशंकनीयं । तद्यथा । ताप्यमानमुदकमत्यंतोष्णतामियान्नाग्निसाद्भवेत् तथा दशहस्तांतरं व्योम्नि योनामोत्प्लुत्य गच्छति। न योजनमसौ गंतुं शक्तोभ्यासशतैरपीति दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्यात् । तथाहि । ताप्यमानं जलं प्रतिक्षणं क्षयं गच्छेत्प्रज्ञा तु विवर्द्धते । यदिवा प्लोषोपलब्धेरव्याहतमग्नित्वं तथा प्लवनविषयेपि पूर्वमर्यादायाअनतिक्रमाद्योजनोत्प्लवनाभावस्तत्परित्यागे चोत्तरोत्तरं वृद्ध्या प्रज्ञाप्रकर्षगमनवद्योजनशतमपि गच्छेदित्यतोदृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्यात्तदेवं नाशंकनीयमिति स्थितं । प्रज्ञावृद्धेश्च बाधकप्रमाणाभावादस्ति सर्वज्ञत्वप्राप्तिरिति । यदिवांजनभृतसमुद्गकदृष्टांतेन जीवाकुलत्वाज्जगतोहिंसायाडुर्निवारत्वात्सिद्ध्यभावः । तथा चोक्तं। "जले जीवाः स्थले जीवाआकाशे जीवमालिनि ॥ जीवमालाकुले लोके कथं भिक्षुरहिंसक"इत्यादि। तदेवं सर्वस्यैव हिंसकत्वात्सिद्ध्यभावइति। तदेतदयुक्तं । तथाहि । सदोपयुक्तस्य पिहि

॥ टीका–कूटपाशादिकं चापश्यन् यामवस्थामवाप्नोति तां दर्शयितुमाह। (अहीया दि) स मृगोऽहितात्मा । तथाऽहितं प्रज्ञानं बोधोयस्य सोऽहितप्रज्ञानः। सचाहितप्रज्ञानः सन् विषमांतेन कूटपाशादियुक्तप्रदेशेनोपागतः । यदिवा विषमांते कूटपाशादिके ह्यात्मानमनुपातयेत्। तत्र चासौ पतितो बद्धश्च तेन कूटादिना पदपाशादीननर्थबहुलानवस्थाविशेषान् प्राप्तस्तत्र बंधने घातं विनाशं नियच्छति प्राप्नोतीति ॥ ए ॥ एवं दृष्टांतं प्रदर्श्य सूत्रकारएव दार्ष्टांतिकमज्ञानविपाकं दर्शयितुमाह । (एवंतुइत्यादि) एवमिति यथा मृगाअज्ञानावृताअनर्थमनेकशः प्राप्नुवंति । तुरवधारणे । एवमेव श्रमणाः केचित्पाखंमविशेषाश्रिताः। एके न सर्वे । किंभूतास्ते इति दर्शयति । मिथ्या विपरीता दृष्टिर्येषामज्ञानवादिनां नियतिवादिनां वा ते मिथ्यादृष्टयः । तथा अनार्याः आराद्याताः सर्व हेयधर्मेभ्यइति आर्याः न आर्याअनार्याअज्ञानावृतत्वादसदनुष्ठायिनइति यावत् । अज्ञानावृतत्वं च दर्शयति । अशंकितान्यशंकनीयानि सुधर्मानुष्ठानादीनि शंकमानास्तथा शंकनीयान्यपायबहुलान्येकांतपक्षसमाश्रयणान्यशंकिनोमृगाइव मूढचेतसस्तत्तदाऽरभंते यद्यदनर्थाय संपद्यंतइति ॥ १० ॥ शंकनीयाशंकनीयविपर्यासमाह । (धम्मपस्नवणेत्यादि) । धर्मस्य क्षांत्यादिदशलक्षणोपेतस्य या प्रज्ञापना प्ररूपणा। तंत्विति । तामेव शंकंते असद्धर्मप्ररूपणेयमित्येवमध्यवस्यंति । ये पुनः पापोपादानभूताः समारंभास्तानाशंकंते । किमिति । यतोऽव्यक्तामुग्धाः सदसद्विवेकविकलाः । तथा । अकोविदाअपंडिताः सच्छास्त्रावबोधरहिताइति ॥ ११ ॥ तेच अज्ञानावृतायन्नाप्नुवंति तद्दर्शनायाह। (सव्वप्पगमित्यादि) । सर्वत्राप्यात्मा यस्याऽसौ सर्वात्मको लोभस्तं विधूयेति संबंधः । तथा । विविधउत्कर्षोगर्वोव्युत्कर्षोमानइत्यर्थः । तथा (णूमंति) माया तां विधूय । तथा (अप्पत्तियंति) क्रोधं विधूय । कषायविधूननं च मोहनीयविधूननमावेदितं भवति तदपगमाच्च शेषकर्माभावः प्रतिपादितो भवतीत्याह । (अकर्मांशइति) । न विद्यते कर्मांशोऽस्येत्यकर्मांशः । सच कर्मांशोविशिष्टज्ञानाद्भवति नाज्ञानादित्येव दर्शयति । एतमर्थं कर्माभावलक्षणं मृगः अज्ञानं (चुएत्ति)। त्यजेत्। विभक्तिपरिणामेन वा अस्मादेवंभूतादर्थात् च्यवेत् भ्रश्येदिति ॥ १२ ॥

जे एयं नाभिजाणंति, मिछदिठी अणारिया ॥ मिगा वा पासबद्धा ते,
घायमेसंति णंतसो ॥ १३॥ माहणा समणा एगे, सब्बे नाणं सयं वए॥
सबलोगे वि जे पाणा, न ते जाणंति किंचण ॥१४॥ मिलक्खू अमिलक्खु
स्स, जहा वुत्ताणुभासए॥ ण हेउं से विजाणाइं, भासिअंतणु भासए ॥१५

हस्तिनि ॥ शुनि चैव श्वपाके च पंमिताः समदर्शिन" इत्येवमेव कल्याणपापकाभावरू पां संज्ञां नो निवेशयेदपि त्वस्ति कल्याणं कल्याणवांश्च विद्यते तद्विपर्यस्तं पापं तद्वांश्च विद्यते इत्येवं संज्ञां निवेशयेत् । तथाहि । नैकांतेन कल्याणाभावोयोबौद्धैरभिहितः सर्वपदा र्थानामशुचित्वासंभवात्सर्वाऽशुचित्वेच बुद्धस्याप्यशुचित्वप्राप्तेनापि निरात्मनः स्वद्रव्य क्षेत्र कालभावापेक्षया सर्वपदार्थानां विद्यमानत्वात्परद्रव्यादिभिस्तु न विद्यंते सदसदात्मकत्वा द्वस्तुनः तडुक्तं स्वपरसत्ताव्युदासोपादानोत्पाद्यं हि वस्तुनोवस्तुत्वमिति । तथात्मा चैतना वाभावात्पापाभावोपि नास्त्यचैतनावेहि सुखी दुःखी सरोगोनीरोगोसुरूपः कुरूपोडुर्भगः सुभगोऽर्थवान् दरिद्रस्तथायमंतिकोऽयं तु दवीयान् इत्येवमादिकोजगद्वैचित्र्यभावोऽध्यक्ष सिद्धोपि न स्यात् । यच्च समदर्शित्वमुच्यते ब्राह्मणचांमालादिषु तदपि समानपीडोत्पादनतो द्रष्टव्यं । न पुनः कर्मोपादितवैचित्र्यभावोपि तेषां ब्राह्मणचांमालादीनामस्तीति । तदेवं कथं चित्कल्याणमस्ति तद्विपर्यस्तं तु पापकमिति । नचैकांतेन कल्याणमेव यतः केवलिनां प्र क्षीणघनघातिकर्मचतुष्टयानां सातासातोदयसद्भावात्तथा नारकाणामपि पंचेंद्रियत्वविशि ष्टज्ञानादिसद्भावान्नैकांतेन तेऽपि पापवंतइति तस्मात्कथंचित्कल्याणं कथंचित्पापमि ति स्थितं ॥ २८ ॥

कल्लाणे पावए वावि, ववहारो ण विज्जइ ॥ जं वेरं तं न जाणंति, स मणा बालपंमिया ॥२९॥ असेसं अरकयं वावि, सवडुक्केति वा पुणो ॥ वज्झा पाणा न वज्झंति, इति वायं न नीसरे ॥ ३० ॥ दी संति समियाचारा, भिक्खुणा साहुजीविणो ॥ एए मिछोवजीवं ति, इति दिठिं न धारए ॥ ३१ ॥

अर्थ—हवे अनेकांत मार्ग देखाडीनें, एकांत मार्गनें, दूषवेछे. ए पुरुष एकांतें कल्या णवंतज छे, अथवा ए पुरुष एकांतें पापवंतज छे, एवो व्यवहार नथी, कारणके, आ ज गत् माहें एकांत कांहीज नथी. ते माटें जे पुरुष पुण्यवंत देखातो होय, परंतु ते अंत्या वस्थामां परिणामविशेषें डुर्गतियें जाय. अथवा जे पापी पुरुष देखातो होय, ते परि णामविशेषें सजतिगामी थाय. ए कारण माटें एकांत न बोले (जेवेरंतंनजाणंति के०) तथा जे वैर, ते कर्मनुं कारणछे एम न जाणे, ते कोण न जाणे ? तोके श्रमण, बाल, एटले मूर्ख, अनें पंमित एटले पंमितपणाना अभिमानी होय ते न जाणे. ते शाथकी न जाणे ? तोके जे कारणमाटें ते बाल, मूर्ख, परमार्थभूत, अहिंसालक्षण जे धर्म, तेनो तेनें आश्रय नथी ते कारणें ते निरतो वैरनुं कारण जाणे नहीं. इत्यर्थः ॥ २९ ॥ हवे

द्विपरीतोऽसाधुरपि नास्ति एकस्याप्यनावे द्वितीयस्याप्यनावः द्वयोः परस्परापेक्षत्वात्। एवं संज्ञां न निवेशयेत्। किंतु? अस्ति साधुः संपूर्णगुणसद्भावात्। तथाहि। सम्यग्दृष्टेरर क्तद्विष्टस्य सत्संयमवतः श्रुतानुसारेणाऽऽहारादिकं शुद्धबुद्ध्या गृह्णतः क्वचिदज्ञानादशुद्ध ग्रहणसंनवेप्युपयुक्तस्य संपूर्णमेव रत्नत्रयानुष्ठानमिति। तदेवं मुक्तिकृते प्रवर्त्तमानस्य साधुत्वं इतरस्यासाधुत्वं मंतव्यं ॥ २८ ॥ (णत्थिकल्लाणमिति) वांछितार्थप्राप्तिः कल्याणं। कल्याणवांश्च कश्चिन्नास्ति सर्वपदार्थानामसारत्वाद्विनश्वरत्वाच्च। पापं पापवान् वा कश्चिन्नास्ति अद्वैतवादिमतेनाऽऽत्मानं विना सर्वस्यानावात् एवं संज्ञां न कुर्यात् एकांतेन सर्वनावानामसारत्वविनश्वरत्वानावादस्ति कल्याणं तद्वांश्च अद्वैतमतस्य मिथ्यात्वात् पापं पापवांश्च विद्यते। अद्वैते हि सुखी दुःखी सुरूपः कुरूपोधनी दरिद्रइत्यादि विश्ववैचित्र्यं न स्यादिति ॥ २९ ॥

॥ टीका—सांप्रतं सिद्धेः साधकानां साधूनां तत्प्रतिपक्षनूतानामसाधूनां चास्तित्वं प्रतिपिपादयिषुः पूर्वपक्षमाह। (णत्थिसाहूअसाहूवाइत्यादि) नास्ति न विद्यते ज्ञानदर्शनचारित्रक्रियोपेतोमोक्षमार्गेव्यवस्थितः साधुः संपूर्णस्य रत्नत्रयानुष्ठानस्यानावात्तदनावाच्च तत्प्रतिपक्षनूतस्यासाधोरप्यनावः परस्परापेक्षित्वादेतद्व्यवस्थानस्यैकतरानावे द्वितीयस्याप्यनावइत्येवं संज्ञां नो निवेशयेदपित्वस्ति साधुः सिद्धेः प्राक्साधितत्वात्। सिद्धिसत्ता च न साधुमंतरेण अतः साधुसिद्धिस्तत्प्रतिपक्षनूतस्य वाऽसाधोरिति। यश्च संपूर्णरत्नत्रयानुष्ठानानावः प्रागाशंकितः स सिद्धांतानिप्रायमबुध्वैव। तथाहि। सम्यग्दृष्टेरुपयुक्तस्यारक्तद्विष्टस्य सत्संयमवतः श्रुतानुसारेणाऽऽहारादिकं शुद्धबुध्या गृह्णतः क्वचिदज्ञानादनेषणीयग्रहणसंनवेपि सततोपयुक्ततया संपूर्णमेव रत्नत्रयानुष्ठानमिति। यश्च नक्ष्यमिदं चानक्ष्यं गम्यमिदं वाऽगम्यं प्रासुकमेषणीयमिदमिदंच विपरीतमित्येवं रागद्वेषसंनवेन समनावरूपस्य सामायिकस्यानावः कैश्चिच्चोद्यते तत्तेषां चोदनमज्ञानविजृंनणात्। तथाहि। न तेषां सामायिकवतां साधूनां रागद्वेषतया नक्ष्यानक्ष्यादिविवेकोऽपितु प्रधानमोक्षांगस्य सच्चारित्रस्य साधनार्थमपि चोपकारापकारयोः समनावतया सामायिकं न पुनर्नक्ष्यानक्ष्ययोः समनाववृत्त्येति ॥ २८ ॥ तदेवं मुक्तिमार्गप्रवृत्तस्य साधुत्वमितरस्य चासाधुत्वं प्रदर्श्याधुना च सामान्येन कल्याणपापवतोः सद्भावं प्रतिषेधनिषेधद्वारेणाह। (णत्थिकल्लाणपावेवाइत्यादि) यथेष्टार्थफलसंप्राप्तिः कल्याणं तन्न विद्यते सर्वाऽशुचितया निरात्मकत्वात् सर्वपदार्थानां बौद्धानिप्रायेण तथा तदनावे कल्याणवांश्च न कश्चिद्विद्यते तथात्मा नूतवाद्यनिप्रायेण पुरुषएवेदं सर्वमितिकृत्वा पापं पापवान्वा न कश्चिद्विद्यते तदेवमुनयोरप्यनावः। तथा चोक्तं। "विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि

हस्तिनि ॥ शुनि चैव श्वपाके च पंमिताः समदर्शिन"इत्येवमेव कल्याणपापकानावरूपां संज्ञां नो निवेशयेदपि त्वस्ति कल्याणं कल्याणवांश्च विद्यते तद्विपर्यस्तं पापं तद्वांश्च विद्यते इत्येवं संज्ञां निवेशयेत् । तथाहि । नैकांतेन कल्याणानावोयोबौद्धैरनिहितः सर्वपदार्थानामशुचित्वासंनवात्सर्वाऽशुचित्वेच बुद्धस्याप्यशुचित्वप्राप्तेर्नापि निरात्मनः स्वड्व्यक्षेत्र कालनावापेक्षया सर्वपदार्थानां विद्यमानत्वात्परड्व्यादिनिस्तु न विद्यंते सदसदात्मकत्वाद्वस्तुनः तडुक्तं स्वपरसत्ताव्युदासोपादानोत्पाद्यं हि वस्तुनोवस्तुत्वमिति । तथात्मा चैतनावान्नावात्पापान्नावोपि नास्त्यचैतनावेहि सुखी डुःखी सरोगोनीरोगोसुरूपः कुरूपोडुर्नगः सुनगोऽर्थवान् दरिड्स्तथायमंतिकोऽयं तु दवीयान् इत्येवमादिकोजगद्वैचित्र्यनावोऽध्यक्षसिद्धोपि न स्यात् ।यच्च समदर्शित्वमुच्यते ब्राह्मणचांमालादिषु तदपि समानपीडोत्पादनतो ड्रष्टव्यं । न पुनः कर्मोपादितवैचित्र्यनावोपि तेषां ब्राह्मणचांमालादीनामस्तीति ।तदेवं कथंचित्कल्याणमस्ति तद्विपर्यस्तं तु पापकमिति । नचैकांतेन कल्याणमेव यतः केवलिनां प्रक्षीणघनघातिकर्मचतुष्टयानां सातासातोदयसद्भावात्तथा नारकाणामपि पंचेंड्रियत्वविशिष्टज्ञानादिसद्भावान्नैकांतेन तेऽपि पापवंतइति तस्मात्कथंचित्कल्याणं कथंचित्पापमिति स्थितं ॥ २८ ॥

कल्लाणे पावए वावि, ववहारो ण विज्जइ॥जं वेरं तं न जाणंति, समणा बालपंमिया ॥२९॥ असेसं अक्खयं वावि, सवडुक्खेति वा पुणो ॥ वज्झा पाणा न वज्झंति, इति वायं न नीसरे ॥ ३० ॥ दीसंति समियाचारा, निक्खुणा साहुजीविणो ॥ एए मिलोवजीवंति, इति दिठिं न धारए ॥ ३१ ॥

अर्थ—हवे अनेकांत मार्ग देखाडीनें, एकांत मार्गनें, दूषवेछे. ए पुरुष एकांतें कल्याणवंतज छे, अथवा ए पुरुष एकांतें पापवंतज छे, एवो व्यवहार नथी, कारणके, आ जगत् माहें एकांत कांहीज नथी. ते माटें जे पुरुष पुण्यवंत देखातो होय, परंतु ते अंत्यावस्थामां परिणामविशेषें डुर्गतियें जाय. अथवा जे पापी पुरुष देखातो होय, ते परिणामविशेषें सजतिगामी थाय. ए कारण माटें एकांत न बोले (जेवेरंतंनजाणंति के०) तथा जे वैर, ते कर्मनुं कारणछे एम न जाणे, ते कोण न जाणे ? तोके श्रमण, बाल, एटले मूर्ख, अनें पंमित एटले पंमितपणाना अनिमानी होय ते न जाणे. ते शाथकी न जाणे ? तोके जे कारणमाटें ते बाल, मूर्ख, परमार्थनूत, अहिंसालक्षण जे धर्म, तेनो तेनें आश्रय नथी ते कारणें ते निरतो वैरनुं कारण जाणे नहीं. इत्यर्थः ॥ २९ ॥ हवे

अन्य वचन आश्रि संयम कहेछे. (असेसंअरकयंवावि के०) आ जगत् मांहे समस्त वस्तु जे घटपटादिकछे ते एकांतें नित्य,शाश्वतछे. एवुं वचन न बोले, (सवडुरकेतिवापुणो के०) तथा वली सर्व जगत् डुःखात्मकज छे, एवुं वचन पण न बोले,जे कारण माटें आ जगत् मांहे एकेक जीवनें तो महा सुखछे, एम बोलायछे यतः “ तणसंथारनिसन्नो, विमुणि वरो नट्ठरागमयमोहो ॥ जं पावइ मुत्तिसुहं, कत्तोतं चक्कवट्टिवि” ॥ १ ॥ इति वचनात् । माटें सर्व जगत् डुःखीजछे, एवुं वचन पण न बोले, (वज्झापाणाअवज्झंति के०) तथा ए चोर छे, ए परदारानो सेवनारछे, माटें ए वध करवा योग्य छे एवुं वचन न बोले, अथवा ए अमुक पुरुष अवध्य एटले वध करवा योग्य नथी (इतिवायंननीसरे के०) एवुं वचन पण न बोले, कारणके, एम बोलतां तेना कर्मनी अनुमोदना लागे. ए रीतें सिंह, व्याघ्र, मार्जारादिक हिंसक जीव देखीनें, चारित्रिउं मध्य स्थ पणुं अवलंबन करे. इत्यर्थः ॥ ३० ॥ हवे वली बीजो, वचननो प्रकार, मनसुधी आश्रि देखाडियें छैयें. (दीसंतिसमयाचारा के०) आ जगत् मांहे कोइ एक चारित्रिया एवा देखायछे. के, समयाचारा एटले सिद्धांतोक्त आचारनें विषे प्रवर्त्तमान, तथा (निरकुणासाहुजीविणो के०) निरकुणा एटले दोपरहित एवा आहारना गवेषण हार, तथा साधुजीवि एटले पोताना आचार पालवा सारु जीवे छे, तथा क्षांत, जितेंद्रिय, जितक्रोध, दृढव्रतवान्, ज्रुसर प्रमाण दृष्टियें मार्गेना शोधनार, प्रासुक उदकना पान करनार, मौनी,छजीवनिकायना रक्षण करनार, किं बहुना. सराग छे, तो पण वीतरागनी पेरें रहेछे, एवा साधु देखीनें (एएमिछोवजीवंति के०) ए मिथ्यालोपजीवि बाह्य वृत्तियें करी लोकोनें वंचेछे (इतिदिठिंनधारए के०) एवी दृष्टि धरे नहीं, एतावता एवो नाव मनमांहे चिंतवे नहीं, वचनथकी कहे नहीं, किं बहुना. स्वतीर्थिक परतीर्थिकनें एवुं वचन कहे नहीं ॥ ३१ ॥

॥ दीपिका—(कल्लाणेपावेति) सर्वथाऽयंकल्याणवानयं सर्वथा पापवान् एवमेकांते व्यवहारो न विद्यते । एकांतपक्षाश्रयणेन यद्वैरं कर्मबंधस्तत् श्रमणाः शाक्यादयोबालाः पंम्तिमानिनः शुष्कतर्कदर्पोन्मत्तान जानंति ॥ ३० ॥ (असेसमिति) अशेषं सर्वं वस्तु सांख्याभिप्रायेणाक्षतं नित्यं इति न ब्रूयात् । अपिशब्दादनित्यमपि न वदेत् । तथा सर्वं जगदुःखात्मकमित्यपि न वदेत् चारित्रादिपरिणतेः सुखस्यापि दर्शनात् । यदुक्तं । “ तणसंथारनिसन्नो, विमुणिवरोनट्ठरागमयमोहो ॥ जं पावइ मुत्तिसुहं, कत्तोतं चक्कवट्टीवि” ॥ १ ॥ चोरपारदारिकादयोवध्याअवध्यावा इति न वदेत् । तथा चोक्तं । “ मार्जारव्याघ्रसिंहादीन् सत्वव्यापादनोद्यतान् ॥ दृष्ट्वा स्वार्थपरः साधुर्माध्यस्थ्यमवलंबत”इति॥१॥

एवमन्योपि वाक्संयमोज्ञेयः । यथाऽसौ कुतीर्थिकोबालः किमपि न वेत्ति इत्यादिकां पर स्याप्रीतिकारिणीं नाषां न विसृजेत् ॥ यदुक्तं । "अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पिज्जवाप रो ॥ सव्वसो तं ण नासिज्जा, नासं अहियगामिणीं" इति ॥३१॥ (दीसंतित्ति) दृश्यंते स मिताचाराः शास्त्रोक्ताचारपरानिक्षवोनिक्षामात्रवृत्तयः साधुना विधिना जीवंतीति साधु जीविनः। तथाहि । क्षांतादांताजितेंद्रियाजितकषायास्तायिनस्तानेवंनूतान् मत्वापि एते मिथ्योपजीविनइति दृष्टिं न धारयेत् नैवमनिप्रायं कुर्यात् नाप्येवं वदेत् यथा मिथ्योप चारप्रवृत्तमायाविनएते इति । छद्मस्थेन हि एवंनूतनिश्चयस्य कर्तुमशक्यत्वादिति नावः। तेच स्वयूथ्यावा नवेयुस्तीर्थांतरीयावा उनावपि न वक्तव्यौ साधुना । यदुक्तं ।"यावत्प रगुणपरदो,षकीर्तने व्याप्टतं मनोनवति । तावद्वरं विशुद्धे,ध्याने व्यग्रं मनः कर्तुं॥१॥३२॥

॥ टीका—तदेवं कल्याणपापयोरनेकांतरूपत्वं प्रसाध्यैकांतं दूषयितुमाह (कल्लाणेपा वएइत्यादि) कल्यं सुखमारोग्यं शोननत्वं वा तदणतीति कल्याणं तदस्यास्तीति कल्याणो मत्वर्थी याच्प्रत्ययांतोऽर्शआदिन्योजित्यनेन । कल्याणवानिति यावत् । पापकशब्दोपि मत्व र्थी याच्प्रत्ययांतोद्रष्टव्यः । तदेवं सर्वथा कल्याणवानेवायं तथा पापवानेवायमित्येवंनूतो व्यवहारोन विद्यते तदैकांतनूतस्यार्थस्यैवानावात्तदनावस्यच सर्ववस्तूनामनेकांताश्रयणेन प्राक्प्रसाधितत्वादिति । एतच्च व्यवहारानावाश्रयणं सर्वत्र प्रागपि योजनीयं । तद्यथा । सर्वत्र वीर्यमस्ति नास्तिवा सर्वत्र वीर्यमित्येवंनूतएकांतिकोव्यवहारोन विद्यते। तथा नास्ति लोकोऽलोकोवा तथा संति जीवाअजीवाइति वेत्येवंनूतोव्यवहारोन विद्यतइति सर्वत्र संबंधनीयं । तथा वैरं वज्रं तद्धत्कर्म वैरं विरोधोवा वैरं तद्येन परोपतापादिनैकांतपक्षस माश्रयणेन वा नवति।सत्ते श्रमणास्तीर्थिकाबालाश्व बालारागद्वेषकलिताः पंमिताः पंमि तानिमानिनः शुष्कतर्कदर्प्पाध्मातान जानंति परमार्थनूतस्याहिंसालक्षणस्य धर्मस्याने कांतपक्षस्यवा नाश्रयणादिति । यदिवा यद्वैरं तत्ते श्रमणाबालाः पंमितावान जानंतीत्ये वं वाचं न निसृजेदित्युत्तरेण संबंधः । किमिति न निसृजेद्यतस्ते किंचिज्ञानंत्येवापिच ते षां तन्निमित्तकोपोत्पत्तेः । यच्चैवंनूतं वचस्तन्न वाच्यं । यतउक्तं । "अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पिज्जवा परो ॥ सव्वसो तंण नासेज्जा नासं अहियगामिणि"मित्यादि ॥ २९ ॥ अपरमपि वाक्संयममधिकृत्याह । (असेसमित्यादि) अशेषं कृत्स्नं तत्सांख्यानिप्राये ण कृतं नित्यमित्येवं न ब्रूयात् । प्रत्यर्थं प्रतिसमयं चान्यथान्यथा नावदर्शनात्सएवा यमित्येवंनूतस्यैकत्वसाधकस्य प्रत्यनिज्ञानस्य लूनं पुनर्जातेषु केशनखादिष्वपि प्रदर्शी नात्तथापि शब्दादेकांतेन क्षणिकमित्येवमपि वाचं न निसृजेत्सर्वथा क्षणिकत्वे पूर्वस्य सर्वथा विनष्टत्वाउत्तरस्य निर्हेतुकउत्पादः स्याात्तथाच सति नित्यं सत्वमसत्वंवा हे

तोरन्यानपेक्षणादिति । तथा सर्वं जगद्दुःखात्मकमित्येवमपि न ब्रूयात्सुखात्मकस्यापि सम्यग्दर्शनादिनावेन दर्शनात् ।तथा चोक्तं । "तणसंथारनिसण्णो, विमुणिवरो नट्ठरा गमयमोहो ॥ जं पावइ मुत्तिसुहं, कत्तोतं चक्कवट्टीवि" ॥१॥ तथा वध्याश्चौरपारदारिकादयोऽवध्यावा तत्कर्मानुमतिप्रसंगादित्येवंनूतां वाचं स्वानुष्ठानपरायणः साधुः परव्यापारनिरपेक्षोन विसृजेत् । तथाहि । सिंहव्याघ्रमार्जारादीन्परसत्वव्यापादनपरायणान् दृष्ट्वा माध्यस्थ्यमवलंबयेत् । तथा चोक्तं । मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यादीनि सत्वगुणाधिकक्लिश्यमानविनयेष्विति । एवमन्योपि वाक्संयमोऽनुष्टव्यः । तद्यथा । अमी गवादयोवाह्या न वाह्यास्तथामी वृक्षादयश्छेद्यान छेद्यावेत्यादिकं वचोन वाच्यं साधुनेति ॥३०॥ अयमपरोवाक्संयमप्रकारोऽतःकरणशुद्धिसमाश्रितः प्रदर्श्यते । (दीसंतीत्यादि) दृश्यंते समुपलन्यंते स्वशास्त्रोक्तेन विधिना निनृतः संयतश्चात्मा येषां ते निनृतात्मानः । क्वचित्पाठः (समियाचारंत्ति) सम्यक् स्वशास्त्रविहितानुष्ठानादविपरीतश्चाचारोऽनुष्ठानं येषां ते सम्यगाचाराः सम्यग्वा इतोव्यवस्थितश्चाचारोयेषां ते समिताचाराः । के ते ? । निक्षणशीलानिक्षवोनिक्षामात्रवृत्तयः । तथा साधुना विधिना जीवितुं शीलं येषां ते साधुजीविनः । तथाहि । ते न कस्यचिडुपरोधविधानेन जीवंति तथा क्षांतादांताजितक्रोधाः सत्यसंधादृढव्रतायुगांतरमात्रदृष्टयः परिपूतोदकपायिनोमौनिनस्सदा तायिनोविविक्तैकांतध्यानाध्यासिनोकौकुच्यास्तानेवंनूतानवधार्यापि सरागाअपि वीतरागाइव चेष्टंते इति मत्वैते मिथ्यात्वोपजीविनइत्येवं दृष्टिं न धारयेन्नैवंनूतमध्यवसायं कुर्यान्नाप्येवं नूतां वाचं निसृजेद्यथैते मिथ्योपचारप्रवृत्तामायाविनइति । छद्मस्थेन ह्यर्वाग्दर्शिनैवंनूतस्य निश्चयस्य कर्तुमशक्यत्वादित्यनिप्रायः । तेच स्वयूथ्यावा नवेयुस्तीर्थांतरीयावा तावुनावपि न वक्तव्यौ साधुना । यतउक्तं । "यावत्परगुणपरदोषकीर्तने व्याप्टतं मनोनवति ॥ तावद्वरं विशुद्धे, ध्याने व्यग्रं मनः कर्तुं"मित्यादि ॥ ३१ ॥

दक्खिणाए पडिलंनो, अत्थिवा णत्थिवा पुणो ॥ ण वियागरेज्ज
मेहावी,संतिमग्गं च बुहए ॥३२॥ इच्चेएहिं ठाणेहिं, जिणदिठेहिं
संजए॥ धारयंतेउ अप्पाणं,आमोक्खाए परिवएज्जा सित्तिबेमि॥३३॥
इति वीयसुयखंधस्स अणायारणाम पंचमज्झयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ—वली आचार देखाडेछे. (दक्खिणा के०) दान तेनो प्रतिलंन एटले गृहस्थें दान देवुं, लेनारें दान लेवुं. एवो व्यापार प्रवर्त्तमान देखी, अस्ति, अथवा नास्ति, एटले गुण, अथवा दूषण' कांइ पण कहे नहीं. (पुणो के०) असंयमनी अनुमोदन अनें दूषण केतां

थकां वृत्तिछेद थाय. ए कारण माटें, (मेहावी के०) जे पंमित होय, ते अस्ति, नास्ति, न कहे, तेवारें साधु केम बोले ? ते कहेछे. (संतिमग्गंचवूहए के०) शांतिमार्ग एटले मोक्षमार्ग ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूपनी वृध्धि थाय; एवुं वचन बोले. एटले जे वचन बोलवा थकी असंयम सावद्य न थाय, तेवुं वचन बोले. इत्यर्थः॥३१॥ हवे अध्ययन परिसमाप्तिनें अर्थें कहेछे. (इच्चेएहिंठाणेहिं के०) एम ए पूर्वोक्तस्थानकें (जिणदिठेहिंसंजए के०) जिन एटले वीतरागनाषित वचनें युक्त, एवा संयत एटले जे चारित्रिया (धारयंतेउ अप्पाणं के०) ते पोताना आत्मानें धारे, क्यां लगें धारे? तोके (आमोरकाएपरिवएज्जासि के०) ज्यां सुधी मोक्ष प्राप्ति थाय,त्यां सुधी धारे. हवे एवो उपदेश शिष्यनी प्रत्यें गुरु कहे. के,अहो शिष्य ! तुं आवा आचारें प्रवर्त्तजे.त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥ ३२ ॥ ए बीजा श्रुतस्कंधनें विषे अनाचार नामें पांचमाअध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्तथयो.

॥ दीपिका-(दक्किणाएत्ति) दानं दक्षिणा तस्याः प्रतिलंनः प्राप्तिर्दानलानः सोऽस्माद्गृहस्थादेः सकाशादस्तिवा नास्तिवा इति न व्यागृणीयान्न वदेन्मेधावी किंतु ? शांतिमार्गं मोक्षमार्गं बृंहयेद्वृद्धिं प्रापयेत् यथा मोक्षमार्गवृद्धिर्नवति तथा वदेदित्यर्थः ॥ ३३ ॥ इत्येतैरनेकांतविधायिनिः स्थानैर्जिनोद्दिष्टैः संयतआत्मानं धारयन् आत्मानं प्रवर्तयन् आमोक्षाय कर्मक्षयार्थं परिव्रजेत्संयमे प्रवर्तेत ॥इति परिसमाप्तौ। ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥३४ इति सूत्रकृतांगदीपिकायां द्वितीयश्रुतस्कंधेऽनाचारश्रुताख्यं पंचमाध्ययनं समाप्तम् ॥

॥ टीका-किंचान्यत् । (दक्किणाएइत्यादि) दानं दक्षिणा तस्याः प्रतिलंनः प्राप्तिः स दानलानोऽस्माद्गृहस्थादेः सकाशादस्ति नास्ति वेत्येवं न व्यागृणीयान्मेधावी मर्यादाव्यवस्थितः। यदिवा स्वयूथस्य तीर्थांतरीयस्य वा दानं ग्रहणंवा प्रतिलानः सएकांते नास्ति संनवति नास्ति वेत्येवं न ब्रूयादेकांतेन तदानग्रहणनिषेधे दोषोत्पत्तिसंनवात् । तथाहि। तद्दाननिषेधेंऽतरायसंनवस्तद्वैचित्र्यंच तद्दानानुमतावप्यधिकरणोद्भवइत्यतोऽस्ति दानं न वेत्येवमेकांतेन न ब्रूयात् । कथं तर्हि ब्रूयादिति ? दर्शयति । शांतिर्मोक्षस्तस्य मार्गः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकस्तमुपबृंहयेद्वर्धयेत्। यथा मोक्षमार्गानिवृद्धिर्नवति तथा ब्रूयादित्यर्थः । एतडुक्तं नवति । पृष्टः केनचिद्विधिप्रतिषेधमंतरेण देयप्रतिग्राहकविषयं निरवद्यमेवं ब्रूयाद्दित्येवमादिकमन्यदपि ॥ ३२ ॥ सांप्रतमध्ययनार्थमुपसंजिघृक्षुराह (इच्चेएहिंमित्यादि) इत्येतैरेकांतनिषेधद्वारेणानेकांतविधायिनिः स्थानैर्वाक्संयमप्रधानैः समस्ताध्ययनोक्तैरागद्वेषरहितैर्जिनैर्दृष्टैरुपलब्धैर्न स्वमतिविकल्पोत्थापितैः संयतः सन् संयमवानात्मानं धारयन्निर्विविधधर्मदेशनावसरे वाच्यं । तथा चोक्तं। "सावज्जणवज्जा

एं वयणाणं जो नयाण३विसेसमित्यादिस्थानैरात्मानं वर्तयान्नामोक्षायाशेषकर्मक्षया र्थं मोक्षं यावत्परिसमंतात्संयमानुष्ठाने व्रजेत्त्वमिति विधेयस्योपदेशः। इति परिस माप्त्यर्थे। ब्रवीमीति पूर्ववत्। नयाश्चनिहिताश्चनिधास्यमानलक्षणाश्चेति ॥ ३३ ॥ समाप्तमनाचारश्रुताख्यं पंचममध्ययनमिति ॥

॥ हवे छठुं अध्ययन प्रारंभियें बैयें ॥

पांचमा अध्ययननें विषे आचारनी आचरणा करवी, अनें अनाचारनी परिहरणा एटले अनाचारनो त्याग करवो. एम कह्युं. हवे ते प्रमाणें जे महाभाग्यवान् पुरुषथी कराय छे, ते आर्द्रकुमारना दृष्टांतनी पेठें देखाडे छे. जेम आर्द्रकुमारनो गोशालक साथें वाद थयो, ते रीतेंज आ छठा अध्ययनमां कहे छे. प्रत्येक बुद्ध आर्द्रकुमार, एकदा प्रस्तावें श्री महावीरदेवनी पासें आवतां अंतरालें गोशालकें बोलाव्यो. ते कथा कहे छे.–

पुराकडं अद्द इमं सुणेह, मेगंतयारी समणे पुरासी ॥ से भिक्खु
णो उवणेत्ता अणेगे, आइक्खतिण्हिं पुढोविच्छरेणं ॥ १ ॥ साजी
वियापट्ठविता थिरेणं, सभागउ गणउ भिक्खुमझे ॥ आइक्ख
माणो बहुजन्नमछं, नसंधयाती अवरेण पुव्वं ॥ २ ॥

अर्थ–हवे आर्द्रकुमारनें गोशालक बोलावीने कहे छे के, (अद्दइमंसुणेह के०) भो आर्द्रकुमार ! जे हुं कहुंछुं ते तुं सांभल. (पुराकडं के०) परापूर्वें जे जे आ ताहारे तीर्थंकरें कह्युंछे, ते हुं कहुंछुं ते सांभल. ते शुं कह्युंछे? तोके, (मेगंतयारीसमणेपुरासी के०) ए श्रमण भगवंत महावीर पूर्वें प्रथम एकांतचारी विहार करता हता. एटले एकांतें लोक रहित एवा प्रदेशें विचरता हता, अनें अनेक प्रकारनां उग्रतप करता हता, ते हमणां उग्रतप आचरवा थकी भंग थया थका मुजनें छोडीनें एटले महारो परित्याग करीनें, (सेभिक्खुणोउवणेत्ताअणेगे के०) ते साधु शिष्यो एकठा करीनें अनेक देव, देवी, मनुष्य, अनें स्त्रीना वृंद मांहें बेठा थका धर्म कहे छे. (आइक्खतिण्हिंपुढोविच्छरेणं के०) तथा घणा शिष्य एकठा करी, तमारा जेवा मुग्ध जननें विप्रतारवा माटें पृथक् पृथक् जुदा जुदा विस्तारें करी धर्म कहे छे ॥ १ ॥ वली गोशालक कहे छे के, (साजीवियापट्ठवितायिरेणं के०) अहो आर्द्रकुमार ! ताहारे गुरुयें घणा लोक मांहें बेशी धर्म देशनानें मिशें आजीविका मांमी छे, केमके, एकाकी विचरतां लोक पराभव करे छे, एवुं

जाणीनें, पंक्ति निमित्तें, घणो महोटो परिवार कस्योछे, वली ए तमारो गुरु केवोछे, तो के, अस्थिर एटले प्रथम माहारी सार्थे एकलो अंत प्रांत आहारी शून्य एवा देवकुला दिक स्थानकोनें विषे रहेतो हतो, अनें तेवो उग्रआचार वेलूना कवलनी पेरें निःस्वाद जाव जीवसुधी करवानें अशक्तछे, ते कारणे महारो समागम मुकीनें घणा शिष्योनें वि प्रतारी एवे घटाटोपें विचरेछे, ते कारणे अस्थिरछे. ते अस्थिर पणुं देखाडेछे. (सन्नाग उं के०) सन्ना जे देव अनें मनुष्यनी परषदा मांहे बेगो (गणउनिरकुमज्ञे के०) अने क निकुना समुदाय मांहे रहेतो थको (आइरकमाणोबहुजन्नमछं के०) घणालोकनें हितनो कारक, एवो अर्थ कहेतो देखायछे. ते कारणे (नसंधयातीअवरिणपुवं के०) मांहोमांहे आचार तेनो संधि मलतो नथी, एटले प्रथमना आचारमां अनें हमणाना आचारमां मांहोमांहे विरोध देखायछे, ते ए प्रकारे के, सिंहासन, अशोक वृक्ष, नामंमल, छत्र, चामरादिक मंमाण जो मोक्षनुं अंग होय तो, प्रथम जे उग्रक्रिया एणे कीधी तेतो निःकेवल क्लेश नणीज कीधी, अथवा जो ते क्रिया कर्म निर्जरवानुं कारण हती, तो हमणानी क्रिया पण बीजानें विप्रतारवानें अर्थे, पाखंमरूप जाणीयें बैयें. वली प्रथमतो मौनपणुं रुडुं जाणीनें अंगीकार कस्युं हतुं, त्यारें हमणा धर्मदेशना आपवानुं शुं कामछे? जो धर्मदेशना देवी, ए रुडुंछे तो पहेलां मौनपणुं आदस्युं हतुं ते अत्यंत अयोग्यछे॥१॥

दीपिका—अथ षष्ठाध्ययनमारन्यते । तच्चार्द्रककुमारकथासंबद्धत्वादार्द्रकीयानिधानं । तत्कथाचेयं । मगधदेशे वसंतपुरे सामायिकोनाम कुटुंबी वसति । स वैराग्यतः श्रीधर्मघोषाचार्यपार्श्वे पत्नीयुतः प्रव्रज्यां गृहीत्वा साधुनिः सह विहरति । सोऽन्यदा स्वपत्नीं साध्वीं निक्षामटंतीं दृष्ट्वा रागी जातः । स्वानिप्रायः परस्य साधोस्तेन निवेदितः । तेनापि तत्प्रवर्तिन्यास्तयापि तस्याः साध्व्याः । ततः स्वपतिमनुरक्तं ज्ञात्वा साध्व्या नक्तप्रत्याख्यानपूर्वमात्मोद्बंधनमकारि । मृत्वा स्वर्गमगात् । तदाकर्ण्य तत्पतिः साधुरपि गुरुमनापृच्छ्य नक्तं प्रत्याख्याय दिवं गतः । ततश्च्युत्वा आर्द्रकपुरे नगरे आर्द्रकसुतआर्द्रकानिधोजातः । साऽपि तत्पत्नी स्वर्गच्युता वसंतपुरे श्रेष्ठिपुत्री जाता । आर्द्रकोपि युवा परमसुनगः संपन्नः । अन्यदार्द्रकपित्रा जनहस्ते राजगृहे श्रेणिकराज्ञः प्रानृतं प्रेषितं । आर्द्रककुमारेण श्रेणिकसुतायाऽनयकुमाराय स्नेहकरणार्थं प्रानृतं तस्यैव हस्तेन प्रेषितं । जनोराजगृहे गत्वा श्रेणिकराज्ञः प्रानृतानि निवेदितवान् संमानितश्च राज्ञा । आर्द्रकप्रहितानि प्रानृतानि चाऽनयकुमाराय दत्तवान् । कथितानि स्नेहोत्पादकानि वचनानि । अनयेनाचिंति । नूनमसौ नव्यः स्यादासन्नसिद्धिकोयोमया सार्द्धं प्रीतिमिच्छतीति । ततोऽनयेन प्रथमजिनप्रतिमा बहुप्रानृतयुतार्द्रकुमाराय प्रहिता । इदं प्रानृतमेकांते निरूपणीयमित्युक्तं जनस्य । सोऽप्यार्द्रकपुरं गत्वा यथोक्तं कथयित्वा प्रानृतमार्पयत् । प्रतिमां निरूपयतः कुमारस्य जातिस्म

रणमुत्पन्नं धर्मे प्रतिबुद्धं मनः अनयं स्मरन् वैराग्यात्कामभोगेष्वनासक्तस्तिष्ठति। पित्रा ज्ञातं मा क्वचिदसौ यायादिति पंचशतसुभटैर्नित्यं रक्ष्यते। आर्द्रककुमारोप्यश्ववाहनिकायां निर्गतः प्रधानाश्वेन दूरं गत्वा पलायितः। ततः प्रव्रज्यां गृह्णन् देवतया निषिद्धोपि प्रव्रज्यान्यतरप्रतिमाप्रतिपन्नोवसंतपुरे कायोत्सर्गस्थोदेवलोकच्युतया तया श्रेष्ठिपुत्र्याऽन्यबालिकाभिः सह क्रीडंत्याऽयं मम भर्त्तेत्युक्ते सन्निहितदेवतया सार्द्धत्रयोदशकोटिमिता सुवर्णवृष्टिः कृता। राजा तत्सुवर्णं गृह्णन् देवतया वारितः। इदं स्वर्णमस्याबालिकायाएवेत्युक्तं च ततस्तत्पित्रा गृहीतं स्वर्णं। अनुकूलोपसर्गं मत्वार्द्रमुनिरन्यत्र गतः। पुत्रीवरणार्थं वराः समायांति पुत्र्या कथितं पितुः एते वराः स्वस्थानं यांतु अहं तस्मै दत्ता त्वया यत्संबंधि हिरण्यं भवता जगृहे। पित्रोक्तं त्वं तं जानीषे कथं? तयोक्तं। तच्चरणगताभिज्ञानदर्शनाज्जानामि। ततः सा दानशालायां स्थिता भिक्षार्थिनामाहारं दत्ते। ततो द्वादशवर्षैर्गतैः कदाचिच्चासौ भवितव्यवशात्तत्रैव विहरन् समागतः पादचिन्हदर्शनादुपलक्षितश्च तया। ततः सा बाला सपरिवारा तत्पृष्ठतोगता। आर्द्रककुमारोपि देवतावचनं स्मरन् कर्मोदयात्प्रतिभग्नस्तया सार्द्धं भुनक्ति भोगान् पुत्रोजातः। आर्द्रकेणोक्तं सांप्रतं ते पुत्रोद्वितीयोभून्निर्वाहकः। अहं स्वकार्यमाचरामि तया सुतज्ञापनार्थं कार्पासकर्त्तनमारब्धं। पृष्टं च पुत्रेण किंमातरिदमारब्धं भवत्या? सा प्राह। वत्स! तव पिता प्रव्रज्यां ग्रहीतुकामः त्वं तु शिशुरद्यापि द्रव्यार्जनेऽसमर्थस्ततोहमनघा निंद्यवृत्त्याऽनया जीवनमिच्छामीति। तेन बालेन तत्कालोत्पन्नबुद्ध्या तत्कर्त्तितसूत्रेण क्वायं मया बद्धोयास्यतीति मन्मनभाषिणोउपविष्टएव पिता वेष्टितः। पित्रा चिंतितं यावंतोमी वेष्टनसूत्रतंतवस्तावंति वर्षाणि मया स्थातव्यं। तंतवश्च द्वादश। ततोसौ द्वादशवर्षाणि गृहे तस्थौ। ततः प्रव्रजितः सूत्रार्थनिपुणएकाकी विहरन् राजगृहं प्रतिप्रस्थितस्तदंतराले तद्रक्षणार्थं यानि प्राक् पित्रा पंच राजपुत्रशतानि मुक्तानि तानि कुमारे नष्टे राजभयात्तत्राटव्यां चौर्येण जीवंति। तैश्चार्द्रकमुनिर्दृष्टउपलक्षितश्च। तेन पृष्टास्ते किमिदमनार्यं कर्मारब्धं भवद्भिः? तैश्च राजभयादि कथितं। मुनिवचनात्संबुद्धास्ते प्रव्रजिताः। तथा राजगृहनगरप्रवेशे गोशालकोहस्तितापसात्राह्मणाश्च वादे पराजिताः। तथार्द्रकुमारदर्शनादेव हस्ती बंधनाद्विमुक्तः। तेच हस्तितापसादयआर्द्रमुनिधर्मकथाक्षिप्ताः श्री वीरपार्श्वे निष्क्रांताः। राज्ञा ज्ञातस्वरूपेण पृष्टं। भगवन्! कथं त्वद्दर्शनतः करी बंधनान्मुक्तइत्युक्ते मुनिराह। "न दुक्करं वारणपासमोयणं गयस्स मत्तस्स वणंमि रायं॥ एयंतु मज्झे पडिहाइ दुक्करं बद्धस्स तक्कावलिएण तंतुणा" ॥१॥ दुष्करमेतन्नरपाशैर्बद्धस्य गजस्य मत्तस्य विमोचनं वने राजन्! एतत्तु मे प्रतिभाति दुष्करं यत्तर्कुकावलितेन तंतुना बद्धस्य मम प्रतिमोचनमिति। स्नेहतंतवोहि जंतूनां दुश्छेदाभवंतीति भावः॥ आर्द्रकमुनिकथा समाप्ता॥

एवमन्नाणिया नाणं, वयंतावि सयं सयं ॥ निछयठं न याणंति, मिलरकुव्व अबोहिया ॥ १६ ॥

अर्थ– वली एनोज दोष देखाडेछे. जेएयंनानिजाणंति के० जे अज्ञानवादी ए कर्म खपाववानो उपाय नथी जाणता, ते केवा छे, मिछदिठीअणारिया के० मिथ्यादृष्टी अनार्य एवा मिगावापासबद्धाते के० मृगलानी परे पाशमां बंधाणाछे. तेघायमेस्संति णंतसो के० आगामिक काले अनंताघात एटले मरणने पामशे; एटले मृगतो एकवार मरण पामीनेज बूटेछे परंतु ते अज्ञानी अनंते मरणे पण बूटसे नहीं. ॥ १३ ॥ हवे जे पोते एकवार ग्रह्युं एवुं जे पोतानुं कदाग्रह तेने कोइवारे मूकेनहीं ते उपर विशेष कहेछे. माहणासमणाएगे के० एक ब्राह्मण तथा एक श्रमण परिव्राजक विशेष ए सव्वे के० सर्वे, सयंके० पोत पोतानुं, नाणंके० जाणपणुं रुडुंछे एम वएके० वदे एटले कहेछे. वली ते जुदां जुदां ज्ञान परस्पर माहोमांहे विरुद्ध संदेह उपजावेछे; ते माटे अजाणपणुंज नलु छे जाणपणानुं कांइ काम नथी, ए रीते अज्ञानवादी कहेछे. तेमाटे सव्वलोगेविके० सर्व लोकमांहे, जे पाणा के० जे प्राणीउ छे, नतेजाणंतिकिंचणं के० ते कांइ जाणता नथी, एटले सर्व सम्यक्ज्ञान रहित जाणवा. यद्यपि तेने कांइ गुरुपरंपरागत जाणपणुं होय तथापि ते कांई परमार्थ जाणता नथी, माटे ते अज्ञानीज जाणवा. ॥ १४ ॥ हवे ते उपर दृष्टांत कहेछे. मिलरकुअमिलरकुस्स के० जेम म्लेछ आर्यनाषानो अजाण थको अम्लेछ जे आर्य नाषा तेने जहाचुत्ताणुनासए के० जेम नाषंतानी परे बोले परंतु ते णहेउंसेविआणाइ के० हेतु एटले परमार्थ कांइ जाणे नहीं, निःकेवल परमार्थें करी शून्य नासियंतणुनासए के० नाषाने केडे नाषे. ॥ १५ ॥ हवे ए दृष्टांत अज्ञानवादी साथे मेलवेछे. एवमन्नाणियाणाणं के० एरीते अज्ञानी सम्यक्ज्ञानरहित एवा श्रमण ब्राह्मणादिक पोतपोताना मतनुं ज्ञान प्रमाण करीने वयंताविसयंसयं के० पोतपोतानो मार्ग कहेछे पण ते निछयठंनयाणंति के० निश्चयार्थ नथी जाणता. मिलरकुवअबोहिया के० ते म्लेछवत् एटले म्लेछनीपरे अबोधिक एटले ज्ञानरहित छे. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–नूयोप्यज्ञानवादिनां दोषमाह। (जेएतमिति)। ये एतं कर्मक्षयोपायं न जानंति मिथ्यादृष्टयोऽनार्यास्ते मृगाइव पाशबद्धाघातं विनाशमेष्यंति यास्यंत्यन्वेषयंतिवा तद्योग्यक्रियाकरणात्। अनंतशोनिरंतरम् ॥ १३ ॥ अज्ञानवादिनामेव दूषणांतरमाह। (माहणाइति)। एके ब्राह्मणास्तथा श्रमणाः परिव्राजकाः सर्वे स्वकमात्मीयं ज्ञानं वदंति नच तानि सर्वेषां ज्ञानानि। अन्योन्यविरोधेन प्रवृत्तत्वात्। तस्मादज्ञानमेव श्रेयइत्याह। (सव्वलोयेविति)। सर्वस्मिन् लोके ये प्राणाः प्राणिनस्ते किंचन स

सांप्रतं सूत्रं व्याख्यायते तच्चेदं।(पुराकडमिति)यथा गोशालकेन सार्द्धं वादोनूदार्द्रककुमारस्य तथास्मिन्नध्ययने कथ्यते तं चार्द्रमुनिं प्रत्येकबुद्धं श्रीवीरांतिकमागच्छंतंगोशालोब्रवीद्यथा नोआर्द्रक! यदहं वदामि तच्छृणु। पुरा पूर्वं नवत्तीर्थंकता यत्कृतं तद्दर्शयति। एकांते जनरहितस्थाने चरतीत्येकांतचारी श्रमणः पुरासीत्तपश्चरणोद्यतः। सांप्रतं तु तपश्चारित्रनिर्नर्त्सितो मां विहाय देवादिमध्यगतोधर्ममाख्याति। तथा बहून् शिष्यान् उपनीय बहुशिष्यपरिवारं कृत्वा, नवाहृशमुग्धानां इदानीं पृथग्विस्तारेण धर्ममाख्याति॥१॥ या नवकुरुणा देशना क्रियते सा जीविका प्रकर्षेण स्थापिता एकाकी विहरन् लोकैः परिनूयतइति। यडुक्तं। "ठत्रं गात्रं पात्रं,वस्त्रं यष्टिं च चर्चयति निकुः॥ वेषेण परिकरेण च, कियतापि विना न निक्षापि"॥१॥ इति कृत्वा तेन परिवारः कृतः। तदनेन दंनप्रधानेन जीविकार्थमिदमारब्धं। किंनूतेन श्च स्थिरेण पूर्वं मया सार्द्धमेकाकी श्रंतप्रांताहारेण शून्यवनादौ वृत्तिं कृतवान्। नच तादृशं डुष्करमनुष्ठानं यावज्जीवं कर्तुमलं। ततो मां त्यक्त्वा बहून् शिष्यान् विधायाडंबरेण चरति ततोऽस्थिरश्चपलः पूर्वाचारत्यागात् तथा सन्नागतोऽयं गणशोऽनेकशोनिक्कुमध्यस्थितश्चाचक्षाणोबहुजनेन्योहितं बहुजन्यमर्थं कथयन् विहरति एतच्चास्यानुष्ठानं पूर्वापरेण न संधत्ते। तथाहि। यदि सांप्रतीयं वृत्तं प्राकारत्रयसिंहासनाशोकवृक्षनामंमलचामरादिकं मोक्षांगमनविष्यत्ततोया प्राक्तन्येकचर्या क्लेशबहुलानेन कृतेनाक्लेशाय केवलमस्येत्यथ सा कर्मनिर्जरणहेतुका परमार्थनूता ततः सांप्रतावस्था परप्रतारकत्वाद्दंनकल्पेस्यतः पूर्वोत्तरयोरनुष्ठानयोर्मौनव्रतिकधर्मदेशनारूपयोः परस्परतोविरोधइति। अतएवास्य चरित्रं पूर्वापरेण न संदधाति पूर्वापरविरोधीत्यर्थः॥ २ ॥

॥टीका—उक्तं पंचममध्ययनं। सांप्रतं षष्ठमारन्यते। अस्य चायमनिसंबंधः। इहानंतराध्ययने आचारः प्रतिपादितोऽनाचारपरिहारश्च सच येनाचीर्णः परिहृतश्चासावधुना प्रतिपाद्यते। यदिवाऽनंतराध्ययने स्वरूपमाचारानाचारयोः प्रतिपादितं तच्चाशंक्यानुष्ठानं न नवत्यतस्तदा सेवकोदृष्टांतनूतआर्द्रकः प्रतिपाद्यतइत्यथवाऽनाचारफलं ज्ञात्वा सदाचारे प्रयत्नः कार्योयथार्द्रककुमारेण कृतइत्येतद्दर्शनार्थमिदमध्ययनं। अस्य चत्वार्यनुयोग द्वाराण्युपक्रमादीनि वाच्यानि। तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयं। तद्यथा आर्द्रककुमारवक्तव्यता यथा सावद्यनयकुमारप्रतिमाव्यतिकरात्प्रतिबुद्धस्तथात्र सर्वं प्रतिपाद्यतइति। निक्षेपस्त्रिधा। तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽध्ययनं नाम निष्पन्ने निक्षेपेत्वार्द्रकीयं। तत्रार्द्रपद निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह। "नामं ठवणा अद्दं,दव्वद्दं चेव होइ नावद्दं॥ एसो खलु अद्दस्स निरकेवो चउव्विहो होइ" ॥१॥ (नामंठवणाअद्दमित्यादि) नामस्थापनाद्रव्यनावनेदाच्चतुर्धार्द्रकस्य निक्षेपोद्रष्टव्यः। तत्र नामस्थापनेऽनादृत्य द्रव्यार्द्रप्रतिपादनार्थमाह। "उदगद्दं सारद्दं,ठवियद्दं खलु तहासि

णेहद्दं ॥ एयं दवद्दं खलु,जावेणं होइ रागद्दं " ॥१॥ (उदगद्दमित्यादि) तत्र द्रव्यार्द्रं द्विधा आगमतोनो आगमतश्च। आगमतोज्ञाता तत्र चानुपयुक्तोऽनुपयोगो द्रव्यमितिकृत्वा नो आगमस्तु ज्ञशरीरजव्यशरीरव्यतिरिक्तं यदुदकेन मृत्तिकादिकं द्रव्यमार्द्रीकृतं तदुदकार्द्रं। सारार्द्रंतु यद्बहिः शुष्कार्द्रमप्यंतर्मध्ये सार्द्रमास्ते यथा श्रीपर्णीसौवर्चलादिकं। छविअद्दंतु यत् स्निग्धत्वग्द्रव्यं मुक्ताफलरक्ताशोकादिकं तदनिधीयते वसयोपलिप्तं वासार्द्रं तथा श्लेष्मार्द्रं चक्रलेपाद्युपलिप्तं स्तंजकुड्यादिकं यद्द्रव्यं तत्स्निग्धाकारतया श्लेष्मार्द्रमिनिधीयते। एतत्सर्वमप्युदकार्द्रादिकं द्रव्यार्द्रमेवानिधीयते। खलुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्। जावार्द्रं तु पुनः रागः स्नेहानिष्वंगस्तेनार्द्रं यज्जीवद्रव्यं तज्जावार्द्रमित्यनिधीयते। सांप्रतमार्द्रककुमारमधिकृत्यान्यथा द्रव्यार्द्रं प्रतिपादयितुमाह।"एगजवियबद्धाउ,या अनिमुहउ नामगोएय॥ एते तिन्ना देसा,दवम्मि अद्दगेहोंति"॥२॥ (एगजवियइत्यादि) एकेन जवेन योजीवः स्वर्गादेरागत्यार्द्रककुमारत्वेनोत्पत्स्यते तथा ततोप्यासन्नतरोबद्धायुष्कस्तथा ततोप्यासन्नतमोनिमुखनामगोत्रोयोनंतरसमयमेवार्द्रकत्वेन समुत्पत्स्यते। एते त्रयोपि प्रकाराद्रव्यार्द्रके द्रष्टव्याइति। सांप्रतं जावार्द्रकमधिकृत्याह। "अद्दपुरा अद्दसुतो,नामेण अद्द गोय अणगारो॥ तत्तो समुट्ठियमिणं,अञ्जयणं अद्दइज्जंति"॥४॥(अद्दपुराइत्यादि) आर्द्रकायुष्कनामगोत्राण्यनुजवन् जावार्द्रो जवति। यद्यपि शृंगवेरादीनामप्यार्द्रकसंज्ञाव्यवहारोस्ति तथापि नेदमध्ययनं तेन्यःसमुत्थितमतोन तैरिहाधिकारः किंत्वार्द्रककुमारानिधानगारात्समुत्थितमतस्तेनैवेहाधिकारइतिकृत्वा तद्वक्तव्यताऽनिधीयते। एतदेव निर्युक्तिकृदाह। (अद्दपुराइत्यादि) अस्याः समासेनायमर्थः। आर्द्रकपुरे नगरे आर्द्रकोनाम राजा तत्सुतोप्यार्द्रकानिधानः कुमारस्तद्वंशजाः किल सर्वेप्यार्द्रकानिधानाएव जवंतीतिकृत्वा सचानगारः संवृत्तस्तस्य च श्रीमन्महावीरवर्द्धमानस्वामिसमवसरणे गोशालकेन सार्द्धं हस्तितापसैश्च वादोजूत्तेनच ते एतदध्ययनार्थोपन्यासेन पराजिताअतइदमनिधीयते। ततस्तस्मादार्द्रकात्समुत्थितमिदमध्ययनमार्द्रकीयमिति गाथासमासार्थः। व्यासार्थं तु स्वतएव निर्युक्तिकृदार्द्रकपूर्वजवोपन्यासेनोत्तरत्र कथयिष्यतीति। ननुच शाश्वतमिदं द्वादशांगमपि गणिपिटकमार्द्रककथानकं तु श्रीवर्द्धमानतीर्थावसरे तत्कथमस्य शाश्वतत्वमित्याशंक्याह।" कामं डुवालसंगं,जिणवयणं सासयं महाजागं। सवञ्जयणाइं तहा,सवरकरसन्निवाउय" ॥५॥ (काममित्यादि) काममित्येतदन्युपगमे इष्टमेवेतदस्माकं। तद्यथा। द्वादशांगमपि जिनवचनं नित्यं शाश्वतं महाजागं महानुजावमामर्षौषध्यादिकृद्धिसमन्वितत्वान्न केवलमिदं सर्वाण्यप्यध्ययनान्येवंजूतानि तथा सर्वाक्षरसन्निपाताश्च मेलापकाद्रव्यार्थादेशानित्याएवेति। ननुच मतानुज्ञानामनिग्रहस्थानं जवतइत्याशंक्याह।"तहवियकोईअछो,अप्पज्जतितम्मि समयम्मि॥ पुव जणिउ अणुमतो इति इसिजासिए य जहा" ॥६॥ (तहवियइत्यादि) यद्यपि सर्वमपीदं द्रव्यार्थतः शाश्वतं तथा

पि कोप्यर्थस्तस्मिन्समये तथा क्षेत्रेच कुतश्चिदार्द्रकादेः सकाशादाविर्जीवमास्कंदति सते न व्यपदिश्यते । तथा पूर्वमप्यसावर्थोऽन्यमुद्दिश्योक्तोऽनुमतश्च नवति ऋषिन्नाषितेषूत्तराध्ययनादिषु यथेति । सांप्रतं विशिष्टतरमध्ययनोत्थानमाह । " अद्ददएणगोसा,लनिरकुबंनवतीति दंडीणं ॥ जह हत्थितावसाणं,कहियं इणमो तहावुत्रं" ॥७॥ (अद्ददएणेत्यादि) आर्यार्द्रकेण समवसरणान्निमुखमुच्चलितेन गोशालकनिक्षोस्तथा ब्रह्मव्रतिनां त्रिदंमिनां यथा हस्तितापसानां च कथितमिदमध्ययनार्थं जातं तथा वक्ष्ये सूत्रेणेति । सांप्रतं स पूर्वनवमार्द्रककथानकं गाथान्निरेव निर्युक्तिकृदाह । "गामे वसंतपुरये,सामइतोधरणिसहितोनिरकंतो ॥ निरकायरियादित्ता,उहासिय नत्तवेहासं" ॥८॥ संवेगसमावन्नो,माईनत्तं च इत्तुदिय लोए ॥ चउकणं अद्दपुरे, अद्दमुउ अद्दउ जाउ ॥ए॥ पीतीयदोएहदूउ पुछणमन्नयस्स पत्नवे सोउ ॥ तेणावि सम्मद्दिठित्ति होक्त, पडिमारहंमि गया ॥ १० ॥ दछुं संबुद्धो रकिउ य, आसाणवाहणपलातो ॥ पवावंतो धरितो, रज्जं न करेति कोअन्नो ॥ ११ ॥ अगणिंतो निरकंतो, विहरइ पडिमाइदारिगाचरिईउ ॥ सुवरणवसुहाराउ, रन्नो कहणं च देवीए ॥ १२ ॥ तं नइ पिता तीसे, पुछणकहणं च वरणदोवारे ॥ जाणाइ पायबिंबं,आगमणं कहणनिग्गमणं ॥ १३ ॥ पडिमागतीसमीवे,सपरीवारानिरकपडिवयणं ॥ नोगमुतापुछणसु,तबंधपुन्नेयनिग्गमणं ॥१४॥ रायगिहागमचोरा,रायनया कहणतेसि दिरकाया ॥ गोसालनिरकुबंनी,तिदंमियातावसेहिं सहवादो ॥१५॥ वादे पराइयत्तो,सवे विय सरणमप्नुवगतातो ॥ अद्दगसहिया सबे, जिणवीरसासिनिरकंता ॥१६॥ (गामेइत्यादिगाथाष्टकं) आसां चार्थः कथानकादवसेयस्तच्चेदं । मगधजनपदे वसंतपुरे ग्रामे तत्र सामायिकोनाम कुटुंबी प्रतिवसति । सच संसारनयोद्विग्नोधर्मघोषाचार्यांतिके धर्मं श्रुत्वा सपत्नीकः प्रव्रजितः सच सदाचारतः संविग्नैः साधुन्निः सार्द्धं विहरतीतरान्निः साध्वीन्निः । सहेति । कदाचिच्चासावेकस्मिन्नगरे न्निक्षार्थमटंतीं दृष्ट्वा तामसौ तथाविधकर्मोदयात्पूर्वरतानुस्मरणेन तस्यामध्युपपन्नस्तेन चात्मीयोऽन्निप्रायोद्वितीयस्य साधोर्निवेदितस्तेनापि चैतत्प्रवर्तिन्यास्तयापि चान्निहितं न मम देशांतरे एकाकिन्या गमनं युज्यते न चासौ तत्राप्यनुबंधं त्यद्दयतीत्यतो ममास्मिन्नवसरे नक्तप्रत्याख्यानमेव श्रेयोन पुनर्व्रतविलोपनमित्यतस्तया नक्तप्रत्याख्यानपूर्वकमात्मोद्बंधनमकारि मृता सागाच्च देवलोकं । श्रुत्वा चैनं व्यतिकरमसौ संवेगमुपगतश्चिंतितं च तेन । तया व्रतनंगनयादिदमनुष्ठितं ममत्वसौ संजातएवेत्यतोहमपि नक्तंप्रत्याख्यानं करोमीत्याचार्यस्यानिवेद्यैवासौ मायाव्यथ च परमसंवेगापन्नोऽसावपि नक्तं प्रत्याख्याय दिवंगतस्ततोपि च प्रत्यागत्यार्द्रपुरे नगरे आर्द्रकसुतआर्द्रकान्निधानोजातः । सापिच देवलोकाच्च्युता वसंतपुरे नगरे श्रेष्ठिकुले दारिका जाता इतरोपिच परमरूपसंपन्नोयौवनस्थः संवृत्तोन्यदासावार्द्रकपिता राजगृहन

गरे श्रेणिकस्य राज्ञः स्नेहाविष्करणार्थं परमप्राभृतोपेतं महत्तमं प्रेषयत्यार्द्रककुमारेणासौ दृष्टोयथा कस्यैतानि महार्हाण्यत्युग्राणि प्राभृतानि मत्पित्रा प्रेषितानि यास्यंतीत्यसावकथयद्यथार्यदेशे तव पितुः परममित्रश्रेणिकोमहाराजा तस्यैतानीत्यार्द्रककुमारेणाप्यभाणि किं तस्यास्ति कश्चिद्योग्यः पुत्रोस्तीत्याह। यद्येवं मत्प्रहितानि प्राभृतानि भवता तस्य समर्पणीयानीति भणित्वा महार्हाणि प्राभृतानि समर्प्याभिहितं वक्तव्योसौ मद्वचनाद्यथार्द्रककुमारस्त्वयि स्निह्यतीति सच महत्तमोगृहीतोभयप्राभृतोराजगृहमगाद्गत्वा च राजद्वारपालनिवेदितोराजकुलं प्रविष्टो दृष्टश्च श्रेणिकः प्रणामपूर्वं निवेदितानि प्राभृतानि कथितं च यथासंदिष्टं। तेनाप्यासनाशनतांबूलादिना यथार्हप्रतिपत्त्या सन्मानितोद्वितीये चान्ह्यार्द्रककुमारसत्कानि प्राभृतान्यभयकुमारस्य समर्पितानि कथितानिच तत्प्रीत्युत्पादकानि तत्संदिष्टवचनान्यभयकुमारेणापि पारिणामिक्यबुद्ध्या परिणामितं नूनमसौ भव्यः समासन्नमुक्तिगमनश्च तेन मया सार्द्धं प्रीतिमिच्छतीति। तदिदमत्र प्राप्तकालं यदादितीर्थकरप्रतिकरप्रतिमासं दर्शनेन तस्यानुग्रहः क्रियतइतिमत्वा तथैव कृतं महार्हाणिच प्रेषितानि प्राभृतानीति। उक्तश्च। महत्तमोयथा मत्प्रहितप्राभृतमेतदेकांते निरूपणीयं तेनापि तथैव प्रतिपन्नं गतश्चासावार्द्रकपुरं समर्पितं च प्राभृतं राज्ञोद्वितीये चान्ह्यार्द्रककुमारस्येति कथितंच यथासंदिष्टं तेनाप्येकांते स्थित्वा निरूपिता प्रतिमा तांच निरूपयतऊहापोहविमर्शनेन समुत्पन्नं जातिस्मरणं चिंतितंच तेन यथा ममाभयकुमारेण महानुपकारोऽकारि सद्धर्मप्रतिबोधतइति। ततोसावार्द्रकः संजातजातिस्मरणो चिंतयद्यस्य मम देवलोकभोगैर्यथेप्सितं संपद्यमानैस्तृप्तिर्नाभूत्तस्यामीभिस्तुच्छैर्मानुषैः स्वल्पकालीनैः कामभोगैस्तृप्तिर्भविष्यतीति कुतस्त्यमित्येतत्परिगणय्य निर्विण्णकामभोगो यथोचितभोगमकुर्वन् राज्ञा संजातभयेन मा क्वचिद्यायात्स्यतः पंचभिः शतैराजपुत्राणां रक्षयितुमारेभे। आर्द्रककुमारोऽप्यश्ववाहनिकया विनिर्गतः प्रधानाश्वेन प्रपलायितः ततश्च प्रव्रज्यां गृह्णन् देवतया सोपसर्गं भवतोद्यापि भणित्वा निवारितोप्यसावार्द्रकोराज्यं तावन्न करोति कोन्योमां विहाय प्रव्रज्यां ग्रहीष्यतीत्यभिसंधाय तां देवतामवगणय्य प्रव्रजितोविहरन्नन्यदान्यतरप्रतिमाप्रतिपन्नः कायोत्सर्गेव्यवस्थितोवसंतपुरे तया देवलोकाच्युतया श्रेष्ठिदुहित्रा परदारिकामध्यगतया रमत्येपममभर्त्तेत्येवमुक्ते सत्यनंतरमेव तत्सन्निहितदेवतयार्द्धत्रयोदशकोटिपरिमाणा शोभनं वृतमनयेति भणित्वा हिरण्यवृष्टिर्मुक्ता तांच हिरण्यवृष्टिं राजा गृह्णन् देवतया सर्पाद्युत्थानतोविधृतोऽभिहितं च तया यथैतद्धिरण्यं जातमस्यादारिकायाः नान्यस्य कस्यचिदित्यतस्तत्पित्रा सर्वं संगोपितमार्द्रककुमारोप्यनुकूलोपसर्गइतिमत्वाऽश्वेनान्यत्र गतोगच्छतिच। काले दारिकाया वरकाः समागच्छंति दृष्टौच पितरौ तया किमेषामागमनप्रयोजनं? कथितंच ताभ्यां यथैते

तव वरकाइति । ततस्तयोक्तं तात ! सकृत्कन्याः प्रदीयंते नानेकशोदत्ता चाहं तस्मै यत्सं बंधं हिरण्यजातं भवद्भिर्गृहीतं ततः सा पित्राऽभाणि । किं त्वं तं जानीषे ? तयोक्तं तत्पादग ताभिज्ञानदर्शनतोजानामीति । तदेवमसौ तत्परिज्ञानार्थं सर्वस्य भिक्षार्थिनोभिक्षां दापयितुं निरूपिता ततोद्वादशभिर्वर्षैर्गतैः कदाचिच्चासौ भवितव्यतानियोगेन तत्रैव वि हरन्समायातः प्रत्यभिज्ञातश्च तया तत्पादचिन्हदर्शनतस्ततोसौ दारिका सपरिवारा तत्पृ ष्ठतोजगामार्द्रककुमारोपि देवतावचनं स्मरंस्तथाविधकर्मोदयादवश्यं भवितव्यतानियो गेन च प्रतिभग्नस्तया सार्द्धं भुनक्ति भोगान् पुत्रश्चोत्पन्नः पुनरार्द्रककुमारेणासावभिहिता सांप्रतं ते पुत्रोद्वितीयोहं स्वकार्यमनुतिष्ठामि तया सुतव्युत्पादनार्थं कार्पासकर्त्तनमारब्धं पृष्टा चासौ बालकेन किमंबैतद्भवत्या प्रारब्धमितरजनाचरितं ततोसाऽववोचद्यथा तव पि ता प्रव्रजितुंकामस्त्वं चाद्यापि शिशुरसमर्थोर्थार्जनेततोहमनाथा स्त्रीजनोचितेनानिंद्ये न विधिनाऽऽत्मानं भवंतं च किल पालयिष्यामीत्येतदालोच्येदमारब्धमिति । तेनापि बा लकेनोत्पन्नप्रभूतया तत्कर्त्तितसूत्रेणैव क्वायं मद्बद्धोयास्यतीति मन्मनोभाषिणोपविष्टए वासौ पिता परिवेष्टितस्तेनापि चिंतितं यावंतोमी बालककृतवेष्टनतंतवस्तावंत्येव वर्षाणि मया गृहेस्थातव्यमिति निरूपिताश्च तंतवोयावद्द्वादश तावंत्येव वर्षाण्यसौ गृहवासे व्य वस्थितः पूर्णेषु द्वादशसु संवत्सरेषु गृहान्निर्गतः प्रव्रजितश्चेति । ततोसौ सूत्रार्थनिष्पन्न एकाकिविहारेण विहरन् राजगृहाभिमुखं प्रस्थितस्तदंतराले च तद्रक्षणार्थं या नि प्राक् पित्रा निरूपितानि पंचराजपुत्रशतानि तस्मिन्नश्वे नष्टे राजभयाद्वैलक्ष्याच्च न रा जांतिकं जग्मुस्तत्राटवीडुर्गेण चौर्येण वृत्तिं कल्पितवंतस्तैश्चासौ दृष्टः प्रत्यभिज्ञातश्च ते च तेन पृष्टाः किमिति भवद्भिरेवंभूतं कर्माश्रितं ? तैश्च सर्वं राजभयादिकं कथितमार्द्रकक़ु मारवचनाच्च संबुद्धाः प्रव्रजिताश्च । तथा राजगृहनगरप्रवेशे गोशालकोहस्तितापसाः ब्रा ह्मणाश्च वादे पराजिताः । तथार्द्रककुमारदर्शनादेव हस्ती बंधनाद्विमुक्तस्तेच हस्तिताप सादयश्चार्द्रककुमारधर्मकथाक्षिप्ताजिनवीरसमवसरणे निष्क्रांताः। राज्ञा च विदितवृत्तांत त्वेन महाकुतूहलापूरितहृदयेन पृष्टोभगवान् कथं त्वद्दर्शनतोहस्ती निरर्गलः संवृत्तइति महान् भगवतः प्रभावइत्येवमभिहितः सन्नार्द्रककुमारोब्रवीन्नवमगाथयोत्तरं ॥" ण डुक्करं वारणपासमोयणं,गयस्स मत्तस्स वर्णमिरायं ॥ जहा ठवत्ता वलिएण तंतुणा, सुडुक्करंमे प डिहाइमोयणं ॥१७॥ (णडुक्करमित्यादि) न डुष्करमेतन्नरपाशैर्बद्धमत्तवारणस्य विमोचनं वनेराजन्नेतत्तु मे प्रतिभाति डुष्करं यच्च तत्रावलितेन तंतुना बद्धस्य मम प्रतिमोचनमिति। स्नेहतंतवोहि जंतूनां डुरुच्छेदाभवंतीति भावः । गतमार्द्रककथानकं ॥

नामनिष्पन्ननिक्षेपश्च । तदनंतरं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चे दं।(पुराकडमित्यादि)यथा च गोशालकेन सार्द्धं वादोभूदार्द्रककुमारस्य तथानेनाध्ययनेनोप

दिश्यते तंच राजपुत्रकमार्द्रककुमारं प्रत्येकबुद्धं नगवत्समीपमागच्छंतं गोशालकोब्रवीद्यथा हे आर्द्रक! यदहं ब्रवीमि तच्छृणु। पुरा पूर्वं यदनेन नगवत्तीर्थकृता कृतं तच्चेदमिति दर्शयति। एकांते जनरहिते प्रदेशे चरितुं शीलमस्येत्येकांतचारी तथा श्राम्यतीति श्रमणः पुरासीत्तप श्चरणोद्युक्तः सांप्रतं तूग्रैस्तपश्चरण विशेषैर्निर्नर्त्सितोमां विहाय देवादिमध्यगतोसौ धर्मं किल कथयति तथा निक्षून् बहूनुपनीय प्रनूतशिष्यपरिकरं कृत्वा नवद्विधानां मुग्धजनानामिदा नीं पृथक् पृथग्विस्तरेणाचष्टे धर्ममिति शेषः ॥१॥ पुनरपि गोशालकएव (साजीविए) इ त्याद्याह येयं बहुजनमध्यगतेन धर्मदेशना युष्मद्गुरुणारब्धा सा जीविका प्रकर्षेण स्थापि ता प्रस्थापिता एकाकी विहरंल्लौकिकैः परिनूयतइतिमत्वा लोकपंक्तिनिमित्तं महान् परिकरःकृतः। तथाचोच्यते। "छत्रं, छात्रं, पात्रं, वस्त्रं यष्टिं च चर्चयति निक्षुः॥ वेषेण प रिकरेणच, कियतापि विना न निक्षापि" ॥ तदनेन दंनप्रदानेन जीविकार्थमिदमारब्धं। किंनूतेनास्थिरेण पूर्वं ह्ययं मया सार्द्धमेकाक्यंतप्रांताशनेन शून्यारामदेवकुलादौ वृ त्तिं कल्पितवान्न च तथानूतमनुष्ठानं सिकताकवलवन्निरास्वादं यावज्जीवं कर्तुमल मतोमां विहायायं बहून् शिष्यान् प्रतार्यैवंनूतेन स्फुटाटोपेन विहरतीत्यतः कर्तव्ये स्थिरश्चपलः पूर्वचर्यापरित्यागेनापरकल्पसमाश्रयात् । एतदेव दर्शयति । सन्नायां ग तः सदेवमनुजपर्षदि व्यवस्थितो (गणउत्ति) गणशोबहुशोऽनेकशइति यावत् नि क्षूणां मध्ये गतोव्यवस्थितआचक्षाणोबहुजनेन्यो हितोबहुजन्योर्थस्तमर्थं बहुजनहितं कथयन् विहरति एतच्चास्यानुष्ठानं पूर्वापरेण न संधत्ते । तथाहि । यदि सांप्रतीयं वृत्तं प्राकारत्रयं सिंहासनाशोकवृक्षनामंमलचामरादिकं मोक्षांगमनविष्यत्ततोया प्रा क्तन्येकचर्या क्लेशबहुला तेन कृता सा क्लेशाय केवलमस्येत्यथ कर्मनिर्जरणहेतुका पर मार्थनूता ततः सांप्रतावस्था परप्रतारकत्वाद्दंनकल्पेत्यतः पूर्वोत्तरयोरनुष्ठानयोर्मौ नव्रतिकधर्मदेशनारूपयोः परस्परतोविरोधइति ॥ २ ॥

एगंतमेवं अज्ञ्वा विइसिंह, दोवग्गमन्नं न समेति जम्हा ॥ पु
विं च इसिंह च अणागतं वा, एगंतमेवं पडिसंधयाति ॥ ३ ॥ स
मिच्च लोगं तसथावराणं, खेमंकरे समणे माहणे वा ॥ आइ
क्खमाणोवि सहस्समज्ञे, एगंतयं सारयति तहच्चे ॥ ४ ॥

अर्थ—वली गोशालक कहेबे के, अहो आर्द्रकुमार ! (एगंतमेवं के०) जो एकांत विचरवुंज रूडुंबे, एवुं जाणीनें ताहरे गुरुयें आदर्युं हतुं, तो सदैव तेनोज अंगीका र करवो हतो, (अज्ञ्वाविइसिंह के०) अथवा हमणां अनेक साधुना परिवारें परव

थो थको जो साधुपदनुं मानछे तो, प्रथम थकीज ए आचार केम न आदर्यो? माटें (दोवग्गमन्नंनसमेतिजम्हा के०) ए बेहु आचार, छायानी अनें तडकानी पेठें मांहो मां हे मलता नथी, तथा जो मौनपणानें विषे धर्मछे तो ए, धर्मदेशना शा माटें आपे छे? अथवा जो धर्मदेशनानें विषेज धर्मछे, तो मौनव्रत आदरवानुं शुं कारण हतुं? ते कारण माटें ताहरो गुरु अत्यंत विरुद्धाचारी देखायछे.एवां वचन गोशालकनां सांभली नें हवे गाथाना उत्तरार्द्धवडे आर्डकुमार, ते गोशालकनें उत्तर आपेछे. (पुविंचइण्हिंच अणागतंवा के०) पूर्व कालें जे मौनपणुं अनें एकचर्या, श्री महावीरदेवें आदरी हती ते छद्मस्थ पणाथकी घातियां चार कर्मनो क्षय करवानें अर्थें जाणवी; अनें हमणां जे अनेक लोक आगल धर्मनुं प्रकाशवुं करेछे, ते वली अघातियां चार कर्मनी शुभ प्र कृति खपाववानें अर्थे जाणवुं. ए कारणें प्रथम तथा हमणां तथा अनागत एटले आ गमिककालें राग द्वेषनें अभावें, एकत्वपणुंज संभाविये छैयें. (एगंतमेवंपडिसंधयाति के०) तेथीं एना प्रथमना अनें पाछलना आचारनो कांइ भेद नथी, माटें जे ताहरा मनथी पूर्वापर आचारनो विरोध जणायछे ते खोटो जाणवो, तुं जोतो खरो! के, एना धर्मोपदेशें करी केटला एक प्राणीउनें उपकार थायछे के,नथी थतो? ॥३॥ तेहिज क हेछे (समिच्चलोगंतसथावराणं के०) लोक जे षट् द्रव्यात्मक, तेनें समिच्च एटले केवल ज्ञानें करी जाणीनें, त्रस अनें स्थावर जे प्राणीउछे, एतावता चोराशी लक्ष जीवा योनि छे तेनें, (खेमंकरे के०) क्षेमना करनार, तथा (समणे के०) श्रमण एटले बार भेदें तपना करनार, तथा (माहणेवा के०)कोइ जीवनें म हणो एवो जेनो उद्देशछे ते माहण अथवा ब्राह्मण एवा जे श्री महावीर देव, ते प्राणीउना हितनें अर्थें (आइरकमाणोवि सहस्समज्ञे के०) रागद्वेषरहित धर्म, मनुष्यना सहस्रमध्यें प्रकाशता छता (एगंतयंसा रयतितहच्चे के०) तेमज पूर्वेनी पेठें एकांत पणुंज साधेछे. एनी पूर्वेनी अवस्थामां अनें हमणांनी अवस्थामां कांइ पण अंतर नथी,तथा अर्चा एटले शुक्र ध्यानरूप जे लेश्या, ते छे जेनें एवा, तथा अशोकादि अष्ट महाप्रातिहार्य तेणें युक्तछे तो पण, अहंकार नथी, तथा शरीर संस्कारभणी यत्न पण करता नथी. ए कारण माटें ते भगवंत अनेक लोकें परवस्या थका पण, राग द्वेषना अभावथकी एकाकीज जाणवा इत्यर्थः ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–(एगंतमेवमित्यादि) यद्येकांतचारित्रमेव शोभनं पूर्वमाश्रितत्वात्ततः सर्वदा निरपेक्षैस्तदेव कर्तव्यं अथ चेदं सांप्रतं परिकरबहुत्वं श्रेयस्तदा पूर्वं तदेव कार्यं हे अप्येते छायातपवदत्यंतं विरोधिनी वृत्ते नैकत्र समवायं गछतस्तथा यदि मौनेन धर्मस्त तः किमियं महता प्रबंधेन धर्मदेशनाऽथानयैव धर्मस्ततः किमिति पूर्वं मौनव्रतमने

नाललाप यस्मादेवं तस्मात्पूर्वापरविरोधः । एवं गोशालकेनोक्ते आर्द्रककुमारः श्लोकपश्चार्द्धेनोत्तरदानायाह । पूर्वं यदेकत्वं मौनव्रतिकत्वं च भगवतः तच्छद्मस्थत्वाद् घातिकर्मचतुष्टयक्षयार्थं सांप्रतं बहुपरिवारस्य यद्धर्मदेशकत्वं तच्छेषकर्मक्षयाय तीर्थकृन्नाम कर्म वेदनार्थंच ततः पूर्वमिदानीमनागतेच काले रागद्वेषरहितत्वादेकत्वभावनया एकत्वमेव धर्मं कथयन् प्रतिसंदधाति न तस्य पूर्वापरविरोधोस्ति आशंसारहितत्वात् ॥ ३ ॥ लाभार्थं देशनां करोतीत्याह । समेत्य लोकं यथावस्थितं ज्ञात्वा त्रसस्थावराणां क्षेमंकरोरक्षकः श्रमणो द्वादशधा तपःप्रवृत्तः माहणत्ति प्रवृत्तिर्यस्य स माहनोब्राह्मणोवा समतया धर्ममाचक्षाणोपि मौनी च वाक्संयतएव तथा सहस्राणां मध्ये स्थितोपि एकांतमेव सारयति साधयति तस्मात्तथार्चः तथैव प्राग्वदर्चा लेश्या यस्य स तथार्चः । यदिवार्चा शरीरं तच्च प्राग्वद्यस्य स तथार्चस्तथाह्यशोकाद्यष्टप्रातिहार्योपेतोपि नोत्सेकं याति नापि शरीरसंस्काराय यत्नं विदधाति सहि भगवानात्यंतिकप्रहाणादेकाकी जनपरिवृतोप्येकाकी न तस्य तयोरवस्थयोः कश्चिद्विशेषोस्ति रागद्वेषमुक्तत्वात्पूर्वं पश्चाच्च तुल्याशयइत्यर्थः । यदुक्तं । "रागद्वेषौ विनिर्जित्य, किमरण्ये करिष्यसि ॥ अथ नो निर्जितावेतौ, किमरण्ये करिष्यसी"ति ॥ ४ ॥

॥ टीका—अपिच (एगंतमित्यादि) यद्येकांतचारित्रमेव शोभनं पूर्वमाश्रितत्वात्ततः सर्वदान्यनिरपेक्षैस्तदेव कर्तव्यमथचेदं सांप्रतं महापरिवारवृतं साधु मन्यसे ततस्तदेवादावप्याचरणीयमासीदपिच द्वे अप्येते छायातपवदत्यंतविरोधिनी वृत्ते नैकत्र समवायं गच्छतस्तथा यदि मौनेन धर्मस्ततः किमियं महता प्रबंधेन धर्मदेशनाऽथानयैव धर्मस्ततः किमिति पूर्वं मौनव्रतमाललाप यस्मादेवं तस्मात्पूर्वोत्तरव्याहतिः । तदेवं गोशालकेन पर्यनुयुक्तआर्द्रककुमारः श्लोकपश्चार्द्धेनोत्तरदानायाह । पूर्वं पूर्वस्मिन्काले यन्मौनव्रतिकत्वं या चैकचर्या तच्छद्मस्थत्वाद् घातिकर्मचतुष्टयक्षयार्थं । सांप्रतं यन्महाजनपरिवृतस्य धर्मदेशनाविधानं तत्प्राग्बद्धभवोपग्राहिकर्मचतुष्टयक्षपणोद्यतस्य विशेषतस्तीर्थकरनाम्नोवेदनार्थमपरासां चोच्चैर्गोत्रशुभायुर्नामादीनां शुभप्रकृतीनामिति । यदिवा पूर्वं सांप्रतमनागते च काले रागद्वेषरहितत्वादेकत्वभावनानतिक्रमणाच्चैकत्वमेवानुपचरितं भगवानशेषजनहितं धर्मं कथयन् प्रतिसंदधाति न तस्य पूर्वोत्तरयोरवस्थयोराशंसारहितत्वाद्भेदोऽस्त्यतोयदुच्यते भवता पूर्वोत्तरयोरवस्थयोरसांगत्यं तत् प्लवतइति ॥३॥ एतद्धर्मदेशनया प्राणिनां कश्चिदुपकारोभवत्युत नेति ? भवतीत्याह । (समिच्चलोयमित्यादि) सम्यग्यथावस्थितं लोकं षड्द्रव्यात्मकं मत्वावगम्य केवलालोकेन, परिच्छिद्य त्रस्यंतीति त्रसास्त्रसनामकर्मोदया द्वींद्रियादयस्तथा तिष्ठंतीति स्थावराः स्थावरनामकर्मोदयात्स्थावराः पृथिव्यादयस्तेषामुभयेषामपि जंतूनां क्षेमं शांतिः रक्षा तत्करणशीलः क्षेमंक

रः श्राम्यतीति श्रमणो द्वादशप्रकारतपोनिष्टप्तदेहस्तथा माहणत्ति प्रवृत्तिर्यस्यासौ माहनो ब्राह्मणोवा स एवंभूतोनिर्ममोरागद्वेषरहितः प्राणिहितार्थं न लाभपूजाख्यात्यर्थं धर्ममाचक्षाणोपि प्राग्वत् छद्मस्थावस्थायां मौनव्रतिकइव वाक्संयतः। उत्पन्नदिव्यज्ञानत्वाद्भाषागुणदोषविवेकज्ञतया भाषणेनैव गुणावाप्तेरनुत्पन्नदिव्यज्ञानस्य तु मौनव्रतिकत्वेनेति तथा देवासुरनरतिर्यक्सहस्रमध्येऽपि व्यवस्थितः पंकाधारपंकजवत्तद्दोषव्यासंगाभावान्ममत्वविरहादाशंसादोषविकलत्वादेकांतमेवासौ सारयति प्रख्यातिं नयति साधयतीति यावत्। ननु चैकाकिपरिकरोपेतावस्थयोरस्ति विशेषः प्रत्यक्षेणैवोपलभ्यमानत्वात्सत्यमस्ति विशेषोबाह्यतोन त्वांतरतोपि दर्शयति । तथा प्राग्वदर्चा लेश्या शुक्लध्यानाख्या यस्य स तथार्चः । यदिवार्चा शरीरं तच्च प्राग्वद्यस्य सतथार्चस्तथाह्यसावशोकाद्यष्टप्रातिहार्योपेतोपि नोत्सेकं याति नापि शरीरं संस्कारायत्तं विदधाति सहि भगवानात्यंतिकरागद्वेषप्रहाणादेकाक्यपि जनपरिवृतोप्येकाकी न तस्य तयोरवस्थयोः कश्चिद्विशेषोस्ति । तथाचोक्तं। "रागद्वेषौ विनिर्जित्य,किमरण्ये करिष्यसि । अथ नो निर्जितावेतौ, किमरण्ये करिष्यसि" ॥ इत्यतोबाह्यतनं गमनांतरमेव कषायजयादिकं प्रधानं कारणमिति स्थितं ॥ ४ ॥

धम्मं कहं तस्सउ णत्थि दोसो, खंतस्स दंतस्स जितिंदियस्स ॥ भासायदोसेय विवज्जगस्स, गुणेयभासाय णिसेवगस्स ॥ ५ ॥ महव्वए पंच अणुव्वएय, तहेव पंचासव संवरेय ॥ विरतिं इह सामणियंमि पन्ने, लवावसक्की समणे त्तिबेमि ॥ ६ ॥

अर्थ—हवे राग द्वेष विना धर्म कहेतां थकां कोइ प्रकारनो दोष नथी, एवो भाव देखाडेछे. (धम्मंकहंतस्सउणत्थिदोसो के०) ते भगवंत, समस्त लोकनो उद्धार करवानें प्रवर्त्तमान छता, धर्मदेशना करेछे, तेथी तेनें दोष नथी, ते भगवंत केवाछे तो के, (खंतस्सदंतस्सजितिंदियस्स के०) क्षमावंत, दमितेंद्रिय, एटले इंद्रियना दमनहार,वली जितेंद्रिय, (भासायदोसेयविवज्जगस्स के०) तथा भाषाना दोष टालनार, अनें (गुणेयभासायणिसेवगस्स के०) भाषाना गुणना सेवनार, एवा भगवंतें बोलतां थकां, पण तेउनुं मौनव्रत पणुंज जाणवुं ॥ ५ ॥ हवे श्री महावीर भगवंत, केवो धर्म कहे, ते कहेछे. (महव्वएपंचअणुव्वएय के०) पांच महाव्रत जे प्राणातिपातविरमणादिक साधुनो धर्मछे, ते कहे, तथा श्रावक उद्देशीनें स्थूलप्राणातिपात विरमणादिक, पांच अणुव्रत कहे. (तहेव के०) तेमज (पंचासव के०) पांच आश्रव ते कर्मनें आववानां स्थानकछे,ते

कहे, तथा (संवरेय के०) पांच संवर ते सत्तरन्नेद युक्त संवर ते कहे, (विरतिंइह के०) वली विरतिनो उपदेश ते संवरना धरनारनें कहे, वली इह एटले था प्रवचननें विषे (सामणिये मिपन्ने के०) संपूर्ण संयमनें विषे मूलगुण,ते पांच महाव्रतरूप तथा उत्तरगुण,ते संवर विरतिरूप, ते प्रज्ञावंत एवा, स्वामी कहे. वली ते केवाढे, तोके, (लवावसक्की के०) कर्मना टालनार, तथा (समणेत्तिबेमि के०) श्रमण एटले तपस्वी, एवा श्री महावीर देव ते लोकना हितनें अर्थे धर्म कहेता थका आचारवंतज जाणवा. हुं एम कहुंबुं.॥६॥

॥ दीपिका—क्षांतस्याक्रोधस्य दांतस्य मानरहितस्य जितेंद्रियस्य निर्लोनस्य लोनत्यागान्निर्मायस्येत्यपि इष्टव्यं । नाषादोषाअसत्यसत्यामृपाकर्कशाऽसन्यशब्दोच्चारणादयः तद्वर्जकस्य नापागुणाहितमितदेशकालासंदिग्धनाषणादयः तन्निषेधकस्य सतोधर्मं कथयतोपि नास्ति दोषः । उद्मस्य हि प्रायोमौनमेव श्रेयः । केवलिनस्तु नाषणमपि गुणायेति ॥५॥ कीदृशं धर्मं वक्तीत्याह । पंचमहाव्रतानि साधूनां पंचगुणव्रतानि श्राद्धानां प्रज्ञापितवान् तथैव पंचाश्रवान् प्राणातिपातादिरूपान् तत्संवरं च सप्तदशप्रकारं संयमं विरतिं च कथितवान् इह शासने श्रामण्यं संपूर्णसंयमस्तस्मिन्कर्तव्ये पूर्णकृत्स्ने मूलोत्तरगुणान् पूर्वोक्तान् कथितवान् । किंनूतोऽसौ लवं कर्म तस्मा(दवसक्कइति) अवसर्प्पणशीलोऽवसर्प्पी श्रमणइति । अथ गोशालकोवक्ति (बेमित्ति) यदहं ब्रवीमि हे आर्द्रक ! तत्त्वं शृणु॥६॥

॥ टीका—अपगतरागद्वेषस्य प्रनाषमाणस्यापि दोषानावं दर्शयितुमाह । (धम्मंकहंतस्से त्यादि) तस्य नगवतोपगतघनघातिकलंकस्योत्पन्नसकलपदार्थाविर्नावज्ञानस्य जगदभ्युद्धरणप्रवृत्तस्यैकांतपरहितप्रवृत्तस्य स्वकार्यनिरपेक्षस्य धर्मं कथयतोपि तुशब्दस्यापिशब्दार्थत्वान्नास्ति कश्चिद्दोषः। किंनूतस्येत्याह। क्षांतिसंपन्नस्यानेन क्रोधनिरासमाह । तथा दांतस्योपशांतस्यानेन मानव्युदासं। तथा जितानि स्वविषयप्रवृत्तिनिषेधेनेंद्रियाणि येन स जितेंद्रियोऽनेन तु लोननिरासमाचष्टे मायायास्तु लोननिरासादेव निरासोद्रष्टव्यस्तन्मूलत्वात्तस्य नाषादोषाअसत्यसत्यामृषकर्कशासन्यशब्दोच्चारणादयस्तद्विवर्जकस्य तत्परिहर्तुस्तथा नाषायाये गुणाहितमितदेशकालासंदिग्धनापणादयस्तन्निषेधकस्य सतोब्रुवतोपि नास्ति दोषः उद्मस्थस्य हि बाहुल्येन मौनव्रतमेव श्रेयः समुत्पन्नकेवलस्य तु नाषणमपि गुणायेति ॥ ५ ॥ किंनूतं धर्ममसौ कथयतीत्याह । (महव्वएपंचेत्यादि) महांति च तानि व्रतानि प्राणातिपातविरमणादीनि तानि च साधूनां प्रज्ञापितवान् पंचापि तदपेक्षायाणूनि लघूनि व्रतानि पंचैव तानि श्रावकानुद्दिश्य प्रज्ञापितवांस्तथैव पंचाश्रवान् प्राणातिपातादिरूपान् कर्मणः प्रवेशद्वारनूतांस्तत्संवरं च सप्तदशप्रकारं संयमं प्रतिपादितवान् संवरवतो

म्यक् न जानंति ॥ १४ ॥ अथ दृष्टांतमाह । (मिलक्खुइति) । यथा म्लेछोऽनार्यः अ म्लेछस्य आर्यस्य यदुक्तं नाषितं तदनुनाषते परमार्थशून्यं तद्भाषितमेवानुनाषते। नच हेतुं विजानाति ॥ १५ ॥ दार्ष्टांतिके योजयति (एवमिति)। एवमज्ञानिकाः स म्यक्ज्ञानरहिताः स्वकं स्वकमात्मीयं ज्ञानं प्रमाणत्वेन वदंतोपि निश्चयार्थं न जानंति। इव यथा म्लेछो निश्चयार्थमजानन् परोक्तमनुवदत्येवं तेप्यबोधिकाबोधरहिताः। ततोऽज्ञानमेव श्रेयइति ॥ १६ ॥

॥ टीका—नूयोप्यज्ञानवादिनां दोषान्निधित्सयाह । (जेएयमित्यादि) । ये अज्ञान पक्षं समाश्रितास्एनं कर्मक्षपणोपायं न जानंति । आत्मीयाऽसद्ग्राहाऽग्रहग्रस्ताभि थ्यादृष्टयोऽनार्यास्ते मृगाइव पाशबन्धाघातं विनाशमेष्यंति यास्यंत्यन्वेषयंति वा । त द्योग्यक्रियानुष्ठानात् । अनंतशोविछेदेनेत्यज्ञानवादिनोगताः ॥ १३॥ इदानीमज्ञानवादिन दूषणोद्भिनावयिषया स्वाग्यंत्रितावादिनोन चलिष्यंतीति तन्मताविष्करणायाह । (मा हणाइत्यादि) । एके केचन ब्राह्मणविशेषास्तथा श्रमणाः परिव्राजकविशेषाः सर्वेप्ये ते ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानं हेयोपादेयार्थाऽविर्नावकं परस्परविरोधेन व्यवस्थितं स्वकमात्मी वदंति । नच तानि ज्ञानानि परस्परविरोधेन प्रवृत्तत्वात्सत्यानि । तस्मादज्ञानमेव श्रेय किं ज्ञानपरिकल्पनयेत्येतदर्शयति । सर्वस्मिन्नपि लोके ये प्राणाः प्राणिनोन ते किंचन पि सम्यगुपेतवाचं जानंतीति विदंतीति ॥ १४ ॥ यदपि तेषां गुरुपारंपर्येण ज्ञानमायाः तदपि छिन्नमूलत्वादवितथं न नवतीति दृष्टांत द्वारेण दर्शयितुमाह । (मिलक्खुअमिलक्ख स्सेत्यादि) । यथा म्लेछआर्यनाषानभिज्ञोऽम्लेछस्यार्यस्य म्लेछनाषानभिज्ञस्य यद्भाषि तं तदनुनाषते अनुवदति केवलं न सम्यक्तदभिप्रायं वेत्ति यथाऽनया विवक्षयाऽ न नाषितमिति । नच हेतुं निमित्तं निश्चयेनासौ म्लेछस्तद्भाषितस्य जानाति । केवलं पर मार्थशून्यं तद्भाषितमेवानुनाषत इति ॥ १५॥ एवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकं योज[illegible]म ह । (एवमित्यादि) । यथा म्लेछः अम्लेछस्य परमार्थमजानानः केवलं तद्भाषितानुनु नाषते । तथा अज्ञानकाः सम्यक्ज्ञानरहिताः श्रमणाब्राह्मणावदंतोपि स्वीयं स्व। ज्ञानं प्रमाणत्वेन परस्परविरुद्धार्थनाषणात् निश्चयार्थं न जानंति । तथाहि । ते स्वक यं तीर्थंकरं सर्वज्ञत्वेन निर्द्धार्य तदुपदेशेन क्रियासु प्रवर्तेरन् । नच सर्वज्ञविवक्षा अव ग्दर्शिना ग्रहीतुं शक्यते । नासर्वज्ञः सर्वज्ञं जानातीति न्यायात् । तथाचोक्तं । सर्वज्ञो सावीति ह्येतत्तत्कालेपि बुभुत्सुनिः ॥ तज्ज्ञानज्ञेयविज्ञान,रहितैर्गम्यते कथं ॥ १ ॥ वं परचेतोवृत्तीनां पुरन्वयत्वाडपदेष्टुरपि यथावस्थितविवक्षया ग्रहणाऽसंनवान्निश्चया र्थमजानानाम्लेछवदपरोक्तमनुनाषंतएव । अबोधिकाबोधरहिताः केवलमित्यतोऽज्ञा

हि विरतिर्नैवतीत्यतोविरतिं च प्रतिपादितवांश्चशब्दात्तत्फलनूतौ निर्जरामोक्षौ च इहास्मिन्प्रवचने लोके वा श्रमणनावः श्रामण्यं संपूर्णः संयमस्तस्मिन् वा विधेये मूलगुणान् महाव्रताणुव्रतरूपांस्तथोत्तरगुणान् महाव्रताणुव्रतरूपान् कृत्स्ने संयमे विधातव्ये प्राज्ञइति क्वचित्पाठः। प्रज्ञाने तत्प्रतिपादितवानिति । किंनूतोऽसौ लवं कर्म तस्मा(दवसक्कइति) अवसर्प्पणशीलोऽवसर्प्पी श्रम्यतीति श्रमणः तपश्चरणयुक्तइत्येतदहं ब्रवीमि स्वयमेव च नगवान्पंचमहाव्रतोपपन्नइंडियनोइंडियगुप्तोविरतश्चासौ लवावसर्प्पीसन् स्वतोन्येषामपि तथानूतमुपदेशं दत्तवानित्येतद् ब्रवीमीति। यदि वाईककुमारवचनमाकर्ण्याऽसौ गोशालकस्तत्प्रतिपक्षनूतं वक्तुकामइदमाह । इत्येतद्वक्ष्यमाणं यदहं ब्रवीमि तच्छृणु! त्वमिति ॥ ६ ॥

सीउदगं सेवउ बीयकायं, आहायकम्मं तह इत्थियाउ ॥ एगंत
चारिस्सिह अम्हधम्मे, तवस्सिणो णाजिसमेति पावं ॥ ७ ॥
सीतोदगं वा तह बीयकायं, आहायकम्मं तह इत्थियाउ॥एयाइं
जाणं पडिसेवमाणा, अगारिणो अस्समणा नवंति ॥ ८ ॥

अर्थ—हवे एवुं आईकुमारनुं पूर्वोक्त वचन सांजलीनें,फरी गोशालक कहेने के,अहो आईकुमार! तें एम कह्युं जे ए परहित नणी प्रवर्त्तिनें धर्म कहेवाथकी दोष नथी, तथा लोक परिवारनो पण दोष नथी,तो हुं कहुं बुं ते पण सांजल. के,जे अमारा सिद्धांतमां कह्युंने तेनो पण दोष नथी. ते शुं कह्युंने ! ते कहेने. (सीउदगंसेवउबीयकायं के०) सचितपाणी तेनें सेवो, एटले पान करो,तथा बीजकायनो उपनोग करो,(आहायकम्मं के०) तथा आधाकर्मी आहार ल्यो, (तह के०) तेमज(इत्थियाउ के०) स्त्रीनो प्रसंग पण करो,एटले पोताना अनें परना उपकारनु कारण, अनें धर्मनुं आधार एवुं जे शरीर तेनें अर्थें जे कांइ करियें,तेमां दोष नथी केमके,(एगंतचारिस्सिहअम्हधम्मे के०) अमारा धर्मनें विषे प्रवर्त्तमान तथा आराम उद्यानादिकनें विषे एकाकी विचरतो एवो, (तवस्सिणोणाजिसमेतिपावं के०) कोइ एक तपस्वी तेनें पाप लागे नहीं. जे कारण माटें यद्यपि शीतोदकादिक कांइक कर्मबंधनुं कारणने तथापि तेनो, उपनोग, धर्माधारनूत एवुं जे शरीर तेनें कारणें करतां थकां कांइ पण दोष नथी. इति नावः॥ ७ ॥ हवे वली आईकुमार कहेने के, अहो गोशालक! शीतोदक अनें बीजकायनो उपनोग करवो, तथा आधाकर्मी आहार लेवो, अनें स्त्रीयादिकनो प्रसंग करवो, इत्यादिक बोल जे तें पूर्वें कह्या, तेना पडिसेवनारा तो आगारी एटले गृहस्थज कहेवाय, परंतु एवा श्रमण एटले साधु न होय. ॥ ८॥

॥दीपिका—त्वयेदमुक्तं यत्परार्थं प्रवृत्तस्याशोकादिप्रातिहार्यपरिग्रहः शिष्यादिपरिकरो धर्मदेशना च न दोषायेति यथा तथास्माकमप्येतन्न दोषाय यच्छीतोदकं सचितोदकं तत्सेवनं करोतु । बीजकायोपभोगमाधाकर्माश्रयणं स्त्रीप्रसंगं च करोतु। अनेन स्वपरोपकारः स्यादित्याह (एगंतत्ति) अस्मद्धर्मे प्रवृत्तस्यैकांतचारिणः एकाकिविहारोद्यतस्य तपस्विनोनाभिसमेति न संबध्यते पापं। यद्यपि शीतोदकादीनि ईषत्कर्मबंधाय तथापि धर्माधारस्य शरीरस्य रक्षणाय क्रियमाणानि एकांतचारितपस्विनः कर्मबंधाय न भवंती त्यर्थः ॥ ७ ॥ अस्योत्तरमाह मुनिः। शीतोदकादीनि प्रतिसेवमानाअगारिणोगृहस्थास्ते भवंत्यश्रमणाश्चेति त्वं जानीहि । एतद्भोगे यदि श्रमणत्वं स्यात्तदा गृहस्थत्वं केन स्यादित्यर्थः ॥ ८ ॥

॥टीका—यथाप्रतिज्ञातमेवाह गोशालकः । (सीओदगमित्यादि) भगवतेद मुदग्रादितं परार्थं प्रवृत्तस्याशोकादिप्रातिहार्यपरिग्रहस्तथा शिक्षादिपरिकरोधर्मदेशनाच न दोषायेति । यथा तथास्माकमपि सिद्धांते यदेतद्वक्ष्यमाणं तन्न दोषायेति। शीतं च तदुदकं च शीतोदकमप्राशुकोदकं तत्सेवनं परिभोगं करोतु। तथा बीजकायोपभोगमाधाकर्माश्रयणं स्त्रीप्रसंगं च निदधालनेन च स्वपरोपकारः कृतोभवतीत्यस्मदीये धर्मे प्रवृत्तस्य एकांतचारिणआरामोद्यानादिष्वेकाकिविहारोद्यतस्य तपस्विनोनाभिसमेति न संबंधमुपयाति पापमशुभकर्मेति। इदमुक्तं भवत्येतानि शीतोदकादीनि यद्यपीषत्कर्मबंधाय तथापि धर्माधारं शरीरं प्रतिपालयतएकांतचारिणस्तपस्विनोबंधाय न भवंतीति ॥ ७ ॥ एतत्परिहर्तुकामआह । (सीतोदगमित्यादि) एतानि प्रागुपन्यस्तानि अप्राशुकोदकपरिभोगादीनि प्रतिसेवंतोऽगारिणोगृहस्थास्ते भवंत्यश्रमणाश्चाप्रव्रजिताश्चैवं जानीहि ॥ यतः अहिंसासत्यमस्तेयं, ब्रह्मचर्यमलुब्धता ॥ इत्येतच्छ्रमणलक्षणं चैषां शीतोदकबीजाधाकर्मस्त्रीपरिभोगवतां नास्तीत्यतस्ते नामाकाराभ्यां श्रमणान परमार्थानुष्ठानतइति ॥ ८ ॥

सियाय बीउदग इच्छियाउ, पडिसेवमाणा समणा भवंतु ॥
अगारिणोवि समणा भवंतु, सेवंतिउ तेवि तहप्पगारं ॥९॥ जे
यावि बीउदगभोत्ति भिक्खू, भिक्खं विहंजायति जीवियठ्ठी ॥
ते णातिसंजोगमविप्पहाय, कायोवगाणंतकरा भवंति ॥ १० ॥

अर्थ—वली आर्द्रकुमार कहेछे के, अहो गोशालक! ताहारो मत एवोछे जे एकांतचारी, क्षुधा तृषादिकना सहन करनार,तपस्वी न होय ते केम न होय? तेहनो प्रत्युत्तर सांभल. (सियायबीउदगइच्छियाउ के०) ते जो कदाचित् सचित बीज, सचित पाणी, अने स्त्री

यादिकनो प्रसंग तेना, (पडिसेवमाणासमणाजवंतु के०) परिजोगना करनार श्रमण होय तो, (अगारिणोविसमणाजवंतु के०) आगारी जे गृहस्थछे ते पण श्रमण थाय. केमके, (सेवंतिउतेवितहप्पगारं के०) आगारी पण सचित बीज उदकादिना सेवनारछे, वली धन नें अर्थें देशांतरनें विषे विचरे छे, वली एकला पण परदेशनें विषे घणा काल पर्यंतर हेछे, तथा धनार्थी थका, क्षुधातृषादिकनां कष्ट पण सहन करेछे, मार्टे ए रीतें ते पण तथा प्र कारनां एटले श्रमण जेवां कष्ट सहन करेछे, ए कारणें ते गृहस्थनें पण तपस्वीज गण वा ॥ ए ॥ वली पण आर्द्रकुमार कहेछे के, (जेयाविबीउदगजोत्तिनिरकू के०) जे नि क्षुक छतां, बीज उदकना जोगवनार, इव्यब्राह्मचारी एवा, (निरकंविहंजायतिजीवि यठी के०) आजीविका चलाववानें अर्थें निक्षा मागे, (तेणातिसंजोगमविप्पहा य के०) ते ज्ञातिसंयोग बांमीनें (कायोवगाणंतकराजवंति के०) ठ कायनामर्दन कर नार एवा, पोतानी कायाना राखनार एवा, अनें कर्मना करनार ते, आगमिककालें अनंत संसारी थशे ॥ १० ॥

॥ दीपिका–आर्द्रकएव पुनराह । यदि बीजादिजोजिनः श्रमणाः स्युस्तदागारिणोपि श्रमणाः स्युः तेपि गृहस्थाअपि सेवंते तथाप्रकारमेकत्वविहारादिकं । गृहस्थानामपि पथिकत्वावस्थायामाशंसावतामपि निष्किंचनतयैकाकिविहारित्वं क्षुत्पिपासादिपीडनं जवत्येवेति ॥ए॥ ये चापिनिक्षवोबीजोदकजोजिनः संतोजिक्षां च यावंतोजीवितार्थिनस्ते ज्ञातिसंयोगं स्वजनसंवंधं प्रविहाय त्यक्त्वा कायात्कायेषु च उपगछंतीति कायोप जो गास्तडुपमर्दारंजप्रवृत्ताः संसारस्यानंतकराः स्युः संसारस्य अंतकरान जवंतीत्यर्थः ॥१०॥

॥ टीका–पुनरप्यार्द्रकएवैतद्दूषणायाह । (सियायेत्यादि) स्यादेतद्भवदीयं मतं य था ते एकांतचारिणः क्षुत्पिपासादिप्रधानतपश्चरणपीडिताश्च तत्कथं ते न तपस्विनइत्येत दाशंक्यार्द्रक आह। यदि बीजाद्युपजोगिनोपि श्रमणाइत्येवं जवताज्युपगम्यते एव तर्ह्यगा रिणोपि गृहस्थाः श्रमणाजवंतु तेषामपि देशिकावस्थायामाशंसावतामपि निष्किंचनतयै काकिविहारित्वं क्षुत्पिपासादिपीडनंच संजाव्यते। अतआह (सेवंतिउ) तुरवधारणे सेवंत्ये व तेऽपिगृहस्थास्तथाप्रकारमेकाकिविहारादिकमिति ॥ ए ॥ पुनरप्यार्द्रकोबीजोदकादिजो जिनां दोषानिधित्सयाह । (जेयावीत्यादि) ये चापि निक्षवः प्रव्रजिताबीजोदकजोजि नः संतोऽव्यतोब्रह्मचारिणोपि निक्षां वाऽटंति जीवितार्थिनस्ते तथाजूताज्ञातिसंयोगं स्वजनसंबंधं विप्रहाय त्यक्त्वा कायात्कायेषु चोपगछंतीति कायोपजोगास्तडुपमर्दकारंजाप्र वृत्तत्वात्संसारस्यानंतकराजवंतीति। इदमुक्तं। जवति केवलं स्त्रीपरिजोगएव तैः परित्यक्तो

॥दीपिका—त्वयेदमुक्तं यत्परार्थं प्रवृत्तस्याशोकादिप्रातिहार्यपरिग्रहः शिष्यादिपरिकरो धर्मदेशना च न दोषायेति यथा तथास्माकमप्येतन्न दोषाय यच्छीतोदकं सचितोदकं तत्सेवनं करोतु । बीजकायोपभोगमाधाकर्माश्रयणं स्त्रीप्रसंगं च करोतु। अनेन स्वपरोपकारः स्यादित्याह (एगंतत्ति) अस्मद्धर्मे प्रवृत्तस्यैकांतचारिणः एकाकिविहारोद्यतस्य तपस्विनोभानिसमेति न संबध्यते पापं । यद्यपि शीतोदकादीनि ईषत्कर्मबंधाय तथापि धर्माधारस्य शरीरस्य रक्षणाय क्रियमाणानि एकांतचारितपस्विनः कर्मबंधाय न भवंती त्यर्थः ॥ ७ ॥ अस्योत्तरमाह मुनिः । शीतोदकादीनि प्रतिसेवमानाअगारिणोगृहस्थास्ते भवंत्यश्रमणाश्चेति त्वं जानीहि । एतद्भोगे यदि श्रमणत्वं स्यात्तदा गृहस्थत्वं केन स्या दित्यर्थः ॥ ८ ॥

॥टीका—यथाप्रतिज्ञातमेवाह गोशालकः । (सीओदगमित्यादि) भगवतेद मुद्याहितं परार्थं प्रवृत्तस्याशोकादिप्रातिहार्यपरिग्रहस्तथा शिक्षादिपरिकरोधर्मदेशनाच न दोषायेति । यथा तथास्माकमपि सिद्धांते यदेतद्वक्ष्यमाणं तन्न दोषायेति । शीतं च तदुदकं च शीतोदकमप्राशुकोदकं तत्सेवनं परिभोगं करोतु। तथा बीजकायोपभोगमाधाकर्माश्रयणं स्त्रीप्रसंगं च निदधात्वनेन च स्वपरोपकारः कृतोभवतीत्यस्मदीये धर्मे प्रवृत्तस्य एकांतचारिणआरामोद्यानादिष्वेकाकिविहारोद्यतस्य तपस्विनोभानिसमेति न संबंधमुपयाति पापमशुभकर्मेति। इदमुक्तं भवत्येतानि शीतोदकादीनि यद्यपीषत्कर्मबंधाय तथापि धर्माधारं शरीरं प्रतिपालयतएकांतचारिणस्तपस्विनोबंधाय न भवंतीति ॥ ७ ॥ एतत्परिहर्तुकामआह । (सीतोदगमित्यादि) एतानि प्रागुपन्यस्तानि अप्राशुकोदकपरिभोगादीनि प्रतिसेवंतोऽगारिणोगृहस्थास्ते भवंत्यश्रमणाश्चाप्रव्रजिताश्चैवं जानीहि ॥ यतः अहिंसासत्यमस्तेयं, ब्रह्मचर्यमलुब्धता ॥ इत्येतच्छ्रमणलक्षणं चैषां शीतोदकबीजाधाकर्मस्त्रीपरिभोगवतां नास्तीत्यतस्ते नामाकाराभ्यां श्रमणान परमार्थानुष्ठानतइति ॥ ८ ॥

सियाय बीउदग इत्थियाउ, पडिसेवमाणा समणा भवंतु ॥
अगारिणोवि समणा भवंतु, सेवंतिउ तेवि तहप्पगारं ॥९॥ जे
यावि बीउदगभोत्ति भिरकू, भिरकं विहंजायति जीवियठी ॥
ते णातिसंजोगमविप्पहाय, कायोवगाणंतकरा भवंति ॥ १० ॥

अर्थ—वली आर्द्रकुमार कहेछे के, अहो गोशालक! ताहारो मत एवोछे जे एकांतचारी, क्षुधा तृषादिकना सहन करनार,तपस्वी न होय ते केम न होय? तेहनो प्रत्युत्तर सांभल. (सियायबीउदगइत्थियाउ के०) ते जो कदाचित् सचित बीज, सचित पाणी, अने स्त्री

यादिकनो प्रसंग तेना, (पडिसेवमाणासमणाजवंतु के०) परिजोगना करनार श्रमण होय तो, (अगारिणोविसमणाजवंतु के०) आगारी जे गृहस्थठे ते पण श्रमण थाय. केमके, (सेवंतिउतेवितहप्पगारं के०) आगारी पण सचित बीज उदकादिना सेवनारठे, वली धन नें अर्थें देशांतरनें विषे विचरे ठे, वली एकला पण परदेशनें विषे घणा काल पर्यंतर हेठे, तथा धनार्थी थका, क्षुधातृषादिकनां कष्ट पण सहन करेठे, माटें ए रीतें ते पण तथा प्र कारनां एटले श्रमण जेवां कष्ट सहन करेठे, ए कारणें ते गृहस्थनें पण तपस्वीज गण वा ॥ ए ॥ वली पण आर्इकुमार कहेठे के, (जेयाविबीउदगजोत्तिनिस्कू के०) जे नि क्षुक ठतां, बीज उदकना जोगवनार, इव्यब्राह्मचारी एवा, (निस्कंविहंजायतिजीवि यही के०) आजीविका चलाववानें अर्थें निक्षा मागे, (तेणातिसंजोगमविप्पहा य के०) ते ज्ञातिसंयोग ठांमीनें (कायोवगाणंतकराजवंति के०) ठ कायनामर्दन कर नार एवा, पोतानी कायाना राखनार एवा, अनें कर्मना करनार ते, आगमिककालें अनंत संसारी थशे ॥ १० ॥

॥ दीपिका–आर्इकएव पुनराह । यदि बीजादिनोजिनः श्रमणाः स्युस्तदागारिणोपि श्रमणाः स्युः तेपि गृहस्थाअपि सेवंते तथाप्रकारमेकलविहारादिकं । गृहस्थानामपि पथिकलावस्थायामाशंसावतामपि निष्किंचनतयैकाकिविहारित्वं क्षुत्पिपासादिपीडनं जवत्येवेति ॥ए॥ ये चापिनिक्षवोबीजोदकजोजिनः संतोनिक्षां च यावंतोजीवितार्थिनस्ते ज्ञातिसंयोगं स्वजनसंबंधं प्रविहाय त्यक्त्वा कायात्कायेषु च उपगछंतीति कायोप जो गास्तडुपमर्दारंजप्रवृत्ताः संसारस्यानंतकराः स्युः संसारस्य अंतकरान जवंतीत्यर्थः ॥१०॥

॥ टीका–पुनरप्यार्इकएवैतडूषणायाह । (सियायेत्यादि) स्यादेतद्भवदीयं मतं य था ते एकांतचारिणः क्षुत्पिपासादिप्रधानतपश्चरणपीडिताश्च तत्कथं ते न तपस्विनइत्येत दाशंक्यार्इक आह। यदि बीजाद्युपजोगिनोपि श्रमणाइत्येवं जवताच्युपगम्यते एव तर्ह्यगा रिणोपि गृहस्थाः श्रमणाजवंतु तेषामपि देशिकावस्थायामाशंसावतामपि निष्किंचनतयै काकिविहारित्वं क्षुत्पिपासादिपीडनंच संजाव्यते। अतआह (सेवंतिउ) तुरवधारणे सेवंत्ये व तेऽपिगृहस्थास्तथाप्रकारमेकाकिविहारादिकमिति ॥ ए ॥ पुनरप्यार्इकोबीजोदकादिजो जिनां दोषानिधित्सयाह । (जेयावीत्यादि) ये चापि निक्षवः प्रव्रजिताबीजोदकजोजि नः संतोइव्यतोब्रह्मचारिणोपि निक्षां वाऽटंति जीवितार्थिनस्ते तथाजूताज्ञातिसंयोगं स्वजनसंबंधं विप्रहाय त्यक्त्वा कायात्कायेषु चोपगछंतीति कायोपजोगास्तडुपमर्दकारंजाप्र वृत्तत्वात्संसारस्यानंतकराजवंतीति। इदमुक्तं। जवति केवलं स्त्रीपरिजोगएव तैः परित्यक्तो

ऽसावपि इव्यतः शेषेण तु बीजोदकाद्युपन्नोगेन गृहस्थकल्पाएव ते। यत्तु निक्षाटनादिक मुपन्यस्तं तेषां तद्गृहस्थानामपि केषांचित्संनाव्यते नैतावता श्रमणनावइति ॥ १० ॥

इमं वयंतं तुमपाउ कुवं, पावाइणो गरिहसि सवएव ॥ पावाइ
णो पुढो किट्टयंता, सयंसयं दिछिकरेंति पाउ ॥११॥ ते अन्नम
न्नस्स विगहरमाणा, अरकंतिउ समणामाहणाय ॥ सतोय अ
ढी असतोय णढी, गरहामोदिठिं ण गरहामोकिंचि ॥ १२॥

अर्थ—हवे आर्इकुमारनां ए पूर्वोक्त वचन सांनलीनें गोशालक बीजो उत्तर आपवानें असमर्थ बतो, अन्य तीर्थिकोनें पोतानां सहायकारी करीनें सोल्लंठ एटले असार वचन बोलेबे के, अहो आर्इकुमार ! (इमंवयंतंतुमपाउकुवं के०) तुं एवां पूर्वोक्त वचन कहेतो बतो (पावाइणोगरिहसिसवएव के०) सर्व प्रावाडुक एटले अन्यदर्शनीउनें निंदेबेज, कारणके आ जगत् मांहे सर्व दर्शनीउ बीज उदकादिकनुं सेवन करता थका, संसार उछेदवानें अर्थें प्रवर्त्तेबे,तो तेनें मानियें नहीं. एवुं वचन सांनलीनें आर्इकुमार ते गोशालकनें उत्तर आपवानें अर्थें बोल्यो, ते गाथाना उत्तरार्द्ध वडे कहेबे. के, अहो गोशालक ! (पावाइणोपुढोकिट्टयंतासयंसयंदिछिकरेंतिपाउ के०) सर्व प्रावाडुक एटले सर्व दर्शनी पोत पोतानी जुदी जुदी दृष्टीयें जुदी जुदी मतियें पोतपोतानुं दर्शन प्रगट करेबे. जेम ते पोतपोताना दर्शननी स्थापना करेबे, तेम हुं पण अमारा दर्शननी प्रनावना करुंबुं के, सचितपाणी,बीजादिकना परिन्नोगथकी निःकेवल कर्मनुं बंधनबे,पण एथकी संसारनो उछेद कांइ पण नथी. एवो अमारा दर्शननो मतबे, तो अंही निंदा पण शानी? अनें उत्कर्षपण शानो?॥११॥वली आर्इकुमार कहेबे. (तेअन्नमन्नस्सविगरहमाणा के०) ए समस्त परवादी परस्पर मांहोमांहे पारका दर्शननें निंदेबे, अनें पोताना दर्शनना गुण बोलेबे, (अरकंतिउसमणामाहणाय के०) ते श्रमण ब्राह्मण सर्व पोतपोताना पक्षनें समर्थेबे अनें परना पक्षनें दूषण आपेबे.तेज गाथाना उत्तरार्द्ध वडे देखाडेबे. (सतोयअढीअसतोयणढी के०) अमारा पक्षनें अंगीकार करवा थकी पुण्यबे, अनें स्वर्गापवर्गादिकनां सुख प्राप्त थायबे, अनें परना पक्षनें अंगीकार करवा थकी पुण्य नथी अनें पुण्यनें अनावें स्वर्गापवर्गादिकनी प्राप्ति पण नथी. ए रीतें सर्व तीर्थिक मांहोमांहें व्याघातें प्रवर्त्तेबे. तेम अमे पण यथावस्थित तत्त्वनुं कथन करनारा बैयें तेणें करी, (गरहामोदिठिंणगरहामोकिंचि के०) एकांतवादीनें अमें कांइ गर्हता नथी, निंदता नथी, केमके, सत्य कहेतां थकां कांइ प्रवाद नथी. इत्यर्थः ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–अथ गोशालोन्यतीर्थिकान्सहायान्कृत्वा सोल्लुंठमसारं प्राह । इमां पूर्वोक्तां वाचं त्वं प्राडुष्कुर्वन्सर्वान् प्रावाडुकान् गर्हसि ? । यतः सर्वेपि तीर्थिकाः बीजोदकादिनोजिनोपि नवोछेदाय प्रवर्त्तते ते तुऽप्रावाडुकाः पृथक् पृथक् स्वीयां दृष्टिं प्रत्येकं स्वदर्शनं प्राडुष्कुर्वंति प्रकाशयंति । अथवा श्लोकपश्चार्द्धं आर्द्रमुनिराह । सर्वेपि प्रावाडुकाः स्वमतं प्रकाशयंति तथा वयमपि स्वदर्शनं प्राडुष्कुर्मोयद्बीजोदकादिनोगिनः कर्मबंधोन नवोछेदइति स्थिते कात्र परनिंदा कोवा आत्मोत्कर्षइति ॥ ११ ॥ ते प्रावाडुकाअन्योन्यस्य परदर्शनं गर्हमाणाः स्वदर्शनगुणानाख्यांति यथा स्वतइति स्वकीये पक्षे स्वमतेस्ति पुण्यं अस्वतः परमते नास्ति पुण्यमित्येवं तीर्थिकाः परस्परव्याघातेन प्रवृत्ताः वयं तु तत्वप्ररूपणादेकांतदृष्टिं गर्हामि नहि एकांतपक्षोयुक्तिसंगतइति वदंतो वयं न किंचिज्गर्हामः । काणांधादिवस्तुस्वरूपकथनेन परापवादः । तथाचोक्तं । “नेत्रैर्निरीक्ष्य बिलकंटककीटसर्प्पान्, सम्यग्यथा व्रजत तान्परिहृत्य सर्वान् ॥ कुज्ञानकुश्रुतिकुमार्गकुदृष्टिदोषान्, सम्यग्विचारयत कोत्र परापवाद”इति ॥ १२ ॥

॥ टीका–अधुनैतदाकर्ण्य गोशालकोपरमुत्तरं दातुमसमर्थोऽन्यतीर्थिकान्सहायान् विधाय सोल्लुंठमसारं वक्तुकामआह (इमंवयंत्वित्यादि) इमां पूर्वोक्तां वाचं । तुशब्दोविशेषणार्थः । त्वं प्राडुष्कुर्वन्प्रकाशयन्सर्वानपि प्रावाडुकान् गर्हसि जुगुप्ससे यस्मात्सर्वेऽपि तीर्थिकाबीजोदकादिनोजिनोपि संसारोछित्तये प्रवर्त्तते तेतु नवता नाभ्युपगम्यंते तेतु प्रावाडुकाः पृथक् पृथक् स्वीयां स्वीयां दृष्टिं प्रत्येकं स्वदर्शनं कीर्तयंतः प्राडुष्कुर्वंति प्रकाशयंति । यदिवा श्लोकपश्चार्द्धमार्द्रककुमारआह । सर्वे प्रावाडुकायथावस्थितं स्वदर्शनं प्राडुष्कुर्वंति तत्प्रामाण्याच्च वयमपि स्वदर्शनाविर्जावनं कुर्मस्तद्यथा ह्यप्राशुकेन बीजोदकादिपरिनोगिनः कर्मबंधएव केवलं न संसारोछेदइतीदमस्मदीयं दर्शनमेवं व्यवस्थिते कात्र परनिंदा कोवात्मोत्कर्षइति ॥ ११ ॥ किंच । (तेअन्नमन्नस्सेत्यादि) तेप्रावाडुकाअन्योन्यस्य परस्परेणतु स्वदर्शनप्रतिष्ठाशया परदर्शनं गर्हमाणाः स्वदर्शनगुणानाचक्षते तुशब्दात्परस्परतोव्याहतमनुष्ठानं चानुतिष्ठंति ते च श्रमणानिर्ग्रंथादयो ब्राह्मणाद्विजातयः सर्वेप्येते स्वकं पक्षं समर्थयंति परकीयं च दूषयंति। तदेव पश्चार्द्धेन दर्शयति।स्वतइति। स्वकीये पक्षे स्वाभ्युपगमेस्ति पुण्यं तत्कार्यंच स्वर्गापवर्गादिकमस्त्यतः स्वपराभ्युपगमाच्च नास्ति पुण्यादिकमित्येवं सर्वेपि तीर्थिकाः परस्परव्याघातेन प्रवृत्ताअतोवयमपि यथावस्थिततत्वप्ररूपणतोयुक्तिविकलत्वादेकांतदृष्टिं गर्हामोजुगुप्सामोन ह्यसावेकांतोयथावस्थिततत्वाविर्नावकोनवतीत्येवं व्यवस्थिते तत्वस्वरूपं वयमाचक्षाणा न किंचिज्गर्हामः काणकुंठोद्घट्टनादिप्रकारेण केवलं स्वपरस्वरूपाविर्नावनं कुर्मोन च व

स्तु स्वरूपाविर्भावने परापवादः। तथाचोक्तं। "नेत्रैर्निरीक्ष्य बिलकंटककीटसर्पान्, सम्यक् यथा व्रजत तान्परिहृत्य सर्वान्॥ कुज्ञानकुश्रुतिकुमार्गकुदृष्टिदोषा,न्सम्यग्विचारयति कोत्र परापवाद"इत्यादि। यदिचैकांतवादिनामेवास्त्येव नास्त्येवाभ्युपगमवतामयं परस्परगर्हाख्योदोषोनास्माकमनेकवादिनां सर्वस्यापि सदादेः कथंचिदभ्युपगमात्। एतदेव श्लोकपश्चार्द्धेन दर्शयति (स्वतइति) स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैरस्ति तथा (परतइति) परद्रव्यादिभिर्नास्तीत्येवं पराभ्युपगमं दूषयंतोगर्हामोऽन्यानेकांतवादिनस्तत्स्वरूपनिरूपणतस्तु रागद्वेषविरहान्न किंचिद्गर्हामइति स्थितं॥ १२॥

ण किंचि रूवेण भिधारयामो, सदिट्ठिमग्गं तु करेमि पाउं॥ म
ग्गे इमे किट्टिए आरिएहिं, अणुत्तरे सप्पुरिसेहिं अंजू
॥१३॥ उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु,तसाय जे थावरजेयपाणा॥
भूयाहि संकाभि डुगुंबमा णा, णो गरहती बुसिमं किंचि लोए॥१४॥

अर्थ–वली आर्द्रकुमार कहेछे के, अहो गोशालक! अमें (णकिंचिरूवेणभिधारयामो के०) कोइ पण श्रमण ब्राह्मणनें रूवेण एटले डुगंछनिक एवा अंगोपांगनें उघाडवे, अथवा जातिना दोषनें अभिधारयामो एटले प्रगट करीनें निंदता नथी, किंतु? (सदिट्ठिमग्गंतुकरेमिपाउं के०) स्वदृष्टिमार्ग एटले पोतानुं शासन प्रगट करियें छैयें, अथवा तेउना मार्गनुं स्वरूप कहियें छैयें, वली जे विधियें ते पोताना मार्गनी स्थिति कहेछे के, "ब्रह्मा लूनशिराः" इत्यादिक ते अमें पण सांभलियें छैयें, परंतु अमें कोइनो अपवाद बोलता नथी. हवे आर्द्रकुमार, गाथाना उत्तरार्द्धवडे पोताना दर्शननुं स्वरूप कहेछे. (मग्गेइमेकिट्टिएआरिएहिं के०) ए मार्ग जे सम्यक् दर्शनादिकछे, ते आर्य एवा जे श्री सर्वज्ञदेव तेणें कह्यो.ते मार्ग केवोछे तोके,(अणुत्तरेसप्पुरिसेहिंअंजू के०) ए मार्ग अनुत्तर एटले एना सरखो बीजो कोइ पण मार्ग जगत् मांहे नथी, वली ते सर्वज्ञ केवाछे तोके सत्पुरुष चोत्रीश अतिशयें करी बिराजमान, एवाप्रधान पुरुष जगत् मांहे बीजा कोइ नथी, ते कारणें सत्पुरुष केवायछे, वली ए मार्ग केवोछे तोके, अंजू एटले सरल अकुटिल छे॥१३॥ वली पण धर्मनुंज स्वरूप कहेछे.(उड्ढंअहेयंतिरियंदिसासु के०) ऊर्ध्व अधो अनें तिर्यक् ए समस्त दिशाउनें विषे एतावता चौदरज्ज्वात्मक लोक मांहे, (तसायजेथावरजेयपाणा के०) जे त्रस अनें स्थावर प्राणीउछे तेना पालनार, तथा (भूयाहिसंकाभिडुगुंबमाणा के०) प्राणघातनी शंकायें सावद्यानुष्ठाननेंडुगं छता, (णो गरहतीवुसिमंकिंचिलोए के०) एवा संयमवंत पुरुषो लोक मांहे जे छे, ते कोइनें गर्हे

एटले निंदे नहीं. माटें रागद्वेषरहित पणे यथातथ्य वस्तुनुं स्वरूप केहेतां थकां कांइ निंदा नथी. जो कदापि यथातथ्य वस्तुनुं स्वरूप केहेतां थकां निंदा होय तो, अग्नि उन्नछे, अनें उदक शीतलछे, विष खाधा थकी मरण नीपजे,इत्यादिक खरुं बोलवुं ते पण युक्त नथी! परंतु ए रीतें सत्य कहेवामां कांइ दोष नथी ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—न किंचन श्रमणं ब्राह्मणं वा स्वरूपेणाभिधारयामोगर्हणबुद्ध्याउद्घट्टयामः । केवलं स्वदृष्टिमार्गं तदंगीकृतं दर्शनं प्राडुष्कुर्मः । तद्यथा । "ब्रह्मा लूनशिराहरिर्दृशि सरुग्व्यालुप्तशिश्नोहरः, सूर्योप्युल्लिखितोऽनलोप्यखिलभुक्सोमः कलंकांकितः ॥ स्वर्नाथोपि विसंस्थुलः खलु वपुःसंस्थैरुपस्थैः कृतः, सन्मार्गस्खलनाद्भवंति विपदः प्रायः प्रनूणामपि" । एतच्च तैरेव स्वागमे पठ्यते वयंतु श्रोतारः केवलमिति । मग्गेइमेत्ति । अयं मार्गः सम्यग्दर्शनादिकः कीर्त्तितआ यैः सर्वज्ञैः। किंनूतोमार्गोऽनुत्तरः प्रधानः । आ यैः किंनूतैः सत्पुरुषैः । मार्गः किंनूतोंजू प्रकटं ऋजुर्वा ॥ १३ ॥ ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च ये त्रसा येच स्थावराश्च प्राणिनस्तेषु नूताभिशंकया प्राणिविनाशशंकया सावद्यक्रियां जुगुप्समानोगर्हन् नैवान्यं लोकं कंचन गर्हते निंदति (बुसिमं) संयमवान् । तदेवं रागद्वेषमुक्तस्य वस्तुस्वरूपकथने न काचिन्निंदा यथा उष्णोऽग्निः शीतलं जलं विषं मारणात्मकं नयंकरः सर्प्पः व्यथकः कंटकइत्यादि ॥ १४ ॥

॥टीका—एतदेव स्पष्टतरमाह । (नकिंचिरूवेणेत्यादि) न कंचन श्रमणं ब्राह्मणं वा स्वरूपेण जुगुप्सितांगावयवोद्घट्टनेन जात्या तल्लिंगग्रहणोद्घट्टनेन वाऽभिधारयामोगर्हणाबुद्ध्योद्घट्टयामः केवलं स्वदृष्टिमार्गं तदन्युपगतं दर्शनं प्राडुष्कुर्मः प्रकाशयामः ।तद्यथा । "ब्रह्मा लूनशिराहरिर्दृशिसरुग्व्यालुप्तशिश्नोहरः, सूर्योप्युल्लिखितोऽनलोप्यखिलभुक्सोमः कलंकांकितः ॥ स्वर्नाथोपि विसंस्थुलः खलु वपुःसंस्थैरुपस्थैः कृतः, सन्मार्गस्खलनाद्भवंति विपदः प्रायः प्रनूणामपी"त्यादि । एतच्च तैरेव स्वागमे पठ्यते। वयं तु श्रोतारः केवलमिति । आर्द्रककुमारएव परपक्षं दूषयित्वा स्वपक्षसाधनार्थं श्लोकपश्चार्द्धेनाह । अयं मार्गः पंथाः सम्यग्दर्शनादिकः किर्त्तितोव्यावर्णितः । कैरा यैः सर्वज्ञैरस्त्याद्यधर्मदूरवर्तिभिः । किंनूतोधर्मोनास्माडुत्तरः प्रधानोविद्यतइत्यनुत्तरः पूर्वापराव्याहतत्वाद्यथावस्थितजीवादिपदार्थस्वरूपनिरूपणाच्च । किंनूतैरा यैः संतश्च ते पुरुषाश्च सत्पुरुषास्तैश्चतुस्त्रिंशदतिशयोपेतैराविर्नूतः समस्तपदार्थाविर्नावकदिव्यज्ञानैः । किंनूतोमार्गोंअंजूव्यक्तः निर्दोषत्वात्प्रकटः ऋजुर्वा वक्रैकांतपरित्यागादकुटिलइति ॥ १३॥ पुनरपि स्वसद्धर्मस्वरूपनिरूपणायाह । (उड्ढंअहेयमित्यादि) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्ष्वेवं सर्वास्वपि दिक्षु प्रकारापे

क्षया नावदिगपेक्षया वा तासु ये त्रसाये च स्थावराःप्राणिनः। चशब्दौ स्वगतानेकन्नेदसंसूच कौ। नूतं सद्भूतं तथ्यं तत्रानिशंकया तथ्यनिर्णयेन प्राणातिपातादिकं पातकं जुगुप्समा नोगर्हमाणोयदिवा नूतानिशंकया सर्वसावद्यमनुष्ठानं जुगुप्समानोनैवापरलोकं कंचन गर्हति निंदति (बुसिमंति) संयमवानिति। तदेवं रागद्वेषवियुक्तस्य वस्तुस्वरूपाविर्नाव ने न काचिर्जर्हत्यय तत्रापि गर्हा नवति नह्युलोग्निः शीतमुदकं विषं मारणात्मकमित्येव मादि किंचि द्वस्तुस्वरूपमाविर्नावनीयमिति ॥१४॥

आगंतगारे आरामगारे, समणेउ नीते ण उवेति वासं ॥ दस्का
हुसंते बहवे मणुस्सा, ऊणातिरित्ताय लवालवाय ॥ १५ ॥
मेहाविणो सिस्किय बुद्धिमंता, सुत्तेहिं अत्थेहिय णिछयन्ना ॥ पु
छिसुमाणे अणगार अन्ने, इति संकमाणो ण उवेति तछ ॥१६॥

अर्थ—हवे गोशालकमतानुसारी त्रैराशिक बीजा प्रकारें करी फरी आर्द्रकुमार प्र त्यें कहेछे. के, अहो आर्द्रकुमार! ताहरो तीर्थंकर राग, द्वेष, अनें नय, तेणें करी सहित छे, ए कारण माटें ते बीहितो थको (आगंतगारे के०) शून्यघर धर्मशालादिक तथा (आरामगारे के०) उद्यानादिकनें विषे (समणेउनीते के०) श्रमण अनें माहण थ की बीहितो थको (णउवेतिवासं के०) वास करतो नथी, वली शा थकी बीहितो थको वास करतो नथी? ते कहेछे. (दस्काहुसंते के०) दक्ष एटले माह्या, घणां शास्त्र ना जाणनार, पंमित, (बहवेमणुस्सा के०) एवा घणा पुरुषो ते पूर्वोक्त शून्य घरादिक स्थानकनें विषे आवे, माटें तेवा पुरुषोथकी बीहितो थको, तेवां स्थानकनें विषे ताह रो त्यां गुरु आवतो नथी पण, ते पुरुषो केवाछे तोके, (ऊणातिरित्ताय के०) तमारा तीर्थंकरथकी कोइ एक जात्यादिक गुणें करी ऊणाछे न्यूनछे, तथा कोइ एक अधिकछे, तो तेवानी साथें बोलतां कदाचित् हारी जाय तो मानम्लान थाय, ते कारणमाटें एवां स्थानक छांमीनें त्यागीनें देवादिकनी परषदामांहे एकांतें बेसेछे. वली ते पुरुषो केवाछे तोके, (लवालवाय के०) एकलो लव एटले अनेक विचित्र तर्कना बोलनार, तथा ए क अलव एटले मौनव्रती, अथवा मंत्रवादी छे के, जेनी आगल बोलतां वादीना मुख मांहेथी वचन पण निकले नही, ते कारण माटें तेनी बीकथकी ताहरा तीर्थंकरें आरा म उद्यानादिक मांहे निवास करवानो त्याग कस्योछे ॥ १५॥ वली गोशालक कहेछे के, (मेहाविणोसिस्कियबुद्धिमंता के०) मेधावी जे पंमितछे ते ग्रहण करवा, धारण करवानें सामर्थ्यवान् तथा आचार्यादिकनी पासेंथी शिखेला एवा उत्पातादिक चार प्रकारनी

नमेव श्रेयइति । एवं यावद्यावज्ज्ञानाभ्युपगमस्तावत्तावद्गुरुतरदोपसंनवः । तथाहि । यो वगङन्पादेन कस्यचित् शिरः स्टशति तस्य महानपराधोजवति । यस्त्वनानोगेन स्टशति तस्मै न कश्चिदपराध्यतीत्येवं चाज्ञानमेव प्रधानजावमनुजवति नतु ज्ञानमिति । १६ ॥

अन्नाणियाण वीमंसा, नाणे ण विनियबइ ॥ अप्पणो य परं नालं, कुतो अन्नाणुसासिउं ॥ १७ ॥ वणे मूढे जहा जंतू, मूढे णेयाणुगामिए ॥ दोवि एए अकोविया, तिवं सोयं नियबइ ॥ १८ ॥ अंधो अंधं पहं णिंतो, दूरमद्धाणु गबइ ॥ आवज्जे नप्पहं जंतु, अडुवा पंथाणु गामिए ॥ १ए ॥ एवमेगे णियायठी, धम्ममाराहगा वयं ॥ अडुवा अहम्ममावज्जे, ण ते सवज्जुयं वए ॥ २० ॥ ॥ ॥ ॥

अर्थ—हवे एने दोष देखाडेछे. जे एम कहेके, अज्ञानज नलुंछे; तेने अन्नाणियाण के० अज्ञानवादी कहिये. तेनी जे वीमंसा के० जाणवानी इछा, ते नाणे ण विनियबइ के० ज्ञानने विषे पहोचे नहीं. कारण ते एम विचार करेछे के अज्ञानवडे अपराध करनारानो दोष स्वल्प छे, अने जाणनारने दोष घणो लागेछे. जेम कोइक मनुष्य मार्गे जतां जाणतो थकोज कोइकना मस्तकने पगे करीने फरशे. तोते महा अपराधनो पात्र थायछे. परंतु जो अजाणतां फरशे तोते स्वल्प अपराधी छे. ए कारण माटे अज्ञानपणुंज रुडुंछे, एवी जेनामां विचारणा छे. ते अज्ञानवादी जाणवा. ते अज्ञानवादी अप्पणोय कहेतां पोतानो आत्मा समजवानेज असमर्थ छे. तो परंनालं के० बीजाने कुतो अन्नाणुसासिउं के० बीजा अज्ञानी जनोने समजाववाने क्यांथी समर्थ थाय? अर्थात् नज थाय. ॥ १७ ॥ हवे एज अर्थ दृष्टांते करी दिपावेछे. वणे के० वन एटले अटवीने विषे, जहा के० जेम, कोइक मूढेजंतू के० दिशिमूढजीव ते दिशिने जाणवा असमर्थ थको मूढेणेयाणुगामिए के० अनेरा दिशिमूढने आगेवान करीने तेनी पाछल चाले ते समये दोविएए के० ते बन्ने जण, ते मार्गना अकोविया के० अजाण थका, तिवंसोयंनियबई के० तीव्र गहनमांहे पडे अर्थात् महादुःख पामे. ॥ १८ ॥ वली बीजुं दृष्टांत कहेछे. अंधोअंधंपहंणिंतो के० जेम कोइएक पोते अंध छतां अनेरा अंधने मार्गे लेई जतो थको दूरमद्धाणुगबइ के० घणे दूर जइने आवज्जेउप्पहंजंतु के० ते अंध उन्मार्गे पडे; अडुवा के० अथवा पंथाणुगामिए के० अनेरे पंथे जाय पण वांछित मार्गे न जाय. एटले पोते उन्मार्गे पडतां पाछलाने पण उन्मार्गे पाडे. ॥१ए॥ हवे ए दृष्टांत अज्ञानवादी साथे मेलवेछे. एवं के० ए अ

बुद्धियें करी सहित, (सुत्तेहिंयअत्थेहिंयणिच्छयन्ना के०) वली सूत्र अनें अर्थना निश्चयना करनार, (अणगारअन्ने के०) एवा कोइ एक अन्य अणगार होय ते (पुछिंसुमा णे के०) मुजनें कांइ सूत्रार्थ पूछे तेनो उत्तर महाराथकी अपाशे नहीं, तेथी महारुं मान नंग थशे, (इतिसंकमाणोणउवेतितत्थ के०) एवी वातोथी शंका पामतो थको ताहारो गुरु तेवा पूर्वोक्त स्थानकोनें विषे वास करतो नथी, ते कारण माटें तमारो मार्ग रुजु नथी ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–एवं गोशालकमतानुसारी त्रैराशिकोनिराकृतोपि पुनराह। योनवतस्तीर्थक रः सरागद्वेषनययुक्तः। तथाहि। आगंतुकानां कार्पटिकादीनां अगारं आगंतागारं आरामेऽगारं आरामागारं तत्रासौ श्रमणोनीतः सर्वं न वासमुपैति। किं तत्र नयमित्याह। दक्षाः पंमिताद्धुर्यस्माद्बहवः संति मनुष्याः। तन्नीतोसौ तत्र न याति। ऊनाः स्वतोहीनाअतिरिक्तावा जात्यादिना संति केचित् तैः पराजितस्य महान् कलाभ्रंशः स्यात्। ते नराः किंनूताः लपावाचालाघोषिततर्कदंमकाः तथाऽलपामौनव्रतिकागुटिकादिविद्यायुक्ताः यद्वशा द्वागेव न निस्सरति मुखात् यन्नयात्तेषु गृहेष्वसौ न यातीति ॥ १५ ॥ मेधाविनोग्रहणधा रणसमर्थाबुद्धिमंतः शिक्षिताः सूत्रेर्थेच निश्चयज्ञास्ते ईदृशाः सूत्रार्थविषयं प्रश्नमाकार्षुरनगाराएके इत्यसौ शंकमानोबिन्यन्न तत्र तेषां मध्ये उपैति याति तथानार्यदेशे न धर्मं कथितवान् आर्येतु देशनां करोति तत्रापि न सर्वत्र किंतु? कुत्रचिदेवेति ततोसौ राग द्वेषाकुलोवीरः ॥ १६ ॥

॥ टीका–सएवं गोशालकमतानुसारी त्रैराशिकोनिराकृतोपि पुनरन्येन प्रकारेणाह। (आगंतागारेइत्यादि) सविप्रतिपन्नः सन्नार्ह्कमेवाह। योसौ नवत्संबधी तीर्थकरः सरागद्वेषनययुक्तस्तथाह्यसावागंतुकानां कार्पटिकादीनामगारमागंतागारं तथाऽरामेऽगारमारामागारं तत्रासौ श्रमणोनवत्तीर्थकरः। तुशब्दएवंकारार्थे। नीतएवासौ तपध्वंसनन्नयात्तत्रागंतागारादौ न वासमुपैति न तत्रासनस्थानशयनादिकाः क्रियाः कुरुते। किं तत्र नयकारणमितिचेत्तदाह। दक्षाः निपुणाः प्रनूतशास्त्रविशारदाः। हुशब्दोयस्मादर्थे। यस्माद्बहवः संति मनुष्यास्तस्मादसौ तन्नीतोन वासं तत्र समुपैति न तत्र समातिष्ठते। किंनूताः न्यूनाः स्वतोऽवमाहीनाजात्याद्यतिरिक्तावा ताभ्यां पराजितस्य महांश्लाघाभ्रंशइति। तानेव विशिनष्टि। लपंतीति लपावाचालाः घोषितानेकतर्कविचित्रदंमकास्तथा न लपामौनव्रतिकानिष्ठितयोगाः गुटिकादियुक्तावा यद्वशादन्निधेयविषयावागेव न प्रवर्तते ततस्तद्भयेनासौ युष्मत्तीर्थकृदागंतागारादौ नैव व्रजतीति ॥१५॥ पुनरपि गोशालकएवाह। (मेहावि

णोइत्यादि) मेधा विद्यते येषां ते मेधाविनोग्रहणधारणसमर्थास्तथाऽऽचार्यादेः समीपे शिक्षां ग्राहिताः शिक्षितास्तथोत्पत्तिक्यादिचतुर्विधबुद्ध्युपेताबुद्धिमंतस्तथासूत्रेपि सूत्रविषये विनिश्चयज्ञायथावस्थितसूत्रार्थवेदिनइत्यर्थः। ते चैवंभूताः सूत्रार्थविषयं मा प्रश्नमकार्षुरन्येऽनगाराएके केचनेत्येवमसौ शंकमानास्तेषां बिभ्यन्न तत्र तन्मध्ये उपैत्युपगच्छतीति ततश्च न ऋजुर्मार्गेइति भययुक्तत्वात्तस्य तथा म्लेच्छविषयं गत्वा न कदाचिद्धर्मदेशनां च करोत्यार्यदेशेपि न सर्वत्रापितु कुत्रचिदेवेत्यतोविषमदृष्टित्वाद्रागद्वेषवर्त्यसाविति ॥ १६ ॥

णो कामकिच्चा णय बालकिच्चा, रायाभिउगेण कुउ भए
णं॥ वियागरेज्जा पसिणं नवावि, सकाम किच्चं णिहआरि
याणं॥ १७॥ गंता च तब्भा अदुवा अगंता, वियागरेज्जा समि
या सुपन्ने॥ अणारिया दंसणाउ परित्ता, इति संकमाणा णं
उवेति तब्भ ॥ १८ ॥

अर्थ—एम गोशालकें कहे थके, हवे आर्द्रकुमार गोशालक प्रत्यें कहेछे. के,(णोकामकिच्चा के०) अहो गोशालक! ते भगवंत कामकृत्य नथी. एनो अर्थ कहेछे. के, जे अविमाश्यानो करनार होय ते पोतानें तथा परनें, निरर्थक कार्य करे. परंतु श्री भगवंत तो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, परना हितना करनार, ते पोतानें तथा परनें निरुपकारी केम थाय? ते कारण माटें स्वामी निरर्थक कामना करनार नथी, (णयबालकिच्चा के०) तथा स्वामी बालकृत्य नथी, एटले बालकनी पेरें अणविचार्युं कार्य न करे, (रायाभिउगेण के०) तथा राजाभियोगें करी धर्मदेशनादिकनें विषे प्रवर्त्ते नहीं, (कुउभएणंवियागरेज्जा के०) तथा कोइना भयथकी प्रश्न वागरे एटले कहे नहीं, (पसिणंनवावि के०) उपकार न होय तो कहे नहीं, एटले प्रश्न वागरे नहीं. किं बहुना उपकार विना कोइनें कांइ न कहे. अनुत्तरविमानवासी देवतानें पण, मन थकीज पूछेला प्रश्ननो निर्णय करे. हवे जे ए श्री वीतरागनो धार्मिक थाय ते केवां कार्यो करे? एवी आशंका लावी तेनो प्रत्युत्तर चोथे पदें कहेछे (सकामकिच्चंणिहआरियाणं के०) पोताना कामनें अर्थें एतावता तीर्थंकरनामकर्म खपाववा भणी आर्य क्षेत्रमां आर्य लोकनें प्रतिबोधवा वास्ते धर्म देशना करे, परंतु बीजुं कोइ आत्मप्रशंसादिक कार्य न करे. ॥ १७ ॥ वली आर्द्रकुमार कहेछे के, (गंताचतब्भाअदुवाअगंता के०) ते भगवंत परहितनें अर्थें त्यां जइनें, अथवा त्यां न जइनें, किंतु जेम जेम भव्य जीवोनो उपकार थाय, तेम तेम (वियागरेज्जा के०) धर्मदेशना आपे. जो उपकार थशे, एम जाणे तो त्यां जइनें पण धर्म देशना आपे अथवा ते उ

पकार न देखे तो पासें आवेलानें पण धर्म न कहे ए कारणमाटें तेनें रागद्वेषनी संभावना नथी, तथा (आसुपन्न के०) सर्वज्ञ (समिया के०) समदृष्टि पणें एटले कोइ चक्रवर्त्ति आवी पूछे अथवा कोइ रांक आवी पूछे, अथवा अणपूछे थके पण, धर्म कहे. तथा स्वामी जे अनार्य देशनें विषे जता नथी तेनुं कारण हुं तुनें कहुं बु ते तुं सांजल. (अणारियादंसणाउपरित्ता के०) अनार्य लोक अनाचारी बता दर्शनथकी पण भ्रष्टछे (इतिसंकमाणाणउवेतितह्न के०) ए माटें शंकामान थका त्यां जता नथी, ते जीव श्री वीतरागनें देखी अवहेलनादिक कर्मोंपार्जनकरी पोतानें अनंत संसार नीवृद्धि करशें, एवुं जाणीनें स्वामी त्यां पधारता नथी, परंतु तेमनी साथें परमेश्वर ने द्वेषभाव कांइ पण नथी तेमाटें राग, द्वेष, अनें भय, तेमनें कांइ नथी. तथा अहो गोशालक! जे तुं एम कहेछे के, अनेक शास्त्रज्ञ पुरुषना प्रश्नथकी बीहितो थको तेनी सभामांहे रहेतो नथी. ए पण ताहारुं वचन बाल प्रलाप प्राय जाणीयें छैयें, केमके, जे कारण माटें ए महारा गुरु सर्वज्ञ भगवंत केवलीछे तो तेनुं समस्त परवादिउं मुख, पण जोई न शके, तो पछी वादनुं केवुंज शुं? माटें महारा स्वामीनें परवादीनो पराभव कांइ नथी ए भगवंत केवलज्ञानें करी पोतानो परनो उपकार देखे त्यां जइनें धर्मोपदेश करे. इत्यर्थः ॥ १७ ॥

दीपिका—इति गोशालकेनोक्ते आर्द्रककुमारआह । सभगवानकामकृत्योन स्यात् अनिच्छाकारी न भवतीत्यर्थः । यः प्रेक्षापूर्वकारी न स्यात्सोनिष्टमपि स्वपरयोर्निरर्थकमपि कृत्यं कुर्वीत । भगवांस्तु सर्वज्ञः प्रेक्षापूर्वकारी कथं स्वपरयोर्निरुपकारकमेव कुर्यात् बालस्येव कृत्यं यस्य सबालकृत्योनासौ बालवदनालोचितकारी न राजाभियोगेनासौ देशनां करोति ततः कुतस्तस्य भयेन प्रवृत्तिः स्यादेवं सति केनचित्कृतं प्रश्नं व्यागृणीयाद्वदेद्यदि तस्योपकारः स्याडुपकारं विना नवा नैव वदेत् । अथवानुत्तरसुराणां मनःपर्यायज्ञानिनां च द्रव्यमनसैव तन्निर्णयादतोन वदेत् स्वकामकृत्येन स्वेच्छाकारितया तीर्थकृन्नामकर्मणः क्षपणाय न यथाकथंचिदतोसौ इहार्यक्षेत्रे आर्याणामुपकारसंभवे धर्मं वदेत् ॥ १७॥ गंता चत्ति) सभगवान् गत्वापि शिष्यसमीपं अथवा तत्राऽगत्वा यथा सत्वोपकारः स्यात्तथा व्यागृणीयात् देशनां कुर्यात् उपकारे सति गत्वापि कथयति असतितु स्थितोपि न वदति ततोन तेषां रागद्वेषसंभवः केवलमाशुप्रज्ञः सर्वज्ञः समतया वदेत् । "जहा पुसुस्स कछइ तहा तुछस्स कछइ" इतिवचनाच्चक्रवर्तिद्रमकादिषु पृष्ठोपृष्ठोवा तुल्यं व्यागृणीयादित्यर्थः । कथमनार्येषु सन यातीत्याह । (अणारियात्ति) अनार्यादर्शनतः सम्यक्त्वातपरीताद्भ्रष्टाइति । शंकमानोविचारयन् भगवान्न तत्रोपैति । तेहि वर्त्तमानसुखमेव

मन्यते न परलोकसुखमिति लाजादर्शनात्तत्र न याति नगवान्नतु द्वेषबुद्ध्या। यदप्युक्तं। पंमितनरगुटिकादिविद्यासिद्धनयान्न तेषां स्थाने यातीत्येतत्प्रलापप्रायं। यतः। स वैरपि तीर्थिकैः सर्वज्ञस्य नगवतोमुखमप्यवलोकयितुं न शक्यते वादस्तु दूरापास्तएवेति॥१७॥

॥ टीका—एतन्गोशालकमतं परिहर्तुकामआर्द्रकआह। (णोकामकिच्चाइत्यादि) सहि नगवान्प्रेक्षापूर्वकारितया नाकामकृत्योनवति कमनं कामइछा न कामोऽकामस्तेन कृत्यं कर्तव्यं यस्यासावकामकृत्यः सएवंनूतोन नवत्यनिछाकारी न नवतीत्यर्थः। योह्युत्प्रेक्षा पूर्वकारितया वर्तते सोऽनिष्टमपि स्वपरात्मनोनिरर्थकमपि कृत्यं कुर्वीत नगवांस्तु सर्वज्ञः सर्वदर्शी परहितैकरतः कथं स्वपरात्मनोर्निरुपकारकमेवं कुर्यात्तथाच बालस्येव कृत्यं यस्य सबालकृत्योन चासौ बालवदनालोचितकारी न परानुरोधान्नापि गौरवाद्धर्मदेशादिकं विधत्तेऽपितु यदि कस्यचिद्भव्यसत्वस्योपकाराय तद्भाषितं नवति ततः प्रवृत्तिर्नवति नान्यथा तथा न राजानियोगेनासौ धर्मदेशनादौ कथंचित्प्रवर्तते ततः कुतस्तस्य नयेन प्रवृत्तिः स्यादित्येवं व्यवस्थिते केनचित्क्वचित्संशयकृतं प्रश्नं व्यागृणीया यदि तस्योपकारोनवत्युपकारमंतरेण नच नैव व्यागृणीयाद्यदिवाऽनुत्तरसुराणां मनःपर्यायज्ञानिनांच द्रव्यमनसैव तन्निर्णयसंनवादतोन व्यागृणीयादित्युच्यते। यद्यप्युच्यते नवता यदि वीतरागोऽसौ किमिति धर्मकथां करोतीति चेदित्याशंक्याह। स्वकामकृत्येन स्वेछाचारिकारितयाऽसावपि तीर्थकृन्नामकर्मणः क्षपणाय न यथाकथंचिदतोऽसावग्लानइहास्मिन्संसारे आर्यक्षेत्रे चोपकारयोग्यआर्याणां हि सर्वहेयधर्मदूरवर्तिनां तदुपकारा धर्मदेशनां व्यागृणीयादसाविति॥ १७॥ किंचान्यत्। (गंतेत्यादि) सहि नगवान परहितैकरतोगत्वापि विनेयासन्नमथवाप्यगत्वा यथानव्यसत्वोपकारोनवति तथातथा नगवंतोर्हंतोधर्मदेशनां विदधत्युपकारे सति गत्वापि कथयंत्यसतितु स्थिताअपि न कथयंतीत्यतोन तेषां रागद्वेषसंनवइति केवलमाशुप्रज्ञः सर्वज्ञः समतया समदृष्टितया चक्रवर्तिद्रमकादिषु पृष्टोवा धर्मं व्यागृणीयात्। जहा पुणस्स कच्छइ तहा तुछस्स कछइ इति वचनादित्यतोन रागद्वेषसद्भावस्तस्येति। यत्पुनरनार्यदेशमसौ न व्रजति तत्रेदमाह। अनार्याः क्षेत्रनाषाकर्मनिर्बहिष्कृतादर्शनतोपि परिसमंतादितागताः प्रभ्रष्टाइति यावत्। तदेवमसौ नगवानित्येतत्तेषु सम्यग्दर्शनमात्रमपि कथंचिन्न नवतीत्याशंकमानस्तत्र न व्रजतीति। यदिवा विपरीतदर्शनिनोन नवंत्यनार्याः शकयवनादयस्तेहि वर्तमानसुखमेवैकमंगीकृत्य प्रवर्तंते न पारलौकिकमंगीकुर्वंत्यतः सद्धर्मपराङ्मुखेषु तेषु नगवान्न याति न पुनस्तद्द्वेषादिबुद्ध्येति। यदप्युच्यते त्वया यथानेकशास्त्रविशारदगुटिकासिद्धविद्यासिद्धादितीर्थिकपरानवनयेन न तत्समाजे गछतीत्येतदपि बालप्रलपितप्रायं। यतः सर्वज्ञस्य नगव

तः समस्तैरपि प्रावाडुकैर्मुखमप्यवलोकयितुं न शक्यते वादस्तु दूरोत्सादितएवेत्यतः कुतस्तस्य पराभवः । भगवांस्तु केवलालोकेन यत्रैव स्वपरोपकारं पश्यति तत्रैव गत्वा पि धर्मदेशनां विधत्तइति ॥ १८ ॥

पन्नं जहा वणिए उदयठी, आयस्स हेउं पगरेति संगं ॥ तऊवमे
समणे नायपुत्ते, इच्चेव मे होति मती वियक्को ॥१९॥ नवं न कुज्जा
विहुणे पुराणं, चिच्चा मई ताइयमाह एवं ॥ पन्नावया बंभवतित्ति
वुत्ता तस्सोदयठी समणे त्तिबेमि ॥ २० ॥

अर्थ–वली बीजा प्रकारें गोशालक कहेछे के,अहो आर्द्रकुमार! (पन्नंजहावणिए उदयठी के०) जेम कोइ वाणियो उदयार्थी एटले लाभार्थी छतो व्यवहार योग्यकरियाणुं एटले कर्पूर, अगर, कस्तूरी, अनें वस्त्रादिक, ते देशांतरथकी लेइ आवे (आयस्सहेउंपगरेतिसंगं के०) पोताना लाभनें अर्थें महाजननो संग करे, (तऊवमेसमणेनायपुत्ते के०) तेम तमारो तीर्थंकर श्रमण, ज्ञातपुत्र पण ते वाणियासमान जाणवो. केमके, कोइ एक लाभनें अर्थें अनेक महाजनना वृंद मांहे बेसेछे, (इच्चेवमेहोतिमतीवियक्को के०) माटें ए प्रकारें महारी मतिछे, अनें एवो माहारो वितर्कछे, एटले विचारणा छे, इत्यर्थः ॥१९॥ हवे गोशालक प्रत्यें आर्द्रकुमार कहेछे के, अहो गोशालक! जे, तें ए वाणियानो दृष्टांत देखाड्यो, ते सर्वथकी सरखो, किंवा देशथकी सरखो ? माटें जो ते दृष्टांत देशथकी सरखोछे, ए रीतें तें जो वाणियानो दृष्टांत देखाड्यो होय तो, ए वातें अमनें अलाभ कांइ नथी. कारण के, वाणियो ज्यां ज्यां लाभ देखे, त्यां त्यां क्रय विक्रयादिक व्यापार करे. ए प्रकारें ए तहारो दृष्टांत देश पणाथी सरखोछे. अथवा जो सर्वथकी सरखोछे ? एम तुं कहीश तो, ए वात, घटेज नहीं,कारणके,भगवंत श्री महावीर देव,सावद्यानुष्ठान रहित,(नवंनकुज्जाविहुणेपुराणं के०) तथा ते नवुं कर्म कोइ पण करे नहीं,अनें पुरातन कर्मनें खपावे एवाछे.तथा (चिच्चामई के०) चिच्चा एटले विशेषें त्याग करीछे अमइ एटले डुर्मतिनें जेणे, (ताइयमाहएवं के०) त्रायी एटले छ जीवनिकायनो रक्ष पाल, एवं एटले एवा जे श्री महावीर स्वामी ते (पन्नावयाबंभवतित्तिवुत्ता के०) एम कहे के, जेम डुर्गतिनें परित्यागी जीव मुक्तिगामी थाय, एवुं बोलें, स्वामीनुं वचन ते ब्रह्मव्रत छे एटले ब्रह्म शब्दें मोक्ष व्रत कह्युं. एवुं ब्रह्मव्रत रूप जे स्वामिनुं वचन तेनें मान्य करी, अनेक लोक मुक्तियें जाय. एटले डुर्मतिनें परित्यागें जीव मुक्तिगामी थाय. (तस्सोदयठीसमणेत्तिबेमि के०) तेना लाभना अर्थी श्रमण श्री महावीरदेवज जाणवा,

हुं एम कहुं छुं,ए कारणें सर्व प्रकारथकी वाणियानी ते स्वामीनें उपमा न संजवे,परंतु देशथकी ज्यां ज्यां स्वामी लाज देखे, त्यां त्यां विचरे. ए उपमा सत्यछे. इत्यर्थः ॥२०॥

॥ दीपिका—अथ गोशालः प्राह । यथा वणिक् उदयार्थी लाजार्थी पण्यक्रयाणकं देशांतरे गत्वा विक्रीणाति आयस्य लाजस्य हेतोर्महाजनसंगं प्रकरोति तडुपमया श्रमणोज्ञातपुत्रइत्येवं मे मम मतिः स्यात् वितर्कोविचारणा च ॥ १ए ॥ आर्द्रकमुनिराह । जगवान् सावद्यानुष्ठानरहितोनवं कर्म न कुर्यात् पुरातनं च विधूनाति अपनयति त्यक्त्वा अमतिं विमतिं त्रायी सजगवान् परेच्योप्येवमाह । यथा विमतित्यागेन मोक्षगामी स्यादिति । एतावता ग्रंथेन ब्रह्मणोमोक्षस्य व्रतमित्युक्तं तस्य मोक्षानुष्ठानस्य उदयार्थी लाजार्थी श्रमणोजगवान् । ततोवणिग्दृष्टांतः सर्वसाधर्म्येण न प्रवर्त्तते जगवतः सावद्यानुष्ठानरहितत्वात् देशसाधर्म्यैतु युक्तमेव यथा वणिग्यत्र लाजं पश्यति तत्र क्रियां व्यापारयति तथा जगवानपीति एतदहं ब्रवीमीत्यार्द्रकमुनिराह ॥ २० ॥

॥टीका—पुनरन्येन प्रकारेण गोशालकआह ॥ (पन्नंजहेत्यादि) यथा वणिक् कश्चिडदयार्थी पण्यं व्यवहारयोग्यं जांमं कर्पूरागरुकस्तूरिकांबरादिकं देशांतरं गत्वा विक्रीणाति तथा आयस्य लाजस्य हेतोः कारणान्महाजनसंगं विधत्ते तडुपमोयमपि जवत्तीर्थकरः श्रमणोज्ञातपुत्रइत्येवं मे मम मतिर्जवति वितर्कोमीमांसावेति ॥ १ए ॥ एवमुक्तोगोशालकेनार्द्रकआह ।(नवंनकुज्जाइत्यादि) योयं जवता दृष्टांतः प्रदर्शितः सकिं सर्वसाधर्म्येणोत देशतः?। यदि देशतस्ततोन नः क्षतिमावहति । यतोवणिग्वत् यत्रैवोपचयं पश्यति तत्रैव क्रियां व्यापारयति न यथाकथंचिदित्येतावता साधर्म्यमस्त्येव । अथ सर्वसाधर्म्येणेति तन्न युज्यते । यतोजगवान् विदितवेद्यतया सावद्यानुष्ठानरहितोनवं प्रत्यग्रं कर्म न कुर्यात् तथा विधूनयत्यपनयति पुरातनं यज्जवोपग्राहि कर्मबंधं तथा त्यक्त्वा अमतिं विमतिं त्रायी जगवान् सर्वस्य परित्राणशीलोविमतिपरित्यागेन चैवंजूतएव जवतीति जावः । त्रायी वा मोक्षं प्रति। अयवयमयपयचयतयणयगतावित्यस्य रूपं । सएव जगवानेवाह । यथा विमतिपरित्यागेन चैवंजूतएव जवतीत्येतावता च संदर्जेण ब्रह्मणोमोक्षस्य व्रतं ब्रह्मव्रतमित्येतडुक्तं । तस्मिन् चोक्ते तदर्थं वाऽनुष्ठाने क्रियमाणे तस्योदयार्थी श्रमणइति ब्रवीम्यहमिति ॥ २० ॥

समारजंते वणिया जूयगामं,परिग्गहं चेव ममायमाणा॥ ते णातिसंजोगमविप्पहाय, आयस्स हेउं पगरंति संगं ॥२१ ॥ वित्ते

सिणो मेहुणसंपगाढा, ते नोयणठा वणिया वयंति ॥ वयंतु का
मेसु अज्ञोववन्ना, अणारिया पेमरसेसु गिद्धे ॥ २२ ॥

अर्थ—वली आर्द्रकुमार कहेछे के, (समारनंतेवणियानूयगामं के०) ते वाणियो चतुर्दश प्रकार पणे, नूतग्राम एटले जीवनो समूह समारंजे, एतावता छकायनी हणनार एवी क्रियानें विषे प्रवर्त्ते, एटले क्रयविक्रयनें अर्थें शकट, उंट, घोडा, तथा बलदनें पीडा उपजावे, (परिग्गहंचेवममायमाणा के०) तथा परिग्रह, चतुष्पदादिक तेनें विषे ममत्व करे. वली (तेणातिसंजोगमविप्पहायआयस्सहेउंपगरंतिसंगं के०) ते वाणिया ज्ञाति स्वजनादिकनो संयोग बांध्याविना, लाजनें कारणे अन्य बीजा साथें संबंध करे, अनें श्री वीतराग तो केवा छे ? तो के, छजीवनिकायना रक्षपाल, निःपरिग्रही, ज्ञातिस्वजननो संग त्यागीनें, सर्वत्र अप्रतिबंध निःकेवल धर्मनोज लाज गवेषता धर्म देशना आपेछे. ए कारणमाटें जगवंत अनें वाणियानें सर्वथकी सरखा पणुं नथी ॥२१॥ वली आर्द्रकुमारज कहेछे के, हे गोशालक ! (वित्तेसिणो के०) वली वाणिया वित्त एटले धनना गवेषण हार होय, तथा (मेहुणसंपगाढा के०) मैथुननें विषे आसक्त होय, (तेनोयणठावणियावयंति के०) तथा जोजननें अर्थें ज्यां त्यां परिज्रमण करे, माटें अमे ते वाणियानें एवा कहियें छैयें. (वयंतुकामेसुअज्ञोववना के०) वली जो. ते वाणीया कामनोगनें विषे गृद्ध, तथा (अणारियापेमरसेसुगिद्धे के०) अनार्य कर्मना करनार, तथा प्रेमरसनें विषे गृद्ध एटले मूर्छित छे, अनें जगवंत श्री अरिहंत देव एवा नथी. तो ते वाणियानी साथें सरखा पणुं जगवंतनें केम कहियें ? ॥ २२॥

॥ दीपिका—वणिजोनूतग्रामं समारनंते हिंसंति परिग्रहं स्वीकुर्वंति ममायमाणाम मेदमिति व्यवस्थापयंतः ते वणिजोज्ञातिसंयोगमविप्रहायात्यक्त्वा यस्य लाजस्य हेतोरपरेण सह संगं संबंधं कुर्वंति ॥ २१ ॥ वणिजोवित्तैषिणोधनार्थिनः मैथुने संप्रगाढाः प्रसक्ताः तथा ते जोजनार्थमहारार्थमितश्चेतश्च व्रजंति । वयंतु एवं ब्रूमोयथा ते वणिजः कामेष्वध्युपपन्नागृद्धाअनार्याः प्रेमरसेषु गृद्धाः अतोजगवतः सर्वसाधर्म्यं नास्ति ॥ २२॥

॥ टीका—नचैवंनूतावणिजइत्येतदार्द्रककुमारोदर्शयितुमाह । (समारनंतइत्यादि) ते हि वणिजश्चतुर्दशप्रकारमपि नूतग्रामं जंतुसमूहं समारनंते तडपमर्दिकाः क्रियाः प्रवर्त्तयंति क्रयविक्रयार्थं शकटयानवाहनोष्ट्रमंमलिकादिजिरनुष्ठानैरिति तथा परिग्रहं द्विपदचतुष्पदधनधान्यादिकं ममीकुर्वंति ममेदमित्येवं व्यवस्थापयंति ते हि वणिजोज्ञातिजिः स्वजनैः सह यः संयोगस्तमविप्रहायापरित्याज्य यस्य लाजस्य हेतोर्निमित्तादपरेण सार्द्धं

संगं संबंधं कुर्वंति । नगवांस्तु षड्जीवरक्षापरोपरिग्रहस्त्यक्तस्वजनपक्षः सर्वत्राप्रतिबद्धो धर्मार्थिमन्वेषयन् गत्वापि धर्मदेशनां विधत्ते अतोनगवतोवणिग्निः सार्द्धं न सर्वसाधर्म्य मस्तीति ॥ २१ ॥ पुनरपि वणिजां दोषमुन्नावयन्नाह । (वित्तेसिणोइत्यादि) वित्तं द्रव्यं तदन्वेष्टुं शीलं येषां ते वित्तैषिणस्तथा मैथुने स्त्रीसंपर्के संप्रगाढाअध्युपपन्नास्तथा ते नो जनार्थमाहारार्थं वणिजश्तश्चेतश्च व्रजंति वदंति वा तांस्तु वणिजोवयमेवं ब्रूमोयथैते का मेष्वध्युपपन्नागृद्धाअनार्यकर्मकारित्वादनार्यारसेषुच सातागौरवादिषु गृद्धामूर्छितानन्वे वंनूतान्नगवंतोर्हतः कथं तेषां तैः सह साधर्म्यमिति? । दूरतएव निरस्तैषा कथेति ॥ २२ ॥

आरंनगं चेव परिग्गहं च, अविउस्सिया णिस्सिय आयदंमा ॥
तेसिं च से उदए जं वयासी, चउरंतणंताय डुहायणेह ॥२३॥ णेगं
त णच्चंतिय उदएवं, वयंति ते दोवि गुणोदयंमि ॥ से उदए साति
मणंतपत्ते, तमुदयं साहयइ ताइ णाइ ॥ २४ ॥

अर्थ—वली आर्द्रकुमारज कहेछे. (आरंनगंचेवपरिग्गहंच के०) आरंन जे सावद्या नुष्ठान रूप, तथा परिग्रह ते धनधन्यादिक, नव प्रकारें तेनी ममत्वनें (अविउस्सियाणि स्सिय के०) न गंमीनें, तेहिज आरंन परिग्रहनें विषे निश्चें थकी बंधाणा एवा वाणिया होय. वली केवा होय? तोके, (आयदंमा के०) पोताना आत्मानें दंमनार, (तेसिंच सेउदएजंवयासी के०) वली हे गोशालक! तुं कहेछे के, ते वाणिया लानना अर्थीछे. मार्टे ते लान तो एवो वाणियानो जाणवो के, (चउरंतणंतायडुहायणेह के०) ते वाणि यानें जें लानछे ते लान चतुर्गतिक संसारनें, तथा तेना दुःखनें अर्थें थाय, अनें ते वा णियानो लान एकांतिक एटले एकांत पण न होय ॥२३॥ वली तेहिज देखाडेछे. (णे गंतणच्चंतियउदएवं के०) वली अहो गोशालक! ते वाणियानो लान पण एकांतिक नथी, कोई वारें लान वांछतां अलान पण थाय. तथा आत्यंतिक एटले सर्वकालनावी लान पण नथी, कोइ वारें होय, अनें कोइ वारें न पण होय. (वयंतितेदोविगुणोदयं मि के०) ते व्यापारना जाण एम कहेछे के, नफो पण थाय, अथवा टोटो पण थाय, ए बे नाव होय, मार्टे ते बे नाव विगतगुणोदय जाणवा. तो ते लानथकी शुं, जे एकां तिक अनें आत्यंतिक नहीं, अनें वली ते लान अनर्थ नणी प्रवर्त्ते? (सेउदएसातिमणंत पत्ते के०) अनें ते जे श्री नगवंतनो केवलज्ञान प्राप्ति लक्षण, तथा निर्क्षरानुं कारण, एवो जे लान, ते सादि अनंत जाणवो. (तमुदयंसाहयश्ताइणाइ के०) एवा लान सहित पोतें नगवंत छे, अनें बीजानें पण एवो लान आपेछे. ते नगवंत कहेवाछे! तो

के, त्रायी एटले श्रासन्न नव्यनें डुःखथकी राखनार बे, तथा ज्ञानी एटले जाणेली व स्तुबे विद्यमान जेनें एवा नगवंतनें वाणियानी उपमा केम देवाय ? ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—सारंनपरिग्रहं वाऽव्युत्सृज्याऽत्यक्त्वा तत्रैव निःसृतावद्धाश्रात्मैव दंनोहिं सकोयेषां ते तथा तेषां च वणिजामुदयोलानोयदर्थं ते प्रवृत्ताः यं च त्वं लानं वदसि स तेषां चतुरंतश्चतुर्गतिकोयः संसारोऽनंतस्तस्मै तदर्थं नवति तथा डुःखाय नवति नच स लानोऽपि तस्यैकांतिकः ॥ २३ ॥ एतदेवाह । एकांतिकः श्रात्यंतिकश्च तेषां वणिजामुद योलानोन विद्यते । लानार्थं प्रवृत्तस्य हानेरपि दर्शनात् । एवं वदंति तद्विदः तौ च द्वावपि नावौ विगतगुणोदयौ ।कोर्थः।योनैकांतिकः१ श्रनात्यंतिकश्च २ किं तेन लाने नेति यः सेतस्य नगवतउदयोलानोधर्मदेशनादिः सच सादिरनंतश्च एवंनूतमुदयं प्राप्तो ऽन्येषामपि तादृशं साधयति कथयति । त्रायी ज्ञाती च ज्ञातं वस्तु विद्यते यस्य सज्ञा ती ज्ञातसर्वज्ञेयः एवंनूतेन नगवता तेषां पूर्वोक्तानां वणिजां कथं सर्वसाम्यमिति ॥२४॥

॥ टीका—किंचान्यत् । (श्रारंनगंचेवइत्यादि) श्रारंनं सावद्यानुष्ठानं च तथा परिग्रहं वाऽ व्युत्सृज्यापरित्यज्य तस्मिन्नेवारंने क्रयविक्रयपचनपाचनादिके तथा परिग्रहेच धनधान्यहिर एयसुवर्णद्विपदचतुष्पदादिके निश्चयेन श्रिताबद्धानिःश्रितावणिजोनवंति तथात्मैव दंनोदंन यतीति दंनोयेषां ते नवंत्यात्मदंनाश्रसदाचारप्रवृत्तेरिति।नावोपि चैषां वणिजां परिग्रहारंन वतां सउदयोलानोयदर्थं ते प्रवृत्तायं च त्वं लानं वदसि सतेषां चतुरंतश्चतुर्गतिकोयः संसा रोऽनंतस्तस्मै तदर्थं नवतीति न चेहासावेकांतेन तत्प्रवृत्तस्यापि नवतीति ॥२३॥ एतदेव दर्शयितुमाह । (णेगंतिणच्चंतिइत्यादि) एकांतेन नवतीत्येकांतिकस्तथा तल्लानार्थं प्रवृ त्तस्य विपर्ययस्यापि दर्शनात्तथा नाप्यात्यंतिकः सर्वकालनावी तत्क्षयदर्शनात्सतेषां उदयोलानोनैकांतिकोनात्यंतिकश्चेत्येवं तद्विदोवदंति । तौच द्वावपि नावौ विगतगुणो दयौ नवतः । एतडुक्तं नवति । किं तेनोदयेन लानरूपेण योनैकांतिकोनात्यंतिकश्च प श्चादर्थयेति । यश्च नगवतः सेतस्य दिव्यज्ञानप्राप्तिलक्षणउदयोलानोयोवा धर्मदेशनावाप्त निर्जरालक्षणः सच सादिरनंतश्च तमेवंनूतमुदयं प्राप्तोनगवानन्येषामपि तथानूतमेवोदयं साधयति कथयति श्लाघते वा । किंनूतोनगवांस्त्रायी। श्रयवयमयपयचयतयणयगतावित्य स्य दंनकधातोर्णिनिप्रत्यये रूपं । मोक्षं प्रति गमनशीलइत्यर्थः । त्रायी वासन्नन्नव्यानां त्राण करणात्तथा ज्ञाती ज्ञाता क्षत्रियाज्ञातं वा वस्तुजातं विद्यते यस्य सज्ञाती विदितसमस्तवेद्य इत्यर्थः । तदेवंनूतेन नगवता तेषां वणिजां निर्विवेकिनां कथं सर्वसाधर्म्यमिति ॥ २५ ॥

अहिंसयं सवपयाणुकंपी, धम्मे ठियं कम्मविवेगहेउं ॥ तमाय दंमेहिं समायरंता, अबोहीए ते पडिरूवमेयं ॥२५॥ पिन्नागपिंमी मवि विध्धु सूले, केई पएज्जा पुरिसे इमेत्ति॥ अलाउयं वावि कुमारएत्ति, स लिप्पती पाणिवहेण अम्हं ॥ ३६ ॥

अर्थ—हवे वली कहेछे के, देवोनां करेलां समवसरण, सोनानुं कमल, देवछंदो, सिंहासन, इत्यादिक पदार्थोनो परिभोग करतो थको ते, कर्मो थकी शी रीतें न लेपाय? एवुं गोशालकनुं वचन आशंकीनें, आर्द्रकुमार कहेछे के, (अहिंसयं के०) ए भगवंत श्री महावीर देव सर्वजीवनें अहिंसता एटले अणहणता थका, समवसरणादिकनो उपभोग करेछे, परंतु ते समवसरणादिक उपर, श्री वीतरागदेवनो लगारमात्र पण प्रतिबंध नथी, ए कारण माटें एमनें कर्म न लागे. वली स्वामी कहेवाछे? तो के, (सवपयाणुकंपी के०) सर्व प्रजा एटले सर्वजीव तेनी अनुकंपाना करनार, (धम्मेठियंकम्मविवेगहेउं के०) एवा श्री भगवंत धर्मनें विषे प्रवर्त्तता कर्म विवेकना कारण भूत, एवा तेउनें (तमायदंमेहिंसमायरंता के०) आत्मदंम एटले अनेक असमंजस वचनें करी तारा सरखा, आत्मदंमनें आचारता थका वणिक्नो दृष्टांत देछे, माटें (अबोहीएतेपडिरूवमेयं के०) ते अबोधी एटले अज्ञानी प्रतिरूप जाणवा, एयं एटले ए एक तेनुं अज्ञान पणुंज जाणवुं, केमके एक तो पोतें अज्ञान पणे प्रवर्त्ते, ए पेहेलुं अज्ञान पणुं. वली त्रिजगत् पूज्य, सर्व अतिशयना निधान, एवा अरिहंतनें वैश्यादिकनी उपमा आपे, ते बीजुं अज्ञान पणुं. माटें ते जीव एम करता थका पोताना बोध बीजनो नाश करेछे. इत्यर्थः ॥ २५ ॥ हवे इत्यादिक पूर्वोक्त गोशालकनां वचनोनुं निराकरण करीनें आर्द्रकुमार मुनि आगल चाल्या, तेवारें वच्चें शाक्यपुत्रियदर्शनी एटले बौद्ध मल्या. तेणें एम कह्युं के, हे आर्द्रकुमार! तें गोशालक प्रत्यें वाणियानो दृष्टांत दूषव्यो ते युक्तज कर्युं, कारण के, बाह्य अनुष्ठान, प्रायः शून्यछे, अंतरंग अनुष्ठाननेंज मोक्षांग प्रधान जाणवुं, ए कारण माटें अमारा सिद्धांतमांहे ते अंतरंगानुष्ठाननुं साधवुं कह्युंछे. ते अमें कहियें छैयें माटें तुं सावधान थको सांभल.? (पिन्नागपिंमीमवि विध्धुसूले के०) पिन्नाग पिंमी एटले खलपिंमी ते अचेतनजछे अनें ते कोइ एक स्थानकें छे तेनीपर कोइ एक पुरुषें वस्त्र नाख्युं, पछी ते खलपिंमनें शूलीयें प्रोइनें, (केइपएज्जा पुरिसेइमेत्ति के०) कोइ एक म्लेछें पुरुषनी बुद्धियें लइनें अग्नि उपर पचाव्यो, तथा वली (अलाउयंवाविकुमारएत्ति के०) तुंबडुं देखीनें ए कुमारछे एवी बुद्धियें एक पुरुषें तेनें अग्नि उपर पचाव्यो, (सलिप्पतीपाणिवहेणअम्हं के०) तो हवें ए बेहुजण, पुरुष अनें कुमारहत्यानें पापें लेपाय. अमारा सिद्धांतमांहे ए भावछे. शुभाशुभ बंधनुं मूल, मन परि

जाणता अंधनी पेठे नावमूढ एवा एगे के० कोइ एक परदर्शनी णियायठी के० मोक्ष ना अर्थी धम्ममाराहगावयं के० अमे धर्मना आराधक छैये एम कही प्रव्रज्याने लईने अनेक छकायनुं मर्दन करता थका, अडुवा के० अथवा अनेराने छकायना आरंभनो उपदेश करता थका, अहम्ममावज्जे के० अधर्मज आचरे. परंतु णतेसव्वज्जुअंवए के० ते सर्व प्रकारे ऋजु एटले सरल एवो मार्ग न पामे. एटले ते मोक्षने अर्थे यत्न करे परंतु मोक्षनो मार्ग न पामे. ॥ २० ॥

॥ दीपिका—इदानीमेतद्दूषणायाह । (अन्नाणित्ति) अज्ञानिकानामज्ञानमेव श्रेयइति वादिनां योविमर्शोविचारस्स अज्ञानेऽज्ञानविषये न नियछति न युज्यते । यतोज्ञानं सत्यमसत्यं वेति विमर्शः । अज्ञानेन कृतेऽपराधे स्वल्पोदोषः ज्ञानेन कृते महान् इत्येवं भूतोविचारोपि तेषां न युज्यते । एवंविधविचारस्य ज्ञानरूपत्वादित्यज्ञानवादे विचारोन युज्यते । तथा आत्मनोपि परं प्रधानमज्ञानवादं शासितुमुपदेष्टुं नालं न समर्थाः । स्वयमज्ञत्वात् कुतोऽन्येषां शिष्याणामुपदेष्टुं समर्थाभवेयुः ॥ १७ ॥ यथा ते आत्मनः परेषां च शिक्षणे ऽसमर्थास्तथा दृष्टांतेनाह (वणेत्ति) वनेऽरण्ये यथा कश्चिन्मूढोमूढं नेतारं प्रापकमनुगछत्याश्रयति तदा तौ द्वावप्यकोविदौ मार्गाऽनिपुणौ संतौ तीव्रं स्रोतोगहनं शोकं वा नियछतः प्राप्नुतः ॥ १८ ॥ दृष्टांतांतरमाह । (अंधेति) यथा अंधः स्वयं अन्यमंधं पंथानं नयन् दूरमध्वानं वांछितमार्गादन्यं दूरं मार्गं गछति । तथा उत्पथमुन्मार्गमापद्यते जंतुः प्राणी अंधः । अथवा परं पंथानमनुगछेन्न वांछितं ॥ १९ ॥ दार्ष्टांतिकमर्थमाह । (एवमिति) । एवं पूर्वोक्तार्थेन एके भावमूढानियागोमोक्षः सद्धर्मोवा तदर्थिनस्ते किल वयं धर्माराधका इतिजानंतोऽधर्मं पापमेवापद्येरन् प्राप्नुवंति तथा ते सदनुष्ठानाआजीविकादयोगोशालकमतानुसारिणोऽज्ञानवादप्रवृत्ताः सर्वथा ऋजुः सर्वर्जुः संयमः सद्धर्मोवा तं न व्रजेयुः न गछंति न प्राप्नुवंतीत्यर्थः । अथवा सर्वर्जुकं सत्यमज्ञानांधान व्रजेयुः ॥ २० ॥

॥ टीका—एवमज्ञानवादिमतमनूद्येदानीं तद्दूषणायाह । (अन्नाणियाणमित्यादि) न ज्ञानमज्ञानं तद्विद्यते येषां तेऽज्ञानिनः।अज्ञानशब्दस्योत्तरपदत्वाद्वा मत्वर्थीयः। यथा गौरख. रूपमिति । यथा तेषामज्ञानिनामज्ञानमेव श्रेयइत्येवं वादिनां योयं विमर्शः पर्यालो चनात्मकोमीमांसा वा मातुं परिछेत्तुमिछा साऽज्ञानेऽज्ञानविषये (नणियछत्ति) न निश्चयेन यछति नावतरति न युज्यतइतियावत् । तथाहि । यैवंभूता मीमांसा विमर्शः किमेतज्ज्ञानं सत्यमुताऽसत्यमिति । यथा अज्ञानमेव श्रेयोयथा यथाच ज्ञानातिशय स्तथा तथाच दोषातिरेकइति सोयमेवंभूतोविमर्शस्तेषां न युज्यते । एवंभूतस्य पर्याल

णामज जाणवुं, चित्तमांहे जो जीवघातनो परिणामछे तो अणकखुं थकुं पण, प्राणघा तनुं पाप लागेछे ॥ २६ ॥

॥ दीपिका–असौ नगवान्समवसरणाद्युपनोगं कुर्वन्नप्यहिंसन्। कोर्थः। नहि तत्रार्हतः कोप्याशंसाप्रतिबंधोवास्ति साम्यरसलीनत्वात्। सर्वेषां प्रजाजंतवस्तेषामनुकंपी एवंविधं धर्मे स्थितं तं नवादृशाआत्मदंमैः समाचरंतोवणिगादितुल्यं कुर्वंति एतच्चाबोधेरज्ञातस्य प्रतिरूपं अज्ञानविलसितमित्यर्थः। एवं गोशाले निराकृते बौद्धाः प्राहुस्त्वया वणिग्दृष्टां तदूषणेन बाह्यानुष्ठानदूषितं तद्वरं कृतं यतोऽस्मत्सिद्धांतेप्यांतरमेवानुष्ठानं नवमोक्षयोः प्रधानांगमिति। तत्त्वं शृणु ॥२५॥ पिण्याकः खलस्तस्य पिंमी शकलमचेतनमपि कदाचि न्म्लेछादिविषये संभ्रमे केनचिन्नश्यता खलोपरि वस्त्रं क्षिप्तं तच्च म्लेछेन पुरुषोयमिति बुद्ध्या गृहीतं ततोसौ म्लेछोवस्त्रवेष्टितां खलपिंमीं पुरुषबुद्ध्या शूले प्रोतां पावके पचेत् तथाऽलाबुकं तुंबकं कुमारोयमिति मत्वाऽग्नौ पचेत् अस्माकं मते सप्राणिवधेन लिप्यते चित्तस्य डुष्टत्वात् ॥ २६ ॥

॥ टीका–सांप्रतं कृतदेवसमवसरणपद्मावलीदेवछंदकसिंहासनाद्युपनोगं कुर्वन्नप्याधाकर्म कृतवसतिनिषेधकसाधुवत्कथं तदनुमतिकृतेन कर्मणाऽसौ न लिप्यतइत्येतगोशालकमत माशंक्याह। (अहिंसयमित्यादि) असौ नगवान् समवसरणाद्युपनोगं कुर्वन्नप्यहिंसकः स न्नुपनोगं करोति। एतडुक्तं नवति नहि तत्र नगवतोमनागप्याशंसाप्रतिबंधोवा विद्यते स मतृणमणिमुक्तालोष्टकांचनतया तडुपनोगं प्रति प्रवृत्तेर्देवानामपि प्रवचनोद्भिनाविषूणां क थंनु नाम नव्यानां धर्माभिमुखं प्रवृत्तिर्यथा स्यादित्येवमर्थमात्मलाजार्थं च प्रवर्त्तनादतोन्न गवानहिंसकस्तथा सर्वेषां प्रजायंतइति प्रजाजंतवस्तदनुकंपी च तान्संसारे पर्यटतोनुकंपयते तछीलश्च तमेवंरूपं धर्मपरमार्थरूपे व्यवस्थितं कर्मविवेकहेतुनूतं नवद्विधाआत्मदंमैः समा चरंतआत्मकल्पं कुर्वंति। वणिगादिनिरुदाहरणैरेतच्चाबोधेरज्ञानस्य प्रतिरूपं वर्तते एकं ता वदिदमज्ञानं यत्स्वतः कुमार्गप्रवर्तनं। द्वितीयं चैतत्प्रतिरूपमज्ञानं यद्भगवतामपि जगद्वं द्यानां सर्वातिशयनिधाननूतानामितरैः समत्वापादनमिति ॥ २५॥ सांप्रतमार्द्रककुमारम पहस्तितगोशालकं ततोनगवदभिमुखं गछंतं दृष्ट्वाथांतराले शाक्यपुत्रीयाभिक्षवइदमूचुर्य देतद्वणिग्दृष्टांतदूषणेन बाह्यमनुष्ठानं दूषितं तछोननं कृतं नवता यतोऽतिफल्गुप्रायं बाह्य मनुष्ठानं आंतरमेव त्वनुष्ठानं संसारमोक्षयोः प्रधानांगमस्मत्सिद्धांते चैतदेव व्यावर्ण्यते। इ त्येतदार्द्रककुमार नो राजपुत्र! त्वमवहितः शृणु श्रुत्वाचावधारयेति नणित्वा ते भिक्षुका आंतरानुष्ठानसमर्थकमात्मीयसिद्धांताविर्नावनायेदमाहुः। (पिन्नागेत्यादि) पिण्याकः

खलस्तस्य पिंमिर्चित्तकं तदचेतनमपि सत् कस्मिंश्चित्संभ्रमे म्लेछादिविषये केनचिन्नश्य ता प्रावरणं खलोपरि क्षिप्तं तच्च म्लेछेनान्वेष्टुं प्रवृत्तेन पुरुषोयमिति मत्वा खलपिंमया स ह गृहीतं ततोसौ म्लेछोवस्त्रवेष्टितां तां खलपिंमीं पुरुषबुद्ध्या शूले प्रोतां पावके पचेत् तथाऽलाबुकं तुंबकं कुमारोयमिति मत्वाऽग्नावेव पपाच सचैवंचित्तस्य दुष्टत्वात्प्राणिवध जनितेन पातकेन युज्यते। अस्मत्सिद्धांते चित्तमूलत्वाछुभाशुभबंधस्येत्येवं तावदकुशल चित्तप्रामाण्यादकुर्वन्नपि प्राणातिपातप्रतिघातफलेन युज्यते ॥ २६ ॥

अहवावि विद्धूण मिलक्खु सूले, पिन्नागबुद्धीइ नरं पएज्जा ॥
कुमारगं वावि अलाबुयंति, न लिप्पइ पाणिवहेण अम्हं ॥२७॥
पुरिसं च विद्धूण कुमारगं वा, सूलंमि केइ पएज्जायतेए ॥ पिन्नाय
पिंमि सति मारुहेत्ता, बुद्धाण तं कप्पति पारणाए ॥ २८ ॥

अर्थ—वली एहिज दृष्टांत विपरीत पणें करीनें कहेछे. (अहवावि के०) अथवा कोइ एक सत्यपुरुषने (पिन्नागबुद्धिइ के०) खलपिंमीनी बुद्धियें करी कोइ एक (मिल क्खु के०) म्लेछ, (सूले के०) शूलियें करी (विद्धूण के०) विंधीनें प्रोइनें (नरं के०) मनुष्यनें, (पएज्जा के०) अग्नियें करी पचावे, अनें (कुमारगंवाविअलाबुयंति के०) त था कुमार बालकनें देखीनें तेनें तुंबडानी बुद्धि लावीनें, अग्निमां पचावे, ए बेहुजणनें मनपरिणाम विशेष एवुं (नलिप्पइपाणिवहेणअम्हं के०) प्राणवधनुं पाप लागे नहीं, ए अमारा शास्त्रनुं रहस्य जाणवुं ॥२७॥ वली पण तेहिज दृष्टांत कहेछे (पुरिसंचविद्धूण कुमारगंवा के०) पुरुष अथवा कुमारनें (सूलंमि के०) शूलीयें (विद्धूण के०) वींधीनें प्रोइनें (केइपएज्जायतेएके०) कोइएक पुरुष अग्निनें विषे पचावे (पिन्नायपिंमिसतिमारु हेत्ता के०) अनें मनमांहें एवो भाव आणे के ए खलपिंमीछे (बुद्धाणतंकप्पतिपारणाए के०) तेनी बुद्धदर्शीजननें पण पारणा भणी कल्पेतो, अन्य बीजानुं शुं कहेवुं? एताव ता मनसाथें असंकल्पितछे माटें कर्म न लागे एवो. अमारो मतछे ॥ २८ ॥

॥दीपिका—अथवा सत्यं पुरुषं खलबुद्ध्या कश्चिन्म्लेछः शूले प्रोतमग्नौ पचेत् कुमारकं बालं वाऽलाबुबुद्ध्या पचेन्नासौ प्राणिवधेन लिप्यतेस्माकमिति प्राणिवधाभिप्रायाभावात् ॥ २७ ॥ पुरुषं कुमारकंवा शूले विध्वा कश्चिज्जाततेजसि वन्हौ आरुह्य पचेत् खलपिं मीयमिति मत्वा सतीं शोभनां तदेतद्बुद्धानां शाक्यानां कल्पते पारणाय भोजनाय। एव मसंकल्पितं कर्मचयं न यात्यस्मन्मते ॥ २८ ॥

ने यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य, एवा अढारे पापस्थानकने विषे अनिवृत्त थतो होय. एम निश्चे भगवंतें कह्युंछे, तेम असंयति अविरति अप्रतिहत एटले पच्चखाणें करीने पाप कर्म जेणें हण्यां नथी, क्रिया सहित संवर रहित एकांत दंमनो आपनार, एकांत बाल, एकांत शयन करनार होय. ते बाल, अविचारवालां, एवां मन वचन अने काया तेणें करी सहित थतो जे पाप स्वप्नांतरमां पण देखे नहीं. एवां पापकर्मनुं बंधन करे. एम अविरतिपणायें करी तेने पापकर्म लागे ॥ ५ ॥

॥ दीपिका–अथाचार्यएव स्वाभिमतार्थं परप्रश्नपूर्वमाह । (सेकिंतुइत्यादि) आचार्यः स्वयं निर्णीतार्थोपि ईर्ष्यया परं पृछति किमसौ वधकपुरुषोहननावसरापेक्षी नित्यं हिंसानुगतचित्तः स्यात्किंवा न? इति पृष्टं परः समतया मध्यस्थः सन् यथास्थितमेव व्यागृणीयात् कथयेत् । तद्यथा हंताचार्यभवत्यसौ अमित्रभूतइति ॥ अथ दार्ष्टांतिकं दर्शयति । (जहासत्ति) यथासौ वधकइत्यादिना दृष्टांतमनूद्य दार्ष्टांतिकं दर्शयति । (एवमेवेत्यादि) यथासौ वधकोऽवसरापेक्षी वध्यस्य हिंसामकुर्वाणोपि अमित्रभूतोभवति एवमसावपि बालो ऽस्पष्टविज्ञानोनिवृत्तेरभावाद्योग्यतया सर्वेषां प्राणिनां हंता स्यात् यावन्मिथ्यादर्शनशल्योपेतः स्यात् । कोर्थः । यद्यपि विनयादिकं कुतश्चित्कारणादसौ विधत्ते तथापि उदायिनृपमारकवदंतर्दुष्टएव नित्यं हिंसानुगतचित्तश्च । यथा परशुरामः कृतवीर्यं हत्वापि ततः सप्तवारं निःक्षत्रां पृथिवीं चकार । यदुक्तं । “अपकारसमेन कर्मणा, न नरस्तुष्टिमुपैति शक्तिमान् ॥ अधिकां कुरुतेऽरियातनां द्विषतां मूलमशेषमुद्धरेत्” ॥ १ ॥ एवमसावपि अमित्रभूतः स्यादिति । अथ पूर्वोक्तार्थमनुवदन्नुपसंहरति । (एवंखलुभगवयाइत्यादि) यथा वधकोऽनिवृत्तत्वाद्दुष्टएवमेकेंद्रियादिकोऽस्पष्टविज्ञानोपि अविरतत्वाद्दुष्टएवेति । शेषं सुगमं । यावत्पापं कर्म क्रियतइति ॥ ५ ॥

॥ टीका–सांप्रतमाचार्यएव स्वाभिप्रेतमर्थं परप्रयत्नपूर्वकमाविर्भावयन्नाह । (सेकिंतुहुइत्यादि) आचार्यः स्वतोहि निर्णीतार्थोऽसूयया परं पृछति । किमिति परप्रश्ने । तुरिति वितर्के । हुशब्दोवाक्यालंकारे । किमसौ वधकपुरुषावसरापेक्षी छिद्रमवसरं प्रधारयन् पर्यालोचयन्नहर्निशं सुप्तोजाग्रदवस्थोवा तस्य गृहपतेराज्ञोवा वध्यस्यामित्रभूतोमिथ्यासंस्थितोनित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंडोभवत्याहोस्विन्नेत्येवं पृष्टः परः समतया माध्यस्थ्यमवलंब्यमानोयथावस्थितमेव व्यागृणीयात् । तद्यथा हंताचार्यभवत्यसावमित्रभूतइतीत्यादि ॥ तदेवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकं दर्शयितुमाह (जहासेवहएइत्यादि) यथासौ वधकइत्यादिना दृष्टांतमनूद्य दार्ष्टांतिकमर्थं दर्शयितुमाह ।

(एवमेवेत्यादि) एवमेवेति यथासौ वधकोऽवसरापेक्षितया वध्यस्य व्यापत्तिमकुर्वाणो ऽप्यमित्रनूतोजवत्येवमेवासावपि बालवद्बालोस्पष्टविज्ञानोजवत्येव निवृत्तेरनावाद्योग्य तया सर्वेषां प्राणिनां व्यापादकोजवति यावन्मिथ्यादर्शनशल्योपेतोजवति । इदमुक्तं ज वति । यद्यप्युत्वानादिकं विनयं कुतश्चिन्निमित्तादसौ विधत्ते तथाप्युदायिनृपव्यापादक वदंतर्डष्टएवेति नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंडश्च यथा परशुरामः कृतवीर्यं व्यापाद्यापि तडुत्तरकालं सप्तवारं निःक्षत्रां पृथिवीं चकार (आह्त्ति) “ अपकारसमेन कर्मणा, न नरस्तु ष्टिमुपैति शक्तिमान् ॥ अधिकां कुरुतेऽरियातनां, द्विपतां मूलमशेषमुद्धरेत् ॥ १ ॥ इत्ये वमसावमित्रनूतोमिथ्याविनीतश्च जवतीति । सांप्रतमुपसंहरन् प्राक् प्रतिपादितमर्थमनु वदन्नाह । (एवंखलुनगवयाइत्यादि) यथासौ वधकः स्वपरावसरापेक्षी सन्न तावद्घात यत्यथवा निवृत्तत्वाद्दोषडुष्टएव एवमसावप्येकेंड्रियादिकोस्पष्टविज्ञानोपि तथानूतएवावि रताप्रतिहतप्रत्याख्यातसत्क्रियादिदोषडुष्टइति । शेषं सुगमं । यावत्पापं कर्म क्रियतइति॥५॥

जहा से वहए तस्सवा गाहावइस्स जाव तस्सवा रायपुरिसस्स पत्तेयं प त्तेयं चित्तसमादाए दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तनूते मिछासंठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंके नवइ एवमेव बाले सव्वे सिं पाणाणं जाव सव्वेसिं सत्ताणं पत्तेयं पत्तेयं चित्तसमादाए दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तनूते मिछासंठिते निच्चं पसढ विउवायचित्तदंके नवइ ॥ ६ ॥

अर्थ—(जहासेवहए के०) जेम ते वधक पुरुष, ते गृहपत्यादिक उपर प्रत्येक प्रत्ये क चित्तें करी विनाश चिंतवतो, दिवसें रात्रियें सुतो, जागतो थको अमित्रनूत एटले शत्रु समान मिथ्यात्व संस्थित निरंतर शठ प्राणघातने विषे चित्तछे जेनूं माटें, प्राणीयोने दंकनो करनार होय. तेने पापकर्म बंधाय. (एवमेव के०) एमज ए बाल जे एकेंडिया दिक जीवो छे ते पण सर्व प्राणी, सर्वनूत, सर्वजीव, सर्वसत्व, तेने विषे अविरति प णाने नावें ते सर्वने विषे प्रत्येक प्रत्येक चित्तें करी विनाश चिंतवतो, दिवसने विषे, रात्रिने विषे, सुतो, जागतो, अमित्र नूत मिथ्यात्व संस्थित, निरंतर शठ, प्राणिघातने विषे चि त्तछे जेनूं, प्राणीयोने दंकनो करनार होय, एम बोलाय. ते कारणें तेने पापकर्म बंधाय॥६॥

॥ दीपिका—तदेवं पूर्वोक्तार्थनिगमनं कृत्वाऽधुना स सर्वप्राणिनां डुष्टात्मा स्यादिति दर्शयति । यथासौ वधकोगृहपत्यादेः प्रत्येकं सर्वेषु वध्येषु घातकचित्तं समादाय प्राप्ताव सरोऽहमेनं हनिष्यामीति कृत्वा दिवा रात्रौवा सुप्तोजाग्रद्वा सर्वावस्थासु सर्वप्राणि

नां प्रत्येकममित्रनूतोघ्नन्नपि मिथ्यासंस्थितोनित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोनवति । एवं बालकएकेंड्रियादिरपि सर्वप्राणिनां विरतेरनावात्प्रत्येकं घातकचित्तं समादाय नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमः स्यात्तत्प्रत्ययिकेन कर्मणा बध्यतइति ॥ ६ ॥

॥ टीका–तदेवं दृष्टांतदार्ष्टांतिकप्रदर्शनेन पूर्वप्रतिपादितार्थस्य निगमनं कृत्वाऽधुना सर्वेषामेव प्रत्येकं प्राणिनां डुष्टात्मा नवति इत्येतत्प्रतिपादितुकामआह । (जहासेवहए इत्यादि) यथाऽसौ वधकः परात्मनोरवसरापेक्षी तयास्य गृहपतेस्तत्पुत्रस्य वाऽन्यहितस्य वा राजादेस्तत्पुत्रस्य चैकमेकं पृथक् पृथक् सर्वेष्वपि वध्येषु घातकचित्तं समादाय प्राप्तावसरोऽहमेनं वैरिणं महाधिविधायिनं पातयिष्यामीत्येवं प्रतिज्ञाय दिवा रात्रौ वा सुप्तोवा जाग्रद्वा सर्वाण्यवस्थासु सर्वेषामेव वध्यानां प्रत्येकममित्रनूतोऽवसरापेक्षितया घ्नन्नपि मिथ्यासंस्थितोनित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोनवति इति रागद्वेषाकुलितोबालवद्बालोज्ञानावृतएकेंड्रियादिरिति । सर्वेषामेव प्राणिनां विरतेरनावात्तद्योग्यतया प्रत्येकं वध्येषु घातकचित्तं समादाय नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोनवतीति । इदमुक्तं नवति । यथासौ तस्माद्गृहपतीराजानुघाताडुपशांतवैरः कालावसरापेक्षितया वधमकुर्वाणोप्यविरतिसद्भावाद्वैरान्न निवर्त्तते तत्प्रत्ययिकेनच कर्मणा बध्यते । एवं मृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रहेष्वपि. प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमनार्थविधानेन पंचावयवत्वं वाच्यमिति । इहैव पंचावयवस्य सूत्राणां विनागोडष्टव्यः । तद्यथा । श्रया अपच्चक्खाणीयावि नवतीत्यतआरन्य यावत्पावेयसे कम्मे कज्जइत्ति इतीयं प्रतिज्ञा । तत्र परः प्रतिज्ञामात्रेणोक्तमनुक्तसममिति कृत्वा चोदयति । तद्यथा । तह चोयए पसुवगं एवं वयासीत्यतआरन्य यावज्जंते एवमाहिंसुमिज्जंते एवमाहिंसुत्ति । तत्र प्रज्ञापकश्चोदकं प्रत्येवं वदेत् । तद्यथा । यन्मया पूर्वं प्रतिज्ञातं तत्सम्यक् कस्य हेतोः केन हेतुनेतिचेत् तत्र हेतुमाह । तह खलु नगवया ढजीवनिकाया हेऊपसुत्ताइत्यतआरन्य यावमिज्ञादंसणसल्लेइत्ययं हेतुः । तदस्य हेतोरनैकांतिकत्वव्युदासार्थं स्वपक्षे सिद्धि दर्शयितुं दृष्टांतमाह । तद्यथा । खलु नगवया वहए दिढंते पसुत्ते इत्येतदारन्य यावत्तस्याखणं लद्भूणं वहिस्सामीति पहारमाणेत्ति । तदेवं दृष्टांतं प्रदर्श्य तत्र च हेतोः सत्तां स्वानिप्रेतां परेण नणयितुमाह । से किंतुहुणाम से वहए इत्यादेरारन्य यावद्धंता नवति । तदेवं हेतोर्दृष्टांते सत्वं प्रसाध्य हेतोः पक्षधर्मत्वं दर्शयितुमुपनयार्थं दृष्टांतधर्मिणि हेतोः सत्तां परेणान्युपगतामनुवदति । जहासे वहए इत्यतआरन्य यावसुिचं पसढविजवायचित्तदंमेत्ति । सांप्रतं हेतोः पक्षधर्मत्वमाह । एवमेव बालेयवीत्यादीत्यतआरन्य यावत्पावेयसे कम्मे किज्जइत्ति । तदेवं प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपन

यनप्रतिपादकानि यथाविधिसूत्राणि विभागतः प्रदर्श्याधुना प्रतिज्ञाहेत्वोः पुनर्वचनं निगमनमित्येतत्प्रतिपादयितुमाह । जहा से वहए तस्सवागाहावइस्स इत्यादि यावत्सिंबं पसढविउवायचित्तदंमेत्ति) एतानि प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमान्यर्थतः सूत्रैः प्रदर्शितानि । प्रयोगस्त्वेवं दृष्टव्यः । तत्राप्रतिहतप्रत्याख्यातक्रियआत्मा पापानुबंधीति प्रतिज्ञा सदा षड्जीवनिकायेषु प्रशठव्यतिपातचित्तदंमत्वादिति हेतुः स्वपरावसरापेक्षितया कदाचिदव्यापादयन्नपि राजादिवधकवदिति दृष्टांतः । यथासौ वधपरिणामादनिवृत्तत्वा द्वध्यस्यामित्रभूतस्तथाऽत्माऽपि विरतेरभावात्सर्वेष्वपि सत्वेषु नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमइत्युपनयः । यतएवं तस्मात्पापानुबंधीति निगमनम् । एवं मृषावादादिष्वपि पंचावयवत्वं योजनीयमिति । केवलं मृषावादादिशब्दोच्चारणं विधेयं तच्चानेन विधिना नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमत्वात्तथा नित्यं प्रशठादत्तादानचित्तदंमत्वादिति ॥ ६ ॥

णो इणठे समठे चोदक इह खलु बहवे पाणा जे इमेणं सरीरसमणुस्सएणं णो दिठावा सुयावा नाभिमयावा विन्नायावा जेसिं णो पत्तेयं पत्तेयं चित्तसमायाए दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभूते मिछासंठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे तं पाणातिवाए जाव मिछादंसणसल्ले ॥ ७ ॥

अर्थ-एम गुरुयें कहे थके, हवे (चोदक के०) शिष्य बोल्योके, हे भगवन् ! तमे जे अर्थ कह्यो, ते योग्य नथी (णोइणठेसमठे के०) ते अर्थ समर्थ नथी, तेनूं कारण कहेछे. (इहखलु के०) आ चउदरज्ज्वात्मक लोकमांहें (बहवेपाणा के०) अनंता प्राणीछे (जेइमेणंसरीरसमणुस्सएणं के०) जे आ शरीरें करी, समुणस्सए एटले पुजलें करी, जीवें दृष्टियें करी कदाचित् कोइ वारें पण (णोदिठावा के०) दीठा नथी, (सुयावा के०) कानें सांभल्या नथी, (नाभिमयावा के०) उलख्या पण नथी, अथवा (विन्नायावा के०) विशेषें करी, जाण्या पण नथी, (जेसिंणोपत्तेयंपत्तेयंचित्तसमायाए के०) जेणे ए कारणे प्रत्येक प्रत्येक चित्तें करीने ए जीवोनो विनाश चिंतव्यो नथी तो दिवसने विषे, रात्रीने विषे, सुतां, जागतां, अमित्रभूत मिथ्यासंस्थित निरंतर शठ प्राणिना घातनेविषे चित्तछे जेनूं प्राणीने दंमकारक ते केम केहेवाय ? अने प्राणातिपात थकी मांमीने यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य सुधी अढारे पापस्थानकने अण करवाथी तेने कर्मनुं बंधन केम लागे ? एतावता तेनें नज लागे. ॥ ७ ॥

॥ दीपिका-एवं षड्जीवनिकायेषु प्रत्येकं अमित्रभूततया पापानुबंधित्वे दर्शिते

परोव्यनिचारं दर्शयति । (णोइणहेइति) नायमर्थः समर्थोयत्सर्वेऽपि प्राणिनः सर्वे षां जीवानाममित्रनूताइति । तत्र परः स्वपक्षसिध्ये युक्तिमाह । इह बहवोऽनंताः प्राणिनः संति येऽमुना शरीरसमुछ्रयेणानेन शरीरेण न कदाचिद्दृष्टाश्चक्षुषा न श्रुताः कर्णान्यां नानिमतानेष्टाः । नच विज्ञाताज्ञानेनेति कथं तद्विषयस्तेषु अमित्रनावः स्यात्! । तेषां जीवानां कदाचिदपि विषयमप्राप्तानां कथं वधं प्रति चित्तसमादानं स्यात्!। न चासौ तान् प्रति प्रशठव्यतिपातचित्तदंमः स्यात्। शेषं सुगमम् ॥ ७ ॥

॥ टीका–तदेवं सर्वात्मना षट्स्वपि जीवनिकायेषु प्रत्येकममित्रनूततया पापानुबंधि त्वे प्रतिपादिते व्यनिचारं दर्शयन्नाह । (णोइणहेसमहेइत्यादि) नायमर्थः समर्थ इति प्रतिपत्तुं योग्यः । तद्यथा । सर्वे प्राणिनः सर्वेषामेव सत्वानां प्रत्येकममित्रनूता इति । तत्रापरः स्वपक्षसिध्ये सर्वेषां प्रत्येकं मित्रानावं दर्शयितुं कारणमाह । इहा स्मिंश्चतुर्दशरज्ज्वात्मके लोके बहवोऽनंताःप्राणिनः सूक्ष्मबादरनेदन्निन्नाः संति । यद्येवं ततः किमित्याह । तेच देशकालस्वनावविप्रकृष्टास्तथानूताबहवः संति । ये प्राणिनः सू क्ष्मादिविप्रकृष्टाद्यवस्था अमुना शरीरसमुछ्रयेणेत्यनेनेदमाह । प्रत्यक्षासन्नवाचित्वादिद मनेनावार्ग्दर्शिज्ञानसमन्वितसमुछ्रयेण न कदाचिद्दृष्टाश्चक्षुषा न श्रुताः श्रवणेंद्रियेण विशे षतोनानिमताइष्टानच विज्ञाता प्रतिनेवज्ञानेन स्वयमेवेत्यतः कथंचित्तद्विपर्ययस्तस्य मित्र नावः स्यात् अतस्तेषां कदाचिदविज्ञातानां कथं प्रत्येकं वधं प्रतिचित्तसमादानं न नवति । न चासौ तान् प्रति नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोनवतीति शेषं सुगमम् ॥ ७ ॥

आचार्यआह तब खलु नगवया डुवेदिद्वंता पणत्ता तं सन्निदिद्वंतेय असन्निदिद्वंतेय से किंतं सन्निदिद्वंते जे इमे सन्निपंचिंदिया पज्जत्तगा ए तेसिणं बजीवनिकाए पडुच्च तं पुढवीकायं जाव तसकायं से एगइन पुढवी काएणं किच्चं करेइवि कारावेइवि तस्सणं एवं नवइ एवं खलु अहं पुढवी काएणं किच्चं करेमिवि कारवेमिवि णो चेवणं से एवं नवइ इमेणवा इमे णवा से एतेणं पुढवीकाएणं किच्चं करेइवि कारावेइवि सेणं तातो पुढवी कायाउ असंजय अविरय अप्पडिहयपच्चरकाणपावकम्मेयावि नवइ एवं जाव तसकाएत्ति नाणियव्वं से एगइन बजीवनिकाएहिं किच्चं करे इवि कारावेइवि तस्सणं एवं नवइ एवं खलु अहं बजीवनिकाएहिं कि च्चं करेमिवि कारवेमिवि णो चेवणं से एवं नवइ इमेहिंवा से यतेहिं ब

जीवनिकाएहिं जाव कारवेइवि से यतेहिं ठहिं जीवनिकाएहिं असंजयं अविरयं अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मेहिं तं पाणातिवाए ते जावमिछादंसणसल्ले एस खलु नगवया अक्काए असंजए अविरए अपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे सुविणमवि अपस्साउ पावेयसे कम्मे कज्जइ से तं सन्निदिठंतेणं ॥ ८ ॥

अर्थ–हवे एम शिष्यें कह्यानंतर आचार्य कहेछे. (तबखलुनगवयाडुवेदिठंतापस्नत्ता के०) त्यां निश्चें नगवंतें ए अर्थ उपर बे दृष्टांत कह्याछे. ते जेमछे, तेम कहेछे. (तंसन्निदिठंतेय के०) एक संज्ञिदृष्टांत, अने (असन्निदिठंतेय के०) बीजो असंज्ञिदृष्टांत (सेकितंसंन्निदिठंते के०) त्यां संज्ञिदृष्टांत, कयो ? ते कहेछे (जेइमेसन्निपंचिंदियापज्जत्तगा के०) जे ए प्रत्यक्ष लक्षण संज्ञी पंचेंड्रिय पर्याप्ता जीवछे (एतेसिणं के०) तेमांहे कोइ एक (ठजीवनिकाएपडुच्चं के०) ठ जीवनिकाय आश्री एवी प्रतिज्ञा करे, (तं के०) ते ठकायनां नाम कहेछे. (पुढवीकायंजावतसकायं के०) पृथिवीकाय यावत् त्रसकाय पर्यंत (सेएगइउ के०) ते कोइ एक पुरुष एवी प्रतिज्ञा करे के, (पुढवीकाएणंकिच्चंकरेइवि के०) पृथिवीकायें करीनेज कार्य करीश (करावेइविके०) अने पृथिवीकायें करीज कार्य करावीश, एवो जेने नियमछे (तस्सणंएवंनवइ के०) तेने एम होय ते कहेछे (एवंखलुअहंपुढवीकाएणं के०) एम निश्चें हुं पृथिवीकायें करी (किच्चंकरेमिविकारवेमिवि के०) कार्य करीश, अने बीजानी पासे पण करावीश परंतु (णोचेवणंसेएवंनवइ के०) तेनें निश्चें एवो अनिप्राय नथी के (इमेणवाइमेणवा के०) अमुक अमुक दिशिना, तथा हुं, अमुक अमुक कोइक कालें, अथवा धोले, नीले, पीले, राते, पृथिवीकायें कार्य करीश अथवा अनेक नेद पृथिवीकायनाछे तेमांहेथी अमुक कोइ एक नेदेंज कार्य करीश, ज्यां सुधी एवो अनिप्राय नथी त्यां सुधी तेने सर्व पृथिवीकायनूं कर्म लागेछे (सेएतेणंपुढवीकाएणंकिच्चंकरेइविकारावेइवि के०) ते पुरुष ते पृथिवीकायें करी पोतें कार्य करे, बीजा पासें कार्य करावे, (सेणंतातोपुढवीकायाउ के०) ते पुरुष ते पृथिवीकायथकी, (असंजय के०) असंयति अनिवृत्त (अविरय के०) अविरति, (अपडिहयपच्चक्खाणपावकम्मेयाविनवइ के०) तथा नथी हण्यां पच्चक्खाणें करीने पापकर्म जेणे एवो छे, (एवंजावतस्सकाएत्तिनाणियव्वे के०) एम यावत् त्रस काय सुधी एटले ठए काय आश्री जाणीलेवुं जेने जे कायनी अविरति होय तेने ते कायनुं कर्म लागे. ए रीतें को

६ एक पुरुष छजीव निकायें करीने कार्य पोतें करें, बीजा पासें करावे, ते पुरुष छजीव निकायने विषे अविरति असंयति केहेवाय. ए आलावानो बीजो अर्थ पूर्वना आलावा मां लखाइ गयोछे, माटें आंहीं लख्यो नथी. ए रीतें जे प्राणी प्राणातिपातथी मांमीने यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य पर्यंत अढारे पापस्थानकने विषे असंयति अविरति तथा पच्चरकाणें करीने जेणे पापकर्म हण्यां नथी एम अविरतिने नावें होय, तेने स्वप्नां तरें अणदीठुं पण पापकर्म बंधाय, लागे. एम निश्चें श्री नगवंतें कह्युंछे, एटले सज्ञीयानो दृष्टांत कह्यो ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—एवं सति न सर्वविषयं प्रत्याख्यानं युज्यते । ये जीवाहिंसादिविषयप्राप्ताः स्युस्तेषामेव प्रत्याख्यानं क्रियते इति परेणोक्ते आचार्यआह । (तबखल्वित्यादि) यद्य पि सर्वजीवेषु हिंसापरिणामोनोत्पद्यते तथाप्यविरतिसद्भावात्तद्विषयः कर्मबंधोनव त्येव । अत्र दृष्टांत द्वयमाह । संज्ञिदृष्टांतोऽसंज्ञिदृष्टांतश्च । कोयं संज्ञिदृष्टांतः?। ये इमे सं ज्ञिपंचेंद्रियास्तेषां मध्ये कश्चिदेकः षड्जीवनिकायान् प्रतीत्याश्रित्य एवं प्रतिज्ञां कुर्यात् । अहं पृथिवीकायेनैव एकेन कृत्यं करोमि कारयामि । सच एवं कृतप्रतिज्ञस्तेन तस्मात् त स्मिन् तंच करोति कारयतिच शेषकायेन्योनिवृत्तस्तस्य चैवंनूतोऽनिप्रायः । तद्यथा । अहं पृथिवीकायेन कृत्यं करोमि कारयामि एवं प्रतिज्ञायां कृतायां विशेषानिप्रायोन स्यात् यत् श्वेतेन कृष्णेनवा पृथिवीकायेन कृत्यं करोमि कारयामिच स तस्मात्पृथिवीकायादनिवृ त्तोऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा नवति । एवमप्तेजोवायुवनस्पतिष्वपि वाच्यं । य था कश्चिदप्कायादनिवृत्तः कश्चित्तेजस्कायादिति । शेषकायैस्तु व्यापारं करोति कश्चित् ष ट्स्वपि जीवनिकायेषु अनिवृत्तोऽसंयतत्वात्तैः कार्यं करोति कारयति न पुनस्तद्विशेषप्रति ज्ञा एवं मृषावादेऽपि वाच्यं । यथा इदं मया वक्तव्यमनृतं इदं न वक्तव्यं सच तस्मान्मृषावा दादनिवृत्तत्वादसंयतः स्यात् तथा इदमदत्तं मया ग्राह्यं इदंतु न ग्राह्यं । एवं मैथुनपरिग्र हेष्वपि वाच्यं । तथा क्रोधमानमायालोनेष्वपि स्वयं विचार्य वाच्यं । तदेवमसौ हिंसादी न्यकुर्वन्नपि अविरतत्वात्तत्प्रत्ययिकं कर्म बध्नाति । ततोदेशकालस्वनावविप्रकृष्टेष्वपि जीवेषु अमित्रनूतोऽसौ स्यात् । यथा कश्चिद्ग्रामघातादौ प्रवृत्तः । यद्यपि तेन केचि न्नरान दृष्टास्तथापि तद्घातनिवृत्तेरनावाद्योग्यतया तद्घातकइत्युच्यते । एवं अविरतेः कर्मबंधोज्ञेयः ॥ ८ ॥

॥ टीका—एवं व्यवस्थिते न सर्वे विषयं प्रत्याख्यानं युज्यते इत्येवं प्रतिपादिते परेण सत्याचार्यआह । (तबखलुनगवयाइत्यादि) यद्यपि सर्वेष्वपि देशकालस्वनावविप्र

कृष्टेषु वधकचित्तं नोत्पद्यते तथाप्यसावविरतिप्रत्ययत्वात्तेष्वमुक्तवैरएव नवत्यस्य चार्थस्य सुखप्रतिपत्तये नगवता तीर्थकृता द्वौ दृष्टांतौ प्रज्ञप्तौ प्ररूपितौ । तद्यथा । संज्ञिदृष्टांतोऽसंज्ञिदृष्टांतश्च । अथ कोयं संज्ञिदृष्टांतो ये केचन इमे प्रत्यक्षासन्नाः षड्निरपि पर्याप्तिनिः पर्याप्ताऊहापोहविमर्शरूपाः संज्ञा विद्यंते येषां ते संज्ञिनः पंचेंड्रियाणि येषां ते पंचेंड्रियाः करणपर्याप्त्या पर्याप्तकाएषां च मध्ये कश्चिदेकः षड्जीवनिकायान् प्रतीत्यैवंनूतां प्रतिज्ञां नियमं कुर्यात् । तद्यथा । षट्सु जीवनिकायेषु मध्ये पृथिवीकायेनैवैकेन वालुकाशिलोपललवणादिस्वरूपेण कृत्यं कार्यं कुर्यां । सचैवं कृतप्रतिज्ञस्तेन तस्मिन् तस्मात्तं वा करोति कारयतिच शेषकायेन्योऽहं विनिवृत्तस्तस्यच कृतनियमस्यैवंनूतोनवत्यध्यवसायः । तद्यथैवं खल्वहं पृथिवीकायेन कृत्यं करोमि कारयामिच तस्यच सामान्यकृतप्रतिज्ञस्य विशेषानिसंधिनैव नवति । तद्यथा । अमुना कृष्णेनामुना श्वेतेन पृथिवीकायेन कार्यं करोति कारयतिच सतस्मात्पृथिवीकायादनिवृत्तोऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा नवति । तत्र खननस्थाननिषीदनत्वग्वर्तनोच्चारप्रश्रवणादिकरणक्रियासद्भावादेवमप्तेजोवायुवनस्पतिष्वपि वाच्यं । तत्राप्कायेन स्नानपानावगाहनजांमोपकरणधावनादिषु प्रयोगस्तेजःकायेनापि पचनपाचनप्रकाशनादिषु वायुनापि व्यंजनतालवृंतेत्यादिव्यापारादिषु प्रयोजनं वनस्पतिनापि कंदमूलपुष्पफलपत्रत्वक्शाखाद्युपयोगएवं विकलेंड्रियपंचेंड्रियेष्वप्यायोज्यमिति । तथैकः कश्चित् षट्स्वपि जीवनिकायेषु अविरतोसंयतत्वाच्च तैरसौ कार्यं सावद्यानुष्ठानं स्वयं करोति कारयतिच परैस्तस्यच क्वचिदपि निवृत्तेरनावादेवंनूतोध्यवसायोनवति । तद्यथैवं खल्वहं षड्निरपि जीवनिकायैः सामान्येन कृत्यं करोमि न पुनस्तद्विशेषप्रतिज्ञेति । सच तेषु षड्स्वपि जीवनिकायेष्वसंयतोऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा नवत्येवं मृषावादेपि वाच्यं । तद्यथेदं मया वक्तव्यमीदृग्नूतं तु न वक्तव्यं सच तस्मान्मृषावादादनिवृत्तत्वादसंयतोनवति । तथा दत्तादानमप्याश्रित्य वक्तव्यं । तद्यथेदं मया दत्तादानं ग्राह्यमिदंतु न ग्राह्यमित्येवं मैथुनपरिग्रहेष्वपीति । तथा क्रोधमानमायालोनेष्वपि स्वयमन्यूह्य वाच्यं । तदेवमसौ हिंसादीन्यकुर्वन्नप्यविरतत्वात्तत्प्रत्ययिकं कर्म चिनोतीत्येवं देशकालस्वनावविप्रकृष्टेष्वपि जंतुष्वमित्रनूतोसौ नवति तत्प्रत्ययिकं च कर्म चिनोतीति सोयं संज्ञिदृष्टांतोऽनिहितः । सच कदाचिदेकमेव पृथिवीकायं व्यापादयति शेषेषु निवृत्तः कदाचिद्द्वावेवं त्रिकादिकाः संयोगानणनीयायावत्सर्वानपि व्यापादयतीति । सचैवं सर्वेषां व्यापादकत्वे न व्यवस्थाप्यते सर्वविषयारंनप्रवृत्तेस्तत्प्रवृत्तिरपि तदनिवृत्तेः । यथा कश्चिद्ग्रामघातादौ प्रवृत्तोयद्यपिच न तेन विवक्षितकाले केचन पुरुषा दृष्टास्तथाप्यसौ तत्प्रवृत्तिनिवृत्तेरनावात्तद्योग्यतया तद्घातकइत्युच्यते इत्येवं दार्ष्टांतिकेप्यायोज्यम् ॥ ८ ॥

चनस्य ज्ञानरूपत्वादिति । अपिच तेऽज्ञानवादिनआत्मनोपि परं प्रधानमज्ञानवाद मिति शासितुमुपदेष्टुं नालं न समर्थास्तेषामज्ञानपक्षसमाश्रयणेनाऽज्ञत्वादिति कुतः पुनस्ते स्वयमज्ञाः संतोऽन्येषां शिष्यत्वेनोपगतानामज्ञानवादमुपदेष्टुमलं समर्थाजवेयु रिति । यदप्युक्तं बिन्नमूलत्वात् म्लेब्बानुनाषणवत्सर्वमुपदेशादिकं तदप्ययुक्तं । यतोऽ नुनाषणमपि न ज्ञानमृते कर्तुं शक्यते । तथा । यदप्युक्तं परचेतोवृत्तीनां डुरन्वयत्वाद ज्ञानमेव श्रेयइति तदप्यसत् । यतोनवतैवाज्ञानमेव श्रेयइत्येवं परोपदेशदानान्यु पतेन परचेतोवृत्तिज्ञानस्याभ्युपगमः कृतइति । तथाऽन्यैरप्यधायि । आकारैरिंगितैर्गत्या चेष्टया नाषितेन च ॥ नेत्रवक्त्रविकारैश्च, गृह्यतेंतर्गतं मनः ॥ १७ ॥ तदेवं ते तपस्विनोऽ ज्ञानिनआत्मनः परेषां च शासने कर्तव्ये यथा न समर्थास्तथा दृष्टांतद्वारेण दर्शयितुमा ह । (वणेइत्यादि) वनेऽटव्यां यथा कश्चिन्मूढो जंतुः प्राणोदिक्परिब्बेदं कर्तुमसमर्थः स एवंनूतोयदा परं मूढमेव नेतारमनुगब्बति तदा द्वावप्यकोविदौ सम्यक्ज्ञानाऽनिपुणौ संतौ तीव्रमसह्यं स्रोतोगहनं शोकं वा नियब्बतोनिश्चयेन गब्बतः प्राप्नुतोऽज्ञानावृत त्वात् । एवं तेप्यज्ञानवादिनआत्मीयं मार्गं शोजनत्वेन निर्धारयंतः परकीयं वा शोजन त्वेन जानानाः स्वयं मूढाः संतः परानपि मोहयंतीति ॥ १८ ॥ अस्मिन्नेवार्थे दृष्टांतांत रमाह । (अंधोअंधमित्यादि ।) यथा अंधः स्वयमपरमंधं पंथानं नयन् दूरमध्वानं वि वक्षितादध्वनः परतरं गब्बति तथोत्पथमापद्यते जंतुरंधः । अथवा परं पंथानमनुगब्बे न्न विवक्षितमेवाध्वानमनुयायादिति ॥१९॥ एवं दृष्टांतं प्रसाध्य दार्ष्टांतिकमर्थं दर्शयितुमा ह । (एवमेगेनियायठित्ति ।) एवमिति पूर्वोक्तोर्थोपप्रदर्शने । एवं नावमूढानावांधाश्चैके आजीविकादयः (नियायठित्ति) । नयोमोक्षः सद्धर्मोवा तदर्थिनस्ते किल वयं सद्धर्मारा धकाइत्येवं संधाय प्रव्रज्यायामुद्यताः संतः पृथिव्यंबुवनस्पत्यादिकायोपमर्देन पचनपा चनादिक्रियासु प्रवृत्ताः संतस्तत्तत्स्वयमनुतिष्ठन्त्यन्येषां चोपदिशंति येनाऽनिप्रेतायामो क्षावाप्तेर्भ्रंशयंति । अथवा तावन्मोक्षानावस्तमेवं प्रवर्तमानाअधर्मं पापमापद्येरन् । सं नावनायामुत्पन्नेन लिट्प्रत्ययेनैतद्दर्शयति । एतदपरं तेषामनर्थांतरं संनाव्यते । यडुत विवक्षितार्थानावतया विपरीतार्थावाप्तेः पापोपादानमिति । अपिच तएवमसदनुष्ठायि नआजीविकादयोगोशालकमतानुसारिणोऽज्ञानवादप्रवृत्ताः सर्वैः प्रकारैरृजुः प्रगुणो विवक्षितमोक्षगमनंप्रत्यकुटिलः सर्वर्जुसंयमः सद्धर्मोवा तं सर्वर्जुकं ते न व्रजेयुर्न प्रा प्नुयुरित्युक्तं नवति । यदि वा सर्वर्जुकं सत्यं तत्तेऽज्ञानांधाज्ञानाऽपलापिनोन वदेयुरि ति । एते चाज्ञानिकाः सप्तषष्टिनेदानवंति । तेच नेदाअमुनोपायेन प्रदर्शनीयाः । तद्यथा । जीवादयोनव पदार्थाः । सत्, असत्, सदसत्, अवक्तव्यः, सदवक्तव्यः, असदवक्तव्यः, सदसदवक्तव्यइत्येतैः सप्तनिः प्रकारैर्विज्ञातुं न शक्यंते नच विज्ञातैः प्रयोजनमस्ति । ना

नथी एवी असत्य वाणी पण बोले नहिं. किंबहुनाः वधारे शुं कहियें ॥ ३ए॥ हवे मांसादिक तो अनक्ष्य कहेवाय, त्यारें बीजो आहार साधुनें अनक्ष्य होय के नहीं ? त्यां कहेले के, बीजो पण सदोष आहार, साधुनें परिहरवो (सव्वेसिंजीवाणदयठ्याए के०) सर्वे जीव एकेंड्रियादिक तेनी दयानें अर्थे, दयानें निमत्तें (सावज्जदोसंपरिवज्जयंता के०) सावद्य जे आरंनादिक, तेनें महा दोषरूप जाणी, परिहरतां थकां (तस्संकिणोइसिणोनायपुत्ता के०) ते सावद्यना दोष थकी शंकाता एटले बीहिता एवा महाऋषीश्वर ज्ञात पुत्र श्रीमहावीर देव तेमना शिष्यो होय. ते (उद्दिठ्ठनत्तंपरिवज्जयंति के०) उद्दिष्टनक्त एटले जे साधुनें देवानें अर्थेज कल्पेलो एवो आहार होय, तेनें परिहरे वर्जे. ए साधुनो आचार जाणवो ॥ ४० ॥

॥ दीपिका—ये बौद्धाअपि तथाप्रकारं मांसं नुंजते ते पापमजानंतोनिर्विवेकिनः संतः सेवंते । यडुक्तं । " हिंसामूलममेध्यमास्पदमलं ध्यानस्य रौद्रस्य य,द्बीनत्सं रुधिराविलं कृमिगृहं डुर्गंधिपूयादिकं ॥ शुक्रासृक्प्रनवं नितांतमलिनं सद्भिः सदा निंदितं, कोनुंक्ते नरकाय राक्षससमोमांसं तदात्मडुहः ॥ १ ॥ तथा । मां स नक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहं ॥ एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदंति मनीषिणः ॥ २ ॥ योऽत्ति यस्य च तन्मांसमुनयोः पश्यतांतरं ॥ एकस्य क्षणिका तृप्तिरन्यः प्राणैर्वियुज्यते" ॥३॥ तदेवं दोषं मत्वा कुशला मांसानिलाषे मनोन कुर्वंति वागप्येषा न मांसनक्षणे दोषइत्यादिका उक्ता सती मिथ्या निवृत्तिस्तु महागुणाय । यडुक्तं । "श्रुत्वा डुःखपरंपरामतिघृणां मांसाशिनां डुर्गतिं, ये कुर्वंति शुनोदयेन विरतिं मांसादनस्यादरात् ॥ तद्दीर्घायुरदूषितं तदरुजासंनाव्य यास्यंति ते, मर्त्येषूद्भटनोगधर्ममतिषु स्वर्गापवर्गेषु वा" इति ॥ ३ए ॥ सर्वेषां जीवानां दयार्थाय सावद्यदोषं परिवर्जयंतः तद्बंकिनोदोषशंकिनः ऋषयोज्ञातपुत्रीयाः श्री वीरशिष्याउद्दिष्टनक्तं परिवर्जयंति ॥ ४० ॥

॥ टीका—इत्येतच्च तेषां महतेऽनर्थायेति दर्शयति (जेयावीत्यादि) येचापि रसगौरवगृद्धाः शाक्योपदेशवर्त्तिनस्तथाप्रकारं स्थूलोरच्रंसंस्कृतं घृतलवणमरिचादिसंस्कृतं पिशितं नुंजतेऽश्नंति तेऽनार्याः पापं कल्मषमजानानिर्विवेकिनः सेवंते आददते । तथा चोक्तं । "हिंसामूलममेध्यमास्पदमलं ध्यानस्य रौद्रस्य य,द्बीनत्सं रुधिराविलं कृमिगृहं डुर्गंधिपूयादिकं ॥ शुक्रासृक्प्रनवं नितांतमलिनं सद्भिः सदा निंदितं, कोनुंक्ते नरकाय राक्षससमोमांसं तदात्मद्रुहः ॥ १ ॥ अपिच । मां स नक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहं । एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदंति मनीषिणः ॥ २ ॥ तथा । योऽत्ति यस्य च तन्मांसमुनयोः

पश्यतांतरं । एकस्य क्षणिका तृप्तिरन्यः प्राणैर्वियुज्यते" ॥ ३ ॥ तदेवं महादोषं मांसादन मिति मत्वा यद्विधेयं तद्दर्शयति। एतदेवंभूतं मांसादनाभिलाषरूपं मनोंतःकरणं कुश लानिपुणामांसाशित्वविपाकवेदिनस्तन्निवृत्तिगुणाभिज्ञाश्च न कुर्वंति तदभिलाषादात्म नोनिवर्त्तयंतीत्यर्थः। आस्तां तावद्भक्षणं वागप्येषा यथा मांसभक्षणेऽदोषइत्यादिका भारत्य भिहितोक्ता मिथ्या। तुशब्दान्मनोपि तदनुमत्यादौ न विधेयमिति तन्निवृत्तौ चेहैवानुपमा श्लाघाऽमुत्र च स्वर्गापवर्गगमनमिति । तथाचोक्तं । "श्रुत्वा दुःखपरंपरामतिघृणां मां साशिनां दुर्गतिं, ये कुर्वंति शुभोदयेन विरतिं मांसादनस्यादरात् । तद्दीर्घायुरदूषितं गदरुजा संभाव्य यास्यंति ते, मर्त्येषूद्भटभोगधर्ममतिषु स्वर्गापवर्गेषु चेत्यादि" ॥ ३९ ॥ न केवलं मां सादनमेव परिहार्यमन्यदपि मुमुक्षूणां परिहर्तव्यमिति दर्शयितुमाह । (सव्वेसिमित्यादि) सर्वेषां जीवानां प्राणार्थिनां न केवलं पंचेंद्रियाणामेवेति सर्वग्रहणं दयार्थतया दयानिमि त्तं सावद्यमारंभं महानयं दोषइत्येवं मत्वा तत्परिवर्जयंतः साधवस्तच्छंकिनोदोषशंकिन ऋषयोमहामुनयोज्ञातपुत्रीयाः श्रीमन्महावीरवर्द्धमानशिष्याः उद्दिष्टं दानाय परिकल्पि तं यद्भक्तपानादिकं तत्परिवर्जयंति ॥ ४० ॥

भूयाभिसंकाए दुगंछमाणा, सव्वेसिपाणाण निहाय दंडं ॥ तम्हा
ण भुंजंति तहप्पगारं, एसोणुधम्मो इह संजयाणं ॥ ४१ ॥ निग्गं
थधम्मंमि इमं समाहिं, अस्सिं सुठिच्चा अणिहे चरेज्जा ॥ बुद्धे
मुणी सीलगुणोववेए, अच्चत्थते पाउणती सिलोगं ॥ ४२ ॥

अर्थ—वली पण साधुनो आचार कहेछे. (भूयाभिसंकाएदुगंछमाणा के०) भूत जे प्राणी तेना मर्द्दननी शंकायें सावद्यानुष्ठानने दुगंछता निंदता, तथा (सव्वेसिपाणाण निहायदंडं के०) सर्व प्राणीनो दंड एटले विनाश, तेनें निहाय एटले छांमीनें त्याग करी नें सम्यक् आचारें प्रवर्त्तता एवा साधु (तम्हाणभुजंतितहप्पगारं के०) ते कारणें त था प्रकारना एटले आधाकर्मादिक दोषें दूषित एवा ते आहारनें ण भुजंति एटले न ज मे, न भोगवे. (एसोणुधम्मोइहसंजयाणं के०) आ जगत्मांहे यतिनो धर्म, ते अ णुधर्म, एटले श्री तीर्थंकरनी पछवाडे जाणवो. जेम श्री तीर्थंकरें निर्दोष आहार ग्रह णादिक धर्म आचर्यो, तेम तेनें अनुसारें साधु पण, एहिज धर्म आचरे. इत्यर्थः ॥ ४१ ॥ व ली पण साधुनो आचार कहेछे. (निग्गंथधम्मंमिइमंसमाहिं के०) नथी जेनें विषे बा ह्य अनें अभ्यंतर ग्रंथि एवो जे धर्म, तेने विषे ए पुर्वोक्त जे समाधि एटले सुजता अहारनुं ले वुं, (अस्सिंसुठिच्चाअणिहेचरेज्जा के०) इत्यादिकनें पामीनें सम्यक् अनुष्ठानरूप समाधिनें

विषे स्थित एटले प्रवर्त्तमान एवो साधु अणिहे एटले मायारहित थको अथवा, स्नेहरहित थको, संयमानुष्ठाननें आचरे, एटले पाले. (बुद्धेमुणीसीलगुणोववेए के०) बुद्ध एटले तत्त्वनो जाण, मुणी एटले त्रिकालवेदी, त्रण कालनो जाण, सील एटले आचार ते उपशमादिक तथा गुण, एटले मूलोत्तर गुणरूप तेणें करी उपपेत एटले सहित, एवो साधु, (अवबतेपाउणतीसिलोगं के०) अत्यर्थ एटले सर्वगुणसंपन्न ते, लोक एटले आ लोकनें विपे, अनें लोकोत्तरनें विषे, संतोषकारक श्लाघानें पाउणत्ती एटले पामे॥ ४ २॥

॥ दीपिका—नूतानां प्राणिनां हिंसानिशंकया सावद्यव्यापारं जुगुप्समानः परिहरन् सर्वेषां प्राणिनां दंमं निहाय त्यक्त्वा साधवस्तथाप्रकारमशुद्धाहारं न जुंजते तस्मादेषो नुधर्मः संयतानामिह जैनमते तीर्थकराचरणादनुपश्चाच्चर्यतइत्यनुधर्मइति ॥ ४१ ॥ निर्ग्रंथधर्मे साधुमार्गे स्थितइमंपूर्वोक्तं समाधिं प्राप्तोऽस्मिन्समाधौ सुष्टु स्थित्वाऽनिहोनि र्मायः सन् चरेत्संयमे बुद्धोज्ञाततत्वोमुनिः शीलेन क्रोधोपमेन गुणैश्च मूलोत्तरनूतैरुपेतो युक्तोत्यर्थं तां सर्वातिशायिनीं श्लाघां प्राप्नोति । यडुक्तं । " राजानं तृणतुल्यमेव मनुते श क्रेपि नैवादरो, वित्तोपार्जनरक्षणव्ययकृताः प्राप्नोति नो वेदनाः ॥ संसारांतरवर्त्यपीह ल नते शं मुक्तवन्निर्नयः, संतोषात्पुरुषोमृतत्वमचिराद्यायात्सुरेंड्रार्चित " इति ॥ ४२ ॥

॥ टीका—किंच । (नूयानिसंकाएइत्यादि) नूतानां जीवानां उपमर्दशंकया सावद्यम नुष्ठानं जुगुप्समानापरिहरंतस्तथा सर्वेषां प्राणिनां दंमयतीति दंमः समुपतापस्तं निहाय परित्यज्य सम्यगुब्रिताः सत्साधवोयतस्ततोन जुंजते तथाप्रकारमाहारमशुद्धजातीयमे षोनुधर्मइहास्मिन् प्रवचने संयतानां यतीनां तीर्थकराचरणादनुपश्चाच्चर्यतइत्यनुना वि शेष्यते। यदि चाणुरिति स्तोकेनाप्यतिचारेण वा बाध्यते शिरीषपुष्पमिव सुकुमारइत्यतो ऽणुता विशेष्यतइति ॥ ४१ ॥ किंचान्यत् ॥ (णिग्गंथधम्ममित्यादि) नास्मिन्मौनींड धर्मे बाह्याभ्यंतररूपोग्रंथोस्यास्तीति निर्ग्रंथः सचासौ धर्मश्च निर्ग्रंथधर्मः सच श्रुतचारित्रा ख्यः क्षांत्यादिकोवा सर्वज्ञोक्तस्तस्मिन्नेवंनूते धर्मे व्यवस्थितइमं पूर्वोक्तसमाधिमनुप्राप्तो ऽस्मिंश्चाशुद्धाहारपरिहाररूपे समाधौ सुष्टु अतिशयेन स्थित्वाऽनिहोऽमायोऽथवा निहन्यत इति निहोन निहोऽनिहः परीषहैरपीडितो यदिवा स्निहबंधने स्निहइति स्नेहरूपबंधनर हितः संयममनुष्ठानं चरेत् तथा बुद्धोऽवगततत्वोमुनिः कालत्रयवेदी शीलेन क्रोधाद्युपशम रूपेण गुणैश्च मूलोत्तरगुणनूतैरुपेतोयुक्तइत्येवं गुणकलितोऽत्यर्थंतां सर्वगुणातिशायिनीं सर्व द्वंद्वोपरमरूपां संतोषात्मिकां श्लाघां प्रशंसां लोके लोकोत्तरेवाऽऽप्नोति। तथा चोक्तं। "राजा नं तृणतुल्यमेव मनुते शक्रेपि नैवादरो, वित्तोपार्जनरक्षणव्ययकृताः प्राप्नोति नो वेदनाः॥

संसारांतरवर्त्यपीह लजते शं मुक्तवन्निर्नयः, संतोषात्पुरुषोमृतत्वमचिराद्यायात्सुरेंद्रार्चित " इत्यादि ॥ ४२ ॥

सिणायगाणं तु डुवे सहस्से, जे नोयए णितिए माहणाणं ॥ ते पुन्नखंधे सुमहज्जणित्ता, नवंति देवा इति वेयवाउ ॥४३॥ सिणायगाणं तु डुवे सहस्से, जे नोयए णितिए कुलालयाणं॥ से गछंति लोलुवसंपगाढे, तिव्वाभितावी णरगाभिसेवी ॥ ४४ ॥

अर्थ—ए रीतें आर्द्रकुमार गोशालक तथा बौधमतिउनें परास्त करीनें आगल चाल्यो तेवारें, वचें ब्राह्मण मल्या, ते ब्राह्मण बोल्या के,अहो आर्द्रकुमार! तें रूडुं कर्युं के, जे ए पूर्वोक्त बेहु मत वेदबाह्य हता, तेनुं तें निराकरण कर्युं, तो हवे ए जैनमत पण वेद बाह्यछे. एवुं जाणीनें, तमारा सरखानें आश्रय करवा योग्य नथी केमके,तुं क्षत्री छो अनें क्षत्रीनें सर्व वर्णोत्तम एवा ब्रह्मणनेंज सेववा योग्यछे, परंतु शूद्र सेववा नहीं. ए कारण माटें वेदोक्त विधियें यज्ञादिकमार्गेनी तमारे सेवा करवी. इत्यादिक ते ब्राह्मणो पोतानो मार्ग देखाडेछे.(सिणायगाणंतुडुवेसहस्से के०)स्नातक एटले षट्कर्मने विषे निरत, अनें वेदना जाणनार, पोताना आचारनें विषे तत्पर,नित्य स्नातक, ब्रह्मचारी, एवा बेसहस्र(माहणाणं के०) ब्राह्मणनें(जेनोयएणितिए के०)जे पुरुष नित्य जमाडे, एटले तेनें मनोवांछित आहार आपे, (तेपुन्नखंधेसुमहज्जणित्ता के०) ते पुरुष घणो महोटो पुण्यनो स्कंध उपार्जन करीनें, (नवंतिदेवाइतिवेयवाउ के०) देवता थाय. एवुं अमारा वेदनुं वाक्यछे, एम जाणीनें ए वेदोक्त मार्ग आदरवो ॥४३॥ हवे आर्द्रकुमार उत्तर कहेछे के, अहो ब्राह्मणो! (सिणायगाणंतुडुवेसहस्से के०) स्नातकनां बे सहस्रनें (जेनोयएणितिएकुलालयाणं के०) जे दातार नित्य जमाडे. ते स्नातक केवाछे तोके, कुलालग एटले मार्जार ते सरखा ब्राह्मण पण जाणवा,कारण के, ए पण सावद्याहार वांछता, सर्वकाल घर घरनें विषे भ्रमण करे एवा, एक निंद्य आजीविकाना करनार, ते कुपात्रनें दान देवाथी,(सेगछंति लोलुवसंपगाढे के०)ते लोलपी ब्राह्मण सहित एवो दातापण गछति एटले डुर्गतियें जाय, डुर्गतिमां कया स्थानकें जाय ? तोके, (तिव्वाभितावीणरगाभिसेवी के०) तीव्रवेदना सहन करनार, एतावता तेत्रीश सागरोपम पर्यंत पूर्ण आयुष्यें ते बेहु जण नरकना स्थानकनें विषे नारकी थाय ॥ ४४ ॥

॥ दीपिका—एवं गोशालकमते बौद्धमते च निरस्ते द्विजातयः प्राहुः नो आर्द्रकुमार! शोभनं कृतं यदेते वेदबाह्ये द्वे अपि मते क्षिप्ते अथ जैनमतमपि वेदबाह्यं ततोनादरणयोग्यं

तस्माद्ब्राह्मणसेवैव युक्तेत्याह। स्नातकानां षट्कर्मरतानां विप्राणां सहस्रद्वयं ये नोजयंति नित्यं ते पुण्यसंबंधं सुमहांतमुर्ज्य देवाः स्युरिति वेदवादः ॥ ४३ ॥ आर्द्रकमुनिरेत दूषयन्नाह। (सिणायेति)। स्नातकानां सहस्रद्वयं ये नोजयंति। किंनूतानां कुलानि गृहाणि मांसार्थिनोयेऽटंतिं ते कुलाटामार्जाराः कुलाटाइव कुलाटास्तेषां सताहग्ब्राह्मण नोजनकोबहुवेदनासु गतिषु याति। किंनूतः लोलुपैरामिषगृद्धैः संप्रगाढोव्याप्तः तीव्रोऽसह्योनितापोयस्य एवंनूतः सन्नरकानिसेवी स्यात् ॥ ४४ ॥

॥ टीका—तदेवमार्द्रककुमारं निराकृतगोशालकाजीवकबौद्धमतमभिसमीक्ष्य सांप्रतं द्विजातयः प्रोचुः। तद्यथा नो आर्द्रककुमार! शोननमकारि नवता यदेते वेदबाह्ये द्वे अपि मते निरस्ते तत्सांप्रतमप्यार्हतं वेदबाह्यमेवातस्तदपि नाश्रयणार्हं नवद्विधानां तथाहि नवान् क्षत्रियवरः क्षत्रियाणां च सर्ववर्णोत्तमाब्राह्मणाएवोपास्यान शूड़ाअतोयागादिविधिना ब्राह्मणसेवैव युक्तिमतीत्येतत्प्रतिपादनायाह। (सिणायगाणंतुइत्यादि) तुशब्दो विशेषणार्थः। षट्कर्माभिरतावेदाध्यापकाः शौचाचारपरतया नित्यं स्नायिनोब्रह्मचारिणः स्नातकास्तेषां सहस्रद्वयं नित्यं ये नोजयेयुः कामिकाहारेण ते समुपार्जितपुण्यस्कंधाः संतोदेवाः स्वर्गनिवासिनोनवंतीत्येवंनूतोवेदवादइति ॥ ४३ ॥ अधुनार्द्रककुमारएतद्दूषयितुमाह। (सिणायगाणंतुइत्यादि) स्नातकानां सहस्रद्वयमपि नित्यं येनोजयंति। किंनूतानां कुलानि गृहाण्यामिषान्वेषणार्थिनोनित्यं येऽटंति तेकुलाटामार्जाराः कुलाटाइव कुलाटाब्राह्मणाः। यदिवा कुलानि क्षत्रियादिगृहाणि तानि नित्यं पिंमपातान्वेषिणां परतर्कुकाणामालयोयेषां ते कुलालयास्ते निंद्यजीविकोपगतानामेवंनूतानां योसहस्रद्वयं नोजयेत्सः सत्पात्रनिक्षिप्तदानोगच्छति बहुवेदनासु गतिषु। किंनूतः सन् लोलुपैरामिषपरैः गृद्धैरससातागौरवाद्युपपन्नैः जिव्हेंद्रियवशगैः संप्रगाढोव्याप्तोयदिवा किंनूते नरके याति लोलुपैरामिषगृध्नुभिरसुमद्भिर्व्याप्तोयोनरकस्तस्मिन्निति। किंनूतश्चासौ दाता नरकाभिसेवी नवति तद्दर्शयति। तीव्रोऽसह्योयोऽभितापः क्रकचपाटनकुंनीपाकतप्तत्रपुपानशाल्मल्यालिंगनादिरूपः सविद्यते यस्यासौ तीव्राभितापीत्येवंनूतवेदनाभितप्तस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि यावदप्रतिष्ठाननरकाधिवासी नवतीति ॥ ४४ ॥

दयावरं धम्मडुगंछमाणा, वहावहं धम्मपसंसमाणा॥ एगं
पि जे नोययती असीलं, णियोणिसं जाति कुउ सुरेहिं ॥ ४५ ॥
डुहर्जवि धम्मं मिसमुठियामो, अस्सिं सुठिच्चा तह एसकालं ॥
आयारसीले बुइए हनाणी, ण संपरायंमि विसेसमछि ॥ ४६ ॥

अर्थ–वली आर्द्रकुमार कहेछे के, (दयावरंधम्मदुगंछमाणा के०) जेमां दया प्रधा नछे एवा धर्मनें निंदता, (वहावहंधम्मपसंसमाणा के०) तथा हिंसारूप धर्मनी प्रशं सा करता, (असीलं के०) आचार रहित एवा, (एगंपि के०) एकनें पण (जेजो ययती के०) जे कोइ नृप राजा अथवा बीजो कोइ मूढमति धार्मिक पुरुष, पात्रनी बुद्धियें करी जमाडे, तो (णीयोणिसंजातिकुंउसुरेहिं के०) ते नृप राजा, अथवा बीजो कोइ मूढमति पुरुष होय, ते निशा एटले सदैव कृष्णांधकार रात्रीसमान काल वर्त्तेछे जेमां एवी नरकभूमिनेंविषे नरकमांहे जाय. ए वचन सत्य करी जाणवुं. अनें तमें कह्युं जे देवता थाय, ते वात मृषाछे तेवा पुरुषनें असुरनें विषे पण गति न जा णवी, तो वैमानिक देवता क्यांथी थाय ! ॥ ४५ ॥ हवे आर्द्रकुमार ब्राह्मणोनो मत परास्त करीनें आगल चाल्यो, एटले एक दंमिया सांख्य मति मल्या, ते एम कहेछे के, अ हो आर्द्रकुमार ! तें रूडूं कीधुं के, जे ए ब्राह्मणो सर्व आरंभनें विषे प्रवर्त्तता गृहस्थ छ ता, पोतामां गुरुपणुं मानता, एवा ए राक्षस सरखा ब्राह्मणनुं निराकारण कर्युं? सांप्रत अमारा सिद्धांतसाथें तमारासिद्धांतनो कांइ भेद नथी, अमारो सिद्धांत पंचविंशति तत्व रूपछे. हवे ते पण कहुंबुं सांभल, हैयानेविषे धारण कर. (डुहउविधम्मंमिसमुछियामो के०)जे अमारो धर्म, अने तमारो धर्म, ए बेहु सरखाज जाणियें छैयें. कारण के, तमारे पण जीवनें अस्तिभावें पुण्य, पाप, बंध, अनें मोक्षनो सद्भावछे,अनें अमारे पण एमज छे. तमारे पण पांच महा व्रतछे, अनें अमारे पण अहिंसादिक पांच यमछे,तथा इंद्रिय अनें नोइंद्रियना नियमो तो आपण बेहुनें सरखाजछे तेमाटें बेहु धर्मनें विषे अमनें अने तमने प्रवर्त्ततां सम्यक् प्रकारज जाणवो. अनें(असिंसुठिच्चा के०) एहिज धर्मनें विषे रहिनें, (तहएसकालं के०) तथा अतीतकालें, वर्त्तमानकालें, अनें आगमिक कालें, जे पूर्वो क्त अंगीकार करेला धर्मना प्रतिपालनहार आपणे छैयें. तेवा बीजा कोइ नथी.(आया रसीलेवुइएहनाणी के०) तथा आपणो आचार जे यम नियमलक्षण, ते प्रधान शील कह्योछे, परंतु आजीविकानुं कारण आपणनें कोइ पण नथी? तथा वली आपण बेहुनें ज्ञान, मोक्षनुं अंग कह्युंछे. (णसंपरायंमिविसेसमत्थि के०)तथा कर्मैं करीनें भ्रमण करेछे प्राणी जेमां ते संपराय कहियें, एवो संपराय जे, संसार, ते जेम तमारे नित्यछे, तेम अमारे पण नित्यजछे. तेमाटें ए सिद्धांतमां अमारे तमारे विशेष कांइ नथी ॥ ४६ ॥

॥ दीपिका–दयया वरं प्रधानं धर्मं जुगुप्समानोनिंदन् वधावहं हिंसाकरं धर्मं प्रशं सन्नेकमपि अशीलं निर्व्रतं षड्जीवोपमर्द्देन योभोजयेत्किं पुनर्बहून् नृपोराजाऽन्योवा यः क श्चिन्मूढः सवराको निशेव नित्यांधकारत्वान्निशा नरकभूमिस्तां याति कुतस्तस्यासुरेष्वधम

देवेष्वपि प्राप्तिरिति । अथार्द्रकं मुनिमेकदंमिनः सांख्याः प्राहुः नो आर्द्रक! वरं कृतं यदेते सर्वारंनप्रवृत्तामांसाशिनोधिग्जातयोनिरस्ताः । इदानीमस्मत्सिद्धांतं शृणु ॥ ४५ ॥ यो यमस्मद्धर्मः यश्च त्वदीयोजैनः सउनयरूपोपि कथंचित्तुल्यः । पंचयमाअस्माकं नवतां तएव महाव्रतानि पुण्यपापबंधमोक्षसद्भावोस्माकं नवतां च तदेवमुनयस्मिन्नपि धर्मे समु त्थितायूयं वयंच पूर्वस्मिन्काले वर्त्तमाने एष्येच गृहीतप्रतिज्ञानिर्वाहकाः आचारप्रधानं शीलमुदितं कथितं अथ ज्ञानं मोक्षांगमुक्तं द्वाभ्यां आवयोः संपराये संसारे च न विशेषोस्ति ॥ ४६ ॥

॥ टीका—(दयावरमित्यादि) दया प्राणिषु कृपा तया वरः प्रधानोयोधर्मस्तमेवं ध र्मं जुगुप्समानोनिंदंस्तथा वधं प्राण्युपमर्द्दमावहतीति वधावहस्तं तथानूतं धर्मं प्रशंसन्स्तु वन् एकमप्यशीलं निर्व्रतं षड्जीवकायोपमर्द्देन योनोजयेत् किं पुनः प्रनूतान् नृपोराज न्योवा यः कश्चिन्मूढमतिर्धार्मिकं आत्मानं मन्यमानः सवराकोनिशेव नित्यांधकारत्वान्नि शारकनूमिस्तां याति कुतस्तस्यासुरेष्वप्यधमदेवेष्वपि प्राप्तिरिति । तथा कर्मवशादसुमतां विचित्रजातिगमनाज्जातेरशाश्वतत्वमतोन जातिमदोविधेयइति । यदपि कैश्चिडुच्यते य था ब्राह्मणाब्रह्मणोमुखाद्विनिर्गताबाहुन्यां क्षत्रियाऊरुन्यां वैश्याः पद्भ्यांशूद्राइत्येत दप्यप्रमाणत्वादति फल्गुप्रायं तदन्युपगमे च न विशेषोवर्णानां स्यादेकस्मात्प्रसूतेर्बृधशा खाप्रतिशाखाग्रनूतपनसोडुंबरादिफलवद्ब्रह्मणोवा मुखादेरवयवानां चातुर्वर्ण्यावाप्तिः स्यान्न चैतदिष्यते नवद्भिस्तथा यदि ब्राह्मणादीनां ब्रह्मणोमुखादेरुद्भवः सांप्रतं किं न जायते ? अ थ युगादावेतदित्येवं सति दृष्टहानिरदृष्टकल्पना स्यादिति । तथा यदि कैश्चिदन्यधायि सर्व ज्ञनिक्षेपावसरे तद्यथा सर्वज्ञरहितोतीतः कालः कालत्वाद्वर्तमानकालवदेवंच सत्येतदपि शक्यते वक्तुं यथा नातीतः कालोब्रह्ममुखादिविनिर्गतचातुर्वर्ण्यसमन्वितः कालत्वाद्वर्त्तमा नकालवद्भवति च विशेषे पक्षीकृते सामान्यहेतुरित्यतः प्रतिज्ञार्थैकदेशा सिद्धता नाशंकनी येति। जातेश्चानित्यत्वं युष्मत्सिद्धांतएवानिहितं। तद्यथा शृगालोवा एषजायते यः सपुरी षोदह्यतइत्यादिना । तथा सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥ त्र्यहेन शूद्रीनवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयीत्यादि लोके चावश्यंनावी जातिपातः । यतउक्तं । “ कायिकैः कर्मणां दोषैर्याति स्थावरतां नरः ॥ वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरंत्यजातितां” ॥१॥ इत्यादिगुणैर प्येवंविधैर्न ब्राह्मणत्वं युज्यते। तद्यथा । “षट्शतानि नियुज्यंते पशूनां मध्यमेहनि । अ श्वमेधस्य वचनान्यूनानि पशुनिस्त्रिनिरित्यादि वेदोक्तत्वान्नायं दोषइति चेन्नन्विदमनिहित मेव न हिंस्यात्सर्वनूतानीत्यतः पूर्वोत्तरविरोधस्तथा ।” आततायिनमायांतमपि वेदांतगं रणे। जिघांसंतं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा नवेत् ॥ तथा शूद्रं हत्वा प्राणायामं जपेत्

अपहसितं वा कुर्यात् यत्किंचिद्वा दद्यात् तथा नास्थिजंतूनां शकटनरं मारयित्वा ब्राह्मणं नोजयेदित्येवमादिका देशना विद्वज्ज्ञानमनांसि न रंजयतीत्यतोऽत्यर्थमसमंजसमिव लक्ष्यते युष्मद्दर्शनमिति । तदेवमार्द्रककुमारं निराकृतब्राह्मणविवादं नगवदंतिकं गच्छंतं दृष्ट्वा एकदंमिनांतराले एवोचुस्तद्यथा नो आर्द्रककुमार! शोजनं कृतं नवता यदेते सर्वारंनप्रवृत्ताग्रहस्थाः शब्दादिविषयपरायणाः पिशिताशनेन राक्षसकल्पाद्विजातयोनिराकृतास्तत्सांप्रतमस्मत्सिद्धांतं शृणु श्रुत्वाचावधारय । तद्यथा सत्वरजस्तमसां साम्यावस्थाप्रकृतिः प्रकृतेर्महांस्ततोहंकारस्तस्माज्जणश्च षोडशकस्तस्मादपि षोडशकात्पंच तन्मात्राणि तेन्यः पंच नूतानि तथा चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमित्येतत्त्वार्हतैरप्याश्रितमतः पंचविंशतितत्वपरिज्ञानादेव मोक्षावाप्तिरित्यतोऽस्मत्सिद्धांतएव श्रेयान्नापरइति ॥ ४५ ॥ तथा न युष्मत्सिद्धांतोतिदूरेण निद्यतइत्येतद्दर्शयितुमाह । (कुहउवीत्यादि) योयस्माद्धर्मोनिवदीयश्चार्हतः सनयरूपोपि कथंचित्समानस्तथाहि युष्माकमपि जीवास्तित्वे सति पुण्यपापवंधमोक्षसद्भावोन लोकायतिकानामिव तदनावे प्रवृत्तिर्नापि बौद्धानामिव सर्वाधारनूतस्यांतरात्मनएवानावस्तथास्माकमपि पंचयमाअहिंसादयोनवतां च तएव पंचमहाव्रतरूपास्तथेंद्रियनोइंद्रियनियमोप्यावयोस्तुल्यएव तदेवमुनयस्मिन्नपि धर्मे बहुसमाने सम्यगुज्ञानोत्थितायूयं वयंच तस्माद्धर्मे सुष्टु स्थिताः पूर्वस्मिन् काले वर्तमाने एष्येच यथा गृहीतप्रतिज्ञानिर्वोढारोन पुनरन्ये यथाव्रतेश्वरयागविधानेन प्रव्रज्यां मुक्तवंतो मुंचंति मोक्ष्यंति चेति तथाचारप्रधानं शीलमुक्तं यमनियमलक्षणं न फल्गुवल्ककुहकाजीवनरूपमथानंतरं ज्ञानंच मोक्षांगतयानिर्दिष्टं तच्च श्रुतज्ञानं केवलाख्यंच यथा स्वमावयोदर्शने प्रसिद्धं तथा संपर्य्यंते स्वकर्मनिर्भ्राम्यंते प्राणिनोयस्मिन्त्ससंपरायः संसारस्तस्मिंश्चावयोर्न विशेषोस्ति । तथाहि । यथा नवतां कारणे कार्यं नैकांतेनासडुत्पद्यते अस्माकमपि तथैव द्रव्यात्मतया नित्यत्वं नवद्भिरप्याश्रितमेव तथोत्पादविनाशावपि युष्मदनिप्रेतावाविर्नावतिरोनावाश्रयादस्माकमपीति ॥ ४६ ॥

अव्वत्तरूवं पुरिसं महंतं, सणातणं अक्खयमव्वयं च ॥ सव्वे
सु नूतेसु विसव्वतोसे, चंदोवतारार्हिं समत्तरूवे ॥ ४७ ॥ एवं
ण मिज्जंति ण संसरंती, ण माहणाखत्तिय वेसयस्सा ॥ कीडाय
पक्कीय सरीसिवाय नराय सव्वे तह देवलोए ॥ ४८ ॥

अर्थ—वली एक दंमिज कहेले. (पुरिसं के०) पुरुष शब्दें जीव तेनें जे रीतें तमें जाणोगे, ते रीतें अमें पण जाणियें बैयें. (अव्वत्तरूवं के०) आत्मा अव्यक्तरूपले, कर चरणादिक जे अवयव तेणें करी लख्योनजाय ते कारण माटें अव्यक्तरूपले

तथा (महंतं के०) महांत एटले समस्तलोकमां व्यापी रह्योछे, तथा (सणातणं के०) सनातन एटले शाश्वतो छे, यद्यपि नाना प्रकारनी गति करेछे तथापि, चैतन्य लक्षण जे आत्मस्वरूपछे ते क्यांहिं पण जतुं नथी, तथा (अरकय के०) अक्षय एटले कोइ पण प्रदेशनो खंम करी न शकीयें तथा (मव्वयंच के०) अव्यय एटले अनंतकालें कोइ एक प्रदेशनो पण व्यय न थाय एटले विछेद न थाय. किंबहुना. (सवेसुनूतेसुविसव्वतोसे के०) सर्वनूतनें विषे, शरीर शरीरप्रत्यें ए आत्मा एकज व्यापी रह्योछे,ते उपर दृष्टांत देखाडेछे. (चंदोवताराहिंसमत्तरूवे के०) जेम चंद्रमा अश्विन्यादिक नक्षत्रें करी, समस्तरूप थको संबंध पामे, तेम ए आत्मा, शरीर शरीर प्रत्यें संपूर्ण संबंध पामे. यडुक्तं " एकएव हि नूतात्मा नूते नूते व्यवस्थितः ॥ एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचंद्रवत् " इत्यादि ॥ ४७ ॥ हवे तेप्रत्यें आर्द्रकुमार कहेछे. (एवंणमिक्षंतिणसंसरंती के०) ए रीतें जेम तमारे दर्शनें एकांतवादें आत्मा एक, नित्य, अविकारी, एम जे कहियें, ते संनवे नहीं, एम कहियें तो सर्व पदार्थ नित्य ठरेछे, तेम छतां तो बंध मोक्षनो पण सद्भाव क्यांथी थाय? अनें बंधनें अनावें चतुर्गतिक संसारनो पण अनाव, अनें मोक्षनो पण अनाव थाय. अनें मोक्षनें अनावें तमे जे यम नियमादिक व्रतनुं ग्रहण कह्यो छो ते पण निरर्थक थशे, ए कारण माटें आत्मा सर्व व्यापी एकजछे. ए जे तमारुं बोलवुंछे ते अयुक्तछे, एम कहेतां तो नरक, तिर्यंच, मनुष्य, अनें देवता, तथा बाल, कुमार, सुनग, डुर्नग, धनाढ्य,दरिद्री, इत्यादिक नेदें जूदा जूदा पदार्थो न जाणियें ? तथा पोताना करेला कर्मे करी प्रेर्या जीव, नाना प्रकारनी गतिनें विषे परिभ्रमण पण न करे ? (नमाहणाखत्तियवेसयस्साकीडायपरकीयसरीसिवायनरायसवेतहदेवलोए के०)तथा आत्मानें सर्वव्यापक पणुंज कहेवा थकी एकत्व नावेंज आत्मा थयो, तेवारें ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्य, अनें शूद्र, तथा कीटक, पक्षी, तथा सरीसिव एटले सर्प्प, तथा नर एटले मनुष्य, तथा सर्व देवलोक इत्यादिक, नाना प्रकारनी गतिना गामी जीव न होय? ए कारण माटें आत्मा सर्व व्यापक नथी, तथा आत्मा एक पण नथी, ते माटें तमारो आगम, सर्वज्ञनाषित नथी, अनें सर्वज्ञनाषित विना याथातथ्य न होय ॥ ४८ ॥

॥दीपिका–नवंतः पुरुषजीवं स्वीकृतवंतस्तथा वयमपि। किंनूतं? अव्यक्तरूपं महांतं व्यापकं सनातनं नित्यं अक्षतं प्रदेशानां खंमशः कर्तुमशक्यत्वात् अव्ययं अनंतकालेनापि एकप्रदेशस्यापि व्ययानावात्। तथा सर्वेषु नूतेषु शरीरवत्सु प्रतिशरीरं सर्वतः सामस्त्यादसावात्मा नवति। यथा चंद्रस्तारानिः संपूर्णः समस्तरूपः संबध्यते एवं जीवोपि शरीरैः संपूर्णः संबध्यते अयमेव श्लोकोऽद्वैतवादिवेदांतिमते व्याख्येयः। न वरं सर्वनूतेषु सर्वतः सर्वा

त्मतयाऽसौ स्थितः यथा तारास्वेकएव चंद्रः तथात्मापि सर्वत्र संबध्यतइति ॥४७॥ अ
थार्द्रकमुनिराह । आत्मनोऽविकारित्वे आत्माऽद्वैते वा स्वीकृते दुर्भगसुन्नगादिन्नेदेन जीवा
न मीयेरन्न ज्ञायंते स्वकर्मप्रेरितानरकादिगतिषु न संसरंति सर्वव्यापित्वादेकत्वाद्वा तथा
न ब्राह्मणान क्षत्रियान वैश्यान प्रेष्यान शूद्रानापि कीटपक्षिसरीसृपाश्च न्नवंति नरा
श्च सर्वेपि देवलोकाश्चेत्येवं गतिन्नेदोन स्यात् ? ॥ ४८ ॥

॥ टीका–पुनरपि तथैवेकदंमिनः संसारिकजीवपदार्थसाम्यापादनायाहुः । (अव्वत्तरूव मित्यादि) पुरि शयनात्पुरुषोजीवस्तं यथा न्नवंतोन्युपगतवंतस्तथा वयमपि तमेव विशि नष्मि। अमूर्त्तत्वादव्यक्तं रूपमस्यासावव्यक्तरूपस्तथा करचरणशिरोग्रीवाद्यवयवतया स्वतो वस्थानात्तथा महांतं लोकव्यापिनं तथा सनातनं शाश्वतं द्रव्यार्थतया नित्यं नानाविधग तिसंन्नवेपि चैतन्यलक्षणात्मस्वरूपस्याप्रच्युतेस्तथा क्षयं केनचित्प्रदेशानां खंमशः कर्तुमश क्यत्वात्तथाऽव्ययमनंतेनापि कालेनैकस्यापि तत्प्रदेशस्य व्ययान्नावात्तथा सर्वेष्वपि न्नूतेषु कायाकारपरिणतेषु प्रतिशरीरं सर्वतः सामस्त्यान्निरंशत्वादसावात्मा न्नवति कइव ? चं द्रइव शशीव तारान्निरश्विन्यादिन्निर्नक्षत्रैर्यथा समस्तरूपः संपूर्णः संबंधमुपयात्येवम सावपि आत्मा प्रत्येकं शरीरैः सह संपूर्णः संबंधमुपयाति तदेवमेकदंमिन्निर्दर्शन साम्यापादनेन सामवादपूर्वकं स्वदर्शनारोपणार्थमार्द्रककुमारोन्निहितोयत्रैतानि संपूर्णा नि निरुपचरितानि पूर्वोक्तानि विशेषणानि धर्मसंसारयोर्विद्यंते सएव पक्षः सश्रुतिकेन स माश्रयितव्योन्नवति । एतानि चास्मदीयएव दर्शने यथोक्तानि संति नार्हतेऽतोन्नवताप्य स्मद्दर्शनमेवान्युपगंतव्यमिति ॥ ४७ ॥ तदेवमन्निहितः सन्नार्द्रकुमारस्तदुत्तरदानायाह । (एवमित्यादि) यदिवा प्राक्तनश्लोकः (अव्वत्तरूवमित्यादि) कोवेदांतवाद्यात्मा द्वैतमते न व्याख्यातव्यस्तथाहि ते एकमेवाव्यक्तं पुरुषमात्मानं महांतमाकाशमिव सर्वव्यापिनं स नातनमनंतमक्षयमव्ययं सर्वेष्वपि न्नूतेषु चेतनाचेतनेषु सर्वतः सर्वात्मतया सौव्यव स्थितइत्येवन्युपगतवंतोयथा सर्वास्वपि तारास्वेकएव चंद्रः संबंधमुपयात्येव चासा वपीत्यस्य चोत्तरदानायाह । (एवमित्यादि) एवमिति तथा न्नवतां दर्शने एकांते नैव नित्योविकार्यात्मान्युपगम्यते इत्येवं पदार्थाः सर्वेपि नित्यास्तथाचसति कुतोबंध मोक्षसन्नावोबंधान्नावाच्च न नारकतिर्यङ्नरामरलक्षणश्चतुर्गतिकः संसारोमोक्षान्नावा च्च निरर्थकं व्रतग्रहणं न्नवतां पंचरात्रोपदिष्टयमनियमप्रतिपत्तिश्चेत्येवं च यदुच्यते न्न वता यथाऽऽवयोस्तुल्योधर्मइति तदयुक्तमुक्तं । तथा संसारांतर्गतानांच पदार्थानां न सा म्यं तथाहि न्नवतां द्रव्यैकत्ववादिनां सर्वस्य प्रधानादनिन्नत्वात्कारणमेवास्ति कार्यंच कार णान्निन्नत्वात्सर्वात्मना न विद्यते अस्माकंच द्रव्यपर्यायोन्नयवादिनां कारणे कार्यं द्रव्या

वना चेयं। सन् जीवइति कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन। असन् जीवइति को वेत्ति किंवा तेन ज्ञातेनेत्यादि। एवमजीवादिष्वपि प्रत्येकं सप्त विकल्पाः। नव सप्तकास्त्रिषष्टिः। अमी चान्ये चत्वारस्त्रिषष्टिमध्ये स्थाप्यंते। तद्यथा। सती जावोत्पत्तिरिति को जानाति किंवाऽनया ज्ञातया। एवमसती सदसदवक्तव्यताजावोत्पत्तिरिति को जानाति किंवाऽनयाज्ञातयेति। शेषविकल्पत्रयं तूत्पत्त्युत्तरकालं पदार्थावयवापेक्षमतोत्र न संजवतीति नोक्तं। एतच्चतुष्टय प्रक्षेपात्सप्तषष्टिर्जवति। तत्र सन् जीवइति को वेत्तीत्यस्यायमर्थोन कस्यचिद्विशिष्टं ज्ञानमस्ति योऽतींद्रियान् जीवादीनवजोत्स्यते। नच तैर्ज्ञातैः किंचित्फलमस्ति। तथाहि। य दि नित्यः सर्वगतोऽमूर्तोज्ञानादिगुणोपेतएतद्गुणव्यतिरिक्तोवा ततः कतमस्य पुरुषार्थस्य सिद्धिरिति तस्मादज्ञानमेव श्रेयइति ॥ २० ॥

एवमेगे वियक्काहिं, नोअन्नं पज्जुवासिया ॥ अप्पणोय वियक्काहिं, अय मंजूहिं डुम्मई ॥ २१ ॥ एवं तक्काइ साहिंता, धम्माधम्मे अकोविया ॥ डुक्खं ते नाइतुट्टंति, सउणी पंजरं जहा ॥ २२ ॥ सयं सयं पसंसंता, गरहंता परं वयं ॥ जे उ तत्त विउस्संति, संसारं ते विउस्सिया ॥२३॥ अ हावरं पुरस्कायं, किरियावाइदरिसणं ॥ कम्मचिंतापणढाणं, संसरास्स पवद्रूणं ॥ २४ ॥

अर्थ—वली ग्रंथकार कहेछे. एवं के० एरीते एगे के० कोइएक अज्ञानी परवादी वियक्काहिं के० वितर्क करी, पोतानी कल्पित कल्पनाए असत्यने सत्य करी मानता थका नोअन्नंपज्जुवासिया के० अनेरा साचा होय तोपण तेने पर्युपासे नहीं. एटले सेवे नहीं. किंतु अप्पणोयवियक्काहिं के० पोतानाज वितर्के करी एवुं कहे जे ए अयमंजूर्हिं के० अमारो मार्गज रुजु एटले सरल अकुटिल छे, इत्यादिक कहेछे. तेमाटे ते डुम्मई के० डुर्मति विपरीतबुद्धिवाला छे. केमके ते सन्मार्गथी उपरांग वर्तेछे. अने विपरीत मार्गने सन्मुख छे. तेथी ते विपरीतबुद्धिवाला जाणवा. ॥ २१ ॥ हवे ज्ञानवादी ते अज्ञानवादीनो अनर्थ प्रगट देखाडेछे. एवं के० ए पूर्वोक्त न्यायें तक्काइसाहिंता के० तर्क करी एटले पोतानी कल्पनायें मोक्षमार्गने कहेतां थका अष्ट प्रकारे जे कर्मनो बंध तेने त्रोडी न शके, ते केवाछे, धम्माधम्मे के० धर्म जे क्षांत्यादिक दशविध अने अधर्म जे हिंसादिक पांच आश्रव तेने विषे अकोविया के० अकोविद एटले अजाणछे अर्थात् ते धर्मअधर्मने जाणता नथी. डुक्खंतेनाइतुट्टंति के० ते पोतानां डुःखने शी रीतें त्रोडे ते उपर दृष्टांत कहेछे. ते जहा के० जेम सउणी के० शकुनी एटले पक्षी

त्मतया विद्यते न पर्यायात्मकतया. अपिचास्माकमुत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तमेव सदित्युच्यते भवतांतु ध्रौव्यं युक्तमेव सदिति । यावप्याविर्भावतिरोभावौ भवतोच्येते तावपि नोत्पाद विनाशावंतरेण भवितुमुत्सहेते तदेवमैहिकामुष्मिकचिंतायामावयोर्न कथंचित्साम्यं किं च? सर्वव्यापित्वे सर्वात्मनामविकारित्वे चात्मा हेते चाभ्युपगम्यमाने नारकतिर्यङ्नरा मरभेदेन बालकुमारकसुभगडुर्भगाढ्यदरिद्रादिभेदेनवा न मीयेरन्न परिछेद्येरन् नापि स्व कर्मचोदितानानागतिषु संसरंति सर्वव्यापित्वादेकत्वाच्च तथा न ब्राह्मणान क्षत्रियान वै श्यान प्रेष्यान शूद्रा नापि कीटपक्षिसरीसृपाश्च भवेयुस्तथा नराश्च सर्वेपि देवलोकाश्चेत्ये वं नानागतिभेदेनोभिद्येरन्नतोन सर्वव्यापी आत्मा नाप्यात्मा हेतवादोप्यायात्यतः प्रत्ये कं सुखडुःखानुभवः समुपलभ्यते तथा शरीरत्वक्पर्यंतमात्रएवात्मा तत्रैव तद्गुणविज्ञा नोपलब्धेरिति स्थितं ॥ ४८ ॥

लोयं अयाणित्ति ह केवलेणं, कहंति जे धम्ममजाणमाणा॥णा
संति अप्पाणपरं च णछा, संसारघोरं मिअणोरपारे ॥ ४९ ॥
लोयं विजाणंति ह केवलेणं, पुन्नेण नाणेण समाहिजुत्ता॥धम्मं
समत्तं च कहंति जेउ, तारंति अप्पाणपरं च तिन्ना ॥ ५० ॥

अर्थ- वली आर्द्रकुमार कहेछे के, (लोयं के०) ए लोक जे चौदरज्ज्वात्मक, तेनें (अयाणित्तिहकेवलेणं के०) केवलज्ञानें करीनें न जाणे, एवा आ जगत् मांहें (कहं तीजेधम्ममजाणमाणा के०) जे दर्शनीउ अजाणता थका धर्म कहेछे. (णासंति अप्पाणपरंचणछा के०) ते पोताना आत्मानें भ्रष्ट करता थका बीजानें पण भ्रष्ट क रेछे. किंबहुना. (संसारघोरंमिअणोरपारे के०) ते घोर एटले रौद्र, अपारावार, एवो जे संसार ते मांहे पोतें पण पडे, अनें बीजानें पण पाडे ॥ ४९ ॥ हवे आर्द्रकुमार, सम्यक्ज्ञानवंत धर्मना कहेनार, एवा पुरुषोना गुण कहेछे. (लोयंविजाणंतिहकेवलेणं के०) चौद रज्ज्वात्मक लोक, तेनें केवलज्ञानें करी केवली, नानाप्रकारें जाणे. (पुन्ने णनाणेणसमाहिजुत्ता के०) तथा संपूर्ण ज्ञानें करी, समाधिसहित थका, (धम्मंसम त्तंचकहंतिजेउ के०) संपूर्ण श्रुतचारित्ररूप धर्म, परना हितनें अर्थे जे कहे. (तारं तिअप्पाणपरंचतिन्ना के०) ते पोतें पण संसार समुद्र थकी तरे, अनें बीजानें पण तारे. एवो जे जिनेंद्र मार्ग, केवलीभाषित, ते सत्य जाणवो ॥ ५० ॥

॥ दीपिका-लोकं चराचरमज्ञात्वा केवलेन दिव्यज्ञानेन इह जगति ये कथयंति । ध र्ममजानानाः ते स्वयं नष्टाः आत्मना परं च नाशयंति क्व? घोरे संसारे अणोरपारे अवी

ग्भागपरन्नागरहितेऽनाद्यनंतइत्यर्थः ॥४९॥ पूर्णेन ज्ञानेन केवलेन समाधियुक्तालोकं चतुर्दशरज्जुमितं ज्ञात्वा इह शासने समस्तं धर्मं श्रुतचारित्ररूपं कथयंति ते आत्मना तीर्णाः संसारसागरं तारयंति च परं सडुपदेशादिति ॥ ५० ॥

॥ टीका—तदेवं व्यवस्थिते युष्मदागमोयथार्थाभिधायी न नवत्यसर्वज्ञप्रणीतत्वादसर्वज्ञप्रणीतत्वं चैकांतपक्षसमाश्रयणादित्येवमसर्वज्ञस्य मार्गोद्भावनं दोषमाविर्नावयन्नाह । (लोयमित्यादि) लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं चराचरं वा लोकमज्ञात्वा केवलेन दिव्यज्ञानावन्नासेनेहास्मिन् जगति ये तीर्थिकाअजानानाअविद्वांसोधर्मं दुर्गतिगमनमार्गस्यार्गलानूतं कथयंति प्रतिपादयंति ते स्वतोनष्टा अपरानपि नो त्रायंति क्व? घोरे नयानके संसारसागरे (अणोपारेत्ति) अर्वाग्नागपरनागवर्जितेनाद्यनंतइत्येवंनूते संसारार्णवे आत्मानं प्रक्षिपंतीति यावत् ॥ ४९ ॥ सांप्रतं सम्यक्ज्ञानवतामुपदेष्टृणां गुणानाविर्नावयन्नाह । (लोयमित्यादि) लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं केवलालोकं न केवलिनोविविधमनेकप्रकारं जानंति विदंतीहास्मिन् जगति प्रकर्षेण जानाति प्रज्ञः पुण्यहेतुत्वात् पुण्यं तेन तथानूतेन ज्ञानेन समाधिना च युक्ताः समस्तं धर्मं श्रुतचारित्ररूपं येतु परहितैषिणः कथयंति प्रतिपादयंति ते महापुरुषास्ततः संसारसागरं तीर्णाः परंच तारयंति सडुपदेशदानत इति केवलिनोलोकं जानंतीत्युक्ते यत्पुनर्ज्ञानेनेत्युक्तं तद्बौद्धमतोच्छेदेन ज्ञानाधारआत्मा अस्तीति प्रतिपादनार्थमिति । एतडुक्तं नवति यथाऽऽदेशिकः सम्यक्मार्गज्ञआत्मानं परं च तडुपदेशवर्तिनं महाकांताराद्विवक्षितदेशप्रापणेन निस्तारयत्येवं केवलिनोप्यात्मानं परं च संसारकांताराान्निस्तारयंतीति ॥५०॥

जे गरहियं ठाणमिहावसंति, जेयावि लोए चरणोववेया ॥ उदा
हडं तं तु समं मईए, अहाउसो विप्परियासमेव ॥ ५१ ॥ सं
वह्वरेणावियं एगमेगं,बाणेण मारेउ महागयं तु ॥ सेसाणजीवा
णदयहयाए, वासं वयं वित्ति पकप्पयामो ॥ ५२ ॥

अर्थ— हवे वली मिथ्यावादीनी केवी प्ररूपणा होय ! ते आर्डकुमार कहेले. (जे के०) जे कोइ संसारमांहे वर्तता अशुन्न कर्मना करनार, (गरहियं के०) गर्हित एटले निंदित, निर्विवेकीयें आचरण करेलुं (ठाणमिहावसंति के०) एवुं क्रिया अनुष्ठानरूप जे स्थानक, तेनुं इह एटले आ जगत् मांहे सेवन करे, आजीविकानें कारणे तेनो आश्रय करे, (जेयाविलोएचरणोववेया के०) तथा जे वली रूडा उपदेशना देनारा, लोक मांहे विरति परिणामरूप चारित्रें करी सहितले. (उदाहडंतंतुसमंमईए के०)

ए बेहुनो अनुष्ठान तमारी मतियें सरखो कहेवो. (अहाउसोविप्परियासमेव के०)अहो आयुष्मन् एक दंमियाउ! तेथी तेवुं कहेनारानें विपर्यास एटले विपरीत मतिवाला जाण वा.अनें ए प्रमाणे कहेनारनुं वचन उन्मत्त प्रलाप समान जाणियें बैयें. साचुं, अनें जूतुं ए बे धर्म,सरखाज केम होय? ॥५१॥ ए रीतें एकदंमियाना मतनुं निराकरण करीनें जेटले स्वामीना समवसरण नणी आर्डकुमार चाल्या,एटले अंतरालें हस्तितापस आवीनें बोल्या के, अहो आर्डकुमार! सश्रुतिक पुरुषनें अल्पबहुत्व आलोचवो जोइयें. शामाटें ? तेनुं कारण कहुं ते तुं सांनल. के जे बीजा तापस, कंद, मूल, फलना नक्षण करनार,ते घणा एक स्थावर जीवोनो विनाश करे, तथा ते स्थावरनें आश्रित जे जंगम जीव होय,तेनो पण विनाश करे,तथा जे निक्षा मागीनें पोतानी आजीविका करेछे ते पण,आशंसादोषें करी दूषितछे,कारण के जिहां तिहां परिभ्रमण करतां कीडी,मंकोडी प्रमुख अनेक जीवनें डुहवेछे अनें अमेंतो,(संवछरेणावियएगमेगं के०) वर्ष वर्ष दिवसें,तथा अपिशब्दें करी छ मासें एकज, (बाणेणमारेउमहागयंतु के०) महाकाय एटले महोटी कायावालो एवो जे हस्ती तेनें बाणनें प्रहारें विनाशीनें, (सेसाणजीवाणदयछयाए के०) शेष बीजा जीवोनी दयानें अर्थें, मात्र ते एकज हस्तीना मांसें करीनें, (वासंवयंवित्तिपकप्पयामो के०) वर्ष दिवस सुधी अमें अमारी आजीविका चलावियें छैयें. ए रीतें थोडा जीव नो उपघात करी, घणा जीवोनी अमें रक्षा करियें छैयें. ए माटें विशेषें करी, अमारो मा र्ग बीजा सर्वमार्गथकी श्रेष्ठज जाणवो ॥ ५२ ॥

॥दीपिका–ये गर्हितं निंद्यनिर्विवेकिजनाचरितं स्थानं इह जगत्याश्रयंति ये चापि लो के चरणोपेतं संयमरूपं स्थानं सेवंते तद्द्वयमपि यैरसर्वज्ञैः समं तुल्यमेवोदाहृतं कथितं स्वमत्या स्वाभिप्रायेण। अथायुष्मन् हे सांख्य! विपर्यासइति तन्मत्तोन्मत्तप्रलापवदिति एव मेकदंमिनोनिरस्यार्डमुनिर्नगवत्समीपे याति । तावता हस्तितापसास्तमेवं प्रोचुः ॥५१ ॥ नो आर्डक! ये तापसाः कंदमूलफलाशिनस्ते बहूनां स्थावराणां तदाश्रितत्रसानांच घा तकाः ये च निक्षां सेवंते तेप्याशंसादोषदूषिताः भ्रमंतश्च पिपीलिकादिजंतुघातकाः वयं तु संवत्सरेणाप्येकं महागजं बाणेन व्यापाद्य शेषाणां जीवानां दयार्थं आत्मनोवृत्तिं जी विकां तन्मांसेन वर्षं यावत्कल्पयामः कुर्मः ततोवयं बहुजीवरक्षकाः ॥ ५२ ॥

॥ टीका–पुनरप्यार्डककुमारएवाह । (जेगरहियमित्यादि) असर्वज्ञप्ररूपणमेवंनूतं नवति। तद्यथा ये केचित्संसारांतर्वर्तिनोऽशुनकर्मणोपेताः समन्वितास्तद्विपाकसहायाग र्हितं निंदितं जुगुप्सितं निर्विवेकिजनाचरितं स्थानं पदं कर्मानुष्ठानरूपमिहास्मिन् जग

त्यासेवंति जीविकाहेतुमाश्रयंति तयाच ये सडुपदेशवर्तिनोलोकेस्मिन् चरणेन विरतिप रिणामरूपेणोपेताः समन्वितास्तेषामुनयेषामपि यदनुष्ठानं शोजनाशोजनस्वरूपमपि स तु तदसर्वज्ञैरवाग्दर्शिभिः समं सदृशं तुल्यमुदाहृतं उपन्यस्तं स्वमत्या स्वाभिप्रायेण न पुन र्यथावस्थितपदार्थनिरूपणेनाथवाऽऽयुष्मन् हे एकदंडिन्! विपर्यासमेव विपर्ययमेवो दाहरेदसर्वज्ञोयदशोजनं तच्छोजनत्वेनेतरत्त्वितरथेति यदिवा विपर्यासइति मत्तोन्मत्तप्र लापवदित्युक्तं भवतीति ॥ ५१ ॥ तदेवमेकदंडिनोनिराकृत्याईककुमारोयावद्भगवदंतिकं व्रजति तावद्धस्तितापसाः परिवृत्य तस्थुरिदं च प्रोचुरित्याह। (संवच्छरेणइत्यादि) ह स्तिनं व्यापाद्यात्मनोवृत्तिं कल्पयंतीति हस्तितापसास्तेषां मध्ये कश्चिद्वृद्धतमएतडुवाच तद्यथा नो आर्ईककुमार! सश्रुतिकेन सदाल्पबहुत्वमालोचनीयं तत्र ये अमी तापसाः कंदमूलफलाशिनस्ते बहूनां सत्त्वानां स्थावराणां तदाश्रितानां वोडुंबरादिषु जंगमानामु पघाते वर्त्तंते येपि च नैक्ष्येणात्मानं वर्तयंति तेप्याशंसादोषदूषिताइतश्चेतश्चाटयमानाः पि पीलिकादिजंतूनां उपघाते वर्तंते वयंतु संवत्सरेणावि अपिशब्दात् षण्मासेन चैकैकं हस्ति नं महाकायं बाणप्रहारेण व्यापाद्य शेषसत्वानां दयार्थमात्मनोवृत्तिं वर्त्तनं तदामिषेण वर्षमेकं यावत्कल्पयामस्तदेवं वयमल्पसत्वोपघातेन प्रभूततरसत्वानां रक्षां कुर्मइति॥५२॥

संवच्छरेणाविय एगमेगं, पाणं हणंता अणियत्तदोसा॥ सेसा
णजीवाणवहेलणाय, सियाय थोवं गिहिणोवि तम्हा ॥ ५३ ॥
संवच्छरेणाविय एगमेगं, पाणं हणंता समणे व्वएसु ॥ आया
हिए तं पुरिसे अणज्जे, ण तारिसे केवलिणो भवंति ॥५४॥ बुद्ध
स्स आणाए इमं समाहिं, अस्सिं सुठिच्चा तिविहेण ताई ॥तरिउं
समुद्दं च महाभवोघं, आयाणवंतं समुदाहरेज्जा त्तिबेमि ॥५५॥
इति अद्दइज्जणाम छठमज्झयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ—हवे आर्ईकुमार कहेछे के, अहो हस्तितापसो! तमें (संवच्छरेणावियएगमेगंपा णंहणंताअणियत्तदोसा के०) वर्ष वर्ष प्रत्यें, तथा छ मासप्रत्यें तमे एकेक महोटो जीव हणता थका दोषथकी, निवर्त्त्या एम कहेवाउज नहीं. (सेसाणजीवाणवहेलणाय के०) कारणके, घणा जीवनें न हणता अनें वर्षमां,तथा छमासमां एकजीवनें हणता एवा तमो नें पंचेंद्रियमहाकाय जीवना वधनो आशंसा दोष पण लागेछे,अनें साधु तो, सूर्य किरणे प्रकाशित मार्गनेंविषे जूसर मात्र दृष्टि शोधता, इर्यासमितें समितावंत छता, बेंतालीश दोष रहित आहारनी गवेषणा करता,आहारना लाभें, अथवा अलाभें,समवृत्ति वाला

होय; तेनें कयो आशंसा दोष ? अनें पिपीलिकानो घात पण केम थाय? अनें तमो एवा म होटा जीवनो उपघात करीनें पण पोतानें निर्दोष मानोडो, ते जो एवी रीतें निर्दोष पणुं थतुं होय तो, आपणी आजीविकानें निमित्तें आरंजनें विषे प्रवर्त्तता (सियायथोवंगिहि णोवितम्हा के०) कदाचित् पोतानुं क्षेत्र टाली अन्य जीवोनो उपघात अण करतां गृहस्थ पण तमारी पेठें थोडा जीव हणतां, घणा जीव पालता थकां तमारा सरखा निर्दोषज जाणवा. एम ठखुं ॥५३॥ वली आर्द्रकुमार कहेडेके, (संवहरेणावियएगमेगंपाणंहणंता समणेवएसु के०) अहो हस्तितापसो! जे तमारा दर्शनी, श्रमणना व्रतनें विषे प्रवर्त्तता डता संवत्सर संवत्सर प्रत्यें तथा ठमास प्रत्यें एकेक जीव हणे, अनें वली एहिज धर्मनो उपदेश आपे, (आयाहिएतंपुरिसेअणज्जे के०) ते अनार्य अनाचारी पोतानें तथा परनें अहितना करनार जाणवा केम के, (णतारिसेकेवलिणोजवंति के०) ते पुरुष सादृशकेवली न होय? ते अशुद्धमार्गना प्रवर्त्तक अनें सत्यमार्गना द्वेषी जाणवा. जे कारणे ते वर्षवर्ष प्रत्यें एकेक जीवनो विनाश करे, तेनुं मांस वर्ष वर्ष दिवस सुधी राखे तेमांहे अनेक असंख्यात बीजा त्रस जीव उपजे, तेथी तेनें पचावतां ते जीवोनो विनाश थाय. ए कारण माटें घणा जीवोनो विनाश करतां पण एम कहे के, अमें थोडा जीवोनो विनाश करियें डैयें, ते माटें ते मिथ्यावादी जाणवा. तेनुं वचन अमें प्रमाण नथी करता. इत्यादिक वचन कही अन्य दर्शनीनें प्रतिबोधि, श्री महावीर देवनें समवसरणें जइ, तीर्थंकरने वांदीनें, आर्द्रकुमार, आज्ञानो आराधक थयो ॥ ५४ ॥ हवे अध्ययन परिसमाप्ति जणी कहेडे. (बुद्धस्सआणाएइमंसमाहिं के०) बुद्ध एटले तत्वना जाण, एवा श्री महावीर देव, तेनी आज्ञायें आ समाधि, धर्मप्राप्ति लक्षण लहीने, (अस्सिंसुठिच्चातिविहेणताई के०) ए समाधिने विषे प्रवर्त्ततो त्रिविध त्रिविध प्रकारें ठ कायनो रक्षपाल एवो साधु, (तरिउंसमुद्दंचमहाजवोघं के०) जयंकर संसार समुद्र तरीनें (आयाणवंतंसमुदाहरेज्जा के०) आदानवंत एटले सम्यक् ज्ञान, दर्शन, अनें चारित्र सहित थको, एम आर्द्रकुमारनी पेरें यथावस्थित प्ररूपणायें करी परदर्शनीनो निराकरण करीनें मोक्षनो मार्ग प्रगट करे, ते साधु जाणवो. त्तिबेमिनी व्याख्या, पूर्ववत् जाणवी ॥ ५५ ॥ ए अद्दइज्जनामें ठहा अध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—अथार्द्रकुमारः प्राह ॥ संवत्सरेणाप्येकैकं प्राणिनं घ्नंतं प्राणातिपातादनिवृत्तत्वान्निवृत्तदोषास्ते स्युः साधूनां तु सूर्यप्रकाशिते मार्गे युगमात्रदृष्ट्या इर्यासमित्या गडतां निर्दोषाहारान्वेषिणां समचित्तानां क्व आशंसादोषः? क्व कीटिकादिघातोवेत्यर्थः। स्तोकजीवघाते च दोषाजावस्तदा गृहस्थाअपि स्वारंजदेशस्थान् जीवान् घ्नंति शेषाणां च जीवानां

वधे न लग्नाः तस्मात्स्यादेवं स्तोकं स्वल्पं यस्माद्घ्नंति ततस्तेपि निर्दोषाः॥५३॥ श्रमणव्रतेषु स्थिताअपि संवत्सरेणाप्येकैकं जंतुं येघ्नंति येच उपदिशंति तेऽनार्या आत्मह्निताः पुरुषाः न तादृशाः केवलिनोनवंति ॥५४॥ एवं हस्तितापसान्निरस्याई्ककुमारं नगवदंतिकं व्रजंतं दृष्ट्वाऽनिनवगृहीतो वनहस्ती चिंतयतिस्म। यद्यहं बंधनमुक्तः स्यां तदार्द्रककुमारं प्रतिबुद्धं तस्करपंचशतोपेतं तथा प्रतिबोधितानेकवादिगणसमन्वितं गत्वा वंदेया वदेवं हस्तिना चिंतितं तावता तस्य बंधनानि त्रुटितानि आर्द्रमुनिसंमुखं त्वरया चलितः करी ततोलोकैः पूत्कृतं हा हतोयं मुनिरिति हस्ती च ससंभ्रमं मुनिपार्श्वमागत्य त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य दंताग्रस्पृष्टनूमिः साधुं नत्वा वनं ययौ ततः श्रेणिकनृपः सपौरलोकस्तं मुनिं सप्रनावं नत्वा प्रोवाच।नगवन्नाश्चर्यमिदं यदयं करी बंधनान्मुक्तः ततोमुनिराह। हे नृप! नैतदाश्चर्यं यत्करी मुक्तोबंधनात्। यत्तु स्नेहपाशमोचनं तद्दुष्करं तच्च प्रागुक्तं निर्युक्तिकृता। यथा। "न दुक्करं वारणपासमोयणं,गयस्स मत्तस्स वणंमि रायं ॥ जहाउच नावलिएण तंतुणा, तं दुक्करं मेपडिहाइ मोयणं ॥१॥ अस्यार्थः प्रागध्ययनप्रारंने प्रोक्तः। एवमार्द्रकुमारोनृपं प्रतिबोध्य श्रीवीरांतिकं गत्वा नगवंतं नक्तिनृतआसीनः। नगवानपि तानि पंचापि शतानि प्रव्राज्य तव शिष्यत्वेन ददौ ॥ अथाध्ययनोपसंहारमाह। (बुद्धस्सइत्यादि) बुद्धस्य तत्वज्ञस्य श्रीवीरस्याज्ञया इमां समाधिं धर्मावाप्तिं प्राप्यास्मिन्समाधौ सुष्ठुस्थित्वा मनोवाक्कायैस्त्रायी रक्षकस्तीर्त्वाऽतिक्रम्य समुद्रमिव महानवौघं। आदानं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपं विद्यते यस्य सआदानवान् धर्मं परहितैषी उदाहरेत्कथयेत्। इति ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ५५ ॥ इत्यार्द्रकीयाध्ययनमिदं षष्ठं समाप्तम् ॥

॥ टीका—सांप्रतमेतदेवार्द्रककुमारोहस्तितापसमतं दूषयितुमाह। (संवच्छरेणइत्यादि) संवत्सरेणैकैकं प्राणिनं घ्नतोपि प्राणातिपातादनिवृत्तदोषास्ते नवंत्याशंसादोषश्च नवतां पंचेंद्रियमहाकायसत्ववधपरायणानामतिदुष्टोनवति साधूनां तु सूर्यरश्मिप्रकाशितवीथिषु युगमात्रदृष्ट्या गच्छतामीर्यासमितिसमितानां द्विचत्वारिंशद्दोषरहितमाहारमन्वेषयतां लानालानसमवृत्तीनां कुतस्त्यआशंसादोषः पिपीलिकादिसत्वोपघातोवेत्यर्थः स्तोकसत्वोपघातेनैवंनूतेन दोषानावोनवताभ्युपगम्यते तथाच सति गृहस्थाअपि स्वारंनदेशवर्तिनएव प्राणिनोघ्नंतीति शेषाणांच जंतूनां क्षेत्रकालव्यवहितानां नवदनिप्रायेण वधेन प्रवृत्तायतएवं तस्मात्कारणात्स्यादेवं स्तोकमिति स्वल्पं यस्मात् घ्नंति ततस्तेपि दोषरहिताइति ॥ ५३ ॥ सांप्रतमार्द्रककुमारोहस्तितापसान्दूषयित्वा तदुपदेष्टारं दूषयितुमाह। (संवच्छरेणेत्यादि) श्रमणानां यतीनां व्रतानि श्रमणव्रतानि तेष्वपि व्यवस्थिताः संतएकैकं संवत्सरेणापि ये घ्नंति ये चोपदिशंति तेऽनार्या असत्कर्मानुष्ठायित्वात्तथा आ

त्मानं परेषां चाहितास्ते पुरुषाः। बहुवचनमार्षत्वान्न। तादृशाः केवलिनोभवंति तथा ह्येक स्य प्राणिनः संवत्सरेणापि घाते येन्ये पिशिताश्रितास्तत्संस्कारेच क्रियमाणे स्थावरजं गमाविनाशमुपयांति ते तैः प्राणिवधोपदेष्टृभिर्न दृष्टाः। नच तैर्निरवद्योपायोमाधुकर्या वृ त्त्या योभवति सदृष्टोतस्तेन केवलमकेवलिनोविशिष्टविवेकरहिताश्चेति। तदेवं हस्तिताप सान्निराकृत्य भगवदंतिकं गच्छंतमार्द्रककुमारं महता कलकलेन लोकेनाभिष्टूयमानं तं समुप लभ्य अभिनवं गृहीतः संपूर्णलक्षणसंपूर्णोहस्ती समुत्पन्नस्तथाविधविवेकोचितं यत् य थार्द्रकुमारोयमपकृताशेषतीर्थिकोनिष्प्रत्यूहं सर्वज्ञपादपद्मांतिकं वंदनाय व्रजति तथाहम पियद्यप्यपगताशेषबंधनः स्यां ततएनं महापुरुषमार्द्रककुमारं प्रतिबुद्धतस्करपंचशतोपेतं त था प्रतिबोधितानेकवादिगणसमन्वितं परमया भक्त्यैतदंतिकं गत्वा वंदामीत्येवं यावद सौ हस्ती कृत्यसंकल्पस्तावत्रटत्रटदिति त्रुटितसमस्तबंधनः सन्नार्द्रककुमाराभिमुखं प्रदत्त कर्णतालस्तथोर्ध्वप्रसारितदीर्घकरः प्रधावितस्तदनंतरं लोकेन कृतहाहारवगर्भकलकलेन पूत्कृतं यथा धिक् कष्टं हतोयमार्द्रककुमारोमहर्षिर्महापुरुषस्तदेवं प्रलपंतोलोकाइतश्चेत श्च प्रपलायमानाः। असावपि वनहस्ती समागत्यार्द्रककुमारसमीपं भक्तिसंभ्रमावनताग्रभा गोत्तमांगोनिर्वृतकर्णतालस्त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य निहितधरणीतलदंताग्रभागः स्पृष्टकराग्रतच्च रणयुगलः सुप्रणिहितमनाः प्रणिपत्य महर्षिवनाभिमुखं ययाविति। तदेवमार्द्रककुमार तपोनुभावाद्बंधनोन्मुखं महागजमुपलभ्य सपौरजनपदः श्रेणिकराजस्तमार्द्रककुमारं म हर्षिं तत्तपःप्रभावं चाभिनंद्याभिवंद्य च प्रोवाच भगवन्नाश्चर्यमिदं यदसौ वनहस्ती तादृ ग्विधाच्छस्त्रोच्छेद्याच्छृंखलाबंधनाद्युष्मत्तपःप्रभावान्मुक्तइत्येतदतिदुष्करमित्येवमभिहिते आ र्द्रकुमारः प्रत्याह। भो श्रेणिक महाराज! नैतदुष्करं यदसौ वनहस्ती बंधनान्मुक्तोपि त्वेत दुष्करं यत्स्नेहपाशमोचनं एतच्च प्राङ्निर्युक्तिगाथया प्रदर्शितं। साचेयं। "ण दुक्करं वारणपा समोयणं, गयस्स मत्तस्स वणंमि रायं॥जहा उवत्तावलिएण तंतुणा,सुदुक्करंमे पडिहाइ मो यणं॥ १॥ एवमार्द्रककुमारेण राजानं प्रतिबोध्य तीर्थकरांतिकं गत्वाऽभिवंद्य च भगवंतं भक्तिभरनिर्भरआसांचक्रे भगवानपि तानि पंचापि शतानि प्रव्राज्य तच्छिष्यत्वेनोपनिन्य इति॥ ५४॥ सांप्रतं समस्ताध्ययनार्थोपसंहारार्थाह। (बुद्धस्सेत्यादि) बुद्धोऽवगत तत्वः सर्वज्ञोवीरवर्द्धनस्वामी तस्याज्ञया तदागमेन इमं समाधिं सद्धर्मावाप्तिलक्षणं अ वाप्यास्मिंश्च समाधौ सुष्टु स्थित्वा मनोवाक्कायैश्च प्रणिहितेंद्रियोन मिथ्यादृष्टिमनुमन्यते केवलं तदावरणजुगुप्सां त्रिविधेनापि करणेन न विधत्ते सएवंभूतआत्मनः परेषांच त्राण शीलस्तायी वा गमनशीलोमोक्षं प्रति सएवंभूतस्तरीतुमतिलंघ्य समुद्रमिव दुस्तरं महाभवौ घं मोक्षार्थमादीयतइत्यादानं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपं तद्विद्यते यस्यासावादानवान् साधुः सच सम्यग्दर्शनेन सता परतीर्थिकतपःसमृद्ध्यादिदर्शनेन मौनींद्रदर्शनान्न प्रच्यव

ते सम्यक्ज्ञानेनतु यथावस्थितवस्तुप्ररूपणतः समस्तप्रावाडुकवादिनिराकरणेनापरेषां यथावस्थितमोक्षमार्गमाविर्भावयतीति सम्यक्चारित्रेणतु समस्तभूतग्रामहितैषया निरुद्धाश्रवद्वारः सन् तपोविशेषाच्चानेकभवोपार्जितं कर्म निर्जरयति स्वतोन्येषां चैवं प्रकारमेवं धर्ममुपाहरे द्व्यागृणीयादित्यर्थः । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति नयाश्च प्राग्वदेव वाच्या वक्ष्यंते चोत्तरत्र ॥ ५५ ॥ समाप्तं चेदमार्द्रकीयाख्यं षष्ठमध्ययनमिति ॥ ६ ॥

॥ अथ सप्तमाध्ययन प्रारंभः ॥

छठा अध्ययनमां स्वसमय, परसमय, प्ररूपणायें करी, प्रायः समस्त सुयगडांग सूत्रनें विषे साधुना आचारनी प्ररूपणा करी, हवे आ सातमा अध्ययनमां श्रावकनो आचार कहे छे,अथवा छठा अध्ययनमां परतीर्थिकना वादनुं निराकरण कह्युं, अने हवे आ सातमा अध्ययनमां स्वतीर्थिक सार्थे वाद कहेशे, ए संबंधे आव्युं जे सातमुं अध्ययन तेनें कहेछे.

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होठा रिद्धि
प्फीत समिद्धे वस्रुउ जाव पडिरूवे तस्सणं रायगिहस्स नयर
स्स बहिया उत्तरपुरछिमे दिसीभाए एछणं नालंदानामं बाहि
रिया होठा अणेगभवणस्सयसन्निविघा जाव पडिरूवा ॥ १ ॥

अर्थ-(तेणंकालेणं के०) ते कालनें विषे (तेणंसमएणं के०) ते समयनें विषे, (रायगिहेनामंनयरेहोठा के०) राजगृह नामा नगर हतुं, ते राजगृहनामा नगर केहेवुं हतुं ? तोके, (रिद्धि के०) भवनादिकें करी सहित, (प्फीत के०) स्फित निर्भय रहित, (समिद्धे के०) धन धान्यादिकें करी समृद्धिमान् एटले सहित, (वस्रुउजावपडिरूवे के०) यावत् प्रतिरूप एटले स्वर्गनुं प्रतिरूप एवुं वर्णन उववाइ उपांगनी पेठें जाणवुं. यद्यपि ते राजगृह नगर, हमणां पण वर्त्तेछे, तथा आगमिक कालें पण हशे, परंतु सूत्रमांहे अतीत कालेंज वखाण्युं तेनुं कारण शुं ? तोके, जेवुं विशिष्ट लक्षणोपेत अतीतकालें हतुं, तेवुं वर्त्तमान कालें अनें आगमिक कालें नथी. ए कारण जाणवुं. (तस्सणंरायगिहस्सनयरस्सबहिया के०) त्यां ते राजगृह नगरना बाहिरना प्रदेशें, (उत्तरपुरछिमेदिसीभाए के०) ईशानकोणनें विषे (एछणं के०) अंहीयां (नालंदानामंबाहिरियाहोठा के०) नालंदा एवे नामें बाहिरिया एटले पाडोविशेष हतो. ते

पाडो केवोछे ? तोके, (अणेगभवणसयसन्निविहा के०) अनेक घरना शेंकडायें करी स हितछे. इत्यादिक (जावपडिरूवा के०) यावत् प्रतिरूप ए वर्णन जाणवुं ॥ १ ॥

॥ दीपिका–अथ सप्तमाध्ययनमारभ्यते । अस्य च नालंदीयमिति नाम । तस्यायमर्थः । नालंदा राजगृहनगरे बाहिरिका तस्यां भवं नालंदीयमिति । पूर्वं सकलेन सूत्रकृतांगेन साध्वाचारः प्ररूपितः । अत्र तु श्रावकविधिरुच्यते । तस्येदं सूत्रं । तस्मिन् काले तस्मिन् समयेऽवसरे राजगृहं नाम नगरमभवत् । ऋद्धिस्फीतं समृद्धं वर्णकोवाच्यः यावत्प्रतिरूपमनन्यसदृशं तस्य नगरस्य बहिरुत्तरपूर्वस्यां दिशि नालंदानाम बाहिरिका सीत्साचानेकभवनशतसन्निविष्टाऽनेकगृहसंकीर्णेत्यर्थः ॥ १ ॥

॥ टीका–व्याख्यातं षष्ठमध्ययनमधुना सप्तममारभ्यते । अस्यायमभिसंबंधः । इह प्राग्व्याख्यातेनाखिलेनापि सूत्रकृतांगेन स्वसमयपरसमयप्ररूपणा द्वारेण प्रायः साधूनामाचारोऽभिहितोऽनेन तु श्रावकगतोविधिरुच्यते । यदिवानंतराध्ययने परवादनिराकरणं कृत्वा साध्वाचारस्य यउपदेष्टा सउदाहरण द्वारेण प्रदर्शितः । इहतु श्रावकधर्मस्य यउपदेष्टा सउदाहरण द्वारेणैव प्रदर्श्यते । यदिवाऽनंतराध्ययने परतीर्थिकैः सह वादइह तु स्वयूथ्यैरित्यनेन संबंधेनायातस्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोग द्वाराण्यपवर्णितव्यानि उपक्रमादीनि तत्रापि नामनिष्पन्ने निक्षेपे नालंदीयाभिधानमिदमध्ययनमिदं चैवं व्युत्पाद्यते । प्रतिषेधवाचिनोनकारस्य तदर्थस्यैवालंशब्दस्य डुदाञ् दाने इत्येतस्य धातोर्मीलनेन नालं ददातीति नालंदा । इदमुक्तं भवति । प्रतिषेधप्रतिषेधेन धात्वर्थस्यैव प्राकृतस्य गमनात्सदार्थिभ्योयथाऽभिलषितं ददातीति नालंदा राजगृहनगरबाहिरिका तस्यां भवं नालंदीयमिदमध्ययनंअनेन चाभिधानेन समस्तोप्युपोद्घातउपक्रमरूपश्चावेदितोभवति तत्स्वरूपंच पर्यंते स्वतएव निर्युक्तिकारः पासावित्ते इत्यादिगाथया निवेदयिष्यतीति । सांप्रतं संभविनमलंशब्दस्य निक्षेपं नादौ परित्यज्य कर्तुमाह । "णाम अलं ठवणअलं, दव्वअलं चेव होइ भावअलं॥ एसो अलसहमि, निरकेवो चउविहो होइ „ ॥१॥ (णामअलमिति) तत्रामानोनाः प्रतिषेधवाचकाः । तद्यथा । अगौरघट्टइत्याद्याकारः प्रायोद्रव्यस्यैव प्रतिषेधवाचीत्यलंदानेन सहास्यप्रयोगाभावमकारस्त्वनागतक्रियाया निषेधं विधत्ते । तद्यथा नो घटोघटैकदेशनिषेधेन तथा हास्यादयोनो कषायाः कषायमोहनीयैकदेशभूताः । नकारस्तु समस्तद्रव्यक्रियाप्रतिषेधाभिधायी । तद्यथा न द्रव्यं न कर्म न गुणोभावस्तथा नाकार्षं न करोमि न करिष्यामीत्यादि । तथाऽन्यैरप्युक्तं । न याति नच तत्रासीदस्ति पश्चान्नवांशकाङ्क्षहाति पूर्वं नाधारमहो व्यसन संततिः । किंचान्यत् ।"गतं न गम्यते तावदगतं नैव गम्यते । गतागतविनिर्मुक्तं गम्यमानंतु गम्यत"इत्यादि । तदेवमत्र नकारः प्रतिषेधविधायकोप्युपात्तः । अलंशब्दोपि यद्यप्यलं पर्याप्ति

वारणनूषणेष्वपीति त्रिष्वर्थेषु पठ्यते तथापीह प्रतिषेधवाचकेन नञा साहचर्यात्प्रतिषेधार्थएव गृह्यते तत्र चालंशब्दः। नामस्थापना द्रव्यनावनेदाच्चतुर्विधोनिक्षेपोनवति। तत्र नामालं यस्य चेतनस्य वालमिति नाम क्रियते। स्थापनालंतु यत्र कचिच्चित्रपुस्तकादौ पापनिषेधं कुर्वन्साधुः स्थाप्यते द्रव्यनिषेधस्तु नो आगमतोज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तोद्रव्यस्य चौराद्यात्हतस्यैहिकपापनीरुणा योनिषेधः क्रियते सद्रव्यनिषेधः। एवं द्रव्येण द्रव्याद्रव्ये वा निषेधः। नावनिषेधंतु स्वतएव निर्युक्तिकारोलंशब्दस्य संनविनमर्थं दर्शयन्बिनणिषुराह। "पज्जत्ती नावे खलु, पढमो बीउ नवेअलंकारे॥ ततितो उप्पडिसेहे, अलसदो होई नायव्वो,,॥ २॥ (पज्जतीनावइत्यादि) पर्याप्तनावः सामर्थ्यं तत्रालंशब्दोवर्तते। अलं मल्लोमल्लाय समर्थइत्यर्थः। लोकोत्तरोपि विनालं तेताणाएवासरणाएवा। अन्यैरप्युक्तं। "द्रव्यास्तिकरथारूढः पर्यायोद्यतकार्मुकः॥ युक्तिसन्नाहवान्वादी कुवादिन्योनवत्यलं"॥१॥ अयं प्रथमोलंशब्दार्थोनवति। खलुशब्दोवाक्यालंकारे द्वितीयस्त्वर्थोलंकारविषये नवेत्संनावनायां लिङ्। तद्यथालंकृतदेवदत्तेन स्वकुलं जगच्च नानिसूनुनेत्यादि। तृतीयस्त्वलंशब्दार्थः प्रतिषेधे ज्ञातव्योनवति। तद्यथालं मे गृहवासेन तथालं पापेन कर्मणा। उक्तंच। "अलं कुतीर्थैरिह पर्युपासितै,रलं वितर्काकुलकाहलैर्मतैः॥अलंच मे कामगुणैर्निषेवितै, र्नयंकरायेहि परत्र चेहच" ॥१॥ तदिह प्रतिषेधवाचिनालंशब्देनाधिकारइत्येतद्दर्शयितुमाह। "पडिसेहणणगारस्स इच्चिसद्देण चेव अलसद्दो॥रायगिहे नयरंमि नालंदा होइ बाहिरिया" ॥३॥ (पडिसेहणेत्यादि) सत्यप्यलंशब्दस्यार्थत्रये नकारस्य सान्निध्यात्प्रतिषेधविधानादप्येवेह गृह्यते ततश्च निरुक्तविधानादयमर्थः। नालं ददातीति नालंदा बाहिरिकायाः स्त्रियोद्देशकत्वेनच नालशब्दस्य स्त्रीलिंगता साच सदैहिकामुष्मिकसुखहेतुत्वेन सुखप्रदा राजगृहनगरबाहिरिका धनकनकसमृद्धत्वेन सत्साध्वाश्रयत्वेनच सर्वकामप्रदेति। सांप्रतं प्रत्ययार्थं दर्शयितुकामआह "नालंदाए समिवे,मणोरहे नासि इंदनूइस्रा॥ अज्ञयणं उदगस्सउ, एयं नालंदइज्जं तु" ॥४॥(नालिंदाएइत्यादि) नालंदायाः समीपे मनोरथाख्ये उद्याने इंद्रनूमिना गणधरेणोदकाख्यनिर्ग्रंथपृष्टेन तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्तस्यैव नापितमिदमध्ययनं। नालंदायां नवं नालंदीयं नालंदासमीपोद्यानकथनेन वा निवृत्तं नालंदीयं। यथाचेदमध्ययनं नालंदायां संवृत्तं तथा "पासावच्चिज्जोपुच्छियाइउ अज्जगोयमं उदगो॥ सावगपुच्छाधम्मं सोउं कहियंमि उवसंता,, ॥५॥ अनायापासावच्चिज्जेत्यादिकया सूत्रस्पर्शिकगाथया विष्करिष्यते। सांप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं। तच्चेदं। (तेणंकालेणमित्यादि) अस्य चानंतरपरंपरसूत्रैः सह संबंधोवाच्यस्तत्रानंतराध्ययनपर्यंते सूत्रमिदमादानवान् धर्ममुदाहरेत्।धर्मश्च साधुश्रावकनेदेन द्विधा।तत्र पूर्वोक्तेनांगद्वयेन प्रायः साधुगतोविधिरनिहितोनेनतु श्रावकगतोविधिरुच्यते। परंपरसूत्रसंबंधस्त्वयं बुध्येतेत्येतदादिसूत्रं। किं तत्र

ते पंजरं के० पंजरमांहे पडयुं थकुं पांजराने त्रोडीने पोताने मूकावी शके नहीं. तेम ए अज्ञानवादी पण पोताने संसारपंजरथकी मूकावी शके नहीं एम जाणवुं. ॥ २१ ॥ हवे सामान्याकारे एकांत मतिने दूषण करेछे सयंसयंपसंसंता के० सर्व दर्शनी पोतपोता नुं दर्शन प्रशंसतां अने परंवयं के० पारकां वचनने गरहंता के० निंदतां जेउ के० जे तब के० त्यां एरीते विउस्संति के० पोतानुं विद्वांस एटले पंमित पणुं देखाडेछे. ते के० ते एवां वचनना बोलनार संसार के० चतुर्गतिक संसारमांहे विउस्सिया के० विशेषे बांध्या छतां अनंतो काल तब के० त्यांज रहे. ॥ २३ ॥ एटले अन्नाणवाईगया के० अज्ञानवादी कह्या. हवे क्रियावादीनो मत कहेछे. अह के० अथ एटले हवे अवरं के० अपर एटले अज्ञानवादीना मतथकी अनंतर पुरक्खायं के० पूर्वे कह्युं. एवुं किरियावाइदरिसणं के० क्रियावादीनुं दर्शन, ते क्रियावादी केवाछे, कम्मचिंतापणहाणं के० कर्मचिंताप्रनष्ट एटले कर्म जे ज्ञानावरणीयादिक तेने विषे चिंता एटले आलोचवुं ते थकी प्रनष्ट थयेला एटले ते कर्मबंधनो परमार्थ जाणे नहीं तेथी तेनुं दर्शन निःकेवल संसारस्सपवड्ढणं के० संसारनुं वधारनार जाणवुं. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—दूषणांतरमाह । (एवमिति) । एवं पूर्वोक्तनीत्या एकेऽज्ञानवादिनोवितर्कानिर्मीमांसाभिः स्वमतिकल्पनाभिः परमन्यं जैनादिकं न पर्युपासते न सेवंते स्वमतमेव श्रेयइति ज्ञात्वा तदेव सेवंते नान्यं ज्ञानादिवादिनं । तथा (अप्पणोत्ति) । आत्मीयैर्वितर्कैः सुविचारैरयमस्मदीयोमार्गोऽञ्जुर्निर्दोषत्वाद्व्यक्तः स्पष्टऋजुर्वा प्रगुणोऽकुटिलः । हियस्मात्ते डुर्मतयस्ततएव एवमाहुः ॥ २१ ॥ पुनस्तेषामेव दोषमाह । (एवमिति) । एवं पूर्वोक्तन्यायेन तर्कया स्वकल्पनया साधयंतोवदंतोधर्माधर्मयोरकोविदाडुःखं ते नातित्रोटयंति नातिशयेनापनयंति । यथा शकुनिः पंजरं । पक्षी पंजरस्थो यथा पंजरं त्रोटयितुं बंधनादात्मानं मोचयितुं न समर्थएवमसावपि संसारपंजरादात्मानं मोचयितुं नालं ॥ २२ ॥ अथैकांतवादिमतं दूषयन्नाह । (सयमिति) । स्वकं स्वकं आत्मीयमात्मीयं मतं प्रशंसंतः परकीयां वाचं गर्हंतोनिंदंतः । यथा सांख्यानित्यवादिनोबौद्धं क्षणिकवादिनं निंदंति तेपि सांख्यान् । एवमन्येपि ज्ञेयाः । एवमेकांतवादिनो ये । तुरवधारणे । तत्र तेष्विव स्वमतेषु विद्वस्यंते विद्वांसइवाचरंति ते संसारं व्युच्छ्रिताः विविधमनेकप्रकारमुत्प्राबल्येन श्रिताः संसारे संबद्धाउषिताः स्युः ॥ २३ ॥ अथ क्रियावादिमतमाह । (अथेति) । अथापरं पूर्वमाख्यातं पूर्वसूचितं क्रियावाददर्शनं । किंभूताः क्रियावादिनइत्याह । (कम्मचिंतत्ति) । कर्मणि ज्ञानावरणादिके चिंता कर्मचिंता ततः प्रनष्टाअपगताः । यतस्ते चतुर्विधं कर्मबंधं नेच्छंति ततः कर्मचिंताप्रणष्टास्तेषामिदं मतं संसारस्यप्रवर्धनं स्यात् ॥ २४ ॥

बुध्येत यदेत दृश्यतइति। सूत्रार्थस्त्वयं। सप्तम्यर्थे तृतीया। यस्मिन्काले यस्मिंश्चावसरे राजगृहं नगरं यथोक्तविशेषणविशिष्टमासीत्तस्मिन् काले तस्मिंश्च समये इदमनिधीयते। राजगृहमेवविशिनष्टि। प्रासादाः संजातायस्मिंस्तत्प्रासादितमान्नोगवद्या अतएव दर्शनीयं दर्शनयोग्यं दृष्टिसुखहेतुत्वात्तथानिमुख्येन रूपं यस्य तदनिरूपं तथा प्रतिरूपमनन्यसदृशं प्रतिरूपं वा प्रतिबिंबं वा स्वर्गनिवेशस्य तदेवंनूतं राजगृहंनाम नगरं (होब्रात्ति) आसीत्। यद्यपि तत्कालत्रयेपि सत्तां बिनर्त्ति तथाप्यतीताख्यानसमाश्रयणादासीदित्युक्तं। तस्य च राजगृहस्य बहिरुत्तरपूर्वस्यां दिशि नालंदानाम बाहिरिका आसीत् साचानेकनवनशतसन्निविष्टा अनेकनवनशतसंकीर्णेत्यर्थः ॥ १ ॥

तब्रणं नालंदाए बाहिरियाए लेवे नामं गाहावई होब्रा अड्ढे दित्ते वित्ते विब्रणविपुलनवणसयणासणजाणवाहणाइण्णे बहुधणबहुजायरूवरजते आउगपउगसंपउत्ते विब्रडियपउरनत्तपाणे बहु दासी, दास, गोमहिस, गवेलग प्पनूए बहुजणस्स अपरिनूएयावि होब्रा ॥ २ ॥

अर्थ-(तब्रणंनालंदाएबाहिरियाए के०) ते नालंदा नामें बाहिरिया एटले पाडाने विषे (लेवेनामंगाहावईहोब्रा के०) लेप एवे नामें गृहपति कुटुंबी हतो. ते केवो हतो? तोके, (अड्ढे के०) धनवंत, (दित्ते के०) दीप्त तेजस्वी, (वित्ते के०) सर्वजनमां विख्यात, (विब्रण के०) विस्तीर्ण, (विपुल के०) घणा एवां (नवण के०) नुवन, (सयणासण के०) शय्यासनादिक, तथा (जाणवाहणाइण्णे के०) यान एटले रथ वेहेलादिक, वाहन एटले अश्वादिक, तेणें करी इण्णे एटले आकीर्ण व्याप्त, (बहुधण के०) घणुं धन, (बहुजायरूवरजते के०) घणुं जात एटले सुवर्ण,तथा रूपुं, तेणे करी सहित, (आउग के०) धननो उपाय एटले यानपात्रादिकनो संग्रह. तथा (पउग के०) प्रयोग एटले व्यापारादिक प्रयोजन तेणे करी (संपउत्ते के०) संप्रयुक्त एटले सहित (वि के०) विशेषें करी (छडिय के०) ज्यां त्यां नाख्योछे (पउर के०) घणो एवो (नत्तपाणे के०) नातनें पाणी जेणे, एटले जेनें घरे निरंतर लोक जमेछे. विशेषें करी देवरावेछे. (बहुदासीदास के०) घणां दासी, तथा दास, (गोमहिस्स के०) गाय, अनें नेष, (गवेलग के०) गाडर वाली, तेणें करी (प्पनूए के०) परिवृत्त तेमाटें (बहुजणस्सअपरिनूएआविहोब्रा के०) घणा लोकोयें पण परानव करी न शकाय एवो हतो. एटला वर्णनें करी एनी इव्यसंपदा कहीछे. ॥ २ ॥

क्त्वाञ्चालयितुं शक्यते तन्नीत्या न द्वारप्रदानमित्यर्थः। प्रातिहारी राजांतःपुरेपि प्रवेशोऽ स्य सतथा कोर्थः? पुरेहि कोपि न प्रवेश्यः तत्राप्यसौ प्रतीतगुणत्वे प्रवेशयोग्यइत्यर्थः। तथा चतुर्दश्यष्टम्यादिषु तिथिषु उपदिष्टासु महाकल्याणकसंबंधितया पुण्यतिथित्वेन प्रसि द्धासु तथा पौर्णमासीसु च तिसृष्वपि चतुर्मासकतिथिषु एवंजूतेषु धर्मदिवसेषु सुष्ठु अतिश येन प्रतिपूर्णं संपूर्णमाहारशरीरसत्कारब्रह्मचर्याव्यापाररूपं पौषधमनुपालयन् तथावि धान् सद्गुणान् श्रमणान् एषणीयेन शुद्धेनाशनादिना प्रतिलाजयन् (बहुहिं) बहुनिः शीलव्रतगुणविरमणप्रत्याख्यानपोषधोपवासैरात्मानं जावयन् एवं पूर्वोक्तप्रकारेण। च स मुच्चये णं वाक्यालंकारे। विहरति आस्ते ॥ २ ॥

॥ टीका—अधुनाऽमुष्मिकगुणाविर्जावेन जावसंपदनिधीयते। (सेणंलेवेइत्यादि) ण मिति वाक्यालंकारे। सलेपाख्योगृहपतिः श्रमणान् साधूनुपास्ते प्रत्यहं सेवतइति श्रमणो पासकस्तदनेन विशेषणेन तस्य जीवादिपदार्थाविर्जावकश्रुतज्ञानसंपदा वेदिता जवत्येत देव दर्शयत्यजिगतजीवाजीवेत्यादिना ग्रंथेन। यावदसहायोपि देवासुरादिजिर्देवगणैरनति क्रमणीयोऽनतिलंघनीयोधर्मादप्रच्यावनीयइति यावत्। तदियता विशेषणकलापेन त स्य सम्यक्ज्ञानित्वमावेदितं जवति। सांप्रतं तत्तस्य विशिष्टसम्यग्दर्शनित्वमापादयितुमा ह। (निग्गंथेत्यादि) निर्ग्रंथे आर्हते प्रवचने निर्गता शंका देशसर्वरूपा यस्य सः निःशंकः तदेव सत्यं निःशंकं यज्जिनैः प्रवेदितमित्येवं कृताध्यवसायस्तथा निर्गता कांक्षान्यान्यद र्शनग्रहणरूपा यस्यासौ निराकांक्षस्तथा निर्गता विचिकित्सा चित्तविप्लुतिर्विद्वज्जुगुप्सा यस्यासौ निर्विचिकित्सोयतएवमतोलब्धउपलब्धोर्थः परमार्थरूपोयेन सः लब्धार्थो ज्ञाततत्वइत्यर्थः। तथा गृहीतः स्वीकृतोर्थोमोक्षमार्गरूपोयेन सगृहीतार्थस्तथा विशेषतः पृष्टोर्थोयेन सः पृष्टार्थोयतएवमतोविनिश्चितार्थस्ततोजिगतः पृष्टनिर्वचनतः प्रतीतोर्थो येन सोजिगतार्थस्तथाऽस्थिमिंजाऽस्थिमध्यं यावत्सधर्मे प्रेमानुरागेण रक्तोत्यंतसम्यक्त्व वासितांतश्चेताइति यावत्। एतदेवाविर्जावयन्नाह। (अयमाउसोइत्यादि). केनचिद्ध र्मसर्वस्वं पृष्टः सन्नेतदाचष्टे। तद्यथा जो आयुष्मन्निदं निर्ग्रंथमौनींद्रप्रवचनमर्थः सद्भू तार्थस्तथा प्ररूपणतया तथेदमेवाह। अयमेव परमार्थः कषतापच्छेदैरस्यैव शुद्धत्वेन नि र्घटितत्वात्। शेषस्तु सर्वोपि लौकिकतीर्थिकपरिकल्पितोऽनर्थस्तदनेन विशेषणकदंबकेन सम्यक्त्वगुणाविष्करणं कृतं जवति। सांप्रतं तस्यैव सम्यग्दर्शनज्ञानाभ्यां कृतोयोगुणस्त दाविष्करणायाह। (उसियइत्यादि) उच्छ्रतं प्रख्यातं स्फटिकवन्निर्मलं यशोयस्यासावुच्छ्रित स्फटिकः प्रख्यातनिर्मलयशाइत्यर्थः। तथाऽप्रावृतमस्थगितं द्वारं गृहमुखं यस्य सोप्रा वृतद्वारः। इदमुक्तं जवति। गृहं प्रविश्य परतीर्थिकोपि यद्यत्कथयति तदसौ कथयतु

न तस्य परिजनोप्यन्यथा जावयितुं सम्यक्त्वाच्च्यावयितुं शक्यतइति यावत्। तथा राज्ञां वह्ल जांतःपुर द्वारेषु प्रवेष्टुं शीलं यस्य सतथा। इदमुक्तं जवति प्रतिषिद्धान्यजनप्रदेशान्यपि यानि स्थानानि जांमागारांतःपुरादीनि तेष्वप्यसौ प्रख्यातः श्रावकाख्यगुणत्वेनास्खलित प्रवेशस्तथा चतुर्दश्यष्टम्यादिषु तिथिषूपदिष्टासु तथा पौर्णमासीषुच तिसृष्वपि चतुर्मासकतिथिष्वित्यर्थः। एवंजूतेषु धर्मदिवसेषु सुष्ठतिशयेन प्रतिपूर्णोयः पौषधो व्रताजिग्रहविशेषस्तं प्रतिपूर्णमाहारशरीरसंस्कारब्रह्मचर्याव्यापाररूपं पौषधमनुपालयन् संपूर्णं श्रावकधर्ममनुचरति तदनेन विशेषणकलापेन विशिष्टं देशचारित्रमावेदितं जवति। सांप्रतं तस्यैवोत्तरगुणाख्यापनेन दानधर्ममधिकृत्याह। (समणेणंनिग्गंथइत्यादि) सुगमं (यावत्पडिलाजेमाणेत्ति) सांप्रतं तस्यैव शीलतपोजावनात्मकं धर्ममावेदयन्नाह (बहूहिमित्यादि) बहुजिः शीलव्रतगुणविरमणप्रत्याख्यानपौषधोपवासैस्तथा यथा परिगृहीतैश्च तपःकर्मजिरात्मानं जावयन्नेवं चानंतरोक्तया रीत्या विहरति धर्ममाचरंस्तिष्ठति। च समुच्चये। णमिति वाक्यालंकारे ॥ ३ ॥

तस्सणं लेवस्स गाहावइस्स नालंदाए बाहिरियाए उत्तरपुरछिमे दिसिजाए एब्रणं सेसदविया नामं उदगसाला होब्रा अणेगखंजसयसन्निविठा पासादीया जावपडिरूवा तिस्सेणं सेसदवियाए उदगसालाए उत्तरपुरछिमे दिसिजाए एब्रणं हब्रिजामे नामं वणसंमे होब्रा किण्हे वण्ण वणसंमस्स ॥ ४ ॥

अर्थ—(तस्सणं के०) ते लेप नामा गृहपतिनें नालिंदा नामा पाडा थकी, उत्तर अनें पूर्वदिशानें वच्चें, एटले ईशान कोणे (एब्रणंसेसदवियानामंउदगसालाहोब्रा के०) जिहां तिहां घर करावतां जे कांइ पाट पीठिकादिक उपकरण उगर्यां होय, वधेलां होय एवां उपकरणें करीने निपजावेली एटले करावेली एवी सेसदविया नामें उदकशाला हती वली ते उदकशाला केवी हती? तोके, (अणेगखंजसयसन्निविठा के०) अनेक स्तंजना शेंकडा तेना उपर रहेली, तथा तेणें करी सहित, (पासादीयाजावपडिरूवा के०) प्रासादवंत, दर्शनीय यावत् प्रतिरूप, (तिस्सेणंसेसदवियाएउदगसालाएउत्तरपुरछिमेदिसिजाए के०) ते सेसदविया नामा उदकशाला थकी ईशान कोणनी दिशायें (एब्रणंहब्रिजामेनामंवणसंमेहोब्रा के०) हस्तियाम नामें वनखंम हतो, (किण्हेवण्णउवणसंमस्स के०) ते वनखंम, काले वर्णे हतो, एनुं विशेष वर्णन जेम, श्री उववाई उपांगमां कह्युंले तेम जाणवुं.

॥ दीपिका—तस्य लेपस्य गृहपतेः संबंधिनी नालंदायाः पूर्वोत्तरस्यां दिशि शेषद्र

व्यानाम गृहोपयुक्तशेषद्रव्येण कृता उदकशालासीदनेकस्तंभशतसन्निविष्टा प्रासादीया यावत्प्रतिरूपा तस्याश्चोत्तरपूर्वे दिग्भागे हस्तियामाख्योवनखंडआसीत्कृष्णइत्यादिवर्णकोवनखंडस्य वाच्यः ॥ ४ ॥

॥ टीका—तस्य चैवंभूतस्य लेपोपासकस्य गृहपतेः संबंधिनी नालंदायाः पूर्वोत्तरस्य दिशि शेषद्रव्याभिधाना गृहोपयुक्तशेषद्रव्येण कृता शेषद्रव्ये तदेवाभिधानमस्याउदकशालायाः सैवंभूतासीदनेकस्तंभशतसन्निविष्टा प्रासादीया दर्शनीयाभिरूपाप्रतिरूपेति तस्य श्चोत्तरपूर्वेदिग्विभागे हस्तियामाख्योवनखंडआसीत्कृष्णावभासइत्यादिवर्णकः ॥ ४ ॥

तस्सिंसचणं गिहपदेसंमि भगवं गोयमे विहरइ भगवंचणं अहे आरामंसि अहेणं उदए पेढालपुत्ते भगवं पासावविज्जे नियंठे मेयज्जे गोत्तेणं जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छइत्ता भगवं गोयमं एवं वयासी आउसंतो गोयमा अत्थि खलु से केइ पदे से पुच्छियव्वे तंचमे आउसो अहासुयं अहादरिसियंमे वियागरेहि सवायं भगवं गोयमे उदय पेढालपुत्तं एवं वयासी अवियाइ आउसो सोच्चा निसम्म जाणिस्सामो सवायं उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी ॥ ५ ॥

अर्थ—हवे (तस्सिंचणंगिहपदेसंमिभगवंगोयमेविहरइ के०) ते वनखंड गृहप्रदेशनें विषे भगवंत श्री गौतमस्वामी विचरेछे. (भगवंचणंअहेआरामंसि के०) भगवंत श्रीगौतमस्वामी साधुना परिवार सहित आराम हेठल रह्या. (अहेणं के०) अथ हवे ण ए वे वाक्यालंकारें. (उदएपेढालपुत्ते के०) उदकनामें निर्ग्रंथ, पेढालनो पुत्र, अनें (भगवंपासावविज्जेनियंठे के०) श्री पार्श्वनाथना शिष्यनो शिष्य, (मेयज्जेगोत्तेणं के०) गोत्रें करी मेदार्यछे. ते उदकनिर्ग्रंथ, (जेणेवभगवंगोयमेतेणेवउवागच्छइ के०) ज्यां भगवंत श्रीगौतमस्वामी छे, त्यां आव्यो. (उवागच्छइत्ता के०) त्यां आवीनें (भगवंगोयमं एवंयासी के०) भगवंत श्रीगौतमस्वामी प्रत्यें एवुं बोल्या के, (आउसंतोगोयमा के०) अहो आयुष्यमन् गौतम ! मुजनें तमारा समीपें (अत्थिखलुसेकेइपदेसेपुच्छियव्वे के०) निश्चें ते कोइ एक प्रदेश एटले प्रश्न पुछवोछे. (तंचमेआउसो के०) ते प्रश्न मुजनें, अहो आयुष्यमन् ! (आहासुयं के०) यथाश्रुतं एटले जेम तमे श्रीमहावीर स्वामी पासेंथी सांभल्युं, (अहादरिसियंमेवियागरेहि के०) जेम तमें अवधार्युं होय, तेम मु

जनें कह्यो. (सवायंनगवंगोयमेउदयपेढालपुत्तंएवंवयासी के०) हवे नगवंत श्री गौतमस्वामी वादसहित उदकपेढालपुत्र प्रत्यें एवुं बोल्या के, (अवियाइआउसोसोच्चानिसम्मजाणिस्सामो के०) अपि संनावनार्यें अहो आयुष्यमन् उदक? तमारो प्रश्न सांनलीनें गुणदोषनी विचारणार्यें हैयामां सम्यक् रीतें धारण करीनें हुं जाणीश, तेवी रीतनो प्रश्न यथायोग्य पूछो. (सवायंउदएपेढालपुत्तेनगवंगोयमंएवंवयासी के०) ते वारें ते उदकपेढालपुत्र, वादसहित आ प्रकारें नगवंत श्रीगौतमस्वामी प्रत्यें बोल्या. ॥५॥

॥ दीपिका—तस्मिन् वनखंमगृहप्रदेशे नगवान् गौतमोविहरति तस्मिन्नारामे स्थितः। अथ उदकाख्योनिर्ग्रंथः पेढालपुत्रः पार्श्वापत्यस्य पार्श्वशिष्यस्यापत्यं शिष्यः सच मेदार्यीगोत्रेण (जेणेवत्ति) यस्यां दिशि गौतमस्तत्रागत्येदं प्राह । आयुष्मन् नो गौतम! अस्ति मम कश्चित्प्रदेशः प्रष्टव्यः तं प्रदेशं मम यथाश्रुतं त्वया यथा दर्शितं श्रीवीरेण तथा व्यागृणीहि कथय सचायं नगवान् यदिवा सह वादेन सवादं पृष्टस्तमुदकं पेढालघुपुत्रमेवमवादीत् । अपिचायुष्मन्नुदक ! श्रुत्वा त्वदीयं प्रश्नं निशम्य चावधार्य गुणदोषविचारेण सम्यक् ज्ञास्येहं तडुच्यतां विश्रब्धं त्वया स्वानिप्रायः सचायं ससद्वाचंवा उदकः पेढालपुत्रोगौतममेवमवादीत् ॥ ५ ॥

॥ टीका—तस्मिंश्च वनखंमप्रदेशे नगवान् गौतमस्वामी श्रीवर्धमानस्वामिगणधरोविहरति । अथानंतरं नगवान् गौतमस्वामी तस्मिन्नारामे सह साधुनिर्व्यवस्थितोऽथानंतरं णमिति वाक्यालंकारे उदकाख्योनिर्ग्रंथः पेढालपुत्रः पार्श्वापत्यस्य पार्श्वस्वामिशिष्यस्यापत्यं शिष्यः पार्श्वापत्यीयः सच मेदार्यगोत्रेण । येनैवेति सप्तम्यर्थे तृतीया । यस्यां दिशि यस्मिन्वा प्रदेशे नगवान् श्रीगौतमस्वामी तस्यां दिशि तस्मिन्वा प्रदेशे समागत्येदं वक्ष्यमाणं प्रोवाचेति । अत्र निर्युक्तिकारोऽध्ययनोत्थानं तात्पर्यंच गाथया दर्शयितुमाह । "पासावच्चिज्जो पुच्छियाइउं अज्जगोयमं उदगो ॥ सावगपुच्छा धम्मं सोउ कहियंमि उवसंता" ॥ १ ॥ (पासावच्चित्यादि) पार्श्वनाथशिष्यउदकानिधानआर्यगौतमं पृष्टवान् किं तच्छ्रावकगतं श्रावकविषयं प्रश्नं तद्यथा नो इंडनूते साधो! श्रावकाणुव्रतदाने सति स्थूलप्राणातिपातादिविषये तदन्येपां सूक्ष्मबादराणां प्राणिनामुपघाते सत्यारंनजनिते तदनुमतिप्रत्ययजनितः कर्मबंधः कस्मान्न नवति? तथा स्थूलप्राणातिपातादिविषये व्रतिनस्तमेव पर्यायांतरगतं व्यापादयतोनागरिकवधनिवृत्तस्य तमेवं बहिस्थं व्यापादयतइव तद्व्रतनंगजनितः कर्मबंधः कस्मान्न नवतीत्येतत्प्रश्नस्योत्तरं गृहपतिचौरग्रहणविमोक्षणोपमया दत्तवान् तच्च श्रावकप्रश्नस्यौपम्यं गौतमस्वामिना कथितं श्रुत्वोदकाख्योनिर्ग्रंथउपशांतोपगतसं

देहः संवृत्तइति। सांप्रतं सूत्रमनुश्रियते सउदकोगौतस्वामिसमीपं समागत्य नगवंतमिद मवादीत्तद्यथा आयुष्मन्गौतम! अस्ति मम विद्यते कश्चित्प्रदेशः प्रष्टव्यस्तत्र संदेहात्तंच प्रदेशं यथाश्रुतं नगवता यथाच नगवता संदर्शितं तथैव मम व्यागृणीहि प्रतिपादय। एवं पृष्टः सचायं नगवान् यदिवा सह वादेन सवादं पृष्टः सद्वादं वा शोननजारतीं वा प्रश्नं पृष्टस्तमुदकं पेढालपुत्रमेवमवादीत्तद्यथाऽपिचायुष्मन्नुदक! श्रुत्वा नवदीयं प्रश्नं निशम्य चावधार्यच गुणदोषविचारणतः सम्यगहं ज्ञास्ये तडच्यतां विश्रब्धं नवता स्वानिप्रायं सद्वाचं चोदकः पेढालपुत्रोनगवंतं गौतममेवमवादीत् ॥ ५ ॥

आउसो गोयमा अत्थि खलु कुमारपुत्तिया नाम समणा निग्गंथा तुम्हाणं पवयणं पवयमाणा गाहावइं समणोवासगं उवसंपन्नं एवं पच्चक्खावेंति णम्नत्थ अभिउएणं गाहावइचोरग्गहणविमोक्खणयाए तसेहिं पाणेहिं णिहाय दंमं एवंण्हं पच्चक्खंताणं डुप्पच्चक्खायं नवइ एवंण्हं पच्चक्खावेमाणाणं डुपच्चक्खावियव्वं नवइ एवं ते परं पच्चक्खावेमाणा अतियरंति सयं पत्तिणं कस्सणं तं हेउं सांसारिया खलु पाणा थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति थावरकायाउ विप्पमुच्चमाणा तसकायंसि उववज्जंति तसकायाउ विप्पमुच्चमाणा थावरकायंसि उववज्जंति तेसिंचणं थावरकायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं घत्तं ॥ ६ ॥

अर्थ—(आउसोगोयमा के०) अहो आयुष्यमन् गौतम! (अत्थिखलुकुमारपुत्तियानामंसमणानिग्गंथा के०) निश्चें कुमारपुत्र एवे नामें, श्रमण निर्ग्रंथछे. (तुम्हाणंपवयणंपवयमाणा के०) ते तमारुं प्रवचन बोलतां प्ररूपतां, (गाहावइंसमणोवासगंउवसंपन्नंएवंपच्चक्खावेंति के०) गृहपति श्रमणोपासकनियमोद्युक्तनें आवी रीतें पच्चक्खाण करावेछे ते कहेछे के, जेमां त्रसप्राणीयोनो दंम, एटले विनाश, तेनो त्याग करे, ए रीतें प्राणातिपातनी विरति करावेछे. (णम्नत्थअभिउएणं के०) तथा राजादिकनें अनियोगें जे प्राणीउनो उपघात थाय, ते टालीनें अन्यनी विरति करावेछे. तो ए रीतें स्थूलप्राणातिपातनी विरति कहेतां थकां, अन्य जीवनें उपघातनी अनुमतिनो दोष लागेछे? ए रीतें शंका जाणीने कहेछे. (गाहावइचोरग्गहणविमोक्खणयाए के०) गृहपति ग्रहण मोक्षने अर्थे, एटले मूकाववानें अर्थें, एनो विशेष अर्थ आगल कहेशे. एतावता श्री वीरना शासननें विषे श्रावकनें अधिकारें (तसेहिंपाणेहिंणिहायदंमं के०) त्रसप्राणी

ना दंमनो निषेध कह्यो तेने उदक पोताना अनिप्रायें करी दूषवेछे. (एवंसहंपञ्च स्कंताएंडुपञ्चस्कायंनवइ के०) अहो गौतम! ए एवे वाक्यालंकारे ए रीतें त्रसप्रा णीना दंमनो निषेध करीनें पञ्चस्काण करतां डुष्ट प्रत्याख्यान थाय (एवंएहंप ञ्चस्कावेमाणाणंडुपञ्चस्काावियवंनवइ के०) एम पञ्चस्काण करावनारनें पण, डुष्ट प्र त्याख्यान कराव्युं, एम थाय. ते कहेछे. (एवंतेपरंपञ्चस्कावेमाणा के०) ए रीतें ते पञ्चस्काण करनार श्रावक, अनें पञ्चस्काण करावनार साधु बेहु, (सयंपत्तिणं के०) पोतानी प्रतिज्ञानें (अतियरंति के०) उल्लंघन करेछे, एतावता व्रतनंग करेछे. (क स्सणंतंहेउं के०) ते केवा हेतु थकी प्रतिज्ञा नंग थाय? ते प्रतिज्ञा नंगनुं कारण कहेछे (सांसारियाखलुपाणा के०) निश्चें संसारी जीव, (थावराविपाणा के०) जे पृथ्वी, अप्, तेउ, वायु, अनें वनस्पति रूप स्थावर जीव ते पण (तसत्ताएपञ्चायंति के०) तेवा कर्मना उदयथकी त्रस पणे उपजे, (तसाविपाणाथावरत्ताएपञ्चायंति के०) तथा त्रस जे बेइंद्रि यादिक जीवोछे ते पण स्थावर पणे उपजे, (थावरकायाउविप्पमुञ्चमाणातसकायंसिउववं ज्जंति के०) स्थावरनी कायथकी मूकाणा त्रसकायनें विषे उपजे. (तसकायाउविप्पमुञ्च माणाथावरकायंसिउववज्जंति के०) त्रसकाय थकी मूकाणा थका स्थावरकायने विषे उप जे ए कारणमाटें (तेसिंचणंथावरकायंसिउववस्राणं के०) त्रसजीव स्थावरकाय मांहे जे वारे उपना, तेवारें (गणमेयंघत्तं के०) ते स्थानक त्रसकायनुं हणाणुं ए कारण मा टें प्रतिज्ञानंग थाय. जेम कोइ एके एवी प्रतिज्ञा करी जे मह्यारे नागरीक पुरुष हणवो नहीं. अने पछी तेज नागरीक पुरुष कोइ आरामादिकने विषे बेगो होय, त्यां तेने हणे तो तेथी शुं तेनी प्रतिज्ञानंग न थाय? अपितु थायज. तेम अंहीं पण त्रसजीवना घातनी निवृत्ति करी, अनें स्थावर जीवना घातनी निवृत्ति नथी करी तो, जे वारें त्रसजीव स्थावर मांहे आवी उपजे तेवारे तेणे ते त्रसजीवज विणाश्या, एम करतां प्रतिज्ञानो नंग थयो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—नो गौतम! अछि संति कुमारपुत्रानाम निर्ग्रंथा युष्मदीयं प्रवचनं प्रवदंतः। तथाहि गृहपतिं श्रमणोपासकं उपसंपन्नं नियमग्रहणोद्यतं प्रत्याख्यापयंति प्रत्याख्यानं कारयंति तद्यथा। त्रसेषु दंमं हिंसां निहाय त्यक्त्वा प्राणातिपातनिवृतिं कुर्वंति (णस्रुछे ति) नान्यत्र स्वमतेरन्यत्र राजाद्यनियोगेन यः प्राणिघातोन तत्र निवृत्तिरिति तत्र स्थूल प्राणिविशेषणात्तदन्येषां जीवानां हिंसातु मतिदोषः स्यादित्याशंकावान् प्राह। (गाहा वइचोरत्ति) अस्यार्थोऽग्रे नावयिष्यते (एवंएहत्ति) उदकएवाह। एहमिति वाक्यालं कारे। एवं प्रत्याख्यानं कुर्वतां श्राद्धानां डुःखप्रत्याख्यातं नवति अप्रत्याख्याननंगसनावा

त्तथा एवं प्रत्याख्यापयतां प्रत्याख्यानं कारयतां साधूनां डुष्टं प्रत्याख्यानदानं नवति एवं प्रत्याख्यानं कुर्वतः कारयंतश्च स्वां प्रतिज्ञामतिचरंत्यतिलंघयंति (कस्सणंतंहेउं) कस्मा द्धेतोरित्यर्थः। प्रतिज्ञाजंगकारणमाह। (संसारियाइत्यादि) सांसारिकाः खलु प्राणिनः स्था वराअपि प्राणिनस्त्रसतया प्रत्यायांति त्रसाश्च स्थावरत्वेनेति। एवंसति प्रतिज्ञालोपः स्यात् यथा नागरिकोन हंतव्यइति प्रतिज्ञा येन कृता सयदि उद्यानस्थं नागरिकं हन्यात्तदा त स्य किं प्रतिज्ञालोपोन स्यात्? एवमत्रापि येन त्रसवधनिवृत्तिः कृता स यदि तमेव त्रसं स्था वरकायस्थितं हंति तदा तस्य किं न नवेत्प्रतिज्ञालोपः? नवत्येवेत्यर्थः। त्रसकायान्मुच्यमा नाः स्थावरकाये उत्पद्यंते स्थावरकायान्मुच्यमानाश्च त्रसकाये नच किंचिल्लिंगमस्ति येन ज्ञायतेऽयं त्रसोऽनूत्पूर्वं स्थावरोवेति (तेसिंचणं) तेषां त्रसानां स्थावरकाये उत्पन्नानां श्राद्धस्यारंनवतः स्थानमिदं स्थावराख्यं घात्यं स्यात् ॥ ६ ॥

॥ टीका—तद्यथा नो गौतम! अस्तीत्ययं विनक्तिप्रतिरूपकोनिपातइति बव्हर्थवृत्तिर्गृही तस्ततश्चायमर्थः। संति विद्यंते कुमारपुत्रानाम निर्ग्रंथायुष्मदीयं प्रवचनं वदंतस्तद्यथा गृह पतिं श्रमणोपासकमुपसंपन्नं नियमायोत्थितमेव प्रत्याख्यापयंति प्रत्याख्यानं कारयंति। त द्यथा स्थूलेषु प्राणिषु दंमयतीतिदंमः प्राण्युपमर्दस्तं निहाय परित्यज्य प्राणातिपातनिवृ त्तिं कुर्वंति। तामेवापवदति। नान्यत्रेति। स्वमनीषिकायाअन्यत्र राजाद्यनियोगेन यः प्राण्युप पघातोन तत्र निवृत्तिरिति। तत्र किल स्थूलप्राणिविशेषणात्तदन्येषामनुमतिप्रत्ययदोषः स्यादित्याशंकावानाह। (गाहावइइत्यादि) अस्य चार्थमुत्तरत्राविर्नावयिष्यामः। येनानिप्रा येणोदकश्चोदितवांस्तमाविष्कुर्वन्नाह (एवंएहमित्यादि) एहमिति वाक्यालंकारे अवधार णेवा। एवमेव त्रसप्राणिविशेषत्वेनापरस्त्रसंनूतविशेषणरहितत्वेन प्रत्याख्यानं गृण्हतां श्रावकाणां डुष्प्रत्याख्यानं नवति प्रत्याख्याननंगसद्भावात्तथैवमेव प्रत्याख्यापयतामपि साधूनां डुष्टं प्रत्याख्यानदानं नवति। किमित्यतआह। एवं ते श्रावकाः प्रत्याख्यानं गृ ह्णंतः साधवश्च परं प्रत्याख्यापयंतः स्वां प्रतिज्ञामतिचरंत्यतिलंघयंति (कस्सणंहेउंति) प्राकृतशैल्या कस्माद्धेतोरित्यर्थः। तत्र प्रतिज्ञाजंगकारणमाह। (सांसारियाइत्यादि) संसा रोविद्यते येषां ते सांसारिकाः। खलुरलंकारे। प्राणिनोजंतवः स्थावराः प्राणिनः पृथिव्यप्ते जोवायुवनस्पतयः संतोपि तथाविधकर्मोदयात्त्रसतया त्रसत्वेन द्वींद्रियादिनावे प्रत्याया ंत्युत्पद्यंते तथा त्रसाअपि स्थावरतयेत्येवं च परस्परगमने व्यवस्थितेत्यवश्यं नावी प्रतिज्ञाविलोपः। तथाहि। नागरिकोमया न हंतव्यइत्येवंनूता येन प्रतिज्ञा गृहीता सयदा बहिरारामादौ व्यवस्थितं नागरिकं व्यापादयेत्किमेतावता तस्य न नवेत्प्रतिज्ञाविलोपः? एवमत्रापि येन त्रसवधनिवृत्तिः कृता सयदातमेव त्रसं प्राणिनं स्थावरकायस्थितं व्या

पादयेत्किं तस्य न नवेत्प्रतिज्ञाविलोपः? नवेदेवेत्यर्थः । एवमपि त्रसस्थावरकाये समुत्प न्नानां त्रसानां यदि तथाजूतं किंचिदसाधारणंलिंगं स्यात्ततस्ते त्रसाः स्थावरत्वेनाप्युत्प न्नाः शक्यंते परिहर्तुं नच तदस्तीत्येतद्दर्शयितुमाह ।(थावरकायाउइत्यादि) स्थावरका यात्सकाशाद्विविधमनेकैः प्रकारैः प्रकर्षेण मुच्यमानाः स्थावरकायायुषा तद्योग्यैश्चापरैः कर्मनिः सर्वात्मना त्रसकाये समुत्पद्यंते तथा त्रसकायादपि सर्वात्मना विमुच्यमानास्त त्कर्मनिः स्थावरकाये समुत्पद्यंते तत्र चोत्पन्नानां तथाजूतत्रसलिंगानावात्प्रतिज्ञालोप इत्येतत्सूत्रेणैव दर्शयितुमाह । (तेसिंचणमित्यादि) तेषां त्रसानां स्थावरकाये समुत्प न्नानां गृहीतत्रसप्राणातिपातविरतेः श्रावकस्याप्यारंजप्रवृत्तत्वेनैतत्स्थावराख्यं घात्यं स्थानं नवति तस्मादनिवृत्तत्वात्तस्येति ॥ ६ ॥

एवंएह पच्चरकंताणं सुपच्चरकायं नवइ एवंएह पच्चरकावेमाणा णं सुपच्चरवावियं नवइ एवं ते परं पच्चरकावेमाणा णातियरं ति सयं पइस्सं णस्सु अनिउंगेणं गाहावइचोरग्गहणवि मोरकणया तसन्नूएहिं पाणेहिं णिहाय दंमं एवमेव सइ ना साए परक्कमे विज्जमाणे जे ते कोहावा लोहावा परं पच्चरकावेंति अयंपि णो उवएसे णो णेआउए नवइ अवियाइं आउसो गोयमा तुप्नंपि एवं रोयइ ॥ ७ ॥

अर्थ—हवे उदक पोताना अनिप्रायें जेम प्रतिज्ञा नंग न होय, तेम कहेले. (एवं एहंपच्चरकंताणं के०) के जेम हुं कहुंबुं तेम पच्चखाण करतां (सुपच्चरकायंनवइ के०) रूडुं पच्चरकाण थाय (एवंएहंपच्चरकावेमाणाणं के०) एम पच्चरकाण करावतां थकां (सुपच्चरकावियंनवइ के०) रूडुं पच्चरकाण कराव्युं एम थाय (एवंतेपरंपच्चरकावेमाणाके०) ए रीतें ते श्रावक पच्चरकाण करता थकां अनें साधुए पच्चरकाण करावतां थकां (णा तियरंतिसयंपइस्सं के०) पोतानी प्रतिज्ञानुं उल्लंघन न करे केवी रीतें उल्लंघन न क रे? ते कहेले. (णस्सुअनिउंगेणंगाहावइचोरग्गहणविमोरकणया के०) जे गृह पति एवी रीतें पच्चरकाण करे के राजादिकना अनियोग थकी अन्य चोरग्रहण चो रीकरी ग्रह्यो ते मोक्षणनें न्यायें ए पण युक्त परंतु,(तसन्नूएहिंपाणेहिंणिहायदंमं के०) त्रस नूत प्राणीनो विनाश नहीं करुं, एटले एनो शुं अर्थ? तो के, नूत शब्दनुं विशे षण अधिक कहियें तो पच्चरकाण न नांगे ज्यां सुधी ते त्रसजीव त्रसनें रूपेले, त्यां सु धी न हणवो, जेम कोइ एकनें डुधनी विगयनो पच्चरकाणले तेनें दधिनें जमवे करी दो

प नथी, तेम त्रसनूत सत्व, हणवा नही एवी प्रतिज्ञाना करनारनें स्थावरनें हणवा थकी, पच्चरकाणनो नंग न थाय. (एवमेवसइनासाएपरक्कम्मे के०) तो जूओ ? के; एनें एवुं नाषानुं पराक्रम (विज्जमाणे के०) विद्यमान बते त्रसनें स्थानकें त्रसनूत एवी नाषानें बोलतां (जेते के०) जे कोइ साधु (कोहावालोहावापरंपच्चरकावेंति के०) क्रोध थकी, अथवा लोन थकी, परनें एटले बीजानें नूत शब्द टाली त्रस जीवनो पच्चरकाण करावे, तो तेनें मृषावाद लागे, ने एवा पच्चरकाणना लेनारनें अवश्य निश्चे व्रतनंग थाय (अयंपिणोउवएसेकिंणोणेआउएनवइ के०) ए रीतें जोतां, ए उपदेश नलो नथी, ए न्याय मार्ग नथी, हुं एम जाणुंबुं. माटें (अवियाइंआउसोगोयमा के०) अपिसंनावनायें अहो आयुष्यमन् गौतम ! (तुप्नंपिएवंरोयइ के०) तमनें पण हुं कहुं बुं ए वात रूचे एवीबे. ए वात वखाणवा योग्यबे ॥ ७ ॥

॥ दीपिका—एवं नागरिकदृष्टांतेन त्रसमेव घ्नतः प्रतिज्ञालोपः स्यात् । उदकः पुनः स्वानिप्रायमाह । एवं प्रत्याख्यानं कुर्वतां सुप्रत्याख्यातं नवति एवं प्रत्याख्यापयतांच तदेव । एवं प्रत्याख्यानं कुर्वतां कारयतांच न स्वप्रतिज्ञालोपः । यथा (णम्मुबेत्यादि) एवं गृहस्थः प्रत्याख्याति त्रसनूतेषु वर्तमानकाले त्रसत्वेनोत्पन्नेषु प्राणिषु दंमं वधं निहाय त्यक्ता प्रत्याख्यानं करोति । तदिह नूतत्वविशेषणात् स्थावरपर्यायप्राप्तस्य वधेपि न प्रतिज्ञालोपः नान्यत्रानियोगेन राजाद्यनियोगादन्यत्र प्रत्याख्यानं गृहपतिचौरविमोक्षणतयेति सम्यगुक्तं । तस्माद्भूतत्वाविशेषणांगीकारे यथा क्षीरविकृतिप्रत्याख्यायिनोदधिनक्षणेपि न प्रतिज्ञानंगः तथा त्रसनूतान् हंतव्याइति प्रतिज्ञावतः स्थावरहिंसायामपि न प्रत्याख्यानातिचारः । एवं विद्यमाने सति नाषायाः प्रत्याख्यानवाचः पराक्रमे नूताविशेषणाद्दोपपरिहारसामर्थ्ये । एवं दोषपरिहारोपाये सति केचन क्रोधाद्वा लोनाद्वा श्रावकं निर्विशेपणमेव प्रत्याख्यापयंति तेषां मृषावादः स्यात् गृह्णतांच व्रतलोपः । तदेवमयमपि नोस्मदीयोऽगीकारः किं नवतां नो नैयायिकोन्यायोपपन्नोनवति अपिवायुष्मन्गौतम ! एषपक्षस्तुन्यमपि रोचते ॥ ७ ॥

॥ टीका—तदेवं व्यवस्थिते नागरिकदृष्टांतेन त्रसमेव स्थावरत्वेनायातं व्यापादयतोऽवश्यंनावी प्रतिज्ञाविलोपोयतस्ततएवं मडुक्तया वक्ष्यमाणनीत्या प्रत्याख्यानं कुर्वता सुप्रत्याख्यातं नवत्येवंच ते प्रत्याख्यापयंतोनातिचरंति स्वीयां प्रतिज्ञामित्येतद्दर्शयितुमाह । (णणत्थेत्यादि) तत्र गृहपतिः प्रत्याख्यानमेवं गृह्णाति तद्यथा त्रसनूतेषु वर्तमानकाले त्रसत्वेनोत्पन्नेषु प्राणिषु दंमयतीतिदंमः प्राण्युपमर्दस्तं विहाय परित्यज्य प्रत्याख्यानं

॥ टीका—पुनरपि तद्रूपणाभिधित्सयाऽऽह । (एवमित्यादि) । एवमनंतरोक्तया त्या एके केचनाऽज्ञानिकावितर्काभिर्मीमांसाभिः स्वोत्प्रेक्षिताभिरसत्कल्पनाभिः परमन्य र्हतादिकं ज्ञानवादिनं न पर्युपासंते न सेवंते स्वावलेपग्रहग्रस्तावयमेवतत्त्वज्ञाना ज्ञानपरः कश्चिदित्येवं नान्यं पर्युपासंतइति । तथात्मीयैर्विकल्पैरेवमभ्युपगतवंतोय ऽयमेवास्मदीयोऽज्ञानमेव श्रेयइत्येवमात्मकोमार्गः। अंजूरिति।निर्दोषत्वा द्व्यक्तः स्पष्टः स्तिरस्कर्तुमशक्यऋजुर्वा प्रगुणोऽकुटिलः । यथावस्थितार्थाभिधायित्वात् । किमिति वमभिदधति । हिर्यस्मादर्थे । यस्मात्ते इमेतयोविपर्यस्तबुद्धयइत्यर्थः ॥ २१ ॥ सांप्रत ज्ञानवादिनां ज्ञानवादिनां स्पष्टमेवाऽनर्थाभिधित्सयाह । (एवं तक्काइत्यादि) एवं पू क्तन्यायेन तर्कया स्वकीयविकल्पनया साधयंतः प्रतिपादयंतोधर्मे क्षांत्यादिके अधर्मे जीवोपमर्दापादिते पापेऽकोविदाअनिपुणाडुःखमसातोदयलक्षणं तद्धेतुं वा मिथ्यात्वाद् चितकर्मबंधनं नातित्रोटयंति अतिशयेनैत द्व्यवस्थितं ।तथा ते न त्रोटयंत्यपनयंतीति।अ दृष्टांतमाह ।यथा पंजरस्थः शकुनिः पंजरं त्रोटयितुं पंजरबंधनादात्मानं मोचयितुं नाल मसावपि संसारपंजरादात्मानं मोचयितुं नालमिति ॥२२॥ अधुना सामान्येनैकांतवादि दूषणार्थमाह । (सयंसयमित्यादि) स्वकं स्वकमात्मीयं च दर्शनमभ्युपगतं प्रशंसंतोव यंतः समर्थयंतोवा । तथा गर्हमाणानिंदंतः परकीयां वाचं । तथाहि । सांख्याः र स्याविर्भावतिरोभाववादिनः सर्वं वस्तु क्षणिकं निरन्वयनिरीश्वरं वेत्यादिवादिनोबौद्धान पयंति तेपि नित्यस्य क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरहात् सांख्यान् । एवमन्येपि द्रष्ट इति । तदेवं यएकांतवादिनः।तुरवधारणे भिन्नक्रमश्च।तत्रैव तेष्वेवाऽऽत्मीयात्मीयेषु दर् षु प्रशंसां कुर्वाणाः परवाचं च विगर्हमाणाविद्वस्यंते विद्वांसइवाऽऽचरंति तेषु वा शेषेणोशंति स्वशास्त्रविषये विशिष्टं युक्तिव्रातं वदंति । तेचैवं वादिनः संसारं चतुर्गति देन संसृतिरूपं विविधमनेकप्रकारमुत्प्राबल्येन श्रिताः संबद्धाः । तत्र वा संसारे उषित संसारांतर्वर्तिनः सर्वदा भवंतीत्यर्थः ॥ २३ ॥ सांप्रतं यदुक्तं निर्युक्तिकारेणोद्देशकार्था कारे कर्मचयं न गच्छति चतुर्विधं भिक्षुसमयइति तदधिकृत्याह । (अहावरमित्यादि । अथेत्यानंतर्ये । अज्ञानवादिमतानंतरमिदमन्यत् पुरा पूर्वमाख्यातं कथितं । किं स्तदित्याह । क्रियावादिदर्शनं । क्रियैव चैत्यकर्मादिका प्रधानं मोक्षांगमित्येवं वदितुं शीलं षां ते क्रियावादिनस्तेषां दर्शनमागमं क्रियावादिदर्शनं ॥ किंभूतास्ते क्रियावादिनइत्याह कर्मणि ज्ञानावरणादिके चिंतापर्यालोचनं कर्मचिंता तस्याः प्रणष्टाअपगताः कर्मचिं प्रणष्टाः । यतस्ते अविज्ञानाद्युपचितं चतुर्विधं कर्मबंधं नेच्छंत्यतः कर्मचिंताप्रणष्टा षां चेदं दर्शनं डुःखस्कंधस्यासातोदयपरंपराया विवर्धनं भवति । क्वचित्संसारवर्धनमि पाठः । तेह्येवं प्रतिपद्यमानाः संसारस्य वृद्धिमेव कुर्वंति नोच्छेदमिति ॥ २४ ॥

करोति तदिह नूतत्वविशेषणात्स्थावरपर्यायापन्नवधेपि न प्रतिज्ञाविलोपः । तथा त्रसनूताः सत्वान हंतव्याइत्येवं प्रतिज्ञावंतः स्थावरहिंसायामपि तत्प्रत्याख्यानातिचारः । तदेवं विद्यमाने सति नाषायाः प्रत्याख्यानवाचः पराक्रमे नूतविशेषणाद्दोषपरिहारसामर्थ्ये एवं पूर्वोक्तया नीत्या सति दोषपरिहरणोपाये ते केचन क्रोधाद्वा लोनाद्वा परं श्रावकादिकं निर्विशेषणमेव प्रत्याख्यापयंति तेषां प्रत्याख्यानं ददतां मृषावादोनवति गृह्णतां चावश्यंनावी व्रतविलोपइति । तदेवमयमपि नोऽस्मदीयोपदेशोन्युपगमोनूतत्वविशेषणविशिष्टः पक्षः किं नवतां नो नैव नैयायिकोन्यायोपपन्नोनवतीदमुक्तं नवति नूतत्वविशेषणेन हि त्रसान् स्थावरोत्पन्नान् हिंसतोपि न प्रतिज्ञातिचारइत्यपि चैतदायुष्मन् गौतम! । तुन्यमपि रोचते ॥ ७ ॥

सवायं नगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी आउसंतो उदगा नो खलु अम्हे एवं रोयइ जे ते समणावा माहणावा एवमाइक्कंति जाव परूवेंति णो खलु ते समणा वा णिग्गंथावा नासं नासंति अणुतावियं खलु ते नासं नासंति अप्नाइक्कंति खलु ते समणे समणोवासएवा जेहिंवि अन्नेहिं जीवेहिं पाणेहिं नूएहिं सत्तेहिं संजमयंति ताणवि ते अप्नाइक्कंति कस्सणं तं हेउं सांसारिया खलु पाणा तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति तसकायाउ विप्पमुच्चमाणा थावरकायंसि उववज्जंति थावरकायाउ विप्पमुच्चमाणा तसकायंसि उववज्जंति तेसिंचणं तसकायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं अघत्तं ॥ ८ ॥

अर्थ—ए प्रकारें कहे बते, (सवायंनगवंगोयमेउदयंपेढालपुत्तंएवंवयासी के०) वादें सहित नगवान् श्री गौतम, आ प्रकारें उदक पेढालपुत्र प्रत्यें बोल्या के, (आउसंतोउदगा नोखलुअम्हेएवंरोयइ के०) अहो आयुष्मन् उदक ! ए जे तें वचन कह्यांडे ते निश्चेंथी अमनें रुचतां नथी, (जेतेसमणावामाहणावाएवमाइक्कंति के०) जे ते श्रमण, ब्राह्मण, नूत शब्द घालीनें त्रसजीवनो पच्चरकाण करियें एम कहे, (जावपरूवेंति के०) यावत् प्ररूपे, (णोखलुतेसमणावाणिग्गंथावा के०) निश्चें ते श्रमण निर्ग्रंथ न होय कारण के, (नासंनासंति के०) ते एवी निरति नाषा बोलेडे (अणुतावियंखलुतेनासंनासंति के०) जे अन्यनुं अन्य प्ररूपतां एटले एकनुं बीजुं प्ररूपतां सांनलनारनें केवल अ

नुताप उपजे, ते कारणे निश्चें ते अनुतापित नाषा बोलेछे. (अप्नाइस्कंतिख लुतेसमणेसमणोवासएवा के०) निश्चें ते श्रमण ब्राह्मण, साधुनें, तथा श्रमणोपा कनें, अन्याख्यान आपे, एटले जूठो कलंक आपे, (जेहिंविअन्नेहिं के०) तथा जे बी जा पण, (जीवेहिंपाणेहिंनूएहिंसत्तेहिंसंजमयंति के०) जीव, प्राण, नूत, अनें सत्वनें विषे जे संयम पाले, (ताणवि के०) ते पण (तेअप्नाइस्कंति के०) तेने अन्याख्यान जा णवुं (कस्सणंतंहेउं के०) तेनो हेतु शुं ? ते कहेछे. (सांसारियाखलुपाणा के०) जे कारण मार्टे निश्चें संसारी जीव जेछे ते परस्पर जाति माहो मांहे संक्रमे, त्रस जीव विणशीने स्थावर पणे उपजे, अनें स्थावर प्राणी विणशीनें, त्रसपणे उपजे, तथा त्रसकाय सर्वथा त्रसनुं आयुष्य त्यागीनें स्थावरकाय मांहे उपजे, अनें स्थावरजीव सर्वथापि स्थावरनुं आयुष्कर्म त्यागीनें त्रसकायने विषे उपजे, ते त्रसकायनें विषे उप ना त्रसकायनुं स्थानक ए अघात्य एटले घातवानुं कर्म लागे नहीं. जे कारण मार्टे ते श्रावकें त्रसजीव उद्देशीनें स्थूलप्राणातिपातनो विरमण कस्योछे अनें स्थावरकायने वि षे अविरतिछे ए कारण मार्टे व्रतनंग न कहेवाय परंतु जे, तमारे अनिप्रायें जुदा जु दा जीव उद्देशीनें प्राणातिपातनी निवृत्ति कीधी, ते कीधे छते अन्य पर्यायें पहोता एवा जीवनी विराधना करतां व्रतनंग थाय, तो कोइनें पण सम्यक् व्रतनुं पालवुं देखातुं न थी. ए कारणें तमे अन्याख्यान नाषा बोलोछो, तथा अहीं नूतशब्दनुं ग्रहण करोछो, ते पण निःकेवल व्यामोहनें अर्थेजछे. जे कारण मार्टे नूतशब्द उपमायें प्रवर्त्तेछे, जेम देवलोकनूत नगर, परं नतु देवलोकः तेम अहींयां तमे पण वक्तव्यतायें त्रसनूत केतां त्रस सरखा जीव जाणवा परंनतु त्रस, अथवा जे नूतशब्द तदर्थवाची वर्त्तेछे जेम शी तनूत उदक केतां शीतलजलज जाणवुं. तेम त्रसनूत केतां त्रसज केवाय. अहींयां नू तशब्द केतां पुनरोक्ति दोषछे. एम श्री गौतमस्वामियें नूतशब्दनुं निराकरण कयुं ॥८॥

॥ दीपिका–सवादं नगवान् गौतमस्तं उदकं पेढालपुत्रमेवमवादीत् । आयुष्मन्नुदक! नो खलु अस्मन्यमेतद्रोचते यदिदं त्रसकायविरतौ नूतत्वविशेषणं तदस्मन्यं न रोचतश्त्य र्थः। एवंसति ये श्रमणावा ब्राह्मणावा एवमाख्यांति ते यथार्थां नापां न नापंते किंतु? अनुतापिनीनाषां नाषंते अन्यथा नापणेहि परस्यानुतापोनवति तेऽन्याख्यांति श्रमणो पासकान सन्नूतदोषप्रकटनेनान्याख्यानं ददते (जेहिंति) येष्वपि अन्येषु जीवेषु ये सं यमयंति संयमं कुर्वंति तथा ब्राह्मणामया न हंतव्याइत्युक्ते सयदा वर्णांतरे तिर्यक्षु वा स्थितस्तद्वधे ब्राह्मणवधआपद्यते नूतशब्दविशेषणानावात् । एवं सूकरादिर्न हंतव्यइ त्यादिविशेषव्रतानि तेऽन्याख्यांति दूषयंति कस्माद्धेतोः? यस्मात्सांसारिकाः प्राणास्त्रसाः

स्थावरत्वेन स्थावरास्त्रसत्वेन प्रत्यायांति त्रसकायात्तदायुष्केन मुच्यमानाः स्थावरकाये स्थावरकायाच्च तद्योग्यकर्मणा मुच्यमानास्त्रसकाये उत्पद्यंते तेषां त्रसकाये समुत्पन्नानां स्थानमेतत्त्रसकायाख्यमघात्यं अघातार्हं नवति स्थूलप्राणिघातान्निवृत्तः श्राद्धः तन्निवृत्याच त्रसस्थानमघात्यं स्यात् तस्य तीव्राध्यवसायोत्पादकत्वाल्लोकगर्हितत्वाच्च स्थावरकायाच्चानिवृत्तइति तत्स्थानमस्य घात्यमित्युदकआह ॥ ७ ॥

॥ टीका–एवमेतद्यथा मया व्याख्यातमभिहितोगौतमः सद्वाचं सवादं वा तमुदकं पेढालपुत्रमेवं वक्ष्यमाणमवादीत् तद्यथा । नो खल्वायुष्मन्नुदकास्मन्यमेतदेवं तद्यथा त्वयोच्यते तद्रोचतइति । इदमुक्तं नवति यदिदं त्रसकायविरतौ नूतत्वविशेषणं क्रियते तन्निरर्थकतयास्मन्यं न रोचतइति । तदेवं व्यवस्थिते नो उदक ! एते श्रमणाब्राह्मणावा एवं नूतशब्दविशेषणत्वेन प्रत्याख्यानमाचक्षते । तद्यथा । परैः पृष्टास्तथैवं नाषंते प्रत्याख्यानं स्वतः कुर्वंतः कारयंतश्चैवमिति सविशेषणं प्रत्याख्यानं नाषंते तथैवमेव सविशेषणप्रत्याख्यानरूपणावसरे सामान्येन प्ररूपयंतं एवंच प्ररूपतोन खलु ते श्रमणावा निर्ग्रंथावा यथार्थां नाषां नाषंतेऽपित्वनुतापयतीत्यनुतापिका तां तथानूतां च खलु ते नाषां नाषंते अन्यथा नाषणे ह्यपरेण जानता बोधितस्य सतोनुतापोनवतीत्यतोनुतापिकेत्युच्यतइति । पुनरपि तेषां सविशेषणप्रत्याख्यानवतामुल्बणदोषोद्विनावयिषयाह । (अप्राइस्कंतीत्यादि) ते हि सविशेषणप्रत्याख्यानवादिनोयथावस्थितं प्रत्याख्यानं ददतः साधून् गृण्हतश्च श्रमणोपासकानन्याख्यांत्यनूतदोषोद्भावनतोऽन्याख्यानं ददति । किंचान्यत् । (जेहिंवीत्यादि) येष्वप्यन्येषु प्राणिनूतेषु जीवेषु सत्वेषु विषयनूतेषु विशिष्य ये संयमं कुर्वंति संयमयंति। तद्यथा ब्राह्मणोन मया हंतव्यइत्युक्ते सयदा वर्णांतरे तिर्यक्षुवा व्यवस्थितोनवति तद्वधे ब्राह्मणवधआपद्यते नूतशब्दविशेषणात्तदेवं तान्यपि विशेषव्रतानि सूकरोमया न हंतव्यइत्येवमादीनि विशेषणवादिनोऽन्याख्यांति दूषयंति । किमित्यतआह। (कस्सणमित्यादि) कस्माद्धेतोस्तदसद्भूतं दूषणं नवतीति यस्मात्सांसारिकाः खलु प्राणाः परस्परजातिसंक्रमणनाजोयतस्ततस्त्रसाः प्राणिनः स्थावरत्वेन प्रत्यायांति स्थावराश्च त्रसत्वेनेति। त्रसकायाच्च सर्वात्मना त्रसायुष्कं परित्यज्य स्थावरकाये तद्योग्यकर्मोपादानादुत्पद्यते तथा स्थावरकायाच्च तदायुष्कादिना कर्मणा विमुच्यमानास्त्रसकाये समुत्पद्यंते तेषांच त्रसकाये समुत्पन्नानां स्थानमेतत्त्रसकायाख्यमघात्यमघातार्हं नवति । तस्मात्तेन श्रावकेण त्रसानुद्दिश्य स्थूलप्राणातिपातविरमणं कृतं तस्य तीव्राध्यवसायोत्पादकत्वाल्लोकगर्हितत्वाच्चेति । तत्रासौ स्थूलप्राणातिपातान्निवृत्तस्तन्निवृत्त्याच त्रसस्थानमघात्यं वर्तते स्थावरकायाच्चानिवृत्तइति तद्योग्यतया तत्स्थानं घात्यमिति । तदेवं सनवदभिप्रायेण विशिष्टसत्वोद्देशे

नापि प्राणातिपातनिवृत्तौ कृतायामपरपर्यायापन्नं प्राणिनं व्यापादयतोव्रतभंगोभवति त तश्च न कस्यचिदपि सम्यग्व्रतपालनं स्यादित्येवमाख्यातमभूतदोषोद्भावनं भवंतोददति। यदपि भवद्भिर्वर्तमानकालं विशेषणत्वेन किलार्थं भूतशब्दउपादीयतेऽसावपि व्यामोहाय केवलमुपतिष्ठते । तथाहि । भूतशब्दोयमुपमाने वर्तते । तद्यथा देवलोकभूतं नगरमिदं न देवलोकएव तथापि त्रसभूतानां त्रससदृशानामेव प्राणातिपातनिवृत्तिः कृता स्यान्न तु त्रसानामित्यथ तादर्थ्ये भूतशब्दोयं यथा शीतीभूतमुदकं शीतमित्यर्थः । एवं त्रसभूतास्त्रसत्वं प्राप्तास्तथा च सति त्रसशब्देनैव गतार्थत्वात्पौनरुक्त्यं स्यादथैवमपि स्थिते भूतशब्दोपादानं क्रियते तथा च सत्यतिप्रसंगः स्यात्। तथाहि । क्षीरभूतविकृतेः प्रत्याख्यानं करोम्येवं घृतभूतं मे ददस्वैवं घटभूतः पटभूतइत्येवमादावप्यायोज्यमिति ॥ ८ ॥

सवायं उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी कयरे खलु ते आउसंतो गोयमा तुम्हे वयह तसपाणा तसा आउ अन्नहा सवायं भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी आउसंतो उदगा जे तुम्हे वयह तसभूता पाणा तसा ते वयं वयामो तसा पाणा जे वयं वयामो तसा पाणा ते तुम्हे वयह तसभूया पाणा एए संति डुवेठाणा तुल्ला एगठा किमाउसो इमे भे सुप्पणीयतराए भवइ तसभूया पाणा तसा इमे भे डुप्पणीयतराए भवइ तसा पाणा तसा ततोएगमाउसो पडिकोसह एक्कं अभिणंदह अयंपि भेदो से णो णेआउए भवइ ॥ ए ॥

अर्थ—हवे वाद सहित उदकपेढाल पुत्र, भगवंत श्री गौतमस्वामि प्रत्यें बोल्यो के, अहो आयुष्मन् गौतम! (तुम्हे के०) तमे (कयरे के०) प्राणीनें केवा (वयह के०) कहोछो? ए टले (तसपाणातसा के०) त्रसप्राणीज जे होय तेनेंज त्रस कहोछो. (आउ के०) अथ वा (अन्नहा के०) कोइ बीजे प्रकारें कहोछो? एम पुछ्या थका भगवंत श्री गौतमस्वामी वादसहित उदयपेढाल पुत्र प्रत्यें बोल्या के, अहो आयुष्मन् उदक! जे तमें कहो छो के, त्रसभूत प्राणी त्रस एटले अतीत अनें अनागतनो निषेध करी, तमें वर्त्तमान कालज लीधो, ए कारणमाटें जेनें तमें त्रसभूतप्राणी त्रस कहोछो, तेनें अमे त्रसप्राणी त्रस कहियें छैयें, (एएसंतिडुवेठाणातुल्ला के०) ए बे स्थानक अमारी तमारी वक्तव्यतायें परमार्थेंतो, (एगठा के०) एकार्थी एटले सरखांजछे, एमां अर्थ भेद कांही नथी (किमाउसोइमेभेसुप्पणीयतराएभवइ के०) तो केवी रीतें अहो आयुष्मन्! ए तमारो

पक्ष सुप्रणीत एटले रूडोछे एम अमे केम जाणियें ? त्रसनूतप्राणी त्रस, ए तमारो पक्ष छे, अनें त्रसप्राणी त्रस ए अमारो पक्षछे, तो ते अमारो पक्ष केवी रीतें डुःप्रणीत एटले माठो थाय ? त्रसप्राणी त्रस, एम एकार्थ वर्त्तमान ए शब्दनो तमनें केवो व्यामोह उपनो ? जे, (ततोएगमाउसोपडिकोसह के०) तेमां तमे एक पक्षनी प्रशंसा करोछो. एटले स्थापन करोछो (एकंअनिणंदह के०) एक पक्षनी निंदा करोछो (अयंपिन्नेदो के०) ए तमारो नेद पणछे, (सेणोणेआउएनवइ के०) ते न्यायोपपन्न न होय, ए न्यायमार्ग नथी. ॥ ए ॥

॥ दीपिका–उदकआह । उदकोगौतममवादीत् हे आयुष्मन् गौतम ! कतरान्प्राणिनोयूयं वदथ त्रसप्राणिनइति । अथ स ह्वाचं गौतमउदकमवादीत् आयुष्मन्नुदक ! यान्प्राणिनोयूयं वदथ त्रसनूतास्त्रसत्वेन वर्तमानानप्येष्यास्तानेव वयं वदामस्त्रसाइति । ये यान् वयं वदामस्त्रसांस्तान्यूयं वदथ त्रसनूतान् एते द्वे स्थाने तुल्ये एकार्थे एव नात्र कश्चिदर्थनेदः। एवं सत्ययं युष्मदीयः पक्षः किं सूपनीततरोयुक्तियुक्तः त्रसनूताः प्राणाइत्ययंतु पक्षोडुःप्रणीततरोऽयुक्तः प्रतिनासते कोयं व्यामोहोनवतां येन शब्दनेदादिकं पक्षमाक्रोशथ द्वितीयं त्वनिनंदथ । इत्ययमेवांगीकारोनवतां नो नैयायिकोन न्यायोपपन्नः उनयोरपि पक्षयोस्तुल्यत्वात् ॥ ए ॥

॥ टीका–तदेवं निरस्ते नूतशब्दे सत्युदकआह । (सवायंउदएइत्यादि) स ह्वाचं सवादं चोदकः पेढालपुत्रोनगवंतं गौतममेवमवादीत् । तद्यथा । हे आयुष्मन् गौतम ! कतरान्प्राणिनोयूयं वदथ त्रसनूतास्त्रसत्वेनाविर्नूताः प्राणिनस्तएव त्रसाः प्राणाइत्युतान्यथेत्येवं पृष्टोनगवान् गौतमस्तमुदकं स ह्वाचं पेढालपुत्रमेवमवादीत् । तद्यथा । आयुष्मन्नुदक ! यान्प्राणिनोयूयं वदथ त्रसनूतास्त्रसत्वेनाविर्नूताः प्राणिनोनातीतानाप्येष्याः किंतु ? वर्तमानकालएव त्रसाः प्राणाइति तानेव वयं वदामस्त्रसास्त्रसत्वं प्राप्तास्तत्कालवर्तिनएव त्रसाः प्राणाइति । एतदेव व्यत्ययेन बिनणिषुराह । (जेवयमित्यादि) यान्वयं वदामस्त्रसाएवप्राणास्त्रसाः प्राणास्तानेव यूयमेवं वदथ त्रसनूताएवप्राणास्त्रसाः प्राणाः एवंच व्यवस्थिते एते अनंतरोक्ते द्वे अपि स्थाने एकार्थे तुल्ये नवतोनह्यत्रार्थनेदः कश्चिदस्त्यन्यशब्दनेदादित्येवं व्यवस्थिते किमायुष्मन् ! युष्माकमयं पक्षः सुष्ठु प्रणीततरोयुक्तियुक्तः प्रतिनासते । तद्यथा । त्रसनूताएव प्राणास्त्रसनूताः प्राणाइत्ययं पक्षोडुःप्रणीततरोनवति प्रतिनासते नवतां । तद्यथा । त्रसाएव प्राणास्त्रसाः प्राणाः संति चैकार्थत्वेन नवतां कोयं व्यामोहोयेन शब्दनेदमाश्रित्यातएकं पक्षमाक्रोशथ द्वितीयं त्वनिनंदथ इति । तद

यमपि तुल्येप्यर्थे सत्येकपक्षस्याक्रोशनमपरस्य विशेषणपक्षस्याभिनंदनमित्येषदोषाभ्युप गमोभवतां नो नैयायिकोन न्यायोपपन्नोभवत्युभयोरपि पक्षयोः समानत्वात्केवलं सविशेषणपक्षे भूतशब्दोपादानं मोहमावहतीति ॥ ए ॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइआ मणुस्सा भवंति तेसिंचणं एवं वुत्तं पुव्वं भवइ णो खलु वयं संचाएमो मुंमा भवित्ता आगा राउ अणगारियं पव्वइत्तए पावय एहं अणुपुव्वेणं गुत्तस्स लिसि स्सामो ते एवं संखेवेंति ते एवं संखं ठवयंति ते एवं संखं ग वयंति नन्नत्र अभिउएणं गाहावइचोरग्गहणविमोरकणयाए त सेहिं पाणेहिं निहाय दंमं तंपि तेसिं कुसलमेव भवइ ॥ १० ॥

अर्थ-हवे एज अर्थनें दीपाववा माटें (भगवंचणंउदाहु के०) भगवंत श्री गौतम स्वामी कहेछे. (संतेगइयामणुस्साभवंति के०) कोइ एक हलवां कर्म वाला मनुष्य हो य, अनें ते प्रवर्ज्या पालवानें असमर्थ होय, (तेसिंचणंएवंवुत्तंपुव्वंभवइ के०) तेणें पू र्वें एम कह्युं होय, शुं कह्युं होय? ते कहेछे. (णोखलुवयंसंचाएमोमुंमाभवित्ता के०) निश्चें अमे मुंमित होवानें समर्थ नथी,(आगाराउअणगारियंपव्वइत्तए के०)गृहस्थावास त्यागिनें अणगारपणुं अंगीकार करी शकता नथी. (पावयएहंअणुपुव्वेणं के०) अमें घर थकी निकलीने प्रवर्ज्या लेइने अनुक्रमें, (गुत्तस्सलिसिस्सामो के०) साधुपणुं पालशुं, एट ले शुं कह्युं ? तोके, प्रथमतो देशविरतिरूप, श्रावकनो धर्म पालशुं, अनें अनुक्रमें प छी श्रमणनो धर्म पालशुं. (तेएवंसंखेवेंति के०) ते एवी व्यवस्था संभलावे (तेएवंसं खंठवयंति के०) ते पुरुष, एवी व्यवस्था स्थापन करे एटले एवी रीतें पच्चखाण करे, (तेएवंसंखंगवयंति के०) नें पछी तेज प्रमाणे मनमां रुडा प्रकारे स्थापन करे. ते कहेछे के, (नन्नत्थअभिउएणं के०) राजादिकना अभियोगें करी त्रसप्राणीनी घातथी अमारो व्रतभंग नथी. इत्यादिक पच्चखाण, साधुनो उपदेश सांभली करे. तेनी उपर (गाहावइचोरग्गहणविमोरकणयाए के०) गृहपति जे चोर तेनुं गृहण तथा विमोक्ष णछे जेमां, एवो गृहपति तथा राजानो दृष्टांत कहेछे.

रत्नपुरनामा नगरनें विषे रत्नशेखर राजा हतो. तेणे एकदा एवो विचार कर्यो के, आपणे कौमुदीमहोत्सव करवो. पछी रत्नमाला प्रमुख पोतानी स्त्रीयोनें आ वा तनी विज्ञापना करावी जे, स्वतंत्रक्रीडा, चंद्रनी चांदनीमां आपणे करवी. वली पोता ना नगरमां पण उद्घोषणा देवरावी जे, कोइ मनुष्यें आज रात्रें नगरमां न रहेवुं, अनें

बाहेर उद्यानमां सायंकालें जवुं. अनें कोइ नगरमां रहेशे तेना शरीरनो निग्रह राजा करशे ते प्रमाणें राजानी उद्घोषणाथी सर्वें मनुष्य सायंकालें नगर बाहेर गयां, तथा राजा पण सपत्नीक गयो. हवे ते पठी, कोइ एक वैश्यना ठ पुत्र हता. ते क्रयविक्रय व्यापारना व्यग्रपणाथी नगरमांज रहि गया, एटलामां सूर्यास्त थयो तेवारें नगर बाहेर निकलवा लाग्या परंतु गोपुर जे नगरना दरवाजा, ते बंध थइ गया दीठा. तेवारें न यभ्रांत ठता नगरमांहेंज कोइ स्थले पोतें गुप्त रह्या पठी कौमुदी महोत्सव संपूर्ण थया नंतर राजायें आरक्षकनें तेडावी कह्युं के, अहो आरक्षको! तमें रूडी रीतें कोइ पुरुष, नगरमां रहेलो होयतो तेनें जुवो? तेवार पठी नगरमां जोतां श्रेष्ठीना ठ पुत्रो दीठा. तेनें देखीनें, आरक्षकोयें राजाने विनव्यो के, स्वामी! कोइ एक श्रेष्ठीना ठ पुत्र नगरमां रह्याठे. तेवारें राजायें ते ठए पुत्रनो विनाश करवानें आदेश आप्यो. एवुं सांजली श्रेष्ठी, पुत्रशोकें व्याकुल ठतो राजापासें आवीनें एम कहेवा लाग्यो के, हे स्वामी! अमारा कुलनो क्षय म करो. अनें जे कांइ अमारा घरमां कुलक्रमागत धन ठे ते सर्व लेइनें अमारा ठए पुत्रनें जीवता मूको? ए प्रमाणें श्रेष्ठियें कहे थके, राजा अत्यंत क्रोधें व्याप्त थयो थको, श्रेष्ठि प्रत्यें कहेवा लाग्यो के, अरे पापिष्ठ! राजानी आज्ञा ते राजाना प्राणसमान! जेणें राजानी आज्ञा न मानी, तेणें राजानां प्राण हर्यां माटें तहारा पुत्रनें जीवता मूकुं नहिं. एवो राजानो घणो आग्रह जाणीनें फरी श्रेष्ठीयें पांच पुत्रनें जीवता मूकवानी विनति राजानें करी, तोपण राजायें मान्युं नहीं. तेवारें चार पुत्र मुकावनी विनती करी ते पण मानी नहीं, तेवारें त्रण पुत्र मुकाववानें अर्थें विनति करी तेपण राजायें मानी नहीं, तेवारें बे पुत्र मुकाववानी विनति करी, ते पण राजायें न मानी. एवो राजानो आग्रह जाणी श्रेष्ठीयें नगरमांहेला महोटा महोटा लोकोनें एकठा करी, ते बधानें राजापासें लइ जइने राजाने विनव्यो के, हेस्वामी! तमें प्रजाना पिता ठो तो सर्वथा प्रकारें अमारा कुलनो क्षय करवा शुं मामद्योठे? अहिंयां आवेला अमोनें तमेंज शरण ठो एटले अमारे तमारोज आश्रय ठे. तमने नावे तो मारो? अने नावेतो जीवाडो? एम कहि श्रेष्ठी राजानें पगे लागो ते वारें राजायें अनुकंपा करीनें ठ पुत्रमांहेथी एक महोटा पुत्रनें जीवतो मूक्यो. ए इव्य थकी दृष्टांत कह्यो, हवे दृष्टांतनी योजना करेठे के, जेम श्रेष्ठी तेम आहिं श्रावक जाणवो, जेम त्यां ठ पुत्र तेम आहिं ठकाय जाणवा. जेम श्रेष्ठीयें विलाप करवाथकी राजायें ठ पुत्र मांहेंथी एक पुत्र जीवतो मूक्यो, तेवारें श्रेष्ठी पोतानें कृतार्थ मानतो, एटले बीजा पांच पुत्रनी उपर श्रेष्ठीनें विनाश करवानो नाव नथी, परंतु शुं करे! जे राजा कोइ रीतें मूके नहिं? तेम अहीं पण साधुउ श्रावकनें संरक्षण

करवानें उपदेश आपेछे. परंतु श्रावक पोतें अशक्तपणानें लीधे एक त्रसकाय राखी शके छे. ते वारें साधु पण जे कांइ श्रावक राखे ते श्रावकनें कृतार्थ पोतें जाणे, परंतु बीजा पांच काय श्रावक विराधे छे. तेनी अनुमति साधुनें नथी, ए कारणें तेनुं कर्म कांइ लागे नही. ए न्याय उपर "गाहावइचोरग्गहणविमोक्खणयाए" ए पदनो अर्थ समाप्त थयो. हवे सूत्रथकी आगलनो संबंध देखाडेछे. (तसेहिंपाणेहिंनिहायदंमं के०) त्रस बे इंड्रियादिक प्राण, तेहनो वध ठांमिनें श्रावक जे विरति करे. (तंपि के०) ते विरति पण (तेसिंकुसलमेवनवइ के०) ते श्रावकनें पुण्यरूप होय. एम जाणवुं॥१०॥

॥ दीपिका—कुमतनिषेधमाह। नगवंचणं उदाहु रिति। नगवान् गौतमः पुनराह। संति एके केचन मनुष्याः येषां साधोर्धर्मकथकस्य पुरइदमुक्तं नवति यथा न खलु वयं मुंमा वितुं प्रव्रज्यां ग्रहीतुं शक्नुमः अगारादनगारितां प्रव्रजितुं वयमानुपूर्व्येण क्रमेण गोत्रं साधुत्वमनुश्लेषयिष्यामः। कोऽर्थः? वयं देशविरतिं पालयामः ततः क्रमेण चारित्रं ततएवं ते संख्यां व्यवस्थां श्रावयंति प्रत्याख्यानं कुर्वंतः प्रकाशयंति ते एवं व्यवस्थां स्थापयंति उपस्थापयंतिच नान्यत्राभियोगेन। अभियोगोराजाभियोगादिः। तेन त्रसं घ्नतोपि न व्रतभंगः तथा गृहपतिचोरविमोक्षणतयेति। अस्यार्थः कथागम्यः। सा चेयं। रत्नपुरे रत्नशेखरराज्ञा स्वांतःपुरादिस्त्रीणां स्वैरक्रीडारूपः कौमुदीमहोत्सवोऽनुज्ञातः पुरुषेण केनापि नगरमध्ये न स्थेयमित्याघोषणा कारिता नृपादयः पुरुषाः सर्वेपि उद्याने सायं जग्मुः। एकस्य वणिजः षट् पुत्राः क्रयविक्रयादिव्यग्राः पुरमध्यएव तस्थुः। स्थगितानि गोपुराणि ततस्ते निष्क्रांते महे राज्ञा रक्षकाणामुक्तं पश्यत नगरे कोपि नरोस्ति नवेति? तैर्विलोकयद्भिः षट् पुत्रास्ते दृष्टाः राज्ञोनिवेदिताः राज्ञा कुपितेन षण्णामपि वधः समादिष्टः। ततस्तत्पिता शोकाकुलोराजानं विज्ञापयतिस्म। देव! मा कृथाः कुलक्षयमस्माकं। सर्वधनं गृह्यतां मुच्यंतां पुत्राः। एवमुक्तेपि राजा कथमपि न मुंचति पुत्रान्, ततः पिता सर्वपुत्रघातप्रवृत्तं राजानं ज्ञात्वा पंचानां मोचनं याचितवान् राजा पंचानपि न मुंचति ततश्चत्वारोयाचिताः तथापि न मन्यते नृपः। ततस्त्रयोयाचितास्तेपि न मुक्ताः। ततो द्वौ मार्गितौ तावपि अमुंच नृपएकं पुत्रं याचितः समग्रपौरजनविज्ञप्तोनृपः पुत्रमेकं ज्येष्ठं मुक्तवान्। अत्रेयं दृष्टांतयोजना। सम्यक्त्ववान् श्राद्धः सर्वप्राणातिपातविरतिं कर्तुमशक्तोनृपस्थानीयः षट्कायपितृतुल्येन साधुना प्रेरितोपि सर्वविरतिं नांगीकुरुते षमपि जीवकायान्मोचयति साधुः। श्राद्धस्तु षण्णां मोचनेऽशक्तोज्येष्ठमेकं त्रसकायं मुंचति पालयतीत्यर्थः। साधुरेकमोचनेनापि कृतार्थमात्मानं मन्यते। यथाच तस्य वणिजोन शेषपंचपुत्रवधानुज्ञा एवं साधोरपि न शेषप्राणिवधानुमतिः किंतु? यदेव व्रतं गृहीत्वा यानेव स्थू

त्रसत्वात् संकल्पवधनिवृत्तोरक्षति श्राद्धः। तन्निमित्तं कुशलानुबंधएवेत्याह। (तसेहिं) त्रसेन्योदंम हिंसां त्यक्त्वा यावद्विरमति तावत्तस्य कुशलं पुण्यमेवेति ॥ १० ॥

॥ टीका—यच्च नवतास्माकं प्राग्दोषोद्भावनमकारि तद्यथा त्रसानां वधनिवृत्तौ तदन्येषां वधानुमतिः स्यात् साधोस्तथानूतशब्दानुपादानेनांतरमेव त्रसं स्थावरपर्यायापन्नं व्यापादयतोव्रतनंगइत्येतत्कुचोद्यजातं परिहर्तुकामआह । (नगवंचणमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे। नगवान्गौतमस्वामी चशब्दः पुनः शब्दार्थे। पुनराह ! तद्यथा । संति विद्यंते एके केचन लघुकर्माणोमनुष्याः प्रव्रज्यां कर्तुमसमर्थास्तद्व्यतिरेकेणैव धर्मं चिकीर्षवस्तेषां चैवमध्यवसायिनां साधोर्धर्मोपदेशप्रवणस्याग्रतइदमुक्तपूर्वं नवति । तद्यथा । नोसाधो! न खलु वयं शक्नुमोमुंमानवितुं प्रव्रज्यां ग्रहीतुमगाराद्गृहादनागारतां साधुनावं प्रतिपत्तुं वयं त्वानुपूर्व्येण क्रमशोगोत्रस्येति गां त्रायइति गोत्रं साधुत्वं तस्य साधुनावस्य पर्यायेण परिपाल्यात्मानमनुश्लेषयिष्यामः।इदमुक्तं नवति । पूर्वं देशविरतिरूपतया श्रावकधर्मं गृहस्थयोग्यमनिंद्यमनुपालयामस्ततोनुक्रमेण पश्चाच्छ्रमणधर्ममिति । ततएवं ते संख्यां व्यवस्थां श्रावयंति प्रत्याख्यानं कुर्वंतः प्रकाशयंति । तद्यथा । नान्यत्राभियोगेन। सचाभियोगोगणाभियोगोबलाभियोगोदेवताभियोगोगुरुनिग्रहश्चेत्येवमादिनाभियोगेन व्यापादयतोपि त्रसं न व्रतनंगः। तथा गृहपतिचोरविमोक्षणतयेत्यस्यायमर्थः । कस्यचिद्गृहपतेः षट् पुत्रास्तैश्च सत्यपि पितृपितामहक्रमायाते महति वित्ते तथाविधकर्मोदयाद्राजकुलनांमागारे चौर्यमकारि राजपुरुषैश्च नवितव्यतानियोगेन गृहीतास्ते इत्येके । परे त्वन्यथा व्याचक्षते । तद्यथा। रत्नपुरे नगरे रत्नशेखरोनाम राजा तेन च परितुष्टेन रत्नमालाग्रमहिषीप्रमुखांतःपुरस्य कौमुदीप्रचारोऽनुज्ञातस्तदवगम्य नागरलोकेनापि राजानुमत्या स्वकीयस्य स्त्रीजनस्य तथैव क्रीडनमनुमतं राज्ञाच नगरे सर्मिमिमशब्दमाघोषितं। तद्यथास्तमनोपरि कौमुदीमहोत्सवे प्रवृत्ते यः कश्चित्पुरुषः समुपलभ्यते नगरमध्ये तस्याविज्ञप्तिकः शरीरनिग्रहः क्रियतइत्येवं च व्यवस्थिते सत्येकस्य वणिजः षट् पुत्रास्ते च कौमुदीदिने क्रयविक्रयसंव्यवहारव्यग्रतया तावत्स्थितायावत्सविताास्तमुपगतः । तदंतरमेव स्थगितानि च नगरद्वाराणि तेषांच तत्कालात्ययान्न निर्गमनमनूत्ततस्ते नयसंभ्रांतानगरमध्यएवात्मानं गोपयित्वा स्थितास्ततोनिष्क्रांते कौमुदीप्रचारे राज्ञा रक्षिकाः समाहूयादिष्टायथा सम्यक् निरूपयत यूयं नात्र नगरे कौमुदीचारे कश्चित्पुरुषोव्यवस्थित ? इति।तैरप्यारक्षिकैः सम्यक् निरूपयद्भिरुपलभ्य षड्वणिक्पुत्रवृत्तांतोयथावस्थितएव राज्ञे निवेदितः। राज्ञाप्याज्ञानंगकुपितेन तेषां षण्णामपि वधः समादिष्टस्ततस्तत्पिता पुत्रवधसमाकर्णनगुरुशोकविह्वलोऽकांमापतितकुलक्षयोद्भ्रांतलोचनः किं कर्तव्यतामूढतया गणि

तविधेयाविधेयविशेषोराजानमुपस्थितोऽवादीच्च गजदया गिरा यथा मा कृथादेवास्माकं कुलक्षयं गृह्यतामिदमस्मदीयं कुलक्रमायातं स्वभुजोपार्जितं प्रभूतं द्रविणजातं मुच्यतां मुच्यताममी षट् पुत्राः क्रियतामयमस्माकमनुग्रहइति । एवमभिहितोराजा तद्वचनमाकर्ण्य पुनरपि सविशेषमादिदेश असावपि वणिक्सर्वथाशंकी सर्वमोचनानभिप्रायं राजानमवेत्य पंचानां मोचनं याचितवान् तानप्यसौ राजा नमोक्तुमनाइत्येवमभिगम्य चतुर्मोचनकृते सादरं विज्ञप्तवांस्तं तथापि राजा तमनादृत्य कुपितवदनएव स्थितस्ततस्त्रयाणां विमोचने कृतादरस्तत्पिताऽभूत् तानप्यमुंचंतं राजानं ज्ञात्वा गणितस्वापराधो द्वयोर्मोचनं प्रार्थितवांस्तथाप्यवज्ञाप्रधानं नृपतिमवगम्य ततः पौरमहत्तमसमेतोराजानमेवं विज्ञप्तवांस्तद्यथा देवाऽकांडएवास्माकं कुलक्षयः समुपस्थितः तस्माच्च भवंतएव त्राणायालमतः क्रियतामेकमत्पुत्रविमोचनेन प्रसादइति भणित्वा पादयोः सपौरमहत्तमः पतितोराज्ञापि संजातानुकंपेन मुक्तस्तदेकोज्येष्ठपुत्रइति । तदेवमस्य दृष्टांतस्य दार्ष्टांतिकयोजनेयं । तद्यथा साधुनाभ्युपगतसम्यग्दर्शनमवगम्य श्रावकमखिलप्राणातिपातविरतिग्रहणं प्रतिचोदितोप्यशक्तितया यदा न सर्वप्राणातिपातविरतिं प्रतिपद्यते यथाऽसौ राजा वणिजोत्यर्थं विलपितोपि न षडपि पुत्रान् मुमुक्षति नापि पंचचतुस्त्रिद्विःसंख्यान् पुत्रानिति । ततएकविमोक्षणेनात्मानं कृतार्थमिव मन्यमानः स्थितोसावेवं साधोरपि श्रावकस्य यथाशक्तिव्रतं गृह्णतस्तदनुरूपमेवाणुव्रतदानमविरुद्धमिति यथाच तस्य वणिजोन शेषपुत्रवधानुमितिलेशयोप्यस्त्येवं साधोरपि न शेषप्राणिवधानुमिति प्रत्ययजनितःकर्मबंधोभवति किं तर्हि? यदेव व्रतं गृहीत्वा यानेव सत्वान् बादरान् संकल्पजप्राणिवधनिवृत्त्या रक्षति तन्निमित्तः कुशलानुबंधएवेत्येतत्सूत्रेणैव दर्शयितुमाह । (तसेहिमित्यादि) त्रस्यंतीति त्रसाद्वींद्रियादयस्तेभ्यः सकाशान्निधाय निहाय वा परित्यज्येति यावत् दंडयतीति दंडस्तं परित्यज्य त्रसेषु प्राणातिपातविरतिं गृहीत्वेत्यर्थस्तदपि च त्रसप्राणातिपातविरमणव्रतं तेषां देशविरतानां कुशलहेतुत्वात्कुशलमेव भवति ॥ १० ॥

तसावि वुच्चंति तसा तससंभारकडेणं कम्मुणा णामंचणं अप्भुवगयं भवइ तसाउयंचणं पलिक्खीणं भवइ तसकायठिइया ते तउ आउयं विप्पजहंति ते तउ आउयं विप्पजहित्ता थावरत्ताए पच्चायंति थावरावि वुच्चंति थावरा थावरसंभारकडेणं कम्मुणा णामंचणं अप्भुवगयं भवइ थावरा आउयंचणं पलिक्खीणं भवइ थावरकायठिइया तउ आउयं विप्पजहंति तउ आ

जाणं काएण णाउट्टी, अबुहो जं च हिंसति ॥ पुट्ठो संवेदइ परं, अविय
त्तं खु सावज्जं ॥ २५॥ संति मे तउ आयाणा, जेहिं कीरइ पावगं ॥ अ
भिकम्माय पेसाय, मणसा अणुजाणिया ॥ २६ ॥ एते उ तउ आया
णा, जेहिं कीरइ पावगं ॥ एवं भावविसोहीए, निव्वाणमभिगछइ ॥
॥ २७ ॥ पुत्तं पिया समारप्न, आहारेज्ज असंजए ॥ भुंजमाणो य
मेहावी, कम्मणा नो विलप्पइ ॥ २८ ॥

अर्थ–जे कारणे ते कर्मचिंता थकी प्रनष्ट ले, ते उपर देखाडेले. जाणंकाएणणाउट्टी के० जे पुरुष जाणतो थको प्राणीउने हणे एटले जे पुरुष क्रोधे चड्यो थको मनने व्यापारे प्राणीनो घात करे परंतु कायाये करी अनाकुट्टी एटले कायाये करी प्राणीना अवयवना बेदनभेदनना व्यापारे प्रवर्त्ते नहीं तेने कर्मबंध नलागे. तथा जंचके० जे पुरुष अबुहोके० अजाणतो थको एकली कायाना व्यापारेज, हिंसतिके० प्राणीउनी हिंसा करे तेने पण कर्म लागे नहीं तथा एवा एकला मनना व्यापारे अथवा एकला कायाना व्यापारे जो कर्म लागे तो पुठोके० ईषत्मात्र फरश्यो थको स्पर्शरूपेज कर्म भोगवे, परंके० परंतु एनो अधिक विपाक नथी. केमके खुके० निश्चे सावज्जंके० ते सावद्य एटले पाप ते केवुंले, तो के अवियत्तंके० अव्यक्तमात्र ले एटले अस्पष्ट ले, सिकता मुष्टिवत् ले एटले जेम वेलुनी मुष्टी भींतने सन्मुख नांखी उतां स्पर्श मात्र करी पाली पडे; पण ते भींतने कांइ लागी रहे नहीं. तेम ए कर्मनो बंध जाणवो, एम क्रियावादी कहेले. ॥ २५ ॥ हवे कर्मनो बंध पूरण केम थाय एटले कर्मनो उपचय केम थाय ते कहेले. मेतउ के० ए त्रण आयाणा के० आदान एटले कर्मबंधननां कारण संति के० ले. जेहिं किरइपावगंके० जेणे करी पाप करीयें ते देखाडेले. अभिकम्मायके० अभिमुख चित्तमांहे जाणीने जे स्वयमेव एटले पोते जीवने हणे तथा तेने हणवानुं मन करे के हुं एनो विनाश करुं ए पहेलुं कर्म बंधननुं कारण जाणवुं. तथा ते जीवनो विनाश करवाने अर्थे पेसाय के० अन्यने आदेश आपी तेनोविनाश करावे ए बीजुं कर्मबंधनुं कारण जाणवुं. अने मणसाअणुजाणियाके० बीजो कोई जीवनो विनाश करतो होय तेने मति करी अनुमोदे, ए त्रीजुं कर्मबंधनुं कारण जाणवुं. ॥ २६ ॥ हवे ए त्रण कारणे करी उपार्ज्युं कर्म अधिक बंधाय ते कहेले. एतेउतउआयाणाके० निश्चे पूर्वोक्त ए त्रण कर्मबंधनां कारणले; ए त्रण एकठां मले तो निबड कर्म बंधाय एरीते जेहिंके० जे दुष्टअध्यवसायेकरी कीरइपावगंके० पाप उपचयरूप करे. एवंके० एरीते ए त्रण प्रकारे प्राणीउने विषे प्रवर्त्ते नहीं अने भावविसोहीएके० भावनी विशुद्धि होय. एतावता रागद्वेष

उयं विप्पजहित्ता नुज्जो परलोइयत्ताए पच्चायंति ते पाणावि वुच्चं ति ते तसावि वुच्चंति ते महाकायाए ते चिरछिइया ॥ ११ ॥

अर्थ—हवे जे उदयपेढालपुत्रनो अनिप्राय पूर्वें कह्यो ते एबे जे, त्रस जीव, स्थावर मांहे उपनो तेनो, आराम केतां अरण्यमांहे बेठे विनाश करतां, नागरिक पुरुषनी पेरें अवश्य व्रत नंग थाय. ए बोल टालवा माटें कहेबे. (तसाविवुच्चंति के०) त्रस एटले बे इंडियादिक एम पण कहियें, (तसातससंनारकडेणंकम्मुणाणामंचणंअप्नुवगयंनवइ के०) ते त्रस, पूर्वेंबंध त्रसनाम कर्मनें उदयें त्रसनुं नाम पामे, पढी (तसाउयंचणंपलिरकीणंनवइ के०) णं एवे वाक्यालंकारें जेवारें ते त्रसकायनुं आयुष्य परिक्षीण थाय. ते त्रसकायनी स्थिति क्यां सुधी होय? ते कहेबे (तसकायछिइयाते के०) ते त्रसकायस्थिति, जघन्यथकी अंतरमुहूर्त्त अनें उत्कृष्टसाधिक बे हजार सागरोपम प्रमाणे होय. (ततोआउयंविप्पजहंति के०) ते वार पढी ते त्रसपणुं बांमे. (विप्पजहित्ता के०) ते त्रसपणुं बांमीने (थावरत्ताएपच्चायंति के०) स्थावर पणे उपजे, (थावराविवुच्चंति के०) तेवारें तेनें स्थावर पण कहियें. (थावराथावरसंनारकडेणंकम्मुणाणामंचणंअप्नुवगयंनवइ के०) ते स्थावर, पूर्वें बंध कर्युं जे स्थावरनाम कर्म, तेना उदयथी स्थावर एवुं नाम पामे, एटले स्थावर होय, (थावरा आउयंचणंपलिरकीणंनवइ के०) वली ते जेटले ते स्थावरनुं आयुःकर्म परिक्षीण थाय. (थावरकायछिइया के०) हवे स्थावरकायनी स्थिति केवी होय? तो के, जघन्य अंतर मुहूर्त्त अने उत्कृष्ट थकी अनंतो काल असंख्यात पुजलपरावर्त्त पर्यंत, एवी स्थिति होय. पढी एटली स्थिति खपावीने, (तउआउयंविप्पजहंति के०) तेवार पढी स्थावर पणुं बांमे, (तउआउयंविप्पजहित्ता के०) ते स्थावर स्थिति बांमीनें (नुज्जोपरलोइयत्ताए पच्चायंति के०) वली परलोक पणे उपजे. एतावता त्रसपणुं पामे. (तेपाणाविवुच्चंतितेत साविवुच्चंति के०) ते प्राण पण कहियें, ते त्रसनामकर्मनें उदयें, त्रसनाम पणे उपनाबे, माटें त्रसप्राण एवे नामे कहियें, तथा त्रस पण कहिये. (तेमहाकायाए के०) ते महोटी काया एटले लक्ष योजन प्रमाण वैक्रिय शरीर वाला एवा महाकाय कहियें. तथा (तेचिरछिइयाए के०) ते चिरस्थितिक, नवस्थितिनी अपेक्षायें तेत्रीश सागरोपम प्रमाण स्थिति जाणवी. तो अहीयां श्रावकें त्रसनुंज पच्चरकाण कीधुंबे परंतु स्थावरकायपणें उपना ते जीवोनुं पच्चरकाण नथी कर्युं. ते कारणें कयो व्रत नंग थयो? तथा तमे जे नागरीकनो दृष्टांत देखाडयो ते दृष्टांत पण अहीं संनवे नहीं. ते दृष्टांत देवाथी अमे एम जाणीयें बैयें जे, तमे गुरुना मुख थकी सूत्रार्थ लीधो नथी केमके, नगरनें धर्में सहित ते नागरिक कहियें ते नागरिक पुरुष महारे हणवो नहीं, एवी प्रतिज्ञा ग्रहण करीनें प

ठी ते नागरिक बाहिर आरामनें विषे बेठेलाने विणाशतां व्रतभंग थाय? ए दृष्टांत अंहीं त्रस, अनें स्थावरनें नेदें मलतो नथी केमके, ते नागरिक पुरुष जो बाहेर आरामादि कने विषे स्थित होय तो पण, तेनुं नागरिक पणु शुं जतुं रह्युं ? त्यां पण ते नागरिक तेज आकारेंठे. तेहिज वर्णेठे, तेहिज परिणामेठे, ए दृष्टांत पर्यायें त्रसनें मले नही, एवुं जाणी, तमे अयुक्त बोलोबो ॥ ११ ॥

॥ दीपिका—त्रसाअपि द्वींद्रियादयोपि त्रसाउच्यंते त्रसास्त्रससंनारकृतेन कर्मणा स्युः । संनारोनाम कर्मणोऽवश्यं विपाकानुनवेन वेदनं । तच्च त्रसनाम प्रत्येकनाम इत्या दिकं त्रसत्वेन संबद्धं यदायुष्कं उदयप्राप्तं स्यात्तदा त्रसनामादिकर्मणा त्रसाउच्यंते । त्रसायुर्यदा क्षीणं स्यात्त्रसकायस्थितिश्च क्षीणा स्यात् साच जघन्येनांतर्मुहूर्तं उत्कृष्टतः सातिरेकसहस्रद्वयसागरमानास्ततस्ते त्रसायुस्त्यजंति अन्यान्यपि तत्सहचरकर्माणि त्यक्त्वा स्थावरत्वेन प्रत्यायांति । स्थावराअपि तथैव कर्मणा स्थावरत्वेनोत्पद्यंते एवंस ति स्थावरकायं घ्नतः श्राद्धस्य कथं स्थूलप्राणातिपातनिवृत्तिव्रतनंगइति । किंच (थाव राआउंति) यदा स्थावरायुष्कमपि क्षीणं स्यात्तथा स्थावरकायस्थितिश्च सा जघन्येनांतर्मुहूर्तं उत्कृष्टतोनंतकालमसंख्येयाः पुजलपरावर्ताः । ततस्ते स्वायुः परित्यज्य नूयः पुनरपि परलोकतया स्थावरकायस्थितेरनावात्सामर्थ्यात्त्रसत्वेन प्रत्यायांति ते त्रसाः प्राणाअप्युच्यंते त्रसाअप्युच्यंते । महाकायास्ते योजनलक्षप्रमाणशरीरविकुर्वणात् चिरस्थितिकास्ते नवस्थित्यपेक्षया त्रयस्त्रिंशत्सागरायुष्कनावात् । ततस्त्रसनिवृत्तिरेव श्राद्धेन कृता न तु स्थावराणां । नागरिकदृष्टांतोप्ययुक्तः । नागरिकोन हंतव्यइति प्रतिज्ञां कृत्वा बहिःस्थितं तमेव पर्यायापन्नं घ्नतोव्रतनंगइति त्वत्पक्षः । सचायुक्तोयोहि नगरधर्मैरुपेतः स बहिःस्थोपि नागरिकएवातः पर्यायापन्नइति विशेषणमयुक्तं । सर्वथा नगरधर्मत्यागेतु तमेवेति नोपद्यते । सचान्यएवेति तथा त्रसत्वत्यागाद्यदा स्थावरत्वं प्राप्तस्तदान्यएवायमिति तं घ्नतोन व्रतनंगः ॥ ११ ॥

॥ टीका—यच्च प्रागनिहितं तद्यथा तमेव त्रसं स्थावरपर्यायापन्नं नागरिकमिव बहिःस्थं व्यापादयतोऽवश्यंनावी व्रतनंगइत्येतत् परिहर्तुकामआह । (तसावीत्यादि) त्रसा अपि द्वींद्रियादयोपि स्वसंनारकृतेन कर्मणा नवंति । संनारोनामावश्यतया कर्मणोविपाकानुनवने वेदनं । तच्चेह त्रसनाम प्रत्येकनामेत्यादिकं नामकर्मान्युपगतं नवति त्रसत्वेन यत्परिबद्धमायुष्कं तद्यदोदयप्राप्तं नवति तदा त्रससंनारकृतेन कर्मणा त्रसाइति व्यपदिश्यंते न तदा कथंचित्स्थावरत्वव्यपदेशोयदाच तदायुः परिक्षीणं नवति । एमिति वाक्य

लंकारे। त्रसकायस्थितिकं च कर्म यदा परिक्षीणं नवति तच्च जघन्यतोंतर्मुहूर्तमुत्कृष्टतः सातिरेकसहस्त्रद्वयसागरोपमपरिमाणं तदा ततस्त्रसकायस्थितेरनावात्तदायुष्कं ते परित्यजंत्यपराण्यपि तत्सहचरितानि कर्माणि परित्यज्य स्थावरत्वेनोदयं यांति। इत्येवंच व्यवस्थिते कथं स्थावरकायं व्यापादयतोगृहीतत्रसकायप्राणातिपातनिवृत्तः श्रावकस्य व्रतनंगइति?। किंचान्यत् (थावराउआउयंचणमित्यादि) यदा तदपि स्थावरायुष्कं परिक्षीणं नवति तथा स्थावरकायस्थितिश्च सा जघन्यतोंतर्मुहूर्तमुत्कृष्टतोऽनंतकालमसंख्येयाः पुजलपरावर्ताइति ततस्तत्कायस्थितेरनावात्तदायुष्कं परित्यज्य नूयः पुनरपि पारलौकिकत्वेन स्थावरकायस्थितेरनावात् त्रसत्वेन सामर्थ्यात्प्रत्यायांति। तेषांच त्रसानामन्वर्थितान्यनिधानान्यनिधातुमाह। (तेपाणावीत्यादि) ते त्रससंनारकृतेन कर्मणा समुत्पन्नाः संतः सामान्यसंज्ञया प्राणाअप्युच्यंते। तथा विशेषतस्त्रसनयचलनयोरिति धात्वर्थानुगमान्नयचलनाभ्यामुपेतास्त्रसाअप्युच्यंते तथा महान् कायोयेषां ते महाकायाः योजनलक्षप्रमाणशरीरविकुर्वणात्तथा चिरस्थितिकाअप्युच्यंते। नवस्थित्यपेक्षया त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुष्कसद्भावात्ततस्त्रसपर्यायव्यवस्थितानामेव प्रत्याख्यानं तेन गृहीतं नतु स्थावरकायत्वेन व्यवस्थितानामपीति। यस्तु नागरिकदृष्टांतोनवतोपन्यस्तोऽसावपि दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्यात्केवलं नवतोनुपासितगुरुकुलवासित्वमाविष्करोति। तथाहि। नगरधर्मैरुपयुक्तोनागरिकः सच मया न हंतव्यइति प्रतिज्ञां गृहीत्वा यदा तमेव व्यापादयति बहिः स्थितं पर्यायापन्नं तदा तस्य किल व्रतनंगइति नवतः पक्षइति। सच न घटते। यतोयोहि नगरधर्मैरुपेतः सबहिस्थोपि नागरिकएवातः पर्यायापन्नइत्येतद्विशेषणं नोपपद्यते अथ सामस्त्येन परित्यज्य नगरधर्मं नासौ वर्तते अतस्तमेवेत्येतद्विशेषणं नोपपद्यते तदेवमत्र त्रसः सर्वात्मना त्रसत्वं परित्यज्य यदा स्थावरः समुत्पद्यते तदा पूर्वपर्यायपरित्यागादपरयोयापन्नत्वाच्च सएवासौ न नवति तद्यथा नागरिकः पदूभ्यां प्रविष्टस्तद्धर्मापेतत्वात्पूर्वधर्मपरित्यागाच्च नागरिकएवासौ न नवतीति ॥ ११ ॥

सवायं उदए पेढालपुत्ते नयवं गोयमं एवं वयासी आउसंतो गोयमा एवािणं से केइ परियाए जसं समणोवासगस्स एगपाणातिवायविरएवि दंडे निक्खित्ते कस्सणं तं हेउं सांसारिया खलु पाणा थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति थावरकायाउ विप्पमुच्चमाणा सवे तसकायंसि उववज्जंति तसकायाउ विप्पमुच्चमाणा सवे थावरकायंसि उववज्जंति तेसिंचणं थावरकायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं घत्तं ॥ १२ ॥

अर्थ–हवे वादसहित उदयपेढालपुत्र, नगवंत श्रीगौतम प्रत्यें बोल्या के, अहो आयुष्यमन् गौतम! ते कोइ पर्याय नथी के, जेणें करी श्रमणोपासक श्रावकनें एक प्राणातिपातविरति विषयिक दंमनो त्याग कस्यो जाय. ते केवा हेतुथी? ए कारण देखाडे बे. संसारी प्राणी परस्पर मांहो मांहे गतिना करनारबे. स्थावरप्राणी त्रस पण उपजे, अने त्रसप्राणी पण स्थावर पणे उपजे. हवे वली विशेषें कहेबे. स्थावर काय थकी मूकाता थका एतावता स्थावरकायनुं आयुष्य त्यागी सर्वे त्रसकाय पणे उपजे, पाबल कोइ स्थावर रहे नहीं, तथा वली त्रसकाय थकी मूकाता एतावता त्रसकायनुं आयुष्य त्यागीनें सर्वे, स्थावरकाय मांहे उपजे, पाबल कोइ त्रस रहे नहीं, तेवारें ते श्रावकनें स्थावर मांहे उत्पन्न त्रसनुं स्थानक हणाणुं, ए व्रतनंग थयो ॥१२॥

॥ दीपिका–पुनरुदकः प्राह । सवादमुदकोगौतममवादीत् । हे गौतम ! नास्ति सकश्चित्पर्यायः यस्मिन्नेकप्राणातिपातविरमणेपि श्रमणोपासकस्य दंमोवधोनिक्षिप्तः परित्यक्तः स्यात् । कोर्थः । श्राद्धेन त्रसमुद्दिश्य प्रत्याख्यानं कृतं । संसारिणा वान्योन्यगमनसंनवात्त्रसाः सर्वेपि स्थावरत्वं प्राप्तास्तदा त्रसानामनावान्निर्विषयं प्रत्याख्यानमित्यर्थः। (कस्सणंति) केन हेतुना इदमुच्यते सांसारिकाः खलु प्राणाः स्थावरास्त्रसतया त्रसाअपि स्थावरतया प्रत्यायांति स्थावरकायाद्विप्रमुच्यमानाः स्वायुषा सर्वे निरवशेषकास्त्रसकाये समुत्पद्यंते त्रसकायादपि तदायुषा मुच्यमानाः सर्वे स्थावरकाये समुत्पद्यंते तेषां त्रसानां स्थावरकायोत्पन्नानां स्थानमेतद्घात्यं । यथा केनचित्प्रतिज्ञातं मया नगरनिवासी न हंतव्यः तच्च उद्वसितं नगरं ततोनिर्विषयं प्रत्याख्यानं । एवमत्रापि त्रसानामनावान्निर्विषयत्वमिति ॥ १२ ॥

॥ टीका–पुनरप्यन्यथोदकः पूर्वपक्षमारचयितुमाह । (सवायंउदएइत्यादि) सद्वाचं सवादं वोदकः पेढालपुत्रोनगवंतं गौतममेवमवादीत् । तद्यथाऽयुष्मन् गौतम! नास्त्यसौ कश्चित्पर्यायोयस्मिन्नेकप्राणातिपातविरमणेपि श्रमणोपासकस्य विशिष्टविषयामेव प्राणातिपातनिवृत्तिं कुर्वतोदंमः प्राण्युपमर्दनरूपोनिक्षिप्तपूर्वः परित्यक्तपूर्वोनवति । इदमुक्तं नवति । श्रावकेण त्रसपर्यायमेकमुद्दिश्य प्राणातिपातविरतिव्रतं गृहीतं संसारिणां च परस्परगमनसंनवात्तेच त्रसाः सर्वेपि किल स्थावरत्वमुपगतास्ततश्च त्रसानावान्निर्विषयं यत्प्रत्याख्यानमिति।एतदेव प्रश्नपूर्वकं संदर्शयितुमाह।(कस्सणंतंहेउमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे।कस्य हेतोरिदमनिधीयते केन हेतुनेत्यर्थः। सांसारिकाः प्राणाः परस्परसंसरणशीलायतस्ततः स्थावराः सामान्येन त्रसतया प्रत्यायांति त्रसाअपि स्थावरतया प्रत्या

यांति । तदेवं संसारिणां परस्परगमनं प्रदर्श्याधुना यत्परेण विवक्षितं तदाविष्कुर्वन्नाह । (थावरकायाउइत्यादि) स्थावरकायाद्विप्रमुच्यमानाः स्वायुषा तत्सहचरितैश्च कर्मनिः सर्वे निरवशेषास्त्रसकाये समुत्पद्यंते ते त्रसकायादपि तदायुषा विप्रमुच्यमानाः सर्वे स्थावरकाये समुत्पद्यंते तेषांच त्रसानां सर्वेषां स्थावरकायसमुत्पन्नानां स्थानमेतद्घात्यं वर्तते तेन श्रावकेण स्थावरकायवधनिवृत्तेरकारणादतः सर्वस्य त्रसकायस्य स्थावरकायत्वेनोत्पत्तेर्निर्विषयं तस्य त्रसवधनिवृत्तिरूपं प्रत्याख्यानं प्राप्नोति । तद्यथा केनचिद्वृतमेवंनूतं गृहीतं यथा मया नगरनिवासी न हंतव्यस्तच्चो द्वसितं नगरमतोनिर्विषयं तत्तस्य प्रत्याख्यानमेवमत्रापि सर्वेषां त्रसानामनावान्निर्विषयत्वमिति ॥ १२ ॥

सवायं नगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी णो खलु आउसो अस्साकं वत्तव्वएणं तुम्नंचेव अणुप्पवादेणं अत्थिणं से परियाए जेणं समणोवासगस्स सव्वपाणेहिं सव्वनूएहिं सव्वजीवेहिं सव्वसत्तेहिं दंमे निक्खित्ते नवइ कस्सणं तं हेउं सांसारिया खलु पाणा तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति तसकायाउ विप्पमुच्चमाणा सव्वे थावरकायंसि उववज्जंति थावरकायाउ विप्पमुच्चमाणा सव्वे तसकायंसि उववज्जंति तेसिंचणं तसकायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं अघत्तं ते पाणावि वुच्चंति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते चिरट्ठिइया ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं नवति ते अप्पयरागा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं नवइ से महया तसकायाउ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स जन्नं तुम्नेवा अन्नोवा एवं वदह णत्थिणं से समणो केइ परियाए जं से समणोवासगस्स एगपाणा पविरएवि दंमे णिक्खित्ते अयंपि नेदे से णो णेयाउए नवइ॥ १३ ॥

अर्थ—हवे एम कहे बते वादसहित नगवंत श्रीगौतम स्वामी, उदयपेढाल पुत्र प्रत्यें एम बोल्या के, निश्चें अहो आयुष्मन् उदक! (अस्साकंवत्तव्वएणं के०) अमारी वक्तव्यतायें जे तुं वचन कहेबे, तेम थयुं पण नथी, अनें थशे पण नहीं, ते केमके, समस्त स्थावरजीव, त्रस पणें उपजे एम तमे कहोबो तो, जगत् मांहे त्रस जीवतो असंख्याताबे, अनें स्थावर अनंताबे तो, अनंता असंख्याता मांहे शी रीतें समाय? तथा वली

समस्त त्रस जीव पण स्थावर पणुं न पामे. केम के कोइ वारें पण त्रसशून्य संसार न थाय, तेमज स्थावरशून्य पण संसार न थाय, ए अमारो मतछे. हवे तमारो पक्ष तमारेज अभिप्रायें करी निराकरण करियें छैयें. ते सांभलो. (तुप्भंचेवअणुप्पवादेणं के०) तमाराज केवा प्रमाणे (अछिणंसेपरियाए के०) ते पर्यायछे के जे पर्यायें करी श्रमणोपासकनें सर्व प्राण, सर्व भूत, सर्वजीव, सर्वसत्व, तेनो घात रुंधायछे एटले त्याग थायछे केमके, तमारी वक्तव्यतायें जे वारें सर्व स्थावरजीव त्रसपणे उपना तेवारें सर्व प्राण विपे पच्चरकाण श्रावकनो थयो, ते कारण माटें श्रावक, त्रसनो घात न करे. ए विशेष सूत्रें करी देखाडेछे (कस्सणंतंहेउं के०) तेनो हेतु कयो ? ते देखाडेछे निश्चें सांसारिक प्राणी, त्रस प्राणी पण स्थावर पणे उपजे, अनें स्थावर प्राणी त्रस पणे उपजे, त्रसकाय थकी मूकाता सर्व स्थावर पणे उपजे, अनें स्थावर कायथकी मूकाता सर्व त्रस पणे उपजे तेवारें (तेसिंचणंतसकायंसिउववन्नाणंठाणमेयंअघत्तं के०) जो स्थावरकाय पणुं त्यागीनें त्रस पणे उपजे, तेवारे श्रावकनें त्रसना स्थानक भणी अघत्तं एटले विराधनानुं कांहिं कारण नथी, जे कारणें (तेपाणाविवुच्चंति के०) ते त्रसप्राण पण कहियें, अने तेने त्रस पण कहियें, ते महाकाय, ते चिरस्थितिक, ए अर्थ पूर्ववत् जाणवो. (तेबहुयरगापाणा के०) ते घणा त्रसप्राणीयो जेणें करी श्रमणोपासकनें रूडो पच्चरकाण थाय (तेअप्पयरागापाणा के०) ते प्राण, आहीं अल्प शब्द सर्वथा अभावने अर्थेंछे जे कारणे सर्व स्थावर फीटी त्रस थाय, तेवारें स्थावर जीवनो अभाव थयो. एम तमारी वक्तव्यतायेंज श्रावकने घणुं रूडुं पच्चरकाण थाय. अने जे तमे कहोछो के श्रावकने अपच्चरकाण थाय, ते तो उलटुं रूडुं पच्चरकाण थाय ते श्रावक महोटी त्रसकायना आरंभथी उपशम्या सावधान थया विशेपेंथी निवर्त्या, तेने रूडुं पच्चरकाण थाय (जन्नं के०) जे कारण माटें तमे अथवा बीजा (एवंवदह के०) एम कहे के जे एवुं कोइ पर्याय नथी, के जे पर्यायें श्रावकने प्राणातिपातनो पच्चरकाण थाय. ए तमारुं केहेवुं ते न्यायमार्गेनुं नथी ॥ १३ ॥

॥ दीपिका—अथ गौतमः प्राह सद्वाचं गौतम उदकमवादीत् । अस्माकमिति मगधदेशे सर्वजनप्रसिद्धं संस्कृतमेवोच्चार्यते तथैवात्र पठितं । तदेवमस्माकं संबंधिना वक्तव्येन नैतदशोभनं किं तर्हि ? युष्माकमेवानुप्रवादेन एतदशोभनमिति । अस्मद्वक्तव्येनास्य चोद्यस्यानुत्थानमेव । तथाहि । नैतद्भूतं न भवति नापिच भविष्यति यत्सर्वेपि स्थावरास्त्रसत्वं प्रतिपद्यंते स्थावराणामानंत्यात्त्रसानां वाऽसंख्येयत्वेन तदाधारत्वं न युक्तं । त्रसाश्रपि स्थावरत्वं न प्रतिपन्नानच प्रतिपद्यंते नापि प्रतिपत्स्यंते । नच कदाचित्त्रसशून्यः संसारः स्यादिति भवदाक्षेपोवृथैव । अस्त्ययं पर्यायोयच्छ्रमणोपासकस्य सर्वप्राणिनिस्त्रसत्वेन

नूतैरुत्पन्नैर्दंमोनिक्षिप्तोवधस्त्यक्तः । केन हेतुनेत्याह । सांसारियाइत्यादि पूर्ववत् । याव त्रसकाये उत्पन्नानां स्थानमेतदघात्यं स्यात् । तेच त्रसाप्राणाउच्यंते त्रसाअप्युच्यंते । ते महाकायाश्चिरस्थितिकाः । ते त्रसाबहवोयैः श्राद्धस्य तु प्रत्याख्यातं नवति । नवदनिप्रायेण सर्वस्थावराणां त्रसत्वेनोत्पत्तेः । तेऽल्पतरकाः यैः श्राद्धस्याप्रत्याख्यानं नवति । अ ल्पशब्दोनाववाचकः । न संत्येव त्वदनिप्रायेण ते जीवाः येषु अप्रत्याख्यानमिति । एवं सेतस्य श्राद्धस्य महतस्त्रसकायाडुपशांतस्य विरतस्य सुप्रत्याख्यानं स्यादिति । एवंसति य यूयं वदथान्योवा वदति यन्नास्त्यसौ पर्यायइत्यादि सुगमं यावत्सोणेयाउएनवइत्ति ॥ १३ ॥

॥ टीका–एवमुदकेनानिहिते सति तदन्युपगमेनैव गौतमस्वामी दूषयितुमाह । (सवायमित्यादि) स द्वाचं वादं वा तमुदकं पेढालपुत्रं गौतमस्वाम्येवमवादीत् । तद्यथा नो खल्वायुष्मन्नुदकास्माकमित्येतन्मगधदेशे आगोपालांगनादि प्रसिद्धं संस्कृतमेवोच्चार्यते तदिहापि तथैवोच्चारितमिति । तदेवमस्माकं संबंधिना वक्तव्येन नैतदशोननं किं तर्हि युष्माकमेवातुप्रवादेनैतदशोननं । इदमुक्तं नवत्यस्मद्वक्तव्येनास्य चोद्यस्यानुत्थानमेव । तथाहि । नैतद्भूतं न च नवति नापि कदाचिद्भविष्यति यडुत सर्वेपि स्थावरानिर्लेपतया त्रसत्वं प्रतिपद्यंते स्थावराणामानंत्यात्त्रसानां चासंख्येयत्वेन तदाधारत्वानुपपत्तेरित्यनिप्रायः । तथा त्रसाअपि सर्वे न स्थावरत्वं प्रतिपन्नान प्रतिपत्स्यंते । इदमुक्तं नवति । यद्यपि विवक्षितकालवर्तिनस्त्रसाः कालपर्यायेण स्थावरकायत्वेन यास्यंति तथा च परंपरापर त्रसोत्पत्त्या त्रसजात्यनुच्छेदान्न कदाचिदपि त्रसकायशून्यः संसारोनवतीति । तदेवमस्मन्मतेन चोद्यानुत्थानमेवान्युपगम्यच नवदीयं पक्षं युष्मदन्युपगमेनैव परिह्रियते तदेव परानिप्रायेण परिहरतस्तस्यासौ पर्यायः । सचायं नवदनिप्रायेण यदा सर्वेपि स्थावरास्त्रसत्वं प्रतिपद्यंते यस्मिन्पर्यायेऽवस्थाविशेषे श्रमणोपासकस्य कृतप्राणातिपातनिवृत्तेः सतः त्रसत्वेन च नवदन्युपगमेन सर्वप्राणिनामुत्पत्तेः । तैश्च सर्वप्राणिनिस्त्रसत्वेन नूतैरुत्पन्नैः करणनूतैस्तेषु वा विषयनूतेषु दंमोनिक्षिप्तः परित्यक्तः । इदमुक्तं नवति । यदा सर्वेपि स्थावराः नवदनिप्रायेण त्रसत्वेनोत्पद्यंते तदा सर्वप्राणिविषयं प्रत्याख्यानं श्रमणोपासकस्य नवतीति । एतदेव प्रश्नपूर्वकं दर्शयितुमाह । (कस्सणंहेउमित्यादि) सुगमं । यावत्त्रसकाये समुत्पन्नानां स्थानमेतदघात्यमघातार्हं तत्र विरतिसद्भावादित्यनिप्रायः । तेच त्रसानारकतिर्यङ्नरामरनाजः सामान्यसंज्ञया प्राणिनोप्यनिधीयंते तथा विशेषसंज्ञया नयचलनोपेतत्वात्त्रसाअप्युच्यंते । तथा महान् कायः शरीरं येषां ते महाकायाः वैक्रियशरीरस्य योजनलक्षप्रमाणत्वादिति । तथा चिरस्थितिकायाः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमपरिमाणत्वाद्भवस्थितेस्तथा ते प्राणिनस्त्रसाबहुतमानूयिष्ठायैः श्रमणोपास

कस्य सुप्रत्याख्यानं भवति। त्रसानुद्दिश्य तेन प्रत्याख्यानस्य ग्रहणात्वादन्युपगमेनच सर्वे स्थावराणां त्रसत्वेनोत्पत्तेरतस्तेऽल्पतरकाः प्राणिनोयैः कारणभूतैः श्रावकस्याप्रत्याख्यानं भवति । इदमुक्तं भवति । अल्पशब्दस्याभाववाचित्वान्न संत्येव ते येष्वप्रत्याख्यानमित्येवं पूर्वोक्तया नीत्या सेतस्य श्रमणोपासकस्य महतस्त्रसकायादुपशांतस्योपरतस्य प्रतिविरतस्य सतः सुप्रत्याख्यानं भवतीति संबंधस्तदेवं व्यवस्थिते। णमिति वाक्यालंकारे। यद्यूयं वदथान्योवा कश्चित्तद्यथा नास्त्यसावित्यादि सुगमं यावण्णोणेयाउएभवइत्ति ॥ १३ ॥

भगवंचणं उदाहु नियंठा खलु पुच्छियव्वा आउसंतो नियंठा इह खलु संतेगइया मणुस्सा भवंति तेसिंचणं एवं वुत्तं पुव्वं भवइ जे इमे मुंमे भवित्ता आगाराउ आणगारियं पवइत्ता एएसिंचणं आमरणंताए दंमे णिक्खित्ते जे इमे आगारमावसंति एएसिणं आमरणंताए दंमे णो णिक्खित्ते केइ तंचणं समणा जाव वासाइं चउपंचमाइं छठ्ठद्दसमाइं अप्पयरोवा भुज्जयरोवा देसं दूईज्जित्ता आगारमावसेज्जा हंता वसेज्जा तस्सणं तं गारढं वहमाणस्स से पच्चक्खाणे भंगे भवइ णोतिणठ्ठे समठ्ठे एवमेव समणोवासगस्सवि तसेहिं पाणेहिं दंमे णिक्खित्ते थावरेहिं पाणेहिं दंमे णो णिक्खित्ते तस्सणं तं थावरकायं वहमाणस्स से पच्चक्खाणे णो भंगे भवइ से एवं मायाणह णियंठाए से एवं मायाणियव्वं ॥ १४ ॥

अर्थ—हवे श्रीगौतमस्वामिज स्थावर पर्यायें पहोता एवा त्रस जीवोनें विनाशवाथकी, व्रतभंग न थाय! एवा अर्थनी प्रसिद्धिनें अर्थे त्रण दृष्टांत देखाडेछे. (भगवंचणं उदाहु के०) भगवंत श्रीगौतमस्वामी पोतानुं उद्धत पणुं टालवा माटें बीजा स्थविरनें साक्षी करी बोलेछे, एटले पोतानी पासें कोइ एक स्थविर बेठाछे तेनें उद्देशी कहेछे के, अहो उदक! जे अर्थ हुं कहुं छुं तेना साक्षी (नियंठाखलुपुच्छियव्वा के०) निश्चें आ निर्ग्रंथोने पूछवुं. एम कही निर्ग्रंथ प्रत्यें कहेछे के, (आउसंतोनियंठा के०) अहो आयुष्मंत निर्ग्रंथो! जे हुं आगल कहीश, ते वचन तमारे मनमां मान्य थाय छे किंवा नथी थतुं? ते वचन हुं कहुंछुं, तमे सांभलो. (इहखलु के०) आ जगत् मांहे निश्चें (संतेगइयामणुस्साभवंति के०) कोइ एक मनुष्य शांतिप्रधान एवा होय, (तेसिंचणंएवंवुत्तंपुव्वंभवइ

के०) तेणें पोतानुं एवुं व्रतविशेष पूर्वें कह्युंछे, ते केवुं कह्युंछे? ते कहेछे. (जेइमेमुंमे नवित्ता के०) जे तें हुं मुंम थइश. (आगाराउअणगारियंपव्वइत्ता के०) गृहस्थावास बांमीने अणगार पणुं प्रव्रजीश (एएसिंचणंआमरणंताएदंमेणिरिकत्ते के०) एने विषे मरणांतिक एटले मरणांतसुधी में दंम बांम्यो, एतावता ए प्रव्रजीतने एटले यतिपणाने पा मेलोने विणाशवो नही. (जेइमेआगारमावसंति के०) जे गृहस्थावास विषें वसतो पुरुष, (एएसिणंआमरणंताएदंमेणोणिरिकत्ते के०) तेनुं मरणना अंतसुधी, दंम एटले हणवुं निषेध्युं नथी. एवुं तेनुं व्रत विशेषछे, (केइतंचणंसमणाजाववासाइंचउपंचमाइंछठदस माइं के०) तेवारें कोइ एक श्रमण, प्रवर्ज्या पर्याय पाली यावत् चार, पांच, ब, तथा दश वर्ष, इत्यादिक (अप्पयरोवाभुक्तियरोवा के०) अल्पकाल, अथवा घणा काल सुधी. (देसंदूइज्जित्ता के०) चारित्रनें विषे विचरी, तथाविध कर्मनें उदयें वली, (आगारमावसेज्जा के०) गृहस्थावास सेवन करे, ए नाव संनवे किंवा न संनवे? तेवारें आगल बेठेला निर्ग्रंथी बोल्या के, (हंतावसेज्जा के०) हा, चारित्रिया थकी गृहस्थ थाय. जे कारण माटें कर्मनी गति विचित्रछे. हवे वली गौतम स्वामी कहेछे. (तस्सणंतंगारबंवहमाणस्स के०) हवे ते पुरुष के, जेनें चारित्रियापणे विनाशवानो नियमछे अनें गृहस्थपणे विनाशवानो नियम नथी, तेवारें ते चारित्रियो फीटी गृहस्थ थयो छे तेवानें विनाशता तेनुं, (सेपच्चरकाणेनंगेनवइ के०) ते पच्चरकाण नांजे, किंवा न नांजे ? ते कहो. तेवारें ते बोल्या. (णोतिणठेसमठे के०) ए अर्थ समर्थ न थाय, अर्थात् तेनुं व्रत न नांजे. (एवमेवसमणोवासगस्सवि के०) एणी परें श्रमणोपासकने पण (तसेहिंपाणेहिंदंमेणिरिकत्ते के०) त्रस प्राणिनें विषे घात करवानो नियमछे परंतु (थावरेहिंपाणेहिंदंमेणोणिरिकत्ते के०) अनें स्थावर प्राणिनें घात करवानो नियम नथी, ते कारण माटें जे त्रस फीटीनें स्थावर थयो, (तस्सणं के०) तेनो, (तंथावरकायं के०) ते स्थावरकायनी, (वहमाणस्स के०) विराधना करनार श्रावकनुं (सेपच्चरकाणे के०) ते पच्चरकाण (णोनंगेनवइ के०) नंग न थाय. (सेएवंमायाणह के०) ते एम जाणो (णियंठाए के०) अहो निर्ग्रंथो ! (सेएवंमायाणियव्वं के०) ते बीजुं पण एमज जाणवुं ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—अथ त्रसानां स्थावरत्वं प्राप्तानां वधेपि न व्रतनंगः स्यादित्यत्र दृष्टांतत्रयमाह। नगवान्। गौतमउदाह उक्तवान् निर्ग्रंथाः प्रष्टव्याः। निर्ग्रंथानां सर्वेषामप्येतत्संमतमिति ज्ञापनाय निर्ग्रंथप्रश्नः। किमुक्तवानित्याह। शांतिप्रधानाइह केचिन्मनुष्याः स्युस्तेषामेतडक्तपूर्वं नवति। अयं व्रतग्रहणविशेषः स्यात् यइमे मुंमानूत्वाऽगारान्निर्गत्यानगारितां प्रतिपन्नाएषामुपरि मया मरणांतोदंमोनिक्षिप्तोवधस्त्यक्तः। कोर्थः ? केनापि यती

नाश्रित्य व्रतं गृहीतं । यथा यावज्जीवं मया यतयोन हंतव्याइति । येच इमेऽगारं गृहमा वसंति तेषां दंमोन त्यक्तः । गृहस्थानां हिंसा न प्रत्याख्याताइत्यर्थः । तत्र केचिद्ब्रमणाः कियंतमपि कालं प्रव्रज्यां प्रतिपाल्य । कालमानमाह । वासाइत्ति । वर्षाणि पंच च ष ड्दशवा । अस्योपलक्षणादन्योपि कालविशेषोज्ञेयस्तमेवाह । अल्पतरं प्रभूततरं च कालं । तथा देसंदूइज्ज विहृत्य कर्मोदयाद्गृहमावसेयुर्गृहस्थान्नवेयुः एवंभूतः पर्यायः किं संभाव्यते उत नेति ? पृष्टानिर्ग्रंथाः प्रत्यूचुः हंत गृहवासं व्रजेयुः । तस्य च यतिवधगृ हीतव्रतस्य तं गृहस्थं घ्नतः किं व्रतभंगोभवेत् ? उतनेति ते आहुर्नेति । एवं श्राद्धस्य त्र सवधनिवृत्तस्य स्थावरस्य प्राप्तं त्रसं घ्नतोन स्याद्व्रतभंगः ॥ १४ ॥

॥ टीका—सांप्रतं त्रसानां स्थावरपर्यायापन्नानां व्यापादनेनापि न व्रतभंगोभवतीत्यर्थ स्य प्रसिद्ध्ये दृष्टांतमाह । (भगवंचणमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे । चशब्दः पुनःशब्दा र्थे । पुनरपि भगवान् गौतमस्वाम्येवाह । स्वौद्धत्यपरिहरणार्थमपरानपि स्थविरान् साक्षि णः कर्तुमिदमाह । ते निर्ग्रंथायुष्मत्स्थविराः खलु प्रष्टव्यास्तद्यथा आयुष्मंतोनिर्ग्रंथायु ष्माकमप्येत द्वक्ष्यमाणमभिमतमाहोस्विन्नेत्यवष्टंभेन चेदमाह । युष्माकमप्येतदभिप्रेतं यदहं वच्मि । तद्यथा । शांतिरुपशमस्तत्प्रधानाएके केचन मनुष्याभवंति न नारकतिर्यग्दे वाः किं तर्हि मनुष्यास्तेपि नाकर्मभूमिजानापि म्लेछाअनार्यावा तेषां चार्यदेशोत्पन्ना नामुपशमप्रधानानामेतदुक्तपूर्वं भवति अयं व्रतग्रहणविशेषोभवति । तद्यथा । यइमे मुंडा भूत्वाऽगाराद्गृहान्निर्गत्यानगारतां प्रतिपन्नाः प्रव्रजिताइत्यर्थः । एतेषां चोपचर्यामरणांतं मया दंमोनिक्षिप्तः परित्यक्तोभवति । इदमुक्तं भवति कश्चित्तथाविधोमनुष्योयतीनुद्दि श्य व्रतं गृह्णाति तद्यथा न मया यावज्जीवं यतयोहंतव्यास्तथा ये चेमेऽगारं गृहवा समावसंति तेषां दंमोनिक्षिप्तइत्येवं केषांचिद्व्रतग्रहणविशेषे सति व्यवस्थिते इदमपदि श्यते तत्र केचन श्रमणाः प्रव्रजिताः कियंतमपि कालं प्रव्रज्यापर्यायं प्रतिपाल्य तमेव काल विशेषं दर्शयति । यावद्वर्षाणि चत्वारि पंच वा षड् दश वास्य चोपलक्षणत्वादन्योपि काल विशेषोद्रष्टव्यः । तमेवाह । अल्पतरं प्रभूततरं वा कालं तथा देशंच दूइज्जइत्ति । विहृत्य कुतश्चित्कर्मोदयात्तथाविधपरिणतेरगारं गृहवासं वसेयुर्गृहस्थान्नवेयुरित्येवंभूतः पर्यायः किं संभाव्यते? उत नेत्येवं पृष्टानिर्ग्रंथाः प्रत्यूचुः हंत गृहवासं व्रजेयुस्तस्य च यतिवधगृहीत स्य तं गृहस्थं व्यापादयतः किं व्रतभंगोभवेदुत नेति? आहुर्नेति । एवमेव श्रमणोपासक स्यापि त्रसेषु दंमोनिक्षिप्तोन स्थावरेष्विति अतस्त्रसं स्थावरपर्यायापन्नं व्यापादयतस्तत्प्र त्याख्यानभंगोन भवतीति ॥ १४ ॥

विना यद्यपि कांई मने करी तथा कायाये करी प्राणिघात थाय. तोपण तेने नावनी विशुद्धियें कर्मबंध न लागे ते कर्मबंधनने अनावे निवाणमनिगच्छइ के० निर्वाणपदे पहो चे. एटले मुक्ति पामे एम परवादी कहेछे. ॥२७॥ ए उपर दृष्टांत कहेछे. पुत्तंपियासमा रप्नके० बाप दीकरानो विनाश करी तेनुं मांस आहारने अर्थे कोइक आपत्कालने विषे, आहारेज्जअसंजएके० असंयत जे गृहस्थ ते रागद्वेषरहित थको पुत्रना मांसने आहारे तथा मेधावीके० पंमितपण एटले संयती दीक्षित ते पण ते मांसनो नुंजमाणो के० आहार करतो थको जो शुद्ध अध्यवसाय छे. तो कम्मणानोविलिप्पई के० कर्मे लेपातो नथी तेम बीजो प्राणी पण रागद्वेषरहित कर्त्तो थको कर्मे करी बंधातो नथी. ॥ २८ ॥

॥ दीपिका—कर्मचिंतानष्टत्वमेवाह ॥ जानन् यः प्राणिनोहिनस्ति कायेनशरीरेणच नाकु ट्टी अहिंसकः । कोर्थः । कोपादेर्निमित्तात्मनोव्यापारेण जीवान् हंति न कायेन तस्याऽनवद्य कर्मोपचयोन स्यादित्यर्थः । तथा अबुधोऽजानन् कायेन हिनस्ति तस्यापि मनोव्यापारा नावान्न कर्मबंधः । (पुष्टोत्ति) । तेन कर्मणा असौ केवलमनोव्यापारकृतेन केवलका यक्रियोत्थेन वा स्पृष्टएव संवेदयति स्पर्शमात्रेणैव तत्कर्मानुनवति न तस्याधिको विपाकः स्पर्शानंतरमेव परिशटतीत्यर्थः । एवं तत्सावद्यं कर्माऽव्यक्तमेव न स्पष्टं ॥ २५ ॥ कथं तर्हि कर्मोपचयः स्यादित्याह । (संतित्ति)। संत्यमूनि त्रीण्यादानानि कर्मोपादा नानि । यैः पापकर्म क्रियते तान्याह । अनिक्रम्य सन्मुखं गत्वा स्वयं हंति १ परं प्रे ष्य यत्कारयति २ कुर्वंतं वाऽनुजानातीति ३ एतत्कर्मोपादानत्रयं । अयं नावः । केवलं म नसा शरीरेण वा न कर्मबंधः किंतु यत्र स्वयंकृतकारितानुमतयः क्लिष्टाध्यवसायश्च तत्रै कर्मबंधः ॥ २६ ॥ एतदेव दर्शयति । तुरवधारणे । एतान्येव त्रीणि व्यस्तानि समस्ता कर्मोपादानानि यैः पापं कर्म क्रियते । एवं सति यत्र कृतकारितानुमतयः प्राणिहिंसायां संति तत्र नावविशुध्या रागद्वेषरहितबुध्या प्रवर्तमानस्य सत्यपि प्राणातिपाते केवलेन म नसा मनोव्यापाररहितेन कायेन उनयेन वा विशुद्धबुद्धेर्न कर्मबंधस्तदनावान्निर्वाणम निगच्छति प्राप्नोति ॥ २७ ॥ नावशुध्या प्रवर्तमानस्य हिंसायामपि कर्मबंधो न स्यादि त्यत्रार्थे दृष्टांतमाह । (पुत्तंति) । पिता पुत्रं समारच्य व्यापाद्य आहारार्थं कस्यां चि त्तथाविधायामापदि रागद्वेषरहितोऽसंयतोगृहस्थस्तन्मांसं नुंजानोपि । चशब्दोप्यर्थे । मेधा वी संयतोपि नुंजानः कर्मणा नोपलिप्यते । यथा पितुः पुत्रं व्यापादयतोपि शुद्धम नसः कर्मबंधोन स्यात्तथा तस्यारक्तद्विष्टस्य प्राणिवधे न कर्मबंधः ॥ २८ ॥

॥ टीका—यथा च ते कर्मचिंतातोनष्टास्तथा दर्शयितुमाह।(जाणंकायेणणाउट्टीत्यादि)। हि जानन्नवगच्छन् प्राणिनोहिनस्ति कायेन चाऽनाकुट्टी । कुट्टछेदने । आकुट्टनमाकुट्टः स

भगवंचणं उदाहु नियंठा खलु पुछियव्वा आउसंतो नियंठा इह खलु गाहावइ गहावइपुत्तोवा तहप्पगारेहिं कुलेहिं आगम्मा धम्मं सवणवत्तियं उवसंकमेज्जा हंता उवसंकमेज्जा तेसिंचणं तहप्पगाराणं धम्मं आइक्खियव्वे हंता आइक्खियव्वे किं ते तहप्पगारं धम्मं सोच्चा णिसम्म एवं वएज्जा इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलियं पडिपुन्नं संसुद्धं णेयाउयं सल्लकत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं निज्जाणमग्गं निव्वाणमग्गं अवितहमसंदिद्धं सव्वडुक्खपहीणमग्गं एत्थंठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वडुक्खाणमंतं करेंति तं माणाए तहा गच्छामो तहा चिठ्ठामो तहा णिसियामो तहा सुयट्टामो तहा भुंजामो तहा भासामो तहा अब्जुठामो तहा उठाए उठेमोत्ति पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं संजमेणं संजमामोत्ति वएज्जा हंता वएज्जा किं ते तहप्पगारा कप्पंति पव्वावित्तए हंता कप्पंति किं ते तहप्पगारा कप्पंति मुंडावित्तए हंता कप्पंति किं ते तहप्पगारा कप्पंति सिक्खावित्तए हंता कप्पंति किं ते तहप्पगारा कप्पंति उवठावित्तए हंता कप्पंति तेसिंचणं तहप्पगाराणं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं दंडे णिक्खित्ते हंता णिक्खित्ते सेणं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा जाव वासाइं चउपंचमाइं छठ्ठद्दसमाइंवा अप्पयरोवा भुज्जयरोवा देसं दूइज्जेत्ता आगारं वएज्जा हंता वएज्जा तस्सणं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं दंडे णो णिक्खित्ते से जे से जीवे जस्स परेणं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं दंडेणो णिक्खित्ते से जे से जीवे जस्स आरेणं सव्वपाणेहिं जाव सत्तेहिं दंडे णिक्खित्ते से जे से जीवे जस्स इयाणिं सव्वपाणेहिं जाव सत्तेहिं दंडे णो णिक्खित्ते भवइ परेणं असंजए आरेणं संजए इयाणिं असंजए असंजयस्स णं सव्वपाणेहिं जावसत्तेहिं दंडे णो णिक्खित्ते भवइ सएव मायाणह णियंठा से एव मायाणियव्वं ॥ १५ ॥

अर्थ—जगवंत श्रीगौतम स्वामी, वली बीजो दृष्टांत देखाडता बता बोल्या के, आ दृष्टांतमां निर्ग्रंथोनें निश्चें पूबवुं. अहो आयुष्यमंत निर्ग्रंथो! आ जगतमांहे गृहपति, अथवा गृहपतिना पुत्र, ते तथाप्रकारनां रूडा कुलनें विषे (आगम्मा के०) आवीनें (धम्मंस्सवणवत्तियं के०) धर्म सांजलवानें (उवसंकमेज्जा के०) उद्यम करे? एवुं पुबयुं ते वारें निर्ग्रंथ बोल्या, (हंताउवसंकमेज्जा के०) हा रूडा कुलना उपना होय, ते धर्मने विषे उद्यम करे. तेवारें फरी श्रीगौतमस्वामी बोल्या (तेसिंचणंतहप्पगाराणंधम्मंआइक्खियव्वे के०) तेवा गृहस्थने तथा प्रकारनो धर्म कहेवो? तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या (हंताआइक्खियव्वे के०) हा ते ग्रहस्थने धर्म कहेवो. फरी श्री गौतमस्वामी बोल्या के, (किंतेतहप्पगारंधम्मंसोच्चा के०) केम के ते गृहस्थ, तेवा तथा प्रकारनो धर्म सांजलीनें (णिसम्म के०) हृदयनें विषे अवधारीनें (एवंवएज्जा के०) एवुं वचन बोले. शुं बोले? तोके (इणमेव निग्गंथंपावयणंसच्चं के०) ए तीर्थंकरजाषित निर्ग्रंथनुं प्रवचन, ते सत्यछे. समस्त जीवनें हितकारीछे, अनुत्तर अन्यशास्त्रमां प्रधान, केवलिजाषित, उत्तम मनोहर एवो बीजो कोइ मार्ग नथी. (पडिपुण्णंसंसुद्धंणेयाउयं के०) मोक्षमार्गना गुणे करी प्रतिपूर्ण, संशुद्ध एटले अत्यंत शुद्ध मोक्षार्थीजीवनें न्यायसंपन्न (सल्लकत्तणं के०) सम्यक्प्रकारें मायादिक शल्यनो कापनार सिद्धिनो मार्ग, मुक्तिनो मार्ग, एटले निर्लोजपणानो मार्ग, निर्वाण एटले सिद्धनो मार्ग, अर्थात् समस्तकर्मक्षय करवानो मार्ग, ते निर्वाणमार्ग (अवितहं के०) अवितथ्य सत्य, (असंदिद्धं के०) असंदिग्ध एटले संदेह रहित मार्ग, सर्वडुःख प्रक्षीण करवानो मार्ग, (एड्डंठियाजीवा के०) ए मार्गनें विषे स्थित एटले रहेला जीव, सीज्झंति एटले कार्य सिद्धि करे, लोकालोकनुं स्वरूप बूजे, सर्वडुःखथकी मूकाय, (परिणिव्वायंति के०) कर्म रूपदावानलनें उपशमाववे करी, शीतलीजूत थाय, एटले सर्व समाधि पामे, सर्व डुःखनो अंत करे, ए मार्गनें अमे पण आदरीनें (तंमाणाए के०) तमारी आज्ञायें (तहागच्छामो के०) तेम चालियें (तहाचिट्ठामो के०) तेम उजारहियें (तहाणिसियामो के०) तेम बेशियें (तहासुयट्टामो के०) तेम सुयें, एटले निद्रा करियें, (तहाभुंजामो के०) तेम जमियें (तहाजासामो के०) तेम बोलियें (तहाअब्भुट्ठामो के०) तेम सावधान पणे प्रवर्त्तियें (तहाउट्ठाए के०) तेम उठवे करी उठियें (उट्ठेमोत्ति के०) उठीनें जेम सर्व प्राण, जूत, जीव, सत्व, तेनी विराधना न थाय (संजमेणं के०) एवा आचारें करी, (संजमामोत्तिवएज्जा के०) संयम पालि ते गृहपति एम कहे. ए प्रकारें गौतम प्रजुयें कह्युं, तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या. (हंतावएज्जा के०) हा ते गृहस्थ जेम तमे बोल्या, तेमज कहे. वली गौतम स्वामी कहेछे. (किंतेतहप्पगाराकप्पंतिपव्वावित्तए के०) केम ते गृहीने तथा प्रकारनुं

प्रव्रज्या व्रत कल्पे, एटले दीक्षा आपवी कल्पे? तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या (हंताकप्पंति के०) हा कल्पे. तेवारें श्री गौतम बोल्या. केम तेवा गृहीनें मुंम करवा कल्पे? निर्ग्रंथ बोल्याके, हा कल्पे. गौतम बोल्या तेवा गृहीनें शीखाववुं कल्पे? निर्ग्रंथ बोल्या हा कल्पे. तेवा गृहीनें धर्मने विषे उगावववो कल्पे? निर्ग्रंथ बोल्या के, हा कल्पे. तेवा गृहीनें चारित्र लीधा अनंतर सर्वप्राण, नूत, जीव, सत्व, तेनें विषे घात करवानो त्याग एटले बांधवा पणुं कल्पे? तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या के,हा कल्पे. (सेणं के०) ते, ण ए वे वाक्यालंकारें एतद्रूपेण एटले एवे विहारें विचरता यावत् चार, तथा पांच, ब, तथा दश वर्ष, अथवा अल्पकाल, अथवा घणा काल पर्यंत देशमांहे, अथवा संयममांहे विचरी तथाविध चारित्रावरणीय कर्मने उदयें वली गृहवास सेवे? तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या हा सेवे. जे कारण माटें कर्मनी गति वैचित्र्यछे तेथी जेणें चारित्र मूकीने गृहवास आदर्योछे तेनें सर्वप्राण, नूत, जीव, अनें सत्वनें विषे घात मूकाणो? अर्थात् नहीं मूकाणो, तो हवे जुर्ड के (सेजेसेज्जीवे के०) ते जीव, जे प्रथम गृहस्थ हतो. तेवार पबी ते जीव चारित्रियो थयो. तेवारें पण तेज जीव हतो,तेवार पबी वली गृहस्थ थयो तेवारें पण तेहिज जीव छे.(जस्सपरेणं के०) जेने प्रथम, सर्व प्राण,नूत,जीव,सत्वना वधनो दंम नथी बंमाणो तेज जीव,अनें जेनें आरेण एटले वच्चें बंमाणो अने जेने इयाणिं एटले हमणा वर्त्तमानें वली नथी बंमाणो,ए रीतें तेनी त्रण अवस्था थइ.प्रथम असंयत हतो,वच्चें संयत थयो, तेवार पबी वली असंयत थयो तेवारे तेने सर्व प्राण, यावत् सर्व सत्वना वधनो दंम, बंमाणो न होय, ए जीव कांइ सर्वकाल असंयत न कहेवाय! परंतु जेवारें जेवो होय. तेवारें तेवो कहेवाय. तो अहो निर्ग्रंथो त्रस! अने स्थावरने विषे पण एम जाणवुं माटें जेवारें त्रस तेवारें त्रस, अनें जेवारें स्थावर. तेवारे स्थावर. ए बीजो दृष्टांत कह्यो ते एम जाणे अने बिजु पण एप्रमाणे मानवुं ॥ १५ ॥

॥ दीपिका—अथ द्वितीयदृष्टांतं प्रत्याख्यातृविषयगतं दर्शयन्नाह । नगवान् गौतमः प्राह । निर्ग्रंथाः प्रष्टव्याः इह खलु गृहपतिर्वा गृहपतिपुत्रोवा तथाप्रकारेषु श्रेष्ठकुलेषु उत्पद्य धर्मश्रवणार्थमागच्छेयुः तेषां धर्मआख्यातव्यइति पृष्टे श्रमणाआहुः । हंत आख्यातव्यः किं ते तथाप्रकारं शुद्धं धर्मं श्रुत्वा एवं वदेयुः । इदमेव निर्ग्रंथसंबंधि प्रवचनं सत्यं यावत् सर्वदुःखप्रहीणमार्गं इच्छंति । अत्र स्थिताजीवाः सिद्ध्यंति । यावत्सर्वदुःखानामंतं कुर्वंति तदाज्ञया तथा गच्छामः तथा वेष्टामहे यावत् तथा उच्चया प्रयत्नेन प्राणिनां संयमेन हिंसानिवृत्त्या संयमामोसंयमं कुर्मोयथा जिनाज्ञा एवं ते वदेयुः इति पृष्टे श्रमणाआहुः हंत वदेयुः । पुनः श्रमणान् पृच्छति । किं ते तादृशायोग्याः कल्पंते प्रव्राजयितुं । श्रमणाआहुर्हंत कल्पंते इत्यादि । तेसिंचणं तैस्तथाविधैः सर्वजीवेन्योदंमस्त्य

क्तः एवंविधास्ते विहरंतोवर्षाणि चत्वारि पंच वा षट् दश वा अल्पतरं बहुतरं वा कालं देशग्रामादावुद्यतविहारेण विहृत्य पश्चात्पतितपरिणामाः संतोगारं व्रजेयुर्गृहस्थाभवेयुरि त्यर्थः । निर्ग्रंथाः पृष्टोत्तरमाहुः । हंत व्रजेयुः तेषां सर्वप्राणिभ्योदंमोनो निक्षिप्तः । तेषा मवस्थात्रयमाह । पूर्वं गृहस्थत्वे सर्वजंतुवधोन त्यक्तः अथ यः ससाधुत्वे सर्वजंतुवध स्तेन त्यक्तः । पुनः साधुत्वं मुक्त्वेदानीं गृहस्थे जाते सर्वजंतुवधोन त्यक्तः । पूर्वमसंयतः१ आरतः संयतः२ इदानीमसंयतः३ असंयतस्य सर्वजंतुवधोन त्यक्तः । तदेवं जानीत निर्ग्रं थास्तदेवमाज्ञातव्यं । एवं यथावस्थात्रयेप्यन्यथात्वं स्यादेवं त्रसस्थावरयोरपि ज्ञेयं॥१५॥

॥ टीका—सांप्रतं पुनरपि पर्यायापन्नस्यान्यथात्वं दर्शयितुं द्वितीयं दृष्टांतं प्रत्याख्यातृ विषयगतं दर्शयितुमाह (भगवंचणमित्यादि) भगवानेव गौतमस्वाम्याह । तद्यथा गृह स्थाः यतीनामंतिके समागत्य धर्मं श्रुत्वा सम्यक्त्वं प्रतिपद्य तदुत्तरकालं संजातवैराग्याः प्रव्रज्यां गृहीत्वा पुनस्तथाविधकर्मोदयात्तामेव त्यजंति तेच पूर्वं गृहस्थाः सर्वारंभप्रवृत्ता स्तदा रताः प्रव्रजिताः संतोजीवोपमर्दपरित्यक्तदंमाः पुनः प्रव्रज्यापरित्यागे सति नो परित्य क्तदंमाः । तदेवं तेषां प्रत्याख्यातॄणां यथावस्थात्रयेप्यन्यथात्वं भवत्येवं त्रसस्थावरयोर पि द्रष्टव्यमेतच्च भगवंचणमुदाहुरित्यादेर्ग्रंथस्य सेएवमायाणियव्वं इत्येतत्पर्यवसानस्य तात्पर्यं । अक्षरघटना तु सुगमेति स्वबुध्या कार्या ॥ १५ ॥

भगवंचणं उदाहु णियंठा खलु पुच्छियव्वा आउसंतो नियंठा इह ख लु परिव्वाइयवा परिवाइआउवा अन्नयरेहिंतो तिच्छायथणेहिंतो आगम्मधम्मं सवणवत्तियं उवसंकमेज्जा हंताउवसंकमेज्जा किं ते सिं तहप्पगारेणं धम्मे आइक्खियव्वे हंता आइक्खियव्वे तंचेव उवठा वित्तिए जाव कप्पंति हंता कप्पंति किं ते तहप्पगारा कप्पंति संभुंजि त्तए हंता कप्पंति तत्तेणं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा तंचेव जा व आगारं वएज्जा हंता वएज्जा तेणं तहप्पगारा कप्पंति संभुंजित्तए णो इणठे समठे से जे से जीवे जे परेणं तो कप्पंति संभुंजित्तए से जे से जीवे आरेणं कप्पंति संभुंजित्तए से जे से जीवे जे इयाणीं णो कप्पंति संभुंजित्तए परेणं अस्समणे आरेणं समणे इयाणिं अस्स मणे अस्समणेणं सिद्धिं णो कप्पंति समणेणं निग्गंथाणं संभुंजि त्तए से एव मायाणह णियंठा सेएव मायाणियव्वं ॥ १६ ॥

अर्थ–हवे नगवंत श्री गौतमस्वामी त्रीजो दृष्टांत कहेछे के, आ दृष्टांतनें विषे पण, निश्चें निर्ग्रंथोनें पूछवुं. ए कारण माटें निर्ग्रंथ उद्देशीनें पूछे छे. के, अहो आयुष्यमंत निर्ग्रंथो! निश्चें आ जगत् मांहे परिव्राजक संन्यासी, परिव्राजिका संन्यासिणी, तथा (अन्नयरेहिंतोतित्थाययणेहिंतो के०) अन्य तीर्थायितनथकी आवीनें (आगम्मधम्मंसवणवत्तियं के०) आगम धर्म सांनळवानें साधु पासें आवी ते(उवसंकमेज्जा के०) उद्यम करे? (हंताउवसंकमेज्जा के०) हा आवीने उद्यम करे, तो केम तथाप्रकारना परिव्राजक, तथा परिव्राजिकाने धर्म कहेवो? हा धर्म कहेवो. (तंचेवउवहावित्तिए के०) तेम कहेवो के, ज्यांसुधि तेनें उहाववुं कल्पे.? हा, कल्पे. ते वळी परिव्राजक थका चारित्रिया थयाछे, तेनें मंमलें बेसाडवा कल्पे? हा, बेसाडवा कल्पे. तथा आहार पाणी लेवो कल्पे? हा, कल्पे. एवा विहारें विचरता ते वळी ज्यां सुधी तथाविधकर्मनें उदयें करी गृहस्थावास सेवे? हा, सेवे. तेवारें तेनें तथाप्रकारें आहारपाणी करवा, मंमलीमां बेसाडवा कल्पे? तेवारें निर्ग्रंथबोल्या, के, (णोइणहेसमहे के०) ए अर्थ समर्थ नथी. एतावता तेनें मंमळीमां बेसाडवुं न कल्पे. तो हवे जुउ! के तेनो तेज जीव, तेनी सार्थे प्रथम आहार पाणी करवो न कल्पे, वच्चें वळी आहारपाणी करवो कल्पे, अनें वळी तेज जीव सार्थे हमणां आहार पाणी करवो न कल्पे. एम तेनी त्रण अवस्था थइ. प्रथम अश्रमण, पछी वच्चें श्रमण, नें हमणां वळी अश्रमण. ते अश्रमणपणायें सहित एवा ते श्रमण निर्ग्रंथनें मंमलीमां पोतानी सार्थें बेसारी जमाडवो न कल्पे. अहो निर्ग्रंथो! ए दृष्टांतनी पेरें त्रस स्थावरनें विषे पण जाणवुं. जेवारें त्रस तेवारें त्रसज, अनें जेवारें स्थावर, तेवारें स्थावरज, जाणवा. ए रीतें मानो, अनें एवी रीतें जाणवुं. एप्रमाणे निर्ग्रंथनी साक्षियें देशविरति प्रमाण करी॥ १६॥

॥ दीपिका–अथ तृतीयं दृष्टांतं परतीर्थिकानुद्दिश्याह। सुगमार्थमिदं सूत्रं। तात्पर्यार्थस्त्वयं पूर्वं परिव्राजकादयः संतोऽसंनोग्याः साधूनां गृहीतश्रामण्याश्च साधूनां संनोग्याः पुनः श्रामण्यत्यागेऽसंनोग्याः एवं पर्यायान्यथात्वं त्रसस्थावराणामपि योज्यं॥ १६॥

॥ टीका–तदेवं द्वितीयं दृष्टांतं प्रदर्श्याधुना तृतीयं दृष्टांतं परतीर्थिकोद्देशेन दर्शयितुमाह। (नगवंचणमुदाहुरित्यादि जावसेएवमायाणियव्वंत्ति) उत्तानार्थं। तात्पर्यार्थस्त्वयं पूर्वं परिव्राजकादयः संतोऽसंनोग्याः साधूनां गृहीतश्रामण्याच्च साधूनां संनोग्याः संवृत्ताः पुनस्तदनावे त्वसंनोग्याइत्येव पर्यायाऽन्यथात्वं त्रसस्थावराणामप्यायोजनीयमिति॥ १६॥

नगवंचणं उदाहु संतेगइया समणोवासगा नवंति तेसिंचणं
एवं वुत्तं पुव्वं नवइ णो खलु वयं संचाएमो मुंमा नवित्ता आ

गाराउ अणगारियं पवइत्ताए वयं णं चाउद्दसट्ठमुदिट्ठपुस्सि मासिणीसु पडिपुसं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा विहरिस्सामो थूलगं पाणाइवायं पञ्चरकाइस्सामो एवं थूलगं मुसावायं थूलगं अदिन्नादाणं थूलगं मेहुणं थूलगं परिग्गहं पञ्चरकाइस्सामो इञ्चापरिमाणं करिस्सामो डविहं तिविहेणं मा खलु मम घाए किंचि करेहवा करावेहवा तञ्च विपञ्चरकाइस्सामो ते णं अनोञ्चा अपिञ्चा असिणाइत्ता आसंदीपेढियाउ पञ्चारुहित्ता ते तहा कालगया किं वत्तवंसिया सम्मं कालगतावि वत्तवंसिया ते पाणावि वुञ्चंति ते तसावि वुञ्चंति ते महाकाया ते चिरहिइया ते वहुतरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपञ्चरकायं नवइ ते अप्पयरागा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपञ्चरकायं नवइ इति से महयाउ जसं तुप्ने वयह तं चेव जाव अयंपि नेदे से णो णेयाउए नवइ ॥ १७ ॥

अर्थ—वली उदक प्रत्यें नगवंत श्री गौतमस्वामी बोल्या के, निश्चें आ जगत् मांहे कोइ एक श्रमणोपासक होय, तेणे एवुं व्रत विशेष पूर्वें उच्चार कर्युं होय के, निश्चें अमे मुंम थई गृहस्थावास थकी, अणगार पणुं आदरी शकवाने समर्थ नथी तेथी, अमें चतुर्दशी, अष्टमी, चोमासानी त्रण पूर्णिमा, तथा उद्दिष्टतिथि ते महा कल्याणिक तिथि, एटले दिवसें प्रतिपूर्ण सम्यक् प्रकारें पौषध पालता विचरिशुं, तथा वली स्थूल प्राणातिपात पञ्चरकीशुं. एणी पेरें स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तान, स्थूल मैथुन, स्थूल परिग्रह, पञ्चरकीशुं. इञ्चा प्रमाणे करीशुं, "डविहंतिविहेणं" इत्यादिक नांगायें करी पञ्चखीशुं. (माखलुममहाए के०) निश्चें महारे अर्थें पौषध मांहे कांहिं पचन पाचनादिक म करवुं. बीजा पासें म करावयुं, त्यां पण एवुं पूर्वोक्त अमें पञ्चरकाण करीशुं (तेणं के०) ते एवा व्रतना उच्चार करनार श्रावक, (अनोञ्चा के०) अणजम्या, (अपिञ्चा के०) पाणी पीधा विनाना, (असिणाइत्ता के०) अने स्नान कर्या विना, पोसहव्रत करे. पोसहव्रतमां एटला वानां न करे. (आसंदी के०) मंचक, (पेढियाउ के०) पीढी, मांची इत्यादिक, ते थकी (पञ्चारुहित्ता के०) उत्तरीनें सम्यक् प्रकारें पौषध लीये. (तेतहाकालगयाकिंवत्तवंसिया

के०) तेणें तथा प्रकारे काल कीधो, तो तेनें केवा कहियें, ते रूडी पेरें मरण पाम्या कहियें किंवा नहीं ? तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या के, (सम्मंकालगयाविवत्तव्वंसिया के०) ते सम्यक् प्रकारें रूडी रीतें कालगत थया एम कहियें, तेवारें श्रीगौतम बोल्या के, ए रीतें जेणें काल कीधो, तेनें अवश्य देवलोकनें विषे उत्पत्ति जाणीयें ढैयें केमके, रूडे परिणामें जे मरण पामे ते देव थाय. (तेपाणाविवुच्चंति के०) त्यां थका तेने प्राण पण कहियें, (तेतसाविवुच्चंति के०) तेने त्रस पण कहियें, ते महाकाय कहीयें, तेनें चिरस्थितिक कहियें,तो ए कारणे (तेबहुतरगापाणा के०) ते घणा जीव के,(जेहिंसमणोवासगस्ससुपच्चखायंनवइ के०) जेने विषे श्रावकने रूडूं पच्चरकाण होय. अने ते थोडा जीव, के जेने विषे श्रावकनें पच्चरकाण नथी. एम ते श्रावकनें महोटी त्रसकाय थकी उपशमढे ते पच्चखाण राखवानो उद्यमढे तेने विराधवानी विरतिढे. एवा श्रावकनें तमे कहोढो के, एवो कोइ पर्याय नथी के, जेणें करी श्रावकनें एक पण प्राणातिपातनुं पच्चरकाण थाय! ते तमारुं वचन न्यायमार्गनुं नथी ॥ १७ ॥

॥ दीपिका–एवं दृष्टांतत्रयेण निर्दोषां देशविरतिं प्रसाध्य पुनरपि तत्नतमेव विचारमाह । नगवान् गौतमउदकं प्रत्याह ।शांतिप्रधानाएके श्रमणोपासकाजवंति तेषां च इदमुक्तपूर्वं नवति।यथा न खलु वयं शक्नुमः प्रव्रज्यां ग्रहीतुं किंतु? वयं चतुर्दश्यष्टम्यादिषु तिथिषु संपूर्णं पौषधं सम्यगनुपालयंतोविहरिष्यामः तथा स्थूलप्राणातिपातमृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रहं प्रत्याख्यास्यामः। द्विविधं कृतकारितनेदात् श्राद्धस्यानुमतेरनिषिद्धत्वात्रिविधं मनोवचनकायैः मा निषेधे पौषधस्यस्य मम कृते किंचित्पचनपाचनादिकं मा कार्ष्ट परेण मा कारयत सर्वथाऽसंनविनोवस्तुनोऽनुमतेरपि निषेधः तत्रापि प्रत्याख्यास्यामः ते श्रावकाअनुक्त्वाऽपीत्वाऽस्नात्वा च पौषधयुतत्वादासंदीपीठिकातः प्रत्यारुह्याऽवतीर्य सम्यक् पौषधं कृत्वा कालं कृतवंतः ते किं सम्यक्कृतकालाउतासम्यक् ? एवं पृष्टैर्निर्ग्रंथैरवश्यमेवं वक्तव्यं ते सम्यक्कालगता। एवं कालगतानामवश्यंनावी देवलोकोत्पादः तत्रोत्पन्नाश्च ते त्रसाएव ततश्च कथं निर्विषयता प्रत्याख्यानस्येति ॥ १७ ॥

॥ टीका–तदेवं दृष्टांते प्रत्याख्यातृविषयगतोगृहस्थयतिपुनर्गृहस्थनेदेन पर्यायनेदः प्रदर्शितः। तृतीयेतु दृष्टांते परतीर्थिकसाधुनावोनिष्क्रमणनेदेन संनोग द्वारेण पर्यायनेद व्यवस्थापितइति । तदेवं दृष्टांतप्राचुर्येण निर्दोषां देशविरतिं प्रसाध्य पुनरपि तत्नतमेव विचारं कर्तुकामआह । (नगवंचणमुदाहुरित्यादि) पुनरपि गौतमस्वाम्युदकं प्रतीदमाह । तद्यथा बहुनिः प्रकारैस्त्रसस‌द्भावः संनाव्यते ततश्चाशून्यस्तैः संसारस्तदशून्यत्वे

तन्निर्विषयं श्रावकस्य त्रसवधनिवृत्तिरूपप्रत्याख्यानं । तदधुना बहुप्रकारत्रससंभूत्याऽशून्य तां संसारस्य दर्शयति । भगवानाह । संति विद्यंते शांतिप्रधानावा एके केचन श्रमणो पासकाभवंति तेषां चेदमुक्तपूर्वं भवति संभाव्यते च श्रावकाणामेवंभूतस्य वचसः संभव इति । तद्यथा । न खलु वयं शक्नुमः प्रव्रज्यां ग्रहीतुं किंतु ? वयं । णमिति वाक्यालंकारे । चतुर्दश्यष्टमीपौर्णमासीषु संपूर्णं पौषधमाहारशरीरसत्कारब्रह्मचर्याव्यापाररूपं पौषधं सम्यगनुपालयंतोविहरिष्यामः तथा स्थूलप्राणातिपातमृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्र हं प्रत्याख्यास्यामोद्विविधमिति कृतकारितप्रकार द्वयेनानुमतेः श्रावकस्याप्रतिषिद्धत्वात्तथा त्रिविधेनेति मनसा वाचा कायेन च तथा मा इति निषेधे खलु इति वाक्यालंकारे मदर्थं पचनपाचनादिकं पौषधस्य मम कृते मा कार्ष्ट तथा परेण मा कारयत तत्राप्यनुमतावपि सर्वथा यदसंभवति तत्प्रत्याख्यास्यामः ते एवंभूतकृतप्रतिज्ञाः संतः श्रावकाः अभुक्त्वाऽ पीत्वाऽस्नात्वा च पौषधोपेतत्वादासंदीपीविकातः प्रत्यारुह्यावतीर्य सम्यक् पौषधं गृही त्वा कालं कृतवंतस्ते तथाप्रकारेण कृतकालाः संतः किं सम्यक्कृतकालाऽगतासम्यगिति ? कथं वक्तव्यं स्यादित्येवं पृष्टैर्निर्ग्रंथैरवश्यमेवं वक्तव्यं स्यात् सम्यक्कालगताइत्येवं कालग तानामवश्यंभावी तेषां देवलोकेपूत्पादस्तडुत्पन्नश्च त्रसएव ततश्च कथं निर्विषयता प्रत्याख्यानस्योपासकस्येति ॥ १७ ॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइया समणोवासगा भवंति तेसिंचणं ए
वं वुत्तं पुव्वं भवइ णो खलु वयं संचाएमो मुंभा भवित्ता आगा
राउ जाव पव्वइत्तए णो खलु वयं संचाएमो चाउद्दस ठमुदि ठपुण्ण
मासिणीसु जाव अणुपालेमाणा विहरित्तए वयं णं अपच्छिम
मारणंतियं संलेहणा जूसणा जूसिए भत्तपाणं पडियाइक्खिया
जाव कालं अणवकंखमाणा विहरिस्सामो सव्वं पाणाइवायं पच्च
क्खाइस्सामो जाव सव्वं परिग्गहं पच्चक्खाइस्सामो तिविहं तिविहे
णं मा खलु ममठाए किंचिवि जाव आसंदीपेढियाउ पच्चारुहित्ता
एते तहा कालगयाइ किं वत्तवंसिया सम्मं कालगयाइ वत्तवं
सिया ते पाणावि वुच्चंति जाव अयंपि भेदे से णो णेयाउए भवइ ॥ १८ ॥

अर्थ—वली गौतम स्वामी कहेछे. कोइ एक श्रमणोपासक एवा होय, तेणे एवुं पूर्वे व्रत उच्चारवानुं वचन कह्युं होय के, निश्चे अमे मुंभ थइने गृहस्थावास थका यावत् थ

णगार पणुं आदरी शकवाने समर्थ नथी. चतुर्दशी, अष्टमी, त्रण चोमासानी पूर्णिमा, तथा महाकल्याणिक तिथिने विषे पौषध लइ न शकियें अमारे बेले काळें मरणने अंते शरीर पातलुं पाडवा संलेषणाने विषे जूसणा एटले आत्मा स्थापवो, स्थापीने भात, एटले अन्न पाणी निषेधिने यावत् मरणकाल अण वांबता मरणा भिलाषा अण करता विचरीशुं यावत् सर्वे प्राणातिपात, सर्वे मृषावाद, सर्वे अदत्तादान, सर्वे मैथुन, सर्वे परिग्रह, त्रिविध त्रिविध प्रकारें पच्चरकीशुं, तथा अमारे अर्थे कांइ पण पचन पाचनादिक म करो, म करावो, एवुं पण पच्चरकाण करीशुं. ते श्रावको ए रीतें अण जमते, पाणी अणपीते, स्नानादिक अण करते, मंचक, मांची इत्यादिक थकी उतरीने ते प्रकारें काल करे. तो तेनें केवा कहियें, रूडा मरणना करनार कहियें के, माठा मरणना करनार कहियें? ते वारें निर्ग्रंथ बोल्या, ते रुडी पेरें कालगत थया कहेवाय, तेपाणाविबुच्चंति इत्यादिक शब्दोनो अर्थ, पूर्ववत् जाणवो. यावत् तमारुं एवुं बोलवुं, ते न्याय मार्गेनुं नथी. त्यां सुधी जाणवुं. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—पुनः श्राद्धोद्देशेन प्रत्याख्यानविषयं दर्शयति । गौतमः प्राह । संति विद्यंते एके केचन श्रमणोपासकास्तेषामेतडुक्तपूर्वं भवति । यथा न शक्नुमोवयं प्रव्रज्यां ग्रहीतुं नापि चतुर्दश्यादिषु सम्यक् पौषधं पालयितुं वयं चापश्चिमया संलेखनक्षपणया क्षपितकायाः । यदिवा संलेखनाजोषणया सेवनया जोषिताः सेवितावत्तमार्थगुणैरेवं भूताः संतोभक्तपानं प्रत्याख्याय कालं दीर्घकालमनवकांक्षमाणाविहरिष्यामः । कोर्थः? न खलु वयं दीर्घकालं व्रतं पालयितुं समर्थाः किंतु वयं सर्वमपि प्राणातिपातादिकं प्रत्याख्याय संलेखनया संलिखितकायाश्चतुर्विधाहारत्यागेन जीवितं त्यक्तुं समर्थाः । इति सूत्रेणैवाह । (सव्वंपाणाइवायमित्यादि) यावत्ते तथा कालगताः किं वक्तव्यमेतत्स्यात् सम्यक् ते कालगताइति पृष्टानिर्ग्रंथाआहुर्यथा ते सन्मनसः शोभनचित्ताः कालगता इति । ते कालं कृत्वा सुरलोकेषूत्पद्यंते तत्र चोत्पन्नायद्यपि हंतुं न शक्यंते तथापि त्रसत्वात्ते श्राद्धस्य त्रसवधनिवृत्तिप्रत्याख्यानस्य विषयाः स्युः ॥ १८ ॥

॥ टीका—पुनरन्यथा श्रावकोद्देशेनैव प्रत्याख्यानस्य विषयं प्रदर्शयितुमाह । (भगवं चणमित्यादि) गौतमस्वाम्येवाह । तद्यथा संति विद्यंते एके केचन श्रमणोपासकास्तेषां चैतडुक्तपूर्वं भवति । तद्यथा । खलु न शक्नुमोवयं प्रव्रज्यां ग्रहीतुं नापि चतुर्दश्यादिषु सम्यक् पौषधं पालयितुं वयं चापश्चिमया संलेखनक्षपणया क्षपितकाययदिवा संलेखनाजोषणया सेवनया जोषिताः सेवितावत्तमार्थगुणैरित्येवंभूताः संतोभक्तपानं प्रत्याख्या

य कालं दीर्घमनवकांक्षमाणाविहरिष्यामः । इदमुक्तं नवति । न वयं दीर्घकालं पौषधादिकं व्रतं पालयितुं समर्थाः किंतु? वयं सर्वमपि प्राणातिपातादिकं प्रत्याख्याय संलेखनया संलिखितकायाश्चतुर्विधाहारपरित्यागेन जीवितं परित्यक्तुमलमिति । एतत्सूत्रेणैव दर्शयति (सव्वपाणाइवायमित्यादि) सुगमं । यावत्ते तथा कालगताः किं वक्तव्यमेतत्स्यात्सम्यक् ते कालगताइत्येवं पृष्टानिर्ग्रंथाएतदूचुर्यथा ते सन्मनसः शोननमनसस्ते कालगताइति तेच सम्यक् संलेखनया यदा कालं कुर्वंति तदाऽवश्यमन्यतमेषु देवलोकेषूत्पद्यंते तत्र चोत्पन्नायद्यपि ते व्यापादयितुं न शक्यंते तथापि त्रसत्वात्ते श्रावकस्य त्रसवधनिवृत्तस्य विषयतां प्रतिपद्यंते ॥ १८ ॥

नगवंचणं उदाहु संतेगइया मणुस्सा नवंति तंजहा महइब्रा महारंना महापरिग्गहा अहम्मिया जाव डुप्पडियाणंदा जाव सव्वाउ परिग्गहाउ अप्पडिविरया जाव जीवाए जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंमे णिक्खित्ते ते ततो आउगं विप्पजहंति ततो नुज्जो सगमादाए डुग्गइगामिणो नवंति ते पाणावि वुच्चंति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते चिरठिइया ते बहुयरगा आयाणसोइति से महयाउ णं जण्णं तुप्ने वदह तंचेव अयंपि नेदे से णो णेयाउए नवइ ॥ १९ ॥

अर्थ--वली गौतम स्वामी कहेछे. आ जगत् मांहे कोइ एक एवा होय, ते कहेछे. (महइब्रा के०) महोटी इञावाला एटले महालोनी, महाआरंनी, महापरिग्रही, अधार्मिक यावत् डुप्रत्यानंदी, एटले कोइनुं ढुंमूं थाय तो पोतें आनंद पामे, यावत् सर्व परिग्रह थकी अविरति एटले निवर्त्या नथी. जाव जीव लगें जेनें विषे श्रमणोपासकने (आयाणसो के०) प्रथम व्रत ग्रहण प्रारंनीने मरणांत सुधी त्रस पणाने लीधे तेनो घात ठंमाणोछे. हवे ते सर्वथा अविरति मनुष्यनो ते नवसंबंधी आयुष्यनो क्षय थये थके ते आयुष्य त्यागीनें (नुज्जोसगमादाए के०) वली पोताना उपार्जन करेलां कर्मो लेइनें (डुग्गइगामिणोनवंति के०) दौर्गतिगामि थाय, एटले शुं कह्युं ? तोके, जे महारंनी, महापरिग्रही होय, ते नरकादिक डुर्गतियें जाय. त्यां ठतां तेने प्राण पण बोलियें, अने त्रस पण बोलियें, ते महाकायवाला कहियें, तेनें घणी स्थिति होय, एम पण कहियें, ते घणा जीवनी त्रस जाति पणानें पामे. माटें तेनो विनाश करवाने विषे श्रावकने रूडुं पच्चखाण होय. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. ए कारणे तमारुं बोलवुं न्याय मार्गनुं नथी॥ १९॥

द्यते यस्यासावाकुट्टी नाकुट्टयनाकुट्टी। इदमुक्तं नवति। योहिकायादेर्निमित्तात् केवलं मनोव्यापारेण प्राणिनोव्यापादयति नच कायेन प्राण्यवयवानां छेदनन्नेदनादिके व्यापारे वर्तते न तस्याऽवद्यं। यस्य कर्मोपचयोन नवतीत्यर्थः। तथाऽबुधोऽजानानः कायव्यापारमात्रेण यंच हिनस्ति प्राणिनं तत्रापि मनोव्यापारान्नावान्न कर्मोपचयइति। अनेन च श्लोकार्धेन यडुक्तं निर्युक्तिकृता। यथा चतुर्विधं कर्म नोपचीयते निक्कुसमयइति। तत्र परिज्ञोपचितमविज्ञोपचिताख्यं नेद ध्यं साक्षाडुपात्तं। शेषं त्वीर्यापथस्वप्नांतिकनेद ध्यंच शब्देनोपात्तं। तत्रेरणमीर्या गमनं तत्संबन्धः पंथाईर्यापथस्तत्तत्प्रत्ययं कर्मेर्यापथं। एतडुक्तं नवति। पथि गन्नतोयथाकथंचिदनन्निसंधेर्यत्प्राणिव्यापादनं नवति कर्मणश्चयोन नवति तथा स्वप्नांतिकमिति। स्वप्नएव लोकोक्त्या स्वप्नांतः सविद्यते यस्य तत्स्वप्नांतिकं तदपि न कर्मबंधाय। यथा स्वप्ने जुजिक्रियायां तृप्त्यन्नावस्तथा कर्मणोपीति। कथं तर्हि तेषां कर्मोपचयोनवतीत्युच्यते। यद्यसौ हन्यमानः प्राणी नवति हंतुश्च यदि प्राणीत्येवं ज्ञानमुत्पद्यते तथैनं हन्मीत्येवं च यदि बुद्धिः प्राडुःष्यादेतेषु च सत्सु यदि कायचेष्टा प्रवर्तते तस्यामपि यद्यसौ प्राणी व्यापाद्यते ततोहिंसा ततश्च कर्मोपचयोनवतीत्येषामन्यतरान्नावेपि न हिंसा नच कर्मचयः। अत्र च पंचानां पदानां द्वात्रिंशद्भंगानवंति। तत्र प्रथम नंगे हिंसकोऽपरेष्वेकत्रिंशत्स्वहिंसकः। तथाचोक्तं। प्राणी प्राणिज्ञानं, घातकचित्तं च तज्ञता चेष्टा॥ प्राणैश्च विप्रयोगः पंचन्निरापद्यते हिंसा॥ १॥ किमेकांतेनैव परिज्ञोपचितादिना कर्मोपचयो न नवत्येव काचिदव्यक्तिमात्रेति दर्शयितुं श्लोकपश्चार्धमाह। पुछोत्ति। तेन केवलमनोव्यापाररूपपरिज्ञोपचितेन केवलकायक्रियोछेदेन वाऽविज्ञोपचितेनेर्यापथेन स्वप्नांतिकेन च चतुर्विधेनापि कर्मणा स्पृष्टईषत्सुप्तःसंस्तत्कर्माऽसौ स्पर्शमात्रेणैव परमनुनवति न तस्याधिकोविपाकोस्ति। कुड्यापतितसिकतामुष्टिवत्स्पर्शानंतरमेव परिशटतीत्यर्थः। अतएव तस्य चयान्नावोऽन्निधीयते न पुनरत्यंतान्नावइति। एवंच कृत्वा तदव्यक्तमपरिस्फुटं। खुरवधारणे। अव्यक्तमेव स्पष्टविपाकानुनवान्नावात्। तदेवमव्यक्तं सहावद्येन गर्ह्येण वर्तते तत्परिज्ञोपचितादिकर्मेति॥ २५॥ ननु च यद्यनंतरोक्तं चतुर्विधं कर्म नोपचयं याति कथं तर्हि कर्मोपचयोनवतीत्येतदाशंक्याह। (संतिमेइत्यादि)। संति विद्यंते अमूनि त्रीणि आदीयते स्वीक्रियते अमीन्निः कर्मेत्यादानानि। एतदेव दर्शयति। यैरादानैः क्रियते विधीयते निष्पाद्यते पापकं कल्मषं तानि चामूनि। तद्यथा। अतिक्रम्येत्यान्निमुख्येन वध्यं प्राणिनं क्रांत्वा तद्घातान्निमुखं चित्तं विधाय यत्र स्वतएव प्राणिनं व्यापादयति तदेकं कर्मादानं। तथाऽपरं च प्राणिघाताय प्रेष्यं समादिश्य यत्प्राणिव्यापादनं तद्वितीयं कर्मादानमिति। तथाऽपरं व्यापादयंतं मनसाऽनुजानीतइत्येतत्तृतीयं कर्मादानं। परिज्ञोपचितादस्यायं नेदः। तत्र केवलं मनसा

॥ दीपिका—पुनः प्रत्याख्यानविषयमाह । न प्रथमव्रतग्रहणं ततआरभ्य मरणांतं या वद्दंमोनिक्षिप्तस्त्यक्तः । तेच तस्माद्भवात्स्वायुषं जहंति त्यक्त्वा त्रसजीवितं स्वकं पाप मादाय गृहीत्वा डुर्गतिगामिनः स्युः । महारंनपरिग्रहत्वात्ते मृतानरके नारकत्रसत्वेनोत्प न्नाः सामान्येन प्राणिनउच्यंते विशेषतस्तु त्रसामहाकायाइत्यादि पूर्ववत् ॥ १ए ॥

॥ टीका—पुनरन्यथा प्रत्याख्यानस्य विषयमुपदर्शयितुमाह । (नगवंचणंउदाहुरित्यादि) नगवानाह । एके केचन मनुष्याएवंनूतानवंति । तद्यथा महेबामहारंनामहापरिग्रहा इत्यादि सुगमं । यावद्यैर्येषु वा श्रमणोपासकस्यादीयतइत्यादानं प्रथमव्रतग्रहणं ततआ रन्याऽऽमरणांताद्दंमोनिक्षिप्तः परित्यक्तोनवति। तेच तादृग्विधास्तस्माद्भवात्काजात्स्वा युषं विजहंति त्यक्त्वा त्रसजीवितं ते नूयः पुनः स्वकर्म स्वकृतकिल्बिषमादाय गृही त्वा डुर्गतिगामिनोनवंति एतडुक्तं नवति । महारंनपरिग्रहत्वात्ते मृताः पुनरन्यतरपृथिव्यां नारकत्रसत्वेनोत्पद्यंते तेच सामान्यसंज्ञया प्राणिनोविशेषसंज्ञया त्रसामहाकायाः चिर स्थितिकाइत्यादिपूर्ववद्यावत् (णोणेयाउएत्ति) ॥ १ए ॥

नगवंचणं उदाहु संतेगइया मणुस्सा नवंति तंजहा अणारंना अ परिग्गहा धम्मिया धम्माणुया जाव सवाउ परिग्गहाउ पडिवि रया जाव जीवाए जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आम रणंताए दंमे णिक्खित्ते ते तउ आउगं विप्पजहंति ते तउ नुज्जो सग मादाए सग्गइगामिणो नवंति ते पाणावि वुच्चंति जाव णो णेयाउ ए नवइ ॥ २० ॥

अर्थ—वली एहिज अर्थ दीपाववा नणी, गौतम स्वामी कहेडे के, आ जगत् मांहे को इ एक मनुष्य, एवा होय के, निरारंनी, निःपरिग्रही, धार्मिक धर्मनीज अनुमोदना क रनार, इत्यादिक त्यां सुधी कहेवुं, ज्यां सुधी सर्वपरिग्रह थकी विरति एटले निवृत्त्याडे सर्व विरतिना पालनार, जावजीव सुधी, जेने विषे श्रमणोपासकनें प्रथम व्रतग्रहण का ल प्रारंनी मरणांतसुधी घातनो निषेध कस्योडे. ते तेवा सर्वविरति वाला मनुष्य, नव सं बधीनुं आयुष्य गंमीनें पोतानां पूर्वोपार्जित शुन कर्म लेइनें सज्ञतिगामि थाय. ते त्यां डता प्राण पण कहेवाय. इत्यादिक बीजो पाठ, सर्व पूर्ववत् जाणवो. ए कारणें ए तमारुं वचन रूडुं न्याय मार्गेनुं नथी. ॥ २० ॥

॥ दीपिका—पुनः प्रत्याख्यानविषयं दर्शयति । पूर्वोक्तेन्योमहारंनादिन्योविपरीताः

सुशीलाः साधवः एते च सामान्यश्रावकास्तेपि त्रसेष्वेव देवेषूत्पद्यंते ततोपि न नि र्विषयं प्रत्याख्यानं ॥ २० ॥

॥ टीका–पुनरन्येन प्रकारेण प्रत्याख्यानस्य विषयं दर्शयितुमाह । (नगवंचणंउदा हुरित्यादि) पूर्वोक्तेन्योमहारंनपरिग्रहवदादिन्योविपर्यस्ताः सुशीलाः सुप्रत्यानंदाः सा धवइत्यादि सुगमं। यावत् (णोणेयाउएनवइत्ति) । एते च सामान्यश्रावकास्तेपि त्रसेष्वे वान्यतरेषु देवेषूत्पद्यंते ततोपि न निर्विषयं प्रत्याख्यानमिति ॥ २० ॥

नगवंचणं उदाहु संतेगइया मणुस्सा नवंति तं जहा अप्पेछा अ प्पारंना अप्पपरिग्गहा धम्मिया धम्माणुया जाव एगच्चाउ परि ग्गहाउ अप्पडिविरया जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आम रणंताए दंमे णिरिकत्ते ते तउ आउगं विप्पजहंति ततो नुज्जो सग मादाए सग्गइगामिणो नवंति ते पाणावि वुच्चंति जाव णो णेया उए नवइ ॥ ७१ ॥

अर्थ–वली गौतम स्वामी कहेछे. निश्चें आ जगत् मांहे कोइ एक मनुष्य, एवा हो य, ते कहेछे. अल्पइछा एटले अल्पलोनी, अल्पारंनी, अल्पपरिग्रही, धार्मिक धर्मानु ग, प्राणातिपातादिक थकी एकपक्षें विरति, अनें एकपक्षें अविरति, ए कारण माटें ते विरताविरत कहेवाय. जेनें विषे श्रमणोपासकनें व्रतग्रहणकाल प्रारंनी मरणांतसु धी जीवघातरूप दंमनो निषेधछे. ते विरताविरत पुरुष, ते नव संबंधी आउष्य छांमीनें, पछी पोतानां पूर्वोपार्जित शुन कर्म लेइने, सजतियें जाय. ते त्यां छतां प्राण पण क हेवाय, त्रस पण कहेवाय, इत्यादिक पाठ सर्व, पूर्ववत् जाणवो. ज्यां सुधी तमारुं बो लवुं न्यायमार्गेनुं नथी. ॥ २१ ॥

॥ दीपिका–किंच । सुगममिदं सूत्रं एते चाल्पेछादिविशेषणाअवश्यं प्रकृतिनइतया सजतिगामित्वेन त्रसेषूत्पद्यंते ॥ २१ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (नगवंचणंचदाहुरित्यादि) सुगमं यावण्णोणेयाउएत्ति । ए ते चाल्पेछादिविशेषणविशिष्टाअवश्यं प्रकृतिनइतया सजतिगामित्वेन त्रसकायेषूत्पद्य तइति इष्टव्यं ॥ २१ ॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइया मणुस्सा भवंति तं जहा आरणिया आवसहिया गामणियंतिया कण्हुई रहस्सिया जेहिं समणोवा सगस्स आयाणसो आमरणंताए दंमे णिक्खित्ते भवइ णो बहु संजया णो बहुपडिविरया पाण भूय जीव सत्तेहिं ते सतो अप्पणा सच्चा मोसाइं एवं विप्पडिवेदेंति अहं ण हंतवो अन्ने हंतवा जाव कालमासे कालं किच्चा अन्नयराइं आसुरियाइं किव्विसियाइं जाव उववत्तारो भवति तउ विप्पमुच्चमाणा भुज्जो एलमुयत्ताए तमोरुवत्ताए पच्चायंति ते पाणावि वुच्चंति जाव णो णेयाउए भवइ ॥२१॥

अर्थ—वली गौतम स्वामी कहेछेके,आ जगत्मांहे कोइएक मनुष्य एवा होय के,आरणिक एवुं तीर्थविशेष तेनें विषे रहेनार ते आरण्यवासी,तथा कंदमूलफलाहारी,वृक्षनें मूलें वसनार एवा पुरुष,तापस विशेष जाणवा. (आवसहिया के०) वली कोइएक पानडानी पर्ण कूटी करी रहेनारा, ग्राम निमंत्रिक एटले आजीविका निमित्तें ग्राम समीपें वसनारा,(कण्हुईरहस्सिया के०) कोइएक कार्यनें विषे रहस्यना करनार,इत्यादि तापस विशेष, जेनें विषे श्रमणोपासकनें व्रतग्रहण प्रारंभीने मरणांत सुधी हिंसानो निषेधछे. हवे ते तीर्थिक केवाछे ? तोके घणा संयत नथी,कारणके तेमांहे सम्यक् ज्ञान नथी; ते माटें ते पूर्ण संयमनें जाणता नथी,तथा प्राण,भूत,जीव,अने सत्वनें विषे जेने घणुं व्रतिपणु नथी. ते पोतें पोता थकी एवी सत्यामृषा भाषा प्रयुंजीनें लोक आगल आवी रीते बोले.ते कहेछे.मनें ब्राह्मण पणाने लीधे दंमादिकें करी हणवो नहीं. बीजा शुद्रादिकोने हणवा. इत्यादिक पूर्वे अध्ययननें विषे कह्युंछे,ते सर्व अंहीं जाणी लेवुं. एवा मनुष्य,कालमासें काल करीनें बालतपश्चर्यानें योगें अनेरा आसुरिय किल्विषीयादिकनी गतिने विषे जाय. जे कारण माटें ते जीवघातना उपदेशना देनार,भोगाभिलाषी, तापसो, नित्यांधकार सहित एवी नरकादिक गतिमांहे जाय. वली बालतपनें योगें तेनें प्रथमतो पूर्वोक्त नीचगति प्राप्त थाय, ते वार पछी वली ते आसुरीयादिक गतिथकी आयुष्यने क्षयें चवीनें वली वली बेहेरा, मूगा, एवा तमोरूप अंध मनुष्य थाय. एवा छता तेनें त्रस कहियें, तेंने प्राण कहियें, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. इत्यादिक यावत् ए तमारुं वचन न्यायमार्गेनुं नथी ॥ २१ ॥

॥ दीपिका—किंचान्यत् एके मनुष्याएवंभूताः स्युः आरण्यिकाआरण्यवासिनः आवसथिकाग्रामनिमंत्रिकाः (कण्हुईरहस्सिया) कचित्कार्ये रहस्यकाः एते सर्वेपि तीर्थिकविशेषाः

तेच नो बहुसंयताः क्रियासु नो बहुप्रतिविरताः सर्वजंतुवधान्न निवृत्ताः सत्यामृषाणि वाक्यानि परेषु एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण प्रयुंजंति (एवंविप्पडिवेदेंति) क्वचित्पाठः एवं विविधप्रकारेण प्रतिवेदयंति ज्ञापयंति । यथा । अहं न हंतव्योऽन्ये हंतव्याः । अहं नाज्ञापयितव्योन्येऽज्ञापयितव्या इत्यादीन्युपदेशवाक्यानि ददति । एवंभूतास्ते कामासक्ताः किंचिदज्ञानतपःपराः कालं कृत्वाऽन्यतरेष्वासुरीयेषु स्थानेषु किल्बिषिकेषु असुरदेवाधमेषूत्पद्यंते अथवा प्राण्युपघातकोपदेशदातारोभोगमूर्छिताअसूर्येषु नित्यांधकारेषु किल्बिषप्रधानेषु नरकस्थानेषु समुत्पद्यंते ते च देवानारकास्त्रसत्वं न व्यभिचरंति तेषुच यद्यपि द्रव्यप्राणातिपातो न संभवति तथापि भावप्राणातिपातस्य विरतेर्विषयतां प्रतिपद्यंते ततोदेवलोकाच्च्युतानरकाद्धृतावा क्लिष्टपंचेंद्रियतिर्यक्षु हीनमनुष्येषुवा एडमूकतया तमोरूपतया अंधबधिरतया प्रत्यायांति ते चावस्था द्वयेपि त्रसत्वं न व्यभिचरंति ततोन निर्विषयं प्रत्याख्यानं एषु च द्रव्यप्राणातिपातोपि संभवति ॥ २२ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (भगवंचणंउदाहुरित्यादि) गौतमस्वाम्येव प्रत्याख्यानस्य विषयं दर्शयितुमाह । एके केचन मनुष्याएवंभूताभवंति तद्यथा अरण्ये भवाआरण्यकास्तीर्थिकविशेषास्तथा आवसथिकास्तीर्थिकविशेषाएव तथा ग्रामनिमंत्रिकास्तथा (कएहुईरहस्सियात्ति) क्वचित्कार्ये रहस्यकाः क्वचिद्रहस्यकाएते सर्वेपि तीर्थिकविशेषास्तेच नो बहुसंयताहस्तपादादिक्रियासु तथा ज्ञानावरणीयावृतत्वान्न बहुविरताः सर्वप्राणभूतजीवसत्वेभ्यस्तत्स्वरूपापरिज्ञानात्त द्वधादविरताइत्यर्थः । ते तीर्थिकविशेषाबहुसंयताः स्वतोविरताआत्मना सत्यामृषाणि वाक्यान्येवमिति वक्ष्यमाणरीत्या वियुंजंति । (एवं विप्पडिवेदेंति) क्वचित्पाठोस्यायमर्थः । एवं विविधप्रकारेण परेषां प्रतिवेदयंति तानि पुनरेवंभूतानि वाक्यानि दर्शयति । तद्यथा । अहं न हंतव्योऽन्ये पुनर्हंतव्याः तथाहं नाज्ञापयितव्योऽन्ये पुनराज्ञापयितव्या इत्युदीरितान्युपदेशवाक्यानि ददति । ते चैवमेवोपदेशदायिनः स्त्रीकामेषु मूर्छितागृद्धाअध्युपपन्नायाव द्वर्षाणि चतुःपंचानिवा षड्दशमानि वा तेऽप्यल्पतरं वा प्रभूततरंवा कालं भुक्तोत्कटान्भोगभोगास्तांस्ते तथाभूताः किंचिदज्ञानतपःकारिणः कालमासे कालं कृत्वाऽन्यतरेष्वासुरीयेषु स्थानेषु किल्बिषिष्वसुरदेवाधमेषु स्थानेषूपपत्तारोभवंति यदि प्राण्युपमर्दोपदेशदायिनोभोगाभिलाषुकाअसूर्येषु नित्यांधकारेषु किल्बिषप्रधानेषु नरकस्थानेषु ते समुत्पद्यंते तेच देवानारकावा त्रसत्वं न व्यभिचरंति तेषु च यद्यपि द्रव्यप्राणातिपातोन संभवति तथापि ते भावतोयः प्राणातिपातस्तद्विरतेर्विषयतां प्रतिपद्यंते ततोपि देवलोकाच्च्युतानरकोद्धृताः क्लिष्टपंचेंद्रियतिर्यक्षु तथाविधमनुष्येषु चैडमूकतया समुत्पद्यंते तथा तमोरूपत्वापत्तिमंधबधिरतया प्रत्यायांति

ते चोभयोरप्यवस्थायास्त्रसत्वं न व्यभिचरंति । इत्यतो न निर्विषयं प्रत्याख्यानमेतेषु च इव्यतोपि प्राणातिपातः संभवतीति ॥ २२ ॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइया पाणा दीहाउया जेहिं समणोवा सगस्स आयाणसो आमरणंताए जाव दंमे णिक्खित्ते भवइ ते पुवामेव कालं करेंति करेंतित्ता पारलोइयत्ताए पच्चायंति ते पाणावि वुच्चंति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते चिरठिइ या ते दीहाउया ते बहुयरगा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खा यं भवइ जाव णो णेयाउए भवइ ॥ २३ ॥

अर्थ—वली भगवंत श्रीगौतम स्वामी बोल्या के,आ जगत्मांहे एकेक प्राणी एवाछेके, जे श्रावक पच्चखाण करेछे, ते थकी ते प्राणी दीर्घायुवालाछे,ते देवता, नारकी, तिर्यंच, अने मनुष्यपणे परलोकमांहे उपजे,तेने प्राण पण कहियें, तेने त्रस पण कहिये, तेने मोहोटी काया ना धणी पण कहिये,तेने घणी स्थिति कहियें. तेने घणा प्रकारना जीव कहियें, जेने विषे श्रमणोपासकने व्रतग्रहण प्रारंभीने मरणांतसुधि विनाशवानो निषेधछे, अने ते श्रावक तो, तेनी पूर्वेंज काल करे. ते कारण माटें ते श्रमणोपासकने, तेने विनाशवानो निषेधछे, परंतु ते दीर्घायुत्रसने विषे प्राणातिपात विरमणव्रत शामाटें पले नही? तमे जे कहोछे के, एवो पर्याय कोइ नथी के, जेणे करी श्रावक पच्चखाण करे. ते तमारुं वचन न्यायमार्गेनुं नथी. ॥ २३ ॥

॥ दीपिका—अथ प्रकटमेव विरतिविषयमाह । भगवानाह । योहि प्रत्याख्यानं गृह्णाति तस्माद्दीर्घायुष्काः प्राणिनस्ते च नारकमनुष्यदेवाद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियतिर्यंचश्च संभवंति ततः कथं निर्विषयं प्रत्याख्यानमिति ? शेषं सुगमम् ॥ २३

॥ टीका—सांप्रतं प्रत्यक्षसिद्धएव विरतेर्निर्विषयं दर्शयितुमाह । (भगवंचणंउदाहुरित्यादि) भगवानाह योहि प्रत्याख्यानं गृह्णाति तस्माद्दीर्घायुष्काः प्राणाः प्राणिनस्ते च नारकमनुष्यदेवाद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियतिर्यंचश्च संभवंति ततः कथं निर्विषयं प्रत्याख्यानमिति ? शेषं सुगमं यावण्णो णेयाउए भवइ ॥ २३ ॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइया पाणा समाउया जेहिं समणोवास गस्स आयाणसो आमरणंताए जाव दंमे णिक्खित्ते भवइ ते सममेव कालं करेंति करेंतित्ता पारलोइयत्ताए पच्चायंति ते पाणा

वि वुच्चंति तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते समाउया ते बहुयरगा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ जाव णो णेयाउए भवइ ॥ २४ ॥

अर्थ–वली श्रीगौतमस्वामी कहेछे के, जे श्रावक पच्चरकाण करेछे, तेथकी आ जगत् मांहे कोइ एक प्राणी (समाउया के०) समायुष्य एटले सरखा आयुष्य वाला छे, जेनें विषे श्रमणोपासकनें प्रथम व्रत ग्रहण प्रारंभी मरणांत सुधी हिंसानो नियमछे, ते वार पछी ते समकालें काल करे, सरखा काल करीनें परलोकें उपजे तेनें प्राण पण कहियें, तेने त्रस पण कहियें, तेनें महोटी कायाना धणी कहियें, तेने घणा प्रकारें जीव कहियें, जेनें विषे श्रमणोपासकनें निषेधवानो नियमछे. एकारणें श्रावकनें पच्चरकाण केम न होय ? ते माटें ए तमारुं बोलवुं भलुं नथी ॥ २४ ॥

॥ दीपिका–इदं समायुष्कसूत्रं पूर्ववत् ॥ २४ ॥

॥ टीका–एवमुत्तरसूत्रमपि तुल्यायुष्कविषयं समानयोगक्षेमत्वाद्व्याख्येयं ॥ २४ ॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइया पाणा अप्पाउया जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए जाव दंमे णिक्खित्ते भवइ ते पुवामेव कालं करेंति करेंतित्ता पारलोइत्ताए पच्चायंति ते पाणा वि वुच्चंति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते अप्पाउया ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ जाव णो णेयाउए भवइ ॥ २५ ॥

अर्थ–वली भगवंत श्री गौतम स्वामी बोल्या के, आ जगत् मांहे एकेक प्राणी एवा छे के. ते श्रावक थकी अल्प एटले थोडा आयुष्य वालाछे, जेनें आश्री श्रमणोपासकनें रूडुं पच्चरकाणछे एतावता घणा प्राणने विषे पच्चरकाणछे अने थोडा प्राणने विषे अपच्चरकाणछे. एतावता जाव जीव सुधी जे जीव ते नियम करनार श्रावक थकी अल्पायुष्यवालाछे ते ज्यां सुधी मरण न पामे, त्यां सुधी त्रस आश्री ते श्रावकनें पच्चरकाणछे, ते कदापि मरण पामीनें फरी तेहिज त्रसकायमां उपजे तेवारें तें पच्चरकाण आगल पण पले. ए कारणें निर्विषय पच्चरकाण केम कहियें ? माटें तमारुं वचन अयुक्तछे. अहीं बीजा रही गयेलां पदोनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २५ ॥

॥ दीपिका–इदमल्पायुष्कसूत्रमपि स्पष्टं नवरं यावत्ते न म्रियंते तावत्प्रत्याख्यानस्य विषयः त्रसेषु वा समुत्पन्नाः संतोविषयतां प्रतिपद्यंते ॥ २५ ॥

॥ टीका–तथाल्पायुष्कसूत्रसिद्धमेव । इयांस्तु विशेषोयावत्ते न म्रियंते तावत्प्रत्याख्यानस्य विषयस्त्रसेषु वा समुत्पन्नाः संतोविषयतां प्रतिपद्यंतइति ॥ २५ ॥

नगवंचणं उदाहु संतेगइया समणोवासगा नवंति तेसिंचणं एवं वुत्तं पुवं नवइ णो खलु वयं संचाएमो मुंमे नवित्ता जाव पवइत्तए णो खलु वयं संचाएमो चाउद्दसठमुद्दिठपुसमासिणीसु पडिपुसं पोसहं अणुपालित्तए णो खलु वयं संचाएमो अपछिमं जाव विहरित्तए वयंचणं सामाइयं देसावगासियं पुरठा पाईणं पडिणंवा दाहिणं उदीणं एतावता जाव सवपाणेहिं जाव सवसत्तेहिं दंमेहिं णिक्खिते सवपाणनूयजीवसत्तेहिं खेमं करेहि अहमंसि तठ आरेणं जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंमे णिक्खित्ते तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहित्ता तठ आरेणं चेव जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो जाव ते सुपच्चायंति जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं नवइ ते पाणावि जाव अयंपि नेदे से ॥ २६ ॥

अर्थ–वली गौतम स्वामी बोल्या के,आ जगत् मांहे एकेक श्रमणोपासक एवा होयछे के जेनें पूर्वें एवा व्रतनो उच्चार होयछे के,निश्चें अमें मुंम थइ आगारवास छांमीनें चारित्र लइ शकता नथी.निश्चें अमे चतुर्दशी,अष्टमी,उद्दिष्ट एटले कल्याणिक तिथि,अने पूर्णमासी एटले चोमासानी त्रण पुन्यम ते दिवसें प्रतिपूर्ण पौषध पाली शक्ता नथी (णोखलुवयंसंचाएमो के०) निश्चें करी अमे समर्थ नथी,शुं करवाने समर्थ नथी? (अपछिमंजावविहरित्तए के०) तोके अपश्चिम संलेषणा करी अणसण पणु उच्चरी शकवाने समर्थनथी(वयंचणंसामाइयंदेसावगासियंपुरठा के०) किंतु अमे सामायक तथा देशावकाशिक ए व्रत पालशुं, एटले जावजीव सुधी दिनप्रत्यें दिशाउनुं परिमाण करीशुं. तथा पुरठा एटले प्रनातें पच्चरकाणने अवसरें(पाईणं के०) पूर्वदिशायें,पश्चिम दिशायें,दक्षिण दिशायें,उत्तर दिशायें,ए चारे दिशायें, अमुक अमुक नूमि सुधी जाउं, उपरांत नूमियें जवानु पच्चरकाण करीशुं,एवुं व्रत पालीशुं, एतावता जेटलुं दिशिनुं परिमाण कीधुंछे ते दिशि थकी उपरांत

नी नूमिमांहे जेटला प्राणीउंछे यावत् सर्व सत्वछे तेनें घात करवानो त्याग करीशुं. एटले ते उपरांत सर्व प्राण, नूत, जीव, अनें सत्वछे, अर्थात् जे कांइ त्रस, अनें स्थावर प्राणीयोछे तेनें (खेमंकरे के०) तेनी दया पालीशुं. (अहमंसितछआरेणंजेतसापाणा के०) ते नूमिमांहे पण वली जे त्रस प्राणीयोछे तेनें आश्री ते श्रमणोपासकें मरणांत सुधी तेनो दंम निषेध्योछे ते त्रस जीव त्यांथी पोतानुं आयुष्य त्यागीने वली तेहिज नूमिने विषे त्रसप्राणमांहे आवी उपजे एटले जेनें विषे श्रमणोपासकनें पच्चरकाण होय. जे कारण माटें त्यां जेटला त्रस जीवछे तेनें विषे ते श्रावकनें मरणांत सुधी दंमनो निषेध छे ते कारणें ते श्रावकने रूडुं पच्चरकाण कहियें. ते माटें ए तमारुं वचन रूडुं नथी. ए प्रथमनंग थयो. ए रीतें वली, बीजा आव नंग आगल कहेछे. ॥ २६ ॥

॥दीपिका–पुनः श्रावकाणां दिग्व्रताश्रयेण प्रत्याख्यानविषयं दर्शयति । सुगमं नवरं (देसावगासियंत्ति) पूर्वगृहीतस्य दिग्व्रतस्य योजनशतादिकस्य यत्प्रतिदिनं संक्षिप्तयोजनगतादियानं करोति तद्देशावकाशिकमुच्यते । तथाहि । पुरछापायीणमिति । (पुरछात्ति) प्रातरेव प्रत्याख्यानावसरे दिगाश्रितमेवंनूतं प्रत्याख्यानं करोति यथा प्राचीनं पूर्वानिमुखं पूर्वदिशि एतावन्मयाऽद्य गंतव्यं प्रतीचीनं पश्चिमायां. दिशि दक्षिणस्यामुदीच्यामुत्तरस्यां एतावद्गंतव्यं एवं प्रत्यहं प्रत्याख्यानं करोति तेन च व्रतेन गृहीतपरिमाणे देशे ये आरेण त्रसाः येषु श्रावकस्यादानतः प्रथमव्रतादारन्यामरणांतं दंमं त्यक्तं ते त्रसाः स्वायुष्कं परित्यज्य तत्रैव गृहीतमानदेशएव त्रसत्वेन प्रत्यायांति गृहीतपरिमाणदेशे त्रसायुष्कं परित्यज्य त्रसेष्वेवोत्पद्यंते तेषु श्राद्धस्य सुप्रत्याख्यानं स्यादुन्यथापि त्रसत्वसद्भावादिति । शेषं सुगमम् ॥ २६ ॥

॥ टीका–पुनरपि श्रावकाणामेव दिग्व्रतसमाश्रयणतः प्रत्याख्यानस्य विषयं दर्शयितुमाह. । (नगवंचणमित्यादि) सुगमं यावत् वयंणंसामाइयं देशावकासियंति । देशोवकाशोदेशावकाशः तत्र नवं देशावकाशिकं । इदमुक्तं नवति । पूर्वगृहीतस्य दिग्व्रतस्य योजनशतादिकस्य यत्प्रतिदिनं संक्षिप्ततरं योजनगव्यूतिपत्तनगृहमर्यादादिकं परिमाणं विधत्ते तद्देशावकाशिकमित्युच्यते । तदेव दर्शयति । (पुरछापायीणमित्यादि) पुरछित्ति प्रातरेव प्रत्याख्यानावसरे दिगाश्रितमेवं नूतं प्रत्याख्यानं करोति तद्यथा प्राचीनं पूर्वानिमुखं प्राच्यां दिश्येतावन्मयाऽद्य गंतव्यं तथा प्रतीचीनं प्रतीच्यामपरस्यां दिशि तथा दक्षिणानिमुखं दक्षिणस्यामेवोदीच्यां दिश्येतावन्मयाऽद्य पंचयोजनमात्रं तदधिकमूनतरं वा गंतव्यमित्येवंनूतं सप्रतिदिनं प्रत्याख्यानं विधत्ते तेनच गृहीतदेशावकाशिकेनोपास

केन सर्वप्राणिज्योगृहीतपरिमाणात्परेण दंमोनिक्षिप्तः परित्यक्तोजवति ततश्चासौ श्रा
वकः सर्वप्राणजूतजीवसत्वेषु क्षेमंकरोहमस्मिन्नित्येवमध्यवसायी जवति तत्र गृहीत
परिमाणे देशे ये आरेण त्रसाः प्राणायेषु श्रमणोपासकस्य दानतइत्यादेशरज्यामरणांतो
दंमोनिक्षिप्तः परित्यक्तोजवति तेच त्रसाः प्राणाः स्वायुष्कं परित्यज्य तत्रैव गृहीतप
रिमाणदेशएव योजनादिदेशाज्यंतरएव त्रसाः प्राणास्तेषु प्रत्यायांति। इदमुक्तं जवति।
गृहीतपरिमाणदेशत्रसायुष्कं परित्यज्य त्रसेष्वेवोत्पद्यंते ततश्च तेषु श्रमणोपासकस्य सुप्र
त्याख्यानं जवत्युजयथापि त्रसत्वसद्भावात्। शेषं सुगमं यावत् णो णेयाउए जवतित्ति॥२६॥

तब आरेणं जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो
आमरणंताए दंमे णिक्खित्ते ते तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहं
तित्ता तब आरेणं चेव जाव थावरा पाणा जेहिं समणोवासग
स्स अट्ठाए दंमे अणिक्खित्ते अणट्ठाए दंमे णिक्खत्ते तेसु पच्चा
यंति तेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंमे अणिक्खित्ते अणट्ठाए
दंमे णिक्खित्ते ते पाणावि वुच्चंति ते तसा ते चिरट्ठिइया जाव अ
यंपि जेदे से ॥ ७७ ॥ तब जे आरेणं तसा पाणा जेहिं समणो
वासगस्स आयाणसो आमरणंताए तउ आउं विप्पजहंति वि
प्पजहंतित्ता तब परेणं जे तसा थावरा पाणा जेहिं समणोवास
गस्स आयाणसो आमरणंताए तेसु पच्चायंति तेहिं समणो
वासगस्स सुपच्चरकायं जवइ ते पाणावि जाव अयंपि जेदे से
॥ ७८ ॥ तब जे आरेणं थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स
अट्ठाए दंमे अणिक्खित्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते ते तउ आउं वि
प्पजहंति विप्पजहंतित्ता तब आरेणं चेव जे तसा पाणा जेहिं
समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए ते सुपच्चायंति तेसु
समणोवासगस्स सुपच्चरकायं जवइ ते पाणावि जाव अयंपि जे
दे से णो ॥७९॥ तब जे ते आरेणं जे थावरा पाणा जेहिं समणो
वासगस्स अट्ठाए दंमे अणिक्खित्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते ते तउ
आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता ते तब आरेणं चेव जे थावरा
पाणा जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंमे अणिक्खित्ते अणट्ठा

ए णिक्खित्ते ते सुपच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए अण
ट्ठाए ते पाणावि जाव अयंपि भेदे से णो ॥३०॥ तब जे ते आरे
णं थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंमे अणिक्खि
त्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तब
परेणं जे तसथावरापाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो
आमरणंताए ते सुपच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं
भवइ ते पाणावि जाव अयंपि भेदे से णो णेयाउए भवइ ॥३१॥
तब जे ते परेणं तसथावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आया
णसो आमरणंताए ते तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तब
आरेणं जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आ
मरणंताए ते सुपच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भव
इ ते पाणावि जाव अयंपि भेदे से णो णेयाउए भवइ॥ ३२ ॥
तब जे ते परेणं तसथावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आया
णसो आमरणंताए ते तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तब
आरेणं जे थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंमे अ
णिक्खित्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते ते सुपच्चायंति जेहिं समणोवास
गस्स अट्ठाए अणिक्खित्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते जाव ते पाणावि
जाव अयंपि भेदे से णो ॥३३॥ तब जे ते परेणं तसथावरा
पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए ते तउ
आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता ते तब परेणं चेव जे तसथावरा
पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए ते
सुपच्चायंति ते समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ ते पाणावि
जाव अयंपि भेदे से णो ॥ ३४॥

अर्थ—ते आठ भंग मांहे प्रथम भंग कहेछे. जेटली भूमिकानी अविरति छे ते मांहे जे त्रस जीवोछे ते त्रस, तेहिज भूमिका मांहे जे स्थावर जीवोछे, ते मांहे आवी उप जे. ए प्रथम भंगछे. ते सूत्रना अर्थथी कहेछे. (तबआरेणं के०) त्यां जेटली भूमिनी

चिंतनमिह त्वपरेण व्यापाद्यमाने प्राणिन्यनुमोदनमिति ॥ २६ ॥ तदेवं यत्र स्वयं कृतका रितानुमतयः प्राणिघाते क्रियमाणे विद्यंते क्लिष्टाध्यवसायस्य प्राणातिपातश्च तत्रैव कर्मो पचयोनान्यत्रेति दर्शयितुमाह ।(एएउइत्यादि) तुरवधारणे । एतान्येव पूर्वोक्तानि त्रीणि व्य स्तानि समस्तानि वा आदानानि यैर्दुष्टाध्यवसायव्यपेक्षैः पापकं कर्मोपचीयतइति । एवंव स्थिते यत्र कृतकारितानुमतयः प्राणिव्यपरोपणं प्रति न विद्यंते । तथा जावशुध्या अरक्त द्विष्टबुध्या प्रवर्तमानस्य सत्यपि प्राणातिपाते केवलेन मनसा कायेन वा मनोजिसंधि रहितेनोजयेन वा विशुद्धबुद्धेर्नकर्मोपचयस्तदजावाच्च निर्वाणं सर्वद्वंद्वोपरतिजावमजि गहत्याजिमुख्येन प्राप्नोतीति ॥ २७ ॥ जावशुध्या प्रवर्तमानस्य कर्मबंधोन जवतीत्य त्रार्थे दृष्टांतमाह । (पुत्तपियाइत्यादि) पुत्रमपत्यं पिता जनकः समारज्य व्यापाद्याहा रार्थं कस्यांचित्तथाविधायामापदि तदुद्धरणार्थमरक्तद्विष्टोऽसंयतोगृहस्थस्तत्पिशितं जुं जानोपि चशब्दस्यापिशब्दार्थत्वादिति । तथा मेधाव्यपि संयतोपीत्यर्थः । तदेवं गृहस्थो जिक्षुर्वा शुद्धाशयः पिशिताश्यपि कर्मणा पापेन नोपलिप्यते नाश्लिष्यतइति । यथाचा त्र पितुः पुत्रं व्यापादयतस्तत्रारक्तद्विष्टमनसः कर्मबंधो न जवति तथान्यस्याप्यरक्तद्विष्टांतः करणस्य प्राणिवधे सत्यपि न कर्मबंधोजवतीति ॥ २८ ॥

मणसा जे पउस्संति,चित्तं तेसिं ण विज्जइ ॥ अणवज्जमतहं तेसिं, ण ते संवुमचारिणो ॥२९॥ इच्चेयाहिं य दिठ्ठीहिं, सातागारवणिस्सिया ॥ स रणंति मन्नमाणा, सेवंती पावगं जणा ॥ ३० ॥ जहा अस्साविणिं णावं, जाइ अंधो डुरूहिया ॥ इच्छई पारमागंतुं, अंतराय विसीयई ॥ ३१ ॥ एवं तु समणा एगे, मिछदिठ्ठी अणारिया ॥ संसारपारकंखी ते, संसारं अणुपरियट्टंतित्तिबेमि ॥ ३२ ॥ इति प्रथमाध्ययने द्वितीयोद्देशकः ः॥

अर्थ–हवे एने उत्तर कहेले. मणसाजे पउस्संतिके० जे कोई पुरुष कोईक कारण उत्पन्न थया थकी मने करी द्वेष करे, चित्ततेसिंणविज्जइ के० तेनुं चित्त शुद्ध केवी रि ते थशे ? अर्थात् नहीं थशे; कारणके ते दर्शनीये एम कह्युं के, अणवज्जमतहंतेसिं के० एकला मनना व्यापार थकी कर्म न लागे. ते एवुं तेनुं बोलवुं मिथ्याले. जेमाटे ते एकले मनने अशुद्धपणे णतेसंवुमचारिणो के० ते संवृतचारी नहीं एटले संवुद्धचारी थ को संवरमां प्रवर्त्तनार नथी. केमके कर्मबंधनी वेलायें मुख्य कारणतो मनजले. माटे जो तेने व्यापारेज कर्मबंध न थाय, तो पली बीजा कया कारणे कर्मबंध थाय? ते मा टे पुत्रंपिता ए दृष्टांत योग्य नथी. ॥ २९ ॥ हवे ए क्रियावादीने अनर्थपरंपरा देखा

अविरतिछे ते थकी उरें एटले आगल, (जेतसापाणा के०) जे त्रस प्राणीछे (जेहिंसम णोवासगस्स के०) जेनें विषे श्रमणोपासकें (आयाणसो के०) व्रत ग्रहण प्रारंभीनें (आ मरणंताए के०) मरणांत सुधी (दंमेणिक्खित्ते के०) घात करवानो निषेध्योछे, (तउ आउंविप्पजहंति के०) पछी ते जीव त्यां थकी आयुष्य पूर्ण करे. (विप्पजहंतित्ता के०) त्यांथी आयुष्य पूर्ण करीने (तछआरेणंचेव के०) फरी त्यां मर्यादा वाली भूमियेंज निश्चें (जावथावरापाणा के०)यावत् जे स्थावर प्राणीछे(जेहिंसमणोवासगस्स के०) जे स्थाव रप्राणीने विषे श्रमणोपासकने (अछाएदंमेअणिक्खित्ते के०) अर्थदंम एटले अर्थें हणवा नो निषेध नथी, अने(अणछाएदंमेणिक्खिते के०) अनर्थदंम एटले, अनर्थें विनाश करवा नो निषेधछे (तेसुपच्चायंति के०) तेवा स्थावर जीवोनें विषे ते पूर्वोक्त त्रस जीव आवी उप जे. (तेहिंसमणोवासगस्स के०) तेनेविषे श्रमणोपासकने (अछाएदंमेअणिक्खित्ते के०)अ र्थदंम छांम्यो नथी(अणछाएदंमेणिक्खित्ते के०)अने अनर्थ दंम छांम्योछे(तेपाणाविवुच्चंति के०) तेनें प्राण पण कहियें, तेने त्रस पण कहियें,तेनें चिरस्थितिक पण कहियें,(जावअयं पिभेदे के०) यावत् ए भेदवालुं पण (से के०) ते तमारुं वचन, न्याय मार्गेनुं नथी. ए प्र थम भंग कह्यो ॥२७॥हवे बीजो भंग कहेछे. जेटली भूमिकानी अविरतिछे ते भूमिका मांहे लाज त्रस जीव होय ते मरण पामिने फरी नियम करेली भूमिका मांहे जे त्रस अने स्थावर जीवोछे तेमांहे आवी उपजे. ए बीजो भंग ॥२८॥ हवे त्रीजो भंग कहेछे. जेटली भूमिकानी अविरतिछे ते मांहेला स्थावर जीव,ते मरण पामीनें फरी तेहिज प्रत्याख्यान करेली भूमि का मांहे जे त्रस जीवोछे तेमांहे आवी उपजे ॥२९॥ हवे चोथो भंग कहेछे. जेटली भू मिकानी अविरतिछे ते मांहेला स्थावर जीव, मरण पामीने फरी तेहिज भूमि मांहेला स्थावर मांहे आवी उपजे ॥३०॥ हवे पांचमो भंग कहेछे. जेटली भूमिकानी अविरति छे जे नियम करेली भूमिकाछे ते मांहेला स्थावर जीवछे ते मरण पामीने ते मांहे आ वीने स्थावर पणे उपजे ॥३१॥ हवे छछो भंग कहेछे. नियम करेली भूमिका मांहेला त्रस अनें स्थावर जीव,ते त्यांथी मरण पामीनें जेटली भूमिकानी अविरतिछे ते भूमि मांहेला त्रस जीवोने विषे आवी उपजे ॥ ३२ ॥ हवे सातमो भंग कहेछे- नियम करे ली भूमिका मांहेला त्रस, अनें स्थावर जीव, ते त्यांथी मरण पामीनें जेटली भूमिका नी अविरतिछे ते मांहेला स्थावर जीवोने विषे आवी उपजे ॥३३॥ हवे आठमो भंग कहेछे. नियम करेली भूमिका मांहेला त्रस अनें स्थावर जीव,ते त्यांथी मरण पामीनें फरी तेहिज नियम करेली भूमिका मांहे त्रस, अनें स्थावरने विषे आवी उपजे, एटले ए आठ भंग थया. अनें नवमो भंग प्रथम कह्यो, एम बधा मली नव भंग थया. हवे ए नवे प्रकारें करी श्रावकने पच्चखाण देखाडेछे. ते केवी रीतें? तोके, ए भांगा मांहे ज्यां

त्रस जीव कह्याछे तेनो सर्वथा प्रकारें श्रावकने आमरणांतसुधी पच्चरकाणछे अनें ज्यां ज्यां स्थावर बोल्याछे त्यां त्यां श्रावकें अनर्थें पच्चरकाण कर्युंछे. तेथी तेमांहे ते जीव, उपना नणी, ए पण पच्चरकाण थाय. एटले नवे नंग मांहे श्रावकनें पच्चरकाण होय. ए रीतें जाणवुं. एवी रीतें घणा दृष्टांतें करी श्रावकना पच्चरकाणनो विषय देखाड्यो.॥३४॥

॥ दीपिका—अत्र आराद्देशवर्तिनस्त्रसाआराद्देशवर्तिषु स्थावरेषूत्पद्यंते ॥ २७ ॥ अत्र आराद्देशवर्तिनस्त्रसागृहीतपरिमाणोद्देशाद्बहिर्येत्रसाः स्थावराश्च तेषूत्पद्यंते ॥ २७ ॥ आराद्देशवर्तिनोये स्थावरास्ते आराद्देशवर्तिनोये त्रसास्तेषूत्पद्यंते ॥ २ए ॥ आराद्देशवर्तिनोये स्थावरास्तेषु तद्देशवर्तिष्वेव स्थावरेषूत्पद्यंते ॥ ३० ॥ आराद्देशवर्तिनोये स्थावरास्ते परदेशवर्तिषु त्रसस्थावरेषूत्पद्यंते ॥३१॥ परदेशवर्तिनोये त्रसाः स्थावरास्ते आराद्देशवर्तिषु त्रसेषूत्पद्यंते ॥ ३२ ॥ परदेशवर्तिनोये त्रसाः स्थावरास्ते आराद्देशवर्तिषु स्थावरेषूत्पद्यंते ॥ ३३ ॥ परदेशवर्तिनोये त्रसास्थावरास्ते परदेशवर्तिष्वेव त्रसस्थावरेषूत्पद्यंते । एवं नवापि सूत्राणि नणितानि तत्र, यत्र यत्र त्रसास्तत्रादानशः प्रथमव्रतग्रहणादारन्य श्रावकेणामरणांतोदंमः परित्यक्तइति योज्यं । यत्र तु स्थावरास्तत्रार्थाय दंमोन निक्षिप्तोन त्यक्तः अनर्थाय च दंमः परित्यक्तइति । शेषं सुगमम् ॥ ३४ ॥

॥ टीका—एवमन्यान्यप्यष्ट सूत्राणि इष्टव्यानि सर्वाण्यपि नवरं तत्र प्रथमे सूत्रे तदेवं यद्व्याख्यातं तच्चैवं नूतं तद्यथा गृहीतपरिमाणे देशे ये त्रसास्ते गृहीतपरिमाणदेशास्तेष्वेव । तथा द्वितीयं सूत्रं त्वाराद्देशवर्तिनस्त्रसाः आराद्देशवर्तिषु स्थावरेषूत्पद्यंते ॥ २७ ॥ तृतीये त्वाराद्देशवर्तिनस्त्रसागृहीतपरिमाणाद्देशाद्बहिर्ये त्रसाः स्थावरास्तेषूत्पद्यंते॥२७॥ तथा चतुर्थसूत्रे त्वाराद्देशवर्तिनोये स्थावरास्ते तद्देशवर्तिष्वेव त्रसेषूत्पद्यंते ॥ २ए ॥ पंचमं सूत्रं तु आराद्देशवर्तिनोये स्थावरास्तेषु तद्देशवर्तिष्वेव स्थावरेषूत्पद्यंते ॥ ३० ॥ षष्ठं सूत्रं तु दूरदेशवर्तिनो ये स्थावरास्ते गृहीतपरिमाणास्तेषुत्रसस्थावरेषूत्पद्यंते ॥३१॥ सप्तमसूत्रंत्विदं परदेशवर्तिनोये त्रसाः स्थावरास्ते आराद्देशवर्तिषु त्रसेषूत्पद्यंते ॥३२॥ अष्टमसूत्रं तु परदेशवर्तिनोये त्रसाः स्थावरास्ते आराद्देशवर्तिषु स्थावरेषूत्पद्यंते ॥ ३३ ॥ नवमसूत्रं तु परदेशवर्तिनोये त्रसाः स्थावरास्ते परदेशवर्तिष्वेव त्रसस्थावरेषूत्पद्यंते । एवमनया प्रक्रियया नवापि सूत्राणि नणनीयानि । तत्र यत्र यत्र त्रसास्तत्रादानशआदेरारन्य श्रमणोपासकेनामरणांतोदंमस्त्यक्तइत्येवं योजनीयं । तत्र तु स्थावरास्तत्रार्थाय दंमो न निक्षिप्तोन परित्यक्तोऽनर्थायच दंमः परित्यक्तइति । शेषाक्षरघटना तु स्वबुद्ध्या विधेयेति ॥ ३४ ॥

भगवंचणं उदाहु ण एतं भूयं ण एतं भवं ण एतं भविस्संति जण्णं तसा पाणा वोछिज्जिहिंति थावरा पाणा भविस्संति थावरा पाणावि वोछिज्जिहिंति तसा पाणा भविस्संति अवोछिन्नेहिं तसथावरेहिं पाणेहिं जण्णं तुझेवा अन्नोवा एवं वदह णछिणं से केइ परियाए जाव णो णेयाउए भवइ ॥ ३५ ॥

अर्थ–हवे वली उदक पेढालपुत्र प्रत्यें, भगवंत श्री गौतमस्वामी कहेछे के,अहो उदक ! (णएतंभूयं के०) भूतकालने विषे ए वात थइ नथी, (णएतंभवं के०) वर्त्तमानकालें ए वात थाय नही, (णएतंभविस्संति के०) आगमिक कालें ए वात थशे नहीं (जण्णंतसापाणावोछिज्जिहिंति के०) जे त्रसप्राणी सर्वथापि विछेद थशे (थावरापाणाभविस्संति के०) अने जगत् मांहे स्थावर प्राणीज हशे, अथवा स्थावरप्राणी सर्वथा विछेद पामशे, अनें जगत् मांहे त्रस प्राणीज रहेशे. यद्यपि तेनें परस्पर मांहो मांहे गतिछे जे स्थावर फीटी त्रस थाय, अनें त्रस फीटी, स्थावर थाय, परंतु समस्त पणे एकनो बीजा मांहे सद्भाव न थाय. तथा एवी पण संभावना नथी जे, एक पच्चरकाणना करनार टाली अन्य नारकी, बेइंद्रियादिक, तिर्यंच, मनुष्य, देवता,ए समस्तनो अभाव होय? जो एमज होय तो त्रसनुं पच्चरकाण निर्विषय थाय.परंतु ए वात संभवे नहीं! (अवोछिन्नेहिंतसथावरेहिंपाणेहिं के०) एम त्रस अनें स्थावर प्राणीनो अविछेद होय. (जण्णंतुझेवाअन्नोवाएवंवदह के०) माटें जे तमे अथवा बीजो कोइ, एम कहेके (णछिणंसेकेइपरियाए के०) ते कोइ पर्याय नथी के जे पर्यायें करी श्रावकनें प्राणातिपातनुं पच्चरकाण थाय. ते वचन, (जावणोणेयाउएभवइ के०) यावत् न्यायोक्त नथी ॥ ३५ ॥

॥ दीपिका–तदेवं बहुदृष्टांतैः श्रावकप्रत्याख्यानस्य सविषयतां प्रसाध्याधुना परप्रश्नस्यात्यंतासंबद्धतां दर्शयन्नाह। गौतमस्वामी उदकं प्राह। नैतद्भूतं नैतद्भव्यं नैतद्भविष्यं यत्त्रसाः सर्वथा उच्छेत्स्यंति स्थावराएव भविष्यंति तथा स्थावराउच्छेत्स्यंति त्रसाएव भविष्यंति एतद्द्वयं न संभवति नहि कदाप्येवं संभवोस्ति यत्प्रत्याख्यानिनमेकं विहायान्येषां नारकाणां द्वींद्रियादितिरश्चां मनुष्याणां देवानां च सर्वथाप्यभावः । एवंहि च प्रत्याख्यानं निर्विषयं स्याद्यदि प्रत्याख्यानिनोजीवतएव नारकाद्यास्त्रसाः समुछिद्यंते नचायं प्रकारः संभवी स्थावराणां वानंतत्वाऽसंख्येयेषु त्रसेषूत्पादसंभवः एवं सति य द्वदत यूयमन्योवा वदति तद्यथा नास्त्यसौ पर्यायोयच्छ्रावकस्यैकत्र सविषयोदंडत्यागइति तदेवं त्वदीय प्रेर्यं सर्वमशोभनमिति ॥ ३५ ॥

॥ टीका–तदेवं बहुनिर्दृष्टांतैः स्वस्वविषयतां श्रावकप्रत्याख्यानस्य प्रसाध्याधुनात्यंताबंधतां चोद्यस्य सूत्रेणैव दर्शयितुमाह । (जगवंचणंजदाहुरित्यादि) जगवान् गौतमस्वाम्युदकं प्रत्येतदाह । तद्यथा नैतद्भूतमनादिके काले प्रागतिक्रांते नाप्येतदप्यऽनंते कालेजाव्यं नाप्येत वर्तमानकाले जवति । ये त्रसाः प्राणाः सर्वथा निर्लेपतया स्वजात्युछेदतोछेत्स्यंति स्थावराजविष्यंतीति तथा स्थावराश्च प्राणिनः कालत्रयेपि नैव समुछेत्स्यंति त्रसाजविष्यंति यद्यपिच तेषां परस्परसंक्रमेण गमनमस्ति तथापि न सामस्त्येनान्यतरेषामितरत्र सद्भावस्तथाहि न ह्येवंजूतः संजवोस्ति यछुत प्रत्याख्यानिनमेकं विहाय परेषां नारकाणां छींडियादीनां तिरश्चां मनुष्यदेवानां च सर्वदाप्यजावः एवंच त्रसविषयं प्रत्याख्यानं निर्विषयं जवति यदि तस्य प्रत्याख्यानिनोजीवतएव सर्वेपि नारकादयस्त्रसा समुछिद्यंते न चास्य प्रकारस्य संजवोस्त्युक्तन्यायेनेति स्थावराणां चानंतानामनंतत्वादेव नासंख्येयेषु त्रसेषूत्पादइति सुप्रतीतमिदं तदेव जव्यवछिन्नैस्त्रसैः स्थावरैश्च प्राणिजिर्यद्वदत यूयमन्योवा कश्चिद्वदति तद्यथा नास्त्यसौ पर्यायोयत्र श्रमणोपासकस्यैकत्रसविषयोपि दंमपरित्यागइति तदेतडुक्तनीत्या सर्वमशोजनमिति ॥ ३५ ॥

जगवंचणं उदाहु आउसंतो उदगा जे खलु समणं वा माहणं वा परिजासेइ मिति मन्नंति आगमित्ताणाणं आगमित्तादंसणं आगमित्ताचरित्तं पावाणं कम्माणं अकरणयाए से खलु परलोगपलिमंथत्ताए चिठइ जे खलु समणं वा माहणं वा णो परिजासइ मिति मन्नंति आगमित्ताणाणं आगमित्तादंसणं आगमित्ताचरित्तं पावाणं कम्माणं अकरणयाए से खलु परलोगविसुद्धीए चिठइ तएणं से उदय पेढालपुत्ते जगवं गोयमं अणाढायमाणा जामेव दिसिं पाउन्नूते तामेव दिसिं पहारेछगमणाए ॥ ३६ ॥

अर्थ–वली गौतम स्वामी कहेछे, के, अहो आयुष्यमन् उदक ! खलु इति निश्चे जे पुरुष यथोक्त क्रियानुष्ठाननो करनार एवो श्रमण होय, अथवा माहण एटले ब्रह्मचर्यनो पालनार एवो ब्राह्मण होय तेनें (परिजासेइ के०) निंदे, (मितिमन्नंति के०) तेने विषे मैत्री जाव मानतो छतो (आगमित्ताणाणं के०) तथा सम्यक् ज्ञान, पोतानें विषे आणीनें, (आगमित्तादंसणं के०) सम्यक् दर्शन पोताने विषे आणीने, (आगमित्ताचरित्तं के०) सम्यक् चारित्र पोताने विषे आणीने, एतावता सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, अने सम्यक् चारित्रनो पालनार पण होय. (पावाणंकम्माणंअकरणाए के०) पाप

कर्मनें अण करवा नणी उठ्यो. एटले सावधान थयो. (सेखलुपरलोगंपलिमंथत्ताए चिठ्ठइ के०) ते पण निश्चें परलोकना विघात नणी तिष्टे, एटले रहे, एटले शुं कह्युं? तोके, चारित्रिउं पुरुष घणोज गुणवान् होय परंतु यथोक्त श्रमण ब्राह्मणनी निंदा करे, ते परलोकनो, तथा संयमनो विराधक कहेवाय. हवें जे गुणवंतना गुण ग्रहण करे, ते नां फल देखाडेछे. जे महासत्ववंत पुरुष रत्नाकरनी पेरें गंनीर, श्रमण ब्राह्मणने निंदे नही, ते सहित थको तेनी साथें मैत्री नाव पोषण करे, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, अने सम्यक् चारित्रनें यथोक्त पालतो उतो, पापकर्मने अण करवा नणी उठ्यो एटले सावधान थयो. ते निश्चें थकी परलोकनो तथा संयमनो आराधक थाय. ए कारण माटें श्रमण ब्रह्मणनी निंदा न करे ! ते पुरुष रूडो जाणवो. एवुं जाणीने ए निंदा परिहरवी. अने सूधो संयम पालवो. (तएणंसे के०) तेवार पढी ते उदक पेढाल पुत्र, नगवन् श्री गौतम समीपें एवा अर्थो सांनलीनें, श्री गौतम स्वामीनें आदर दीधा विना पूछ्या विना जे दिशा थकी आव्यो हतो, तेहिज दिशा तरफ फरी गमन चिंतवन करतो हवो॥३६॥

॥ दीपिका—अथोपसंहारमाह । गौतमस्वाम्याह । आयुष्मन्नुदक ! यः खलु श्रमणं य थोक्तक्रियाकारिणं माहनं वा सद्ब्रह्मचर्योपेतं परिनाषते मैत्रीं मन्यमानोपि निंदति स म्यक् ज्ञानदर्शनं चारित्रं च आगम्य प्राप्य पापकर्मणामकरणायोछितः खलु तुछप्रकृतिः पंमितंमन्यः परलोकस्य सजतेः पलिमंथाय विघाताय तिष्ठति यः पुनर्महासत्वः सागर वजंनीरः श्रमणादीन्न परिनाषते न निंदति तेषुच परमां मैत्रीं मन्यते सम्यक् ज्ञानादीन्य नुगम्य पापकर्मणामकरणायोछितः सखलु परलोकविशुध्ध्या तिष्ठति अनेन वाक्येन पर निंदावर्जनाद्यथावस्थितार्थकथनेन श्रीगौतमः स्वौध्धत्यं परिहरतिस्म एवं श्रीगौतमे न यथास्थितार्थज्ञापितोऽप्युदकोयदा गौतममनाद्रियमाणोयस्याएव दिशः प्रादुर्भूतस्ता मेव दिशं गमनाय प्रधारितवान् चिंतितवान् ॥ ३६ ॥

॥ टीका—सांप्रतमुपसंजिघृक्षुराह । (नगवंचणंउदाहुरित्यादि) गौतमस्वाम्याह । आ युष्मन्नुदक ! यः खलु श्रमणं वा यथोक्तकारिणं माहनं वा सद्ब्रह्मचर्योपतं परिनाषते निं दति मैत्रीं मन्यमानोपि तथा सम्यक्ज्ञानमागम्य तथा दर्शनं चारित्रं च पापानां कर्म णामकरणाय समुछितः स खलु लघुप्रकृतिः पंमितंमन्यः परलोकस्य सुगतिलक्षणस्य तत्कारणस्य वा सत्संयमस्य पलिमंथाय तद्विलोडनाय तद्विघाताय तिष्ठति यस्तु पुन र्महासत्वोरत्नाकरवजंनीरोन श्रमणादीन् परिनाषते तेषु च परमां मैत्रीं मन्यते सम्यग्द र्शनचारित्राण्यनुगम्य तथा पापानां कर्मणामकरणायोछितःस खलु परलोकविशुध्ध्यावतिष्ठ ते अनेन च परपरिनाषावर्जनेन यथावस्थितार्थस्वरूपदर्शनतोगौतमस्वामिना स्वौध्धत्यं

परिहृतं नवति तदेवं यथावस्थितमर्थं गौतमस्वामिनावगतोप्युदकः पेढालपुत्रोयदा नगवंतं गौतममनाद्रियमाणोयस्याएव दिशः प्राडर्नूतस्तामेव दिशं गमनाय संप्रधारितवान्॥३६

नगवंचणं उदाहु आउसंतो उदगा जे खलु तहानूतस्स समणस्सवा माहणस्सवा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा निसम्म अप्पणो चेव सुहम्माए पडिलेहीए अणुत्तरं जोगखेमपयं लंनिएसमाणे सोवित्तावतं आढाइ परिजाणेंति वंदंति नमंसंति सक्कारेइ समाणेइ जाव कल्याणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासंति ॥ ३७ ॥

अर्थ—नगवंत श्रीगौतम स्वामी बोल्या के, अहो आयुष्यमन् उदक ! खलु इति निश्चें जे कोइ तथानूत श्रमण ब्राह्मणने समीपें एक पण आर्य धर्म संबंधिक रूडुं वचन सांनलीने सम्यक् प्रकारें संयमने विषे धारीनें (अप्पणोचेवसुहम्माए के०) पोता थकी सूक्ष्म कुशाग्र वत् बुद्धियें करी (पडिलेहीए के०) आलोचीनें विचारीनें जाणे के, आ रूडा वचनें करी हुं (अणुत्तरं के०) प्रधान, (जोगखेमपयंलंनिएसमाणे के०) योगक्षेमपद एटले रूडुं मुक्ति साधवा योग्य पद, तेने विषे पहोंचो एतावता ए थकी में रूडुं एक पद लाध्युं. (सोवित्तावतं के०) ते पुरुष, ते उपदेशना देनार पुरुषनें (आढाइ के०) आदर करे, तथा (परिजाणेंति के०) ए पुज्यछे एवुं करी जाणे, तथा तेने वांदे, ते आगल अंजली करे (नमंसंति के०) मस्तक नमावे, (सक्कारेइके०) सत्कार करे, वस्त्रादिकें करी प्रतिलाने. (समाणेइ के०) अन्युत्थानादिक करे, तथा यावत् कल्याणमंगल देवता चैत्य एनी उपमा मानि स्तुति करे, तथा, (पज्जुवासंति के०) पर्युपासना करे, यद्यपि ते उपदेशनो दातार कांइ वंदनादिक वांछे नही,तथापि ते सांनलनारें ते परमार्थ उपकारी नणी यथाशक्तियें विनयादिक समाचरवो.॥३७॥

॥ दीपिका—तदा । नगवान् गौतमआह । हे आयुष्मन्नुदक ! यः खलु तथानूतस्य श्रमणस्य ब्राह्मणस्य वांतिके समीपे एकमप्यर्थं धार्मिकं सुवचनं श्रुत्वानिशम्यावधार्यात्मनएव तदनुत्तरं योगक्षेमपदमित्यवगम्य सूक्ष्मया बुद्ध्या प्रत्युपेक्ष्य विचार्याहमनेन योगक्षेमपदमनुत्तरं लंनितः प्रापितः सन् सोपि तावल्लौकिकोपि तमुपदेशदातारमाद्रियते पूज्योयमिति जानाति कल्याणं मंगलं देवतां चैत्यमिव पर्युपास्ते प्राकृतजनोपि चेद्धितोपदेशदातारं पूजयति तदा किं पुनर्वाच्यमनुत्तरधर्मोपदेशकपूजायां विवेकिजनस्येति ! नावः ॥ ३७ ॥

॥ टीका–तं चैवमभिप्रायमुदकं दृष्ट्वा भगवान्गौतमस्वाम्याह। तद्यथा। आयुष्मन्नुदक! यः खलु तथाभूतस्य श्रमणस्य ब्राह्मणस्य वांतिके समीपे एकमपि योगक्षेमाय पद्यते गम्यते येनार्थस्तत्पदं योगक्षेमपदं किंभूतमार्यमार्यानुष्ठानहेतुत्वादार्यं तथा धार्मिकं शोभनवचनं सुवचनं सद्गतिहेतुत्वात्तदेवंभूतं पदं श्रुत्वा निशम्यावगम्याचात्मनएव तदनुत्तरं योगक्षेमपदमित्येवमवगम्य सूक्ष्मया कुशाग्रीयया बुद्ध्या प्रत्यपेक्ष्यपर्यालोच्य तद्यथाहमनेनैवं भूतमर्थपदं लंभितः प्रापितः सन्नसावपि तावल्लौकिकस्तमुपदेशदातारमाद्रियते पूज्योयमित्येवं जानाति तथा कल्याणं मंगलं देवतामिव स्तौति पर्युपास्ते च यदप्यसौ पूजनीयः किमपि नेछति तथापि तेन तस्य परमार्थोपकारिणोयथाशक्ति विधेयम्॥ ३७॥

तएणं से उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी एतेसिणं भंते पदाणं पुव्विं अन्नाणयाए असवणयाए अबोहिए अणभिगमेणं अदिट्ठाणं असुयाणं अमुयाणं अविन्नायाणं अव्वोगडाणं अणिगूढाणं अविछिन्नाणं अणिसिट्ठाणं अणिवूढाणं अणुवहारियाणं एयमठं णो सद्दहियं णो पत्तियं णो रोइयं एतेसिणं भंते पदाणं एण्हिं जाणयाए सवणत्ताए बोहए जाव उवहारणयाए एयमठं सद्दहामि पत्तियामि रोएमि एवमेव से जहेयं तुब्भे वदह॥ ३८॥

अर्थ–तेवार पछी ते उदकपेढालपुत्र, भगवंत श्रीगौतम स्वामी प्रत्यें एम बोल्या के, (एतेसिणंभंतेपदाणं के०) हेभगवन्! तमे एटलां पद कह्यां, ते में (पुव्विंअन्नाणयाए के०) पूर्वें न जाण्यां (असवणयाए के०) पूर्वें न सांभल्यां, (अबोहिए के०) जिनधर्मनी अप्राप्तिने लीधे एनी बोधि उपनी नहीं. (अणभिगमेणं के०) विस्तारें बोधिना रहितपणा थकी एनो अभिगम न थयो, (अदिट्ठाणं के०) पूर्वें साक्षात् पोताथी दीठां नहीं एटले पाम्यां नहीं. ते भणी अदृष्ट. (असुयाणं के०) कोइनी पासेंथी सांभल्यां नहीं, (अमुयाणं के०) स्मरण कर्यां नहीं, (अविन्नायाणं के०) अविज्ञात एटले विशिष्ट बोधरहित (अव्वोगडाणं के०) विशेषथी गुरुयें कह्यां नहीं. (अणिगूढाणं के०) अप्रगट एटले प्रगट न थयां (अविछिन्नाणं के०) विपक्षादिक संदेह छेद्या नहीं. (अणिसिट्ठाणं के०) अनिश्चित कोइयें संभलाव्यां नहीं. (अणिवूढाणं के०) अण सांभल्यां माटें निर्वाह्यां नहीं (अणुवहारियाणं के०) अणविरत पणे हृदयने विषे अवधार्यां नहीं (एयमठं के० (ए प्रकारें पदोनो अर्थ, (णोसद्दहियं के०) सद्दह्यो नही, एटले श्रद्धाकरी नहीं, (णोपत्तियं के०) प्रतित करी नहीं, (णो

रोयियं के०) प्रत्याख्यानमां रुचिपण न करी ते अर्थ रुच्यो नहीं (एतेसिणंनंतेपदा एं के०) एटलां पद, हे नगवन्! (एसिंह के०) हमणा (जाणयाए के०) जाण्यां सांनल्यां, बोध थयो, यावत् हृदयने विषे अवधार्यां. ते कारण माटें ए पदनो अर्थ सद्दहुंछुं, प्रतितमां आणुंछुं, तथा रुचेछे. किं बहुना (सेजहेयंतुप्नेवदह के०) ते जेम त मे कहोछो (एवमेव के०) एमजछे ॥ ३७ ॥

॥ दीपिका–उदकोगौतमस्वामिनमाह । यथा एतेषां पदानां पूर्वमज्ञाततयाऽश्रवणत याऽनाकर्णनेन अबोध्याश्रवणेप्यनवबोधात् अनभिगमेन बोधेपि सम्यगप्रतिपत्याऽदृष्ट नामविज्ञातानामश्रुतानामविसृष्टानां गुरुणाऽदत्तानामनिर्गूढानां स्थिरतया स्थापितानाम नुपधारितानामनवधारितानां चानिर्णीतानां न श्रद्धानं कृतवान् न प्रत्याख्यानरुचिं च क तवान्। इदानीं तु युष्मदंतिके श्रुत्वा ज्ञात्वावद्दृष्टादिविशिष्टानां पदानामेनमर्थं श्रद्दधे प्रत्ययरुचिं च करोमि एवमेतद्यथा यूयं वदथ ॥ ३७ ॥

॥ टीका–तदेवं गौतमस्वामिनाभिहितउदकइदमाह । एतद्यथैतेषां पदानां पूर्वमज्ञ तया श्रवणतया बोध्याचेत्यादिना विशेषणकदंबकेन श्रद्धानं कृतवान् सांप्रतं तु युष्म तिके विज्ञायैनमर्थं श्रद्दधेहं ॥ ३७ ॥

तएणं नगवं गोयम उदयं पेढालपुत्ते एवं वयासी सद्दहाहिणं अज्जो पत्ति याहिणं अज्जो रोहिणं अज्जो एवमेयं जहाणं अम्हे वयामो तएणं से उदए पेढालपुत्ते नगवं गोयमं एवं वयासी इछामि णं नंते तुप्नं अंतिए चाउज्जामो उ धम्माउ पंचमहव्वयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ॥३९॥

॥ अर्थ–तेवारें नगवंत श्रीगौतमस्वामी उदयपेढाल पुत्र प्रत्यें एम बोल्या के, अहो आर्य उदक! ए अर्थनी सदहणा कर. केम के, श्री वीतरागनो नांखेलो अर्थ अन्यथा नथी, अहो आर्य! तथा (पत्तियाहिणं के०)ए वचननी प्रतीत आण: तथा ए वचननी रुचि कर. ए अर्थ एमज जेम हुं कहुं छुं ते नगवंतनो नांखेलोछे माटें ते तहत्ति करी जाणजे. तेवार पछी ते उदक पेढालपुत्र, नगवंत श्री गौतम स्वामी प्रत्यें बोल्या के (इछामिणंनंते के०) इछुं छुं हे नगवन्! हुं तमारा (अंतिए के०) पासेंथी चातुर्याम धर्म थकी पंच महाव्रत रूप धर्म, तथा पडिक्कमणा सहित धर्मने. (उवसंपज्जित्ताणं के०) अंगीकार करीने (विहरित्त ए के०) विचरवाने वांछुं छुं. ॥ ३९ ॥

॥ दीपिका—ततः श्रीगौतमउदकमेवमवादीद्यथा । अस्मिन्नर्थे श्रद्धानं कुरु हे आर्य ! प्रत्ययं रुचिं च कुरु । एवमेतद्यथा वयं वदामः तथा त्वं प्रत्येहि । ततः सउदकः श्रीगौतममेवमवादीत् । इच्छाम्यहं भदंते युष्मत्समीपे चातुर्मासिकाच्चतुर्व्रतरूपाद्धर्मात्पंचयामिकं पंच महाव्रतरूपं सप्रतिक्रमणं धर्ममुपसंपद्य स्वीकृत्य विहर्तुमिति ॥ ३९ ॥

॥ टीका—एवमवगम्य गौतमस्वाम्युदकमेवाह । यथास्मिन्नर्थे श्रद्धानं कुरु नान्यथा सर्वज्ञोक्तं भवतीति मत्वा पुनरप्युदकएवमाह । इष्टमेवैतन्मे किंत्वमुष्माच्चातुर्यामिकाद्धर्मात्पंचयामिकं धर्मं संप्रति सप्रतिक्रमणमुपसंपद्य विहर्तुमिच्छामि ॥ ३९ ॥

तएणं से भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं गहाय जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छइत्ता तएणं से उदए पेढालपुत्ते समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करित्ता वंदइ नमंसति नमंसतित्ता एवं वयासी इच्छामि णं भंते तुब्भं अंतिये चाउज्जामाउ धम्माउ पंच महव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए तएणं समणे भगवं महावीरे उदयं एवं वयासी अहासुहं देवाणुप्पिया मा पडिबंधं करेहि तएणं से उदए पेढालपुत्ते समणस्स भगवउ महावीरस्स अंतिए चाउज्जामाउ धम्माउ पंच महव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ त्तिबेमि॥इति नालंदइज्जं सत्तमं अज्झयणं सम्मत्तं ॥ इति सूयगडांगबीयसुयक्खंधोसम्मत्तो ॥४०॥ ग्रंथाग्रं ॥ ९१०० ॥

अर्थ—ते वार पछी एवुं वचन सांभलीनें भगवंत श्री गौतमस्वामी, ते उदक पेढाल पुत्र नें संघातें लइने ज्यां श्रमण भगवंत श्रीमहावीर देवछे, त्यां आव्या. तेवार पछी ते उदकपेढाल पुत्र, श्रमण भगवंत श्रीमहावीर देवने (तिक्खुत्तो के०) त्रणवार प्रदक्षिणा पूर्वक वांदी नमस्कार करे, त्रण वार प्रदक्षिणा पूर्वक नमस्कार करीनें एवी रीतें बोल्या के, (इच्छामिणंभंते के०) हे भगवन्! तमारा समीपें हुं इछुं छुं. शुं इछुं छुं? तोके चातुर्यामिक धर्म थकी रहित थइनें पंच महाव्रत, तथा सप्पडिक्कमण धर्म, अंगीकार करी विचरवाने वांछुं छुं. तेवारें श्रमण भगवान् श्रीमहावीर देव बोल्या के, (अहासुहंदेवाणुप्पिया के०) हे देवानु प्रिय! जेम तमारे सुख उपजे, तेम करो! (मापडिबंधंकरेह के०) धर्मने विषे विलंब म करो. तेवार पछी ते उदक पेढालपुत्र एवुं सांभलीने, श्रमण भगवंत श्रीमहावीर देवनें

समीपें चातुर्यामिक धर्मथकी पंचमहाव्रत सप्पडिक्कमण धर्म आदरीने विचरेछे, सर्वज्ञ प्रणितधर्म पालेछे. (त्तिबेमि के०) श्री सुधर्मस्वामी पोताना शिष्यो प्रत्यें कहेछे. के, में जेवुं जगवंत श्री महावीरदेव पासेंथी सांजल्युंछे, तेवुं तमने कहुं छुं. इत्यादिक अर्थ, पूर्ववत् जाणवो॥४०॥एरीतें "णालंदइज्जं" नामा सातमा अध्ययननो अल्पार्थबालावबोध समाप्त थयो॥ ए बीजा श्री सूयगडांगना बीजा श्रुतस्कंधनो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो.॥ सम्मत्तं सूयगडांगं आदितः॥ सर्वाणि अध्ययनानि त्रयोविंशतिकानि संपूर्णानि ॥ श्री साधुरत्नष्येण पाशचंद्रेण वृत्तितः कृतबालावबोधार्थे द्वितीयांगस्य वार्तिकं समाप्तम् ॥७॥

॥ दीपिका–ततोजगवान् गौतमस्तं प्राक् प्रतिपन्नश्रीपार्श्वशासनव्रतमुदकं गृहीत्वा यत्र श्रीवीरोजगवांस्तत्रैवोपागच्छति । ततः सउदकः श्रमणं जगवंतं त्रिःकृत्वः आदक्षिणं प्रदक्षिणं करोति तिस्रः प्रदक्षिणाः करोतीति कृत्वा च वंदते नमस्यति वंदित्वा नमस्थित्वा च एवमवादीत् इच्छामि जवदंते युष्मदंतिके चातुर्यामात्पंच महाव्रतिकं धर्ममुपसंपद्य विहर्तुमिति । ततः श्रीवीरस्तमुदकमेवमवादीद्यथा सुखं देवानुप्रिय! मा प्रतिबंधं धर्मांतरायं कार्षीरिति । ततः सउदकः श्रीवीरांतिके पंच महाव्रतिकग्रहणायोत्थितः जगवतापि तस्य सप्रतिक्रमणः पंचमहाव्रतिकोधर्मोनुज्ञातः सच तं धर्ममुपसंपद्य स्वीकृत्य विहरतीति। इतिः परिसमाप्त्यर्थे।ब्रवीमीति पूर्ववत्। सुधर्मस्वामी स्वशिष्यानिदमाह । तद्यथा सोहं ब्रवीमि येन मया जगवदंतिके श्रुतमिति ॥४०॥ नालंदीयाख्यमिदं सप्तममध्ययनं समाप्तं । तत्समाप्तौ च समाप्तोयं द्वितीयः श्रुतस्कंधस्तत्संपूर्त्तौ च पूर्णेयं श्रीसूत्रकृतांग दीपिका ॥ ग्रंथसंख्या ॥ सुमारें॥ (७०००)

॥ अथ प्रशस्तिः॥ आर्या वृत्तम् ॥

निस्तंद्रचंद्रचारुणि,चंद्रकुले चरणचातुरीजाजः।विख्याततपेत्याख्या,जगति जगच्चंद्रसूरयोऽजूवन् ॥ १ ॥ तेषां दोषांशमुषां, संताने सुकृतसंचयविताने ॥ श्रीसोमसुंदरगुरू,त्तमाद्दमासंगमाश्रजवन् ॥ २॥ तत्पट्टस्फुटकमला,जाले कालेयतिलकसंकाशः॥श्रीमुनिसुंदरगुरवः,कामितसंपत्तिसुरतरवः ॥३॥ बाल्येपि जारतीजि,रुदपादि वादिवर्गे यैः ॥ श्रीजयचंद्रमुनींद्रा,स्तेपरगजेषु सिंहसदृशाः॥४॥ तत्पद विशदस्थाने,स्थाने शृंगारसारतां जेजुः॥श्रीरत्नशेखराइति, जगति यतः ख्यातिमापुस्ते॥५॥तेषामनंकपट्टे,गुणसंवट्टे प्रजावकपपट्टे॥प्राप्ताधिकनिष्ठा श्री, श्रीलक्ष्मीसागराःशिष्टाः॥६॥ जर्त्सितकलिकालुष्या,शिष्याजाषायथार्थनामानः ॥ श्रीसुमतिसाधुगुरवो, लक्ष्मीसुरजीकारसाग्रयशोगुरवः ॥७ ॥ तत्पट्टे प्रवादेप्सित, पूरणचिंतामणीयमानानाम् ॥ लब्धाधिकमानानां, सुहेमविमलाजिधानानाम् ॥८॥ सुरीपगच्छनायक, देवीप्राप्तप्रजाप्रतिष्ठानाम् ॥ शिष्याणुर्गुणशासन,जननीतिथिसंमिते (१५८३) वर्षे ॥९॥ विबुधना

छे. इच्चेयाहिं के० इत्यादिक ए पूर्वोक्त एवी दिठीहिं के० ज्ञानदृष्टीना अंगीकारे करीने ते वादी सातागारवणिस्सिया के० सातागारवे निश्रित एटले आसक्त अर्थात् सुखशी लीया एवा थका, ते क्रियाना करनार जेवो सदोष निर्दोष आहार पामे तेना जोगवनार एवा छतां ते पोतानुंज दर्शन सरणंतिमन्नमाणाके० संसारथकी उद्धरवासमर्थछे. एवुं माणा एटले मानता थका, सेवंतीपावगं के० ते विपरीत अनुष्ठाने करी हिंसादिक पापज सेवेछे, तेमाटे यद्यपि ते व्रतधारी छे, तथापि ते अनेरा पामर एवा जणाके० लोक तेना सरखा जाणवा. ॥ ३० ॥ एहिज अर्थ दृष्टांते कहेछे. जहा के० जेम अस्साविणिं के० छिद्रसहित एवी णावं के० नाव तेने विषे जाइअंधो के० जातिअंध एटले जन्मांध पुरुष डुरुह्रिया के० चडीने इच्छईपारमागंतुं के० पार पामवा वांछे परंतु पार पामे नहीं. किंतु अंतराय के० अंतराले एटले वचमांहेज ते विसीयई के० बुडी जाय इत्यर्थः ॥ ३१ ॥ हवे ए दृष्टांत दर्शनीउं साथे मेलवेछे. जेम सछिद्रनावे चड्यो थको अंध पुरुष पार पोहोचे नहीं एवंतुसमणाएगे के० तेनीपेरे कोइएक शाक्यादिक श्रमण ते मिछदिठीअणारिया के० मिथ्यादृष्टी एटले जिनप्रणीत धर्मथकी विपरीत दृष्टि तथा अनारिया एटले अनाचारी संसारपारकंखीते के० ते पोताना दर्शनने अनुरागे संसारनो पार पामवाने वांछे छे, परंतु ते संसारंअणुपरियट्टंति के० संसारमांहेज परावर्तन घचन घोलन इत्यादिक अनंत कालसुधी पामे. ॥ ३२ ॥ एम श्रीमहावीर देवे कह्युं इति के० एम हुं पण तुजने कहुंछुं. एरीते श्रीसुधर्मास्वामिये पोताना शिष्य श्रीजंबुस्वामी प्रत्ये कह्युं. इति प्रथम समयाध्ययनस्य द्वितीयोद्देशकः समाप्तः। ए उद्देशे करी स्वसमय परसमयनी प्ररूपणा करीछे.

॥ दीपिका—एतद्दूषयन्नाह । (मणसेति)। ये कुतोपि हेतोर्मनसा प्रडुष्यंति प्रद्वेषयंति तेषां वधपरिणतानां शुद्धं चित्तं न विद्यते । एवंच यत्तैरुक्तं केवलमनःप्रद्वेषेप्यनवद्यं पापाजावइति तत्तेषामतथं मिथ्या । यतस्ते न संवृतचारिणोमनसोऽशुद्धत्वात् । तथाहि । कर्मबंधे मुख्योहेतुर्मनएव । यथा ईर्यापथेऽनुपयुक्तोगछन् कर्मबंधकः । उपयुक्तस्तु सहसा हिंसकोपि न कर्मबंधकइति ततः पुत्रं पितेति दृष्टांतोन समीचीनइति ॥ २ए ॥ अथ तेषामनर्थमाह । (इच्चेहियाहिंति)। इत्येताभिः पूर्वोक्ताभिर्दृष्टीभिर्मतैस्ते वादिनः सातागौरवनिश्रिताइदमस्मन्मतं शरणमिति मन्यमानानराः पापमेव सेवंते कुर्वंति ॥ ३० ॥ अत्रार्थे दृष्टांतमाह । (जहत्ति)। आश्राविर्णी सछिद्रां नावं यथा जात्यंधः समारुह्य पारं तटमागंतुमिछति स नरोनावोजलव्याप्तत्वादंतरा मध्यएव विषीदति जले निमज्जति ॥ ३१ ॥ दार्ष्टांतिकमर्थमाह । एवमिति । एवं नौदृष्टांतेन ए

मकशिष्यः स्वस्य स्मृतये,परोपकृतये च ॥सूत्रकृतांगस्यैतां हर्षकुलोदीपिकामलिखत् ॥१०॥ काश्चित्प्रमाणयुक्ती,रप्रथयन्नात्र सुगमनाहेतोः ॥ ततएव नैव विहितो,लक्षणसंधिस्तथा कापि ॥११॥ सूत्रासंगतमत्रा,वादि कथंचिन्मया यदज्ञतया॥तच्छोधयंतु सुधियः,कृपया मात्सर्यमुत्सार्य॥१२॥ग्रंथमितिरनुमिताऽत्र च,सप्तसहस्राणि किंचिदूनानि॥ विबुधजनवाच्यमानो, ग्रंथोयं जगति जयतु चिरम् ॥१३॥ ॥ इति श्रीसूत्रकृतांगदीपिकायाः प्रशस्तिः संपूर्णा ॥

॥ टीका—ततोसौ गौतमस्वामी तं गृहीत्वा तीर्थंकरांतिकं जगाम । उदकश्च जगवंतं वंदित्वा पंचयामिकधर्मग्रहणायोच्छितोजगवतापि तस्य सप्रतिक्रमणः पंचयामोधर्मोनुज्ञातः सच तं तथाजूतं धर्ममुपसंपद्य विहरतीति । इति परिसमाप्त्यर्थे ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी स्वशिष्यमिदमाह । तद्यथा सोहं ब्रवीमि येन मया जगवदंतिके श्रुतमिति गतोनुगमः । सांप्रतं नयास्ते चामी । नैगम,२संग्रह,३व्यवहार,४ जुसूत्र, ५ शब्द, समजिरूढे, ६ वंजूता, ७ख्याः सप्तैव । तेषां च मध्ये नैगमाद्याश्चत्वारोप्यर्थनयाः । अर्थमेव प्राधान्येन शब्दोपसर्जनमिच्छति शब्दाद्यास्तु त्रयः शब्दनयाः शब्दप्राधान्येनार्थमिच्छंति । तत्र नैगमस्येदं स्वरूपं तद्यथा सामान्यविशेषात्मकस्य वस्तुनोनैकेन प्रकारेणावगमः परिच्छेदोनिगमस्तत्र जवोनैगमोमहासामान्यायांतरालसामान्यविशेषाणां परिच्छेदकस्तत्र महासामान्यं सर्वपदार्थानुयायिनी सत्तायांतरालसामान्यं द्रव्यत्वजीवत्वाजीवत्वादिकं विशेषाः परमाण्वादयस्त्वगतावा शुक्लादयोगुणास्तदेवं तत्रितयमप्यसाविच्छतीति निलयनप्रस्थकादिदृष्टांतैरनुयोगद्वारप्रसिद्धैस्तत्स्वरूपमवसेयमयं च नैगमः सामान्यविशेषात्मवस्तुसमाश्रयणेपि न सम्यग्दृष्टिर्जेदेनैव सामान्यविशेषयोराश्रयणात्तन्मताश्रितनैयायिकवैशेषिकवत् । तथा संग्रहोप्येवं स्वरूपस्तद्यथा सम्यक् पदार्थानां सामान्याकारतया ग्रहणं सद्ग्रहस्तथा ह्यप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वजावमेव सत्तारूपं वस्त्वसावज्युपगच्छति सत्तातोव्यतिरिक्तस्यावस्तुत्वं खरविषाणस्येव सच संग्रहः सामान्यविशेषात्मकस्य वस्तुनः सामान्यांशस्यैवाश्रयणान्मिथ्यादृष्टिस्तन्मताश्रितसांख्यवत् । व्यवहारनयस्य तु स्वरूपमिदं तद्यथा यथा लोकग्राह्यमेव वस्तु यथा च शुष्कतार्किकैः स्वाजिप्रायकृतलक्षणानुगतं तथाजूतं वस्तु न जवत्येव नहि प्रतिलक्षणमर्थानामात्मजेदोजवति किं तर्हि यथा यथा लोके न विशिष्टनूयिष्टतयार्थक्रियाकारि वस्तु व्यवन्हियते तथैव तद्दस्त्वित्याबालगोपालांगनादिप्रसिद्धत्वाद्वस्तुस्वरूपस्येत्ययमप्युत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तस्य वस्तुनोनाज्युपगमात् मिथ्यादृष्टिस्तथा विधरथ्यापुरुषवदिति । कृजुसूत्रमतं त्विदं कृजुप्रगुणं तत्वविनष्टानुत्पन्नतयातीतानागतचक्रपरित्यागेन वर्त्तमानकाललक्षणजावि य द्वस्तु तत्सूत्रयति प्रतिपादयत्याश्रयतीति कृजुसूत्रस्तस्यैवार्थक्रियाकारितया वस्तुत्वलक्षणयोगादित्ययमपि सामान्यविशेषोजयात्मकस्य वस्तुनः सामा

न्यांशपरित्यागेन विशेषांशस्यैव समाश्रयणाद्बौद्धोदनिवन्न सम्यग्दृष्टिः कारणभूतद्रव्या नन्युपगमेन तदाश्रितविशेषस्यैव भावादिति । शब्दनयस्वरूपंत्विदं तद्यथा शब्दद्वारेणैवा स्यार्थप्रतीत्यान्युपगमाल्लिंगवचनसाधनोपग्रहकालभेदाभिहितं वस्तु भिन्नमेवेच्छति तत्र लिं गभेदाभिहितं वस्त्वन्यदेव भवति तद्यथा पुष्यस्तारकानक्षत्रमेवं संख्याभिन्नं जलमयोवर्षा ऋतुः साधनभेदस्त्वयं एहिमन्ये रथेन यास्यसि यातस्ते पिता अस्यायमर्थः । एवं त्वं म न्यसे यथाहं रथेन यास्यामीत्यत्र मध्यमपुरुषयोर्व्यत्ययः उपग्रहस्तु परस्मैपदात्मनेपद योर्व्यत्ययस्तद्यथा तिष्ठति प्रतिष्ठते रमते उपरमतीत्यादि कालभेदस्त्वग्निष्टोमयाजी पुत्रो स्य भविता अस्यायमर्थोग्निष्टोमयाजी अग्निष्टोमेनेष्टवान् भूते णिनिर्भवितेति भविष्यद नद्यतने लुट् तत्रायमर्थः णिनिप्रत्ययोभवितेत्यस्य संबधाद्भूतकालतां परित्यज्य भविष्य त्कालतां प्रतिपद्यते तेनेदमुक्तं भवत्येवंभूतोऽस्य पुत्रोभविष्यति योऽग्निष्टोमेन यक्ष्यति तदे वंभूतं व्यवहारनयशब्दनयोनेच्छति लिंगाद्यभिन्नास्तु पर्यायाः अनेकविषयत्वेनेच्छति तद्यथा घटः कुंभः इंद्रः शक्रः पुरंदरइत्यादि । अयमर्थेऽव्यंजनपर्यायोभयरूपस्य वस्तुनोव्यंजनपर्या यस्यैव समाश्रयणान्मिथ्यादृष्टिरिति । तथा पर्यायाणां नानार्थतया समभिरोहणात्सम भिरूढोन ह्ययं घटादिपर्यायाणामेकार्थतामिच्छति तथाहि घटनाद्घटः कुट्टनात्कुट्टः कौ भा तीति कुंभोनहि घटनं कुट्टनं भवति तथेंदनादिंद्रः पुर्दारणात्पुरंदरइत्यादेरपि शब्दप्रवृत्ति निमित्तस्य न परस्परानुगतिरिति तदयमपि मिथ्यादृष्टिः पर्यायाभिहितधर्मैवद्वस्तुनोनाश्र यणादग्रहीतप्रत्येकावयवांधहस्तिज्ञानवदिति । एवंभूताभिप्रायस्त्वयं यदैव शब्दप्रवृत्तिनि मित्तं चेष्टादिकं तस्मिन्घटादिके वस्तुनि तदेवासौ युवतिमस्तकारूढउदकाद्याहरणक्रियाप्र वृत्तोघटोभवति न निर्व्यापारएव एवंभूतः तस्यार्थस्य समाश्रयणादेवंभूतोभिधानोनयोभव ति । तदयमप्यनंतधर्माध्यासितस्य वस्तुनोनाश्रयणान्मिथ्यादृष्टिः । रत्नावल्यवयवे प द्मरागादौ कृतरत्नावलीव्यपदेशपुरुषवदिति । तदेवं सर्वे नयाः प्रत्येकं मिथ्यादृष्टयोऽन्यो न्यसव्यपेक्षास्तु सम्यक्त्वं भजंति अत्र च ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षइतिकृत्वा ज्ञानक्रियानययोः सर्वेप्येते सुधिया समवतारणीयाः तत्रापि ज्ञाननयऐहिकामुष्मिकयोर्ज्ञानमेव फलसा धकत्वेनेच्छति न क्रियां । क्रियानयस्तु क्रियामेव न ज्ञानं परमार्थस्तूभयमपि समुदितमन्यो न्यसव्यपेक्षं पंग्वंधवदभिप्रेतफलसिद्धयेऽलमिति एतद्भनययुक्तएव साधुरभिप्रेतमर्थं साधय त्युक्तं च । सवेसिं पिणयाणं, बहुविहवत्तव्वयं णिसामेत्ता ॥ तं सवणय विसुद्धं, जं चरण गुणट्ठिउ साहू ॥ १ ॥ ४० ॥ समाप्तमिदं नालंदाख्यं सप्तममध्ययनम् ॥ इति समाप्तेयं सूत्रकृतद्वितीयांगस्य टीका । कृता चेयं शीलाचार्येण वाहरिगणिसहायेन ॥ श्लोकः ॥ यदवाप्त मत्र पुण्यं, टीकाकरणे मया समाधिभृता ॥ तेनापेततमस्को,भव्यः कल्याण भाग् भवतात् ॥ १ ॥ ग्रंथाग्रं (१२८५०) ॥

न्यांशपरित्यागेन विशेषांशस्यैव समाश्रयणाद्बौद्धोदनिवन्न सम्यग्दृष्टिः कारणनूतद्रव्या नन्युपगमेन तदाश्रितविशेषस्यैव नावादिति । शब्दनयस्वरूपंत्विदं तद्यथा शब्दद्वारेणैवा स्यार्थप्रतीत्यान्युपगमाल्लिंगवचनसाधनोपग्रहकालनेदान्निहितं वस्तु निन्नमेवेह्रति तत्र लिं गन्नेदान्निहितं वस्त्वन्यदेव नवति तद्यथा पुष्यस्तारकानक्षत्रमेवं संख्यानिन्नं जलमयोवर्षा ऋतुः साधनन्नेदस्त्वयं एहिमन्ये रथेन यास्यसि यातस्ते पिता अस्यायमर्थः । एवं त्वं म न्यसे यथाहं रथेन यास्यामीत्यत्र मध्यमपुरुषयोर्व्यत्ययः उपग्रहस्तु परस्मैपदात्मनेपद योर्व्यत्ययस्तद्यथा तिष्ठति प्रतिष्ठते रमते उपरमतीत्यादि कालन्नेदस्त्वग्निष्टोमयाजी पुत्रो स्य नविता अस्यायमर्थोऽग्निष्टोमयाजी अग्निष्टोमेनेष्टवान् नूते णिनिर्नवितेति नविष्यद नद्यतने लुट् तत्रायमर्थः णिनिप्रत्ययोनवितेत्यस्य संबधान्नूतकालतां परित्यज्य नविष्य त्कालतां प्रतिपद्यते तेनेदमुक्तं नवत्येवंनूतोऽस्य पुत्रोनविष्यति योऽग्निष्टोमेन यक्ष्यति तदे वंनूतं व्यवहारनयशब्दनयोनेह्रति लिंगाद्यनिन्नास्तु पर्यायाः अनेकविषयत्वेनेह्रति तद्यथा घटः कुंनः इंद्रः शक्रः पुरंदरइत्यादि । अयमर्थोव्यंजनपर्यायोनयरूपस्य वस्तुनोव्यंजनपर्या यस्यैव समाश्रयणान्मिथ्यादृष्टिरिति । तथा पर्यायाणां नानार्थतया समन्निरोहणात्सम न्निरूढोन ह्ययं घटादिपर्यायाणामेकार्थतामिह्रति तथाहि घटनाद्घटः कुट्टनात्कुटः कौ ना तीति कुंन्नोनहि घटनं कुट्टनं नवति तथेंदनादिंद्रः पुर्दारणात्पुरंदरइत्यादेरपि शब्दप्रवृत्ति निमित्तस्य न परस्परानुगतिरिति तदयमपि मिथ्यादृष्टिः पर्यायान्निहितधर्मेव वस्तुनोनाश्र यणाद्गृहीतप्रत्येकावयवांधहस्तिज्ञानवदिति । एवंनूताभिप्रायस्त्वयं यदैव शब्दप्रवृत्तिनि मित्तं चेष्टादिकं तस्मिन्घटादिके वस्तुनि तदेवासौ युवतिमस्तकारूढउदकाद्याहरणक्रियाप्र वृत्तोघटोनवति न निर्व्यापारएव एवंनूतः तस्यार्थस्य समाश्रयणादेवंनूतोन्निधानोनयोनव ति । तदयमप्यनंतधर्माध्यासितस्य वस्तुनोनाश्रयणान्मिथ्यादृष्टिः । रत्नावल्यवयवे प द्मरागादौ कृतरत्नावलीव्यपदेशपुरुषवदिति । तदेवं सर्वे नयाः प्रत्येकं मिथ्यादृष्टयोऽन्यो न्यसव्यपेक्षास्तु सम्यक्त्वं नजंति अत्र च ज्ञानक्रियान्यां मोक्षइतिकृत्वा ज्ञानक्रियानययोः सर्वेप्येते स्वधिया समवतारणीयाः तत्रापि ज्ञाननयऐहिकामुष्मिकयोर्ज्ञानमेव फलसा धकत्वेनेह्रति न क्रियां । क्रियानयस्तु क्रियामेव न ज्ञानं परमार्थस्तून्नयमपि समुदितमन्यो न्यसव्यपेक्षं पंग्वंधवदनिप्रेतफलसिद्धयेऽलमिति एतद्धनययुक्तएव साधुरनिप्रेतमर्थं साधय त्युक्तं च । सव्वेसिं पिणयाणं, बहुविहवत्तव्वयं णिसामेत्ता ॥ तं सव्वणय विसुद्धं, जं चरण गुणछिउ साहू ॥ १ ॥ ४० ॥ समाप्तमिदं नालंदाख्यं सप्तममध्ययनम् ॥ इति समाप्तेयं सूत्रकृतद्वितीयांगस्य टीका । कृता चेयं शीलाचार्येण वाहरिगणिसहायेन ॥ श्लोकः ॥ यदवाप्त मत्र पुण्यं, टीकाकरणे मया समाधिनृता ॥ तेनापेततमस्को,नव्यः कल्याण नाग् नवतात् ॥ १ ॥ ग्रंथाग्रं (१२८५०) ॥

के श्रमणाः शाक्यादयोमिथ्यादृष्टयोऽनार्याः स्वमतानुसारेण संसारपारकांक्षिणोपि संसा रमेवानुपर्यटंति संसारएवानंतकालं भ्रमंति इति ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३२ ॥ इति श्रीसू त्रकृतांगे प्रथमाध्ययने द्वितीयोद्देशकः समाप्तः ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ टीका—सांप्रतमेतद्दूषणायाह । (मणसाजेइत्यादि) । येहि कुतश्चिन्निमित्तान्मन साऽतःकरणेन प्रदुष्यंति प्रद्वेषमुपयांति तेषां वधपरिणतानां शुद्धं चित्तं न विद्यते । तदे वं यत्तैरभिहितं । यथा केवलमनःप्रद्वेषेप्यनवद्यं कर्मोपचयाभावइति । ततस्ते षामतथ्यमसदर्थाभिधायित्वं । यतो न ते संवृतचारिणोमनसोऽशुद्धत्वात् । तथाहि । क र्मोपचये कर्तव्ये मनएव प्रधानं कारणं । यतस्तैरपि मनोरहितकेवलकायव्यापारे कर्मोप चयाभावोभिहितः । ततश्च यद्यस्मिन् सति भवत्यसति तु न भवति तत्तस्य प्रधानं कारणमिति । ननु तस्यापि कायचेष्टारहितस्याऽकारणत्वमुक्तं सत्यमुक्तं । अयुक्तं तूक्तं । यतोभवतैवैवं भावशुध्यानिर्वाणमभिगच्छतीति भणता मनसएवैकस्य प्राधान्यमभ्यधा यि । तथाऽन्यदप्यभिहितं । चित्तमेव हि संसारे रागादिक्लेशवासितं ॥ तदेव तैर्विनिर्मुक्तं भवांतइतिकथ्यते । तथान्यैरप्यभिहितं । मतिविभवमनस्त्वे यत्समत्वेपि पुंसां, परिणम सि शुभांशैः कल्मषांशैस्त्वमेव ॥ निरयनगरवर्त्मप्रस्थिताः कष्टमेके उपचितशुभशक्त्या सूर्यसंभेदिनोन्ये ॥ १ ॥ तदेवं भवदभ्युपगमेनैव क्लिष्टमनोव्यापारः कर्मबंधायेत्युक्तं . ति । तथेर्यापथेपि यद्यनुपयुक्तोघातितवान् ततोनुपयुक्ततैव क्लिष्टचित्ततेति कर्मबंध भवत्येवाथोपयुक्तोयाति ततो ऽप्रमत्तत्वादबंधकएव । तथाचोक्तं । उच्चालियंमि पाए, २ यासमियस्स संकमठ्ठाए । वावज्जेज्जकुलिंगी, मरेज्ज तं जोगमासज्ज ॥ १ ॥ णय तस्स त. मित्तो बंधो सुहुमो विदेसिउ समये । अणवज्जो उपयोगे, ण सव्वभावे णसो जम्हा ॥ २ । स्वप्नांतिकेप्यशुद्धचित्तसद्भावादीषद्बंधोभवत्येव सच भवतोप्यभ्युपगतएवाव्यक्तं तत्सावद्य मित्यनेनेति । तदेवं मनसोपि क्लिष्टस्यैकस्यैव व्यापारबंधसद्भावात् । यदुक्तं भवता प्राणी प्रा णिज्ञानमित्यादि तत्सर्वं प्लवतइति । यदप्युक्तं । पुत्रं पिता समारभ्येत्यादि तदप्यनालो ताभिधानं । यतोमारयामीत्येवं यावन्न चित्तपरिणामोभूत्तावन्न कश्चिद्व्यापादयति । एवं भूतचित्तपरिणतेश्च कथमसंक्लिष्टता चित्तसंक्लेशे चावश्यंभावी कर्मबंधइत्युभयोरपि ...व दोत्रेति । यदपि च तैः क्वचिदुच्यते यथापरव्यापादितपिशितभक्षणे परहस्ताऽकृष्टांगारद हाभाववन्न दोषइति । पिशितभक्षणेऽनुमतिरप्रतिहताऽस्याच्च कर्मबंधइति । तथा चान्यै . अभिहितं । अनुमंता, विशसिता, संहर्ता, क्रयविक्रयी, ॥ संस्कर्ता, चोपभोक्ता च, घा. . एघातकाः । यच्च कृतकारितानुमतिरूपमादानत्रयं तैरभिहितं तज्जैनेंद्र ...त. व . । . तैरकारीति । तदेवं कर्मचतुष्टयं नोपचयं यातीत्येवं तदभिदधानाः कर्म . । .

इति सुप्रतिष्ठमिदमिति ॥ २ए ॥ अधुनैतेषां क्रियावादिनामनर्थपरंपरां दर्शयितुमाह । (इच्चेयाहिं इत्यादि) इत्येतानिः पूर्वोक्तानिश्चतुर्विधं कर्म नोपचयं यातीति दृष्टिनिरच्यु पगमैस्ते वादिनः सातागौरवनिश्रिताः सुखशीलतायामासक्तायत्किंचनकारिणोयथाल ब्धनोजिनश्च संसारोद्धरणसमर्थं शरणमिदमस्मदीयं दर्शनमित्येवं मन्यमानाविपरीता नुष्ठानतया सेवंते कुर्वंति पापमवद्यमेवं व्रतिनोपि संतोजनाइव जनाः प्राकृतपुरुषसदृशा इत्यर्थः ॥ ३० ॥ अस्यैवार्थस्योपदर्शकं दृष्टांतमाह । (जहाअस्साविणिमित्यादि) आस मंतात्स्रवति तच्छीला आस्राविणी सच्छिद्रेत्यर्थः । तां तथानूतां नावं यथा जात्यंधः समारुह्य पारं तटमागंतुं प्राप्तुमिच्छत्यसौ तस्याश्च स्राविणीत्वेनोदकप्लुतत्वादंतराले जलम ध्यएव विषीदति वारिणि निमज्जति तत्रैव च पंचत्वमुपयातीति ॥ ३१ ॥ सांप्रतं तं दार्ष्टां तिकयोजनार्थमाह । (एवमित्यादि) यथांऽधः सच्छिद्रां नावं समारूढः पारगमनाय नालं तथा श्रमणाएके शाक्यादयोमिथ्या विपरीता दृष्टिर्येषां मिथ्यादृष्टयः । तथापि शिताशनानुमतेरनार्याः स्वदर्शनानुरागेण संसारपारकांक्षिणोमोक्षानिलाषुकाअपि सं तस्ते चतुर्विधकर्मचयानन्युपगमेनानिपुणत्वाच्चासनस्य संसारमेव चतुर्गतिसंसरणरूपम नुपर्यटंति । नूयोनूयस्तत्रैव जन्मजरामरणादौ गत्यादिक्लेशमनुनवंतोऽनंतमपि काल मासते नै— विवक्षितमोक्षसुखमाप्नुवंतीति । ब्रवीमीति पूर्ववदिति ॥३२॥ इति सूत्रकृतांगे समयाख्यटीकाध्ययनस्य द्वितीयोद्देशकः समाप्तः ॥

प्रकार

॥ अथ प्रथमाध्ययने तृतीयोद्देशकः प्रारन्यते. ॥

। सैव

जं किंचामाचार पूइकडं सड्ढीमागंतुमीहियं ॥ सहस्संतरियं नुंजे, डुपरकं चेव सेवई ॥ १ ॥ तमेव अवियाणंता, विसमंसि अकोविया ॥ मच्छा वेसा लिया चेव, उदगस्स नियागमे ॥ २ ॥ उदगस्स पन्नावेणं, सुक्कं सिग्घं तमिं तिउ ॥ ढंकेहिय कंकेहिय, आमिसत्थेहिं ते डुही ॥ ३ ॥ एवं तु सम णा एगे, वट्टमाणसुहेसिणो ॥ मच्छा वेसालिया चेव, घातमेस्संति णंतसो ॥४

अर्थ–पाबलना उद्देशे स्वसमय परसमय प्ररूपणा करी, अने अहींपण तेहिज कहेछे. जं किंचिउके० जे कांइ अल्प अथवा घणो आहार पाणी पूइकडं के० पूतीकर्म एटले आधाक र्मना एक कणे सहित एवो आहार पाणी सड्ढिके० श्रद्धावंत गृहस्थें नक्तियें करी आगं तुमीहियं के० अनेरा आवनारना उद्देशे करी नीपजाव्योछे. तेज आहार कदाचित् सह स्संतरियं के० सहस्रांतरित एटले एके बीजाने दीधो, बीजे त्रीजाने दीधो, त्रीजे चो थाने दीधो एवी रीते सहस्रांतरित पणे ते सदोष आहार जे नुंजे के० नक्षण करे ते,

चेवके० निश्चे डुपरकंके० द्विपक्ष एटले गृहस्थ अने प्रव्रजितनो पक्ष सेवइके० सेवे एटले ते लिंगे तो प्रवर्जित देखायछे, पण सदोष आहारना लेवा थकी गृहस्थ सरखो जाणवो.। यडुक्तं । आहाकम्मंजुंजमाणे,समणे कइकम्मपयडीउंबंधइ गोयमा अठकम्मपयडिउंबंधइ सिढिलबंधण बद्धाउ, धणियबंधणबद्धाउकरेत्ति ॥ इत्यादिवचनात्. ए कारणे परतीर्थी अथवा स्वतीर्थी आधाकर्मादिक आहार लेता थका द्विपक्षना सेवनार जाणवा.॥१॥ हवे एने एवो आहार लेतां थकां जे विपाक उपजे ते देखाडेछे. तमेवअवियाणंता के० ते दर्शनी ते आधाकर्मि आहारनो दोष अजाणता तथा विसमंसिके० विषम जे आठ प्रकारना कर्मनो बंध अथवा चतुर्गतिक संसारने विषे अकोविया के० अपंमित छे, एटले ते एम नथी जाणता के जीवने कर्मनो बंध अथवा मोक्ष केम थाय? अथवा केवा उपाय थकी संसारसमुद्र तरे एवो परमार्थ ते जाणता नथी एवा छतां संसारमांहे कर्मपासे बंधाणा थका डुःखी थायछे, अहियां दृष्टांत कहेछे. मछा के० जेम माछलां वेसालिया के० समुद्रना उपना, अथवा विशाल जातीना उपना, अथवा विशाल एटले बृहत्काय एटले मोहोटा शरीरवाला एवा महामछ ते उदगस्सनियागमे के० पाणीना आगमे एटले समुद्रनी वेलि प्रसार पामी छते, ॥ २ ॥ उदकस्सपजावेणं के० उदकने प्रजावे एटले पाणीने पूरे, समुद्र थकी निकलीने नदीना मुखमां आवी पडे त्यारपछी ते पाणी सुकंसिग्घंतमिंतिउ के० सुके छते ते मछ शरीरने स्थूलपणे कादवमांहे खूता थका घातमेस्संति के० मरण पामे. ते केवी रीते, तो के ढंकेहिंयकंकेहियके० ढंक अने कंक ए जातिना पक्षी विशेष अने आमिसछेहिं के० बीजापण मांसना लोलिए एवा मछीमारोए विलुप्यमान एवां ते डुही के० डुःख पामेछे,ए रखे ते जवतां मछोने विलुरी नाखे, छेदीनाखे, किं बहुना प्राण थकी मुकावे. ए रीते डुःख मे. ॥ ३ ॥ ए दृष्टांत दर्शनीउ साथे मेलवेछे, एवंतु के० ए पूर्वोक्त न्याये माछलांनी पे समणाएगे के० एक शाक्यादिक श्रमण अथवा स्वतीर्थी द्रव्यलिंगी ते केवाछे, त वट्टमाणसुहेसिणोके० वर्त्तमान सुख जे आधाकर्मिकआहार जोजन सुख तेना णहार परलोकना सुखथी पराङ्मुख मछावेसालियाचेव के० वैशालिक मछनी आगमिक काले अरहट्टघटिकाने न्याये घातमेस्संतिणंतसो के० संसारमांहे अनंता न्मज्जन निमज्जन सरखा जन्म मरण पामे पण संसारना पारंगामी न थाय. ॥ ४ ।

॥ दीपिका—द्वितीयोद्देशके स्वान्यसमयप्ररूपणा कृता तृतीयेपि सैवोच्यतइति तस्येमादिसूत्रं । (जंकिंचिदिति किंचिदाहारजातं स्वल्पं घनं वा पूतिकृतमाधाकर्मादिसिक्थेना युक्तं । (सड्ढित्ति) । श्रद्धावता जक्तिमताऽन्येनापरानागंतुकानुद्दिश्य ईहितं कृतं तत्स०)

तरितमपि यो भुंजीत स द्विपक्षं गृहस्थपक्षं प्रव्रजितपक्षंच सेवते । अयमर्थः । आधाकर्मादिलवेनापि संस्पृष्टं परकृतमप्याहारं योभक्षयेत् सोपि द्विपक्षसेवी स्यात् किं पुनः स्वयमाहारं निष्पाद्य ये शाक्यादयोभुंजते ते सुतरां द्विपक्षसेविनः स्युरित्यर्थः । अथवा द्विपक्षमीर्यापथं सांपरायिकं वा बद्धनिकाचितभेदं वा कर्म तत्सेविनः परतीर्थिकाः स्वयूथ्यावा स्युरिति ॥ १ ॥ अथ तद्भोजिनां विपाकं दृष्टांतेनाह । (तमेवेति) । तमाधाकर्माद्युपभोगदोषमविजानंतोविषमे कर्मबंधे संसारे वा अकोविदाः कथं कर्मबंधः स्यात्कथं च न स्यात् कथं संसारार्णवस्तीर्यतइत्यत्राऽनिपुणाद्दुःखिनः स्युः । दृष्टांतमाह। मत्स्या यथा (वेसालियत्ति) विशालः समुद्रस्तत्र भवाविशालाख्यजातिभवावा विशालाएव वा वैशालिकाबृहच्छरीरावदकस्य जलस्यान्यागमे समुद्रवेलायां सत्यामुदकस्य प्रभावेन नदीमुखमागताः पुनर्वेलापगमे जले शुष्के वेगे अपगते सति ढंकैः कंकैश्च पक्षिविशेषैरन्यैश्चामिषार्थिभिर्विलुप्यमानास्ते दुःखिनोमत्स्यघातं विनाशं यांति प्राप्नुवंतीति श्लोकद्वयार्थः ॥ ३ ॥ दार्ष्टांतिकयोजनामाह । (एवमिति) । एवमेके श्रमणाः शाक्यादयः स्वयूथ्यावा वर्तमानमेव सुखमिहलोकसुखमाधाकर्माद्युपभोगजमेषितुं शीलं येषां ते वर्तमानसुखैषिणोवैशालिकामत्स्याइव घातं विनाशमेष्यंत्यनंतशोयास्यंति बहुवारं संसारे भ्रमिष्यंति दुःखमनुभवंतः ॥ ४ ॥

॥ टीका-द्वितीयोद्देशकानंतरं तृतीयः समारभ्यते ॥ अस्य चायमभिसंबंधः । अध्ययनार्थाधिकारः स्वसमयपरसमयप्ररूपणेति । तत्रोद्देशकद्वयेन स्वपरसमयप्ररूपणा कृता ।
त्रापि सैव क्रियते । अथ चाऽद्ययोरुद्देशकयोः कुदृष्टयः प्रतिपादितास्तद्दोषाश्च तदिहा
तेषामाचारदोषः प्रदश्यतइत्यनेन संबंधेनायातस्या ... चत्वार्यनुयोग द्वाराणि
ावण्यस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणं ... ॥ ७ ॥ वली तेहिज ...
स्य चानंतरसूत्रेण सहायं संबंधइह जे त्रिदंडी प्रमुख ते एम आह केo कहेछे के,
इत्यादि) । तदिहापि संबध्यते । एके... थकी निपनुं छे; ते एम कहेछे के जेवारे जगत
ाति । परंपरसूत्रेत्वभिहितं (बुज्झिज्ज... य संसार हतो तेवारे ब्रह्मायें पाणीमांहे इंडुं सरज्युं
त्रैरुत्प्रेक्ष्यः संबंधोयोज्यः । अधु... बे खंड थया; तेमांहे थकी अधोलोक अने ऊर्ध्वलोक
ाकमप्यास्तांतावत्प्रभूतं । त... थई. एवा अनुक्रमे पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, आकाश,
ाधाकर्म । तदपि न स्वयंकृत... र, नगर इत्यादिक सर्व स्थिति उत्पन्न थई; ए कारणे अ
चेष्टितं निष्पादितं तच्च सहस्र... o तत्व एटले पदार्थ ते अकासीयकेo कीधा. एरीते ते
जितपक्षं वा सेवते । एतदुक्तं... देकेo परमार्थने अजाणता थका मृषा बोलेछे. ॥ ८ ॥

यदाधाकर्मादि तस्य सहस्रा... नमतमाह । (इणमिति) । इदं वक्ष्यमाणमन्यदज्ञान
द्विपक्षसेवनमापद्यते । किं पुन

मिहास्मिन् लोके एकेषामाख्यातं । किं पुनस्तैराख्यातमित्याह । देवउत्तेति । देवेन उप्तः कृतोदेवोप्तोदेवपुत्रोवायं लोकः । ब्रह्मणा उप्तोब्रह्मणा कृतोवायं लोकइत्यपरे वदंतीति ॥ ॥५॥ तथा ईश्वरेण कृतोलोकः । अपरे वदंति प्रधानादिकृतोलोकः । सत्वरजस्तमोगुणानां साम्यावस्था प्रकृतिः सैव प्रधानशब्दवाच्या । आदिशब्दान्नियतिकृतोलोकइत्यन्ये । लोकोजीवाजीवसमायुक्तः सुखदुःखसमन्वितश्च ॥ ६ ॥ तथा स्वयंभूर्विष्णुरन्योवा सचैकाकी रतिं न लभते ततोन्या शक्तिः समुत्पन्ना तदनंतरं जगत्सृष्टिरभूदिति महर्षिणा उक्तं । ततः स्वयंभुवा लोकं निष्पाद्यातिसंसारभयात् यमाख्योमारयतीतिमारोव्यधायि । तेन मारेण संस्तुता कृता माया तया मायया च लोको म्रियते । नच तत्त्वतोजीवस्य मृतिरस्त्यतोमायैषा तेन लोकोऽशाश्वतइति गम्यते ॥ ७ ॥ तथा ब्राह्मणाद्विजातयः श्रमणास्त्रिदंडिप्रमुखाएके अंडेन कृतमंडकृतं अंडाज्जातं जगदाहुर्वदंति । ब्रह्मणाडं कृतं ततोविश्वं जातं । एवं कृते जगति असौ ब्रह्मा तत्त्वं पदार्थसमूहमकार्षीत् कृतवान् ते च ब्राह्मणाद्याः परमार्थानभिज्ञाएवं मृषा वदंति ॥ ८ ॥

॥ टीका—सांप्रतमपराज्ञानिमतोपप्रदर्शनायाह । (इणमन्नंतुअन्नाणमित्यादि) । इदमिति वक्ष्यमाणं । तुशब्दः पूर्वेभ्योविशेषणार्थः । अज्ञानमिति मोहविजृंभणमिहास्मिन् लोके एकेषां न सर्वेषामाख्यातमभिप्रायः । किंपुनस्तदाख्यातमिति तदाह । देवेनोप्तोदेवोप्तः कर्षकेणेव बीजवपनं कृत्वा निष्पादितोयं लोकइत्यर्थः । देवैर्वा गुप्तोरक्षितोदेवगुप्तोदेवपुत्रोवेत्यादिकमज्ञानमिति । तथा ब्रह्मणाउप्तोब्रह्मोप्तोयंलोकइत्यर्थः । परे एवं व्यवस्थिताः । तथाहि । तेषामयमभ्युपगमः । ब्रह्मा जगत्पितामहः सचैकएव जगदवासीत्तेनच प्रजापतयः सृष्टास्तैश्च क्रमेणैतदसकलं जगदिति । तथेश्वरेण कृतोयं लोकः । एवमेके ईश्वरकारकाअभिदधति प्रमाणयंति वा । सर्वमिदं विमत्यधिकरणभावोपपन्नं तनु भुवनकरणादिकं धर्मित्वेनोपादीयते । बुद्धिमत्कारणपूर्वकमिति साध्योधर्मः । संस्थानविशेषवत्त्वादिति हेतुः । यथा घटोति दृष्टांतोयं । यद्यत्संस्थानविशेषवत्तत्तद्बुद्धिमत्करणपूर्वकं दृष्टं । यथा देवकुलकूपादिस्थानविशेषवच्च मकराकरनदीधराधरधराशरीरकरणादिकं विवादगोचरापन्नमिति । तस्माद्बुद्धिमत्कारणपूर्वकं । यश्च समस्तस्यास्य जगतः कर्ता ससामान्यपुरुषोन भवतीत्यसावीश्वरइति । तथा सर्वमिदं तनुभुवनकरणादिकं धर्मित्वेनोपादीयते बुद्धिमत्कारणपूर्वकमिति । साध्यधर्मः कार्यत्वादघटादिवत् तथा स्थित्वा प्रवृत्तेर्वा वास्यादिवदिति । तथाऽपरेप्रतिपन्नायथा प्रधानादिकृतोलोकः । सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः साच पुरुषार्थं प्रवर्तते । आदिग्रहणाच्च प्रकृतेर्महान् ततोहंकारस्तस्माच्च गणः षोडशकस्तस्मादपि षोडशकात्पंचभ्यः पंचमहाभूतानीत्यादिकया प्रक्रियया सृष्टिर्भवतीति । यदि वा आदिग्रहणात्स्वभावादिकं गृह्य

ते। ततश्चायमर्थः। स्वनावेन कृतोलोकः कंटकादितैक्ष्ण्यवत्। तथान्ये नियतिकृतोलोको मयूरांगरुहवदित्यादिनिः कारणैः कृतोयं लोकोजीवाजीवसमायुक्तो जीवैरुपयोगलक्षणै स्तथा जीवैर्धर्माधर्माकाशपुजलादिकैः समन्वितः समुड्धराधरादिकइति। पुनरपि लोकं विशेषयितुमाह। सुखमानंदरूपं डुःखमसातोदयरूपमिति ताभ्यां समन्वितोयुक्तइति ॥ ॥ ६ ॥ किंच। (सयंत्नुणाइत्यादि)। स्वयं नवतीति स्वयंनूर्विष्णुरन्यो वा सचैकएवादाव नूत्तत्रैकाकी रमते द्वितीयमिष्टवांस्तच्चिंतानंतरमेव द्वितीया शक्तिः समुत्पन्ना तदनंतरमेव जगत्सृष्टिरनूदित्येवं महर्षिणोक्तमनिहितं। एवं वादिनोलोकस्य कर्तारमन्युपगतवंतोपि च। तेन स्वयंन्नुवा लोकं संपाद्यातिनारनयाद्यमाख्योमारयतीति मारोऽन्यधायि। तेन मारेण संस्तुता कृता प्रसाधिता माया तया च मायया लोकाम्रियंते। नच परमार्थतोजीवस्योपयोगलक्षणस्य व्यापत्तिरस्त्यतोमायैषा। यथायं मृतस्तथा चायं लोकोऽशाश्वतोऽनित्योऽविनाशीति गम्यते ॥ ७ ॥ अपिच। (माहणाइत्यादि)। ब्राह्मणाद्विजातयः श्रमणास्त्रिदंडिप्रनृतयः। एके केचन पौराणिकान सर्वे एवमाहुरुक्तवंतोवदंति च। यथा जगदेतच्चराचरमंडेन कृतमंडकृतं। अंडाज्जातमित्यर्थः। तथाहि। ते वदंति यदा न किंचिदपि वस्त्वासीत् पदार्थशून्योयं संसारस्तदा ब्रह्माऽप्स्वंडमसृजत्तस्माच्च क्रमेण वृद्धात्पश्चाद्द्विधानावमुपगतादूर्ध्वाधोविनागोऽनूत् तन्मध्ये च सर्वाः प्रकृतयोऽनूवन्। एवंपृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशसमुद्रसरित्पर्वतमकराकरनिवेशादिसंस्थितिरनूदिति। तथाचोक्तं। आसीदिदं तमोनूतमप्रज्ञातमलक्षणं ॥ अप्रतर्क्यमविज्ञेयं, प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ १ ॥ एवंनूते चास्मिन् जगत्यसौ ब्रह्मा तस्य नावस्तत्त्वं पदार्थजातं तदंम्रादिप्रक्रमेणाकार्षीत् कृतवानिति। तेच ब्राह्मणादयः परमार्थमजानानाः संतोमृषावदंति अन्यथा च स्थितं तत्त्वमन्यथाप्रतिपादयंतीत्यर्थः ॥ ८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

सएहिं परियाएहिं, लोयं बूया कडेतिय ॥ तत्तं ते ण विजाणंति, ण विणासी कयाइवि ॥ ए ॥ अमणुन्नसमुप्पायं, डुक्खमेव विजाणिया ॥ समुप्पायमजाणंता, कहं नायंति संवरं ॥ १० ॥

अर्थ ॥ हवे ग्रंथकार एनो उत्तर कहेछे. एरीते पूर्वे जे दर्शनी कह्या ते, सएहिं परियाएहिंके० पोतपोताना पर्यायें करी एटले पोतपोतानी कल्पनाये लोयंबूयाकडेतियके० इम कहे जे ए लोक अमुक अमुक प्रकारे कीधोछे. परंतु तत्तंते णविजाणंतिके० ते तत्व कांइ जाणता नथी. णविणासीकयाइविके० ए लोकतो कदापि काले विनाश पामे नहीं, एनी आदि पणनथी अने अंत पण नथी, तेथी एनो कर्त्ता कोइ नथी. एवो परमार्थ ते जाणता नथी; पण अजाणथका नावे तेम बोलेछे.॥ए॥ हवे एवां वचनना बोलनारने फल दे

खाडेछे. ते दर्शनी अमणुन्नके० विरुद्ध अनुष्ठान अनाचार ते थकी जेनी समुप्पायं के० उत्पत्तिछे, ते केवुं तोके, डुरकंके० हिंसादिक विरुद्ध अनुष्ठान तेमां जे प्रवर्त्तशे ते दुःखी थासे एवविजाणियाके० एवुं जाणवुं जोइये. समुप्पायमजाणंताके० ते एवा दुःखनी उत्पत्तिनां कारणोने नजाणे परंतु ते अजाण बापडा कहंनायंतिसंवरं के० संवरपणुं जे दुःखनिवारणनुं कारण छे, तेने केवी रीते जाणी शकशे ? एतावता अति यत्न करतां पण दुःखनो उछेद न पामे, किंतु संसारमांहे अनंतो काल रहेशे. ॥ १० ॥ ॥

॥ दीपिका—अथ तेषामुत्तरमाह । (सएहिंमिति) । स्वकैर्निजैः पर्यायैरभिप्रायैर्लोकं कृतमब्रुवन् कथितवंतस्ते तत्त्वं परमार्थं नाभिजानंति । नच विनाशी लोकः कदाचित् निर्मूलतः पर्यायरूपेण विनाश्यपि द्रव्यार्थतया नित्यत्वात् । लोकस्य ईश्वरादिकृतत्वं नि षेधयुक्तयष्टीकातोज्ञेयं ॥ ९ ॥ अथ तेषां मृषावादिनां फलमाह । अमणुन्नेति । अ मनोज्ञं असदनुष्ठानं, तस्माडुत्पादः प्राडुर्भावोयस्य तदमनोज्ञसमुत्पादं दुःखं विजा नीयात् प्राज्ञः । अयमर्थः स्वकृतादसदनुष्ठानादेव दुःखमुत्पद्यते नेश्वरादेरिति । ते चैवं दुःखस्य संवरं प्रतिघातहेतुं ज्ञास्यंति । कारणोछेदादेव कार्योछेदः स्यात् । कारणं वाऽजा नंतः कथं डुखोछेदाय यतिष्यंते यत्नवंतोपि दुःखोछेदं नाप्नुवंतीति ॥ १० ॥ ॥ ॥

॥ टीका—अधुनैषां देवोप्तादिजगद्वादिनामुत्तरदानायाह । (सएहिंमित्यादि) । स्वकीयैः स्वकीयैः पर्यायैरभिप्रायैर्युक्तिविशेषैरयं लोकः कृतइत्येवमब्रुवन्नभिहितवंतः । देवोप्तोब्रह्मो प्तईश्वरकृतः प्रधानादिनिष्पादितः स्वयंभुवा व्यधायि तन्निष्पादितमायया म्रियते तथांड जश्चायं लोकइत्यादिस्वकीयाभिरुपपत्तिभिः प्रतिपादयंति । यथाऽस्मडुक्तमेव सत्यं ना न्यदिति ते चैवंवादिनो वादिनः सर्वेपि तत्त्वं परमार्थं यथावस्थितलोकस्वभावं नाभिजा नंति न सम्यक् विवेचयंति । यथाऽयं लोकोद्रव्यार्थतया न विनाशीति निर्मूलतः कदाचन नचायमादितआरभ्य केनचित् क्रियते अपित्वयं लोकोऽभूद्भवति भविष्यति च । तथाहि । य त्तावडुक्तं यथा देवोप्तोऽयं लोकइति तदसंगतम् । यतोदेवोप्तत्वे लोकस्य न किंचित्तथावि धं प्रमाणमस्ति । नचाप्रमाणकमुच्यमानं विद्वज्जनमनांसि प्रीणयति । अपिच किमसौ दे उत्पन्नोऽनुत्पन्नोवा लोकं सृजेन्न तावदनुत्पन्नस्तस्य खरविषाणस्येवासत्त्वात्करणाभावः अथोत्पन्नः सृजेत्तत्किं स्वतोऽन्यतो वा । यदि स्वतएवोत्पन्नस्तथा सति तल्लोकस्यापि वोत्पत्तिः किं नेष्यते । अथान्यतउत्पन्नः सन् लोककरणाय सोप्यन्योन्यतः सोप्यन्योन्यतइ त्येवमनास्थालतानभोमंडलव्यापिन्यनिवारितप्रसरा प्रसर्पतीति । अथासौ देवोऽनादित्वा न्नोत्पन्नइत्युच्यते इत्येवंसति लोकोप्यनादिरेवास्तु को दोषः । किंचासावनादिः सन्नित्योऽनि त्योवा स्यात्तद्यदि नित्यस्तदा तस्य क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधान्न कर्तृत्वं । अथाऽनि

त्यस्तथासति स्वतएवोत्पत्त्यनंतरं विनाशित्वादात्मनोन त्राणाय कुतोन्यत्करणं प्रति तस्य व्यापारचिंतेति । तथा किममूर्तोमूर्तिमान् वा । यद्यमूर्तस्तदाऽकाशवदकर्तैवाऽथ मूर्तिमान् तथासति प्राकृतपुरुषस्येवोपकरणसव्यपेक्षस्य स्पष्टमेव सर्वजगदकर्तृत्वमिति । देवगुप्तदेवपुत्रपक्षौ त्वतिफल्गुत्वादपकर्णयितव्याविति । एतदेव दूषणं ब्रह्मोप्तपक्षेपि इष्ट व्यं तुल्ययोगक्षेमत्वादिति । तथा यदुक्तं । तनुनुवनकरणादिकं विमत्यधिकरणनावापन्नं विशिष्टबुद्धिमत्कारणपूर्वकं कार्यत्वाद्घटादिवदिति तदयुक्तं । तथाविधविशिष्टकारणपूर्वकत्वे न व्याप्त्यसिद्धेः । कार्यपूर्वकत्वमात्रेण तु कार्यं व्याप्तं । कार्यविशेषोपलब्धौ कारणविशेषप्र तिपत्तिर्गृहीतप्रतिबंधस्यैव नवति । नचात्यंतादृष्टे तथा प्रतीतिर्नवति। घटे तत्पूर्वकत्वं प्रतिप न्नमिति चेत् युक्तं ।तत्र घटस्य कार्यविशेषत्वप्रतिपत्तेर्नत्स्वेवं सरित्समुद्रपर्वतादौ बुद्धिमत्का रणपूर्वकत्वेन संबंधोगृहीतइति । पुनरप्युक्तं । नन्वतएव घटादिसंस्थानविशेषदर्शन वत्पर्वतादावपि विशिष्टसंस्थानदर्शनाद्बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वस्य साधनं क्रियते । नैत देवं युक्तं । यतोनहि संस्थानशब्दप्रवृत्तिमात्रेण सर्वस्य बुद्धिमत्कारणपूर्वत्वावगति र्नवति । यदितु स्यान्मृद्विकारत्वा द्वल्मीकस्यापि घटवत्कुंनकारकृतिः स्यात् । तथाचोक्तं । अन्यथाकुंनकारेण मृद्विकारस्य कस्यचित् । घटादेः कारणात्सिद्ध्ये द्वल्मीकस्यापि तत्कृतिरि ति । तदेवं यस्यैव संस्थानविशेषस्य बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वेन संबंधोगृहीतस्तद्दर्शनमेव तथाविधकारणानुमापकं नवति न संस्थानमात्रमिति । अपिच घटादिसंस्थानानां कुंनकार एव विशिष्टः कर्तोपलक्ष्यते नेश्वरः । यदि पुनरीश्वरः स्यात्किं कुंनकारेणेति । नैतदस्ति । तत्रापीश्वरएव सर्वव्यापितया निमित्तकारणत्वेन व्याप्रियते । नन्वेवं दृष्टहानिरदृष्टक ल्पना स्यात् । तथाचोक्तं । शस्त्रौषधादिसंबधाच्चैत्रस्य व्रणरोहणे ॥ असंबद्धस्य किं स्थाणोः कारणत्वं न कल्प्यते ॥ १ ॥ तदेवं दृष्टकारणपरित्यागेनाऽदृष्टपरिकल्पना न न्या य्येति । अपिच । देवकुलावटादीनां यः कर्ता ससावयवोऽव्याप्यनित्योदृष्टस्तद्दृष्टांतः ाधितश्चेश्वरएवंनूतएव प्राप्नोति । अन्यथानूतस्य च दृष्टांतानावाद्व्याप्त्यसिद्धेर्नानुमा नमिति । अनयैव दिशा स्थित्वाप्रवृत्त्यादिकसाधनमसाधनमायोज्यं तुल्ययोगक्षेमत्वादि ति । यदपि चोक्तं प्रधानादिकृतोऽयं लोकइति तदप्यसंगतं । यतस्तत्प्रधानं किं मूर्तममू र्तं वा। यद्यमूर्तं न ततोमकराकरादेर्मूर्तस्योद्भवोघटते । नह्याकाशात्किंचिदुत्पद्यमानमाल क्ष्यते मूर्ताऽमूर्तयोः कारणविरोधादिति । अथ मूर्तं तत्कुतः समुत्पन्नं । न तावत्स्वतोलो कस्यापि तथोत्पत्तिप्रसंगात् नाप्यन्यतोऽनवस्थापत्तेरिति । अन्यथाऽनुत्पन्नमेव प्रधाना नादिनावेनास्ते त द्वल्लोकोपि किं नेष्यते । अपिच । सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रधा नमित्युच्यते नचाऽविकृतात्प्रधानान्महदादेरुत्पत्तिरिष्यते नवद्भिः । नच विकृतं प्रधानव्यपदे शमास्कंदतीत्यतोन प्रधानान्महदादेरुत्पत्तिरिति । अपिचाचेतनायाः प्रकृतेः कथं पुरुषार्थं

प्रति प्रवृत्तिर्येनाऽऽत्मनोनोगोपपत्त्या सृष्टिः स्यादिति। प्रकृतेरयं स्वनावइति चेदेवं तर्हि स्वनावएव बलीयान्। यस्तामपि प्रकृतिं नियमयति ततएव च लोकोप्यस्तु किमदृष्टप्रधानादिकल्पनयेति। अथादिग्रहणात्स्वनावस्यापि कारणत्वं कैश्चिदिष्यतइति चेदस्तु। न हि स्वनावोऽन्युपगम्यमानोनः क्षतिमातनोति। तथाहि। स्वनावः स्वकीयोत्पत्तिः। सा च पदार्थानामिष्यतएवेति। तथा यडुक्तं नियतिकृतोयं लोकइति। तत्रापि नियमनं नियतिर्यथान्नवनं नियतिरित्युच्यते। साचाऽऽलोच्यमाना न स्वनावादतिरिच्यते। यच्चान्यथापि स्वयंनुवोत्पादितोलोकइति तदप्यसुंदरमेव। यतः स्वयंनूरिति किमुक्तं नवति। किं यदाऽसौ नवति तदा स्वतंत्रोन्यनिरपेक्षएव नवति। अथाऽऽदिन्नवनात्स्वयंनूरिति व्यपदिश्यते। तद्यदि स्वतंत्रन्नवनान्युपगमस्तद्वल्लोकस्यापि नवनं किं नान्युपेयते किं स्वयंनुवा। अथानादिस्ततस्तस्यानादित्वे नित्यत्वं नित्यस्य चैकरूपत्वात्कर्तृत्वाऽनुपपत्तिस्तथा वीतरागत्वात्तस्य संसारवैचित्र्यानुपपत्तिः। अथ सरागोसौ ततोऽस्मदाद्यव्यतिरेकात्सुतरां विश्वस्याकर्ता मूर्ताऽमूर्तादिकल्पाश्च प्राग्वदायोज्याइति। यदपि चात्रानिहितं। तेन मारः समुत्पादितः सच लोकं व्यापादयति तदप्यकर्तृत्वस्यानिहितत्वात्प्रलापमात्रमिति। तथा यडुक्तं अंडादिक्रमाज्जायते लोकइति तदप्यसमीचीनं। यतोयास्वप्सु तदंडं निसृष्टं तायथांडमंतरेणान्नूवन् तथा लोकोपि नूतइत्यन्युपगमे न काचिद्बाधा दृश्यते। तथासौ ब्रह्मा यावदंडं सृजति तावल्लोकमेव कस्मान्नोत्पादयति किमनया कष्टया युक्त्यसंगतया चांडपरिकल्पनया। एवमस्त्विति चेत् केचिदनिहितवंतोयथा ब्रह्मणोमुखाद्ब्राह्मणाः समजायंत बाहुन्यां क्षत्रियाऊरुन्यां वैश्याः पद्भ्यां शूद्राइत्येतदप्ययुक्तिसंगतमेव। यतोन मुखादेः कस्यचिडुत्पत्तिर्नवंत्युपलन्यते। अथापि स्यात्तथा सति वर्णानामन्नेदः स्यादेकस्माडुत्पत्तेः। तथा ब्राह्मणानां कवत्तित्तिरीयककलापादिकश्च नेदोन स्यादेकस्मान्मुखाडुत्पत्तेः। एवंचोपनयनादिसन्नावोन नवेद्भावे वा स्वसाग्रहणापत्तिः स्यादेवमाद्यनेकदोषडुष्टत्वादेवं लोकोत्पत्तिर्नान्युपगंतव्या। ततश्च स्थितमेतत्। तएवं वादिनोलोकस्याऽनाद्यपर्यवसितस्योर्ध्वाधश्चतुर्दशरज्जुप्रमाणस्य वैशाखस्थनरस्थकटिन्यस्तकरयुग्मपुरुषाकृतेरधोमुखमल्लकाकारसप्तपृथिव्यात्मकाधोलोकस्य स्थालकाराऽसंख्येयद्वीपसमुद्राधारमध्यलोकस्य मल्लकसमुजकाकारोर्ध्वलोकस्य धर्माधर्माकाशपुजलजीवात्मकस्य इव्यार्थतयाऽनित्यस्य पर्यायापेक्षया क्षणक्षयिणउत्पादव्ययध्रौव्यपादितइव्यसततत्त्वस्याऽनादिजीवकर्मसंबंधापादिताऽनेकप्रपंचस्याष्टविधकर्मविप्रमुक्ताऽऽत्मलोकांतोपलक्षितस्य तत्त्वमजानानाः संतोमृषा वदंतीति ॥ ए ॥ इदानीमेतेषामेव देवादिवादिनामज्ञानत्वं प्रसाध्य तत्फलदिदर्शयिषयाऽऽह। (अमणुन्नइत्यादि)। मनोज्ञं मनोज्ञं शोन्ननमनुष्ठानं न मनोज्ञमनोज्ञमसदनुष्ठानं तस्माडुत्पादः प्राडुर्नावो

डुःखस्य तदमनोज्ञसमुत्पादं । एवकारोऽवधारणे । सचैवं संबंधनीयः । अमनोज्ञसमुत्पादमेव डुःखमित्येवं विजानीयादवगच्छेत्प्राज्ञः । एतडुक्तं नवति । स्वकृताऽसदनुष्ठानादेव डुःखस्योद्भवोनवति नान्यस्मादित्येवं व्यवस्थितेपि सत्यनंतरोक्तवादिनोऽसदनुष्ठानोद्भवस्य डुःखस्य समुत्पादमजानानाः संतोऽन्यतईश्वरादेर्डुःखस्योत्पादमिच्छंति । तेचैवमिच्छंतः कथं केन प्रकारेण डुःखस्य संवरं डुःखप्रतिघातहेतुं ज्ञास्यंति । निदानोच्छेदेन हि निदानिनउच्छेदोनवति । तेच निदानमेव न जानंति तत्त्वाऽजानानाः कथं डुःखोच्छेदाय यतिष्यंते यत्नवंतोपि च नैव डुःखोच्छेदनमवाप्स्यंत्यपि तु संसारएव जन्मजरामरणेष्टवियोगाद्यनेक डुःखव्राताघ्राताच्नूयोनूयोऽरहट्टघट्टीन्यायेनानंतमपि कालं संस्थास्यंति ॥ १० ॥ ॥

सुद्धे अपावए आया, इहमेगेसिमाहियं ॥ पुणो किड्डापदोसेणं, सो तब अवरज्झई ॥ ११ ॥ इह संवुडे मुणी जाए, पच्छा होइ अपावए ॥ वियडंबु जहा नुज्जो, नीरयं सरयं तहा ॥ १२ ॥ एताणुचीति मेधावी, बंनचेरेण ते वसे ॥ पुढो पावाउया सवे, अस्कायारो सयं सयं ॥ १३ ॥ सए सए उवघाणे, सिद्धिमेव न अन्नहा ॥ अहो इहेव वसवत्ती, सवकाम समप्पिए ॥ १४ ॥

अर्थ—हवे प्रकारांतरे दर्शनीनुं मत देखाडेछे. ए प्रस्तावे इहमेगेसिमाहियंके० एक वली कोइक, त्रैराशिक गोशालामतानुसारी ते एम कहेछेके, ए आयाके० आत्माते मनुष्यने नवेज सुद्धेके० शुद्ध थाय. अपावए के० पापरहित थाय. एटले सर्व कर्म क्षयकरी मोक्षे जाय. पुणोके० वली सोके० तेहज आत्मा तबके० त्यां मोक्षनेविषे छतो किड्डापदोसेणंके० क्रीडाप्रदोषे करी एटले रागद्वेषने वशें करी अवरज्झइके० अपराध करे एटले कर्म रजे करी अशुद्ध थाय. एटले शुं कह्युं? के ते मुक्ति छतां जीवने पोतानां सासननी पूजा जाणी, अने अन्य सासननो पराजव जाणी, पोताने राग उपजावे. तथा पोताना सासननो व्याघात देखी द्वेष उपजे. ए कारण माटे आत्मा निर्मल छतो उज्वल वस्त्रनी परे शनैःशनैः मलीन थाय. ए प्रकारे ते आत्मा वली संसारमांहे अवतरे एवुं जे त्रैराशिक कहेछे, ते जीवनी त्रणराशी स्थापेछे. प्रथम आत्मा सकर्मक, पछी वली अकर्मक थइने मुक्तिमां जाय, ए बीजी राशी. अने त्यां मुक्तिने विषे वली कर्म उपार्जी संसारमांहे आवे ए त्रीजी राशी. ॥ ११ ॥ इहसंवुडेमुणीजाएके० अहीं मुक्ति थकी आवी मनुष्यना नवमां उपजीने मुनि एटले यमनियम आदरी, संवुडे एटले संवर आदरी, पच्छाहोइअपावएके० पछी पापरहित निर्मल थाय. एना उपर दृष्टांत कहेछे, जहाके० जेम वियडंबुके० विकटांबु एटले पा

णी तेहनीपरे जाणवुं. जेम नीरयंके० निर्मल पाणी होयते रजादिकने संयोगे सरयंके० रजसहित एटले मलिन थाय, फरी ते पाणी निर्मलपण थाय; तहाके० तेम ए आत्मा पण जाणी लेवो. ॥ १२ ॥ हवे ए मतने दूषवेछे. एतके० ए पूर्वोक्त वादीउनां वचन असमंजस अणुचिंतिके० चिंतवी आलोचीने, मेधावी के० पंमित जे होय ते मनमां एवी रीते अवधारे ते कहेछे. बंनचेरे णतेवसेके० ए त्रैराशिक तथा अनेरा दर्शनी ब्रह्मचारीनेविषे न वसे एटले सूधो संयम नपाले. जे कारण माटे ते सम्यक्ज्ञानरहित थका अकर्मक ने सकर्मक कहेछे ते माटे ते अज्ञानी छे. तथा पुढोपावाउयासव्वेके० ए सर्व जुदाजुदा प्रावाडुक एटले परदर्शनी अरकायारो सयंसयंके० पोतपोतानुं दर्शन रुडुं करी वखाणेछे. ॥१३॥ वली तेहिज दर्शनीनुं मत कहेछे. सएसएउवठाणे के० ते पोतपोतानां दर्शनने विषे प्रवर्त्तता पोतपोतानुं अनुष्ठान जे दीक्षा, गुरु चरण, शुश्रूषादिक तेहिज सिद्धिमेव के० सिद्धिनुं कारणछे पण नअन्नहाके० अनेरा दर्शन थकी, अनेरा अनुष्ठान थकी मुक्ति न पामिये. अहोऽहेववसवत्ती के० ते एम कहेछे के–अमारा दर्शन थकी एहिज जन्ममां यावत् आत्मवर्ती थको एटले समस्त इंडीनो जीपनार एवो थको सव्वकामसमप्पिएके० सर्वकामएटले जे जे काम नोगनी प्रार्थना तथा वांछनाकरे ते ते पामे. ॥ १४ ॥ ॥

॥ दीपिका–कृतवादिमतमेवाह । (सुद्धेति)। अयमात्मा शुद्धोमनुष्यनवएव शुद्धाचारोजूत्वा मोक्षे अपापकः स्यात् । इदमेकेषां गोशालमतानुसारिणामाख्यातं । पुनरयमात्मा अकर्मकोजूत्वा क्रीडया प्रद्वेषेण वा स तत्र मोक्षस्थएवाऽपराध्यति रजसा लिप्यते । तस्यहि स्वशासनपूजामन्यदर्शनपराजवमुपलज्य क्रीडाप्रमोदः स्यात् । स्वश ... नवदर्शनाच्च द्वेषस्ततोऽसौ क्रीडाद्वेषाच्यां कर्मणा वाध्यते ततोऽसौ जूयः संसारेऽवतरति ॥११॥ किंच । (इहेति) । इह संसारे प्राप्तः सन् प्रव्रज्यामंगीकृत्य संवृतात्मा जातः सन् पश्चादपापः स्यात् । यथाविकटांबु उक्षोदकं नीरजस्कं निर्मलं सत् वातोद्धूतरेणुयुक्तं सरजस्कं मलिनं जूयः स्यात् तथायमात्मा त्रैराशिकाणां मते राशित्रयावस्थः स्यात् । यथापूर्वं संसारावस्थायां सकर्मकः ततो मोक्षे ऽकर्मकः पुनः शासनपराजवदर्शनात् प्रद्वेषोदयात् सकर्मा स्यादिति ॥१२॥ एतन्मतं दूषयति । (एयाणुत्ति) । एतान्पूर्वोक्तान् वादिनोऽनुचिंत्य मेधावी प्रज्ञावान् एतदवधारयेत् यथा न ते वादिनो ब्रह्मचर्ये ... ने वसेयुः । यद्यपि ते संयमे स्थितास्तथापि न सम्यगनुष्ठातारइत्यवधारयेत् । पृथक्पृथक् सर्वेप्येते प्रावाडुकाः परमतिनः स्वकं स्वकमात्मीयं दर्शनमाख्यातारः शोजनत्वेन कथयितारः स्वदर्शनं शुभं वदंति ते । नच तत्रास्था विधेयेति ॥ १३ ॥ कृतवादिमतमेव प्रकारांतरेणाह । (सएति) । ते कृतवादिनः स्वके स्वके उपस्थाने संयमाद्यनुष्ठाने सिद्धिं मोक्ष

मन्निहितवंतोनान्यथा । तथासिद्धिप्राप्तेरधः प्रागपि वशवर्ती वशेंद्रियः स्यात् अस्मन्म ताश्रितः सांसारिकैः स्वनावैर्नानिनूयते । सर्वे कामाश्चनिलाषाः समर्पिताः संपन्नायस्य ससर्वकामसर्पितः इहलोके ईदृशः स्यात् परलोके च मोक्षं यायादित्यर्थः ॥ १४ ॥ ॥

॥ टीका–सांप्रतं प्रकारांतरेण कृतवादिमतमेवोपन्यस्यन्नाह । (सुद्धेत्यादि) । इहा स्मिन् कृतवादिप्रस्तावे त्रैराशिकागोशालकमतानुसारिणोयेषामेकविंशतिसूत्राणि पूर्व गतत्रैराशिकसूत्रपरिपाट्या व्यवस्थितानि ते एवं वदंति । यथायमात्मा शुद्धोमनुष्यन वएव शुद्धाचारोनूत्वा अपगताशेषमलकलंकोमोक्षेऽपापकोनवति । अपगताशेषक र्मा नवतीत्यर्थः । इदमेकेषां गोशालकमतानुसारिणामाख्यातं । पुनरसावात्माऽशुद्धत्वाऽक र्मकत्वराशि द्वयावस्थोनूत्वा क्रीडया प्रद्वेषेण वा सतत्र मोक्षस्थएवाऽपराध्यति रज सा श्लिष्यते । इदमुक्तं नवति । तस्य हि स्वशासनपूजामुपलन्यान्यशासनपरानवं चोपल न्य क्रीडोत्पद्यते प्रमोदः संजायते स्वशासनन्यक्कारदर्शनाच्च द्वेषस्ततोऽसौ क्रीडाद्वेषान्या मनुगतांतरात्मा शनैर्निर्मलपटवडुपनुज्यमानोरजसा मलिनीक्रियते मलीमसश्च कर्मगौ रवाद्भूयः संसारेऽवतरति । अस्यां चावस्थायां सकर्मकत्वात्तृतीयराश्यवस्थोनवति ॥ ॥ ११ ॥ किंच । (इहेत्यादि) । इहास्मिन् मनुष्यनवे प्राप्तः सन् प्रव्रज्यामन्युपेत्य संवृ तात्मा यमनियमरतोजातः सन् पश्चादपापो नवति। अपगताऽशेषकर्मकलंकोनवतीति नावः । ततः स्वशासनं प्रज्ञाप्य मुक्त्यवस्थोनवति । पुनरपि स्वशासनपूजादर्शनान्निका रोपलब्धेश्च रागद्वेषोदयात्कलुषितांतरात्मा विकटांबुवडुदकवन्नीरजस्कं स ह्यातोद्धूतरेणुनि रहसंपृक्तं सरजस्कं मलिनं नूयोयथा नवति तथाऽयमप्यात्माऽनंतकालेन संसारो द्वेगा शुद्धाचारावस्थोनूत्वा ततोमोक्षावाप्तौ सत्यामकर्मावस्थोनवति । पुनः शासनपूजानि कारदर्शनाद्रागद्वेषोदयात्सकर्मा नवतीत्येवं त्रैराशिकानां राशित्रयावस्थोनवत्यात्मे पुराख्यातं ॥ उक्तंच । दग्धेंधनः पुनरुपैति नवं प्रमथ्य, निर्वाणमप्यनवधारितनीरु निष्ठः ॥ मुक्तः स्वयं कृतनवश्च परार्थशूरस्त्वच्छासनप्रतिहतेष्विह मोहराज्यमिति ॥ १२ ॥ साधुनैतद्दूषयितुमाह । (एयाणुचीइत्यादि) । एतान्पूर्वोक्तान् वादिनोऽनुचिंत्य मेधावी प्र ज्ञावान् मर्यादाव्यवस्थितोवा एतदवधारयेत् । यथा नैते राशित्रयवादिनोदेवोप्तादिलोक वादिनश्च ब्रह्मचर्ये तडुपलक्षिते वा संयमानुष्ठाने वसेयुरवतिष्ठेरन्निति । तथाहि । तेषामय मन्युपगमोयथा स्वदर्शनपूजानिकारदर्शनात्कर्मबंधोनवत्येवंचावश्यं तद्दर्शनस्य पूजा ऽरातिरस्कारेण चोनयेन वा नाव्यं तत्संनवाच्च कर्मोपचयस्तडुपचयाच्च शुध्यनावः शु ध्यनावाच्च मोक्षानावः । नच मुक्तानामशेषकर्मकलंकानां कृतकृत्यानामपगताशेषयथाव स्थितवस्तुतत्त्वानां समस्तुतिनिंदानामपगतात्मात्मीयपरिग्रहाणां रागद्वेषानुषंगस्तन्नावाच्च

कुतः पुनः कर्मबंधस्तस्माच्च संसारावतरणमित्यर्थः ॥ अतस्ते यद्यपि कथंचिद्ब्रह्म चर्ये व्यवस्थितास्तथापि सम्यक् ज्ञानाभावान्न सम्यगनुष्ठानभाजइतिस्थितं । अपिच वेप्येते प्रावाडुकाः स्वकं स्वकमात्मीयं दर्शनं स्वदर्शनानुरागादाख्यातारः शोभनत्वेन ख्यापयितारइति । नच तत्र विदितवेद्येनास्था विधेयेति ॥१३॥ पुनरन्यथाकृतवादिमत मुपदर्शयितुमाह । (सएसएइत्यादि) ते कृतवादिनः शैवैकदंडिप्रभृतयः स्वकीये स्वकीये उपतिष्ठत्यस्मिन्नित्युपस्थानं स्वीयमनुष्ठानं दीक्षा गुरुचरणशुश्रूषादिका तस्मिन्नेव सिद्धिमशेषसांसारिकप्रपंचरहितस्वभावमभिहितवंतोनान्यथा नान्येन प्रकारेण सिद्धि रवाप्यत इति । तथाहि शैवादीक्षातएव मोक्षइत्येवं व्यवस्थिताः । एकदंडिकाः पंच विंशतितत्त्वपरिज्ञानान्मुक्तिरित्यभिहितवंतस्तथान्येपि वेदांतिकाध्यानाध्ययनसमाधिमार्गा नुष्ठानात्सिद्धिमुक्तवंतइत्येवमन्येपि यथास्वदर्शनान्मोक्षमार्गं प्रतिपादयंतीति । अशेषद्व द्वोपरमलक्षणायाः सिद्धिप्राप्तेरधस्तात्प्रागपि यावदद्यापि सिद्धिप्राप्तिर्न भवतीति तावदिहै व जन्मन्यस्मदीयदर्शनोक्तानुष्ठानानुभावादष्टगुणैश्वर्यसद्भावो भवतीति दर्शयति । आत्म वशं वर्तितुं शीलमस्येति वशवर्ती वशेंद्रियइत्युक्तं भवति तथ्यसौ सांसारिकैः स्वभावैरभि यते । सर्वे कामाअभिलाषाअर्पिताः संपन्नायस्य ससर्वकामसमर्पितोयान्यान् कामान् कामयते ते तेऽस्य सर्वे सिध्यंतीति यावत् । तथाहि । सिद्धेरारादष्टगुणैश्वर्यसिद्धिर्भवति तद्यथा । अणिमा लघिमा गरिमा प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं प्रतिघातित्वं यत्र काम वसायित्वमिति ॥ १४ ॥

सिद्धा य ते अरोगा य, इहमेगेसिमाहियं ॥ सिद्धिमेव पुरो काउं
सासए गढिआ नरा ॥ १५ ॥ असंवुमा अणादीयं, भमिहिंति
पुणो पुणो ॥ कप्पकालमुवज्जंति, ठाणा आसुरकिब्बिसियात्ति
बेमि ॥ १६ ॥ इति प्रथमाध्ययने तृतीयोद्देशकः ॥

अर्थ—हवे परभवे जे गति थाय ते कहेछे. सिद्धायते के० ते जीव अमारा दर्शने वर्त्तता शरीर त्याग करी, विशिष्ट समाधिने योगे सिद्ध थाय. ते सिद्ध केवा? त के, अरोगाय के० रोगरहित एटले शरीरनां दुःख थकी रहित छे. एरीते इह के० ए ज लोकने विषे मेगेसि के० एकेक कोइ शिवने मतें एम आहियं के० भाख्युं एटले कह्युं. ते दर्शनी पोतपोताने अनुष्ठाने सिद्धिमेवके० सिद्धिनेज, पुरोकाउंके० करी सासए के० आपणा अभिप्रायने विषे गढिआ के० गृध्र छता अनेक हेतु युक्ति कहे. ते कोनी परें? तो के, नराके० पामर नरनी पेरे. जेम ते अजाण मनुष्य पोताना मतनुं कदाग्रह न त्यागे, तेम तें दर्शनीउंपण जे कांइ पोताना मतनुं

अनुष्ठान ते सर्व मुक्तिनुं कारण छे, एम कहे. ॥ १५ ॥ हवे एवुं कहेनारने फल देखाडेछे. असंवुमा के० ते पाखंफि दर्शनी संवररहित, असंयमसहित, एवी रीते मुग्धलोकने विप्र तारणहार अणादीयं के० अनादि संसारमांहे नमिहिंति के० परिभ्रमण करतां पुणो पुणो के० वली वली नरकादिनी पीडा पामशे. कदाचित् ते बाल तपने प्रनावे स्वर्गादिक गति पामे; तोपण केवी पामे तो के, कप्पकालं के० घणाकालसुधी ठाणा के० स्थानक जे आसुर के० असुर कुमारादिकनां स्थानक तेनेविषे अथवा किव्बिसिया के० किल्बिषीयादिक अधर्म स्थानक त्यां उववज्जंति के० उत्पन्न थया छतां डुःखज पामे. तिबेमि के० पूर्ववत्. ॥ १६ ॥ इति प्रथमाध्ययनस्य तृतीयोद्देशकः समाप्तः ।

दीपिका–एतदेवाह । (सिद्धेति) । तेऽस्मन्मताश्रिताः सिद्धाश्च अरोगाः स्युः । अरोगग्रहणाच्छारीरमानसानेकडुःखरहिताश्चेति ज्ञेयं । इहास्मिन् लोके एकेषां शैवादीनामिदमाख्यातं । ते हि सिद्धिं मुक्तिमेव पुरस्कृत्यांऽगीकृत्य स्वाशये स्वमतानुरागे ग्रथिताः संबद्धा नराः प्राकृतपुरुषाः पंमितंमन्याइवेत्यर्थः ॥ १५ ॥ एतद्दूषणायाह । (असंवुडेति) ते पाखंडिनस्तत्त्वतोऽसंवृताअनादिकं संसारं पुनःपुनर्भ्रमिष्यंति । यदि कथंचित्तेषां स्वर्गावाप्तिस्तथापि कल्पकालं बहुकालमुत्पद्यंते संनवंत्यसुराः । असुरस्थानोत्पन्नाअपि न प्रधानाः किंतर्हि किल्बिषिकाअधमाएवेति ॥ १६ ॥ ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ इति सूत्रकृतांग दीपिकायां प्रथमाध्ययने तृतीयोद्देशकः ।

॥ टीका–तदेवमिहैवास्मडुक्तानुष्ठायिनोऽष्टगुणैश्वर्यलक्षणा सिद्धिर्नवत्यमुत्रचाऽशेषदंद्वोपरमस्वरूपा नवतीति दर्शयितुमाह । (सिद्धायतेइत्यादि) ये ह्यस्मडुक्तमनुष्ठानं सम्यगनुतिष्ठंति तेऽस्मिन् जन्मन्यष्टगुणैश्वर्यरूपां सिद्धिमासाद्य पुनर्विशिष्टसमाधियोगेन शरीरत्यागं कृत्वा सिद्धाश्चाशेषदंद्वरहिताअरोगानवंति । अरोगग्रहणं चोपलक्षणं। अनेकशरीरमानसदंद्वेन स्पृशंति शरीरमनसोरनावादित्येवमिहास्मिन्लोके सिद्धिविचारे वा एकेषां शैवादीनामिदमाख्यातं नाषितं । तेच शैवादयः सिद्धिमेव पुरस्कृत्य मुक्तिमेवांगीकृत्य स्वकीये आशये स्वदर्शनान्युपगमे ग्रथिताः संबद्धाअध्युपपन्नास्तदनुकूलाहितायुक्तीः प्रतिपादयंति । नराइव नराः प्राकृतपुरुषाः शास्त्रावबोधविकलाः स्वानिप्रेतार्थसाधनाय युक्तीः प्रतिपादयंत्येवं तेपि पंडितंमन्याः परमार्थमजानानाः स्वाग्रहप्रसाधिकां युक्तिमुद्घोषयंतीति । तथाचोक्तं । आग्रही बत निनीषति युक्तिं, तत्र यत्र मतिरस्य निविष्टा ॥ पक्षपातरहितस्य तु युक्तिर्यत्र तत्र मतिरेति निवेशं ॥ १ ॥ १५ ॥ सांप्रतमेतेषामनर्थप्रदर्शनपुरःसरं दूषणानिधित्सयाह (असंवुडाइत्यादि) तेहि पाखंडिकामोक्षानिसंधिनः समुच्छिताअपिअसंवृताइंद्रियनोइंद्रियैरसंयताइहाप्यस्माकं लानइंद्रिया

नुरोधेन सर्वविषयोपजोगादमुत्र मुक्त्यवाप्तेः । तदेवं मुग्धजनं प्रतारयंतोऽनादि संसारकांतारं च्रमिष्यंति पर्यटिष्यंति । स्वडश्चरितोपात्तकर्मपाशाः पाशावशापिताः पौनः पुन्येन नारकादियातनास्थानेपूत्पद्यंते । तथाहि । नेंड्रियैरनियमितैरशेषद्वंद्वप्रच्युतिलक्षणासिद्धिरवाप्यते । याप्यणिमाद्यष्टगुणलक्षणैहिकी सिद्धिरनिधीयते सापि मुग्धजनप्रतारणाय दंजकल्पैवेति । यापि च तेषां बालतपोनुष्ठानादिना स्वर्गावाप्तिः साप्येवंप्राया नवतीति दर्शयति । कल्पकालं प्रनूतकालमुत्पद्यंते संनवंति । असुराअसुरस्थानोत्पन्नानागकुमारादयस्तत्रापि न प्रधानाः किं तर्हि किल्बिषिकाअधमाः प्रेष्यनूताअल्पर्घयोऽल्पजोगाः स्वल्पायुःसामर्थ्याद्युपेताश्च नवंतीति । इति उद्देशकपरिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ १६ ॥ इति समयाख्याध्ययनस्य तृतीयोद्देशकः समाप्तः ॥

अथ–प्रथमाध्ययने चतुर्थ उद्देशकः प्रारन्यते ॥

एते जिया नो न सरणं, बाला पंमियमाणिणो (पाठांतरे ॥ यत्थबालेवसीयति)॥ हिच्चा णं पुव्व संजोगं, सिया किच्चोवएसगा॥१॥ तं च निक्कू परिन्नाय, वियं तेसु ण मुह्रए॥ अणुक्कस्से अप्पलीणे, मज्जेण मुणि जावए॥२॥

अर्थ–हवे चोथो उद्देशो प्रारंनियें डैयें. त्रीजे उद्देशे परतीर्थिनी वक्तव्यता. हवे अहीं पण तेहिज कहेडे. एते के० ते दर्शनी जे पूर्वे कह्यां ते पंचनूतिक तज्जीव तच्छरीरवादी तथा गोशालकमतानुसारी त्रैराशिक ए सर्वने कोणे जियाके० जीत्या? ते कहेडे–राग, द्वेष, परिग्रह, उपसर्ग तथा शब्दादिक विषय प्रबल मोहरूप वेरीए जीत्या ते कारणे नो के० शिष्यने आमंत्रणे अहो शिष्य ए वचन तुं सही करीने ग्रहे. न सरणं के० ए परतीर्थीक कोइ जीवने शरण न थाय, एटले संसारमांहे पडतां प्राणीने उद्धरी नशके. केमके जे कारणे ते बालाके० बाल अज्ञानी डतां पंमिय माणिणोके० पोताने पंमित करी मानता अज्ञाने लागा सिदाय. पोते उन्मार्गे पडतां बीजाने पण पाडेडे, केमके तेनी आचरणादिरूप विरुद्ध देखायडे; ते गाथाना उत्तरार्धवडे देखाडे. हिच्चाणंपुव्वसंयोगं के० पूर्व संयोगं एटले पूर्वे धनधान्य अने स्वजनादिक संयोग मूकीने "अमे निःसंग प्रव्रजित डैयें" एम कहे; परंतु ते वली सियाके० ते वंधाणा एटले परिग्रह आरंजने विषे आसक्त एवा डता गृहस्थजडे केमके ते किच्चोवएसगाके० ते गृहस्थनां कृत्य जे पचन तथा पाचनादिक डकाय हिंसानो व्यापार तेनो जे उपदेश तेने विषे प्रवर्त्ते. ते कारणे प्रवाजित डतां गहस्थोनां करतव्य थकी वेगला नथी. "जेवा गृही तेवा दर्शनी" ए कारणे कोइनो उद्धार न करी शके. ॥ १ ॥ एवा नीउं देखीने चारित्रियायें जे करवुं ते देखाडेडे. तंच निक्कू के० ते पासंमी लोक

परीत उपदेश देवाने प्रवर्त्ततां तेने परिज्ञायके० सम्यक् प्रकारे जाणीने जेम ए दर्शनी बाप डा मिथ्यात्वव्यापारें विवेकशून्य पोते पोतानेज अहितकारी दीशेछे, तो अन्य जीव ने हितकर्ता क्यांथी थशे ? एवुं आलोचीने भिक्षु जे चारित्रीउ विथंतेसुंके० परमार्थनो जाण ते दर्शनीउनेविषे णमुछए के० मूर्छाय नहीं अर्थात् तेनीप्रत्ये संबंध पण न करे. त्यारे शुं करे, ते अर्थ गाथाना उत्तरार्धवडे देखाडे छे. अणुक्कस्से के० ते उत्कर्ष र हित आठ मदनो टालनार, अप्पलीणे के० अप्रलीन एटले असंबंध गृहस्थ तथा पास छादिकने विषे संसर्ग अणकरतो ते नणी मझेण के० मध्यमभावे रागद्वेष रहित छतो मुणिके० मुनी एटले जे साधु ते जावए के० पोताने प्रवर्त्तावे, एटले शुं कह्युं ! तो के, कदाचित परतीर्थीक अथवा पासछादिक संघाते संबंध मले तो मद न करवो ने ते नी प्रशंसा तथा निंदा अणकरतो राग द्वेष रहित वर्त्ते. ए प्रकारेकरी संयम जे पाले तेज साधु जाणवो. ॥ २ ॥

॥ दीपिका–तृतीयोद्देशकेऽन्यतीर्थिकाणां कुत्सितत्वमुक्तमिहापि तदेवोच्यतइत्यर्थसं बंधस्यास्योद्देशकस्येदमादिसूत्रं ॥ (एतइति) एतेऽन्यमतिनोजिताअभिनूतारागद्वेषा दिभिः। नोइति शिष्यामंत्रणं। एवं त्वं जानीहि। यथाएते न शरणं कस्यचित्राणाय न समर्थाः। (जछत्ति) यत्राऽज्ञाने बालोऽज्ञोलग्नः सन् अवसीदति तत्र ते व्यवस्थिताः। बालापंमिअमाणिणोइति क्वचित्पाठस्तत्र बालानिर्विवेकाअपंमिताअपि पंमितमानिनः कस्यापि न त्राणाय स्युरित्यर्थः। तत्कृत्यमाह। हित्वा त्यक्त्वा पूर्वसंयोगं धनस्वजनादिकं। णमिति वाक्यालंकारे। सिताबद्धाः परिग्रहारंभेषु। पुनः किंनूताः। कृत्यं कार्यं पचन पाचनादि तस्योपदेशं गछंतीति कृत्योपदेशगाः। अथवा सियाइत्यार्षत्वात् स्युर्भवेयुः। कृत्यं सावद्यानुष्ठानं तत्प्रधानाः कृत्यागृहस्थास्तेषामुपदेशः संरंभसमारंभरूपः स विद्यते येषां ते कृत्योपदेशिकाः। प्रव्रजिताअपि कर्तव्यैर्गृहस्थैरन्योन भिद्यंतइत्यर्थः ॥ १ ॥ एवं तेषु तीर्थिकेषु सत्सु साधुना यत्कर्तव्यं तदाह। (तंचेति) तं पार्श्वमिलोकं परिज्ञाय स म्यक् ज्ञात्वा भिक्षुः संयतोविद्वान् तेषु न मूर्छयेत् तैः सह संबंधं न कुर्यात्। किंतर्हि कु र्यादित्याह। अनुत्कर्षवान् उत्कर्षोमदस्तमकुर्वन्। तथाऽप्रलीनोऽसंबद्धस्तीर्थिकेषु गृहस्थे षु पार्श्वस्थादिषु वा संश्लेषमकुर्वन् मध्येन रागद्वेषयोरंतरालेन संचरन् मुनिर्जगत्त्रयवेदी या पयेदात्मानं वर्तयेत् तेषु निंदां स्वस्य प्रशंसांच परिहरन् साधुर्मध्यस्थवृत्या चरेदित्यर्थः।

॥ टीका–उक्तस्तृतीयोद्देशकः। अधुना चतुर्थः समारभ्यते। अस्यचायमभिसंबंधः। इहानंतरोद्देशकेऽध्ययनार्थत्वात्स्वपरसमयवक्तव्यतोक्तेहापि सैवाऽभिधीयते। अथचाऽ नंतरोद्देशके तीर्थिकानां कुत्सिताचारत्वमुक्तमिहापि तदेवाभिधीयते। तदनेन संबंधे

नाऽयातस्याऽस्योद्देशकस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराण्यभिधाय सूत्रानुगमे सूत्रमु
णीयं। तच्चेदं (एतेजियाभो इत्यादि) अस्य चानंतरसूत्रेण सहायं संबंधस्तयथा।
रसूत्रेऽभिहितं । तीर्थिकाअसुरस्थानेषु किल्बिषाजायंतइति। किमिति। यतएते ?
परीषहोपसर्गैः। परंपरसूत्रसंबंधस्त्वयं । आदाविदमभिहितं बुध्येत त्रोटयेच्च। ततश्चैत
पि बुध्येत। यथैते पंचभूतादिवादिनोगोशालकमतानुसारिणश्च जिताः परीषहोपसर्गैः
मक्रोधलोभमानमोहमदाख्येनाऽरिषड्वर्गेण चेत्येवमन्यैरपि सूत्रैः संबंधउत्प्रेक्ष्यः। त
कृतसंबंधस्याऽस्य सूत्रस्येदानीं व्याख्या प्रतन्यते। (एतइति) पंचभूतैकात्मतज्जी
रादिवादिनः कृतवादिनश्च गोशालकमतानुसारिणश्च त्रैराशिकाश्च जिताअभिभूतारागे
दिभिः शब्दादिविषयैश्च तथा प्रबलमहामोहोद्भाऽज्ञानेन च । भो इति विनेयामंत्रणं
एवं त्वं गृहाण। यथैते तीर्थिकाअसम्यगुपदेशप्रवृत्तत्वान्न कस्यचिच्छरणं भवितुमर्हंति
न कथंचित्त्रातुं समर्थाइत्यर्थः। किमित्येवं यतस्ते बालाइव बालाः । यथा शिशवः
सद्विवेकवैकल्याद्यत्किंचनकारिणोभाषिणश्च। तथैतेऽपि स्वयमज्ञाः संतः परानपि
यंति। एवंभूताअपिच संतः पंडितमानिनइति । क्वचित्पाठोजत्थबालोवसीयइति।
ऽज्ञाने बालोऽज्ञोलग्नः सन्नवसीदति तत्र ते व्यवस्थिताः यतस्ते न कस्यचित्त्राणायेति
यच्च तैर्विरूपमाचरितं तदुत्तरार्द्धेन दर्शयति। हित्वा त्यक्त्वा। णमिति वाक्यालंकारे।
संयोगोधनधान्यस्वजनादिभिः संयोगस्तं त्यक्त्वा किल वयं निःसंगाः प्रव्रजिताइत्युत्था
नः सिता बद्धाः परिग्रहेष्वारंभेष्वासक्तास्ते गृहस्थास्तेषां कृत्यं करणीयं न न
नपेषणादिकाभूतोपमर्दकारी व्यापारस्तस्योपदेशस्तं गच्छंतीति कृत्योपदेशगाः
शकावा। यदिवा सियाइति आर्षत्वाद्बहुवचनेन व्याख्यायते । स्युर्भवेयुः ।
कर्तव्यं सावद्याऽनुष्ठानं तत्प्रधानाः कृत्यागृहस्थास्तेषामुपदेशः संरंभ
सविद्यते येषां ते कृत्योपदेशिकाः प्रव्रजिताअपि संतः कर्तव्यैर्गृहस्थेभ्यो न भिद्यंते।
स्थाइव तेऽपि सर्वावस्थाः पंचसूनाव्यापारोपेताइत्यर्थः॥ १ ॥ एवंभूतेषु च तीर्थि
सत्सु भिक्षुणा यत्कर्तव्यं तद्दर्शयितुमाह। तंचभिक्खूइत्यादि। तं पाखंडिकलोक
देशदानाऽभिरतं परिज्ञाय सम्यगवगम्य यथैते मिथ्यात्वोपहतांतरात्मानः सद्विवेकशू
नात्मने हितायालं नान्यस्माइत्येवं पर्यालोच्य भावभिक्षुः संयतोविद्वान् विदित
स्तेषु न मूर्छयेत् न गार्ध्यं विदध्यान्न तैःसह संपर्कमपि कुर्यादित्यर्थः। किंपुनः कर्तव्यमि
पश्चार्द्धेन दर्शयति । अनुत्कर्षवानित्यष्टमदस्थानानामन्यतमेनाऽप्युत्सेकमकुर्वन्। त
अप्रलीनोऽसंबद्धस्तीर्थिकेषु गृहस्थेषु पार्श्वस्थादिषु वा संश्लेषमकुर्वन्. मध्येन राग
योरंतरालेन संचरन् मुनिर्जगत्त्रयवेदी यापयेदात्मानं वर्तयेत्। इदमुक्तं भवति। ती

हिंनिःसह सत्यपि कथंचित्संबंधे त्यक्ताहंकारेण तथा भावतस्तेष्वप्रलीयमानेनारक्तद्वि ष्टेन तेषु निंदामात्मनश्च प्रशंसां परिहरता मुनिनाऽत्मा यापयितव्यइति ॥ २ ॥

सपरिग्गहा य सारंभा इह मेगेसिमाहियं ॥ अपरिग्गहा अ
णारंभा, भिरकू ताणं परिव्वए ॥ ३ ॥ कडेसु घासमेसेज्जा, विऊ
दत्तेसणं चरे ॥ अगिद्धो विप्पमुक्को अउमाणं परिवज्जए ॥ ४ ॥

अर्थ–हवे जे कारणे परतीर्थीकने विरुद्धाचारी कह्या ते कारण देखाडेछे–सपरिग्गहा के० ते धनधान्यादिक द्विपद चतुष्पदादिक सहित, तेने अभावे शरीर उपकरणादिकने विषे मूर्छा राखेछे तेहिज परिग्रह कहिए. अने सारंभ के० जीवघातने विषे प्रवर्त्तमान, तेहने अभावे उद्देशादिकना भोगवनार छे. माटे आरंभी कहिये. एवाछतां मोक्ष मार्ग साधे ते देखाडे छे. इह मेगेसिमाहियंके० ते इह परलोकने चिंतवे. एक दर्शनीने मतें एम कह्युं, के, ए तपस्यादिक तथा मुंमसुंमनादिक क्रिया करे ते व्यर्थ छे, किंतु जे गुरु भक्तीने प्रसादे एक परम अक्षर लाभे तेथी जीवने मोक्ष थाय. बीजो जे कांइ काय क्लेश करे ते सर्व अप्रमाण छे. एम जे कहे ते साधु पदवी न पामे. ते तारवाने समर्थ नहीं होवाने लीधे जे तारवाने समर्थ एवो साधु होय, ते आगल अर्द्ध गाथायें देखाडेछे. अपरिग्गहाके० जे किंचित् मात्र परिग्रहरहित होय एक धर्मोपकरण टाली अने तेना उपर पण ममताने अभावे परिग्रह उपर स्वल्प मात्रे नराचे. तथा अणारंभाके० सर्वथा प्रकारें छकायना आरंभरहित एवा भिरकूताणं के० भिक्षु पोताने अने बीजाने त्राण शरण होय. एटले संसारसमुद्रमांहेथी पोते पण प्रवहणनीपरे तरे अने बीजा पण संसार समुद्रमां बुडता जीवने प्रवहणनी पेठे तारनार होय एरीते साधु परिव्वएके० उद्देशादिक आहार वर्जतो संयम पाले. ॥३॥ हवे चारित्रिडे आरंभ अने परिग्रह टाली केम प्रवर्त्ते ते कहेछे. कडेसुके० ते गृहस्थे पोताने अर्थे जे भात पाणी नीपायांछे. तेनेविषे सोल जातना उजम दोषरहित घासके० आहार एसेज्जाके० गवेषे,विऊके० ते पंमित निःकेवल निर्जरा निमित्ते जे आहार दातारे दत्तके० दीधो. तेना धात्रादिक सोले उत्पादन दोष तेनी एसणंचरेके० एषणाने विषे विचरे. अने संकीतादि दश एषणा ना दोष जाणवा. अर्थात् बेतालीश दोष विशुद्ध आहार ले एम कह्युं. तथा अगिद्धोके० अमूर्छित थको आहारे एटले पांच मांमलिना दोष टाले. विप्पमुक्कोके० आहारने विषे रागद्वेषरहित, एवो छतो अउमाणं परिवज्जए के० बीजानुं अपमान वर्जे; एटले अनेरानो करेलो पराभव अहियासे. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–कथं तीर्थिकास्त्राणाय न स्युरित्याह । (सपरिग्रहाइति) । सपरिग्रहाधना

दियुक्ताः धनाद्यनावेपि शरीरोपकरणादौ मूर्छावंतः सपरिग्रहाएव तथा सारंनाः साव
व्यापाराइतीह विचारे एकेषामाख्यातं । यथा किमनया शिरस्तुंडमुंडनक्रियया ।
रनुग्रहाद्यदा परमाक्षरावाप्तिर्नवति तदा मोक्षः स्यादेवं नाषमाणास्ते न त्राणाय
ये त्रातुं समर्थास्तानाह । अपरिग्रहाधर्मोपकरणंविना शरीरोपनोगाय स्वल्पोपि न
ते परिग्रहोयेषां तेऽपरिग्रहाअनारंनाश्च तान् निक्षुः साधुः शरणं परिव्रजेत् गढेत् ।
शरणं यायादित्यर्थः ॥३॥ परिग्रहारंनवर्जनं यथा स्यात्तथाह । (कडेसुइति) । कृतेषु
स्वार्थं निष्पादितेषु उदनादिपिंडेषु ग्रासमाहारं एषयेत् याचेत इति
सूचितः । तथा विद्वान् संयमनिपुणोदत्तं परैराशंसादोषरहितैर्निश्रेयसबुध्या वितीर्णं
एषणां ग्रहणैषणां चरेत् । दत्तमित्यनेन षोडशोत्पादनादोषाः एषणां चरेदित्यनेन दश
णादोषाश्च सूचिताः । एतद्दोषत्यागेन पिंडं गृएहीयादित्यर्थः । अगृद्धोऽमूर्छितो
रागद्वेषरहितश्च । आहारे स्यादिति पंचग्रासैषणादोषत्यागउक्तः । सएवंनूतोनिक्षुः
मपमानं परिवर्जयेत् तपोमदं ज्ञानमदं च न कुर्यादित्यर्थः । आत्मनः सकाशात्परान्
नान् न पश्येदिति तात्पर्यं ॥ ४ ॥

॥ टीका–किमिति ते तीर्थिकास्त्राणाय न नवंतीति दर्शयितुमाह । (सपरिग्र
दि) । सपरिग्रहेण धनधान्यद्विपदचतुष्पदादिना वर्तते तदनावेऽपि शर
मूर्छावंतः सपरिग्रहाः । तथा सहारंनणे जीवोपमर्दादिकारिणा व्यापारेण वर्ततइति
वेऽप्यौद्देशिकादिनोजित्वात्सारंनाः । तीर्थिकादयः सपरिग्रहारंनकत्वेनैव च मोक्षमार्गं
धयंतीति दर्शयति । इह परलोकचिंतायामेकेषांकेषांचिदाख्यातं नाषितं । यथा
शिरस्तुंडमुंडनादिकया क्रियया परं गुरोरनुग्रहात्परमक्षरावाप्तिस्तद्दीक्षावाप्तिर्वा यदि
ति ततोमोक्षोनवतीत्येवं नाषमाणास्ते न त्राणाय नवंतीति । येतु त्रातुं समर्थास्त
श्चार्द्धेन दर्शयति । अपरिग्रहाः न विद्यते धर्मोपकरणादृते शरीरोपनोगाय स्वल्पोऽपि
ग्रहोयेषांते अपरिग्रहाः । तथा न विद्यते सावद्यआरंनो येषां तेऽनारंनास्तेचैवं नूता
मेजयः स्वयंयानपात्रकल्पाः संसारमहोदधेर्जंतूत्तारणसमर्थास्तान् निक्षुर्निक्ष
उद्देशिकाद्यपरिनोजी त्राणं शरणं परि समंताद्व्रजेङ्गढेदिति ॥३॥ कथं पुनःपुनस्तेनाप
हेणाऽनारंनेण च वर्तनीयमित्येतद्दर्शयितुमाह (कडेसुइत्यादि) गृहस्थैः प
द्वारेणाऽत्मार्थं ये निष्पादिताउदनादयस्ते कृताउच्यंते । तेषु कृतेषु परकृतेषु प
ष्ठितेष्वित्यर्थः ॥ अनेन च षोडशोद्गमपरिहारः सूचितः । तदेवमुद्गमदोषरहितं ग्रस्यतइति
सआहारस्तमेवंनूतमन्वेषयेन्मृगयेत् याचेदित्यर्थः । तथा विद्वान्संयमकरणैकनिपुणः
रैराशंसादोषरहितैर्यन्निःश्रेयसबुध्या दत्तमित्यनेन षोडशोत्पादनदोषाः परिगृहीताइ

तदेवंनूते दौत्यधात्रीनिमित्तादिदोषरहिते आहारे सनिक्षुः एषणां ग्रहणैषणां चरेदनुतिष्ठे दित्यनेनाऽपि दशैषणादोषाः परिगृहीताइति मंतव्यं । तथा । अगृद्धोऽनध्युपपन्नोऽमूर्छि तस्तस्मिन्नाहारे रागद्वेषविप्रमुक्तः । अनेनाऽपि च ग्रासैषणादोषाः पंच निरस्ताअवसेयाः । सएवंनूतोनिक्षुः परेषामपमानं परावमदर्शित्वं परिवर्जयेत् परित्यजेत् । न तपोमदं ज्ञानमदं च कुर्यादिति नावः ॥ ४ ॥

लोगवायं णिसामिज्जा, इह मेगेसिमाहियं ॥ विवरीयपन्नसंनूयं, अन्नउत्तं तयाणुयं ॥ ५ ॥ अणंते निइए लोए, सासए ण विणस्सती ॥ अंतवं णिइए लोए, इति धीरोति पासइ ॥ ६ ॥

अर्थ—हवे वली परवादी मिश्रित वचन कहेछे—लोगवायं के० पाखंमी लोक तेनो वाद पोतपोताने मतें कल्पित जे स्वरूप ते णिसामिज्जाके० सांनले, सांनलीने हैयामां धरे जिन तिथी कशुं खोटुं जाणी परिहरे ते लोकवाद देखाडेछे. इह के० ते ए जगतने विषे, मेगेसिके० एकेक वादीने मतें, आहियंके० कह्युं छे. ते केवुं तोके, विवरीयंके० विपरीत पन्न० प्रज्ञातत्व थकी उपरांठी बुद्धि, संनूयंके० तेहथकी उपनो तथा अन्नउत्तंतयाणुगं के० अनेरा अविवेकीनुं जे नाष्युं तेने अनुसारे वली तेवुंज प्रवर्त्तवुं एवो लोकवाद सांनली ये धारेछे. ॥५॥ हवे ते विपरीत बुद्धि रचित लोकवाद देखाडेछे.—तें लोक अणंते के० अनंत तथा निइएलोए के० नित्यछे. एटले शुं कह्युं ? के जे आ नवमां पुरुषछे अथवा स्त्री छे, ते आगमिक नवे पण तेवोज पुरुष तथा स्त्रीने रूपेछे. एटले स्त्री ते स्त्री पुरुष ते पुरुष छे, ते माटे लोक नित्यछे. सासए के० वली ए लोक सास्वतोछे. ण णस्सति के० वणसे नही. अंतवंके० ते अंतसहित छे, एटले सप्तद्वीप तथा सप्त समुद्रसहित एटलो लोकछे. एथी न्यून अधिक नथी; ए कारणे लोकनो अंत छे. अने णिइएलोए के० लोक नित्यछे. स्त्री ते स्त्री अने पुरुष ते पुरुष रूपज छे. ते माटे इति के० एरीते, धीरोके० अमारा जे व्यासादिक धीरपुरुष अनेक गुणवंत ते पासइके० देखेछे.

॥ दीपिका—स्वमतं प्रख्याप्य पुनः परमतं दर्शयति । (लोगवायमिति) । लोकानां पाखंमिनां वादमंगीकारं (णिसामिज्जा) निशामयेत् जानीयात् । तद्दर्शयति । इह संसारे केषांचित् इदमाख्यातं । तथा विपरीता मिथ्या या प्रज्ञा तया संनूतमुत्पन्नं तत्त्वविपर्यस्तबुद्धिग्रथितमित्यर्थः । तथाऽन्यैरविवेकिनिर्यडुक्तं तदनुगं तत्सदृशं अविवेकिजनवाक्यसदृशमिति ॥ ५ ॥ लोकवादमेवाह । (अणंतेति) । न विद्यतें ऽतोयस्येत्यनंतोनित्यः शाश्वतोन विनश्यति । योयादृगिह नवे सपरनवेपि तादृशएव पुरुषः पुरुषएव

नक्तपानमित्येतेन एषणासमितिः । नक्तपानार्थं च प्रविष्टस्य नाषणासंनवाद्भाषणासमितिराक्षिप्ता । सति चाहारे प्रश्रवणादीनां सद्भावात्प्रतिष्ठापनसमितिरप्यायाता इति तृतीयं स्थानं ३ एतेषु त्रिषु स्थानेषु सम्यग्यतः संयतआमोक्षाय परिव्रजेदित्युत्तरश्लोकेन संबंधः । तथा सततं मुनिरुत्कर्षोमानः, ज्वलनः क्रोधः, णूमंति गहनं मायेत्यर्थः । संसारमध्ये सर्वदा नवतीति मध्यस्थोलोनः । चः समुच्चये । एतान् मानादीन् कषायान । (विगिंचएति) । विवेचयेदात्मनः पृथक्कुर्यात् । ननु क्रोधएवादौ सर्वत्र स्थाप्यते ऽत्रतु कथं मानइति चेडुच्यते । माने सत्यवश्यंनावी क्रोधः क्रोधे च सति मानः स्यान्नवेत्यर्थस्य दर्शनाय क्रमोल्लंघनमिति. ॥ १२ ॥

॥ टीका–एवं मूलगुणानभिधायेदानीमुत्तरगुणानभिधातुकामआह । वुसिएयइत्यादि । विविधमनेकप्रकारमुषितः स्थितोदशविधचक्रवालसामाचर्यां व्युषितस्तथा विगताऽपगता आहारादौ गृद्धिर्यस्यासौ विगतगृद्धिः साधुरेवंभूतश्चादीयते स्वीक्रियते प्राप्यते वा मोक्षोयेन तदादानीयं ज्ञानदर्शनचारित्रत्रयं तत्सम्यग्रक्षयेदनुपालयेत् यथा यथा तस्य वृद्धिर्नवति तथाकुर्यादित्यर्थः ॥ कथंपुनश्चारित्रादि पालितं नवतीति दर्शयति । चर्यासनशय्यासु । चरणं चर्यागमनं साधुनाहि सति प्रयोजने युगमात्रदृष्टिनागंतव्यं तथा सुप्रत्युपेक्षिते सुप्रमार्जिते चासने उपवेष्टव्यं तथा शय्यायां वसतौ संस्तारके वा सुप्रत्युपेक्षित प्रमार्जितस्थानादि विधेयं तथा नक्ते पाने चांतशः सम्यगुपयोगवता नाव्यं । इदमुक्तं नवति । ईर्यानाषैषणादाननिक्षेपप्रतिष्ठापनासमितिरूपयुक्तेनांऽतशोनक्तपानं यावद्उमादिदोषरहितमन्वेषणीयमिति ॥ ११ ॥ पुनरपि चारित्रशुध्यर्थं गुणानधिकृत्याह । एतेहिं इत्यादि । एतान्यनंतरोक्तानि त्रीणि स्थानानि । तद्यथा । ईर्यासमितिरित्येकं स्थानं, आसनं शय्येत्यनेनादानभांडमात्रनिक्षेपणासमितिरित्येतच्च द्वितीयं स्थानं, नक्तपानमित्यनेनैषणासमितिरुपात्ता नक्तपानार्थं च प्रविष्टस्य नाषणासंनवाद्भाषासमितिराक्षिप्ता सति चाहारे उच्चारप्रश्रवणादीनां सद्भावात्प्रतिष्ठापनासमितिरप्यायातेऽत्येतच्च तृतीयं स्थानमित्यतएतेषु त्रिषु स्थानेषु सम्यग्यतः संयतआमोक्षाय परिव्रजेदित्युत्तरश्लोकांते क्रियेति । तथा सततमनवरतं मुनिः सम्यक् यथावस्थितजगत्त्रयवेत्ता । उत्कृष्यते आत्मादर्पाध्मातोविधीयतेऽनेनेत्युत्कर्षोमानस्तथात्मानं चारित्रं वा ज्वालयति दहतीति ज्वलनः क्रोधस्तथा णूममिति गहनं मायेत्यर्थः । तस्याअलब्धमध्यत्वादेवमभिधीयते । तथा आसंसारमसुमतां मध्येंऽतर्नवतीति मध्यस्थोलोनः । चशब्दः समुच्चये । एतान् मानादींश्चतुरोपि कषायांस्तद्विपाकाभिज्ञोमुनिः सदा (विगिंचएति) विवेचयेदात्मनः पृथक्कुर्यादित्यर्थः । ननु चान्यत्रागमेक्रोधआदावुपन्यस्यते तथा कप

कश्रेण्यामारूढोभगवान् क्रोधादीनेव संज्वलनान् क्षपयति किमर्थमागमप्रसिद्धमुल्लं घ्यादौ मानस्योपन्यासइति ॥ अत्रोच्यते । माने सत्यवश्यंभावी क्रोधः क्रोधेतु मानः स्याद्वानवेत्यस्यार्थस्य प्रदर्शनायान्यथाक्रमकरणमिति. ॥ १२ ॥

समिएउ सयासाहु, पंचसंवरसंवुडे ॥ सिएहिं अ
सिए भिक्खू, आमोक्खायपरिव्वए ज्ञासित्तिबेमि ॥ १३ ॥

अर्थ—हवे अध्ययन उपसंहरतो कहेछे. समिएके० पांच समिते समितो,उके० तु अ वधारणने अर्थे छे. तथा सयासाहुके० सर्वकालनेविषे साधु केवोछे ? ते कहेछे. पंचसंवर संवुडेके० पांच महाव्रतनो पालनार तथा पांच प्रकारना संवरे करी संवस्यो छतो तथा सिएहिंके० जे गृहस्थ पासछादिकने विषे बंधाणा तेवा गृहस्थने विषे असिए के० अ णबंधाणो थको एटले तेने विषे मूर्छा नकरे. जेम कर्दम थकी कमल उंचुंरहे तेम भिक्खूके० साधु ते आरंभ परिग्रह थकी दूर रहे पण तेनी साथे बंधाय नहीं, एवो छतो आमोक्खायपरिव्वएके० ज्यांसुधी मोक्ष न थाय त्यांसुधी संयम पाले. ईत्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत्. ॥ १३ ॥ इति प्रथमाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशकः समाप्तः । प्रथमाध्ययनं स०

॥ दीपिका— एवं समितिभिः समितः साधुः पंचमहाव्रतोपेतत्वात्पंचप्रकारसंवृतः । चशब्दाद्गुप्तिगुप्तस्तथा गृहपाशादिषु सिताबद्धा गृहस्थास्तेष्वसितोन बद्धोन मूर्छितो भिक्षुर्भावभिक्षुरासमंतात् मोक्षाय परिसमंताद्व्रजेः संयमानुष्ठानरतोभवेस्त्वमिति शिष्यस्यो पदेशः । इति समाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ १३ ॥ इति तपागच्छाधिपश्रीहेमविमलसू रिस्वशिष्यहर्षकुलप्रणीतायां श्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां प्रथमं समयाध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका— तदेवं मूलगुणानुत्तरगुणांश्चोपदर्श्याऽधुना सर्वोपसंहारार्थमाह । (समिए उसया इत्यादि) तुरवधारणे । पंचभिः समितिभिः समितएव साधुस्तथा प्राणातिपा तादिपंचमहाव्रतोपेतत्वात्पंचप्रकारसंवरसंवृतस्तथा मनोवाक्कायगुप्तिगुप्तस्तथा गृहपाशा दिषु सिताअवबद्धाः सक्तागृहस्थास्तेष्वसितोऽनवबद्धस्तेषुमूर्छामकुर्वाणः पंकाधारपं कजवत्तत्कर्मणाऽदिह्यमानोभिक्षुर्भिक्षणशीलोभावभिक्षुरामोक्षायाऽशेषकर्मापगमलक्षण मोक्षार्थं परि समंतात् व्रजेः संयमानुष्ठानरतोभवेस्त्वमिति विनेयस्योपदेशः । इति अध्य यनसमाप्तौ । ब्रवीमीति गणधरएवमाह यथा तीर्थकृतोक्तं तथैवाहं ब्रवीमि न स्वमनी षिकयेति गतोऽनुगमः । सांप्रतं नयास्तेषामयमुपसंहारः । सव्वसिंपि नयाणं बहुविधव त्तव्वयं निसामित्ता । तं सव्वणयविसुद्धं जं चरणगुणठ्ठिओसाहुत्ति ॥ १ ॥ १३ ॥ इति सू त्रकृतांगे प्रथमाध्ययनं समाप्तं ॥ ॥

॥ अथ द्वितीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः प्रारंभः ॥

संबुज्झह किंन वुज्झह, संबोही खलु पेच्च दुल्लहा ॥ णोहूवणमंति राइउ, नो सुलभं पुणरवि जीवियं ॥ १ ॥ डहरा बुड्ढाय पासह, गप्भत्था वि चियंति माणवा ॥ सेणे जह वट्टयं हरे, एवमाउरकयंमि तुट्टई ॥२॥

अर्थ—पहेलुं समय नामे अध्ययन कह्युं. हवे बीजुं वैताली नामक अध्ययन कहेछे. तेनो ए संबंध पेहेला अध्ययनने विषे परसमयना दोष कह्या तथा स्वसमयना गुण कह्या. ते सर्व जाणीने जेम कर्म विदारीयें तेम यत्न करवो, ए वात कहेछे. ते श्री आदीश्वर देवे नरते तिरस्कार कस्या. संवेग उपन्या थकी रुषनदेवना अठाणुं पुत्र रुषनदेवनी पासे आव्या. ते स्वपुत्र प्रत्यें उपदेश कहेछे. अथवा श्रीमहावीर देव परखदा प्रत्यें कहेछे. संबुज्झह के० अहो नव्यो ? तमे समजो. ज्ञान, दर्शन तथा चारित्ररूप धर्मनेविषे उद्यम करो; केमके आ अवसर मलवो फरी फरी दुर्लन छे, तो एवो अवसर पामीने किंनवुज्झह के० केम नथी समजता जे आ नवने विषे धर्म नहीं करशो तेने पेच्चके० परनवनेविषे खलुके० निश्चे थकी, संबोहीके० बोधबीज ते दुल्लहाके० दुर्लन छे. णोहूवणमंतिराइउ के० जेम अतिक्रमेली रात्री फरीथी आवे नहीं तेम यौवनादिक सर्व पदार्थ गया तेपण फरी आवे नहीं. णोसुलनंपुणरवि जीवियं के० फरी फरी जीवित शब्दे संयमे करी प्रधान जे जीवितव्य ते सुलन नथी. ॥ १ ॥ हवे सर्व संसारी जीवने आयुष्य अनित्य करी देखाडेछे. डहरा के० बालक एटले कोइक जीव बाल्यावस्थामांथकांज विनाश पामेछे. तथा कोइएक बुड्ढायके० बुढा (वृद्ध) थईने विनाश पामेछे. तथा पासह के० जूउ के, गप्भत्था विचयंति माणवा के० कोइ एक मनुष्य जे छे, ते गर्भमां रह्या थकां पण विनाशने पामेछे. एम ए मृत्यु जे छे, ते जीवने सर्व अवस्थाये आवी पोहोचेछे. तेना उपर दृष्टांत कहेछे. जह के० जेम सेणे के० श्येन एटले सींचाणो जे छे, ते वट्टयं के० वाटो एटले तीतर पक्षी तेने छलीने पुहुते हरे के० हरण करी लीये. एवं आउरकयंमि तुट्टई के० एम ए मनुष्यनुं आयुष्य पण क्षणे क्षणे तूटे छे. एवं जीवाण जीवियं के० ए पूर्वे कह्युं एवुं जीवनुं जीवितव्य जाणवुं. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—व्याख्यातं प्रथमं समयाध्ययनं । अथ द्वितीयं वैतालीयाध्ययनं व्याख्यायते तत्र प्रथमाध्ययने परसमयदोषाः स्वसमयगुणाश्चोक्तास्तांश्च ज्ञात्वा यथा कर्म विदार्यते तथा बोधोविधेयइत्यनेन संबंधेनागतस्यास्योद्देशकत्रयं । तत्र प्रथमोद्देशकस्येदमादिसूत्रं । (संबुज्झहत्ति) । तत्र नगवानादितीर्थंकरोनरतः तिरस्कारागतसंवेगान्

स्वपुत्रानुद्दिश्येदमाह । यदि वा सुरासुरनरोरगतिरश्चः समुद्दिश्याह । यथा बुध्यध्वं यूयं धर्मे बोधं कुरुत । किं न बुध्यध्वं एवंविधसामग्र्यां सत्यां कस्माद्धर्मे बोधोन क्रियतइत्यर्थः । यतः अकृतधर्माणां प्रेत्य परलोके संबोधिर्धर्मप्राप्तिरूपा पुनर्डुर्लजा । डुर्निश्चये । नैवातिक्रांताराात्रयउपनमंति पुनर्ढौकंते । नहि अतिक्रांतोयौवनादिकालः पुनरावर्ततइतिजावः । पुनरपि जीवितं संयमजीवितं नो नैव सुलजं । यदि वा जीवितमायुस्त्रुटितं सत्संधातुं न शक्यतइति ॥ १ ॥ आयुषोऽनियतत्वमाह । (महरेति) । महराबालाएव केचिज्जीवितं त्यजंति तथा वृद्धागर्नस्थाअपि मानवाः । उपदेशयोग्यत्वान्मानवग्रहणं । एतत्पश्यत यूयं यत्सर्वास्वप्यवस्थासु प्राणी जीवितं त्यजतीति । तथाहि त्रिपल्योपमायुष्कस्यापि पर्याप्त्यनंतरमंतर्मुहूर्तेनैव कस्यचिन्मृत्युरुपतिष्ठतीति । अत्र दृष्टांतमाह । यथा श्येनोवर्तकं तित्तिरिजीवं हरते हंति एवमायुःक्षये प्राणान् मृत्युरपहरेत् । आयुःक्षये वा त्रुटयति जीवितं. ॥ २ ॥

॥ टीका—उक्तं समयाख्यं प्रथममध्ययनं सांप्रतं वैतालीयाख्यं द्वितीयमारभ्यते । अस्य चाऽयमजिसंबंधः । इहाऽनंतराऽध्ययने स्वसमयगुणाः परसमयदोषाश्च प्रतिपादितास्तांश्च ज्ञात्वा यथाकर्मविदार्यते तथा बोधोविधेयइत्यनेन संबंधेनाऽयातस्याऽस्याध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यऽनुयोगद्वाराणि जणनीयानि । तत्राऽप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाऽधिकारोद्विधा । अध्ययनार्थाऽधिकारउद्देशार्थाधिकारश्च । तत्राऽध्ययनार्थाधिकारः प्रागेव निर्युक्तिकारेणाऽजाणि । णाऊणबुज्झणाचेवेत्यनेन गाथाद्वितीयपादेनेत्युद्देशार्थाधिकारं तु स्वतएव निर्युक्तिकारउत्तरत्र वक्ष्यति । नामनिष्पन्नं तु निक्षेपमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह “ वेयालियंमि वेया,लगो य वेयालणं वेयालियं । तिन्निवि चउक्कगाइं, वेयालेउ एछ पुण जीवो ” ॥ ३७ ॥ (वेयालियमित्यादि) । तत्र प्राकृतशैल्या वैयालियमिति । दृविदारणेइत्यस्य धातोर्विपूर्वस्य छांदसत्वात् जावे एवुल्प्रयांतस्य विदारकमिति क्रियावाचकमिदमध्ययनाऽजिधानमिति । सर्वत्र च क्रियायामेतत्त्रयं सन्निहितं । तद्यथा कर्ता करणं कर्म चेत्यतस्तद्दर्शयति । विदारकोविदारणं विदारणीयं च तेषां त्रयाणामपि नामस्थापनाड्व्यजावजेदाच्चतुर्धा निक्षेपेण । त्रीणि चतुष्ककानि इष्टव्यानि । अत्र च नामस्थापने क्षुसे ड्व्यविदारकोयोहि ड्व्यं काष्ठादि विदारयति । जावविदारकस्तु कर्मणोविदार्यत्वात् नो आगमतोजीवविशेषः साधुरिति ॥ ३७ ॥ करणमधिकृत्याऽह “ दवं च परसुमादी दंसणाणतवसंयमाजावे । दवं च दारुगाही जावे कम्मं वियालणियं ” ॥ ३९ ॥ (दवंचेत्यादि) नामस्थापने क्षुसे ड्व्यविदारणं परश्वादि जावविदारणं दर्शनज्ञानतपःसंयमास्तेषामेव कर्मविदारणे सामर्थ्यमित्युक्तं जवति । विदारणीयं

तु नामस्थापने अनादृत्य द्रव्यं दार्वादि । भावे पुनरष्टप्रकारं कर्मेति ॥ ३९ ॥ सांप्रतं वै तालियमित्येतस्य निरुक्तं दर्शयितुमाह " वेयालियं इह देसियंति वेयालियंतर्ज होइ ॥ वेयालियं तहा वित्तमध्धि तेणे वयणिबध्धं " ॥ ४० ॥ (वेयालियमित्यादि) । इ द्वाऽध्ययनेऽनेकधाकर्मणां विदारणमभिहितमिति कृत्वैतदध्ययनं निरुक्तिवशाद्विदारकं ततोभवति । यदि वा वैतालियमित्यध्ययननामात्राऽपि प्रवृत्तौ निमित्तं । वैतालियछंदोवि शेषरूपं वृत्तमस्ति तेनैव च वृत्तेन निबध्धमित्यध्ययनमपि वैतालीयं । तस्य चेदं लक्षणं । वैतालीयर्लिंगनैधनाः, षडयुक्पादेऽष्टौ समे चलः । नसमोऽत्र परेण युज्यते, नेतः षट्च नि रंतरायुजोः ॥ ४० ॥ सांप्रतमध्ययनस्योऽपोद्घातं दर्शयितुमाह " कामं तु सासयमिणं कहियं अध्धावयंमि उसभेणा ॥ अठ्ठाणउतिसयाणं सोऊण वि तेइ पवइया " ॥ ४ ॥ (काममित्यादि) कामशब्दोऽयमभ्युपगमे । तत्र यद्यपि सर्वोप्यागमः शाश्वतः तदंतर्गत मध्ययनमपि तथाऽपि भगवतादितीर्थाधिपेनोत्पन्नदिव्यज्ञानेनाऽष्टापदोपरिव्यवस्थितेन भरताधिपभरतेन चक्रवर्त्तिनोऽपहृतैरष्टनवतिभिः पुत्रैः पृष्टेन यथा भरतोऽस्मानाऽज्ञां का रयत्यतः किमस्माभिर्विधेयमित्यतस्तेषामंगारदाहकदृष्टांतं प्रदर्श्य न कथंचिद्भ्रांतोभोगे ध्वा निवर्ततइत्यर्थः । गर्भमिदमध्ययनं कथितं प्रतिपादितं तेऽप्येतच्छ्रुत्वा संसारासारता मवगम्य विषयाणां च कटुविपाकतां निःसारतां च ज्ञात्वा मत्तकरिकर्णवच्चपलमायुर्गि रिनदीवेगसमं यौवनमित्यतोभगवदाज्ञैव श्रेयस्करीति तदंतिके सर्वे प्रव्रज्यां गृहीतवं तइत्यत्र उद्देसेनिद्देसेयइत्यादिसर्वोऽप्युपोद्घातोभणनीयः ॥ ४१ ॥ सांप्रतं उद्देशार्था धिकारं प्रागुल्लिखितं दर्शयितुमाह " पढमे संबोहो अनिच्चयाय वीयंमि माणवज्जणया, अहिगारो पुण भणिउ, तहा तहा बहुविहो तह ॥ ४२ ॥ उद्देसंमिय तइये, अन्नाण चियस्स अयवउ भणिउ । वज्जेयव्वो य सया सुयप्पमाउ जइ जणेण " ॥ ४३ ॥ (प ढमइत्यादिगाथाद्वयं) तत्र प्रथमोद्देशिके हिताऽहितप्राप्तिपरिहारलक्षणोबोधोविधेयोऽ नित्यता वेत्ययमर्थाधिकारः । द्वितीयोद्देशके मानोवर्जनीयइत्ययमधिकारः । पुनश्च त थाऽनेकप्रकारोबहुविधः शब्दादाऽवर्थेऽनित्यतादिप्रतिपादकोऽर्थोऽधिकारोभणितइति । तृतीयोद्देशके बहुविधज्ञानोपचितस्य कर्मणोऽपचयरूपोर्थाधिकारोभणितइति यतिज नेनच सुखप्रमादोवर्जनीयः सदेति ॥ ४३ ॥ सांप्रतं सूत्रानुगमे अस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (संबुज्झहेत्यादि) तत्र भगवानादितीर्थंकरोभरतस्तिरस्का रागतसंवेगान् स्वपुत्रानुद्दिश्येदमाह । यदि वा सुरासुरनरोरगतिरश्चः समुद्दिश्य प्रोवाच य था संबुध्यध्वं यूयं ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणे धर्मे बोधं कुरुत । यतः पुनरेवंभूतोऽवसरो दुरापः । तथाहि । मानुषं जन्म तत्राऽपि कर्मभूमिः पुनरार्यदेशः सुकुलोत्पत्तिः सर्वेंद्रिय

पाटवं । श्रवणश्रद्धादिप्राप्तौ सत्यां स्वसंवित्यवष्टंभेनाह । किं न बुध्यध्वमित्यवश्यमेवंविध सामग्र्यावाप्तौ सत्यां सकर्णेन तुछान् भोगान् परित्यज्य सद्धर्मबोधोविधेयइतिभावः । त थाहि । निर्वाणादिसुखप्रदे नरभवे जैनेंद्रधर्मान्विते, लब्धे स्वल्पमचारु कामजसुखं नो सेवितुं युज्यते । वैडूर्यादिमहोपलौघनिचिते प्राप्तेऽपि रत्नाकरे, लातुं स्वल्पमदीप्तिकाचशक लं किं चोऽचितं सांप्रतं ॥१॥ अकृतधर्मचरणानां तु प्राणिनां संबोधिः सम्यक्दर्शनज्ञान चारित्राऽवाप्तिलक्षणा प्रेत्य परलोकगतानां खलुशब्दस्याऽवधारणार्थत्वात् सुदुर्लभैव । त थाहि । विषयप्रमादवशात् सकृत् धर्माचरणाद्भ्रष्टस्याऽनंतमपि कालं संसारे पर्यटनम भिहितमिति । किंच । हुरित्यवधारणे । नैवाऽतिक्रांतारात्रय उपनमंति पुनर्ढौकंते । नह्यति क्रांतोयौवनादिकालः पुनरावर्त्ततइतिभावः । तथाहि । भवकोटिभिरसुलभं, मानुष्यं प्राप्य कः प्रमादोमे । नच गतमायुर्भूयः प्रत्येत्यपि देवराजस्य ॥ १ ॥ नोनैव संसारे सु लभं सुप्रापं संयमप्रधानं जीवितं यदि वा जीवितमायुस्त्रुटितं सत् तदेव संधातुं न शक्य तइति वृत्तार्थः । संबोधश्च प्रसुप्तस्य सतोभवति स्वापश्च निद्रोदये निद्रासंबोधयोश्च नामा दिश्चतुर्द्धा निक्षेपः । तत्र नामस्थापने अनादृत्य द्रव्यभावनिक्षेपं प्रतिपादयितुं निर्युक्ति कृदाह । "दव्वं निद्दा वेउ दंसणनाणतवसंजमा भावे । अहिगारो पुणभणिउ नाणे तव दंसणचरित्ते" ॥ ४४ ॥ (दव्वंनिद्दावेउ इति) इह च गाथायां द्रव्यनिद्राभावसंबोधश्च द र्शितः । तत्राऽद्यंतग्रहणेन भावनिद्राद्रव्यबोधयोस्तदंतर्वर्तिनोर्ग्रहणं द्रष्टव्यं । तत्र द्र व्यनिद्रा निद्रा वेदोवेदनमनुभवः । दर्शनावरणीयविशेषोदयइति यावत् । भावनिद्रातु विषयज्ञानदर्शनचारित्रशून्यता । तत्र द्रव्यबोधोद्रव्यनिद्रया सुप्तस्य बोधनं । भावे भाव विषये पुनर्बोधोदर्शनज्ञानचारित्रतपःसंयमाद्रष्टव्याः । इह च भावप्रबोधेनाऽधिकारः सच गाथापश्चार्द्धेन सुगमेन प्रदर्शितइति । अत्र च निद्राबोधयोर्द्रव्यभावभेदाच्चत्वारो भंगायोजनीयाइति ॥ ४४ ॥ १ ॥ भगवानेव सर्वसंसारिणां सोपक्रमत्वादनियतमायु रुपदर्शयन्नाह । (डहराबुड्ढायेत्यादि) डहराबालाएव केचन जीवितं त्यजंति । तथा वृद्धाश्च गर्भस्थाअप्येतत्पश्यत यूयं के ते मानवामनुष्यास्तेषामेवोपदेशदानार्हत्वात् मानवग्रहणं । बह्वपायत्वादायुषः सर्वास्वऽप्यवस्थासु प्राणी प्राणांस्त्यजतीत्युक्तं भवति । तथाहि । त्रिपल्योपमायुष्कस्यापि पर्याप्त्यनंतरमंतर्मुहूर्तेनैव कस्यचिन्मृत्युरुपतिष्ठती ति । अपिच गर्भस्थं जायमानमित्यादि । अत्रैव दृष्टांतमाह । यथा श्येनः पक्षिविशे षोवर्त्तकं तित्तिरजातीयं हरेत् व्यापादयेदेवं प्राणिनः प्राणान् मृत्युरुपहरेत् । उप क्रमकारणमायुष्कमुपक्रमेत् । तदभावे वा आयुष्यक्षये त्रुटयति व्यवछिद्यते जी वानां जीवितमिति शेषः ॥ २ ॥

मायाहिं पियाहिं लुप्पइ, नो सुलहा सुगई य पेच्चउ ॥ एयाइं भयाइं पेहिया, आरंभा विरमेज्ज सुव्वए ॥ ३ ॥ जमिणं जगती पुढो जगा, कम्मेहिं लुप्पंति पाणिणो ॥ सयमेव कडेहिं गाहइ, णो तस्स मुच्चेज्ज पुठ्ठयं ॥ ४ ॥

अर्थ—कोइएक जीव बापडो मायाहिं पियाहिं के० मातापितादिक स्वजने लुप्पइ के० संसारमांहे भमाडयो थको एटले तेने मोहे बांध्यो थको, धर्मने विषे उद्यम करे नहीं ते जीवने पेच्चउ के० परभवने विषे सुगईय के० सद्गति जे मुक्ति ते नोसुलहा के० सुलभ नथी. केमके मोहरूप क्लेश तथा विषयसुख थकी डुर्गति थाय एवुं जाणी एयाइंभयाइं के० ए मोहादिक भयने पेहिया के० देखीने जे आरंभाविरमेज्ज के० आरंभ थकी विरमे, निवृत्ते ते सुव्वएके० सुव्रत थाय. एटले शोभनिकव्रत वंत थाय. ॥३॥ हवे जे कोई आरंभादिक थकी निवृत्ते नहीं तेने दोष कहेछे. जमिणं के० जे कारणे अव्रति जीवने आगल जे कहेशे ते उत्पन्न थाय. ते शुं उत्पन्न थाय? तो के जगती के० जगतमांहे पुढोजगा के० पृथक् पृथक् जुदां जुदां जीवनां स्थानक जे नरकादिक छे, ते स्थानकोमांहे कम्मेहिं लुप्पंति पाणिणो के० प्राणी पोतानां उपार्जेलां कर्मोनां जे डुःख तेणेकरी पीडाय. ते प्राणी सयमेवकडेहिं के० स्वमेव एटले पोते कीधां जे कर्म तेणे करी गाहइ के० अवगाहे एटले नरकादिक स्थानक डुःखना हेतु उपचय करे. णोतस्समुच्चेज्ज के० ते अशुभविपाक थकी न मूकाय; अपुठ्ठयं के० अणफरश्यो एटले ते बांधेलां कर्म भोगव्या विना बूटे नहीं. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—मायेति । योमातापितृमोहेन धर्मोद्यमं न कुरुते सतैरेव मातापित्रादिभिर्लुप्यते संसारेभ्राम्यते । तस्य प्रेत्य जन्मांतरे सुगतिश्च नो सुलभा । एतानि डुर्गतिगमनादीनि भयानि (पेहिया) प्रेक्ष्यारंभाद्विरमेत् सुव्रतः शोभनव्रतः । सुस्थितोवा पाठांतरे ॥ ३ ॥ (जमिणमिति) यद्यस्मादनिवृत्तानामिदं स्यात् । जगति पृथिव्यां (पुढो जगत्ति) पृथग्भूताव्यवस्थिताः सावद्याचारोपचितैः कर्मभिः प्राणिनोलुप्यंते नरकादिषु भ्राम्यंते । स्वयमेव कृतैः कर्मभिर्नरकादिस्थानान्यभिगाहते । नच तस्याऽशुभाचरितस्य कर्मणो विपाकेनाऽस्पृष्टोमुच्यते जंतुः ॥ ४ ॥

॥ टीका—तथा (मायाहिंत्यादि) कश्चिन्मातापितृभ्यां मोहेन स्वजनस्नेहेन च न धर्मं प्रत्युद्यमं विधत्ते सचतैरेव मातापित्रादिभिर्लुप्यते संसारे भ्राम्यते । तथाहि । विहितमलोहमहोमह,भ्मातापितृपुत्रदारबंधुसंज्ञं । स्नेहमयमसुमतामतः किंबंधनं शृंखलं

खलेन धात्रा ॥ १ ॥ तस्य च स्नेहाकुलितमानसस्य सदसद्विवेकविकलस्य स्वजनपोषणार्थं यत्किंचनकारिणइहैव सद्भिर्निंदितस्य सुगतिरपि प्रेत्य जन्मांतरे नोसुलजाऽपि तु मातापितृव्यामोहितमनसस्तदर्थं क्लिश्यतोविषयसुखेप्सातश्च डुर्गतिरेव नवतीत्युक्तं नवति । तदेवमेतानि नयानि नयकारणानि डुर्गतिगमनादीनि (पेहियत्ति) प्रेक्षाऽरंना त्सावद्याऽनुष्ठानरूपाद्विरमेत् । सुव्रतः शोननव्रतः सन् सुस्थितोवेति पाठान्तरं ॥ ३ ॥ अनिवृत्तस्य दोषमाह । (जमिणमित्यादि) यद्यस्मादनिवृतानामिदं नवति । किं तत् जगति पृथिव्यां (पुढोत्ति) पृथक्नूताव्यवस्थिताः सावद्यानुष्ठानोपचितैः कर्मनिर्विलुप्यंते नरकादिषु यातनास्थानेषु न्राम्यंते । स्वयमेव च कृतैः कर्मनिर्नेश्वराद्यापादितैर्गाहते नरकादिस्थानानि यानि तानि वा कर्माणि डुःखहेतूनि गाहते उपचिनोति । अनेन च हेतुसद्भावः कर्मणामुपदर्शितोनवति । नच तस्याऽशुनाऽचरितस्य कर्मणोविपाकेनाऽस्पृष्टोऽब्रुसो मुच्यते जंतुः । कर्मणामुदयमननुनूय तपोविशेषमंतरेण दीक्षाप्रवेशाद्विना न तदपगमं विधत्तइतिन्नावः ॥ ४ ॥

देवा गंधवरक्कसा, असुरा नूमिचरा सिरिसिवा ॥ राया नरसेछिमाहणा, गणा ते विचयंति डुक्किया ॥५॥ कामेहिंय संथवेहिय गिद्धा, कम्मसहा कालेण जंतवो॥ताले जह बंधणच्चुए,एवं आउक्कयंमि तुट्टती ॥६॥

अर्थ—हवे सर्व स्थाननुं अनित्यपणुं देखाडेछे. देवा के० देवता ते ज्योतिषि सौधर्मादिक तथा गंधवरक्कसा के० गांधर्व राक्षस एटले व्यंतरदेवो कह्या, तथा असुरा के० दश प्रकारना नुवनपति तथा नूमिचरा के० नूमिचरादिक ते मनुष्यादिक जाणवा. अने सिरिसिवा के० सरीसृप एटले सर्पादिक तिर्यंच जाणवा; तथा राया के० राजा चक्रवर्त्यादिक अने नर के० सामान्य मनुष्य, सेछिके० श्रेष्ठि ते नगरमांहे मोहोटा, माहणा के० ब्राह्मण, गणा तेविचयंति डुक्किया के० एटला सर्व पोतपोतानां स्थानकने पोते डुखिया थया थका ठांमेछे एटले सर्व प्राणीमात्रने अंतकाले डुःख उपजेछे इत्यर्थः ॥५॥ वली तेहिज नाव कहेछे. कामेहिंयके० कामते विषयादिक नोग अने संथवेहिय के० संस्तवते मातापितादिक तथा स्वसुर वर्गादिक तेनो परिचय, तेणेकरी गिद्धाके० आसक्त थतो कम्मसहाकालेण के० काले कर्मविपाके एटले नोगववाने प्रस्तावे जंतवो के० जीव कर्मनो सहन करनार थाय, एटले विषयासक्त मनुष्यने आगमिक काले डुःखज थाय, परंतु ते जीवने काम, नोग तथा स्वजन ए सर्व, डुःख थकी राखनार नथी. जह के० जेम ताले के० तालवृक्षनुं फल ते बंधणच्चुए के० बीट थकी

तूटे तेवारे अवश्य पडे, एवं के० एम आउक्खयंमि तुट्टती के० जीव, जे छे ते आयुष्य ना क्षय थकी जेवारे विनाश पामे तेवारे तेने कोइ जीवाडी शके नहीं. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–देवेति । देवाज्योतिष्कसौधर्माद्याः गंधर्वराक्षसयोरुपलक्षणार्थत्वादष्टप्रकाराव्यंतराः । असुरा दशधा नवनपतयः । येचान्ये नूमिचराः, सरीसृपास्तिर्यंचः । राजानश्चक्रिहरिप्रमुखाः । नराः सामान्यमनुष्याः । श्रेष्ठिनः पुरमहत्तरा ब्राह्मणाश्च । एते सर्वेपि स्वस्थानानि डुःखिताः संतस्त्यजंते । सर्वेषां मरणं डुःखदायीति ॥५॥ (कामेहिंति) कामैरिब्रामदनरूपैः संस्तवैः पूर्वापरनूतैर्गृद्धाआसक्ताः कर्मविपाकसहिष्णवः कालेन जंतवः स्युः । नोगेब्रोर्विषयासेवने क्लेशएवेत्यर्थः । कामनोगैर्न त्राणमस्तीत्याह (तालेत्ति) तालफलं यथा बंधनात् वृंतात् च्युतमत्राणं पतति एवं जंतुरपि स्वायुःक्षये त्रुटयति च्यवते ॥६॥

॥ टीका–अधुना सर्वस्थानाऽनित्यतां दर्शयितुमाह (देवाइत्यादि) देवाज्योतिष्कसौधर्माद्याः, गंधर्वराक्षसयोरुपलक्षणत्वादष्टप्रकाराव्यंतरागृह्यंते । तथा असुरादशप्रकारानवनपतयः, ये चाऽन्ये नूमिचराः सरीसृपाद्यास्तिर्यंचः, तथा राजानश्चक्रवर्तिनोबलदेववासुदेवप्रनृतयः । तथा नराः सामान्यमनुष्याः । श्रेष्ठिनः पुरमहत्तराब्राह्मणाश्चैते सर्वेऽपि स्वकीयानि स्थानानि डुःखिताः संतस्त्यजंति । यतः सर्वेषामपि प्राणिनां प्राणपरित्यागे महद्दुःखं समुत्पद्यतइति ॥ ५ ॥ किंच (कामेहिंत्यादि) कामैरिब्रामदनरूपैस्तथा संस्तवैः पूर्वापरनूतैर्गृद्धा अध्युपपन्नाः संतः (कम्मसहित्ति) कर्मविपाकसहिष्णवः कालेन कर्मविपाककालेन जंतवः प्राणिनोनवंति । इदमुक्तं नवति । नोगेप्सोर्विषयाऽसेवनेन तडुपशममिब्रतइहामुत्र क्लेशएव केवलं न पुनरुपशमावाप्तिः । तथाहि । उपनोगोपायपरो, वांबति यः शमयितुं विषयतृष्णां । धावत्याऽक्रमितुमसौ पुरो पराण्हे निजब्रायां । नच तस्य मुमूर्षोः कामैः संस्तवैश्च त्राणमस्तीति दर्शयति । यथातालफलं बंधनात् वृंतात् च्युतमत्राणमवश्यं पतति एवमसावपि स्वायुषःक्षये त्रुट्यति जीवितात् च्यवतइति ॥६॥

८ जे यावि बहुस्सुए सिया, धम्मिय माहणनिक्खुएसिया ॥ अनिणूमकडे
स्वयमेहिं मुच्छिए, तिव्वं से कम्मेहिं किच्चती ॥७॥ अह पास विवेगमुहिए, अवि
केनाऽस्स्टइह नासई धुवं ॥ णाहिसि आरं कउ परं वेहासे कम्मेहिं किच्चती ॥८॥

॥ टीका–तेबहुस्सुए के० जे कोइ बहुश्रुत एटले शास्त्रना पारंगामी सियाके०होय, धर्म प्रत्युद्यमं विधधार्मिक एटले धर्मना करनार होय तथा माहणनिक्खुएके० ब्राह्मण हितमलोहमहोमह,निक्षा अदनशील एवा सिया के० होय; तेपण अनिणूमके० माया

येकरी कडेहिं के० कीधां एवां जे कर्म तेने विषे मुछिए के० मूर्छित छतां तिवंसे के० तीव्र एटले आकरा एवा कम्मेहिं के० कर्म तेणेकरी किच्चती के० पीडाय; एटले सारो अथवा नरसो कोई पण जीव करेलां कर्मने नोगव्याविना बूटे नहीं. ॥ ७ ॥ हवे ज्ञान, दर्शन अने चारित्रविना अन्य कोइ मोक्षमार्ग नथी एवुं देखाडेछे. अहपास के० एवुं देखीने शिष्य प्रत्ये गुरु एम कहेछे के, कोइएक दर्शनी विवेक के० परिग्रहनो परित्याग करी उछिते के० उछ्यो अर्थात् प्रव्रज्याने विषे सावधान थयो; परंतु अवितिन्न के० सम्यक् परिज्ञानने अनावे तिन्न एटले संसारसमुड थकी तर्यो नहीं, एवो छतो वली इहनासइ के० एम नाषे के धुवं के० जे मोक्षनो मार्ग अथवा मोक्षनो उपाय ते अमाराज आचार थकीछे एम कहे. माटे हे शिष्य ! तेना मार्गे प्रपन्न छतो तुं णाहिसिके० क्यां थकी जाणीश ! आरं के० इहलोक अने वली कउके० क्यां थकी परं के० परलोकने जाणीश अथवा आरं एटले गृहस्थावास अने परं एटले प्रव्रज्या अथवा आरं एटले संसार अने परं एटले मोक्ष तेने केम जाणीश एटले इहलोक परलोक बन्ने थकी भ्रष्ट एवो थको वेहासे के० अंतराले एटले संसारमांहेज कम्मेहिं किच्चइ के० पोताना करेला जे कर्म तेणेकरी पीडातो जइश. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–(जेयाविति) येचापि बहुश्रुताः स्युर्येधार्मिकास्तथा ब्राह्मणास्तथा निक्षुकाः स्युः आनिमुख्येन (णूमंति) कर्म माया वा तत्कृतैरसदनुष्ठानैर्मूर्छितास्तीव्रमत्यर्थं । सेत्ति आर्षत्वाद्बहुवचनं ज्ञेयं । ते कर्मनिः कृत्यंते पीड्यंते ॥ ७ ॥ ज्ञानादिसाध्यएव मोक्षोन तीर्थिकोक्तइत्याह । (अहेति) अथाऽनंतरं त्वं पश्य विवेकं त्यागं परिग्रहस्य ज्ञानं वा संसारस्याश्रित्य उछ्रितः स्वक्रियोद्युक्तः सम्यक्ज्ञानानावादवितीर्णः संसाराब्धिमतीर्णः केवलं ध्रुवं मोक्षं तडपायं वा नाषतएव नतु विधत्ते ज्ञानानावादित्यर्थः । तन्मार्गप्रपन्नस्त्वमपि कथमारं इहनवं परं वा परनवं ज्ञास्यसि । एवं नूतश्चोनयभ्रष्टो (वेहासिन्ति) अंतराले कर्मनिः कृत्यते पीड्यते ॥ ८ ॥

॥ टीका–अपिच (जेयावीत्यादि) येचाऽपि बहुश्रुताः शास्त्रार्थपारगाः । तथा धार्मिकाधर्माचरणशीलाः । तथा ब्राह्मणाः । तथा निक्षुकानिक्षाटनशीलाः स्युर्नवेयुः । तेऽप्यानिमुख्येन (णूमंति) कर्म माया वा तत्कृतैरसदनुष्ठानैर्मूर्छितागृद्धास्तीव्रमत्यर्थं । अत्र च बांदसत्वाद्बहुवचनं इष्टव्यं । एवंनूताः कर्मनिरसद्वेद्यादिनिः कृत्यंते छिद्यंते पीड्यंतइतियावत् ॥ ७ ॥ सांप्रतं ज्ञानदर्शनचारित्रमंतरेण नाऽपरोमोक्षमार्गोऽस्तीति त्रिकालविषयत्वात् सूत्रस्याऽगामितीर्थिकधर्मप्रतिषेधार्थमाह (अहेत्यादि) अथेत्यधिकारांतरे बन्दादेशो एकादेशइति । अथेत्यनंतरं एतच्च पश्य । कस्तीर्थिकोविवेकं

परित्यागं परिग्रहस्य परिज्ञानं वा संसारस्याऽऽश्रित्योऽष्ठितः प्रव्रज्योद्यानेन । सच स
म्यक् परिज्ञानाभावादवितीर्णः संसारसमुद्रं तितीर्षुः केवलमिह संसारे प्रस्तावे व
शाश्वतत्वात् ध्रुवोमोक्षस्तं तदुपायं वा संयमं जाषतएव न पुनर्विधत्ते तत्परिज्ञान
भावादितिभावः । तन्मार्गे प्रपन्नस्त्वमपि कथं ज्ञास्यसि । आरमिहभवं कुतोवा परं प
लोकं । यदि वा आरमिति गृहस्थत्वं परमिति प्रव्रज्यापर्यायं । अथवा आरमिति संस
रं परमिति मोक्षं एवंभूतश्चाऽन्योऽप्युभयभ्रष्टः । (वेहासिति) अंतराले उभयाभावत
स्वकृतैः कर्मभिः कृत्यते पीड्यतइति ॥ ८ ॥

जइ वि य णिगणे किसे चरे, जइविय भुंजिय मासमंतसो ॥ जे
इह मायावि मिज्जई, आगंतागब्भायणंतसो ॥ ए ॥ पुरिसो रम
पावकम्मुणा, पलियंतं मणुयाणजीवियं ॥ सन्ना इह काममु
छिया, मोहं जंति नरा असंवुमा नरा ॥ १० ॥

अर्थ—हवे शिष्य कहेछे के, हे भगवन्? केटलाएक दर्शनी निपरिगृही तथा तपस्य
ना करनार देखायछे, तो तेने मोक्ष केम नहोय? हवे गुरु कहेछे के, जइविय के० यद्य
पि ते परतीर्थिक तापसादिक अथवा आज्ञा थकी भ्रष्टस्वयूथिक णिगणे के० नग्न
सर्व बाह्य परिग्रह रहित, किसे के० कृश दुर्बल कीधुंछे शरीर जेमने एवा थता च
के० पोतपोतानी प्रव्रज्या आदरीने विचरेछे. वली जइविय के० यद्यपि भुंजिय मासम
तसोके० मासमास खमण करी मासने अंते जमे तथापि जेइह के० जे आ संसार
विषे मायावि के० मायासहित मिज्जइ के० संयोगकरे. उपलक्षणथी कषायादिके कर
युक्त होय ते आगंतागब्भायणंतसो के० आगमिक काले अनंता गर्भादिक दुःख पामे, ए
टले अनंतो संसार परिभ्रमण करे. ॥ ए ॥ हवे जे कारणे मिथ्यादृष्टिने उपदेशे घण
कायक्लेशे, पण मुक्ति नथी तेकारणे निरते मार्गे रहेवुं ए भाव कहेछे. पुरिसो के० अ
हो पुरुषो? तमे पावकम्मुणा के० पापकर्म थकी उपरम के० निवर्त्तो. केमके पलियंत
मणुयाणजीवियं के० मनुष्यनुं जीवितव्य ते पल्योपमांतछे, एटले संयमरहित जीवनुं ज
घणुंज आयुष्य होय तो त्रण पल्योपम होय अने संयमसहित तो एक पल्योपमनं
अंदर जाणवुं एटले आठ वर्षे उणी एक पूर्वकोडी एटलुंज मनुष्यनुं आयुष्यछे तेतं
गयुंज जाणजे एवुं जाणीने जेटलो काल जीविए तेटलो काल सम्यक् अनुष्ठाने करी
सफल करिए वली जे नरा के० मनुष्य सन्नाइह के० भोग, स्नेह पंकनेविषे खुता
अथवा काममुछिया के० कामभोगने विषे मूर्छित थता एवाजे मनुष्य असंवुमा नराके० ते

पुरुष असंवरी बतां मोहंजंति के०मोहने विषे पोहोचे एटले हिताहित न जाणे.॥१०॥

॥ दीपिका—जइवीति । यद्यपि कश्चित्तापसादिर्नग्नः कृशश्च चरेत् । यद्यपि षष्ठाष्टमादिकुर्वन् यावदंतशोमासं स्थित्वा भुंक्ते तथापि योमायावी उपलक्षणात्कषाययुक्तोमीयते सगर्भाय गर्भार्थमनंतशोऽनंतवारं आगंता यास्यति । अनंतकालं संसारे भ्रमिष्यतीति भावः ॥ ए ॥ पुरीसोति । हे पुरुष त्वं पापकर्मणः सकाशात् उपरम निवर्तस्व । यतोमनुजानां जीवितं सुबह्वपि त्रिपल्योपमांतं संयमजीवितं वा पल्योपमस्यांतर्मध्ये पूर्वकोटिमितमित्यर्थः । अथवा परिसमंतादंतो यस्य तत् पर्यंतं सांतमित्यर्थः । ये पुनः कामेषु इह्वामदनादिषु मूर्छिताः सन्नामग्नाइह संसारे ते मोहं यांति ते मोहनाय कर्म बध्नंति असंवृताः संवररहितानराः ॥ १० ॥

॥ टीका—ननु च तीर्थिकाअपि केचन निष्परिग्रहास्तथा तपसा निष्टप्तदेहाश्च तत्कथं तेषां नो मोक्षावाप्तिरित्येतदाशंक्याह । (जइविइत्यादि) यद्यपि तीर्थिकः कश्चित्तापसादिस्त्यक्तबाह्यगृहवासादिपरिग्रहत्वात् निष्किंचनतया नग्नस्त्वक्त्राणाभावाच्च कृशश्चरेत् स्वकीयप्रव्रज्यानुष्ठानं कुर्यात् । यद्यपिच षष्ठाष्टमदशमद्वादशादितपोविशेषं विधत्ते यावदंतशो मासं स्थित्वा भुंक्ते तथापि आंतरकषायाऽपरित्यागान्न मुच्यते इतिदर्शयति । यस्तीर्थिकइह मायादिना मीयते उपलक्षणार्थत्वात् कषायैर्युक्तइत्येवं परिछिद्यते । असौ गर्भाय गर्भार्थमासमंतात् गंता यास्यत्यनंतशोनिरवधिकं कालमिति । एतडुक्तं भवति । अकिंचनोऽपि तपोनिष्टप्तदेहोऽपि कषायाऽपरित्यागान्नरकादिस्थानात् तिर्यगादिस्थानं गर्भाज्जन्मनंतमपि कालमग्निशर्मवत् संसारे पर्यटतीति ॥ ए ॥ यतोमिथ्यादृष्ट्युपदिष्टतपसाऽपि न डुर्गतिमार्गनिरोधोऽतोमडुक्तएव मार्गे स्थेयमेतज्जनमुपदेशं दातुमाह । (पुरिसोइत्यादि) हे पुरुष येन पापेन कर्मणा असदनुष्ठानरूपेण त्वमुपलक्षितस्तत्राऽसकृत् प्रवृत्तत्वात् तस्माडुपरम निवर्त्तस्व । यतः पुरुषाणां जीवितं सुबह्वपि त्रिपल्योपमांतं संयमजीवितं वा पल्योपमस्यांऽतर्मध्ये वर्त्तते तदऽप्यूनां पूर्वकोटिमिति यावत् । अथवा परिसमंतात्अंतोऽस्येतिपर्यंतं सांतमित्यर्थः । तच्चैवं तद्गतमेवाऽवगंतव्यं । तदेवं मनुष्याणां स्तोकं जीवितमवगम्य यावत्तन्नपर्येति तावत्धर्मानुष्ठनेन सफलं कर्त्तव्यं । ये पुनर्भोगस्नेहपंके अवसन्नामग्नाइह मनुष्यभवे संसारे वा कामेष्विह्वामदनरूपेषु मूर्छिताअध्युपपन्नास्ते नरा मोहं यांति हिताहितप्राप्तिपरिहारे मुह्यंति मोहनीयं वा कर्मोपचिन्वंतीति संभाव्यते । एतदसंवृतानां हिंसादिस्थानेभ्योनिवृत्तानामसंयतेंद्रियाणां चेति ॥ १० ॥

जययं विहराहि जोगवं, अणुपाणा पंथा डुरुत्तरा ॥ अणुसासणमेव प क्कमे, वीरेहिं समं पवेइयं ॥ ११ ॥ विरया वीरा समुठिया कोहकायरियाइ पीसणा॥पाणेण हणंति सव्वसो; पावाउविरिया अनिनिवुमा ॥१२॥

अर्थ–हवे जो एमछे तो शुं करवुं ते कहेछे. जययं के० आयुष्य तुछ जाणी अने विषयने क्लेशनुं कारण जाणी, गृहपाशबंध छेदीने चारित्रने विषे यत्न करतो विहराहि के० विचरे ते केहेवो छतो विचरे? तोके, जोगवं के० समिति अने गुप्तिसहित थको विचरे; केमके अणुपाणापंथाके०सूक्ष्मजीव जे पंथ एटले मार्गने विषे छे, ते पंथ ईर्यासमितिविना डुरुत्तराके० डुस्तरछे एटले जतां दोहिलोछे, एरीते बीजी समितिउ पण फलाववी तो एम सदा सावधान पणे हिंमे.अणुसासणं के० जेम श्रीवीतरागदेवे सूत्रमध्ये शीखामण कहीछे. एवके० तेम सूत्रने अनुसारे पक्कमेके० चाले, एम वीरेहिं के० श्रीवीर तीर्थंकरे समंके० साचु पवेदियं के० कह्युंछे. ॥ ११ ॥ ते श्रीवीर केवाछे, ते कहेछे. जे हिंसादिक पापथकी विरियाके० विरत एटले निवर्त्त्या ते वीरा के० वीरकर्मना छेदनारा तथा समुठियाके० सम्यक् आचारने विषे सावधान थया एवा छता कोह के० क्रोध अने कायरियाइके० कातरी एटले माया तथा आदि शब्द थकी मान अने लोभ पण जाणी लेवां तेना पीसणा के० पीसनार एटले मर्दन करनार ते वीर सव्वसो के० सर्वथापि पाणेणहणंति के० प्राण हणे नहीं. पावाउ के० पाप जे सावद्य अनुष्ठान ते थकी विरिया के० विरत तथा अनिनिवुमा के० क्रोधादिकना उपशमे करी शीतल थयाछे एवा श्रीवीर जाणवा. ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–जययमिति। यतमानोयत्नंकुर्वन् विहर उद्युक्तविहारी नव योगवान् संयमयोगवान । अणवः सूक्ष्माः प्राणाः प्राणिनोयेषु ते अणुप्राणाः पंथानोऽनुपयोगैर्डुरुत्तराडुर्गमाः । ईर्यादिसमितिषु उपयोगवताजाव्यमित्यर्थः। अनुशासनमेव सूत्रानुसारेणैव संयमे प्रक्रमेत् चरेत् । एवं वीरैरर्हद्भिः सम्यक् प्रवेदितं कथितं ॥ ११ ॥ विरयाइति । हिंसादेर्विरताः समुछिताः सम्यगारंनत्यागेनोछिताः क्रोधकातरिकादिपीषणाः । क्रोधग्रहणान्मानोपि ग्राह्यः । कातरिका माया। मायाग्रहणाच्च लोनोगृहीतः। तेषां पीषणाविनाशकाः एवंविधावीराः स्युः । तथा प्राणान् सर्वशोमनोवाक्कायैर्न घ्नंति । पापात् सावद्यव्यापारात् विरताअनिनिर्वृताः क्रोधाद्युपशमेन शांताः स्युः ॥ १२ ॥

॥ टीका–एवं च स्थिते यद्विधेयं तद्दर्शयितुमाह । (जययमित्यादि) स्वल्पं जीवितमवगम्य विषयांश्च क्लेशप्रायाऽनवबुध्य छित्वा गृहपाशबंधनं यतमानोयत्नं कुर्वन् प्राणि

नामनुपरोधेन विहरयुक्तविहारी नव । एतदेव दर्शयति । योगवानिति ॥ संयमयोगवान् गुप्तः समितिगुप्तइत्यर्थः । किमित्येवं । यतोऽणवः सूक्ष्माः प्राणाः प्राणिनोयेषु ते । तथा चैवंनूताः पंथानोऽनुपयुक्तैर्जीवानुपमर्देन डुस्तराडुर्गमाइत्यनेन ईर्यासमितिरुपक्षिप्ता । अस्याश्चोऽपलक्षणार्थत्वात् अन्यास्वऽपि समितिषु सततोऽपयुक्तेन नवितव्यं । अपिच अनुशासनमेव यथागममेव सूत्राऽनुसारेण संयमं प्रक्रमेत् । एतच्च सर्वैरेव वीरैरर्हद्भिः सम्यक् प्रवेदितं प्रकर्षेणाऽख्यातमिति ॥ ११ ॥ अथ कएते वीराइत्याह । (विरयेत्यादि) हिंसाऽनृतादिपापेन्योये विरताः । विशेषेण कर्म प्रेरयंतीति वीराः । सम्यगारंनपरित्यागेनोब्रिताः समुब्रिताः ते एवंनूताश्च क्रोधकातरिकादिपीपणाः। तत्र क्रोधग्रहणान्मानोगृहीतः । कातरीका माया तद्ग्रहणाल्लोनोगृहीतः । आदिग्रहणात् शेषमोहनीयपरिग्रहः तत्पीषणास्तदपनेतारः तथा प्राणिनोजीवान् सूक्ष्मतरनेदनिन्नान् सर्वशोमनोवाक्कायकर्मन्निर्नघ्नंति नव्यापदयंति । पापाच्च सर्वतः सावद्यानुष्ठानरूपाद्विरताः निवृत्तास्तश्चाऽन्निनिवृत्ताःक्रोधाद्युपशमेनशांतीनूताः। यदि वाऽन्निनिवृत्ताःमुक्ताइव इष्टव्याइति॥१२

णवि ता अहमेव लुप्पए, लुप्पंति लोअंसि पाणिणो ॥ एवं स
हिएहिं पासए, अणिहेसे पुट्ठे अहियासए ॥ १३ ॥ धुणिया
कुलियं चलेववं, किसए देहमणासणा इह ॥ अविहिंसा मेव
पव्वए, अणुधम्मो मुणिणापवेदितो ॥ १४ ॥

अर्थ—वली उपदेशांतर कहेछे. ए नावनाये परिसह अने उपसर्ग सहन करवा ते कहेछे. ण के० नथी अपि के० निश्चे ता के० तेप्रत्ये ए शीत, उस्न, क्षुधातृषादिक परिसह तेणेकरी अहमेवलुप्पएके० नथी पीडातो शुं? किंतु लुप्पंतिलोअ सिंपाणिणोके० लोकने विषे घणा तीर्यंच तथा मनुष्यादि प्राणीउ जे छे, ते शीततापादिक कष्टे करीपीडायछे, परंतु तेने सम्यक् विवेकने अन्नावे निर्जरा कांइ पण थती नथीः तेमाटे एवं के० ए प्रकारे सहिएहिं के० ज्ञान, दर्शन अने चारित्रे करीसहित छता जे शीततापादिक पूर्वे कह्या तेने पासए के० आलोचे तथा अणिहे के० स्नेहरहित अथवा क्रोधादिकेरहित छतो सेपुट्ठेके० ते परिसहे पीड्यो थको तेनी वेदना सम्यक् प्रकारे अहियासे. ॥१३॥ वली तेहिज कहेछे. धुणिया के०दूरकरी कुलियं चलेववं के० लेपसहित नींतने एटले शुं कह्युं के, जेम गोबरथकी लींपेली नींत ते अनुक्रमें तेनो लेप गये थके डुर्बल थाय. ए दृष्टांते करी मणासणाइहिंके०अनशनादिक तपे करीने किसएदेहके०देहने कृश करे तथा वली अविहिंसा मेवपव्वएके०एक अहिंसाज आदरे. अणुधम्मो मुणिणापवेदितो के०ए अहिंसादिलक्षण जे धर्मछे,ते जीवने अनुकूल एटले हितकारी सर्वज्ञेकह्योछे.॥१४॥

॥ दीपिका—एवितेति। परीषहैःस्पृष्टोपि तान् अधिसहेत क्षमेत। पीडितएवं चिंतयेत् नतावदहमेव परीषहोपसर्गैर्लुप्ये पीडये किंतु अन्येपि प्राणिनस्तिर्यङ्मनुष्याः पीड्यंते लोके एवं सहितोज्ञानादिभिः स्वहितआत्महितोवा पश्येत् निर्मलबुध्या विचारयेत् पूर्वोक्तं। अनीहः क्रोधादिभिरपीडितः संयमेपरीषहसहनेवा निगूहीतवीर्योवा सन् परिषहैः स्पृष्टोपि तान् अधिसहेत क्षमेत ॥ १३ ॥ धुणियाइति। धूत्वा विधूय कुड्यं कुड्यं भित्तिमिवेत्यर्थः। लेपवत् सलेपं। यथा कुड्यं गोमयादिलेपेन सलेपं क्रमेण लेपाप गमतः कृशं स्यात् एवमशनादिभिर्देहं कर्शयेत्। देहकृशत्वाच्च कर्मकृशत्वं स्यादितिभा वः। तथा विविधाहिंसाविहिंसा न विहिंसा अविहिंसा तां प्रव्रजेत प्रकर्षेण व्रजेत। अ हिंसा प्रधानः स्यादित्यर्थः। अनुगतोमोक्षं प्रति अनुकूलोधर्मोऽनुधर्मोऽयं मुनिना सर्व ज्ञेन प्रवेदितः कथितः ॥ १४ ॥

॥ टीका—पुनरप्युपदेशांतरमाह। (एविताइत्यादि परीषहोपसर्गाएतद्भावनापरेण सोढव्याः नाहमेवैकस्तावदिह शीतोष्णादिदुःखविशेषैर्लुप्ये पीड्ये। अपित्वऽन्येऽपि प्राणि नस्तथाविधा स्तिर्यङ्मनुष्याअस्मिंल्लोके लुप्यंते अतिदुःसहैर्दुःखैः परिताप्यंते तेषां च सम्यग्विवेकाभावान्ननिर्जराख्यफलमस्ति। यतः। क्षांतं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न संतोषतः सोढा दुःसहतापशीतपवनक्लेशान तप्तं तपः ॥ ध्यातं चित्तमहर्निशं नियमि तं द्वंद्वैर्न तत्त्वं परं तत्तत्कर्मकृतं सुखार्थिभिरहो तैस्तैः फलैर्वंचिताः ॥१॥ तदेवं क्लेशादिस हनं सद्विवेकिनां संयमाभ्युपगमे सति गुणाय भवति। तथाहि। कार्श्यं क्षुत्प्रभवं कदन्न मशनं शीतोष्णयोः पात्रता पारुष्यं च शिरोरुहेषु शयनं मह्यास्तले केवले। एतान्येव गृ हे वहंत्यवनतिं तान्युन्नतिं संयमे दोषाश्चापि गुणाभवंति हि नृणां योग्ये पदे योजि ताः। १। एवं सहितो ज्ञानादिभिः स्वहितोवा आत्महितः सन् पश्येत् कुशाग्रीयया बुध्या पर्यालोचयेदनंतरोदितं। तथा निहन्यतइति निहः न निहोऽनिहः क्रोधादिभि रपीडितः सन समहासत्वः परीषहैः स्पृष्टोऽपि तानाधिसहेत मनःपीडां न विदध्यादिति। यदिवाऽनिहइति तपः संयमपरीषहने वा निगूहितबलवीर्यः। शेषंपूर्ववदिति ॥ १३ ॥ अपिच (धुणियाइत्यादि)। धूत्वा विधूय (कुलियंति) कटकृतं कुड्यं। लेपवत्सलेपं। अयमत्रार्थः। यथाकुड्यं गोमयादिलेपेन सलेपं जायस्थमानं लेपापगमात् कृशं भवति एवं अनशनादिभिर्देहं कर्शयेत् अपचितमांसशोणितं विदध्यात्। तदपचयाच्च कर्मणोऽ पचयोभवतीति भावः। तथा विविधाहिंसा विहिंसा न विहिंसा अविहिंसा तामेव प्रकर्षे ण व्रजेत् अहिंसाप्रधानोभवेदित्यर्थः। अनुगतोमोक्षं प्रत्यनुकूलो धर्मोऽनुधर्मः असावहिं सालक्षणः परीषहोपसर्गसहनलक्षणश्च धर्मोमुनिना सर्वज्ञेन प्रवेदितःकथितइति ॥१४॥

सउणी जह पंसुगुंडिया, विहुणिय धंसयई सियं रयं ॥ एवं दविनेवहाणवं, कम्मं खवइ तवस्सिमाहणे ॥ १५ ॥ नुहियमणगारमेसणं, समणं ठाण ठिअं तवस्सिणं ॥ महर वुड्ढाय पत्नए, अवि सुस्से ण य तं लनेजाणो ॥१६

अर्थ–हवे कहेछे के जह के० जेम सउणी के० पक्षिणी ते पंसुगुडिया के० रजे करी खरडी बती विहुणिय के० अंग धुणावीने धंसयईसियंरयं के० ते बधी रज खंखेरीने दूर करे. एवं के० एरीते दविउ के० मोक्ष जवाने योग्य नव्यजीव ते वहाणवं के० उप धान वंत बतो उपधान एटले तपविशेष तेनो करनार एवो तवस्सिमाहणे के० तपस्वी माहण महणो एवोजेनो उपदेश छे,तेने प्राकृत शैली माटे माहण कहिए; एटले तपस्वी ब्रह्मचर्यनो पालनार ते कम्मंखवइ के० कर्म खपावीने पोता थकी वेगलाकरे. ॥१५॥ हवे अनुकूल उपसर्ग कहेछे. अणगारं के० साधु ते संयमने विषे उहियं के० प्रवर्त्यो तथा एसणंके० एषणानो पालनार तथा समणंके० श्रमण अने तवस्सिणं के० तपस्वी ठाणठिअंके० स्थान स्थित उत्तरोत्तर संयमने स्थानके प्रवर्त्यो ते तवस्सिणंके० तपस्वी एवा साधुने कदाचित् महरा के० बालक पुत्र पौत्रादिक तथा वुड्ढाके० पिता माता दिक तेणे पत्नएके० प्रार्थ्यो एटले प्रार्थना करी कहेके, शुं तमे अमारुं प्रतिपालन कर वानुं टालोछो. अमारुं पालण पोषण करनार तमारा विना बीजो कोइ नथी. इत्यादिक व चन कहेतां ते अवि के० अपि सुस्से के० श्रम पामे; परंतु तंजणा के० ते जन जे स्व जनादिकते परमार्थना जाण एवा साधुने णयलनेतुके०पोताने वश करी शके नहीं.॥१६॥

॥ दीपिका–सउणीति । शकुनिः पक्षिणी यथा पांसुना रेणुना गुंठिता व्याप्ता सती अं गं विधूय कंपयित्वा सितं बद्धं रजोध्वंसयत्यपनयति एवं ड्व्योनव्योमुक्तिगमनयोग्य उपधानवान् तपोयुक्तः क्षपयति तपस्वी । मावधीरिति प्रवृत्तिर्यस्य सप्राकृतशैल्यामाहणः ॥१५॥ (उठियेति) डहराबालाः पुत्रादयोवृद्धाः पित्रादयः श्रमणं प्रार्थयेयुः । वयं त्वया पाल्यास्त्वंचास्माकं पाल्यइति । किंनूतं श्रमणं अनगारं गृहरहितं एषणां प्रति उत्थितमुद्य मवंतं स्थानस्थितं संयमस्थानस्थं तपस्विनं एवं नणंतस्ते जनाअपि शुष्येयुः श्रमं ग छेयुः न च तं साधुं लनेरन् नैवात्मवशं कुर्युरित्यर्थः ॥ १६ ॥

॥ टीका–किंच (सउणीत्यादि) शकुनिका पक्षिणी यथा पांसुना रजसा ऽवगुंठितासती अंगं विधूय कंपयित्वा तद्रजः सितमवबद्धंसत् ध्वंसयत्यपनयति । एवं ड्व्योनव्यो मुक्तिगमनयोग्योमोक्षंप्रत्युपसामीप्येन दधातीति उपधानमनशनादिकं तपः तदस्याऽस्ती त्युपधानवान् सचैवंनूतः कर्मज्ञानावरणादिकं क्षपयत्यपनयति । तपस्वी साधुः (माह

णत्ति) मावधीरिति प्रवृत्तिर्यस्य सप्राकृतशैल्या माहणेत्युच्यतइति ॥ १५ ॥ अनुकूलोप सर्गमाह । (उठियेत्यादि) अगारं गृहं तदस्य नास्तीत्यनागारस्तमेवं नूतं संयमोत्थाने नैषणां प्रत्युत्थितं प्रवृत्तं । श्राम्यतीतिश्रमणस्तं । तथास्थानस्थितमुत्तरोत्तरविशिष्टसंयम स्थानाध्यासिनं तपस्विनं विशिष्टतपोनिष्टप्तदेहं तमेवंनूतमपि कदाचित् महरा पुत्रनप्त्रा दयोवृद्धाः पितृमातुलादयः उन्निष्क्रामयितुं प्रार्थयेयुर्याचेरंस्तएवमूचुर्भवता वयंप्रतिपाल्या न त्वामंतरेणाऽस्माकं एकः प्रतिपाल्यएवं नणंतस्ते जनाअपि शुष्येयुः श्रमं गच्छेयुर्न च तं साधुं विदितपरमार्थं लनेरन् नैवाऽऽत्मसात्कुर्युर्नैवाऽऽत्मवशगं विदध्युरिति ॥ १६ ॥

जइ कालुणियाणि कासिया, जइ रोयंति य पुत्तकारणे ॥ दवि यं भिक्खुसमुठियं णो लप्नंति ण संठवित्तए ॥ १७ ॥ जइ विय कामेहिं लाविया, जइ णं जाहिण बंधिउ घरं ॥ जइ जीवितना वकंखए, णो लप्नंति णं संठवित्तए ॥ १८ ॥

अर्थ—जइके० यद्यपि ते माता पिता पुत्र कलत्रादिक जेठे ते साधुने सन्मुख आवीने कालुणियाणिकासियाके० अनेक करुणा प्रलाप वचन बोले. तथा जइके० यदि रोयं तियपुत्तकारणेके० पुत्रने निमित्ते रुदन करे. तोपण ते दवियंके० मुक्ति गमन योग्य निक्खुके० साधु रागद्वेषरहित एवो समुठियंके० सम्यक् प्रकारे संयमने विषे उठ्यो ठे, सावधान थयोठे, एवा साधुने णोलप्नंतिके०क्षोनावी न शके. णसंठवित्तएके०प्रव्रज्या मूकावी गृहस्थावासने विषे स्थापि नशके. ॥ १७ ॥ जइवियकामेहिंलावियाके०यद्यपि ते पोताना सज्जन ते संयम पालता साधुने कामनोगे करी लोनावे ए अनुकूल उपस र्ग अने जइणंजाहिणबंधिउघरं के०अथवा जो तेने बांधीने घेर लेई जाय ए प्रतिकूल उपसर्ग ठे. तो एवा अनुकूल अने प्रतिकूल उपसर्गे पीड्यो थको पण साधु जई के० यदि जीवितंनावकंखए के० असंयमे जीवितव्य न वांठे एटले मरण कबुल करे. पण असंयमे जीवितव्य न वांठे तो तेने णोलप्नंति णसंठवित्तए के० तेना स्वजन ते पोताने वशकरी नशके अर्थात् गृहवासने विषे स्थापी नशके ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—जईति । यद्यपि ते मातापित्रादयः कारुणिकानि विलापवचनानि कुर्युः । तथा यदि रुदंति पुत्रकारणात् सुतनिमित्तं । एवं रुदंतोयदि नणंति निरक्तुं । किंनूतं द्रव्यं मुक्ति योग्यत्वात् द्रव्यनूतं संयमे समुत्थितमुद्यतं तथापि तं साधुं न लप्स्यंते न शक्नुवंति संयमा च्चालयितुं तथा न गृहस्थत्वे संस्थापयितुं॥१७॥ (जईति) यद्यपि ते पित्रादयस्तं साधुं कामैरिछामदनैर्लावयंति उपनिमंत्रयेयुः । तथा यदि णंवाक्यालंकारे बध्वा गृहं नयंति।

एवमनुकूलप्रतिकूलोपसर्गैरपीडितोपि साधुर्यदि जीवितं नाभिकांक्षयेत् यदि जीवितं न वांछेत् असंयमजीवितं वा नाकांक्षेत् । तदा ते निजास्तं साधुं न लभंते न प्राप्नुवंति स्वव शेकर्तुं (नसंठवित्तएत्ति) नापि गृहस्थत्वे संस्थापयितुमलं ॥ १७ ॥

॥ टीका-किंच (जईत्यादि) यद्यपि ते मातापितृपुत्रकलत्रादयस्तदंतिके समेत्य करुणा प्रधानानि विलापप्रायाणि वचांस्यऽनुष्ठानानि वा कुर्युः। तथाहि । णाहपियकंतसामिय, अइवल्लहदुल्लहोसि नवणंमि ॥ तुहविरहम्मियनिक्किवसुष्पंसव्वंपिपडिहाइ ॥१॥ सेणीगा मोगोवी,गणोवतंज ब्बहोसिसरणिहिंतो ॥ दिप्पइसिरिएसुपुरिसाकिंपुणनिययंघरद्दारं ॥ २ ॥ तथा यदि (रोयंतियत्ति) रुदंति पुत्रकारणं सुतनिमित्तं कुलवर्धनमेकं सुतमुत्पाद्य पुनरेवं क र्तुमर्हसीति ।एवं रुदंतोयदि भणंति तं भिक्षुं रागद्वेषरहितत्वान्मुक्तियोग्यत्वाद्वा द्रव्यभूतं सम्यक्संयमोत्थानेनोत्थितं तथाऽपि साधुं न लप्स्यंते न शक्नुवंति प्रव्रज्यातोभ्रंशयितुं भावाच्च्यावयितुं नाऽपि संस्थापयितुं गृहस्थभावेन द्रव्यालिंगाच्च्यावयितुमिति ॥ १७ ॥ अपिच (जइविइत्यादि) यद्यपि ते निजास्तं साधुं संयमोत्थानेनोत्थितं कामैरिच्छामदन रूपैर्लावयंति उपनिमंत्रयेयुरुपलोभयेयुरित्यर्थः । अनेनाऽनुकूलोऽपसर्गग्रहणं । तथा । यदि नयेयुर्बध्वा गृहं। णमिति वाक्यालंकारे। एवमनुकूलप्रतिकूलोपसर्गैरभिद्रुतोऽपि साधु र्यदि जीवितं नाभिकांक्षेत् यदि जीविताभिलाषी न भवेत् असंयमजीवितं वा नाऽभिनंदेत् ततस्ते निजास्तं साधुं (णो लभंतित्ति) न लभंते न प्राप्नुवंति आत्मसात्कर्तुं (णसंठ वित्तएति । नाऽपि गृहस्थभावेन संस्थापयितुमलमिति ॥ १७ ॥

सेहंतिय णं ममाइणो,माया पियाय सुयाय भारिया ॥ पोसाहि
ण पासउ तुमं, लोगपरं पि जहासि पोसणो ॥ १ए ॥ अन्ने अ
न्नेहिं मुच्छिया, मोहं जंति णरा असंवुडा ॥ विसमं विसमेहिं
गाहिया, ते पावेहिं पुणो पगब्भिया ॥ २० ॥

अर्थ-ते माता पितादिक ते चारित्रियाने अहीं णं इति वाक्यालंकारे, सेहंतिके० शी खवे ते स्वजन केवा छे? तोके, ममाइणोके० अत्यंत स्नेहेकरी ते मायाके० माता, पिया यके० पिता, सुयायके० सुत एटले गेकरा अने भारियाके० भार्या एवा सज्जन शुं शी खवे तेकहेछे. के अहो पुत्र? अमे ताहरे वियोगे अत्यंत दुखिआछेए, एवा अमने पासउके० देखीने तुमंके० तुं अमारु पोसाहिणके० पोषण कर;कारणके तुं अत्यंत सूक्ष्मदृष्टीवालोछो ते माटे तारा हृदयमां सारीपेठे विचारीने अमारुं पोषण कर,अन्यथातो लोगंके०इहलोक तथा परंके० परलोक थकी पण जहाहिके० भ्रष्ट थईश. तेमाटे दुःखी एवा मावित्रनुं पोसणो

के० पोषण करवुं ते महापुण्यनुं कामछे. ॥१९॥ हवे कोइएक कायर पुरुष ते मातापि तादिकना वचनथी जोनाय तेने विपाक कहेछे. अन्नेके० अनेरा कोइएक अल्प सत्वव त एवा चारित्रिया ते अन्नेहिंके० अन्य जे मातापितादिक तेने विषे मुच्छिया के० मोहे मूछर्यायका मोहंजंतिणराअसंवुडा के० असंवरी एटले संवरविना मोह पामे, एटले रूडाअनुष्टाननुं करवुं मूकी आपे अने मोहनेविषे पोहोचे तथा ते असंयतिनरोने विस मके० गृहस्थे विसमेहिंगाहियाके० असंयम तेने विषे पोहोचाडया छता पुणो के० वली ते पावेहिंके० पापेकरी पगप्भियाके० धृष्ट छतां पापकर्म करतां लज्जा पामे नहीं. ॥२०॥

॥ दीपिका–(सेहंतीति) ते मात्रापित्रादयः सुतानार्या च । णमिति व्याक्यालंकारे । तं साधुं (ममाइणोत्ति) ममायं साधुरिति स्नेहालवः शिक्षयंति । किमित्याह । पश्य नोऽस्मा न् दुःखितान् त्वं तु दर्शीकः सूक्ष्मदर्शी अतोऽस्मान् पोषय अन्यथा त्वया प्रव्रज्याग्रहणा दिह लोकस्त्यक्तः । असमत्परिपालनत्यागात्परलोकमपि त्वं जहासि त्यजसि ॥ १९ ॥ (अन्नेति) अन्ये केचनाऽल्पसत्वाअन्यैर्मातापित्रादिनिर्मूर्छिताअसंवृतानरामोहं यां ति सदनुष्ठाने मुह्यंति । तथा विषमैरसंयतैर्विषममसंयमं ग्राहिताअसंयमे प्रवर्तितास्ते पापैः कर्मनिः पुनः प्रगल्निताधृष्टतांगताः ॥ २० ॥

टीका–च (सेहंतियणमित्यादि) ते कदाचिन्मातापित्रादयस्तमनिनवप्रव्रजितं (सेहं तित्ति) शिक्षयंति । णमिति वाक्यालंकारे । (ममाऽइणोत्ति) । ममाऽयमित्येवं स्नेहा लवः । कथं शिक्षयंतीत्यतआह । पश्य नोऽस्मानत्यंतदुःखितांस्त्वदर्थं पोषकानावात्वं च यथावस्थितार्थपश्यक.सूक्ष्मदर्शी सश्रुतिकइत्यर्थः । अतोनोऽस्मान् पोषय प्रतिजागर णं कुरु अन्यथा प्रव्रज्याऽन्युपगमेनेह लोकस्त्यक्तोनवताऽस्मत्प्रतिपालनपरित्यागेन च प रलोकमपि त्वं त्यजसीति दुःखितनिजप्रतिपालनेन च पुण्यावाप्तिरेवेति । तथाहि । या ग तिः क्लेशदग्धानां गृहेषु गृहमेधिनां । बिभ्रतां पुत्रदारांस्तु तां गतिं व्रज पुत्रकेति ॥१९॥ एवं तैरुपसर्गिताः केचन कातराः कदाचित् यद्यत्कुर्युरित्याह । (अन्नेइत्यादि) अन्ये केच नाऽल्पसत्वाः अन्यैर्मातापित्रादिनिर्मूर्छिताअध्युपपन्नाः सम्यग्दर्शनादिव्यतिरेकेण सकल मपि शरीरादिकमन्यदित्यऽन्यग्रहणं । ते एवंनूताः असंवृतानराः संमोहं यांति सदनुष्ठा ने मुह्यंति तथा संसारगमनैकहेतुनूतत्वात् विषमोऽसंयमस्तं विषमैरसंयतैरुन्मार्गप्रवृत्ति त्वेनाऽपायानीरुनिः रागद्वेषैर्वा अनादिनवान्यस्ततया दुरुच्छेद्यत्वेन विषमैर्ग्राहिताअ संयमं प्रति वर्तिताः । ते चैवंनूता. पापैः कर्मनिः पुनरपि प्रवृत्ताः प्रगल्निताः धृष्टतां ग ताः पापकं कर्म कुर्वतोऽपि नलज्जंतइति ॥ २० ॥

तम्हा दविं इक्क पंमिए,पावाउ विरतेऽनिणिवुमे॥ पणए वीरे म हाविहिं, सिद्धिपहं णेआउयं धुवं ॥२१॥ वेयालियमग्गमागउ मणवयसाकायणसंवुमो ॥ विच्चा वित्तं च णायउ आरंनं च सुसंवु मे चरेज्जासित्तिबेमि ॥२२॥ इति वैतालीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः

अर्थ–जो तेने ए विपाक लागेतो शुं करवुं ? ते कहेडे. तम्हा के० ते कारणे दवि के० मुक्तिगमन योग्य नव्यजीव रागद्वेषरहित पंमिए के० पंमित विवेकयुक्त डतो संसारवास सेवतां महाक्लेशडे एवुं जाणी. इक्क के० तेना विपाकने चिंतवे एवो तो के० ते पावा के० पापकर्म थकी विरते के० निवर्त्ते अनिणिवुमे के० क्रोधादिकने परिहारे करी शीतल थाय तथा पणतके० महाविनयवंत अने वीरेके०कर्म विदारवाने सामर्थ्य वान महाविहिं के० जे महांत एटले जैनमार्गे प्रवर्त्ते ते मार्ग केवो डे? तो के, सिद्धिपहं के० सिद्धिपंथ जे मोक्षनो मार्ग तथा णेआउयं के० न्यायमार्ग तथा धुवं के० शाश्वतो एवो मार्ग जाणीने आदरवो ॥ २१ ॥ वली तेहज उपदेश उपसंहार करतो कहेडे. वेयालिय के० कर्मनो विदारनार एवो जे मग्गं के० मार्ग तेनेविषे आगउ के० आगत एटले आव्यो तथा वली मणवयसाकाएण संवुमो के० मन, वचन अने कायेकरी संवरनो पालनार विच्चाके० डांमीने; शुं डामीने? तोके, वित्तंचणायउके० धन, ज्ञाती, स्वजन तथा आरंनं के० आरंन एटलां वाना डांडीने सु के० सुष्टु एटले नली परे इंडीउने संवुमे के० संवरतो डतो चरे के० संयमने पाले तिबेमि के० एरीते पंचम गणधर श्रीसुधर्मास्वामी जंबुप्रत्ये कहेडे के, जेम श्रीमहावीरदेव पासेथी सांनल्युं तेम तुजने कहुंडुं. ॥ २२ ॥ इति श्रीवैतालियाऽध्ययनस्य प्रथमोद्देशः समाप्तः

॥ दीपिका–तम्हादिति । तस्मात् द्रव्यनूतोमुक्तियोग्यः पंडितः सन् ईक्षस्व विचारय । पापाद्विरतोऽनिनिर्वृतः क्रोधादित्यागात् शांतीनूतः तथा वीराः कर्मविदारणसमर्थामहावीथिं महामार्गं प्रणताः प्राप्तानान्ये । महावीथिंकिंनूतां सिद्धिप्रदं ज्ञानादिमार्गं प्रतिनेतारं प्रापकं ध्रुवमव्यनिचारं इतिज्ञात्वा संयमप्रागल्न्यैर्नन्नाव्यमिति ॥ २१ ॥ वैतालिकं । कर्मणां वैदारिकं विदारणसमर्थं मार्गमागतोमनोवाक्कायसंवृतस्त्यक्त्वा वित्तं धनं ज्ञातीन् स्वजनान् सावद्यारंनं च सुसंवृतइंडियैः संयमे चरेदिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ इति वैतालीयाख्यद्वितीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ टीका–यतएवं ततः किं कर्तव्यमित्याह । (तम्हाइत्यादि) यतोमातापित्रादिमूर्विताः पापेषु कर्मसु प्रगल्नानवंति तस्माद्द्रव्यनूतोनव्योमुक्तिगमनयोग्योरागद्वेष

रहितोवा सन्नीक्ष्य तद्विपाकं पर्यालोचय । पंडितः सद्विवेकयुक्तः पापात् कर्मणोसदनुष्ठानरूपात् विरतोनिवृत्तः क्रोधादिपरित्यागाच्छांतीभूतइत्यर्थः । तथा प्रणताः प्रव्हीभूतावीराः कर्मविदारणसमर्थामहावीथिं महामार्गं । तमेव विशिनष्टि । सिद्धिपथं ज्ञानादिमोक्षमार्गं तथा मोक्षंप्रति नेतारं प्रापकं ध्रुवमव्यभिचारिणमित्येतदवगम्य सएव मार्गोऽनुष्ठेयोवा सदनुष्ठानप्रगल्भैर्नाव्यमिति ॥ २१ ॥ पुनरप्युपदेशदानपूर्वकमुपसंहरन्नाह । (वेयालियमग्गइत्यादि) कर्मणां विदारणमार्गमागतोभूत्वा तं तथाभूतं मनोवाक्कायसंवृतः पुनस्त्यक्त्वा परित्यक्त्वा वित्तं द्रव्यं तथा ज्ञातींश्च स्वजनांश्च तथा सावद्यारंभं च सुष्टु संवृतइंद्रियैः संयमानुष्ठानं चरेदिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ इति वैतालीयद्वितीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥

अथ वेतालीयऽध्ययनस्य द्वितीयोद्देशकप्रारंभः ॥ प्रथमउद्देशामांबाह्य द्रव्य, स्वजन तथा आरंभनो परित्याग कह्यो, हवे बीजे उद्देशे माननो परित्याग कहेछे.

तय संच जहाइ सेरयं, इति संखाय मुणीण मज्जई॥गोयन्नतरेण माहणे, अह सेयकरी अनेसि इंखणी ॥१॥ जे परभवई परं जणं, संसारे परिवत्तई महं॥अड इंखणिया उ पाविया,इति संखाय मुणीण मज्जई॥ २ ॥

अर्थ—तयसंच के० ते जहा के० जेम सर्प्प पोतानी त्वचा जे कांचली ते परिहरवा योग्य जाणीने छांमे, सेरयं के० तेम ए साधुजे छे, ते रजनी पेरे अष्ट प्रकारनां कर्मने छांमे एतावता कषाय नकरे. केमके कषायने अभावे कर्म पोतानी मेले छंमाशे. इति संखायमुणी के० एवीरीते जाणीने चारित्रिउ णमज्जई के० मद एटले अहंकार करे नहीं; ते मदनुं कारण देखाडेछे. गोके० काश्यपादिक गोत्रकरी अथवा यन्नतरेण के० अनेरा कुलरूपादिक मद तेने पामीने उत्कर्ष मान नकरे एवो माहणे के० साधु ते जेम पोता थकी मद नकरे तेम अनेसिं के० अनेरानी पण अहसेयकरी के० अश्रेयकारणी एवी जे इंखणी के० निंदा तेपण नकरे. ॥१॥ हवे परनिंदाना दोष कहे छे. जे के० जे कोइ अविवेकी पुरुष परंजणं के० अनेरा लोकने परभवई के० पराभव करे एटले अवहेलना करे ते पुरुष संसारेपरिवत्तईमहं के० संसारमांहे अत्यंत परिभ्रमण करे. अड के० अथ जे कारणे इंखणिया के० परनिंदाते पावया के० एवी पापणीछेके जे स्वस्थानक थकी अधोस्थानके जीवने पाडे इतिसंखाय के० एवुं जाणीने एटले परनिंदाने दोषरूप जाणीने मुणी के० मुनिश्वर जे छे, ते जाति कुल श्रुत त

पादिकने विषे एमकांई के० मद न करे, एटले हुं उत्तम बुं. ए अमुक महारा थकी घणो हीन बे एवो पोतानो उत्कर्ष नकरे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका–अथ द्वितीयआरन्यते पूर्वोद्देशके श्रीकृषनस्वामिना स्वपुत्राणामुपदेशः कथितः इहापि सएवोच्यतइति तत्रेदं प्रथमसूत्रं (तयेत्ति)यथा सर्पः त्वचं स्वां जहाति एवमसौ साधुः रजःकर्म त्यजति एवं कषायानावे कर्मानावइति संख्याय ज्ञात्वा मुनिर्न माद्यति मदं न याति । गोत्रेण काश्यपादिना । अन्यतरग्रहणात् शेषमदग्रहणं । माहणेत्ति। साधुः । जेविउत्तिपाठे यो विद्वान् जातिकुलादिनिर्न माद्यतीति तथा । अश्रेयस्करी ईखिणी निंदा साप्यन्येषां न कार्येति ॥१॥ (जोपरिनवइत्ति) यः परिनवति अवज्ञाति परं जनं ससंसारे परिवर्तते च्रमति महदत्यर्थं । चिरं वा पाठः । अडुत्ति । अथशब्दोऽतइत्यर्थे। अतः ईखिणिआ परनिंदा । तुर्निश्चये । पापिकैव डुष्टैव । इहलोके निंदायां सुघरोदृष्टांतः । यथा एकोवानरःकश्चिद्वृक्षे वर्षासु ऊंऊावातैः पीडयमानः सुगृहीकया पक्षिण्या नणितः । यथा। वानरगापुरिसोसी,निरबयंवहसिबाहुदंडाई । जोपायवस्ससिहरे,नकरोसिकुडिंपडालिंवा ॥१॥ सचैवं पक्षिण्या नाषितोपि तूष्णीमास्ते तावत्पक्षिणी वानरं वारं वारं तद्वक्ति रुष्टेन वानरेण तं वृक्षमारुह्य तद्गृहं नग्नं सा दूरं नष्टा । वानरोवक्ति । यथा। नवसिमर्ममहत्तरिआनवसिममंसोहिआवनिद्दावा । सुघरेअडसुविघरा,जावइसिलोगतत्तासु ॥१॥ सुखमिदानीं तिष्ठेति सुगृहा डुःखिनी जाता परलोकपुरोहितस्यापि श्वादियोनिषूत्पत्तिरिति इति संख्याय ज्ञात्वा मुनिर्न माद्यति मदं न कुर्यात् यतोमदादेव परनिंदा स्यादिति ॥ २ ॥

॥ टीका–प्रथमानंतरं द्वितीयः समारन्यते । अस्य चाऽयमनिसंबंधः । इहानंतरोद्देशके नगवता स्वपुत्राणां धर्मदेशनानिहिता । तदिहापि सैवाऽध्ययनार्थाधिकारत्वात् अनिधीयते । सूत्रस्य सूत्रेण सह संबंधोऽयं । अनंतरोक्तसूत्रे बाह्यद्रव्यस्वजनारंनपरित्यागोऽनिहितस्तदिहाऽप्यांतरमानपरित्यागउद्देशार्थाधिकारः सूचितोऽनिधीयते । तदनेन संबंधेनाऽयातस्याऽस्योद्देशकस्यादिसूत्रं । (तयसंचयइत्यादि) । यथाह्युरगः स्वां त्वचं अवश्यं परित्यागार्हत्वात् जहाति परित्यजति । एवमसावपि साधुः रजइव रजोऽष्टप्रकारं कर्म तद् कषायित्वेन परित्यजतीति । एवं कषायानावो हि कर्मानावस्य कारणमिति संख्याय ज्ञात्वा मुनिः कालत्रयवेदी न माद्यति मदं न याति । मदकारणं दर्शयति । गोत्रेण काश्यपादिना । अन्यतरग्रहणात् शेषाणि मदस्थानानि गृह्यंतइति (माहणत्ति) साधुः । पाठांतरं वा (जेविउत्ति) विद्वान् विवेकी सजातिकुललानादिनिर्न माद्यतीति । न केवलं स्वतोमदोन विधेयोजुगुप्साऽप्यन्येषां न विधेयेति दर्शयति । अथाऽनंतरं । असौ अश्रेयस्करी पापकारिणी (ईखिणित्ति) निंदा अन्येषाऽमतोन कार्ये

ति । मुणीनमज्जइइत्यादिकस्य सूत्रावयवस्य सूत्रस्पर्शगाथाद्वयेन निर्युक्तिकृदाह । तवसंजमणाणेसु, विजईमाणोवज्जिउं महोसीहिं ॥ अत्रसमुक्करिसद्वंकिंपुणहीला अन्ने सिं ॥ २ ॥ जइतावनिज्जरमउ, पडिसिद्धोअठमाणमहणेहिं । अविसेसमयठाणा. परिहरयव्वापयत्तेण ॥ ३ ॥ (तवसंजमइत्यादि) । तपःसंयमज्ञानेष्वऽप्यात्मसमुत्कर्षणार्थ मुत्सेकार्थं यः प्रवृत्तोमानोयद्यसावपि तावद्विवर्जितस्त्यक्तोमहर्षिभिर्महामुनिभिः किं पुनर्निंदाऽन्येषां न त्याज्येति । यदि तावन्निर्जरामदोपि मोक्षैकगमनहेतुः प्रतिषिद्धो ऽष्टमानमथनैरर्हद्भिरवशेषाणि तु मदस्थानानि जात्यादीनि प्रयत्नेन सुतरां परिहर्त्तव्या नीति गाथाद्वयार्थः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ १ ॥ साप्रतं परनिंदादोषमधिकृत्याह । (जोप रिभवइत्यादि) । यः कश्चिदविवेकी परिभवत्यवज्ञयति । परं जनं अन्यं लोकमात्म व्यतिरिक्तं । सतत्कृतेन कर्मणा संसारे चतुर्गतिलक्षणे भवोदधावरघट्टघटीन्यायेन परि वर्त्तते भ्रमति महदत्यर्थं महांतं वा कालं ।कचिच्चिरमितिपाठः (अदुत्ति) अथशब्दोनिपा तः । निपातानामनेकार्थत्वात् अतइत्यस्याऽर्थे वर्तते । यतः परपरिभवादात्यंतिकः संसारः अतः (इंखिणिया)परनिंदा । तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् पापिकैव दोषवत्येव । अथवा स्वस्था नादधमस्थाने पातिका । तत्रेह जन्मनि । सुघरोदृष्टांतः । परलोकेऽपि पुरोहितस्याऽपि श्वादिषूत्पत्तिरिति इत्येवं संख्याय परनिंदां दोषवतीं ज्ञात्वा मुनिर्जात्यादिभिर्यथाऽहं विशि ष्टकुलोद्भवः श्रुतवान तपस्वी भवांस्तु मत्तोहीनइति न माद्यति ॥ २ ॥

जे यावि अणायगे सिया,जेविय पेसग पेसए सिया ॥ जे मोणप
यं उवठिए, णो लज्जे समयं सयायरे ॥३॥ समअन्नयरम्मि सं
जमे, संसुद्धे समणे परिव्वए ॥ जे आवकहा समाहिए, दविए
कालमकासि पंडिए ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे मदने अभावे जेकांइ कर्त्तव्यछे ते देखाडेछे. जेयाविके० जेकोइ अणायगेके० अनायक एटले नायक रहित किंतु स्वमेव नायक चक्रवर्त्यादिक सियाके० होय तथा जेवि यके० जेकोइ अनेरो पेसगके० कर्म करनो पेसएके० कर्मकर होय परंतु जे के० जे मोणपयं के० मौन पद एवुंजे चारित्र तेने विषे उवठिएके० उपस्थित एटले सावधान थयो तेपण णोलज्जेके० लज्जाने अण करतो थको एतावता अभिमान छांमीने सर्वक्रिया परस्पर वं दन प्रतिवंदनादिक करे. जो चक्रवर्त्ति चारित्र आदरे तो पण पूर्व दिक्षित पोताना कर्मकरना कर्म करने वांदे परंतु गर्व नकरे; लज्जा पामे नहीं. एरीते सयाके० सदाय समयं के० समभावने आयरेके० आदरे. संयमने विषे सावधान थाय ॥ ३ ॥ हवे क्यां रह्यो थको लज्जा तथा मद नकरे? ते देखाडेछे. समके० सामायकादिक अन्नयरम्मिसंजमे

के० अनेरा संयमनें विषे एटले सामायक छेदोपस्थापनीयादिक संयमने विषे प्रवर्त्ततो थको संके० सम्यक्प्रकारे सुद्धेके० शुद्ध समणेके० श्रमण जे तपस्वीते लज्जा तथा मदने परित्यागे समचित्त थको परिव्वए के० प्रव्रज्या पाले. ते केटलो काल सुधी पाले? ते कहेछे. जेआवके० ज्यांलगे तेनी कहाके० कथा रहे त्यांलगे पाले एटले जावजीव लगे मरण सीम समाहिएके० समाधिवंत अथवा आत्मज्ञानसहित अथवा रुडा अध्यवसाये करी युक्त दविएके० ते मुक्ति गमन योग्य अथवा रागद्वेषरहित एवो थको जे कालमकासिके० काल करे ते पंमिएके० पंमित कहेवाय ॥ ४ ॥.

॥ दीपिका–जेयाविति । यश्चापि अनायकोनायकरहितः स्वयं प्रजुश्चक्रवर्त्यादिः स्यात् यश्चापि प्रेष्यस्यापि प्रेष्यः कर्मकरस्यापि कर्मकरः स्यात् एवंनूतः सन् मुनेरिदं मौनं पदं स्थानं मौनपदं संयममुपस्थितश्चाश्रितोनोलज्जते । कोर्थः । चक्रवर्त्यपि प्रेष्यं साधुं वंदमानोन लज्जते प्रेष्योपि प्रजुः साधुमितरं वा उत्कर्षरहितोनमन्न लज्जते । एवमनेन प्रकारेण समतां चरेत् साधुः ॥ ३ ॥ (समेति) समोमध्यस्थः संयमस्थानानां षट्स्थानपतितत्वादन्यतरस्मिन् संयमस्थाने सामायिकछेदोपस्थापनीयादौ वा संयमे संशुद्धे निर्मले संशुद्धो वा मदरहितः श्रमणः परिव्रजेत् उद्यमवान् नवेत् । कियंतं कालं यावत्कथा यावन्नाम धत्ते तावत् । किंनूतः साधुः समाहितः शुनध्यानः पंडितोयावत्कालमकार्षीत् मृत्युकालं यावदित्यर्थः । नामवार्तातु मृतस्यापि नवेत् ततउक्तं यावत्कालमकार्षीदिति ॥ ४ ॥

॥ टीका–मदानावे च यद्विधेयं तद्दर्शयितुमाह (जेयावीत्यादि) यश्चाऽपि कश्चिदास्तां तावत् । अन्योन विद्यते नायकोऽस्येत्यनायकः स्वयं प्रजुश्चक्रवर्त्यादिः स्यात् नवेत् यश्चाऽपि प्रेष्यस्याऽपि प्रेष्यः तस्यैव राज्ञः कर्मकरस्यापि कर्मकरोयएवंनूतोमौनींद्रं पद्यते गम्यते मोक्षोयेन तत्पदं संयमस्तं उपसामीप्येन स्थितः उपस्थितः समाश्रितः सोऽप्यलज्जमानउत्कर्षमकुर्वन् वा सर्वाः क्रियाः परस्परतोवंदनप्रतिवंदनादिकाविधत्ते । इदमुक्तं नवति ।चक्रवर्तिनाऽपिमौनींद्रपदमुपस्थितेन पूर्वमात्मप्रेष्यमपि वंदमानेन लज्जा न विधेया इतरेण चोत्कर्षइत्येवं समतां समनावं सदा निक्षुश्चरेत् संयमाद्युक्तोनवेदिति ॥ ३ ॥ क्वपुनर्व्यवस्थितेन लज्जामदौ न विधेयाविति दर्शयितुमाह (समेइत्यादि) (समेत्ति) समनावोपेतः सामायिकादौ संयमे संयमस्थाने वा षट्स्थानपतितत्वात् संयमस्थानानामन्यतरस्मिन् संयमस्थाने छेदोपस्थानीयादौ वा । तदेव विशिनष्टि । सम्यक् शुद्धे सम्यक् शुद्धोवा श्रमणस्तपस्वी लज्जामदपरित्यागेन समानमनावा परिव्रजेत् संयमोद्युक्तोनवेत् स्यात्। कियंतं कालं यावत् कथा देवदत्तोयज्ञदत्तइति कथां यावत् ।सम्यगाहितआत्मा ज्ञानादौ येन ससमाहितः समाधिना वा शोननाध्यवसायेन युक्तोद्रव्यनूतोरागद्वेषादिरहि

तोमुक्तिगमनयोग्यतया वा नव्यः । सएवंनूतः कालमकार्षीत् पंडितः सद्विवेकात्सद्विवेक कलितः । एतडुक्तं नवति । देवदत्तइति कथा मृतस्याऽपि नवत्यतोयावन्मृत्युकालं ता वल्लज्जामदपरित्यागोपेतेन संयमानुष्ठाने प्रवर्तितव्यमिति स्यात् ॥ ४ ॥

दूरं अणुपस्सिया मुणी, तीतं धम्ममणागयं तहा ॥ पुठे परुसेहिं
माहणे, अविहसू समयंमि रीयइ ॥ पाठांतरे समयाहिया सये
ति ॥ ५ ॥ पन्न समत्ते सया जए, समताधम्ममुदाहरे मुणी ॥ सु
हमे उ सया अलूसए, णो कुझे णो माणि माहणे ॥ ६ ॥

अर्थ—हवे शास्त्रनुं अवलंबन करीने संयम पाले ते कहेछे. दूरंके० जे कारणे दूर वर्त्ते माटे ते दूर शब्दे मोक्ष कहिये; तेने अणुपस्सियाके०आलोचीने एटले सम्यक्धर्म विना मोक्ष न थाय एवुं विमाशीने ते मुणीके० चारित्रिउ अतीतंधम्मं के० अतीत धर्म एट ले पाछले काले जीवनुं अनेक प्रकारे उंच नीच गतिने विषे जे भ्रमण कर्युं तेरूप धर्म तहा के० तथा अणागयं के० अनागत एटले आगमिक काले जीवनी गतिरूपधर्मनुं स्वरूप जाणीने लज्जा तथा मद करे नहीं. तथा परुसेहिंके० कठण वचन अथवा दंड कशादिक तेणे पुठे के० फरश्यो थको माहणे के० ब्रह्मचर्यनो पालनार चारित्रिउ ते अपि के० किंबहुना हस्सू के० सर्वथापि मार्यो थको पण स्कंदकमुनिना शिष्यनी पेरे समयंमि के० सिद्धांतना मार्गेज रीयति के० चाले एटले तेना उपर कषाय नकरे अ थवा पाठांतरे (समयाहियासएत्ति) के० समताये करी सहित थको विचरे ॥५॥ वली उपदेशांतर कहेछे. पन्नसमत्ते के० ते प्रज्ञाये करी पूर्ण तत्वनो जाण सया के० सर्व काल कषायादिकने जए के० जीपे. अथवा प्रश्न पूछ्या थकां प्रत्युत्तर देवाने स मर्थहोय समता के० समनावे धम्मं के० अहिंसादि लक्षण जे धर्म ते उदाहरे के० लोकप्रत्ये कहेछे एवो मुणी के० चारित्रिउ सुहमेउ के० सूक्ष्म संयमने विषे सयाअ लूसए के० सर्व काल अविराधक तथा ते चारित्रियाने कोइए हण्यो थको पण णोकु झे के० क्रोध नकरे अने कोइए पूज्यो थको णोमाणि के० मान नकरे एवो माह णे के० साधु जाणवो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—(दूरमिति) दूरं मोक्षमनुदृश्य पर्यालोच्य मुनिरतीतमनागतं च धर्मं जी वानां स्वनावं विचार्य लज्जामानौ न कार्यौ । तथा स्पृष्टः परुषैः कठिनैर्दंडादिनिर्वचनैर्वा माहनोमुनिः (अविहसूत्ति) अपि हन्यमानः स्कंदकशिष्यवत्समये संयमे रीयते गच्छ ति । पाठांतरे वा (समयाहियासये) । समतयासहते इत्यर्थः ॥५॥ (पन्नसमत्तेत्ति) ।

प्रज्ञासमाप्तः पटुप्रज्ञः । अथवा प्रश्नसमर्थः प्रश्ने कृते तडुत्तरदानसमर्थः सदाजयेत्कषाया दिकं तथा समतया धर्ममुदाहरेत् कथयेन्मुनिः । सूक्ष्मं स्तोकमपि यत्संयमकृत्यं तस्याऽ लूषकोऽविराधकोनो क्रुध्येत् हन्यमानं पूज्यमानोमानी नोपि माहनोयतिः ॥ ६ ॥

॥ टीका–किमालंब्यैतद्विधेयमित्युच्यते । (दूरमित्यादि) दूरवर्त्तित्वात् दूरोमोक्षस्त मनु पश्चात् तद्दृष्ट्वा । यदि वा दूरमिति दीर्घकालमनुदृश्य पर्यालोच्य मुनिः कालत्रयवेत्ता दूरमेव दर्शयति अतीतं धर्मं स्वनावं जीवानामुच्चावचगतिस्थानलक्षणं तथा अनागतं च धर्मं स्वनावं पर्यालोच्य लज्जामदौ न विधेयौ । तथा स्पृष्टः परुषैर्दंडकशादिनिर्वाग्निर्वा (मा हणेत्ति) मुनिः (अविहसूत्ति) अपि मार्यमाणः स्कंदकशिष्यगणवत्समये संयमे रीयते त डुक्तमार्गेण गच्छतीत्यर्थः । पाठांतरं वा (समयाह्यिासयत्ति)समतयासहतइति ॥ ५॥ पुन रप्युपदेशांतरमाह (पन्नसमत्तइत्यादि) प्रज्ञायां समाप्तःप्रज्ञासमाप्तः पटुप्रज्ञः । पाठांतरं वा (पन्नसमत्थे) प्रश्नविषये प्रत्युत्तरदानसमर्थः सदा सर्वकालं जयेज्ञेयं कषायादिकमिति शेषः । तथा समया समता तया धर्ममहिंसादिलक्षणमुदाहरेत् कथयेत् मुनिर्यतिः सूक्ष्मे संयमे यत्कर्तव्यं तस्याल्लूषकोऽविराधकस्तथा न हन्यमानोवा पूज्यमानोवा क्रुध्ये न्नाऽपि मानी गर्वितः स्यात् माहणो यतिरिति ॥ ६ ॥

बहुजणणमणंमि संवुम्रो, सवट्ठेहिं णरे अणिस्सिए ॥ हरएव
सया अणाविले, धम्मं पाडुरकासिकासवं ॥७॥ बहवे पाणा पुढो
सिया पत्तेयं समयणुवेहिया ॥ जे मोणपदं उवठ्ठिते, विरतिं
तत्र अकासि पंम्मिए ॥ ८ ॥

अर्थ–बहुजण के० घणालोकने णमणंमि के० नमाडे एटले जेने सर्व लोक पोत पोतानो करीने प्रसंशे तेमाटे जेबहुजणनमन तेने धर्म कहिए ते धर्मने विषे संवुम्रोके० संवृत एटले समाधिवंत एवो छतो णरेके० नर एटले मनुष्य ते सवट्ठेहिं के० सर्व अ र्थ एटले बाह्य अने अभ्यंतर धन धान्य पुत्र कलत्रादिके करी,अणिस्सिएके०अनिश्रित एटले अप्रतिबंध छतो धर्म प्रकाशे. हरएवके०द्रहनी पेरे जेम द्रहजेछे, ते सयाके० सर्व काल स्वछ निर्मल पाणीयेंज नर्यो थको रहेछे. अणाविले के० अनेक जलचर जीव ना मोलवा थकी पण डोहोलुं नथाय. तेम चारित्रिउ रागद्वेषरहित छतो धम्मंपाडु रकासि के० धर्म प्रगट करे. तेधर्म कासवं के० श्रीतीर्थंकरसंबंधी एटले श्रीवर्द्धमान स्वा मिनिर्देश जाणवो. ॥ ७ ॥ हवे जेवो धर्म प्रकाशे तेवो कहेछेः अथवा उपदेशांतरे कहेछे. बहवेपाणा के० घणाप्राणी एटले अनंताजीव ते पुढोसियाके० पृथक्पृथक् जुदा जुदा

सूक्ष्म बादर पर्याप्त अपर्याप्त नरक तिर्यंच मनुष्यादिक भेदे करी संसारमांहे आश्रित छे, तेने पत्तेयं के० प्रत्येके प्रत्येके समय के० समता एटले सरखापणे समीहिया के० देखवा. केमके सर्व जीव सुखना अभिलाषीछे, पण दुःखना द्वेषीछे; तेमाटे पोताना सरखा जाणी धर्म प्रकाशे तथा जेमोणपदंउवठिते के० जे मौनपद एटले संयमने वि पे उपस्थित एटले सावधान एवो साधु छे, तछके० ते जीवघातने विषे त्रिविध त्रिविध प्रकारे जेणे विरतिं अकासि के० विरति कीधी छे; पंडिएके० ते पंडित जाणवो. ॥८॥

दीपिका–(बहुजनेति) बहुजनैर्नम्यते स्तूयते इति बहुजननमनोधर्मः । कथं राज गृहपुरे श्रेणिकराज्ञः सदसि कदाचिदेवं विचारः क्रियते । किंधार्मिकाजनाबहवः किं वा ऽधार्मिकाः । तदा लोकैरुक्तं अधार्मिकाबहवः । अभयमंत्रिणा तु कथितं धार्मिका बहवः । सभालोके तद्वचोऽमन्यमाने अभयेन परीक्षार्थं श्वेतकृष्णप्रासादद्वयं कारितं । नगरे च उद्घोषणा कारिता । यः कश्चिद्धार्मिकः सबलिं गृहीत्वा धवलप्रासादे समेतु अधार्मिकस्तु कृष्णे तदा सर्वोपि लोकोधवलप्रासादमेव प्राप्तः कृष्णप्रासादे तु श्रावकद्वयं। तदृ ष्ट्वा राज्ञा पृष्टं कथमेतावंतोलोकाधार्मिकाएव । तदा स्वस्वधर्मप्रशंसापूर्वकं वयं धार्मिका इति सर्वजनैरुक्तं । कृष्णप्रासादे श्रावकद्वयं दृष्ट्वा राज्ञा पृष्टं कथं युवामधार्मिकौ । तदा ताभ्यामुक्तमस्माभिर्मद्यनिवृत्तिनियमभंगः सकृन्निर्मितः । भग्नव्रतस्य किं जीवितं । यतः। वरमग्गिंमिपावेसो, वरं विसुद्धेण कम्मुणा मरणं ॥ मागहियव्वयभंगो, माजीयं खलिअ सीलस्स ॥१॥ इति । तथा परमार्थतः साधवएव धार्मिकाः । अस्माभिस्तु । अवाप्य मा नुषं जन्म, लब्ध्वा जैनं च शासनं ॥ कृता निवृत्तिर्मद्यस्य, सम्यक् सापि न पालिता ॥१॥ अनेन व्रतभंगेन मन्यमानाअधार्मिकं ॥ अधमाधममात्मानं,कृष्णं प्रासादमाश्रिताः ॥२॥ तदेवं सर्वेपि प्रायः स्वं धार्मिकं मन्यंतइति। बहुजननमनोधर्मस्तस्मिन् संवृतः समाहितो नरः सर्वार्थैर्बाह्याभ्यंतरैर्धनधान्यकलत्रममतादिभिरनिश्रितोऽप्रतिबद्धः सन् धर्मं प्रकाशि तवान् इत्युत्तरेण संबंधः । यथा ह्रदोजलाशयविशेषोऽनाविलोनिर्मलः स्यात् तथाऽक लुषचित्तोधर्मं काश्यपं जिनप्रणीतं प्राडुरकार्षीत् प्रकटं कृतवान् । ठांदसत्वाद्वा वर्तमा नातीतप्रत्ययनिर्देशः । एवंविधोधर्मं प्रकाशयेदिति । एवंगुणश्च साधुः स्यात्ततः साधोरेव धर्मदेशनायामधिकारोन गृहिणइति ॥ ७ ॥ (बहवइति) बहवः प्राणिनः पृथिव्यादयः पृथक् संसारं श्रितास्तेषां समतां सुखप्रियत्वं तुल्यमवेक्ष्य दृष्ट्वा योमौनपदं संयममुप स्थितआश्रितः साधुस्तत्र प्राणिसमूहोपघाते विरतिमकार्षीत् कुर्याद्वा पंडितः ॥ ८ ॥

॥ टीका–अपिच (बहुजणनमणमित्यादि) बहून् जनान् आत्मानंप्रति नामयति प्रह्वीकरोति तैर्वा नम्यते स्तूयते बहुजननमनोधर्मः सएव बहुभिर्जनैरात्मीयात्मीयाश

येन यथाऽप्युपगमप्रशंसया स्तूयते प्रशस्यते। कथमत्र कथानकं। राजगृहे नगरे श्रेणिको महाराजः कदाचिदसौ चतुर्विधबुध्युपेतेन पुत्रेण अनयकुमारेण सार्धमास्थानस्थित स्तानिस्तानिः कथानिरासांचक्रे। तत्र कदाचिदेवंनूता कथाऽनूत्। तद्यथा इहलोके धार्मिकाबहवउताऽधार्मिकाइति। तत्र समस्तपर्षदानिहितं। यथाऽत्राऽधार्मिकाबहवोलो काधर्मं तु शतानामपि मध्ये कश्चिदेवैकोविधत्ते तदाकर्ण्याऽनयकुमारेणोक्तं। यथा प्रायशोलोकाः सर्वएव धार्मिकाः। यदि न निश्चयोनवतां परीक्षा क्रियते पर्षदाऽप्यनिहितमेवमस्तु ततोऽनयकुमारेण धवलेतरप्रासादद्वयं कारितं घोषितं च डिंडिमेन नगरे यथा यः कश्चिदिह धार्मिकः ससर्वोऽपि धवलप्रासादं गृहीतबलिः प्रविशतु इतरस्त्वितरमिति। ततोऽसौ लोकः सर्वोऽपि धवलप्रासादमेव प्रविष्टोनिर्गच्छंश्च कथं त्वं धार्मिकइत्येवं पृष्टः कश्चिदाचष्टे। यथाऽहं कर्षकोऽनेकशकुनिगणोमद्धान्यकणैरात्मानं प्रीणयति खलकसमागतधान्यकणनिक्षादानेन च मम धर्मइति। अपरस्त्वाह। यथाऽहं ब्राह्मणः षट्कर्माऽनिरतस्तथा बहुशौचस्नानादिनिर्वेदविहितानुष्ठानेन पितृदेवांस्तर्पयामि। अन्यः कथयति यथा वणिकुलोपजीवी निक्षादानादिप्रवृत्तोऽपरस्त्विदमाह। यथाऽहं कुलपुत्रकोन्यायागतं निगैतिकं कुटुंबकं पालयाम्येव तावत् श्वपाकोपीदमाह यथाऽहं कुलक्रमागतं धर्ममनुपालयामीति मन्निश्रयाश्च बहवः पिशितभुजः प्राणान् धारयंतीत्येवं सर्वोऽप्यात्मीयमात्मीयं व्यापारमुद्दिश्य धर्मे नियोजयति। तत्राऽपरमसितप्रासादं श्रावकद्वयं प्रविष्टं तच्च किमधर्माचरणं नवद्भ्यामकारीत्येवं पृष्टं सत् सकृन्मद्यनिवृत्तिजंगव्यलीकमकथयत् तथा साधवएवाऽत्र परमार्थतोधार्मिकायथा गृहीतप्रतिज्ञानिर्वाहणसमर्थाः। अस्मानिस्तु अवाप्य मानुषं जन्म लब्ध्वा जैनं च शासनं॥ कृत्वा निवृत्तिं मद्यस्य सम्यक् साऽपि न पालिता॥ १॥ अनेन व्रतनंगेन मन्यमानाअधार्मिकं॥ अधमाधममात्मानं कृस्नप्रासादमाश्रिताः॥ २॥ तथाहि। लज्जां गुणौघजननीं जननीमिवार्या,मत्यंतशुद्धहृदयामनुवर्त्तमानाः॥ तेजस्विनः सुखमसूनपि संत्यजंति सत्यस्थितिव्यसनिनोन पुनः प्रतिज्ञां॥ ३॥ वरं प्रवेष्टुं ज्वलितं हुताशनं नचाऽपि नग्नं चिरसंचितव्रतं॥ वरं हि मृत्युः सुविशुद्धचेतसोनचाऽपि शीलस्खलितस्य जीवितमिति॥ ४॥ तदेवं सर्वोऽप्यात्मानं धार्मिकं मन्यतइतिकृत्वा बहुजननमनोधर्मइति स्थितं। तस्मिंश्च संवृतः समाहितः सन् नरः पुमान् सर्वार्थैर्बाह्याभ्यंतरैर्धनधान्यकलत्रममत्वादिनिरनिश्रितोऽप्रतिबद्धः सन् धर्मं प्रकाशितवानित्युत्तरेण सह संबंधः। निदर्शनमाहाभ्हदइव स्वच्छांजसा नृतः सदानाविलोऽनेकमत्स्यादिजलचरसंक्रमेणाऽप्यनाकुलोऽकलुषोवा क्षांत्यादिलक्षणं धर्मं प्राडुरकार्षीत् प्रकटं कृतवान्। यदि वा एवं विशिष्टएव काश्यपतीर्थंकरसंबंधिनं धर्मं प्रकाशयेत्।

छांदसत्वात् वर्त्तमानेनूतनिर्देशइति ॥ ७ ॥ सबहुजननमने धर्मे व्यवस्थितोयादृक् धर्म प्रकाशयति तद्दर्शयितुमाह । (बहवेइत्यादि) यदिवोपदेशांतरमेवाऽधिकृत्याह । (बहवेइत्यादि) बहवोऽनंताः प्राणादशविधप्राणनोकृत्वात्तद्भेदोपचारात् प्राणिनः । पुढवित्ति पृथिव्यादिभेदेन सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तनरकगत्यादिभेदेन वा संसारमाश्रितास्तेषां च पृथगाश्रितानामपि प्रत्येकं समतां दुःखद्वेषित्वं सुखप्रियत्वं च समीक्ष्य दृष्ट्वा । यदि वा समतां माध्यस्थ्यमुपेक्ष्य योमौनींद्रपदमुपस्थितः संयममाश्रितः ससाधुस्तत्राऽनेकभेदभिन्नप्राणिगणे दुःखद्वेषिसुखाभिलाषिणि सति तदुपघाते कर्तव्ये विरतिमकार्षीत् कुर्याद्वेति पापाद्धीनः पापानुष्ठानात् दवीयान् पंमितइति ॥ ८ ॥

धम्मस्स य पारए मुणी, आरंभस्स य अंतए ठिए ॥ सोयंति य णं ममाइणो, णो लप्नंति णियं परिग्गहं ॥ ए॥ इह लोगडुहावहं विऊ, परलोगेय दुहं दुहावहं ॥ विद्धंसण धम्ममेव तं इति विज्जं कोगारमावसे॥१०॥

अर्थ—वली तेहिज कहेछे. धम्मस्सयपारएमुणी के० धर्म शब्दे श्रुत चारित्ररूप ते नो पारंगामी एटले संवेगी अने गीतार्थ एवो मुनीश्वर तथा आरंभस्सय के० आरंभ जे सावद्यानुष्ठान तेनाथी अंतएठिए के० अत्यंत दूर रह्योछे अर्थात सावद्यानुष्ठानने अण करतो थको प्रवर्त्ते ते मुनि कहेवाय. अने सोयंतियणं के० ए पूर्वे कह्युं एवो जे धर्म तेना अण करनार जे होय ते मरण आवे थके शोच पामे. परंतु ते केवा जाणवा? तोके, ममाइणो के० ममत्वना करनार णोलप्नंतिनियं परिग्गहं के० ते पोतानुं जे नष्ट थयेलुं सुवर्णादिक परिग्रह अथवा स्वजन नाशीगयेलो अथवा मरण पाम्यो एवो स्वजन तेने न पामे. पण ते शोच करता थकाज मरीने दुर्गतिये जाय. ॥ ए ॥ धन धान्य अने स्वजनादिक जे परिग्रह छे ते इहलोगडुहावहंविऊ के० आ लोकने विषे दुःखनुं कारण जाणी. यतः । अर्थानामर्जने दुःखमर्जितानां च रक्षणे ॥ आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थान् दुःखभाजनान् ॥ १ ॥ अने परलोगेयदुहं दुहावहंके० परलोके पण दुःख तथा अनेरां दुःखनो करनार जाणीने तथा विद्धंसणधम्ममेवतं के० तेथी परिग्रह जे छे, विद्धंसण धर्मिछे एटले अशाश्वत अनित्यछे. इतिविज्जं के० एवुं जाणतो थको कोगारमावसे के० कोण सकर्ण मनुष्य गृहवासने विषे वसे. यत. । दाराः परिभवकारावंधुजना बंधनं विषं विषयाः ॥ कोयं जनस्य मोहोये रिपवस्तेषु सुहृदाशा ॥ १ ॥ इतिवचनात् ॥ १० ॥

॥ दीपिका—(धम्मस्सेति) धर्मस्य श्रुतचारित्ररूपस्य पारगोमुनिः आरंभस्य च अं

ते पर्यंते स्थितः स्यात् । ये पुनरेवं नस्युः ते । एंवाक्यालंकारे (ममाइणोत्ति) । ममेदं अहमस्य स्वामीत्यध्यवसायिनः शोचंति । शोचमानाअपि निजपरिग्रहं धनस्वजनादिकं नष्टं मृतं वा लन्नंते ॥ ए ॥ (इहेति) इह लोकडुःखावहं धनस्वजनादिकं (विजत्ति) विद्याः जानीहि । यतः । अर्थानामर्जने डुःख,मर्जितानां च रक्षणे ॥ आये डुःखं व्यये डुःखं धिगर्थान् डुःखन्नाजनान् ॥ १ ॥ तथा रेवापयः किसलयानिव सल्लकीनां विंध्योपकंठविपिनं स्वकुलं च हित्वा ॥ किं ताम्यसि द्विप गतोसि वशं करिण्याः स्नेहोहि कारणमनर्थपरंपरायाः ॥ २ ॥ परलोके च धनादिकं डुःखं तदप्यपरं डुःखं करोति । तडुपादानकर्मोपादानात् ॥ तथा तद्धनादिविध्वंसनधर्मकमेव विनश्वरमेव इति विद्वान् एवं जानन् कोऽगारवासमावसेत् गृहवासे तिष्ठति । यतः । दाराः परिन्नवकारा,बंधुजनो बंधनं विषं विषयाः ॥ कोयं जनस्य मोहोये रिपवस्तेषु सुहृदाशा इति॥ १ ॥ १० ॥

॥ टीका—अपिच । (धम्मस्सइत्यादि) । धर्मस्य श्रुतचारित्रन्नेदन्निन्नस्य पारं गह्वतीति पारगः सिद्धांतपारगामी सम्यक् चारित्रनुष्ठायी वेति । चारित्रमधिकृत्याह । आरंन्नस्य सावद्यानुष्ठानरूपस्यांते पर्यंते तदन्नावरूपे स्थितोमुनिर्न्नवति।ये पुनर्नैवं न्नवंति ते अकृतधर्माः मरणे डुःखेवा समुह्रिते आत्मानं शोचंति । एमिति वाक्यालंकारे । यदि चेष्टमरणादाऽवर्थनाशे वा (ममाइणोत्ति) ममेदमहमस्य स्वामीत्येवमध्यवसायिनः शोचंति । शोचमानाअप्येते निजमात्मीयं परिसमंतात् गृह्यते आत्मसाक्रियतइति । परिग्रहोहिरण्यादिरिष्टस्वजनादिर्वा । नष्टं मृतं वा नलन्नंते न प्राप्नुवंतीति । यदिवा धर्मस्य पारगं मुनिमारंन्नस्यांऽते व्यवस्थितमेनमागत्य स्वजनामातापित्रादयः शोचंति ममत्वयुक्ताः स्नेहालवः । नच ते लन्नंते निजमप्यात्मीयपरिग्रहबुद्ध्या गृहीतमिति । अत्रांतरे नागार्जुनीयास्तु पठंति ॥ सोऊणतयंउवठियं केइगिहीविग्घेणउठिया धम्मंमिअणुत्तरे मुणी,तंपि जिणिज्जइमेणपंडिए॥१॥ एतदेवाह । (इहलोगेइत्यादि) । इहाऽस्मिन्नेव लोके हिरण्यस्वजनादिकं डुःखमावहति । (विउत्ति) विद्याः जानीहि । तथाहि । अर्थानामर्जने डुःख, मर्जितानां च रक्षणे । आये डुःखं व्यये डुःखं, धिगर्थं डुःखन्नाजनं । तथाहि । रेवापयः किसलयानि च सल्लकीनां विंध्योपकंठविपिनं स्वकुलं च हित्वा ॥ किं ताम्यसि द्विप गतोसि वशं करिण्याः स्नेहोनिबंधनमनर्थपरंपरायाः ॥१॥परलोके च हिरण्यस्वजनादिममत्वाऽपादितकर्मजं डुःखं न्नवति तदप्यपरं डुःखमावहति तडुपादानकर्मोपादानादिति न्नावः ॥ तैयतडुपार्जितमपि विध्वंसनधर्मं विशरारुस्वन्नावं गत्वरमित्यर्थः । इत्येवं विद्वान् जानन् कः सकर्णोऽगारवासं गृहवासमावसेत गृहवासं वा ऽनुबध्नीयादिति । उक्तंच । दाराः परिन्नवकारावंधुजनो बंधनं विषं विषयाः ॥ कोऽयं जनस्य मोहोये रिपवस्तेषु सुहृदाशा॥१०॥

महयं पलिगोव जाणिया जाविय वंदणपूयणाइहं ॥ सुहुमे सल्ले दुरुद्धरे, विउ मंता पयहिज्ज संथवं ॥११॥ एगेचरे ठाणमासणे सयणे एगे समाहिए सिया ॥ भिक्खू उवधाणवीरिए वइगुत्ते अज्झत्तसंवुडो ॥ १२ ॥

अर्थ—वली उपदेश कहेछे. महयं के० महा महोटा जीवने कतरतां दुर्जन एवो शुं? तो के पलिगोव के० कर्दम ते अंतरंग कर्दम जाणवो जाविय वंदणपूयणाइहं के० तेअहीं साधुने राजादिकनी करेली वंदना तथा पूजना एटले वस्त्रादिकनी प्रतिलाभना तेणे करी उपजी जे पूजा तेने कर्मोपशमनुं कारण जाणिया के० जाणीने उत्कर्ष न करवो, जे जीवने गर्व उत्पन्न थाय तेहिज कर्दम सरखो जाणवो केमके सुहुमेसल्लेदुरुद्धरेके० ए गर्वरूप जे सल्यछे ते सूक्ष्मछे माटे दुरुद्धर एटले एने उद्धरता घणो दुर्जनछे तेमाटे विउमंता के० विद्वांस विवेकी पुरुषते पयहिज्ज के० छांमे संथवं के० संस्तव परिचयादिकनो त्याग करे ॥११॥ वली तेहिज कहेछे एगेचरे के० चारित्रिउ एकाकी द्रव्य थकी एकल्लविहारी अने भाव थकी रागद्वेषरहित एवो छतो विचरे तथा एकलो छतो ठाण के० काउस्सग करे तथा आसणेके० आसनने विषे पण रागद्वेषरहित थको बेशे एरीते सयणेके० शयनजे पाटप्रमुख त्यां पण एकाकीरहे ते केवो थको रहे तोके समाहिएके० समाहित एटले जे जे क्रियामां प्रवर्ते त्यांत्यां सियाके० रागद्वेष टालतो थको प्रवर्त्तमान होय एवो भिक्खू के० आहारनो लेनार तथा उवहाण के० तपविषे वीरिएके० बल वीर्यनो फोरवनार तथा वइगुत्तेअके० वचनगुप्ति एटले विमाशीबोलनार तथा अज्झत्त के० मन तेनेविषे संवुडे के० संवृत एटले मनने स्थिरतानो करनार एवो साधु होय. ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—(महयमिति) महांतं परिगोपं भावपंकोऽभिष्वंगस्तं विपाकतोज्ञात्वा यापि च प्रव्रजितस्य सतोवंदना पूजना इहाऽस्मिंल्लोके तां ज्ञात्वा गर्वोन कार्यइति । यतः गर्वोऽयं सूक्ष्मशल्यं वर्तते ।सूक्ष्मत्वाच्चदुरुद्धरमुद्धर्तुमशक्यअतोविद्वान् तत्तावत्संस्तवं परिचयं संगं प्रजह्यात् त्यजेत् ॥ ११ ॥ (एगेइति) एकोरागद्वेषरहितएकल्लविहारीवा चरेत् स्थानं कायोत्सर्गादिकमेकएव कुर्यात् ।आसने शयने वा स्थितएकएव रागद्वेषरहितएव समाहितः धर्मादिध्यानयुक्तः स्यात् । तथाभिक्षुरुपधानं तपस्तत्र वीर्यमुपधानवीर्योऽनिगूहितबलवीर्यः वाग्गुप्तः अध्यात्मं मनस्तेन संवृतः स्यात् ॥ १२ ॥

॥ टीका–पुनरप्युपदेशमधिकृत्याह (महयमित्यादि) महांतं संसारिणं डुस्त्यजत्वा न्महता वा संरंनेण परिगोपणं परिगोपोऽव्यतः पाकादिर्नावतोऽनिष्वंगस्तं ज्ञात्वा स्व रूपतस्तद्विपाकतोवा परिञ्छिद्य याऽपि च प्रव्रजितस्य सतोराजादिनिः कायादिनिर्वंदना वस्त्रपात्रादिनिश्च पूजना तांच इहाऽस्मिन् लोके मौनींडे वा शासने व्यवस्थितेन कर्मोप शमजं फलमित्येवं परिज्ञायोत्सेकोन विधेयः । किमिति यतोगर्वात्मकमेतत्सूक्ष्मश ल्यं वर्त्तते सूक्ष्मत्वाच्च डुरुद्धरं डुःखेनोद्धर्तुं शक्यते अतोविद्वान् सदसद्विवेकज्ञस्तत्तावत् संस्तवं परिचयमनिष्वंगं परिजह्यात् परित्यजेदिति ॥ नागार्जुनीयास्तु पठंति । पलिमंथमहं वियाणिया जावियवंदणपूयणाइहं ॥ सुहुमं सल्लं डुरुद्धरं तंपि जिणे एएण पंडिए ॥१॥ अ स्यचाऽयमर्थः । साधोः स्वाध्यायाऽध्ययनपरस्यैकांतनिस्पृहस्य योऽपि चाऽयं परैर्वंदनापूज नादिकः सत्कारः क्रियते.असावपि सदनुष्ठानस्य सद्गतेर्वा महान् पलिमंथे विघ्नआस्तां तावच्छब्दादिष्वनिष्वंगस्तमित्येवं परिज्ञाय तथा सूक्ष्मशल्यं डुरुद्धरं वाऽतस्तमपि जये दपचयेत् पंडितएतेन वक्ष्यमाणेनेति ॥११॥ (एगेचरेइत्यादि) एकोऽसहायोऽव्यतएक लविहारी नावतोरागद्वेषरहितश्चरेत् तथा स्थानं कायोत्सर्गादिकमेकएव कुर्यात् तथा आ सनेऽपि व्यवस्थितोऽपि रागद्वेषरहितएव तिष्ठेत् । एवं शयनेऽप्येकाक्येव समाहितोध र्मादिध्यानयुक्तः स्यात् नवेत् । एतडुक्तं नवति । सर्वास्वऽप्यवस्थानासनशयनरूपासु राग द्वेषविरहात् समाहितएव स्यादिति । तथा निक्षणशीलोनिक्षुः उपधानं तपस्तत्र वीर्यं यस्य सउपधानवीर्यः तपस्यनिगूहितबलवीर्यइत्यर्थः । तथा वाक्गुप्तः सुपर्यालोचिताभिधायी अ ध्यात्मं मनस्तेन संवृतोनिक्षुर्नवेदिति ॥ १२ ॥

णोपिहे ण यावपंगुणे दारं सुन्नघरस्स संजए ॥ पुठेण नदाहरेवायं, ण स मुञ्छे णो संथरे तणं ॥१३॥ जञ्छ ञमिए अणाउले, समविसमाइं मुणी हियासए ॥ चरगाय डुवावि नेरवा, अडुवा तञ्छ सरीसिवा सिया ॥१४॥

अर्थ–वली साधुने उपदेश कहेछे. कोइ एक शयनादिक कारणे सुन्नघरस्सके० शून्य घरे रह्यो थको एवोजे संजएके० साधु, ते ते घरना दारंके० द्वारतेने णोपिहेणयावपंगु णेके० ढांके पणनहीं, तेम उघाडे पण नहीं वली त्यां रह्यो छतो अथवा अन्यत्र स्था नके रह्योछतो पुठेणउदाहरेवायंके० कोइएके धर्म पूछ्यो थको सावद्यवचन बोलेनहीं. तथा णसमुञ्छे णोसंथरेतणं के० त्यां रहेलाजे तृणकचरादिक ते प्रमार्जे नहीं, वली तेनेणो संथरे एटले पाथरे पण नहीं. ए आचार जिनकल्पादिक अनिग्रहधारी प्रमुख साधुनो कह्योछे; ॥ १२ ॥ वली जञ्छञमिए के० चारित्रिउ ज्यां सूर्य अस्त थाय त्यांज रहे थने अणाउले के० परिसह उपसर्गे करी आकुल व्याकुल न थाय; क्षोन पामे न हिं,अक्षोन थको रहे. तथा समविसमाइंमुणीहियासएके० यथावस्थित संसारना स्वरू

पनो जाण एवो मुनीश्वर ते सम एटले अनुकूल शय्यादिक तथा विषम एटले प्रतिकूल शय्यादिक तेने अहियासे तथा तेमज ते स्थानकने विषे चरकके० मांस मसादिक अ डुवावि के० अथवा नेरवा के० बिहामणा एवा घूक सिंहादिक जीव अडवा के० अ थवा तत्र के० त्यां सुनाघरने विषे सरीसिवा के० सरीसृप एटले सर्प्प, सिया के० होय तो ते जीवोना करेला उपसर्गने सहन करे. ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–(णोपीहेति) । केनचिच्छयनादिनिमित्तेन शून्यं गृहमाश्रितोभिक्षुस्तस्य गृहस्य द्वारं कपाटादिना न पिदधीत न स्थगयेत् ।(णयावपंगुणेत्ति) । नोद्घाटयेत् । के नचिद्धर्मादिकं मार्गादिकं पृष्टः सन् सावद्यां वाचं नोदाहरेन्नब्रूयात् ।आभिग्रहिकोजिनकल्पि कादिर्निरवद्यामपि न ब्रूयात् । न समुच्छिंद्यात्तृणानि कचवरंवा प्रमार्जनेन नावनयेत् नापि शयनार्थी कश्चिदाभिग्राहिकस्तृणादिकं संस्तरेत् तृणैरपि संस्तारकं न कुर्यात् किंपुनः कंबला दिना अन्योवा शुषिरतृणं न संस्तरेत् ॥ १३ ॥ (जत्थेत्ति) । यत्रास्तमेति सविता तत्र वाऽनाविलोऽनाकुलस्तिष्ठति । समविषमाणि शयनासनादीन्यधिसहेत समतया सहेत । त त्र स्थितस्य मुनेश्चरकादंशमशकादयोभैरवाभयंकरारक्षःशिवादयोऽथवा सरीसृपाः सप स्युस्तदा तत्कृतोपसर्गानपि सहेत ॥ १४ ॥

॥ टीका–किंच (णोपिहेत्यादि) । केनचिच्छयनादिनिमित्तेन शून्यगृहमाश्रितोभिक्षु तस्य गृहस्य द्वारं कपाटादिना नस्थगयेन्नाऽपि तच्चालयेत् । यावत् (नयावपंगुणेत्ति)नोद्घ टयेत् तत्रस्थोऽन्यत्रवा केनचिद्धर्मादिकं मार्गं वा पृष्टः सन् सावद्यां वाचं नोदाहरे न ब्रूयात् । आभिग्रहिकोजिनकल्पिकादिर्निरवद्यामपि न ब्रूयात् तथा न समुच्छिंद्यात् । तृ णानि कचवरंच प्रमार्जनेन नाऽपनयेत नाऽपि शयनार्थी कश्चिदाभिग्राहिकस्तृणादिकं सं स्तरेत् तृणैरपि संस्तारकं न कुर्यात् किं पुनः कंबलादिनाऽन्योवा शुषिरतृणं न संस्त दिति ॥ १३ ॥ तथा (जत्थत्थमियेत्यादि) । भिक्षुर्यत्रैवाऽस्तमुपैति सविता तत्रैव का योत्सर्गादिना तिष्ठतीति । यत्राऽस्तमितस्तथाऽनाकुलः समुद्भवद्भयादिभिः परीषहो पसर्गैरक्षुभ्यन् समविषमाणि शयनासनादीन्यनुकूलप्रतिकूलानि मुनिर्यथावस्थितसंस रस्वभाववेत्ता सम्यगारक्तद्विष्टतयाऽधिसहेतेति ॥ १४ ॥

तिरिया मणुयाय दिव्वगा, उवसग्गा तिविहा हियासिया ॥ लो
मादियं पिण हरिसे सुन्नागारगउ महामुणी ॥१५॥ णो अभिकं
खेज्ज जीवियं, नोविय पूयणपत्थए सिया ॥ अभ्भत्थमुविंति
भेरवा, सुन्नागारगयस्स भिक्खुणो ॥ १६ ॥

अर्थ–तथा तिरिया के० तिर्यंच संबंधी, मणुयाय के० मनुष्यसंबंधी अने दिव्वगा के० देवतासंबंधी ए तिविहा के० त्रण प्रकारना उवसग्गा के०उपसर्गने साधु हियासियाके० सहन करे. पण तेना करेला उपसर्गथी विकार पामे नहीं; लोमादियंपि के० किंबहुना तेने ते नयथकी रोमोजम पण णहरिसेके० नथाय, सुन्नागारगउ के० एरीते जे सुनाघरने विषे रहे ते महामुणी के० महामुनि जिनकल्पियादिक जाणवा. ॥ १५ ॥ तथा नोअनिकंखेज्जजीवियंके० ते चारित्रिउ पूर्वोक्त उपसर्गे पीड्यो बतो जीवितव्यने वांछे नहीं किंतु मरण आगमिने परिसहने सहन करे, तथा नोपियपूयणपछएसियाके० परिसह सहन करवा थकी पूजाना अनिलाषी नथाय. एरीते ते सुन्नागारगयस्सनिरकुणोके० शुनागारगत चारित्रियाने नेरवा के० महारौद्र उपसर्ग ते अप्पछ के०सहन करतां सुलन ऋविंति के० होय. ॥ १६॥

॥दीपिका–तिरियाइति ।तिरश्चाः सिंहादिकृताः मानुषाअनुकूलप्रतिकूलादिव्याव्यंतरादिकृताउपसर्गास्त्रिविधास्तान् अधिसहेत निर्विकारतया क्षमेत । लोमादिकमपि नहर्षेत् नयेन रोमोजमं नकुर्यात् । आदिशब्दाद्दृष्टिमुखविकारादिग्रहः । शून्यागारगतोमहामुनिः उपलक्षणात्प्रेतवनादिस्थितः ।।१५॥ नोअनिकंखेइति । उपसर्गैः पीड्यमानोपि साधुर्नाभिकांक्षेज्जीवितं । जीवितनिरपेक्षेणोपसर्गाः सोढव्याऽइत्यर्थः ।नापिच पूजाप्रार्थकःस्यात् । उपसर्गसहनात्पूजामपि नसमीहते इत्यर्थः । एवं सह्यमानाः परिषहानैरवानर्थकराअपि अन्यस्तनावं यंति गछंति । शून्यागारगतस्यभिक्षोरे वमुपसर्गाः सहन्यस्ताः सुसहानवंतीति॥१६

॥ टीका–सांप्रतं त्रिविधोपसर्गाधिसहनमधिकृत्याह । (तिरियाइत्यादि) तैरश्चाः सिंहव्याघ्रादिकृतास्तथा मानुषाअनुकूलप्रतिकूलाः सत्कारपुरस्कारदंसकशाताडनादिजनिताः। तथा (दिव्वगाइति) व्यंतरादिना हास्यप्रद्वेषादिजनिताः। एवंत्रिविधानऽप्युपसर्गानऽधिसहेत नोपसर्गैर्विकारं गछेत् । तदेव दर्शयति । लोमादिकमपि न हर्षेत् नयेन रोमोजममपि न कुर्यात् । यदिवा एवमुपसर्गास्त्रिविधाअपि (अहियासियत्ति) अधिसोढा नवंति । यदि रोमोजमादिकमपि न कुर्यात् । आदिग्रहणात् दृष्टिमुखविकारादिपरिग्रहः । शून्यागारगतः शून्यगृहव्यवस्थितस्य चोपलक्षणार्थत्वात् पितृवनादिस्थितोवा महामुनिर्जिनकल्पिकादिरिति ॥ १५ ॥ किंच । (णोअनिकंखेइत्यादि) । सतैर्नैरवैरुपसर्गैरुदीर्णैस्तोतुद्यमानोऽपिजीवितं नाऽनिकांक्षेत जीवितनिरपेक्षेणोपसर्गाः सोढव्यइतिनावः । नचोपसर्गसहनद्वारेण पूजाप्रार्थकः प्रकर्षाऽनिलाषी स्यात् नवेत् । एवंच जीवितपूजानिरपेक्षेणाऽसकृत् सम्यक् सह्यमानान्नैरवान्नयानकाः शिवाः पिशाचादयोऽन्यस्तनावं

स्वात्मनां उपसामीप्येन यंति गच्छंति । तत्सहनाच्च भिक्षोः शून्यागारगतस्य नीराजितवारणस्येव शीतोष्णादिजनिताउपसर्गाः सुसहाएव भवंतीति भावः ॥ १६ ॥

उवणीयतरस्स ताइणो, भयमाणस्सवि विक्कमासणं ॥ सामाइयमाहु तस्स जं, जो अप्पाण भएण दंसए ॥ १७ ॥ उसिणोदग तत्तभोइणो धम्मठियस्स मुणिस्स हीमतो ॥ संसग्गिअ साहुराइहिं, असमाही उ तहागयस्सवि ॥ १८ ॥

अर्थ—वली बीजो उपदेश कहेछे. उवणीयतरस्सके० उपनीततर एटले जेणे पोताना आत्माने ज्ञान, दर्शन अने चारित्रनेविषे पहोचाडयोछे. तथा ताइणोके० त्राइ एटले जेनो आत्मा अन्यने उपकारी होय तेने त्राइ कहिए. तथा विविक्तके० विविक्त आसणंके० आशन एटले स्त्री तथा पशु पंमके करी विवर्जित एवा भयमाणस्सके० उपाश्रयनो सेवनार सामाइयमाहुतस्सजंके० तेने सामायक चारित्र जाणवो. जोके० जेचारित्रिउ अप्पाणके० पोतानाआत्माने परिसह उपसर्ग उपना थका भएणदंसएके० भयने देखाडे नहीं. एटले उपसर्ग उत्पन्नथयाथी बीहे नहीं. ॥१७॥ वली उसिणोदगतत्तके० उष्ण उदक तथा तप्तोदकनो भोइणोके० भोगवनार एटले उष्ण थकां शीतल नकरे, किंतु उष्णोदक उतांज पानकरे; तथाधम्मठियस्सके० श्रुत अने चारित्र धर्मने विषे स्थित मुनिस्सके० मुनिराज एटले तत्वनो जाण हीमतोके० लज्जावंत एटले असंयमे प्रवर्त्यो थको लज्जा पामे. एवा साहुके० साधुने पण राइहिंके राजादिकने संसग्गिअके० संसर्गे असमाहिउ के० असमाधिज थाय. तह गयस्सविके० तथा गतस्य यथोक्त अनुष्ठानना करनार एवा साधु पण राजादिकना संसर्गे करी स्वाध्याय ध्यानथकी चूके. ॥१८॥

॥ दीपिका—उवणीयेति । उपनीतोऽतिशयेन ज्ञानादौ प्रापितआत्मायेन सउपनीततरस्तस्य । तायिनः परात्मोपकारिणस्त्रायिणोवा सम्यक्पालकस्य विविक्तं स्त्रीपशुपंडकविवर्जितमासनं वसत्यादि भजमानस्य सेवमानस्य सामायिकादिचारित्रमाहुः । सर्वं ज्ञायते यस्मात्ततः साधुना निश्चलात्मना भाव्यं । तथा यआत्मानं भयेन दर्शयेत् परीषहोपसर्गभीरुर्नस्यात् तस्य सामायिकमाहुरिति ॥ १७ ॥ (उसिणोत्ति) मुनेरुष्णोदकतप्तभोजिनः त्रिदंडोद्वृत्तोष्णोदकभोजिनः अथवा उष्णं सत् न शीतीकुर्यादिति तप्तग्रहणं । तथा धर्मे स्थितस्य न्हीमतः असंयमे लज्जावतोराजादिभिः सह संसर्गः संबंधोऽसाधुरनर्थकरः । तथागतस्य यथोक्तानुष्ठायिनोपि राजादिसंसर्गवशादसमाधिरेव नकदाचित्स्वाध्यायादिकं स्यादित्यर्थः ॥ १८ ॥

॥ टीका–पुनरप्युपदेशांतरमाह (उवणीयेत्यादि) उपसामीप्येन नीतः प्रापितोज्ञानादाऽवात्मा येन सतथा अतिशयेनोपनीत उपनीततरस्तस्य तथा तायिनः परात्मोपकारिणस्त्रायिणोवा सम्यक्पालकस्य तथा भजमानस्य सेवमानस्य विविक्तं स्त्रीपशुपंडकविवर्जितमास्यते स्थीयते यस्मिन्निति तदासनं वसत्यादि तस्यैवं भूतस्य मुनेः सामायिकं समभावरूपं सामायिकादिचारित्रमाहुः सर्वज्ञाः । यद्यस्मात् ततश्चारित्रिणा प्राग्व्यवस्थितसद्भावेन भांव्यं यश्चात्मानं भयेन परिषहोपसर्गजनितेन दर्शयेत् तद्भीरुर्न भवेत् तस्य सामायिकमाहुरिति संबंधनीयं ॥ १७ ॥ किंच (उसिणोदगेत्यादि) मुनेरुष्णोदकतप्तभोजिनः त्रिदंडोद्धृतोष्णोदकभोजिनः । यदिवा उष्णं सन्नशीतीकुर्यादिति तप्तग्रहणं । तथा श्रुतचारित्राख्ये धर्मे स्थितस्य (हीमतोत्ति) ह्रीरसंयमं प्रति लज्जा तद्वतोऽसंयमजुगुप्सावतइत्यर्थः । तस्यैवंभूतस्य मुनेराजादिभिः सार्द्धं यः संसर्गः संबंधोऽसाऽव साधुरनर्थोदयहेतुत्वात्तथागतस्यापि यथोक्तानुष्ठायिनोऽपि राजादिसंसर्गवशादसमाधिरेवाऽपध्यानमेव स्यात् न कदाचित् स्वाध्यायादिकं भवेदिति ॥ १८ ॥

अहिगरणकडस्स भिक्खुणो, वयमाणस्स पसज्झदारुणं ॥ अठे परिहायती बहु, अहिगरणं नकरेज्ज पंभिए ॥ १९ ॥ सीउदग पडिडुगंछिणो, अपडिन्नस्स लवावसप्पिणो ॥ सामाइय साहु तस्स जं, जो गिहिमत्तसणं न भुंजती ॥ २० ॥

अर्थ–हवे उपदेश आश्री कहेछे. अहिगरण के० अधिकरण ते कलह तेनो कडस्स के० करनार एवो भिक्खुणो के० चारित्रिउ वली पसज्झदारुणं के० प्रगटदारुण एटले जोवने भयनुं कारण वयमाणस्स के० एवी भाषानो बोलनार एवा चारित्रियानो घणो एवो जे अठेके० अर्थ जे मोक्ष तेनुं कारण जे संयम ते परिहायती के० हीणो थाय. एटले बहुके० घणाकाले उपार्जित जे डुष्करतप संयम तेनो पण कलह करतां परोपघातीया वचन बोलतां क्षय थाय. एवुं जाणीने शुंकरे ? ते कहेछे. पंभिएके० जे पंभितविवेकी होयते अहिगरणके० अधिकरण जे क्रोध ते स्वल्पपण नकरेज्जके० नकरे, एटले पंभित अल्पक्रोध पण करे नहीं. ॥ १९ ॥ जे चारित्रिउ सीउदगं के० शीतोदक एटले सचेतपाणी तेने पडिडुगंछिणो के० टालनार तथा अपडिन्नस्स के० अप्रतिज्ञ एटले नियाणु सर्वथापि नकरे. तथा लवावसप्पिणो के० लव एटले कर्म तेथकी शंकातो रहे. एटले कर्मबंधनुं कारण एवुं जे अनुष्ठान होय ते नकरे. सामाइयसाहुतस्सजंके० ते साधुने सामायक एटले समता लक्षणवंत कहिए. वली जोके० जे साधु गिहिमत्तसणं

के० गृहस्थसंबंधी जे भाजन कांस्यपात्रादिक तेने विषे नभुंजती के० भोजन न करे तेने सामायकवंत जाणवो. ॥ २० ॥

॥ दीपिका-(अहिगरणेति) । अधिकरणं कलहस्तत्करस्य भिक्षोर्दारुणं वाचं प्रसह्य प्रगटमेववदतोऽर्थोमोक्षः संयमोवा बहु परिहीयते भृशं विनश्यतीत्यर्थः । बहुकालार्जित मपि महत्पुण्यं कलहं कुर्वतस्तत्कालं क्षीयते । यतः । जं अज्जिअं समीखल्लएहिं तवनियम बंभमइएहिं ॥ माहुतयंकलहंता, छड्डेअहसागपत्तेहिं ॥ १ ॥ तस्मादधिकरणं नकुर्यात्पं डितः ॥ १९ ॥ (सीउंदगेति) । शीतोदकमप्रासुकजलं तत्प्रति जुगुप्सकस्य परिहारिणो न विद्यते प्रतिज्ञा निदानं यस्य सअप्रतिज्ञस्तस्याऽनिदानस्य लवं कर्म तस्मादवसर्पिणोनि वर्तमानस्य साधोः सामायिकादिसंयममाहुः सर्वज्ञाः । यश्च साधुर्गृहमात्रे गृहस्थभाज नेन भुंक्ते तस्य सामायिकमिति ॥ २० ॥

॥ टीका-परिहार्यदोषप्रदर्शनेनाऽधुनोपदेशानिधित्सयाह । (अहिगरणेत्यादि)। अधिकरणं कलहस्तत्करोति तच्छीलश्चेत्यधिकरणकरस्तस्यैवंभूतस्य भिक्षोस्तथाऽधिकरण करीं दारुणां वा भयानकां वा प्रसह्यप्रगटमेव वाचं ब्रुवतः सतोर्थोमोक्षस्तत्कारण भूतोवा संयमः सबहु परिहीयते ध्वंसमुपयाति । इदमुक्तं भवति । बहुना कालेन यद र्जितं विप्रकृष्टेन तपसा महत्पुण्यं तत्कलहं कुर्वतः परोपघातिनीं च वाचं ब्रुवतस्तत्क्ष णमेव ध्वंसमुपयाति । तथाहि । जंअज्जियंसमीखल्लएहिं तवनियमबंभमइएहिं । माहु तयंकलहंताछड्डेअह सागपत्तेहिं ॥ १ ॥ इत्येवं मत्वा मनागप्यधिकरणं न कुर्यात् पं डितः सदसद्विवेकीति ॥ १९ ॥ तथा (सीउंदगेत्यादि) । शीतोदकमप्रासुकोदकं तत्प्र ति जुगुप्सकस्याऽप्रासुकोदकपरिहारिणः साधोर्न विद्यते प्रतिज्ञा निदानरूपा यस्य सोप्र तिज्ञोऽनिदानइत्यर्थः । लवं कर्म तस्मात् (अवसप्पिणोत्ति) । अवसर्पिणः यदनुष्ठा नं कर्म बंधोपादानभूतं तत्परिहारिणइत्यर्थः । तस्यैवंभूतस्य साधोर्यस्मात् यत्सामा यिकं समभावलक्षणमाहुः सर्वज्ञाः । यश्च साधुः गृहमात्रे गृहस्थभाजने कांस्यपात्रादौ न भुंक्ते तस्यच सामायिकमाहुरिति संबंधनीयमिति ॥ २० ॥

णय संखयमाहु जीवियं, तहविय बालजणो पगप्भइ ॥ बाले पावेहिं मिज्जती. इति संखाय मुणी ण मज्जती ॥ २१॥ छंदेण पाले इमा पया, ब हुमाया मोहेण पाउडा ॥ वियडेण पलिंति माहणे, सीउण्ह वयसा हियासए ॥ २२ ॥

अर्थ–वली प्रकारांतरे कहेछे. आहुजीवियंके० जीवितव्य आयुष्य काल पर्यायें करी त्रूटोछतां णयसंखयके० वधारी नशकाय, एरीते पंमितो कहेछे. तह्वियके० तोपण बालजणोके० बाल अज्ञानी जन पगप्नइके० पाप करतो धृष्टपणुं करे एवो बालेके० बाल ते पापेहिंमिज्जतीके० पापकर्मेकरी नराय, संसारमां डुःख पामे. इतिसंखायके०एवुं जाणीने मुणी के० साधुजेछे, ते णमज्जतीके० मद नकरे एटले पापे करी धीगो न थाय. ॥ २१ ॥ वलीउपदेश कहेछे. छंदेणके० पोतपोताने अनिप्रायेंकरी इमापया के० ए प्रजा एटले लोकजेछेते पालेके० तेवी तेवी नरकादिक गतिने विषे पर्यटन करे, ते केवीरीते? तोके, एक दर्शनी पोताना अनिप्रायें करी गृहनेविषे ग्रस्त छतां अजादिकना वधने पण धर्मनुं कारण कहेछे, अन्य वली धनधान्यादिक परिग्रह पृथ्वीकायनो आरंन एने पण धर्म कहेछे, इत्यादिक प्रकारें ए प्रजालोक जे छे ते मुग्धजनरंजननिमित्ते बहुमाया के० कपट प्रधान अनेक प्रकारनी कपटक्रिया करे, परंतु श्रीवीतरागनो मार्ग सम्यक् प्रकारे नजाणे. तेनुं कारण कहेछे, केमके ए लोक जेछे, ते मोहेणके० अज्ञाने करी पाउडाके० आवरया. विवेकरहित छे, माटे खोटा साचानी व्यक्तिने जाणता नथी, एवुं जाणीने माहणे के० साधु ते वियडेण के० विकटेण एटले प्रगट मायारहित निर्माय कर्मे करी पलिंति के०. मोक्ष तथा संयमने विषे प्रवर्त्ते, एटले शुन ध्याने करीयुक्त होय, सीउण्हके०शीत उष्ण एटले अनुकूल अने प्रतिकूल उपसर्ग ते वयसा के० वचने, कायाये अने मने ए त्रिकरण शुद्धेकरी अहियासए एटले परीसह आवे थके दीनपणुं आणेनहीं. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–नयेति । जीवितं त्रुटितं सत् (नसंखयन्ति) नसंस्कर्तुं शक्यमित्याहुस्तद्विदः तथापि बालोऽज्ञो जनः प्रगल्भते पापं कुर्यात् । बालः पापैः कर्मनिर्मीयते म्रियते वा इति संख्याय ज्ञात्वा मुनिर्न माद्यति अहं सदनुष्ठानइति मदं नकुर्यात् ॥२१॥ (छंदेणेति) इमाः प्रजाः अयंलोकः छंदेन स्वानिप्रायेण प्रलीयते शोनननावः स्यात् । यथा छागादिवधेपि केचिद्धर्मं वदंति कुटुंबमुद्दिश्य धनादिपरिग्रहं कुर्वंति केचिन्मायया मुग्धजनं प्रतारयंति तथा बहुमाया प्रजा मोहेन प्रावृता आछादिताच एवंज्ञात्वा (माहणेत्ति) साधुः विकटेन प्रकटेन निर्मायेन कर्मणा संयमे प्रलीयते शुनननावः स्यात् । तथा शीतं उष्णंच वाचा कायेन मनसा वाऽधिसहते ॥ २२ ॥

॥ टीका–किंच (नयसंखयमित्यादि) नच नैव जीवितमायुष्कं कालपर्यायेण त्रुटितं सत् पुनः (संखयमिति) संस्कर्तुं तंतुवत्संधातुं शक्यते इत्येवमाहुस्तद्विदस्तथाऽप्येवमपि व्यवस्थिते बालोऽज्ञो जनः प्रगल्भते पापं कुर्वन् धृष्टोनवति असदनुष्ठानरतोऽपि

न लक्षतइति । सचैवंभूतोबालस्तैरसदनुष्ठानापादितैः पापैः कर्मभिर्मीयते तद्युक्तइत्येवं प रिछिद्यते ध्रियते वा मेयेन धान्यादिना प्रस्थकवदित्येवं संख्याय ज्ञात्वा मुनिर्यथावस्थि तपदार्थानां वेत्ता न माद्यतीति तेष्वसदनुष्ठानेष्वहं शोभनः कर्त्तेत्येवं प्रगल्भमानोमदं न करोति ॥ २१ ॥ उपदेशांतरमाह (छंदेणेत्यादि) छंदोऽभिप्रायस्तेन तेन स्वकीया भिप्रायेण कुगतिगमनैकहेतुना इमाः प्रजाअयं लोकस्तासु गतिषु प्रलीयते । तथाहि रागादिवधमपि स्वाभिप्रायग्रहग्रस्ताधर्मसाधनमित्येवं प्रगल्भमानाविदधति । अन्येतु संघा दिकमुद्दिश्य दासीदासधनधान्यादिपरिग्रहं कुर्वंति तथाऽन्ये मायाप्रधानैः कुक्कुटैरसकृ त्प्रेक्षमाणश्रोत्रस्पर्शनादिभिर्मुग्धजनं प्रतारयंति । तथाहि । कुक्कुटसाध्योलोकोन कुक्कुट तः प्रवर्तते किंचित् । तस्माल्लोकस्याऽर्थे पितरमपि सकुक्कुटं कुर्यात् तथेयं प्रजा बहु माया कपटप्रधाना किमिति यतोमोहोऽज्ञानं तेन प्रावृताऽऽछादिता सदसद्विवेकविकले त्यर्थः । तदेवमवगम्य (माहणेत्ति) साधुर्विकटेन प्रकटेनाऽमायेन कर्मणा मोक्षे संयमे वा प्रकर्षेण लीयते प्रलीयते शोभनभावयुक्तोभवतीति भावः । तथा शीतंच उष्णंच शीतो ष्णः शीतोष्णोवा अनुकूलप्रतिकूलपरीषहास्तान् वाचा कायेन मनसा च करणत्रयेणाऽपि सम्यगधिसहेतइति ॥ २२ ॥

कुजए अपराजिएजहा, अक्खेहिं कुसलेहिं दीवयं ॥ कडमेव गहाय
णो कलिं, नो तियंनो चेवदावरं ॥ २३ ॥ एवंलोगंमि ताइणा, वुइए जे
धम्मे अणुत्तरे ॥ तं गिएह हियंति उत्तमं, कडमिव सेसवहाय पंडिए॥२४॥

अर्थ–वली उपदेशांतर कहेछे. कुजए के कुत्सित एटले माठो एवो जेनो जय तेने कु जय कहिए. ए जुगार कहेवाय छे; केमके एमां घणो जय थाय तोपण निंदा करवा यो ग्य छे माटे कुंजयछे,ते केवो? तोके अपराजिएके० लब्ध लक्षपणे खेलतो अपर एटले अ न्य कोइथी जीत्यो जाय नहीं. एवो जुगारी जहा के० जेम अक्खेहिंके० अक्ष एटले पाशा तेणेकरी कुसलेहिं के० कुशल निपुण एवीरीते दीवयं के० खेलतो छतो ते कड मेवसहाय के० चोतरो दाव ग्रहण करीने खेलतां जीते तो ते चोतरो दायज ग्रहण करे. पण णोकलीके०एकनोदाव ग्रहण करे नहीं. तेमज णोतियंके० त्रणनो दावग्रहण नकरे अने नोचेवदावरं के० बेनो दाव पण ग्रहण नकरे. ॥ २३ ॥ हवे एदृष्टांत साधु साथे मेलवे छे. जेम जुगारने विषे जय पामवानो अभिलाषी एक चोकानो दावज ग्र हण करी बीजा दावनो त्याग करे. एवंलोगंमि के० एरीते ए मनुष्यलोकमांहे ताइ णा के० छकायनो रक्षपाल चारित्रियें वुइएजेधम्मे के० अहिंसाछे प्रधान जेमां एवो धर्म जे श्रीवीतरागे कह्यो, अणुत्तरे के० एवो अन्य धर्म जगतमांहे कोई नथी.

तके० ते धर्मने अहो शिष्य? तुं निःसंदेह थइने हियंतिके० एकांत हितकारी जाणीने गि एहके० आदर. ए उत्तमके० सर्वोत्तम मार्ग ढे. ते तूं ग्रहण कर. कोनी पेरे तोके, कड मेव के० ते जुगारिये ग्रहण करेला चोकाना दावनी पेरे. सेसवहाय के० शेष एकादि कनो दाव ढांमी दीधो. तेम पंमिए के० पंमित जे ढे, ते शेष अनेरा जे गृहस्थ, कुलिं गी, इव्यलिंगी एवा धर्म ढांमीने एक सर्वज्ञोपदिष्ट धर्मने ग्रहण करे. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका–(कुजएत्ति)। कुजयोद्यूतकारोयथा अक्षैः पाशैर्दीव्यन् क्रीमन् कुशलो नापराजितःस्यात्। अन्येन न जीयतइत्यर्थः। कडमेवत्ति। सद्यूतकारः कमचतुष्कमेव गृहीत्वैकैकं नो गृण्हाति। नत्रैतं त्रिकं नद्वापरंद्विकंवा गृण्हाति किंतुचतुष्कमेव लाति ॥ २३ ॥ दार्ष्टांतिकमाह। (एवमिति)। एवं लोकेस्मिन् तायिना सर्वज्ञेनोक्तोऽनु त्तरउत्कृष्टोयोयं धर्मस्तं हितमुत्तमं त्वं गृहाण। दृष्टांतनिगमनमाह। यथा द्यूतकारः शेषं एककादि अपहाय त्यक्त्वा कृतं कृतयुगं चतुष्कमेव लाति तथा पंमितः साधुरपि गृहस्थः कुप्रावचनिकपार्श्वस्थादिनावं त्यक्त्वा सर्वोत्तमं धर्मं गृण्हीयादित्यर्थः ॥ २४ ॥

॥ टीका–अपिच (कुजएत्यादि)। कुत्सितोजयोऽस्येति कुजयोद्यूतकारः महतो ऽपि द्यूतजयस्य सद्भिर्निंदितत्वादनर्थहेतुत्वाच्च कुत्सितत्वमिति। तमेव विशिनष्टि। अप राजितोदीव्यन् कुशलत्वादऽन्येन न जीयते। अक्षैर्वा पाशकैर्दीव्यन् क्रीडंस्तत्पातज्ञः कुशलोनिपुणः यथा असौ द्यूतकारोऽक्षैः पाशकैः कपर्दकैर्वा रममाणः (कडमेवत्ति) चतुष्कमेव गृहीत्वा तल्लब्धजयत्वात् तेनैव दीव्यति। ततोसौ तल्लब्धजयःसन्न कलिमे ककं नाऽपि त्रैतं त्रिकं च नापि द्वापरं द्विकं गृण्हातीति ॥ २३ ॥ दार्ष्टांतिकमाह। (एवमित्यादि) यथा द्यूतकारः प्राप्तजयत्वात् सर्वोत्तमं दीव्यंश्चतुष्कमेव गृण्हात्येवम स्मिंल्लोके मनुष्यलोके तायिना त्रायिणा वा सर्वज्ञेनोक्तोऽयं धर्मः क्षांत्यादिलक्षणः श्रु तचारित्राख्योवा नाऽस्योत्तरोऽधिकोऽस्तीत्यनुत्तरस्तमेकांतहितमपि कृत्वा सर्वोत्तमंच गृ हाण विस्रोतसिकारहितः स्वीकुरु। पुनरपि निगमनार्थंतमेव दृष्टांतं दर्शयति। यथा क श्चित् द्यूतकारः कृतं कृतयुगं चतुष्कमित्यर्थः। शेषमेककाद्यपहाय त्यक्त्वा दीव्यन् गृण्हा ति एवं पंडितोऽपि साधुरपि शेषं गृहस्थकुप्रावचनिकपार्श्वस्थादिनावमपहाय संपूर्णं म हांतं सर्वोत्तमं धर्मं गृण्हीयादिति नावः ॥ २४ ॥

उत्तरमणुयाण आहिया, गामधम्मा इइ मे अणुस्सुयं ॥ जंसी
विरता समुठिया कासवस्स अणुधम्मचारिणो ॥ २५ ॥ जे
एयं चरंति आहियं, नाएणं महया महेसिणा ॥ ते उठिय
ते समुठिया, अन्नोन्नं सारंति धम्मर्ज ॥ २६ ॥

अर्थ—वली अन्य उपदेश कहेछे. मणुयाणके० मनुष्यने उत्तरके० जीपतां अति दुर्जय आहिया के० कह्या. एवा शुं ? तोके, गामधम्मा के० ग्रामधर्म ते शब्दादिक विषय अथवा मैथुन सेवन इत्यादिकने ग्रामधर्म कहिए. इति के० एरीते मेके० में अणुस्सुयं के० श्रीवीरभगवंत पासेथी सांभल्युं छे, एटले श्रीसुधर्मस्वामी श्रीजंबुस्वामि प्रत्ये कहे छे के; ग्रामधर्म जे शब्दादिक विषय छे ते मनुष्यने घणा दुर्जय श्रीवीतरागे कह्या छे, एवुं में भगवंत पासेथी सांभल्युं छे. तेरीते हुं तुजने कहुंछुं तो हवे ए ग्रामधर्म आश्री. जंसी के० जे विरता के० विरतिने विषे समुठिया के० सावधान थया ते पुरुष कासवस्स के० काश्यप गोत्री एटले श्रीरुषभदेव स्वामि अथवा श्रीमहावीरस्वामि एमना धम्म के० धर्मना अणुचारिणोके० अनुचारी जाणवा. ॥ २५ ॥ वली कहेछे. जेके० जे पुरुष एयं के० ए पूर्वोक्त ग्रामधर्मने विषे विरतिलक्षण एवो जे धर्म तेने चरंति के० आचरे ते धर्म कोणे आहियंके० कह्यो ? तोके, महया के० महोटा महेसिणा के० महारुषी एवा नाएण के० ज्ञातपुत्रे कह्योछे. तेके० ते एवा धर्मना करनार संयम पालवाने उठिय के० उठ्या, सावधान थया, तथा समुठिया के० सम्यक् प्रकारें कुमार्ग देशनाने परित्यागे करी घणा सावधान छता प्रवर्त्ते. ते अन्नोन्नंसारंति धम्मउंके० परस्पर मांहोमांह धर्मथकी भगता प्राणीने वली धर्मनेविषे सारंति एटले स्थापे इत्यर्थः ॥२६॥

॥ दीपिका—(उत्तरेति) । मनुजानां नराणां ग्रामधर्माः शब्दादिविषया उत्तरा दुर्जयत्वात्प्रधाना जिनैराख्याताः । मयैतदनुपश्चाच्छ्रुतमाकर्णितं । यतः श्रीरुषभस्वामिना स्वपुत्रानुद्दिश्य प्रोक्तं तत्पाश्चात्यगणधरैः शिष्येभ्यः कथितं ततोमया श्रुतमिति । यस्मिन्निति पंचम्यर्थे सप्तमी । येभ्योविषयेभ्योविरताः समुत्थितादयताः काश्यपस्य श्रीरुषभस्य श्रीवीरस्य वा संबंधी योधर्मस्तदनुचारिणोजिनोक्तधर्मकारिणः स्युः ॥२५॥ (जेएयमिति) । ये एवंविधाः पूर्वोक्तास्ते धर्मविपर्यत्यागरूपं चरंति कुर्वंति इति महता महर्षिणा ज्ञातेन श्रीवीरेणाख्यातं । तएवोत्थिताः सम्यङ्मार्गेभ्यः समुत्थिताश्च कुमतिभ्यस्तएवाऽन्योन्यं परस्परं धर्मतोधर्ममाश्रित्य धर्मतोभ्रश्यंतं वा सारयंति धर्मे प्रवर्तयंतीत्यर्थः ॥ २६ ॥

॥ टीका—पुनरप्युपदेशांतरमाह । (उत्तरेत्यादि) । उत्तराः प्रधानाः दुर्जयत्वात् केषामुपदेशार्हत्वान्मनुष्याणामन्यथा सर्वेषामेवेति । के ते ग्रामधर्माः शब्दादिविषया मैथुनरूपा वेति । एवं ग्रामधर्मा उत्तरत्वेन सर्वज्ञैराख्याताः । मयैतदनुपश्चाच्छ्रुतं । एतत्सर्वमेव प्रागुक्तं । यच्च वक्ष्यमाणं तन्नाभेयेनाऽऽदितीर्थकृता पुत्राानुद्दिश्याऽभिहितं सत् पाश्चात्यगणधराः सुधर्मस्वामिप्रभृतयः स्वशिष्येभ्यः प्रतिपादयंत्यतोमयैतदनुश्रुतमित्यन

वद्यं । यस्मिन्निति कर्मणि ल्यब्लोपे पंचमी सप्तमीवेति । यान् ग्रामधर्मानाश्रित्य ये विरताः । पंचम्यर्थे वा सप्तमी । येन्योवा विरताः सम्यक्संयमरूपेणोछ्रिताः समुछ्रितास्ते काश्यस्यर्षभस्वामिनोवर्धमानस्वामिनोवा संबंधी योधर्मस्तदनुचारिणस्तीर्थकरप्रणीतधर्मानुष्ठायिनोनवंतीत्यर्थः ॥१५॥ किंच (जेएइत्यादि) । ये मनुष्याएनं प्रागुक्तं धर्मं ग्रामधर्मविरतिलक्षणं कुर्वंति चरंति । आख्यातं ज्ञातेन ज्ञातपुत्रेण (महयेति) महाविपयस्य ज्ञानस्याऽनन्यभूतत्वात् महान् तेन तथाऽनुकूलप्रतिकूलोपसर्गसहिष्णुत्वान्महर्षिणा श्रीमद्धर्धमानस्वामिना आख्यातं धर्मं ये चरंति तएव संयमोछ्राने कुतीर्थिकपरिहारेणोछ्रितास्तथा निन्हवादिपरिहारेण । तएव सम्यक्त्वमार्गदेशनाऽपरित्यागेनोछ्रिताः समुछ्रिता इति नाऽन्ये कुप्रावाचनिकाजमालिप्रभृतयश्चेतिभावः । तएव च यथोक्तधर्मानुष्ठायिनोऽन्योऽन्यं परस्परं धर्मतोधर्ममाश्रित्य धर्मतोवाभ्रश्यंतं सारयंति चोदयंति पुनरपि सद्धर्मे प्रवर्तयंतीति ॥ १६ ॥

मापेह पुरा पणामए, अभिकंखे उवहिं धुणित्तए ॥ जे दूमणतेहिं णोणया, ते जाणंति समाहिमाहियं ॥ १७ ॥ णोकाहिए होऊ संजए, पासणिए णय संपसारए ॥ नच्चा धम्मं अणुत्तरं कय किरिए ण यावि मामए ॥ १८ ॥

अर्थ—हवे जेरीते धर्मस्थापे ते रीत कहेछे. पणामएके० प्रणाम एटले सर्व जीवने नमाडे. एवा प्रणाम ते शब्दादिक विषयरूप पुरा के० पूर्वला भोगव्या भोग तेने मापेह के० न चिंतवे. केमके तेनुं चिंतववुं पण महा अनर्थनुं कारणछे. तो ए शब्दादिक विषयने सेववानुं शुं कहेवुं ? तथा अभिकंखे के० आगमिक काले उपजनार जे विषय तेने पण न वांछे. तेनी अभिलाषा न करे, तथा तेने दूर करवा वांछे. तोआत्माने जे उवहिंके० उपधि एटले माया अथवा अष्टप्रकारे कर्म तेने धुणित्तए के० पोताथकी दूर करे. तथा जे दूमणतेहिं के० डुष्ट मनना करनार एवाजे शब्दादिक विषय तेने विषे णोणयाके० नम्या नथी. अथवा डुष्ट धर्मना करनार एवा जे कुतीर्थिक तेनां कहेलां जे अनुष्ठान तेना करनार थया नथी एटले तेने वशीगत थया नथी. ते जाणंति समाहिमाहियं के० ते पुरुष राग, द्वेष, परित्यागरूप जे समाधि तद्रूप धर्मध्यान तेने आहियं एटले आत्माने विषे व्यवस्थित जाणे. ए थकी जे अन्य छे तेने विषे समाधि जाणे नहीं, एवुं जाणीने विषयने छांमे ॥ १७ ॥ वली उपदेशांतर कहेछे. संजए के० चारित्रिउ जे छे. ते णोकाहिए होऊ के० गोचरीने विषे कथानो करनार न होय एटले विकथा न करे. अथवा विरुद्धरूप पशुन्य वार्त्ता एटले स्त्रीयादिकनी कथा तेपण न करे. तथा पासणिएणयके० प्रश्न नकरे

अथवा अनेरायें पूछयाथकी निमित्तादिक कहे नहीं तथा संपसारए के० अर्थकांमादिक कथानो विस्तार नकरे, केमके धम्मंके० ए श्रीवीतराग देवनो जे धर्म तेने अणुत्तरं के० सर्वोत्तम नच्चा के० जाणीने विकथादि न करे एटले सम्यक् धर्म जाणवानुं एहिज फलछे, जे विकथादिकनो त्याग करवो अने सम्यक् प्रकारे क्रिया करवी ते नाव देखाडेछे. कयके० कीधीछे रुडीपरे अन्यासीने संयमानुष्ठानरूप किरिए के० क्रिया जेणे एवो छतो उत्तम साधु ते णयाविमामए के० देहादिकने विषे पण ममत्व न करे ॥ २८ ॥

॥ दीपिका—(मापेहेति)। प्रणामयंति प्रापयंति डुर्गतिं प्रणामकाः शब्दादिविषयास्तान् माप्रेक्षस्व मास्मर । तथा उपधिं मायां धूनयितुमपनयनायाभिकांक्षेत् चिंतयेत् मायात्यागाय यतेतेत्यर्थः । ये नराडुर्मनोनिर्विषयैर्नेनता न तत्पराः स्युस्ते जानंति समाधिं धर्मध्यानं आहितं आसमंतात् हितं ॥२७॥ (नोकाहिएति) संयतः साधुः काथिकः कथाकथकोगोचरादौ न नवेत् । प्राश्निकः प्रश्ननिमित्तकथकश्च नभवेत् । नच संप्रसारको मेघवृष्ट्यर्थकांडादिसूचककथाविस्तारको नवेत् । किंकृत्वाऽनुत्तमुत्कृष्टं धर्मं ज्ञात्वा कृता अन्यस्ता क्रिया संयमानुष्ठानरूपा येन सकृतक्रियोमामकोन स्यात् ममेदं वस्तु अहमस्य स्वामीति मामकः परिगृही नस्यादित्यर्थः ॥ २८ ॥

॥ टीका—किंच (मापेहेत्यादि) डुर्गतिं संसारं वा प्रणामयंति प्रव्हीकुर्वंति प्राणिनां प्रणामकाः शब्दादयोविषयास्तान् पुरा पूर्वं जुक्तान् मा प्रेक्षस्व मास्मर । तेषां स्मरणमपि यस्मान्महतेऽनर्थाय । अनागतांश्च नोदीक्षेत नाऽऽकांक्षेदिति । तथाऽभिकांक्षेत् अभिलषेदनारतं चिंतयेदनुरूपमनुष्ठानं कुर्यात् । किमर्थमिति दर्शयति । उपधीयते ढौक्यते डुर्गतिं प्रत्यात्मा येनाऽसावुपधिर्माया अष्टप्रकारं वा कर्म तद्धननायाऽपनयनायाऽभिकांक्षेदिति संबंधः । डुष्टधर्मं प्रत्युपनताः कुमार्गानुष्ठायिनस्तीर्थिकाः यदिवा (दूमणत्ति) डुष्टमनःकारिणउपतापकारिणोवा शब्दादयोविषयास्तेषु ये महासत्वाः न नतान प्रव्हीनूतास्तदाचारानुष्ठायिनोन नवंति तेच सन्मार्गानुष्ठायिनोजानंति विंदंति समाधिं रागद्वेषपरित्यागरूपं धर्मध्यानंच आहितमात्मनि व्यवस्थितं आसमंताद्धितं वा तएव जानंति नाऽन्यइतिनावः ॥ २७ ॥ तथा (णोकाहिएइत्यादि) संयतः प्रव्राजितः कथया चरति काथिकोगोचरादौ न नवेत् । यदिवा विरुद्धां पैशून्यापादनीं स्त्र्यादिकथां वा न कुर्यात् । तथा प्रश्नेन राजादिकिंवृत्तरूपेण दर्पणादिप्रश्ननिमित्तरूपेण वा चरतीति प्राश्निकोन नवेत् नाऽपिच संप्रसारकोदेववृष्ट्यर्थकांडादिसूचककथाविस्तारकोनवेदिति । किंकृत्वेति दर्शयति । ज्ञात्वाऽवबुध्य नास्योत्तरोविद्यतइत्यनुत्तरस्तंश्रुतचारित्राख्यं धर्मं सम्यगवगम्य तस्य हि धर्मस्यैतदेव फलं यडुत विकथानिमित्तपरिहारेण स

न्यक्रियावान् स्यादिति । तद्दर्शयति । कृता स्वन्यस्ता क्रिया संयमानुष्ठानरूपा येन सकृतक्रियस्तथाऽनूश्च। नचाऽपि मामकोममेद महमस्य स्वामीत्येवं परिग्रहाग्रही नवेदिति॥२७॥

छन्नं च पसंस णोकरे, नय उक्कोस पगास माहणे ॥ तेसिं सुविवेगमाहिए,पण याजेहिं सुजोसिअं धुयं॥ २ए ॥ अणिहे सहिए सुसंवुमे, धम्मही उवहाण वीरिए ॥ विहरेज्ज समाहि इंदिए, आत्तहिअं खु डुहेण लप्नइ ॥ ३० ॥

अर्थ–तथा चारित्रिउ होयते छन्नं के० माया अने पसंस के० लोन ते णोकरे के० नकरे, तथा उक्कोस के० उत्कर्ष एटले मान तथा पगास के० प्रकाश एटले क्रोध तेपण माहणे के० साधु ते नय के० नकरे, तेसिं के० ते क्रोधादिकनो सुविवेग के० परित्याग आहिए के० महांत पुरुषे कह्यो तेहिज धर्मनेविषे प्रणया के० सावधान थया एवा जेहिं के० जे महासत्ववंत पुरुष तेणे धुयं के० संयमानुष्ठान सुजोसियं के० सेव्युं ते साधु जाणवा ॥ २ए ॥ अणिहे के० स्नेहरहित तथा सहिए के० ज्ञान, दर्शन अने चारित्रे करी संयुक्त अने सुसंवुमे के० सुसंवृत एटले संवरेसहित प्रवर्त्ततो तथा धम्मही के० धर्मनो अर्थि तथा उवहाण के० उपधान एटले तपविशेष तेनेविषे वीरिए के० बलवीर्यनो फोरवनार संयम पालतो समाहिइंदिए के० समाहित इंडिउ एटले इंडिउ वश करीठे जेणे, एवो ठतो विहरेज्जा के० विचरे केमके संसारमांहे नमता खु के० निश्चे आत्तहियंके० आत्महित जे ठे, ते डुहेणलप्नइ के० डुःखेकरी लन्यमान थायठे ॥३०॥

॥ दीपिका–(छन्नंति) मायां न कुर्यात् । प्रशस्यते सर्वैरिंड्रियैरिति प्रशस्योलोनस्तंच उत्कर्षमानं प्रकाशंक्रोधंच माहनः साधुर्न कुर्यादिति सर्वत्र संबंधः । तेषां कषायाणां यैर्महात्मनिर्विवेकः परित्यागआहितोजनितस्तएव धर्मप्रति प्रणताः प्रह्वीनूताः । अथवा तेषां सत्पुरुषाणां सुविवेकआहितः प्रथितः । यैः सत्पुरुषैर्जुष्टं सेवितं । धूयते क्षिप्यते कर्म येन तद्धूतं संयमानुष्ठानं ।(अथवा यैः सुजोसिअंति)सुष्ठु क्षपितं धूतं कर्मेति ॥२ए ॥ (अणिहः) स्निह्नोममत्वरहितः परीषहोपसर्गैर्न निहन्यतइत्यनिहोवा । अणहेतिपाठेतु अनघो निरवद्यः सहितोहितयुक्तः स्वहितोवा सुसंवृतोधर्मार्थी । उपधानं तपस्तस्य वीर्यवान् समाहितेंडियः संयतेंड्रियोविरहेत् । कुतएवं यतआत्महितं डुःखेन जीवैर्लभ्यते । यतो दशदृष्टांतैर्मानुष्यादिकं डुर्लनमिति ॥ ३० ॥

॥ टीका–किंच (छन्नमित्यादि) (छन्नंति) माया तस्याः स्वाभिप्रायप्रछादनरूपत्वात् तां न कुर्यात् । चशब्दउत्तरापेक्षया समुच्चयार्थः । तथा प्रशस्यते सर्वैरप्यविगानेनाड्रियत

इति प्रशस्योजोनस्तं च नकुर्यात् । तथा जात्यादिनिर्मदस्थानैर्लघुप्रकृतिं पुरुषमुत्क र्षयतीत्युत्कर्षकोमानस्तमपि न कुर्यादिति संबंधः । तथांऽतर्व्यवस्थितोऽपि मुखदृष्टि भंगविकारैः प्रकाशी नवतीति प्रकाशः क्रोधस्तं च (माहणेत्ति) साधुर्न कुर्यात् । तेषां क पायाणां यैर्महात्मनिर्विवेकः परित्यागःत्र्याहितो जनितस्तएव धर्मं प्रति प्रणताइति । य दिवा तेषामेव सत्पुरुषाणां सुष्ठु विवेकः परिज्ञानरूपःत्र्याहितः प्रथितः प्रसिद्धिं गतस्त एवच धर्मं प्रति प्रणताः । यैर्महासत्वैः सुष्ठु जुष्टं सेवितं । धूयतेऽष्टप्रकारं कर्म येन तद्धूतं सं यमानुष्ठानं । यदिवा यैः सदनुष्ठायिनिः (सुजोसिअंति) सुष्ठु क्षिप्तं धूननार्हत्वात् धूतं कर्मेति ॥ २ए ॥ अपिच (अणिहेइत्यादि) स्निह्यतइतिस्निहः । नस्निहः अस्निहः स र्वत्र ममत्वरहितइत्यर्थः । यदिवा परीषहोपसर्गैर्निहन्यतेइतिनिहः ननिहोऽनिहउप सर्गैरपराजितइत्यर्थः । पाठांतरंवा । (अणहेति) नाऽस्याऽघमस्तीत्यनघोनिरवद्यानु ष्ठायीत्यर्थः । सह हितेन वर्ततइति सहितः सहितोयुक्तोवा ज्ञानादिनिः स्वहितत्र्या त्महितोवा सदनुष्ठानप्रवृत्तेः । तामेव दर्शयति । सुष्ठु संवृतइंडियनोइंडियैर्विस्रोत सिकारहितइत्यर्थः । तथा धर्मः श्रुतचारित्राख्यस्तेनाऽर्थः प्रयोजनं सएवाऽर्थस्तस्यैव सनि रर्ज्यमाणत्वात् धर्मार्थः सयस्याऽस्तीति सधर्मार्थी । तथोपधानं तपस्तत्र वीर्यवान् सए वंभूतो विहरेत् संयमानुष्ठानं कुर्यात् । समाहितेंडियः संयतेंडियः । कुतएवं । यतत्र्या त्महितं डुःखेनाऽसुमता संसारे पर्यटता अकृतधर्मानुष्ठानेन जन्यते अवाप्यतइति । त थाहि । नपुनरिदमतिडुर्लन,मगाधसंसारजलधिविभ्रष्टं । मानुष्यं खद्योतकतडिल्लताबि लसितप्रतिमं ॥ १ ॥ तथाहि । युगसमिलादिदृष्टांतनीत्या मनुष्यनवएव तावत् डुर्लन स्तत्राऽप्यार्यक्षेत्रादिकं डुरापमित्यतःत्र्यात्महितं डुःखेनाऽवाप्यतइति मंतव्यं । अपिच । भू तेषु जंगमत्वं, तस्मिन् पंचेंडियत्वमुत्कृष्टं ॥ तस्मादपि मानुष्यं मानुष्येप्यार्यदेशश्च । १ । देशे कुलं प्रधानं, कुले प्रधाने च जातिरुत्कृष्टा ॥ जातौ रूपसमृद्धी रूपे च बलं विशिष्ट तमं ॥२॥ नवति बले चायुष्कं प्रकृष्टमायुष्कतोऽपि विज्ञानं । विज्ञाने सम्यक्त्वं सम्यक्त्वे शीलसंप्राप्तिरिति ॥ ३ ॥ एतत्पूर्वश्चाऽयं, समासतोमोक्षसाधनोपायः । तत्रच बहु संप्रा प्तं, नवद्भिरल्पं च संप्राप्यं ॥ ४ ॥ तत्कुरुतोद्यममधुना मडुक्तमार्गे समाधिमाधाय ॥ त्यक्त्वा संगमनार्यं, कार्यं सद्भिः सदा श्रेयइति ॥ ५ ॥ ३० ॥

णहि णूण पुरा अणुस्सुतं, अडुवा तं तह णो समुठियं ॥ पा ठांतरं अडुवा अवितहणो अणुठिअं॥मुणिणा सामाइ आहितं, नाएणं जगसव्वदंसिणा॥३१॥एवं मत्ता महंतरं,धम्ममिणं सहिया बहू जणा॥ गुरुणो छंदाणुवत्तगा,विरया तिन्न महोघमाहितंतिबेमि॥३२

अर्थ—हवे ए जीव क्यांए जे नथी पाम्यो ते देखाडेछे. जे श्रीवीतरागे संयमानुष्ठान कह्युं. ते पुराके० पूर्वे ए जीवे णूणअणुस्सुतंणहिके० निश्चेंथकी सांभल्युं पण नथी अडवाके० अथवा तंके० ते धर्म कदापि तह के० तथा णोसमुछियं के० रुडीरीते पाल्युं पण नथी मुणिणा के० महर्षियें ज्ञातपुत्रे सामाइआ के० सामायिकादिक घणां डुर्लन छे, एरीते आहितं के० कह्यां ते नाएणं के० ज्ञातपुत्र जे श्रीमहावीर जगसव्वदंसिणा के० जगतमां सर्वदर्शी तेणे कह्युं ॥ ३१ ॥ एवो जाणी जे करवुं ते कहेछे. एवंमत्तामहंतरं के० एम पूर्वोक्त प्रकारे आत्महित डुर्लन जाणीने तथा धम्ममिणं के० धर्मनो ए महांतआंतरो एटले धर्मनुं विशेष जाणीने सहिया के० ज्ञान, दर्शन अने चारित्र सहित बहु के० घणा एवा हलवा कर्मि जणा के० लोक ते गुरुणो बंदाणुवत्तगा के० गुरुने बंदे प्रवर्त्तता एटले गुरूपदिष्ट यथोक्त संयमने पालता विरया के० पापथकी विरत ते महोघ के० महोटो जेनो प्रवाह छे, एवा संसारसमुड थकी तिन्न के० तस्था. एरीते आहितं के० श्रीतीर्थंकर गणधरे कह्युं तिबेमि एटले पूर्ववत् ॥ ३२ ॥ इति श्रीवेतालियाध्ययनस्य द्वितीयोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ दीपिका—(णहिणूणेति)। यन्मुनिना ज्ञातेन श्रीवीरेण जगतः सर्वन्नावदर्शिना सर्वज्ञेन सामायिकादि आहितमाख्यातं तन्नूनं निश्चितं पुरापूर्वं जीवैर्नहि अनुश्रुतं श्रवणपथमागतं। अथवा श्रुतमपि नसमुछितं यथावन्नानुष्ठितं ॥ ३१ ॥ (एवमिति) एवमात्महितं डुर्लनं मत्वा (महंतरंति) मानुष्यादिकमवरं ज्ञात्वा एनं जैनं धर्मंच स्वहितावह्वोजना लघुकर्माणोगुरोश्छंदानुवर्तकास्तडुक्तमार्गानुष्ठायिनोविरताः पापेन्यइत्याख्यातं तीर्थकृद्भिः। इतिशब्दः समुच्चयार्थः । ब्रवीमीतिपूर्ववत् ॥ ३२ ॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां द्वितीयाध्ययनस्य द्वितीयोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ टीका—एतच्च प्राणिभिर्न कदाचिदवाप्तपूर्वमित्येतद्दर्शयितुमाह ॥ (णहिणूणेत्यादि)। यदेतन्मुनिना जगतः सर्वन्नावदर्शिना ज्ञातपुत्रीयेण सामायिकाद्याहितमाख्यातं तन्नूनं निश्चितं। नहि नैव पुरापूर्वं जंतुभिरनुश्रुतं श्रवणपथमायातं। अथवाश्रुतमपि तत्सामायिकादि यथावस्थितं तथा नाऽनुष्ठितं । पाठांतरंवा । (अवितहंति) । अवितथं यथावन्नाऽनुष्ठितमतः कारणादसुमतामात्महितं सुडर्लनमिति ॥ ३१ ॥ पुनरप्युपदेशांतरमधिकृत्याह । (एवंमत्ताइत्यादि)। एवमुक्तरीत्याऽऽत्महितं सुडर्लनं मत्वा ज्ञात्वा धर्माणां च महदंतरं धर्मविशेषं कर्मणोवा विवरं ज्ञात्वा । यदिवा (महंतरंति) मनुष्यार्यक्षेत्रादिकमवसरं सदनुष्ठानस्य ज्ञात्वा एनं जैनं धर्मं श्रुतचारित्रात्मकं सह हितेन वर्ततइति सहिताज्ञानादियुक्तावह्वोजनालघुकर्माणः समाश्रिताः संतोगु

रोराचार्यादेस्तीर्थंकरस्य वा छंदानुवर्त्तकास्तडुक्तमार्गानुष्ठायिनोविरताः पापेन्यः कर्मभ्यः संतस्तीर्णामहौघमपारं संसारसागरमेवमाख्यातं मया नवतामपरैश्च तीर्थकृद्भिरन्यैषां । इ तिशब्दः परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ वैतालीयस्य द्वितीयोद्देशकः समाप्तः ॥ २ ॥

॥ अथ वैतालीयाध्ययनस्य तृतीयोद्देशकस्य प्रारंनः ॥

संवुमकम्मस्स निरकुणो, जं डुरकं पुठं अबोहिए ॥ तं संजमठव चिज्जई, मरणं हेच्च वयंति पंमिया ॥१॥ जे विन्नवणा अजोसिया, संतिन्नेहिं समं विहाहिया ॥ तम्हा नुर्वति पासहा, अदरकुकामाइरोगवं ॥ २ ॥

अर्थ—हवे त्रीजो उद्देशो प्रारंनियेछैयें. बीजा उद्देशामां चारित्र पालवुं कह्युं ते चारित्र पालतां कदाचित् परिसह आवेतो सहन करवा एवो नाव कहेछे, संवुम के० संवखाछे कम्मस्स के० मिथ्यात्वादिक कर्म जेणे एवा निरकुणो के० साधुने जंडुरकं के० जे डुःख नोगवतां दोहिलां अथवा तेनां कारण जे अष्ट प्रकारना कर्म अबोहिए के० अज्ञानपणे पुठं के० बांध्यांछे, निकाचित कखाछे तंके० ते संजमउ के० सत्तर प्रकारना संयमे करी चिज्जई के० क्षणे क्षणे खुटेछे; जेम तलावनुं पाणी सूर्यना किरणे करी सर्वदा क्षणे क्षणे खूटेछे, तेम चारित्रियानां कर्म ते तप अने संयमे करी खूटेछे, मरणं हेच्चपंमिया के० तथा संवृति आत्मा ते पंमित मरण एटले जन्म, जरा, मरण अने शोकादिक ढांमीने वयंति के० मोक्षे पोहोचे. अथवा एरीते वयंति पंमिया के० जे पंमित विवेकी सर्वज्ञ छेते कहेछे. ॥१॥ हवे जे विरति रुडा अनुष्ठानना करनारछे, ते तेहिज नवे मोक्षे जाय. ते आश्री कहेछे. जे के० जे महासत्ववंत पुरुष विन्नवणा के० जे कामार्थि पुरुषे विनंती कराय ते कारणमाटे विन्नवणा शब्दे स्त्री कहिए. तेने अजोसियाके० नसेवे तथा रुडे आचारे करी संतिन्नेहिं के० संतीर्ण शब्दे संसार थकी मूकाणा समवि विहिया के० सरखा कह्या तम्हा के० तेकारणे उड्ढंति के० उंचुं एवुं जे मोक्ष तेने पासहा के० जोयुं वली जेणे अदरकूकामाइरोगवं के० कामनोग जे छे तेने रोगनीपरे दीठा ॥२॥

॥ दीपिका—उक्तोद्वितीयोद्देशकः सांप्रतं तृतीयः समारन्यते तस्यायमधिकारः । पूर्वं । रताइत्युक्तं तेषांच कदाचित् परीषहाअपि उदीर्येरन् ते सम्यक् सोढव्याइत्यनेन संबं यातस्यास्योद्देशकस्येदमादिसूत्रं ॥ (संवुडेति) संवृतं निरुद्धं कर्म येन तस्य संवृतकर्मणः साधोर्डुःखं यत् स्पृष्टं बद्धं तदबोधिना अज्ञानेनोपचितं सन्नसंयमतोऽपचीयते क्षीयते । ते संवृतात्मानोमरणं उपलक्षणाज्जातिशोकादिकं च हित्वा त्यक्त्वा मोक्षं व्रजंति पंडिताः ॥ १ ॥ (जेवीति) । कामार्थिभिर्विज्ञाप्यंते प्रार्थ्यंनइति विज्ञापनास्त्रियस्ताभि

यें अजुष्टाअसेवितास्ते संतीर्णैर्मुक्तैः समं व्याख्याताः । अतीर्णाअपि ते संसारं तीर्णाइव स्यु रित्यर्थः ॥ तस्मादूर्ध्वंमोक्षं यूयंपश्यत ये च कामान् रोगवत् रोगतुल्यान् अशक्रुर्दृष्ट वंतस्तेपि तीर्णसमाइत्यपि पश्यत । यतः पुप्फफलाणं च रसं, सुराइमंसस्स महिलि आणं च ॥ जाणंतो जे विरया, ते डुक्करकारएवंदे ॥ २ ॥

॥ टीका—उक्तोद्वितीयोद्देशकः सांप्रतं तृतीयः समारन्यते ॥ अस्यचाऽयमनिसंबंधः । इहाऽनंतरोद्देशकांते विरताइत्युक्तं तेषांच कदाचित्परीषहाः समुदीर्येरन्नतस्तत्स हनं विधेयमित्युद्देशार्थाधिकारोऽपि निर्युक्तिकारेणाऽनिहितः । यथाऽज्ञानोपचितस्य कर्मणोऽपचयोनवतीति सच परीषहसहनादेवेत्यतः परीषहाः सोढव्याइत्यनेन संबंधेनाऽऽयातस्याऽस्योद्देशकस्याऽदिसूत्रं । (संवुमकम्मस्सेत्यादि) । संवृतानि रुद्धानि कर्माण्यनुष्ठानानि सम्यगुपयोगरूपाणि वा मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगरूपाणि वा यस्य निक्षोः साधोः सतथा तस्य यत् डुःखमसद्वेद्यं तदपादानन्नूतं वाऽष्टप्रकारं कर्म । (स्पृष्टमिति) बद्धस्पृष्टनिकाचितमित्यर्थः । तच्चाऽत्राबोधिना अज्ञानेनोपचितंः सत् संयमतोमौनींडोक्तात् सप्तदशरूपादनुष्ठानादपचीयते प्रतिक्षणं क्षयमुपयाति । एतडुक्तं नवति । यथा तटाकोदरसंस्थितमुदकं निरुद्धापरप्रवेशद्वारं सदादित्यकरसंपर्कात् प्रत्यहमपचीयते । एवं संवृताश्रवद्वारस्य निक्षोरिंड्रिययोगकषायं प्रति संलीनतया संवृतात्मनः सतः संयमानुष्ठानेन चाऽनेकनवाज्ञानोपचितं कर्म क्षीयते । ये च संवृतात्मानः सदनुष्ठायिनश्च ते हित्वा त्यक्त्वा मरणं मरणस्वनावमुपलक्षणत्वात् जातिजरामरणशोकादिकं त्यक्ता मोक्षं व्रजंति पंडिताः सदसद्विवेकिनः । यदि वा पंडिताः सर्वज्ञाएवं वदंति यत् प्रागुक्तमिति ॥ १ ॥ येऽपिच तेनैवं नवेन च मोक्षमाप्नुवंति तान् धिकृत्याह । (येविन्नवणेत्यादि) ये महासत्वाः कामार्थिनिर्विज्ञाप्यंते यास्तदर्थिन्यो वा कामिनं विज्ञापयंति ताविज्ञापनाः स्त्रियस्तानिरजुष्टाअसेविताः क्षयं वा अवसायलक्षणमतीतास्ते संतीर्णैर्मुक्तैः समं व्याख्याताः । अतीर्णाअपि संतोयतस्ते निष्किंचनतया शब्दादिषु विषयेष्वप्रतिबद्धाः संसारोदन्वतस्तटोपांतवर्तिनोनवंति । (तस्मादूर्ध्वमिति) मोक्षं योषित्परित्यागादूर्ध्वं यद्भवति तत्पश्यत यूयं । येच कामान् रोगवद्व्याधिकल्पान् अशक्रुर्दृष्टवंतस्ते संतीर्णसमाव्याख्याताः । तथाचोक्तं । पुप्फफलाणंचरसं, सुराइमंसस्समहलियाणंच ॥ जाणंताजेविरया, तेडुक्करकारएवंदे ॥ १ ॥ तृतीयपादस्य पागंतरं वा । उड्ढंतिरियंअहेतहा. ऊर्ध्वमिति सौधर्मादिषु तिरियमिति तिर्यक्लोके अधइति नवनपत्यादौ येकामास्तान् रोगवदशक्रुर्ये ते तीर्णकल्पाव्याख्याताइति ॥ २ ॥

अग्गं वणिएहिं आहियं धारंति राइणिया इह ॥ एवं परमा महव्वया, अ
रकायाउ सराइ नोयणा ॥३॥ जे इह सायाणुगा नरा, अज्झोववन्ना कामे
हिं मुच्छिया ॥ किवणेणसमं पगप्निया, न विजाणंति समाहिमाहितं ॥४॥

अर्थ–वली उपदेश आश्री कहेछे. जेम वणिएहिं के० वणिके अग्गंके० अग्र एटले प्रधान एवां रत्नवस्त्रानरणादिक देशांतर थकी, आहियंके० आण्या तेने इह के० आमनुष्यलोकमांहे राइणिया के० राजा अथवा मोहोटा व्यवहारवंतपुरुषजे होय तेज धारंति के० धारण करेछे एटले पहेरेछे एवं के० एप्रकारे परमा के० प्रधान रत्नतुल्य एवाजे महव्वया के० पांच महाव्रत ते सराइनोयणा के० छठारात्रीनोजन विरमण सहित छ व्रत ने अक्खयाउ के० आचार्ये आण्या तेने साधुज धारणकरे अने सारीरीते पाले ॥३॥ जे के० जे इह के० आजगतने विषे सायाणुगा के० सुखशिलीया त्रण गारवेंकरी अज्झोववन्ना के० अध्युपपन्न एटले सहित तथा कामेहिंमुच्छिया के० कामनोगने विषे मूर्छित ते किवणेणसमं के० कृपण एटले दीन, कायर सरखा पगप्निया के० धीठा एटले अल्पदोषे अमारं निर्मल संयम शी रीते मलिन थशे? एवी रीते धृष्टपणुकरनार जे होय ते समाहिमाहितं के० श्रीवीतरागनो कह्यो एवो जे समाधिनो मार्ग तेने नविजाणंति के० नजाणे ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–(अग्गमिति) अग्रं प्रधानं रत्नानरणादिकं वणिग्निर्देशांतरादाहितं ढौकितं राजानस्तत्तुल्याइह मनुष्यलोके धारयंति बिभ्रति । एवं रत्नतुल्यानि परमाणि प्रधानानि महाव्रतानि पंचसरात्रिनोजनानि त्रिरात्रिनोजनविरमणषष्ठानि आख्यातान्याचार्यैरिति तानि महासत्वाः साधवोधारयंति नान्ये इति तात्पर्यार्थः ॥ ३ ॥ (जेइहेति) । ये इह मनुष्यलोके सातानुगाः सुखशीलानराऋद्धिरससातागौरवेष्वध्युपपन्नागृद्धा स्तथा कामेषु इच्छामदनेषु मूर्छिताः सतृष्णाः संतः कृपणेन दीनेन इंद्रियपराजितेन समास्तत्कामासेवने प्रगल्निताधृष्टतां गताः किमनेनाऽसम्यक् प्रत्युपेक्षणादिस्तोकदोषेणास्मच्चारित्रविराधना नाविनीत्येवं प्रमादवंतोधृष्टाः शनैः समस्तमपि संमलिनयंति । एवंनूतास्ते समाधिधर्मध्यानादिकमाख्यातं कथितमपि नजानंति ॥ ४ ॥

॥ टीका–पुनरप्युपदेशांतरमधिकृत्याह । (अग्गंवेत्यादि) अग्रं वर्यं प्रधानं रत्नवस्त्रानरणादिकं । तद्यथा वणिग्निर्देशांतरादाहितं ढौकितं राजानस्तत्कल्पाईश्वरादयः इहाऽस्मिन्मनुष्यलोके धारयंति बिभ्रति एवमेतान्यपि महाव्रतानि रत्नकल्पानि आचार्यैराख्यातानि योजितानि सरात्रिनोजनविरमणषष्ठानि साधवोबिभ्रति । तुशब्दः पूर्वरत्नेभ्यो महाव्रतरत्नानां विशेषापादकइति । इदमुक्तं नवति । यथा प्रधानरत्नानां राजानएव

भाजनं एवं महाव्रतरत्नानामपि महासत्वाएव साधवोभाजनं नान्ये इति ॥३ ॥ किंच (जेइहेत्यादि) ये नरालघुप्रकृतयइहाऽस्मिन् मनुष्यलोके सातं सुखमनुगछंतीति सातानुगाः सुखशीलाऐहिकामुष्मिकाऽपायभीरवः समृद्धिरससातागौरवेष्वध्युपपन्नागृद्धाः । तथा कामेषु इछामदनरूपेषु मूर्छिताः कामोत्कटतृष्णाः। कृपणोदीनोवराककइंद्रियैः पराजितस्तेन समास्त ढत्कामासेवने प्रगल्भिताधृष्टतां गताः । यदिवा किमनेन स्तोकेन दोषेणाऽसम्यक्प्रत्युपेक्षणादिरूपेणाऽस्मत्संयमस्य विराधनं भविष्यत्येवं प्रमादवंतः कर्तव्येष्ववसीदंतः समस्तमपि संयमं पटवन्मणिकुट्टिमवद्वा मलिनीकुर्वंति । एवंभूताश्च ते समाधिधर्मध्यानादिकमाख्यातं कथितमपि न जानंतीति ॥ ४ ॥

वाहेण जहा व विछए, अबले होइ गवं पचोइए॥ से अंतसो अप्पथामए नाइ वहइ अबले विसीयति ॥ ५ ॥ एवं कामेसणं विऊ अज्ञसुए पयहेज संथवं ॥ कामी कामेण कामए, लध्धेवावि अलध्धकणहुई ॥ ६ ॥

अर्थ—वली उपदेशांतर कहेछे. जहाव के० जेम वाहेणके० व्याध एटले आहेडी ते मृगादिक पशुने विछएके० त्राशदेतो छतो ते गवंके० मृगादिक अबले होइके० बलरहित थाय. क्यांए जइ शकेनहीं. अथवा वाहेणके० गाडानो वाहक एटले सांधडीउ तेणे जेम विषम मार्गने विषे गवंके० बलदने पचोइतेके० पराणे प्रेरणा करी खेड्यो छतो बलरहित थायः पछी से के० ते बलदने अंतसो के० मरणांत सुधी जो कष्ट आपे तो पण अप्पथामए के० अल्प सामर्थ्यपणाने लीधे नाइवहइके० चाली नशके. अबलेविसीयति के० निर्बलपणाथी तेहिज कादवमां विषम मार्गे खूतो रहे ॥५॥ हवे ए दृष्टांत पुरुष साथे मेलवेछे' एवं के० ए पूर्वोक्त न्याये काम के० शब्दादिक विषय तेनी एसणं के० गवेषणा एटले प्रार्थना तेनेविषे विऊ के० निपुण आसक्त छतो ते पुरुष सिदाय परंतु कामभोगने छांमी नशके; कामभोगरूप कर्दमने विषे खुतो एवो छतो अज्ञसुएके० आज अथवा काले संथवं के० ए कामभोगनो संबंध पयहेज्जके० छांमीश. एम चिंतवे; पण निर्बल बलदनी परें छांमी नशके एमजाणी संवेग आणीने कामी के० कामि पुरुषे कामेण के० कामभोग वांछवा नही वली कामएलध्धेवावि के० ते कामभोगने लाधा थका पण अलध्धकणहुइ के० अणलाधा एटले अणपाम्या सरखा करे. कोइएक निमित्त थुज्यो छतो जंबुस्वामि तथा वेरस्वामिनी पेरे निस्पृहीथाय. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—(वाहेणेति) । व्याधेन लुब्धकेन यथा(गवंति) । मृगादिपशुः विक्षतोविविधप्रकारेणक्षतः पीमितः प्रचोदितः श्रमं प्रापितः सन्नबलोगंतुमसमर्थः । अथवा या

ह्यतीतिवाह्ः शाकटिकस्तेनाऽवह्न् गौः प्रतोदादिना कृतः प्रेरितोपि अबलोविषमप गंतुमसमर्थः स्यात् सचांतशोमरणांतमपि यावत् अल्पस्थामाऽल्पसामर्थ्योनोजारं वो शक्नोति एवंनूतश्चतत्रैव पंकादौविषीदति ॥ ५ ॥ दार्ष्टांतिकमाह् । (एवमिति) । ए पूर्वोक्तदृष्टांतेन कामानां शब्दादीनां या गवेषणा प्रार्थना तस्यां विद्वान् निपुणः कामप्रा नासक्तोऽद्य श्वोवा संस्तवं कामसंबंधं प्रजह्यात् । नवा बलीवर्दइव विषममार्गेकामान् कुमलं । किंच नवैहिकामुष्मिकापायनीरुः कामी नूत्वा प्राप्तानपि कामान् कामयेताऽ लपेत वैरस्वामी जंबूस्वामिनामादिवत् तथाक्षुल्लककुमारवत् कुतश्चिन्निमित्तात । सु गाइयं सुफुवाइयं मुनेच्चि श्रंसामसुंदरि ॥ अणुपालिअदीहराइअं उसुमिणंते मापमायह इत्यादि प्रतिबुद्धोलब्धानपि कामान् लब्धसमान् मन्यमानोनिस्पृहःस्यात् ॥ ६ ॥

॥ टीका—पुनरप्युपदेशांतरमधिकृत्याह (वाहेणेत्यादि) व्याधेन लुब्धकेन (जहावि यथा (गवत्ति) मृगादि. पशुर्विविधमनेकप्रकारेण कूटपाशादिना कृतः परवशीकृतः श्र वा ग्राहितः प्रणोदितोऽप्यबलोनवति जातश्रमत्वात् गंतुमसमर्थः । यदिवा वाह तीति वाह्ः शाकटिकस्तेन यथावदवह्न् गौर्विविधं प्रतोदादिना कृतः प्रचोदितोऽ बलोविषमपदादौ गंतुमसमर्थोनवति । सचाऽतशोमरणांतमपि यावदल्पसाम न्नाऽतीव वोढुं शक्नोति । एवंनूतश्चाऽबलोनारं वोढुमसमर्थस्तत्रैव पंकादौ विषीदती ॥ ५ ॥ दार्ष्टांतिकमाह (एवमित्यादि) एवमनंतरोक्तया नीत्या कामानां शब्दादीनां षयाणां या गवेषणा प्रार्थना तस्यां कर्त्तव्यायां विद्वान् निपुणः कामप्रार्थनासक्तः श दिपंके मग्नः सचैवंनूतोऽद्य श्वोवा संस्तवं परिचयं कामसंबंधं प्रजह्यात् । किलेत्येव ध्यवसाय्येव सर्वदाऽवतिष्ठते। नच तान् कामान् अबलोबलीवर्दवत् विषमं मार्गं त्यक्तुमल किंच नचैहिकामुष्मिकापायदर्शितया कामी नूत्वोपपन्नानऽपि कामान् शब्दादिविषयान् स्वामिजंबूनामादिवद्वा कामयेतानिलपेदिति । तथा क्षुल्लककुमारवत् कुतश्चिन्नि त्तात् । सुष्ठुगाइयमित्यादिना प्रतिबद्धोलब्धानप्यप्राप्तानपि कामान् लब्धसमान् मन्य मानोमहासत्वतया तन्निस्पृहोनवेदिति ॥ ६ ॥

मापच्छ असाधुता नवे, अच्चेही अणुसास अप्पगं ॥ अहियंच असाहु
सोयती, संथणती परिदेवती बहु ॥ ७ ॥ इह जीवियमेव पासहा, तरुणे
एव वाससयस्स तुट्टती ॥ इत्तरवासेय वुज्झह, गिद्धनरा कामेसु मुच्छिया ॥८॥

अर्थ—हवे शावास्ते कामनोगनो त्याग करवो ते कहेछे. मापच्छ के० रखे, प ठी मरणकाले नवांतरने विषे ए कामनोगनी सेवाये करी असाधुतानवे के० असाधु

पणाथकी डुर्गति गमनरूप थाय. एवुं जाणी पोतानो आत्मा विषयना संग थकी अ वेही के० दूर करे तथा अणुसासअप्पगं के० पोताना आत्माने शीखवे के, रे जीव अ साधु कर्मने प्रमाणे तुं डुर्गतियें गयो थको डुःखी थईश तथा अहियंचके० अत्यंत अ साहु के० असाधु कर्मने प्रमाणे सोयती के० शोचकरीश संथणती के० हे जीव तुज ने परमाधार्मियें पीडयो थको गाढा आकरा शब्द करीश, तथा परिदेवइबहु के० घणा विलाप करीश. हे माय? हुं मरुंछुं, आ वखत मने राखनार कोइ नथी इत्यादिक अनेक आक्रंद करीश एवुं कहीने आत्माने शीखामण आपे. ॥७॥ वली इहके० आ सं सारमांहे धनधान्यादिक पदार्थ तो दूररह्या, पण जीवियमेव के० एकलुं जीवितव्य पणुज पासह के० देखो तेएवुं तो असाश्वतुं छे के, क्षणेक्षणे विनाशशीलछे. कोइक तो तरुणएव के० तरुण पणेज विनाशपामे वाससतस्सतुट्टती के० चालता समयमां घणुतो शो व र्षनुं आयुष्यछे, तेपण छेहडे त्रूटेछे जेमाटे ते आयुष्य सागरोपमनी अपेक्षायेतो मेषो न्मेष प्रायें इत्तरवासेय के० इत्वर एटले अल्प वर्ष सरखुं थाय. एवुं जाणीने रे जीव बुज्झह के० बुजो के, एवीरीतनो आयुष्यनो जरोशो छता पण गिद्धनराकामेसुमुच्छियाके० एकेक पुरुष गृद्धछता कामनोगने विषे मूर्छित रहेछे? तेनरकादिक पीडाने पामेछे ॥८॥

॥ दीपिका–(मापछेति पश्चान्मरणकाले नवांतरेवा मानुषंगादसाधुता कुगतिरूपा मानवेत् माप्राप्नुयादित्यतोविषयेन्यआत्मानमत्येहि त्याजय । तथा आत्मानमनुशास्तिं कुरु । यथा हेजीव असाधुरशुनकर्मकारी अधिकं डुर्गतौ गतः शोचति । सच परमाधार्मिकैः कदर्थ्यमानस्तिर्यक्षु क्षुदादिवेदनाग्रस्तः स्तनत्याक्रंदति परिदेवते विलपति बहुपि इत्या त्मानुशासनंकुरु ॥ ७ ॥ (इहेति) इह संसारे आस्तांतावदन्यत् । जीवितमायुरेवाऽनि त्यं पश्यत प्रतिक्षणमावीचीमरणसद्भावात् । तथा सर्वायुःक्षयात्तरुणएव त्रुटयति च्यव ते । अथवा सांप्रतं सुबह्वप्यायुर्वर्षशतं तच्च सागरोपमापेक्षया कतिपयमेषोन्मेषप्रायत्वा त् इत्वरवासकल्पं स्तोकवासतुल्यमिति बुध्यध्वं । एवंनूतेप्यायुषि गृद्धानराः कामे मूर्छिताआ सक्तानरकादिपीडां लनंतइति शेषः ॥ ८ ॥

॥ टीका–किमिति कामपरित्यागोविधेयइत्याशंक्याह । (मापछेत्यादि) मापश्चान्मरण काले नवांतरेवा कामानुषंगादसाधुता कुगतिगमनादिकरूपा नवेत् प्राप्नुयादिति । अतो विषयासंगादात्मानमत्येहि त्याजय । तथात्मानं चाऽनुशाध्यात्मनोऽनुशास्तिं कुरु । यथा हेजीव योह्यसाधुरसाधुकर्मकारी हिंसानृतस्तेयादौ प्रवृत्तः सन् डुर्गतोपतितोऽधिक मत्यर्थमेवं शोचति सच परमाधार्मिकैः कदर्थ्यमानस्तिर्यक्षु वा क्षुधादिवेदनाग्रस्तो

ऽत्यर्थं स्तनति सशब्दं निःश्वसिति । तथा परिदेवते विलपऽत्याक्रंदति । बहिरिति । हामातर्म्रियतइति त्राता नैवाऽस्ति सांप्रतं कश्चित् किंशरणं मेस्यादित्याह । दुष्कृतवति तस्य पापस्येत्येवमादीनि दुःखान्यऽसाधुकारिणः प्राप्नुवंतीत्यतोविषयानुषंगोन विधेयइ त्येवमात्मनोऽनुशासनं कुर्विति संबंधनीयं ॥७॥ किंच (इहजीवियमेवेत्यादि) । इहाऽस्मि न् संसारे आस्तां तावदन्यज्जीवितमेव सकलसुखास्पदमनित्यताऽघ्रातं आवीचिमरणेन प्रतिक्षणं विशरारुस्वभावं तथा सर्वायुःक्षयएव वा तरुणएव युवैव वर्षशतायुरप्युपक्रम तोध्यवसाननिमित्तादिरूपादायुपस्त्रुटयति प्रच्यवते । यदिवा सांप्रतं सुबह्वप्यायुर्वर्षशतं तच्च तदंते त्रुटयति । तच्च सागरोपमापेक्षया कतिपयनिमेषप्रायत्वात् इत्वरं वासकल्पं वर्तते स्तोकनिवासकल्पमित्येवं बुध्यध्वं यूयं । तथैवंभूतेऽप्यायुषि नराः पुरुषालघु प्रकृतयः कामेषु शब्दादिषु विषयेषु गृध्दाअध्युपपन्नामूर्छितास्तत्रैवाऽसक्तचेतसोनरकादि यातनां स्थानमाप्नुवंतीति शेषः ॥ ८ ॥

जे इह आरंभनिस्सया, आत्तदंमा एगंतलूसगा ॥ गंता ते पावलोगयं, चिररायं आसुरियं दिसं ॥ए॥ णय संखय माहु जीवितं, तहविय वाल जणो पगप्नई ॥ पच्चुप्पन्नेण कारियं, कोदट्टुं परलोकमागते ॥ १० ॥

अर्थ–जेइह के० जे आ मनुष्य लोकमांहे महामोहाकुलित पुरुष आरंभ के० आ रंभ हिंसादिक सावद्यानुष्ठानने विषे निस्सिया के० निश्रित एटले आसक्तछे, ते पुरुष आत्तदंमा के० आत्माने दंमनार तथा एगंतलूसगा के० एकंत जीवना प्राणने लूसना र अथवा सद् अनुष्ठानने लूसनार, गंताते पावलोगयं के० एवा पुरुष पापलोक एटले जे गतिमां पापकर्मना करनार जाय, ते गतिमां जशे किंबहुना चिररायं असुरियंदिसं के० चिरकाल सुधी नरकादिकना दुःख पामसे. यद्यपि ते अज्ञान कष्टने प्रभावे कदाचित् देवगति पामे तोपण असुरगति एटले किल्बिषीयादिकनी गति पामे ॥ए॥ वली कहेछे ण यसंखयमाहुजीवितं के० सर्वज्ञे एम कह्युंछे के, त्रुटयुं आयुष्य संधाय नही तहविय के० तोपण वालजणो के० वाल अज्ञानी लोक ते निर्विवेकी पणे पगप्नई के० धृष्टपणुं क रेछे, ते कहेछे, कोइ एक पंमिते धर्मने विषे प्रेर्योछतो ते नरविवेकी पुरुष एम कहेके पच्चुप्पन्नेणकारियं के० अमारा प्रत्युत्पन्न जे वर्त्तमान सुख तेनी सायेज अमारो कार्य छे. कोणजाणे परलोकछे किंवा नथी कोदट्टुं परलोगमागते के० परलोकने कोण देखी आव्योछे. जे देखीने परलोकथी आव्यो होय ते अमोने कहेतो मान्य करीये इत्यादि क धृष्टपणानी वातो करे. ॥ १० ॥

॥ दीपिका–जेइहेति। ये केचन इह लोके आरंभनिःश्रिताआरंभसंबध्दाआत्मानं दंडयं

तीत्यात्मदंडकाः । तथा एकांतेन लूषकाजंतूनां हिंसकास्ते पापलोकं नरकादिगतिं गंता रोयास्यंति चिररात्रं प्रनूतकालं तन्निवासिनोनवंति । तथा बालतपश्चरणादिना यद्यपि देवत्वप्राप्तिस्तथाप्यासुरींदिशं यांति किल्बिषिकादेवाऽधमाः स्युरित्यर्थः ॥ ए ॥ (नयेति । नचनैव संस्कृतमायुस्त्रुटितमायुर्न संस्कर्तुं संधातुं शक्यमेवमाहुः सर्वज्ञाः । तथापिच एवं सत्यपि बालजनोमूर्खलोकः सावद्यं कृत्यं कुर्वन् प्रगल्नतेऽसदनुष्ठानेनापि नलज्जते । एवं पापकर्माणि कुर्वन् परेण प्रेरितोवक्ति । प्रत्युत्पन्नेन वर्तमानकालेनास्माकं कार्यं अतीतानागतयोर्विनष्टाऽनुत्पन्नत्वादसत्वं तस्मादिह लोकएव विद्यते नपरलोके । यतः । एतावानेव लोकोयं यावानिंड्रियगोचरः । नड़े वृकपदं पश्य य ह्वदंत्यबहुश्रुताइति ॥ १० ॥

॥ टीका—अपिच (जेइहेत्यादि) ये केचन महामोहाकुलितचेतसइहाऽस्मिन्मनुष्यलोके आरंने हिंसादिके सावद्यानुष्ठानरूपे निश्चयेन श्रिताः संबद्धाअध्युपपन्नास्ते आत्मानं दंडयंतीत्यात्मदंडकास्तथैकांतेनैव जंतूनां लूषकाहिंसकाः सदनुष्ठानस्य वा ध्वंसकास्ते एवंनूतागंतारोयास्यंति पापं लोकं पापकर्मकारिणां योलोकोनरकादिश्चिररात्रमिति प्रनूतं कालं तन्निवासिनोनवंति । तथा बालतपश्चरणादिना यद्यपि तथाविधदेवत्वापत्तिस्तथाऽप्यासुराणामियमासुरी तां दिशं यांति । अपरे प्रेष्याः किल्बिषिका देवाऽधमानवंतीत्यर्थः ॥ ए ॥ किंच (एयसंखयेत्यादि) नचनैव त्रुटितं जीवितमायुः संस्कर्तुं संधातुं शक्यते एवमाहुः सर्वज्ञाः । तथाहि दंमकलियं करित्तावच्चंति हुराइंयदिवसाय आउसंचेल्लंता गयाय पुणोनाणनियत्तंति । तथाऽप्येवमपि व्यवस्थिते जीवानामायुषि बालजनोऽन्योलोकोनिर्विवेकतया असदनुष्ठाने प्रवृत्तिं कुर्वन् प्रगल्नते धृष्टतां यात्यसदनुष्ठाने नाऽपि लज्जतइत्यर्थः । सचाऽन्योजनः पापानि कर्माणि कुर्वन् परेण चोदितोधृष्टतया अलीकपांडित्यानिमानेनेदमुत्तरमाह । प्रत्युत्पन्नेन वर्तमानकालनाविना परमार्थतोऽतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेनाऽविद्यमानत्वात् कार्यं प्रयोजनं प्रेक्षापूर्वकारिनिस्तदेव प्रयोजनसाधकत्वादाड्रीयते । एवंच सतीह लोकएव विद्यते नपरलोक इति दर्शयति । कः परलोकं दर्शयति कं परलोकं कोदृष्ट्वेहायातस्तथाचोचुः । पिब खादच साधु शोजने यदतीतं वरगात्रि तन्न ते । नहि नीरुगतं निवर्तते समुदयमात्रमिदं कलेवरं । तथा एतावानेव पुरुषोयावानिंड्रियगोचरः॥नड़े वृकपदं पश्य य ह्वदंत्यबहुश्रुताइति ॥ १० ॥

अदक्खुव दक्खुवाहियं,सद्दहसु अदक्खुदंसणा॥हंदि हु सुनिरुद्ध
दंसणे,मोहणिज्जेण कडेण कम्मुणा॥ ११॥ दुक्खी मोहे पुणोपुणो,
निविंदेज्जसि लोगपूयणं ॥ एवं सहिते हियासए, आयतुलं पा
णेहिं संजए ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे एवुं धृष्टपणुं करे तेने उपदेश कहेछे, अहो अदरकुव के० अंध सरखा पुरुषो दरकुव के० त्रणभुवनने देखनार एवो सर्वज्ञजे श्रीवीतरागदेव तेनो आहियंके० कहेलो जे श्रीसिद्धांत तेने सदहसु के० सर्दहे, तुं केवोछे ? तोके, अदरकुदंसणा के० अंध ज्ञानदृष्टीरहित एवाजे छे, तेमना दर्शनने विषे प्रवर्त्तनहारछे माटे तने बोलावि येये के अहो ? अदरकुदंसणा तुं श्रीवीतराग परमात्मानोभाष्युंजे सिद्धांत तेनाउपर श्र द्धाकरीने हंदि के० तेने गृहणकर अने आलोकना सुखटालीने परलोक उपर कोण भरोसे राखे, परलोकतो नथी इत्यादिकजे तुं बोलेछे, ते ताहारुं बोलवुं अयोग्यछे; केमके वर्त्तमा नकाल टालीने अतीत अनागत नहीं मानीश तो पितामहादिक पुत्रपौत्रादिक एपण न थी, एम पण कहेवुंपडशे परंतु एवीरीतना ताहारा बोलवा थकी एम जाणीये छेये जे के० सुष्टु पणे तुं निरुद्धदंसणे के० निरुद्ध दर्शनेछे, एटले सर्वदा ज्ञानदृष्टीरहितछो. मो णिज्जेणकडेण कम्मुणा के० मोहनीयकर्मेकरी अथवा ज्ञानावरणादिक कर्मेकरी ताहरो द न रुंधाणुछे तेमाटे तुं जैनमार्गे सर्दहतो नथी, माटे ए तारो मत मूकीने सूत्रना सत्यम गैनी सर्दहणा कर ॥११॥ वली उपदेश कहेछे एवा वचननो बोलनार डुरकीके० दुःखीथ मोहेपुणोपुणो के० वली वली मोह पामे एटले वली तेनेज समाचरे जे थकी संस मांहे अनंतो काल परिभ्रमण करे. एवुं जाणी मोह मूकीने जे संयमने विषे प्रवर्त्ते उत्तम पुरुष जाणवो, निव्विदेज्जसिलोगपूयणं के० ते आत्मश्लाघा स्तुति लोकपूजा त वस्त्रादिक लाभना उत्कर्षने न वांछे, एटले ए सर्वेनो त्यागकरे. एवं के० ते एम करत सहितेहिं के० ज्ञानादिक सहित थको संजए के० संयती पाणेहिं के० सर्वे प्राणीमा ने आयतुलंके० पोताना आत्मा तुल्यकरी पासएके० देखे. ए रीते दया पाले ॥१२॥

दीपिका—एवं नास्तिकेनोक्तेसत्युत्तरमाह । (अदरकवेति) पश्यतीतिपश्यः नपश ऽपश्योंधस्तद्वदंधवत् हेअंधतुल्य पश्येन सर्वज्ञेन आख्यातं सर्वज्ञागमं श्रद्धस्व प्रमाणीकु तथाऽपश्यकस्यासर्वज्ञस्याऽभ्युपगतं दर्शनं येन सोपश्यकदर्शनस्तस्यामंत्रणं हेऽपश्यकद न प्रत्यक्षस्यैकस्य प्रमाणस्यांगीकारे व्यवहारलोपः स्यात् तस्मादागमं प्रमाणमिति । समादेवमुपदिश्यतइत्याह । (हंदीत्यादि) हंदिएवंगृहाण । हुशब्दोवाक्यालंकारे । हनीयेन स्वकृतेन कर्मणा सुष्टु निरुद्धमावृतं दर्शनं सम्यगवबोधोयस्य ससुनिरुद्धदर्शनः वंविधः प्राणी सर्वज्ञोक्तं मार्गं नश्रद्दधते तस्मादेवं बहूपदिश्यतेइति ॥ ११ ॥ (दुःखीति दुःखी प्राणी पुनः पुनर्मोहंयाति दुःखेन विवेकविकलोभवति । निर्विवेकीच पुनर्दुःखी स्य तस्मान्मोहं परित्यज्य श्लोकमात्मश्लाघां पूजनं च निर्विद्येत जुगुप्सेत । परिहरेदित्यर्थ एवमुक्तनीत्या सहहितेन वर्ततइति सहितोज्ञानादियुक्तोवा संयतः साधुः परैः प्राणिभि

स्मतुलामात्मतुल्यत्वं पश्यन् यथाऽत्मनोडुःखमप्रियं सुखंच प्रियं एवं सर्वेपि प्राणिनईद्दशाएवेति ज्ञात्वा सर्वान् प्राणिनः पालयेदित्यर्थः ॥ १२ ॥

टीका-(अदक्खुवेत्यादि)। पश्यतीति पश्योनपश्योऽपश्योंऽधस्तेन तुल्यं कार्याकार्याविवेचित्वादपश्यवत्तस्याऽऽमंत्रणं हेऽपश्यवदंधसदृश प्रत्यक्षस्यैवैकस्याऽन्युपगमेन कार्याकार्यानभिज्ञ पश्येन सर्वज्ञेन व्याहृतमुक्तं सर्वज्ञागमं श्रद्धस्व प्रमाणीकुरु प्रत्यक्षस्यैवैकस्याऽन्युपगमेन समस्तव्यवहारविलोपेन हंत हतोसि पितृनिबंधनस्याऽपि व्यवहारस्याऽसिद्धेरिति। तथाऽपश्यकस्याऽपि सर्वज्ञस्याऽन्युपगमं दर्शनं येनासाऽवपश्यकदर्शनस्तस्याऽमंत्रणं वा हेऽपश्यकदर्शन स्वतोऽर्वाक्दर्शी नवांस्तथाविधदर्शनप्रमाणश्च सन् कार्याकार्यविवेचितयाऽधवदनविष्यत् यदिसर्वज्ञान्युपगमं नाऽकरिष्यत् यदिवाऽदक्षोवा ऽनिपुणो वा यादृशस्तादृशोवाऽचक्खुदर्शनमस्याऽसावचक्खुदर्शनः केवलदर्शनः सर्वज्ञस्तस्माद्यदवाप्यते हितं तत् श्रद्धस्व। इदमुक्तं नवति। अनिपुणेन निपुणेन वा सर्वज्ञदर्शनोक्तं हितं श्रद्धातव्यं। यदि वा हे अदृष्ट हेअर्वाक्दर्शन दृष्टाऽतीताऽनागतव्यवहितसूक्ष्मपदार्थदर्शिना यद्व्याहृतमनिहितमागमं तंश्रद्धस्व। हेअदृष्टदर्शन अदक्खुदर्शन इतिवा असर्वज्ञोक्तशासनानुयायिन् तमात्मीयमाग्रहं परित्यज्य सर्वज्ञोक्तेमार्गे श्रद्धानं कुर्विति तात्पर्यार्थः। किमिति सर्वज्ञोक्ते मार्गे श्रद्धानमसुमान्नकरोति। येनैवमुपदिश्यते तन्निमित्तमाह। हंदीत्येवं गृहाण। हुशब्दोवाक्यालंकारे। सुष्टु अतिशयेन निरुद्धमावृतं दर्शनं सम्यक् अवबोधरूपं यस्य सः। केनेत्याह। मोहयतीति मोहनीयं मिथ्यादर्शनादिज्ञानावरणीयादिकं वा तेन कृतेन कर्मणा निरुद्धदर्शनः प्राणी सर्वज्ञोक्तं मार्गं नश्रद्दधते ऽतस्तन्मार्गेश्रद्धानं प्रति चोद्यते इति ॥ ११ ॥ पुनरप्युपदेशांतरमाह। (दुःखीत्यादि) डुःखमसातवेदनीयमुदयेन यत्प्राप्तं तत्कारणं वा डुःखयतीति डुःखं तदस्याऽस्तीति डुःखी सन् प्राणी पौनःपुन्येन मोहं याति सदसद्विवेकविकलोनवति। इदमुक्तंनवति। असातोदयात् डुःखमनुनवन्नार्तोमूढस्तत्करोति येन पुनः पुनः सुखी संसारसागरमनंतमस्येति तदेवंनूतं मोहं परित्यज्य सम्यगुत्थानेनोऽत्थाय निर्विद्येत जुगुप्सेत परिहरेदात्मश्लाघां स्तुतिरूपां तथा पूजनं वस्त्रादिलान्नरूपं परिहरेत्। एवमनंतरोक्तरीत्या परिवर्त्तमानः सहहितेन वर्ततइति सहितोज्ञानादियुक्तोवा संयतः प्रव्राजितोऽपरप्राणिनिः सुखार्थिनिरात्मतुलामात्मतुल्यतां डुःखाप्रियत्वसुखप्रियत्वरूपामधिकं पश्येत् आत्मतुल्यान् सर्वानपि प्राणिनः पालयेदिति ॥ १२ ॥

गारं पिअ आवसे नरे, अणुपुवं पाणेहिं संजए॥ समता सवत्त सुवते, देवाणं गछे सलोगयं ॥ १३ ॥ सोच्चा नगवाणुसासणं सच्चे तठकरेजुवक्कमं ॥ सवत्त विणीयमछरे, उंछं निरकु विसुद्धमाहरे॥ १४

अर्थ—वली उपदेशांतर कहेछे. गारंपिअआवसेनरे के० गृहवासने विषे वसतो एवो मनुष्य तेपण अणुपुवं के० अनुक्रमे धर्म सांनली, श्रावकना व्रतादिकने अंगीकार करी, पाणेहिं के० जीवोने विषे संजए के० सम्यक्प्रकारे यत्न करतो, समतासवत्तसुवते के० सर्वत्र समता परिणामे वर्त्ततो एवीरीते गृहस्थ धर्मने पालतो थको पण देवाणंगछेसलोगयंके० देवलोकमां जाय. तो पछी यतिधर्म पालनारनो केवोजशुं ॥ १३ ॥ वली कहेछे सोच्चानगवाणुसासणं के०ते श्रीवीतरागनी आज्ञापूर्वक धर्म सांनलीने सच्चेतकरे जुवक्कमंके० तेनां आगमने विषे जेम कह्युंछे. तेम सत्य संयमने विषे उपक्रम टलेउद्यम करे, सवत्तविणीयमछरेके० सर्वत्र मछररहित एवो थको निरकु के० साधु उंछं के० माधुकरी वृत्तियें विसुद्धमाहरे के० शुद्ध एटले बेतालीश दोष रहित एवो आहार लीये. ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—किंच । (गारंपीति) अगारं गृहमप्यावसन् गृहस्थोपि नरआनुपूर्व्या चारित्रप्रतिपत्त्यादिरूपया प्राणिषु जीवेषु संयतोहिंसानिवृत्तः । यतः सर्वत्र समता श्रूयते । यतौ गृहस्थेच समतैव जिनमतेऽनिधीयते तां कुर्वन् गृहस्थोपि देवानां लोकं गछेत् किंपुनर्यतिरिति ॥१३॥ (सोच्चेति) नगवदनुशासनं जिनागमं श्रुत्वा तडुक्ते सत्ये संयमे उपक्रमं उद्यमं कुर्यात् । किंनूतः सर्वत्र उपनीतमत्सरोऽरक्तद्विष्टः (उंछंति) नैक्ष्यं शुद्धं दोपरहितमाहरेद्गृण्हीयात् ॥ १४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ टीका—किंच (गारंपियइत्यादि)। अगारमपि गृहमप्यावसन् गृहवासमपि कुर्वन् नरो मनुष्यः(आनुपूर्वमिति)आनुपूर्व्या श्रवणधर्मप्रतिपत्त्यादिलक्षणया प्राणिषु यथाशक्त्या सम्यक् यतः संयतस्तडुपमर्दान्निवृत्तः। किमिति । यतः समता समनावः । आत्मपरतुल्यता सर्वत्र यतौ गृहस्थे च यदिचैकेंड्रियादौ श्रूयतेऽनिधीयते आर्हते प्रवचने तां च कुर्वन् सगृहस्थोऽपि सुव्रतः सन् देवानां पुरंदरादीनां लोकं स्थानं गछेत् किं पुनर्योमहासत्वतया पंचमहाव्रतधारी यतिरिति ॥ १३ ॥ अपिच । (सोच्चाइत्यादि) । ज्ञानैश्वर्यादिगुणसमन्वितस्य नगवतः सर्वज्ञस्य शासनमाज्ञामागमं श्रुत्वाऽधिगम्य तत्र तस्मिन्नागमे तडुक्तेवा संयमे सन्नचोदिते सत्ये लघुकर्मा तडुपक्रमं तत्प्राप्त्युपायं कुर्यात् । किंनूतः सर्वत्राऽपनीतोमत्सरोयेन सतथाऽसौरक्तद्विष्टः क्षेत्रवस्तूपधिशरीरनिष्पिपासः । तथा (उंछंति) नैक्ष्यं शुद्धं द्विचत्वारिंशद्दोपरहितमाहारं गृण्हीयादन्यवहरेद्वेति॥ १४ ॥

सवं नच्चा अहिठिए, धम्मठी उवहाणवीरिए ॥ गुत्ते जुत्ते सदाजये आय परे परमायतठिते ॥ १५ ॥ वित्तं पसवोय नाईउ, तं बाले सरणं ति मन्नइ ॥ एते मम तेसुवी अहं, नोताणं सरणं नविज्जई ॥ १६ ॥

अर्थ—वली उपदेश कहेछे ते साधु सवंके० सर्व हेय उपादेयवस्तुने नच्चाके० जाणीने सर्वज्ञोक्त संवररूप मार्गने अहिठिएके० अधितिष्ठेत् एटले आश्रये वली धम्मठीके० धर्मार्थी थको उवहाण के० उपधान एटले तपनेविषे वीरिएके० वीर्य फोरवे एटले तेमा बलवंत थाय पण तेमां वीर्य गोपवे नहीं वली गुत्तेजुत्ते के० मन वचन अने काय गुप्तिए गुप्त अने शुनयोगे युक्त थवानो सदा के० सर्वकाल आयपरे के० पोताने विषे अने परने विषे जयेके० यत्न करे परमायतठिते के०ते साधुपरमायतजे मोक्ष तेनो अर्थी जाणवो ॥ १५ ॥ वित्तं के० धनकनकादिक तथा पसवो के० पशु चतुष्पदादिक अने नाईउ के० ज्ञातिते स्वजन मातापितादिक तंके० तेनु बाले सरणंतिमन्नई के० जे बाल अज्ञानी होय ते सरणकरीमाने केवीरीते तोके एतेममतेसुवीअहं के० ए जेवित्तादिकछे ते माहाराछे हुं एनी रक्षा करनारछुं पण नोताणं सरणंनविज्जई के० एम न जाणे जे ए धनादिक जे छे, ते रोगादिक उपने थके अथवा डुर्गतिमां पडतां थका मने त्राणशरण नविद्यते एटले नथी. थवाना ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—(सच्चमिति) सत्यमार्गमिमं ज्ञात्वाऽधितिष्ठेदाश्रयेत् । धर्मार्थी उपधानं तपस्तत्र वीर्यवान् मनोवाक्कायगुप्तोज्ञानादिनिर्युक्तः सदा यतेत आत्मनि परस्मिंश्च । किंनूतः परमउत्कृष्टआयतोदीर्घोमोक्षस्तेनार्थिकस्तदनिलाषी ॥ १५ ॥ (वित्तमिति) वित्तं धनं पशवस्तुरगादयः ज्ञातयः स्वजनामात्रादयः तदेतद्बालोमूर्खः शरणमिति मन्यते । कथमित्याह । एते वित्तादयोमम मदीयाअहं तेषु वित्तादिषु रक्षाकरणेन प्रवर्ते एवं बालोमन्यते नत्वेवं वेत्ति यद्वित्तादिकं त्राणं नस्याद्दुर्गतौपततोनापिरोगादौ शरणं विद्यते । रिद्धासहावतरला, रोगजराजंगुरं हयसरीरं ॥ दोएहंपि गमणसीला, णाकिच्चिरहोक्ष संबंधाइत्ति ॥ १६ ॥

॥ टीका—किंच (सच्चंणच्चेत्यादि) सर्वमेतद्धेयमुपादेयं च ज्ञात्वा सर्वज्ञोक्तं सर्वसंवररूपमधितिष्ठेत् आश्रयेत् । धर्मेणार्थोधर्मएव वाऽर्थः परमार्थताऽन्यस्याऽनर्थरूपत्वात् धर्मार्थः सविद्यते यस्याऽसौ धर्मार्थी धर्मप्रयोजनवान् । उपधानं तपस्तत्रवीर्यं यस्य स तथा अनिगूहितबलवीर्यइत्यर्थः । तथा मनोवाक्कायगुप्तः सुप्रणिहितयोगइत्यर्थः । तथा युक्तोज्ञानादिनिः सदा सर्वकालं यतेताऽऽत्मनि परस्मिंश्च । किंविशिष्टः सन् अतआह । प

रमत्तत्कष्टआयतोदीर्घः सर्वकालभवनात् मोक्षस्तेनाऽर्थिकस्तदभिलाषी पूर्वोक्तविशेषणवि शिष्टोभवेदिति ॥ १५ ॥ पुनरप्युपदेशांतरमाह (वित्तमित्यादि) वित्तं धनधान्यहिरण्या दि । पशवः करितुरगगोमहिष्यादयोज्ञातयः स्वजनामातापितृपुत्रकलत्रादयः तदेतद्वि दिकं बालोऽज्ञः शरणं मन्यते । तदेव दर्शयति । ममैते वित्तपशुज्ञातयः परिभोगे उपय ुज्यंते । तेषु चाऽर्जनपालनसंरक्षणादिना शेषोपद्रवनिराकरणेन परिहारेणाऽहंभवामीत्ये वं बालोमन्यते । न पुनर्जानीते यदर्थं धनमिच्छंति तच्छरीरमशाश्वतमिति । अपिच । ल क्ष्मी सद्दावतरला, रोगजराभंगुरं ह्यशरीरं ॥ तथा मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च प्रतिजन्मनि वर्तंते कस्य माता पितापि वा ॥१॥ एतदेवाह । नोनैव वित्तादिकं संसारे स्व ल्पमपि त्राणं भवति । नरकादौ पततोनापि रागादिनोऽपद्रुतस्य क्वचिच्छरणं विद्यतइति ॥१६॥

अन्भागमितंमि वा दुहे, अहवा उक्कमिते भवंतिए ॥ एगस्स गती
य आगती, विदुमंता सरणं ण मन्नई ॥ १७ ॥ सवे सयकम्मक
प्पिया, अवियत्तेण दुहेण पाणिणो ॥ हिंमंति भयाउला सढा,
जाई जरा मरणेहिं भिद्दुता ॥ १८ ॥

अर्थ—वली उपदेश कही देखाडेछे. अन्भागमितंमिवादुहे के० पूर्वोपार्जित असात वेदनीय कर्मना उदय थकी दुःख प्राप्त थयां छतां ते दुःख एकलोज जीव अनुभवेछे पण ज्ञाति, स्वजन अथवा द्रव्य ते दुखः थकी मूकावी शकता नथी अहवाके० अथवा उक्क मितेभवंतिए के० मरण आवे छते पण एकलोज दुःख भोगवे तथा भवांतरने विषे पण एकलोज दुःख भोगवे तथा एगस्सगतीय आगती के० गति आगति पण एकलानेज होय परंतु ते वखते धनादिक जे छे ते कोइ सरण न थाय विदुमंता के० विवेकी पंमित ज न एवी रीते जाणता थका सरणं णमन्नइ के० कोइनुं सरण करी माने नही ॥ १७ ॥ सवे के० संसारमांहे सर्व जीव सय के० पोताना करेला कम्म के० कर्मे करी कप्पिय. के० एकेंद्रियादिकनी अवस्थाये कल्प्या छतां अवियत्तेणके० अव्यक्त संज्ञाये दुहेण के० अस्पष्ट शिरशूलादिक दुःखे करी दुःखीया छतां एवा पाणिणो के० प्राणीउ ते हिंमंति के० चतुर्गतिकरूप संसार मांहे अरहट घटीने न्याये परिभ्रमण करेछे, ते ज योनीनेविषे भयाउला के० भयाकुल विह्वीता थका तथा सढा के० शठ एटले अज्ञानी छता जाई जरामरणेहिं के० वली वली जाइ एटले जाति अने जरा तथा मरणे करी भिद्दुता के० पीड्या थका रहेछे. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—(अन्भागमितंमिवेति) अभ्यागते प्राप्ते दुःखेऽथवा उपक्रमकारणैरुपक्रांते जी

पो आयुषि नवांते वा सति एकाक्येव डुःखमनुनवतीतिशेषः ॥ यतः सयणस्सविमज्जगर्ड, रोगानिहर्डकिलिस्सइहेगो ॥ सयणोवियसेरोगं, नविरंचइनेव नासेइ इति ॥ तथाचाह । (एकस्सत्ति) एकस्यैव प्राणिनाम्नवांतरे गतिरागतिश्च स्यात् ततोविद्दान् तावदीपदपि श रणं न मन्यते । यतः एकस्य जन्ममरणे गतयश्च शुनाशुनाम्नवावर्ते॥ तस्मादाकालिकहि तमेकेनैवात्मनः कार्यमिति॥ १७॥(सवेत्ति) सर्वे प्राणिनः स्वकेन स्वकृतेन कर्मणा कल्पिताए केंडियादिन्नेदेन व्यवस्थिताः । तथा एकेंडियादिनवेषु अव्यक्तेन डुःखेन उनयलक्षणा व्य क्तेनापि डुःखेन समन्विताः प्राणिनोन्नयाकुलाः शवकर्मकारित्वात् शगाहिंडंति पर्यटं ति तासुतासु योनिषु । किंनूताः प्राणिनः जातिजरामरणैरनिडुताः पीडिताः ॥ १७ ॥

॥ टीका—एतदेवाऽह । (अन्नागमितंमीत्यादि)। पूर्वोपात्ताऽसातवेदनीयोदये नाऽन्यागते डुःखे सत्येकाक्येव डुःखमनुनवति न ज्ञातिवर्गेण वित्तेन वा किंचित्क्रियते । तथाच । सयणस्सविमज्जगर्डरोगानिहतोकिलिस्सइहेगो ॥ सयणोवियसेरोगं नविरंच इनेवनासेइ ॥ १ ॥ अथवोपक्रमकारणैरुपक्रांते स्वायुषि स्थितिक्षयेण वा नवांतरे नवां तिके वा मरणे समुपस्थिते सति एकस्यैवाऽसुमतोगतिरागतिश्च नवति । विद्दान् विवे की यथावस्थितसंसारस्वनावस्य वेत्ता ईषदपि तावत् शरणं न मन्यते कुतः सर्वात्मना त्रा णमिति । तथाहि । एकस्य जन्ममरणे गतयश्च शुनाशुनाम्नवावर्ते । तस्मादाकालिकहि त,मेकेनैवाऽत्मनः कार्यं ॥ १ ॥ एक्को करेइ कम्मं फलमवि तस्सिं क्कउसमणुहवइ । एक्को जायइ मरइ य परलोयं एक्कउजाइ ॥१॥१७॥ अन्यच्च । (सवेसयइत्यादि) । सर्वेपि संसा रोदरविवरवर्तिनः प्राणिनः संसारे पर्यटंतः स्वकृतेन ज्ञानावरणीयादिना कर्मणा कल्पि ताः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकैकेंडियादिन्नेदेन व्यवस्थिताः। तथा तेनैव कर्मणैकेंडियाद्यवस्थायाम व्यक्तेनाऽपरिस्फुटेन शिरःशूलाद्यलक्षितस्वनावेनोऽपलक्षणत्वात् प्रव्यक्तेन च डुःखेनाऽसाता वेदनीयस्वनावेन समन्विताःप्राणिनःपर्यटंत्यरघट्टघटीन्यायेन तावत्स्वेव योनिषु नयाकुलाः शवकर्मकारित्वात् शगाम्नमंति जातिजरामरणैरनिडुतागर्नाधानादिनिर्डुःखैःपीडिताइति १७

इणमेव खणं वियाणिया, णोसुलन्नं बोहिंच आहितं ॥ एवं स हिए हिपासए, आहिजिणे इणमेव सेसगा ॥ १ए ॥ अन्नविंसु पुरा विन्निक्खुवो, आएसावि नवंति सुवता ॥ एयाइं गुणाइं आ हुते, कासवस्स अणुधम्मचारिणो ॥ ७० ॥

अर्थ—इणमेव के० एहिज आर्य क्षेत्र सुकुमाल जन्म जिनधर्म प्रतिपत्तिरूप एवो खणंवियाणिया के० क्षण एटले अवसर जाणी यथोचित धर्म करवो णोसुलन्नंबोहिंच

के० बोधबीज पामवुं सुलन नथी, ए रीते आहितं के० कह्युंछे. एवुं जाणी धर्म अ करवा थकी फरी फरी बोधि डुर्लनछे. एवं के० एरीते ज्ञान दर्शनेकरी सहिएके० सहित साधु जाणे तथा उदय आव्या परिसहने हियासए के० अहियाशे. ए वचन आदि जिणे के० श्री आदिनाथ नगवाने प्रकाश्यो तथा इणमेवसेसगा के० एरीतेज शेष बी जा तीर्थंकर पण प्रकाशेछे. ॥ १९ ॥ अनविंसुपुराविनिक्खुवो के० हवे सर्वज्ञ पोता ना शिष्यने बोलावी कहेछे के, अहो निक्कु? एटले यतिर्ज पूर्वें जे तीर्थंकर थया, त था आएसाविनवंति के० आगमिक काले जे थशे ते केवा थशे तो के सुव्वता के० सुव्रत एटले प्रधान व्रतधारी तेणे एयाइंगुणाइं आहुतेके० ए सर्व गुण जे पाछल कह्या ते अ थवा आगल कहेशे ते कह्याछे परंतु ते तीर्थंकरने मते नेद नथी कासवस्स के० काश्य प ते श्रीआदीश्वर तथा वर्द्धमान स्वामी तेना अणुधम्मचारिणो के० धर्मना अनुचारि जे छे ते एमज कहेछे के ज्ञान, दर्शन अने चारित्र एहिज मोक्षमार्ग छे. ॥ २० ॥

॥ दीपिका–(इणमिति) इमं प्रत्यक्षं क्षणमवसरं विज्ञाय ज्ञात्वा तथा बोधिं नोसुलनामि त्याख्यातां ज्ञात्वा तडुचितं विधेयं। ईदृशोमानुष्यार्यदेशधर्मसामग्र्याअवसरः पुनः सुलनोन स्यादिति नावः। तदेवमुत्कर्षतोपार्धपुजलपरावर्तकालेन पुनःसुडुर्लना बोधिरित्येवं ज्ञानादि सहितोऽधिपश्येत् बोधेर्डुर्लनत्वं पर्यालोचयेत्। पाठांतरंवा (अहियासएत्ति) परीषहादु दीर्णान् सम्यक् पश्येत्। एवं जिनः श्रीकृषनोष्टापदे स्वसुतानुद्दिश्याह कथितवान्। तथा शेषाअपि जिनाएवमेवोक्तवंतइति ॥ १९ ॥ (अनविमिति) हेनिक्षवः साधवः सर्व ज्ञाः स्वशिष्यानामंत्रयति। पुरा ये अनूवन् अतिक्रांताजिनाः (आएसत्ति) आगमिष्याश्च ये नविष्यंति जिनास्ते सर्वेपि सुव्रताः सुव्रतत्वेनैव सर्वे जिनत्वं प्राप्ताइत्यर्थः। ते सर्वे जिनाए तान् गुणानाहुरुक्तवंतः। नकश्चित्सर्वज्ञानां मतनेदइति नावः। येच काश्यपस्य कृषनस्वा मिनः श्रीवीरस्यवा सर्वेप्यनुचीर्णधर्मचारिणः। एतेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकएव मोक्षमार्गइत्यावेदितम् ॥ २० ॥

॥ टीका–किंच (इणमेइत्यादि)। इदमः प्रत्यक्षासन्नवाचित्वात् इमं इव्यक्षेत्रकालना वलक्षणं क्षणमवसरं ज्ञात्वा तडुचितं विधेयं। तथाहि। इव्यं जंगमत्वपंचेंडियत्वसुकु लोत्पत्तिमानुष्यलक्षणं। क्षेत्रमप्यार्य देशार्धषड्विंशतिजनपदलक्षणं। कालोऽप्यवसर्पिणी चतुर्थारकरादिधर्मप्रतिपत्तियोग्यलक्षणः। नावश्च धर्मश्रवणतच्छ्रद्धानचारित्राचरणकर्मक्षयो पशमाहितविरतिप्रतिपत्त्युत्साहलक्षणः। तदेवंविधं क्षणमवसरं परिज्ञाय तथा बोधिं च सम्यग्दर्शनावाप्तिलक्षणां नोसुलनामित्येवमाख्यातामवगम्य तदवाप्तौ तदनुरूपमेव कुर्या

द्वितिशेषः। अकृतधर्माणां च पुनर्दुर्लभा बोधिः। तथाहि। लद्धेल्लियंच बोहिं अकरेंतो अणागयंचपत्थंतो। अन्नं दाइं बोहिं लप्भिसिकयरेण मोल्लेणं॥ १॥ तदेवमुत्कृष्टतोपार्द्धपुद्गलपरावर्तप्रमाणकालेन पुनः सुडर्लभा बोधिरित्येवं सहितोज्ञानादिभिरधिपश्येत्। बोधिसुडर्लभत्वं पर्यालोचयेत्। पाठांतरंवा। (अहियासएत्ति) परीषहानुदीर्णान् सम्यगधिसहेत। एतच्चाह जिनोरागद्वेषजेता नाभेयोऽष्टपदस्थान् सुतानुद्दिश्य। तथाऽन्येपि इदमेव शेषकाजिनाअभिहितवंतइति॥१ए॥। एतदाह। (अभविंसुइत्यादि) हेभिक्षवः साधवः सर्वज्ञाः स्वशिष्यानेवमामंत्रयति। येऽभूवन् अतिक्रांताजिनाः सर्वज्ञाः (आएसाविंत्ति) आगमिष्याश्च भविष्यंति। तान् विशिनष्टि। सुव्रताः शोभनव्रताः। अनेनेदमुक्तं भवति। तेषामपि जिनत्वं सुव्रतत्वादेवाऽऽयातमिति तेसर्वेऽप्येतानऽनंतरोदितान् गुणानाहुरभिहितवंतः। नाऽत्र सर्वज्ञानां कश्चिन्मतभेदइत्युक्तं भवति। तेच काश्यपस्य ऋषभस्वामिनो वर्द्धमानस्वामिनो वा सर्वेऽप्यनुचीर्णधर्मचारिणइति। अनेन च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकएकएव मोक्षमार्गइत्यावेदितं भवतीति॥ २०॥

तिविहेणवि पाण माहणे, आयहिते अणियाण संवुडे॥ एवं सिद्धा अणंतसो, संपइ जे अणागयावरे॥ २१॥ एवं से उदाहु अणुत्तर नाणी अणुत्तरदंसी अणुत्तरनाणदंसणधरे॥ अरहा नायपुत्ते भगवं वेसालिए वि याहिएत्तिबेमि॥ २२॥ इति श्रीवेयालियं द्वितीयमध्ययनं सम्मत्तं॥

अर्थ–हवे ते गुण कहेछे. तिविहेणवि के० मन, वचन अने कायायें करण करावण अने अनुमोदने करी पाणमाहणे के० जीवना प्राण हणे नहीं. ए प्रथम महाव्रत एम उपलक्षण थकी शेष महाव्रत पण जाणवा. तेणेकरी आयहिते के० आत्माने हेतु तथा अणियाणके० नियाणा रहित संवुडेके० इंद्रियोने संवरवेकरी संवृतिथका एवं के० एवा आचारे प्रवर्तता सिद्धाअणंतसोके० आगल अनंताजीव सिद्धि पाम्या वली संपइजेके० सांप्रत एटले वर्त्तमान काले सिद्ध थायछे. अने अणागयावरेके० अवर आगमिककाले, अनेक सिद्ध थशे. ॥२१॥ एवंके० एरीते सेके० श्रीआदीश्वर भगवाने उदाहुके० पोताना पुत्र आश्री उद्देशीने मोक्षमार्गनो उद्देशो कह्यो ते भगवंत केवा छे? तोके अणुत्तरनाणीके० निरुपमज्ञान अने अणुत्तरदंसीके० निरुपम दर्शन एटले सम्यक् ज्ञान दर्शनना धरनार छे. तथा अणुत्तरनाणदंसणधरके० कथंचित् ज्ञान दर्शनना आधार छे एरीते अरहानायपुत्तेके० अरिहंत ज्ञातपुत्र श्रीवर्द्धमान स्वामी भगवं के० भगवंत तेणे वेसालिएवि के० विशालानगरीने विषे ए मार्ग अमोने आहिएके० कह्यो तिवेमिके० एरीते पंचम गणधर श्रीसुधर्मस्वामी जंबुप्रभृति पोताना शिष्योने कहेछे के अहो शिष्यो? जेम श्रीवर्द्ध

मान स्वामी पाशेथी अमे सांजल्युं ने, तेरीते तमोने कहुंबुं ॥ २२ ॥ इति श्रीसूत्रकृतां गे प्रथमश्रुतस्कंधे श्रीद्वितीयवेतालीयाध्ययनं समाप्तं ॥

॥ दीपिका—(तिविहेणेति) त्रिविधेन मनोवाक्कायैः कृतकारितानुमतिभिर्वा प्राणिनो माहन्यात् । इदमाद्यव्रतं । उपलक्षणादन्यान्यपि व्रतानि ज्ञेयानि । तथा आत्महितोऽनि दानोनिदानरहितः संवृतएवंनूतः सिध्यतीत्याह । एवंनूताअनंतशः सिद्धाः संप्रति व र्तमानकालेपि सिद्धिगमनयोगे सिध्यंति । अपरे अनागते काले सेत्स्यंति । नान्योमुक्तिमा र्गइत्यर्थः ॥ २१ ॥ (एवमिति) एवमुद्देशकत्रयोक्तनीत्या श्रीऋषनस्वामी स्वसुतानु द्दिश्य उदाहृतवान् कथितवान् । अनुत्तरमुत्कृष्टं ज्ञानं तदस्यास्तीत्यनुत्तरज्ञानी । एवमनु त्तरदर्शी । अनंतज्ञानदर्शनइत्यर्थः । बौद्धमतनिरासाय ज्ञानाधारंजीवं दर्शयति । अनुत्त रज्ञानदर्शनधरइति । कथंचिद्भिन्नज्ञानदर्शनाधारइत्यर्थः । अर्हन् सुरेंद्रादिपूज्योज्ञा तपुत्रोवर्धमानस्वामी ऋषनस्वामीवा नगवान् विशालानगर्यामाख्यातवान् श्रीवीरः । ऋषनस्वामीतु विशालकुलोद्भवत्वात् वैशालिकः ॥ यडुक्तं “ विशालाजननीयस्य, विशा लकुलमेववा ॥ विशालं वचनं वास्यातेन वैशालिकोजिनः ” इतिब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ॥ २२ ॥ इति द्वितीयाध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका—तदभिहितांश्च गुणानुद्देशतआह । (तिविहेणेत्यादि) । त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन यदिवा कृतकारितानुमतिभिर्वा प्राणिनोदशविधप्राणनाजोमाहन्यादिति । प्र थममिद महाव्रतं । अस्य चोपलक्षणार्थत्वात् एवं शेषाण्यपि ज्रष्टव्यानि । तथाऽऽत्मनेहित आत्महितः । तथानाऽस्य स्वर्गावाप्त्यादिलक्षणनिदानमस्तीत्यनिदानः । तथेंद्रियनोइंद्रियैर्म नोवाक्कायैर्वा संवृतस्त्रिगुप्तिगुप्तइत्यर्थः । एवंनूतश्चावश्यं सिद्धिमवाप्नोतीत्येतद्दर्शयति । एवमनंतरोक्तमार्गानुष्ठानेनानंताः सिद्धाअशेषकर्मक्षयनाजः संवृत्ताविशिष्टस्थाननाऽजो वा । तथा संप्रति वर्तमाने काले सिद्धिगमनयोग्ये सिध्यंत्यऽपरेवाऽनागते काले एत न्मार्गानुष्ठायिनएव सेत्स्यंति । नाऽपरः सिद्धिमार्गोऽस्तीति नावार्थः ॥ २१ ॥ एतच्च सुधर्म स्वामी जंबूस्वामिप्रनृतिन्यः स्वशिष्येन्यः प्रतिपादयतीत्याह । (एवंसेत्यादि) । एवमुद्देश कत्रयाभिहितनीत्या सऋषनस्वामी स्वपुत्रानुद्दिश्योदाहृतवान् प्रतिपादितवान् । नाऽस्योत्त रं प्रधानमस्तीत्यनुत्तरं । तच्च तज्ज्ञानंच अनुत्तरज्ञानं तदस्याऽस्तीत्यनुत्तरज्ञानी तथाऽनुत्त रदर्शी । सामान्यविशेषपरिछेदकाववबोधस्वनावइति बौद्धमतनिरासद्वारेण ज्ञानाधारं जीवं दर्शयितुमाह । (अनुत्तरज्ञानदर्शनधरइति) । कथंचिद्भिन्नज्ञानदर्शनाधारइत्यर्थः । अ र्हन् सुरेंद्रादिपूजार्होज्ञातपुत्रोवर्द्धमानस्वामी ऋषनस्वामी वा नगवानैश्वर्यादिगुणयु क्तोविशाल्यां नगर्यां वर्द्धमानोऽस्माकमाख्यातवान् ऋषनस्वामी वा । विशालकुलोद्भव

त्वाद्वैशालिकः । तथाचोक्तं । विशाला जननी यस्य विशालं कुलमेव वा । विशालं वचनं चा स्य तेन वैशालिकोजिनः । एवमसौ जिनआख्यातइति । इतिशब्दः परिसमाप्त्यर्थोब्रवीमी तिउक्तार्थोऽनया पूर्ववदिति ॥ २२॥ समाप्तंच द्वितीयं वैतालीयमध्ययनं॥ ग्रंथाग्रं॥ १७६॥

हवे बीजो अध्ययन कह्या अनंतर त्रीजो अध्ययन प्रारंभिये बैए. एनो ए संबंधछे के, पाछले अध्ययने स्वसमय परसमयनी प्ररूपणा कही माटे परसमयना दोष अने स्वसमय ना गुण जाणीने स्वसमयने विषे प्रवर्तवो; तेने विषे प्रवर्त्ततां थकां जे अनुकूल अने प्रति कूल उपसर्ग उपजे ते सहन करवा ए अधिकारे आव्यो जे अध्ययन तेप्रारंभियें बैयें.

सूरं मण्णइ अप्पाणं, जावजेयं नपस्सती ॥ जुझंतं दढधम्माणं,
सिसुपालोव महारहं ॥ १ ॥ पयाता सूरा रणसीसे, संगामंमि
उवछिते ॥ माया पुत्तं नयाणाइ, जेएण परि विछए ॥ २ ॥

अर्थ–कोइएक बाल मनुष्य संग्रामने विषे अप्पाणंके० पोताने सूरंमण्णइके० शूरवीर क री माने जे आजगतमांहे माहारा समान सुनट कोइ नथी. परंतु जावजेयं के० ज्यां सुधी तेसंग्रामने विषे पोताने जीपनार कोइ नपस्सतीके० न देखे त्यांसुधी जाणवुं. को नीपरे? सिसुपालोवके० जेम शिशुपालराजा पोतानी आत्माने शूरवीर मानतो हतो परंतु संग्रामने विषे दढधम्माणं के० दृढधर्मी तथा महारहं के० महारथी एवा नारायणने जुझंतं के० जुंजतो देखी, क्षोन्न पामी, मद ढांमीने निर्मद थयो. ॥ १ ॥ सांप्रत सामा न्यपदे दृष्टांत कहेछे. कोइएक पोतानेविषे सूरा के० शूरवीरपणुं मानता रण के० सं ग्रामने सीसे के० मस्तके अग्रेसर पणे पयाताके० आव्या; एवा संगामंमिउवछितेके० ते संग्रामनेविषे उपस्थित एटले प्राप्त थये थके त्यां परदलने सुनटे सर्वजनने व्याकुल चित्त कस्या छे. ते संग्राम एवो वर्त्तेछे के, ज्यां मायापुत्तंनयाणाइ के० माता पुत्रने न जाणे; एटले माताने केडे रह्यो बालक पडतो जाणे नहीं एवा संग्रामने विषे जेए ण के० जे आगले जीपणहार पुरुषो तेणे परिविछए के० शस्त्रादिके करी छेद्यो थको, हत प्रहत कीधो बतो, कायरपणे नंग पामे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका–उक्तं द्वितीयमध्ययनं । तत्र स्वसमये बोधोविधेयइत्युक्तं । तत्र प्रतिबुद्ध स्य कदाचिडुपसर्गाः स्युस्तेच उदीर्णाः सम्यक्सोढव्याइत्यर्थः । अथ तृतीयाध्ययनमार भ्यते । तत्र चत्वारउद्देशकास्तेषु प्रथमोद्देशकस्येदमादिसूत्रं । (सूरंमण्णइत्ति) कश्चिद्बा लः संग्रामे आत्मानं शूरं सुनटं मन्यते शूरोहमिति गर्जति । यावज्जेतारं पुरःस्थितमुद्यता सिं नपश्यति। दृष्टांतमाह । युध्यमानं दृढः समर्थोधर्मः स्वन्नावोयस्यस तथातं । महान् रथो स्येति महारथोऽत्रनारायणस्तं दृष्ट्वा यथा शिशुपालोमाद्रीसुतः समर्थोपि क्षोन्नंगतस्तं दृष्ट्वा

तोयथा वसुदेवस्वसा माद्री दमघोषाय दत्ता । तयोः पुत्रः शिशुपालः सयौवनमदगर्वि तोबलवान् चतुर्भुजश्च तं तादृशं दृष्ट्वा माता नैमित्तिकं पप्रच्छ । तेनोक्तं अयं तव पुत्रोऽजेय समरे । यं दृष्ट्वास्य स्वाभाविकं भुजायुगलं भावि तस्मादस्य मृतिः । एवमस्य कियान् क लोतिक्रांतः सकदाचित्कृष्णेन दृष्टस्तदा तस्य भुजायुगलमेव जातं । तदा तद्विदित्वा माद्री नाम्न्या तन्मात्रा कृष्णपितृष्वस्त्रा कृष्णाय निवेदितं । त्वं मत्पुत्रोपरि कृपां कुर्याः । कृष्णेनोक्तं अहं त्वत्सुतस्यापराधशतं सहिष्ये तदादेशात् । शिशुपालस्तु कृष्णं तृणमिव मन्यते । श्र सन्यवचांसि वक्ति । बहूनपराधान् करोति । अपराधशते पूर्णे मात्रादिभिर्निवार्यमाणोपि नति ष्ठति तदा कृष्णश्चक्रेण तदुत्तमांगं चिच्छेदेति ॥ १ ॥ सांप्रतं जनप्रतीतं दृष्टांतमाह । (पय याइति) । प्रकर्षेण पातः पादपातोयेषांते प्रपातारणशिरसि प्रयाताः प्रकर्षेण प्राप्ताव शूराः सुभटंमन्यास्ततः संग्रामे उपस्थिते प्राप्ते सति सर्वस्याकुलीभूतत्वान्माता पुत्रं न जान ति । एवंविधे रणे जेता कुंतादिभिः परिविक्षतः परि समंताद्विविधं क्षतोहतश्छिन्नोवा य था कश्चिदल्पसत्वोभंगं याति दैन्यं भजतइत्यर्थः ॥ २ ॥

॥ टीका–उक्तं द्वितीयमध्ययनमधुना तृतीयमारभ्यते । अस्यचाऽयमभिसंबंधः । इहाऽ तराध्ययने स्वसमयपरसमयप्ररूपणाऽभिहिता । तथा परसमयदोषान् स्वसमयगुणांश्च रिज्ञाय स्वसमये बोधोविधेयइत्येतच्चाऽभिहितं । तस्यच प्रतिबुद्धस्य सम्यगुत्थानेनोत्थितस सतः कदाचिदनुकूलप्रतिकूलोपसर्गाः प्रादुर्भवेयुस्तेचोदीर्णाः सम्यक् सोढव्याइत्यं दनेनाऽध्ययनेन प्रतिपाद्यते । ततोऽनेन संबंधेनाऽयातस्याऽस्याऽध्ययनस्य चत्वार्यनुयो द्वाराणि भवंति । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोद्वेधा । अध्ययनार्थाधिकारउद्देशार्थाधिक रश्च । तत्राऽध्ययनार्थाधिकारः संबुद्धस्सुवसग्गाइत्यादिना प्रथमाध्ययने प्रतिपादितः उद्देशार्थाऽधिकारं तूत्तरत्र स्वयमेव निर्युक्तिकारः प्रतिपादयिष्यतीति । नामनिष्पन्नंतु नि क्षेपमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । (उवसग्गमित्यादि) उवसग्गंमियछक्कं दव्वे चेयणमचेयण डुविहं । आगंतुगोयपीला, करोयजोसोउवसग्गो ॥ १ ॥ नामस्थापनात् द्रव्यक्षेत्रका भावभेदात् उपसर्गाः षोढा । तत्र नामस्थापने क्षुण्णत्वादनादृत्य द्रव्योपसर्गं दर्शयति द्रव्ये द्रव्यविषये उपसर्गोद्वेधा । यतस्तद्द्रव्यमुपसर्गकर्तृ चेतनाचेतनभेदात् द्विविधं । त त्र तिर्यङ्मनुष्यादयः स्वावयवाभिघातेन यदुपसर्गयंति ससचित्तद्रव्योपसर्गः सएवकाष्ठादि नेतरः तत्त्वभेदपर्यायैर्व्याख्यातः । तत्रोपसर्गउपतापः शरीरपीडनोत्पादनमित्यादि पर्यायाः । भेदाश्च तिर्यङ्मनुष्योपसर्गादयः नामादयश्च । तत्र व्याख्यांतु निर्युक्तिकृदेव गाथ पश्चार्द्धेन दर्शयति । अपरस्माद्दिव्यादेरागच्छतीत्यागंतुकोयोऽसावुपसर्गोभवति । सच दे हस्य संयमस्य वा पीडाकारीति ॥ १ ॥ क्षेत्रोपसर्गानाह । खेत्तमित्यादिना । खेत्तं बहुउघप

कालोएगंतदूसमादीउ।नावेकम्मप्पुदउ,सो डुविहोउवक्कमिउ ॥१॥ यस्मिन् क्षेत्रे बहून्यो घतः सामान्येन पदानि क्रूरचौराद्युपसर्गस्थानानि नवंति तत्क्षेत्रं बव्होघपदं। पागंतरंवा बव्होघनयं बहून्योघतोनयस्थानानि यत्र तत्तथा । तच्च लाढादिविषयादिकं क्षेत्र मिति।कालस्त्वेकांतडुःषमादिः । आदिग्रहणात् योयस्मिन् क्षेत्रे डुःखोत्पादकोग्रीष्मा दिः सगृह्यतइति । कर्मणां ज्ञानावरणादीनामन्युदयोनावोपसर्गइति । सच उपसर्गः सर्वोऽपि सामान्येन औघिकोपक्रमिकनेदात् द्विधा । तत्रौघिकोऽशुनकर्मप्रकृतिजनित नावोपसर्गोनवति । औपक्रमिकस्तु दंडकशशस्त्रादिनाऽसातवेदनीयोदयापादकइति । ॥ १ ॥ तत्रौघिकौपक्रमिकयोरुपसर्गयोरौपक्रमिकमधिकृत्याह । (उवक्कमिउइत्यादि)। उवक्कमिउ संयमविग्घकरेतज्जुवक्कमेपगयं । दवे चउव्विहो देवमणुयतिरियायसंवेत्तो ॥ ॥ ३ ॥ उपक्रमणमुपक्रमः । कर्मणामनुदयप्राप्तानामुदयप्रापणमित्यर्थः । एतच्च यद्ड व्योपयोगात् येन वा डव्येणाऽसातवेदनीयाद्यशुनं कर्मोदीर्यते । यडुदयाच्चाल्पसत्वस्य संयमविघातोनवति । अतऔपक्रमिकउपसर्गः संयमविघातकारीति। इहच यतीनां मोक्षं प्रति प्रवृत्तानां संयमोमोक्षांगं वर्तते तस्य योविघ्नहेतुः सएवाऽत्राऽधिक्रियतइति दर्शी यति । तत्रौघिकौपक्रमिकयोरौपक्रमिके प्रकृतं प्रस्तावस्तेनात्राधिकारइतियावत्। सच डव्ये डव्यविषयश्चिंत्यमानश्चतुर्विधोनवति । तद्यथा । दैविकोमानुषस्तैरश्चआत्मसंवेदन श्चेति ॥३॥ सांप्रतमेतेषामेव नेदमाह। एक्केक्कोयेत्यादि। एक्केक्कोयचउविहो, अट्ठविहोवावि सोलसविहोवा।घडणजयणायतेसिं, एत्तोवोछंय अहियारो॥४॥ एकैकोदिव्यादिश्चतुर्विधश्च तुर्नेदः।तत्र दिव्यस्तावत् हास्यात् प्रद्वेषात् विमर्शात् पृथग्विमात्रातश्चेति । मानुषाअपि हास्यतः प्रद्वेषाद्विमर्शात् कुशीलप्रतिसेवनातश्च । तैरश्चाअपि चतुर्विधाः । तद्यथा । न यात्प्रद्वेषादाहारादपत्यसंरक्षणाच्च । आत्मासंवेदनाअपि चतुर्विधाः । तद्यथा । घट्ट नातोलेशनातोंऽगुल्याद्यवयवसंश्लेषरूपायास्तंननातः प्रपाताच्चेति । यदिवा वातपित्त श्लेष्मसंनिपातजनितश्चतुर्धेति । सएव दिव्यादिश्चतुर्विधोऽनुकूलप्रतिकूलनेदात् अष्टधा नवति । सएव दिव्यादिः प्रत्येकं यश्चतुर्धा प्राग्दर्शितः सचतुर्णां चतुष्कानां मेलापकात् षोडशनेदोनवति । तेषां चोपसर्गाणां यथा घटनासंबंधप्राप्तिः प्राप्तानांचाऽधिसहनं प्र तियातना नवति । तथाऽतऊर्द्धमध्ययनेन वक्ष्यते इत्ययमत्रार्थाधिकारइतिनावः ॥४॥ उद्देशार्थाधिकारमधिकृत्याऽह ।(पढमंमीत्यादि) पढमंमियपडिलोमा हुंतीअणुलोमगाय वितियंमि।तइएअज्जत्तविसीदणंयपरवादिरयणंच ॥५॥ प्रथमे उद्देशके प्रतिलोमाः प्रतिकूला उपसर्गाः प्रतिपाद्यंतइति तथा द्वितीये ज्ञातिकृताः स्वजनापादिताअनुलोमाअनुकू लाइति । तथा तृतीये अध्यात्मविषीदनं परवादिवचनं चेत्ययमर्थाधिकारइति । हेउस रिसेहिंअहेउएहिं समयपडिएहिंणिउणेहिं । शीलखलितपसुवनाकयाचउमि उद्देशे

॥ ६ ॥ (हेउइत्यादि) चतुर्थोद्देशके अयमर्थाधिकारः । तद्यथा । हेतुसदृशैर्हेत्वाभासैरन्यतैर्थिकैर्व्युद्ग्राहिताः प्रतारितास्तेषां शीलस्खलितानां व्यामोहितानां प्रज्ञापना यथाव स्थितार्थप्ररूपणा स्वसमयप्रतीतैर्निपुणजणितैर्हेतुभिः कृतेति ॥ सांप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (सूरंमसइत्यादि) । कश्चिल्लघुप्रकृतिः संग्रामे समुपस्थिते शूरमात्मानं मन्यते । निस्तोयांबुदइवात्मश्लाघाप्रवणोवाग्भिर्विस्फूर्जन् गर्जति । तद्यथा । नमत्कल्पः परानीके कश्चित् सुजटोऽस्तीत्येवं तावद्गर्जति यावत् पुरोऽवस्थितं प्रोद्यतासिं जेतारं न पश्यति। तथा चोक्तं। तावद्गजः प्रस्रुतदानगंडः करोत्यकालांबुदगर्जितानि । यावन्न सिंहस्य गुहास्थलीषु लांगूलविस्फोटरवं शृणोति ॥ १ ॥ न दृष्टांतमंतरेण प्रायोलोकस्याऽर्थावगमोभवतीत्यतस्तदवगतये दृष्टांतमाह । यथा माद्रीसुतः शिशुपालोवासुदेवदर्शनात्प्राक् आत्मश्लाघाप्रधानं गर्जितवान् पश्चाच्च युध्यमानं शस्त्राणि व्यापारयंतं दृढः समर्थोधर्मः स्वभावः संग्रामाभंगरूपो यस्य सतथा तं महान् रथोऽस्येति महारथः सच प्रक्रमादत्रनारायणस्तं युध्यमानं दृष्ट्वा प्राग्गर्जनाप्रधानोपि क्षोभं गतः। एवमुत्तरत्र दार्ष्टांतिकेऽपि योजनीयमिति । भावार्थस्तु कथानकादऽवसेयः । तच्चेदं । वसुदेवसुसाएसुउदमघोसणरादिवेणसुदीए । जाऊचउप्पुउंभुजवलकलिउंकलहपत्तो ॥१॥ दहूणतउंजणणी, चउप्पुयपुत्तमप्पुवमणग्घं॥भयहरिसविम्हयमुही पुच्छइणेमत्तियंसहसा॥२॥णेमित्तिकएणमुणिऊणसाहियंतो. इहठहियथाए॥ जहएसतुझपुत्तोमहावलोडक्काउसमरे॥३॥ एयस्सयजंदहूणहोइसाभावियं भुयाजुयलं ॥ होहीतत्तोवियभयंसुतस्सतेणछिसंदेहो ॥४॥ भाविभयवेविरंगी पुत्तंदंसेइजावकण्हस्स ।तावच्चियतस्सवियंपयइब्भंवरभुयाजुगलं ॥५॥ तोकण्हस्सपिउच्छापुत्तंपाडेइपायपीढंमि ॥ अवराहखामणत्थंसोविसयंसेखमिस्सामि ॥५॥ सिसुवालोविहुजुव्वणमएण नारायणंअसप्भेहिं ॥ वयणेहिंभणइसोविहुखमइखमाएसमत्थोत्ति ॥ ७ ॥ अवराहसएपुण्णेवारिज्जंतोणचिठईजाहे। कण्हेणतउ छिन्नंचक्केणंउत्तमंगंसे ॥७॥ सांप्रतं सर्वजनप्रतीतं वार्तमानिकं दृष्टांतमाह । (पयायाइत्यादि) यथा वाग्भिर्विस्फूर्जंतः प्रकर्षेण विकटपादपातं रणशिरसि संग्राममूर्धन्यग्रानीके यातागताः। केते शूराः शूरंमन्याः सुजटाः । ततः संग्रामे समुपस्थिते पतत्परानीकसुजटमुक्तहेतिसंघाते सति तत्रच सर्वस्याऽऽकुलीभूतत्वात् माता पुत्रं न जानाति कटीतोच्चरयंतं स्तनंधयमपि न सम्यक् प्रतिजागर्तीत्येवं मातापुत्रीये संग्रामे परानीकसुजटेन जेत्रा च शक्त्यादिभिः परिसमंतात् विविधमनेकप्रकारं हन्यमानोवा यथा कश्चिदल्पसत्वोभंगमुपयाति दीनोभवतीति यावदिति ॥ १२ ॥

एवं सेहेवि अपुठे, निरका यरिया अकोविए ॥ सूरं मसंति अप्पाणं, जावलूहं नसेवए ॥ ३ ॥ जया हेमंतमासंमि, सीतं फुसइ सवगं, पाणंतरं सवायगं ॥ तब मंदा विसीयंति, रक्कहीणावि खत्तिया ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे ए दृष्टांत साधु साथे मेलवे ठे. एवं के० एम पूर्वोक्त सुनटनी पेरे शीशु पालवत् सेहेविके० नवदीक्षित शिष्य पण अपुठेके० परिसहने अण फरश्यो थको एम कहेके, दीक्षापालवामां शुं डुर्लनठे? एटले दीक्षानो मार्ग सुलनज ठे. एवो ते निरकायरिया अकोविएके० निक्षाचर्याने विषे अकोविद, एटले अजाण, अनेरा आचारने विषे अनिपुण थको नवदीक्षितठे. ते सूरंमसंतिअप्पाणं के० वचन मात्रे करी पोताने विषे शूर पणानो माननार ते जावके० ज्यांलगे लूहंके० संयमने नसेवए के० सेवे नही त्यांलगे एवुं कहे के, “ ए संयममां शुं डुष्करपणुं ठे ? ” परंतु जेवारे संयम आदरे तेवारे परिसहनो उदय आवे थके सिदाय. ॥ ३ ॥ हवे संयमनुं डुष्करपणुं देखाडेठे. जया के० ज्यां एकदाकाले हेमंतमासंमि के० हेमंत ऋतुना पौष अने माघ मासमां सवगं के० सर्वांगे पाणंतरे सवायगं के० वायरासहित सीतंफुसति के० शीत फरसे तब के० तेवारे मंदाविके० मंदबुद्धि नारी कर्मिजीव कायर थको, चारित्रने विषे सीयंतिके० सिदाय एटले दीनपणुं पामे. कोनी पेरे? तोके, रक्कहीणावि खत्तिया के० जेम राज्य हीन क्षत्री सिदाय तेनी परे ते साधु पण जाणी लेवो. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—दार्ष्टांतिकमाह । (एवमिति) । एवं पूर्वोक्तप्रकारेण यथा शूरंमन्योजेतारं वासुदेवमन्यंवा युध्यमानं दृष्ट्वा नंगं याति । एवं शिष्यकोऽनिनवप्रव्रजितः परीषहैरस्पृष्टः प्रव्रज्यायां किंडुष्करमिति गर्जन् निक्षाचर्यायां निक्षाटनेऽकोविदोनिपुणः । उपलक्षणादन्यस्मिन्नपि साध्वाचारेऽनिपुणः सन्नात्मानं तावत् शिशुपालवत् शूरं मन्यते । यावज्जेतारमिव रूक्षं संयमं नसेवते ननजते । संयमप्राप्तौहि बहवोगुरुकर्माणोऽल्पसत्वान्नंगमुपयांतीति ॥३॥ संयमस्य रूक्षत्वमाह ।(जयेत्ति) यदा हेमंतमासे शीतकाले शीतं स्पृशति सर्वांगं।तत्र शीते मंदाविषीदंति दीनाः स्युः । राज्यहीना राज्यच्युताययाक्षत्रियाराजानः॥४॥

॥ टीका—दार्ष्टांतिकमाह । (एवंसेहेवीत्यादि) । एवमिति प्रक्रांतपरामर्शार्थः । यथाऽसौ शूरंमन्यउत्कृष्टसिंहनादपूर्वकसंग्रामशिरस्युपस्थितः पश्चाज्जेतारं वासुदेवमन्यं वा युध्यमानं दृष्ट्वा दैन्यमुपयाति । एवं शिष्यकोऽनिनवप्रव्रजितः परीषहैरस्पृष्टोऽत्रुतः किंप्रव्रज्यायां डुष्करमित्येवं गर्जन् निक्षाचर्यायां निक्षाटनेऽकोविदोऽनिपुणः । उपलक्षणार्थत्वादन्यत्राऽपि साध्वाचारेऽनिनवप्रव्रजितत्वादप्रवीणः सएवंनूतश्चात्मानं

तावच्छिशुपालवत् शूरं मन्यते यावज्जेतारमिव रूक्षं संयमं कर्म संश्लेषकारक भावात् नसेवते नभजतइति । तत्प्राप्तौ तु बह्वोगुरुकर्माणोऽल्पसत्वाभंगमुपयांति ॥ ३ ॥ संयमस्य रूक्षत्वप्रतिपादनायाह । (जयाहेमंतेइत्यादि) । यदा कदाचित् हेमंत मासे पौषादौ शीतं सहिमकणवातं स्पृशति लगति तत्र तस्मिन्नसह्ये शीतस्पर्शे लगतिसति एके मंदाजडागुरुकर्माणोविषीदंति दैन्यभावमुपयांति राज्यहीनाराज्यच्युताः यथा क्षत्रियाराजानइवेति ॥ ४ ॥

पुठे गिम्हाहि तावेणं, विमणे सुप्पिवासिए ॥ तत्र मंदा विसियंति, मछा अप्पोदए जहा ॥ ५ ॥ सदादत्तेसणा डुक्खा, जायणा डुप्पणोल्लिया ॥ कम्मत्ता डुब्भगा चेव, इच्चाहं सुपुढो जणा ॥ ६ ॥

अर्थ—हवे उष्णपरिसह कहेछे. गिम्हाहि के० ग्रीष्मकाले ज्येष्ठादिक मासनो अन्यो तावेणं के० उष्ण आताप,तेणे करी पुठे के० फरश्यो एटले व्याप्यो छतो. विमणे के० विमन एटले आमण डुमणो थयो थको सप्पिवासिए के० अत्यंत तृषाये करी पराभव पाम्यो तेवारे तत्रमंदाविसीयंतिके० त्यां पण मंद बापडो कायर सिदाय,भंग पामे. जहा के० जेम मछाअप्पोदए के० माछलुं अल्पोदकमां एटले पाणीना वियोगथी सिदाय तेम सत्वरहित चारित्रियो संयम थकी भ्रष्ट थाय. जेम माछलां जीवितव्य थकी भ्रष्ट थाय तेनी पेरें जाणी लेवुं. ॥ ५ ॥ हवे याचना परिसह कहेछे. सदादत्तेसणाडुक्खा के० सर्वकाल शिलिमात्रपण साधुने दीधो अने एषणिय लेवो ए महाडु. जायणा के० याचना एटले मागवुं ते डुप्पणोल्लियाके० अपार डुर्जयछे. तेमां जे कायर होय ते सिदाय. हवे पाछले अर्थे आक्रोश परिसह कहेछे. पुढोजणाके० पामर ... क होय ते साधुने इच्चाहंसु के० एम कहेके, कम्मत्ताके० ए बापडा पूर्वे आचरित करी आर्त्त थका पूर्वकृत कर्मनां फल अनुभवेछे अथवा ए बापडा मलमलिन शरीर डुःखादिक वेदनाये ग्रसित दरिद्री करसणादिक कार्य करवा असमर्थ माटे उद्वेग पाम्याथका यति थयाछे ए पुत्र कलत्रादिके करी मूकायला, डुब्भगाचेव के० दोर्भागीका परिवार छांमी प्रव्रज्या आदरी रहेछे. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—(पुठेति) । ग्रीष्मेऽग्नितापस्तेन स्पृष्टोव्याप्त. सन् विमना विमनस्कः सुष्टु अतिशयेन पिपासां तृषां प्राप्तः स्यात् । तत्रोक्तपरीषहे मंदाविषीदंति । यथा मत्स्या अल्पोदके विषीदंति ॥ ५ ॥ (सदेति) सदासर्वकालं दंतशोधनाद्यपि दत्तमेषणीयदोषरहितं भोक्तव्यमिति दत्तैषणाडुःखं । तथा इयं याच्ञा डुःखेन प्राणोद्यते परीषहोडुर्

वइतिनावः । मिक्षाइ सुहजावस्सं, वायाघोलेइकंठमझंमि । कहकहकरेइहिययं, देहि त्ति परं नणंतस्स ॥ १ ॥ गतिभ्रंशोमुखे दैन्यं गात्रस्वेदोविवर्णता । मरणे यानि चिन्हानि तानि चिन्हानि याचके ॥ १ ॥ एवं याञ्चापरिषहं परित्यज्य महापुरुषसेवितः पंथाः श्र यणीयः । आक्रोशपरिषहमाह । कम्मत्तत्ति । पृथक्जनाएवमाहुः सामान्यलोकाइत्तमुक्तवं तः । यथा एते यतयः कर्मनिः कृष्यादिनिरार्तास्तत्कर्तुमसमर्थाः संतोयतित्वं प्रतिपन्ना डुर्नगाः पुत्रदारादिनात्यक्तानिर्गतिकाः संतः प्रव्रज्यामाश्रिताइति ॥ ६ ॥

॥ टीका—उष्णपरीषहमधिकृत्याह । (पुठेइत्यादि) । ग्रीष्मे ज्येष्ठाषाढाख्ये अनि तापस्तेन स्पृष्टश्तृप्तोव्याप्तः सन् विमनाविमनस्कः सुष्टुवा अतिशयेन पातुमिछा पिपा सा तां प्राप्तोनितरां तृडनिनूतोबाहुल्येन दैन्यमुपयातीति दर्शयति । तत्र तस्मिन्नु ष्णपरीषहोदये मंदाजमाअशक्ताविषीदंति पराजंगमुपयांति । दृष्टांतमाह । यथा म त्स्याअल्पोदके विषीदंति । गमनानावान्मरणमुपयांत्येवं सत्वानावात्संयमात् ज्ञ श्यंतइति । इदमुक्तं नवति । यथा मत्स्याअल्पत्वाडुदकस्य ग्रीष्मानितापेन तप्ताअ वसीदंत्येवमल्पसत्वाश्चारित्रप्रतिपत्तावपि जलमलक्लेदक्लिन्नगात्राबहिरुष्माभितप्ताः शीत लान् जलाश्रयान् जलाधारगृहचंदनादीनुष्णप्रतिकारहेतूननुस्मरंतआकुलितचेतसः सं यमानुष्ठानं प्रति विषीदंति ॥ ५ ॥ सांप्रतं याञ्चापरीषहमधिकृत्याह (सदादत्तेइ त्यादि) यतीनां सदा सर्वदा दंतशोधनाद्यपि परेण दत्तमेषणीयमुत्पादाद्येषणादोषरहि तमुपनोक्तव्यमित्यतः क्षुधादिवेदनार्त्तानां यावज्जीवं परदत्तैषणाडुःखं नवति । अपि चेयं याञ्चापरीषहोल्पसत्वैर्डुःखेन प्रणोद्यते त्यज्यते । तथाचोक्तं । मिक्षाइसुहजावस्सं, वा याघोलेइकंठमझंमि । कहकहकहेइहिययं देहित्तिपरंनणंतस्स ॥ १ ॥ गतिभ्रंशोमुखे दैन्यं गात्रस्वेदोविवर्णता । मरणे यानि चिन्हानि तानि चिन्हानि याचके इत्यादि । एवं डुस्त्यजं याञ्चापरीषहं परित्यज्य गताभिमानामहासत्वाज्ञानाद्यभिवृद्धये महापुरुषसेवितं पंथान मनुव्रजंतीति श्लोकपश्चार्द्धेनाऽक्रोशपरीषहं दर्शयति । पृथक्जनाः प्राकृतपुरुषाअनार्य कल्पाइत्येवमाहुरित्येवमुक्तवंतः । तद्यथा । ये एते यतयः जलाविलदेहालुंचितशिर सः क्षुधादिवेदनाग्रस्तास्ते एतैः पूर्वाचरितैः कर्मनिरार्ताः पूर्वस्वकृतकर्मणः फलमनुनवं ति । यदिवा कर्मनिः कृष्यादिनिरार्त्तास्तत्कर्त्तुमसमर्थाउद्विग्नाः संतोयतयः संवृत्ताइतित थैते डुर्नगाः सर्वेणैव पुत्रदारादिना परित्यक्ता निर्गतिकाः संतः प्रव्रज्यामन्युपगताइति ॥ ६ ॥

एते सद्दे अचायंता, गामेसु णगरेसु वा ॥ तठ मंदा विसीयंति, संगामंमिव नीरुया ॥७॥ अप्पेगे खुधियं निरकुं, सुणी डंसंति लूसए ॥ तठ मंदा विसीयंति, तेउ पुठाव पाणिणो ॥ ८ ॥

अर्थ–एतेसद्दे के० एवा पूर्वोक्त आक्रोश संबंधि जे शब्द तेने सहन करवाने अश यंता के० असमर्थ गामेसु के० ग्रामने विषे, वाके० अथवा णगरेसु के० नगरने विषे तछके० त्यां एवा आक्रोश उपने थके मंदाविसीयंतिके० तेमंद अज्ञानी चारित्रिउ सीदा यछे, कोनी परें सिदायछे ते कहेछे. संगामंमिवजीरुयाके० जेम बीकण मनुष्य संग्रामने विषे शस्त्र देखी सिदाइने नागी जाय, तेनी पेरे ते मंद चारित्रियो चारित्रथी नंग पामेछे. ॥७॥ हवे वध परिसह कहेछे. अप्प के० अपि संनावनाये एगे के० एक कोइ एक लू सक श्वानादिक ते खुधियंनिरकुं के० निक्षाये नमतो नूख्यो एवोजे साधु तेने देखी सुणी के० ते श्वानादिक मंसंतिके० मंख मारे. लूसए के०वलुरे तछ के०त्यां श्वानादिके सा धो छतो मंदाविसीयंति के० अज्ञानी सिदाय एटले दीन थाय. कोनी परे, तोके जेम तेउ के० अग्निने पुछाव के० स्पर्शे करी पाणिणो के० प्राणी एटले जीव पोतानुं शरीर संकोचें तेम मंद चारित्रिउ पण पोतानुं गात्र संकोचे. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–(एतेइति) एतान् पूर्वोक्तानाक्रोशशब्दान् सोढुमशक्नुवंतोग्रामनगरादौ स्थि ताः । तत्राक्रोशे मंदा विषीदंति दैन्यंनजंते संयमाद्वा नश्यंति यथा नीरवः कातराः संग्रामे षु नज्यंते ॥७॥ वधपरीषहमाह (अप्पेगइति) अपिःसंनावने । एकः कश्चित् श्वादिर्लूषकः क्रूरोनक्षकः (खुधियमिति) क्षुधितं निक्षामटंतं निकुं दशति नक्षयति। तत्र श्वादिनक्षणे मंदाविषीदंति । यथा तेजसाग्निनास्पृष्टादह्यमानाः प्राणिनोवेदनार्ताः सीदंति ॥ ८ ॥

॥ टीका–(एएसद्दइत्यादि) एतान् पूर्वोक्तानाक्रोशरूपान् तथा चौरचारिकादि रूपान् शब्दान् सोढुमशक्नुवंतोग्रामनगरादौ तदंतराले वा व्यवस्थिताः । तत्र तस्मिन् आक्रोशे सति मंदाअज्ञानलघुप्रकृतयोविषीदंति विमनस्कानवंति संयमाद्भ्रश्यंति। तथा नीरवः संग्रामे रणशिरसि चक्रकुंताऽसिशक्तिनाराचाकुले रटत्पटहशंखझल्लरीनाद गंनीरे समाकुलाः संतः पौरुषं परित्यज्याऽयशःपटहमंगीकृत्य नज्यंते। एवमाक्रोशादि शब्दाकर्णनादऽल्पसत्वाः संयमे विषीदंति ॥ ७ ॥ वधपरीषहमधिकृत्याह। (अप्पेगेइ त्यादि)। अपिः संनावने। एकः कश्चिच्छ्वादिः लुपयतीतिलुपकः प्रकृत्यैवक्रूरोनक्षकः खुधियंति। क्षुधितं बुभुक्षितं निक्षामटंतं निकुं दशति नक्षयति दशनैरंगावयवं विलु पति। तत्र तस्मिन् श्वादिनक्षणे सति मंदाअज्ञाअल्पसत्वतया विषीदंति दैन्यं नज ते । यथा तेजसाऽग्निना स्पृष्टादह्यमानाः प्राणिनोजंतवोवेदनार्त्ताः संतोविषीदंति गात्रं संकोचयंत्यार्तध्यानोपहतानवंति । एवं साधुरपि क्रूरसत्वैरनिद्रुतः संयमा द्भ्रश्यतइति दुःसहत्वाद्ग्रामकंटकानां ॥ ८ ॥

अप्पेगे पडिन्नासंति, पडिपंथियमागता ॥ पडियारगता एते, जे एते एव जीविणो ॥ ए॥ अप्पेगे वइ जुंजंति, नगिणा पिंमो लगाहमा ॥ मुंमाकंमूविणढंगा, उज्जल्ला असमाहिता ॥ १० ॥

अर्थ-वली ग्रामीण लोकनुं वचन परिसह कहेछे. अप्पेगे के० अपि संनावनायें. कोइ एक धर्मना अजाण पडिपंथियमागता के० साधुना द्वेषी, साधुनी साथे शत्रुनावे पोंहोंता थका पडिन्नासंति के० एवुं कगोर वचन साधुप्रते नासे एटले बोले. शुं बोले? तो के, पडियारगताएते के० ए बापडा पाठला नवना करेलां कर्मनां फल नोगवेछे. जे एते के० जे ए यति ते एवजीविणो के० एम आजीविकायें जीवेछे. एटले परघरनी निक्षा मागेछे, तथा अंतप्रांत आहारना लेनारा छे. एणे पूर्वले नवे कांइ दीधुं नथी, कांइ लाधु नथी, तेथी मस्तक मुंम थइ बीनत्सरूपे सर्व नोग थकी वंच्या एवा ए बापडा डुःखी थका, जीवे छे. ॥ ए ॥ तथा वली एहिज परिसह कहेछे. अप्पेगेवइजुंजंति के० अपि संनावनायें, एक कोइ अनार्य एवां वचनबोले के, नगिणा के० ए नागा सर्वकाल पिंमोलगाहमा के० परपिंमना उसीआला अधम डुर्गंछाना स्थानक मुंमा के० लुंचितकेश, कंमूके० खाजीये करी एमना शरीर विणढंगाके० विणगाछे. अंगजेना एवा पामर तथा उज्जल्ला के० मेल प्रस्वेद थकी खरडयाछे असमाहिया के० सर्वकाल असमाधिया एटले अशोननिक देखनाराने असमाधिना उपजावनारछे. ॥ १० ॥

॥ दीपिका-आक्रोशमेव पुनराह । (अप्पेगइति) अप्येके प्रातिपंथिकतां साधुविद्वेषितां प्राप्ताः प्रतिनापंते । यथा प्रतीकारपूर्वकर्मानुनवस्तमेकेगताः प्राप्ताः स्वकृतकर्मनोगिनोयएते एवं जीविनः परगृहाण्यटंतः अंतप्रांतनोजिनोलुंचितशिरसः सर्वनोगं चिंताडुखं जीवंतीति ॥ ए ॥ किंच (अप्पेगेइति) अप्येके अनार्यावाचं युंजंति नापंते । यथा एते जिनकल्पिकादयोनग्नाः पिंमोलगाः परपिंमप्रार्थकाअधमामुंडालुंचितकेशाः कंडूः खर्जूस्तया विनष्टांगाः अप्रतिकर्मतया क्वचित् रोगसंनवे सनत्कुमारवद्विनष्टांगाउज्जतो जल्लोमलः प्रस्वेदोयेषांते उज्जल्लाः असमाहिताअशोननाः ॥ १० ॥

॥ टीका-पुनरपि तानधिकृत्याह । (अप्पेगेइत्यादि) । अपिः संनावने । एके केचनाऽपुण्यकर्माणः अपुण्यकर्माणः प्रतिनापंति ब्रुवते । प्रतिपंथाः प्रतिकूलत्वं तेन चरंति प्रातिपंथिकाः साधुविद्वेषिणस्तन्नावमागताः कथंचित्प्रतिपथेवा दृष्टाअनार्याएतद्ब्रुवते । संनाव्यते एतदेवंविधानां तद्यथाप्रतीकारः पूर्वाचरितस्य कर्मणोऽनुनवस्तमेके गताः प्राप्ताः स्वकृतकर्मफलनोगिनोयएते यतयएवं जीवंति परगृहाण्यटंतोऽतप्रांतनोजिनो

दत्तादानालुंचितशिरसः सर्वभोगवंचितादुःखितं जीवंतीति ॥ ए ॥ किंच (अप्पेगे इत्यादि) अप्येके केचन कुसृतिप्रसृताअनार्यावाचं युंजंति नाषंते। तद्यथैते जिनक ल्पिकादयोनग्नास्तथा (पिंमोलगत्ति) परपिंमप्रार्थकाअधमाः मलाविलत्वात् जुगुप्सितामुं मालुंचितशिरसस्तथा क्वचित्कंमूकृतक्षतैरेखाभिर्वा विनष्टांगाविकृतशरीराअप्रतिकर्मश रीरतया वा क्वचिद्रोगसंभवे सनत्कुमारवद्विनष्टांगस्तथोज्झतोजल्लः शुष्कप्रस्वेदोयेषांते उज्ज ल्लास्तथा असमाहिताअशोजनाबीनत्साद्दष्टावा प्राणिनामसमाधिमुत्पादयंतीति ॥ १० ॥

एवं विप्पडिवन्नेगे, अप्पणाउ अजाणया ॥ तमउ ते तमं जंति,
मंदा मोहेण पाउडा ॥ ११ ॥ पुठोय दंस मसएहिं, तण फास
मवाइया ॥ न मे दिठे परे लोए, जइ परं मरणंसिया ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे जे साधुने एवां डुर्वचन बोले, तेने विपाक देखाडे ले. एवं के० एपूर्वेक्त रीते विप्पडिवन्नेगे के० कोइ एक पुण्य रहित जीव, विप्रतिपन्न एटले साधु मार्गना द्वे षी अप्पणाउअजाणया के० पोते अजाण ठतां तु शब्दथकीअन्य विवेकी पुरुषनां वच न अण मानतां एवा जीव तमउतेतमंजंति के० अंधकार गति थकी फरी आकरी अं धकार गतियें जाय. ते मंदा के० अज्ञानी केवाठे. तोके, मोहेण के० मिथ्यात्व ... करी पाउडा के० ढाक्या आवखा कुमार्गने सेवेठे ॥ ११ ॥ हवे दंसमसकादिक परिसह ठे. सिंधु ताम्रलिप्त कोंकणादिक देशने विषे प्रायें दंस मशकादिक अधिक होयठे. देशोने विषे कोइवार साधु गयो थको, दंसमसएहिं के० दंस मशकादिक पुठोय के० फरश्ो तेथी दंसमशकादिके पीडायो तथा अकंचन नावठे, माटे तण के० तृणादिकने विषे संथारो करे, तेथी ते तृणादिकना फास के० स्पर्श मवाइया के० सहन कर वाने अशक्तिवंत ठतो, कोइ एक कायर एम चिंवतन करे के एवुं डुष्कर अनुष्ठान परलो कने अर्थे करियें ठैये. अने नमेदिठेपरेलोए के० ते परलोकतो अमे दीठुं नथी. जइ के० जेमाटे अपरंमरणं के० एवा क्लेशथी मरण तो प्रत्यक्ष देखायठे जे अवश्य मरण पामीशुं माटे एवा क्लेशथी सखुं ॥ १२ ॥

॥दीपिका—एवं नाषंते ये तेषां विपाकमाह।(एवमिति) एवं पूर्वोक्तनीत्या एके केचित् प्रति पन्नाः साधुमार्गे द्वेषिणआत्मना स्वयमज्ञाः। तुशब्दादन्येषां वचनमकुर्वाणास्तेऽज्ञानात्तमो यांति। अधस्तमां गतिं गठंति। मंदामोहेन मिथ्यात्वेन प्रावृताआछादिताः साधुद्वेषिणः कुमा र्गगाः स्युः। यथा। एकं हि चक्षुरमलं सहजोविवेक,स्तद्वद्भिरेव सह संवसतिर्द्वितीयं॥ एतद्द्व यं भुवि न यस्य सतत्वतोंधस्तस्यापमार्गचलने खलु कोपराधः॥ ११॥दंशमशकपरीषहानाह।

(पुठेत्ति) क्वचित्सिंधुताम्रलिप्तकोंकणादिषु बहवोदंशमशकाः स्युस्तत्रपर्यटन् साधुस्तैः दृष्टोनक्षितस्तथा निष्किंचनत्वात्तृणेषु शयानस्तेषां स्पर्शं सोढुमशक्नुवन् आर्तः सन् एवं कदाचिच्चिंतयेत्। यथा परलोकार्थमिदं डुष्करमनुष्ठानं क्रियते नचासौ मया परलोकः प्रत्यक्षेण दृष्टोनाप्यनुमानादिना। यदि परमनेन क्लेशेन मरणं स्यान्नान्यत्फलं किंचिदिति १२

॥ टीका—सांप्रतमेतज्ज्ञापकाणां विपाकदर्शनायाह। (एवमित्यादि)। एवमनंतरोक्तरीत्या एके अपुण्यकर्माणोविप्रतिपन्नाः साधुसन्मार्गद्वेषिणआत्मना स्वयमज्ञाः। तुशब्दादन्येषां च विवेकिनां वचनमकुर्वाणाः संतस्ते तमसोऽज्ञानरूपाडुत्कृष्टं तमोयांति गछंति यदिवा अधस्तादप्यधस्तनीं गतिं गछंति। यतोमंदाज्ञानावरणीयेनाऽवष्टब्धास्तथा मोहेन मिथ्यादर्शनरूपेण प्रावृताआछादिताः संतः पिंगप्रायाः साधुविद्वेषतया कुमार्गगानवंति। तथाचोक्तं। एकं हि चक्षुरमलं सहजोविवेक,स्तद्वद्भिरेव सह संवसतिर्द्वितीयं। एतद्द्वयं नुवि न यस्य सतत्वतोंऽधस्तस्याऽपमार्गचलने खलु कोपराधः॥ १ ॥ ११ ॥ दंशमशकपरीषहमधिकृत्याह। (पुठोयेत्यादि) क्वचित्सिंधुताम्रलिप्तकोंकणादिके देशे अधिकादंशमशकानवंति। तत्रच कदाचित्साधुः पर्यटंस्तैस्पृष्टश्च नक्षितस्तथानिष्किंचनत्वात् तृणेषु शयानस्तत्स्पर्शं सोढुमशक्नुवन् आर्त्तः सन् एवं कदाचिच्चिंतयेत्। तद्यथा। परलोकार्थमेतडुष्करमनुष्ठानं क्रियमाणं घटेत नचाऽसौ मया परलोकः प्रत्यक्षेणोपलब्धो ऽप्रत्यक्षत्वात् नाऽप्यनुमानादिनोपलन्यतइति। अतोयदि परं ममानेन क्लेशाभितापेन मरणं स्यान्नाऽन्यत्फलं किंचनेति ॥ १२ ॥

संतत्ता केसलोएणं, बंजचेर पराइया ॥ तठ मंदा विसीयंति,
मठा विठाव केयणे ॥ १३ ॥ आयदंमसमायारे, मिछासंठिय
जावणा ॥ हरिसप्पउसमावन्ना, केइ लूसंति नारिया ॥ १४ ॥

अर्थ—तथा वली संतत्ता केसलोएणं के० केशना लोचे संताप्या तथा बंजचेर पराइया के० ब्रह्मचर्य थकी जागा एटले लोचनी पीडा उपनी थकी तथा कामविकार ना दीपवा थकी तठ के० त्यां मंदा के० मंद अज्ञानी बापडा विसीयंति के० सदाय. संयम थकी.भ्रष्ट थाय. ते कोनी परे? तोके, जेम केयणे के० केतन एटले मत्स बंधन तेने विषे विठाव के० प्रवेश करवा थकी मठा के० माठलुं जीवितव्य थकी चूकेठे. तेनी परे ते बापडा संयम थकी चूकेठे. ॥ १३ ॥ आयदंमसमायारे के० आत्मा जे थकी दंमाय एवो जेनो आचार एटले अनुष्ठानछे. तथा मिछासंठियजावणा के० मिथ्यादर्शन संस्थित एटले मिथ्यादर्शने जावित जेनुं चित्त ठे, तथा हरिसप्पउसमाव

न्ना के० रागद्वेषे व्याकुल एवा केइ के० कोइएक अनारिया के० अनार्य पुरुषो ते चा रित्रवंत साधुने क्रीडार्थे करी लूसंति के० लूंछे कदर्थना करे ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–(संताइति)। केशानां लोचने संतप्ताः पीडितास्तथा ब्रह्मचर्येण परा जितालग्नाः संतस्तत्र केशलोचे ब्रह्मचर्ये मंदाविपीदंति संयमाद्भ्रश्यंते। यथा म त्स्याः केतने मत्स्यबंधने प्रविष्टाविपीदंति जीविताद्भ्रश्यंति ॥ १३ ॥ (आयदंडेत्ति)। आत्मा दंडयते डुर्गतौ पात्यते येन स आत्मदंडः समाचारोनुष्ठानं येषां ते आत्मदंड समाचाराः। मिथ्यासंस्थिताविपरीततया स्वीकृता जावना चित्तवृत्तियैस्ते मिथ्यासंस्थितना वनामिथ्यात्वोपहतदृष्टयइत्यर्थः । हर्षद्वेषमापन्नारागद्वेषाकुलाएवंविधाअनार्याः के चित् साधुं लूषयंति कदर्थयंति दंडादिनिर्वाग्निर्वा ॥ १४ ॥

॥ टीका–अपिच (संतत्ताइत्यादि)। समंतात् तप्ताः संतप्ताः केशानां लोचउत्पाट नं तेन। तथाहि। सरुधिरकेशोत्पाटने हि महती पीडोपपद्यते तया चाऽल्पसत्वाः विस्रोतसिकां नजंते। तथा ब्रह्मचर्यं वस्तिनिरोधस्तेनच पराजिताः परानग्नाः संतस्तत्र तस्मिन् केशोत्पाटनेऽतिडुर्जयकामोद्रेके वा सति मंदाजमालघुप्रकृतयोविपीदंति संय मानुष्ठानं प्रति शीतलीनवंति सर्वथा संयमाद्भ्रश्यंति। तथा मत्स्याः केतने मत्स्य बंधने प्रविष्टानिर्गतिकाः संतोजीविताद्भ्रश्यंति। एवं तेपि वराकाः सर्वं कष्टकामपराजि ताः संयमजीवितात् भ्रश्यंति ॥ १३ ॥ किंच (आयदंडेत्यापि)। आत्मा दंडयते खं डयते हितात् भ्रश्यते येन स आत्मदंडः समाचारोऽनुष्ठानं येषामनार्याणां ते। तथा मिथ्या विपरीता संस्थिता स्वानुग्रहारूढा जावनांतःकरणवृत्तिर्येषां ते मिथ्यासंस्थित जावनामिथ्यात्वोपहतदृष्टयइत्यर्थः। हर्षश्च प्रद्वेषश्च हर्षप्रद्वेषं तदापन्नारागद्वेषसमा कुलाइति यावत् । तएवंजूताअनार्याः साधुं सदाचारं क्रीमया प्रद्वेषणं वा क्रूरकर्मका रित्वात् लूषयंति कदर्थयंति दंमादिनिर्वाऽग्निर्वैते ॥ १४ ॥

अप्पेगे पलियंतेसिं,चारो चोरोति सुव्वयं॥ बंधंति निकुयं बाला कसायवयणेहिय ॥१५॥ तव दंमेण संवीते, मुठिणा अडुफलेण वा ॥ नातीणं सरती बाले,इत्थीवा कुद्धगामिणी ॥१६॥ एते नोक सिणा फासा, फरुसा डुरसहियासया॥हत्थी वा सरसंवित्ता कीवा वसगयागिहंतिबेमि ॥१७॥ इति तृतीय ऽध्ययनस्य प्रथमोद्देशोस०

अर्थ–वली अपि संनावनायें एगेपलियं के० कोइएक अनार्य, देशपर्यंत विचरता

जे साधु तेसिंके० ते साधुने एम कहेके, चारोचोरोतिसुव्वयंके० ए हेरुछे चोरछे, निद्धण शील एम कहीते सुव्रतजे अणगार तेने बंधंतिभिरकयंके० राशी प्रमुखे करी, साधुने बांधे एवा बालाके० बाल अज्ञानी तथा कसायवयणेहियके० कषायना वचने करी निर्भर्त्सना करे. ॥१५॥ तछके० त्यां अनार्य पुरुषे साधुने दंडेणके० दंडे करी तथा मुठिणाके० मुठियें करी अडवाके० अथवा फलेणवाके० फले करी संवीतेके० हण्यो छतो कांइक परिणत साधु नातिणंसरती बाले के० एवा दुःखोने ते बाल अज्ञानी अण सहेतो थको ज्ञाती गोत्रीने संभारे के, माहारो संबंधि गोत्री जो कोइ अंहियां होत तो ए मने एवी कदर्थना नकरत; एवी चिंतवना करे इछिवाकुछगामिणी के० जेम स्त्री रीशाणी थकी, पोताना घरमांथी निकली; रस्तामां तेने चोर लोकोए ग्रहण करी छती पोताना संबंधिउंनुं स्मरण करे, पश्चात्ताप करे, तेनीपेरे जाणी लेवी. ॥ १६ ॥ हवे उपसंहार करतो कहेछे. एते के० ए जे पूर्वे दंसमशकादिकना परिसह कह्या ते नोके० श्रीसुधर्मस्वामी जंबूप्रमुख शिष्योने बोलावी कहेछे के, नोशिष्यो कसिणाफासा के०जे परिसह कह्या ते संपूर्णप्रत्ये फरशे फरुसा डुसहियालया के० जे कठोर अहियासता दुर्लभछे एवा परिसहने अणसहेता एवा जे किवाके० क्लीब असमर्थ अवसाके० परवशे एटले कर्मना वशे पड्या थका गयागिहं के० वली गृहवाशे गया. कोनीपरे ? तोके, हछिवासरसंवित्ता के० जेम हस्ती संग्रामने माथें, मस्तके शरजाले वींध्यो थको त्यांथी नाशी पाछो फरे तेम कायर साधु चारित्र थकी पाछो फरे तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥ १७ ॥

इति तृतीयाऽध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ दीपिका-(अप्पेगत्ति) एके पूर्वोक्तविशेषणाअनार्याः पर्यंतदेशे वर्तमानं साधुं सुव्रतं (चारोचोरित्ति) चरोयं चोरोयमिति कृत्वा बध्नंति भिक्षुकं भिक्षणशीलं बालाअज्ञास्तथा कषायवचनैः क्रोधवचनैर्निर्भर्त्सयंति ॥ १५ ॥ (तछेति) तत्राऽनार्यदेशेऽनार्यैर्दंडेन मुष्टिना फलेन मातुलिंगादिना खड्गादिनावा संवीतः कश्चिदपरिणतः साधुर्ज्ञातीनां स्मरति। यद्यत्र मम कश्चित्संबंधी स्यात्तदा नाहमीदृशीं कदर्थनां प्राप्नुयामीति। यथा स्त्री क्रुद्धा सती स्वगृहाद्गमनशीला निराश्रया मांसपेशीव सर्वस्पृहणीया तस्करादिभिरभिद्रुतासती जातपश्चात्तापा ज्ञातीनां स्मरत्येवं साधुरपि ॥ १६ ॥ (एतेइति)। नोइति शिष्यामंत्रणं। एते दंशमशकादयः परीषहाः स्पृश्यंते अनुभूयंते स्पर्शाः परुषाः कठिनाडुःखेनाधिसह्यंते डुरधिसह्याद्दस्तिनइव शरैर्वीर्णाः संवीताव्याभज्यंतइति शेषः । एवं क्लीबाअसमर्थाअवशाःपरवशाःकर्मायत्ताः पश्चात्स्वगृहं गता ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ १७ ॥

इतिउपसर्गपरिज्ञाख्ये तृतीयाध्ययने प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ टीका—एतदेव दर्शयितुमाह । (अप्पेगेइत्यादि) । अपिःसंनावने । एके अनार्या आत्मदंमसमाचारामिथ्यात्वोपहतबुद्ध्योरागद्वेषपरिगताः । साधुं (पलियंतेसिंति) अनार्यदेशपर्यंते वर्तमानं (चारोत्ति) चारोयं चौरोयं स्तेन इत्येवं मत्वा सुव्रतं कदर्थयंति । तथाहि । बध्नंति रज्वादिना संयमयंति निकुकं नीक्षणशीलं बालाअज्ञाः सदसद्विवेकविकलास्तथा कषायवचनैश्च क्रोधप्रधानकटुकवचनैर्निर्जत्सयंतीति ॥ १५ ॥ अपिच (तत्थदंडेणेत्यादि) । तत्र तस्मिन्ननार्यदेशपर्यंते वर्त्तमानः साधुरनार्यैर्दंडेन यष्टिना मुष्टिना वा संवीतः प्रहतोऽथवा फलेन वा मातुलिंगादिना खड्गादिना वा ससाधुरेवं तैः कदर्थ्यमानः कश्चिदपरिणतोबालोऽज्ञोज्ञातीनां स्वजनानां स्मरति । तद्यथा । यद्यत्र मम कश्चित् संबंधी स्यात् नाऽहमेवंनूतां कदर्थनामवाप्नुयामिति । दृष्टांतमाह । यथा स्त्री क्रुधा सती स्वगृहात् गमनशीला निराश्रया मांसपेशीव सर्वस्पृहणीया तस्करादिनिरनिद्रुता सती जातपश्चात्तापा ज्ञातीनां स्मरत्येवमसावपीति ॥ १६ ॥ उपसंहारार्थमाह । (एते नोइत्यादि) । नोइति शिष्यामंत्रणं । यएतआदितः प्रनृति दंशमशकादयः पीडोत्पादकत्वेन परीषहाएवोपसर्गाअनिहिताः कृत्स्नाः संपूर्णाबाहुल्येन स्पृश्यंते स्पर्शेंद्रियेणाऽनुनूयंतइति स्पर्शाः । कथंनूताः परुषाः परुषैरनार्यैः कृतत्वात् पीडाकारिणः । तेचाऽल्पसत्वैर्दुःखेनाऽधिसह्यंते तांश्चाऽसहमानालघुप्रकृतयः केचन श्लाघामंगीकृत्य हस्तिनइव रणशिरसि शरजालसंवीताः शरशताकुलानंगमुपयांत्येवं क्लीबाअसमर्थाअवशाः परवशाः कर्मायत्तागुरुकर्माणः पुनरपि गृहमेव गताः । पाठांतरं वा (तिव्वसढेत्ति) तीव्रैरुपसर्गैरनिद्रुताः शठाः शठानुष्ठानाः संयमं परित्यज्य गृहं गताइति । ब्रवीमीति पूर्ववत् । उपसर्गपरिज्ञायाः प्रथमोद्देशकइति ॥ १७ ॥

॥ अथ द्वितीयोद्देशकस्य प्रारंनः पहेला उद्देशामां प्रतिकूल उपसर्गना कारण कह्या. हवे बीजा उद्देशामां अनुकूल उपसर्गना कारण कहेछे.

अहिमे सुहमा संगा, निरकुणं जे डुरुत्तरा ॥ जत्थ एगे विसीयंति, णचयंतिज वित्तए ॥ १ ॥ अप्पेगे नायत्ने दिस्स, रोयंति परिवारिया ॥ पोसणे ताय पुठोसि, कस्स तायजहासि णे ॥२॥

अर्थ—अहके० अथ हवे इमे के० ए सुहमाके० सूक्ष्म, एटले चित्तने विकार उपजावनार एवा अंतरंग प्रतिकूल उपसर्गना कारण पण बादर एटले प्रगट देखाय नही तेवा शरीरने विकार करनार उपसर्ग न जाणवा एवा संगाके० मातापितादिकनो संबंध, ते संबंधी जेके० जे नि

रूणंके० चारित्रियाने डुरुत्तराके० डुर्लंघनीय उपसर्गछे तेज उपसर्ग कहेछे. जछके० जे उपस र्ग आवे थके एगेके० कोइ एक कायर चारित्रिउ, सीयंतिके० सदाय एचियंतिजविचएके० ते पोताना आत्माये संयमनो निर्वाह करी शके नही ॥१॥ अपि संभावनाए, एगेके० को इएक नायउद्दिस्स के० ज्ञातिला साधुने देखीने साधुने परिवारिया कें० वीटीने रोयंति के० रुदन करे एटले विलाप करे अने एम कहेके अम्हे तारुं बालपण थकी पालण पोषण कखुं, ते अम्हे तारा ताय के० तात एटले पिता छैयें माटे एवुं जाण्युजे अमा री वृद्धावस्थामां; तुपण अमारुं पोषण करीश पुछोसि के० तेमाटे हेपुत्र तुं अमारुं पोसणके० पोषण कर, तथा ते साधुना पुत्रादिक होय ते एम कहेके कस्सतायजहा सिणे के० अहो तात अहोपिता तमे अमने शाकारणे छांमोछो? ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथ द्वितीयआरभ्यते। पूर्वं प्रतिकूलाउपसर्गाउक्ताः इहाऽनुकूलाउ च्यंते। यथा (अहिमेति) अथ इमे वक्ष्यमाणाः सूक्ष्माआंतरविकारिणः संगामातापि त्रादयोभिक्षूणां ये डुरुत्तराडुर्लंघ्याः। यत्र येषु उपसर्गेषु एकेअल्पसत्वाविषीदंति संयमे मं दाः स्युः। नशक्नुवंति यापयितुं संयमे आत्मानं प्रवर्त्तयितुमिति ॥ १ ॥ (अप्पेगइति) अ पिःसंभावने। एके ज्ञातयः स्वजनाः प्रव्रजंतं प्रव्रजितं वा दृष्ट्वा परिवार्य विष्टभ्य आश्रित्य रुदंति वदंति चैवं त्वमस्माभिः पोषितोबाल्यादारभ्यावृद्धमस्माकं बालकोभविष्यसीति कृ त्वा ततोऽस्मान् त्वं तातपुत्र पोषय पालय कस्य कृते केन कारणेनास्मान् त्यजसि ॥२॥

॥ टीका—उक्तः प्रथमोद्देशकः । सांप्रतं द्वितीयः समारभ्यते। अस्य चायमभिसंबं धः। इहोपसर्गपरिज्ञाध्ययने उपसर्गाः प्रतिपादितास्तेचानुकूलाः प्रतिकूलाश्च । तत्र प्रथमोद्देशके प्रतिकूलाः प्रतिपादिताइहत्वनुकूलाः प्रतिपाद्यंतइत्यनेन संबंधेनायाा तस्याऽस्योद्देशकस्याऽदिसूत्रं । (अहिमेइत्यादि)। अथेत्यानंतर्ये। प्रतिकूलोपसर्गानंतरम नुकूलाः प्रतिपाद्यंतइत्यानंतर्यार्थः। इमे त्वनंतरमेवाभिधीयमानाः प्रत्यक्षासन्नवाचित्वादि दमभिधीयंते। तेच सूक्ष्माः प्रायश्चेतोविकारकारित्वेनांतरान प्रतिकूलोपसर्गाइव बाहु ल्येन शरीरविकारकारित्वेन प्रकटतया बादराइति । संगामातापित्रादिसंबंधाः। यएते भि क्षूणां साधूनामपिडुरुत्तराडुर्लंघ्याडुरतिक्रमणीयाइति । प्रायोजीवितविघ्नकरैरपि प्र तिकूलोपसर्गैरुदीर्णैर्माध्यस्थ्यमवलंबयितुं महापुरुषैः शक्यमेतेत्वनुकूलोपसर्गास्तानप्यु पायेन धर्माद्ध्यावयंत्यतोऽमीडुरुत्तराइति । यत्र येषूपसर्गेषु सत्स्वेके अल्पसत्वाः सदनुष्ठानं प्रति विषीदंति शीतलविहारित्वं भजंते सर्वथा वा संयमं त्यजंति नैवा त्मानं संयमानुष्ठानेन यापयितुं वर्तयितुं तस्मिन् वा व्यवस्थापयितुं शक्नुवंति समर्थाभ्भव तीति ॥ १ ॥ तानेव सूक्ष्मसंगान् दर्शयितुमाह । (अप्पेगेइत्यादि) अपिः संभावने। एके

तथाविधाज्ञातयः स्वजनामातापित्रादयः प्रव्रजंतं प्रव्रजितं वा दृष्ट्वोपलभ्य परिवार्य वेष्टयित्वा रुदंति रुदंतोवा वदंति च दीनं । यथा बाल्यात् प्रभृति त्वमस्माभिः पोषितोऽस्माकं नां पालकोभविष्यतीति कृत्वा ततोधुनानोऽस्मानपित्वं तात पुत्र पोषय पालय कस्य कृते केन कारणेन कस्यवा बलेन तातास्मान् त्यजसि नास्माकं भवंतमंतरेण कश्चित्त्राता विद्यतइति ॥ २ ॥

पिया ते थेरउ तात, ससा ते खुड्डिया इमा ॥ भायरोते सगा तात, सोयरा किं जहासि णे ॥ ३ ॥ मायरं पियरं पोस, एवं लोगो भविस्सति ॥ एवं खु लोइयं ताय, जे पालंति य मायरं ॥ ४ ॥

अर्थ–पियाते थेरउतात के० अहो तात ताहरो जे पिताछे ते थेरउ एटले मोकरो छे अर्थात वृद्धछे, तथा ससा के० बेहेन ते खुड्डिया के० न्हानीछे, इमाके० ए प्रत्यक्ष देखायछे, तथा भायरोतेसगातात के० हेतात ताहरा सगाभाइ ते एक माताना जण्या एवा सोयरा के० सहोदर एक उदरना उपज्या, स्नेहना पात्र, तेने किंजहासिणे के० केम छांमीश ते कारण माटे तु अमने कां छांमेछे ॥ ३ ॥ तथा मायरं के० माता अने पियरं के० पिता तेने पोस के० पोषण कर एवं लोगोभविस्सति के० एरीते पर लोकनी सिद्धि थशे. एवंखुलोइयं ताय के० तथा हेतात आलोकने विषे पण निश्चय थकी एवो आचारछे के जे पालंति य मायरं के० जे संसारमांहे पोताना मातापिताने पालणपोषणकरे, तेज श्रेष्ठ मनुष्य कहेवायछे. यतोगुरुवोयत्र पूज्यंतेइति वचनात्॥४॥

॥ दीपिका–पियेति। हेतात पुत्र ते तव पिता स्थविरः स्वसाभगिनी तव क्षुल्लिका लघ्वी इमे भ्रातरस्तव निजास्तात सोदराः स्वकाःसहोदराः किमस्मान् त्यजसि ॥३॥ मायरमिति मातरं पितरं पुषाण पोषय एवंकृते तवेह लोकः परलोकश्च भविष्यति । इदमेव लौकिकं लोकसंमतं यत् वृद्धयोर्मातृपित्रोः परिपालनं । यतः । गुरवोयत्र पूज्यंते यत्र धान्यं सुसंस्कृतं ॥ अदंतकलहोयत्र तत्र शक्र वसाम्यहमिति ॥ ४ ॥

॥ टीका–किंच (पियेत्यादि) हेतातपुत्र पिता ते तव स्थविरोवृद्धः शतातीतः स्वसाच भगिनी तव क्षुल्लिका लघ्वी अप्राप्तयौवना इमा पुरोवर्त्तिनी प्रत्यक्षेति तथा भ्रातरस्ते तव स्वकानिजास्तात सोदराएकोदराः किमित्यस्मान् परित्यजसीति ॥ ३ ॥ तथा (मायरमित्यादि) मातरं जननीं तथा पितरं जनयितारं पुषाण बिभृहि । एवं च कृते तवेह लोकः परलोकश्च भविष्यति । तातेदमेवलौकिकं लोकाचीर्णमयमेव लौकिकः प

था यडुत वृद्धयोर्मातापित्रोः प्रतिपालनमिति । तथाचोक्तं । गुरवोयत्र पूज्यंते यत्र धान्यं सुसंस्कृतं ॥ अदंतकलहोयत्र तत्र शक्रवसाम्यहमिति ॥ ४ ॥

उत्तरा महुरुल्लावा, पुत्ता ते तात खुड्डया ॥ नारिया ते णवा तात, मा सा अन्नं जणं गमे ॥ ५ ॥ एहि ताय घरं जामो, माय कम्मं सहावयं ॥ बितियं पिताय पासामो, जासु ताव सयं गिहं ॥ ६ ॥

अर्थ-एरीते उत्तर के० प्रधान तथा उत्तरोत्तर महुरुल्लावा के० मधुर जेनो आलाप छे एटले नरम वचनना बोलनारा एवा पुत्तातेतातखुड्डया के० अहोतात तमारा पुत्र न्हानाछे, तथा नारियातेणवातात के० तमारी नार्या ते नवीन परणेलीछे ने लघुवयवालीछे, माटे माके० रखे साके० ते अन्नंजणंगमे के० अन्यजन पासे जशे तो आपणा कुलने ते कलंक लगाडशे. ॥ ५ ॥ माटे एहितायघरंजामो के० अहो तात तमे आवी घरमां रहो अने त्यां रह्या थका मायकम्मं के०कांइपण कार्य करशोमां नवा कार्य उपने थके अम्हे तमोने सहावयं के०सहाइ थइशुं. तेमाटे एकवार गृहकार्यथी तमे नागाछो परंतु बितियंपि के० बीजी वखत तायके० हेतात अथवा हे पुत्र पासामो के० तमे जुउ के अमे शखाइ छता जोइये जे तमारो शुं बिगाड थायछे, जासुतावसयंगिहंके० तेमाटे चालो पोताने घेर जइये. एटलुं अमारुं वचन मान्यकरो. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-(उत्तराइति) उत्तराः प्रधानाउत्तरोत्तरजातावा । मधुरोल्लापामधुरवचनास्ते तात पुत्रालघवः । तथा नार्या तव नवा नवयौवना नवोढा वा सा त्वया त्यक्ता सती नान्यं गछेडुन्मार्गगामिनी मास्यात् ॥ ५ ॥ (एहीति) एहि आगछ तात गृहं यामः । मात्वं किमपि कर्म कृथाः । अपितु कर्मण्युपस्थिते ते वयं सहायकान्नविष्यामः । एकवारं तावगृहकर्मन्निर्नग्नस्त्वं पुनरपि द्वितीयवारं पश्यामोऽहृयामोयदस्मान्निः सहायैर्नवतो नविष्यतीत्यतोयामस्तावत्स्वकं निजं गृहं ॥ ६ ॥

॥ टीका-अपिच । (उत्तरेत्यादि) उत्तराः प्रधानाउत्तरोत्तरजातावा मधुरोमनोज्ञउल्लापआलापोयेषांते तथाविधाः पुत्रास्ते तव तातपुत्र क्षुल्लकालघवः । तथा नार्यापत्नी ते नवा प्रत्यग्रयौवना अतिनवोढा वा सासौ त्वया परित्यक्ता सत्यन्यं जनं गछेडुन्मार्गयायिनी स्यादयं च महाजनापवादइति ॥ ५ ॥ अपिच । (एहीत्यादि) जानीमोवयं यथा त्वं कर्मनीरुस्तथाप्येहि आगछ गृहं यामोगछामः । मात्वं किमपि सांप्रतं कर्मकृथाः अपितु तव कर्मण्युपस्थिते वयं सहायकान्नविष्यामः साहाय्यं करिष्यामः । एकवारं तावगृहकर्मन्निर्नग्नस्त्वं तात पुनरपि द्वितीयवारं पश्यामोऽहृयामोयदस्मान्निः सहायैर्नवतोनविष्यतीत्यतोयामोगछामस्तावत् स्वकं गृहं कुर्वं तदस्मछचनमिति ॥ ६ ॥

गंतुं ताय पुणो गछे, णय तेणासमणोसिया ॥ अकामगं परिकम्मं, कोउते वारेउ मरिहति ॥७॥ जं किंचि अणगं तात, तंपि सवं समीकतं ॥ हिरणं ववहाराइ, तंपि दाहासु ते वयं ॥ ८॥

अर्थ–गंतुंताय के० तेमाटे अहो तात एकवार घेर जइने पुणोगछे के० वली फरी आवीने यति थाजो णयतेणासमणोसिया के० एटलुं कीधा थकी अश्रमणपणुं न थाय; जो तमे अकामगं के० गृह व्यापारनी इछारहित परिकम्मं के० पोतानुं मन मान्युं अनुष्ठान करशो, तो तमने कोउतेवारेउमरिहति के० कोण वारवाने समर्थ छे? अथवा अकामगं के० वृद्धावस्थायें विषयाभिलाष निवर्त्ते थके परिकम्मं के० संयमानुष्ठानने विषे पराक्रम करजो, केमके तेवखत धर्म करवाने योग्य छे; तेवारे कोतेवारेउमरिहतिके० तमोने कोइ पण वारवाने समर्थ थशे नही ॥७॥ जंकिंचिअणगंतातके० वली अहो तात जेकांइ तमारा उपर रुण एटले लेणुहतुं तंपिसवंके० तेपण अमे सर्व देवुं समीकितं के० समुंकीधुं, एटले मागनाराउनुं सर्व लेणुं चुकावी दीधुं छे, तथा हिरन्नंववहाराइ के० जे व्यवहारने कार्ये अथवा अन्य कोइ भोगोपभोगने अर्थे सुवर्ण रुपादिक खपमां लागशे तंपि के० तेपण सर्व अमे तेवयं के० तमोने दाहासुके० आपीशुं ॥८॥

॥ दीपिका–(गंतुमिति) तात गत्वा गृहं स्वजनवर्गं दृष्ट्वा पुनर्गतासि नच तेनैतावता गृहगमनमात्रेण त्वश्रमणोभविष्यसि । अकामकं गृहव्यापारेछारहितं पराक्रमंतं स्वाभिप्रेतानुष्ठानं कुर्वाणं कोवारयितुमर्हति । एकवारं गृहमागत्य पुनर्यथोचितं कुर्याइति भावः । अथवा अकामकं वृद्धावस्थायां मदनेछारहितं पराक्रमंतं संयमे प्रवर्तमानं त्वां कोवारयितुमर्हति ॥७॥ (जंकिंचिदिति) यत्किंचित्तव रुणमासीत्तदस्माभिर्विभज्य समीकृतं समभागेण व्यवस्थापितं । यच्च हिरण्यं द्रव्यं व्यवहारादावुपयुज्यते तदपि वयं तव दास्यामः ॥८॥

॥ टीका–किंच । (गंतुमित्यादि) । तात पुत्र गत्वा गृहं स्वजनवर्गं दृष्ट्वा पुनरागंतासि नच तेनैतावता गृहगमनमात्रेण त्वश्रमणोभविष्यसि । (अकामगंति) अनिछंतं गृहव्यापारेछारहितं पराक्रमंतं स्वाभिप्रेतानुष्ठानं कुर्वाणं कस्त्वां भवंतं वारयितुं निषेधयितुमर्हति योग्योभवति । यदिवा (अकामगंति) वार्द्धकावस्थायां मदनेछाकामरहितं पराक्रमंतं संयमानुष्ठानं प्रति कस्त्वामवसरप्राप्ते कर्मणि प्रवृत्तं धारयितुमर्हतीति ॥७॥ अन्यच्च (जंकिंचिइत्यादि) । तात पुत्र यत्किमपि भवदीयमृणजातमासीत्तत्सर्वमस्माभिः सम्यग्विभज्य समीकृतं समभागेन व्यवस्थापितं । यदिचोत्कटं सत् समीकृतं सुदेयत्वेन व्यवस्थापितं यच्चहिरण्यं द्रव्यजातं व्यवहारादावुपयुज्यते । आदिशब्दात् येनवा प्रकारेण तवोपयोगं यास्यति तदपि वयं दास्यामोनिर्धनोहमिति माभूत्भयमिति ॥ ८ ॥

इच्चेव णं सुसेहंति, कालुणीयसमुठिया ॥ विबद्धो नायसंगेहिं, ततो गारं पहावइ ॥ ए ॥ जहा रुरकं वणे जायं, मालुया पडिवंधई ॥ एव णं पडिबंधंति, णातठ असमाहिणा ॥ १० ॥

अर्थ—इच्चेवके० एरीते वचनेकरी, णंइति वाक्यालंकारे. ते सर्वे पुत्रादिक सुके० रुडीरीते सेहंति के० शीखवे कालुणीय के० करुणाकारे एवावचने समुठिया के० पोते ते पुत्रादिक दीनपणाने नावे पोंहोंच्या बतां, एम पूर्वोक्त रीते कहे, तेथी ते नायसंगेहिं के० ते ज्ञाति गोत्रीजे पुत्रादिक तेना संगे करी, विबद्धो के० बांध्योबतो ततोके० तेवारे ते अल्प सत्ववंत कायर साधु, तेमना वचने मोहित थयो बतो आगारंपहावइ के० आगार नणी ध्यावे, एटले घरवास मांमीने संयमने बांमे ॥ ए ॥ पढी जहा के० जेम वणेजायं के० वनने विषे उत्पन्न थयुं एवुंजे रुरकं के० वृक्ष ते मालुया के० वेलडीउं तेणेकरी पडिबंधई के० बंधाय, एटले वेलडीयें करी वीटाय. एव के० एम, णंइति वाक्यालंकारे. णातठ के० जाति स्वजनादिक जे बे ते साधुने असमाहिणा के० असमाधियेकरी पडिबंधंति के० बांधीलीये संयमथकी भ्रष्ट करे इत्यर्थः ॥ १० ॥

॥ दीपिका—(इच्चेवेति) णंवाक्यालंकारे । इत्येवं पूर्वोक्तनीत्या स्वजनाः करुणामुत्पादयंतीति कारुणिकाः समुपस्थिताः प्राप्तास्तं साधुं (सुसेहंति) सुष्ठु शिक्षयंति व्युद्ग्राहयंति । सचाऽपरिणतधर्माऽल्पसत्वोगुरुकर्मा जातिसंगैर्विबद्धोमोहितस्ततोऽगारंगृहं (पधावइत्ति) प्रव्रज्यां त्यक्त्वा गृहे यातीत्यर्थः ॥ ए ॥ (जहेति) यथा वने जातं वृक्षं मालुयावल्ली प्रबध्नाति वेष्टयति । एवं ज्ञातयस्तं साधुमसमाधिना प्रतिबध्नंति । तत्कुर्वंति येनास्याऽसमाधिरुत्पद्यते । यडुक्तं । अमित्तो मित्तवेसेण कंठे घेत्तूण रोयइ । मामित्तागओ गईजाइं. दोविगन्नासुडुग्गइं इति ॥ १० ॥

॥टीका—उपसंहारार्थमाह (इच्चेवणमित्यादि)।णमितिवाक्यालंकारे।इत्येव पूर्वोक्तया नीत्या मातापित्रादयः कारुणिकैर्वचोनिः करुणामुत्पादयंतः स्वयंवा दैन्यमुपस्थितास्तं प्रव्रजितं प्रव्रजंतं वा ॥ (सुसेहंतित्ति) सुष्ठु शिक्षयंति व्युद्ग्राहयंति । सचापरिणतधर्माऽल्पसत्वो गुरुकर्मा ज्ञातिसंगैर्विबद्धोमातापितृपुत्रकलत्रादिमोहितस्ततोगारं गृहं प्रति धावति प्रव्रज्यां परित्यज्य गृहपाशमनुबध्नातीति ॥ए॥ किंचान्यत् । (जहारुरकमित्यादि) । यथा वृक्षं वने अटव्यां जातमुत्पन्नं मालुयावल्ली प्रतिबध्नाति वेष्टयत्येव । णमितिवाक्यालंकारे । ज्ञातयः स्वजनास्तं यतिं असमाधिना प्रतिबध्नंति ते तत्कुर्वंति येनास्यासमाधिरुत्पद्यतइति । तथा चोक्तं । अमित्तो मित्तवेसेण, कंठे घेत्तूण रोयइ । मामित्तासोगई जाई, दोविगन्नासु डुग्गई ॥ १० ॥

विबद्धो नातिसंगेहिं, हत्थीवावि नवग्गहे ॥ पिट्ठतो परिसप्पंति, सुयगोव्व अदूरए ॥ ११ ॥ एतेसं गा मणूसाणं, पातालाव अ तारिमा ॥ कीवा जत्थ य किस्संति, नायसंगेहिं मुच्छिया ॥ १२ ॥

अर्थ—पछीते नातिसंगेहिं के० ज्ञाति गोत्रीनी संगते करी विबद्धो के० विविध प्रकारे बंधाणो थको परवश थयो, एटले तेमना अनुकूल वचने करी मनने विषे धृति उपजी तेणे करी बंधाणो हत्थीवाविनवग्गहे के० जेम नवा ग्रहण करेला हस्तिने, जो इक्षुखंडादिकनो आहार कराविये तो नवा बंधने करी बंधाय अथवा मधुर वचने करी उपचारिये तेवारे ते बंधननो अंगीकार करे तेम अहीं पण ए दृष्टांते ते ज्ञाति गोत्रिजे पुत्रादिकछे ते सुयगोव्व के० नवप्रसूत गायनीपेरे जेम तेगाय पोताना बालक थकी अदूरए के० दूर नजाय, तेम ते पिट्ठतोपरिसप्पंति के० पुत्रादिक तेसाधुने व्यामोहमां पाडवाने अर्थे पछवाडे लाग्याज फरता रहे ॥ ११ ॥ हवे संगनो दोष कहेछे, एतेसंगा के० ए पूर्वोक्त मातापितापुत्रादिकनो जे संगम छे ते मणूसाणं के० मनुष्यने पातालाव के० पाताल समुद्रनी पेरे अतारिमा के० तरतां दुस्तर जाणवो जत्थय के० जे संगमने विषे मनुष्य कीवा के० क्लीव असमर्थ छतां किस्संति के० क्लेश पामेछे, ते केवारता क्लेशपामेछे, तोके नायसंगेहिंमुच्छिया के० ज्ञाति स्वजनने संगे गृद्ध मूर्छित छतां संसार मांहे क्लेश पामेछे. ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—(विबद्धइति) । ज्ञातिसंगैर्विबद्धोविशेषेण बद्धः । तेच ज्ञातयस्तस्मिन्नवसरे तस्य सर्वमनुकूलमनुतिष्ठंति । यथा हस्ती नवग्रहे धृत्युत्पादनार्थे इक्षुखंडादिभिरुपचर्यते तथाऽसावप्युपचर्यते । यथाऽचिरप्रसूता गोर्निजवत्सस्यादूरगा समीपवर्तिनीसती पृष्ठतः परिसर्पति एवं स्वजनाअपि तन्मार्गानुगाः स्युः ॥ ११ ॥ (एतेति) एते पूर्वोक्ताः संगाः पित्रादिसंबंधामनुष्याणां पातालाः समुद्राइव अतारिमाडुस्तराः संति क्लीवाअसमर्थाः यत्र येषु संगेषु क्लिश्यंति क्लेशमनुभवंति ज्ञातिसंगैर्मूर्छिताः ॥ १२ ॥

॥ टीका—अपिच । (विबद्धइत्यादि) विविधं बद्धः परवशीकृतः विबद्धोज्ञातिसंगैर्मातापित्रादिसंबंधैस्तेच तस्य तस्मिन्नवसरे सर्वमनुकूलमनुतिष्ठंतोधृतिमुत्पादयंति । हस्तीवापि नवगृहे अचिरग्रहणे धृत्युत्पादनार्थमिक्षुशकलादिभिरुपचर्यते । एवमसावपि सर्वानुकूलैरुपायैरुपचर्यते । दृष्टांतांतरमाह । यथाऽचिरप्रसूता गौर्निजस्तनंधयस्यादूरगा समीपवर्तिनी सती पृष्ठतः परिसर्पन्त्येवं तेपि निजाउत्प्रव्रजितं पुनर्जातमिव मन्यमानाः पृष्ठतोनुसर्पंति तन्मार्गानुयायिनोभवंतीत्यर्थः॥११॥ संगदोषदर्शनायाह । (एतेसंगाइत्यादि)

एते पूर्वोक्ताः सज्यंतइति संगाः मातृपित्रादिसंबंधाः कर्मोपादानहेतवः मनुष्याणां। पाताला इव समुद्राइवाप्रतिष्ठितजूमितलत्वात् ते (अतारिमत्ति) डुस्तराएवमेतेपि संगाअल्पसत्वैर्डुःखेनातिलंघ्यंते । तत्रच येषु संगेषु क्लीबाअसमर्थाः क्लिश्यंति क्लेशमनुजवंति संसारांतर्वर्तिनोजवंतीत्यर्थः । किंजूताः ज्ञातिसंगैः पुत्रादिसंबंधैर्मूर्छितागृध्धाअध्युपपन्नाः संतोन पर्यालोचयंत्यात्मानं संसारांतर्वर्तिनमेव क्लिश्यंति ॥ १२ ॥

तं च जिक्खू परिन्नाय, सवे संगा महासवा॥ जीवियं नाव कंखिज्जा, सोच्चा धम्ममणुत्तरं ॥ १३ ॥ अहिमे संति आवट्टा, कासवेणं पवेइया॥ बुध्धा जज्ञ वसप्पंति, सीयंति अबुहा जहिं ॥१४॥

अर्थ—तंचके० तेमाटे जिक्कूके० जे साधु होय ते ज्ञाती स्वजनादिकना समागमने परिन्नाय के० ज्ञ परिज्ञायें करी संसारनुं कारण जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरे केमके, ए सवेसंगा के० समस्त समागमो जे बे ते महासवा के० महाश्रव महोटा कर्मोना स्थानको जाणवा. ते कारण माटे जीवियंनावकंखिज्जा के० अनुकूल उपसर्गआवे थके पण, असंयमे जीवितव्य वांबे नही, एटले गृहस्थावासनी वांबा साधु करे नही; शुं करीने तो के अणुत्तरं के० अनुत्तर एटले प्रधान एवो धम्मं के० श्रीजिनधर्म तेने सोच्चा के० सांजलीने असंयम वांबे नही ॥ १३ ॥ अहके० अथ एटले हवे अथवा पाठांतरे अहो इति विस्मयें इमेके० ए प्रत्यक्ष समस्त जन प्रसिद्ध संति के० बे एवा आवट्टा के० आवर्त एटले जेम नदीने विषे पाणीना आवर्त होय, तेम अहीं उत्कृष्ट मोहनीयना उदय थकी उत्पन्न थयां जे विषयाजिलाषरूप आवर्त, ते जीवने संसार मांहे बुडवाना स्थानक जाणवा. ए कासवेणं के० काश्यपगोत्री श्रीवर्द्धमान स्वामी तेणे पवेइया के० प्रवेदिता एटले कह्या बे जज्ञ के० जे थकी बुध्धा के० पंमित तत्वना जाण ते अवसप्पंति के० दूर थाय बे; अने अबुहा के० अबुद्ध एटले अज्ञानी लोक ते जहिं के० जे आवर्त्तने विषे सीयंति के० सदाय ज्रममां पडीने बुडेबे. ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–(तंचेति) तंच जिक्कुर्ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् । यतः सर्वे संगामहाश्रवाः कर्मबंधहेतवस्ततोऽसंयमजीवितं नावकांक्षेत नाजिलषेत् श्रुत्वा धर्ममनुत्तरं प्रधानं ॥ १३ ॥ (अहिमेऽति) । अथ इमे आवर्तामोहपाशाः संति काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदिताः कथिताः । यत्र येषु संगेषु सत्सु बुधास्तत्वज्ञाअपसर्पंति तद्दूरगामिनः स्युः । अबुधाअज्ञास्तु तत्र सीदंति आसक्ताः स्युः ॥ १४ ॥

॥टीका–अपिच । (तंचेत्यादि) । तंच ज्ञातिसंगं संसारैकहेतुं जिक्कुर्ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यान

परिज्ञया परिहरेत् । किमिति यतः सर्वेपि केचन संगास्ते महाश्रवामहांति अवद्वाराणि वर्तंते । ततोनुकूलैरुपसर्गैरुपस्थितैरसंयमजीवितं गृहावासपाशं कांक्षेत नाभिलपेत् । प्रतिकूलैश्चोपसर्गैः सद्भिर्जीविताभिलाषी नभवेदसमंजसकारित्वेन च जीवितं नाभिकांक्षेत् । किंकृत्वा श्रुत्वा निशम्यावगम्य । कं धर्मं श्रुतचारित्राख्यं । न त्तरोस्तीत्यनुत्तरं प्रधानं मौनींद्रमित्यर्थः ॥ १३ ॥ अन्यच्च । (अहिमेत्यादि) । अथेत्यधिका रांतरदर्शनार्थः । पाठांतरं वा अहोऽति तच्च विस्मये । इमे इतिप्रत्यक्षासन्नाः सर्वजनविदि तत्वात् संति विद्यंते वक्ष्यमाणाआवर्तयंति प्राणिनं भ्रामयंतीत्यावर्तास्तत्र द्रव्यावर्ता नद्यादेर्भावावर्तास्तूत्कटमोहोदयापादितविषयाभिलाषसंपादकसंपत्प्रार्थनाविशेषाएतेचाव र्ताः काश्यपेन श्रीमन्महावीरवर्द्धमानस्वामिनाऽनुत्पन्नदिव्यज्ञानेनावेदिताः कथिताः प्रतिपादिताः । यत्र येषु सत्सु बुद्धाअवगततत्त्वाआवर्तविपाकवेदिनस्तेन्योवसर्पंते । प्रम त्ततया तद्दूरगामिनोभवंत्यबुद्धास्तु निर्विवेकतया येष्ववसीदंत्यासक्तिं कुर्वंतीति ॥ १४ ॥

> रायाणो रायमच्चाय, माहणा अडुव खत्तिया ॥ निमंतियंति भो
> गेहिं, भिरकूणं साहु जीविणं ॥ १५ ॥ हत्थस्स रहजाणेहिं, वि
> हारगमणेहिया ॥ भुंजभोगे इमे सग्घे, महरिसी पूजयामु तं ॥१६॥

अर्थ—हवे ते आवर्त्त कहेछे. रायाणोराय के० राजाना राजा जे चक्रवर्ति प्रमुख तथा राजाना मच्चाय के० अमात्य मंत्रीश्वरप्रमुख तथा माहणा के० ब्राह्मण ते पुरोहित प्रमुख अथवा खत्तिया के० क्षत्रीते इक्ष्वाकुकुलप्रमुख वंशने विषे उत्पन्न थयला एवा पुरुषो ते भिरकूणंजीविणं के० साधुने आचारे प्रवर्तता एवा साहु के० साधुजनने भोगहिं के० भोगे करी निमंतियंति के० ब्रह्मदत्त जेम चित्र साधुने निमंत्रण कर्युं तेनी पेरे निमं त्रण करे ॥ १५॥ हवे जेरीते भोगे करी निमंत्रे ते देखाडेछे. हत्थस्सके० हस्ती घोडा रह के० रथ यानके० पालखी प्रमुख, एटले करी निमंत्रण करे भोजवे विहारगमणेहिय के० उद्यानादिकने विषे क्रीडादिक हेतुये गमन करवाने अर्थे, तथा अन्य इंद्रियोने अनुकूल एवा विषयसुखने अर्थे निमंत्रण करे अने कहेके इमे के० आ प्रत्यक्ष सग्घे के० श्लाघनीय भोगे के० भोग ते तमे भुंजके० भोगवो; महरिसी के० अहो महर्षि एटले प्रकारे करीने पूजयामुतं के० अमें तमोने पूजीये छैये ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—(रायाणोत्ति) । राजानोराजामात्यामंत्रिणोब्राह्मणाः अथवा क्षत्रियाः शेषभृत्याः । एते सर्वेपि भिक्षुकं साधुजीविनं साध्वाचारेण जीवनशीलं साधुं भोगैर्निमंत्रयं ति भोगांश्चांगीकारयंति । यथा ब्रह्मदत्तचक्रिणा चित्रसाधुर्भोगैर्निमंत्रितइति ॥ १५ ॥ तथा

(हत्थस्सेति)। हस्त्यश्वरथयानैस्तथा विहारगमनैः क्रीडादिगमनैः साधुं निमंत्रयंतीति। य था। त्वं भुंक्ष्व भोगान् इमान् श्लाघ्यान् हे महर्षे वयं त्वां पूजयामः सत्कारयामः ॥१६॥

॥ टीका–तानेवावर्तान् दर्शयितुमाह। (रायाणोइत्यादि)। राजानश्चक्रवर्त्यादयो राजामात्याश्च मंत्रीपुरोहितप्रभृतयस्तथा ब्राह्मणाअथवा क्षत्रियाऽइक्ष्वाकुवंशप्रभृतयः। एते सर्वेपि भोगैः शब्दादिविषयैर्निमंत्रयंति भोगोपभोगं प्रत्यभ्युपगमं कारयंति कं भिक्षु कं (साधुजीविणमिति)। साध्वाचारेण जीवितुं शीलमस्येति साधुजीविनमिति। यथा ब्र ह्मदत्तचक्रवर्तिना नानाविधैर्भोगैश्चित्रसाधुरुपनिमंत्रितइत्येवमन्येपि केनचित्संबंधेन व्य वस्थितायौवनरूपादिगुणोपेतं साधुं विषयोद्देशेनोपनिमंत्रयेयुरिति ॥ १५ ॥ एतदेव द र्शयितुमाह। (हत्थस्सरहेत्यादि)। हस्त्यश्वरथयानैस्तथाविहारगमनैः विहरणं क्रीडनं विहारस्तेन गमनान्युद्यानादौ क्रीडया गमनानीत्यर्थः। चशब्दादन्यैश्चेंद्रियानुकूलैर्विषयैरुप निमंत्रयेरंस्तद्यथा भुंक्ष्व भोगान् शब्दादिविषयानिमानस्माभिर्ढौकितान् प्रत्यक्षासन्नान् श्लाघ्यान् प्रशस्तान् ननिंद्यान् महर्षेसाधो वयं विषयोपकरणढौकनेन त्वां भवंतं पूज यामः सत्कारयामइति ॥ १६ ॥

वत्थगंधमलंकारं, इत्थीउ सयणाणिय ॥ भुंजाइं साइं भोगाइं,
आउसो पूजयामुतं ॥ १७ ॥ जो तुमे नियमो चिन्नो, भिक्खुभावं
मि सुव्वया ॥ अगारमावसंतस्स, सव्वो संविज्जए तहा ॥ १८ ॥

अर्थ–वली वत्थ के० वस्त्र भीना विना चीन अंशुकादिक अने गंध के० गंध ते कपूरादिक तथा अलंकारं के० आभूषण ते केयूरादिक तथा इत्थीउ के० स्त्री ते नवयौ वना अने सयणाणिय के० शयन ते पर्यंकतूलिकादिक भुंजाइंसाइंभोगाइं के० इत्या दिक ए प्रत्यक्ष भोग भोगवो; आउसो के० अहो आयुष्मन् साधु पूजयामुतं के० एट ले प्रकारे करी अमे तमने पूजीये बैये ॥ १७ ॥ जोतुमे नियमोचिन्नो के० अहो साधु जो तमे पूर्वे महाव्रतादिकरूप नियम आचर्योछे, भिक्खुभावंमि के० ते भिक्षुने भावे संयमने अवसरे आचर्योछे, सुव्वया के० हे सुव्रति अगारमावसंतस्स के० ते आगार गृहस्थावासे वसता पण सव्वो संविज्जएतहा के० सघलो तेमजछे सुकृत अथवा दुष्कृ त जे करवां तेनो नाश नथी ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–(वत्थेति). वस्त्राणि गंधाः सुगंधचूर्णानि वस्त्रगंधं अलंकारं केयूराद्याभरणं त था स्त्रियः शयनानि पर्यंकादीनि इमान्भोगांस्त्वं भुंक्ष्व। हेआयुष्मन् त्वां एभिः पूजयामः ॥१७॥ (जोतुमेति) यस्त्वयापूर्वं भिक्षुभावे नियमोमहाव्रतरूपश्चीर्णोऽनुष्ठितः अगारं गृहं आवसतस्तव सर्वोपि विद्यते नहि सुकृतस्याऽनुचीर्णस्य नाशोस्तीत्यर्थः ॥ १८ ॥

तथा गिद्धइत्थीसु के० स्त्रीने विषे गृद्ध एटले अत्यंत आसक्त छता तथा अज्झोववन्ना कामेहिं के० कामभोगने विषे अध्युपपन्न एटले तेनेविषे रागी होय तेने विवेकी पुरुषे चोइज्जंता के० चोयणा करी छति ते चोयणा सहन करी शके नही. एवा मंद चारित्रिया ते संयम छांमीने गयागिहं के० नागा थका, फरी घरवास अंगीकार करे. तिबेमि नो अर्थ पूर्ववत् ॥ २२ ॥ इतिश्री उवसग्गपरिन्नाए बितिउद्देशः समाप्तः

॥ दीपिका-(अचेति) रूक्षेण संयमेनात्मानं यापयितुमशक्नुवंतउपधानेन तर्जि ताः पीडिताः संतस्तत्र संयमे मंदाविषीदंति त्यजन्तीत्यर्थः यथा जरज्जवाजीर्णबलीवर्दाः । त रुणस्यापि तत्रसीदनं संभवति किंपुनर्जीर्णस्येति जीर्ण ग्रहणं । तथा समर्थानां वि वे किनामपि संयमे सीदनं संभाव्यते किंपुनर्मंदानामिति ॥ २१ ॥ (एवमिति) एवं पूर्वो क्तं निमंत्रणं भोगं प्रति प्रार्थनं लब्ध्वा प्राप्य तेषु मूर्छिताआसक्ताः स्त्रीषु गृद्धादत्तोपयोगा रमणीरागमोहितास्तथा कामेषु इछामदनेषु अध्युपपन्नाः कामानुगतचित्ताः संयमं प्रति प्रेरणां सोढुमसमर्थाः प्रव्रज्यां त्यक्त्वा गृहंगता गृहस्थीभूताइति । ब्रवीमीतिपूर्ववत् ॥२२॥ इति उपसर्गपरिज्ञाख्ये तृतीयाध्ययने द्वितीयोद्देशकः समाप्तः

॥ टीका-किंच । (अचयंताइत्यादि) रूक्षेण संयमेनात्मानं यापयितुमशक्नुवंतः स्तथोपधानेनानशनादिना सबाह्याभ्यंतरेण तपसा तर्जिताबाधिताः संतस्तत्र संयमे मं दाविषीदंत्युद्यानशिरस्युच्छंकमस्तके जीर्णोदुर्बलोगौरिव यूनोपि हि तत्रावसीदनं संभा व्यते किंपुनर्जरज्जवस्येति जीर्णग्रहणं । एवमावर्तमंतरेणापि धृतिसंहननोपेतस्य वि वेकिनोप्यवसीदनं संभाव्यते किंपुनरावर्तैरुपसर्गितानां मंदानामिति ॥ २१ ॥ सर्वोप संहारमाह । (एवमित्यादि) । एवं पूर्वोक्तया नीत्या विषयोपभोगोपकरणं दानपूर्वकं नि मंत्रणं विषयोपभोगंप्रति प्रार्थनं लब्ध्वा प्राप्य तेषु विषयोपकरणेषु हस्त्यश्वरथादिषु मूर्छिताअत्यंतासक्तास्तथा स्त्रीषु गृद्धादत्तावधानारमणीरागमोहितास्तथा कामेषु इच्छा मदनरूपेष्वंऽध्युपपन्नाः कामगतचित्ताः संयमेऽवसीदंतोऽपरेणोद्युक्तविहारिणोनोद्यमानाः संयमं प्रति प्रोत्सह्यमानानोदनं सोढुमशक्नुवंतः संतोगुरुकर्माणः प्रव्रज्यां परित्यज्याल्प सत्वा गृहं गतागृहस्थीभूताः ॥ इतिपरिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥

हवे त्रीजा अध्ययननो त्रीजो उद्देशो प्रारंभिये छैयें.

जहा संगामकालंमि, पिठतो भीरु वेहइ ॥ वलयं गहणं णू मं, कोजाणइ पराजयं ॥ १ ॥ मुहुत्ताणं मुहुत्तस्स, मुहुत्तो होइ तारिसो ॥ पराजिया वसप्पासो, इति भीरु उवेहइ ॥ २ ॥

अर्थ—जहासंगामकालंमि के० जेम संग्रामनो काल आवे छते, भीरु के० कोइएक बीकणो पुरुष पिछतोके० पाछो वेहईके० जूए, एटले बीकण मनुष्य संग्रामने काळे प्रथमथीज प्रतिकार कारण दुर्ग प्रछन्न स्थानक नासवाने अर्थे जूए; ते स्थानक देखाडेछे; वलयं के० वलयाकारे उदक रहित एवी गर्ताते दुर्गम होय अथवा जेमां पेसतां. तथा नीकलतां गहणंके० गहन होय, एटले वृक्षे करी व्याप्त होय अने णूमं के० प्रछन्न एवा जे गिरि गुफादिक तेनुं अवलोकन नासवाने अर्थे करे तेनुं कारण मनमां आवीरीते चिंतवे छे. कोजाणइपराजयं के० कोण जाणे एवा संग्रामने विषे कोनो जय पराजय थशे, कार्यसिद्धि दैवायत्तछे, थोडा होय ते घणाने पण जीतीशकेछे ॥ १ ॥ मुहुत्ताणं मुहुत्तस्स के० मुहूर्त्त जोवामां कोइएक मुहूर्त्त मुहुत्तोहोइतारिसो के० अपर अन्य मुहूर्त्त काल विशेष लक्षण तेवुं होय त्यां एवो प्रस्ताव आवेके पराजियाके० ज्यां जीवने जय पणुं थाय अथवा पराजय पणुं पण थाय तेवारे नासीजइने ए स्थानको मने छुपीरेवाने काम आवशे इतिके० एवा स्वरूपे अवसप्पामोके० पराजयने अवसरे कदाचित् संग्राम थकी नासीने पाछा आववुं पडे तेवारे शी गति थाय, तेमाटे भीरु के० बीकण सुभट ते नासवानुं स्थानक उवेहती के० प्रथमथीज मनमा चिंतवी राखे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथ तृतीयोद्देशकः प्रारभ्यते । पूर्वोद्देशकयोरनुकूलप्रतिकूलोपसर्गा उक्तास्तैश्चाध्यात्मविषादः स्यादिति । अत्रोच्यते । (जहेति) यथा संग्रामकाले कश्चिद्भीरुः परानीकयुद्धावसरे पृष्ठतः प्रेक्षते नाशस्थानं वाऽऽलोकते । वलयं यत्रोदकं वलयाकारेण स्थितं उदकरहिता वा गर्ता गहनं धवादिवृक्षावृतं स्थानं णूमं प्रछन्नगिरिगुहादिकमित्यादिस्थानं नाशहेतोरालोकते । यतः कोजानाति पराजयं कस्य जयः पराजयोवा भावीति कोवेत्ति दैवायत्ताः कार्यसिद्धयः ॥ १ ॥ किंच । (मुहुत्तेति) मुहूर्तानामेकस्य वा मुहूर्तस्याऽपरो मुहूर्तः कालविशेषस्तादृशोभवति । यत्र जयः पराजयोवास्यात् । एवं सति पराजितावयमवसर्पामइति भीरुरुपेक्षते शरणमपीति ॥ २ ॥

॥ टीका—उपसर्गपरिज्ञायां उक्तोद्वितीयोद्देशकः सांप्रतं तृतीयः समारभ्यते । अस्यचायमभिसंबंधः । इहानंतरोद्देशकाभ्यामुपसर्गाअनुकूलप्रतिकूलभेदेनाभिहितास्तैश्चाध्यात्मविषीदनं भवतीति तदनेन प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्यादिसूत्रं (जहे त्यादि) दृष्टांतेन हि मंदमतीनांसुखेनैवार्थावगतिर्भवतीत्यतआदावेव दृष्टांतमाह । यथा कश्चिद्भीरुरकृतकरणः संग्रामकाले परानीकयुद्धावसरे समुपस्थितः पृष्ठतः प्रेक्षते आदावेवापत्प्रतीकारहेतुभूतं दुर्गादिकं स्थानमवलोकयति। तदेव दर्शयति । वलयमिति । यत्रोदकं वलयाकारेण व्यवस्थितमुदकरहितावा गर्ता दुःखनिर्गमप्रवेशा तथा गहनं धवादिवृक्षैः

कटिसंस्थानीयं(णूमंति) प्रछन्नं गिरिगुहादिकं किमित्यसावेवमवलोकयति । यत एवं भव्य ते । तत्रैवंभूते तुमुले संग्रामे सुभटसंकुले कोजानाति कस्यात्र पराजयोभविष्यतीति यतो दैवायत्ताः कार्यसिद्धयस्तोकैरपि बहवोजीयंतइति ॥ १ ॥ किंच (मुहुत्ताणमित्यादि) मुहूर्तानामेकस्य वा मुहूर्तस्यापरोमुहूर्तः कालविशेषलक्षणोवसरस्तादृग्भवति यत्रजयः प राजयोवा संभाव्यते तत्रैवं व्यवस्थिते पराजितावयमपसर्पामोनश्यामइत्येतदपि संभाव्य ते अस्मद्विधानामिति भीरुः पृष्ठतआपत्प्रतीकारार्थं शरणमुपेक्षते ॥ २ ॥

एवं तु समणा एगे, अबलं नच्चाण अप्पगं ॥ अणागयं भयं दि
स्स, अविकप्पंति मंसुयं ॥३॥ कोजाणइ विउवातं, इत्थीउ उदगा
उवा ॥ चोइज्जंता पवक्खामो, णणो अत्थि पकप्पियं ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे एपूर्वोक्तदृष्टांत, कायर साधु साथे मेलविएछैए एवंतु के० एरीते समणाए गे के० कोइएक श्रमण प्रव्रजित अल्प सत्वना धणी ते अप्पगं के० पोताने विषे अ बलं के० अबलपणु एटले संयमरूप भार वहेवाने जाव जीवसुधी पोताने विषे अस मर्थ पणु नच्चाण के० जाणीने अणागयंभयं के० अनागत एटले आगमिक कालनो भ य दिस्सके० देखीने, एटले आगल वृद्धावस्थायें तथा ग्लानावस्थायें तथा दुर्भिक्षने वि षे मने शुं त्राण शरण थशे अविकप्पंतिमंसुयंके० एवी कल्पना करीने ठेरावकरे के मने व्या करण,ज्योतिष, वैद्यकादिक त्राण शरण थशे माटे तेवा शास्त्रो भणे ॥३॥ कोजाणइके० कोण जाणे विउवातं के० मुजने केवा कारण थकी संयमनो भ्रंस थशे. इत्थीउ के० स्त्रीथकी थसे उदगाउवाके० किंवा उदक एटले सचित्तपाणीना परिभोग थकीथशे. केमके कर्मनी वि चित्र गतिछे णणोअत्थिपकप्पियंके० प्रकल्पित पूर्वोपार्जित द्रव्य नथी जे ते समय म ने काम आवे; तो तेवखते चोइज्जंताके० कोइयें श्रमने पूछ्या थकां पवक्खामो के० व्याकर्णादिक कहिसुं एरीते चिंतवन करी ज्योतिषादिकने विषे यत्न करे ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—श्लोकद्वयेन दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकमाह । (एवमिति) एवं पूर्वोक्तदृ ष्टांतेन श्रमणाएके अल्पसत्वाआत्मानमबलं संयमभारवहनाक्षमं ज्ञात्वाऽनागतमेव भयं दृष्ट्वा इदंव्याकरणं गणितं ज्योतिष्कं वैद्यकं मंत्रादिकं वा श्रुतमधीतं मम त्राणाय स्यादि ति अविकल्पंते मन्यंते ॥ ३ ॥ (कोजाणइति) कोजानाति व्यापातं संयमाद्भ्रंशं । के न पराजितस्य मम संयमाद्भ्रंशः स्यादिति । किंस्त्रीतः किंवा उदकात् स्नानाद्यर्थमुदकसेवना भिलाषात् इत्येवं ते वराकामन्यंते ननो ऽस्माकं किंचित्प्रकल्पितं पूर्वोपार्जितं द्रव्यम स्ति यत्तस्यां दुःखावस्थायां कार्यं ममेति । अतश्चोद्यमानाः परेण पृछ्यमानावयं हस्ति

नाधनुर्वेदादिकं कुटिलविटलादिकं वा प्रवक्ष्यामः कथयिष्यामइत्येवं हीनसत्वाः संप्रधार्य व्याकरणादिनणितादौ प्रवर्तंते तथापि तेषां मंदनाग्यानामनिमतार्थोनसिध्यति। यतः उपशमफलाद्विद्याबीजात्फलं धनमिछतां नवति विफलोयद्यायासस्तदत्र किमद्भुतं। न नियतफलाः कर्तुर्नावाः फलांतरमीशते जनयति खलु व्रीहेर्बीजं न जातु यवांकुरं ॥४॥

॥ टीका–इति श्लोकद्वयेन दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकमाह। (एवमित्यादि) एवमिति यथा संग्रामं प्रवेष्टुमिछुः पृष्ठतोवलोकयति किमत्र मम पराजग्नस्य वलयादिकं शरणं त्राणाय स्यादिति।एवमेव श्रमणाः प्रव्रजिताएके केचनाऽदृढमतयोऽल्पसत्वाश्चात्मानं अबलं यावज्जीवं संयमनारवहनाऽक्षमं ज्ञात्वा अनागतमेव नयं दृष्ट्वोत्प्रेक्ष्य। तद्यथा। निष्किंचनोहं किंमम वृद्धावस्थायां ग्लानावस्थायां दुर्निक्षे वा त्राणाय स्यादित्येवमाजीविकानयमुत्प्रेक्ष्य विकल्पयंति परिकल्पयंति मन्यंते इदं व्याकरणं गणितं जोतिष्कं वैद्यकं होराशास्त्रं मंत्रादिकं वा श्रुतमधीतं ममाऽवमादौ त्राणाय स्यादिति ॥ ३ ॥ एतच्चैते विकल्पयंतीत्याह। (कोजाणइइत्यादि) अल्पसत्वाः प्राणिनोविचित्राच कर्मणां गतिर्बहूनि प्रमादस्थानानि विद्यंते अतः कोजानाति कः परिछिनत्ति व्यापातं संयमजीवितात् नृश्यंतं केन पराजितस्य मम संयमाद्भ्रंशः स्यादिति। किं स्त्रीतः स्त्रीपरिषहादुतोदकात् स्नानाद्यर्थमुदकासेवनानिलाषादित्येवं तेवराकाः प्रकल्पयंति। ननोऽस्माकं किंचन प्रकल्पितं पूर्वोपार्जितद्रव्यजातमस्ति। यत्तस्यामवस्थायामुपयोगे समेत्य यास्यत्यतश्चोद्यमानाः परेण पृछ्यमानाहस्तिशिक्षा धनुर्वेदादिकं कुटिलविटलादिकं वा प्रवक्ष्यामः कथयिष्यामः प्रयोक्ष्यामइत्येवं ते हीनसत्वाः संप्रधार्य व्याकरणादौ श्रुते प्रयतंतइति, नच तथापि मंदनाग्यानामनिप्रेतार्थावाप्तिर्नवतीति। तथाचोक्तं। उपशमफलाद्विद्याबीजात्फलं धनमिछतां नवति विफलोयद्यायासस्तदत्र किमद्भुतं ॥ ननियतफलाः कर्तुर्नावाः फलांतरमीशते जनयति खलु व्रीहेर्बीजं न जातु यवांकुरं ॥ ४ ॥

इच्चेव पडिलेहंति, वलया पडिलेहिणो ॥ वितिगिछ समावन्ना, पंथाणंच अकोविया ॥ ५ ॥ जेउ संगामकालंमि, नाया सूरपुरं गमा ॥ णो ते पिठमुवेहिंति, किंपरं मरणंसिया ॥ ६ ॥

अर्थ–हवे उपसंहार करतो कहेछे. इच्चेव के० ए जेम पूर्वे कह्या एवा पडिलेहंति के० कायर मुनट. जेम वीक पामता थका वलयापडिलेहिणोके० वलयादिक स्थानकना जोनारा थाय, तेम प्रमादि चारित्रिया मंद नाग्यने लीधे. अल्प सत्वना धणी आजीविकाना नय थकी अनेक कुशास्त्र शीखे; ते केवा छे तोके, वितिगिछसमावन्नाके०

चित्तना अस्थिरपणाने पोहोता थका. मनमां विचार करे के. शुं जाणीयें, अमे जाव जीव सुधी संयम पाली शकशुं; किंवा नही पाली शकशुं; कोनीपेरे तो के पंथाणंच के० जेम मार्गने विषे अकोवियाके० अनिपुण एवापुरुषो मार्ग देखी संदेहमां पडे. के शुं जाणीयें एमार्ग अमुक स्थानके जशे किंवा नही जाय; ॥५॥ हवे माहापुरुषनी स्थिति कहेले. जे यके० जे महासत्ववंत मोहोटा पुरुष नाता के० ज्ञात लोकोमांहे प्रसिद्ध अने सूरपुंगमा के० शूरवीर पुरुषोमां अग्रेसर, एटले आगेवान एरीते प्रसिद्ध थयेलाले ते संगामकालंमि के० संग्रामकालने अवसरे, णोतेपिठमुवेहिंति के० पालुं न जुवे, एटले नासी जवानुं स्थानक जूए नही; किंपरंमरणंसियाके० ते एम जाणे जे आपणने मरण तो साश्वतले एटले क्यारेपण मरवुं तो आवश्यले नासी जइशुं तो, अमारो यश जतो रेशे; ते कारण माटे आ संग्रामनेविषे अमे मरण पामीशुं पण अमारो यश अखंमित राखीशुं ॥६॥

॥ दीपिका—(इच्चेवेति) इत्येवं पूर्वं प्रकारेण यथा नीरवः संग्रामे प्राप्तावलयादि स्थानसमुपेक्षिणः स्युस्तथा प्रव्रजिताअपिआजीविकानया व्याकरणगणितादिकं जीवनोपायत्वेन प्रत्युपेक्षंते परिकल्पयंति । किंनूताः । विचिकित्सा चित्तविप्लुतिः किमेनं संयमं वयं समर्थावत नेत्येवंरूपा । यडुक्तं । लुरकमणुएहमत्तियथं, कालाइकं तसोयणं विरसं ॥ नूमीसयणं लोउ. असिणाणं बंनचेरंच ॥ १ ॥ तां समापन्नाः प्राप्ताः। यथा पंथानं प्रत्यकोविदाअनिपुणाः किमयं पंथा इष्टं देशं यास्यति नवेति कृतचित्तसंदेहाः स्युः । तथा ते संयमनारवहने संदेहं प्राप्ताः । यथानिमित्तादिकं जीविकार्थं परिकल्पयंति ॥ ५ ॥ (जेउसंगेति) ये पुनर्महासत्वाः। तुर्विशेषणे। संग्रामकाले ज्ञाताः प्रसिद्धाः शूराणां पुरंगमाः पुरोगामिनः सुनटाग्रवर्तिनस्ते पृष्ठं नप्रेक्षंते नाशस्थानं नविलोकयंति किं त्वेवं मन्यंते यदत्रास्माकं किमपरं मरणमेव स्यात् नवतु मरणं यशोमायातु। यडुक्तं । वि शरारुनिरविनश्वरमतिचपलैः स्यास्नुवांठतां विशदं ॥ प्राणैर्यदिशूराणां, नवति यशः किं न पर्याप्तमिति ॥ ६ ॥

॥ टीका—उपसंहारार्थमाह । (इच्चेवमित्यादि) । इत्येवमिति पूर्वप्रक्रांतपरामर्शार्थे. यथा नीरवः संग्रामे प्रविविक्तवोवलयादिकं प्रत्युपेक्षिणोनवंतीत्येवं तेपि प्रव्रजिता मंदनाग्यतया अल्पसत्वाआजीविकानया व्याकरणादिकं जीवनोपायत्वेन प्रत्युपेक्षंते परिकल्पयंति । किंनताः विचिकित्सा चित्तविप्लुतिः किमेनं संयमनारमुत्क्षिप्तमंतं नेतुं वयं समर्थाः उततनेतीत्येवं नूताः। तथाचोक्तं । लुरकमणुएहमणियथं, कालाइकं नत्तोयणं विरसं । नूमीसयणंलोउ असिणाणं बंनचेरंच ॥ १ ॥ तां समापन्नाः समागताः । यथा पंथानं प्रत्यकोविदाअनिपुणाः किमयं पंथा विवक्षितं नूनागं याम्यत्युत नेतीत्येवं कृतचित्तविप्लुत

योनवंति तथा तेपि संयमन्नारवहनंप्रति विचिकित्सां समापन्नानिमित्तगणितादिकं जीविकार्थं प्रत्युपेक्षंतइति ॥ ५ ॥ सांप्रतं महापुरुषचेष्टिते दृष्टांतमाह । (जेउसंगामेत्या दि) । ये पुनर्महासत्वाः । तु शब्दोविशेषणार्थः । संग्रामकाले परानीकयुद्धावसरे ज्ञाता लोकविदिताः । कथं शूरपुरंगमाः शूराणामग्रगामिनोयुद्धावसरे सैन्याग्रस्कंधवर्तिनइति एवंनूताः संग्रामं प्रविशंतोन पृष्ठमुत्प्रेक्षंते नडुर्गादिकमापन्नाणाय पर्यालोचयंति । तेचा नंगकृतवुद्धयोपित्वेवं मन्यंते । किमऽपरमत्रास्माकं नविष्यति यदि परं मरणं स्यातच्च शाश्व तं यशःप्रवाहमिच्छतामस्माकं स्तोकं वर्ततइति । तथाचोक्तं । विशरारुनिरऽविनश्वर, मति चपलैः स्थास्तु वांठतां विशदं ॥ प्राणैर्यदिशूराणां, नवति यशः किं न पर्याप्तं ॥१॥६॥

एवं समुठिए निरकू, वोसिज्जा गारबंधणं ॥ आरंनं तिरियंकट्टु आत्तत्ताए परिव्वए ॥ ७ ॥ तमेगे परिन्नासंति, निरकयं साहुजी विणं ॥ जे एवं परिन्नासंति, अंतए ते समाहिए ॥ ८ ॥

अर्थ–एवं के० एरीते निरकू के० साधु संयमने विषे समुठिए के० सावधान थयो ठतो, तथा अगारबंधणं के० गृहस्थावासनुं बंधन तेने वोसिज्जा के० ठांमीने, तथा आरंनं के० आरंन जे सावद्यानुष्टान तेने तिरियं कट्टुके० तिर्छो करीने एटले, आरंनने दूर क रीने आत्तत्ताए परिव्वएके० एक मोक्षनेविषे सावधान थाय, संयमानुष्ठानने विषे प्रवर्त्ते॥७॥ अध्यात्मविषीदनार्थाधिकारोगतःके० ए आत्मा थकीजे विषाद ते कह्यो. हवे बीजो अ धिकार परवादिना वचन आश्री कहेले. एगे के० एक कोइ परने उपकार रहि त एवा दर्शनने ग्रहण करनारा गोसालीक मतना अनुसारी तथा दिगंबरादिक एवा अन्य तीर्थिकना साधुउ तं के० ते पूर्वोक्त साहुजीवणं के० साधु एटले रुडी आ जीवणं एटले आजीविकाये प्रवर्त्तनार अर्थात् परने उपकार करनार. रुडा आचारे प्रव र्त्तमान एवा निरकूयं के० साधुने परिन्नासंति के० एवीरीते कहे. इतिकोर्थः तेनी निंदा करे. तो जे के० जे धर्मना अजाण एवं के० एम पूर्वे कह्युं, तेम परिन्नासंति के० साधु ना आचारनी निंदा करे ते के० तेवा अन्यतीर्थिक साधुउ समाहिए के० समाधि एट ले सम्यक् अनुष्ठान थकी अथवा मोक्षथकी अंतए के० वेगला जाणवा. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–दार्ष्टांतिकमाह । (एवमिति) एवं निक्षुरपि महासत्वः सम्यक्संयमे उत्थि तः कषायादिवैरिवर्गं जेतुं प्रवृत्तः । यतः । कोहंमाणं च मायं च. लोहं पंचिंदिआणिअ । डु ज्जयं चेवमप्पाणं,सव्वमप्पेजिएजिअ।१।किंकृत्वा समुत्थितः अगारबंधनं गृहपाशं व्युत्सृज्य त्यक्त्वा आरंनं तिर्यक्कृत्वा निराकृत्य आत्मत्वाय शेषकर्मरहितत्वाय परिव्रजेत् संयमे प्रव

तैंत इति ॥ ७ ॥ अध्यात्मविषीदनाधिकारोगतः अथ परवादिवचनाधिकारमाह । (मेगइति) एके परवादिनः साधुं निक्षुं साधु शोजनं जीवितुं शीलमस्य सतथा तं एवं नाषंते । ये ते पुष्टधर्माणोगोशालकमतानुगताः आजीविकादिगंबरावा ये ते एवं णं परिनाषंते साधुं निंदंति ते अंतके पर्यंते समाधेर्मोक्षाद्दाह्याइति शेषः ॥ ८ ॥

॥ टीका—तदेवं सुजटदृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकमाह । (एवमित्यादि) यथा सुनटाक्षा तरोनामतः कुलतः शौर्यतः शिक्षातश्च तथा सन्निबद्धपरिकराः करगृहीतहेतयः प्रतिन टसमितिन्नेदिनोन पृष्ठतोवलोकयंति । एवं निक्षुरपि साधुरपि महासत्वः परलोकप्रति स्पर्धिनमिंद्रियकषायादिकमरिवर्गं जेतुं सम्यक् संयमोत्थानेनोत्थितः समुत्थितः । तथा चोक्तं । कोहं माणं च मायंच लोहं पंचेंदियाणिय । डुज्जयं चेवमप्पाणं सव्वमप्पेजिएजि यं ॥ किं कृत्वा समुत्थितइति दर्शयति । व्युत्सृज्य त्यक्त्वा अगारबंधनं गृहपाशं तथा आरं नं सावद्यानुष्ठानरूपं तिर्यक्कृत्वाऽपहस्तयित्वात्मनोनावआत्मत्वमशेषकर्मकलंकरहित तं तस्मै आत्मत्वाय । यदिवा आत्मा मोक्षः संयमोवा तद्भावस्तस्मै तदर्थं परिसमंताद्व्रजेत् संयमानुष्ठानक्रियायां दत्तावधानोनवेदित्यर्थः ॥ ७ ॥ निर्युक्तौ यदनिहितमध्यात्मविषी दनं तडुक्तमिदानीं परवादिवचनं द्वितीयमर्थाधिकारमधिकृत्याह । (तमेगेइत्यादि) तमिति । साधुमेके ये परस्परोपकाररहितं दर्शनमापन्नाअयःशलाकाकल्पास्ते च गोशालक मतानुसारिणआजीविकादिगंबरावा तएवं वक्ष्यमाणं परिसमंताद्भाषंते । तं निक्षुकं सा ध्वाचारं साधु शोजनं परोपकारपूर्वकं जीवितुं शीलमस्य ससाधुजीविनमिति । ये ते ऽपुष्ट धर्माणएवं वक्ष्यमाणं परिनाषंते साध्वाचारनिंदां विदधति तएवं नूताअंतके पर्यंते दूरें समाधे मोक्षाख्यात्सम्यक् ध्यानात्सदनुष्ठानात् वा वर्त्तंतइति ॥ ८ ॥

संबद्ध सम कप्पाउ, अन्न मन्नेसु मुछिया ॥ पिंमवायंगिलाण
स्स, जं सारेह दलाहय ॥ ए ॥ एवं तुप्रे सरागठा, अन्न मन्न
मणुवसा ॥ नछसप्पह सप्नावा, संसारस्स अपारगा ॥ १० ॥

अर्थ—हवे ते गोसालकादिक मतानुसारी जे कहे ते देखाडेछे. संबद्धसमकप्पाउ के० निश्चयथकी ग्रहस्थ समान तमारो कल्प एटले आचारछे; अर्थात् तमे मोहे करी वंधाणाछो अन्नमन्नेसु के० जेम ग्रहस्थ अन्योअन्य परस्पर माहोमांहे मातापितादिकनी सार संन्नाल करे तेम तमे पण माहोमांहे आचार्यादिक उपर मुछिया के० मुर्छित थयेला छो ते केवीरीते मुर्छितछो ते देखाडे छे पिंमवायं गिलाणस्स के० पिंम एटले निक्षा ते गिलाण एटले रोगीने अर्थे जंके० जेमाटे सारेह के० गवेषो छो दलाहय के० निक्षा आणी आपोछो. च शब्द थकी गुर्वादिकनो वैयावच्च करोछो तेमाटे तमे गृहस्थ

सरखा गो ॥ ए ॥ एवं के० ए कारणमाटे तुष्मके० तुमे सरागबा के० गृहस्थनी पेरे सराग पणे वर्त्तोगो अन्नमन्न के० माहोमांहे मणुवसा के० वशगामी साधु कोइना आधीन न थाय ते कारणमाटे तमे सप्पह के० सद्पंथ एटले रुडोमार्ग तेना सन्नावा के० सन्नावने नठ के० नष्ट कीधो एटले सन्मार्गने नृष्ट कीधो तेथी तमे संसाररसअ पारगा के० संसारना पारंगामी नही एवा दोष अन्य तीर्थिउ बोले ॥ १० ॥

॥ दीपिका—यत्परिन्नाषंते तदाह । (संबद्धेति) संबद्धागृहस्थास्तैस्तुल्यः समः कल्पो व्यवहारोयेषां ते तथा गृहस्थानुष्ठानतुल्याः।यथा गृहस्थाः परस्परमुपकारे प्रवर्तते । माता पुत्रे पुत्रोमातरि एवं यूयमप्यन्योन्यमुपकारे मूर्छिताः । कथमित्याह पिंडपातनैद्यं ग्लानस्य रोगिणः साधोर्यस्मात् (सारेहत्ति) अन्वेषयंते तथा (दलाहत्ति) ग्लानायददध्वं । चशब्दादाचार्यादिवैयावृत्त्यै प्रवर्तध्वं ततोगृहस्थतुल्याइत्यर्थः ॥ए॥ (एवमिति) एवं यूयं सरागः स्वनावस्तत्रस्थिताअन्योन्यं वशमुपागताः परस्परायत्ताः । यतयस्तु निःसंगाः कस्यचिदायत्तानस्युः । ततोगृहस्थानामयं न्यायइति । तथा नष्टसत्पथसन्नावाः गतसन्मार्गपरमार्थाएवंनूतायूयं संसारस्य । अपारगाः न पारगामिनः ॥ १० ॥

॥ टीका—यत्ते प्रन्नाषंते तद्दर्शयितुमाह । (संबद्धेत्यादि) समेकीनावेन परस्परोपकार्योपकारितयाच बद्धाः पुत्रकलत्रादिस्नेहपाशैः संबद्धागृहस्थास्तैः समस्तुल्यः कल्पोव्यवहारोनुष्ठानं येषांते संबद्धसमकल्पागृहस्थानुष्ठानतुल्यानुष्ठानाइत्यर्थः । तथाहि । यथा गृहस्थानामयं न्यायोयडुतपरस्मै परस्परोपकारेण माता पुत्रे पुत्रोपि मात्रादावित्येवंमूर्छिताअध्युपपन्नाएवं नवंतोप्यन्योन्यं परस्परतः शिष्याचार्याद्युपकारक्रियाकल्पनया मूर्छिताः । तथाहि । गृहस्थानामयं न्यायो यडुतपरस्मै दानादिनोपकारइति नतु यतीनां । कथमन्योन्यं मूर्छिताइति दर्शयति । पिंडपातं नैद्यं ग्लानस्याऽपरस्य रोगिणः साधोर्यस्मात् (सारेहत्ति) अन्वेषयंते । तथा (दलाहयत्ति) ग्लानयोग्यमाहारमन्विष्य तडुपकारार्थं ददध्वं । चशब्दादाचार्यादेः वैयावृत्यकरणाद्युपकारेण वर्तध्वं ततोगृहस्थसमकल्पाइति ॥ ए ॥ सांप्रतमुपसंहारव्याजेन दोषदर्शनायाह । (एवमित्यादि) एवं परस्परोपकारादिना यूयं गृहस्थाइव सरागस्थाः सहरागेण वर्ततइति सरागः स्वनावस्तस्मिन् तिष्ठंतीति ते तथा अन्योन्यं परस्परतोवशमुपागताः परस्परायत्ताः । यतयोहि निःसंगतया नकस्यचिदायत्ता नवंति । यतोगृहस्थानामयंन्याय इति।तथा नष्टोऽपगतः सत्पथः सन्नावः सन्मार्गः परमार्थोयेन्यस्ते तथा । एवंनूताश्च यूयं संसारस्य च डुर्गतिन्रमणलक्षणस्याऽपारगा अतीरगामिनइति ॥ १० ॥

खरुं ठेरावतुं एवी जेनी प्रतिज्ञा नथी ते अप्रतिज्ञ रागद्वेष रहित तथा जाणया के० जाणते एवे संयत तत्वे सहित तेने हेयोपादेय परमार्थे जाण्याविना तत्तेण अणुशि छाते के० परमार्थे करीने ते असाधु छे एम तेना मार्गने दोष देखाडवानुं तमने कोणे शिखव्युं णएसणीयएमग्गेके० माटे अहो तुमारो उपमार्ग ते निश्चय मलतो नथी जे कारणे गिलानने अशनादिक आपे ते गृहस्थ समान जाणवा एवो तमे कहोछो परंतु असमिरकावती के० अणआलोच्याना बोलनारनुं कती के० जे कर्तव्य अनुष्ठान ते पण अणआलोच्योज देखायछे. ॥ १४ ॥

॥दीपिका—(लित्तेति) तीव्रतापेन साधुनिंदारूपेण लिप्ताव्याप्ताः(उञ्झयेति)निर्विवेकाउद्देश कादिनोजित्वात् असमाहिताः शुनाध्यवसायरहिताः। दृष्टांतमाह। यथाऽरुषोव्रणस्याति कंमूयितं नश्रेयः किंतु अपराध्यति दोषंकरोति एवं यूयमपि निर्विवेकाःवयं किल निष्किंच नाइति कृत्वा कांस्य पात्रादिकं परिहृत्यैतदनावादवश्यमशुद्धाहारपरिनोगकारिणः निष्किं चनत्वात्पात्रादिपरिहारोनश्रेयो व्रणस्यातिकंमूयितमिव॥१३॥ (तत्तेणेति) ते गोशालम तानुसारिणआजीविकादयोदिगंबरावा तत्वेनाऽनुशासिताः शिक्षांग्राहिताः केन अप्रतिज्ञन इदंमया समर्थनीयमिति प्रतिज्ञा सा नास्ति यस्याऽसावप्रतिज्ञोरागद्वेपरहितः साधुस्तेन जा नताज्ञानवता। कथमनुशिष्टाइत्याह। (णएसेति)। योनवद्भिरंगीकृतः सनियतोन शुक्ि क्षमोमार्गः। याच साधुनिंदा वाक् सा समीहयोक्ता आचार्यकथिता। तथाकृतिः क्रिया प्यविचाररम्यैव॥ १४ ॥

॥ टीका—किंचान्यत्(लित्ताइत्यादि) यूयं षट्जीवनिकायविराधनयोद्दिष्टनोजित्वेना निगृहीतमिथ्यादृष्टितया च साधुपरिनाषणेन च तीव्रोनितापः कर्मबंधरूपस्तेनोपलिप्ताः संवेष्टितास्तथा (उञ्झयत्ति)सद्विवेकशून्यानिक्षापात्रादित्यागात्परगृहनोजितयोद्देशकादि नोजित्वात्। तथा असमाहिताः शुनाध्यवसायरहिताः सत्साधुप्रद्वेषित्वात्। सांप्रतं दृ ष्टांतद्वारेण पुनरपि तद्दोषानिधित्सयाह। यथाऽरुषोव्रणस्यातिकंमूयितं नखैर्विलेखनं नश्रे योनशोननं नवति। अपित्वपराध्यति तत्कंमूयनं व्रणस्य दोषमावहति। एवं नवंतोपि सद्विवेकरहिताः वयं किल निष्किंचनाइत्येवं निष्परिग्रहतया षट्जीवनिकायरक्षणनूतं निक्षापात्रादिकमपि संयमोपकरणं परिहृतवंतः। तदनावाच्चावश्यं नावी अशुद्धाहारपरि नोगइत्येवं द्रव्यक्षेत्रकालनावानपेक्षणेन नातिकंडूयितं श्रेयोनवतीति नावः॥१३॥ अपि च। (तत्तेणेत्यादि) तत्वेन परमार्थेन मौनींद्राऽनिप्रायेण यथावस्थितार्थप्ररूपणया ते गो शालकमतानुसारिणआजीविकादयः कोटिकाअनुशासितास्तदन्युपगमदोषदर्शनद्वारेण शिक्षांग्राहिताः। केनाप्रतिज्ञेन। नास्य मयेदमसदपि समर्थनीयमित्येवं प्रतिज्ञा विद्यते

इत्यप्रतिज्ञोरागद्वेषरहितः साधुस्तेन जानता हेयोपादेयपदार्थपरिच्छेदकेनेत्यर्थः । कथमनुशासिताइत्याह । योयं नवद्भिरभ्युपगतोमार्गो यथा यतीनां निष्किंचनतयोपकरणाभावात् परस्परतउपकार्योपकारकाभावइत्येषनियतोनिश्चितोन युक्तिसंगतोऽतो येयं वाग् यथा ये पिंडपातं ग्लानस्यानीय ददति ते गृहस्थकल्पाइत्येषा असमीक्षयाभिहिता अपर्यालोच्योक्ता तथा कृतं करणमपि नवदीयमसमीक्षितमेव यथा वा पर्यालोचितकरणता न भवति भवदनुष्ठानस्य तथा नातिकंडूयितं श्रेयइत्यनेन प्राग्लेशतः प्रतिपादितं पुनरपि सदृष्टांतं तदेव प्रतिपादयंति ॥ १४ ॥

एरिसा जावई एसा, अग्गवेणु व्वकरिसिता ॥ गिहिणो अभिहडं सेयं, भुंजीउ णउ भिरकुणो ॥१५॥ धम्मपन्नवणा जासा, सारंभा ण विसोहिआ ॥ णउ एयाहिं दिठीहिं, पुव्वमासिं पग्गप्पिअं॥१६॥

अर्थ–एरिसाजावईएसा के० भो एटले आमंत्रणे करीने तमारी एवी वाणीजे ग्लानने आहारलावी नआपवो ते अग्गवेणुव्व करिसिता के० वंशना अग्नी सरखी अत्यंत सुक्ष्म एटले कोइ पण युक्तिने खमे नही एवी तमारी वाणी केही ते कहेछे गिहिणो अभिहडंसेयं के० तमे कह्युं जे गृहस्थनो आणेलो आहार श्रेयछे भुंजीउ के० तें भोगववो परंतु णउभिरकुणो के०यतिनो आणेलो आहार यतिने लेवो अयोग्यछे ए तमारुं वचन रूडुं नथी अमे एम कहियेंछैये के गृहस्थनो आण्यो आहार सदोषछे अने यतिनो आण्यो आहार निर्दोषछे ॥ १५ ॥ वली साधु तेने कहेछे के धम्मपन्नवणाजासा के० जे तमारी धर्म प्रज्ञाप्ना एटले धर्मदेशना जे यतिने दाननो देवो नथी सारंभाण विसोहिया के० केमके दान जे छेते ते सारंभ जे गृहस्थ तेनी विशुद्धिनो करनार जाणवो कारण के यतितो पोताना अनुष्ठाने शुद्धि पामेछे यतिने दान देवानो अधिकार नथी एयाहिं दिठीहिं के० एम तमारी दृष्टीमां जे आवेछे परंतु ए प्रकारे पुव्वमासिं के० जे पूर्वे तीर्थंकर यया तेणे णउपग्गप्पिअं के० नथी प्रकल्प्यो एटले जेरीते तमे धर्म कहोछो तेरीतनो धर्म सर्वज्ञे कह्यो नथी ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–(एरिसेति) इदृशी एषा वाक् साधुना ग्लानस्यानीय न देयमिति एषा वाक् अग्रवेणुवत् वंशवत् निकरिषिता दुर्बला यथा वंशाग्रं दुर्बलं स्यात्तथा दुर्बलेत्यर्थः । तामेव वाचं दर्शयति । गृहिणायदभ्याहृतं तद्यथा भोक्तुंश्रेयोनतु भिक्षूणां । गृहस्थाभ्याहृतं जीवोपमर्दहेतुभूतं साधूनामकल्पमिति ॥ १५॥ (धम्मपन्नवणेति) या धर्मस्य प्रज्ञापना देशना यतीनां दानादिना उपकर्तव्यमित्येवंभूता सारंभाणां गृहस्थानां विशोधिका विशुद्धिकारिणी । यतयः स्वस्वानुष्ठानेनैव शुध्यति नतु नेषां दानाधिकारः । एतहूषयति । नतुएताभि

दृष्टीनिर्युष्मन्मतानुगतानिः पूर्वमादौ सर्वज्ञैः प्रकल्पितं प्ररूपितमासीत् न हि सर्वज्ञा धमसारं ब्रुवते । यद्गृहस्थैर्ग्लानवैयावृत्त्यं कार्यं नतूपयुक्तेन संयतेनेति । रोजवद्भिरप्यनुमतोगृहस्थप्रेरणादनुमोदनाच्च ॥ १६ ॥

॥ टीका—यथा प्रतिज्ञातमाह । (एरिसेत्यादि) येयमीदृक्षा वाक् यतिना ग्लानस्यानी य नदेयमित्येपा अग्रे वेणुवंशवत्कर्षिता तन्वी युक्त्यक्षमत्वात् डुर्बलेत्यर्थः । तामेव वाचं दर्शयति । गृहिणां गृहस्थानां यदन्याहृतं तद्यतेर्नोक्तुं श्रेयः श्रेयस्करं नतु निक्षूणां संबंधीति । अग्रे तनुत्वं चास्या वाचएवं इष्टव्यं । यथा गृहस्थान्याहृतं जीवोपमर्देन जाति यतीनांतूज्ञमादि दोपरहितमिति ॥ १५ ॥ किंच । (धम्मपस्रवणेत्यादि) धर्मस्य प्रज्ञापना देशना यथा यतीनां दानादिनोपकर्तव्यमित्येवंनूता या सा सारंनाणां गृहस्थानां विशोधिकायतयस्त्वनुष्ठानेनैव विशुध्यंति । नतु तेषां दानाधिकारोस्तीत्येतत् दूषयितुं प्रक्रमते । नतु नैवैतानिर्यथागृहस्थैनैव पिंमदानादिना यतेर्ग्लानाद्यवस्थायामुपकर्तव्यं । नतु यतिनिरेव परस्परमित्येवंनूतानिर्युष्मदीयानिर्दृष्टिनिर्धर्मप्रज्ञापनादिनिः पूर्वमादौ सर्वज्ञैः प्रकल्पितं प्ररूपितं प्रख्यापितमासीदिति । यतो नहि सर्वज्ञाएवंनूतं परिफल्गुप्रायमर्थं प्ररूपयंति यथा असंयतैरेपणाद्यनुपयुक्तैर्ग्लानादेर्वैयावृत्त्यं विधेयं नतूपयुक्तेन संयतेनेति । अपिच जवद्भिरपि ग्लानोपकारोऽन्युपगतएव । गृहदनुमोदनाच्च ततोजवंतस्तत्कारिणस्तत्प्रद्वेषिणश्चेत्यापन्नमिति ॥ १६ ॥

सव्वाहिं अणुजुत्तीहिं, अचयंताजवित्तए ॥ ततो वायं णिराकिच्चा, ते नुज्जोवि पगप्निए ॥ १७ ॥ रागदोसाजिन्नूयणा, मिठत्तेण अन्निहुता ॥ आउस्स सरणं जंति, टंकणाइव पव्वयं ॥ १८ ॥

अर्थ—सव्वाहिं के० ते गोसालादिक मतानुसारी अन्य समस्त अणुजुत्तीहिं के० अनुयुक्ति एटले हेतु दृष्टांते करी अचयंताजवित्तए के० पोताने पक्षे पोतानो पक्ष स्थापन करवाने असमर्थ बता ततो के० ते माटे वायंणिराकिच्चाके० वाद मूकीने तेजुज्जो के० ते फरी फरी विपगप्निए के० विशेपे धृष्टपणु करे एटले एम कहेके अमारे जेम परंपरागतछे तेज श्रेष्ठछे अन्यथी अमारे कांइ काम नथी इत्यादिक कहीने धृष्ट पणु अंगीकार करे पण युक्ति पूर्वक जैनमतानुसारीने उत्तर आपी शके नही ॥१७॥ ते रागदोस के० राग अने द्वेपे अन्निनूयण्णाके० पराजव्या थका सारी युक्तिये करी प्रत्युत्तर आपवाने असमर्थ एवा मिठत्तेण के० मिथ्यादृष्टियें करीने अनिहुता के० व्यासठता आउस्ससरणंजंति के० ते अनार्य अनेक आक्रोस एटले असत्य वचने दंम मुष्ट्यादिक दण

वानो जे व्यापार तेनुं शरण ग्रहण करे टंकणाइव पव्वयं के० जेम टंकण एटले म्लेच्छादिक लोको जेहे ते शस्त्रादिके करी युद्ध करवाने असमर्थ हता पर्वतनो सरण ग्रहण करे तेम पूर्वोक्त कुतीर्थिकोपण युक्तिपूर्वक उत्तर देवाने असमर्थ हता क्रोधनो सरण अंगीकार करे. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–(सव्वेहिंति) तेगोशालमतीयादिगंबरावा सर्वानिरनुगतयुक्तिनिः स्वपक्षं यापयितुमशक्नुवंतस्थापयितुस्ततोवादं निराकृत्य ते तीर्थिका नूयोपि प्रगल्निनतां गताः वादपरित्यागेपि स्वधर्मस्थापनं नामुंचन्निति ॥ १७ ॥ (रागेति) रागद्वेषाभिनूतात्मानो मिथ्यात्वेनाऽनिडुताव्याप्तावादं कर्तुमसमर्थाआक्रोशेन शरणं यांति असन्यवचनानि दंमादिहननव्यापारंवा स्वीकुर्वंतीत्यर्थः । यथा टंकणाम्लेच्छविशेषाः परैरनिडुताः पर्वतं शरणंयांति ॥ १८ ॥

॥ टीका–अपिच (सव्वाहीत्यादि) ते गोशालकमतानुसारिणोदिगंबरावा सर्वानिरर्थानुगतानिर्युक्तिनिः सर्वैरेव हेतु दृष्टांतैः प्रमाणनूतैरशक्नुवंतः स्वपक्षे आत्मानं यापयितुं संस्थापयितुं ततस्तस्माद्युक्तिनिः प्रतिपादयितुं सामर्थ्याभावाद्वादं निराकृत्य सम्यग्हेतुदृष्टांतैर्योवादोजल्पस्तं परित्यज्य ते तीर्थिकानूयः पुनरपि वादपरित्यागे सत्यपि प्रगल्निता धृष्टतां गताइदमूचुः । तद्यथा । पुराणं मानवोधर्मः संगोवेदश्चिकित्सितं । आज्ञासिद्धानिचत्वारि न हंतव्यानि हेतुनिः ॥ १ ॥ अन्यच्च किमन्यया बहिरंगया युक्त्या ऽनुमानादिकया ऽत्र धर्मपरीक्षणे विधेये कर्तव्यमस्तियातः प्रत्यक्षएव बहुजनमसंमतत्वेन राजाद्याश्रयणाच्चायमेवास्मदनिप्रेतोधर्मः श्रेयान्नापरइत्येवं विवदंते ते षामिदमुत्तरं । नह्यत्र ज्ञानादिसाररहितेन बहुनापि प्रयोजनमस्तीति । युक्तं च । एरंमकठरासी जहायगोसीस चंदनपलस्स । मोल्लेन होज्ज सरिसो किंतियमेत्तो गणिज्जंतो ॥१॥ तहविगणणातिरेगो जहारासी सोनचंदनसरिछो ॥ तहनिविणाणमहो जणो विमोत्ते विसंवयति ॥२॥ एक्कोसचस्कुगोणविमूढापमाणं जेगइणचाणंति ॥ संसारगमणगुविलं णिउणस्सयबंधमोस्कस्स ॥ ३ ॥ इत्यादि ॥ १७ ॥ अपिच (रायद्दोस्साइत्यादि) रागश्च प्रीतिलक्षणोद्वेषश्च तद्विपरीतलक्षणस्ताभ्यामभिनूतआत्मायेषां परतीर्थिकानां ते । तथा मिथ्यात्वेन विपर्यस्तावबोधेनातत्वाऽध्यवसायरूपेणानिद्रुताव्याप्ताः सद्युक्तिनिर्वादं कर्तुमसमर्थाः क्रोधानुगाआक्रोशानसन्यवचनरूपांस्तथा दंममुष्ट्यादिनिश्च हननव्यापारं चांत्याऽश्रयंते । अस्मिन्नेवार्थे प्रतिपाद्ये दृष्टांतमाह । यथा टंकणाम्लेच्छविशेषाडुर्जयायदा परेण बलिना सानीकादिनानिद्रूयंते तदा ते नानाविधैरप्यायुधैर्योद्धुमसमर्थाः संतः पर्वतं शरणमाश्रयंत्येवं तेपि कुतीर्थिकावादपराजिताः क्रोधाद्युपहन

दृष्टयआक्रोशादिकं शरणमाश्रयंते । नच ते इदमाकलय्य प्रत्याक्रोष्टव्याः । तद्यथा ।
क्कोसहणणमारण धम्मभंसाणवाल सुलनाणं । लानंमन्नइधीरो जहुत्तराणंअनावंमि॥१

बहुगुणप्पगप्पाइं, कुज्जाअत्तसमाहिए ॥ जेणन्नेणोविरुझेज्जा, तेण तंतं समायरे ॥ १७ ॥ इमं च धम्म मादाय,कासवेण पवेइयं ॥ कुज्जा भिक्खू गिलाणस्स, अगिलाए समाहिए ॥ ७० ॥ संखाय पेसलं धम्मं, दिठ्ठि मं परिनिवुम्के ॥ उवसग्गे नियामित्ता,आमोक्खाए परिव्वएज्जा सित्तिबेमि ॥ ७१ ॥ इति ततीय अज्झयणस्स तईउ उद्देसो सम्मत्तो.

अर्थ—परंतु जे साधुठे ते तेमनी साथे आक्रोशादिक करे नही किंतु ज्यां बहुगुण के० घणागुणठे एटले प्रतिज्ञा हेतु दृष्टांत उपनय नैगम नय इत्यादिक प्पगप्पाइं के० प्रकल्पिये एवा मध्यस्थपणाना कारणने कुज्जा के० करे वली जे थकी अत्त के० आत्मा समाहिए के० समाधिवंत रहे एवा अनुष्ठान करे जेणन्नेणो विरुझेज्जा के० जे अनुष्ठानकस्वाथी अथवा जे वचन बोल्या थकी अन्यपुरुष विरोध नपामे तेवुं कार्य करे तेण के० तेमाटे तंतं के० ते ते विधि समायरे के० समाचरे ॥१७॥ एरीते परमत निराकरण करी उपसंहारे स्वमत स्थापन करतां कहेठे इमंके० ए पूर्वोक्त वचनरूप धम्म मादाय के० धर्मने ग्रहण करीने ते धर्म कासवेण पवेइयंके० काश्यप एटले श्रीमहावीर देवे प्रवेद्यो च शब्द थकी अन्य मतिनु निराकरण करीने प्रवेद्यो एटले कह्यो ते केवीरीते तो के भिक्खूके० साधु जे ठे ते गिलाणस्स के० गिलाननी कुज्जाके० वैयावच्च करे अगिलाए समाहिए के० परंतु अगिलान पणे करे जेम पोताने तथा गिलानने समाधि उत्पन्न थाय तेवीरीते वैयावच्च करे ॥७०॥ संखायपेसलंधम्मं के० ते पेसल एटले मनोहर एवा सर्वज्ञ प्रणीत श्रुत चारित्ररूप धर्मने सम्यक् प्रकारे जाणीने दिठ्ठिमं के० दृष्टीमंतसाचा तत्वनो जाण परिनिवुम्केके०परिनिवृत्त एटले क्रोधना उपशम थकी शीतलभूत थएलो एवो साधु तेने उवसग्गेके० उपसर्ग उदय आव्या ठता नियामित्ताके० तेने सहन करीने आमोक्खाय के० मोक्ष प्राप्तिसुधी परिव्वएज्जासि के० शुद्धो संयम पालतो थको प्रवर्त्ते. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥७१॥ इति श्रीद्वितीयसूत्रकृतांगे प्रथमश्रुतस्कंधे तृतीयाध्ययने उपसर्ग परिज्ञानाम स्तृतीयोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ दीपिका—(बहुगुणेति) । बहवोगुणाः स्वपक्षसिद्ध्यादयः प्रकल्पंते प्रादुर्भवंति येषु तानि बहुगुणप्रकल्पानि प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमनादीनि मध्ये स्ववचनानि वाऽनुष्ठानानि साधुर्वादकाले कुर्यात् । कीदृशः साधुः आत्मसमाधिकश्चित्तस्वास्थ्यवान् । तत्र

कुर्यात्साधुर्येन कृतेनान्यस्तीर्थिकोनविरुध्येत नविरोधं गछेत् । तेन तत्तदविरुद्धं समाचरेत् ॥१७॥ (इममिति) इमं वक्ष्यमाणं धर्ममादाय काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितं प्ररूपितं कुर्यान्भिक्षुः साधुग्लानस्य वैयावृत्त्यादिकं अग्लानतया यथाशक्ति समाहितः समाधिंप्राप्तः । यथा ग्लानस्य समाधिरुत्पद्यते स्वस्य वा योगानविषीदंति तथा वैयावृत्त्यादिकं विधेयमिति ॥ २० ॥ (संखाएति) । पेशलं श्रेष्ठं सर्वज्ञोदितं धर्मं संख्याय ज्ञात्वा दृष्टिमान् दर्शनोपेतः परिनिर्वृतोरागद्वेषत्यागाच्छीतलउपसर्गाननुकूलप्रतिकूलान् नियम्य निर्यंत्र्य आमोक्षाय सर्वकर्मक्षयाय परिव्रजेत्संयमोद्यतोनवेत् ससाधुरिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥२१॥ इति तृतीयाध्ययने तृतीयोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (बहुगुणेत्यादि) । बहवोगुणाः स्वपक्षसिद्धिपरपक्षदोषोद्भावनादयोमाध्यस्थ्यादयोवा प्रकल्पंते प्रादुर्नवंत्यात्मनि येष्वनुष्ठानेषु तानि बहुगुणप्रकल्पानि प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमनादीनि माध्यस्थ्यवचनप्रकाराणि वा अनुष्ठानानि साधुर्वादकाले अन्यदा वा कुर्यात् विदध्यात् सएव विशिष्यते । आत्मनः समाधिश्चित्तस्वास्थ्यं यस्य सनवत्यात्मसमाधिकः। एतडुक्तं नवति । येन येनोपन्यस्तेन हेतुदृष्टांतादिना आत्मसमाधिः स्वपक्षसिद्धिलक्षणोमाध्यस्थवचनादिना वा परानुपघातलक्षणः समुत्पद्यते तत् तत् कुर्यादिति । तथा येनानुष्ठितेन वा नाषितेन वा अन्यतीर्थिकोधर्मश्रवणादौ वान्यः प्रवृत्तोन विरुध्येत नविरोधं गछेत् तेन पराविरोधकारणेन तत्तदविरुद्धमनुष्ठानं वाचनं वा समाचरेत् कुर्यादिति ॥ १७ ॥ तदेवं परमतं निराकृत्योपसंहारद्वारेण स्वमतस्थापनायाह । (इमंचेत्यादि) । इममिति वक्ष्यमाणं पूर्वोक्तमूलोत्तरगुणरूपं चारित्राख्यं वा डुर्गतिधारणाद्धर्ममादायोपादाय आचार्योपदेशेन गृहीत्वा। किंनूतमिति। तमेव विशिनष्टि । काश्यपेन श्रीमन्महावीरवर्द्धमानस्वामिनोत्पन्नदिव्यज्ञानेन सदेवमनुजायां पर्षदि प्रकर्षेण यथावस्थितार्थनिरूपणद्वारेण वेदितं प्रवेदितं । चशब्दात्परमतं च निराकृत्य निक्षणशीलोनिक्षुर्ग्लानस्यापटोरपरस्य निक्षोर्वैयावृत्त्यादिकं कुर्यात् । कथं कुर्यादितदेव विशिनष्टि। स्वतोप्यग्लानतया यथाशक्ति समाहितः समाधिंप्राप्तइति । इदमुक्तं नवति । यथा यथात्मनः समाधिरुत्पद्यते तथा पिंमपातादिकं विधेयमिति ॥ २० ॥ किंकृत्वैतद्विधेयमितिदर्शयितुमाह । (संखायेत्यादि) । संख्याय ज्ञात्वा कं धर्मं सर्वज्ञप्रणीतं श्रुतचारित्राख्यनेदन्निन्नपेशलमिति । सुश्लिष्टं प्राणिनामहिंसादिप्रवृत्त्या प्रीतिकारणं। किंनूतमिति । दर्शनं दृष्टिः समुन्नूतपदार्थगतं सम्यग्दर्शनमित्यर्थः । सा विद्यते यस्याऽसौ दृष्टिमान् यथा व्यवस्थितपदार्थपरिछेदवानित्यर्थः । तथा परिनिर्वृतोरागद्वेषविरहाछांतीनूतस्तदेवं धर्मं पेशलं परिसंख्याय दृष्टिमान् परिनिर्वृतउपसर्गाननुकूलप्रतिकूलान्नियम्य सं

यम्य सोढा नोपसर्गैरुपसर्गितोऽसमंजसं विदध्यादित्येवमामोक्षायाशेषकर्मक्षयप्राप्ति वत्परिसमंतात् व्रजेत्संयमानुष्ठानोद्युक्तोजवेत् परिव्रजेदिति । परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमि पूर्ववत् ॥ २१ ॥ उपसर्गपरिज्ञायास्तृतीयोद्देशकः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ तृतीयाध्ययने चतुर्थोद्देशकस्य प्रारंजः

आहं सुमहापुरिसा, पुव्विं तत्ततवोधणा ॥ उदयेण सिद्धिमाव न्ना, तत्र मंदोवसीयति ॥ १ ॥ अनुंजिया नमी विदेही, रामगुत्ते य नुंजिआ ॥ बाहुए उदगं जोच्चा, तहा तारागणेरिसी ॥ २ ॥

अर्थ–आहं सुमहा पुरिसाके० हवे ते परमार्थना अजाण एम कहेछेके महा पुरुष प्रधान पुरुष तारागणऋषि प्रमुख तेणे एवीरीते आहं एटले कह्युंछे शुंकह्युंछे तोके पुव्विंत तत्तके० पूर्वे कालनेविषे तपश्याना करनार तवोधणाके० तपरूप धनना धणी एवा अनेक ऋषीश्वर ते उदयेणके० उदक एटले शीतल पाणीनो परिजोग करता थका सिद्धिमाव न्ना के० सिद्धिने पाम्या तेरीतनुं अन्य तीर्थिनुं वचन सांजलीने तत्रमंदोवसी के०मंद अज्ञानी बापडा तत्र एटले तेहिज शीतलोदकने विषे राचे; पण प्राशुक ज जोग नकरे, एरीते संयमानुष्ठानने विषे सीदाय. ॥ १ ॥ हवे कोइक कुतीर्थि होयते धुने विप्रतारवाने अर्थे आवीरीते कहेके अनुंजिया के० अशनादिकने अण एवो नमीविदेही के० नमीराजा विदेह देशमां उत्पन्न थयेलो हतो, ते मुक्ति पोहोतो तथा अन्य तीर्थिज कहेछे के रामगुत्तेय जुंजिया के० रामगुप्त राजऋषीश्वर र जोगवतो थको मुक्ति पोहोतो, तथा बाहुए के० बाहुक ऋषीश्वर तहा के० त तारागणेरिसी के० तारागणनामा ऋषीश्वर ए वंने उदगंजोच्चा के० शीतल पाणीना परिजोग थकी सिद्धिने पाम्या ॥ २ ॥

॥ दीपिका–सांप्रतं चतुर्थआरन्यते । सच साधुना शीलरक्षणाय यत्नोविधीयतइत्य र्थवान् तस्य चेदमादिमं सूत्रं । (आहंसुइति) केचिदविज्ञाततत्वाआहुरुक्तवंतः । यथा म हापुरुषावल्कलचीरितारागणर्षिप्रमुखाः पूर्वं पूर्वकाले तप्तमनुष्ठितं तपएव धनं येषांते तप्ततपोधनाः पंचाग्न्यादिसाधकास्तएवंजूताउदकेन सचित्तोदकपरिजोगेण उपलक्ष णात्कंदमूलादिजोजिनः सिद्धिमापन्नाः सिद्धिं गताः । तत्रैवंजूतार्थाकर्णने मंदोमूर्खोऽ वसीदति संयमे सीदति शीतोदकादिपरिजोगे प्रवर्तते । तत्रैवं वेति तेषां तापसानां कुतश्चिज्जातिस्मरणादिप्रत्ययादाविर्जूतसम्यग्दर्शनानां संयमप्रतिपत्त्याऽगतज्ञानावरण

दिकर्मणां भरतादीनामिव मुक्तिः संजाता न तु शीतोदकपरिभोगादिति ॥ १ ॥ (अभुंजिएति) केचित्कुतीर्थिकाअथवा स्ववर्ग्याएवं शीतलविहारिण एवमाहुः। नमी राजा विदेहपुरवासिनोलोकावैदेहास्तेयस्य संति स वैदेही अशनादिकमभुक्त्वा सिद्धिं गतः। रामगुप्तश्च राजर्षिराहारादिकंभुक्त्वैव भुंजानएव सिद्धिं गतः । तथा बाहुकः शीतोदकादिपरिभोगं कृत्वा तथा तारागणनामा मुनिः शीतोदकादिपरिभोगात्सिद्धः ॥ २ ॥

॥टीका–उक्तस्तृतीयोद्देशकः सांप्रतं चतुर्थः समारभ्यते। अस्यचायमभिसंबंधः। इहानंतरोद्देशके अनुकूलप्रतिकूलोपसर्गाः प्रतिपादितास्तैश्च कदाचित्साधुः शीलात् प्रच्याव्येत तस्य च शीलस्खलितस्य प्रज्ञापनानेन प्रतिपाद्यते इति। अनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्यादिमं सूत्रं (आहंसुइत्यादि)। के चन अविदितपरमार्थाआहुरुक्तवंतः। किंतदित्याह। यथा महापुरुषाःप्रधानपुरुषावल्कलचीरितारागणर्षिप्रभृतयः। पूर्वं पूर्वस्मिन् काले तप्तमनुष्ठितं तपएव धनं येषां ते तप्ततपोधनाः पंचाग्न्यादितपोविशेषेण निष्टप्तदेहास्तएवंभूताः शीतोदकपरिभोगेन उपलक्षणार्थत्वात् कंदमूलफलाद्युपभोगेन च सिद्धिमापन्नाः सिद्धिं गतास्तत्रैवंभूतार्थसमाकर्णने तदर्थसद्भावावेशात् मंदोऽज्ञोस्नानादित्याजितः प्राशुकोदकपरिभोगभग्नः संयमानुष्ठाने प्रविषीदति ।यदि वा तत्रैव शीतोदकपरिभोगे विषीदति लगति निमज्जतीति यावत् । न त्वसौ वराकएवमवधारयति यथा तेषां तापसादिव्रतानुष्ठायिनां कुतश्चिज्जातिस्मरणादिप्रत्ययादाविर्भूतसम्यग्दर्शनानां मौनींद्रभावसंयमप्रतिपत्त्या अपगतज्ञानावरणादिकर्मणां भरतादीनामिव मोक्षावाप्तिर्न तु शीतोदकपरिभोगादिति ॥ १ ॥ किंचान्यत् । (अभुंजियाणमित्यादि) केच न कुतीर्थिकाः साधुप्रतारणार्थमेवमूचुः । यदिवा स्ववर्ग्याः शीतलविहारिणएत द्वक्ष्यमाणमुक्तवंतस्तद्यथा निमीराजा विदेहोनाम जनपदस्तत्रभवावैदेहास्तन्निवासिनोलोकास्तेऽस्य संतीति वैदेही। सएवंभूतो निमीराजा अशनादिकमभुक्त्वा सिद्धिमुपगतस्तथा रामगुप्तश्च राजर्षिराहारादिकं भुक्त्वैव भुंजानएव सिद्धिं प्राप्तइति । तथा बाहुकः शीतोदकादिपरिभोगं कृत्वा तथा नारायणोनाममहर्षिः परिणतोदकादिपरिभोगात्सिद्धइति ॥ २ ॥

आसिले देवले चेव, दीवायण महारिसी, पारासरे दगं भोच्चा, बीयाणि हरियाणिया ॥ ३॥ एते पुव्वं महापुरिसा, आहिता इह संमता ॥ भोच्चा बीउदगं सिद्धा, इति मेयमणुस्सुअं ॥ ४ ॥

अर्थ–वली आसिले के० आसिल तथा देवले के० देवल चेव के० एमज दीवायणमहारिसी के० द्वीपायन महाऋषीश्वर अने पारासरे के० पाराशर ए सर्वे ऋषीउं उ

दगंजोच्चा के० शीतलपाणीने जोगवी तथा बीयाणि के० बीजकाय हरियाणिय के० हरिकायना परिजोग थकी सिद्ध थया ॥ ३ ॥ एते के० ए नेमीराज ऋषी प्रमुख महापुरिसाके० पूर्वकालनेविषे माहा पुरुष (आहिताके०)कह्या ठे ते इहके० आलोकने विषे संमता के० प्रसिद्धठे ते कुतीर्थिक अथवा साताशील स्वयूथिक एम कहे के ए सर्व बीउंदगं के० बीज सचेतपाणीने जोच्चा के० जोगवीने सिद्धा के० सिद्ध थया इतिके० एम मेयं के० ए अमे महाजारतादिक तथा पुराणोमांथी अणुस्सुयं के० सांजल्युं माटे अमे पण एवीज रीते मुक्ति साधशुं ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–(असिलेति) । असिलोनाम महर्षिस्तथा देवलोद्वैपायनः पराशराख्यइत्यादयः शीतोदकबीजहरितादिजोजिनःसिद्धाः ॥ ३ ॥ (एतइति) एते पूर्वोक्तामहापुरुषानम्यादयः पूर्वकाले त्रेताद्वापारादौ आख्याताः प्रसिद्धाः इहाप्यार्हतमते ऋषिजाषितादौ केचन संमता इत्येवं कुतीर्थिकाः प्रोचुः । एते सर्वेपि बीजोदकादिजोगात्सिद्धाइति मया जारतादौ पुराणे श्रुतं ॥ ४ ॥

॥टीका–अपिच । (असिलेइत्यादि) । असिलोनाम महर्षिर्देवलोद्वैपायनश्च तथा पराशराख्यइत्येवमादयः शीतोदकबीजहरितादिपरिजोगादेव सिद्धाइति श्रूयते ॥३॥ एतदेव दर्शयितुमाह । (एतेइत्यादि) एते पूर्वोक्तानम्यादयोमहर्षयः पूर्वमिति पूर्वस्मिन्काले त्रेताद्वापरादौ महापुरुषाइति प्रधानपुरुषाआसमंतात् ख्याताः प्रख्याताराजर्षित्वेनप्रसिद्धिमुपगताइहाप्याहितप्रवचने ऋषिजाषितादौ केचन संमताअजिप्रेताइत्येवं कुतीर्थिकाः स्वयूथ्यावा प्रोचुः । तद्यथा । एते सर्वेपि बीजोदकादिकं जुक्त्वा सिद्धाइत्येतन्मया जारतादौ पुराणे श्रुतं ॥ ४ ॥

तठ मंदा विसीअंति, वाहछिन्नाव गद्दजा ॥ पिठतो परिसप्पंति
पिठसप्पी च संजमे ॥ ५ ॥ इह मेगेउ जासंति, सातं सातेण वि
ऊती ॥ जे तठ आरिअं मग्गं, परमं च समाहिए ॥ ६ ॥

अर्थ–तठके० त्यां कुशास्त्र जे जारतपुराणादिक तेने सांजलवे करी तथा परिसह उपने थके मंदाविसीअंति के० कोइक मंद अज्ञानी चारित्र थकी सीदाय कोनीपेरे तोके वाहछिन्नावगद्दजा के० जेम जार थकी जागा एवा जे गर्द्दज ते मार्गमांज जार नाखीदेने नासीजाय अथवा पिठतोपरिसप्पंति के० पृष्ट सर्प्प एटले जग्न गति पुरुष संजमे के० संत्रमी पणे अग्न्यादिक उपद्रव उपने थके पिठसप्पिय के० नाशीजनार मनुष

नी पडवाडे दोडतो जाय परंतु अग्रगामि नथाय अग्नीमांहेज विनाश पामे तेम जे शीतल विहारी छे तेपण मुक्तिना अग्रगामी नथाय अनंतोकाल संसारमांहेज भमे ॥५॥ इहके० ए मोक्षमार्गे विचारवाने प्रस्तावे एगेउ के० कोइक शाक्यादिक अथवा स्वतीर्थि लोच प्रमुख कष्टे पीडया थका एम कहेके सातंके० ते जे मुक्तिना सुख छे ते सातेणके० सुखे करीज विज्जती के० थाय परंतु दुःख थकी सुख न थाय. यथा शालिबीजाच्छाल्यांकुरो, जायतेनयवांकुर इतिवचनात् माटे लोचादिक कष्ट थकी मुक्ति शीरीते थशे एवीरीते बोलीने जेके० जे कोइक शाक्यादिक तत्त्व के० त्यां मोक्षविचारणाने प्रस्तावे आरिय के० श्रीतीर्थंकर देव तेनो प्ररुप्यो एवो जे मग्गं के० मोक्षमार्ग तेने मूकी आपेछे, ते परमंचसमाहियं के० परम समाधिनो कारण जे ज्ञान दर्शन अने चारित्ररूपछे तेने त्यागीने घणो संसारमांहे परिभ्रमण करेछे. तेहिज देखाडेछे ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-(तत्रेति) तत्र कुमतश्रवणोपसर्गे मंदाविषीदंति संयमे सीदंति । यथा वाहेन भारेण छिन्नास्त्रुटितारासभाः सीदंति । कोर्थः । यथा रासभाभारपीडिता मार्गेएव निपतंति एवं ते संयमभारं त्यक्त्वा शीतलविहारिणः स्युः । यथा पीठसर्पिणो भग्नगमनतया अग्न्यादिभये उद्भ्रांतनयनाः पश्चान्न परिसर्पंति नाग्रगामिनोभवंति अपितु तत्रैवाग्न्यादिसंभ्रमे विनश्यंति । एवं तेपि शीतलविहारिणोन मोक्षगामिनः स्युः अपितु तत्रैव संसारे अनंतकालं तिष्ठंति ॥ ५ ॥ (इहेति) इह मोक्षविचारे एके शाक्यादयः स्वतीर्थ्यावा लोचादिपीडिताः। तुशब्दोविशेषणे । भाषंते । तथाहि। सातं सुखं सातेन सुखेन विद्यते स्यात् । यतउक्तं । सर्वाणि सत्वानि सुखे रतानि, सर्वाणि दुःखाच्च समुद्विजंति ॥ जीवेषु तस्मात्सुखमेव दद्यात् सुखप्रदानाल्लभते सुखानि ॥ १ ॥ इत्यात्मसुखान्मुक्तिसुखं स्यात् नतु लोचादिदुःखात् । यदुक्तं। मणुणं भोअणं भुच्चा, मणुणं सयणासणं ॥ मणुणंसि अगारंसि, मणुणं जायए मुणी ॥१ ॥ तथा । मृद्वी शय्या प्रातरुत्थाय सेव्या, भुक्तं मध्ये पानकं चापराह्णे ॥ द्राक्षाखंडं शर्करा चार्धरात्रे मोक्षश्चांते शाक्यपुत्रेण दृष्टइति । अतोमनोज्ञाद्दाहारादेश्चित्तस्वास्थ्यं ततः समाधिः सएव मुक्तिरिति । ततः सुखेन सुखावाप्तिर्न तु लोचादिक्लेशेनेति एवंये भाषंते तथा आर्यं जैनेंद्रमार्गं परमंच समाधिज्ञानदर्शनचारित्रात्मकं येत्यजंति ते सदा भवे भ्रमिष्यंतीति ॥६ ॥

॥टीका-एतदुपसंहारद्वारेण परिहरन्नाह। (तत्रेत्यादि) तत्र तस्मिन् कुश्रुत्युपसर्गोदये मंदाअज्ञानानाविधोपसाध्यं सिद्धिगमनमवधार्य विषीदंति संयमानुष्ठानेन पुनरेतद्वदंत्यज्ञाः।तद्यथा। येषां सिद्धिगमनमभूत् तेषां कुतश्चिन्निमित्तात् जातजातिस्मरणादिप्रत्ययानामवाप्तसम्यक्ज्ञानचारित्राणामेव वल्कलचीरिप्रभृतीनामिव सिद्धिगमनमभूत् । न पुनः क

दाचिदपि सर्वविरतिपरिणामभावलिंगमंतरेण शीतोदकबीजाद्युपभोगेन जीवोपमर्दप्रवृत्ते
ण कर्मक्षयोऽवाप्यते । विषीदने दृष्टांतमाह । वहनं वाहोजारो वहनं तेन भिन्नाः क्षे
तास्त्रुटितारासनाइव विषीदंति । यथा रासनागमनपथएव प्रोज्झितजारानिपतंति ए
वं ते प्रोज्य संयमनारं शीतलविहारिणोनवंति । दृष्टांतांतरमाह । यथा पृष्ठसर्पिणोजग्न
गतयोऽग्न्यादिसंभ्रमे सत्युद्भ्रांतनयनाः समाकुलाः प्रनष्टजनस्य पृष्ठतः पश्चात्परिसर्पं
ति नाग्रगामिनोनवंत्यपि तु तत्रैवाग्न्यादिसंभ्रमे विनश्यंत्येवं तेपि शीतलविहारिणो
मोक्षं प्रतिप्रवृत्ताअपि तु न मोक्षगतयोनवंत्यपि तु तस्मिन्नेव संसारे अनंतमपि कालं
यावदासतइति ॥ ५ ॥ मतांतरं निराकर्तुं पूर्वपक्षयितुमाह । (इहमेगेइत्यादि) । इहेति
मोक्षगमनप्रस्तावे एके शाक्यादयः स्वयूथ्यावा लोचादिनोपतप्ताः । तुशब्दः पूर्वस्मात् शी
तोदकापरिभोगाद्विशेषमाह । नाषंते ब्रुवते । मन्यंते च इति क्वचित्पाठः । किंतदित्याह । सातं
सुखं सातेन सुखेनैव विद्यते नवतीति । तथाच वक्तारोनवंति । सर्वाणि सत्वानि सुखे
रतानि सर्वाणि दुःखाच्च समुद्विजंति । तस्मात्सुखार्थीसुखमेव दद्यात् सुखप्रदाता लन
ते सुखानि॥१॥ युक्तिरप्येवमेव स्थिता । यतः कारणानुरूपं कार्यमुत्पद्यते। तद्यथा । शा
लिबीजाच्छाल्यंकूरोजायते न यवांकुरइत्येव प्रीत्यात्मसुखान्मुक्तिसुखमुपजायते न तुलो
चादिरूपात् दुःखादिति । तथाह्यागमे ऽप्येवमेव व्यवस्थितं ॥ मणुस्सं नोयणं नोच्चा मणु
स्सं सयणासणं। मणुस्संति अगारंसि मणुस्सं जायए मुणी ॥१॥ तथा मृ द्वी शय्याप्रातरुत्थाय
पेया, नुक्तं मध्ये पानकं चापराह्णे। द्राक्षाखंडं शर्करा चार्धरात्रे मोक्षश्चांते शाक्यपुत्रेण दृष्टः
॥१॥इत्यतोमनोज्ञाहारविहारादेश्चित्तस्वास्थ्यं ततः समाधिरुत्पद्यते समाधेश्च मुक्त्यवाप्ति
तः स्थितमेतत्सुखेनैव सुखावाप्तिर्न पुनः कदाचनापि लोचादिना कायक्लेशेन सुखावाप्तिरि
ति स्थितं । इत्येवं व्यामूढमतयोये केचन शाक्यादयस्तत्र तस्मिन्मोक्षमार्गप्रस्तावे स
मुपस्थिते आराक्षातः सर्वहेयधर्मेन्यइत्यार्योमार्गोजैनेंद्रशासनप्रतिपादितोमोक्षमार्ग
स्तं ये परिहरंति। तथा च। परमं च समाधिज्ञानदर्शनचारित्रात्मकं ये त्यजंति तेऽज्ञाः संसा
रांतर्वर्तिनः सदा नवंति । तथाहि । यत्तैरनिहितं कारणानुरूपं कार्यमिति तन्नायमेकां
तोयतः शृंगाच्छरोजायते गोमयाद्वृश्चिकोगोलोमाविलोमादिन्योदूर्वेति । यदपि मनोज्ञा
हारादिकमुपन्यस्तं सुखकारणत्वेन तदपि विषूचिकादिसंनवाद्व्यनिचारीति । अपिचेदं वै
षयिकं सुखं दुःखप्रकारहेतुत्वात् सुखानासतया सुखमेव न नवति । तदुक्तं । दुःखात्म
केषु विषयेषु सुखाभिमानः सौख्यात्मकेषु नियमादिषु दुःखबुद्धिः। उत्कीर्णवर्णवदपंक्तिरि
वान्यरूपा सारूप्यमेति विपरीतगतिप्रयोगात्॥१॥इति। कुतस्तत्परमानंदरूपमस्यात्यंतिकै
कांतिकस्य मोक्षसुखस्य कारणं नवति। यदपि लोचनूशयननिक्षाटनपरपरिनवक्षुत्पिपासा
दंशमशकादिकं दुःखकारणत्वेन नवतोपन्यस्तं तदप्यल्पसत्वानामपरमार्थदृशां महापु

रूपाणां तु स्वार्थाभ्युपगमप्रवृत्तानां परमार्थचिंतकानां महासत्वतया सर्वमेवैतत्सुखायैवे ति। तथाचोक्तं। तणसंथारनिविष्ठो विमुनिवरो भट्टरागमयमोहो ॥ जंपावइ मुत्तिसुहं कत्तो तंचक्कवट्टीवि॥१॥ तथा । दुष्कृतसंख्यया च महतां क्वांतं पदं वैरिणः कायस्याशुचिता विरागपदवी संवेगहेतुर्जरा ॥ सर्वत्यागमहोत्सवाय मरणं जातिः सुहृत्प्रीतये संपद्भिः परिपूरितं जगदिदं स्थानं विपत्तेः कुतइति ॥१॥ अपिचैकांतेन सुखेनैव सुखेऽभ्युपगम्यमाने विचित्रसंसाराभावः स्यात्तथा स्वर्गस्थानां नित्यसुखिनां पुनरपि सुखानुभूतेस्तत्रैवोत्पत्तिः स्यात्तथा नारकाणां च पुनर्दुःखानुभवात्तत्रैवोत्पत्तेर्न नानागत्या विचित्रता संसारस्य स्यान्नचैतत् दृष्टमिष्टं चेति ॥ ६ ॥

मा एयं अवमन्नंता, अप्पेणं लुंपहा बहुं ॥ एतस्स अमोरकाए, अयहारिव जूरह ॥ ७ ॥ पाणाइवाते वट्टंता, मुसावादे असंजता ॥ अदिन्नादाणे वट्टंता, मेहुणोय परिग्गहे ॥ ८ ॥

अर्थ-मा के० अहो दर्शनीउ, तमे एयं के० सुख थकी सुख थाय एवां वचने करी अवमन्नंता के० श्रीजिनेंद्रना मार्गने अवहिलता थका अप्पेणं के० अल्प विषयने अर्थे बहुं के० घणा एवांजे मोक्षना सुख तेने लुंपहा के० गमावोछो; एतस्स के० एवा असत्य पक्षने अमोरकाए के० न मूकवे करीने अयहारिव के० लोहवाहकनी पेरे जूरह के० झूरशो; जेम कोइक बे जण हता तेणे लोहनो भार उपाड्यो हतो. पछी मार्गे जता सुवर्ण दीठुं तेवारे एकजणे लोहनां भारने नाखी देइने अमुलक सुवर्ण वस्तु ग्रहण करी अत्यंत धनवंत थयो, अने बीजायें लोहनो भार नाखी दीधो नही, ते पछी झूरवा लागो. तेम तमे पण झूरशो. ए कथा सविस्तर श्रीरायप्रश्नि सूत्रमांहे त्यां थकी जोइ लेवी ॥ ७ ॥ पाणाइवातेवट्टंता के० प्राणातिपातने विषे वर्त्तता मुसावादे के० मृषावादने विषे वर्त्तता अदिन्नादाणेके० अदत्तादान तथा मेहुणेके० मैथुन च के० वली परिग्गहेके० परिग्रह एटलाने विषे वट्टंताके० वर्त्तता थका तमे असंजताके० असंयतिछो अल्प विषयसुखमां पड्या थका घणुं एवुं जे मोक्ष सुख तेनो विनाशकरोछो. ॥८॥

॥ दीपिका-(माएति) एनं जैनमार्गं अवमन्यमानाः परिहरंतो ऽल्पेन सुखेन मा बहुं मोक्षसुखं लुंपथ विध्वंसयथ । तथा एतस्यासत्पक्षस्यामोक्षेपरित्यागे अयोहारीव (झूरहत्ति) आत्मानं कदर्थयते । यथाऽयसोलोहस्याहर्ता ऽपांतराले रूप्यादिलाभेपि दूरमानीतमिति लोहं नोज्झितवान् पश्चादलाभे झूरितवान् पश्चात्तापं कृतवान् एवं यू

यमपि ॥ ७ ॥ (पाणाइवेति) यूयं प्राणातिपाते मृषावादे संयताः सं
ऽदत्तादाने मैथुने परिग्रहे वर्तमानाअल्पेन सुखेन बहु हारयथ ॥ ८ ॥

॥ टीका–अतोऽव्यपदिश्यते । (माएयमित्यादि) एनमार्य मार्ग जैनेंद्रप्रवचनं सम्यक् ज्ञानदर्शनचारित्रमोक्षमार्गप्रतिपादकं सुखं सुखेनैव विद्यते इत्यादिमोहेन मोहिताअवमन्यमानाः परिहरंतोऽल्पेन वैषयिकेण सुखेन माबहु परमार्थसुखं मोक्षाख्यं लुंपथ विध्वंसथ तथाहि । मनोज्ञाऽहारादिना कामोद्रेकस्तद्उद्रेकाच्च चित्तास्वास्थ्यं न पुनः समाधिरिति । अपि चैतस्यासत्पक्षाभ्युपगमस्यामोक्षे परित्यागे सति । (आयो हारिवजूरहत्ति) आत्मानं यूयं कदर्थयथ । यथैव केवलं यथावाऽयसो लोहस्याहर्ता अपांतराले रूप्यादिलाभे सत्यपि दूरमानितमिति कृत्वा नोज्झितवान् । पश्चात् स्वावस्थानावाप्तावल्पलाभे सति जूरितवान् पश्चात्तापं कृतवान् एवं भवंतोपि जूरयिष्यंतीति ॥७॥ पुनरपि सातेन सातमित्येवं वादिनां शाक्यानां दोषोद्भिावयिषयाह । (पाणाइवायेत्यादि) प्राणातिपाते मृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रहेषु वर्तमानाअसंयतायूयं वर्तमानसुखैषिणोल्पेन वैषयिकसुखाभासेन परमार्थिकमेकांतात्यंतिकं बहु मोक्षसुखं विलुंपथेति । किमिति । यतः पचनपाचनादिषु क्रियासु वर्तमानाः सावद्यानुष्ठानारंभतया प्राणातिपातमाचरथ । तथा येषां जीवानां शरीरोपभोगोभवद्भिः क्रियते तानि शरीराणि तत्स्वामिभिरदत्तानीत्यदत्तादानाचरणं । तथा गोमहिष्यजोष्ट्रादिपरिग्रहात्तन्मै... ति । तथा प्रव्रजितादयमित्येवमुच्चाय गृहस्थाचरणानुष्ठानान्मृषावादस्तथा धनधान्यद्विपदचतुष्पदादिपरिग्रहात्परिग्रहइति ॥ ८ ॥

एवमेगे उ पासत्था, पन्नवंति अणारिया ॥ इत्थीवसंगया बाला,
जिणसासणपरम्मुहा ॥ ९ ॥ जहा गंमं पिलागं वा, परिपीलेज्ज
मुहुत्तगं ॥ एवं विन्नवणित्थीसु, दोसो तत्थ कओसिआ ॥ १० ॥

अर्थ–वली परमतनो नापा दोष कही देखाडेछे. एव के० एरीते एगेउ के० कोइएक परतीर्थिक अथवा स्वतीर्थिक पासत्थाके० पासत्थादिक ते केवाछे तोके अणारियाके० अनार्य कर्मना करनार अणाचारि वली इत्थीवसंगया के० स्त्रीने वसे पड्या एटले स्त्रीनो परिसह जीतवाने असमर्थ तथा बाला के० अज्ञानी वली जिणसासण परम्मुहा के० जिनमार्ग थकी वपरांग ते पन्नवंति के० एम कहेछेके ॥ ९ ॥ जहा के० जेम गंमके० गूंवडुं पिलागंवा के० पाकुं थकुं तेने परि के० त्यांज पीलेज्ज के० पीलीने तेमांथी परु अथवा रुधीर काढी नाखवा थकी मुहुत्तगंके० मुहूर्त्तमात्रमां सुख थाय परंतु पीडा कांइ

पण न थाय एवं के० एरीते अंहीं पण विन्नवणिज्ञीसु के० प्रार्थना करती एवी स्त्रीनी साथे संबंध करवाथी दोसोतज्ञकउसिया के० त्यांपण क्यां थकीदोष आवशे अपितुं कांइज दोषनथी. ॥ १० ॥

॥ दीपिका–एवं पूर्वोक्त प्रकारेण एके बौद्धविशेषाः शैवविशेषावा पार्श्वस्थाः स्वयूथ्या वाऽवसन्नकुशीलादयोऽनार्याः स्त्रीवशंगताः प्रज्ञापयंति वदंति। यतस्तेषां वचनं। प्रियादर्शन मेवास्तु, किमन्यैर्दर्शनांतरैः ॥ प्राप्यते येन निर्वाणं, सरागेणापि चेतसा इति । ते किंनूताः जिनशासनपराङ्मुखाः ॥ ए ॥ (जहेत्ति) ते एवमाहुः । यथा गंडं पिटकं पीडोपशमार्थं परिपीड्य रुधिरादिकं निर्गाल्य मुहूर्तमात्रं सुखिनः स्युर्नच दोषेणानुषज्यंते । एवं विज्ञा पनासु प्रार्थनीयासु स्त्रीषु दोषः कुतःस्यात् । तत्रकोर्थः । गंडपरिपीडनतुल्ये स्त्रीसंबंधे क दोषः स्यात् । तत्र दोषोयदि काचित्पीमा नवेन्न चेह् साकाप्यस्तीति ॥ १० ॥

॥ टीका–सांप्रतं मतांतरदूषणाय पूर्वपक्षयितुमाह् । (एवमेगेइत्यादि) तुशब्दः पूर्व स्माद्विशेषणार्थः । एवमिति वक्ष्यमाणया नीत्या यदि वा प्राक्तनएव श्लोकोत्रापि संबधनी यः । एवमिति । प्राणातिपातादिषु वर्तमानाएकइत्यादिबौद्धविशेषानीलपटादयोनाथ वादिकमंमलप्रविष्टावा शैवविशेषाः सदनुष्ठानात् पार्श्वे तिष्ठंतीति पार्श्वस्थाः स्वयूथ्यावा पार्श्वस्थावसन्नकुशीलादयः स्त्रीपरीषहपराजितास्तएवं प्रज्ञापयंति प्ररूपयंति । अना र्याः अनार्यकर्मकारित्वात्। तथाहि। ते वदंति। प्रियादर्शनमेवास्तु किमन्यैर्दर्शनांतरैः। प्रा प्यते येन निर्वाणं सरागेणापि चेतसा। किमित्येवं तेनिदधतीत्याह्।स्त्रीवशंगताः यतोयुवती नामाज्ञायां वर्तंते बालाअज्ञारागद्वेषोपहतचेतसइति । रागद्वेषजितोजिनास्तेषां शासन माज्ञा कषायमोहोपशमहेतुनूता तत्पराङ्मुखाः संसारन्निष्वंगिणोजैनमार्गविद्वेषिणएत द्वक्ष्यमाणमूचुरिति ॥ ए॥ यदूचुस्तदाह् (जहागंडमित्यादि) यथेत्युदाहरणोपन्यासार्थः। यथा येन प्रकारेण कश्चित् गंमी पुरुषोगंडं समुछितं पिटकं वा तज्जातीयकमेव तदा कृतोप शमनार्थं परिपीड्य पूयरुधिरादिकं निर्गाल्य मुहूर्तमात्रं सुखितोनवति न च दोषेणानुष ज्यते । एवमत्रापि स्त्रीविज्ञापनायां युवतिप्रार्थनायां रमणीसंबंधे गंमपरिपीमनकल्पे दोष स्तत्र कुतः स्यात् । न ह्येतावता क्लेदापगममात्रेण दोषोनवेदिति । स्यात्तत्र दोषोयदि काचि त्पीडा नवेत् ॥ १० ॥

जहा मंधादए नाम, थिमिअं नुंजती दगं ॥ एवं विन्नवणिज्ञीसु,
दोसो तज्ञ कउम्मिआ ॥११॥ जहा विहंगमा पिंगा, थिमिअं नुं
जती दगं ॥ एवं विन्नवणिज्ञीसु, दोसो तज्ञ कउसिआ ॥१२॥ ए

वमेगे उ पासत्था, मिछदिठी अणारिआ ॥ अझोववन्ना कामे
हिं, पूयणा इव तरुणए ॥ १३ ॥

अर्थ—वली दृष्टांत कहेछे. जहाके० जेम मंदादननामके० मेषो एवे नामे जनावर ते मितं के० जेरीते पाणी मोलाय नही एरीते भुंजतीदगं के० उदकनुं पान करे, पाणीने पण बाधा नथाय अने पोताने पण बाधा नकरे एवंके० एरीते विन्नव के० प्रार्थना करती स्त्री साथे संबंध करवा थकी दोसोतछकउसिया के० त्यांपण दो क्यां थकी थाय अपितु नज थाय. ॥११॥ जहा के० जेम विहंगमापिंगा के० एवेनामे पंखणी आकाशें उडती थकीज थिमिअंभुंजतीदगं के० निर्मलपाणीनुं एवं के० एरीते विन्नवणिछीसु के० अहींपण गर्नांतर करण पूर्वक पुत्रादिकने अर्थे रा द्वेष रहित प्रार्थती एवी स्त्रीनी साथे संग करतां थकां दोष क्यांथकी थाय ॥१२॥ हवे सूत्र कर्ता ते वादीउना दोष प्रगट करतो कहेछे. एवमेगेउपासछाके० ते पूर्वोक्त गुंवडा ना दृष्टांते करी मैथुनने निर्दोष मानता एवा कोइ एक परतीर्थिक तथा स्वयूथिक क जेणे स्त्री परिसह जित्यो नथी, ते सिथल विहारी केवा छे, तो के मिछदिठी रिया के० मिथ्यादृष्टी अनार्य कर्मना करनार अनाचारी अझोववन्नाकामेहिंके० गने विषे गृद्ध छता प्रवर्त्ते कोनीपेरे तोके पूयणाइवके० पुतना एटले फाकणनीपेरे फाकण न्हाना बालकने देखी गृद्ध थाय अथवा पुतना एटले गाफरीनीपेरे जेम पोताना तरुणए के० तरुण बालकने विषे गृद्ध थाय; एटले समस्त जीवोमांहे नने विषे गाफरीनो स्नेह आकरो दीपेछे ते माटे ए दृष्टांत कह्युं तेम पूर्वोक्त अना री पासछादिक पण कामनोगनेविषे गृद्ध थायछे. ॥ १३ ॥

॥ दीपिका—(जहेति) यथा मंधादनोमेषः स्तिमितं अनालोडयाग्रतउदकं भुंक्ते स्यात्मानं प्रीणयति नचान्योपघातं कुर्यात् एवं स्त्रीसंबंधे न काचिदन्यस्य पीमा त्मनश्च प्रीणनमिति कुतस्तत्र दोषः ॥११॥ यथा पिंगाः कपिंजलाविहंगमाः प काशएव वर्तमानाः स्तिमितं निभृतमुदकं पिबंति एवमत्रापि पुत्राद्यर्थं स्त्रीसंबंधं कुर्वतो रक्तद्विष्टस्य पक्षिणइव कुतोदोषः। यदुक्तं ॥ धर्मार्थं पुत्रकामस्य स्वदारेष्वधिकारिणः ऋतुकालविधानेन दोषस्तत्र नविद्यतइति ॥१२॥ अथैवं वदतां परेषां दोषमाह। एवं प रोक्तैः पूर्वदृष्टांतैर्मैथुनं निर्दोषमितिमन्यमानाएके शाक्यादयः स्वयूथ्यावा पार्श्वस्थाद स्तथा मिथ्यादृष्टयोऽनार्याधर्मविरुद्धनाषिणोऽध्युपपन्नागृद्धाः कामेषु वा। यथा पूतना शाकिनी तरुणके बाले आसक्ता यदि वा पूतना गमुरिका स्वापत्ये आसक्ता। कथाचात्र केनापि सर्वपशूनामपत्यानि निरुदके कूपेऽपत्यस्नेहपरीक्षार्थं क्षिप्तानि। तत्र चान्यामात

रः स्वापत्यशब्दाकर्णनेऽस्मिन्नपि कूपतटस्थाएव रुदंति जरत्री त्वअपत्यातिस्नेहांधा अपायमनपेक्ष्य तत्रैवात्मानं क्षिप्तवतीत्यतोन्यपशुन्योगमुरिका स्वापत्ये नृशमासक्ता एवं तेपि कामासक्ताः ॥ १३ ॥

॥ टीका–दृष्टांतेन दर्शयति । (जहेत्यादि) यथेत्ययमुदाहरणोपन्यासार्थः । मंधाद नइति मेषः । नामशब्दः संजावनायां । यथा मेषस्तिमितमनाजोडयन्नुदकं पिबत्यात्मानं प्रीणयति नच तथान्येषां किंच नोपघातं विधत्ते।एवमत्रापि स्त्रीसंबंधे न काचिदन्यस्य पीडा आत्मनश्च प्रीणनमतः कुतस्तत्र दोषः स्यादिति ॥ ११ ॥ अस्मिन्नेवानुपघातार्थे दृष्टांतबहुत्वख्यापनार्थं दृष्टांतांतरमाह। (जहाविहंगमाइत्यादि) यथा येन प्रकारेण विहायसा गच्छतीति विहंगमा पक्षिणी(पिंगेति)कपिंजला साकाशएव वर्तमाना स्तिमितं निजृतमुदकमापिबत्येवमत्रापि दर्जप्रदानपूर्विकया क्रियया अरक्ताद्विष्टस्य पुत्राद्यर्थं स्त्रीसंबंधं कुर्वतोपि कपिंजलायाइव न तस्य दोषइति । सांप्रतमेतेषां गंडपीडनतुल्यं स्त्रीपरिज्ञोगं मन्यमानानां तथैमकोदकपानसदृशं परपीडाऽनुत्पादकत्वेन परात्मनोश्च सुखोत्पादकत्वेन किल मैथुनं जायतइत्यध्यवसायिनां तथा कपिंजलोदकपानं यथा तन्नागोदकासंस्पर्शेन किल नवत्येव मरक्तद्विष्टतया दर्जाद्युत्तारणात् स्त्रीगात्रस्पर्शेन पुत्रार्थं न कामार्थं । ऋतुकालाभिगामितया शास्त्रोक्तविधानेन मैथुनेपि न दोषानुषंगः॥ तथाचोचुस्ते । धर्मार्थं पुत्रकामस्य स्वदारेष्वधिकारिणः । ऋतुकाले विधानेन दोषस्तत्र न विद्यते इति । एवमुदासीनत्वेन व्यवस्थितानां दृष्टांतेनैव निर्युक्तिकारो गाथात्रयेणोत्तरदानायाह । (जहणामेइत्यादि) जहणाममंमलग्गे णसिरं णकस्सइमणुस्सो ॥ अवेक्तपराहुत्तो किं नाम ततो णचे पेज्ञा ॥ ५३ ॥ जहणा विसगंडूसं, कोतीघेत्तूणनामतुण्हिक्को ॥ अस्सेणअदीसंतो, किं नाम ततो नवमरेक्का ॥ ५४॥ जह नाम सिरिघराउ, कोइरयणेणणामघेत्तूणं । अवेक्तपराहुत्तो किंणामततो न घेपेज्ञा॥५५॥यथा नामकश्चिन्मंमलाग्रेण कस्यचिच्छिरश्छित्वा पराङ्मुखस्तिष्ठेत् । किमेतावतोदासीनजावावलंबनेन न गृह्येत नापराधी जवेत्।तथा यथा कश्चिद्विषगंडूषं गृहीत्वा पीत्वानाम तूर्ष्णीजावं जजेदन्येन वा संदृश्यमानोसौ किं नाम ततोसावन्यादर्शनात् नम्रियेत।तथा यथा कश्चिच्छ्रीगृहाज्ञांडागाराद्रत्नानि महार्घाणि गृहीत्वा पराङ्मुखस्तिष्ठेत् किमेतावतासौ न गृह्येतेति। अत्र च यथा कश्चित शवतया अज्ञतया वा शिरश्छेदे विषगंडूषरत्नापहाराख्ये सत्यपि दोषत्रये माध्यस्थ्यमवलंबेत। न च तस्य तदवलंबनेपि निर्दोषतेति। एवमत्राप्यवश्यंजाविरागकार्यमैथुने सर्वदोषास्पदे संसारवर्द्धके कुतोनिर्दोषतेति । तथा चोक्तं । प्राणिनां बाधकं चैतच्छास्त्रेगीतं महर्षिजिः ॥ नजिकातप्तकणकप्रवेशज्ञा ततस्तथा ॥ १ ॥ मूलं चैतदधर्मस्य जवजावप्रवर्धनं॥तस्माद्विषान्नवत्त्याज्यमिदं पापमनिच्छतेति निर्युक्तिगाथा

त्रयतात्पर्यार्थः ॥ १२ ॥ सांप्रतं सूत्रकारउपसंहारव्याजेन गंडपीडनादिदृष्टांतवादिनो दोषोद्भावनायाह । (एवमेगेइत्यादि)। एवमिति गंडपीडनादिदृष्टांतबलेन निर्दोषमेमिति मन्यमानाएके स्त्रीपरीषहपराजिताः सदनुष्ठानात्पार्श्वे तिष्ठंतीति पार्श्वस्थाः नाथवादिकमंडलचारिणः। तुशब्दात् स्वयूथ्यावा तथा विपरीता तत्त्वाग्राहिणी दृष्टिर्दर्शनं येषां तथा आराद्दूरे याता गताः सर्वहेयधर्मेभ्यइत्यार्याः नआर्या अनार्याः । धर्मविरुद्धानुष्ठानात्तएवं विधाअध्युपपन्नागृध्नवइच्छामदनरूपेषु कामेषु कामैर्वाकरणभूतैः सावद्यानुष्ठाने॰॥
अत्र लौकिकं दृष्टांतमाह । यथावा पूतना डाकिनी तरुणके स्तनंधयेऽध्युपपन्ना । एवं तेप्यनार्याः कामेष्विति।यदि वा(पूयणत्ति)गड्डुरिका आत्मीयेऽपत्येऽध्युपपन्ना एवं तेपीति।कथानकंचात्र । यथा किल सर्वपशूनामपत्यानि निरुदके कूपेऽपत्यस्नेहपरीक्षार्थं क्षिप्तानि तत्र चापरामातरः स्वकीयस्तनंधयशब्दाकर्णनेपि कूपतटस्थारुदंत्यस्तिष्ठंति । उरभ्रीत्वपत्यातिस्नेहेनांधा अपायमनपेक्ष्य तत्रैवात्मानं क्षिप्तवतीत्यतोऽपरपशुभ्यः स्वापत्येऽध्युपपन्नेति॥

अणागयमपस्संता, पच्चुप्पन्नगवेसगा ॥ ते पच्छा परितप्पंति, खीणे आउंमि जोव्वणे ॥ १४ ॥ जेहिं काले परिक्कंतं, नपच्छा परितप्पए ॥ ते धीरा बंधणुम्मुक्का, नाव कंखंति जीविअं ॥ १५ ॥

अर्थ—हवे ते काम गृद्धना दोष कहेछे. ते काम भोग थकी जे निवृत्या नथी तेने अणागय के॰ आगामिक काले नरकादिक दुःख उत्पन्न थाय एवुं अपस्संता के॰ अण देखता थका अने पच्चुप्पन्नगवेसगाके॰ प्रत्युत्पन्न जे वर्तमान विषय सुख तेने गवेषताएनेज रुडुंकरी मानता थका रहेछे तेपच्छाके॰ तेपछी खीणआउंमिजोव्वणेके॰ जेवारे आयुष्य क्षीण थाय, अने यौवन जतुं रहे तेवारे परितप्पंति के॰ पश्चात्ताप करे; अने कहेके अमे एवा अनाचार शावास्ते कस्या? ॥ १४ ॥ जेहिं के॰ जे महापुरुषे कालेके॰ काल प्रस्तावे धर्मनेविषे परिक्कंतं के॰ पराक्रम कस्युं. नपच्छापरितप्पए के॰ ते महापुरुष पछी वृद्धावस्थायें तथा मरणावसरे पश्चात्तापकरे नही; ते धीराबंधणुम्मुक्का के॰ ते धैर्यवंत पुरुष बंधण थकी मूकाणा नावकंखंतिजीविअंके॰ असंयमे जीवितव्यनी आकांक्षाकरता नथी अथवा जीवितव्य मरणने विषे निस्पृहि थका वर्तेछे. ॥ १५ ॥

॥ दीपिका—तेषां दोषमाह (अणागयमित्यादि)। अनागतं नरकादिदुःखमपश्यंतः प्रत्युत्पन्नं वर्तमानमेव विषयसुखाभासमन्वेषयंतः पश्यंतः पश्चात्क्षीणे स्वायुषि यौवने वा गते परितप्यंति पश्चात्तापं कुर्वंति । यदुक्तं । हतं मुष्टिभिराकाशं तुषाणां कंडनं कृतं। यन्मया प्राप्य मानुष्यं सदर्थे नादरः कृतः ॥ १ ॥ तथा । विहवावलेवनडिएहिं । जाइ

कीरंतिजोव्वणमएण ॥ वयपरिणामेसरिआ । इंताइंहि अपखुडुक्कंति इति ॥१४॥ (जेहिं इत्यादि) यैरात्महितैः कालेऽवसरे पराक्रांतं संयमोद्यमः कृतस्ते पश्चान्न परितप्यंते । एकवचनंसूत्रे छांदसत्वात् । ते वीरास्तपश्चरणोद्यतावंधनात्कर्मणोन मुक्ताअसंयमजीवितं नावकांक्षंतिने छंति । जिविते मरणे वा निस्पृहाः स्युरित्यर्थः ॥ १५ ॥

॥टीका–एवं तेपि कामान्निष्वंगिणांदोषमाविष्कुर्वन्नाह॥(अणागयमित्यादि)अनागतमेष्य त्कामानिवृत्तानां नरकादियातनास्थानेषु महत् डुःखमपश्यंतोऽपर्यालोचयंतस्तथा प्रत्युत्पन्नं वर्तमानमेव वैषयिकं सुखान्नासमन्वेषयंतोमृगयमाणानानाविधैरुपायैर्भोगान्प्रार्थयंतस्ते पश्चात् क्षीणे स्वायुषि जातसंवेगायौवने वा अपगते परितप्यंते शोचयंते पश्चात्तापं विदधति । उक्तं च । हतंमुष्टिभिराकाशं तुषाणां कंडनं कृतं । यन्मया प्राप्य मानुष्यं सदर्थे नादरः कृतः ॥१॥ तथा । विहवावलेवनम्डिएहिं । जाइंकीरंतिजोव्वणमएण॥वयपरिणामे सरियाइंताइंहिअपखु डुक्कंति ॥१॥१४॥ येतूत्तमसत्वतया अनागतमेव तपश्चरणादावुद्यमं विदधति न ते पश्चाच्छोचंतीति तद्दर्शयितुमाह । (जेहिंकाले इत्यादि) यैरात्महितकर्तृभिः काले धर्मार्जनावसरे पराक्रांतमिंद्रियकषायपराजयाद्युद्यमोविहितोन ते पश्चान्मरणकाले वृद्धावस्थायां वा परितप्यंते न शोकाकुलान्नवंति । एकवचननिर्देशस्तु सौत्रश्छांदसत्वादिति । धर्मार्जनकालस्तु विवेकिनां प्रायशः सर्वएव तस्मात्सएव प्रधानपुरुषार्थः प्रधानएव च प्रायशः क्रियमाणोघटां प्रांचति । ततश्चायं बाल्यात्प्रनृत्यकृतविषयासंगतयाकृततपःश्चरणास्ते धीराः कर्मविदारणसहिष्णवोबंधनेन स्नेहात्मकेन कर्मणा चोत्प्राबल्येन मुक्तानावकांक्षंति असंयमजीवितं यदि वा जीविते मरणे वानिस्पृहाः संयमोद्यममतयोन्नवंतीति ॥ १५ ॥

जहा नई वेयरणी, डुत्तरा इह संमता ॥ एवं लोगंसि नारीउ,
डुत्तरा अमईमया ॥ १६ ॥ जेहिं नारीणसंजोगा, पूयणा पिठ
तोकता ॥ सव्वमेयंनिराकिच्चा, तेठिया सुसमाहिए ॥ १७ ॥

अर्थ–जहानईवेयरणी के० जेम नदी वेतरणी जेनेते डुत्तराइहसंमता के० सर्वनदीओमां तरवी डुर्लनछे एवात लोक प्रसिद्धछे एवंलोगंसिनारीउ के० एरीते लोकमांहे स्त्रीउजेने तेपण डुत्तराअमईमया के० अमतिवंत निरविवेकी पुरुषने अपार डुस्तर डुर्लंघनीय जाणवी ॥ १६ ॥ एवुं जाणीने जे हितकारी वातने ते कहेछे जेहिं के० जे पुरुषे नारीणसंजोगा के० स्त्री संबंधी संयोगना जे विपाक तेने कडवा जाणीने स्त्रीना संयोग छांमीदीधा वली पूयणापिठतोकता के० तेस्त्रीना संयोगने अर्थे जे पोताना शरीरनी पूजा विनूषाते पण जेणे उपरांठी कीधी एटले मूकीदीधी. सव्वमेयंनिराकिच्चा

के० ते पुरुषे एसर्व स्त्रीसंगादिक तथा क्षुधा तृषादिक अनुकूल प्रतिकूल उपसर्गना गण एटले समूह तेने निराकरीने जे महापुरुष संसेवित मार्गे प्रवर्त्ते ते॰ हिए के० तेपुरुष संवररूप समाधिने विषे स्थित जाणवा. ॥ १७ ॥

॥ दीपिका–यथा वैतरणी नदी सर्वनदीनां मध्ये दुस्तरा दुर्लंघ्या इह लोके सम्मता। एवं लोके नार्योऽमतिमता निर्विवेकेन नरेण दुस्तराः। यदुक्तं। सन्मार्गे तावदास्ते प्रजवति पुरुषस्तावदेवेंद्रियाणां लज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालंबते तावदेव। भ्रूचापाक्षेपमुक्ताः श्रवणपथजुषोनीलपक्ष्माणएते यावल्लीलावतीनां न हृदि धृतिमुषो दृष्टिबाणाः पतंति इति ॥ १६ ॥ यैरुत्तमैर्नारीणां संयोगास्तत्संयोगार्थमेव वस्त्रालंकारादिभिरात्मनः पूजनाः कामविभूषाः पृष्ठतः कृतास्त्यक्तास्ते महापुरुषाः सर्वमेतत्स्त्रीप्रसंगादिकं निराकृत्य सुस माधिना चित्तस्वास्थ्येन स्थिताः ॥ १७ ॥

॥ टीका–अन्यच्च (जहाइत्यादि) यथेत्युदाहरणोपन्यासार्थः। यथा वैतरणी नदीनां म ध्येऽत्यंतवेगवाहित्वात् विषमतटत्वाच्च दुस्तरा दुर्लंघ्या एवमस्मिन्नपि लोके नार्योऽमति मता निर्विवेकेन हीनसत्वेन दुःखेनोत्तीर्यंते। तथाहि। ताहावभावैः कृतविद्यानपि स्वीकु र्वंति। तथाचोक्तं। सन्मार्गे तावदास्ते प्रजवति पुरुषस्तावदेवेंद्रियाणां, लज्जां तावद्विधत्ते वि नयमपि समालंबते तावदेव ॥ भ्रूचापाक्षेपमुक्ताः श्रवणपथजुषोनीलपक्ष्माणएते यावल्ली लावतीनां न यदि धृतिमुषो दृष्टिबाणाः पतंति। तदेवं वैतरणीनदीवत् दुस्तरानार्योभवंतीति ॥ १६ ॥ अपिच। (जेहींत्यादि। यैरुत्तमसत्वैः स्त्रीसंगविपाकवेदिभिः पर्यंतकटवोनारी संयोगाः परित्यक्तास्तथा तत्संगार्थमेव वस्त्रालंकारमाल्यादिभिरात्मनः पूजनाकामविभूषा पृष्ठतः कृता परित्यक्तेत्यर्थः। सर्वमेतत्स्त्रीप्रसंगादिकं क्षुत्पिपासादिप्रतिकूलोपसर्गकदंबकं च निराकृत्य ये महापुरुषसेवितपंथानं प्रति प्रवृत्तास्ते सुसमाधिना स्वस्थचित्तवृत्तिरूपेण व्यवस्थितानोपसर्गैरनुकूलप्रतिकूलरूपैः प्रक्षोभ्यंते। अन्येतु विषयाभिष्वंगिणः रूयादिप रीषहपराजिताअंगारोपरिपतितमीनवद्रागाग्निना दह्यमानाअसमाधिना तिष्ठंतीति ॥१७॥

एते उग्घं तरिस्संति, समुद्दं ववहारिणो ॥ जत्र पाणा विसन्ना सि, किच्चंती सयकम्मणा ॥ १८ ॥ तंच भिक्खू परिन्नाय, सुव्वते समिते चरे ॥ मुसावायं च वज्जिज्जा, दिन्नादाणं च वोसिरे ॥१९॥

अर्थ–एतेके० ए पूर्वोक्त परिसहना जीपणहार ते उग्घंके० उघसंसारने तरिस्संतिके० तर शे समुद्दंववहारिणोके० समुद्रवत; एटले जेम व्यवहारिया समुद्रने नाव वडे तरेछे तेनीपरे जाणीलेवुं जत्थके० जे संसार समुद्रने विषे पाणाविके० प्राणी एटले जीव ते सन्नातिके०

खुता थका सयकम्मणाके० पोताना करेला पापकर्मे करी असातावेदनीयरूपे किच्चंती के० पीडायछे ॥ १७ ॥ हवे उपदेश कहेछे तंचनिक्खू के० ते पूर्वोक्त चारित्रिउ परिन्नायके० हेय उपादेय स्वरूप जाणीने सुव्वते के० नला व्रतनो पालक समितेचरे के० पांच समिते समितो एवो थको विचरे अने मुसावायंच वज्जिज्जा के० मृषावादने वर्जे तथा दिन्नादाणंचवोसिरे के० अदत्तादान एटले चोरी थकी वोसिरे एटले चोरीनुं त्यागकरे, एम अनुक्रमे मैथुन तथा परिग्रहने पण डांमे. ॥ १९ ॥

॥ दीपिका—एतेस्त्रीपरीषहजेतारउंघं संसारं तरिष्यंति । यथा व्यवहारिणः सांयात्रिकाः समुडं तरंति । यत्र नवौघे प्राणिनोविषयसंगैर्विषण्णाः संतः कृत्यंते पीडयंते स्वकर्मणा ॥ १७ ॥ तदेतत्प्रागुक्तं निक्षुः परिज्ञायज्ञात्वा सुव्रतः शोननव्रतयुक्तः समितः पंचसमितिनिश्चरेत् संयमानुष्ठानं कुर्यात् तथामृषावादं वर्जयेददत्तादानंच व्युत्सृजोत् त्यजेत् । आदिशब्दान्मैथुनपरिग्रहादिच त्यजेत ॥ १९ ॥

॥ टीका—स्त्र्यादिपरीषहपराजयस्य फलं दर्शयितुमाह ।(एतेइत्यादि) यएते अनंतरोक्ता अनुकूलप्रतिकूलोपसर्गजेतारएते सर्वे उघंसंसारं डुस्तरमपितरिष्यंति। डुर्ष्यांघदृष्टांतमाह । समुडंलवणसागरमिव व्यवहारिणःसांयात्रिकायानपात्रेण तरंत्येवं नवौघमपि संसारसंयमयानपात्रेण यतयस्तरिष्यंति।तथा तीर्णास्तरंतिचेति।नवौघमेव विशिनष्टि।नवौघे संसारसागरेप्राणाःप्राणिनःस्त्रीविषयसंगाद्विषण्णाःसंतःकृत्यंते पीड्यंते स्वकृतेनानुष्ठितेन पापेनकर्मणा असद्वेदनीयोदयरूपेणेति ॥१७॥ सांप्रतमुपसंहारव्याजेनोपदेशांतरविधित्सयाह । (तंच निरकूइत्यादि) । तदेतद्यथा प्रागुक्तं । यथा वैतरणीनदीवत् डुस्तरानार्योघैः परित्यक्तास्ते समाधिस्थाः संसारं तरंति स्त्रीसंगिनश्च संसारांतर्गताः स्वकृतकर्मणा कृत्यंतइति । तदेतत्सर्वं निक्षणशीलोनिक्षुः परिज्ञाय हेयोपादेयतया बुध्वा शोननानि व्रतान्यस्य सुव्रतः पंचनिः समितिनिः समितइत्यनेनोत्तरगुणावेदनं कृतमित्येवंनूतश्चरेत् संयमानुष्ठानं विदध्यात् तथा मृषावादमसद्भूतार्थनाषणं विशेषेण वर्जयेत्तथा अदत्तादानं च व्युत्सृजेद्दंतशोधनमात्रमप्यदत्तं न गृह्णीयात् । आदिग्रहणान्मैथुनादेः परिग्रहइति । तच्चमैथुनादिकं यावज्जीवमात्महितं मन्यमानः परिहरेत् ॥ १९ ॥

उड्ढमहे तिरियं वा,जे केई तस थावरा ॥ सव्वछ विरतिं कुज्जा, संति निव्वाणमाहियं ॥२०॥ इमं च धम्ममादाय,कासवेण पवेदितं॥ कुज्जा निक्खू गिलाणस्स, अगिलाए समाहिए ॥२१॥ संखाय

पेसलं धम्मं दिठिमं परिनिवुडे ॥ उवसग्गे हियासित्ता, आमो क्खाए परिव्वएज्जा सितिबेमि ॥ २२ ॥ इति श्री उवसग्गपरिन्ना ए तइयं अझयणं सम्मत्तं ॥.

अर्थ—हवे बीजा सर्वव्रत दयानी वाड रूपछे तेकारणे अहिंसाने विशेष दीपावेछे उड्ढं के० उंचो अहे के० अधो एटले नीचो तिरियं के० तीर्छो वा के० अथवा एटले सर्व लोकमांहे क्षेत्रथी प्राणातिपात कह्युं हवे द्रव्यप्राणातिपात कहेछे. जेकेईतसथावरा के० ए सर्व लोकमांहे जेकांइ त्रस अने स्थावर जीवछे सवछविरतिंकुज्जा के० तेनेविषे सर्व प्रकारे एटले करण करावण अने अनुमतियेंकरी सर्वत्रकालें विरतिपणुं करे एटले सर्व जीवोनी दयानुं पालवुं तेने संतिनिव्वाण माहियं के० ते शांति एटले कर्म दाहनी उप शम करनार कहिये तथा एनेज निरवाण एटले मोक्षपदमांपण आहितं एटले कह्युंछे.॥२०॥ हवे अध्ययननो अर्थ उपसंहरतो कहेछे. इमंच धम्ममादाय के० एम श्रुत चारित्र रूप धर्मने ग्रहण करीने ते धर्म कासवेणप्पवेदितं के० श्रीमहावीर स्वामिये प्रकाश्यो ते मार्ग आदरीने भिक्खू के० साधु ते गिलाणस्स के० गिलानने विषे वैयावच्चने कुज्जा के० करे ते केवो थको वैयावच्च करे तो के अगिलाए समाहिए के० अगिलाणपणे आत्माने समाधिमान थको जे साधु वैयावच्च करेछे तेने धन्यछे एवी समाधि धारण करतो थको वैयावृत करे ॥ २१ ॥ संखायके० सम्यक् प्रकारे जाणीने एटले जातिस्म रणादिके अथवा अन्यपासेथी सांभलीने पेसलं के० रूडो एवो धम्मं के० केवलीनुं भा प्योजे धर्म तेने दिठिमं के० सम्यक्दृष्टी जीव परिनिवुडे के० कषायने उपशमावी शीत लीभूत थको उवसग्गेहियासित्ता के० अनुकूल प्रतिकूल उपसर्गने अहिआसीने आमो क्खाए के० ज्यांसुधी मोक्षे जाय त्यांसुधी परिव्वएज्जासिके० सुधो संयम पाले तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥२२॥ ए उपसर्ग परिज्ञानामे त्रीजाध्ययननुं अर्थ समाप्त थयुं॥

॥ दीपिका—ऊर्ध्वमधः ये केचित् त्रसाः स्थावराः प्राणिनस्तेषु सर्वत्र कालेऽवस्थासु च विरतिं कुर्यात् यस्माच्छांतिनिर्वाणं कर्म दाहोपशमः शांतिस्तद्रूपं निर्वाणं मोक्षपदं आ ख्यातं कथितं यतोविरतेर्मोक्षोभवतीति ॥ २० ॥ इमं चारित्ररूपं धर्ममादाय गृहीत्वा काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितमाख्यातं ग्लानस्य साधोर्वैयावृत्तं कुर्यात् भिक्षुः। कथं।अग्लान तया यथाशक्ति समाहितः समाधिं प्राप्तः यथाग्लानस्य समाधिरुत्पद्यतेः स्वस्यच योगान विषीदंति यथा वैयावृत्त्यादिकं विधेयमिति ॥२१॥ पेशलं मोक्षप्रदं धर्मं संख्याय ज्ञात्वा दृष्टिमान् सम्यग्दर्शनी परिनिर्वृतः शांतः उपसर्गाननुकूलप्रतिकूलान् नियम्य नियंत्र्य

श्रामोक्षाय मोक्षार्थं परिव्रजेत् संयमेचरेदिति ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ इतितृतीयाध्ययने चतुर्थउद्देशकः समाप्तः ॥ ४ ॥

॥ टीका–अपरिव्रतानामहिंसायावृत्तिकल्पत्वात् तत्प्राधान्यख्यापनार्थमाह (उड्डमहे इत्यादि) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् चेत्यनेन क्षेत्रप्राणातिपातोगृहीतः। तत्रच ये केचन त्रसंतीति त्रसाद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियाः पर्याप्तापर्याप्तकनेदनिन्नास्तथा तिष्ठंतीति स्थावराः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकनेदनिन्नाइत्यनेन च द्रव्यप्राणातिपातोगृहीतः। सर्वत्र काले सर्वास्ववस्थास्वित्यनेनापि कालनावनेदनिन्नः प्राणातिपातउपात्तोऽद्रष्टव्यः। तदेवं चतुर्दशस्वपि जीवस्थानेषु कृतकारितानुमतिनिर्मनोवाक्कायैः प्राणातिपातविरतिं कुर्यादित्यनेन पादोनेनापि श्लोकद्वयेन प्राणातिपातविरत्यादयोमूलगुणाः ख्यापिताः। सांप्रतमेतेषां सर्वेषामेव मूलोत्तरगुणानां फलोद्देशेनाह । शांतिरिति कर्मदाहोपशमस्तदेवच निर्वाणं मोक्षपदं यदाख्यातं प्रतिपादितं सर्वद्वंद्वापगमरूपं तदस्यावश्यं चरणकरणानुष्ठायिनः साधोर्नवतीति ॥ २० ॥ समस्ताध्ययनार्थोपसंहारार्थमाह । (इमंचधम्ममित्यादि) इममिति पूर्वोक्तं मूलोत्तरगुणरूपं श्रुतचारित्राख्यं वा डुर्गतिधारणात् धर्ममादायाचार्योपदेशेन गृहीत्वा (किंनूतमिति)। तदेव विशिनष्टि। काश्यपेन श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिना समुत्पन्नदिव्यज्ञानेन नव्यसत्वाऽनुग्रहणानिलापिणा प्रवेदितमाख्यातं समधिगम्य निक्षुः साधुः परीषहोपसर्गैरतार्जितोग्लानस्यापरस्यसाधोर्वैयावृत्त्यं कुर्यात् । कथमिति। स्वतोऽग्लानतया यथाशक्ति समाहितइति समाधिं प्राप्तः। इदमुक्तं नवति । कृतकृत्योहमिति मन्यमानोवैयावृत्त्यादिकं कुर्यादिति ॥ २१ ॥ अन्यच्च (संखायइति) संख्यायेति सम्यक् ज्ञात्वा स्वसंमत्या अन्यतोवा श्रुत्वा (पेशलंति) मोक्षगमनं प्रत्यनुकूलं किंतद्धर्मं श्रुतचारित्राख्यं दृष्टिमान् सम्यक्दर्शनी परिनिर्वृतइति। कषायोपशमाच्छीतीनूतः परिनिर्वृतकल्पोवा उपसर्गाननुकूलप्रतिकूलान् सम्यग् नियम्यातिसह्यामोक्षाय मोक्षंयावत् परिसमंतात् व्रजेत् संयमानुष्ठानेन गच्छेदिति। इतिशब्दः समाप्त्यर्थे। ब्रवीमीति पूर्ववत्। नयचापि तथैवेति ॥ २२ ॥ उपसर्गपरिज्ञायाः समाप्तश्चतुर्थोद्देशकस्तत्परिसमाप्तौ च तृतीयाध्ययनमिति । ग्रंथाग्रं ॥७७५॥

हवे प्रथम श्रुतस्कंधने विषे चोथुं अध्ययन प्रारंनियें बैयें. त्रीजा अध्ययननेविषे जे उपसर्ग कह्या तेमांहे अनुकूल उपसर्ग सहन करवा डुर्जनहे एम कह्युं हतुं, तेमाटे स्त्रीना करेला अनुकूल उपसर्ग सहन करवाने अर्थे चोथुं अध्ययन कहियें बैयें.

जे मायरंच पियरंच, विप्पजहाय पुव्वसंजोगं ॥ एगे सहिते चरिस्सामि, आरतमेहुणो विवित्तेसु ॥ १ ॥ सुहुमेणं तं परिक्कम्म

छन्नपएण इत्थिउ मंदा ॥ उवायंपि ताउ जाणं सु जहा लिस्संति भिक्खुणो एगे ॥ २ ॥

अर्थ—(जेके०) जे उत्तमसाधु (मायरंचपियरंचके०) माता पिता अने भाइ प्रमुखनो (पु संजोगंके०) पूर्वलो संयोग एटले आगलो संबंध तथा श्वशुरादिकनो पश्चात् संबंध एटले प छलथी थयलो संबंध तेने विप्पजहायके० छांमीने एगेके० एकलो रागद्वेषरहित अने ज्ञान दर्शन तथा चारित्रे करीने सहितेके०सहित एवो छतो,चरिस्सामिके०हुं संयम पालीश एवी प्रतिज्ञा करे; वली सेहुणो के० मैथुन थकी आरत के० निवर्त्योछे विवित्तेसु के० स्त्री पशु पंमग रहित एवा उपाश्रयनो गवेषणहार एवा साधुने पण कोइएक स्त्री विघ्न तारेछे ते कहेछे ॥ १ ॥ सुहुमेणं के० कोइएक कार्यने मीशे तंपरिक्कम्म के० ते साधु ने समीपे आवीने छन्नपएण के० छाने शब्दे, हलवे हलवे, अनेक गूढार्थ पदे करी ए टले मर्मना वचने करी, इत्थिउमंदाके० कोइक स्त्री मंद एटले विवेकरहित एवी छति पु रुपने वशकरवाना उवायंपि के० उपायने ताउ के० ते स्त्री जाणंसु के० जाणे जहा के० जे उपाये करीने एगेके० कोइक भिक्खुणो के० चारित्रिउ मोहनीय कर्मना उदय थकी स्त्रीने वश थई जाय अने लिस्संति के० संयम थकी पडी जाय. ॥ २ ॥

अथ चतुर्थमध्ययनं.

॥ दीपिका—उक्तं तृतीयमध्ययनं । अथ चतुर्थमारभ्यते । तच्चस्त्रीपरीषहोजेयइत्यर्थेना चकं तस्येदमादिमंसूत्रं । जेमायरमिति । योमातरं पितरं चशब्दात्पुत्रादिकं च विप्रहाय त्य क्त्वा पूर्वसंयोगं एकोनिःसंगः सहितोज्ञानादिभिः स्वहितोवा चरिष्यामि संयमं करिष्यामी ति कृतप्रतिज्ञः । आरतमुपरतं मैथुनं कामाभिलाषोयस्य सआरतमैथुनोविविक्तेषु स्त्र्याद्य नाकुलेषु स्थानेषु चरतीति शेषः। अथवा विविक्तं स्थानं एषितुं मार्गितुं शीलमस्य विविक्तै षी॥१॥तं साधुं सूक्ष्मेन परकार्यव्यपदेशेन छन्नपदेन कपटेन पराक्रम्य समीपमागत्य मंदाम त्यमंदाः कामोद्रेककारित्वाद्विविवेकाः स्त्रियः शीलाद्भ्रंशयंति । कोर्थः । भ्रातृपुत्रव्यपदेशेन साधुसमीपमागत्य स्त्रियः संयमाद्भ्रंशयंति साधुमिति । प्रछन्नपदं गुप्ताभिधानं । यथा । का ले प्रसुप्तस्य जनार्दनस्य मेघांधकारासु च शर्वरीषु ॥ मिथ्या न भापामि विशाललनेत्रे ते प्र त्ययाये प्रथमाक्षरेषु इत्यादि । स्त्रियस्तथोपायंजानंति यथाश्लिष्यंते साधवोप्येके ॥ २ ॥

विषीदार—उक्तं तृतीयमध्ययनं सांप्रतं चतुर्थमारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः इहानंतराध्य दृष्टिमान् स॰ प्रतिपादितास्तेषां च प्रायोनुकूलाङःसहास्ततोपि स्त्रीकृताश्चतस्तज्जयार्थमिद

मध्ययनमुपदिश्यतइत्यनेन संबंधेनायातस्याध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराणि भवंति। तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारो द्वेधा। अध्ययनार्थाधिकारउद्देशार्थाधिकारश्च। तत्रा ध्ययनार्थाधिकारः प्राग्वत् निर्युक्तिकृता(थीदोषविवज्जाणा)चेवेत्यनेनस्वयमेव प्रतिपादितः। उद्देशार्थाधिकारं तूत्तरनिर्युक्तिकृदेव भणिष्यति।सांप्रतं निक्षेपः सचौघनामसूत्रालापकभेदा त्रिधा। तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽध्ययनं नामनिष्पन्ने स्त्रीपरिज्ञेति नाम। तत्र नामस्थापने क्षु सत्वादनादृत्य स्त्रीशब्दस्य द्रव्यादिनिक्षेपार्थमाह। (दवाभिलावेत्यादि)। दवाभिला वचिंधे, देवेभावेयइच्छिणिक्खेवो। अहिलावे तहसिद्धी, भावे वेयंमिउवउत्तो॥ ५६॥ तत्र द्रव्यस्त्री द्वेधा। आगमतोनोआगमतश्च। आगमतः स्त्रीपदार्थज्ञस्तत्र चानुपयुक्तो नुपयोगोद्रव्यमिति कृत्वा नोआगमतोज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तात्रिधा। एकभविका बद्धायुष्काभिमुखनामगोत्रावेति। चिन्ह्यते ज्ञायतेऽनेनेति चिह्नं स्तननेपथ्यादिकं चिह्नमा त्रेण स्त्री चिह्नस्त्री अपगतस्त्री वेदछद्मस्थः केवलीवा अन्योवा स्त्रीवेषधारी यः कश्चि दिति। वेदस्त्रीतु पुरुषाभिलाषरूपः स्त्रीवेदोदयः। अभिलापभावो तु निर्युक्तिकृदेव गाथाप श्चार्द्धेनाह। अभिलाप्यते इत्यभिलापः स्त्रीलिंगाभिधानः शब्दः। तद्यथा। शाला माला सिद्धि रिति। भावस्त्री तु द्वेधा। आगमतोनोआगमतश्च। आगमतः स्त्रीपदार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्त उपयोगोभावइति कृत्वा नोआगमतस्तु भावविषये निक्षेपे वेदेस्त्रीवेदरूपे वस्तुन्युपयुक्ता तदुपयोगानन्यत्वाद्भावस्त्री भवति। यथाऽग्नावुपयुक्तोमाणवकोऽग्निरेव भवत्येवमत्रा पि। यदिवा स्त्रिवेदनिवर्तकान्युदयप्राप्तानि यानि कर्माणि तेपूपयुक्तेति तान्यनुभवंती भावस्त्रीति। एतावानेव स्त्रियोनिक्षेपइति। परिज्ञानिक्षेपस्तु शस्त्रपरिज्ञावद् द्रष्टव्यः। सां प्रतं स्त्रीविपक्षभूतं पुरुषनिक्षेपार्थमाह। (नामंठवणाइत्यादि)। णामंठवणादविए खेत्ते कालेयपज्जणणकंमे। भोगेगुणेयभावे, दसएएपुरिसणिक्खेवा॥५७॥ नामेति संज्ञा तन्मात्रे ण पुरुषोनामपुरुषः। यथाघटः पटइति यस्य वा पुरुषइति नामेति। स्थापनापुरुषः काष्ठा दिनिवर्तितोजिनप्रतिमादिकः। द्रव्यपुरुषोज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तोनो आगमतएक भविकोबद्धायुष्कोभिमुखनामगोत्रश्चेति। द्रव्यप्रधानोवा मम्मणवणिगादिरिति। योयस्मिन सुराष्ट्रादौ क्षेत्रे भवः सक्षेत्रपुरुषोयथा सौराष्ट्रिकइति। यस्यच यत् क्षेत्रमाश्रित्य पुंस्त्वं भवतीति।योयावंतं कालं पुरुषवेदवेद्यानि कर्माणि वेदयते सकालपुरुषइति। यथा पुरिसेणं भंते पुरिसेत्ति कालओकेव चिरं होइ। गो. जहन्नेणं एगंसमयं उक्कोसेणंजोजम्मिकालेपुरि सोभ वइ। जन्नाकोइएगंमिपक्खेपुरिसोएगंमिनपुंसगोत्ति। प्रजन्यतेऽपत्यं येन तत्प्रजननं शिश्नं लिंगं तत्प्रधानः पुरुषः परपुरुषकार्यरहितत्वात् प्रजननपुरुषः। कर्मानुष्ठानं तत्प्रधानः पुरुषः कर्म पुरुषः कर्मकरादिकस्तथा भोगप्रधानः पुरुषोभोगपुरुषश्चक्रवर्त्यादिस्तथा गुणाव्यायाम विक्रमधैर्यसत्वादिकास्तत्प्रधानः पुरुषोगुणपुरुषः। भावपुरुषस्तु पुंवेदोदये वर्तमानस्तद्वेधा

नि कर्माण्यनुजवन्नित्येते दशपुरुषनिक्षेपाजवंति। सांप्रतं प्रागुल्लिंगितमुद्देशार्थाधिकार
कृत्याह (पढमेइत्यादि) पढमेसंथवसंजवमाइहिखलणाजहोतिसीलस्स। बितिएइहे
लियस्सअवज्ञाकम्मबंधोयं॥५७॥प्रथमे उद्देशके अध्ययनार्थाधिकारः।तद्यथा। स्त्रीनिःसा
संस्तवेन परिचयेन यथा संलापेन जिन्नकथाद्यालापेनादिग्रहणादंगप्रत्यंगनिरीक्षणादि
कामोत्काचकारिणोजवेदल्पसत्वस्य शीलस्य चारित्रस्य स्खलनात्तुशब्दात्तत्परित्यागोवेति
द्वितीये त्वयमर्थाधिकारस्तद्यथा। शीलस्खलितस्य साधोरिहैवास्मिन्नेव जन्मनि स्वप
रपक्षकृता तिरस्कारादिकाविमंबना तत्प्रत्ययश्च कर्मबंधस्ततश्च संसारसागरपर्यटनमिति
किं स्त्रीनिः कश्चित् शीलात् प्रच्याव्यात्मवशः कृतोयेनैवमुच्यते कृतइति दर्शयितु
ह। (सूरामोइत्यादि) सूरामोमन्नंता, कतिववियाहिंजवहिप्पहाणाहिं ॥ गहियाः
जयपक्ञोवकूलवालादिणोबहवे ॥ ५९ ॥ बहवः पुरुषाअजयप्रद्योतकूलवालादयः श
वयमित्येवं मन्यमानाः। मो इतिनिपातोवाक्यालंकारार्थः। कृत्रिमाभिः सद्भावरहिता
स्त्रीभिस्तथोपधिर्माया तत्प्रधानाभिः कृतकपटशतानिर्गृहीत्वा आत्मवशतां नीताः के
राज्यादपरे शीलात् प्रच्याव्येहैव विमंबनां प्रापिताः॥ अजयकुमारादिकथानकानिच मू
दावश्यकादवगंतव्यानि। कथानकत्रयोपन्यासस्तु यथाक्रमं मत्यंबुद्धिविक्रमात्पंतबु
विक्रमतपस्वित्वख्यापनार्थइति। यतएवं ततोयत्कर्तव्यं तदाह। तम्हाणजवीसंजोगं त
णिब्भमेवइत्थीसु ॥ पढमुद्देसेजणिया, जेदोसातेगणंतेणं ॥ ६०॥ (तम्हाइत्यादि)। यत
त् स्त्रियः सुगतिमार्गार्गलामायाप्रधानावंचनानिपुणास्तस्मादेतदवगम्य नैव विश्रंभ
श्वासस्तासां विवेकिना नित्यं सदा गंतव्योयातव्यः कर्तव्यइत्यर्थः। ये दोषाः प्रथम
शके अस्योपलक्षणार्थत्वात् द्वितीयेच तान् गणयता पर्यालोचयता तासां मूर्तिमत
टराशिभूतानामात्महितमिच्छता नविश्वसनीयमिति। अपिच। सुसमत्थावसमत्था,
रंतीअप्पसत्तियापुरिसा। दीसंतीसूरवादीणारीवसगाणतेसूरा ॥६१॥(सुसमत्थेत्यादि)।
नीकविजयादौ सुष्ठु समर्थाअपि संतः पुरुषाः स्त्रीभिरात्मवशीकृताअसमर्थाभूक्षेपम
जीरवः क्रियंतेल्पसात्विकाः स्त्रीणामपि पादपतनादिचाटुकरणेन निःसाराः क्रियंते
था दृश्यंते प्रत्यक्षेणोपलभ्यंते। शूरमात्मानं वदितुं शीलं येषां ते शूरवादिनोपि नारी
गाः संतोदीनतां गताः। एवंभूताश्च नते शूराइति। तस्मात् स्थितमेतदविश्वास्याः स्त्रि
ति। उक्तंच। कोवीससेज्ञतासिं,कतिवयभरियाणडुच्चियगणे। खणरत्तविरत्तेणं, धि
इत्थीणहियियाणं ॥ १ ॥ असुं भणंतिपुरउ असुंपासेइविज्ञमाणीउ। अन्नंच तासिं
ए, जंचखमंतंकरिंतिपुणो ॥२॥ कोएयाणंणाहिइ, वेत्तलयागुम्मगुविलहियियाणं ॥ ना
ग्गासाणं तहुपन्नंभणंतीणं ॥ ३ ॥ महिलायरत्तमेत्ता, उच्छुखंमंचसक्कराचेव। सा
विरत्तमित्ताणिंबंकूरेविसेसेत्ति ॥४॥ महिलादिज्ञकरेज्ञवमारिज्ञवसंठविज्ञमणुस्सं।

जीवाविज्जाअहवरणरं वंचयावेज्जा ॥ ५ ॥ णविररकंतेसुकयं, णविणेहंणवियदाणसम्माणं ॥ णकुलंणपुत्तयंआयतंच शीलंमहिलियाउ ॥ ६ ॥ मावीसंभहताणं महिलाहिययाणकवड भरियाणं ॥ सिसुसेहनिद्दयाणं अलियवयणजंपणरयाणं ॥ ७ ॥ मारेइजियंतंपिहुमयंपि अणुमरइकाइभत्तारं ॥ विसहरगइवचरियं वंकविवंकंमहेलाणं ॥ ८ ॥ गंगाएवालुयंसागरेजलंहिमवउयपरिमाणं । जाणंति बुद्धिमंतामहिलाहिययंणजाणंति ॥ ९ ॥ रोवावंतिरुवंतिय अलियंजपंतिपत्तियावंति ॥ कवडेणयखंतिविसंमरंतिणयजंतिसम्भावं ॥१०॥ चिंतिंतिकज्जमसुंअसुंसंठवइभासईअसुं॥आढवइकुणइअसुं माइणग्गूणियभिसारो ॥ ११ ॥ असयारंभाणतहासवेसिंलोगगरहणिज्जाणं ॥ परलोगवेरियाणंकारणयं चेवइत्थीउ ॥ १२ ॥ अहवाकोजुवईणं जाणइचरियंसहावकुमिलाणं ॥ दोसाणआगरोच्चिय जणेसरीरेवसइकासा ॥ १३ ॥ मूलडुच्चरियाणं हवइउणरयस्सवत्तिणी ॥ विवुला मोरकस्समहाविग्धंवज्जेयवासयानारी ॥ १४ ॥ धसातेवरपुरिसाजेच्चियमोत्तूणणिययजुवईउ ॥ पवइयाकयनियमासिनमयलमणुत्तरंपत्ता ॥ १५ ॥ अधुना यादृक्षः शूरोभवति तादृक्षं दर्शयितुमाह । धम्मंमिजोदढमइसोसूरोसत्तिउयवीरोय ॥ णहुधम्मणिरुत्साहोपुरिसोसूरोसुवलिउवि ॥ ६२ ॥ (धम्ममित्यादि) । धर्मे श्रुतचारित्राख्ये दृढा निश्चला मतिर्यस्य सतथा एवंभूतः सइंडियनोइंडियारिजयाच्छूरस्तथा सात्विकोमहासत्वोपेतोऽसावेव वीरः स्वकर्मदारुणसमर्थोऽसावेवेति । किमिति यतोनैव धर्मेनिरुत्साहः सदनुष्ठाननिरुद्यमः सत्पुरुषाचीर्णमार्गपरिभ्रष्टः पुरुषः सुष्टु बलवानपि शूरोभवतीति । एतानेव दोषान् पुरुषसंबंधेन स्त्रीणामपि दर्शयितुमाह । एतेचेवयदोसा पुरीससमाएविइत्थियाणंपि ॥ तम्हाणअप्पमाउविरागमग्गंमितासिंतु ॥६७॥(एतेचेवेत्यादि)। ये प्राक्शीलप्रध्वंसादयः स्त्रीपरिचयादिभ्यः पुरुषाणामभिहिताएतएव न्यूनाधिकाः पुरुषेण सह यः समायः संबंधस्तस्मिन स्त्रीणामपि यस्माद्दोषाभवंति तस्मात्तासामपि विरागमार्गे प्रवृत्तानां पुरुषपरिचयादिपरिहारलक्षणोऽप्रमादएव श्रेयानिति । एवं यदुक्तं स्त्रीपरिज्ञेति तत्पुरुषोत्तमधर्मप्रतिपादनार्थमन्यथा पुरुषपरिज्ञेत्यपि वक्तव्येति । सांप्रतं सूत्रानुगमे स्वलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (जेमायरंचेत्यादि) । अस्य चाऽयमनंतरसूत्रेण सह संबंधः । तद्यथा । अनंतरसूत्रेभिहितमामोक्षाय परिव्रजेदित्येतच्चाऽशेषाभिष्वंगवर्जितस्य भवतीत्यतोऽनेन तदभिष्वंगवर्जनमभिधीयते । यः कश्चिदुत्तमसत्वोमातरं पितरं जननीं जनयितारमेतद्ग्रहणादन्यदपि भ्रातृपुत्रादिकं पूर्वसंयोगं तथा श्वश्रूश्वशुरादिकं पश्चात्संयोगं च विप्रहाय त्यक्त्वा । चकारौसमुच्चयार्थौ । एकोमातापित्राद्यभिष्वंगवर्जितः कषायरहितोवा तथा सहितोज्ञानदर्शनचारित्रैः स्वस्मै वा हितः स्वहितः परमार्थानुष्ठानविधायी। चरिष्यामि संयमं करिष्यामीत्येवं कृतप्रतिज्ञः । ता मेव प्रतिज्ञां सर्वप्रधान

नूतां लेशतोदर्शयति । आरतमुपरतं मैथुनं कामाभिलाषोयस्यासावारतमैथुनस्तरेवंभू तोविविक्तेषु स्त्रीपशुपंमकवर्जितेषु स्थानेषु चरिष्यामीत्येवं सम्यगुत्थानेनोत्थाय विहरती ति । क्वचित्पाठो (विवित्तेसित्ति) विविक्तं स्त्रीपंडकादिरहितं स्थानं संयमानुपरोधे षितुं शीलमस्य तथेति ॥ १ ॥ तस्यैवं कृतप्रतिज्ञस्य साधोर्यथाभवत्यविवेकिस्त्रीजनात् दर्शयितुमाह । (सुहुमेणेत्यादि) । तं महापुरुषं साधुं सूक्ष्मेणाऽपरकार्यव्यपदेशभूते न छन्नपदेनेति छद्मना कपटजालेन पराक्रम्य तत्समीपमागत्य यदिवा पराक्रम्येति शील स्खलनयोग्यतापत्त्या अभिभूय काः स्त्रियः कूलवालकादीनामिव मागधगणिकाद्यानाना विधकपटशतकरणदक्षाविविधबिब्बोकवत्योभावमंदाः कामोद्रेकविधायितया सदसद्वि वेकविकलाः समीपमागत्य शीलात् ध्वंसयंति । एतदुक्तं भवति भ्रातृपुत्रव्यपदेशेन साधुस मीपमागत्य संयमाद् भ्रंशयंति । तथाचोक्तं । पियपुत्तभाइ किडगाणत्तूचकिमगायसव णकिडगाय॥एतेजोव्वण किमगा पच्छन्नपइमहिलियाणं । यदिवा छन्नपदेनेति गुप्ताभि मानेन । तद्यथा । काले प्रसुप्तस्य जनार्दनस्य मेघांधकारासु च शर्वरीषु॥मिथ्या न भाषा मि विशाललनेत्रे ते प्रत्ययाये प्रथमाक्षरेषु इत्यादि ॥ ताः स्त्रीयो मायाप्रधानाः प्रतारणो पायमपि जानंत्युत्पन्नप्रतिभतया विदंति । पाठांतरं वा ज्ञातवत्यः यथाश्लिष्यंते विवेकि नोपि साधवएके तथाविधकर्मोदयात् तासु संगं उपयांति ॥ २ ॥

पासे भिसं णिसीयंति, अभिक्खणं पोसवत्थं परिहिंति ॥ कायं अहे वि दंसंति, बाहूउद्धुकक्खमणुव्वजे ॥ ३ ॥ सयणासणेहिं जोगेहिं, इत्थिउ एगता णिमंतंति ॥ एयाणिचेव सेजाणे, पासाणि विरूवरूवाणि॥४॥

अर्थ—हवे जे उपाये करी ते स्त्री साधुने विप्रतारे ते उपाय कहेछे. ते स्त्री पासेके० साधुनी पासे भिसं के० ढुकडी एटले नजीक आवी णिसीयंति के० बेशीने अभिक्खणं के० वारंवार पोस के० जेरीते कामविकार पोषाय तेरीते वत्थपरिहिंति के० वस्त्र पहेरे कायंअहे के० नीचलुं शरीर जे जंघादिक ते विदंसंति के० देखाडे बाहूउद्धु के० वळी ने बाहु ऊंची उपाडीने कक्खं के० कांख देखाडती छती अणुव्वजे के० साधुने सन्मुख जाय अथवा साधुने सन्मुख नजर राखे ॥ ३ ॥ वळी इत्थिउ एगता के० कोई एक स्त्री एकदा प्रस्तावे जोगेहिं के० साधुने लेवा योग्य एवा सयणासणेहिं के० सय नाशन एटले पाट पाटलादिके करी निर्व्यंजन वेलाये स्नेहना वचने करी णिमंतंतिके० निमंत्रणा करे तेवारे विरूवरूवाणि एयाणि के० विरूपरूप एवा ए पूर्वोक्त नानाप्र कारना जे पाट पाटलादिक तेने पासाणिके० ए मुजने बंधनना करनाराछे एरीते सेके० ते साधु जाणे के० जाणीने त्यां बेसे नही. चेव शब्द पद पूरणार्थेछे. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—नृशं सस्नेहं निषीदंति तिष्ठंतिस्त्रियः पुष्णात्यतिपोषं मनोहरवस्त्रं परिद धति अनीक्ष्णं निरंतरं तथाधःकायं ऊर्वादिकं दर्शयंति बाहून् उद्धृत्य ऊर्ध्वीकृत्य कक्षा मादर्श्यानुव्रजेत् अनुकूलं गच्छेत् ॥ ३ ॥ शयनासनैर्योग्यैर्नोगयोग्यैः स्त्रियएकदा नि र्व्यंजनकालादौ निमंत्रयंति प्रार्थयंति साधुं । ससाधुस्तानि शयनासनानि पाशरूपाणि जानीयात् बंधनरूपाणि अवगच्छेत विरूपरूपाणि तानि नानाविधानि ॥ ४ ॥

॥ टीका—तानेव सूक्ष्मप्रतारणोपायान् दर्शयितुमाह । (पासेनिसमित्यादि) पार्श्वं समीपे नृशमत्यर्थमुरःपीडमतिस्नेहमाविष्कुर्वत्योनिषीदंति विश्रंनमापादयितुमुपविशं तीति । तथा कामं पुष्णातीति पोषं कामोत्काचकारि शोन्ननमित्यर्थः । तच्च तद्व स्त्रं तदनीक्ष्णमनवरतं तेन शिथिलादिव्यपदेशेन परिदधति स्वानिलापमावेदयंत्यः सा धुप्रतारणार्थं परिधानं शिथिलीकृत्य पुनर्निबध्नंतीति । तथाऽधःकायमूर्वादिकमनंगोद्दीप नाय दर्शयंति प्रकटयंति तथा बाहुमुद्धृत्य कक्षामादर्श्याऽनुकूलं साध्वनिमुखं व्रजेत् ग च्छेत् । संनावनायां लिङ् । संनाव्यते एतदनंगप्रत्यंगसंदर्शकत्वं स्त्रीणामिति ॥३॥ अपिच । (सयणासणेइत्यादि) शय्यतेऽस्मिन्निति शयनं पर्यंकादि तथाऽऽस्यतेऽस्मिन्नित्यासनमा संदकादीत्येवमादिना योग्येनोपन्नोगार्हेण कालोचितेन स्त्रियोयोषितएकदेति विविक्त देशकालादौ निमंत्रयंत्यन्युपगमं ग्राहयंति । इदमुक्तं नवति । शयनासनाद्युपन्नोगंप्रति साधुं प्रार्थयंति । एतानेव शयनासननिमंत्रणरूपान् ससाधुर्विदितवेद्यः परमार्थदर्शी जा नीयादवबुध्येत स्त्रीसंबंधिकारिणः पाशयंति बध्नंतीति पाशास्तान्विरूपरूपान् नानाप्रका रानिति । इदमुक्तं नवति । स्त्रियोह्यासन्नगामिन्योनवंति । तथाचोक्तं । अंबं वा निंबं वाअप्ना सगुणेन आरुहाइ वल्ली । एवं इछीतोविजं आसन्नं तमिछंति ॥१॥ तदेवंनूताः स्त्रियोज्ञात्वा न तानिः सार्धं साधुः संगं कुर्याद्यतस्तडुपचारादिकःसंगोडुष्परिहार्योनवति । तडुक्तं।जंइछसि पैतुंजे, पुव्विंतं आमिसेण गिण्हाहि॥आमिसपासनिबद्धोकाहिइकज्जंअकज्जंवा॥ २ ॥ ४ ॥

नोतासु चरकु संधेज्जा, नोविय साहसं समन्निजाणे ॥ णोसहियंपि वि हरेज्जा, एवमप्पासु रक्खिउ होइ ॥५॥ आमंतिय उस्सविय निक्कु आ यसा निमंतंति ॥ एताणि चेव सेजाणे, सद्दाणि विरूवरूवाणि ॥ ६ ॥

अर्थ—नो तासुचरकुसंधेज्जा के० तेस्त्रीनी दृष्टी सायें साधु पोतानी दृष्टी मेलवे न ही. तथा नोवियसाहसं के० मैथुनादिक अकार्यनुं करवुं करे नही, अने समन्निजाणे के० ते स्त्रीनुं कहेवुं जे विषयनी प्रार्थनारूप वचन तेने अनुमोदे नही. णोसहियं पिवि हरेज्जा के० वली ते स्त्रीनीसाथे ग्रामादिकने विषे विचरे नही. एव के० एरीते रहेता

यका अप्पा के० पोताना आत्मानु रक्खिउं के० रक्षण सु के० रुमीरीते होइ के० य ॥ ५ ॥ स्त्री स्वनावे अकार्य करवाने सावधान होयछे, तेमाटे निरकु के०साधुने मंतिय के० आमंत्रीने कहे के हुं अमुक वखते आवीश, एम संकेत कहीने अ विय के० विश्वास उपजावे आयसा के० पोते पोताना आत्माने मैथुन सेववाने एकदा प्रस्तावे निमंतंति के० साधुने निमंत्रण करे, अथवा साधुने निवारवा नणी स्त्री एम कहेके आयसा के० माहारा नर्तारना आदेशथी हुं तमारा पाशे आवी छुं, रीते पोताने वश करवाना वचन कहे एताणिचके० ए पूर्वोक्त वचनने करी अंहींच रणार्थी छे एव के० एम से के० ते साधु जाणे के० ज्ञ परिज्ञायेकरी स्त्रीनुं स्वरूप जे तेवुं जाणे सुंजाणे तोके सद्दाणि विरूवरूवाणि के० विषय संबधिया नानाप्रकार हावनावादिकरूप जे स्त्रीना शब्द तेने साधु बंध पासना कारण जाणे. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–नो तासु स्त्रीषु चक्षुः संदध्यात् संधयेत् । स्वदृष्टिः स्त्रीदृष्टौ न निवेशयेदित्यर्थ यतिः कार्ये ईषदवज्ञया निरीक्षेत । यडुक्तं । कार्येपीपन्मतिमान्निरीक्षते योषिदंगमस्थिरय अस्निग्धयादृशावज्ञयाह्यकुपितोपि कुपितइवेति॥तथा नोपि च साहसमकार्यकरणं तत्प्र नया समनुजानीयात्प्रतिपद्येत स्त्रीनिः सार्धं ग्रामादौ न विहरेन्नगछेत्। अपिशब्दात्ताभिः कासने नतिष्ठेत्॥ यडुक्तं। मात्रा स्वस्रा डुहित्रा वा न विविक्तासनो नवेत्॥बलवानिंद्रियग्र पंमितोप्यत्र मुह्यतीति । एवमात्मा सुरक्षितोनवति ॥ ५ ॥ ताः स्त्रियः साधुमामंत्र्य केतं ग्राहयित्वा (वस्सविअत्ति) संस्थाप्य उच्चावचैर्विश्वासजनकैरालापैर्विश्रंभे पातयि निक्षुं आत्मनोनिमंत्रयंति आत्मनोगेन साधुमन्युपगमं कारयंति सच निक्षुरेतान्विरूपरू न् नानाविधान् शब्दादिविषयान् ज्ञपरिज्ञया जानीयात् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् ।

॥ टीका–किंच । (णोतासु इत्यादि) नोनैव तासु शयनासनोपमंत्रणपाशा शिकासु स्त्रीषु चक्षुर्नेत्रं संदध्यात्संधयेद्वा न तद्दृष्टौ स्वदृष्टिं निवेशयेत् । सतिच प्रय ने ईषदवज्ञया निरीक्षेत । तथाचोक्तं । कार्येपीषन्मतिमान्निरीक्षते योषिदंगमस्थिरय अस्निग्धया दृशाऽवज्ञया ह्यकुपितोपि कुपितइव ॥ १ ॥ तथा नापिच साहसमकार्य णं तत्प्रार्थनया समनुजानीयात्प्रतिपद्येत । तथा ह्यसति साहसमेतत्संग्रामावतरण न्नरकपातादिविपाकवेदिनोपि साधोर्योषिदासंजनमिति । तथा नैव स्त्रीनिः सार्धं ग्राम विहरेत् गछेत् । अपिशब्दान्न तानिः सार्धं विविक्तासनोनवेद्यतोमहापापस्थानमेतद्य यत् स्त्रीनिः सह सांगत्यमिति ॥ तथाचोक्तं । मात्रा स्वस्रा डुहित्रा वा नविविक्ता नवेत् ॥ बलवानिंद्रियग्रामः पंमितोप्यत्रमुह्यति ॥ १ ॥ एवमनेन स्त्रीसंगवर्जनेनात्म

मस्तापायस्थानेभ्योरक्षितोभवति । यतः सर्वापायानां स्त्रीसंबंधः कारणमतः स्वहितार्थी तत्संगं दूरतः परिहरेदिति ॥ ५ ॥ कथं चैताः पाशाइव पाशिकाइत्याह (आमंतिये त्यादि) स्त्रियोहि स्वभावेनैवाकर्तव्यप्रवणाः साधुमामंत्र्य यथाहममुकस्यां वेलायां भव दंतिकमागमिष्यामीत्येवं संकेतं ग्राहित्वा तथा (उस्सवियत्ति) संस्थाप्योच्चावचैर्वि श्रंभजनकैरालापैर्विश्रंभे पातयित्वा पुनरकार्यकरणायात्मना निमंत्रयंत्यात्मनोपभोगेन साधुमभ्युपगमं कारयंति । यदिवा साधोर्भयापहरणार्थं ताएव योषितः प्रोचुस्तद्यथा भ तारमामंत्र्याएवाहमिहायाता तथा संस्थाप्य भोजनपदधावनशयनादिकया क्रियया पचर्य ततस्त्वांतिकमागतेत्यतोभवता सर्वां मद्भर्तृजनितामाशंकां परित्यज्य निर्भयेन भाव्यमित्येवमादिकैर्वचोभिर्विश्रंभमुत्पाद्य भिक्षुमात्मना निमंत्रयंते । युष्मदीयमिदं शरीरकं यादृक्स्य क्षोदीयसोगरायसोवा कार्यस्य क्षमं तत्रैव निमज्जतामित्येवमुपप्र लोभयंति । सच भिक्षुरवगतपरमार्थएतानेव विरूपरूपान्नानाप्रकारान् शब्दादीन् विप यान् तत्स्वरूपनिरूपणतोज्ञपरिज्ञया जानीयाद्यथैते स्त्रीसंसर्गापादिताः शब्दादयोविप याडुर्गतिगमनैकहेतवः सन्मार्गार्गलारूपाइत्येवमवबुध्येत । यथा प्रत्याख्यानपरिज्ञया च तद्विपाकागमेन परिहरेदिति ॥ ६ ॥

मणबंधणेहिं णेगेहिं, कलुण विणीयमुवगसित्ताणं॥अडु मंजुलाइं भासं
ति, आणवयंति भिन्नकहाहिं॥७॥ सीहं जहा च कुणिमेणं, निभ्रयमेगच
रंति पासेणं ॥ एवं त्थियाउ बंधंति संवुडं एगतियमणगारं॥ ८ ॥

अर्थ–(मणबंधणेहिंके०) मनने बंधन करे एवा अणेगेहिंके०अनेक प्रपंचकरती कलुण के० जे थकी पुरुषने दया उपजे तेवा करुणाना वचने विणीय के० विनय पूर्वक उवगसित्ताणं के० साधुनी पाशे आवीने अडु के० अथवा निरंतर मंजुलाइं के० मधुर स्नेह सहित मनोहर वचन भासंति के० बोले तथा भिन्नकहाहिं के० भि न्नकथा एटले रहस्यवार्ता जे मैथुन संबंधि गाना वचन तेणे करी आणवयंति के० से वकनी पेरे साधुने ते स्त्री पोतानी आज्ञा करावे, अथवा भिन्नकहाहिं के० मैथुन संबं धिया वचनेकरी ते स्त्री आणवयंति के० साधुनुं चित्त मैथुन सेववा भणी प्रवर्त्ते तेम मैथुन सेववानी आज्ञा आपी पोतानी आज्ञायें साधुने प्रवर्त्तावे ॥ ७ ॥ हवे दृष्टांते करी देखाडेडे. जहाचके० जेम सीहंकुणिमेणंके० सिंहने मांसे करी लोभवीने निभ्रयं के० निर्भ य करीने एगचरंति के० एकलो थको विचरे तेम करी पछी तेने पासेणं के० अनेक बंधने बांधीने कदर्थियें एवं के० एम त्थियाउ के० स्त्रीपण संवुडं के० जेणे मन वचन

अने कायाने संवस्याछे एवा एगतियं अणगारंके० कोइएक सुव्रती अणगारने स्नेह बंधनेकरी बंधंतिके० बांधे धर्म थकी पाडे तो बीजा सामान्य साधुनुं केवुंज शुं. ॥८॥

॥ दीपिका—मनो बध्यते यैस्तानि मनोबंधनानि मंजुलालापस्निग्धावलोकनांगप्र कटनादीनि तैरनेकैः करुणालापविनयपूर्वकं (उवगसित्ताणंति) उपसंश्लिष्य समी पमागत्याथवा तदनंतरं मंजुलानि पेशलानि नाषंते । तथा निन्नकथानीरहस्यालापै मैथुनसंबद्धैर्वचोनिः साधोश्चित्तमकार्यकरणंप्रति आज्ञापयंति प्रवर्तयंति ॥ ७ ॥ यथा सिंहं (कुणिमेणं) मांसेनोपलोन्य निर्नयमेकचरं पाशेन यंत्रेण बध्नंति एवं स्त्रियोप्येकं कंचनाऽनगारं साधुं संवृतमपि बध्नंति स्ववशं कुर्वंति ॥ ८ ॥

॥ टीका—अन्यच्च । (मणबंधणेहिइत्यादि) मनोबध्यते यैस्तानि मनोबंधनानि मं जुलालापस्निग्धावलोकनांगप्रत्यंगप्रकटनादीनि । तथाचोक्तं । णाहपियकं तसामिय दतियजियाउ तुमं महपिउत्ति। जीएजीयामिअहं पहवसितंमेशरीरस्स ॥ १ ॥ इत्या दिनिरनेकैः प्रपंचैः करुणालापविनयपूर्वकं (उवगसित्ताणंति) उपसंश्लिष्य समीपमा गत्याऽथ तदनंतरं मंजुलानि पेशलानि विश्रंनजनकानि कामोत्काचकानि वा नाषंते। तडुक्तं। मितमहुररिनिय जंपुल्लएहिईसीकमरक हसिएहिं॥ सविगारेहिवरागंहिययं पिहिय मयच्छीए ॥१॥तथा निन्नकथानीरहस्यालापैमैथुनसंबद्धैर्वचोनिः साधोश्चित्तमादाय तमका र्यकरणं प्रत्याज्ञापयंति प्रवर्तयंति स्ववशं वा ज्ञात्वा कर्मकरवदाज्ञां कारयंतीति ॥ ७ ॥ अपिच । (सीहंजहेत्यादि) यथेति दृष्टांतोपदर्शनार्थे । यथा बंधनविधिज्ञाः सिंहं पिशि तादिनामिपेणोपप्रलोन्य निर्नयं गतनीकं निर्नयत्वादेवैकचरं पाशेन गलयंत्रादिना बध्नं ति बद्ध्वाच बहुप्रकारं कदर्थयंत्येवं स्त्रियोनानाविधैरुपायैः पेशलनापणादिनिः (एगतियं ति) कंचन तथाविधमनगारं साधुं संवृतमपि मनोवाक्कायगुप्तमपि बध्नंति स्ववशं कुर्वं तीति । संवृतग्रहणं च स्त्रीणां सामर्थ्योपदर्शनार्थं। तथाहि। संवृतोपि तानिर्बध्यते किं पुनरपरोऽसंवृतइति ॥ ८ ॥

अह तछ पुणो णमयंती रहकारोव णेमि अणुपुव्वी ॥ बद्धे मिएव पासे
णं फंदंते वि णमुच्चए ताहे ॥ए॥ अह से णुतप्पई पछा नोच्चा पायसंच
विसम्मिसं ॥ एवं विवेगमादाय, संवासो नविकप्पए दविए ॥ १० ॥

अर्थ—अथ के० हवे साधुने पोताने वश करीने पठी तछ के० त्यांते स्त्री पोताना कार्यनेविषे ते साधुने पुणोके० वली णमयंती के० नमाडे एटले सेवकनी पेरे कार्य

रावे रहकारोव के० जेम रथकार सूत्रधार अणुपुव्वीके० अनुक्रमे ऐमिके० पइडानो वाहे रलो प्रदेश नमाडे तेम साधुने ते स्त्री पोताना कार्य करवाने विषे नमाडे प्रवर्त्तावे, तेवारे ते साधु, बद्धे मिएवपासेणंके० मृगनी पेरे स्त्रीरूप पासे करी बंधाणो थको जेम मृग पासे करी बंधाणो होय ते फंदंतेविके० फंदाणोथको अरहो परहो हाले चाले पण ताहेके० ते पास थकी णमुच्चएके० मूकाय नही तेम साधु पण स्त्रीरूपीआ पास थकी मूकाय नही॥ए॥ अथ के० हवे स्त्रीरूपीआ पासमां पड्या पछी, सेके० ते साधु णुत्तप्पइ के० पश्चात्ताप करे पछा के० पछी संयम छांमीने गृहवास आदरे, तेवारे जूरे जेम विसम्मिसं के० विषमि श्रित एवो पायसं के० दूध तेने नोच्चा के० जमीने पछी पश्चात्ताप करे के ए अन्नमे सा वास्ते आसेव्यो एम चिंतवे चके० तेनी पेरे ते साधु पण पश्चाताप करे एवंके० एवो वि वेग मादायके० विवेक ग्रहण करीने दविए के० मुक्ति गमन योग्य एवा साधुने संयमनी छे षणी एवीजे स्त्री तेनी साथे संवासो नविकप्पएके० संवास संसर्ग करवो नकल्पे. ॥१०॥

॥ दीपिका–अथ पुनस्तत्र स्वात्मनि अवस्तुनि नमयंति आसक्तं कुर्वंति । यथा रथ कारोवर्धकिर्नेमिचक्रधाराकाष्ठं आनुपूर्व्या नमयति एवं स्त्रियोपि साधुं नमयंति स्ववशं कुर्वंति । सच साधुर्मृगवत् पाशेन बद्धोमोक्षार्थं स्पंदमानोपि चलमानोपि पाशान्नमुच्य ते ॥ ए ॥ अथ ससाधुः पाशबद्धमृगइवाऽनुतप्यते पश्चात्तापं करोति । यतः । मया परि जनस्यार्थे कृतं कर्म सुदारुणं ॥ एकाकी तेन दह्येहं गतास्ते फलभागिनइति । यथा कश्चिद्वि षमिश्रं पायसं भुक्त्वाऽनुतप्यते एवं पूर्वोक्तप्रकारेण विपाकं स्वानुष्ठानस्यादाय प्राप्य ताभिः सह संवासोनकल्पते द्रव्यमुक्तियोग्ये साधौ ॥ १० ॥

॥ टीका–किंच । (अहतहेत्यादि) अथेति स्ववशीकरणादनंतरं पुनस्तत्र स्वाभिप्रे ते वस्तुनि नमयंति प्रह्वं कुर्वंति । यथा रथकारोवार्धकिर्नेमिकाष्ठं चक्रबाह्यभ्रमिरूपमा नुपूर्व्या नमयत्येवं ताअपि साधुं स्वकार्यानुकूल्ये प्रवर्तयंति । सच साधुर्मृगवत् पाशेन बद्धोमोक्षार्थं स्पंदमानोपि ततः पाशान्नमुच्यतइति ॥ ए ॥ किंच । (अहसेइत्यादि) अ थासौ साधुः स्त्रीपाशावबद्धोमृगवत् कूटके पतितः सन् कुटुंबकृते अहर्निशं क्लिश्यमानः प श्चादनुतप्यते । तथाहि । गृहांतर्गतानामेतदवश्यं संभाव्यते । तद्यथा । कोधायचकोन्न मनिंतु कोहोयणाहिं काहोविक्कचवित्त कोभग्गाम् चपहिय चपरिणीय चकोवकुमार चपडि यतो जीवखडणडेहि परबंधइ पवेहभारउ । तथा यत् । मया परिजनस्यार्थे. कृतं कर्म सु दारुणं ॥ एकाकी तेन दह्येहं गतास्ते फलभागिनः ॥ १ ॥ इत्येवं बहुप्रकारं महामोहा त्मकं कुटुंबकूटके पतिताअनुतप्यंते । अमुमेवार्थं दृष्टांतेन स्पष्टयति । यथा कश्चिद्विष

मिश्रं जोजनं जुक्का पश्चात्तत्र कृतावेगाकुलितोऽनुतप्यते । तद्यथा । किमेतन्मया पापेन सांप्रतेक्षिणा सुखरसिकतया विपाककटुकमेवंजूतं जोजनमास्वादितमिति । एवमसावपि पुत्रपौत्रडुहितृजामातृस्वसृभ्रातृव्यजागिनेयादीनां जोजनपरिधानपरिणयनालंकारजातकर्मत द्व्याधिचिकित्सार्चिताकुलोपगतस्वशरीरकर्तव्यः प्रनष्टैहिकामुष्मिकानुष्ठानोऽहर्निशं तद्व्यापारव्याकुलितमतिः परितप्यते । तदेवमनंतरोक्तया नीत्या विपाकं सानुतनस्यादाय प्राप्य । विवेकमिति वा क्वचित्पाठस्तद्विपाकं विवेकं चादाय गृहीत्वा स्त्रीभिश्चारित्रपरिपंथिनीभिः सार्धं संवासोवसतिरेकत्र नकल्पते न युज्यते कस्मिन्द्रव्यजूते मुक्तिगमनयोग्ये रागद्वेषरहिते वा साधौ । यतस्ताभिः सार्धं संवासोवश्यं विवेकिनामपि सदनुष्ठानविघातकारीति ॥ १० ॥

तम्हाउ वज्जए इत्थी,.विसलित्तंच कंटगं नच्चा ॥ उए कुलाणि वसवत्ती आघाते ण सेवि णिग्गंथे॥ ११ ॥ जे एयं उंबं अणुगिद्धा अन्नयरा हुंति कुसीलाणं ॥ सुतवस्सिएवि से जिक्खु, नोविहरे सह णमिच्छीसु ॥१२॥

अर्थ—जे कारण माटे स्त्रीना समागम थकी कडवा विपाक प्राप्त थाय तम्हा के० तेकारणे इत्थीके० स्त्रीने वज्जएके० वर्जे. तु शब्द थकी स्त्रीनी साथे आलाप संलाप पण करे नहिं, जेम विसलित्तंच के० विषेकरी लिप्त एटले विषेकरी खरड्यो एवो कंटगंके० कांटो नच्चाके० जाणीने तेने दूर थकी टालियें, तेम साधु होयते स्त्रीने विषे करी खरड्या कांटानी पेरे डुर थकी टाले तथा उए के० एकलो थको कुलाणि के० ते गृहस्थने कुलेजइ वसवत्ती के० तेनो वशवर्त्ती थको जे साधु आघाते के० धर्मकथा कहे सेवि के० ते द्रव्यलिंगी साधु पण णणिग्गंथे के० निर्ग्रंथ नही निषिद्धाचरण सेवनादित्यर्थः॥ ११ ॥ जे एयं के० जे चारित्रिया ए स्त्री संबंधिया उंबं के० निंदनिक तेने विषे अणुगिद्धा के० गृद्ध एटले मूर्च्छा थका होय ते अन्नयराहुंति कुसीलाणं के० अन्य पासत्था उसन्ना कुशीलिया प्रमुख जे स्त्रीनी पाशे कथाना करनार होय तेमांहेला कुशीलिया जाणवा ते कारणे सुतवस्सिएवि के० रूडो तपस्वी जे होय सेजिक्खु के० ते साधु नोविहरेसह णमिच्छीसु के० स्त्रीसहित विचरे नही, तथा स्त्रीनो समागम आलाप संलापादिक पण करे नही. अही णं वाक्यालंकारेछे. स्त्रीने अंगारा सरखी जाणी दूर थकी आपे. ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—तस्मात् स्त्रियो वर्जयेत् । तुशब्दादालापादिन कुर्यात् । विषे लिप्तं कंटकमिव ज्ञात्वा । विषदिग्धकंटकः शरीरेमग्नः सन्ननर्थं करोति स्त्रियस्तु स्मरणादपि । यतः । विषस्य विषयाणां च दूरमत्यंतमंतरं ॥ उपजुक्तं विषं हंति विषयाः स्मरणादपीति । तथा (उए)

एकोऽसहायः कुलानि गृहस्थगृहाणि गत्वा स्त्रीणां वशवर्ती योधर्ममाख्याति नासौ निर्ग्रं थोनिषिद्धाचरणात् ॥ ११ ॥ ये यतयएतत् पूर्वोक्तं ऊंढं गर्ह्यं स्त्रीसंबंधादिकं एकाकि स्त्रीधर्मकथानादिकं वा अनुगृद्धाः प्रत्यासक्तास्ते कुशीलादीनां पार्श्वस्थादीनामन्यत माः स्युः । ततस्तु तपस्व्यपि तपःकृशदेहोपि स्त्रीभिः सह नविहरेन्नगच्छेन्नापि तिष्ठेत् । तृतीयार्थे सप्तमी । णं वाक्यालंकारे ॥ १२ ॥

॥ टीका—स्त्रीसंबंधदोषानुपदर्श्योपसंहरन्नाह । (तम्हाइत्यादि) । यस्माद्विपाककटुः स्त्रीभिः सह संपर्कस्तस्मात्कारणात् स्त्रियोवर्जयेत् । तुशब्दात्तदालापमपि न कुर्यात् । किं तदित्याह । विषोपलिप्तं कंटकमिव ज्ञात्वाऽवगम्य स्त्रियं वर्जयेदिति । अपिच । विषदिग्ध कंटकः शरीरावयवे नग्नः सन्ननर्थमापादयेत् स्त्रियस्तु स्मरणादपि । तडुक्तं । विषस्य विषयाणां च, दूरमत्यंतमंतरं ॥ उपभुक्तं विषं हंति,विषयाः स्मरणादपि ॥१॥ तथा वरि विसखइमंविसय सुहुइक्क सुविसिणमरंति॥विसयामि सपुणघाहिया णरणरएहिंपडंति॥१॥ तथोजएकोऽसहायः सन् कुलानि गृहस्थानां गृहाणि गत्वा स्त्रीणां वशवर्ती तन्निर्दिष्टवेला गमनेन तदानुकूल्यं भजमानोधर्ममाख्याति योसावपि ननिर्ग्रंथोनसम्यक् प्रव्रजितोनि षिद्धाचरणसेवनादवश्यं तत्रापायसंभवादिति । यदा पुनः काचित्कुतश्चिन्निमित्तादागंतुम समर्था वृद्धा वा भवेत्तदा परिसहायसाध्वभावे एकाक्यप्यपि गत्वाऽपरस्त्रीवृंदमध्यगतायाः पुरुषसमन्वितायावा स्त्रीनिंदाविषयजुगुप्साप्रधानं वैराग्यजननं विधिना धर्मं कथयेदपीति ॥ ११ ॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यामुक्तोर्थः सुगमोभवतीत्यभिप्रायवानाह । (जेएयंउंढमि त्यादि) ये मंदमतयः पश्चात्कृतसदनुष्ठानाः सांप्रतेक्षिणएतदनंतरोक्तं उंढंतिजुगुप्सनीयं गर्ह्यं तदत्र स्त्रीसंबंधादिकं एकाकिस्त्रीधर्मकथनादिकं वा द्रष्टव्यं । तदनु तत्प्रति ये गृद्धा अभ्युपपन्नामूर्छितास्तेहि कुशीलानां पार्श्वस्थावसन्नकुशीलसंसक्तयथाछंदरूपाणामन्यतम भवंति, यदिवा काथिकपश्यकसंप्रसारकमामकरूपाणां वा कुशीलानामन्यतराभवंति भन्म ध्यवर्तिनस्तेपि कुशीलाभवंतीत्यर्थः। यतएवमतः सुतपस्व्यपि विकृष्टतपोनिष्टप्तदेहोपि भिक्षुः साधुरात्महितमिछन् स्त्रीभिः समाधिपरिपंथिनीभिः सह न विहरेन्नकचिद्गछेन्नापि संतिष्ठेत्। तृतीयार्थेसप्तमी।णमितिवाक्यालंकारे।ज्वलितांगारपुंजवद्दूरतः स्त्रियोवर्जयेदितिभावः।१२

अवि धूयराहिं सुण्हाहिं,धातीहिं अडुव दासीहिं ॥ महतीहिं वा कुमारी हिं. संथवं सेन कुज्जा अणगारे॥१३॥अड णाइणंच सुहीणंवा अप्पियं द ठु एगता होंति ॥ गिद्धासत्ता कामेहिं; रक्खणपोसण मणुस्सोसि ॥ १४ ॥

अर्थ—हवे कदाचित् पुत्री प्रमुखनो संसर्ग थइ जाय, तो ते पण साधुयें टालवो ते आश्री

कहेछे अवि के० अपि संनावनाये धूयराहिंसुण्हाहिं के० धूआ एटले बेटी साथे साधु विचरे नहीं, तथा सुण्हा एटले वहु साथे अने धातीहिं के० धाव, ते माता मानछे ते साथे पण, अडुव के० अथवा दासीहिं के० दासी साथे, तथा के० म्होटी स्त्री साथे, वा के० अथवा कुमारीहिं के० कुमारिका जे न्हानी स्त्री, साथे पण संथवं के० संस्तव परिचय से के० ते साधुनकुज्जा के० नकरे तेने रे के० अणगार जाणवो. ॥ १३ ॥ हवे ए पूर्वोक्त स्त्रीउंना समागम थकी जे दोष जे ते कहेछे. अथ के० हवे कदापि एगता के० एकदा प्रस्तावे एकांते स्त्रीनी साथे. नो संसर्ग तेने णाईणं के० ज्ञाति गोत्रि वा के० अथवा सुहीणं के० सुहृत् एटले त्र संबंधि वर्ग होंति के० त्यां होय ते दट्ठु के० देखे तेवारे तेउंने अप्पियं के० ति एटले द्वेष उपजे अने तेउ जाणेके गिद्धासत्ता कामेहिं के० जूवो ए पुरुष एवा छे कामनोगने विषे आसक्त देखायछे एम चिंतवी सक्रोध वचन बोले के मणुस्सोसि के० अरेतुं एनो पुरुषछे के शुं जे तुं अंहीं घणो घणो बेशेछे, रस्कण पोसणे के० राखवे षवे आदर करेछे, तेनो शुं कारणछे, एवा कठोर वचन ते बोले. ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–डुहितृनिरपि पुत्रीनिरपि सार्धं न विरहेत् स्नुषाः सुतनार्यास्तानिर्धात्र्यास्त न्यदायिन्यस्तानिरथवा दासीनिर्महतीनिः प्रौढानिः कुमारीनिर्लघ्वीनिर्वा सार्धं संस्त वं परिचयं न कुर्यादनगारः ॥ १३ ॥ अथ एकदा स्त्रीनिः सह संगतं साधुं दृष्ट्वा योषि तृज्ञातीनां सुहृदां वाऽप्रियं चित्ताशंका नवति । एवंच ते माब्रुवेरन् । यथा सत्वाः प्राणि नः कामैर्गृद्धाः । एवंविधोप्ययं श्रमणः स्त्रीसक्तचेताः स्त्रीनिः सार्धं तिष्ठति । तडुक्तं । शिरोवदनमेतदनिष्टगंधि, निक्षाशनेन नरणं वहतोदरस्य । गात्रं मलेन मलिनं शोनं, चित्रं तथापि मनसो मदनेस्ति वांछेति ॥ अतिस्त्रीसंगं दृष्ट्वा तव ज्ञातयः साधुं ब्रुवंति रक्षणं वा पोषणं वा समाहारद्वंद्वे रक्षणपोषणं तत्र त्वमादरं कुरु । मस्यामनुष्योसि । यदिवा वयं रक्षणे पोषणे प्रछन्नास्त्वमेव मनुष्योसि त्वयैव . मेकाकिन्यहर्निशं त्यक्तगेहव्यापारा तिष्ठतीति ॥ १४ ॥

॥ टीका–कतमानिः पुनःस्त्रीनिःसार्धं न विहर्तव्यमित्येतदाशंक्याह । (अवि धू त्यादि) अपिशब्दः प्रत्येकमनिसंबध्यते । (धूयराहित्ति) डुहितृनिरपि सार्धं न विहरे तथा स्नुषाः सुतनार्यास्तानिरपि सार्धं न विविक्तासनादौ स्यातव्यं । तथा धात्र्यः पंच प्रकाराः स्तन्यदायिन्योजननीकल्पास्तानिश्च साकं न स्थेयं । अथवा सतां तावदपरायोषि तोचाअप्येतादास्योघटयोषितः सर्वापसदास्तानिरपि सह संपर्कं परिहरेत् । तथा महती निः कुमारीनिर्वाशब्दाल्लघ्वीनिश्च सार्धं संस्तवं परिचयं प्रत्यासत्तिरूपं सोऽनगारोन

वांद्विति । यद्यपि तस्यानगारस्य तस्यां दुहितरि स्नुपादौ वा नचित्तान्यथात्वमुत्पद्यते तथा पि च तत्र विविक्तासनादावपरस्य शंकोत्पद्यते अतस्तच्छंकानिरासार्थं स्त्रीसंपर्कः परिहर्त व्यइति ॥१३॥ अपरस्य शंका यथोत्पद्यते तथा दर्शयितुमाह । (अदुणाईणमित्यादि) विविक्तयोषिता सार्धमनगारमथैकदा दृष्ट्वा योषिज्ज्ञातीनां सुहृदां वा अप्रियं चित्तदुःखा सिका जवत्येवं च ते समाशंकेरन् यथा सत्वाः प्राणिनइच्छामदनकामैर्गृध्धाअध्युपप न्नास्तथाह्येवंजूतोप्ययं श्रमणः स्त्रीवदनावलोकनासक्तचेताः परित्यक्तनिजव्यापारोऽनया सार्धं निर्ह्रीकस्तिष्ठति । तडुक्तं । मुंमं शिरोवदनमेतदनिष्टगंधि, जिक्षाटनेन जरणं च ह तोदरस्य ॥ गात्रं मलेन मलिनं गतसर्वशोजं चित्रं तथापि मनसो मदनेस्ति वांगा ॥१॥ तथातिक्रोधाध्मातमानसाश्चैव मूचुर्यथा रक्षणं पोषणं चेति विगृह्य समाहारद्वंद्व स्तस्मिन् रक्षणपोषणे सदादरं कुरु । यतस्त्वमस्याः मनुष्योसि मनुष्योवर्तसे । यदि वा परं वयमस्यारक्षणपोषणव्यापृतास्त्वमेव मनुष्योवर्तसे । यतस्त्वयैव सार्धमियमेका किन्यहर्निशं परित्यक्तनिजव्यापारा तिष्ठतीति ॥ १४ ॥

समणंपि दछुदासीणं, तत्थवि तावएगे कुप्पंति ॥ अडु जोयणेहिं णब्बेहिं
इत्थीदोसं संकिणो होंति ॥१५॥ कुव्वंति संथवं ताहिं, पब्नठा समाहि जो
गेहिं ॥ तम्हा समणा णसमेंति, आयहियाए सण्णिसेज्जाउ ॥ १६ ॥

अर्थ—समणंपि दछुदासीणं के० तपस्वी, उदासीन मध्यस्थ, राग द्वेष रहित एवो सा धु पण स्त्री साथे आलाप करतो थको देखीने ताव के० तेवारे तत्थवि के० त्यां प ण एगे के० कोइएक कुप्पंति के० क्रोध करे अडुवा के० अथवा जोयणेहिं के० अने क प्रकारना जोजन ते णब्बेहिं के० साधुने अर्थे थाप्या देखीने एम जाणे जे ए यति आ दारनो गृद्ध सदैव अहीं आवेठे, इत्थीदोसं संकिणोहोंति के० तेवारे तेने स्त्रीना दोष नी शंका मनमांहे उपजे, अने एम जाणे के ए स्त्रीपण जली नथी ॥ १५ ॥ तेमाटे जे पब्नठा समाहि जोगेहिं के० प्रकर्षे करी धर्मरूप समाधि जे मन वचन कायाना शु नयोगरूप व्यापार.तेथकी ब्रष्ट थया होय. कुव्वंति संथवंताहिंके० तेवा द्रव्यलिंगीउ स्त्रीनी साथे संस्तव परिचय करे तम्हा के० तेमाटे एवुं जाणीने समणा के० साधु णसमेंति के० स्त्रीनी साथे नजाय. आयहियाए के० आत्माना हितने अर्थे सण्णिसेज्जाउ के० जे स्थानके रहेती होय ते स्थानके साधु निषिद्धा अशनादिक परिचय करे नही.॥१६॥

॥ दीपिका—श्रमणमुदासीनमपि रागद्वेषरहितमपि दृष्ट्वा तत्रापि मध्यस्थे रहस्यस्त्री जल्पनकृतदोषादेके कुप्यंति श्रमणं मध्यस्थमपि स्त्रिया सहैकांते जल्पं दृष्ट्वा एके कुप्यं

ति किंपुनः कृतविकारं। तथा स्त्रीदोषाशंकिनश्च ते नवंति। ते चामी दोषाः। नोजनैर्वहुभि र्न्यस्तैः साध्वर्थमुपकल्पितैरियमेनमुपचरति अथवा नोजनार्थमुपविष्टेष्वपि श्वशुरादि साध्वागमने सा वधूः समाकुला सत्यन्यस्मिन् दातव्येऽन्यद्ददाति। यथा। कयाचिद्वधू ग्राममध्यप्रारब्धनटप्रेक्षणगतचित्तया पतिश्वशुरयोर्नोजनार्थमुपविष्टयोस्तंडुलाइति कृत्वा राइकाः संस्कृत्य दत्ताः। ततश्चासौ श्वशुरेणोपलक्षिता पत्या क्रुद्धेन ताडिता अन्य तचित्तेत्याशंकया गृहान्निर्घाटितेति ॥१५॥ तानिः स्त्रीनिः सह संस्तवं परिचयं कुर्वंति। किंनूताः। प्रभ्रष्टाः सखलिताः समाधियोगेन्योधर्मध्यानव्यापारेन्यः प्रच्युताः तस्मात् श्र मणा (णसमेंतित्ति) नगच्छंति। सत्यः शोजनाअनुकूलत्वान्निषद्याइव निषद्याः स्त्री ता माया अथवा स्त्रीवसतीः आत्महिताय स्वहितं मन्यमानाः॥ १६॥

॥ टीका–(किंचान्यत्। समणंपीत्यादि) श्राम्यतीतिश्रमणः साधुः। अपिशब्दोनिन्न मः। तमुदासीनमपि रागद्वेषविरहान्मध्यस्थमपि दृष्ट्वा।श्रमणग्रहणं तपःखिन्नदेहोपलक्षणा र्थं। तत्रैवंनूतेपि विषयद्वेषिण्यपि साधौ तावदेके केचन रहस्यस्त्रीजल्पनकृतदोषत्वात् प्यंति। यद्विवा (पाठांतरं) "समणं दट्ठूणुदासीणं" श्रमणं प्रव्रजंतं उदासीनं परित्यक्त निजव्यापारं स्त्रिया सह जल्पंतं दृष्ट्वोपलन्य तत्राप्येके केचन तावत् कुप्यंति किंपुनः कृतवि कारमितिनावः। अथवा स्त्रीदोषाशंकिनश्चते नवंति। ते चामी स्त्रीदोषाः। नोजनैर्नानावि धाहारैर्न्यस्तैः साध्वर्थमुपकल्पितैरेतदर्थमेव संस्कृतैरियमेनमुपचरति तेनायमहर्निशमि हागच्छतीति।यद्विवा नोजनैःश्वशूरादीनां न्यस्तैरर्धदत्तैः सद्भिः सावधूः साध्वागमनेन समा कुलीनूता सत्यन्यस्मिन् दातव्येऽन्यद्दद्यात्ततस्ते स्त्रीदोषाशंकिनोन्नवेयुर्यथेयं दुःशीलाऽ नैव सहास्त्वइति। निदर्शनमत्र यथा कयाचिद्वध्वा ग्राममध्यप्रारब्धनटप्रेक्षणैकगतचि त्तया पतिश्वशुरयोर्नोजनार्थमुपविष्टयोस्तंडुलाइति कृत्वा राइकाः संस्कृत्य दत्तास्ततोसौ श्वशुरेणोपलक्षिता निजपतिना क्रुद्धेन ताडिता अन्यपुरुषगतचित्तेत्याशंक्य स्वगृहान्नि र्घाटितेति ॥ १५॥ किंचान्यत्। (कुर्वंतीत्यादि) तानिः स्त्रीनिः सन्मार्गार्गलानिः सह संस्तवं तद्गृहगमनालापदानसंप्रेक्षणादिरूपं परिचयं तथाविधमोहोदयात्कुर्वंति विदध ति। किंनूताः।प्रकर्षेण नृष्टाः स्खलिताः समाधियोगेन्यः।समाधिर्धर्मध्यानं तदर्थं तत्प्रधा नावा योगामनोवाक्कायव्यापारास्तेन्यः प्रच्युताः शीतलविहारिणइति। यस्मात् स्त्रीसं स्तवात्समाधियोगपरिभ्रंशोन्नवति तस्मात्कारणाच्छ्रमणाः सत्साधवोन (समेंति) न गच्छं ति। सद्योजनाः सुखोत्पादकतयाऽनुकूलत्वान्निषद्याइव निषद्यास्त्रीनिः कृता माया यदि वा स्त्रीवसतीरिति आत्महिताय स्वहितं मन्यमानाः। एतच्च स्त्रीसंबंधपरिहरणं तासामैहि हिकामुष्मिकापायपरिहाराद्धितमिति। क्वचित्पश्चार्द्धमेवं पठ्यते॥ तत्थासमणाउ जइ

१ अहिताउ सन्निसेज्जाउ ॥ अयमस्यार्थः। यस्मात्स्त्री संबंधोनर्थाय भवति तस्मात् हेश्रम । साधो । तुशब्दोविशेषणार्थः । विशेषेण सनिषद्या स्त्रीवसतीस्तत्कृतोपचाररूपा वा मा । आत्महिताद्धेतोर्जहाहि परित्यजेति ॥ १६ ॥

वहवे गिहाइं अवहट्टु, मिस्सीभावं पत्थुया (पाठांतरे पणता) यएगे ॥ धुव मग्गमेव पवयंति वायावीरियं कुसीलाणं ॥१७॥ सुद्धं रवति परिसाए, अह रहस्संमि डुक्कडं करेंति ॥ जाणंतियणं तहाविया, माइल्ले महासढेयंति॥ १८ ॥

अर्थ—वहवे के० घणा मनुष्य गिहाइंअवहट्टु के० घर ठांमी संयम आदरीने वली मोहनीय कर्मना उदय थकी अज्ञानपणे, मिस्सीभावं के० मिश्रभावे पत्थुयाचके० थहोता एवा एगे के० कोइएक मनुष्य ते गृहस्थ पण नही अने यतिपण नही एटले द्र व्यलिंगी थाय. एवा छतां पण धुवमग्गमेव के० मोक्ष मार्गेज एटले अमारो मो क्षनो मार्ग सत्यछे एम पवयंति के०मध्यम मार्गने श्रेष्ठ कही बोले ए कारणे अहो कु सीलाणं के०ते कुसीलीयाना वायाके० वचननुं बोलवा मात्र, जे वीरियंके० बल वीर्यछे ते जुवो केवुं छे ॥ १७ ॥ एरीते परिसाए के० परखदा मध्ये ते कुशीलिया पोतानी आ त्माने सुद्धं के० शुद्ध निर्दोष रवति के० बोले अह के० अथ हवे परखदा मांहेथी उठया पछी. रहस्संमि के० एकांत ठांनो डुक्कर्म करेंति के० डुष्कृत एटले अनाचार करे. एरीते ते मूर्ख पोतानो अनाचार गोपवे, तोपण जाणंतियणंतहाविया के० तेना अंग चेष्टाना जाण होय तेजाणे, तथा सर्वज्ञ तो जाणेजछे के ए साधु माइल्लेके० डुष्ट मायावीछे. तथा महासढेयंति के० महाधूर्त्त मृषावादी छे. एरीते तो बीजा जाणे किंवा नजाणे परंतु सर्वज्ञतो जाणेजछे. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—बहवः केचन गृहाण्यपहृत्य परित्यज्य मिश्रीभावं गृहस्थतुल्यत्वं प्रणताः प्राप्ताएवंभूतास्ते ध्रुवमार्गं मोक्षमार्गमेव प्रवदंति, यथायमेवास्मदीयोमार्गः श्रेयान् अनेनैव प्रव्रज्यानिर्वाहः स्यादिति । तदेतत्कुशीलानां वाचा कृतवीर्यं नानुष्ठानकृतं । वाङ्मात्रेणैव ते प्रव्रजितानतु सदनुष्ठानतइत्यर्थः ॥ १७ ॥ सकुशीलोवाङ्मात्रेण परि षदि शुद्धमात्मानं रौति भाषते । अथ रहस्येकांते डुष्कृतं पापं करोति तच्च तस्य पाप मन्यः कोपि न वेत्ति तथापि तथारूपमनुष्ठानं विदंतीतितथाविदोनिपुणाइंगिनाकार ज्ञाः सर्वज्ञावा जानंत्येव यतोयं मायावी महाशठश्चेति ॥ १८ ॥

॥ टीका—किं केचनाभ्युपगम्यापि प्रव्रज्यायां स्त्रीसंबंधं कुर्युर्येनैवमुच्यते उमित्याह । (ब

हवेइत्यादि) बहवः केचन गृहाण्यपहृत्य परित्यज्य पुनस्तथाविधमोहोदयान्मिश्रीजाव ति । इव्यालिंगमात्रसद्भावाद्भावतस्तु गृहस्थसमकल्पाइत्येवंभूता मिश्रीभावं प्रस्तुताः नुप्राप्तान गृहस्थाएकांततोनापि प्रव्रजितास्तदेवंभूताअपि संतोध्रुवोमोक्षः संयमोवा तन्मा र्गमेव प्रवदंति । तथाहि । ते वक्तारोभवंति यथाऽयमेवास्मदारब्धोमध्यमः पंथाः श्रेया न् तथाह्यनेन प्रवृत्तानां प्रव्रज्यानिर्वहणं भवतीति तदेतत्कुशीलानां वाचा कृतं वीर्यं नानुष्ठा नकृतं । तथाहि । ते इव्यलिंगधारिणोवाङ्मात्रेणैव वयं प्रव्रजिताइति ब्रुवते नतु तेषां सातगौरवविषयसुखप्रतिबद्धानां शीतलविहारिणां सदनुष्ठानकृतं वीर्यमस्तीति ॥ १७ ॥ अपिच (सुद्धंरवतीत्यादि) सकुशीलोवाङ्मात्रेणाविष्कृतवीर्यः पर्षदि व्यवस्थितोधर्मदेश नावसरे सत्यात्मानं शुद्धमपगतदोपमात्मानमात्मीयानुष्ठानं वा रौति भापते । अथान्य तरं रहस्येकांते डुष्कृतं पापं तत्कारणं वा सदनुष्ठानं करोति विदधाति तच्च तस्यासदनु ष्ठानं गोपायतोपि जानंति विदंति । के । तथारूपमनुष्ठानं विदंतीति तथाविदइंगिताकार कुशलानिपुणास्तद्विदइत्यर्थः । यदिवा सर्वज्ञाः । एतडुक्तंभवति । यद्यप्यपरः कश्चिदकर्त व्यं तेषां न वेत्ति तथापि सर्वज्ञाविदंति तत्परिज्ञानेनैव किंन पर्याप्तं यदिवा मायावी मह शठश्चायमित्येवं तथाविदस्तिद्विदोजानंति । तथाहि । प्रच्छन्नकार्यकारी न मां कश्चिज्जान त्येवं रागांधोमन्यते अथच तं तद्विदो वदंति । तथाचोक्तं । नयलोणंलोणिज्जइ,णयतुप्पि ज्जइ घयं चतेल्लंवा ॥ किहसक्कावंचेउअत्ताअणूहूयकल्लाणो॥ १ ॥ १८ ॥

सयं डुक्कडं च न वदति; आइछोवि पकछति वाले ॥ वेयाणुवीइ मा का सी, चोइज्जंतो गिलाइ से भुज्जो ॥ १ए ॥ उसियावि इछिपोसे सुपुरिसा इछिवेयखेदन्ना ॥ पन्नासमन्निताविेगे, नारीणं वसं उवकसंति ॥ २० ॥

अर्थ—सयंडुक्कडंच के० जे इव्यलिंगी होय, ते पोतानो करेलो अनाचार तेने चशब्द थकी आचार्यादिके पुछयो थको, नवदति के० नकहे; एटले पोतानो अ नाचार प्रकाशे नही, तथा आइछोवि के० आदिष्ट एटले चोयणा कस्यो छतो, एटले हे वत्स आज पछी एम न करवुं एरीते प्रेस्यो थको, पण वाले के० ते बाल अज्ञानी पक छति के० पोताना आत्माने श्लाघनीय मानतो थको एम कहेके, आज पछी तमे क होछो तेम करीश, तथा वेय के० पुरुपवेदनो उदय तेथी थयोजे अणुवीइ के० मैथुन सेववानो अभिलाप ते माकासी के० मकरीश, एरीते चोइज्जंतोके० प्रेस्यो थको गिलाइ के० गिलानपणु पामे. एम सेके० ते इव्यलिंगी साधु भुज्जो के० वली वली लोल लुं अणसांभल्युं करे ॥ १ए ॥ उसियावि के० अनेक प्रकारना कामभोगने विषे उषित

एटले भुक्तनोगी थइने पुरिसाके० ते मनुष्य इन्द्रिपोसेसुके० स्त्रीने पोषवाने विषे प्रवर्त्ते तथा इत्थिवेयखेदन्ना के० स्त्रीवेद खराबछे, एटले स्त्री संसार भ्रमणनुं कारणछे, एम जाणता थका पण पन्नासमन्निताबेगे के० प्रज्ञासमन्वित एटले बुद्धिमंत एवा कोइएक पुरुष मोहने उदये करी नारीणंवसं के० तेह्निज स्त्रीने वशवर्त्तियें रहे अने उवकसंति के० ते स्त्री जे कांइ कहे ते किंकरनी पेरे करे इत्यर्थः ॥ १० ॥

॥ दीपिका—स्वयंकृतं पापं परेण पृष्टोपि नवदति यदहमेतत्पापकारीति परेणादिष्ट श्चोदितोपि बालोऽज्ञः प्रकथ्यते आत्मानंश्लाघमानोऽकार्यमपलपति । तथा वेदः पुंवेदोदय स्तस्यानुवीचिरानुकूल्यं मैथुनाभिलाषं माकार्षीरिति यः पुनश्चोद्यमानोग्लायति ग्लानिं याति अनाकर्णितं करोति मर्मविद्धोवा सखेदं नाषते । यथा । संनाव्यमानपापश्चेदपापेना पि किं मया । नृजमुद्विजते लोको,निर्विषादपि सर्पतइति ॥ १९ ॥ स्त्रीपोषकाये अनुष्ठान विशेषास्तेषु उषिताव्यवस्थिताः पुरुषा भुक्तनोगिनइत्यर्थः । तथा स्त्रीवेदे खेदज्ञाः स्त्रीवेदो मायाबहुलइति निपुणाअपि प्रज्ञाबुद्धिरौत्पत्त्यादिका तया समन्वितायुक्ताअपि एके ना रीणां वशमायत्ततां उपकर्षंति व्रजंति स्त्रीवशवर्तिनोनवंतीत्यर्थः । नतु एवं जानंति । यतः । एताहसंतिच रुदंतिच कार्यहेतोर्विश्वासयंति च नरं नच विश्वसंति ॥ तस्मान्नरेण कुल शीलसमन्वितेन नार्यः स्मशानघटिकाइव वर्जनीयाः ॥१॥ स्त्रीस्वनावस्तथा । यथा । एकोयुवा गृहान्निर्गत्य पाटलिपुत्रं प्रस्थितस्तदंतरेऽन्यतरग्रामवर्तिन्या कयाचिन्नार्याऽनि हितस्त्वमेवं शुनकृतिः क यासि तेनापि च यथास्थितमुक्तं । तयोक्तं पठित्वा चलमानोत्रा गच्छः । तेनांगीकृत्याग्रे गतं । अधीत्य च तत्रायातः । तया च स्नाननोजनादिनिः सत्यापितो हावनावैश्च हृतचित्तस्तां हस्ते गृण्हाति ततस्तया महता शब्देन फूत्कृत्य जनागमनावसरे त न्मस्तके वारिघटः प्रक्षिप्तः । ततोलोकस्य तयोक्तं अयं गले लग्नेन जलेन व्याकुलोमृतइव । ततोमयोदकेन सिक्तइति । गते लोके सा पृष्टवती त्वया कामशास्त्रं पठता स्त्रीस्वनावानां किं ज्ञातमिति एवं स्त्रीचरितं डुर्विज्ञेयं । यतः । हृद्यन्य द्वाच्यन्यत्, कर्मण्यन्यत् पुरो थ पृ ष्ठेऽन्यत् ॥ अन्यत्तव मम चान्यत् स्त्रीणां सर्वं किमप्यन्यदिति ॥ २० ॥

॥ टीका—किंचान्यत् (सयंडुक्कडंचेत्यादि) । स्वयमात्मना प्रछन्नं यद्दुष्कृतं कृतं तदप रेणाचार्यादिना पृष्टोन वदति न कथयति यथाहमस्याऽकार्यस्य कारीति । सच प्रछन्नपा पोमायावी स्वयमवदन् यदापरेणादिष्टश्चोदितोपि सन् बालोज्ञोरागद्वेषकलितोवा प्रकथ्यते आत्मानं श्लाघमानोऽकार्यमपलपति वदतिच यथाहमेवंनूतमकार्यं कथं करिष्ये इत्येवं धाष्ट्यात्प्रकथ्यते । तथा वेदः पुंवेदोदयस्तस्यानुवीच्याऽनुकूल्यं मैथुनाभिलाषं

तन्माकार्षी रित्येवं नूयः पुनश्चोद्यमानोसौ ग्लायति ग्लानिमपयात्यकर्णेश्रुतं विधत्ते छोवा सखेदमिव नापते । तथा चोक्तं । संनाव्यमानपापोह,मपापेनापि किं मया ॥ पस्यापि सर्पस्य नृशमुद्विजते जनइति ॥ १९ ॥ अपिच । (उसियावीत्यादि) स्त्रिपो पयंतीति स्त्रीपोपकाअनुष्ठानविशेपास्तेषूपिताअपि व्यवस्थिताअपि पुरुपामनुष्या नोगिनोपीत्यर्थः तथा स्त्रीवेदज्ञाः स्त्रीवेदोमायाप्रधानइत्येवं निपुणाअपि तथा प्रज्ञा औत्पत्तिक्यादिवुध्या समन्विताउक्ताअप्येके महामोहांधचेतसोनारीणां सम्यक्स्त्री णां संसारावतरणवीथीनां वशं तदायत्ततामुपसामीप्येन कपंति व्रजंति । यद्यत्ताः स्वप्रा मानाअपि कार्यमकार्यं वा ब्रुवते तत्तत्कुर्वते नपुनरेतज्ञानंति यथैताएवंनूताजवंतीति । तद्यथा । एताहसंति च रुदंति च कार्यहेतो,र्विश्वासयंति च नरं नच विश्वसंति ॥ तस्मा न्नरेण कुलशीलसमन्वितेन, नार्यः श्मशानघटिकाइव वर्जनीयाः ॥ १ ॥ तथा । समुद्र वीचीव चलस्वनावाः, संध्याभ्ररेखेव मुहूर्तरागाः ॥ स्त्रियः कृतार्थाः पुरुपं निरर्थकं, नि ष्पीडितालक्तकवत्त्यजंति ॥ २ ॥ अत्रच स्त्रीस्वनावपरिज्ञाने कथानकमिदं । तद्यथैकोयुवा स्वगृहान्निर्गत्य वैशिकं कामशास्त्रमध्येतुं पाटलिपुत्रं प्रस्थितः। तदंतरालेऽन्यतरग्रामवर्तिन्यै कया योषिताऽनिहितस्तद्यथा सुकुमारपाणिपादशोननाकृतिस्त्वं क्व प्रस्थितोसि तेनापि य थास्थितमेव तस्याः कथितं । तयाचोक्तं । वैशिकं पठित्वा मम मध्ये नागंतव्यं तेनापि तथे वान्युपगतं । अधीत्य चासौ मध्येनायातस्तया च स्नानन्नोजनादिना सम्यगुपचरितोविवि धहावनावैश्चापहृतहृदयः संस्तां हस्तेन गृण्हाति ततस्तया महता शब्देन फूत्कृत्य जनागमना वसरे मस्तके वारिवर्धनिका प्रक्षिप्ता। ततोलोकस्य समाकुले एवमाचष्टे । यथायं गले लग्नो दकेन मनाक् मृतः । ततोमयोदकेन सिक्तइति । गतेच लोके किं त्वया वैशिकशास्त्रो देशेन स्त्रीस्वनावानां किं परिज्ञातमित्येवं स्त्रीचरित्रं डुर्विज्ञेयमिति नात्रास्था कर्तव्येति । तथा चोक्तं । हृद्यन्यद्वाच्यन्यत्कर्मण्यन्यत्पुरोथपृष्ठेन्यत् ॥ अन्यत्तव मम चान्यत् स्त्रीणां सर्वं किमप्यन्यत् ॥ २० ॥

अवि हत्थपादछेदाए, अडुवा वद्धमंसउक्कंते ॥ अवि तेयसाभिताव णानि नछिय खारासिंचणाइं च ॥ २१ ॥ अड कन्नणासछेदं,कंठछेदणं तितिरकंती ॥ इत्र पावसंतत्ता, नयविंति पुणोन काहिंति ॥ २२ ॥

अर्थ—हवे इहलोके पण स्त्रीने संबंधे जे विपाक थाय ते देखाडेछे अपि एवी संना वना छे जे कुशीलिया पुरुष होय ते हत्थपादछेदाएके० हस्तपादादिकनुं छेद पामे. अडुवा के०अथवा वद्धमंसके० चर्म अने मांसनुं उक्कंते के० उपडवुं पामे अपि एवी संनावना

तेयसाके० अग्नीनो ताप पामे एटले राजपुरुष रीशाणा थका अनितावणानिके० पर गमन करनार पुरुषना अग्नी सहित तेना शरीरना नडथुआ करे नछिय के० शला साथे तेना शरीर त्राछीने तेवार पछी खारसिंचणाइंच के० क्षारनुं सीचवुं रे, एटले लुणक्षेप पामे ॥२१॥ अड के० अथवा कस्सणासछेदं के० कान अने नाशि नुं छेदन पामे. कंठछेदणं तितिखंती के० कंठनुं छेदन पोताना कर्मना उदये सहन रे एरीते इछ के० अहीं मनुष्य लोकने विषे पण पावसंतत्ता के० पापे करी तत्त एवी विटंबना पामे, तथापि नयबिंतिके० एमनकहे जे पुणोके० हवे वली हुं ए अनाचार नकाहिंतिके० नही करुं एम विचारी विरति पणु अंगीकार करे नही॥२२॥

॥ दीपिका—स्त्रीसंबंधे रागिणां हस्तपादछेदाद्यपि अथ वर्ध्रमांसोत्कर्तनमपि तेजसा ग्निनाऽनितापनानि स्त्रीसंबंधिभिर्निर्नृपुरुषैर्नटित्रकाण्यपि क्रियंते। पादारिकास्तथा शस्त्रैश्छि त्वा क्षारोदकसेचनानि प्राप्यंते ॥ २१ ॥ कर्णनासिकाछेदमपि कंठछेदनं च तितिक्षंते सहंते। इति एवं प्रकारेणात्रैव मनुष्यजन्मनि पापसंतप्तामहावेदनामनुनवंति नच ब्रुव ते एवं पुनर्न करिष्यामइति ॥ २२ ॥

॥ टीका—सांप्रतमिह लोकएव स्त्रीसंबंधविपाकं दर्शयितुमाह। (अविहछेत्यादि) स्त्री संपर्कोहि संसार्गिणां हस्तपादछेदनाय नवति। अपिः संनावने। संनाव्यतएतन्मोहातुरा णां संबंधाद्धस्तपादछेदादिकं अथवा वर्ध्रमांसोत्कर्तनमपि तेजसाग्निनाऽग्नितापनानि स्त्री संबंधिभिरुत्तेजितैराजपुरुषैर्नटित्रकाण्यपि क्रियंते पादारिकास्तथा वास्यादिना तक्षयित्वा क्षारोदकसेचनानि च प्रापयंतीति ॥२१॥ अपिच। (अडुकसुत्यादि) अथ कर्णनासि छेदं तथा कंठछेदनं च तितिक्षंते स्वकृतदोषात्सहंते इत्येवं बहुविधां विडंबनामस्मि मानुषे च जन्मनि पापेन पापकर्मणा संतप्तानरकातिरिक्तां वेदनामनुनवंतीति। न तदेवंनूतमनुष्ठानं नकरिष्यामइति ब्रुवतइत्यवधारयंतीति यावत्। तदेवमैहिकं सि दुःखविडंबनाअप्यंगीकुर्वंति न पुनस्तदकरणतया निवृत्तिं प्रतिपद्यंतइति नावः॥२२॥

सुतमेत मेवमेगेसिं, इछीवेदेतिहु सुयस्कायं॥ एवंपि ता वदित्ताने अडुवा कम्मणा अव करेंति ॥ २३ ॥ अन्नं मणेण चिंतेति, या अन्नंच कम्मणा अन्नं॥ तम्हा णसद्दहिंभिस्कू, बहुमाइ इछिउ णच्चा ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रीसुधर्मस्वामी कहेछे के एवंके० ए जे पूर्वे स्त्रीना संबंधनुं फल कह्युंमने धर्म

(right margin gloss:) नस्त्र पे मायाकरी स थकी विर इचतोनथी आचरीश, काहुं एवुं

वल पारखंम तेणे करी ते स्त्री साधुने समीप आवे अहमंसिसाहम्मिणीय त॰
के॰ हुंश्रमण माहात्मानी सामिणीछुं, एवा प्रपंच करी साधुने धर्मथकी भ्रष्ट करे
उपर दृष्टांत कहेछे. जहा के॰ जेम जतुकुंने के॰ लाखनो घडो ते उवज्जोइ के॰
समीपे गलीने पाणी रूप थाय, तेम विउविके॰पंमित होय तेपण संवासेके॰स्त्रीने
संसर्गे करी सीएज्जाके॰सीदाय सीतल विहारी थाय तो अन्य जननुं केवुंज शुं? ॥२६॥

॥ दीपिका–युवतिर्मायया श्रमणं ब्रूयाद्विचित्रवस्त्राणि परिधायालंकृतशरीरेत्यर्थः
अहं गृहपाशाद्विरता मह्यं पतिर्नरोचते परित्यक्ताहं च तेन ततश्चरिष्यामि रूक्षं संयमं। मे
महेजयत्रातधर्ममाख्याहि ॥ २५ ॥ अनेन प्रवादेन छलेन अथवा स्त्री साधुसमीपमागत्य
त् अहं श्राविका अहंश्रमणानां सधर्मिणी एवं मायया समीपमागत्य कूलवालकमिव
साधुं धर्माद्भ्रंशयति । यदुक्तं । तज्ज्ञानं तच्च विज्ञानं तत्तपः सच संयमः ॥ सर्वमेकपदे भ्रष्टं
सर्वथा किमपि स्त्रियः ॥ १ ॥ यथा जतुकुंभोज्योतिःसमीपे उपज्योतिर्वर्ती विलीयते
वं योषितां संवासे विद्वानपि विषीदेत शीतलविहारी भवेत् ॥ २६ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (जुवईत्यादि) युवतिरभिनवयौवना स्त्री वि
भूषितशरीरा मायया श्रमणं ब्रूयात् । तद्यथा । विरताहं गृहपाशान्ममानुकूलोभर्ता
चासौ नरोचते परित्यक्ता चाहं तेनेत्यतश्चरिष्यामि धर्ममाचक्ष्वाणेति । अस्माकं
यथाहमेवं दुःखानां भाजनं नभवामि तथाधर्ममावेदयेति ॥ २५ ॥ किचान्यत् । (
साविएइत्यादि) अथवाऽनेन प्रवादेन व्याजेन साध्वंतिकं योषिदुपसर्पेत । यथाहं
ति कृत्वा युष्माकं श्रमणानां साधर्मिणीत्येवं प्रपंचेन नेदीयसी भूत्वा कू॰
साधुं धर्माद्भ्रंशयति । एतदुक्तं भवति योषित्सान्निध्यं ब्रह्मचारिणां महतेऽनर्थाय ।
चोक्तं । तज्ज्ञानं तच्च विज्ञानं, तत्तपः सच संयमः॥ सर्वमेकपदे भ्रष्टं सर्वथाकिमपि स्त्रियः॥१
अस्मिन्नेवार्थे दृष्टांतमाह । यथा जातुषः कुंभोज्योतिषोग्नेः समीपे व्यव
तिर्वर्ती विलीयते द्रवत्येवं योषितां संवासे सान्निध्ये विद्वानप्यास्तांतावदितरोयोपि
तवेद्योसावपि धर्मानुष्ठानं प्रति विषीदेत शीतलविहारी भवेदिति ॥ २६ ॥

जतुकुंभे जोइ उवगूढे, आसु भितत्ते णासमुवयाइ ॥ एविछियाहिं अ
णगारा, संवासेण णासमुवयंति ॥ २७ ॥ कुव्वंति पावगं कम्मं, पुछावेगे
वमाहिंसु ॥ नोहं करेमि पावंति, अंके साइणी ममेसत्ति ॥ २८ ॥

अर्थ–जतुकुंभेके॰जेम लाखनो घडो जोइके॰अग्नियें उवगूढेके॰आलिंग्यो छतो आसुके॰

ीप्र निततेके० तेना तापेकरी णासमुवयातिके० विनाश पामे,एटले लाख बधीगली जाय. ए
के०एरीते इन्नियाहिंके० स्त्रीने संवासेणके० संवासें करीने अणगाराके०साधु पण ते लाख
ापेरे णासमुवयंतिके० संयम थकी विनाश पामे ॥२७॥ कुव्वंतिपावगंकम्मंके० कोइएक
ाधु अनाचारी मोहना उदय थकी भ्रष्ट थको मैथुनसेवादिरूप पापकर्म करे, तेने पुछ्या
ो वमाहिंसु के० कोइ एक आचार्यादिके पुछ्यो थको एम कहे. जे नोहंकरेमिपावं
े के० हुं एवुं पाप कर्म नकरुं अंकेसाइणी ममेसत्ति के० ए स्त्रीतो मारे दीकरी स
ानछे, ए जेवारे न्हानी हती तेवारे माहरे खोले सयन करती, ते अन्यासे हमणा पण
ाहारा खोलामां बशेछे, सयन करेछे, परंतु हुं प्राणांते पण व्रतन्नंग करुं नही. ॥२८॥

॥ दीपिका—यथा जतुषः कुंनोज्योतिषाऽग्निनोपगूढोव्यासश्चाशु अनितप्तोना
ामुपयाति एवं स्त्रीन्निः सार्धं संवसनेनाऽनगारानाशमुपयांति संयमाद्भ्रश्यंति ॥ २७ ॥
त्रीष्वासक्ताः पापं कर्म कुर्वंति भ्रष्टाः संयमादेके आचार्यादिना चोद्यमानाएवमाहुर्वक्ष्य
ाणमुक्तवंतः। नाहमेवंन्नूतकुलप्रसूतः पापमकार्यं करिष्यामि ममेषा डुहितृतुल्या पूर्वमंके
ायिनी आसीत् तदेषा पूर्वान्न्यासान्मयि एवमारचयति । नपुनरहं प्राणांतेपि व्रतन्नंगं
िधास्य इति ॥ २८ ॥

॥ टीका—एवं तावत्स्त्रीसान्निध्ये दोषान् प्रदर्श्य तत्संस्पर्शजं दोषं दर्शयितुमाह । (ज
ककुंनेत्यादि) यथा जातुषः कुंनोज्योतिषाग्निनोपगूढः समालिंगितोन्नितप्तोग्निना निमु
ल्पेन संतापितः क्षिप्रं नाशमुपैति डवीन्नूय विनश्यत्येवं स्त्रीन्निः सार्धं संवसनेन परिन्नो
ोनानगारानाशमुपयांति सर्वथा जातुषकुंनवत् व्रतकाठिन्यं परित्यज्य संयमशरीराद्भ्रश्यं
ति॥२७॥अपिच ।(कुव्वंतीत्यादि) तासु संसारान्निष्वंगिणीष्वन्निसक्ताअवधीरितैहिकामुष्मि
कापायाःपापं कर्म मैथुनासेवनादिकं कुर्वंति विदधति। परिन्नष्टाः सदनुष्टानादेके केचनोत्कट
मोहाआचार्यादिना चोद्यमानाएवमाहुर्वक्ष्यमाणमुक्तवंतः। तद्यथा।नाहमेवंन्नूतकुलप्रसूतः
एतदकार्यं पापोपादानन्नूतं करिष्यामि ममैषा डुहितृकल्पा पूर्वमंकेशयिनीआसीत् तदेषा पूर्वा
न्यासेनैव मय्येवमाचरति नपुनरहं विदितसंसारस्वन्नावः प्राणात्ययेपि व्रतन्नंगं विधास्यइति.

बालस्स मंदयं बीयं, जंच कडं अवजाणई नुज्जो ॥ डुगुणं करे
इ से पावं, पूयणकामो विसन्नेसी ॥२९॥ संलोकणिज्जमणगारं,
आयगयं निमंतणेणाहंसु ॥ वत्थंच ताय पायंवा, अन्नं पाणगं
पडिग्गहे ॥ ३० ॥ णीवारमेवं बुज्जेज्जा, णोइच्छे अगारमागं
तुं ॥ बद्धे विसयपासेहिं, मोहमावज्जइपुणो मंदित्तिबेमि ॥३१॥
इति इत्थी परिन्नाए पढमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

अर्थ–बालस्स के० अज्ञानीनी एबीजी मंदयं के० मूर्खता जाणवी; केमके एकतो अकार्य करवा थकी चोथा व्रतनो भंग थायछे ने बीयं के० बीजो जंचकडं के० जे अनाचार कीधो तेने अवजाणई के० उलववे करी मृषावाद बोले तेथकी बीजाव्रतनो भंग थाय, तेमाटे उज्जो के० वली वली सेके० ते पुरुष डुगुणंकरेईपावं के० बमणुं पाप करे, ते सावास्ते करे, तेनुं कारण कहेछे. पूयणकामो पूजा सत्कारनो अभि लाषी असंयमनुं विसन्नेसि के० गवेषणहार थको मनमां एम जाणे जे माहारो लोकोमां अवर्णवाद थशे. तेमाटे अनाचारने छाना राखे ॥ २९ ॥ संलोकणिज्ज्ञमण गारं के० संलोकनीय एटले सुंदराकार एवा साधुने देखीने, आयगयं के० आत्मगत जाणी कोइएक स्त्री निमंतणेण के० निमंत्रणा पूर्वक आहंसु के० एम कहे के ताव के० अहो छकायना रक्षपाल वछंच के० वस्त्र वली पायं के० पात्र वा के० अथवा अन्नंपाणगं के० अन्न पाणी जे कांइ आपने खप होय ते पडिग्गहे के० अमारे घेर आवीने लेजो ॥ ३० ॥ जे उत्तम साधु होय ते ए पूर्वोक्त आमंत्रणने णीवारमेवं बुझे के० व्रीहीना कण समान जाणीने णोइछेअगारमागंतुं के० एवा घेरने विषेजवुं आववुं वांछे नही. जो कदापि कोइएक साधु तेवा घरे जाय तो ते बद्धेविस यपा सेहिं के० विषयरूप पाशे करी बंधाणो छतो पुणो के० वली वली मोहमाव ज्जइ के० मोहने आवर्त्ते पडे एटले मोहने वश थको चित्तनुं आकुल व्याकुलपणुं पा मे; मंद के० ते मूर्ख स्नेहरूप पास त्रोडवाने असमर्थ होय माटे दुःखी थाय. तिबे मिनो अर्थ पूर्ववत जाणवो. ॥ ३१ ॥ इति चतुर्थाध्ययने प्रथमोद्देशकः समाप्तः

॥दीपिका–बालस्याऽज्ञस्य द्वितीयं मंदत्वं । प्रथममज्ञत्वमेकं तावदकार्यकरणेन तुर्यव्र तविलोपोद्वितीयं तदपलपनेन मृषावादः । तदेवाह । यत्कृतमकार्यमपजानीते अपलप ति सएवंभूतोद्विगुणं पापं करोति। किमर्थमपलपतीत्याह। पूजनकामुकः सत्काराभिला षी मामे लोकेऽवर्णवादः स्यादित्यकार्यं प्रछादयति । विषण्णोऽसंयमस्तमेषितुं शीलमस्य सविषण्णैषी॥ ॥ २९ ॥ संलोकनीयं रूपवंतमनगारमात्मगतमात्मज्ञं काश्चन स्त्रियो निमंत्रणपूर्वमाहुरुक्तवत्यः । तथाहि । हेत्रयिन् साधो वस्त्रं पात्रं चान्नापानादिकं वा य त्तव विलोक्यते तत्त्वस्मद्गृहमागत्य प्रतिगृहाण लाहि ॥३०॥ वस्त्रादिदानं नीवारतुल्यं बु ध्येत जानीयात्। यथा नीवारेण च व्रीहिणा मृगादिर्वशमानीयते एवंसाधुरप्यामंत्रणेन वशमानीयते अतस्तं नेछेदगारं गृहं गंतुं बद्धश्च विषयदामभिर्विषयपाशैर्मोहं चित्ताकु लत्वमापद्यते मंदोमूढइति।ब्रवीमीति पूर्ववत्॥३१॥ इति चतुर्थाध्ययने प्रथमोद्देशकः॥

॥ टीका–किंच (बालस्येत्यादि) । बालस्याज्ञस्य रागद्वेषाकुलितस्यापरमार्थदृशम

तद्द्वितीयं मांद्यं । अज्ञत्वमेकं तावदकार्यकरणेन चतुर्थव्रतनंगो द्वितीयं तदपलपनेन मृषावादः । तदेव दर्शयति । यत्कृतमसदाचरणं नूयः पुनरपरेण चोद्यमानोऽपजानीतेऽपलपति नैतन्मयाकृतमिति सएवंनूतोऽसदनुष्ठानेन तदपलपनेन च द्विगुणं पापं करोति । किमर्थमपलपतीत्याह । पूजनं सत्कारपुरस्कारस्तत्कामस्तदनिलाषी मामेलोके अवर्णवादः स्यादित्यकार्यं प्रछादयति । विषण्णोऽसंयमस्तमेपितुं शीलमस्येति विषण्णेषी ॥ २ए ॥ किंचान्यत् (संलोकणिज्ञमित्यादि) संलोकनीयं संदर्शनीयमाकृतिमंतं कंचनानगारं साधुमात्मनि गतमात्मगतमात्मज्ञमित्यर्थः । तदेवंनूतं काश्चन स्वैरिण्योनिमंत्रणेन निमंत्रणपुरःसरमाहुरुक्तवत्यः।तद्यथा । हेशयिन् साधो वस्त्रं पात्रमन्य द्वा पानादिकं येन केनचिन्नवतः प्रयोजनं तदहं नवते सर्वं ददामीति मद्गृहमागत्य प्रतिगृहाण त्वमिति ॥ ३० ॥ उपसंहारार्थमाह (णीवारमित्यादि) एतद्योपितां वस्त्रादिकमामंत्रणं नीवारकल्पं बुध्येत जानीयात् । यथाहि नीवारेण केनचिन्नक्ष्यविशेषेण सूकरादिर्वशमानीयते एवमसावपि तेनामंत्रणेन वशमानीयते अतस्तं नेछेदगारं गृहं गंतुं।यदि वा गृहमेवावर्तोगृहावर्तोगृहं तमस्तं नेछेत् नानिलषेत् । किमिति । यतोवद्धोवशीकृतोविषयाएव शब्दादयः पाशारज्जुबंधनानि तैर्बद्धः परवशीकृतः स्नेहपाशानपत्रोटयितुमसमर्थः सन्मोहं चित्तव्याकुलत्वमागछति किंकर्तव्यमूढोनवति पौनःपुन्येन मंदोऽज्ञोजडइति । इति परिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३१ ॥ इतिस्त्रीपरिज्ञायां प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥

हवे चोथा अध्ययननो बीजो उद्देशो प्रारंनिये बैयें पहेला उद्देशामां स्त्रीना परिचय थकी चारित्रनो विनाश थायडे एम कह्युं. हवे बीजा उद्देशामां जे साधु शील थकी पडे तेने जे विटंबना थाय ते कहेडे.

उएसया णरज्जेज्जा, नोगकामी पुणोविरज्जेज्जा ॥ नोगे समणाण सुणेह,
जह नुंजंति निरकुणो एगे ॥१॥ अह तं तु नेदंमावन्न, मुछितं निरकूका
ममतिवहं ॥ पलिनिंदियाणं तो पछा, पाडद्धहुसुद्धि पहाणंति ॥ २ ॥

अर्थ—(उएसयाके०)चारित्रिउ एकाकी राग द्वेपरहित होय ते साधु स्त्रीने विपे सदाकाल(णरज्जेज्जाके०)नराचे. (नोगकामीपुणोके०) कदापि कर्मोदय थकी नोगानिलापी थाय;तो वली विरज्जेज्जाके० विरचे केमके गृहस्थने पण जे नोगडे,ते विटंबनाप्रायडे, तेथी ते पण विरचेने तो. साधुने नोगनी विटंबनानुं केवुंजशुं तेकारण माटे (नोगेसमणाण सुणेहके०)साधुना नोग केवा विटंबना प्रायडे ते सांनलो(जहके०)जेम (नुंजंति निरकुणो एगेके०)धर्मना जाण एवा कोइक साधु नोगवे ते आगल कहेडे. ॥१॥(अहके०)हवे(तंके०)ते साधु(तुके०)विशेपेकरी स्त्रीना परिचय थकी(नेदंके०)शीलना विनाशने(आवन्नंके०)

पाम्यो बतो (मुच्छितंके०) स्त्रीने विषे मूर्छित एवो (निरकूके०) यति तथा (काममतिवट्टके०) कामभोग उपरे मति अभिलाषनुं प्रवर्त्तावबुंछे जेमने एवा साधुने ते स्त्री एम कहेछे (भिंदियाणंके०) में माहारा कुलशीलनी मर्यादा अतिक्रमीने माहारो आत्मा तुजने दीधोछे इत्यादिक वचन कहीने ते यतिने पोताने वश करे (पच्छाके०) तेवारपछी ते इएक प्रकारे ते स्त्रीने रीशाणी जाणीने ते बापडो ते स्त्रीने पगे पोतानुं मस्तक नमाडे तेवारे ते पुरुषने एवो वश थयो देखीने ते स्त्री (पाडुच्छुट्टृिके०) पोतानो पग ऊंचो उपाडीने माबा पगे करी ते द्रव्यलिंगी यतिना मस्तकने विषे (पहणंतिके०) प्रहार करे तोपण जे काम भोगनेविषे गृद्ध होय ते मूर्ख स्त्रीयकी विरचे नहि. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथ द्वितीयआरभ्यते । तस्येदमादिसूत्रं ॥ (उएति) उजएकोरागद्वेषर हितः सदास्त्रीषु न रागं कुर्यात् यद्यपि कर्मोदयाद्भोगाभिलाषी भवेत्तथापि पुनस्ताभ्योविर क्तेत । कोर्थः। कर्मोदयात् प्रवृत्तमपि चित्तं ज्ञानांकुशेन निवर्तयेत् । तथाश्रमणानां भोगाश्री यंविमंबनैवेति शृणुत यूयं । यडुक्तं मुंडंशिरइत्यादि पूर्ववत् । तथातैरप्युक्तं ॥ कृशः काणः खंजः श्रवणरहितः पुछविकलः क्षुधाक्षामोजीर्णः पिवरककपालार्दितगलः ॥ व्रणैः पूयक्लि न्नैः कृमिकुलशतैराविलतनुः शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हंत्येव मदनइत्यादि । यथा अधर्माणोभिक्षवोप्येके भोगान् भुंजते तथाग्रे वक्ष्यतीति ॥१॥ अथ तं साधुं भेदं शील भेदं चारित्रस्खलनमापन्नं प्राप्तं स्त्रीमूर्छितं । तुर्विशेषणे । पुनः किंभूतं । कामेषु इछाम नेषु मतिर्बुद्धिर्वर्तते यस्य स काममतिवर्तस्तमेवंविधं भिक्षुं परिभिद्य मया कुलशीलमर्या दामतिक्रम्य तवात्मा अर्पितस्त्वंतु अकिंचित्करइत्यादिवचनान्युच्चार्य याः पादंचरणमु त्कृत्य ऊर्ध्वीकृत्य साधोर्मूर्ध्नि प्रघ्नंति प्रहारं ददति एवं विडंबयंति ॥ २ ॥

॥ टीका—उक्तः प्रथमोद्देशकः सांप्रतं द्वितीयः समारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः। इहा नंतरोद्देशके स्त्रीसंस्तवाच्चारित्रस्खलनमुक्तं स्खलितशीलस्य या अवस्था इहैव प्रादुर्भवति तत्कृतकर्मबंधश्च तदिह प्रतिपाद्यते इत्यनेन संबंधेनायातस्योद्देशकस्यादिसूत्रं (उएस याइत्यादि) अस्य चानंतरपरंपरसूत्रसंबंधोवक्तव्यः सचायं संबंधोविषयपाशैर्मोहमा गच्छति यतोऽतउजएकोरागद्वेषवियुतः स्त्रीषु रागं न कुर्यात् । परंपरसूत्रसंबंधस्तु संलो कनीयमनगारं दृष्ट्वा च यदि काचिद्योषित् साधुमशनादिना नीवारकल्पेन प्रतारयेत्तत्रोजः सन्न रज्येतेति । तत्रौजोऽद्व्यतः परमाणुर्भावतस्तु रागद्वेषवियुतः । स्त्रीषु रागादिहैव वक्ष्य माणनीत्या नानाविधाविडंबनाभवंति तत्कृतश्च कर्मबंधस्तद्विपाकाच्चामुत्र नरकादौ तीव्रावेदनाभवंति । यतोऽतएतन्मत्वा भावोजः सन् सदा सर्वकालं वाऽनर्थखनिषु स्त्रीषु न रज्येत । तथा यद्यपि मोहोदयात् भोगाभिलाषी भवेत्तथाप्यैहिकामुष्मिकापायान

परिगणय्य पुनस्तान्योविरक्तेत । एतडुक्तं नवति । कर्मोदयात्प्रवृत्तमपि चित्तं हेयोपादेयपर्या लोचनया ज्ञानांकुशेन निवर्तयेदिति । तथा श्राम्यंति तपसा खिद्यंतीति श्रमणास्तेषामपि नोग इत्येतञ्छृणुत यूयं । एतडुक्तं नवति । गृहस्थानामपि नोगाविडंबनाप्रायायतीनांतु नोगा इत्येतदेव विडंबनाप्रायं किंपुनस्तत्कृतावस्थाः । तथाचोक्तं । मुंमं शिरइत्यादि पूर्ववत् । यथा यथा च नोगानेकेऽपुष्टधर्माणोनिह्नवोयतयोविडंबनाप्रायान् नुंजते तथोद्देश कसूत्रेणैव वक्ष्यमाणेनोत्तरत्र महता प्रबंधेन दर्शयिष्यामि । अन्यैरप्युक्तं । कृशः का णः खंजः श्रवणरहितः पुञ्छविकलः, क्षुधाक्षामोजीर्णः पिठरककपालार्दितगलः ॥ व्रणैः पूयक्लिन्नैः कृमिकुलशतैराविलतनुः शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हंत्येव मदनः इत्यादि ॥ १ ॥ नोगिनां विडंबनां दर्शयितुमाह । (अहेत्यादि) अथेत्यानंतर्यार्थः । तुशब्दोविशेष णार्थः स्त्रीसंस्तवादनंतरं निकुं साधुं नेदं शीलन्नेदं चारित्रस्खलनमापन्नं प्राप्तं संतं स्त्री षु मूर्छितं गृद्धमध्युपपन्नं । तमेव विशिनष्टि । कामेष्विछामदनरूपेषु मतेर्बुद्धेर्मनसोवा व र्तनं प्रवृत्तिर्यस्यासौ काममतिवर्तः कामानिलाषुकइत्यर्थः । तमेवंनूतं परिनिद्य मदस्मु पगतः श्वेतकृष्णप्रतिपन्नोमहशकइत्येवं परिज्ञाय यदिवा परिन्निद्य परिसार्यात्मसात्कृतं चोद्मयंति । तद्यथा । मया तव लुंचितशिरसोजल्लमलाविलतया डुर्गंधस्य जुगुप्सनीय कक्षावक्षोबस्तिस्थानस्य कुलशीलमर्यादालज्जाधर्मादीन्परित्यज्यात्मादत्तस्त्वं पुनरकिंचि त्करइत्यादि नणित्वा प्रकुपितायास्तस्याश्चसौ विषयमूर्छितस्तत्प्रत्यापनार्थं पादयोर्निप तितः । तथाचोक्त । व्यानिन्नकेसरबृहच्छिरसश्च सिंहा,नागाश्च दानमदराजिकृशैः कपोलैः ॥ मेधाविनश्च पुरुषाः समरेच शूराः स्त्रीसन्निधौ परमकापुरुषान्नवंति ॥ १ ॥ ततोविषयेष्वे कांते न मूर्छितइति परिज्ञानात्पश्चात्पादं निजवामचरणमुत्कृष्योत्क्षिप्य मूर्ध्नि शिरसि प्रघ्नंति ताडयंत्येवं विमंबनां प्रापयंतीति ॥ २ ॥

जइ केसिआ णं मए निरकु; णोविहरे सह ण मिछीए॥ केसाणविह लुं चिस्सं नन्नत्त मए चरिज्जासि॥ ३ ॥ अहणं सहोई उवलद्धो, तो पेसंति तहाजूएहिं ॥ अलाउछेदं पेहेहिं, वग्गुफलाइं आहराहित्ति ॥ ४ ॥

अर्थ—वली कोइक स्त्री एवी माया करे के (जइके०)जो तमे(केसिआके०) केसवंती एवी णंवाक्यालंकारे (मएके०)माहारा सहित विहार करतायका शंका पामताहो तो(निरकूके०) अहो साधु नमे (णोविहरेसहणमिछीएके०)केशवाली स्त्रीनी साथे विहार करशो नहीं (के साणविहके०) केशनेपण हुं (लुंचिस्संके०) लोच करीने दूर करीश. अपि शब्द थकी अन्य जे कांइ तमे कहेशो ते सर्व हुं करीश पण (नन्नत्तमएचरेज्जासि के०) माहारा विना तमे अन्य स्थानके विचरशो नही एटली वीनती करुंहुं ते मान्य करो. हुं पण तमा

रा आदेशो प्रवर्त्तिश इत्यादिक वचने करी विश्वास उपजावीने ते स्त्री जे करे ते कहे ॥ ३ ॥ (अह के०) अथ एटले हवे णं वाक्यालंकारे एवा वचने करी (साके०) ते साधु (होईउवलको के०) स्त्रीने वश थाय एम ते स्त्री पोताने वश थयो जाणे (तो के०) तेवारपछी तेने (पेसंतितहाजूएहिं के०) तथा नूत एटले तेवा जे कर्मकरना कार्य करवा मोकले एटले दासनी पेरे कार्य करवानी आज्ञा आपे ते कया ते देखाडेछे (अलाउछेदं के०) तुंबडुं छेदवाने अर्थे शस्त्रो (पेहाहि के०) जोय ते लावो के जे शस्त्रे करी तुंबिपात्रादिक समारियें तथा (वग्गुफलाइं आहराहित्ति के०) रुडा नालियरादिकना फल लइ आवो ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–केशाविद्यंते यस्याः सा केशिका। णंवाक्यालंकारे। हेभिक्षो यदि मया स्त्रिया केशिकया सह त्वं नोविहरेः। यदि मया सह नोगान् भुंजानोव्रीडां वहसि तदा केशानप्यहंलुंचिष्याम्यपनेष्यामि। आस्तांतावद्भूषणादिकमित्यपेरर्थः। अस्योपलक्षणादन्यदपि दुष्करं विदेशगमनादि सर्वमहं करिष्यामि त्वं पुनर्मया रहितोनान्यत्र चरेः ॥ ३ ॥ णं वाक्यालंकारे। अथ ससाधुराकारेंगितैस्तया उपालब्धः स्ववशइति ज्ञातस्तदा तं तथा नूतैर्दासव्यापारैः प्रेषयति नियोजयति। तथाहि। अलावु तुंबं छिद्यते येन तदलावुछेदं पिप्पलकादिशस्त्रं प्रेक्षस्व निरूपय येन शस्त्रेण पात्रादेर्मुखं क्रियते। तथा वल्गूनि शोभनानि नालिकेरादीनि त्वं आहर आनय। अथवा देशनादिरूपया यानि लन्यंते तानि वाक्फलानि वस्त्राहारादीनि तान्यानय ॥ ४ ॥

॥ टीका–अन्यच्च (जइइत्यादि) केशाविद्यंतेयस्याः सा केशिका। णमितिवाक्यालंकारे। हेभिक्षो यदिमया स्त्रिया नार्यया केशवत्या सह नोविहरेस्त्वं सकेशया स्त्रिया नोगान् भुंजानोव्रीडां यदि वहसि ततः केशानप्यहंत्वत्संगमाकांक्षिणी लुंचिष्याम्यपनेष्यामि। आस्तां तावदलंकारादिकमित्यपिशब्दार्थः। अस्य चोपलक्षणार्थत्वादन्यदपि दुष्करं विदेशगमनादिकं तत्सर्वमहं करिष्ये त्वं पुनर्न मया रहितोनान्यत्र चरेः। इदमुक्तं नवति मया रहितेन नवता क्षणमपि नस्थातव्यमेतावदेवाहं नवंतं प्रार्थयामि अहमपियन्नवानादिशति तत्सर्वं विधास्यइति ॥ ३ ॥ इत्येवमतिपेशलैर्विश्रंनजननैरापातनद्रैरालापैर्विश्रंनयित्वा यत्कुर्वंति तदर्शयितुमाह। (अहणमित्यादि) अथेत्यानंतर्यार्थे। णमिति वाक्यालंकारे। विश्रंनालापानंतरं यदासौ साधुर्मदनुरक्तइत्येवमुपलब्धोनवत्याकारैरिंगितैश्चेष्टया वा मद्वशगइत्येवं परिज्ञातोनवति तानिः कपटनाटकनायिकानिः स्त्रीनिस्ततस्तदनिप्रायपरिज्ञानाडुत्तरकाले तथानूतैः कर्मकरव्यापारैरपशब्द

र्पयंति नियोजयंति । यदिवा तथाभूतैरिति लिंगस्थयोग्यैर्व्यापारैः प्रेषयंति तानेवदर्शी तुमाह । (अलावत्ति) अलाबु तुंबं छिद्यते येन तदलाबुछेदं पिप्पलकादि शस्त्रं (पेहा इत्ति) प्रेक्षस्व निरूपय लभस्वेति येन पिप्पलकादिना लब्धेन पात्रादेर्मुखादि क्रियतइ । तथा वग्गूनि शोभनानि फलानि नारीकेरादीनि अलाबुकानिवा त्वमाहरानयेति । दिवा वाक्फलानिच धर्मकथारूपायाव्याकरणादिव्याख्यानरूपायावा वाचोयानि फ नि वस्त्रादिलाभरूपाणि तान्याहरेति ॥ ४ ॥

दारूणि साग पागाए, पज्जोउ वा भविस्सती राउ ॥ पाताणिय मे रया वेहि, एहि तामे पिठउ मद्दे ॥५॥ वत्थाणिय मे पडिलेहेहिं, अन्नं पाणंच आहराहित्ति ॥ गंधंच रउहरणं च कासवगं मे समणुजाणाहि ॥ ६ ॥

अर्थ-(दारूणिसाग पागाएके०) दारुण एटले काष्ठ शाकपत्र एटले वत्थुलादिक रांध ने अर्थे लावो (वाके०) अथवा (पज्जोउके०) प्रद्योत एटले अजवालुं (राउके०) रात्री विषे (भविस्सतीके०) थाय ते वास्ते तैलादिक लावो. तथा (पाताणिय मेरयाहिके०) माहारा पात्राने रंगी आपो के जेणे करी हुं सुखे भिक्षा मांगी आहारादिक लावुं अथ ा माहारा पग रंगवाने अर्थे रंग लइ आवो तथा (एहितामे पिठउमद्देके०) अहीं आवो माहारा अंगडःखेछे माटे माहारी पीठे मर्दन करो एम कहे ॥ ५ ॥ (वत्थाणियमेपडिले हहिंके०) माहारा वस्त्र प्रतिलेखो एटले जूउ जुना थयाछे, माटे बीजा नवा आणी आपो, तथा मलीन थयाछे तेने धोवरावो तथा (अन्नंपाणंच आहराहित्तिके०) अन्न पा णी आणी आपो तथा (गंधंचके०) सुगंध कर्पूरादिक लइ आवो. अथवा ग्रंथ ते हिर ण्यादिक लावो तथा (रउहरणंचके०) रजोहरण सारो आणी आपो तथा (कासवगंमेस मणुजाणाहिके०) हुंलोच करावी शकुं तेम नथी तेमाटे मस्तक भद्र करावวา एटले वृ द्धकेश उतारवाने अर्थे नावीने तडी लावो एटला उपकरण वेषधारीना कह्या ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-दारूणि काष्ठानि शाकंच पाकायानय । रात्रौ रजन्यां प्रद्योतोभवि ष्यतीति रात्रावपि वनादौ गत्वाऽ नय । तथा पात्राणि भाजनानि मे रंजय लेपय येनाहं सुखं भिक्षां मार्गये । अथवा पादौ रंजय अलक्तकादिना । एहि आगछ साधो तावन्मेम म पृष्ठं मर्दय विश्रमणां कुरु बाधते ममांगमिति ॥ ५ ॥ वस्त्राणि मे जीर्णानि वर्तंते अतस्तानि प्रत्युपेक्षस्व अन्यानि निरूपय अन्नपानादिकं चाहारमानय गंधं वासादिकं ग्रं थंवा हिरण्यादिकं शोभनं रजोहरणंच । अहं लोचं कारयितुमसमर्थो ततः काश्यपं ना पितं अनुजानीहि येनाहं शिरोमुंडयामि ॥ ६ ॥

॥ टीका–अपिच (दारूणीत्यादि) यथा दारूणि काष्ठानि शाकं पक्ववस्तुजातिकं शाकं तत्पाकार्थं। क्वचिदन्नपाकायेति पाठस्तत्रान्नमोदकादिकमिति । रात्रौ रजन्यां प्रद्योतो वा नविष्यतीति कृत्वा अतोऽटवीतस्तमाहरेति । तथा पात्राणि पतद्गृहादीनि रंजय लेपय येन सुखेनैव निक्षाटनमहं करोमि । यदिवा पादावलक्तकादिना रंजयेति । तथा परित्यज्यापरं कर्म तावदेह्यागच्छ मे मम पृष्ठमुत्प्राबल्येन मर्दय बाधते ममांगमुपविष्टायाऽतः संहारय पुनरपरं कार्यशेषं करिष्यसीति ॥ ५ ॥ किंच (वत्थाणियमेऽत्यादि) वस्त्राणिच अंबराणि मे मम जीर्णानि वर्ततेऽतः प्रत्युपेक्षस्वान्यानि निरूपय । यदिवा मलिनानि रजकस्य समर्पय मडुपधिंवा मूपिकादिनयात्प्रत्युपेक्षस्वेति । तथा अन्नपानादिकमाहरानयेति तथा गंधं कोष्ठपुटादिकग्रंथिं वा हिरण्यं तथा शोननं रजोहरणं तथा लोचं कारयितुमहमशक्तेत्यतः काश्यपं नापितं मच्छिरोमुंमनाय श्रमणानुजानीहि येनाहं वृहत्केशानपनयामीति ॥ ६ ॥

अदु अंजणिं अलंकारं,कुक्कययंमे पयच्छाहि ॥ लोध्धंच लोध्धकुसुमंच, वेणुपलासियंच गुलियंच ॥ ७ ॥ कुठं तगरंच अगरुं, संपिठं सम्मं उसिरेणं॥ तेल्लं मुहभिंजाए, वेणुफलाइं सन्निधानाए ॥८॥

अर्थ–(अदुके०)अथवा हवे प्रकारांतरें गृहस्थना उपकरण कहीदेखाडेले (अंजणिंके०) काजलनुं नाजन लावो तथा (अलंकारंके०) घरेणानुं नाजन लावो तथा (कुक्कयंके०) खुंखणो आणी आपो तथा(पयच्छाहिके०)घुघुरा विणा (मेके०) मुजने लावी आपो जेम हुं सर्व आनरण पेहेरीने तमने विनोद उपजावुं तथा (लोध्धंचलोध्धकुसुमंचके०) लोध्र अने लोध्रना फल तथा (वेणुपलासियंचके०) वंशनी लाकडी आणी आपो जेने वाम हाथे ग्रहणकरी जमणेहाथे वीणा वजाडिये तथा (गुलियंचके०) औषधगुटिका एटले औषधनी गोली लावी आपो जेणेकरी हुं सदा यौवनानिराम थकी रहुं ॥७॥ कुठंअगरं तगरंचके०) कुष्ट ते पुटादिक तथा अगर अने तगर रूडावास सुगंध द्रव्य (संपिठं सम्मउसिरेणंके०) एसर्ववस्तु उसिरजे वालो ते सहित पीसेली एवी सुंगध लइ आवो(तेल्लं मुहभिंजाएके०) तथा औषधादिके संस्कार्युं एवुं तैल मुखना अन्यंगने अर्थे लइ आवो जे थकी माहारो मुख सतेज देखाय तथा (वेणुफलाइं सन्निधानाएके०) वांसना करंमीआ पेटी प्रमुख वस्त्रालंकारादिक राखवाने अर्थे लइ आवो. ॥ ८ ॥

॥दीपिका–अथ अंजनिकां कज्जलाधारनूतां नलिकां अलंकारं केयूरादिकं च मे प्रयच्छेति (कुक्कयं) खुखणकं प्रयच्छयेनाहं वीणाविनोदेन त्वां रंजयामि लोध्रं लोध्रकुसुमं सुगंधं तथा (वेणुपलासिअत्ति) वंशात्मिका त्वक्काष्ठिका सा दंतैर्वीणावद्वाद्यते तथौषधगुटिका

तादृशीं देहि येनाहमविनष्टयौवना नवामीति ॥ ७ ॥ कुष्ठमुत्पलं तगरमगरंच सुगंधिद्रव्यमुशीरेण वीरणमूलेन संपिष्टं सुगंधि स्याद्यतस्तत्तथा कुरु । तैलं मुखमाश्रित्य (भिलिंजएत्ति) अभ्यंगाय ढौकय मुखाभ्यंगार्थं तैलं तथाविधमानयेत्यर्थः । वेणुफलानि वंशकार्याणि करंमकादीनि सन्निधानं वस्त्रादेर्व्यवस्थापनं तदर्थमानय ॥ ७ ॥

॥ टीका—किंचान्यत् । (अडुअंजणीमित्यादि) अथशब्दोऽधिकारांतरप्रदर्शनार्थः । पूर्वं लिंगस्थोपकरणान्यधिकृत्याभिहितमधुना गृहस्थोपकरणान्यधिकृत्याभिधीयते । तद्यथा (अंजणीमिति) अंजणिकां कज्जलाधारभूतां नलिकां मम प्रयच्छस्वेत्युत्तरत्र क्रिया । तथा कटककेयूरादिकमलंकारं वा तथा (कुक्कुटयंति) खुंखुणकं मे मम प्रयच्छ येनाहं सर्वालंकारविभूषिता वीणाविनोदेन भवंतं विनोदयामि । तथा लोध्रं च लोध्रकुसुमं च । तथा (वेणुफलासियंति) वंशात्मिका श्लक्ष्णत्वक् काष्ठिका सा दंतैर्वामहस्तेन प्रगृह्य दक्षिणहस्ते नवीणावद्वाद्यते । तथौषधगुटिकां तथाभूतामानय येनाहमविनष्टयौवना भवामीति ॥ ७ ॥ तथा (कुठमित्यादि) कुष्ठमुत्पलकुष्ठं तथाऽगरुं तगरंच एते द्वेअपि गंधिकद्रव्ये । एतत्कुष्ठादिकमुशीरेण वीरणीमूलेन संपिष्टं सुगंधि भवति यतस्तत्तथा कुरु, तथा तैलं लोध्रकुंकुमादिना संस्कृतं मुखमाश्रित्य (भिलिंजएत्ति) अभ्यंगाय ढौकयस्व । एतदुक्तं भवति । मुखाभ्यंगार्थं तथाविधं संस्कृतं तैलमुपाहरेति येन कांत्युपेतं मे मुखं जायते (वेणुफलाइंति) वेणुकार्याणि करंडकपेटिकादीनि सन्निधिः सन्निधानं वस्त्रादेर्व्यवस्थानं तदर्थमानयेति ॥ ७ ॥

नंदीचुन्नगाइं पाहराहिं, छत्तोवाणहंच जाणाहिं ॥ सत्थंच सूवछेज्जाए
आणीलंच वत्थं रयावेहि ॥ ए ॥ सुफणिंच साग पागाए, आ
मलगाइंदगाहरणंच ॥ तिलगकरणिमंजणसलागं, घिंसु मेवि
हूणयं विजाणेहि ॥ १० ॥

अर्थ—(नंदीचुन्नगाहिं पाहराहिंके०)द्रव्यसंयोगे नीपजाव्युं एवुं नंदीचूर्ण ते ओष्ठ रंगवाने अर्थे कोइक प्रकारे लावो (छत्त के०) आताप तथा वृष्टी राखवा भणी छत्र लावो तथा (उवाणहंचजाणाहिंके०) उपानह जे मोजडी प्रमुख ते पग राखवाने अर्थे सम्यक् प्रकारे लावो (सत्थंचसुवछेज्जाएके०) दात्रादिक शस्त्र नीलाशाक पत्रादिक छेदवाने अर्थे लावो (आणीलंचवत्थंरयावेहिके०) नीला वस्त्र रंगावी आपो लालवस्त्र रंगावी आपो एरीते वचन कहे ॥ ए ॥ (सुफणिंचसागपागाए के०)रुडी हांमली पत्रशाक अन्नादिक पकाववाने अर्थे लावो तथा (आमलगाइंके०) पित्तोपशमाववाने अर्थे अथवा स्नान करवाने अर्थे आमला लावो (दगाहरणंच के०) पाणी राखवाने अर्थे घडो घडूलो

इत्यादिक लावो (तिलगकरणं के०) जेणेकरी गोरोचननुं तिलक करियें तेवी शलि लावो तथा (अंजण के०) जेणेकरी आंख आंजीयें एवी (सलागं के०) शिलाका लावो (घिंसुमेविहूयणंविजाणेहिं के०) उन्हालो जे ग्रीष्मकाल विशेष ते दिवसे वायु ढोलवाने अर्थे वींजणो लावो ॥ १० ॥

॥दीपिका—नंदीचूर्णं उष्ठम्रक्षणचूर्णं प्राहार प्रकर्षेणानय आतपस्य वृष्टेर्वारणाय छत्रमुपानहौ च ममानुजानीहि। तथा शस्त्रं दात्रादिकं सूपछेदाय पत्रशाकछेदनार्थं देहि तथा नीलं वस्त्रं रंजय। उपलक्षणाद्रक्तादिकं च कारय॥ए॥ सुष्ठु फण्यते काथ्यते तक्रादिकं यत्र सा सुफणि स्थाल्यादिनाजनं तत् शाकपाकार्थमानय। आमलकानि पित्तोपशमाय नक्षणार्थं स्नानार्थंवा उदकाहरणं च जलाहरणपात्रं । उपलक्षणाद्घृतादिपात्रमानय । सर्वं गृहोपस्करमानय । तथाहि । तिलकं क्रियते यया सा तिलककरणी अंजनशलाका यया तिलकः क्रियते तामानय तथा ग्रीष्मे उष्णतापे मम विधूनकं व्यजनकं विजानीहि॥ १० ॥

॥टीका—किंच। (नंदीचुस्सगाईइत्यादि) नंदीचुस्सगाइंति द्रव्यसंयोगनिष्पादितोष्ठम्रक्षणचूर्णोनिधीयते। तमेवंभूतं चूर्णं प्रकर्षेण येन केनचित्प्रकर्षेणाहरानयेति तथाऽऽतपस्य वृष्टेर्वासंरक्षणाय छत्रं तथोपानहौ च ममानुजानीहि। नमे शरीरमेनिर्विनावर्तते ततोददस्वेति तथा शस्त्र दात्रादिकं सूपछेदनाय पत्रशाकछेदनार्थं ढौकयस्व। तथा वस्त्रमंबरं परिधानार्थं गुलिकादिना रंजय यथा नीलमीषन्नीलं सामस्त्येन वा नीलं नवत्युपलक्षणार्थत्वाद्रक्तं यथा नवतीति ॥ ए॥ तथा । (सुफणिंचेत्यादि) सुष्ठु सुखेन वा फण्यते काथ्यते तक्रादिकं यत्र तत्सुफणि स्थालीपिठरादिकं नाजनमनिधीयते तच्छाकपाकार्थमानय। तथा आमलकानि धात्रीफलानि स्नानार्थं पित्तोपशमनायान्यवहारार्थं वा तथोदकमाह्रियते येन तदुदकाहरणं कुटवर्धनिकादि । अस्य चोपलक्षणार्थत्वाद्घृततैलाद्याहरणं सर्वं वा गृहोस्करं ढौकस्वेति । तिलकः क्रियते यया सा तिलककर्णी दंतमयी सुवर्णात्मिका वा शलाका यया गोरोचनादियुक्तया तिलकः क्रियतइति । यदिवा गोरोचनया तिलकः क्रियते साच तिलककर्णीत्युच्यते । तिलकाः क्रियंते पिष्यंते वा यत्र सा तिलककर्णीत्युच्यते। तथांजनं सौवीरकादि । शलाका अक्ष्णोरंजनार्थं शलाका अंजनशलाका तामाहरेति। तथा ग्रीष्मे उष्माभितापे सति मे मम विधूनकं व्यजनकं विजानीहि ॥ १० ॥

संमासगंच फणिहंच, सीहलि पासगंच आणाहि ॥आदसगंच पयहा हि, दंतपरकालणं पवेसाहि ॥ ११ ॥ पूयफलं तंबोलयं, सूई सुत्तगंच जाणाहि ॥ कोसंयमोचमेहाए, सुप्पुरकलगंच खारगालणंच ॥ १२ ॥

अर्थ–(संमासकं के०)चीपीउं जेणेकरी नाशिकाना नीमाला लूचीए काढीए तेने संमासक कहिए वली (फणिहंचके०) कांसकी जेणेकरी माथाना वाल समारिए ते तथा (सीहलिपासगंचआणाहि के०) वेणी बांधवाने अर्थे उननी कांकशी ए वस्तुउ आणी आपो (आदंसगंचके०) आदर्शकं आसमंतात् दृश्यते आत्मा यस्मिन् स आदर्शः जेणे करी मुख वर्णादिक रूप शरीर देखाय तेने आरीशो कहिए ते (पयछाहिके०) आणी आपो (दंतपखालणंपवेसाहिके०) दंतप्रक्षालन करवाने अर्थे दातण माहारा समीपे लावो ॥११॥ (पूयफलंके०) पुंगफलते सोपारी (तंबोलयंके०) नागरवेलीना पानना बीडा प्रमुख तथा (सूईसुत्तगंचजाणाहिके०) सूत्र शीववाने अर्थे सूई ए वस्तुउ लइ आवो (कोसंयके०) घटादिक भाजन (मोचमेहाएके०)मोचप्रस्रवणंतेनमेहसेचन एटले लघुनीति करवा निमित्त रात्रीने समये मने बाहेर निकलता बीक लागेछे तेमाटे ते भाजन आणी आपो (सुप्पुके०) तंडुलादिक धान सोधवाने अर्थे सुपडुं लावो (खलगंचके०) धान खांमवाने अर्थे उखलो लइ आवो वली (खारगालणंचके०) जेमां नाखीने साजी प्रमुख खार गालीयें ते पात्र लावो अथवा लवणादिक खार लावो ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–संडासिकं नासिकाकेशोत्पाटनं फणिहं केशसमारचनाय कंकतकं सीहलिपासकं वीणासंयमनार्थमूर्णामयं कंकणं चानय आदर्शकं दर्पणं प्रयछ दंतप्रक्षालनं दंतकाष्ठं मदंतिके प्रवेशय ॥११॥ पूगफलं तांबूलं सूचीसूत्रं च जानीहि देहि। कोशं घटादिभाजनं मोचमेहायानय । मोचः प्रस्रवणं तेनमेहः सेचनं तदर्थं भाजनमानय । तथा शूर्पं तंडुलादिशोधनं उदूखलं क्षारस्य सर्जिकादेर्गलनकं चानयेति ॥ १२ ॥

॥ टीका–एवं (संमासगंचेत्यादि) संडासिकं नासिकाकेशोत्पाटनं फणिहं केशसंयमनार्थं कंकतकं तथा (सीहलिपासगंति) वीणासंयमनार्थमूर्णामयं कंकणं चानय ढौकयेति । एवमासमंताद्दृश्यते आत्मा यस्मिन् सआदर्शः सएवआदर्शकस्तं प्रयछ ददस्वेति। तथा दंताः प्रक्षाल्यंते अपगतमलाः क्रियंते येन तद्दंतप्रक्षालनं दंतकाष्ठं तन्मदंतिके प्रवेशयेति ॥ ११ ॥ (पूयफलंचेत्यादि) पूगफलं प्रतीतं तांबूलं नागवल्लीदलं तथा सूचीं च सूत्रं च सूच्यर्थं वा सूत्रं जानीहि ददस्वेति तथा कोशमिति वारकादिभाजनं तन्मोचमेहाय समाहर । तत्र मोचः प्रस्रवणं कायिकेत्यर्थः । तेन मेहः सेचनं तदर्थं भाजनं ढौकय। एतदुक्तं भवति । बहिर्गमनं कर्तुमहमसमर्था रात्रौभयादतो मम यथारात्रौ बहिर्गमनं न भवति तथा कुरु । एतच्चान्यस्याप्यधमतमकर्तव्यस्योपलक्षणं द्रष्टव्यं । तथा शूर्पं तंडुलादिशोधनं तथोदूखलं तथा किंचन क्षारस्य सर्जिकादेर्गालनकमित्येवमादिकमुपकरणं सर्वमप्यानयेति ॥ १२ ॥

चंदालगंच करगंच, वच्चघरंच आउसो खणाइ ॥ सरपायं च जायाए, गोरहगंच सामणे राए ॥ १३ ॥ घडिगंच सडिंडिमयंच, चेलगोलं कुमारभूयाए ॥ वासं समभिआवन्नं, आवसहंच जाण भत्तंच ॥ १४ ॥

अर्थ-(चंदालगंच के०) देवपूजाने अर्थे चंगेरी प्रमुख भाजन तथा (करगंचके०) करुउं मदिरानुं भाजन ते आणी आपो तथा (वच्चघरंचआउसोखणाहिके०) अहो आयुष्मन् संचारुखण एटले पुरिष विष्टा घरमां नपडे माटे घरने नलीया संचारो तथा कुइ खणावो वली (सरपायंचजायाएके०) शरपात एटले धनुष्य बाण पुत्र रमाडवाने अर्थे लइ आवो (गोरहगंचसामणेराए के०) गोरहगं एटले त्रण वर्षनो बलदीउ श्रमणना पुत्रने अर्थे रमत करवासारुं लइ आवो ॥ १ ३॥(घडिगंचसडिंडिमयंचके०) घडिगं एटले कूल्हाडी सडिंडिम एटले वाजिंत्रविशेष तेसहित तथा (चेलगोलंके०)गोलदडी(कुमारभूयाएके०)कुमरक्रीडाने अर्थे लइ आवो जे दडीयें करी माहारा बालक रमत करे (वासंसमभिआवन्नंके०) तथा हेश्रमण वर्षाकाल आव्यो ते कारणे (आवसहंचके०) वर्षाकालमां निवास करवा योग्य घर करावी आपो के जे थकी भिंजीयें नही तथा (जाणभत्तंचके०) तेवर्षाकाल योग्य एटले वर्षाकालमां बेग खाइये माटे तांडुलादिक लइ आवोः ॥१४॥

॥ दीपिका-चंदालकं देवतार्चनाद्यर्थं ताम्रमयं भाजनं एतच्च मथुरायां चंदालगमित्युच्यते। करकोजलाधारोमद्यभाजनं वा आनय । तथा वर्चोगृहं पुरीषोत्सर्गस्थानं आयुष्मन् खन संस्कुरु । शरपातं बाणक्षेपस्थानं धनुस्तज्जातायं मत्पुत्राय राय ढौकय । गोरहगं त्रिवर्षं बलीवर्दं वाऽनय श्रमणस्यापत्यं श्रामणिस्तस्मै श्रामणये गंत्र्यादिकं भविष्यतीति ॥ १ ३ ॥ घटिकां मृन्मयकुल्लडिकां सडिंडिकां पटहादिवादित्रेण सह गोलं कंडुकं कुमारभूताय क्षुल्लकरूपाय मत्पुत्राय क्रीडार्थं देहि। हे श्रमण वर्षं प्रावृट्कालोपमभ्यापन्नः समापन्नः । प्राप्तस्ततश्चावसथं गृहं वर्षाकालयोग्यं भक्तं च तंडुलादिकं च जानीहि निष्पादय । येन सुखेन वर्षाकालोतिवाह्यते । यडुक्तं । मासैरष्टभिरह्ना च पूर्वेण वयसाऽयुषा ॥ तत्कर्तव्यं मनुष्येण यस्यांते सुखमेधते ॥ १४ ॥

॥टीका-किंचान्यत्। (चंदालगंचेत्यादि)चंदालकमिति देवतार्चनिकाद्यर्थं ताम्रमयं भाजनं एतच्च मथुरायां चंदालकत्वेन प्रतीतमिति । तथा करकोजलाधारोमदिराभाजनं वा तदानयेति क्रिया। तथा वर्चोगृहं पुरीषोत्सर्गस्थानं तदा ऽयुष्मन् मदर्थं खन संस्कुरु। तथा शरापातः पात्यंते क्षिप्यंते येन तच्छरपातं धनुस्तज्जाताय मत्पुत्राय कृते ढौकय । तथा (गो

हणंति) त्र्यहायणं बलीवर्दं च ढौकयेति (सामणेराएत्ति) श्रमणस्यापत्यं श्रामणिस्तस्मै श्रामणिपुत्राय त्वत्पुत्राय गंत्र्यादिकृते भविष्यतीति॥१३॥तथा (घटिगंचेत्यादि) घटिकां मृन्मयकुल्लुडिकां डिंडिमेन पटहकादिवादित्रविशेषेण सह तथा (चेलगोलंति) वस्त्रात्मकं कंडुकं कुमारभूताय क्षुल्लकभूताय राजकुमाररूपाय वा मत्पुत्राय क्रीडनार्थमुपानयेति। तथा वर्षमिति प्रावृट्कालोयमभ्यापन्नोभिमुखं समापन्नोऽतआवसथं गृहं प्रावृट्काल निवासयोग्यं तथा भक्तंच तंडुलादिकं तत्कालयोग्यं जानीहि निरूपय निष्पादय। येन सुखेनैवाऽनागतपरिकल्पितावसथादिना प्रावृट्कालोतिवाह्यतेइति। तदुक्तं । मासैरष्टभिरह्ना च, पूर्वेण वयसाऽऽयुषा ॥ तत्कर्तव्यं मनुष्येण, यस्यांते सुखमेधते ॥ १४ ॥

आसंदियंच नवसुत्तं, पाउल्लाइं संकमठाए ॥ अदु पुत्तदोहलठाए, आणप्पा हवंति दासावा ॥ १५ ॥ जाए फले समुप्पन्ने, गेण्हसुवाणं अहवा जहाहि ॥ अहं पुत्तपोसिणो एगे, भारवहा हवंति उट्टावा॥१६

॥ अर्थ-(आसंदियंचके०) बेशवानिमित्ते मांची आणी आपो पणते केवी लावो के जे (नवसुत्तंके०) नवासूत्रे वणी होय अथवा चर्म थकी वणी होय तेवी लइ आवो (पाउल्लाइं संकमठाए के०) वरसादमां चालतां पगे कादव नलागे तेना अर्थे काष्ठनी पावडी माहारा सारुं आणी आपो (अदुके०) अथवा (पुत्तदोहलठाएके०) गर्भस्थें पुत्रना मोहोला संपादवाने अर्थे वस्तुउल्लावो एम(आणप्पाहवंतिदासावाके०)आज्ञापेभवंतिदासाइव एटले स्त्री जेने ते पुरुपने पोतानी आज्ञामां प्रवर्त्तावे स्नेह पाशे बंधाणा एवा विपयार्थी पुरुष स्त्रीना दास थाय ॥१५॥ (जाएफलेसमुप्पन्नेके०) हवे जात एटले गृहवासनेविपे पुत्ररूप फल उत्पन्न थया छता जे विटंबनाउ थाय ते कहेछे, (गेण्हसुवाणं अहवाजहाहिके०) कोइक स्त्री गृहना कार्ये व्याकुल थई थकी पुरुप प्रत्ये कहे केए बालक तमे संभालो अथवा एनो त्याग करो (अहंके०)हुं एनी वेठ करी शकती नथी में नवमाश सुधी उदरे धस्यो अने तमे क्षणमात्र पण पुत्रने खोलामां लेता नथी; एम क्रोधना वचन बोले तेवारे (एगेके०) कोइएक पुरुप आक्रोशतांथे (पुत्तपोसिणोके०) स्त्रीनो वशवर्त्ती थको पुत्रनो पोपक थाय (भारवहा हवंति उट्टावाके०) जेम उंटनो भारवाहक जेटलो भार उंट उपर नाखे तेटलो भार आरडतो थको उपाडे तेम ते पुरुप पण स्त्रीनीपाशे उंटतुल्य जाणवा॥१६

॥ दीपिका-आसंदिकां मंचिकां ।किंभूतां। नवं सूत्रं वल्कजादि यस्यां सा नवसूत्रा तां (पाउल्लाइं) मौंजकानि काष्ठपादुकावा संक्रमणार्थं पर्यटनार्थं अथवा पुत्रे गर्भस्थिते दोहदोंगदस्तदर्थं स्त्रीणां पुरुपाआज्ञापनीयाः स्युः । यथा दासाआज्ञाप्यंते जनैस्तथा स्त्री

भिः पुरुषाः कर्मकराइवादिश्यंते ॥१५॥ जातः पुत्रः सएव फलं गृहस्थानां तस्मिन् पुत्रे समुत्पन्ने तदुद्देशेन याविडंबनास्ताआह । अमुं दारकं गृहाण त्वं रमे अहंतु व्याप्रवती अथवा एनं जहाहि परित्यज नाहमस्य वार्तामपि पृच्छामि । कुपिता पुनः साह ते मयायं नवमासानुदरेणोढस्त्वंतु उत्संगेपि नधत्से एवमुक्तोनरस्तदुक्तं सर्वं कुरुते। यतः । ददाति प्रार्थितः प्राणान्, मातरं हंति तत्कृते ॥ किं न दद्यात्किं न कुर्यात्स्त्रीभिरभ्यर्थितोनरः ॥१॥ ददाति शौचपानीयं पादौ प्रक्षालयत्यपि ॥ श्लेष्माणमपि गृह्णाति स्त्रीणां वशगतोनरः ॥ २ ॥ अथ पुत्रपोषिणस्ते नराएके भारवहाः स्युः । यथातु उष्ट्राभारं वहंति तत्तुल्याः ॥ १६ ॥

॥ टीका–एवंच (पाउल्लाइंति) मौंजे काष्ठपादुके वा संक्रमणार्थं पर्यटनार्थं निरूपय यतोनाहं निरावरणपादा भूमौपदमपि दातुं समर्थेति । अथवा पुत्रे गर्भस्थे दोहदः पुत्र दौहृदः अंतर्वत्नीफलादावभिलाषविशेषस्तस्मै तत्संपादनार्थं स्त्रीणां पुरुषाः स्ववशीकृता दासाइव क्रयक्रीताइवाज्ञाप्याआज्ञापनीयाभवंति । यथा दासाअलज्जितैर्योग्यत्वादाज्ञाप्यंते एवं तेपि वराकाः स्नेहपाशावपाशिताविषयार्थिनः स्त्रीभिः संसारावतरणवीथीभिरादिश्यंतइति ॥ १५ ॥ अन्यच्च । (जाएफलेंइत्यादि) जातः पुत्रः सएव फलं गृहस्थानां। तथाहि । पुरुषाणां कामभोगः फलं । तेषामपि फलं प्रधानकार्यं पुत्रजन्मेति । तदुक्तं । इदं तत्स्नेहसर्वस्वं, सममाढ्यदरिद्रयोः ॥ अचंदनमनौशीरं, हृदयस्यानुलेपनं ॥१॥ यत्तत्पनिकेत्युक्तं, बालेनाव्यक्तभाषिणा ॥ हित्वा सौख्यं च योगं च तन्मे मनसि वर्तते ॥ २ ॥ यथा लोके पुत्रसुखं नाम द्वितीयं सुखमात्मनइत्यादि । तदेवं पुत्रः पुरुषाणां परमाभ्युदयकारणं तस्मिन् समुत्पन्ने जाते तदुद्देशेन या विडंबनाः पुरुषाणां भवंति। अमुं दारकं गृहाण त्वमहंतु कर्मासक्ता न मे ग्रहणावसरोस्ति। अथचैनं जहाहि परित्यज नाहमस्य वार्तामपि पृच्छाम्येवं कुपितासती ब्रूते मयायं नवमासानुदरेणोढस्त्वं पुनरुत्संगनाप्युद्वहन् स्तोकमपिकालमुद्विजसइति। दासदृष्टांतस्त्वादेशदानेनैव साम्यं भजते नादेशनिष्पादनेनैव । तथाहि । दासोभयादुद्भ्रादेशं विधत्ते सतु स्त्रीवशगोऽनुग्रहं मन्यमानोमुदितश्च तयादेशं विधत्ते। यदेव रोचते मह्यं, तदेव कुरुते प्रिया । इतिवेत्ति न जानाति तत्प्रियं यत्करोत्यसौ ॥ १ ॥ ददाति प्रार्थितः प्राणान् मातरं हंति तत्कृते ॥ किं नदद्यात्किं न कुर्यात्स्त्रीभिरभ्यर्थितो नरः ॥ २ ॥ ददाति शौचपानीयं, पादौ प्रक्षालयत्यपि ॥ श्लेष्माणमपि गृह्णाति स्त्रीणां वशगतो नरः ॥३॥ तदेवं पुत्रनिमित्तमन्यद्वा यत्किंचिन्निमित्तमुद्दिश्य दासमिवादिशंति। अथ तेपि पुत्रान् पोषितुं शीलं येषांते पुत्रपोषिणउपलक्ष

णार्थत्वाद्वास्य सर्वादेशकारिणएके केचन मोहोदये वर्तमानाः स्त्रीणां निदेशवर्तिनोऽपह स्तितैहाकामुष्मिकापायाउष्ट्राइव परवशाजारवाहान्वंतीति ॥ १६ ॥

राउवि उघिया संता, दारगंच संठवंतिधाईवा ॥ सुहिरामणा विते संता वडधोवा हवंति हंसावा ॥ १७ ॥ एवं वहुहिं कए पुवं, जोगठाए जेन्नि यावन्ना ॥ दासे मिइव पेसेवा ॥ पसुजूतेव से ण वा केइ ॥ १८ ॥

अर्थ-(राउवि उठियासंता के०) रात्रने विपे पण निद्रामांथी उठीने बालक रडतो होय तेने राखे बालकने रमाडे कोनीपेरे तो के (दारगंचसंठवंतिधाईवाके०) रुदंतं दारकं धात्रीवत् संथापयंति एटले धात्रीनी पेरे राखे जेम धात्री बालकने रुडीरीते पाले तेम ते पुरुप पण बालकने पाले (सुहिरामणावितेसंताके०) कदापि ते पुरुप सुहिराम एटले घणो लज्जावंत होय तोपण स्त्रीने वचने निर्लज्ज थाय (वडधोवा हवंति हंसावा के०) हंस एटले धोबीनी पेरे स्त्रीना तथा बालकना वस्त्र धोवे तथा बीजापण जेकांइ कार्य कहे ते सर्व दासनी पेरे करे ॥१७॥ (एवंके०) ए पूर्वोक्त प्रकारे स्त्रीनुं किंकरपणुं (पुवंके०) पूर्वे अतीत कालने विपे (वहुहिंके०) घणा पुरुपोए (कएके०) कर्युं अने वर्त्तमान काले पण स्त्रीनुं दासत्वपणुं घणा पुरुपो करेछे तथा आगमिक काले पण करशे (जोगठाएजेन्नियावन्ना के०) जोगने अर्थे जे अन्निमुख एटले संमुख थया तेना ए ह वाल थाय एवा रागांध पुरुपजे स्त्रीने वश वर्त्ते थयाते (दासेके०)दास समान तथा (मिइव के०) पाशमां पडेला मृग समान तथा (पेसेवाके०)वेचातो लीधेलो चाकर ते समान तथा (पसुजूतेवसेणवाकेइ के०) तिर्यंच समान पण न कहेवाय किंबहुना ते कोइ स रीखान कहेवाय एवो कोइ पदार्थ नथी के जेनी उपमा एवा अधमने आपीने तेनी तुल्यना करी बतावीए. ते पुरुप सत्क्रिया थकीरहित माटे साधुपण नही अने तांबुलादिक परिन्नोग थकी रहित माटे गृहस्थ पण न कहेवाय माटे उन्नय ज्रष्ट जाणवा. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—रात्रावप्येके नराउत्थाय धात्रीवत्तं रुदंतं दारकं बालं संस्थापयंति । सुष्टुन्हीर्लज्जा तस्यां मनो येषांते सुन्हीमनसोलज्जावंतोपि संतोलज्जां त्यक्त्वा स्त्रीवशगाहीनकर्मण्यपि कुर्वंति । तान्येवाह । वस्त्रधावकावस्त्रप्रक्षालकाः स्युः । यथा हंसारजकाइव । अस्योपलक्षणादन्यदपि जलवहनादि कुर्वंति ॥ १७ ॥ एवं पूर्वोक्तं बहुन्निर्नरैः पूर्वकृतं कृतपूर्वं जोगकृतये नराअन्यापन्नाअवस्थिताः सावद्यकार्येषु सक्ताः । तथा योरागांधः सदासइव मृगइव मूर्खोहीनकर्मण्यपि प्रेष्यते योज्यते पशुज्जूतः स न कश्चित । न दीक्षितः सत्क्रिया रहितत्वात् । नापिगृहस्थः तांबूलादिन्नोगरहितत्वात् अतोऽसौ नकश्चित् ॥१८॥

॥ टीका–किंचान्यत् (राउविइत्यादि) रात्रावप्युत्थिताः संतोरुदंतं दारकं धात्रीवत् सं स्थापयंत्यनेकप्रकारैरुल्लापैः । तद्यथा । सामिउसणीगरस्स यणक्कउरस्सय हत्थकप्प गिरि पट्टणसीहपुरस्स चउणयस्स निन्नस्सय कुंछिपुरस्सयकस्सुकुज्जाआयामुहसोरियपुरस्स य इत्येवमादिभिरसंबद्धैः क्रीडनकलापैः स्त्रीचित्तानुवर्तिनः पुरुषास्तत् कुर्वंति येनोप हास्यतां सर्वस्य व्रजंति । सुष्टु न्हीर्लज्जा तस्यां मनोंतः करणं येषांते सुन्हीमनसोलज्जालवो पि ते संतोविहाय लज्जां स्त्रीवचनात्सर्वजघन्यान्यपि कर्माणि कुर्वते । तान्येव सूत्रावयवेन दर्शयति । वस्त्रधावकावस्त्रप्रक्षालकाहंसाइव रजकाइव भवंति । अस्य चोपलक्षणार्थत्वा न्यदप्युदकवहनादिकं कुर्वंति ॥ १७ ॥ किमेतत्केचन कुर्वंतीति येनैवमभिधीयते बाढं कुर्वंतीत्याह । (एवं बहुइत्यादि) एवमिति पूर्वोक्तं स्त्रीणामादेशकारणं पुत्रपोषणवस्त्रधा वनादिकं तद्बहुभिः संसाराभिष्वंगिभिः पूर्वं कृतं कृतपूर्वं । तथापरे कुर्वंति करिष्यंति च ये भोगकृते कामभोगार्थमैहिकामुष्मिकापायमपर्यालोच्याभिमुख्येन भोगानुकूल्येनापन्नाव वस्थिताः सावद्यानुष्ठानेषु प्रतिपन्नाइति यावत् । तथा योरागांधः स्त्रीवशीकृतः सदासवन्न कितानिस्तानिः प्रत्यपरेपि कर्मणिनियोज्यते । तथा वागुरापतितः परवशोमृगइव धार्यते न त्मवशोभोजनादिक्रियापि कर्तुं लभते । तथा प्रेष्यइव कर्मकरइव क्रीतइव वर्चः शोधनाना वपि नियोज्यते। तथा कर्तव्याकर्तव्यविवेकरहिततया हिताहितप्राप्तिपरिहारशून्यत्वात पशु भूतइव । यथाहि पशुराहारभयमैथुनपरिग्रहाभिज्ञएवं केवलमसावपि सदनुष्ठानरहितत्वा त्पशुकल्पः।यदिवा स स्त्रीवशगोदासमृगप्रेष्यपशुभ्योप्यधमत्वान्न कश्चित् । एतदुक्तं भवति सर्वाधमत्वात्तस्य तत्तुल्यं नास्त्येव येनासावुपमीयते । अथवा न सकश्चिदित्युभयभ्रष्टत्वा त् । तथाहि न तावत्प्रव्रजितोसौ सदनुष्ठानरहितत्वान्नापिगृहस्थस्तांबूलादिपरिभोगरहि तत्वाल्लोचिकामात्रधारित्वाच्च।यदिवा ऐहिकामुष्मिकानुष्ठायिनां मध्ये न कश्चिदिति ॥१८॥

एवं खु तासु विन्नप्पं, संथवं संवासंच वज्जेज्जा॥ तज्जातिआ इमे कामा वज्जकराय एवमरकाए॥१ए॥ एवं भयं णसेयाय, इइ से अप्पगं निरुं भित्ता ॥ णोइत्थि णोपसू, भिरकुणो सयं पाणिणा णिलज्जेज्जा ॥२०॥

अर्थ–हवे उपदेश कहेछे (एवंखुतासुविन्नप्पंके०) एम जे पूर्वोक्त स्त्रीनो विनव्यो मायाप कारण जाणीने (संथवंके०) तथा तेनुं संस्तव (संवासंचके०) तेनुं संवास एटले नेलुं र शवुं तेने उत्तमपुरुष (वज्जेज्जाके०) वर्जे त्याग करे (तज्जातिआइमेकामा के०) त ज्जाति एटले ते स्त्रीना संग थकी छे उत्पत्ति जेनी एवा ए प्रत्यक्ष कामभोग ते (वज्ज करायएवमरकाए के०) अवद्यकराएवमाख्यातं एटले पापकर्म कारी दुर्गतिना दातार

ने एम श्रीतीर्थंकर गणधरे कह्युंछे ॥ १९ ॥ (एवंभयं के०) एम स्त्रीना संवास थकी घणा भयना कारण उत्पन्न थायछे माटे (णसेयायसेके०) ते श्रेयकारी कल्याणकारी नथी (इइ के०) ए हेतु जाणीने (अप्पगं के०) पोताना आत्माने (निरुंभित्ताके०) स्त्रीना संग थकी निरुंधीने एटले निवारीने संमार्गने विषे स्थापन करीने (निरूके०) चारित्रिउ जे होय ते (णोइत्थिणोपसू के०) स्त्रीअने पशु एटले तिर्यंचनो सहवास करे नही (णोसयंपाणिणाणिलिजेज्जाके०) तथा पोताना हाथथी स्पर्श मात्रपणनकरे॥२०॥

॥ दीपिका—खुर्वाक्यालंकारे । एतत्पूर्वोक्तं तासु स्त्रीषु विषये यद्विज्ञप्तमुक्तं तत्तथा स्त्रीभिः सार्धं संस्तवं परिचयं वासंच एकत्र निवासंच त्यजेत् । यतः । ताभ्यः स्त्रीभ्योजातिरुत्पत्तिर्येषांते तज्जातिकाइमे कामाः । पुनः किंभूताः । अवद्यं पापं तस्य कारकास्तएवमाख्याताम्तीर्थकृद्भिः ॥ १९ ॥ एवं पूर्वोक्तप्रकारेण भयहेतुत्वाद्भयं स्त्रीसंबंधरूपं नश्रेयसे इति हेतोः सन्निरुरात्मानं निरुध्य न स्त्रियं नापि पशुं लीयेत संश्रयेत स्त्रीपशुभ्यां संवासं त्यजेत् । तथा स्वहस्तेनवा अंगस्य (नणिलिज्जेज्जति) जातेन संबंधं न कुर्यात् । यतो हस्तकर्मणापि चारित्रं शवलीभवति ॥ २० ॥

॥ टीका—सांप्रतमुपसंहारद्वारेण स्त्रीसंगपरिहारमाह । (एवंखुइत्यादि) एतत्पूर्वोक्तं । खुशब्दोवाक्यालंकारे । तासु यत् स्थितं तासां वा स्त्रीणां संबंधि यद्विज्ञप्तमुक्तं । तद्यथा । यदि सकेशया मया सह न रमसे ततोहं केशानप्यपनयामीत्येवमादिकं तथा स्त्रीभिः सार्धं संस्तवं परिचयं तत्संवासं च स्त्रीभिः सहैकत्र निवासं चात्महितमनुवर्तमानः सर्वापायभीरुस्त्यजेज्जह्यात् । यतस्ताभ्योजातिरुत्पत्तिर्येषां ते कामास्तज्जातिकारमणीसंपर्कोत्थास्तथा अवद्यं पापं वज्रं वा गुरुत्वादधः पातकत्वेन पापमेव तत्करणशीलाऽवद्यकरावज्रकरावेत्येवमाख्यातास्तीर्थकरगणधरादिभिः प्रतिपादिताइति ॥ १९ ॥ सर्वोपसंहारार्थमाह । (एवंभयमित्यादि) एवमनंतरनीत्या भयहेतुत्वात् स्त्रीभिर्विज्ञप्तं तथा संस्तवस्तत्संवासश्च भयमित्यतः स्त्रीभिः सार्धं संपर्कोन श्रेयसे सदनुष्ठानहेतुत्वात्तस्येत्येवं परिज्ञाय सन्निरुरवगतकामभोगविपाकश्चात्मानं स्त्रीसंपर्कान्निरुंध्य सन्मार्गेप्यवस्थाप्य यत्कुर्यात्तद्दर्शयति । नस्त्रियं नरकवीथीप्रायां नापि पशुं लीयेताश्रयेत स्त्रीपशुभ्यां सह संवासं परित्यजेत् स्त्रीपशुपंमकवर्जिताशय्येतिवचनात्तथास्वकीयेन पाणिना हस्तेनावाच्यस्य (नणिलिज्जेज्जति) नसंबाधनं कुर्यात् । यतस्तदपि हस्तसंबाधनं चारित्रं शवलीकरोति । यदिवा स्त्रीपश्वादिकं स्वेन पाणिना नस्पृशेदिति ॥ २० ॥

सुविसुद्धलेसे मेहावी, परकिरिअंच वज्जए नाणी ॥ मणसा वयसा काएणं सव्वफाससहे अणगारे ॥२१॥ इच्चेव माहु से वीरे, धुअरए धुअमोहे से

भिक्खू ॥ तम्हा अज्झविसुद्धे सुविमुक्के, आमोक्काए परिव्वएज्जा सि(पाठां
तरं विहरे आमुक्काए)त्तिबेमि॥२२॥इति श्रीइत्थी परिन्ना चतुर्थाध्ययनं समत्तं

अर्थ-(सुविसुद्धलेसेके०) शुद्ध निर्मल लेश्यावंत चित्तनो व्यापार छे जेनो एवो (मेहावी के०) पंमित ते (परकिरियंचके०) परनी करेली स्त्रियादिकसंबंधीनी क्रिया अथवा जोगने अर्थे परने हाथे पोताने विषे स्पर्शादिक जे क्रिया करावली तेने (वज्जाएनाणीके०) ज्ञानवंत पुरुष मने वचने अने कायाये करवुं कराववुं ने अनुमोदवुं एम त्रिविधे वर्जे अर्थात् कामजोगने टाले तथा (सव्वफाससहे अणगारेके०) अन्य सर्व शीतादिक परिसह जे कह्याछे तेने ते अणगार स्पर्श्ये थको सहे एटले सहन करे ॥२१॥ (इच्चेवमाहु सेवीरेके०) एम ए पूर्वोक्त समस्त उपदेश श्री माहावीर देवे आहु एटले कह्योछे ते श्रीमाहावीर परमेश्वर केवाछे तो के(धुअरए धुअमोहेके०) पाप रज रहित तथा मोहरहित छे (तम्हाके०) तेमाटे(सेभिक्खू के०) ते साधु सम्यक्दर्शन चारित्रे करी युक्त थको मुक्तिने साधे (अज्झत्त विसुद्धेके०) अध्यवसाय निर्मल थको (विमुक्के आमोक्काए परिव्वएज्जासिके०) विमुक्त आमोक्षाय परिव्रजेत् संयमानुष्ठाने इति एवो भिक्षु स्त्रीसंगादिक क्लेश थकी विमुक्त थयो थको ज्यांसुधी मोक्षे जाय त्यांसुधी सूधो संयम पाले. तिबेमिनु अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २२॥ ए स्त्री परिज्ञा नामे चोथा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो. ॥

॥ दीपिका—सुविशुद्धा लेश्या मनोवृत्तिर्यस्य सुविशुद्धलेश्योमेधावी मर्यादावान् परस्य स्त्र्यादेः संबंधिनीं क्रियां ज्ञानी विवेकवान् वर्जयेत् मनसा वाचा कायेन सर्वस्पर्शसहोऽनगारः शीतोष्णदंशमशकादिसहनकृत्यः स्यात् ॥ २१ ॥ इत्येवं पूर्वोक्तं तत्सर्वं भगवान् वीरोधुतं क्षिप्तं रजः स्त्रीसंबंधकृतं कर्म येन स धुतरजाः धुतमोहश्चाह उक्तवान् तस्मात्सभिक्षुरध्यात्मविशुद्धोनिर्मलचित्तः सुविमुक्तः स्त्रीसंबधेन रहितआमोक्षाय सर्वकर्मक्षयं यावत् विहरेत्संयमोद्यतोजवेदिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥२२॥ इति सूत्रकृतांगदीपिकायां चतुर्थाध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका—अपि च । सुविसुद्धइत्यादि)सुष्टु विशेषेण शुद्धा स्त्रीसंपर्कपरिसंहाररूपतया निष्कलंका लेश्याऽतःकरणवृत्तिर्यस्य स तथा सएवंभूतोमेधावी मर्यादावर्ती परस्मै स्त्र्यादिपदार्थाय क्रिया परक्रिया तां च ज्ञानी विदितवेद्योवर्जयेत्परिहरेत्। एतदुक्तं भवति। विषयोपभोगोपाधिना नान्यस्य किमपि कुर्यान्नाप्यात्मनः स्त्रिया पादधावनादिकमपि कारयेत्। एतच्च परक्रियावर्जनं मनसा वच सा कायेन वर्जयेत्तथा ह्यौदारिककामभोगार्थं मनसा न गच्छति नान्यं गमयति गच्छंतमपरं नानुजानीते एवं वाचा कायेन च सर्वेप्यौदारिके नव भेदाएवं दिव्येपि

नव नेदास्ततश्चाष्टादशनेदनिन्नमपि ब्रह्म विनृयात् । यथाच स्त्रीस्पर्शपरीषहः सोढव्य एवं स र्वानपि शीतोलदंशमशकतृणादिस्पर्शानपि सहेत । एवंच सर्वस्पर्शसहोऽनगारः साधुर्नवती ति ॥ २१ ॥ कएवमाहेति दर्शयति। (इच्चेवमाहुरित्यादि) इत्येवं यत्पूर्वमुक्तं तत्सर्वं सवीरोन्नग वानुत्पन्नदिव्यज्ञानः परहितैकरतश्राह उक्तवान् । यतएवमतोधूतमपनीतं रजःस्त्रीसंपर्का दिकृतं कर्म येन सधूतरजाः । तथा धूतोमोहोरागद्वेषरूपोयेन सतथा । पाठांतरं वा धूतोऽप नीतोरागमार्गोरागपंथा यस्मिन् स्त्रीसंस्तवादिपरिहारात्तत्तथा तत्सर्वं नगवान् वीरएवाह ।य तएवं तस्मात्सनिक्षुरध्यात्मविशुद्धः सुविशुद्धांतःकरणः सुष्ठु रागद्वेषात्मकेन स्त्रीसंपर्केण मु क्तः सन्नामोक्षायाशेषकर्मक्षयंयावत्परिसमंतात्संयमेऽनुष्ठाने व्रजेद्गच्छेत्संयमोद्योगवान् नवे दिति। इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२॥ इति चतुर्थं स्त्रीपरिज्ञाध्ययनं परिसमाप्तं

हवे नरयविनत्ति नामा पांचमुं अध्ययन श्रीजंबूस्वामी पूछेछे अने श्रीसुधर्म स्वामी जंबू प्रत्ये कहेछे के पूर्वे चोथा अध्ययनमां अनाचारी कह्या तेवा अनाचारी जे होय तेने नरकगति प्राप्त थाय माटे नरयविनत्ति नामा पांचमुं अध्ययन कहेछे.

पुछिस्सहं केवलियं महेसिं, कहं नितावा णरगा पुरछा ॥ अ
जाणउ मे मुणि बूहि जाणं, कहिं नु बाला नरयं उविंति ॥ १ ॥
एवं मए पुठे महाणुनावे, इणमोब्ववी कासवे आसुपन्ने ॥ पवे
दइस्सं डुहमठडुग्गं, आदीणियं डुक्कडियं पुरछा ॥ २ ॥

अर्थ–(पुछिस्सहंकेवलियंमहेसिंके०) सुधर्मस्वामी कहेछे जे तमे मने पूछोछो के नरक केवाछे तथा जीव केवे कर्मे करी नरके जाय तथा त्यां केवी वेदनाछे तेम में पण (पुरछाके०) पूर्वे केवली महर्षि श्री माहावीर देवने पुछयुं हतुं के हे नगवन् (अनितावा के०) तापसहित (णरगाके०) नरकना नय जे तीव्र डुःख रूपछे ते (कहंके०) केवाछे (अ जाणउमेके०) अजाणता एवा मुजने (मुणिके०) हे मुनि तमे (जाणंबूहिके०) केवल ज्ञाने करी जाणता थका कहो के (कहिंनुबालानरयंउविंतिके०)केवीरीते बाल एटले अज्ञानी जी व नरकमां जइ उपजे ॥ १ ॥ (एवंमएपुठेके०) एम में विनय सहित पुछयुं छतां (महाणुनावे के०) महोटोछे अनुनाव एटले माहात्म्य जेनो (आसुपन्नेके०) आशुप्रज्ञ एटले सर्वत्र सदा उपयोग थकी केवल ज्ञानवंत एवा (कासवेके०) काश्यप श्रीमहावीर देव तेणे (इ णमोब्बवीके०)एमज कयुं ते प्रमाणे हुं तमने कहीश (पवेदइस्संडुहमठडुग्गंके०) प्रवेदि तडुःखमेवार्थडुर्गं एटले डुःखनु कारणछे माटे डुर्गमस्थानक नरकावासा कह्याछे (आदीणि यंडुक्कडियंपुरछाके०)आदीनिकंडुष्कृतिनो पुरस्तात् एटले अत्यंत दीनपुरुषे जेनोआश्रयकर्यो

ठे एवा डुरुत एटले पापफलसहित ते नरकावासाने पुरस्तात् एटले आगल कहुं छुं ते तमे एकाग्रचित्ते सांजलो ॥ १ ॥

॥ दीपिका—अथ पंचमाध्ययनमारभ्यते । तत्र उपसर्गजीरोः स्त्रीवशगस्य नरकपातः स्यात्तत्र च यादृश्योवेदनाः स्युस्ताअत्रोच्यंते इति । प्रथमोद्देशकस्यादिसूत्रमिदं । (पुच्छिस्सेति) जंबूस्वामिना सुधर्मस्वामी पृष्टः किंनूतानरकाइत्यादिपृष्टः सुधर्मस्वाम्याह । एतद्भवताऽहंपृष्टस्तदेतत्केवलिनः श्रीवीरमहर्षेः पुरस्तात्पूर्वं पृष्टवानहं कथमनितापानितानरकाः । हेमुने एतदजानतो मे त्वं जानन् ब्रूहि । कथं केनप्रकारेण नुवितर्के बालाअज्ञानरकमुपयांति ॥१॥ एवं मया पृष्टोमहानुनावइदं प्रश्नोत्तरमब्रवीत् । काश्यपोवीरआशुप्रज्ञोनगवान् इदमाह । यथाहं प्रवेदयिष्यामि कथयिष्यामि त्वं शृणु । डुःखंनरकडुःखं अर्थतः परमार्थतो डुर्गविषमं । पुनः किंनूतं । आसमंतादीनमादीनं तद्विद्यते यस्य सआदीनिकोऽतं तद्दीनत्वाश्रयस्तं डुष्कृतं पापं विद्यते यत्र स डुष्कृतिकस्तं पुरस्तादग्रतः कथयिष्ये ॥२॥

॥टीका—उक्तं चतुर्थाध्ययनं सांप्रतं पंचममारभ्यते । अस्य चायमनिसंबंधः । इहाद्याध्ययने स्वसमयपरसमयप्ररूपणानिहिता । तदनंतरं स्वसमये बोधोविधेयइत्येतद्द्वितीयेऽध्ययने अनिहितं । संबुद्धेन चानुकूलप्रतिकूलाउपसर्गाः सम्यक्सोढव्याइत्येतत्तृतीयेऽध्ययने प्रतिपादितं । तथा संबुद्धेनैव स्त्रीपरीषहश्च सम्यगेव सोढव्यइत्येतच्चतुर्थेऽध्ययने प्रतिपादितं । सांप्रतमुपसर्गजीरोः स्त्रीवशगस्यावश्यं नरकपातोजवति । तत्र च यादृक्षावेदनाः प्राडुर्नवंति ताअनेनाध्ययनेन प्रतिपाद्यंते । तदनेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि उपक्रमादीनि वक्तव्यानि । तत्रोपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोद्विधा । अध्ययनार्थाधिकारउद्देशार्थाधिकारश्च । तत्राध्ययनार्थाधिकारोनिर्युक्तिकारेण प्रागेवानिहितः । तद्यथा । उपसर्गजीरुणो (थीवसस्सनरएसु होज्जउववाउ)इत्यनेन उद्देशार्थाधिकारस्तु निर्युक्तिकृतानिहितोऽध्ययनार्थाधिकारांतर्गतइति । सांप्रतं निक्षेपः सचत्रिविधः । उंघनिष्पन्नोनामनिष्पन्नः सूत्रालापकनिष्पन्नश्चेति । तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽध्ययनं नामनिष्पन्ने तु नरकविनक्तिरिति द्विपदं नाम । तत्र नरकपदनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । णिरए ठक्कं दवं, णिरयाउ इहमेव जे नवे असुना ॥ खेत्तं णिरउंगासो कालोणिरएसुचेवठी॥६४॥नावेउणिरयजीवा कम्मुदउ चेव णिरयपाउंगा । सोकणणिरयडुःखं, तवचरणेहोइजइयवं ॥ ६५ ॥ णिरयेत्यादिगाथाद्वयं । तत्र नरकशब्दस्य नामस्थापना डव्यक्षेत्रकालनावनेदात् षोढा निक्षेपः । तत्र नामस्थापने क्षुसे । डव्यनरकआगमतोनोआगमतश्च । आगमतोज्ञाता तत्र चानुपयुक्तः । नोआगमतस्तु ज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तइहैव मनुष्यनवे तिर्यग्नवे ये केचनाऽशुनकारित्वादशुनाः सत्वाः कालकसौकरिकादयइति । यदिवा यानि कानि चिदशुनानि

स्थानानि चारकादीनि याश्च नरकप्रतिरूपावेदनास्ताः सर्वा द्रव्यनरका इत्यभिधीयंते। यदिवा कर्मद्रव्यनोकर्मद्रव्यभेदाद् द्रव्यनरको द्विधा। तत्र नरकवेद्यानि यानि बद्धानि कर्माणि तानि चैकभविकस्य बद्धायुष्कस्याभिमुखनामगोत्रस्य चाश्रित्य द्रव्यनरको भवति। नोकर्मद्रव्यनरकस्त्विहैव येऽशुभारूपरसगंधवर्णशब्दस्पर्शा इति। क्षेत्रनरकस्तु नरकावकाश कालमहाकालरौरवमहारौरवप्रतिष्ठानाऽभिधानादिनरकाणां चतुरशीतिलक्षसंख्यानां विशिष्टो भूभागः। कालनरकस्तु यत्र यावती स्थितिरिति। भावनरकस्तु ये जीवा नरकायुष्कमनुभवंति तथा नरकप्रायोग्यः कर्मोदय इति। एतदुक्तं भवति। नरकांतर्वर्तिनो जीवास्तथा नरकायुष्कोदयापादिताऽसातावेदनीयादिकर्मोदयाश्चैतद्द्वितयमपि भावनरक इत्यभिधीयते। तदेवं श्रुत्वाऽवगम्य तीव्रमसह्यं नरकदुःखं क्रकचपाटनकुंभीपाकादिकं परमाधार्मिकापादितं परस्परोदीरणाकृतं स्वाभाविकं च तपश्चरणे संयमानुष्ठाने नरकपातपरिपंथिनि स्वर्गापवर्गागमनैकहेतो वाऽऽत्महितमिच्छता प्रयतितव्यं परित्यक्तान्यकर्तव्येन यत्नो विधेय इति। सांप्रतं विभक्तिपदनिक्षेपार्थमाह। णामंठवणादविए. खेत्ते काले तहेव भावेय। एसोउ विभत्तीए णिक्खेवोछव्विहोहोइ ॥१॥ (नामंठवणेत्यादि) विभक्तेर्नामस्थापना द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात् षोढा निक्षेपस्तत्र नामविभक्तिर्यस्य कस्य चित्सचित्तादेर्द्रव्यस्य विभक्तिरिति नाम क्रियते। तद्यथा। स्वादयोऽष्टौ विभक्तयस्तिवादयश्च। स्थापनाविभक्तिस्तु यत्र ताएवं प्रातिपदिकाद्धातोर्वा परेण स्थाप्यंते पुस्तकपत्रकादिन्यस्तावा। द्रव्यविभक्तिर्जीवाजीवभेदाद् द्विधा। तथापि जीवविभक्तिः सांसारिकेतरभेदाद्द्विधा। तत्राप्यसांसारिकजीवविभक्तिर्द्रव्यकालभेदात् द्वेधा। तत्रद्रव्यतस्तीर्थातीर्थसिद्धादिभेदात्पंचदशधा। कालतस्तु तत्प्रथमसमयसिद्धादिभेदादनेकधा। सांसारिकजीवविभक्तिरिंद्रियजातिभवभेदात्रिधा। तत्रेंद्रियविभक्तिरेकेंद्रियविकलेंद्रियपंचेंद्रियभेदात्पंचधा। जातिविभक्तिः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसभेदात् षोढा। भवविभक्तिर्नारकतिर्यङ्मनुष्यामरभेदाच्चतुर्धा। अजीवद्रव्यविभक्तिस्तु रूप्यरूपिद्रव्यभेदाद् द्विधा। तत्र रूपिद्रव्यविभक्तिश्चतुर्धा। तद्यथा। स्कंधाः स्कंधदेशाः स्कंधप्रदेशाः परमाणुपुद्गलाश्च। अरूपिद्रव्यविभक्तिर्दशधा। तद्यथा। धर्मास्तिकायोधर्मास्तिकायस्य देशोधर्मास्तिकायस्य प्रदेशः। एवमधर्माकाशयोरपि प्रत्येकं त्रिभेदता द्रष्टव्या। अद्धासमयश्च दशम इति। क्षेत्रविभक्तिश्चतुर्धा। तद्यथा। स्थानं दिशं द्रव्यं स्वामित्वं चाश्रित्य। तत्र स्थानाश्रयणादूर्ध्वाधस्तिर्यग्विभागव्यवस्थितो लोको वैशाखस्थानस्थपुरुषइव कटिस्थकरयुग्म इति द्रष्टव्यः। तत्राप्यधोलोकविभक्तौ रत्नप्रभाद्याः सप्त नरकपृथिव्यस्तत्रापि सीमंतकादिनरकेंद्रकावलिकप्रविष्टपुष्पावकीर्णकत्र्यस्रचतुरस्रादिनरकस्वरूपनिरूपणं। तिर्यग्लोकविभक्तिस्तु जंबूद्वीप.लवणसमुद्र. धातकीखंड.कालोदसमुद्रइत्यादि द्विगुणद्विगुणवृद्ध्या द्वीपसागरस्वयंभूरमणपर्यंतस्वरूपनि

रूपणं । ऊर्ध्वलोकविभक्तिः सौधर्माद्या उपर्युपरिव्यवस्थिता द्वादशदेवलोकाः नवग्रैवे कानि पंचमहाविमानानि । तत्रापि विमानेंद्रकावलिप्रविष्टपुष्पावकीर्णकवृत्तत्र्यस्रच रस्रादिविमानस्वरूपनिरूपणमिति । दिगाश्रयणेन तु पूर्वस्यां दिशि व्यवस्थितं वमपरास्वपीति । द्रव्याश्रयणाद्बालिक्षेत्रादिकं गृह्यते । स्वाम्याश्रयणाच्च देवदत्तस्य यज्ञदत्तस्य वेति । यदिवा क्षेत्रविभक्तिरार्याऽनार्यक्षेत्रभेदाद्द्विधा । तत्राप्यार्यक्षेत्रमर्ध द्विंशतिजनपदोपलक्षितं राजगृहमगधादिकं गृह्यते । रायगिहमगहचंपा, अंगातह मलित्तिवंगाय ॥ कंचणपुरंकलिंगा, वाराणसीचेव कासीय ॥ १ ॥ साकेयकोसलागा पुरंचकुरुसौरियंकुसुट्ठाय ॥ कंपिल्लं पंचाला, अहिछत्ताजंगलाचेव ॥ २ ॥ वारवईयसुर मिहिलविदेहायवच्छकोसंबी ॥ नंदिपुरंसंदिब्भा, भद्दलिपुरमेवमलयाय ॥ ३ ॥ वइरा ह्ववरणा, अच्छातहमित्तियावइदशन्ना ॥ सुत्तीमईयचेदी, वीयभयं सिंधुसौवीरा ॥४॥ मदु यसूरसेणा, पावाभंगीयमासपुरिवद्दा ॥ साविच्छीयकुलाणा, कोमीवरिसंचलाढाय ॥ ५ सेयवियाविय णायरि, केययअद्धंचआरियंभणियं ॥ जत्थुप्पत्तिजिणाणं, चक्कीणंराम ण्हाणं ॥ ॥ ६ ॥ अनार्यक्षेत्रं धर्मसंज्ञारहितमनेकधा । तडुक्तं । सगजवणसवरबब्बर, यमुरुंडो डुगोणपक्कणया ॥ अरकागहूणरोमस पारसखसखासियाचेव ॥ १ ॥ डुंबि लवोसवाक्कस, भिल्लंदपुलिंदकोंचभमररूया ॥ कौंचायचीणचंचुय, मालवदमिलाकुलरका ॥ २ ॥ केकयकिरायहयमुह, खरमुहतह तुरगमेढगमुहाय ॥ ॥ हयकन्नागयकन्ना, सेयअणारियावहवे ॥ ३ ॥ पावायचंमदंमा, अणारियाणिग्घिणाणिरणुकंपा ॥ धम्मो अक्खराइं, जेसुणणज्जंतिसुविणेवि ॥ ४ ॥ कालविभक्तिस्तु अतीताऽनागतवर्तमानकाल दात्रिधा । यदि वैकांतसुषमादिकक्रमेणाऽवसर्पिण्युत्सर्पिण्युपलक्षितं द्वादशारं कालचक्रं । थवा । समयावलियमुहुत्ता, दिवसमहोरत्तपक्खमासाय ॥ संवच्छरयुगपलिया, सागरओ प्पिपरियट्टेत्येवमादिकाकालविभक्तिरिति । भावविभक्तिस्तु जीवाजीवभेदाद्द्विधा । तत्र जी भावविभक्तिरौदयिकौपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, पारणामिक, सान्निपातिक, भे त् षट्प्रकारा । तत्रौदयिकोगतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाऽज्ञानाऽसंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्च स्र्येकैकैकैकषड्भेदक्रमेणैकविंशतिभेदभिन्नः । तथौपशमिकः सम्यक्त्वचारित्रभेदाद् द्वि धः । क्षायिकः सम्यक्त्वचारित्रज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्यभेदान्नवधा । क्षायो शमिकस्तु ज्ञानाज्ञानदर्शनदानादिलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाः । तथा सम्यक्त्वचारित्रसं मासंयमभेदक्रमेणाष्टादशधेति । पारिणामिकोजीवभव्याभव्यत्वादिरूपः सान्निपाति स्तु द्विकादिभेदात् षड्विंशतिभेदः । संभवीतु पञ्चदशविधोयमेव गतिभेदात्पंचधेति । जीवभावविभक्तिस्तु मूर्तानां वर्णगंधरसस्पर्शसंस्थानपरिणामः । अमूर्तानां गतिस्थित्य गाहवर्तनादिकइति । सांप्रतं समस्तपदापेक्षया नरकविभक्तिरिति । नरकाणां त्रिभागोवि

किलामाह् ॥ पुढवीफासंअसुा,णुवक्कमणिरयणवालवहणंच ॥ तिसुवेदेतिअताणाअणु नागंचेव मेसासु ॥ ६७ ॥ (पुढवीफासमित्यादि)। पृथिव्याः शीतोष्णरूपायास्तीव्रवेदनोत्पादकः स्पर्शः संपर्कः पृथिवीसंस्पर्शस्तमनुनवंति । तमेव विशिनष्टि। अन्येन देवादिना उपक्रमितुमुपशमयितुं योनशक्यते सोन्यानुपक्रमस्तमपराचिकित्स्यमित्यर्थः । तमेवंनूतमपगऽसाध्यं पृथिवीस्पर्शं नारकाः समनुनवंति । उपलक्षणार्थत्वाच्चास्य रूपगंधस्पर्शशब्दानप्येकांतेनाशुनान्निरुपमाननुनवंति । तथा नरकपालैः पंचदशप्रकारैः परमाधार्मिकैः कृतमुजराऽसिकुंतक्रकचकुंनीपाकादिकं वधमनुनवंत्याद्यासु तिसृषु रत्न,शर्करा,वालुकाख्यासु पृथिवीषु स्वकृतकर्मफलनुजोनारकाअत्राणाअशरणाः प्रनूतकालं यावदनुनवंति । शेषासु चतसृषु पृथिवीषु पंकधूमतमोमहातमःप्रनाख्यासु परमाधार्मिकनरकपालानावेपि स्वतएव तत्कृतवेदनायाः सकाशाद्यस्तीव्रतरोऽनुनावोविपाकोवेदनासमुद्घातस्तमनुनवंति । परस्परोदीरितदुःखाश्च नवंतीति । सांप्रतं परमाधार्मिकानामाद्यासु तिसृषु पृथिवीषु वेदनोत्पादकान स्वनामग्राहं दर्शयितुमाह । अंबेअंबरिसीचेव, सामेयसबलेविय ॥ रोद्देवरुद्दकालेय, महाकालेत्तिआवरे ॥ ६८ ॥ असिपत्तेधणुंकुनेवालुवेयरणीविय ॥ खरस्सरेमहाघासे, एवंपसुरसाहिया ॥ ६९ ॥ गाथाद्वयंप्रकटार्थं । एवं ते चांबाद्यादयः परमाधार्मिकायादृक्षां वेदनां परस्परोदीरणदुःखं चोत्पादयंति । तां दर्शयितुमाह । धाडेंति पहाडेंतिय, हणंतिविंधंतितहणिसुंनंति । मुंचंतिअंबरतले; अंबाखलुतहणेरइया ॥ ७० ॥ (धाडेंतीत्यादि) । तत्रांबानिधानाः परमाधार्मिकाः स्वनवनान्नरकावासं गत्वा क्रीडया नारकान् अत्राणान् सारमेयानिव शूलादिप्रहारैस्तुदंतो (धाडेंतेत्ति) प्रेरयंति । स्थानात् स्थानांतरं प्रापयंतीत्यर्थः । तथा (पहाडेंतित्ति) स्वेछयेतश्चेतश्चाऽनाथं न्रमयंति तथांऽबरतले प्रक्षिप्य पुनर्निपततं मुजरादिना घ्नंति तथा शूलादिना विध्यंति तथा (निसुंनंतित्ति) कृकाटिकायां गृहीत्वा नूमौ पातयंति अधोमुखं अथोत्क्षिप्यांऽबरतले मुंचंतीत्येवमादिकया विडंबनया तत्र नरकपृथिवीषु नारकान कदर्थयंति । किंचान्यत् । उहयहयेयतहिपं, णिस्सन्नेकप्पणीहिकप्पंति ॥ विडुलगबडुलगछिन्ने अंबरसीतहणेरइए ॥ ७१ ॥ (उहए त्यादि)। उप सामीप्येन मुजरादिना हताउपहताः पुनरप्युपहताएव खड्गादिना हताउपहतहतास्तान्नारकान तस्यां नरकपृथिव्यां निःसंज्ञकान् नष्टसंज्ञान् मूर्छितान्सतः कर्पणीनिः कल्पयंति छिदंतीतश्चेतश्च पाटयंति । तथा द्विदलचटुलकछिन्नानिति मध्यपाटितान् खंडशश्छिन्नांश्च नारकांस्तत्र नरकपृथिव्यामंबर्षिनामानोसुराः कुर्वन्तीति । तथा । साडणपाडणतोमण, बंधणरज्जुप्पहारेहिं ॥ सामाणेरनियाणं, पवत्तयंतीअपुन्नाणं ॥ ७२ ॥ (साडणेत्यादि)। तथा अपुण्यानां तीव्राऽसातोदये वर्तमानानां नारकाणां श्यामाख्याः परमाधार्मिकाएतच्चेतत्न प्रवर्तयंति । तद्यथा । सातनमंगोपांगानां

छेदनं तथा पातनं निष्कुटादधोवज्रनूमौ प्रक्षेपस्तथाप्रतोदनं व्यधनं तथा सूच्यादि
नासिकादौ वेधस्तथा रज्ज्वादिना क्रूरकर्मकारिणं बध्नंति। तथा तादृग्विधलताप्रहार
डयंत्येवं दुःखोत्पादनं दारुणं शातनपातनवेधनबंधनादिकं बहुविधं प्रवर्तयंति आ
रयंतीति। अपिच। अंतगयफिफिसाणिय, हियं कालेज्जफुप्फु सेचक्के। सवलाणेरइ
याणं, कड्ढेतिंतहिंअपुन्नाणं ॥ ७३ ॥ (अंतगयेत्यादि)। तथा सवलाख्यानरकपाला
स्तथाविधकर्मोदयसमुत्पन्नक्रीडापरिणामाअपुण्यनाजां नारकाणां यत्कुर्वंति तद्दर्श
ति। तद्यथा। अंत्रगतानि यानि फिफिसानि अंत्रांतर्वर्तीनि मांसविशेषरूपाणि हत
ति पाटयंति तथा तज्जतं (कालेज्जंति)। हृदयांतर्वर्ति मांसखंमं। तथा (फुप्फुसेति)
उदरांतवर्तीन्यंत्रविशेषरूपाणि तथा वल्कलान् वर्ध्रानाऽकर्षयंति। नानाविधैरुपायैरश
णानां नारकाणां तीव्रां वेदनामुत्पादयंतीति। अपिच। असिसत्तिकोंततोमर, सूलति
लेसुसूइवियगासु ॥ पोएतिरुद्दकम्माउ, णरगपालातहिंरोद्दा ॥ ७४ ॥ (असिसत्त्या
दि)। तथा अन्वर्थानिधानारौद्राख्यानरकपालारौद्रकर्माणोनानाविधेष्वसिशक्त्या
दिषु प्रहरणेषु नारकानशुनकर्मोदयवर्तिनः प्रोतयंतीति। तथा। नंजंतिअंगमंगाणि,
ऊरूबाहूसिराणिकरचरणा। कप्पेंतिकप्पणीहिं, उवरुद्दापावकम्मरया ॥ ७५॥ (नंजंतीत्या
दि) तथोपरुद्राख्याः परमाधार्मिकाणामंगप्रत्यंगानि शिरोबाहूरुकादीनि तथा करचरणा
नंजंति मोटयंति पापकर्माणः कल्पनीनिः कल्पयंति पाटयंति। तत्रास्त्येव दुःखोत्पादनं य
त्ते न कुर्वंतीति। अपिच। मीरासुसुंठएसुय, कंडूसुयपयणएसुयपयंति। कुंनीसुयलोहियसुय,
एयंतिकालाउणेरतिए॥ ७६ ॥ (मीरासुइत्यादि) तथा कालाख्यानरकपालाः सुरामी
दीर्घचुल्लीषु तथा शुंठकेषु तथा कंडुकेषु प्रचंडकेषु तीव्रतापेषु नारकान् पचंति तथ
कुंनीषूष्ट्रिकाकृतिषु तथा वल्लीष्वायसकवल्लिषु नारकान् व्यवस्थाप्य जीवन्मत्स्यानिव
चंति। अपिच। कप्पंतिकागिणीमं, सणाणिछीदंतिसीहपुच्छाणि ॥ खावंतियाणरइए, म
कालापाचकंमरए ॥ ७७ ॥ (कप्पंतीत्यादि) महाकालाख्यानरकपालाः पापकर्मनि
तानारकान्नानाविधैरुपायैः कदर्थयंति। तद्यथा। काकिणीमांसकानि श्लक्ष्णमांसख
डानि कल्पयंति नारकान् कुर्वंति तथा (सीहपुच्छाणित्ति)। पृष्ठीवर्ध्रास्तांश्छिंदंति। य
या ये प्राक् मांसाशिनोनारकाआसन् तान् स्वमांसानि खादयंतीति। अपिच। हत्थेपाए
रू, बाहुसिरापायअंगमंगाणि ॥ छिंदंतिपगाणंतू असिणेरइएनिरयपाला ॥ ७८ ॥ (ह
त्थेत्यादि) असिनामानोनरकपालाअशुनकर्मोदयवर्तिनोनारकानेवं कदर्थयंति। त
था। हस्तपादोरुबाहुशिरःपार्श्वादीन्यंगप्रत्यंगानि छिंदंति प्रकाममत्यर्थं खंमयंति। तु
ल्दोऽपरदुःखोत्पादनविशेषणार्थइति। तथा। कण्णोठणसकरचरण दसणछण फुग्गऊरुबाहु
णं ॥ नेयणनेयणसाडण, असिपत्तधणूहिपाडंति ॥ ७९ ॥ (कण्णोठइत्यादि)। अपि

थानाः पत्रधनुर्नामानोनरकपालाञ्यसिपत्रवनं बीनत्सं कृत्वा तत्र बायार्थिनः समागतान् नारकान् वराकान् अस्यादिनिः पाटयंति तथा कर्णौष्ठनासिकाकरचरणदशैन स्तनस्फिगूरुबाहूनां छेदनजेदनशातनादीनि विकुर्वितवाताहृतचलिततरुपातितासिपत्रादिना कुर्वंतीति । तडुक्तं । छिन्नपादनुजस्कंधा, श्छिन्नकर्णौष्ठनासिकाः ॥ निन्नतालुशिरोमेढ्रानिन्नाक्षिहृदयोदराः ॥ १ ॥ किंचान्यत् कुंनीसुचपञ्चणेसुय, लोहियसुयकुंडलोहि कुंनीसु ॥ कुंनीयणरयपाला हणंतिपाडंतिणरएसु ॥ ८० ॥ (कुंनीसुइत्यादि) कुंनिनामानोनरकपालानारकान्नरकेषु व्यवस्थितान् निघ्नंति तथा पाचयंति । क्वेति दर्शयति । कुंनीषूष्ट्रिकाकृतिषु तथा पचनेषु कडिल्लकाकृतिषु तथा लोहीष्वायसनाजनविशेषेषु पाचयंति । तथा । तडवडस्सनज्जंति, नज्जणेकलंबुवालुगापट्ठे । वालूगाणेरइया लोलंतीअंबरतलंमि ॥ ८१ ॥ (तडवडेत्यादि) वालुकाख्याः परमाधार्मिकानारकानत्राणांस्तप्तवालुकानृतनाजने चणकानिव (तमतडित्ति) स्फुटतः (नज्जंति) नृज्जंति पचंति । क्वेत्याह । कदंबपुष्पाकृतिवालुकाकदंबवालुका तस्याः पृष्ठमुपरितलं तस्मिन् पातयित्वाऽवरतलेच लोलयंतीति । किंचान्यत् । पूयरुहिरकेसछिवाहिणीकलकलेंतजलसोया ॥ वेयरणिणिरयपालाणेरइएऊपवाहंति ॥ ८२ ॥ (पूयरुहिरेत्यादि) । वैतरणीनामानोनरकपालावैतरणीं नदीं विकुर्वंति । साच पूयरुधिरकेशास्थिवाहिनीमहानयानकाकलकलायमानजलाश्रिता तस्यांच क्षारोष्णजलायामतीव बीनत्सदर्शनायां नारकान् प्रवाहयंतीति ॥ तथा । कप्पेंतिकरकरएहिं, तच्छितिपरोप्परंसुएहिंति ॥ सिंबलितमारुहंती, खरस्सराधणेरइए ॥ ८३ ॥ (कप्पेंतीत्यादि) । खरस्वराख्यास्तु परमाधार्मिकानरकानेवं कदर्थयंति । तद्यथा । क्रकचपातैर्मध्यं मध्येन स्तंनमिव तान् पातानुसारेण कल्पयंति पाटयंति । तथा परशुन्निश्च तानेव नारकान् परस्परमन्योन्यं तक्ष्यंति सर्वशोदेहावयवापनयनेन तनून् कारयंति । तथा शाल्मलीं वज्रमयनीषणकंटकाकुलां खरस्वरैरारटंतोनारकानारोहयंति पुनरारूढानाकर्षयंतीति ॥ अपिच । नीएयपलायंते समंततोतछ्ते णिरुंनंति ॥ पसुणोजहापसुवहे, महघोसातछणेरइए ॥ ८४ ॥ (नीएइत्यादि) । महाघोषानिधानाज्नवनपत्यसुराधमविशेषाः परमाधार्मिकाव्याधाइव पर्पीडोत्पादनेनैवाऽतुलं हर्षमुद्वहंतोक्रीमया नानाविधैरुपायैर्नारकान् कदर्थयंति तांश्च नीतान् प्रपलायमानान् मृगानिव समंततः सामस्त्येन तत्रैव पीडोत्पादनस्थाने निरुंनंति प्रतिबध्नंति पशून् वस्तादिकान् । यथा पशुवधे समुपस्थिते नश्यतस्तद्वधकाः प्रतिबध्नंत्येवं तत्र नरकावासे नारकानिति । गतोनामनिष्पन्नोऽधुना सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (पुच्छिस्सहमित्यादि) जंबूस्वामिना सुधर्मस्वामी पृष्टः । तद्यथा । नगवन् किंनूतानारकाः कैर्वा कर्मनिरसुमतां तेपूत्पादः कीदृश्योवा तत्रत्यावे

नाऽस्त्येवं पृष्टः सुधर्मस्वाम्याह । यदेतद्भगवताऽहं पृष्टस्तदेतत्केवलिनमतीतानागतवर्त्तमानसूक्ष्मव्यवहितपदार्थवेदिनं महर्षिमुग्रतपश्चरणकारिणमनुकूलप्रतिकूलोपसर्गसहिष्णुं श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिनं पुरस्तात्पूर्वं पृष्टवानस्मि । यथा कथं किंभूताश्च नितान्वितानरकानरकावासानवंतीत्येतदजानतोमे मम हेमुने जानन् पूर्वमेव केवलज्ञानेनाऽवगच्छन् ब्रूहि कथय । कथंतु केन प्रकारेण किमनुष्ठायिनः। नुरिति वितर्को बालाअज्ञाहिताहितप्राप्तिविवेकरहितास्तेषु नरकेषूपसामीप्येन तद्योग्यकर्मोपादानतया संगच्छंति ॥ १ ॥ किंभूताश्च तत्र गतानां वेदनाः प्रादुष्यंतीत्येतच्चाह । (पृष्टवानिति)(गाथा एवंमइत्यादि) एवमनंतरोक्तं मया विनेयेनोपगम्य पृष्टोमहांश्चतुस्त्रिंशदतिशयरूपोऽनुभावोमाहात्म्यं यस्य स तथा प्रश्नोत्तरकाले चेदं वक्ष्यमाणं। मोइति वाक्यालंकारे।केवलालोकेन परिज्ञाय मत्प्रश्ननिर्वचनमब्रवीडुक्तवान् । कोसौ । काश्यपोवीरोवर्धमानस्वामी आशुप्रज्ञः सर्वत्र सदोपयोगात् सचैवं मया पृष्टोभगवानिदमाह । यथा। यदेतद्भवता पृष्टस्तदहं प्रवेदयिष्यामि कथयिष्याम्यग्रतोदत्तावधानः शृणिवति । तदेवाह । डुःखमिति नरकं डुःखहेतुत्वात् असदनुष्ठानं। यदिवा नरकावासएव डुःखयतीतिडुःखं। अथवा असातावेदनीयोदयात् तीव्रपीडात्मकं डुःखमित्येतच्चार्थतः परमार्थतोविचार्यमाणं डुर्गं गहनं विषमं डुर्विज्ञेयं। असर्वज्ञेन तत्प्रतिपादकप्रमाणाभावादित्यभिप्रायः । यदिवा (डुहमहुग्गंति) डुःखमेवार्थोयस्मिन् स डुःखनिमित्तोवा डुष्प्रयोजनोवा डुःखार्थोनरकः। सच डुर्गं विषमोडुरुत्तरत्वात् तं प्रतिपादयिष्ये । पुनरपि तमेव विशिनष्टि । आसमंतादीनमार्दीनं तद्विद्यते यस्मिन्सआदीनिकोऽत्यंतदीनसत्त्वाश्रयस्तद्दुःष्कृतमसदनुष्ठानं पापं वा तत्फलं वा असातावेदनीयोदयरूपं तद्विद्यते यस्मिन्स डुष्कृतिकस्तं पुरस्तादग्रतः प्रतिपादयिष्ये । पाठांतरं वा (डुक्कडिणंति) डुष्कृतं विद्यते येषां ते डुष्कृतिनोनारकास्तेषां संबंधि चरितं पुरस्तात्पूर्वस्मिन् जन्मनि नरकगतिगमनयोग्यं यत्कृतं प्रतिपादयिष्यतइति॥ २॥

जे केइ बाला इह जीवियठी, पावाइं कम्माइं करंति रुद्दा ॥ ते घोर
रूवे तमिसंधयारे, तिव्वाभितावे नरए पडंति ॥ ३॥ तिव्वं तसे पा
णिणो थावरेया, जे हिंसति आयसुहं पडुच्चा ॥ जे लूसए होइ
अदत्तहारी, ण सिक्खती सेयवियस्स किंचि ॥ ४ ॥

अर्थ-(जेकेइबालाके०) जे कोइक महारंभीया बाल एटले अज्ञानी (इहजीवियठीके०) आसंसारने विषे असंयमे जीवितव्यना अर्थी एवा जीव (पावाइंकम्माइंकरंतिरुद्दाके०) रौद्र एटले प्राणीने भयना उपजावनार एवा अनेक पापकर्मकरे (तेघोररूवेतमिसंधयारे के०) तेवा पुरुष तीव्रपापोदयने लीधे घोररूप एटले अत्यंत बीहामणे रूपे

मिसंधयारे एटले महाअंधकारे सहित ज्यां आंखे करी कांइ देखाय नही मात्र अवधिज्ञाने करी थोडुं थोडुं घुकनी पेरे देखे अने (तिव्वाभितावेनरएपडंतिके०) ज्यां खेरना अंगाराथी अनंतगणो तापछे एवा नरकनेविषे पडेछे ॥ ३ ॥ (तिव्वंतसेके०) जे पुरुष तीव्रपणे करी बेंडीयादिक त्रस (पाणिणोके०) जीव अने (थावरेयाके०) पृथवीकायादिक स्थावर जीव नेने (जेहिंसतिआयसुहंपडुच्चके०) येहिनस्तिआत्मसुखंप्रतीत्य एटले जे पुरुष सदाकाल स्वात्मसुखनो अर्थ जाणी करीने हणे तथा (जेलूसएहोइके०)जे प्राणीउनुं उपमर्दन कर नार होय तथा (अदत्तहारीके०) परद्रव्यापहारक एटले अदत्तदाननो लेनार होय तथा (णसिक्खतीसेयवियस्सकिंचिके०) नशिक्ष्यतेसेवनीयस्य किंचित् एटले सेववा योग्य एवा जे व्रत पच्चखाणादिक छे ते नकरे अर्थात् अविरति हतोज रहे परंतु काकमांसादि कनी पण विरति करी शके नही. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—ये केचिद्बालाअज्ञाजीवितार्थिनः संयमजीवितार्थेन पापानि कर्माणि रौ द्राः कुर्वंति ते नरके पचंति । यडुक्तमागमे । केहस्सुनंतेजीवानेरइअत्ताएकाम्मंपकरंती ति । किंनूते नरके । घोररूपे अतिनयानके तथा (तमिसंधयारेत्ति) बहुलतमोंधकारे य त्रात्मापि नोपलभ्यते केवलमवधिनापि मंदंमंदमुलूकाइवाभ्हि पश्यंति । तथा चागमः । कएहलेसेणंनंतेणेरइकएहलेस्संनेरइअंपाणिहाएउहिणा सव्वातासमन्नासमभिलोएमा णीकेवइयंखेत्तं जाणइपासइ इत्तिरिअमेवखेत्तं जाणइपासइ इत्यादि । पुनः किंनूते न रके । तीव्रोडुःसहः खादिरांगारमहाराशितापादनंतगुणाभितापः संतापोयस्मिन् स तीव्राभितापस्तस्मिन् ॥ ३ ॥ तीव्रं निर्दयोयस्त्रसान् द्वींद्रियादीन् स्थावरांश्च पृथ्वीकायादी न हिनस्ति हंति आत्मसुखं प्रतीत्य स्वशरीरसुखकृते यः प्राणिनां लूपकउपमर्दकारी अदत्तहारी अदत्तग्राही सन शिक्षते नाभ्यसति (सेयविअस्सत्ति) सेवनीयस्य संयमस्य किंचित् मांसादेरपि निवर्ततइत्यर्थः ॥ ४ ॥

॥ टीका—यथाप्रतिज्ञातमाह । (जेकेइत्यादि) ये केचन महारंनपरिग्रहपंचेंद्रियवध पिशितनक्षणादिके सावद्यानुष्ठाने प्रवृत्ताबालाअज्ञारागद्वेषोत्कटास्तिर्यग्मनुष्याइहास्मि न्संसारेऽसंयमजीवितार्थिनः पापोपादानभूतानि कर्माण्यनुष्ठानानि रौद्राः प्राणिनां नयोत्पादकत्वेन नयानकहिंसानृतादीनि कर्माणि कुर्वंति तएवंनूतास्तीव्रपापोदय वर्तिनोघोररूपेऽत्यंतनयानके (तमिसंधयारेत्ति) बहुलतमोंधकारे यत्रात्मापि नोप लभ्यते चक्षुषा केवलमवधिनापि मंदंमंदमुलूकाइवाह्नि पश्यंति । तथाचागमः । कएह लेसेणंनंतेणेरइएकएहलेस्संणेरइअंपाणयाएउहिणासव्वउ समंतासमभिलोएमाणेकेव

इयंखेत्तंजाणई केवइयंखेत्तंपासइ गोयमाणोबहुययरं खेत्तंजाणइणो बहुयपसरंगाल इत्तरियमेवखेत्तंजाणइइत्तरियमेवपासइइत्यादि । तथा तीव्रोडुःसहः खदिरांगारमहारा शितापादनंतगुणोऽनितापः संतापोयस्मिन् सतीव्रानितापस्तस्मिन् एवंभूते नरके बहुवे नेऽपरित्यक्तविषयाभिष्वंगाः स्वकृतकर्मगुरवः पतंति तत्र च नानारूपा वेदनाः समनुभ ति । तथाचोक्तं । अच्छंडियविसयसुहो, पडइअविज्ञायसिविसिहाणिवहे ॥ संसारोदहि लयं, सुहंमिडुःखागरेनिरए ॥ १ ॥ पायकतोरढलमुह, कुहरुच्छलियंरुहिरगंडूसे कलयु त्तडुहाविरिक्किविवईणदेहधे ॥ २ ॥ जंतंतरभिज्जंतु, च्छलंतसंसहभरियदिशिविवरे ॥ गल तुप्फिडियसमुच्छलंतसीसद्धिसंथाए ॥ ३ ॥ सुक्ककंदकडाहु, कढंतडुक्कयकयंतकम्मंते ॥ मू लविनित्तुखित्तु,च्छदेहणितंतपज्झारे ॥ ४ ॥ वच्छंधयारडुग्गं बंधणायारडुच्छरकिलेस भिन्नकरचरणसंकर, रुहिरवसाडुग्गमप्पवहे ॥ ५ ॥ गिच्छमुहणिहउरकि,बबंधणो मुच्छकंविरकवंधे ॥ दडगहियतत्तसंडा, सयग्गविसुमुरकुम्भियजीहो ॥ ६ ॥ निसंकु सग्गकड्डिय, कंटयरुरकग्गजज्जरसरीरे ॥ निमिसंतरंपि डुल्लह,सुरकेवरकेडुःखंमि ॥ ७ ॥ इयजीसणंमिणिरए, पडंतिजेविविहसत्तवहिनिरया ॥ सच्चप्पछायनरा, जयंमिकयपावव घाया ॥ ८ ॥ इत्यादि ॥ ३ ॥ किंचान्यत् । (तिव्वंतसेत्यादि) । तथा तीव्रमतिनिरनु पं रौद्रपरिणामतया हिंसायां प्रवृत्तः । त्रस्यंतीतित्रसाद्वींडियादयस्तांस्तथा स्थावरां पृथिवीकायादीन् यः कश्चिन्महामोहोदयवर्ती हिनस्ति व्यापादयति । आत्मसुखंप्रती स्वशरीरसुखकृते नानाविधैरुपायैर्यः प्राणिनां लूपकउपमर्दकारी भवति तथा अद मपहर्तुं शीलमस्याऽसावदत्तहारी परद्रव्यापहारकस्तथा न शिक्षते नाभ्यसति । नादे (सेयवियस्सत्ति) सेवनीयस्यात्महितैषिणा सदनुष्ठाने यस्य संयमस्य किंचिदिति । एतउ क्तं भवति । पापोदयाद्विरतिपरिणामं काकमांसादेरपि मनागपि नविधत्ते इति ॥४॥

पागब्भि पाणे बहुणंतिवाती, अनिव्वते घातमुवेति बाले ॥ णिहो णिसं गच्छति अंतकाले, अहोसिरं कट्टु उवेइ डुग्गं ॥५॥ हण छिं दहभिंद णं दहेति, सद्दे सुणिंता परहम्मियाणं ॥ ते नारगाउ भयभिन्नसन्ना, कंखंति कन्नामदिसं वयामो ॥ ६ ॥

अर्थ-(पागब्भिके०) प्रागल्भिक एटले धृष्टपणे पापनेविषे निशंकउतो (पाणेबहुणंति वाती के०) बहुनांप्राणानतिपाती घणाप्राणीउनो अतिपाती विनाशक एटले जीवघात क, धृष्टपणे बोलनार शास्त्रमांहे जे हिंसाते हिंसा नही एवा वचननो बोलनार (अनिव्व के०) अनिवृत्त एटले क्रोध थकी उपशम्यो नथी, एवो उतो (बालेके०) बाल एटले अज्ञ

ती (घातं के०) नरकने (उपैतिके०) पामे (अंतकालेके०) अंतकाले एटले मरणका ले (अहोसिरंकट्टु के०) नीचुं मस्तक करी (णिहोणिसं के०) अधोगतियें अंधकारने विषे (गच्छतिके०) जाय (डुग्गंके०) डुर्ग विषम स्थानके छेदनन्नेदनादिक डुःखने (उवेइ के०) पामे ॥५॥ हवे ते नारकी पर्याप्त नावे पोहोता थका परमाधार्मिकना शब्द सांनले ते कहेछे (हणके०) मुजरादिके करी हणो (छिंदहके०) खड्गादिकेकरी छेदो (निंदणंके०) शूलादिके करी नेदो (दहेतिके०) अग्नीये करी बालो इत्यादिक करणने डुःखकारी एवा (परहम्मियाणं के०) परमाधार्मिकना (सद्देके०) शब्दने (सुणिंताके०) सांनलीने (ते नारगाउ के०) ते नारकीउ (नयनिन्नसन्नाके०) नयेकरीने नाश पाम्याछे संज्ञा एटले मनव्यापार जेना तथा गात्र पण नागाले एवा छतां (कंखंतिके०) एवी वांछना करेके (कन्नामदिसंवयामो के०) कांदिशंव्रजामः एटले अमे कयी दिशाये नाशी जइये के ज्यां गया थका अमने नय टली जाय. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–प्रागल्भ्यं धाष्टर्यं वियते यस्य स प्रागल्भी बहूनां प्राणिनामतिपाती हिंसकः सर्पहिंसादिवत् अनिर्वृत्तः कदाचिदप्यनुपशांतः सन् घातं नरकमुपैति बालःस अंतकालेन्यक् नीचैः (निसंति) अंधकारं गच्छति स्वपापेनाधःशिरःकृत्वा डुर्गं विषमं पीडास्थानमुपैति ॥ ५ ॥ हतंमुजरादिना, छिन्नंखड्गादिना निन्नं शूलादिना दग्धं वन्हिना । णंवाक्यालंकारे । तदेवंनूतान् परमाधार्मिकाणां शब्दान् शृण्वंति श्रुत्वा वा ते नारकानयेन निन्ना नष्टा संज्ञा येषां ते तथा कांदिशं व्रजेम इति कांक्षंति ॥ ६ ॥

॥ टीका–तथा (पागब्निपाणेइत्यादि) । प्रागल्भ्यं ध्याष्टर्यं तद्वियते यस्य सप्रागल्भी बहूनां प्राणिनां प्राणानतीव पातयितुं शीलमस्य सन्नवत्यतिपाती । एतडुक्तं नवति । अतिपात्यपि प्राणिनः प्राणानतिधाष्टर्याद्वदति । यथा वेदानिहिता हिंसाऽहिंसैव नवति । तथा राज्ञामयं धर्मोयडुत आखेटकेन विनोदक्रिया । यदिवा । नमांसनक्षणे दोषो,न मद्ये न च मैथुने । प्रवृत्तिरेषा नूतानां, निवृत्तिस्तुमहाफलाइत्यादि । तदेवं क्रूरसिंहकृष्णसर्पवत् प्रकृत्ये प्राणातिपातानुष्ठायी अनिर्वृतः कदाचिदप्यनुपशांतः क्रोधाग्निना दह्यमानोयदिवा लुब्धकमत्स्यादिवधकजीविकाप्रसक्तः सर्वदा परिणामपरिणतोऽनुपशांतोहन्यते प्राणिनः स्वकृतकर्मविपाकेन यस्मिन् सघातोनरकस्तमुपसामीप्येनैति । याति कोबालोऽज्ञो रागद्वेषवर्ती सोंतकाले मरणकाले (निहोत्ति) न्यगधस्तात् (णिसंति) अधोंधकारं गच्छतीत्यर्थः । यथा तेन डुश्चरितेनाधः शिरःकृत्वा डुर्गं विषमं यातनास्थानमुपैति अवाक्शिरा नरके पततीत्यर्थः ॥ ५ ॥ सांप्रतं पुनरपि नरकांतर्वर्तिनोनारका यदनुनवंति तद्दर्शयितुमा

द । (हणछिंदहेत्यादि) । तिर्यङ्मनुष्यनवात्सत्वानरकेषूत्पन्नाअंतर्मुहूर्तेन निर्लूनाण्ड संन्निज़ानि शरीराण्युत्पादयंति । पर्याप्तिज़ावमागताश्चातिन्नयानकान् शब्दान् परमाधार्मि कज़नितान् शृण्वंति ।तद्यथा । हतं मुद्गरादिना छिंदितं खड्गादिना निन्नं मूलादिना दग्धं मुर्मुरादिना ।णमितिवाक्यालंकारे । तदेवंनूतान् कर्णासुखान् शब्दान् नैरवान् श्रुत्वा तेतु ना रकान्नयोद्भ्रांतलोचनान्नयेन न्नीत्या निन्ना नष्टा संज्ञाऽतःकरणवृत्तिर्येषांते तथा नष्टसंज्ञाश्च कांदिशं व्रजामः कुत्र गतानामस्माकमेवंनूतस्यास्य महाघोरारवदारुणस्य दुःखस्य त्राणं स्यादित्येतत्कांक्षंतीति ॥ ६ ॥

इंगालरासिं जलियं सजोतिं, ततोवमं नूमिमणुक्कमंता ॥ तेमज्ज
माणा कलुणं थणंति, अरहस्सरा तब चिरहितीया ॥७॥ जइ
ते सुया वेयरणीन्निडुग्गा, णिसिउ जहा खुरइव तिरकसोया ॥
तरंति ते वेयरणींन्निडुग्गां, उसुचोइयासत्ति सुहम्ममाणा ॥ ८ ॥

अर्थ–एम चिंतवी नयन्रांत बता नाशता थकां जे पामे ते कहेले. (इंगालरासिंज लियंसजोति के०) खदिरांगार एटले खयरना अंगाराना पुंज ज्वाला कराल ज्योति स हित एवीजे नूमि (ततोवमं के०) तेनीले उपमा जेने (नूमिमणुक्कमंता के०) एवी नूमि ने अतिक्रमता (तेमज्जमाणा के०) तेनारकी अत्यंत दाऊता बलता थका (कलुणं थ णंति के०) कलुनमहाशब्दास्तनंति करुण एटले घणा दीनस्वरे आक्रंद करे वली ते नारकी केवाले तोके (अहरहस्सरा के०) जेनो स्वर प्रगट जाण्यामां आवे नही एटले जेवा गुंगाना शब्द तेवा शब्दे बोले वली केवाले तोके (तबचिरहीतीया के०) त्यां घ णोकाल रेवानी स्थितिले जेनी एटले उत्कृष्ट तेत्रीश सागरोपमनी स्थिति अने जघन्य दश हजार वर्षनी स्थिति जाणवी. ॥ ७ ॥ गुरु शिष्य प्रत्यें कहेले के (जइतेसुयाके०) जेते सांनलीले शुं शांनलीले. (वेयरणीन्निडुग्गाके०) वेतरणी नामनी नदी घणी दुर्ग एट ले विषम केवी विषमले तोके (णिसिउजहाखुरइवतिरकसोया के०) क्षुर एटले छुरी नी पेरे तीक्ष्णले स्रोत एटले पाणीनुं पूर जेने विषे एवी (वेयरणींन्निडुग्गां के०) ते वेतरणी नदी माहा विषम तेमां (तेके०) ते नारकीउ नरकनी नूमिना तापे तृष्या बता पाणीना अर्थि तरस्या थका (तरंति के०) तरे पण केवा बता तरे तोके त्यां जवाने अण इन्नता (उसुचोइयाके०) बाणना चोया एटले प्रेस्या तथा (सत्तिसुहम्ममा णा के०) शक्ति नाले करी हणाता थका ते नदीने डुखे पीड्या बता बलात्कारे ते वेतर णी नदी अगाधले माटे तरवाने असमर्थ बता पण तरे तेवारे घणाज दुःखी थाय पढी तर वाने नौकानी वांछा करे तेवारे फरी अत्यंत डुःखी थाय ते आगली गाथायें कहेले. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—अंगारराशिं ज्वलितं सह ज्योतिषा वह्निना वर्तत इति सज्योतिर्भूमिस्तेनो पमा यस्यां सा तडुपमा तामंगारतुल्यां भूमिमाक्रमंतस्ते नारकादह्यमानाः करुणं दीनं स्तनंत्याक्रंदंति। तत्र बादराग्नेरभावात्तडुपमां भूमिमित्युक्तं। एतदपि दिग्दर्शनार्थमुक्तं। अन्य था नारके चिरस्थितिकालस्थितयः। तथाहि। उत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि जघन्य तस्तु दशवर्षसहस्राणि तिष्ठंति ॥ ७ ॥ सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह। यदि ते त्वया श्रु ता वैतरणी नाम क्षारोष्णरुधिराकारजलवाहिनी नदी अभिदुर्गा विषमा।यथा निशितस्ती क्ष्णः क्षुरः स्यादेवं तीक्ष्णानि स्रोतांसि प्रवाहायस्याः सा तीक्ष्णस्रोताः। तथा ते नारका तापतप्ताजलं पातुमिच्छवो वैतरणीमतिदुर्गां तरंति। किंभूताः।इषुणा शरेण प्रतोदेने व प्रेरिताः शक्तिभिः शस्त्रविशेषैर्हन्यमानाः। तृतीयार्थे सप्तमी ॥ ८ ॥

॥ टीका—तेच भयोद्भ्रांतादिक्षु नष्टायदनुभवंति तद्दर्शयितुमाह। (इंगालेत्यादि) अं गारराशिं खदिरांगारपुंजं ज्वलितं ज्वालाकुलं तथा सह ज्योतिषोद्योतेन वर्ततइति सज्यो तिर्भूमिस्तेनोपमायस्याः सा तडुपमा तामंगारसन्निभां भूमिमाक्रमंतस्ते नारकादंदह्यमा नाः करुणं दीनं स्तनंत्याक्रंदंति। तत्र बादराग्नेरभावात्तडुपमां भूमिमित्युक्तं। एतदपि दिग्दर्शनार्थमुक्तमन्यथा नारकतापस्येहत्याग्निना नोपमा घटते। तेच नारकामहानगरदा हाधिकेन तापेन दह्यमानाअरहस्वराअप्रकटस्वरामहाशब्दाः संतस्तत्र तस्मिन्नरकावा से चिरं प्रभूतं कालं स्थितिरवस्थानं येषां ते। तथा ह्युत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा णि जघन्यतोदशवर्षसहस्राणि तिष्ठंतीति ॥ ७ ॥ (जइतेसुयाइत्यादि)। सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं प्रतीदमाह। यथा भगवतेदमाख्यातं यदिते त्वया श्रुता श्रवणपथमुपाग ता वैतरणी नाम क्षारोष्णरुधिराकारजलवाहिनी नदी आभिमुख्येन दुर्गाभिदुर्गा दुःखोत्पा दिका। तथा निशितोयथा क्षुरस्तीक्ष्णानि शरीरावयवानां कर्तकानि स्रोतांसि यस्याः सा। तथा तेच नारकास्तप्तांगारसन्निभां भूमिं विहायोदकं पिपासवोऽभितप्ताः संतस्तापाप नोदायाऽभिषिषिक्षवोवा तां वैतरणीमभिदुर्गां तरंति।कथंभूताः।इषुणा शरेण प्रतोदेनेव चो दिताः प्रेरिताः शक्तिभिश्च हन्यमानास्तामेव भीमां वैतरणीं तरंति।तृतीयार्थे सप्तमी॥८॥

कीलेहिं विज्झंति असाहुकम्मा, नावं उविंते सइ विप्पहूणा ॥
अन्नेतु सूलाहि तिसूलियाहिं, दीहाहिं विद्धूण अहे करंति ॥९॥
केसिंच बंधित्तु गले सिलाउ, उदगं सि बोलंति महालयंसि ॥ क
लंबुयावालुय मुम्मुरेय, लोलंति पच्चंति अ तत्थ अन्ने ॥ १० ॥

अर्थ—(असाहुकम्माके०) पहीते असाधुकर्मा पापकारक एवा नारकी ते नावमांहेआजे

लोखंमना (कीलेहिंके०) खीला तेणेकरी (विझंतिके०) वींधाय (नावंउविंतेके०) नावायें चढया (सइविप्पहूणाके०) स्मृतिविप्रहीणा स्मृतिहीन एटले विवेकरहित था तथा (अन्नेतुके०) अन्य वली परमाधार्मिक लोक ते नारकीउने नाशी जता देखीने (सूलाहिंतिसूलियाहिंदीहाहिंके०) त्रिशूलसहित एवी दीर्घ एटले लांबी शूलीयें (विंधेऊणअहेकरंतिके०) वींधी करीने नीचा धरतिने विषे नाखे ॥ए॥ (केसिंच बंधित्तुगलेसिलाउ के०) केटलाक नारकीने परमाधार्मिक लोक तेमना गलामां अत्यंत वजनदार शिला बांधीने (महालयंसि के०) माहा अगाध उंमा एवा (उदगंसिबोलंति के०) पाणीमां बोले फरी तेमांहेथी काढीने पढी (कलंबुयावालुयमुम्मुरेयके०) कलंबू फूल सरखी वेलूने विषे तथा मुम्मुरेय एटले अग्नीने विषे (लोलंति के०) आघा पाढा घाले अत्यंत तसरेती मांहे चणानी पेरे शेके (तत्थअन्ने के०) त्यां वली अन्य परमाधार्मिको (पचंतिअके०) ते नारकीने मांसनी पेशीनी पेरे पचावे तुहंपियाइ मांसाइ इत्यादि.॥ १०॥

॥ दीपिका–तान् नारकान् वैतरणीजलतप्तान् लोहकीलाकुलां नावमागच्छंतः पूर्वारूढा असाधुकर्माणः परमाधार्मिकाः कीलेषु कंठेषु विध्यंति तेच विध्यमानावैतरणीजलेन नष्टसंज्ञाः स्मृतिविप्रहीणागतकर्तव्यविवेकाः स्युः। अन्ये पुनर्नरकपालानारकैः क्रीडंतस्तान् त्रिशूलिकाभिः शूलाभिर्दीर्घाभिर्विध्वा अधोभूमौ जालयंति ॥ए॥ केषांचिन्नारकाणां कंठे ते परमाधार्मिकाः शिलां बध्वा महति जले बोलंति मज्जयंति ततः समाकृष्य पुनर्वैतरणीनद्याः कलंबुकावालुकायां मुर्मुराग्नौ लोलयंति अन्येच नारकान् तत्र नारकावासे प्रटकक्षिप्तमांसवत् पचंति ॥ १० ॥

॥ टीका–किंच (कीलेहीत्यादि) तांश्च नारकानत्यंतक्षारोष्णेन दुर्गंधेन वैतरणीजलेनाभितप्तानायसकीलाकुलां नावमुपगच्छतः पूर्वारूढाअसाधुकर्माणः परमाधार्मिकाः कीलेषु कंठेषु विध्यंतीति । तेच विध्यमानाः कलकलायमानेन सर्वस्रोतोनुयायिना वैतरणीजलेन नष्टसंज्ञाअपि सुतरां स्मृत्या विप्रहीणाअपगतकर्तव्यविवेकाभवंति । अन्ये पुनर्नरकपालानारकैः क्रीडंतस्तान्नष्टांस्त्रिशूलिकाभिर्दीर्घिकाभिरायताभिर्विध्वा अधोभूमौ कुर्वंतीति ॥ ए ॥ अपिच (केसिंचइत्यादि) केषां चिन्नारकाणां परमाधार्मिकामहतीं शिलां गले बद्ध्वा महत्युदके (बोलंतित्ति) निमज्जयंति । पुनस्ततः समाकृष्य वैतरणीनद्याकलंबुकावालुकायां मुर्मुराग्नौ च लोलयंति अतितप्तवालुकायां चणकानिव समंततोघोलयंति । तथान्ये तत्र नरकावासे स्वकर्मपाशावपाशितान्नारकान् सुंठकप्रोतकमांसपेशीवत् पचंति जर्जयंतीति ॥ १० ॥

असूरियं नाम महान्नितावं, अंधतमं डुप्पतरं महंतं ॥ उहुं अ
हेअं तिरियं दिसासु, समाहिउ जऊ गणीझियाइं ॥ ११ ॥ जं
सी गुहाए जलणेतिउहे, अविजाणउ मऊइ लुत्तपणो ॥ सया
य कलूणं पुण घम्मठाणं, गाढोवणीयं अतिडुरकधम्मं ॥१२॥

अर्थ-)असूरियंनामके०) नथी ज्यां सूर्य तेने असूर्य स्थानक कहिए एटले कुंनीने, आकारे माहाअंधकाररूप नरकावास, तथा ज्यां (महान्नितावं के०) माहा अत्यंत तापछे (अंधतमं के०) अत्यंत अंधकारछे, एवा (डुप्पतरं महंतंके०) महोटा विशाल डुत्तर स्थानकने पापना उदयथी ते नारकी पामेछे. (जऊके०) जे नरकावासमां सर्वकाल (उहुंअहेअंतिरियं दिसासु के०) उंचुं नीचुं अने तिरछुं एटले सर्व दिशाउने विषे (अगणीझियाइंके०) प्रज्वलित अग्नीने (समाहित के०)स्थाप्यो छे अर्थात् ज्यां सदा काल अग्नी बल्यां करेछे एवा कष्ट मांहे नारकीउने पाडे. ॥ ११ ॥ (जंसीगुहाए जल णतिउहेके०)जे नरकावासने विषे उंटने आकारेकुंनिकाछे ते गुफा मांहे प्रवेश करतोज अ ग्नीना आवर्त्तमां पडे एवो (अविजाणउ के०) अजाण बापडो पोताना कर्मने नथी जाणतो तथा(लुत्तपण्णोके०) लुप्तप्रज्ञो एटले जेनी प्रज्ञा लोपाइ गइछे, एवो छतो ते नार की त्यां(मऊइके०) दाजे बले (सयायकलुणंके०) सर्वकाल करुणप्राय दयामणुं एवुं (पुण घम्मठाणंके०) पूर्ण तापनुं स्थानक त्यां (गाढोवणीयंके०) आकरा पापकर्म करी ढोयुं (अ तिडुरकधम्मंके०) ज्यां अत्यंत डुःखरूपनुंज धर्म एटले स्वनावछेएवुं स्थानक नारकी पामे.

॥ दीपिका-(असूर्येति) नविद्यते सूर्योयस्मिन् सोऽसूर्योनरकोंधकारमयस्तं महानि तापं अंधतमसं डुष्प्रतरं महांतं नरकं पापोदयाद् व्रजंति ।तत्र च नरके उर्ध्वमधस्तिर्यक् च सर्वदिक्षु समाहितोव्यवस्थापितोऽग्निः प्रज्वलतीति ॥ ११ ॥ (जंसीति) यस्मिन् न रके प्राणी गुहायामिव ज्वलनेऽग्नौऽतिवृत्तः प्राप्तवेदनानुगतः स्वकृतं पापमजानन् लुप्तप्रज्ञो गतप्रज्ञाविवेकोदंदह्यते । तथा सदा करुणं पुनर्दानं घर्मस्थानमापत्स्थानं गाढमत्यर्थमु पनीतं डुष्कृतेन अतिडुःखरूपोधर्मस्वनावोयस्मिन् तत्तथा एवंविधं स्थानं ते व्रजंति नय त्र डुःखविश्रामः । यतः । अछिनिमीलणमेत्तं, नछिसुहंडुकमेवअणुवर्द्धं ॥ निरएनेरइआ णं, अहोनिसंपच्चमाणाणं ॥ १२ ॥

॥ टीका-तथा (असूरियमित्यादि) । नविद्यते सूर्योयस्मिन् सोऽसूर्योनरकोबहु लांधकारः कुंनीपाकाकृतिः सर्वएव वा नरकावासोऽसूर्योऽन्यपदिश्यते । तमेवंनूतं महा

भितापमंधतमसं डुष्प्रतरं डुरुत्तरं महांतं विशालं नरकं महापापोदयाद्व्रजंति । तत्र नरके ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् सर्वतः समाहितः सम्यगाहितोव्यवस्थापितोग्निर्ज्वलतीति । पच्यते च । (समूसिउंजह्मगणीजियाइ) यत्र नरके सम्यगूर्ध्वंश्रितः समुच्छ्रितोऽग्निः प्रज्वलति तं तथानूतं नरकं वराकाव्रजंति. ॥ ११ ॥ किंचान्यत् (जंसिगुहाएइत्यादि) यस्मिन्नरकेऽतिगतोऽसुमान् गुहायामित्युष्ट्रिकाकृतौ नरके प्रवेशितोज्वलनेऽग्नावतिवृत्तोवेदनाभिनूतत्वात्स्वकृतं डुश्चरितमजानन् लुप्तप्रज्ञोऽपगतावधिविवेकोदंदह्यते । तथा सदा सर्वकालं पुनः करुणप्रायं कृत्स्नं वा घर्मस्थानमुष्णस्थानं तापस्थानमित्यर्थः । (गाढंति) अत्यर्थमुपनीतं ढौकितं डुष्कृतकर्मकारिणां यत् स्थानं तत्ते व्रजंति । पुनरपि तदेव विशिनष्टि । अतिडुःखरूपोधर्मः स्वन्नावोयस्मिन्निति । इदमुक्तं नवति । अक्षिनिमेषमात्रमपि कालं नतस्य डुःखस्य विश्रामइति । तडुक्तं । अच्छि णिमीलणमेत्तं णच्छि सुहं डुरकमेव पडिबद्धं । णिरए णेरइयाणं, अहोणिसं पच्चमाणाणं ॥ १ ॥ १२ ॥

चत्तारि अगणिउ समारनित्ता, जेहिं कूरकम्मा नितविंति बालं॥ ते तछ चिठंति नितप्पमाणा, मन्नावजीवंतुवजोतिपत्ता ॥१३॥ संतछणं नाम महाहितावं, ते नारया जछ असाहुकम्मा॥ हत्तेहि पाएहिय बंधिऊणं, फलगंवतछंति कुहाडहछा ॥ १४ ॥

अर्थ–(चत्तारिअगणिउ समारनित्ता के०) चारेदिशे चार अग्नी समारंनीने एटले प्रज्वलित करीने (जेहिं के०) जे नरकावासनने विषे (कूरकम्मा के०) क्रूरकर्मना करनार एवा परमाधार्मिको ते (अनितविंतिबालंके०) अज्ञानी एवा बापडा नारकीउने तपावे (तेतछचिठंतिनितप्पमाणाके०) तेनारकी त्यां पूर्वोक्त रीते ताप सहन करता कदर्थता अत्यंत डुःख नोगवता ठतां घणा काल सुधी रहे कोनीपेरे तोके (मच्छावजीवंतुवजोतिपत्ता के०) जेम जीवता मत्स्य अग्नी पासे मूक्या ठता अत्यंत तापनु डुःख पामे पण परवश पणाने लीधे त्यांथी नासी शके नही, तेमते नारकीउ पण जाणी लेवा ॥ १३ ॥ (संतछणंनाम के०) त्यां ते नरकमांहे नारकीउने ठावा छेदवानुं जे स्थानकठे ते केवुंठे तोके (महानितापं के०) सर्वने महा डुःखनुं कारणठे (जछ के०) ज्यां (असाहुकम्मा के०) असाधुकर्मि एवा परमाधार्मिको (कुहाडहछा के०) हाथमां कुहाडो लइने (तेनारया के०) ते नारकीउने पकडीने (हत्तेहि पाएहियबंधिऊणंके०) तेना हाथ तथा पग बांधी(फलगंवतछंतिके०)काष्टनी पेरे ठाले छेदे. ॥ १४ ॥

॥दीपिका–(चत्तारित्ति) चतसृष्वपि दिक्षु चतुरोग्नीन् समारन्य प्रज्वाल्य यत्र नरके क्रूर

र्माणोनरकपालास्तंबालं मूर्खं अभितापयंति भटित्रवत् पचंति तेनारकास्तत्राभितप्य मानाः कदर्थ्यमानास्तिष्ठंति । यथा मत्स्याजीवंतोज्योतिःप्राप्ता अग्निगताः पीड्यंते तथा पीड्यमानाः ॥ १३ ॥ (संतछणमिति) नामेति संभावनायां । संतक्षणं छेदनं महाभि तापं महाडुःखोत्पादकं । ततस्ते यत्र नरकावासे असाधुकर्माणः क्रूरकर्माणोनरकपालाः कुठारहस्तान् हस्तैः पादैश्च बध्वा फलकमिव काष्ठखंमिव तक्ष्णुवंति छिंदंति. ॥ १४ ॥

॥ टीका–अपिच । (चत्तारिइत्यादि) चतसृष्वपि दिक्षु चतुरोग्नीन् समारभ्य प्रज्वा ल्य यस्मिन्नरकावासे क्रूरकर्माणोनरकपालाअभिमुख्येनात्यर्थं तापयंति भटित्रवत्प चंति बालमज्ञं नारकंपूर्वकृतडुश्चरितं । तेतु नारकजीवाएवमभितप्यमानाः कदर्थ्यमानाः स्वकर्मनिगडितास्तत्रैव प्रभूतं कालं महाडुःखाकुले नरके तिष्ठंति । दृष्टांतमाह । यथाजी वंतोमत्स्यामीनाउपज्योतिरग्नेः समीपे प्राप्ताः परवशत्वादन्यत्र गंतुमसमर्थास्तत्रैव तिष्ठंत्येवं नारकाअपि । मत्स्यानां तापासहिष्णुत्वादग्नावत्यंतं डुःखमुत्पद्यतइत्यतस्तद्ग्रह णमिति ॥ १३ ॥ किंचान्यत् (संतछमित्यादि) समेकीभावेन तक्षणं संतक्षणं । नामश ब्दः संभावनायां । यदेतत्संतक्षणं तत्सर्वेषां प्राणिनां महाभितापं महाडुःखोत्पादकमित्ये वं संभाव्यते । यदेवं ततः किंचित्याह । ते नारकानरकपालायत्र नरकावासे स्वभवनादा गताअसाधुकर्माणः क्रूरकर्माणोनिरनुकंपाः कुठारहस्ताः परशुपाणयस्तान्नारकानत्राणान् हस्तैःपादैश्च बध्वा संयम्य फलकमिव काष्ठशकलमिव तक्ष्णुवंति तनूकुर्वंति छिंदंतीत्यर्थः १४

रुहिरे पुणो वच्च समुस्सिअंगे, भिन्नुत्तमंगे परिवत्तयंता॥ पयंति
णं णेरइए फुरंते, सजीवमछेव अयोकवल्ले ॥ १५॥ नोचेव ते तत्त
मसीभवंति, णमिज्ञती तिव्वभिवेयणाए ॥ तमाणुभागंअणुवेदयं
ता, डुक्खंति डुक्खी इह डुक्कडेणं ॥ १६ ॥

अर्थ–(रुहिरेके०) ते परमाधार्मिको ते नारकीजीवोनुज रक्त, काढीने कडाहमां नाखी (पुणोके०) फरी तेज लोहीमां ते नारकीउने पचावे ते नारकीउ केवाछे तोके (व च्चके०) डुर्गंध वस्तु तेणेकरी (समुस्सिके०) खरड्याछे (अंगेके) अंग जेमना एवा ते नारकीने केवीरीते पचावे तोके (भिन्नुत्तमंगेके०) प्रथम तेमनुं उत्तमांग भेदीने पछी (प रिवत्तयंता के०) परिवर्तयंता एटले समु होय तेने उपरांठु होय करे अने उपरांठु तेने समु करे अर्थात् उलटावी पलटावीने पचावे. (पयंतिणंणेरइएफुरंते के०) त्यां पचता थका ते नारकी तापे करी विव्हल थता आघा पाछा उपलता हालता थका धूजे, ट लवले, कोनीपेरे तोके (सजीवमछेवअयोकवल्ले के०) जेम जीवता मत्स्य तप्त लोखं

मनी कडाहमां नाख्या थका अत्यंत टलवले, तेनी पेरे ते नारकीउ पण वेदना करता थका टलवले.॥ १५ ॥ (नोचेवतेतञ्जमसीञवंति के०) पण ते नारकी त्यां नाख्या थका बलीने जस्म नथाय, (णमिज्ञतीतिवनिवेयणाए के०) मरण पामे नही शरीर बांधे नही. अत्यंत उग्र वेदनाये पण पोताना कृतकर्म (तमाणुजागं के०) ते कर्मनो अनुजाग जे विपाक तेने (अणुवेदयंता के०) अनुवेदता एटले जोगवता थका (डःखंतिडखीइहडुक्कडेणं के०) सीतोसवेदना दहन हनन ठेदन जेदन ताडन तर्जनादिक तथा तक्षण त्रिशूलारोपण कुंजीपाक सालमली वृक्षादिके करी ऊप जावेला जे डःख, ते डखेकरी डखीथका पोताना करेला डकृतने योगे त्यां जीवता काल रहे पण आयुष्य पूरण कस्या विना मरण पामेल नही. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–(रुहिरेत्ति) ते नरकपालास्तान्नरकान् स्वरुधिरे तप्तकवल्यां प्रक्षिप्ते पुन पचंति । वर्चःप्रधानानि समुच्छ्रितानि अंत्राण्यंगानि वा येषांते तथा तान् । जिन्नं चूर्णितमु त्तमांगं शिरोयेषांते तथा तान् । के पचंतीत्याह । परिवर्त्तयंतउत्तानानधोमुखांश्च कुर्वंतः णंवाक्यालंकारे । तान् स्फुरतइतश्चेतश्च विव्हलान् सजीवमत्स्यानिव लोहकवल्यां पचंति ॥ १५ ॥ (णोचेवेति) ते च नारकाएवं वन्हिनापच्यमानाअपि नजस्मीजवंति नजस्म सात्जवंति नरकानुजावात् । तथा तीव्रवेदनया नापरमग्निप्रक्षिप्तमत्स्यादिकमप्यस्ति य न्मीयते उपमीयते । अथवा तीव्राग्निवेदनयापि अननुजूतस्वकर्मत्वान्नम्रियंते तं छेदनजे दनादिकमनुजागं कर्मविपाकमनुवेदयंतोऽनुजवंतस्तिष्ठंति । तथा कृतेन दुष्कृतेन डःखि नोडःखयंति पीडयंति. ॥ १६ ॥

॥ टीका–अपिच (रुहिरेपुणोइत्यादि) ते परमाधार्मिकास्तान्नारकान्स्वकीये रुधिरे तप्तकवल्यां प्रक्षिप्ते पुनः पचंति । वर्चःप्रधानानि समुच्छ्रितान्यंत्राण्यंगानि वा येषांते तथा तान् जिन्नंचूर्णितमुत्तमांगं शिरोयेषां ते तथा तानिति । कथं पचंतीत्याह । परिवर्त्त यंतउत्तानानवाङ्मुखान् वा कुर्वंतः । णमिति वाक्यालंकारे । तान । स्फुरतइतश्चेतश्च वि व्हलमात्मानं निक्षिपंतः सजीवमत्स्यानिवायसकवल्यामिति. ॥ १५ ॥ तथा (णोचेवइ त्यादि) तेच नारकाएवं बहुशः पच्यमानाअपि नोनैव तत्र नरके पाकेवा नरकानुजावे वा सति मषीजवंति नैव जस्मसाञवंति । तथा तत्तीव्राग्निवेदनया नापरमग्निप्रक्षिप्तमत्स्या दिकमप्यस्ति यन्मीयते उपमीयते अनन्यसदृशीं तीव्रां वेदनां वाचामगोचरामनुजवंती त्यर्थः । यदिवा तीव्राग्निवेदनयाप्यननुजूतस्वकृतकर्मत्वान्नम्रियंतइति प्रजूतमपि कालं याव त्तथाविधं शीतोष्णवेदनाजनितं तथा दहनछेदनजेदनतक्षणत्रिशूलारोपणकुंजीपाकशाल्मल्या रोहणादिकं परमाधार्मिकजनितं परस्परोदीरणनिष्पादितंचानुजागं कर्मणां विपाकमनुवेदयं

तः समनुवेदयंतः समनुभवंतस्तिष्ठंति । तथा स्वकृतेन हिंसादिनाऽष्टादशपापस्थानरूपेण सततोदीर्णदुःखेन दुःखिनोदुःखयंति पीडयंते नाक्षिनिमेषमपिकालं दुःखेन मुच्यंतइति ॥ १६

तेहिंच ते लोलणसंपगाढे, गाढं सुतत्तं अगणिं वयंति ॥ न तत्थ
सायं लहती भिदुग्गे, अरहियाभितावा तहवी तविंति ॥ १७॥
से सुच्चई नगरवहेव सद्दे, दुहोवणीयाणि पयाणि तत्थ ॥ उदिसक
म्माणउदिसकम्मा, पुणोपुणो ते सरहं दुहेंति ॥ १८ ॥

अर्थ–(तेहिंच के०) ते नरकावासने विषे (तेके०) ते नारकीने (लोलणसंपगाढे के०)आलोलवे एटले आघा पाछा करवे करी अत्यंत व्याप्त शीतार्त छता एवा नारकी सुखने अर्थे (गाढंसुतत्तंअगणिंवयंतिके०)अत्यंततप्त अग्नीने विषे जाय,परंतु(नतत्थसायंलहतीभि दुग्गे के०) त्यां विषम अग्नीस्थानने विषे पण शातान पामे (अरहिताभितावा तह वीतविंतिके०) निरंतर ज्यां आकरो तापछे एवा नरकने विषे परमाधार्मिक तेने तपावे, तेल तप्तकरी तेने कष्ट आपे,एम अनेक प्रकारे परमाधार्मिक देवो नारकीजीवोने वेदना करेछे. ॥ १७ ॥ (सेसुच्चईनगरवहेवसद्देके०) तेनरकमांहे नारकीना आक्रंद शब्द नगरना वधजेवा संभलायछे जेम कोइएक नगरनो नाश करे तेवारे माहा कोलाहल शब्द था य एवो आक्रंद शब्द हामात, हातात, हुं अनाथ ताहारे सरणागतछुं, मुजनेराख, इत्यादि शब्द सांभलीये (दुहोवणीयाणिपयाणितत्थके०) दुखोपनीतानिपदानितत्रनरकेशब्दः एट ले त्यां नरकने विषे करुणा प्रलाप सहित एवा पूर्वोक्त पदोना दयामणा शब्द बोले (उदि सुकम्माणउदिसकम्मा के०) जेने कटुक विपाकरूप कर्म वर्त्तमानकाले उदय थयाछे एवा नारकीने मोहनीय कर्मना उदयवाला एवा परमाधार्मिक देवो (पुणोपुणोतेके०) ते पुनःपुनःपूर्वोक्तरीते (सरहंदुहेतिके०) उत्साह सहित नारकीउने एटला दुःख करे.॥ १८॥

॥ दीपिका–(तेहिंचेति) तत्र नरके नारकाणां लोलनेनेतःपरतोघोलनेन संप्रगाढे व्याप्ते शीतार्तानारकागाढमत्यर्थं सुतप्तमग्निंव्रजंति । तत्राप्यग्निस्थानेऽभिदुर्गे सातं सुखं न लभंते । अरहितोनिरंतरोऽभितापोयेषांतेऽरहिताभितापास्तथापि नारकपा लास्तापयंति तप्ततैलादिना दहंतीति ॥ १७॥ (सेइति) से अथ तेषां नारकाणां नगर वधः शब्दोनगरवधइव श्रूयते । यथा नगरसंबधी महानाक्रंदः स्यात्तादृगोदुःखेनोपनीतानामु च्चारितानां पदानां हामातः हातातइत्यादीनां तत्र शब्दः श्रूयते । उदीर्णमुदयप्राप्तं क र्म येषांते तथा तेषामुदीर्णकर्माणोनरकपालामिथ्यात्वहास्यरत्यादीनामुदये वर्तमानाः पुनःपुनस्ते सरहंसोत्साहं नारकान् दुःखयंति ॥ १८ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (तेहिंचेत्यादि) तस्मिंश्च महायातनास्थाननरके । तमेव शिनष्टि । नारकाणां लोजने सम्यक् प्रगाढोव्याप्तोनृतः सतथा तस्मिन्नरके शीतार्ताः गाढमत्यर्थं सुष्ठु तप्तमग्निं व्रजंति । तत्राप्यग्निस्थानेऽ निडुर्गे दह्यमानाः सातं सुखं मनागपि नलनंते । अरहितोनिरंतरोऽनितापोदाहोयेषांते अरहिताजितापास्तथापि तान्कास्तेनरकपालास्तापयंतीत्यर्थः । तप्ततैलाग्निना दहंतीति ॥ १७ ॥ अपिच (सेसुव्वइत्यादि) सेशब्दोऽथशब्दार्थे । अथानंतरं तेषां नारकाणां नरकपालैरौडैः कदर्थ्यमानानां नयानकोहाहारवप्रचुरआक्रंदनशब्दोनगरवधइव श्रूयते समाकर्ण्यते डुःखेन पीमितानीतान्युच्चरितानि करुणाप्रधानानि यानि पदानि हामातस्तात कष्टमनाथोहं शरणागतस्तव त्रायस्व मामित्येवमादीनां पदानां तत्र नरके शब्दः श्रूयते । उदीर्णमुदयप्राप्तं कटुपाकं कर्म येषां तथोदीर्णकर्माणोनरकपालामिथ्यात्वहास्यरत्यादीनामुदये वर्तमानाः पुनःपुनर्बहुशस्ते (सरहंतित्ति) सरनसं सोत्साहं नारकान् डुखयंत्यतस्तदसह्यं नानाविधैरुपायैर्डुःखमसातवेदनीयमुत्पादयंतीति ॥ १८ ॥

पाणेहि णं पावविउ जयंति, तं से पवरकामि जहा तहेणं॥ दंमेहिं तज्ञा सरयंति बाला, सवेहिं दंमेहि पुरा कएहिं ॥१९॥ ते हम्म माणा णरगे पडंति, पुन्ने डुरूवस्स महाजितावे॥ ते तन्न चिठंति डुरूवन्नरकी, तुट्टंति कम्मोवगया किमीहिं ॥ २० ॥

अर्थ–णंवाक्यालंकारेले (पाणेहिणंपावविउजयंतिके०) ते पापिष्ट परमाधार्मिको नारकी प्राणीना इंडी विमुक्त करे उपांग वेगलाकरे (तंसेपवरकामिजहातहेणं के०) ते नरकीने एटला डुःख सावास्ते करे तेना कारण तमने यथा तथ्य कहुंछुं (तज्ञ के०) त्यां (दंमेहिं के०) डुःख विशेष एटले पाछला नवना करेला कर्म तेने (सरयंति के०) संनारीने तेनरकपाल पुरुषो तेने कहेके अरे बापडा तें पूर्वनवने विषे मांसनक्षण, मद्यपान, जीवघात, मृषावाद, चोरी, परस्त्रीगमन, कस्याले, ते सांप्रत ताहारे उदय आव्याले, तेने योगे तुं डुःख नोगवेले, माटे आम सावास्ते आरडेले. एरीते (बाला के०) ते परमाधार्मिक पुरुषो (सवेहि के०) सर्वथा प्रकारे (दंमेहि के०) ते नारकीने डुःखरूप दंमेकरी(पुराकएहिंके०)पूर्वकृत कर्मना उदय थकी पीडा करे. ॥१९॥(तेहम्ममाणाणरगेपडंति के०) ते नारकी हणाया थका पांचशे योजन ऊंचा उठलीने नरकना एकदेसें पडे ते नरक केवाले तोके (पुन्नेडुरूवस्स महाजितावे के०) डुष्टरूप माहातापेकरी पूर्णले, नाना प्रकारना डुःख तथा मल सहितले, (तेतञचिठंतिडुरूवजरकी के०

त्यांते नारकी अशुची वस्तुना आहारी थता घणोकाल सुधी रहे (तुट्टंति कम्मोवगया किमीहिं के०) कर्मने वस पडया एवा नारकीने परमाधार्मिक विकूर्विने पीडे. ॥ २० ॥

॥दीपिका—(पाणेहिणमिति) णं वाक्यालंकारे। ते पापानरकपालाः प्राणैः शरीरेंद्रियादिभिर्वियोजयंति येनैवं डुःखं ते लभंते तद्दुःखकारणं भे भवतां याथातथ्येन सत्यतया प्रवक्ष्यामि तेषां दंमैर्नरकविशेषैस्तत्र बालानरकपालाः पूर्वकृतं स्मारयंति । पूर्वभवे त्वं मांसानि खादसि पिबसिमद्यं गबसि परदारान् । सांप्रतं विपाकप्राप्तेन कर्मणा किमेवमाक्रंदसीत्येवं पुराकृतैः सर्वैर्दंमैर्डुःखविशेषैस्तादृशमेव डुःखमुत्पादयंति. ॥ १९ ॥ (तेऽति) ते नारका हन्यमानानष्टाः संतोऽन्यस्मिन् घोरतरे नरके पतंति। किंभूते पूर्णे भृते। डुरूपं विष्ठासृङ्मांसादिमलं तस्यभृते महाभितापेऽतिसंतापोपेते तत्र नरके डुरूपस्याशुच्यादेर्भक्षिणस्तिष्ठंति । तथा कृमिभिर्नरकपालकृतैः परस्परकृतैश्च तुद्यंते व्यथ्यंते । तथा चागमः । बठीसत्तमासुणं पुढवीसुनेरइया पहूमहंताइं लोहिअकुंथुरूवाइं विउव्वित्ता अन्नमन्नस्स कायं समचउरंगेमाणा २ अणुखायमाणा २ चिठंति ॥ २० ॥

॥ टीका—तथा (पाणेहिणमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे । प्राणैः शरीरेंद्रियादिभिस्ते पापाः पापकर्मणोनरकपालावियोजयंति शरीरावयवानां पाटनादिभिः प्रकारैर्विकर्तनादवयवान् विश्लेषयंति। किमर्थमेवं कुर्वंतीत्याह । तद्दुःखकारणं भेयुष्माकं प्रवक्ष्यामि याथातथ्येनावितथं प्रतिपादयामीति । दंडयंति पीडामुत्पादयंतीति दंमाडुःखविशेषास्तैर्नारकाणामापादितैर्बालानिर्विवेकानरकपालाः पूर्वकृतं स्मारयंति । तद्यथा । तदारुष्टस्त्वं खादसि समुत्कृत्य प्राणिनां मांसं तथा पिबसि तं तद्रसं मद्यं च गबसि परदारान् सांप्रतं तद्विपाकापादितेन कर्मणा ऽभितप्यमानः किमेवं रारटीषीत्येवं सर्वैः पुराकृतैर्दंडैर्दुःखविशेषैः स्मरयंतस्तादृक् भूतमेव डुःखविशेषमुत्पादयंतोनरकपालाः पीमयंतीति ॥ १९ ॥ किंच (तेहम्ममाणाइत्यादि) ते वराकानारकाद्धन्यमानास्तोद्यमानानरकपालेभ्योनष्टेऽन्यस्मिन् घोरतरे नरकैकदेशे पतंति गछंति । किंभूते नरके पूर्णे भृते । डुष्टं रूपं यस्य तद्दुरूपं विष्ठासृग्मांसादिकं मलं तस्य भृते तथा महाभितापिते संतापोपेते ते नारकाः स्वकर्मावबद्धास्तत्रैवंभूते नरके डुरूपभक्षिणोऽशुच्यादिभक्षकाः प्रभूतं कालं यावत्तिष्ठंति । तथा कृमिभिर्नरकपालापादितैः परस्परकृतैश्च स्वकर्मापगताः स्वकर्मकृतास्तुद्यंते व्यथ्यंते इति । तथाचागमः । बठीसत्तमासुणं पुढवीसु नेरइयापहूमहंताइं लोहिकुंथुरूवाइं विउव्वित्तअन्नमन्नस्सकायंसमचउरंगे माणामाणा अणुखायमाण अणुखायमाणा चिठंति ॥ २० ॥

सया कसिणं पुण घम्मठाणं, गाढोवणीयं अतिडुरकधम्मं॥अंदूसु पक्खिप्प विहत्तुदेहं, वेहेण सीसं से भितावयंति ॥२१॥ छिंदंति वा लस्स खुरेण नक्कं, उठेवि छिंदंति डुवेवि कन्ने ॥ जिप्नं विणिक्कस्स विहत्थिमित्तं, तिरकाहिं सूलाइ भितावयंति ॥ २२ ॥

अर्थ-(सयाकसिणंपुणघम्मठाणं के०) सर्वदाकाले ते नरक परिपूर्ण घर्म एटले आतापनुं स्थानक त्यां (गाढोवणीयं के०) कर्मने उदयें ढोया एवा नारकी (अतिडुक्खधम्मं के०) अत्यंतडुःखनो धर्म एटले स्वभाव छे ज्यां (अंदूसुपक्खिप्पविहत्तुदेहं के०) ते स्थानके नारकीनो शरीर निवडबंधमांहे प्रक्षेपीने (वेहेणसीसंसे के०) मस्तके छिद्र करी तेने (भितावयंति के०) तपावे सर्व शरीर चर्मनी पेरे विस्तारीने खीलायें करी खेडे. ॥ २१ ॥ ते परमाधार्मिक (बालस्स के०) ते अज्ञानी नारकीउना (खुरेण के०) क्षुर एटले छुरीयें करीने (नक्कंके०) नासिकाने (छिंदंतिके०) छेदे तथा (उठेविछिंदंतिडुवेविकन्ने के०) उष्ठ छेदे तथा बंने कान पण छेदे तथा मद्यमांसादि मृषा बोलवुं इत्यादि पाप तेमने संभारी आपीने (जिप्नंविणिक्कस्सविहत्थिमित्तं के०) ते नारकीनी एक विहत्थ प्रमाण जीन बाहेर काढीने (तिरकाहिंसूलाइभितावयंतिके०) तीक्ष्ण शूलियें करी संतापे, छेदे एरीते ते नारकीने पीडे वेदना आपे. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका-(सयेति) सदा कृत्स्नं संपूर्णं घर्मस्यातपस्य स्थानमुष्णस्थानं नवति गाढेर्दृढैः कर्मभिरुपनीतं ढौकितं अतिडुःखमेव धर्मः स्वभावोयस्यतत् एवंविधे स्थाने स्थितोजंतुः अंडुषु निगडेषु देहं विहत्य प्रक्षिप्य तथा शिरश्च(से)तस्य वेधनेनारकस्य रंध्रोत्पादनेनाभितापयंति कीलकैश्च सर्वाण्यंगानि विद्ध्वा चर्मवत् कीलयंति ॥ २१ ॥ (छिंदंतीति) दं नरकपालाः बालस्याज्ञस्य क्षुरप्रेण नासिकां छिंदंतीति । तथा उष्ठौ कर्णौच द्वावपि छिं तेति तथा जिव्हां वितस्तिमात्रां बहिर्निष्काश्य तीक्ष्णशूलाभिरभितापयंति अपनयंति ॥

॥ टीका-किंचान्यत् (सयाकसिणमित्यादि) सदा सर्वकालं कृत्स्नं संपूर्णं । पुनस्तत्र नरके घर्मप्रधानं उष्णप्रधानं स्थितिस्थानं नारकाणां नवति । तत्रहि प्रलयातिरिक्ताग्निवातादीनामत्यंतोष्णरूपत्वात्तत्र दृढैर्निधत्तनिकाचितावस्थैः कर्मभिर्नारकाणामुपनीतं ढौकितं । पुनरपि विशिनष्टि।अतीव डुःखमसातावेदनीयं धर्मः स्वभावोयस्य तत्तथा तस्मिंश्चैवंविधे स्थाने स्थितोऽसुमान अंडुषु निगडेषु देहं विहत्य प्रक्षिप्य च यथा शिरश्च (से)तस्य नारकस्य वेधेन रंध्रोत्पादनेनाभितापयंतीति ॥ २१ ॥ अपिच (छिंदंतिबालस्सेत्यादि) ते परमधार्मिकाः पूर्वडुश्चरितानि स्मरयित्वा बालस्याज्ञस्य निर्विवेकस्य प्रायशः सर्वदा वेदनात

मुद्वातोपगतस्य क्षुरप्रेण नासिकां छिंदंति तथौष्ठावपि द्वावपि कर्णौ छिंदंति तथा मद्य मांसरसाऽभिलाषिणोर्मृषाभाषिणोजिव्हां वितस्तिमात्रामाक्षिप्य तीक्ष्णाभिः शूलाभिरभितापयंत्यपनयंति ॥ २२ ॥

ते तिप्पमाणा तलसंपुडंव, राइंदियं तछ थणंति बाला ॥ गलंति ते सोणिअपूयमंसं, पज्जोइया खारपइद्धियंगा ॥२३॥ जइ ते सुता लोहितपूअपाई, बालागणी तेअगुणा परेणं ॥ कुंभी महंताहियपोरसीया, समूसिता लोहियपूयपुस्सा ॥ २४ ॥

अर्थ-(ते के०) तेनारकी कान होठ प्रमुख अंगोपांगना छेदन थकी (तिप्पमाणा के०) लोहिजरता थका (तलसंपुडंव के०) सुका ताडवृक्षना पान जेम पवने उडता शब्द करे, तेनीपेरे (राइंदियंतछथणंतिबालाके०) ते बाल अज्ञानी निरविवेकी एवा नारकी बापडा रात्र दिवश त्यां आक्रंद शब्द करे (गलंतितेसोणियपूयमंसं के०) त्यांते नारकीना अंगोपांग छेद्या पछी तेना शरीरमांथी लोही परु तथा मांसादिक जरे (पज्जोइया के०) तेवारे तेने शेककरी अग्नीयें प्रज्वालीने (खारपइद्धियंगा के०) लवणादिक खारे अंगोपांग खरड्या छता रुधिर परु अने मांस एटलावाना रात्र दिवस तेमना शरीरमांथी गलता थका रहेछे॥२३॥वली श्रीसुधर्मस्वामी श्रीजंबूस्वामी प्रत्ये कहेछे के, (जइते के० (यदि तें श्रीमहावीर भाषित (लोहितपूअपाई के०) रुधिर अने परुनी पात्री एटले रुधिर अने पाकीरुधिर ते परु ए बंने ज्यां पचेछे एवो स्थानक कुंभी भाजन विशेष ते (सुता के०) ते सांभलीछे ते केवीछे तोके (बालागणीके०) नवी अग्नीना (तेअ के०) तेज करता पण (गुणापरेणं के०) गुणे करी अधिकछे एटले अत्यंत बलतीछे (कुंभीमहंताहियपोरसीया के०) एवी पुरुष प्रमाण थकी अधिक मोटी कुंभी भाजन विशेष ते केवीछे तोके (समूसिता के०) उंटने आकारे उंचीछे अने (लोहियपूयपुस्सा के०) रुधिर अने परु एणे करी परिपूर्ण भरेलीछे. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका-(तेऽति) ते नारकाः शोणितं तिप्यमानाः स्रवंतोयत्र रात्रिंदिनं गमयंति तत्र प्रदेशे तालसंपुटाइव पवनप्रेरितशुष्कपत्रसंचयाइव सदा विस्वरं स्तनंति क्रंदंति । वन्हिना प्रद्योतिताज्वालिताः क्षारेणप्रदिग्धांगाः शोणितं पूयं मांसं चाऽहर्निशं गलंति. ॥ २३ ॥ (जईति) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं वक्ति । यदि ते त्वया श्रुता लोहितं रुधिरं पूयं पक्वरुधिरं ते द्वे अपि पक्तुं शीलमस्याः सा लोहितपूयपाचिनी कुंभी । पुनः किंभूता । बालः प्रत्यग्रोग्निस्तस्यतेजोभितापः सएव गुणोस्याः सा बालाग्नितेजोभिताप

गुणा परेणापरेण प्रकर्षेण । तथा पुनः किंभूता महती बृहत्तरा (अहियपोरिसीयंति) पुरुषप्रमाणाऽधिकसमुच्छ्रिता उष्ट्रिकाकृतिः ऊर्ध्वं व्यवस्थिता लोहितपूर्णा ॥२४॥

॥ टीका–तथा । (तेतिप्पमाणेत्यादि) ते छिन्ननासिकोष्ठजिव्हाः संतः शोणितं लिप्यमानाः क्षरंतोयत्र यस्मिन् प्रदेशे रात्रिंदिनं गमयंति । तत्र बालाअज्ञास्तालसंपुटाः पवनेरितशुष्कतालपत्रसंचयाइव सदा स्तनंति दीर्घविस्वरमाक्रंदंतस्तिष्ठंति तथा प्रद्योतितावन्हिना ज्वलितास्तथा क्षारेण प्रदिग्धांगाः शोणितं पूयं मांसं चाहर्निशं गलंति ॥ २३ ॥ किंच । (जइतेसुताइत्यादि) पुनरपि सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमुद्दिश्य नरकवचनमाविष्करोति । यदिते त्वया श्रुता आकर्णिता । लोहितं रुधिरं पूयं रुधिरमेव पक्वं तेऽपि पक्तुं शीलं यस्यां सा लोहितपूयपाचिनी कुंभी । तामेव विशिनष्टि । बालोऽभिनवप्रत्यग्रोग्निस्तेन तेजोभितापः सएव गुणोयस्याः सा बालाग्नितेजोगुणा परेण प्रकर्षेण तप्तेत्यर्थः । पुनरपि तस्याएव विशेषणं महती बृहत्तरा (अहियपोरुसीयंति) पुरुषप्रमाणाधिका समुच्छ्रितोष्ट्रिकाकृतिरूर्ध्वं व्यवस्थिता लोहितेन पूयेन च पूर्णा सैवंभूता कुंभी समंततोऽग्निना प्रज्वलिताऽतीव बीभत्सदर्शनेति. ॥ २४ ॥

पक्खिप्प तासु पययंति बाले, अट्टस्सरे ते कलुणं रसंते ॥ तण्हा इया ते तउ तंबतत्तं, पज्जिज्जमाणाट्टतरं रसंति ॥ २५ ॥ अप्पेण अप्पं इह वंचइत्ता, भवाहमे पुव्वसते सहस्से ॥ चिठंति तत्था बहुकूरकम्मा, जहा कडं कम्म तहासि भारे ॥ २६ ॥ समज्जिणित्ता कलुसं अणज्जा, इठेहिं कंतेहि य विप्पहूणा ॥ ते दुब्भिगंधे कसिणेयफासे, कम्मोवगा कुणिमे आवसंतित्तिबेमि ॥ २७ ॥ इति निरयविभत्तिएपढमोउद्देसोसमत्तो ॥

अर्थ–हवे त्यां कुंभीमांहे नारकीने शुं करे ते कहेछे. (पक्खिप्पतासुके०) ते परमाधार्मिक कुंभीमांहे घालीने (अट्टस्सरेतेकलुणंरसंते के०) आर्त शब्द करता तथा करुण प्रलाप करता एवा ते बापडा (बालेके०) अज्ञान नारकीने (पययंतिके०) प्रकर्षे करी पचावे (तण्हाइयातेतउतंबतत्तंके०) तृषायें पीड्या थका पाणी मागे तेवारे तेने त्रांबु उकालीने तेनो रस (पज्जिज्जमाणके०) पीवरावे तेवारे ते (अट्टतरंरसंतिके०) घणामां घणे दीनस्वरे करुणाकारी विलाप करे ॥ २५ ॥ (अप्पेणअप्पंइहवंचइत्ता के०) जेणे इह एटले आ मनुष्य भवमां अल्पसुखने अर्थे परोपघाति पणुं आदरीने पोताना आत्मायें करी पोताना आत्मानेज वंच्यो (भवाहमेपुव्वसतेसहस्से के०) तथा पूर्वे जन्मे अधम एवा लुब्धकादिकना शतसहस्र भव भोगवी घणा कर्मोपार्जीने (चिठंतितत्थाबहुकूरकम्माके०)

अत्यंत क्रूर पापकर्मना धणी डुःखवेदना भोगववाने घणोकाल सुधी त्यां नरकने विषे रहे (जहाकडंकम्मतहासिभारे के०) यथाकृतानिकर्माणि जेवां अध्यवसायेकरी जेवाभा वे कर्म कीधां होय तेवाज नरकमां पण सिभार शब्दे डुःख उपजे जेम मांस भ क्षण करनारने तेनाज शरीरमांथी मांसकापी अग्नीवर्ण करी खवरावे, मद्यपानीने तप्त कथीरनो रस पीवरावे, मत्सघातकीने छेदे, भेदे, असत्य भाषण करनारनी जिव्हा छेदे, परधनापहारीना अंगोपांग छेदे, लंपटना वृषण छेदे, साल्मली वृक्षनुं आलिंगन करावे इत्यादिक जेणे जेवा कर्म उपार्ज्यां होय तेने ते सरखाज डुःख परमाधार्मिको उपजावे. ॥ २६ ॥ (समज्जिणित्ताकलुसंअणज्जा के०) ते पापी अनार्य माता पिता अने स्त्रियादि कने अर्थे घणा कलुष एटले पापकर्म उपार्जन करीने पछी (इछेहिकंतेहियविप्पहूणा के०) इष्टजे मातापिता तथा कांता एटले स्त्रियादिक ते थकी विप्पहूणा एटले रहित अर्थात् एकाकी छता (तेडुब्भिगंधेकसिणेयफासेके०) ते डुर्गिगंध डुःखे करी भर्यो तथा अशुभ स्पर्शवान एवा नरकने विषे (कम्मोवगाकुणिमेआवसंतिके०) कर्मोपगता अशुभ क र्मने लीधे कुणि एटले मांस पेसी रुधिर परु आंतरमा फेफसुं इत्यादिक कस्मले करी समाकुल एवा नरक स्थानमां घणोकाल अवश्य पणे रहीने पूर्वोक्त डुःख सहन करे. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो.॥२७॥इति नरकविभक्तियनाम प्रथमोद्देशकनुंअर्थसमाप्तः

॥ दीपिका-(परिक्प्पेति) कुंभीषु तान् आर्तस्वरान् करुणं दीनं रसंतः प्रक्षिप्य प्रप चंति ते तृषार्ताः सलिलं प्रार्थयंतस्तप्तं त्रपु पाय्यंते । पाय्यमानाश्चार्त्ततरं रसंति रारटंति ॥ २५ ॥ (अप्पेणेति) इह भवभवे आत्मनैवात्मानं वंचयित्वा भवानामधमाभवाधमा अधमभवामत्स्यवधलुब्धकादीनां भवास्तान् पूर्वजन्मनि शतसहस्रशः समनुभूय क्रूरक र्माणस्ते नरके बहुप्रभूतकालं तिष्ठंति यथा येन प्रकारेण यादृशाध्यवसायेन पूर्वभवे कृ तानि कर्माणि तथा से तस्य नारकस्य भारावेदनाः स्युः ॥ २६ ॥ (समज्जिणित्तेति) अ नार्याः पापकर्मकारिणः कलुषं पापं समर्ज्य अर्जयित्वा ते नारकाडुरभिगंधिनरके वसं ति ।किंभूताः।इष्टैः कांतैः शब्दादिविषयैर्विहीनाः।नरके किंभूते।कृत्स्ने संपूर्णेऽस्पर्शेऽत्यं ताशुभस्पर्शे कर्मोपगताआशु कर्मवद्धाः कुणिमे रुधिराद्याकुले आसमंताडुत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिं शत्सागराणि वसंतीति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २७ ॥ इतिपंचमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः

॥ टीका-तासु च यक्रियते तद्दर्शयितुमाह । (परिक्प्पेत्यादि) तासु प्रत्यग्निना दी मासु लोहितपूयशरीरावयवकिल्बिषपूर्णासु डुर्गंधासु च बालाम्नारकांस्त्राणरहितानार्त स्वरान् करुणं दीनं रसंतः प्रक्षिप्य प्रपचंति तेच नारकास्तथा कदर्थ्यमानाविरसमाक्रं दंतस्तृषार्ताः सलिलं प्रार्थयंतोमद्यं ते अतीव प्रियमासीदित्येवं स्मरयित्वा तप्तं यत्त्रपु

पाट्यमानाआर्त्ततरं रसंति रारटंतीति. ॥ २० ॥ उद्देशकार्थोपसंहारार्थमाह ।(इ णेणेत्यादि) इहास्मिन्मनुष्यनवे आत्मना परवंचनप्रवृत्तेन स्वतएव परमार्थतआत्मा नं वंचयित्वाऽल्पेन स्तोकेन परोपघातसुखेनात्मानं वंचयित्वा बहुशोनवानां मध्ये अधमानां मध्ये अधमाजवाधमामत्स्यबंधलुब्धकादीनां नवास्तान्पूर्वजन्मसु अनन्त स्वशः समनुनूय तेषु नवेषु विषयोन्मुखतया सुकृतपराङ्मुखत्वेन वा ऽवाप्य महाघो तिदारुणं नरकवासं तत्र तस्मिन्मनुष्याः क्रूरकर्माणः परस्परतोडुःखमुदीरयंतः प्रनूत का लं यावत्तिष्ठंति । अत्रकारणमाह । यथा पूर्वजन्मसु यादृग्नूतेनाध्यवसायेन जघन्यम न्यतरादिना कृतानि कर्माणि तथा तेनैव प्रकारेण (से) तस्य नारकजंतोर्न्नारावेदनाः ड डुर्नवंति स्वतः परतउनयतोवेति । तथाहि । मांसादाः स्वमांसान्येवाग्निना प्रताप्य न क्ष्यंते तथा मांसरसपायिनोनिजपूयरुधिराणि तप्तत्रपूणीव पायंते तथा मत्स्यघातक लु ब्धकादयस्तथैव छिद्यंते निघ्नंते यावन्मार्यंतेति । तथाऽनृतनाषिणां तत्स्मारयित्वा जिव्हाश्छिद्यंते । तथा पूर्वजन्मनि परकीयड्व्यापहारिणामंगोपांगान्यपछिद्यंते तथा प रदारिकाणां वृषणछेदः शाल्मल्युपगूहनादिच तैः कार्यंते । एवं महापरिग्रहारंनवतां क्रो धमानमायालोनिनां च जन्मांतरस्वकृतक्रोधादिडुष्कृतस्मारणेन तादृग्विधमेव डुःख मु त्पाद्यतइति कृत्वा सुष्ठूच्यते तथाविधं कर्म तादृग्विधनूतएव तेषां तत्कर्मविपाकापादि नारइति. ॥ २६ ॥ किंचान्यत् (समजिणित्तुइत्यादि) अनार्याअनार्यकर्मकारित्वा क्षिंसानृतस्तेयादिनिराश्रवद्वारैः कलुषं पापं समर्ज्याशुनकर्मोपचयं कृत्वा ते क्रूरकर्मा णोडुरनिगंधे नरके आवसंतीति सटंकः । किंनूताः । इष्टैः शब्दादिनिर्विषयैः कमनीयैः कांतैर्विविधं प्रकर्षेण हीनाविप्रमुक्तानरके वसंति । यदिवा यदर्थं कलुषं समार्जयंति तैर्मातापुत्रकलत्रादिनिः कांतैश्च विषयैर्विप्रमुक्ताएकाकिनस्ते डुरनिगंधेन कुथितकले वरातिशायिनि नरके कृत्स्ने संपूर्णेऽत्यंताशुनस्पर्शे एकांतोद्वेजनीये शुनकर्मापगताः (कु णिमेत्ति) मांसपेशीरुधिरपूयांत्रफिफिसकल्मषाकुले सर्वामेध्याधमे बीनत्सदर्शने हाहार वाक्रंदेन कष्टं मातावदित्यादि शब्दावधीरितदिगंतराले परमाधमे नरकावासे आसमंता त्स्फुटतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि यावद्यस्यांवा नरकपृथिव्यां यावदायुस्तावद्वसंति तिष्ठंति। इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीतिपूर्ववत्. ॥ २७ ॥ इति नरक विनक्तेः प्रथमोद्देशकः समाप्तः

हवे पांचमाध्ययननोबीजो उद्देशो प्रारंनियें ठैये एने विषे पण एज नरकना नाव कहेछे.

अहावरं सासयडुक्खधम्मं, तं ने पवक्खामि जहातहेणं ॥ बाला
जहा डुक्कडकम्मकारी, वेदंति कम्माइं पुरेकडाइं ॥ १ ॥ हत्थेहिं

पाएहि य बंधिऊणं, उदरं विकत्तंति खुरासिएहिं ॥ गिण्हंतु
बालस्स विहत्तु देहं, वद्धं थिरं पिठतो उद्धरंति ॥ २ ॥

अर्थ-(अहके०) अथ एटले हवे (अवरंके०) अपर एटले बीजा (सासयदुक्खधम्मं के०) शाश्वतदुःखनो धर्म एटले स्वभावछे जेने विषे एवा नरकना दुःख ज्यां सुधी जीवे त्यांसुधी ते नारकी जेमभोगवे (तंभेके०) तेम तमने (जहातहेणं के०) यथा तथ्य (पवरकामि के०) कहीशुं; एटले जेरीते श्रीवीरपरमेश्वरना मुखथी सांभल्युंछे तेरीते तमोने कहीशुं (दुक्कडकम्मकारी के०) दुष्कृत कर्मना करनार एवा (बाला के०) अज्ञानी निर्विवेकीजीव ते (जहा के०) जेरीते (पुरेकडाइंकम्माइं के०) पोताना पूर्वकृतकर्मने (वेदंति के०) वेदेछे भोगवे छे तेरीते कहीशुं ॥१॥ त्यां परमाधार्मिक देव (हणंहिपाएहियबंधिऊणं के०) ते नारकीना हाथ पग बांधीने (खुरासिएहिं के०) छुरे करी तथा खड्ग करी (उदरंविकत्तंति के०) पेटने कापे ते केवीरीते कापे तोके (गिण्हंतुबालस्सविहत्तुदेहंके०) बाल नारकीने ग्रहणकरी एटले पकडीने तेना शरीरने लाकडादिके हणीने खंमो खंम करे (वद्धंथिरंपिठतोउद्धरंति के०) आगला भागलुं सबल चर्म ते पुठ प्रदेशे काढे अने पुठनुं चर्म ते आगल काढे तथा मावा पाशानुं चर्म जमणे पासे काढे अने जमणी बाजुनुं चर्म मावी बांजुए काढे एरीते चामडी उखेडी नाखे ॥२॥

॥ दीपिका-अथ द्वितीयस्यादिसूत्रमिदं । (अहावरमिति) अथापरमन्य द्वक्ष्यामि । शश्वद्भवतीति शाश्वतं यावदायुस्तच्च तद्दुःखंच तदेव धर्मः स्वभावोयस्मिन् सतथा एवंभूतं नरकं तथ्येन सत्यतया (भे) भवतां कथयामि । बालानिर्विवेकादुष्कृतकर्मकारिणः पुराकृतानि पापानि कर्माणि वेदयंति तथा वदिष्यामि ॥ १ ॥ (हणेहिंति) परमाधार्मिकास्तान्नारकान् हस्तपादेषु बद्धा उदरं क्षुरप्रासिभिरायुधविशेषैर्विकर्तयंति विदारयंति तथा बालस्य लकुटादिभिर्विविधं हतं देहं गृहीत्वा वर्ध्रं चर्मशकलं स्थिरं बलवत् पृष्ठतः प्रदेशे उद्धरंति वेष्टयंति, ॥ २ ॥

॥ टीका-उक्तः प्रथमोद्देशकः सांप्रतं द्वितीयः समारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहानंतरोद्देशके यैः कर्मभिर्जंतवोनरकेषूत्पद्यंते यादृगवस्थाश्च भवंत्येवं तत्प्रतिपादितमिहापि विशिष्टतरं तदेव प्रतिपाद्यते इत्यनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्य सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं (अहावरमित्यादि) अथेत्यानंतर्ये । अपरमित्युक्तादन्य द्वक्ष्यामीत्युत्तरेण संबंधः । शश्वद्भवतीति शाश्वतं यावदायुस्तच्च तद्दुःखं च शाश्वतं दुःखं तत्धर्मः स्वभावोयस्मिन् यस्य वा नरकस्य सतथा तमेवंभूतं नित्यदुःखस्वभाव

मक्षिनिमेषमपि कालमविद्यमानं सुखलेशं याथातथ्येन यथाव्यवस्थितं तथैव कथ मि । नात्रोपचारोर्थवादोवा विद्यतइत्यर्थः । बालाः परमार्थमजानानाविषयसुखलिप्सवः सांप्रतेक्षिणः कर्मविपाकमनवेक्ष्यमाणायथा येन प्रकारेण डष्टं कृतं डुष्कृतं तदनु मानुष्ठानं तेनवा डुष्कृतेन कर्मज्ञानावरणादिकं तद्दुष्कृतकर्म तत्कर्तुं शीलं येषांते डुष्कृ कर्मकारिणस्तएवंभूताः पुराकृतानि जन्मांतरार्जितानि कर्माणि यथावेदयंति तथा क यिष्यामीति ॥ १ ॥ यथाप्रतिज्ञातमाह । (हत्थेहींत्यादि) परमाधार्मिकास्तथाविध मोंदयात् क्रीडायमानास्तान्नारकान् हस्तेषु पादेषु बध्वोदरं क्षुरप्रासिभिर्नानाविधैरायु विशेषैर्विकर्तयंति विदारयंति । तथा परस्य बालस्येवाकिंचित्करत्वाद्बालस्य लकुटादिभि र्विविधं हतं पीडितं देहं गृहीत्वा वर्धं चर्मशकलं स्थिरं बलवत्पृष्टतः पृष्टिदेशे उद्धृत्य विकर्तयंत्येवग्रतः पार्श्वतश्चेति ॥ २ ॥

बाहू पकप्पंति समूलतो से, थूलं वियासं मुहे आडहंति ॥ रहंसि जु
त्तं सरयंति बालं, आरुस्स विज्झंति तुदेण पिठे ॥ ३॥ अयंव तत्तं ज
लियं सजोइ, तऊवमं भूमि मणुक्कमंता ॥ ते डज्झमाणा कलुणं थणं
ति, उसुचोइया तत्तजुगेसु जुत्ता ॥ ४ ॥

अर्थ—ते परमाधार्मिको (बाहूपकप्पंतिसमूलतोसेके०) त्रण नरकपृथ्वीने विषे नारकीना अ धस्तन अने चारनरकपृथ्वीमां मूलथी आरंभीने बन्ने बाहु कापे, तथा (थूलंके०) मोटोटो लो हनो गोलो तपावी (मुहेके०) ते नारकीनुं मुख (वियासंके०) विकाशीने एटले मुख उघाडीने तेमांहे (आडहंतिके० नाखे तथा (रहंसिजुत्तंसरयंतिबालंके०) लोखंडना रथमां जो तरी पूर्वना करेला कर्म संभलावीने ते नारकीने खेडे हलावे तथा (आरुस्सविज्झंति तुदेणपिठे के०) अत्यंत रोश करीने ते नारकीना पुठनाभागने आरे करी वींधे ॥ ३ ॥ (अयंवतत्तंजलियंसजोइके०) जेम लोखंडनो गोलो तप्त अग्नीयें सहित जाज्वल्यमा न होय अथवा तप्त कथीर होय (तऊवमंभूमिमणुक्कमंताके०) तेनीठे उपमा जे ने एटले तेना सरखी तप्त एवीजे भूमि, तेने अतिक्रमता एटले बलती पृथवीमां चालता (तेडज्झमाणाके०) ते नारकी बलता थका (कलुणंथणंतिके०) करुण एटले दयामणा शब्द करे अर्थात् हेमात हेतात इत्यादिक विलाप करे (उसुचोइयाके०) तथा आरे करी चोया एटले प्रेर्या थका (तत्तजुगेसुजुत्ताके०) तप्त एवा धूंसरे जोतर्या थका जेम गलिया बलद चालतां आरडे तेम ते नारकी आरडयां करे ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—(बाहूइति) (से)तस्य नारकस्य तिसृषु नरकपृथिवीषु परमाधार्मिकाबा

नारकाश्चाधस्तनचतसृषु पृथिवीषु मूलतआरन्य बाहून् प्रकर्तयंति छिंदंति । तथा मुखे विकाशं कृत्वा स्थूलं बृहल्लोहगोलादिकं प्रक्षिपंतआदहंति । तथा रहसि एकांते युक्तं स्व कृतकर्मानुरूपवेदनां कुर्वतोबालमज्ञं स्मारयंति जन्मांतरकर्म । आरुष्य च रोषं कृत्वा पृष्ठे प्रतोदेन विध्यंति ॥ ३ ॥ (अयमिति) तथा अयोगोलवज्ज्वलितां ज्योतिर्भूतां त दुपमां वा भूमिमनुक्रमंतोगछंतस्ते दह्यमानाः करुणं दीनं स्तनंति आक्रंदंति तप्तेषु युगे षु युक्तागलिवृषाइव इषुणा प्रतोदादिना विध्यमानाः स्तनंति ॥ ४ ॥

॥ टीका–अपिच । (बाहूपकप्पंतीत्यादि) (से)तस्य नारकस्य तिसृषु नारकपृथिवीषु परमाधार्मिकाअपरनारकाश्चाधस्तनचतसृषु चापरनारकाएव मूलतआरन्य बाहून् प्रक र्तयंति छिंदंति तथा मुखे विकाशं कृत्वा स्थूलं बृहत्तप्तायोगोलादिकं प्रक्षिपंतआसमंताद्द हंति । तथा रहस्येकांतिनं युक्तमुपपन्नं युक्तियुक्तं स्वकृतवेदनानुरूपंतत्कृतजन्मांतरानुष्ठानं तं बालमज्ञं नारकं स्मारयंति । तद्यथा । तप्तत्रपुपानावसरे मद्यपस्त्वमासीस्तथा स्वमांसभ क्षणावसरे पिशिताशी त्वमसीत्येवं दुःखानुरूपमनुष्ठानं स्मारयंतः कदर्थयंति तथा नि ष्कारणमेवारूष्य कोपं कृत्वा प्रतोदादिना पृष्ठदेशे तं नारकं परवशं विध्यंतीति ॥ ३ ॥ तथा (अयंवेत्यादि) तप्तायोगोलकसन्निभां ज्वलितज्योतिर्भूतां तदेवंरूपां तदुपमां वा भूमिमनुक्रामंतस्तां ज्वलितां भूमिं गछंतस्ते दह्यमानाः करुणं दीनं विस्वरं स्तनंति रा रटंति तथा तप्तेषु युगेषु युक्तागलिबलीवर्दाइवेषुणा प्रतोदादिना विध्यमानाः स्तनंतीति॥

बालावलाभूमिमणुक्कमंता, पविज्जलं लोहपहं च तत्तं ॥ जंसी
भडुग्गे सि पवज्जमाणा, पेसेव दंमेहिं पुराकरंति ॥५॥ ते संपगा
ढं सि पवज्जमाणा. सिलाहि हम्मंति निपातिणीहिं ॥ संतावणी
नाम चिरछितीया. संतप्पती जत्र असाहुकम्मा ॥ ६ ॥

अर्थ–(बालके०) अज्ञानी निर्विवेकी (अबलाके०) बल रहित एवा नारकी तेने तप्त लोहना) जेवी (भूमि के०) पृथवीयें बलात्कारें (अणुक्कमंताके०) अतिक्रमावे एटले च लावे तेवारे ते बापडा विरस शब्द करे ते भूमि केवीछे तोके (पविज्जलं लोहपहंचतत्तं के०) प्रज्वलित एटले ज्यां तप्त लोह समान रुधिर अने परुनो कर्दमछे एवीछे (जंसीभि दुग्गे सिपवज्जमाणाके०) तथा जे विषम स्थानके कुंभीपाक शाल्मली वृक्ष प्रमुख विषम स्थानकने (पेसेवके०) त्यां चालता कर्मकरनी पेरे अथवा गलियाबलदनीपेरे(दंमेहिंके०) दंमादिके ताडना करीने (पुराकरंतिके०) आगलकरी चलावे पण ते नारकी पोतानी इछायें आगल जवाने अथवा पोताने गमेते स्थानके रहीजवा पणु पामे नही. ॥ ५ ॥ (तेके०) ते

नारकीने (संपगाढंसि के०) अत्यंत वेदनाक्रांत एवुं नरक अथवा तेवो मार्ग तेने (पवज्जमाणा के०) चलावता थका (सिलाहि हम्मंतिनिपातिणीहिं के०) सामा लायेंकरी हणीने नीचो पाडी नाखे, परंतु ते आगल जइ शके नही (संतावणी नाम हितीयाके०) तथा संतापनी नामे कुंनी त्यां शाश्वतिछे तेमांहे गयो छतो (संतप्प छ असाहुकम्मा के०) ज्यां मागा कर्मनो करनार बापडो घणु संताप सहन करे

॥ दीपिका—(बालेति) बाला अज्ञाः प्रज्वलितलोहपथमिव ते आक्रंदंति। तथा यस्मिन्ननिदुर्गे विषमे कुंनीशाल्मल्यादिप्रपद्यमानानसम्यगुपगछंति ततस्ते कुपितानरपा लाः प्रेष्यानिव कर्मकरानिव दंडैर्हत्वा पुरतोग्रतः कुर्वंति ॥ ५ ॥ (तेइति) ते नारकाः सं गाढमसह्यं नरकं प्रपद्यमानाअनिमुखपातिनीनिः शिलानिरसुरैर्हन्यंते । संतापनी कुंनी साच चिरस्थितिका तगतः प्राणी वेदनाग्रस्तआस्ते यत्र संतप्यतेऽत्यर्थमसाधुकर्मा ॥ ६ ॥

॥ टीका—अन्यच्च (बालाबलाइत्यादि) बालानिर्विवेकिनः प्रज्वलितलोहपथमि तप्तां नुवं (पविज्जलंति) रुधिरपूयादिना पिच्छिलां बलादनिछंतोऽनुक्रम्यमाणा विरसमा ति। तथा यस्मिन्ननिदुर्गे कुंनीशाल्मल्यादौ प्रपद्यमानानरकपालचोदितानसम्यग्गछंति। त तस्ते कुपिताः परमाधार्मिकाः प्रेष्यानिव कर्मकरानिव बलीवर्दवछा दंडैर्हत्वा प्रतोदैर्वा न प्रतुद्य पुरतोग्रतः कुर्वंति नते स्वेछया गंतुं स्थातुं वा लनंतइति ॥५॥ किंच (तेसंप ढमित्यादि) ते नारकाः संप्रगाढमिति बहुवेदनात्वेन सह्यं नरकं मार्गं वा प्रपद्यमाना गंतुं स्थातुं वा तत्राऽशक्नुवंतोऽनिमुखपातिनीनिः शिलानिरसुरैर्हन्यंते। तथा संतापयतीति संतापनी कुंनी साच चिरस्थितिका । तगतोऽसुमान् प्रनूतं कालं यावदतिवेदनाग्रस्तआस्ते यत्रच संतप्यते पीड्यतेऽत्यर्थमसाधुकर्मा जन्मांतरकृताशुनानुष्ठानइति ॥ ६ ॥

कंदूसु पक्खिप्प पयंति बाला, ततोवि दड्ढा पुण उप्पयंति ॥ ते उड्ढकाएहिं पखज्जमाणा, अवरेहिं खज्जंति सणप्फएहिं ॥ ७ ॥ समूसियं नाम विधूमठाणं, जं सोयतत्ता कलुणं थणंति ॥ अहेसिरं कट्टु विगत्तिऊणं, अयंव सत्थेहिं समोसवेंति ॥ ८ ॥

अर्थ—वली नरकना दुःख कहेछे. (बाला के०) ते बाल नारकीने परमाधार्मिक लोको (कंदूसु के०) कंदू नामा नाजन विशेष तेने विषे (पक्खिप्प के०) प्रक्षेपीने (प तके०) पचवे (ततोविदड्ढापुणउप्पयंतिके०) तेवारे ते नारकी दाझता थका बलता णानी पेरे उंचा उछले (तेउड्ढकाएहिंपखज्जमाणाके०) त्यां आकाशमां वली तेने कां कादिक पक्षीउ त्रोडता थका खाता थका (अवरेहिं के०) त्यां थकी बीजा स्व

नकनी दिशा तरफ नासे (सणप्फएहिं के०) त्यां वली अन्य सिंह व्याघ्रादिक तेने (खज्जंति के०) खाए ॥ ७ ॥ नाम शब्द संभावनार्थेछे (समूसियं के०) ऊंचु चि ताने आकारे एवुं (विधूमठाणं के०) अग्नीनुं स्थानकछे (जं के०) ते स्थानक पामिने (सोयतत्ता के०) शोके तप्त थका (कलुणंथणंति के०) दीनस्वरे करीने आक्रंद करे तथा परमाधामीउ ते नारकीनुं (अहेसिरंकट्टु के०) मस्तक नीचुं करीने (विगत्तिऊणंअयंवके०) शरीर विकूर्वि छेदीने लोहनी पेरे (सछेहिं के०) शस्त्र जे मुद्गरादिक तेणेकरी (समोसवेंति के०) खंम खंम एटले टुकडा टुकडा करे ॥ ८ ॥

॥ दीपिका-(कंडूसुइति) तं बालं कंडूसु कुंभीषु प्रक्षिप्यासुराः पचंति । ततः पाक स्थानात्ते दह्यमानाश्चणकाइव भृज्यमानाउत्पतंति ऊर्ध्वमुच्चलंति । तेच (उड्डकाएहिं ति) द्रोणैः काकैर्वैक्रियैः प्रखाद्यमानाभक्ष्यमाणानश्यंतोनष्टाः संतोऽपरैः (सणप्फ एहिंति) सनखपदैः सिंहव्याघ्रादिभिर्भक्ष्यंते ॥ ७ ॥ (समूसिअमिति) सम्यगुच्छ्रितं चितिकाकृति विधूमस्याग्नेः स्थानं विध्वंसस्थानं यत् प्राप्य शोकतप्ताः करुणं दीनं स्तनं त्याक्रंदंति । नामेति संभावनायां । संभाव्यंते तत्रैतावेदनाइति । तथा अधः शिरोमस्तकं कृत्वा देहं विकर्त्य छित्वा (समोसवेंतित्ति) खंडशः खंमयंत्यसुराः ॥ ८ ॥

॥ टीका-(तथा कंडूसुपक्खिप्पइत्यादि) तं बालं वराकं नारकं कंडूषु प्रक्षिप्य नरक पालाः पचंति । ततः पाकस्थानात् ते दह्यमानाश्चणकाइव भृज्यमानाऊर्ध्वं पतंत्युत्पतंति ते च ऊर्ध्वमुत्पतिताः (उड्डकाएत्ति) द्रोणैः काकैर्वैक्रियैः प्रखाद्यमानाभक्ष्यमाणाअन्य तोनष्टाः संतोऽपरैः (सणफएहिंति) सिंहव्याघ्रादिभिः खाद्यंते भक्ष्यंतेइति ॥ ७ ॥ किंच (समूसियंनामेत्यादि) सम्यगुच्छ्रितं चितिकाकृति । नामशब्दः संभावनायां । संभाव्य ध्यते एवंविधानि नरकेषु यातनास्थानानि । विधूमस्याग्नेःस्थानं विधूमस्थानं । यत्प्राप्य शोकवितप्ताः करुणं दीनं स्तनंत्याक्रंदंतीति । तथा अधःशिरः कृत्वा देहंच विकर्त्यायोव च्छस्त्रच्छेदनादिभिः (समोसवेंतित्ति) खंमशः खंमयंतीति ॥ ८ ॥

समूसिया तत्थ विसूणियंगा, पक्खीहिं खज्जंति अजमुहेहिं ॥ सं
जीवणी नाम चिरठितीया, जंसीपया हम्मइ पावचेया ॥ ९ ॥
तिक्खाहिं सूलाहिं भितावयंति, वसोगयं सोयरयं व लर्द्धुं ॥ ति सू
लविद्धा कलुणं थणंति, एगंतडुक्खं डुहउ गिलाणा ॥ १० ॥

अर्थ-(तत्थ के०) त्यां नरकने विषे (समूसिया के०) ऊंचा थांभादिकने विषे (विसूणियंगा के०) नीचे मस्तक बांधीने जेम खाटकी बाकलीनुं चर्म उखेडे तेम परमा

धार्मिको ते नारकीउनुं चर्म उखेडी नाखे पछी ते नारकीना चर्म रहित एवा अंगने रकीहिंखडंति अउमुहेहिं के०) वज्र समानछे चांच जेमनी एवा काक समली पक्षीउ तेने खाय, एरीते नरकपाले छेदन नेदन मूर्छित कर्या थका पण ते मरण पामे नही तेनुं कारण कहेछे (संजीवणी नामचिरछितीया के०) संजीवनी एवी साश्वति कुंनीछे (जंसीपया के०) जेहने विषे पोहोता थकां प्राणी (दुम्मइ या के०) पापसहित एवा परमाधार्मिकलोक तेने हणे छेदे नेदे परंतु तेणे करी नही किंतु पारानी पेरे तेनुं शरीर फरी मली जाय ॥ए॥ (तिरकाहिंसूलाहि के०) माधार्मिक पुरुषो तीक्ष्ण वज्रवत् सूलिये करीने नारकीना शरीरने (अनितावयं के०) अनितापयंति एटले पीडे जेम (लर्फ़ु के०) लुब्धक एवा जे कुतरादिक (वसोगयं के०) वसोपगतं एटले वशे पड्या एवां (सोयरयंव के०) स्वापद मृगादि पशु ते जेम मरणांत कदर्थना पामे तेम (ते के०) ते नारकीजीवो पण (सूलविद्ध के०) सूलियें विंध्या थका (कलुणंथणंति के०) दीनस्वरे अरडाट करे एकतो अंतर शोकादिक अने बीजो बाहिर हननादिके करी (गिलाणाके०) गिलान छता एम (उ उके०) बन्ने प्रकारे (एगंतडुरकं के०) एकांत डुःख नोगवे परंतु मरण पामे नही॥ ॥

॥ दीपिका–(समूसिआइति) तत्र नरके स्तंनादौ ऊर्ध्वबाहवोऽधःशिरसः श्वपाकैरवलंबिताः (विसूणिअंगत्ति) उत्कृत्तांगाअपनीतत्वचोलोहमुखैः पक्षिनिर्वज्रचंचुनिः काकगृध्रादिनिर्नक्ष्यंते । एवंते परमाधार्मिककृतैः परस्परकृतैः स्वानाविकैर्वा डुःखैश्छिन्नानिन्ना अपि न म्रियंते। अतोज्ञायते संजीवनी नरकनूमिर्यस्यां खंमशश्छिन्नोपि न म्रियते स्वायुषि सतीति। सर्वे प्रजाः प्राणिनोयस्मिन्नरके पापचेतसोहन्यंते मुजरादिनिः । नरकानुनावाच्च मुमूर्षवोपि नम्रियंते ॥ए॥(तिरकाहिंति) तीक्ष्णानिः शूलानिस्तापयंति । कमिवा वशमुपगतं सूकरादिकं लब्ध्वा यथा कदर्थयंति । ते नारकाः शूलविद्धाअपि नम्रियंते पारदवन्मिलंति ततः करुणं स्तनंति दीनमाक्रंदंति उनयतोंतर्बहिश्च ग्लानाएकांतडुःखमनुनवंति ॥ ॥

॥ टीका–अपिच (समूसियाइत्यादि) तत्र नरके स्तंनादौ ऊर्ध्वं बाहवोऽधःशिरसः श्वपाकैर्वस्तवल्लंबिताः संतः (विसूणियंगत्ति) उत्कृत्तांगाअपगतत्वचः पक्षिनिरयोमुखैर्वज्रचंचुनिः काकगृध्रादिनिर्नक्ष्यंते । तदेवं ते नारकानरकपालापादितैः परस्परकृतैः स्वानाविकैर्वा छिन्नानिन्नाः क्वथितामूर्छिताः संतोवेदनासमुद्घाते गताअपि संतोन म्रियंते अतोव्यपदिश्यते संजीवनीवत् संजीवनी जीवितदात्री नरकनूमिः । तत्र गताः खंमशश्छिन्नोपि नम्रियते स्वायुषि सतीति । साच चिरस्थितिकोत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि । यस्यां च प्राप्ताः प्रजायंतइति प्रजाः प्राणिनः पापचेतसोहन्यंते मुजरा

त्यादिभिर्नरकानुभावाच्च मुमूर्षवोप्यत्यंतपिष्टाअपि न म्रियंते ऽपितु पारदवन्मिलंतीति॥ए॥ अपिच (तिरकाहीआदि) पूर्वदुष्कृतकारिणं तीक्ष्णाभिरयोमयीभिः शूलाभिरनेकपा ज्ञानारकमभितापयंति। किमिव। वशमुपगतं श्वापदमिव। कालपृष्ठसूकरादिकं स्वातंत्र्येण लब्ध्वा कदर्थयंति ते नारकाः शूलादिभिर्विद्धाअपि नम्रियंते केवलं करुणं दीनं स्तनंति। नच तेषां कश्चित्त्राणायालं। तथैकांतेनोन्नयतोंतर्बहिश्च ग्लानाअपगतप्रमोदाः सदा दुःखमनुभवंतीति ॥ १० ॥

सया जलं नाम निहं महंतं, जंसी जलंतो अगणी अकठो ॥
चिठंति बद्धा बहुकूरकम्मा, अरहस्सरा केइ चिरठितीया ॥
॥११॥ चिया महंतीउ समारभित्ता, छिप्पंति ते तं कलुणं रसंतं ॥
आवट्टती तन्न असाहुकम्मा, सप्पी जहा पडियं जोइमझे ॥१२॥

अर्थ–(सयाजलंनाम के०) सर्व काल निरंतर जलतुं बलतुं एवे नामे (निहंके०) ज्यां प्राणीने हणीयें ते (महंतं के०) मोहोटुं स्थानकछे (जंसीजलंतोअगणी अकठो के०) जे स्थानकें काष्ट रहित अग्नि प्रज्वलेछे त्यां (बद्धाबहुकूरकम्मा के०) घणा क्रूरकर्मे बांध्या थका घणा कालसुधी (चिठंतिके०) रहे केवा थका तिष्टे तोकें (अरहस्सराकेइ के०) मोहोटा बीहामणा आक्रंद स्वर करता थका तथा (चिरठितीयाके०) घणाकाल नी स्थितीने जेमनी एवा थका रहे ॥ ११ ॥ (चियामहंतीउ के०) ते परमाधार्मिक त्यां नरकने विषे मोहोटी अग्नीनी चिता (समारभित्ता के०) समारंभीने तेमां अनेक काष्ट प्रक्षेपीने (छिप्पंतितेतंकलुणंरसंतंके०) तेमांहे नारकीनेनाखे ते त्यां दाझता थका करुण स्वरे आक्रंद करता (तत्नके०) त्यां ते चितामांहे गयाथका (असाहुकम्माके०)असाधुकर्मना करनार एवा नारकी (आवट्टतीके०) आवर्त्त.विलय थइ जाय कोनी पेरे तोके (जहाके०) जेम (सप्पि के०) घृत ते (जोइमझेके०) ज्योतिजे अग्नी तेमां ते (पडियंके०) पड्यो थको विलय थइ जाय तेनीपेरे विलयथाय परंतु घृततो अग्नीमांहे सर्वथा बली जाय पण नारकी जीव ते अग्नीमां मरण पामेनही ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–(सयेति) सदा ज्वलद्दीप्यमानं स्थानं। किंभूतं। निहन्यंते प्राणिनोयस्मिन निहमाघातस्थानं महद्विस्तीर्णमस्ति। यस्मिन् स्थानेऽकाष्ठोग्निर्ज्वलन्नास्ते। तत्र बहुक्रूरकर्माणः केचिच्चिरस्थितिकाअरहस्सरामहदाक्रंदशब्दास्तिष्ठंति ॥ ११ ॥ (चियेति) महतीश्चिताः समारभ्य नरकपालास्तं नारकं करुणं दीनं रसंतमाक्रंदंतं तत्र

क्षिपंति । स असाधुकर्मा तस्यां चितायामावर्तते विलीयते । यथा सर्पिघृतं ज्योतिर्मध्ये अग्निमध्ये पतितं विलीयते तथापि नम्रियते नवस्वनावत्वात् ॥ १२ ॥

॥ टीका—तथा (सयाजलमित्यादि) सदा सर्वकालं ज्वलदेदीप्यमानमुष्णरूपतापस्थानमस्ति । निहन्यंते प्राणिनः कर्मवशगायस्मिन् तन्निहमाघातस्थानं तत्र महाविशेषं यत्राकाष्ठोऽग्निर्ज्वलन्नास्ते तत्रैवं नूते स्थाने नवांतरे बहुक्रूरकर्माणस्तद्विपाकापादितेन पापेन बद्धास्तिष्ठंतीति । किंनूताः । अरहस्वराबृहदाक्रंदशब्दाश्चिरस्थितिकाः प्रभूतकालस्थितयइत्यर्थः ॥ ११ ॥ तथा (चियामहंतीउ इत्यादि) महतीश्चिताः समारच्य नरकपालास्तं नारकं विरसं करुणं दीनमारसंतं तत्र क्षिपंति । सचासाधुकर्मा तस्यां चितायां गतः सन्नावर्तते विलीयते । यथा सर्पिघृतं ज्योतिर्मध्ये पतितं द्रवीनवत्येवमसावपि विलीयते नच तथापि नवानुनावात्प्राणैर्विमुच्यते ॥ १२ ॥

सदा कसिणं पुण घम्मठाणं, गाढोवणीयं अइडुक्कधम्मं ॥ हत्थे
हिं पाएहिय बंधिऊणं, सत्तुव दंमेहिं समारनंति ॥ १३ ॥ नंजं
ति बालस्स वहेण पुठी, सीसंपि निंदंति अउघणेहिं॥ ते निन्नदे
हा फलगंव तठा, तत्ताहिं आराहिं णियोजयंति ॥ १४ ॥

अर्थ—हवे वली डुःखनो बीजो प्रकार कहेछे. (सदाकसिणंपुणघम्मठाणं के०) तथा सर्वकाल संपूर्ण घर्म एटले उष्ण आतापनुं स्थानक जे स्थानके (गाढोपनीतंके०) ते नरकीने निवडकर्मे आणी ढोक्या थका (अइडुक्कधम्मं के०) ज्यां अत्यंत डुःखरूप धर्मनो स्वनावछे एवा स्थानके (हत्थेहिंपाएहियबंधिऊणंके०) नरकपाल ते नारकीना हाथ अने पग बांधीने (सत्तुवके०) शत्रुनी पेरे (दंमेहिंके०) दंमेकरी (समारनंतिके०) मारंने ताडना करे ॥ १३ ॥ (नंजंतिबालस्सवहेणपुठि के०) ते परमाधार्मिको दंमादिके करी बाल अज्ञ एवा नारकीनी पीठने नांजे तथा (अउघणेहिंके०) लोढाना घणे करीने (सीसंपिनिंदंतिके०) मस्तकने पण नेदी नाखे, चूर्ण करीनाखे वली अपि शब्द थकी बीजा पण अंगोपांग एजरीते मुजरे करी नेदी नाखे (तेनिन्नदेहाके०) ते नारकी चूर्ण थयाथी निन्नदेह ठतां (फलंगवतठाके०) पाटीआनी पेरे बन्ने पासे करवतें करी छेद्या थका (तत्ताहिआराहिंके) तप्त आरे करी खोसता थका तप्त कथीरादिकना मार्गने विषे (नियोजयंति के०) ते नारकीने प्रवर्त्तावे इतिनाव एटले तप्त कथीरना रसनुं पान करावतवाने विषे नियोजे एटले प्रवर्त्तावे ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—(सदेति) सदा कृत्स्नं संपूर्णं घर्मस्थानं गाढैर्दृढैः कर्मनिरुपनीतं प्राणि

अतिःडुखमेव धर्मः स्वभावोयस्मिन् तत्तथा । एवंविधे स्थाने नारकं हस्तैः पादैर्बध्वा त त्र प्रक्षिपंति क्षिप्त्वाच शत्रुमिव दंडैः समारभंते ताडयंति ॥ १३ ॥ (भंजंतित्ति) बा लस्य नारकस्य व्यथेन लकुटादिप्रहारेण पृष्ठं भंजंति अयोघनैर्लोहघनैः शीर्षं भिंदंति चूर्णयंति । अपिशब्दादन्यान्यप्यंगानि चूर्णयंति । ते भिन्नदेहानारकाः फलकमिवोभा भ्यां पार्श्वाभ्यां क्रकचादिनावतष्टाद्विधाकृतास्तप्ताभिराराभिः पीड्यमानास्तत्रपुपानादि के कर्मणि नियोज्यंते व्यापार्यंते ॥ १४ ॥

॥ टीका—अथायमपरोनरकयातनाप्रकारस्तमाह । (सयाकसिणमित्यादि) सदा स र्वकालं कृत्स्नं संपूर्णं पुनरपरं घर्मस्थानमुष्णस्थानं दृढैर्निधत्तनिकाचिकावस्थैः कर्मभिरु पनीतं ढौकितमतीव डुःखरूपोधर्मः स्वभावोयस्मिंस्तदतिडुःखधर्मं तदेवंभूते यातनास्था ने तमत्राणं नारकं हस्तेषु पादेषु च बध्वा तत्र प्रक्षिपंति । तथा तदवस्थमेव शत्रुमिव दंडैः समारभंते ताडयंति ॥ १३ ॥ किंच । (भंजंतिबालस्सेत्यादि) बालस्य वराकस्य नारकस्य व्यथयतीति व्यथोलकुटादिप्रहारस्तेन पृष्ठं भंजयंति मोटयंति तथा शिरोप्य योमयेन घनेन भिंदंति चूर्णयंत्यपिशब्दादन्यान्यप्यंगोपांगानि द्रुघणघातैश्चूर्णयंति । ते नार काभिन्नदेहाश्चूर्णितांगोपांगाः फलकमिवोभाभ्यां पार्श्वाभ्यां क्रकचादिना अवतष्टास्तनूकृताः संतस्तप्ताभिराराभिः प्रतुद्यमानास्तत्रपुपानादिके कर्मणि विनियोज्यंते व्यापार्यंतइति ॥ १४

अभिजुंजिया रुद्द असाहुकम्मा, उसुचोइया हत्थिवहं वहंति ॥ ए
गं डुरूहित्तु डुवे ततोवा, आरुस्स विझंति ककाणउसो ॥ १५ ॥
बाला बलाभूमिमणुक्कमंता, पविज्जलं कंटइलं महंतं ॥ विब
द्धतप्पेहिं विवणचित्ते, समीरिया कोट्टबलिं करिंति ॥ १६ ॥

अर्थ—(अभिजुंजिया रुद्द असाहुकम्माके०) रौद्र एवा असाधु कर्मि एटले अन्य नार कीउने हणवादिक कार्ये पापना करनार अथवा पूर्वे भवना करेला एवा रौद्र अ साधु कर्म तेने प्रेरता थका एटले पूर्वकृत डुष्कृतने स्मरण करावीने (उसुचोइया ह त्थिवहंवहंति के०) सराभिघात एटले बाणादिके करी जेम हस्तिने चलाविये वाहिये तेम ते परमाधर्मिको माहावतनी पेरे ते नारकीउने वाहे अथवा उंटनी पेरे वाहे एटले चलावे (एगंडुरूहित्तुडुवेततोवा के०) तेना उपर एक बे अथवा त्रणरूपे आरूढ थइ ने डुःख आपे (आरुस्सविझंतिककाणउसोके०) क्रोधेकरीने ककाणउ एटले तेना मर्म स्थानकने आरादिकेकरी विंधे ॥ १५ ॥ (बालाके०) अज्ञ एवा नारकीने (बलाके०) बला त्कारे करी (पविज्जलं के०) रक्त अने परु तद्रूप रौद्र कर्दमें करी विषम तथा

(कंटइलं के०) कांटावाली एवी (महंतं के०) महोटी (जूमि के०) जूमिकानी जुने विषे (अणुक्कमंता के०) अतिक्रमावे ते जेम जेम आकरा चलावे तेम तेम दु ख पामे तथा (विवस्सचित्ते के०) मूर्छित एवा नारकीउने (विवधतप्पेहिं के०) अने क नरकपालो त्रापें करी बांधीने (समीरियाके०) तेना पूर्वकृत पापकर्म प्रकाशीने (कोट्ट बलिंकरंति के०) कोट एटले नगरनी बलिबाकुल जेम दशोदिशे सैकडाखंम थइ वि खरी जाय तेम परधार्मिको ते नारकीना खंमो खंम करी विखेरी नाखे. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका-(अभिजुंजिआइति) रौद्रकर्मणि अपरान्नारकान् हननव्यापारेऽनियुज्य व्यापार्य असाधुकर्मणऽष्ठुचोदितान् शरान्निघातप्रेरितान् हस्तिवद् वाहयंति नरकपालाः। यथा हस्ती वाह्यते समारुह्य एवं तान् वाहयंति । तस्य नारकस्योपर्येकं द्वौ त्रीन् वा स मारोप्य ततस्तं वाहयंति । अतिभारारोपणेनावहंतमारुष्य रोषंकृत्वा प्रतोदादिना विध्यं ति । सेतस्य नारकस्य (ककाणउत्ति) मर्मणि विध्यंति बिंदंति ॥ १५॥ (बालाइति) बालाः स्वशामहतीं रुधिरादिप्रपिच्छिलां कंटकाकुलां जूमिमनुक्रामंतोमंदगतयोबलात्प्रेर्यंते । तथा न्यान् तर्षकाकारान् विषस्सुचित्तान् मूर्छितान् विविधमनेकधाबद्धानरकपालाः पापेन मर्मी रिताः प्रेरितास्तान् कुट्टयित्वा बलिं कुर्वंति खंडशः छित्वा इतश्चेतश्चक्षिपंति ॥ १६ ॥

॥ टीक-(अभिजुंजियाइत्यादि) रौद्रकर्मण्यपरनारकहननादिकेऽनियुज्य व्यापार्य यदि वा जन्मांतरकृतं रौद्रं सत्वोपघातकार्यमनियुज्य स्मारयित्वा असाधून्यशोजनानि जन्मांतर कृतानि कर्माण्यनुष्ठानानि येषांते तथा तानिष्ठुचोदितान् शरान्निघातप्रेरितान् हस्तिव द् वाहयंति नरकपालाः। यथा हस्ती वाह्यते समारुह्यैवं तमपि वाहयंति । यदिवा हस्ती महांतं जारं वहत्येवंतमपि नारकं वाहयंत्युपलक्षणार्थत्वादस्योष्ट्रवद् वाहयंतीत्याद्यप्यायो ज्यं कथं। वाहयंतीति दर्शयति । तस्य नारकस्योपर्येकं. द्वौ त्रीन् वा समारुह्य समारोप्य ततस्तं वाहयंति। अतिभारारोपणेनावहंतमारुष्य क्रोधं कृत्वा प्रतोदादिना विध्यंति तुदं ति। सेतम्य नारकस्य (काकणउत्ति) सर्माणि विध्यंतीत्यर्थः ॥ १५ ॥ अपिच (बाला बलाइत्यादि) बालाइव बालाः परतंत्राः पिच्छिलां रुधिरादिना तथा कंटकाकुलां जूमिम नुक्रामंतोमंदगतयोबलात्प्रेर्यंते । तथान्यान् विषसुचित्तान् मूर्छितांस्तर्षकाकारान्वि विधमनेकधा बद्धानरकपालाः समीरिताः पापेन कर्मणा चोदितास्तान्नारकान् कुट्ट यित्वा खंमशः कृत्वा (बलिकरिति) नगरबलिवदितश्चेतश्च क्षिपंतीत्यर्थः । यदिवा को ट्टबलिं कुर्वंतीति ॥ १६ ॥

वेतालिए नाम महाभितावे, एगायते पव्वयमंतलिक्खे ॥ हम्मंति

तत्था बहुकूरकम्मा. परं सहस्साण मुहुत्तगाणं ॥१७॥ संबाहिया

डुक्कडिणो थणंति, अहोय राउ परितप्पमाणा॥ एगंतकूमे नरए
महंते, कूमेण तहा विसमे हताउ ॥ १८ ॥

अर्थ--अहीं नाम शब्द संभावनाने अर्थे जाणवो (वेयालिए के०) विकुर्व्यो एवो (महाभितापे के०) माहा डुःखनुं कारण (एगायते के०) घणो लांबो एवो (पव्वयके०) पर्वत नरकमांहे (अंतरिक्खे के०) आकाश पर्यंत उंचोविकुर्वे निष्पादे (तत्थाके०) त्यां ते पर्वत उपरथी (बहूकुरकम्मा के०) अत्यंत पापकर्मना करनार एवा घणा नारकी पडतां थकां अंधकाररूपे दृष्टीयें कांइ पण देखे नही परंतु हस्त स्पर्श मात्रे थाय अने चडता थकां तो परमाधार्मिक तेने (हम्मंति के०) हणे पीडा आपे त्यां (परंसहस्साणमुहुत्तगाणंके०) हजार थकी घणा मूहुर्त्त अधिक एटले उपलक्षणथी घणा काल सुधी एवुं डुःख पामे ॥ १७ ॥ (डुक्कडिणो के०) ते नारकी माहा पाप कर्मना करनार ते (संबाहिया के०) संबाधिता एटले अत्यंत पीड्या थका (थणंति के०) आक्रंद करे (अहोयराउपरितप्पमाणा के०) अहोरात्र परितप्तमान थका करुण आक्रंद करे (एगंतकूमे नरएमहंते के०) एकांत एटले निश्चयरूप कूट एटले डुःखोत्पत्तिनुं स्थान ज्यांहे एवुं महंत एटले विस्तीर्ण नरकने विषे (कूमेण तहा विसमेहताउ के०) त्यां विषम कूट पासादिक गलयंत्रादिकें करी हणाता थका आक्रंद करे ॥ १८ ॥

॥ दीपिका-(वेयालिएत्ति) नामेति संभावने। संभाव्यते यन्नरकेषु। यथांतरिक्षे महाभितापे महाडुःखे एकशिलाघटितोदीर्घः (वेयालिएत्ति) वैक्रयः परमाधार्मिकनिष्पादितः पर्वतस्तत्र हस्तस्पर्शिकया समारुहंतोनारकाबहुक्रूरकर्माणोहन्यंते पीड्यंते सहस्त्रसंख्यानां मुहूर्तानां परं प्रकृष्टंकालं प्रभूतं कालं हन्यंतेइत्यर्थः ॥ १७॥ (संबाहियाइति) डुष्कृतं विद्यते येषांते डुष्कृतिनः संबाधिताः पीडिताअहनि रात्रौ च परितप्यमानाएकांतेन कूटानि डुःखोत्पत्तिस्थानानि यस्मिन् तथा तस्मिन् एवंविधे महति नरके कूटेन गलयंत्रपाशादिना तत्र विषमे हताः स्तनिश्चितं स्तनंति ॥ १८ ॥

॥ टीका-(किंच। वेयालिए इत्यादि) नामशब्दः संभावनायां। संभाव्यते एतन्नरकेषु यथांतरिक्षे महाभितापे महाडुःखैककार्येएकशिलाघटितोदीर्घः (वेयालिएत्ति) वैक्रियः परमाधार्मिकनिष्पादितः पर्वतस्तत्र तमोरूपत्वान्नारकाणामतोहस्तस्पर्शिकतया समारुहंतोनारकाहन्यंते पीड्यंते बहूनि क्रूराणि जन्मांतरोपात्तानि कर्माणि येषां ते तथा सहस्त्रसंख्यानां मुहूर्तानां परं प्रकृष्टं कालं सहस्त्रशब्दस्योपलक्षणार्थत्वा दप्रभूतं कालं हन्यंतइति यावत ॥ १७ ॥ तथा। (संबाहियाइत्यादि) समेकीनाबेन बाधिताः

पीमिताडुष्कृतं पापं विद्यते येषांते डुष्कृतिनोमहापापाः । अहोअहनि तथा रात्रौ च परितप्यमानाअतिडुःखेन पीड्यमानाः संतः करुणं दीनं स्तनंत्याक्रदंति । तथैकांतेन कूटानि डुःखोत्पत्तिस्थानानि यस्मिन् तथा तस्मिन्नेवं नूते नरके महति विस्तीर्णे पतिताः प्राणिनस्तेनच कूटेन गलयंत्रपाशादिना पाषाणसमूहलक्षणेन वा तत्र तस्मिन्निपतिताः । तुशब्दस्यावधारणार्थत्वात् स्तनंत्येव केवलमिति ॥ १७ ॥

नंजंति एं पुव्वमरीसरोसं, समुग्गरे ते मुसले गहेतुं ॥ ते निन्नदेहा रुहिरं वमंता, उमुद्धगा धरणितले पडंति ॥ १९ ॥ अणासिया नाम महासियाला, पागप्निणो तब सया सकोवा ॥ खज्जंति तह्य बहुकूरकम्मा, अदूरए संकलियाहि बद्धा॥ २० ॥

अर्थ-(पुव्वमरीसरोसंतेके०) पूर्व जन्मना वैरी, सरखा तेपरमाधार्मिक रोस सहित कोपायमान थका (समुग्गरेमुसलेगहेतुं के०) मुजर सहित मुसल ग्रहण करीने ते नारकीना मस्तकादिकने (नंजंतिएं के०) नांगी नाखे तेवारे (तेनिन्नदेहारुहिरंवमंता के०) तेनारकी बापडा निन्नदेही थका लोहिवमता ठता प्राबल्ये करी (उमुद्धगा के०) अधो मुख करी (धरणितलेपडंति) धरणीतलने विषे पडे. ॥ १९॥ त्यां (अणासियाके०)नुख्या अहीं नाम शब्द संनावनायेठे (महाके०) अने महोटा शरीरना प्रमाणवाला (पागप्निणो के०) प्रगल्नित एटले डुष्ट (सयासकोवाके०) सदाकाल क्रोध सहित एवा (सियाला के०) सीयालिया जीवने (तह के०) ते नरकने विषे परमाधार्मिक विकूर्वे ते (तह्यके०) त्यां नारकीमां (अदूरएसंकलियाहिबद्धा के०) ढुकडा शांकले करी बांध्या थका एवाजे (बहुकूरकम्मा के०) माहा पापी अत्यंत कूर कर्मना करनार नारकीउ तेने (खज्जंति के०) खंम खंम करी नक्षण करे. ॥ २० ॥

॥ दीपिका-(नंजंतीति) एं वाक्यालंकारे । पूर्वमरयोजन्मांतरवैरिणइव परमाधार्मिकानारकावा अन्येषामंगानि सरोषं समुजराणि मुसलानि गृहीत्वा नंजंति ते नारकाविन्नदेहारुधिरं वमंतोऽधोमुखाधरणितले पतंति ॥ १९ ॥ महांतः शृगालानरकपालविकुर्विनाअनाशिनोबुभुक्षिताः । नामेति संनावने । संनाव्यते एतत्तत्र । प्रगल्नितापृष्टारौद्रापायत्र सदा सकोपाः संनवंति । तत्र तैः सृगालादिनिर्बहुक्रूरकर्माणः शृंखलादिनिर्लोहनिगडैर्बद्धाअदूरगाः परस्परसमीपएव वर्त्तिनः खाद्यंते नक्ष्यंते ॥ २० ॥

॥ टीका-अपिच (नंजंतिएमित्यादि) एमिति वाक्यालंकारे । पूर्वमरयइवारयो

न्मांतरवैरिणइव परमाधार्मिकायदिवा जन्मांतरापकारिणोनारकाअपरेषामंगानि सरो षं सकोपं समुजराणि मुसलानि गृहीत्वा भंजंति गाढप्रहारैरामर्दयंति तेच नारकास्त्राण रहिताः शस्त्रप्रहारैर्भिन्नदेहारुधिरमुद्वहंतोऽधोमुखाधरणितले पतंतीति ॥ १९ ॥ किंच (अणासियाइत्यादि) महादेहप्रमाणामहांतः शृगालानरकपालविकुर्विताअन शिताबुभुक्षिताः । नामशब्दः संभावनायां । संभाव्यतएतन्नरकेषु । अतिप्रगल्भिताअति धृष्टारौद्ररूपानिर्भयास्तत्र तेषु नरकेषु संभवंति । सदावकोपानित्यकुपितास्तैरेवंभूतैः शृ गालादिभिस्तत्र व्यवस्थिताजन्मांतरकृतबहुक्रूरमाणः शृंखलादिभिर्बद्धाअयोमयनिगड निगडिताअदूरगाः परस्परसमीपवर्तिनोभक्ष्यंते खंडशः खाद्यंतइति ॥ २० ॥

सयाजला नाम नदी भिडुग्गा, पविज्जलं लोहविलीणतत्ता ॥
जंसी भिडुग्गंसि पवज्जमाणा, एगायताणुक्कमणं करंति ॥२१॥
एयाइं फासाइं फुसंति बालं, निरंतरं तत्र चिरठितीयं ॥ ण ह
म्ममाणस्स उ होइ ताण, एगोसयं पच्चणु होइ डुक्खं ॥ २२ ॥

अर्थ—(सयाजला नाम नदीभिडुग्गा के०) ते नरकने विषे सदाकाल पाणीए भरपूर एवी महाविषम नदीरूप स्थानछे. अहीं नाम शब्द संभावनायेंछे तेमां (पविज्जलंलोह विलीणतत्ता के०) अग्नीमां गल्यो एवो लोहनो गोलो तेना सरखुं जल पाणीछे जे पाणी पीता थका घणुं खारुं तथा उष्ण लागे माटे विषमछे (जंसीभिडुग्गंसि पवज्जमा णा के०) जे एवी विषम नदी तेने विषे ते नारकी प्रेर्या थका जाता थका हालता थका (एगाय ताणुक्कमणं करंति के०) एकाकी अशरण प्लवन करता परवश पड्या थका डुःख भोगवे. ॥ २१ ॥ (एयाइं के०) ए पूर्वोक्त बन्ने उद्देशामां जे नारकीना डुःख कह्या तेने (बालंके०) बाल अज्ञानी एवा नारकीना जीवो ते (फुसंतिके०) फरसे छे सहन करेछे (निरंतरं तत्र चिरठितीयं के०) जेनी निरंतर घणा काल सुधी रहेवानी स्थितिछे एवा नारकी त्यां (णहम्ममाणस्स उहोइताणंके०) हणाता थका तेने कोइपण त्राण सरण एटले राखवाने समर्थ नथी (सयंके०) पोते (एगो के०) एकलो थकोज (पच्चणुहोइडुक्खं के०) नाना प्रकारना पोताना उपार्ज्यां डुःख भोगवे. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—सदा जलं यस्यां सा सदाजला नाम नदी अभिडुर्गा विषमा पविज्जला रु धिरादिभिः पिच्छिला अग्नितप्तं सद्विलीनं द्रवीभूतं यल्लोहं तद्वत्तथा द्रवीभूततप्तलोहजलेत्य र्थः । यस्यां नद्यां प्रपद्यमानानारकाएकाकिनोऽत्राणाअनुक्रमणं गमनं कुर्वंति ॥ २१ ॥ एते पूर्वोक्ताः स्पर्शाडुःखविशेषाः परमाधार्मिककृताः स्तानादिकाश्च बालं नारकं स्पृशंति

पीमिताडुष्कृतं पापं विद्यते येषांते डुष्कृतिनोमहापापाः । अहोअहनि तथा रात्रौ च परितप्यमानाअतिडुःखेन पीड्यमानाः संतः करुणं दीनं स्तनंत्याक्रदंति । तथैकांतेन कूटानि डुःखोत्पत्तिस्थानानि यस्मिन् तथा तस्मिन्नेवं नूते नरके महति विस्तीर्णे पति प्राणिनस्तेनच कूटेन गलयंत्रपाशादिना पाषाणसमूहलक्षणेन वा तत्र तस्मिन्निपातिताः । तुशब्दस्यावधारणार्थत्वात् स्तनंत्येव केवलमिति ॥ १७ ॥

भंजंति णं पुव्वमरीसरोसं, समुग्गरे ते मुसले गहेतुं ॥ ते भिन्नदेहा रुहिरं वमंता, उमुद्धगा धरणितले पडंति ॥ १९ ॥ अणासिया नाम महासियाला, पागब्भिणो तत्र सया सकोवा ॥ खज्जंति तत्रा बहुकूरकम्मा, अदूरए संकलियाहि बद्धा॥ २० ॥

अर्थ-(पुव्वमरीसरोसंतेके०) पूर्वं जन्मना वैरी, सरखा तेपरमाधार्मिक रोष सहित कोपायमान थका (समुग्गरेमुसलेगहेतुं के०) मुजर सहित मुसल ग्रहण करीने ते नारकीना मस्तकादिकने (भंजंतिणं के०) भांगी नाखे तेवारे (तेभिन्नदेहारु हिरंवमंता के०) तेनारकी बापडा भिन्नदेही थका लोहिवमता बता प्राबल्ये करी (उमुद्धगा के०) अधो मुख करी (धरणितलेपडंति) धरणीतलने विषे पडे. ॥१९॥ त्यां (अणासियाके०)भुख्या अहीं नाम शब्द संभावनायेछे (महाके०) अने महोटा शरीरना प्रमाणवाला (पागब्भिणो के०) प्रगल्भित एटले धृष्ट (सयासकोवाके०) सदाकाल क्रोध सहित एवा (सियाला के०) सीयालिया जीवने (तत्र के०) ते नरकने विषे परमाधार्मिक विकूर्वे ते (तत्राके०) त्यां नारकीमां (अदूरएसंकलियाहिबद्धा के०) ढुकडा शांकले करी बांध्या थका एवाजे (बहुकूरकम्मा के०) माहा पापी अत्यंत क्रूर कर्मना करनार नारकीउ तेने (खज्जंति के०) खंम खंम करी भक्षण करे. ॥ २० ॥

॥ दीपिका-(भंजंतीति) णं वाक्यालंकारे । पूर्वमरयोजन्मांतरवैरिणइव परमाधार्मिकानारकावा अन्येषामंगानि सरोषं समुज्ञराणि मुसलानि गृहीत्वा भंजंति ते नारकाभिन्नदेहारुधिरं वमंतोऽधोमुखाधरणितले पतंति ॥ १९ ॥ महांतः शृगालानरकपालविकुर्विताअनाशिनोबुभुक्षिताः । नामेति संभावने । संभाव्यते एतत्तत्र । प्रगल्भिताधृष्टास्तपायत्र सदा सकोपाः संभवंति । तत्र तैः सृगालादिभिर्बहुक्रूरकर्माणः शृंखलादिभिर्निहनिगडैर्बद्धाअदूरगाः परस्परसमीपएव वर्त्तिनः खाद्यंते भक्ष्यंते ॥ २० ॥

॥ टीका-अपिच (भंजंतिणमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे । पूर्वमरयइवारयो

न्मांतरवैरिणइव परमाधार्मिकायदिवा जन्मांतरापकारिणोनारकाअपरेषामंगानि मरो षं सकोपं समुज्जराणि मुसलानि गृहीत्वा नंजंति गाढप्रहारैरामर्दयंति तेच नारकास्त्राण रहिताः शस्त्रप्रहारैर्निन्नदेहारुधिरमुद्वहंतोऽधोमुखाधरणितले पतंतीति ॥ १९ ॥ किंच (अणासियाइत्यादि) महादेहप्रमाणामहांतः शृगालानरकपालविकुर्विताअन शितावुचुक्षिताः । नामशब्दः संनावनायां । संनाव्यतएतन्नरकेषु । अतिप्रगल्जितात्र्प्रति धृष्टारौद्ररूपानिर्नयास्तत्र तेषु नरकेषु संनवंति । सदावकोपानित्यकुपितास्तैरेवंनूतैः शृ गालादिनिस्तत्र व्यवस्थिताजन्मांतरकृतबहुक्रूरमणः शृंखलादिनिर्बद्धाअयोमयनिगड निगडिताअदूरगाः परस्परसमीपवर्तिनोनक्ष्यंते खंडशः खाद्यंतइति ॥ २० ॥

सयाजला नाम नदी निदुग्गा, पविज्जलं लोहविलीणतत्ता ॥
जंसी निदुग्गंसि पवज्जमाणा, एगायताणुक्कमणं करंति ॥२१॥
एयाइं फासाइं फुसंति बालं, निरंतरं तत्र चिरठितीयं ॥ ण ह
म्ममाणस्स उ होइ ताण, एगोसयं पच्चणु होइ दुक्खं ॥ २२ ॥

अर्थ–(सयाजला नाम नदीनिदुग्गा के०) ते नरकने विषे सदाकाल पाणीए नरपूर एवी महाविषम नदीरूप स्थानछे. अहीं नाम शब्द संनावनार्थेछे तेमां (पविज्जलंलोह विलीणतत्ता के०) अग्नीमां गल्यो एवो लोहनो गोलो तेना सरखुं उन्न पाणीछे जे पाणी पीता थका घणुं खारुं तथा उन्न लागे माटे विषमछे (जंसीनिदुग्गंसि पवज्जमा णा के०) जे एवी विषम नदी तेने विषे ते नारकी प्रेखा थका जाता थका हालता थका (एगाय ताणुक्कमणं करंति के०) एकाकी अशरण डुबन करता परवश पड्या थका डुःख नोगवे. ॥ २१ ॥ (एयाइं के०) ए पूर्वोक्त बन्ने उद्देशामां जे नारकीना डुःख कह्या तेने (बालंके०) बाल अज्ञानी एवा नारकीना जीवो ते (फुसंतिके०) फरसे ने सहन करेछे (निरंतरं तत्र चिरठितीयं के०) जेनी निरंतर घणा काल सुधी रहेवानी स्थितिछे एवा नारकी त्यां (णहम्ममाणस्स उहोइताणंके०) हणाता थका तेने कोइपण त्राण सरण एटले राखवाने समर्थ नथी (सयंके०) पोते (एगो के०) एकलो थकोज (पच्चणुहोइडुक्कं के०) नाना प्रकारना पोताना उपार्ज्या डुःख नोगवे. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–सदा जलं यस्यां सा सदाजला नाम नदी अनिदुर्गा विषमा पविज्जला रु धिरादिपिच्छिला अग्नितप्तं सद्विलीनं डवीनूतं यल्लोहं तद्वत्तप्ता डवीनूततप्तलोहजलेत्य र्थः । यस्यां नद्यां प्रपद्यमानानाम्काएकाकिनोऽत्राणाअनुक्रमणं गमनं कुर्वंति ॥ २१ ॥ एते पूर्वोक्ताः स्पर्शाडुःखविशेषाः परमाधार्मिककृताः स्वानाविकाश्च बालं नारकं स्पृशंति

दुःखयंति निरंतर मविश्रामं तत्र चिरस्थितिकं तं हन्यमानस्य नारकस्य नकिंचित्राणं स्यात्। यथा शीतेंद्रेण लक्ष्मणस्य नरकदुःखमनुभवतस्त्राणोद्यतेनापि नत्राणं कृतमिति एकः स्वयं प्रत्यनुभवति दुःखं। यतो मया परिजनस्यार्थे, कृतं कर्म सुदारुणं॥ एकाकी तेन दह्येहं गतास्ते फलभोगिनइति॥ २२॥

॥ टीका-अपिच (सदाजलेत्यादि) सदा सर्वकालं जलमुदकं यस्यां सा तथा सा जलाभिधाना वा नदी सरिदतिदुर्गा अतिविषमा प्रकर्षेण विविधमत्युष्णं क्षारपूयरुधिराविलजलं यस्यां सा (पविज्जलेत्ति) रुधिराविलत्वात् पिच्छिला विस्तीर्णगंभीरजला वा। अथवा प्रदीप्तजला वा। एतदेव दर्शयति। अग्निना तप्तं सद्विलीनं द्रवतां गतं यल्लोहमयस्तद्वत्प्राऽतितापविलीनलोहसदृशजलेत्यर्थः। यस्यां च सदाजलायां अभिदुर्गायां नद्यां प्रपन्नाः (एगायत्ति) एकाकिनोऽत्राणाअनुक्रमणं तस्यां गमनं प्लवनं कुर्वंतीति॥ २१॥ सांप्रतमुद्देशकार्थमुपसंहरन् पुनरपि नारकाणां दुःखविशेषं दर्शयितुमाह (एयाइंफासाइंइत्यादि) एते अनंतरोद्देशकद्वयाश्रेत्यतिकटवोबालमशरणं स्पर्शयंति दुःखयंति निरंतरमविश्रामं (अच्छिनिमीलयमित्यादिपूर्ववत्) तत्र तेषु नरकेषु चिरं प्रभूतं कालं स्थितिर्यस्य बालस्यासौ चिरस्थितिकस्तं। तथाहि। रत्नप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिः सागरोपमं तथा द्वितीयां शर्करप्रभायां त्रीणि तथा वालुकायां सप्त पंकायां दश धूमप्रभायां सप्तदश तमःप्रभायां द्वाविंशतिर्महातमःप्रभायां सप्तमपृथिव्यां त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि उत् उत्कृष्टा स्थितिरिति। तत्र गतस्य कर्मवशाऽपादितोत्कृष्टस्थितिकस्य परैर्हन्यमानस्य स्वकृतकर्मफलभुजो न किंचित्राणं भवति। तथाहि। किल शीतेंद्रेण लक्ष्मणस्य नरकदुःखमनुभवतस्त्राणोद्यतेनापि न त्राणं कृतमिति श्रुतिः। तदेवमेकोसहायोयदर्थे यत्पापं समर्जितं तरहितस्तत्कर्मविपाकजं दुःखमनुभवति नकश्चिद्दुःखसंविभागं गृण्हातीत्यर्थः। तथाचोक्तं। मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म सुदारुणं। एकाकी तेन दह्येहं गतास्ते फलभोगिनइत्यादि॥२२॥

जं जारिसं पुवमकासिकम्मं, तमेव आगछति संपराए॥ एगंतदुक्खं भवमज्जणित्ता, वेदंति दुक्खी तमणंतदुक्खं ॥ २३॥ एताणि सोच्चा णरगाणि धीरे, नहिंसए किंचण सवलोए ॥ एगंतदिठी अपरिग्गहेउ, बुज्झि लोयस्सवसं नगछे॥२४॥ एवं तिरिक्खे मणुया सुरेसुं, चतुरंतणंतं तदणुविवागं॥ ससवमेयं इति वेदइत्ता, कंखेजकालं धुयमायरेज्जत्तिबेमि॥ २५॥ इति श्रीनरयविभत्तीनाम पंचमाध्ययनंसंमत्तं॥

अर्थ-(जंजारिसंपुव्वमकासिकम्मंके०) जे जीवे जेवाभावे पाछला जन्मांतरे कर्म कीधांछे (तमेव के०) ते कर्म तेवीज विधियें (संपराए के०) संसारमां भमता थका चारगति नेविषेजीवने (आगच्छतिके०) उदय आवे (एगंतदुक्खंभवमज्जणित्ताके०) परंतु नरकमांहे तो एकांत निःकेवल दुःखरूप भव उपार्जीने (वेदंतिदुक्खीतमणंतदुक्खं के०) ते नार की जीव दुःखी थका अनंत दुःख वेदे ॥ २३ ॥ हवे उपदेश स्वरूप कहेछे. (एताणि के०) ए पूर्वोक्त (णरगाणिसोच्चा के०) नरकना तीव्र दुःख सांभलीने (धीरेके०) जे धैर्यवंत पुरुषछे ते शुं करे ते देखाडेछे. (नहिंसएकिंचण सव्वलोए के०) जेथकी नरक ना दुःख न भोगवे एवा सर्व चतुर्दश रज्ज्वात्मक लोकने विषे जेकांइ त्रस अने स्थाव र जीवछे तेकोइने हणे नही तथा (एगंतदिट्ठीके०) एकांत दृष्टी एटले निश्चल सम्यक्त्व धारक तथा (अपरिग्गहेउ के०) परिग्रह रहित एवो छतो तु शब्दथी मृषावादादि कनु वर्जन पण जाणी लेवुं तथा (लोयस्स के०) लोक ते इहां प्रस्तावथकी अशुभ कर्मकारी लेवो तथा कषाय लोक लेवो तेना स्वरूपने (बुज्झिज्जके०) जाणीने एवा लोकने (वसं के०) वशमां (नगच्छे के०) नपोहोचे ॥ २४ ॥ (एवंतिरिक्खेमणुयासु रेसुं के०) ए जेम अशुभ कर्मिने नरकगति कही तेम तिर्यंच मनुष्य तथा देवतानी गति एम बधिमली (चतुरत्तणंतं के०) चतुर्गतिक संसारने विषे अनंत (तयणुविवागं के०) तदनुरूप विपाक एटले अनंत एवो कर्मनो जे विपाक (ससव्वमेयंइतिवेदइत्ता के०) सबुद्धिमान् सर्वमेतदितिविदित्वा एटले पंमित पुरुष ए पूर्वोक्त सर्वने इति एम जा णीने जेरीते श्रीभगवंते कह्योछे तेरीते (कंखेज्जके०) कांक्षा करे एटले वांछे सुवांछेतोके (कालं के०) काल एटले ज्यांसुधी मरण प्राप्त थाय त्यांसुधी (धुयंके०) ध्रुव एटले संयमने (आयरेज्ज के०) आचरे एतावता चारित्रविना जीव चतुर्गतिक संसारमां भ्र मण करे ते कारण माटे जाव जीव सुधी त्रिविधे दयाधर्म रूप निरतिचार चारित्र पा लवाने वांछे अने सर्वथा पापनो त्याग करे. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥ २५ ॥ इति श्री नरकविभक्तिनामे पांचमा अध्ययननो अर्थ संपूर्ण थयो ॥

॥ दीपिका-यत्कर्म यादृशं पूर्वजन्मांतरे अकार्षीत् कृतं तत्तादृशमेव संपराये संसारे अनुगच्छति। एकांतेन दुःखमेव भवोयस्मिन् सएकांतदुःखभवस्तमर्जयित्वा दुःखिनस्तमनंत दुःखंवेदयंति॥२३॥ एतान्नरकान् श्रुत्वा धीरोनहिंस्यात्कंचन प्राणिनं सर्वलोके एकांतदृष्टि निश्चलसम्यक्त्वोऽपरिग्रहः। तुशब्दान्मृषावादादिवर्जनमपि ज्ञेयं। तथा लोके अशुभकर्म कारिणं तद्विपाकंच भुंजानं बुध्यते जानीयात् नतु तस्य वशं गच्छेत् ॥ २४ ॥ एवमशुभ कर्मकारिणामसुमतां तिर्यङ्मनुष्यामरेष्वपि चतुरंतं चतुर्गतिकमनंतमपर्यवसानं तद

नुरूपं विपाकं सबुद्धिमान् सर्वमेतदिति पूर्वोक्तं विदित्वा ध्रुवं संयममाचरन् कालं कांक्षे त् । कोर्थः । चतुर्गतिकसंसारे दुःखमेव केवलं मत्वा संयमानुष्ठानरतोयावज्जीवं मृत्युका लं प्रतीक्षेत । इतिब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २५ ॥ इति पंचमाध्ययने द्वितीयोद्देशकः ॥ ॥ तितपोगछे श्रीहेमविमलसूरिशिष्यहर्षकुलपंमितप्रणीतायां श्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां न कविजक्तयाख्यं पंचमाध्ययनं समाप्तं. ॥ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् (जंजारिसमित्यादि) यत्कर्म यादृशं यदनुजावं यादृक्स्थितिकं वा कर्म पूर्वं जन्मांतरे अकार्षीत् कृतवांस्तत्तादृगेव जघन्यमध्यमोत्कृष्टस्थित्यनुजावं संपराये तथा तेनैव प्रकारेणानुगछति । एतडुक्तं जवति । तीव्रमंदमध्यमैर्बंधाध्यवसा स्थानैर्यादृशैर्यद्बद्धं तत्तादृगेव तीव्रमंदमध्यमेव विपाकमुदयं गछतीति । एकांतेनावश्यं सुखलेशरहितं डुःखमेव यस्मिन्नरकादिके जवे सतथा तमेकांतडुःखं जवमर्जयित्वा नारक जवोपादानजूतानि कर्माण्युपादायैकांतडुःखिनस्तत्पूर्वनिर्दिष्टं डुःखमसातवेदनीयप्रतिकारं दयंत्यनुजवंतीति ॥२३॥ पुनरप्युपसंहारव्याजेनोपदेशमाह । (एयाणिसोच्चाइत्यादि) एता न्पूर्वोक्तान्नरकान् स्वास्थ्या व्यपदेशइतिकृत्वा नरकडुःखविशेषान् श्रुत्वा निशम्य धीर्बुद्धि या राजतइति धीरोबुद्धिमान् प्राज्ञः।एतत्कुर्यादिति दर्शयति।सर्वस्मिन्नपि त्रसस्थावरजेदर्जि न्ने लोके प्राणिगणे नकमपि प्राणिनं हिंस्यान्नव्यापादयेत् । तथैकांतेन निश्चयजीवादितत्त्वे दृष्टिः सम्यक् दर्शनं यस्य सएकांतदृष्टिर्निष्प्रकंपसम्यक्त्वइत्यर्थः । तथा नविद्यते परिसमंता त्सुखार्थं गृह्यतइति परिग्रहोयस्य सावप्यपरिग्रहः।तुशब्दादार्यंतोपादाना दा मृषावादादत्ता दानमैथुनवर्जनमपि डृष्टव्यं । तथा लोकमशुजकर्मकारिणं तद्विपाकं फलं जुंजन् वा यदिवा कषायं लोकं तत्स्वरूपतोबुध्येत जानीयान्नतु तस्य वशं गछेदिति ॥२४॥ एतदनंतरोक्तं डुःख विशेष मन्यत्राप्यतिदिशन्नाह।(एवमित्यादि) एवमशुजकर्मकारिणामसुमतां तिर्यङ्मनुष्या मरेष्वपि चतुरंतं चतुर्गतिकमनंतमपर्यवसानं तदनुरूपं विपाकं स बुद्धिमान् सर्वमेतदिति पूर्वोक्तया नीत्या विदित्वा ज्ञात्वा ध्रुवं संयममाचरन् कालं मृत्युकालमाकांक्षेत् । एतडुक्तं जवति । चतुर्गतिकसंसारांतर्गतानामसुमतां डुःखमेव केवलं यतोध्रुवोमोक्षः संयमो तदनुष्ठानरतोयावज्जीवं मृत्युकालं प्रतीक्षेतेति । इति परिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥२५॥ इतिपंचमं नरकविजक्त्यध्ययनं परिसमाप्तं. ॥

अथ द्वितीये सूत्रकृतांगे षष्ठमध्ययनं प्रारज्यते । पांचमा अध्ययनने विषे नरकना डुःख कह्या ते श्रीमहावीरदेवे उपदेश्या छे ते माटे आ छठा अध्ययनने विषे श्री महावीर परमात्मानी गुणो त्किर्तनीपूर्वक स्तुति करेछे.

पुछिंस्सु णं समणा माहणाय, अगारिणोया परतित्थिआय ॥
से केइ णेगंतहियं धम्ममाहु, अणेलिसं साहु समिरकयाए॥१॥
कहंच णाणं कह दंसणं से, सीलं कहं नायसुतस्स आसी॥ जा
णासि णं भिकु जहातहेणं, अहासुतं बूहि जहाणिसं तं ॥ २॥

अर्थ-(पुछिंस्सुणं के०) पूर्वोक्त नरकना दुःख सांभलीने संसारना भयथी वीकपाम्या थकाथया एवा पुरुषो श्रीसुधर्म स्वामिने पूछेछे ते कोण पूछेछे तोके (समणा के०) साधु तथा (माहणायके०) ब्राह्मण तथा (अगारिणोया के०) आगारीते गृहस्थ क्षत्रिया दिक तथा (परतित्थिआयके०) अन्य तीर्थिकते शाक्यादिक तापस प्रमुख जाणवा ए सर्वे शुं पुछेछे ते कहेछे. (सेकेइणेगंत के०) ते कयो एकांत (हियके०) हितनो कर नार एवो (अणेलिसं के०) अनीदृशमतुलं एटले निरुपम शाश्वत (साहुसमिरकयाए के०) साधु समीक्षाये यथास्थित तत्व ज्ञाने करी ज्ञातपुत्र श्रीमहावीरदेवे निरतो (ध म्मं के०) धर्म (आहु के०) कह्योछे के जेणे करी जीव सुख पामे. ॥ १ ॥ (कहंचणा णं के०) केवुं ज्ञान वली (कहंदंसणंसे के०) दर्शन चारित्ररुप केवुं तथा (सीलंकहं के०) यम नियमरूप शील केवुंछे ए बधुं (नायसुतस्सआसीके०) ज्ञातपुत्र एटले क्षत्रि य शिरोमणी सिद्धार्थ राजाना पुत्र श्रीमहावीरने विषे केवुं हतुं ते (भिकू के०) अ हो भगवन् (जाणासिणं के०) ए सर्वे जेरीते तमे जाणोगो (जहातहेणं के०) यथा तथ्य एटले सत्य निरुपण रुप (अहासुतं के०) जेम तमे सांभल्युं छे (जहाणिसंतं के०) यथानिशांतं एटले सांभलीने जेम हृदयने विषे धारण कर्युंछे तेम अमने (बूहिके०) कहो.

॥ दीपिका-अथ षष्ठमारभ्यते। पूर्वाध्ययने नरकविभक्तिरुक्ता श्रीवीरेण। ततोत्र श्रीवीर स्यैव गुणाउच्यंते तस्येदमादिसूत्रं (पुछिंस्सुणमिति) जंबूस्वामी सुधर्माणमाह। यथा के नैवंभूतोधर्मउक्तइत्येतद्बहवोमां पृष्टवंतः श्रमणाः साधवादयस्तथा ब्राह्मणाब्रह्मचर्या द्यनुष्ठानरताअगारिणः क्षत्रियादयोयेच शाक्यादयः परतीर्थिकास्तेपि पृष्टवंतः। किंतदि त्याह। योसौ इमं धर्मं एकांतहितमाह उक्तवान् अनीदृशमनन्यसदृशमतुल्यमित्यर्थः। साध्वीयासौ समीक्षा तत्वपरिछित्तिश्च साधुसमीक्षा तासमता तया उक्तवान् ॥१॥ तस्य श्रीवीरस्य ज्ञानं किंभूतं च दर्शनं शीलंच यमनियमरूपं कीदृगासीत्। हेसुधर्मस्वामिन् यन्मयापृष्टं तथाथानथ्येन त्वंजानासि। णं वाक्यालंकारे। यथाश्रुतं श्रुत्वा च यथानिशं तमवधारितं तथा त्वं बूहि इति पृष्टः सुधर्मा वीरगुणानाह ॥ २ ॥

॥टीका—उक्तं पंचममध्ययनं ।अधुना षष्ठमारभ्यते । अस्य चाऽयमभिसंबंधः।अत्रानंतरा ध्ययने नरकविभक्तिः प्रतिपादिता । सा च श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिनाऽभिहिते त स्तस्यैवाऽनेन गुणकीर्तन द्वारेण चरितं प्रतिपाद्यते । शास्तुर्गुरुत्वेन शास्त्रस्य गरीयस्त्वमि ति कृत्वेत्यनेन संबंधेनाऽऽयातस्याऽस्याऽध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोग द्वाराणि तत्राऽप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोमहावीरगुणगणोत्कीर्त्तनरूपः।निक्षेपस्तु द्विधा । ओघनिष्प न्नोनामनिष्पन्नश्च । तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपे ऽध्ययनं । नामनिष्पन्नेतु महावीरस्तवः। तत्र म हच्छब्दस्य वीरइत्येतस्य स्तवस्यच प्रत्येकं निक्षेपोविधेयः । तत्रापि यथोद्देशस्तथानिर्दे ऽइतिकृत्वा पूर्वं महच्छब्दोनिरूप्यते । तत्राऽस्त्यऽयं महच्छब्दोबहुत्वे । यथा महाजनइ अस्तिवृहत्त्वे । यथा महाघोषोऽस्तीत्यर्थं यथा महानयमित्यऽस्ति प्राधान्ये यथा महा रुपइति । तत्रेह प्राधान्ये वर्तमानोगृहीतइत्येतन्निर्युक्तिकारोदर्शयितुमाह । पाहन्नेमहसदं दव्वे खेत्ते य कालभावेय ॥ वीरस्सछणिक्खेओ चउक्कउंहोइणायव्वो ॥१॥ पाहेन्नमहसदाइत्यादि तत्र महावीरस्तवइत्यत्र योमहच्छब्दः सप्राधान्ये वर्तमानोगृहीतः । तच्च नामस्थापन द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात् षोढा । प्राधान्ये नामस्थापने क्षुण्णे द्रव्यप्राधान्यं । ज्ञशरीरभ शरीरव्यतिरिक्तं सचित्ताचित्तमिश्रभेदात् त्रिधा । सचित्तमपि द्विपदचतुष्पदे नरहस्त्यश्व द्विकमपदेषु प्रधानं कल्पवृक्षादिकं । यदि वेहैव ये प्रत्यक्षारूपरसगंधस्पर्शैरुत्कृष्टाः पुं रीकादयः पदार्थाः । अचित्तेषु वैडूर्यादयोनानाप्रभावमणयोमिश्रेषु तीर्थकरोविभूषि इति । क्षेत्रतः प्रधानासिद्धिर्धर्मैश्रयणान्महाविदेहं चोपभोगांगीकरणेन तु देवकुर्वा कं क्षेत्रं कालतः प्रधानं त्वेकांतसुषमादि । योवा कालविशेषोधर्मचरणप्रतियोग्यइति भावप्रधानंतु क्षायिकोभावस्तीर्थकरशरीरापेक्षयौदयिकोवा । तत्रेह द्वयेनाऽप्यधिका ति । वीरस्य द्रव्यक्षेत्रकालभेदाच्चतुर्धा निक्षेपः । तत्र ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तोद्र वीरोद्रव्यार्थं संग्रामादावद्भुतकर्मकारितया शूरोयदिवा यत्किंचित् वीर्यवद् द्रव्यं तद् व्यवीरंऽतद्भवति । तद्यथा। तीर्थकृदनंतबलवीर्योलोकमलोकं कंडुकवत् प्रक्षेप्तुमलं । त मंदरं दंडं कृत्वा रत्नप्रभां पृथिवीं छत्रवद्बिभृयात् ।तथा चक्रवर्तिनोपि बलं दोलोलावती तथा विषादिनां मोहनादिसामर्थ्यमिति । क्षेत्रवीरस्तु योयस्मिन् क्षेत्रेऽद्भुतकर्मका वीरोवा यत्र वर्ण्यते । एवं कालेऽप्यायोज्यं । भाववीरोयस्य क्रोधमानमायालोभैः परी षहादिभिश्चात्मनोजेता । तथाचोक्तं । कोहं माणं च मायं च, लोभं पंचेंदियाणिय दुज्जयंचेव अप्पाणं सव्वमप्पेजिएजियं ॥ १ ॥ योसहस्संसहस्साणं संगामेदुज्जयेजिणे एगंजिणेज्जअप्पाणं एसेसपरमोजओ ॥ २ ॥ तथा । एक्कोपरिभमउजए, वियडंजिण सरीभवीजाए ॥ कंदप्पदुद्धदाढो मयणोविद्धारिओजेण ॥३॥ तदेवं वर्धमानस्वाम्येव स्त्रोपसर्गैरनुकूलप्रतिकूलैरपराजितोऽद्भुतकर्मकारित्वेन गुणनिष्पन्नात् भावतोमहावी

इति जण्यते। यदिवा द्रव्यवीरोव्यतिरिक्तएकन्नविकादिः। क्षेत्रवीरोयत्र तिष्ठत्यऽसौ व्या वर्ण्यते वा कालोऽप्येवमेव। जाववीरोनोआगमतोवीरनामगोत्राणि कर्माण्यनुजवन स च वीरवर्धमानस्वाम्येवेति॥ स्तवनिक्षेपार्थमाह॥ थुइणिरकेवोचउहा, अंगतुअन्नूसणेहिं दव्वसुती॥ जावेसंताणगुणा, णकित्तणाजेजहिंजणिया॥ १॥ (थुइणिरकेवोइत्यादि) स्तुतेः स्तवस्य नामादिश्चतुर्धा निक्षेपः। तत्र नामस्थापने पूर्ववत्। द्रव्यस्तवस्तु ज्ञश रीरजव्यशरीरव्यतिरिक्तोयः कटककेयूरस्रक्चंदनादिजिः सचित्ताचित्तद्रव्यैः क्रियतइति। जावतस्तु वस्तुतः सन्नूतानां विद्यमानानां गुणानां ये यत्र जवंति तत्कीर्तनमिति॥ सांप्रतं आद्यसूत्रसंस्पर्शीद्वारेण सकलाध्ययनसंबंधप्रतिपादिकां गाथां निर्युक्तिकृदाह। पुच्छिस्सु जंबुणामो.अज्ज सुहम्मा तउकहेसीय। एवमहाप्पवीरो, जयमाहाहु तहा जएज्जा हिं॥ ३॥ जंबूस्वामी आर्यसुधर्मस्वामिनं श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिगुणान् पृष्टवान् अतोऽसावपि जवान सुधर्मस्वाम्येवंगुणविशिष्टोमहावीरइति कथितवान्। एवं चाऽसौ ज गवान संसारस्य जयमन्निजवं चाह। ततोयूयमपि यथा जगवान संसारं जितवान् तथै व यत्नं विधत्त। सांप्रतं निक्षेपानंतरं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं। तच्चेदं। (पुच्छिस्सुणमित्यादि)। अस्य चाऽनंतरसूत्रेण सहायं संबंधःतद्यथा। तीर्थकरो पदिष्टेन मार्गेण ध्रुवमाचरन् मृत्युमुपेक्षेतेत्युक्तं। तत्र किंजूतोऽसौ तीर्थकृत् येनोप दिष्टोमार्गइत्येत् पृष्टवंतः श्रमणायतयइत्यादि। परंपरसूत्रसंबंधस्तु बुध्येत॥ यडुक्तं। प्रागित्येतच्च यडुत्तरत्र प्रश्नवचनं वक्ष्यते तच्च बुध्यनेत्यनेन संबंधेनाऽयातस्याऽस्य सूत्रस्य संहितादिक्रमेण व्याख्या प्रतन्यते। साचाऽयमनंतरोक्तां बहुविधां नरकविजक्तिं श्रुत्वा संसाराडुद्विग्नमनसः केनेयं प्रतिपादितेत्येतत् सुधर्मस्वामिनमप्राक्षुः पृष्टवंतः। णमितिवाक्यालंकारे। यदिवा जंबूस्वामी सुधर्मस्वामिनमेवमाह। यथा केनेवं जूतोधर्म संसारोत्तरणे समर्थः प्रतिपादितइत्येतद्भवोमां पृष्टवंतः। तद्यथा। श्रमणानिर्ग्रं थादयोब्राह्मणाब्रह्मचर्याद्यनुष्ठाननिरतास्तथाऽऽगारिणः क्षत्रियादयोयेच शाक्यादयः पर तीर्थिकास्ते सर्वेऽपि पृष्टवंतः। किंतदिति दर्शयति। सकोयोऽसावेनं धर्मं डुर्गतिप्रसृतजं तुधारकमेकांतहितमाहोक्तवान् अनीदृशमतुलमित्यर्थः। तथा साध्वीचाऽसौ समीक्षा च साधुसमीक्षा यथावस्थिततत्त्वपरिच्छित्तिस्तया यदिवा साधुसमीक्ष्या समनयोक्तवानिति॥ ॥ १॥ तथा तस्यैव ज्ञानादिगुणावगतये प्रश्नमाह। (कहंचणाणमित्यादि) कथं केन प्रकारेण जगवान ज्ञानमवाप्तवान् किंजूतं वा तस्य जगवतोज्ञानं विशेषावबोधकं। किं जूतं च तस्य दर्शनं सामान्यार्थपरिच्छेदकं शीलं च यमनियमरूपं कीदृक् ज्ञाताः क्षत्रियास्ते षां पुत्रोजगवान वीरवर्धमानस्वामी तस्याऽऽसीद्जूदिति यदेतन्मया पृष्टं तत् जिक्षोसुध र्मस्वामिन् याथातथ्येन त्वं जानीषे सम्यगवगच्छसि। (णमितिवाक्यालंकारे) तदेतत्सर्वं

यथाश्रुतं त्वया श्रुत्वा च यथानिशांतमित्यवधारितं यथा दृष्टं तथा सर्वं ब्रूहीत्यचक्षतेति ॥

खेयन्नेसे कुसले (सुपन्नेपा०) महेसी, अणंतनाणीय अणंतदंसी॥
जसस्सिणो चक्कुपहठियस्स, जाणाहि धम्मंच धिइं पेचहि
॥ ३ ॥ उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु, तसाय जे थावर जेह पाणा॥
सेणिच्चणिच्चेहि समिक्ख पन्ने, दीवेव धम्मं समियं उदाहु ॥ ४ ॥

अर्थ—एम श्री सुधर्म स्वामिने पुब्या थका सुधर्मस्वामि श्री महावीर देवना गुण हेछे. (सेके०) ते श्री महावीरदेव (खेयन्नेके०) खेदज्ञ एटले संसारी जीवोने कर्म पाक थकी उत्पन्न थयुं जे खेद एटले दुःख तेने जाणे जाणीने उपदेश आपी ते दुःख टालवाने सामर्थवान तथा (कुसले के०) कर्म विदारवाने निपुण अने (महे के०) महोटा ऋषीश्वर साधु तथा (अणंतनाणीय के०) अनंत अविनाशी जेनुं ज्ञा प्रगटयुंछे (अणंतदंसीके०) अनंत अविनाशी जेमनुं दर्शन प्रगटयुं छे (जसस्सिणोके० यशस्वी एटले जेनो यश त्रण भुवनमां व्याप्योछे (चक्कुपहठियस्स के०) लोकने भूत समानछे केमके लोकना भावना जे भेद ते सर्व परिछेछे माटे लोकने चक्षु स्थानके वर्तेछे (जाणाहि धम्मंच के०) एवा श्री महावीर प्रणीत जे श्रुत चारित्र धर्म तेने धर्म जाणो. (धिइंच के०) तथा तेज संयमने विषे धृति एटले धैर्यपणुं ते ण श्रीमहावीरनोज (पेहि के०) प्रेक्ष्यो एटले देखो एटले श्रुत चारित्ररूप संयम विषे जेहने रतिछे धैर्यछे. ॥ ३ ॥ (उड्ढंअहेयंतिरियंदिसासु) के० उंचोनीचो अने र्छो एटले चौदराज लोक मांहे पूर्वादिक अढार द्रव्य दिशाउ अने अढार भावदिशा मध्ये (तसायजेथावरजेहपाणा के०) जे बेंद्रियादिक त्रस प्राणी अने एकेंद्री पृथ्वी यादिक जे स्थावर प्राणीउछे (सेणिच्चणिच्चेहिसमिक्खपन्ने के०) तेने भगवंत नित्य नित्य भेदे द्रव्य पर्याय भेदे सम्यक् प्रकारे जाणे एवा श्रीमहावीर वीतराग देव णे संसार समुद्र मांहे पडता बुडतां प्राणीने (दीवेव के०) द्वीप समान एवो (समि यं के०) समभावि (धम्मं के०) धर्म (उदाहु के०) कह्यो छे. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—सभगवान् वीरः खेदं प्राणिनां कर्मविपाकजं दुःखं जानातीति खेदज्ञः कु शलोनिपुणोमहर्षिस्तपश्चरणानुष्ठायी अनंतज्ञानी अनंतदर्शीच । विशेषग्राहकं ज्ञानं सा मान्यग्राहकं दर्शनं तेऽअपि यस्यानंते तस्य यशस्विनोजगवतोलोकस्य चक्षुःपथे प्र वचनमार्गे स्थितस्य भवस्थकेवलिनइत्यर्थः । तस्य धर्मं संसारतारणसमर्थं धृतिंच सं यमनिभक्ततां जानीषे । ततः (पेहित्ति) कथय । अथवा तथैवेति यथा धर्मस्तथा धृतिर

त्ति ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च सर्वदिक्षु चतुर्दशरज्ज्वात्मके ये त्रसाः स्थावराश्च ये प्राणिनस्तान् नित्यानित्याभ्यां समीक्ष्य ज्ञात्वा प्राज्ञोजगवान् दीपइव प्रकाशकत्वात् धर्ममुदाह् उक्तवान् समतया । यदागमः । जहापुसस्सकछइ तहातुछस्सकछइ इति ॥ ४ ॥

॥ टीका—स एवं पृष्टः सुधर्मस्वामी श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिगुणान् कथयितुमाह् । (खेयन्नएमेइत्यादि) स जगवान् चतुस्त्रिंशदतिशयसमेतः खेदं संसारांतर्वर्तिनां प्राणिनां कर्मविपाकजं डुःखं जानातीति खेदज्ञोडुःखापनोदनसमर्थोपदेशदानात् । यदिवा क्षेत्रज्ञोयथावस्थितात्मस्वरूपपरिज्ञानादात्मज्ञइति । अथवा क्षेत्रमाकाशं तज्जानातीति क्षेत्रज्ञोलोकालोकस्वरूपपरिज्ञातेत्यर्थः । तथा जावकुशानष्टविधकर्मरूपान् लुनाति छिनत्ति कुशलः प्राणिनां कर्मोच्छित्तये निपुणइत्यर्थः । आशु शीघ्रं प्रज्ञा यस्याऽसावाशुप्रज्ञः ।सर्वत्र सदोपयोगान्नछद्मस्थइव विचिंत्य जानातीति जावः । महर्षिरिति क्वचित्पाठः । महांश्चासावृषिश्च महर्षिरत्यंतोग्रतपश्चरणानुष्ठायित्वादतुलपरीषहोपसर्गसहनाच्चेति । तथा अनंतमविनाश्यनंतपदार्थपरिच्छेदकं वा ज्ञानं विशेषग्राहकं यस्यासावनंतज्ञानी । एवं सामान्यार्थपरिच्छेदकत्वेनाऽनंतदर्शी । तदेवं जूतस्य जगवतोयशोनृसुरासुरातिशाय्यतुलं विद्यते यस्य सयशस्वी तस्य लोकस्य चक्षुःपथे लोचनमार्गे जवस्थकेवलावस्थायां स्थितस्य लोकानां सूक्ष्मव्यवहितपदार्थाविर्भावनेन चक्षुर्जूतस्य वा जानीहि एवं गछ । धर्मं संसारोद्धरणस्वजावं तत्प्रणीतं वा श्रुतचारित्राख्यं तथा तस्यैव जगवतस्तथोपसर्गितस्याऽपि निष्प्रकंपां चारित्राचलनस्वजावां धृतिं संयमे रतिं तत्प्रणीतां वा प्रेक्षस्व सम्यक्कुशाग्रीयया बुद्ध्या पर्यालोचयेति । यदिवा तैरेव श्रमणादिभिः सुधर्मस्वाम्यभिहितो यथा त्वं तस्य जगवतोयशस्विनश्चक्षुष्पथे व्यवस्थितस्य धर्मं धृतिं च जानीषे । ततोऽस्माकं (पेहित्ति) कथयेति ॥ ३ ॥ सांप्रतं सुधर्मस्वामी तज्गुणान् कथयितुमाह् । (उड्ढंअहेयमित्यादि) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्षु सर्वत्रैव चतुर्दशरज्ज्वात्मके लोके ये केचन त्रस्यंतीति त्रसास्तेजोवायुरूपाविकलेंद्रियपंचेंद्रियजेदात् त्रिधा । तथा येच स्थावराः पृथिव्यंबुवनस्पतिजेदात् त्रिविधाः । एते श्वासादयः प्राणाविद्यंते येषां ते प्राणिनइत्यनेन च शाक्यादिमतनिरासेन पृथिव्याद्येकेंद्रियाणामपि जीवत्वमावेदितं जवति । सजगवांस्तान् प्राणिनः प्रकर्षेण केवलज्ञानित्वात् जानातीति प्रज्ञः सएव प्राज्ञोनित्यानित्याभ्यां इव्यार्थपर्यायार्थाश्रयणात् समीक्ष्य केवलज्ञानेनाऽर्थान् परिज्ञाय प्रज्ञापनायोग्यानाहेतुत्वेन संबंधः । तद्यथा । सप्राणिनां पदार्थाविर्जावनेन दीपवत् दीपः । यदिवा संसारार्णवपतितानां सडुपदेशप्रदानतआश्वासहेतुत्वात् दीपइव दीपः । सएवंजूतः संसारोत्तारणसमर्थं श्रुतचारित्राख्यं सम्यक् इर्न गतं सदनुष्ठानतया रागद्वेषरहितत्वेन समतया वा ।

तथाचोक्तं । जहापुस्सस्सकछइतहातुबस्सकछइइत्यादि समं वा धर्ममुत्प्रावस्येना उक्तवान् । प्राणिनामनुग्रहार्थं न पूजासत्कारार्थमिति ॥ ४ ॥

से सव्वदंसी अभिभूयनाणी, णिरामगंधे धिइमं ठितप्पा ॥ अणुत्तरे सव्व जगंसि विज्जं, गंथा अतीते अभए अणाऊ ॥ ५ ॥ स भूइपन्ने अणिए अचारी, उहंतरे धीरे अणंतचक्खु ॥ अणुत्तरे तप्पति सूरिएवा, वइरोयणिं देवतमं पगासे ॥ ६ ॥

अर्थ–(सेके०) ते भगवंत (सव्वदंसीके०) सर्वदर्शी एटले लोकालोकने देख वली (अभिभूतनाणी के०) बावीश परिसहने जीतवा थकी केवल ज्ञानी थया (रामगंधेके०) निरामगंध एटले मूलोत्तर गुण विशुद्ध संयम पालक तथा (धिइमं धैर्यवंत (ठितप्पाके०) स्थितात्मा एटले समस्त कर्मना क्षय थकी आत्म स्वरूप जे स्थित थयाछे तथा (अणुत्तरेसव्वजगंसिविज्जं के०) अनुत्तर एटले प्रधान स गतमां निरुपम ज्ञाता माटे विद्वान् एटले भली बुधिवंतछे तथा (गंथाअतीतेके०) थकी अतीत एटले निर्ग्रंथ बाह्याभ्यंतर परिग्रह रहितछे. (अभएके०) सप्त भय र तेना नाम कहेछे पेहेलुं इहलोकभय बीजुं परलोकभय त्रीजुं आदान भय चोथुं अक भय पांचमुं वेदना भय छठुं अपकीर्त्तिभय सातमुं मरण भय तथा (अणाऊ के० र प्रकारना आयुकर्म करी रहितछे ॥ ५ ॥ (सके०) ते भगवंत (भूइपन्ने के०) प्राज्ञ एटले अनंत ज्ञानी तथा (अणिएअचारी के०) अप्रतिबद्ध विहारी ज्ञा (उहंतरेके०) उघ एटले संसाररूप समुद्रने तरनार (धीरेके०) धीर एटले निश्चल (तचक्खु के०) अनंत ज्ञानरूप चक्षुना धरनार (अणुत्तरेतप्पतिसूरिएवा के०) सूर्य सर्व थकी अधिक तपे तेम भगवंत ज्ञाने करी सर्व थकी उत्तम प्रधानछे (व णिंदेवतमंपगासे के०) तथा वैरोचनेंद्र एटले अग्नी जेम अंधकारने दूर करी अ प्रकाशकरेछे तेम श्रीमहावीर यथावस्थित पदार्थना प्रकाशक जाणवा ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–ससर्वदर्शी अभिभूय द्वाविंशतिपरीषहान् पराजित्य ज्ञानं च केवल विद्यते यस्य सज्ञानी निर्गतआमोविशोधिकोटिरूपोगंधोयस्मात्सनिरामगंधः । मू गुणविशिष्टचारित्रइत्यर्थः । धृतिमान् स्थैर्यसंपन्नः स्थितात्मा निर्मलात्मा अनु त्तरष्टः सर्वस्मिन्जगति विद्वान् सर्वपदार्थवेत्ता ग्रंथाद्वाह्याभ्यंतरपरिग्रहादतीतोनि त्यर्थः । अभयः सप्तभयरहितः । नविद्यते चतुर्विधमप्यायुर्यस्यासावनायुः ॥५॥ भू रोत्र वृद्धौ । भूतिप्रज्ञोवृद्धप्रज्ञो ऽनंतज्ञानइत्यर्थः । अनियतचारी उघं संसारं तरती

पतरः। धिया राजतेधीरः । अनंततया ऽनंतत्वाच्चक्षुर्ज्ञानं यस्य स तथा । यथा सूर्योऽनुत्तरं सर्वाधिकं तपति यथा वा वैरोचनोऽग्निः सएव प्रज्वलितत्वादिंद्रः सयथा तमोपनीय प्रकाशयति एवमसावपि भगवान् ॥ ६ ॥

॥ टीका–किंचाऽन्यत् । (सेसव्वदंसीत्यादि) सभगवान सर्वं जगत् चराचरं सामान्येन दृष्टुं शीलमस्य ससर्वदर्शी । तथाऽभिभूय पराजित्य मत्यादीनि चत्वार्यऽपि ज्ञानानि यद्वर्तते ज्ञानं केवलाख्यं तेन ज्ञानेन ज्ञानी । अनेन चाऽपरतीर्थाधिपाधिकत्वमावेदितं भवति । ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षइति कृत्वा तस्य भगवतो ज्ञानं प्रदर्श्य क्रियां दर्शयितुमाह। निर्गतोऽपगतश्रामोऽविशोधिकोटयाख्यस्तथा गंधोविशोधिकोटिरूपोयस्मात् सभवति निरामगंधः । मूलोत्तरगुणभेदभिन्नां चारित्रक्रियां कृतवानित्यर्थः । तथाऽसह्यपरीषहोपसर्गाभिद्रुतोऽपि निष्प्रकंपतया चारित्रधृतिमान् तथा स्थितोव्यवस्थितोऽशेपकर्मविगमादात्मस्वरूपं आत्मा यस्य स भवति स्थितात्मा ।एतच्च ज्ञानक्रिययोः फलद्वारेण विशेषणं । तथा नास्योत्तरं प्रधानं सर्वस्मिन्नऽपि जगति विद्यते सतथा विद्वानिति सकलपदार्थानां करतलामलकन्यायेन वेत्ता । तथा बाह्यग्रंथात् सचित्तादिभेदादांतराच्च कर्मरूपादतीतोऽतिक्रांतोग्रंथातीतोनिर्ग्रंथइत्यर्थः । तथा न विद्यते सप्तप्रकारमपि भयं यस्याऽसावभयः समस्तभयरहितइत्यर्थः । तथा न विद्यते चतुर्विधमप्यायुर्यस्य सभवत्यनायुर्दग्धकर्मबीजत्वेन पुनरुत्पत्तेरभावादिति ॥ ५ ॥ अपिच (सभूइपन्नेइत्यादि) । भूतिशब्दोवृद्धौ मंगले रक्षायां च वर्तते । तत्र भूतिप्रज्ञः प्रवृद्धप्रज्ञः । अनंतज्ञानवानित्यर्थः । तथा भूतिप्रज्ञोजगद्रक्षाभूतिप्रज्ञः । एवं सर्वमंगलभूतिप्रज्ञइति । तथा अनियतमप्रतिबद्धं परिग्रहोयोगाच्चरितुं शीलमस्याऽसावनियतचारी । तथौघं संसारसमुद्रं तरितुं शीलमन्य स तथा धीर्बुद्धिस्तया राजतइति धीरः परीषहोपसर्गाऽक्षोभ्योवा धीरः । तथा अनंतं ज्ञेयानंततया नित्यतया वा चक्षुरिव चक्षुः केवलं ज्ञानं यस्याऽनंतस्यवा लोकस्य पदार्थप्रकाशकतया वा चक्षुर्भूतोयः सभवत्यनंतचक्षुः । तथा यथा सूर्योऽनुत्तरं सर्वाधिकं तपति न तस्मादधिकस्तापेन कश्चिदस्ति । एवमसावपि भगवान् ज्ञानेन सर्वोत्तमइति । तथा वैरोचनोऽग्निः सएव प्रज्वलितत्वात् इंद्रोयथाऽसौतमोऽपनीय प्रकाशयति एवमसावपि भगवानज्ञानतमोऽपनीय यथावस्थितपदार्थप्रकाशनं करोति ॥ ६ ॥

अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं, णेया मुणी कासव आसुपन्ने ॥ इं
देव इंदाण महाणुभावे सहस्सणेता दिवि णं विसिठे ॥७॥ से प
न्नया अक्खय सागरेवा, महोदहीवावि अणंतपारे ॥ अणाइ
लेया अकसाइ मुक्के (पाठांतरे भिक्खु) सक्केव देवाहिवई जुईमं ॥८॥

अर्थ-(अणुत्तरंधम्ममिणंजिणाणं के०) जे श्रीऋषन्नादिक प्रन्नाववंत तीर्थंकरो तु संबंधी जे निरुपम धर्म तेनो नायक एटले तेने (णेया के०) जाणे एवा (मुण के०) चारित्रवान (कासव के०) काश्यपगोत्री श्रीमहावीर (आसुपन्ने के०) अ वली प्रज्ञानो जाण (इंदेवदेवाणमहाणुन्नावे के०) जेम इंद्र हजारो देवतानो नायक महाप्रन्नाववंत देवो मांहे प्रधान तेम श्री महावीर केवलज्ञानी (सहस्सणेतादिविः विसिठे के०) सहस्र पुरुषोमां देवताना नायक जेइंद्रतेनी पेरे विशिष्ट माहानुजा जाणवा ॥ ७ ॥ (सेके०) तेन्नगवंत (पन्नयाअरकयसागरेवा के०) प्रज्ञायें एटलेबुद्धि यें करीने अक्षयछे वा शब्द विशेषणने अर्थेछे कोनी पेरे तोके जेम समुद्र जे (मह दहीवावि के०) महोदधी एवो स्वयंन्नुरमण समुद्र (अणंतपारे के०) निर्मल जेनुं लछे इत्यादिक गुणे करी अनंतअपारछे तेम श्रीवीरपण (अणाइलेया के०) अकलु अकषाइ थका (निरकू के०) निक्षाये आजीविका करेछे यद्यपि निःशेष कर्मक्षय क त्रैलोक्यने पूज्यछे तथापि निक्षाये आजीवेछे परंतु अक्षीणमाहानसी प्रमुख लब्धी प्रयुंजता नथी एवा अनेक गुणयुक्त श्रीमहावीरदेवछे तथा (सक्केवदेवाहिवईजुई के०) शक्रेंद्र देवताना स्वामी तेनी पेरे दीप्तिमान्छे ॥ ८ ॥

॥ दीपिका-अनुत्तरं धर्मं जिनानामृषन्नादिनां सबंध्ययं मुनिः श्रीवीरोनेता प्रणेता काश् पोगोत्रेण। आशुप्रज्ञः केवली। नेताइति ताच्छीलिकस्तृन् । तद्योगे नलोकाव्ययेतिषष्ठी षेधाद्धर्ममिति कर्मणिद्वितीया। यथा इंद्रोदेवसहस्राणां मध्ये महानुन्नावः। णं वाक्या कारे। दिवि स्वर्गे विशिष्टोरूपबलादिन्निः। एवं स न्नगवान् सर्वेन्न्योविशिष्टोनेता ॥७॥ सन्न वान प्रज्ञयाक्षयोऽक्षीणज्ञानइत्यर्थः । यथा महोदधिः सागरः स्वयंन्नुरमणश्चानंत रोविस्तीर्णगंन्नीरजलोऽक्षोन्यश्चानाविलोऽकलुषजलस्तथा न्नगवानपि अकलुषोपि मुक्तः र्मबंधात् यथा शक्रोदेवधिपतिर्द्युतिमान् दीप्तिमान ॥ ८ ॥

॥ टीका-किंच (अणुत्तरमित्यादि) । नाऽस्योत्तरोऽस्तीत्यनुत्तरस्तमिममनुत्तरं ध जिनानामृषन्नादितीर्थकृतां संबंधिनमयं मुनिः श्रीमान् वर्धमानाख्यः काश्यपोगोत्रेणा प्रज्ञः केवलज्ञानी उत्पन्नदिव्यज्ञानोनेता प्रणेतेति । ताच्छीलिकस्तृन् तद्योगे नलोका यनिष्ठेत्यादिना षष्ठीप्रतिषेधाद्धर्ममित्यत्र कर्मणिद्वितीयैव । यथा चेंद्रोदिवि स्वर्गे देवस स्राणां महानुन्नावोमहाप्रन्नाववान् । णमितिवाक्यालंकारे । तथा नेता प्रणायको शिष्टोरूपबलवर्णादिन्निः प्रधानएवं न्नगवानपि सर्वेन्न्योऽपि विशिष्टः प्रणायकोमहा न्नावश्चेति ॥ ७ ॥ अपिच (सेपन्नयेत्यादि) असौ न्नगवान् प्रज्ञायतेऽनयेति प्रज्ञा या अक्षयोन तस्य ज्ञातव्येर्थे बुद्धिः प्रतिक्षीयते प्रतिहन्यते वा । तस्य हि बुद्धिः वल

ज्ञानाख्या साच साद्यपर्यवसाना कालतोऽव्यक्षेत्रभावैरप्यनंता। सर्वसाम्येन दृष्टांताभावादे कदेशेन त्वाह। यथा सागरइति। अस्य वा विशिष्टत्वात् विशेषणमाह। महोदधिरिव स्वयंभूरमणइवाऽनंतपारः। यथाऽसौ विस्तीर्णोगंभीरजलोऽक्षोभ्यश्च। एवं तस्याऽपि भगवतो विस्तीर्णा प्रज्ञा स्वयंभूरमणानंतगुणोगंभीरो ऽक्षोभ्यश्च। यथा चासौ सागरोऽनाविलोऽकलुपजल एवं भगवानपि तथाविधकर्मलेशाभावादकलुपज्ञानइति। तथा कपायाविद्यंते यस्याऽसौकपायी नकपायी अकपायी। तथा ज्ञानावरणीयादिकर्मबंधनाद्विमुक्तोमुक्तः। भिक्षुरिति क्वचित्पाठः। तस्याऽयमर्थः। सत्यपि निःशेषांतरायक्षये सर्वलोकपूज्यत्वेच तथापि भिक्षामात्रजीवित्वात् भिक्षुरेवाऽसौ नाऽक्षीणमहानसादिलब्धिमुपजीवतीति। तथा शक्रइव देवाऽधिपतिर्द्युतिमान् दिप्तिमानिति ॥ ८ ॥

से वीरिएणं पडिपुन्नवीरिए, सुदंसणेवा णगसवसेट्ठे॥ सुरालएवा
सि मुदागरे से, विरायए णेगगुणोववेए ॥ ९॥ सयं सहस्साणउ
जोयणाणं, तिकंभगे पंभगवेजयंते॥ से जोयणेणवणवतिसहस्से
उद्धुस्सितो हेठसहस्समेगं ॥ १० ॥

अर्थ–(सेवीरिएणंपडिपुन्नवीरिए के०) ते भगवंत श्रीमहावीर वीर्यांतराय कर्मना क्षय थकी बलेकरी प्रतिपूर्ण वीर्यवानछे एटले संघयणादिके बलवान छे (सुदंसणेवा णगसव्वसेठे के०) सुदर्शन शब्दे मेरुपर्वत ते जेम सर्व पर्वतमां श्रेष्ठछे तेम भगवंत पण ऐश्वर्यगुणे करी सर्वमां श्रेष्ठछे वली (सुरालएवासि के०) देवलोकना निवासी देवताने (मके०) तेमेरुपर्वत (मुदाकर के०) हर्षनो करनारछे (अणेगगुणोववेए के०) प्रशस्त एवा अनेक वर्णादिक गुणे करी (विरायएके०) विराजमान एटले शोभेछे तेम श्रीभगवानप ण जाणवा ॥९॥ तेमेरु पर्वत (सयंसहस्साणउजोयणाणंके०) सतसहस्र योजन प्रमाण सर्वांगे उंच पणे जाणवो तेमज (सेके०) ते पर्वतना (तिकंभ के०) त्रण कांमछे एक भूमिमय बीजो सुवर्णमय त्रीजो वैडूर्यमयछे अने (पंभगवेजयंते के०) पंभगवनछे ते वैजयंति एटले ध्वजा समान शोभेछे (सेजोयणेणवणवतिसहस्से के०) ते मेरु पर्वत णवणवति एटले नवाणु हजार योजन (उद्धुस्सितो के०) उंचो जाणवो अने (हेठसहस्समेगं के०) नीचे भूमि मध्ये एक हजार योजननो कंदछे एम सर्व मली एक लाख योजन प्रमाणछे ॥ १० ॥

॥ दीपिका–सभगवान वीर्येण बलेन प्रतिपूर्णवीर्यः सुदर्शनोमेरुर्जंबूद्वीपमध्यगतोच या नगानां पर्वतानां सर्वेषां श्रेष्ठस्तथा भगवान् गुणैः श्रेष्ठः। यथाच सुरालयः स्वर्गः सु

राणां मुदाकरोह्र्षजनकोऽनेकैर्गुणैर्वर्णरसगंधादिनिरुपेतोविराजते एवं जगवा
॥ ए ॥ समेरुर्योजनसहस्राणां शतमुच्चैस्त्वेन त्रीणि कंडकानि यस्य सत्रिकंड
थाहि । जौमं जांबूनदं वैदूर्यंचेति । सकिंजूतः । पंडकं वनं वैजयंतीकल्पं पताका
सि स्थितं यस्य सपंडकवैजयंतः सनवनवतियोजनसहस्राणि ऊर्ध्वोच्छ्रितः
सहस्रमेकमवगाढः ॥ १० ॥

॥ टीका–किंच (सेवीरिएणमित्यादि) । स जगवान् वीर्येणौरसेन बलेन
ननादिनिश्च वीर्यांतरायस्य निःशेषतः क्षयात् प्रतिपूर्णवीर्यस्तथा सुदर्शनोमेरु
पनाजिजूतः । तथा नगानां पर्वतानां सर्वेषां श्रेष्ठः प्रधानस्तथाजगवानपि वीर्येण
गुणैः सर्वश्रेष्ठइति । तथा यथा सुरालयः स्वर्गस्तन्निवासिनां मुदाकरोह्र्षजनकः
वर्णरसगंधस्पर्शप्रजावादिनिर्गुणैरुपेतोविराजते शोजते । एवं जगवानप्यने
पेतोविराजतइति । यदिवा यथा त्रिदशालयोमुदाकरो ऽनेकैर्गुणैरुपेतोविराज
एवमसावपि मेरुरिति ॥ ए ॥ पुनरपि दृष्टांतजूतमेरुवर्णनायाह । (सयंसः
मित्यादि) समेरुर्योजनसहस्राणां शतमुच्चैस्त्वेन । तथा त्रीणि कंडान्यस्येति
तद्यथा जौमं जांबूनदं वैदूर्यमिति । पुनरप्यसावेव विशेष्यते । पंमकवैजयंतइति । पं
शिरसि व्यवस्थितं वैजयंतीकल्पं पताकाजूतं यस्य सतथाऽसावूर्ध्वमुच्छ्रितोनवन
जनसहस्राण्यधोऽपि सहस्रमेकमवगाढइति. ॥ १० ॥

पुठे णन्ने चिठइ जूमिवठिए, जं सूरिया अणुपरिवट्टयंति ॥ से
हेमवन्ने बहुनंदणेय, जंसी रतिं वेदयंती महिंदा ॥ ११ ॥ से पव
ए सद्दमहप्पगासे, विरायती कंचणमठवन्ने ॥ अणुत्तरे गिरिसु
य पव्वडुग्गे, गिरीवरे से जलिएव जोमे ॥ १२ ॥

अर्थ–ते मेरु पर्वत (णन्ने के०) आकाशे (पुठे के०) फरशीने (चिठइ
ह्योठे तथा (जूमिके०) जूमिकाने (वठिएके०) अवगाही रह्योठे तिर्छो ऊंचो अ
एमलोक व्यापठे (जंसूरियाअणुपरियट्टयंतिके०) जे मेरु पर्वतने चोमर अगीआ
कवीश योजनने अंतरे सूर्य प्रमुख ज्योतषी देवो परिज्रमण करता थका प्रदक्षि
रह्याठे तथा (सेहेमवन्ने के०) ते मेरुपर्वत सुवर्णमय ठे तथा (बहुके०) घ
तु अहीं नंदनादिक चार जाणवा एवा (नंदणेयके०) रलीयामणा वनठे, जे
एटले पहेली जूमिकाने विषे जद्रशाल वनठे ते उपर पांचशे योजन ऊंचु बीजु
वनठे ते उपर साढी बाशठ हजार योजन ऊंचु चडता वली त्रीजुं सोमनस व

पठी छत्रीश हजार योजन ऊंचु चडता शीखर उपर चोथु पंमग वन खंमछे (जंसीरतिं वेदयंतीमहिंदाके०) जे पर्वतने विषे महेंड पण क्रीडा करवाने अर्थे स्वर्ग थकी आवी ने रती सुख नोगवेछे ॥ ११ ॥ (सेपव्वए के०) ते पर्वत वली केवोछे तोके मंदर मेरु सुदर्शन सुरगिरि इत्यादिक (सद्द के०) शब्दे करी (महप्पगासे के०) मोहोटो प्रकाशवान एटले प्रसिद्ध एवो छतो (विरायतीके०) शोनेछे तथा (कंचणमठवन्ने के०) सुवर्णनी पेरे देदीप्यमान सुकुमाल वर्णछे (अणुत्तरे गिरिसुयपव्वडुग्गे के०) सर्व पर्वत मां अनुत्तर एटले प्रधान एवी पर्व एटले मेखलायें करी डुर्ग एटले विषमछे अर्थात् सामान्य जीवने चढता विषमछे तथा (गिरिवरेसेजलि एवन्नोमे के०) प्रधान मणी अने औषधियें करी देदीप्यमान् नूमि सरखो पृथवी प्रदेशनी पेरे जाणवो. ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–नन्नसि स्पृष्टोलग्नोनूमिंवा अवगाह्य स्थितः । यं मेरुं सूर्याआदित्याअनु परिवर्तयंति पार्श्वतोच्रमंति सहेमवर्णः। बहूनि चत्वारि नंदनानि यस्य सतथा। तथाहि नूमौ नद्रशालवनं १ ततः पंचयोजनशतान्यन्निक्रम्य नंदनंवनं २ ततोद्विपष्ठियोजन सहस्राणि पंचशताधिकान्यतिक्रम्य सौमनसवनं ३ ततः पट्त्रिंशत्सहस्राण्यारुह्य शिखरे पंडकवनं ४ इति मेरोश्चत्वारि वनानि। तथा यस्मिन् मेरौ महेंड्रारतिं वेदयंत्यनुनवंति ॥ ११ ॥ सपर्वतोमेरुर्मंदरः सुदर्शनः सुगिरिरित्यादिनिः शब्दैः महान् प्रकाशः प्रसिद्धिर्यस्य सशब्दमहाप्रकाशोविराजते । कांचनस्य मृष्टः शुद्धोवर्णोयस्य सतथा अनुत्तरउत्कृष्टः । गिरिषु मध्ये पर्वन्निर्मेखलान्निर्डुर्गोविषमोगिरवरमणिन्निरोषधीन्निश्च ज्वलितोदीप्यमानइव नूमिदेशं ॥ १२ ॥

॥ टीका–तथा (पुढेणन्नेइत्यादि)। नन्नसि स्पृष्टोन्नग्नोनन्नोव्याप्य तिष्ठति । तथा नूमिं चावगाह्य स्थितइति ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्लोकसंस्पर्शी । यथा यं मेरुं सूर्यादयोज्योतिष्काअनुपरिवर्त्तयंति यस्य पार्श्वतोच्रमंतीत्यर्थ. । तथाऽसौ हेमवर्णोनिष्टप्तजांबूनदाजस्तथा बहूनि चत्वारि नंदनवनानि यस्य सबहुनंदनवनः । तथाहि । नूमौ नद्रशालवनं ततः पंचयोजनशतान्यारुह्य मेखलायां नंदनं तथाद्विपष्टियोजनसहस्राण्यधिकान्यतिक्रम्य सौमनसं ततः पट्त्रिंशत्सहस्राण्यारुह्य शिखरे पंमकवनमिति। तदेवमसौ चतुर्नंदनवनाद्युपेतोविचित्रक्रीमास्थानसमन्वितः। यस्मिन् माहेंड्रा अप्यागत्य त्रिदशालयाड्रमणीयतरगुणेन रतिं रमणक्रीमां वेदयंत्यनुनवंतीति ॥ ११ ॥ अपिच (सेपव्वएइत्यादि) समेर्वाख्योऽयं पर्वतोमंदरोमेरुः सुरगिरिरित्येवमादिनिः शब्दैर्महान् प्रकाशः प्रसिद्धिर्यस्य सशब्दमहाप्रकाशोविराजते शोनते । कांचनस्येव मृष्टः श्लक्ष्णःशुद्धो वा वर्णोयस्य सतथा । एवं नविद्यते उत्तरः प्रधानोयस्याऽसाव

नुत्तरस्तथा गिरिषु मध्ये पर्वभिर्मेखलादिभिर्दंष्ट्रापर्वतैर्वा डुर्गोविषमः सामान्यजंनूनां डुरारोहोगिरिवरः पर्वतप्रधानः । तथाऽसौ मणिभिरोषधीभिश्च देदीप्यमानतया जौमश्च नूदेशइव ज्वलितइति ॥ १२ ॥

महीइ मज्झंमि ठिते णगिंदे, पन्नाय ते सुरिय सुद्धलेसे ॥ एवं सि
रीए उस नूरिवन्ने, मणोरमे जावइ अच्चिमाली॥ १३॥ सुदंस
णस्सेव जसो गिरिस्स, पचुच्चई महतो पव्वयस्स ॥ एतोवमे
समणे नायपुत्ते, जातीजसो दंसणनाणसीले ॥ १४ ॥

अर्थ—(महीइमज्झंमिठिते के०) मही एटले पृथ्वीने वचमां आवेलो जे जंबूद्वी तेना मध्यनागे एटले वचमां वर्त्तेछे (णगिंदे के० नगेंद्र एटले सर्व पर्वतोंना इंद्र स खो ए मेरु पर्वत जाणवो (ते के०) ते पर्वत लोकमां (सूरिय के०) सूर्यनी पेरे (सु द्धलेसे के०) विसुद्धनिर्मल कांतिवानछे एम (पन्नाय के०) प्रकर्षे करी जाणीये (ए के०) ए प्रकारे करी (सिरीएउस के०) लक्ष्मीये सहित ते मेरू रत्न (नूरिवन्ने के० अनेक वर्णे करी सहितछे तथा (मणोरमे जावइ अच्चिमाली के०) मनने रमाडना तथा जेनी ज्योति अर्चिमाली एटले सूर्य तेनी पेरे दशे दिशिने विषे प्रकाश पामेछे ॥१३ हवे ए मेरु पर्वतनी उपमाउ श्रीमहावीर नगवंतनी साथे जोडेछे. (सुदंसणस्सेवज सोगिरिस्स के०) सुदर्शन नामा जे गिरि एटले पर्वत तेनोजे यश (पचुच्चई के०) क हियेछैए तेवो (महतोपव्वयस्सके०) महोटो मेरुपर्वत जाणवो (एतोवमेके०) एमेरुनी पमाये (समणेनायपुत्ते के०) श्रमण तपश्वी ज्ञातपुत्र श्रीमहावीर देव जाणवा (के रीते तोके (जातीजसो दंसणनाणसीलेके०) जातियें करी, यशे करी, दर्शने करी, ज्ञा करी अने शीले करी समस्त जेटला धर्म मार्गना प्रकाशकोछे तेमां श्रीमहावीर देव प्रधान

॥ दीपिका—महारत्नप्रनापृथिव्यामध्यदेशे जंबूद्वीपस्तन्मध्ये स्थितोनगेंद्रः प्रक ण ज्ञायते सूर्यवत् शुद्धलेश्यः सूर्यसमतेजाः। एवं पूर्वोक्तप्रकारेण श्रिया समेरुर्नूरिवर्ण ऽनेकवर्णरत्नोपेतत्वात् मनोरमः अर्चिमाली सूर्यइव द्योतयति दिशः ॥ १३ ॥ एतद्यश कीर्तनं सुदर्शनस्य गिरेर्मेरोः प्रोच्यते महतः पर्वतस्य एतदुपमएततुल्यः श्रमणोज्ञा पुत्रः श्रीवीरः सजात्या यशसा दर्शनज्ञानाभ्यां शीलेन वा श्रेष्ठः । अर्थो आदित्वान्म र्यायाद्प्रत्ययेन योज्यं- ॥ १४ ॥

॥ टीका—किंच (महीइइत्यादि) । मत्यां रत्नप्रनापृथिव्यां मध्यदेशे जंबूद्विपस्तस्याऽ द्रुमध्यदेशे सोमनस, विद्युत्प्रन, गंधमादन माल्यवंत, दंष्ट्रापर्वतचतुष्टयोपशोभितः सम

जागे दशसहस्रविस्तीर्णः शिरसि सहस्रमेकमधस्तादपि दशसहस्राणि नवतियोजनानि योजनैकादशनागैर्दशजिरधिकानि । विस्तीर्णश्चत्वारिंशद्योजनोच्छ्रितचूडोपशोजितोनगेंद्रः पर्वतप्रधानोमेरुः प्रकर्षेण लोके ज्ञायते सूर्यवत्तु द्युलेश्यआदित्यसमानतेजाः । एवमनंतरोक्तप्रकारया श्रिया । तुशब्दाद्विशिष्टतरया समेरुर्जूरिवर्णोऽनेकवर्णोऽनेकवर्णरत्नोपशोजितत्वात् । मनोंऽत:करणं रमयतीति मनोरमोर्चिमालीवादित्यइव स्वतेजसा द्योतयति दशदिशः प्रकाशयतीति ॥१३॥ सांप्रतं मेरुदृष्टांतोपक्षेपेण दार्ष्टांतिकं दर्शयति । (सुदंसणेत्यादि) एतदनंतरोक्तं यशः कीर्तनं सुदर्शनस्य मेरुगिरेर्महापर्वतस्य प्रोच्यते ।सांप्रतमेतदेव जगवति दार्ष्टांतिके योज्यते। एषाऽनंतरोक्तोपमा यस्यसएतडुपमः। कोऽसौ । श्रीम्यतीति श्रमणस्तपोनिष्टप्तदेहोज्ञाताः क्षत्रियास्तेषां पुत्रः श्रीमन्महावीरवर्द्धमानस्वामीत्यर्थः । सच जात्या सर्वजातिज्योयशसाऽशेषयशस्विज्योदर्शनज्ञानाज्यां सकलदर्शनज्ञानिज्यः शीलेन समस्तशीलवद्भ्यः श्रेष्ठः प्रधानः । अक्षरघटनात्तु जात्यादीनां कृतद्वंद्वानामतिशायने अर्शआदित्वादच्प्रत्ययविधानेन विधेयेति ॥ १४ ॥

गिरिवरेवा निसहो ययाणं, रुयएव सेठे वलयायताणं ॥ तउव
मे से जगजूइपन्ने, मुणीण मज्ञे तमुदाहु पन्ने ॥ १५ ॥ अणुत्तरं
धम्ममुईरइत्ता, अणुत्तरं झाणवरं झियाइ ॥ सुसुक्कसुक्कं अप
गंमसुक्कं, संखिंडुएगंतवदातसुक्कं ॥ १६ ॥

अर्थ-(गिरिवरेवानिसहोययाणं के०) जेम लांब पणे समस्त पर्वतमां निषध पर्वत श्रेष्ठठे तथा (रुयएवसेठेवलयायताणं के०) जेम वर्त्तुलाकार समस्त पर्वतमांहे रुचक नामा पर्वत श्रेष्ठठे (तउवमेसेजगजूइपन्ने के०) तेनी उपमायें श्रीमहावीर देवजगतमां जूतिप्रज्ञ एटले प्रज्ञायें करी श्रेष्ठ जाणवा (मुणीणमज्ञेके०) समस्त मुनिउमांहे (तमुदाहुपन्ने के०) तत्स्वरूप जाणवाने अत्यंतज्ञानवंत जाणवा प्रकर्षेणजानातीति प्रज्ञ ए जावजाणवो ॥ १५ ॥ ते श्रीमहावीर (अनुत्तरंधर्मं के०) प्रधान एवोजे सर्वोत्तम धर्म तेने (उदिरयित्वा के०) प्ररुपीने प्रकाशीने (अणुत्तरंझाणवरं कें०) प्रधानमां प्रधान एवोजे शुक्लध्यान तेने (झियाइ के०) ध्यावे ते जगवंतने योग निरुंध काले सूक्ष्म काययोग रुंधनावसरे शुक्ल ध्याननो त्रीजो जेद जे सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपति एवे नामेछे ते ध्याय तथा योगनिरोध थया पठी शुक्लध्याननो चोथो जेद उपरतक्रिया अने अनिवृत्ति नामे ध्यावे ते ध्यान वर्णवेठे (सुसुक्कसुक्कंअपगंमसुक्कं के०) सुष्टु प्रधान शुक्लवस्तुनी परे शुक्ल उज्वल अपगंम एटले दोष रहित अर्थात मिथ्यात्व रूप काट कलंक तेणे करी

रहित एवुं निर्दोष शुक्ल ध्यान सुवर्णनी पेरे उज्वलछे अथवा गंम शब्दे उदकनुं फेण ते सरखुं उज्वलछे तथा (संखिंडु के०) शंख अने चंद्रमा तेनीपेरे (एगंतवदातसुक्कं के०) एकांत अवदात एटले अत्यंत शुक्ल एवुं शुक्ल ध्यानछे, तेने ध्यावे ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—यथा निषधोगिरिवराणां गिरीणामायतानां मध्ये दीर्घत्वेन श्रेष्ठस्तथा वलयायतानां मध्ये रुचकः पर्वतः श्रेष्ठः। स हि रुचकद्वीपांतवर्ती मानसोत्तरगिरिरिव वृत्ता यतोऽसंख्येययोजनानि परिक्षेपेण स भगवान् तदुपमोजगति संसारे भूतिप्रज्ञः प्रभूत ज्ञानोमुनीनां मध्ये प्रज्ञः। एवं तत्स्वरूपविदउदाहुरुक्तवंतः ॥१५॥ अणुत्तरं उत्कृष्टधर्ममुदी र्य कथयित्वा ऽनुत्तरं प्रधानं ध्यानं ध्यायति सुष्ठु शुक्लवत् शुक्लं ध्यानं अपगतं गंडं दोषो यस्मात्तदपगंडं निर्दोषं शुक्लं। अथवा अपगंडमुदकफेनं तत्तुल्यं शंखेंदुवत् एकांतावदातं शुक्लध्यानोत्तरभेदद्वयं ध्यायति। तथाहि। योगनिरोधकाले सूक्ष्मं काययोगं निरुंधन् शु क्लध्यानस्य तृतीयं भेदं सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाताख्यं तथा निरुद्धयोगं चतुर्थं शुक्लध्यानभेदं व्युपरतक्रियमनिवृत्याख्यं ध्यानं ध्यायतीति ॥ १६ ॥

॥ टीका—पुनरपि दृष्टांतद्वारेणैव भगवतोव्यावर्णनमाह। (गिरिवरेत्यादि) यथा नि षधोगिरिवरोगिरीणामायतानां मध्ये जंबुद्वीपेऽन्येषु वा द्वीपेषु दैर्ध्येण श्रेष्ठः प्रधानः तथा वलयाऽऽयतानां मध्ये रुचकः पर्वतोऽन्येभ्योवलयाय तत्वेन। यथा प्रधानः स हि रुचक द्वीपांतर्वर्ती मानुषोत्तरपर्वतइव वृत्तायतोऽसंख्येययोजनानि परिक्षेपेणेति। तथा स भ गवानपि तदुपमः। यथा वाऽऽयतवृत्तताभ्यां श्रेष्ठश्च। एवं भगवानपि जगति संसारे भूति प्रज्ञः प्रभूतज्ञातप्रज्ञयाश्रेष्ठइत्यर्थः। तथा परमुनीनां मध्ये प्रकर्षेण जानातीति प्रज्ञः। एवं तत्स्वरूपविदउदाहुरुदाहृतवंतउक्तवंतइत्यर्थः ॥ १५ ॥ किंचाऽन्यत् (अणुत्तरमि त्यादि) नाऽस्योत्तरः प्रधानोऽन्योधर्मोविद्यते इत्यनुत्तरः। तमेवंभूतं धर्मं उत् प्राबल्येन ईरयित्वा कथयित्वा प्रकाश्याऽनुत्तरं प्रधानं ध्यानवरं ध्यानश्रेष्ठं ध्यायति ॥ तथाहि। उ त्पन्नज्ञानोभगवान् योगनिरोधकाले सूक्ष्मं काययोगं निरुंधन् शुक्लध्यानस्य तृतीयं भेदं सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाताख्यं। तथा निरुद्धयोगं चतुर्थंशुक्लध्यानभेदं व्युपरतक्रियमनिवृत्त्या ख्यं ध्यायति। एतदेव दर्शयति। सुष्ठु शुक्लवच्छुक्लं ध्यानं। तथा अपगतं गंडमपद्रव्यं यस्य तदपगतगंडं निर्दोषार्जुनसुवर्णवत् शुक्लं। यदिवा गंडमुदकफेनं तत्तुल्यतिति भावः। तथा शंखेंदुवदेकांतावदातं शुभ्रं शुक्लं शुक्लध्यानोत्तरं भेदद्वयं ध्यायतीति ॥ १६ ॥

अणुत्तरग्गं परमं महेसी, असेसकम्मं स विसोहइत्ता॥ सिद्धिं ग
ते साइमणंतपत्ते, नाणेण सीलेण य दंसणेण॥१७॥ रुक्खेसु णाते

जह सामलीवा, जस्सिं रतिं वेययंती सुवन्ना॥ वणेसु वाणंदण
माहु सेठं, नाणेण सीलेण य भूतिपन्ने॥ १८॥

अर्थ–ते भगवंत शैलेसी अवस्थायें शुक्लध्यानना चोथा भेदने अनंतर (साइके०) सादि अने (अणंतके०) अनंत एवी (सिद्धिंगते के०) सिद्धिगतिने विषे पोहोंता ते सिद्धिकेवीछे तोके, (अणुतरग्गं के०) सर्वमां उत्तम तथा लोकने अग्रे वर्त्तमानछे ते कारण माटे (परमंमहेसी के०) परम प्रधान मोहोटा ऋषीश्वर श्रीमहावीर देवछे जे (नाणेणसीलेणयदंसणेणके०) ज्ञाने करी दर्शनेकरी चारित्रशीलेकरी (असेसकम्मंसविसोहइत्ताके०) समस्तज्ञानावर्णादिक आठेकर्मने शोधी कर्म खपावीने मुक्तिनेविषे (पत्तेके०) पोहोता. ॥१७॥ वली उपमायें करी भगवंतने स्तवेछे; (जहके०) जेम (रुरकेसुके०) वृक्षो मांहे (णातेके०) प्रसिद्ध देवकुरु उत्तरकुरुने विषे व्यवस्थित एवुं (सामलीवाके०) साल्मली वृक्ष मोहोटुंछे (जस्सिंके०) जेनेविषे (सुवन्नाके०) सुवर्ण कुमारकादिक भुवनपति देवो आवीने (रतिंवेययंती के०) रतिवेदेछे एटले क्रीडा रूप सुख भोगवेछे तथा जेम (वणेसुवाके०) वनने विषे (णंदण के०) नंदन वन (सेठंके०) श्रेष्ठ (आहुके०) कह्युंछे उत्तम शोभाये करी सहित कह्युंछे तेम (नाणेणसीलेणयभूतिपन्ने के०) ज्ञान अने शील एटले चारित्र तेणे करी, श्री महावीर महाप्राज्ञ एटले मोहोटा जाणवा. ॥१८॥

॥ दीपिका–अनुत्तरां प्रधानां अग्र्यां च सर्वोत्तमां परमां सिद्धिं गतिं साद्यनंतां प्राप्तोमहर्षिः सअशेषं कर्म विशोध्यापनीय केन ज्ञानेन दर्शनेन शीलेनच कर्म क्षपयित्वा ॥ ॥ १७ ॥ वृक्षेषु मध्ये यथा ज्ञातः प्रसिद्धोदेवकुरुस्थितः कूटशाल्मलीवृक्षः। यस्मिन्वृक्षे सुपर्णाभवनपतिविशेषारतिं क्रीडां वेदयंतीति । वनेषु मध्ये यथा नंदनं वनं श्रेष्ठमाहुस्तथा भगवान् ज्ञानेन शीलेनच श्रेष्ठोभूतिप्रज्ञः प्रवृद्धज्ञानः ॥ १८ ॥

॥ टीका–अपिच (अणुत्तरग्गमित्यादि) तथाऽसौ भगवान् शैलेऽश्यवस्थापादितशुक्लध्यानचतुर्थभेदानंतरं साद्यपर्यवसानां सिद्धिं गतिं पंचमीं प्राप्तः । सिद्धिगतिमेव विशिनष्टि । अनुत्तरा चासौ सर्वोत्तमत्वादग्र्याच लोकाग्रव्यवस्थितत्वादनुत्तराग्र्या तां परमां प्रधानां महर्षिरसावत्यंतोग्रतपोविशेषनिष्टप्तदेहत्वादशेषं कर्म ज्ञानावरणादिकं विशोध्यापनीय च विशिष्टेन ज्ञानेन दर्शनेन शीलेनच क्षायिकेन सिद्धिं गतिं प्राप्त इति मीलनीयं ॥ १७ ॥ पुनरपि दृष्टांतद्वारेण भगवतः स्तुतिमाह । (रुरकेसुणाएइत्यादि) वृक्षेषु मध्ये यथा ज्ञातः प्रसिद्धोदेवकुरुव्यवस्थितः शाल्मलीवृक्षः सच भवनपतिक्रीडास्थानं । यत्र व्यवस्थिताअन्यतश्चागत्य सुपर्णाभवनपतिविशेषारतिं रमण

क्रीडां वेदयंत्यनुजवंति । वनेषु च मध्ये यथा नंदनं देवानां क्रीमास्थानं प्रधानं । एवं जगवानपि ज्ञानेन केवलाख्येन समस्तपदार्थाविर्जावकेन शीलेन च चारित्रेण यथा ख्यातेन श्रेष्ठः प्रधानोजूतिप्रज्ञः प्रवृद्धज्ञानोजगवानिति ॥ १७ ॥

थणियंव सद्दाण अणुत्तरे ज, चंदोव ताराण महाणुजावे ॥ गंधे सु वा चंदणमाहु सेठं, एवं मुणीणं अपडिन्नमाहु ॥ १ए॥ जहा सयंजू उदहीण सेठे, नागेसु वा धरणिंदमाहुसेठे ॥ खोउदए वा रसवेजयंते, तवोवहाणे मुणिवेजयंते ॥ ७० ॥

अर्थ–जेम (सद्दाण के०) शब्दमां (थणियंव के०) स्तनितं एटले मेघनी गर्जनानो शब्द (अणुत्तरेजके०) प्रधान एटले रुडो कह्योढे तथा (चंदोवताराणमहाणुजावे के०) जेम ग्रह नक्षत्र अने ताराने विषे चंड्मा महानुजाव कह्योढे तथा (गंधेसुवाचंदणमाहुसेठंके०) जेमसमस्त गंधमां गोशीर्ष बावना चंदन श्रेष्ठ कह्युंढे (एवं के०) एम (मुणीणं के०) समस्त साधुमां (अपडिन्नमाहुके०) अप्रतिज्ञ एटले आलोक परलोकनी आशंसा करवानी जेने प्रतिज्ञा नथी अर्थात् इहलोक परलोकनी आशंसा रहित एवा श्रीमहावीरने मोहोटा श्रेष्ठ कह्याढे ॥ १ए ॥ (जहासयंजूउदहीणसेठे के०) जेम समस्त समुड्मां स्वयंजूरमण समुड् श्रेष्ठ कह्योढे (नागेसुवाधरणिंदमाहुसेठे के०) जेम नागकुमार देवोमां धरणेंड्नामा इंड् श्रेष्ट कह्योढे (खोउदएवारसवेजयंतेके०) जेम इक्षुरसोदक समस्त रसमां प्रधान वेजयंत एटले वखाण्योढे (तवोवहाणेमुणिवेजयंतेके०) तेम तप उपधाने करी तपो विशेषे करी समस्त मुनिमां श्रीमहावीर ने प्रधानवखाण्याढे॥२०॥

॥ दीपिका–यथा शब्दानां मध्ये स्तनितं मेघगर्जितमनुत्तरं प्रधानं । तुर्विशेषणे । यथा ताराणां मध्ये चंड्रोमहानुजावः श्रेष्ठः । गंधेषु मध्ये यथा चंदनं श्रेष्ठं तज्ज्ञा आहुः । तथा मुनीनां मध्ये जगवंतं श्रेष्टमाहुः । किंजूतं । नास्य प्रतिज्ञा इहलोकपरलोकाशंसिनी विद्यते इत्यप्रतिज्ञस्तं ॥ १ए ॥ स्वयंजुवस्ते यत्रागत्य रमंतइति स्वयंजूरमणः सयथा उदधीनां समुड्राणां मध्ये श्रेष्ठः । नागेषु जवनपतिविशेषेषु धरणेंड्ं श्रेष्ठमाहुः । (खोउदति) इक्षुरसइव उदकं यस्य सइक्षुरसोदकः समुड्रोयथा रसमाश्रित्य वैजयंतः प्रधानः एवं तपउधानेन तपोविशेषेण मुनिर्जगवान् वैजयंतः प्रधानः ॥ २० ॥

॥ टीका–अपिच (थणियमित्यादि) यथा शब्दानां मध्ये स्तनितं मेघगर्जितं तदनुत्तरं प्रधानं । तुशब्दोविशेषणार्थः समुच्चयार्थो वा । तारकाणां च नक्षत्राणां मध्ये यथा

चंड्रोमहानुनावः सकलरजनिवृत्तिकारिण्या कांत्यामनोरमः श्रेष्ठः। गंधेष्विति गुणगुणिनोरनेदान्मतुब्लोपाद्वा। गंधवत्सु मध्ये यथा चंदनं गोशीर्षकाख्यं मलयजं वा तज्ज्ञाः श्रेष्ठमाहुः। एवं मुनीनां महर्षीणां मध्ये नगवंतं नाऽस्य प्रतिज्ञा इहलोकपरलोकानां शंसिनी विद्यते इत्यप्रतिज्ञस्तमेवंनूतं श्रेष्ठमाहुरिति ॥ १ए ॥ अपिच। (जहा सयंनूइत्यादि) स्वयं नवंतीति स्वयंनुवोदेवास्ते तत्राऽऽगत्य रमंतीति स्वयंनूरमणस्तदेवमुदधीनां समुड्राणां मध्ये यथा स्वयंनूरमणः समुड्रः समस्तद्वीपसागरपर्यंतवर्ती श्रेष्ठः प्रधानोनागेषु च नवनपतिविशेषेषु मध्ये धरणेंड्रं नागेंड्रं यथा श्रेष्ठमाहुः। तथा (खोउदएइति) इक्षुरसइवोदकं यस्य सइक्षुरसोदकः सयथा रसमाश्रित्य वैजयंतः प्रधानः स्वगुणैरपरसमुड्राणां पताकेवोपरि व्यवस्थितः। एवं तपउपधानेन विशिष्टतपोविशेषेण मनुते जगतस्त्रिकालावस्थामिति मुनिर्नगवान् वैजयंतः प्रधानः समस्तलोकस्य महातपसा वैजयंतीवोपरि व्यवस्थितइति ॥ २० ॥

हत्थीसु एरावणमाहु णाए, सीहो मिगाणं सलिलाण गंगा, पक्खीसुवा गेरुले वेणुदेवे, निव्वाणवादीणिह णायपुत्ते ॥ २१ ॥
जोहेसु णाए जह वीससेणे, पुप्फेसुवा जह अरविंदमाहु॥खत्तीण सेठे जह दंत्तवक्के, इसीण सेठे तह वद्धमाणे ॥ २२ ॥

अर्थ—(हत्थीसुएरावणमाहुणाएके०) जेम हस्तिउने विषे इंड्रनुवाहन ऐरावणहस्ति प्रधान कह्योठे. (सीहोमिगाणंके०) जेम मृग प्रमुख स्वापद जनावरोमां सिंह प्रधानकह्योठे (सलिलाणगंगाके०) नरतक्षेत्रनी अपेक्षायें जेमपाणीमां गंगानदिनुंपाणी निर्मल कह्युंठे(पक्खीशुवागेरुलेवेणुदेवेके०) जेम समस्त पक्षीउमां गरुड मोहोटो कह्योठे अपरनामे वेणुदेव ए जेम प्रधान कह्याठे (निव्वाणवादीणिहके०) तेम निर्वाणजे मोक्ष मार्ग तेना स्थापन करनारा वादीलोक मां (णायपुत्ते के०) श्रीमहावीर मोहोटा कह्याठे. ॥२१॥ (जहके०) जेम (जोहेसु के०) योद्धशुनटो मां (णाएके०) ज्ञातविदित (वीससेणेके०) विश्वसेन एटले चक्रवर्त्ति प्रधान कह्योठे (पुप्फेसुवाजहअरविंदमाहु के०) जेम फूलमां अरविंद कमल मोहोटुं कह्युंठे (खत्तीणसेठेजहदंतवक्के के०) जेम क्षत्रीमां दंतवाक्य एटले चक्रवर्त्ति प्रधान कह्योठे (तह के०) तेम (इसीणके०) समस्त रुषीउ मां (वद्धमाणे के०) श्रीवर्द्धमान स्वामि (सेठे के०) श्रेष्ट कह्याठे. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—हस्तिषु यथा ऐरावतं इंड्रगजं ज्ञातं प्रसिद्धं दृष्टांतनूतमाहुस्तज्ज्ञाः। यथा

मृगाणां श्वापदानां मध्ये सिंहः प्रधानः । नरतक्षेत्रापेक्षया यथोदकानां मध्ये गंगोदकं प्रधानं यथा च पक्षिणां मध्ये गरुडोऽपरनामा वेणुदेवः प्रधानस्तथानिर्वाणपथवेदकानां ज्ञातपुत्रः श्रीवीरः प्रधानोयथास्थितमोक्षार्थवादित्वात् ॥ २१ ॥ योधानां मध्ये यथा विश्वा संपूर्णा सेना यस्य सविश्वसेनश्चक्री ज्ञातः पुष्पेषु यथाऽरविंदं प्रधानमाहुः क्षत्रियाणां मध्ये यथा दांताउपशांतावाक्येनवा शत्रवोयस्मात्सदांतवाक्यश्चक्रवर्ती प्रधानस्तथा ऋषीणां मध्ये श्रीवर्धमानः श्रेष्ठः ॥ २२ ॥

॥ टीका-(हत्थीसुइत्यादि) हस्तिषु करिवरेषु मध्ये यथा ऐरावतं शक्रवाहनं ज्ञातं प्रसिद्धं दृष्टांतनूतं वा प्रधानमाहुस्तज्ज्ञाः । मृगाणां च श्वापदानां मध्ये यथा सिंहः केसरी प्रधानस्तथा नरतक्षेत्रापेक्षया सलिलानां मध्ये यथा गंगासलिलं प्रधाननावमनुनवति । पक्षिषु मध्ये यथा गरुत्मान् वेणुदेवाऽपरनामा प्राधान्येन व्यवस्थितः । एवं निर्वाणं सिद्धिक्षेत्राख्यं कर्मच्युतिलक्षणंवा स्वरूप तस्तदुपायप्राप्तिहेतुतोवा वदितुं शीलं येषां ते तथा तेषां मध्ये ज्ञाताः क्षत्रियास्तेषां पुत्रोऽपत्यं ज्ञातपुत्रः श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामी सप्रधानइति यथावस्थितनिर्वाणार्थवादित्वादित्यर्थः ॥ २१ ॥ अपिच (जोहेसुइत्यादि) योधेषु मध्ये ज्ञातोविदितोदृष्टांतनूतोवा विश्वा हस्त्यश्वरथपदातिचतुरंगबलसमेता सेना यस्य सविश्वसेनश्चक्रवर्ती यथाऽसौप्रधानः पुष्पेषु च मध्ये यथाऽरविंदं प्रधानमाहुः । तथा क्षतात् त्रायंतइति क्षत्रियास्तेषां मध्ये दांताउपशांतायस्य वाक्येनैव शत्रवः सदांतवाक्यश्चक्रवर्ती यथासौ श्रेष्ठः । तदेवं बहून् दृष्टांतान् प्रशस्तान् प्रदर्श्याऽधुना नगवंतं दार्ष्टांतिकं स्वनामग्राहमाह । तथा ऋषीणां मध्ये श्रीमान् वर्धमानस्वामी श्रेष्ठइति ॥ २२ ॥

दाणाण सेठं अन्नयप्पयाणं, सच्चेसुवा अणवज्जं वयंति ॥ तवेसु वा उत्तमबंनचेरं, लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते ॥ २३ ॥ ठिईण सेठा लवसत्तमावा, सन्ना सुहम्मा व सन्नाण सेठा ॥ निव्वाणसेठा जह सव्वधम्मा, ण णायपुत्ता परमत्थि नाणी ॥ २४ ॥

अर्थ-(दाणाणसेठंअन्नयप्पयाणं) जेम समस्त दानने विषे अन्नयदान श्रेष्ठ कह्युं (सच्चेसुवाअणवज्जंवयंति के०) जेम सत्य वचनमां निरवद्य एटले जे वचनना उच्चारे करी परने पीडा उत्पन्न नथाय ते वचन श्रेष्ठ वखाण्युंछे (तवेसुवाउत्तमबंनचेरं के०) जेम सर्व तपमां नवविध ब्रह्मगुप्ति सहित ब्रह्मचर्य श्रेष्ठकह्युंछे (लोगुत्तमेसमणेनायपुत्ते के०) तेम लोकमां उत्तम श्रमण तपस्वी श्रीमहावीर देव श्रेष्ठ वखाण्याछे. ॥ २३ ॥

(ठिईणसेठ्ठालवसत्तमावा के०) जेम स्थितिमां प्रधान लव सप्तम देवता एटले पंचानुत्तर विमानवासी देवो कह्याछे कारणके तेमनुं मनुष्यमां सात लव प्रमाण आयु कर्म जो शेष रह्युं होत तो मुक्ति पामत तेमाटेएने लव सप्तम देवो कहियें (सनासुहम्मावसनाणसेठ्ठा के०) अन्य सनाउंमां जेम सौधर्मा सना श्रेष्ठ कहीछे (निवाणसेठ्ठाजहसव्वधम्मा के०) जेम समस्त धर्मोने विषे निर्वाण जे मोक्ष ते प्रधान कह्योछे केमके अन्य दर्शनीउं पण पोत पोताना धर्मने विषे मोक्ष प्रधान बोलेछे माटे. (णणायपुत्तापरमह्यीनाणी के०) तेम ज्ञात पुत्र श्रीमहावीर थकी अन्य कोइ ज्ञानी नथी एटले सर्वेमां उत्तम ज्ञानवंत श्रीमहावीर देव जाणवा. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—यथा दानानां मध्येऽनयप्रदानं श्रेष्ठं । यडुक्तं । दीयते म्रियमाणस्य कोटिं जीवितमेव वा ॥ धनकोटिं न गृएह्रीयात्सर्वोजीवितुमिछति ॥ १ ॥ अत्रदृष्टांतः । वसंतपुरे अरिदमनोराजा चतुर्वधूयुक्तोऽन्यदा गवाक्षे क्रीडति तेन सपत्नीकेन चौरोवधस्थानं नीयमानोदृष्टः पत्निनिः पृष्टं किमनेनापराद्धं । एकेन राजनरेण तत्स्वरूपमुक्तं । अनेन चौर्यं कृतं। ततएकया पत्न्या नृपपार्श्वे पूर्वदत्तोवरोमार्गितएकदिनं चौरोमोच्यइति । राज्ञापि प्रतिपन्नं ततस्तया स्नानजोजनसत्कारादिपूर्वकमलंकारैरलंकृतोदीनारसहस्रव्ययेन शब्दादिविषयान् प्रापितोदिनमेकं पालितश्चौरः । द्वितीयदिने द्वितीयया दीनारलक्षव्ययेन लालितस्तृतीयदिने तृतीयया दीनारकोटिव्ययेन सत्कारितश्चतुर्थ्यातु राज्ञोनुमत्या मरणाद्रक्षितोनान्यत्किंचिडुपकृतं सान्यपत्नीनिर्हसिता नानया किंचिद्दत्तमिति । ततस्तासां बहूपकारविषये विवादे जाते राज्ञा चौरएव कार्यं पृष्टोयथा तव कया बहूपकृतमिति तेनोक्तं मया मरणमहानयनीतेन स्नानादिसुखं किंचिन्न ज्ञातं । अग्रे पुनरनयदानाकर्णनात्परमं सुखमनुनवामीति सर्वदानानामनयदानं श्रेष्ठमिति स्थितं । सत्येषु वाक्येषु यदनवद्यं पीडानुत्पादकं वाक्यं तत्श्रेष्ठं । सत्यं तदेव यत्परपीडानुत्पादकं । यतः । लोकेपि श्रूयते वादोयथाऽसत्येन कौशिकः ॥ पतितोवधयुक्तेन नरके तीव्रवेदने ॥ १ ॥ तथा तहेव काणंकाणित्ति पंमगंपंमगत्ति वा ॥ वाहिअं वाहिरोगित्ति ताणं चोरित्ति नोवतेइति ॥ तपःसु यथा ब्रह्मचर्यमुत्तमं तथा लोकोत्तमः श्रमणोज्ञातपुत्रः श्रीवीरः ॥२३॥ स्थितिमतां मध्ये यथा लवसप्तमाः पंचानुत्तरविमानस्थादेवाः सर्वोत्कृष्टस्थितयः प्रधानाः। तेषां यदि सप्तलवाआयुष्कमनविष्यत्ततः सिद्धिगमनमनविष्यदिति। यथा सनानां मध्ये सौधर्मा सना श्रेष्ठा । यथा सर्वधर्मानिर्वाणश्रेष्ठामोक्षप्रधानाः। कुदर्शिनोपि स्वधर्मे निर्वाणफलमाहुः। एवं ज्ञातपुत्रात् श्रीवीरात् परोज्ञानी नास्तीति सर्वेन्योधिकज्ञानइत्यर्थः॥२४

॥ टीका—तथा (दाणाणमित्यादि)। तथा स्वपरानुग्रहार्थमर्थिने दीयतइति द नमनेकधा। तेषां मध्ये जीवानां जीवितार्थिनां त्राणकारित्वादन्नयदानं श्रेष्ठं। तदु दीयते म्रियमाणस्य, कोटिं जीवितमेव वा। धनकोटिं नगृण्हीयात्, सर्वोजीवितुमिछ गोपालांगनादीनां दृष्टांत द्वारेणार्थोबु द्वौसुखेनारोहतीति। अतोऽनयप्रदानप्राधान्य पनार्थं कथानकमिदं। वसंतपुरे नगरे अरिदमनोनाम राजा सच कदाचिच्चतुर्वधूसमे वातायनस्थः क्रीडायमानस्तिष्ठति। तेन कदाचिच्चौरोरक्तकरवीरकृतसुंम्समालोरक्तपरि नोरक्तचंदनोपलिप्तश्च प्रहतवध्यर्मिंडिमोराजमार्गेण नीयमानः सपत्नीकेन दृष्टोदृष्ट्वा तानिः पृष्टं किमनेनाकारीति। तासामेकेन राजपुरुषेणाऽऽवेदितं यथा परद्व्यापहारेण जविरुद्धमिति। ततएकया राजा विज्ञप्तोयथा योन्नवता मम प्राग्वरः प्रतिपन्नः सोऽ दीयतां यथाऽहमस्योपकरोमि। किंचित् राज्ञापि प्रतिपन्नं ततस्तया स्नानादिपुरःसरमल रेणाऽलंकृतोदीनारसहस्रव्ययेन पंचविधान् शब्दादीन् विषयानेकमहःप्रापितः पुनर्दि यथाऽपितथैव द्वितीयमहोदीनारशतसहस्रव्ययेन लालितः। ततस्तृतीयया तृतीयमह नारकोटिव्ययेनसत्कारितः। चतुर्थ्यातु राजानुमत्या मरणाद्रक्षितो ऽनयप्रदानेन। त सावऽन्यानिर्हसितानाऽस्य त्वया किंचिद्दत्तमिति। तदेव तासां परस्परबहूपकारविषये वि राज्ञाऽसावेव चौरः समाहूय पृष्टोयथाकेन तव बहूपकृतमिति तेनाऽप्यन्नाणि। यथ मया मरणमहान्नयमीतेन किंचित् स्नानादिकं सुखं विज्ञायीति। अनयप्रदानाकर्णने नर्जन्मानमिवात्मानमवैमीति। अतः सर्वदानानामन्नयप्रदानं श्रेष्ठमिति स्थितं। तथ त्येषु च वाक्येषु च यदनवद्यमपापं परपीडानुत्पादकं तत्श्रेष्ठं वदंति। नपुनः परपीडोत कं सत्यं सन्नयोहितं सत्यमितिकृत्वा। तथाचोक्तं। लोकेऽपि श्रूयते वादो, यथा सत्येन कौ कः॥ पतितोवधयुक्तेन, नरके तीव्रवेदने। अन्यच्च। तहेवकाणंकाणत्ति पंमगंपंमगत्ति वाहियंवाहिरोगित्ति, तेणंचोरोत्तिनोवदे॥ तपस्सु मध्ये यथैवोत्तमं नवविधब्रह्मगुप्त्य ब्रह्मचर्यं प्रधानं नवति। तथा सर्वलोकोत्तमरूपसंपदा सर्वातिशायिन्या क्षायकज्ञान नान्यां शीलेन ज्ञातपुत्रोनगवान् श्रमणः प्रधानइति ॥ २३ ॥ किंच (ठिईणमित्या स्थितिमतां मध्ये यथा लवसत्तमाः पंचानुत्तरविमानवासिनोदेवाः सर्वोत्कृष्टस्थिति नः प्रधानायदि किल तेषां सप्तलवाद्यायुष्कमनविष्यत्ततः सिद्धिगमनमन्नविष्यदि अतोलवसत्तमास्तेऽन्निधीयंते। सन्नानां च पर्षदांच मध्ये यथासौधर्माधिपर्षच्छ्रेष्ठा निः क्रीडास्थानैरुपेतत्वात्तथा। यथा सर्वेऽपि धर्मानिर्वाणफलमेव स्वदर्शनं ब्रुवते। एवं ज्ञातपुत्रात् वीरवर्धमानस्वामिनः सर्वज्ञात् सकाशात् परं प्रधानं अन्यद्विज्ञानं ना सर्वस्यैव नगवानपरज्ञानिन्योऽधिकज्ञानोन्नवतीति नावः ॥ २४ ॥

पुढोवमे धुणइ विगयगेहि, नसन्निहिं कुवति आसुपन्ने ॥ तरिउं
समुद्दंच महाजवोघं, अजयंकरे वीर अणंतचक्खू ॥ २५ ॥ कोहं
च माणंच तहेव मायं, लोजं चउत्थं अज्झत्थदोसा ॥ एआणि वंता
अरहामहेसी ण कुवई पाव ण कारवेइ ॥ २६ ॥

अर्थ-(पुढोवमेके०) जेम पृथवी सकल पदार्थने आधार नूतछे तेम श्रीमहावीर सर्व सत्वने अजय प्रदाने करी रुडा उपदेशना दान थकी आधारनूतछे. (धुणइके०) अष्टप्रकारना कर्म खपाव्याछे (विगयगेहि के०) विगतगृधि एटले अनिलाष रहित थयाछे वली (नसन्निहिंकुवति के०) संनिध नकरे एटले कांइ पण संचय करे नही तथा (आसुपन्नेके०) उतावली प्रज्ञाना धणी एटले केवली एवा जगवंत जाणवा (तरिउंसमुद्दंचमहाजवोघं के०) तथा समुड्नी पेरे तरवाने डुस्तर एवो मोहोटो संसार समुड तेने तरीने मुक्तियें पोहोताछे, वली श्रीमहावीर केवाछे तोके, (अजयंकरेके०) अजय करनार एटले सर्व जीवना जयना टालनारछे तथा (वीरके०) शूरवीरछे (अणंतचक्खू के०) अनंत चक्षुना धणी एटले सर्व स्वरूप देखेछें जाणेछे. ॥ २५ ॥ (कोहंचमाणंचतहेवमायं के०) क्रोध वली मान तथा माया तेमज वली (लोजंके०) लोजते परवंचना रूप जाणवो (चउत्थंके०) एचार (अज्झत्थदोसा के०) अध्यात्म दोषछे तेने संसार वधारवाना कारण जाणीने (एआणिवंता के०) एचारे कषायने छांमीने श्रीमहावीर (अरहामहेसी के०) अरहंत थया महारिषी थया ते कारण माटे (णकुवईपावणकारवेइ के०) श्रीमहावीर स्वामि पोते पाप करे नही तथा बीजा पासे पाप करावे नही अने पापकर्मना करनारनी अनुमोदना पण करे नही. ॥ २६ ॥

॥ दीपिका-यथा पृथ्वी सर्वसहा तथा जगवानपि तडुपमः । विगतगृद्धिर्गताजिलाषो धुनात्यपनयति कर्मेति । आशुप्रज्ञः सदायोगज्ञानः सन्निधिं न करोति । ड्व्यसन्निधिर्धनधान्यादिर्जावसन्निधिर्मायाक्रोधादिस्तं द्विविधमपि सन्निधिं न करोति सतरित्वा समुड्मिव महाजवौघं संसारप्रवाहं निर्वृतोऽजयंकरः प्राणिनां वीरोऽनंतचक्षुरनंतज्ञानः ॥ ॥ २५ ॥ क्रोधं मानं मायां लोजं चतुर्थमध्यात्मदोषानात्मदोषरूपान् कषायान् एतान् वांत्वा त्यक्त्वा ऽर्हन्महर्षिः स्वयं पापं न करोति न कारयत्यन्यैः ॥ २६ ॥

॥ टीका-किंचाऽन्यत् (पुढोवमेइत्यादि) सहि जगवान् यथा पृथिवी सकलाधारा वर्तते तथा सर्वसत्वानामजयप्रदानतः सडुपदेशदानाद्वा सत्वाधारइति । यदिवा यथा पृथ्वी सर्वसहा एवं जगवान् परीषहोपसर्गान् सम्यक् सहतइति । तथा धुनात्यपनयत्यष्ट

प्रकारं कर्मेतिशेषः । तथा विगता प्रलीना सबाह्याभ्यंतरेषु वस्तुषु गृद्धिर्गार्ध्यमभिलाषोय स्य सविगतगृद्धिः। तथा सन्निधानं सन्निधिः सच द्रव्यसन्निधिः। धनधान्यद्विपदचतुष्पदरू पोभावसन्निधिस्तु मायाक्रोधादयोवा सामान्येन कषायास्तमुभयरूपमपि सन्निधिं न करोति भगवांस्तथाऽऽशुप्रज्ञः सर्वत्र सदोपयोगाच्छद्मस्थवन्मनसा पर्यालोच्य पदार्थप रिछित्तिं विधत्ते । सएवंभूतस्तरित्वा समुद्रमिव पारं महाभवौघं चतुर्गतिकं संसारसागरं बहुव्यसनाकुलं सर्वोत्तमं निर्वाणमासादितवान् । पुनरपि तमेव विशिनष्टि । अभयं प्राणिनां प्राणरक्षारूपं स्वतः परतश्च सडुपदेशदानात् करोतीत्यभयंकरः । तथाऽष्टप्रका रं कर्म विशेषेणेरयति प्रेरयतीति वीरः। तथाऽनंतमपर्यवसानं नित्यं ज्ञेयानंतत्वाद्वानं चक्षुरिव चक्षुः केवलज्ञानं यस्य सतथेति ॥२५॥ किंचाऽन्यत् (कोहंचेत्यादि) निदानोच्छेदे हि निदानिनउच्छेदोभवतीति न्यायात् संसारस्थितेश्च क्रोधादयः कारणमतएतानध्या त्मदोषांश्चतुरोऽपि क्रोधादीन् कषायान्वांत्वा परित्यज्य असौ भगवानर्हत्तीर्थकृत् जातः तथामहर्षिश्चैवं परमार्थतोमहर्षित्वं भवति यद्यध्यात्मदोषान भवति नान्यथेति । तथा न स्वतः पापं सावद्यमनुष्ठानं करोति नाप्यन्यैः कारयतीति ॥ २६ ॥

किरियाकिरियं वेणइयाणुवायं, अन्नाणियाणं पडियच्च ठाणं॥ से सव्ववायं इति वेयइत्ता, उवट्ठिए संजमदीहरायं ॥ २७॥ से वारि या इत्थि सराइभत्तं, उवहाणवं डुक्खखयठ्याए ॥ लोगं विदित्ता आरं पारंच, सव्वं पभू वारिय सव्ववारं ॥ २८ ॥ सोच्चाय धम्मं अरहंत भासियं,समाहितं अठपदोपसुद्धं ॥ तं सद्दहाणाय ज णा अणाऊ, इंदावदेवाहिव आगमिस्संतित्तिबेमि ॥ २९॥ इति श्री वीरथुतीनाम पष्ठमध्ययनं सम्मत्तं ॥

अर्थ—(किरियाकिरियंके०) क्रियावादीना एकशोने एंशी भेद, अक्रियावादीना चोराशी भेद (वेणइयके०) विनयवादीना बत्रीश भेद, अने (अन्नाणियके०) अज्ञान वादीना सड सठ भेद ए सर्व मली त्रणशेने त्रेशठ थयांते पांखमी दर्शनीउना (अणुवायंके०) अनुवाद एटले भेद जाणवा ए चारे दर्शनीना (स्थानके०) दर्शन स्वरूप तेने (पडियच्च के०) डुर्गति जवाना कारण जाणीने (सेके०) ते श्रीमहावीर देव (सव्ववायंके०) सर्ववादने (इतिवेयइत्ताके०) जाणीने उन्मार्गनो त्याग करीने (संजमेसदीहरायं के०) चारित्ररूप धर्मने विषे दीर्घरात्रं एटले जावजीव सुधी (उवट्ठिए के०) उपस्थित एटले सावधान थयाछे ॥२७॥ (सेके०) ते भगवंते (इत्थिसराइभत्तं के०) स्त्री सहित रात्री भोजन तथा उपलक्षणथी प्रणातिपातादिकने पण (वारिया के०) निवार्याछे वली (डुःखखय

थाए के०) कर्मरूप डुःख क्षय करवाने अर्थे (उवहाणवं के०) उपधानवंत थया एट
ले तपश्या करी देह शोषवीने कर्म खपाव्या (लोगंविदित्ता आरंपारंच के०) इह लोक
अने परलोक ए बंनेने जाणीने (सव्वंपन्नूवारियसव्ववारं के०) सर्व पापना स्था
नकने प्रनूत पणे पोते वारंवार निवार्याछे ॥ २७ ॥ हवे श्रीसुधर्म स्वामि पोताना
शिष्य प्रत्ये कहेछे (धम्मं अरहंत नासियंके०) अरिहंतनो नाषेलोजे धर्म ते केवोछे तो
के (समाहितं अठ्ठपदोपसुद्धं के०) सम्यक् प्रकारे अर्थे करी पदे करी शुद्ध एटले उज्वल
युक्ति सहित तेने (सोच्चाय के०) सांनलीने (तं के०) ते धर्मने (सद्दहाणाय के०)
सद्दहता एटले सत्य करी मानता थका (जणा के०) अनेक जन (अणाऊ के०)
कर्म रहित थईने अनायुष्य थया एटले सिद्ध थया (इंदावदेवाहिव आगमिस्संतिके०)
अथवा आगमिक काले इंद्रादिक पदवी पाम्या तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २९ ॥
इतिश्री वीरस्तुतिनामे छठ्ठा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका–क्रियावादिनामक्रियावादिनां वैनयिकानामज्ञानिकानां स्थानं पक्षं सम्यक्प्रका
रं प्रतीत्य परिछिद्य ज्ञात्वा सनगवान् सर्ववादं निवेदयित्वा सर्वकुदर्शनिनां स्वरूपं ज्ञात्वा दीर्घ
कालं यावज्जीवं संयमे उपस्थितः ॥२७॥ सनगवान् स्त्रीनोगं मैथुनं सरात्रिनोजनसहितं
वारयित्वा उपलक्षणादन्यदपि प्राणातिपातादिकं ग्राह्यं । उपधानवान् तपोविशेषयुक्तो
डुःखक्षयार्थं आरं पारंच लोकं इह लोकं परलोकं च विदित्वा ज्ञात्वा प्रत्नुर्नगवान् सर्वं
वारं बहुशोनिवारितवान् । कोर्थः । अहिंसादिकं स्वयं विधाय परांश्च स्थापितवान् न
हि स्वयमधर्मे स्थितः परान् धर्मे स्थापयितुमलं । यडुक्तं स्तुतिकृता । ब्रुवाणोपि न्या
य्यं स्ववचनविरुद्धं व्यवहरन् परं नालं कश्चिद्दमयितुमदांतः स्वयमिति ॥ नवान्निश्चित्यैवं
मनसि जगदाधाय सकलं स्वमात्मानं तावद्दमयितुमदांतं व्यवसितइति ॥ २७ ॥ श्रु
त्वा धर्ममर्हद्भाषितं सम्यगाख्यातमर्थपदैर्युक्तिनिरुपशुद्धं निर्मलं तं धर्मं श्रद्दधानाज
नास्तथा कुर्वंति यथा नायुःकर्माणः सिद्धाः सायुषश्च इंद्राद्यादेवाधिपा आगमिष्यंती
ति इति ब्रवीमीति ॥ २९ ॥ इति वीरस्तवाख्यं षष्ठमध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका–किंचाऽन्यत् (किरिएइत्यादि) तथा सनगवान् क्रियावादिनमक्रियादिनां वैनयिका
नामज्ञानिकानांच स्थानं पक्षमन्युपगतमित्यर्थः । यदिवा स्थीयतेऽस्मिन्निति स्थानं डुर्गति
गमनादिकं प्रतीत्य परिछिद्य सम्यगवबुद्ध्यत्यर्थः । एतेषां च स्वरुपमुत्तरत्र प्रत्यक्षेण व्याख्या
स्यामः । लेशतस्त्विदं । क्रियैव परलोकसाधनायाऽलमित्येवं वादितुं शीलं येषांते क्रियावा
दिनस्तेषां हि दीक्षातएव क्रियारूपायामोक्षइत्येवमन्युपगमः । अक्रियावादिनस्तु ज्ञानवादि
नस्तेषां हि यथावस्थितवस्तुपरिज्ञानादेव मोक्षः । तथाचोक्तं । पंचविंशतितत्वज्ञो, य

त्र तत्राश्रमे रतः ॥ शिखी मुंमीजटी वापि सिध्यते नात्र संशयः॥१॥ तथा विनयादेव मो क्षइत्येवं गोशालकमतानुसारिणोविनयेन चरंतीति वैनायिकाव्यवस्थिताः । तथाऽज्ञा नमेवैहिकामुष्मिकायाऽलमित्येवमज्ञानिकाव्यवस्थिताइत्येवं रूपं तेषामभ्युपगमं परि ज्ञाय स्वतः सम्यगवगम्य सम्यगवबोधेन तथा सएव वीरवर्धमानस्वामी सर्वमन्यमपि बौद्धादिकं यं कंचन वादमपरान् सत्वान् यथावस्थिततत्वोपदेशेन वेदयित्वा परिज्ञाप्यो पस्थितः सम्यगुज्ञानेन संयमे व्यवस्थितोनतु यथा अन्ये । तडुक्तं । यथा परेषां कथका विदग्धाः, शास्त्राणि कृत्वा लघुतामुपेताः ॥ शिष्यैरनुज्ञामलिनोपचारै,र्वक्तृत्वदोषा स्त्वयि ते न संति १ ॥ दीर्घरात्रमिति यावज्जीवं संयमोत्थानेनोत्थितइति ॥ २७ ॥ अपि च (सेवारिएइत्यादि) सजगवान् वारयित्वा प्रतिषिध्य । किंतदित्याह । स्त्रियमिति स्त्री परिजोगमैथुनमित्यर्थः । सहरात्रिजक्तें वर्ततइति सरात्रिजक्तं । उपलक्षणार्थत्वादस्याऽन्यद पि प्राणातिपातनिषेधादिकं इष्टव्यं । तथा उपधानं तपस्तद्विद्यते यस्याऽसौ उपधानवान् तपोनिष्टप्तदेहः । किमर्थमिति दर्शयति । ङःखयतीति ङःखमष्टप्रकारं कर्म तस्य क्षयोऽप मस्तदर्थं । किंच लोकं विदित्वा आरमिहलोकाख्यं पारं परलोकाख्यं । यदिवा आरं मनुष्य लोकं पारमिति नरकादिकं स्वरूपतस्तत्प्राप्तिहेतुं ततश्च विदित्वा सर्वमेतत् प्रज्ञुर्जगवान् सर्ववारं बहुशोनिवारितवान् । एतडुक्तं जवति। प्राणातिपातनिषेधादिकं स्वतोऽनुष्ठाय परांश्च स्थापितवान् । नहि स्वतोऽस्थितः परांश्च स्थापयितुमलमित्यर्थः । तडुक्तं । ब्रुवाणोऽपि न्याय्यं, स्ववचनविरुद्धं व्यवहरन्, परान्नालं कश्चिद्दमयितुमदांतः स्वयमिति ॥ जवानि श्चित्यैवं मनसि जगदाधाय सकलं स्वमात्मानं तावद्दमयितुमदांतं व्यवसितइति ॥ तथ तिव्वयरोचवनाणी, सुरमहिते सिक्खियव्व धूयामि ॥ अणिगूहियवलविरउ सव्वत्थामेसु उज्ज मइ इत्यादि ॥ २८ ॥ सांप्रतं सुधर्मस्वामी तीर्थकरगुणानाख्याय स्वशिष्यानाह (सोच्च येत्यादि) श्रुत्वा च दुर्गतिधारणाद्धर्मं श्रुतचारित्राख्यमर्हद्भिर्जापितं सम्यगाख्यातमर्थ पदानि युक्तयोहेतवोवा तैरुपशुद्धमवदातं सद्युक्तिकं सद्धेतुकंवा । यदि वाऽर्थैरजिधेयैः पा श्च वाचकैः शब्दैः उप सामीप्येन शुद्धं निर्दोषं । तमेवंजूतमर्हद्भिर्जापितं धर्मं श्रद्दधाना स्तथाऽनुतिष्ठंतोजनालोकाअनायुषोऽपगतायुः कर्माणः संतः सिद्धाः सायुषश्चेंद्राद्या देवाधिपाआगमिष्यंतीति । इतिशब्दः परिसमाप्तौ । ब्रवीमीतिपूर्ववत् ॥ २९ ॥ इति वीर स्तवाख्यं षष्ठमध्ययनं परिसमाप्तमिति ॥ ग्रंथसंख्या ३००

हवे सातमुं अध्ययन प्रारंजियें बैयें बहा अध्ययनने विषे श्रीमहावीरनुं स्तवन क रतां श्रीमहावीरने सुशील कह्या, हवे आ सातमां अध्ययननेविषे ते थकी विपरीत कुशीलिया होयले जे अरहट्ट घटीकाने न्यायें संसारमांहे ज्रमण करे तेनुं स्वरुप कहेले.

पुढवीय आऊ अगणीय वाऊ,तण रुक्ख बीयाय तसाय पाणा॥
जे अंमया जेय जराउपाणा; संसेयया जे रसयानिहाणा ॥१॥
एयाइं कायाइं पवेदिताइं, एतेसु जाणे पडिलेह सायं॥ एतेण
काएणय आयदंमे, एते सु याविप्परियासुविंति ॥ २ ॥

अर्थ-(पुढवीयआऊअगणीयवाऊ के०) पृथ्वीकाय अप्पकाय अने वायुकाय अं र्हीं चकार थकी ए चारे निकाय सूक्ष्म अने बादरना नेदे करी बे प्रकारे जाणवा तथा (तणरुक्खबीयाय के०) तृण वृक्ष बीज शालीप्रमुख वनस्पतिकाय जाणवी अने (तसायपाणा के०) त्रसते बेंडियादिक जीव जाणवा तेना अनेक प्रकारछे ते कहेछे. (जेअंमया के०) जेइंमा थकी उपना एवा पंखी तथा सर्प प्रमुख तथा (जेयजराउपाणाके०) जे जराउते गाय प्रमुख जीव जाणवा अने (संसेययाके०) संस्वेदज एटले प्रस्वेद थकी उत्पन्न थयला एवा जुं माकण प्रमुख जीव जाणवा वली (जेरसयानिहाणा के०) रसजाः ते जे सोवीरादिकने विषे उपजे तेनाज वर्ण सरखा जे जीव होय ते जाणवा. एरीते जीवना नेद कह्या ॥ १ ॥ (एयाइंकायाइं पवेदिताइं के०) ए पूर्वोक्त पृथिव्यादिक ठ जीवनी निकाय श्रीतीर्थंकर देवे कहीछे (एतेसुजाणेपडिलेहसायं के०) ए ठ जीवनिकायजेछे ते सातासुखने जाणेछे वांछेछे एटले सर्वजीव सुखानिलाषीछे (एतेणकाएणयआयदंमेके० (ए ठ कायने जे दंमे घात करे दीर्घकाल पीडा आपे तेने जे फल थाय ते कहेछे (एतेसुयाविप्परियासुविंति के०) ते जीव एज ठ कायने विषे विपर्यासमुपयंति एटले विनाश पामे अर्थात् वारंवार एने विषेज परिच्रमण करे ॥ २ ॥

॥ दीपिका–सांप्रतं सप्तमं । पूर्वस्मिन् वीरस्तवेन सुशीलतोक्ता । अत्र तद्विपरीताः कुशीलाः परिज्ञाप्यंते । यथा । (पुढवीति) पृथिवीकायिकाअप्कायिकाअग्निकाया वायवश्च । चशब्दात्सूक्ष्मबादरनेदाः । तृणानि कुशादीनि वृक्षाअश्वत्थाद्याः । बीजानि शाल्यादीनि एते त्रयोपि वनस्पतयः। त्रसाः प्राणिनो र्हीडियादयः । अंमजाः पक्षिसर्पादयो जरायुजागोमहिष्याजाद्याः संस्वेदजायूकामत्कुणकुम्यादयः रसजानिधानादधिर्गोवीरादिषु रुतपक्ष्मतुल्याः ॥ १ ॥ ते पूर्वोक्ताः कायाजीवनिकायाः प्रवेदिताः कथिताजिनैः । र्हादसत्वात्क्षीवलिंगता । एतेषु प्राणिषु सातं सुखं जानीहि । सर्वे जीवाः सुखैषिणइति प्रत्युपेक्षस्व पर्यालोचय।यथा एभिः कायैः पीड्यमानैरात्मा दंड्यते । एततपीमयाऽऽत्मदंमः स्यात्। तथा एतान् ये पीमयंति ते एतेष्वेव पृथिव्यादिकायेषु विविधं परिसमंतात् आशु क्षिप्रमुपयांति व्रजंति ॥ २ ॥

॥ टीका—उक्तं षष्ठमध्ययनं सांप्रतं सप्तममारभ्यते । अस्य चाऽयमभिसंबंधः । इ
नंतराध्ययने महावीरगुणोत्कीर्त्तनतः सुशीलपरिभाषा कृता । तदनंतरं तद्विपर्यस्ताः कु
लाः परिभाष्यंते । तदनेन संबंधेनाऽऽयातस्याऽध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि व्याव
नीयानि । तत्राप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोऽयं ॥ तद्यथा । कुशीलाः परतीर्थिकाः पा
स्थादयोवा स्वयूथ्याअशीलाश्च गृहस्थाः परि समंतात् भाष्यंते प्रतिपाद्यंते तदनुष्ठान
स्तद्विपाकदुर्गतिगमनाश्च निरूप्यंतइति । तथा तद्विपर्ययेण क्वचित्सुशीलाश्चेति । नि
पस्त्रिधा । ओघनामसूत्रालापकभेदात् । तत्रौघनिष्पन्ननिक्षेपेऽध्ययनं नामनिष्पन्ने कुश
परिभाषेति । एतदधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । शीलेचउक्कं दवे,पाउरणाभरणभोयणादी
भावेउ ओहशीलं, अभिरकमासेवणा चेव ॥ ८८ ॥ (शीलेचउक्कमित्यादि) शीले श
विषये निक्षेपे क्रियमाणे चतुष्कमिति नामादिश्चतुर्धा निक्षेपः । तत्राऽपि नामस्थ
ने क्षुसे तदनादृत्य द्रव्यमिति द्रव्यशीलं प्रावरणाभरणभोजनादिषु द्रष्टव्यं । अस्या
मर्थः । योहि फलनिरपेक्षस्तत्स्वभावादेव क्रियासु प्रवर्तते सतच्छीलस्तत्रेह प्रावरणशी
ति । प्रावरणप्रयोजनाभावेऽपि तच्छील्यान्नित्यप्रावरणस्वभावप्रावरणे वा दत्तावधानः ।
माभरणभोजनादिष्वपि द्रष्टव्यमिति । योवा यस्य द्रव्यस्य चेतनाचेतानादेः स्वभाव
द्द्रव्यशीलमित्युच्यते । भावशीलं तु द्विधा ओघशीलमाभीक्ष्ण्यसेवनाशीलमिति । तत्रौ
शीलं व्याचिख्यासुराह । ओहेसीलंविरति, विरयाविरईयअविरतीअसीलं ॥ धम्मेणा
वादी, अपसत्थअहम्मकोवादी ॥८९॥ (ओहेत्यादि) । तत्रौघः सामान्यं । सामान्येन स
द्ययोगविरतोऽविरतोवा शीलवान् भण्यते तद्विपर्यस्तोऽशीलवानिति । आभीक्ष्ण्यसेव
त्वनवरतसेवनायां तु शीलमिति ॥ तद्यथा । धर्मे धर्मविषये प्रशस्तं शीलं यद्युताऽनव
पूर्वज्ञानार्जनं विशिष्टतपःकरणं वा । आदिग्रहणादनवरताभिग्रहणादिकं परिगृह्यते
प्रशस्तभावशीलं त्वधर्मप्रवृत्तिर्बाह्या । आंतरा तु क्रोधादिषु प्रवृत्तिः । आदिग्रहणात्
कषायाश्चौर्याभ्याख्यानकलहादयः परिगृह्यंतइति ॥ सांप्रतं कुशीलपरिभाषाख्यस्याऽध्य
स्याऽन्वर्थतां दर्शयितुमाह । परिभासियाकुशीलाय,एद्धजावंति अविरताकेइ ॥ सुत्तिपर
सुद्धो, कुंतिदुगुंछाअपरिसुद्धो ॥९०॥ (परिभासियाइत्यादि) । परि समंतात् भाषिताः
पादिताः कुशीलाः कुत्सितशीलाः परतीर्थिकाः पार्श्वस्थादयश्च । चशब्दात् यावंतः के
ऽविरताअस्मिन्नित्यतइदमध्ययनं कुशीलपरिभाषेत्युच्यते । किमिति कुशीलाअशुद्धाए
इत्याह । सुरित्ययं निपातः प्रशंसायां शुद्धविषये वर्त्तते । तद्यथा सौराज्यमित्यादि ।
कुरित्ययमपि निपातोजुगुप्सायामशुद्धविषये वर्तते । कुतीर्थं कुग्रामइत्यादि । यदि कु
शिलाः कुशीलाः कथंतर्हि परतीर्थिकाः पार्श्वस्थादयश्च तथाविधाभवंतीत्याह । अफा
सुयपडिसेविय, णामंभुज्जोयशीलवादीय । फासुं वयंतिसीलं, अफासुयामोअभुंजंता ॥९१॥

(अफासुयइत्यादि) अस्त्यऽयं शीलशब्दस्तत्स्वाभाव्ये। तथाहि । यः फलनिरपेक्षः क्रियास्वा भरणादिषु प्रवर्तते सचेह द्रव्यशीलत्वेन प्रदर्शितः । अस्त्युपशमप्रधाने चारित्रे। तथाहि। तत्प्रधानः शीलवानयं तपस्वीति। तद्विपर्ययेण दुःशीलइति। सचेह भावशीलग्रहणेनो पात्तइति। इहच यतीनां ध्यानाध्ययनादिकं मुक्त्वा धर्माधारशरीरतत्पालनाहारव्यापारं च मुक्त्वा नाऽपरः कश्चिद्व्यापारोऽस्तीत्यतस्तदाश्रयणेनैव सुशीलत्वं च चिंत्यते । तत्र कु तीर्थिकः पार्श्वस्थादिर्वा । अप्राशुकं सचित्तं प्रतिसेवितुं शीलमस्य सभवत्यप्राशुकप्रतिसे वी। नामशब्दः संभावनायां। भूयः पुनर्धार्ष्ट्याच्छीलवंतमात्मानं वदितुं शीलं यस्य स शीलवादी। किमित्येवं यतः प्राशुकमचेतनं शीलं वदति। इदमुक्तं भवति। यः प्रा शुकमुद्गमादिदोषरहितमाहारं भुंक्ते तं शीलवंतं वदंति तज्ज्ञाः । तथाहि । यतयोप्राशुक मुद्गमादिदोषदुष्टमेवाऽऽहारमभुंजानाः शीलवंतोभण्यंते नेतरइति स्थितं । नोशब्दस्य निपातत्वेनाऽवधारणार्थत्वादिति । अप्राशुकभोजित्वेन कुशीलत्वं प्रतिपादयितुं दृष्टांत माह । जहणामगोयमाचं, डीदेवगावारिभद्दगाचेव ॥ जेअग्गिहोत्तवादी, जलसोयंजेयइ च्छंति ॥ ए२ ॥ (जहणामेइत्यादि) यथेति दृष्टांतोपक्षेपार्थे । नामशब्दोवाक्यालंकारे । गैतमाइति गोव्रतिकागृहीतशिक्षं लघुकायं वृषभमुपादाय धान्याद्यर्थं प्रतिगृहमटंति । तथा (चंमीदेवगाइति) । चक्रधरप्रायाः । एवं वारिभद्रकाअब्भक्षाः शैवलाशिनोनित्यं स्नानपानादिधावनाभिरतावा । तथा ये चाऽन्येऽग्निहोत्रवादिनोऽग्निहोत्रादेव स्वर्गगमन मिच्छंति ये चान्ये जलशौचमिच्छंति भागवतादयस्ते सर्वेऽप्यप्राशुकाहारभोजित्वात् कुशी लाइति । चशब्दात् ये च स्वयूथ्याः पार्श्वस्थादयउद्गमाद्यशुद्धमाहारं भुंजंते तेऽपि कुशी लाइति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपः ॥ सांप्रतं सूत्रालापकनिष्पन्ने निक्षेपे अस्खलितादि गुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (पुढवीएइत्यादि) पृथिवी पृथिवीकायिकाः सत्वाः। चकारः स्वगतभेदसंसूचनार्थः । सचाऽयंभेदः । पृथिवीकायिकाः सूक्ष्माबादराश्च । ते च प्रत्येकं पर्याप्तकाऽपर्याप्तभेदेन द्विधा।एवमप्कायिकाअपि। तथाऽग्निकायिकावायुकायिका श्च इष्टव्याः। वनस्पतिकायिकान् भेदेन दर्शयति।तृणानि कुशादीनि।वृक्षाश्चाश्वत्थादयोवी जानि शाल्यादीनि।एवं वल्लीगुल्मादयोऽपि वनस्पतिभेदाइष्टव्याः।त्रस्यंतीति त्रसाद्वींद्रिया दयः प्राणाःप्राणिनोये चांमाज्जाताअंडजाः शकुनिसरीसृपादयः।ये च जरायुजाजंबालवेष्टि ताः समुत्पद्यंते तेच गोमहिष्यजाविकमनुष्यादयः।तथा संस्वेदाज्जाताःसंस्वेदजायूकामत्कु णकृम्यादयः ये च रसजाभिधानादधिसौवीरकादिषु रूतपक्ष्मसन्निभाइति॥१॥ नानाभेदभि न्नं जीवसंघातं प्रदर्श्याऽधुना तदुपघाते दोषं दर्शयितुमाह।(एयाइमित्यादि)। एते पृथिव्या दयः कायाजीवनिकायाभगवद्भिः प्रवेदिताः कथिताः । छांदसत्वान्नपुंसकलिंगिता ॥ एते षु च पूर्वं प्रतिपादितेषु पृथिवीकायादिषु प्राणिषु सातं सुखं जानीहि । एतदुक्तं भव

ति । सर्वेपि सत्वाः सातैपिणोडुःखद्विषश्चेति ज्ञात्वा प्रत्युपेक्षस्व कुशाग्रीयया बुद्ध्या पर्यालोचयेदिति । यथैभिः कायैः समारभ्यमाणैः पीड्यमानैरात्मा दंड्यते तत्समारंभा त्मदंमोभवतीत्यर्थः । अथवैऽभिरेव कायैर्ये आयतदंमादीर्घदंमाः । एतडुक्तं भवति । तान् कायान् ये दीर्घकालं दंमयंति पीमयंतीति तेषां यद्भवति तदर्शयति । ते एतेष्वेव पृथि व्यादिकायेषु विविधमनेकप्रकारं परि समंताद्याशु क्षिप्रमुपसामीप्येन यांति व्रजंति । तेष्वे व पृथिव्यादिकायेषु विविधमनेकप्रकारं भूयोभूयः समुत्पद्यंतइत्यर्थः । यदिवा विपर्यास व्यत्ययः सुखार्थिभिः कायसमारंभः क्रियते तत्समारंभेणच डुःखमेवाऽप्यते नसुखमि ति । यदिवा कुतीर्थिकामोक्षार्थमेतैः कायैर्या क्रियां कुर्वंति तया संसारएव भवतीति ॥२

जाईपहं अणुपरिवट्टमाणे, तस थावरेहिं विणिघायमेति ॥
से जाति जातिं बहुकूरकम्मे, जं कुव्वती मिज्जति तेण बाले ॥३॥
अस्सिंच लोए अडुवा परत्था, सयग्गसोवा तह अन्नहावा ॥
संसारमावन्न परंपरं ते, बंधंति वेदंतिय डुन्नियाणि ॥ ४ ॥

अर्थ-(जाइपहंअणुपरिवट्टमाणेके०) एकेंड्रियादिकथी मांमीने पंचेंड्रिय पर्यंत जं नी जातीछे तेने विषे एक स्थानकथी बीजे स्थानके परिभ्रमण करता थका (तसथावरे विणिघायमेतिके०) त्रस तथा स्थावर जीवने विषे विनिघातमेत्य एटले उत्पत्ति अने नाश पामे (सेजातिजातिं बहुकूरकम्मे के०) ते कूर कर्मना करनार जाति जातिने वि उत्पत्ति पामीने (जंकुव्वती मिज्जतितेणबालेके०) ते बाल अज्ञानी जे वली त्यां डुष्ट ए पापकर्म करे तो वली तेहीज डुष्ट कर्म करी एटले चोर अथवा परदारा गमन इत्यादि दोषे वली विनाश पामे ॥ ३ ॥ (अस्सिंचलोए अडुवापरत्था के०) जे कर्म करे कर्म आजन्मने विषे अथवा परजन्मने विषे विपाक आपे (सयग्गसोवा के०) अथ एकज कर्म सो सहस्र लाख क्रोम संख्याता असंख्याता इत्यादिक घणा भवसुधी विपाक आपे जेवा विधियें कर्म कस्यो होय तेवा विधियें भोगवे (वा के०) अथ (तह के०) तथा (अन्नहा के०) अन्यविधिये पण भोगवे सिरछेदादिक हस्त छेदनादिक डुःख पामे (संसार मावन्न परंपरंते के०) एवीरीते ते कुशीलिया अर घटीकाने न्याये संसारने विषे फरीफरी भव परंपराये परिभ्रमण करता थका डुःख भो तथा (बंधंति वेदंतिय डुन्नियाणिके०)एकेक छेदनादिक डुःखे पीडया थका ते डुःख योगेकरी वली नवा नवा कर्म बांधे तेने फरी भोगवे पण भोगव्या विना छूटेज नही.।

॥ दीपिका-जातिवधं जन्ममरणे अनुपरिवर्तमाने एकेंड्रियादिषु पर्यटन् त्रस

न्नरेषु समुत्पन्नोबहुशोविनिघातं विनाशमेति सजातिमुत्पत्तिं प्राप्य बहुक्रूरकर्मा यत्क र्म करोति तेन कर्मणा म्रियते हिंस्यते ॥ ३ ॥ अस्मिन् लोकेऽन्यस्मिन् जन्मनि वा क र्माणि विपाकं ददति शताग्रशोवा बहुषु जन्मसु यद्यथा आचरंति तथैवोदीर्यते अन्य थावा । एवं ते कुशीलाः संसारमापन्नाः परं परं प्रकृष्टं प्रकृष्टं दुःखमनुजवंति । आर्तध्यानो पहताश्चापरं बध्नंति वेदयंतिच दुर्नीतानि कर्माणि दुष्टं नीतानि दुर्नीतानि दुष्कृतानि । नहि स्वकृतकर्मणोनाशोस्ति । यदुक्तं । माहोहिरेविसन्नो जीवतुमं विमणदुम्मणो दी णो ॥ एहुविंतिए ण फिट्टइ तं दुःखं जं पुरा रईअमिति ॥ ४ ॥

॥ टीका—यथा चाऽसावायतदंडोमोक्षार्थी तान् कायान् समारन्य तद्विपर्यासात् संसारमाप्नोति तथा दर्शयति । (जाईपहमित्यादि) जातीनामेकेंद्रियादीनां पंथाजाति पथः । यदिवा जातिरुत्पत्तिर्वधोमरणं जातिश्च वधश्च जातिवधं तदनुपरिवर्तमानएकें द्रियादिषु पर्यटन् जन्मजरामरणानि वा बहुशोऽनुजवंस्त्रसेषु तेजोवायुद्वींद्रियादिषु स्था वरेषु च पृथिव्यंबुवनस्पतिषु समुत्पन्नः सन् कायदंमविपाकजेन कर्मणा बहुशोविनि घातंविनाशमेत्यवाप्नोति सच्चायतदंडोऽसुमान् जातिं जातिमुत्पत्तिमुत्पत्तिमवाप्य ब हूनि क्रूराणि दारुणान्यनुष्ठानानि यस्य सजवति बहुक्रूरकर्मा सएवंजूतोनिर्विवेकः सद सद्विवेकशून्यत्वात् बालइव बालोयस्यामेकेंद्रियादिकायां जातौ यत्प्राण्युपमर्दकारि कर्म कु रुते सतेनैव कर्मणा मीयते म्रियते पूर्यते । यदिवा मीङ्हिंसायां मीयते हिंस्यते । अ थवा बहुक्रूरकर्मेति चौरोऽयं पारदारिकइति वा इत्येवं तेनैव कर्मणा मीयते परिछिद्य तइति ॥ ३ ॥ क्व पुनरसौ तैः कर्मभिर्मीयते इति दर्शयति (अस्सिंचेत्यादि) यान्याशुका रीणि कर्माणि तान्यस्मिन्नेव जानाति जन्मनि विपाकं ददति ।अथवा परस्मिन् जन्मनि नरकादौ तस्य कर्मविपाकं ददत्येकस्मिन्नेव जन्मनि विपाकं तीव्रं ददति (शताग्रशोवेति) बहुषु जन्मसु येनैव प्रकारेण तदशुजमाचरति तथैवोदीर्यते । तथा (अन्यथावेति) इ दमुक्तं जवति । किंचित्कर्म तन्नवतएव विपाकं ददाति किंचिच्च जन्मांतरे । यथा मृगा पुत्रस्य दुःखविपाकाख्ये विपाकश्रुतांगश्रुतस्कंधे कथितमिति दीर्घकालस्थितिकं स्वपरज न्मांतरितं वेद्यते येन प्रकारेण सकृत्तथैवाऽनेकशोवा । यदिवाऽन्येन प्रकारेण सकृत्सह स्रशोवा शिरश्छेदादिकं हस्तपादछेदादिकं चाऽनुजूयतइति । तदेवं ते कुशीलाआयतदंडाश्च तुर्गतिकसंसारमापन्नाअरहट्टघटीयंत्रन्यायेन संसारं पर्यटंतः परं परं प्रकृष्टं प्रकृष्टं दुःखम नुजवंति । जन्मांतरकृतं कर्मानुजवंतश्चैकमार्तध्यानोपहताअपरं बध्नंति वेदयंति च दुष्टं नीतानि दुर्नीतानि दुष्कृतानि । नहि स्वकृतस्य कर्मणोविनाशोऽस्तीतिजावः । तदुक्तं । माहोहिरेविसन्नो. जीवतुमं विमणदुम्मणो दीणो । एहुविंतिए णफिट्टइ, तं दुःखं जं पुरा

रइयं ॥ १ ॥ जइ पविससिपायालं, अडइं बदरिं गुहं समुद्दंवा ॥ पुव्वकयाउ नमु अप्पाणं घायसेजइवि ॥ २ ॥

जे मायरं वा पियरं च हिच्चा, समणव्वए अगणिं समारभिज्जा॥
अहाहु से लोए कुसीलधम्मे,भूताइं जे हिंसति आयसाते ॥५॥
उज्जालउ पाण निवातएज्जा, निव्वावउ अगणि निवायवेज्जा ॥
तम्हा उमेहावि समिक्ख धम्मं,ण पंडिए अगणि समारभिज्जा ॥६॥

अर्थ-(जेमायरंवा पियरंचहिच्चा के०) जे कोइ माता पितादिकने हिला छांमीने अने स्वजन वर्गनो त्याग करीने (समणव्वएके०) श्रमणने व्रते उठ्या अर्थात् साधुथैयें एवुं जाणता छता (अगणिं समारभिज्जा के०) उद्देशादिक परिभोगे कर्मनो समारंभ करे अथवा करावे तथा अनुमोदे (अहाहुसेलोए कुसीलधम्मेके०) पाखंमी लोकते कुशील धर्मि जाणवा एम श्रीतीर्थंकर गणधरादिक कहेछे (भू जेहिंसति आयसाते के०) जे पोताना आत्मसुखने अर्थे प्राणीनी हिंसाकरेछे ते कु लिया जाणवा. ॥ ५ ॥ (उज्जालउपाण निवातएज्जा के०) जे अग्नि उज्वाले प्र करे ते त्रस अने स्थावर जीवोनो अतिपात एटले विनाशकरे अने (निव्वावउ अगणि वायवेज्जाके०) तेम वली ते अग्नीने पाणीयें करी बुजावतां थका पण अनेक त्रस स्थावर जीव हणायछे एमज अग्नीने अजुआलतां तथा उलवतां थकां पण प्राणी घात थायछे (तम्हाउ के०) तेमाटे (मेधाविके०) पंमित सदसद्विवेकनो जाण समिक्खधम्मंके०) हिंसानो त्याग करी तथा दयामां धर्मछे एम विमाशीने (णपंमिए अ गणिसमारभिज्जाके०) पंमित अग्निकायनो समारंभ करे नही ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-ये ज्ञाततत्वामातरं पितरं स्वजनवर्गं हित्वा श्रमणव्रते स्थितावय अंगीकृत्याऽग्निकायं समारभंते अग्न्यागारं कुर्युः पचनपाचनार्दी । अथ तीर्थंकृतः माहुः सोयं पाखंडिलोकः कुशीलः कुत्सितशीलोधर्मोयस्य सतथा योभूतानि प्रा णोहिनस्ति आत्मसाते आत्मसुखार्थं ॥ ५ ॥ अग्निमुज्वालयन् सोग्निकायमपरां पृथ्व्यादिजीवान् स्थावरत्रसांश्च निपातयेत् तथा अग्निकायं निर्वापयेत् तदाश्रिता न्यांश्च प्राणिनोनिपातयेत् । अग्निज्वालकनिर्वापकयोर्योज्वालयति समहाकर्मबंधकः तथा चागमः । दोभंतेपुरिसा असमसण सद्धि अगणिकायं समारभंति । तत्थणं एगे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ एगेपुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ तेसिं भंते पुरिसाणं कयरे पुरिसे महाकम्मतराए अप्पकम्मतराए वा गोयमा जेणं पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ सेणं

हाकम्मतराए जेसे पुरिसे अगणिकायं निवावेइ सेणं पुरिसे अप्पकम्मतराए से केणठेणं भंते एवं वुच्चत्ति तहेव गोयमा तत्त्वणं जेसे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ सेणं पुरिसे बहुतरागं पुढविकायं समारभति । एवं आउकायं समारभति एवं वाउकायं वणस्सतिकायं अप्प तरागं अगणिकायं समारभति तत्त्वणं जेसे पुरिसे अगणिकायं निवावेइ सेणं पुरिसे अप्प तरागं पुढविकायं समारभति जाव अप्पतरागं तसकायं समारभति बहुतरागं अगणि कायं समारभति सेणं अठेणं गोयमा एवं वुच्चत्ति जे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ सेणं पुरिसे महाकम्मतराए जेणं पुरिसे अगणिकायं निवावेइ सेणं पुरिसे अप्पकम्मतराएइति । तस्मान्मेधावी पंमितोधर्मं समीक्ष्याऽग्निकायं नसमारभते ॥ ६ ॥

॥ टीका—एवं तावदोघतः कुशीलाः प्रतिपादिताः । तदधुना पार्षंडकानधिकृत्याह । (जेमायरंवेत्यादि) ये केचनाऽविदितपरमार्थाधर्मार्थमुत्थितामातरं पितरंच त्यक्त्वा मातापि त्रोर्डुस्त्यज त्वात् तडुपादानमन्यथा भ्रातृपुत्रादिकमपि त्यक्त्वेति द्रष्टव्यं । श्रमणव्रते किल वयं समुपस्थिताइत्येवमभ्युपगम्याऽग्निकायं समारभंते पचनपाचनादिप्रकारेण । कृतकारि तानुमत्योद्देशिकादिपरिभोगाच्चाऽग्निकायसमारंभं कुर्युरित्यर्थः । अथेति वाक्योपन्यासार्थः। आहुरिति तीर्थकृद्गणधरादयएवमुक्तवंतोयथा सोऽयं पार्षंडिकोलोकोगृहस्थलोकोवा ऽग्निकायसमारंभात् कुशीलः कुत्सितशीलोधर्मोयस्य सकुशीलधर्मा । अयं किंभूतइति दर्शी यति ॥ अभूवन् भवंति भविष्यंतीति भूतानि प्राणिनस्तान्यात्मसुखार्थं हिनस्ति व्यापाद यति । तथाहि। पंचाग्नितपसा निष्टप्तदेहास्तथाऽग्निहोत्रादिकया च क्रियया पार्षंडिकाः स्व र्गावाप्तिमिछंतीति । तथा लौकिकाः पचनपाचनादिप्रकारेणाऽग्निकायं समारभमाणाः सुखमभिलषंतीति ॥ ५ ॥ अग्निकायसमारंभे च यथा प्राणातिपातोभवति तथा द र्शयितुमाह (उज्जालउइत्यादि) तपनतापनादिप्रकाशहेतुं काष्ठादिसमारंभेण योऽग्निका यं समारभते सोऽग्निकायमपरांश्च पृथिव्याद्याश्रितान् स्थावरांस्त्रसांश्च प्राणिनोनिपात येत् । त्रिभ्योवा मनोवाक्कायेभ्यआयुर्बलेंद्रियेभ्योवा पातयेन्निपातयेत् । तथाऽग्निका यमुदकादिना निर्वापयेत् विध्या पयंस्तदाश्रितानऽन्यांश्च प्राणिनोनिपातयेन्निपातयेद्धा । तत्रोज्ज्वालकनिर्वापकयोर्योऽग्निकायमुज्ज्वलयति सबहूनामन्यकायानां समारंभकः । त था चाऽऽगमः । दोभंते पुरिसा अन्नमन्नेण सिद्धिं अगणिकायं समारभंति तत्थणं एगे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ से एगेणं पुरिसे अगणिकायं निव्ववइ तेसिं भंते पुरिसा णं कयरे पुरिसे महाकम्मतराए अप्पकम्मतराए ॥ गोयमा तत्थणं जेसे. पुरिसे अगणि कायं उज्जालेइ सेणं पुरिसे बहुतरागं पुढविकायं समारभति ॥ एवं आउकायं वाउकायं वणस्सइकायं अप्पतरागं अगणिकायं समारभइ तत्थणं जेसे पुरिसे अगणिकायं नि

व्यावेइ सेणं पुरिसे अप्पतरागं पुढविकायं समारंभइ जाव अप्पतरागं तसकायं रंभइ बहुतरागं अगणिकायं समारंभइ । से एतेणंअठेणं गोयमा एवं वुच्चइ ॥ चोक्तं । भूयाणं ए समाघाउ, । हव्ववाहेण संसउइत्यादि । यस्मादेवं तस्मान्मे सदसद्विवेकः सश्रुतिकः समीक्ष्य धर्मं पापाड्डीनः पंडितोनाग्निकायं समारभते । व च परमार्थतः पंडितोयोऽग्निकायसमारंभकृतात् पपान्निवर्ततइति ॥ ६ ॥

पुढवीवि जीवा आऊवि जीवा, पाणाइ संपाइम संपयंति ॥ संसेय या कठसमस्सियाय, एते दहे अगणि समारभंते ॥ ७ ॥ हरिया णि भूताणि विलंबगाणि, आहार देहाय पुढो सियाई ॥ जे छिंद ती आयसुहं पडुच्च, पगभिपाणे बहुणंतिवाती ॥ ८ ॥

अर्थ—हवे अग्नीनो समारंभ करवा थकी बीजा जीवो केवीरीते हणाय ते (पुढवीविजीवाआऊविजीवा के०) पृथवी तेपण जीव अने आऊ एटले पाणी ण जीव (पाणाइसंपाइम के०) तथा संपातिमप्राणी ते पतंगीया प्रमुख (ति के०) त्यां सम्यक् प्रकारे पडे तथा (संसेययाकठसमस्सियाय के०) संस्वे काष्ठ तथा छाणादिकने विषे उत्पन्न थएला जीव काष्ठनिश्रितघुणादिककीडीप्र णवा (एतेदहेअगणिसमारभंते के०) एटला स्थावर जंगमजीवने जे अग्नीनो भ करे ते दहे एटले बाली नाखे ॥ ७ ॥ तथा (हरियाणि के०)हरीकाय ते ळ क समस्त वनस्पति जाणवी ए सर्व (भूताणि के०) जीव ते (विलंबगाणि के लंबक जाणवा विलंबक शब्दे जीवनो आकार धारण करे जेम कलल अर्बुद शी एटली अवस्था गर्भमां थाय अने गर्भ प्रसव्या पछी बाल कुमार तरुण वृद्ध ली अवस्था मनुष्य धारण करे तेम शाल्यादिक वनस्पति पण अंकूर मूल स्कंध शाखादिक विशेष जे छे ते पण वर्द्धमान थका बाल तरुण वृद्धावस्थादिक भाव छे तथा ए हरितादिक जेछे तेना मूल पत्र शाखादिकने विषे (पुढोसियाई के०) पृ क् पृथक् जुदा जुदा जीव जाणवा एटला वनस्पतिने (आहारदेहाय के०) आहा तथा शरीरने अर्थे (जेछिंदतीआयसुहंपडुच्चके०) जे आत्माना सुखने अर्थे एटले छेदवा थकी माहारा आत्माने सुख थशे एवी आत्मसुखनी प्रतीते जे छेदे (पगभि पोबहुणंतिवाती के०) ते पुरुष धीटाइ पणे घणाजीवोना घातनो करनार जाणवो ॥८

॥ दीपिका—पृथ्वीजीवाआपोपिजीवास्तदाश्रिताश्चप्राणाः संपातिमाः शलभादयस्मे

संपतंति । संस्वेदजाः करीषादिष्विंधनेषु घुणपिपीलिकादयः काष्टसमाश्रिताश्च ये एतान् प्राणिनः सदहेत् योग्निं समारभते ॥७॥ हरितानि भूतानि जीवरूपाणि तथा जीवाकारं विलंबंते धारयंतीति विलंबकानि । यथा मनुष्या कललाऽर्बुदमांसपेशीगर्भप्रसवबालकुमारयुवमध्यमस्थविराद्यवस्थां धरंति तथा हरितान्यपि । किंभूतानि पृथक् मूलस्कंधशाखापत्रपुष्पादिस्थानेषु प्रत्येकं श्रितानि नतु मूलादौ । एकएव जीवः एतानि भूतानि आहारार्थं देहोपचयार्थमात्मसुखं प्रतीत्याश्रित्य यश्छिनत्ति सप्रागल्भ्यात् धाष्टर्यात् बहूनां प्राणिनामतिपाती हिंसकः स्यात् तथाच नधर्मोनात्मसुखं चेति ॥ ८ ॥

॥ टीका–कथमग्निकायसमारंभेणाऽपरप्राणिवधोभवतीत्याशंक्याह । (पुढवीत्यादि) । नकेवलं पृथिव्याश्रिताद्वींद्रियादयोजीवायापि च पृथ्वी मृल्लक्षणा असावपि जीवाः । तथा आपश्च द्रवलक्षणाजीवास्तदाश्रिताश्च प्राणाः संपातिमाः शलभादयस्तत्र संपतंति । तथा संस्वेदजाः करीषादिष्विंधनेषु घुणपिपीलिकाः कृम्यादयः काष्ठाद्याश्रिताश्च ये केचन एतान् स्थावरजंगमान् सदहेद्योऽग्निकायं समारभते ऽतोऽग्निकायसमारंभोमहादोषायेति ॥ ७ ॥ एवं तावदग्निकायसमारंभकास्तापसास्तथा पाकादनिवृत्ताः शाक्यादयश्चोऽपदिष्टाः । सांप्रतं ते चाऽन्ये वनस्पतिसमारंभादनिवृत्ताः परामृश्यंते इत्याह (हरियाणीत्यादि) हरितानि दूर्वांकुरादीन्येतान्यप्याहारादेर्वृद्धिदर्शनात् भूतानि जीवाः । तथा विलंबकानीति जीवाकारं यांति विलंबंति धारयंति । तथाहि । कललार्बुदमांसपेशीगर्भप्रसवबालकुमारयुवमध्यमस्थविरावस्थांतोमनुष्योभवति । एवं हरितान्यपि शाल्यादीनि जातान्यभिनवानि संजातरसानि यौवनवंति परिपक्वानि जीर्णानि परिशुष्काणि मृतानि । तथा वृक्षाअप्यंकुरावस्थायां जाताइत्युपदिश्यंते मूलस्कंधशाखाप्रशाखादिभिर्विशेषैः परिवर्धमानायुवानः पोताइत्युपदिश्यंतइत्यादि शेषास्वप्यवस्थास्वायोज्यं । तदेवं हरितादीन्यऽपि जीवाकारं विलंबयंति । ततएतानि मूलस्कंधशाखापत्रपुष्पादिस्थानेषु पृथक् प्रत्येकं व्यवस्थितानि नतु मूलादिषु सर्वेष्वऽपि समुदितेषु । एकएव जीवएतानि च भूतानि संख्येयाऽसंख्येयानंतभेदभिन्नानि वनस्पतिकायाश्रितान्याहारार्थं वा देहक्षतसंरोहणार्थं चात्मसुखं प्रतीत्याश्रित्य यश्छिनत्ति सप्रागल्भ्यात धाष्टर्याद्वष्टंभाद्बहूनां प्राणिनामतिपाती भवति तदतिपाताच्च निरनुक्रोशतया नधर्मोनाऽप्यात्मसुखमित्युक्तं भवति ॥ ८ ॥

जातिंच वुड्ढिंच विणासयंते, बीयाइ अस्संजय आयदंडे ॥ अहाहु से लोए अणज्जधम्मे, बीयाइ जे हिंसति आयसाते ॥ ए॥ गब्भाइ मिज्जंति

वुया वुयाणा, णरा परे पंचसिहा कुमारा ॥ जुवाणगा मज्झिम थेरगाय, (पाठांतरे पोरुसाय) चयंति ते आउखए पलीणा ॥ १० ॥

अर्थ-(जातिंच के०) उत्पत्ति एटले मूलादिक कोमल तथा (वुड्ढिंच के०) वृद्धि एटले शाखा प्रशाखादि जे वनस्पति तेनो (विणासयंते के०) विनाश करतो होय तथा (बीयाइ के०) बीजादिक एटले तेना फलनो विनाश करतो होय तेने (असंजअ आयदंमेके०) असंयत एटले गृहस्थ अथवा प्रव्रजित अन्यलिंगी अथवा स्वलिंगी आत्मानो दंमनार कहिए तेजीव प्राणीने उपघाते पोताना आत्मानो उपघात करेछे (अहाहु लोएअणज्जधम्मेके०) जे आत्म सुखने अर्थे हरीकायने छेदे तेने लोकमांहे अनार्य धर्मि श्रीतीर्थंकर गणधर कहेछे (बीयाइंजेहिंसतिआयसाते के०) जे प्राणी धर्मोपदेशे आत्मसुखने अर्थे बीजादिक वनस्पतिकायने छेदे, छेदावे तथा अनुमोदे तथा एवो धर्मोपदेश करे ते पाखंमी अनार्य जाणवो. ॥ ए ॥ (गप्नाइमिज्जंति के०) वनस्पतिकायना विनाशक प्राणीउ घणा जन्मसुधि गर्नादिक अवस्थाने विषे वर्त्तताज मरण पामे एटले कलल अर्बुदादिक अवस्थायें वर्त्तता थकाज मरण पामे तथा जन्म्या पछी (वुयावुयाणाके०) बोलता अणबोलता थका तथा (णरापरेके०) अन्य मनुष्य (सिहाकुमाराके०) न्हानी चोटलीना धणी कुमारावस्थायें स्थित थका मरे तथा (जुवाणग के०) युवानवय तरुणवय तथा (मज्झिम के०) मध्यमवय (थेरगायके०) थविर वय ए सर्व अवस्थाने विषे (आउखए पलीणा के०) आयुष्यना क्षय विषे प्रलीन थका एटले स्वकर्म नोगवता दीन डुखी जुख तृषादिक सहन करता थका (चयंतितेके०) ते पापी जीवो शरीर त्याग करे एटले जेवुं पाप समाचरे तेवुं नोगवे ॥ १० ॥

॥ दीपिका—जातिं पत्रांकुरादिनेदां वृद्धिं च विनाशयन् बीजानिच फलानि विनाशयन् असंयतोगृहस्थः प्रव्रजितोवा आत्मदंमः परहिंसया आत्मानमेव हंतीत्यात्मदंडः। अथेति वाक्यालंकारे। आहुरुक्तवंतोजिनाः। तदेवाह। सलोके निर्दयोऽनार्यधर्मा क्रूरकर्मकारी स्यात्। योबीजानि वनस्पतिकायमात्मसुखार्थं हिनस्ति ॥ ए ॥ वनस्पतिकायोपमर्दकागर्नादिकावस्थासु म्रियंते तथाऽब्रुवंतोऽब्रुवंतश्च व्यक्तवाचोऽव्यक्तवाचश्च तथा परे नराः पंचशिखाः कुमाराः संतोम्रियंते युवानोमध्यमपौरुषामध्यमवयसःस्थविराश्च। एवं सर्वावस्थासु आयुःक्षयोप्रलीनाः संतोदेहं त्यजंति ॥ १० ॥

॥ टीका—किंच। (जातिंचेत्यादि)। जातिमुत्पत्तिं तथाऽंकुरपत्रमूलस्कंधशाखाप्रशाखानेदेन वृद्धिं च विनाशयन् बीजानिच तत्फलानि विनाशयन् हरितानि छिनत्तीति। असंय

तोगृहस्थः प्रव्रजितोवा तत्कर्मकारी गृहस्थएव सच हरितछेदं विधायात्मानं दंमय त्यात्मदंडः सहि परमार्थतः परोपघातेनाऽऽत्मानमेवोऽपहंति । अथ शब्दोवाक्यालं कारे । आहुरेवमुक्तवंतइति दर्शयति । योहरितादिछेदकोनिरनुक्रोशः सोऽस्मिन् लोकेऽ नार्यधर्मा क्रूरकर्मकारी भवतीत्यर्थः । सच एवंभूतोयोधर्मोपदेशेनात्मसुखार्थं वा बीजान्यऽस्यचोपलक्षणार्थत्वात् वनस्पतिकायं हिनस्ति सपाषंडिकलोकोऽन्योवाऽनार्य धर्मा भवतीति संबंधः ॥ ए ॥ सांप्रतं हरितछेदकर्मविपाकमाह (गप्नाइमिजंतिइत्या दि) । इह वनस्पतिकायोपमर्दकाबहुषु जन्मसु गर्भादिकास्ववस्थासु कललार्बुदमां सपेशीरूपासु म्रियंते । तथा ब्रुवंतोऽब्रुवंतश्च व्यक्तवाचो ऽव्यक्तवाचश्च। तथा परेनराः पं चशिखाः कुमाराः संतोम्रियंते । तथा युवानोमध्यमवयसः स्थविराश्च । कचित्पाठो (मज्झिमपोरुसायत्ति)। तत्र मध्यमामध्यमवयसः (पौरुसायत्ति) । पुरुषाणां चरमाव स्थां प्राप्ताअत्यंतवृद्धाएवेति यावत् । तदेवं सर्वास्वप्यवस्थासु बीजादीनामुपमर्दकाः स्वायुषः क्षये प्रलीनाः संतोदेहं त्यजंतीति । एवमपरस्थावरजंगमोपमर्दकारिणामप्य नियतायुष्कत्वमायोजनीयं ॥ १० ॥

संबुझहा जंतवो माणुसत्तं, दठुं भयं बालिसेणं अलंभो ॥ एगं
तडुक्खे जरिएव लोए, सकम्मणा विप्परियासुवेइ ॥ ११ ॥ इहे
गमूढा पवयंति मोरकं, आहारसंपज्जणवज्जणेणं ॥ एगेयसी उद
गसेवणेणं, हुएण एगे पवयंति मोरकं ॥ १२ ॥

अर्थ- (जंतवो के०) अहो जीवो तमे (संबुझहा के०) बुजो जे (माणु सत्तं के०) मनुष्यपणुं पामवुंडुर्लभछे एम जाणो डुल्लहेखलुमाणुस्सेभवे इत्यादिक वचने बुजो एटले प्रतिबोध पामो (दठुंभयंबालिसेणंअलंभो के०) तथा नरक तिर्यंचादिक गतिने विषे अनेक डुःखछे तेनो भय देखीने बालिस एटले अज्ञान पणाने लीधे सद् विवेक पामवो डुर्लभछे एवीरीते जाणो (एगंतडुरकेजरिएवलोए के०) तथा ए लोक एकांत डुखीछे ज्वरित एटले जेम ज्वराक्रांत जीव डुःखी होय तेम ए सर्व लोक (सक म्मणाविप्परियासुवेइ के०) पोत पोताना कर्मरूप तापे करी व्याकुल थता संसा रमां विपर्यास एटले फरी फरी नाश पामेछे ॥ ११ ॥ (इहेगमूढापवयंति के०) अं हीं धर्म स्थापना अधिकारे कोइएक मूर्ख कुशील दर्शनी एम कहेछे के (आहारसंप ज्जणवज्जणेणं के०) आहारेणसंपचक एटले लवण तेने वर्जवा थकी (मोरकं के०) मोक्षने एटले सर्व रसनु सार लवणछे यतः लवणाविहूणारसा इतिवचनात् तथा पाठां तरे (आहारउपंचकवज्जणेणं के०) आहारपंचकंलवणपंचकंचेदं आहार आश्री पां

च नेद वर्जवा थकी मोक्ष थायछे ते आहार पंचकना नाम कहेछे एक लशण बीजो लाडु त्रीजो करनी एटले डुग्ध चोथो गौमांस पांचमुं मद्य (एगेयसीउदगसेवणेणं) तथा एकेक वादी शीतलोदकना उपनोग थकी मोक्ष कहेछे एटले जेम पाणी बाह्यमल उतारेछे तेम अंतरंग मल पणते पाणीज उतारेछे एम कहेछे (हुएणएगेपवयंतिमोक्खं के०) कोइएक वली हुताशन एटले अग्नीना होम थकी मोक्षछे एम प्ररूपेछे जेम सुवर्णादिकना मलने अग्नी बालेछे तेम आत्मना मलनो पण अग्नीज नाश करेछे.॥१२॥

॥ दीपिका–हेजंतवो यूयं संबुध्यध्वं मनुष्यत्वं डुर्लनं तथा नरतिर्यगादिगतिषु नयं दृष्ट्वा बालिशेन मूर्खेण विवेकस्यालंनोविवेकज्ञेन न लन्यते इतिज्ञात्वा एकांतडुखाज्वरितश्वायं लोकः । यडुक्तं । जन्मडुःखं जराडुःखं, रोगा यं मरणाणि अ ॥ अहोडुरके हु संसारो जब कीसंति जंतुणो इति । तथा तएहाइ अस्सपाणं कूगेबायस्स नुत्तयं त्ति । डुःखसयंसंपउत्तंजरिअमिवजगंकालइ । एवंनूतोलोकोडुष्कर्मकारी विपर्यासमुपैति सुखार्थी पापं कुर्वन् डुःखमेव प्राप्नोति ॥ ११ ॥ उक्तः कुशीलविपाकः । अथ तद्दर्शनान्युच्यंते । इह नवे एके मूढामोक्षं प्रवदंति । केन आहारस्य संपइसस्तं जनयतीत्याहारसंपज्जनं लवणं तस्य वर्जनेन लवणवर्जनेन मोक्षं प्रवदंति । लवणं हि सर्वरसमूलं तद्वर्जनाच्च रसपंचकं तस्य वर्जनेन । लवणपंचकं चेदं। सैधवं १ सौवर्चलं २ विडं ३ रौमं ४ सामुइंचेति । तथा पाठांतरं आहारउपंचकवज्जणेणं। आहारतः आहारमाश्रित्य पंचकवर्जनं । तथाहि । लशुनं १ पलांडुः २ करनीक्षीरं ३ गोमांसं ४ मद्यंचेति । एवमाहारपंचकवर्जनेन मोक्षं प्रवदंति । तथा एकेन शीतोदकसेवनेन सचित्तजलपरिनोगात् मोक्षं वदंति। यथा जलेन बाह्यमलस्य विनाशस्तथांतरस्यापी त्यर्थः। एके हुतेन वन्हिहोमेन मोक्षं प्रवदंति । कोर्थः । ते मोक्षायाग्निहोत्रे जुव्हति वदंतिच यथाग्निः स्वर्णानां मलं दहति तथात्मनोपीति ॥ १२ ॥

॥ टीका–किंचाऽन्यत् (संबुज्झहेत्यादि) हेजंतवः प्राणिनः संबुध्यध्वं यूयं नहि कुशीलपार्श्वडिकलोकस्त्राणाय नवति । धर्मंच सुडुर्लनत्वेन संबुध्यध्वं । तथाचोक्तं । माणुस्सखेत्तजाई, कुलरूवारोग्गमाउयंबुद्धी ॥ सवणोग्गहसद्धासंममोयलोगंमि डुल्लहाई॥ तदेवमकृतधर्माणां मनुष्यत्वमतिडुर्लनमित्यवगम्य तथा जातिजरामरणरोगशोकादीनि नरकतीर्यक्षुच तीव्रडुःखतया नयं दृष्ट्वा तथा बालिशेनाऽज्ञेन सद्विवेकस्याऽलंनइत्येतदऽवगम्य तथा निश्चयनयमवगम्य एकांतडुःखोयं ज्वरितश्व लोकः संसारप्राणिगणः । तथाचोक्तं । जम्मडुःखं जराडुःखं, रोगायमरणाणिय । अहोडुरकोहुसंसारो, जब कीसंति

णिणो ॥ १ तथा । तएहाइहस्सपाणं, कूरोहायस्सत्तुज्झएतेत्ती ॥ डुःस्कसहस्संपत्तुत्तं जरि यमिवजगंकलयलेइ ॥१॥ इत्यत्र चैवं नूतलोके आनार्यकर्मकारी स्वकर्मणोविपर्यासमुपैति सुखार्थी प्राण्युपमर्दं कुर्वन् डुःखं प्राप्नोति । यथा मोक्षार्थी संसारं पर्यटतीति ॥ ॥ ११ ॥ उक्तः कुशीलविपाकोऽधुना तदर्शनान्यभिधीयंते । (इहेगेत्यादि) इहेति मनुष्यलोके मोक्षगमनाधिकारे वा एके केचन मूढाअज्ञानाऽऽछादितमतयः परैश्च मोहिताः प्रकर्षेण वदंति प्रतिपादयंति । किंतत् मोक्षं मोक्षावाप्तिं। केनेति दर्शयंति । आह्रियतइत्याहारउदनादिस्तस्य संपद्रसपुष्टिस्तां जनयतीत्याहरसंपज्जनं लवणं । तेन ह्याहारस्य रसपुष्टिः क्रियते तस्य वर्जनं तेनाऽऽहारसंपज्जनवर्जनेन लवणवर्जनेन मोक्षं वदंति । पाठांतरंवा । आहारसपंचयवज्जणेण आहारसलवणपंचकमाहारसपंचकं। लवणपंचकं चेदं । तद्यथा । सैंधवं सौवर्चलं बिडं रौमं सामुद्रं चेति । लवणेन हि सर्वरसानामभिव्यक्तिर्भवति । तथाचोक्तं । लवणविहूणायरसा, चरकुविहूणायइंदियग्गामा । धम्मोदयापरहिउं, सोस्कंसंतोसरहियंतो ॥ १ ॥ तथा लवणं रसानां तैलं स्नेहानां घृतं मेध्यानामिति । तदेवंनूतलवणपरिवर्जनेन रसपरित्यागएव कृतोभवति तत्त्यागाच्च मोक्षावाप्तिरित्येवं केचन मूढाः प्रतिपादयंति । पाठांतरंवा आहारउपंचकवज्जणेण ।आहारतइति ल्यब्लोपे कर्मणि पंचमी। आहारमाश्रित्य पंचकं वर्जयंति । तथा लसणं पलांडुः करभीक्षीरं गोमांसं मद्यं चेत्येतत्पंचकवर्जनेन मोक्षं प्रवदंति । तथैके वारिभद्रकादयोभागवतविशेषाः शीतोदकसेवनेन सचित्ताप्कायपरिभोगेन मोक्षं प्रवदंति । उपपत्तिं च ते अभिदधति । यथोदकं बाह्यमलमपनयति एवमांतरमपि । वस्त्रादेश्च यथोदकाच्छुद्धिरुपजायते एवं बाह्यशुद्धिसामर्थ्यदर्शनादांतरापि शुद्धिरुदकादेवेति मन्यंते। तथैके तापसब्राह्मणादयोहुतेन मोक्षं प्रतिपादयंति । ये किल स्वर्गादिफलमनाशंस्य समिधाघृतादिभिर्द्रव्यविशेषैर्हुताशनं तर्पयंति ते मोक्षायाग्निहोत्रं जुह्वति । शेषास्त्वभ्युदयायेति । युक्तिं चात्र ते आहुः । यथा ह्यग्निः सुवर्णादीनां मलं दहत्येवं दहनसामर्थ्यदर्शनादात्मनोऽप्यांतरं पापमिति ॥१२॥

पाउसिणाणादिसु णत्थि मोस्को,खारस्स लोणस्स अणासएणं ॥
ते मज्जमंसं लसणंच नोच्चा, अन्नत्थवासं परिकप्पयंति ॥ १३ ॥
उदगेण जे सिद्धिमुदाहरंति, सायंच पायं उदगं फुसंता ॥ उदग
स्स फासेण सियाय सिद्धि, सिज्झंसु पाणा बहवे दगंसि ॥ १४ ॥

अर्थ—हवे ए पूर्वोक्त दर्शनीउने उत्तर कहेछे. (पाउसिणाणादिसुके०) प्रातःस्नाना दिके करी आदि शब्द थकी हस्त पादने धोवे करी (णत्थिमोस्को के०) मोक्ष नथी के

मके पाणी नाखवा थकी तदाश्रित जीवोनो घात थायछे तेमाटे एम करवाथकी मो प्राप्त नथाय तथा (खारस्सलोणस्सअणासएणंके०) खार एटले लवणने अण जमवे री पण मोक्ष नथी जो लुंण नखावा थकी मोक्ष प्राप्ति थती होय तो जे देशमां थ्या लुंण मलतुंज नथी तो त्यां निवाश करनारा लोकोने डुर्गति पण नथाय परंतु ए वचन संबंध जाणवो (तेमज्जमंसंलसणंचनोच्चा के०) अने ते मूर्ख मद्य मांस तथा लशण नो रिन्नोग करी ने (अन्नबवासंपरिकप्पयंतिके०) मोक्षार्थि थका अन्यत्र स्थानके वाशकरे एटले तेने पण सुशीलविना मोक्ष नथी एतावता तेने संसारमां निवास कल्पे ॥१३॥ (उदगे जेसिद्धिमुदाहरंति के०) जे मूर्ख पाणीये करी मोक्ष प्ररूपेछे (सायंचपायंउदगंफुस ता के०) एटले संध्या प्रन्नात अने चकारना ग्रहण थकी मध्यानने विषे पाणीने स्पर्श करवा थकी मुक्ति कहेछे तेपण मुधा जाणवो केमके (उदगस्सफासेणसियायसि द्धि के०) उदकना स्पर्शे थकी जो सिद्धि थाय तो (सिज्ञंसुपाणाबहवेदगंसि के०) पाणीमांहे सर्व काल माछला प्रमुख जीवो रहेछे अथवा जाल पण पाणीमां रहेछे तेने पण मुक्ति होवी जोइयें तेम तो थतुं नथी कारणके पाणी जेम अनिष्ट मलने हरण करेछे तेमज इष्ट मल जे सुगंध द्रव्य छे तेने पण हरण करेछे. ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—प्रातःस्नानादिषु नास्ति मोक्षः । तथा क्षारस्य पंचप्रकारलवणस्यानश्ने नाऽपरिन्नोगेण मोक्षोनास्ति ते मूढामद्यं मांसं लशुनादिकंवा जुक्त्वाऽन्यत्र मोक्षात् सं सारेवा समवस्थानं परिकल्पयंति नतु मोक्षगामिनः स्युः शीलं विना ॥ १३ ॥ ये उ केन सिद्धिमुदाहरंति सायमपराएहे प्रातः प्रन्नाते उपलक्षणान्मध्यान्हे एवं त्रिकालमु दकं स्पृशंतोजलेन स्नानादिकं कुर्वतः प्राणिनः सिद्धिं यांतीति केचिद्वदंति तन्न युक्तं यतोजलस्य स्पर्शमात्रेण यदि सिद्धिः स्यात्तदा जलाश्रितामत्स्यबंधादयोबहवः सिध्येयुः स्नानंच यतीनां दोषायैव । यडुक्तं । स्नानं मददर्पकरं कामांगं प्रथमं स्मृतं । तस्मात्कामं परित्यज्य न ते स्नांति दमे रताः ॥१॥ तथा । नोदकक्लिन्नगात्रोहि स्नातइत्यनिधीयते सस्नातोयोब्रह्मस्नातः सबाह्याभ्यंतरः शुचिरिति ॥ १४ ॥

॥ टीका—तेषामसंबद्धप्रलापिनामुत्तरदानायाह । (पाउसिणाणादिइत्यादि) । प्रातः स्नानादिषु नास्ति मोक्षइति प्रत्यूपजलावगाहनेन निःशीलानां मोक्षोनन्नवति । आदिग्र हणात् हस्तपादादिप्रक्षालनं गृह्यते । तथा ह्युदकपरिन्नोगेन तदाश्रितजीवानामुपमर्दः स मुपजायते । नच जीवोपमर्दान्मोक्षावाप्तिरिति । नचैकांतेनोदकं बाह्यमलस्याप्यपनयने समर्थ मथाऽपिस्यात्तथाप्यांतरमलं नशोधयति । न्नावशुध्द्या तच्छुद्धेरथन्नावरहितस्यापि तच्छुद्धि

स्यात् ततोमत्स्यबंधादीनामपि जलाभिषेकेण मुक्त्यवाप्तिः स्यात्। तथा क्षारस्य पंच प्रकारस्याऽपि लवणस्याऽनशनेनाऽपरिभोगेन मोक्षोनास्ति। तथाहि। लवणपरिभोगरहितानां मोक्षोनभवतीत्ययुक्तिकमेतत्।नचाऽयमेकांततोलवणमेव रसपुष्टिजनकमिति क्षीरशर्करादिभिर्व्यभिचारात्। अपिचाऽसौ प्रष्टव्यः। किं द्रव्यतोलवणवर्जनेन मोक्षावाप्तिरुत भावतः। यदि द्रव्यतस्ततोलवणरहितदेशे सर्वेषां मोक्षः स्यान्नचैवं दृष्टमिष्टंवा। अथ भावतस्ततो भावएव प्रधानं किं लवणवर्जनेनेति। तथा ते मूढामद्यमांसलशुनादिकं वा भुक्त्वा अन्यत्र मोक्षादन्यत्र संसारे वा समवस्थानं तथाविधानुष्ठानमसद्भावात् सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपमोक्षमार्गस्याऽनुष्ठानाच्च परिकल्पयंति समंतान्निष्पादयंतीति ॥ १३ ॥ सांप्रतं विशेषेण परिजिहीर्षुराह। (उदगेणेत्यादि) तथा ये केचन मूढाउदकेन शीतवारिणा सिद्धिं परलोकमुदाहरंति प्रतिपादयंति। सायमपराह्णे वकाले वा प्रातश्च प्रत्युषसिच आद्यंतग्रहणात् मध्यान्हे च। तदेवं संध्यात्रयेऽप्युदकं स्पृशंतः स्नानादिकां क्रियां जले न कुर्वंतः प्राणिनोविशिष्टां गतिमाप्नुवंतीति केचनोदाहरंति। एतच्चासम्यक्। यतोयद्युदकस्पर्शमात्रेण सिद्धिः स्यात् ततउदकसमाश्रितामत्स्यबंधादयः क्रूरकर्माणोनिरनुक्रोशा बहवः प्राणिनः सिद्ध्येयुरिति। यदपि तैरेवोच्यते। बाह्यमलापनयनसामर्थ्यमुदकस्य दृष्टमिति तदपि विचार्यमाणं नघटते। यतोयथोदकमनिष्टमलमपनयत्येवमभिमतमप्यंगरागं कुंकुमादिकमपि नयति। ततश्च पुण्यस्याऽपनयनादिष्टविघातकृद्विरुद्धः स्यात्। किंच यतीनां ब्रह्मचारिणामुदकस्नानं दोषायैव। तथाचोक्तं। स्नानं मददर्पकरं, कामांगं प्रथमं स्मृतं। तस्मात्कामं परित्यज्य,नते स्नांति दमे रताः॥ अपिच। नोदकक्लिन्नगात्रोहि, स्नातइत्यभिधीयते॥ सस्नातोयोव्रतस्नातः सबाह्याभ्यंतरः शुचिः॥ १४ ॥

मच्छाय कुम्माय सिरीसिवाय, मग्गूय उट्टादगरक्खसाय ॥ अ
ठाणमेयं कुसला वयंति; उदगेण जे सिद्धिमुदाहरंति ॥ १५ ॥
उदयं जइ कम्ममलं हरेज्जा, एवं सुहं इच्छामित्तमेवं ॥ अंधंव
णेयारमणुस्सरित्ता; पाणाणि चेवं विणिहंति मंदा ॥ १६ ॥

अर्थ–(मच्छायकुम्मायसिरीसिवाय के०) जो उदकना स्पर्श थकी मोक्ष थायतो माछला कूर्मक एटले मेंमका तथा सर्प (मग्गूयके०) जलकाग (उट्टाके०) जलचरविशेष (दगरक्खसाय) जलमाणस एटले मनुष्याकृति जेवा राक्षस ए सर्व मोक्षगामी थशे (अट्ठाणमेयंकुसलावयंतिके०) ते कारण माटे जे कुशल एटले तीर्थंकर देव तेणे ए अस्थान अयुक्त कह्युंछे तो शुं कह्युंछे तोके (उदगेणजेसिद्धिमुदाहरंतिके०) उदक पकी जेमोक्ष कहेछे ते पुरुष अज्ञानी पापिष्ट पापकर्मी अल्पमति वाला जाणवा॥ १५ ॥

(उदयंजइ कम्ममलंहरेज्जाके०) उदक जो अशुन कर्मरूप मलने हरण करे तो (सु सुहं के०) एमज शुन्न एटले पुण्य तेने पण हरण करे अने जो पुण्यने हरण नकरे तो कर्म मल पण अपहरी शकेनही माटे (इछामित्तमेवं के०) जे उदक थकी सिद्धि कहेछे ते ए वचन इछामात्रज बोलेछे (अंधंवणेयारमणुस्सरित्ताके०) जेम जात्यंध पुरुष मा र्ग देखाडनार होय तो तेनी पछवाडे चालवा थकी वांछित मार्ग पामियें नही (पा णाणिचेवंविणिहंतिमंदाके०) तेम मूर्ख प्राणी पण धर्मनी बुद्धियें प्राणीउनो विनाश एवा शौच मार्गनो सेवन करता थका मोक्षपामे नही एम नगवंत कहेछे. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—उदकेन यदि मुक्तिः स्यात्तदा मत्स्याः कूर्माश्च सरीसृपाजलसर्पामजवोम लवायसाउष्ट्राजलचरविशेषादकराक्षसाजलमानुषास्ते प्रथमं सिध्येयुः । नचैवं दृष्टमिष्टं वा । ततोऽस्थानमयुक्तमेतदिति कुशलानिपुणावदंति ये उदकेन सिद्धिमुदाहरंति॥ ॥ उदकं यदि कर्ममलं हरेत् एवं शुन्नं पुण्यमपि हरेत् । अथ पुण्यं नहरेदेवं कर्ममलमपि न हरेदतइछामात्रमेतज्जलं कर्मापहारीति ॥ यथा जात्यंधाश्चान्यं जात्यंधमेव नेतारमनुसृ त्य गछंतः कुपथाश्रिताः स्युः । एवं स्मार्तमार्गानुसारिणोजलशौचपरामंदामूर्खाः प्रा णिनएव विनिघ्नंति व्यापादयंति ततश्च नानिप्रेतस्थानगामिनः स्युः ॥ १६ ॥

॥ टीका—किंच (मछायइत्यादि) । यदि जलसंपर्कात्सिद्धिः स्यात् ततोये सततमुद कावगाहिनोमत्स्याश्चकूर्माश्च सरीसृपाश्च तथा मजवस्तथोष्ट्राजलचरविशेषास्तथोदकराक्षसा जलमानुषाकृतयोजलचरविशेषाएते प्रथमं सिद्धेयुर्नचैतदृष्टमिष्टं । ततश्च ये उदके न सिद्धिमुदाहरंत्येतदस्थानमयुक्तमसांप्रतं कुशलनिपुणामोक्षमार्गाभिज्ञावदंति ॥ १७ ॥ किंचाऽन्यत् । (उदयमित्यादि) यद्युदकं कर्ममलमपहरेदेवं शुन्नमपि पुण्यमपहरेत् अ थ पुण्यं नापहरेदेवं कर्ममलमपि नापहरेत् । अतइछामात्रमेवैतद्यडुच्यते जलकर्मापहारीति । एवमपि व्यवस्थिते ये स्नानादिकाः क्रियाः स्मार्तमार्गमनुसरंतः कुर्वंति ते य था जात्यंधाअपरं जात्यंधमेव नेतारमनुसृत्य गछंतः कुपथश्रुतयोनवंति नाऽनिप्रेतं स्थानमवाप्नुवंति । एवं स्मार्तमार्गानुसारिणोजलशौचपरायणामंदाअज्ञाः कर्तव्याक र्तव्यविवेकविकलाः प्राणिनएव तन्मयात् तदाश्रितांश्च पूतरकादीन विनिघ्नंति व्यापादयं ति अवश्यं जलक्रियया प्राणव्यपरोपणस्य संनवादिति ॥ १६ ॥

पावाइं कम्माइं पकुव्वतोहिं, सिउदगं तू जइ तं हरिज्जा॥सिज्जं सु
एगे दगसत्तघाती. मुसं वयंते जलसिद्धिमाहु ॥ १७ ॥ हुतेण जे

सिद्धिमुदाहरंति, सायंच पायं अगणिं फुसंता ॥ एवं सिया सिद्धि हवेज्ज तम्हा, अगणिं फुसंताण कुकंमिणंपि ॥ १८ ॥

अर्थ-(पावाइं कम्माइं पकुव्वतोहिंके०) जे जीव प्रकर्षे करी जीव घातादिक अनेक पाप कृत्यो करी कर्म उपार्जीने पढी (सिउदगंतूजइतंहरिज्जाके०) सीतोदक एटले त्रिसंध्याये पाणीनो स्पर्श करी उपार्जित कर्मनो नाश करीने सिद्धिपामे तो (सिज्कंसुएगेदगसत्तघाती के०) पाणीने योगे करी कोइ एक जीवघातक एवा माछीगर प्रमुख पण सीजे (मुसंवयंतेजलसिद्धिमाहु के०) तेमाटे जे उदक थकी सिद्धि कहेछे ते मृषावाद बोले छे ॥ १७ ॥ (हुतेणजे सिद्धिमुदाहरंति के०) हुताशन जे अग्नि ते थकीजे मोक्ष कहेछे (सायंचपायं अगणिंफुसंता के०) एटले संध्या प्रनात अने मध्यान्हे एम त्रिसंध्यायें अग्नीने फरसवे करी घृतादिकनुं अग्नीनेविषे होम करवे करी सिद्धिछे एम अग्नी होत्री नामना दर्शनीउ कहेछे तेने पूढीयें जे (एवंसिया सिद्धिहवेज्जतम्हाके०) एम करवा थकी जो सिद्धि थति होय तो (अगणिं फुसंताण कुकंमिणंपि के०) अग्नीना फरशनारा कुकर्मि एवा लोहकार अंगार दाहक कुंनकार नाडनूंजा सोनी प्रमुख ने पण मोक्ष प्राप्ति थवी जोइये केमके ए लोहकार प्रमुखतो सदा अग्नि तर्प्पण करता थकाज रहेछे माटे ते डुर्गतिमां नहीज जाय. यद्यपि ते दर्शनीउ मंत्रनुं कारण देखाडे तो तेने एम कहेवुं केजे अत्यंत तमारा आज्ञाकारी होय ते एवुं तमारुं बोलवुं प्रमाण करशे परंतु अन्य जनो ए वात माने नही जेम तेम नस्म करणे सरखा तो मंत्रेकरी शुं विशेषछे॥१८॥

॥ दीपिका-पापानि कुर्वतः प्राणिनोयत्कर्म बध्यते तत्कर्म यदि जलमपहरेत्।यद्येवं स्यात्तदा जलसत्वघातिनोजलप्राणिहिंसकाः सर्वे सिध्येयुर्नचैवमस्ति तस्माद्ये जलेन सिद्धिमाहुस्ते मृषावदंति ॥१७॥ अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामइत्यादिवाक्यात् ये मूढाहुतेनाऽग्नौ हव्यरूपेण सिद्धिं सङ्गतिमुदाहरंति वदंति । किंनूताः सायमपराह्णे प्रातः प्रनातेऽग्निं स्पृशंतस्तर्पयंतः सिद्धिमिछंति । एवं यदि सिद्धिः स्यात्ततस्तस्मादग्निं स्पृशतां कुकर्मिणामंगारकदाहककुंनकारायस्कारादीनां सिद्धिः कथं न स्यात् ॥ १८ ॥

॥ टीका-अपिच (पावाइंइत्यादि । पापानि पापोपादानभूतानि कर्माणि प्राण्युपमर्दकारीणि कुर्वतोसुमतोयत्कर्मोपचीयते तत्कर्म यद्युदकमपहरेत् । यद्येवं स्यात् तर्हि यस्मादर्थे यस्मात्प्राण्युपमर्दकर्मोपादीयते जलावगाहनाच्चाऽपगच्छति तस्माडुदकसत्वघातिनः पापनूयिष्ठाश्रप्येवं सिध्येयुः । नचैतदृष्टमिष्टं वा । जलावगाहनात्सिद्धिमाहुस्ते

मृषा वदंति ॥ १७ ॥ किंचाऽन्यत् (हुतेणेत्यादि) अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः स्मा द्वाक्यात् ये केचन मूढाहुतेनाऽग्नौ हव्यप्रक्षेपेण सिद्धिं सुगतिगमनादिकां वाभिलक्षणामुदाहरंति प्रतिपादयंति । कथंनूताः सायमपराह्णे विकालेवा प्रातः प्रत्यूषसि अग्निं स्पृशंतोयथेष्टैर्हव्यैरग्निं तर्प्पयंतस्ततएव यथेष्टगतिमभिलषंति । आहु रेवं ते यथा अग्निकार्यात्स्यादेव सिद्धिरिति । तत्रच यद्येवमग्निस्पर्शेन सिद्धिर्भवेत् । तत स्मादग्निं स्पृशतां कुकर्मिणामंगारदाहककुंभकारायस्कारदीनां सिद्धिः स्यात् । यदपि च मंत्रपूतादिकं तैरुदाह्रियते तदपिच निरंतराः सुहृदः प्रत्येष्यंति । यतः कुकर्मि णामप्यग्निकार्ये भस्मापादनमग्निहोत्रिकादीनामपि भस्मसात्करणमिति नातिरिच्यते कु कर्मिभ्योऽग्निहोत्रादिकं कर्मेति । यदप्युच्यते अग्निमुखावैदेवाः । एतदपियुक्तिविकलत्वा द्वाङ्मात्रमेव विष्टादिभक्षणेन चाऽग्नेस्तेषां बहुतरदोषोत्पत्तेरिति ॥ १८ ॥

अपरिक्ख दिठ्ठं णहु एव सिद्धी, एहिंति ते घायमबुज्झमाणा॥भूए
हिं जाणं पडिलेह सातं, विज्जंगहायं तसथावरेहिं ॥१९॥ थणं
ति लुप्पंति तसंति कम्मी, पुढो जगा परिसंखाय भिक्खू॥ तम्हा
विऊ विरतोआयगुत्ते, दठ्ठुं तसेया पडिसंहरेज्जा ॥ २० ॥

अर्थ—माटे (अपरिक्खदिठ्ठंणहुएवसिद्धीके०)जे स्नान अने होमादिके करी सिद्धि बोले छे ते अविमाश्यो बोलेछे केमके एवा कारणो थकी सर्वथापि सिद्धि नथाय (एहिंतिते घायमबुज्झमाणा के०) ते अबुद्ध एटले तत्वना अजाण धर्मनी बुद्धियें पाप करता थका घात पामशे (भूएहिंजाणंपडिलेहसातं के०) एवुं जाणी करीने भूत एटले प्राणी मात्रने साता एटले सुख प्रतिलेखीने तेने हणे नही एम (विज्जंके०) विद्वान् विवेकने (गहा यके०) गृहीने (तसथावरेहिंके०) त्रस अने स्थावर जीवोने सुख प्रियछे दुःख अप्रियछे एवुं ज्ञानेकरी जाणे यडुक्तं पढमंनाणंतउदया इतिवचनात्॥१९॥परंतु जे कुशीलिया छेतेप्राणीओ नो उपमर्दन करवा थकी सातामानेछे तेने फलकहेछे ते पृथिव्यादिकना आरंभे सुखाभिला षी छता नरकादिक गतिने विषे जाय पछी त्यां (थणंतिके०)आक्रंद करे तथा (लुप्पंतिके०) खड्गादिक शस्त्रे छेदन थयाथी कदर्थमान थका (तसंतिके०) नाशीजाय एम (कम्मी के०) ते पाप सहित प्राणी दुःखी थाय (तम्हाके०) ते कारणे (भिक्खूके०) चारि त्रिउ (पुढोजगापरिसंखाय के०) जुदा जुदा जीवोने जाणीने (विऊके०) विद्वान होयते (आयगुत्तेके०) आत्म गुप्तिवंत छतो (विरतोके०) संयम आचरे (दठ्ठुंतसेयापडिसंहरेज्जा के०) त्रस अने स्थावर जीवनी हिंसाकारणी एवी क्रियादेखीने ते थकी निवर्त्ते ॥२०॥

॥ दीपिका—अग्निहोत्रेण जलेन वा यैः सिद्धिरुक्ता तैरपरीक्ष्य दृष्टं युक्तिविकलमुक्तं ।

यतो नैवमेव सिद्धिः। ते परमार्थमबुध्यमानाअजानंतः प्राणिघातेन संसारे भ्रमिष्यंति॥ ततोविद्वान् विवेकी सातं सुखं प्रत्युपेक्ष्य नूतैः प्राणिभिस्त्रसस्थावरैर्ज्ञानीयाद्यथाव स्थितत्वं गृहीत्वा । कोर्थः । सर्वे जीवाः सुखैषिणोडुःखद्विषश्च। नच सुखैषिणां डुःखोत्पा दकत्वेन स्वस्य सुखं स्यादिति ॥ १ए ॥ ते आरंनिणोनरकादिगतास्तनंत्याक्रंदंति लु प्यंते छिद्यंते खड्गादिनिः। एवं पीड्यमानास्त्रसंति पलायंते ।कर्माणि विद्यंते येषांते कर्मि णः सपापाः पृथक् जगाइति जंतवः । एवं परिसंख्याय ज्ञात्वा निक्षुस्तस्माद्विद्वान् पंडितो विरतः पापादात्मगुप्तोदांतात्मा त्रसान् स्थावरांश्च दृष्ट्वा परिज्ञाय तडुपघातक्रियां प्र तिसंहरेन्निवर्तयेत् ॥ २० ॥

॥ टीका—उक्तानि पृथक् कुशीलदर्शनानि अयमपरस्तेषां सामान्योपालंनइत्याह । (अ परिक्कदिठमित्यादि । यैर्मुमुक्षुनिरुदकसंपर्केणाऽग्निहोत्रेण वा प्राण्युपमर्दकारिणा सिद्धि रिति । तेच परमार्थमबुद्ध्यमानाः प्राण्युपघातेन पापमेव धर्मबुद्ध्या कुर्वंतोघात्यंते वा व्या पाद्यंते नानाविधैः प्रकारैर्यस्मिन् प्राणिनः संघातः संसारस्तमेष्यंति । अप्कायतेजःकाय समारंनेण हि त्रसस्थावराणामवश्यं नावी विनाशस्तन्नाशेच संसारएव न सिद्धिरित्यनि प्रायः । यतएवं ततोविद्वान् सदसद्विवेकी यथावस्थिततत्वं गृहीत्वा त्रसस्थावरैर्नूतैर्जं तुनिः कथं सांप्रतं सुखमवाप्यतइति एतत्प्रत्युपेक्ष्य जानीहि अवबुध्यस्व । एतडुक्तं नव ति । सर्वेऽप्यसुमंतः सुखैषिणोडुःखद्विषोनच तेषां सुखैषिणां डुःखोत्पादकत्वेन सुखा वाप्तिर्नवतीति । यद्विवा । (विक्कंगहायत्ति) विद्याज्ञानं गृहीत्वा विवेकमादाय त्रस स्थावरैर्नूतैर्जंतुनिः करणनूतैः सातं सुखं प्रत्युपेक्ष्य पर्यालोच्य जानीह्यवगछेति । यत उक्तं ।(पढमं नाणं तवोदया एवं चिठइ संजए। अन्नाणीकिंकाही किंवाणाहीछेयपावगमि त्याद्वि)॥ १ए ॥ ये पुनः प्राण्युपमर्देन सातमनिलषंतीत्यशीलाः कुशीलाश्च ते संसारे एवंविधाअवस्थाअनुनवंतीत्याह (घणंतिलुप्पंतीत्यादि) तेजस्कायसमारंनिणोनूतस मारंनेण सुखमनिलषंतोनारकादिगतिगतास्तीव्रडुःखैः पीड्यमानाअसह्यवेदनाग्रातमा नसाअशरणाः स्तनंति केवलं करुणमाक्रंदंतीति यावत् । (तयालुप्पंतीति)। छि द्यंते खड्गादिनिरेवं च कदर्थ्यमानास्त्रस्यंति प्रपलायंते । कर्माण्येषां संतीति कर्मिणः स पापाइत्यर्थः । तथा पृथक्जगाइति जंतवइति । एवं परिज्ञाय ज्ञात्वा निक्षणशीलोनिक्षुः साधुरित्यर्थः । यस्मात्प्राण्युपमर्दकारिणः संसारांतर्गताविलुप्यंते तस्माद्विद्वान् पंडितोवि रतः पापानुष्ठानादात्मा गुप्तोयस्य सोऽयमात्मगुप्तोमनोवाक्कायगुप्तइत्यर्थः। दृष्ट्वाच त्रसान्।च शब्दात्स्थावरांश्च दृष्ट्वा परिज्ञाय तडुपघातकारिणीं क्रियां प्रतिसंहरेन्निवर्तयेदिति ॥ २० ॥

जे धम्मलद्धं विणिहाय भुंजे, वियडेण साहट्टु य जे सिणाइ॥ जे धो
वती लूसयतीव वत्थं, अहाहु सेणा गणियस्स दूरे ॥२१॥ कम्मं
परिन्नाय दगंसि धीरे, वियडेण जीविज्ज य आदिमोक्खं ॥ संवीय
कंदाइ अभुंजमाणे, विरतेसि णाणाइसु इत्थियासु ॥ २२ ॥

अर्थ-(जे के०) जे शीतल विहारी (धम्म के०) शुद्ध निर्दोष एवा आहारने ल
द्ध के० लहीने (विणिहायभुंजे के०) संनिधि करी जमे तथा (वियडेणसाहट्टुजे
सिणाइ के०) विकट एटले फासु पाणीयें करी अंगोपांग संकोची प्रासुक प्रदेशे थ
देश थकी अथवा सर्व थकी स्नान करे तथा (जेधोवतीलूसयतीववत्थं के०) जे व
धोवे तथा लुसे एटले लांबुंहोय तेने फाडीने न्हानो करे तथा न्हानुं होय तेने सां
ने मोहोटुं करे इत्यादिक वातो शोभाने अर्थे जे करे (अहाहुसेणागणियस्सदूरेके०)
ते संयम थकी दूर वर्त्तेछे एम श्रीतीर्थंकर गणधर कहेछे. ॥ २१ ॥ (कम्मंपरिन्नायदगं
सिधीरे के०) जे धीर बुधिमंत पुरुष होय ते उदकने विषे कर्मबंध जाणीने (विय
णजीविज्जयआदिमोक्खं के०) जावजीव सुधी फासु पाणी पीए (सवीयकंदाइअभुं
माणे के०) ते साधु बीज कंदादिक अणभोगवतो (विरतेसिणाणाइसुइत्थियासुके०) स्नान
अभ्यंग उटंगणादिकने विषे तथा स्त्रीने विषे विरति होय पणकुशील दोष आचरे नही॥२२

॥ दीपिका-अथ स्वयूथ्यकुशीलानाह । (जेइति) । ये शीतलविहारिणोधर्मेण ल
धिकया लब्धमुद्देशकक्रीतादिदोषरहितमाहारं विनिधाय व्यवस्थाप्य सन्निधिकृतेवा भुं
ते तथा विकटेन प्रासुकोदकेनापि संकोच्यांगानि प्रासुकोदकेनापि देशसर्वस्नानं कुर्वं
तथा ये वस्त्रं धावंति प्रक्षालयंति लूषयंति शोभार्थं दीर्घं सछिदार्य न्हस्वं वा संधाय दी
करोति (सेणागणिअस्स) निर्ग्रंथभावस्य दूरे वर्तते इति तीर्थकृतआहु. ॥ २१ ॥ उ
क्ताः कुशीलाअथ सुशीलाउच्यंते। धीरोबुद्धिमान् उदकारंभे सति कर्म बध्यतइति प्रति
य विकटेन प्रासुकोदकेन सौवीरादिना जीव्यात् प्राणधारणं कुर्यात्। आदिः संसारस्तस्मा
न्मोक्षआदिमोक्षः संसारविमुक्तिंयावदित्यर्थः । अथवा धर्महेतूनामादिभूतं शरीरं तद्वि
क्तिंयावद्यावज्जीवमित्यर्थः । ससाधुर्बीजकंदादीनभुंजानः स्नानादिषु विरतः । आदि
ब्दादभ्यंगोद्वर्तनादिभ्योपिविरतअन्यासुच विचिकित्सादिक्रियासु निवर्तते तथा स्त्रीषु वि
रतोऽन्यास्त्रवेभ्योपि विरतः कुशीलदोषैर्न युज्यते॥ २२ ॥

॥ टीका-सांप्रतं स्वयूथ्याः कुशीलाअभिधीयंतइत्याह। (जेधम्मलद्धमित्यादि) ये धर्म

न शीतलविहारिणोधर्मेण मुधिकया लब्धं धर्मलब्धं। उद्देशकक्रीतकृतादिदोषरहितमित्य र्थः।तदेवंभूतमप्याहारजातं निधाय व्यवस्थाप्य सन्निधिं कृत्वा भुंजते । तथा ये विकटेन प्राशुकोदकेनाऽपि संकोच्यांगानि प्राशुकएव प्रदेशे देशसर्वस्नानं कुर्वंति । तथा योवस्त्रं धावति प्रक्षालयति तथा लूषयति शोभार्थं दीर्घमुत्पाटयित्वा ह्रस्वं करोति ह्रस्वंवा संधा य दीर्घं करोति । एवं लूषयति । तदेवं स्वार्थं परार्थं वा योवस्त्रं लूषयति।अथाऽसौ (णागणि यस्सत्ति) निर्ग्रंथभावस्य संयमानुष्ठानस्य दूरे वर्त्तते न तस्य संयमोभवत्येवं तीर्थंकरगण धरादयआहुरिति ॥ २१ ॥ उक्ताः कुशीलास्तत्प्रतिपक्षभूताः शीलववंतः प्रतिपाद्यंतइत्ये तदाह । (कम्मंपरिणायइत्यादि) । धिया राजते इति धीरोबुद्धिमान् (उदगंसित्ति) उद कसमारंभे सति कर्मबंधोभवति । एवं परिज्ञाय किंकुर्यादित्याह । विकटेन प्राशुकोदकेन सौवीरादिना जीव्यात् प्राणसंधारणं कुर्यात् । चशब्दात् अन्येनाऽप्याहारेण प्राशुकेनैव प्राणवृत्तिं कुर्यात् । आदिः संसारस्तस्मान्मोक्षआदिमोक्षः संसारविमुक्तिंयावदिति । ध र्मकारणानां तावदादिभूतं शरीरं तद्विमुक्तिं यावज्जीवमित्यर्थः । किंचाऽसौ साधुर्बीजकं दादीन् भुंजानः। आदिग्रहणात् मूलपत्रफलानि गृह्यंते । एतान्यऽप्यपरिणतानि परिहरन् विरतोभवति । कुतइति दर्शयति।स्नानाभ्यंगो द्वर्त्तनादिषु क्रियासु निष्प्रतिकर्मशरीरतयाऽन्या सु चिकित्सादिक्रियासु न वर्तते । तथा स्त्रीषु च विरतः वस्तिनिरोधग्रहणात् अन्येऽप्याश्रवा गृह्यंते। यश्चैवंभूतः सर्वेभ्योऽप्याश्रव द्वारेभ्योविरतोनाऽसौ कुशीलदोषैर्युज्यते तदयोगाच्च न संसारे बंभ्रमीति । ततश्चन दुःखितः स्तनति नापि नानाविधैरुपायैर्विलुप्यतइति ॥२२॥

जे मायरं च पियरं च हिच्चा, गारं तहा पुत्तपसुं धणंच॥कुलाइं जे
धावइ साउगाइं, अहाहु से सामणियस्स दूरे ॥ २३ ॥ कुलाइं
जे धावइ साउगाइं, आघातिधम्मं उदराणुगिद्धे ॥ अहाहु से
आयरियाण सयंसे. जो लावएज्जा असणस्स हेऊ ॥ २४ ॥

अर्थ-(जेमायरंच पियरंचहिच्चा के०) जे कुशीलिया माता तथा पिता प्रमुख कुटुंब त्यागीने (गारं के०) आगार एटले घर (तहा के०) तथा (पुत्तपसुंधणंच के०) पुत्र अने पशु जे गवादिक तथा धनने त्यागी पंचमहाव्रत अंगीकार करी पछी रसगृद्धिये आसक्त थता जिव्हालोलपी सरस आहारने गवेषता थका (कुलाइं जेधावइ साउगाइंके०) मोहोटा कुलने विषे रूडा रसनो आहार पामवाने अर्थे जे भ्रमण करे (अहाहुसेसामणि यस्सदूरे के०) ते चारित्र थकी दूर जाणवा एम श्रीतीर्थंकर गणधर कहेले. ॥ २३ ॥ (कुलाइं जे धावइ साउगाइं के०) जे स्वादुक कुलने विषे रसलंपट थका गोचरी कर वाने जाय (आघातिधम्मं उदराणुगिद्धके०) एवा उदर गृद्ध पेटार्थि थका जेने जेवो धर्म

रूचे तेने तेवो उपदेश आपे (अहाहुसे आयरियाणसयंसेके०) ते पुरुषो आर्य धर्मने से मे नागे उपलक्षणथकी सहस्र लाख क्रोडमे नागे पण पोहोचे नही एम श्री तीर्थंकरा दिक कहेछे (जोलावएज्जा असणस्सहेककेे०) तथा जे साधु आहार वस्त्रादिकोने अर्थे बीजाने मुखे पोताना गुण केवरावे लाल पाल करे तेपण कुशीलिया जाणवा. ॥२४॥

॥ दीपिका—यः कुशीलोमातरं पितरं वा उपलक्षणाद्भ्रातृदुहित्रादिकमपि हित्वा अगा रं गृहं पुत्रमपत्यं पशुं हस्त्यश्वगोमहिष्यादिकं धनं च त्यक्त्वा पुनर्हीनतया स्वादुा नि स्वादुनोजनवंति कुलानि गृहाणि धावति गच्छति असौ श्रामण्यस्य श्रमणत्वस्य दूरे एवमाहुस्तीर्थंकृतः ॥ २३ ॥ यः कुलानि स्वादुनोजनवंति धावति गच्छति गत्वा निक्षा र्थं प्रविश्य यद्यस्मै रोचते कथादिकं तत्तस्याख्याति । किंनूतः । उदरेऽनुगृद्ध उदरजरणव्य ग्रः सआर्याणां उत्तमगुणानां शतांशे अधिवर्तते शतोपलक्षणात्सहस्रांशादेरप्यधिव र्तते । योऽशनःस्यात्तस्य हेतुं लापयति स्वप्रशंसां करोति ॥ २४ ॥

॥ टीका—पुनरपि कुशलानेवमधिकृत्याह । जेमायरंचेत्यादि । ये केचनाऽपरिणतस म्यक्धर्माणस्त्यक्त्वा मातरंच पितरंच मातापित्रोर्दुस्त्यजत्वादुपादानं। अतोभ्रातृदुहित्रादि कमपि त्यक्त्वेति एतदपि इष्टव्यं । तथा अगारं गृहं पुत्रमपत्यं पशुं हस्त्यश्वरथगोमहि ष्यादिकं बंधनं च त्यक्त्वा सम्यक् प्रव्रज्योत्थानेनोत्थाय पंचमहाव्रतनारस्य स्कंधं दत्वा पुन र्हीनसत्वतया रससातादिगौरवगृद्धोयः कुलानि गृहाणि स्वादुकानि स्वादुनोजनवंति धावति गच्छति । अथाऽसौश्रामण्यस्य श्रमणनावस्य दूरे वर्त्तते एवमाहुस्तीर्थंकरगणधरा दयइति ॥२३॥ एतदेव विशेषेण दर्शयितुमाह (कुलाइंजेधावतीत्यादि) कुलानि स्वादुनो जनवंति धावतिगच्छति)तथा गत्वा धर्ममाख्याति निक्षार्थंवा प्रविष्टोयद्यस्मै रोचते कथासंबं धस्तं तस्याऽऽख्याति । किंनूतइति दर्शयति । उदरेऽनुगृद्धउदरानुगृद्धः। उदरनरणव्यग्रसुनु परिमृजइत्यर्थः।इदमुक्तं नवति। योह्युदरगृद्धआहारादिनिमित्तं दानश्रद्धकाख्यानि कुलानि गत्वाऽऽख्यायिकाः कथयति सकुशीलइति। अथाऽसावाचार्यगुणानां वा शतांशे वर्ततइति योह्यन्नस्य हेतुं नोजननिमित्तमपरवस्त्रादिनिमित्तं वा आत्मगुणानपरेणालापयेत्आणपेत असावप्यार्यगुणानां सहस्रांशे वर्तते। किमंगं पुनर्यः स्वतएवाऽऽत्मप्रशंसां विदधातीति२४

णिक्खम्म दीणे परनोयणंमि, मुहमंगलीए उदराणुगिद्धे ॥ नी वारगिद्धेव महावराहे, अदूरए एहइ घातमेव ॥ २५ ॥ अन्न स्स पाणस्सिहलोइयस्स, अणुप्पियं नासति सेवमाणे ॥ पास त्थयं चेव कुसीलयंच, निस्सारए होइ जहा पुलाए ॥ २६ ॥

अर्थ-(णिक्खम्मदीणेपरभोयणंमि के०) जे पोतानुं धनादिक छांमीने पछी परभो जनने विषे दीन एटले दयामणो थाय (उदराणुगिद्धेके०) एम उदरगृद्धथको रहेते (मुहमंगलिक के०) गृहस्थने बंदीजननी पेरे मुखेंमंगलिक वचन कहे गृहस्थनी प्रसं साकरे यतः सोएसोजस्सगुणा, विरयंतनवारियादसदिसासु, इहराकहासुच्चसि पच्चरकं अन्नदिठोसि ॥ १ ॥ इत्यादिक वचन पेटनें अर्थें बोले (नीवारगिद्धेवमहावराहे के०) जे म महोटो सूअर नीवार एटले चावलना कणने विषे गृद्धछतो (अदूरएएहइघातमेव के०) अदूर एटले तरत घात पामे तेम कुशीलिया पण आहार गृद्धछता संसार मांहे अनंता मरण पामे ॥ २५ ॥ ते कुशीलिया (अन्नस्स के०) अन्नने अर्थे (पाणस्स के०) पाणीने अर्थे तथा (हलोइयस्स के०) अन्य वस्त्रादिकने अर्थें (अणुप्पियंभा सतिसेवमाणे के०) जेने जेवुं गमतुं होय तेना आगल तेवुंज बोले सेवकनी पेरे जेम सेवक पोताना राजाने गमतुं बोले तेम ए कुशीलिया पण बोले ते (पासच्छयंचेवकुसी लयंच के०) सदाचार थकी भ्रष्ट एवा पासछानो भाव तथा कुशीलियानो भाव पामे ते केवो थाय तोके (निस्सारएहोइजहापुलाए के०) निःसार थाय जेम पुलाक एटले धानना छोतरा तूस निःसार होयछे तेम तेपण तेना सरखोज निःसार जाणवो ॥२६॥

॥ दीपिका-योनिष्क्रम्य प्रव्रज्य पराहारविषये दीनः सन् वंदिवन्मुखमांगलिकः स्या त् मुखेन परप्रशंसावाक्यानि वक्ति औदर्यं प्रतिगृद्धः । किमिव ।नीवारोमृगादिभक्ष्यविशे षस्तत्र गृद्धआसक्तोयथा महावराहः सूकरः संकटे प्रविष्टः सन्नदूरएव शीघ्रमेव घातं विनाशमेष्यति एवमसावपि कुशीलः ॥ २५ ॥ सकुशीलोऽन्नस्य पानस्य ऐहिकार्थस्य व स्त्रादेः कृतेतु प्रियं भाषते ऽनुकूलंवक्ति सेवकवत्सेवमानएवंभूतश्च पार्श्वस्थतां कुशील तां च गच्छति निःसारोभवति यथा पुलाकस्तुषः ॥ २६ ॥

॥ टीका-किंच (णिरकमेत्यादि) । योह्यात्मीयं धनधान्यहिरण्यादिकं त्यक्त्वा निष्क्रां तोनिष्क्रम्य च परभोजने पराहारविषये दीनोदैन्यमुपगतोजिह्वेंद्रियवशादार्त्तोवंदिवन्मु खमांगलिकोभवति । मुखेन मंगलानि प्रशंसावाक्यानि ईदृशस्तादृशस्त्वमित्येवं दैन्य भावमुपगतोवक्ति । उक्तंच । सोएसोजस्सगुणा. वियरंतनवारियादसदिसासु । इहराक हासुसुच्चसि. पच्चरकंअज्जदिठोसि।इत्येवमौदर्यं प्रतिगृद्धोऽध्युपपन्नः। किमिव । नीवा रः सूकरादिमृगभक्ष्यविशेषस्तस्मिन् गृद्धआसक्तमनागृहीत्वा च स्वयूथं महावराहोम हाकायः सूकरः । एवकारोऽवधारणे । अवश्यं तस्य विनाशएव नाऽपरा गतिरस्तीति । ए वमसावपि कुशीलआहारमात्रगृद्धः संसारोदरः पौनःपुन्येन विनाशमेवेति ॥ २५ ॥

(किंचअसुस्सेत्यादि) सकुशीलोऽन्नस्य पानस्य वा कृतेऽन्यस्य वैहिकार्थस्य वस्त्रादेः
अनुप्रियं नाषते । यद्यस्य प्रियं तत्तस्य वदतोऽनुपश्चाद्भाषते अनुनाषते । प्रति
त् सेवकवद्धा राजाद्युक्तमनुवदतीत्यर्थः । तमेव दातारमनुसेवमानआहारमात्रगृद्धः
मेतत्करोतीत्यर्थः । सचैवंनूतः सदाचारभ्रष्टः पार्श्वस्थनावमेव व्रजति कुशीलतां च गच्छ
तथा निर्गतएकांततः सारश्चारित्राख्योयस्य सनिःसारः । यदिवा निर्गतस्य सार
सारः सविद्यते यस्याऽसौ निःसारवान् पुलाकइव निष्कणोनवति यथा एवमसौ
मानुष्ठानं निःसारीकरोति । एवंनूतश्चाऽसौलिंगमात्रावशेषोबहूनां स्वयूथ्यानां तिर
पदवीमवाप्नोति परलोके च निकृष्टानि यातनास्थानान्यऽवाप्नोति ॥ २६ ॥

अन्नातपिंमेण हियासएज्जा, णो पूयणं तवसा आवहेज्जा ॥ सद्दे
हिं रूवेहिं असज्जमाणं, सव्वेहि कामेहि विणीय गेहिं ॥२७॥ स
व्वाइं संगाइं अइच्च धीरे, सव्वाइं दुक्खाइं तितिक्खमाणे ॥ अखिले
अगिद्धे अणिएयचारी, अन्नयं करे निक्खु अणाविलप्पा ॥२८॥

अर्थ—हवे सुशीलियानुं आचरण कहेछे. (अन्नातपिंमेणहियासएज्जाके०)
ज्ञात कुलने विषे पिंम एटले आहार पाणी लीयें अंत प्रांत आहारे करी संयम
पण दीनपणु अंगीकार करे नही (णोपूयणंतवसाआवहेज्जा के०) तथा तप
करी पूजा सत्कारने वांछे नही एटले राजादिकनी पूजाने निमित्ते तपश्या करे नही
आत्मार्थे करे यडुक्तं इहलोगछयाएतवमाघहेज्जा इत्यादिक नाव जाणीने तथा
हिं के०) शब्दने विषे (रूवेहिं के०) रूपने विषे (असज्जमाणं के०) असक्तम
टले तत्पर नहोय अने (सव्वेहिकामेहिविणीयगेहिं के०) सर्व कामने विषे गृद्ध
टालीने रागद्वेष नकरे तेने साधु जाणवो ॥ २७ ॥ (सव्वाइंसंगाइंअइच्च के०)
स्त संग तेमां स्नेह ते अभ्यंतर संग अने धन धान्यादिक बाह्य संग एवेप्रकारन
थकी अतीत एटले रहित (धीरे के०) विवेकवान् (सव्वाइंडुक्खाइंतितिक्खमाणे
तथा सर्व शारीरिक अने मानसिक डुःख तेने सहन करनार एटले परीसहोपस
नित डुःखनो सहन करनार (अखिले के०) ज्ञान, दर्शन अने चारित्रे करी
(अगिद्धे के०) कामनोगनी अनिलाष रहित तथा (अणिएयचारी के० अनियत
एटले अप्रतिबद्ध विहारी (अन्नयंकरे के०) सर्व जीवने अनयनो करनार एवा (
के०) साधु ते (अणाविलप्पा के०) विषय कषाये करी अनाकुल एटले कषायने
मावबे करी निर्मल थयोछे जेनो आत्मा एवो साधु महानुनाव जाणवो ॥ २८

॥ दीपिका—अज्ञातपिंडः अंतः प्रांतः अज्ञातेभ्यः पूर्वापराऽपरिचितेभ्यः कुलेभ्यउंछ वृत्या लब्धस्तेनात्मानमधिसहे वर्तयेत् नच तपसा पूजनं सत्कारमावहेत् नसत्कारार्थं त पः कुर्यादित्यर्थः । यडुक्तं । परलोकादिकं धाम, तपः श्रुतमिति द्वयं ॥ तदेवार्थित्वनिर्लुप्त सारं तृणलवायते इति । शब्दैर्मनोज्ञैरूपैश्चासज्जन् आसक्तिमकुर्वन् सर्वैरपि कामैरिन्नाम दैर्गृध्धिं विनीय त्यक्त्वा संयममनुपालयेत् ॥२७॥ सर्वान् संगानतीत्य त्यक्त्वा धीरोवि वेकी सर्वाणि डुःखानि परीषहोपसर्गजनितानि तितिक्षमाणोऽधिसहन् अखिलोज्ञाना दिसंपूर्णोऽगृद्धः कामेष्वनियतचारी अप्रतिबद्धविहारी जीवानामन्नयंकरोनिक्षुः सा धुरनाविलात्मा निष्कषायात्मा सुशीलः स्यात् ॥ २७ ॥

॥टीका—उक्ताः कुशीलास्तत्प्रतिपक्षनूतान् सुशीलान् प्रतिपादयितुमाह ।(अन्नातपिंडेत्या दि) अज्ञातश्चाऽसौ पिंडश्चाऽज्ञातपिंमः अंतःप्रांतइत्यर्थः ।अज्ञातेन्योवा पूर्वापरासंस्तुतेन्यो वा पिंमोऽज्ञातउंछवृत्त्या लब्धस्तेनात्मानमधिसहेत् वर्तयेत् पालयेत् । एतडुक्तं नवति अंतप्रांतेन लब्धेनाऽलब्धेन वा न दैन्यं कुर्यात् । नाऽप्युत्कृष्टेन लब्धेन मदं विदध्यात् । ना ऽपि तपसा पूजनसत्कारमावहेत् न पूजनसत्कारनिमित्तं तपः कुर्यादित्यर्थः । यदिवा पूजासत्कारनिमित्तत्वेन तथाविधार्थत्वेन वा महतापि केनचित्तपोमुक्तिहेतुकं न निःसारं कुर्यात् । तडुक्तं । परलोकाधिकं धाम तपःश्रुतमिति द्वयं ॥ तदेवाऽर्थित्वनिर्लुप्तसारं तृण लवायते । तथा च रसेषु गृद्धिं न कुर्यात् । एवं शब्दादिष्वपीति दर्शयति । शब्दैर्वेणुवीणा दिनिराह्निनः संस्तेष्वसज्जन्नासक्तिमकुर्वन् कर्कशेषुच द्वेषमगन्नन् तथा रूपैरपि मनोज्ञेतरै रागद्वेषमकुर्वन् । एवं सर्वैरपि कामैरिन्नासदनरूपैः सर्वेन्योवा कामेन्यो गृद्धिं विनीयाऽपनीय संयममनुपालयेदिति । सर्वथा मनोज्ञेतरेषु विषयेषु रागद्वेषं न कुर्यात् । तथाचोक्तं ।सद्दे सुयनद्दयपावएसुसोयविसयमुवगएसु । तुठेणचरुठेणच, समणेणसयाणहोयव्वं ॥ १ ॥ रूवेसुयनद्दयपावएसुचरकुविसयमुवगएसु । तुठेणचरुठेणच. समणेणसयाणहोयव्वं ॥२॥ गंधसुयन्नद्दयपावएसु. घाणविसयमुवगएसु । तुठेण० ॥ ३ ॥ नरकेसुयन्नद्दयपावएसु: रस ण विसयमुवगएसु, तुठेणचरुठेणच, समणेणसयाणहोयव्वं ॥ ४ ॥ फासेसुयनद्दयपावए सु. फासविसयमुवगएसु । तुठेणचरुठेणच, समणेणसयानहोयव्वं ॥ ५ ॥ २१ ॥ यथाचें डियनिरोधोनिधेयएवमपरसंगनिरोधोऽपि कार्यइति दर्शयति (सवाइंइत्यादि) सर्वान् वा ह्यांश्च इव्यपरिग्रहलक्षणानतीत्य त्यक्त्वा धीरोविवेकी सर्वाणि डुःखानि शारीरमानसानि त्यक्त्वा परीषहोपसर्गजनितानि तितिक्षमाणोऽधिसहन्नऽखिलोज्ञानदर्शनचारित्रैः संपू र्णस्तथा कामेष्वगृद्धस्तथा नियतचारी अप्रतिबद्धविहारी तथा जीवानामन्नयंकरोपि निक्षणशीलोनिक्षुः साधुरेवमनाविलोविषयकषायैरनाकुलआत्मा यस्याऽसावनाविला त्मा संयममनुवर्त्ततइति ॥ २७ ॥

भाररस जाता मुणि भुंजएज्जा, कंखेज्ज पावस्स विवेग भिक्खू॥
डुरकेण पुठे धुयमाइएज्जा, संगामसीसेव परं दमेज्जा ॥ २९॥
अविहम्ममाणे फलगावतठी, समागमं कंखति अंतकस्स ॥
णिधूय कम्मं ण पवंचुवेइ, अरकरकएवा सगडं तिबेमि॥ ३०॥
इतिश्री कुसील परिभासिय सत्तमाअयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ-(भारस्सजातामुणि भुंजएज्जाके०) भार एटले संयम तेनी यात्रा निरवाह क. अर्थे चारित्रिउं शुद्ध निर्दोष आहार ग्रहण करे (कंखेज्जपावस्सविवेगभिरकू के० था साधु पूर्वे आचरित पापकर्मनो विवेक एटले पृथक् भाव वांछे (डुरकेणपुठेधु एज्जा के०) तथा परीसहादिक उपने थके दुःखने फरश्यो थको धौव शब्दे संयम वा धौव शब्दे मोक्ष तेने ग्रहण करे कोनीपेरे तोके (संगामसीसेवके०) जेम कोइ रवीर सुभटने संग्रामने मस्तके शत्रुयें पराभव्यो थको (परंदमेज्जाके०) परंते फरी शत्रु मन करे तेम चारित्रिउं कर्मरूप शत्रुथी उपना जे उपसर्ग अने परीसह तेथी पराभव्य थको पण कर्मने दमे अने आत्मस्वरूपने साधे ॥ २९ ॥ (अविहम्ममाणे के०) सहोपसर्गे हणातो थको पणते साधु सम्यक् अहियाशे कोनीपेरे तोके (फलग व फलग एटले पाटीआनीपेरे तिष्टे एटले रहे जेम पाटीउं बन्ने पाशे छेदातु थकुं राग द्वेष नकरे तेम साधुपण उपसर्ग परिसह उपने थके राग द्वेष रहित थक (समागमंकंखतिअंतकस्स के०) अंतक एटले मृत्यु आववानो समागम अर्थात् पंमित मरण वांछे पण तपश्यायें करी शरीर शोषवाने लीधे दुर्बल पामवा थकी मनमां शंका तथा भय आणे नही (णिधूयकम्मंणपवंचुवेइके०) ज्ञाना दिक अष्ट प्रकारना कर्म खपावीने वली प्रपंच एटले संसारने न पामे एटले मुक्ति (अरकरकएवासगडंतिवेमिके०) जेम अक्ष एटले धुरी तेना क्षय थकी गाडलुं सम मार्गे नचाले तेम साधु मोक्ष पहोता पछी संसार मांहे पाछा आवे नही. तिवेमिनो पूर्ववत् जाणवो.॥३०॥इति कुशील परिभाषा नामे सातमा अध्ययननो अर्थ समाप्त

॥ दीपिका-भारस्य संयमभारस्य यात्रानिर्वाहस्तदर्थं मुनिर्भुंजीत आहारं गृण्ही तथा भिक्षुः पापस्य कर्मणोविवेकं विनाशं कांक्षेत् दुःखेन परीषहादिना स्पृष्ट धूतं संयमं आददीत गृण्हीयात् यथा संग्रामशीर्षे कश्चित् सुभटः परं शत्रुं साधुः कर्मशत्रून् दमयेत् ॥ २९ ॥ परीषहैर्हन्यमानः पीड्यमानोपि सम्यक् सहते। फलकं उभाभ्यां पार्श्वाभ्यां तष्टं घटितं सत्तनु भवत्येवं साधुरपि तपसा दुर्बलतनुः

अरक्तद्विष्टश्च मृत्योः समागमं प्राप्तिमाकांक्षेत अष्टप्रकारं कर्म निर्धूयापनीय प्रपंचं संसारं नोपैति नयाति । यथा अक्षस्य क्षये विनाशे सति शकटं समविषमपथरूपं प्रपंचं याति उपष्टंभकारणाभावात् एवं साधुः कर्मक्षये संसारं नयातीति । ब्रवीमीति पूर्ववत् । ३० ॥ समाप्तं कुशीलपरिभाषाख्यं सप्तमाध्ययनं ॥

॥ टीका–किंचाऽन्यत् (भारस्सजाताइत्यादि) । संयमभारस्य यात्रार्थं पंचमहाव्रत भारनिर्वाहणार्थं मुनिः कालत्रयवेत्ता भुंजीत आहारग्रहणं कुर्वीत । तथा पापस्य कर्मणः पूर्वचरितस्य विवेकं पृथग्भावं विनाशमाकांक्षेद्भिक्षुः साधुरिति । तथा दुःखय तीति दुःखं परीषहोपसर्गजनितापीडा तेन स्पृष्टोव्याप्तः सन् धूतं संयमं मोक्षंवा आददीत गृह्णीयात् । यथा सुभटः कश्चित् संग्रामशिरसि शत्रुभिरभिद्रुतः परं शत्रुं दमयति । एवं परं कर्मशत्रुं परीषहोपसर्गाभिद्रुतोदमयेदिति ॥ २९ ॥ अपिच (अविहम्ममाणे त्यादि) परीषहोपसर्गैर्हन्यमानोऽपि सम्यक् सहते । किमिव । फलकवदवकृष्टः । यथा फलकमुभाभ्यमपि पार्श्वाभ्यां तष्टं घट्टितं सत्तनु भवति अरक्तद्विष्टं वा संभवत्येवमसावपि साधुः सबाह्याभ्यंतरेण तपसा निष्टप्तदेहस्तनुर्दुर्बलशरीरोऽरक्तद्विष्टश्चांतकस्य मृत्योः समागमं प्राप्तिमाकांक्षत्यभिलपति । एवं चाऽष्टप्रकारं कर्म निर्धूयाऽपनीय नपुनः प्रपंचं जातिजरामरणरोगशोकादिकं प्रपंच्यते । बहुधा नटवद्यस्मिन् सप्रपंचः संसारस्तं नोपैति नयाति । दृष्टांतमाह । यथा ऽक्षस्य क्षये विनाशे सति शकटं गंत्र्यादिकं समविषमपथरूपं प्रपंचमुपष्टंभकारणाभावान्नोपयाति । एवमसावपि साधुरष्टप्रकारस्य कर्मणः क्षये संसारप्रपंचं नोपयातीति । गतोऽनुगमोऽनया।पूर्ववदिति शब्दःपरिसमाप्त्यर्थे ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३० ॥ समाप्तंच कुशीलपरिभाषाख्यं सप्तमाध्ययनं ॥

हवे आठमुं वीर्याध्ययन कहेछे सातमाअध्ययनमां कुशीलियानो आचार कह्यो ते आचार संयमनेविषे वीर्यांतराय कर्मना उदय थकी थायछे तेमाटे आ अध्ययनमां सुशीलियानो वीर्य देखाडेछे तेथी ए अध्ययननुं नाम वीर्याध्ययनछे.

दुहावेयं सुयक्खायं,वीरियंति पवुच्चई ॥ किंनु वीरस्स वीरत्तं, कहं
चेयं पवुच्चई ॥१॥ कम्ममेगे पवेदेंति,अकम्मं वावि सुव्वया ॥ एते
हिं दोहि ठाणेहिं, जेहिं दीसंति मच्चिया ॥ २ ॥

अर्थ–(दुहावेयंसुयक्खायं के०) तेभलो वीर्य पराक्रम बे प्रकारे श्रीजिनेश्वरे कह्युंछे (वीरियंतिपवुच्चई के०) तेवीर्य प्रकर्षे करी कहिएछेयें (किंनुवीरस्सवीरत्तं के०) तु एवा वितर्के करी वीर नामा सुभटनुं केवुं वीर पणुं अने केवीरीते ए वीर केवायछे तथा (क

हंचेयंपवुच्चई के०) केवीरीते ए प्रकर्षे करी वीर्य कहेछे. ॥ १ ॥ (
एकतो अष्ट प्रकारे कर्म क्रिया अनुष्ठानरूप वीर्य कहेछे (अकम्मंवावि के०)
अकर्म एटले जीवनुं सहेज स्वरूप तेने पण एक वीर्य कहेछे एम बे प्रकारे वीर्य
(सुव्वयाके०) अहोसुव्रतो (एतेहिंदोहिंगणेहिं के०) एज बे स्थानके करी बल
नेद जाणो एटले एक सकर्मक अने बीजो अकर्मकना नेदे करी बे प्रकारनो वीर्य
णवो (जेहिंदीसंतिमच्चिया के०) जेने विषे व्यवस्थित सर्व मनुष्यो देखायछे. ॥ १॥

॥ दीपिका–अथाष्टमं । पूर्वं कुशीलसुशीलावुक्तौ तौच वीर्यतः स्यातामिति वीर्यम
च्यते । (डुहेति) द्विधा द्विप्रकारकमेतद्वीर्यं सुष्ठु आख्यातं तीर्थकृदादिनिः । इ
द्विनेदं प्रोच्यतइति । वीर्यं जीवस्य शक्तिविशेषः । तत्र किंनु वीरस्य सुनटस्य वीरत्वं
वा हेतुनाऽसौवीरइत्युच्यते। तुशब्दोवितर्के ॥ १ ॥ किंतद्वीर्यं किंवा वीरत्वमित्याह
म्मेति) कर्मक्रिया अनुष्ठानमित्येव वीर्यमिति प्रवेदयंति ॥ अथवाऽष्टप्रकारं कर्म
कार्योपचारात् तदेव वीर्यमित्युच्यते। तथाहि । नावनिष्पन्नं कर्म उदयिकनावोपि
यनिष्पन्नइति बालवीर्यं १ द्वितीयनेदस्त्वयं।कर्मरहितोऽकर्मा वीर्यांतरायक्षयजनितं
स्य सहजं वीर्यं। चशब्दाच्चारित्रमोहनीयोपशमक्षयोपशमजनितं हेसुव्रताएवंनूतं पं
जानीत२ द्वाभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यां बालपंडितवीर्याभ्यां व्यवस्थितं वीर्यं। ऽच्यत
ययोर्वा व्यवस्थितामर्त्यामनुष्याअपदिश्यंते । तथाहि । अनेककार्येपूद्यमवंतं नरं
वीर्यवानयमित्युच्यते तथा वीर्यांतरायक्षयादनंतबलयुक्तोयं मर्त्यइत्यपदिश्यते ॥ २

॥ टीका–उक्तं सप्तमसध्ययनं सांप्रतमष्टममारभ्यते ॥ अस्य चाऽयमनिसंबंधः ।
नंतराध्ययने कुशीलास्तत्प्रतिपक्षनूताः श्रीसुशीलाः प्रतिपादिताः।तेषांच कुशीलत्वं च
मवीर्यांतरायोदयात्तत्क्षयोपशमाच्च नवतीत्यतोवीर्यप्रतिपादनायेदमुपदिश्यते
न संबंधेनाऽऽयातस्याऽस्याऽध्ययनस्य चत्वार्यनुयोग द्वाराणि उपक्रमादीनि वक्तव्यानि
तत्राऽप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोऽयं ॥ (बालबालपंडितपंडितवीर्यनेदात्रिविधमपि
परिज्ञाय पंडितवीर्ये यतितव्यमिति । नामनिष्पन्ने तु निक्षेपे वीर्याध्ययनवीर्य
निर्युक्तिकृदाह । (विरिएठक्कंदव्वे, सचित्ताचित्तमीसगंचेव ॥ डुपयचउप्पयअपयं,
विहंतिसच्चित्तं ॥ १ ॥) (विरिएठक्कमित्यादि) वीर्ये नामस्थापनाड-. द्रव्य
त् षोढा निक्षेपः । तत्राऽपि नामस्थापने क्षुसे इव्यवीर्यं द्विधा ।आगमतो न -
आगमतोज्ञाता तत्र वाऽनुपयुक्तः । नोआगमतस्तु ज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तसचि
मिश्रनेदात्रिधा वीर्यं सचित्तमपि द्विपदचतुष्पापदनेदात् त्रिविधमेव । तत्र द्विपदानां

चक्रवर्त्तिबलदेववासुदेवादीनां यद्वीर्यं स्त्रीरत्नस्य वा यस्यवा यद्वीर्यं तदिह इव्यवीर्यत्वेन ग्राह्यं । तथा चतुष्पदानामश्वहस्तिरत्नादीनां सिंहव्याघ्रशरभादीनां वा परस्य यद्वोढव्ये धावने वा वीर्यं तदिति । तथाऽपदानां गोशीर्षचंदनप्रभृतीनां शीतोष्मकालयोरुष्मशीतवीर्यं परिणामइति । अचित्तवीर्यप्रतिपादनायाह ॥ अचित्तं पुणविरयं, आहारावरणपहरणादीसु ॥ जहउसहीणभणियं, विरियं रसवीरियविवागो ॥ २ ॥ (अचित्तंपुणेत्यादि) अचित्तइव्यवीर्यं त्वाऽऽहारावरणप्रहरणेषु यद्वीर्यं तडुच्यते । तत्राऽऽहारवीर्यं सद्यः प्राणकरा ह्यावृतपूर्णाः कफापहाइत्यादि । उपधीनां च शल्योद्धरणसंरोहणविषापहारमेधाकरणादिकं रसवीर्यं विपाकवीर्यं च । तडुक्तं । चिकित्साशास्त्रादौ तदिह ग्राह्यमिति । तथा योनिप्राभृतकान्नानाविधं इव्यवीर्यं इष्टव्यमिति । तथा। आवरणेकववादी, चक्कादीयंचपहरणेहोंति ॥ खित्तंमि जंमि खेत्ते,काले जं जंमि कालंमि । तथा(आवरणेइत्यादि) आवरणे कवचादीनां प्रहरणे चक्रादीनां यद्भवति वीर्यं तडुच्यतइति । अधुना क्षेत्रकालवीर्यं गाथापश्चार्धेन दर्शयति । क्षेत्रवीर्यंतु देवकुर्वादिकं क्षेत्रमाश्रित्य सर्वाण्यपि इव्याणि तदंतर्गतान्युत्कृष्टवीर्यवंति भवंति । यद्वा डुर्गादिकं क्षेत्रमाश्रित्य कस्यचिद्वीर्योल्लासोभवति । यस्मिन्वा क्षेत्रे वीर्यं व्याख्यायते तत्क्षेत्रवीर्यमिति । एवं कालवीर्यमप्येकांतसुखमादावाऽऽयोज्यमिति । तथाचोक्तं । वर्षासु लवणममृतं, शरदिजलं गोपयश्चहेमंते ॥ शिशिरे चामलकरसो, घृतंवसंते गुडश्चांऽते ॥१॥ तद्यथा । ग्रीष्मे तुल्यगुडां सुसैंधवयुतां मेघावनद्धेंबरे, तुल्यां शर्करया शरद्यमलया शुंठ्या तुषारागमे । पिप्पल्या शिशिरे वसंतसमये क्षौद्रेण संयोजितां, पुंसां प्राप्य हरीतकीमिव गदानश्यंतु ते शत्रवः ॥ १ ॥ भाववीर्यप्रतिपादनायाह । (भावोजीवस्स सवीरियस्स विलयंमि लद्धिणेगविहा ॥ उरस्सिंदिय अज्झप्पिएसु बहुसोबहुवीहियं (भावोजीवस्सेत्यादि) सवीर्यस्य वीर्यशक्त्युपेतस्य जीवस्य वीर्यविषये अनेकविधा लब्धिस्तामेव पश्चार्द्धेन दर्शयति । तद्यथा । उरसि भवमौरस्यं शारीरबलमित्यर्थः । तथेंद्रियबलमाध्यात्मिकं बलं बहुशोबहुविधं इष्टव्यमिति । एतदेव दर्शयितुमाह । (मणवइकालाआणा पाणुसंभवतहायसंभवे । सोत्तादीणं सद्दा. दिएविसएसुगहणंच ॥ ४ ॥ (मणवइइत्यादि) आंतरेण व्यापारेण गृहीत्वा पुफ़लात्मनोयोग्यान् मनस्त्वेन परिणमयति भाषायोग्यान् भाषात्वेन परिणमयति काययोग्यान् काययोग्यत्वेन अन्नपानयोग्यान् तद्भावेनेति । तथा मनोवाक्कायादीनां तद्भावपरिणतानां यद्वीर्यं सामर्थ्यं तद्विविधं । संभवे संभाव्येच । संभवे तावत्तीर्थकृतामनुत्तरोपपातिकानांच सुराणामतीव पटूनि मनोइव्याणि भवंति । तथाहि । तीर्थकृतामनुत्तरोपपातिकसुरमनःपर्यायज्ञानिप्रश्नव्याकरणस्य इव्यमनसैव करणात् । अनुत्तरोपपातिकसुराणांच सर्वव्यापारस्यैव मनसा निष्पादनादिति । संभाव्ये तु योहि यम

र्थं पटुमतिना प्रोच्यमानं नशक्नोति सांप्रतं परिणमयितुं संजाव्यते त्वेषपरिकर्मणा शक्नोत्यमुमर्थं परिणमयितुमिति । वाग्वीर्यमपि द्विविधं । संजवे संजाव्येच । तत्र संजवे तीर्थकृतां योजननिर्हारिणी वाक् सर्वस्वजावानुगताच । तथाऽन्येषामपि क्षीरमध्वा दिलब्धिमतां वाचः सौजाग्यमिति । तथा । हंसकोकिलादीनां संजवति स्वरमाधुर्यं । संजाव्येतु संजाव्यते श्यामायाः स्त्रियागानमाधुर्यं । तथाचोक्तं । श्यामा गायति मधुरं का ली गायति खरंच रुद्धंचेत्यादि । तथा संजावयामएनं श्रावकदारकमकृतमुखसंस्कारं प्यक्षरेषु यथावदजिलप्यव्येष्विति । तथा संजावयामः शुकसारिकादीनां वाचोमानुष जाषापरिणामः। कायवीर्यमप्यौरस्यं। यद्यस्य बलं तदपि द्विविधं संजवे संजाव्येच।यथा चक्र वर्तिबलदेववासुदेवादीनां यद्वाहुबलादिकायबलं । तद्यथा कोटिशिलात्रिपृष्ठेन वामकरे णेनोद्धृता । यदिवा (सोलसरायसहस्साइत्यादि) यावदपरिमितबलाजिनवरेंडाइति। संजाव्येतु संजाव्यते तीर्थकरोलोक,मलोके कंडुकवत् प्रक्षेप्तुं तथा मेरुं दंरुवज्जृहीत्वा व धां छत्रकवद्धर्तुमिति । तथा संजाव्यते अन्यतरसुराधिपोजंबूद्वीपं वामहस्तेन छत्रवद्ध र्तुमयत्नेनैव मंदिरमिति । तथा संजाव्यते अयं दारकः परिवर्धमानः शिलामेनामुद्धर्तुं ह स्तिनं दमयितुमश्वं वाहयितुमित्यादि । इंद्रियबलमपि श्रोत्रेंद्रियादिस्वविषयग्रहणसमर्थं पंचधैकैकं द्विविधं संजवे संजाव्येच। संजवे यथा श्रोत्रस्य द्वादशयोजनानि विषयः। एवं शे षाणामपि योयस्य विषयइति । संजाव्ये तु यस्य कस्यचिदनुपहतेंद्रियस्य श्रांतस्य क्षुधित पिपासितस्य परिग्लानस्य वा अर्थग्रहणसमर्थमपि इंद्रियं सद्ययोक्तदोषोऽपशमे तु सति संजाव्यते विषयग्रहणायेति। सांप्रतमध्यात्मिकं वीर्यं दर्शयितुमाह। उक्रमधितीधीरे सोंडीरत्तंखमायगंजीरं। उवयोगं योगतव, संजमादियहोइअक्षुप्पो (उक्कमधीत्यादि)। त त्मन्यधीत्यध्यात्मं तत्र जवमाध्यात्मिकमांतरशक्तिजनितं सात्विकमित्यर्थः । तच्चाऽने कधा । तत्रोद्यमोज्ञानतपोऽनुष्ठानादिषूत्साहः । एतदपि यथा योगं संजवे संजाव्ये योजनीयमिति । धृतिः संयमे धैर्यं चित्तसमाधानमिति । धीरत्वं परीषहोपसर्गादौन ता शौंडीर्यं त्यागसंपन्नता पट्खंडमपि जरतं त्यजतश्चक्रवर्तिनोन मनः कंपते । य दिवाऽऽपद्यविषस्सता । यदिवा विषमेऽपिकर्तव्ये समुपस्थिते पराज्ञियोगमकुर्वन् म मैवैतत्कर्तव्यमित्येवं हर्षायमाणोऽविषस्सोविधत्तइति । क्षमावीर्यंतु परैराक्रुश्यमाणोऽपि मनागपि मनसा नक्षोजमुपयाति जावयति । तच्चेदं । आक्रुष्टेन मतिमता तत्वार्थग वेषणे मतिः कार्या । यदि सत्यं कः कोपः स्यादनृतं किंतु कोपेन ॥ ३ ॥ तथा (अक्कोसह णमारण धम्मप्रंसाण बालसुलजाणं ॥ लानं मन्नइ धीरो, जहुत्तराणं अजावंमि ॥१॥) गांजीर्यवीर्यं नाम परीषहोपसर्गैरधृष्यत्वं । यदिवा यन्मनश्चमत्कारकारिण्यपि स्वानुष्ठाने अनौद्धत्यं। उक्तंच। (चुल्लुचलेइ जंहं, इजणयं रित्तयं कणकणेइ। जरियाइं ण खुलंती, स

रिसविन्नाण नंडाइं ॥ १ ॥) उपयोगवीर्यं साकारानाकारन्नेदात् द्विविधं । तत्र साकारोप योगोऽष्टधा ऽनाकारश्चतुर्धा । तेन चोपयुक्तः स्वविषयस्य ड्व्यक्षेत्रकालन्नावरूपस्य परिछे दं विधत्तइति । तथा योगवीर्यं त्रिविधं । मनोवाक्कायन्नेदात् । तत्र मनोवीर्यमकुशलमनो निरोधः कुशलमनसश्च प्रवर्तनं मनसोवा एकत्वीनावः करणं । मनोवीर्येणहि निर्ग्रंथसंय ताः प्रवृद्धपरिणामाश्चवस्थितपरिणामाश्च नवंतीति । वाग्वीर्येण तु नाषमाणोऽपुनरु क्तं निरवद्यं च नाषते । कायवीर्येतु यस्तु समाहितपाणिपादः कूर्मवदवतिष्ठतइति । तपो वीर्यं द्वादशप्रकारं तपोयद्बलादग्लायन् विधत्तइति । एवं सप्तदशविधेयं संयमे एकत्वाद्यऽध्य वसितस्य यद्बलात्प्रवृत्तिस्तत्संयमवीर्यं । कथमहमतिचारं संयमेन प्राप्नुयामित्यध्यव सायिनः प्रवृत्तिरित्येवमाद्यऽध्यात्मवीर्यमित्यादिच नाववीर्यमिति । वीर्यप्रवादपूर्वेचाऽनंतं वीर्यं प्रति पादितं । किमिति यतोऽनंतार्थं पूर्वं नवति । तत्रच वीर्यमेव प्रतिपाद्यते । अनंता र्थता चातआगंतव्या । तद्यथा । (सव्वणईणं जाहोज्जवानुया गणणमागयासत्ती । तत्तोबहुय तरागो अत्थो एगस्स पुव्वस्स॥ १ ॥ सव्वसमुद्दाणजलं जइ पत्थमियं हविज्ज संकलियं। एत्तोबहु यतरागो, अत्थोएगस्स पुव्वस्स ॥ २॥) तदेवं पूर्वार्थस्याऽनंत्या द्वीर्यस्य च तदर्थत्वादनंतता वी र्यस्येति । सर्वमप्येतद्वीर्यं त्रिधेति प्रतिपादयितुमाह । (सव्वंपिय तं तिविहं, पंमियवालवि रियंच । अहवावि होंति डुविहं, अगारअणगारियंचेव ॥ १ ॥) (सव्वंपियमित्यादि) सर्व मप्येतद्भाववीर्यं पंडितबालमिश्रन्नेदात् त्रिविधं । तत्रनागाराणां पंडितवीर्यं बालपंडित वीर्यं त्वगाराणां गृहस्थानामिति । तत्र यतीनां पंडितवीर्यं सादिसपर्यवसितं । सर्वविर ति प्रतिपत्तिकाले सादितासिद्धावस्थायां तदन्नावात्सांतं । बालपंमितवीर्यं तु देशवि रतिसद्भावकाले सादि । सर्वविरतिसद्भावे तद्भ्रंशेवा सपर्यवसानं । बालवीर्यं त्वविरतिल क्षणमन्नव्यानामनाद्यपर्यवसितं नव्यानां त्वनादिसपर्यवसितं । सादि सपर्यवसितं तु विरति भ्रंशात् सादिता । पुनर्जघन्यतांतर्मुहूर्तादुत्कृष्टतो ऽपार्द्धपुजलपरावर्तात् विरतिसद्भवात् सांत तेति । साद्यपर्यवसितस्य तृतीयन्नंगकस्य त्वसंन्नवएव । यद्विवा पंडितवीर्यं ससर्वविरतिलक्ष णं । विरतिरपि चारित्रमोहनीयक्षयक्षयोपशमलक्षणात्रिविधेवाऽतोवीर्यमपि त्रिधेव नवति गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपः । तदनुसूत्रानुगमे स्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । त च्चेदं । (डुहावेदंसुयरकायमित्यादि) द्वे विधे प्रकारावऽस्येति द्विविधं द्विप्रकारं । प्रत्य क्षासन्नवाचित्वात् इदमोयदनंतरं प्रकर्षेणोच्यते वीर्यं तद्विन्नेदं सुप्टाख्यातं स्वाख्यातं तीर्थं करादिन्निः । चोवाक्यालंकारे । तत्रेऽरगतिप्रेरणयोः । विशेषेण ईरयति प्रेरयति अहितं ये न तद्वीर्यं जीवस्य शक्तिविशेषइत्यर्थः । तत्र किंतु वीरस्य सुनटस्य वीरत्वं केनवा कारणे नाऽसौवीरइत्यन्निधीयते । तुशब्दोवितर्कवाची । एतद्वितर्कयति । किंत द्वीर्यं वीरस्य वा किं त द्वीरत्वमिति ॥ १ ॥ तत्र नेदद्वारेण वीर्यस्वरूपमाचख्यासुराह ॥ (कम्ममेगेइत्यादि)

कर्म्म क्रियानुष्ठानमित्येतदेके वीर्यमिति प्रवेदयंति । यदिवा कर्माष्टप्रकारं कारणे कार्यो पचारात् तदेव वीर्यमिति ।तथा ह्यौदयिकजावनिष्पन्नं कर्मेत्यपदिश्यते । औदयिको जावः कर्मोदयनिष्पन्नएव बालवीर्यं । द्वितीयजेदस्त्वयं । न विद्यते कर्मा॑ऽस्येत्यकर्मा वीर्यांतरायक्षयजनितं जीवस्य सहजं वीर्यमित्यर्थः । चशब्दात् चारित्रमोहनीयोपशमज नितंच । हेसुव्रताएवंजूतपंडितवीर्यं जानीत यूयं । आन्यामेव द्वान्यां स्थानान्यां सक काकर्मकापादितं बालपंडितवीर्यान्यां व्यवस्थितं वीर्यमित्युच्यते । यकान्यां ययोर्वा व वस्थितामर्त्येषु जवामर्त्याः (दिस्संतइति) दृश्यंतेऽपदिश्यंतेवा । तथाहि । नानाविध क्रियासु प्रवर्तमानमुत्साहबलसंपन्नं मर्त्यं दृष्ट्वा वीर्यवानयं मर्त्यइत्येवमपदिश्यते । तथा न दावारककर्मणः क्षयादनंतबलयुक्तोऽयं मर्त्यइत्येवमपदिश्यते दृश्यतेचेति ॥ २॥

पमायं कम्ममाहंसु अप्पमायं तहावरं॥ तप्नावादेसउवावि, बा लं पंम्मियमेववा ॥ ३ ॥ सद्यमेगेतु सिरकंता, अतिवायाय पा णिणं ॥ एगे मंते अहिज्जंति, पाणजूयविहेडिणो ॥ ४ ॥

अर्थ-(पमायंकम्ममाहंसु के०) श्रीतीर्थंकर देव प्रमादने कर्म कहेडे तेप्रमाद हेडे मङ्जंविसयकसाया निद्दाविहगाय पंचमेजणियाइत्यादि (अप्पमायंतहावरंके०) तथा अप्रमादने अकर्म कहेडे (तप्नावादेसउवाविबालंपंम्मियमेववा के०) जे प्रमादि कर्म करे ते बालवीर्य कहिए अने जे अप्रमादि थको कर्म करे ते पंम्मितवीर्य कहिए बाल अने पंम्मितवीर्य आवीरीतेडे अजव्यने अनादि अपर्यवसित अने जव्यने अ दि सपर्यवसित अथवा सादि सपर्यवसित जाणवो ॥ ३ ॥ (सद्यमेगेतुसिरकंता के०) कोइएक शस्त्र एटले खड्गादि हथीयार धनुष्य विद्यादिक शीखे अथवा शास्त्र एटले ज्यो षादिक शास्त्र तथा निमित्त वैद्यक औषध प्रमुख शीखे शावास्तेशीखेतोके (पाणिणंके०) जीवोने (अतिवायायके०) अतिपात एटले विनाश करवाने अर्थे शीखे (एगेमंतेअहिज्जंति के०) तथा कोइएक हिंसक मंत्रादिक जणीने जे अथर्वणयाग अश्वमेध मनुष्य मेध ग जामेध प्रमुख करे ए (पाणके०) बेंइयादिक त्रस जीव तथा (जूतके०) पृथिव्यादि स्थावरजीव तेने (विहेडिणोके०) विविध प्रकारे हणवा निमित्ते पूर्वोक्त मंत्रादि जणे ॥

॥ दीपिका-प्रमादमेव कर्म आहुस्तीर्थंकृतः ।कर्महेतुत्वात्प्रमादः कर्मैव ।अप्रमादं परं कर्म आहुः । कोर्थः । प्रमादात्कर्म बध्यते सकर्मणश्च क्रिया बालवीर्यं । तथा स्य कर्माजावस्तस्यच पंम्मितवीर्यं । तज्ञावदेशतः बालवीर्यस्य पंम्मितवीर्यस्य शोव्यपदेशस्तत्र बालवीर्यमजव्यानामनाद्यनंतं। जव्यानामनादिसांतं सादिसांतं वा ।

तवीर्यंतु सादिसांतमेव ॥३॥ बालवीर्यमाह । शस्त्रं प्रहरणं शास्त्रंवा धनुर्वेदायुर्वेदादिकमेके शिक्षंते प्राणिनामतिपाताय विनाशाय गृण्हंति । एके बालवीर्यवंतोमंत्रानन्निचारकानधीयते । किंनूतान् प्राणिनोऽींडियाद्याः । नूतानि पृथिव्यादीनि तेषां हेठकान् बाधकान्॥४॥

॥ टीका–इह बालवीर्यं कारणे कार्योपचारात्कर्मैव वीर्यत्वेनानिहितं । सांप्रतं कारणे कार्योपचारादेव प्रमादं कर्मत्वेनापदिशन्नाह । (पमायमित्यादि)। प्रमाद्यंति सदनुष्ठानरहितानवंति प्राणिनोयेन सप्रमादोमद्यादिः । तथाचोक्तं । (मद्यविसयकसाया, णिदाविगहाय पंचमे नणिया । एसपमायपमाउ, णिहिठो वीयरागेहिं ॥ १ ॥) तमेवंनूतं प्रमादं कर्माहुरुक्तवंतस्तीर्थंकरादयोऽप्रमादंच तथाऽपरकर्मकमाहुरिति । एतडुक्तं नवति । प्रमादापहतस्य कर्म बध्यते सकर्मणश्च यक्रियानुष्ठानं तद्वालवीर्यं । तथाऽप्रमत्तस्य कर्मानावोनवति । एवंविधस्य च पंडितवीर्यं नवति । एतच्च बालवीर्यं पंमितवीर्यमिति वा प्रमादवतः सकर्मणोबालवीर्यमप्रमत्तस्याऽकर्मणः पंमितवीर्यमित्येवमायोज्यं । (तप्रावादेसउवापीति) तस्य बालवीर्यस्य कर्मणश्च पंमितवीर्यस्य वा नावः सत्ता सतद्भावस्तेनाऽऽदेशोव्यपदेशस्ततस्तद्यथा बालवीर्यमनव्यानामनादि अपर्यवसितं नव्यानामनादि सपर्यवसितं वा सादिसपर्यवसितं चेति । पंमितवीर्यं तु सादिसपर्यवसितमेवेति ॥ ३ ॥ तत्र प्रमादापहतस्य सकर्मणोयद्वालवीर्यं तद्दर्शयितुमाह । (सत्रमेगेइत्यादि) । शस्त्रं खड्गादिप्रहरणं शास्त्रंवा धनुर्वेदायुर्वेदादिकं प्राण्युपमर्दकारि तत् सुष्टु सातगौरवगृद्धाएके केचन शिक्षंते उद्यमेन गृण्हंति । तच्च शिक्षितं सत् प्राणिनां जंतूनां विनाशाय नवति। तथाहि । तत्राऽपदिश्यते एवंविधमालीढप्रत्यालीढादिनिर्जीवव्यापादयितव्ये स्थानं विधेयं । तडुक्तं । मुष्टिना छादयेल्लक्ष्यं, मुष्टौ दृष्टिं निवेशयेत् । हतं लक्ष्यं विजानीयाद्यदि मूर्धा न कंपते । १ । (तथा) एवं लावकरसः क्षयिणे देयोऽन्नयारिष्टाख्योमद्यविशेषश्चेति । तथैवं चौरादेः शूलारोपणादिकोदंडोविधेयः । तथा चाणिक्यानिप्रायेण परोवंचयितव्योऽर्थोपादानार्थं तथा कामशास्त्रादिकं चोद्यमेनाऽशुनाध्यवसायिनोधीयते । तदेवं शस्त्रस्य धनुर्वेदादेः शास्त्रस्य वा यदन्यसनं तत्सर्वं बालवीर्यं । किंचैके केचन पापोदयान् मंत्रानन्निचारकानाऽऽथर्वणानश्वमेधपुरुषमेधादिकं विधीयते । किंनूतानिति दर्शयति । प्राणा ईंडियादयोनूतानि पृथिव्यादीनि तेषां विविधमनेकप्रकारं हेठकान् बाधान् रूक्संस्थानीयान् मंत्रान् पठंतीति । तथाचोक्तं । षट्शतानि नियुज्यंते, पशूनां मध्यमेऽहनि । अश्वमेधस्य वचनान्न्यूनानि पशुनिस्त्रिनिरित्यादि ॥ ४ ॥

माइणो कट्टु मायाय,कामभोगे समारभे॥ हंता छेत्ता पगब्भित्ता
आयसायाणुगामिणो ॥ ५ ॥ मणसा वयसाचेव, कायसा चेव
अंतसो ॥ आरउ परउ वावि, डुहाविय असंजया ॥ ६ ॥

अर्थ-(माइणोकट्टुमायायके०) कोइएक मायावि पुरुष माया केळवीने (कामभोगेसमारभेके०) शब्दादिक विषय रूप कामभोगनो समारंभ करे एटले पोतानाचित्तने विषे आशक्त थता काम सेवना करे एवा ते (आयसायाणुगामिणोके०) पोताना आत्म सुखना अर्थि विषय गृद्ध थता (हंताछेत्ता पगब्भित्ता के०) जीवना हणनार तथा अंगोपांगना छेदनार तथा पेटना कापनार थाय ॥ ५ ॥ (मणसावयसाचेव के०) मने करी वचने करी चेव पदपूर्णार्थेछे अने (कायसा के०) कायायें करी (अंतसोके०) आशक्त थता तंदुल मछनी पेरे कर्म बांधता तथा(आरउके०) आरत आलोकने विषे (परउवाविके०) अथवा परलोकने विषे पण (डुहाविय के०) ए बन्ने लोकने विषे कृत्य कारीत पणे करी ते जीव घातना करनार पुरुष निश्चें थकी (असंजया के०) असंयति जाणवा. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-मायाविनोमायां परवंचनानि कृत्वा कामभोगान् समारभंते सेवंते । तदेवमात्मना सातानुगामिनः स्वसुखलिप्सवः प्राणिनां हंतारः स्युः । तथा छेत्तारः कर्णनासादेः प्रकर्तयितारः पृष्ठोदरादेः ॥ ५ ॥ मनसा वाचा कायेन अंतशः कायेनाशक्तोपि तंडुलमत्स्यवन्मनसैव कर्म बध्नाति तथा आरतः परतश्चेति इह लोकपरलोकयोर्द्विधापि कृतकारिताभ्यां च संयताजीवोपघातकारिणः ॥ ६ ॥

॥ टीका-(अधुना सत्थमित्येतत्सूत्रपदं सूत्रस्पर्शिकया निर्युक्तिकारः स्पष्टयितुमाह । सत्थमसिमादीयं, विज्जामंतेयदेवकयं। पत्थीवकरुणअग्गेय, वाउतहमीसगंचेव।)(सत्थमित्यादि) शस्त्रं प्रहरणं तच्चाऽसिः खड्गादिस्तदादिकं तथा विद्याधिष्ठितं मंत्राधिष्ठितं तदेव कर्मकृतं दिव्यक्रियानिष्पादितं। तच्च पंचविधं । तद्यथा । पार्थिवं वारुणमाग्नेयं वायव्यं तथैव द्व्यादिमिश्रं चेति । किंचाऽन्यत् । माइणोइत्यादिसूत्रं । माया परवंचनादिका बुद्धिः सा विद्यते येषांते मायाविनस्तएवंभूतामायाः परवंचनानि कृत्वा एकग्रहणे तज्जातीयग्रहणादेव क्रोधिनोमानिनोलोभिनः संतः कामान् इच्छारूपान् तथा भोगांश्च शब्दादिविषयरूपान् समारभंते सेवंते। पाठांतरंवा (आरंभायेतिवट्टइ) त्रिभिर्मनोवाक्कायैरारंभार्थं वर्त्तते । बहून् जीवान् व्यापादयन् बध्नन् अपध्वंसयन् आज्ञापयन् भोगार्थी वित्तोपार्जनार्थं प्रवर्त्ततइत्यर्थः । तदेवमात्मसातानुगामिन. स्वसुखलिप्सवोडुःखद्विषोविषयेषु गृद्धाः कषायकलुषितांतरात्मानः संतएवंभूतान्भवंति । तद्यथा । हंता

रः प्राणिव्यापादयितारस्तथाछेत्तारः कर्णनासिकादेस्तथा प्रकर्तयितारः पृष्ठोदरादे
॥ ५ ॥ तदेतत्कथमित्याह (मणसाइत्यादि) अधुना सव्वमित्येतत्सूत्रपदं
पमर्दनं मनसा वाचा कायेन कृतकारितानुमतिभिश्चांतशः कायेनाऽशक्तोऽपि तं
त्स्यवन्मनसैव पापानुष्ठानानुमत्या कर्म बध्नातीति । तथाऽऽरतः परतश्चेति लौकिकी वा
क्रिरिति । एवं पर्यालोच्यमानाऐहिकामुष्मिकयोर्द्विधापि स्वयंकरणेन परकरणेनवा
जीवोपघातकारिणइत्यर्थः ॥ ६ ॥

वेराइं कुव्वई वेरी, तउ वेरेहिं रज्जती॥पावोवगाय आरंना, दुक्ख
फासाय अंतसो ॥७॥ संपराइय णियछंति, अत्तदुक्कडकारिणो ॥
रागदोसस्सिया बाला, पावं कुव्वंति ते बहु ॥ ८ ॥

अर्थ–(वेराइंकुव्वईवेरीके०) जीव घातनो करनार पुरुष ते विरोधरूप वैर ने अनेक
नी साथे करे (तउवेरेहिंरज्जतीके०) तथा ते वैरे करी परलोके पण राचे एटले वैर
थें संबंध करे (पावोवगायआरंनाके०) पापना समीप गामी एवा सावद्यानुष्ठानरूप
नना करनार ते (दुक्खफासायअंतसो के०) अंत काले विपाकावसरे असातावेदनी
ना उदय थकी दुःखनो स्पर्श पामे. ॥ ७ ॥ (संपराइयणियछंति के०) साते कर्म
धवाना बे प्रकार कह्याछे एक इर्यापथिकिक्रिया अने बीजी सांपराइकिक्रिया ए बे थकी जीव
कर्मनो बंध बांधेछे (अत्तदुक्कडकारिणो के०) आत्म दुष्कृतकारी एटले स्वयं पापकारी
(रागदोसस्सियाबाला के०) रागद्वेषाश्रित एटले राग द्वेषे व्याकुल बाल एटले अज्ञा
नी सदसद् विवेक रहित एवा छता (पावंकुव्वंतितेबहुके०) ते पुरुषो पोताना आत्माना
घात करनार एटले आत्माने दुःखना देनारा एवा घणा पाप करे. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–वैरी सजीवोवैराणि करोति ततोऽपैरवैरैरनुरुध्यते वैरपरंपरानुषंगी स्या
दित्यर्थः । आरंनाः पापोपगाः पापयुक्ताअंतशोविपाककालदुःखदायिनः स्युः ॥ ७ ॥
आत्मदुष्कृतकारिणः स्वपापविधायिनः सांपरायिकं कर्म नियछंति बध्नंति। ते किंनूताः। रा
गद्वेषाश्रिताबालाः पापं कुर्वंति बहूनंतं । कर्मद्विधा । ईर्यापथं सांपरायिकंच तत्र संपराया
बादरकषायास्तेन्यआगतं सांपरायिकं जीवघातहेतुत्वेन कषायोत्थं कर्म बध्नंतीत्यर्थः॥ ८ ॥

॥ टीका–सांप्रतं जीवोपघातविपाकदर्शनार्थमाह । (वेराइंइत्यादि) । वैरमस्यास्ती
ति वैरी सजीवोपमर्दकारी जन्मशतानुबंधीनि वैराणि करोति । ततोऽपि च वैरादपैरवैरै
रनुरुध्यते । वैरपरंपरानुषंगी नवतीत्यर्थः । किमिति । यतः पापं उपसामीप्येन गछंती
ति पापोपगाः । कएते आरंनाः सावधानरूपाः। अंतशोविपाककाले दुःखं स्पृशंतीति दुःख

स्पर्शाअसातोदयविपाकिनोनवंतीति ॥ ७ ॥ किंचाऽन्यत्संपराइयणियच्छंतीत्यादि) द्विविधं कर्म ईर्यापथं सांपरायिकंच । तत्र संपरायावादरकषायास्तेन्यआगतं सांपरायिकं तज्जीवोपमर्दकत्वेन वैरानुषंगितयाऽऽत्मडुष्कृतकारिणः स्वपापविधायिनः संतोनियच्छं ति वध्नंति । तानेव विशिनष्टि । राग द्वेषाश्रिताः कषायकलुषितांतरात्मानः सदसद्विवेक विकलत्वात् बालाइव बालास्ते चैवंनूताः पापमसद्वेद्यं बव्हनंतं कुर्वंति विदधति ॥८॥

एयं सकम्मवीरियं, बालाणं तु पवेदितं॥इत्तो अकम्मविरियं, पं
मियाणं सुणेहमे ॥९॥ दविए वंधणुम्मुक्के, सवउ छिन्नवंधणे ॥ प
णोल्लपावकं कम्मं,सल्लं कंततिअंतसो पागंतरे सल्लंकंतंति अप्पणो१०

अर्थ–(एयंसकम्मवीरियं के०) एपूर्वोक्त अनुक्रमे सकर्म वीर्य कह्यो ते कर्म बांधवा नुं कारणछे माटे ए (बालाणंतुपवेदितं के०) ए बालनुं वीर्य कह्युं (इत्तो के०) ए बालवीर्य कह्यानंतर (अकम्मविरियं के०) अकर्म वीर्य ते (पंमियाणंसुणेहमे के०) पंमितनु वीर्य जाणवो ते हुं कहुंछुं माटे हे शिष्यो तमे सांजलो ॥९॥ (दविएके०) मुक्ति गमन योग्य एवो जीव इव्य (बंधणुके०) राग द्वेष रूप जे कषाय तेथकी (मुक्केके०) मुक्त ए टले रहित (सव्वउछिन्नवंधणे के०) सर्वथा प्रकारे कर्म बंधननो छेद्य करनार एवोछतो (पणोल्लपावकंकम्मं के०) पाप कर्मने क्षय करी (सल्लंकंततिअंतसो के०) जेने पामीने जीव समस्त सल्य कापे अथवा पागंतरे (सल्लंकंततिअप्पणोके०)पोताना शल्य कापे॥१०॥

॥ दीपिका–तत् पूर्वोक्तं बालानां सकर्मवीर्यं प्रवेदितं । यथा जमदग्निना स्वनार्यायामकार्ये प्रवृत्तः कृतवीर्योव्यापादितस्तत्पुत्रेण कार्तवीर्येण जमदग्निर्हतः पुनर्जमदग्निपुत्रेण परशु रामेण सप्तवारान् क्षत्रियाहताः पुनः कृतवीर्यसुतेन सुनूमेन त्रिःसप्तवारान् ब्राह्मणाह ताइति बालानां कर्मवीर्यमिति । इतऊर्ध्वमकर्मवीर्यं पंडितानां तन्मे मम कथयतः शृ णुत यूयं ॥ ९ ॥ इव्योनव्योमुक्तियोग्योऽकषायीत्यर्थः । बंधनोन्मुक्तः कर्मरहितः सर्वत श्छिन्नवंधनः सूक्ष्मबादरकषायमुक्तः प्रणुद्य प्रेर्य पापं कर्म तत्कारणनूतान् आश्रवान् वा त्यक्त्वा शल्यतुल्यमशेषं कर्म कृंतत्यपनयति ॥ १० ॥

॥ टीका–एवं बालवीर्यं प्रदर्श्योपसंजिघृक्षुराह । (एयंसकम्मेत्यादि) । एतत् यत् प्राक् दर्शितं । तद्यथा । प्राणिनामतिपातार्थं शस्त्रं शास्त्रं वा केचन शिक्षंते । तथा परे विद्यामं त्रान् प्राणिबाधकानधीयते । तथाऽन्येमायाविनोनानाप्रकारां मायां कृत्वा कामनोगार्थ मारंनान् कुर्वते । केचन पुनरपि परे वैरिणस्तत्कुर्वंति येन वैरैरनुबध्यंते । तथाहि । जमदग्निना स्वनार्याकार्यव्यतिकरे कृतवीर्योविनाशि तत्पुत्रेणतु कार्तवीर्येण जमदग्निः

जमदग्निसुतेन परशुरामेण सप्तवारान् निःक्षत्रा पृथिवी कृता । पुनः कार्तवीर्यसुतेन तु सुभूमेन त्रिःसप्तकृत्वोब्राह्मणाव्यापादिताः । तथाचोक्तं । अपकारसमेन कर्मणा, न नरस्तुष्टिमुपैति शक्तिमान् । अधिकां कुरुते हि यातनां, द्विषतां जातमशेषमुद्धरेत् ॥१॥ तदेवं कषायवशगाः प्राणिनस्तत्कुर्वंति । येन पुत्रपौत्रादिष्वपि वैरानुबंधोभवति । तदेतत्सकर्मणां बालानां वीर्यं । तुशब्दात्प्रमादवतां च प्रकर्षेण वेदितं प्रवेदितं प्रतिपादितमिति यावत् । अतऊर्ध्वमकर्मणां पंडितानां यद्वीर्यं तन्मे मम कथयतः शृणुत यूयमिति॥ए॥ यथाप्रतिज्ञातमेवाह (दविएइत्यादि) द्रव्योभव्योमुक्तिगमनयोग्यः । द्रव्यं च भव्यइति वचनात् । रागद्वेषविरहाद्वा द्रव्यभूतोऽकषायीत्यर्थः । यदिवा वीतरागइति । वीतरागोऽल्पकषायइत्यर्थः । तथाचोक्तं । किंसक्कावोत्तुंजे, सरागधम्मंमि कोइअकसायी । संतेविजोकषाए, निगिएहइसोवि तत्तुल्लो ॥१॥ सच किंभूतोभवतीति दर्शयति । बंधनात्कषायात्मकान्मुक्तोबंधनोन्मुक्तः । बंधनं तु कषायाणां कर्मस्थितिहेतुत्वात् । तथाचोक्तं । (बंधठिइकसायवसाइति) यदिवा बंधनोन्मुक्तइव बंधनोन्मुक्तः । तथा परः सर्वतः सर्वप्रकारेण सूक्ष्मबादररूपं छिन्नमपनीतं बंधनं कषायात्मकं येन सछिन्नबंधनः । तथा प्रणुद्य प्रेर्य पापं कर्म कारणभूतान्वाऽऽश्रवानपनीय शल्यवच्छल्यं शेषकं कर्म तत् कंतत्यपनयत्यंतशोनिरवशेषतो विघटयति । पाठांतरंवा । (सल्लंकंतइअप्पणोत्ति) शल्यभूतं यदष्टप्रकारं कर्म तदात्मनः संबधि कंतति छिनत्तीत्यर्थः ॥ १० ॥

नेयाउयं सुयरकायं,उवादाय समीहए॥भुज्जोभुज्जो डुहावासं, असुहत्तं तहातहा ॥ ११ ॥ ठाणी विविहठाणाणि, चइस्संति ण संसउ ॥ अणियंते अयं वासे, णायएहि सुहीहिय ॥ १२ ॥

अर्थ–हवे जे वस्तु पामीने शल्यने छेदे ते देखाडेछे. (नेयाउयंसुयरकायंके०)न्याय एटले ज्ञान दर्शन चारित्ररूप जे मोक्ष मार्ग श्री तीर्थंकर देवनो भाष्यो (उवादायके०) तेने उपादान एटले ग्रहण करीने (समीहएके०) धर्म ध्यानने विषे उद्यम करे अने (भुज्जोभुज्जो डुहावासंके०) जे बालवीर्यवंतते वली वली अनंतभव ग्रहणने विषे जेम जेम नरकादिक डुःखना आवासोने विषे पर्यटन करे (तहातहा के०) तेम तेम (असुहत्तंके०) अशुभत्वं एटले डुर्ध्यानपणु प्रवर्द्धमान थाय एवो संसारनुं स्वरूप जाणीने पंमित पुरुष धर्मध्यानने विषे प्रवर्त्ते ॥ ११ ॥ हवे संसारनुं अनित्य पणु देखाडेछे. (ठाणीविविहठाणाणि के०) जे जीवना विविध प्रकारना प्रधान स्थानकछे तद्यथा देवलोकमां इंद्र तथा सामानिक त्रयस्त्रिंशकादिकना स्थानछे मनुष्यने विषे चक्रवर्त्ती वासुदेव बलदेव

तथा मांमलिकादिकना स्थानछे तिर्यंचने विषे पण क्यांएक इष्टभोग भूम्यादिक स्थानछे ते सर्वे स्थानने (चइस्संति के०) छांमशे (णसंसउ के०) एमां संदेहकरवो नही तथा (णायएहि के०) ज्ञाति गोत्री (सुहीहिया के०) सुहृद एटले बांधवादिक (अणियंतेअयंवासे के०) ए सर्वेनुं अनित्य अशाश्वत एवो वासछे ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–नैय्यायिकं मोक्षनयनशीलं श्रुताख्यातं धर्ममुपादाय गृहीत्वा समीहते सम्यक् मोक्षाय ईहते चेष्टते भूयोभूयः पुनः पुनः दुःखावासं बालवीर्यवान् स्यात् यथाय था बालवीर्यवान् स्यात तथातथाऽशुभत्वं दुर्ध्यानं प्रवर्धते ततश्च नरकादिदुःखं ॥११॥ स्थानानि विद्यंते येषांते स्थानिनोदेवलोकादिशुभस्थानवर्तिनः स्थानानि त्यक्ष्यं ति नात्र संशयोऽशाश्वतत्वादिंद्रत्वचक्रित्वादीनां । यतः । सुचिरतरमुषित्वा बांधवैर्वि प्रयोगः सुचिरमपि हि रंत्वा नास्ति भोगेषु तृप्तिः ॥ सुचिरमपि हि पुष्टं याति नाशं शरीरं, सुचिरमपि विचिंत्योधर्मएकः सहायः ॥ १ ॥ इतिज्ञातकैः स्वजनैः सुहृद्भिश्च सहवासोय मनियतः कियत्कालस्थायी ननित्यः ॥ १२ ॥

॥ टीका–यदुपादाय शल्यमपनयति तद्दर्शयितुमाह । (नेयाउयमित्यादि) नयनशी लोनेता । नयतेस्ताच्छीलिकस्तृन् । सचाऽत्र सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकोमोक्षमार्गः श्रु तचारित्ररूपोवा धर्मोमोक्षनयनशीलवान् गृह्यते । मार्गं धर्मं वा मोक्षं प्रति नेतारं सुष्टु तीर्थकरादिभिराख्यातं स्वाख्यातं तमुपादाय गृहीत्वा सम्यक् मोक्षाय चेष्टते ध्यानाध्यय नादावुद्यमं विधत्ते । धर्मध्यानारोहणालंबनायाह । भूयोभूयः पौनःपुन्येन यद्वालवीर्यं त दतीतानागतानंतभवग्रहणेषु दुःखमावासयतीति दुःखावासं वर्तते । यथा यथाच बाल वीर्यवान् नरकादिषु दुःखवासेषु पर्यटति तथातथा चास्याऽशुभाध्यवसायित्वाव श्रुतमेव प्रवर्धते इत्येवं संसारस्वरूपमनुपेक्षमाणस्य धर्मध्यानं प्रवर्ततइति ॥ ११ ॥ सां प्रतमनित्यभावनामधिकृत्याह । (ठाणीविविहेत्यादि) । स्थानानि विद्यंते येषांते स्थानिनः । तद्यथा देवलोके इंद्रस्तत्समानानि त्रयस्त्रिंशत्पार्षद्यादीनि मनुष्येष्वपि च क्रवर्तिबलदेववासुदेवमहामंमलिकादीनि । तिर्यक्ष्वपि यानि कानिचिदिष्टानि भोगभू म्यादौ स्थानानि तानि सर्वाण्यपि विविधानि नानाप्रकाराण्युत्तमाधममध्यमानि तेषु स्था निनस्त्यक्ष्यंति नात्र संशयोविधेयइति । तथाचोक्तं । अशाश्वतानि स्थानानि सर्वाणि दि वि चेह च देवासुरमनुष्याणामृद्धयश्च सुखानिच तथाऽयं ज्ञातिभिः सहबंधुभिः सार्धं सहाय्यै श्च मित्रैः सुहृद्भिर्यः संवासः सोऽनित्योऽशाश्वतइति । तथाचोक्तं । सुचितरमुषित्वा बांध वैर्विप्रयोगः सुचिरमपिहि रंत्वा नास्ति भोगेषु तृप्तिः । सुचिरमपि हि पुष्टं याति नाशं शरीरं॥

सुचिरमपि विचिंत्यो धर्मएकः सहायइति ॥१॥ चकारौ धनधान्यद्विपदचतुष्पदशरीराद्यनित्यत्वनावनार्थौ । अशरणाद्यशेषनावनार्थंचा ऽनुक्तसमुच्चयार्थमुपात्ताविति॥ १२ ॥

एवमादाय मेहावी, अप्पणो गिद्धिमुद्धरे ॥ आरियं उवसंपज्जे,
सवधम्ममकोवियं ॥ १३ ॥ सहसंमइए णच्चा, धम्मसारं सुणे
तु वा ॥ समुवठिएउ अणगारे पच्चरकाय पावए ॥ १४ ॥

अर्थ-(एवमादायमेहावीके०) एरीते पंमित पुरुषे अवधारीने (अप्पणोगिद्धिमुद्धरे के०) पोतानो ममत्व स्वनाव उद्धरे एटले स्वजनादिकने विषे ममत्व नकरे (आरियंउवसंपज्जेके०) आर्यजे वीतराग प्रणीत मोक्षमार्गरूप धर्म तेने आदरे तेधर्म केवो बे तोके (सवधम्ममगोवियंके०) सर्व धर्ममांहे प्रधान अगोपित एटले अदूषितबे प्रगटबे ॥१३॥ हवे शुद्धधर्म परिज्ञान जेरीते थाय तेरीते कहेबे. (सहसंमइएणच्चाके०)जाति स्मरणादिके करी तथा पोतानी मतिये करी जाणीने (वाके०) अथवा अन्य गुर्वादिक पासेथी (धम्मसारंसुणेतुके०) धर्मनो सार जे चारित्र तेने सांनलीने अंगीकार करे(समुवठिएउअणगारे के०) पंमित वीर्यें संपन्न एवो साधु संयमने विषे उद्यमवंत थको (पच्चरकायपावए के०) पापकर्म जे सावद्यानुष्ठान तेने पच्चरके एटले निराकरे ॥१४॥

॥ दीपिका—सर्वमनित्यमेवमादाय एवं ज्ञात्वा मेधावी आत्मनोगृद्धिं ममत्वमुद्धरेत् त्यजेत् आर्यं मोक्षमार्गमुपसंपाद्येताधितिष्ठेदाश्रयेत् । किंनूतं सर्वैः कुतीर्थधर्मैरकोपितोऽदूषितश्च ॥१३॥ धर्मसारं धर्मरहस्यं ज्ञात्वा (सहसंमइएइत्यादि) ज्ञातेनतीर्थकरादिन्योवा श्रुत्वा चारित्रं प्रतिपद्यते । उपस्थितउत्तरोत्तरगुणसंपत्तयेऽन्युद्यतोऽनगारः प्रत्याख्यातं निराकृतं पापं येन सप्रत्याख्यातपापकः स्यात् ॥ १४ ॥

॥ टीका—अपिच । (एवमादायेत्यादि) अनित्यानि सर्वाण्यपि स्थानानीत्येवमादायावधार्य मेधावी मर्यादाव्यवस्थितः सदसद्विवेकी वा आत्मनः संबंधिनीं गृद्धिं गार्ध्यं ममत्वमुद्धरेदपनयेन्ममेदमहमस्य स्वामीत्येवं ममत्वं क्वचिदपि न कुर्यात् । तथा । आराज्ञातः सर्वहेयधर्मेन्यइत्यार्योमोक्षमार्गस्तमुपसंपद्येताऽधितिष्ठेत् समाश्रयेदिति । किंनूतं मार्गमित्याह । सर्वैः कुतीर्थकधर्मैरकोपितोऽदूषितःस्वमहिम्नैव दूषयितुमशक्यत्वात् प्रतिष्ठां गतः । यदिवा सर्वैर्धर्मैः स्वनावैरनुष्ठानरूपैरगोपितं कुत्सितकर्त्तव्यानावात् प्रकटमित्यर्थः ॥ १३ ॥ सुधर्मपरिज्ञानंच यथा नवति तद्दर्शयितुमाह । (सहसंमइएइत्यादि) धर्मस्यसारः परमार्थोधर्मसारस्तं ज्ञात्वाऽवबुध्य । कथमिति दर्शि

यति । सद्सम्मत्या स्वमत्यावा विशिष्टाभिनिबोधिकज्ञानेन श्रुतज्ञानेनावधिज्ञानेन वा स्वप रावबोधकत्वात् ज्ञानस्य तेन सह धर्मस्य सारं ज्ञात्वेत्यर्थः । अन्येन्योवा तीर्थंकरगण धराचार्यादिभ्यइलापुत्रवत् श्रुत्वा चिलातपुत्रवद्वा धर्मसारमुपगच्छति । धर्मस्य वा सारं चारित्रं तत्प्रतिपद्यते तत्प्रतिपत्तौच पूर्वोपात्तकर्मक्षयार्थं पंडितवीर्यसंपन्नोरागादिबंधन विमुक्तोबालवीर्यरहितउत्तरोत्तरगुणसंपत्तये समुपस्थितोऽनगारः प्रवर्धमानपरिणामः प्र त्याख्यातं निराकृतं पापकं सावद्यानुष्ठानरूपं येनाऽसौ प्रत्याख्यातपापकोभवतीति ॥१४॥

जं किंचुवक्कमं जाणे, आउक्खेमस्स अप्पणो ॥ तस्सेव अंतरा खिप्पं, सिक्खं सिक्खेज्ज पंमिए ॥१५॥ जहा कुम्मे सअंगाइं, स ए देहे समाहरे ॥ एवं पावाइं मेधावी, अज्झप्पेण समाहरे ॥ १६ ॥

अर्थ—(जंकिंच के०) जे कोइ प्रकारे करी (अप्पणो के०) पोतानो (आउक्खेम स्सके०) खेमे कुशले करी आयुष्यनो (उवक्कमंजाणेके०) उपक्रम एटले विनाश जाणे अर्थात् पोतानुं मरण जाणे (तस्सेवअंतराखिप्पंके०) तेना अंतराले एटले विचाले क्षिप्र एटले उतावलो (सिक्खंसिक्खेज्जपंमिएके०) ते पंमित संलेपणारूप शिक्षा शीखे अने ते शि क्षाने मरणावधि सुधि अंगीकार करे ॥१५॥ (जहाके०) जेम (कुम्मेसअंगाइंके०) कांचवो पोताना अंग तथा हाथ मस्तकादिक उपांगने (सएदेहेसमाहरे के०) पोताना देहने विषे गोपवे (एवं के०) एरीते (मेधावी के०) पंमितजे ले ते पण (पावाइं के०) पापजे सावद्यानुष्ठान रूप तेने (अज्झप्पेण के०) अध्यात्म एटले सम्यक् दर्शन ज्ञा नादिक भावनायें करी (समाहरे के०) उपसंहरे एटले मरण काल सुधी संलेप णायें करी पापकर्मने निर्जरे ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—आयुःक्षेमस्य स्वायुषउपक्रमं क्षयं जानीयात् ज्ञात्वा च तस्योपक्रमस्य कालस्य वा अंतराले क्षिप्रमेव अनाकुलः पंमितः संलेखनारूपां शिक्षां भक्तपरिज्ञेंगितमर णादिकां वा शिक्षेत् ॥१५॥ यथा कूर्मः स्वान्यंगानि स्वके देहे समाहरेद्गोपायेत् एवं मेधावी पंडितः पापानि पापानुष्ठानान्यध्यात्मना सम्यक् ज्ञानादिभावनया समाहरेदुपसंहरेत्॥१६

॥ टीका—किंचान्यत् (जंकिंचुवक्कममित्यादि) उपक्रम्यते संवर्त्यते क्षयमुपनीयते आयुर्येन सउपक्रमस्तं यं कंचन जानीयात् । कस्यायुःक्षेमस्य स्वायुषइति । इदमुक्तं भव ति । स्वायुष्कस्य येन केनचित्प्रकारेणोपक्रमोभावी यस्मिन्वा काले तत्परिज्ञाय तस्योपक्र मस्य कालस्यवा अंतराले क्षिप्रमेवाऽनाकुलोजीवितानाशंसी पंमितोविवेकी संलेखना

नुरूपां शिक्षां नक्तपरिज्ञेंगितमरणादिकां वा शिक्षेत् । तत्र ग्रहणशिक्षया यथावन्मरण विधिं विज्ञायाऽऽसेवनाशिक्षया सेवेतेति ॥१५॥ किंचान्यत् । (जहाकुम्मेइत्यादि) । यथेत्यु दाहरणप्रदर्शनार्थः । यथा कूर्मः कछपः स्वान्यंगानि शिरोधरादीनि स्वके देहे समाहरेन्नोप येदव्यापाराणि कुर्यादेवमनयैव प्रक्रियया मेधावी मर्यादावान् सदसद्विवेककी वा पापानि पापरूपाण्यनुष्ठानान्यध्यात्मना सम्यक् धर्मज्ञानादिनावनया समाहरेडुपसंहरेन्मरणकाले चोपस्थिते सम्यक्संलेखनया संलिखितकायः पंमितमरणेनाऽऽत्मानं समाहरेदिति ॥१६॥

साहरे हबपाएय, मणं पंचेंदियाणिय ॥ पावकं च परीणामं, नासा दोसंच तारिसं ॥ १७ ॥ अणुमाणंच मायंच, तं पडिन्नाय पंमिए ॥ (पाठां तरं अइमाणं च माइंच तं परिसाय पंडिए) घितीय पाठांतरं (सुयंमे इहमेगेसिं, एयं वीरस्स वीरियं (तृतीय पाठांतरं । आयतठं समादा य एयं वीरस्स वीरियं) ॥ सातागारवणिहुए, उवसंते णिहेचरे ॥ १८ ॥

अर्थ-(साहरे हबपाएयके०) काचबानी पेरे हाथ पग अंगोपांगादिकने गोपवीराखे (मणंपंचेदियाणियके०) तथा मनना अकुशल व्यापार तथा श्रोत्रादिक सर्व इंद्रिउना विषय थकी निवर्त्ते तथा (पावकंचपरीणामंके०) मननो पाप मय परिणाम एटले माठो अनिप्राय (नासादोसंचतारिसंके०) ज्यारे कांइ प्रयोजन पडे त्यारें तेवोजजे पापरूप नाषानो दोष तेने पण संवरे॥१७॥ तथा कोइ पूजा सत्कार करें तेवारे मान टालवुं ते आश्री कहेडे. (अणुमाणंच मायंचके०) अल्पमान अल्पमाया अने चकारथकी अनुक्रमे क्रोध तथा लोन पण लेवो (तंपडिन्नाय पंमिए के० तेने जाणीने पंमित विवेकी जन होयते अंहीं पा ठांतरे अइमाणमिति अत्यंतमान अत्यंतमाया तेमज अत्यंत क्रोध अने लोन एनो सर्वथा प्रकारे त्याग करे एम पण कह्युंडे बीजुं पाठांतर (सुयंमेइ हमेगेसिं के०) एरीते में गु रुनी पाशेथी सम्यक् प्रकारे सांनल्युंडे के (एयंवीरस्स वीरियं के०) ए क्रोधादिकना जय थी वीर पुरुषनुं वीर्य पराक्रम जाणवुं पण जे संग्राममां शत्रुने ह णेते परमार्थें वीर शुनट नकहेवाय तीजुंपाठांतर (आयतठंके०) मोक्षनो अर्थि आत्मतिष्ठ एवो साधु (स मादायके०) ते चारित्रने रुडीरीते ग्रहण करीने पढी क्रोधादिकने जीतवानो उद्यम करे (एयंवीरस्सवीरियंके०) ए प्रकारे वीर पुरुषनुं वीर्य जाणवो तथा (सातागारवणिहुए के०) सातागारवने विषे निनृत एटले अनुद्युक्त अर्थात् साता गारवें करी रहित तथा (उवसंतेणिहेचरे के०) उपशांत एटले कषायना जीतवा थकी क्षमावान् तथा माया रहित ठतो संयमानुष्टान आचरे ए शुद्ध मार्गनो नाव जाणवो ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—अनशने शेषकाले वा हस्तौ पादौच संहरे द्व्यापारान्निवर्तयेत्। तथा मनश्चित्तं पंचेंद्रियाणि च विषयेभ्योनिवर्तयेत् पापकमशुभं परिणामं भाषादोषं च सावद्यां भाषां संहरेत्॥१७॥ आयतार्थं मोक्षं सुष्टु आदाय गृहीत्वा कामक्रोधादिकं जयेत् एत द्वीरस्य वीरत्वं तथा सातगौरवं सुखशीलता तत्र निभृतोऽनुद्यमउपशांतः क्षमावान् नविद्यते निहा माया यस्यासावनिहोमायाप्रपंचरहितश्चरेत्संयमे ॥ १८ ॥

॥ टीका—संहरणप्रकारमाह (साहरेत्यादि) पादपोपगमने इंगितमरणे भक्तपरिज्ञायां शेषकाले वा कूर्मवद्धस्तौ पादौ च संहरेद्व्यापारान्निवर्त्तयेत् । तथा मनोंऽतःकरणं तच्चाऽकुशलव्यापारेभ्योनिवर्तयेत् । तथा शब्दादिविषयेभ्योऽनुकूलप्रतिकूलेभ्योऽरक्तद्विष्टतया श्रोत्रेंद्रियादीनि पंचाऽपींद्रियाणि । चशब्दः समुच्चये । तथा पापकं परिणाममैहिकामुष्मिकाशंसारूपं संहरेदित्येवं भाषादोषंच तादृशपापरूपं संहरेत् मनोवाक्कायगुप्तः सन् दुर्लभं संयममवाप्य पंडितमरणं वाऽशेषकर्मक्षयार्थं सम्यगनुपालयेदिति । तंच संयमे पराक्रममाणं कश्चित् पूजासत्कारादिना निमंत्रयेत् । तत्राऽऽत्मोत्कर्षोन कार्यइति दर्शयितुमाह ॥ १७ ॥ (अणुमाणं चेत्यादि) चक्रवर्त्यादिना सत्कारादिना पूज्यमानेनाऽणुरपि स्तोकोऽपि मानोऽहंकारोन विधेयः किमुत महान् । यदि वोत्तममरणोपस्थितेनोग्रतपोनिष्टप्तदेहेन वा अहोऽहमित्येवंरूपस्तोकोऽपि गर्वोन विधेयः । तथा पंडितार्येयेव स्तोकाऽपि माया न विधेया किमुत महतीत्येवं क्रोधलोभावापि न विधेयाविति । एवं द्विविधयापि परिज्ञया कषायांस्तद्विपाकांश्च परिज्ञाय तेभ्योनिवृत्तिं कुर्यादिति । पाठांतरंवा । अइमाणंचमाइंच तंपरिस्सायपंडिए । अतीव मानोतिमानः सुभूमादीनामिव तं दुःखावहमित्येवं ज्ञात्वा परिहरेत् । इदमुक्तं भवति । यद्यपि सरागस्य कदाचिन्मानोदयः स्यात्तथाप्युदयप्राप्तस्य विफलीकरणं कुर्यादित्येवं मायायामप्यायोज्यं । पाठांतरंवा । (सुयं मे इहमेगेसिं, एयं वीरस्स वीरियं ।) येन बलेन संग्रामशिरसि महति सुभटे परानीकं विजयते तत्परमार्थतोवीर्यं नभवत्यपितु येन कामक्रोधादीन् विजयते तद्वीरस्य महापुरुषस्य वीर्यमिहैवाऽस्मिन्नेव संसारे मनुष्यजन्मनि चैकेषां तीर्थंकरादीनां संबंधिवाक्यं मया श्रुतं वा । पाठांतरंवा । (आयतठं समादाय, एवं वीरस्स वीरियं) आयतोमोक्षोऽपर्यवसितावस्थानत्वात् । सचाऽसावर्थश्च तदर्थोवा तत्प्रयोजनोवा सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्रमार्गः सआयतार्थस्तं दृष्ट्वाऽऽदाय गृहीत्वा योधृतिबलेनकामक्रोधादिविजयाय च पराक्रमते । एतद्वीरस्य वीर्यमिति यदुक्तमासीत् किंतु वीरस्य वीरत्वमिति तद्यथाभवति तत्तथाख्यातं । किंचाऽन्यत् सातगौरवं नाम सुखशीलता तत्र निभृतस्तदर्थमनुद्युक्तइत्यर्थः । तथा क्रोधाग्निजयादुपशांतः शीतीभूतः शब्दादिविषयेभ्यो

ऽप्यनुकूलप्रतिकूलेभ्योऽरक्तद्विष्टतयोपशांतोजितेंद्रियत्वात्तेभ्योनिवृत्तइति । तथा निहन्यं ते प्राणिनः संसारे यया सा निहा माया नविद्यते सा यस्याऽसावनिहोमायाप्रपंच रहितइत्यर्थः । तथा मानरहितोलोभवर्जितइत्यपि द्रष्टव्यं । सचैवंभूतः संयमानुष्ठानं चरेत् कुर्यादिति । तदेवं मरणकालेऽन्यदा वा पंडितोवीर्यवान् महाव्रतेषूद्यतः स्यात् । तत्राऽपि प्राणातिपातविरतिरेव गरीयसीति कृत्वा तत्प्रतिपादनार्थमाह । (उड्ढमहे तिरियंवा जेपाणा तसथावरा ॥ सव्वड विरतिं कुज्जा, संति निव्वाणमाहियं॥१॥) अयंच श्लोकोन सूत्रादर्शेषु दृष्टष्टीकायांतु दृष्टइति कृत्वा लिखितउत्तानार्थश्चेति ॥ १७ ॥

पाणेय णाइवाएज्जा, अदिन्नं पियणादए ॥ सादियं ण मुसं बूया एस धम्मे बुसीमउ ॥ १ए ॥ अतिक्कम्मंति वायाए,मणसा वि न पडए ॥ सव्वउ संवुम्फे दंते, आयाणंसु समाहरे ॥ २० ॥

अर्थ-(पाणेयणाइवाएज्जा के०) प्राणीउंना प्राणने हणे नही (अदिन्नं पियणा दए के०) तथा दंत शोधनमात्र पण अदत्त लीए नही (सादियंणमुसंबूया के०) मा या सहित मृषावाद न बोले केम के परवंचना निमित्त जे मृषा बोलाय बे ते मायावि ना बोलातुं नथी किंतु माया सहितज बोलायछे ते माटे मृषानी आदि ते मायाज जाणवी तेवी मायाने परिहरे त्यागे (एसधम्मेबुसीमउ के०) संयमवंतनो तथा जी तेंद्रिय साधुनो एहिज धर्म सत्य जाणवो ॥ १ए ॥ (अतिक्कम्मंतिवायाए के०) महा व्रतोनुं अतिक्रम एटले उल्लंघन करवानी वचने करी (मणसाविनपडए के०) तथा मने करी पण प्रार्थना करे नही ए बन्नेना निषेधवा थकी त्रीजो कायानो अतिक्रम दूर थकीज निषेध्यो एम पोतानी मेलेज जाणी लेवो (सव्वउसंवुम्फेदंते के०) सर्व थकी करण करावण तथा अनुमतियें करी बाह्याभ्यंतर भेदेकरी संवृत गुप्तेंद्रिय एवो बतो (आयाणं सुसमाहरे के०) आदान एटले सम्यक् दर्शनादिकनुं ग्रहण करे तथा सुशुद्ध आ हार ग्रहण करे एम ग्रहण करेली चारित्रने सम्यक् प्रकारे शुद्ध क्रियासहित पाले.॥२०॥

॥ दीपिका-प्राणिनां प्राणान् नातिपातयेत् परेणाऽदत्तं किंचिन्नाददीत नगृह्णीयात् सह आदिना मायया वर्तते इति सादिकं समायं मृषावादं न ब्रूयात् । परवंचनार्थं मृषावा दोऽधिक्रियते च न मायामंतरेण स्यात्ततोमृषावादस्य माया आदिभूता । कोर्थः । योहि परवंचनार्थं समायोमृषावादः सत्यज्यते । यस्तु संयमगुप्त्यर्थं नमया मृगादृष्टाइत्यादि कः स न दोषाय (एसधम्मोबुसीमउत्ति) वस्तुमतः वस्तूनि ज्ञानादीनि विद्यते यस्य स वस्तुमान् साधुस्तस्य अथवा वश्यस्य वशीकृतेंद्रियस्येत्यर्थः ॥ १ए ॥ अतिक्रमं महाव्र

तातिचारइत्येवंनूतं वा मनसापि न प्रार्थयेत् । कायेनापि सर्वतः सबाह्याभ्यंतरतः संवृ तोगुप्तोदांतइंद्रियदमेन आदानं सम्यक्दर्शनादिकं सुष्ठु आहारं गृएहीयात् ॥ २० ॥

॥ टीका–किंच (पाएोइत्यादि) प्राणप्रियाणां प्राणिनां प्राणान्नातिपातयेत् । तथा परेणाऽदत्तं दंतशोधनमात्रमपि नाददीत नगृएहीयात् । तथा । सहादिना मायया वर्त्त तइति सादिकं समायं मृषावादं न ब्रूयात् । तथाहि । परवंचनार्थं मृषावादोऽधिक्रियते सच न मायामंतरेण नवतीत्यतोमृषावादस्य माया आदिनूता वर्त्तते । इदमुक्तं नवति । योहि परवंचनार्थं समायोमृषावादः सपरिह्रियते । यस्तु संयमगुप्त्यर्थं नमया मृगाउप जव्याइत्यादिकः सन दोषायेति । एषयः प्राक् निर्दिष्टो धर्मः श्रुतचारित्राख्यस्वनावोवा (वुसीमउत्ति) छांदसत्वान्निर्देशार्थस्त्वयं । वस्तूनि ज्ञानादीनि तद्वतोज्ञानादिमतइत्यर्थः । यदिवा । (वुसीमउत्ति) वश्यस्य आत्मवशगस्य वश्येंद्रियस्येत्यर्थः ॥ १ए ॥ अपिच (अइक्कमंतीत्यादि) प्राणिनामतिक्रमं पीडात्मकं महाव्रतातिक्रमंवा मनोऽवष्टब्धतया पर तिरस्कारंवा इत्येवंनूतमतिक्रमं वाचा मनसाऽपि न प्रार्थयेत् । एतद्द्वयनिषेधेच कायातिक्र मोदूरतएव निषिद्धोनवति । तदेवं मनोवाक्कायः कृतकारितानुमतिनिश्च नवकेन नेदेना तिक्रमं न कुर्यात् । तथा इंद्रियदमनेन तपसा वा दांतः सन् मोक्षस्यादानमुपादानं सम्य ग्दर्शनादिकं सुष्ठूद्युक्तः सम्यग्विस्रोतसिकारहितआहरेत् आददीत गृएहीयादित्यर्थः॥२०॥

कडंच कज्जमाणंच, आगमिस्संच पावगं ॥ सव्वं तं णाणुजाणंति,
आयगुत्ता जिइंदिया ॥२१॥ जे अवुद्धा महान्नागा, वीरा अस
मत्त दंसिणो ॥ असुद्धं तेसि परक्कंतं, सफलं होइ सव्वसो ॥२२॥

अर्थ–(कडंचकज्जमाणंच के०) साधुने उद्देशीने जे कोइ अनार्य पुरुषे कर्युं एवुं जे पाप तथा वर्तमान काले जे पाप करेठे (आगमिस्संचपावगंके०) तथा आगामिक काले जे पाप कर्म सावद्यानुष्ठान आरंनादिक साधुने अर्थे जे करशे (सव्वंतंणाणुजाणं ति के०) ते सर्वने मन वचन अने कायायें करी अनु मोदे नही ते कोण अनुमोदे नही तोके (आयगुत्ताजिइंदिया के०) जे महानुनाव आत्मगुप्त जितेंद्रिय होय ते एवा पाप कृत्यने अनुमोदे नही. ॥ २१ ॥ (जेअवुद्धामहान्नागा के०) जे अबुद्ध तत्व मार्गना अजाण परंतु व्याकर्णादिक नणेला तेथी लोक मांहे पूज्य मोटा केवाय एवा (वीरा के०) वीर पुरुष पण (असमत्तदंसिणो के०) सम्यक्त्व परिज्ञान थकी विकल होय (असुद्धंतेसिपरक्कंतं के०) एवा पुरुषनुं जे कांइ दान तप नियमादिकने विषे प राक्रम एटले उद्यम ते अशुद्ध जाणवो (सफलंहोइसव्वसो के०) ते सर्व कर्मबंधना

कारणने विषे सफल थाय पण मूर्ख वैद्यनी चिकित्सानी पेरे कर्म निर्ज्जराना कारण ने विषे सफल न थाय ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—साधूद्देशेन यदन्यैः कृतं पापकं कर्म तथा वर्तमाने काले क्रियमाणं तथा आगामिकाले यत्करिष्यते तत्सर्वं नानुजानंति नानुमोदंते आत्मगुप्ताजितेंद्रियाः साधवः ॥ २१ ॥ अबुद्धाअज्ञातपरमार्थाव्याकरणशुष्कतर्कादिज्ञानेन जातमदाअपि तत्वानवबोधादज्ञातपरमार्थाएव । यडुक्तं । शास्त्रावगाहपरिघट्टनतत्परोपि नैवाबुधः समभिगच्छति वस्तुतत्वं ॥ नानाप्रकाररसनावगतापि दर्वी स्वादं रसस्य सुचिरादपि नैव वेत्ति॥१॥ अबुधाअपि महानागाः । नागशब्दः पूजावाची । कोर्थः । अपंडिताअपि त्यागादिगुणै र्लोकपूज्यावीराः सुन्नटवादं वहंतोप्यसम्यक्दर्शनामिथ्यादृष्टयइत्यर्थः । तेषां बालानां पराक्रांतमनुष्ठानमशुद्धं नशुद्धिहेतु प्रत्युत कर्मबंधाय तत्पराक्रांतं सहफलेन कर्मबंधेन वर्ततइति सफलं सर्वतः स्यात् ॥ २२ ॥

॥ टीका—तथा किंचाऽन्यत् । (कडंवेत्यादि) । साधूद्देशेन यदपरैरनार्यकल्पैः कृतमनुष्ठितं पापकं कर्म तथा वर्त्तमानेच काले क्रियमाणं तथाऽऽगामिनिच काले यत्करिष्यते तत्सर्वं मनोवाक्कायकर्मनिर्नानुजानंति नाऽनुमोदंति तडपन्नोगपरिहरेणेति न्नावः । यद्यप्यात्मार्थं पापकं कर्म परैः कृतं क्रियते करिष्यते च । तद्यथा । शत्रोः शिरश्छिन्नं छिद्यते छेत्स्यतेवा तथा चौरोहतोहन्यते हनिष्यते वा इत्यादिकं परानुष्ठानं नाऽनुजानंति नच बहुमन्यंते । तथाहि । यदि परः कश्चिदशुद्धेनाहारेणोपनिमंत्रयेत्तमपि नानुमन्यंतइति । कएवंन्नूतान्नवंतीति दर्शयति । आत्माऽकुशलमनोवाक्कायनिरोधेन गुप्तोयेषां ते तथा जितानि वशीकृतानि इंद्रियाणि श्रोत्रादीनि यैस्ते तथा एवंन्नूताः पापकर्म नाऽनुजानंतीति स्थितं ॥ २१ ॥ अन्यच्च (जेयाबुद्धाइत्यादि) ये केचनाऽबुद्धाधर्मं प्रत्यविज्ञातपरमार्थाव्याकरणशुष्कतर्कादिपरिज्ञानेन जाताऽवलेपाः पंमितमानिनोऽपि परमार्थवस्तुतत्वाऽनवबोधादबुद्धाइत्युक्तं । नच व्याकरणपरिज्ञानमात्रेण सम्यक्त्वव्यतिरेकेण तत्वाववोधोन्नवतीति । तथा चोक्तं । शास्त्रावगाहपरिघट्टनतत्परोऽपि नैवाऽबुधः समभिगच्छति वस्तुतत्वं ॥ नानाप्रकाररसन्नावगताऽपि दर्वी, स्वादं रसस्य सुचिरादपि नैव वेत्ति ॥१॥ यदिवाऽबुद्धाइव बालवीर्यवंतस्तथा महांतश्चते न्नागाश्च महानागाः । नागशब्दः पूजावचनः । ततश्च महापूज्याइत्यर्थः । लोकविश्रुताइति । तथा वीराः परानीकन्नेदिनः सुन्नटाइति । इदमुक्तं न्नवति पंमिताअपि त्यागादिन्निर्गुणैर्लोकपूज्याः । अपिच । तथा सुन्नटवादं वहंतोऽपि सम्यक्तत्वपरिज्ञानविकलाः केचन न्नवंतीति दर्शयति । न सम्यगसम्यक् तन्नावोऽसम्यक्त्वं तद्द्रष्टुं शीलं येषांते तथा मिथ्यादृष्टयइत्य

र्थः। तेषां च बालानां यत्किमपि तपोदानाध्ययनयमनियमादिषु पराक्रांतमुद्यमकृतस्तद शुद्धमविशुद्धकारि प्रत्युत कर्मबंधाय भावोपहतत्वात् सनिदानत्वाच्चेति कुवैद्यचिकित्सा वद्विपरीतानुबंधीति। तच्च तेषां पराक्रांतं सहफलेन कर्मबंधेन वर्ततइति सफलं सर्वश इति सर्वाऽपि तक्रिया तपोनुष्ठानादिका कर्मबंधायैवेति ॥ २२ ॥

जेय बुद्धा महाभागा, वीरा सम्मत्तदंसिणो॥सुद्धं तेसिं परक्कंतं,
अफलं होइ सवसो ॥ २३॥ तेसिंपि तवो असुद्धो, निरकंता जे
महाकुला ॥ जन्ने वन्ने वियाणंति, नसिलोगं पवेज्जए ॥ २४ ॥

अर्थ-(जेयबुद्धामहाभागा के०) जे बुद्ध तत्व मार्गना जाण एवा तीर्थंकरादिक मोटा पूज्य पुरुष (वीरासम्मत्तदंसिणो के०) घनघाती कर्म विदारवाने सूरवीर सम्य क्त्व दृष्टि होय (सुद्धंतेसिंपरक्कंतं के०) तेमनो जेटलो नियमादिक क्रिया अनुष्ठा नने विषे उद्यमते ते सर्व शुद्ध निर्मल जाणवो (अफलंहोइसव्वसो के०) ते सर्व उ द्यम कर्मबंधना कारणने विषे अफल थाय किंतु सुवैद्यचिकित्सानीपेरे ते कर्म निर्ज्जरा नुंज कारण थाय ॥२३॥ तेसिंपितवोअसुद्धोके०) तेनुं तपजे अनशनादिक ते पण अशुद्ध जाणवुं ते कोनुं अशुद्ध जाणवुं तोके(निरकंताजेमहाकुलाके०)जेमोटा इक्ष्वाकादिक कुल तेथकी नीकलीने चारित्रिया थया छता पण (जन्नेवन्नेवियाणंति के०) जे मुनीश्वर पू जा सत्कारने अर्थे तप करे तेनो तप पण निःफल माटे अशुद्ध जाणवो अने जे त प करतां अनेरा गृहस्थादिक जाणे नही (नसिलोगंपवेज्जए के०) जे तपमां पोतानी श्लाघा प्रसंसा नबोले ते तप आत्मनेहिते जाणवो ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—ये बुद्धाज्ञाततत्वामहाभागामहापूजाभाजोवीराः सम्यक्दर्शनास्तज्ज्ञा स्तेषां यत्पराक्रांतमनुष्ठितं तत् शुद्धमफलं कर्मबंधरहितं भवति सर्वतः ॥२३ ॥ महत्कु लं येषांते महाकुलानिष्क्रांताः प्रव्रजितास्तेषामपि पूजासत्काराद्यर्थं यत्तपस्तदशुद्धं स्यात् यत्तपः क्रियमाणं नान्ये विजानंति तत्कार्यं नैवात्मश्लाघां प्रवेदयेत् प्रकाशयेत्॥ २४ ॥

॥ टीका—सांप्रतं पंडितवीर्येणाधिकृत्याह । (जेयबुद्धाइत्यादि) ये केचन स्वयंबुद्धास्ती र्थकराद्यास्तच्छिष्यावा बुद्धबोधितागणधरादयोमहाभागामहापूजाभाजोवीराः कर्मविदार णसहिष्णवोज्ञानादिभिर्वा गुणैर्विराजंतइतिवीराः । तथा सम्यक्त्वदर्शिनः परमार्थतत्व वेदिनस्तेषां भगवतां यत्पराक्रांतं तपोऽध्ययनयमनियमादावनुष्ठितं तच्छुद्धमवदातं निरु परोधं सातगौरवशल्यकषायादिदोषाकलंकितं कर्मप्रतिबंधमफलं भवति तन्निरनुबंधनि

र्जराथैमेव नवतीत्यर्थः । तथाहि । सम्यक्दृष्टीनां सर्वमपि संयमतपःप्रधानमनुष्ठानं नवति संयमस्य चानाश्रयरूपत्वात् तपसश्च निर्जराफलत्वादिति । तथाच पठ्यते । (संयमेणएहयफलेतवेवोदाणफलेइति) ॥ २३ ॥ किंचाऽन्यत् (तोसिंपीत्यादि) मह त्कुलमिक्ष्वाकादिकं येषांते महाकुलालोकविश्रुताः शौर्यादिभिर्गुणैर्विस्तीर्णयशसस्तेषा मपि पूजासत्काराद्यर्थमुत्कीर्त्तनेन वा यत्तपस्तदशुद्धं नवति । यच्च क्रियमाणमपि तपो नैवाऽन्ये दानश्रद्धादयोजानंति तत्तथानूतमात्मार्थिना विधेयं । अतोनैवात्मश्लाघां प्रवेदयेत् प्रकाशयेत् । तद्यथा । हेत्तमकुलीन इन्योवा सांप्रतं पुनस्तपोनिष्टप्तदेहइति । एवं स्वयमाविष्करणेन न स्वकीयमनुष्ठानं फल्गुतामापादयेदिति ॥ २४ ॥

अप्पपिंमासि पाणासि, अप्पं नासेज्ज सुव्वए ॥ खंते भिनिवुमे
दंते, वीतगिद्धी सदा जए ॥ २५ ॥ ऊाणजोगं समाहट्टु, कायं
विउसेज्ज सव्वसो ॥ तितिरकं परमं णच्चा आमोरकाए परिव्वएज्जा
सित्ति बेमि ॥ २६ ॥ इतिश्रीवीरिइनाममछमश्ययणं सम्मत्तं ॥

अर्थ—(अप्पपिंमासिपाणासिके०) अल्पाहारनो जमनार तथा अल्प पाणीनो वापरनार (अप्पंनासेज्जसुव्वए के०) तथा सुव्रति साधु अल्प नाषणनुं करनार परने हि तरूप वचननु बोलनार (खंतेभिनिवुमेदंतेके०) क्षमावंत क्रोधादिकना उपशम थकी कषायने अनावे सीतल परिणामि तथा इंडिउनो दमनार (वीतगिद्धीके०) लोलुपता र हित (सदाजएके०) एरीते साधु जे बे ते सर्व काल संयमने विषे यत्न करे ॥ २५ ॥ (ऊाणजोगंसमाहट्टुके०) शुनध्यान एटले धर्मध्यानदिकना योग तेने सम्यक् आदरीने (कायंविउसेज्जसव्वसोके०) कायाना अकुशल योगनी प्रवर्त्तिनो त्याग करे सर्वथा प्रकारे हस्त पादादिके करी पण परने पीडा नकरे (तितिरकंपरमंणच्चा के०) तितिक्षा एटले परीसह अने उपसर्गनुं जे सहन करवुं तेने परम प्रधान कर्म निर्जरानुं कारण जाणीने (आ मोरकाएपरिव्वएज्जासिके०) ज्यांसुधी मोक्ष नपामे त्यांसुधी दीक्षा पाले तिबेमिनो अर्थ पूर्व वत् जाणवो ॥ २६ ॥ इतिश्रीवीर्यनामा आठमा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका—अल्पं पिंडमश्नातीति अल्पपिंडाशी एवं पानेपि योज्यं । यदागमः । अठ्ठ नुकुक्मिअंडगप्पमाणे कवले आहारेमाणे अप्पाहारे डुवालसकवलेहि अवट्टमो अरिआ सोलसहिं १ डुनागयते २ चउवीसेहिं पउणोमो अरिअरि आतीसेहिंपमाणवत्तो बीत्तीसहिं पुणेहारेत्ति । अतएवैकैकवलहान्या ऊनोदरता कार्या । एवं पाने उपकरणे च ऊनोदरतां कुर्यात् । यडुक्तं । योवीहारोघावनणि उवजोहोऽघोवनिद्दो । अघोवोवहि उ

वगरणो तस्सहुदेवा विपणमंतीति । अल्पं नापते यः सुव्रतः क्रोधाद्युपशमात् क्षांतोऽ निनिर्वृतोलोनालोनजयादनातुरोदांतोजितेंद्रियस्तथा वीतगृद्धिर्निरीहः सदा यतेत सं यमे ॥ कषाया यस्य नोछिन्ना यस्य नात्मवशं मनः ॥ इंद्रियाणि नगुप्तानि प्रव्रज्या तस्य जी विकेति ॥२५॥ ध्यानं धर्मध्यानादि तत्र योगोमनोवाक्कायव्यापारस्तं समाहृत्य सम्यगा हृत्य कायं देहं सर्वतोव्युत्सृजेत् त्यजेत् तथा तितिक्षां क्षांतिपरीषहादिसहनरूपां प रमां प्रधानां ज्ञात्वा आमोक्षाय सर्वकर्मक्षयाय परिव्रजेत् संयमक्रियां कुर्यादिति। ब्रवीमी ति पूर्ववत् ॥२६॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां वीर्याख्यमष्टमाध्ययनं समाप्तं ॥ ८ ॥

॥ टीका—अपिच अप्पपिंमाइत्यादि । अल्पं स्तोकं पिंमशितुं शीलमस्याऽसावल्प पिंमाशी यत्किंचनाशीति भावः । तथाचाऽऽगमः । हेजंतवआसीयजत्थतत्थवसुहोवग यनिद्दा॥ जेणवतेणसंतुठ, वीरमुणिओ सितेअप्पा ॥ १ ॥ तथा (अठकुक्कुमिअंमगमत्त प्पमाणेकवलेआहरे माणे अप्पाहारे डुवालसकवलेहिं ॥ २ ॥ अवड्डोमोयरिया । सोलसेहिंडुनागपत्ते ॥ चउवीसंउमोदरियांसंपमाणपत्ते बत्तीसंकवलासंपुसुहारे ॥ ३ ॥ अतएकैककवलाहान्यादिनोदरता विधेया । एवं पाने उपकरणेवोचोनोदरतां विदध्या दिति । तथाचोक्तं । थोवाहारोथोवनणिउअजोहोइ थोवनिद्दोअ ॥ थोवोवहिउपकर णेतस्सहुदेवाविपणमंति ॥ तथा सुव्रतः साधुरल्पं परिमितं हितं च नापेत सर्वदा विकथा रहितोनवेदित्यर्थः। भावातऔदर्यमधिकृत्याह । भावतः क्रोधाद्युपशमात् क्षांतः क्षांतिप्र धानस्तथाऽभिनिर्वृतोलोभादिजयान्निरातुरस्तथा इंद्रियनोइंद्रियदमनादांतोजितेंद्रियः । तथाचोक्तं । कषायायस्य नोछिन्ना, यस्य नात्मवशंमनः । इंद्रियाणि न गुप्तानि, प्रव्रज्या तस्य जीवनं ॥१॥ एवं विगता गृद्धिर्विषयेषु यस्य सविगतगृद्धिराशंसादोषरहितः सदा सर्वकालं संयमानुष्ठाने यतेत यत्नं कुर्यादिति ॥ २५ ॥ अपिच (झाणजोगमित्यादि । ध्यानं चित्तरोधलक्षणं धर्मध्यानादिकं तत्र योगोविशिष्टमनोवाक्कायव्यापारस्तं ध्यानयोगं समाहृत्य सम्यगुपादाय कायं देहमकुशलयोगप्रवृत्तं व्युत्सृजेत् परित्यजेत् । सर्वतः सर्वेणाऽपि प्रकारेण हस्तपादादिकमपिपरपीडाकारि न व्यापारयेत्। तथा तितिक्षां क्षांतिं परीषहोपसर्गसहनरूपां परमां प्रधानां ज्ञात्वा आमोक्षायाऽशेषकर्मक्षयं यावत्परिव्रजेदि ति संयमानुष्ठानं कुर्यास्त्वमिति । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २६ ॥ स माप्तं चाऽष्टमं वीर्याख्यमध्ययनमिति ॥

हवे नवमुं अध्ययन प्रारंभियेछैयें. आठमां अध्ययनमां बालनुं अने पंमितनुं वीर्य कह्युं तेमां पण पंमितना वीर्यनुं जे धर्म ते धर्मने विषे साधु उद्यम करे तेमाटे आ नवमां अध्ययनमां ते धर्मनुं स्वरूप कहेछे.

कयरे धम्मे अरकाए, माहणेण मतीमता ॥ अंजुधम्मं जहात
च्चं, जिणाएं तं सुणेहमे ॥ (पाठांतरे। जणगातं सुणेहमे ॥
॥ १ ॥ माहणा खत्तिया वेस्सा, चंमाला अङ वोक्कसा ॥ एसिया
वेसिया सुद्दा, जेय आरंजणिस्सिया॥ २ ॥

अर्थ—श्रीसुधर्मस्वामि प्रत्यें श्रीजंबूस्वामि बे हाथ जोडीने पुढेठे, के (माहणेणम तीमता के०) माहण मतिमंत एटले केवली जगवंत एवा श्रीमहावीर देव तेणे (क यरेधम्मेअरकाए के०) सम्यक् प्रकारे करीने केवा प्रकारनो धर्म कह्योठे एम श्रीजंबुस्वा मियें पुठ्या थका, श्री सुधर्म स्वामि बोल्या, (अंजुधम्मं के०) श्रीवीतराग प्रणीत धर्म ते रुजु एटले सरल शुद्ध (जहातच्चं के०) साचो यथावस्थित (जिणाएंतंसुणेहमे के०) एवो धर्म श्रीतीर्थंकरनुं कहेलो तेहुं कहुंबुं ते तमे सांजलो पागंतरं (जणगातं सुणेहमेके०) एवो धर्म ते अहो जन, एटले लोको हुं कहुबुं, ते प्रत्ये तमे सांजलो ॥ १ ॥ (माहणाखत्तियावेस्सा के०) ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य अने (चंमाला के०) चांमाल निषाद (अङके०) अथवा (वोक्कसा के०) वोक्कसते अवांतरजाति तेमां जे ब्राह्मण अने शुद्रथकी उत्पन्न थयो ते, निषाद एटले चांमाल अने ब्राह्मण तथा वै श्यनी स्त्रीथी थयो ते अंबष्ठ, चंमालणी अने ब्राह्मण थकी थयो ते वोक्कस अहीं माता पितानो पक्ष जूदो जाणवो (एसिया के०) मृगलुब्धकः हस्तितापसादिक (वे सिया के०) वणिकादिक व्यापारमां अजीविका करनार (सुद्दा के०) शूद्र करसणी प्रमुख (जेयआरंजणिस्सिआ के०) इत्यादिक जे ठे ते आरंजना करनार ठे, तेमज बीजा पण पाखंमी प्रमुख आरंजना करनार अनेकठे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथ नवमाध्ययनं। पूर्वाध्ययने बालपंडितवीर्यमुक्तं पंडितवीर्यंच तदेव य द्धर्मं प्रति उद्यमं कुरुते अतोत्र धर्मः प्रोच्यते। तस्येदमादिसूत्रं। (कतरेत्ति) जंबूनामा सु धर्माणमुद्दिश्याह। कतरोधर्मआख्यातोमाहनेन श्रीवीरेण मतिमता ज्ञानवता। सुध र्मा आह। रुजुमवक्रं यथातथ्यं सत्यं जिनानां तं धर्मं मम कथयतः शृणुत यूयं ॥ १ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याश्चांडालाअथ वोक्कसाअवांतरजातीयाः। तद्यथा। ब्राह्मणेन शूद्र्यां जातोनिषादः। ब्राह्मणेनैव वैश्यायां जातोऽवष्ठः। तथा निषादेनांवष्ठ्यां जातो वोक्कसः। एषिकामृगलुब्धकाहस्तितापसाश्च ये मांसहेतोर्मृगान् हस्तिनश्च एषंति वैश्यावणि जोमायाप्रधानाः कलाजीविनः शूद्राः कृषीवलादयः येचान्ये नानाविधारंजनिश्रिताः॥ २॥

॥ टीका—अष्टमानंतरं नवमः समारभ्यते ॥ अस्य चायमजिसंबंधः। इहानंतराध्यय

ने बालपंमितजेदेन द्विरूपं वीर्यं प्रतिपादितं । अत्राऽपि तदेव पंडितवीर्यं धर्मं प्रति यद्ध्यमं विधत्ते अतोधर्मः प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेन धर्माध्ययनमायातं । अस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि उपक्रमादीनि प्राग्वत् व्यावर्णनीयानि । तत्राऽप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोऽयं । तद्यथा । धर्मोऽत्र प्रतिपाद्यतइति तमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । (धम्मोपुवुद्दिठ्ठो जावधम्मेण एह अहिगारो । एसेच होइ धम्मं, एसेवसमाहिमग्गोत्ति १ ।(धम्मोपुवुद्दिठ्ठोइत्यादि)। डुर्गतिगमनधरणलक्षणोधर्मः प्राक् दशवैकालिकश्रुतस्कंधषष्ठाऽध्ययने धर्मार्थिकामाख्ये उद्दिष्टः प्रतिपादितः । इहतु जावेन धर्मेणाधिकारः । एषएवच जावधर्मः परमार्थतोधर्मोजवति । अमुमेवार्थमुत्तरयोरप्यध्ययनयोरतिदिशन्नाह । एषएवच जावसमाधिर्जावमार्गश्च जवतीत्यवगंतव्यमिति । यदि वैषएवच जावधर्मएषएवच जावसमाधिरेषएवच तथा जावमार्गोजवति नतेषां परमार्थतः कश्चिद्भेदः । तथाहि । धर्मः श्रुतचारित्राख्यः क्षांत्यादिलक्षणोवा दशप्रकारोजवेत् जावसमाधिरप्येवंप्रकारएव । तथाहि । सम्यगाधानमारोपणं गुणानां क्षांत्यादीनामिति समाधिः । तदेव मुक्तिमार्गोऽपि ज्ञानदर्शनचारित्राख्योजावधर्मतया व्याख्यातयितव्यइति॥ सांप्रतमतिदिष्टस्यापिस्थानाशून्यार्थं धर्मस्यनामादिनिक्षेपं दर्शयितुमाह ।(णामंठवणाधम्मो,दव्वधम्मोय जावधम्मोय । सचित्ताचित्तमीसग,गिहत्थदाणेदवियधम्मे।१।) (नामंठवणेत्यादि) नामस्थापनाद्रव्यजावजेदाच्चतुर्धा धर्मस्य निक्षेपःतत्राऽपि नामस्थापनेऽनादृत्य ज्ञशरीरजव्यशरीरव्यतिरिक्तोधर्मः सचित्ताचित्तमिश्रजेदात् त्रिधा । तत्राऽपि सचित्तस्य जीवच्छरीरस्योपयोगलक्षणोधर्मः स्वजावः । एवमचित्तानामपि धर्मास्तिकायानां योयस्य स्वजावः सतस्य धर्मइति । तथाहि । (गइलरकणउधम्मो, ठाणलरकणोअहम्मोय । जायणं सव्वदव्वाणं, नहअवगाहलरकणं । १ । पुजलास्तिकायोऽपिग्रहणलक्षणइति । मिश्रद्रव्याणां च क्षीरोदकादीनां योयस्य स्वजावः सतद्धर्मतयाऽवगंतव्यइति । गृहस्थानांच यः कुलनगरग्रामादिधर्मोगृहस्थेभ्योगृहस्थानां वा योदानधर्मः सद्द्रव्यधर्मोऽवगंतव्यइति । तथाचोक्तं । अन्नं पानं च वस्त्रंच, आलयः शयनासनं । शुश्रूषा वंदनं तुष्टिः पुण्यं नवविधं स्मृतं । १ । जावधर्मस्वरूपनिरूपणायाह । (लोइयलोउत्तरिउ. डुविहोपुणहोतिजावधम्मोउ । डुविहोवि डुविहतिविहो, पंचविहो होतिणायव्वो । २ । (लोइयइत्यादि) । जावधर्मोनोआगमतो द्विविधः । तद्यथा । लौकिकोलोकोत्तरश्च । तत्र लौकिकोद्विविधः । गृहस्थानां पाखंडिकानां च लोकोत्तरस्त्रिविधः । ज्ञानदर्शनचारित्रजेदात् । तत्राऽप्याजिनिबोधकं ज्ञानं पंचधा । दर्शनमप्यौपशमिक,सास्वादन,क्षायोपशमिक,वेदक,क्षायिक जेदात् पंचविधं ।चारित्रमपि सामायिकादिजेदात् पंचविधं । गाथाक्षराणि त्वेवं नेयानि । तद्यथा । जावधर्मोलौकिकलोकोत्तरजेदाद्द्विधा । द्विविधोऽपि चायं यथासंख्येन द्विविधस्त्रिविधः। तत्रैव लौकिकोगृहस्थपाखंडिकजेदात् द्वि

विधः । लोकोत्तरोऽपि ज्ञानदर्शनचारित्रनेदात् त्रिविधः । ज्ञानादीनि प्रत्येकं त्रीण्यपि पंचधैवेति । तत्र ज्ञानदर्शनचारित्रवतां साधूनां योधर्मस्तं दर्शयितुमाह । (पासबोसस्स कुसीलं, संथवोणकिरचद्दतीकाउ । सूयगडेअज्जयणे, धम्मंमि निकाइतंएयं ॥४॥) पासबोसस्सेत्यादि)। साधुगुणानां पार्श्वे तिष्ठंतीति पार्श्वस्थाः । तथा संयमानुष्ठानेऽवसीदंतीत्यवसन्नाः।तथा कुत्सितं शीलं येषांते कुशीलाएतैः पार्श्वस्थादिनिः सह संस्तवः परिचयः सहसंवासरूपोन किल यतीनां वर्त्तते कर्त्तुमतः सूत्रकृतेंऽगेधर्माख्येऽध्ययने एतस्मिन्निकाचितं नियमितमिति ॥ गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपोऽधुना सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (कयरेइत्यादि)॥ जंबूस्वामी सुधर्मस्वामिनमुद्दिश्येदमाह । तद्यथा । कतरः किंनूतोडुर्गतिगमनलक्षणोधर्मआख्यातः प्रतिपादितो (माहणेणंति) मा जंतून् व्यापादयेत्येवं विनेयेषु वाक्प्रवृत्तिर्यस्याऽसौ माहनोनगवान् वीरवर्धमानस्वामी तेन। तमेव विशिनष्टि । मनुतेऽवगच्छति जगत्त्रयं कालत्रयोपेतं यया सा केवलज्ञानाख्या मतिः सा अस्याऽस्तीति मतिमान् तेनोत्पन्नकेवलज्ञानेन नगवतेति पृष्टे सुधर्मस्वाम्याह रागद्वेषजितोजिनास्तेषां संबंधिनं धर्मं (अंजुमिति) ऋजुं मायाप्रपंचरहितत्वादवक्रं। तथा (जहातच्चमिति) यथावस्थितं मम कथयतः शृणुत यूयं । ननु यथाऽन्यैस्तीर्थिकैर्दंनप्रधानोधर्मोनिहितस्तथा नगवताऽपीति (पाठांतरंवा) जणगातं सुणेहमे) जायंतइति जनालोकास्तएव जनकास्तेषामामंत्रणं हेजनकाः तंधर्मं शृणुत यूयमिति ॥ १ ॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यामुक्तोऽर्थः सूक्तोनवतीत्यतोयथोद्दिष्टप्रतिपक्षनूतोऽधर्मस्तदाश्रितांस्तावद्दर्शयितुमाह । (माहणेत्यादि)। ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्यास्तथा चांमालाः अथ वोक्कसाअवांतरजातीयाः। तद्यथा। ब्राह्मणेन शूद्र्यांजातोनिषादोब्राह्मणेनैव वैश्यायां जातोंऽबष्ठस्तथा निषादेनांबष्ठ्यां जातोवोक्कसः। तथा एषितुं शीलमित्येषिकामृगलुब्धकाहस्तितापसाश्च मांसहेतोर्मृगान् हस्तिनश्च एष्यंति तथा कंदमूलफलादिकं च। तथा ये चाऽन्ये पाखंडकानानाविधैरुपायैर्नैक्ष्यमेष्यंत्यन्यानिवा विषयसाधनानि ते सर्वेऽप्येषिकाइत्युच्यंते। तथा वैशिकावणिजोमायाप्रधानाकलोपजीविनः। तथा शूद्राः कृषीवलादयः। आनीरजातीयाः कियंतोवा वक्ष्यंतइति दर्शयति। ये चाऽन्येव र्णापसदानानारूपसावद्यारंननिश्रितायंत्रपीडननिर्लांछनकर्मांगारदाहादिनिः क्रियाविशेषैर्जीवोपमर्दकारिणस्तेषां सर्वेषामेव जीवापकारिणां वैरमेव प्रवर्धतइत्युत्तरश्लोकेक्रियेति॥२

परिग्गहनिविठ्ठाणं, वेरं तेसिं पवड्ढई ॥ (पाठांतरे पावं तेसिं पवड्ढई)
आरंनसंन्निया कामा, नते डुक्खविमोयगा ॥ ३ ॥ आघाय किच्चमाहेउं,
नाइउ विसएसिणो ॥ अन्ने हरंति तं वित्तं, कम्मी कम्मेहिं किच्चती ॥४ ॥

अर्थ–(परिग्गहे के०) परिग्रह द्विपद, चतुष्पद, धन, धान्य हिरण्य. सुवर्णादिकने विषे ममत्व तेमां (निविठाणंके०) गृध थता (वेरंतेसिंपवड्ढई के०) एवा पुरुष आरंजना करनार तेने निःकेवल वैरनी वृद्धि थायछे. अथवा पाठांतरे (पावंतेसिंपवड्ढई के०) तेवा आरंजना करनार पुरुषोने जमदग्नि कृतवीर्यनी पेरे पापनी वृद्धि थायछे ज्यां जेरीते प्राणीउनी हिंसा करे त्यां तेरीते संसार मांहे दुःखना विजागी थाय. (आरंजसंनियाकामा के०) तथा कामजोगजे छे, ते आरंज संवृतछे आरंजे करी पुष्टछे अनेक पापना कारणे करी जस्याछे, (नतेदुःखविमोयगा के०) ते कारण माटे ते दुःख थकी बूटे नही ॥ ३ ॥ जेथकी प्राणीना प्राणने हणियें तेने (आघाय के०) मरण कहिए. ते मरणने अर्थे जे (किच्चमाहेउंके०) कृत्य करवुं एटले मरणनुं जे कार्य करवुं अर्थात् अग्निसंस्कार जलांजली, प्रदान, पितृ पिंम, प्रमुख एटलावाना करीने पछी (नाइउ विसएसिणो के०) ज्ञाति, गोत्री, स्वजन, पुत्र, कलत्रादिक एसर्वे विषयाजिलाषी थता होय तेमनुं उपार्जन करेलुं जे वित्त एटले धन (तंवित्तंके०) तेधन (अन्नेहरंतिके०) अन्य जे पूर्वोक्त अग्नि संस्कार प्रमुखना करनारा पुरुषो ते लिये, एटले अंगीकार करे. अने ते धननो उपार्जनार (कम्मीकम्मेहिंकिच्चती के०) अनेक कुकर्म करी दुर्गतीयें पोहोतो थतो ते कर्मे करी संसारमां किच्चती एटले पीडाय छेदाय. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–परिग्रहनिविष्टानां ममतासक्तानां तेषां पूर्वोक्तानां वैरं वर्धते । जमदग्निकृतवीर्यादीनामिव रिपवस्ते आरंजसंभृताआरंजपुष्टाः कामेषु प्रवृत्तास्ते एवंविधादुःखविमोचकान स्युः ॥ ३ ॥ आघातोमरणं तस्य कृत्यमग्निसंस्कारजलांजलिदानपितृपिंमादिकं तदाधातुमाधाय कृत्वा पश्चाज्ज्ञातयः स्वजनाअन्येऽपि विषयैषिणः संतस्तस्य तद्वित्तं धनं हरंति गृह्णंति । यदुक्तं । ततस्तेनार्जितैर्द्रव्यैर्दारैश्च परिरक्षितैः ॥ क्रीडंत्यन्ये नराराजन् हृष्टतुष्टाअलंकृताइति । सतु द्रव्योपार्जकः कर्मवान् कृतैः कर्मभिः संसारे कृत्यते पीड्यते ॥ ४ ॥

॥टीका–किंच (परिग्गहेइत्यादि) परिसमंतात् गृह्यतइति परिग्रहो द्विपदचतुष्पदधनधान्यहिरण्यसुवर्णादिषु ममीकारस्तत्र निविष्टानामध्युपपन्नानां गार्ध्यं गतानां पापमसातवेदनीयादिकं तेषां प्रागुक्तानामारंजनिश्रितानां परिग्रहे निविष्टानां प्रकर्षेण वर्द्धते वृद्धिमुपयाति जन्मांतरेष्वपि दुर्मोचं जवति । क्वचित्पाठः (वेरंतेसिंपवड्ढइत्ति)। तत्र येन यस्य यथा प्राणिनउपमर्दः क्रियते सतथैव संसारांतर्वर्ती शतशोदुःखनाक् जवति । जमदग्निकृतवीर्यादीनामिव पुत्रपौत्रानुगं वैरं प्रवर्द्धतइति जावः । किमित्येवं । यतस्ते

कामेषु प्रवृत्ताः कामाश्चारंनैः सम्यग् नृताश्चारंनपुष्टाश्चारंनाश्च जीवोपमर्दकारिणोऽतोन ते कामसंनृताश्चारंननिश्रिताः परगृहे निविष्टाः डुःखयतीति डुःखमष्टप्रकारं कर्म तद्विमो चकान्नवंति तस्याऽपनेतारोन्नवंतीत्यर्थः ॥ ३ ॥ किंचाऽन्यत् (आघायमित्यादि) आहन्यंते अपनयंति विनाश्यंते प्राणिनां दश प्रकाराअपि प्राणायस्मिन् सआघा तोमरणं तस्मै तत्र वा कृतमग्निसंस्कारजलांजलिप्रदानपितृपिंमादिकमाघातं कृत्यं तदा धातुमादाय कत्वा पश्चात् ज्ञातयः स्वजनाः पुत्रकलत्रन्रातृव्यादयः। किंनूताः । विषयान न्वेष्टुं शीलं येषां तेऽन्येऽपि विषयैषिणः संतस्तस्य डुःखार्जितं वित्तं ड्व्यजातमपहरंति स्वीकुर्वंति । तथाचोक्तं । ततस्तेनार्जितैर्ड्व्य,दारैश्च परिरक्षितैः ॥ क्रीडंत्यन्ये नराराजन्, हृष्टास्तुष्टाह्यलंकृताः ॥ १ ॥ सतु ड्व्यार्जनपरायणः सावद्यानुष्ठानवान् कर्मवान् पापी स्वीकृतैः कर्मन्निः संसारे कृत्यते छिद्यते पीड्यतइति यावत् ॥ ४ ॥

माया पिया एहुसा न्राया,नज्जा पुत्ताय उरसा ॥ नालं ते तव ताणा य, लुप्पंतस्स सकम्मुणा ॥ ५ ॥ एयमठं सपेहाए, परमठाणु गामियं ॥ निम्ममो निरहंकारो, चरे न्निकू जिणाहियं ॥ ६ ॥

अर्थ-(मायापियाएहुसान्राया के०) माता पिता स्नुषा एटले छोकरानी स्त्री तथा न्राइ (नज्जापुत्तायउरसा के०) न्नार्या, पुत्र अंगजातिक एटला सर्व (लुप्पंत स्ससकम्मुणा के०) ए जीवने कर्म विपाक न्नोगवता थकां (नालंतेतवताणाय के०) तेवखते त्राणन्नणी नथाय एटले डुःख टालवाने असमर्थ थाय ॥ ५ ॥ धर्मरहित जी वने राखवा कोइ समर्थ नथी (एयमठंसपेहाए के०) ए अर्थ आलोची एटले सम्य क् प्रकारे विमासीने (परमठाणुगामियं के०) परमार्थजे मोक्ष तेनो अनुगामि एटले मोक्षनो साधक (निम्ममोनिरहंकारो के०) निर्ममत्व तथा निरहंकारी एवोथतो (चरे न्निकूजिणाहियं के०) ते साधु जिनन्नाषित जे संयम मार्गछे तेने आचरे ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-माता पिता स्नुषापुत्रवधूः न्राता न्नार्या पुत्राश्च औरसाःस्वांगजाएते स र्वे तव त्राणाय रक्षणाय नालं नसमर्थाः । तव किंनूतस्य । स्वकर्मणा लुप्यमानस्य पीड्य मानस्य ।दृष्टांतोत्र कालसौकरिकसुतः सुलसोऽन्नयकुमारस्य मित्रं तेन महात्मना स्वजना न्यर्थितेनापि न प्राणिहिंसा कृता ॥ ५ ॥ एतं पूर्वोक्तमर्थं प्रेक्ष्य विचार्य परमार्थोमोक्ष स्तमनुगछतीति परमार्थानुगामुकस्तं सम्यक्दर्शनादिकं विचार्य निर्ममोनिरहंकारोन्नि क्षुर्जिनाहितं जिनोक्तं मार्गं चरेत् ॥ ६ ॥

॥ टीका-स्वजनाश्च तद्ड्व्योपजीविनस्तत्त्राणाय नन्नवंतीति दर्शयितुमाह । (माया

पियाइत्यादि) माताजननी पिताजनकः स्नुषापुत्रवधूः भ्रातासहोदरः । तथा भार्या कलत्रं पुत्राश्चौरसाः स्वनिष्पादिताएते सर्वेऽपि मात्रादयोये चान्ये श्वशुरादयस्ते तव संसारचक्रवाले स्वकर्मभिर्विलुप्यमानस्य त्राणाय नाऽलं समर्थाभवंतीति । इहाऽपि ताव न्नैते त्राणाय किमुताऽमुत्रेति । दृष्टांतश्चाऽत्र कालसौकरिकसुतः सुलसनामा अभयकुमा रस्य सखा । तेन महासत्वेन स्वजनाऽभ्यर्थितेनाऽपि नप्राणिष्वपकृतमपि त्वात्मन्येवेति ॥ ५ ॥ किंचान्यत् (एयमहमित्यादि) धर्मरहितानां स्वकृतकर्मविलुप्यमानानामैहि कामुष्मिकयोर्नकश्चित्त्राणायेति एनं पूर्वोक्तमर्थं सप्रेक्षापूर्वकारी प्रत्युपेक्ष्य विचार्याऽवगम्य च परमः प्रधानभूतोमोक्षः संयमोवा तमनुगच्छतीति तच्छीलश्च परमार्थानुगामुकः सम्य क्दर्शनादिस्तंच प्रत्युपेक्ष्य। क्त्वाप्रत्ययांतस्य पूर्वकालवाचितया क्रियांतरसव्यपेक्षत्वात्।त दाह । निर्गतं ममत्वं बाह्याभ्यंतरेषु वस्तुषु यस्मादसौ निर्ममः । तथा निर्गतोऽहंकारोऽ भिमानः पूर्वैश्वर्यजात्यादिमदजनितस्तथा तपःस्वाध्यायलाभादिजनितोवा यस्मा दसौ निरहंकारोरागद्वेषरहितइत्यर्थः । सएवंभूतोभिक्षुर्जिनैराहितः प्रतिपादितोऽनु ष्ठितोवा योमार्गोजिनानां वा संबंधी योऽभिहितोमार्गस्तं चरेदनुतिष्ठेदिति ॥ ६ ॥

चिच्चा वित्तंच पुत्तेय.णाइउ य परिग्गहं ॥ चिच्चाण अंतगं सोयं
(चिच्चाणणंतगंसोयं,) इति पाठांतरं । निरवेस्कों परिव्वए ॥ ७ ॥
पुढवी आउगणि वाऊ, तणरुस्क सबीयगा ॥ अंमया पोय जरा
ऊरस संसेय उभिया ॥ ८ ॥

अर्थ–(वित्तंचपुत्तेय के०) वित्तते धन अने पुत्रादिक तेने (चिच्चा के०) त्यक्त्वा एटले छांमीने वली (णाइउयके०) ज्ञाति, स्वजन, स्त्री, स्वसुर, वेवाही प्रमुख तथा (परि ग्गहं के०) परिग्रह तेना उपर ममत्व भाव ते सर्वने (चिच्चाके०) त्यक्त्वा एटले छां मीने णवाक्यालंकारेछे तथा (तंसोयं के०) तथा भूतशोक तेने त्यागीने अथवा पाठांत रनुं अर्थ कहेछे. मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषायरूप बंधना कारण, अने (णणंतगं के०) जेनो कोइरीते अंत एटले पार न आवे एवो सोयं के० शोक तेनो त्याग करीने (निरवेस्को के०) निरपेक्ष एटले विषयादिकने अण वांछतो थको (परिव्वए के०) सं यम पाले तेने साधु जाणवो ॥ ७ ॥ (पुढविआउगणिवाऊ के०) पृथवीकाय, अ प्पकाय. तेऊकाय अने वायुकाय तथा (तणरुस्कसबीयगा के०) तृण वृक्ष बीज शा लि प्रमुख ए पांचमी वनस्पतिकायनी जाति ए सर्व स्थावर जीवो जाणवाः अने (अं मया के०) इंमा थकी उपजे जे बागुलि प्रमुख (पोतजके०) हस्तियादिक तथा (ज

रायुज के०) मनुष्यादिक (रसज के०) कीटादिक (संस्वेदजके०) जुं प्रमुख (उद्भि ज्ज के०) तीडादिक ए सर्व त्रसकाय जीवोजाणवा. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—वित्तं धनं पुत्रांश्च ज्ञातीन् स्वजनान् त्यक्त्वा परिग्रहं चांतरंममत्वं । ए कारोवाक्यालंकारे अंतं गच्छतीत्यंतगोडुष्परित्यजइत्यर्थः । तं तथाभूतं शोकरूपं त्य क्त्वा निरपेक्षः पुत्राद्यपेक्षारहितः परिव्रजेत् संयमे चरेत् । यडुक्तं । छलियाअवइरकंता, निरावइरकागयाअविग्घेणं ॥ तम्हापवयणसारे, निरावइरकेणहोअव्वंइति ॥ ७ ॥ पृथि वी आपः अग्नयः वायवः तृणानिकुशादीनि वृक्षाअशोकाम्रादयः सबीजानि शालिगो धूमादीनि तद्युक्ताएते त्रयोपि वनस्पतयः एते पंचाप्येकेंडियाः । अंडजाः पक्षिगृहकोकि लाद्याः पोतजाहस्त्यादयः जरायुजागोमनुष्यादयः रसाद्दधिसौवीरादेर्जातारसजाः सं स्वेदजायूकामत्कुणादयः उद्भिज्जाःखंजरीटदर्डुराद्याः एते त्रसाः ॥ ८ ॥

॥ टीका—अपिच (चिच्चाइत्यादि) संसारस्वभावपरिज्ञानपरिकर्मितमतिर्विदितवेद्यः सम्यक् त्यक्त्वा परित्यज्य किंतद्वित्तं इव्यजातं तथा पुत्रांश्च त्यक्त्वा पुत्रेष्वधिकस्नेहोभ वतीति पुत्रग्रहणं । तथा ज्ञातीन् स्वजनांश्च त्यक्त्वा तथा परिग्रहं चांतरं ममरूपत्वं । एकारोवाक्यालंकारे । अंतं गच्छतीत्यंतगोडुष्परित्यजइत्यर्थः । अंतकोविनाशकारीत्यर्थः । आत्मनि वा गच्छतीत्यात्मगआंतरइत्यर्थः । तं तथाभूतं शोकं त्यक्त्वा परित्यज्य श्रोतोवामिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषायात्मकं कर्माश्रवद्वारभूतं परित्यज्य पागांतरंवा । (चिच्चाणणंतगंसोयं) अंतं गच्छतीत्यंतगं नअंतगमनंतगं । श्रोतःशोकं परित्य ज्य निरपेक्षः पुत्रदारधनधान्यहिरण्यादिकमनपेक्ष्यमाणः सन् मोक्षाय परिसमंता त् संयमानुष्ठाने व्रजेत् परिव्रजेदिति । तथा चोक्तं । (छलियाअवयरकंता, निरावय रकागयाअविग्घेणं ॥ तम्हापवयणसारे, निरावयरकेणहोयव्वं॥ १ ॥ भोगेअवयरकंता, प डंति संसारसागरे घोरे । भोगेहिनिरवयरका, तरंति संसारकंतारमिति ॥ २॥ सएवं प्रव्रजि तः सुव्रतावस्थितात्माऽहिंसादिषु व्रतेषु प्रयतेत ॥ ७ ॥ तत्राऽहिंसाप्रसिध्यर्थमा ह । (पुढवीआउइत्यादिश्लोकद्वयं) तत्र पृथिवीकायिकाः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तक भेदभिन्नाः । तथाऽप्कायिकाअग्निकायिकावायुकायिकाश्चैवंभूताएव । वनस्पतिकायि कान् लेशतः सभेदानाह । तृणानि कुशवच्चकादीनि वृक्षाश्चूताशोकादिकाः । सह बीजैर्व र्ततइति सबीजानि तु शालिगोधूमयवादीनि एते एकेंडियाः पंचापिकायाः। षष्ठत्रसकायनि रूपणायाह । अंडजाः शकुनिगृहकोकिलकसरीसृपादयः । तथा पोताएव पोतजाहस्तिश रभादयः । तथा जरायुजाये जंबालवेष्टिताः समुत्पद्यंते गोमनुष्यादयः । तथा रसात् दधि

सौवीरकादर्जातारसजास्तथा संस्वेदाज्जाताः संस्वेदजायूकामत्कुणादयः । उद्भिज्जाः खंजरीटकदर्दुरादयइति । आशातनेदाद्दि डुःखेन रद्दयंतइत्यतोनेदेनोपन्यासइति ॥ ८ ॥

एतेहिं बहिं काएहिं, तं विज्जं परिजाणिया ॥ मणसा कायवक्के णं, णारंन्नी ण परिग्गही ॥९॥ मुसावायं बहिद्धंच, उग्गहंच अ जाइय ॥ सत्था दाणाइं लोगंसि, तं विज्जं परिजाणिया ॥ १० ॥

अर्थ-(एतेहिंबहिंकाएहिंके०) पूर्वोक्त ब कायजीवो ते त्रस स्थावर तथा सूक्ष्म बादर पर्याप्ता अपर्याप्ता ना नेदे करी (तंविज्जंपरिजाणियाके०) ते बकायने पंमित ज्ञ परिज्ञायें करी नलीपरे जाणीने अने प्रत्याख्यान परिज्ञाये (मणसाकायवक्केणं के०) मन, वचन अने काया एत्रण करणे करी (णारंन्नीणपरिग्गहीके०) साधु आरंन परिग्रह नकरे केमके ए आरंनपरिग्रहथकी पूर्वोक्त बकाय जीवोनी विराधना थायने माटेसाधु आरंनी परिग्रही नथाय. ए प्राणातिपात विरमण नामा प्रथम व्रतनो अधिकार कह्यो ॥९॥ हवे बीजो व्रत आदि कहेबे (मुसावायं के०) असत्य बोलवुं (बहिद्धंचके०) तथा मैथुन ते नोग कामादिक (उग्गहंच के०) परिग्रह तथा (अजाइय के०) अदत्तदान ए मृषावादादिक अव्रतजेबे ते (लोगंसि के०) लोक मांहे (सबके०) शस्त्ररूपबे, तथा शस्त्रनी पेरे (आदानके०) कर्म ग्रहण करवानुं कारणबे, (तंविज्जंपरिजाणियाके०) तेने विद्वान् ए एले पंमित ज्ञपरिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञाये परिहरे ॥ १० ॥

॥ दीपिका-एनिः षड्भिः कायैर्नारंन्नी नापि परिग्रही स्यात् विद्वान् पंडितोज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया मनोवाक्कायैरारंनं परिग्रहंच परिहरेदिति श्लोकद्वयार्थः ॥ ९ ॥ मृषावादं विद्वान् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् अबहिद्धं मैथुनं अवग्रहंपरिग्रहमयाचितमदत्तादानं एतानि मृषावादादीनि प्राण्युपघातकारित्वात् शस्त्राणि तथा आदानानि कर्मोपादानकारणान्यस्मिन् लोके तदेतत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ १० ॥

॥ टीका-एनिः पूर्वोक्तैः षड्भिरपि कायैस्त्रसस्थावररूपैः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकनेदभिन्नैर्नारंन्नी नाऽपि परिग्रही स्यादिति संबंधः । तदेतद्विद्वान् सश्रुतिकोज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया मनोवाक्कायकर्मभिर्जीवोपमर्दकारिणामारंनं परिग्रहं च परिहरेदिति ॥ ९ ॥ शेषव्रतान्यधिकृत्याह । (मुसावायमित्यादि) मृषा असद्भूतोवादोमृषावादस्तं विद्वान् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् तथाऽबहिद्धमितिमैथुनं अवग्रहं परिग्रहमयाचितमदत्तादानं । यदिवाऽ बहिद्धमिति मैथुनग्रहोऽवग्रहमयाचित

मित्यनेनाऽदत्तादानं गृहीतं । एतानिच मृषावादादीनि प्राण्युपतापकारित्वात् शस्त्रा णीव शस्त्राणि वर्तंते । तथा दीयते गृत्यतेऽष्टप्रकारं कर्मैनिरिति । कर्मोपादानकारणान्य स्मिन् लोके तदेतत्सर्वं विद्वान् ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति ॥१०॥

पलिउंचणंच नयणंच, थंमिल्लुस्सयणाणिया॥ धूणादाणाइं लो गंसि, तं विज्जं पारिजाणिया॥११॥ धोयणं रयणं चेव,वत्नीकम्मं विरेयणं ॥ वमणं जणपलीमंथं, तं विज्जं परिजाणिया ॥ १२ ॥

अर्थ-(पलिउंचणंचके०) माया तथा (नयणंचके०) लोन (थंमिल्लके०) जे निर्विवे क पणा थकी थंमिलनी पेरे होय ते क्रोध(उसयणाणियाके०) जे अपध्याने करी सय्या दिकनी पेरे उंचु होय तेने मान कहिए (धुणाके०) एचारेनो त्यागकरे केम के (दाणाइ लोगंसि के०) एचार कषायने लोकमां कर्म ग्रहण करवाना कारण कह्यां बे तेमाटे (तं विज्जंपरिजाणिया के०) एने पंमित ज्ञपरिज्ञाये जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरे. ॥ ११ ॥ (धोयणंरयणं के०) हाथ पग वस्त्रादिकने धोवुं तथा रंगवुं (चेवके०) वली (वत्निकम्मं के०) नख रोमादिकनुं समारवुं (विरेयणं के०) पखाल लेवो (वमनंके०) वमन करवुं (अंजण के०) आखनुं आंजवुं (पलिमंथं के०) अन्यकोइ शरीर संस्का रादिक जेणे करी संयमनो उपघात थाय तेवा सर्वकारणोने जाणीने पंमित परिहरे॥१२॥

॥ दीपिका-परिकुंच्यते आत्मा वक्रतां प्राप्यते येन तत् परिकुंचनं माया । नज्यते सर्व त्र आत्मा प्रह्वीक्रियते येन सनजनोलोनः । यडुदयेनात्मा सदद्विवेकविकलत्वात् स्थंमि लवत्स्यात् सस्थंडिलः क्रोधः। यस्मिन् सति आत्मा उच्छ्रितः स्याडुन्नतः सउत्रायो मानः। बांदसत्वात्क्लीबत्वं । एतानि धूनय त्यज। किंनूतानि आदानानि बंधकारणानि तदेतद्वि द्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ ११ ॥ धावनं हस्तपादवस्त्रादेः। रंजनं तस्यैव। बस्तिकर्मानु वासनरूपं । विरेचनमधोविरेकः । वमनमूर्ध्वविरेकः । अंजनं नयनयोः । एवमन्यदपि य त्संयमपलिमंथकारि संयमोपघातकारि तत्परिज्ञाय परिहरेत् ॥ १२ ॥

॥ टीका-किंचाऽन्यत् (पलिउंचणमित्यादि) पंचमहाव्रतधारणमपि कषायिणोनि ष्फलं स्यादतस्तत्साफल्यापादनार्थं कषायनिरोधोविधेयइति दर्शयति ॥ परिसमंतात् कुंच्यंते वक्रतामापद्यंते क्रियायेन मायाऽनुष्ठानेन तत्पलिकुंचनं मायेति नएयते । तथा न ज्यते सर्वत्राऽऽत्मा प्रह्वीक्रियते येन सनजनोलोनस्तं तथा यडुदयेन ह्यात्मा सदसद्विवेक विकलत्वात् स्थंमिलवद्भवति सस्थंडिलः क्रोधः। यस्मिंश्च सत्यूर्ध्वं श्रयति जात्यादिना दर्पा

ध्मातः पुरुषउत्तानीभवति सउच्छ्रायोमानः। छांदसत्वान्नपुंसकलिंगता। जात्यादीनामेतत्स्था नानां बहुत्वात् तत्कार्यस्याऽपि मानस्य बहुत्वमतोबहुवचनं । चकारः स्वगतभेदसंसूचनार्थः समुच्चयार्थोवा। धूनयेति प्रत्येकं क्रिया योजनीया । तद्यथा । पलिकुंचनंमायां धूनय धूनीहि वा । तथा भजनं लोभं तथा स्थंडिलं क्रोधं तथा उच्छ्रायं मानं । विचित्रत्वात् सूत्रस्य क्रमोल्लंघननिर्देशोन दोषायेति । यदिवा रागस्य डुस्त्यजत्वात् लोभस्य च मायापूर्वकत्वादित्यादावेव मायालोभयोरुपन्यासइति । कषायपरित्यागे विधेये पुनरपरं कारणमाह। एतानि पलिकुंचनादीनि अस्मिन् लोके आदानानि वर्त्तते। तदेतद्विद्वान् ज्ञपरिज्ञया परिज्ञानप्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याचक्षीत ॥ ११ ॥ पुनरप्युत्तरगुणानधिकृत्याह । (धावणमित्यादि) धावनं प्रक्षालनं हस्तपादयोर्वस्त्रादेरंजनमपि तथा विरेचनं निरूहात्मकमधोविरेकोवा । वमनमूर्ध्वविरेकस्तथाऽजनं नयनयोरिति। एवमादिकमन्यदपि शरीरसंस्कारादिकं यत् संयमपलिमंथकारि संयमोपघातरूपं तदेतद्विद्वान् स्वरूपतस्तद्विपाकतश्च परिज्ञाय प्रत्याचक्षीत ॥ १२ ॥

गंधमल्लसिणाणंच, दंतपरकालणं तहा ॥ परिग्गहित्थिकम्मंच,
तं विज्जं परिजाणिया ॥१३॥ उद्देसियं कीयगडं, पामिच्चं चेव
आहडं ॥ पूयं अणेसणिज्जंच, तं विज्जं परिजाणिया ॥ १४ ॥

अर्थ-(गंधमल्लसिणाणंच के०) सुगंधिक द्रव्यते गंध. माल्यते फूल अने शरीर स्नान ते शरीरप्रक्षालन देश थकी तथा सर्व थकी करवुं तथा (दंतपरकालणंके०) दांतप्रक्षालन ते दातणप्रमुखनुं करवुं (तहाके०) तथा (परिग्गहि के०) सचेत अचेतादिकनो परिग्रह (इत्थिकम्मंच के०) स्त्रीकर्म ते तिर्यंच मनुष्य देवी प्रमुख ने हस्तकर्म कुचेष्टादिकनुं करवुं (तंविज्जंपरिजाणिया के०) ए सर्वने पंमित अशुभ जाणीने वर्जे ॥ ॥ १३ ॥ (उद्देशिकं के०) साधुने निमित्ते करेलो आहार (क्रीतंक्रीतं के०) साधुने अर्थे मूल आपीने लीधेलो आहार (पामिच्चंचेव के०) साधुने अर्थे उधारे लीधेलो आहार वली (आहडं के०) साधुने अर्थे ग्रहस्थे सामो आएयो एवो आहार (पुयं अनेषणिज्जंच के०) आधाकर्मिना कण सहित आहार (तंविज्जंपरिजाणिया के०) किं बहुना एत्रयो अनेशणिय सदोष आहार जाणीने पंमित पुरुष एने परिहरे ॥ १४ ॥

॥ दीपिका-गंधाः कोष्टपुटाद्यामाल्यंपुष्पादि स्नानं शरीरक्षालनं दंतप्रक्षालनं परिग्रहः सचित्तादेः स्त्रीकर्म स्त्रियोनरतिरश्च्यस्तासां वशीकरणादिकर्म हस्तकर्म सावद्यानुष्ठानंवा तत्सर्वं विद्वान् परिहरेत् ॥ १३ ॥ उद्देशिकं साधुद्देशेन यत्कृतं। क्रीतं क्रयमू

न क्रीतं । पामिच्चं साध्वर्थमन्यतउच्छिन्नकं गृह्यते । चकारः समुच्चये । आहृतं यद्गृहस्थैः साध्वर्थमानीयते पूयं आधाकर्मावयवसंपृक्तं अनेषणीयं यत्केनापि दोषेण अशुद्धं तत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ १४ ॥

॥ टीका–अपिच । (गंधमल्लइत्यादि) गंधाः कोष्ठपुटादयः। माल्यंजात्यादिकं । स्नानंच शरीरप्रक्षालनं देशतः सर्वतश्च । तथा दंतप्रक्षालनं कदंबकाष्ठादिना । परिग्रहः सचित्ता देः स्वीकरणं । तथा स्त्रियोदिव्यमानुषतैरश्च्यः। तथा कर्महस्तकर्म सावद्यानुष्ठानंवा । तदेत त्सर्वं कर्मोपादानतया संसारकारणत्वेन परिज्ञाय विद्वान् परित्यजेदिति ॥१३॥ किंचान्य त् । (उद्देसियमित्यादि) साध्वाद्युपदेशेन यद्दानाय व्यवस्थाप्यते तडुद्देशिकं । तथा क्री तं क्रयस्तेन क्रीतं गृहीतं क्रीतक्रीतं । (पामिच्चंति) साध्वर्थं अन्यतउद्यतकं यद्गृह्यते तत्तडुच्यते । चकारः समुच्चयार्थः । एवकारोऽवधारणार्थः । साध्वर्थं यद्गृहस्थेन नीयते तदाहृतं । तथा पूयमिति आधाकर्मावयवसंपृक्तं शुद्धमप्याहारजातं नवति । किंबहुनो क्तेन यतः केनचिद्दोषेणाऽनेषणीयमशुद्धंतत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय संसारकारणतया नि स्पृहः सन् प्रत्याचक्षीतेति ॥ १४ ॥

आसूणि मक्खिरागंच, गिधुवघायकम्मगं ॥ उच्छोलणंच कक्कंच,
तं विज्जं परिजाणिया ॥ १५ ॥ संपसारी कयकिरिए, पसिणाय
तणाणिय ॥ सागारियंच पिंमंच, तंविज्जं परिजाणिया ॥१६ ॥

अर्थ–(आसूणि के०) घृतपानादिक औषध जेणे करी प्राणी बलवंत मत्त थाय. अथवा आशून एटले सुन्य जेणेकरी आत्मा शून्यथको रहे तथा (अक्खीरागंच के०) आंखनुं अंजनादिक तथा (गृद्धिके०) रसलोल्यता तथा (उपघातकर्मकं के०) जे करवा थकी परजीवने उपघात थाय ते कर्म, तथा (उच्छोलनंच के०) हाथ पग व स्त्रादिकनुं पखालवुं तथा (कक्कंच के०) लोध्रादिक द्रव्ये करी शरीरनुं उगटणु करवुं ए सर्वने कर्म बंधनुं कारण जाणीने पंमित परिहरे ॥ १५ ॥ (संपसारीकयकिरए के०) असंयतिनी साथें पर्यालोचन एटले आलोचन करवुं तथा असंयमाचरण करवुं कराववुं तथा असंयतिना अनुष्ठाननी प्रसंसा करवी तथा (पसिणायतणाणियके०) प्रश्नजे लोक व्यवहार ज्योतिषादिक तेनो निर्णय करवो तथा (सागारियंचपिंमंचके०) सागारिक जे स य्यात्तर तेना घरनो पिंम लेवो ए सर्वने पापना कारण जाणी पंमित परिहरे. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–येन घृतपानादिना आशूनी स्यात् बलवान् नवति तदाशूनी । अक्षिरा

गोलोचनांजनं गृद्धिर्गार्ध्यं रसेषु उपघातकर्म परापघातक्रिया उच्छोलणं अयतनया शीतोदकादिना हस्तपादादिक्षालनं कल्कं लोध्रादिद्रव्येण शरीरोद्वर्तनं तत्सर्वं विद्वान् परिहरेत् ॥ १५ ॥ असंयतैः सार्धं संप्रसारणं पर्यालोचनं तत्संप्रसारणं परिहरेत् । कृता शोभना गृहकरणादिक्रिया येन सकृतक्रियइत्येवमसंयतानुष्ठानप्रशंसां प्रश्नस्यायतनं प्रकटीकरणं प्रश्ननिर्णयकारणं । सागारिकः शय्यातरस्तस्य पिंडं जुगुप्सितं हीनं वर्णपिंडं वा तदेतत्सर्वं विद्वान् परिहरेत् ॥ १६ ॥

॥ टीका—किंच । (आसूणिमित्यादि) येन घृतपानादिना आहारविशेषेण रसायनक्रियया वा अशूनः सन् आसमंतात् शूनीभवति बलवानुपजायते तदाशूनीत्युच्यते । यदिवा (आसूणिति) श्लाघा यतःश्लाघया क्रियमाणया आसमंतात् तूनः । तूनोलघुप्रकृतिः कश्चिद्दर्पाध्मातत्वात् स्तब्धोभवति । तथा अक्ष्णां रागोरंजनं सौवीरादिकमंजनमिति यावत् । एवं रसेषु शब्दादिषु विषयेषु वा गृद्धिंगार्ध्यं तात्पर्यमासेवा तथोपघातकर्मेत्युच्यते । तदेव लेशतोदर्शयति । (उच्छोलनंति) अयतनया शीतोदकादिना हस्तपादादिप्रक्षालनं तथा कल्कं लोध्रादिद्रव्यसमुदायेन शरीरोद्वर्तनकं तदेतत्सर्वं बंधनायेत्येवं विद्वान पंडितोज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति ॥१५॥ अपिच । (संपसारायइत्यादीति । असंयतैः सार्धं संप्रसारणं पर्यालोचनं परिहरेदिति वाक्यशेषः । एवं संयमानुष्ठानं प्रत्युपदेशदानं तथा (कयकिरिए) नाम कृता शोभना गृहकरणादिक्रिया येन सकृतक्रियइत्येवमसंयतानुष्ठानप्रशंसनं तथा प्रश्नस्यादर्शः प्रश्नादेरायतनमाविष्करणं कथनं यथावस्थितप्रश्ननिर्णयनानि। यदिवा प्रश्नायतनानि लौकिकानां परस्परव्यवहारे मिथ्याशास्त्रगतसंशयेवा प्रश्ने सति यथावस्थितार्थकथनद्वारेणायतनानि निर्णयनानीति । तथा सागारिकः शय्यातरस्तस्य पिंडमाहारं । यदिवा सागारिकपिंडमिति सूतकगृहपिंडं जुगुप्सितं वर्णापसदपिंडं च । चशब्दःसमुच्चये । तदेतत्सर्वं विद्वान् ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति ॥१६

अठ्ठावयं नसिक्खिज्जा, वेहाईयं च णोवए ॥ हत्थकम्मं विवायंच
तं विज्जं परिजाणिया ॥ १७॥ पाणहा उयछत्तंच, णालीयं वाल
वीयणं ॥ परकिरियं अन्नमन्नंच, तं विज्जं परिजाणिया ॥ १८॥

अर्थः—(अठ्ठावयं नसिक्खिज्जाके०) अर्थपदं एटले अर्थ पदते धन धान्य उपार्जवानो उपाय. न शीखे अथवा बीजे अर्थे अष्टापदं एटले द्यूतक्रीडा नशीखे. (वेधादिकंचके०) अधर्मना वचन (णोवदेके०) नबोले, अथवा हिंसाकारी वचन बोले नही. तथा (हत्थकम्मं के०) कुशील प्रतिरूप (विवायंच के०) कलह अथवा बीजो कोइपण विवाद

पंमित ज्ञपरिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरे ॥ १७ ॥ (पाणहा उयछत्तंच के०) पावडी तथा खासडा तथा ताप टालवाने अर्थे छत्र तथा (णालीयं के०) न लीमांहे पाश घाली नाखे द्युत रमत विशेष (वालवीयणंच के०) चामर मोर पींछ प्रमुखना वींजणा तथा (परकिरियं के०) अन्य गृहस्थ पाशेथी क्रिया करावे तथा (अन्नमन्नंच के०) अन्योन्य एटले माहो मांहे क्रियानुं करवुं एटले बीजो आपणी करे आपणे बीजानी करिए तेक्रिया जाणवी. ए सर्वे कर्म बंधना हेतुछे एम तेने ज्ञ प रिज्ञाये जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें करी पंमित परिहरे ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—अर्थोधनधान्यादिः पदं शास्त्रं प्राण्युपघातकं नशिक्षेत् । अथवा अष्टा पदं द्यूतक्रीडां नशिक्षेत नापि पूर्वशिक्षितमनुशीलयेत् वेधोधर्मानुवेधस्तस्मादतीतं वें धातीतमधर्मप्रधानं वचोनवदेत् हस्तकर्म प्रतीतं ।अथवा हस्तक्रिया परस्परं हस्तव्यापारे प्रधानः कलहः । विवादं शुष्कवादं तदेतद्बधकारणं परिहरेत् ॥ १७ ॥ उपानहौ काष्ठपा डुके आतपवारणाय छत्रं च नालिका द्यूतक्रीडा वालैर्मयूरपिछैर्व्यजनकं परेषां क्रिया अन्योन्यकार्यमन्यकार्यं सकरोति तस्य चान्यः । तदेतत्सर्वं विद्वान् कर्मबंधहेतुत्वेन ज्ञप रिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् ॥ १८ ॥

॥ टीका किंचान्यत् । (अट्ठापयमित्यादि) अर्थते इत्यर्थोधनधान्यहिरण्यादिकः पद्य ते गम्यते येनार्थस्तत्पदं शास्त्रं अर्थार्थं पदमर्थपदं चाणक्यादिकमर्थशास्त्रं तन्न शिक्षे न्नाभ्यसेन्नाप्यपरप्राण्युपमर्दकारि शास्त्रं शिक्षयेत् । यदिवा अष्टापदं द्यूतक्रीडाविशेपस्तं नशिक्षेत नापि पूर्वशिक्षितमनुशीलयेदिति । तथा वेधोधर्मानुवेधस्तस्मादतीतमधर्मप्र धानं वचोनोवदेत् । यदिवा वेधइति वस्त्रवेधोद्यूतविशेषस्तजतं वचनमपि नोवदेदास्तां तावत्क्रीडनमिति हस्तकर्म प्रतीतं । यदिवा हस्तकर्म हस्तक्रिया परस्परं हस्तव्यापार प्रधानः कलहस्तं तथा विरुद्धवादं शुष्कवादमित्यर्थः । चःसमुच्चये । तदेतत्सर्वं संसा रभ्रमणकारणं ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याचक्षीत ॥१७॥ किंच (प णहावेवेइत्यादि) उपानहौ काष्ठपाडुके च तथाऽतपादिनिवारणाय छत्रं तथा नालिका द्यूतक्रीडाविशेषस्तथा वालैर्मयूरपिछैर्वा व्यजनकं तथा परेषां संबंधिनी क्रियामन्योन्यपरस्प रतो ऽन्यनिष्पाद्यामन्यः करोत्यपरनिष्पाद्यां चापरइति । चःसमुच्चये । तदेतत्सर्वं विद्वान् पं मितः कर्मोपादानकारणत्वेन ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति॥१८

उच्चारं पासवणं,हरिएसु ण करे मुणी ॥ वियडेण वा विसाहट्टु,
णावमज्जे कयाइवि ॥ १९॥ परमत्ते अन्नपाणं, ण भुंजेज्ज कया
इवि ॥ परवत्थं अचेलोवि, तं विज्जं परिजाणिया ॥ २० ॥

अर्थ—(उच्चारं के०) वडीनीत (पासवणं के०) लघुनीत तेनो (हरिएसुणकरेमुनिः के०) मुनि हरित काय वनस्पति उपर स्थंमिल नकरे (वियडेणवाविसाहट्टु के०) फासु पाणियें करी वनस्पतिकाय हरितकाय बीजने कदापि (णावमज्जेकयाइविके०) परहां नकरे एटले निश्चेयकी दूरन करे ॥ १९ ॥ (परमत्तअन्नपाणं के०) पर एटले अन्य गृहस्थ तेने घेर कांसादिकना जाजनने विषे अन्न पाणी आहारादिकने (णभुंजेज्जकयाइवि के०) कदापि जुंजे नही एटले जमे नही (परवत्थंअचेलोवि के०) पोते अचेलक एटले वस्त्र रहित बतां पण परजे गृहस्थादिक तेनुंजे वस्त्र तेने नजोगवे एटले ए सर्वेने संयम विराधवाना कारण जाणीने जे पंमित होय ते परिहरे ॥ २० ॥

॥ दीपिका—उच्चारं प्रस्रवणं च हरितेषु नकुर्यान्मुनिः। तथा विकटेन प्रासुकजलेनापि संहृत्यापनीय बीजानि हरितानि वा नाचमेत ननिर्लेपनं कुर्यात्किमुताविकटेन ॥ १९॥ परस्य गृहस्थस्यामत्रं जाजनं तत्रान्नपानं नजुंजीत। कदाचिदपि पूर्वकर्मपश्चात्कर्मादिदोषात् अचैलोपि सन् परवस्त्रं गृहस्थवस्त्रं नबिनर्ति । यदिवा ऽचैलाजिनकल्पी तस्य सर्वमपि वस्त्रं परवस्त्रमेव तन्न बिजृयात् तत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ २० ॥

॥ टीका—तथा (उच्चारमिति) उच्चारप्रस्रवणादिकां क्रियां हरितेषूपरिबीजेषु वा स्थंडिले वा मुनिः साधुर्नकुर्यात्तथा विकटेन विगतजीवेनाप्युदकेन संहृत्यापनीय बीजानि हरितानि वा नाचमेत ननिर्लेपनं कुर्यात् किमुताविकटेनेतिजावः ॥ १९ ॥ किंच (परमत्ते इत्यादि) परस्य गृहस्थस्यामत्रं जाजनं परामत्रं तत्र पुरःकर्म पश्चात्कर्म तद्भयात् हतनष्टादिदोषसंजवाच्चान्नं पानंच मुनिर्न कदाचिदपि जुंजीत। यदिवा पतद्गृहधारिणश्छिद्रपाणेः पाणिपात्रं परपात्रं। यदिवा पाणिपात्रस्याच्छिद्रपाणेर्जिनकल्पिकादेः पतद्गृहः परपात्रं तत्र संयमविराधनाजयान्नजुंजीत तथा परस्य गृहस्थस्य वस्त्रं परवस्त्रं तत्साधुरचेलोपि सन् पश्चात्कर्मादिदोषजयात् हतनष्टादिदोषसंजवाच्च नबिजृयात् । यदिवा जिनकल्पिकादिकोऽचैलोजूत्वा सर्वमपि वस्त्रं परवस्त्रमिति कृत्वा नबिजृयादेतत्सर्वं परपात्रजोजनादिकं संयमविराधकत्वेन ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति ॥ २० ॥

आसंदीपलियंकेय, णिसिज्जं च गिहंतरे ॥ संपुछणं सरणंवा, तं विज्जं परिजाणिया ॥ २१॥ जसं कित्ति सलोयंच, जाय वंदण पूयणा ॥ सव्वलोयंसि जे कामा, तं विज्जं परिजाणिया ॥ २२ ॥

अर्थ—(आसंदीपलियंकेयके०) गृहस्थनुं आसन जे मांची प्रमुख तथा पर्यंकासन ते

ना उपर बेसवुं तथा (निसिज्जंचगिहंतरेके०) गृहस्थना घरने अंतरे अथवा गृहस्थना घरमां बेसवुं (संपुछनं के०) गृहस्थने कुशलादिकनुं पुछवुं (वाके०) तथा (सरणं के०) पूर्वक्रीडादिकनुं संजारवुं ए सर्वने जाणीने पंमित परिहरे ॥ २१ ॥ जे सर्व व्यापि तेने (जसंके०) यश कहिए अने जे एकदेश व्यापि तेने (कित्तिके०) किर्त्ति कहिए तेज (सिलोयंचके०) श्लाघानी (जायके०) जाति जाणवी तथा (वंदणपूयणाके०) राजादिकनी वंदना पूजा सत्कार वस्त्रादिके करी करावववानी जे वांछा करवी, तथा (सब्ब लोयंसिजेकामा के०) सर्व लोकमां जे विषय इछा कामरूप तेनी वांछना करवी, ए सर्वेने पंमित कर्म बंधना कारण जाणीने परिहरे ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—आसंदीआसनविशेषः पर्यंकःशयनविशेषः । तथा द्वयोर्गृहयोर्मध्ये निषद्यामवस्थानं परिहरेत् गृहस्थकुले कुशलादिसंप्रछनं पूर्वक्रीडितस्मरणं तदेतत्सर्वं विद्वान् परिहरेत् ॥ २१ ॥ संग्रामादिजवं यशः। दानादिजवा कीर्तिः। तपोज्ञानादिजवा श्लाघा तथा नृपादिजिर्वंदना पुष्पादिजिः पूजनं तथा सर्वलोकइछामदनरूपाये कामास्तदेतत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ २२ ॥

॥ टीका-(आसंदीत्यादि) आसंदीत्यासनविशेषः । अस्य चोपलक्षणार्थत्वात्सर्वोप्यासनविधिर्गृहीतः । तथा पर्यंकः शयनविशेषस्तथा गृहस्यांतर्मध्ये गृहयोर्वा मध्ये निषद्यां वाऽऽसनंवा संयमविराधनाजयात्परिहरेत् । तथाचोक्तं । गंजीरजुसिराएते, पाणाडुप्पडिलेहगा ॥ अगुत्ती बंजचेरस्स, इत्तीउं वाविसंकणाइत्यादि । तथा तत्र गृहस्थगृहे कुशलादिप्रछनं आत्मीयशरीरावयवप्रछनंवा तथा पूर्वक्रीमितस्मरणं चेत्येतत्सर्वं विद्वान् विदितवेद्यः सन्ननर्थायेति ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् ॥ २१ ॥ अपि च । (जसंकित्तिमित्यादि) बहुसमरसंघट्टनिर्वहणशौर्यलक्षणं यशः । दानसाध्या कीर्तिः जातितपोबहुश्रुत्यादिजनिताश्लाघा तथा याच सुरासुराधिपतिचक्रवर्तिबलदेववासुदेवादिजिर्वंदना तथा तैरेव सत्कारपूर्विका वस्त्रादिना पूजना तथा सर्वस्मिन्नपि लोके इछामदनरूपाये केचन कामास्तदेतत्सर्वं यशःकीर्तिमपकारितया परिज्ञाय परिहरेदिति ॥ २२ ॥

जेणेह णिवहे जिक्खू, अन्नपाणं तहाविहं ॥ अणुप्पयाणमन्नेसिं,
तं विज्जं परिजाणिया ॥ २३ ॥ एवं उदाहु निग्गंथे, महावीरे महा
मुणी ॥ अणंतनाणदंसी से, धम्मं देसि तवं सुतं ॥ २४ ॥

अर्थ-(उच्चारं के०) वडीनीत (पासवणं के०) लघुनीत तेनो (हरिएसुणकरेमुनिः के०) मुनि हरित काय वनस्पति उपर स्थंमिल नकरे (वियडेणवाविसाहट्टु के०) फासु पाणियें करी वनस्पतिकाय हरितकाय बीजने कदापि (णावमज्जेकयाइविके०) परहां नकरे एटले निश्चेयकी दूरन करे ॥ १९ ॥ (परमत्तेअन्नपाणं के०) पर एटले अन्य गृहस्थ तेने घेर कांसादिकना भाजनने विषे अन्न पाणी आहारादिकने (णत्तुंजेज्जकयाइवि के०) कदापि भुंजे नही एटले जमे नही (परवत्थंअचेलोवि के०) पोते अचेलक एटले वस्त्र रहित छतां पण परजे गृहस्थादिक तेनुंजे वस्त्र तेने नभोगवे एटले ए सर्वेने संयम विराधवाना कारण जाणीने जे पंमित होय ते परिहरे ॥ २० ॥

॥ दीपिका-उच्चारं प्रस्रवणं च हरितेषु नकुर्यान्मुनिः। तथा विकटेन प्रासुकजलेनापि संहृत्यापनीय बीजानि हरितानि वा नाचमेत ननिर्लेपनं कुर्यात्किमुताविकटेन ॥ १९॥ परस्य गृहस्थस्यामत्रं भाजनं तत्रान्नपानं नभुंजीत। कदाचिदपि पूर्वकर्मपश्चात्कर्मादिदोषात् अचैलोपि सन् परवस्त्रं गृहस्थवस्त्रं नबिभर्ति । यदिवा ऽचैलोजिनकल्पी तस्य सर्वमपि वस्त्रं परवस्त्रमेव तन्न बिभृयात् तत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ २० ॥

॥ टीका-तथा (उच्चारमिति) उच्चारप्रस्रवणादिकां क्रियां हरितेषूपरिबीजेषु वा स्थंडिले वा मुनिः साधुर्नकुर्यात्तथा विकटेन विगतजीवेनाप्युदकेन संहृत्यापनीय बीजानि हरितानि वा नाचमेत ननिर्लेपनं कुर्यात् किमुताविकटेनेतिभावः ॥ १९ ॥ किंच (परमत्ते इत्यादि) परस्य गृहस्थस्यामत्रं भाजनं परामत्रं तत्र पुरःकर्म पश्चात्कर्म तद्भयात् हृतनष्टादिदोषसंभवाच्चान्नं पानंच मुनिर्न कदाचिदपि भुंजीत। यदिवा पतद्गृहधारिणश्छिद्रपाणेः पाणिपात्रं परपात्रं। यदिवा पाणिपात्रस्याछिद्रपाणेर्जिनकल्पिकादेः पतद्गृहः परपात्रं तत्र संयमविराधनाभयान्नभुंजीत तथा परस्य गृहस्थस्य वस्त्रं परवस्त्रं तत्साधुरचैलोपि सन् पश्चात्कर्मादिदोषभयात् हृतनष्टादिदोषसंभवाच्च नबिभृयात् । यदिवा जिनकल्पिकादिकोऽचैलोभूत्वा सर्वमपि वस्त्रं परवस्त्रमिति कृत्वा नबिभृयादेतत्सर्वं परपात्रभोजनादिकं संयमविराधकत्वेन ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति ॥ २० ॥

आसंदीपलियंकेय, णिसिज्जं च गिहंतरे॥ संपुछणं सरणंवा, तं
विज्जं परिजाणिया ॥ २१॥ जसं कित्ति सलोयंच, जाय वंदण पू
यणा ॥ सव्वलोयंसि जे कामा, तं विज्जं परिजाणिया ॥ २२ ॥

अर्थ-(आसंदीपलियंकेयके०) गृहस्थनुं आसन जे मांची प्रमुख तथा पर्यंकासन ते

ना उपर बेसवुं तथा (निसिज्जंचगिहंतरेके०) गृहस्थना घरने अंतरे अथवा गृहस्थना घरमां बेसवुं (संप्रच्छनं के०) गृहस्थने कुशलादिकनुं पुछवुं (वाके०) तथा (सरणं के०) पूर्वक्रीडादिकनुं संजारवुं ए सर्वेने जाणीने पंमित परिहरे ॥ २१ ॥ जे सर्व व्यापि तेने (जसंके०) यश कहिए अने जे एकदेश व्यापि तेने (कित्तिके०) कीर्त्ति कहिए तेज (सिलोयंचके०) श्लाघानी (जायके०) जाति जाणवी तथा (वंदणपूयणाके०) राजादिकनी वंदना पूजा सत्कार वस्त्रादिके करी करावववानी जे वांछा करवी, तथा (सव्व लोयंसिजेकामा के०) सर्व लोकमां जे विषय इच्छा कामरूप तेनी वांछना करवी, ए सर्वेने पंमित कर्म बंधना कारण जाणीने परिहरे ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–आसंदीआसनविशेषः पर्यंकःशयनविशेषः । तथा द्वयोर्गृहयोर्मध्ये निषद्यामवस्थानं परिहरेत् गृहस्थकुले कुशलादिसंप्रच्छनं पूर्वक्रीडितस्मरणं तदेतत्सर्वं विद्वान् परिहरेत् ॥ २१ ॥ संग्रामादिजवं यशः। दानादिजवा कीर्तिः। तपोज्ञानादिजवा श्लाघा तथा नृपादिजिर्वंदना पुष्पादिजिः पूजनं तथा सर्वलोकइच्छामदनरूपाये कामास्तदेतत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ २२ ॥

॥ टीका–(आसंदीत्यादि) आसंदीत्यासनविशेषः । अस्य चोपलक्षणार्थत्वात्सर्वोप्यासनविधिर्गृहीतः । तथा पर्यंकः शयनविशेषस्तथा गृहस्यांतर्मध्ये गृहयोर्वा मध्ये निषद्यां वाऽऽसनंवा संयमविराधनाजयात्परिहरेत् । तथाचोक्तं । गंजीरजुसिराएते, पाणाडुप्पडिलेहगा ॥ अगुत्ती बंजचेरस्स, इत्थीउ वाविसंकणाइत्यादि । तथा तत्र गृहस्थगृहे कुशलादिप्रच्छनं आत्मीयशरीरावयवप्रच्छनंवा तथा पूर्वक्रीमितस्मरणं चेत्येतत्सर्वं विद्वान् विदितवेद्यः सन्ननर्थायेति ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् ॥ २१ ॥ अपि च । (जसंकित्तिमित्यादि) बहुसमरसंघट्टनिर्वहणशौर्यलक्षणं यशः । दानसाध्या कीर्त्तिः जातितपोबहुश्रुत्यादिजनिताश्लाघा तथा याच सुरासुराधिपतिचक्रवर्तिबलदेववासुदेवादिजिर्वंदना तथा तैरेव सत्कारपूर्विका वस्त्रादिना पूजना तथा सर्वस्मिन्नपि लोके इच्छामदनरूपाये केचन कामास्तदेतत्सर्वं यशःकीर्तिमपकारितया परिज्ञाय परिहरेदिति ॥ २२ ॥

जेणेह णिव्वहे जिक्खू, अन्नपाणं तहाविहं ॥ अणुप्पयाणमन्नेसिं,
तं विज्जं परिजाणिया ॥ २३ ॥ एवं उदाहु निग्गंथे, महावीरे महा
मुणी ॥ अणंतनाणदंसी से, धम्मं देसि तवं सुतं ॥ २४ ॥

अर्थ- (जेणेह के०) जे (अन्नपाणं के०) अन्नपाणीयें करीने आलोकने वि षे (णिव्वहेनिरकू के०) साधुपोतानो निरवाह करे आजीविका करे तेवा अन्न पान ने (तहाविहं के०) तथाविध देखीने ड्व्य, क्षेत्र, काल अने नावनी अपेक्षायें शुद्ध नि र्दोष ग्रहण करे. (अणुप्पयाणमन्नेसिं के०) वली एज अन्न पाणीनुं बीजा असंयतिने देवुं ते सर्वने ज्ञ परिज्ञायें अनर्थनुं हेतु जाणीने पंमित परिहरे ॥ २३ ॥ (एवं के०) एरीते (महामुणी के०) महामुनि (निग्गंथे के०) बाह्याभ्यंतर परिग्रह रहित एवा (महावीरे के०) श्री वर्द्धमान स्वामी तेणे (उदाहु के०) कह्याछे. (सेके०) ते श्री वर्द्धमान केवाछे, तोके (अणंतनाणदंसी के०) अनंत ज्ञान दर्शनना धरनारछे. तेणे धम्मंदेसितवंसुतं के०) ए श्रुत चारित्र रूप धर्म उपदेश्यो छे सिद्धांत रहस्य प्रकाश्योछे.

॥ दीपिका- येनान्नपानेन इहास्मिन् लोके निर्ब्बानिर्वहेत् संयमयात्रां कुर्यात् तत्तथा विधमन्नं पानं वा शुद्धं गृण्हीयात्तेषामन्नादीनामनुप्रदानं गृहस्थानां परतीर्थिकानां स्वयूथ्यानां वा संयमोपघातकं नकुर्यात्तत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ २३ ॥ एवं पूर्वोक्तं निर्ग्रंथः श्रीवीरोमुनिः उदाहृतवान् कथितवान् । बाह्याभ्यंतरग्रंथरहितत्वान्नि र्ग्रंथः । अनंतं ज्ञानं दर्शनं च यस्यासावनंतज्ञानदर्शी सन्नगवान् धर्मचारित्ररूपं श्रुतं च सिद्धांतं देशितवान् प्रकाशितवान् ॥ २४ ॥

॥ टीका- किंचान्यत् । (जेणेहमित्यादि) येनान्नेन पानेन वा तथाविधेनेति सुप रिशुद्धेन कारणापेक्षयात्वशुद्धेन वा इहास्मिन् लोके इदं संयमपात्रादिकं डुर्भिक्षरोगातं कादिकं वा निर्ब्बानिर्वहेन्निर्वाहयेद्वा यदन्नं पानंवा तथाविधं ड्व्यक्षेत्रकालनावापेक्षयाशुद्धं कल्पं गृण्हीयात्तथैतेषामन्नादीनामनुप्रदानमन्यस्मै साधवे संयममात्रान्निर्वहणसमर्थ मनुतिष्ठेत् । यदिवा येनकेनचिदनुष्ठितेन संयमं निर्वहेन्निर्वाहयेदसारतामापादयेत्तयाविध मशनं पानं वाऽन्यद्वा तथाविधमनुष्ठानं नकुर्यात् । तथैषामशनादीनामनुप्रदानं गृहस्थानां परतीर्थिकानां स्वयूथ्यानां वा संयमोपघातकं नानुशीलयेदिति तदेतत्सर्वं ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा सम्यक्परिहरेदिति ॥ २३ ॥ यडपदेशेनैतत्कुर्यात्तद्दर्शयितुमाह (एवंउदाहुइत्या दि) एवमनंतरोक्तया नीत्या उद्देशकादेरारभ्य (उदाहुत्ति) उदाहृतवानुक्तवान्निर्गतो बाह्याभ्यंतरोग्रंथोयस्मात्सनिर्ग्रंथोमहावीरइति श्रीमद्वर्धमानस्वामी महांश्चासौ मुनिश्च महामुनिःअनंतं ज्ञानं दर्शनं च यस्यासावनंतज्ञानदर्शी सन्नगवान् धर्मं चारित्रलक्षणं सं सारोत्तरणसमर्थं वा तथा श्रुतं च जीवादिपदार्थसूचकं देशितवान् प्रकाशितवान् ॥ २४ ॥

नासमाणो नन्नासेज्जा, णेव वंफेज्जमम्मयं ॥ मातिठाणं विवज्जे
ज्जा, अणुचिंतिय वियागरे ॥ २५ ॥ तछिमात इया नासा, जं
वदित्ता णुतप्पती ॥ जं छन्नं तं न वत्तवं, एसा आणाणियंठिया ॥२६॥

अर्थ-(नासमाणोनन्नासेज्जा के०) गुरुवादिक मोहोटा पुरुष बोलता होय तेनी व
चमां नडकीने नबोले, तथा (मम्मयंके०) मर्मनुं वचन जेना बोलवा थकी कोइ जीव डुह
वाय एवा वचन बोले नही. (मातिठाणंविवज्जेज्जा के०) मातृस्थान एटले मायायें
करी प्रधान वचन बोलवानुं पण वर्जे तो सुं बोले तोके (अणुचिंतियवियागरे के०)
कार्य विशेषे विमाशीने बोले जे नाषा बोलवा थकी कांइ पण डुषण नलागे तेवी ना
षा प्रकाशे ॥ २५ ॥ (तछिमातइयानासा के०) एक सत्या बीजी असत्या त्रीजी स
त्यामृषा चोथी असत्यामृषा ए चार नाषा माहेली त्रीजी नाषा जे कांइक सत्य अने
कांइक असत्य छे तेपण नबोले (जंवदित्ताणुतप्पती के०) जे नाषाना बोलवा थकी
पछी घणो पश्चाताप करवो पडे, एटले परनवे एना उदयथी डुःखी थाय तेवारे पश्चा
त्ताप करे (जंछन्नंतंनवत्तवं के०) जे सावद्य एवुं हिंसाकारी वचन ते नबोले, एटले
आ अमुक चोरछे एने मारो, आ धातुनो प्रयोग करो, अथवा आ खेत्र खेडो एवी नाषा
नबोले. (एसाआणाणियंठियाके०) एवी आज्ञा निर्ग्रंथ श्रीमाहावीर देवनीछे ॥२६॥

॥ दीपिका-योहि नाषासमितः सन्नाषमाणोपि धर्मकथां कथयन्नपि अनापकएव ।
उक्तंच । वयणविहत्तीकुसलो, वउंगयं बहुविहं वियाणंतो । दिवसंपि नासमाणो, साहू
वइगुत्तयंपत्तो ॥ १ ॥ अथवा यत्र रत्नाधिकोनाषमाणः स्यात्तत्रांतरे नन्नाषेत । मर्मगं व
चनं नकांक्षेत् । यछचनमुक्तं सत्परपीडामाधत्ते तन्न नाषेतेत्यर्थः । मातृस्थानं मायाप्रधानं
वचोविवर्जयेत् अनुविचिंत्य विचार्य व्यागृणीयात् वदेत् ॥ २५ ॥ सत्या १ असत्या २
सत्यामृषा ३ असत्यामृषा ४ एताश्चतस्रोनाषाः । तत्रेयं तृतीया नाषा साच किंचित्सत्या
किंचिन्मृषा । यथा दशदारकाअत्रपुरे जातामृतावा तदत्र न्यूनाधिकसंनवेसति संख्या
व्यनिचारात्सत्यामृषात्वं । यां नाषामुदित्वा इहलोके वा अनितप्यते क्लेशनाग्नवति । को
र्थः । मिश्रापि नाषा दोषाय किंपुनरसत्येति । तथा यछचः (छंन्नत्ति) क्षणुहिंसयां हिंसाप्र
धानं प्रछन्नंवा यल्लोकैराछाद्यते तत्सत्यमपि नवाच्यं एषाज्ञा निर्ग्रंथोनगवान् तस्य. ॥२६

॥ टीका-किंचान्यत् (नासमाणे इत्यादि) योहि नाषासमितः सन्नाषमाणोपि धर्मक
थासंबंधनाषकएव स्यात् । उक्तंच । वयणविहत्तीकुशलो, वउंगयं बहुविहं वियाणंतो ।

दिवसंपि नासमाणो,साहूवरुग्गुत्तयंपत्तो ॥ १ ॥ यदिवा यत्रान्यः कश्चिदस्मादिकोनाषमाणस्त त्रांतरएव सश्रुतिकोहमित्येवमभिमानवान्नजापेत।तथा मर्मे गच्छतीति मर्मगं वचोन (वंफे क्कत्ति) नाभिलपेत् । यच्चनमुच्यमानं तथ्यमतथ्यंवा सद्यस्य कस्यचिन्मनःपीडामाधत्ते तद्विवेकी न जाषेतेति जावः। यदिवा मामकं ममीकारः पक्षपातस्तं नापमाणो (नवंफेक्क ति) नाभिलपेत्तथा मातृस्थानं मायाप्रधानं वचोविवर्जयेत्। इदमुक्तं जवति। परवंचनबुध्या गूढाचारप्रधानोजाषमाणोऽजाषमाणोवाऽन्यदावा मातृस्थानं नकुर्यादिति । यदातु वक्तु कामोजवति तदा नैतछ्चः परमात्मनोरुजयोर्वा बाधकमित्येवं प्राग्वि चिंत्य वचनमु दाहरेत्। तडुक्तं। पुव्वं बुद्धीएपेहित्तापच्छावक्कमुदाहरे इत्यादि ॥ २५॥ अपिच। (तछिमेत्यादि) सत्या असत्या सत्यामृषा असत्यामृषेत्येवंरूपासु चतसृषु जाषासु मध्ये तत्रेयं सत्यामृषेत्ये तदभिधानात्तृतीया जाषा। साच किंचिन्मृषा किंचित्सत्या इत्येवंरूपा। तद्यथा दशदारका श्र स्मिन्नगरे जातामृताः। तदत्र न्यूनाधिकसंजवेसति संख्यायाव्यभिचारात्सत्यामृषात्वमिति। यां चैवंरूपां जाषामुदित्वा अनुपश्चाज्ञापणाज्जन्मांतरेवा तज्जनितेन दोषेण तप्यते पीड्यते क्लेशजाग्जवति।यदिवा अनुतप्यते किंममैवंजूतेन जापितेनेत्येवं पश्चात्तापं विधत्ते। ततश्चेद मुक्तं जवति मिश्रापि जाषा दोषाय किंपुनरसत्या द्वितीया समस्तार्थविसंवादिनी। तथा प्रथमापि जाषा सत्या या प्राण्युपतापेन दोषानुषंगिणी सा न वाच्या। चतुर्थाप्यसत्या मृषा जाषा बुधैरनाचीर्णा सा न वक्तव्येति। सत्यायाअपि दोषानुषंगित्वमधिकृत्याह । यच्चः (छन्नंति) क्षणुहिंसायां हिंसाप्रधानं । तद्यथा वध्यतांचौरायं लूयंतांकेदाराः दम्यंतां गोरथकाइत्यादि । यदिवा छन्नंति प्रछन्नं यल्लोकैरपि प्रछाद्यते तत्सत्यमपि न वक्तव्य मिति । एषाऽऽज्ञा अयमुपदेशोनिर्ग्रंथोजगवांस्तस्ये ति ॥ २६ ॥

होलावायं सहीवायं, गोयावायं च नोवदे ॥ तुमं तुमंति अमणु
न्नं, सवसो तं ण वत्तए ॥ २७ ॥ अकुसीले सया भिक्खू, णेव सं
सग्गियं भए ॥ सुहरूवा तत्थुवस्सग्गा, पडिबुज्झेज्ज तेविऊ ॥२८॥

अर्थ—(होलावायं के०) होलावादते देश विशेषे कुवचन विशेषछे तेमाटे होला एम नबोले; तथा (सहीवादं के०) हे सखी एम पण न बोले ; (गोयावायंचनोवदे तु के०) गोत्रनो प्रकाशकरी बोलाववो जे तुं अमुक नीच गोत्रीगो एवुं वचन पण नबोले; (तुमंतुमंतिअणुमन्नंके०) तुंतुं एवो अमनोज्ञ तिरस्कारनुं असुहामणुं वचन ते (सव सोतंणवत्तए के०) सर्वथा प्रकारे नबोले ; केमके साधुने एवा वचन बोलवा युक्त न थी. ॥ २७ ॥ (अकुसीलेसया भिक्खू के०) सर्व काल साधु अकुशील होय ब्रह्मचारी

थको रहे (णेवसंसग्गियंनए के०) तथा जिनशासनथी विरुद्ध एवा अनाचारी पास त्थादिकनो त्रविधे संसर्ग नकरे ते पासत्थादिकनो संसर्ग केवोछे तोके जेना थकी (सु हरूवा तत्थुवस्सग्गा के०) सुखरूप जे संयम तेना घातना करनार एवा एना थकी उपसर्ग उत्पन्न थायछे केमके ते प्रायें सातागारव पणे वर्त्तनारा होय छे तेमाटे तेनी साथे सुविहित पुरुष संसर्ग करे तो तेपण सातागारव पणाने पामे. तेथी सुखरूप सं यमनो घातक थायछे माटे (पडिबुज्झेज्जतेविऊ के०) पंमित जे होय ते प्रतिबोध पा मीने एवा स्वेछाचारीउंनो संसर्ग तेने दुःखनुं कारण जाणीने त्याग करे. ॥ २८ ॥

॥ दीपिका–होलाइति वादोहोलावादः सखेइति वादः सखिवादः गोत्रप्रकटनेन वादो गोत्रवादः काश्यपगोत्रावासिष्ठगोत्रावेत्यादि एवंरूपं वादं साधुर्नवदेत् (तुमंति) इत्थं त्वमिति तिरस्कारवाक्यं अमनोज्ञं परस्य मनःप्रतिकूलं सर्वशः सर्वथा साधूनां वक्तुं न वर्तते ॥ २७ ॥ नकुशीलोऽकुशीलः सदाभिक्षुर्नकुशीलैः संसर्गं नजेत सेवेत । सुखरूपा सातागौरवस्वनावास्तत्र कुशीलसंगे उपसर्गाः संयमोपघातकारिणः प्राडुष्यंति तद्विद्वा न् विवेकी प्रतिबुध्येत जानीयात् कुशीलसंगं त्यजेदित्यर्थः ॥ २८ ॥

॥ टीका–किंच (होलावायमित्यादि) होलेत्येवं वादोहोलावादस्तथासखेत्येवं वादः स खिवादस्तथा गोत्रोद्घाटनेन वादोगोत्रवादोयथा काश्यपसगोत्रोवासिष्ठसगोत्रोवेति इत्ये वंरूपं वादं साधुर्नोवदेत्तथा (तुमंतुमं) तिरस्कारप्रधानमेकवचनातंबहुवचनोच्चारणयो ग्येऽमनोज्ञं मनःप्रतिकूलरूपमन्यदप्येवंनूतमपमानापादकं सर्वशः सर्वथा तत्साधूनां वक्तुं न वर्ततइति । यदाश्रित्योक्तं निर्युक्तिकारेण । तद्यथा । पासत्थोसन्नकुशीलसंथवोणकिलव ट्टएकाउं तदिदमित्यादि ॥२७॥ (अकुशीलेत्यादि) कुत्सितं शीलमस्येति कुशीलः सच पार्श्वस्थादीनामन्यतमः नकुशीलोऽकुशीलः सदा सर्वकालं निक्षणशीलोभिक्षुः कुशीलो नभवेन्नचापि कुशीलैः सार्धं संसर्गं सांगत्यं नजेत सेवेत । तत्संसर्गदोषोद्भिावयिषयाह । सुखरूपाः सातागौरवस्वनावास्तत्रतस्मिन् कुशीलसंसर्गे संयमोपघातकारिणउपसर्गाः प्राडुष्यंति । तथाहि । कुशीलवक्तारोनवंति । कः किल प्रासुकोदकेन हस्तपाददंतादिके प्रक्षा ल्यमानेदोषः स्यात्तथा नाशरीरोधर्मोनवति इत्यतोयेन केनचित्प्रकारेणाधाकर्मसान्निध्या दिना तथा उपानच्छत्रादिनाच शरीरं धर्माधारं वर्तयेत् । उक्तंच । अप्पेण बहुमेसेज्जा एयं पंडियलक्खणंइति । शरीरं धर्मसंयुक्तं रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥ शरीरात्स्रवते पापं पर्वतात्स लिलं यथा ॥ १ ॥ तथा सांप्रतमल्पानि संहननानि अल्पधृतयश्च संयमे जंतवइत्येवमादि कुशीलोक्तं श्रुत्वा अल्पसत्वास्तत्रानुषज्जंत्येवं विद्वान् विवेकी प्रतिबुध्येत जानीयात् बु ध्वा चापायरूपकुशीलसंसर्गं परिहरेदिति ॥ २८ ॥

नन्नत्थ अंतराएणं, परगेहेण णिसीयए ॥ गामकुमारियं किड्डं, नातिवेलं हसे मुणी ॥ २९ ॥ अणुस्सुओ उरालेसु, जयमाणो परिव्वए ॥ चरियाए अप्पमत्तो, पुट्ठो तत्थ हियासए ॥ ३० ॥

अर्थ— (नन्नत्थ अंतराएणं के०) जरा रोगादिक कारणविना (परगेहेणणिसीयए के०) गृहस्थना घरने विषे नबेशे एटले गृहस्थने घेर नबेशवुं ए साधुनो उत्सर्ग मार्गे कह्योछे. अने अपवादे तो जरारोगादिक कारण विना नबेशे तथा कोइएक लब्धीमंत धर्मोपदेशादिक वचन देवाने कारणे पण बेशे तथा (गामकुमारियंकिड्डं के०) ग्रामने विषे बालक क्रीडा हास्य कंदर्प हस्तस्पर्श आलिंगनादिक गेडा दडि इत्यादिक क्रीडाने (नातिवेलंहसेमुणीके०) साधु नकरे वली पडिलेहणादिक क्रियानी मर्यादा ने नगवंतनी आज्ञा थकी विरुध जाणीने अतिक्रमे नही हसे नही ॥२९॥ (अणुस्सुओ उरालेसु के०) उदार उत्कट प्रधान एवा गृहस्थना कामनोगादिक देखी तथा सांजलीने तेनी वांछा करे नही; तथा (जयमाणोपरिव्वए के०) संयमने विषे यत्नकरतो शुद्ध चारित्र पाले (चरियाएअप्पमत्तो के०) विहार करवाने विषे प्रमाद नकरे, अप्रमत्त पणे विचरे (पुट्ठोतत्थहियासए के०) त्यां विहार करवानेविषे उपसर्ग परिसह उपने थके तेने फरश्यो थको अदीनपणे सम्यक्रीते अहियासे ॥ ३० ॥

॥ दीपिका—साधुर्भिक्षानिमित्तं ग्रामादौ प्रविष्टः सन् परोगृहस्थस्तस्य गृहे ननिषीदेत नोपविशेत्। यदिवा देशनालब्धिमान् कश्चित्ससहायोगुर्वनुज्ञातः कथंचित्तथाविधस्य धर्मदेशनानिमित्तमुपविशेदपि । तथा ग्रामे कुमारकास्तेषामियं ग्रामकुमारिका क्रीडा हास्यकंदर्पहस्तसंस्पर्शालिंगनादिका अथवा क्रीडा वट्टकंडुकादिका तां मुनिर्नोकुर्यात् अतिवेलं वेलामर्यादा तामतिक्रम्य नहसेन्मुनिः । यदागमः । जीवेणंभंतेहसमाणे उस्सुयमाणेवाकाइकम्मवगडीउ बंधइ गोयमा सत्तविहबंधएवा अट्ठविहबंधएवाइत्यादि ॥ २९ ॥ उदारेषु शब्दादिविषयेषु अनुत्सुकोऽनासक्तोयतमानः संयमे परिव्रजेन्मूलोत्तरगुणेषूद्यमं कुर्यात् । चर्यायां भिक्षादिकायामप्रमत्तः स्यात् स्पृष्टः परीषहादिभिस्तत्राऽदीनोऽध्यासहेत् सम्यक् सहात् ॥ ३० ॥

॥ टीका—किंचान्यत् (नन्नत्थेत्यादि) तत्र साधुर्भिक्षादिनिमित्तं ग्रामादौ प्रविष्टः सन् परोगृहस्थस्तस्य गृहं परगृहं तत्र ननिषीदेन्नोपविशेत् उत्सर्गतोस्यापवादं दर्शयति।नान्यत्रांतरायेणेति। अंतरायः शक्त्यभावः सच जरसा रोगातंकाभ्यां स्यात्तस्मिं चांतराये सत्युपवि

शेषादिवोपशमलब्धिमान् कश्चित्सुसहायोगुर्वनुज्ञातः कस्यचित्तथाविधस्य धर्मदेशनानिमित्तमुपविशेदपि। तथा ग्रामे कुमारकाग्रामकुमारकास्तेषामियं ग्रामकुमारिका ऽसौक्रीडा हास्यकंदर्पहस्तसंस्पर्शनालिंगनादिका। यदिवा वट्टकंदुकादिका तां मुनिर्नकुर्यात्तथा वेला मर्यादातामतिक्रांतमतिवेलं नहसेन्मर्यादामतिक्रम्य मुनिः साधुर्ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबंधनयान्नहसेत्। तथा चागमः। जीवेणं नंते हसमाणे उस्सूयमाणे वाकाइकम्मपगडीउ बंधइ गोयमा सत्तविह बंधएवा अट्ठविहबंधएवाइत्यादि ॥ २ए ॥ किंच (अणुस्सुउइत्यादि) उरालाउदाराः शोजनामनोज्ञाये चक्रवर्त्यादीनां शब्दादिषु विषयेषु कामजोगा वस्त्राजरणगीतगंधर्वयानवाहनादयस्तथा आशैश्वर्यादयश्चैतेषूदारेषु दृष्टेषु श्रुतेषु वा नोत्सुकः स्यात्। पाठांतरंवा। ननिश्रितोऽनिश्रितो ऽप्रतिबद्धः स्याद्यतमानश्च संयमानुष्ठाने परिसमंतान्मूलोत्तरगुणेषु उद्यमं कुर्वन् व्रजेत्संयमं गच्छेत् तथा चर्चायां निक्षादिकायामप्रमत्तःस्यात् नाहारादिषु रसगार्ध्यं विदध्यादिति । तथा स्पृष्टश्चानिद्रुतश्च परीषहोपसर्गैस्त्रादीनमनस्कः कर्मनिर्जरां मन्यमानोविषहेत सम्यक् सह्यादिति ॥ ३० ॥

हम्ममाणो ण कुप्पेज्जा, वुच्चमाणो नसंजले ॥ सुमणे अहियासिज्जा, णय कोलाहलं करे ॥ ३१ ॥ लद्धे कामे ण पत्थेज्जा, विवेगे एव माहिए ॥ आयरियाइं सिक्खेज्जा, बुद्धाणं अंतिए सया ॥ ३२ ॥

अर्थ–(हम्ममाणोणकुप्पेज्जाके०) कोइए लाकडी अने मुष्ट्यादिके करी हण्यो बतो क्रोध नकरे (वुच्चमाणोनसंजलेके०) तथा डुर्वचने करी आक्रोश उपजाव्यो थको पण क्रोध नकरे, अने प्रति वचन पण नबोले; (सुमणेअहियासिज्जाके०) किंतु सुमन थको पूर्वोक्त परीसहने सहन करे, परंतु (णयकोलाहलंकरे के०) तेवा परीसहनी पीडायें पीडयो थको कोलाहल नकरे ॥३१॥ (लद्धेकामेणपत्थेज्जाके०) प्राप्त थएला कामजोगने प्रार्थे नही एटले जोगवे नही, (विवेगेएवमाहिए के०) ए साधुनो विवेक श्रीतीर्थंकरें कह्योछे, (आयरियाइंसिक्खेज्जा के०) तथा जे आचरवायोग्य एवा ज्ञान, दर्शन अने चारित्रादिक तेने शीखे, परंतु कोनी पाशेथी शीखे तोके (बुद्धाणंअंतिएसया के०) गुरु जे आचार्य तेनी पाशेथी सदा शीखे एटले गुरु कुल वास कह्यो. ॥ ३२ ॥

॥ दीपिका–हन्यमानोयष्ट्यादिजिर्न कुप्येत कोपं न कुर्यात् डुर्वचनैरुच्यमानआक्रुश्यमानोन संज्वलेत नप्रलापं वदेत् सुमनाः कोलाहलमकुर्वन्नधिसहेत ॥ ३१ ॥ लब्धानपि कामान् जोगांश्च वैरस्वामिवन्नप्रार्थयेन्नगृएहीयात् एवंकुर्वतोहि विवेकआविर्जावितः स्या

त् । आर्याणि शुन्नानि कर्तव्यानि बुद्धानामाचार्याणामंतिके समीपे शिक्षेतान्यसेदनेन नित्यंगुरुकुले वासः सेवनीयइति ज्ञापितं ॥ ३२ ॥

॥ टीका-परीषहोपसर्गाधिसहनमेवाधिकृत्याह । (हम्ममाणोइत्यादि) हन्यमानो यष्टिमुष्टिलकुटादिनिरपि न कुप्येन्नकोपवशगोन्नवेत्तथा डुर्वचनान्युच्यमानश्राक्रुश्यमानो निर्नर्त्स्यमानोन संज्वलेन्न प्रतीपं वदेन्नमनागपि मनोऽन्यथात्वं विदध्यात् किंतु सुमनाः सर्व कोलाहलमकुर्वन्नधिसहेतेति ॥ ३१ ॥ किंचान्यत् । (लद्धेकामेइत्यादि) लब्धान् प्राप्तानप्राप्तानपि कामानिञामदनरूपान्गंधालंकारवस्त्रादिरूपान्वा वैरस्वामिवन्नप्रार्थयेन्नानुमन्येत नगृह्णीयादित्यर्थः । यदिवा यत्र कामावसायितया गमनादिलब्धिरूपान् कामांस्तपोविशेष लब्धानपि नोपजीव्यान्नाप्यनागतान् ब्रह्मदत्तवत्प्रार्थयेदेवं च कुर्वतोन्नाववविवेकश्राख्यातश्चा विर्नावितोन्नवति । तथा आर्याण्यार्याणां कर्तव्यानि अनार्यकर्तव्यपरिहारेण । यदिवा आचर्याणि मुमुक्षुणां यान्याचरणीयानि ज्ञानदर्शनचारित्राणि तानि बुद्धानामाचार्याणामंतिके समीपे सदा सर्वकालं शिक्षेतान्यसेदित्यनेन हि शीलवता नित्यं गुरुकुलवास आसेवनीयइत्यावेदितं नवतीति ॥ ३२ ॥

सुस्सूसमाणो उवासेज्जा, सुपन्नं सुतवस्सियं ॥ वीराजे अत्तप
न्नेसी, धितिमंता जिइंदिया ॥ ३३ ॥ गिहेदीवमपासंता, पुरिसा
दाणिया नरा ॥ ते वीरा बंधणुम्मुक्का, नावकंखंति जीवियं ॥३४॥

अर्थ-(सुस्सूसमाणोउवासेज्जाके०) सांन्नलवा वांबतो एवो जे साधु ते पोताना गुरुनी रुडी वैयावच्चादिक विश्रामणादिके करी सेवा करे, ते गुरु केवाहोय तोके (सुपन्नं सुतवस्सियंके०) स्वपर सिद्धांत जाणवाने नलीहे प्रज्ञा जेनी एटले रुडा गीतार्थ तथा रुडा तपना करनार एवा गुरुनी सेवा करे; ते केवा पुरुष गुरुनी सेवा करे तोके (वीरा के०) कर्मने जीतवा समर्थ तथा (जेअत्तपन्नेसी के०) जे सत्य बुद्धिना गवेषण हार तथा (धितिमंताजिइंदिया के०) धैर्यवंत एटले जेमनुं संयममां एकाग्र चित्तछे, अने जीतेंद्रिय एवा जे पुरुष होय ते गुरुनी सेवा करे ॥ ३३ ॥ (पुरिसादाणियानरा के०) जे पुरुषादानीय एटले सत्यमार्गनी गवेषणा करनार एवा मनुष्य ते एम जाणेछे जे (गिहेके०) गृहस्थने नावे रेवा थकी (दीवंके०) ज्ञानरूप दीपक अथवा संसारनो उद्धार तेने (अपासंता के०) नथी देखता माटे चारित्र आदरेछे. (तेवीराबंधणुम्मुक्का के०) ते वीर पुरुष राग द्वेषादिक बंधनथी रहित थका (नावकंखंतिजीवियं के०) असंयमे जीवितव्य वांन्ने नही एटले जीववाने अर्थे असंयम करे नही ॥ ३४ ॥

॥ दीपिका—शुश्रूषमाणोगुर्वादेर्वैय्यावृत्यं कुर्वाणोगुरुमुपासीत सेवेत । गुरुं किंनूतं । सुप्रज्ञं गीतार्थं सुतपस्विनं संयमवंतं । यडुक्तं । नाणस्स होइ नागी, थिरयरउ दंसणे चरित्तेय ॥ धन्ना आवकहाए गुरुकुलवासं न मुंचंति ॥ १ ॥ ये वीराआत्मप्रज्ञान्वेषिणआत्महितान्वेषकाधृतिः संयमे रतिस्त दंतोजितेंड्रियास्ते गुरुकुलवासिनः स्युः । यडुक्तं । जस्स धिई तस्स तवो जस्स तवो तस्स सुग्गई सुलहा ॥ जे अधिइमंतपुरिसा तवोवि खलु डुल्लहो तेसिमिति ॥ ३३॥ गृहे गृहस्थत्वे दीपं नावदीपं श्रुतज्ञानमपश्यंतोऽप्राप्नुवंतोनराः सम्यक् प्रव्रज्यापुरुषादानीयाः पुरुषाणामादानीयाआश्रयणीयामहतोपि महीयांसः स्युरित्यर्थः। यएवंनूतास्ते वीराबंधनोन्मुक्ताजीवितमसंयमजीवितं नावकांक्षंति नानिलपंति ॥ ३४ ॥

॥ टीका—यडुक्तं बुद्धानामंतिके शिक्षेत्तत्स्वरूपनिरूपणायाह । (सुस्सूसमाणाइत्यादि) गुरोरादेशं प्रति श्रोतुमिच्छा शुश्रूषा गुर्वादेर्वैय्यावृत्त्यमित्यर्थः । तां कुर्वाणोगुरुमुपासीत सेवेत । तस्यैव प्रधानगुणद्वय द्वारेण विशेषणमाह । सुष्ठु शोनना वा प्रज्ञास्येति सुप्रज्ञः स्वसमयपरसमयवेदी गीतार्थइत्यर्थः । तथा सुष्ठु शोननं वा सबाह्याभ्यंतरं तपो स्यास्तीति सुतपस्वी तमेवंनूतं ज्ञानिनं सम्यक्चारित्रवंतं गुरुं परलोकार्थी सेवेत । तथा चोक्तं। नाणस्स होइ नागी, थिरयरउ दंसणे चरित्तेय॥ धन्ना आवकहाए गुरुकुलवासं नमुंचंति। यएवं कुर्वंति तान् दर्शयति।यदिवा के ज्ञानिनस्तपस्विनइत्याह । वीराः कर्मविदारणसहिष्णवोधीरावा परीषहोपसर्गाक्षोभ्याः । धिया बुध्या राजंतीति वा धीरायेकेचनासन्नसिद्धिगमनाआप्तोरागादिविप्रमुक्तस्तस्य प्रज्ञा केवलज्ञानाख्या तामन्वेष्टुं शीलं येषां ते आप्तप्रज्ञान्वेषिणः सर्वज्ञोक्तान्वेषिणइतियावत् । यदिवा आत्मप्रज्ञान्वेषिणआत्मनः प्रज्ञा ज्ञानमात्मप्रज्ञा तदन्वेषिणआत्मज्ञत्वान्वेषिणआत्महितान्वेषिणइत्यर्थः । तथा धृतिः संयमे रतिः सा विद्यते येषां ते धृतिमंतः । संयमधृत्या हि पंचमहाव्रतनारोद्वहनं सुसाध्यं नवतीति । तपःसाध्या च सुगतिर्हस्तप्राप्तेति । तडुक्तं । जस्स धिई तस्स तवो, जस्स तवो तस्स सुग्गई सुलहा ॥ जे अधिइमंतपुरिसा तवोवि खलु डुल्लहो तेसिं ॥१॥ तथा जितानि वशीकृतानि स्वविषयरागद्वेषविजयेनेंड्रियाणि स्पर्शनादीनि यैस्ते जितेंड्रियाः शुश्रूषमाणा यथोक्तविशेषणविशिष्टानवंतीति ॥३३॥ तदनिधित्सुराह । गिहेदीवमित्यादि) गृहे गृहवासे गृहपाशेवा गृहस्थनावइतियावत् । दीवंति । दीपीदीप्तौ दीपयति प्रकाशयतीति दीपः । सच नावदीपः श्रुतज्ञानलानः। यदिवा द्वीपःसमुड़ादौ प्राणिनामावासनूतः सच नावद्वीपः संसारसमुड़े सर्वज्ञोक्तचारित्रलानस्तदेवंनूतं दीपं द्वीपं वा गृहस्थनावेऽपश्यंतोऽप्राप्नुवंतः संतः सम्यक् प्रव्रज्योत्थानेनोत्थिताउत्तरोत्तरगुणलानेनैवंनूता नवंतीति दर्शयति। नराः पुरुषाः पुरुषोत्तमत्वाद्धर्मस्य नरोपादानमन्यथा स्त्रीणामप्येतद्गुणनाक्त्वं नवत्यथवा देवादिव्युदासार्थमिति । मुमुक्षूणां पुरुषाणामादानीयाआश्रयणीयाः पुरुषादानीयामहतोपि महीयां

सोन्नवंति । यदिवा आदानीयोहितैषिणां मोक्षस्तन्मार्गोवा सम्यक्दर्शनादिकः पुरुषाणां मनुष्याणामादानीयः सविद्यते येषामिति विगृह्य मत्वर्थीयोऽर्शआदिभ्योजिति । तथा यएवं नूतास्ते विशेषेणेरयंत्यष्टप्रकारं कर्मेति वीरास्तथा बंधनेन सबाह्याभ्यंतरेण पुत्रकलत्रादि स्नेहरूपेणोत्प्राबल्येन मुक्ताबंधनोन्मुक्ताः संतोजीवितमसंयमजीवितं प्राणधारणंवा ना विकांक्षंति नाभिलपंतीति ॥ ३४ ॥

अगिद्धे सद्दफासेसु, आरंभेसु अणिस्सिए ॥ सवं तं समयाती तं, जमेतं लवियं बहु ॥ ३५ ॥ अइमाणंच मायंच, तं परिन्नाय पंमिए ॥ गारवाणिय सवाणि, णिवाणं संधए मुणित्तिबेमि ॥ ॥ ३६ ॥ इति श्रीधम्मनामं नवमज्झयणं सम्मत्तं.

अर्थ-(अगिद्धेसद्दफासेसु के०) शब्द गंध रूप रस स्पर्शादिकने विषे अगृद्ध एटले अमूर्छित तथा (आरंभेसु के०) ठ कायना आरंभने विषे (अनिश्रित के०) प्रवर्त्ते नही, (सवंतंसमयातीतं के०) ए सर्व निषेधवाना कारण कह्या, ते सर्वने सिद्धांत थकी विपरीत जाणीने आचरवा नही. (जमेतंलवियंबहु के०) तथा जे विधि द्वारे कह्युंछे ते सर्व सिद्धांतने अनुसारे जाणीने आचरवुं ॥ ३५ ॥ (अतिमाणंचमायंच के०) अत्यंत मान अत्यंत माया च शब्द थकी क्रोध लोभ पण लेवा (तंपरिन्नायपंमिए के०) ए चार कषायने पंमित ज्ञ परिज्ञाये जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञाये करी परिहरे (गारवाणियस वाणि के०) तथा रसगारव ऋद्धिगारव अने सातागारव ए सर्वेने सर्वथा परिहरे (णि वाणंसंधएमुणि के०) साधु चारित्रिउं मोक्षने संधए एटले वांछे. त्तिबेमिनो अर्थ पूर्वव त् जाणवो ॥ ३६ ॥ इतिश्री धर्म नामा नवमा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका-शब्दस्पर्शेषु । आद्यंतग्रहणान्मध्यग्रहणं । रूपगंधरसेष्वप्यगृद्धोऽनासक्त आरंभेष्वनिश्रितोऽप्रवृत्तः । सर्वमेतदध्ययनादेरारभ्य निषेधत्वेन यल्लपितमुक्तं मया बहु तत्समयाज्जैनागमादतीतमितिकृत्वा निषिद्धं ॥ ३५ ॥ अतिमानं तत्सहचरं क्रोधं माया तत्कार्यभूतं लोभं च तत्सर्वं पंमितः परिहरेत् सर्वाणि गारवाणि ऋद्धिरससातरूपाणि त्यक्त्वेति शेषः । साधुर्निर्वाणं मोक्षं सर्वकर्मक्षयं वा संदध्यात् । इतिब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ॥ ३६ ॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां नवमं धर्माध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका-किंचान्यत् । (अगिद्धेत्यादि) अगृद्धोऽनध्युपपन्नोमूर्छितः । क । शब्दस्पर्शेषु मनोज्ञेष्वाद्यंतग्रहणान्मध्यग्रहणमतोमनोज्ञेषु रूपेषु गंधेषु रसेषु वा अगृद्धइति द्रष्टव्यं ।

तथेतरेषु वाऽद्विष्टइत्यपि वाच्यः। तथा आरंभेषु सावद्यानुष्ठानरूपेष्वनिश्रितोऽसंबद्धोऽप्रवृत्तइत्यर्थः। उपसंहर्तुकामआह। सर्वमेतदध्ययनादेरारभ्य प्रतिपेध्यत्वेन यद्भणितमुक्तं मया बहु तत्समयादार्हतादागमादतीतमतिक्रांतमिति कृत्वा प्रतिषिद्धं।यदपिच विधिद्वारेणोक्तं तदेतत्सर्वं कुत्सितसमयातीतं लोकोत्तरं प्रधानं वर्तते। यदपिच तैः कुतीर्थिकैर्बहु लपितं तदेतत्सर्वं समयातीतमिति कृत्वा नानुष्ठेयमिति ॥ ३५ ॥ प्रतिपेध्य प्रधाननिषेध द्वारेण मोक्षाभिसंधानेनाह (अतिमाणंचेत्यादि) अतिमानोमहामानस्तं। च शब्दात्सहचरितं क्रोधंच तथा मायां चशब्दात्तत्कार्यभूतं लोभंच तदेतत्सर्वं पंडितोविवेकी ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरें तथा सर्वाणि गारवाणि ऋद्धिरससातरूपाणि सम्यक् ज्ञात्वा संसारकारणत्वेन परिहरेत्परिहृत्यच मुनिः साधुर्निर्वाणमशेषकर्मक्षयरूपं विशिष्टाकाशदेशं वा संधयेदभिसंदध्यात् प्रार्थयेदितियावत्। इतिः परिसमाप्त्यर्थे। ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३६ ॥ समाप्तं धर्माख्यं नवममध्ययनमिति ॥

हवे दशमुं समाधि नामे अध्ययन कहेछे नवमां अध्ययनने विषे धर्म कह्यो, ते धर्म समाधि विना थाय नही माटे दशमां अध्ययनमां समाधिनुं स्वरूप कहेछे.

आघं मईमंमणुवीय धम्मं, अंजू समाहिं तमिणं सुणेह ॥ अप
डिन्ने भिक्कू समाहिपत्ते, अणियाणभूते सुपरिवएज्जा ॥ १ ॥ उड्डं
अहेयं तिरियं दिसासु,तसा य जे थावर जेय पाणा॥हत्थेहिं पाए
हिं य संजमित्ता, अदिन्नमन्ने सुयणो गहेज्जा ॥ २ ॥

अर्थ—(आघंमईमंमणुवीयधम्मं के०) मतिमंत एटले केवली भगवान् तेणे केवलज्ञाने करी विचारीने धर्म कह्यो, ते धर्म केवोछे तोके (अज्जुके०) ऋजु एटले सरलतापणु (समाहिंतमिणंसुणेहके०) तेनेज समाधि कहिए. ते समाधि श्री केवली भगवंते मने उपदेशीछे तेमज श्री सुधर्म स्वामि जंबुप्रत्ये कहेछे के हुं तमने कहुंछुं ते तमे सांभलो जे एवो साधु होय ते समाधिने प्राप्त थयो एरीते जाणो ते साधु केवो होय ते कहेछे. (अप्पडिन्नेके०) जेने तप संयम पालता थका इह लोक तथा परलोकना सुखनी वांछा करवी एवी प्रतिज्ञा नथी तेने अप्रतिज्ञ कहिए; एवो, तथा (अनिदानभूतेके०) निदान रहित एटले आश्रव रहित एवो छतो (सुपरिवएज्जा के०) रुडीरीते संयम पाले ते (भिक्कूके०) साधु (समाहिपत्ते के०) समाधि प्राप्त जाणवो ॥ १ ॥ (उड्ढंअहेयंतिरियंदिसासुके०) उंचा नीचा अने तिर्छा एम दिशो दिशे एटले सर्व लोकमांहे दिशि विदिशिने विषे (तसायजेथावरजेयपाणा के०) जे बेइंड्यादिक त्रश जीवो तथा पृथ्विकाया

दिक स्थावर जीवोछे ते समस्त जीवोने (हत्थेहिंपाएहिंय के०) हाथें करी, पगे करी अथवा समस्त कायायें करी (संजमिता के०) संयत थतो एनी हिंसा नकरे उपलक्ष ण थकी एने कोइ पण कदर्थना नकरे तथा (अदिन्नमन्नेसुयणोगहेज्जा के०) अन्यनु अदत्तदान ग्रहण करे नही ए अर्थथी परिग्रह मैथुन मृषावादादिकने पण नसेवे ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथदशमाध्ययनमारभ्यते । पूर्वं धर्मउक्तः सच समाधौ सति स्यादित्यत्र समाधिरुच्यते । (आघंमईमित्यादि । आघंमाख्यातवान् इमं वक्ष्यमाणं धर्मं मति मान् अर्हन् अनुविचिंत्य ज्ञानेन ज्ञात्वा । धर्मं किंभूतं । ऋजुमवक्रं समाधिंच सम्यगधी यते मोक्षंप्रति योग्यः क्रियते आत्मायेन ससमाधिस्तमिमं समाधिरूपं धर्मं शृणुत यूयं। नविद्यते प्रतिज्ञा आकांक्षा तपसि क्रियायांवा यस्यासावप्रतिज्ञोनिस्पृहोभिक्षुः समा धिं धर्मं प्राप्तः नविद्यते निदानमारंभरूपं भूतेषु जंतुषु यस्यासावनिदानः सावद्यानुष्ठानर हितः परिव्रजेत् संयमे चरेत् ॥ १॥ ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च त्रिषु लोकेषु प्राच्यादिदिक्षु च ये त्रसाः स्थावरा श्च ये प्राणिनः । एतान् प्राणिनोहस्तपादाभ्यां संयम्य बध्वा साधुः उप लक्षणादन्यथा वा कदर्थयित्वा दुःखोत्पादं न कुर्यात् । तथा अन्येभ्योदत्तं नगृण्हीयात् तृतीयव्रतोपलक्षणादन्यान्यपि व्रतानि पालयेत्समाधिमाश्रयेदित्यर्थः ॥ २ ॥

॥ टीका—नवमानंतरं दशममारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः। इहानंतराध्ययने धर्मो ऽभिहितः सचाविकलः समाधौसति भवत्यतोधुना समाधिः प्रतिपाद्यते इत्यनेन संबंधे नायातस्याऽध्ययनस्य चत्वार्युपक्रमादीन्यनुयोगद्वाराणि वाच्यानि । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्था धिकारोयं । तद्यथा । धर्मे समाधिःकर्तव्यःसम्यगाधीयते व्यवस्थाप्यते तन्मार्गेवा प्रति येना त्मा धर्मध्यानादिना ससमाधिर्धर्मध्यानादिकः सच सम्यक्ज्ञात्वा स्पर्शनीयः । नामनिष्पन्नं तु निक्षेपमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । आयाणपदेणाघं गोणं णामं पुणो समाहित्ति॥णि क्खिविऊण समाहिं, भावसमाही इपगयंतु ॥ ५ ॥ (आयाणपदेणाघमित्यादि) आदीय ते गृह्यते प्रथममादौ यत्तदादानमादानंच तत्पदंच सुबंतं तिडंतंवा तदादानपदं तेनाघंति नामास्याध्ययनस्य यस्मादध्ययनादाविदं सूत्रं । (आघंमईमंमणुवीइ धम्ममित्यादि) य थोत्तराध्ययनेषु चतुर्थमध्ययनं प्रमादाप्रमादाभिधायकमप्यादानपदेनासंखयमित्युच्यते गुणनिष्पन्नं पुनरस्याध्ययनस्य नामसमाधिरिति । यस्मात्सएवात्र प्रतिपाद्यते तं च स माधिं नामादिना निक्षिप्य भावसमाधिनेह प्रकृतमधिकारइति । समाधिनिक्षेपार्थमा ह । णामंठवणादविए, खेत्ते काले तहेव भावेय ॥ एसोउ समाहीए, णिक्खेउ छव्विहोहोइ ॥ ॥ ६ ॥ (णामंठवणाइत्यादि) नामस्थापना द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात् । एषतु समाधिनि क्षेपः षड्विधोभवति । तुशब्दोगुणनिष्पन्नस्यैव नाम्नोनिक्षेपोभवतीत्यस्यार्थस्याविर्भाव

ार्थइति । नामस्थापने सुगमत्वादनादृत्य ड्व्यादिकमधिकृत्याह । पंचसु विसएसु सुन्ने, तु दव्वंमि जावसमाहित्ति ॥ खेत्तंतु जम्मि खेत्ते, काले कालो जहिं जोऊ ॥ ७ ॥ (पंचस्वि यादि) पंचस्वपि शब्दादिषु मनोज्ञेषु विषयेषु श्रोत्रादींड्रियाणां यथा स्वप्राप्तौ सत्यां य तुष्टिविशेषः सड्व्यसमाधिस्तदन्यथा त्वसमाधिरिति। यदिवा ड्व्ययोर्ड्व्याणां वा सन्मिश्रा ााामविरोधिनां सतां न रसोपघातोजवत्यपितु रसपुष्टिः सड्व्यसमाधिः । तद्यथा क्षीरशर्के रयोर्दधिगुडचातुर्जातकानां चेति । येनवा ड्व्येणोपयुक्तेन समाधिपानकादिना समाधिर्ज वति तद्व्यं । ड्व्यसमाधिस्तुलादावारोपितं वा यत् ड्व्यं समतामुपैतीत्यादिकोड्व्य समाधिरिति । क्षेत्रसमाधिस्तु यस्य यस्मिन्वा क्षेत्रे व्यवस्थितस्य समाधिरुत्पद्यते सक्षेत्र प्राधान्यात् क्षेत्रसमाधिर्यस्मिन्वा क्षेत्रे समाधिर्व्यावर्ण्यतइति। कालसमाधिरपि यस्य यं का लमवाप्य समाधिरुत्पद्यते। तद्यथा। शरदिगवां नक्तमुलूकानामंहनि बलिभुजां यस्य वा या वंतं कालं समाधिर्जवति यस्मिन्वा समाधिर्व्याख्यायते सकालप्राधान्यात् कालसमाधिरि ति। जावसमाधिंत्वधिकृत्याह । जावसमाहिंचवुविह, दंसणणाणे तवे चरित्तेय॥ चउसुवि समाहियप्पा संमंचरणछित्त साहू ॥ ७॥ (जावसमाहीत्यादि) जावसमाधिस्तु दर्शनज्ञान तपश्चारित्रजेदाच्चतुर्ध्रा । तत्र चतुर्विधमपि जावसमाधिं समासतोगाथापश्चार्धेनाह। मुमुक्षु णा चर्यतइति चरणं । तत्र सम्यक्चरणे चारित्रे व्यवस्थितः समुद्युक्तः साधुर्मुनिश्चतुर्ष्व पि जावसमाधिजेदेषु दर्शनज्ञानतपश्चारित्ररूपेषु सम्यगाहितोव्यवस्थापितश्चात्मा येन ससमाहितात्मा जवति । इदमुक्तं जवति । यःसम्यचरणे व्यवस्थितः सचतुर्विधजा वसमाधिसमाहितात्मा जवति योवाजावसमाधिसमाचितात्मा जवति ससम्यक्च रणे व्यवस्थितोड्रष्टव्यइति । तथाहि । दर्शनसमाधौ व्यवस्थितोजिनवचनजावितां तःकरणोनिर्वातशरणप्रदीपवन्नकुमतिवायुनिर्भ्राम्यते । ज्ञानसमाधिना तु यथा यथा पूर्वश्रुतमधीते तथातथातीव जावसमाधावुद्युक्तोजवति । तथा चोक्तं । जहजह सु यमवगाहइ अइसयरसपसरसंजुयमउव्वं । तहतह पल्हाइ मुणी णव णवसंवेगस द्धाए । चारित्रसमाधावपि विषयसुखनिस्पृहतया निष्किंचनोपि परं समाधिमाप्नोति । तथाचोक्तं । तणसंथारणिसन्नो मस्तितरोजट्ठरागमयमोहो ॥ जं पावइ मुत्तिसुहं क त्तोतं चक्कवट्टीवि ॥ नैवास्ति राजराजस्येत्यादि तपःसमाधिनापि निकृष्टतपसोपि नग्ला निर्जवति । तथा क्षुत्तृष्णादिपरीषहेन्योनोद्विजते । तथा अन्यस्ताभ्यंतरतपोध्यानाश्रितम नाः सनिर्वाणस्थइव नसुखडुःखाभ्यां बाध्यतइत्येवं चतुर्विधजावसमाधिस्थः सम्यक्चर णव्यवस्थितोजवति साधुरिति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपः । सांप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलिता दिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं (आवंमईममित्यादि) अस्य चायमनंतरसूत्रेण सह संबंधः । तद्यथा । अशेषगारवपरिहारेण मुनिर्निर्वाणमनुसंधयेदित्येतद्भगवानुत्पन्नदिव्यना

ज्ञानः समाख्यातवानेतच्च वक्ष्यमाणमाख्यातवानिति (आघंति) आख्यातवान् कोसौ । मतिमान् मननं मतिः समस्तपदार्थपरिज्ञानं तद्विद्यते यस्यासौ मतिमान् के वलज्ञानीत्यर्थः । तत्रासाधारणविशेषणोपादानात्तीर्थकृद् गृह्यते । असावपि प्रत्यासन्न त्वाद्वीरोवर्धमानस्वामी गृह्यते । किमाख्यातवान् धर्मं श्रुतचारित्राख्यं । कथं । अनुविचिं त्य केवलज्ञानेन ज्ञात्वा प्रज्ञापनयोग्यान् पदार्थानाश्रित्य धर्मं नाषते । यदिवा ग्राहक मनुविचिंत्य कस्यार्थस्यायं ग्रहणसमर्थस्तथाकोयं पुरुषः कंच नतः किंदर्शनमापन्नइत्येवं पर्यालोच्य धर्मंशुश्रूषवोवा मन्यंते । यथा प्रत्येकमस्मदभिप्रायमनुविचिंत्य नगवान् धर्मं नाषते युगपत्सर्वेषां स्वनाषापरिणत्या संशयापगमादिति । किंनूतं धर्मं नाषते । ऋजुमवक्रं यथावस्थितस्वरूपं वस्तुस्वरूपनिरूपणतोन । यथा शाक्याः सर्वं क्षणिकमन्युपगम्य कृतना शाकृताभ्यागमदोषनयात्संतानाभ्युपगमं कृतवंतस्तथावनस्पतिमचेतनत्वेनाभ्युपगम्य स्व यं न छिंदंति तच्छेदनादावुपदेशं तु ददति तथा कार्षापणादिकं हिरण्यं स्वतोनस्पृशंत्य परेणतु तत्परिग्रहतः क्रयविक्रयं कारयंति । तथा सांख्याः सर्वमप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्व नावं नित्यमभ्युपगम्य कर्मबंधमोक्षानावप्रसंगदोषनयादाविर्नावतिरोनावावाश्रितवंतइ त्यादिकौटिल्यनावपरिहारेणावक्रं तथ्यं धर्ममाख्यातवान् । तथा सम्यगधीयते मोक्षं तन्मा र्गंवा प्रत्यात्मा योग्यः क्रियते व्यवस्थाप्यते येन धर्मेण सधर्मः समाधिस्तं समाख्यात वान् । यदिवा धर्ममाख्यातवांस्तत्समाधिं च धर्मध्यानादिकमिति सुधर्मस्वाम्याह तमिमं धर्मं समाधिं वा नगवदुपदिष्टं शृणुत यूयं । तद्यथा । नविद्यते ऐहिकामुष्मिकरूपा प्रति ज्ञा आकांक्षा तपोनुष्ठानं कुर्वतोयस्यासावप्रतिज्ञोनिक्षणशीलोनिक्षुः । तुर्विशेषणे । नाव निक्षुरसावेव परमार्थतः साधुधर्मं धर्मसमाधिंच प्राप्तोसातिति । तथा नविद्यते निदानमारं नरूपं नूतेषु जंतुषु यस्यासावनिदानः सएवंनूतः सावद्यानुष्ठानरहितः परिसमंतात्संयमा नुष्ठाने व्रजेज्जवेदिति । यदिवा अनिदाननूतोऽनाश्रवनूतः कर्मोपादानरहितः सुष्टु परिव्रजेत् । सुपरिव्रजेत् यदिवा अनिदाननूतान्यनिदानकल्पानि ज्ञानादीनि तेषु परिव्रजेत् । अथवा निदानं हेतुः कारणं दुःखस्यातोनिदाननूतः कस्यचिद्दुःखमनुपादयन् संयमे पराक्रमेतेति ॥१॥ प्राणिपातादीनितु कर्मणोनिदानानि वर्तंते । प्राणातिपातोपि द्रव्यक्षेत्रकालनावनेदा च्चतुर्धा । तत्र प्राणातिपातमधिकृत्याह ॥(उड्ढंअहेइत्यादि) सर्वोपि प्राणातिपातः क्रियमाणः प्रज्ञापकापेक्षयोर्ध्वमधस्तिर्यक् क्रियते । यदिवा ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्रूपेषु त्रिषुलोकेषु तथा प्राच्या दिषु दिक्षु विदिक्षु चेति । द्रव्यप्राणातिपातस्त्वयं । त्रस्यंतीति त्रसाद्वीन्द्रियादयोयेच स्थावराः पृथिव्यादयः । चकारः स्वगतनेदसंसूचनार्थःकालप्राणातिपातसंसूचनार्थो वा । वि वा रात्रौ वा प्राणाः । प्राणिनां नावप्राणातिपातत्वाह् । एतान् प्रागुक्तान् प्राणिनोहस्त पादाभ्यां बध्वा उपलक्षणार्थत्वादस्यान्यथावा कदर्थयित्वा यदेषां दुःखोत्पादनं तन्न कुर्या

त् ।यदि चैते प्राणिनोहस्तौ पादौ संयम्य संयतकायः सन्न हिंस्यात् । चशब्दादुच्छ्वासनिश्वास कासकासितक्षुतवातनिसर्गादिषु सर्वत्र मनोवाक्कायकर्मसु संयतोभगवान् भावसमाधिमनु पालयेत्तथा परैरदत्तं नगृण्हीयादिति तृतीयव्रतोपन्यासः।अदत्तादाननिषेधाच्चार्थतः परिग्र होनपिद्धोभवति नापरिगृहीतमासेव्यतइति मैथुननिषेधोप्युक्तः । समस्तव्रतपालनोपदे शाच्च मृषावादोप्यर्थतोनिरस्तइति ॥ २ ॥

सुयक्खायधम्मे वितिगिछतिसे, लाढे चरे आयतुले पयासु ॥
आयं न कुज्जा इह जीवियठ्ठी,चयं नकुज्जा सुतवस्सि भिक्खू॥३॥
सविंदियाभिनिवुडे पयासु, चरे मुणी सवतो विप्पमुक्के ॥ पासा
हि पाणे य पुढोवि सत्ते, दुक्खेण अट्टे परितप्पमाणे ॥ ४ ॥

अर्थ-(सुयक्खायधम्मे के०) समाधिवंत जे साधु छे ते एम जाणेके श्रीवीतरागें जे धर्म भाष्योछे, ते रुडो कह्योछे. ए श्रुताख्यात धर्म एवो होय एम साधु जाणे एटले गी तार्थ पणुं कह्युं; तथा (वितिगिछतिसे के०) जे श्रीवीतरागे कह्युं तेने संदेह रहित पणे तहत्ति करी मानतो थको रहे; एटले ज्ञान दर्शन रूप समाधि कही तथा (लाढेच रेके०) निर्दोष आहारनो लेनार एवो छतो विचरे एटले संयम पाले तथा (पयासु के०) प्रजा एटले सर्वजीवने (आयतुले के०) पोताना आत्मतुल्य करी लेखवे, तथा (आयंन कुज्जाइहजीवियठ्ठी के०) जीववाने अर्थें आय एटले आश्रव नकरे अर्थात् असंयमाश्र व नकरे तथा (सुतवस्सिभिक्खू के०) सुतपस्वी एवो साधु (चयंनकुज्जा के०) धन धान्यादिक परिग्रहनो संचय नकरे. ॥३॥ (सविंदियाभिनिवुडेपयासुके०) समस्त इंड्रिय नो संवर करीने निराभिलाषी थाय, ते कोनेविषे तोके प्रजा एटले स्त्रीने विषे निराभि लाषी थाय अर्थात् स्त्रीने देखी पांचे इंड्रियोनो संवर करे. (चरेमुणीसवतोविप्पमुक्केके०) तथा सर्व थकी विप्रमुक्त एटले स्वजनादिक द्रव्य संग अने क्रोधादिक भाव संग ए सर्व संग थकी रहित थयो छतो एवो साधु संयम आचरे. (पाणेयपुढोविसत्ते के०) तथा प्रत्येक जुदा जुदा पृथ्विकायादिकजे सत्व एटले जीवछे तेमने (दुक्खेणअट्टे के०) दुःखे करीआर्त्त (परितप्पमाणे के०) परितप्यमान एटले संसाररूप कडाहमां कर्मरूप इंधणेकरी पचता एवा (पासाहिके०) देखीने समाधिवान साधु सर्व जीवनी दया पाले.

॥ दीपिका-सुष्ठु आख्यातोधर्मोयेन सस्वाख्यातधर्मा जुगुप्साचित्तविप्लुतिस्तां तीर्णोऽति क्रांतः। येन केन चिदाहारोपकरणादिनाऽऽत्मानं यापयतीति लाढः सएवंभूतश्चरेत्संयमे। पु नःकिंभूतः । प्रजासु प्राणिषु आत्मतुल्यआत्मवत्सर्वप्राणिनः पश्यतीत्यर्थः । तथा जीवि

तमसंयमजीवितं तन्यार्थी आयमा श्रवरूपं न कुर्यात् । तथा सुतपस्वी भिक्षुः चयं आहारोपध्यादेः संचयं न कुर्यात् ॥ ३ ॥ सर्वेंड्रियनिर्वृतः संवृतेंड्रियइत्यर्थः । कासु प्र जासु स्त्रीषु । स्त्रीषु संवृतेंड्रियः स्यादिति सर्वतोविप्रमुक्तोनिःसंगः सन् चरेत्संयमाध्वनि पृथक् पृथक् पृथिव्यादिकायेषु सत्वान् प्राणिनोऽपिशब्दा द्वनस्पतिकायेऽनंतानपि पश्य । किंभूतान् डुःखार्तान् स्वकर्मणा संसारकटाहे परिपच्यमानान् ॥ ४ ॥

॥ टीका–ज्ञानदर्शनसमाधिमधिकृत्याह । (सुयक्खायधम्मेत्यादि) सुष्ठ्वाख्यातः श्रुत चारित्राख्योधर्मोयेन साधुनाऽसौ स्वाख्यातधर्माऽनेन ज्ञानसमाधिरुक्तोभवति।नहि विशिष्ट परिज्ञानमंतरेण स्वाख्यातधर्मत्वमुपपद्यतइति भावः। तथा विचिकित्साचित्तविप्लुतिर्वि द्धु गुप्सा वा तां वितीर्णोतिक्रांतः। तदेव च निःशंकं यज्जिनैः प्रवेदितमित्येवं निःशंकतया न क चिच्चित्तविप्लुतिं विधत्तइत्यनेन दर्शनसमाधिः प्रतिपादितोभवति । येन केनचित्प्रासुकाहारो पकरणादिगतेन विधिनात्मानं यापयति पालयतीति लाढः सएवंभूतः संयमानुष्ठानं चरे दनुतिष्ठेत्तथा प्रजायंतइतिप्रजाः पृथिव्यादयोजंतवस्तास्वात्मतुल्यआत्मवत्सर्वप्राणिनः पश्यतीत्यर्थः। एवंभूतएव साधुर्भवतीति । तथाचोक्तं । जह ममणपियं डुःखं, जाणिय ए मेव सव्वजीवाणं ॥ णहणइणहणावेइ, सममणइ तेण सोसमणो ॥ १ ॥ यथाच ममाक्रु श्यमानस्याभ्याख्यायमानस्य डुःखमुत्पद्यते एवमन्येषामपीत्येवं मत्वा प्रजास्वात्मसमो भवति । तथा इहासंयमजीवितार्थी प्रभूतकालं सुखेन जीविष्यामीत्येतदध्यवसायी आयं कर्माश्रवलक्षणं न कुर्यात्तथा चयमुपचयमाहारोपकरणादेर्धनधान्यद्विपदचतुष्पदादेर्वा परिग्रहलक्षणं संचयमत्यर्थं सुष्ठु तपस्वी सुविकृष्टतपोनिष्टप्तदेहोभिक्षुर्नकुर्यादिति ॥३॥ किं चान्यत् । (सर्वेंद्रियइत्यादि) सर्वाणि च तानि इंड्रियाणिच स्पर्शनादीनि तैरभिनिर्वृतः सं वृतेंड्रियोजितेंड्रियइत्यर्थः। क। प्रजासु स्त्रीषु । तासु हि पंचप्रकाराअपि शब्दादयोविषया विद्यंते। तथाचोक्तं , कलानि वाक्यानि विलासिनीनां, गतानि रम्याण्यवलोकितानि ॥ र तानि चित्राणिच सुंदरीणां, रसोपि गंधोपि च चुंबनादेः ॥ १ ॥ तदेवं स्त्रीषु पंचेंड्रियविष यसंभवात्तद्विषये संवृतसर्वेंड्रियेण भाव्यमेतदेव दर्शयति । चरेत्संयमानुष्ठानमनुतिष्ठेत् मुनिः साधुः सर्वतः सबाह्याभ्यंतरात्संगाद्विशेषेण प्रमुक्तोनिःसंगोनिष्किंचनश्चेत्यर्थः। स एवंभूतः सर्वबंधनविमुक्तः सन् पश्यावलोकय पृथक् पृथिव्यादिषु कायेषु सूक्ष्मबादरपर्या प्तकापर्याप्तकभेदभिन्नान्सत्वान्प्राणिनोऽपिशब्दा द्वनस्पतिकाये साधारणशरीरिणोऽनंतान प्येकत्वमागतान पश्य । किंभूतान । डुःखेनासातवेदनीयोदयरूपेण डुःखयतीतिवा डुःख मष्टप्रकारं कर्म तेनार्तान पीडितान्परिसमंतात्संसारकटाहोदरे स्वकृतबंधनेन परिपच्यमा

नान् क्काथ्यमानान् यदिवा डुःप्रणिहितेंड्रियानार्तध्यानोपगतान्मनोवाक्कायैः परितप्यमानान् पश्येति संबंधोलगनीयइति ॥ ४ ॥

एतेसु बालेय पाठांतरे (एवं बालेय) पकुव्वमाणे, आवट्टती पाठांतरे (आउट्टती) कम्मसु पावएसु ॥ अतिवायतो कीरति पावकम्मं, निउज्जमाणे उ करेइ कम्मं ॥ ५ ॥ आदीणवित्तीव पाठांतरे (आदीणनोइवि) करेति पावं, मंताउ एगंतसमाहिमाहु ॥ बुद्धे समाहीयरते विवेगे, पाणातिवाता विरते ठियप्पा पाठांतरंवा (ठियच्ची) ॥ ६ ॥

अर्थ-(एतेसु के०) ए पूर्वोक्त पृथिव्यादिक जीवोने (बालेय के०) अज्ञानी जीव अनेक संघटन परिताप उपड्रवादिके करी (पकुव्वमाणे के०) पाप कर्म करतो थको वली तेजीव तेहिज पृथिव्यादिक जीवोने विषे आवीने (आवट्टती के०) घणा डुःख पामे. (कम्मसुपावएसुके०) जे पापकर्म पोते जेवा प्रकारे कर्युं होय ते पाप कर्म तेवा प्रकारे तेजीव नोगवे. हवे ते पाप कहेछे. (अतिवायतोकीरतिपावकम्मंके०) अतिवाय एटले जीवनी घात तेथकी ज्ञानावर्णादिक पाप कर्मने समाचरे (निउज्जमाणेउ करेइकम्मंके०) तथा बीजा सेवकादिकने पण जीवघातनी प्रेरणा करतो थको पाप कर्म बांधे, एटले हिंसा करतो करावतो तथा अनुमोदतो थको पाप कर्मनुं बंध करे; एमज मृषावादादिकने पण सेवतो सेवरावतो अनुमोदन करतो थको पाप कर्मनुं बंध करे. ॥५॥ (आदीणवित्तीवकरेतिपावं के०) दीन एटले दयामणी एवी, आहार लेवानी जेनी वृत्तिछे तेने आदीन वृत्ति कहिए; एवो उतो पण पापकर्म बांधे, केमके आहारनी लो ल्यता थकी आर्त्त रौड्र ध्याने वर्त्ते ते थकी कर्म बांधे, (मंताउएगंतसमाहिमाहुके०) एवुं जाणीने श्रीतीर्थंकर गणधरे संसार तरवारनुं कारण एकांते आहारादिकने अर्थे पण अरत्यादिक नकरे एवी समाधि कहीछे. (बुद्धसमाहीयरतेविवेगे के०) ते कारणे बुद्ध एटले तत्वनो जाण एवो साधु समाधिने विषे रत होय ते साधु विवेकी एवो उतो शुं करे ते कहेछे (पाणातिवाताविर तेठियप्पाके०) प्राणातिपात जे जीवनी हिंसा ते थकी विरमीने संयमने विषे जेनो आत्मा सत्यमार्गने विषे व्यवस्थितछे एवो थाय ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-एतेषु प्राणिषु बालोज्ञः संघट्टपरितापोपद्रवादि प्रकुर्वाणस्तेषु पापेषु कर्मसु सत्सु आवर्त्यते डुःखनाग्नवति अतिपाततोहिंसातः पापकर्मक्रिया नवध्यते परान् नृत्यादीन् नियोजयन् कर्म करोति प्राणातिपातादिकं कुर्वन् कारयंश्च कर्म बध्नातीति ॥ ५ ॥ आसमंताद्दीना करुणा वृत्तिस्तया नोजी आहारग्राही शोननाहारमप्राप्नुवन्नार्तं

रौद्रध्यानात्कर्म करोति बध्नाति । यथा राजगृहनगरोत्सवनिर्गतजनसमूहे कश्चिद्रमको निद्धार्या वांछिताहारमप्राप्तोवैभारगिरिशिलापातनोद्यतः सएव दैवात् शिलाधःपतितः शिलाचूर्णितः सप्तमपृथ्वीं जगामेति। एवमादीनभोजी कर्म बध्नाति एवं मत्वा ज्ञात्वा एकांतेन समाधिर्ज्ञानादिभावसमाधिस्तमाहुः संसारतारणक्षमं जिनाः।बुद्धोज्ञाततत्वः समाधौ ज्ञानादिके विवेकेवा रतोव्यवस्थितः प्राणातिपाताद्विरतः स्थितात्मा मर्यादावान् स्यात्॥६॥

॥टीका—अपिच (एतेसुइत्यादि) एतेषु प्राग्भिर्दिष्टेषु प्रत्येकं साधारणप्रकारेषूपतापक्रियया वाजवद्बालोज्ञश्चशब्दादितरोपि संघट्टनपरितापनोपद्रवणादिकेनानुष्ठानेन पापानि कर्माणि प्रकर्षेण कुर्वाणस्तेषुच पापेषु कर्मसु सत्सु एतेषु वा पृथिव्यादिजंतुषु गतः संस्तेनैव संघट्टनादिना प्रकारेणाऽनंतशश्चावर्त्यते पीड्यते दुःखभाग्भवतीति । पाठांतरंवा एवं तु वाले) एवमित्युपप्रदर्शने । यथा चौरः पारदारिकोवासदनुष्ठानेन हस्तपादछेदान् बंधवधादींश्चावाप्नोत्येवं सामान्यदृष्टेनानुमानेनान्योपि पापकर्मकारी इहामुत्रच दुःखभाग्भवति (आउट्टतित्ति) कचित्पाठः । तत्राशुभान् कर्मविपाकान् दृष्ट्वा श्रुत्वा ज्ञात्वा वा तेभ्योऽसदनुष्ठानेभ्यआवट्टतित्ति निवर्तते । कानि पुनः पापस्थानानि येभ्यः पुनः प्रवर्तते निवर्तते वा इत्याशंक्य तानि दर्शयति । अतिपाततः प्राणातिपाततः प्राणव्यपरोपणाद्धेतोस्तत्राष्टत्रं ज्ञानावरणादिकं कर्म क्रियते समादीयते तथा परांश्च भृत्यादीन प्राणातिपातादौ नियोजयन् व्यापारयन् पापं कर्म करोति। तुशब्दान्मृषावादादिकंच कुर्वन् कारयंश्च पापकं कर्म समुच्चिनोतीति ॥ ५ ॥ किंचान्यत् (आदीणवित्तीत्यादि) आसमंतादीना करुणास्पदा वृत्तिरनुष्ठानं यस्य कृपणवनीपकादेः सभवत्यादीनवृत्तिरेवंभूतोपि पापं कर्मकरोति। पाठांतरंवा आदीनभोज्यपि पापं करोतीति । उक्तंच । पिंडोलकेव दुःसीले णरगाउणमुच्चइ। सकदाचिद्भोजनमाहारमलभमानोऽल्पसत्वादार्तरौद्रध्यानोपगतोप्यधः सप्तम्यामप्युत्पद्येत। तद्यथा।असाविव राजगृहनगरोत्सवनिर्गतजनसमूहोवैभारगिरिशिलापातनोद्यतः सदैवात्स्वयं पतितपिंडोपजीवीति तदेवमादीनभोज्यपि पिंडोलकादिवज्जनः पापं कर्म करोतीत्येवं मत्वा अवधार्य एकांतेनात्यंतेन च योभावरूपोज्ञानादिसमाधिस्तमाहुः संसारोत्तरणाय तीर्थंकरगणधरादयः । द्रव्यसमाधयोहि स्पर्शादिसुखोत्पादकाश्चनैकांतिकाश्च नात्यंतिकाश्च भवंत्यंतेचावश्यमसमाधिमुत्पादयंति । तथाचोक्तं । यद्यपि निषेव्यमाणा, मनसः परितुष्टिकारकाविषयाः ॥ किंपाकफलादनवद्भवंति पश्चादतिदुरंताइत्यादि । तदेवं बुद्धोऽवगततत्वः सचतुर्विधे ज्ञानादिके समाधावैकांतिकात्यंतिकसुखोत्पादके रतोव्यवस्थितोविवेकेवा आहारोपकरणकषायपरित्यागरूपे द्रव्यभावात्मके रतः संभवं भूतश्च स्यादित्याह । प्राणानां दशप्रकाराणामप्यतिपातोविनाशस्तस्माद्विरतः स्थितः

सम्यक् मार्गेषु आत्मा यस्य सः । पाठांतरंवा (ठियञ्चित्ति) स्थिता शुद्धस्वभावात्मना अ र्चिर्लेश्या यस्य सभवति स्थितार्चिः सुविशुद्धस्थिरलेश्यइत्यर्थः ॥ ६ ॥

सव्वं जगं तं समयाणुपेही, पियमप्पियं कस्सइ णो करेज्जा ॥ उठा
य दीणोय पुणो विसन्नो, संपूयणं चेव सिलोयकामी ॥७॥ आहा
कडं चेव निकाममीणे नियामचारीय विसन्नमेसी ॥ इत्थीसु सत्तेय
पुढोय बाले, परिग्गहं चेव पकुव्वमाणे ॥ ८ ॥

अर्थ-(सव्वंजगंके०) सर्वजगत् एटले जीव अर्थात् छ निकायना जीव (तंके०) ते स र्वेने (समयाणुपेहीके०) समता भावे करी पोताना आत्मा समान देखे (पियमप्पियं के०) प्रीतिभावते राग अप्रीतिभाव ते द्वेष ए बन्ने (कस्सइके०) कोइ उपरे (णोकरे ज्जा के०) नकरे, एटले कोइ उपर सारुं मातुं चिंतवे नही, (उठायदीणोयके०) तथा कोइक चारित्र आदरी पछी तेने पालवा असमर्थ एटले दीन थाय (पुणोविसन्नोके०) वली विषयाभिलाषी थको गृहस्थपणु आदरे कंडरीकनी पेरे संसारमांहे खुचे, वली को इएक (संपूयणंचेव के०) वस्त्र पात्रादिके करी पूजा वांछे तथा (सिलोयकामी के०) लोकमांहे पोतानी श्लाघा कराववा माटे व्याकर्ण ज्योतिषादिक कुशास्त्र पण भणे, एवो पुरुष समाधि थकी भ्रष्ट जाणवो. ॥ ७ ॥ (अहाकडंचेवनिकाममीणे के०) आ धाकर्मि उद्देशी आहारने अत्यंत वांछतो थको तेवो आहार लेवाने अर्थे (नियामचा रीय के०) अत्यंत भ्रमण करे एवो छतो (विसन्नमेसिं के०) संसार रूप कादवमांहे खूतोज रहे. (इत्थीसुसत्तेयपुढोयबाले के०) स्त्रीने विषे आसक्त जुदा जुदा ते रमणी ना हाव भाव विलासने विषे गृद्ध छतो द्रव्य विना स्त्रीनी प्राप्ति नथाय एम विचारी ते बाल एटले अज्ञानी पुरुष (परिग्गहंचेवपकुव्वमाणे के०) परिग्रहजे धन धान्यादिक तेनो संचय करतो थको वली घणा पाप कर्मने उपार्जे अर्थात् पापनो संचय करे. ॥८॥

॥ दीपिका-सर्वं जगत् प्राणिगणं समतयानुप्रेक्षतइति समतानुप्रेक्षी प्रियमप्रियं वा कस्यचिन्न कुर्यात् निःसंगोविहरेदित्यर्थः । कश्चित्तु सम्यगुत्थानेनोत्थाय परीषहाभिर्दी नः पुनर्विपन्नः स्यात् संयममादृत्यापि पश्चात्पार्श्वस्थादिभावं प्रतिपद्यते कश्चिदित्यर्थः। तथा संपूजनं वस्त्रपात्रादिना प्रार्थयेत् श्लोककामी श्लाघाभिलाषी व्याकरणगणितनि मित्तादिशास्त्राण्यधीते कश्चित् ॥ ७ ॥ आधाकर्म आहारोपाध्यादिकं (निकाममीणे त्ति) अत्यर्थाभिलाषी तथा आधाकर्मादिनिमंत्रणेषु निकामचारी अत्यंतं प्रवृत्तोविष ण्णभावं संयमे शीतलत्वं एषते श्रयति । तथा स्त्रीषु सक्तः पृथक् तद्भाषितहसितवि

लासादिषु आसक्तोबालोज्ञोऽद्रव्यमंतरेण स्त्रीप्राप्तिर्नस्यादिति तदुपायभूतं परिग्रहं प्रकुर्वाणः पापमेव बध्नाति ॥ ८ ॥

॥ टीका–किंच (सव्वंजगमित्यादि) सर्वं चराचरं जगत् प्राणिसमूहं समतया प्रेक्षितुं शीलमस्य समतानुप्रेक्षी समतापश्यकोवा नकश्चित्प्रियोनापि द्वेष्यइत्यर्थः । तथा चोक्तं । नत्थि यस्स कोइविस्सो, पिउंसव्वेसु चेवजीवेसु । तथा (जहममणपियं दुःखमित्यादि) समतोपेतश्च न कस्यचित्प्रियमप्रियं वा कुर्यान्निःसंगतया विहरेदेवं हि संपूर्णभावसमाधियुक्तोभवति। कश्चित्तु भावसमाधिना सम्यगुत्थानेनोत्थाय परीषहोपसर्गैस्तर्जितोदीनभावमुपगम्य पुनर्विषण्णोभवति विषयार्थीवा कश्चिद्गार्हस्थ्यमप्यवलंबते रससातागौरवगृद्धोवा पूजासत्काराभिलाषी स्यात्तदभावे दीनः सन् पार्श्वस्थादिभावेन वा विषण्णोभवति । कश्चित्तथा संपूजनं वस्त्रपात्रादिना प्रार्थयन् श्लाघाभिलाषीच व्याकरणगणितज्योतिषनिमित्तशास्त्राण्यधीते कश्चिदिति ॥ ७ ॥ किंचान्यत् (आहकडंचेत्यादि) साधूनाधायोद्दिश्य कृतं निष्पादितमाधाकर्मेत्यर्थः । तदेवंभूतमाहारोपकरणादिकं निकाममत्यर्थं यः प्रार्थयते स निकाममीणः । तथा निकाममत्यर्थं आधाकर्मादीनि तन्निमित्तनिमंत्रणादीनि वा सरति चरति तच्छीलश्च सतथा एवंभूतं पार्श्वस्थावसन्नकुशीलानां संयमोद्योगे विषण्णानां विषण्णभावमेषते सदनुष्ठानविषण्णतया संसारपंकावसन्नोभवतीति यावत् । अपिच स्त्रीषु रमणीष्वासक्तोऽभ्युपपन्नः पृथक्पृथक् तद्भाषितहसितविब्बोकशरीरावयवेष्विति । बालवद्बालो ज्ञः सदसद्विवेकविकलस्तदवसक्ततया च नान्यथा द्रव्यमंतरेण तत्संप्राप्तिर्भवतीत्यतो येन केनचिदुपायेन तदुपायभूतं परिग्रहमेव प्रकर्षेण कुर्वाणः पापं कर्म समुच्चिनोतीति॥८

वेराणुगिद्धे (पाठांतरे आरंभसत्तो) णिचयं करेति, इउ चुतेसु दुहमट्ठुग्गं ॥ तम्हा उ मेधावि समिरककधम्मं, चरे मुणी सव्वउ विप्पमुक्के ॥ ए ॥ आयं ण कुज्जा पाठांतरे (छंदं ण कुज्जा) इह जीवियठी, असज्जमाणोय परिव्वएज्जा ॥ णिसम्म भासीय विणीय गिद्धिं,हिंसन्नियं वा ण कहं करेज्जा ॥१०॥

अर्थ–(वेराणुगिद्धेके०) जे कोइ परोपताप रूप कर्मेकरी वैरनुं अनुबंध करे तेने वेराणुगृद्ध कहिये. अथवा (आरंभसत्तोणिचयंकरेति के०) आरंभने विषे आसक्त थतो कर्मनो संचय करे एवो पुरुष (इउचुतेसुके०)अहीं थकी चवीने ते (दुहमट्ठुग्गंके०) परमार्थ थकी दुर्ग एटले विषम दुष्कर एवुं नरकादिक स्थानकने पामे, (तम्हाउ के०)ते कारण माटे (मेधाविके०) पंमित होय ते (समिरककधम्मं के०) सम्यक् प्रकारे आलोचीने श्रुत चारित्ररूप धर्मजे श्रीवीतरागे भाष्योछे. तेने विषे (चरेके०) विचरे एवो (मुणी

के०) साधु (सव्वउविप्पमुक्के के०) सर्व संग थकी विप्र मुक्त हतो विचरे ॥ ए ॥ (इहजीवियही) साधु आ संसार मांहे आजीविकाने अर्थे (आयंके०) लाभ एटले द्रव्यादिक उपार्जन करवानो उपाय ते (णकुज्जा के०) नकरे तथा (असज्जमाणोयपरिव्वएज्जा के०) गृह पुत्र कलत्रादिकनो समागम अणकरतो थको संयमने विषे प्रवर्त्ते, शुद्ध चारित्रपाले (णिसम्मनासीयविणीयगिध्धिंके०) तथा कोइ कार्य उपना थका विमासीने बोले पण भुंरु बोले नही एटले शब्दादिक पांच प्रकारना विषयने विषे गृद्धपणु टालीने आलोचीने बोले अर्थात् (हिंसन्नियंवाणकहंकरेज्जा के०) प्राणीनी हिंसाकारक एवी कथा नकरे, एटले जे वचन थकी जीव हणाय नही तेवा वचन बोले ॥ १० ॥

॥ दीपिका—वैरानुगृद्धः परोपतापसक्तोनिचयं कर्मबंधं करोति । इतोभवाच्युतः सदुःखमुपैति । किंभूतं दुःखं । अर्थदुर्गं परमार्थविषमं तस्मान्मेधावी विवेकी धर्मं समीक्ष्य विचार्य मुनिः सर्वतोविप्रमुक्तोनिःस्पृहः सन् चरेत्संयमे ॥ए॥ आयमिति । आयं द्रव्यादि संचयं नकुर्यात् । इहभवे असंयमजीवितार्थी तथा असज्जमानः संगमकुर्वन्परिव्रजेत् गृद्धिं आसक्तिविषयेषु विनीय त्यक्त्वा निशम्य पर्यालोच्य भाषकोभवेत् हिंसयान्वितां युक्तां कथां नकुर्यान्न ब्रूयात् ॥ १० ॥

॥ टीका—तथा (वेराणुगिद्धेइत्यादि) येन केन कर्मणा परोपतापरूपेण वैरमनुबध्यते जन्मांतरशतानुयायि भवति तत्रगृद्धोवैरानुगृद्धः । पाठांतरंवा (आरंभसत्तोत्ति) आरंभे सावद्यानुष्ठानरूपे सक्तोलग्नोनिरनुकंपोनिचयं द्रव्योपचयं तन्निमित्तापादितकर्मनिचयं स्थानाच्युतोजन्मांतरं गतः सन् वा करोत्युपादत्ते सएवंभूतउपात्तवैरः कृतकर्मोपचय इत्यतोऽस्मात्स्थानाच्युतोजन्मांतरंगतः सन्ः दुःखयतीति दुःखं नरकादिकयातनास्थानमर्थतः परमार्थतोदुर्गं विषमं दुरुत्तरमुपैति । यतएवं तत्तस्मान्मेधावी विवेकी मर्यादावान् वा संपूर्णसमाधिगुणं जानानोधर्मं श्रुतचारित्राख्यं समीक्ष्यालोच्यांगीकृत्य मुनिः साधुः सर्वतः सबाह्यभ्यंतरात्संगाद्विप्रमुक्तोऽपगतः संयमानुष्ठानं मुक्तिगमनैकहेतुभूतं चरेदनुतिष्ठेत् रुयारंभादिसंगाद्विप्रमुक्तोनिःश्रितभावेन विहरेदिति यावत् ॥ ए ॥ किंचान्यत् (आयंणकुज्जाइत्यादि) आगच्छतीत्यायोद्रव्यादेर्लाभस्तन्निमित्तापादितोऽष्टप्रकारकर्मलाभो तमिहास्मिन् संसारे असंयमजीवितार्थी भोगप्रधानजीवितार्थीत्यर्थः । यदिवा आजीविकाभयात् द्रव्यसंचयं न कुर्यात् । पाठांतरंवा (छंदंणकुज्जाइत्यादि) छंदः प्रार्थनाभिलापइंद्रियाणां स्वविषयाभिलाषोवादं नकुर्यात्तथा असज्जमानः संगमकुर्वन् गृहपुत्रकलत्रादिषु परिव्रजेदुद्युक्तविहारी भवेत्तथा गृद्धिं गार्ध्यं विषयेषु शब्दादिषु विनीयापनीय निशम्यावगम्य पूर्वोत्तरेण पर्यालोच्य भाषकोभवेत् । तदेव दर्शयति । हिंसया प्रा

ग्युपमर्दरूपया अन्वितां युक्तां कथां न कुर्यात् । नतत्प्रब्रूयात् यत्परात्मनोरुजयोव बाधकं वचइति जावः । तद्यथा । अश्नीतपिबत खादतमोदत हतछिंदत प्रहरतपचते त्यादिकथां पापोपादानजूतां नकुर्यादिति ॥ १० ॥

आहाकडं वा ण णिकामएज्जा, णिकामयं तेयण संथवेज्जा॥ धुणे उरालं अणुवेहमाणे, विच्चाण सोयं अणवेरकमाणो ॥ ११ ॥ एगंतमेयं अजिपत्थएज्जा, एवं पमोरको न मुसंति पासं॥ एस प्पमोरको अमुसे वरेवि, अकोहणे सच्चरते तवस्सी ॥ १२ ॥

अर्थ–(आहाकडंवाणणिकामएज्जा के०) आधाकर्मि प्रमुख आहारादिकनो सर्व था प्रकारें साधु अजिलाष करे नही (णिकामयंतेयणसंथवेज्जा के०) तथाजे आधा कर्मि आहारनी वांछना करे एवा पासत्थादिक तेने संस्तवे नही एटले तेनी साथे परि चय करे नही. तथा (उरालं के०) शरीर तेने (धुणे के०) कृश करे (अणुवेहमा णो के०) निर्जराने आलोचीने एम विचारेजे शरीरने कृश करियें तो निर्ज्जरा थाय. एम चिंतवी शरीर कृश करतां कदाचित् शोक डुःखउपजे तो (विच्चाणसोयंअणवेरकमा णे के०) शरीरनु ममत्व अण करतो ते शोक छांमी चारित्र पाले, संयम गुणे साव धान थाय ॥ ११ ॥ (एगंतमेयंअजिपत्थएज्जा के०) साधु एकत्व पणानीज प्रार्थना करे एटले एकत्व पणु वांछे कारणके जीव एकलो आव्यो तथा परजवे डुर्गतिने विषे जाय तेवारे पण एकलोज जाय पण कोइ एने सहायी थाय नही. एकलोज कर्म बांधे एकलोज जोगवे. ते माटे एकत्व जावना जावे (एवंपमोरको नमुसंतिपासं के०) एम ए कत्व जावनायें प्रकर्षे करी मोक्ष एटले संगरहित पणो, थाय. एम देखीने मृषा एटले अलीक जाषा बोले नही (एसप्पमोरकोके०) एम एकत्व जावनानो अजिप्राय ते प्रकर्षे करी मोक्षने (अमुसेवरेविके०) मृषा रहित एवो प्रधान सत्यपणु एनेज जाव समाधि कहिए जे साधु (अकोहणे के० अक्रोधि क्षमावंत (सच्चरतेके०) सत्यने विषे रत (तवस्सीके० तथा तपस्वी एवो चारित्रानुष्ठानवान् एवो जे साधु ते साधु जावसमाधिवंत जाणवो.॥१२॥

॥ दीपिका–आधायकृतमाधाकर्मादि न कामयेन्नाजिलपेत् तथाविधाहारमजिलप माणात् पार्श्वस्थादीन्नसंस्तुयात् तैः समं परिचयं न कुर्यात् उदारं उदारिकशरीरं विकृष्टतप सा निर्जरामनुप्रेक्षमाणोधुनीयात् कृशं कुर्यात् । तथानुकम्प्यपि शोकं त्यक्त्वाऽनपेक्षमा णः शरीरनिरापेक्षोधुनीयात् ॥ ११ ॥ एकत्वमसहायत्वं प्रार्थयेत् एकत्वजावनां जाव येदित्यर्थः । एवमेकत्वजावनया प्रकर्षेण मोक्षः स्यादिदं न मृषा इति पश्य सत्यमेवैतदि

ति विचारय एषएव एकत्वानिप्रायः अमृषारूपः सत्योवरः प्रधानश्च । यदि वा अक्रोधनः सत्यरतस्तपस्वी सएव नावसमाधिवान् वरः प्रधानः स्यात् ॥ १२ ॥

॥ टीका–अपिच । (आहाकडंचेत्यादि) साधूनाधाय कृतमाधाकृतमौद्देशिकमाधाकर्मेत्यर्थः । तदेवंनूतमाहारजातं निश्चयेनैव नकामयेन्नानिलषेत्तथा विहारादिकंच निकामं निश्चयेनानिलषेत् पार्श्वस्थादींस्तत्संपर्कदानप्रतिग्रहसंनाषणादिनिर्न संस्थापयेन्नोपबृंहयेत्तैर्वा सार्धं संस्तवं न कुर्यादिति । किंच (उरालंति) औदारिकं शरीरं विशिष्टतपसा कर्मनिर्जरामनुप्रेक्षमाणोधुनीयात् कृशं कुर्यात् । यद्विवोरालंति बहुजन्मांतरसंचितं कर्म तडुदारं मोक्षमनुप्रेक्षमाणोधुनीयादपनयेत्तस्मिंश्च तपसा धूयमाने कृशीनवति । शरीरके कदाचित् शोकः स्यात्तं त्यक्त्वा याचितोपकरणवदनप्रेक्षमाणः शरीरकं धुनीयादिति संबंधः ॥११॥ किंचापेक्षितेत्याह । (एगंतमेवेत्यादि) एकत्वमसहायत्वमनिप्रार्थयेदेकत्वाध्यवसायी स्यात् । तथाहि । जन्मजरामरणरोगशोकाकुले संसारे स्वकृतकर्मणा विलुप्यमानानामसुमतां न कश्चित्राणसमर्थः सहायः स्यात् । तथाचोक्तं । एकोमेसासउअप्पा, णाणदंसणसंजुउ ॥ सेसामेबाहिरानावा, सव्वे संयोगलरकणाइत्यादिकामेकनावनां नावयेदेवमनयैकत्वनावनया प्रकर्षेण मोक्षः प्रमोक्षोविप्रमुक्तसंगता न मृषा अलीकमेतद्भवतीत्येवंपश्य। एषचैकत्वनावनानिप्रायः प्रमोक्षोवर्तते अमृषारूपः सत्यश्चायमेव। तथा वरोपिप्रधानोप्ययमेव नावसमाधिर्वा। यदिवा तपस्वी तपोनिष्टप्तदेहोऽक्रोधनः। उपलक्षणार्थत्वादस्यामानोनिर्मायोनिर्लोनः सत्यरतश्च एषएव प्रमोक्षोऽमृषा सत्योवरः प्रधानश्च वर्ततइति॥१२

इब्बीसु या आरय मेहुणाउ, परिग्गहं चेव अकुव्वमाणे॥ उच्चावए
सु विसएसु ताई, निस्संसयं निरकु समाहिपत्ते॥ १३ ॥ अरई
रइंच अनिनूय निरकू, तणाइफासं तह सीयफासं ॥ उण्हंच दं
संच हियासएक्षा, सुप्निंव डुप्निंव तितिरकएक्षा ॥ १४ ॥

अर्थ–(इब्बीसुया के०) स्त्रीने विषे (मेहुणाउ के०) मैथुन सेववा थकी (आरय के०) निवर्त्ते (परिग्गहं चेवअकुव्वमाणे के०) तथा धन धान्यादिक परिग्रहनो संचयअणकरतो थको तथा (उच्चावएसु विसएसुताईके०) नाना प्रकारना मनोज्ञ एवा वचनना जे प्रकार तेने विषे अथवा नाना प्रकारना विषय तेने विषे राग द्वेष रहित होय, तथा त्राइ एटले बकायनो रक्षपाल थको (निस्संसयं निरकु समाहिपत्ते के०) एवो नाव समाधिने विषे प्राप्त थयलोजे साधु, ते विषयने निसंश्रय एटले नपामे एटले विषयने वांबे नही ॥ १३ ॥ हवे नाव थकी समाधि शीरीते साधु पामे ते देखाडेबे. (अरई रइंच अनिनूय निरकू के०) ते नाव साधु परमार्थनो जाण शरीरादिकने विषे निस्पृ

न्हि थको तथा संयमने विषे अरति अने असंयमने विषे रति तेने टालीने (तणाइ फा संतहसीयफासं के०) तृणादिकनो कठोर स्पर्श सहन करे. आदिशब्दथकी उंचो नी चो प्रदेश तेनो स्पर्शपण जाणवो ते स्पर्शनेपण सहन करे तथा शीत प्रमुखनुं स्पर्श तथा (उएहंचदंसंच हियासएज्जा के०) उष्णनो स्पर्श. दंशमसकादिकनो स्पर्श तेनेपण साधु सम्यक् प्रकारे सहन करे तथा (सुब्भिव डुब्भिवतितिरकएज्जाके०) समाधिवंत साधु सुनिरगंध डुरन्निगंधना परिसहने पण सम्यक् प्रकारे अहियासे एटले सहन करे ॥ १४॥

॥ दीपिका—स्त्रीषु यन्मैथुनं न स्यात् आरतआसमंताद् रतोऽसक्तः परिग्रहमकुर्वन् उच्चा वचेषु ननाविधेषु विषयेषु अरक्तद्विष्टस्त्रायी परेषां त्राणजूतोनिःसंशयं जिक्कुरेवंजूतः साधुः समाधिप्राप्तः स्यात् ॥ १३॥ अरतिं रतिंवा अजिजूय जिक्कुस्तृणादिस्पर्शान् शीतोलस्पर्शान् दंशमशकादीन् परीषहांश्चाधिसहेत सुरजिमसुरजिं वा गंधं तितिक्षेत्सहेत ॥ १४ ॥

टीका—किंचान्यत् (इत्थीसुइत्यादि) दिव्यमानुषतिर्यग्रूपासु त्रिविधास्वपि स्त्रीषु विषय जूतासु यन्मैथुनमब्रह्म तस्मादासमंतान्नरतोऽरतोनिवृत्तइत्यर्थः । तु शब्दात्प्राणातिपातादि निवृत्तश्च । तथा परिसमंताज्जृह्यते इति परिग्रहोधनधान्यद्विपदचतुष्पदादिसंग्रहः। तथा आ त्माऽत्मीयग्रहस्तं चैवाकुर्वाणः सन्नुच्चावचेषु नानारूपेषु विषयेषु । यदिवोच्चाउत्कृष्टाश्च वचाजघन्यास्तेष्वरक्तद्विष्टस्त्राय्यपरेषांच त्राणजूतोविशिष्टोपदेशदानतोनिःसंशयं नि श्चयेन परमार्थतोजिक्कुः साधुरेवंजूतोमूलोत्तरगुणसमन्वितोजावसमाधिं प्राप्तोजवति नापरः कश्चिदिति । उच्चावचेषु वा विषयेषु वा जावसमाधेः प्राप्तोजिक्कुर्न संश्रयं याति नानारूपान् विषयान नसंश्रयतीत्यर्थः ॥ १३ ॥ विषयाननाश्रयन् कथं जावसमाधिमा प्नुयादित्याह । (अरइंरइंचेत्यादि) सजावजिक्कुः परमार्थदर्शी शरीरादौ निस्पृहोमोक्षग मनैकप्रवणश्च या संयमेऽरतिरसंयमेच रतिर्वा तामजिजूय एतदधिसहेत। तद्यथा। निष्किं चनतया तृणादिकान स्पर्शानादिग्रहणान्निम्नोन्नतजूतप्रदेशस्पर्शांश्च सम्यगधिसहेत तथा शीतोलदंशमशकक्षुत्पिपासादिकान् परीषहानक्षोज्यतया निर्जरार्थमध्यासहेदधि सहेत तथा गंधं सुरजिमितरं च सम्यक् तितिक्षयेत्सह्यात् । चशब्दादाक्रोशवधादिकां श्च परिषहान्मुमुक्षुस्तितिक्षयेदिति ॥ १४ ॥

गुत्तो वईएय समाहिपत्तो, लेसं समाहट्टु परिव्वएज्जा ॥ गिहं न
छाए णवि छायएज्जा, संमिस्सजावं पयहे पयासु ॥ १५ ॥ जे के
इ लोगंमि उ अकिरियआया,अन्नेण पुछा धुयमादिसंति ॥ आ
रंजसत्ता गढिताय लोय, धम्मं ण जाणंति विमुक्खहेउं ॥ १६ ॥

अर्थ—(गुत्तोवईएयसमाहिपत्तो के०) वचने करी गुप्त मौनव्रती एटले विचारीने धर्म संबंधनुं जाषण करनार एवो साधु जाव समाधिने विषे पोहोतो कहेवाय; तथा (लेसंसमाहट्टु परिवएज्जा के०) कृष्ण, नील अने कापोत ए त्रण अशुजलेश्याने परिहरिने तेज, शुक्ल अने पद्म ए त्रण शुज लेश्याने ग्रहण करीने संयमानुष्ठान पाले, (गिहंनछाएणविछायएज्जा के०) तथा पोते घरने छाहे नही बीजाने हाथे छवरावे नही उपलक्षण थकी छवरावताने अनुमोदे नही; तथा बीजा पण गृहस्थ पणाना कर्तव्यने परिहरे तथा (पयासु के०) प्रजालोकने विषे (सम्मिस्सजावं के०) विषयमिश्रित जाव नो (पयहे के०) त्याग करे जे पचन पाचनादिक क्रिया करता गृहस्थ समान थाय ते नकरे अथवा प्रजा एटले स्त्री तेनी साथें मिश्रजावनो त्याग करे एटले स्त्री थकी दूर रहे. ॥ १५ ॥ (जेकेइ लोगंमिउ अकिरियआया के०) जे कोइ सांख्य दर्शनी लोक मांहे एम कहेछे के आत्मा अक्रियछे आत्माने क्रिया नथी, पण प्रकृति सर्व क्रिया करेछे एम बंध मोक्षने अण मानता थका बोलेछे (अन्नेणपुट्ठा धुयमादिसंति के०) तेने अन्य दर्शनी कोइ पूछे के तमारा मते जो आत्मा कर्त्ता नथी तो बंध मोक्ष केम घटे तेवारे तेने फरी एमज कहेके अमारा दर्शनमांज ध्रुव एटले मोक्षछे परंतु अन्य कोइ दर्शने मोक्ष नथी एवा ते (आरंजसत्ता गढितायलोय के०) पचन पाचन स्नानादिकना आरंजने विषे आसक्त छता अत्यंत गृध्द एवा थका रहेछे परंतु ते कहेवाछे तोके आ लोकने विषे (धम्मंणयाणंतिविमुक्खहेउं के०) मोक्षनो हेतु एवो जे श्रुत चारित्र रूप धर्म तेने नथी जाणता एवाछे. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—वाचा गुप्तोमौनव्रती समाधिप्राप्तः स्यात् । शुक्लां लेश्यां समाहृत्यादाय परिव्रजेत् संयमेगृहं स्वतोन्येनवा न छादयेत् अपरमपि गृहसंस्कारं किंचिन्न कुर्यात् । तथा प्रजाः स्त्रियस्तासु मिश्रजावमेकत्वं प्रजह्यात्त्यजेत् ॥ १५ ॥ ये केचिल्लोकेऽक्रियात्मानोऽक्रियावादिनः सांख्याः । तुर्विशेषेणे । तेऽन्येनाऽक्रियत्वे सति बंधमोक्षौ नघटेते इत्यजिप्रायवता पृष्टाः संतोधूतं मोक्षं क्रियासाध्यमादिशंति । तेतु पचनाद्यारंजसक्तास्तु लोके धर्मं श्रुतचारित्राख्यं विमोक्षहेतुं न जानंति ॥ १६ ॥

॥ टीका—किंचान्यत् (गुत्तोवईए इत्यादि) वाचि वाचा वा गुप्तोवाग्गुप्तोमौनव्रती सुपर्यालोचितधर्मसंबंधजापीवेत्येवं जावसमाधिं प्राप्तोजवति । तथा शुक्लां लेश्यां तैजस्यादिकां समाहृत्योपादाय अशुक्लांच कृष्णादिकामपहृत्य परिसमंतात्संयमानुष्ठानेन व्रजेच्छेदिति । किंचान्यत् गृहमावसथं स्वतोन्यैर्वा नविछादयेडुपलक्षणार्थत्वादस्यापरमपि गृहादेरुरगवत्परकृतबिलनिवासित्वात्संस्कारं न कुर्यात् । अन्यदपि गृहस्थकर्तव्यं परिजिहीर्षुराह ।

प्रजायंतइति प्रजास्तासु तद्विषये येन कृतेन सन्मिश्रन्नावोन्नवति तत्प्रजह्यात्।तडुक्तं नव ति। प्रव्रजितोपि सन् पचनपाचनादिकां क्रियांकुर्वन् कारयंश्च गृहस्थैः सन्मिश्रनावं नजते यदिवा प्रजाः स्त्रियस्तासु तानिर्वा यः सन्मिश्रीनावस्तमविकलसंयमार्थी प्रजह्यात्परि त्यजेदिति ॥ १५ ॥ अपिच । (जेकेइइत्यादि) ये केचन अस्मिन् लोके अक्रियआत्मा येषामन्युपगमं तेऽक्रियात्मानः सांख्यास्तेषां हि सर्वव्यापित्वादात्मा निष्क्रियः पठ्यते। तथाचोक्तं । अकर्ता निर्गुणोनोक्ता, आत्मा कपिलदर्शनइति । तुशब्दोविशेषणे । सचै तद्विशिनष्टि । अमूर्तत्वव्यापित्वान्यामात्मनोऽक्रियत्वमेव बुध्यते । तेचाक्रियात्मवादिनो न्येनाक्रियत्वे सति बंधमोक्षौ नघटेते इत्यन्निप्रायवता मोक्षसन्नावं पृष्टाः संतोऽक्रियावा ददर्शनेपि धूतं मोक्षं तदन्नावमादिशंति प्रतिपादयंति तेतु पचनपाचनादिके स्नानार्थं जलावगाहनरूपे वाऽरंन्ने सावद्ये सक्ताअध्युपपन्नालोके मोक्षैकहेतुनूतं धर्मं श्रुतचा रित्राख्यं न जानंति कुमार्गग्राहिणोन सम्यगवगछंतीति ॥ १६ ॥

पुढोय ढंदा इह माणवाउ, किरियाकिरीणं च पुढोय वायं ॥जायस्स वा लस्स पकुव देहं, पाठांतरे (जायाई वालस्स पगप्नणाए) पवट्टती वेरम संजतस्स ॥ १७ ॥ आउक्खयं चेव अबुझमाणे, ममाति से साहसकारि मंदे ॥ अहोयराउ परितप्पमाणे, अट्टेसु मूढे अजरामरेव ॥ १८ ॥

अर्थ-(इहमाणवाउ के०) आलोकने विषे जे मनुष्यछे ते प्रत्येकमनुष्य (पुढोयढंदा के०) पृथक् पृथक् जुदा जुदा ढंद एटले आन्निप्राय वालाछे ते अन्निप्राय कोण कोणते देखाडेछे (किरियाकिरीणंचपुढोयवायं के०) क्रियावादी एम कहेछे के सर्वकाल क्रियाज सफलछे. अने अक्रियावादी एम कहेछे के क्रिया कर्याविनाज सर्व इच्छित पदार्थनी प्राप्ति थायछे. एमज वली बीजा विनय प्रमुख वादीउ पण जाणी लेवा ए सर्व पुढोय एटले पृथ क पृथक वायं एटले वदेछे; परंतु ते धर्मना अजाण बापडा (जायस्सवालस्सपकुव्वदे हं के०) जात एटले उत्पन्न थयेला बालकनी देहं एटले शरीर तेने खंम खंम करी ने पोताने सुख उपजावे ठे, तथा पाठांतरे जायाइवालस्सपगप्नणाए एवो पण पाठ ठे एवीरीते करतां ते (असंजतस्स के०) असंयति एटले संयम रहित थका (पवट्ट तीवेर के०) वेरने वधारेछे एटले जे जीवनी उपघात करे तेते जीवनी साथे वैरनी वृ द्धि थायछे. ॥ १७ ॥ ते बापडा (आउक्खयं के०) आयुष्यना क्षयने (अबुझमा णे के०) अजाणता एटले आयुष्य खूटेछे तेने नथी जाणता. अहीं चेव पदपूर्णार्थे ठे एवा उता (ममाति के०) अत्यंत ममत्व करेछे एटले आ माहारुं हुं एनो एवा

ममत्वने नथी मूकता (सेसाहसकारिमंदे के०) ते महोटा साहासीक एटले पाप थकी बीता नथी एवा मंद एटले अज्ञानी (अहोयराउपरितप्पमाणे के०) अहोरात्र परित प्तमान एटले इव्यने अर्थे मम्मण श्रेष्ठिनी पेरे पश्चाताप करे कायक्लेशकरे तथा (अ ट्टेसुमूढेअजरामरेव्व के०) आर्त्तवंत थया थका एवा ते मूर्ख संसारने विषे परिच्रमण करे परंतु अजरामर वणिकनी पेरे कोइ काले मनमां एम नजाणे जे अमने जरा अने मरण अवश्य आवशे एमविचारेनही. एवाते मूर्ख अज्ञानी जाणवा ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–पृथक्छंदानानाजिप्रायाइह मनुष्यलोके मानवाः । तुर्निश्चये । क्रियाक्रिय योः पृथक्त्वेन क्रियावादमक्रियावादं च समाश्रिताः।जातस्य उत्पन्नस्य बालस्याज्ञस्य सु खैषिणोदेहं (पकुव्वत्ति) खंडशःकृत्वाऽऽत्मसुखमुत्पादयंति। एवंकुर्वतोऽसंयतस्य वैरं प्राणि पु प्रवर्धते ॥ १७ ॥ आयुःक्षयं जीवितांतमबुध्यमानोऽजानन् साहसमविमृश्य प्रवृत्ति स्तत्करणशीलः साहसकारी मंदोममायमिति ममत्ववान् नवति । यथा कश्चिद्वणिक् महता क्लेशेन बहुमूल्यरत्नानि प्राप्य उज्जयिन्याबहिरावासितः सच राजचौरदायादनयाङा त्रौ रत्नान्येवमेवं नगरे नयामीत्येवं विचाराकुलोनिशाक्षयं नज्ञातवान् दिवैव रत्नानि प्र वेशयन् राजपुरुषैर्धृतोरत्नानि गृहीतानिचेति । एवमन्योपि किंकर्तव्यताकुलः स्वायुःक्ष यमजानन् ममतया साहसकारी स्यादिति । अन्हि रात्रौ च परितप्यमानोमंमणवणि ग्वदार्तध्यानी अर्थेषु मूढोऽजरामरवत्क्लिश्यते ।यतः । अजरामरवद्बालः क्लिश्यते धन काम्यया ॥ निरंतरं मन्यमानः शाश्वतं जीवितं धनमिति ॥ १८ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (पुढोयछंदाइत्यादि) पृथक् नाना छंदोऽनिप्रायोयेषां ते पृथ क्छंदाइहास्मिन्मनुष्यलोके मानवामनुष्याः । तुरवधारणे। तमेव नानाजिप्रायमाह । क्रि याऽक्रिययोः पृथक्त्वेन क्रियावादमक्रियावादंच समाश्रिताः।तद्यथा । क्रियैव फलदा पुं सां, नज्ञानं फलदं मतं ॥ यतः स्त्रीजक्ष्यनोगज्ञो, न ज्ञानात्सुखितोनवेत् ॥१॥ इत्येवं क्रियैव फलदायित्वेनाभ्युपगताः क्रियावादमाश्रिताएवमेतद्विपर्ययेणाऽक्रियावादमाश्रि ताः।एतयोश्चोत्तरस्वरूपं न्यक्षेण वक्ष्यते। तेच नानाजिप्रायामानवाः क्रियाक्रियादिकं पृ थग्वादमाश्रितामोक्षहेतुं धर्ममजानानाआरंनेषु सक्ताइंद्रियवशगारससातागारवाजि लापिणएतत्कुर्वंति । तद्यथा । जातस्योत्पन्नस्य बालस्याज्ञस्य सदसद्विवेकविकलस्य सु खैषिणोदेहं शरीरं पकुव्वति खंडशः कृत्वात्मनः सुखमुत्पादयंति। तदेवं परोपघातक्रियां कुर्वतोऽसंयतस्य कुतोप्यनिवृत्तस्य जन्मांतरशतानुबंधिवैरं परस्परोपमर्दकारि प्रकर्षेण व र्धते। पागंतरंवा (जायाइबालस्सपगब्नणाए) बालस्याज्ञस्य हिंसादिषु कर्मसु प्रवृत्तस्य निरनुकंपस्य या जाता प्रगल्नता धार्ष्ट्यं तया वैरमेव प्रवर्धतइति संबंधः ॥ १७ ॥ अ

पिच । (आउरकयमित्यादि) आयुषोजीवनलक्षणस्य क्षयआयुष्कक्षयस्तमारंजप्रवृत्तिन्नहृदमत्स्यवडुदकक्षये सत्यवबुध्यमानोत्तीव ममइति ममत्ववानिदं मे अहमस्य स्वामीत्येवं समंदोज्ञः साहसं कर्तुं शीलमस्येति साहसकारीति । तद्यथा । कश्चिद्वणिक् महाक्लेशेन महार्घाणि रत्नानि समासाद्योज्जयिन्याबहिरावासितः । सच राजचौरदायादजयाइत्नो रत्नान्येवमेवंच प्रवेशयिष्यामित्येवं पर्यालोचनाकुलोरजनीक्षयं न ज्ञातवान् अन्हेव रत्नानि प्रवेशयन् राजपुरुषैरत्नेभ्यश्च्यावितइति एवमन्योपि किंकर्तव्यताकुलः स्वायुषः क्षयमबुध्यमानः परिग्रहेष्वारंजेषु च प्रवर्तमानः साहसकारी स्यादिति । तथा कामन्नोगतृषितोऽन्हि रात्रौ च परिसमंतात् ड्व्यार्थी परितप्यमानोमंमणवणिग्वदार्तध्यायी कायेनापि क्लिश्यते । तथाचोक्तं । अजरामरवद्वालः, क्लिश्यते धनकाम्यया ॥ शाश्वतं जीवितं चैव. मन्यमानोधनानिच ॥ १ ॥ तदेवमार्तध्यानोपहतः । कइयावञ्चइसथ्यो. किंन्नंडंकव्वकिंत्तियाऌमीत्यादि । तथा उरकणइखणइणिहणइरत्ति नतुयइदियावियससंको इत्यादि चित्तसंक्लेशात्सुष्ठु मूढोजरामरवणिग्वदजरामरवदात्मानंमन्यमानोऽपगतशुनाध्यवसायोहर्निशमारंन्ने प्रवर्ततइति ॥ १८ ॥

जहाहि वित्तं पसवोय सव्वं,जे बंधवा जेय पियाय मित्ता॥लाल
प्पती से विय एइ मोहं, अन्ने जणा तंसि हरंति वित्तं ॥१९॥ सी
हं जहा खुड्डमिगा चरंता,दूरे चरंती परिसंकमाणा ॥ एवं तु मे
हावि समिरक धम्मं, डरेण पावं परिवज्जएज्जा ॥ २० ॥

अर्थ–(जहाहि के०) यथा दृष्टांते (वित्तं के०) सुवर्णादिक ड्व्य तथा (पसवोय के०) गाय नेश प्रमुख पशुउं (सव्वं के०) ए सर्व तारो त्याग करशे माटे एमने विषे ममत्व करीश नही. वली (जेवंधवा जेयपियायमित्ता के०) यथा दृष्टांते नाइ माता पिता स्वसुरादय प्रिय मित्र ते पण परमार्थे थकी तने काम नही आवे तोपण तुं या पडो तेमने अर्थे विलाप करेछे. (लालप्पतीसेविय एइमोहं के०) लालप्यते सोपिमोहंचपेनि एटले वित्त पुत्रादिकने अर्थे लाल पाल करेछे एम ते बापडो कुमरीकनी पेरे मोहपाशे पड्यो थको (अन्नेजणातंसि हरंतिवित्तं के०) पछी तेनुं उपार्जन करेलुं वित्त तेने बीजा जन अपहरे ए प्रकारे जीवतां तथा मरण पाम्या पछी पण तेने क्लेश ज थाय ॥ १९ ॥ (जहाके०) जेम खुड्डमिगाचरंता के० (क्षुड़ मृग एटले न्हानाएवा मृग प्रमुख अटवीनेविषे विचरनार जीवोते (सीहंके०) सिंहनामा जनावर थकी (दूरेचरंतीपरिसंकमाणा के०) वीहीता थका सिंहने दूर टालीने वेगला थका चरे; (एवं

तुमेहाविसमिरकधम्मंके०) ए दृष्टांते पंमित जेठे तेपण सम्यक् प्रकारें श्रीवीतराग नाषित श्रुत चारित्ररूप धर्मने आलोचीने (डुरेणपावं परिवज्जएज्जाके०) हिंसादिक सावद्यानुष्ठानरूपजे क्रिया तेने पापरूप जाणीने तेनाथी दूर रहे एरीते साधु सुंधूसंयम पाले.॥२०

॥दीपिका–वित्तं द्रव्यं पशवोगोमहिष्याद्यास्तान् सर्वान् जहाहि त्यज। बांधवा मातापित्रादयः सेतस्य येच मित्राणि सुहृदस्तेपि तस्य न किंचित्त्वतः कुर्वंति सोपिच वित्ताद्यर्थं लालप्यते नृशं विलपति मोहमुपैतिच धनवानपि मम्मणवणिग्वत् धान्यवानपि तिलकश्रेष्ठिवत् एवमयमपि असमाधिमाप्नोति। यच्च तेनार्जितं धनं तदन्यजनास्तस्य जीवतएव मृतस्यच हरंति गृह्णंति। तस्यतु क्लेशएव केवलं॥ १ए ॥ यथा क्षुद्रास्तुच्छा मृगाश्चरंतोऽटव्यामटंतः सिंहं दूरे त्यक्त्वा चरंति। यंतः परिशंकमानाः सर्वतोन्नयाकुला एवं मेधावी धर्मं समीक्ष्य विचार्य पापं दूरेण परिवर्जयेत्॥ २० ॥

॥ टीका–किंचान्यत् (जहाहिवित्तमित्यादि) वित्तं द्रव्यजातं तथा पशवोगोमहिष्यादयस्तान् सर्वान् जहाहि परित्यज। तेषु ममत्वं माकृथाः। ये बांधवामातृपित्रादयः श्वशुरादयश्च पूर्वापरसंस्तुतायेच प्रियामित्राणि सहपांसुक्रीडितादयस्ते एते मातापित्रादयोन किंचित्तस्य परमार्थतः कुर्वंति सोपिच वित्तपशुबांधवमित्रार्थी अत्यर्थं पुनः पुनर्वालपति लालप्यते। तद्यथा हेमातः हेपितइत्येवं तदर्थं शोकाकुलः प्रलपति तदार्जनपरश्च मोहमुपैति। रूपवानपि कंडरीकवत् धनवानपि मम्मणवणिग्वत् धान्यवानपि तिलकश्रेष्ठिवदित्येवमसावप्यसमाधिमान् मुह्यते। यच्च तेन महता क्लेशेनापरप्राण्युपमर्दनोपार्जित्तं वित्तं तदन्ये जनाः सेतस्यापहरंति जीवतएव च तस्य वा तस्य च क्लेशतः केवलं पापबंधश्चेत्येवं मत्वा पापानि कर्माणि परित्यजेत्तपश्चरेदिति ॥ १ए ॥ तपश्चरणोपायमधिकृत्याह। (सीहंजहेत्यादि) यथा क्षुद्रमृगाः क्षुद्राटव्यपशवोहरिणजात्याद्याश्चरंतोऽटव्यामटंतः सर्वतोबिन्यतः परिशंकमानाः सिंहं व्याघ्रं वा आत्मोपद्रवकारिणं दूरेण परिहृत्य चरंति विहरंत्येवं मेधावी मर्यादावान्। तुर्विशेषणे। सुतरां धर्मं समीक्ष्य पर्यालोच्य पापं कर्मसदनुष्ठानं दूरेण मनोवाक्कायकर्मभिः परिहृत्य परिसमंताद्व्रजेत्संयमानुष्ठायी तपश्चारी च नवेदिति दूरेण वा पापं पापहेतुत्वात्सावद्यानुष्ठानं सिंहमिव मृगः स्वहितमिच्छन् परिवर्जयेत्त्यजेदिति ॥ २० ॥

संबुज्झमाणे उ णरे मतीमं, पावाउ अप्पाण निवट्टएज्जा ॥ हिंसप्पसूयाइं डुहाइं मत्ता, वेराणुबंधीणि महब्नयाणि ॥ पाठांतरे सनिवाण नूएन

वरिवएज्जा ॥ २१ ॥ मुसं न बूया मुणिअत्तगामी, णिव्वाणमेयं कसिणं समाहिं ॥ सयं न कुज्जाउ न कारवेज्जा, करंतमन्नोपि य णाणुजाणे ॥ २२ ॥

अर्थ–(संवुज्झमाणेउणरेमतीमं के०) मतिमंत प्रज्ञावंत एवो मनुष्य सम्यक् प्रकारे धर्मने जाणतो थको (पावाउअप्पाणनिवट्टएज्जा के०) पोताना आत्माने पाप थकी निवर्त्तावे; (हिंस के०) जीवनो घात ते थकी (प्रसूत के०) उत्पन्न थयां एवां जे (दुहाई के०) शारीरीक अने मानशीक दुःख तेने (मत्ता के०) जाणीने गुंजाणीने तोके (वेराणुबंधीणिमहप्नयाणि के०) वैरानुंबंधावैरना कारण जाणीने महाभयना उपजावनार एवा आश्रवोनो निरोध करे; एटले सर्व आश्रवनुं मूल ते हिंसा जाणवी; माटे हिंसाथकीनिवर्त्ते ते साधु भावसमाधिवंत जाणवो. अथवा पाठांतरे सनिव्वाणभूएउपरिव्वएज्जा) ॥ २१ ॥ (मुणिअत्तगामी के०) मोक्ष गामी मुनि (मुसंनबूया के०) मृषा बोले नही. (णिव्वाणमेयंकसिणंसमाहिंके०) ए मृषावादनो जे परिहार एज मोक्षरूप समाधिनु पण संपूर्ण कारण जाणवुं माटे ते मृषावादने (सयंनकुज्जाउके०) साधु पोते करे नही. तथा (नकारवेज्जाके०)बीजा पासे करावे नही, तथा (करंतमन्नोपियणाणुजाणे) अन्य कोइ करतो होय तेने अनुमोदे नहीं एवोसाधु भावसमाधिवंत जाणवो ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–मतिमान्नरः साधुः सम्यक्धर्मं बुध्यमानः पापात्सावद्याचरणादात्मानं निवर्तयेत् हिंसातः प्रसूतानि जातानि दुःखानि वैरानुबंधीनि कर्मबंधहेतूनि महाभयंकराणि इति मत्वा स्वं पापान्निवर्तयेत् ॥ २१ ॥ आप्तोमोक्षस्तद्गामी मुनिर्मृषावादं न ब्रूयात् एतदेव मृषावर्जनं कृत्स्नं संपूर्णं समाधिं भावसमाधिमाहुः । यथा मृषावादस्तथा अन्यव्रतातिचारमपि न कुर्यात्स्वयं नाप्यपरेण कारयेत् अन्यं कुर्वंतमपि नानुजानीयात् ॥२२॥

॥ टीका–अपिच । (संवुज्झमाणेत्यादि) मननं मतिः सा शोभना यस्यासौ मतिमान् । प्रशंसायां मतुप् । तदेवं शोभनमतियुक्तोमुमुक्षुर्नरः सम्यक्श्रुतचारित्राख्यं धर्मं वा भावसमाधिं वा बुध्यमानस्तु विहितानुष्ठाने प्रवृत्तिं कुर्वाणस्तु तदेव पूर्वं तान्निषिद्धाचरणान्निवर्तमानस्तत्प्रदर्शयति। पापात् हिंसानृतादिरूपात्कर्मणआत्मानं निवर्तयेत्। निदानोच्छेदेन हि निदानिनउच्छेदोभवतीत्यतोऽशेषकर्मक्षयमिच्छन्नादावेवभव द्वाराणि निरुंध्यादित्यभिप्रायः । किंचान्यत् । हिंसा प्राणिव्यपरोपणं तया ततोवा प्रसूतानि जातानि यान्यशुभानि कर्माणि तान्यत्यंतं नरकादिषु यातनास्थानेषु दुःखानि दुःखोत्पादकानि वर्तंते । तथा वैरमनुबध्नंति तच्छीलानिच वैरानुबंधीनि जन्मशतसहस्रदुर्मोचान्यतएव महद्भयं येभ्यः सकाशात्तानि महाभयानीत्येवं च मत्वा मतिमानात्मानं पापान्निवर्तयेदिति । पा

गंतरंवा । (निव्वाणभूएयपरिव्वएज्जा) अस्यायमर्थः । यथाहि निर्वृतौ निर्व्यापारत्वात्कस्य चिडुपघाते न वर्तते एवं साधुरपि सावद्यानुष्ठानरहितः परिसमंताद् व्रजेदिति ॥ २१ ॥ तथा (मुसंणबूयाइत्यादि) आसोमोक्षस्तज्ञामी तज्ञमनशीलआत्महितगामीवा आसोवा प्रक्षीणदोषः सर्वज्ञस्तडुपदिष्टमार्गगामी मुनिः साधुर्मृषावादमनृतमयथार्थं न ब्रूयात्सत्य मपि प्राण्युपघातकमिति । एतदेव मृषावादवर्जनं कृत्स्नं संपूर्णं भावसमाधिं निर्वाणं चा हुः । सांसारिकाहि समाधयः स्नानभोजनादिजनिताः शब्दादिविषयसंपादितावा अनैकांति काऽनात्यंतिकत्वेन डुःखप्रतीकाररूपत्वेन वाऽसंपूर्णावर्तते । तदेवं मृषावादमन्येषां वा व्रतानामतिचारं स्वयमात्मना न कुर्यान्नाप्यपरेण कारयेत्तथा कुर्वंतमप्यपरं मनो वाक्कायकर्मभिर्नानुमन्यतइति ॥ २२ ॥

सुद्धे सिया जाए न दूसएज्जा, अमुच्छिए णय अज्झुववन्ने ॥ धिति
मं विमुक्के ण य पूयणठी, न सिलोयगामीय परिव्वएज्जा ॥ ७३ ॥
निरकम्मगेहाउ निरावकंखी, कायं विउसेज्ज नियाणछिन्ने ॥ णो
जीवियं णो मरणावकंखी, चरेज्ज भिक्खू वलया विमुक्के तिबेमि
॥ ७४ ॥ इति समाहिनाम दसमज्झयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ-(सुद्धेसिया जाएनदूसएज्जाके०) उज्ञम, उत्पादन अने एषणा ए त्रणे दोष रहित एवो सुद्धो निर्दोष आहार प्राप्त थयो अथवा न थयो ठता पण कदापि साधु राग द्वेषे करी पोताने डुषवे नही तथा (अमुच्छिए के०) अमूर्छित अगृद्ध एटले लोल्यता रहित (णयअज्झुववन्ने के०) फरी फरी ते रूडा आहारनी वांछा नकरे तथा (धि तिमंविमुक्के णयपूयणठी के०) धृतिमंत तथा बाह्याभ्यंतर ग्रंथी रहित तथा पूजानो अर्थी न थाय (नसिलोय कामीय परिवएज्जा के०) तथा श्लाघाने अर्थे क्रिया न करे परंतु कर्म निर्ज्जराने अर्थे मोक्षने अर्थे संयमने विषे प्रवर्ते एवो समाधिवंत साधु जाणवो ॥ २३ ॥ (निरकमगेहाउ के०) गृहस्थावास थकी निकलीने चारित्र आदरी ने (निरावकंखी के०) जीवितव्यने विषे निरापेक्षी ठतो (कायंविउसेज्ज के०) शरीर उपर ममत्व मूकीने पोतानी काया वोसिरावे तथा (नियाणछिन्ने के०) परभवे देव अथ वा राजादिक थवानुं नियाणु नकरे (णोजीवियंणोमरणावकंखी के०) जीवितव्य अ ने मरणने वांछे नही एटले पूजा सत्कारनी प्राप्तियें करी जीवितव्य नवांछे अने उपसर्ग परिसह उपने थके मरण पण नवांछे एवो (भिक्खू के०) साधु ते (वलयाविमुक्के के०) कर्मबंध थकी मूकाणो अथवा वलय एटले संसार थकी मूकाणो थको (चरेज्जके०)

संयमानुष्टानने पाले तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २४ ॥ इतिश्री समाधि नामक दशमां अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका—उद्गमादिदोषशुद्धे आहारादौ स्यात्कदाचिद्याते प्राप्ते सति रागद्वेषाभ्यां साधुर्न दूषयेत् । यतः । बायाली सेसणसं, कम्मंमि गहणंमि जीवनहुछलिउ । इण्हिंजइ नछलिज्जसि. भुंजंतोरागदोसेहिं इति । अमूर्छितोनासक्तः शुभाहारे नचाध्युपपन्नस्तमेवाहारं पुनःपुनरभिलषमाणः संयमयात्रार्थमेवाहारयेत् । तथा धृतिमान् ग्रंथाद्विमुक्तो नच पूजनार्थी श्लोकः कीर्तिस्तत्कामी तदभिलाषुकोन स्यात् एवंभूतः परिव्रजेत् ॥ ॥ २३ ॥ गृहान्निःसृत्य निरावकांक्षी निस्पृहः कायं शरीरं व्युत्सृज्य विचिकित्साम कुर्वन् छिन्ननिदानोभवेत् । तथा जीवितं नापि । मरणमभिकांक्षेत भिक्षुर्वलयात्संसाराद्विमुक्तः संयमे संचरेदिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २४ ॥ इति श्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां समाध्याख्यं दशमाध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका—उत्तरगुणानधिकृत्याह (सुद्धेसियाइत्यादि) उद्गमोत्पादनैषणाभिः शुद्धे निर्दोषे स्यात्कदाचिद्याते प्राप्ते पिंडेसति साधूरागद्वेषाभ्यां न दूषयेत् । उक्तंच । बायाली सेसणसं, कडंमिगहणंमि जीवनहुछलिउ ॥ इण्हिंजहन छलिज्जसि. भुंजंतोरागदोसेहिं ॥१॥ तत्रापि रागस्य प्राधान्यख्यापनायाह । नमूर्छितोऽमूर्छितः सकृदपि शोभनाहारलाभे सतिगृद्धिमकुर्वन्नाहारयति तथा नाध्युपपन्नस्तमेवाहारं पौनःपुन्येनानभिलषमाणः केवलं संयमयात्रापालनार्थमाहारमाहारयेत् । प्रायोविदितवेद्यस्यापि विशिष्टाहारसन्निधावभिलाषातिरेकोजायतइत्यतोऽमूर्छितोऽनध्युपपन्नइति च प्रतिषेधद्वयमुक्तं । उक्तंच । भुत्तभोगो पुरा जोवि, गीयत्थोविय भाविउ ॥ संते साहारमाईसु, सोविखिप्पंतु खुब्भइ ॥ १ ॥ तथा संयमे धृतिर्यस्यासौ धृतिमान् सबाह्याभ्यंतरेण ग्रंथेन विमुक्तस्तथा पूजनं वस्त्रपात्रादिना तेनार्थः पूजनार्थः सविद्यते यस्यासौ पूजनार्थी तदेवंभूतोन भवेत् । तथा श्लोकः श्लाघा कीर्तिस्तत्कामी नतदभिलाषुकः परिव्रजेदिति । कीर्त्यर्थी न कांचन क्रियां कुर्यादित्यर्थः॥२३॥अध्ययनार्थमुपसंजिघृक्षुराह । (णिरकम्मेत्यादि) गेहान्निःसृत्य निष्क्रम्य च प्रव्रजितोपि भूत्वा जीवितेपि निराकांक्षो कायं शरीरं व्युत्सृज्य निष्प्रतिकर्मतया चिकित्सादिकमकुर्वन् छिन्ननिदानोभवेत् । तथा न जीवितं नापि मरणमभिकांक्षेत् भिक्षुः साधुर्वलयात्संसारवलयात्कर्मबंधनाद्वा विप्रमुक्तः संयमानुष्ठानं चरेत् । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २४ ॥ इति समाध्याख्यं दशमाध्ययनं समाप्तं ॥

हवे मोक्ष मार्ग नामे अगीआरमुं अध्ययन कहेछे. पूर्वेना दशमां अध्ययनमां समाधि कही, ते समाधि तो ज्ञान, दर्शन अने चारित्ररूप जाणवी ते कारणे एनुं सेवन करिए तो मोक्ष प्राप्ति थाय, माटे आ अध्ययनमां मोक्ष मार्ग कहेछे.

कयरे मग्गे अरकाए, माहणेण मईमता ॥ जं मग्गं उज्जु पावि
त्ता, उहं तरति डुत्तरं ॥ १ ॥ तं मग्गं णुत्तरं सुद्धं, सवडुरकविमो
रकणं ॥ जाणासि णं जहा निरकू, तं णो बूहि महामुणी ॥ २ ॥

अर्थ—श्रीजंबुस्वामी श्रीसुधर्मस्वामि प्रत्ये पूछेछे के, (कयरेमग्गे के०) मोक्षमार्ग साधन करवानो एवो कयो धर्ममार्ग (माहणेणमईमताके०) मतिमंत एटले केवलज्ञानवंत श्रीमहावीर परमेश्वर तेणे (अरकाएके०) कह्योछे. (जंमग्गंउज्जुपाविताके०) जेज्ञान दर्शन चारित्ररूप सरल मार्ग पामिने प्राणी (उहंतरंतिडुत्तरं के०) तरतां थकां डुस्तर एवा संसार समुड्ने तरीने पार पामे ॥ १ ॥ सर्वेनाहितने अर्थे जे मार्ग श्रीसर्वज्ञे उपदेश्योछे, (तंमग्गणुत्तरंसुद्ध के०) तेमार्ग शुद्धो निर्दोष अनुत्तर एटले निरुपम (सवडुरकविमोरकणं के०) समस्त डुःखथकी मुकावनार एवो मार्ग (जाणासिणंजहानिरकू के०) अहो नगवंत जेवो तमे जाणोछो (तंणोबूहिमाहामुणी के०) तेवो हे महामुनीश्वर अमने कहो. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथैकादशमारन्यते । पूर्वाध्ययने समाधिरुक्तः सच मार्गे सति स्यादिति मार्गोऽत्र प्रतिपाद्यते । यथा । (कयरेइत्यादि) जंबूस्वामी सुधर्मस्वामिनमाह । कतरः कोमार्गआख्यातोमाहनेन मतिमता श्रीवीरेण । यं मार्गं मुक्तिप्राप्तिरूपं ऋजुमवक्रं प्राप्योघं संसारं तरति प्राणी ॥१॥ तं मार्गमनुत्तरं श्रेष्ठं शुद्धं निर्दोषं सर्वडुःखविमोक्षणं हे मुने त्वं यज्जानीषे । णमिति वाक्यालंकारे । तं मार्गं नोऽस्माकं हेमहामुने ब्रूहि ॥ २ ॥

॥ टीका—उक्तं दशमाध्ययनं तदनंतरमेकादशमारन्यते । अस्य चायमनिसंबंधः । इहानंतराध्ययने समाधिः प्रतिपादितः सच ज्ञानदर्शनतपश्चारित्ररूपोवर्तते । नावमार्गोप्येवमात्मकएवेत्यतोमार्गोऽनेनाध्ययनेन प्रतिपाद्यतेइत्यनेन संबंधेनायातस्याध्ययनस्य चत्वार्युपक्रमादीन्यनुयोग द्वाराणि वाच्यानि । तत्राप्युपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयं । तद्यथा । प्रशस्तोज्ञानादिकोनावमार्गस्तदाचरणं चात्रानिधेयमिति । नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे मार्गइत्यस्याध्ययनस्य नाम । तन्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । “ णामं ठवणा दविए, खेत्ते काले तहेव नावेय ॥ एसो खलु मग्गस्सय, णिरकेवो ढव्विहो होइ ” ॥ ए ॥ (णामंठवणेत्यादि) नामस्थापनाड्व्यक्षेत्रकालनावनेदान्मार्गस्य षोढा निक्षेपः । तत्र नामस्थापने सुगमत्वाद

नादत्य इशरीरजव्यशरीरव्यतिरिक्तं इव्यमार्गमधिकृत्याह । "फलगलयं दोलणचि,वा रज्जुदवणविलप्पास मग्गेय । खलिगअयपरिकिप हे ठत्तजलाकासदव्वंमि" ॥ १० ॥ (फलकेत्यादि) फलकैर्मार्गः फलकमार्गः । यत्र कर्दमादिजयात् फलकैर्गम्यते । लतामार्गस्तु यत्र लतावलंबेन गम्यते । अंदोलनमार्गोपि यत्रांदोलनेन डुर्गमतिलंघ्यते । वेत्रमार्गोयत्र त्रलतोपष्टंजेन जलादौगम्यते इति । तद्यथा । चारुदत्तोवेत्रलतोपष्टंजेन वेत्रवतीं नदीमुत्तीर्य परकूलं गतः । रज्जुमार्गस्तु यत्र रज्वाकिंचिदतिडुर्गमतिलंघ्यते । दवनंति यानं तन्मार्गोदवनमार्गः । बिलमार्गोयत्र तु गुहाद्याकारेण बिलेन गम्यते । पाशप्रधानोमार्गः पाशमार्गः पाशकूटकवागुरान्वितोमार्गइत्यर्थः । कीलकमार्गोयत्र वालुकोत्कटे मरुकादिविषये कीलकाजिज्ञानेन गम्यते । अजमार्गोयत्र बस्त्येनाजेन गम्यते । तद्यथा । सुवर्णजूम्यां चारुदत्तोगतइति । पक्षिमार्गोयत्र जारुडादिपक्षिजिर्देशांतरमवाप्यते । ठत्रमार्गो यत्र ठत्रमंतरेण गंतुं न शक्यते । जलमार्गोयत्र नावादिना गम्यते । आकाशमार्गोविद्याधरादीनामयं सर्वोपि फलकादिकोऽब्धे इव्यविषये ऽवगंतव्यइति । क्षेत्रादिमार्गप्रतिपादनायाह । "खेत्तंमि जंमि खेत्ते. काले कालो जहिं हवइ जोउ । जावंमि होंति डुविहो, पसहतह अप्पसहोय ३ ॥ ११ ॥ (खेत्तंमीत्यादि) क्षेत्रमार्गे पर्यालोच्यमाने यस्मिन् क्षेत्रे ग्रामनगरादौ प्रवेशोवा शालिक्षेत्रादिके वाक्षेत्रे योयाति मार्गोयस्मिन्वा क्षेत्रे व्याख्यायते सक्षेत्रमार्गः । एवं कालेप्यायोज्यं । जावे त्वालोच्यमाने द्विविधोपि जवति जावमार्गः । तद्यथा । प्रशस्तोऽप्रशस्तश्चेति । प्रशस्ताप्रशस्तजेदप्रतिपादनायाह । "डुविहंमि वितिगजेदो, णेवो तस्स विचिणिह्विउ डुविहो ॥ सुगतिफलडुग्गतिफलो, पगयं सुगतीफले णिउं ४ ॥ १२ ॥ (डुविहंमीत्यादि) द्विविधेपि प्रशस्ताप्रशस्तरूपे जावमार्गे प्रत्येकं त्रिविधोजवति । तत्राप्रशस्तोमिथ्यात्वाविरतिरज्ञानं चेति । प्रशस्तस्तु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपइति । तस्य प्रशस्ताप्रशस्तरूपस्य जावाजावमार्गस्य विनिश्चयोनिर्णयः फलं कार्यं । निष्ठा द्वेधा । तद्यथा । प्रशस्तः सुगतिफलोऽप्रशस्तश्च डुर्गतिफलइति । इह तु पुनः प्रशस्ताऽधिकारः सुगतिफलेन प्रशस्तमार्गेणेति । तत्राप्रशस्तं डुर्गतिफलं मार्गं प्रतिपिपादयिषुस्तत्कर्तॄन्निर्दिदिक्षुराह । "डुग्गइफलवादीणं. तिन्नि तिसट्ठासताइवादीणं ॥ खेमे य खेमरूवे, चउक्कगं मग्गमादीसु ५ ॥ १३ ॥ (डुग्गईत्यादि) डुर्गतिः फलं यस्य सडुर्गतिफलस्तं द्वदनशीलाडुर्गतिफलवादिनस्तेषां प्रवादुकानां त्रीणि त्रिषष्ट्यधिकानि शतानि जवंति । डुर्गतिफलमार्गोपदेष्टृत्वंच तेषां मिथ्यात्वोपहतदृष्टितया विपरीतजीवादितत्वाच्युपगमात् । तत्संख्या चैवमवगंतव्या । तद्यथा । असियसयंकिरियाणं, अकिरियवाईण होइ चुलसीई ॥ अन्नाणियसत्तही, वेणइयाणं च बत्तीसं ॥१॥ तेषांच स्वरूपं समवसरणाध्ययने वक्ष्यतइति । सांप्रतं मार्गजंगद्वारेण निरूपयितुमाह । तद्यथा । एकः क्षेमोमार्गस्तस्करादि

व्याघ्राद्युपद्रवरहितत्वात्तथा क्षेमरूपश्च समत्वात्तथा छायापुष्पफलवद्वृक्षोपेतजलाश्रया कुलत्वाच्च । तथा परः क्षेमोनिश्चौरः किंत्वक्षेमरूपउपलशकलाकुलंगिरिनदीकंटकगर्तशता कुलत्वेन विषमत्वात्तथाऽपरोक्षेमस्तस्कराद्रिभयोपेतत्वात्क्षेमरूपश्चोपलशकलाद्यभावतया समत्वात्तथाऽन्योनक्षेमोनापि क्षेमरूपः सिंहव्याघ्रतस्करादिदोषदुष्टत्वात्तथा गर्तपाषाणनि म्नोन्नतादिदोषदुष्टत्वाच्चेति । एवं भावमार्गोप्यायोज्यः । तद्यथा । ज्ञानादिसमन्वितोद्रव्य लिंगोपेतश्च साधुः क्षेमः क्षेमरूपश्च । तथाऽक्षेमोऽक्षेमरूपस्तु सएव भावसाधुः कारणिको द्रव्यलिंगरहितः । तृतीयभंगकगतानिन्हवाः परतीर्थिकागृहस्थाश्चरमभंगकवर्तिनोद्रष्ट व्याः । एवमनंतरोक्तप्रक्रियया चतुष्कं भंगकचतुष्टयं मार्गादिष्वायोज्यं । आदिग्रहणादन्य त्रापि समाध्यादावायोज्यमिति ।सम्यक्मिथ्यात्वमार्गयोः स्वरूपनिरूपणायाह । सम्मप्पणि उ मग्गो, णाणे तह दंसणे चरित्तेय ॥ वरगपरिव्वायादी, विस्रोमिच्छत्तमग्गोत्ति ६ ॥१४॥ (स मप्पणिउइत्यादि) सम्यग्ज्ञानं दर्शनं चारित्रं चेत्ययं त्रिविधोपि भावमार्गः सम्यग्दृष्टिभिर्ग णधरादिभिः सम्यग्वा यथावस्थितवस्तुतया च निरूपणया प्रणीतस्तैरेव सम्यगाचीर्णआसे वितोमार्गोमिथ्यात्वमार्गो ऽप्रशस्तमार्गोभवतीति। तुशब्दो स्य दुर्गतिफलनिबंधनत्वेनऽ विशे षणार्थइति । स्वयूथ्यानामपि पार्श्वस्थादीनां षड्जीवनिकायोपमर्दकारिणां कुमार्गाश्रित त्वं दर्शयितुमाह । इड्ढिरससायगुरुया, छज्जीवनिकाय घायनिरयाए ॥ जेउदिसंति मिग्गं, कुमग्गमग्गस्सिता तेउ " ॥१५॥ (इड्ढिरसेत्यादि) ये केचन अपुष्टधर्माणः शीतल विहारिणोऋद्धिरससातगौरवेण गुरुकागुरुकर्माणआधाकर्माद्युपभोगेन षड्जीवनि कायव्यापादनरताश्चापरे तेभ्योमार्गं मोक्षमार्गमात्मानुचीर्णमुपदिशंति । तथाहि । शरी रमिदमाद्यं धर्मसाधनमिति मत्वा कालसंहननादिहानेश्चाधाकर्माद्युपभोगोपि न दोषाये त्येवं प्रतिपादयंति तच्चैवं प्रतिपादयंतः कुत्सितमार्गास्तीर्थकरास्तन्मार्गाश्रिताभवंति । तु शब्दादेतेपि स्वयूथ्याएतदुपदिशंतः कुमार्गाश्रिताभवंतीति किंपुनस्तीर्थिकाइति। प्रशस्तशास्त्र प्रणयनेन सन्मार्गाविष्करणायाह । " तवसंजमप्पहाणा, गुणधारी जे वयंति सम्भावं ॥ सव्वजगजीवहियं, तमाहुसम्मप्पणीयमिणं "॥१६॥ (तवसंयमेत्यादि) तपः सबाह्याभ्यंतरं द्वादशप्रकारं तथा संयमः सप्तदशभेदःपंचाश्रवविरमणादिलक्षणस्ताभ्यां प्रधानास्तपःसंय मप्रधानास्तथाऽष्टादशशीलांगसहस्राणि गुणास्तद्धारिणोगुणधारिणोये सत्साधवस्तएवं भूतार्थं सद्भावं परमार्थं जीवाजीवादिलक्षणं वदंति प्रतिपादयंति । किंभूतं सर्वस्मिन् जग ति ये जीवास्तेभ्यो हितं पथ्यं तद्रक्षणतस्तेषां सदुपदेशदानतोवा । तं सन्मार्गं सम्यङ्मार्ग ज्ञाः सम्यगविपरीतत्वेन प्रणीतमाहुरुक्तवंतइति । सांप्रतं सन्मार्गस्यैकार्थिकान् दर्शयितुमा ह ।" पंथो मग्गो णेउ, वहिधीतिसुगतीहियसुवहं ॥ पद्धं सेयं णिव्वुइ, णिव्वाणं शिवकरंचेव " ॥ १७ ॥ (पंथोमग्गोणेउइत्यादि) देशाद्विवक्षितदेशांतरप्राप्तिलक्षणः पंथाः सचेह भाव

मार्गाधिकारे सम्यक्त्वाख्यातिरूपो ऽवगंतव्यः। तथा मार्गइति पूर्वस्माद्विशुध्या विशिष्टतरो मार्गः सचेह सम्यक्ज्ञानावाप्तिरूपो ऽवगंतव्यः। तथा न्यायइति निश्चयेनायनं विशिष्टस्थानप्राप्तिलक्षणं यस्मिन् सति सन्यायः। सचेह सम्यक्चारित्रावाप्तिरूपो ऽवगंतव्यः। सत्पुरुषाणामयं न्यायएव। यद्युतावाप्तयोः सम्यग्दर्शनज्ञानयोस्तत्फलभूतेन सम्यक्चारित्रेण योगो भवतीत्यतोन्यायशब्देनात्र चारित्रयोगो ऽभिधीयतइति। तथा विधिरिति। विधानं विधिः सम्यक्ज्ञानदर्शनयोर्यौगपद्येनावाप्तिस्तथा धृतिरिति धरणं धृतिः सम्यक्दर्शने सति चारित्रावस्थानं मानुपादाविव विशिष्टज्ञानाभावाद्विवक्षयैवमुच्यते। तथा सुगतिरिति शोभना गतिरस्मात्ज्ञानचारित्राच्चेति सुगतिः। ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षइति न्यायात्सुगतिशब्देन ज्ञानक्रिये अभिधीयेते। दर्शनस्यतु ज्ञानविशेषत्वादत्रैवांतर्भावो ऽवगंतव्यः। तथाहि। हितमिति परमार्थतोमुक्त्यवाप्तिस्तत्कारणं वा हितं तच्च सम्यग्दर्शनचारित्राख्यमवगंतव्यमिति। अत्र च संपूर्णानां सम्यग्दर्शनादीनां मोक्षमार्गत्वेसति यद्व्यस्तसमस्तानां मोक्षमार्गत्वेनोपन्यासः स प्रधानोपसर्जनविवक्षया न दोषायेति। तथा सुखमिति सुखहेतुत्वात्सुखमुपशमश्रेण्यामुपशामकं प्रत्यपूर्वकरणानिवृत्तिबादरसूक्ष्मसंपरायरूपा गुणत्रयावस्था। तथा पथ्यमिति पथि मोक्षमार्गे हितं पथ्यं तच्च क्षपकश्रेण्यां पूर्वोक्तं गुणत्रयं तथा श्रेयइत्युपशमश्रेणिमस्तकावस्था उपशांतसर्वमोहावस्थेत्यर्थः। तथा निर्वृतिहेतुत्वान्निर्वृतिः क्षीणमोहावस्थेत्यर्थः। मोहनीयविनाशेऽवश्यं निर्वृतिसद्भावादितिभावः। तथा श्रेयइति निर्वाणमिति घनघातिकर्मचतुष्टयरूपेण कर्मक्षयेण केवलज्ञानावाप्तिस्तथा शिवं मोक्षपदं तत्करणशीलं शैलेश्यवस्थागमनमित्येवमेतानि मोक्षमार्गत्वेन किंचिद्भेदाभेदेन व्याख्यातान्यभिधानानि। यदिवैते पर्यायशब्दा एकार्थिकामोक्षमार्गस्येति। गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपस्तदनंतरं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं। तच्चेदं (कयरेमग्गेइत्यादि) विचित्रत्वात्त्रिकालविषयत्वाच्च सूत्रस्यागामुकं पृच्छकमाश्रित्य सूत्रमिदं प्रवृत्तमतोजंबूस्वामी सुधर्मस्वामिनमिदमाह। तद्यथा। कतरः किंभूतोमोक्षोऽपवर्गावाप्तिसमर्थोऽस्यां त्रिलोक्यामाख्यातः प्रतिपादितोभगवता त्रैलोक्योद्धरणसमर्थेनैकांतहितैपिणा माहनेनेत्येवमुपदेशः प्रवृत्तिर्यस्यासौ माहनस्तीर्थकृत्तेन। तमेव विशिनष्टि। मतिर्लोकालोकांतर्गतसूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टातीतानागतवर्तमानपदार्थाविर्भाविकाकेवलज्ञानाख्या यस्यास्त्यसौ मतिमांस्तेन प्रशस्तं भावमार्गं मोक्षगमनंप्रति ऋजुं प्रगुणं यथावस्थितपदार्थस्वरूपनिरूपणद्वारेणावक्रं सामान्यविशेषनित्यानित्यादिस्याद्वादसमाश्रयणात्तदेवं भूतं मार्गं ज्ञानदर्शनतपश्चारित्रात्मकं प्राप्य लब्ध्वा संसारोदरविवरवर्त्ती प्राणी समग्रसामग्रीकओघमिति भवौघं संसारसमुद्रं तरत्यत्यंतदुस्तरं तदुत्तरगुणसामग्र्याएव दुष्प्रापकत्वात्। तदुक्तं। माणुस्स खेत्तजाई. कुलरूवा रोगमाउयं बुद्धी॥ समणोग्गहसद्धासं, यमोयलोयंमि दुल्लहाइंइत्यादि ॥१॥ सएव पृच्छकः पुनरप्याह। (तं

मग्गेइत्यादि) योसौ मार्गः सत्वहिताय सर्वज्ञेनोपदिष्टोऽशेषैकांतकौटिल्यवक्ररहितस्तं मार्गं । नास्योत्तरः प्रधानोस्तीत्यनुत्तरस्तं शुद्धोऽ वदातोनिर्दोषः पूर्वापरव्याहतिदोषापगमा त्सावद्यानुष्ठानोपदेशाजावाद्वा तमिति । तथा सर्वाण्यशेषाणि बहुनिर्जवैरुपचितानि दुःख कारणत्वाद्दुःखानि कर्माणि तेभ्योविमोक्षणं विमोचकं तमेवं जूतं मार्गमनुत्तरं निर्दोषं सर्वदुःखक्षयकारणं हेनिक्षो यथा त्वं जानीषे । णमितिवाक्यालंकारे । तथा तं मार्गं सर्वज्ञ प्रणीतं नो ऽस्माकं हेमहामुने ब्रूहि कथयेति ॥ २ ॥

जइ णो केइ पुच्छिज्जा, देवा अडुव माणुसा ॥ तेसिं तु कयरं मग्गं आइक्खेज्ज कहाहिणो ॥३ ॥ जइ णो केइ पुच्छिज्जा, देवा अडुव माणुसा ॥ तेसिं मं पडिसाहिज्जा मग्गसारं सुणेहमे ॥ ४ ॥

अर्थ—यद्यपि मुजनेतो तमारी प्रतिते मार्ग सुगमछे, परंतु अन्य कोइने मार्ग हुं के वीरीते कहुं एवा अनिप्रायें पूछुंछुं. (जइणोकेइपुच्छिज्जा के०) यद्यपि अमने कोइ पूछे कोण पूछे तोके (देवाअडुवमाणुसा के०) देवो अथवा मनुष्यजे चक्रवर्त्यादिक ते पूछे (तेसिंतुकयरंमग्गं के०) तेवारे तेने कयो मार्ग (आहिक्खेज्जकहाहिणो के०) कहीए ते तमे कहो. ॥ ३ ॥ एम श्रीजंबुस्वामियें पूछया थका श्रीसुधर्मस्वामि कहेछे. (जइणो केइपुच्छिज्जादेवाअडुवमाणुसा के०) यद्यपि तमने कोइ देव अथवा मनुष्य संसार भ्रां तिनो नंग करनार एवा मार्गनी वात पूछे, तेवारे (तेसिमंपडिसाहिज्जा के०) तेने त मारे जे मार्ग कहेवो (मग्गसारंसुणेहमे के०) तेमार्गनो सार हुं तमने कहुंछुं ते तमे सांजलो.

॥ दीपिका—यदि नोऽस्माकं केचन पृच्छेयुः।देवाअथवा मनुष्यास्तेषामहं। तुरेवार्थे।कतरं कं मार्गं (आइक्खेज्जत्ति) आचक्षामि आचक्ष्वा तत्कथय नोऽस्माकमिति ॥ ३ ॥ यदि केचित्सुजनबोधयोवोयुष्माकं मार्गं पृच्छेयुः । के । ते देवामनुष्यावा तेषां पृच्छतामिमं धर्मं प्रति कथयेत्साधुस्तंमार्गं सारं मम कथयतः शृणुत यूयं ॥ ४ ॥

॥ टीका—यद्यप्यस्माकमसाधारणगुणोपलब्धेर्युष्मत्प्रत्ययेनैव प्रवृत्तिः स्यात्तथाप्यन्ये षां किंनूतोमार्गोमयाख्येयइत्यनिप्रायवानाह । (जइणेत्यादि) यदा कदाचिन्नोस्मानु केचन सुजनबोधयः संसारोद्विग्नाः सम्यग्मार्गं पृच्छेयुः ।के ते देवाश्चतुर्निकायास्तथा मनु ष्याः प्रतीताः बाहुल्येन तयोरेव प्रश्नसद्भावात्तडुपादानं । तेषां पृच्छतां कतरं मार्गमहमा ख्यास्ये कथयिष्ये तदेतदस्माकं त्वं जानानः कथयेति ॥ ३ ॥ एवंपृष्टः सुधर्मस्वाम्याह । (जइवोइत्यादि) यदि कदाचिद्वोयुष्मान् केचन देवामनुष्यावा संसारं भ्रांतिपरामग्नाः सम्यग्मार्गं पृच्छेयुस्तेषां पृच्छतामिममिति वक्ष्यमाणलक्षणं षड्जीवनिकायप्रतिपादनगर्भं

तइच्छाप्रवणं मार्गं (पडिसाहिज्जत्ति) प्रतिकथयेत् । मार्गसारं मार्गपरमार्थं यं नवंतो न्येषां प्रतिपादयिष्यंति तन्मे मम कथयतः शृणुत यूयमिति । पाठांतरंवा (तेसिंतुइमं मग्गं आइक्खेज्जसुणेहमेत्ति) उत्तानार्थं ॥ ४ ॥

अणुपुव्वेण महाघोरं, कासवेण पवेइयं ॥ जमादाय इउ पुव्वं, स
मुद्दं ववहारिणो ॥५॥ अतरिं सुतरंतेगे, तरिस्संति आणगया ॥
तं सोच्चा पडिवरकामि, जंतवो तं सुणेहमे ॥ ६ ॥

अर्थ-(अणुपुव्वेण के०) आनुपूर्वि एटले अनुक्रमे (पंचिंदिअत्तणं माणुसत्तणं) इत्यादिक अनुक्रमे करीने (महाघोरं के०) पालतां अत्यंत डुष्कर ढे एवो जे मार्गनो सार ते (कासवेणपवेइयं के०) काश्यपजे श्रीमहावीर देव तेणे नाष्यो एटले कह्यो; (जमादाय के०) जेमार्गना ग्रहण करवा थकी (इउपुव्वंके०) पूर्वे अतीतकालें घणा सत्पुरुष डुस्तर एवो संसार समुद्र तखाढे ते उपर दृष्टांत कहेढे. (समुद्दंववहारिणो के०) जेम व्यवहारीआ वस्तुनां लोन्नी थका डुस्तर समुद्र तरे तेनी पेरे तखाढे ॥५॥ (अतरिं सुतरंतेगे के०) जे मार्ग ग्रहण करीने अतीतकालें अनंताजीव संसार समुद्र तखा (तरिस्संति अणागया के०) अने हमणा पण संख्याता जीव संसार समुद्र तरेढे, तथा आगमिक काले पण अनंता जीव तरशे, एम त्रणे काले संसार समुद्रने जेवडे तरेढे एवो जे मोक्षनो मार्ग (तंश्रुत्वा प्रतिवक्ष्यामि के०) तेने सांनलीने अंगीकार करे ते मार्ग सम्यक् प्रकारे तमने कहीशुं (जंतवोतं सुणेहमेके०) माटे अहो जीवो ते सर्व हुं कहुंढुं माटे एकाग्रचित्ते तमे सांनलो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-यथाहमनु पूर्वेण परिपाट्या मार्गं वच्मि तथा शृणुत यूयं। किंनूतं मार्गं कापुरुषैर्डुष्पाल्यत्वान्महाघोरं काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितं प्ररूपितं यं मार्गमादाय गृहीत्वा ऽतः सन्मार्गोपादानात्पूर्वमादावेवाऽनुष्ठितत्वात्संसारं तरंति । यथा व्यवहारिणः सांयात्रिकाः पोतेन समुद्रं तरंति ॥ ५ ॥ यं मार्गमाश्रिताः पूर्वं बहवोऽतीर्णुस्तीर्णाः संसारं सांप्रतमप्येके तरंति महाविदेहादौ तथा ऽनागतकाले तरिष्यंति। एवंनूतं तं मार्गं श्रुत्वा तीर्थकृद्भ्यः अहं प्रतिवक्ष्यामि । हेजंतवोहेप्राणिनः तं मार्गं मम कथयतः शृणुत यूयमिति सुधर्मस्वामिवचनं ॥ ६ ॥

॥ टीका-पुनरपि मार्गाभिष्टवं कुर्वन्सुधर्मस्वाम्याह । (अणुपुव्वेणेत्यादि) यथाहमनुपूर्व्येणानुपरिपाट्या कथयामि तथा शृणुत। यदिवा यथा चानुपूर्व्या सामग्र्या वा मार्गो वाप्यते तथ्शृणुत। तद्यथा । पढमिल्लगाणउदएइत्यादितावद्यावत् । बारसविहेकसाए, स

विएडवसामिएयजोगेहिं ॥ लप्नइचरित्तजालो, इत्यादि तथा चत्तारिपरमंगाणीत्यादि। किंभूतं मार्गं तमेव विशिनष्टि। कापुरुषैः संग्रामप्रवेशवत् दुरध्यवसायत्वान्महाभयानकं काश्यपोमहावीरवर्धमानस्वामी तेन प्रवेदितं प्रणीतं मार्गं। कथयिष्यामीत्यनेन स्वमनी षिकापरिहारमाह। ये शुद्धमार्गमुपादाय गृहीत्वा ऽतइति सन्मार्गोपादानात् पूर्वमादावे वानुष्ठितत्वाद्दुस्तरं संसारं महापुरुषास्तरंति। अस्मिन्नेवार्थे दृष्टांतमाह। व्यवहारः प एयक्रयविक्रयलक्षणोविद्यते येषांते व्यवहारिणः सांयात्रिकाः। यथा ते विशिष्टलाभार्थिनः किंचिन्नगरं यियासवोयानपात्रेण दुस्तरमपि समुद्रं तरंत्येवं साधवोप्यात्यंतिकैकांतिका बोधसुखैषिणः सम्यग्दर्शनादिना मार्गेण मोक्षं जिगमिषवोदुस्तरं भवौघं तरंतीति ॥ ५ ॥ मार्गविशेषणायाह। (अतरिंसुइत्यादि) यं मार्गं पूर्वं महापुरुषाचीर्णमव्यभिचारिण माश्रित्य पूर्वस्मिन्ननादिके काले बहवोऽनंताः सत्वाअशेषकर्मकचीवरविप्रमुक्ताभवौ यं संसारमतीर्युस्तीर्णवंतः सांप्रतमप्येके समग्रसामग्रीका असंख्येयाः सत्वास्तरंति। महा विदेहादौ सर्वदा सिद्धिसद्भावाद्वर्तमानत्वं न विरुध्यते। तथाऽनागतेच काले पर्यवसाना त्मकेऽनंतात्मकेऽनंताएव जीवास्तरिष्यंति। तदेवं कालत्रयेपि संसारसमुद्रोत्तारकं मोक्ष गमनैककारणं प्रशस्तं भावमार्गमुत्पन्नदिव्यज्ञानैस्तीर्थकृद्भिरुपदिष्टं तं चाहं सम्यक् श्रुत्वा ऽवधार्य च युष्माकं शुश्रूषूणां प्रतिवक्ष्यामि प्रतिवादयिष्यामि। सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं निश्रीकृत्यान्येषामपि जंतूनां कथयतीत्येतद्दर्शयितुमाह। हे जंतवोऽभिमुखीभूय तं चारित्र मार्गं मम कथयतः शृणुत यूयं। परमार्थकथनेऽत्यंतमादरोपादानार्थमेवमुपन्यासइति ॥६॥

पुढवीजीवा पुढो सत्ता, आउजीवा तहागणी॥ वाउजीवा पुढो
सत्ता. तणरुक्खा सबीयगा ॥७॥ अहावरा तसा पाणा, एवं छक्का
य आहिया॥ एतावए जीवकाए, णावरे कोइविज्जई॥ ८॥

अर्थ-- (पुढवीजीवापुढोसत्ता के०) पृथिवीकाय जीव तेपण जुदा जुदा जाणवा (आउजीवा के०) तेमज अपकायना जीव; उस धूयरी प्रमुख पृथक् पृथक् जाणवा (तहागणी के०) तथा अग्नीकायना पण इंगाल ज्वाल मूंमर प्रमुख जीवो जुदा जुदा जाणवा तथा (वाउजीवापुढोसत्ता के०) वायुकायना जीव पण जुदा जुदा जाणवा अने (तणरुक्खासबीयगा के०) तृण वृक्षनी जाती तथा बीज ते शाली प्रमुख ए सर्वे वनस्पति कायना जीव जाणवा. ॥ ७ ॥ (अहावरातसापाणा के०) अथानंतर अवरा एटले ए पूर्वे जे स्थावर जीवो कह्या तेथकी अपर बीजा बेंडियादिक प्राण ते त्रसजीवो जाणवा (एवंछक्कायआहिया के०) ए प्रमाणे छकायना जीवो श्री तीर्थंकर

तथा गणधरे कह्याछे. (एतावएजीवकाए के०) एटलीज ए जीवनी निकायछे (णावरे कोइविज्जई के०) परंतु एथकी उपरांत बीजी कोइ जीवनी निकाय नथी. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–पृथिवीजीवाः पृथक् प्रत्येकं सत्वाजंतवो ज्ञेयाः । आपश्च जीवाएवमग्निकायाजीवावायुजीवाश्च पृथक्सत्वाः प्रत्येकजीवास्तृणानि कुशादीनि वृक्षाश्चूताद्याः बीजानि शाल्यादीनि एतेच वनस्पतिभेदाः ॥ ७॥ अथापरे त्रसाः प्राणिनोद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियाएवं षट्कायाआख्यातास्तीर्थंकृद्भिः । एतावान् जीवराशिर्नापरो विद्यते कश्चित् ॥ ८॥

॥ टीका–चारित्रमार्गस्य प्राणातिपातविरमणमूलत्वात्तस्य च तत्परिज्ञानपूर्वकत्वादतो जीवस्वरूपनिरूपणार्थमाह । (पुढवीजीवाइत्यादि) पृथिव्येव पृथिव्याश्रितावाजीवास्तेच प्रत्येकशरीरत्वात्पृथक् प्रत्येकं सत्वाजंतवोऽवगंतव्याः । तथा आपश्च जीवाएवमग्निकायाश्च तथापरे वायुजीवास्तदेवं चतुर्महाभूतसमाश्रिताः सत्वाः प्रत्येकशरीरिणोऽवगंतव्याः । एतएव पृथिव्यप्तेजोवायुसमाश्रिताः सत्वाः प्रत्येकशरीरिणोवक्ष्यमाणवनस्पतेस्तु साधारणा साधारणशरीरत्वेनापृथक्त्वमप्यस्तीत्यस्यार्थस्य दर्शनाय पुनः पृथक् सत्वग्रहणमिति । वनस्पतिकायस्तु यः सूक्ष्मः ससर्वोपि निगोदरूपः । साधारणबादरस्तु साधारणाऽसाधारणश्चेति । तत्र प्रत्येकशरीरिणोऽसाधारणस्य कतिचिद्भेदान्निर्दिदिक्षुराह । तत्र तृणानि दर्भवीरणादीनि वृक्षाश्चूताशोकादयः सहबीजैः शालिगोधूमादिभिर्वर्ततइति सबीजकाएते सर्वेपि वनस्पतिकायाः सत्वाश्चवगंतव्याः । अनेनच बौद्धादिमतनिरासः कृतोवगंतव्यइति । एतेषां च पृथिव्यादीनां जीवानां जीवत्वेन प्रसिद्धिस्वरूपनिरूपणमाचारे प्रथमाध्ययने शास्त्रपरिज्ञाख्ये न्यक्षेण प्रतिपादितमिति नेह प्रतन्यते ॥ ७ ॥ षष्ठजीवनिकायप्रतिपादनायाह । (आहावरेत्यादि) तत्र पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयएकेंद्रियाः सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तकभेदेन प्रत्येकं चतुर्विधाः । अथानंतरमपरेऽन्ये त्रसंतीति त्रसा द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियाः कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादयः। तत्र द्वित्रिचतुरिंद्रियाः प्रत्येकं पर्याप्तकापर्याप्तकभेदात्षड्विधाः । पंचेंद्रियास्तु संज्यसंज्ञिपर्याप्तकापर्याप्तकभेदाच्चतुर्विधाः । तदेवमनंतरोक्तया नीत्या चतुर्दशभूतग्रामात्मकतया व्याख्यातास्तीर्थंकरगणधरादिभिः । एतावानेवतद्भेदात्मकएव संक्षेपतोजीवनिकायोजीवराशिर्भवत्यंडजोद्भिज्जसंस्वेदजादेरत्रैवांतर्भावान्नापरोजीवराशिर्विद्यते कश्चिदिति ॥ ८ ॥

सव्वाहिं अणुजुत्तीहिं, मतिमं पडिलेहिया ॥ सव्वे अक्कंतदुक्काय,
अतो सव्वे अहिंसया ॥९॥ एयं खु णाणिणो सारं, जं न हिंसति
कंचण ॥ अहिंसा समयं चेव, एतावंतं विजाणिया ॥ १० ॥

अर्थ—ए पूर्वोक्त ब जीवनी निकाय कही हवे जे कांइ करवुं ते देखाडेबे. (सवाहिं अ णुजुत्तीहिं के०) समस्त अनुयुक्ति एटले जीवितव्य साधवाना कारण तेणेकरी जीवने सम्यक् प्रकारे उलखीने (मतिमं के०) बुद्धिवंत पुरुष जीवादिक तत्वने (पडिलेहिया के०) प्रतिलेखी एटले आलोचीने, (सवे अक्कंत डुरकाय के०) सर्वजीवो डुःख थकी आक्रांत थायबे, एटले एकांते डुःख कोइने वल्लन नथी सर्वे सुखना अर्थीबे, (अतो के०) ते कारण माटे (सवेअहिंसया के०) पृथव्यादिक सर्वे जीवोने हणे नही, बए कायनी दया पाले ॥ ए ॥ (एयं खुणाणिणोसारं के०) एहिज निश्चय थकी ज्ञानी ने जाणवानो सारबे, (जंनहिंसतिकंचण के०) जे कोइ जीवनो विनाश नकरे परमा र्थे थकी तेनेज ज्ञानी कहीये, के जे कोइ परजीवने पीडा उपजाववा थकी निवर्त्ते उ क्तंच किंताए पढियाए इति वचनात् (अहिंसा समयंचेव के०) अहिंसा जे दया तेज निश्चये थकी आगमनुं तत्व जाणवुं (एतावंतं विजाणिया) किंबहुना एटलुंज जाणीने दयाने विषे यत्न करवो परंतु घणुं जाणे शुं फलबे. ॥ १० ॥

॥ दीपिका—सर्वानिरनुकूलयुक्तिनिर्मतिमान् पृथिव्यादिजीवान् प्रत्युपेक्ष्य पर्यालोच्य जी वत्वेन प्रसाध्य तथा सर्वे जीवाअकांतडुःखाअनभिमतडुःखाः सुखैषिणश्चेति मत्वाऽतो मतिमान्सर्वान्प्राणिनोन हिंस्यात् ॥ ए ॥ खुर्वाक्यालंकारे निश्चयेवा । एतदेव ज्ञानिनः सारं यत्कंचन प्राणिनं न हिनस्ति अहिंसाप्रधानं संयममेतावंतमेव विज्ञानं यन्न हिंस्या त्कंचन किंबहुना ज्ञातेन एतावता ज्ञातेन विवक्षितकार्यसिद्धिः ॥ १० ॥

॥ टीका—तदेवं षड्जीवनिकायं प्रदर्श्य यत्तत्र विधेयं तद्दर्शयितुमाह । (सवाहींत्यादि) सर्वायाः काश्चनानुरूपाः पृथिव्यादिजीवनिकायसाधनत्वेनानुकूलायुक्तयः साधनानि । य दिवा सिद्धविरुद्धानैकांतिकपरिहारेण पक्षधर्मत्वसपक्षसत्वविपक्षव्यावृत्तिरूपतया यु क्तिसंगतायुक्तयस्तानिर्मतिमान् सद्विवेकी पृथिव्यादिजीवनिकायान्प्रत्युपेक्ष्य पर्यालोच्य जीवत्वेन प्रसाध्य तथा सर्वेपि प्राणिनोऽकांतडुःखाडुःखद्विपः सुखलिप्सवश्च मत्वाऽतोम तिमान् सर्वानपि प्रणिनोन हिंस्यादिति । युक्तयश्च तत्प्रसाधिकाः संक्षेपेणेमाइति । सा त्मिका पृथिवी तदात्मनां विडुमलवणोपलादीनां समानजातीयांकुरसद्भावादर्शोविकारां कुरवत् । तथा सचेतनमंनोन्नूमिखननादाविष्कृतस्वनावसंनवाद्दर्डुरवत् । तथा सात्मकं तेजस्तद्योग्याहारवृध्या वृध्युपलब्धेर्बालकवत् । तथा सात्मकोवायुरपराप्रेरितनियततिरश्ची नगतिमत्वान्नोवत् । तथा सचेतनावनस्पतयोजन्मजरामरणरोगादीनां समुदितानां सद्भावात्स्त्रीवत्तथा क्षतसंरोहणाहारोपादानदौहृदसद्भावस्पर्शसंकोच सायान्हस्वापप्रवो

धाश्रयोपसर्पणादिन्योहेतुन्योवनस्पतेश्चैतन्यसिद्धिः । द्वींद्रियादीनां तु पुनः कृम्यादीनां स्पष्टमेव चैतन्यं तद्वेदनाश्चोपक्रमिकाः स्वाभाविकाश्च समुपलन्यमानामनोवाक्कायैः कृत कारितानुमतिभिश्च नवकेन नेदेन तत्पीडाकारिणउपमर्दान्निवर्तितव्यमिति ॥ ए ॥ एतदे व समर्थयन्नाह । (एयंखुइत्यादि) खुशब्दोवाक्यालंकारेऽवधारणेवा । एतदेवानंतरोक्तं प्राणातिपातनिवर्तनं ज्ञानिनोजीवस्वरूपतद्वधकर्मबंधवेदिनः सारं परमार्थप्रधानं । पुन रप्यादरख्यापनार्थमेतदेवाह । यत्कंचनप्राणिनमनिष्टदुःखं सुखैषिणं न हिनस्ति प्रनूतवे दिनोपि ज्ञानिनएतदेव सारतरं ज्ञानं यत्प्राणातिपातनिवर्तनमिति । ज्ञानमपि तदेव पर मार्थतोयत्पीडातोनिवर्तनं । यथोक्तं । किताए पढियाए, पयकोडीए पयालनूयाए ॥ ज ञ्ञित्तियं ण णायं, परस्स पीडा न कायव्वा ॥१॥ तदेवमहिंसाप्रधानः समयआगमः संकेतो वापदेशरूपस्तदेवंनूतमहिंसासमयमेतावंतमेव विज्ञाय किमन्येन बहुना परिज्ञानेनैताव तैव परिज्ञानेन मुमुक्षोर्विवक्षितकार्यपरिसमाप्तेरतोन हिंस्यात्कंचनेति. ॥ १० ॥

उडूं अहेय तिरियं, जे केइ तसथावरा ॥ सवञ्च विरतिं विज्जा, सं ति निवाणमाहियं ॥ ११॥ पनू दोसे निराकिच्चा, ण विरुन्नेज्ज के णई ॥ मणसा वयसा चेव, कायसा चेव अंतसो ॥ १२ ॥

अर्थ–(उडूंअहेयतिरियं के०) उंचो नीचो अने तीर्छो एतावता सर्व लोकने विषे (जेकेइतसथावरा के०) जे कांइ त्रस अने स्थावर जीवछे, (सवञ्चविरतिंविज्जा के०) ते सर्वजीवनी निवृत्तिकरे एटले प्राणातिपात थकी निवर्ते, (संतिनिवाणमाहियं के०) एहिज विरति, शांति अने निर्वाण श्रीतीर्थंकरे कह्युंछे. ॥ ११ ॥ (पनूदोसेनिराकिच्चा के०) प्रज्ञु एटले समर्थ इंडीयनो जीपनार मिथ्यात्व अविरति प्रमादादिक दोषने नि राकरी एटले अवगणीने (णविरुन्नेज्जकेणई के०) कोइ पण जीवनीसाथे विरोध जा व नकरे, (मणसावयसाचेव के०) मने करी वचने करी वली (कायसाचेवअंतसो के०) कायाये करी निश्चय थकी कोइ पण जीवनी साथे जावज्जीवसुधी विरोध नकरे. ॥१२॥

॥ दीपिका–उर्ध्वमधस्तिर्यक् ये केचन त्रसाः स्थावराश्च प्राणिनस्तत्र सर्वत्र प्राणिनि विरतिं प्राणातिपातनिवृत्तिं विजानीयात्कुर्यात् । एषैव विरतेः शांतिहेतुत्वाच्छांतिर्वर्तते । त था निर्वाणहेतुत्वान्निर्वाणमप्याख्याता एषैव विरतिः ॥११॥ प्रजुः समर्थोदोषान् मिथ्या त्वविरतिप्रमादकषायादीन् निराकृत्याऽपनीय केनापि प्राणिना सार्धं न विरुध्येत केनैव सह विरोधं न कुर्यात् मनसा वचसा कायेन चांतशः परमार्थतः केनापि नविरुध्येत॥१२॥

॥ टीका–सांप्रतं क्षेत्रप्राणातिपातमधिकृत्याह । (उड्डमहेत्यादि) उर्ध्वमधस्तिर्यक्च ये केचन त्रसास्तेजोवायुर्द्वींड्रियादयस्तथा स्थावराः पृथिव्यादयः किंबहुनोक्तेन सर्वत्र प्राणिनि त्रसस्थावरसूक्ष्मबादरन्नेदन्निन्ने विरतिं प्राणातिपातनिवृत्तिं विजानीयात्कुर्यात् । परमार्थतएवमेवासौ ज्ञाता नवति । यदि सम्यक् क्रियतइति एषैवच प्राणातिपातनिवृत्तिः परेषामात्मनश्च शांतिहेतुत्वाच्छांतिर्वर्तते । यतोविरतिमतोनान्ये केचन बिन्यति नाप्यसौ नवांतरेपि कुतश्चिद्बिन्नेति । अपिच निर्वाणप्रधानैककारणत्वान्निर्वाणमपि प्राणातिपातनिवृत्तिरेव । यदिवा शांतिरुपशमःशांतता निवृत्तिर्निर्वाणं विरतिमांश्चार्तरौड्ध्यानान्नावाडुपशांतिरूपोनिर्वृतिन्नूतश्च नवति ॥ ११ ॥ किंचान्यत् । (पन्नूदोसेइत्यादि) इंड्रियाणां प्रनवतीति प्रन्नुर्वा वश्येंड्रियइत्यर्थः । यदिवा संयमाचारकाणि कर्माण्यन्निनूय मोक्षमार्गे पाजयितव्ये प्रन्नुः समर्थः सएवंनूतः प्रन्नुर्दूषयंतीति दोषामिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगास्तान्निराकृत्याऽपनीय केनापि प्राणिना सार्धं नविरुध्येत न केनचित्सह विरोधं कुर्यात्रिविधेनापि योगेनेति मनसा वाचा कायेन चैवांतशोयावज्जीवं परोपकारक्रियया न विरोधं कुर्यादिति ॥ १२ ॥

संवुमे से महापन्ने, धीरे दत्तेसणं चरे ॥ एसणासमिए णिच्चं, व
ज्जयंते अणेसणं ॥१३॥ नूयाइंच समारंन्न त मुद्दिस्साय जं कडं॥
तारिसं तु ण गिण्हेज्जा, अन्नपाणं सुसंजए ॥ १४ ॥

अर्थ–(संवुमेसेमहापन्नेके०) आश्रवनो रोधकरी संवरने पाम्यो ते महाप्राज्ञ एटले विपुल बुद्धिवंत तथा (धीरेदत्तेसणंचरेके०) परीसह जीतवाने धीर सुन्नट समान एवो व तो दीधेली एषणाने वरे; अर्थात् दातारेदीधो एषणीक निर्दोष एवोजे आहारतेने लिए (एसणासमिएणिच्चंके०) एषणा एटले आहारनी गवेषणा तेने विषे समिति सहित नित्यसदाकाल (वज्जयंतेअणेसणं के०) अनेषणीयने वर्जतो थको संयम पाले ॥१३॥ (नूयाइंचसमारंन्न के०) नूत एटले प्राणीनो समारंन्न करीने (तमुद्दिस्सायजंकडंके) यतिने अर्थे उद्देशीने कीधो एवो जे आधाकर्मिक आहार (तारिसंके०) तादृस एटले तेवो (अन्नपाणं के०) अन्न, पान, वस्त्र, पात्र अने शय्यादिक (णगिण्हेज्जा के०) तेने जे ग्रहण करे नही, ते (सुसंजए के०) सुसंयत जाणवो. ॥ १४ ॥

दीपिका–इंड्रियैः संवृतः समहाप्रज्ञोविपुलमतिर्धीरोऽक्षोन्योन्निक्षुर्दत्तेषणां चरेत् आहारोपधिशय्यादिकं स्वामिना दत्तं सदेषणीयं गृण्हीतेत्यर्थः।एषणायां गवेषणग्रहणग्रासरूपायां त्रिविधायामपि समितः सम्यक्त्तयाऽनेषणां वर्जयन् नित्यं संयममनुपालयेत्॥१३॥

नूतानि प्राणिनः समारज्य संताप्य तं साधुमुद्दिश्य साध्वर्थं यत्कृतं तादृशमाधाकर्म दोष डुष्टमाहारादिकं न गृण्हीयात् नक्तं पानंच सुसंयतोगृहीतव्रतस्तादृशं न भुंजीत ॥१४॥

॥ टीका—उत्तरगुणानधिकृत्याह । (संवुडे इत्यादि) आश्रवद्वाराणां रोधेनेंद्रियनि रोधेन च संवृतः सन्निकुमेहती प्रज्ञा यस्यासौ महाप्रज्ञोविपुलबुद्धिरित्यर्थः । तदनेन जी वाजीवादिपदार्थाभिज्ञता वेदिता नवति । धीरोऽक्षोज्यः क्षुत्पिपासादिपरीषहैर्न क्षोज्यते। तदेव दर्शयति । आहारोपधिशय्यादिके स्वस्वामिना तत्संदिष्टेन वा दत्ते सत्येषणां चरत्ये षणीयं गृण्हातीत्यर्थः । एषणायाएषणायांवा गवेषणग्रहणैषणग्रासरूपायां त्रिविधायाम पि सम्यगितः समितः ससाधुर्नित्यमेषणासमितः सन्ननेषणां परिवर्जयन् परित्यजन्सं यममनुपालयेत् । उपलक्षणार्थत्वादस्य शेषाभिरपीर्यासमित्यादिभिः समितोऽष्टव्यइति ॥ १३ ॥ अनेषणीयपरिहारमधिकृत्याह (नूयाइंइत्यादि) अनूवन् नवंति नविष्यंति च प्राणिनस्तानि नूतानि प्राणिनः समारज्य संरंजसमारंजारंजैरुपतापयित्वा तं साधुमुद्दि श्य साध्वर्थं यत्कृतं तदकल्पितमाहारोपकरणादिकं तादृशमाधाकर्मदोषडुष्टं सुसंयतः सु तपस्वी तदन्नं पानकं वा न भुंजीत । तु शब्दस्यैवकारार्थत्वान्नैवाभ्यवहरेदेवं तेन मार्गोऽ नुपालितोनवति ॥ १४ ॥

पूईकम्मं न सेविज्जा, एस धम्मे वुसीमउ ॥ जं किंचि अभिकंखे ज्जा, सव्वसो तं नभोत्तए ॥ १५ ॥ हणंतं णाणुजाणेज्जा, आयगु त्ते जिइंदिए ॥ ठाणाइं संति सढीणं, गामेसु नगरेसु वा ॥ १६ ॥

अर्थ—(पूईकम्मंनसेविज्जाके०) शुद्धाहार पण जो आधाकर्मिकना एक कण सहि त होय तो ते अशुद्ध थाय, तेमाटे तेने पूतिकर्म कहिए; एवो आहारादिकने नसेवे ए टले नभोगवे (एसधम्मे के०) एवो धर्माचार ते (वुसीमउ के०) साचा संयमवंतनो जाणवो तथा (जंकिंचि के०) जेकांइ निर्दोष आहार होय परंतु तेने (अभिकंखेज्जा के०) सदोष करी जाणे तेपण सशंकित थयो माटे (सव्वसोतंनभोत्तए के०) ते सर्वथा प्रकारे भोगववुं नकल्पे ॥१५॥ (ठाणाइंसंतिसढीणंके०) श्रद्धावंतना स्थान श्रद्धावंत धर्मवंतना आश्रय (गामेसुनगरेसुवाके०) एवा ग्रामने विषे अथवा नगरने विषे साधु रह्या ते त्यांनो आश्रीत कोइएक कूप खनन सत्रुकारकादिकनो करावनार एवो पुरुष साधुने पू छे, जे एमां धर्म छे किंवा नथी एम पुछ्यां थकां (आयगुत्तेजिइंदिए के०) आत्मगुप्त तथा जितेंद्रिय एवो साधु, (हणंतंणाणुजाणेज्जा के०) आरंभेकरी प्राणी हणाता होय तेवा कार्यने अनुमोदे नही, जे एतुं रुडुं काम करेछे एम कहे नही ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—आधाकर्माद्यविशुद्धिकोटयवयवेनापि संपृक्तं पूतिकर्म तन्न सेवेत। एषधर्मः (बुसीमउत्ति) सम्यक्संयमवतोयत्किंचिदनिकांक्षितानुष्ठानं तत्र सर्वशः सर्वप्रकारम प्याहारादिकं पूतिकर्म नोक्तुं न कल्पते ॥ १५ ॥ धर्मश्रद्धावतां ग्रामेषु स्थानान्याश्रया विद्यंते तत्र तत्स्थानाश्रितः कश्चिद्धर्मबुध्या कूपतडागखननप्रपासत्रादिकां क्रियां कुर्याचे न च किमत्र धर्मोस्ति नास्तीत्येवं पृष्टः साधुस्तं प्राणिनोघ्नंतं नानुजानीयात् । किंनूतः साधुः आत्मगुप्तोमनोवाक्कायगुप्तोजितेंद्रियः ॥ १६ ॥

॥ टीका— किंच (पूतीत्यादि) आधाकर्माद्यविशुद्धकोटयवयवेनापि संपृक्तं पूतिकर्म तदेवंनूतमाहारादिकं न सेवेत नोपत्तुंजीत। एषोऽनंतो धर्मकल्पस्वनावः (बुसीमउत्ति) सम्यक् संयमवतोऽऽयमेवानुष्ठानकल्पोयडुताशुद्धमाहारादिकं परिहरतीति। किंच। यद्यप्य शुद्धत्वेनाभिशंकेत किंचिदप्याहारादिकं तत्सर्वशः सर्वप्रकारमप्याहारोपकरणपूतिकर्म नोक्तुं न कल्पतइति ॥ १५ ॥ किंचान्यत् (हणंतमित्यादि) धर्मश्रद्धावतां ग्रामेषु नग रेषु वा खेटखर्वटादिषु वा स्थानान्याश्रयाः संति विद्यंते तत्र तत्स्थानाश्रितः कश्चिद्धर्मो पदेशेन किल धर्मश्रद्धालुतया प्राण्युपमर्दकारिणां धर्मबुध्या कूपतडागखननप्रपासत्रा दिकां क्रियां कुर्यात्तेन च तथानूतक्रियायाः कर्ता किमत्र धर्मोस्ति नास्तीत्येवं पृष्टोवा तडपरोधाद्भयाद्वा तं प्राणिनोघ्नंतं नानुजानीयात्। किंनूतः सन्नात्मना मनोवाक्कायरूपे ण गुप्तआत्मगुप्तस्तथा जितेंद्रियोवश्येंद्रियः सावद्यानुष्ठानं नानुमन्यते ॥ १६ ॥

तहागिरं समारप्न, अत्थि पुन्नंति णोव ए॥ अहवा णत्थि पुन्नंति,
एवमेयं महप्नयं ॥ १७॥ दाणठ्याय जे पाणा, हम्मंति तस
थावरा॥ तेसिं सारखणठाए, तम्हा अत्थित्ति णोवए ॥ १८ ॥

अर्थ—हवे ए स्वरूप विशेषे दीपावेठे अहो मुनीश्वर आ अमारे अनुष्ठाने पुण्यठे किं वा नथी एम पुठ्यां थकां (तहा के०) ते साधु (गिरंसमारप्न के०) एवी वाणी कहे के आ समारंन करवामां (अत्थिपुन्नंतिणोवए के०) पुण्यठे एम पण मुख थकी कहे नही; (अहवा के०) अथवा (णत्थिपुन्नंति के०) एमां पुण्य नथी एम पण मुख थकी कहे नही. (एवमेयं महप्नयं के०) एम ए बने प्रकारने दोषना हेतु तथा महानयना कारण जाणीने एवी नाषा नबोले ॥ १७ ॥ हवे जे कारणे एवी नाषा नबोले ते कारण कहेठे. (दाणठ्यायजेपाणा के०) दानने अर्थे अनेक लोकने अन्नपाणी आपवा सारुं जे प्राणी एटले जीव (तसथावरा के०) त्रस अने स्थावर (हम्मति के०) हणायठे (तेसिंसारकणठाएके०) तेजीवोने राखवाने अर्थे (तम्हा

अच्चित्तिनोवए के०) तेकारणे आ तमारा अनुष्ठाने पुण्यछे एम पण साधु नकहे. ॥१८॥

॥ दीपिका—केनचिद्राजादिना कूपखननसत्रदानादिप्रवृत्तेन पृष्टः साधुः किमस्मदनुष्ठानेऽस्ति पुण्यमाहोस्विन्नास्तीत्येवं नूतां गिरं समारभ्य निशम्यास्तिपुण्यं नास्तिवेत्येवमुभयथापि महाभयमिति मत्वा नानुमन्येत ॥ १७ ॥ अन्नपानादिदानार्थं पाकादिक्रियायां ये प्राणिनोहन्यंते त्रसाःस्थावराश्च तेषां संरक्षणार्थं साधुरत्र पुण्यमस्तीति नोवदेत्॥१८॥

॥ टीका—सावद्यानुष्ठानानुमतिं परिहर्तुकामआह । (तहागिरमित्यादि) केनचिद्राजादिना कूपखननसत्रदानादिप्रवृत्तेन पृष्टः साधुः किमस्मदनुष्ठाने अस्ति पुण्यमाहोस्विन्नास्तीत्येवं नूतां गिरं समारभ्य निशम्याश्रित्य चास्ति पुण्यं नास्तिवेत्येवमुभयथापि महाभयमिति मत्वा दोषहेतुत्वेन नानुमन्येत ॥१७॥ किमर्थं नानुमन्येतइत्याह (दाणठयाइत्यादि) अन्नपानदानार्थमाहारमुदकंच पचनपाचनादिकया क्रियया कूपखननादिकया चोपकल्पयेत् । तत्र यस्माद्धन्यंते व्यापाद्यंते त्रसाः स्थावराश्च जंतवस्तस्मात्तेषां रक्षानिमित्तं साधुरात्मगुप्तोजितेंद्रियोऽत्र भवदीयानुष्ठाने पुण्यमित्येवं नो वदेदिति ॥ १८ ॥

जेसिं तं उवकप्पंति, अन्नपाणं तहाविहं ॥ तेसिं लाभं तरायंति,
तम्हा णत्थित्ति णो वए॥ १९ ॥ जे य दानं पसंसंति, वहमिच्छंति
पाणिणं ॥ जेयणं पडिसेहंति वित्तिछेयं करंति ते ॥ २० ॥

अर्थ—अने (जेसिंतं उवकप्पंति के०) जे लोकने निमित्ते उपकल्पे एटले वांछे शुं वांछे तोके (अन्नपाणंतहाविहंके०) अन्न पाणी तथाविध दोषे दुष्ट अनेक प्रकारे करी नीपजावेछे तथापि तेनो निषेध करे तो (तेसिंलाभंतरायंतिके०) तेने लाभांतराय रूप आहार देवानुं विघ्न थाय (तम्हा के०) ते कारणे आ तमारे अनुष्ठाने पुण्य (णत्थित्तिके०) नथी (नोवए के०) एम पण नकहे. ॥१९॥ (जेयदानंपसंसंति के०) तेमाटे जे कोइ परमार्थनो जाण यति दाननी प्रशंसाकरे ते (वहमिच्छंतिपाणिणं के०) ते प्राणीना वधनी इछा करेछे, (जेयणंपडिसेहंतिके०) अने जे यति दान आपवानो निषेध करे (वित्तिछेयंकरंतिते के०) तो ते यति अनेक जीवोनी आजीविकानो छेद करेछे. ॥ २० ॥

॥ दीपिका—येषां जंतूनां कृते तदन्नपानादिकं धर्मबुध्या उपकल्पयंति निष्पादयंति तन्निषेधे तेषामाहारार्थिनां लाभांतरायोविघ्नोभवेत् । तस्मात्कूपखननसत्रादिकर्मणिनास्ति पुण्यमित्यपि नो वदेत् ॥ १९ ॥ प्रपासत्रादिदानं ये प्रशंसंति ते प्राणिनां वधमिच्छं

ति येच निषेधंति प्रतिषेधयंति तेप्यगीतार्थाः प्राणिनां वृत्तिछेदं आजीविकाविघ्नं कुर्वंति २०

॥ टीका–यद्येवं नास्तिपुण्यमिति ब्रूयात्तदेतदपि न ब्रूयादित्याह । (जेसिमित्यादि) येषां जंतूनां तदन्नपानादिकं किल धर्मबुध्योपकल्पयंति तथाविधं प्राण्युपमर्ददोषदुष्टं निष्पादयंति तन्निषेधेच यस्मात्तेषामाहारपानार्थिनां तल्लाभांतरायोविघ्नोनवेत्तदभावेन तु पीडयेरंस्तस्मात्कूपखननसत्रादिके कर्मणि नास्ति पुण्यमित्येतदपि नोवदेदिति ॥ १९ ॥ एनमेवार्थं पुनरपि समासतः स्पष्टतरं बिभणिषुराह । (जेयदाणमित्यादि) ये केचन प्रपासत्रादिकं दानं बहूनां जंतूनामुपकारीति कृत्वा प्रशंसंति श्लाघंते ते परमार्थानभिज्ञाः प्रभूततरप्राणिनां तत्प्रशंसा द्वारेण वधं प्राणातिपातमिछंति । तद्दानस्य प्राणातिपातमंतरेणानुपपत्तेः । येपिच किल सूक्ष्मधियोवयमित्येवं मन्यमानाआगमसद्भावानभिज्ञाः प्रतिषेधंति निषेधयंति तेप्यगीतार्थाः प्राणिनां वृत्तिछेदं वर्तनोपायविघ्नं कुर्वंतीति ॥ २० ॥

दुहर्उवि ते ण भासंति, अछिवा नछिवा पुणो ॥ आयं रयस्स हेच्चाणं, निवाणं पाउणंति ते ॥ २१ ॥ निवाणं परमं बुद्धा, णख्कत्ताणव चंदमा ॥ तम्हा सदा जए दंते, निवाणं संधए मुणी॥२२॥

अर्थ–(अछिवानछिवा के०) अस्ति अथवा नास्ति एम न कहे एटले पुण्यछे किंवा पुण्य नथी एवी (दुहर्उवि के०) बन्ने प्रकारनी वाणीने (पुणोके०) वली (तेके०) तेसाधु (णभासंति के०) भाषेनही; केमके ए थकी (रयस्सके०) कर्मरूप रज तेनो (आयं के०) लाभ तेने (हिच्चाके०) जाणीने तेवी वाणीने उच्चार करवानो त्याग करे, (निवाणंपाउणंतितेके०) ते साधु निर्वाण प्रत्ये पामे; एटले अनवद्य भाषक एवो साधु संसाररहित थाय ॥ २१ ॥ (निवाणंपरमंबुद्धा के०) निर्वाण एटले मोक्ष तेने परम प्रधान जाणे, (णख्कत्ताणवचंदमाके०) नक्षत्रचंद्रमानी पेरे, जेम नक्षत्रमां चंद्रमा प्रधानछे. तेम तत्वना जाण पुरुष सर्व गतिर्उमां मुक्तिने प्रधान कहेछे. (तम्हाके०) तेमाटे (सदाजएदंतेके०) संयमवंत पुरुष ते निरंतर प्रयत्नवान इंद्रियनुं दमन करनार थको (निवाणंसंधए मुणीके०) एवो साधु मोक्षने साधे अर्थात् सर्व क्रिया मोक्षने अर्थे करे. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–द्विधापि ते पुनः साधवोन भाषंते अस्ति पुण्यं नास्तिवा इति किंतु पृष्टैः सद्भिर्मौनमेवाश्रयणीयं । निर्बंधेत्वस्माकं निर्दोषाहारः कल्पते । एवंविधविषये साधूनामधिकारएव नास्तीति वक्तव्यं । यदुक्तं । सत्यं वप्रेषु शीतं शशिकरधवलं वारि पीत्वा प्रकामं. व्युछिन्नाशेषतृष्णाः प्रमुदितमनसः प्राणिसार्थाभवंति ॥ शोषं नीते जलौघे दिन

करकिरणैर्यात्यनंताविनाशं तेनोदासीनजावं व्रजति मुनिगणः कूपवप्रादिकार्ये ॥ १ ॥ एवं रजसः कर्मणआयं लाजं हित्वा त्यक्त्वाऽनवद्यजाषिणोनिर्वाणं मोक्षं प्राप्नुवंति ॥ ॥ २१ ॥ येषां निर्वाणं मोक्षएव परमं प्रधानं ते बुद्धाज्ञाततत्वाः। यथा नक्षत्राणां मध्ये चंद्रमाप्रधानएवं मोक्षमेवाश्रित्य प्राप्य ये प्रवृत्तास्ते एव बुद्धानां मध्ये प्रधानाः। त स्मात्सदा सर्वकालं यतः प्रयत्नवान् इंद्रियदमने दांतोमुनिर्निर्वाणं संधयेन्निर्वाणार्थं सर्वाः क्रियाः कुर्यादित्यर्थः ॥ २२ ॥

॥ टीका—तदेवं राज्ञा अन्येन वेश्वेरेण कूपतडागयागसत्रदानाद्युद्यतेन पुण्यसद्भावं पृष्टैर्मुमुक्षुभिर्यद्विधेयं तद्दर्शयितुमाह। (डुहजंवीत्यादि) यद्यस्ति पुण्यमित्येवमूचुस्ततोनंता नां सत्वानां सूक्ष्मबादराणां सर्वदा प्राणत्यागएव स्यात्प्रीणनमात्रंतु पुनः स्वल्पानां स्वल्पका लीयमतोस्तीति न वक्तव्यं। नास्ति पुण्यमित्येवं प्रतिषेधेपि तदर्थिनामंतरायः स्यादित्यतो द्विधाप्यस्ति नास्ति वा पुण्यमित्येवं ते मुमुक्षवः साधवः पुनर्न जाषंते किंतु पृष्टैः सद्भिर्मौ नं समाश्रयणीयं। निर्बंधेत्वस्माकं द्विचत्वारिंशद्दोषवर्जितआहारः कल्पते। एवंविधविष ये मुमुक्षूणामधिकारएव नास्तीति । उक्तंच । सत्यं वप्रेषु शीतं शशिकरधवलं वारि पी त्वा प्रकामं, व्युच्छिन्नाशेषतृष्णाः प्रमुदितमनसः प्राणिसार्थाजवंति ॥ शोषं नीते जलौ घे दिनकरकिरणैर्यात्यनंताविनाशं, तेनोदासीनजावं व्रजति मुनिगणः कूपवप्रादिकार्ये ॥१ तदेवमुजयथापि जाषिते रजसः कर्मणआयोलाजोजवतीत्यतस्तं चायं रजसोमौनेना नवद्यजाषणेन वा हित्वा त्यक्त्वा तेऽनवद्यजाषिणोनिर्वाणं मोक्षं प्राप्नुवंतीति ॥२१॥ अपिच। निव्वाणमित्यादि) निर्वृतिर्निर्वाणं तत्परमं प्रधानं येषां परलोकार्थिनां बुद्धानां ते तथा तानेव बुद्धान्निर्वाणवादित्वेन प्रधानानित्येवं दृष्टांतेन दर्शयति । यथा नक्षत्राणा मश्विन्यादीनां सौम्यत्वप्रमाणप्रकाशकत्वैरधिकश्चंद्रमाएवं परलोकार्थिनां बुद्धानां मध्ये ये स्वर्गचक्रवर्तिसंपन्निदानपरित्यागेनाशेषकर्मक्षयरूपं निर्वाणमेवाजिसंधाय प्रवृत्तास्त एव प्रधानानापरइति। यदिवा यथा नक्षत्राणां चंद्रमाः प्रधानजावमनुजवत्येवं लोक स्य निर्वाणं परमं प्रधानमित्येवं बुद्धाअवगततत्वाः प्रतिपादयंतीति । यस्माच्च निर्वाणं प्रधानं तस्मात्कारणात्सदा सर्वकालं यतः प्रयतः प्रयत्नवान् इंद्रियनोइंद्रियदमनेन दांतो मुनिः साधुर्निर्वाणमजिसंधयेन्निर्वाणार्थं सर्वाः क्रियाः कुर्यादित्यर्थः ॥ २२ ॥

वुज्झमाणाण पाणाणं किच्चंताण सकम्मणा ॥ आघाति साहु तं
दीवं, पतिठे सा पवुच्चई ॥ २३ ॥ आयगुत्ते सया दंते, छिन्नसोए
अणासवे ॥ जे धम्मं सुद्धमरकाति, पडिपुन्नमणालिसं ॥ २४ ॥

अर्थ-(बुज्झमाणाण पाणाणं के०) संसार समुड्मां विचरता प्राणी (किच्चंताण सकम्मणा के०) पोतपोताना कर्मेंकरी बेदन नेदननी कदर्थना पामता एवा असरण जीवोने पण (आघातिसाहुतं दीवं के०) श्रीतीर्थंकर गणधरनो कहेलो आश्वासनूत द्वीप समान एवो सम्यक् दर्शनादिक धर्म जाणवो, (पतिठेसापवुच्चई के०) एने संसार समुड्मां परिच्चमणनो टालनार कहिए ॥ २३॥ एवा धर्मनो प्ररुपनार कोण ते कहेबे. (आयगुत्तेसयादंतेके०) आत्माजेनो गुप्तबे ते आत्मगुप्त कहिए तथा सदादांत एटले सर्वकाल पांचेंड्यिनो संवर करनार (बिन्नसोए के०) जेणे संसारना स्रोत बेद्याबे (अणासवेके०) अनाश्रव एटले प्राणातिपातादिक आश्रव रहित (जेधम्मं सुद्धमरकाति के०) एवो जे होय ते सुद्धो धर्म कहे ते धर्म केवोबे, तो के (पडिपुन्न के०) प्रतिपूर्ण सर्व विरतिरूप तथा (अणालिसं के०) निरुपमबे. एटले एवो धर्म अन्य दर्शनीउना कोइपण शास्त्रमां कह्यो नथी माटे ए धर्म उपमारहित बे. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका-संसारसागरे मिथ्यात्वकषायादिनिर्वाह्यमानानां संमुखं नीयमानानां तथा स्वकर्मभिः कृत्यमानानां पीड्यमानानां प्राणिनां परोपकारनिरतस्तीर्थंकारणतस्तीर्थंकरो गणधरादिर्वा साधु शोननं द्वीपमाश्वासनूतमाख्याति । यथा समुड्पतितस्य जंतोः कश्चित्सुखार्थं द्वीपं वक्ति तथा संसारच्चमणविश्रामहेतुं सम्यग्दर्शनादिकं जिनादिर्वक्ति एषा संसारच्चमणविरतिरूपा प्रतिष्ठाप्रोच्यते तज्ज्ञैः ॥ २३ ॥ आत्मा गुप्तोयस्य सआत्मगुप्तः सदांतोवशीकृतेंड्यिः । तथा बिन्नानि त्रोटितानि संसारस्रोतांसि येन सच्छिन्नस्रोतानिराश्रवः कर्मबंधरहितएवंनूतोयः सच्छुद्धं निर्दोषं धर्ममाख्याति कथयति । किंनूतं धर्मं प्रतिपूर्णं सर्वविरतिरूपमनीदृशमनन्यसदृशं ॥ २४ ॥

॥ टीका-किंचान्यत् । (बुज्झमाणाण इत्यादि) संसारसागरस्रोतोभिर्मिथ्यात्वकषायप्रमादादिकैरुह्यमानानां तदनिमुखं नीयमानानां तथा स्वकर्मोदयेन निकृत्यमानानामशरणानामसुमतां परहितैकरतः कारणवत्सलस्तीर्थकृदन्योवा गणधराचार्यादिकस्तेषामाश्वासनूतं साधुं शोननं द्वीपमाख्याति।यथा समुड्रांतः पतितस्य जंतोर्जलकल्लोलाकुलितस्य मुमूर्षोरतिश्रांतस्य विश्रामहेतुं द्वीपं कश्चित्साधुर्वत्सलतया समाख्यात्येवं तथानूतं द्वीपं सम्यग्दर्शनादिकं संसारच्चमणविश्रामहेतुं तीर्थपरतीर्थिकैरनाख्यातपूर्वमाख्यात्येवं च कृत्वा प्रतिष्ठानं प्रतिष्ठा संसारच्चमणविरतिलक्षणैषा दर्शनाद्यवाप्तिसाध्या मोक्षप्राप्तिः प्रकर्षेण तत्वज्ञैरुच्यते प्रोच्यतइति ॥ २३ ॥ किंनूतोऽसावाश्वासद्वीपोनवति कीदृग्विधेन वाऽसावाख्यायतइत्येदाह । (आयगुत्ते इत्यादि) मनोवाक्कायैरात्मा गुप्तोयस्य स

आत्मगुप्तस्तथा सदा सर्वकालमिंद्रियनोइंद्रियदमनेन दांतोवश्येंद्रियोधर्मध्यानध्यायी वे त्यर्थः । तथा छिन्नानि त्रोटितानि संसारस्त्रोतांसि येन सतथा । एतदेव स्पष्टतरमाह निर्गतआश्रवः प्राणातिपातादिकः कर्मप्रदेशद्वाररूपोयस्मात्सनिराश्रवोयएवंभूतः संशु द्धं समस्तदोषाऽपेतं धर्ममाख्याति । किंभूतं धर्मं प्रतिपूर्णं निरवयवतया सर्वविरत्याख्यं मोक्षगमनैकहेतुमनीदृशमनन्यसदृशमद्वितीयमिति यावत् ॥ २४ ॥

तमेव अवि जाणंता, अबुद्धा बुद्धमाणिणो ॥ बुद्धा मोत्तियम
न्नंता, अंतएते समाहिए ॥ २५ ॥ तेय बीउदगं चेव, तमुद्दिस्सा
य जं कडं ॥ भोच्चा झाणं झियायंति, अखेयन्ना असमाहिया ॥ २६ ॥

अर्थ–(तमेवअविजाणंता के०) ते शुद्ध प्रतिपूर्ण धर्मना आचारनुं जे जाणपणु तेने विषे (अबुद्धाबुद्धमाणिणो के०) अबुद्ध एटले अविवेकी छतां, पोतामां पंमित पणु मानता थका जे अमेज धर्मना जाणछैयें, (बुद्धामोत्तियमन्नंता के०) तत्वना जाण एवा बुद्धिमान अमेज छैयें, एवीरीते मानता एवा जनो (अंतएतेसमाहिए के०) ते भाव समाधि थकी अत्यंत दूर वर्त्तनार जाणवा ॥ २५ ॥ एवा कोण पुरुष ते कहेछे. (तेयबीउदगंचेव के०) ते शाक्यादिक अन्य दर्शनी अथवा एवा जे स्वतीर्थिक पासछा दिक तेबीज एटले शाली गोधूमादिक तथा उदक ते सचित्तपाणी तथा (तमुद्दिस्सायजंकडं के०) तेने अर्थे उद्देशीने जे आहारादिक कीधो ते सर्वने अविवेकी पणे जीव्हाना लं पटी छता (भोच्चा के०) भोगवी ने (झाणंझियायंति के०) आर्त्त ध्यान ध्यावे, एट ले संघनो भोजनादिक थशे तेवारे आपणने पण मलशे, एवो आर्त्त ध्यान ध्यावे ते तात्विके (अखेयन्ना असमाहिया के०) धर्माधर्मने विषे अखेदज्ञ एटले अनिपुण तथा एवा ध्यानना ध्यावनार सदा असंतोषी होय माटे असमाधिवंत जाणवा ॥२६॥

॥ दीपिका–तमेवं धर्ममजानानाअबुद्धानिर्विवेकाबुद्धमानिनः पंडितंमन्याबुद्धाः स्मोवयमिति मन्यमानाः समाधेः सम्यग्दर्शनादंते पर्यंतेऽतिदूरे वर्तंते इति तेऽन्ये तीर्थिकाज्ञेयाः ॥ २५ ॥ बीजानि शालिगोधूमादीनि ,उदकमप्रासुकजलं च शाक्यादय स्तानुद्दिश्य तद्भक्तैर्यदाहारादिकं कृतं तत्सर्वं भुक्त्वा सातर्धिरसगौरवासक्ताः संघभक्ता दिक्रियया तदवाप्तिकृते आर्तं ध्यानं ध्यायंति । नहि ऐहिकसुखार्थिनां परिग्रहवतां धर्मं ध्यानं स्यात् । यतः । ग्रामक्षेत्रगृहादीनां, गृहक्षेत्रजनस्य च । यस्मिन् परिग्रहोदृष्टो, ध्यानं तत्र कुतः शुभमिति । मोहस्यायतनं धृतेरपचयः शांतेः प्रतीपोविधि,र्व्याक्षेपस्य सुहृन्मदस्य भवनं पापस्य वासोनिजः ॥ दुःखस्य प्रभवः सुखस्य निधनं ध्यानस्य क

ष्टोरिपुः प्राज्ञस्यापि परिग्रहोग्रहइव क्लेशाय नाशाय च ॥ १ ॥ तथा ते कुतीर्थिकाध र्माधर्मविवेके ऽखेदज्ञाअनिपुणाअसमाहिताश्च समाधेर्मोक्षमार्गाद्दूरस्थाइत्यर्थः ॥ २६ ॥

॥ टीका—एवंनूतधर्मव्यतिरेकिणां दोषानिधित्सयाऽह । (तमेवेत्यादि) तमेवंनूतं शुद्धं प रिपूर्णमनीदृशं धर्ममजानानाअप्रबुद्धाअविवेकिनः पंडितमानिनोवयमेव प्रतिबुद्धाधर्मत त्वमित्येवं मन्यमानान्नावसमाधेः सम्यग्दर्शनाख्यादंते पर्यंते विदूरे वर्ततइति तेच सर्वेपि प रतीर्थिकाइष्टव्याइति ॥२५॥ किमिति ते तीर्थिकान्नावमार्गरूपात्समाधेर्दूरे वर्ततइत्याशंक्या ह।(तेयबीउंदगमित्यादि) तेच शाक्यादयोजीवाजीवानजिज्ञतया बीजानि शालिगोधूमादी नि तथा शीतोदकमप्राशुकोदकं तांश्चोद्दिश्य तन्नक्तैर्यदाहारादिकं कृतं निष्पादितं तत्सर्वमवि वेकितया शाक्यादयोनुक्त्वाऽन्यवहृत्य पुनः सातर्द्धिरसगौरवासक्तमनसः संघनक्तादिक्रिय या तदवाप्तिकृते आर्तं ध्यानं ध्यायंति । नह्यैहिकसुखैषिणां दासीदासधनधान्यादिपरिग्रहव तांधर्मध्यानं नवतीति । तथाचोक्तं। ग्रामक्षेत्रगृहादीनां गृहक्षेत्रजनस्य च॥ यस्मिन्परिग्र होदृष्टो, ध्यानं तत्र कुतः शुन्नमिति । तथा । मोहस्यायतनं धृतेरपचयः शांतेः प्रतीपो विधि,र्व्याक्षेपस्य सुहृन्मदस्य नवनं पापस्य वासोनिजः॥ डुःखस्य प्रन्नवः सुखस्य निध नं ध्यानस्य कष्टोरिपु., प्राज्ञस्यापि परिग्रहोग्रहइव क्लेशाय नाशाय च ॥ १ ॥ तदेवं पच नपाचनादिक्रियाप्रवृत्तानां तदेव चानुप्रेक्षमाणानां कुतः शुन्नध्यानस्य संनवइति । अपि च । ते तीर्थिकाधर्माधर्मविवेके कर्तव्ये अखेदज्ञाअनिपुणाः । तथाहि । शाक्यामनोज्ञाहा रवसतिशय्यासनादिकं रागकारणमपि शुन्नध्याननिमित्तत्वेनाध्यवस्यंति । तथाचोक्तं । म णुन्नंनोयणं नुच्चेत्यादि । तथा मांसं कल्किकमित्यपदिश्य संज्ञांतरसमाश्रयणान्निर्दोषं म न्यंते बुद्धसंघादिनिमित्तं चारंन्नं निर्दोषमिति । तडुक्तं । मंसनिवत्तिं काउं,सेवइ दंतिक्कगंतिध णिन्नेया ॥ इयवइक्कणारंन्नं, परववएसा कुणइ बालो ॥ १ ॥ नचैतावन्निर्दोषता । नहि लू तादिकं शीतलिकायनिधानांतरमात्रेणान्यथात्वं नजते विषं वा मधुरकानिधानेनेति । ए वमन्येषामपि कापिलादीनामाविर्न्नावतिरोन्नावानिधानाभ्यां विनाशोत्पादावन्निदधताम नैपुण्यमाविष्करणीयं । तदेवं ते वराकाः शाक्यादयोमनोद्दिष्टन्नोजिनः सपरिग्रहतयार्त ध्यायिनोऽसमाहितामोक्षमार्गाख्याद्भावसमाधेरसंवृततया दूरेण वर्ततइत्यर्थः ॥ २६ ॥

जहा ढंकाय कंकाय कुललामगुकासिहा ॥ मह्वेसणं जियायंति, ज्झाणं ते कलुसाधमं ॥ २७ ॥ एवंतु समणाएगे, मिह्वदिघ्ठी अ णारिया ॥ विसएसणं जियायंति, कंकावा कलुसाहमा ॥ २८ ॥

अर्थ–(जहाढंकायकंकाय के०) जेम ढंक पक्षी विशेष, तथा कंक पक्षी विशेष (कुललामगुकासिहा के०) कुलला पक्षी विशेष मूंगु पक्षी विशेष काक पक्षी विशेष एसर्व पक्षी मांसना अर्थि मांसनी इहा एटले वांछाना करनार छे. ते (मछेसणंझियायंति के०) माछलानी प्राप्तिनी एषणाने ध्यावतां थकां रहेछे. (आणंतेकलुसाधमं के०) एवा मांसाहारी जीवो ते सर्वकाल कलुष एटले मलीन एवुं माछलानी गवेषणानुं अधम ध्यान ध्यावेछे. ॥ २७ ॥ (एवंतुसमणाएगे के०) ए प्रकारे कोइएक अन्यतीर्थिक अथवा पासछादिक कुशीलिया श्रमण (मिछदिट्ठि के०) मिथ्यादृष्टी (अणारिया के०) अनार्य ते (विसएसणंझियायंति के०) विषयनी एषणा एटले, शब्द रूप रस गंधनी प्राप्तिने ध्यावेछे (कंकावाकलुसाहमा के०) ते पूर्वोक्त कंकादिक पक्षीनी पेरे कलुषित चित्त वाला अधम पुरुषो जाणवा. ॥ २८ ॥

॥ दीपिका–यथा ढंकादयः पक्षिविशेषाजलाश्रयनिवासाआमिषजीविनोमत्स्यप्राप्तिं ध्यायंति तद्ध्यायिनश्च ते कलुषाधमाः स्युः । एवं शाक्यादयोविषयप्राप्तिं ध्यायंतः कलुषाधमाश्च स्युः ॥ २७ ॥

टीका–यथा चैते रससातागौरवतयार्तध्यायिनोनवंति तथा दृष्टांतद्वारेण दर्शयितुमाह । (जहाढंकायइत्यादि) यथेत्युदाहरणन्यासार्थः । यथा येन प्रकारेण ढंकादयः पक्षिविशेषाजलाश्रयाआमिषजीविनोमत्स्यप्राप्तिं ध्यायंत्येवंनूतं च ध्यानमार्तरौद्रध्यानरूपतयाऽत्यंतकलुषमधमं च नवतीति ॥२७॥ दार्ष्टांतिकं दर्शयितुमाह । (एवमित्यादि) एवमिति यथा ढंकादयोमत्स्यान्वेषणपरं ध्यानं ध्यायंति तद्ध्यायिनश्च कलुषाधमानवंत्येवमेव मिथ्यादृष्टयः श्रमणाएके शाक्यादयोऽनार्यकर्मकारित्वात्संरंनपरिग्रहतया अनार्याः संतो विषयाणां शब्दादीनां प्राप्तिं ध्यायंति तद्ध्यायिनश्च कंकाइव कलुषाधमानवंतीति ॥२८॥

सुद्धं मग्गं विराहित्ता, इहमेगेउ दुम्मती ॥ उम्मग्गगता दुक्खं,
घायमेसंति तं तहा ॥ २९ ॥ जहा आसाविणिं नावं, जाइअंधो
दुरूहिया ॥ इछइ पारमागंतुं, अंतराय विसीयंती ॥ ३० ॥

अर्थ–(सुद्धंमग्गंविराहित्ताके०)शुद्धमार्गजे सम्यक्दर्शनादिक तेने कुमार्गनी प्ररुपणाये विराधता एवा (इहके०) आसंसारमांहे (मेगेउदुम्मतीके०) कोइएक दुराचारी पोताना दर्शनना अनुरागे प्रवर्त्तता (उम्मग्गगतादुक्खं के०) उन्मार्ग गत एटले अरिहंत नाषीत तत्व थकी विपरीत मार्गे प्राप्त थया छता दुःखजे अष्ट प्रकारना कर्म असातोदयरूप तेणे करी (घायमेसंतितंतहा के०) तथा प्रकारे ते घात एटले नरकादिकगतिमांहे

अनेक प्रकारेकरी जन्ममरणछेदन नेदनादिक डुःखनी वेदना पामे. ॥ २ए ॥ (जहाके०) जेम (जाइअंधोके०) जात्यंध पुरुष (आसाविणिंके०) शतछिड् सहित एवी (नावंके०) नावने विषे (डुरूहिया के०) बेसीने (इछति पारमागंतुंके०) समुड् तरी पार पाम वानी इछा करे पण तेवी नावा थकी समुड्नो शीरीते पार पामे? (अंतरायविसीयंती के०) ते पुरुष अंतराले विषीदंति एटले वचमांज बुडे, परंतु पार पामे नही. ॥ ३० ॥

॥ दीपिका– शुद्धं निर्दोषं मोक्षमार्गप्ररूपणया विराध्य दूषयित्वा इह संसारे एके शाक्यादयोडुर्मतयउन्मार्गगताडुःखं घातं च मृतिं ते शाक्यादयस्तथा तेन प्रकारेण एषंति अन्वेषयंति डुःखमरणे शतशः प्रार्थयंतीत्यर्थः ॥ २ए ॥ यथा जात्यंधआस्राविणीं शतछिड्रां नावमारुह्य पारमागंतुमिछति। न चासौ छिड्नावारूढः पारगतः स्यात् किंतर्हि अंतराले जलमध्यएव विषीदति निमज्जति ॥ ३० ॥

॥ टीका–किंच (शुद्धमित्यादि) शुद्धमवदातं निर्दोषं मार्गं सम्यग्दर्शनादिकं मोक्षमार्गं कुमार्गप्ररूपणया विराध्य दूषयित्वा इहास्मिन्संसारे मोक्षमार्गप्ररूपणप्रस्तावे वा एके शाक्यादयः स्वदर्शनानुसारेण महामोहाकुलितांतरात्मानोडुष्टा पापोपादानतया मतिर्येषां ते डुष्टमतयः संतउन्मार्गेण संसारावतरणरूपेण गताः प्रवृत्ताउन्मार्गगताडुःखयतीति डुःखमष्टप्रकारं कर्मासातोदयरूपं वा तद्दुःखं घातं चांतशस्तथा सन्मार्गविराधनतया उन्मार्गगमनं चैषंत्यन्वेषयंति। डुःखमरणे शतशः प्रार्थयंतीत्यर्थ. ॥ २ए ॥ शाक्यादीनां चापायं दिदर्शयिषुस्तावद्दृष्टांतमाह । (जहाआसाविणिमित्यादि) यथा जात्यंधआस्राविणीं शतछिड्रां नावमारुह्य पारमागंतुमिछति। नचासौ सछिड्तया पारगामी नवति किंतर्ह्यंतरालएव जलमध्यएव विषीदति निमज्जतीत्यर्थः ॥ ३० ॥

एवंतु समणा एगे, मिछदिठी अणारिया ॥ सोयं कसिणमावन्ना, आगंतारो महप्नयं ॥ ३१ ॥ इमंच धम्ममादाय, कासवेण पवेदितं ॥ तरे सोयं महाघोरं, अत्तत्ताए परिव्वए॥ ३२ ॥

अर्थ–हवे ए दृष्टांत अन्यतीर्थिक साथे जोडेछे (एवंतुसमणाएगे के०) एरीते कोइ एक अन्य दर्शनी श्रमण (मिछदिठी अणारिया के०) मिथ्यादृष्टी अनाचारी विपरीत मार्गना उपदेशक विपरीत बुद्धिना धणी ते (सोयंकसिणमावन्ना के०) श्रोत एटले कर्मनो आश्रव तेने विषे संपूर्ण पोहोच्या थका (आगंतारोमहप्नयं के०) आवते काले महानय एटले अत्यंत बीहामणा एवा नरकादिकना डुःख पामे. ॥३१॥ (इमंचधम्ममादाय के०) एम सर्वलोक प्रसिद्ध बकाय जीवोनो वाछल कारी एवो श्रुत चारित्र

रूप धर्म तेने ग्रहण करीने (कासवेणपवेदितं के०) ते धर्म काश्यपगोत्री श्रीमहावीर देवे कह्यो ते धर्मने आदरवा थकी फल जे थाय ते कहेछे (तरेसोयंमहाघोरं के०) ते माहाघोर एवो संसार समुद्रनो श्रोत एटले प्रवाहरूप स्थानक तेने तरे अर्थात् संसार समुद्रने उल्लंघीने पारपामे, (अत्तत्ताएपरिव्वए के०) ते कारण माटे आत्मानो त्राण एटले रक्षपाल एवो साधु ते एहिज सम्यग् धर्मने समाचारे ॥ ३२ ॥

॥ दीपिका—एवमेके शाक्यादयः श्रमणामिथ्यादृष्टयोऽनार्याजावस्रोतःकर्माश्रवरूपं कृत्स्नं समापन्नाः संतोमहाजयं पौनःपुन्येन डुःखमागंतारआगमनशीलाः स्युः संसार सागरोत्तरणं न स्यादिति ॥३१॥ इमं प्रत्यक्षं धर्मं । चः पुनरर्थे। काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितं प्रणीतं आदाय गृहीत्वा जावस्रोतः संसारपर्यटनं महाघोरं तरेल्लंघयेत् । तदेवं जिनप्रणीतधर्माटनेनासता आत्मनस्त्राणाय नरकादिन्योरक्षणाय परिव्रजेत्संयमानुष्ठायी स्यात् । क्वचित्पश्चार्द्धस्यायं पाठः । (कुज्जाभिक्खूगिलाणस्स, अगिलाएसमाहिए)। भिक्षुः साधु ग्लानस्य वैयावृत्यमग्लानोऽपरिश्रांतः कुर्यात्समाधिना ग्लानस्य समाधिमुत्पादयन् ॥३२॥

॥ टीका—दार्ष्टांतिकमाह । (एवंत्वित्यादि) एवमेव श्रमणाएके शाक्यादयोमिथ्यादृष्टयोऽनार्याजावस्रोतःकर्माश्रवरूपं कृत्स्नं संपूर्णमापन्नाः संतस्ते महाजयं पौनःपुन्येन संसारपर्यटनतया नारकादिस्वजावं डुःखमागंतारआगमनशीलाजवंति । न तेषां संसारोदधेरास्राविणीं नावं व्यवस्थितानामिवोत्तरणं जवतीति जावः ॥ ३१ ॥ यतः शाक्यादयः श्रमणाः मिथ्यादृष्टयोऽनार्याः कृत्स्नं स्रोतः समापन्नाः महाजयमागंतारोजवंति ततइदमपदिश्यते । (इमंचेत्यादि) इदमिति प्रत्यक्षासन्नवाचित्वादिदमोनंतरं वक्ष्यमाणलक्षणं सर्वलोकप्रकटं च डुर्गतिनिषेधेन शोजनगतिधारणाद्धर्मं श्रुतचारित्राख्यं । चशब्दः पुनःशब्दार्थे । सच पूर्वस्माद्व्यतिरेकं दर्शयति । यस्मात्तीर्थिकोदनिप्रणीतधर्मस्यादातारोमहाजयं गंतारोजवंति इमं पुनर्धर्ममादाय गृहीत्वा काश्यपेन श्रीवर्धमानस्वामिना प्रवेदितं प्रणीतं तरेल्लंघयेज्जावस्रोतः संसारपर्यटनस्वजावं । तदेव विशिनष्टि । महाघोरं डुरुत्तारत्वान्महाजयानकं । तथाहि । तदंतर्वर्तिनोजंतवोगर्जाद्गर्जं जन्मतोजन्म मरणान्मरणं डुःखाडुःखमित्येवमरघट्टघटीन्यायेनानुजवंतोऽनंतमपि कालमासते । तदेवं काश्यपप्रणीतधर्मादानेन सता आत्मनस्त्राणं नरकादिरक्षा तस्मै आत्मत्राणाय परिःसमंतात्परिव्रजेत्संयमानुष्ठायी जवेदित्यर्थः । क्वचित्पश्चार्धस्यान्यथा पाठः । कुज्जाभिक्खूगिलाणस्स. अगिलाएसमाहिए ॥ भिक्षुः साधुः ग्लानस्यवैयावृत्यमग्लानोऽपरिश्रांतः कुर्यात्सम्यक्समाधिना ग्लानस्य वा समाधिमुत्पादयन्निति ॥ ३२ ॥

विरए गामधम्मेहिं जे केइ जगई जगा ॥ तेसिं अत्तुवमायाए,
थामं कुव्वं परिव्वए ॥ ३३ ॥ अइमाणं च मायं च, तं परिन्नाय
पंडिए ॥ सव्वमेयं णिराकिच्चा, णिवाणं संधए मुणी ॥ ३४ ॥

अर्थ–विरति साधु संयमानुष्ठानने शीरीतें पाले ते उपर कहेछे. (विरएगामधम्मेहिंके०) ग्रामधर्मजे शब्दादिक विषय ते थकी विरति थको अने (जेकेइजगईजगा के०) जेकांइ जगत्रमांहे त्रस अने स्थावर जीवछे (तेसिंअत्तुवमायाए के०) तेने पोताना आत्म तुल्यनी उपमायें देखीने तेने राखवाने अर्थे (थामंकुव्व के०) बलवीर्य फोरवतो थको (परिव्वए के०) संयम पाले. ॥ ३३ ॥ अइमाणंचमायंच के०) जे कारणे मान जे छे ते चारित्रने अतिक्रमे छे तेमाटे तेने अतिमान कहिए. एना साथें क्रोध पण लेवो एम ज अतिमाया अने चशब्द थकी लोज पण लेवो (तं के०) ते चार कषायने (पंडिए के०) पंडित विवेकी जन होय ते एने संयमना शत्रु (परिन्नाय के०) ज्ञपरिज्ञायें करी जाणीने (सव्वमेयंणिराकिच्चा के०) एसर्व कषायने संसारनुं कारण जाणीने तेने प्रत्याख्यान परिज्ञायें करी निराकरीने (णिवाणंसंधएमुणीके०) साधु मोक्षने सधे वांछाकरे.

॥ दीपिका–ग्राम्यधर्माः शब्दादिविषयास्तेन्योविरताः संत्येके केचन जगति जगाः प्राणिनोजीवितार्थिनस्तेषामात्मोपमया तद्रक्षणाय स्थामं सामर्थ्यं कुर्वन् परिव्रजेत्संयमे ॥ ३३ ॥ अतिमानं च मायां चशब्दात्क्रोधलोजौ गृह्येते । एवं कषायव्रतं परिज्ञाय पंडितः सर्वमेतं नवहेतुं निराकृत्य निर्वाणमनुसंधयेत् मोक्षार्थी प्रशस्तजावानुगतः स्यात् । सतिच कषाये न संयमः सफलतां याति । यतः । सामन्नमणुचरंतस्स, कसाया जस्स उक्कडा होंति । मन्नामि उच्छुपुप्फंच, निष्फलं तस्स सामन्नंइति ॥ ३४ ॥

॥ टीका–कथं संयमानुष्ठाने परिव्रजेदित्याह । (विरएइत्यादि) ग्रामधर्माः शब्दादयो विषयास्तेन्योविरतामनोज्ञेतरेष्वरक्तद्विष्टाः संत्येके केचन जगति पृथिव्यां संसारोदरे (जगाइति) जंतवोजीवितार्थिनस्तेषां डुःखद्विषामात्मोपमया डुःखमनुत्पादयन्तद्रक्षणे सामर्थ्यं कुर्यात्कुर्वंश्च संयमानुष्ठाने परिव्रजेदिति ॥ ३३ ॥ संयमविघ्नकारिणामपनयनार्थमाह । (अइमाणंचेत्यादि) अतीव मानोऽतिमानश्चारित्रमतिक्रम्य योवर्तते चकारादेतद्धेतुः क्रोधोपि परिगृह्यते । एवमतिमायां चशब्दादतिलोनं च तमेवंभूतं कषायव्रतं संयमपरिपंथिनं पंडितोविवेकी परिज्ञाय सर्वमेनं संसारकारणभूतं कषायसमूहं निराकृत्य निर्वाणमनुसंधयेत्सति च काषायकर्दमके नसम्यक् संयमः सफलतां प्रतिपाद्यते । तदुक्तं ।

सामस्समणुचरंतस्स कसाया जस्स उक्कडा होंति ॥ मस्सामि उच्छुपुप्फंच निप्फलं तस्स सामस्सं ॥१॥ तन्निष्फलत्वेच न मोक्षसंभवः । तथाचोक्तं । संसारादपलायनप्रतिभुवोरागादयो मे स्थितास्तृष्णाबंधनबध्यमानमखिलं किंवेत्सि नेदं जगत् ॥ मृत्यो मुंच जराकरेण परुषं केशेषु मामाग्रहीरेहीत्यादरमंतरेण भवतः किंनागमिष्याम्यहं॥१॥इत्यादि । तदेवमेवंभूतकषायपरित्यागादच्छिन्नप्रशस्तभावानुसंधनया निर्वाणानुसंधानमेव श्रेयइति ॥ ३४ ॥

संधए साहुधम्मंच, पाठांतरं (सद्दए साहुधम्मंच) पावधम्मं णिराकरे ॥ उवहाणवीरिए भिक्खू, कोहं माणंच पछए॥ ३५ ॥
जे य बुद्धा अतिक्कंता, जे य बुद्धा अणागया ॥ संति तेसिं पइठाणं, भूयाणं जगती जहा ॥ ३६ ॥

अर्थ-(संधएसाहुधम्मंच के०) साधुनो धर्मजे क्षमादिक दश प्रकारनोछे तेने सम्यक् जाणीने वृद्धि करे एटले सम्यक् उपदेशीने वृद्धि पमाडे पाठांतरे (सद्दए साहुधम्मंच के०) दश प्रकारनायतिधर्म उपर श्रद्धा राखे. (पावधम्मंणिराकरे के०) पापधर्म जे जीवोनो मर्दन करतो थको धर्मनेभावे प्रवर्त्ते तेने पापधर्म कहिए, तेने निराकरे एटले तेनुं उच्छापन करीने (उवहाणवीरिएभिक्खू के०) उपधान जे तप तेने विषे बलवीर्य फोरवतो एवो साधु (कोहंमाणंचपछए के०) क्रोध अने मानने प्रार्थे नही. चशब्द थकी साधु वर्तमान काले एवीरीते संयम पाले. ॥ ३५ ॥ ए धर्म श्रीमहावीर देवे कह्यो किंवा अन्य जिनोए पण कह्यो ते कहेछे. (जेयबुद्धाअतिक्कंता के०) जे तीर्थंकर अतीत काले थया, तथा (जेयबुद्धाअणागया के०) जे तीर्थंकर अनागत काले थशे चशब्द थकी जे तीर्थंकर वर्त्तमान काले बिराजमान छे, ते सर्वे एज धर्मना कहेनार जाणवा (संतितेसिंपइठाणं के०) तेनो प्रतिष्ठान एटले अवलंबननो स्थानक ते शांति एटले समस्त जीवनी दया जाणवी, कोनीपेरे तोके (जहाके०) जेम (भूयाणंजगती के०) समस्त जीवोने आधारभूत पृथवीरूप स्थानक छे, तेम सर्वे तीर्थंकर देवोने जीवदया रूप शांतिनुं स्थानक ते आधारभूत जाणवो. ॥ ३६ ॥

॥ दीपिका-साधुधर्मं संयमं संधयेत् वृद्धिं प्रापयेत् तथा पापधर्मं हिंसात्मकं निराकुर्यात् । उपधानं तपस्तत्र वीर्योभिक्षुः क्रोधं मानं च न प्रार्थयेन्नवर्धयेत् ॥ ३५ ॥ ये बुद्धास्तीर्थकृतोऽतिक्रांताअतीताये चाऽनागताः । चशब्दाद्वर्तमानाजिनेंद्रास्तेषां सर्वेषां शांतिर्भावमार्गः प्रतिष्ठानमाधारः । अथवा शांतिर्मोक्षः प्रतिष्ठानमाधारः । मोक्षश्च भावमार्गं विना नस्यादित्यतः सर्वेपि जिनाएनं भावमार्गं प्रतिष्ठानमुक्तवंतोऽनुष्ठितवंतश्चेति ग

म्यंते । नूतानां प्राणिनां यथा त्रिलोकी प्रतिष्ठानमेवं सर्वेपि बुद्धाः शांतिप्रतिष्ठानाः ॥३६॥

॥ टीका–किंच । (संधएइत्यादि) साधूनां धर्मः क्षांत्यादिकोदशविधः सम्यग्दर्शनचारित्राख्योवा तमनुसंधयेद्वृद्धिमापादयेत् । तद्यथा । प्रतिक्षणमपूर्वज्ञानग्रहणेन ज्ञानं तथा शंकादिदोषपरिहारेण सम्यग्जीवादिपदार्थाधिगमेन च सम्यग्दर्शनमस्खलितमूलोत्तरगुणसंपूर्णपालनेन प्रत्यहमपूर्वज्ञानग्रहणेन चारित्रंवृद्धिमापादयेदिति । पागंतरंवा (सद्दहेसाधुधम्मंच) पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टसाधुधर्मं मोक्षमार्गत्वेन श्रद्दधीत निःशंकतया गृह्णीयाच्चशब्दात्सम्यगनुपालयेच्च । तथा पापं पापोपादानकारणं धर्मं प्राण्युपमर्देन प्रवृत्तं निराकुर्यात्तथोपधानं तपस्तत्र यथाशक्त्या वीर्यं यस्य सनवत्युपधानवीर्यस्तदेवंनूतोनिक्षुः क्रोधं मानं च न प्रार्थयेन्नवर्धयेद्वेति ॥ ३५ ॥ अथैवंनूतं नावमार्गं किं वर्धमानस्वाम्येवोपदिष्टवानुतान्येपीत्येतदाशंक्याह । (जेयबुद्धाइत्यादि) ये बुद्धास्तीर्थकृतोऽतीते नादिके कालेऽनंताः समतिक्रांतास्ते सर्वेप्येवंनूतं नावमार्गमुपन्यस्तवंतस्तथा ये चानागता नविष्यदनंतकालनाविनोनंताएव तेप्येवमेवोपन्यसिष्यंति । चशब्दाद्वर्तमानकालनाविनश्च संख्येयाइति । न केवलमुपन्यस्तवंतोऽनुष्ठितवंतश्च गम्यंते । तद्दर्शयति । शमनं शांतिर्नावमार्गस्तेषामतीतानागतवर्तमानकालनाविनां बुद्धानां प्रतिष्ठानमाधारोबुद्धत्वस्यान्यथानुपपत्तेः । यदिवा शांतिर्मोक्षः सतेषां प्रतिष्ठानमाधारस्ततस्तदवाप्तिश्च नावमार्गमंतरेण न नवतीत्यतस्ते सर्वेप्येनं नावमार्गमुक्तवंतोऽनुष्ठितवंतश्च गम्यंते । शांतिप्रतिष्ठानत्वे दृष्टांतमाह । नूतानां स्थावरजंगमानां यथा जगती त्रिलोकी प्रतिष्ठानमेवं ते सर्वेपि बुद्धाः शांतिप्रतिष्ठानाइति ॥ ३६ ॥

अहसं वयमावन्नं, फासा उच्चावया फुसे ॥ ण ते सुविणिहसेज्जा वाएणव महागिरी ॥ ३७ ॥ संवुमे से महापन्ने, धीरे दत्तेसणं चरे ॥ निव्वुमे कालमाकंखी, एवं केवलिणो मयंतिबेमि ॥३८॥
इति मोक्षमार्गनामकं एकादसममज्ञयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ–(अहसंवयमावन्नंके०) अथ हवे व्रतप्रतिपन्न संयम ग्राहित साधुने (फासाउच्चावयाफुसे के०) सम विषमादिक ऊंचा नीचा अनुकूल प्रतिकूल एवा परिसह फरशे (णतेसुविणिहसेज्जा के०) तोपण तेणे करीने ते धर्मथकी नचुके एटले धर्म थकी भ्रष्ट नथाय, कोनी पेरे तोके (वाएणवमहागिरी के०) जेम वायरे करी मेरुपर्वत मोलायमान नथाय, तेम परिसह उपने थके साधुजन व्रत थकी मोलायमान नथाय. ॥३७॥ (संवुमेसेमहापन्ने के०) ते साधु संवरवान महाप्रज्ञावंत, (धीरेदत्तेसणंचरे के०) धै

र्यवान कर्मविदारवाने सूरवीर, दीधो एषणीक आहार ग्रहण करवाने विषे विचरे (नि व्वुमेकालमाकंखी के०) तथा निवृत्त उपशांत कषाय वालो एवो बतो मरण कालसु धी संयमने वांछे (एवंकेवलिएोमयं के०) एम केवल ज्ञानीउंनो मतछे अने तेज केवल ज्ञानीउंनो प्रकाश्यो मार्ग श्रीमहावीर देव कहेछे, पण महारी बुद्धिये हुं केतो नथी. ति बेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ ३७ ॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगना प्रथमश्रुतस्कंधने विषे मो क्षमार्गनामे एकादशमां अध्ययनो अर्थ समाप्त थयो. ॥

॥ दीपिका–अथ तं साधुं प्रतिपन्नव्रतं उच्चावचाः शुनाशुनाः स्पर्शाः परीषहोप सर्गाः स्पृशेयुः पीडयेयुः । सच साधुस्तैः पीडितोन विहन्यात् न संयमाच्चलेत् । यथा वातेन वायुना महागिरिर्मेरुर्न चलेत् । परीषहोपसर्गजयश्चाभ्यासवशाद्विधेयः । यथा क श्चिद्गोपस्तदहर्जातं तर्णकमुत्पाटय गवांतिकं नयति आनयति च ततोसौ क्रमेण प्रत्यहं वर्धमानमपि वत्समुत्पाटयन्नभ्यासवशाद्द्विवर्षत्रिवर्षमपि तमुत्पाटयति । एवं साधुरप्यभ्या सात्परीषहोपसर्गजयं विधत्ते ॥३७॥ ससंवृतः साधुर्महाप्रज्ञः सम्यग्दर्शनज्ञानवान् धीरः परीषहादिभिरक्षोभ्यः परेण दत्ते आहारादिके एषणां चरेत् त्रिविधयैषणया युक्तः संयमे चरेत् तथा निर्वृतः शीतीभूतकालं मृत्युकालं यावदभिकांक्षेत् । एतन्मया यत्पूर्वोक्तं त त्केवलिनः सर्वज्ञस्य मतमिति । ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाहेति ॥३८॥ इत्ये कादशं मार्गाध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका–प्रतिपन्नभावमार्गेण च यद्विधेयं तद्दर्शयितुमाह । (अहसुमित्यादि) अथ मार्गप्र तिपत्त्यनतरं साधुं प्रतिपन्नव्रतं संतं स्पर्शाः परीषहोपसर्गरूपाउच्चावचागुरुलघवोनानारू पावा स्पृशेयुः । सच साधुस्तैरभिद्रुतः संसारस्वभावमपेक्षमाणः कर्मनिर्जरांच न तैरनुकूल प्रतिकूलैर्विहन्यात् नैवं संयमानुष्ठानान्मनागपि विचलेत्किमिव महावातेनेव महागिरिर्मेरु रिति। परीषहोपसर्गजयश्चाभ्यासक्रमेण विधेयोऽभ्यासवतोहि दुष्करमपि सुकरं भवति । अ त्र दृष्टांतः। तद्यथा कश्चिद्गोपस्तदहर्जातं तर्णकमुत्क्षिप्य गवांतिके नयत्यानयति वा ततोसा वनेनैव क्रमेण प्रत्यहं प्रवर्द्धमानमपि वत्समुत्क्षिपन्नभ्यासवशाद्विहायनं त्रिहायणमप्यु त्क्षिपत्येवं साधुरप्यभ्यासात् शनैःशनैः परिषहोपसर्गजयं विधत्तइति ॥३७॥ सांप्रतमध्यय नार्थमुपसंजिहीर्षुरुक्तशेषमधिकृत्याह । (संवुडेइत्यादि) सएवं साधुः संवृताश्रवद्वारत या संवरसंवृतोमहती प्रज्ञा यस्यासौ महाप्रज्ञः सम्यग्दर्शनज्ञानवांस्तथा धीर्बुद्धिस्तया राज तइति धीरः परीषहोपसर्गाऽक्षोभ्योवा सएवंभूतः सन् परेण दत्ते सत्याहारादिके एषणां चरेत्त्रिविधयाप्येषणया युक्तः सन् संयममनुपालयेत्तथा निवृतः कषायोपशमाच्छीतीभूतका लं मृत्युकालं यावदभिकांक्षेत् । एतन्मया प्राक् प्रतिपादितं तत्केवलिनः सर्वज्ञस्य तीर्थक

तोमतं । एतच्च जंबूस्वामिनमुद्दिश्य सुधर्मस्वाम्याह । तदेतद्यत्त्वया मार्गस्वरूपं प्रश्नितं तन्मया न स्वमनीषिकया कथितं तर्हि केवलिनोमतमेतदित्येवं भवता ग्राह्यं । इतिः परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३८ ॥ इति मार्गाख्यमेकादशमध्ययनं समाप्तं ॥

॥ हवे समवसरण नामे बारमुं अध्ययन प्रारंभिए ठैए अगीयारमां अध्ययनने विषे मोक्ष मार्ग कह्यो ते मोक्षने तो जे कुमार्ग मूकीने सुमार्गने पडिवजे ते अंगीकार करे माटे मार्ग प्रतिपत्ति चारित्रियें कुमार्गने परिहरवो ए अधिकारे बारमो अध्ययन प्रारंभियेंठैए.

चत्तारि समोसरणाणिमाणि, पावाडुया जाइं पुढोवयंति ॥ कि
रियं अकिरियं विणियंति तइयं, अन्नाण माहंसु चउत्थमेव ॥१॥
असाणिया ता कुसलावि संता, असंथुयाणो वितिगिच्छतिन्ना ॥
अकोविया आहु आकोवियेहिं, अणाणुवीइत्तु मुसं वयंति ॥२॥

अर्थ—(चत्तारिसमोसरणाणिमाणि के०) ए आगल दखाणशे ते चार प्रकारना समोसरण एटले परतीर्थिकनो समुदाय जाणवो ते (पावाडुयाजाइंपुढोवदंति के०) प्रावाडुक एटले कुवादि ते जुडुं जुडुं बोलेठे ते केवीरीते तोके एकवादि (किरियं के०) क्रियानेज सफल कहेठे. तथा बीजो वादि (अकिरियं के०) अक्रियानेज सफल कहेठे अने (विणियंतितइयं के०) त्रीजोवादि विनयज प्रधानठे एम बोलेठे (अन्नाणमाहंसुचउत्थमेव के०) अन्यवली चोथो अज्ञानवादि ते अज्ञाननेज प्रधान पणे मानेठे ॥ १ ॥ हवे एपूर्वोक्त चारे वादिउमाना सर्व प्रकारे असंबंध प्रलापि अज्ञातिक एवा जे अज्ञानवादि तेनेज पहेला कहेठे. (असाणियाताकुसलाविसंता के०) ते अज्ञानवादि अज्ञानी ठता एम कहेठेजे अमेज पंमित ठैयें एम मानेठे परंतु ते (असंथुया के०) असंबंधभापी जाणवा ते (णोवितिगिच्छतिन्ना के०) चित्तनीजे भ्रांति तेथकी तरया नथी माटे मृषावादि जाणवा ते अज्ञानवादि (अकोविया आहुअकोवियेहिं के०) सम्यक् धर्म प्ररुपवाने अनिपुण एटले साक्षात् सत्यधर्मनुं ज्ञान जाणवाने असमर्थठे माटे ए अकोविद ठे तो एना समीपे सांभले एवा जे एमना शिष्य तेपण अकोविद एटले मूर्ख जाणवा जेमाटे ते एवुं असंबंध वचन बोलेठे के अज्ञान एज श्रेयठे तो एवुं ते मनुं बोलवुं जठे तेने मूर्खज मान्य करेठे ॥ सरिसासरिसेहिंरच्चंति इतिवचनात् एम ते (अणाणुवीइत्तुमुसंवयंति के०) अनालोची थका सर्वकाल मृपाज बोलेठे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—सांप्रतं द्वादशमारभ्यते । पूर्वं मार्गउक्तः सच कुमार्गपरित्यागात्सम्यग्भवतीति इह कुमार्गत्यागउच्यते । यथा (चत्तारित्ति) चत्वारि समवसरणानि परतीर्थि

कान्युपगमसमूहरूपाणि इमानि यानि प्रावाडुकाः परतीर्थिकाः पृथक् पृथक् वदंति। क्रियामस्तीत्यादिकां वदंतीति क्रियावादिनः १ अक्रियां नास्तीत्यादिकां वदंतीत्यक्रिया वादिनः २ तृतीयावैनयिकाः ३ चतुर्थास्त्वज्ञानिकाः ४ इमानि चत्वारि समवसरणान्यु च्यंते ॥ १ ॥ अथैतेषामज्ञानिकाएव सर्वापलापिनस्तानेवादावाह । (अण्णाणीति) अ ज्ञानिकास्तावदादौ प्रदर्श्यंते । अज्ञानिकाः किल वयं कुशलाइति वादिनोपि संस्तुताश्च संबुद्धाः अतएव विचिकित्सा चित्तशुद्धिश्चित्तभ्रांतिस्तां न तीर्णानातिक्रांताः । तथाहि। केचित्सर्वज्ञं मन्यंते केचित्तं निषेधंति एके सर्वगतमात्मानं वदंत्यन्ये देहमात्रमपरे अंगु ष्ठपर्वमात्रं । केचित् श्यामाकतंडुलमात्रमन्ये मूर्तममूर्तं हृदयमध्यवर्तिनं ललाटस्थितमि त्यादि । एषामेकवाक्यता कथं स्यात् । नचातिशयज्ञानी कश्चिदस्ति य द्वाक्यं प्रमाणीक्रि यते । तथा ज्ञानवतां प्रमादोबहुदोषः । ततोवरमज्ञानमेवेति वदंतश्चित्तभ्रांतिं नातिक्रां ताअकोविदाः सम्यक्परिज्ञानविकलाअकोविदेन्यः स्वशिष्येन्यआहुः । तथा तेऽननुवि चिंत्य अविचिंत्य नाषणान्मृषाऽसत्यं वदंति ॥ २ ॥

॥ टीका–उक्तमेकादशमध्ययनं । सांप्रतं द्वादशमारन्यते । अस्य चायमनिसंबंधः । इ हानंतराध्ययने मार्गोनिहितः सच कुमार्गव्युदासेन सम्यग्मार्गतां प्रतिपाद्यतेऽतः कुमार्गव्यु दासं चिकीर्षुणा तत्स्वरूपमवगंतव्यमित्यतस्तत्स्वरूपनिरूपणार्थमिदमध्ययनमायातमस्य चोपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराणि । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोऽयं । तद्यथा । कुमा र्गानिधायिनां क्रियाक्रियाज्ञानिवैनयिकानां चत्वारि समवसरणानीह प्रतिपाद्यंते । नाम निष्पन्ने तु निक्षेपे समवसरणमित्येतन्नामनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । समवसरणंमिचउक्कं सचित्ताचित्तमीसगं दव्वे ॥ खेत्तंमि जंमि खेत्ते,काले जं जंमि कालंमि ’॥१ ७॥ (समवस रणमित्यादि) समवसरणमिति सृगतावित्येतस्य धातोः समवोपसर्गपूर्वस्य ल्युडंतस्य रू पं । सम्यगेकीनावेनावसरणमेकत्रगमनं मेलापकः समवसरणं तस्मिन्नपि केवलं स मार्थो षड्विधोनामादिकोनिक्षेपस्तत्रापि नामस्थापने क्षुण्णे द्रव्यविषयं पुनः समवसरणं नोआगमतोज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तं सचित्ताचित्तमिश्रनेदात्रिविधं । सचित्तमपि द्विप दचतुष्पदापदनेदात्रिविधमेव । तत्र द्विपदानां साधुप्रनृतीनां तीर्थकृज्जन्मनिष्क्रमणप्रदे शादौ मेलापकः । चतुष्पदादीनां गवादीनां निपानप्रदेशादौ । अपदानां तु वृक्षादीनां स्वतोनास्ति समवसरणं विवक्षया तु काननादौ नवत्यपि । अचित्तानां तु द्व्यणुकाय नादीनां तथा मिश्राणां सेनादीनां समवसरणसद्भावोऽवगंतव्यइति । क्षेत्रसमवसरणं तु परमार्थतोनास्ति विवक्षया तु यत्र द्विपदादयः समवसरंति व्याख्यायते च समवसरणं यत्र तत्क्षेत्रप्राधान्यादिदमुच्यते । एवं कालसमवसरणमपि द्रष्टव्यमिति । इदानीं नाव

समवसरणमधिकृत्याह । " भावसमोसरणं पुण, णायवं छविहंमि भावंमि ॥ अहवा वि किरिय अकिरिया, अन्नाणी नेव चेणइया ॥ १ए ॥ (भावसमवसरणमित्यादि) भावा नामौदयिकादीनां समवसरणमेकत्र मेलकोभावसमवसरणं । तत्रौदयिकोभावएकविंशति भेदः । तद्यथा । गतिश्चतुर्धा । कषायाश्चतुर्विधाः । एवं लिंगं त्रिविधं । मिथ्यात्वाज्ञानाऽसंयतत्वाऽसिद्धत्वानि प्रत्येकमेकैकविधानि। लेश्याः कृष्णादिभेदेन षड्विधाभवंति । औपशमिकोद्विविधः । सम्यक्त्वचारित्रोपशमभेदात् । क्षायोपशमिकोप्यष्टादशभेदभिन्नः । तद्यथा । ज्ञानं मतिश्रुतावधिमनःपर्यायभेदाच्चतुर्धा । अज्ञानं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभंगभेदात्रिविधं । दर्शनं चक्षुरवधिदर्शनभेदात्रिविधमेव । लब्धिर्दानलाभभोगोपभोगवीर्यभेदात्पंचधा । सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाः प्रत्येकमेकप्रकाराइति । क्षायिकोनवप्रकारःतद्यथा। केवलज्ञानं केवलदर्शनं दानादिलब्धयः पंच सम्यक्त्वं चारित्रं चेति। जीवत्वभव्यत्वाभव्यत्व भेदात्पारिणामिकस्त्रिविधः।सान्निपातिकस्तु द्वित्रिचतुःपंचकसंयोगैर्भवति । तत्र द्विकसंयोगः संसिद्धस्य क्षायिकपारिणामिकभावद्वयसद्भावादवगंतव्यः । त्रिकसंयोगस्तु मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्ट्यविरतानामौदयिकक्षायोपशमिकपारिणामिकभावसद्भावादवगंतव्यः । तथा भवस्थकेवलिनोप्यौदयिकक्षायिकपारिणमिकसद्भावाद्विज्ञेयइति । चतुष्कसंयोगोपि क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामौदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकभावसद्भावात्तथोपशमिकसम्यग्दृष्टीनामौदयिकोपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसद्भावाच्चेति । पंचकसंयोगस्तु क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामुपशमश्रेण्यां समस्तोपशांतचारित्रमोहानां भावपंचकसद्भावाद्विज्ञेयइति । तदेवं भावानां द्विकत्रिकचतुष्कपंचकसंयोगात्संभविनः सान्निपातिकभेदाः षड्भवंत्येतएव त्रिकसंयोगचतुष्कसंयोगगतिभेदात्पंचदशधा प्रदेशांतरेऽभिहिताइति । पड्विधे भावे भावसमवसरणं निर्युक्तिकृदेव दर्शयति । क्रियां जीवादिपदार्थोस्तीत्यादिकां वदितुं शीलं येषां ते क्रियावादिनः । एतद्विपर्यस्ताअक्रियावादिनस्तथा ज्ञानिनोज्ञाननिन्हववादिनस्तथा वैनयिकाविनयेन चरंति तत्प्रयोजनावा वैनयिकाः । एषां चतुर्णामपि सप्तभेदानामाक्षेपं कृत्वा यत्र विक्षेपः क्रियते तद्भावसमवसरणमित्येतच्च स्वयमेव निर्युक्तिकारोऽत्यगाथया कथयिष्यति । सांप्रतमेतेषामेवाभिधानान्वर्थतादर्शनद्वारेण स्वरूपमाविष्कुर्वन्नाह॰। "अत्थित्ति किरियवादी, वयंति णत्थियकिरियवादीया ॥ अन्नाणी अन्नाणं, भणइत्ता वेणइयवादी" ॥ २० ॥ (अत्थित्तीत्यादि) जीवादिसद्भावपदार्थोस्त्येवेत्ये । वसावधारणक्रियाभ्युपगमोयेषां ते अस्तीति क्रियावादिनस्ते चैवंवादित्वान्मिथ्यादृष्टयःन । तथाहि । यदि जीवोस्त्येवेत्येवमभ्युपगम्यते ततः सावधारणत्वान्न कथंचिन्नास्तीत्यतः स्वरूपसत्तावत्पररूपापत्तिरिति स्यादेवंच नानेकं जगत् स्यान्नचैतद्दृष्टमिष्टं वा । तथा नास्त्येव जीवादिकः पदार्थइत्येवं वादिनोऽक्रियावादिनस्ते

प्यसद्भूतार्थप्रतिपादनान्मिथ्यादृष्टयएव । तथा ह्येकांतेन जीवास्तित्वप्रतिषेधे कर्तुरभावा न्नास्तीत्येतस्यापि प्रतिषेधस्याभावस्तदभावाच्च सर्वास्तित्वमनिवारितमिति ॥ तथा न ज्ञा नमज्ञानं तद्विद्यते येषां ते ज्ञानिनस्ते ह्यज्ञानमेव श्रेयइत्येवं वदंत्येतेपि मिथ्यादृष्टयएव। तथा ह्यज्ञानमेव श्रेयइत्येतदपि न ज्ञानमृतेभणितुं पार्यते तदभिधानाच्चावश्यं ज्ञानम भ्युपगतं तैरिति । तथा वैनयिकाविनयादेव केवलात्स्वर्गमोक्षावाप्तिमभिलपंतोमिथ्यादृ ष्टयोयतोन ज्ञानक्रियाभ्यामंतरेण मोक्षावाप्तिरिति । एषां च क्रियावाद्यादीनां स्वरूपं त न्निराकरणं चाचारटीकायां विस्तरेण प्रतिपादितमिति नेह प्रतन्यते । सांप्रतमेतेषां भेद संख्यानिरूपणार्थमाह । "असियसयं किरियाणं, अकिरियाणं च होइ चुलसीति ॥ अन्ना णियसत्तट्ठी, वेणइयाणं च बत्तीसा." ॥ २१ ॥ (असियेत्यादि) क्रियावादिनामशीत्यधि कं शतं भवति तच्चानया प्रक्रियया । तद्यथा । जीवादयोनव पदार्थाः परिपाट्या स्थाप्यं ते । तदधः स्वतः परतइति भेद द्वयं ततोप्यधोनित्यानित्यभेद द्वयं ततोप्यधस्तात्परिपाट्या कालस्वभावनियतीश्वरात्मपदानि पंच व्यवस्थाप्यंते । ततश्चैवं चारणिकाप्रक्रमः । तद्य था । अस्ति जीवः स्वतोनित्यः कालतः । तथाऽस्ति जीवः स्वतोऽनित्यः कालतएव । ए वं परतोपि भंग द्वयं । सर्वेपि च चत्वारः कालेन लब्धाः । स्वभावनियतीश्वरात्मपदान्य पि प्रत्येकं चत्वारएव लभंते । ततश्च पंचापि चतुष्ककाविंशतिर्भवंति । साथि जीवपदा र्थेन लब्धा । एवमजीवादयोप्यष्टौ प्रत्येकं विंशतिं लभंते । ततश्च नवविंशतयोमीलि ताः क्रियावादिनामशीत्युत्तरशतं भवतीति । इदानीमक्रियावादिनां नसंत्येव जीवादयः पदार्थाइत्येवमभ्युपगमवतामनेनोपायेन चतुरशीतिरवगंतव्या । तद्यथा । जीवादीन् प दार्थान् सप्तान्निलिख्य तदधः स्वपरभेद द्वयं व्यवस्थाप्यं । ततोप्यधः कालयदृच्छानियति स्वभावेश्वरात्मपदानि षड्व्यवस्थाप्यानि । भंगकानयनोपायस्त्वयं । नास्ति जीवः स्वतः कालतः । तथा नास्ति जीवः परतः कालतः । एवं यदृच्छानियतिस्वभावेश्वरात्मभिः प्र त्येकं द्वौद्वौ भंगकौ लभ्येते । सर्वेपि द्वादश । तेऽपि च जीवादिपदार्थसप्तकेन गुणिता श्चतुरशीतिरिति । तथाचोक्तं । कालयदृच्छानियतिस्वभावेश्वरात्मतश्चतुरशीतिः । नास्तिक वादिगणमते न संति भावाः स्वपरसंस्थाः । सांप्रतमज्ञानिकानामज्ञानादेव विवक्षितका र्यसिद्धिमिच्छतां ज्ञानं तु सदपि निष्फलं बहुदोषत्वाच्चेत्येवमभ्युपगमवतां सप्तषष्टिरनेनो पायेनावगंतव्या । जीवाजीवादीन् नव पदार्थान् परिपाट्या व्यवस्थाप्य तदधोऽमी सप्त भंगकाः संस्थाप्याः । सत् असत् सदसत् अवक्तव्यं सदवक्तव्यं असदवक्तव्यं सद सदवक्तव्यमिति । अभिलापस्त्वयं । सन् जीवः कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन १ असन् जीवः कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन, २ सदसन जीवः कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन ३ अव क्तव्योजीवः कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन ४ सदवक्तव्योजीवः कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन ५ अ

सदवक्तव्योजीवः कोवेत्ति किंवातेन ज्ञातेन ६ सदसदवक्तव्योजीवः कोवेत्ति किंवातेन ज्ञातेन ७ एवमजीवादिष्वपि सप्त भंगकाः । सर्वेपि मिलितास्त्रिपष्टिस्तथाऽपरे ऽमी च त्वारोभंगकाः । तद्यथा । सती भावोत्पत्तिः कोवेत्ति किंवा तया ज्ञातया १ असती भावोत्पत्तिः कोवेत्ति किंवा तया ज्ञातया २ सदसती भावोत्पत्तिः कोवेत्ति किंवा तया ज्ञातया ३ अवक्तव्या भावोत्पत्तिः कोवेत्ति किंवा तया ज्ञातया ४ सर्वेपि सप्तषष्टिरित्युत्तरं भंगकत्रयमुत्पन्नभावावयवोपेक्षमिह भावोत्पत्तौ न संभवतीति नोपन्यस्तं । उक्तंच । अज्ञानिकवादिमतं नव जीवादीन् सदादिसप्तविधान् ॥ भावोत्पत्तिः सदसद्द्वेधा वाच्या च कोवेत्ति ॥ १ ॥ इदानीं वैनयिकानां विनयादेव केवलात्परलोकमपीछतां द्वात्रिंशदनेन प्रक्रमेण योज्याः । तद्यथा । सुरनृपतियतिज्ञानिस्थविराधममातृपितृषु मनसा वाचा कायेन दानेन चतुर्विधोविनयोविधेयः । सर्वेप्यष्टौ चतुष्ककामिलिता द्वात्रिंशदिति । उक्तं च वैनयिकमतं विनयश्चेतोवाक्कायदानतः कार्यः । सुरनृपतियतिज्ञानिस्थविराधम मातृपितृषु सदा ॥ १ ॥ सर्वे प्येते क्रियाज्ञानिवैनयिकवादिभेदाएकीकृतास्त्रीणि त्रिषष्ट्यधिकानि प्रावाडुकमतशतानि भवंति । तदेवंवादिनां मतभेदसंख्यां प्रदर्श्याऽधुना तेषामध्ययनोपयोगित्वं दर्शयितुमाह । “ तेसिं मताणुमएणं पन्नवणावन्निया इहज्जयणे॥ सप्भावणिछयहं, समोसरणमाहु तेणं तु ” ॥ २२ ॥ (तेसिंमताणुमएणंइत्यादि) तेषां पूर्वोक्तवादिनां मतमभिप्रायस्तेन यदनुमतं पक्षीकृतं तेन पक्षीकृतेन पक्षीकृताश्रयणेन प्रज्ञापना प्ररूपणा वर्णिता प्रतिपादिता इहास्मिन्नध्ययने गणधरैः । किमर्थमिति दर्शयति । तेषां यः सद्भावः परमार्थस्तस्य निश्चयोनिर्णयस्तदर्थं तेनैव कारणेनेदमध्ययनं समवसरणाख्यमाहुर्गणधराः । तथाहि । वादिनां सम्यगवसरणं मेलापकस्तन्मतनिश्चयार्थमस्मिन्नध्ययने क्रियतइत्यतः समवसरणाख्यमिदमध्ययनं क्रियते । इदानीं तेषां सम्यग्मिथ्यात्ववादित्वं विभागेन यथा भवति तथा दर्शयितुमाह । “ सम्मद्दिठी किरिया, वादीमिछाय सेसगा वाई ॥ जहि ऊणमिछवाय, सेवहवायं इमं सवं ॥ २३ ॥ (सम्मद्दिठीत्यादि) सम्यगविपरीता दृष्टिर्दर्शनं पदार्थपरिछित्तिर्यस्यासौ सम्यग्दृष्टिः । कोसावित्याह । क्रियामस्तीत्येवंभूतां वदितुं शीलमस्येति क्रियावादी । अत्रच क्रियावादीत्येतदछित्तिकिरियवादीत्यनेन प्राक् प्रसाधितं सदनूद्यसम्यग्दृष्टित्वं विधीयते तस्याऽसिद्धत्वादिति। तथाहि । अस्ति लोकालोकविभागः । अस्त्यात्मा अस्ति पुण्यपापविभागः । अस्ति तत्फलं स्वर्गनरकावाप्तिलक्षणं । अस्ति कालः कारणत्वेनाशेषस्य जगतः प्रभववृद्धिस्थितिविनाशेषु साध्येषु तथा शीतोष्णवर्षावनस्पतिपुष्पफलादिषु चेति । तथाचोक्तं । कालः पचति भूतानीत्यादि । तथास्तिस्वभावोपि कारणत्वेनाशेषस्य जगतः स्वोभावः स्वभाव इति कृत्वा तेनहि जीवाजीवभव्यत्वमूर्तत्वानां स्वरूपानुविधानात् । तथा धर्माऽधर्माका

शकालादीनां च गतिस्थित्यवगाहपरत्वापरत्वादिस्वरूपापादनादिति । तथा चोक्तं । कः कंटकानामित्यादि । तथा नियतिरपि कारणत्वेनाश्रीयते । तथातथा पदार्थानां नियते रेव नियतित्वात् । तथाचोक्तं । प्राप्तव्योनियतिबलाश्रयेणेत्यादि । तथा पुरा कृतं यत्त्र शुनाशुनमिष्टानिष्टफलकारणं । तथा चोक्तं । यथायथा पूर्वकृतस्य कर्मणः फलं निधान स्थमिहोपतिष्ठते ॥ तथातथा पूर्वकृतानुसारिणी प्रदीपहस्तेव .मतिः प्रवर्तते ॥ १ ॥ तथा । स्वकर्मणा युक्तएव सर्वोह्युत्पद्यते जनः ॥ सयथाऽकृष्यते तेन न यथा स्वयमि च्छतीत्यादि । तथा पुरुषकारोपि कारणं यस्मान्नपुरुषकारमंतरेण किंचित्सिध्यति । तथा चोक्तं । न दैवमिति संचिंत्य त्यजेदुद्यममात्मनः ॥ अनुद्यमेन कस्तैलं तिलेन्यः प्राप्तुमर्हति ॥ १ ॥ तथा । उद्यमाच्चारुचित्रांगि नरोनद्राणि पश्यति ॥ उद्यमात्कृमिकीटोपि निनत्ति महतोद्रुमान् ॥ २ ॥ तदेवं सर्वानपि कालादीन् कारणत्वेनान्युपगच्छन् तथात्मपुण्यपापपरलोकादिकं चेच्छन् क्रियावादी सम्यग्दृष्टि त्वेनान्युपगंतव्यः । शेषकास्तु ·वादाअक्रियावादाज्ञानवादवैनयिकवादामिथ्यावादाइ त्येवं द्रष्टव्याः । तथाहि । अक्रियावाद्यत्यंतनास्तिकोऽध्यक्षसिद्धं जीवाजीवादिपदा र्थजातमपन्हुवन् मिथ्यादृष्टिरेव नवति । अज्ञानवादी तु सति मत्यादिके हेयोपादे यप्रदर्शके ज्ञानपंचके ऽज्ञानमेव श्रेयइत्येवं वदन् कथं नोन्मत्तः स्यात्तथा विनयवाद्य पि विनयादेव केवलात् क्रियासाध्यां सिद्धिमिच्छन्नपकर्णयितव्यः । तदेवं विपरीतार्था निधायकाएते मिथ्यादृष्टयो ऽवगंतव्याः । ननुच क्रियावाद्यप्यशीत्युत्तरशतनेदोनवति तत्रतत्र प्रदेशे कालादीनन्युपगच्छन्नैव मिथ्यावादित्वेनोपन्यस्तस्तत्कथमिह सम्यग्दृष्टित्वे नोच्यतइति । उच्यते । सतत्रास्त्येव जीवइत्येवं सावधारणतयाऽन्युपगमं कुर्वन् का लएवैकः सर्वस्यास्य जगतः कारणं तथा स्वनावएव नियतिरेव पूर्वकृतमेव पुरुषकारएवे त्येवमपरनिरपेक्षतयैकांतेन कालादीनां कारणत्वेनाश्रयणान्मिथ्यात्वं । तथाहि । अ स्त्येव जीवइत्येवमस्तिना सह जीवस्य सामानाधिकरण्यात् । यद्यदस्ति तत्तज्जीवइति प्रा प्तमतोनिरवधारणपक्षसमाश्रयणादिह सम्यक्त्वमनिहितं । तथा कालादीनामपि स मुदितानां परस्परसव्यपेक्षाणां कारणत्वेनेहाश्रयणात्सम्यक्त्वमिति । ननुच कथं कालादीनां प्रत्येकं निरपेक्षाणां मिथ्यात्वस्वनावत्वे सति समुदितानां सम्यक्त्वसद्भावः । नहि यत्प्रत्येकं नास्ति तत्समुदायेपि नवितुमर्हति सिकतातैलवत् । नैतदस्ति प्रत्येकं प्रत्येकं पद्मरागादिमणिष्वविद्यमानापि रत्नावली समुदाये नवंती दृष्टा । नच दृष्टे ऽनुपपन्नं नामेति यत्किंचिदेतत् । तथाचोक्तं । कालो सहावणियई, पुव्वकयं पुरिसकारणे गंता ॥ मिच्छत्तं ते चेव उ, समासउ होंति संमत्तं ॥ १ ॥ सव्वे विय कालाइ इय समुदा येण साहगा नणिया ॥ जुज्जुत्तियएमेवय, सम्मं सव्वस्स कज्जस्स ॥ २ ॥ नहि काला

दी हिंतो, केवलएहिं तु जायए किंचि ॥ इह मुग्गरंधणादिवि, ता सवे समुदिता हेऊ ॥ ३ ॥ जह णेगलरकणगुणा, वेरुलियादीमणीविसंजुत्ता ॥ रयणावलीवएसं, ण लहंति महग्घमुल्लावि ॥ ४ ॥ तह णिययवादसुविणि, छियावि अणाणपरकनिरवेरका ॥ सम्मदं सणसदं, सवेवि णयाणपाविंति ॥ ५ ॥ जह पुण तेचेव मणी, जहा गुणविसेसनागपडिबद्धा ॥ रयणावलित्तिनणइ, चयंतिपाडिक्कसस्नाउ ॥ ६ ॥ तह सवे णयवाया, जहाणुरूवविणिउत्तवत्तवा ॥ सम्मदं सणसदं, लनंति ण विसेससस्नाउ ॥ ७ ॥ तम्हा मिच्छदिही, सवे विणया सपरकपडिबद्धा ॥ अस्नोस्ननिस्सिया पुण, हवंति सम्मत्तसझावा ॥ ८ ॥ यतएवं तस्मात्त्यक्त्वा मिथ्यात्ववादं कालादिप्रत्येकैकांतकारणरूपं सेवध्वमंगीकुरुध्वं सम्यग्वादं परस्परसव्यपेक्षकालादिकारणरूपमिममिति मयोक्तं प्रत्यक्षावसन्नं सत्यमवितथमिति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपः । सांप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं तच्चेदं । (चत्तारीत्यादि) अस्य च प्राक्तनाध्ययनेन सहायं संबंधः । तद्यथा । साधुना प्रतिपन्नजावमार्गेण कुमार्गाश्रिताः परवादिनः सम्यक्परिज्ञाय परिहर्तव्यास्तत्स्वरूपाविष्करणं चानेनाध्ययनेनोपदिश्यते इत्यनंतरसूत्रस्यानेन सूत्रेण सह संबंधोयं । तद्यथा । संवृतोमहाप्रज्ञोवीरोदत्तेषणां चरन्नन्निनिर्वृतः सन् मृत्युकालमनिकांक्षेदेतत्केवलिनोनाषितं । तथा परतीर्थिकपरिहारं च कुर्यात् एतच्च केवलिनो मतं । अतस्तत्परिहारार्थं तत्स्वरूपनिरूपणमनेन क्रियते । चत्तारीति संख्यापदमपरसंख्यानिवृत्त्यर्थं समवसरणानि परतीर्थिकान्युपगमसमूहरूपाणि यानि प्रावाडुकाः पृथग्वदंति तानि चामूनि अन्वर्थाजिधायिजिः संज्ञापदैर्निर्दिश्यंते । तद्यथा । क्रियामस्तीत्यादिकां वदितुं शीलं येषां ते क्रियावादिनस्तथाऽक्रियां नास्तीत्यादिकां वदितुं शीलं येषां तेऽक्रियावादिनस्तथा तृतीयावैनयिकाश्चतुर्थास्त्वज्ञानिकाइति ॥ १ ॥ तदेवं क्रियाऽक्रियावैनयिकाज्ञानवादिनः सामान्येन प्रदर्श्याधुना तद्रूपणार्थं तन्मतोपन्यासं पश्चानुपूर्व्याप्यस्तीत्यतः पश्चानुपूर्व्याकर्तुमाह । यदि चैतेषामज्ञानिकाएव सर्वापलापितयाऽत्यंतमसंबद्धाश्चतस्तानेवादावाह । (अस्राणियाइत्यादि) अज्ञानं विद्यते येषामज्ञानेन वा चरंतीत्यज्ञानिकाः । अज्ञानिकावा तावत्प्रदर्श्यंते । ते चाज्ञानिकाः किल वयं कुशलाइत्येवं वादिनोपि संतो ऽसंस्तुताज्ञानमेव श्रेयइत्येवं वादितया असंबद्धाः । असंस्तुतत्वादेव विचिकित्सा चित्तविप्लुतिश्चित्तन्रांतिः संशीतिस्तां न तीर्णानातिक्रांताः । तथाहि । ते ह्यचुर्यएते ज्ञानिनस्ते परस्परविरुद्धवादितया असंबद्धाअसंस्तुतत्वादेव विचिकित्सान यथार्थवादिनोजवंति । तथा ह्येके सर्वगतमात्मानं वदंति तथान्ये असर्वगतं अपरे अंगुष्ठपर्वमात्रं केचन श्यामाकतंडुलमात्रमन्ये मूर्तममूर्तं हृदयमध्यवर्तिनं ललाटव्यवस्थितमित्याद्यात्मपदार्थएव सर्वपदार्थपुरःसरे तेषां नैकवाक्यता । नचातिशयज्ञानी कश्चिदस्तीति य

द्वाक्यं प्रमाणीक्रियेत । न चासौ विद्यमानोप्युपलक्ष्यते ऽर्वाग्दर्शिना । नासर्वज्ञः सर्वं जानातीति वचनात् । तथाचोक्तं । सर्वज्ञोसाविति ह्येतत्तत्कालेऽपि बुभुत्सुभिः ॥ तज्ज्ञान ज्ञेयविज्ञानशून्यैर्विज्ञायते कथं॥ १ ॥ नच तस्य सम्यक् तडुपायपरिज्ञानाभावात्संभवः संभवा भावश्चेतरेतराश्रयत्वात् ।तथाहि । न विशिष्टपरिज्ञानमृते तदवाप्त्युपायपरिज्ञानमुपायमंतरे ण नचोपेयस्य विशिष्टपरिज्ञानस्यावाप्तिरिति । नच ज्ञानं ज्ञेयस्य स्वरूपं परिच्छेत्तुमलं । त थाहि । यत्किमप्युपलभ्यते तस्यार्वाग्मध्यपरभागैर्भाव्यं । तत्रार्वाग्भावस्यवोपलब्धेर्नेतर योस्तेनैव व्यवहितत्वात् । अर्वाग्भागस्यापि भागत्रयकल्पनात्तत्सर्वारातीय भागपरिकल्प नया परमाणुपर्यवसानता परमाणोश्च स्वाभाविकविप्रकृष्टत्वादर्वाग्दर्शिनां नोपलब्धि रिति । तदेवं सर्वज्ञस्याभावादसर्वज्ञस्य च यथावस्थितवस्तुस्वरूपापरिच्छेदात्सर्ववादि नां च परस्परविरोधेन पदार्थस्वरूपाभ्युपगमात् यथोत्तरपरिज्ञानिनां प्रमादवतां बहुतर दोषसंभवादज्ञानमेव श्रेयः । तथाहि । यद्यज्ञानवान् कथंचित्पादेन शिरसि हन्यात् तथापि चित्तशुद्धेर्न तथाविधदोषानुषंगी स्यादित्येवमज्ञानिनएवंवादिनः संतोऽसं बद्धानचैवं विधां चित्तविप्लुतिं वितीर्णाइति । तत्रैवं वादिनस्ते अज्ञानिकाअकोविदा अनिपुणाः सम्यक् परिज्ञानविकलाइत्यवगंतव्याः । तथाहि । यत्तैरभिहितं ज्ञानवादि नः परस्परविरुद्धार्थवादितया न यथार्थवादिनइति तद्भवत्वसर्वज्ञप्रणीतागमाभ्युपगम वादिनामयथार्थवादित्वं ।नचाभ्युपगमवादाएव बाधायै प्रकल्प्यंते । सर्वज्ञप्रणीतागमाभ्यु पगमवादिनां तु न क्वचित्परस्परतोविरोधः सर्वज्ञत्वान्यथानुपपत्तेरिति । तथाहि । प्रक्षी णाऽशेषावरणतया रागद्वेषमोहानामनृतकारणानामभावान्न तद्वाक्यमयथार्थमित्येवं तत्प्रणीतागमवतां न विरोधवादित्वमिति । ननुच स्यादेतद्यदि सर्वज्ञः कश्चित्स्यान्नचासौ संभवतीत्युक्तं प्राक्।सत्यमुक्तमयुक्तं तूक्तं।तथाहि । यत्तावदुक्तं नचासौ विद्यमानोप्युपल क्ष्यते ऽर्वाग्दर्शिभिस्तदयुक्तं।यतोयद्यपि परचेतोवृत्तीनां डुरन्वयत्वात्सरागावीतरागाइव चेष्टं ते वीतरागाः सरागाइवेत्यतः प्रत्यक्षेणानुपलब्धिस्तथापि संभवानुमानस्य सद्भावात्तद्बाध कप्रमाणाभावाच्च तदस्तित्वमनिवार्यं । संभवानुमानं त्विदं व्याकरणादिना शास्त्राभ्यासेन संक्रियमाणायाः प्रज्ञायाज्ञानातिशयोज्ञेयावगमं प्रत्युपलब्धस्तदत्र कश्चित्तथाभूताभ्या सवशात्सर्वज्ञोपि स्यादिति । नच तदभावसाधकं प्रमाणमस्ति । तथाहि । न तावदर्वा ग्दर्शिभिः प्रत्यक्षेण सर्वज्ञाभावः साधयितुं शक्यस्तस्यहि तज्ज्ञानज्ञेयविज्ञानशून्यत्वादशू न्यत्वाभ्युपगमेच सर्वज्ञत्वापत्तिरिति । नाप्यनुमानेन तदव्यभिचारिलिंगाभावादिति । ना प्यनुमानेन सर्वज्ञाभावः साध्यते । तस्य सादृश्यबलेन प्रवृत्तेः । नच सर्वज्ञाभावे साध्ये तादृग्विधं सादृश्यमस्ति येनासौ सिध्यतीति । नाप्यर्थनिष्पत्त्या तस्याः प्रत्यक्षादिप्रमा णपूर्वकत्वेन प्रवृत्तेः । प्रत्यक्षादीनां च तत्साधकत्वेनाप्रवर्तमानात्तस्याप्यप्रवृत्तिः । ना

प्यागमेन तस्य सर्वज्ञसाधकत्वेनापि दर्शनान्नप्रमाणपंचकाभावरूपेणाभावेन सर्वज्ञाभावः सिध्यति । तथाहि । सर्वत्र सर्वदा न संभवति तद्ग्राहकप्रमाणमित्येतदर्वाग्दर्शिनोव क्तुं न युज्यते तेन हि देशकालविप्रकृष्टानां पुरुषाणां यद्विज्ञानं तस्य ग्रहीतुमशक्यत्वा त्तद्ग्रहणे वा तस्यैव सर्वज्ञत्वापत्तेः । नचार्वाग्दर्शिनां ज्ञानं निवर्तमानं सर्वज्ञाभावं भाव यति तस्याऽव्यापकत्वात् । नचाव्यापकव्यावृत्त्या पदार्थव्यावृत्तिर्युक्तेति । नच वस्त्वंतर विज्ञानरूपोभावः सर्वज्ञाभावसाधनायालं । वस्त्वंतरसर्वज्ञयोरेकज्ञानसंसर्गप्रतिबंधाभावा त् । तदेवं सर्वज्ञबाधकप्रमाणाभावात्संभवानुमानस्य च प्रतिपादितत्वादस्ति सर्वज्ञस्त त्प्रणीतागमाभ्युपगमाच्च मतभेददोषोदूरापास्तइति । तथाहि । तत्प्रणीतागमाभ्युपगम वादिनामेकवाक्यतया शरीरमात्रव्यापी संसार्यात्मास्ति तत्रैव तद्गुणोपलब्धेरिति । इतरे तराश्रयदोषश्चात्र नावतरत्येव । यतो ऽभ्यस्यमानायाः प्रज्ञायाज्ञानातिशयः स्वात्मन्यपि दृष्टोनच दृष्टेऽनुपपन्नं नामेति । यदप्यभिहितं । तद्यथा । नच ज्ञानं ज्ञेयस्य स्वरूपं परिछे त्तुमलं सर्वत्रावार्ग्भावेनेत्यवधानात्सर्वारातीयभागस्य च परमाणुरूपतयाऽतींद्रियत्वादित्ये तदपि वाङ्मात्रमेव । यतः सर्वज्ञज्ञानस्य देशकालस्वभावव्यवहितानामपि ग्रहणान्ना स्ति व्यवधानसंभवः । अर्वाग्दर्शिज्ञानस्याप्यवयवद्वारेणाऽवयविनि प्रवृत्तेर्नास्ति व्यवधा नं । न ह्यवयवी स्वावयवैर्व्यवधीयतइति युक्तिसंगतं । अपि चाज्ञानमेव श्रेयइत्यत्राऽ ज्ञानमिति किमयं पर्युदासआहोस्वित्प्रसज्यप्रतिषेधस्तत्र यदि ज्ञानादन्यदज्ञानमिति ततः पर्युदासवृत्त्या ज्ञानांतरमेव समाश्रितं स्यान्नाज्ञानवादइति । अथ ज्ञानं न भवतीत्यज्ञानं तुच्छोनीरूपोज्ञानाभावः सच सर्वसामर्थ्यरहितइति कथंश्रेयानिति । अपिच ज्ञानं श्रेय इति प्रसज्यप्रतिषेधेन ज्ञानं श्रेयोभवतीति क्रियाप्रतिषेधएव कृतः स्यादेतच्चाध्यक्षबाधि तं । यतः सम्यगज्ञानादर्थं परिछिद्य प्रवर्तमानोर्थक्रियार्थी न विसंवाद्यतइति । किंचाऽ ज्ञानप्रमादवद्भिः पादेन शिरःस्पर्शनेपि स्वल्पदोषवतां परिज्ञायैवाज्ञानं श्रेयइत्यभ्युपगम्य ते । एवंच सति प्रत्यक्षएव स्यादभ्युपगमविरोधोनानुमानं प्रमाणमिति । तथा तदेवं सर्वथा तेऽज्ञानवादिनोऽकोविदाधर्मोपदेशं प्रत्यनिपुणाः स्वतोऽकोविदेभ्यएव स्वशिष्येभ्य आहुः कथितवंतः । छांदसत्वाच्चैकवचनं सूत्रेकृतमिति । शाक्याअपि प्रायशोऽज्ञानिका अविज्ञोपचितं कर्मबंधं न यांतीत्येवं यतस्तेऽभ्युपगमयंति । तथा येच बालमत्तसुप्तादयो ऽस्पष्टविज्ञानाअबंधकाइत्येवमभ्युपगमं कुर्वंति ते सर्वेप्यकोविदाइष्टव्याइति । तथाऽ ज्ञानपक्षसमाश्रयणाच्चाननुविचिंत्य भाषणान्मृषा ते सदा वदंति । अननुविचिंत्य भाषणं यतोज्ञाने सति भवति तत्पूर्वकत्वाच्च सत्यवादस्यातोज्ञानानभ्युपगमादननुविचिंत्य भाष णाभावस्तदभावाच्च तेषां मृषावादित्वमिति ॥ २ ॥

सच्चं असच्चं इति चिंतयंता, असाहु साहुत्ति उदाहरंता ॥ जे मे जणा वेणइया अणेगे, पुठावि नावं विणइंसु णाम ॥३॥ अणो वसंखा इति ते उदाहू, अठे स उ नासइ अम्ह एवं ॥ लवाव संकीय अणागएहिं, णो किरिय माहंसु अकिरियवादी ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे विनयवादिने जुदा जुदा करी कहेछे. (सच्चंअसच्चंइतिचिंतयंता के०) जे साचुं ते जुठुं एवुं चिंतवता थका (असाहुसाहुत्तिउदाहरंता के०) तथा जे असाधु होय तेने साधु एम कहेता थका (जेमेजणावेणइयाअणेगे के०) ए पूर्वोक्त रीते जे कोइ जन एटले लोक बोले ते लोकने विनयवादि जाणवा एटले एक विनयज मोक्षनुं कारणछे, गुणागुणनो विशेष कांइ नथी एवीरीते बोलता अजाण लोक सरखा एवाते विनयवादि अनेक प्रकारना एटले बत्रीश प्रकारनाछे (पुठाविनावंविणइंसुणाम के०) ते विनयवादिने कोइए पुछया थकां एम कहेके ए विनयज सरवार्थसिद्धिनुं कारकछे पण बीजुं कांइ जगत्मां श्रेय नथी एम कहे अहीं नाम शब्द संभावनार्थे छे. ॥ ३ ॥ (अणोवसंखाइतितेउदाहू के०) उपसंख्या एटले सम्यक् परिज्ञान ते जेने विषे नथी अर्थात् मूढमति छता एवा विनयवादि एम कहेछे के (अठेसउनासइअम्हएवं के०) अर्थ जे स्वर्ग अने मोक्षादिक तेनी प्राप्ति अमाराज दर्शन थकीछे पण अन्य कोई दर्शनने विषे नथी, एम कहेछे. हवे अक्रियावादिनुं मत कहेछे. (लवावसंकियअणागएहिं के०) लव एटले कर्म तेना अपशंकी एटले सांकणहार एवा लोकायित शाक्यादिक बौद्ध तेना दर्शनने विषे आम कह्युंछे के अतीत अनागत कालछे अने वर्त्तमान काल नथी कारणके क्षणिकपणाने लीधे सर्व पदार्थ क्षणिकछे एवां वचन थकी अणागएहिं एटले जेकांइ कर्त्तव्य करिए ते अनागतज कहेवाय अने कर्म करिए ते तो वर्त्तमान काले होय तेज कर्मलागे तेमाटे एना मते क्रिया पण नथी एवुं सिद्ध थयुं ते कारणे क्रियानुं उपजावेलुं जे शुभाशुभ कर्मनुं बंध ते पण केवीरीते सिद्ध थाय एवीरीते ते अक्रियावादि नास्तिक मतना धारक कर्मथकी नथी शंकाता एवा थका (णोकिरियमाहंसुके०) क्रियाने कर्म बंध मानता नथी तेमाटे एने(अकिरियवादीके०)अक्रियावादि कहिए

॥ दीपिका—अथ वैनयिकान्निराकुर्वन्नाह । (सच्चमित्यादि) सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गइति सत्यमपि असत्यं मन्यमानाविनयादेव मोक्षइत्यसत्यमपि सत्यतया चिंतयंतस्तथा असाधुमपि विनयप्रतिपत्त्या साधुमुदाहरंतः कथयंतः । केते इत्याह । ये इमे प्रत्यक्षावैनयिकाअनेके द्वात्रिंशद्भेदास्तेच जनेन पृष्टाः संतोव्यनंपुविनयं

ग्राहितवंतोविनयादेव स्वर्गमोक्षावाप्तिरित्युक्तवंतः ॥ ३ ॥ न उपसंख्याऽनुपसंख्याऽप रिज्ञानं तयाऽज्ञानेन व्यामूढमतयस्ते वैनयिकाइति । अथ क्रियावादिमतमाह । (लवा वसंकीति) लवंकर्म तस्मादपशंकितुमपसर्तुं शीलं येषां ते लवापशंकिनोलोकायतिकाना स्तिकाः शाक्यादयश्च तेषामात्मैव नास्ति कुतः क्रिया । बौद्धाएवमाहुः । अनागतैः क्ष णैश्च शब्दादतीतैश्च वर्तमानक्षणस्यासंगतेर्नक्रिया नापि तज्जनितः कर्मबंधः । तदेवमक्रि यावादिनोनास्तिकान क्रियामाहुः । तथाऽक्रियआत्मा येषां सर्वव्यापितया तेप्यक्रिया वादिनः सांख्याः । तदेवं नास्तिकबौद्धसांख्याअज्ञानेन एतत्पूर्वोक्तं कथितवंतः । अय मर्थो ऽस्माकमवभासते । पूर्वार्धमत्रापि व्याख्यातं ॥ ४ ॥

॥ टीका—सांप्रतं वैनयिकवादं निराचिकीर्षुः प्रक्रमते । (सच्चमसच्चमित्यादि) स द्भ्योहितं सत्यं परमार्थोयथावस्थितपदार्थनिरूपणं वा मोक्षोवा तडुपायभूतोवा संय मः सत्यं तदसत्यमित्येवं विचिंतयंतोमन्यमानाएवमसत्यमपि सत्यमिति मन्यमानाः । तथाहि । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राख्योमोक्षमार्गः सत्यस्तमसत्यत्वेन चिंतयंतोविनयादे व मोक्षइत्येतदसत्यमपि सत्यत्वेन मन्यमानास्तथा असाधुमप्यविशिष्टकर्मकारिणं वंद नादिकया विनयप्रतिपत्त्या साधुमित्येवमुदाहरंतः प्रतिपादयंतोऽसम्यग्यथावस्थितधर्म स्य परीक्षकायुक्तिविकलं विनयादेव धर्मइत्येवमभ्युपगमात् । कएते इत्येतदाह । ये इमे बु द्धया प्रत्यक्षासन्नीकृताजनाइव प्राकृतपुरुषाइव जनाविनयेन चरंति वैनयिकाविनयादेव केवलात्स्वर्गमोक्षावाप्तिरित्येवं वादिनोऽनेके बहवो द्वात्रिंशद्भेदभिन्नत्वात्तेषां तेच विनय चारिणः केनचिद्धर्मार्थिना पृष्टाः संतोऽपि शब्दादपृष्टावा भावं परमार्थं यथार्थोपलब्धं स्वा भिप्रायं वा विनयादेव स्वर्गमोक्षावाप्तिरित्येवं व्यनैषुर्विनयितवंतः सर्वदा सर्वस्य सर्वसिद्ध ये विनयं ग्राहितवंतः । नामशब्दः संभावनायां । संभाव्यतएवं विनयात्स्वकार्यसिद्धिरि ति । तडुक्तं । तस्मात्कल्याणानां सर्वेषां भाजनं विनयइति ॥ ३ ॥ किंचान्यत् (अणोवसंखा इत्यादि) संख्यानं संख्या परिछेदः । उप सामीप्येन संख्या उपसंख्या सम्यग्यथावस्थिता र्थपरिज्ञानं नोपसंख्याऽनुपसंख्या तयाऽनुपसंख्यया ऽपरिज्ञानेन व्यामूढमतयस्ते वैनयि काः स्वाग्रहग्रस्ताइत्येतद्यथा विनयादेव केवलात्स्वर्गमोक्षावाप्तिरित्युदाहृतवंतएतच्च ते म हामोहाच्छादिताउदाहुरुदाहृतवंतः । यथैवं सर्वस्य विनयप्रतिपत्त्या स्वोर्थः स्वर्गमोक्षादि कोऽस्माकमवभासते आविर्भवति प्राप्यते इति यावत् । अनुपसंख्योदाहृतिश्च तेषामेव मवगंतव्या । तद्यथा । ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षसद्भावे सति तदपास्य विनयादेवैकस्मात्तदवा प्त्यभ्युपगमादिति । यदप्युक्तं । सर्वकल्याणभाजनं तदपि सम्यग्दर्शनादिसंभवे सति विन यस्य कल्याणभाक्त्वं भवति नैकस्येति तद्रहितोविनयोपेतः सर्वस्य प्रव्हतयाऽन्यत्कारण

मेवापादयति ततश्च विवक्षितार्थाविज्ञासनात्तेषामेवं वादिनामज्ञानावृतत्वमेवावशिष्यते नाभिप्रेतार्थावाप्तिरित्युक्तावैनयिकाः । सांप्रतमक्रियावादिदर्शनं निराचिकीर्षुः पश्चार्धमाह । लवं कर्म तस्मादपशंकितुमपसर्तुं शीलं येषां ते लवापशंकिनोलोकायतिकाः शाक्यादयश्च तेषामात्मैव नास्ति कुतस्तक्रिया तज्जनितोवा कर्मबंधइति । उपचारमात्रेण त्वस्तिबंधः । तद्यथा । बद्धामुक्ताश्च कथ्यंते, मुष्टिग्रंथिकपोतकाः ॥ नचान्ये द्रव्यतः संति, मुष्टिग्रंथिकपोतकाः ॥ १ ॥ तथा बौद्धानामयमन्युपगमोयथा क्षणिकाः सर्वसंस्काराइत्यस्थितानां च कुतः क्रियेत्यक्रियावादित्वं योपि स्कंधपंचकान्युपगमस्तेषां सोपि संवृतमात्रेण न परमार्थेन यतस्तेषामयमन्युपगमस्तद्यथा विचार्यमाणाः पदार्थान कथंचिदप्यात्मानं विज्ञानेन समर्पयितुमलं तया ह्यवयवी तत्वातत्त्वान्यां विचार्यमाणोनघटां प्रांचति । नाप्यवयवाः परमाणुपर्यवसानतयाऽतिसूक्ष्मत्वाज्ज्ञानगोचरतां प्रतिपद्यंते । विज्ञानमपि ज्ञेयाजावेनामूर्तस्य निराकारतया न स्वरूपं बिनर्त्ति । तथा चोक्तं । यथा यथार्थाश्चिंत्यंते, विविच्यंते तथातथा ॥ यद्येतत्स्वयमर्थेन्यो,रोचते तत्र के वयमिति । प्रछन्नलोकायतिकाहि बौद्धास्तत्रानागतैः क्षणैः । चशब्दादतीतैश्च वर्तमानक्षणस्यासंगतेर्नक्रियानापिच तज्जनितः कर्मबंधइति । तदेवमक्रियावादिनोनास्तिकवादिनः सर्वापलापितयालवावशंकिनः संतोनक्रियामाहुस्तथा अक्रियआत्मा येषां सर्वव्यापितया तेप्यक्रियावादिनः सांख्यास्तदेवं लोकायतिकाबौद्धसांख्याअनुपसंख्यया अपरिज्ञानेनेत्येतत्पूर्वोक्तमुदाहृतवंतस्तथैव तत्त्वाज्ञानेनैवोदाहृतवंतस्तद्यथास्माकमेवमन्युपगमोर्थोऽवजासते युज्यमानकोजवतीति ॥ तदेवंश्लोकपूर्वार्द्धं काकाक्षिगोलकन्यायेनाक्रियावादिमतेप्यायोज्यमिति ॥४॥

सम्मिस्सजावं व गिरागहीए,से मुम्मुई होइ अणाणुवाई॥ इमं
डुपक्कं इममेगपक्कं, आहंसु ठलायतणं च कम्मं ॥ ५ ॥ ते एव
मक्कंति अबुज्झमाणा, विरूवरूवाणि अकिरियवाई ॥ जे मा
यइत्ता बहवे मणूसा, जमंति संसारमणोवदग्गं ॥ ६ ॥

अर्थ—(सेके०) ते लोकायिक परवादी (वगिरागहीए के०) पोतानी वाणीयें करी ग्रह्या अर्थने विषे पण वली पोतानेज वचने निषेध करतां थकां (सम्मिस्सजावंके०) मिश्रजावनेज अंगीकार करेछे एटले पोते बोलता थकाज जेनी अस्ति कहे तेनीज वली नास्ति कहे तेमज जेनी नास्ति कहे तेनीज अस्ति कहेछे एरीते मिश्रजाव जाणवो केमके जे नास्तिक जीवादिक पदार्थनो अजाव कहेछे तेपण पोते पोताना शास्त्रे करी पोताना शिष्यने पोतानो मार्ग शीखावेछे के सर्व पदार्थ शून्यपणेछे तेवारे पोते तथा

शास्त्र अने शिष्य ए क्यांछे एम नविचारे तेमाटे ए असंबंध वचनना बोलनार माटे एने मिश्रभाव सहित जाणवा तथा सांख्यदर्शनी एम कहेछे के आत्मा सर्वव्यापि छे तथा अक्रियछे ए पण असमंजस बोले छे कारणके ए दर्शनवाला एम कहेछे के प्रकृतिने वियोगें मोक्षछे जो एमछे तो आत्माने बंधमोक्षनो सद्भाव थाप्यो एम सिद्ध थयुं कारणके प्रकृतिनो बंध हतो तेनो वियोग थवाथी मोक्ष थयो एथी स्पष्ट मालम पडेछे के बंध मोक्षनो सद्भाव थयो अने बंध मोक्षना सद्भावने लीधे आत्मा सक्रियछे एवुं एम नाज बोलवा उपरथी जणायछे तो पोतानाज वचनथी जेनुं स्थापन कर्युं तेने पोतानाज वचनथी उत्थापेछे एरीते मिश्रभाव सर्व दर्शनीउनो जाणवो ए वर्णिका मात्र लख्युंछे (सेमुम्मुईहोइअणाणुवाई के०) ते अक्रियावादी आदेदेइने जे परवादीछे ते जैन मतानुसारीने अनेक हेतु दृष्टांते करी व्याकुल छतो तेनो उत्तर आपवाने असमर्थ थाय मुम्मुई एटले मूक सरखो थाय अर्थात् कांइपण बोली शके नही ते दर्शनी केवो जाणवो तोके अनानुवादी एटले जिनभाषित वचन सांभलीने पछी बोलवा असमर्थ एवो छतो मौन भावनेज अंगीकार करे इत्यर्थः हवे यद्यपि ते दर्शनीउ जैनमतानुसारीने सन्मुख बोली नशके तथापि कदाग्रहे पडथा थका पोताना पक्षनुं स्थापन करे तेनी रीत कहेछे. (इमंडुपक्खंइममेगपक्खंके०) एम अमारो एक पक्ष छे ते एम डुपक्ष जाणवो एटले ए पक्षना शुं वखाण करिए ए अमारा पक्षने बीजो कोइ उत्थापी नशके एवो ए पक्ष उत्तमछे अहीं पूर्वापर विरोध वचनछे ते भाव पाछलना मिश्रभाव कहेवाथी कह्युंछे ए डुपक्ख शब्दनो अर्थछे अथवा जे पोतानुं खोटुं होय तेने साचुं करे तेने उत्सूत्रभाषण करवाने लीधे डुपक्ष एटले आभवमां तथा परभवमां विमंबना थाय ए पण डुपक्ख शब्दनो अर्थ छे तथा ते परवादि जेवारे पोची नशके तेवारे (आहंसुछलायतणंचकम्मं के०) छलायतन एटले छले करी बोले ते छल त्रण प्रकारनाछे एक वाक्छल, बीजो सामान्यछल अने त्रीजो उपचारछल एवां छले करी बोलीने पोतानो एक पक्ष स्थापन करे तथा कर्म एटले एक पक्षादि स्थापन करवाने अर्थे बोले ॥ ५ ॥ (तेएवमक्खंति के०) ते बौद्धादिक परवादीउ सत्यमार्गने अजाणता मिथ्यात्व पमले आवस्या थकां असंबंध वचन बोले एवाते (अबुज्झमाणा के०) तत्वने अजाणता (विरूवरूवाणिअकिरियवाई के०) विरूपरूप नाना प्रकारना कुशास्त्रनी प्ररूपणा करे एवाते अक्रियावादि नास्तिकादिक मिथ्यात्वी छे (जेमायईत्ताबहवेमणूसा के०) जेमनो मत ग्रहण करीने घणा मनुष्य मिथ्यात्वे मोह्या थका (भमंतिसंसारमणोवदग्गं के०) अनंत संसार परिभ्रमण करेछे ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–गिरा स्ववाचा स्वांगीकारेण गृहीते तस्मिन्नर्थे तम्यार्थस्य गिरा प्रतिषेधं

मेवापादयति ततश्च विवक्षितार्थविज्ञासनात्तेषामेवं वादिनामज्ञानात्मतत्त्वमेवावशिष्यते नाभिप्रेतार्थावाप्तिरित्युक्तावैनयिकाः । सांप्रतमक्रियावादिदर्शनं निराचिकीर्षुः पश्चार्धमाह । लवं कर्म तस्मादपशंकितुमपसर्तुं शीलं येषां ते लवापशंकिनोलोकायतिकाः शाक्यादयश्च तेषामात्मैव नास्ति कुतस्तत्क्रिया तज्जनितोवा कर्मबंधइति । उपचारमात्रेण त्वस्तिबंधः । तद्यथा । बद्धामुक्ताश्च कथ्यंते, मुष्टिग्रंथिकपोतकाः ॥ नचान्ये द्रव्यतः संति, मुष्टिग्रंथिकपोतकाः ॥ १ ॥ तथा बौद्धानामयमन्युपगमोयथा क्षणिकाः सर्वसंस्काराइत्यस्थितानां च कुतः क्रियेत्यक्रियावादित्वं योपि स्कंधपंचकान्युपगमस्तेषां सोपि संवृतमात्रेण न परमार्थेन यतस्तेषामयमन्युपगमस्तद्यथा विचार्यमाणाः पदार्थान कथंचिदप्यात्मानं विज्ञानेन समर्पयितुमलं तथा ह्यवयवी तत्वातत्त्वान्यां विचार्यमाणोनघटां प्रांचति । नाप्यवयवाः परमाणुपर्यवसानतयाऽतिसूक्ष्मत्वाज्ज्ञानगोचरतां प्रतिपद्यंते । विज्ञानमपि ज्ञेयाजावेनामूर्तस्य निराकारतया न स्वरूपं बिजर्त्ति । तथा चोक्तं । यथा यथार्थाश्चिंत्यंते, विविच्यंते तथातथा ॥ यद्येतत्स्वयमर्थेन्यो,रोचते तत्र के वयमिति । प्रच्छन्नलोकायतिकाहि बौद्धास्तत्रानागतैः क्षणैः । चशब्दादतीतैश्च वर्तमानक्षणस्यासंगतेर्नक्रिया नापिच तज्जनितः कर्मबंधइति । तदेवमक्रियावादिनोनास्तिकवादिनः सर्वापलापितयालवावशंकिनः संतोनक्रियामाहुस्तथा अक्रियआत्मा येषां सर्वव्यापितया तेप्यक्रियावादिनः सांख्यास्तदेवं लोकायतिकाबौद्धसांख्याअनुपसंख्यया अपरिज्ञानेनेत्येतत्पूर्वोक्तमुदाहृतवंतस्तथैव तत्त्वाज्ञानेनैवोदाहृतवंतस्तद्यथास्माकमेवमन्युपगमोर्थोऽवज्ञासते युज्यमानकोजवतीति ॥ तदेवंश्लोकपूर्वार्द्धं काकाक्षिगोलकन्यायेनाक्रियावादिमतेप्यायोज्यमिति ॥४॥

सम्मिस्सजावं व गिरागहीए,से मुम्मुई होइ अणाणुवाई॥ इमं दुपक्खं इममेगपक्खं, आहंसु बलायतणं च कम्मं ॥ ५ ॥ ते एव मक्खंति अबुज्झमाणा, विरूवरूवाणि अकिरियवाई ॥ जे मायइत्ता बहवे मणूसा, जमंति संसारमणोवदग्गं ॥ ६ ॥

अर्थ–(सेके०) ते लोकायिक परवादी (वगिरागहीए के०) पोतानी वाणीयें करी ग्रह्या अर्थने विषे पण वली पोतानेज वचने निषेध करतां थकां (सम्मिस्सजावंके०) मिश्रजावनेज अंगीकार करेछे एटले पोते बोलता थकाज जेनी अस्ति कहे तेनीज वली नास्ति कहे तेमज जेनी नास्ति कहे तेनीज अस्ति कहेछे एरीते मिश्रजाव जाणवो केमके जे नास्तिक जीवादिक पदार्थनो अजाव कहेछे तेपण पोते पोताना शास्त्रे करी पोताना शिष्यने पोतानो मार्ग शीखावेछे के सर्व पदार्थ शून्यपणेछे तेवारे पोते तथा

जातकशतानि च बुद्धस्योपदिशंति । तथा । मातापितरौ हत्वा बुद्धशरीरे च रुधिरमुत्पा
द्य ॥ अर्हद्वधं च कृत्वा स्तूपं भित्त्वा च पंचैते ॥ १ ॥ निरंतरमावीचिनरकं यांत्येवमादिक
स्यागमस्य सर्वशून्यत्वे प्रणयनमयुक्तिसंगतं स्यात् । तथा । जातिजरामरणरोगशोकोत्तम
मध्यमाधमत्वानि च नस्युः । एपएव च नानाविधकर्मविपाकोजीवास्तित्वं कर्तृत्वं कर्म
वत्त्वं चावेदयति । तथा । गंधर्वनगरतुल्या, माया स्वप्नोपपातधनसदृशा ॥ मृगतृष्णानीहारां
बुचंडिकालातचक्रसमाइति भाषणाच्च स्पष्टमेव मिश्रीभावोपगमनं बौद्धानामिति । यदि
वा नानाविधकर्मविपाकाभ्युपगमात्तेषां व्यत्ययएवेति । तथाचोक्तं । यदि शून्यस्तव पक्षो,
मत्पक्षनिवारकः कथं भवति ॥ अथ मन्यसे न शून्यस्तथापि मत्पक्षएवासावित्यादि । त
देवं बौद्धाः पूर्वोक्तया नीत्या मिश्रीभावमुपगतानास्तित्वं प्रतिपादयंतोऽस्तित्वमेव प्रति
पादयंति । तथा सांख्याअपि सर्वव्यापितया अक्रियमात्मानमभ्युपगम्य प्रकृतिवियोगा
न्मोक्षसद्भावं प्रतिपादयंतस्तेप्यात्मनोबंधं मोक्षं च स्ववाचा प्रतिपादयंति । ततश्च बंध
मोक्षसद्भावे सति स्वकीयया गिरा सक्रियत्वे गृहीते सत्यात्मनः सन्मिश्रीभावं व्रजंति य
तोन क्रियामंतरेण बंधमोक्षौ घटेते । वाशब्दादक्रियत्वे प्रतिपाद्ये व्यत्ययएव सक्रियत्वं
तेषां स्ववाचा प्रतिपाद्यते । तदेवं लोकायतिकाः सर्वे भावाभ्युपगमेन क्रियाभावं प्रतिपा
दयंति । बौद्धाश्च क्षणिकत्वात्सर्वशून्यत्वाच्चाक्रियामेवाभ्युपगमयंतः स्वकीयागमप्रणयनेन
चोदिताः संतः सन्मिश्रीभावं स्ववाचैव प्रतिपाद्यंते । तथा सांख्याश्चाक्रियमात्मानमभ्युप
गच्छंतोबंधमोक्षसद्भावं च स्वाभ्युपगमेनैव सन्मिश्रीभावं व्रजंति । व्यत्ययं चैतत्प्रतिपादि
तं । यदिवा बौद्धादिः कश्चित्स्याद्वादिनासम्यग्घेतुदृष्टांतैर्व्याकुलीक्रियमाणः सन् सम्यगु
त्तरं दातुमसमर्थोयत्किंचन भाषितया (मुम्मुईहोइत्ति) गद्गदभाषित्वेनाऽव्यक्तभाषी भवति ।
यदिवा प्राकृतशैल्या छांदसत्वाच्चायमर्थोद्रष्टव्यः । तद्यथा । मूकादपि मूकोमूकमूकोभ
वति । एतदेव दर्शयति । स्याद्वादिनोक्तं साधनमनुवदितुं शीलमस्येत्यनुवादी तत्प्रतिषे
धादननुवादी सद्धेतुभिर्व्याकुलितमनामौनमेव प्रतिपाद्यतइति भावः । अननुभाष्य च प्रति
पक्षसाधनं तथाऽदूषयित्वा च स्वपक्षं प्रतिपादयंति । तद्यथा । इदमस्मदभ्युपगतं दर्शन
मेकः पक्षोस्येति एकपक्षमप्रतिपक्षतयैकांतिकमविरुद्धार्थाभिधायितया निष्प्रतिबाधं पूर्वा
पराविरुद्धमित्यर्थः । इदं चैवंभूतमपि सदित्याह । द्वौपक्षावस्येति द्विपक्षं सप्रतिपक्षमनै
कांतिकं पूर्वापरविरुद्धार्थाभिधायितयाऽविरोधिवचनमित्यर्थः । यथाच विरोधिवचनत्वं
तेषां तथा प्राग्दर्शितमेव । यदि त्वेतदस्मदीयं दर्शनं द्वौपक्षावस्येति द्विपक्षं कर्मबंधनिर्ज
रणं प्रतिपक्षद्वयसमाश्रयणात् । तत्समाश्रयणं चेहामुत्र वेदना चौरपारदारिकादीना
मिव । तेहि करचरणनासिकादिकामिहैव पुष्पकल्पां स्वकर्मणोविडंबनामनुभवंत्यमुत्र
च नरकादौ तत्फलभूतां वेदनां समनुभवंतीति । एवमन्यदपि कर्मोभयवेद्यमभ्युपगम्य

ते । तच्चेदं । प्राणी प्राणिज्ञानमित्यादिपूर्ववत् । तथेदमेकः पक्षोस्येत्येकपक्षं इहैव जन्मनि तस्य वेद्यत्वात् । तच्चेदमविज्ञोपचितं परिज्ञोपचितमीर्यापथं स्वप्नादिकं चेति । तदेवं स्याद्वादिनाभियुक्ताः स्वदर्शनमेवमनंतरोक्तया नीत्या प्रतिपादयंति । तथा स्याद्वादिसाधनोक्तौ छलायतनं छलं नवकंबलोदेवदत्तइत्यादिकमाहुरुक्तवंतः । च शब्दादन्यच्च दूषणाभासादिकं । तथा कर्मच एकपक्षद्विपक्षादिकं प्रतिपादितवंतइति । यदिवा षडायतनानि उपादानकारणानि आश्रवद्वाराणि श्रोत्रेंद्रियादीनि यस्य कर्मणस्तत्षडायतनं कर्मेत्येवमाहुरिति ॥५॥ सांप्रतमेव तद्दूषणायाह । (तएवमरकंतीत्यादि) ते चार्वाकबौद्धादयोऽक्रियावादिनएवमाचक्षते । सद्भावमबुध्यमानामिथ्यामलपटलावृतात्मानः परमात्मानं च व्युद्ग्राहयंतोविरूपरूपाणि नानाप्रकाराणि शास्त्राणि प्ररूपयंति । तद्यथा । दानेन महाभोगोदेहिनां सुरगतिश्च शीलेन ॥ भावनया च विमुक्तिस्तपसा सर्वाणि सिध्यंति ॥ १ ॥ तथा पृथिव्यापस्तेजोवायुरित्येतान्येव चत्वारि भूतानि विद्यंते नापरः कश्चित्सुखदुःखभागात्मा विद्यते । यदि चैतान्यप्यविचारितरमणीयानि न परमार्थतः संतीति स्वप्नेंद्रजालमरुमरीचिकानिचयद्विचंद्रादिप्रतिभासरूपत्वात्सर्वस्येति । तथा सर्वं क्षणिकं निरात्मकं मुक्तिस्तु शून्यता दृष्टेस्तदर्थाः शेषभावनाइत्यादीनि नानाविधानि शास्त्राणि व्युद्ग्राहयंत्यक्रियात्मानोऽक्रियावादिनइति । तेच परमार्थमबुध्यमानायद्दर्शनमादाय गृहीत्वा बहवोमनुष्याः संसारमनवदग्रमपर्यवसानमरहट्टघटीन्यायेन भ्रमंति पर्यटंति । तथाहि । लोकायतिकानां सर्वशून्यत्वे प्रतिपाद्ये न प्रमाणमस्ति । तथाचोक्तं । तत्त्वान्युपहतानीति, युक्त्यभावेन सिध्यति ॥ नास्ति चेत्सैव नस्तत्त्वं, तत्सिद्धौ सर्वमस्तु सत् ॥ १ ॥ नच तत्प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणं । अतीतानागतभावतया पितृनिबंधनस्यापि व्यवहारस्यासिद्धेस्ततः सर्वसंव्यवहारोच्छेदः स्यादिति । बौद्धानामप्यत्यंतक्षणिकत्वेन वस्तुत्वाभावः प्रसज्जति । तथाहि । यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थतः सत् । नच क्षणः क्रमेणार्थक्रियां करोति । क्षणिकत्वहानेर्नापि यौगपद्येन तत्कार्याणामेकस्मिन्नेव क्षणे सर्वकार्यापत्तेर्नचैतद्दृष्टमिष्टं वा । नच ज्ञानाधारमात्मानं गुणिनमंतरेण गुणभूतस्य संकलनाप्रत्ययस्य सद्भावइत्येतच्च प्रागुक्तप्रायं । यच्चोक्तं दानेनमहाभोगो,इत्यादि तदार्हतैरपि कथंचिदिष्यतएवेति नचाभ्युपगमाएव बाधायैप्रकल्प्यंतइति ॥ ६ ॥

णाइच्चो उएइ ण अत्थमेति, ण चंदिमा वड्ढति हीयती वा ॥ स
लिला ण संदंति ण वयंति वाया, वंझो णियतो कसिणे हु लोए
॥७॥ जहाहि अंधे सह जोतिणावि, रूवाइ णो पस्सति हीणणे
त्ते ॥ संतंपि ते एवमकिरियवाई, किरियं ण पस्संति निरुद्धपन्ना ॥ ८ ॥

अर्थ—हवे सर्व शून्यवादिनो नेद कहेछे: ते शून्यवादी एम कहेछे के समस्त लोक प्रसिद्ध जगत्प्रदीप समान एवो (णाइच्चो के०) सूर्य नथी वली ते सूर्य (णउएइके०) उगतो नथी तथा (णच्छमेति के०) अस्तपण थातो नथी ए जे देदीप्यमान सूर्य मंमल देखायछे ते मात्र चित्तनो भ्रम जाणवो मृगतृष्णा समान ए सर्व भ्रमछे तथा (णचंदिमावड्ढति हीयती के०) चंद्रमानी कला वृद्धि पामती नथी तेम हीन पण थती नथी एटले शुक्ल पक्षादिने विषे जे वृद्धि प्रमुख चंद्रमानी देखायछे ते सर्व भ्रम छे (वा के०) अथवा तथा (सलिला के०) नदीना पाणी ते (णसंदंति के०) नथी श्रवता एटले नदीन्हदादिक पण नथी तथा (णवयंतिवाया के०) वायरो पण वातो नथी (वंझोणियतो कसिणे हुलोए के०) तो हु इति निश्चे ए लोक संपूर्ण वंध्यसमान अर्थ शून्य छे अर्थात् ए जगतमां कांइज नथी जे कांइ देखायछे ते सर्व स्वप्नेंद्रजाल समान जाणवुं ॥ ७ ॥ (जहाहि अंधेसह जोतिणावि के०) जेम जाति अंध एटले नेत्रहीन पुरुष दीपे करी सहित छतां पण (हीणणेत्ते के०) हीननेत्रपणाने लीधे (रूवाइ के०) रूपादिक जे घटपटादिक विद्यमान पदार्थोछे तेने (णोपस्सति के०) देखी शके नही (संतंपिते एवमकिरियवाई के०) तेम ते अक्रियावादिर्जमां छतिक्रिया विद्यमान छता पण ते (किरियं के०) क्रियाने (निरुद्धपन्ना के०) जेमनी प्रज्ञा एटले बुद्धिनिरोध थइछे अर्थात् बुद्धिहीन एवाते अक्रियावादी लोको पोतामां क्रिया विद्यमान छता पण तेने (णपस्संतिके०) मिथ्यात्वादिक दोषेकरी नथी देखता. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—आदित्योनोगच्छति नास्तमेति । कोर्थः । आदित्यएव तावन्न विद्यते कुतस्तस्योद्गमनमस्तगमनं च । यच्चेदं ज्वलत्तेजोमंडलं दृश्यते तद्भ्रांतमतीनां द्विचंद्रप्रतिभासमृगतृष्णातुल्यमिति । तथा न चंद्रमावर्धते हीयते वा सलिलानि पर्वतनिर्झरेभ्यो न स्यंदंते न स्रवंति वातान वांति । किंबहुना कृत्स्नः संपूर्णोप्ययं लोकोवंध्योर्थशून्योनियतोनिश्चितोभावरूपइत्यर्थः । सर्वमिदं यदुपलभ्यते तन्मायास्वप्नेंद्रजालप्रायमिति ॥ ७ ॥ यथाह्यंधोजात्यंधः पश्चाद्वा हीननेत्रोगतचक्षुर्घटपटादिरूपाणि ज्योतिषा प्रदीपादिनाऽपि सद्वर्तमानोन पश्यति । एवंतेप्यक्रियावादिनः सदपि घटपटादिकं वस्तु न क्रियां चास्तित्वादिकां परिस्पंदादिकां वा न पश्यंति । यतोनिरुद्धाच्छादिता प्रज्ञा ज्ञानं येषांते निरुद्धप्रज्ञाः अतएव ते न जानंतीति ॥ ८ ॥

॥ टीका—पुनरपि शून्यमताविर्भावनायाह । (णाइच्चो उएईत्यादि) सर्वशून्यवादिनोह्यक्रियावादिनः सर्वाप्यक्षामादित्योद्गमनादिकामेव क्रियां तावन्निरुंधंतीति दर्शयति । आदित्योहि सर्वजनप्रतीतोजगत्प्रदीपकल्पोदिवसादिकालविभागकालकारी सएव तावन्न-

ते । तच्चेदं । प्राणी प्राणिज्ञानमित्यादिपूर्ववत् । तथेदमेकः पक्षोस्येत्येकपक्षं इहैव जन्मनि तस्य वेद्यत्वात् । तच्चेदमविज्ञोपचितं परज्ञोपचितमीर्यापथं स्वप्नादिकं चेति । तदेवं स्याद्वादिनानियुक्ताः स्वदर्शनमेवमनंतरोक्तया नीत्या प्रतिपादयंति । तथा स्याद्वादिसाधनोक्तौ बलायतनं बलं नवकंबलोदेवदत्तइत्यादिकमाहुरुक्तवंतः । च शब्दादन्यच्च दूषणाभासादिकं । तथा कर्मच एकपक्षद्विपक्षादिकं प्रतिपादितवंतइति । यदिवा षडायतनानि उपादानकारणानि आश्रवद्वाराणि श्रोत्रेंद्रियादीनि यस्य कर्मणस्तत्पडायतनं कर्मेत्येवमाहुरिति ॥५॥ सांप्रतमेव तद्दूषणायाह । (तएवमरकंतीत्यादि) ते चार्वाकबौद्धादयोऽक्रियावादिनएवमाचक्षते । सद्भावमबुध्यमानामिथ्यामलपटलनृतात्मानः परमात्मानं च व्युद्ग्राहयंतोविरूपरूपाणि नानाप्रकाराणि शास्त्राणि प्ररूपयंति । तद्यथा । दानेन महाजोगोदेहिनां सुरगतिश्च शीलेन ॥ जावनया च विमुक्तिस्तपसा सर्वाणि सिध्यंति ॥ १ ॥ तथा पृथिव्यापस्तेजोवायुरित्येतान्येव चत्वारि जूतानि विद्यंते नापरः कश्चित्सुखदुःखनागात्मा विद्यते । यदि चैतान्यप्यविचारितरमणीयानि न परमार्थतः संतीति स्वप्नेंद्रजालमरुमरीचिकानिचयद्विचंद्रादिप्रतिजासरूपत्वात्सर्वस्येति । तथा सर्वं क्षणिकं निरात्मकं मुक्तिस्तु शून्यता दृष्टेस्तदर्थाः शेषजावनाइत्यादीनि नानाविधानि शास्त्राणि व्युद्ग्राहयंत्यक्रियात्मानोऽक्रियावादिनइति । तेच परमार्थमबुध्यमानायद्दर्शनमादाय गृहीत्वा बहवोमनुष्याः संसारमनवदग्रमपर्यवसानमरहट्टघटीन्यायेन ज्रमंति पर्यटंति । तथाहि । लोकायतिकानां सर्वशून्यत्वे प्रतिपाद्ये न प्रमाणमस्ति । तथाचोक्तं । तत्त्वान्युपहतानीति, युक्त्यजावेन सिध्यति ॥ नास्ति चेत्सैव नस्तत्त्वं, तत्सिद्धौ सर्वमस्तु सत् ॥ १ ॥ नच तत्प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणं । अतीतानागतजावतया पितृनिबंधनस्यापि व्यवहारस्यासिद्धेस्ततः सर्वसंव्यवहारोच्छेदः स्यादिति । बौद्धानामप्यत्यंतक्षणिकत्वेन वस्तुत्वाजावः प्रसज्जति । तथाहि । यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थतः सत् । नच क्षणः क्रमेणार्थक्रियां करोति । क्षणिकत्वहानेर्नापि यौगपद्येन तत्कार्याणामेकस्मिन्नेव क्षणे सर्वकार्यापत्तेर्नचैतद्दृष्टमिष्टं वा । नच ज्ञानाधारमात्मानं गुणिनमंतरेण गुणजूतस्य संकलनाप्रत्ययस्य सद्भावइत्येतच्च प्रागुक्तप्रायं । यच्चोक्तं दानेनमहाजोगो,इत्यादि तदाहैतैरपि कथंचिदिष्यतएवेति नचाज्युपगमाएव बाधायैप्रकल्प्यंतइति ॥ ६ ॥

णाइच्चो उएइ ण अत्थमेति, ण चंदिमा वड्ढति हीयती वा ॥ स
लिला ण संदंति ण वयंति वाया, वंझो णियतो कसिणे हु लोए
॥७॥ जहाहि अंधे सह जोतिणावि, रूवाइ णो पस्सति हीणणे
त्ते ॥ संतंपि ते एवमकिरियवाई, किरियं ण पस्संति निरुद्धपन्ना ॥ ८ ॥

अर्थ—ह्वे सर्व शून्यवादिनो नेद कहेछेः ते शून्यवादी एम कहेछे के समस्त लोक प्रसिद्ध जगत्प्रदीप समान एवो (णाइच्चो के०) सूर्य नथी वली ते सूर्य (णउएइके०) उगतो नथी तथा (णअछमेति के०) अस्तपण थातो नथी ए जे देदीप्यमान सूर्य मंमल देखायछे ते मात्र चित्तनो भ्रम जाणवो मृगतृष्णा समान ए सर्व भ्रमछे तथा (णचंदिमावड्ढति हीयती के०) चंद्रमानी कला वृद्धि पामती नथी तेम हीन पण थती नथी एटले शुक्ल पक्षादिने विषे जे वृद्धि प्रमुख चंद्रमानी देखायछे ते सर्व भ्रम छे (वा के०) अथवा तथा (सलिला के०) नदीना पाणी ते (णसंदंति के०) नथी श्रवता एटले नदीन्हदादिक पण नथी तथा (णवयंतिवाया के०) वायरो पण वातो नथी (वंऊोणियतो कसिणे हुलोए के०) तो हु इति निश्चे ए लोक संपूर्ण वंध्यसमान अर्थ शून्य छे अर्थात् ए जगतमां कांइ नथी जे कांइ देखायछे ते सर्व स्वप्नेंद्रजाल समान जाणवुं ॥ ७ ॥ (जहाहि अंधेसह जोतिणावि के०) जेम जाति अंध एटले नेत्रहीन पुरुष दीपे करी सहित छतां पण (हीणणेत्ते के०) हीननेत्रपणाने लीधे (रूवाइ के०) रूपादिक जे घटपटादिक विद्यमान पदार्थोछे तेने (णोपस्सति के०) देखी शके नही (संतंपिते एवमकिरियवाई के०) तेम ते अक्रियावादिउमां छतिक्रिया विद्यमान छता पण ते (किरियं के०) क्रियाने (निरुद्धपन्ना के०) जेमनी प्रज्ञा एटले बुद्धिनिरोध थइछे अर्थात् बुद्धिहीन एवाते अक्रियावादी लोको पोतामां क्रिया विद्यमान छता पण तेने (णपस्संतिके०) मिथ्यात्वादिक दोषेकरी नथी देखता. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—आदित्योनोजच्छति नास्तमेति । कोर्थः । आदित्यएव तावन्न विद्यते कुतस्तस्योज्गमनमस्तगमनं च । यच्चेदं ज्वलत्तेजोमंडलं दृश्यते तद्भ्रांतमतीनां द्विचंद्रप्रतिनासमृगतृष्णातुल्यमिति । तथा न चंद्रमावर्धते हीयते वा सलिलानि पर्वतनिर्झरेन्योन स्यंदंते न स्त्रवंति वातान वांति । किंबहुना कृत्स्नः संपूर्णोप्ययं लोकोवंध्योर्थशून्योनियतोनिश्चितोनावरूपइत्यर्थः । सर्वमिदं यडुपलन्यते तन्मायास्वप्नेंद्रजालप्रायमिति ॥ ७ ॥ यथाह्यंधोजात्यंधः पश्चाद्वा हीननेत्रोगतचक्षुर्घटपटादिरूपाणि ज्योतिषा प्रदीपादिनाऽपि सद्वर्तमानोन पश्यति । एवंतेप्यक्रियावादिनः सदपि घटपटादिकं वस्तु न क्रियां चास्तित्वादिकां परिस्पंदादिकां वा न पश्यंति । यतोनिरुद्धाच्छादिता प्रज्ञा ज्ञानं येषांते निरुद्धप्रज्ञाः अतएव ते न जानंतीति ॥ ८ ॥

॥ टीका—पुनरपि शून्यमताविर्नावनायाह । (णाइच्चो उएईत्यादि) सर्वशून्यवादिनोह्यक्रियावादिनः सर्वाध्यक्षामादित्योज्गमनादिकामेव क्रियां तावन्निरुंधंतीति दर्शयति । आदित्योहि सर्वजनप्रतीतोजगत्प्रदीपकल्पोदिवसादिकालविनागकालकारी सएव तावन्न

विद्यते कुतस्तस्योद्गमनमस्तगमनं वा । यच्च जाज्वल्यमानं तेजोमंडलं दृश्यते तद्भ्रां तमतीनां द्विचंद्रादिप्रतिभासं मृगतृष्णिकाकल्पं वर्तते । तथा न चंद्रमावर्धते शुक्लपक्षे नाप्युत्तरपक्षे प्रतिदिनमपहीयते नसंधानसलिलानि उदकानि स्यंदंते पर्वतनिर्झरेभ्यो न स्रवंति तथा वाताः सततगतयोन वांति । किंबहुनोक्तेन कृत्स्नोप्ययं लोकोवंध्यो ऽर्थशून्योनियतोनिश्चितोभावरूपइति यावत् । सर्वमिदं यदुपलभ्यते तन्मायास्वप्नेंद्र जालमिति ॥ ७ ॥ एतत्परिहर्तुकामआह (जहाहि अंधेइत्यादि) यथा ह्यंधोजात्यंधः पश्चाद्वा हीननेत्रोऽपगतचक्षुः रूपाणि घटपटादीनि ज्योतिषापि प्रदीपादिनापि सहवर्त मानोन पश्यति नोपलभते एवं तेप्यक्रियावादिनः सदपि घटपटादिकं वस्तु तत्क्रियां चाऽस्तित्वादिकां परिस्पंदादिकां वा क्रियां न पश्यंति । किमिति यतोनिरुद्धा आच्छादि ता ज्ञानावरणादिना कर्मणा प्रज्ञा ज्ञानं येषां ते तथा । तथाहि । आगोपालांगनादिप्र तीतः समस्तांधकारक्षयकारी कमलाकरोद्घाटनपटीयानादित्योद्गमः प्रत्यहं भवन्नुपलक्ष्य ते । तत्क्रियाच देशाद्देशांतरावाप्त्याऽन्यत्र देवदत्तादौ प्रतीताऽनुमीयते । चंद्रमाश्च प्रत्यहं क्षीयमाणः समस्तक्षयं यावत्पुनः कलाभिवृद्ध्या प्रवर्धमानः संपूर्णावस्थायां यावदध्य क्षेणैवोपलक्ष्यते । तथा सरितश्च प्रावृषि जलकल्लोलाविलाः स्यंदंत्योदृश्यंते वायवश्च वातात्तृक्षजंगकंपादिभिरनुमीयंते । यच्चोक्तं भवता सर्वमिदं मायास्वप्नेंद्रजालकल्पमि ति तदसत् । यतः सर्वाभावे कस्यचिद् मायारूपस्य सत्यस्याभावान्मायायाएवाऽभावः स्यात् । यश्च मायां प्रतिपादयेत् यस्य च प्रतिपाद्यते सर्वशून्यत्वे तयोरेवाभावात्कुतस्त द्व्यवस्थितिरिति । तथा स्वप्नोपि जाग्रदवस्थायां सत्यां व्यवस्थाप्यते तस्याअभावे त स्याप्यभावः स्यात्ततः स्वप्नमभ्युपगच्छता भवता तत्रांतरीयकतया जाग्रदवस्थावश्यमभ्युप गता भवति तदभ्युपगमेच सर्वशून्यत्वहानिः । नच स्वप्नोप्यभावरूपएव स्वप्नेप्यनुभूतादेः सद्भावात् । तथा चोक्तं । अणुहूयदिट्ठचिंतिय, सुयपयइविपारदेव पाणूया ॥ सुमिणस्स निमित्ताइं पुस्सं पावंच णाभावो ॥ १ ॥ इंद्रजालव्यवस्थाप्यपरसत्यत्वे सति भवति तद भावेतु केन कस्य चेंद्रजालं व्यवस्थाप्येत । द्विचंद्रप्रतिभासोपि रात्रौ सत्यामेकस्मिंश्च चंद्रमस्युपलंभकसद्भावे च घटते न सर्वशून्यत्वे । नचाभावः कस्यचिदप्यत्यंततुच्छरूपोस्ति । शशविषाणकूर्मरोमगगनारविंदादीनामत्यंताभावप्रसिद्धानां समासप्रतिपाद्यस्यैवार्थस्याभा वोन प्रत्येकपदवाच्यार्थस्येति । तथाहि । शशोप्यस्ति विषाणमप्यस्ति किंत्वत्र शशम स्तकसमवायिविषाणं नास्तीत्येतत्प्रतिपाद्यते । तदेवं संबंधमात्रमत्र निषिध्यते नात्यं तिकोवस्त्वभावइति । एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यमिति । तदेवं विद्यमानायामप्यस्तीत्यादिका यां क्रियायां निरुद्धप्रज्ञास्तीर्थिकाअक्रियावादमाश्रिताइति । अनिरुद्धप्रज्ञास्तु यथाव स्थितार्थवेदिनोभवंति । तथाहि । अवधिमनःपर्यायकेवलज्ञानिनस्त्रैलोक्योदरविवरव

तिनः पदार्थान् करतलामलकन्यायेन पश्यंति । समस्तश्रुतज्ञानिनोपि आगमबलेना तीतानागतानर्थान् विदंति । येऽप्यन्येऽष्टांगनिमित्तपारगास्तेपि निमित्तबलेन जीवादि पदार्थपरिछेदं विदधति ॥ ७ ॥

संवछरं सुविणं लक्कणं च, निमित्तदेहं च उपाइयं च ॥ अठंग
मेयं बहवे अहित्ता, लोगंसि जाणंति अणागताइं ॥ ए ॥ केई
निमित्ता तहिया नवंति, केसिं च तं विप्पडिएति णाणं ॥ तेविज्ज
नावं अणहिज्जमाणा, आहंसु विज्जापरिमोरकमेव ॥ पाठांतरे ॥
(जाणासु लोगंसि वयंति मंदा ॥ १० ॥

अर्थ-(संवछरं के०) ज्योतिषग्रंथ (सुविणं के०) स्वप्न शुनाशुनना शास्त्र (लक्कणं के०) श्रीवत्सादिक लक्षण सामुद्रिक शास्त्र ते च शब्द थकी अन्यंतर नेदरूप पण जाणवा तथा (निमित्त के०) निमित्त प्रसिद्ध शकुनादिक शास्त्र जाणवा (देहं के०) देहना लक्षण मत्स तिलकादिक जाणवा (उपाइयंच के०) उत्पात ते नूमिकंपादिकनी सूचनाकरनार शास्त्र एम (अठंगमेयंबहवेअहित्ता के०) अष्टांगनिमित्तनुं घणा लोक पठन करीने अर्थात् अष्टांगनिमित्त नणीने (लोगंसिजाणंतिअणागताइं के०) आलो कने विषे अतीत अनागतादिक वस्तुने जाणेछे. तेटलुं पण ए शून्यवादी जाणता न थी जेम कोइ संनिपाती यथातथ्य वस्तुने उलखे नही तेना दृष्टांते ए शून्यवादी पण जाणीलेवा ॥ ए ॥ तेमां वली (केईनिमित्तातहियानवंति के०) कोइएक निमित्तियायें पोताना मुख थकी निमित्त प्रकाश्यो थको तेनो निमित्त जेम कहे तेमज थायछे एट ले साचो थायछे वली (केसिंचतंविप्पडिएतिणाणं के०) कोईकनो निमित्तादि ज्ञान विपर्यासपणाने पामेछे एटले विघटेछे तथा (तेविज्जनावंअणहिज्जमाणा के०) ते ए वी विद्याना नावनो अन्यास कस्या विना एटले एवी विद्याने अण नण्या थका कहेछे के (आहंसुविज्जापरिमोरकमेव के०) अथवा पाठांतरे (जाणासुलोगंसिवयंतिमंदाके०) कोइएक मंद एटले मूर्ख एवा अक्रियावादी प्रमुख एमज कहेछेके अमेज आलोक मांहे अशेष एटले समस्त नावने जाणीयें छैयें ॥ १० ॥

॥ दीपिका-सांवत्सरं ज्योतिषं । स्वप्नप्रतिपादकोग्रंथः स्वप्नः । लक्षणं श्रीवत्सादिकं । निमित्तं शकुनादिकं । देहे नवं दैहं मषतिलकादि । उत्पाते नवमौत्पातिकमुल्कापातदिग्दा हादिकमित्यादि । अष्टांगनिमित्तं । यथा नौमं १ उत्पातं २ स्वप्नं ३ आंतरिक्षं ४ आंगं ५ स्वरं ६ लक्षणं ७ व्यंजनमित्येवं नवमपूर्वतृतीयाचारवस्तुनिर्गतं सुखदुःखादिसूचकं नि

विद्यते कुतस्तस्योजमनमस्तगमनं वा । यच्च जाज्वल्यमानं तेजोमंडलं दृश्यते तद्भ्रांतमतीनां द्विचंद्रादिप्रतिभासं मृगतृष्णिकाकल्पं वर्तते । तथा न चंद्रमावर्धते शुक्लपक्षे नाप्युत्तरपक्षे प्रतिदिनमपहीयते नसंधानसलिलानि उदकानि स्यंदंते पर्वतनिर्झरेभ्यो न स्रवंति तथा वाताः सततगतयोन वांति । किंबहुनोक्तेन कृत्स्नोप्ययं लोकोवंध्योऽर्थशून्योनियतोनिश्चितोभावरूपइति यावत् । सर्वमिदं यदुपलभ्यते तन्मायास्वप्नेंद्रजालमिति ॥ ७ ॥ एतत्परिहर्तुकामआह (जहाहि अंधेइत्यादि) यथा ह्यंधोजात्यंधः पश्चाद्वा हीननेत्रोऽपगतचक्षुः रूपाणि घटपटादीनि ज्योतिषापि प्रदीपादिनापि सद्भवर्तमानोन पश्यति नोपलभते एवं तेप्यक्रियावादिनः सदपि घटपटादिकं वस्तु तत्क्रियां चाऽस्तित्वादिकां परिस्पंदादिकां वा क्रियां न पश्यंति । किमिति यतोनिरुद्धा आच्छादिता ज्ञानावरणादिना कर्मणा प्रज्ञा ज्ञानं येषां ते तथा । तथाहि । आगोपालांगनादिप्रतीतः समस्तांधकारक्षयकारी कमलाकरोद्घाटनपटीयानादित्योजमः प्रत्यहं भवन्नुपलक्ष्यते । तत्क्रियाच देशाद्देशांतरावाप्त्याऽन्यत्र देवदत्तादौ प्रतीताऽनुमीयते । चंद्रमाश्च प्रत्यहं क्षीयमाणः समस्तक्षयं यावत्पुनः कलाभिवृद्ध्या प्रवर्धमानः संपूर्णावस्थायां यावदध्यक्षेणैवोपलक्ष्यते । तथा सरितश्च प्रावृषि जलकल्लोलाविलाः स्यंदंत्योदृश्यंते वायवश्च वातात्वृक्षभंगकंपादिभिरनुमीयंते । यच्चोक्तं भवता सर्वमिदं मायास्वप्नेंद्रजालकल्पमिति तदसत् । यतः सर्वाभावे कस्यचिद् मायारूपस्य सत्यस्याभावान्मायायाएवाऽभावः स्यात् । यश्च मायां प्रतिपादयेत् यस्य च प्रतिपाद्यते सर्वशून्यत्वे तयोरेवाभावात्कुतस्तद्व्यवस्थितिरिति । तथा स्वप्नोपि जाग्रदवस्थायां सत्यां व्यवस्थाप्यते तस्याश्चभावे तस्याप्यभावः स्यात्ततः स्वप्नमभ्युपगच्छता भवता तन्नांतरीयकतया जाग्रदवस्थावश्यमभ्युपगता भवति तदभ्युपगमेच सर्वशून्यत्वहानिः । नच स्वप्नोप्यभावरूपएव स्वप्नेप्यनुभूतादेः सद्भावात् । तथा चोक्तं । अणुहूयदिठचिंतिय, सुयपयइविपारदेव पाणूया ॥ सुमिणस्स निमित्ताइं पुस्सं पावंच णाभावो ॥ १ ॥ इंद्रजालव्यवस्थाप्यपरसत्यत्वे सति भवति तदभावेतु केन कस्य चेंद्रजालं व्यवस्थाप्येत । द्विचंद्रप्रतिभासोपि रात्रौ सत्यामेकस्मिंश्च चंद्रमस्युपलंभकसद्भावे च घटते न सर्वशून्यत्वे । नचाभावः कस्यचिदप्यत्यंततुच्छरूपोस्ति । शशविषाणकूर्मरोमगगनारविंदादीनामत्यंताभावप्रसिद्धानां समासप्रतिपाद्यस्यैवार्थस्याभावोन प्रत्येकपदवाच्यार्थस्येति । तथाहि । शशोप्यस्ति विषाणमप्यस्ति किंत्वत्र शशमस्तकसमवायिविषाणं नास्तीत्येतत्प्रतिपाद्यते । तदेवं संबंधमात्रमत्र निषिध्यते नात्यंतिकोवस्त्वभावइति । एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यमिति । तदेवं विद्यमानायामप्यस्तीत्यादिकायां क्रियायां निरुद्धप्रज्ञास्तीर्थिकाअक्रियावादमाश्रिताइति । अनिरुद्धप्रज्ञास्तु यथावस्थितार्थवेदिनोभवंति । तथाहि । अवधिमनःपर्यायकेवलज्ञानिनस्त्रैलोक्योदरविवर

तिनः पदार्थान् करतलामलकन्यायेन पश्यंति । समस्तश्रुतज्ञानिनोपि आगमबलेना तीतानागतानर्थान् विदंति । येऽप्यन्येऽष्टांगनिमित्तपारगास्तेपि निमित्तबलेन जीवादि पदार्थपरिछेदं विदधति ॥ ८ ॥

संवछरं सुविणं लरकणं च, निमित्तदेहं च उपाइयं च ॥ अठंग मेयं बहवे अहित्ता, लोगंसि जाणंति अणागताइं ॥ ए ॥ केई निमित्ता तहिया भवंति, केसिं च तं विप्पडिएति णाणं ॥ तेविज्ज भावं अणहिज्जमाणा, आहंसु विज्जापरिमोरकमेव ॥ पाठांतरे ॥ (जाणासु लोगंसि वयंति मंदा ॥ १० ॥

अर्थ-(संवछरं के०) ज्योतिषग्रंथ (सुविणं के०) स्वप्न शुभाशुभना शास्त्र (लरकणंके०) श्रीवत्सादिक लक्षण सामुद्रिक शास्त्र ते च शब्द थकी अभ्यंतर भेदरूप पण जाणवा तथा (निमित्त के०) निमित्त प्रसिद्ध शकुनादिक शास्त्र जाणवा (देहंके०) देहना लक्षण मत्स तिलकादिक जाणवा (उपाइयंच के०) उत्पात ते भूमिकंपादिकनी सूचनाकरनार शास्त्र एम (अठंगमेयंबहवेअहित्ता के०) अष्टांगनिमित्तनुं घणा लोक पठन करीने अर्थात् अष्टांगनिमित्त भणीने (लोगंसिजाणंतिअणागताइं के०) आलो कने विषे अतीत अनागतादिक वस्तुने जाणेछे. तेटलुं पण ए शून्यवादी जाणता न थी जेम कोइ संनिपाती यथातथ्य वस्तुने उलखे नही तेना दृष्टांते ए शून्यवादी पण जाणीलेवा ॥ ए ॥ तेमां वली (केईनिमित्तातहियाभवंति के०) कोइएक निमित्तियायें पोताना मुख थकी निमित्त प्रकाश्यो थको तेनो निमित्त जेम कहे तेमज थायछे एट ले साचो थायछे वली (केसिंचतंविप्पडिएतिणाणं के०) कोईकनो निमित्तादि ज्ञान विपर्यासपणाने पामेछे एटले विघटेछे तथा (तेविज्जभावंअणहिज्जमाणा के०) ते ए वी विद्याना भावनो अभ्यास कस्या विना एटले एवी विद्याने अण भण्या थका कहेछे के (आहंसुविज्जापरिमोरकमेव के०) अथवा पाठांतरे (जाणासुलोगंसिवयंतिमंदाके०) कोइएक मंद एटले मूर्ख एवा अक्रियावादी प्रमुख एमज कहेछेके अमेज आलोक मांहे अशेष एटले समस्त भावने जाणीयें छैयें ॥ १० ॥

॥ दीपिका-सांवत्सरं ज्योतिषं । स्वप्नप्रतिपादकोग्रंथः स्वप्नः । लक्षणं श्रीवत्सादिकं । निमित्तं शकुनादिकं । देहे भवं दैहं मषतिलकादि । उत्पाते भवमौत्पातिकमुल्कापातदिग्दा हादिकमित्यादि । अष्टांगनिमित्तं । यथा भौमं १ उत्पातं २ स्वप्नं ३ आंतरिक्षं ४ आंगं ५ स्वरं ६ लक्षणं ७ व्यंजनमित्येवं नवमपूर्वतृतीयाचारवस्तुनिर्गतं सुखदुःखादिसूचकं नि

मित्तमधीत्य लोकेऽतीतानागतानि वस्तूनि जानंति । नच शून्यादिष्वेतद्घटते तस्माद्प्रमाणकमेव तैरुच्यते ॥ ए ॥ पराभिप्रायमाह । (केईनिमित्तेत्यादि) छांदसत्वाल्लिंगव्यत्ययः । कानिचिन्निमित्तानि तथ्यानि सत्यानि भवंति । केषांचित्तु निमित्तानां निमित्तवेदिनां वा तन्निमित्तज्ञानं विपर्यासं व्यत्ययमेति । आर्हतानामपि निमित्तव्यभिचारोदृश्यते किंपुनस्तीर्थिकानां । तदेवं निमित्ते व्यभिचारमुपलभ्यतेऽक्रियावादिनोविद्यासद्भावं विद्यामनधीयानाः (आहंसुविज्जापलिमोरकमेव) विद्यायाः श्रुतस्य व्यभिचारेण तस्य परिमोक्षं परित्यागमाहुः । अथवा क्रियायाअभावाद्विद्यया ज्ञानेनैव मोक्षं कर्मक्षयरूपमाहुरिति । क्वचिच्चरमपादस्यैवं पाठः । (जाणासुलोगंसिवयंतिमंदत्ति) विद्यामनधीत्यैव स्वयमेव लोके भावान् वयं जानीमइति मंदाजडावदंति । मंदत्वं कथमिति चेडुच्यते । सम्यग्विलोकितस्य निमित्तस्य नास्ति व्यभिचारः । यत्रापि दृश्यते व्यभिचारः सोप्यज्ञाततादृगन्यनिमित्तसद्भावात् । यथा किल बुद्धः स्वशिष्यानाकार्यउक्तवान् । द्वादशवार्षिकमत्र दुर्भिक्षं भावि । यूयं देशांतरं गच्छत । तेच गच्छंतस्तेनैव निषिद्धाः । मागच्छत यूयं इहाद्यैव पुण्यवान् महासत्त्वः संजातस्तत्प्रभावात्सुभिक्षं भविष्यतीति । तदेवमन्यनिमित्तसद्भावान्नकथंचिन्निमित्तव्यभिचारइति ॥ १० ॥

॥ टीका—तदाह । (संवत्सरमित्यादि) सांवत्सरमिति ज्योतिषं । स्वप्नप्रतिपादको ग्रंथः स्वप्नस्तमधीत्य । लक्षणं श्रीवत्सादिकं । च शब्दादांतरबाह्यभेदभिन्नं निमित्तं वाक्प्रशस्तशकुनादिकं । देहे भवं दैहं मपकतिलकादि । उत्पाते भवमौत्पातिकमुल्कापातदिग्दाहनिर्घातभूमिकंपादिकं । तथाष्टांगंच निमित्तमधीत्य । तद्यथा । भौममुत्पातमांतरिक्षमांगं स्वरं लक्षणं व्यंजनमित्येवं रूपं नवमपूर्वतृतीयाचारवस्तुविनिर्गतं सुखदुःखजीवितमरणलाभाऽलाभादिसंसूचकं निमित्तमधीत्य लोकेऽस्मिन्नतीतानि वस्तूनि अनागतानिच जानंति परिछिंदंति । नच शून्यादिवादेष्वेतद् घटते तस्मादप्रमाणकमेव तैरभिधीयतइति । एवंव्याख्याते सति आह परः । ननु व्यभिचार्यपि श्रुतमुपलभ्यते । तथाहि । चतुर्दशपूर्वविदामपि षट्स्थानपतितत्वमागमउद्घुष्यते किंपुनरष्टांगनिमित्तशास्त्रविदां । अत्र चांगवर्जितानां निमित्तशास्त्राणामानुष्टुभेन छन्दसा त्रयोदशशतानि सूत्रं तावंत्येव सहस्राणि वृत्तिस्तावत्प्रमाणलक्षणा परिभाषेति । अंगस्य त्रयोदशसहस्राणि सूत्रं तत्परिमाणलक्षणा वृत्तिरपरिमितं वार्तिकमिति ॥ ए ॥ तदेवमष्टांगनिमित्तवेदिनामपि परस्परतः षट्स्थानपतितत्वेन व्यभिचारित्वमतइदमाह । (केइनिमित्ताइत्यादि) छांदसत्वात्प्राकृतशैल्या वा लिंगव्यत्ययः । कानिचिन्निमित्तानि तथ्यानि सत्यानि भवंति । केषांचित्तु निमित्तानां निमित्तवेदिनां वा बुद्धिवैकल्यात्तथाविधक्षयोपशमाभावेन तन्निमित्तज्ञानं वि

पर्यासं व्यत्ययमेति । आर्हतानामपि निमित्तव्यनिचारः समुपलन्यते किंपुनस्तीर्थिकानां । तदेवं निमित्तशास्त्रस्य व्यनिचारमुपलन्यते ऽक्रियावादिनोविद्यासद्भावमनधीयानाः संतोनिमित्तं तथा चान्यथा च नवतीति मत्वा ते (आहंसुविक्कापलिमोरकमेव) विद्यायाः श्रुतस्य व्यनिचारेण तस्य परिमोक्षं परित्यागमाहुरुक्तवंतः । यदिवा क्रियायाश्च नावाद्विद्यया ज्ञानेनैव मोक्षं सर्वकर्मच्युतिलक्षणमाहुरिति । कचिच्चरमपादस्यैवं पाठः (जाणासुलोगंसिवयंतिमंदत्ति) विद्यामनधीत्यैव स्वयमेव लोकमस्मिन वा लोके नावान् स्वयं जानीमएवं मंदाजडावदंति । नच निमित्तस्य तथ्यता । तथाहि । कस्यचित्क्कचित्कुतेऽपि गच्छतः कार्यसिद्धिदर्शनाच्छकुनसद्भावेपि कार्यविघातदर्शनादतोनिमित्तबलेनादेशविधायिनां मृषावादएव केवलमिति । नैतदस्ति । नहि सम्यगधीतस्य श्रुतस्यार्थे विसंवादोऽस्ति । यदपि पट्स्थानपतितत्वमुद्घोष्यते तदपि पुरुषाश्रितक्षयोपशमवशेन । नच प्रमाणानासव्यनिचारे सम्यक्प्रमाणव्यनिचाराशंकां कर्तुं युज्यते । तथाहि । मरुमरीचिकानिचये जलग्राहि प्रत्यक्षं व्यनिचरतीति कृत्वा किंसत्यजलग्राहिणोपि प्रत्यक्षस्य व्यनिचारोयुक्तिसंगतोनवति । नहि मशकवर्तिरग्निसिद्धावुपदिश्यमाना व्यनिचारिणीति सत्यधूमस्यापि व्यनिचारोनहि सुविवेचितकार्यकारणं व्यनिचरतीति । ततश्च प्रमातुरयमपराधोन प्रमाणस्यैव सुविवेचितं निमित्तं श्रुतमपि न व्यनिचरतीति । यश्च क्षुतेपि कार्यसिद्धिदर्शनेन व्यनिचारः शंक्यते सोऽनुपपन्नः । तथाहि । कार्याकूतात् क्षुतेपि गच्छतः कार्यसिद्धिः सापांतरालेंतरशोननिमित्तबलात्संजातेत्येवमवगंतव्यं । शोननिमित्तप्रस्थितस्यापीतरनिमित्तबलात्कार्यव्याघातइति । तथाच श्रुतिः । किल बुद्धः स्वशिष्यानाहूयोक्तवान् यथा द्वादशवार्षिकमत्र दुर्निक्षं नविष्यतीत्यतोदेशांतराणि गच्छत यूयं ते तद्वचनाद्गच्छंतस्तेनैव प्रतिषिद्धायथा मागच्छत यूयमिहाद्यैव पुण्यवान् महासत्वः संजातस्तत्प्रनावात्सुनिक्षं नविष्यति । तदेवमंतरा परनिमित्तसद्भावात्तद्व्यनिचारशंकेति स्थितं ॥ १० ॥

ते एवमरकंति समिच्च लोगं, तहा तहा समणा माहणा य ॥
सयं कडं णन्नकडं च दुरकं, आहंसुविज्जा चरणं पमोरकं ॥ ११ ॥
ते चरकुलोगंसिह णायगा उ, मग्गाणुसासंति हितं पयाणं ॥ त
हा तहा सासयमाहु लोए, जंसीपया माणव संपगाढा ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे क्रियावादीनो मत देखाडेछे. (तेएवमरकंतिसमिच्चलोगं के०) जे एकली मात्र क्रिया करवा थकीज मोक्षनी वांछना करेछे तेक्रियावादि एवीरीते आख्याति एट

ले कहेछे ते पोताने अभिप्रायें लोकने जाणीने अमे यथावस्थित तत्वना जाणछैए ए वीरीते बोलीने क्रियानुं स्थापन करेछे (तहातहासमणामाहणाय के०) तथा तथा ए टले ते ते प्रकारें अर्थात् जेवा जेवा प्रकारनी क्रिया प्रवर्त्ते तेम तेम एटले तेवा तेवा प्रकारनुं स्वर्ग नरकादिक फल पण जाणवुं एरीते ते शाक्यादिकना श्रमण ब्राह्मण क्रियाथकीज सिद्धि कहेछे. (सयंकडंणन्नकडंचदुरकं के०) तथाजे कांइ आ जगत् मांहे दुःख सुखछे ते सर्व पोतानुं करेलुं तथा परनुं करेलुं पण नथाय परंतु सर्व भवितव्यतानुं करेलुं थायछे हवे एमना मतनुं निराकरण करेछे (आहंसुविज्जाचरणंपमोरकं के०) तीर्थंकर गणधरादिक विद्या एटले ज्ञान अने चरण एटले चारित्र एणेकरी मोक्षछे एट ले संसारीजीवोने ज्ञान अने क्रियानेसंयोगे करी प्रकर्षे जैनमार्गे मोक्षछे एम कहेछे. ॥ ॥ ११ ॥ (तेचरकुलोगंसिहणायगाउ के०) ते तीर्थंकर गणधरादिक केवाछे तोके लो कमांहे चक्षुने स्थानकेछे तथा आ लोकने विषे नायक एटले स्वामि छता (मग्गाणुसा संतिहितंपयाणं के०) आलोकने विषे पोताना प्रजालोकने आ भवें तथा परभवें हित कारी एवो सम्यक् धर्म मार्ग प्रकाशेछे. (तहातहासासयमाहुलोएके०) तथा तथा एटले जेवा जेवा प्रकारें ए लोक पंचास्तिकायरूप ते द्रव्यास्तिक नयना अभिप्रायें शाश्वतो थाय तेवा तेवा प्रकारे कहे अथवा जेम जेम रागद्वेषनी वृद्धि तेम तेम संसारनी वृद्धि थाय एम कहे (जंसी के०) जे संसारने विषे (पयासंपगाढा के०) प्रजा एटले जीव ते राग द्वेषे व्याप्त छता नाना प्रकारे रह्याछे (माणवके०) तो हे मानव तुं एम जाण ॥१२॥

॥ दीपिका– अथ क्रियावादिमतमाह । ये क्रियातएव मोक्षमिछंति तएवमाख्यां ति । स्वाभिप्रायेण लोकं स्थावरजंगमात्मकं समेत्य ज्ञात्वा किल वयं यथावस्थितवस्तु ज्ञातारइत्यंगीकृत्य सर्वमस्त्येवेति सनिश्चयं कथयंति । तथा तेन प्रकारेण यथायथा क्रिया तथातथा स्वर्गनरकादिफलमिति । ते श्रमणास्तीर्थिकाब्राह्मणावा क्रियातएव सि द्धिमिछंति । तथा यत्किंचित्संसारे दुःखं तथा सुखं च तत्सर्वं स्वयमात्मनाऽन्येन कालेश्व रादिना । नचैतदक्रियावादे घटते । तत्र हि अक्रियत्वादात्मनोऽकृतयोरेव सुखदुःखयोः संभवः स्यादिति । (तस्मादाहंसु विज्जाचरणं पमोरकंति) विद्याज्ञानं । चरणंक्रिया । ते द्वे अपि विद्येते कारणत्वेन यस्येति समासंकृत्वा अर्शआदित्वान्मत्वर्थीयोच्प्रत्ययः । अ सौ विद्याचरणोमोक्षः । ज्ञानक्रियासाध्यइत्यर्थः । एवंविधं मोक्षमाहुस्तीर्थंकृदादयः॥११॥ ते तीर्थंकरादयइहास्मिन् लोके चक्षुर्लोचनतुल्यइत्यर्थः । ते लोके नायकाः प्रधानाः । तुर्विशेषणे । मार्गं ज्ञानादिकं प्रजानां हितं प्राणिनामनर्थवारकं सद्गतिप्रापकं चानुशापं ते कथयंति तथा तथा शाश्वतं लोकं संसारमाहुर्जिनाः । यथायथा मिथ्यात्ववृद्धिः ।

तथाहि । तत्र तीर्थंकराहारकवर्ज्याः सर्वेएव कर्मबंधाः संजाव्यंते । कर्मबंधाच्च संसारवृद्धिः । अथवा यथायथा रागद्वेषवृद्धिस्तथा तथा संसारोपि शाश्वतइत्याहुः । यस्मिन्संसारे प्रजाजंतवः हेमानव संप्रगाढाः स्थिताः ॥ १२ ॥

॥ टीका–सांप्रतं क्रियावादिमतं डुदूपयिषुस्तन्मतमाविष्कुर्वन्नाह । (तएवमरकंती त्यादि) ये क्रियातएव ज्ञाननिरपेक्षायादीक्षादिलक्षणायामोक्षमिछंति तेएवमाख्यांति तद्यथा । अस्ति माता पिता अस्ति सुचीर्णस्य कर्मणः फलमिति । किंकृत्वा तएवं कथयंति क्रियातएव सर्वं सिध्यतीति स्वाभिप्रायेण लोकं स्थावरजंगमात्मकं समेत्य ज्ञात्वा किल वयं यथावस्थितवस्तुनोज्ञातारइत्येवमभ्युपगम्य सर्वमस्त्येवेत्येवं सावधारणं प्रतिपादयंति न कथंचिन्नास्तीति कथमाख्यांति । तथा तेन प्रकारेण यथायथा क्रिया तथा तथा स्वर्गनरकादिकं फलमिति ते च श्रमणास्तीर्थिकाब्राह्मणावा क्रियातएव सिद्धिमिछंति । किंच यत् किमपि संसारे दुःखं तथा सुखं च तत्सर्वं स्वयमेवात्मना कृतं नान्येन कालेश्वरादिना नचैतदक्रियावादे घटते । तत्र ह्यक्रियात्वादात्मनोऽकृतयोरेव सुखदुःखयोः संजवः स्यादेवंच कृतनाशाकृतागमौ स्यातां। अत्रोच्यते । सत्यमस्त्यात्मसुखदुःखादिकं । नन्वस्त्येव। तथाहि। यद्यस्त्येवं सावधारणमुच्येत ततश्च न कथंचिन्नास्तीत्यापन्नमेवंच सति सर्वं सर्वात्मकमापद्येत । तथाच सर्वलोकस्य व्यवहारोछेदकः स्यात् । नच ज्ञानरहितायाः क्रियायाः सिद्धिस्तदुपायपरिज्ञानाजावात् । नचोपायमंतरेणोपेयमवाप्यतइति प्रतीतं । सर्वा हि क्रिया ज्ञानवत्येव फलवत्युपलक्ष्यते । उक्तंच । ज्ञानस्य ज्ञानिनां चैव निंदाप्रद्वेषमत्सरैः ॥ उपेक्षितैश्च विघ्नैश्च ज्ञानघ्नं कर्म बध्यते ॥ १ ॥ पढमं नाणं तउ दया, एवं चिट्ठति सव्वसंजए ॥ अन्नाणी किं काही, किंवा नाहीछेयपावयं ॥ १ ॥ इत्यतोज्ञानस्यापि प्राधान्यं नापि ज्ञानादेवसिद्धिः क्रियारहितस्य पंगोरिव कार्यसिद्धेरनुपपत्तिरित्यालोच्याह । (आहंसुविज्जाचरणं पमोरकंति) न ज्ञाननिरपेक्षायाः क्रियायाः सिद्धिरंधस्येव नापि क्रियाविकलस्य ज्ञानस्य पंगोरित्येवमवगम्याहुरुक्तवंतस्तीर्थकरगणधरादयः । किमाहुः । मोक्षं । कथं । विद्यां च ज्ञानं चरणंच क्रिया ते द्वे अपि विद्येते कारणत्वेन यस्येति विगृह्यार्शआदित्वान्मत्वर्थीयोच् । असौ विद्याचरणोमोक्षः । ज्ञानक्रियासाध्यइत्यर्थः। तमेवं साध्यं मोक्षं प्रतिपादयंति । यदिवान्यथा वा पातनिका केनैतानि समवसरणानि प्रतिपादितानि । यच्चोक्तं यच्च वक्ष्यते इत्येतदाशंक्याह । (तेएवमरकंतीत्यादि) अनिरुद्धा क्वचिदप्यस्खलिता प्रज्ञायते ऽनयेति प्रज्ञा ज्ञानं येषां तीर्थकृतां तेऽनिरुद्धप्रज्ञास्तएवमनंतरोक्तया प्रक्रियया सम्यगाख्यांति प्रतिपादयंति । लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं स्थावरजंगमाख्यं वा समेत्य केवलज्ञानेन करतलामलकन्यायेन ज्ञात्वा

तथागतास्तीर्थकरत्वं केवलज्ञानं च गताः श्रमणाः साधवोब्राह्मणाः संयताऽसंयताः। लौकिकी वाचोयुक्तिः। किंनूतास्तएवमाख्यांतीति संबंधः। तथातथेति वा क्वचित्पाठः। यथायथा समाधिमार्गोव्यवस्थितस्तथातथा कथयंति। एतच्च कथयंति। यथा यत्किंचित्संसारांतर्गतानामसुमतां दुःखमसातोदयस्वनावं तत्प्रतिपक्षनूतं च सातोदयापादितं सुखं तत्स्वयमात्मनाकृतं नान्येन कालेश्वरादिना कृतमिति। तथा चोक्तं। सव्वो पुव्वकयाणं, कम्माणं पावए फलविवागं॥ अवराहे सुगुणेसुय णिमित्तमित्तं परो होइ॥ १॥ एतच्चाहुस्तीर्थकरगणधरादयः। तद्यथा। विद्या ज्ञानं चरणं चारित्रं क्रिया तत्प्रधानोमोक्षस्तमुक्तवंतोनज्ञानक्रियाज्यां परस्परनिरपेक्षाज्यामिति। तथा चोक्तं। क्रियां च संज्ञानवियोगनिष्फलां क्रियाविहीनां च विबोधसंपदं॥ निरस्तताक्लेशसमूहशांतये, त्वया शिवाया लिखितेव पद्धतिः॥ १॥ ११॥ किंच (तेचरकुलोगंसि हेत्यादि) ते तीर्थकरगणधरादयोऽतिशयज्ञानिनोऽस्मिन् लोके चक्षुरिव चक्षुर्वर्तंते। यथाहि चक्षुर्योग्यदेशावस्थितान् पदार्थान् परिच्छिनत्ति। एवं तेऽपि लोकस्य यथावस्थितपदार्थाविष्करणं कारयंति। यथाऽस्मिन् लोके ते नायकाः प्रधानाः। तुशब्दो विशेषणे। सदुपदेशदानतोवा नायकाइत्येतदाह। मार्गं ज्ञानादिकं मोक्षमार्गं अनुशासंति कथयंति प्रजायंतइतिप्रजाः प्राणिनस्तेषां। किंनूतं। हितं सद्गतिप्रापकमनर्थनिवारकं। किंच चतुर्दशरज्ज्वात्मके लोके पंचास्तिकायात्मके वा येन प्रकारेण द्रव्यास्तिकनयानिप्रायेण यद्वस्तु शाश्वतं तत्तथा आहुरुक्तवंतः। यदिवा लोकोयं प्राणिगणः संसारांतर्वर्ती यथायथा शाश्वतोनवति तथातथैवाहुः। तद्यथा। यथायथा मिथ्यादर्शनानिवृद्धिस्तथातथा शाश्वतोलोकः। तथाहि। तत्र तीर्थकराहारकवर्ज्याः सर्वएव कर्मबंधाः संनाव्यंतइति। तथाच महारंनादिनिश्चतुर्निः स्थानैर्जीवानरकायुष्कं यावन्निवर्तयंति तावत्संसारानुछेदइति। अथवा यथायथा रागद्वेषादिवृद्धिस्तथातथा संसारोपि शाश्वतइत्याहुः। यथायथा च कर्मोपचयमात्रा तथातथैव संसारानिवृद्धिरिति। दुष्टमनोवाक्कायानिवृद्धौ वा संसारानिवृद्धिरवगंतव्या। तदेवं संसारस्यानिवृद्धिर्नवति। यथाऽस्मिंश्च संसारे प्रजायंतइति प्रजाजंतवः हे मानव। मनुष्याणामेव प्रायशउपदेशार्हत्वान्मानवग्रहणं। सम्यग्नारकतिर्यङ्नरामरनेदेन प्रगाढाः प्रकर्षेण व्यवस्थिताइति॥ १२॥

जे रस्कसा वा जमलोइया वा, जे वासुरा गंधव्वा य काया॥
आगासगामी य पुढोसिया जे, पुणोपुणो विप्परिया सुवंति॥
॥१३॥ जमाहु उहं सलिलं अपारगं, जाणाहि णं नवगहणं डु
मोरकं॥ जंसी विसन्ना विसयंगणाहिं, डुहन वि लोयं अणुसंचरंति॥१४

अर्थ—हवे ते नाना प्रकार कहेछे. (जेरस्कसावाजमलोइयावा के०) जे राक्षस व्यंतरादिक यमलोकिका जे परमाधार्मिकादिक देवो (जेवासुरा के०) जे वैमानिक ज्योतिषादिक देवो (गंधव्वाय के०) गांधर्व एटले विद्याधरादिक तथा (कायके०) पृथिविकायादिक (आगासगामीय के०) आकाशगामि एवा पक्षीउ तथा वायुप्रमुख तथा (पुढोसियाजे के०) पृथिविने विषे आश्रित एवा जे अनेक बेंद्रियादिक जीव ते सर्वे (पुणोपुणोविप्परियासुवंति के०) पोत पोताना कर्मे करी वलीवली चतुर्गतिक रूप संसारमां परिभ्रमण करेछे ॥ १३ ॥ (जमाहुउहंसलिलंअपारगं के०) श्रीतीर्थंकर गणधरादिक ते ए जे उघ एटले संसार तेने अपार स्वयंभूरमण समुद्र सरखो कहेछे (जाणाहि के०) एम तुं जाण अंहीं णं वाक्यालंकारेछे (भवगहणं के०) ते समान संसार गहनछे (डुमोरकं के०) डुर्मोक्ष एटले अत्यंत डुस्तरछे (जं सीविसन्ना विसयंगणाहिं के०) अस्तिवादीने पणजो एमछे एटले सम्यक् प्रवर्तकने पण आ अपार संसारसमुद्र अत्यंत डुस्तर छे तो नास्तिकवादीने तो अत्यंत डुस्तर होय एमां के वुंज शुं जे आ संसारने विषे सावद्य धर्मना प्रवर्त्तक कुमार्गे पतित पांचेंद्रिय संबंधी विषयना सेवनार तथा अंगना जे स्त्री तेने वश पड्याछता रहेछे ते (डुहउविलोयंअणुसंचरंति के०) त्रस स्थावररूप बे प्रकारनुं जे लोक तेमांहे राग द्वेषेकरीपरिभ्रमणकरे.

॥ दीपिका—ये राक्षसाः । राक्षसग्रहणात्सर्वे व्यंतराश्चेवाः । यमलौकिकात्मानोऽवप्यादयोभवनपतयः । येच सुरावैमानिकाः । चशब्दाज्ज्योतिष्काः । ये गंधर्वाविद्याधराः । कायाः पृथिवीकायादयः षट् । पुनः प्रकारांतरेण जीवान् आकाशगामिनः संप्राप्तलब्धयश्चतुर्विद्यादेवाविद्याधराः पक्षिणोवायवश्च । ये च पृथिव्याश्रिताः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियास्ते सर्वेपि कर्मभिः संसारे विपर्यासं परिभ्रमणमुपयांति गच्छंति ॥ १३ ॥ यं संसारं समुद्रमाहुर्जिनाः । किंभूतं । स्वयंभुरमणसलिलौघवदपारं जानीहि त्वं । णमितिवाक्यालंकारे । भवगहनं संसारारण्यं डुःखेन मुच्यतइति डुर्मोक्षं डुस्तरमस्तिवादिनामपि किंपुनर्नास्तिकानां । यस्मिन् संसारे सावद्याचारे विषण्णाआसक्ताविषयप्रधानाअंगनाविषयांगनास्ताभिर्वशीकृताद्विधापि स्थावरजंगमं लोकमनुचरंति गच्छंति संसारे भ्रमंतीत्यर्थः ॥ १४ ॥

॥ टीका—लेशतोजंतुभेदप्रदर्शनद्वारेण तत्पर्यटनमाह । (जेरस्कसाइत्यादि) ये केचन व्यंतरभेदाराक्षसात्मानः । तद्ग्रहणाच्च सर्वेपि व्यंतरा गृह्यंते । तथा यमलौकिकात्मनोऽवप्यादयस्तडुपलक्षणात्सर्वेभवनपतयस्तथा येच सुराः सौधर्मादिवैमानिकाः । चशब्दाज्ज्योतिष्काः सूर्यादयस्तथा ये गांधर्वाविद्याधराव्यंतरविशेषावा । तद्ग्रहणं च

प्राधान्यख्यापनार्थं । तथा कायाः पृथिवीकायादयः षडपि गृह्यंतइति । पुनरन्येन प्रकारेण सत्वान्संजिघृक्षुराह । ये केचनाकाशगामिनः संप्राप्ताकाशगमनलब्धयश्चतुर्विधदेवनिकायविद्याधरपक्षिवायवः । तथा येच पृथिव्याश्रिताः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियास्ते सर्वेपि स्वकृतकर्मभिः पुनःपुनर्विविधमनेकप्रकारं पर्यासं परिक्षेपमरहट्टघटीन्यायेन परिभ्रमणमुपसामीप्येन यांति गछंतीति ॥ १३ ॥ किंचान्यत् । (जमाहुरित्यादि) । यं संसारसागरमाहुरुक्तवंतस्तीर्थकरगणधरादयः । तद्विदः कथमाहुः स्वयंभुरमणसलिलौघवदपारं । यथा स्वयंभुरमणसलिलोघोन केनचिज्जलचरेण स्थलचरेण वा लंघयितुं शक्यते एवमयमपि संसारसागरः सम्यग्दर्शनिनमंतरेण लंघयितुं न शक्यतइति दर्शयति । जानीहि अवगछ। णमिति वाक्यालंकारे । भवगहनमिदं चतुरशीतियोनिलक्षप्रमाणं यथासंभवं संख्येयाऽसंख्येयानंतस्थितिकं दुःखेन मुच्यतइतिदुर्मोक्षं दुरुत्तरमस्तिवादिनामपि किंपुनर्नास्तिकानां । पुनरपि भवगहनोपलक्षितं संसारमेव विशिनष्टि । यत्र यस्मिन् संसारे सावद्यकर्मानुष्ठायिनः कुमार्गपतिताअसत्समवसरणग्राहिणो विषण्णाअवसक्ताविषयप्रधानाअंगनाविषयांगनास्तान्निर्यदि वा विषयाश्चांगनाश्च विषयांगनास्तान्निर्वशीकृताः सर्वत्र सदनुष्ठाने ऽवसीदंति तएवंविषयांगनादिके पंचके विषण्णाद्विधाप्याकाशाश्रितं पृथिव्याश्रितंच लोकं यदि वा स्थावरजंगमलोकमनुसरंति गछंति। यदिवा द्विधापि लिंगमात्रप्रव्रज्य याऽविरत्याचरागद्वेषाभ्यां वा लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं स्वकृतकर्मप्रेरिताअनुसंचरंति बंभ्रम्यंतइति ॥ १४ ॥

न कम्मणा कम्म खवेंति बाला, अकम्मणा कम्म खवेंति धीरो ॥ मेधाविणो लोभमया वतीता, पाठांतरे (लोभभयावतीता) संतोसिणो नोपकरेंति पावं ॥ १५ ॥ ते तीयउप्पन्नमणागयाइं,लोगस्स जाणंति तहागयाइं॥णेतारो अन्नेसि अणन्नणेया, बुद्धा हु ते अंतकडा भवंति ॥१६॥

अर्थ—(नकम्मणाकम्मखवेंतिबाला के०) अज्ञानी एवो मिथ्यामतिवालुं जीव कर्मजे सावद्यारंभ तेणे करी पूर्वकृतकर्मने खपावे नही परंतु साहमां नवा कर्मनुं बंध करे (अकम्मणाकम्मखवेंतिधीरा के०) आश्रवने सर्व प्रकारें रोधन करवा थकी सैलेसी करणावस्थायें धीर एटले महासत्ववंत एवो पुरुष कर्मने खपावेछे. (मेधाविणोलोभमयावतीता के०) जे मेधावि एटले पंमित महानुभाव होय ते लोभमय एटले परिग्रह तेथकी अतीत एटले रहित होय (संतोसिणोनोपकरेंतिपावं के०) एम संतोषी थतो पाप नकरे ॥ १५ ॥ जे पुरुष एवा होय ते केवा थाय ते कहेछे. (तेतीयउप्पन्नमणागयाइं के० ते) श्रीवीतराग अतीत, अनागत अने वर्तमान ए त्रणे काल आश्री

(लोगस्सजाणंतितहागयाइं के०) तथागत एटले यथावस्थित जेमछे तेवीरीते लोक मांहे सर्व जीवोना भावी सुखदुःखादिकना जाण एवा थाय परंतु विभंग ज्ञानीनी पेरे आधुंपाछुं नजाणे (णेतारोअन्नेसिअणन्नणेया के०) एवा जीवो अन्य जीवोने संसारनो पार पमाडे परंतु तेने अन्य कोइ तत्वनो देखाडनार नथाय किंतुते द्रुइतिनिश्चे पोतेज (बुद्धाके०) तत्वना जाण थका (अंतकडाभवंतिके०) कर्मनो अंतकरनार होयछे ॥१६॥

॥ दीपिका–कर्मणा सावद्यारंभेण कर्म पापं न क्षपयंति बालामूढाः । अकर्मणा आश्रवनिरोधेन तु कर्म क्षपयंति धीरामहासत्त्वाः । मेधाविनः प्रज्ञावंतोलोभमयं परिग्रहमेवातीतालोभातीतावीतरागाः संतोषिणः संतुष्टास्ते एवंविधाअवीतरागाअपि पापं कर्म न कुर्वंति । लोभभयादतीताइति क्वचित्पाठः । लोभश्च भयं च लोभाद्भयं तस्मादतीताअतएव संतोषिणइति । लोभाईभावं दर्शयताऽपरकषायेभ्योभयस्याधिकत्वमुक्तं ॥ १५ ॥ ते वीतरागाअतीतानि पूर्वजन्मकृतानि प्रत्युत्पन्नानि वर्तमानानि अनागतान्यागामिभवभावीनि सुखदुःखानि लोकस्य प्राणिगणस्य तथागतानि यथास्थितानि जानंति ते जिनाः श्रुतकेवलिनोवा ऽन्येषां प्राणिनां मोक्षंप्रति नेतारः प्रापकास्तेच स्वयंबुद्धत्वादन्येन न नीयंते तत्त्वावबोधं कार्यंतइत्यनन्यनेयास्तेबुद्धाज्ञाततत्त्वास्तीर्थंकरगणधरादयोद्रुनिश्चितमंतकराः संसारपारगाभवंति ॥ १६ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (णकम्मणेत्यादि) ते एवमसत्समयसरणाश्रितामिथ्यात्वादिनिर्दोषैरभिभूताः सावद्येतरविशेषानभिज्ञाः संतः कर्मक्षपणार्थमभ्युद्यतानिर्विवेकतया सावद्यमेव कर्म कुर्वते । नच कर्मणा सावद्यारंभेण कर्म पापं क्षपयंत्यपनयंत्यज्ञत्वाद्बाला इव बालास्तइति । यथाच कर्म क्षिप्यते तथा दर्शयति । अकर्मणात्वाश्रवनिरोधेन तु अंतशः शैलेश्यवस्थायां कर्म क्षपयंति धीरामहासत्त्वाः सद्वैद्याइव चिकित्सयाऽऽमयानिति । मेधा प्रज्ञा विद्यते येषांते मेधाविनोहिताहितप्राप्तिपरिहाराभिज्ञालोभमयं परिग्रहमेवातीताः परिग्रहातिक्रमाल्लोभातीतावीतरागाइत्यर्थः । संतोषिणोयेन केनचित्संतुष्टाअवीतरागाअपीति । यदिवा यतएवाऽतीतलोभाअतएव संतोषिणइति । तएवंभूताभगवंतः पापमसदनुष्ठानापादितं कर्म न कुर्वंति नाददति । क्वचित्पाठः । लोभभयादतीताः । लोभश्च भयं च समाहारद्वंद्वः । लोभाद्भ भयं तस्मादतीताः संतोषिणइति । न पुनरुक्ता शंका विधेयेत्यतोलोभातीतत्वेन प्रतिषेधांशोदर्शितः । संतोषिणइत्यनेन च विध्यंशइति । यदिवा लोभातीतग्रहणेन समस्तलोभाभावः । संतोषिणइत्यनेनतु सत्यप्यवीतरागत्वेनोत्कटलोभाइति । लोभाभावं दर्शयन्नपरकषायेभ्योलोभस्य प्राधान्यमाह । येच लोभातीतास्तेऽवश्यं पापं न कुर्वंतइति स्थितं ॥ १५ ॥ येच लोभातीतास्ते किंभूताभवं

तीत्यतआह । (तेतीयइत्यादि) ते वीतरागाअल्पकषायावा लोकस्य पंचास्तिकायात्मक स्य प्राणिलोकस्य वाऽतीतान्यन्यजन्माचरितानि उत्पन्नानि वर्तमानावस्थायीन्यनागता नि च नवांतरनावीनि सुखडुःखादीनि तथागतानि यथावस्थितानि तथैवाऽवितथं जानं ति न विनंगज्ञानिनइव विपरीतं पश्यंति । तथाहि । आगमः । अणगारेणं नंतेमाई मि छादिठी रायगिहेण यरेसंमोहए वाणारसीए नयरीए रूवाइं जाणाइ पासइ जावसे दं सणे विवज्ञा से नवतीत्यादि । ते चातीतानागतवर्तमानज्ञानिनः प्रत्यक्षज्ञानिनश्चतुर्दशपू र्वविदोवा ऽप्रत्यक्षज्ञानिनोऽन्येषां संसारोत्तितीर्षूणां नव्यानां मोक्षंप्रति नेतारः सडुपदे शं प्रत्युपदेष्टारोनवंति । नच ते स्वयंबुद्धत्त्वादन्येन नीयंते तत्त्वावबोधं कार्यंतइत्यनन्य नेयाहिताहितप्राप्तिपरिहारंप्रति नान्यस्तेषां नेता विद्यतइति नावः । ते च बुद्धाः स्वयं बुद्धास्तीर्थंकरगणधरादयः । डुशब्दश्च शब्दार्थे विशेषणेच । तथाच प्रदर्शितएव । तेच न वांतकराः संसारोपादानभूतस्य वा कर्मणोंतकरानवंतीति ॥ १६ ॥

ते णेव कुवंति ण कारवंति, नूताहिसंकाइ डुगुंछमाणा ॥ सयाजता विप्प णवंति धीरा, विसत्ति धीरा पाठांतरे (विसतिवीरा) य हवंति एगो ॥ १७ ॥ म्हरे य पाणे वुड्ढे य पाणे, ते आत्तउ पासइ सवलोए ॥ उवे हती लोगमिणं महंतं, बुद्धेऽपमत्तेसु परिवएज्जा ॥ १८ ॥

अर्थ—हवे तेमनी क्रिया केवी होय ते कहेछे. (ते के०) ते वीतराग सम्यक् ज्ञानी ते सावद्यानुष्टानरूप एवी जे (नूताहि संकाइ डुगुंछमाणा के०) नूत एटले प्राणी तेनी हिंसानी शंकायें डुगंछित एटले प्राणीनी हिंसाने निंदता थका (णेवकुवंति के०) पोते हिंसा करे नही तथा (णकारवंति के०) अन्य पाशे हिंसा करावे नही. उपल क्षण थकी जे हिंसा करतो होय तेने अनुमोदे नही तेमज मृषा पोते बोले नही बीजा पाशे बोलावे नही तथा बोलताने अनुमोदन आपे नही एरीते सर्व पंचमहा व्रतोने सदाकाल पाले एम (सयाजता के०) सर्व काल यत्नवंत एटले पाप थकी नि वर्त्ते (विप्पणवंतिधीरा के०) संयमने विषे नम्र होय विनयवंत होय एवा धैर्यवंत शुनट तुल्य छतो संयमरूप नूमिने विषे कर्मरूप शुनटोने जीतवा समर्थ एवो (विसत्तिधी रायहवंतिएगोके०) कोइएक शुद्ध सम्यक् मार्ग जाणी धैर्यवंत शूरवीर थाय ते परीसहा दिकने जीते ॥ १७ ॥ हवे शुं जाणीने सावद्यानुष्ठान नकरे ते कहेछे. (महरेयपाणे वुड्ढेयपाणे के०) महरा एटले बालक ते अंही पृथ्विकायादिक तथा बेंडीयादिक लघु जातीना जीवो लेवा तेपण जीवछे अने वुड्ढेय एटले महोटा हस्ति प्रमुख ते पण जी वछे एवुं जाणीने (तेआत्तउपासइ सवलोए के०) ते सहुजीवने सर्व चौद रज्ज्वात्मक

लोकने विषे पोतानाआत्म समान देखे (उव्वेहती लोगमिणं महंतं के०) ए महांत लोक एटले संसार तेने सारीरीते आलोचीने सर्वस्थानक अशाश्वता जाणीने आ संसारमां कोइ सुख नथी एवो जाणीने (बुद्ध के०) जे पंम्डित तत्वना जाण होय ते (अप्पमत्तेसुपरिव्वएज्जा के०) अप्रमत्तपणे संयमने विषे प्रवर्त्ते शुद्धो संयम पाले १८

॥ दीपिका—ते तीर्थंकरादयः पापं कर्म नैव कुर्वंति स्वयं। नवाऽन्येन कारयंति कुर्वंतमन्यं नानुजानंति नूतानिशंकया प्राणिघातनयेन पापं कर्म जुगुप्समानाः। एवं विधास्ते सदा सर्वकालं यताः संयताविप्रणमंति विविधं संयमानुष्ठानं प्रति प्रव्हीनवंति तत्पराः स्युर्धीराः। तथा एके केचन गुरुकर्माणो (विणत्ति) विज्ञप्तिर्ज्ञानं तन्मात्रेणैव वीरानानुष्ठानेन स्युः। नच ज्ञानमात्रेण सिद्धिः। यतः। अधीत्य शास्त्राणि नवंति मूर्खा, यस्तु क्रियावान् पुरुषः सविद्वान्॥ संचिंत्यतामौषधमातुरं हि न ज्ञानमात्रेण करोत्यरोगम्॥ १ ॥ १७ ॥—ये डहरालघवः कुंथ्वाद्याः सूक्ष्मावा ते सर्वेपि प्राणाः प्राणिनोये च वृद्धाबादरास्तान् सर्वानात्मवत्पश्यति सर्वलोके। तथा लोकमिमं षड्जीवैराकुलत्वान्महांतमुत्प्रेक्षते। अनाद्यनंतत्वाद्वा महांतं। यतोनव्याअपि केचन सर्वेणापि कालेन नसेत्स्यंतीति। यद्यपि द्रव्यतः षड्द्रव्यात्मकत्वात् क्षेत्रतश्चतुर्दशरज्जुमानत्वात्परिमितोलोकस्तथापि कालतोऽनाद्यनंतत्वाद्भावतः पर्यायाणामंतत्वान्महान् लोकस्तमुत्प्रेक्षते। बुद्धोज्ञाततत्त्वोऽप्रमत्तेषु यतिषु तथानूतएव परिव्रजेत्संयमे॥ १८ ॥

॥ टीका—यावदद्यापि नवांतं न कुर्वंति तावत्प्रतिषेध्यमंशं दर्शयितुमाह। (तेणेव कुव्वंतीत्यादि) ते प्रत्यक्षज्ञानिनः परोक्षज्ञानिनोवा विदितवेद्याः सावद्यमनुष्ठानं नूतोपमर्दानिशंकया पापं कर्म जुगुप्संतः संतोन स्वतः कुर्वंति नाप्यन्येन कारयंति कुर्वंतमप्यपरं नानुमन्यन्ते। तथा स्वतोन मृषावादं जल्पंति नान्येन जल्पयंति नाप्यपरं जल्पंतमनुजानंत्येवमन्यान्यपि महाव्रतान्यायोज्यानीति। तदेवं सदा सर्वकालं यताः संयताः पापानुष्ठानान्निवृत्ताविविधं संयमानुष्ठानं प्रति प्रणमंति प्रव्हीनवंति। के ते वीरामहापुरुषाइति। तथैकेचन हेयोपादेयं विज्ञायाऽपिशब्दात्सम्यक् परिज्ञाय वा तदेव निःशंकं यज्जिनैः प्रवेदितमित्येवं कृतनिश्चयाः कर्मणि विदारयितव्ये वीरानवंति। यद्विवा परीषहोपसर्गानीकविजयाद्वीरा इति। पांगतरंवा (विणुति वीराय नवंति एगे) एके केचन गुरुकर्माणोल्पसत्त्वाः विज्ञप्तिर्ज्ञानं तन्मात्रेणैव वीरानत्वनुष्ठाने नच ज्ञानादेवाऽनिलषिताथाप्तिरुपजायते। तथाहि। अधीत्यशास्त्राणि नवंति मूर्खायस्तुक्रियावान् पुरुषः स विद्वान्॥ संचिंत्यतामौषधमातुरं हि न ज्ञानमात्रेण करोत्यरोगं॥ १ ॥ १७ ॥ कानि

पुनस्तानि नूतानि यद्भंकयाऽरंनं जुगुप्संति संतइत्येतदाशंक्याह । (डहरेयइत्यादि) ये केचन डहरेति लघवः कुंथ्वादयः सूक्ष्मावा ते सर्वेपि प्राणाः प्राणिनोये च वृद्धा बादरशरीरिणस्तान्सर्वानप्यात्मतुल्यान् आत्मवत्पश्यति सर्वस्मिन्नपि लोके यावत्प्रमाणं मम तावदेव कुंथ्योरपि यथावा मम दुःखमननिमतमेवं सर्वलोकस्यापि सर्वेषामपि प्राणिनां दुःखमुत्पद्यते दुःखादुद्विजंति । यथाचागमः । पुढविकाएणं नंते अक्कंते समाणे केरिसयं वेयणं वेएइइत्याद्याः सूत्रालापकाइति मत्वा तेपि नाक्रमितव्यान संघट्टनीया इत्येवं यः पश्यति तथा लोकमिमं महांतमुत्प्रेक्षते षड्जीवसूक्ष्मबादरनेदैराकुलत्वान्महांतं । यद्विवाऽनादिनिधनत्वान्महान् लोकः । तथाहि । कालतोनव्याअपि केचन सर्वेणापि कालेन न सेत्स्यंतीति । यद्यपि द्रव्यतः षड्द्रव्यात्मकत्वात् क्षेत्रतश्चतुर्दशरज्जुप्रमाणतया सावधिकोलोकस्तथापि कालतोनावतश्चानाद्यनिधनत्वात्पर्यायाणां चानंतत्वान्महान लोकस्तमुत्प्रेक्षतइति । एवंच लोकमुत्प्रेक्षमाणोबुद्धोऽवगंतव्यः । सर्वाणि प्राणिस्थानान्यशाश्वतानि तथा नात्रापसदे संसारे सुखलेशोप्यस्तीत्येवं मन्यमानोऽप्रमत्तेषु संयमानुष्ठायिषु मध्ये तथानूतएव परिसमंताद्व्रजेयदिवा बुद्धः सन् प्रमत्तेषु गृहस्थेषु अप्रमत्तः सन् संयमानुष्ठाने परिव्रजेदिति ॥ १ ७ ॥

जे आयउ परउ वा वि णव्वा, अलमप्पणो होंति अलं परेसिं ॥
तं जोइनूतं च सया वसेज्जा, जे पाउ कुज्जा अणुवीति धम्मं॥१ ए॥
अत्ताण जो जाणति जो य लोगं, गइं च जो जाणइ णागइं च॥
जो सासयं जाण असासयं च, जातिं मरणं च जणोववायं॥२ ०॥

अर्थ—(जेआयउपरउवाविणव्वा के०) जे कोइ पोताना आत्माने तथा परना आत्माने सम्यक् प्रकारे जाणे एटले जेवीरीते पोताना आत्माने जाणे तेवीरीते परना आत्माने पण जाणे (अलमप्पणोहोंतिअलंपरेसिं के०) ते पुरुष पोताने उद्धरवाने समर्थ होय अने बीजाने पण उद्धरवाने समर्थ थाय (तंजोइनूतंचसयावसेज्जा के०) ते ज्योतिनूत प्रकाशवान चंद्रादित्य प्रदीपसमान गुरुने जाणीने सर्व काले सेवे (जेपाउकुज्जाअणुवीतिधम्मं के०) जे विचारीने श्रीवीतराग नाषित धर्मना स्वरूपने सम्यक् प्रकारें करी प्रगट करे ॥ १ ए ॥ (अत्ताणजोजाणतिजोयलोगं के०) जे पोताना आत्माने सम्यक् प्रकारे जाणे जे लोकालोकनुं स्वरूप जाणे (गइंचजोजाणइणागइंचके०) जे जीवनी गति आगति जाणे अथवा चारे गतिनुं स्वरूप जाणे तथा अनागतनुं स्वरूप जाणे एटले ज्यां गयो थको जीव फरी नआवे एवी जे मोक्षगति तेना स्वरूपने जाणे (जोसासयंजाणअ

सासयंचके०) तथा जे शाश्वता पदार्थ अने अशाश्वता पदार्थने पण जाणे (जातिंमरणंचज णोववायं के०) तथा जे जीवना जन्म अने मरणने पण जाणे तथा जन एटले लो क तेनुं उपपात एटले उत्पत्ति देव नारकादिकने विषे थायछे ते पण जाणेछे ॥ २०॥

॥ दीपिका–यआत्मनः स्वयं सर्वज्ञोगणधरादिर्वा परतस्तीर्थकरादेर्जीवादीन् पदार्था न् ज्ञात्वा परेन्यउपदिशति सआत्मनस्त्रातुमलं समर्थः परेषांच तं सर्वज्ञं गणधरादिकं वा ज्योतिर्नूतं पदार्थप्रकाशकत्वाच्चंद्रादित्यतुल्यं सदाऽऽबसेत सेवेत नित्यं गुरुसेवी नवे त् । यतः । नाणस्स होइ नागी, थिरयरउदंसणाचरित्तेय ॥ धन्ना आवकडाए गुरुकुलवा सं नमुंचंति ॥ १ ॥ ते के इत्याह । ये धर्मं श्रुतचारित्राख्यं साधुधर्मं श्राद्धधर्मंवाऽनुवि चिंत्य विचार्य तमेव धर्मं प्राडुष्कुर्युर्यथोक्तानुष्ठानतः प्रकटयेयुस्ते गुरुसेविनः स्युः॥१ए॥ आत्मानं यो जानाति यश्च लोकं चराचरं चशब्दादलोकं च जानाति । यश्च जीवानां ग तिमागतिं जानाति अनागतिं कुत्र गतानां नागमनं स्यादिति। यश्च शाश्वतं नित्यं सर्वं व स्तु ड्व्यास्तिकनयादशाश्वतं वा ऽनित्यं पर्यायनयाश्रयणात् चशब्दान्नित्यानित्यं च सर्वं योजानाति । यदागमः । णेरइआदव्वठया एसासयाजावठाएअसासया । एवं तिर्यगाद योपि । अथवा शाश्वतं मोक्षमशाश्वतं नवं तथा जातिमुत्पत्तिं मरणं च नारकादीनां तथा जनानां सत्वानामुपपातं जानाति । उपपातोदेवनारकयोरुत्पत्तिरन्येषां ज्ञेया॥२०॥

॥ टीका–किंच । (जेआयउइत्यादि) यः स्वयं सर्वज्ञआत्मनस्त्रैलोक्योदरविवरवर्ति पदार्थदर्शी यथावस्थितं लोकं ज्ञात्वा तथा यश्च गणधरादिकः परतस्तीर्थकरादेर्जीवा दीन् पदार्थान् विदित्वा परेन्यउपदिशति सएवंनूतोहेयोपादेयवेद्यात्मनस्त्रातुमलमा त्मानं संसारावटात्पालयितुं समर्थोनवति । तथा परेषां सडुपदेशदानतस्त्राता जायते तं सर्वज्ञं स्वतएव सर्ववेदिनं तीर्थकरादिकं परतोवेदिनं च गणधरादिकं ज्योतिर्नूतं पदा र्थप्रकाशकतया चंड्रादित्यप्रदीपकल्पमात्महितमिछन् संसारडुःखोद्विग्नः कृतार्थमात्मा नं नावयन् सततमनवरतमावसेत्त सेवेत गुर्वंतिकएव यावज्जीवं वसेत् । तथाचोक्तं । नाणस्स होइ नागी, थिरयरउ दंसणे चरित्तेय ॥ धन्ना आवकहाए, गुरुकुलवासं ण मुंचंति । कएवं कुर्युरिति दर्शयति । ये कर्मपरिणतिमनुविचिंत्य माणुस्सखेत्तजाइत्या दि डुर्लनां च सद्धर्मावाप्तिं सद्धर्मंवा श्रुतचारित्राख्यं क्षांत्यादिकं दशविधसाधुधर्मं वा ऽनुविचिंत्य पर्यालोच्य ज्ञात्वा वा तमेव धर्मं यथानुष्ठानतः प्राडुष्कुर्युः प्रकटयेयुस्ते गुरु कुलवासं यावज्जीवमासेवंतइति । यदिवा ये ज्योतिर्नूतमाचार्यं सततमासेवंति तथा आगमज्ञाधर्ममनुविचिंत्य लोकं पंचास्तिकायात्मकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं वा प्राडुष्कुर्युरिति

क्रिया ॥ १ए ॥ किंचान्यत् । (अत्ताणमित्यादि) योह्यात्मानं परलोकयायिनं शरीरा द्व्यतिरिक्तं सुखदुःखाधारं जानाति यश्चात्महितेषु प्रवर्तते सआत्मज्ञोनवति । ये न चात्मा यथावस्थितस्वरूपोऽहंप्रत्ययग्राह्योनिज्ञातोनवति तेनैवायं सर्वोपि लोकः प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपोविदितोनवति सएव चात्मज्ञोस्तीत्यादिक्रियावादं नापितुमर्हतीति द्वितीयवृत्तांतस्य क्रिया । यश्च लोकं चराचरं वैशाखस्थानस्थकटिस्थकरयुग्मपुरुषा कारं चशब्दादलोकं चानंताकाशास्तिकायमात्रं जानाति । यश्च जीवानामागतिमागमनं कुतः समागतानारकास्तिर्यंचोमनुष्यादेवाः कैर्वा कर्मनिर्नारकादित्वेनोत्पद्यंतइत्येवं यो जानाति । तथाऽनागतं चाऽनागमनं च कुत्र गतानां नागमनं नवति चकारात्तज्ञमनोपायं च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकं योजानाति । तत्रानागतिः सिद्धिरशेषकर्मच्युतिरूपा लोकाग्रा काशदेशस्थानरूपा वा ग्राह्या साच सादिरपर्यवसाना । यश्च शाश्वतं नित्यं सर्ववस्तुजातं द्रव्यास्तिकनयाश्रयादशाश्वतं वा नित्यं प्रतिक्षणविनाशरूपं पर्यायनयाश्रयणात् चकारा न्नित्यानित्यं चोनयाकारं सर्वमपि वस्तुजातं योजानाति । तथाहि । आगमः । णेरइया दव्वठ्याएसासयानावठ्याएअसासया । एवमन्येपि तिर्यगादयोद्रष्टव्याः । अथवा निर्वाणं शाश्वतं संसारोऽशाश्वतस्तत्रगतानां संसारिणां स्वकृतकर्मवशगानामितश्चेतश्च गमनादिति । तथा जातिमुत्पत्तिं नारकतिर्यङ्मनुष्यामरजन्मलक्षणां च मरणं वाऽऽयुष्कक्षयलक्षणं । त था जायंतइति जनाः सत्त्वास्तेषामुपपातं जानाति सच नारकदेवयोर्नवतीति । अत्रच ज न्मचिंतायामसुमतामुत्पत्तिस्थानं योनिर्नणनीया साच सचित्ताचित्तमिश्राच तथा शीता उष्णा मिश्राच तथा संवृता विवृता मिश्राचेत्येवं सप्तविंशतिविधेति । मरणं पुनस्तिर्यङ्म नुष्ययोश्च्यवनं ज्योतिष्कवैमानिकानामुद्वर्तनं नवनपतिव्यंतरनारकाणामिति ॥ २० ॥

अहो वि सत्ताण विउट्टणं च, जो आसवं जाणति संवरं च ॥
दुरकं च जो जाणति निज्जरं च, सो नासिउ मरिहइ किरियवादं
॥ २१ ॥ सद्देसु रूवेसु असज्जमाणो, गंधेसु रसेसु अदुस्समा
णे ॥ णो जीवितं णो मरणाहिकंखी, आयाणगुत्ते वलया विमु
क्के तिबेमि ॥ २२ ॥ इतिश्री समवसरणमध्ययनं द्वादशमं संमत्तं ॥

अर्थ-(अहोविसत्ताण विउट्टणंच के०) अधोगतियें नरकादिकने विषे अशुन कर्म ने विपाके जीवने शरीर पीडादिक संताप उपजेने ते सर्व जाणे (जोआसवंजाणतिसंव रंच के०) जे आश्रव इंद्रिय कषाय योग अने अव्रत इत्यादिक सर्व जाणे तथा संवर ते समिति गुप्ति अने परिसह इत्यादिक सर्व जाणे (दुरकंचजोजाणतिनिज्जरंच के०)

तथा पापोदयथकी दुःख उत्पन्न थाय ते जाणे अने उपलक्षणथकी पुण्यना बेतालीश भेद पण जाणे वली निर्ज्जराना बारभेदने पण जाणे (सोभासिउमरिहइकिरय वादं के०) तथा बंधना चार भेदने पण जाणे ते परमार्थथकी क्रियावाद बोलवा योग्य थाय ॥ २१ ॥ एवा जे सम्यक् वादी तेने फल देखाडेडे. (सद्देसुरूवेसुअसज्जमाणो के०) शब्द जे वीणा वंश प्रमुख श्रोत्रेंडियने सुखना आपनार तेने विषे तथा रूप ते अनेक काष्टकर्म चित्रकर्म तथा लिप्यकर्मादिकने विषे असज्जमान एटले तेना उपर रागद्वेषने टालतो थको तथा (गंधेसुरसेसुअडुस्समाणे के०) गंधने विषे, रसने विषे अडुसमान एटले द्वेषने अण करतो थको (णोजीवितंणोमरणाहिकंखी के०) जीवितव्य अने मरणनी वांछा नकरे समता भावे वर्ते (आयाणगुत्ते के०) आदान एटले संयम तेने विषे गुप्त एटले तेनो रक्षपाल छतो (वलयाविमुक्के के०) वलय एटले माया तेना थकी विमुक्त छतो संयम पाले तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥२२॥ इतिश्री द्वितियसूत्रकृतांगनेविषे समवसरण नामे बारमा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका–सत्वानां स्वकर्मजुजामधोनारकादौ विकुट्टनीं पीडां योजानाति । यश्चाश्रवं संवरं च जानाति तथा दुःखं चशब्दात्सुखंच तथा तपसा निर्जरां च जानाति । कोर्थः । बंधहेतून् कर्मक्षयहेतूंश्च तुल्यतया जानाति । यतः । यथाप्रकारायावंतः, संसारावेशहेतवः ॥ तावंतस्तद्विपर्यासा, निर्वाणावेशहेतवः ॥१॥ सएव तत्त्वतोभाषितुं वक्तुमर्हति क्रियावादं जीवाद्यस्तित्वरूपमिति । अत्रान्यमतखंडनं वृत्तितोज्ञेयं ॥ २१ ॥ शब्देषु रूपेषु मनोज्ञेषु असज्जन् संगमकुर्वन् गंधेषु रसेष्वमनोज्ञेषु अद्विष्यन् द्वेषमकुर्वन् । शब्दादिषु इंडियविषयेष्विष्टानिष्टेषु रागद्वेषरहितइत्यर्थः । एवंविधोजीवितमसंयमजीवितं नाभिकांक्षेत् परीषहोपसर्गैः पीडितोमरणमपि नाभिकांक्षेत् । आदानं संयमस्तेन गुप्तः स हि वलयं भाववलयं माया तया विमुक्तइति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ समाप्तं समवसरणाख्यं द्वादशमध्ययनं ॥

॥ टीका–किंच (अहोविइत्यादि) सत्वानां स्वकृतकर्मफलजुजामधस्तान्नारकादौ दुष्कृतकर्मकारिणां विविधां विरूपां वा कुट्टनां जातिजरामरणरोगशोककृतां शरीरपीडां च शब्दात्तदभावोपायं योजानाति । इदमुक्तंभवति । सर्वार्थसिद्धादारतोधःसप्तमीं नरकभुवं यावदसुमंतः सकर्माणोविवर्तंते तत्रापि ये गुरुतरकर्माणस्तेऽप्रतिष्ठाननरकयायिनोभवंतीत्येवं योजानीते तथा आश्रवत्यष्टप्रकारकं कर्म येन स आश्रवः सच प्राणातिपातरूपोरागद्वेषरूपोंवा मिथ्यादर्शनादिकोवेति तं तथा संवरणमाश्रवनिरोधरूपं यावदयोगप्रयो

गनिरोधस्वभावं चकारात्पुण्यपापे च योजानीते तथा दुःखमसातोदयरूपं तत्कारणं च योजानाति सुखं च तद्विपर्ययभूतं योजानाति तपसा निर्जरांच । इदमुक्तं भवति । यः कर्मबंधहेतून् तद्विपर्यासहेतूंश्च तुल्यतया जानाति । तथाहि । यथाप्रकारायावंतः, संसारावेशहेतवः ॥ तावंतस्तद्विपर्यासा, निर्वाणावेशहेतवः ॥ १ ॥ सएव परमार्थतोभापितुं वक्तुमर्हति । किंतदित्याह । क्रियावादमस्ति जीवोऽस्ति पुण्यमस्ति च पूर्वाचरितस्य कर्मणः फलमित्येवं वादमिति । तथाहि ।जीवाजीवाश्रवसंवरबंधपुण्यपापनिर्जरामोक्षरूपान वापि पदार्थाः श्लोकद्वयेनोपात्तास्तत्र यश्चात्मानं जानातीत्यनेन जीवपदार्थोलोकमित्यनेनाजीवपदार्थस्तथा गत्या गतिः शाश्वतेत्यादिनानयोरेव स्वभावोपदर्शनं कृतं । तथाश्रवसंवरौ स्वरूपेणैवोपात्तौ । दुःखमित्यनेन तु बंधपुण्यपापानि गृहीतानि तदविनाभावित्वाद्दुःखस्य । निर्जरायास्तु स्वाभिधानेनैवोपादानं तत्फलभूतस्य मोक्षस्योपादानं द्रष्टव्यमिति"। तदेवमेतावंतएव पदार्थास्तदभ्युपगमे भवास्तीत्यादिकः क्रियावादोऽभ्युपगतोभवतीति । यश्चैतान् पदार्थान् जानात्यभ्युपगच्छतिसपरमार्थतः क्रियावादं जानाति ।ननुचाऽपरदर्शनोक्तपदार्थपरिज्ञानेन सम्यक्त्वादिकं कस्मान्नाभ्युपगम्यते तडुक्तपदार्थानामेवाघटमानत्वात् । तथाहि । नैयायिकदर्शनेन तावत्प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टांतसिद्धांतावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितंडाहेत्वाभासछलजातिनिग्रहस्थानानीत्येते षोडश पदार्थाअभिहिताः । तत्र हेयोपादेयप्रवृत्तिरूपतया येन पदार्थपरिछित्तिः क्रियते तत्प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणं । तच्च प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदाच्चतुर्द्धा । तत्रेंद्रियपदार्थसंनिकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेशमव्यभिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षं । तदत्रेंद्रियार्थयोर्यः संबंधस्तस्माद्यदुत्पन्नं नाभिव्यक्तं ज्ञानं न सुखादिकमव्यपदेश्यमिति । व्यपदेशत्वेनाशब्दप्राप्तेरव्यभिचारि तद्विचंद्रज्ञानवद्व्यभिचरतीति व्यवसायात्मकमिति । निश्चयात्मकं प्रत्यक्षं तत्रास्य प्रत्यक्षता न बुध्यते । तथाहि । यत्रात्मार्थग्रहणंप्रति साक्षाद्व्याप्रियते तदेव प्रत्यक्षं । तच्चावधिमनःपर्यायकेवलात्मकं । एतच्चापरोपाधिद्वारेण प्रवृत्तेरनुमानवत्परोक्षमिति । उपचारप्रत्यक्षं तु स्यान्नचोपचारस्तत्त्वचिंतायां व्याप्रियतइति। अनुमानमपि पूर्ववच्छेपवत्सामान्यतोदृष्टमिति त्रिधा । तत्र कारणात्कार्यानुमानं पूर्ववत्कार्यात्कारणानुमानं शेपवत्सामान्यतोदृष्टांतभूतमेकं विकसितं दृष्ट्वा पुष्पिताश्चूताजगतीति । यदिवा देवदत्तादौ गतिपूर्विकां स्थानात् स्थानांतरावाप्तिं दृष्ट्वाऽऽदित्ये गत्यनुमानमिति । तत्राप्यन्यथानुपपत्तिरेव गमिका न कारणादिकं तयाविना कारणस्य कार्यंप्रति व्यभिचारात् । यत्रतु सा विद्यते तत्र कार्यकारणादिव्यतिरेकेणापि गम्यगमकभावोदृष्टः । तद्यथा । भविष्यति शकटोदयः कृत्तिकादर्शनादिति । तदुक्तं । अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किं॥ नान्यथाऽनुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किं ॥ १ ॥ अपिच प्रत्यक्षस्याप्रामाण्ये तत्पूर्वकस्या

प्यनुमानस्याप्रामाण्यमिति । प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानं । यथा गौर्गवयस्तथा ऽत्रच संज्ञासंज्ञिसंबंधप्रतिपत्तिरुपमानार्थो ऽत्रापि सिद्धायामन्यथानुपपत्तावनुमानलक्षण त्वेन तत्रैवांतर्नावात्पृथक्प्रमाणत्वमनुपपन्नमेव । अथ नास्त्यनुपपत्तिस्ततोव्यनिचाराद प्रमाणतोपमानस्य । शाब्दमपि न सर्वं प्रमाणं किंतर्ह्याप्तप्रणीतस्यैवागमस्य प्रामाण्यान्न चार्हद्व्यतिरेकेणापरस्याप्तता युक्तियुक्तेत्येतच्चान्यत्र निर्लोडितमिति । किंच सर्वमप्येत त्प्रमाणमात्मनोज्ञानं । ज्ञानं चात्मनोगुणः पृथक्पदार्थतयान्युपगंतुं न युक्तोरूपरसादी नामपि पृथक्पदार्थतापत्तेः । अथ प्रमेयग्रहणेनेंद्रियार्थतया तेप्याश्रिताः सत्यमाश्रिता नतु युक्तियुक्ताः । तथाहि । द्रव्यव्यतिरेकेण तेपामनावात्तद्ग्रहणेच तेषामपि ग्रहणं सिद्धमेवेति न युक्तं पृथगुपादानं । प्रमेयं त्वात्मशरीरेंद्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्यना वफलडुःखापवर्गाः । तत्रात्मा सर्वस्य द्रष्टोपनोक्ता चेच्छाद्वेषप्रयत्नसुखडुःखज्ञानानुमेयः। सच जीवपदार्थतया गृहीतएवाऽस्मानिरिति । शरीरं तु तस्य नोगायतनं नोगायतनानीं द्रियाणि नोक्तव्याइंद्रियार्थाः । एतदपि शरीरादिकं जीवाजीवग्रहणेनोक्तमस्मानिरिति । उपयोगोबुद्धिरित्येतच्चज्ञानविशेषः । सच जीवगुणतया जीवोपादानतयोपात्तएव । सर्व विषयमंतःकरणं युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिलिंगं मनस्तदपि द्रव्यमनःपौजलिकमजीवग्रहणेन गृहीतं नावमनस्त्वात्मगुणत्वाज्जीवग्रहणेनेति । आत्मनः सुखडुःखसंवेदनानां निवर्तनका रणं प्रवृत्तिः सापि पृथक्पदार्थतया नान्युपगंतुं युक्ता । तथाहि । प्रवृत्तिरित्यात्मेच्छा सा चात्मगुणएवात्माऽनिप्रायतया ज्ञानविशेषत्वादात्मानं दूषयतीति दोषः । तद्यथा । अ स्यात्मनो नवेदं शरीरमपूर्वमनादित्वादस्य नाप्यनुत्तरत्वात्संततेरिति । योयमात्मनोध्यवसा यः सदोषोरागद्वेषमोहादिकोवा दोषः । अयमपि दोषोजीवानिप्रायतया तदंतर्नावीति न पृथग्वाच्यः । प्रेत्यनावः परलोकसद्भावोयमपि ससाधनोजीवाजीवग्रहणेनोपात्तः । फलमपि सुखडुःखोपनोगात्मकं तदपि जीवगुणे एवांतर्नवतीति न पृथगुपदेष्टव्यमिति । डुःखमित्येतदपि विविधबाधनायोगरूपमिति फलादतिरिच्यते । जन्ममरणप्रबंधोच्छेदरूप तया सर्वडुःखप्रहाणलक्षणोमोक्षः सचास्मानिरुपात्तएवेति । किमित्यनवधारणात्मकः प्रत्ययः संशयोऽसावपि निर्णयज्ञानवदात्मगुणएवेति । येन प्रयुक्तः प्रवर्तते तत्प्रयोजनं तदपीच्छाविशेषणत्वादात्मगुणएव । अविप्रतिपत्तिविषयापन्नोऽर्थोदृष्टांतोऽसावपि जीवा जीवयोरन्यतरः । नचैतावतास्य पृथक्पदार्थता युक्ताऽतिप्रसंगादवयवग्रहणेन च तस्योत्त रत्र ग्रहणादिति । सिद्धांतश्चतुर्विधः । तद्यथा । सर्वतंत्राविरुद्धस्तंत्रेऽधिकृतोर्थः सर्वतंत्र सिद्धांतः । यथा स्पर्शनादीनींद्रियाणि स्पर्शादयइंद्रियार्थाः प्रमाणैः प्रमेयस्य ग्रहणमि ति समानं । तंत्रसिद्धः परतंत्रासिद्धः प्रतितंत्रसिद्धांतोयथा सांख्यानां नाऽसतश्चात्मला नोनच सतः सर्वथाविनाशइति । तथा चोक्तं । नासतोजायते नावोनानावोजायते सत

इति यत्सिद्धावन्यस्यार्थस्यानुषंगेण सिद्धिः सोधिकरणसिद्धांतः । यथेंद्रियव्यतिरिक्तोज्ञानात्माऽस्ति दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणादिति । तत्रानुषंगिणोर्याइंद्रियनानात्वं नियतविषयाणींद्रियाणि स्वविषयग्रहणलिंगानि च ज्ञातुर्ज्ञानसाधनानि स्पर्शादिगुणव्यतिरिक्तं द्रव्यं गुणाधिकरणमनियतविषयाश्चेतनाइति । पूर्वार्थसिद्धावेतेऽर्थाः सिध्यंति नैतैर्विना पूर्वार्थः संभवतीति । अपरीक्षितार्थाभ्युपगमात्तद्विशेषपरीक्षणमभ्युपगमसिद्धांतः । तद्यथा । किंशब्दइति विचारे कश्चिदाह । अस्तु द्रव्यं शब्दः सतु किंनित्योऽथानित्यइत्येवं विचारः । सचायं चतुर्विधोपि सिद्धांतोन ज्ञानविशेषादतिरिच्यते । ज्ञानविशेषस्यात्मगुणत्वाद्गुणस्य च गुणिग्रहणेन ग्रहणादपृथग्गुपादानमिति। अथावयवाः प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनानि । तत्र साध्यनिर्देशः प्रतिज्ञाय नित्यः शब्दोऽनित्योवेति । हिनोति गमयति प्रतिज्ञातमर्थमिति हेतुः । तथोत्पत्तिधर्मकत्वात्साध्यसाधर्म्यात्तद्धर्मभावे दृष्टांतः । उदाहरणं यथा घटइति। वैधर्म्योदाहरणं यदि नित्यं न भवति तदुत्पत्तिमदपि न भवति यथाकाशमिति । तथा न तथेति वा पक्षधर्मोपसंहारउपनयः । तद्यथा । अनित्यः शब्दः कृतकत्वादघटवत्तथाचायं । अनित्यत्वाभावे कृतकत्वमपि नभवत्याकाशवत् तथाऽयमिति । प्रतिज्ञाहेत्वोः पुनर्वचनं निगमनं तस्मादनित्यइति । तत्रामी पंचाप्यवयवायदि शब्दमात्रं ततः शब्दस्य पौद्गलिकत्वात्पुद्गलानां चाजीवग्रहणेन ग्रहणान्नपृथग्गुपादानं न्याय्यमथतज्ज्ञानं ततोजीवग्रहणेनैवोपादानमिति । ज्ञानविशेषपदार्थताभ्युपगमे च पदार्थबहुत्वं स्यादनेकप्रकारत्वाज्ज्ञानविशेषाणामिति। संशयादूर्ध्वं भवितव्यताप्रत्ययः सदर्थपर्यालोचनात्मकस्तर्कः । यथा भवितव्यमत्र स्थाणुना पुरुषेणवेत्ययमपि ज्ञानविशेषएव । नच ज्ञानविशेषाणां ज्ञातुरभिन्नानां पृथक्पदार्थपरिकल्पनं समनुजानते विद्वांसः । संशयतर्काभ्यामुत्तरकालभावी निश्चयात्मकः प्रत्ययः । निर्णयोयमपि प्राग्वन्न ज्ञानादतिरिच्यते । किंचास्य निश्चयात्मकतया प्रत्यक्षादिप्रमाणांतर्भावान्न पृथक्निर्देशोन्याय्यइति । तिस्रः कथावादोजल्पोवितंडा चेति । तत्र प्रमाणतर्कसाधनोपालंभः सिद्धांताविरुद्धः पंचावयवोपपन्नः प्रतिपक्षपरिग्रहोवादः । सच तत्त्वज्ञानार्थं शिष्याचार्ययोर्भवति । सएव विजिगीषुणा सार्धं छलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपालंभोजल्पः । सएव प्रतिपक्षस्थापनाहीनोवितंडेति । तत्रासां तिसृणामपि कथानां भेदएव नोपपद्यते यतस्तत्त्वचिंतायां तत्त्वनिर्णयार्थं वादोविधेयोन छलजल्पादिना तत्त्वागमः कर्तुं पार्यते । छलादिकं हि परवंचनार्थमुपन्यस्यते । नच तेन तत्त्वावगतिरिति।सत्यपि भेदे नैषां पदार्थता यतोयदेव परमार्थतोवस्तुवृत्त्या वस्त्वस्ति तदेव परमार्थतयाऽभ्युपगंतुं युक्तं । वादास्तु पुरुषेच्छावशेन भवंतोऽनियतावर्तंते ते न तेषां परमार्थतेति । किंच पुरुषेच्छानुविधायिनोवादाः कुक्कुटलावकादिष्वपि पक्षप्रति

पक्षपरिग्रहेण भवंत्यतस्तेषामपि तत्त्वप्राप्तिः स्यान्नचैतदिष्यतइति । असिद्धानैकांतिक विरुद्धाहेत्वाभासाः । हेतुवदाभासंतइति हेत्वाभासास्तत्र सम्यग्घेतूनामपि न तत्त्वव्यव स्थितिः किंपुनस्तदाभासानां। तथाहि। इह यन्नियतं वस्त्वस्ति तदेव तत्त्वं भवितुमर्हति हे तुवस्तु। क्वचि द्वस्तुनि साध्ये हेतवः क्वचिदहेतवश्त्यनियतास्तइति । अथ छलं अर्थविघा तोऽर्थविकल्पोपपत्तेरिति । तत्रार्थविशेषे विवक्षितेऽभिहिते वक्तुरभिप्रायादर्थांतरकल्पना वाक्छलं ।यथा नवकंबलोऽयं देवदत्तः।अत्र च नवः कंबलोऽस्येति वक्तुरभिप्रायः।विग्रहे च विशेषोन समासे । तत्रायं छलवादी नवः कंबलोऽस्येत्येतद्भवताभिहितमिति कल्प यति नचायं तथेत्येवं प्रतिषेधयति । तत्र छलमित्यसदर्थाभिधानं। तद्यदि छलं न तर्हि तत्त्वं तत्त्वं चेन्न तर्हि छलं परमार्थरूपत्वात्तस्येति। तदेवं छलं तत्त्वमित्यतिरिक्ता वाचोयु क्तिः। दूषणाभासास्तु जातयस्तत्र सम्यक्दूषणस्यापि न तत्त्वव्यवस्थितिरनियतत्वात् । अनियतत्त्वं च यदेवैकस्मिन् सम्यक् दूषणं तदेवान्यत्र दूषणाभासं पुरुषशक्त्यपेक्षत्वाच्च दू षणाभासव्यवस्थितेरनियतत्वमिति । कुतः पुनर्दूषणाभासरूपाणां जातीनामवास्तव त्वात्तासामिति। वादकाले वादी प्रतिवादी वा येन निगृह्यते तन्निग्रहस्थानं तच्च वादिनो साधनांगवचनं प्रतिवादिनस्तद्दोषोद्भावनं विहाय यदन्यदभिधीयते नैयायिकैस्तत्प्रलापमा त्रमिति । तच्च प्रतिज्ञाहानिः प्रतिज्ञांतरं प्रतिज्ञाविरोधइत्यादिकमेतच्च विचार्यमाणं न निग्रहस्थानं भवितुमर्हति भवदपिच पुरुषस्यैवापराधं कर्तुमलं न त्वेतत्तत्त्वं भवितुमर्हति। वक्तृगुणदोषौ हि परार्थे अनुमानेऽधिक्रियेते नतु तत्त्वमिति। तदेवं न नैयायिकोक्तं तत्त्वं तत्त्वेनाश्रयितुं युज्यते तस्योक्तनीत्या सदोषत्वादिति।नापि वैशेषिकोक्तं तत्त्वमिति।तथाहि। द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावास्तत्त्वमिति । तत्र पृथिव्यप्तेजोवायुराकाशं कालोदिगात्मा मनइति नव द्रव्याणि । तदत्र पृथिव्यप्तेजोवायूनां पृथग्द्रव्यत्वमनुपप न्नं । तथाहि । तएव परमाणवः प्रयोगविस्रसाभ्यां पृथिव्यादित्वेन परिणमंतोपि न स्व कीयं द्रव्यत्वं त्यजंति। नचावस्थाभेदेन द्रव्यभेदोयुक्तोऽतिप्रसंगादिति । आकाशकाल योश्चास्माभिरपि द्रव्यत्वमभ्युपगतमेव । दिशस्त्वाकाशावयवभूतायाअनुपपन्नत्वं पृथ ग्द्रव्यत्वमतिप्रसंगदोषादेव । आत्मनश्च स्वशरीरमात्रव्यापिनउपयोगलक्षणस्याभ्युपग तद्रव्यत्वमिति । मनसश्च पुद्गलविशेषतया पुद्गलद्रव्येऽतर्भावइति परमाणुवद्भावान्म नसश्च जीवगुणत्वादात्मन्यंतर्भावइति। यदपि तैरभिधीयते यथा पृथिवीत्वयोगात्पृथिवीति तदपि स्वप्रक्रियामात्रमेव । यतोनहि पृथिव्याः पृथग्भूतं पृथिवीत्वमपि येन तद्योगात्पृ थिवी भवेदपि तु सर्वमपि यदस्ति तत्सामान्यविशेषात्मकं नरसिंहाकारमुभयस्वभावमिति। तथा चोक्तं। नान्वयः सहभेदत्वा,न्न भेदोन्वयवृत्तितः॥ मृद्भेद द्वयसंसर्ग, वृत्तिजात्यंतरं घटः॥ १ ॥ तथा नरस्य सिंहरूपत्वान्न सिंहोनररूपतः॥ शब्दविज्ञानकार्याणां भेदा

ज्ञात्यंतरं हि सइत्यादि । अथ रूपरसगंधस्पर्शारूपिद्रव्यवृत्तेर्विशेषगुणास्तथा संख्या परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे इत्येते सामान्यगुणाः सर्वद्रव्यवृत्तित्वा त् । तथा बुद्धिः सुखदुःखेच्छा द्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्कारात्र्यात्मगुणाः । गुरुत्वं पृथिव्यु दकयोर्द्रव्यस्वभावत्वेन परोपाधिकत्वं पृथिव्युदकाग्निषु स्नेहोंऽभस्येव वेगाख्यः संस्कारो मूर्तद्रव्येष्वेव आकाशगुणः शब्दइति । तत्र संख्यादयः सामान्यगुणारूपादिवद्द्रव्यस्व भावत्वेन परोपाधिकत्वाद्गुणाएव न भवंति । यद्यपि स्युस्तथापि न गुणानांपृथक्त्व व्यवस्था । तत्पृथक्त्वभावे द्रव्यस्वरूपहानेर्गुणपर्यायवत् द्रव्यमिति कृत्वा नांतरीयक तया द्रव्यग्रहणेनैव ग्रहणं न्याय्यमिति न पृथग्भावः । किंच तस्य भावस्तत्वमित्युच्यते। भावप्रत्ययश्च यस्य गुणस्य हि भावाद् द्रव्ये शब्दनिवेशस्तदभिधाने त्वतलावित्यनेन भव ति । तत्र घटोरक्तउदकस्याहारकोजलवान् सर्वैरेव घटउच्यते । अत्र च घटस्य भावोघट त्वं रक्तस्य भावोरक्तत्वं आहारकस्यभावआहारकत्वं जलवतोभावोजलवत्वमित्यत्र घटसा मान्यरक्तगुणक्रियाद्रव्यसंबंधरूपाणां गुणानां सद्भावात् द्रव्ये पृथुबुध्नाकारउदकाद्याहरण क्षमे कुटकाख्ये शब्दस्य घटादेरभिनिवेशस्तत्र त्वतलाविह च रक्ताख्यकोगुणोयत्सद्भावात्कत रश्चतद् द्रव्यं यत्र शब्दनिवेशोयेन भावप्रत्ययः स्यादिति । किमिदानीं रक्तस्य भवोरक्तत्व मिति न भवितव्यं भवितव्यमुपचारेण । तथाहि । रक्तइत्येतद्द्रव्यत्वेनोपचर्य तस्य सामा न्यं भावइति रक्तत्वमिति । नचोपचारस्तत्वचिंतायामुपयुज्यते शब्दसिद्धावेव तस्य कृता र्थत्वादिति । शब्दश्चाकाशस्य गुणएव न भवति तस्य पौद्गलिकत्वादाकाशस्य चामूर्तत्वा दिति । शेषं तु प्रक्रियामात्रं न साधनदूषणयोरंगं । क्रियापि द्रव्यसमवायिनी गुणवत्पृथ गाश्रयितुं न युक्तेति । अथ सामान्यं तद्द्विधा परमपरंच । तत्र परं महासत्वाख्यं द्रव्यादि पदार्थव्यापि । तथाचोक्तं । सदिति यतोद्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता अपरं च द्रव्यत्वगुण त्वकर्मत्वात्मकं । तत्र न तावन्महासत्तायाः पृथक्पदार्थता युज्यते यतस्तस्यां यः सदि ति प्रत्ययः सकिमपरसत्तानिबंधनउत स्वतएव तत् । यद्यपरसत्तानिबंधनस्तत्राप्ययमेव विकल्पोऽतोऽनवस्था । अथ स्वतएव ततस्तद् द्रव्यादिष्वपि स्वतएव सत्प्रत्ययोभविष्य तीति किमपरसत्तयाऽजागलस्तनकल्पया विकल्पितया । किंच द्रव्यादीनां किं सतां सत्तया सत्प्रत्ययउताऽसतां तत् । यदि सतां स्वतएव सत्प्रत्ययोभविष्यति किंतया । असत्यप क्षेतु शशविषाणादिष्वपि सत्तायोगात्सत्प्रत्ययः स्यादिति । तथाचोक्तं । स्वतोर्थाः संतु सत्तावत्सत्तया किं सदात्मनां ॥ असदात्मसु नैषा स्यात्सर्वथाऽतिप्रसंगतइत्यादि । एतदे व दूषणमपरसामान्येऽप्यायोज्यं तुल्ययोगक्षेमत्वात् । किंचास्माभिरपि सामान्यविशेष रूपत्वाद्वस्तुनः कथंचित्तदिष्यतएवेति तस्यच कथंचित्तद्व्यतिरेकात्तद्द्रव्यग्रहणेनैव ग्रह णमिति । अथ विशेषास्ते चात्यंतव्यावृत्तिबुद्धिहेतुत्वेन परैराश्रीयंते । तत्रेदं चिंत्यते।

या तेषु विशेषबुद्धिः सा नापरविशेषहेतुका ऽऽश्रयितव्याऽनवस्थाभयात्। स्वतः समाश्रयणेच तद्वद्द्रव्यादिष्वपि विशेषबुद्धिः स्यान्किंद्रव्यादिव्यतिरिक्तैर्विशेषैरिति। द्रव्यादिव्यतिरिक्तास्तु विशेषाअस्मान्निरप्याश्रीयंते सर्वस्यसामान्यविशेषात्मकत्वादिति। एततु प्रक्रियामात्रं। तद्यथा। नित्यद्रव्यवृत्तयोंऽत्याविशेषानित्यद्रव्याणिच चतुर्विधाः परमाणवोमुक्तात्मानोमुक्तमनांसि चेति निर्युक्तिकत्वादपकर्णयितव्यमिति। समवायस्त्वयुतसिद्धानामाधाराधेयभूतानां यइह प्रत्ययहेतुः ससमवायइत्युच्यते। असावपि नित्यश्चैकश्चाश्रीयते। तस्यच नित्यत्वात्समवायिनोपि नित्याआपद्येरन्। तदनित्यत्वे च तस्याप्यनित्यत्वापत्तिस्तदाधाररूपत्वात्तस्य तदेकत्वाच्च सर्वेषां समवायिनामेकत्वापत्तिस्तस्य चानेकत्वमिति। किंचायं समवायः संबंधस्तस्य च द्विष्ठत्वादयुतसिद्धत्वमेव दंडदंडिनोरिव वीरणानांच कटोत्पत्तौ तद्रूपतया विनाशः कटरूपतयोत्पत्तिरन्वयरूपतया व्यवस्थानमिति दुग्धदध्नोरिवेत्येवं वैशेषिकमतेपि न सम्यक्पदार्थावस्थितिरिति। सांप्रतं सांख्यदर्शने तत्वनिरूपणं प्रक्रम्यते। तत्र प्रकृत्यात्मसंयोगात्सृष्टिरुपजायते। प्रकृतिश्च सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था ततोमहान् महतोऽहंकारोऽहंकारादेकादशेंद्रियाणि पंचतन्मात्राणि तन्मात्रेभ्यः पंचभूतानीति चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपं सचाकर्ता निर्गुणोऽभोक्तेति। तत्र परस्परविरुद्धानां सत्त्वादीनां गुणानां प्रकृत्यात्मनां नियामकं गुणिनमंतरेणैकत्रावस्थानं न युज्यते कृष्णसितादिगुणानामिव। नच महदादिविकारे जन्ये प्रकृतिवैषम्योत्पादने कश्चिद्धेतुस्तद्व्यतिरिक्तवस्त्वंतरानभ्युपगमादात्मनश्चाकर्तृत्वेनाकिंचित्करत्वात्स्वभाववैषम्याभ्युपगमेतु निर्हेतुकत्वापत्तेर्नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वा स्यादिति। उक्तंच। नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वा, हेतोरन्यानपेक्षणात्॥ अपेक्षातोहि भावानां, कादाचित्कत्वसंभवः॥ १॥ अपिच। महदहंकारौ संवेदनादभिन्नौ पश्यामः। तथाहि। बुद्धिरध्यवसायोऽहंकारश्चाहं सुख्यहं दुःखीत्येवमात्मनः प्रत्ययस्तयोश्चिद्रूपतयाऽऽत्मगुणत्वं न जडरूपायाः प्रकृतेर्विकारावेताविति। अपिच येयं तन्मात्रेभ्योभूतोत्पत्तिरिष्यते। तद्यथा। गंधतन्मात्रात्पृथिवी रसतन्मात्रादापः रूपतन्मात्रात्तेजः स्पर्शतन्मात्राद्वायुः शब्दतन्मात्रादाकाशमिति सापि न युक्तिक्षमा। यतो यदि बाह्यभूताश्रयेणैतदभिधीयते तदयुक्तं। तेषां सर्वदाभावान्नकदाचिदनीदृशं जगदिति कृत्वा। अथ प्रतिशरीराश्रयणादेतदुच्यते। तत्र किल त्वगस्थिकठिनलक्षणा पृथ्वी श्लेष्मासृग्द्रवलक्षणाआपः पक्तिलक्षणंतेजः प्राणापानलक्षणोवायुः सुषिरलक्षणमाकाशमिति तदपि न युज्यते। यतोऽत्रापि केषांचिच्छरीराणां शुक्रासृग्द्वावुत्पत्तिर्न तत्र तन्मात्राणां गंधोपि समुपलक्ष्यते। अदृष्टस्यापि कारणत्वकल्पनेऽतिप्रसंगः स्यात्। अंडजोद्भिज्जांकुरादीनामप्यन्यतएवोत्पत्तिर्भवंती समुपलक्ष्यते। तदेवं व्यवस्थिते प्रधानमहदहंकारादिकोत्पत्तिर्या सांख्यैः स्वप्रक्रियाऽभ्युपगम्यते तत्तैर्निर्यु

क्तिकमेव स्वदर्शनानुरागेणाभ्युपगम्यतइति । आत्मनश्चाकर्तृत्वाभ्युपगमे कृतनाशोऽकृताग मश्च स्यात् । बंधमोक्षाभावश्च निर्गुणत्वे च ज्ञानशून्यतापत्तिरित्यतोबालप्रलापमात्रं । प्र कृतेश्चाचेतनायाआत्मार्थं प्रवृत्तिर्युक्तिविकलेति । अथ बौद्धमतं निरूप्यते । तत्रहि पदा र्था द्वादशायतनानि । तद्यथा । चक्षुरादीनि पंच रूपादयश्च विषयाः पंच शब्दायतनं धर्मा यतनंच धर्माः सुखादयो द्वादशायतनपरिछेदकत्वे प्रत्यक्षानुमाने द्वेएव प्रधाने प्रमाणे। तत्र चक्षुरादींद्रियाण्यजीवग्रहणेनैवोपात्तानि । भावेंद्रियाणितु जीवग्रहणेनेति। रूपाद यश्च विषयाअजीवापादनेनोपात्तान पृथगुपादातव्याः । शब्दायतनं तु पौजलिकत्वाछब्द स्याजीवग्रहणेन ग्रहणं । नच प्रतिव्यक्ति पृथक्पदार्थता युक्तिसंगतेति । धर्मात्मकं सुखं दुः खंच यद्यसातोदयरूपं ततोजीवगुणत्वाज्जीवेंतर्भावः । अथ तत्कारणं कर्म ततः पौज लिकत्वादजीवइति । प्रत्यक्षं च तैर्निर्विकल्पकमिष्यते तच्चानिश्चयात्मकतया प्रवृत्तिनिवृ त्त्योरनंगमित्यप्रमाणमेव । तदप्रामाण्ये तत्पूर्वकत्वादनुमानमपीति । शेषस्त्वाक्षेपपरिहारो न्यत्र सुविचारितइति नेह प्रतन्यतइत्यनया दिशा मीमांसकलोकायतमताभिहितत्वनिराक रणं सुबुध्या विधेयं । तयोरत्यंतलोकविरुद्धपदार्थानां श्रयणान्न साक्षाडुपन्यासः कृतइति। तस्मात्पारिशेष्यसिद्धाअर्हडुक्तानव सप्त पदार्थाः सत्यास्तत्परिज्ञानं च क्रियावादे हेतु र्नापरपदार्थपरिज्ञानमिति ॥ २१ ॥ सांप्रतमध्ययनार्थमुपसंजिहीर्षुः सम्यग्वादपरिज्ञान फलमादर्शयन्नाह । (सद्देसुइत्यादि) शब्देषु वेणुवीणादिषु श्रुतिसुखदेषु रूपेषु च नय नानंदकारिष्वासंगमकुर्वन् गार्ध्यमकुर्वाणोऽनेन रागोगृहीतस्तथा गंधेषु कुथितकलेवरादि षु रसेषु चांतप्रांताशनादिषु अडुष्यमाणोमनोज्ञेषु द्वेषमकुर्वन्निदमुक्तं भवति । शब्दादिष्विं द्रियविषयेषु मनोज्ञेतरेषु रागद्वेषाभ्यामनपदिश्यमानोजीवितमसंयमजीवितं नाभिकांक्षे न्नापि परीषहोपसर्गैरभिडुतोमरणमभिकांक्षेत् । यदिवा जीवितमरणयोरनभिलाषी संय ममनुपालयेदिति । तथा मोक्षार्थिनादीयते गृह्यतइत्यादानं संयमस्तेन तस्मिन्वा सति गुप्तोयदिवा मिथ्यात्वादिनादीयते इत्यादानमष्टप्रकारं कर्म तस्मिन्नादातव्ये मनोवाक्का यैर्गुप्तः समितश्च तथा भाववलयं माया तया विमुक्तोमायामुक्तः । इति परिसमाप्त्यर्थं । ब्र वीमीति पूर्ववत् । नयाः पूर्ववदेव ॥ २२ ॥ समाप्तं समवसरणाख्यं द्वादशमध्ययनमिति ॥

हवे यथातथ्य नामे तेरमो अध्ययन प्रारंभियें छैयें. बारमां अध्ययनमां जुदा जुदा दर्श नीउना समवसरण कह्या नंतर तेरमां अध्ययनमां यथातथ्य एटले सत्य स्वरूप देखाडे छे.

आहत्तहीयं तु पवेयइस्सं, नाणप्पकारं पुरिसस्स जातं ॥ सउ
अधम्मं असउ असीलं, संतिं असंतिं करिस्सामि पाउं ॥ १ ॥

अहोयराउंअ समुट्ठिएहिं, तहागएहिं पडिलप्प धम्मं ॥ समा
हिमाघातमजोसयंता, सत्थारमेवं फरुसं वयंति ॥ २ ॥

अर्थ—(आहत्तहीयंतुपवेयइस्सं के०) यथातथ्य सम्यक् ज्ञाननो स्वरूप हवे प्रवे दिसुं एटले कहीशुं तथा (पुरिसस्स के०) जीवने (नाणप्पकारं के०) नानाप्रकारना ज्ञानादिक जे (जातं के०) उत्पन्न थाय तेपण हवे कहीशुं तथा (सउअधम्मं के०) सत्पुरुषनुं धर्म जे श्रुत चारित्ररूप जे डुर्गति थकी राखनार ते धर्म अने (असउअ सीलं के०) असत्पुरुष एटले परतीर्थिक तथा ग्रहस्थ अने पासत्थादिक तेनो सील एटले डुष्टाचार ते कहीशुं तथा (संतिं के०) शांति एटले निर्वाणरूप अने (असंतिं के०) संसारचमणरूप ए बन्नेने (करिष्यामि प्राडु के०) प्रगट करी शुं ॥१॥ (अहोयराउंअस मुट्ठिएहिंके०) रात्रना तेम दिवसना पण सम्यक् प्रकारे उठ्या एटले सावधान थया एवा जे निन्हवादिक जमाली प्रमुख स्वदर्शनी तथा बोटिकादिक अन्यदर्शनी ते(तहागएहिंप डिलप्पधम्मं के०) तथा प्रकारे तीर्थंकरादिक पासेथी संसारथकी निकलवानुं उपाय एवो जे पंमित धर्म तेने पामीने जमाली प्रमुखनी पेरे कर्मने उदयें ते श्रीतीर्थंकर ना पित एवो (समाहिमाघातं के०) समाधिवंत एटले सम्यक् दर्शनादिक धर्म तेने (अ जोसयंता के०) अण सेवता थका कदाग्रहि पणाने लीधे मिथ्यात्वना प्रेर्या स्वछंदे यथा तथा एटले जेम तेम बोलता श्रीसर्वज्ञना मार्गने उछापता अने कुमार्गनो उपदेश कर ता एरीते प्रवर्त्तता (सत्थार मेवंफरुसंवयंति के०) कदापि पोताने आचारना शिखावनार एवा गुरु जे महानुनाव ते प्रत्यें पण कगोर वचन बोले ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथ त्रयोदशं याथातथ्याध्ययनमारज्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (अहत्ते ति) यथातथानावोयाथातथ्यं तत्त्वज्ञानादिकं पुरुषस्य जंतोर्जातमुत्पन्नं तदहं प्रवेदयि ष्यामि कथयिष्यामि । तुशब्दोविशेषणे । वितथाचारिणस्तद्दोषांश्च कथयिष्यामि । नाना प्रकारं वा चित्रं पुरुषस्य स्वनावं प्रशस्तरूपं प्रवेदयिष्यामि । तथा । सतः सत्पुरुषस्य धर्मं श्रुतचारित्राख्यं शीलमुद्यतविहारित्वं शांतिं निर्वृतिं मोक्षं (करिस्सामिपाउंति) प्राडुष्करि ष्ये प्रकटयिष्यामि । तथाऽसतोऽशोननस्य परतीर्थिकस्य गृहस्थस्य पार्श्वस्थादेर्वा चश ब्दसमुच्चितमधर्मं पापं तथाऽशीलं कुत्सितशीलमशांतिं संसारं प्राडुष्करिष्ये ॥१॥ अहोरा त्रं समुत्थितानिन्हवाबोटिकाश्च तेन्यः श्रुतधरेन्यस्तथागतेन्योवा तीर्थकृद्भ्योधर्मं श्रुतचा रित्राख्यं प्रतिलन्य प्राप्यापि मंदनाग्यतया जमालिप्रमुखस्वात्मोत्कर्षात्तीर्थंकरैराख्यातं समाधिं मोक्षमार्गमजोषयंतोऽसेवमानाः सर्वज्ञोक्तं मार्गं विध्वंसयंति ते निन्हवाबोटिका श्च परेणाचार्यादिना चोदिताः संतस्तं शास्तारं चोदकं पुरुषं निष्ठुरं वदंति ॥ २ ॥

॥ टीका—अथानंतरं त्रयोदशमारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहानंतराध्ययने प रवादिमतानि निरूपितानि तन्निराकरणं चाऽकारि तच्च याथातथ्येन भवति तदिह प्रति पाद्यते इत्यनेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोग द्वाराणि भवंति । तत्राप्युपक्रम द्वारांतर्गतार्थाधिकारोयं । तद्यथा । शिष्यगुणदीपना । अथानंतराध्ययनेषु धर्मसमाधि मार्गसमवसरणाख्येषु यदवितथं याथातथ्येन व्यवस्थितं यच्च विपरीतं वितथं तदपि लेशतोऽत्र प्रतिपादयिष्यतइति । नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे याथातथ्यमिति नाम तदधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । "णामतहं ठवणतहं, दव्वतहं चेव होइ भावतहं ॥ दव्वतहं पुण जो ज स्स सभावोहिंति दव्वस्स" ॥ २४ ॥ (णामतहमित्यादि) अस्याध्ययनस्य याथातथ्य मिति नाम । तच्च यथाशब्दस्य भावप्रत्ययांतस्य भवति । तत्र यथाशब्दोल्लंघनेन तथा शब्दस्य निक्षेपं कर्तुं निर्युक्तिकारस्यायमभिप्रायः । इह यथाशब्दोयमनुवादे वर्तते तथा शब्दश्च विधेयार्थे । तद्यथा । यथेदं तथैवेदं भवता विधेयमित्यनुवादविधेययोश्च विधेयां शएव प्रधानभावमनुभवतीति । यद्दिवा याथातथ्यमिति तथ्यमतस्तदेव निरूप्यतइति । तत्र यथाभावस्तथ्यं यथावस्थितवस्तुता । तन्नामादिश्चतुर्धा । तत्र नामस्थापने सुगमे । द्रव्यतथ्यं गाथापश्चार्धेन प्रतिपादयति । तत्र द्रव्यतथ्यं पुनर्योयस्य सचित्तादेः स्वभावोद्र व्यप्राधान्याद्यस्य स्वरूपं तद्यथोपयोगलक्षणोजीवः कठिनलक्षणा पृथिवी द्रव्यलक्षणा आपइत्यादि । मनुष्यादेर्वा योयस्य मार्दवादिस्वभावोऽचित्तद्रव्याणां च गोशीर्षचंदनकंब लरत्नादीनां द्रव्याणां स्वभावः । तद्यथा । उण्हे करेइ सीयं,सीए उण्हत्तणं पुण भवे इ ॥ कंबलरयणादीणं, एस सहावो मुणेयव्वो ॥ १ ॥ भावतथ्यमधिकृत्याह । "भावत हं पुण नियमा, णायव्वं छव्विहंमि भावंमि ॥ अहवा वि नाणदंसण, चरित्तविणएण अ ज्झप्पे" ॥ २५ ॥ (भावतहमित्यादि) भावतथ्यं पुनर्नियमतोऽवश्यंभावतया षड्विधे औ दयिके भावे ज्ञातव्यं । तत्र कर्मणामुदयेन निर्वृत्तऔदयिकः कर्मोदयापादितोगत्याद्यनु भावलक्षणस्तथा कर्मोपशमेन निर्वृत्तऔपशमिकः कर्मानुदयलक्षणइत्यर्थः । तथा क्षया ज्ञातः क्षायिकोऽप्रतिपातिज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणस्तथा क्षयाडुपशमाच्च जातः क्षायोप शमिकोदेशोदयोपशमलक्षणः । परिणामेन निर्वृत्तः पारिणामिकोजीवाजीवभव्यत्वादिल क्षणः पंचानामपि भावानां द्विकादिसंयोगान्निष्पन्नः सान्निपातिकइति । यद्दिवा अध्या त्मन्यांतरं चतुर्धा भावतथ्यं द्रष्टव्यं । तद्यथा । ज्ञानदर्शनचारित्रविनयतथ्यमिति । तत्र ज्ञानतथ्यं मत्यादिकेन ज्ञानपंचकेन यथास्वमवितथोविषयोपलंभः । दर्शनतथ्यं शंकाद्य तिचाररहितं जीवादितत्त्वश्रद्धानं । चारित्रतथ्यं तु तपसि द्वादशविधे संयमे सप्तदशवि धे सम्यगनुष्ठानं । विनयतथ्यं द्विचत्वारिंशद्भेदभिन्ने विनये ज्ञानदर्शनचारित्रतपउपचारिक रूपे यथायोगमनुष्ठानं ज्ञानादीनां तु वितथाऽसेवनेनाऽतथ्यमिति । अत्र च भावतथ्येना

धिकारः। यदि वा नावतथ्यं प्रशस्ताप्रशस्तनेदाद्विधा। तदिह प्रशस्तेनाधिकारं दर्शयितु माह। "जह सुत्तं तह अडो, चरणं चारो तहत्ति णायवं॥ संतंमिय पसंसाए, असतीपगयं डुगुंबाए"॥ २६॥ (जहसुत्तमित्यादि) यथा येनप्रकारेण ययापद्धत्त्या सूत्रं व्यवस्थितं तथा तेनैव प्रकारेणार्थोव्याख्येयोनुष्ठेयश्च। एतदर्शयति। चरणमाचरणमनुष्ठातव्यं। यदिवा सिद्धांतसूत्रस्य चारित्रमेवाचरणमतोयथासूत्रं तथा चारित्रमेतदेव चानुष्ठेयमेतच्च याथातथ्यमिति ज्ञातव्यं। पूर्वार्धस्यैव नावार्थं गाथापश्चार्धेन दर्शयितु माह। यद्वस्तुजातं प्रकृतं प्रस्तुतं यथार्थमधिकृत्य सूत्रमकारि तस्मिन्नर्थे सति विद्यमाने यथावद्व्याख्यायमाने संसारोत्तारणकारणत्वेन प्रशस्यमाने वा याथातथ्यमिति नवति विवक्षिते त्वर्थे सत्यविद्यमाने संसारकारणत्वेन वा जुगुप्सायां सत्यां सम्यगनुष्ठीयमाने वा याथातथ्यं न नवति। इदमुक्तं नवति। यदि यथासूत्रं येन प्रकारेण व्यवस्थितं तथैवार्थोयदि नवति व्याख्यायते ऽनुष्ठीयते च संसारनिस्तरणसमर्थश्च नवति ततोयाथातथ्यमिति नवति। असति त्वर्थे क्रियमाणे संसारकारणत्वेन जुगुप्सिते वा नवति याथातथ्यमिति गाथातात्पर्यार्थः। एतदेव दृष्टांतगर्नं दर्शयितुमाह। "आयरियपरंपर्येण आगयं जोउ बेयबुद्धीए॥ कोवेइ बेयवाई जमालिनासंचणासिहत्तित्ति॥ २७॥ (आयरिएइत्यादि) आचार्याः सुधर्मस्वामिजंबुनामप्रनवार्यरक्षिताद्यास्तेषां प्रणालिका पारंपर्यं तेनागतं यद्व्याख्यानं सूत्रानिप्रायस्तद्यथा व्यवहारतयानिप्रायेण क्रियमाणमपि कृतं नवति। यस्तु कुतर्कदर्पाध्मातमानसोमिथ्यात्वोपहतदृष्टिकया बेकवुध्या निपुणबुध्या कुशाग्रशेमुषीकोहमिति मत्वा कोपयति दूषयति अन्यथा तमर्थं सर्वज्ञप्रणीतमपि व्याचष्टे कृतं कृतमित्येवं ब्रूयात्। वक्तिच नहि मृत्पिंडक्रियाकालएव घटोनिष्पद्यते कर्मगुणव्यपदेशानामुपलब्धेः। सएव बेकवादी निपुणोहमित्येवं वादी पंडितानिमानी जमालिना समोजमालिनिन्हववत् सर्वज्ञमतविकोपकोविनंक्ष्यत्यरहघट्टघटीयंत्रन्यायेन संसारचक्रवाले बंभ्रमिष्यतीति। नचासौ जानाति वराकोयथायं लोकोघटार्थाः क्रियामृत्खननाद्याघट एवोपचरति तासांच क्रियाणां क्रियाकालनिष्ठाकालयोरेककालत्वात् क्रियमाणमेव कृतं नवति। दृश्यते चायं व्यवहारोलोके। तद्यथा। अद्यैव देवदत्ते निर्गते कान्यकुब्जं देवदत्तोगतइति व्यपदेशस्तथा दारुणि छिद्यमाने प्रस्थकोयं व्यपदेशइत्यादि। सांप्रतमन्यथावादिनोऽपायदर्शनद्वारेणोपदेशं दातुकामआह। ण करेति डुःखमोरकं, उज्जममाणोवि संजमतवेसु॥ तम्हाअत्तुक्करिसो वज्जेअवो जतिजणेणं॥ २८॥ (णकरेइत्यादि) योहि डुर्गृहीतविद्यालवदर्पाध्मातः सर्वज्ञवचनैकदेशमप्यन्यथा व्याचष्टे सएवंनूतः सत्संयमतपस्सुद्यमं कुर्वाणोशारीरिकमानसानां डुःखानामसातोदयजनितानां मोक्षं विनाशं न करोत्यात्मगर्वाध्मातमानसोपि यतएवं तस्मादात्मोत्कर्षोऽहमेव सिद्धांतार्थवेदी नापरः कश्चिन्मत्तु

व्योस्तीत्येवंरूपोभिमानोवर्जनीयस्त्याज्योयतिजनेन । साधुलोकेनापरोपि ज्ञानिना ज्ञात्या दिकोमदोन विधेयः किंपुनर्ज्ञानमदः । तथा चोक्तं ॥ ज्ञानं मददर्पहरं, माद्यति यस्तेन तस्य कोवैद्यः ॥ अगदोयस्य विषायति, तस्य चिकित्सा कथं क्रियते ॥ १ ॥ गतोनामनिष्पन्नो निक्षेपः सांप्रतं सूत्रालापकनिष्पन्नस्य निक्षेपस्यावसरः सच सूत्रे सति भवति । सूत्रंच सूत्रा नुगमे सचावसरः प्राप्तोऽतः सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (आह त्तहीत्यादि) अस्य चानंतरसूत्रेण सहायं संबंधः । तद्यथा । वलयाविमुक्केत्यभिहितं । भावव लयं रागद्वेषौ ताभ्यां विनिर्मुक्तस्यैव याथातथ्यं भवतीत्यायनेन संबंधेनायातस्यास्य सूत्रस्य व्याख्या प्रतन्यते । यथातथाभावोयं याथातथ्यं तत्त्वं परमार्थस्तच्च परमार्थचिंतायां सम्य ग्ज्ञानादिकं तदेव दर्शयति । ज्ञानप्रकारं प्रकारशब्दआद्यर्थे । आदिग्रहणाच्च सम्यग्दर्शनचा रित्रे गृह्येते । तत्र सम्यग्दर्शनमौपशमिकक्षायोपशमिकं गृह्यते । चारित्रं तु व्रतसमितिकषाया णां धारणरक्षणनिग्रहादिकं गृह्यते । एतत्सम्यग्ज्ञानादिकं पुरुषस्य जंतोर्यज्जातमुत्पन्नं त दहं प्रवेदयिष्यामि कथयिष्यामि । तुशब्दोविशेषणे । वितथाचारिणस्तद्दोषांश्चाविर्भावयि ष्यामि । नानाप्रकारं वा विचित्रं पुरुषस्य स्वभावमुच्चावचप्रशस्ताप्रशस्तरूपं प्रवेदयिष्या मि । नानाप्रकारं स्वभावफलंच पश्चार्धेन दर्शयति । सतः सत्पुरुषस्य शोभनस्य सदनुष्ठा यिनः सम्यग्दर्शनचारित्रज्ञानवतोधर्मं श्रुतचारित्राख्यं पुनर्गतिगमनधरणलक्षणं वा तथा शीलमुद्युक्तविहारित्वं तथा शांतिं निर्वृतिमशेषकर्मक्षयलक्षणां (करिस्सामिपाउत्ति) प्रादुष्करिष्ये प्रकटयिष्यामि यथावद्भावयिष्यामि । तथाऽसतोऽशोभनस्य परतीर्थिक स्य गृहस्थस्य पार्श्वस्थादेर्वा च शब्दः समुच्चितमधर्मं पापं तथा कुशीलं कुत्सितशील मशांतिं चानिर्वाणरूपां संसृतिं प्रादुर्भावयिष्यामीति । अत्र च सतोधर्मं शीलं शांतिंच प्रादुष्करिष्याम्यसतश्चाधर्ममशीलमशांतिंचेत्येवं पदघटना योजनीया अनुपात्तस्यच चशब्दे नाक्षेपोद्रष्टव्यइति ॥१॥ जंतोर्गुणदोषरूपं नानाप्रकारं स्वभावं प्रवेदयिष्यामीत्युक्तं तद्दर्श यितुकामआह । (अहोयमित्यादि) अहोरात्रमहर्निशं सम्यगुत्थितानिन्हवाबोटिका श्च सदनुष्ठानवंतस्तेभ्यः श्रुतधरेभ्यस्तथा तथागतेभ्योवा तीर्थकृद्भ्योधर्मं श्रुतचारित्राख्यं प्रतिलभ्य संसारनिःसरणोपायं धर्ममवाप्यापि कर्मोदयान्मंदभाग्यतया जमालिप्रभृतयस् वात्मोत्कर्षात्तीर्थकृदाद्याख्यातं समाधिं सम्यग्दर्शनादिकं मोक्षपद्धतिमजोषयंतोऽसेवंतः सम्यगकुर्वाणानिह्नवाबोटिकाश्च स्वरुचिविरचितव्याख्याप्रकारेण निर्दोषं सर्वज्ञप्रणीतं मार्गं विध्वंसयंति कुमार्गं प्ररूपयंति ब्रुवते चासौ सर्वज्ञएव न भवति । यः क्रियमाणं कृतमि त्यध्यक्षविरुद्धं प्ररूपयति । तथा यः पात्रादिपरिग्रहान्मोक्षमार्गमाविर्भावयति । एवं स र्वज्ञोक्तमश्रद्दधानाः श्रद्धानं कुर्वंतोप्यपरे धृतिसंहननदुर्बलतया यथारोपितं संयमभारं

बोढुमसमर्थाः क्वचिद्विपीदंतोऽपरेणाचार्यादिना वत्सलतया चोदिताः संतस्तं शास्तारम नुशासितारं चोदकं पुरुषं वदंति कर्कशं निष्ठुरं निर्जरं प्रतीपं चोदयंतीति ॥ २ ॥

विसोहियं ते अणुकाहयंते, जे आत्तभावेण वियागरेज्जा ॥ अट्ठाणिए होइ बहूगुणाणं, पाठांतरे (बहूणिवेसे) जे णाणसंकाइ मुसं वदेज्जा ॥३॥ जे यावि पुठ्ठ पलिउंचयंति, आयाणमठं खलु वंचयित्ता ॥ असाहुणो ते इह साहुमाणी, मायन्नि एसंति अणंतघातं ॥ ४ ॥

अर्थ–ते स्वाग्रहि पुरुष (विसोहियंते के०) ते विशोधित शुद्धनिर्दोषमार्ग तेने (अणुकाहयंते के०) आचार्यनी प्ररूपणा थकी उत्थापिने कहे एटले (जेआत्तभावेणविया गरेज्जा के०) जे पोताना भावे एटले स्वछंदे बोले (अट्ठाणिएहोइबहूगुणाणं के०) ते अहाछंद पणा थकी घणा गुणा जे ज्ञानादिक तेनो अस्थान थाय केमके ए स्वा भिनिवेश मिथ्यात्वना भाव थकी करीने (जेणाणसंकाइ के०) जे ज्ञान शंका एटले श्रीजिनागमनेविषे शंका लावीने (मुसंवदेज्जा के०) मृषाबोले स्वकल्पित जेवो रुचे तेवो बोले तेणे करीने घणा गुणानो अस्थान एटले कुभाजन थाय ॥ ३ ॥ (जे आविपुठ्ठपलिउंचयंति के०) जे कोइ पूछे जे तमे कोनी पासेथी भण्याछो तेवारे पोता ना आचार्यनुं नाम गोपवीने बीजानुं नाम कहे (आयाणमठंखलुवंचयित्ता के०) ते निश्चें थकी आत्मार्थी जे मोक्षनो अर्थी तेने वंचेछे एतावता ते मुक्तिने नपामे (असाहु णोतेइहसाहुमाणी के०) परमार्थथकी ते असाधु थको पण आ जगतने विषे पोतामां साधुपणु करी माने तथा बीजाउने कहीने पोतामां साधु पणो मनावे (मायन्निएसं तिअणंतघातं के०) ते मायावी साधु आसंसारनेविषे अनंत घात पामे एटले अनंत काल पर्यंत संसारमां परिभ्रमण करे ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–विशोधितोमोक्षमार्गस्तं ते कदाग्रहिणोगोष्ठामाहिलवदनुपश्चादाचार्यप्र रूपणातः कथयंति अनुकथयंति । ये आत्मोत्कर्षादात्मभावेन स्वाभिप्रायेणाचार्यपारं पर्यागतमप्यर्थं व्युदस्यान्यथा व्यागृणीयुर्व्याख्यांति । आचार्यपरंपरामज्ञात्वा स्वाभिप्राये ण सूत्रार्थव्याख्यानं महतेऽनर्थाय । इदमेव दर्शयति । सएवंभूतोऽस्थानिकोऽनाधारोबहूनां ज्ञानादिगुणानां स्यात् । क्वचित्पाठः । (अट्ठाणिएहोइबहूणिवेसत्ति) अस्यार्थः । अ स्थानमभाजनं सम्यक्ज्ञानादीनां । किंभूतोबहुरनर्थकारकत्वेनाऽसदभिनिवेशोयस्य सब हुनिवेशः । ते पुनः किंभूताइत्याह । ये ज्ञानशंकया मृषा वदेयुः । कोर्थः । जिनोक्ताग मे शंकां कुर्वंत्ययं तदुक्तएव नस्यादिति । अथवा ज्ञानशंकया पांडित्याभिमानेन मृषा

वदेयुः ॥ ३ ॥ येऽज्ञाततत्त्वाः परेण पृष्टाः कस्मादाचार्यादधीतं नवद्भिरिति ते स्वमाचार्यं ज्ञानाभिमानेन (पलिउंचयंतित्ति) निन्हुवते । अथवा सदपि प्रमादस्खलितमाचार्यादि ना पृष्टाः संतोमातृस्थानेनावर्णवादभीतानिन्हुवते । ते एवं कुर्वाणाआदानं मोक्षमर्थं वंचयंति । एवं कुर्वाणास्तेऽसाधवइहास्मिन् जगति साधुमानिनोमायान्विताएष्यंति या स्यंत्यनंतशोघातं विनाशं संसारं वा । एकं तावत्स्वयमसाधवोद्वितीयं साधुमानिनः । उक्तंच । पावं काऊण सयं, अप्पाणं सुद्धमेव ववहरइ ॥ दुगुणं करेइ पावं, बीअं बालस्स मंदत्तं ॥१॥ तदेवमात्मोत्कर्षदोषाद्बोधिलाभमप्युपहत्यानंतभवभाजः प्राणिनः स्युरिति ॥४॥

॥ टीका–किंच । (विसोहियमित्यादि) विविधमनेकप्रकारं शोधितः कुमार्गप्ररूपणापनयनद्वारेण निर्दोषतां नीतोविशोधितः सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राख्योमोक्षमार्गस्तमेवं भूतं मोक्षमार्गं ते स्वाग्रहग्रस्तागोष्ठामाहिलवदनुपश्चादाचार्यप्ररूपणातः कथयंत्यनुकथयंति । ये चैवंभूताआत्मोत्कर्षात्स्वरुचिविरचितव्याख्याप्रकारव्यामोहिताआत्मभावेन स्वाभिप्रायेणाचार्यपारंपर्येणायातमप्यर्थं व्युदस्यान्यथा व्याग्रणीयुर्व्याख्यानयेयुस्तेहि गंभीराभिप्रायं सूत्रार्थं कर्मोदयात्पूर्वापरेण यथावत्परिणामयितुमसमर्थाः पंडितमानिनउत्सूत्रं प्रतिपादयंति । आत्मभावव्याकरणं च महतेऽनर्थायेति दर्शयति । सएवंभूतः स्वकीयाभिनिवेशादस्थानिकोऽनाधारोबहूनां ज्ञानादिगुणानामभाजनं भवतीति । ते चामी गुणाः । सुस्सूसइ पडिपुच्छइ, सुणेइ गेण्हइ य ईहएआवि ॥ तत्तो अपोहएवा, धारेइ करेइ वा सम्मं ॥१॥ यदि वा गुरुशुश्रूषादिना सम्यक्ज्ञानावगमस्ततः सम्यगनुष्ठाने च मतः सकलकर्मक्षयलक्षणोमोक्षइत्येवंभूतानां गुणानामनायतनमसौ । क्वचित्पाठः । (अट्ठाणिएहोंतिबहूणिवेसत्ति) अस्यायमर्थः । अस्थानमभाजनमसौ भवति सम्यक्ज्ञानादीनां गुणानां । किंभूतोबहुरनर्थसंपादकत्वेनासदभिनिवेशोयस्य सबहुनिवेशः । यदिवा गुणानामस्थापनिकोऽनाधारोबहूनां दोषाणां च निवेशः स्थानमाश्रयइति । किंभूताः पुनरेवं भवंतीति दर्शयति । ये केचन दुर्गृहीतज्ञानलवाऽवलेपिनोज्ञाने श्रुतज्ञाने शंका ज्ञानशंका तया मृषावादं वदेयुः । एतदुक्तं भवति । सर्वज्ञप्रणीते आगमे शंकां कुर्वंत्ययं तत्प्रणीतएव नभवेदन्यथा वाऽस्यार्थः स्यात् । यदिवा ज्ञानशंकया पांडित्याभिमानेन मृषावादं वदेयुर्यथाहं ब्रवीमीति तथैव युज्यते नान्यथेति ॥ ३ ॥ किंचान्यत् । (जेयाविपुट्ठ इत्यादि) ये केचनाविदितपरमार्थाः स्वल्पतया समुत्सेकिनोऽपरेण पृष्टाः कस्मादाचार्यात्सकाशादधीतं श्रुतं भवद्भिरिति । ते तु स्वकीयमाचार्यं ज्ञानावलेपेन निन्हवानोऽपरं प्रसिद्धं प्रतिपादयंति । यदिवा मयैवैतत्स्वतउत्प्रेक्षितमित्येवं ज्ञानावलेपात् (पलिउंचयंतित्ति) निन्हुवते । यदिवा सदपि प्रमादस्खलितमाचार्यादिना लोचनादिके अवसरे पृ

ष्टाः संतोमातृस्थानेनाऽवर्णवादनयान्निन्हुवते । तएवं पलिउंचकानिन्हवं कुर्वाणाआदी यतइत्यादानं ज्ञानादिकं मोक्षोवा तमर्थं वंचयंति भ्रंशयंत्यात्मनः । खलुरवधारणे। वंचयं त्येव । एवमनुष्ठायिनश्चासाधवस्ते परमार्थतस्तत्त्वचिंतायामिहास्मिन् जगति साधुविचा रेवा साधुमानिनश्चात्मोत्कर्षायाऽसदनुष्ठानमानिनोमायान्वितास्ते एष्यंति यास्यंत्यनंत शोवहुशोघातं विनाशं संसारं वा अनवदग्रसंसारकांतारमनुपरिवर्तयिष्यंतीति । दोषद्वय डुष्टत्वात्तेषामेकं तावत्स्वयमसाधवोद्वितीयं साधुमानिनः । उक्तंच । पावं काऊण सयं, अप्पाणं शुद्धमेव ववहरइ ॥ डुगुणं करेइ पावं, वीयं बालस्स मंदत्तं ॥ १ ॥ तदेवमा त्मोत्कर्षदोषाद्बोधिलाभमप्युपहत्यानंतसंसारभाजोभवंत्यसुमतइति स्थितं ॥ ४ ॥

जे कोहणे होइ जगछभासी, विउसियं जे उ उदीरएज्जा ॥ अंधे
व से दंमपहं गहाय, अविउसिए घासति पावकम्मी ॥ ५ ॥
जे विग्गहीए अनायभासी, न से समे होइ अझंझपत्ते ॥ उव
वायकारी य हरीमणे य, एगंतदिठीय अमाइरूवे ॥ ६ ॥

अर्थ-(जे कोहणेहोइजगछभासी के०) जे क्रोधी थाय ते जगतार्थभाषी होय जगतार्थभाषी एटले जेमां जेवो दोष होय तेने तेवो कहे अर्थात् काणाने काणो कहे खोडाने खोडो कहे टुंटाने टुंटो कहे पांगलाने पांगलो कहे कोढीने कोढी कहे एवो प्रगट निठुर भाषण करनार होय (विउसियंजेउ के०) जे उपशमावेलो एवो जे कलह तेने वली (उदीरएज्जा के०) उदीरे ए पुरुषने जे फल थाय ते कहेछे. (सेके०) ते पुरुष (अंधेवदंमपहंगहाय के०) जेम कोइ आंधलो पुरुष लाकडी ग्रहण करीने मार्गने वि षे जातो थको अनेक कंटक चतुष्पदादिके करी पीडाय तेम (अविउसिए के०) अ कोविद एवोजे कलहकारी (पावकम्मी के०) पापकर्माचारी जीव ते पण (घासतिके०) चतुर्गतिक संसारमांहे डुःख पामे ॥ ५ ॥ (जेविग्गहीए के०) जेकोइ विग्रह एटले कलहकारी होय ते यद्यपि क्रिया तो केटलीक करे तथापि ते क्रिया विग्रह एटले युद्ध प्रिय थाय तथा (अनायभासी के०) अन्यायनो बोलनार होय (नसेसमेहोइअझंझ पत्ते के०) ते पुरुष कलहरहित एवा सम्यक् दृष्टी तेना सरखो समभावी नहोय ते माटे साधु कलहकारी नहोय परंतु साधु केवो होय ते कहेछे. (उववायकारीयहरीम णेय के०) उपपातकारी एटले आचार्यनी आज्ञापालक तथा लज्जावंत मनवालो होय एटले अनाचार करतो थको आचार्यादिक थकी लज्जा पामे तथा (एगंतदिठीय के०) एकांतदृष्टी एटले जीवादिक पदार्थनो ज्ञाता होय एकांत श्रद्धावंत होय तथा (अमाइरूवे के०) मायारहित होय एवा पुरुषने साधु कहिए. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—यः स्वनावेन क्रोधनोरोपी नवति यश्च जगदर्थनापी योयथावस्थितः पदार्थस्तं तथैव नाषते । तद्यथा । ब्राह्मणं डोडमिति वक्ति वणिजं किराटमिति शूद्र मान्नीरमिति श्वपाकं चांमालमिति काणं काणमेव वक्ति । खंजं खंजमेव चौरं चौरमिति । अंधमंधमित्यादि करिणं योवक्ति सजगदर्थनापी निष्ठुरनापीत्यर्थः । व्यवसितं समाप्तं ६६ कलहं यः पुनरुदीरयेत् प्रज्वालयेत् सोऽधश्व । यथांधोदंडमेवं गोदंडमार्गं गृहीत्वा व्रजन् घृष्यते कंटकश्वापदादिनिः पीड्यते । एवं सोपि (अविउसियंति) अप शांतकलहः पापकर्मा घृष्यते पीड्यते संसारपीडानिः ॥ ५ ॥ योविग्रहिकः कलहप्रियो ऽन्यायनापी न समोमध्यस्थोनवति अऊंऊा प्राऊंऊा माया कलहोवा मायाप्राप्तः कलहप्राप्तोवा सरागद्वेषवान् मायावांश्च नवतीत्यर्थः । एतद्दोषदर्शी उपपातकारी आ चार्यादेशकरः न्हीर्लज्जासंयमस्तत्र मनोयस्य सन्हीमनाः एकांतेन तत्त्वेषु दृष्टिर्यस्य सएकांतदृष्टिः । एगंतसड्डित्तिपाठे एकांतश्रद्धावान् जिनागमे । अमायि निर्मायं रूपं यस्यस तथा बद्मरहितइत्यर्थः ॥ ६ ॥

॥ टीका—मानविपाकमुपदर्श्याधुना क्रोधादिकषायदोषमुन्नावयितुमाह । (जेकोहणे इत्यादि) योह्यविदितकषायविपाकः प्रकृत्यैव क्रोधनोनवति तथा जगदर्थनापी यश्च नवति । जगत्यर्थाजगदर्थाये यथा व्यवस्थिताः पदार्थास्तानानाषितुं शीलमस्य जगदर्थनापी तद्यथा ब्राह्मणं डोडमिति ब्रूयात्तथा वणिजं किराटमिति शूद्रमान्नीरमिति श्वपाकं चांडालमित्यादि तथा काणं काणमिति तथा खंजं कुब्जं वडनमित्यादि तथाकुष्टिनं द्धयिण मित्यादि योयस्य दोषस्तं तेन खरं परुषं ब्रूयात् यः सजगदर्थनाषी। यदिवा जयार्थनापी यथैवात्मनोजयोनवति तथैवाविद्यमानमप्यर्थं नाषते तच्छीलश्च येन केनचित्प्रकारेणाऽसदर्थनाषणेनाप्यात्मनोजयमिच्छतीत्यर्थः । (विउसियंति) विविधमवसितं पर्यवसितमुपशांतं ६६ कलहं यः पुनरप्युदीरयेत् । एतदुक्तं नवति । कलहकारिनिर्मिथ्यादुष्कृतादिना परस्परं क्षामितेपि तद्ब्रूयाद्येन पुनरपि तेषां क्रोधादयोनवंति । सांप्रतमेतद्विपाकं दर्शयति । यथाह्यंधश्चक्षुर्विकलोदंडपथं गोदंडमार्गं प्रमुखोज्ज्वलं गृहीत्वाऽऽश्रित्य व्रजन् सम्यगकोविदतया घृष्यते कंटकश्वापदादिनिः पीड्यते एवमसावपि केवलं लिंगधार्यनुपशांतक्रोधः कर्कशनाष्यधिकरणोद्दीपकस्तथा (अविउसियत्ति) अनुपशांत६६ः पापमनार्यं कर्मानुष्ठानं यस्यासौ पापकर्मा घृष्यते चतुर्गतिके संसारे यातनास्थानगतः पौनः पुन्येन पीड्यतइति ॥५॥ किंचान्यत् । (जेविग्गहिएइयादि) यः कश्चिदविदितपरमार्थोविग्रहोयुद्धं सविद्यते यस्यासौ विग्रहिकोयद्यपि प्रत्युपेक्षणादिकाः क्रियाविधत्ते तथापि युद्धप्रियः कचिन्नवति तथाऽन्याय्यं नाषितुं शीलमस्य सोऽन्यायनापी यत्किंचन नाष्यऽस्था

नभाषी गुर्वाद्यधिक्षेपकरोवा यश्चैवंभूतोनासौ समोरक्तद्विष्टतया मध्यस्थोभवति । तथा नाप्यझंझां प्राप्तोकलहप्राप्तोवा नभवत्यमायाप्राप्तः । यदिवा अझंझाप्राप्तैरकलहप्राप्तैः सम्यग्दृष्टिभिरसौ समोन भवति यतः, अतोनैवंविधेन भाव्यमपित्वक्रोधनेनाकर्कशभाषिणा चोपशांतयुद्धानुदीरकेण न्यायभाषिणाऽझंझाप्राप्तेन मध्यस्थेन च भाव्यमिति। एवमनंतरोदिष्टदोषवर्जीसन्नुपपातकार्याचार्यनिर्देशकारी यथोपदेशं क्रियासु प्रवृत्तः । यदिवोपायकारित्ति) सूत्रोपदेशप्रवर्तकस्तथा ह्रीर्लज्जासंयमोमूलोत्तरगुणभेदभिन्नस्तत्र मनोयस्यासौ ह्रीमनाः । यदिवाऽनाचारं कुर्वन्नाचार्यादिभ्योलज्जते सएवमुच्यते । तथैकांतेन तत्त्वेन जीवादिषु पदार्थेषु दृष्टिर्यस्यासावेकांतदृष्टिः। पागंतरंवा (एगंतसड्डित्ति) एकांतेन श्रद्धावान् मौनींद्रोक्तमार्गे एकांतेन श्रद्धालुरित्यर्थः। चकारः पूर्वोक्तदोषविपर्यस्तगुणसमुच्चयार्थः । तद्यथा । ज्ञानपलिउंचकोक्रोधीत्यादि । तावदझंझाप्राप्तइति स्वतएवाह । (अमाइरूवेत्ति) अमायिनोरूपं यस्यासावमायिरूपोऽशेषच्छद्मरहितइत्यर्थः । न गुर्वादीन् छद्मनोपचरति नाप्यन्येन केनचित्साधं छद्मव्यवहारं विधत्तइति ॥ ६ ॥

स पेसले सुहुमे पुरिसजाए, जच्चन्निए चेव सुउज्जुयारे ॥ बहुंपि
अणुसासिए जे तहच्चा, समे हु से होइ अझंझपत्ते ॥ ७ ॥ जे
आवि अप्पं वसुमंति मत्ता, संखाय वायं अपरिक्ख कुज्जा ॥ त
वेण वाहं सहिउत्ति मत्ता, अण्णं जणं पस्सति बिंबभूयं ॥ ८ ॥

अर्थ-(सपेसले के०) तेने आचार्यादिके घणो शिखव्यो छतो पण यथार्थ तेवाज भावें वर्त्ते पण गुरु वचन विरोधि नथाय तेने पेशल एटले मनोहर विनयादिक गुणवंत जाणवो. तथा (सुहुमे के०) सूक्ष्म भावनो देखनार तथा (पुरुषजात के०) परमार्थथकी पुरुषार्थनो साधक तथा (जच्चन्निए के०) तेवीज जातिसहित सत्कुलोत्पन्न जाणवो (चेव के०) निश्चय थकी (सुउज्जुयारे के०) ते ऋजु आचारी एटले सरल मार्गे प्रवर्त्ते तेवा पुरुषने (बहुंपिअणुसासिएजेतहच्चा के०) आचार्यादिके घणो शिखाव्यो छतो मुखनुं राग फेरवे नही अर्थात् प्रसन्न मन राखे (समेहुसेहोइअझंझपत्ते के०) ते पुरुष श्रीवीतराग समान कलह रहित थाय ॥ ७ ॥ (जेआविअप्पंवसुमंतिमत्ता के०) जे कोइ लघुप्रकृति पोताने आतमाने वसुमंत एटले संयमवंत जाणीने (संखायवायंअपरिक्खकुज्जा के०) सम्यक् परमार्थे अपरीक्ष थको आत्मोत्कर्ष अभिमान करे (तवेणवाहंसहिउत्तिमत्ता के०) तथा हुंज तपे करी सहितछुं माहारा समान बीजो कोइ तपस्वी नथी एवीरीते जाणीने अभिमान धारण करी (अण्णंजणंपस्सतिबिंबभूयं के०) अन्य जन ने बिंबभूत गुणशून्य आकार मात्र देखे एटले जलचंद्रमानी पेरे जाणे ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—क्वचित्प्रमादस्खलने सति आचार्यादिना बह्व्प्यनुशास्यमानस्तथैव स न्मार्गानुसारिणी वा लेश्या चित्तवृत्तिर्यस्य सतथार्चः। एवंभूतोयः सपेशलोमृष्टवाक्यः सूक्ष्मदर्शित्वात्। पुरुषजातः सएव तत्त्वपुरुषार्थकारी सएव जात्यन्वितः सत्कुलोत्पन्नः। सुशीलोहि कुलीनः स्यान्नसुकुलोत्पत्तिमात्रेण सएव सुष्ठु अतिशयेन ऋजुः संयमस्तस्य क रणशीलः सएव समोमध्यस्थः झंझा क्रोधोमाया वा तामप्राप्तोभवति ॥ ७ ॥ यश्चापि वसु द्रव्यं संयमस्तद्वंतमात्मानं मत्वा तथा संख्या ज्ञानं. तद्वंतमात्मानं मत्वा परमार्थमप रीक्ष्य वादमात्मोत्कर्षवादं कुर्यात्। तथा तपसा सहितोहमिति मत्वाऽन्यं जनं बिंब भूतं जलचंद्रवदर्थशून्यं पश्यति अवगणयतीत्यर्थः ॥ ८ ॥

॥ टीका—पुनरपि सद्गुणोत्कीर्तनायाह ! (सपेशलेइत्यादि) योहि कटुसंसारोद्विग्नः क्वचित्प्रमादस्खलिते सत्याचार्यादिना बह्व्प्यनुशास्यमानश्चोद्यमानस्तथैव सन्मार्गानुसारि एयर्चा लेश्या चित्तवृत्तिर्यस्य भवतीति तथार्चः। यश्च शिक्षां ग्राह्यमाणोपि तथार्चोभवति सपेशलोमिष्टवाक्योविनयादिगुणसमन्वितः सूक्ष्मः सूक्ष्मदर्शित्वात्सूक्ष्मभाषित्वा द्वा सूक्ष्मः सएव पुरुषजातः सएव परमार्थतः पुरुषकार्यकारी नापरोयोऽनायुधतपस्विजनपराजिते नापि क्रोधेन जीयते तथाऽसावेव जात्यन्वितः सुकुलोत्पन्नः। सच्छीलान्वितोहि कुलीन इत्युच्यते न सुकुलोत्पत्तिमात्रेण। तथा सएव सुष्ठ्वतिशयेन ऋष्ठुः संयमस्तत्करणशीलोऋ जुकरः। यदिवा (उज्जुचारेत्ति) यथोपदेशं यः प्रवर्तते नतु पुनर्वक्रतयाऽचार्यादिवचनं वि लोमयति प्रतिकूलयति यश्च तथार्चः पेशलः सूक्ष्मभाषी जात्यादिगुणान्वितः क्वचिदवक्रः समोमध्यस्थोनिंदायां पूजायां च न रुष्यति नापि तुष्यति तथा झंझा क्रोधोमाया वा तां प्रा प्तोझंझाप्राप्तः। यदि वाऽझंझाप्राप्तैर्वीतरागैः समस्तुल्योभवतीति ॥ ७॥ प्रायस्तपस्विनां ज्ञान तपोऽवलेपोभवतीत्यतस्तमधिकृत्याह। (आविअप्पंइत्यादि) यश्चापि कश्चिल्लघुप्रकृतिर ल्पतयाऽत्मानं वसु द्रव्यं तच्च परमार्थचिंतायां संयमस्तद्वंतमात्मानं मत्वाऽहमेवात्र संयमवान् मूलोत्तरगुणानां सम्यग्विधायी नापरः कश्चिन्मत्तुल्योस्तीति। तथा संख्यायंते परिछिद्यंते जीवादयः पदार्थायेन तज्ज्ञानं संख्येत्युच्यते तद्वंतमात्मानं मत्वा तथा स म्यक् परमार्थमपरीक्ष्यात्मोत्कर्षवादं कुर्यात्तपसा द्वादशभेदभिन्नेनाहमेवात्र सहितोयुक्तो न मत्तुल्योविकृष्टतपोनिष्टप्तदेहोस्तीत्येवं मत्वाऽऽत्मोत्कर्षाभिमानीत्यन्यं जनं साधुलोकं गृहस्थलोकं वा बिंबभूतं जलचंद्रवत्तदर्थशून्यं कूटकार्षापणवद्वा लिंगमात्रधारिणं पुरु षाकृतिमात्रं वा पश्यत्यवमन्यते। तदेवं यद्यन्मदस्थानं जात्यादिकं तत्तदात्मन्येवारो प्यापरमवधूतं पश्यतीति ॥ ८ ॥

एगंत कूमेण उ से पलेइ, ण विज्जती मोणपयंसि गोत्ते ॥ जे माण
णठेण विउक्कसेज्जा, वसुमन्नतरेण अबुज्झमाणे ॥ ए ॥ जे माह
णो खत्तियजायए वा, तहुग्गपत्ते तह लेब्छई वा ॥ जे पवईए
परदत्तन्नोई, गोत्तेण जे थप्नति माणबद्धे ॥ १० ॥

अर्थ–ते पुरुष (एगंतकूमेणउसेपलेइ के०) एकांत कूटपाशे करीने जेम मृग कूटपासे पडथो थको डुःखनु विनागी थायछे तेनी पेरे ते मंदबुद्धि पण संसारमांहे परिभ्रमण करे ते पुरुष कदापि (मोणपयंसि के०) मौनपद एटले संयमपद तेनेविषे (णविज्जती के०) सर्वथा प्रकारे विद्यमान नथी एम समजवुं तथा ते पुरुष (गोत्ते के०) उंचगोत्रने विषे पण न प्रवर्त्ते किंतु ते अत्यंत हीन गोत्रनेज पामे तथा (जे माणणठेणविउक्कसेज्जा के०) जे मान एटले पूजाने अर्थे व्युत्कर्ष एटले विविध प्रकारे अनिमान करे तेपण संयमने विषे नथी एम जाणवुं तथा जे (वसु के०) संयमने ग्रहण करीने पठी (अन्नतरेण के०) मंदविपाकना उदय थकी अन्य कोइ मद स्थानकने विषे माचे ते (अबुज्झमाणे के०) निश्चे थकी परमार्थने अजाणतो अज्ञानी थको संसारमां परिभ्रमण करे ॥ ए ॥ (जेमाहणोखत्तियजायएवा के०) तथा जे ब्राह्मणजाति अथवा क्षत्रियजाति ते इक्ष्वाकुवंशादिक तेना नेद कहेछे. (तहुग्गपत्तेतहलेब्छईवा के०) तथा जे उग्रपुत्र तथा लेब्छई एटले राजपुत्र विशेष नवमल्लिक नवलेछिक एटला कुलमां उत्पन्न थयला संसारने असार जाणीने राज्य प्रमुख त्यागीने (जेपवईए के०) जे प्रव्रजित थया एटले चारित्रवान थया ते एवा उता पण (परदत्तन्नोई के०) पारको दीधो एवो जे आहार तेने नोगवे एटले शुद्धाहार ग्रहण करे (गोत्तेणजेथप्नतिमाणबद्धे के०) परंतु गोत्रने विषे गर्व नकरे एटले शुद्धाहारनुं ग्रहण करनार एवो चारित्रीउ पोताना उंच गोत्रने विषे गर्व करे नही गोत्र केवोछे तोके मानबद्ध एटले ब्राह्मण तथा क्षत्रीय वंशना उपना स्वनावे पोताना वंशना अनिमानी थायछे तेम उतां पण चारित्र आदस्या पठी कोइपण प्रकारना गोत्रनुं आहार ग्रहण करे परंतु शुद्धाहार ग्रहण करे पण पोताना गोत्रनो गर्व करीने तेवाज गोत्रनो अशुद्ध आहार लेवानी इच्छा चारित्रिउ करे नही ए अनिप्रायछे. ॥ १० ॥

॥ दीपिका–यथा कूटेन पाशेन बद्धोमृगादिः परवशोडुःखी स्यात्तथा नावकूटेन स्नेहेन एकांततोऽसौ संसारं पर्यैति बंभ्रमीति । मौनपदे संयमे सन् प्रवर्तते। किंनूते संयमे गोत्रे गां वाचं त्रायतइति गोत्रं सर्वागमाधारनूतं तस्मिन् । यश्च माननं सत्कारस्तस्या

र्थः प्रयोजनं तेन आत्मानं व्युत्कर्षयेत् मदवंतं कुर्यात् तथा च सु संयमस्तमादायान्य तरेण ज्ञानादिना मदस्थानेन माद्यति ससर्वज्ञमतं तत्त्वतोन वेत्तीति नावः ॥ ए ॥ योजात्या ब्राह्मणः क्षत्रियजातीयोवा उग्रपुत्रः क्षत्रियविशेषः (लेह्नइत्ति) क्षत्रियविशेषएव । एवं विशिष्टकुलोद्भूतः प्रव्रजितः परदत्तनोजी शुद्धाहारग्राही गोत्रे उच्चैर्गोत्रे उ त्पन्नोपि नैव स्तंनं गर्वं यायात् । किंनूते गोत्रे मानबद्धे अनिमानास्पदे ॥ १० ॥

॥ टीका—किंचान्यत् । (एगंतकूडेइत्यादि) कूटवत्कूटं यथा कूटेन मृगादिर्बद्धः पर वशः सन्नेकांतडुःखनाग्नवति । एवं नावकूटेन स्नेहमयेनैकांततोऽसौ संसारचक्रवालं प र्येति तत्र वा प्रकर्षेण लीयते प्रलीयतेऽनेकप्रकारं संसारं बंन्रमीति । तुशब्दात्कामादिना वा मोहेन मोहितोबहुवेदने संसारे प्रलीयते । यश्चैवंनूतोऽसौ न विद्यते न कदाचन सं नवति । मुनीनामिदं मौनं तच्च तत्पदं च मौनपदं संयमस्तत्र मौनींडेवा पदे सर्वज्ञप्र णीतमार्गे नासौ विद्यते । सर्वज्ञमतमेव विशिनष्टि । गां वाचं त्रायतेऽर्थाविसंवादनतः पा लयतीति गोत्रं तस्मिन्समस्तागमाधारनूतइत्यर्थः । उच्चैर्गोत्रे वा वर्तमानस्तदनिमानग्र हग्रस्तोमौनींडपदे न वर्तते । यश्च माननं पूजनं सत्कारस्तेनार्थः प्रयोजनं तेन माननार्थे न विविधमुत्कर्षयेदात्मानं योहि माननार्थेन लानपूजासत्कारादिना मदं कुर्यान्नासौ स र्वज्ञपदे विद्यतइति पूर्वेण संबंधः । तथा वसु डव्यं तच्चेह संयमस्तमादाय तथान्यतरेण ज्ञानादिना मदस्थानेन परमार्थमबुध्यमानोमाद्यति पठन्नपि सर्वशास्त्राणि तदर्थं वा गह न्नपि नासौ सर्वज्ञमतं परमार्थतोजानातीति ॥ ए ॥ सर्वेषां मदस्थानानामुत्पत्तेरारन्य जातिमदोबाह्यनिमित्तनिरपेक्षोयतोन्नवत्यतस्तमधिकृत्याह । (जेमाहणेइत्यादि) योहि जात्या ब्राह्मणोनवति क्षत्रियोवा इक्ष्वाकुवंश्यादिकः । तन्नेदमेव दर्शयति । उग्रपुत्रः क्ष त्रियविशेषजातीयः । तथा (लेह्नइत्ति) क्षत्रियविशेषएव । तदेवमादिविशिष्टकुलोद्भूतोय थावस्थितसंसारस्वनाववेदितया यः प्रव्रजितस्त्यक्तराज्यादिगृहपाशबंधनः परैर्दत्तं नोक्तुं शीलमस्य परदत्तनोजी सम्यक्संयमानुष्ठायी गोत्रे उच्चैर्गोत्रे हरिवंशस्थानीये समुत्पन्नोपि नैव स्तंनं गर्वमुपयायादिति । किंनूते गोत्रे अनिमानबद्धे अनिमानास्पदे इति । एतडुक्तं नवति । विशिष्टजातीयतया सर्वलोकानिमान्योपि प्रव्रजितः सन् कृतशिरस्तुंडमुंडनोनिक्षा र्थं परगृहाण्यटन् कथं हास्यास्पदं गर्वं कुर्यान्नैवासौ मानं कुर्यादिति तात्पर्यार्थः ॥१०॥

न तस्स जाई व कुलं व ताणं, णस्सत्त विज्जा चरणं सुचिन्नं ॥ णि
क्कम्म से सेवइ गारिकम्मं, ण से पारए होइ विमोयणाए ॥ ११ ॥

णिक्किंचणे भिक्खु सुलूहजीवी, जे गारवं होइ सलोगगामी ॥
आजीवमेयं तु अबुज्झमाणो,पुणोपुणो विप्परियासुवेंति ॥ १२ ॥

अर्थ-(नतस्सजाईव कुलंवताणं के०) ते अभिमानी पोताना गोत्रसंबंधी मदना करनारने जाति एटले जे मातानुं पक्ष अने कुल एटले पितानुं पक्ष ए बंनेनुं मद त्रा णने अर्थे न थाय कारणके संसारमां भ्रमण करतां प्राणीने मातानी जाति अने पितानुं कुल ते कांइ त्राण नथी नथाय हवे जे पदार्थ जीवने त्राण थाय ते कहेछे (ण सुन्नविज्जाचरणं सुचिन्नं के०) विद्या एटले ज्ञान अने चरण एटले चारित्र सुचीर्ण एट ले ए बन्नेने सारीरीते आचर्या थकी मुक्तिनुं कारण थायछे. अर्थात् ज्ञान अने क्रिया ए बे विना बीजो कोई जीवने शरण नथी (णिक्खम्मसेसेवइगारिकम्मं के०) माटे जे पुरुष ग्रहस्थपणा थकी णिक्कम्म एटले निकली चारित्र आदरीने फरी आ गारीनो कर्त्तव्य जे जातिमदादिक तेने सेवे अथवा सावद्यारंभादिक सेवे (णसेपारए होइविमोयणाए के०) ते पुरुष संसारनो पारंगामि न थाय केमके ज्ञान. दर्शन अने चारित्र एज मुक्तिना कारणछे परंतु जातिकुलादिकनो मद ते कांई मुक्तिनो कारण नथी एम जाणवुं ॥ ११ ॥ (णिक्किंचणेभिक्खु सुलूहजीवि के०) जे निकिंचन निपरि ग्रही सुलुक्खजीवी एटले अंतप्रांत आहारनो लेनार होय तेने भिक्षु एटले साधु जाणवो अने (जेगारवं होइसलोगगामी के०) जे गर्ववंत होय श्लाघा एटले प्रसंसानो कामि एटले वांछा करनार होय (आजीवमेयं तुअबुज्झमाणो के०) ते जीव आजीविका मात्र नो करनार छता शुद्ध संयमनो अजाण एवो छतो (पुणोपुणोविप्परियासुवेंति के०) ते जीव फरी फरी विपर्यासने पामे एटले वली वली जन्ममरणादिके करीने घणो संसारने विषे परिभ्रमण करे ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—तस्याभिमानवतोजातिमदः कुलमदोवाऽत्र संसारभ्रमणे शरणं नस्या त् । मातृभवा जातिः पितृभवं कुलमेतडुपलक्षणादन्यदपि मदस्थानं न त्राणाय । यत्त्राणं तदाह । सुचीर्णं विद्या ज्ञानं चरणं चारित्रंच तस्मादन्यत्र त्राणाशा न विद्यते । ज्ञानक्रियाभ्यामेव मोक्षइति वचनात् । एवंसत्यपि कश्चित् निष्क्रम्य प्रव्रज्या गृहीत्वापि अगारिणां गृहस्थानां कर्म सावद्यक्रियां सेवते न च कर्ममोचनाय पारगोभवति ॥ ११ ॥ बाह्यार्थेन निष्किंचनोभिक्षुः सुरुक्षजीवी वल्लचणकादिप्रांताहारएवंभूतोपि क श्चिद्गौरवप्रियोभवति । तथा श्लोककामी आत्मश्लाघाभिलाषी च स्यात् । नचैवंभूतो निष्किंचनत्वादिकमाजीवमात्मवर्तनोपायं कुर्वाणः परमार्थमबुध्यमानः संसारे विपर्या सं जन्ममरणाद्युपद्रवमुपैति ॥ १२ ॥